विजया-दशमी आश्विन १९८६ वर्ष ३ अङ्क १

संपादक

हरिभाऊ उपाध्याय

भारत में अंग्रेजी राज्य

का आरंभ कैसे हुआ ?

? ? ?

हमारी पुस्तक 'जब अंग्रेज आये—' में पढ़िए

अत्याचार और विश्वासघात

अत्याचार

"दुनिया का क़ायदा है कि वह फ़ायदे के लोभ से सहज ही अन्धी हो जाती है। उस समय के अंग्रेज सौदागर भी अपने स्वार्थ के लिए अन्धे हो गये थे। यह देश उनका नहीं है, अथवा इसपर उनका अधिकार नहीं है, इसे जान-बूझकर वे एकदम भूल गये थे! वे यहाँ असहाय विदेशी बनियों की तरह आये थे। पर इस देश की असीम धन-राशि देखकर उनकी तृष्णा बढ़ती जाती थी और वे मतवाले हो उठे थे। उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित और पग-पग पर अपमानित होकर त्राहि-त्राहि कर रही थी। किन्तु उसकी पुकार आस-पास के वातावरण में विलीन होकर रह जाती थी।" (पृष्ठ १३१-३२)

धोखा

जिस अमीचन्द ने सदैव अंग्रेजों का साथ दिया; जिसने अनेक अवसरों पर जान पर खेलकर अंग्रेजों की रक्षा की और रुपये देकर उनकी इज़्ज़त बचाई, उस अमीचन्द को

'ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माता'

क्लाइव ने जाली पत्र बनाकर कैसी 'उच्च कोटि की धूर्तता' से धोखा दिया, यह देखिए—

"मीर जाफ़र के सिंहासनारूढ़ होने पर जगत्सेठ के महल में सन्धिपत्र (जिसमें अंग्रेजों ने अमीचन्द को कई लाख रुपये देने की बात लिखी थी) सबके सामने पढ़ा गया। उस समय उसे सुनते ही अमीचन्द घबराकर बोले—'तुम लोगों से भूल हुई है; यह कौन संधिपत्र पढ़ रहे हो, मुझे तो जो दिखाया गया था वह लाल काग़ज़ पर था!' धूर्त क्लाइव ने समय पाकर गर्व से कहा—"यह ठीक है कि तुम्हें लाल काग़ज़ पर लिखा सन्धिपत्र ही दिखाया गया था किन्तु अब तो देख रहे हो न, कि यह सादे काग़ज़ पर है!" + + क्लाइव के इशारा करने पर स्क्राफ्टन बोला—"अमीचन्द तुम्हें जो सन्धिपत्र दिखाया गया था वह जाली था; इस समय जो पढ़ा गया है वही असली है; तुम एक कौड़ी न पाओगे! × × यह सुनते ही अमीचन्द बेहोश होकर गिर पड़े और (इसी धोखेबाज़ी की चोट से) थोड़े दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई!" (पृष्ठ १७)

अत्याचार और धोखा ☞ **भारत में अंग्रेजी राज्य** के आरम्भ के सूत्रधार हैं!

अपने गुलाम होने की कहानी इस पुस्तक में पढ़िए

और उससे

स्वतन्त्र होने का दृढ़ निश्चय अपने अन्दर पैदा कीजिए।

सस्ता-मण्डल, अजमेर

विषय-सूची

चित्र और कार्टून

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटबे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष ३ खण्ड १ | सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर | आश्विन संवत् १९८६ | अंक १ पूर्ण अंक २५

स्मृति

(१)

जीवन के निर्जन तट पर
आई सहसा इठलाती
स्मृति की मधु लहर अचानक
कल्लोल-भरी मदमाती ।

(२)

कितनी तारों की रजनी,
कितने दिन, कितनी घड़ियाँ ?
विस्मृति में बीत गई हैं
निर्मोह काल की कड़ियाँ ॥

(३)

क्षण-भंगुर तरल तरंगें
मन की न लौट जायेंगी ?
क्या उस अनन्त कोने को
ये सब नहला आवेंगी ?

(४)

जल भर लाते हैं जिसको
छूकर नयनों के कोने
उस शीतलता के प्यासे
दीनता दया के दोने ॥

उषा के धुँधले प्रकाश में—

[श्री रामनाथलाल 'सुमन']

द्वन्द्व चल रहा है। प्रकाश अन्धकार पर विजय पाने के लिए विकल है। नवीन जीवन का स्रोत बहना चाहता है। पुरातन घाटे की सम्भावना देख अपनी दुकान बढ़ा रहा है। कुछ ने चारपाइयाँ छोड़ दी हैं और अपनी मजदूरी के—कर्तव्य के रास्ते पर चल पड़े हैं। उन्होंने प्रकाश का, दिन का रहस्य समझ लिया है। वे उसके सन्देश की हुंडी भुनाने को कर्म के बाजार की ओर तेजी के साथ बढ़े जा रहे हैं उन्हें देखने से जान पड़ता है कि उनके पैर समझते हैं और उन्हें मालूम है कि ठीक समय पर बाजार में न पहुँचने पर हुंडी अपना मूल्य न पा सकेगी।

पर ऐसे थोड़े हैं। अधिक ऐसे हैं जिनकी नींद तो दिन के आगमन के कर्कश शब्द ने तोड़ दी है पर वे अभी करवटें बदल रहे हैं। देखते हैं औरफिर सोने का बहाना करना चाहते हैं। सोचते हैं—'अब उठता हूँ, अब उठता हूँ।' पक्षियों के कलरव का चेतन प्रवाह आता है; उनके कानों में चेतना की प्रतिध्वनि होती है—'उठो, अब सो न सकोगे।' पर तमस ने उनकी क्रिया-शक्ति को शिथिल एवं निद्रालु बना दिया है। वे देखते हैं, सूरज आ रहा है अब चेष्टा करके भी सो न सकेंगे। फिर भी चादर ओढ़कर उसके भीतर दिन को रात बनाने की कोशिश करना चाहते हैं।

जो जग गये हैं इन्हें जगाना चाहते हैं। घण्टी बज रही है। कहती है—उठो, चेतन-प्रवाह की उपासना करो; उसके साथ दौड़ो और चेतन बनो।' घण्टी और जोर से बजने लगी। पर इनसे उठा नहीं जाता। 'सोना तो स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। हमारी नींद तो बीच-बीच में भंग होती रही। जरा सो लेने से क्या नुकसान होगा?' मन-ही-मन अपने को धोखा देकर कृत्रिम आनन्द के लिए झुँझलाहट-भरे शब्द निकलते हैं। और फिर वही आँखें मूँदने का क्रम चलने लगता है।

* * *

इतने शब्दों में आज के व्यक्ति समाज और देश को पहचाना जा सकता है। आज का व्यक्ति आत्म-वंचना के भ्रम से पीड़ित है; आज का समाज आगे और पीछे खींचने वालों के विकार की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। आज का हमारा देश किंकर्तव्य-विमूढ़ता के नशे में छटपटा रहा है।

इतने पर भी जो जगे हुए हैं, जानते हैं कि प्रभात हो रहा है; उसकी गति सोनेवालो के नींद के अभिनय से रुक नहीं सकती। निराश होने की जरूरत नहीं है। समझने की जरूरत है; सूर्योदय के सन्देश और चेतना के अमृत को अन्तःकरण में भरकर कर्म-मार्ग पर चल पड़ने की जरूरत है।

जो दुनिया की प्रगति का रहस्य समझते हैं; जिनकी आशा अन्धकार मे नहीं प्रकाश में अंकुरित है वे निराशा में आशा की ज्योति देखते हैं। इसीलिए हम गांधी को असह्य परिस्थिति में भी शान्त, स्थिर और आशावान देखते हैं; इसीलिए जवाहरलाल का हृदय वर्तमान निराशापूर्ण स्थिति में भी उमंगों की लहर पर आगे बहता चला जा रहा है।

इसलिए वर्तमान परिस्थिति की जटिलता से घबड़ाकर बैठ जाने के बदले हम उस प्रकाश की ओर, और भी अधिक आशा एव विश्वास के साथ देख

रहे हैं जो आगामी वर्ष अपने प्रथम पद-संचार के साथ हमारे आँगन में लाने वाला है। हमें उन लोगों को जगाना होगा जो दिन को रात बनाकर एक झपकी और लेने की चेष्टा में लगे हुए हैं। मंजिल दूर है; रास्ता लम्बा है। परिस्थिति जटिल है; साथी थोड़े हैं। पर इन्हीं कारणों से हमारा मन और उछल रहा है।

× × ×

गांधी एक कठोर परीक्षक है। वह बातों में भूलता नहीं; व्याख्यानों और भावनाओं की आँधी में वह अचल है। वह पथ की जटिलता को जानता है; उस जटिलता में वह डरने वाला नहीं पर वह देखता है कि जिन्होंने अपनी सारी शक्ति बातों में खर्च कर दी; जिनमें युद्ध की दृढ़ता और शान्ति नहीं है, उन्हें लेकर कितनी दूर चला जा सकता है। जिन्दगी की लड़ाई, स्वतंत्रता का योद्धा ही जीत सकता है; बात-शूर नहीं। गांधी को काम करने वाला चाहिए। उसके पास काम है; बात नहीं।

पर जो अभी थोड़ी देर और नींद की खुमारी के झोंके लेना चाहते हैं वे उसकी शर्त पर अपना बड़ी-सा सिर तो हिला देते हैं पर चारपाई छोड़कर मैदान में नहीं आते। वे इस डेढ़ मुट्ठी हड्डी के जीवित तपस्वी पर अपना काम लादकर स्वयं झपकी लेना चाहते हैं। गांधी को यह सह्य नहीं। वह दिन को रात नहीं समझ सकता; काम के समय का नींद के आलस्य से बदला करना उसके स्वभाव में दाखिल नहीं। इसीलिए जबतक वह नींद के पुतलों को कार्य के सिपाही बनते नहीं देखता उनके भरोसे हौस से शंख फूँकना उसके लिए असम्भव है।

पर गांधी राष्ट्र की बागडोर सीधे अपने हाथ में ले या न ले, वह हमारा है। वह हमें डूबते छोड़ नहीं सकता। देश का दर्द उसे चैन से बैठने न देगा। अतः हमें अनुनय-विनय छोड़कर उसकी शर्त पूरी करनी चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि हम कर्तव्य की कठोरता को जल्दी से जल्दी समझ लें और स्वतंत्रता के उन सैनिकों की भांति अपने को बना लें जो पथ पर नीरव आगे बढ़ते जाते हैं और उनका चेहरा उनके हृदय के उत्साह को, चेतनता को चुपचाप बहुत दृढ़ भाषा में प्रकट करता है। जिस दिन गांधी हमें वैसा देखेगा हमें उससे कुछ कहने की जरूरत न पड़ेगी।

× × ×

इसीलिए हम भविष्य की बिजली का सौन्दर्य देखने को उत्कण्ठित हैं और आज अपनी छोटी-सी शक्ति को ग़रीब की गुदड़ी की नाईं समेटकर भगवान को प्रणाम करते हैं और मंजिल तक पहुँचने के लिए जनता की सेवा के कठोर पथ पर अधिक सावधानी से अपनी यात्रा आरम्भ करते हैं। कार्य हमारा हिस्सा है; पथ हमारी चीज़ है। फल क्या होगा, इसकी चिन्ता करने का हमें अधिकार नहीं।
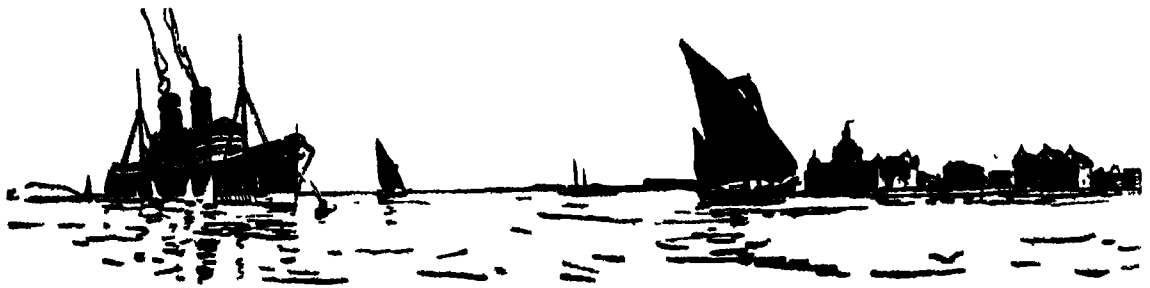
बुद्धकालिक भारत की सामाजिक दशा

(आचार्य रामदत्तजी)

बुद्धकालिक भारत की सामाजिक दशा का अध्ययन मुख्यतः बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर ही किया जा सकता है। बौद्ध जातकों तथा सुत्त ग्रन्थों में ऐसे बहुत-से प्रकरण आते हैं जिनके द्वारा हम तात्कालिक सामाजिक दशा का अध्ययन कर सकते हैं। इन ग्रन्थों का अनुशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि उस समय समाज की रचना का आधार वैदिक वर्ण-व्यवस्था थी, परन्तु वह व्यवस्था क्रमशः विकृत रूप धारण करती जा रही थी बहुत अंश तक वर्ण का आधार जन्म को माना जाने लगा था। बौद्ध साहित्य में इन वर्णों (वन्न) के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भेद ही बतलाये गये है।

इन चारो वर्णों के कपड़ो का रंग भी भिन्न-भिन्न होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कपड़ों का रंग क्रमशः सफेद, लाल, चमकीला और काला होता था। महात्मा बुद्ध जब लिच्छवियों की राजधानी वैशाली नगरी में पहुँचे तब सभी वर्णों के नगर-निवासी अपने-अपने वेश में उनका स्वागत करने आये।[1]

इस समय शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा था। बौद्ध साहित्य में इन को 'हीन जाति'—नीची जाति वाले और 'हीन सिपनी'—नीच व्यवसाय वाले—कहा है। इन नीच व्यवसाय वालों में नाई, कुम्हार जुलाहे और चमार गिने जाते थे।

परन्तु, वर्ण-व्यवस्था का यह विकृत रूप हो जाने पर भी अन्य वर्णों मे उत्पन्न हुए व्यक्ति भी इन पेशों को करते थे, इस से उनका जन्म वाला वर्ण नष्ट नहीं होता था। इन चारो वर्णों के अतिरिक्त चाण्डाल और दास ये दो सामाजिक पद और भी थे। ये दोनो उपर्युक्त चारों वर्णों में सम्मिलित नही थे। चाण्डाल लोग समाज की घृणा के पात्र थे और दास लोगों की स्थिति मनुष्य के समान नही थी। इन्हें सम्पत्ति के समान खरीदा और बेचा जाता था। दास तीन उपायो से बनाये जाते थे। किसी को चोरी से पकड़कर दूसरे देश में बेच देना अथवा किसी अपराध पर दासत्व का दण्ड मिल जाना या किसी का स्वेच्छा से दास वृत्ति ग्रहण करना। जातक ग्रन्थों में इन दोनों प्रकार के दासों का वर्णन है। बनारस का राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी की मृत्यु पर संन्यास धारण करके तप के लिए अपने पुत्र के साथ हिमालय पर चला गया। वहाँ उसने देखा कि सीमाप्रांत के कुछ निवासी कुछ व्यक्तियों को बांधे लिये चले जा रहे हैं। इनमें एक सुन्दर कन्या भी थी, उस कन्या ने सोचा कि ये लोग हमें अपने यहाँ ले जाकर दास बना लेंगे अत किसी प्रकार इनसे छुटकारा पाना चाहिए। यह सोचकर वह टट्टी जाने के बहाने से छूटकर भाग गई।"[1]

"बोधिसत्व के उत्तर से संतुष्ट होकर राजा ने उस धोखेबाज़ व्यक्ति की सम्पूर्ण सम्पति ज़ब्त करके बोधिसत्व का दास बना दिया, क्योंकि उसने राजा को धोखा देकर बोधिसत्व के प्राण हरण करने का प्रयत्न किया था।"[2]

> बुद्धकालिक भारत के सामाजिक निर्माण में भी वैदिक वर्ण-व्यवस्था का पर्याप्त प्रभाव था। कट्टरता बढ़ रही थी फिर भी लोग गुण-कर्मानुसार अपने वर्ण बदल सकते थे। अन्तर्जातीय भोज और विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी।

---

१ महापरिनिब्बान सुत्त वग्ग २ वाक्य २८

१ जातक चतुर्थ, वर्ग १३, वाक्य २२०

२ जातक प्रथम, वर्ग १, वाक्य २००

"मगध में उन दिनों कोढ़, चेचक आदि की भयंकर बीमारियाँ बहुत फैली हुई थीं। इन बीमारियों से ग्रस्त मगध-वासी एक दिन जीवक कुमार वच्च १ के पास गये और कहा—'हे चिकित्सक, हमारा इलाज करो। हम अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति इसके बदले तुम्हें दे देंगे और तुम्हारे दास बनकर रहेंगे' २"

इन दासों में से अधिकांश व्यक्ति घरेलू नौकरों का कार्य करते थे, इनसे गृहपतियो का व्यवहार भी बुरा नहीं होता था। सम्भवतः इनकी संख्या भी बहुत अधिक नहीं थी।३

परन्तु यह वर्ण-व्यवस्था का विकार उस समय तक पूरी तरह से अपनी अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचा था। लोग उस समय भी अपने जन्म का वर्ण परिवर्तन कर सकते थे। विशेषकर द्विज लोग तो अपना वर्ण अधिक आसानी से बदल सकते थे ब्राह्मण लोग आवश्यकता पड़ने पर या इच्छा होने पर क्षत्रिय या वैश्य का काम करने लगते थे; इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य भी अपना वर्ण परिवर्तन कर सकते थे। बौद्ध साहित्य में इस के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते है। इनमें से कतिपय उदाहरण यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है—"कुश नामक एक राजा, प्रभावती नाम की एक कुमारी के जो राज सद्दा की कन्या थी, प्रेम में फँस गया। वह उसके पास राजमहलों में नहीं पहुँच सकता था अतः उसने कुम्भकार का कार्य प्रारंभ कर दिया ताकि वह मिट्टी के सुन्दर-सुन्दर बर्तन बना, उन पर अपना सन्देश लिखकर राजा को बेच दे, और वे प्रभावती के पास पहुँच सकें। उसने ऐसा ही किया। उसमें सफलता प्राप्त न होने पर उसने टोकरी बनाना, भोजन पकाना आदि अनेक नीचे दरजे के व्यवसाय किये।"४

"एक राजवंश के १० भाइयों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को विजय किया। इसके अनन्तर द्वारावती में आकर उन्होंने राज्य के बराबर-बराबर १० भाग कर लिये। यह विभाजन करते समय उन्हें अपनी बहन अञ्जना का ध्यान न रहा। अतः वे पुनर्विभाग करने के लिए तैयार हुए। इसी समय उनमें से अंकुर नामक राजकुमार ने कहा—'बहन को मेरा हिस्सा दे दो। मैं अपनी आजीविका के लिए कोई व्यापार शुरू करूँगा। तुम लोग मेरे लिए इतना अवश्य करना कि मेरे सामान पर अपने-अपने राज्य में चुंगी न लगाना।' ऐसा ही किया गया।" १

"बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के दो पुत्र थे। उसकी मृत्यु के अनन्तर बड़े पुत्र ने स्वयं राज्य लेना अस्वीकार करके छोटे पुत्र को राज्य दिला दिया। इसके अनन्तर वह बनारस छोड़कर सीमाप्रान्त में चला गया; वहाँ वह एक धनी व्यापारी के घर नौकर हो गया। कालान्तर में जब इस व्यापारी को ज्ञात हुआ कि यह तो हमारे महाराज का बड़ा भाई है तो वह उसका बड़ा सम्मान करने लगा।" २

"एक राजकुमार तक्षशिला-विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने गया। वहाँ उसने अन्य वेद-वेदांगों की शिक्षा के साथ धनुर्वेद का भी खूब अभ्यास कर लिया। राजा की मृत्यु के अनन्तर उसने राज्य स्वीकार न किया और किसी गाँव में रहकर दिन काटने लगा। कुछ लोगों ने उसके छोटे भाई को, जो अब राजा बन गया था, बहका दिया कि वह राजा बनने के लिए षड्यन्त्र रच रहा है। अतः उसने अपने बड़े भाई को गिरफ्तार करने की आज्ञा प्रकाशित कर दी। परन्तु वह भागकर एक और राज्य में पहुँच गया। वहाँ द्वारपाल से राजा को कहला भेजा कि एक योद्धा नौकरी की तलाश में आया है। राजा ने पूछा—'वह क्या वेतन माँगता है?'

उत्तर मिला—'एक लाख मुद्रा प्रति वर्ष।'

"राजा ने कहा—'बुला लाओ'। उसे देखकर राजा ने उसे अपने यहाँ नियुक्त कर लिया। उसका इतना वेतन देखकर अन्य राज-कर्मचारी उससे जलने लगे।" ३

---

१ यह व्यक्ति महात्मा बुद्ध का एक मुख्य शिष्य था।
२ विनय पिटक महावग्ग वर्ग ३६, वाक्य १
३ Dialogues of Buddha, 101
४ जातकग्रन्थ; पंचम भाग; वग्ग २०; वाक्य २६०।

१ जातक-ग्रन्थ; चतुर्थ भाग; वग्ग १०, वाक्य ८४।
२. ,, ,, ,, ,, १२ ,, १६१।
३. जातकग्रन्थ; द्वितीय भाग; वग्ग १२; वाक्य ८७।

"सांख्य नामक एक ब्राह्मण के पास बड़ा धन था। वह प्रतिदिन पीड़ितों और भिखमंगों को ६ लाख पैसे दान किया करता था। इसके लिए उसके नगर में ६ दानगृह बने हुए थे। एक दिन उसने सोचा—मेरा यह भारी कोष अब थोड़े ही दिन में समाप्त हो जायगा। अतः मुझे और द्रव्य उपार्जन करने के लिए स्वर्ग देश १ को जाना चाहिए। यह सोचकर उसने जहाज़ तैयार किया और व्यापार के उद्देश्य से उस देश के लिए प्रस्थान किया" २

"एक धनी ब्राह्मण व्यापारी को अपने व्यापार के लिए एक ऐसे वन में से गुज़रना आवश्यक था जिसमें जीवन का भय था; इस भय से बचने के लिए उसने एक हज़ार मुद्रा देकर कुछ लोगों को रक्षक के रूप में अपने साथ ले लिया।" ३

"एक ब्राह्मण तक्षशिला विश्वविद्यालय में विद्याभ्यास करने के लिए गया उसने वहाँ धनुर्वेद का खूब अभ्यास किया। वह स्वभाव से ज़रा तेज़ था, अतः उसके उपाध्याय ने उससे कहा कि 'तुम्हारा स्वभाव ब्राह्मणों का नहीं है। अच्छा हो, यदि तुम अपने स्वभाव में ज़रा नरमी लाने का प्रयत्न करो।' वह ब्राह्मण अपने उपाध्याय से विदा लेकर बनारस चला आया। वहाँ उसने विवाह कर लिया और शिकारी का काम करके अपनी जीविका प्राप्त करने लगा" ४

इसी तरह कुछ और जन्म के ब्राह्मणों के उदाहरण भी मिलते हैं जिन्होंने युवावस्था में जुलाहे और बढ़ई का काम प्रारम्भ कर दिया था ५

बौद्ध साहित्य में अन्तर्जातीय विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि महात्मा बुद्ध के समय में वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप अन्तर्जातीय विवाह विकृत हो चुका था, तथापि उन दिनों अन्तर्जातीय विवाह भी हुआ करते थे।

यहाँ इस प्रकार के कतिपय विवाहों के उदाहरण देना आवश्यक है।

'तक्षशिला-विश्वविद्यालय में यह प्रथा थी कि उपाध्यायों के घर में यदि कोई विवाह के योग्य आयुवाली कन्या होती तो उसका विवाह वे अपने सब से बड़े अविवाहित शिष्य से कर देते थे। एक समय एक उपाध्याय ने अपनी कन्या का विवाह इसी प्रथा के अनुसार एक ब्राह्मण के साथ कर दिया। इन दोनों के स्वभाव में समानता न थी। अतः दोनों में निभ न सकी। कुछ दिनों के बाद ही दोनों बिछुड़ गये। इस समय तक कन्या अक्षतयोनि ही थी। एक दिन उसपर राजा की दृष्टि पड़ी। कन्या का स्वास्थ्य खूब उत्तम था। अतः राजा ने यह जानते हुए भी कि उसका एक बार विवाह हो चुका है, उससे विवाह कर लिया। १

"एक वृद्ध ब्राह्मण ने सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से एक क्षत्रिय कन्या से विवाह कर लिया। इस बूढ़े की और कोई पत्नी न थी। लोग उसपर खूब हँसे। परन्तु वह हँसी इसलिए नहीं थी कि उसने एक क्षत्रिय-कन्या से विवाह किया है, अपितु इसका कारण उसका इस प्रकार बुढ़ापे में विवाह करना था।" २

"राजा शिवी की माता जम्भावती जन्म से चाण्डाल-वंश की थी। परन्तु शिवी के पिता वासुदेव ने उससे विवाह कर लिया। वासुदेव अपने १० भाइयों में सबसे बड़ा था। एक दिन वासुदेव द्वारावती नगरी के बाहर एक उद्यान में घूमने के लिए जा रहा था कि मार्ग में उसे जम्भावती मिली। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। किसी काम से नगर की ओर आ रही थी वासुदेव ने उसके प्रेम में फँसकर पूछा कि 'तुम किस वंश की हो?' उसने उत्तर दिया—'चाण्डाल वंश की'। वासुदेव को इस पर कुछ खेद तो हुआ, परन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि यह कन्या अभी अविवाहिता है तब उसने उससे विवाह कर लिया। विवाह के अनन्तर उसे वासुदेव ने अपनी पटरानी बना लिया।" ३

---

१. इस स्वर्ण देश का अभिप्राय ब्रह्मा और श्याम से है। इसके लिए Childers का पृष्ठ ४६२ देखिए।

२. जातकग्रन्थ; चतुर्थ भाग; वग्ग १८; वाक्य १५।

३ ,, पञ्चम ,, ,, २१ ,, ४७१।

४. ,, द्वितीय ,, ,, २ ,, ४०० ।

५ ,, पञ्चम ,, — ,, १२७।

---

१ जातक ग्रन्थ, छठा भाग वग्ग २२ वाक्य ३४८

२ ,, ,, पञ्चम भाग ,, २० ,, २८०

३ ,, ,, छठा भाग , २१ ; ४२१

बौद्धकाल के इन जन्म-मूलक वर्णों के लोग परस्पर एक साथ मिलकर भोजन करने में भी कोई पाप नहीं समझते थे। द्विज वर्णों के लोगों में तो

अन्तर्जातीय भोज

प्रायः मिलकर भोजन करना ज़रा भी आपत्ति-जनक नहीं समझा जाता था। बौद्ध-साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के लोगों ने एक साथ बैठकर भोजन किया, और इसे किसी ने बुरा नहीं समझा।[1] ये द्विज लोग शूद्रों—विशेषकर चाण्डालों के हाथ का भोजन करना अवश्य पाप समझते थे। चाण्डाल के हाथ का भोजन करने से तो जाति-बहिष्कार तक किया जा सकता था।

"बनारस का सत्यधर्म नामक ब्राह्मण किसी जंगल के मार्ग पर जा रहा था। मार्ग में नीचतम जाति के मनुष्य से उसकी भेंट हो गई। दोनों एक ओर जा रहे थे, अतः दोनों का साथ हो गया। दोपहर के समय दोनों एक झरने के किनारे बैठे। दोनों ने स्नान किया। शूद्र के पास भोज्य पदार्थों की एक पोटली थी। स्नान के अनन्तर उसने उसे खोलकर ब्राह्मण से पूछा—'क्या आप भी खायेंगे?' ब्राह्मण को उसकी जाति मालूम थी। अतः उसने इन्कार कर दिया। शूद्र ने आधा भोजन खा लिया और शेष आधा स्वच्छ रूप से पुनः अपने साथ ले लिया। रात को दोनों फिर एक ही स्थान पर ठहरे। ब्राह्मण को भूख बहुत सता रही थी अतः उसने निश्चय किया कि यदि अब यह व्यक्ति मुझे खाने को कहेगा तो अवश्य स्वीकार कर लूँगा, परन्तु शूद्र ने इस समय ब्राह्मण से पूछने की आवश्यकता ही नहीं समझी। वह स्वयं भोजन करने बैठ गया। जो कुछ शेष बचा, रात को चोरी से ब्राह्मण ने उसमें से कुछ भाग खा लिया। परन्तु खाते ही उसे यह सोचकर बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई कि एक शूद्र का जूठा भोजन करके उसने अपने कुल की मर्यादा धूल में मिला दी अतः उसने भोजन को कै करके निकाल दिया।"[1]

"एक चाण्डाल जाति की कन्या ने द्वेष-वश रात के समय हज़ारों ब्राह्मणों के मुँह पर जूठी मांड गिरा दी। अतः इन ब्राह्मणों को जाति-बहिष्कृत कर दिया गया।"[2]

केवल जन्म के आधार पर ब्राह्मण माने जाने का परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बहुत कम हो गई। शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार यह तो

ब्राह्मणों की स्थिति

स्वीकार किया जाता था कि सब वर्णों में ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, परन्तु समाज में जिन श्रेणियों का वास्तविक सत्व था वे अपने को ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक उच्च समझने लगे थे, यहाँतक कि राज-वंशों में परम्परागत स्वाभिमानी क्षत्रिय वर्ण की दृष्टि से भी अपने वंशों को ब्राह्मणों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानने लग गये थे। जातकों में एक स्थान पर लिखा है – "एक ब्राह्मण ने एक क्षत्रिय वंश के राजा का कुछ अपमान किया। राजा को बहुत क्रोध आया। उसने मन में सोचा - यह नीची जाति[3] का ब्राह्मण और इसकी इतनी हिम्मत कि यह मेरा अपमान करे!"[4]

इन थोड़े उदाहरणों से बौद्ध काल की सामाजिक परिस्थिति का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

---

१ जातक ग्रन्थ द्वितीय भाग; वाक्य ३१९, ३२०

---

१ जातक ग्रन्थ,, द्वितीय, भाग, वग्ग २, वाक्य ८३,८४

२ ,, ,, चतुर्थ भाग वग्ग १५ वाक्य ३८८

३ मूल पाठ में इसके लिए "हीन-जाको' शब्द आया है।

४ जातक ग्रन्थ, पञ्चम भाग, वग्ग १६, वाक्य २५७

अश्रु बिन्दु

अध्यापक श्रीरामकुमार वर्मा एम० ए०

१

न आओ व्यथित वारि के बाल,
दुखी दृग-द्वारों में इस बार ।
पतन के उन्मादों में कहीं,
रखा है क्या जीवन का सार ?

२

वेदना की आँधी से हिला,
सु-स्मृति का मुरझाया-सा फूल ।
सजाने उसको बनकर ओस,
गिर चले, शिशु ! निज शिशुपन भूल ॥

३

गिरोगे ! गिर जाओगे अरे,
मृत्यु का है अथाह जल-कूल ।
एक ही बूंद, एक ही बूंद,
तुम्हारा है अस्तित्व अमूल ॥

४

जब लगी है मन में यह आग,
कहाँ से पाऊँ जल की धार ?
हाय, देखो तुम भी बह चले,
यदपि बूंदें ही हो दो-चार ॥

५

वेदनाओं का सारा कोष,
एक जल-कण में करके बन्द ।
सौंप दो उस मन को ऐ विकल,
पतन में जिसको है आनन्द ॥
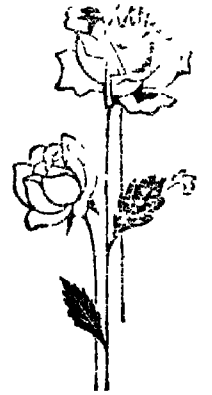
औद्योगिक क्रान्ति का भारत के उद्योग-धन्धे पर प्रभाव

[श्री श्यामाचरण]

> लेखक ने इस लेख में यह दिखाने की चेष्टा की है कि मशीनों, रेल-तार तथा अन्य वैज्ञानिक सुविधाओं के कारण भारत के विभिन्न उद्योग-धन्धों पर क्या अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ा है और मिलों तथा मशीनों की प्रतियोगिता में भी देशी कारीगरी तथा दस्तकारी का पुनरुत्थान संभव है या नहीं ?

औद्योगिक क्रान्ति का काल

अठारहवीं शताब्दि के अन्त से लेकर उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य तक का काल पाश्चात्य देशों की औद्योगिक क्रान्ति का काल है। इस काल में वहाँ के उद्योग-धन्धों में—मशीनों के आविष्कार से घोर परिवर्त्तन हो गये। उस समय भारतवर्ष में मुगल-साम्राज्य का ह्रास हो रहा था और अंग्रेज व्यापारी यूरोप के—पुर्तगीज़ डच फ्रेंच आदि—अन्य व्यापारियों को हटाकर यहाँ अपने व्यापार की वृद्धि के साथ-साथ राज्य-वृद्धि भी कर रहे थे। इनके सम्पर्क में रहने के कारण वहाँ की इस औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव यहाँ भी पड़ा और यहाँ का प्राचीन औद्योगिक संगठन तथा संस्थायें लुप्तप्राय होने लगीं एवं धीरे-धीरे नये प्रकार के उद्योग-धन्धों का आविर्भाव होने लगा।

उस समय का भारतवर्ष

यह परिवर्त्तन आरम्भ होने के पूर्व यहाँ के ग्राम अपनी आवश्यकता की वस्तुओं के लिए किसी दूसरे के मुहताज नहीं रहते थे। वे अपनी आवश्यकता की सभी चीज़ें अपने गाँव में ही उत्पन्न कर लेते थे। उस समय यहाँ पक्की सड़कों की कमी के कारण गाड़ियों का समुचित प्रबन्ध न होने से एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाना कठिन था। इस कारण सदा देश के किसी न किसी भाग में अकाल रहा करता था। २५ - ३० मील के अन्तर पर ही अन्न इत्यादि के दर में तिगुने-चौगुने का अन्तर होना एक साधारण बात थी। साधारण लेन-देन पदार्थों के द्वारा ही होता था; मुद्रा का व्यवहार कम था।

औद्योगिक क्रान्ति का भारत पर प्रभाव

रेल बन जाने से गावों में विदेशी सस्ती चीज़ों ने प्रवेश किया। मिट्टी का तेल एवं दियासलाई का प्रचार गाँवों में होने लगा। एक स्थान से दूसरे स्थान को माल ले जाने में सुविधा हो गई। एक स्थान के अकाल का अनुभव उससे सैकड़ों मील दूर के लोग भी करने लगे। बाज़ार-दर की प्रवृत्ति एक होने की ओर हो गई।

साधारण दृष्टि से

पहले जहाँ लुटेरे एवं शासकों के अत्याचार के भय से किसान केवल उतना ही उत्पन्न करते थे जितना कि एक फ़स्ल से दूसरे फ़स्ल तक के लिए आवश्यक हो, वहाँ अब वैसा कोई भय न रहने से तथा उनके बचे हुए माल के बहुत बड़े ग्राहक इन अंग्रेज व्यापारियों के आ जाने से उन्हें अधिकाधिक उत्पत्ति करने के लिए प्रोत्साहन मिला। साथ ही किसान अब अपनी उपज का हिसाब रुपयों में लगाने लगे और अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुयें स्वयं उत्पन्न करने के बजाय वे वही चीज़ें उत्पन्न करने लगे जिनमें उन्हें अधिक-से-अधिक रुपयों का लाभ हो। इस प्रकार सभी स्थानों में सभी चीज़ें उत्पन्न होने के बजाय भिन्न-भिन्न चीजें भिन्न-भिन्न स्थानों पर उत्पन्न होने लगीं। उत्पत्ति का एक प्रान्तीय विभाग-सा हो गया।

गाँव

पहले से ही गाँव में दो प्रकार के पेशे वाले थे। एक तो वे जिनकी मज़दूरी प्रत्येक घर से एक प्रकार से बँधी हुई थी, जैसे बढ़ई, लोहार, नाई, धोबी इत्यादि। दूसरे वे जो अपने कार्य के अनुसार मज़दूरी पाते थे जैसे तेली, जुलाहा आदि।

यद्यपि इन दोनों प्रकार के पेशे वाले, गाँवों में अब भी वर्तमान हैं तथापि उनपर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा है।

लोहार-बढ़ई

बढ़ई एवं लोहार ये दोनों गाँव के अत्यन्त आवश्यक पेशेवर हैं। इनके बिना गाँव की दैनिक काम की चीजें भी ठीक नहीं रह सकतीं। इस कारण ये दोनों पेशेवाले गाँवों में अब भी ज्यों-के-त्यों वर्तमान हैं।

आजकल कृषि से सहायक औजारों में लोहे की सामग्री की वृद्धि होने से लोहार का स्थान गाँव में और भी मज़बूत हो गया है, इसी के साथ-साथ लकड़ी की चर्खी एवं हल इत्यादि के उठते जाने से बढ़ई की उपयोगिता में कुछ कमी आ गई है। तथापि वह घरेलू उपयोग की अन्य चीजें अब भी ज्यों-की-त्यों बनाता है और इन दोनों प्रकार के पेशेवालों को इनकी बँधी हुई वार्षिक मज़दूरी बहुत-कुछ ज्यों-की-त्यों मिलती जाती है। इसके अतिरिक्त इन लोगों के लिए नगरों में भी पर्याप्त स्थान है। बल्कि नगरों में जाने से इनकी अवस्था गाँव की अवस्था से अच्छी हो जाती है।

कुम्हार

गाँव का सबसे गरीब पेशेवर कुम्हार है। इसकी पूँजी भी सबसे कम होती है। अब एल्युमिनियम तथा अन्य धातु के बर्तनों का प्रचार अधिक होने के कारण अच्छे श्रेणी के किसान उन्हें ही काम मे लाते हैं, इस कारण मिट्टी के बर्तनों की बिक्री घट गई है। गरीबों मे अब भी उसकी माँग ज्यों-की-त्यों है। इनके लिए नगरों में भी कोई आशा-पूर्ण क्षेत्र नहीं है।

चमार

गाँव के पेशेवालों में औद्योगिक क्रान्ति का सबसे अधिक प्रभाव चमार के धन्धे पर पड़ा है। जबतक कच्चे चमड़े को खरीदने वाला कोई नहीं था तब तक मरे हुए जानवरों के ऊपर की खाल लोग चमारों को दे देते थे। यह रिवाज प्रायः सब जगह प्रचलित था, किन्तु जबसे कलकत्ता और बम्बई के व्यापारी कच्चे चमड़े को मूल्य देकर ख़रीदने लगे हैं तबसे लोग चमारों को देने के बजाय उन्हें देना अधिक पसन्द करते हैं। इस प्रकार गाँव के चमारों की यह परम्परागत आय बन्द होती जा रही है। ये लोग चमड़े की विदेशी वस्तुओं के मुकाबले अपनी चीज़ नहीं ठहरा सकते। अतः दिन दिन इनके उद्योग का ह्रास ही होता जा रहा है। कुछ लोग वर्तमान ढंग से स्थापित नगरों के चमड़े के कारखानों में काम करने लगे हैं। अधिकतर लोग चमड़े का पेशा छोड़कर खेतों अथवा अन्य स्थानों में मज़दूरी करने लगे हैं।

तेली

उपर्युक्त पेशेवरों के प्रकारों में तेली दूसरे प्रकार का पेशेवर है। इनके धन्धे पर विदेश में तेलहन भेजे जाने एवं नगरों में तेल निकालने की मिलें खुल जाने से उतना प्रभाव नहीं पड़ा है, जितना गाँवों में मिट्टी के तेल के आयात का। गाँवों में मिट्टी का तेल आ जाने से इनका काम बहुत घट गया है और ठेके पर काम करने वाले पेशेवर होने के कारण इनकी अवस्था दिन-दिन खराब होती जा रही है।

रंगाई का धन्धा

गाँव में रँगाई एक बहुत उन्नत धन्धा था किन्तु विदेशी रंग का प्रवेश होने के कारण रँगरेज़ों का धन्धा दिन-दिन गिरता गया। लोग विदेशी रंग से सरलतापूर्वक रँग लेते हैं। यहाँतक कि रंगरेज़ों ने भी जड़ी-बूटी से रँगी जानेवाली प्रामीण पद्धति को छोड़ दिया। धीरे-धीरे वह पद्धति लुप्त-सी हो गई। मिलों में रँगाई प्रारम्भ हो जाने से जुलाहे सीधे बाज़ार से रँगा-रँगाया सूत ख़रीदने लगे। इससे भी इस धन्धे को बड़ा धक्का पहुँचा। १८७० ई० में पहले-पहल भारत में विदेशी रंग का प्रवेश हुआ और २० वर्ष के थोड़े समय में अर्थात् १८९० तक में रंगादि की देशी पद्धति बिल्कुल नष्ट हो गई।

जुलाहे

गाँव के जुलाहों पर विदेशी वस्त्र के आयात का प्रभाव प्रारम्भ में अधिक नहीं पड़ा। गाँव के अधिकतर लोग मोटा

वस्त्र पहनते हैं अतः विदेश से आया हुआ महीन वस्त्र उन्हें पसन्द नहीं आता। इस कारण गाँव के जुलाहों का धन्धा चलता रहा। भारत में जो रुई की मिलें खुलीं उनमें प्रारम्भ में सूत ही अधिक तैयार किया जाता था। इससे जुलाहों को और भी सुविधा हो गई। मिल के सूत से वे अधिक सुविधापूर्वक बुनने लगे। किन्तु जब से भारतीय मिलों ने मोटा कपड़ा बनाना आरम्भ किया है तब से ग्रामीण जुलाहों के धन्धे पर भी इस घोर-परिवर्तन का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा है। तथापि उनका धन्धा अधिक अवनति पर नहीं है। बल्कि कहीं-कहीं तो इनके धन्धे में उन्नति भी हो रही है। सर बी० थैकरसी ने १९०५ की इण्डियन इण्डस्ट्रियल कान्फ्रेन्स के सामने जो लेख पढ़ा था उसमें लिखा था कि इस समय भारतीय मिलों में कपड़ा बुनने में जितने सूत की खपत होती है उससे दूने सूत की खपत जुलाहे करते हैं, इससे इस धन्धे के विस्तार का कुछ अनुमान किया जा सकता है। सन् १९२० के भारतीय राजनैतिक आन्दोलन से इस धन्धे को प्रोत्साहन मिला है, किन्तु इस प्रोत्साहन का प्रभाव अभी तक बहुत कम पड़ा है।

कताई का धन्धा

विदेशी तथा देशी मिलों के सूत के मुकाबले कताई का धन्धा नहीं ठहर सका और नष्टप्राय हो गया, किन्तु, १९२० के भारतीय राजनैतिक आन्दोलन से इस धन्धे का पुनरुत्थान हो रहा है। यद्यपि अभीतक इसमें कुछ अधिक उन्नति नहीं हुई है तथापि उसकी प्रवृत्ति बढ़ने की ओर ही है।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव नगरों पर अत्यधिक पड़ा। पहले व्यापार नदियों के मार्ग से होने के कारण नगर प्रायः उनके तट पर ही होते थे। दूसरे प्रकार के नगर राजा अथवा शासक के वास-स्थान होने के कारण स्थापित हो गये थे। इनके अतिरिक्त किसी विशेष उद्योग-धन्धे अथवा तीर्थों के कारण भी नगर बस गये थे। उद्योग-धन्धे में परिवर्त्तन आरम्भ होने के साथ-साथ उपर्युक्त—विशेषकर प्रथम तीन प्रकार के नगरों का ह्रास होने लगा और नये-नये नगर स्थापित होने लगे।

आधुनिक नगर

अब व्यापार रेल के द्वारा ही होने के कारण अधिकतर नगर रेल के ऊपर ही बसे हुए हैं। विदेशी व्यापार की वृद्धि के कारण समुद्र-तट पर भी नगर बस गये हैं। नये-नये उद्योग-धन्धों की स्थापना से अथवा पुराने उद्योग-धन्धों के पुनरुत्थान से भी अनेक नगरों की वृद्धि हुई है। नगरों की जन-संख्या बढ़ाने में (१) अकाल (२) बिना खेत वाले मज़दूर (३) प्राचीन ज़मींदारों की नगरों में बसने की प्रवृत्ति, ये बातें खूब सहायक हुई हैं।

कलकत्ता और बम्बई ये दोनों नगर बिल्कुल आधुनिक हैं। रंगून की वृद्धि भी उद्योग-धन्धों में इन परिवर्त्तनों के कारण ही हुई है। केवल नवीन उद्योग-धन्धों के कारण जो नगर स्थापित हुए हैं उनमें जमशेदपुर उल्लेखनीय है। अहमदाबाद भी अपने वस्त्र-व्यवसाय के पुनरुत्थान के कारण ही प्रसिद्ध है।

नगरों की वृद्धि में रेलों का भी बहुत हाथ रहा है। किसी स्थान पर रेल निकलने के समय में थोड़ा आगे-पीछे होने का प्रभाव भी नगरों की उन्नति पर बहुत पड़ा है। इसका बहुत अच्छा उदाहरण संयुक्तप्रान्त में कानपुर और लखनऊ है। कानपुर में लखनऊ से पहले रेल आजाने के कारण वह एक व्यापारिक केन्द्र बन गया और आज वह संयुक्त प्रान्त में सब से बड़ा व्यापारिक एवं औद्योगिक नगर है। किन्तु रेलवे लाइन के लखनऊ में कुछ देर-से पहुँचने के कारण प्राचीन प्रसिद्ध नगर होते हुए भी औद्योगिक एवं व्यापारिक मामले में वह पीछे पड़ गया। इसी प्रकार समुद्र-तट पर होने के कारण करांची विदेशी व्यापार के बल से एक प्रसिद्ध नगर बन गया।

मदुरा एक ऐसा नगर है जहाँ उसका प्राचीन धन्धा तो नष्ट हो गया, किन्तु और नये नये उद्योग धन्धों का प्रचार होने से वह पुनः उन्नत हो गया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक वह तेलहन एवं रूई की बड़ी मण्डी थी किन्तु इसी शताब्दी के प्रथम दस वर्षों में वहाँ करघा एवं रंग आदि का काम आरम्भ हुआ। अब यही वहाँ का मुख्य उद्योग है।

जन-संख्या

नगर की जन-संख्या में अकाल के कारण भी खूब वृद्धि होती है। भोजन न मिलने के कारण ग्रामीण जनता नगर

में आ जाती है और उनमें से बहुत-से लोग नगरों में सदा के लिए बस भी जाते हैं। १८६८ के राजपूताने के अकाल से आगरा एवं दिल्ली की जन-संख्या प्रायः दूनी हो गई। इसी प्रकार १८७२ से ८१ तक एवं १८९१ से १९०० तक इन दोनो बार के अकाल के कारण नगरों में जन-संख्या की खूब वृद्धि हुई।

ऐसे मज़दूर जिनके पास गाँव में खेत नहीं हैं अथवा जो दखीलकार किसान नहीं हैं, आस-पास के नगरों में नया उद्योग-धन्धा खुलने से अधिक मज़दूरी के लोभ से सरलता-पूर्वक चले जाते हैं। इनके कारण भी नगरो की जन-संख्या बढ़ती है।

आजकल के नागरिक जीवन से आकर्षित होकर बहुत से जमींदार भी नगरों में आकर बस गये हैं। उनके कारण भी नगरों की जन-संख्या बढ़ी है। यह उन प्रान्तो—बंगाल-बिहार संयुक्तप्रान्त आदि-के नगरों में जहाँ ज़मींदारी की प्रथा प्रचलित है, भलीभाँति देखा जा सकता है।

इसी प्रकार प्राचीन उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से और व्यापारिक मार्ग बदल जाने से बहुत-से नगरों का ह्रास हो गया। ढाका एवं मिर्जापुर इसी प्रकार के नगर हैं। इन्फ्लुएंजा, प्लेग आदि रोग भी लोगों को नगरों में बसने से रोकते हैं। नगरों की गन्दगी भी बहुत अंश से उनकी वृद्धि में बाधक है।

प्राचीन काल में नगर प्रायः चारों ओर प्राचीरों से घिरे होते थे। इनमें लोग विपत्ति के समय अथवा लूट-मार से बचने के लिए आकर बसते थे। अब वैसा कुछ भय न रहने से तथा नगरों की बनावट भी वैसी न होने से लोग पुनः ग्रामों में जा बसे।

नगरों पर प्रभाव

इस प्रकार प्राचीन नगरों का ह्रास एवं नये नगरों की उत्पत्ति के साथ-साथ प्राचीन नागरिक उद्योग-धन्धों का भी ह्रास हो रहा है।

नगरों के उद्योग-धन्धो में वस्त्र-निर्माण का धन्धा मुख्य था। समय के परिवर्तन से इस धन्धे को बहुत धक्का पहुँचा। नगरो में अधिकतर उत्तम एवं बारीक वस्त्र बनते थे। विदेश से बारीक वस्त्रों के आयात के कारण नगर का वह उद्योग बिल्कुल बैठ गया।

पीतल काँसे का काम सदा से नगरों में ही होता था। उद्योग-धन्धे के परिवर्तन का प्रभाव इस धन्धे पर बहुत कम पड़ा। पहले अनेक छोटे क़स्बों में भी धातु का काम होता था। किन्तु अब इसका काम अधिकतर नगरों में ही होता है।

तारकशी का काम भी नगरो में ही होता था। वह काम भी अब मशीन द्वारा होने लगा है। इसलिए भारतीय नगरों में जहाँ इसका काम हाथ से होता था वहाँ इसका ह्रास होने लगा है। केवल गुजरात एवं बम्बई के तारकशी का काम, जोकि मशीन के द्वारा किया जाता है, विदेशी तारों का मुकाबला कर सका है। तथापि युक्तप्रान्त के कतिपय नगरों में हाथ के द्वारा भी इसका अच्छा काम होता है।

दरी गलीचे का काम भी नगरों में अभी तक वर्तमान है। आगरा, मिर्जापुर, अमृतसर इत्यादि में इसका काम होता है। किन्तु इनकी अवस्था दिन-प्रतिदिन अवनत होती जा रही है।

इसी प्रकार अनेक प्राचीन उद्योग धन्धे किसी न किसी रूप में अबतक वर्तमान हैं किन्तु इनमें से अधिक की अवस्था असन्तोषजनक है। जो हैं उनपर भी वर्तमान काल का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा है। दर्जी और चमार सिलाई की मशीनें काम में लाते हैं; जुलाहे फ्लाईशटल का उपयोग करते हैं, बर्तन वाले भी कलई और खराद के लिए मशीन का व्यवहार करने लगे हैं। इस प्रकार हाथ के धन्धों में किसी न किसी रूप से परिवर्तन हो ही गया है।

परिवर्तन के कारण

भारतीय उद्योग-धन्धों के नाश का कारण विदेशी प्रतियोगिता तो है ही, साथ ही अन्य अनेक कारण भी हैं।

इन में देशी राज्यों का ह्रास एवं विदेशी सरकार की स्थापना ये ही दो मुख्य हैं। मुग़ल बादशाहत एवं अन्य अनेक देशी राज्यों के नष्ट हो जाने से यहाँ के उद्योग-धन्धों को राज्य की ओर से जो प्रोत्साहन मिलता था वह बन्द हो गया। देशी राज्यों के जो पदाधिकारी थे वे भी यहाँ की

बनी हुई कला-कौशल की सामग्री खरीदकर उन्हें प्रोत्साहित करते थे। उच्च कोटि के कला-कौशल की वस्तुयें प्रधानतः राजा एवं उनके कर्मचारियों के लिए ही बनतीं थीं। देशी राज्यों के ह्रास के साथ-साथ इस श्रेणी के लोग भी उतने धनी न रह सके। उन लोगों ने कला-कौशल वाली अधिक मूल्यवान वस्तुओं का उपयोग करना छोड़ दिया। उसके बाद जो उनके वंशज हुए उन्होंने तो उस प्रकार की वस्तुओं का उपयोग बिल्कुल छोड़ दिया।

विदेशी शासन की स्थापना

यहाँ के उद्योग-धन्धों के नाश का दूसरा मुख्य कारण है विदेशी राज्य की स्थापना। अंग्रेजी राज्य की स्थापना तथा उसकी व्यापार-नीति का यहाँ के प्राचीन उद्योग-धन्धों के ह्रास में बहुत बड़ा हाथ रहा है। इंग्लैण्ड से जो माल यहाँ आता था उसपर बन्धनरहित व्यापार-नीति के नाम पर कुछ भी कर नहीं लगाया जाता था, किन्तु जो माल यहाँ से इंग्लैंड जाता था उन पर अधिक कर लगाया जाता था।

देश के अन्दर भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने के लिए कर देना पड़ता था। इन कारणों से भारतीय उद्योग-धन्धों को बड़ा नुक़सान पहुँचा।

इनके अतिरिक्त नये प्रकार की राज्य-प्रणाली के साथ-साथ नये राज्याधिकारी भी नियुक्त हुए। पुराने राज्याधिकारी, जिनके पास कुछ भूमि आदि थी, वर्तमान शासन से उदासीन होने के कारण ग्रामों में जाकर बस गये। और राज्य-पदाधिकारी या तो विदेशी अथवा अंग्रेजी-शिक्षित भारतीय नियुक्त हुए। इनमें से पहले प्रकार के लोगों की रुचि यहाँ की रुचि से सर्वथा भिन्न थी। वे यहाँ के कला-कौशल की क़द्र नहीं कर सकते थे। यहाँ के कारीगरों ने उनकी रुचि के अनुसार वस्तुयें बनाने का प्रयत्न भी किया। इसमें प्रारंभ में तो वे असफल रहे और बाद को जब सफल हुए भी तो मिल के बने हुए माल के दर की प्रतिद्वन्द्विता में ठहर नहीं सके।

जो राज्य-पदाधिकारी भारतीय थे वे भी अपने मालिकों की देखा-देखी अपने को नये रंग में रँगने लगे। कहीं-कहीं उनके अफ़सरों ने ऐसे नियम भी बना दिये जिनके कारण उनके लिए विदेशी पोशाक में आना आवश्यक हो गया। इस प्रकार राज्य की सहायता बन्द हो जाने से एवं राज्याधिकारियों की ओर से भी प्रोत्साहन मिलना बन्द हो जाने से यहाँ के नगरों का उद्योग-धन्धा नष्टप्राय हो गया।

यह बात ध्यान देने की है कि अनेक देशी राज्यों में अब भी वहाँ की दस्तकारी एवं उद्योग-धन्धे की अवस्था कुछ अच्छी है, किन्तु बृटिश राज्य में उनका ह्रास हो रहा है।*

इस प्रकार उद्योग-धन्धों का ह्रास होने से लोग बेकार होकर खेती में लग गये। इससे खेत पर अधिक भार पड़ने लगा। इस बढ़ती हुई बेकारी को दूर करने के लिए नये प्रकार के उद्योग-धन्धों की आवश्यकता हुई। धीरे-धीरे नये प्रकार के उद्योग-धन्धों का आरम्भ भी होने लगा।

कम्पनियों के द्वारा नील, चाय, और काफ़ी की खेती आरम्भ की गई, और कारखाने स्थापित कर नये-नये उद्योग-धन्धे प्रारम्भ किये गये।

नील

नील की खेती भारत के गुजरात और पश्चिमीय प्रदेश में पहले भी होती थी। विदेशी प्रतियोगिता के कारण पश्चिमीय प्रदेशों की नील की खेती तो शीघ्र बन्द हो गई, किन्तु, गुजरात में बहुत दिनों तक उसका क्रम जारी रहा। उन्नीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी ओर से नील की खेती करनी आरंभ की। उसके मुकाबले गुजरात की खेती भी न ठहर सकी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा सञ्चालित यह खेती १८६० तक खूब उन्नति करती रही। इसके बाद १८९५ तक उसकी अवस्था उसी प्रकार रही। १८९५ में नील के निर्यात का परिमाण शिखर पर पहुँच गया था। किन्तु नकली नील के रंग के प्रचार से १८९६-९७ के बाद इस धन्धे का ह्रास होने लगा। १९२६-२७ में कुल

---

* हमारी सम्मति में, इन दोनों की अवस्था में कोई विशेष अन्तर नहीं है। भागलपुर, ढाका, काशी, मिरजापुर, नजीबाबाद, आगरा, मेरठ इत्यादि अब भी अनेक चीजों के लिए प्रसिद्ध हैं। ह्रास हो रहा है, पर उसके कारण और हैं।

—सम्पादक

१०० ४०० एकड़ में नील की खेती हुई जिसमें केवल २०१०० क्वार्टर॰ नील की उपज हुई।

चाय

चाय की खेती अंग्रेज़ों ने ही प्रारम्भ की। पहले-पहल १८३५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने एक बाग़ीचे में चाय की खेती शुरू की। ५ वर्ष के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे आसाम कम्पनी को दे दिया। यही सर्व-प्रथम चाय की कम्पनी थी। १८५२ में एक कम्पनी और खुली। किन्तु इस समय तक चाय की खेती को उसका वर्तमान रूप नहीं प्राप्त हुआ था। १८५६–५९ तक की अवधि में इस धन्धे को उसका यह रूप मिला है। इस समय के बाद उसकी उन्नति की गति तीव्र हो गई। नीचे के अंकों से उसकी उन्नति का ठीक पता चल सकता है—

सन्	खेतों की संख्या	क्षेत्रफल (एकड़)	उत्पत्ति (पौंड में)
१८५०	1	१८७६	२१६०००
१८५९	४८	७५२९	१२०५६८९
१८७१	२९५	३१३०३	६२५११४३
१९२०	+	७०२०४७०	३४५२ ६०००
१९२६	+	७३९७००	३९२९१८०००

इस कुल का दो-तिहाई से भी अधिक भाग आसाम में, बाकी संयुक्तप्रान्त के पहाड़ी प्रदेशों में, पंजाब और दक्षिण में रत्नागिरि में उत्पन्न हुआ।

काफ़ी

भारत में काफ़ी की खेती पहले मूर लोग करते थे। अंग्रेज़ों-द्वारा इसकी खेती पहले-पहल १८४० में हुई। १८६० तक इसमें कुछ वृद्धि न हो सकी। किन्तु १८६० से १८७० के बीच खेती प्रायः दस-गुनी बढ़ गई। १८७९ से १८८८ के बीच इसकी खेती कम हुई किन्तु इसी समय काफ़ी के मुख्य उत्पत्ति-स्थान ब्रेज़ील में राजनैतिक झगड़ा उठ जाने के कारण १८८२–९६ तक के काल में यहाँ के काफ़ी के व्यापार ने ख़ूब उन्नति की। इसके बाद इसका ह्रास होने लगा और अब तक यही हालत है। १९२५–२६ में १४८१९५ एकड़ ज़मीन में काफ़ी की खेती हुई जिसमें २२१०६७१७ पौण्ड॰ काफ़ी उत्पन्न हुई। इसकी खेती मुख्यतः रत्नागिरि, मलाबार, कुर्ग और मैसूर में होती है।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव से आरम्भ हुए उद्योग-धन्धों में उपर्युक्त पदार्थों की खेती के अतिरिक्त, मिलों का मुख्य स्थान है। मिलों में सबसे पहले भारत में रुई की मिल की स्थापना हुई।

वस्त्र (रुई के)

कपड़े की सबसे पहली मिल १८१८ में कलकत्ते में खुली। किन्तु उस समय उसमें स्टीम (भाफ़) का उपयोग नहीं किया गया। स्टीम-शक्ति से चलने वाली मिलों में सब से पहली मिल १८५१ में बम्बई में स्थापित हुई, किन्तु उसमें भी कार्यारम्भ १८५४ के पूर्व न हो सका। १८६१ तक केवल बारह कम्पनियाँ भारत में रुई के कपड़े की मिलें स्थापित करने के लिए कायम हुईं। १८६१–७० तक अमेरिका में गृह युद्ध (Civil War) होने के कारण भारत में रुई का भाव बहुत चढ़ गया, इससे यहां की मिलों को रुई बहुत मँहगी मिलने लगी और उनमें घाटा होने लगा। १८९० के बाद जापान के उद्योग-धन्धे में ज़ोरों की उन्नति हुई। इस कारण उसने भारत का तैयार माल लेना बन्द कर दिया, इससे भारत के मिल-व्यवसाय को धक्का पहुँचा। १८९५–१९०० तक देश में घोर अकाल होने के कारण उस समय यहाँ के उद्योग-धन्धे बहुत मन्दे रहे। नीचे के अंकों से इस व्यवसाय की प्रगति का ठीक-ठीक पता चलेगा।

सन्	मिलों की संख्या	तकुए	लूम (करघे)	प्रतिदिन काम करनेवालों की औसत संख्या	रुई की खपत गाँठों में (प्रत्येक ३९२ पौण्ड)
१८८०	५६	१४६१५९०	१३५०२	४४४१०	३०७६३१
१९००	१९३	४९४५७८३	४०१२४	१६१७८९	१४५३३५२
१९१०	२६३	६१९५६७१	८२७२५	२३३६२४	१९३५०१०
१९१७	२६३	६७३८६९७	११४६२१	२७६७७१	२१९८१६४
१९२६	३३४	८७१४१६८	१५९४६४	३७३५०८	२११३३८४

॰ क्वार्टर = २ = पाउण्ड

॰ पौण्ड = लगभग आधसेर के

उपर्युक्त अंकों को देखने से पता चलेगा कि प्रारम्भ में मिलों में लूमों की अपेक्षा तकुए का भाग अधिक रहा, और कुछ दिनों तक उनमें वृद्धि भी होती गई। किन्तु बाद में लूमों का भाग बढ़ने लगा और यही प्रवृत्ति अबतक जारी है।

जूट

रुई के बाद यहाँ सबसे प्रधान मिल-सम्बन्धी उद्योग जूट का है। औद्योगिक क्रान्ति के कारण जूट के वर्तमान उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिला। बंगाल मे पहले भी हाथ के लूमों में जूट की बुनाई का कुछ काम होता था। किन्तु डण्डी की प्रतियोगिता के कारण उसका दिन-प्रतिदिन ह्रास होने लगा था, और १८३० तक केवल नाममात्र को रह गया था। यूरोप में क्रीमिया का युद्ध प्रारम्भ होने से भारत के इस उद्योग का पुनरुत्थान हुआ। इस युद्ध के कारण जूट-व्यापार के सबसे बड़े प्रतियोगी देश रूस से माल आना बन्द हो गया। इसी समय भारत मे श्री रामपुर में आकलैण्ड द्वारा सर्वप्रथम जूट मिल की स्थापना की गई। सन् १८५४ से १८६३-६४ के बीच में केवल एक और मिल की स्थापना हुई। इसके बाद इस उद्योग-धन्धे की वृद्धि होने लगी। १८५९-६० में यहाँ ३८०८० आदमियों द्वारा जूट की २ मिलें चल रही थीं उसके बाद उन्नति की गति इस प्रकार रही—

सन्	पूँजी (लाख में)	काम करनेवाले लोग (हजार में)	लूम (हजार में)	तकुए (हजार में)	मिलें	तैयार माल (लाख रुपयों में)
१९०३—०४	६८०	११४ २	१६.२	३३४.६	३६	८२६५
१९१३—१४	१२०९	२०८.४	३३.५	६९१.८	६०	२०२३.८
१९२१—२२	२१२२.४	२८८.४	४३.०	९०८.३	८१	२९९९.५
१९२४—२५	२२१३	३२७.४	४८.५	१०१७.५	९०	५१७७
१९२६—२७	...	...	...	..	..	५२८३.२

१९१७ में कच्चे जूट के निर्यात का मूल्य ६५ लाख रुपये से एकदम १६ करोड़ २९ लाख तक चढ़ गया था। उपर्युक्त संख्या को देखने से पता चलेगा कि यद्यपि देश में जूट की मिलों की संख्या इतनी नहीं बढ़ी तथापि उनके अन्दर ही तकुए और लूमों की संख्या में खूब वृद्धि हो रही थी। जूट की मिलें प्रायः बंगाल भर में और उनमें भी अधिकतर कलकत्ते के आस पास स्थित हैं।

ऊन

रुई एवं जूट के बाद भारत में ऊन का धन्धा ही मिल के धन्धों में मुख्य है। ऊन का धन्धा उपर्युक्त दोनों धन्धों के मुकाबले बहुत-छोटे परिमाण में है।

१९०२ में भारत में ऊन के केवल दो कारखाने थे। उनमें ३३८०० तकुए तथा ६२४ करघे थे, और २५५९ मनुष्य काम करते थे। इनमें ३८५०००० रुपयों की पूँजी लगी हुई थी। प्रतिवर्ष २१४८००० पौण्ड माल तैयार होता था। १९१९ में इन मिलों की संख्या बढ़कर ७ हो गई। इनमें कानपुर की ऊलन मिल्स संसार भर में ऊन के मिलों में द्वितीय थी। ३१ दिसम्बर १९१९ को करघों की संख्या १८३५, तकुए ६७०२० एवं कार्य करने वालों की संख्या ७२९३ थी।

लोहा

इन सबके अतिरिक्त लोहे का धन्धा भी यहाँ का एक मुख्य धन्धा है। यह धन्धा पहले भी भारत में खूब होता था, किन्तु वर्तमान ढंग पर सर्वप्रथम मार्थलीन द्वारा पोर्टोनोवो में आरम्भ किया गया, किन्तु वह १८६१ से आगे तक न चल सका।। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की निया-

मक-समिति (कोर्ट ऑव् डाइरेक्टरर्स) की ओर से डाक्टर ओल्डहम भारत में लौह उद्योग के भविष्य के विषय में जाँच करने के लिए नियुक्त किये गये। १८५५ में कलकत्ते के मेसर्स मेके कम्पनी ने वीरभूम आयरन वर्क्स की स्थापना की। १८७५ में इस कम्पनी को बर्न कम्पनी ने अपने हाथ में ले लिया किन्तु वह आगे न चला सकी और काम वहीं रुक गया। १८७४ ई० में बंगाल आयरन वर्क्स खुला पर वह भी १८७९ में बन्द हो गया। १८७५ में बराकर आयरन वर्क्स खुला। १८८१ में इसे सरकार ने अपने हाथ में ले लिया और प्रायः ८॥ वर्ष बाद उसे बंगाल आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी के हाथ में दे दिया। उस कम्पनी के हाथ में यह काम अभी तक है और इसमें बराबर उन्नति हो रही है। इस उद्योग का भारत में सबसे बड़ा कारखाना जमशेदपुर का ताता आयरन ऐण्ड स्टील वर्क्स है। इस कम्पनी की रजिस्ट्री १९०७ में बम्बई में १०५१७९९१५ रुपये की पूँजी से हुई। यह कारखाना दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। इसकी १९२७–२८ की उत्पत्ति का ब्योरा इस प्रकार है—

कोक—७३९५३९ टन; कोलटार २४९८५ टन; सलफेट अमोनिया ८९२५ टन; सलफ्यूरिक एसिड १४६३५ टन; पिग आयरन ६४४२९६ टन; स्टील इनगोट ५९९५६५ टन, स्टील का रोल किया हुआ माल ४२८६५४ टन।

यहाँ अधिकतर रेलवे कंपनियों के लिए पटरियाँ बनाई जाती हैं।

ताता कम्पनी को देखकर और भी अनेक नई कम्पनियाँ स्थापित हो रही हैं। इण्डियन आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड १९१८ में मेसर्स बर्न कम्पनी (हीरापुर) में १९२१ में, युनाइटेड स्टील कारपोरेशन ऑव् इण्डिया लिमिटेड, मेसर्स बर्ड कम्पनी (शेफिल्ड की) मेसर्स केमेल लेअर्ड कम्पनी (मसीहापुर में), इण्डियन आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी (झरिया में) और सीतारामपुर में कील्यांबन्द आयरन ऐण्ड स्टील वर्क्स आदि कम्पनियाँ खुली हैं।

प्रारम्भ में इस उद्योग के असफल होने का कारण यह था कि इसमें पर्याप्त पूँजी नहीं लगाई गई थी। ईंधन (fuel) भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं था। यातायात के लिए रेलवे अथवा जहाज की इतनी सुविधा नहीं थी। सरकार का सहयोग भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हुआ। अच्छे प्रबन्धकों की भी कमी थी। किन्तु बाद में अधिक पूँजी से अच्छे प्रबन्ध के द्वारा लोहे एवं कोयले की खानों के पास कारखाने स्थापित किये जाने पर, रेल की सुविधा प्राप्त होने पर तथा सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित होने के कारण यह उद्योग खूब जोरों से आगे बढ़ा। अमेरिका के लोहे के कारखानों को ८०० मील दूर से लोहा लाना पड़ता है, और कारखाने से समुद्र की कम से कम दूरी २५० मील है। इंग्लैंड को भी बहुत-कुछ स्पेन से लाना पड़ता है, किन्तु भारत में कारखानों को लोहा तो वहीं से मिल जाता है जहाँ वे स्थापित हैं और समुद्र केवल ४० मील दूर है; कलकत्ता केवल १५२ मील पर है। इस कारण इनकी उन्नति की बहुत आशा है।

चमड़ा

चमड़े के धन्धे ने आरम्भ में मद्रास में बहुत उन्नति की। इसका प्रारम्भ चार्ल्स डी सोज़ा ने १८४५ में किया। १८८० में मद्रास का यह उद्योग बहुत उन्नति पर था। उसके बाद भी यह उद्योग खूब उन्नति करता गया। किन्तु लाभदायक होने पर भी मद्रास के बाहर वह नहीं फैल सका। अमेरिका में क्रम पद्धति निकल जाने से १८९९ के बाद इस उद्योग में अवनति होने लगी और फिर इसकी गति नहीं रुकी। मद्रास के अतिरिक्त बम्बई प्रान्त तथा कानपुर में इसका उद्योग अच्छा होता है। कानपुर में १८६० में सरकार द्वारा हार्नेस और सेडलरी फैक्टरी स्थापित किये जाने के बाद यह कार्य आरम्भ हुआ। इसके बाद नई-नई कम्पनियाँ स्थापित होने लगीं। अब वहाँ इसका अच्छा काम होता है। युद्ध के बाद इस धंधे में उन्नति हो रही है। १९२६-२७ में १४५५ लाख रुपयों का माल बाहर भेजा गया।

इनके अतिरिक्त कागज़, चीनी, शीशा आदि के अनेक कारखाने हैं किन्तु वे अभी अधिक उन्नत नहीं हुए हैं।

खनिज कोयला

खनिज पदार्थों के उद्योग में कोयला मुख्य है। सबसे पहली कोयले की खान रानीगंज जिले में १८२० में खोदी गई थी। १८५४ तक तीन खानें खोदी गईं। बाद में इसकी प्रगति इस प्रकार रही—

सन्	खानें	उत्पत्ति (टनमें)	काम करने वालों की औसत संख्या
१८७८-८०	६८	९८७०००	——
१८९७	१२३	२८००६५२	४३१९७
१९०६	——	६११२६६३	९९१३८
१९१४	——	१५७३८१५३	१५१३७६

कुल उत्पत्ति का ९० प्रतिशत भाग केवल रानीगंज, गिरीडीह और झरिया की खानों से निकलता है; बाकी अन्य स्थानों से। १९२५-२६ में ४॥-) टन के दर से कोयला दस करोड़ पच्चीस लाख रुपयों का बिका।

कोयले के अतिरिक्त अनेक औषधियाँ, नमक, सलफ्यूरिक एसिड, जिंक सलफ़ाइड आदि चीजें खानों से निकलती हैं। इन में अबरख और शोरा मुख्य हैं। शोरा पर तो भारत का एकाधिकार-सा हो गया है। पेट्रोल भी बर्मा की खानों से निकलता है।

औद्योगिक क्रांति के प्रभाव से स्थापित उद्योग-धन्धों में ये ही मुख्य धन्धे हैं।

इस समय भारतवर्ष उद्योग-धन्धों के दो प्रकारों की सन्धि में पड़ा हुआ है। एक ओर प्राचीन हस्त-कलाओं के, जो कुछ जीवित हैं, पुनरुद्धार का प्रयत्न किया जा रहा है, और दूसरी ओर नये उद्योग-धन्धे नये प्रकार से आरम्भ होते जा रहे हैं। एक ओर लोग हाथ से होने वाले उद्योग-धन्धों का मिल के सामने न ठहर सकने का भय दिखाते हैं एवं दूसरे लोग मिलों द्वारा भविष्य में भारत में भी वही पूँजीपति एवं मज़दूरों के कभी अन्त न होने वाले झगड़े के भय से हमें डराते हैं।

भारत के लिए यह कह देना तो बिल्कुल अनुचित है कि हस्त-कला मिलों के सामने नहीं ठहर सकती। आज प्रायः डेढ़ सौ वर्ष से यहाँ के ग्रामीण जुलाहे मिलों का मुकाबला करते हुए जीवित हैं। और भी अनेक हस्त-कलायें मिलों का मुकाबला कर रही हैं। भारत के कृषि-प्रधान देश होने के कारण घर छोड़कर बाहर काम करने के लिए जाना यहाँ के लोग कुछ नापसन्द-सा करते हैं। गाँव में यदि एक बार पेट भर भोजन मिल जाया करे तो लोग बाहर एक रुपया डेढ़ रुपया रोज़ मिलने पर भी जल्दी जाने को तैयार नहीं होते। इसके अतिरिक्त घर पर रह कर उद्योग-धन्धा करने वालों को उनके घर के स्त्री-बच्चों से भी बहुत-कुछ सहायता मिल जाती है। मिल वालों को ऐसी को सहायता नहीं मिलती। अब यहाँ के कारीगरों ने नये-नये फैशन की चीज़ें बनाना आरम्भ कर दिया है। इस कारण उनकी उन्नति की आशा और भी अधिक है। पहले जो वे न ठहर सकीं उसका यह भी कारण था कि यहाँ के कारीगरों को विस्तृत संसार का ज्ञान नहीं था। अतः एकाएक एक बड़ी शक्ति का मुकाबला पड़ने पर उनका टिकना कठिन हो गया। उस समय के उद्योग-धन्धे कम पूँजी से चलाये जाते थे; श्रम-विभाग का पर्याप्त उपयोग नहीं कि जाता था और कारखाने के प्रबन्ध का भार बहुधा बुद्धिमान और चलते-पुर्जे लोगों के हाथ में नहीं होता था। इन सब दोषों को दूर करके यदि हाथ की कारीगरी का पुनरुद्धार किया जाय तो नहीं कहा जा सकता कि बाज़ार पर किसका कब्ज़ा रहेगा। अभी तक तो यह अवस्था थी कि १९०६-०७ में जब भारत में स्वदेशी आन्दोलन चला तो मैंचेस्टर वालों को उसका पता चल गया, किन्तु भारत के जुलाहे प्रायः उससे अनभिज्ञ रहे और वे बाज़ार की माँग के अनुसार चीजें न बनाकर अपने पुराने ढंग पर ही चलते रहे। मद्रास में हाथ की कारीगरी के पुनरुत्थान का कुछ प्रयत्न किया गया था। बनारस में इण्डस्ट्रियल कमीशन के सामने श्री एल० एम० जॉन्सन ने जो लेख पढ़ा था उसमें सन् १९०५ की मिलें और हाथ के कारीगरों के विषय में उन्होंने लिखा था कि अंग्रेज़ी मिलों में एक पौंड कपड़ा बनाने में १४ पाई, देशी मिलों में १७ पाई और हाथ करघे में २१ पाई व्यय होता है। किन्तु इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि हाथ-करघे के लिए विशेष स्थाई पूँजी की आवश्यकता नहीं होती। इस कारण भारत के हाथ-करघों का मिलों के सामने ठहरना कोई असम्भव बात नहीं है।

गत ६-७ वर्षों से राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ देशी दस्तकारी को भी प्रोत्साहन देने का आन्दोलन चल रहा है। यद्यपि देश ने अभी उस ओर बहुत कम ध्यान दिया है तथापि २ अप्रेल १९२८ को इंग्लैंड की पार्लमेंट में

भाषण देते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री जी. एम. कीन्स ने कहा था—"लङ्काशायर का वस्त्र-व्यवसाय दिन-दिन घटता जा रहा है; २० लाख तकुए बिल्कुल बेकार हैं; ४ करोड़ तकुए सप्ताह में केवल तीन दिन चलते हैं। १००० मज़दूर बेकार हो गये हैं। अर्थात् लङ्काशायर का व्यापार एक तिहाई घट गया है। इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि भारत में ब्रिटेन की वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन चल रहा है। वहाँ के राजनैतिक नेता इस पर बहुत ज़ोर दे रहे हैं।"

यदि भारत के हाथ के व्यवसाय की इस थोड़ी सी प्रगति का कुछ भी प्रभाव पड़ सका है तो अवश्य ही इसका भविष्य आशाजनक कहा जा सकता है।

सम्पादकों को पुरस्कार

('मतवाला' के सौजन्य से)

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति

[श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी']

यद्यपि आँधी, भूकम्प, तूफ़ान आदि के आने का कारण साधारण आँखों से नहीं जाना जा सकता, फिर भी उनकी तह में कोई विशेष कारण अवश्य होता है। क्रान्ति आँधी और भूकम्प की भाँति आती है और सारे नियम, उपनियम एक ही झटके में तोड़-फोड़, उलट-पुलटकर चली जाती है। इन क्रान्तियों की जड़ में भी गम्भीर कारण होते हैं। जब संस्थाओं और पद्धतियों में लोगों के सामयिक विचार-परिवर्तन के अनुसार परिवर्तन नहीं होते; जब जनता के विचारों के विरुद्ध राज-शक्ति, पोप-पुजारी और धर्मा-मानी लोग बाधारूप बनकर अड़ना चाहते हैं तब क्रान्ति आती है; पुराने सड़े-गले, घातक, गन्दे विचारों और नियमों को भस्म करने के लिए।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति, यद्यपि एक आकस्मिक, आश्चर्य-जनक और भयंकर घटना थी, फिर भी उसका जन्म स्वाभाविक और अनिवार्य था।

कारण

पन्द्रहवें लुई के स्वेच्छाचार, व्यभिचार, अत्याचार और मनमानी ने सारे फ्रांस को क्षुब्ध कर दिया था। राजा से सारी प्रजा को घृणा हो गई थी। साधारण प्रजा और राजा, जमींदारों, पादरियों और रईसों में बड़ा अन्तर था—विषमता थी और था अन्याय। धर्माधिकारियों, सरदारों, रईसों को कोई कर न देना पड़ता; पिसती थी बेचारी गरीब प्रजा। एक प्रान्त में नमक पर इतना कर लगाया गया कि उस कर को न दे सकने के कारण प्रतिवर्ष साढ़े तीन हज़ार मनुष्य जेल जाने लगे। राजा का यह हाल था कि वह चाहे जिस पर राज-द्रोह का अपराध लगाकर, बिना कोई जाँच पड़ताल किये ही, उसकी जायदाद ज़ब्त कर लेता, जन्म-कैद दे देता, या जीता जलवा देता था। ऐसी भयंकर आज्ञायें पन्द्रवें लुई के काल में बीस हज़ार बार निकलीं। फिर क्रान्ति न होती तो क्या होता? विलासिनी स्त्रियों का दरबारियों से सम्बन्ध होता था और वे प्रायः युवा-पुरुषों को किसी अनबन के कारण काल-कोठरी में डलवा देतीं। धर्मोपदेशकों में दुराचार का दौर-दौरा था। प्रोटेस्टेण्टों पर भयानक अत्याचार किये जाते। यहाँतक कि रक्त की धारायें बह निकलतीं। इतना तो था ही उस पर अकाल ने आग में घी का काम किया। बस, क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। रूसो, वाल्टेयर, मांटेस्क्यू आदि लेखकों ने राजाओं की अबाधित सत्ता का विरोध किया। उनकी रचनायें पीड़ित और क्षुब्ध प्रजा के कलेजे में आग जलाने का कारण हुईं। जनता के विचारों के साथ ही सामाजिक और राजनैतिक स्थिति भी बदलने लगती तो क्रान्ति को अपना मुँह खोलने की आवश्यकता न पड़ती। परन्तु जिनके पास मान-मर्यादा थी, अधिकार थे, धन था और था बल उन्होंने जनता के विचारों को ठुकराया, इसी पाप का परिणाम उन्हें आगे भुगतना पड़ा।

सन् १७७४ ई० की १० मई को पन्द्रहवें लुई का देहान्त हो गया। राज्य-क्रान्ति का सबसे बड़ा कारण यही अत्याचारी और व्यभिचारी राजा था।

सोलहवां लुई

इसके बाद इसका लड़का सोलहवाँ लुई राजा हुआ। इसकी रानी का नाम था मेरी एण्टोनेट। ये दोनों व्यक्ति सीधे और शान्त थे। हाँ, रानी का खर्च बहुत था। राजा के सीधे और शान्त होने से ही प्रजा सुखी नहीं हो सकती थी। अकाल, रईसों के अत्याचार और धर्मोपदेशकों के अनाचार का राजा नियन्त्रण न कर सका। वह राजा होने के योग्य न था।

पन्द्रहवें लुई के काल में ही ख़ज़ाना ख़ाली हो चुका था।

ख़ज़ाने की स्थिति और 'स्टेट्स-जेनरल'

सोलहवें लुई के काल में भी ख़ज़ाने के मन्त्री टर्गो और उसके बाद नेकर ने दशा सुधारने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु इन्हें बहुत से ऐसे काम करने पड़े जो धर्मोपदेशकों और रईसों को पसन्द न आये। ख़ज़ाने के मन्त्री-पद पर बराबर रद्दोबदल होती रही। ख़ज़ाने की दशा सुधारने का कोई उपाय न

पाकर नेकर ने राजा को सलाह दी कि 'स्टेटस-जेनरल' सभा की जाय। रईसों-सरदारों और जमीदारों ने इसे अपने लिए घातक समझा और विरोध भी किया। ५ मई सन् १७८९ ई० को 'स्टेटस-जेनरल' प्रारम्भ हुई। क्रान्ति का श्रीगणेश इसी सभा से माना जाता है।

लोक-सभा की स्थापना

पीडित प्रजा को आशा थी कि उसमें नये सुधार और अधिकार प्राप्त होंगे, लेकिन, वहाँ तो राजा, मन्त्री और नेकर के भाषणों में खजाने का ही रोना था, कुछ उसके सुधार के उपाय थे। प्रजा बहुत निराश हुई। वह आग-बबूला हो गई। लोगों ने प्राचीन नियम के विरुद्ध राजा के सामने टोपी पहन ली। सभा में कुछ भी निश्चय न हुआ।। विवादास्पद विषय यह था कि राज्य-व्यवस्था के लिए तीनों प्रकार के (धर्माधिकारी, रईस और जन-साधारण) सम्मिलित और राजा की सभा बनाई जाय या धर्माधिकारी, रईस और राजा की अलग और जन-साधारण की अलग सभा बनाई जाय। धर्माधिकारी और रईसों को बहुमत का शासन स्वीकार न था, इससे उनके मान में फर्क आता था, अतः जनता ने १७ वीं जून को राजा, रईसों और धर्माधिकारियों की पर्वा न करते हुए, अपनी लोक-सभा स्थापित की और शीघ्र ही देश-सुधार का कार्य करने का निश्चय किया। इस पर राजा ने २३ तारीख को एक दरबार करने की घोषणा की। प्रजा ने समझा, राजा लोक-मत को कुचलकर शासन करना चाहता है। उसे अधिक जोश आ गया। २१ तारीख को लोक-सभा के सदस्य जब सभागृह में पहुँचे तो उसे बन्द पाया; उसके ऊपर पहरा बैठा था, इस अपमान से वे क्रुद्ध हुए। पास के ही एक टेनिस खेलने के मैदान (टेनिस-कोर्ट) में उन्होंने फ्रांस को स्वतन्त्र करके दम लेने की शपथ ली।

राजा ने भी घोषणा के अनुसार २३ तारीख को दरबार किया। राजा के भाषण में लोक-सभा को बहुत-सी धमकियाँ दी गई थीं। दरबार समाप्त होने पर धर्माधिकारी रईस आदि तो चले गये लेकिन जन-साधारण वहीं जमा रहा। मिराबो ने, जो प्रजा-पक्ष का नेता था, कहा कि हम बिना संगीन की मार के नहीं निकलेंगे। उसने बड़ा जोशीला भाषण दिया। नेकर इस दरबार के विरुद्ध था। वह भी लोक-सभा में सम्मिलित हो गया। इसका इतना प्रभाव पड़ा कि सैंतालीस रईस भी लोक-सभा में सम्मिलित हो गये। चारों ओर यही आवाज़ सुनाई देती थी कि राज-व्यवस्था को उलट दो। पैरी में, वर्सेले में, तथा अन्य कई प्रान्तों में बड़ी हल-चल मच गई। समाचार-पत्रों और ट्रेक्टों से घोर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। राजा घबरा उठा।

पेरी की लूट और बेसील का अन्त

अब राजा ने फ़ौज से काम लेना प्रारम्भ किया। पहरे लगाये गये। डौंडी पिटवाई गई कि लोक-सभा के सहायकों को दण्ड दिया जायगा। परन्तु राजा की सेना प्रबन्ध के लिए अपर्याप्त साबित हुई। जनता को जहाँ से शस्त्र मिले लेकर पिल पड़ी। सारे पैरी में लूट-मार, मार-काट मच गई। जेल तोड़ डाले गये। मकानों को जला दिया गया। लोक-सभा ने भी अपनी सेना संगठित की। अड़तालीस हज़ार सेना और हथियार एकत्र कर उसने बेसील पर आक्रमण किया और उसे ले लिया। बेसील का वृद्ध गवर्नर मार डाला गया और कत्ले-आम प्रारम्भ हुआ। इस नगर के विनाश से राजा डर गया और उसने लोक-सभा की इच्छानुसार चलना एवं नेकर को अपना प्रधान-मंत्री बनाना स्वीकार किया। रईसों को अपनी मान-मर्यादा ख़तरे में दिखाई देने लगी और वे फ्रांस छोड़कर भागने लगे।

देशव्यापी क्रान्ति

पैरी और बेसील का हाल सुनकर सारे फ्रांस में विप्लव प्रारम्भ हो गया। जमीन्दारों का निर्दयता से कत्ल किया जाना प्रारम्भ हुआ। उनके घर लूटे और जलाये गये। व्यापारियों ने व्यापार बन्द कर दिया। ग़रीब प्रजा 'अन्न-अन्न' करती दौड़-धूप और लूट-मार करने लगी। इस गड़बड़ में कई अनर्थ और अन्याय भी हुए। परन्तु यह दुर्भिक्ष-पीड़ित, दीन-दुर्बल सताये हुए लोगों के हृदय का क्षोभ था। एक जागीरदार को मारने न मारने का निश्चय करने के लिए कुएँ में चार घण्टे लटकाये रखा। फिर जलती भट्टी में झोंक दिया।

अब मामला बढ़ते देख लोक-सभा को शान्ति-स्थापना की चिंता हुई पर उसके समझाने से भी जनता शान्त न होती थी। अन्त को ४ अगस्त की रात को एक बैठक में मनुष्य के अधिकारों के विषय में घोषणा-पत्र प्रकाशित करने के लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ।

मनुष्य के अधिकारों का घोषणा-पत्र

८ अगस्त को घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ। मुख्य बातें ये थीं—"सब मनुष्य समान हैं प्रत्येक मनुष्य की स्वाधीनता रखना, उनकी रक्षा करना और उनपर अन्याय न होने देना ही मनुष्यों के एकत्र रहने का मुख्योद्देश्य है। सत्ता सब लोगों की है इसलिए राजत्व भी उन्हीं के पास है। जिन कामों के करने से किसी को कष्ट नहीं होता उन कामों के करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को होना ही स्वाधीनता है। सब लोगों की इच्छा ही न्याय-शास्त्र है। सार्वजनिक कामों का खर्च प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिए। मत देने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है इत्यादि।"

परन्तु राजा के विषय में कुछ भी निश्चय नहीं हुआ। कोई राजा को एक दम निकाल देना चाहता था, कोई राज-प्रजा-तन्त्र शासन के पक्ष में था। राज-तंत्र राज्य चाहने वाले बहुत कम थे। मिराबो का मत राज-प्रजा तंत्र के पक्ष में था। आखिर कुछ भी निश्चय न हो सका।

राष्ट्र की आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय थी। आमदनी के ज़रिये बन्द थे। धनाभाव से सरकारी काम बन्द हो चले। न कोई टैक्स देना न लगान। कर्ज मिलना भी असम्भव था। नेकर एक ऐसा कानून चाहता था जिससे प्रत्येक मनुष्य को अपनी आमदनी का चौथा भाग तुरन्त देना पड़े। मिराबो चाहता था कि कुछ धनी पुरुषों को चुनकर खर्च-योग्य द्रव्य उनसे जबर्दस्ती वसूल कर लिया जाय। प्रजा को अन्न मिलना दुश्वार हो गया था। कारखाने बन्द थे। व्यापार नष्ट हो गया था। मज़दूरों, स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड 'अन्न अन्न' चिल्लाते घूमते थे। धनियों, रईसों और राजा को कोसते थे। किसी के प्राण सुरक्षित न थे। राजा भी

पैरी में फिर विद्रोह

भीत हुआ। उसने अपने महलों के पहरे की फ़ौज बढ़ाई और उसे दावत दी। प्रजा को बड़ा बुरा लगा। प्रजा भूखों मरे और राजा सेना को दावत दे। लोग आग-बबूला हो गये। 'अन्न-अन्न' शब्द और पीड़ितों के आर्तनाद से दिशायें कम्पित होने लगीं। स्त्रियां और पुरुष एकत्र होकर वार्सले को रवाना हुए। राजमहल पर धावा बोल दिया गया। राज-पक्ष वाले कुछ न कर सके। भीड़ महल में घुस गई। उसकी शर्त थी कि राजा लोक सभा का शासन माने और पैरी रहे। हारकर राजा को यह स्वीकार करना पड़ा। राजा-रानी को पैरी ले जाने में लोगों ने इतनी शीघ्रता की कि उनके पैर खून के गड्ढे में पड़कर सन गये थे; उन्हें वैसे ही लोहू भरे पैरों से पैरी जाना पड़ा। आगे-आगे दो मनुष्य दो मरे हुए सिपाहियों के सिर भाले पर रक्खे चल रहे थे। इस प्रकार राजा फिर पैरी घसीट लाया गया। विप्लवियों ने सोचा था, अब कष्ट दूर होजायँगे पर उन्हें निराश होना पड़ा। उपद्रव बढ़ने लगे। एक रोटी बेचनेवाले को मँहगी रोटी बेचने के अपराध में ग़रीबी से त्रस्त जनता ने मार डाला। यह था उन भूखों की भूख का हाल।

राजा पैरी में पराधीन होकर रहने लगा। लोक-सभा के अधिकार बढ़ चले और धीरे-धीरे उपद्रव भी कम हो गये।

लोक सभा का प्रबन्ध

अब लोक-सभा ने राज्य का प्रबन्ध हाथ में लिया। फ्रांस को कई टुकड़ों में बांट दिया। इस बात का ध्यान रक्खा कि प्रत्येक कार्य लोक-मत के अनुसार हो। लेकिन धनाभाव सब कामों के बीच बाधक हो रहा था। धर्माधिकारियों के पास विशाल सम्पत्ति थी। उनके निर्वाह-योग्य भाग छोड़ कर शेष सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। इससे वे प्रजा-तन्त्र के दुश्मन बन गये। लोक-सभा ने फ्रांस को इतनी सुविधायें दीं—

(१) राजा के स्थान पर प्रजा का पक्ष लेकर बोलने वालों की सभा

(२) अपराधियों की जांच पंचायत द्वारा होने की प्रणाली

(३) बहुमत के अनुसार राज-सत्ता।

राजा-रानी को ग्यारह लाख साठ हज़ार रुपये वार्षिक पेन्शन कर दी गई। रईसों और सरदारों के वंश-परम्परागत

अधिकार छीन लिये गये। उनकी जागीरें और जमीदारियाँ ज़ब्त करली गईं। इस प्रकार लोक-सभा ने अपने शत्रु और बढ़ा लिये।

राज्य-क्रान्ति का एक वर्ष पूरा हुआ। लोगो ने सफलता के उपलक्ष में उत्सव करने का निश्चय किया। छोटे-बड़े, बालक-वृद्ध, युवक-युवती, सब तैयारी में भिड़ गये। १४ जुलाई सन् १७९० ई० को बड़े आनन्द, उत्साह, उमंग और उल्लास के साथ उत्सव मनाया गया। राजा-रानी, सेनापति लाफायेत और लोक-सभा के अध्यक्ष ने शपथ ली। सारे नगर में रोशनी की गई। प्रजा ने समझा बस अब सब संकटों का इति-श्री हो गई, परन्तु, उसे आगे की घटनाओं का क्या पता था ?

उत्सव

प्राचीन पद्धतियों के आधार पर वेतन-वृद्धि न होने के कारण सिपाहियो और अधिकारियो में वैमनस्य बढ़ गया। उच्च कुल के अधिकारी सिपाहियो को तंग करने लगे। सिपाहियों में भी स्वतन्त्रता की धुन सवार हुई। नान्सी में तो अफ़सरों को सिपाहियों की बहुत सी बातें विवश होकर मान लेनी पड़ीं। इस घटना से लोक सभा को भी चिन्ता हुई। उसने सेनापति बौली को दङ्गा शान्त करने को भेजा जिसमें वह बड़ी कठिनाई से सफल हुआ।

सेना में गड़बड़

सरदार; पादरी, रईस आदि लोग अपनी मान-मर्यादा के नष्ट हो जाने से अत्यंत क्षुब्ध हो विदेश भागने लगे। वहां जाकर उन्होंने फ्रांस के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। कुछ लोगों ने ऐसे कानून की आवश्यकता प्रदर्शित की जिससे फ्रांस-वासियों का विदेश-गमन अपराध समझा जाय। मिराबो इसके विरुद्ध बोला और तभी से राज पक्ष में हो गया। उसे ८०००) रुपया मासिक पेन्शन मिलने लगी। लेकिन वह शीघ्र ही मर गया। उसकी मृत्यु पर अधिकांश लोगों ने शोक मनाया।

मिराबो की मृत्यु

मिराबो की मृत्यु से सब लोगों को निराशा हुई। राजा भी उससे कुछ आशा लगाये था। अब उसने विदेश भाग जाने का प्रयत्न किया। २० जून सन् १७९१ ई० को राजा छिपकर भाग निकला; लेकिन पकड़ लिया गया। और फिर पैरी लाया गया। अब राजा की अधिक दुर्दशा होने लगी। महलों पर कड़ा पहरा रहता। राजा को पद-च्युत करने का लोगों को यह अच्छा अवसर मिला। लोक-सभा ने निश्चय किया कि यदि राजा अपने अधिकार में सेना का आधिपत्य लेगा तो पद-च्युत कर दिया जायगा। राजा ने इसे भी स्वीकार कर लिया। इसके बाद कुछ दिन शान्ति से कटे। लोक-सभा भंग कर दी गई और नियम बनाने वाली सभा स्थापित हुई। इसके सारे सदस्य नये थे। अधिकांश राज-विरोधी थे। उधर विदेश में फ्रांस के विरुद्ध घोर आन्दोलन हो रहा था। प्रशा, आस्ट्रिया तथा कुछ और राज्यों ने सूचित किया कि लुई को पूर्ववत अधिकार मिलने चाहिएँ अन्यथा फ्रांस पर आक्रमण किया जायगा। राजा ने भी देश से आशा छोड़, गुप्त रीति से विदेशी राज्यों से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। दुर्भाग्य-वश उसका एक पत्र पकड़ा गया। जनता इस पर क्षुब्ध हुई। जन-सभा ने धर्माधिकारियों के विरुद्ध एक कड़ा कानून बना कर राजा के पास स्वीकृति के लिए भेजा जिसे राजा ने स्वीकार नहीं किया। फिर क्या था! प्रजा ने चिढ़कर महलों पर धावा बोल दिया। इस समय राजा और रानी ने बड़ा धैर्य प्रदर्शित किया और बड़ा शान्ति से बातचीत की। दंगा किसी प्रकार शान्त हो गया। परन्तु अगस्त सन् १७९२ ई० में फिर अशान्ति फैली। १० तारीख को लोगो ने राजा का महल फिर घेर लिया। लोग चिल्लाते थे—"आज राजा को गद्दी से उतारेंगे।" इस पर रानी को बड़ा क्रोध आया। उसने पहरेदारों को धैर्य दिलाया और राजा को बन्दूक देकर वीरतापूर्वक लड़ने को ललकारा। परन्तु यह कहाँ सम्भव था। वह भागकर नियम निर्धारिणी सभा में गया। इधर महलों में मारकाट मच गई। जिसे पाया उसी का बध कर दिया। रक्त की नदियाँ बह चली। स्त्रियों ने भी बड़े भयंकर कृत्य किये। उन्होने राजा के सिपाहियों के कलेजे निकाले, अँतड़ियाँ लटकाईं, और मांस तलकर खाया। पास ही एक तेल का कड़ाव आग पर चढ़ा था। उसमें

राजा का भागना और महलों पर धावा

जीते, मरे-अधमरे आदमी डाल दिये जाते और तलकर बलवाई लोग उन्हें खा जाते। उस दिन ५००० मनुष्यों के प्राण लिये गये। कुछ विद्रोही भी शराब अधिक पी जाने के कारण मर गये। उधर नियम-निर्धारिणी सभा ने राजा को पद-च्युत करके कैद कर लिया।

प्रशा ने लुई का पक्ष लेकर फ्रांस पर आक्रमण कर दिया और लांवी और वेडूम नगर ले लिये। इससे फ्रांस के स्त्री-पुरुष अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तैयारी करने लगे।

राज-पक्ष का वध

डांटो नामक एक व्याख्याता, और षड्यंत्रकारी ने राज-पक्ष के लोगों का वध करने की आवश्यकता बतलाई। अगस्त के अन्त में ५००० मनुष्य जेल में ठूँस दिये गये। उधर प्रशा वालों से युद्ध करने को सेना भेजी गई, इधर जेलों में कत्लेआम प्रारम्भ हुआ। इस समय बड़े करुणा-जनक, भयंकर तथा बीभत्स कार्य हुए। एक सोलह वर्ष की लड़की और उसका बाप भी कैदी थे। लड़की ने चाहा कि वह अपने बाप के पहले मारी जाय। इस पर उसे खून से लबालब कटोरा भरकर दिया गया और कहा गया कि यह राज-पक्ष का खून है, यदि इसे तू पी जाय तो तेरा बाप छोड़ दिया जायगा। वह बेचारी विवशतापूर्वक पी गई। इस प्रकार कई अद्भुत और भयंकर काण्ड घटे।

बेचारे राजा की जेल में बड़ी दुर्दशा थी। पहले सब कुटुंब एक जगह था। धीरे-धीरे सब अलग-अलग कर दिये गये। इससे राजा को बड़ी व्यथा हुई।

राजा का वध

आखिर राजा की तहकीकात भी १० दिसम्बर से प्रारम्भ हुई। हज़ारों की भीड़ तमाशा देखने आती। राजा इतना शान्त था कि विरोधियों की आँखों से भी आँसू टपकने लगे। २७ दिसम्बर को राजा को मृत्युदण्ड की आज्ञा दी गई। वह कुछ भी भीत नहीं हुआ। मरने के समय भी वह निर्भय और शान्त था।

पर अब भी फ्रांस को शान्ति नहीं मिली। राज्य में कई दल हो गये। प्रजा-तन्त्र के पक्षपातियों में मारो, डांटो, और रोब्सपियर थे। ये बड़े वक्ता थे। दूसरे दल का नाम था जिरांडी। दोनो पक्षों में तनातनी प्रारम्भ हुई। मारो एक बड़ा भारी लेखक था। उसपर एक अशान्ति फैलाने वाली पुस्तक लिखने के अपराध पर मुकदमा चलाया गया जिसमें वह बरी हो गया। रोब्सपियर, डांटो आदि ने जिरांडी पक्ष के विरुद्ध जनता को उभाड़ा; उन्हें कत्ल करवा दिया। परन्तु एक स्त्री ने मारो की भी हत्या कर दी।

जिरांडी पक्ष के अन्त होने पर लोक-रक्षक-सभा और 'राज्य-क्रान्ति न्याय-सभा' की स्थापना हुई।

राज्य-क्रान्ति और न्याय-सभा

'राज्य-क्रान्ति न्याय-सभा' का अध्यक्ष था फ़ूकिया। इस सभा ने भी हज़ारों की जान ली जिनमें रानी एण्टोनेट भी थी। राजा की भाँति यह भी १६ अक्टूबर को बड़ी वीरता साहस और शान्ति के साथ मरी। उस समय उसकी आयु ३९ वर्ष की थी। कुछ समय बाद लुई की बहन एलिज़ाबेथ का भी वध कर दिया गया।

फ्रांस के विरुद्ध दूसरे राष्ट्रों में घोर आन्दोलन हो रहा था। हम पहले लिख चुके हैं कि प्रशा ने लांवी और

अन्यराष्ट्रों का आक्रमण

वेडूम प्रान्त ले लिये। लेकिन वह उसे अधिक समय तक न रख सका। डूमार नामक फ्रेंच सरदार ने शत्रुओं को मार भगाया। त्यौंवील और मेन्स किलों पर आस्ट्रियनों ने कब्ज़ा करने का प्रयत्न किया पर सफल न हुए। त्यौंवील निवासियों ने एक लकड़ी का घोड़ा बनाया, उसके मुँह पर कुछ घास रखी और एक कागज़ पर लिखा—'जब मैं घास खा लूँगा तब तुम्हें किला प्राप्त होगा' तथा घोड़े को किले के बाहर रख दिया। फ्रांस ने अपने प्रजातन्त्र के भावों का चारोंओर प्रचार प्रारम्भ किया। इससे रूस स्पेन, आस्ट्रिया, सार्डिनिया, नेपल्स, ग्रेटब्रिटेन आदि ने मिलकर फ्रांस से युद्ध छेड़ दिया। फ्रांस ने ज़ोरों के साथ अपनी रक्षा के लिए युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। परन्तु

गृह युद्ध

फ्रांस में ही गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। वेण्डी प्रान्त प्रजा-तन्त्र से प्रसन्न न था। उसने अपने हिस्से के ३००० सवार न दिये। इसी कारण सारे प्रान्त का सत्यानाश कर दिया गया। मार्सलीज़, तूलों और लिओं में भी यही हाल हुआ। इनका झुकाव जिरांडी-पक्ष की ओर था। हज़ारों आदमी मार डाले गये, सैकड़ों इमारतें ढा दी गईं। जब ये शहर शरण में

आ गये तब भी अपराधियों को खोज-खोजकर दण्ड दिया गया। इस प्रकार सारे देश में हत्याओं का दौर-दौरा था।

इस समय रोब्सपियर और डांटो ही मुख्य नेता थे। अब इनमें भी मत-भेद प्रारम्भ हुआ। एक सभा में दोनों ने एक-दूसरे की खूब बुराई की। रोब्सपियर का अधिक प्रभाव पड़ा और डांटो पर अभियोग चलाया गया। अप्रैल सन १७९४ ई० में डांटो को मृत्यु-दण्ड मिला। मरते समय उसने वधिक से कहा "सुन, जब मेरा सिर टूटकर गिर जाय तब तू उसे उठाकर लोगों को दिखलाना, क्योंकि यह मस्तक वास्तव में बड़ी योग्यता का है।"

डांटो का अन्त

अब रोब्सपियर का घड़ा भर चुका था। उसका इतना प्रभाव रह चुका था कि उसके मुँह से निकली प्रत्येक बात पूरी की जाती थी। उसने असंख्य लोगों का बध कराया था। उसकी जेब में हमेशा उन लोगों की नामावली रहती थी जिन्हें वह मरवा डालना चाहता था। इस कारण उसके भी शत्रु बढ़ गये। आखिर वह भी कैद किया गया और उस पर अभियोग चलाया गया। २९ जुलाई १७९४ को उसके साथियों का बध कर दिया गया। रोब्सपियर के अन्त से ही लोग राज्य-क्रान्ति का अन्त मानते हैं। उसके बाद नेपोलियन का उदय हुआ। उसने अपने असाधारण पराक्रम से सारे विरोधी राष्ट्रों के छक्के छुड़ा दिये; उन्हें जगह-जगह हराया और स्वयं फ्रांस का सर्वेसर्वा बन गया, जिसके वर्णन के लिए एक अलग लेख की आवश्यकता है। अन्त में वह वाटरलू के मैदान में पूरी तरह हारा और कैद करके सेण्ट हेलेना भेज दिया गया। वहाँ सात वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई। सब राष्ट्रों ने मिलकर अठारहवें लुई को सिंहासन पर बैठा दिया।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति संसार के इतिहास में अपने प्रकार की एक ही घटना है। उसका प्रभाव सारे यूरोप पर पड़ा। उसने केवल राज्य में ही नहीं, विचारों-भावनाओं और रीति-रिवाजों में भी क्रान्ति कर दी। यूरोप में प्रजा-तन्त्र की लहर सबसे पहले फ्रांस ने ही बहाई। क्रान्ति ने देश को बल दिया, स्वाधीनता दी और दी नई संस्कृति। यह भी बात निश्चित ही है कि क्रान्ति के समय कुछ भयंकर कृत्य होते हैं। सदियों का कूड़ा-कर्कट जलाने के लिए क्रान्ति को ऐसा भयंकर रूप धारण करना ही पड़ता है। हाँ, ज़रूर पुराने ऐतिहासिक अनुभवों से लाभ उठाया जा सकता है।

भारत की भी इस समय बुरी दशा है। दरिद्रता हद से अधिक बढ़ गई है, बीमारियाँ अलग जान ले रही हैं, धर्माधिकारी गण अनाचार की ओर बढ़ रहे हैं। राज्य-व्यवस्था से किसी को संतोष नहीं है। दलबन्दियाँ अधिक होती जा रही हैं। क्रान्ति के लिए और किस बात की कमी है? हाँ अब वह खून और तलवार की क्रान्ति नहीं, शान्ति और दृढ़ता की क्रान्ति चाहिए।*

* इस लेख के लिखने में कई अंगरेज़ी-हिन्दी पुस्तकों से सहायता ली गई है। —लेखक

संसार
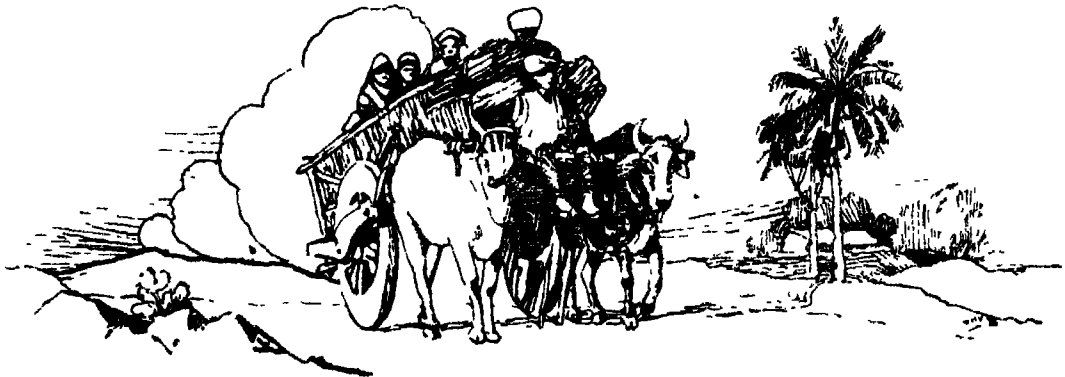
रचयिता—श्री उदयशंकर भट्ट

लगा है यह अद्भुत बाजार ।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार ।।

सभी वस्तुओं का संग्रह है सभी यहाँ सामान,
स्वार्थ-साधना एक नफा ले करते वस्तु प्रदान ।

आत्मा कोई बेच रहा है,
दिखावा करना लक्ष्य रहा है,
ठगी वंचना सार महा है,
ठाठ कीर्ति का सजा रहा है,

पैसों का बाजार गरम है स्वार्थों का आह्वान ।
उत्सुकता का पल्ला भारी, कहीं मान का गान ।

लगा है यह अद्भुत बाजार ।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार ।।

२

सत्य-झूठ की परख कहीं है,
धर्म दम्भ में खटक रही है,
ईर्ष्या निन्दा झलक रही है,
कहीं साधुता छलक रही है,

कहीं सान्त्वना के पर्दों से फूटा हाहाकार,
कहीं व्यंग्य वक्रोक्ति शिखा से आलोकित संसार ।

लगा है यह अद्भुत बाजार ।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार ।।

३

कहीं प्रेम का अभिनय होता,
भक्ति-दया का उभरा सोता,
विश्वासों का विनिमय होता,
घात-बीज कोई है बोता,

श्रद्धा के अंकुर में फूटा कहीं घृणा का जाल,
विप्लव के बाटों से तोला कहीं शान्ति का माल ।

लगा है यह अद्भुत बाजार ।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार ।।

४

कहीं विषमता छूत-छात की,
कुलीनतायें कहीं पातकी,
ऊपर उठते कहीं घातकी,
विशद भावना भस्मसात की,

दर गिर गई योग्य चीजों की हुआ किसी को टोटा,
टूट रहे हैं ग्राहक उस पर रहा माल जो खोटा ।

लगा है यह अद्भुत बाजार ।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार ।।

५

भावुकता का फूटा भाल,
'देश-भक्ति'-यह भी जंजाल,
'आशय-साधन' कर्म विशाल,
कृतघ्नता है मालामाल,

बेच आत्म-सम्मान ले रहा परवशता का माल,
छीन-झपट हो रही कहाँ पर बिखरा तृष्णा-जाल ।

लगा है यह अद्भुत बाजार ।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार ।।

६

टके सेर है नेतापन
अहंभाव बिकता मन-मन,
झूठ खरीदा दे सत्-धन,
धर्म-धर्म में है अनबन,
प्रतिक्रियायें तोली जातीं मात्सर्य के साथ,
कुटिल नीति की कुत्सित चालों में होता प्रतिघात।
लगा है यह अद्भुत बाजार।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार॥

७

पुरुष-स्त्री संघर्ष हो रहा,
तथ्य कहीं सामर्श सो रहा,
दुख खरीदकर हर्ष खो रहा,
असहज भावोत्कर्ष हो रहा,
अपनी-अपनी गठरी लादे कर्मों की दें फेरी,
झांक स्वार्थ-खिड़की से लेने ग्राहक करें न देरी।
लगा है यह अद्भुत बाजार।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार॥

८

किसी धर्म में व्याज बढ़ा है,
कहीं क्रिया में दम्भ अड़ा है
यश पर कहीं अधर्म चढ़ा है,
सीधेपन का बल उखड़ा है,
कहीं सत्य की अलमारी में तर्कों के हैं थान,
यहीं चढ़ाव-उतार हो रहा प्रतिदिन एक समान।
लगा है यह अद्भुत बाजार।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार॥

९

सारासार विवेक नहीं है,
नेकी करना टेक नहीं है,
धनी-निर्धनी एक नहीं है,
मुझ-सा कोई नेक नहीं है,
यही धारणायें हर मन में प्रति जन के अविराम।
मेरे जीवन सुखद कला-सी वस्तु न जग अविराम।
लगा है यह अद्भुत बाजार।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार॥

१०

दिन ढल चला सूर्य है अस्त,
उलट-फेर में सारे व्यस्त
असली घर से हैं अत्रस्त,
जो पथ पकड़ा वही प्रशस्त,
झूम रहे हैं सफल बने-से करते मनोरथों का सचय,
इतने ही में लूट ले गये डाकू जीवन का करके जय।
लगा है यह अद्भुत बाजार।
सारे सौदागर बैठे हैं फैला कारोबार॥

(१)

सुन्दर युवा है। ज़रा ही पढ़ा और एकहरे बदन का। उम्र कोई ३० वर्ष; आकृति में कुछ विशेषता नहीं। केवल आंखों में न जाने क्या है। देखते ही दहशत होती है, पर तुरन्त ही उसे जानने को जी चाहता है, फिर मित्रता की इच्छा होती है। इसी तरह परिधान में कुछ विशेषता नहीं है; केवल चौबीसों घण्टे लँगोट बाँधे रहता है। इसी का नाम मोहनसिंह है। इसी के सिर पर १०,००० का इनाम बोला गया है।

"क्यों? वह क्या करता है?" किसी ने उससे पूछा था तो उसने कहा था—'उपकार और शायरी।' फिर पीछे से समाधान करने के तौर पर कहा था—'डकैती!'

किंतु उपकार तो नाप-तौल की और देखने की चीज़ नहीं है। वह साबित करने की भी चीज़ नहीं है, और न गिनाने की ही है। इससे उपकार की बात तो नहीं की जा सकती। हाँ, उसकी कविताओं का और डकैतियों का थोड़ा-सा रेकर्ड है। उसका अपना रक्खा उपनाम 'शमशेर' है। डकैतियों में भी कविताओं में भी यही नाम प्रसिद्ध है। शमशेर से ही लोग डरते हैं, उसी की तारीफ़ करते हैं, और बहुत से हैं जो उसी का एहसान मानते हैं। वे मोहनसिंह को या और किसी को नहीं जानते, बस 'शमशेर' को जानते हैं।

जहाँ एहसान की बात है, वहाँ कितने उसके उपकृत हैं और कितने उसके शत्रु, यह बताना कठिन है। परन्तु उसका कहना है कि दुनिया के लोगों के उस बहुत ही सूक्ष्म और अविचारणीय भाग को छोड़कर, जो धनमत्त, अधिकारमत्त व्यक्तियों को लेकर उठ खड़ा हुआ है और उन्हीं के छल-छिद्र, ज़ोर-ज़ुल्म और षडयन्त्रों के आधार पर आज सबके सिर पर बैठने का दंभ करता है, मनुष्यता के उस जघन्य अंश को छोड़कर सब उसके पूज्य हैं। अतः सबका ही वह हितैषी है, सबका सेवक है।

लेकिन दुनिया का वही 'जघन्य' और सम्माननीय पुरुषों का गुट कहता है—"शमशेर शैतान है; पापी है; डाकू है; उसकी ज़िन्दगी बख्शने लायक नहीं है।" और

'परीक्षा' कहानी के लेखक ने अभी हिन्दी में लिखना शुरू ही किया है; अंग्रेज़ी में तो वह बहुत पहले से लिखते आये हैं। उनकी कहानियों की अपनी एक ख़ास शैली है और इस दृष्टि से यह—'परीक्षा' कहानी हिन्दी कहानियों के इतिहास में एक ख़ास स्थान पाने की अधिकारिणी है। साधारणतः इससे निम्नलिखित समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है—

१. वर्तमान दण्ड-विधान की निस्सारता।
२. अधिकारी-वर्ग की विभिन्न मनोवृत्तियों का संघर्ष।
३. 'स्त्री' और 'पुरुष' के मानसिक भेद।
४. वर्तमान सामाजिक निर्माण के दोष।

इसका प्रतिवाद कोई नहीं करता। दीनों की, असहायों की, बालकों की, माताओं की, और न्यायप्रेमियों की अंधा-धुंध तादाद, जो 'शमशेर' के उपकारों को जानती है, प्रतीकार का एक लफ़्ज़ नहीं निकालती। मानो स्वीकार करती है कि उनका उपकारी शैतान है। 'शमशेर' उनकी अयाचित सहायता करता है; चुप-चुप उन्हें पैसे से, और और तरह से मदद करता है, यह सब उनके लिए ठीक; लेकिन आज उसे फांसी लगे तो यह भी ठीक।

इसलिए जब क़ानून कुछ कहता है तो माना जाता है, यह 'विश्व-भर की सम्मति है। शमशेर' को इसमें बहुत संदेह है। पर कुछ हो, लेखक की सम्मति में उसकी सम्मति मानी जाने लायक़ नहीं है। अस्तु।

हम उसकी डकैतियों का हिसाब बिना सरकारी रजिस्टर देखे यहां नहीं दे सकते। वह रजिस्टरों में दर्ज है। लेकिन उसकी कविताओं का रेकर्ड लोगों की ज़बान पर खुदा हुआ है। उसके कुछ नमूने हम नीचे पेश करना चाहते हैं। ज्यों-के-त्यों शब्द हमें याद नहीं हैं, इसका हमें खेद है।

"लोगो, 'शमशेर' से डरते क्यों हो? वह फ़ौलादी है, पर देखो कितना झुक जाने को तैयार है।

लेकिन ख़बरदार उसकी धार के सामने न पड़ना, वह न्याय की तरह बारीक है।

× × ×

शमशेर दो बात जानता है—बहादुरी और ग़रीबी। जिनमें दोनों नहीं वे क्या आदमी हैं?

× × ×

बहादुर अभागी को ठोकर मारता है; बनिया उससे चिपटता है। बनिये को नंगा कर छोड़ो। उसका 'बनियापन' उतार लो। उसे आदमी बनने दो।

× × ×

'शमशेर' सरकार से कहता है—तुम उसे फांसी दोगे। लोगों से कहता है—'तुम उसके लिए रोओगे।' दोनों से कहता है—'दोनों भूल में हो।'

× × ×

लेकिन खुले-आम, वह कहता है—दया पाप है, रोना गुनाह है। मत रोओ, मत रहम खाओ।

तुम प्यार के गीत गाते हो। 'शमशेर' मना नहीं करता। पर वह कहता है—पहले इस दरख़्त की खोह में बसेरा डाले हुए त्रस्त ४ दिन के भूखे उस परिवार को देख आओ। फिर प्यार कर सको तो करना।

❀ ❀ ❀

अपने स्त्री-बच्चों के बीच तुम अपने को तो भूल जा रहे हो जैसे परमात्मा के सामने इसका जवाब ही तुम्हें नहीं देना है।

❀ ❀ ❀

प्यार! यह ज़रूरत है। कौन कहता है कि नहीं। लेकिन इन्सानियत कहीं बड़ी ज़रूरत है। पहले उसे पैदा करो; दीनता का सत्यानाश करो।

❀ ❀ ❀

जानते हो, 'शमशेर' प्यार का क्या करता है। उसे कुचल डालता है, और फिर थोड़ा सा रो लेता है। उसके बाद फिर अपने काम में लग जाता है।

❀ ❀ ❀

लेकिन लोगो, 'शमशेर' बेवक़ूफ़ है। प्यार कभी कुचला जा सका है? कुचले से जो उभरे नहीं, वह प्यार ही क्या? ऐसे प्यार का दूसरा नाम है दुःख। यह दुःख शमशेर का रोना है।

❀ ❀ ❀

लेकिन 'शमशेर' मज़बूत रहेगा। प्यार आयेगा, आये। वह बहेगा नहीं, अपने को भूलेगा नहीं। दुनिया को याद रक्खेगा; दुनिया में अपनी टेक को याद रक्खेगा।

(२)

जाड़े की रात चुप-चुप फैली हुई है। अंधकार निस्पन्द पड़ा है। हवा बर्फ़ की ठंड से सिसकारियाँ लेती हुई इधर से उधर भाग रही है। और वे मोती-से तारे काँपते हुए इस शान्त अन्धकार में से, सोती और जागती दुनिया का सब हाल देख रहे हैं।

१ बजे होंगे।

घना जंगल है। कटीली झाड़ियाँ आपस में चिपटी हुई दूर तक फैली हुई हैं। उनके बीच में से अनगिनत पगडंडियाँ इधर उधर चारों तरफ़ से आकर एक-दूसरे को काटती हुई न जाने कहाँ, किधर को निकली चली जा रही

हैं। जहाँ ज़रा पैर रखने को जगह दीखती है, वहीं पगडंडी है। लेकिन कुछ कदम चलने पर ही वह खत्म हो जाती है और कटीली झाड़ियों का एक झुरमुट सामने आ खड़ा होता है।

रास्तों की इसी भूल-भुलैया में एक व्यक्ति कम्बल का एक पुराना लबादा ओढ़े, नंगे सिर, मुँह से सीटी बजाता हुआ चला जा रहा है। न उसे समय की चिन्ता है, न अपनी चिंता है, न रास्ते की चिंता है। कभी गुप-चुप हँसते तारों को देखता है, कभी खुद झाड़ियों को देखता है, लेकिन रास्ते को कभी नहीं देखता।

अचानक उसका ध्यान बटा; वह ठहरा। एक दहलाने वाली आवाज़ उसके कान में पड़ी। पूछा जा रहा है—"कौन है?"

कुछ ठहरकर उसने पूछा—"क्या है?"

प्रतिध्वनि हुई—"कौन जा रहा है?"

इस पर उसने पूछा—"आप कौन हैं?"

"ग्रेटहार्ट!"

ग्रेटहार्ट के नाम से रात के आदमी थर्राते हैं। व्यक्ति ने उत्तर दिया—

"मैं हूँ, शमशेर!"

"मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ।"

"आप!"

"हाँ।"

"मेरा सौभाग्य। लेकिन गिरफ्तार होने की मेरी इच्छा नहीं है।" एक फ़ायर हुआ। कर्नल ग्रेटहार्ट अचूक गोली मारते हैं। पर शमशेर को किसी गोली ने नहीं छुआ।

शमशेर ने कहा—"यह क्या कर्नल साहब?"

"मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता। सीधी तरह गिरफ्तार हो जाओ।"

"लेकिन कर्नल साहब, मेरी ख्वाहिश अभी नहीं है गिरफ्तार होने की।"

"नहीं है तो मरोगे।"

"क्या डर है?"

"अब ख़ाली गोली न होगी।"

"क्या डर है?"

एक गोली सनसनाती हुई आई और शमशेर के कंधे में से पार हो गई। एक हाथ से उसने गोली का आर-पार छेद बंद कर लिया। उसने सुना—

"मान जाओ। अब की गोली सिर में लगेगी।"

शमशेर ने कहा—"अरे गोविंद!"

दो आदमियों ने न जाने कहाँ से आकर, न जाने कैसे, पलभर में कर्नल को ख़ाली हाथ कर दिया। कारतूस भरा का-भरा रहा। कर्नल ने कहा—'फ़ायर!'

५ गोलियाँ दग से दगी। वे दोनों धरती पर लोट गये। इसी समय मालूम हुआ जैसे काले भूतों की फ़ौज की फ़ौज ज़मीन से निकल पड़ी है। दो एक क्षण कुछ पता न चला, क्या हो रहा है। फिर कर्नल के पाँचों सिपाही शमशेर के सामने पेश किये गये। खुद कर्नल भौचक, निहत्थे खड़े रहने दिये गये।

शमशेर ने कहा—"इन पाँचों को बाँधकर यहीं छोड़ दो।" कर्नल से कहा—"कर्नल साहब, आज आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा। देखिए आपने मेरे पाँच आदमियों की हत्या की है। क्या आपकी जान पाँच आदमियों की जान से भी ज़्यादा कीमती है?"

इतना कहकर शमशेर ने अपने ख़ाली हाथ को कर्नल साहब के हाथ में डालकर उन्हें अपने साथ ले लिया।

अपने आदमियों से कहा—"तुम लोग जाओ, पर निश्चिन्त न रहो। आज पाँच आदमियों की हत्या का पाप मेरे सिर और चढ़ा है। भगवान् मालिक है।"

कर्नल ग्रेटहार्ट चुप-चाप शमशेर के साथ चल रहे हैं। शमशेर भी चुप है।

कुछ देर बाद शमशेर ने कहा—"कर्नल साहब! जो कुछ हूँ, अगर मैं वह न होता, तो आपका सेवक होता। और धन्य होता।"

इसपर दोनों ने दोनों को देखा। शमशेर ने कुछ देर बाद पूछा—"साहब, पहले आपने ख़ाली फ़ायर किया, फिर कंधे पर गोली मारी। आपने यह बेवकूफ़ी क्यों की?"

कर्नल चुप थे!

"आपके कानून में पाँच आदमियों की कुछ कीमत नहीं है। फिर आपने मेरी जान क्यों बख्श दी। आप चाहते तो

मुझे पहली ही गोली में मार सकते थे।"

कर्नल ने कुछ जवाब न दिया।

"आपने क्या मुझ पर रहम किया?"

"मैं तुम्हें फाँसी पर चढ़वाऊँगा। इसीलिए नहीं मारा।"

"कर्नल साहब, क्या आपके नज़दीक जान की कुछ क़द्र नहीं है?"

"नहीं, ज़रा भी नहीं।"

"क्यों नहीं?,,

"मैं तुम्हारे साथ बहस नहीं करना चाहता।"

"कर्नल साहब, आप मेरे हाथ में हैं।"

"एह!"

"मैं आपको मार सकता हूँ।"

कर्नल ने फिर उपेक्षा का एक 'एह!' कर दिया।

"कर्नल साहब, मैं आपको मार दूँ तो?"

कर्नल ने अपनी उपेक्षा न तोड़ी।

"सुनते हैं? —आपको मार दिया जाय......तो?"

कर्नल ने विस्मय से देखा। —"तो?...क्या?... कुछ नहीं।"

शमशेर ने सोचा—यह शख्स अपनी जान की क़द्र नहीं करता, इससे इसे अधिकार है दूसरों की भी न करे।

इधर कर्नल ने सोचा—"कैसा अद्भुत जीव है। कंधा आर-पार बिंध चुका है, फिर भी हँस कर बातें कर रहा है।"

शमशेर ने कहा—"कर्नल, आप बड़े हैं, मैं छोटा हूँ। लेकिन......"

कर्नल ने झटककर कहा—"मैं तुमसे नहीं बोलना चाहता।"

"क्यों?"

"तुम आदमी नहीं हो; जानवर हो।"

इस पर शमशेर हँसा। उसने कहा—'यह देखते हैं?' और यह कहकर ज़ख्म पर से अपना हाथ हटा लिया। लाल ताज़े गर्म खून का एक फ़व्वारा-सा छूट पड़ा। कुछ सेकिंड बाद अपने हाथ से ज़ख्म बन्द कर हँसते हुए शमशेर ने कहा—"इसके बाद......चुप रह जाना क्या जानवर का काम है?"

कर्नल के जी में रोना उमड़ आया। उन्होंने हृदय की आँखों से देखा—'शमशेर एक योद्धा है, खून का खिलाड़ी योद्धा है।' लेकिन फिर उन्होंने बुद्धि की आँखों से देखा—'कुछ हो, वह डाकू है।' इस पर, अपनी उमड़न को भीतर ही रोक, उपेक्षा के गर्व से भरकर वह चुप ही खड़े रहे।

शमशेर ने मुस्कराते हुए कहा—"साहब, खून बहुत आ रहा है। बताइए न क्या करूँ? यह आप की ही मिहरबानी है।"

कर्नल की देह में पर्याप्त बल था। उन्होंने एकदम पकड़कर शमशेर को नीचे डाल लिया। वह कुछ भी समझ पाये कि इतने में ज़ख्म पर से उसका हाथ हटाकर कर्नल ने अपनी कमीज़ में से एक टुकड़ा फाड़कर ज़ख्म बाँध दिया।

अब शमशेर का सिर कर्नल की गोद में था।

शमशेर ने कहा—"यह धोखा!"

कर्नल ने कहा—"अंग्रेज ऐसे ही होते हैं।"

अपनी कमीज़ को चीर-चीर कर घाव का ड्रेसिंग करने के बाद कर्नल फिर उसके साथ चल दिये।

एक फूस के घर के किनारे पर थपथपाकर शमशेर ने कहा—"मान!"

थोड़ी देर तक किवाड़ न खुले।

"मैं हूँ, मोहन।"

'सरदार!' कहकर विस्मय से 'मान' ने तुरन्त किवाड़ खोल दिये। शायद आज ही लौटने की सरदार की आशा न थी।

"मान, उम्मीद से पहले ही कर्नल साहब हमारे यहाँ आये हैं। तो भी हमारी ओर से कमी न होनी चाहिए।"

'मान' बआदाब हट गया।

वे दोनों कमरे में पहुँचे। नीचे फूस बिछा हुआ था। दो बहुत ही मामूली खाटें पड़ी थीं। बिस्तरे के नाम पर भी उन पर कुछ था। खूंटी से हरीकेन लालटेन लटक रही थी। और एक जंगली मेज़ थी। उस पर कुछ कागज़, एक डायरी, एक पेंसिल,—ये चीज़ें थीं। कमरे भर में और कुछ न था। हां, एक आले में रामायण की एक छोटी-सी जिल्द थी।

कर्नल साहब को जिस खाट पर बैठाया उसी पर शमशेर आप बैठ गया। मेज़ को खींचकर खाटों के बीच में कर लिया।

मान आया तो उससे कहा गया—"पहले साहब के लिए अच्छा बिस्तर लाना होगा। कहीं से लाओ।"

साहब हिंदी खूब जानते हैं, और अब वह बहुत 'रिज़र्व' (Reserve) रखना भी नहीं चाहते। पर शमशेर जो उन्हें फ़िलासफ़ी और समाजशास्त्र की चर्चा में खींच ले जाना चाहता है, उसमें वह नहीं पड़ना चाहते। वह शमशेर के बारे में सोचते हैं—"यद्यपि, सामग्री अच्छी है, पर परिस्थितियां अनुकूल न मिलीं। इसीसे आज यह डाकू है। बेचारा!......कहीं शिक्षा पाई होती तो कितना सुन्दर नागरिक आज यह होता।"

इसी समय शमशेर कह रहा है—"...शिक्षा! आज इसने हिन्दुस्तानियों को क्या बना दिया?...हृदय की सारी विभूति को यह चूस लेती है, आदमी को दंभ करना सिखाती है, असलियत से हटाकर नकल करना सिखाती है; अपनी लफ़्फ़ाज़ी में सचाई को ढक लेती है, और अपने बड़े-बड़े कोषों और ग्रंथों को दिखलाकर आदमी को उलझा लेती है।...यह विद्या आदमी की सब से बड़ी दुश्मन है।... आज एक बहुत बड़ी विद्या का नाम है—क़ानून। हज़ारों-लाखों १½-१½ फुट ऊँचे पोथे उसके ताना-बाना पूरने में बन चुके हैं।...और कर्नल साहब, आपकी उस सारी कानून की विद्या का उद्देश्य क्या है, उपयोग क्या है?—क्या स्वतंत्रता का कुचलना नहीं, वह स्वतंत्रता जो हमें परमात्मा ने दी है और जिस तक पहुँचना इस विश्व की सार्थकता है।...क्या यह विद्या उनको जो अन्यायी हैं, पर ज़बर्दस्त हैं,—सिर पर चढ़ाने; और उनको जो न्यायी हैं—इसलिए चुप हैं, पैरों तले कुचल डालने के ही काम नहीं आती? क्या सत्य की हत्या के काम में यह नहीं आती?..।"

कर्नल ने बड़े शान्ति-भाव से कहा—"शमशेर ज़्यादा बोलो नहीं। अब थोड़ा दूध पीकर सो लो। घाव को आराम होने दो।"

शमशेर—आप यह क्या कह रहे हैं? मैं आपसे पूछता हूँ, आप इस क़ानून का कैसे समर्थन कर सकते हैं? आज दुनिया इससे पिस रही है, क्या आप यह नहीं देखते? क्या........?

कर्नल ने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा—"चुप।"

शमशेर ने ज़ोर लगाते हुए कहा—"क्या आप!...!"

कर्नल ने कहा—चुप, देखो वह तुम्हारा मान आ रहा है।"

मान कर्नल साहब की हैसियत के उपयुक्त बिस्तर ले आया है और दूसरी खाट पर बिछा देता है।

इससे पहले ही कि शमशेर कुछ कहे कर्नल बोलते हैं-

"तुम्हारा नाम 'मान' है? देखो, अपने सरदार के लिए दूध लाओ। उन्हें सख्त चोट आई है।"

अब शमशेर ने कहा—"देखते नहीं, साहब भूखे हैं। कुछ लाओ। जाओ, जल्दी!"

मान गया। कर्नल ने कहा—"मैं अब तुम्हें बोलने न दूँगा।"

शमशेर ने कहा—"आप उस बिस्तर पर जाइए।"

कर्नल ने कहा—"नहीं। आहत का कुछ अधिकार होता है और फिर मैं जानवर नहीं हूँ। तुम उसपर सोओगे।

"नहीं।"

"नहीं।"

इसपर शमशेर की आँखों में दो बूंद आँसू आ गये। कहा—"साहब, मैं डाकू हूँ, पर ग़रीब हूँ। मेरे लिए वह बिस्तर नहीं है।"

इस पर कर्नल चुपचाप उस खाट पर चले गये।

अब दोनों चुप थे। दोनों कुछ सोच रहे थे। दोनों कुछ महसूस कर रहे थे। इतने में मान बाक़ायदा ट्रे, कप, काफ़ी और टोस्ट के साथ आया। एक सकोरे में दूध भी था।

कर्नल ने कहा—"मुझे भूख नहीं है, मैं नहीं खाऊँगा।"

शम०—"ऐसी रूखी मेहमानी कभी न मिलेगी मेरे पास और क्या है?"

"नहीं सो बात नहीं। मुझे ज़रूरत नहीं है।"

"साहब, मेरी मिहनत का पैसा है। मेरा पैसा है—आप यक़ीन रक्खें!"

कर्नल—"शमशेर, मुझे ज़रूरत नहीं है।"

इसपर शमशेर ने मान से कहा—"मान, तो सब चीज़ें ले जाओ। मुझे भी ज़रूरत नहीं है।"

मान ले जाने की तैयारी में लगा। कर्नल ने देखा इस आहत सहृदय व्यक्ति की ख़ातिर सब कुछ करना होगा।

उन्होंने कहा—"तुम्हें ज़रूरत है, शमशेर!"

"नहीं।"

कर्नल ने मान से कहा—"अच्छा रहने दो। तुम जाओ"

कर्नल ने बिना कुछ कहे-सुने अब खाना शुरू कर दिया। वह भी अपना दूध पी गया।

कर्नल ने पूछा—"क्या तुम रोटी नहीं खाओगे?"

"नहीं। मैं नहीं खाता।"

कर्नल साहब ने फिर शमशेर की खाट पर आकर उसकी पट्टी ठीक की। और उसके बाद थपकियाँ दे-देकर उसे सुलाने लगे। शमशेर ने आपत्ति न की। अपने लबादे में से पिस्तौल निकालकर मेज़ पर रख दी और कहा—"मैं समझता था आप मेरे बन्दी हैं; पर देखता हूँ उल्टे मैं आपका बन्दी हो गया हूँ। और फिर मैं बन्दी का करता भी क्या? ऐसे बहादुर की हत्या का पाप क्या मैं उठा सकता हूँ?"

थोड़ी देर बाद वह खुर्राटे लेने लगा।

कर्नल अपनी खाट पर आ गये। पर सो न सके। उन्होंने कमरे के चारों तरफ देखा। दर्वाज़े के बाहर देखा। कोई पहरेदार नहीं है; कोई डर नहीं है। पिस्तौल देखी। बिल्कुल नई कारीगरी की है। ५ कार्तूसों की, और पांचों भरे हैं। देखकर फिर मेज़ पर रख दी।

कुछ सोचकर फिर पेंसिल उठाई; खुले काग़ज़ों में सबसे ऊपर वाले पर कुछ लिखा, और ७॥ आने पैसे गिन कर मेज़ पर रख दिये।

मन में कहा "शमशेर और हम दोस्त नहीं हो सकते। दुश्मनी ही हमें ज़ेबा है। लेकिन मैं तुम्हें गलत नहीं समझूँगा शमशेर। जब फांसी दिलवाऊँगा, तब भी गलत नहीं समझूँगा।" और फिर एक दफ़े चारों तरफ़ निगाह डालकर वह झोंपड़े से बाहर हो गये।

दरवाज़े से उनके निकलते ही शमशेर ने झपटकर काग़ज़ उठा लिया। लिखा था—

रोटी दो टोस्ट	तीन आने
मक्खन	डेढ़ आने
काफ़ी डेढ़ प्याला	ढाई आने
शक्कर	दो पैसे
कुल	७॥ आने नक़द

पढ़कर उसे ख्याल आया 'वह कौन है। उसे आतिथ्य का अधिकार भी नहीं है।'

शमशेर का जी उदास हो गया। मन में कहा—"कर्नल, तुम कब समझोगे मैं तुमसे कम सच्चा नहीं हूँ। समाज के लिए भी तुमसे कम आवश्यक और कम उपयोगी नहीं हूँ।"

फिर कोई आध घण्टे बाद उसने जगाकर अपने आदमियों को हुक्म दिया—"यहाँ से जल्दी कूच कर देना होगा"

सवेरे सूरज निकलते-न-निकलते वहाँ सुनसान हो गया। आदमी का निशान भी न था।

कोई ११ बजे वहाँ पुलिस का धावा हुआ। खुद कमिश्नरी की पुलिस के कप्तान कर्नल ग्रेटहर्ट साथ हैं। पर पहाड़-सी आशाओं के नीचे वहाँ चूहा भी न निकला। तिनके-तिनके को उलटा-पलटा, पर कुछ न मिला।

मिली तो वह कर्नल साहब की ७॥ आने की चिट्ठी।

चिट्ठी लेकर कर्नल ने किसी के सुनने-न-सुनने की पर्वाह किये बग़ैर कहा—"शमशेर बहादुर ही नहीं, होशियार भी है।"

(३)

लेकिन कप्तान साहब की शिकायत की गई है। उन्हें डाट की एक चिट्ठी मिली है। "कर्तव्य से च्युत होना अफ़सर के लिए बड़े खेद की बात है। उनके-जैसा मुस्तैद अबतक 'शमशेर' को पकड़ने में कामयाब न हो। ...सुना जाता है, उन्होंने ढील से काम लिया है।... यह बताने की ज़रूरत नहीं, किस तरह शमशेर समाज के लिए ज़हर साबित हो रहा है, किस तरह यह ज़हर फैलता जा रहा है। और किस तरह उसका स्वच्छन्द रहना अत्यन्त भयंकर है।... महीने के भीतर वह नहीं पकड़ा गया तो उनका तबादला कर दिया जायगा।" यह चिट्ठी का भावार्थ है।

कर्नल साहब ने अपने समाज-शास्त्र के ज्ञान की सहायता से, तर्क की सहायता से और बड़े अफ़सरों की डांट के पत्र की सहायता से अपनी कर्तव्य-बुद्धि को और सचेत कर लिया है।

उन्होंने तै कर लिया है—'समाज की रक्षा का दायित्व

ऊपर है। और क़ानून शांति की रक्षा के वह ज़िम्मेदार हैं। क़ानून इस तरह हर एक के हाथ में नहीं दिया जा सकता। किसी को उसे अपने हाथ में ले लेने की स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। इसके अर्थ तो अनियन्त्रण, अराजकता, धाँधलबाज़ी होंगे। और यह धाँधली कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकती। इस धाँधली को प्रकृति में वैसे भी स्थान नहीं है। वहाँ भी एक नियम राज्य करता है।... शमशेर बहादुर है तो क्या—उसे फाँसी ज़रूर लगेगी।"

भेदिये ने ख़बर पक्की दी है। आज कर्नल साहब अपने चुने हुए १५ आदमियों के साथ शाम से ही उस मकान को घेर लेंगे। कानों-कान ख़बर न होने पायगी। वह खुद हिन्दुस्तानी लिबास में जायँगे, और उनके सिपाही भी मामूली गँवार के भेष में पहुँचेंगे।

\+ \+ \+

शमशेर अपनी एक माँ के यहाँ है। उसके अपनी न माँ है न बाप है। वह छोटा था, जब दोनों उसे छोड़कर न जाने कहां चले गये। दोनों साथ-साथ नहीं गये; अलहदा-अलहदा गये। और अपनी, पेट की रोटी की फ़िक्र में गये। वे दीन थे; गांव में रोटी का कोई धन्धा न जुट सका। इसलिए अपने इकले भाग्य को आज़माने के लिए और अपने अकेले पेट की रोटी पैदा करने के लिए दोनों को बिछुड़ जाना पड़ा। फिर उनका मिलना न हुआ। बालक मोहन बहुत दिनों तक अपनी माँ के साथ रहा। लेकिन जब एक समय तीन रोज़ तक दोनों मां-बेटों को खाने को कुछ न मिला तो माँ ने सोचा—'माँ की गोद से तो बेटा शायद परमात्मा की गोद में ही भला रहे, और वह जी कड़ा करके जंगल में सोते मोहन को अकेला छोड़कर चल दी। उसके जगने पर इन 'एक माँ' ने ही उसे रोता पाया था और आश्रय दिया था।

आज शायद माता, पिता और पुत्र तीनों ही जीवित हों—पर कहाँ, कितनी दूर? किसी को एक दूसरे का पता नहीं तीनों एक रक्त एक प्राण, एक अस्तित्व में बँधे तीन प्राणी हैं। लेकिन आज तीनों के बीच में कैसे विषम महासागर फैले हुए हैं। हाय री दरिद्रता! हाय री दया!! और हाय रे ईश्वर!!!

आज शमशेर अपनी उन्हीं माँ के यहाँ है, जिन्होंने उसे अपना स्नेह देकर और सब-कुछ देकर बड़ा बनाया है; और जिन्हें अपने हृदय की सारी भक्ति और पुत्र-वात्सल्य देकर उसने अपनी माँ बनाया है। माँ अब वय से जर्जर हो चली हैं। इधर वह बहुत दिनों से उनकी ख़बर नहीं ले सका है। उसका व्यवसाय ही ऐसा है; या कहिए उसका नाम ही ऐसा है। आज वह सब ख़तरों और सब संकटों को स्वीकार करने के लिए कटि-बद्ध होकर माँ के पास आया है। माँ अब बहुत दिनों तक नहीं है; उसने भी निश्चय कर लिया है उसे भी बहुत दिनों तक नहीं रहना है। यहाँ आते समय उसने अपने से कहा था— "जीवन का लोभ! छिः शमशेर, तू इतना निकृष्ट है!' तूने कहा था न कि 'तुझे अतिथि होकर दुनिया में रहना होगा — न जाने कब यहाँ से डेरा उठाने का वक्त आ जाय!'

इसलिए अब निश्चिन्तता से वह माँ की सेवा करने आया है।

इधर शमशेर के बहुत काल से ख़बर न लेने से माँ बहुत बिगड़ रही थी। सोचती थी, यह कहूँगी वह कहूँगी। लेकिन जब आते ही शमशेर ने कुछ हँसती और कुछ रूँधी आवाज़ से कहा—

"अम्मा, कैसी है तू?" तो उनका सब बिगड़ना काफ़ूर हो गया और उन्होंने गद्गद कंठ से पूछा—

'कहाँ रहा रे?'

माँ, लेकिन उस सब हास्य के, उस सब प्यार के बावजूद जो वह अपने बेटे पर बरसाती है, दिन-दिन क्षीण होती जा रही है, यह जानने में शमशेर को देर न लगी। वह और भी संचित, संलग्न भाव से उनकी सेवा करने लगा।

रात को वह दो-दो बजे तक खुद माँ की मालिश करता, टाँग दबाता, कहानी सुनाता और सुनता। माँ को कहानी कहना जितना पसंद था उससे कम सुनना नहीं। और शमशेर के लिए तो इससे बड़ा सौभाग्य न था।

रात के बारह बज गये होंगे। माँ को नींद न आती थी। पैताने बैठ कर शमशेर तलुओं में मालिश कर रहा था। उसने कहना शुरू किया—

"माँ सुन री सुन। देख सोना मत। नहीं तो तू सो जाय, और मैं कहता ही रहूँ।"

फिर एक कहानी सुनाई। एक राजा था। सात लड़के थे। छोटा अपनी माँ को बहुत मानता था, राजा को नहीं। राजा ने नाराज़ होकर उसे देश निकाला दे दिया। रानी के लिए सब सूना हो गया। उसका जी किसी काम में न लगता। अन्त में वह भी जंगल में चली गई। जंगल में एक रोज़ उसका बेटा मिल गया। उसे, बड़ी खुशी हुई। अब उसे कहीं न जाने देती, और सब काम खुद करती। उसे डर लगा रहता था कोई उसे उठा ले न जाय। एक रोज़ की बात—रात का वक्त था कि एक दैत्य आ खड़ा हुआ। बड़ी-बड़ी मूछें थीं, लाल-लाल आँखें ...... ।"

माँ एक दम 'आह' करके मूर्छित हो गिर पड़ी।

शमशेर चिल्लाया—'माँ! माँ!!'

किसी ने कहा—"शमशेर, तुम्हें गिरफ्तार कर लूँ तो क्या हो?"

शमशेर ने मुड़कर देखा, कर्नल हैं। उसने बड़ी आजिज़ी से कहा—"साहब, यह मर जायगी।"

"दया माँगते हो?"

"अपने लिए नहीं।"

"यह कौन है?"

"पुत्र-हीना एक माँ है। मेरी माँ है।"

"अच्छा भागने की कोशिश तो न करोगे?"

"माँ को छोड़कर कहीं न भाग सकूँगा।"

"अच्छा, अपनी पिस्तौल दो। तुम बड़े शैतान हो।"

शमशेर ने अपनी पिस्तौल जेब से निकालकर दे दी।

"अच्छा, अब मैं जाता हूँ। और देखो, यह लो। इसकी सिर पर मालिश करना, गश दूर हो जायगा। और इस शीशी में टानिक है। दस खुराक हैं, एक खुराक देना रोज़ दूध के साथ। बदन में ताकत आवेगी। मैं जाता हूँ।"

फिर लौटकर कर्नल ने कहा—"देखो अपनी माँ से निबटकर तुम अपने को सौंप दोगे, इसका वादा करो। मैं तुम्हारा विश्वास करना चाहता हूँ।"

"अपनी मूर्छित माँ की हाज़िरी में वादा करता हूँ।"

"माँ की खबरदारी रखना।"

कर्नल चले गये।

दवा की मदद से माँ को कुछ देर बाद होश हुआ।

आँख फाड़कर माँ ने पूछा—"बेटा, बेटा! वह कहाँ गया?"

"कौन माँ?"

"वही तेरा कहानीवाला दैत्य! बड़ी-बड़ी मूछें, लाल-लाल आंख! बेटा मैं तो डर गई। तो वह तुझे लेने नहीं आया था?"

"अरी माँ! मैं कहानी भूल गया था। वह दैत्य नहीं, देवता था।"

(७)

कर्नल ब्रेटहार्ट ने मकान से बाहर आकर सब आदमियों को इकट्ठा किया। कहा—"भीतर कोई डाकू नहीं मिला, अब यहाँ से चल देना होगा।"

सिपाहियों को आराम से रात बिताने में कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। कर्नल के साथ वापिस चलने को तैयार हो गये। इसी समय एक करारी आवाज़ आई—'ब्रेटहार्ट'।

कर्नल मुड़े। देखा—उनके अफ़सर सर सेवेज हैं।

कर्नल ने कहा—"सर! आप!"

"जी, मैं।"

"आप कैसे आये?"

"यों ही चला आया।...तो शमशेर मकान में नहीं है?"

"मुझे तो कोई डाकू अन्दर नहीं मिला।"

सर सेवज ने ज़ोर देकर कहा—'शमशेर अन्दर नहीं है?"

"मैंने अर्ज किया—'डाकू मुझे अन्दर नहीं मिला।"

"झूठ बोलते हो?"

"झूठ मैं नहीं बोला करता।"

"अच्छा चलो, मेरे साथ अन्दर चलो।"

कर्नल सर सेवेज के साथ फिर मकान में गये।

'शमशेर अब दुगने प्यार से, दुगने चाव से और दुगनी गम्भीरता के साथ माँ के पैर मलता-मलता वही कहानी पूरी कर रहा था। उसे देखते ही सेवेज ने दहाड़ती हुई आवाज़ में कहा—"ब्रेटहार्ट, यू ट्रेटर,* यह शमशेर नहीं तो क्या है?"

* ओ धोखेबाज

"जी मैं नहीं जानता । लेकिन यह अपनी माँ का बेटा है । मैं इसे डाकू नहीं समझ सका ।"

माँ आवाज़ सुनकर और इन दोनों अंग्रेज़ों की शक्लों को देखकर एकदम सहम गई थी । उसके मुँह से बोली न निकल सकी । वह मूढ़-सी उन्हें देखती रही । जब उसने सर सेवेज की मुद्रा भली प्रकार देख ली तो दहशत से काँप गई । जोश में आकर एकदम बिस्तर से उठ बैठी । और शमशेर को अपने सारे अवशेष बल से चिपकाकर चिल्ला पड़ी—'बेटा ?"

सेवेज ने रिवाल्वर तानते हुए कहा—"शमशेर अलग हो मैं बुढ़िया को नहीं मारना चाहता ।"

शमशेर ने कहा—'ज़रा ठहरिए !"

माँ बेटे को गोदी में छिपाने की कोशिश करके कह रही है—"ओ बेटा ! ओ बेटा !"

कर्नल—"सर ही उड सरेण्डर ।"

(सर वह अपने को सौंप देगा ।)

सेवेज—' यू डेविल्स बोथ ! गेट अवे यू ट्रेटर ।"

(ओ शैतान, दूर हट दगाबाज़)

कर्नल—"सर, माइण्ड, यू डोण्ट किल हिम ।"

(सर, सावधान उसे मार न दें ।)

सेवेज—"यू इनफाइडल ! अवे विद् योर पिटी ।"

(ओ बेईमान, अपनी दया लेकर दूर हो)

कर्नल ने अभी अफ़सर की बाँह को छुआ ही था कि रिवाल्वर का घोड़ा दबा । आग की एक लपकती हुई जीभ-सी बाहर निकली । लेकिन निशाना ज़रा टेढ़ा हो गया । गोली जर्जरित माँ की हड्डी-पसलियों को तोड़ती हुई सीने के आर-पार हो गई । क्षण के बहुत ही सूक्ष्म भाग तक छटपटाकर माँ—शमशेर की बची खुची माँ, मुट्ठीभर जीर्ण-शीर्ण हड्डी और देह की माँ—ठण्डी हो गई । शमशेर दर्द-भरी आवाज़ में चिल्ला उठा—"माँ ! मां !"

सर सेवेज को अफ़सोस करने की फ़ुर्सत नहीं थी । शमशेर को बचा देख वह दूसरे फ़ायर की तैयारी कर रहे थे, लेकिन तो भी ज़रा ठिठक रहे थे । कर्नल हत बुद्धि खड़े थे और पागल-से शमशेर को देख रहे थे ।

शमशेर ने कहा—"जाओ, साहब जाओ ! मेरी माँ मुझे अब न मिलेगी, तो भी आप जाओ ।"

सेवेज—"गेट योर हैण्ड्स अप । आई शैल फ़ायर ।"

(हाथ ऊपर उठाओ; मैं गोली मारूँगा ।)

शमशेर—साहब, मुझे व्यर्थ हत्या मत दो । देखो, चले जाओ ।

सेवेज—'टाक अवे, यू डाग । आई ब्लो यू अप इन ए सेकेण्ड ।' (बक ले । एक सेकण्ड में मैं तुझे उड़ा दूँगा ।)

शमशेर—देखो, यह तीसरी बार है । अब भी वक्त है। चले जाओ ।

सेवेज—इट-स गेटिंग लेट; लेट मि फ़िनिश यू ।

(देर हो रही है । लाओ तुम्हें ख़त्म कर दूँ)

शमशेर ने माँ के ताज़े ख़ून में हाथ रँगे और सिंह की तरह पलक मारने में सेवेज पर झपट पड़ा । घोड़ा दबे या न दबे उससे पहले अफ़सर का हाथ शमशेर के क़ब्ज़े में था।

'यू कर्नल, ह्वाट दि डेविल आर यू स्टेयरिंग ऐट ।'

(यू कर्नल, क्या ताक रहा है ?)

मिनट भर में अफ़सर को नीचे पटककर उनका रिवाल्वर शमशेर ने अपने हाथ में कर लिया। फिर उसकी ओर तान-कर कहा —

—"साहब तुम मरना चाहते थे, लो मरो । लेकिन ज़िन्दगी में मेरी यह पहली हत्या है ।"

कर्नल ने अब जैसे जागकर कहा--"शमशेर, ख़बरदार !"

शमशेर अफ़सर को नीचे दबाये रहा । कर्नल की ओर देखकर कहा—"क्या है कर्नल ?"

"शमशेर, हत्या मत करो ।'

'कर्नल, यह हत्यारा है, मेरी माँ को इसने मारा है ।"

"ठीक है । तुम्हारी माँ अब नहीं आयेगी । इसके मारने से भी नहीं आयगी ।"

'कर्नल, इसने मेरी माँ को मारा है, मेरी मां को ! क्या तुम यह समझोगे ?"

"शमशेर ! तुम मर्द हो न ? आँसू पोछो, छोड़ो, खड़े हो हत्या मत लो ?'

"कर्नल, तुम मुझे और गुस्सा क्यों दिला रहे हो ?"

"छि, शमशेर !"

"चुप, कर्नल! चुप! मैं इसे मारूँगा—जीता न छोड़ूँगा।"

"शमशेर, एक बात सुनो। इसकी एक माँ है। वह घर पर बैठी होगी। सोचती होगी, मेरा बेटा अब आयेगा। तुम इसे मार दोगे तो शमशेर उस माँ का क्या होगा?"

शमशेर चिल्ला पड़ा—'ओह, कर्नल।' रिवाल्वर को दूर फेंक अफ़सर को छोड़ उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया और फूट-फूटकर रोने लगा। फिर माँ के वक्षस्थल से निकलते हुए लाल-लाल लोहू में लोट-लोटकर उसने कहा "ओरी, माँ सुन। मैं कभी किसी को न मारूँगा।"

\+ \+ \+

सेवेज साहब उठ गये। कपड़े झाड़-पोंछ लिये। अब उन्हें सीधे घर भाग जाने की सूझ रही थी। उनकी माँ से उन्हें और कुछ लाभ हुआ हो या न हुआ हो, पर यह लाभ बहुत ही ज़बर्दस्त हुआ। उन्होंने सोचा माँ को चलकर एक हिन्दुस्तानी के पागलपन की बात सुनायेंगे। लेकिन कर्नल ने उन्हें रोक लिया। कहा—

"शमशेर को अब गिरफ्तार करना होगा। उसका वक्त अब आ गया है।"

शमशेर अब ज़रा शान्त-चित्त हुआ, तो कर्नल ने उसके पास पहुँचकर कहा—"चलो भई शमशेर, अब हमारे साथ चलो। अब तुम्हारी गिरफ्तारी का वक्त आ गया है।"

शमशेर—साहब, मुझे माँ का क्रिया-कर्म करना होगा।

कर्नल—शमशेर, दुनिया का मोह अब न करो। चलो, वहां तो देर होगी।

शमशेर—साहब!………

कर्नल—यक़ीन रक्खो, क्रिया-कर्म हम कर देंगे।

शमशेर—साहब, बिरादरी!……और…… आप…आप तो……

कर्नल—हम ईसाई हैं, तुम हिन्दू हो! यही न! छिः इसका भी क्षोभ तुम्हें बना है! ज़िन्दगी का मोह छोड़ा, बिरादरी का अभी बचा ही है।

शमशेर—साहब! यह न होगा।

कर्नल—न होगा? मैं तुम्हें मर्द समझता था, क्या तुम्हें समझना ग़लत होगा? नहीं, मैं तुम्हें कमज़ोर नहीं बनने दूँगा।……… सिपाही!……… ३ आदमी इधर आओ। इन्हें गिरफ्तार करो।"

शमशेर ने माँ के पैर से माथा रगड़कर हथकड़ियों के लिए हाथ आगे कर दिये। दोनों हाथ हथकड़ियों में जुड़ गये। ५ आदमियों ने चारों तरफ़ होकर उसकी ज़ंजीरें सँभालीं। और जब क़ैदी बाहर निकला तो एक जुलूस का जुलूस उसके साथ था। १० सिपाही आगे; १० पीछे। ५ साथ। सेवेज सबसे आगे; कर्नल सबसे पीछे।

क़ैदी रो नहीं रहा है कर्नल भी रो नहीं रहे हैं।

सेवेज गर्व से भर रहे हैं। सोच रहे हैं अपनी विजय को कैसे कहूँगा; कैसे छपवाऊँगा। 'शमशेर' का पकड़ना और किसी के लिए संभव कैसे हो सकता था। हमारी भी राय है कि नहीं।

(६)

सवेरा हो आया है। सूरज उतना ही लाल और उतना ही गरम है। हवा भी वैसी ही तेज़ और वैसी ही ठंडी है। लेकिन मालूम होता है ओस आज रात रोज़ से ज़रा ज़्यादा रोई है। धरती मामूल से ज़्यादा भीगी है। दरख्त भी जैसे अभी अभी आँसू बहा चुके हैं।

जुलूस चल रहा है।

नदी का पुल आया है। पानी का वहाँ सुभीता रहेगा। मंज़िल सख़्त हो चुकी है। यहाँ थोड़ा विश्राम कर लें।

सेवेज खुशी में फूल रहे हैं और अपनी डींग की बातें सोचने में मस्त हैं। कर्नल साहब हठात् क़ैदी की पर्वाह नहीं करना चाहते। क़ैदी अपने पाँचों रक्षकों की रक्षा में सुरक्षित है।

उसे प्यास लगी है, वह पानी पीना चाहता है। रक्षकों की परीक्षा का अवसर आया है। लेकिन वे अपने अधिकार को तत्परता के साथ निबाह रहे हैं। वे जानते हैं—"शमशेर को बन्दी रखना कोई छोटा अधिकार नहीं है। ज़ंजीरें उन्होंने कस के पकड़ ली हैं, हथकड़ियों को एक निगाह देख लिया है; और नपे-नपे क़दम से १० आदमियों की अत्यंत बारीक तत्पर और एकाग्र दृष्टि की क़ैद से क़ैदी को किनारे तक ले आया जा रहा है।

किनारे पर पानी पीने को क़ैदी झुका—लेकिन, क्या हुआ!

मुट्ठी वैसी ही सख्त बँधी है, ज़ंजीरों पर ज़रा भी खिंचाव नहीं पड़ा है, दोनों आँखें वहीं की वहीं जमी हैं, लेकिन, देखते-देखते मानों जादू के बल से हथकड़ियाँ अलग जा पड़ी हैं और क़ैदी झपटकर पानी में अदृश्य हो गया है।

क़ैदी फ़रार हो गया। क़ैदी फ़रार हो गया!!

'क़ैदी फ़रार हो गया' का शोर चारों दिशाओं में गूँज उठा। लो दौड़ो, यह करो, वह करो—क़ैदी फ़रार हो गया, मानों आकाश और धरती दोनो एक ही स्वर से यही गुँजाने लगे। लेकिन किसी को सबेरे-ही-सबेरे उस ठंडे पानी में उतरने की न सूझी! इतने में क़ैदी न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया। जब लोग पानी में कूदकर जैसे-हो-वैसे क़ैदी को पकड़ लाने को तैयार हुए तब उन्हें यह समझने में देर न लगी कि अब उसका कुछ परिणाम न होगा और व्यर्थ साहस करने की आवश्यकता नहीं है।

जितनी देर में यह शोर उठा और ख़तम हुआ उतनी देर में सैवेज साहब के बड़े ऊँचे-ऊँचे क़िले गिरकर तहस-नहस हो गये। और उनकी बेवक़ू हुशियाँ गुस्से में बदल गईं और वह गुस्सा उतरा कर्नल साहब पर।

"कर्नल, तुमने क़ैदी को क्यों भाग जाने दिया?"

"मैंने? नहीं, कभी नहीं!"

"फिर वह कैसे भाग गया?"

"मालूम होता है ज़रूर किसी शैतान की मदद से।"

"शैतान! वह शैतान का साथी है?"

"और नहीं तो क्या?"

"कर्नल, वह बड़ा खूँख़ार आदमी है।"

"साहब, वह कहता था मैं ज़रूर तुम्हारे अफ़सर को मारूँगा।"

"हाँ?"

"हाँ। ······सर, आपने उसकी माँ को मारा, ठीक न किया। वह ज़रूर कुछ न कुछ आफ़त करेगा।"

"अह! हम डरता थोड़े ही है। ·······लेकिन यह जंगल ठीक नहीं है, हमको जल्दी अपने क्वार्टर पहुँचना चाहिए।"

बिग्राम उखड़ गया और तेज़ रफ़्तार से अफ़सर साहब अपने बँगले पर पहुँच गये।

(७)

कर्नल प्रेटहार्ट की बदली हो गई है। उन्हें बर्मा के किसी ज़िले में भेज दिया गया है, उनकी जगह दूसरे अफ़सर आये हैं। यह अपने हस्ताक्षर A. Fairish (ए० फ़ेरिश) करते हैं, लेकिन उनका नाम एहसान फ़रोश है। वह अंग्रेज़ से ज़्यादा अंग्रेज़ हैं। उनसे बढ़कर ठाठ से रहते हैं उनसे बढ़कर अंग्रेज़ी बोलते हैं; उनसे बिगाड़कर उर्दू बोलते हैं, और उनसे ज़्यादह बार खाना खाते हैं। सिर्फ़ ज़रा कम गोरे हैं, इससे कोई उन्हें हिन्दुस्तानी समझे—यह वह पसंद नहीं करते।

नये अफ़सर बहादुर हैं या नहीं हैं, वह होशियार अवश्य हैं। उनकी अफ़सरी ही इस बात की है। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में एक बार नहीं खाया है, और सिर्फ़ एक एक बार गोली चलाई है, और वह दुश्मन के सब हथियार छिनवा लेने पर। फिर भी बहुत-से दुर्दान्त डाकुओं के पकड़ने का श्रेय उन्हें मिला है। उनकी इस प्रसिद्धि के कारण ही इस ज़िले में उन्हें भेजा गया है।

जबसे अफ़सर आये हैं, तबसे बंगले से बाहर नहीं निकलते। बंगले पर सख्त पहरा लगा रहता है और जब वह टहलने को बाहर निकलते हैं, तब पहरा भी उनके साथ चलता है। परन्तु अफ़सर साहब सरगर्मी से तदबीर सोचने में लगे हुए हैं। पहले दिन से ही वह इस तरफ़ चुस्त हैं। उन्हें यक़ीन है, अगर वह शमशेर से बचे रहे तो शमशेर उनसे न बच सकेगा।

रात के ११ बजे एक व्यक्ति उनसे मिलने आया है। अपने ख़ास कमरे में वह उससे बातें कर रहे हैं।

"कहो क्या हुआ?"

"जी, मुझसे न हो सकेगा।"

"न हो सकेगा?—क्यों?"

"साहब वह मेरा दोस्त है।"

"दोस्त है, इसीलिए तो काम तुम्हारे लिए और आसान है।"

"साहब, लोग मुझे जीता न छोड़ेंगे।"

"किसी को कानों-कान ख़बर न होने पायगी।"

"साहब, रुपये किस काम आयेंगे, जब अपने स्त्री-पुत्र ही अपने न रहे।"

"क्या लोग उसे इतना पसन्द करते हैं?"

'साहब, गाँव में कौन ऐसा है जिसका उसने कुछ-न-कुछ भला न किया होग ?"

"तो कहो तुम नहीं कर सकते।"

'नहीं कर सकता।"

"देखो १०,००० थोड़े नहीं है। मैं खिल्अत दिलवा दूँगा।"

'जी नहीं।"

"नहीं! अबके नहीं कहा तो मैं हवालात में डलवा दूँगा"

व्यक्ति अविचलित—चुप।

"खैर मैं दस मिनट की और मुहलत देता हूँ। सोच लो।"

अफ़सर चले जाते हैं। व्यक्ति सोचता है। सोचता है क्या वे आंखे आज न दीख पड़ेगी? जब जब मैं आया तब-तब वह मेरे रास्ते किसी-न किसी तरह आ गईं। क्या आज अप्रकट ही रहेंगी?

थोड़ी ही देर में धीरे-से दर्वाज़ा खोल जुलेख़ाँ अन्दर आई।

"मैं तुम से बातें करना चाहती थी।"

व्यक्ति मूढ़ हो रहा।

"तुम शमशेर को जानते हो?"

"जानता हूँ।"

"वह कैसा है?"

जुलेख़ाँ ने जल्दी छुट्टी न दी। एक-एक बात उसने पूछी। और प्रत्येक जानकारी पर उसकी बेचैनी बढ़ती गई। अन्त में उसने पूछा—

"उसकी घरवाली कैसी है?"

"उसकी घरवाली नहीं है।"

"क्या?"

"उसने शादी नहीं की।"

"उसने शादी नहीं की?"

"नहीं।"

'वह ऐसा है?..."

"वह औरतों से डरता है।"

बगैर रुके जुलेख़ाँ ने पूछा—"तुम उसके दोस्त हो।"

'हाँ।"

"तुम मेरी दोस्ती पसन्द करोगे?"

व्यक्ति का रोम-रोम चाह से और लाज से सुर्ख़ हो गया।

जुलेख़ाँ ने एकदम उसका हाथ पकड़कर कहा—"तुम मेरी दोस्ती नहीं चाहते?"

व्यक्ति चुप!

"मेरा एक बात मानोगे?"

"... ?"

"मानोगे!"

व्यक्ति ने अपनी अन्तःकरण की लालायित स्वीकृति को आँखों में भरकर ज़रा आँख उठाकर देखा। यौवन के बसन्त में कुन्द की वह कली कैसी विवशता से खिल रही है!

"मानोगे? . देखो शमशेर को ला दो। मैं देखूँगी, ...कैसे वह फांसी पर चढ़ता है?"

× × ×

अफ़सर ने आकर पूछा—'कहो, हवालात जाओगे? —या . !"

"जी काम मुश्किल है। देखूँगा। लेकिन १५००० दिलवाइए।'

"अच्छा।"

(८)

अफ़सर का बड़ा अक्ल और बड़ी लड़की जुलेख़ां है। साहब ने नाम को संस्कृत करके जुलीरेखा बना दिया है।

वह लड़की दिल की जगह आग लेकर आई है। इसने बहुतों को खींचा है। जो इसके सम्बन्ध में अपने सौभाग्य के परीक्षार्थी हुए हैं इसने उन्हें जलाकर ख़ाक कर छोड़ा है। लेकिन फिर भी क्या है। चाहती है—कोई इस आग को पानी करदे। चाहती है—जलने का अन्त हो। तरल बनकर उसके बहने का समय आये। इसीलिए अपनी आग का सब पर प्रयोग करने को तैयार हो जाती है। इसीलिए अनायास वह साहब के हाथों बड़े काम का अस्त्र साबित होती है।

दर्जे पर दर्जे पार करती हुई वह अब बी०ए० में पहुँच गई है। वह इस तरह कहां तक बढ़ेगी, कहां तक पहुँचेगी, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। कोई उसे नहीं जानता। अपनी मालिक वह खुद है। हाय, कोई उसे मालिक नहीं मिलता।

पिता पर शासन करती है, उपन्यासों का अध्ययन करती है और अपनी परीक्षायें करती है। इसके अलावा वह और कुछ नहीं करती।

(८)

माँ का क्रिया-कर्म करने के बाद से शमशेर अदृश्य है, अगम्य है, शान्त है। वह दुर्लंघ्य जंगल में रहता है, और चुप रहता है। लेकिन आज वह—मैला रूखा, किन्तु सुंदर! गांव में आया है। यहाँ उसका मित्र सजनसिंह रहता है। सजनसिंह अपनी शिक्षा के लिए काफ़ी सम्माननीय व्यक्ति है। शमशेर का वह विश्वासभाजन रहा है, विश्वास का पात्र भी रहा है।

मकान के अन्दर।

दोनों आमने-सामने दो खाटों पर बैठे हैं। शमशेर ने कहा —

"सजन भैया, मेरी माँ मर गई! तुम जानते हो, मेरे लिए वह कौन थी?"

"शमशेर, अब किया क्या जा सकता है। भगवान की मर्जी! इतने खिन्न मत हो।"

"मैं बहुतेरा जी लिया! अब किसके लिए जिऊँ?"

"तुम्हारी बड़ी आयु है, शमशेर।"

"आयु का मैं क्या करूं, जब पुण्य ही नष्ट हो गया। इसके बाद जीने की इच्छा करना बड़ी विडम्बना है। माँ मेरी पुण्य-प्रतिमा थी। वह चली गई! जो स्नेही हैं उन्हें भी कबतक कष्ट दूँ? पुण्य क्षीण हो जाने पर उनकी मित्रता भी मुझे कबतक प्राप्त रहेगी?—सजन भैया, जीवन पुण्य को खोकर रसहीन, मित्रताहीन, उद्देश्यहीन और जीवन-हीन दिन बिताने से क्या लाभ?—और सजन भैया, सरकार को मेरी ज़रूरत है, शायद नरक में भी मेरी ज़रूरत है। —और सजन, तुम जानते हो सरकार आदमियों के भले-बुरे की ज़िम्मेदार है। सजन बहस न करो, मुझे एक बात कहने दो।"

"शमशेर, यह तुम क्या बक रहे हो?"

"मैंने क्या कभी बका है? ...यह तो मेरे बिल्कुल मन की बात है।"

"लेकिन क्यों? तुम मित्र-हीन तो नहीं हो?"

"सजन भाई, शायद मित्रों को मेरी ज़रूरत नहीं। मेरी मित्रता उनके लिए बोझ है"

सजन भैया ज़रा ठिठक गये।

"सजन, जानते हो मेरे पास कुछ नहीं है। एक कच्चा मकान है। उसमें भी कोई दीन बेचारा आकर बस गया है। बस एक चीज़ है। वह मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। और मेरा है कौन?"

"आज तुम दुखी क्यों हो शमशेर?"

"मेरे पास १०,००० रुपये हैं। तुम्हारे सिवाय मैं वह किसी को न दूँगा।

"———?"

"देखो इन्कार न करो। स्वीकार करो, और मुझे दुनियाँ से विदा लेने दो।"

सजन भैया टपाटप आँसू गिराने लगे। उन्होंने बहुत ज़ोर लगाकर ज़ोर से कहा।

"जानते हो, शमशेर, मैं तुम्हारी १५,००० कीमत लगा चुका हूँ?"

"यह तो और भी अच्छा है। मेरे मित्र को ५००० और मिलेंगे।

सजनसिंह की रुलाई और भी फूट निकली।

"भाई, दुःखी मत हो। तुम धोखे से घृणा करते हो; मैं भी करता हूँ। लेकिन यह धोखा नहीं है। विश्वास-घात नहीं है। इसलिए नीच काम भी नहीं है। अगर फिर भी चित्त शांत न हो, तो इन रुपयों को दीनों के काम में लाना। वह रुपया है भी तो दर-असल उन्हीं का—उन्हीं के लिए"

मित्र ने रोते-रोते कहा—"तुम आये थे तब मैं सोच रहा था तुम्हें कैसे पकड़ाऊँ? तब मुझ पर गाज क्यों नहीं गिरी?

शमशेर ने कहा —"उस बात को इस भयानक रूप में मत देखो। जैसे मैं देखता हूँ, उसी रूप में देखो मुझे मरना

है। आज नहीं तो कल मरना तो होगा ही। सरकार न ढूँढ पाये यह भी असंभव है। उसकी बड़ी बड़ी बाहें हैं; बड़े बड़े भेदिये हैं। पर यह संभव भी हो, तो भी मरना तो होगा ही। हाँ, वैसे मरने से जो थोड़ा-बहुत उपकार अब भी मेरे हाथ में है, वह मैं न कर सकूंगा। अगर पकड़ा गया तो वह मेरा रुपया—मेरे सिर का रुपया—न जाने किस के हाथ पड़ेगा। इससे तो अच्छा वह मेरे मित्र को मिले। और शायद वह मित्र उसका ठीक उपयोग कर सके।"

"हाय शमशेर, तुम मुझे बिगाड़ोगे, मेरा परलोक बिगाड़ोगे?"

"नहीं, यहीं सँभलने का मार्ग है।"

* * *

शमशेर अपने मित्र सजन को पुलिस के पास खबर देने के लिए भिजवाकर हो माना। इधर से शमशेर ने उसे धकेला, उधर से जुलेखा की आँखों ने उसे खींचा। वह मित्र बेचारा विवश होकर चला गया।

अफ़सर साहब ने गुस्से से कहा—"वह फिर, चुप!"

सजनसिंह रो रहा है, और चुप है।

"अरे, कुछ कहता भी है?"

भरी हुई आँखें, विवशता, और मूक मौन!

"अच्छा, दिल कब्ज़े में कर ले।"

अफसर का प्रस्थान। कुछ ठहर कर जुलेखा का आगमन।

"सजन, मैं कितने दिनों तुम्हारा इन्तज़ार करती रही!"

सजन ने एक ही झटके में कहा।—

"वह इस वक्त मेरे मकान पर है।"

"सजन, कैसे अच्छे हो तुम। आओ मेरे कमरे में चलो।"

सजन, मंत्र-मुग्ध उठ गया।

स्वर्ग के कमरे में।

"बैठो।" कुर्सी पर वह बैठ गया। सामने कोच पर अस्त-व्यस्त, निस्संकोच वह बैठ गई।

"हां, शमशेर की बात कहो।"

बेचारे सजन से एक-एक बात कहलवा ली गई।

सुनने पर जुलेखा बोली—"तुम्हारा शमशेर बड़ा मूर्ख है!"

सजन आह्लाद से, प्यास से और लाज से बेसुध हो रहा।

अचानक अफ़सर का आगमन।

"कमबख्त! कुत्ता! हरामी!"

उसने आँख उठाकर देखा। जुलेखा काफूर। तब से एक बेंत उसकी कनपटी को उधेड़ गया।

(१५)

उसी खाट पर, वही शमशेर।

सामने आरक्त, चंचल सौदामिनी-सी पूरी तनकर खड़ी हुई जुलेखा।

"शमशेर, तुम गिरफ्तार होगे?"

"हां।"

"पुलिस आरही है।"

"आती होगी।"

"तुम्हें फाँसी लगेगी।"

"जानता हूँ।"

"बचना चहते हो?"

"कैसे?"

"मैं बचा सकती हूँ।"

"सो तो जानता हूँ। पर क्यों बचा सकती हो?"

"फाँसी से मुझे दहशत होती है। फाँसी बुरी चीज़ है।"

"जुलेखा मैं किसलिए बचूँ?"

"तुम मेरा नाम कैसे लेते हो? ··· कैसे जानते हो ······जी?"

"अफ़सर की लड़की को न जानूँगा? तुम्हें बहुत दिनों से जानता हूँ। अब तक नाम लेता रहा हूँ, क्या अब न लूँ?"

"शमशेर तुम ढीठ हो।"

"हो सकता है। पर तुम्हें जब छोटी अवस्था में देखा था, तब जुलेखा कहा था। तब की लगी बान क्या सहज छूटती है?"

"कुछ हो तुम नाम न ले सकोगे। ··· तो तुम बचना नहीं चाहते?"

"किसके लिए बचूँ?"

"तुम्हारा कोई नहीं?"

"कोई नहीं।"

"तुम किसी को नहीं चाहते?"

"मरना चाहता हूँ।"

"बस ? और कुछ नहीं—किसी को नहीं ? "

"नहीं । "

"नहीं ? "

"नहीं । "

"तो तुम मरोगे । "

"तैयार हूं । "

जुलेखा के जाने के आध घण्टे बाद बहुत से बन्दूकों और किरचों से सजे सिपाहियों ने आकर शमशेर को पकड़ लिया । पीछे फेयरिश साहब आये और अकड़ के साथ कैदी को गिरफ्तार करके चल दिये। कोई देखता,उनकी परकटी तितली-सी मूछों का एक-एक बाल खड़ा हो गया था ।

अवसर पाते ही जुलेखा ने पूछा—

" पापा, शमशेर गिरफ्तार हो गया ?"

" और नहीं तो क्या बचता ?"

" पापा, कबसे आप उसे जानते हैं ?"

" कोई १० बरस से !"

" कैसे पापा ?"

" उंह !"

" तो नहीं बताओगे ?"

" जुली, तू बड़ी ज़िद्दी है !"

" मैं सुनने को बैठी हूँ ।"

" कुछ बात भी ! "

" सुनाना होगा ।"

" एक रोज़ मैं डाकुओं के चंगुल में पड़ गया । तुम भी साथ थीं । तब मैं थानेदार था । डाकुओं के लिए बड़ी कीमती चीज़ था। कम्बख्त मुझे मार डालते । इतने में शमशेर उधर से निकला । वह उनका सरदार था । उसके हुक्म से उन्होंने हमें छोड़ दिया । जबतक मैं चलने लायक हुआ तबतक हम दोनों उसी के मेहमान रहे । आखिर 'इन्सान का फ़र्ज़' 'सरकार का हक़' और न जाने किस-किस बात पर कितनी कितनी सलाह देकर उसने मुझे रुखसत कर दिया । तभी से मैंने तै कर लिया—इसे पकड़ूँगा तो मेरा बड़ा नाम होगा । कम्बख्त, भलेमानसों की सी बात करता है ?"

(११)

जेलखाने के अफ़सरों में भी और कैदियों में भी बड़ी चहल-पहल है । जेलखाने के बाहरी अहाते में बिल्कुल एक तरफ़ एक पक्का चबूतरा है । ऊपर का हिस्सा लकड़ी का है। उसके दोनों तरफ़ चबूतरे से ७ फ़ीट ऊँचे लोहे के दो शहतीर हैं । उनके सिरे पर एक और शहतीर चपटा पड़ा हुआ है । बीचों-बीच एक घिर्री लगी हुई है ।

आज कुछ कैदियों को इस सारे लोहे के मनहूस यंत्र को माँज-माँजकर चांदी-सा चमका देने का हुक्म हुआ है । कैदी सरगर्मी से हँस-हँसकर उसे साफ़ कर रहे हैं । आज उसका प्रयोग होगा—कहीं ज़रा ज़ंग न रहे । चमकती हुई फाँसी, सांप के फन की तरह एकदम कैसी आकर्षक, कैसी भयानक चीज़ है !

थोड़ा सा इसका नवीन इतिहास है । उस दिन राष्ट्र की जन-सभा में फाँसी का कौनसा-कैसा यंत्र उपयुक्त होगा इसकी बहस चली थी । जो विधान (कान्स्टीट्यूशन-constitution) न जाननेवाले यह कहने को खड़े हुए थे कि फाँसी का लोप हो जाना चाहिए उन्हें 'पाइण्ट ऑव आर्डर' (point of order) के नाम पर बैठा दिया गया था । यानी उनकी बात असंगत थी । फाँसी पर उनकी राय नहीं पूछी जा रही थी । वह तो जैसे पहले से ही निर्णीत विषय है । फाँसी है और रहेगी । प्रश्न उसके प्रकार का था । इसपर वहाँ बहुत ही भावपूर्ण, खोजपूर्ण और ज्ञानपूर्ण भाषण हुए थे । जान लेने में किसमें कम किसमें ज़्यादा देर लगती है; प्राण निकालने में कितनी देर लगाना दया के विरुद्ध नहीं है; फाँसी की पुरानी रीति क्या है और नई क्या-क्या है; दोनों एक-दूसरे से क्यों अच्छी-बुरी है; ? फाँसी की रीति में किस प्रकार विकास हुआ है, और फिर यह कि कौन कम खर्चीली है और कौन ज़्यादे, क्योंकि सभ्य सरकारों में सबसे पहले और सबसे पीछे कोष की चिन्ता रहती है,—आदि-आदि असंख्य दृष्टि-बिन्दुओं से इस प्रश्न पर वहाँ विवेचन हुआ था ।

उस विवेचन के परिणाम-स्वरूप जो फाँसी का सबसे उपयुक्त लोमहर्षी, मनहूस और भीषण रूप खड़ा है, आज उसी को घिस-घिसकर साफ़ किया जा रहा है ।

हम कुछ नहीं कह सकते । देश के योग्यतम पुरुषों और प्रतिनिधियों के बहुमत के इस अनिन्द्य-सुंदर परिणाम को देखकर हमें डर लगता है !

तो भी एक बात कहना चाहते हैं। वह यह कि फाँसी पाये हुए लोगों का भी एक प्रतिनिधि धारा-सभा में रहना चाहिए। वह जिसने किताबों से उतार कर नहीं वरन् फाँसी पर लटकाकर जान लिया हो, फाँसी किसे कहते हैं ?

(१२)

जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट, जेलर, जल्लाद और कुछ ऊँचे अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी अधिकारी फाँसी के निरीक्षण के लिए आये हैं। सबने स्वीकार किया, सफ़ाई ठीक हुई है।

जल्लाद चढ़कर एक रस्सी का फंदा घिर्री में अटका देता है। रस्सी बिल्कुल नई है। हर दफ़ा नई रस्सी काम में लाई जाती है। फंदे में एक भारी बोरा लटकाया गया है।

यंत्र घूमा। चबूतरे के फ़र्श के लकड़ी के तख्ते नीचे झूल गये। बोरा नीचे वाले अँधेरे कुएँ में लटक गया।

सबने एक स्वर में कहा—ठीक है।

\+ + +

शमशेर के हाथ पीछे से बँधे हैं। संगीनों के पहरे में वह लाया जा रहा है।

निरीक्षकों की संख्या में अब कुछ बढ़ती हो गई है। अंग्रेज़ और बहुत-से आ गये हैं तथा अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी पुरुषों की संख्या के बराबर अंग्रेज़-महिलाओं की संख्या है। इनमें एक हिन्दुस्तानी भी है—जुली रिबेका (Zulie Rebaca) या जुलेखा।

दर्शकों में एक हमारा परिचित और है। फेयरिश साहब और सैवेज साहब तो हैं ही; एक और है। वह कर्नल ग्रेटहार्ट हैं। बर्मा से वह शमशेर की हालत की बराबर खबर लेते रहते थे। अंतिम समय में वह आ मौजूद हुए हैं। उनके हाथ में कैमेरा है।

शमशेर बिना मदद के चढ़ जाता है। न हँसता है, न रोता है। जैसे जो कुछ हो रहा है, उससे उसे सम्बन्ध ही नहीं है। उसके दिल में जैसे कोई लड़ाई ही नहीं हो रही है।

मेमें देखती जा रही हैं और आपस में मज़ाक करती जाती हैं। अँग्रेज भी जैसे मज़ा ले रहे हैं।

जुली ने जो एक बार शमशेर को देखा है कि फिर नहीं देखा। वह कर्नल के पास आकर उससे बातें करने में लग गई। केवल एक व्यक्ति है, कर्नल, जो बँधी निर्निमेष आँखों से शमशेर को देख रहा है।

सुपरिण्टेण्डेण्ट ने पूछा—'तैयार हो शमशेर ?'

"जी हाँ।"

"आखिरी वक्त है। क्या कुछ चाहते हो ?"

"थोड़ा-सा पानी चाहिए।"

"और कुछ नहीं !

"नहीं !"

झपटकर जुली चबूतरे के तख्ते पर पहुँच गई और चिल्लाई—"और कुछ नहीं ?–शमशेर ! और कुछ नहीं ? .."

'और क्या···जुलेखा ?"

"और कुछ नहीं ?··· "मरते वक्त और कुछ नहीं ?"

'नहीं—"

"थोड़ा-सा प्यार··· ··

"जुलेखा! —क्या कहती हो ?

"बिल्कुल ज़रा ··ज़रा-सा प्यार !···"

"छि."

"अच्छा, आखिरी बात ! उसका जवाब दे दो। ······ तुमने ब्याह क्यों नहीं किया ?"

"मेरा जवाब यही है कि ज़्यादा औपन्यासिक बनने की कोशिश न करो।"

जुलेखा हार गई। वह बेहोश हो गई। उसे हटा दिया गया।

अंग्रेजों ने, मेमों ने और सब ने इस घटना में बड़ा मज़ा लिया लेकिन कर्नल खड़े-खड़े एकटक देखते रहे।

पानी आया। शमशेर ने पी लिया।

जल्लाद ने फंदा गले में डाला—कर्नल ने अपना कैमरा खोला।

कन्धे तक आनेवाला काला खोल शमशेर को उढ़ाने की तैयारी हुई। उसने कहा—"अगर कुछ हर्ज न हो तो रहने दें।"

क़ैदी का यह अनुनय भी मानने का अनुग्रह दिखाया गया !

कर्नल ने एक 'स्नैपशाट' (फोटो) ले लिया।

शमशेर ने पूछा—"कर्नल, मैं पास हो गया ?"

कर्नल के आँसू, जो न जाने कबसे निकलने न पाये थे, चुपचाप कोयों में आकर ढरक पड़े।

शमशेर ने कहा—"कर्नल ! इतने मर्द होकर तुम 'फ़ेल' होते हो ?"

कर्नल को बड़ी शर्म आई। लेकिन बड़ा रोना भी आया।

वही यंत्र दबा। लकड़ी के तख्ते झूल गये। शमशेर गढ़हे में लटक गया।

+ + +

कहते हैं लाश उस अँधेरे गढ़हे में दो-दो तीन-तीन घण्टे तक झूलती रहती है, तब प्राण निकलते हैं !

(१२)

जुलेखा बदल गई है। पिघलकर पानी हो गई है और वह पानी आँखों की राह निकलते-निकलते कभी ख़त्म नहीं होता।

अफ़सर लोग बड़ी तत्परता से अफ़सरी निबाह रहे हैं।

सज्जनसिंह को धेला भी नहीं मिला है। सब कुछ फेयरिंश साहब और उनके दोस्तों की जेबों में पहुँचा है।

और कर्नल ?

कर्नल ने नौकरी छोड़ दी है। हम उनके घर एक बार गये थे। फाँसी चढ़ते हुए शमशेर के फोटो के सामने खड़े होकर वह कह रहे थे—

"शमशेर ! मैंने एक रोज़ तुम्हें मज़बूती का उपदेश दिया था। मैंने ! और तुम्हें !! मेरा वह कैसा दंभ था।"

सुनकर हम ठहर न सके; लौट आये।

शैलेन्द्रनाथ घोष : नेता और राजनीतिज्ञ

[श्री रामलाल बाजपेयी, अमेरिका]

यदि मुझ से पूछा जाय कि भारत के भीतर और बाहर के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में से एक ऐसा पुरुष बतलाओ जो एक विद्वान् की भांति विचार करता है, एक राजनीतिज्ञ की भांति राजनीति को समझता है, एक निपुण वैज्ञानिक की भांति युद्ध का संगठन और प्रारम्भ करता है एवं सेनापति की भांति उसका नेतृत्व करता है तो निस्सन्देह मैं आधुनिक भारत के लिए एक ही राजनैतिक नेता का नाम लूँगा, और वह नाम मेरे मित्र और सखा श्री शैलेन्द्रनाथ घोष का है, जिन्हें हमने भारतीय राष्ट्रीय-सभा की अमेरिका की शाखा का सभापति चुना है और जो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भारत के राष्ट्रदूत हैं।

श्री शैलेन्द्रनाथ घोष

शैलेन्द्रनाथ का नाम और व्यक्तित्व एक ऐसे चरित्र का उदाहरण उपस्थित करता है जो भारत की राजनीति में अपूर्व है। उनका साहस उन्हीं के हिस्से की चीज़ है; उनकी राजनैतिक युद्ध की चालें और युक्तियाँ अनुपम हैं; उनकी राजनैतिक समस्याओं को हल करने की शक्ति अपूर्व है; उनका जीवन सूझ और नेतृत्व का जीवन है — ऐसे नेतृत्व का जो एक समस्या पर विचार करता है; उसे एक गम्भीर प्रश्न के रूप में विकसित करता है; उसे सम्भालता है और असम्भव परिस्थितियों में से भी अनुकूल परिणाम निकाल लेता है। उन्होंने जो सफलतायें प्राप्त की हैं, वही उनकी साख और प्रमाण-पत्र हैं, और जिनके न होने पर साधारण श्रेणी के आदमियों की भांति दुनिया उन्हें हज़म कर गई होती।

मुझे उनसे उस समय मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ था जब मैं अमेरिका में लाला लाजपतराय का सेक्रेटरी था। १९१६ के दमन-चक्र में उनपर भी सरकार का दाँत था और उनकी गिरफ्तारी के लिए सरकार उत्सुक थी। उन्होंने स्वर्गीय आशुतोष मुकर्जी को वचन दिया था कि अंग्रेज़ मुझे

जीते जी नहीं पकड़ सकते। उस समय उनका भारत में रहना बहुत खतरनाक था। इसीलिए रसोइये का भेष बना कर स्वतन्त्र लोगों के देश—अमेरिका—आ गये जिसे अब उन्होंने अपना देश बना लिया है।

मैंने उनकी वह कहानी कई बार सुनी है कि कैसे एक तरुण अध्यापक १०००० टन वज़न के एक जंगी क्रूजर पर उसके बायलर* रूम में महायुद्ध के दिनों में पूर्णतः भेष बदले काम किया करता था। उन्होंने उस जहाज़ मे ९२ दिन काम किया, और अपने जीवन को केवल उस उद्देश्य की पूर्ति की आशा रखकर बचाया जिस उद्देश्य के लिए वह अब भी अपने देश से निर्वासित है।

शैलेन्द्र अमेरिका पहुँचे। उस अमेरिका मे जहाँ टका ही मनुष्य का कर्ता-हर्ता है उन्होंने बिलकुल खाली जेब और मित्र-विहीन होते हुए भी अपने अदम्य उत्साह से जीवन-निर्वाह की समस्या हल की। उस समय से उन्होंने जिन विपत्तियों और कठोर परिस्थितियों का सामना किया और पीछे विजय प्राप्त की, उनने उनके भीतर के 'पुरुष' को जागृत और विकसित कर दिया। मैं समझता हूँ कि शैलेन्द्र के सिवा इन परीक्षाओं, विपत्तियों और कठिनाइयों को कोई नहीं सह सकता था।

अपने ही देश के क्रान्तिकारी समझे जानेवाले लोगो के विश्वासघात और ब्रिटेन के खुफ़िया पुलिस-विभाग के पीछा करते रहने के कारण वह सन १९१८ मे न्यूयार्क की सड़क पर पकड़ लिये गये और न्यूयार्क जेल में दस मास से अधिक क़ैद रहे। महायुद्ध में संयुक्तराज्य की तटस्थता के विरुद्ध काम करने के कल्पित अभियोग में २० साल के कारावास का हुक्म पाने पर भी उन्होंने अपने चित्त को अस्थिर एव बुद्धि को कुण्ठित न होने दिया। इस खतरनाक परिस्थिति को भी उन्होंने ऐसी चतुराई से सुलझाया कि दिसम्बर सन् १९१८ मे बिना किसी शर्त के छोड़ दिये गये। यह उन्हीं के कानूनी ज्ञान और राजनैतिक चालों का फल था कि अपने एक मित्र की सहायता से, जिनका नाम आज भी गुप्त रखने की ज़रूरत है, महायुद्ध के समय भेदिया होने और जासूसी करने के अपराध में पकड़े जाकर भी वह दण्डित नहीं किये जा सके।

लेकिन अंग्रेज़ सरकार ने, जिसने शैलेन्द्र को आजीवन कारागृह में फँसा मारने के लिए बहुत द्रव्य खर्च किया था, उनका पीछा नहीं छोड़ा। कुछ ही महीने बाद वह समय आया जब शैलेन्द्र को हिन्दुस्थान भेजा जाने लगा। हिन्दुस्तान पहुँच जाने पर उनके लिए फाँसी रक्खी थी। शैलेन्द्र मे इस जटिल परिस्थिति को सुलझाने की योग्यता थी। वातावरण अंग्रेज़ों के अनुकूल था फिर भी उन्होंने अकेले ही 'भारतीय स्वतन्त्रता के मित्र' (Friends of Freedom for India) नामक संस्था का संगठन किया और जबतक भारत के राजनैतिक शरणागतों के लिए अमेरिका में रहने के अधिकार प्राप्त नहीं कर लिए तबतक उसका स्वयं ही संचालन किया। यह जीवन-मरण की समस्या थी। एक ओर शैलेन्द्र, और शैलेन्द्र के वे थोड़े-से साथी थे जिन्हें उन्होंने अभी अपने पक्ष में कर लिया था और दूसरी ओर अंग्रेज और अमेरिका की सरकारों की विशाल शक्ति और सुविधायें थीं। यह शेर-बकरी का युद्ध था, किन्तु बकरी की विजय हुई।

जब यह झगड़ा प्रारम्भ हुआ था, उस समय भारत अमेरिका में एक अनजान देश था और उसके मित्र बहुत थोड़े थे। लेकिन जब इस झगड़े का अन्त हुआ तब भारत ने अमेरिका की राजनीति में प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर लिया और उसके मित्र यत्र-तत्र सारे अमेरिका में पैदा हो गये। अकेला आदमी क्या कर सकता है, यह शैलेन्द्र ने भलीभांति दिखला दिया और मुझे विश्वास नहीं होता कि शैलेन्द्र के स्थान पर कोई दूसरा आदमी होता तो ऐसी परिस्थिति में कुछ भी कर सका होता। यह याद रखना चाहिए कि उस समय अमेरिका से सभी बहिष्कृत कर दिये गये थे, केवल भारतीय क्रान्तिकारी लोग ही अमेरिका से नहीं निकाले गये। सन् १९२१-१९२२ में वाशिंगटन मे जब निःशस्त्री-करण सम्मेलन हो रहा था तो उसके अन्दर अपना काम शुरू करना उन्हीं का साहस था। एक दिन दैनिकपत्रों में यह पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि शैलेन्द्र ने वाशिंगटन में एक बड़े शानदार

* जहां पर एंजिन में स्टीम (भाप) तैयार की जाती है।

मकान में अपना कार्यालय खोला है। तबसे अमेरिका के पत्रों में उनके भेजे हुए भारतीय समाचार बराबर निकलते रहे। शैलेन्द्र के द्वारा जिन्होंने केवल निर्भयता के सहारे निरन्तर कार्य किया, नित्य कालम के कालम लेख एवं समाचार वाशिंगटन से प्रकाशनार्थ बाहर जाते रहे। उन दिनों भारत की अमेरिका में सब से अधिक चर्चा थी और यह सब अकेले शैलेन्द्र और उसके कुछ देशवासियों का कार्य था।

संसार के राजनीतिज्ञों के केन्द्र मे शैलेन्द्र के कार्य ने उन्हें राजनीति का आचार्य बना दिया। वैसी राजनीतिज्ञता की हमें भारत में इस समय अत्यन्त आवश्यकता है—उस राजनीतिज्ञता की जिसने नेतृत्व को शैलेन्द्र के व्यक्तित्व का प्रधान अंग बना दिया—एक ऐसा नेता बना दिया जो एक युद्ध का संचालन कर सकता है।

शैलेन्द्र का विदेशी राजनीतिज्ञों और धर्म-शास्त्रियों से घना संसर्ग हुआ। दूसरे देशों के राजनीतिज्ञ जटिल समस्याओं पर शैलेन्द्र से सलाह लेने में हिचकते नहीं हैं। अकेले शैलेन्द्र ने अमेरिका के सर्वोत्कृष्ट पुरुषों पर भारत की अमिट छाप लगा दी है। शैलेन्द्र और तारकनाथ ने मिलकर अपने सतत प्रयत्न से एक ऐसा प्रश्न खड़ा कर दिया जो आज सदाचार का सबसे महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। अफ़ीम के जिस प्रश्न ने अंग्रेजों को जेनेवा में नीचा दिखाया, और अमेरिका के सदाचारवादियों के सामने उनका नंगा रूप रख दिया वह शैलेन्द्र और तारक की ही उपज है।

जिस समय अफ़ीम के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बनाने के लिए रात-दिन सिर-तोड़ परिश्रम किया जा रहा था उसी समय संयुक्तराष्ट्र की सब से बड़ी अदालत (United States Supreme Court) ने भारतीयों को नागरिकता का अधिकार देने से इन्कार करके हम लोगों को एक गहरा धक्का पहुँचाया। इस समय जब कि हमारे सारे अधिकार छीने जा रहे थे और हमारे सामने सिवा अन्धकार के और कुछ नहीं था शैलेन्द्र की याद आई। वही ऐसे समय हम लोगों को उद्धारकर्ता और रक्षक के रूप में दिखाई पड़े। बराबर दो साल तक वह संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के प्रत्येक भाग में दौरा करते रहे। जहाँ एक भी भारतीय रहता था वहाँ जाकर ऐसी सामग्री एकत्र की जिससे मालूम हो सके कि भारतीयों पर नागरिकता का अधिकार न मिलने के कारण कितने अन्याय और अत्याचार होते हैं और होंगे। उन्होंने ये घटनायें अपने उन मित्रों के सामने रक्खी जो संयुक्तराष्ट्र की जन सभा—सीनेट के सदस्य हैं। परिणाम यह हुआ कि श्री कोपलैण्ड ने वह बिल बनाया जो 'हिन्दू-नागरिकता-बिल' (Hindu Citizenship Bill) कहलाता है और जो अब भी इस देश में हम भारतीयों के लिए सबसे बड़ा प्रश्न उपस्थित करता है। अब भी युद्ध जारी है, और हमें आशा है कि समय चाहे अधिक लगे पर हमारी विजय होगी।

गत वर्ष शैलेन्द्र ने रेडियो द्वारा प्रचार करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। २७ दिसम्बर सन १९२८ को श्रीमती नायडू, मैं, शैलेन्द्र और अमेरिका के दूसरे मुख्य लोगों ने शैनेक्टेडी (Schenectady) की जेनेरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के रेडियो स्टेशन से भारतीय राष्ट्रीय महासभा के लिए व्याख्यान दिये। हमारे संदेश सुदूर दक्षिण ध्रुव तक पहुँचे जहाँ कमाण्डर बायर्ड ने उन्हें सुना। संदेश बम्बई के स्टेशन पर ग्रहण किये गये पर सरकार की ओर से बाधायें डाली गईं जिससे कलकत्ता-महासभा में बैठे हुए भारतीय भाइयों तक वे न पहुंच सके। अब हम अमेरिका से भारत के साथ सीधे भलीभाँति बात-चीत कर सकते हैं।

इस कार्य-क्रम ने अमेरिका में इतनी हलचल मचाई कि अमेरिका के प्रत्येक छोटे बड़े अखबारों ने इस समाचार को कई बार प्रकाशित किया। रेडियो कार्य-क्रम की सफलता का सबसे अधिक श्रेय शैलेन्द्र को ही है जिन्होंने एसोसिएटेड प्रेस, यूनाइटेड प्रेस और यूनीवर्सल (सार्वदेशिक) सर्विस आदि अमेरिका की सर्वोत्कृष्ट समाचार ले जाने वाली संस्थाओं के प्रधान व्यवस्थापकों को भारतीय समाचार लेने पर राज़ी किया। यह इतिहास में इस ढंग की सर्व प्रथम घटना है।

केलॉग-सन्धि के समय हम ३२ करोड़ भारतीयों में से अकेले शैलेन्द्र ने ही अंग्रेज़ों के संरक्षित अधिकार वाली शर्तों को समझा जिसमे भारत का घोर अहित था। उन्होंने सरोजिनी नायडू को उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने के

लिए तैयार किया जो अब यहाँ के सरकारी कागज़ातों में दर्ज है। उन्हीं की राजनीति-निपुणता ने बहस के समय भारत का प्रश्न स्पष्टता से उपस्थित किया, और यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दुस्तान को अमेरिका से राजनैतिक अधिकारों की रक्षा के लिए स्वीकृति और सहायता लेने का अधिकार है। शैलेन्द्र ने क्षेत्र तैयार कर दिया है और यदि भारत में परिस्थिति बिगड़ न गई तो भविष्य इसकी गवाही देगा।

शैलेन्द्र ने केलॉग समझौते के समय वाशिंगटन के जिन ज़िम्मेदार प्रभावशाली क्षेत्रों में प्रोत्साहन पाया उससे उत्साहित होकर भारतीय राजनैनिक महासभा की एक शाखा अमेरिका में खोलने की इच्छा हममें उत्पन्न हुई जिससे शैलेन्द्र भारत के राष्ट्र दूत की तरह अमेरिका में कार्य कर सकें। हम लोगों ने वाशिंगटन में (Indian legation) भारतीय दूतावास की स्थापना की स्वीकृति दी ताकि भारतीय राष्ट्रीय लोगों के कार्य के विषय में पूछताछ करने वालों को एक निश्चित ठिकाना मिल जाय। और कोई दूसरी शक्ति भारत के विषय में कोई जानकारी प्राप्त करना चाहे तो उसे मालूम रहे कि हमें कहाँ जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अब वह समय आ गया है जब भारत के सहयोग की दुनिया की विभिन्न शक्तियों को प्रत्येक समय आवश्यकता पड़ेगी और भारत का यह सौभाग्य है कि दुनिया के राजनैतिक केन्द्र वाशिंगटन में उसका सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ रहता है। शैलेन्द्र का जीवन भारतीय स्वतंत्रता की सेवा में लग चुका है। वह नेतृत्व कर सकते हैं और उनका नेतृत्व सफलता का आश्वासन दे सकता है। उनका अनुभव, साहस, कौशल, वीरता और सबसे अधिक उनकी सच्ची लगन उन्हें उन्नतिशील भारत का नेता बनाने में समर्थ है।

इंग्लैंड और अमेरिका का युद्ध, जो विश्व के राजनैतिक क्षितिज पर चमक रहा है, भारतीय स्वतंत्रता के लिए सबसे अच्छा अवसर है। उस समय अंग्रेज़ों को अमेरिका के विरुद्ध भारत का सहयोग पाने का विश्वास हो जाने पर वे नेहरू-रिपोर्ट से भी अधिक, सहज ही देने को तैयार हो जायँगे। इसी प्रकार अमेरिका भी भारत की सब प्रकार की सहायता करने को तैयार हो जायगा यदि वह अंग्रेज़ों को हरा सके। क्या भारतवासी इस बात को समझेंगे?

शैलेन्द्र अच्छी तरह जानते हैं कि ऐसे समय अमेरिका या भारत में क्या करना होगा? यदि वह कभी भारत आ सके तो उनका नेतृत्व आनेवाले वर्षों में अपनी प्रभुता को प्रकाशित करेगा।

काश्मीर की सैर

श्री बनारसीलाल बजाज

सिन्ध और पंजाब का भ्रमण समाप्त कर हम लोगों ने पहली जुलाई १९२९ को प्रातःकाल रावलपिण्डी से काश्मीर की राजधानी श्रीनगर के लिए प्रस्थान किया। यह ऋतु वहाँ जाने के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इस समय न तो वहाँ फूल ही खिलते हैं और न फल ही मिलते हैं। किन्तु हम तो वहाँ इसलिए नहीं जा रहे थे कि प्रकृति की क्रीड़ा-भूमि में जाकर सृष्टि-सौंदर्य का आनन्द लूटें। मुख्य उद्देश्य तो वहाँ के खादी-भण्डार का उद्घाटन—समारम्भ तथा ग्राम्य-जीवन का अध्ययन करना था। रावलपिण्डी से श्रीनगर १९८ मील है। इस यात्रा के लिए हमें एक चार सवारी की मोटर ४०) भाड़े पर मिल गई थी। रास्ता आनन्द से खाते-पीते कट गया और सायंकाल ७ बजे हम लोग श्रीनगर सकुशल पहुँचा दिये गये। श्री जैराजजी हम लोगों के लिए मोटरों के खड़े होने की जगह पर प्रतीक्षा कर रहे थे इसलिए चर्खा-संघ के स्थानीय उत्साही व्यवस्थापक श्री कोटक के घर जाने में हमें कुछ कष्ट उठाना नहीं पड़ा।

श्रीनगर पहुँचने पर हम लोगों को मालूम पड़ा कि जमनालालजी के आगमन का समाचार सुनकर पुलिस के कानों पर जूँ रेंगने लगी है। काश्मीर प्रान्त के गवर्नर ने तो श्री कोटक से यह कहा कि यदि जमनालालजी का भाषण होने वाला हो तो पहले उसे लिखकर पुलिस को दिया जाय और फिर उसी प्रकार बिना किसी हेर-फेर के भाषण हो।

ता० ४ को सुबह श्री पानीक्कर जमनालालजी से मिलने आये। आप पहले कांग्रेस कार्यकर्ता रह चुके हैं। कुछ दिनों तक दिल्ली के अंग्रेज़ी दैनिकपत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक भी थे। अब काश्मीर-नरेश के राजनैतिक सेक्रेटरी हैं। उनसे बहुत देर तक खादी-भण्डार के उद्घाटन की तथा अन्य चर्चा हुई। काश्मीर की पुलिस के सन्देह को दूर करना ज़रूरी था इसलिए जमनालालजी, महाराज के मिनिस्टर-इन-वेटिंग श्री प्यारेकिशन वातल से मिलने गये। श्री वातल खुद स्वदेशी वस्त्र पहनते हैं तथा जहाँ तक हो सकता है खादी के इस्तेमाल करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे अनुकूल वातावरण में श्री जमनालालजी के लिए अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना बहुत सरल था। इसका फल यह हुआ कि राज्य के अधिकारियों की तरफ़ से सन्देह के कारण जो रुकावटें थीं वे दूर हो गईं और उनके बदले हमें पूरा सहयोग प्राप्त हुआ।

तीसरे दिन कुछ काम न रहने के कारण हम लोग दिन भर डल झील में ही नौका में भाड़ा करके रहे। चार चिनार, निशात बाग, शालीमार उद्यान तथा नसीम बाग भी देखा उस दिन धूप बिल्कुल नहीं थी। आकाश मेघों से आच्छादित था इसलिए हमें बहुत ही आनन्द आया। प्रकृति-सौंदर्य की चर्चा के लिए हमें उस दिन यथेष्ट समय मिला।

कारीगरी

ता० ५ को सुबह श्रीनगर शहर में जो हस्त-कारीगरी के केन्द्र हैं और जहाँ जहाँ चर्खा-संघ का काम चल रहा है उनका निरीक्षण करने के लिए निकले।

श्रीनगर में स्त्रियाँ पैसे कमाने की दृष्टि से प्रधानतया पश्मीना ही कातती हैं। ऊन तो बहुत थोड़ा कतता है। प्रायः सभी ऊन ग्रामों में ही कतता है। पश्मीना कातना ज़्यादा बुद्धिमानी का काम है। पश्मीने वाली भेड़ें काश्मीर में नहीं हैं इसलिए पश्मीना यारक़न्द से ख़रीद कर लद्दाख के रास्ते श्रीनगर लाया जाता है, फिर वहाँ के दुकानदार या दलालों के मार्फ़त स्त्रियाँ इसको ख़रीदती हैं। पश्मीना के साथ कड़े बाल भी मिले हुए रहते हैं जो काते नहीं जा सकते। इसलिए पहली क्रिया तो इनको निकालने की होती है। साफ़ हो जाने के बाद लकड़ी के पाये पर स्थिर की हुई प्रायः ५ इञ्च लम्बी कँघनी के ऊपर रेशों को सीधा तथा अलग-अलग किया जाता है। इस प्रकार जब प्रत्येक रेशा अलग हो जाता है तब ज़रा गीले और खूब

महीन पिसे हुए चावल के आटे में उनको मिला दिया जाता है। उसके बाद पुनः कँघनी के अन्दर से रेशे निकाले जाते हैं। इस प्रकार खूब साफ़ हो जाने के बाद पूनी बनाकर औरतें कात लेती हैं। ८ घण्टे काम करके एक स्त्री लगभग तीन आना रोज़ कमा सकती है। पश्मीना साधारणतः ६० से ८० नम्बर तक काता जाता है किन्तु क़ीमती पोशाकों के लिए १५० नम्बर तक भी कातना है। कते हुए पश्मीने को फिर दो-तीन या चार लड़ी का, जैसा चाहिए वैसा बना लेते हैं। पश्मीने से मुख्यतः निम्नलिखित चीजें बनाई जाती हैं—

अलवान—इसमें ताने का तार तो दोहरा होता है और बाने का इकलड़ा। सफ़ेद अलवान साधारणतः १२ गज लम्बा तथा ० इंच चौड़ा बनता है। खुदरंग अलवान ७ गज़ लम्बा तथा ५८ इंच चौड़ा तैयार किया जाता है। इसमें नाना रंगीन और ता प्राकृतिक रंग का होता है।

ताफ़ता यह ६, या ७ गज़ लम्बा बनाया जाता है और चौड़ाई में ५८ इंच रहता है। रंग सफ़ेद और ताना-बाना दोनों के तार दुहरे रहते हैं।

तूस—यह भूरे रंग का होता है। इसकी लम्बाई ६½ से ७ गज़ तथा चौड़ाई ५५ से ५८ इंच तक की होती है। इसमें तीन तार रहते हैं। ताना तो दोहरे किये हुए रंगीन पश्मीने का होता है तथा बाना में तूस और पश्मीना दोनों के धागों को मिलाकर इस्तेमाल करते हैं। तूस वस्तुतः पश्मीने की एक क़ीमती और विशेष तरह है। इसका रंग भूरा या सुँघनी-सा होता है। तूस अलवान तथा ताफ़ता से ज़्यादा गर्म रहता है।

सतूस—यह उपर्युक्त तीनों प्रकार के कपड़ों से ज़्यादा गर्म किन्तु बहुत ही मुलायम होता है। इसकी लम्बाई ७ गज़ तथा चौड़ाई ६३ इंच रहती है। इसमें दोनों तरफ़ दोहरे तार डाले जाते हैं। कपड़े का वज़न ६० से ७० तोले तक रहता है। इसमें तार तूस के रहते हैं इसलिए यह कपड़ा बहुत क़ीमती होता है।

काश्मीर में जो जगत्-विख्यात शाल बनाये जाते हैं उनमें पश्मीना तथा रेशम दोनों के तार काम में लाये जाते हैं। दस्तकारी का काम अच्छा तथा सुगमता से होने के लिए रेशम का उपयोग ज़रूरी समझा जाता है। काश्मीर में रेशम या तो बाहर से (आम तौर पर इटली से) आता है या वहाँ के सरकारी कारखाने में तैयार होता है। यह धन्धा सरकार ने निजी कर लिया है। कोई आदमी अपने घर पर रेशम नहीं कात सकता। किसान लोग राज से कीड़ों के अण्डे तोलकर मुफ़्त ले जाते हैं तथा उनको बड़ा कर फिर सरकार को ही सब कक्कुन उसके निर्धारित भाव पर बेच जाते हैं। इसलिए चर्खा-संघ को मैसूर या मुर्शिदाबाद से हाथ का कता हुआ रेशम लाना पड़ता है। कारीगरों से पूछने पर मालूम पड़ा कि हाथ का कता हुआ रेशम मशीन के रेशम से अच्छा होता है तथा उससे दस्तकारी का काम ज़्यादा सुभीते से होता है। शाल की बुनावट में असाधारण बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। बनावट (Patterns) इतने तरह के बनते हैं कि मैं नहीं समझता, मिल के पावर के करघों पर कभी इस तरह का कपड़ा बनाना सम्भव होगा। मैंने देखा एक-एक करघे पर तीन-तीन आदमी एक दफ़ा काम करते हैं। ६ वर्ष के बालक से लेकर ७५ वर्ष तक का वृद्ध भी इस काम में लगा हुआ रहता है। उनका अनपढ़ मुखिया एक काग़ज़ पर बनावट का नक्शा बनाकर प्रत्येक को दे देता है और बुननेवाले उसको देख-देखकर रंग-बिरंगे पुष्प या अन्यान्य चित्र शाल में बुन लेते हैं। ब्रिटिश भारत में भी इस प्रकार की कारीगरी प्राचीन समय में होती थी किन्तु विदेशियों ने नष्ट कर दी। ऐसी अवस्था में किस भारतवासी को एक सुदूर प्रदेश में इस कारीगरी को देखकर आनन्द न होगा? शाल बुनकर तैयार हो जाने पर उसपर दस्तकारी का काम केवल किनारों पर या समूचे कपड़े पर किया जाता है। कई क़ीमती शालों को तो बनाने में १ या १॥ वर्ष तक लग जाता है तथा उनकी क़ीमत ६—७०० रु. तक पहुँच जाती है। श्रीनगर शहर में क़रीब २०० कारखानों में दस्तकारी का काम होता है। उससे प्रायः ३००० मज़दूरों को रोज़ी मिलती है। मज़दूरों को वेतन काम पर मिलता है। प्रायः ।।) आना रोज़ एक आदमी कमा लेता है।

पश्मीने का कपड़ा जब करघे से निकलता है तब वह ऊपर से मुलायम नहीं रहता। इसलिए इसके खुरदरेपन को दूर करने के लिए कपड़े पर 'पूर्ज' नामक क्रिया की

जाती है। कपड़े का थोड़ा थोड़ा हिस्सा कंघे के ऊपर के ताने की तरह तान दिया जाता है। उसके बाद, क्लिप के आकार के चिमटे के द्वारा कपड़े पर के जितने ढीले लोम हैं वे सब निकाल लिये जाते हैं। इससे कपड़ा बिल्कुल साफ़ हो जाता है तथा छूने पर मुलायम मालूम पड़ता है। सफ़ेद कपड़ों को फिर सफ़ेद पत्थर के चूरे से मल देते हैं इससे कपड़ा और भी मुलायम, सफ़ेद तथा वज़नदार बन जाता है। कहीं-कहीं गंधक का धुवाँ भी सफ़ेदी बढ़ाने के लिए दिया जाता है।

कपड़ों के धोने के लिए कुब्स नामक एक वस्तु का उपयोग किया जाता है। यह ज़मीन के अन्दर जगलों में बहुत काफ़ी संख्या में उत्पन्न होता है। इसका चूरा करके गर्म पानी में डाल दिया जाता है और फिर उस पानी में कपड़ा डालकर खूब कूटा जाता है। कूटने के बाद कपड़े को स्वच्छ जल से धोकर काश्मीरी साबुन के पानी में डाल देते हैं और फिर स्वच्छ जल से धोकर सुखा लेते हैं।

दो अलग-अलग टुकड़ों के जोड़ने की विधि को क्रेट कहते हैं। टुकड़े इस कुशलता से जोड़ दिये जाते हैं कि नये आदमी को यह बिल्कुल नहीं मालूम होता कि पहले टुकड़े थे। फटे हुए या छिद्र वाले कपड़े को रफ़ू करना भी यहाँ के कारीगर बहुत अच्छी तरह जानते हैं।

नमदा, जो बिछाने के काम में आता है, ऊन को जमाकर बनाया जाता है। एक चटाई पर धुनी हुई ऊन समतल बिछा दी जाती है, फिर चटाई लपेटकर खूब मथी जाती है। इस प्रकार ऊन की एक तह जमने के बाद दूसरी तह जमाई जाती है। जिस नाप या मोटाई का नमदा आवश्यक हो वैसा बनाया जा सकता है। आसन, पलंगपोश तथा बड़ी से बड़ी नाप का नमदा तैयार हो सकता है। पहले यह यारकंद (तिब्बत) से बनकर आता था, किन्तु अब यहां संघवालों ने खास श्रीनगर में बनवाना आरंभ कर दिया है।

पश्मीना का उपर्युक्त सारा धंधा देखकर हम लोग करीब १२ बजे घर लौटे। खाना-पीना समाप्त कर २ बजे पुनः घर से बाहर निकले। काश्मीर के व्यापार एवं उद्योग-विभाग के डाइरेक्टर श्रीयुक्त चेतराम कोली के निमंत्रण पर हम लोग स्थानीय उद्योग शाला देखने गये। इस शाला का मकान बहुत ही भव्य है और सुनते हैं अब यहाँ महाराज राजकुमारों के लिए कालेज खोलने वाले हैं। श्री कोली, जो कई साल अमेरिका में रह चुके हैं, हमें उद्योगशाला के सब विभागों को दिखा लाये। चित्र-विद्या, बढ़ई का काम, बेत, मिट्टी के बरतन, लोहार इत्यादि का सब काम यहां सिखाया जाता है। लड़कों के बनाये हुए सामान भी यहाँ बिकते हैं। शाला के निरीक्षण के बाद कोली जी हमें अपने तम्बू में ले गये और चाय-दूध तथा फल से हमारा स्वागत किया कोली जी ने स्थानीय उद्योग-धंधों के बारे में बहुत अध्ययन किया है तथा उनके पुनरुत्थान के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे हैं।

विधवाओं का प्रश्न

उद्योग-शाला से लौटकर हम लोग डेरे पर आ गये। भोजनादि समाप्त कर सोने की तैयारी में ही थे कि स्थानीय कालेज के संस्कृत प्रोफ़ेसर, जो एक काश्मीरी पण्डित हैं तथा सनातन धर्म के अध्यक्ष, जो पंजाबी सज्जन हैं, अपने कुछ अन्य मित्रों सहित जमनालाल जी से मिलने के लिए आ धमके। उनसे वार्तालाप करने पर मालूम पड़ा कि भारत के अन्य प्रान्तों की तरह वहाँ भी बाल विधवायें ८-१० वर्ष उम्र की देखने में आती हैं। भविष्य में अवश्य ही अब बाल-विधवाओं के दर्शन काश्मीर प्रान्त में न होंगे, क्योंकि गत वर्ष यह कानून पास हुआ है कि विवाह के समय लड़के की उम्र १८ वर्ष तथा लड़की की १४ वर्ष से कम न हो। इस कानून के पास होने के पहले मुसलमानों में भी बाल-विवाह होते थे, किन्तु विधवा-विवाह की प्रथा उनके समाज में रहने के कारण उनको ज़्यादा हानि नहीं उठानी पड़ती थी। इस कानून के बारे में हम लोगों ने कई जगह पण्डितों तथा मुसलमानों से उनकी राय पूछी तो सबों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। ब्रिटिश भारत के मुसलमान भाई तथा सनातन-धर्मावलम्बी हिन्दू जो शारदा बिल से इतना चिढ़ते हैं तथा अपने को सभ्य मानते हैं ज़रा अपने पहाड़ी काश्मीरी भाइयों से सबक लें।

सामाजिक अवस्था

काश्मीर-राज्य की कुल जन-संख्या आख़िरी गणना के अनुसार ३३,२०,५१८ है उसमें से जम्मू प्रान्त में १६,

४०,२५१ काश्मीर प्रान्त में १४,०७,०८६ तथा सीमान्त में २,७३,१७३ आदमी हैं। जम्मू को छोड़ कर काश्मीर प्रान्त में ९३ प्रति सैकड़ा मुसलमान तथा बाक़ी ७ सैकड़ा अन्य जातियाँ हैं। अन्य जातियों में सिखों को छोड़कर हिन्दुओं में सब ब्राह्मण हैं।

दोनों जातियों की आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था का यदि अवलोकन किया जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि मुसलमानों से पंडितों की अवस्था अच्छी है। यों रोना तो दोनों तरफ़ से ही है। राज के बड़े-बड़े कर्मचारी प्रायः हिन्दू ही हैं। श्रीनगर के कालेज में प्रायः ८० सैकड़े विद्यार्थी हिन्दू ही हैं। मुसलमान बालिकायें बहुत-कम संख्या में पढ़ती हैं। इससे यह तो स्पष्ट है कि हिन्दू शिक्षा में बहुत आगे बढ़े हुए हैं किन्तु काश्मीर की सब कारीगरी मुसलमानों के हाथ में है। पण्डित तो ऐसे स्वतंत्र काम करने में अपमान समझते हैं। और साहस करके काम आरम्भ करनेवालों को जातिच्युत करने की भी कोशिश करते हैं। यह अवस्था प्राय समस्त प्रान्तों में देखी जाती है।

श्रीनगर में आर्यसमाज की तरफ़ से एक बालिका-विद्यालय भी खुला हुआ है। राज्य की तरफ़ से बाहर गावों में कहीं-कहीं लड़कों के लिए पाठशालायें भी खोल दी गई हैं किन्तु लड़कियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। यदि व्यवस्था हुई भी तो जब तक राज्य की तरफ़ से क़ानून द्वारा शिक्षा अनिवार्य न बना दी जाय तब तक मुसलमान बालिकायें विद्यालय में न आवेंगी ऐसी मेरी धारणा है—

मुसलमानों में यहाँ मुख्यतः निम्नलिखित जातियाँ हैं।

(१) मीर, (२) बोंय या बांगी, (३) गनाई (४) लोन, (५) शेख, (६) वट्ट, (७) सुफ़ी, (८) रथर, (९) ठोकुर (१०) ताँतीए (११) पुण्डीत (१२) पायरेम (१३) वईम (१४) सय्यद (१५) मलिक।

उपर्युक्त सब जातियाँ आपस में खाना-पीना तो करती है किन्तु विवाह नहीं होता। मीर बोंय तथा सैयद ये तीनों जातियाँ अपने को सबसे ऊंचा समझती हैं तथा अन्य जातियों से बेटी का व्यवहार नहीं रखतीं। मीर सैयद और बोंय जाति की लड़कियाँ अपने घरों में लावेंगे किन्तु देंगे नहीं। गनाई में दो उपविभाग हैं। (१) जमीन्दार (२) डूम। यह डूम नीच जाति के माने जाते हैं तथा दूसरी किसी भी जाति से उनका बेटी-व्यवहार नहीं हो सकता। उपर्युक्त नामों को पढ़ने से यह स्पष्ट दिखलाई देगा कि यहाँ की जनता पहले हिन्दू ही थी तथा जो जातियाँ तब थीं वे अब भी उसी प्रकार मौजूद हैं। केवल नामों का थोड़ा अपभ्रंश हो गया है, जैसे राठौर की जगह रथर, ठाकुर की जगह ठोकुर, पण्डित की जगह पुण्डीत इत्यादि। काश्मीर में मुझे एक आश्चर्य की बात तो यह मालूम दी कि वहाँ के हिन्दू तो मुसलमानों के हाथ का पानी पी लेते हैं और ज़्यादा सुधारक खाना भी खा लेते हैं किन्तु ग़रीब से ग़रीब मुसलमान भी हिन्दू के हाथ का पानी न पियेगा और न खाना खायेगा। विवाह-शादियों में मिठाई या अन्य भोजन मुसलमान ही एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। इतनी ख़बरदारी अवश्य रखी जाती है कि भोजन के पात्र को उन के कपड़े में लपेट देते हैं।

अछूतों का प्रश्न

अछूतों का प्रश्न इस देश में नहीं है क्योंकि पण्डितों के सिवाय और कोई दूसरी क़ौम हिन्दुओं में नहीं है। मन्दिर सबके लिए खुले रहते हैं। बाहर से आये हुए अछूत हों या छूत, सब हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश कर सकते हैं। अहिन्दू के लिए अवश्य ही मनाई है जैसा कि हम लोगों ने शंकराचार्य मन्दिर के बाहर एक बोर्ड पर लिखा हुआ पढ़ा।

ग्रामों में मकान प्रायः दो-तल्ले बने होते हैं। जाड़े की ऋतु में लोग नीचे के तल्ले में ही अपना समय बिताते हैं। कमरों की बनावट बहुत ही विचित्र है। दरवाज़े बहुत छोटे हैं। हमारी पार्टी के प्रत्येक सभ्य को कम से कम एक दफ़ा इसका अनुभव हो ही गया। कमरों में खिड़कियाँ इतनी छोटी रहती हैं कि अन्दर सब समय सब ऋतुओं में प्रकाश नहीं पहुँच सकता।

श्रीनगर शहर में भी अन्य शहरों की तरह व्यभिचार का दौर-दौरा बहुत है। इसके मुख्य कारण मेरी समझ में तीन हैं (१) काश्मीरी स्त्रियों की कल्पित सुन्दरता (२) वहाँ की दरिद्रता तथा (३) बाहर से क्रीड़ा के लिए आये हुए धनिक-वर्ग की दुष्ट लालसा। बेचारी ग़रीब स्त्रियों के पाति-

मत धर्म को नष्ट करने के लिए धनिकों का अन्याय से पैदा किया हुआ पैसा काफ़ी प्रलोभन पैदा कर देता है।

लोग, विशेषकर मुसलमान इतने मैले रहते हैं कि उनको छूने को जी नहीं चाहता। पानी प्रचुर परिमाण में होने पर भी प्रकृति के इस प्यारे देश में सुगठित स्त्री-पुरुष अपनी स्वच्छता की तरफ़ बिल्कुल ध्यान नहीं देते। कपड़ों का मैलापन शायद ग़रीबी तथा ठण्ड के कारण हो किन्तु उनका शरीर भी वैसा ही गन्दा रहता है। शाल तथा जामा पर जिस प्रकार की दस्तकारी का काम वे लोग करते हैं उससे बाहर के आदमी को तो ऐसा ही मालूम होगा कि इन लोगों की रुचि बहुत बढ़ी चढ़ी होगी; किन्तु, आप उनके निजी कपड़ों को देखें, उनमें न तो आपको किसी प्रकार का आडम्बर दिखाई देगा न कोई व्यवस्था। इनके मैलेपन के बारे में पूछ ताछ करने पर एक सज्जन ने स्त्रियों के बारे में बहुत ही विचित्र बात बतलाई। मालूम नहीं यह कहाँ तक सत्य है। उनका कहना था कि स्त्रियाँ जान बूझकर साफ़ कपड़ा नहीं पहनतीं इसलिए कि साफ़ कपड़ा पहनना वेश्याओं का चिन्ह समझा जाता है। अन्दर तो वे लोग स्वच्छ वस्त्र पहनती हैं और बाहर से मैले धारण कर लेती हैं।

जीविका के साधन

काश्मीर का मुख्य धन्धा खेती है। खेती के सिवाय भेड़ें और चर्खा जीवन-निर्वाह में मदद करते हैं। भेड़ों का ऊन स्त्रियाँ कातती हैं और पुरुष इस ऊन को बुन कर अपने परिवार के गर्म कपड़ों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर बचा हुआ माल बेच देते हैं। गांवों में, शहरों में जंगलों में यहाँ तक कि नौकाओं में भी, जहाँ भी आप जायँगे आपको चर्खा ही चर्खा दिखाई देगा। काश्मीरी भाषा में चर्खे को 'इन्द्र' कहते हैं। यह इन्द्र शब्द चर्खे के लिए कितना उपयुक्त है। जिस प्रकार इन्द्र देवता पानी बरसा कर लोगों के पेट में अन्न पहुँचाते हैं उसी प्रकार यह चर्खा गरीब ग्रामीणों की लज्जा रखने में सहायक होता है।

ता० ५ को भोजन के बाद हम लोग श्रीनगर के नज़दीक के कुछ ग्रामों का निरीक्षण करने के लिए निकले।

चर्खे पर काश्मीरी रमणियाँ

हरे पर्वत के नीचे से होकर ग्रानहोर होते हुए चोडरू तक तांगे पर गये। ग्रानहोर में रास्ते के किनारे ही एक मैदान में मौलवी साहब करीब ४५ मुसलमान बालकों को पढ़ा रहे थे। यह पाठशाला स्टेट की तरफ़ से है। काश्मीर और जम्मू दोनों प्रान्तों की २॥ करोड़ रुपयों की कुल आमदनी में से १५ लाख रुपये शिक्षा के लिए खर्च होते हैं।

गांवों की हालत

चोडरू से करीब आध मील पैदल चलकर हम लोग दौलतपुरा गांव पहुँचे। गांव के अन्दर प्रवेश करते ही एक ७५ वर्ष का वृद्ध हम लोगों का अभिवादन करने के लिए सबसे आगे आ खड़ा हुआ। हम लोगों पर नज़र पड़ते ही उस वृद्ध का हृदय इतना प्रफुल्लित हुआ कि उसकी आँखों से प्रेम की अश्रु-धारा बहने लगी। उसकी आँखों में आँसू देखते ही हमने सोचा कि शायद यह बूढ़ा रो रहा है और कुछ लम्बी-चौड़ी शिकायत चर्खा-संघ के कर्मचारियों के विरुद्ध हम लोगों के पास करनेवाला है। किन्तु फिर दुभाषिये के द्वारा पूछने पर मालूम हुआ कि वे अश्रु बिन्दु तो निर्मल प्रेम के झरने से टपक रहे थे। अन्य भोले-भोले प्राणियों के चेहरे पर भी स्वागत का भाव देख कर हम लोग भी आनन्द से विह्वल हो गये। ग्रामवासियों ने हम लोगों के आगमन का समाचार सुन हमारे लिए एक विशाल छायादार वृक्ष के नीचे बिछावन बिछाया था। खाने के लिए कुछ फल भी लाकर रख दिये थे।

काश्मीरी स्त्रियाँ—धान कूटती हुई

इस ग्राम में मुख्य धंधा ऊन कातने, कपड़ा बुनने तथा खेती करने का है। गाँव में कुल ३५ घर हैं। उनमें आधे निवासियों के पास भेड़ें हैं; बाक़ी आधे अन्य लोगों के पास से ऊन ख़रीद कर अपने चर्खे को चलाते हैं।

यहाँ के बुनकर लोगों को चर्खा-संघ के आगमन के पूर्व पूरा काम नहीं मिलता था इसलिए ज़मींदारों के यहाँ ।≈) रोज़ पर पुरुष लोग काम किया करते थे। वहाँ भी रोज़ उनको काम नहीं मिलता था किन्तु अब बहुत-से घरों में पुनः चर्खे और करघे पूर्ण रूप से चालू हो गये हैं।

ग्रामों की स्त्रियाँ पश्मीना नहीं काततीं। हमने गांव वालों से पूछा कि जो कुशल औरतें हैं वे पश्मीना ख़रीद कर क्यों नहीं काततीं? उन्होंने कहा कि बाहर की स्त्रियाँ इस कला को नहीं जानतीं। फिर जब उनको यह कहा गया कि बालिकाओं को श्रीनगर भेज कर पश्मीना कातना

सिखाया जा सकता है तब, एक ने उठकर जवाब दिया कि 'जनाब औरतें तो कई कातना जानती हैं किन्तु वे नहीं काततीं। मेरी पत्नी श्रीनगर से आई हुई है और उसको यह कला मालूम भी है, किन्तु, वह बड़े शहर की बेटी होने के कारण इस छोटे गांव मे पश्मीना कातना अपना हलकापन समझती है' मैं समझता हूँ कि इस गरीब ग्रामीण की स्त्री की तुलना आजकल की कलकत्ते, पूना तथा बम्बई में आधुनिक शिक्षा पाई हुई स्त्रियों से करें तो इस प्रकार की कई बातें एक-सी मिलेंगी। मैंने कई जगह ऐसा सुना है कि शहरों की लड़कियाँ ग्रामों में विवाह कर लाई गईं कि बेचारे सुसराल वालों पर आफ़त आ जाती है।

गांव के उस बूढ़े से पूछने पर मालूम पड़ा कि महाराज रणवीरसिंह की मृत्यु के बाद से उस गांव में विलायती कपड़ा आना शुरू हुआ है। जहाँ विदेशी वस्त्र ने गांव में पैर रक्खा कि देशी बुनकरों की दशा दिन-दिन खराब होती गई। यूरोप के महासमर के समय सेना के लिए ऊनी कपड़ों की मांग होने के कारण पुनः सब कंघे चालू हो गये थे किन्तु लड़ाई बन्द होने के बाद फिर माँग गिर गई। यदि भारतवासियो की माँग हाथ के कते और बुने कपड़े की दिन-दिन बढ़ती गई तो इन लोगों की दशा भी सुधरती जायगी। ऊन से निम्नलिखित चीज़े बनते हैं—

( ) लोई—यह २ फर्दों को जोड़कर बनाई जाती है। एक फर्द ५ गज़ लम्बा और २७ इंच चौड़ा होता है। ताना और बाना दोनों में दुहरा धागा लगाया जाता है। लोई की विशेषता यह है कि यह कपड़ा जब ३-४ वर्ष ओढ़ने या बिछाने के बाद खराब हो जाने के कारण नर्म पड़ जाता है तथा उसमें गरमी देने की शक्ति घट जाती है तब इसको मरोदे की क्रिया से पट्टू बना लेते हैं। पट्टू कोट इत्यादि बनाने के काम में आता है। इस प्रकार एक लोई का उपयोग कम से कम १० वर्ष तक हो सकता है।

(२) टवीड—यह बहुत प्रकार का बनता है। साधारणतः एक तांका १५ गज़ लम्बा और २४ से २६ इंच तक चौड़ा होता है। इसमें भी धागे दुहरे लगाये जाते हैं। इस कपड़े की पोशाक बहुत अच्छी बन सकती है। शौकीनों की आवश्यकताओं की पूर्ति इस कपड़े से बहुत सुगमतापूर्वक हो सकती है।

(३) रग—यह ७ फुट लम्बा और ५ से ५४ इंच तक चौड़ा बनाया जाता है।

(४) कम्बल—सफ़ेद और रंगीन दोनो प्रकार के तैयार होते हैं। इसकी बुनावट में एकहरे धागे ही लगाये जाते हैं। लम्बाई ३ गज़ और चौड़ाई ५२ से ५४ इंच तक रहती है। (अपूर्ण)

क्रान्तिकारी नास्तिक की आस्तिकता

(श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी)

[यह लेख विक्टरह्यूगो के जगत्-प्रसिद्ध उपन्यास Les Miserables के प्रथम खण्ड के एक अध्याय का संकलन है। डी—नगर के बिशप के गुणों का वर्णन करते हुए, लेखक इस घटना का वर्णन करता है।—सं०]

नगर के पास एकान्त में एक आदमी अकेला रहा करता था। फ्रांस की राज-क्रांति के समय वह राष्ट्रीय जन-सभा का सदस्य था। उसका नाम 'ग—' था। इस समय फ्रांस में राज-सत्ता फिर स्थापित हो चुकी थी। इसलिए क्रांति के समय की बातों पर लोग नाक भौं सिकोड़ने लगे थे। राष्ट्रीय-जन-सभा का बड़ा ही भयंकर दृश्य खींचा जाता था। किसी का किसी समय जन-सभा का सदस्य होना कलंक की बात समझी जाती थी। लोग कहते थे, अजब ज़माना था वह जब एक दूसरे को 'तू' और 'तेरा' शब्द द्वारा सम्बोधित किया जाता था; और लोग एक दूसरे को 'नागरिक' नाम से पुकारते थे इस एकान्तवासी आदमी को भी नगर के निवासियों ने राक्षस समझ रक्खा था। यद्यपि बादशाह* के मारे जाने के सम्बन्ध में उसने अपनी राय नहीं दी थी तो भी वह आधा राज-हत्याकारी समझा जाता था। उसकी गणना बहुत भयंकर प्राणियों में थी। लोगों को इस बात का बड़ा आश्चर्य था कि राज-सत्ता के फिर स्थापित हो जाने पर भी यह आदमी अपने पिछले अपराधों के लिए अदालत में क्यों नहीं घसीटा गया? वे कहते थे, 'यदि इसका सिर न काटा जाता तो भी इसे देश से तो निकाल ही देना चाहिए था। इस पर भी वह नास्तिक है, जैसा कि इसी प्रकार के सभी लोग हुआ करते हैं!" नगर से दूर भयानक जंगल के कोने में यह आदुर्मी रहा करता था। इसके पास पड़ोस में कोई नहीं रहता था। न उस तरफ़ कोई सड़क थी, न पगडण्डी ही।

कभी-कभी बिशप उस दिशा की ओर देखता और मन ही मन कहता—'उधर एक ऐसी आत्मा का निवास है जो बिल्कुल अकेली है। मेरा कर्तव्य है कि मैं उससे मिलने जाऊँ।' बिशप का यह विचार कुछ ही क्षण रहता, बहुत ही शीघ्र लोप हो जाता। उसके हृदय में भी इस व्यक्ति के प्रति वैसा ही विचार था जैसा कि अन्य लोगों का। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि बिशप ने उस ओर अपने कदम बढ़ाये, परन्तु फिर लौट पड़ा। एक दिन नगर में यह ख़बर फैली कि गड़रिये का जो लड़का 'ग—' की कुछ सेवा किया करता है, वह डाक्टर को बुलाने नगर में आया है। उस बूढ़े व्यक्ति की दशा खराब हो रही थी, वह मर रहा था। ऐसा भासित होता था कि रात भी न कटेगी। यह समाचार सुनकर 'डी' नगर के बहुत से निवासी खुश हुए। बिशप ने जब यह सुना तब छड़ी उठाई, लबादा ओढ़ा और चल दिया। सन्ध्या हो चली थी। सूर्य डूबते-डूबते बिशप उस स्थान पर पहुँचा। ज्यों-ज्यों वह पास पहुँचता जाता था उसके शरीर की धमनियों की गति तेज होती जाती थी। एक खाई को लाँघकर वह एक काँटों की बाड़ी के पास पहुँचा। उसमें होकर जब निकला तो उसके सामने एक वीरान बगीचा पड़ा; कुछ झाड़ियाँ थीं, जिनके पीछे एक टूटा-फूटा परन्तु साफ-सुथरा झोंपड़ा बना हुआ था। अंगूर की बेल सामने छाई हुई थी। दरवाज़े पर कुर्सी पड़ी थी। सफ़ेद बालवाला वह बूढ़ा उस कुर्सी पर बैठा था। अस्ताचल की ओर जाते हुए अंशुमाली की ओर उसकी दृष्टि थी। गड़रिये का लड़का उसके पास खड़ा एक दूध भरा कटोरा उसकी ओर बढ़ा रहा था। बूढ़े ने, सूर्य की ओर से अपनी मुस्कराहट भरी दृष्टि हटाकर, बालक को देखते हुए उससे कहा—'मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, अब मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं।'

इसी समय बिशप आगे बढ़ा। उसके पैरों की आहट

*फ्रांस की राज्य-क्रान्ति में जन-सभा के फैसले से बादशाह लुई को प्राण-दण्ड मिला था।

सुनते ही बूढ़े ने अपना सिर फेरा। उसके चेहरे से आश्चर्य का भाव प्रकट हो रहा था। वह बोला — जब से मैं यहाँ रहता हूँ तब से आज यह पहला अवसर है कि मुझ से मिलने आया। महाशय आप कौन हैं?

बिशप ने उत्तर दिया - मेरा नाम बीन वेन्यू माइरील है।

बूढ़ा—बीन वेन्यु माईरील मैंने यह नाम सुना है। क्या आप वही हैं जिन्हें लोग 'दीनबन्धु महाशय' कहते हैं?

बिशप हाँ।

मुस्कराते हुए बूढ़े ने कहा — तब तो आप हमारे बिशप हैं। आइए, पधारिए।

यह कहकर उसने हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया। परन्तु बिशप ने अपना हाथ नहीं बढ़ाया। वह बोला 'यह खुशी का बात है कि मुझे जो खबर मिली था वह गलत है। आप अभी बीमार नहीं मालूम पड़ते।'

बूढ़ा बोला —' महाशय मैं बहुत जल्द अच्छा हो जाऊँगा।' ठहर कर फिर वह बोला—'तीन घंटे में मैं मर जाऊँगा।' फिर उसने कहना आरम्भ किया 'मुझे कुछ चिकित्साज्ञान है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मौत किस तरह होती है कल मेरे पैर ठण्डे थे। आज घुटनों तक ठंडक पहुँच गई। इस समय कमर तक पहुँच चुकी है। जहाँ हृदय तक पहुँची कि बस सब समाप्त सूर्यास्त कितना भला लगता है प्रकृति की शोभा के अन्तिम बार दर्शन करने के ही लिए मैं यहां घूम कर बैठ गया हूँ। आप कुछ बोलिए, इसमे मुझे थकावट नहीं होग। आपने बहुत अच्छा किया। आप ऐसे आदमी को देखने के लिए आये, जो मर रहा है। यह अच्छा है कि इस समय कोई साक्षी हो। प्रत्येक आदमी को अपनी-अपनी कुछ लालसा हुआ करती है। मैं भी चाहता हूँ कि मैं उषःकाल तक जीवित रहूँ परन्तु मैं जानता हूँ कि मुश्किल से तीन घंटे बचूँगा। रात्रि ही के समय अंत होगा। परन्तु क्या हर्ज है? बहुत सीधी-सादी बात है। इसके लिए प्रातः काल की क्या ज़रूरत? अच्छी बात है, तारावली के प्रकाश में ही मेरा देहान्त हो।' फिर मुड़ कर उसने बालक से कहा—'बच्चे, तू जा और सो रह। तू कल रात भर जागता रहा। अब तू थका हुआ है।'

बालक चला गया। बूढ़ा बड़बड़ाने लगा—"जब वह सो जायगा उस समय मैं मरूँगा। उसका सोना और मेरा मरना दोनों अवस्थायें नींद की है। और दोनों का यह कैसा अच्छा जोड़ है।"

बिशप पर इन बातों का कोई विशेष असर नहीं हुआ लोग उसका बहुत आदर किया करते थे। अपने बड़े पद के कारण वह सर्वत्र 'श्रीमान्' के नाम से पुकारा जाता था। इन सम्मानों पर वह हँसा करता। परन्तु, वहाँ उस बूढ़े द्वारा ऐसा बेतकल्लुफ़ी के साथ सम्बोधित किये जाने पर उसे कुछ बुरा लगा उसके मन में यह विचार उठने लगा कि वह इस व्यक्ति के साथ कड़ाई से पेश आवे। इस प्रकार के भावों के मन में उदय होने का कारण कुछ यह था कि यह व्यक्ति जन सभावादी था और कुछ यह कि किसी समय प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में संसार का एक शक्तिशाली व्यक्ति समझा जाता रहा होगा बूढ़े ने बिशप के साथ जो व्यवहार किया उसमें शिष्टता की कोई कमी न थी और उसमें नम्रता भी थी। बिशप बड़े ध्यान से उसे देखने लगा, ऐसे ध्यान से, जिसमें सहानुभूति न थी। यदि किसी दूसरे आदमी को वह इस प्रकार देखता तो वह अपने आप को निरस्करणीय समझता, परन्तु यहां बात ही कुछ और थी। इस प्रकार के आदमियों को, अर्थात् जन सभा से सम्बन्ध रखनेवाले आदमियों को वह आततायी समझता था। वह समझता था कि इस प्रकार के आदमी दया के भी पात्र नहीं

'ग' बहुत शांत था। सीधे कद का था। उसकी आवाज़ सुरीली थी। ८० वर्ष से अधिक का था। शरीर ऐसा सुन्दर कि शरीर-शास्त्र के जाननेवाले आश्चर्य करें। मौत सिर पर, परन्तु स्वास्थ्य में विकार के कोई लक्षण नहीं। दृष्टि में प्रखरता थी, स्वर में दृढ़ता थी, चेष्टायें बहुत अच्छी थीं। मालूम होता था कि यमदूत यदि आवें तो उसे देखकर उलटे पांव लौट जाएँ। यह समझें कि भूल हुई। वह मर रहा था परन्तु इसलिए, कि वह मरना चाहता था। उसके पैर ठण्डे हो गये थे, परन्तु उसका

मस्तिष्क शक्ति से परिपूर्ण था। 'अलिफ लैला' में एक क़िस्सा है कि एक बादशाह था, जिसका ऊपर का धड़ मांस का था और नीचे का संगमरमर का। कुछ ऐसी ही बात यहाँ भी थी। बिशप उसके पास एक पत्थर पर बैठ गया। बातें होने लगीं। व्यंग्यात्मक ढंग से बिशप ने उससे कहा—'मैं आपको बधाई देता हूँ। कम-से-कम आपने इतना तो किया कि बादशाह की हत्या के सम्बन्ध में अपनी राय नहीं दी।'

बिशप ने 'कम-से-कम' शब्द पर जो ज़ोर दिया था उसे बूढ़े ने अनुभव नहीं किया। तो भी उसके चेहरे से मुस्कराहट दूर हो गई, और वह बोला—'महाशय, मुझे बहुत बधाई न दीजिए। मैंने अत्याचारी के विनाश के पक्ष में अपनी राय दी थी।'

बिशप ने पूछा—'इससे आपका क्या मतलब?'

बूढ़े ने उत्तर दिया—'मेरा मतलब यह है कि मनुष्य के ऊपर अज्ञानरूपी अत्याचारी को अधिकार है। मैंने इस अत्याचारी के उठा दिये जाने के पक्ष में अपनी राय दी थी। इसी अत्याचारी की सम्पत्ति है राज-सत्ता। असत्य से राज-सत्ता के अधिकारों का उदय होता है। सत्य से विज्ञान का उदय होता है। मनुष्य पर जो शासन हो, उसे वैज्ञानिक होना चाहिए।'

बिशप बोला—'और विवेक-सम्मत भी।'

बूढ़े ने जवाब दिया—'एक ही बात है। विवेक हमारा अन्तर्ज्ञान है।'

बिशप इन वाक्यों को आश्चर्य के साथ सुनता रहा।

बूढ़ा फिर बोला—'आप बादशाह लुई सोलहवें* की ओर इशारा करते हैं। मैं कहता हूँ, बात ऐसी नहीं है। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि मुझे किसी भी आदमी के प्राण लेने का अधिकार है। परन्तु, बुराई का नाश कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैंने अत्याचारी के पतन के लिए अपनी राय दी थी। अर्थात्, मैंने राय दी इसलिए कि—जो प्रथा स्त्रियों को वेश्या-वृत्ति धारण करने के लिए विवश करती है, वह नष्ट हो जाय; जो प्रथा मनुष्यों को गुलाम बनाती है वह मिट जाय; जो प्रथा बच्चों को अज्ञानान्धकार में रखती है उसका अन्त हो जाय। प्रजा-तन्त्र के पक्ष में राय देकर मैंने स्पष्ट रूप से राय दी थी इस बात के लिए कि देश में मातृत्व का भाव बढ़े, शान्ति की आभा फैले, ज्ञान की किरणें दूर तक पहुँचें; अज्ञान और आडम्बर के किले ढा जायँ, पुराना संसार नष्ट हो—वह पुराना संसार जिसमें मनुष्य के लिए सर्वत्र विपदा ही-विपदा थी, और उस युग का आविर्भाव हो, जिसमें मनुष्य-जाति को सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द दिखाई दे',

बिशप टोककर बोला—'आनन्द भी कैसा? बहुत खोटा!'

बूढ़ा बोला—हाँ, उसे आप क्लेश-मिश्रित आनन्द कह सकते हैं। इस समय, १८१४ की वह आँधी आने के पश्चात्, जिसमें फ्रांस में राजसत्ता की फिर स्थापना हुई, आनन्द का लोप हो गया। खेद के साथ मैं इस बात को मानता हूँ। काम अधूरा रह गया था। हमने प्राचीन दक़ियानूसी बातों को ऊपर से तोड़-फोड़ डाला था, पर हम उनका समूल नाश न कर पाये थे। बुराइयों का नाश कर देना ही यथेष्ट नहीं, स्वभाव तक बदलने की आवश्यकता है। जाल टूट गया था परन्तु जाल के तार बच गये।'

बिशप—आपने तोड़-फोड़ खूब की। तोड़-फोड़ उपयोगी हो सकती है, परन्तु जो तोड़-फोड़ क्रोध के आवेश में की जाय, मैं उसे ठीक नहीं समझता।

बूढ़ा—क्रोध! बिशप महाशय, न्याय-भावना भी क्रोध रखती है। उसका क्रोध उन्नति का एक अंश है। कोई कुछ भी कहे, परन्तु, यथार्थ बात यह है कि महात्मा ईसा के बाद मनुष्य-जाति ने उन्नति की ओर जो सबसे बड़ा पग बढ़ाया है, वह फ्रांस की राजक्रान्ति की ज्वाला के रूप में थी। भले ही वह अधूरी हो, परन्तु वह है दिव्य। समाज के जो हीन और गुप्त बन्धन थे वे ढीले पड़ गये। हृदयों में उसने मृदुता उत्पन्न की, उन्हें शान्त किया, उन्हें तुष्ट किया और उन्हें प्रकाशित किया। सभ्यता की लहरें पृथ्वी भर में हिलोरें मारने लगीं। फ्रांस की राजक्रान्ति ने मनुष्यत्व को ऊँचा उठा दिया।'

---

* लुई सोलहवां उस समय फ्रांस का बादशाह था जब राजक्रांति हुई थी। फ्रांस में उस समय की जन-सभा ने राजसत्ता का नाश करके इसका सिर काट लिया था।

बिशप ने सिर पर हाथ रखकर कहा:—'ठीक है। परन्तु वह आपकी १७९३ वाली लीला!'

बूढ़ा कुरसी पर से उठ-सा पड़ा और ज़ोर से बोला—'हां, १७९३! मैं यह प्रतीक्षा ही कर रहा था कि आप इस बात को कहेंगे पन्द्रह सौ वर्ष से बादल उमड़ रहे थे। पन्द्रह शताब्दियों के बाद वे मूसलाधार बरस पड़े। जो बिजली चमकी, उसका आप तिरस्कार करते हैं?'

बिशप ने इस बार सँभलकर उत्तर दिया— न्याय-कर्ता न्याय के नाम पर काम करता है, धर्माचार्य धर्म के नाम पर। बिजली ने किस नाम पर काम किया! और फिर बेचारे लुई सत्रहवें* ने क्या अपराध किया था?'

बूढ़े ने बिशप की बाँह पर अपना हाथ रखकर कहा-'लुई सत्रहवाँ! आप किसके लिए रोते हैं? उस अबोध बालक के लिए? यदि हाँ, तो अच्छी बात है, मैं भी आपके साथ आँसू गिराता हूँ। यदि उस राजकुमार के लिए? तो मैं ज़रा सोच लूँ। कारटूस नाम का एक आदमी था। उसके भी एक छोटा भाई था, निरा अबोध बच्चा, उसे सजा मिली थी, और केवल इस लिए कि वह कारटूस का भाई था, कि वह फाँसी से लटकाकर मार दिया जाय। यह भी बड़ी ही करुणाजनक बात है और उससे कम करुणाजनक नहीं जितनी कि १५ वें लुई के पोते की बात है, जो अबोध बालक था और जो केवल इसलिए कैदखाने में मार दिया गया कि वह लुई पन्द्रहवें† का पोता था।

बिशप बोला—महाशय, मैं इस प्रकार नामों का लिया जाना पसन्द नहीं करता।

बूढ़ा—किस नाम का? कारटूस, या लुई पन्द्रहवां? किसके सम्बन्ध में आपको चिन्ता है?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। बिशप को यह खेद हो रहा था कि व्यर्थ आया। तो भी उसके मन पर इन बातों का असर हुआ था। बूढ़े ने कहना आरम्भ किया - 'धर्माचार्य महाशय, आपको कटु-सत्य नहीं भाता परन्तु महात्मा ईसा को वह भाता था। वह खरी बातें कहते थे। छोटे और बड़े का उन्होंने कभी अन्तर ही नहीं माना। बड़े से बड़ों को उन्होंने वैसा ही समझा, जैसा छोटे से छोटों को। जो अबोध हैं, वे एक समान हैं, चाहे वे रेशम से ढँके हों, चाहे चिथड़ों से। आपने लुई सत्रहवें का ज़िक्र किया। आइए, हम सब अबोधों के लिए, शहीदों के लिए, सब बच्चों के लिए, चाहे वे ऊँची श्रेणी के हों, चाहे नीची के, उन सबके लिए एक साथ मिलकर विलाप करें। बादशाहों के बच्चों के लिए मैं रोने को तैयार हूँ, यदि आप मेरे साथ प्रजा के बच्चों के लिए, उसी तरह रोने को तैयार हों।'

बिशप - मैं सब के लिए रोता हूँ।

बूढ़ा—और क्या समान रूप से? यदि पलड़ा झुके, तो उसे झुकने दीजिए प्रजा के पक्ष में, क्योंकि उसने बहुत काल तक तकलीफें उठाई हैं।

थोड़ी देर तक फिर सन्नाटा रहा। बूढ़ा फिर बोला—लोगों ने बहुत दिनों तक सहा—खैर। आप सोलहवें लुई के सम्बन्ध में मेरे पास बातें करने के लिए क्यों आये? मैं आपको नहीं जानता। जब से मैं इस प्रदेश में आया हूँ, मैं इस जगह से कहीं बाहर नहीं गया। उस लड़के के सिवा, जो मेरी सेवा करता है, किसी से नहीं मिला। कभी-कभी आप के सम्बन्ध में मैंने कुछ बातें सुनी थीं; परन्तु, अधिक नहीं। चालाक आदमी अनेक प्रकार से सीधे-सादे आदमियों पर अपनी धाक जमा लिया करते हैं। मैंने आपकी गाड़ी के आने की ध्वनि नहीं सुनी। शायद आप उसे दूर सड़क पर छोड़ आये। आपने अपने को 'बिशप' बतलाया, परन्तु अभी तक मैं यह नहीं समझ पाया कि आपका नैतिक रूप है क्या? इसलिए मैं अपने प्रश्न को दोहराता हूँ, कि आप हैं कौन? आप बिशप हैं बड़े भारी पदाधिकारी हैं, लक्ष्मी आपके पैरों पर लोटती है, आनन्द से दिन कटते हैं; १५ हज़ार फ्रैंक तनख्वाह मिलती है; १० हज़ार फ्रैंक भत्ता मिलता है; इसके अतिरिक्त सेवा के लिए नौकर-चाकर, सवारी के लिए गाड़ी-घोड़े, और रहने के लिए महल प्राप्त हैं। आप गाड़ियों पर विचरते हैं। महात्मा ईसा नंगे पैर मारे-मारे फिरते थे। आपकी शान और वैभव से भी मैं

---

* लुई सत्रहवां लुई सोलहवें का पुत्र था। माता-पिता के मारे जाने के पश्चात् वह कैद में डाल दिया गया। कहते हैं कैदखाने में वह मार डाला गया।

† फ्रांस का अत्यंत विलासी और निरंकुश राजा।

आपकी पवित्रता न जान सका। आप शायद इसलिए आये कि मुझे बुद्धि का मार्ग दिखायें। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि मैं किससे बातें कर रहा हूँ और आप हैं कौन?

बिशप ने सिर झुकाकर उत्तर दिया--'भूलोक का एक तुच्छ प्राणी।'

बूढ़े ने बड़-बड़ा कर कहा--'तुच्छ प्राणी, और चलते हैं गाड़ी में।'

बिशप ने नम्रता से उत्तर दिया--'अच्छा, महाशय, ऐसा ही सही, परन्तु यह तो बतलाइए मेरी गाड़ी, मेरा वैभव मेरा साज-सामान, मेरा लम्बा वेतन मेरा महल और मेरे नौकर इस बात को किस तरह सिद्ध करते हैं कि दया अच्छा गुण नहीं है? उसका पालन कर्तव्य नहीं, और १७९३ में जो क्रूर घटनायें घटीं, वे उचित थीं?'

बूढ़े ने अपने माथे पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया--उत्तर देने के पहले मैं आप से क्षमा-प्रार्थी हूँ। मुझसे अपराध हुआ। आप मेरे घर में हैं। आप मेरे अतिथि हैं, मुझे आपके साथ शिष्टता का व्यवहार करना चाहिए। आप मेरे विचारों पर बहस कर रहे हैं। उचित यह है कि मैं आपकी दलीलों का जवाब दूँ। आपकी धनाढ्यता और आपका वैभव ऐसी बातें हैं जिनसे मैं इस बहस में लाभ उठा सकता हूँ परन्तु यह भलमनसाहत नहीं है कि मैं ऐसा करूँ। मैं अब ऐसा नहीं करूँगा।'

बिशप ने कहा--'धन्यवाद।'

बूढ़ा बोला--'मुझे आपकी बात का जवाब देना है। हाँ, हम क्या कह रहे थे? आपने क्या पूछा था? यही न, कि १७९३, क्रूरता के दोष से कैसे मुक्त है?

बिशप--हाँ, यही प्रश्न था। इस पैशाचिक कृति के सम्बन्ध में आप क्या कहेंगे, जब ग्लोटीन (सिर काटने का यंत्र) मनुष्यों के सिर धड़ से अलग करती थी तब मारे * उसे देख-देखकर खुशी से तालियाँ बजा रहा था?

बूढ़ा--और, इसे आप क्या कहेंगे, जब सत्रहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टेण्ट लोगों के सिर धड़ से अलग किये गये थे तब उनकी लाशों के ऊपर आपके बड़े भारी दार्शनिक धर्माचार्य बोसू † ने बड़े आनन्द और उल्लास के साथ हर्षगान गाया था।

उत्तर बहुत कड़ुआ था। बिशप के पैर उखड़ गये। बोसू की यह निन्दा सुनकर उसे बहुत बुरा लगा। इधर बूढ़ा भी हाँफने लगा। उसकी आवाज़ टूट गई, दम उखड़ गया। तो भी उसके नेत्रों में ज्योति थी। वह चुप नहीं रहा। वह बोला--"मैं कुछ शब्द और कहना चाहता हूँ। क्रान्ति क्या थी? यदि उसके यथार्थ रूप को देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि मनुष्य-जाति का वह महान उपयोग था। १७९३ की घटनायें उसकी काली कोरें हैं। आप उसे क्रूर कहते हैं, पर कृपा कर यह तो बतलाइए कि राज-सत्ता कैसी है? क्रान्तिकारियों को आप डाकू, उचक्के, भयंकर और बदमाश, राक्षस और नर पिशाच के नाम से याद करते हैं, परन्तु आपके अमीर, उमरा, नवाब और बादशाह क्या हैं? उनके लिए क्या इन शब्दों का उपयोग नहीं किया जा सकता? महाशय मुझे रानी मेरी एण्टोनेट ‡ का बहुत दुःख है, परन्तु महाशय, मुझे उस फ्रांसीसी स्त्री का भी दुःख है, जो १६८५ में, १४ वें लुई के समय में दूध पिलाते हुए अपने बच्चों से अलग की गई, कमर तक उसके कपड़े उतार लिये गये और एक खम्भे से बाँध दी गई; उसका बच्चा उसके सामने रखा गया; दूध के बोझ से उसकी छाती सूज गई थी; बच्चे के वियोग से उसका हृदय टूक-टूक हुआ जाता था; भूखा और निर्बल बच्चा देखता और फूट-फूटकर रोता था, और दूसरी ओर, जल्लाद माता के सिर पर खड़ा हुआ कहता था 'या तो अपना धर्म बदल, या बच्चे को मरने दे।' महाशय, बतलाइए, इस यंत्रणा को आप क्या कहेंगे? भूलिए नहीं, क्रान्ति वैसे ही नहीं हो पड़ी, उसके कुछ कारण थे। जो अनीतियाँ उस समय हुईं भविष्यत उन्हें भूल जायगा; क्योंकि क्रान्ति ने जो उद्योग किया,

* फ्रांस की राज-क्रांति का एक कर्णधार।

† सत्रहवीं शताब्दि का फ्रांस का एक बड़ा भारी दार्शनिक।

‡ लुई सोलहवें की स्त्री जो जन-सभा की आज्ञा से मारी गई।

वह था केवल इसलिए कि संसार पहले की अपेक्षा अधिक अच्छा बने। उसके अभ्यन्तर प्रहारों में मनुष्य-जाति के प्रति लाड़ और प्यार की भावना छिपी थी। मुझसे अब अधिक नहीं कहते बनता, मैं मरने ही वाला हूँ। (बिशप पर से दृष्टि हटाकर, दूसरी ओर देखते हुए और शांति के के साथ बड़बड़ाते हुए) आगे बढ़ने के लिए जो पीड़ायें पहुँचाई जाती हैं, उन्ही का नाम क्रान्ति है। जब पीड़ाओं का समय समाप्त होता है तब यह बात अच्छी तरह मान ली जाती है यद्यपि कष्ट तो हुए परन्तु वे आगे ज़रूर बढ़े।"

बूढ़े ने बिशप को निरुत्तर-सा कर दिया, तो भी बिशप ने एक वार और किया। वह बोला—"उन्नति का ईश्वर में विश्वास होना चाहिए बुराई से भलाई नहीं पैदा हो सकती। नास्तिकों से मनुष्य जाति का कल्याण नहीं हो सकता।"

बूढ़े ने जवाब दिया। वह काँप रहा था। आकाश की ओर उसने दृष्टि फेंकी, उसकी आँखें छलछला उठीं। बहते हुए आँसू गालों पर जा पहुँचे काँपती हुई आवाज से, धीरे-धीरे वह अपने ही आप इन शब्दों में बड़बड़ाने लगा—"आदर्श! आदर्श!! तू ही सब कुछ है, तेरे सिवा और है ही क्या।" थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात आकाश की ओर अपनी उँगली उठाकर वह फिर बोला—"अनन्त का अस्तित्व है, वह यहाँ है, वहाँ है, सब जगह है। यदि अनन्त अहम्मय न होता, तो यह अहम् ही परिधि होता, और अनन्त का अस्तित्व ही न होता। परन्तु अनन्त है, तब उसका अहम् है, यह अहम् ही ईश्वर है,"

बड़ी ही भक्ति भावना से बड़ी ही श्रद्धा के साथ बूढ़े ने इन शब्दों का उच्चारण किया। कह चुकने के पश्चात उसने नेत्र बंद कर लिये। कुछ ऐसा तल्लीन-सा हो गया, मानो कुछ उसे दिखाई देता है। पहले से ही थक चुका था। इस प्रयास ने उसे और भी थका डाला। उसका अन्तिम समय आ गया। बिशप इस अवस्था को पहचान गया। पहले वह बहुत रूखा था। बूढ़े की बातों ने धीरे-धीरे उस-पर असर किया। उसकी सहृदयता उमड़ती आ रही थी। बूढ़े के बन्द नेत्रों की ओर देखकर वह उसके पास खिसक आया और उसके सिकुड़न पड़े हुए ठंडे हाथों को अपने हाथ में लेकर बोला—'यह ईश्वर की याद का समय है। इस समय हम दोनों का मिलना व्यर्थ न जाना चाहिए। व्यर्थ जायगा, तो मन में एक खेद रह जायगा।'

बूढ़े ने फिर अपने नेत्र खोले। उसके मुख-मण्डल पर शांति विराजमान थी। दृढ़ता के साथ वह बोला—'बिशप महाशय, मैंने अपना सारा जीवन, अध्ययन और विचारों में काटा है। साठ वर्ष की उम्र में मुझे देश-सेवा का निमंत्रण मिला। मैंने इस आज्ञा को शिरोधार्य समझा। अनीतियाँ थीं, मैंने इनसे युद्ध किया; अन्याय थे, मैंने उनका नाश किया, सिद्धान्तों और स्वत्वों की मैंने महिमा गाई; फ्रांस पर जब हमले हुए, मैंने अपनी छाती को ढाल बनाया। मैं कभी अमीर न था, सदा ग़रीब था। देश के धन की अनन्त राशियाँ मेरे सुपुर्द थीं। मैं उनका रक्षक था; परन्तु बाज़ार के भोजनालय में जाकर कुछ पैसे देकर सदा अपना पेट भरा करता था। अत्याचार-पीड़ितों का साथ देता था, विपन्न लोगों को सन्तोष देता था। यह सत्य है कि मैंने गिरजाघर की वेदी पर पूजा के वस्त्र छीने, परन्तु यह इस-लिए कि मुझे देश के घावों पर उनके बाँधने की आवश्यकता थी। मैं सदा मनुष्य जाति की उन्नति का पक्षपाती रहा। परन्तु जिस उन्नति में दया-भाव नहीं था उसका मैंने विरोध किया। समय-समय पर मैंने अपने दुश्मनों अर्थात आपके मित्रों की रक्षा भी की। समय-समय पर मैंने उपासना के स्थानों को भी बचाया। जो कुछ कर्तव्य था और जो कुछ कल्याण-कर था, उसे मैंने अपनी शक्ति के अनुसार किया। इसके पश्चात समय ने पलटा खाया। मेरा पीछा किया गया। मैं तंग किया गया। मुझे गालियाँ और शाप दिये गये। मेरे ऊपर थूका गया और मेरा बहिष्कार किया गया। आज इतने वर्षों के बाद इन सफ़ेद बालों का धारण करने वाला होने पर भी मेरे सम्बन्ध में कुछ लोगों को यही विश्वास है कि उन्हें मेरा तिरस्कार करने का पूरा अधिकार है। ग़रीब अनजान लोग मुझसे घृणा करते हैं। बिना किसी के प्रति किसी प्रकार का घृणा भाव रखते हुए मैं लोगों के इस तिरस्कार-भाव को सिर-आँखों पर रखता हूँ। इस समय मेरी अवस्था ८६ वर्ष की है। मौत मेरी आँखों के सामने है। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप मुझसे क्या चाहते हैं?'

बिशप उसके सामने घुटनों के बल गिर गया और सिर झुका कर बोला—आपका आशीर्वाद !

सिर उठाकर जब बिशप ने उसकी ओर देखा तब उसके चेहरे पर अमर शांति विराजमान थी। बूढ़ा चल बसा था। बिशप के हृदय पर इस घटना का बड़ा असर पड़ा। रात भर वह ईश्वर-प्रार्थना करता रहा। दीन-दुखियों के प्रति उसका स्नेह और भी बढ़ गया। जब-कभी उस बूढ़े का ज़िक्र होता, बिशप की विचित्र दशा हो जाती। नगर वाले बहुधा बिशप के बूढ़े से भेंट की आलोचना किया करते। वे आपस में कहते "बिशप को उस दुष्ट के पास नहीं जाना चाहिए था। ये क्रांतिकारी सब-के-सब बड़े विचित्र होते हैं। इनके पास तो खड़ा भी नहीं होना चाहिए। बिशप ने इस दुष्ट के पास क्या देखा होगा ? यही देखा होगा कि शैतान उस दुष्ट के शरीर से उसकी आत्मा बाहर निकाल रहा है।" एक दिन एक धनवान स्त्री ने, जो अपने को हास्य-रस में बहुत प्रवीण समझती थी, हँसते हुए बिशप से पूछा—"महोदय, लोग बहुधा आपस में यह पूछा करते हैं कि, आप लाल टोपी कब से लगाया करेंगे ?" क्रांतिकारी लोग लाल रंग का उपयोग इस प्रकार करते थे। इस स्त्री ने इस तरह बिशप का उपहास किया। बिशप ने तुरन्त उत्तर दिया—"लाल रंग ज़रा तेज़ रंग है, परन्तु यह एक सौभाग्य की बात है कि जो लोग उसे टोपियों में देखकर इसकी निन्दा करते हैं, वही उसके आदर में उस समय माथा झुकाने लगते हैं जब कोई ऊँचा पदाधिकारी अपने पद के प्रदर्शन के लिए उसका उपयोग करता है।"

विप्लव में

(श्री लहरी)

आग बरसने दो, जलने दो, प्राण-प्राण में भूनो !
क्यों 'माँ' के आँचल में धरते भेंटें सूनी-सूनी !!
'बड़ी धरोहर' है कब तक की, दो दस दिन का सौदा !
ओ सपूत ! इतना अल्हड़ पन, रौंदा—घर ही रौंदा !!

कसने दो जर्जीरों में यह हाथ-पाँव का व्यापारी !
दो बिखेर 'इस घर के मालिक' आस-पास की चिनगारी !!
विप्लव में घुलने दो उच्छ्वासों के दाहक तागे !
जीवन और मरण का लेखा क्या ?, जागे सो जागे !!

बौराने दो माँ के बल पर लोग कहेंगे-"दीवाना" !
जब तक गूँथ रहा प्राणों-बलिदानों का ताना-बाना !!
खरे दाम पज आयेंगे, तब कैसी खींचा-तानी !
चहक उठेंगे प्राण, करूँगा तब मनमानी कुर्बानी !!

वह अमर शहीद

यतीन्द्र

(श्री 'निर्गुण')

विगत १३ सितम्बर को लाहौर बोर्स्टल जेल में भारतीय यौवन की एक कला अनन्त में समा गई। वह कविता, जो इधर कुछ दिनों से समाचार-पत्रों की पंक्ति-पंक्ति में अपने को ध्वनित और व्यक्त कर रही थी, अन्याय की वेदी पर बलि देकर अपने को अमर कर गई। दुनिया में ऐसे कवि बहुत हैं जिनकी 'कविता' का दायरा छन्द-बन्द और पुस्तकों तक ही परिमित है। दुनिया में ऐसे आदमी बहुत कम होंगे जिनका सारा जीवन ही एक कविता बन गया हो। तर्क और अविश्वास की इस दुनिया में, अपने त्याग और तपस्या से सब को चकित, विस्मित और पराजित करके ऐसा ही एक युवक माता के चरणों में अभी-अभी अपने को अर्पित कर गया है।

स्वतन्त्रता का पुजारी यतीन्द्र

जो सत्य होता है वह अकस्मात स्वयं प्रकाशित हो उठता है। उसका नाम यतीन्द्र था। जिस घड़ी में यह नाम रखा गया होगा, वह कैसी पवित्र घड़ी होगी, तभी तो आज इतने दिनों बाद वह नाम सार्थक हो गया। यतीन्द्र यतीन्द्र ही बनकर रहा।

वह केवल २५ वर्ष का एक युवक था। जैसे युवक होते हैं, वैसा ही था! हँसमुख चेहरा, अथक उत्साह! दिल में देश-प्रेम की आग, पैरों में जन-सेवा के मार्ग पर चलने का उत्साह, आँखों में जीवन और दिमाग़ में एक नशा था। आज वह नशा मिट गया है, परन्तु बहुतों को जगा गया है!

यतीन्द्र का जन्म १९०४ में बंगाल के एक कुलीन घराने में हुआ था। उसके दादा श्री महेन्द्रनाथदास मुन्सिफ थे। पिता श्री बंकिमविहारीदास की अवस्था उतनी अच्छी न थी फिर भी खाने पीने का कष्ट न था। बचपन में ही दादा और दादी की मृत्यु हो गई। विधाता का यह पहला प्रहार था।

धीरे-धीरे यतीन बड़ा हुआ। लड़कपन से ही उसमें लगन से काम करने की आदत थी। १९२० ई० में उसने (एण्ट्रेन्स मैट्रिक) की परीक्षा पास की।

ये जलियानवाला बाग़-हत्याकाण्ड की गरमी के दिन थे। महात्मा गांधी का स्वर गूँज रहा था। उस स्वर में माता की पुकार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। यतीन ने भी उसे सुना। देश की पुकार सुनकर स्थिर रहना उसके लिए संभव न था। उसने निश्चय किया। वह हृदय चढ़ा चुका था, शरीर भी मातृभूमि की सेवा में उसने अर्पित कर दिया।

१९२१ में कालेज छोड़कर वह कांग्रेस में शरीक हुआ। वह सिपाही था, अपने अथक परिश्रम और लगन से बहुत शीघ्र वह कलकत्ता-कांग्रेस कमेटी का एक क्षमताशाली कार्यकर्ता बन गया।

उसी साल बंगाल के पश्चिमी भाग में भयंकर बाढ़

आई। गाँव के गाँव बहे जा रहे थे। पीड़ितों का करुण-क्रंदन सभी जगह फैल गया। लोग असहाय हो रहे थे। कहीं माँओं की गोद सूनी हो रही थी, कहीं बूढ़ों की 'अन्धे की लकड़ियाँ' छिन रही थीं। यतीन्द्र इस आर्त्त-नाद के बीच स्थिर न बैठ सका। दूसरों के दुःख पर पसीजने वाला उसका हृदय विकल हो गया। वह अपने अन्य साथियों के साथ बाढ़-पीड़ित लोगों के बीच पहुँच गया और नाना प्रकार के कष्ट सहकर उनकी सेवा करता रहा। इस स्थान से लौटते ही सत्याग्रह के अपराध में वह पकड़ा गया किंतु पीछे अपनी भूल समझकर सरकार ने उसे चार ही दिन के अन्दर छोड़ दिया। सरकार से उसका यह पहला संघर्ष था, जो आगे लिखे जाने वाले जीवन ग्रन्थ की एक छोटी भूमिका के रूप में व्यक्त हुआ।

सिद्धान्तवादी आदर्श के पीछे पागल रहता है। आदर्श और सिद्धान्त उसके उपास्य देव हैं। उनका अपमान वह देख नहीं सकता। सिपाही यतीन्द्र ने देश-सेवा के अपने सिद्धान्त और आदर्श के लिए घर भी छोड़ा। पिता से मत-भेद हो जाने के कारण, परिवार के स्नेह में बँधा रहते हुए भी, वह बंधनकारी स्नेह से अलग हो गया। उसे उस स्नेह का पता न था जो गिराता है; जो स्नेह उठाता है, उसे ही वह स्नेह समझ सकता था। उसने रूँधे कलेजे से घर के स्नेह-सुख को भी भारत-माता की सेवा के लिए छोड़ दिया। १९२१ के अन्तिम भाग में वह फिर पकड़ा गया। इस बार भी उस पर सत्याग्रह करने का अभियोग लगाया गया और एक महीना क़ैद की सज़ा दी गई।

जेल से छूटकर आते ही फिर उसने अपना काम उसी लगन के साथ शुरू कर दिया। १९२२ में अपने ६ साथियों के साथ, बड़ा बाज़ार (कलकत्ता) में पिकेटिंग (धरना) करते हुए वह फिर पकड़ा गया। ३ महीने की सज़ा मिली। जेल में वह ऐसा बीमार पड़ा कि सज़ा की मीयाद ख़त्म होने पर जब छूटकर आया तो उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। लगातार डेढ़ महीने तक वह चारपाई पर पड़ा रहा। उसकी यह हालत देखकर पिता का हृदय भी पसीज गया। उन्होंने उसे घर बुला लिया। घर के बड़े-बूढ़ों के अनुरोध से उसने कालेज में नाम लिखा लिया।

परन्तु उसके दिमाग़ में जो नशा चढ़ा था; जिस रंग में वह डूबा हुआ था वह ऐसा हलका न था कि दूसरी ओर उसे लगाया जा सकता। कालेज के समय के अतिरिक्त जब भी उसे छुट्टी मिलती, देश की पुकार उसे चचल कर देती थी। वह यथा समय कांग्रेस के कार्य में लगाने लगा। १९२४ ई० में वह दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस कमिटी का सहायक मंत्री चुना गया और उत्साहपूर्वक अपना कर्तव्य पालन करता रहा।

परन्तु यह छोटा दायरा उसके दिन-दिन बढ़ने वाले उत्साह और बलिदान की माँग को पूरा न कर सकता था। अतः उसने युवकों का संघटन करने के उद्देश्य से उसी साल तरुण-समिति की स्थापना की। अनाथों, लँगड़े-लूलों, विधवाओं और ग़रीबों की सहायता तथा सेवा करना इस समिति का प्रधान उद्देश्य था। दरिद्र-नारायण के लिए उसका हृदय हमेशा तड़पता रहा और उससे जो कुछ जब बन पड़ा, उसने सदैव उनके लिए किया। इस समिति के कार्यकर्त्ता घर-घर घूमकर भीख माँगते और जो कुछ मिलता, अपने उद्देश्य की पूर्ति में व्यय करते थे। युवकों को शारीरिक शिक्षा देने का प्रबन्ध भी यहाँ किया गया था।

१९२५ ई० में वह पहले साल की भाँति पुनः कांग्रेस का सेक्रेटरी चुना गया। अपने कार्य, लगन और प्रभाव के कारण बहुत दिनों से वह पुलिस की आँखों का काँटा हो रहा था। यह वह ज़माना था जब बंगाल के युवक अन्याय की चक्की के शिकार हो रहे थे। वह बदनाम बंगाल आर्डिनेन्स, जो राष्ट्रीय क्षेत्र में 'काला क़ानून' के नाम से प्रसिद्ध है, पूरी तेज़ी से अपने जौहर दिखा रहा था। यतीन-जैसा चमकता हुआ चन्द्रमा क़ानून के इस राहु से कैसे बच सकता था? ५ नवम्बर १९२५ को वह इस क़ानून का शिकार हुआ। पहले वह प्रेसीडेंसी जेल में रक्खा गया किन्तु पीछे मिदनापुर सेण्ट्रल जेल में भेज दिया गया। यहाँ मई की गरमी से एक दिन उसे धूप-रोग (Sunstroke) हो गया जिसमें वह मरते-मरते बचा।

उन्हीं दिनों कलकत्ता की खुफिया पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट की किसी ने जेल में हत्या कर डाली। शुबहे के कारण यतीन्द्र को बीमारी की अवस्था में ही ढाका-जेल भेज दिया

गया। वहाँ से भी कुछ ही समय बाद, सरकार ने उसे मैमनसिंह सेण्ट्रल जेल भेज दिया। यहाँ जेल के अधिकारी उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे। एक दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उसे अपमानजनक शब्द कहे। यतीन्द्र अपमान कैसे सह सकता था ? सुपरिण्टेण्डेण्ट से उसका संघर्ष हो ही गया। उसे अधिकारियों ने खूब पिटवाया। वह घायल हो गया। उस पर नियम-भंग और अधिकारियों की अवज्ञा करने के अपराध में मुकदमा चलाया गया। अपमान के प्रतीकारार्थ उसने उपवास शुरू किया। २३ दिन तक उपवास करने के बाद उसकी विजय हुई। बंगाल-सरकार झुक गई। जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट को माफ़ी माँगनी पड़ी और यतीन्द्र की सब शिकायतें दूर कर दी गईं।

२३ दिन का यह उपवास और विजय आगे आने वाले उस युद्ध की तैयारी थी, जिसमें वह त्याग का एक आदर्श छोड़ सदा के लिए सो गया है !

बंगाल-सरकार ने यतीन्द्र की शिकायतें तो दूर कर दीं पर क़ैदियों को उसके प्रभाव से अछूता रखने के लिए उसे पंजाब की मियाँवली जेल में भेज दिया। यहाँ फिर उसके साथ वही सख़्ती शुरू हुई। ख़राब भोजन के कारण तथा स्थान के ठीक न होने से उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। कुछ दिनों में उसका अस्थि-पंजर दिखाई देने लगा। जब उसके सम्बन्धियों ने उसे देखने की आज्ञा माँगी तो आज्ञा भी न दी गई।

जब मियाँवली जेल में वह स्वयं अस्वस्थ था, उसकी एक मात्र छोटी बहन घर पर बीमार पड़ी। बीमारी बढ़ती गई ; बचने की उम्मीद न रही। यतीन का हृदय बहन को अन्तिम बार देखने के लिए उमड़ रहा था। उसने अन्तिम बार उसे देखने की आज्ञा माँगी। पर जिस शासन प्रणाली में मनुष्यता के लिए स्थान ही नहीं है, उसकी चक्की में पिसने वाले यतीन के साथ यह मामूली रियायत भी न की गई। यतीन के दो भाई पहले ही मर चुके थे। यह बहन भी परलोक-यात्रा की तैयारी करने लगी। यतीन्द्र की दृढ़ता के कारण सरकार ने अन्त में पुलिस के पहरे में उसे कलकत्ता लाकर बहन को देखने की अनुमति दी। इस भेंट के बाद ही *उसकी बहन का देहान्त हो गया।*

२९ सितम्बर १९२८ को यतीन छोड़ दिया गया। वह बहुत अशक्त हो गया था पर जिसके प्राण परतन्त्र देश की वेदना में जल रहे थे, वह अपने स्वास्थ्य की परवा कैसे करता ? जेल से आते ही कलकत्ता-कांग्रेस को सफल बनाने में वह जुट गया। उसने स्वयंसेवकों का एक मज़बूत दल तैयार किया था। कांग्रेस की समाप्ति के बाद वह दक्षिण कलकत्ता स्वयं-सेवक-दल (Volunteer Corps) का नायक (Officer-in-Command) बनाया गया।

इन कार्यों के साथ बंगवासी कालेज (कलकत्ता) में उसकी बी० ए० की शिक्षा भी जारी थी। उसका एक मिनट व्यर्थ नहीं जाता था। यतीन्द्र अपनी सेवाओं के कारण ही स्वतंत्र भारत-संघ (इण्डिपेण्डेंस आव इण्डिया लीग) और युवक-संघ की कार्य समिति में चुना गया था। उसकी देख-रेख में स्वयं-सेवक-दल दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा था। इस उन्नति पर सन्तुष्ट होकर एक बार उसने कहा था—" सच्चा स्वराज्य अब नज़दीक आ गया है।"

बंगाल कौंसिल के निर्वाचन के दिनों में उसने बड़ा परिश्रम किया था। किंतु निर्वाचन की समाप्ति के बाद ही वह लाहौर-षड्यंत्र के सम्बन्ध में पकड़ा गया।

लाहौर में राजनैतिक क़ैदियों की मर्यादा की रक्षा के लिए उसने ६३ दिन के उपवास के बाद घुल-घुलकर किस प्रकार प्राण-त्याग किया, यह सब पर विदित ही है। सरकार उसे सब सुविधायें देने को तैयार हो गई थी पर उसका युद्ध व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं था। वह एक सिद्धान्त के लिए दुःख सह रहा था। उसके भाई किरनचंद्र ने भी इस समय खूब दृढ़ता प्रदर्शित की। उन्होंने साफ़ कह दिया कि मैं ज़मानत पर छोड़े गए यतीन्द्र की ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता, भले ही वह मर जाय।

यतीन्द्र देश के लिए जिया; देश के लिए मरा। उसकी मृत्यु आजकल की हमारी निष्क्रिय राष्ट्रीयता के इतिहास में एक घटना है। १९२१ के असहयोग के दिनों के बाद पहली ही बार इस वीर युवक की मृत्यु के कारण हम विभिन्न राष्ट्रीय दलों की एकता का एक वातावरण तैयार होता हुआ देखते हैं। भारत में सर्वत्र उसकी मृत्यु पर सब दल के लोगों ने भेद-भाव भूलकर शोक प्रकट किया। स्कूल,

कालेज, म्युनिसिपैलिटियाँ, ज़िला-बोर्ड बंद रहे। भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में छुट्टी रही। बड़ी व्यवस्थापिका सभा एक दिन के लिए स्थगित (Adjourn) की गई। राष्ट्रीय नेताओं और व्यवस्थापकों ने लेडी इर्विन के निमंत्रण लौटा लिये। होम मेम्बर तक ने यतीन्द्र की दृढ़ता की तारीफ़ की। कलकत्ता में उसके शव का जो जुलूस निकला, वह विश्व के इतिहास में अभूतपूर्व था। स्वर्गीय देशबंधुदास की मृत्यु के समय भी ऐसा जुलूस निकला था या नहीं, इसमें संदेह है। डेढ़ लाख आदमी साथ थे। स्त्रियों ने स्थान-स्थान पर फूल-मालाओं की वर्षा की। लाहौर में लोगों ने उसके शव पर रुपयों की वर्षा की और उसके शरीर से स्पर्श किये हुए रुपयों से तावीज़ बनाकर अपने बच्चों को पहनाया कि उनमें भी इस शहीद की प्रवृत्ति (स्पिरिट) जागे। उसका एक मेमोरियल बनाने की भी चेष्टा हो रही है।

दैनिक 'आज' में एक लेखक ने ठीक ही लिखा है"–युवक यतीन्द्र ने अपूर्व अहिंसात्मक सत्याग्रह किया। दूसरों को कष्ट नहीं देंगे, स्वयम् सब प्रकार का कष्ट बर्दाश्त करेंगे, किन्तु, अन्याय के सामने सिर नहीं झुकावेंगे यही तो अहिंसात्मक सत्याग्रह है, सविनय अवज्ञा है। उससे देश-भक्त कैदियों के साथ अन्याय होते नहीं देखा गया, उसने इसके प्रतीकार के लिए दंगा-फ़साद नहीं किया, किसी दूसरे को चोट-चपेट नहीं पहुँचाई, स्वयं कष्ट झेलना आरम्भ किया, निराहार व्रत किया और उसी में प्राण दे दिया। जेल में इससे बढ़कर सविनय अवज्ञा और क्या हो सकती है?'

यतीन्द्र ने जो बलिदान किया है, उसका फल फलने लगा है। सोते-जागते, उठते-बैठते वह देश की ही बात सोचता था। उसका हृदय उसके अंतिम संदेश में व्यक्त होता है—

"मैं नहीं चाहता कि बंगाल की पुरानी कट्टरता की रीति से मेरा अन्त्येष्टि-संस्कार काली बाड़ी में किया जाय, मैं बंगाली नहीं हूँ, मैं भारतीय हूँ।"

जब शहीद के खून से सनी मिट्टी पर देश की आज़ादी का पौधा लहलहाएगा तभी हम कह सकेंगे कि हमने यतीन्द्र का संदेश सुनकर अपने कर्तव्य का पालन किया है।
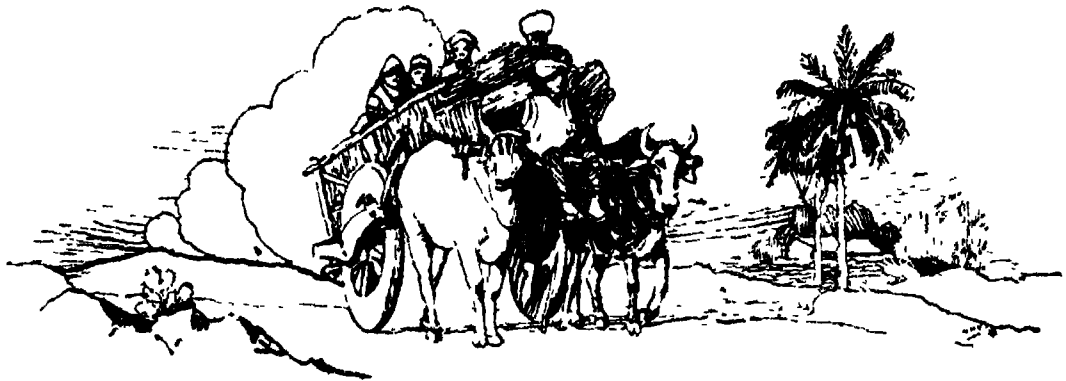
"चीनी के खिलौने, पैसे में दो। खेल लो; खिला लो, टूट जाय तो खालो—पैसे में दो," सुरीली आवाज़ में कहता हुआ खिलौनेवाला एक छोटी-सी घण्टी बजा रहा था।

उसकी आवाज़ सुनते ही त्रिवेणी बोल उठी—

"माँ, पैसा दो, खिलौना लूँगी।"

"आज पैसा नहीं है, बेटी।"

"एक पैसा माँ, हाथ जोड़ती हूँ।"

"नहीं है त्रिवेणी, दूसरे दिन ले लेना।"

त्रिवेणी के मुख पर सन्तोष की झलक दिखलाई दी। उसने खिड़की में से पुकारकर कहा—"ऐ खिलौने वाले, आज पैसा नहीं है, कल आना।"

"चुप रह, ऐसी बातें भी कहीं कहनी होती हैं?" उसकी माँ ने भुनभुनाते हुए कहा।

तीन वर्ष की त्रिवेणी के समक्ष में न आया। किन्तु उसकी माँ अपने जीवन के अभाव का पर्दा दुनिया के सामने खोलने से हिचकती थी। कारण, ऐसा सूखा विषय केवल लोगों के हँसने के लिए ही होता है।

और सचमुच—वह खिलौनेवाला मुस्कराता हुआ, अपनी घण्टी बजाकर चला गया।

× × ×

सन्ध्या हो चली थी।

लज्जावती रसोईघर में भोजन बना रही थी। उसके पति के दफ्तर से लौटने का समय था। आज घर में कोई तरकारी न थी, पैसे भी न थे। विजयकृष्ण को सूखा भोजन ही मिलेगा। लज्जा रोटी बना रही थी और त्रिवेणी अपने बाबूजी की प्रतीक्षा कर रही थी।

"माँ, बड़ी तेज भूख लगी है।" कातर वाणी में त्रिवेणी ने कहा।

"बाबूजी को आने दो, उन्हीं के साथ भोजन करना, अब आते ही होंगे।" लज्जा ने समझाते हुए कहा। कारण एक ही थाली में त्रिवेणी और विजयकृष्ण साथ बैठकर नित्य भोजन करते थे और उन लोगों के भोजन कर लेने पर उसी थाली में लज्जावती अपने टुकड़ों पर जीनेवाले पेट की ज्वाला को शान्त करती थी। जूठन ही उसका सोहाग था।

लज्जावती ने दीपक जलाया। त्रिवेणी ने आँख बन्द कर, दीपक को नमस्कार किया। क्योंकि उसकी माता ने प्रतिदिन उसे ऐसा करना सिखाया था।

द्वार पर खटका हुआ। विजय दिन-भर का थका लौटा था। त्रिवेणी ने उछलते हुए कहा—"माँ बाबूजी आगये।"

विजय कमरे के कोने में अपना पुराना छाता रखकर खूँटी पर कुर्ता और टोपी टाँग रहा था।

लज्जा ने पूछा—"महीने का वेतन आज मिला न?"

"नहीं मिला, कल बटेगा। साहब ने 'बिल' पास कर दिया है।" हताश स्वर में विजयकृष्ण ने कहा।

लज्जावती चिन्तित भाव से थाली परोसने लगी। भोजन करते समय, सूखी रोटी और दाल की कटोरी की ओर देखकर विजय न जाने क्या सोच रहा था। सोचने दो, क्योंकि चिन्ता ही दरिद्रों का जीवन है और आशा उनका प्राण।

— — —

दिन कट रहे थे।

रात्रि का समय था। त्रिवेणी सो गई थी। लज्जा बैठी थी।

"देखता हूँ इस नौकरी का भी कोई ठिकाना नहीं है।" गम्भीर आकृति बनाते हुए विजयकृष्ण ने कहा।

"क्यों! क्या कोई नई बात है?" लज्जावती ने अपनी

झुकी हुई आँखें ऊपर उठाकर, एक बार विजय की ओर देखते हुए पूछा।

"बड़ा साहब, मुझसे अप्रसन्न रहता है। मेरे प्रति उसकी आंखें सदैव चढ़ी रहती हैं।"

"किस लिए ?"

"हो सकता है, मेरी निरीहता ही उसका कारण हो।"

लज्जा चुप थी।

"पन्द्रह रुपये मासिक पर दिन भर परिश्रम करना पड़ता है। इतने पर भी.........."

"ओह, बड़ा भयानक समय आ गया है," लज्जावती ने दुख की एक लम्बी सांस फेंकते हुए कहा।

"मकानवाले का दो मास का किराया बाकी है, इस बार वह नहीं मानेगा।"

"इस बार न मिलने से वह बड़ी आफ़त मचायेगा।" लज्जा ने भीत होकर कहा।

"क्या करूँ ? जान देकर भी इस जीवन से छुटकारा होता......।"

"ऐसा सोचना व्यर्थ है। घबड़ाने से क्या लाभ ? कभी दिन फिरेंगे ही।"

"कल रविवार है, छुट्टी का दिन है, एक जगह दूकान पर चिट्ठी पत्री लिखने का काम है। पाँच रुपये महीना देने को कहता था। घन्टे-दो-घन्टे उसका काम करना पड़ेगा। मैं आठ माँगता था। अब सोचता हूँ कल उससे मिलकर स्वीकार कर लूँ। दफ्तर से लौटने पर उसके यहां जाया करूँगा," कहते हुए विजयकृष्ण के हृदय में उत्साह की एक हल्की रेखा दौड़ पड़ी।

"जैसा ठीक समझो।" कहकर लज्जा विचार में पड़ गई। वह जानती थी कि विजय का स्वास्थ्य परिश्रम करने से दिन पर दिन ख़राब होता जा रहा है।

मगर, रोटी का प्रश्न था!

दिन, सप्ताह और महीने उलझते हुए चले गये।

विजय प्रतिदिन दफ्तर जाता। वह किसी से बहुत कम बोलता। उसकी इस नीरसता पर प्रायः दफ्तर के और कर्मचारी उससे व्यंग करते।

उसका पीला चेहरा और धँसी हुई आँखें लोगों को हास्य करने के लिए उत्साहित करती थीं। लेकिन वह चुपचाप ऐसी बातों को अनसुनी कर जाता। कभी उत्तर न देता। इसपर भी सब उससे असन्तुष्ट रहते थे।

विजय के जीवन में आज एक अनहोनी घटना हुई। उसे कुछ समझ न पड़ा। मार्ग में उसके पैर आगे न बढ़ते। उसकी आँखों के सामने चिनगारियाँ झलमलाने लगीं। मुझसे क्या अपराध हुआ ? कई बार उसने मन में प्रश्न किये।

घर से दफ्तर जाते समय बिल्ली ने रास्ता काटा था। आगे चलकर खाली घड़ा दिखलाई पड़ा था। इसीलिए तो सब अपशकुनों ने मिलकर आज उसके भाग्य का फैसला कर दिया था।

"साहब बड़ा अत्याचारी है। क्या ग़रीबों का पेट काटने के लिए ही पूंजीपतियों का आविष्कार हुआ है ? नाश हो इनका ..वह कौन-सा...दिन होगा जब रुपयों का अस्तित्व संसार से मिट जायगा ? भूखा मनुष्य दूसरे के सामने हाथ न फैला सकेगा।" सोचते हुए विजय का माथा घूमने लगा। वह मार्ग में गिरते-गिरते सम्हल गया।

सहसा उसने आँखें उठाकर देखा वह अपने घरके सामने आ गया था। बड़ी कठिनाई से वह घर में घुसा। कमरे में आकर धम से बैठ गया।

लज्जावती ने घबड़ाकर पूछा—"तबीयत कैसी है ?"

"जो कहा था, वही हुआ।"

"क्या हुआ ?"

"नौकरी छूट गई। साहब ने जवाब दे दिया।" कहते-कहते उसकी आँखें छलछला गईं।

विजय की दशा पर लज्जा को रुलाई आ गई। उसकी आँखें बरस पड़ीं। उन दोनों को रोते देखकर त्रिवेणी भी सिसकने लगी।

संध्या की मलीन छाया में तीनों बैठकर रोते थे। इसके बाद शान्त होकर विजय ने अपनी आँखें पोंछीं; लज्जावती ने अपनी और त्रिवेणी की।—

क्यों कि संसार में एक और बड़ी शक्ति है, जो इन सब शासन करनेवाली चीजों से कहीं ऊँची है। जिसके भरोसे बैठा हुआ मनुष्य, आँख फाड़कर अपनी भाग्य की रेखा को देखा करता है।

विन्यास उर्फ़ फ़ैशन

[श्री रत्नेश्वरप्रसादसिंह, बी० ए०, बी० एल]

फ़ैशन की मोहनी मादकता इस अभागे देश में भी दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। यहाँ के लोग भी अपने को अधिकतर शिष्ट, सुन्दर और सुखी बनाने की चेष्टा में फ़ैशनेबुल होते जा रहे हैं। यद्यपि फ़ैशन किसी न किसी रूप में सदा सर्वत्र विद्यमान था और रहता आया है, किन्तु, पहले की रीति और अबकी अवस्था में बड़ा अन्तर है। पहले की रीतियाँ चिरजीवी और स्थाई थीं किन्तु आज कल फ़ैशन वायु के प्रत्येक झकोरे के साथ बदलता है। फ़ैशन का असर मानव-समाज के ऊपर बहुत बड़ा होता है। इसका सम्बन्ध समाज के सभी अंशों से है। समाज का स्वास्थ्य, धन, कला-कौशल, हुनर-व्यवसाय, शिल्प-कारीगरी, श्रम, सुख और शान्ति सभी फैशन पर बहुत-कुछ अवलम्बित हैं। ऊपर से देखने पर सभी बातों का पता नहीं चलता, किन्तु ज़रा-सा डूबकर देखने से विषय स्पष्ट हो जाता है।

यद्यपि फैशन का उत्पात सभी देशों में अत्यन्त दृढ़ और व्यापक है जिससे समाज का घोर अनिष्ट और हानि होती है, किन्तु इस देश में तो फ़ैशन की अवस्था अत्यन्त ही शोचनीय है। एक तो यहाँ की जनता विमूढ़-भाव तथा भेड़वत् है, दूसरे अत्यन्त ही दरिद्र। साधारण जनता ही क्या यहाँ के पढ़े-लिखे मनुष्य भी निर्बुद्धि से हैं—बिना समझे-बूझे काम करनेवाले हैं। अधिकांश लोग इस समय विदेशी विन्यासों के लोलुप हो रहे हैं। बुरे-भले का विचार छोड़कर सभी विदेशी पदार्थों को भले और शिष्टता के नमूने समझने लगे हैं। यद्यपि गुण सबसे ग्रहण करना चाहिए, किन्तु, यहाँ तो विदेशियों के गुणों को सीखना असम्भव-सा हो रहा है, और इनके निकम्मे बाह्याडम्बर को ही भारतवासियों ने अपना आदर्श बना रक्खा है। सबसे बढ़कर तो विलासिता की सामग्रियों के ही विषय में अनुकरण किया जाता है। यहाँवाले आँख मूँदकर इनके पीछे चलते हैं। खाना-पीना-पहनना सभी इनके अनुरूप किया जा रहा है। परन्तु ये अनुकरण करनेवाले, नवीन फ़ैशन ग्रहण करने के समय, एक बार भी अपने मन में यह नहीं सोचते कि उनके कौन-कौन से विधान लाभदायक होंगे और कौन से हानिकारक, तथा उनके नये ढंग का परिणाम उनके और उनके समाज के ऊपर क्या होगा। इसमें सन्देह नहीं कि समाज की गति परिवर्तनशील है। स्वयं समय ही परिवर्तनशील है, मानव-बुद्धि भी घटती-बढ़ती रहती है। बुरे का त्याग और भले का ग्रहण उचित और आवश्यक है; भद्दे और कुरूप को बदलकर सुन्दर और शोभायुक्त बनाना वाञ्छनीय और हितकर है; तथापि प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अच्छी तरह समझ-बूझकर देखले कि नई चाल में, जिसे वह ग्रहण कर रहा है क्या लाभ है और क्या हानि है—विशेषकर जब कि हम लोगों के फ़ैशन की सभी चीज़ें विदेश से बनकर आती हैं। इन सब बातों में हमारे कार्य्यों का सम्बन्ध अपने और समाज दोनों ही से है। अतएव हम लोगों को इस विषय में और भी सचेत एवं दृढ़ हो जाना चाहिए। फ़ैशन के फेर में पड़कर अपना और देश का सत्यानाश करते हुए सारे जगत् में उपहास का पात्र बनना बुद्धिमानी का काम नहीं है।

शायद यह हम लोगों में सबको विदित नहीं है कि आज-कल विदेश में कितनी ऐसी चीजे तैयार होती हैं जिनकी खपत सिवाय भारत के और कहीं नहीं होती; और जहाँ वे स्वयं बनती हैं वहां उन्हें कोई पूछता भी नहीं। आधुनिक व्यवसाय का यह नियम है कि जहाँ तक हो सके सस्ते मसाले से माल तैयार किया जाय और जहां तक सम्भव हो मँहगा बेचा जाय। नतीजा इसका यह है कि जो चीज़ें खासकर इस देश के लिए तैयार की जाती हैं वे ऐसी होती हैं जिनमें बहुत कम व्यय करना पड़ा हो, जो रद्दी मसाले की बनी हों, जो शीघ्र ही खराब हो जानेवाली हों किंतु, जो देखने में खूब भड़कदार और लुभानेवाली हों, क्योंकि भारतवासियों में दोष-गुण का विवेक तो रह ही नहीं

गया। केवल ऊपर की चटक ही देखकर वे ललचा जायँगे और अवश्य मोल ले लेंगे। साथ-साथ वे चीज़ें तुरन्त ख़राब होजानेवाली इसलिए बनाई जाती हैं जिसमें इनकी मांग बनी रहे। इसी प्रकार हज़ारों चीज़ें हिन्दुस्तान में लाकर दिखलाई जाती हैं; कितनी आदतें यहाँ के लोगों में बड़े यत्न से इस निमित्त जारी की जाती हैं, जिसमें कुछ ही दिन बाद उनका संग्रह करनेवाले अपना पेट काटकर उन चीज़ों को ख़रीदें और अपना सत्यानाश अपने ही हाथों करें। उदाहरण के लिए चाय और चुरुट को लीजिए। सुनने में आया है कि जब चाय के व्यवसायियों ने यह देखा कि चाय हिन्दुस्तान में पैदा होती है, किन्तु, यहाँवाले इसे पीते नहीं, तब पूर्व के ज़िलों में पहले 'टी असोसियेशन' अर्थात् चाय-मंडली की तरफ़ से चाय बनाकर मुफ़्त बाँटी जाती थी। जब लोगों को इसकी आदत लग गई तब प्याला पीछे पैसा-दो-पैसा एक आना दाम रख दिया गया। आजकल भी चुरुट के एजन्टों द्वारा मेले-ठेले में चुरुट, सिगरेट मुफ़्त बाँटी जाती है, बल्कि, नाच-तमाशे वग़ैरह भी सिगरेट की कम्पनियों द्वारा कराये जाते हैं और उनमें आने वाले दर्शकों को आग्रहपूर्वक मुफ़्त सिगरेट दी जाती है। यह कोई छिपी बात नहीं है कि अनावश्यक होते हुए भी इस देश में चाय और सिगरेट का प्रचार बहुत है, यद्यपि जल-वायु के ख़्याल से यहाँ के अधिकांश स्थानों के लिए चाय और सिगरेट दोनों हानिकारक हैं। जब इन व्यसनों को भारतीयों ने सीखा तब क्षणभर के लिए भी यह नहीं सोचा कि अंग्रेज़, जो इनका संग्रह करते हैं, ठण्डे देश के रहनेवाले हैं, वहां ठंडक से ठिठुरे मनुष्यों के लिए चाय और सिगरेट गरमी लाकर कुछ-न-कुछ ठंडक से बचाती हैं और साथ-साथ शरीर को सुख देती हैं। इसी प्रकार यहां के फ़ैशनेबुल अमीरों के शराब-कबाब तथा खाद्याखाद्य को भी समझिए। परन्तु हमारे यहाँ इनका प्रचार केवल फ़ैशन के कारण हो गया है।

कितने ही दुर्व्यसन केवल देखा-देखी इस देश में फैल रहे हैं। फैशन का प्रभाव विशेषतः नवयुवक, युवतियों, गँवारों और विदेशियों की नक़ल करने में हमारे यहाँ के मतवाले बाबुओं या मिस्टरों पर पड़ता है, और देश की अधिकांश जन-संख्या ऐसी ही है। जैसे-जैसे देहाती गवार शहरों में आते हैं, वैसे-वैसे वे नये-नये फैशन सीखते हैं। यदि स्वयं शरमाये या अनिच्छा हुई तो कम से कम अपने बच्चों को तो अवश्य नये फ़ैशन सिखाते हैं। यही हालत पोशाक-लिबास, रूप-रंग यहाँतक कि खाने-पीने इत्यादि सभी बातों में हो रही है। घर का बना जल-पान अच्छा नहीं लगता और हंटले-पामर के बिस्कुट या क्वेकर्स ओट्स ओवल्टीन, न हुआ तो कम से कम यहां की डबल-रोटी बिना तो काम ही नहीं चलता। यह क्या केवल जिह्वा की पूजा ही है? नहीं नहीं, इसमें फ़ैशन का भी कुछ, नहीं, बहुत-कुछ अंश है।

अब फ़ैशन के विशेष रूप को छोड़कर केश-वेशादि-विन्यास अर्थात फ़ैशन के साधारण रूप को लीजिए। केश स्त्री-पुरुष दोनों के लिए शरीर-शोभा की एक वस्तु हैं। प्राचीन काल से केशों को सुशोभित करने की रीति मानव-समाज में चली आती है। पहले तो स्त्री-पुरुष दोनों ही के लम्बे-लम्बे बाल होते थे, किन्तु क्रमशः पुरुष धीरे-धीरे अपने बाल कलम कराने लगे, यहाँ तक कि आजकल विलायत-अमेरिका में स्त्रियों ने भी बाल कलम कराने का फ़ैशन स्वीकार कर लिया है। काल-क्रम के अनुसार मनुष्य के सौन्दर्य के आदर्श भी बदलते जाते हैं, चाहे वे बालों के सम्हालने के विषय में हों, चाहे पहरावे के सम्बन्ध में। किसी समय जुल्फ और काकुल ही पर सुन्दरता मँडराती थी, आज अल्बर्ट फ़ैशन के बिना मुखड़ा भला नहीं लगता। सौन्दर्य की मूर्ति स्त्रियाँ कभी सीधी मांग निकालती थीं। आज बिना तिरछी माँग निकाले चन्द्रमुख की छवि खिलती नहीं। तदनुकूल फुलेल और सुगंधों का व्यवहार भी बदल गया है। अब अगर—केशर-कस्तूरी तथा इत्र-गुलाब का समय जाता रहा, इस समय ज़माना है लवेण्डर, सेंट, पाउडर तथा इनके अगणित साथियों का—पोमेड, स्नो, क्रीम और न जाने कितनी अन्य सामग्रियों का। इसमें किसी को कुछ आपत्ति नहीं जिसका जहाँ तक जी चाहे अपनी सुन्दरता को सुन्दरतर बनाले, किन्तु बुद्धिमानी और सावधानी की बात तो यह है कि सभी सौन्दर्यो-पासक, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, इस विषय को भली-भांति

समझ लें कि हम लोग एक अत्यन्त ही दीन-हीन दुखी देश के निवासी हैं, जहां दरिद्रता का संसर्ग घर-घर कुछ न कुछ, किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है; अतएव हम लोगों को उन चीज़ों का व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए जिससे यह कंगाल देश और कंगाल हो जाय, जिससे हम लोगों का स्वास्थ्य और सदाचार बिगड़ जाय; जिससे हम लोग फ़ैशन के कारण तन,धन और सुख सभी खो बैठें। ढंग और प्रकार बदलने में कोई हानि नहीं है। उसी कपड़े को खूबसूरत ढंग का बनाकर पहनना भले ही वाञ्छनीय हो सकता है, किन्तु ऐसे कपड़ों का व्यवहार कभी न करना चाहिए जिससे देश, समाज और व्यवसाय करनेवालों, सभी को धक्का पहुँचे। किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि हम सब के सब ऐसे विमूढ़ हो गये हैं, विदेशी फ़ैशन की वस्तुओं को देखकर ऐसे लोलुप हो रहे हैं, क्षणिक आनन्द के लिए ऐसे चंचल हो रहे हैं कि आँख मूंदकर लाभ-हानि का विचार छोड़ बात की बात में विदेशियों के फैलाये हुए फ़ैशन के जाल में जा फँसते हैं।

वस्त्र पहनना सबसे पहले शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक है। फिर वस्त्र को इस भाँति पहनने की इच्छा हृदय में उत्पन्न होती है जिसमें शरीर सुन्दर देख पड़े। अतएव, पहले तो वस्त्र देश-काल और ऋतु के अनुकूल पहनना चाहिए; दूसरे सुन्दरता और स्वच्छता के ख्याल से कि कपड़े साफ़ और सुसज्जित हों। शृंगार और सजावट की विधि ललित-कला का एक अंग है। इसको सीखना और धारण करना सभ्यता और कला-कौशल बतलाता है। यहाँतक चाहे जिस किसी से हो हम लोग भले ही सीख लें, कोई हानि नहीं। अतएव, इस विषय में फ़ैशन शृंगार का साधन है। किन्तु, अन्धकारमग्न, विमूढ़-मात्र एवं निर्बुद्धि होकर गुण-दोष तथा लाभ-हानि का विवेक छोड़कर, देखा-देखी किसी वस्तु का ग्रहण कर लेना और तदर्थ अपने परिवार या पूर्वजों का कठिन परिश्रम से उपार्जित धन नष्ट कर देना नितान्त भूल ही नहीं वरन् पाप है। गम्भीर दृष्टि से विचारने की यह बात है कि आजकल विशेषकर मनचले छात्रों और नवयुवकों में फ़ैशन का दुर्व्यसन कहाँ तक उपद्रव फैलाकर हानि कर रहा है। गरीबों के लड़के देखा-देखी अन्न-पान के पैसे बचाकर, अपना पेट काटकर उन चीज़ों को खरीदते हैं जिनके व्यवहार से उनका स्वास्थ्य तथा देश का धन नष्ट होता है। माता-पिता कष्ट सहकर, परिवार के अन्य व्यक्तियों को नित्य की आवश्यकताओं से वंचित रखकर एक किसी लड़के में अपनी आमदनी के आधे-तिहाई को लगा देते हैं, और ये सपूत पैसेवाले या अवारे लड़कों की देखा-देखी, अपने पैसे फ़ैशन में लगा देते हैं। नतीजा क्या होता है कि केवल दुखियों का दुःख बढ़ता है। यह एक आज-कल की स्पष्ट और साधारण समस्या है जो सभी मनुष्यों की आँखों के सामने वर्तमान है। इस प्रकार के फ़ैशन के दुरुपयोग से केवल समाज ही की हानि नहीं होती बल्कि देश की महान् आर्थिक अवनति होती है। अतएव, यह फ़ैशन केवल दुर्व्यसन ही नहीं बल्कि साक्षात् भयंकर रोग है!

फ़ैशन में लवलीन होकर निरन्तर बनाने-सँवारने के प्रयत्न में व्यस्त रहने से विलासिता की अग्नि विशेषत. प्रदीप्त होती जाती है, और विलासिता की दिनों-दिन वृद्धि से समाज के आचार में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। लोगों के लाभ-हानि में कितना बड़ा धक्का पहुँचता है यह सोचने ही पर स्पष्ट रूप से विदित हो सकता है। 'फ़ैशनेबुल' होने की बला ऐसी है कि मनुष्य सदा लोलुप बना रहता है जिससे वह बहुधा कठिनाइयों में पड़ जाता है। जिस मनुष्य ने अपने को फ़ैशनेबुल बना लिया उसे फिर साधारण कपड़ों में बाहर निकलना लज्जाजनक जान पड़ता है उसके हृदय से सदाचार का बल जाता रहता है, वह शरीर की शोभा ही को सब-कुछ समझ लेता है और अधिकतर वास्तविक गुणों का यथोचित आदर नहीं कर सकता। अपना फ़ैशन बनाये रखने के लिए उसे कर्ज़ तक लेना पड़ता है और धीरे-धीरे उसे अनेकानेक झंझटों और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। यहाँतक कि फ़ैशन के भक्तों को प्रायः कपट-व्यवहार करना पड़ता है। उसे अपनी असली हालत छिपानी पड़ती है। इसी तरह व्यर्थ की लज्जा और कपट फ़ैशन के कारण उत्पन्न होता है। अतएव, फ़ैशन का असर मनुष्य के चरित्र के ऊपर पूरा और दृढ़ रूप से पड़ता है। यह मानव-हृदय की एक दुर्बलता है।

फ़ैशन के सम्बन्ध में सब से बुरी बात तो यह है कि

यह नित्य बदला करता है। फ़ैशन की चंचलता से इसके उपासक अत्यन्त परेशान रहते हैं। किन्तु इसका असली झकोरा उनके ऊपर पड़ता है जो बेचारे फ़ैशन की चीज़ तैयार करके अपनी जीविका चलाते हैं। इसकी उलट-फेर से समाज में बहुत-कुछ अशान्ति फैलती है। प्रत्येक फ़ैशन के बदलने से कितने ही मनुष्य निस्सहाय और व्यवसायहीन हो जाते हैं। बात की बात में फ़ैशन बदल जाता है किन्तु तिरस्कृत फ़ैशन के व्यवसायी अपना उद्यम धन्धा उतनी जल्दी नहीं बदल सकते। अतएव जब एक व्यवसाय या कारीगरी बिगड़ जाती है तब बहुत से उसके व्यवसायी या कारीगर बेकार हो जाते हैं और उन्हें दूसरी राह ढूँढने में कठिनता और परेशानी उठानी पड़ती है। अतएव फ़ैशन की चंचलता से एक गहन आर्थिक समस्या अक्सर उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में फ़ैशन मानव-मनोविकार पर निर्भर है। अपने देश में उदाहरण देख लीजिए। गोटे-पट्टे, सल्मे-सितारे के काम करनेवाले तरह-तरह के रेशमी पश्मीने तथा सूत के कपड़े बुननेवाले, अनेकानेक हुनर-कारीगरी तथा सौंदर्य या कला की चीज़ों के बनानेवालों के व्यवसाय का ह्रास केवल विलायती चढ़ा-उतरी से ही नहीं, बल्कि विशेषतः फ़ैशन की गति के कारण हो गया है। यूरोप-अमेरिका आदि अपने को सभ्यतम कहनेवाले देशों में भी फ़ैशन की चपलता के कारण घोर आर्थिक उपद्रव मचता जा रहा है। फ़ैशन और बेकारी बढ़ती जा रही है अतएव हमें और भी सचेत होना चाहिए।

हमारा फ़ैशन ऐसा चाहिए जिससे सुरुचि और सादगी टपके, जिसकी क्रिया-विधि में कला-कौशल तथा सौंदर्य-विधान का यथोचित समावेश हो। सभ्यता और शिष्टता इसी को कहते हैं। फ़ैशन को स्वभाव-संगत होना चाहिए न कि प्रकृति-विरुद्ध। यह स्वाभाविक और आवश्यक है कि पहनाव तथा शृंगार की बदौलत अंग-विक्षेप या रक्त-संचार में किसी प्रकार की रुकावट न हो पावे। हमारा आचार-विहार ऐसा होना चाहिए जिसमें दूषित और विकृत वस्तुओं का संग्रह न करना पड़े जिसके द्वारा हमें अपने दृश्य हरनेवालों के उपहास का पात्र न बनना पड़े, न कि ऐसा जिससे हमारे झंझट और बखेड़े बढ़ जायँ; जिससे हमारी प्राकृतिक शोभा या शारीरिक स्वच्छन्दता में त्रुटि हो। फ़ैशन को जीवन, शक्ति या सुख का सहायक होना चाहिए न कि बाधक। अतएव किसी नवीन फ़ैशन के ऊपर उतारू होने के पहले उससे होनेवाले हानि-लाभ को हमें देख लेना उचित है, तथा मनोनीत फ़ैशन के विशेष गुण-दोष जाँच लेना चाहिए। अतएव इस कंगाल देश के मनचले नये फ़ैशन के उपासकों और प्रेमियों से यह मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप ज़रा सावधानी से बुद्धिपूर्वक सचेत होकर अपने काम करें और फ़ैशनेबुल बनें। नहीं तो अपने को सुन्दर, सभ्य और विलास-प्रिय कहलाने के चस्के या उन्माद के फेर में पड़कर दरिद्र भारत के दरिद्रों की दशा अधिकतर दारिद्र्यग्रस्त कर देने की दुख्याति अपने ऊपर न ले बैठें। अन्यथा क्षणिक हर्ष या लिप्सा के कारण इस दुखी देश के दुखियारे अधिकतर दुखित होंगे, और न्याय तथा सत्य इसका कलंक आपके माथे मढ़ेगा।

देहात ही राष्ट्र के प्राण हैं

[श्री छबीलदास बी० ए०]

देहात की जागृति के बिना स्वराज्य की प्राप्ति का विचार स्वप्नमात्र है। आज १९२९ में संसार की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति १८८५ व १९०० की अपेक्षा भारतवर्ष के स्वराज्य-संग्राम के लिए अधिक अनुकूल है। संसार के बहुत बड़े भाग को स्थायी दासता की ज़ंजीरों में जकड़ रखनेवाले सब से बड़े मुजरिम इङ्गलैण्ड की स्थिति आज वैसी मज़बूत नहीं रही जैसी आज से ३०—४० वर्ष पूर्व थी। व्यापारिक और आर्थिक मैदान में तो स्पष्टतया अमेरिका उससे बाज़ी मार ले गया है। पूर्व में जापान भी काफ़ी ज़बर्दस्त प्रतिस्पर्द्धी पैदा हो चुका है। चीन के स्थायी 'पीले ख़तरे' ने भी पश्चिम के लालची भेड़ियों को लाल आँखें दिखलाकर बहुत हद तक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। रूस के बोलशेविक राज्य ने न केवल इङ्गलैंड के वरन् सारे संसार के साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियों के दिल में कपकपी पैदा कर दी है। पड़ोसी फ्रांस की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई स्थल-शक्ति तथा हवाईशक्ति इङ्गलैंड को परेशान कर रही है। गत महायुद्ध में पराजित और अपमानित जर्मनी के हृदय में बदले की प्रचंडाग्नि धधक रही है। इंगलैंड की आन्तरिक अवस्था भी इंग्लैंड को शोक-सागर में डाल रही है। कैनेडा, दक्षिण अफ्रीका, आयर्लैंड, न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया इत्यादि उपनिवेश दिन-प्रति-दिन "मदरलैंड" इंग्लैंड के विरुद्ध उत्पात मचाने जा रहे हैं जिससे इग्लैंड का दिल बैठा जा रहा है। आयर्लैण्डवाले इंग्लैंड के राष्ट्रीय गीत "गाड सेव दी किंग" को आयरिश जाति का अपमान समझते हैं। दक्षिण अफ्रिका के देश-भक्तों की आँखों में 'यूनियन जैक' काँटे की तरह खटक रहा है। कैनेडावाले दूसरे स्वतन्त्र देशों की तरह हर जगह अपने राजदूत भेजने पर हठ कर रहे हैं। 'मातृभूमि" इंग्लैंड के इन सब "सपूतों" ने इंग्लैंड को चैलेंज दे दिया है कि भविष्य में हमारी इच्छा और परामर्श के बिना कोई युद्ध न छेड़ो। मिश्री नवयुवकों ने भी स्वतन्त्रता देवी की उपासना के लिए सिर और धड़ की बाज़ी लगा रक्खी है। यह सब घटनायें भारत के शत्रु इंग्लैंड की कमज़ोरियों को प्रकट करती हैं। आओ, ज़रा उन शक्तियों का भी अध्ययन करें जिनके बल पर भारतवर्ष स्वतन्त्रता प्राप्त करने का यत्न कर रहा है।

निस्सन्देह पिछले ४०-५० वर्ष से इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस ने स्वतन्त्रता का आन्दोलन चला रखा है। समाचार-पत्रों से तो ऐसा दिखाई पड़ता है मानों मैदान फ़तह ही होनेवाला है। परन्तु बहुत दुःख और शोक से लिखना पड़ता है कि हम अपनी शक्तियों का बहुत ही ग़लत अनुमान कर रहे हैं।

गिनती के कुछ-एक वकील, डाक्टर या दूसरे स्वतंत्र रोटी कमानेवाले सज्जन अपने सांसारिक काम-काज से फ़ुर्सत के कुछ क्षण निकालकर जलसों और कान्फ्रेंसों में लम्बे-लम्बे और जोशीले व्याख्यान दे देते हैं अथवा कुछ प्रस्ताव पास कर दिये जाते हैं जिनको शायद ही कभी क्रियात्मक रूप मिलता हो। बस यहीं तक हमारी शक्तियों की सीमा है। भारतवर्ष के ७ लाख देहातों में बसनेवाले २९ करोड़ नर-नारियों का स्वराज्य-आन्दोलन से रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं। यदि महात्मा गांधी जी के असहयोगान्दोलन के दो-तीन वर्षों के सुनहले अध्यायों को निकाल दिया जाय तो भारत का शेष राजनैतिक इतिहास इतना रूखा-फीका, निस्सार और शोचनीय है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। दरिद्रता, अविद्यान्धकार तथा छोटे-बड़े नौकरशाही के एजेण्टों के आये दिन के अत्याचारों से तंग आये हुए भारत के करोड़ों किसानों और मज़दूरों को ही स्वतन्त्रता और स्वराज्य की आवश्यकता है, परन्तु कॉंग्रेस की ओर से आज तक उनके पास स्वराज्य का सन्देश पहुँचाने का कोई संगठित प्रबन्ध नहीं किया गया। यही कारण है कि जन-साधारण की आवाज़ और शक्ति पीठ पर न होने से नौकरशाही को सदैव हमारी राष्ट्रीय मांग ठुकराने का साहस होता है। आख़िर इसका कोई इलाज भी है?

इलाज स्पष्ट है। जबतक हिन्दुस्थान के टिड्डीदल किसान और मज़दूर स्वतन्त्रता के पूरे पूरे लाभ समझ नहीं पाते तबतक स्वराज्य-प्राप्ति का विचार केवल स्वप्नमात्र है। इसके लिए अत्यावश्यक है कि कांग्रेस जातीय-सेवकों का एक ऐसा दल तैयार करे जो कि महाद्वीप भारतवर्ष के २९ करोड़ ग्राम-निवासी किसानों और मज़दूरों तक स्वतन्त्रता का सन्देश पहुँचा सके। इतिहास तो पुकार-पुकार कर कह रहा है कि रूस, आयर्लैण्ड, अमेरिका, जापान, चीन इत्यादि देशों को दासता के बन्धनों से मुक्त करानेवाले जोशीले नवयुवकों ने ही देहात के ग़रीबों की झोंपड़ियों तक स्वतन्त्रता का सन्देश पहुँचाया था। यह जीते शहीदों और नवीन सन्यासियों का दल कहाँ से भरती होगा? चन्द टकों के लिए अपना शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क, नहीं-नहीं, अपनी अन्तरात्मा तक बेच डालनेवाले क्लर्कों और नौकरशाही के कर्मचारियों में से ऐसे देश-सेवक नहीं मिलेंगे। आठों पहर निन्यानवे के फेर में पड़े हुए व्यापारियों और दुकानदारों से भी इस प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। धार्मिक और साम्प्रदायिक जगत के नेता—भारत के ब्राह्मण पुरोहित, क़ाज़ी, मौलवी और साधु-फ़क़ीर तो आगामी संसार के सुख-स्वप्न देखने, अपने हलुवे-माँडे की फ़िकर करने, अछूतों, विधवाओं और पद-दलित लोगों को उभरने न देने और धर्मान्धता की आग सुलगाकर मज़हबी दीवानों को ग़ाज़ी और शहीद के फ़तवे देकर नौकरशाही के हाथ मज़बूत करने में मस्त हैं। देश इनसे तो निराश हो चुका है। हाँ, शिक्षित नवयुवकों और विद्यार्थियों का ही एक दल है जिनका निःस्वार्थ आत्म-त्याग, बलिदान तथा शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ मातृभूमि की बेड़ियाँ काट सकती हैं।

अंग्रेज़ों ने अपने राज्य की मज़बूती तथा कामकाज चलाने के लिए और भारतवासियों को दिमाग़ी तौ पर हराकर सदा ग़ुलाम बनाये रखने के लिए सारे देश में स्कूलों और कॉलेजों का जाल बिछा रक्खा है। परन्तु मनुष्य सोचता कुछ और है और हो कुछ-और जाता है। अंग्रेज़ी राज्य के कल-पुर्जे तैयार करते वक़्त भारतवासी नवयुवकों को स्वतन्त्र देशों के इतिहास, स्वाधीनता के संग्राम तथा वीरों और वीरांगनाओं की हँसते-हँसते जान पर खेल जाने की कथायें भी पढ़ाई गईं। भारत के नवयुवकों की खोपड़ी में भी मस्तिष्क तथा मस्तिष्क में विचार-शक्ति थी। स्वाभाविकतया उनके मन में प्रश्न उठे कि जब असभ्य से असभ्य और मूर्ख से मूर्ख जातियाँ भी प्रयत्न करके उन्नति और स्वाधीनता के शिखर पर पहुँच सकती हैं, तो, कोई कारण नहीं कि राम व कृष्ण के वंशज, निराशा के दलदल में पड़े सड़ते रहें। प्रकृति ने श्वेतांग शासकों को भारतवासियों के मुक़ाबले में कोई भी विशेषता प्रदान नहीं की। फिर उनका क्या हक़ है कि वे इस प्रकार आकर एक ऐसी जाति पर शासन करें जिसकी सभ्यता, वेश-भूषा, भाषा, साहित्य, धर्म तथा इतिहासादि सब-कुछ उनसे भिन्न हैं। अंग्रेज़ी कॉलेजों और यूनीवर्सिटियों में शिक्षित नवयुवक लोग ही इन समस्याओं को समझते हैं। केवल वही लोग पाश्चात्य कूटनीति और उस्तादी के दाँव-पेंच को भाँप सकते हैं।

देश के सौभाग्य से अंग्रेज़ों के पास इतनी नौकरियाँ ही नहीं कि जिनमें वे हर साल के पास होनेवाले हज़ारों ग्रेजुएटों और अण्डर-ग्रेजुएटों की खपत कर सकें। 'एक पढ़ा-लिखा बेकार नवयुवक बहुत ही सफल एजीटेटर और स्वतन्त्रता का सन्देश-वाहक बन सकता है।' कांग्रेस इस सचाई का अनुभव करे और नवयुवकों के साधारण जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध करके उनके द्वारा देहात तक स्वराज्यान्दोलन पहुँचाने का बन्दोबस्त करे। जो नवयुवक हँसते-हँसते फाँसी की टिकटी को गले लगा लेते हैं; जो जेलखानों और अण्डमन को ससुराल से भी बढ़कर सुखदायक मानते हैं, क्या वे साधारण निर्वाह पर अपने देशवासियों तक स्वराज्य-सन्देश पहुँचाने का पवित्र कार्य नहीं करेंगे? जहाँ कौंसिल के चुनाव पर बड़े-बड़े जुलूसों और कांग्रेस के अधिवेशनों पर प्रति वर्ष लाखों रुपये स्वाहा कर दिये जाते हैं, वहाँ जातीय सेवकों की पलटन तैयार करने के लिए भी फण्ड जमा हो सकते हैं। आखिर धार्मिक संस्थायें और शिक्षणालय भी तो जन-साधारण की आर्थिक सहायता और सहानुभूति के बल पर ही चल रहे हैं, फिर कोई कारण नहीं दीखता कि इस महान् और आवश्यक कार्य के लिए फण्ड क्यों न जमा हो सकेगा?

आजतक 'क्रान्ति चिरंजीवी रहे' और 'साम्राज्यवाद

का सत्यानाश' के नारों की आवाज़ें केवल बड़े-बड़े नगरों के भोग-विलास और सुख का जीवन व्यतीत करनेवाले और भर-पेट रोटी खानेवालों की ओर से आ रहे हैं। जिस दिन भारतवर्ष के सात लाख गावों में बसनेवाले भूखे, अशिक्षित, पद-दलित, अपमानित और पशुओं से भी बुरा जीवन गुज़ारनेवाले करोड़ों किसानों और मज़दूरों ने ये नारे लगाये, उसी दिन भारत की दासता की ज़ंजीरें चूर-चूर होकर गिर पड़ेंगी; अत्याचार और अन्याय का नाम न रहेगा। परन्तु यह तभी होगा जब स्वतंत्रतादेवी के पुजारी भारत के सुशिक्षित नवयुवक उनतक स्वराज्य का सन्देश पहुँचा चुके होंगे।
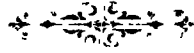
'सरमद'-सौरभ

[फारसी के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि सरमद की दो रुबाइयों—चतुष्पदियों—का अनुवाद यहाँ दिया जाता है- संपा०]

(श्री पद्मकान्त मालवीय)

अज जुर्म फुजूं यात्फ्रअम फज़्ले तुरां
जीं शुद सबबे माशियते बेशमरा
हरचन्द गुनह बेश करम बेश तरस्त
दीदम हमाजा आज़मूदम हमरा

अपने अपराधों से बढ़कर तेरी दया अधिक पाई,
इसी हेतु मेरे दोषों की सरिता नाथ, उमड़ आई,
अगणित हैं अपराध और है मेरी नन्हीं सी काया,
इसके मिले प्रमाण बहुत-से सभी जगह है अजमाया॥

ऐ जलवागरे निहां अयां शौबद रा
दर फिक्रे बजिस्तेम हस्ती कुद रा
ख्वाहम कि दरागोशे कनारत बीरम
ताचन्द तो दर परदा नुमाई खुदरा

छिप-छिपकर दिखलाता वैभव अब तो बाहर आजा तू।
चिन्तित होकर खोजा मैंने अब रहस्य बतला जा तू।
तू है कहाँ बता मुझको है अंक लगाने की बस चाह।
कब तक परदे के भीतर तू गुप्त रहेगा यों ही, आह?

स्त्री-जाति का अधिकार

(श्रीमती सरला देवी)

राष्ट्र के हृदय में नवजीवन की धड़कन उत्पन्न करने के लिए पूर्ण विकसित नारी-शक्ति की भी विशेष आवश्यकता है, इसे आजकल सभी स्वीकार करते हैं। नारी-जाति में जो शिक्षिता हैं, उन्होंने इस बात का अनुभव करके कि समाज में उनका स्थान नहीं है, अथवा वे न्यायानुमोदित अपने अधिकारों से किस प्रकार वंचित है, अपना दावा उपस्थित किया है। नारी-जाति हीन नहीं है, राष्ट्र अथवा समाज में स्त्रियों का भी विशेष प्रयोजन है अतः उनका भी एक विशिष्ट अधिकार है। यही उनका प्रधान अभियोग है।

वस्तुतः जिस मातृ-जाति के रक्त से मनुष्य-समाज गठित हुआ है, जिस जाति की गोद में मनुष्यों का मनुष्यत्व विकास को प्राप्त हुआ है, वही जाति यदि दु:खी, निरक्षर और दारुण अधीनता-पाश में आबद्ध हो तो उसका जीवन कदापि उन्नत नहीं हो सकता। मातृ-जाति की इस भीरुता, संकीर्णचित्तता और पर-मुखापेक्षता ने सारे समाज के शरीर की नाड़ी-नाड़ी में प्रवाहित हो कर उसे एकदम असार-अकर्मण्य बना दिया है। स्वदेश-हितैषी महानुभाव इसकी आवश्यकता अनुभव करके इस विषय में विशेष आन्दोलन कर रहे हैं।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में आजकल भी कोई-कोई विरुद्ध मत रखते हैं, ऐसा देखा जाता है। यह अत्यंत दुःख का विषय है। आर्य कहलानेवाले अपने को संसार की आदिम सभ्य जाति कहकर जो एक विशिष्ट गौरव का अनुभव करते हैं, उन्होंने क्या कभी इस बात की ओर ध्यान दिया है कि स्त्री-शिक्षा के विरोधी होकर वे समाज की किस अधोगति का कारण बन रहे हैं?

मातृ-जाति ही मानव-समाज की प्रधान शिक्षिका है। जिस समाज की वही मातृ-जाति अज्ञानान्धकार में डूबी पड़ी हो, उस समाज की शिक्षा-दीक्षा अथवा सभ्यता का क्या मूल्य हो सकता है? अथवा निज स्वार्थ-साधनार्थ केवल मात्र गृह-कार्य में सहायता के हेतु ज्ञान-पिपासा-जर्जरित-प्राण मानव-जननी को एक बिन्दु जल-दान न करने से अधिक न जाने और क्या निष्ठुरता हो सकती है?

जो इस आदर्शवाद से सहमत नहीं हैं, वे भी अन्ततः इसको कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते, कि इस जीवन-संग्राम के कठिन समय में पूर्ण रूप से शिक्षा-लाभ किये बिना स्त्रियों के भविष्यत् जीवन में अनेकों विपदायें उपस्थित होने की संभावना है। उनके दुर्भाग्य की बात प्रत्येक माता को पहले सोच रखनी चाहिए। दिन-रात यह देखने में आता है कि एक-मात्र स्वामी के अभाव से कन्या को श्वसुर और पिता उभय कुल में भार-स्वरूप होकर बड़े कष्ट से जीवन-यापन करना पड़ता है। अस्तु, ऐसे दुर्दिनों में जिससे वे स्वावलम्बिनी हो कर अपने जीवन पथ पर अग्रसर हो सकें, इसके लिए आरम्भ से ही प्रबन्ध करना प्रत्येक माता-पिता का परम कर्तव्य है। कन्या के विवाह में खूब खर्च कर देने से ही उनके कर्तव्य की इतिश्री नहीं होती। पुत्रों के प्रति उनका जितना कर्तव्य है, उतना ही कन्याओं के प्रति भी समझकर उन्हें स्वावलम्बिनी बनाये बिना उनके कर्तव्य में भारी त्रुटि रह जाती है। शिक्षा-क्षेत्र में, ज्ञान-क्षेत्र में और त्याग-क्षेत्र में भी इस ओर पूर्ण ध्यान रखना होगा जिसमें वे पुरुषों के साथ प्रतियोगिता करने में समर्थ हो सकें। एक दिन इसी भारतवर्ष की एक स्त्री ब्रह्मचारिणी गार्गी ने याज्ञवल्क्य के ब्रह्मवेत्तामीमांसा-समाज में नेतृत्व करके संसार को चमत्कृत कर दिया था। उस कथा को सर्वदा स्मरण रखकर उसी आदर्शानुसार बालिकाओं के जीवन को गठित करना होगा। ज्ञान-चक्षु खुलते-न-खुलते विवाह करके कन्या-दायित्व से मुक्त होने की वाञ्छा करना घोर अन्याय है।

श्रीयुत हरविलास सारडा ने बारह वर्ष से पूर्व कन्या

का विवाह न हो सके, इस आशय का एक बिल* बड़ी कौंसिल में उपस्थित करके बाल-विवाह के मार्ग में रोड़ा अटकाने की चेष्टा तो अवश्य की है, पर हमारी समझ में केवल बाल-विवाह ही क्यों, जीवन का पूर्ण विकास होने से पूर्व विवाह-बन्धन में आबद्ध करना ही घोर अन्याय है। अज्ञान-अवस्था में कुछ भी हो, किन्तु जब थोड़ा-थोड़ा ज्ञान उत्पन्न होना आरम्भ होता है, उस समय केवल विवाह करके कन्या भार से मुक्त होना मानो उन्हें बीच धार में छोड़ना है। उस अवस्था में उनको कैसी मर्मान्तक यातना होती है, उसे क्या भुक्त भोगी के सिवाय कोई दूसरा समझ सकता है ?

अनेक का यह विश्वास है कि विवाह के पश्चात् भी जीवन का विकास होना सम्भव है। किन्तु यह माननीय होने पर भी साधारणतया सम्भव नहीं है। स्त्रियों के एक-बार संसार-गुफ़ा में घुसने को बाध्य होने पर फिर उन्हें प्रायः सिर उठाकर बहिर्जगत की ओर ताकने का भी अवसर प्राप्त नहीं होता बड़े घर की स्त्रियों के लिए चाहे यह बात न हो, परन्तु ग़रीब भारत के जन-साधारण की अवस्था ही विचारणीय है। वधू-जीवन के कर्तव्य के अतिरिक्त अनेक को अप्राप्त वयस में ही अकाल मातृत्व का गुरु-भार वहन करना पड़ता है, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है ? यद्यपि अधिकांश स्थलों पर दायित्व-ज्ञानहीना बालिका माता सन्तान-कामना न करते हुए सन्तान को भगवान का अभिशाप ही समझती है तथापि उसे सिर झुकाकर वह भार उठाने को बाध्य होना पड़ता है। और साथ ही साथ उनका सारा उत्साह-उद्यम और धात्रीपन सांसारिक प्रबन्ध में ही समाप्त हो जाता है। इस प्रकार यह संकीर्ण संसार-गुहा उनके विकास-पथ में घोर बाधा रूप होकर उपस्थित होती है।

और इस अवस्था में उत्पन्न सन्तानादि भी प्रकृत मनुष्य नहीं हो सकते। सब प्रकार हीन होकर वे धरती का भारमात्र बढ़ाते हैं। इस वीर-प्रसू भारत की विपुल जीवनी-शक्ति का इसी प्रकार ह्रास हो गया।

इसके अतिरिक्त मनुष्य होकर जन्म लेने ही से विवा-हादि करके संसारी होना पड़ेगा, स्त्री-जाति को यह रीति अवश्य पालनी पड़ती है। यह धारणा मानो हमारे मज्जागत हो रही है। चिरजीवन पुत्र-कलत्र लेकर अन्न-चिन्ता करना ही मानो हमारी परमार्थ ज्ञान-शिक्षा है। केवल सन्तानोत्पादन करके पृथ्वी की भार-वृद्धि करना ही नर-नारी का एकमात्र कर्तव्य नहीं है। गृहस्थ-आश्रम से बाहर भी मनुष्य के लिए विस्तृत कर्म-क्षेत्र है जिसमें प्रविष्ट होकर तुच्छ सांसारिक सुख-भोग के बिना भी जीवन सार्थक हो सकता है, इस बात को महान् त्याग-भूमि की संतान होकर भी मानो बिलकुल ही भूल बैठे हैं।

गार्हस्थ-धर्म्म-पालन की अयोग्यता, अथवा व्यक्ति का स्वतंत्र-व्यक्तित्व नाम की कोई वस्तु भी है, इस पर हम किसी समय भी विचार नहीं करते। इसके फल-स्वरूप हमारा गृहस्थ-आश्रम आज कल एक महान अशान्त आश्रम के रूप में परिणत हो गया है। अनेक को यह कहकर आक्षेप करते सुना गया है कि माता-पिता ने उनका विवाह करके उनके जीवन को व्यर्थ और दुर्बल बना दिया। माता पिता ने यह कार्य अवश्य ही उनके सुख के लिए किया है। किन्तु व्यक्तित्व को अग्राह्य करके सुखी बनाने की इच्छा के सदृश कष्टदायक और क्या हो सकता है, यह कहना अत्यन्त कठिन है। बालकों में चिरकौमार्य अथवा ब्रह्मचारी जीवन की कल्पना को सम्भव समझते हुए भी कुमारी कन्याओं के चिर-ब्रह्मचर्य आचरण को सम्पूर्ण रूप में असह्य और धर्म्म विरुद्ध कार्य्य ही समझते हैं। समस्त हिन्दू-समाज ने नारी जाति के लिए यह पवित्र पथ एकदम ही बन्द कर दिया है।

ऐसे कई नर-नारियों की बात मुझे ज्ञात है, जिनके हृदय में विवाहित जीवन की बिलकुल ही अभिलाषा नहीं थी, परन्तु उन्हें उसी में आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य होना पड़ा। किन्तु इस प्रकार अनिच्छाकृत्य गार्हस्थ जीवन क्या कभी सुख-शान्ति उपस्थित कर सकता है। एक गंभीर व्यर्थता में उनका जीवन विषवत् हो उठता है। व्यक्तित्व-विकास का समय मिलने पर मनुष्य कदापि इस प्रकार लक्ष-भ्रष्ट नहीं हो सकता। जिसके अन्तर का झुकाव जिस ओर होता है, वह अनायास ही उस पथ को खोज कर उस

* अब यह बिल पास हो गया है। कन्या और वर के विवाह की आयु १४ और १८ वर्ष नियत की गई है। सम्पादक

प्रेरणाकारी परब्रह्म के गूढ़ उद्देश को सिद्ध करके, जीवन धन्य बना सकता है। किन्तु समाज की विधि-व्यवस्था सब ही मानो अनाचारमूलक हैं।

पुरुष फिर भी स्वाधीन हैं; किन्तु विवाह-सम्बन्ध में स्त्रियों के मतामत का कुछ भी मूल्य नहीं है। जिस व्यक्ति के हाथ समर्पण करना होगा, वह चाहे मूर्ख हो, लम्पट हो, अथवा अत्याचारी हो, किसी प्रकार भी उसके निराकरण का कोई उपाय नहीं। वही उसके चिरजीवन का साथी, जीवन का एकमात्र अवलम्बन है।

किन्तु पति-पत्नी का परस्पर मेल न होने के कारण बात ही बात में मत-भेद का अग्नि प्रज्वलित होकर संसार को श्मशान रूप में परिणत कर देती है, इसमें कोई विचित्रता नहीं है। अनेक गृहों में देखा जाता है कि पति-पत्नी का पवित्र बन्धन अंत में केवल नोन-तेल-लकड़ी में ही रह जाता है; हृदय के भीतर उसके लिए स्थान नहीं होता। यह अवस्था कैसी दुःखदायी है, विशेषतया पति-प्राणा स्त्रियों के लिए कितनी मर्मान्तक है यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है।

इसी कारण आजकल स्त्रियाँ अपने जीवन का साथी स्वयं ही चुनने का अधिकार चाहती हैं। इस माँग में कुछ भी नवीनता नहीं है। सीता-सावित्री के समय में भी इस प्रथा का प्रचलन था और आजकल पुनः इस प्रथा का प्रचलन होने की नितान्त आवश्यकता है।

पुरुष, एक पत्नी के रहते हुए भी अपनी इच्छानुसार फिर विवाह कर सकता है, अथच स्त्री कितनी ही लांछित, कितनी ही अपमानित क्यों न हो, शरीर में प्राण रहते उसे पति-रत्न के ग्रास से उद्धार पाने की आशा व्यर्थ है। पति की जीवित अवस्था में तो छुटकारा पाना दूर की बात है, उसके न रहने पर भी उसीकी दुष्कृति को वहन करके संसार की समस्त साध को जलाञ्जलि देने को बाध्य होकर, आत्मीय-स्वजनों के घर दासी-वृत्ति करके उसे अपना जीवन शेष करना पड़ता है। जिन्होंने कभी स्वामी को आँखों से भी नहीं देखा एवं सांसारिक सुख-भोग की साध को सर्वदा हृदय में पोषण करती रही हैं, ऐसी अल्पवयस्का बालिकाओं के पक्ष में भी पुनर्वार परिणीता होकर सरल भाव से जीवन-यापन करना अमार्जनीय अपराध कहा जाता है।

समाज के इस सारे अविचार को स्त्री-जाति माथा झुकाकर क्या और सहन करेगी? कदापि नहीं। वह विद्रोही होकर, दल के दल धर्म के दरबार में उपस्थित होकर, सुविचार की याचना करेगी—न्याय अधिकार प्राप्त करेगी। उस समय पर्दों पर पर्दा डालकर भी कोई उसे मृतक के सदृश ढककर न रख सकेगा।

इस पर्दा-प्रथा के सम्बन्ध में भी उनकी विलक्षण आँखें खुल गई हैं। इस प्रथा की अनिष्टकारिता किसी को आँख में अँगुली देकर दिखाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। केवल आँख खोलकर देखने से स्वतः ही दृष्टि-गोचर होती है। यह प्रथा केवल स्त्री-जाति की मानसिक शक्ति को ही विनष्ट करती है; वरन् उनकी अमूल्य स्वास्थ्य-सम्पदा को डस करके, अकाल में ही काल के गाल में खींच लाती है। यह जो देश में दिन दिन स्त्री और बालकों में क्षय-रोगियों की संख्या बढ़ती जाती है, उसके मूल में पर्दे का बहुत-कुछ भाग है। मरण-काल पर्यन्त अन्तःपुर की बन्द-विषाक्त वायु में अवरुद्ध रहने से शरीर रोग का निवास-स्थान हो जाता है। और संतान, जो इस रोग की उत्तराधिकारिणी होती है, यह स्वभाविक ही है। प्रकृति दत्त मुक्त प्रकाश और वायु पर संसार के प्रत्येक प्राणी का अधिकार है, परन्तु, नारी-जाति उसी विधाता की सृष्टि होते हुए भी उससे वंचित है। समाज के इस विदारुण अविचार और निष्ठुरता की तुलना नहीं की जा सकती।

स्त्री-जाति दुर्बल और आत्म-रक्षा के लिए अक्षम है, ऐसा कहकर ही उसके लिए इस कारागार की व्यवस्था की गई है। किन्तु जिस देश में पद्मिनी, कृष्णा, रानी भवानी के सदृश वीरांगनाओं ने अस्त्र-ग्रहण किया हो, उस देश में इस प्रकार की भ्रान्त धारणा भी रहना, स्त्री-जाति की अवमानना ही नहीं है, वरन् समस्त जाति की असभ्यता और कापुरुषता का निदर्शन है। किसी जीवित प्राणी को हाथ-पैर बाँधकर स्थावर सम्पत्ति के सदृश संदूक में बन्द करके रखने के बराबर क्या अन्यायाचरण हो सकता है, इसे विद्वानजन स्वयं विचार सकते हैं? वे बन्धन-मुक्त होकर अपने पैरों पर आप खड़ी हो सकती हैं, इसका

प्रमाण देने के लिए युगों पीछे के उदाहरण खोजने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान युग में ही जो मुट्ठीभर शिक्षता-स्वाधीना महिलायें उपस्थित हैं, वे स्वयं ही इसका जाज्वल्यमान प्रमाण हैं।

वर्तमान राजनैतिक क्षेत्र में स्त्री-जाति की सहायता की कितनी बड़ी आवश्यकता है, इसे केवल अनुभवी ही जान सकते हैं; किन्तु पराधीनता की शृंखला से मुक्त होने के लिए पुरुषों को पहले स्त्री-जाति को अपने अधीनता-पाश से मुक्ति देनी होगी। स्वाधीनता-धर्म जानने पर वे प्राण-पण से देश के स्वाधीनता-संग्राम में सहायता करेंगी। केवल सहायता ही नहीं, कायर पति-पुत्रों को धिक्कार कर, वीरों का अभिनन्दन करके घर-घर में नव शक्ति नव-उद्दीपन उद्दीप्त करेंगी। क्षुद्र सांसारिक कार्य्यों में ही वे तृप्ति-लाभ न करेंगी, वरन् संसार के महान् कार्य्यों में भी भाग लेकर देश की गौरव-वृद्धि करेंगी। जिस दिन प्रत्येक भारत-वासी इस साम्यवाद का सम्मान करेगा, कि प्रत्येक विषय में स्त्री-जाति का भी समान अधिकार है, उसी दिन समस्त स्त्री-जाति के साथ ही साथ भारत-माता का भी परिपूर्ण मुक्ति-दिवस होगा।

फिर भी यह बात सबको ध्यान में रखनी चाहिए कि धर्मानुमोदित समस्त अधिकार पाने पर भी स्त्री-जाति स्त्री-जाति ही रहेगी। स्त्री-पुरुष का प्रकृतिदत्त जो व्यवधान है, वह किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकता। केवल मनुष्य-कृत ऊँच नीच का भेद दूर हो सकता है। स्त्री-जाति इससे अधिक और चाहती भी नहीं है। केवल मनुष्यत्व का दावा लेकर समाज में सम्मानित स्थान पाना चाहती है। भीतर पुरुष की सहधर्मिणी रूप और बाहर सहकर्मिणी रूप हो-कर साम्य, मैत्री और ज्ञान-गरिमा के विमल आलोक से मातृभूमि को आलोकित करके, गौरव के उसी अतीत दिवस को फिर से लाना ही उसकी एकमात्र इच्छा है।

विविध

जातीय जीवन-शक्ति

(श्री स्वामी सत्यदेव)

बर्लिन की हालज़े बस्ती में कन्याओं की एक व्यायाम शाला है। भाई कर्त्तारामजी के अनुरोध-वश मैं वहाँ चला गया। कन्याओं को हुले में व्यायाम करते देख मेरा हृदय खिल उठा। जातीय जीवन का यह सच्चा स्वरूप देखकर मेरे अंतःकरण में भावनाओं का प्रवाह उमड़ पड़ा।

संसार किधर जा रहा है और हम कहाँ हैं? हमारी स्त्रियाँ, मातायें— बहनें अभी परदे में हैं, उन्हें गुण्डों का भय है। भय! हिन्दुओं को किस किस भूत का भय है। उनके चारों ओर भय के भयावने भूत नाच रहे हैं। उनकी उत्पत्ति कहाँ से होती है! निर्बल, भीरु, दलित और अनपढ़ स्त्रियों के कारण ही तो। वे ही मातायें हैं जो भय के सागर में डूब रही हैं। उन्हीं की सन्तान तो अपने स्वत्वों की रक्षा नहीं कर सकती। उन्हीं के देवी-देवताओं को आज लोग तोड़ जाते हैं— चुरा ले जाते हैं।

'स्टाडियो' व्यायामशाला (कन्यायें व्यायाम कर रही हैं)

सचमुच मातृ-शक्ति में राष्ट्र-बल है। वही जातीय जीवन का स्रोत है। उसी को चैतन्य—जागृत करने से राष्ट्र जागेगा। उसके मान से आत्म सम्मान पावेगा। उसे स्वाधीन करने से स्वावलम्बन बढ़ेगा। क्षात्र-धर्म की ज्वाला भारत में वे ही प्रज्वलित कर सकेंगी।

इसलिए भावी भारत के निर्माण के हेतु कन्याओं की व्यायाम शालाओं की प्रत्येक ग्राम, कस्बे और नगर में आवश्यकता है। व्यायाम—समितियां को स्थापना कर मातृ-शक्ति का आह्वान कीजिए। यदि धैर्य के साथ दस वर्ष तक हम इस कार्य पर कटि-बद्ध रहें तो भारत के जातीय जीवन की शक्ति का चमत्कार हमको दिखाई देने लगे।

अहा! भारतीय संस्कृति की नींव कितनी सुदृढ़ है।

उसके भवन की ईंटें कितनी मज़बूत हैं। उसीके ऊपर तो हमें अपने राष्ट्र का निर्माण करना है। जो काम दूसरी जातियों ने शताब्दियों में किया है हम उसे दिनों में कर सकते हैं। हमें सच्चे पथ-प्रदर्शक दरकार हैं।

× × ×

बर्लिन की जगत्प्रसिद्ध "स्टाडिओ" नामक व्यायाम-शाला का चित्र मैं 'त्यागभूमि' के पाठकों की भेंट कर उनसे नम्र निवेदन करता हूँ कि वे इस चित्र के दृश्य को देखकर जर्मन-राष्ट्र के उन्नत भविष्य पर विचार करें। कर्ज़े के बोझ से बुरी तरह लदा हुआ, फ्रांस-द्वारा अपमानित जर्मनी अपने प्रारब्ध को नहीं कोस रहा - न वह कलियुग को ही गालियाँ दे रहा है—वह परम पुरुषार्थ का पवित्र पाठ पढ़ता हुआ नवीन शक्ति का सञ्चय कर रहा है। ऐसी व्यायाम-शालाओं की सिंहनियाँ ही महापराक्रमी जर्मन-राष्ट्र का निर्माण कर रही हैं।

अतएव मेरे देश-बन्धुओ, कमर कस-कर कर्त्तव्य-परायण हो जाइए। संसार द्रुत वेग से आगे बढ़ रहा है। हम इस दौड़ में बहुत पीछे रह गये हैं। आज सब प्रकार के मिथ्या भय त्यागकर हमें परम पुरुषार्थ को पकड़ना है। यह जगत परम पुरुषार्थी के लिए है। निर्बल पीसकर खाद बना दिये जाते हैं। व्यायाम समितियों की रचनाकर बालक-बालिकाओं को सुन्दर सुडौल और निर्भय बनाइए। जर्मनों की प्यारी राइन (Rhine) नदी के पास बैठा हुआ यह पुकार रहा हूँ।

तुम्हारी वंशी

(श्री शान्तिप्रसाद वर्मा)

भरी दोपहरी थी। काम करने का समय था। और हम अपने छोटे-से संसार में वैभव की गोद में विश्राम कर रहे थे।

हमारी नसों में बहनेवाले रक्त की उष्णता सोई हुई थी। हमारे हृदयों में उठनेवाली उमंग बेहोश थी। हम क्लीव और कापुरुष बने हुए थे।

उस समय हमने तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनी।

संसार चौंक उठा, भक्त विह्वल हो गये, गोपियाँ अपने अलसाये हुए अंगों को लेकर तुम्हारी ओर भागीं।

तुम्हारी वंशी एकाएक बज उठी थी, आज भी बज रही है, और सदा बजती रहेगी। काल और विस्तार उसकी ध्वनि को नहीं रोक सकते। वह अनन्त है, असीम है।

सामने खड़े हुए पीपल के पत्ते वायु से काँप रहे हैं; परन्तु उनमें भी तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनाई देती है।

हे पुष्प !

(श्री 'शिशु-हृदय')

हे पुष्प ! तू मेरे सौन्दर्य की प्रतिमा है, मेरे आनन्द का कोष है और आत्म-त्याग का उज्वल उदाहरण है। मैं तुझे प्यार करूँगा और तेरी रक्षा करूँगा।

हे पुष्प ! तेरी मनोहरता पर मेरी आँखें निछावर हैं; तेरा सौरभ जीवन दायी है और तेरी मौन-भाषा की मधुरता हृदयहारी है। मैं तुझे प्यार करूँगा और तेरी रक्षा करूँगा।

हे पुष्प ! मैं तुझे अपने चुम्बनों से हंसाया करूँगा और अपने गीतों से रिझाया करूँगा। तथा बाह्य आघात से सुरक्षित रखने के लिए मैं सदैव तुझे अपने बाहु-पाश में परिवेष्टित रखूँगा।

हे पुष्प ! जब तुझे वायु की आवश्यकता होगी तब मैं तुझ पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ाऊँगा, अपने प्रेम की उष्णता से तुझे गर्मी पहुचाऊँगा और अपने हृदय के रक्त से तेरा सिञ्चन करूँगा।

हे पुष्प ! मैं तुझे प्यार करूँगा और तेरी रक्षा करूँगा।

फिलीपाइन का एक विस्मृत वीर

(श्री शंकरदेव विद्यालंकार)

वाशिंगटन, गेरीबाल्डी, लिङ्कन और सनयातसेन का यह सहोदर है, परन्तु इसका नाम इतिहास में उतना मशहूर नहीं है। स्वाधीनता की बलि-वेदी पर बलि हो जानेवाले वीरों की नामावली में अब तक इसका नाम दिखाई नहीं पड़ा।

परन्तु जिसके जीवनोत्सर्ग के द्वारा फिलीपाइन द्वीप में नवयुग का उदय हुआ है, उस वीर का नाम उसके देश के भाग्याकाश में कुंकुम के अक्षरों से अंकित है। फिलीपाइन के छोटे-छोटे बालक और वृद्ध इसकी पूजा करते हैं। इसका नाम है ज्योंज रीजल।

× × ×

रीजल ने बालपन से ही पराधीनता की बेड़ियों की वेदना अनुभव की थी। उसके देश पर विदेशी स्पेनिश शासकों का शासन चलता था। पाठशाला में पढ़ते समय स्पेनिश शिक्षकों ने रीजल का अपमान किया। वह अपमान रीजल कैसे सह सकता था ?

जन्मभूमि फिलीपाइन को छोड़ कर युवक रीजल यूरोप पहुँचा। उसने मेड्रिड, पेरिस और बर्लिन के विश्व-विद्यालयों में विद्याभ्यास किया; यूरोप की अनेक भाषाओं का अध्ययन करके देश-देश के विद्वानों के पास ज्ञान-साधना की। इतनी ऊँची साधना के बाद रीजल चाहता तो ऐश्वर्य-पूर्ण जीवन बिता सकता था, समृद्धि के शिखर पर पहुँच सकता था।

परन्तु रीजल को इन सब वस्तुओं की भूख न थी। उसकी आत्मा तो अपने देश की स्वाधीनता के लिए तड़प रही थी, स्वाधीनता-देवी का आह्वान कर रही थी।

× × ×

यूरोप में रहते हुए ही रीजल ने फिलीपाइन के स्पेनिश शासकों की नींद हराम कर दी। स्पेनिश अधिकारी रीजल को क्रूर दृष्टि से देखने लगे। रीजल ने अपनी ओजस्विनी लेखनी उठाई और स्पेनिश शासकों के अत्याचारों की रोमांचकारी कथा लिखकर एक पुस्तक तैयार कर डाली। इस प्रकार स्पेनिश अधिकारियों की क्रूरता को जग-विदित कर दिया। केवल इसी अपराध के कारण रीजल स्पेनिश शासकों की आँखों का काँटा बन गया। रीजल के कुटुम्बी क़ैद किये गये। उसकी सारी संपत्ति लूट ली गई। अन्त में रीजल को भी बन्दी किया गया। क़ैदी के वेश में उसने अपने वतन की राजधानी में प्रवेश किया। फिलीपाइन की प्रजा में घोर अशान्ति फैल गई। अधिकारियों ने सैन्य-बल और तोपों द्वारा जनता को रोकने का प्रयत्न किया। रीजल को फाँसी का दण्ड हुआ।

× × ×

पैंतीस वर्ष के युवक रीजल को गोली से मार दिया। स्वाधीनता के शहीदों में उसका नाम अमर हुआ, वह फिलीपाइन का वीर बना !!

जान-बुल—

(मतवाला के सौजन्य से)

JOHN BULL'S MONEY MAKING MACHINE

भारत को कोल्हू में कसने आये हैं हम यार ।
किये तोंद भरने को ही तो सात समुन्दर पार ॥
हाड़-माँस-रस चूस चुके पर बुझी न अबतक प्यास ।
पेर-पेर कलदार लूट कर करते सत्यानाश ॥

सबमें सभ्य हम्हीं हैं जग में, हमको सब अधिकार ।
न्याय कहावेंगे छल-बल से सारे अत्याचार ॥
कैसे अरबों बिना भरेगा इतना भारी पेट ।
क्या शासन का समझ रखा है, यारो, सस्ता रेट ॥

'प्रेमी'

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा— आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

भावना

(१) लेखक—स्वामी आनन्द भिक्षु सरस्वती, प्रकाशक-श्री भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन। पृष्ठ २२३ मूल्य ॥=)

(२) लेखक—श्री वियोगी हरि। प्रकाशक—साहित्य-सेवा-सदन, काशी। पृष्ठ ९३, मूल्य ॥=)।

हमारे पास 'भावना' नाम की दो पुस्तकें समालोचनार्थ आई हैं। दोनों ही प्रसिद्ध पुरुषों की लिखी हुई हैं। एक ही भाषा में दो-दो पुस्तकों का एक ही नाम रहना उचित प्रतीत नहीं होता। दोनों पुस्तकों में हृदय के उद्गार अंकित किये गये हैं, दोनों ही पुस्तकें गद्य-काव्य कहलाने की चेष्टा करती हैं। पहली 'भावना' के लेखक हैं एक संन्यासी, दूसरे के एक कवि। दोनों पुस्तकों का उद्देश्य अलग-अलग है। स्वामीजी अपनी आत्मा के सन्तोष के साथ संसार को भी उपदेश दे रहे हैं, और वियोगी हरिजी ने किसीको शिक्षा देने नहीं वरन स्वांतः सुखाय हृदय की उमंग में गद्य-गीत लिखे हैं। सहृदयता, प्रेम, सहानुभूति, और वेदना दोनों पुस्तकों में मिलती है, फिर भी दोनों पुस्तकों की तुलना करने की गुञ्जाइश हमें कहीं से नहीं मिलती। दोनों अलग-अलग तानें हैं। एक प्रभात का भैरवी-गान है, दूसरा संध्या का विरहा।

स्वामीजी की भावना में जीवन को धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि विविध क्षेत्रों में अधिक पवित्र, अधिक तन्मय, अधिक शुद्ध और सात्विक बनाने और विश्व-बन्धुत्व के भावों को जाग्रत करने की प्रेरणा मिलती है। स्वामीजी आर्यसमाजी हैं—परन्तु, इस पुस्तक-द्वारा, उन्होंने आर्य-समाज का वह उज्ज्वल और महान् रूप लोगों के सामने रक्खा है, जो संसार के हितचिन्तन और आत्म-प्रेम से ओत-प्रोत है। पुस्तक में प्रारम्भ से अन्त तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पवित्र भावना अपने आप प्रकाशित हुई है। 'मनुष्य-धर्म के नाते हम सब एक हैं, और हमें एक रहना चाहिए। हमें अपने इस विश्व-बन्धुत्व के सिद्धान्त को कभी किसी जोश, आवेश और मदान्धता में नहीं भूल जाना चाहिए। हम सब भाई भाई हैं, हम पहले मनुष्य और पीछे और कुछ हैं। मनुष्य-शरीर, धन-दौलत, राज-पाट, ज़मीन-जागीर आदि वस्तुओं पर अधिकार पाना विजय नहीं है। विजय है, हृदय पर अधिकार पाना, मनुष्य को अपनाना—अपना कर लेना।' इसी प्रकार की भावना सारी पुस्तक में जगह-जगह भरी हुई है। राष्ट्रीय विचारवालों के लिए भी पुस्तक की गर्व, क्रोध सौन्दर्य, आह, पाप, सत्कार आदि भावनाओं में अपने हृदय की बात मिलेगी। कवियों को भी 'मैं ज्ञान और योग लेकर क्या करूँगा। ....मैं महान् होकर तुम्हें नहीं पाना चाहता। ....मुझे तो वेदना चाहिए, दर्द चाहिए, तुम्हारा विरह चाहिए। इसके लिए मैं तुम्हें भी त्याग सकूँगा-हँसते हुए, सहर्ष, प्रफुल्लित होकर!! तुम मुझे वेदना दो—वह वेदना, जो तुम्हें अपनी छाया में विलीन करले।' आदि भावों में अपना हृदय मिलेगा। पुस्तक के अन्तिम अंश आत्म-ज्ञानियों की भी भूल मिटाते हैं। पुस्तक जिस उद्देश्य से लिखी गई है, उसमें लेखक सफल हुए हैं।
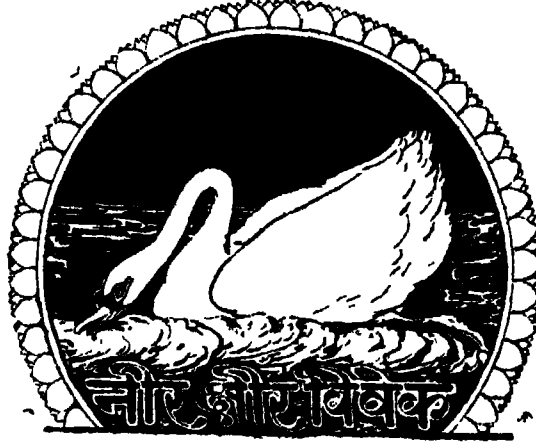
दूसरी भावना वियोगी हरिजी की है। इसमें छोटे-छोटे ५० गद्य-काव्य हैं। लेखक मंगलाप्रसाद पारितोषक प्राप्त करके अपनी धाक जमा चुके हैं। आपकी कलम से पाठक किसी बुरी चीज़ की आशा नहीं करते, और, हमें यह कहते संकोच नहीं होता कि इस 'भावना' में भी आपने अपने कवि-हृदय का शक्ति-भर परिचय दिया है। आपके पद्य से गद्य ही अधिक सरस, मादक और हृदयहर मालूम होता है। अनुनय, हिंदोला, अगुप्त गोपन, है कोई ग्राहक, हठीले, बन्धन, साथी, उपालम्भ, विरह-वेदना, आदि गद्य-काव्य अधिक सरस हैं। इनमें हृदय के सरल प्रेम-सने भाव प्रकट किये गये हैं, इसी कारण ये हैं भी मीठे। लेकिन जहाँ प्रेम का उन्माद छोड़ ज्ञान के चश्मे से आध्यात्मवाद की दुनिया को देखने लगे हैं, वहीं शुष्कता आ गई है। जहाँ प्रीति, रूप, निशीथ, कामना, करुणा आदि भावनाओं की व्याख्या करने की चेष्टा की है, वहीं कला ने साथ नहीं दिया। लेखक के ही शब्दों में कह सकते हैं, 'सबसे अधिक आनन्द तो··· मुझे अपनी इस स्तुति-धारा को स्तुति-धारा कहने में ही आता है।" कवि सुमन को सुमन ही कहे-समझे, इसके टुकड़े-टुकड़े करके उसका विश्लेषण करने से उसकी मादकता नष्ट हो जायगी। आध्यात्मवाद को प्रेम में विलीन हो जाने दो, प्रेम को आध्यात्मिकता से मत ढको। "मैं तुम्हें द्वारकाधीश के रूप में कैसे पहचान सकूँगा। मेरे मनोमंदिर में तो, प्यारे, तुम बाँसुरीवाले के रूप में ही विहार कर सकते हो।" अतः यदि कवि अपने प्रियतम को सब जगह प्रभो, नाथ, भगवन्, स्वामिन्, जगदाधार, क्षमा-सागर, भक्त-वत्सल, दयाधाम, करुणाकर न लिखकर प्यारे, हृदय-धन, सुन्दर, प्रियतम ही कह कर पुकारते तो अधिक आत्मीयता प्रकट होती। दूसरे जहाँ कवि अपने आपको छोड़ कर दूसरों को उपदेश देने लगता है—'माँझियो, मैं कहता हूँ कि तुम शीघ्र ही अपनी नावें उस विशाल करुणा-तरंगिनी के प्रशान्त अंक पर छोड़ दो।' वहाँ उसकी तन्मयता टूट जाती है, कला साथ छोड़ कर भागना चाहती है।

पुस्तक के कई गद्य-गीत सुन्दर हैं। सफ़ाई-छपाई अच्छी है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

ब्रिटिश साम्राज्य शासन

लेखक—श्री दयाशंकर दुबे और श्री भगवानदास केला। प्रकाशक-भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन। पृष्ठ संख्या १८८। मूल्य ॥।≈)। कागज़ और छपाई साधारण।

हिन्दी में राजनैतिक साहित्य का बहुत अभाव है। भारतीय शासन, भारतीय राष्ट्र-निर्माण, भारतीय जागृति, भारतीय राजस्व, निर्वाचन-नियम, नागरिक-शिक्षा, आदि-ग्रन्थ प्रकाशित कर भारतीय ग्रन्थमाला ने राजनैतिक साहित्य की वृद्धि की है। प्रस्तुत पुस्तक के भूमिका-लेखक आचार्य जुगलकिशोर (एम. ए.) के शब्दों में हम भी कहते हैं कि हिन्दी का राजनैनिक साहित्य केलाजी का ऋणी है।

प्रस्तुत पुस्तक भी इसी प्रयत्न का परिणाम है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का एक पराधीन अंग है, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य के सभी अंगों से इसका अभीष्ट या अनभीष्ट सम्बंध है। इसलिए प्रत्येक शिक्षित भारतीय का कर्तव्य है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-पद्धति से परिचित रहे। ख़ासकर जब कि हमारा देश भविष्य की अपनी शासन-पद्धति बनाने का विचार कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक २३ परिच्छेदों में विभक्त है। पहले १३ परिच्छेदों में तो ग्रेटब्रिटेन और उत्तरी आयर्लैण्ड के शासन पर विचार किया है और पिछले दस में आयरिश फ्री स्टेट, स्वाधीन उपनिवेशों, भारतवर्ष, रक्षित राज्यों, आदेशयुक्त राज्यों, प्रभाव-क्षेत्रों और मिश्र, तिब्बत तथा नेपाल के शासन पर संक्षेप से लिखा गया है। साथ-साथ प्रायः सभी आवश्यक स्थलों पर ऐतिहासिक परिचय देने से पुस्तक और भी उपयोगी हो गई है। इन ऐतिहासिक परिचयों से अंग्रेज़ों के राज्य-विस्तार का संक्षिप्त इतिहास भी ज्ञात हो जाता है। भाषा बहुत सरल है और विषय के प्रतिपादन की शैली भी अच्छी है। शासन-पद्धति के सभी अंगों पर विचार किया गया है। इसके कुछ लेख 'त्यागभूमि' और 'मनोरमा' में प्रकाशित भी हो चुके हैं।

हम एक-दो अनुरोध लेखक-युगल से भी करना चाहते हैं कि इसमें जहाँ इंग्लैण्ड के राजनैतिक दलों का विचार

किया गया है, वहाँ उपनिवेशों के राजनैतिक दलों का भी संक्षेप से परिचय देने की आवश्यकता थी। उसी तरह शासन-पद्धतियों के गुण-दोष विवेचन को भी संक्षेप से स्थान दिया जाना आवश्यक था। इससे पुस्तक के कलेवर में वृद्धि ज़रूर होती, परन्तु इसकी महत्ता देखते हुए यह कर देना चाहिए था। यदि साथ में ब्रिटिश साम्राज्य का एक नक्शा दे दिया जाता, जिसमें छोटे-छोटे द्वीपों के स्थान का भी परिचय होता, तो पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ जाती।

हमें आशा है कि आगे भी केलार्जी हिन्दी में राजनैतिक साहित्य की वृद्धि करते रहेंगे और हिन्दी जनता उन्हें प्रत्येक प्रकार की सहायता देती रहेगी।

कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

बाल-साहित्य-माला (गुजराती)

भारतवर्ष में छोटे-छोटे बालकों के अध्ययन, शिक्षा, चारित्र्य घड़नेवाली केवल दो ही संस्थायें हैं। एक है थियासॉफिकल सोसाइटी, तथा दूसरी है भावनगर का दक्षिणामूर्ति-विद्यार्थी-भवन। दोनों संस्थायें अपने-अपने ढंग की अनोखी हैं। भावनगर के विद्यार्थी-भवन में एक खास विशेषता यह है कि वह हमारे देश की राष्ट्रीय-स्थिति को ध्यान में रखकर अपने विद्यार्थियों को उसके उपयुक्त शिक्षण देता है। इस विषय का बालोपयोगी साहित्य भी वह प्रकाशित करता है।

लगभग एक वर्ष में दक्षिणामूर्ति प्रकाशन मन्दिर 'बाल-साहित्य-माला' नाम से बाल्य-पुस्तकों की एक सीरीज़ निकाल रहा है। उसके लगभग १० गुच्छ हमारे देखने में आये हैं। पहले गुच्छ की समालोचना तो 'त्यागभूमि' के पिछले अंकों में निकल चुकी है। दूसरे गुच्छ में 'गोपीचन्द' 'बाल नाटको', 'हंस अने हसा', 'तिरंदाज़,' 'गामड़ा माँ मलजी', 'बाल-प्रवासी'—ये छः पुस्तकें हैं।

'गोपीचन्द' में भारत के प्रसिद्ध अमर योगी राजा गोपीचन्द की कहानी है। इसकी लेखिका हैं श्रीमती लीलावती बहन। इस पुस्तक की शब्दों चुनाव और उनकी भाषा में है मैं समझता हूँ, गोपीचन्द की भाषा कुछ प्रौढ़-सी मालूम होती है। कहानी का अन्त Abrupt सा मालूम होता है।

दूसरी पुस्तक 'बाल नाटको' है। इसमें पाँच छोटे-छोटे नाटक हैं। भाषा, विषय और नाटक के उपयुक्त है। तीसरी पुस्तक है 'हंस अने हंसा'। इसमें ७ छोटे छोटे दृश्य हैं। साधारण विषयों को लेकर सुन्दर भाषा तथा सुन्दर भावों में उन्हें चित्रित कर दिया है। चौथी पुस्तक है 'तिरन्दाज़'। इसमें देश-भक्ति की ४ सुन्दर दिल को उठानेवाली कहानियाँ हैं। उन्हें लिखा भी इस ढंग से गया है कि कहानियाँ विदेशों से सम्बन्धित होने पर भी बालक अच्छी तरह समझ सकते हैं। पाँचवीं पुस्तक है 'गामड़ा माँ मलजो'। इसमें गाँव के लोगों के चरित्र का ख़ाका खींचा है। एक-एक दो-दो पृष्ठों में तीन-तीन चार-चार शब्दों के वाक्यों में गाँव के पटेल, सुनार, चरवाहे, साधु, भगत, दूकानदार, गाड़ीवान आदि लोगों के चरित्र बड़ी खूबी के साथ खींचे गये हैं। छठी पुस्तक है 'बाल-प्रवासो'। इसमें बालकों को साथ लेकर किये गये छोटे-छोटे प्रवासों का वर्णन है। इन सबके लेखक हैं श्री गिजूभाई। इन छहों पुस्तिकाओं में हमें 'तिरन्दाज़' और 'गामड़ा माँ मलजो' नामक पुस्तकें अच्छी लगीं।

तीसरे गुच्छ में 'मारा गोठिया' 'जरा हँसो', 'क्यां थी आव्यां ?' 'मकनो ने राक्षस', रूपसिंह अने रामसिंह', 'टपालनी पेटी' पुस्तिकायें हैं। छोटे-छोटे बच्चों के जो साथी होते हैं उनका और उनके स्वभाव, उनकी चपलता आदि का 'मारा गोठिया' नामक पुस्तिका में चित्रण है। 'जरा हसो' नामकी पुस्तक बड़ी मज़ेदार है। पेट पकड़ाकर हँसानेवाली इसमें ८ बातें हैं, जिनमें ४-५ तो बहुत ही अच्छी हैं और साथ ही मार्मिक हैं और किसी एक ख़ास बात को ध्यान में लेकर लिखी गई हैं। इसमें 'घोडाजी गुज़री गया' नामक कहानी तो पढ़ते ही बनती है। 'क्यांथी आव्यां' पुस्तक भी बड़ी अच्छी है। इसमें बिनौले, मिट्टी और जूतों की रामकहानी दी गई है। उनकी उत्पत्ति की कथा बड़ी मनोरंजक ढंग से लिखी गई है। 'मकनों ने राक्षस' में दो कहानियाँ हैं। उनमें से दूसरी 'बिकळजीबाई' वाली कहानी तो मालूम होता है हिन्दी की 'बिलाई मौसी' के आधार से ली गई है। पहली कहानी अच्छी है। 'रूपसिंह—रामसिंह' में इसी नाम की एक ही कहानी है। मेरी राय में सारी पुस्तिका में जो

छोटे-छोटे बच्चों के लिए ही बनाई गई है, केवल लम्बी-सी एक ही कहानी नहीं रहनी चाहिए। हमने देखा है कि कहानी कितनी भी हसमरी और अच्छी हो, लम्बी होते देखकर बच्चों को फिर अच्छी नहीं लगती। शायद इसमें भूल हो सकती है, पर यह कहानी एकदम अच्छी तो नहीं मालूम होती है। 'टपालनी पेटी' एक अच्छी चीज़ है। 'टपालनी पेटी' का अर्थ होता है 'लेटरबक्स'। इसमें २५ के लगभग छोटी-छोटी चिट्ठियाँ दी गई हैं। छोटों की ओर से बड़ों को और बड़ों की ओर से छोटों को किस तरह पत्र लिखे जाने चाहिएँ ? उनकी भाषा किस तरह की होनी चाहिए और उनका विषय-निर्वाचन कैसा होना चाहिए, और पत्र की लम्बाई चौड़ाई कितनी होनी चाहिए—यह सब इन पत्रों को पढ़कर अपने-आप ही हल हो जाता है। इन सब के लेखक श्री गिजूभाई ही हैं। इनमें हमें सबसे अच्छे तो 'जरा हसो' 'क्यांथी आव्यां ?' और टपाल पेटी' लगीं !

चौथे गुच्छ में 'गधेडूं', 'चिड़ियाखाडु', 'महासभाओ' 'कहेवतो नां मूळ', 'गप्पगोळा' और 'आफ्रिका सांभळ्युं' हैं। 'गधेडू' में एक गधे की आत्मकहानी है। इस पशु-संसार में भेड़, हरिन, गाय आदि करुणा के प्रतीक समझे जाते हैं। लेकिन सन्ध्या के समय घूरे पर चरते हुए एक गधे को देखकर मन में एक विचित्र प्रकार की करुणा, विचित्र प्रकार की दया और एक विचित्र प्रकार के मनोभाव उठते हैं। उसी का वर्णन इस छोटी-सी पुस्तक के एक पाठ में किया गया है। 'हाँ भाई हाँ, मारूँज नाम गधेडूं ने हूँज आ गधेडूं. शीदने तमे वाँसे पड्या छो ?' (हाँ, भाई मेरा ही नाम गधा है और मैं स्वयं ही गधा हूँ। क्यों तुम मेरे पीछे पड़े हो ?) इन वाक्यों में कितनी निराशा, कितनी करुणा और कितनी वेदना छिपी है ! इसी वेदना, करुणा और निराशा के अन्दर एक बेचारे गधे का सारा जीवन छिपा हुआ है। 'चिड़िया-खाडु' में एक शिकारखाने का वर्णन है। 'महासभाओ' में पशु-पक्षियों की महासभाओं का वर्णन है। 'कहेवतोना मूळ' में कहावतें किस तरह से उत्पन्न हुईं, इसीके सम्बन्ध में काल्पनिक कहानियाँ हैं। 'गप्पगोळा' में खूब गप्पें हैं। 'अफ्रिका सांभळ्युं' में अफ्रिका की कुछ बातें हैं। इन पुस्तकों में 'गधेडूं' का पहला पाठ अच्छा है। 'अफ्रिका सांभळ्युं' और 'महासभाओ' पुस्तकें साधारण ही हैं।

पाँचवें गुच्छ में 'शब्दपोथी', 'वाक्यपोथी' 'चिट्ठीपोथी', 'नाना पाठो', 'मोटा पाठो' और 'नानी वातो'—ये पुस्तिकायें हैं। 'शब्दपोथी' में २-३-४ अक्षरवाले छोटे-छोटे शब्दों का संग्रह है। 'वाक्य पोथी' ३-४-५ शब्दों के वाक्यों का संग्रह है। 'चिट्ठी- पोथी' में बालकों के लिए एक-एक लाइन में कुछ बातें लिखी गई हैं। 'नानापाठो' में छोटे-छोटे पाठ हैं। कुछ प्रश्नोत्तर हैं। 'मोटा पाठो' में कुछ बड़े-बड़े पाठ हैं। 'नानी वातो' में छोटी-छोटी एक-एक दो-दो पृष्ठ की कहानियाँ हैं। मैं जहाँ तक समझता हूँ, यह गुच्छ ५-६ वर्ष के बालकों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। अच्छा होता, यदि ये पोथियाँ पहले गुच्छ में प्रकाशित होतीं।

'प्रशांत'

साहित्य–सत्कार

(१) समुद्र पर विजय—लेखक-श्री जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी-भूषण, विशारद; प्रकाशक-रायसाहब रामदयाल अगरवाला, बुकसेलर और पब्लिशर, प्रयाग; पृष्ठ १५२, मूल्य १)

(२) भेड़िया-धसान—मूल लेखक श्री परशुराम; अनुवादक श्री धन्य कुमार जैन; मूल्य १॥)

(३) पाथेयिका (गल्पसंग्रह)—लेखक श्री श्रीनाथसिंह; प्रकाशक-तरुण भारत ग्रन्थावली, दारागंज, प्रयाग; मूल्य १)

(४) जहाज की कहानी—लेखक श्री जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी-भूषण, विशारद; प्रकाशक—रायसाहब रामदयाल अगरवाला, बुकसेलर और पब्लिशर, प्रयाग।

(५) दर्शन और अनेकान्तवाद—लेखक पं० हंसराजजी शर्मा; प्रकाशक श्री आत्मानन्द जैन-पुस्तक प्रचारक-मण्डल, रोशन मोहल्ला, आगरा।

(६) ब्यावर की भीषण मृत्यु-संख्या के कारण और उपाय—लेखक और प्रकाशक-व्यास तनसुख वैद्य, ब्यावर; पृष्ठ संख्या १७५ + ३८ ; मू० १।

(७) मोतीज्वर-चिकित्सा (मोतीझरा)—लेखक वैद्यराज जगन्नाथ प्रसाद 'विद्याभूषण', वैद्यवाचस्पति; प्रकाशक वैद्यराज कार्यालय आगरा; पृष्ठ २११, मू० १)

(८) कर्तव्य पर बलिदान—सम्पादक व प्रकाशक श्री रामसहाय आर्योपदेशक, श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा, अजमेर। पृष्ठ ५०, मूल्य ≤)॥

(९) हिल्लोर (कविता)—लेखक पं० महेन्द्र शास्त्री 'विशारद'; प्रकाशक—बाबू रामचन्द्रसिंह, नवलपुर, पो० महाराजगंज, सारन; पृष्ठ ४१, मू १)।

(१०) सडियल साहित्य (कविता)—प्रस्तुत कर्ता-श्री भगवतीसिंह 'वीरेन्द्र', श्री रघुनन्दनप्रसाद शुक्ल 'अटल'; प्रकाशक-'वीरेन्द्र'-कार्यालय, श्रावन एण्ड कम्पनी, जतनबड़, काशी; पृष्ठ ४२; मू० ।-)

(११) सुकन्या चरित—लेखक श्री उदितनारायण दास, बी. एल.—काव्यतीर्थ; प्रकाशक अयनम्बुन झा, ५१ नं० मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता; पृष्ठ ५९, मू० ।)।

(१२) शिवाजी महाराज—लेखक व प्रकाशक—श्री अवतारकृष्ण कौल, नया बाजार, लश्कर, ग्वालियर स्टेट; पृष्ठ २९, मू० ।-)।

(१३) आगामी कांग्रेस और गौरक्षा—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत ब्रजमोहनलाल वर्मा, बी.ए. एल-एल-बी. वकील, छिन्दवाड़ा (मध्य प्रदेश) मूल्य ≈)

(१४) श्री कबीर (धनुर्वेदी) जानि व्याख्या—लेखक-श्रीयुत "गुलाब भैया"; प्रकाशक श्रीयुत अमृतलाल बिजोरहा बी. ए, जबलपुर; पृष्ठ ४०।

(१५) नवजीवन माला—

१—एकमात्र गृह उद्योग चर्खा (महात्मा गान्धी के हिन्दी नवजीवन से) पृष्ठ ७१, मू०)॥

२—खादी और स्वराज्य-लेखिका श्री मीराबहन; पृष्ठ ८, मुफ्त।

३—हम कैसे लुटे—लेखक श्री-रामदास गौड़; मूल्य)॥

४—एक ही उपाय; लेखक महात्मा गांधी; मूल्य)॥

५—खादी गीत; श्री रामदास गौड़; मूल्य)॥

६—सवालें कैसे? (हाथ की कताई, बुनाई के आधार पर) लेखक श्री रामदास गौड़; मूल्य ≈)।

७—खद्दर ही क्यों—लेखक-श्री रामदास गौड़ (खादी के सम्पत्ति-शास्त्र के आधार पर); मू० ≈)।

८—नवयुवकों से दो बातें—लेखक प्रिन्स क्रोपाटकिन, मू० -)

९—अंग्रेज़ी राज्य के सौ साल—लेखक श्री छगनलालजी जोशी; मूल्य ≈)

गुजराती

(१६) चन्द्रदूत—(कवि कालिदास के 'मेघदूत' की अनुकृति)—रचयिता अनुवादक और प्रकाशक—श्री मनसुखलाल मगनलाल झावेरी, जामनगर। मूल्य ॥≈)

(१७) प्रह्लाद—(बालोपयोगी नाटक)—लेखक श्री जुगतराम दवे। प्रकाशक—पुस्तकालय स०स० मण्डल लि०, बड़ौदा। मूल्य ।)

(१८) रखडु टोली (अंग्रेज़ी से) अनुवादक—श्री गिजूभाई। प्रकाशक श्री दक्षिणामूर्ति प्रकाशन-मंदिर, भावनगर। मूल्य ॥)

पत्र-पत्रिका

(१९) १. रोटी (साप्ताहिक पत्र)—सम्पादक श्री विश्वम्भरदयालुजी, बी० ए०, एल० टी। प्रकाशन-स्थान—श्रद्धानन्द बाज़ार, दिल्ली। फुलसकेप साइज़। पृष्ठ १२। वार्षिक मूल्य ३ रु०।

(२०) २. ब्रह्मदेश (एंग्लो गुजराती साप्ताहिक)—सम्पादक श्री रमेश बी. ए.; प्रकाशक-राजस्थान-ब्रह्मदेश प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड, रंगून; फुलिसकेप साइज; पृष्ठ ४०। मूल्य प्रति अंक =)

(२१) ३. सेवक (हिन्दी-मासिक)—सम्पादक-श्री बैजनाथ केडिया। प्रकाशक-वणिक प्रेस, सरकार लेन, कलकत्ता। त्यागभूमि-साइज; वा० मू० ॥)

(२२) ४. बालिका (हिन्दी-मासिक)—संपादक-पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, बी. ए.। पता—गुप्त आदर्श, बनारस सिटी। हाफ़-फुलसकेप साइज़। वा० मू० २)

(२३) ५. गुप्त सुंदरी (गुजराती मासिक)—सम्पादक-श्री जयकृष्ण वर्मा। पता—लुहाना मित्र प्रेस, रावपुरा, बड़ोदा। वा० मू० ४)

(२४) ६. The morning star (दि मार्निंग स्टार—अंग्रेज़ी साप्ताहिक)—सम्पादक-स्वामी अव्यक्तानन्द। पता श्री रामकृष्ण आश्रम, पटना; त्यागभूमि-साइज वा० मूल्य ३)

परोपकाराय सतां विभूतये

मिस्टर जॉनबुल का विश्व-प्रेम

(मतवाला के सौजन्य से)

सम्पादकीय

चंक्रम

'त्यागभूमि' की शिकायतें

'त्यागभूमि' इस संख्या से अपने तीसरे साल में क़दम रख रही है। पिछले साल उसने कैसी लेख-सामग्री पाठकों को दी, यों तो इसका फैसला हमारे पाठक और आलोचक भाई ही कर सकते हैं; पर इधर कई मित्रों और समाचार-पत्रों और बन्धुओं ने त्या० भू० पर जो टिप्पणियाँ और अग्रलेख आदि लिखकर उसकी योग्यता, और छोटी-सी सेवा के प्रति अपना प्रेम और सहानुभूति प्रदर्शित करने की कृपा है, इससे भी इस पर रोशनी पड़ जाती है। त्याग-भूमि' के किस प्रेमी को यह सुनकर आनंद न हुआ होगा कि युवक-भारत के सरदार पं० जवाहरलाल नेहरू ने उसे हिन्दी की 'सब से अच्छी' पत्रिका बताया है। मेरी राय में पहली साल की अपेक्षा दूसरे साल में 'त्यागभूमि' का स्टैंडर्ड किसी क़दर अच्छा ही रहा है। ग्राहक-संख्या भी पिछले वर्ष से ज़्यादह—तीन हज़ार से ऊपर—है। त्या० भू० ४००० छपती है। घटी के ठीक अंक, यह लेख लिखते वक्त तक मेरे पास नहीं आये हैं—फिर भी अनुमान है कि इस वर्ष ७ हज़ार से अधिक हानि न उठानी पड़ेगी। इस वर्ष तो ऐसी योजना बनाई है कि जहांतक हो ५ हज़ार से अधिक हानि न उठानी पड़े। यदि त्या० भू० अपना पूरा मूल्य पाठकों से ले और साथ ही विज्ञापन छापकर भी आमदनी करने लगे तो यह घटी सहज ही पूरी हो सकती है; पर अभी तो त्या० भू० अपनी इसी नीति पर दृढ़ रहना चाहती है। वह देखना चाहती है कि अपनी उपयोगिता और सेवा के बल पर इतने कम दाम लेकर भी किसी तरह स्वावलंबिनी हो सकती है, या नहीं।

यह तो हुआ त्या० भू० का उज्ज्वल पक्ष या एक पक्ष; अब दूसरे पक्ष की सुनिए। छपाई-सफ़ाई में, प्रूफ-संशोधन में समय पर प्रकाशित होने में वह अभी पिछड़ी हुई है। प्रबंध-संबंधी शिकायतें भी मेरे कानों पर आती रहती हैं। इन सबके लिए मुझे बहुत दुःख है। यों तो मनुष्य जितना अधिक योग्य और पूर्ण होगा उतना ही अधिक उसका कार्य निर्दोष और अच्छा होगा। पर हममें से कोई पूर्णता तो दूर रही, बड़ी योग्यता तक का दावा नहीं कर सकता। त्या० भू० ही नहीं, सारे सस्ता-मंडल के दफ्तर में ३० साल से ज्यादह उम्र के २-४ ही कार्यकर्ता होंगे। खुद मेरी उम्र भी बहुत थोड़ी—सिर्फ़ ३१ साल की है। फिर अव्वल तो देश के किसी अग्रणी प्रान्त या शहर में, अथवा किसी श्रेष्ठ-संस्था में भी थोड़े वेतनपर काम करने वाले प्रथम-श्रेणी के सु-योग्य कार्यकर्ता मुश्किल से मिलेंगे, फिर राजपूताना-जैसे पिछड़े हुए प्रान्त में और अजमेर-जैसे प्रकाशन और प्रेस-संबंधी कामों में बहुत असुविधा-पूर्ण नगर में, हम अधकचरे लोगों के द्वारा इससे अधिक अच्छा फल न दिखाई दे तो आश्चर्य की बात नहीं। पर योग्यता की हममें चाहे कमी हो, किन्तु लगन, सेवा-भाव और उत्साह की कमी हममें पाठकों को न मिलेगी, यह दावे के साथ कहा जा सकता है। इसका यह अर्थ पाठक न समझें कि हम अपनी कठिनाइयों और अयोग्यताओं का रोना रोकर उनकी ज़बान बन्द कर देना या अपनी त्रुटियों को जारी रहने देना चाहते हैं। इस वर्ष हमारी कोशिश होगी कि पाठकों को और भी कम शिकायतों का अवसर मिले। हमारी इच्छा को निबाहना परमात्मा के अधीन है।

पर इससे भी बढ़कर शिकायतें त्या० भू० की मेरे पास आती रहती हैं जिन पर, वर्षारंभ में, सविस्तार विचार कर लेना ज़रूरी है। उनका अधिक सम्बन्ध है 'त्यागभूमि' की, या यों कहिए कि उसके सम्पादक की, विचार-नीति से। ये शिकायतें चार प्रकार की हैं। एक तो देशी राज्यों में राजनैतिक काम करनेवाले भाइयों की तरफ़ से; दूसरे देशसेवक मित्रों और साथियों की ओर से; तीसरे और चौथे, सम्पादक-बन्धुओं तथा अन्य आलोचकों की तरफ़ से।

इनमें देशी राज्य के कुछ कार्यकर्त्ताओं का कहना तो यह है कि तुम अँग्रेज़ी राज्य के पीछे तो कसम खाकर पड़े रहते हो; पर देशी राज्यों के सत्ताधीशों की क्यों रिआयत करते हो? इनके लिए तो मीठी नीति और उनके लिए

कड़वी नीति क्यों ? फिर कार्यकर्त्ता और अधिकारी दोनों पर एक ही साथ टीका-टिप्पणी कर देने से अधिकारियों को उस कार्यकर्त्ता को कुचल देने का, या तुम्हारी सम्मति का आश्रय लेकर उसे हानि पहुँचाने का अवसर मिल जाता है। इधर कार्यकर्त्ता बेचारा उनके मुकाबले में यों ही साधन-हीन होता है, किसी तरह जनता में वह जागृति लाने, अन्याय-अत्याचार का विरोध करने का भाव और बल उनमें जागृत करने का उद्योग करता है कि तुम-जैसों के अप्रत्यक्ष सहयोग से लाभ उठाकर अधिकारी उन्हें पीस दे सकते हैं। वे तुम्हारी निष्पक्षता, सत्यता की तारीफ़ कर देते हैं; तुम्हारी संस्थाओं और कामों में सहायता दे देते हैं—तुम उनको भला आदमी समझ लेते हो, तुम्हारे साथ मीठी-मीठी बातें करते हैं, तुम्हारा आदर कर देते हैं,—बस तुम उन्हें सार्टिफिकेट दे देते हो। ख़तम हुआ। मरा बेचारा वह कार्यकर्त्ता जो उनकी ख़फ़गी और ज़ुल्म की परवा न करके अपनी जान झोंकता है, ऐसी दलीलें देकर और बिगड़कर चाहते हैं कि मैं सदा जनता का और जनता के सेवकों का, उनकी तरफ़ से अधिकारियों, या देशी नरेशों की पोल खोलनेवाले, उनका विरोध करनेवाले कार्यकर्त्ताओं का ही पक्ष लिया करूं। तुम न्यायाधीश नहीं, जनता के पैरोकार हो। जनता और जनता के सेवकों के पास क्या है ? रूखी-सूखी खाकर गुज़र करते हैं। भीख माँगकर, ज़िल्लतें उठाकर, कहीं से अपने प्यारे कामों के लिए रुपया लाते हैं। और इधर घरवाले, जात-बिरादरीवाले एवं राजवाले, सबसे सताये जाते हैं। अधिकारी से सब डरते हैं, सब उसका मुलाहिज़ा करते हैं, पैसे की उसे कमी नहीं, जिसे चाहे दबा देने की तो असाधारण शक्ति उसके पास रहती है। फिर नरेशों का तो पूछना ही क्या ?

> यौवनं-धन-सम्पत्ति-प्रभुत्वमविवेकता ।
> एकैकप्यनर्थाय किमुयत्र चतुष्टयम् ॥

अर्थात् जवानी, धन, प्रभुता और अविवेक इन चारों में से यदि एक भी हो तो अनर्थ हो जाता है, फिर जहाँ इन चारों का सम्मेलन हो वहाँ तो अनर्थ का क्या पूछना ! इतना होने पर भी आप सोलहों आना प्रजा का पक्ष न लेकर अधिकारियों के गुण गा दिया करते हैं। इससे तो आप कुछ भी न लिखा करें तो अच्छा।

देश-सेवक मित्रों की ओर से यह शिकायत सुनी जाती है कि तुम तो देश-सेवकों की ही बहुत आलोचना करते हो। अपनों के ऐब तो उल्टा छिपाना चाहिए या लोगों के सामने उन्हें बदनाम करना चाहिए ? महात्माजी-जैसे ऐसा करें तो लोग उनकी सुनें भी तुम्हें यह ज़ेबा नहीं देता।

कुछ सम्पादक बन्धु तथा दूसरे मित्र समझते हैं, मैं उपदेश देता हूँ। अपने को बड़ा समझता हूँ। महात्माजी की तरह लिखता हूँ। 'कौवा चले हंस की चाल !' बहुत साधु न बनो !

कुछ मित्र यह भी कहते हैं—तुम तो महात्माजी के अन्धभक्त हो। हर बात में उन्हींकी लकीर पीटते हो। अपने चक्कर से अलग नहीं हो पाते। रट में पड़ गये हो। नई रोशनी और नये ज़माने को भी देखो। नये विचारों का भी आदर करो।

अब इनपर क्रमशः मेरा भी नम्र निवेदन सुन लीजिए। पहले देशी-राज्यों की शिकायत को लें। देशी राज्यों के सम्बन्ध में मुझे वह नीति मंजूर है, जो महात्माजी ने इस सम्बन्ध में निर्धारित की है और जिसे अबतक हमारी राष्ट्रीय महासभा भी मानती आ रही है। अर्थात् देशी राज्यों से सीधी लड़ाई मोल न लेना। मैं यह मानता हूँ कि असहयोग को सफल या कार्यकारी बनाने के लिए हमारे आपस में, हिन्दुस्तानीमात्र के सहयोग की आवश्यकता है। अर्थात् हम जहाँतक हो किसी भी हिन्दुस्तानी जाति, दल, वर्ग, सम्प्रदाय को अपने राष्ट्रीय ध्येय से दूर न जाने दें—हमारी शक्ति उन्हें नज़दीक लाने ही में खर्च हो। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो बड़ी अदूरदर्शिता से काम लेते हैं। यदि हम हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ाते हैं, यदि हम मजूरों और मालिकों के झगड़ों को पैदा करते या फैलाते हैं; यदि हम देशी राज्यों के राजा-प्रजा के झगड़ों में अपने को झोंक देते हैं; यदि हम ब्राह्मण अब्राह्मण के विवाद में सक्रिय दिलचस्पी लेते हैं, तो मेरी नाकिस राय में हम देश की राष्ट्रीय एकता, व्यापक संगठन और आज़ादी की तरफ़ नहीं बढ़ाते बल्कि अपनी शक्तियों को तितर-बितर

करने की ओर अग्रसर करते हैं। आपस में फूट फैलाने की नीति मुझे आत्मघातक मालूम होती है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम किसी के ज़ुल्मों या ज़्यादतियों को भेड़-बकरी की तरह सहते रहें। हम आन्दोलन, विरोध, सत्याग्रह सब करें—जहाँ जैसी ज़रूरत हो वहाँ इनमें से किसी भी उपाय को काम में लावें पर इस तरह से और उसी हद तक कि हमारी राष्ट्रीय एकता और देशव्यापी संगठन में बाधा न पड़े। इसका सबसे बढ़िया असली तरीका महात्माजी ने सुझाया है, जिसका उल्लेख इसके पहले अंक में किया जा चुका है। महात्माजी की तरह मैं भी देशी राज्यों में और देशी नरेशों में सुधार की आशा रखता हूँ। उनकी वर्तमान अनेक बुराइयों की ज़िम्मेदार इस ब्रिटिश सल्तनत को मानता हूँ, इसलिए उन असहायों के ख़िलाफ़ बग़ावत मचाने का उत्साह नहीं होता। फिर भी, चूँकि मैं एक देशी राज्य का प्रजा-जन हूँ, वहाँ की ख़राबियों, ज़्यादतियों, ज़ुल्मों से वाक़िफ़ हूँ इसलिए सोलहों आने अपनी इस इच्छा का पालन नहीं कर पाता हूँ। ऐसी दशा में मेरी कलम से देशी राज्यों के प्रति सौम्य-टीका ही तो निकलेगी?

अब रही सत्ताधारियों के गुण गाने और उधर देश-सेवकों पर टीका करने की तथा न्यायाधीश बनने की बात। मैं भी मानता हूँ कि मनुष्य को निर्बल का पक्ष लेना चाहिए; सबल का नहीं। पर मैं एक कदम और आगे बढ़ना चाहता हूँ कि निर्बल को हमें उसी बात में सहायता देनी चाहिए, जिसमें वह सचाई और इन्साफ़ पर हो। यदि हम सचाई और न्याय की परवा न करके उसका साथ देंगे तो एक तो लोग हमें भला और सच्चा आदमी न समझेंगे, हमारी बात का एतबार न करेंगे और दूसरे उस निर्बल की भी बुराई और बेइन्साफ़ी को हम बढ़ावेंगे या मज़बूत करेंगे जिससे आगे चलकर वह और कमज़ोर हो जायगा एवं गिर जायगा। मनुष्य के पास सबसे बड़ा बल है उसकी सचाई। सचाई के सामने धन, सत्ता और तोप-तलवार सब सिर झुकाते हैं। यदि ये सब मिलकर उसका मुकाबला करें भी तो ज़्यादह दिन तक नहीं ठहर सकते। ऐसी हालत में मैं प्रजाजन या निर्बल का पक्ष हर मामले में नहीं ले सकता, सिर्फ़ उन्हीं मामलों में ले सकता हूँ और लूँगा जिनमें वे सचाई पर और इन्साफ़ पर होंगे। इन्दौर में मजूरों की ज़बरदस्त हड़ताल के समय तथा अभी बिजोलिया में किसानों के आन्दोलन के समय मैंने मजूर और किसान भाइयों के सामने सबसे पहली शर्त यही रक्खी कि यदि आप सचाई पर कायम रहना चाहते हों, इन्साफ़ का रास्ता पसंद करते हों और शान्ति को किसी तरह भंग न होने दें तो मैं आपका हूँ और मरते दम तक आपका साथ न छोड़ूँगा; पर अगर इनमें से आपने किसी भी बात को छोड़ दिया तो आपके लिए मिट्टी के ढेले की तरह बेकार हूँ। दोनों जगह इन भाइयों को यह शर्त मानने में दिक्कत न पड़ी और ईश्वर ने उन्हें सफलता दी। मेरा तो दिन-दिन विश्वास होता जाता है कि जहाँ सच्चाई है वहाँ सफलता अवश्य मिलनी चाहिए। और जहाँ हमें निर्बलता का अनुभव होता हो वहाँ और कुछ नहीं सच्चाई की ही कमी है। जो आदमी सच्चा है उसे डर किस बात का? और जहाँ डर नहीं है वहाँ निर्बलता के क्या मानी होते हैं? जब हम झूठ पर सचाई का मुलम्मा चढ़ाते हैं तो निर्बलता आकर भूत की तरह हमें पछाड़ देती है।

अब अधिकारियों के गुणगान का प्रश्न रहा। यह बात ज़रूर है कि 'त्यागभूमि' को सत्ताधारियों, धनियों, विद्वानों, सत्पुरुषों, नेताओं और महान् पुरुषों के रूप में अपने मित्र-हितैषी, पृष्ठ-पोषक, प्रोत्साहक और गुरु-जन, प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है; पर त्या०-भू० उनके गुण-गान में प्रायः पीछे ही रहती है। एक महात्माजी का अपवाद हो सकता है। उसका कारण तो यह है कि लेखक महात्माजी को अपना नेता ही नहीं हृदय-देव समझता है। उनका सच्चा अनुयायी बनने और कहलाने में वह अपनी बड़ी इज़्ज़त समझता है। इससे उसके आत्माभिमान को किसी तरह ठेस नहीं पहुँचती, बल्कि उसकी सच्चाई को आनन्द होता है। जब मैं देखता हूँ कि बुद्धि, ज्ञान, क्रियाशीलता, अनुभव और तपस्या इन सब गुणों का सम्मेलन आज—विश्व को जाने दीजिए—भारत में और किसी व्यक्ति में नहीं है, और मैं अपने को इन गुणों में उनसे बहुत छोटा पाता हूँ तो मेरा मस्तक उनके चरणों में बरबस झुक जाता है, मेरा

हृदय ज़बरदस्ती उन्हें खींचकर अपने में बन्द कर लेता है; वहाँ मैं लाचार हूँ। पर इसके अतिरिक्त त्या० भू० ने कभी अपने किसी मित्र की बिना प्रसंग के प्रशंसा नहीं की, और जो की वह भी उससे कम, जितनी की वह मेरी दृष्टि में उसके पात्र हैं। हाँ, उन सज्जनों की प्रशंसा में अलबत्ता मैं उदार रहा हूँ जिन्हें मैं 'स्वजन' नहीं कह सकता। फिर सत्ताधारी और धनी मित्रों की प्रशंसा में तो मैं और भी सावधान और जागरूक रहता हूँ क्योंकि आजकल उनके दिन बुरे हैं। उनके पास जाते ही लोगों को खुशबू में भी बदबू आने लगती है। उनके प्रीति-पात्र होते ही लोगों को 'घृणित' के सिवा सहसा दूसरी कल्पना नहीं आती। इस अनुदारता के वातावरण में थोड़ी बुद्धि रखने वाला सम्पादक भी काफ़ी सतर्क रहता है — फिर त्या० भू० में सम्पादक के लिए तो पाठक उससे भी कम बुद्धि और सतर्कता की कल्पना न करेंगे। अभी तक मैंने प्रायः इन्दौर और उज्जैन की ही कुछ घटनाओं पर टीका-टिप्पणी की है। जहाँ का ज्ञान अधिक हो वहीं की घटनाओं पर कुछ कलम चलाना ज्यादह कारगर होता है, और वहाँ के लोग उम्मीद भी रख सकते हैं। उज्जैन के मामले में वहाँ के सूबा श्री किचलू साहब से तो मेरी दुआ-सलामत तक नहीं थी, उस टिप्पणी के बाद उन्होंने एक स्टेशन पर मेरी सूरत-शक्ल देखी। इन्दौर के मामले में श्री बापना साहब और किबे साहब आदि से मेरी अच्छी मुलाकात ज़रूर है। पर इनकी तारीफ़ में मैंने लिखा क्या? बापना साहब सज्जन और शरीफ़ हैं, किबे साहब विद्वान् हैं—यही न? बापना साहब ने 'कर्मवीर' की बन्दी की तो क्या मैंने यह लिखा कि उन्होंने अच्छा किया? पर-साईजी गिरफ्तार किये गये, क्या मैंने बापना साहब को बधाई दी? पर यह भी हम क्यों और कैसे मान लें कि हर आदमी जो अपने को देश-भक्त कहता है अच्छा ही है, सच्चा ही है और हर आदमी जो अधिकारी बन जाता है बुरा ही है और झूठा ही होता है? हाँ, यह बात ठीक है कि हम सबलों के मुकाबले में निर्बलों की सहायता करें; अधिकारियों के मुकाबले में प्रजा का साथ दें; पर निर्बल और प्रजाजन यदि ग़लत रास्ते जाते हों तो? तो भी हम उनका पक्ष ही लेते चले जायँ? उन्हें कुछ भी न कहें? मीठा प्रेम का उलहना तक न दें? मैंने तो इस सम्बन्ध में ये नियम अपने लिए मार्ग-दर्शक बनाये हैं —

(१) झुठाई और बेइन्साफ़ी का कहीं भी पक्ष न लिया जाय, चाहे वह प्रजा में हो या राजा में।

(२) देशी राज्यों में स्वेच्छाचार की जो प्रणाली है उसका विरोध किया जाय और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन पद्धति जारी करने का उद्योग किया जाय।

(३) जहाँ के नरेश या अधिकारी प्रजा का हित चाहते हों, या करते हों; भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं में विघ्न न डालते हों, उनसे अच्छे काम कराये जा सकते हों तो उन्हें ऐसे कामों के लिए उत्साहित किया जाय और जहाँ हर तरह निराशा हो, वहाँ तीव्र विरोध तो ठीक सत्याग्रह तक किया जाय।

मैं नहीं समझता कि किसी भी विचारशील पाठक को इनमें कोई आपत्ति हो सकती है। अब रही यह बात कि अधिकारी इस थोड़ी-सी स्तुति और कार्यकर्ताओं की मीठी नुक्ताचीनी से भी लाभ उठाते हैं तो देश-सेवक को इससे घबराना क्यों चाहिए? यदि वह त्रुटि उसमें या उसके कार्य में नहीं है तो उसे निर्भय रहना चाहिए और टीका करनेवाले के भ्रम को दूर करने का उद्योग करना चाहिए। यदि टीका सच है तो उसके कारणों को दूर करके अपने को अधिक प्रभावशाली बनाने का यत्न करना चाहिए। यदि हमारे काम में कोई खामी है, हमने कोई ग़लती की है तो अधिकारी लोग ऐसे बेवकूफ़ नहीं होते हैं कि उन्हें उनका पता न चले। उनके पास देखने की सैकड़ों चलती-फिरती आँखें होती हैं। बल्कि मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि हमारी बुराइयों का खुद हमारे पास भी इतना अच्छा 'रेकार्ड' न होगा जितना अधिकारियों के पास होता है। वह इतना होता है कि बिना किसी की सहायता के भी हमें जीता जला देने के लिए काफ़ी हो जाता है। अतएव अपने एक भाई की प्रेममय नुक्ताचीनी पर चिढ़ने या बुरा मानने के बजाय हम देश-सेवक या उनके समर्थक अपनी त्रुटियों और खामियों को सुधारने और सुधरवाने का उद्योग करें तो बड़ा लाभ होगा। मेरे लिए यह मुश्किल नहीं है कि एक ओर देश-सेवकों की खामियों पर और दूसरी ओर अधिका-

रियों की जो थोड़ी बहुत अच्छाई नज़र आ जाती है उसपर चुप्पी साध लिया करूँ; क्योंकि यदि सबलों को मेरा थोड़ा भी सहारा निर्बलों को अनुचित रीति से दबाने के लिए मिल जाता हो तो मैं अप्रत्यक्षरूप से भी इस बुराई का साधन नहीं बनना चाहता। पर अपने लिए यह मानना कि मेरे लिखे को अधिकारी लोग इतना महत्व देते होंगे, जितना कि कहा जाता है, शायद अपने को बहुत बड़ा मान लेना होगा। ख़ैर।

मेरा आदर करने और संस्थाओं के लिए रुपया देने के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि मैं निमंत्रण मिलने पर भी आज तक प्रायः किसी राज्य का मेहमान नहीं बना हूँ। जहाँ दूसरे मित्र होते हैं वहाँ राज्याधिकारियों के यहाँ ठहरने तक से परहेज़ रखता हूँ—उनके तथा धनी मित्रों के वैभव से डरता हूँ और अपनी ग़रीबी और सादगी पर बहुत संतुष्ट रहता हूँ। आज तक किसी नरेश या राज्याधिकारी से कोई आर्थिक सहायता त्यागभूमि या सस्ता-मंडल के लिए नहीं ली गई—मंडल और त्यागभूमि में एक-एक पैसे का हिसाब रहता है और वह बाकायदा ऑडिट होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि यदि हमारे किसी कार्य को अच्छा समझकर कोई उसकी सहायता करे तो हम उसके लिए किसी दल या वर्ग से ख़ास परहेज रखना चाहते हैं; बल्कि यह कि त्यागभूमि या मंडल ने आज तक किसी अधिकारी से सहायता के लिए प्रार्थना नहीं की। सिवा इसके कि वे पुस्तकमाला और त्यागभूमि के ग्राहक बनें।

देश-सेवकों की आलोचना करने के आक्षेप के उत्तर में मुझे इतना ही निवेदन करना है कि अपने दोषों की आलोचना से घबराना या उसकी शिकायत करना मैं एक भारी कमज़ोरी समझता हूँ। जो मनुष्य अपनी उन्नति का उत्सुक है, अपना बल बढ़ाने के लिए लालायित है, वह तो प्रेम से उलटा अपनी आलोचना का आवाहन और स्वागत करेगा न कि विरोध और प्रतीकार। आलोचक अपने को ख़तरे और हानि में डालकर टीका करता है—इस उद्देश से कि वह त्रुटि दूर हो। प्रेम और सहानुभूति की टीका, तथा बदनाम करनेवाली टीका में भेद होता है। दोनों की भाषा बिलकुल जुदी होती है। मुझे नहीं याद पड़ता कि मैंने कभी किसी पर इस तरह टीका की हो जिससे वह लोगों की दृष्टि में गिर जाता हो। जहाँतक हो सकता है, ऐसी टीका आमतौर पर करता हूँ—किसी का नाम लेकर नहीं। फिर बदनामी का भय कहाँ रह जाता है? अब रही आलोचना के अधिकार की बात। सो भाई, सम्पादक बनते ही, औरों की तो ठीक राम-कृष्ण, ईसा-बुद्ध, पैगम्बर, और ईश्वर तक की आलोचना का अधिकार हो जाता है—महात्माजी की और मुझ-जैसे न-गण्यों की तुलना ही क्या? हमें तो इतना ही देखना चाहिए कि टीका में कुछ सार है या नहीं। टीका करनेवाला उसका अधिकारी है या नहीं—इस झगड़े से टीका-पात्रों को क्या लाभ हो हो सकता है? और यदि टीका का उद्देश सचमुच यही है कि टीका-पात्र को लाभ हो, तो यह लाभ हम अपने प्रतिपक्षियों, विरोधियों और शत्रुओं को तो दें; पर अपने मित्रों, साथियों, को न दें—यह कहाँ का न्याय?

अब उपदेश देने और अपने को बड़ा समझने के एतराज़ को लीजिए। प्रत्येक वक्ता या लेखक क्या यह नहीं कहता कि यह काम बुरा है इसे न करो; यह अच्छा है, इसे करो? और क्या यह उपदेश नहीं है? फिर अकेला 'त्यागभूमि' का संपादक ही इसका दोष-भागी क्यों? अब कोई यह कहे कि तुम नीति-सदाचार, धर्म, पवित्रता की बातें लोगों से बहुत करते हो—मानो कोई धर्माचार्य हो, और इसे वे उपदेश कहते हों तो बात दूसरी है। पर इन बातों पर तो मैं, समय-अ-समय ज़ोर इसलिए देता रहता हूँ कि नीति-सदाचार मनुष्य-जीवन की सबसे पुख्ता बुनियाद है। यदि इसकी हम अवहेलना करें तो समाज और देश-कार्य की जड़ नहीं जम सकती। मैंने देखा है कि कितने ही अच्छे कार्य-कर्ताओं और कुछ नेताओं ने नीति-सदाचार-सम्बन्धी गलतियाँ करके अपना जीवन बिगाड़ लिया है और अपनी कार्य-शक्ति नष्ट या कम कर ली है। फिर भारतवर्ष की संस्कृति तो नीति-प्रधान ही ठहरी। यहाँ नीति और पवित्रता की अवहेलना करके कोई मनुष्य जनता की सेवा नहीं कर सकता, पथ-दर्शक या नेता नहीं बन सकता। जो व्यक्ति रुपये-पैसे के मामले में कमज़ोर है; जो स्त्री-पुरुष सम्बन्धी पवित्रता में ढीला है; जो पद और प्रतिष्ठा का

भूला है, वह इस देश और यहाँ के समाज की कोई स्थायी और भारी सेवा नहीं कर सकता—यह मेरा दृढ़ विश्वास है और जब देश-सेवक कहलानेवालों में इसकी कमी, या अवहेलना या उदासीनता पाता हूँ तो मेरा जी जलने लगता है, मुझे ऐसा मालूम होता है मानों हम ज़हर सींच-कर अमृत पाना चाहते हैं और ऐसी अवस्था में मुझसे इन बुराइयों की आलोचना किये बिना नहीं रहा जाता। यदि यह उपदेश है और बुरी बात है तो पाठक इसकी जो सज़ा देंगे वह मुझे सानंद स्वीकार होगी, पर मैं अपने इस कर्तव्य से कदापि मुँह न मोड़ूँगा, जबतक कि मेरा वर्तमान विश्वास बना हुआ है, जो कि अनुभव-सिद्ध है।

अब बड़ा बनने या समझने की बात का जवाब लीजिए। यह ग़लतफ़हमी बहुतांश में इसलिए फैल सकी है कि मैं और सम्पादक भाइयों की तरह 'हम' नहीं बल्कि अपने लिए मैं का प्रयोग करता हूँ। इसका स्पष्टीकरण पहले एक टिप्पणी में कर चुका हूँ। फिर भी यहाँ इतना कह देना ज़रूरी है कि मैं भी अपने को 'हम' लिखता, यदि मैं यह मानता होता कि त्यागभूमि या मैं जनता के प्रतिनिधि हैं— उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। खुद-बखुद लोगों का प्रति-निधि बन जाने का सिद्धान्त मुझे मान्य नहीं।

औरों की तो कौन कहे, त्या० भू० के पाठकों के भी प्रतिनिधित्व का गौरव त्या० भू० को या मुझे प्राप्त नहीं। उनमें विविध विचार, आदर्श और आचरणवाले लोग हैं। त्या० भू०, जो एक ख़ास उद्देश से, ख़ास 'मिशन' को लेकर निकली है, भला सचाई के साथ उनकी प्रतिनिधि कैसे बन सकती है ? और मैं भी अपने को इतना बड़ा कैसे समझ लूँ ? त्या० भू० इस अर्थ में किसी की प्रतिनिधि नहीं है। उसका सम्पादक एक मामूली आदमी है। वह अपने टूटे-फूटे विचार, भाव और अनुभव पाठकों के सामने टीका, सूचना या 'उपदेश' (?) के रूप में रख देता है और उन्हें उनके अनुसार चलने की प्रेरणा करता है। उसके साथी भी जिन पर कि त्या० भू० के सम्पादन का अधिकांश भार है, इसी उद्देश की पूर्ति में अपनी शक्ति लगाते हैं। पाठक, त्या० भू० की सब बातें मानने और करने के लिए बँधा हुआ नहीं है। जिसका जी चाहे माने, जिसका जी चाहे न माने। त्या० भू० को अपनी अल्पता का ज्ञान है, नम्रता उसे प्रिय है, इसलिए उसने 'प्रतिनिधिक' रूप ग्रहण नहीं किया है। ऐसी दशा में तो उलटा मित्रों को उससे नम्रता की शिकायत होनी चाहिए, न कि बड़प्पन अपनी तरफ़ लेने की।

साधु बनने और महात्माजी की नकल करने की आपत्ति पर मेरा यह निवेदन है कि साधु बनने के अर्थ यदि सज्जन बनना है तो साधु बनना बुरा क्यों ? क्या मित्र लोग यह चाहते हैं कि मैं बुरा बनूँ या बुरा बना रहूँ ? पर मैं तो यह मानता ही नहीं हूँ कि मैं अपने को 'साधु' समझता हूँ। हाँ, साधु बनना मेरे हृदय की साध अवश्य है; पर यदि वह बुरी हो तो भी मुझे स्वीकार है। अब 'साधु बनने' के ताने के मानी यदि यह हैं कि मैं हूँ तो दुष्ट, परन्तु साधु बनने का ढोंग रचता हूँ; तो यह अवश्य विचारणीय बात है। मैं तो एक मोटी-सी बात जानता हूँ जो पाखण्डी होता है, उसको चाहनेवालों के बजाय न चाहनेवाले अधिक मिलेंगे। उसके निन्दकों की संख्या बड़ी होगी। वह अधिक दिनों तक किसी की मित्रता, स्नेह या प्रेम का पात्र नहीं बना रह सकता। मेरे जीवन में मुझे अबतक नहीं याद पड़ता कि मेरी मित्रता या स्नेह होकर किसी से टूटा हो। मेरे मित्रों की संख्या दिन-दिन बढ़ ही रही है। जो मुझे अपना विरोधी मानते रहे हैं वे भी मुझसे प्रेम करने लगते हैं — जो उदासीन रहते थे वे भी मुझे अपने निकट करने योग्य समझने लगते हैं। यदि मैं सचमुच सत्य और अहिंसा का भक्त हूँ तो जिन-जिन से मेरा थोड़ा भी परि-चय होगा, उन्हें मुझे कम-से-कम 'एक भला आदमी' मानना ही होगा। वे मुझे सनकी कहेंगे, अन्ध-भक्त कहेंगे, सीधा-भोला कह देंगे, पर यह नहीं कहेंगे कि यह दुष्ट है, बदमाश है, लफंगा है, और यही मैं अपने पास सबसे बड़ा बल समझता हूँ।

महात्माजी की नकल तो मैं जान-बूझकर नहीं करता हूँ—अपने आप हो जाती है। जब मैं किसी बात का विचार सत्य और अहिंसा को सामने रखकर करता हूँ तो महात्माजी के वचनों की सचाई प्रत्यक्ष होने लगती है। उनकी भाषा उनकी सचाई का प्रतिबिम्ब है। ऐसी दशा में

एक सचाई के भक्त से उनकी शैली का अनुकरण अपने आप हो जाता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। और नकल आखिर चलेगी कै दिन तक? फिर नकल में वह ज़ोर कहाँ जो असल में होता है। पाठकों ने 'त्यागभूमि' के सम्पादक में एक ज़िद देखी होगी। यदि उसका व्यापार उधार पर ही चलता हो तो यह ज़िद कै दिन तक चल सकती है? 'त्यागभूमि' ज़ोर के साथ अपनी बातें पाठकों के सामने रखती है; और उससे पीछे नहीं हटती। यदि अन्ध-भक्ति या नकल हो तो पाठकों को 'त्यागभूमि' में कुछ भी विशेषता का अनुभव न होना चाहिए। फिर 'त्यागभूमि' में नये से नये विचारों की छान-बीन होती है। संसार की स्थिति-गति से पाठकों को परिचित रखने का प्रयत्न किया जाता है; आधुनिक तत्वों, समस्याओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है। पाठकों की स्वतन्त्र विचार-शक्ति को बढ़ाने की कोशिश की जाती है; हर बात उन्हें दलीलों के साथ समझाने का यत्न किया जाता है, कोई बात उनपर लादी नहीं जाती। किसी गुरु या ग्रन्थ की दुहाई देकर पाठकों से कोई बात मनवाने का उद्योग नहीं किया जाता। दलीलों को ताक पर रखकर महात्मा गाँधी, या गीता के नाम का आश्रय, किसी सिद्धान्त के या चीज के प्रचार के लिए नहीं लिया जाता। फिर कोई यह कैसे कह सकता है कि 'त्यागभूमि' नवीन बातों और तथ्यों से पिछड़ी हुई है? पर इसके यह मानी नहीं हैं कि 'त्यागभूमि' सब बातों में सब तरह ठीक है—कहीं कोई कमी या ख़ामी उसमें नहीं है। हम उसकी बड़ाई सुनकर फूल जाना नहीं चाहते। बल्कि अपनी अल्पशक्ति के अनुसार उसे दिन-दिन उपयोगी बनाने की चिन्ता कर ही रहे हैं। और उन पाठकों, मित्रों, आलोचकों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ जो उसकी सच्ची या झूठी त्रुटियों को बिल्कुल बरदाश्त करना नहीं चाहते; और जो समय-समय पर हम लोगों के कान ऐंठते रहते हैं। वे उन सज्जनों से कम 'त्यागभूमि' पर उपकार नहीं करते हैं, जो उसके गुणों की प्रशंसा करके उसे उत्साहित करते हैं। 'त्यागभूमि' केवल आलोचक नहीं, एक नम्र साधक भी है। वह लिख-कर, छापकर अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जाना नहीं चाहती। उसके सेवक अपने तथा समाज के जीवन में उन बातों का संचार होता हुआ देखना चाहते हैं। पर यह तो उनके उद्योग से भी बढ़कर प्रभु-कृपा पर अवलम्बित है। वे तो नम्र नत-मस्तक होकर प्रभु से इतना ही माँगते हैं।

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

केवल भावुकता और आदर्शवाद?

त्या० भू० को ऐसी कठिन शर्तों के साथ स्वावलम्बिनी बनाने के पागलपन पर बिगड़कर एक मित्र लिखते हैं—"स्वावलम्बन का नियम एक-दो साल के बच्चे पर लादना उपहासास्पद है। × × केवल भावुकता और आदर्शवाद दुनिया में कभी नहीं चल सकते? उन्हें क्रियात्मक बना कर चलाना ही बुद्धिमत्ता होगी।" मित्र की इस बात को मैं बिल्कुल मानता हूँ। यही नहीं, मैं तो आगे बढ़कर इतना भी कहता हूँ कि जो आदर्श व्यवहार में लाने के लिए नहीं होते, जो सिद्धान्त या नियम पालन करने के लिए नहीं बनाये जाते, वे वृथा हैं। पर मैं देखता हूँ कि जब आदर्श पर आरूढ़ रहने का, सिद्धान्त पर चलने का कठिन प्रसंग आता है तभी लोग उसकी अव्यवहार्यता की दुहाई देने लगते हैं। मैं पूछता हूँ, आदर्श और भावना है क्या वस्तु? मनुष्य अपने जीवन में सोचता है कि मैं कैसा बनूँ और मेरी फ़लाँ चीज कैसी बने? दोनों के अच्छे से अच्छे रूप की वह कल्पना करता है—यह उसका आदर्श हो गया। अब इस आदर्श तक ले जानेवाला जो वेग है वह है उसकी भावना। और इस वेग से जब वह उस आदर्श की ओर जाता है तब वह है उसकी क्रिया। आदर्श, भावना और क्रिया तीनों होने से ही मनुष्य सफल और कृतकार्य हो सकता है। तीनों का समान महत्व और आवश्यकता है-तीनों परस्पर अवलम्बित हैं-इनको एक दूसरे से स्वतंत्र मानते ही और बनाते ही मनुष्य का सारा खेल बिगड़ जायगा। आदर्श हमारे जीवन का चुम्बक है, पतवार है; भावना बल और क्रिया उसकी सार्थकता है। इस तरह हम देखेंगे कि संसार के प्रत्येक मनुष्य को आदर्शवादी, भावुक और क्रियाशील बने बिना गुज़र नहीं। इनमें से एक की भी कमी रही तो उसे अधूरा-अध-कचरा समझिए।

हमारे ये मित्र आदर्शवाद और भावुकता पर कटाक्ष करते हुए भी उनके क़ायल तो मालूम होते हैं, पर उनका मुख्य कथन यह है कि आदर्श को क्रियात्मक बनाना चाहिए, किन्तु. इस बात को तो मैं उनसे भी आगे बढ़कर मान रहा हूँ। लेकिन मेरा और उनका क्रियात्मक का आशय शायद जुदा-जुदा है। क्रियात्मक से उनका अभिप्राय शायद यह है कि हमें लोगों की हालत देखकर, उनकी रुचि, शक्ति, आदि का विचार करके अपने आदर्श का पालन करना चाहिए, इससे अधिक नहीं। इनकी ओर ध्यान न रखकर यदि हमने दौड़ लगादी तो वह हमारी कोरी भावुकता और आदर्शवादिता हो गई। मैं 'क्रियात्मक' का अर्थ यह मानता हूँ कि मनुष्य अधिक से अधिक शक्ति लगाकर आदर्श की ओर बढ़े। उसमें उसे जो कुछ रुकावट, संकट, भय आवें उनकी वह परवा न करे—वह तो इतना ही देखे कि मैं ठीक आदर्श की ओर जा रहा हूँ न? उसे इन बातों का विशेष ध्यान रखने की कोई आवश्यता नहीं है कि कौन मेरे साथ आ रहे हैं और लोग मुझे हँस रहे हैं, या गाली दे रहे हैं, या तारीफ़ कर रहे हैं। यदि मेरा आदर्श अच्छा है, उससे मेरा और जन-समाज का हित-साधन हो सकता है तो लोग आज नहीं कल, उसको अच्छा माने और समझे बिना रह नहीं सकते। और जब समझ लेंगे तो सहायता किये बिना, साथ दिये बिना भी रह नहीं सकते और दुनिया में बराबर ऐसा होता आ रहा है। मेरे ये मित्र आर्यसमाजी हैं; अतएव उनसे पूछता हूँ कि क्या ऋषि दयानन्द पर पत्थर नहीं फेंके गये, उन्हें ज़हर नहीं दिया गया? पर आज हिन्दुओं में उनकी पूजा होती है या नहीं? हिन्दू उनसे बल पा रहे हैं या नहीं? अतएव मेरी राय में 'क्रियात्मक' का अर्थ अपने को देखकर करना चाहिए, लोगों को देखकर नहीं। और यदि मेरा यह विचार ठीक है तो फिर मेरे मित्र को मेरे लिए 'अक्रियात्मक' होने की शिकायत नहीं हो सकती। 'त्यागभूमि' का एक आदर्श है—वह उसकी ओर दौड़ती हुई जाना चाहती है। उपहास, निन्दा, तिरस्कार के रूप में जो रुकावटें आना चाहती हैं या आती हैं उनकी वह विशेष चिन्ता न रखते हुए आगे बढ़ रही है। कभी-कभी किसी मोह में आकर थककर भी रुक जाती है, ठोकर खाकर गिर भी जाती है, पर फिर उठकर दृढ़तापूर्वक क़दम बढ़ाना चाहती है। यदि यह कोई बुरी बात है, उपहासास्पद है तो फिर अच्छी बात दुनिया में क्या हो सकती है? यदि यह कोरा आदर्शवाद और भावुकता है तो 'त्यागभूमि' के लिए सन्तोष की बात है कि इस दोष के पात्र उसके कई पूज्य पुरुष हो सकते हैं और उनका पदानुसरण करते हुए इन उपहासों को वह सादर शिरोधार्य करती है। 'त्यागभूमि' केवल जीने के लिए जीना नहीं चाहती, केवल मोटी दिखने के लिए मोटी नहीं बनी रहना चाहती। वह मानती है कि जीवित रहकर जिस प्रकार सेवा की जा सकती है उस प्रकार मरकर भी की जा सकती है। मोटा होने, दुबला होने, मरने का प्रश्न उसके सामने नहीं है—अंगीकृत सेवा की धुन उसे सवार है। और यदि यह सेवा वास्तव में सेवा है तो वह मित्रों के स्नेह की पात्र है, उपहास की नहीं।

उदारता

'प्रेम की व्याकुलता' नामक टिप्पणी में जो पत्र उद्धृत किया गया है, वह मैंने महात्माजी के देखने के लिए भेज दिया था। उत्तर में महात्माजी अपनी स्वभाविक उदारता के साथ लिखते हैं —

"भाई ...नो प्रेम तेने मोहमां नाखी दे छे अने ते थी निर्दोष सूचना करनारानी उपर पण गुस्सो करे छे एम झटपट हुं मध छोड़ीदउं एवुं पण नथी। प्रयोग बहु संभाल थी करी रह्यो छुं ......ने आश्वासन खूब आपजो अने निर्भय करजो।"

× × ×

अर्थात् .. का मेरे प्रति बड़ा प्रेम है और उसके वशीभूत होकर वे ऐसे शख्श पर भी नाराज़ हो रहे हैं जिसने सरल और निर्दोष भाव से मेरे (शहद खाने पर) आपत्ति की थी। पर इस तरह आवेश में आकर मैं शहद छोड़ दूँगा, यह ख्याल बना लेने की ज़रूरत नहीं है। (कच्चे अनाज का) प्रयोग मैं बड़ी सावधानी के साथ कर रहा हूँ तुम... ...को खूब इत्मीनान दिलाना और निःशंक कर देना।

महात्माजी की इस साधुता को मैंने जान-बूझकर उदारता कहा है; क्योंकि दुर्भाग्य से अब तक साधुता समाज में एक अव्यवहारिक या अ-सांसारिक बात मानी जाती है। कमज़ोरियों ने हमारे अन्दर इतना घर कर लिया है कि कोई भी साधारण गुण हमें असाधारण और इसलिए अमली दायरे के बाहर मालूम होता है। पर जिन्होंने सच्ची मनुष्यता को समझ लिया है और उसकी लौ जिसे लगी रहती है उसे महात्माजी के इस कथन में उस उदारता के दर्शन होंगे, जो एक मनुष्य के लिए परम आवश्यक है। कुछ लोगों की यह नीति होती है कि बात यदि सरल भाव से कही जाय तो, सरल भाव से उत्तर देना चाहिए, यदि दुष्ट भाव से कही हो तो उसका वैसा ही जवाब देना चाहिए और इसे वे व्यवहार-चतुरता कहते हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि बात हमसे कोई सरल भाव से कहे या दुष्ट-भाव से, हमें उसका सरल ही समझकर उत्तर देना चाहिए। दुष्ट भाव से बात कही गई हो और हमें उस दुष्टता का पता चल जाय तो भी हमें अपनी सरलता न छोड़नी चाहिए। इससे उसका और हमारा दोनों का हित होगा। यों देखा जाय तो मनुष्यता का यह एक साधारण नीति-नियम है। पर अपनी मनुष्यता का गज हमने इतना छोटा बना लिया है कि इसमें हमें न केवल उदारता बल्कि साधुता नज़र आती है और उसका अनुकरण करने के बदले हम अपनी नासमझी से उसका मखौल भी उड़ाने लगते हैं। हमारी इस पामरता का अन्त कब होगा?

मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन

श्रीमान् जमनालालजी बजाज की देश-सेवा की लगन और त्याग के भावों की प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं। आज वे देश के उन व्यक्तियों में हैं जिनपर हमारे राष्ट्र-निर्माण का कुछ आधार है। उन्होंने कोई काम हाथ में लिया नहीं कि सु-व्यवस्था और उत्साह-पूर्वक उसे सफल बनाने में वे जुटे नहीं। चरखा-संघ का बहुत बड़ा काम उन्होंने अपने ज़िम्मे ले ही रक्खा है, इधर दूसरी संस्थाओं और प्रान्तों के कामों की भी सीधी ज़िम्मेवारी उनपर है तिसपर भी अभी उन्होंने एक और काम अपने सिर पर लिया - वह है अछूत भाइयों के लिए मन्दिर-प्रवेश का आन्दोलन। सबसे पहले आपने अपना वर्धा-स्थित श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर तमाम अछूत भाई-बहनों के लिए खुलवा दिया जिसका संक्षिप्त वृत्तान्त त्या० भू० में दिया ही गया था। उसके बाद ही आपने बम्बई, तथा महाराष्ट्र के कुछ भाग में इस हलचल को जारी रखने का उद्योग किया। इसका फल यह हुआ कि हाल ही एलिचपुर (बरार) में श्री दत्तात्रेय का मंदिर भी उसके ट्रस्टियों ने अछूतों के लिए मुक्त कर दिया और यह विधि खुद सेठजी के ही हाथों से सम्पन्न हुई। उस समय वर्धा के सत्याग्रहाश्रम के आचार्य का जो बोधप्रद और सेठ साहब का भावप्रद भाषण हुआ, उसका सार पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जाता है। आचार्य विनोवाने कहा—"× × मन्दिर का मुख्य उद्देश तबतक पूरा नहीं होता जबतक कि वह सबके लिए खुला न हो। सूर्य को हम देव इसीलिए समझते हैं कि उसका लाभ सब उठा सकते हैं। मंदिर एक पाठशाला है जहाँ यह अनुभव किया जाता है कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है, सब उस तक पहुँच सकते हैं। ईश्वर के अनंत गुण हैं। परन्तु उसका मुख्य गुण है सब पर प्रेम करना। नदी को हम देवता इसीलिए मानते हैं कि वह सब के लिए समान रूप से खुली है। जहाँ भेद होता है वहाँ ईश्वर नहीं। हम मन्दिर इसीलिए बनाते हैं कि अभेद-भाव को प्राप्त हों। ऐसी दशा में अपने मन्दिरों में भी हम भेद-भाव रक्खें यह कैसा? भेद-भाव के लिए संसार में और जगहें क्या कम हैं? मंदिर में तो हमारे पैर पड़ते ही भेद-भाव चला जाना चाहिए। मंदिर में पत्थर की मूर्ति बनाकर उसे हम सिर झुकाते हैं। इसका भाव यही है कि हमें यह प्रतीति हो कि न कुछ वस्तु में भी ईश्वर है और रज-कण से भी रजःकण हैं—इतनी नम्रता हमारे अन्दर आ जाय, सब प्रकार के अभिमान को छोड़ देने के लिए, 'मैं रज से भी रज हूँ', यह जानने के लिए, 'सर्व ईश्वर-स्वरूप है, इस अभेद-भाव का अभ्यास करने के लिए जहाँ जाने की ज़रूरत है वहीं अर्थात् देव-मंदिर में यदि भेद-भाव रखना पड़े तो फिर वह मंदिर ही क्या। मन्दिर में जाकर तो कम से कम हमारे राग-द्वेष अभिमान आदि विकार दूर होने चाहिए। कुछ लोग शिकायत करते

हैं कि अछूतों के संसर्ग से मंदिर गंदे हो जायँगे। पर मैं कहता हूँ कि उनके संसर्ग से हमारा पाखण्ड कम होगा। फिर हम भी तो कहाँ सर्वदा सोलहों आना साफ़-सुथरे रहते हैं? कितने ही अंत्यज ऐसे हैं जो साफ़-सुथरे रहते हैं, तुलसी की पूजा करते हैं, मद्य-मांस से परहेज़ करते हैं। एक अन्त्यज ने अपनी लड़की का नाम रक्खा 'एकादशी'। इस अन्त्यज की धार्मिकता की, पवित्रता की या काव्य-शक्ति को, किसकी बड़ाई की जाय? वर्डस्वर्थ भी एक बार इसके आगे हार खा सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि रैदास जैसे भगत को कोई थोड़े ही मंदिरों में जाने से रोकता है? पर मैं पूछता हूँ कि बेचारे अछूतों के लिए ही इतनी बड़ी शर्त क्यों? हम अस्वच्छ, भक्त न होते हुए भी मंदिर में जा सकते हैं; किन्तु अस्पृश्य बेचारा स्वच्छ और भक्त होकर नहीं जा पाता है - यह खूब न्याय है?

कुछ लोगों का कहना है कि अछूतों को पाठशालाओं में भले ही आने दो, हमारे कुवों से पानी भी भरने दो, किन्तु मन्दिर तो पवित्र जगह है उसे उनकी छूत से खराब न होने दो। परन्तु मैं कहता हूँ चूँकि मन्दिर 'पवित्र' है इसीलिए वे सबसे पहले उनके लिए खुले होने चाहिए। और उनके संपर्क से यदि मान भी लें कि हमारा शरीर कुछ गंदा हो जायगा तो उसके एवज में हमारा मन कितना धुलकर साफ़ हो जायगा। इसके विपरीत उनको आने से रोककर यदि हम शरीर की स्वच्छता को कायम रखना चाहेंगे तो आत्मा को खो बैठेंगे।"

सेठ साहब ने मंदिर को खोलते समय अपने भाषण में कहा—

"हमारे हिन्दू घरों का यह एक नियम है कि जो बड़ा बलवान और समर्थ है वह छोटे, निर्बल और असहाय की रक्षा करे। पर क्या हम अपने छोटे और अ-सहाय अछूत भाइयों के साथ इस नियम का पालन करते हैं? हम ईश्वर को जगन्माता, जगत्पिता और पतित-पावन कहते हैं और उसी के मन्दिर में उसके असहाय निरीह पुत्रों को जाने से रोकते हैं। यह मानना कि जो खुद पतित-पावन है वह अछूत के स्पर्श से अपवित्र हो जायगा, ईश्वर की विडम्बना करना है। फिर क्या पिता या माता अपने सब पुत्रों को समान प्यार नहीं करते, और क्या उनका स्नेह उस पुत्र के लिए अधिक नहीं उमड़ता जो कमज़ोर और दुखी है? और यदि हम ऐसे ही पुत्रों को उसकी माता से जुदा कर रक्खें तो क्या यह पाप नहीं है? ज़रा उस स्नेहमयी माता और करुणामय पिता की व्यथा की तो कल्पना कीजिए। फिर क्या ईश्वर का दरबार हम मुट्ठी भर गण्यमान्य लोगों के ही लिए खुला रहता है? और ऐसे स्थान को हम ईश्वर का मन्दिर भी कैसे कह सकते हैं जहाँ उसके सब पुत्रों को जाने की छुट्टी नहीं? मन्दिर तो वास्तव में ऐसा होना चाहिए जहाँ से आध्यात्मिकता और धार्मिकता टपकी पड़ती हो। क्या ऐसे क्षुद्र और अन्यायपूर्ण भेद-भाव को कायम रखकर हम ऐसे उच्च और शुद्ध आदर्श की प्राप्ति की आशा रख सकते हैं? ऐसे मन्दिर तो हमारे पाखण्ड के ही प्रदर्शक हैं और हमें दूसरी जातियों और धर्मों के सामने हास्यास्पद बनाते हैं।"

मालूम हुआ है कि देहली में भी मन्दिर खुला करने का आन्दोलन छिड़ गया है और अजमेर में भी कुछ मित्र इसके लिए उद्योग कर रहे हैं। परमात्मा, अपने विरुद की ही रक्षा के लिए, उन्हें सफलता दे।

अजमेर में युवक-सरदार

स्थानीय राजस्थान युवक-संघ के अथक उत्साही और तेज तर्रार मंत्री बाबा नृसिंहदासजी, प्रौढ़ और दूरदर्शी अध्यक्ष श्री पथिकजी तथा उनके नवयुवक साथियों के उद्योग और प्रबंध से, युवक भारत के सरदार पं० जवाहरलाल नेहरू अजमेर में १६ घण्टा ठहर कर, उसे स्वाधीनता और संगठन का सन्देश सुना गये। स्थानीय दयानंद अनाथालय, खादी भण्डार, दाणी राष्ट्रीय विद्यालय को देख लेने के बाद आपके मुख्य कार्य दो हुए—एक तो युवक-संघ के कार्यालय में राष्ट्रीय झण्डे को फहराना और दूसरे युवक-संघ की ओर से दिये गये अभिनंदन पत्र के उत्तर में अजमेर के नवयुवकों को अपना सन्देश सुनाना। अजमेर की प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के चुनाव का अभी तक कोई प्रबंध न हुआ, इसकी सख्त शिकायत उनसे की गई तो इसे तय करने में उन्होंने अपना वक्त यहाँ लगाया। नवीन कांग्रेस चुनाव-कमेटी

के प्रतिनिधि की हैसियत से मैंने उनसे कहा कि आप आ गये हैं तो हम अपनी तरफ़ से आपके हाथ में कलम दे देते हैं—आप जो स्याह-सुफ़ेद कर देंगे, हमारे मित्रों को मंजूर होगा। श्री सेठीजी के मित्रो से बातचीत करने के बाद आपने आपस के तस्फ़िये को असंभव बताकर जल्दी से जल्दी चुनाव कर इन्तजाम कर देने का आश्वासन हमें दिया और कहा कि आगामी महा-समिति की बैठक में अज मेर प्रतिनिधिहीन न रह पावेगा। अब लोगों की बारी है जिसे वे योग्य और भला समझते हैं, उसे चुन लें।

झण्डा फहराते हुए आपने कहा कि झण्डा कौम की इज़्ज़त है। ज़िन्दा कौम अपनी जान देकर भी झण्डे की रक्षा करती है। अपना सर्वस्व निछावर करके भी उसे झुकने नहीं देती। झण्डे को फहराने की क्रिया ठीक समय पर होनी चाहिए थी। फ़ौज में झण्डा हुक्म मिलते ही, बिना एक लहमा ठहरे, चढ़ाया जाता है। इसमें एक सिपाहीपन है जो हमें सीखना चाहिए।'

अभिनंदन-पत्र में उनकी सेवाओं और गुणों की स्तुति के साथ ही अपने नगर की, और सार्वजनिक जीवन की त्रुटियों का भी वर्णन किया गया था। वह केवल युवकों का काव्य ही नहीं, उनके काम करने की चाह का भी सूचक था। जहाँ उसमें कविता के सुन्दर और अनूठे भाव थे वहाँ उसमें अपनी नग्न वस्तुस्थिति का भी चित्र था। एक ओर उसमें यह भव्य भाव दर्शाया गया था—

"आप हमारे सरदार ही नहीं, हम युवकों के शृंगार हैं, युवावस्था की शोभा हैं, माता की गोद के जाज्वल्यमान जवाहर हैं। हमारे नगर के एक राष्ट्रीय कवि के शब्दों में 'आपका भविष्य आपके अतीत एवं आपके वर्तमान से भी अधिक शानदार है। आकाश के अन्तस्तल में एक चीख गूँज रही है—कौन है वह माई का लाल?—और इस का उत्तर पाने के लिए आपकी तपश्चर्या आप ही के विशाल भाल की ओर देख रही है।" वहाँ दूसरी ओर उस में अपनी स्थिति पर इस तरह आँसू भी बहाये गये थे—

"पर हमारी अवस्था क्या है? हम हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों से जर्जरित हैं। योग्य नेताओं के अभाव में पथ-भ्रष्ट हैं। नानरेगुलेटेड प्रान्त में रहते हैं। चीफ़ कमिश्नर ही हमारा कर्ता-हर्ता, विधाता है, बेगार हमारे यहाँ जारी है। मज़दूर और किसानों की संख्या प्रायः ९५ प्रतिशत होते हुए भी एसेंबली में उनका कोई पृथक् प्रतिनिधि नहीं
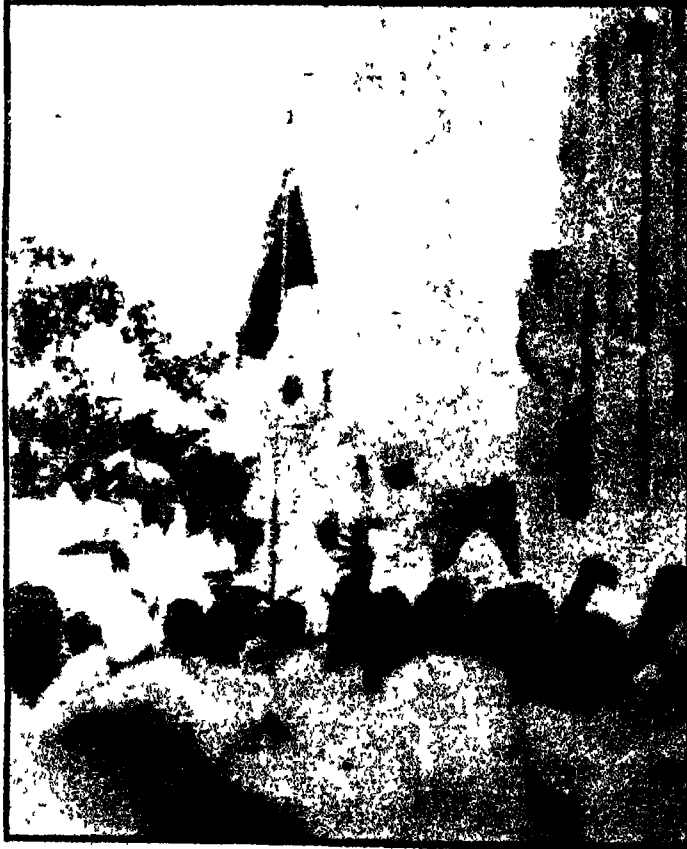
झण्डे का उद्घाटनोत्सव

जाता। सरकारी वालों और कार्यकर्ताओं की भूलों के कारण वहाँ कोई संगठन पनप नहीं पाता। यहाँ के स्कूल-कालिज जनता की शक्ति के स्रोत नहीं, गुलामी के अड्डे हैं।"

उत्तर में पण्डितजी ने कोई डेढ़ घण्टे तक अपना व्याख्यान सुनाया। आपने संसार के युवक-संघ को वृद्धों अर्थात् पुरानी प्रणालियों में से न निकल सकनेवालों के संगठन के खिलाफ एक विद्रोह, एक बग़ावत बताई। भारत के युवक भी अब पुरानी, दकियानूसी, तरीक़ों से ऊब रहे हैं और वे उन तरीक़ों तथा उनके गुलाम बनजाने वाले बूढ़े लोगों को एक कोने में बैठाकर अपना काम चला लेजाना चाहते हैं। पर भारत की किसी भी क़िस्म की तरक़्क़ी के रास्ते में ब्रिटिश साम्राज्य नाम की यह बड़ी पुख़्ता दीवार खड़ी है। इसलिए पहले इसे उखाड़ने में युवकों की शक्ति लगनी चाहिए। वह शक्ति निज़ाम-अनुशासन क़ायम करने, दृढ़ संगठन बनाने, से आ सकती है। आज मुल्क में १९२१ से ज़्यादह संगठन है। फिर भी निज़ाम की-नियम-पालन की—बड़ी ज़रूरत है। मज़दूर और युवकों की ताक़त बढ़ रही है। हमारी क़ुरबानी का भी स्टैंडर्ड बढ़ गया है। इतने ज़ोर का दमन अभी हो रहा है; पर मुल्क में पहले जैसा तहलक़ा नहीं मचता। यह दूसरी तरह से हमारे मुर्दापन की भी निशानी है।"

अजमेर वालों को भी आपने बातें सुनाईं। कहा—यहाँ पिछले कई बरसों से महज़ काग़ज़ी कांग्रेस कमिटी थी। उसके १०० से भी ज़्यादह मेम्बर नहीं थे। उसमें और भी बुराइयाँ पैदा हो गई थीं जिसकी वजह से वह तोड़ दी गई है। अब नये चुनाव में हिन्दू-मुस्लिम दलबंदी हो गई है, यह अच्छा न हुआ। अजमेर बाहरवालों में आपस के झगड़ों के लिए बहुत बदनाम है। आप लोगों को ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि आपस में मेल बढ़े और काम हो। और अजमेर दूसरे प्रान्तों से पीछे न रहे।"

पण्डित जी उद्घाटनोत्सव के बाद व्याख्यान दे रहे हैं

१९२२ के बाद पहली दफ़ा राजनैतिक जुलूस यहाँ निकला। एक दिन में जुलूस की—झंडियों की, तख़्तियों की हर चीज़ की नये सिरे से—तैयारी करना बाबू जी की ही कार्य-तत्परता का काम था।

पं० जवाहरलालजी को बुलाकर और उन्हें अपने सभा-पति के द्वारा आगे के कामों का इत्मीनान दिलाकर अजमेर के युवकों ने एक बड़ी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर लेली है। उन्हें चाहिए कि वे जिस तरह धूमधाम से आगे बढ़ते हैं उसी तरह आपस

का बल जमा कर और बढ़ाकर अब जुदे-जुदे कामों को ले उन्हें पूरा करने में जुट पड़ें। ताकि अबकी बार पण्डितजी उनका उत्साह बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि उन्हें उनके कामों पर शाबाशी देने के लिए यहाँ आवें और उनके सामने हमें अपने दुःखों का रोना न रोना पड़े; बल्कि अपने कामों का ब्योरा सुनाकर उन्हें आनन्दित करें।

गावों की ओर

इस समय देश का हर एक भक्त, आज़ादी का हर एक पागल, इसी धुन में है कि ऐसे कौन-कौन-काम किये जायँ जिससे ब्रिटिश सरकार भारत को आज़ाद कर देने पर मजबूर हो सके। सबसे बड़ा दबाव जो इस सरकार पर पड़ सकता है वह है इसके आमदनी के ज़र्ये बन्द कर देना या रोक देना। इसके इतने तरीके हो सकते है—(१) विदेशी वस्तु विशेष कर वस्त्र-बहिष्कार (२) शराबख़ोरी बन्द कर देना (३) वर्तमान अनुचित लगानबन्दी को मिटवाना। इन कामों के संगठन से जहाँ सरकार की आमदनी को गहरा धक्का पहुँचेगा तहाँ देश में आन्दोलन और संगठन का भी अवसर मिलेगा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और खादी के प्रचार के द्वारा देश के सब दलों और वर्गों को ब्रिटिश राज्य के खिलाफ़ संगठित किया जा सकता है। शराबख़ोरी मिटाने का आन्दोलन खड़ा करने के बाद दलित और राजपूत जातियों को जगाया जा सकता है, लगान-नीति की पोल खोल कर सारी सोई किसान जनता को सरकार के खिलाफ़ खड़ा किया जा सकता है। अब रहे मज़दूर सो उनसे हड़ताल कर देने की शक्ति का असर अभी तक सिर्फ़ मिल-मालिकों पर ज़्यादह पड़ा है; सरकार के खिलाफ़ अभी तक रेल्वे, जहाज़ आदि के मजूरों ने कोई सफल हड़ताल नहीं की है, पर उसकी शक्ति से सरकार बे-ख़बर नहीं है। इस तरह पूर्वोक्त सब दलों और श्रेणियों में काम करने की, उन्हें जगाने और संगठित करने की बहुत आवश्यकता है। अब तक देश में जो कुछ राजनैतिक या स्वराज्य-संग्राम सम्बन्धी काम हुआ है वह मुख्य करके शहरों और कुछ कस्बों में, प्रधानतः मध्यम श्रेणी के कार्यकर्ताओं द्वारा हुआ है। इन में तो थोड़ा संगठन और जागृति हो भी चुकी है और हो भी रही है; किन्तु ग्रामीण जनता प्रायः अछूती पड़ी है। खादी कार्य-कर्ता सबसे पहले गांवों में पहुँचे हैं। बारडोली की विजय ने सारे देश का और देश के नेताओं का ध्यान इस तरफ़ तेज़ी के साथ खींचा है। राष्ट्रीय गुजरात विद्या-पीठ, प्रेम-महा विद्यालय में ग्राम-संगठन और ग्राम सेवा की शिक्षा का प्रबन्ध भी कर दिया है। सस्ता-साहित्य-मंडल ग्राम-संगठन पर एक बड़ी पुस्तक अध्यापक रामदास गौड़ से लिखवा रहा है। इधर बम्बई और मदरास प्रान्तों में प्रभावशाली कृषक-संघ बन गये हैं एवम् संयुक्त प्रान्त में सैनिक-सम्पादक भाई श्री पं० कृष्णदत्त जी पालीवाल भी किसान-संगठन का उद्योग कर रहे हैं।

भारत के प्रत्येक प्रान्त में किसान-संगठन के दीर्घ और दृढ़ उद्योग की परम आवश्यकता है। युवकों और मज़दूरों की शक्तियों का संगठन तो हो रहा है, पर उसकी सीमा शहरों तक ही मर्यादित है। क्योंकि मज़दूर तो एक बड़ी तादाद में वहीं मिल सकते हैं जहाँ कई मिलें या कारखाने हों। युवकों का अधिक समुदाय भी शहरों में ही एकत्र मिल सकता है। देहात में न तो युवक-संगठन की आवाज़ पहुँच पाई है, न मज़दूर-संगठन वहाँ से हो ही सकता है। किसानों को कई शिकायतें हैं, कई दुःख हैं, वे हर तरह सताये और पीसे जाते हैं; उनके एक-एक दुख को लेकर आन्दोलन खड़ा किया जा सकता है और उनको एक सूत्र में बाँध कर स्वराज्य संग्राम मे उनकी सहायता ली जा सकती है। पर बिल्ली के गले में घण्टी बाँधे कौन? देश की आँखे युवक-दल की ओर लग रही हैं। युवक-दल ही देश की आशा, प्राण, हाथ-पाँव सब कुछ है वही इस कठिन कार्य में आगे पैर बढ़ाने के लायक है। पर वही अभी इसमें सबसे अधिक शिथिल है। शिक्षित और शहरवासी युवक गावों से घबड़ाते हैं। उनका फ़ैशन और शौक़ीनमिज़ाज़ी उनके पावों में बेड़ियाँ डाले हुए है। यदि ७॥ लाख गावों के लिए ७॥ हज़ार युवक भी अपने जीवन के ५-५ साल दे दें तो वह चमत्कार दिखाई दे सकता है, जिसकी कल्पना भी बहुतों ने न की होगी। इसके लिए सबसे आवश्यक है कि युवक अपने जीवन को ग्रामों के योग्य बनाने का प्रण कर

लें। जब तक उनकी दृष्टि गाँवों की ओर न जायगी और वे अपने जीवन को गाँवों के साँचे में ढालने के लिए तैयार न होंगे, तब तक जिस स्वाधीनता की वे साध लगाये बैठे हैं वह उनसे रूठी ही रहेगी—इसमें मुझे तिलमात्र संदेह नहीं है।

सार्वजनिक कार्य और धन

यह एक सर्वमान्य बात है कि कोई भी सार्वजनिक कार्य बिना धन की सहायता के नहीं चल सकता। जो या जिस संस्था के कार्यकर्ता अधिक ईमानदार, अधिक महनती, अधिक कुशल, अधिक सच्चे, अधिक सच्चरित्र होंगे उतना ही वे अधिक धन अपने कार्यों के लिये प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु धन के बिना उनका काम नहीं चल सकता, यह एक स्वयंसिद्ध बात है। अब यह धन मिलेगा कहाँ से? लोगों से। लोगों में क्या सर्वसाधारण क्या धनी-मानी क्या राजा-रईस अधिकारी, क्या किसान-मज़दूर सब का समावेश हो जाता है, फिर अधिकांश धन उन्हीं लोगों से मिलेगा और मिलना चाहिए, जिनके पास धन है और अधिक है। ऐसी प्रायः दो ही श्रेणियाँ होती हैं (१) धनिक श्रेणी और राजा-रईस वर्ग। देश और समाज के कार्यों में यह सर्वथा उचित और आवश्यक है कि जिसके पास तन है, वह तन दे, धन है वह धन दे, विद्या-बुद्धि है वह विद्या-बुद्धि दे। इस सब के सहयोग से समाज की सेवा और उन्नति होती है। जब ये भिन्न-भिन्न तत्व परस्पर सहयोग से काम न लेकर एक दूसरे को हड़प जाने, या सताने पर तुल पड़ते हैं तब समाज में क्रान्ति की लहर उठती है और वह इस कलह और विषमता को मिटाकर समाज में समता और सहयोग की स्थापना करती है ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक ही है कि सार्वजनिक संस्थाओं के लिए धन उन लोगों से मिले जिनके पास वह आवश्यकता से अधिक है। परन्तु, अब इस सुन्दर दान-प्रणाली में दोनों तरफ़ से दोष पैदा हो गये हैं। धनी-मानी, राजा-रईस अपना काम निकलवाने, अपना प्रचार करवाने के लिए सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को धन देते हैं और कितने ही ऐसे देश-सेवक नामधारी ऐसे कामों के लिए उनसे धन ले भी लेते हैं और कितने ही तो डरा-धमकाकर भी लेने में नहीं चूकते। दोनों तरफ़ के ऐसे अपवादों को छोड़ दें तो इस सहयोग-प्रणाली में सिवा लाभ, उन्नति और विकास के कोई हानि नहीं दिखाई देती, किन्तु, पूर्वोक्त अपवादभूत उदाहरणों का फल यह हो रहा है कि जहाँ कोई किसी धनी या रईस या राजा या अधिकारी से मिला नहीं या किसी ने न्यायवश उनके लिए दो अच्छे शब्द कहे नहीं कि लोग कुछ-न-कुछ बुरी कल्पना करने लगते हैं। लोगों को ऐसा कारण न मिले, और कार्यकर्ता भी खामख़ा बदनाम न हों, इसके लिए, मेरी राय में नीचे लिखे कुछ नियम बहुत उपयोगी होंगे—

(१) कोई कार्यकर्ता सार्वजनिक काम के सिवा निजी कार्य के लिए किसी से कोई आर्थिक सहायता न ले।

यहाँ सार्वजनिक कार्य के मानी यह है कि ऐसा कार्य जिसका मालिक कोई एक व्यक्ति न हो, बल्कि कुछ प्रतिष्ठित ट्रस्टी हों और जिसके आय-व्यय और कार्य का विवरण सर्व-साधारण में प्रकाशित किया जाता हो।

(२) रुपया किसी व्यक्ति-विशेष के अनुकूल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रचार करने या कुछ लिखने की शर्त पर न लिया जाय।

मैं समझता हूँ यदि देनेवाले और लेनेवाले दोनों इन नियमों का पालन करें तो पूर्वोक्त अपवादों के लिए जगह न रह जायगी। आशा है अपनी प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा करने की इच्छा रखनेवाले देशसेवक इन पर ज़रूर ध्यान देंगे।

अजमेर में प्रीति-भोज

हमारे हिन्दू-समाज में अब तक जाँत-पाँत और भोजन-पान के बड़े कड़े नियम रहे हैं। जहाँ तक सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की रक्षा और बढ़ती से सम्बन्ध है तहाँ तक शुद्धि, पवित्रता का विचार जितना रक्खा जाय उतना ही ज़रूरी है। पर जब शुद्धता और पवित्रता के सिद्धान्त के बजाय, महज़ जाँत-पाँत के कारण खान-पान में भेद-भाव या परहेज़ रखने पर ज़ोर दिया जाता है तब यह बात समझ में आना मुश्किल हो जाता है। जब हमारे देश में

आवागमन के साधन थोड़े थे, एक प्रान्त तो ठीक, एक ज़िला या तहसील भी हमारे लिए भूखण्ड के बराबर थी तब किसी तरह छुआछूत और खान-पान के कड़े नियम निभ सके; पर अब जब कि सारी पृथ्वी ही दिन-दिन छोटी होती जा रही है और एक भूखण्ड से दूसरे भूखण्ड का नित्य परिचय और आवागमन हो रहा है तब उनका पालन सो भी जाँत-पाँत के सिद्धान्त पर, असम्भव और अनावश्यक हो जाता है। इस बात को मानते हुए भी हिन्दू समाज में अभी इस विषय में सुधारकों में भी दो विचार के लोग हैं। एक कहते हैं, भाई हम खान-पान के मामले में उदासीन हैं। जिसका जी चाहे किसी के साथ खाय, जिसका जी चाहे न खाय। यदि कोई नहीं खाता है तो हम उसे महज़ इसीलिए पवित्र न कहेंगे, उसी तरह यदि कोई खा लेता है तो उसे भी हम भ्रष्ट, पतित आदि न कहेंगे। दूसरे विचार के लोग मानते हैं कि जब तक भोजन-पान में एकता न हो जायगी तब तक हिन्दू-समाज का संगठन न हो सकेगा और उसकी उन्नति असम्भव है। मैं प्रथम दल में हूँ। अजमेर में अभी जो बड़ा प्रीति-भोज बड़ी धूमधाम से हुआ, उसके प्रवर्तक और प्रबन्धक दूसरे दल के हैं। यह प्रीति-भोज अजमेर के केसरगञ्ज आर्यसमाज के संरक्षण और उसके उत्साही मन्त्री पण्डित जियालालजी की प्रेरणा, प्रचार और प्रबन्ध ही का फल है। यह तृतीय भोज था। इस वर्ष ५ हज़ार के लगभग सभी जाति के स्त्री-पुरुषों ने इस भोज में योग दिया था। नगर-जलूस, धनुर्विद्या तथा कसरतें और जादू के खेल-तमाशे आदि मनोरंजन की सामग्री भी अच्छी थी। नगर के बहुतेरे गण्य-मान्य शिक्षित स्त्री-पुरुष उसमें सम्मिलित हुए थे। ८००-९०० स्त्री-पुरुष एक पंक्ति में बैठते थे। ७०० स्वयंसेवक और ५० स्वयं-सेविकाओं ने यह सारा प्रबन्ध किया था। अजमेर के कुछ सज्जनों ने इस समारम्भ के खिलाफ़ कुछ गन्दी परचेबाज़ी भी की थी, जोकि, दुर्भाग्य से अजमेर के जल-वायु का गुण-सा हो गया है। सभ्यता के साथ खुले तौर पर किसी बुराई का विरोध तो समझ में आ जाता है। और उसे मैं जीवन का लक्षण मानता हूँ। पर गन्दी पर्चे-बाज़ी किसी तरह सार्वजनिक जीवन को न तो स्वच्छ कर सकती है न ऊँचा ही उठा सकती है। अस्तु।

अजमेर के प्रीति-भोज का एक दृश्य

इस उत्सव के प्रबन्ध का श्रेय पं॰ जियालाल जी के अलावा वैद्य मोहन लालजी, बा॰ जगरूप जी और बाबू हनुमानप्रसादजी को है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध महोपदेशक पं॰ रामचन्द्रजी देहलवी के आगमन और भाषणों ने भी इसकी सफलता में भारी योग दिया है। स्थानीय आर्य-समाज और अजमेर-वासियों को इसकी सफलता पर बधाई।

जोधपुर राज्य का अन्याय

जोधपुर के उत्साही देश-भक्तों ने मारवाड़-प्रजा-परिषद की आयोजना की थी। श्रीमान् जोधपुर नरेश ने उसका होना रोक दिया। जोधपुर में एक दूसरी सभा करके उन्होंने इस अनुचित रोक पर विरोध प्रदर्शित किया। इस पर वहाँ के दो अग्रणी देश-भक्त श्री जयनारायण व्यास और श्री आनन्दराज सुराणा बिना वारंट गिरफ्तार कर लिए गए और

किसी अज्ञात स्थान में रख दिये गये हैं। आज तक यह भी नहीं बताया गया है कि वे किस अपराध में पकड़े गये हैं और न किसी को उनका समाचार ही बताया गया है। इसे अँधा-धुन्धी नहीं और तो क्या कहें ? यदि इस धाँधली का ही नाम 'स्वराज्य' है तो फिर जुल्म और ज्यादती किस चीज का नाम होगा ? प्रजा के हित के लिए, राज्यकर्ताओं की बुराइयाँ जनता के सामने रखने के लिए, यदि प्रजाजन अपनी परिषद करें तो क्या यह अपराध होना चाहिए ? और इस तरह बिना वारण्ट गिरफ्तार करके अज्ञात स्थान को भेज देना क्या न्याय कहा जाना चाहिए ? मैं उन लोगों में से हूँ जो देशी-राज्यों के तरफ़दार माने जाते हैं। मैं उनकी तरफ़दारी इसलिए नहीं करता हूँ कि मैं उन्हें 'स्वराज्य' समझता हूँ, या अच्छाइयों का घर मानता हूँ। बल्कि मैं तो देशी राज्यों से लड़ाई मोल लेकर ब्रिटिश साम्राज्य की ताक़त बढ़ाना नहीं चाहता। दूसरे मैं इतना भी मानता हूँ कि इनमें सुधार हो सकता है। यह विश्वास अधिक दृढ़ तभी हो सकता है जब सुधार की दिशा में देशी नरेश आगे बढ़ें। पर जब इस सुधार के युग में, इस बीसवीं सदी और प्रजा-सत्ता के ज़माने में ऐसी बेकानूनी कार्रवाइयां देखी जाती हैं तो दिल को बड़ी चोट पहुँचती है। इसका परिणाम अन्ततः देशी-नरेशों के लिए बुरा हुए बिना न रहेगा। श्री व्यास जी से मैं बख़ूबी परिचित हूँ। वे जोधपुर राज्य के हितैषी हैं और शान्ति और लगन के साथ काम करनेवाले देश-भक्त हैं। उनपर वार करके जोधपुर के अधिकारियों ने अपनी ही शक्ति को कम किया है। उन्हें चाहिए कि या तो वे दोनों सज्जनों को तुरंत छोड़ दें या उनपर बाकायदा मुक़दमा चलावें। उन्हें याद रखना चाहिए कि जंगली शासन विधि के दिन अब नहीं रहे हैं।

ग़लतफ़हमी

'राजस्थान के नवयुवक सुनें' नामक टिप्पणी में श्री जमनालाल जी बजाज के पत्र के इस वाक्य को उद्धृत करने पर स्थानीय कुछ युवक मित्रों ने आपत्ति की है— "(राजस्थान में) न तो सच्चा और कार्य कुशल कोई नेता ही है और न सच्चाई और लगन के साथ काम करनेवाले अनेक सेवक ही हैं।" मुझे तो इसमें आपत्ति-योग्य कोई बात नहीं दिखाई देती। यदि राजस्थान में सचमुच कोई एक सच्चा और कार्य-कुशल नेता होता और सच्चाई और लगन के साथ काम करनेवाले विपुल सेवक होते तो राजस्थान भी 'बारडोली' बन गया होता। पर नेता नहीं है, इसका अर्थ यह नहीं है कि नेता बन जाने योग्य देशभक्तों का अभाव यहाँ है। मैंने तो सेठजी का वह पुराना पत्र इसी उद्देश से इस मौके पर, जब कि हमारे युवक-बन्धु अपना संगठन बना रहे हैं, छापा है कि वे एक संस्था खोलकर ही न बैठ जायँ—भावी कार्य की गुरुता और ज़िम्मेदारी को खूब महसूस करें। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राजस्थान में न जोश की कमी है, न लगन की, न विद्वत्ता की, न त्याग की, न कष्ट-सहन की, न सदाचार की। वीरों और योद्धाओं की तो वह भूमि ही है। परन्तु ये बिखरे हुए गुण यदि एक व्यक्ति में एकत्र हो जायँ तो वह सफल नेता बन सकता है और उसकी अध्यक्षता में देशभक्त युवकों की अच्छी सेना स्वाधीनता के इस संग्राम में अपना जौहर दिखा सकती है। आशा है, हमारे वे नवयुवक भाई अपनी गलतफहमी दूर कर लेंगे और इस बात की ओर ही ध्यान रक्खेंगे कि काम हो। यदि वे संगठित होकर भारत-माता की बेड़ियाँ काटने में अपना पूरा बल लगा देंगे तो किसकी जुर्रत हो सकती है कि उनके साथ खिलवाड़ करे ?

अमर पाठ

मेक्स्विनी के बाद संसार में भारत के प्यारे जतीन्द्रनाथ ने तिरसठ दिन का अनशन करके और ब्रह्मदेश के पुंगी श्री विजय ने १६४ दिन के उपवास से प्राण-त्याग करके अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए बलिदान हो जाने का अमर पाठ हमें सिखाया है। भारत जैसे देश में जब कि एक अंगीकृत लक्ष्य या कार्य के लिए स्थिरता के साथ काम करने की ही कमी हममें पाई जाती है, तहाँ लक्ष्य-सिद्धि के लिए घुल-घुलकर मर मिटने तक का प्रत्यक्ष उदाहरण कितना सामयिक, उपयोगी और महत्वपूर्ण है-यह बताने की आवश्यकता नहीं। ऐसे समय इस बात का विचार कि

इन दोनों देशभक्तों और आत्म-त्यागियों ने जिस बात के लिए इतना भारी मूल्य चुकाया वह वास्तव में उस मूल्य के योग्य थी या नहीं, गौण हो जाती है और उनके बलिदान की अमर स्मृति, अमर प्रेरणा और अमर शक्ति ही हृदय पर असर छोड़ जाती है। भारत का प्रत्येक देशभक्त यदि इन दो बलिदानों से यह पाठ सीख ले कि हम अपने अंगीकृत कार्यों के लिए इसी तरह घुल-घुल मर जायँगे पर अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ेंगे तो समझना चाहिए कि इन बलिदानों का हमने यथार्थ में आदर किया है।

ह० उ०

नव्य-निर्माण

नव्य आदेश, नूतन सन्देश, नव्य निर्माण, नवजीवन! प्रकाश, प्रकाश, चारों ओर उषा-आगमन का उजेला-सा छिटक रहा है। बन्धन? हाँ, काफ़ी सता चुके विविध बन्धन। उत्पीड़ित सृष्टि छटपटा रही है. बन्धन-विमुक्त होने के लिए। इस सिरे से उस सिरे तक, चारों तरफ़, दुनिया मुक्ति, हाँ, मुक्ति ही के लिए प्रयत्नशील है। प्रत्येक देश दूसरे देश के बन्धनों से *मुक्त—स्वतन्त्र—स्वाधीन* होने का अभिलाषी है; प्रत्येक जाति दूसरी जाति के अन्याय-अनौचित्य-ज़बरदस्ती से त्राण पाने की इच्छुक है। क्या आश्चर्य कि मुक्ति की इस दौड़ में प्रत्येक वर्ग (Sect) भी अपने प्रतिकूल वर्ग के दबाव—बलात् और अनुचित-अनावश्यक बड़प्पन को मूलोच्छेद करने के लिए प्रयत्नशील है!

हमारा देश-किसी समय का समुन्नत पर आज का अवनत भारत—*भी प्रगति के पथ पर आरूढ़ है। ग़ुलाम! हाँ,* वह ग़ुलाम है—सात समुद्र पार के फिरंगियों की 'फ़ौलादी' अधीनता में वह जकड़ा हुआ है; परन्तु सदैव ही वह ऐसा नहीं बना रहेगा, ऐसी आशा होती है। देश—भारत का युवकवर्ग—ऊकता चुका है, यही नहीं पूर्ण स्वाधीनता की दुन्दुभी बजाने के लिए विकल हो रहा है। और तो और, हमारे मान्य नेता और संसार के पुरुष-श्रेष्ठ महात्मा गाँधी भी स्पष्ट घोषित कर चुके हैं—इस वर्ष के अखीर (३१ दिसम्बर १९२९) तक या तो हम स्वराज्य (स्व-शासन) प्राप्त ही कर लेंगे; नहीं, नये वर्ष के आरम्भ (१ जनवरी १९३०) से ही मैं भी पूर्ण स्वतंत्रतावादी होजाऊँगा—अर्थात्, समष्टि रूप से और स्पष्टतया हम पूर्ण-स्वाधीनता के अपने लक्ष्य की तथा उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होने की घोषणा कर देंगे।

परन्तु शक्ति? कैसी भी शक्ति क्यों न हो, शारीरिक या आत्मिक, क्या उसका समष्टि रूप से होना संभव है, जब-तक कि मानव सृष्टि के दोनों अंग—स्त्री-पुरुषों का पूर्ण और उत्साहपूर्ण सहयोग न हो? पुरुष अपने कर्त्तव्य को पहचानने-करने की ओर बढ़ने का दावा करते हैं; ऐसी हालत में सचमुच आश्चर्य होता, यदि स्त्रियाँ भी इस दिशा में पग-वृद्धि न करतीं।

अलावा इसके, स्त्रियों की अपनी समस्यायें भी तो हैं! 'गृह' की 'स्वामिनी' और लक्ष्मी, सरस्वती, अन्नपूर्णा, कहलाते हुए भी घर में और बाहर हमारे समाज में, आज उनकी जो स्थिति है, न केवल परम्परा बल्कि क़ानून में भी उनके साथ जो अन्याय हो रहा है, प्रगति के पथ पर आरूढ़ बहनें क्या उसे बरदाश्त किये ही चली जायँगी? सूरज निकलने पर अन्धेरे का नाश अनिवार्य होता है। इसलिए *ठीक ही है, यदि वे प्रगति—रूपी सूर्य को अगमगाने के* लिए प्रयत्नशील हैं!

उत्थान और पतन सृष्टि का आदि-नियम है। वस्तु निर्माण होती है, उसमें दुरुस्ती होती है, वह पूर्णता को प्राप्त होती है, फिर क्रमशः बिगड़ती हुई अन्त में नाश को प्राप्त होती है। बुढ़ापे में दूषित हुआ व्यक्ति मरता है और विशुद्ध-निर्दोष का जन्म होता है। कपड़ा और जूता तक पुराने हो कर बदले जाते हैं, तब रूढ़ि और प्रथाओं—स्थितियों और परिस्थितियों की तो बात ही क्या! परिवर्तन आवश्यक है, उचित है, और अनिवार्य है।

हमारा समाज भी आज परिवर्तन के पथ पर है। पुरानी रचना अब 'पुरानी' अतएव शिथिल हो चली है; वर्तमान परिस्थितियों में वह उतनी अनुकूल साबित नहीं हो रही है; इसलिए हमारा समाज—भारत के स्त्री-पुरुष-उसके नव निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। यह और भी खुशी की बात है कि पुरुष और स्त्री-समाज के दोनों ही भाग, जाग्रत होकर, इसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं।

आशा और आशा—बस, चारो ओर आशा ही आशा नज़र आ रही है। नव्य-निर्माण का प्रभातोदय हो रहा प्रतीत होता है। उषा—हाँ, वह उषा ही की लाली तो दीख पड़ती है। आकाश रक्ताभ है! स्वागत, नव्य-निर्माण. उछलते हृदय और धधकती हुई आशा के साथ तुम्हारा स्वागत! आओ और हमे ऊँचा उठाओ।

बहनों का आश्वासन

संसार की स्त्रियाँ नव्य निर्माण की ओर अग्रसर हैं। अपनी परवशता को ही वे नहीं मिटा रहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता करने से भी वे चूकतीं नहीं हैं। पश्चिम में आज उनकी आवाज़ गूँज रही है। अमेरिका में उनका ज़ोर है; यूरोप में वे अग्रगण्य हैं; एशिया में वे उठ रही हैं। इंग्लैण्ड में तो पार्लमेण्ट का मताधिकार हो जाने से उन्हींका उसपर प्रभुत्व हो गया है, क्योंकि वहाँ पुरुषों से उनकी संख्या अधिक है। चीन की नारी-शक्ति जग उठी है; जापान में जागृति है; मिस्री बहनें स्वदेश-प्रेम का परिचय दे चुकी हैं; रूस तो सबसे आगे है ही; बग़दाद और अफ़ग़ानिस्तान भी लहर से कोरे नहीं रहे; तब भारत ही क्यों इस दिशा में अकेला रहता?

पिछले दो-एक वर्षों से महिला-आन्दोलन की जो हलचल हमारे देश में दिखाई पड़ रही है, उससे ज्ञात होता है, अग्नि का प्रज्वलन हमारे देश में भी हो चुका है और वह समय दूर नहीं कि उसका दिव्य-प्रकाश शीघ्र ही अपनी चकाचौंध से हमें स्तब्ध कर देगा।

'राखी की भेंट' के प्रत्युत्तर में हमारी मान्य बहनों ने हमें विश्वास दिलाया है कि वे अब अधिक सुषुप्त नहीं रहेंगी—वे जग गई हैं और करवट लेकर उठने की ही प्रयत्नशील हैं। माननीय बहन कुमारी लज्जावतीजी (भूतपूर्व आचार्या कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर) विश्वास दिलाती हैं—

"इस देश की नारी-शक्ति अब जाग रही है—वह करवट ले रही है। जिस दिन यह महाशक्ति चैतन्य होकर—उठकर—बैठ गई, उस दिन इस देश की ग़ुलामी की बेड़ियाँ चूर-चूर हो जायँगी। विश्वास कीजिए, वह दिन निकट आ रहा है।"

और, दूसरी बहन (कुमारी लीलावती 'सत्य', बी॰ ए॰) आश्वासन देती हैं—

"वास्तव में अब हम भाई-बहन, भारत-माता के पुत्र और पुत्रियाँ मिलकर कार्य करेंगे, तभी 'माँ' के बन्धनों को काट सकेंगे। माँ, पुत्र तथा पुत्रियों को, समान ही प्रिय होती हैं; यह असम्भव है कि 'माँ' की पुकार पर पुत्रियाँ ध्यान न दें। हर्ष का विषय है, अब हमारे देश की बहनों में जागृति उत्पन्न हो रही है—और, वह दिन दूर नहीं है, जब आपकी इन बहनें भी 'माँ' की सेवा में अपने भाइयों से किसी प्रकार पीछे न रहेंगी। हम हँसते-हँसते माता के चरणों पर बलिदान हो जायँ, यही अभिलाषा है।"

अन्य कई बहनों के भी इसी प्रकार के उत्साह और आश्वासन के पत्र हमें प्राप्त हुए हैं। निस्सन्देह यही भावना है, जो आगे चल कर राष्ट्र-निर्माण में सहायक होगी। अगर हमारी बहनें इसे कार्य-रूप में कर बतलावें—और, हम देखते हैं, दिन-दिन वे प्रगति कर ही रही हैं, तब कोई वजह नहीं कि हम क्यों न आगे बढ़ेंगे? भगवान् उन्हें इसके लिए बल दे!

सहवास की वय-मर्यादा

सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट का अच्छा स्वागत हो रहा है। कहीं-कहीं मतैक्य न भी हो, मगर साधारणतया समझदार लोग उसकी तारीफ़ ही कर रहे हैं। ३५० पृष्ठों में उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है—और, कहते हैं, उसमें सब पहलुओं से इस प्रश्न पर समुचित विचार किया गया है। अख़बारों में उसका जो संक्षेप निकला है, उसके अनुसार, उसकी सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं—

१. पति-पत्नी के सहवास की वय १५वर्ष कर दी जाय।

२. १५ वर्ष से कम उम्र की पत्नी के साथ पति का समागम अपराध माना जाय।

३. *इस अपराध का नाम हो 'वैवाहिक दुर्व्यवहार'।*

४ ताजीरात-हिन्द की दफ़ा ३७५ और दफ़ा ३७६ उसी बलात्कार पर लागू हो, जो पति-पत्नी मे सम्बन्धित न हो।

५ पर-स्त्री के साथ सहवास की वय १८ वर्ष रक्खी जाय।

६. ४ वर्ष से पहले लड़की का विवाह न किया जाय। *इसके लिए एक क़ानून ही बना दिया जाय।*

७. *वर्तमान कानून के अनुसार जो विवाह हो चुके हैं* वे यदि नये क़ानून मे मेल न खाते हों तो भी उन्हें नाजायज़ न ठहराया जाय।

८. सर्व-साधारण को विवाह तथा सहवास सम्बन्धी क़ानून की अच्छी तरह जानकारी कराने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध और प्रचार किया जाय।

९. सरकार की तरफ़ से बाक़ायदा रजिस्टर रक्खा जाय, जिसमें पति-पत्नी की उम्र तफ़सील के साथ लिखी जाय। ऐसा नियम बना दिया जाय कि या तो स्वयं पति-पत्नी या उनके माता-पिता विवाह की रिपोर्ट लिखा दिया करें।

१०. विवाह की रिपोर्ट दर्ज करानेवालों को उसका प्रमाणपत्र मुफ्त दिया जाय।

११. विवाह-क़ानून का भंग करने अथवा झूठी रिपोर्ट दर्ज करानेवाले पर मुक़दमा चलाया जाय और उसे सज़ा दिलाई जाय।

१२. बच्चे की पैदायश तथा उसके नामकरण की रिपोर्ट प्रत्येक गाँव व शहर में, निश्चित समय के अन्दर, ज़रूर दर्ज कराई जाय।

१३. पैदायश-रजिस्टर रखनेवाले अधिकारी का कर्तव्य हो कि *निश्चित समय के अन्दर रिपोर्ट न लिखानेवाले* पर मुक़दमा चलावे।

१४. पैदायशी रिपोर्ट का प्रमाणपत्र मुफ्त दिया जाय और उसमें वर्ग (मर्द या औरत), माता-पिता तथा बच्चे का नाम आदि बातें दर्ज रहें।

१५. विवाह और पैदायश के रजिस्टर स्थायी रूप से रक्खे जायँ।

१६. बलात्कार करनेवाला पति तथा पत्नी फ़िलहाल *ज़मानत पर छोड़े जायँ और पुलिस इन मामलों को न* चलावे।

१७. पत्नी की उम्र १२ से १५ वर्ष के बीच हो तो अदालत की इजाज़त से राज़ीनामा हो सकता है।

१८. पत्नी १२ वर्ष से कम-उम्र हो तो बलात्कार करने वाले पति को १० वर्ष की क़ैद और जुर्माने की सज़ा दी जाय, परन्तु यदि पत्नी १२ से १५ वर्ष के बीच हो तो १ वर्ष की क़ैद या जुर्माना अथवा दोनों सज़ायें दी जायँ।

१९. *ज़ाब्ता फ़ौजदारी की दफ़ा ५६२ में ऐसी* उपधारा जोड़ दी जाय, जिससे वैवाहिक दुर्व्यवहार के मुक़दमे में अलग रहने पत्नी का खर्च दिलाने तथा दूसरी बातों के लिए—जिन्हें अदालत उचित समझे—मुचलका भी लिखा लिया जाय, जिसमे फिर वैसा अपराध न हो।

२०. जबतक पत्नी क़ानून के अनुसार सहवास योग्य वय की न हो जाय तबतक उसे पति से अलग रखने और खर्चा दिलाने के लिए ऐसे अपराधियों अथवा उनके संरक्षक से मुचलके लिखाने की एक नई दफ़ा बनाई जाय।

२१. ज़ाब्ता फ़ौजदारी की १२६, १६६अ और ४०६ अ दफ़ाओं को इतना विस्तृत कर दिया जाय कि वे वैवाहिक दुर्व्यवहार के मुचलकों पर भी लागू हो सकें।

२२. विवाह के क़ानून को तोड़ने पर खाली जुर्माने की सज़ा न हो, बल्कि क़ैद या जुर्माना दोनों की सज़ा दी जाय।

२३. विवाह-क़ानून तोड़ने वाले व्यक्ति पर जो अदालत मुक़दमा चला सके उसे (उपर्युक्त) २० वीं धारा के अनुसार पति से मुचलके लेने का भी अधिकार हो।

२४. ज़ाब्ता फ़ौजदारी की १२२, १२६, १२६ अ और ४०६ अ दफ़ाओं की ज़मानत की रक़म का नियम इस मुचलके पर भी लागू हो।

२५. क़ानून के विरुद्ध ११ वर्ष से पहले विवाहित हो *गई लड़की १५ वर्ष की अवस्था तक जिस व्यक्ति या संस्था* के पास रक्खी जाय, अदालत को अधिकार हो कि उसके बारे में वह सब प्रकार की जाँच-पड़ताल करती रहे।

२६. ऐसी अल्पायु कन्याओं की रक्षा और उनका भरण-पोषण करनेवाली संस्थाओं को पर्याप्त मदद दी जाय।

२७. पर-पुरुष को बलात्कार करने पर आजन्म कालेपानी या दस वर्ष की क़ैद और जुर्माने की सज़ा होगी; परन्तु लड़की के १६ से १७ वर्ष के बीच की होने पर और साथ ही यह सिद्ध हो जाने पर कि इसमें उसकी भी रज़ामन्दी थी, अपराधी को २ वर्ष की क़ैद और जुर्माने की सज़ा होगी।

२८. वैवाहिक दुर्व्यवहार तथा बलात्कार की जाँच करने, गवाही लेने, बयान सुनने इत्यादि के लिए स्त्री-पुलिस से काम लिया जाय; जहाँ स्त्री-पुलिस न हो, वहाँ किसी निष्पक्ष और प्रतिष्ठित महिला से ये काम लिये जायँ।

२९. वैवाहिक दुर्व्यवहार तथा बलात्कार के मुक़दमों के लिए जूरी व असेसर स्त्रियाँ ही हों।

३०. ऐसे मामलों में ज़ाब्ता फ़ौजदारी की दफ़ा ३५२ का ही सदा व्यवहार करने की हिदायतें दी जायँ।

३१ लड़कियों की डाक्टरी जाँच लेडी-डाक्टरों द्वारा हो।

३२ सभी अदालतों में जहाँ तक सम्भव हो लड़कियों व स्त्री-गवाहों के ठहराने के लिए अलग कमरों की व्यवस्था रहे।

३३. १९२५ ईस्वी के २९ वें एक्ट की चौथी धारा में नये क़ानून के अनुसार परिवर्तन किया जाय।

३४. वैवाहिक दुर्व्यवहार के एक वर्ष बाद उसके सम्बंध में कोई मुक़दमा न सुना जाय।

३५,३६,३७,३८ धाराओं में ताज़ीरात-हिन्द व ज़ाब्ता-फ़ौजदारी की इस सम्बंधी विविध दफ़ाओं व शब्दों में और अंकों में कुछ रद्दोबदल करने का उल्लेख है।

३९. १५ वर्ष से कम उम्र की पत्नी पर अनाचार करने के बाद पति उसे अपने अधिकार में रखने तथा उसपर अन्य कोई दाम्पत्य अधिकार प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकेगा।

४०. स्त्री-पुरुषों में साधारण शिक्षा-प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न होना चाहिए।

× × ×

इसमें बलात्कार का जहाँ-जहाँ ज़िक्र आया है, उससे मतलब है कम (निश्चित) उम्र में होनेवाला सहवास—फिर वह दोनों की रज़ामन्दी से हो, या किसी एक की ज़बरदस्ती से। ग़ैर पुरुष-स्त्री के सहवास की जो उम्र निश्चय की गई है, इसका मतलब भी कोई यह न करे कि इस उम्र में चाहे जिस स्त्री-पुरुष का सहवास क्षम्य है। इसका मतलब इतना ही है कि स्व-पत्नी के अलावा दूसरी स्त्री से भी इस उम्र में सहवास अपराध है, फिर उसमें चाहे उस स्त्री की रज़ामन्दी भी क्यों न हो और बिना रज़ामन्दी के तो किसी भी उम्र में यह अपराध ही है।

— + —

समझदार लोगों में आजकल इसकी काफ़ी चर्चा है। सभी पत्र इसपर अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। हम भी इसके प्रशंसक हैं। परन्तु एक तो रजिस्ट्रेशन की बात ज़रा दिक़्क़ततलब है--हमारे देश में पश्चिमी देशों से अभी काफ़ी भिन्नता है; इसलिए इससे लोगों को झंझट तो लगी होगा, आश्चर्य नहीं कि सम्बन्धित सरकारी कर्मचारियों के लिए भोले-भाले सर्व-साधारण को सताने और अपनी जेबें गरम करने का यह एक नया तरीक़ा सिद्ध हो जाय। कम-से-कम अभी इसमें काफ़ी छूट की ज़रूरत है; और विवाह करनेवालों के स्वयं उपस्थित होकर रजिस्टर में दर्ज कराने के बजाय डाक-द्वारा या पुरोहितों के द्वारा इसकी गणना होना बहतर होगा। दूसरे विवाह और सहवास की उम्रों का अलग-अलग रक्खा जाना भी लोगों को दिक़्क़ततलब ही होगा। हम लोगों में यह जो आम धारणा है कि विवाह के बाद मानों पति-पत्नी को विषय-सम्बन्ध का स्वत्व स्वतः ही प्राप्त हो जाता है; अक्सर विवाह के साथ ही 'सोहागरात' का भी रिवाज दिखाई पड़ता है; ऐसी दशा में १४ वर्ष की उम्र में विवाह करके एक वर्ष तक सहवास से बचाने के उपाय करते फिरना एक नई झंझट मोल लेना है। इसके लिए जो मुक़द्दमे चलेंगे, उनमें भी उम्र, परिपक्वता आदि की ऐसी बातें सामने आना सम्भव है, जिन्हें हमारा भावना-शील हृदय सहसा गुप्त ही रखना चाहेगा। अतः सार्वजनिक नैतिकता की रक्षा तथा झंझटों से बचने के लिए विवाह और सहवास की उम्र का एक ही रहना उचित है—फिर धीरे-धीरे यदि सहवास की वय बढ़ाने का प्रयत्न होता रहे तो हर्ज़ नहीं। महात्मा गाँधी

और पं० मोतीलाल नेहरू ने विवाह की उम्र स्त्री-पुरुष के लिए जो १८ व २६ वर्ष बताई है, उसकी उत्तमता में तो संदेह नहीं; परन्तु हमारा समाज आज १५ और २५ के लिए भी तैयार हो जाय तो भी गनीमत है। साथ ही इसके जो विवाह कुछ कम उम्र में हो भी जायँ उन्हें नाजायज़क़रार देना बिलकुल अंतिम बात रक्खी जाय; हाँ, जो उसके कराने में ज़िम्मेदार हों उन अभिभावकों तथा पुरोहित-पण्डित और मेहमानदारों को इसके लिए काफ़ी सज़ा दी जानी चाहिए, जिससे कि उनकी हिम्मत ऐसा दुष्कृत्य करने की न पड़े। इन सब संशोधनों के साथ यदि यह स्वीकार हो जाय तो, हमारा ख़याल है, उससे हमारा भला ही होगा—और, इसमें संदेह नहीं, काफ़ी भला होगा।

बाल-विवाह का अन्त ?

अजमेर के रायसाहब हरबिलास सारडा का बाल-विवाह-निषेधक बिल, बड़ी आशा और प्रतीक्षा के बाद, आखिर ११ सितम्बर को लेजिस्लेटिव असेम्बली में पास हो गया। राज्य-परिषद् ने भी २८ ता० को उसपर अपनी स्वीकृति की मुहर लगादी। वहाँ भी श्री रामदास पन्तुलु द्वारा प्रस्तावित होकर बहुसम्मति से यह स्वीकृत होगया है। अब, बस वाइसराय की स्वीकृत की मुहर लगना और बाक़ी है। वाइसराय की स्वीकृत मिली नहीं कि यह क़ानून का रूप धारण कर लेगा और आशा है कि शीघ्र ही—सम्भवतया अगले वर्ष के प्रारम्भ से—इसे अमली रूप भी मिल जाय।

× × ×

बालविवाह की प्रथा कितनी बुरी, कितनी हानिकर, कितनी नाशक और कितनी शर्मनाक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। शायद इसीलिए हम इसे 'बुराई का मूल' कहते हैं। निसन्देह आज हमारी जो दुर्दशा है, जो हीनावस्था है, उसका मूल हमारी सामाजिक व्यवस्था में भी है; और इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बाल-विवाह वह प्रथा है, जो सामाजिक क्षेत्र में हमारी अन्य अनेक बुराइयों को आश्रय मिलने का साधन बन रही है। बाल-विवाह ही वह कारण है, जिससे हमारी बाढ़ रुक जाती है, जब कि हम बढ़ने की दिशा में पैर रखते हैं। परिणाम होता है दम्पती की शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक हीनावस्था और उसके फल-स्वरूप निकृष्ट और अनुपयुक्त सन्तति की सृष्टि। यही संतति भविष्य की निर्माता होती है, इसलिए दिन पर दिन सब पहलुओं से हमारे भविष्य का ह्रास होते रहना बिलकुल स्वभाविक है। इसीलिए प्रगतिशील-दल चाहता है कि इस कुप्रथा का शीघ्र अन्त हो।

सुधार के इच्छुक सभी दलों के लोग अपने-अपने ढंग पर इसके विरुद्ध कोशिश करते रहे हैं। प्रधानतया इसके सम्बन्ध में दो मत हैं—एक मत जनता में प्रचार करके उसके द्वारा अपने आप इस प्रथा को उठवाना चाहता है; दूसरा क़ानून बनवा कर एकदम इसपर प्रतिबन्ध लगा देने का तथा उसके बाद जनता में शिक्षणात्मक प्रचार-कार्य करने का हामी है। सहवास की वय-मर्यादा बाँधने आदि के रूप में क़ानून बनने की दिशा में काफ़ी समय से इसके लिए प्रयत्न जारी रहा है। रायसाहब हरबिलास सारडा राजनीति में नरम विचारों के आदमी हैं, पर समाज-सुधार के प्रश्न पर उन्होंने खूब गरमी दिखलाई। पिछले कई वर्षों (लगभग ४ साल) से वह इसके लिए प्रयत्नशील रहे हैं। बीच-बीच में आशा और निराशा के कई झोंके उन्हें लगे, एक बार सरकार की वादा-खिलाफ़ी पर वह झुंझला भी पड़े, मगर इस बार ईश्वर ने उनकी सुनली। स्वराज्य-दल ने प्रायः इनका साथ दिया, सरकार ने उनकी मदद की, और सबसे बड़ी बात तो यह कि स्वयं महिलाओं ने दल-के-दल असेम्बली के प्रवेश-द्वार पर पहुँच कर अपने प्रदर्शन से सदस्यों को बिल के पक्ष में मत देने को उभाड़ा। नतीजा यह हुआ कि कट्टर श्री एम० के० आचार्य और कुछ मुसलमान सदस्यों के विरोध, पं० मालवीयजी की तटस्थता आदि के बावजूद भी यह पास हो कर रहा। इसके लिए बिल के रचयिता सारडाजी को बधाई !

× × ×

बिल मूल में तो सिर्फ़ हिन्दुओं के लिए था और लड़की-लड़के की विवाह-वय रक्खी गई थी १२ एवं १६ वर्ष। परन्तु बाद में इसने पलटा खाया। विशेष समिति के हाथों

वह गया और उसने संशोधन करके इसे भारतवासी-मात्र के लिए प्रस्तावित किया तथा लड़की-लड़के की विवाह-वय १४–१८ वर्ष तय की। इस बार इसी रूप में यह पास हुआ है।

इसके विरोध में जो लोग रहे या हैं, उनमें एक दल है शास्त्रों की दुहाई देनेवाला और दूसरा मुस्लिम हितों का शोर मचानेवाला। आश्चर्य है कि पं० मालवीयजी और श्री केलकर ने लड़की की उम्र १२ साल रखने पर ज़ोर दिया और मुसलमान सदस्यों ने शरीयत आदि के नाम पर इसे मुसलमानों पर लागू न होने देने की कोशिश की। परन्तु अब देश जागृत हो चुका है। हमें खुशी है, लोगों ने शास्त्र और शरीयत के नाम पर धोखा नहीं खाया; उन्होंने अपनी बुद्धि पर इसे तौला और स्वीकृत किया। शास्त्र वाली बात का श्री जयकर आदि हिन्दू नेताओं ने और शरीयत के बारे में डा० हैदर व श्री शाहनवाज़ आदि ने खूब करारा जवाब दिया। राज्य-परिषद् में भी उलमाओं के नाम का डर बताया गया था, पर वहाँ भी बुद्धि ने ही ज़ोर पकड़ा। बनारस आदि में सार्वजनिक रूप से भी कुछ गुल-गपाड़ा इसके विरुद्ध हुआ है, परन्तु इन बातों पर ध्यान न देना ही बेहतर है। पानी के बुलबुलों में दम नहीं होता, न काग़ज़ की नाव चल सकती है। थोड़ी देर बाद अपने आप वे समाप्त हो जाते हैं। इसके विरोध का भी यही हाल होगा—ऐसा प्रतीत होता है।

× × ×

यह प्रश्न ज़रूर महत्व रखता है कि सुधार स्वेच्छया हो या क़ानून की ज़बर्दस्ती से? स्वभावतः हम पहले मत के हैं। क़ानून द्वारा सुधार—ख़ासकर वर्तमान विदेशी शासन में—चाहे बिलकुल अवाञ्छनीय न हो, परन्तु हम उसकी ज़्यादा आशा नहीं करना चाहते—परावलम्बन कदापि आदर्श नहीं हो सकता; इसकी अपेक्षा स्वेच्छया सुधार में स्व-प्रेरित उत्साह व लगन होने से वह ठोस और प्रभावशाली भी अधिक होगा। लेकिन आज की हमारी जैसी हालत है, उसमें किसी के प्रयत्न से यदि ऐसा सुधार होता हो तो हम उसका स्वागत करेंगे। महाकवि रवीन्द्र के इस कथन को चाहे हम पूर्णतया स्वीकार न करें कि किसी भी सुधार को स्थायी रूप क़ानून से ही प्राप्त होता है; पर इसमें सन्देह नहीं कि आज की हमारी दशा में क़ानून ही वह उपाय है, जो जल्दी और ज़ोरों के साथ हमपर असर कर सकता है।

× × ×

इसमें शक नहीं कि बहुत दिनों की टाल-मटूल और बहस-मुबाहसे के बाद यह पास हुआ है। परन्तु 'सुबह का भटका शाम को भी घर आ जाय तो भी अच्छा ही है।' अस्तु, देखना चाहिए, अब वाइसराय की स्वीकृति कब मिलती है और कब से यह अमल में आता है।

बाल-विवाह के कुफल जिन्होंने देखे-सुने हैं, वे बहन-भाई तो इस ख़बर को सुनकर अवश्य सन्तोष की साँस लेंगे। जो जानते-बूझते भी इस पथ पर चलने से बाज़ नहीं आते, उन्हें भी अब सावधान हो जाना चाहिए। आशा है कि अब वे चेतेंगे।

सुधारकों से भी हम कहना चाहते हैं कि दर-असल उनका काम अब शुरू है। क़ानून ने तो सिर्फ़ उनका रास्ता थोड़ा सरल कर दिया है। देश की जनता तक उसके उद्देश्य और सुपरिणाम का सन्देश पहुँचाने एवं पुरानी स्थिति को दूरकर बुद्धि द्वारा अच्छी अच्छी बातों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति लोगों में उत्पन्न करने का कार्य तो अभी ज्यों का त्यों है। सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट में भी उसके सदस्यों ने जनता में शिक्षा के प्रचार तथा अन्य साधनों द्वारा सुधार-कार्य की उपयोगिता का प्रचार करने की सलाह दी है। यदि यह बिल क़ानून बन गया, जैसी हमें आशा है, तो भारत के सामाजिक इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ होगा। आशा है, वह अध्याय हमारे सुधारक भाइयों की भावी कर्मण्यता की भाषा में लिखा जायगा।

मुकुट

युवक-भारत

युक्तप्रान्तीय-युवक-सम्मेलन

लखनऊ में १५-१६ सितम्बर को प्रथम युक्त-प्रान्तीय-युवक-सम्मेलन न केवल युवकोचित उत्साह और जोश दिखाकर समाप्त हो गया, वरन्, उसने भारत को नया मार्ग दिखाया है। किसी देश का उत्थान युवकों के अदम्य उत्साह, सहनशीलता, और लगन पर अवलम्बित है। भारत की राजनीति में युवकों का अभी तक उतना हाथ नहीं रहा है, और न उन्हें उतना बढ़ने ही दिया गया है, जितना कि आवश्यक और अनिवार्य था। अब सारे भारत में युवकों में हलचल है; वे राजनीति में आगे आ रहे हैं, उनका उत्साह और विश्वास पूर्ण-स्वतंत्रता से कम लेने को तैयार नहीं है; उनका समता-प्रेमी क्षमताशील हृदय संसार की विषमता, सामाजिक धाँधलेबाज़ी और दकियानूसी को दूर करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देने को तैयार है। वे स्वतंत्रता के मार्ग की सारी बाधाओं को कुचल डालने के लिए तैयार हैं। लखनऊ के युक्त-प्रान्तीय-युवक-सम्मेलन ने युवकों की इन्हीं नई भावनाओं और नये कार्यक्रम को सामने रखा है।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस सम्मेलन में इस आशय का एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव रक्खा था—"इस कान्फ्रेन्स की राय में हिन्दुस्तान को आज़ादी उसी सूरत में मिल सकती है जब एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का, तथा एक दल द्वारा दूसरे दल का दबाना बन्द हो जाय तथा सार्वजनिक लाभ के लिए पारस्परिक सहयोग से समाज की नई रचना की जाय। इस नवीन रचना के लिए पुराने सामाजिक बन्धनों, (जाति-पाँति, अस्पृश्यता, स्त्रियों की गुलामी आदि) और रीति-रिवाजों को सदा के लिए तिलाञ्जलि दे देना ज़रूरी है। समाज की आर्थिक नीति, जिसके कारण बुद्धि-जीवी और श्रमजीवी दबाये जाते हैं और अपने परिश्रम के अधिक भाग के लाभ से वंचित किये जाते हैं, निन्दनीय है।"

यह प्रस्ताव भारत के राजनैतिक युद्ध में एक नया ही मसला है। पं० जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्रता और साम्य-वाद को साथ ही चलाना चाहते हैं। हो सकता है कि साम्य-वाद के कुछ सिद्धान्त अव्यावहारिक हों, लेकिन जहाँ तक उनका सम्बन्ध भारत की सामाजिक अवस्था के सुधार के साथ है साम्यवाद के सिद्धान्त भीतर ही भीतर काम करेंगे, चाहे किसी भी नाम और विधि से करें। बुराइयों के साथ समझौता नहीं किया जा सकता, उनका समूल नष्ट किया जाना अनिवार्य है। यही सन्देश युक्तप्रान्तीय-युवक-सम्मेलन का यह प्रस्ताव भारत को देता है।

दूसरे बहुत से प्रस्तावों में एक प्रस्ताव राजनैतिक और आर्थिक बातों में बरबस साम्प्रदायिकता का जो भाव घुस आया है उसके विरुद्ध पास किया गया। प्रस्ताव में कहा गया—"सम्मेलन का विश्वास है कि किसी सम्प्रदाय के संकीर्ण स्वार्थ की रक्षा भी देश की उन्नति पर निर्भर है क्योंकि राष्ट्र के भीतर ही सम्प्रदाय आ जाता है। इसलिए सम्मेलन का मत है कि युवक-संघ का कोई सदस्य ऐसी साम्प्रदायिक संस्था से सम्बन्ध न रखे जो धार्मिक आधार पर राजनैतिक और आर्थिक अधिकार चाहती है।"

वास्तव में इस साम्प्रदायिकता ने भारत को काफ़ी नुक़सान पहुँचाया है और हमें यह देखकर सन्तोष है कि युवकों का दल इस संकीर्णता से सर्वथा दूर रहना चाहता है। हमारी आँखें युवकों पर लगी हुई हैं। आशा है वे भारत के राजनैतिक वातावरण को सुधारेंगे। हम भी सम्मेलन की अध्यक्षा श्रीमती सरोजनी के शब्दों में कहना चाहते हैं—"युवको पुरुषों की भाँति कार्य करो और देश के असाहसी नेताओं के कोरे दिखावे के लज्जाजनक कलंक को धो डालो।"

'प्रेमी'

बम्बई का युवक-संघ

भारत में इस समय जो युवक-आन्दोलन हो रहा है, उसमें बम्बई-प्रान्त सबसे आगे है। यदि यह कहें कि इस आन्दोलन का आरंभ ही बम्बई से हुआ तो भी अनुचित न होगा। बम्बई में भारतीय युवक-संघ का प्रधान कार्यालय होने के कारण भी वहाँ अन्य स्थानों की अपेक्षा आन्दोलन की दिशा में विशेष प्रगति हुई है। बम्बई प्रान्तीय युवक-संघ के विगत वर्ष की एक रिपोर्ट उसके सुयोग्य मंत्री श्री मेहरअली ने मेरे पास भेजी है। उसे देखने से जान पड़ता है कि बम्बई-प्रांत के सभी प्रधान नगरों में युवक-संघ कायम हो गये हैं। साइमन-कमीशन के आगमन के समय उसके सफल बहिष्कार-कार्य में इन युवक-संघों का बड़ा जबर्दस्त हाथ रहा है। देश की सभी राजनैतिक हलचलों में आगे बढ़कर काम करने की प्रवृत्ति का बम्बई युवक-संघ एक उदाहरण है। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार, स्त्रियों और अछूतों की अवस्था के सुधार, मज़दूरों और किसानों के आन्दोलन में इन लोगों ने बड़ा काम किया है। स्कूल-कालेज के छात्रों को राजनैतिक सभा-समितियों में शामिल न होने के जो प्रतिबंध अधिकारियों की ओर से थे, इनके सामूहिक आन्दोलन के कारण अब वे शिथिल हो गये हैं। अब छात्र राजनैतिक आन्दोलनों में स्वच्छन्दतापूर्वक शामिल होते हैं और अधिकारीगण असन्तुष्ट होकर भी उनके संगठन के कारण कुछ प्रतिबंध या दण्ड की व्यवस्था करने से डरते हैं।

हमें आशा है कि जहाँ श्री नरीमन-जैसे निर्भीक नेता और सभापति तथा श्री मेहरअली-जैसे योग्य कार्यकर्ता एवं मंत्री हैं वहाँ बम्बई-युवक-संघ की प्रगति देश के युवक-समाज के सामने कार्य का एक आदर्श उपस्थित करेगी।

युवक-आन्दोलन और पत्र

यह बात मानी जा चुकी है कि समाचार पत्र वर्तमान सभ्यता के सबसे ज़बर्दस्त अंग हैं। विश्व के राजनैतिक क्षेत्र में तो उनका प्रभाव बहुत ज़्यादा है। पश्चिमी देशों में, जहाँ शिक्षितों की संख्या अधिक और अशिक्षितों की कम है, पत्रों का एकाधिकार सा है। वे जो उलट-फेर चाहते हैं, कर डालते हैं।

यद्यपि भारत में शिक्षा की कमी और निरक्षरता की अधिकता के कारण समाचारपत्रों का उतना प्रचार नहीं है और प्रचार न होने के कारण पश्चिम की भांति जनता पर उनका उतना आधिपत्य भी नहीं है फिर भी दिन-पर-दिन अच्छे और योग्य पत्रों का महत्व हमारे देश के राजनैतिक क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है। पत्र अधिकांश में जनता की आवाज़ माने जाते हैं। अतएव पत्रों-द्वारा लगातार किये जानेवाले आन्दोलनों का प्रभाव देश की जनता पर तो पड़ता ही है; उसके विरोधी दल — सरकार एवं सरकार के सहयोगियों — पर भी पड़ता है। साइमन-कमीशन के बहिष्कार के आन्दोलन में जो सफलता मिली थी, उसका कारण हमारे समाचारपत्रों का विशेष आन्दोलन ही था। उस समय साइमन-कमीशन के समर्थक भी विरोध के भयंकरता का सामना करने में अपनी असमर्थता का अनुभव कर चुप बैठ गये थे।

जहाँ कार्य के द्वारा आदर्श एवं लक्ष्य तक पहुँचने में सफलता मिलती है वहाँ पत्रों के द्वारा उन आदर्शों एवं सिद्धान्तों का प्रचार होता है।

इसीलिए संगठित आन्दोलन करनेवाले प्रत्येक दल के पास अपने पत्र होते हैं। भारत में युवक-आन्दोलन का आरंभ होने के समय से ही युवक-दल को यह बात अनुभव होती रही है। यद्यपि देश के सभी राष्ट्रीय पत्रों ने, एक सीमा तक, युवक-आन्दोलन का समर्थन किया है, और वे बराबर उसके कार्यों में सहयोग भी करते रहे हैं, फिर भी बहुधा वे युवक आन्दोलन के ठीक-ठीक दृष्टिकोण को सामने रखने में, अपनी हिचकिचाहट एवं शंकाओं के कारण असफल रहे हैं। हर्ष की बात है कि भारतीय युवक-संघ की ओर से बम्बई से 'वान गार्ड' नामक पत्र हाल ही में प्रकाशित होने लगा है। इसे देखने से मालूम होता है कि हमारे देश के युवक कोरे जोश के शिकार नहीं हो रहे हैं। समाज-रचना की अत्यन्त जटिल एवं गंभीर समस्याओं को समझने और सुलझाने की कामना उनके अन्दर काम क रही है। वे समाज की ऊपरी सतह में ही परिवर्तन हो जाने

से संतुष्ट न होंगे क्योंकि शारीरिक आवरण के बदल जाने से ही मनुष्य का विकास हो जाता है, ऐसा मानने को वे तैयार नहीं हैं। वे समाज की उस व्यवस्था में आमूल परिवर्तन चाहते हैं जो व्यक्ति और समाज दोनों को मुक्ति दे और दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध का उचित एवं न्यायपूर्ण मार्ग दिखावे। मत-भेद रखते हुए भी, 'वानगार्ड' इस विषय में अपने नाम को सार्थक करेगा, हमें ऐसी आशा है।

पटना से निकलने वाला मासिक 'युवक' तथा हाल ही में बम्बई से प्रकाशित होने वाला 'सन्देश' पत्र युवकों के आन्दोलन में विशेष भाग ले रहे हैं। फिर भी हिन्दी में भारतीय युवक-संघ की ओर से एक साप्ताहिक पत्र की अत्यन्त आवश्यकता है। भारतीय युवक-सम्मेलन हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा भी स्वीकार कर चुका है। ऐसी हालत में यदि वानगार्ड' का हिन्दी-संस्करण निकालने की भी वह व्यवस्था करे तो युवक-आन्दोलन को विशेष लाभ पहुँचने की संभावना की जा सकती है।

'सुमन'

देश की बात

असहयोग की ओर लौटो

विगत ४-५ वर्षों के अन्दर परिस्थिति की जटिलता से विवश होकर कितने ही स्थानों पर और कितनी ही बार हमारे अनेक नेताओं और कार्यकर्ताओं को कौंसिल-कार्यक्रम की निस्सारता का अनुभव करना पड़ा है। यह अनुभव केवल गरमदल के नेताओं को ही हुआ हो, यह बात नहीं। दैनिक 'लीडर' के सफल सम्पादक और उदार-दल के प्रसिद्ध नेता श्री चिन्तामणि तक को झुंझलाकर लिखना पड़ा है कि 'ये कौंसिलें दरअसल प्रहसन-मात्र हैं।' जब-जब हमारा अपमान होता है; जब कौंसिलों के प्रस्ताव कार्याधिकारियों-द्वारा रद्दी की टोकरी में फेंक दिये जाते हैं अथवा जब हममें परिस्थिति को सचाई के साथ समझने की उत्कण्ठा जाग उठती है, तब हमें मालूम पड़ता है कि हमारे आन्दोलन की दिशा भ्रम की खाई की ओर चली गई है। महात्मा गांधी के कार्य-क्रम से सभी सहमत नहीं हैं, इस बात को महात्मा जी भी स्वीकार करते हैं और देश भी जानता है पर ज्यों-ज्यों ठोकर खाकर कटु अनुभवों के बाद प्राप्त होने वाले विवेक का प्रकाश फैलता जाता है, त्यों-त्यों हमको, देश को यह भी अनुभव होता जा रहा है कि कोरे व्याख्यानों से कुछ न होगा; दुनिया का वर्तमान शासक दल शब्दों की भाषा नहीं समझता, वह शक्ति की भाषा समझता है। जिस दिन उसे मालूम हो जाता है कि अमुक देश इतना चेतन और प्रबल हो उठा है कि उसे अब दासता के बन्धन में रक्खा नहीं जा सकता, उसी दिन, उसी क्षण, वह उस देश की जिह्वा के हिलने-डुलने अथवा उसका 'अल्टिमेटम' मिलने की प्रतीक्षा किये बिना ही उसे मुक्त कर देता है। अनादिकाल से दुनिया का यही हाल रहा है।

यदि कौंसिलों से स्वराज्य प्राप्त हो सकता तो दादाभाई नौरोजी और गोखले-सरीखे संयमी पर प्रभावशाली व्यवस्थापक—कौंसिलर – अबतक हमें स्वतंत्र करा गये होते। यदि अच्छे, विचारपूर्ण और जोशीले व्याख्यानों से स्वराज्य प्राप्त कर लेना संभव होता तो सुरेन्द्रनाथ, मालवीयजी और डाक्टर बेसेण्ट के सर पर सफलता की पगड़ी वर्षों पूर्व बँध चुकी होती। शक्ति की भाषा दूसरी है; जीवन का रथ प्रभावपूर्ण शब्दों के ऊपर से नहीं दौड़ा करता, न उसके रास्ते में फूलों की सेज बिछी रहती है। उसका मार्ग मौन और दृढ़ कर्म व्रत का मार्ग है; उसकी भाषा कार्य की मूक पर प्रबल भाषा है।

यह हर्ष की बात है कि भारत के बड़े-बूढ़ों और युवकों दोनों दलों के सर्वमान्य नेता महात्मा जी और जवाहरलाल जी आरम्भ से ऐसे विचार प्रकट करते आ रहे हैं। महात्मा जी का विश्वास अहिंसात्मक असहयोग के कार्य-क्रम में

अब भी अटल है। जवाहरलाल जी को विगत ७–८ वर्षों में — स्वराज्य दल के आरम्भ में जो आँधी चली थी उसमें भी, हमने कभी कौंसिलों के कार्य का समर्थन करते नहीं पाया। आज इन दोनों मान्य नेताओं के सोचने के ढंग में, निकटतम आदर्श और लक्ष्य के सम्बन्ध में जहाँ हम मत-भेद पाते हैं वहाँ ठोस काम करने के सम्बन्ध में दोनों की एक राय है। दोनों की इच्छा और चेष्टा है कि देश अहिंसात्मक असहयोग के कार्य-पथ पर चले। कौंसिलों, व्याख्यानों, और बाहरी साधनों को छोड़कर ठोस, टिकाऊ और प्रभावशाली कार्य किया जाय। आज गांधी और जवाहरलाल में जो मतभेद है, वह भविष्य का है; वह आगे आयगा। वह तब शुरू होगा जब स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। उनकी लड़ाई आगे की, स्वराज्य के बाद की लड़ाई है। वर्तमान कार्य-क्रम के विषय में तो, यही मालूम पड़ता है कि, दोनों नेता चाहते हैं कि देश असहयोग के कार्यक्रम के योग्य बने और उसे अपनावे।

श्री वल्लभभाई की चेतावनी

इस बात को बारडोली के विजयी योद्धा श्री वल्लभभाई पटेल ने अपने ३३ वे तामिल-नायडू-सम्मेलन (वेदारण्यम्) के अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में बड़ी ज़ोरदार भाषा मे स्पष्टता के साथ कहा है। असहयोग-कार्यक्रम में अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करने और वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति का ज़िक्र करने के बाद उन्होंने कहा—

"हम अधीर और असन्तुष्ट हो रहे हैं; हम चिढ़ते और क्रुद्ध होते हैं और वायसराय, प्रतिहिंसा के देवता की भाँति, हमपर हँसता और विश्वास एवं सहानुभूति की धूप और ताज़ी हवा उत्पन्न—सहयोग का वातावरण तैयार—करने के लिए कहता है। असहयोग का पुराना रचनात्मक कार्य-क्रम ही सूर्य का वह प्रकाश है जो चारो ओर के अन्धकार को दूर भगा सकता है।"

कौंसिल-कार्य के सम्बन्ध में भाषण करते हुए वल्लभभाई ने कहा—"कौंसिल-कार्यक्रम हमारे लिए नाशकारी सिद्ध हुआ है और जबतक यह हमारे सामने है, हम कोई रचनात्मक बात सोच नहीं सकते।* बड़ी व्यवस्थापिका-सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) के अध्यक्ष के शानदार काम मेरी आँखों में चकाचौंध पैदा नहीं कर सकते। मैं अनुभव करता हूँ कि इस प्रकार की मनोहर आतिशबाज़ी के खेल जितनी ही अधिक मात्रा में हमें देखने को मिलेंगे उतनी ही सच्चे कार्य से भटक जाने और शत्रु के हाथ मज़बूत करने की संभावना बढ़ती जायगी। यह सम्पूर्ण कार्यक्रम ही भस्मासुर† के तुल्य है और हमें निगल जाने को सदा तैयार है।"

वल्लभभाई ने अपने भाषण में यह भी कहा कि यदि दृढ़ संगठन और रचनात्मक कार्य के बिना स्वराज्य मिल भी जाय तो वह एक खिलवाड़-मात्र होगा। देश की आज़ादी की लड़ाई में उन्होंने अछूतोद्धार, मादक द्रव्य-निषेध, और खादी इत्यादि की महत्ता बतलाई और कहा कि असहयोग के रचनात्मक कार्यक्रम के बिना हमारा उद्धार संभव नहीं।

क्या हम अन्तरात्मा की आवाज़ सुनेंगे?

देश में आज जो अकर्मण्यता है, शान्त और सूक्ष्म-भाव से उसका विश्लेषण करने पर यह जानने में कठिनाई नहीं होती कि हम आत्म-वंचना की कला से, अपने को धोका देने के मार्ग में कितना आगे बढ़ गये हैं। चारो ओर एक तूफ़ान, एक तहलका, एक शोर मचा हुआ है। इस शोर-गुल में, स्वभावतः, काम कम होता है; बातें बड़ी-बड़ी की जाती हैं। देशभक्ति का उपदेश किया जाता है, साम्राज्य-वाद के क्षय के नारे लगाये जाते हैं। क्षण-भर के लिए तो श्रोता को यही मालूम पड़ने लगता है कि अब कुछ

---

* The brilliant work of the President of the Assembly does not dazzle me. I feel that more we have of those brilliant fireworks the more shall we be lured away from the work before us and strengthen the hands of the enemy The whole Council Programme is frankenstein, a monster ready to devour us

† मूल में Frankenstein शब्द है जो श्रीमती शेली (१७९७–१८५१) की इसी नाम की कहानी में एक ऐसे दानव के लिए आया है जो अपने कर्ता को ही हड़प जाता है।

नहीं; क़िला फ़तह हो गया—सरकार अब दम तोड़ती है।' पर जब शब्दों की ध्वनि और शोरगुल का अन्त हो जाता है तो देखते हैं, किसान दोपहरी में खेत में खड़ा होकर एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहा है; पुलीस का अविनय-शील सिपाही वैसे ही सड़क के बीच तनकर खड़ा हुआ अंग्रेजी राज के 'अमिट' अस्तित्व का परिचय देने को विकल है; बाज़ार में अन्न का भाव और चढ़ गया है, देशभक्त योद्धा उसी तरह जेलों में सड़ रहे हैं। जब यह देखते हैं तो यह विश्वास होते देर नहीं लगती कि हमारे ये लम्बे-चौड़े शब्द अख़बारों से टकराकर फिर चारों ओर बिखर जाते हैं। हम देखते हैं, हमारे शासक ज्यों की त्यों गद्दी जमाये बैठे हैं और हमारी ओर आँख उठाकर देखे बिना अपना काम कर रहे हैं जैसे बुजुर्ग लोगों को बच्चों के खेल में होनेवाले शोर-गुल पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ा करती।

एक ओर पार्लमेंट में मजूर-दल का आधिपत्य होता है; कमीशन बैठाये जाते हैं; सहयोगिता और सहानुभूति की घोषणायें की जाती हैं और दूसरी ओर देश में गिरफ्तारियों की धूम है। उदारदल के नेता कहते हैं—'ठहरो, देख लो, अविश्वास क्यों करते हो। इस बार कुछ-न-कुछ ज़रूर मिलेगा।' जो आध्यात्मिक ढंग से सोचते हैं, वे कहते हैं—"ओ उच्छृंखल बच्चो! ज़रा ठहरो। तुम्हें अंग्रेज़ों की नीति में अविश्वास करने का क्या अधिकार है?" हम चुप होकर इधर-उधर देखते हैं। यूनियन जैक फहरा रहा है। शासन-चक्र की गति और भी टेढ़ी होती जाती है।

हम अपने मन में देश की आज़ादी का दम भरनेवाले लोगों को सम्बोधन कर पूछते हैं कि भाई ऐसा क्यों होता है? देश की पीड़ित अन्तरात्मा से उत्तर मिलता है—"इसलिए कि तुम अन्तरात्मा की आवाज़ की उपेक्षा करने की कला में पटु हो गये हो!"

हमें बड़ा दुःख है कि देश के बहुत-से लोग आज़ादी की लड़ाई को शास्त्रार्थ समझ बैठे हैं। कोई युवकों को उच्छृंखल और पागल बता रहा है; कोई बड़े-बूढ़ों को खलवातें सुनाने में व्यस्त है। इस विवाद और शब्दों के युद्ध में देश की आत्मा फँसकर तड़प रही है। जो काम हमें करना है, वह भूला जा रहा है। जब कभी देश के हृदय की आवाज़ इस शोर-गुल को दबाकर अपने को ज़बरदस्ती ध्वनित करती है तब हम तर्कों से, बड़े-बड़े सिद्धान्तों के बल पर अपनी अकर्मण्यता पर परदा डाल देते हैं। माता पीड़ित होकर पुकार रही है और हम अपने तर्क के झगड़ों से छुट्टी ही नहीं पाते।

दोषारोपण को मनोवृत्ति

भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र में जो मनोवृत्तियाँ इस समय काम कर रही हैं, उन्हें ध्यान से देखने पर एक विचित्र दृश्य दिखाई पड़ता है। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में जो दो मनोवृत्तियाँ दिखाई पड़ रही हैं, और जिन्हें हम गरम और नरम के पुराने नाम से पुकार सकते हैं, वे परस्पर एक-दूसरे की ग़लतियाँ निकालकर दोषारोपण के अस्वाद्य-द्रव्य के सहारे ही फूल-फल रही हैं। युवक बूढ़ों से इसलिए असन्तुष्ट हैं कि वे उन्हें आगे बढ़ने में बाधा देते हैं और खुद कोई काम नहीं करते। बड़े-बूढ़े कहते हैं कि ये नौजवान बातें तो साम्यवाद और संघवाद की करते हैं पर त्याग और बलिदान, कार्य और संगठन में पीछे हैं। हमारी समझ से दोनों की शिकायतों में कुछ तथ्य है और दोनों इसपर ध्यान देकर अपना सुधार करना चाहें तो सुधार कर सकते हैं पर हम तो देखते यह हैं कि जो वृद्ध दल के लोग युवकों के काम न करने की शिकायत करते और रचनात्मक कार्यों की दोहाई देते हैं, उनमें से कुछ को छोड़कर अधिकांश उलाहनों के तूफ़ान में खुद अपनी अकर्मण्यता छिपाने के लिए ऐसा करते हैं। वे खुद कोई खास और रचनात्मक कार्य नहीं कर रहे हैं। युवकों की ओर भी यही हाल है। वे भी जोश और अरमानों की भीड़ में उतावले हो रहे हैं। असन्तुष्ट होकर वे बड़े-बूढ़ों को दो-चार सुना देते हैं पर खुद आदर्श पैदा करने और उदाहरण पेश करने के लिए आगे नहीं बढ़ते। दोनों पारस्परिक दोषारोपण की गरमी में अपनी अकर्मण्यता की सरदी छिपाना चाहते हैं! यह प्रवृत्ति कल्याणकारी नहीं हो सकती और इससे देश की बड़ी हानि हो रही है।

'सुमन'
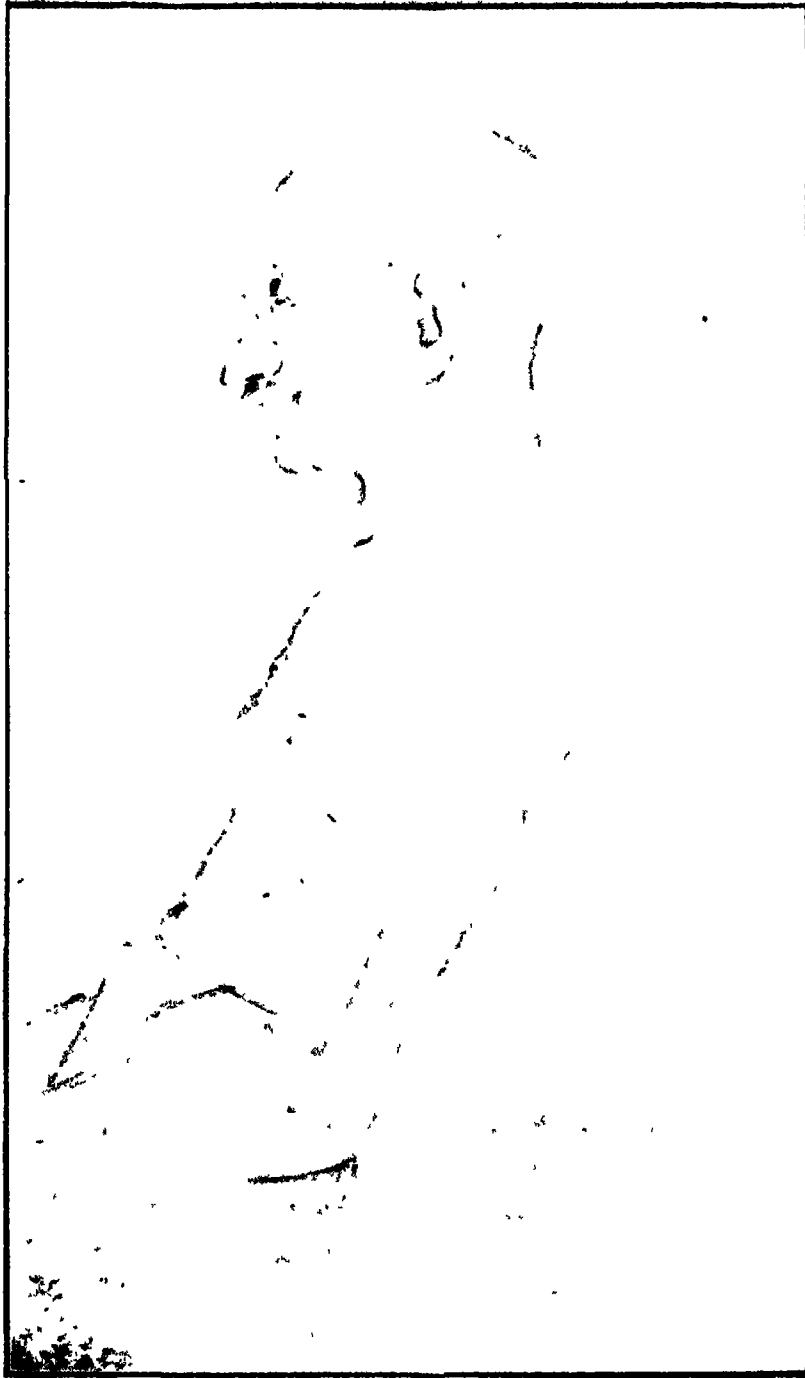
अमर पुरुष गांधी

महात्मा गांधी की हीरक-जयन्ती

असहयोग के कर्णधार, चर्खे के सूत्रधार, स्वराज्य-युद्ध के प्राणाधार महात्मा गांधी की, ६० वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में, तारीख २ अक्तूबरको सारे भारत में हीरक-जयन्ती मनाई गई। आजतक भारत में कोई ऐसा महापुरुष शायद ही हुआ हो, जिसको अपने जीवन-काल में ही इतनी लोक-प्रियता मिली हो। वह धुन का पक्का और अपने अनोखे-चोखे विचारों का कर्मयोगी है। उसकी सबसे बड़ी महत्ता यही है, कि वह जो-कुछ मानता है, जो-कुछ समझता है, जिसे उसके अन्तस्तल की परिभाषा 'सत्य' के नाम से पुकारती है वह उसपर दृढ़ रहता है, इतना दृढ़ जितना कि अचल हिमालय। वह अपने विचारों को क़दम-क़दम पर परखता है; वह अपने कार्यों को घड़ी-घड़ी निरखता है; उसका दावा है कि वह बिना विचारे, समझे-बूझे कोई कार्य-क्रम नहीं बनाता, और जिस समय एक बार किसी नौका की पतवार हाथ में ले लेता है तो उसे उस पार ले जाने के लिए अपना हृदय, तन, सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार रहता है।

१९३० के भारत में इस कर्मयोगी मोहन से भारत को बहुत आशा है। उसने पहले अपने जीवन और मन पर विजय पाई है; फिर और अनेक लड़ाइयाँ लड़ी और जीती हैं। अब उसके हाथ मे सुदर्शन-चक्र नहीं है; उसने इस वर्ष कृष्ण की भाँति अर्जुन का सारथी बनने का निश्चय किया है। यह अहिंसा का पुजारी राजनीति के रथ का सवार न होकर बागडोर सम्हालनेवाला सारथी बना है। उसके हृदय की इस दूरदर्शिता पर—इस चतुराई पर कौन प्रसन्न न होगा?

उसने देश को बल दिया है, जागृति दी है; गुलामी की वेदना समझने की बुद्धि दी है; अपने अधिकारों को प्राप्त करने की लगन दी है, साथ ही प्रेम और अहिंसा का कवच भी पहना दिया है। इस बीसवीं सदी के मोहन पर भारत क्या संसार का मोह है। आशा है यह प्रेम की बाँसुरी बजानेवाला दीर्घ काल तक हमें अपनी अभूतपूर्व पवित्रता से ऊँचा उठाता रहेगा।

'प्रेमी'

विगत वर्ष का भारत

पिछले वर्ष की भाँति इस वर्ष के प्रथमांक में गतवर्ष की प्रगति पर सरसरी नज़र डाल लेना पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, इसलिए यह लेख दिया जा रहा है।

राजनैतिक प्रगति

'त्यागभूमि' के गतांक में हमने कांग्रेस के पंजाब के अधिवेशन की महत्ता तथा उसके प्रति देश की अपर्याप्त क्रियाशीलता दिखाते हुए आशा प्रकट की थी, कि अब भी भारतीय जनता चेतेगी तथा अपने कार्यक्रम को सरगर्मी से पूरा करने का प्रयत्न करेगी। परन्तु गत मास की देश की हलचल को देखते हुए इस सम्बन्ध में निराशा होती है। अगस्त बीता; सितम्बर भी बीत गया, परन्तु अधिकतर प्रान्त बम्बई में होनेवाली भारतीय कांग्रेस कमिटी की, प्रति ४०० नागरिकों में १ सदस्य बनाने की महत्वपूर्ण, शर्त को पूर्ण करने में समर्थ नहीं हुए। जिन प्रान्तों ने अपनी नियत संख्या करीब-करीब पूरी कर ली है, उनकी भी यदि पूरी जाँच की जाय, और यह देखा जाय कि प्रत्येक जिले और तहसील की कांग्रेस भी वैसी ही अच्छी तरह संगठित हो गई है, या नहीं, जैसा उक्त प्रस्ताव में कहा गया था, तो परिणाम बहुत असंतोषजनक दिखाई पड़ेगा।

अजमेर प्रान्त की कांग्रेस का अभी तक, ९ मास होने आये, निर्णय ही नहीं हुआ।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार-समिति के मन्त्री श्रीयुत जयरामदास ने अपने कार्य के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट प्रकाशित की है, वह किसी भी विचारशील भारतीय का दिल दुखाये बिना नहीं रह सकती। सौ से अधिक ज़िले तो ऐसे हैं, जिनमें कांग्रेस कमिटियाँ ही नहीं हैं। जो हैं भी, उनकी दशा विचारणीय है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के सम्बन्ध में उत्साह दिखाना तो दूर, अनेक प्रान्तीय और बहुत-सी ज़िला कांग्रेस कमिटियों ने विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समिति के पत्रों की प्राप्ति की सूचना तक नहीं दी। कलकत्ता में विदेशी वस्त्रों की होली करने के सम्बन्ध में महात्माजी की गिरफ्तारी की घटना से आशा हो चली थी कि इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ काम होगा, परन्तु वह आशा पूरी नहीं हुई।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रम की दशा तो अत्यन्त शोचनीय है। मद्य निषेधान्दोलन के सम्बन्ध में श्रीयुत राजगोपालाचार्य की योजना स्वीकृत होकर रह गई। कोई क्रियात्मक आन्दोलन नहीं किया गया। दलितोद्धार के कार्य की दशा भी अच्छी नहीं है। दलितोद्धार-समिति की रचना भी वैसी सन्तोषजनक नहीं है। पं० मदनमोहन मालवीय कांग्रेस के सभी नेताओं से अधिक सामाजिक सुधार में पिछड़े हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। वह इस समिति के सदस्य चुने गये हैं। मद्रास में मालवीयजी के एक दौरे के सिवा, जिसका कोई प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं हुआ। हाँ, इस समिति के मंत्री श्री जमनालाल जी बजाज अत्यन्त उत्साही हैं, वह दो-तीन मन्दिरों में दलित-प्रवेश का अधिकार दिला भी चुके हैं। दलितों के उद्धार-कार्य से उनका मन मिल गया है। हाल में उन्होंने मन्दिरों के ट्रस्टियों के नाम दलितों के लिए मन्दिर खोल देने की अपील निकाली है, जिससे वातावरण धीरे-धीरे बदल रहा है।

मादक द्रव्य-बहिष्कार और दलितोद्धार

कलकत्ता-कांग्रेस में स्वीकृत कार्यक्रम की यह दशा है और हमारे संगठन का यह हाल है। क्या हम इसी संगठन और उत्साह के बल पर पंजाब-कांग्रेस में पूर्ण स्वातन्त्र्य का प्रस्ताव उपस्थित कर सरकार से लड़ने की घोषणा करेंगे? पं० मोतीलाल जी नेहरू ने बम्बई में ३१ दिसम्बर १९२२ तक पूर्ण तैयारी कर लेने का उद्बोधन जनता को करते हुए सरकार को चेतावनी दी थी। परन्तु जनता ने उस उद्बोधन का आज क्या उत्तर दिया? ऐसी दशा में यदि महात्मा गांधी जैसे कार्य में, 'बात में नहीं', विश्वास रखनेवाले नेता ने कांग्रेस का सभापति बनने से इन्कार कर दिया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। 'त्यागभूमि' के गत वर्ष के प्रथमांक में हमने 'गत वर्ष का भारत' शीर्षक से एक साल पहले की राजनैतिक प्रगति पर सरसरी नज़र डालते हुए अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की थी। परन्तु इस वर्ष वह प्रसन्नता हमें नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या में नेहरू-रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद से कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। हिन्दू-मुस्लिम-दंगों की संख्या में जरूर कमी हुई, परन्तु बम्बई के दंगे ने कलकत्ता के भीषण दंगे की पुनरावृत्ति कर इस वर्ष को भी कलंकित कर दिया है। बारडोली और पटुआखाली की विजयों का भी कोई उदाहरण इस वर्ष देश ने नहीं दिखाया। साइमन कमीशन के बहिष्कार के कारण पिछले वर्ष जो उत्साह दिखाई पड़ा था, आज वह नहीं है। इसी बहिष्कार के आन्दोलन में पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय की हत्या ने कलकत्ता कांग्रेस में विशेष उत्साह उत्पन्न कर दिया था। उस अधिवेशन को देखते हुए एक विशेष आशा भी प्रतीत होती थी, परन्तु उसके कार्यक्रम का देश ने जितना आदर किया है, वह हम ऊपर लिखा चुके हैं। पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष कोई नया उल्लेख योग्य कार्यक्रम भी नहीं उठाया गया।

भारतीय राजनैतिक वातावरण में जिस घटना ने सबसे अधिक उत्साह उत्पन्न किया है, वह है लाहौर के अभियुक्तों की एक पवित्र उद्देश्य के लिए की गई भूख-हड़ताल। इसने युवकों में एक विशेष भावना पैदा कर दी है। वीरवर यतीन्द्र की आहुति ने सम्पूर्ण देश में क्षोभ उत्पन्न कर दिया

राजनैतिक अनशन

है। बहुत संभव है कि यह क्षोभ भारत के लिए अत्यन्त हितकारी सिद्ध हो। कांग्रेस के आदेश से राष्ट्रीय विचार के सब अभियुक्तों ने अनशन तोड़ दिया है। भारत-सरकार के आदेश से प्रान्तीय सरकारें जेल-कानून में सुधार करने के प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार कर रही हैं। उधर पटुआखाली के सतीन बाबू मृत्यु-शय्या पर हैं। उनके साथ सरकार का व्यवहार अत्यन्त अमानुषिक और लज्जा-जनक है।

रियासतों का प्रश्न

रियासतों के प्रश्न की ओर अब कुछ अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। बम्बई में प्रजा-परिषद ने अपने संगठन को कुछ नियमित करने की ओर ध्यान दिया है। श्रीयुत मोतीलाल नेहरू ने राजाओं के लिए एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया है कि वे देश की सम्मिलित मांग—नेहरू-रिपोर्ट—का समर्थन करें। यदि राजाओं ने कुछ दूरदर्शिता से काम लिया तो अब भी देश की मांग में अपना हित समझकर उसी में सम्मिलित हो जायँगे। बटलर-कमीशन की रिपोर्ट के बाद तो उन्हें समझ लेना चाहिए।

दमन

गतवर्ष के राजनैतिक इतिहास में सरकार की दमन-नीति का मुख्य स्थान है। मेरठ और लाहौर के अभियोग और सभी प्रान्तों में कार्यकर्ताओं की धरपकड़ से स्पष्ट मालूम होता है कि सरकार दमन-नीति पर तुल गई है। बंगाल की हाल की गिरफ्तारियों से तो श्री सुभाष बाबू के कथनानुसार सरकार के पागल होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। इस दमन-चक्र से जागृति ज़रूर हुई। भारत के नौजवानों में खूब उत्साह उत्पन्न हुआ। जगह-जगह युवक-सभायें बन गईं। सम्मेलन और उत्सव होने लगे। राजनैतिक क़ैदी-दिवस भी मनाये गये। इनको देखकर ऐसा मालूम होता था कि देश का वातावरण ही बदल गया है; अब लाहौर की कांग्रेस खूब कामयाब होगी। परन्तु थोड़ा-सा, गंभीरता से, विचारने पर मालूम हो जायगा कि वास्तविक काम नहीं हुआ। नौजवान-सभा ने कोई स्पष्ट कार्यक्रम अपने सामने नहीं रक्खा। पंजाब में ही देखिए, वर्तमान वातावरण द्वेष और कलह से पूर्ण है। पंजाब ने कहां तक पिछले कार्यक्रम को पूरा किया है? फिर भी यह निश्चय है कि जो कुछ होगा, इन्हीं युवकों-द्वारा होगा। लखनऊ की भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में पं० जवाहरलालजी हमारे भावी राष्ट्रपति चुने गये हैं। उनका नेतृत्व युवकों को अवश्य उत्साहित करेगा।

भावी राष्ट्रपति
पं० जवाहरलाल नेहरू

गतवर्ष की राजनैतिक स्थिति का निराशाजनक वर्णन पढ़ने पर भी निराश होकर बैठने की आवश्यकता नहीं, वरन् अधिक उत्साह से लाहौर कांग्रेस तक पिछले कार्यक्रम को पूरा करने के प्रयत्न में लग जाना चाहिए। हमें दूरदर्शी महात्मा गांधी की इस आशामय उक्ति में सन्देह नहीं है कि उस समय तक कोई न कोई अच्छा रास्ता निकल आयेगा।

गतवर्ष यद्यपि भारत ने साइमन-कमीशन का बहिष्कार किया और इसके परिणाम-स्वरूप हमें कमीशन की कार्रवाइयों और रिपोर्टों के प्रति उदासीनता दिखानी चाहिए थी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की सहयोग-समितियों और केन्द्रीय समिति तथा कमीशन की कार्रवाइयों और रिपोर्टों की ओर शिक्षित जनता का ध्यान जाता रहा है।

गतवर्ष असेंबली के इतिहास में महत्वपूर्ण गुज़रा। उसके अध्यक्ष के अधिकारों के सम्बन्ध में अध्यक्ष और सरकार

का संघर्ष जारी रहा। दिल्ली के अधिवेशन में वायसराय का अध्यक्ष के भाषण की निन्दा तथा उसके अधिकारों को कम कर देने की धमकी ने असेम्बली का खोखलापन प्रकट कर दिया था, परन्तु योग्य अध्यक्ष ने इस सम्बन्ध में भी वायसराय से क्षमा-प्रार्थना कराकर अपने पद की प्रतिष्ठा क़ायम रक्खी। असेम्बली की दिल्ली की बैठक में भगतसिंह और दत्त का बमकाण्ड भी भारतीय राजनैतिक इतिहास में अद्भुत घटना थी। उनके अदालत में दिये गये भाषण से जो ध्वनि निकलती है, वह विचारणीय है। इसमें उपस्थित किये जाने वाले प्रस्तावों की चर्चा तो समय-समय पर 'त्यागभूमि' में की जाती रही है।

आर्थिक प्रगति

इस वर्ष गत वर्ष की भाँति कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई जिसका भारतीय व्यापार पर परिवर्तनकारी असर पड़ता हो। भारतीय सरकार की घातक नीति में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ; न डाक आदि के रेट घटाये गये और न रेलों के किराये में कोई विशेष कमी हुई। साधारण प्रजा को कोई विशेष सुविधा भी नहीं दी गई।

इस वर्ष के आर्थिक इतिहास में आसाम, पंजाब और सिंध में भयंकर बाढ़ों का आना महत्वपूर्ण दुर्घटना है। पहले आसाम में बाढ़ ने त्राहि-त्राहि करा दी, अब पञ्जाब की प्रायः सभी नदियों, और विशेषतः सिंध, ने जो भयकर काम किया है, उससे अकथनीय हानि हुई है जानें भी कम नहीं गईं। सरकार ने इस सम्बन्ध में यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। संयुक्तप्रान्त के किसानों की दशा भी ठीक नहीं है। भारतीय नेताओं का ध्यान इधर बहुत कम गया है; वस्तुतः यही भारत की सबसे बड़ी समस्या है। इसके सम्बन्ध में हम गतांक में प्रकाश डाल चुके हैं। श्री वल्लभभाई पटेल का प्रयत्न प्रशंसनीय है। यदि इसमें कुछ सफलता हुई, तो बड़ा भारी काम हो जायगा।

भारतवर्ष की आय में कृषि के बाद उद्योग-धन्धों का स्थान है। व्यावसायिक दृष्टि से यह वर्ष बहुत अच्छा नहीं गुज़रा। बम्बई में लगातार व्यापक हड़ताल होते रहने के कारण व्यवसाय को काफ़ी हानि पहुँची है। कलकत्ता की जूटमिलों और गोलमरी के टिनप्लेटके कारखाने में भी महत्वपूर्ण हड़तालें हुईं।

इन हड़तालों में दोष अधिक किसका है, इसपर हम समय-समय पर विचार प्रकट करते रहे हैं। अब मज़दूरों में जागृति उत्पन्न हो गई है। मिल-मालिकों का कर्तव्य है कि वे समय की गति पहचानें। मजदूरों को यथाशक्ति सुविधा पहुँचाने का यत्न करें। कुछ मिलों में मज़दूर-हित की ओर ध्यान दिया जाने लगा है, परन्तु अभी यह बहुत कम है। कुछ कार्यकर्ताओं में एक बुरी प्रवृत्ति उत्पन्न हो चुकी है कि वे अशिक्षित मजदूरों को अपनी व्यक्तिगत उन्नति का साधन बनाना चाहते हैं। इसका एक बुरा परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक स्थान पर दो या अधिक परस्पर-विरोधी मज़दूर-संघ बन गये हैं। बम्बई, जमशेदपुर दिल्ली, अजमेर में भी यही हाल है। इससे मज़दूरों का भी हित-साधन नहीं होता और व्यर्थ में हड़तालें भी होती रहती हैं। अभी महात्मा गाँधी ने इस सम्बन्ध में बहुत ठीक उपदेश किया है कि राजनैतिक स्वार्थ के लिए मजदूरों को शस्त्र बनाना अत्यन्त अनुचित है।

मजदूर

भारतीय श्रम और व्यावसायिक अशान्ति की जाँच करने के लिए इस वर्ष एक शाही कमीशन बिठाया गया है। इसने अभी कार्य आरंभ नहीं किया। अक्तूबर से अपना काम शुरू करेगा। इसकी जाँच से मजदूरों को कितना लाभ होगा या हड़तालें कितनी बन्द हो जायगी, यह कहना कठिन है। हमारा अपना दृढ़ विश्वास है कि यह कमीशन भी और शाही कमीशनों की भांति, भारत के लिए उपयोगी सिद्ध न होगा। सरकार स्वयं बड़ी भारी पूंजीपति है, इसलिए वह मज़दूरों की मांगों पर उचित ध्यान न देगी, यह निश्चित है। इसके मज़दूर सदस्य मजदूरों को अधिक सुविधायें देने के लिए जोर देंगे और भारतीय पूँजीपति सरकार की घातकनीति दूर करने की आवाज़ उठावेंगे। दोनों की बातों में काफ़ी सत्य है, पर सरकार को ये दोनों अभीष्ट नहीं। इसलिए सिवा इसके कि कमीशन मज़दूरों के उन्नति-सम्बन्धी कार्य (वेलफेयर वर्क) को कानून का रूप देने की प्रार्थना करे, अधिक आशा नहीं करना चाहिए।

श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू ने इस कमीशन के भी बहिष्कार के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट किया है। राष्ट्रीय दृष्टि से सरकार के किसी भी कमीशन का बहिष्कार करना उचित है। परन्तु इसका बहिष्कार सफल हो सकेगा या नहीं इसमें सन्देह है। मजदूर नेता जरूर इसके सामने अपनी मांगें पेश करेंगे तो पूँजीपति भी अपनी तकलीफें पेश करने में पीछे नहीं रहेंगे। इन श्रेणियों के स्वार्थ आपस में इतना टकराते हैं कि दोनों एक दूसरे की शिकायत करने में नहीं चूकेंगे, इसलिए इस कमीशन के बहिष्कार का सफल होना हमें कठिन दिखाई देता है।

भारत की आर्थिक स्थिति में इस वर्ष कोई परिवर्तन नहीं हुआ। बेकारी की चाल वही है, जो गत वर्ष थी। घी, दूध, अनाज सब मंहगे हैं। आर्थिक शोषण जारी है।

सामाजिक प्रगति

राजनैतिक और आर्थिक दृष्टियों से न सही, सामाजिक दृष्टि से यह वर्ष असन्तोषजनक नहीं रहा। हिन्दू जाति में अपनी पुरानी सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ घृणा उत्पन्न हो चुकी है; उनको भस्म करने के लिए आग सुलग रही है; कहीं-कहीं कोई चिनगारी भी दीख जाती है। बहुत संभव है कि वह आग जल्द ही अपना असर दिखलाये और सब सामाजिक कुरीतियों को भस्म कर दे। जात-पांत तोड़क-मंडल, पर्दानिवारक समितियां, विधवा-सहायक सभा, नौजवान सभायें, नवजीवन-मण्डल और समाज-सुधारक सभा आदि संगठन प्राचीन कुरीति-समूह को नष्ट करने के लिए तुले बैठे हैं। पत्र भी बराबर निकल रहे हैं। श्री सारदा का बाल-विवाह-निषेधक बिल क़ानून का रूप धारण कर चुका है। आगामी अप्रैल के बाद यह लागू होगा।

सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध इतना प्रबल भाव फैल रहा है कि साधारण नवयुवक उस धर्म के नाम से चिढ़ने लगे हैं, जिसमें इन कुरीतियों को स्थान दिया गया है। इस तरह देश में ऐसे नवयुवकों का बड़ा भारी दल तैयार हो रहा है, जिन्हें अविश्वासी कहा जा सकता है। वे अपने प्राचीन धर्म, धर्मशास्त्र, संध्या—हवनादि प्राचीन नित्य-कर्म तथा और पुरातन प्रथाओं को, चाहे वे ठीक ही क्यों न हों, आदर की दृष्टि से नहीं देखते। प्रतिक्रिया या क्रान्ति का यही चिन्ह है। ये लोग न अपने को हिन्दू कहने में अभिमान करते हैं, न किसी को मुसलमान समझकर घृणा। मुसलमानों के देश-विद्रोह को देखकर ये क्रुद्ध जरूर हो जाते हैं, पर उनके सामाजिक बहिष्कार की तरफ ध्यान नहीं देते। हिंदू-मुस्लिम दंगों की बात सुनकर ये खिन्न होते हैं। राजनीति से इन्हें प्रेम है। इनको देखकर कभी-कभी तो यह मालूम होता है कि हिन्दू का प्रधान तत्व धर्म अब क्षीण हो रहा है और उसका स्थान राष्ट्रीयता ले रही है।

परन्तु इसमें भी एक दुःखप्रद बात यह है कि ये युवक अभी तक त्याग-तपस्या में उतने ऊँचे नहीं हैं, जितने उनके भाव हैं। परन्तु इस तरफ़ भी युवक भारत ध्यान दे रहा है। हमारी सम्मति में गत वर्ष की सबसे बड़ी विशेषता यही है। युवक भारत अब राजनैतिक, सामाजिक और मानसिक परतन्त्रता की शृंखलाओं को तोड़ने का निश्चय कर चुका है।

महिलाओं में भी विशेष प्रगति हो रही है, जिसका जिक्र 'आधी दुनिया' के कालमों में पाठक पढ़ते रहते हैं। इसलिए यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं।

अन्त में हम एक बात की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहते हैं कि इस वर्ष जिस क्षेत्र में भी प्रगति हो रही है, यूरोपीय आदर्शों और कार्यनीति को प्रधानता दी जाती है। यह प्रवृत्ति विचारणीय है।

कृष्ण
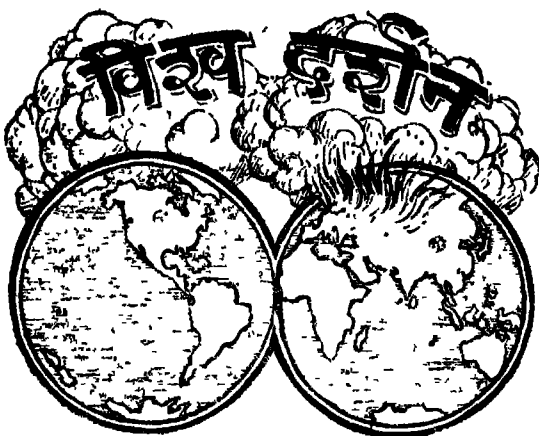
हेग कान्फ्रेंस

महायुद्ध के बाद जर्मनी से क्षति-पूर्ति की जो वार्षिक रकम मिलने की व्यवस्था मित्र-राष्ट्रों ने की थी, उसके सम्बन्ध में जर्मनी के पास रुपयों के अभाव के कारण शीघ्र ही उन्हें छूट करनी पड़ी थी। जिस युद्ध का व्यय-भार सम्हालने में, ब्रिटेन और फ्रांस-जैसे राष्ट्रों की कमर टूट गई, उसे जर्मनी ने अकेला उठाया था, फिर भी पराजय के बाद वह करोड़ों रुपयों की वार्षिक क्षति-पूर्ति की रकम कहाँ से लाता? जर्मनी के ऋण देने की इसी कठिनाई के कारण संसार के विभिन्न महाराष्ट्रों ने कई बार एकत्र होकर कोई उपाय ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया है।

जबसे संसार में शान्ति स्थापित करने का संगठित आन्दोलन आरम्भ हुआ है, यूरोप के सभी विचारवान राजनीतिज्ञ यह अनुभव करने लगे हैं कि यूरोप में शान्ति रखने के लिए यह आवश्यक है कि जर्मनी पर हम और-जुल्म न करें। और उसे भी अन्य राष्ट्रों की भाँति व्यापार की तथा अपनी उन्नति की अन्य सुविधायें प्राप्त हों जिससे महायुद्ध में एक-दूसरे देशवालों के प्रति जो दुर्भाव और बदले की भावना उठी थी, और अब भी है, उसका धीरे-धीरे अन्त हो जाय।

इस प्रकार यूरोप में शान्ति बनाये रखने के लिए जर्मनी के साथ अच्छा व्यवहार किया जाना आवश्यक हो गया है। जर्मनी के मन में अन्य राष्ट्रों के प्रति तबतक विश्वास का भाव उत्पन्न होना कठिन है जबतक निःशस्त्रीकरण और शान्ति की लम्बी-चौड़ी बातें की जाती हैं किन्तु जर्मनी के राइन-प्रदेश में फ्रांस, इंग्लैण्ड और बेल्जियम की सेनायें पड़ी हैं, जिनका सारा खर्च जर्मनी को देना पड़ता है। ऐसे समय, जब दुनिया के अधिकांश राष्ट्र व्यापारिक एवं अन्य अनेक जटिल प्रतियोगिताओं के कारण अपना ही व्यय-भार सम्हालने में हाँफ रहे हैं, जर्मनी के लिए, जिसे महायुद्ध के कारण सबसे अधिक आर्थिक एवं भौतिक धक्का लगा, क्षति-पूर्ति की बहुत-बड़ी रकम का बोझ लादकर चलना कठिन हो रहा है। ब्रिटेन ने—जिसे दुनिया भर में अपने अधिकृत राज्यों के फैले होने के कारण, स्वार्थ-रक्षा के लिए, शान्ति की सबसे अधिक चिन्ता लगी रहती है,—कई बार इस बात का अनुभव किया है कि जर्मनी से ली जाने वाली क्षतिपूर्ति की रकम में जहाँतक हो सके कमी की जाय; किन्तु उसके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह रही है कि अमेरिका, जिससे ब्रिटेन ने युद्ध के समय बहुत-सा रुपया अपने तथा अन्य राष्ट्रों के लिए उधार लिया था, अपने पावने की रकम में कमी करने को तैयार नहीं हुआ। ऐसी हालत में ब्रिटेन भी क्षतिपूर्ति की रकम घटाने को तैयार क्यों होने लगा? *

फिर भी जर्मनी के बार-बार दबाव डालनेपर अमेरिका के श्री यंग की अध्यक्षता में विभिन्न राष्ट्रों के विशेषज्ञों की एक समिति बनाई गई थी। प्रायः सभी राष्ट्रों ने अपने प्रतिनिधि-विशेषज्ञ की बात मानने की स्वीकृति भी दे दी; केवल ब्रिटेन ने उसे मानने-न मानने का अधिकार सुरक्षित रक्खा। इस रिपोर्ट पर अन्तिम विचार के लिए हाल में हेग में मुख्य

* अगस्त १९२२ में लार्ड बालफोर ने इंग्लैण्ड के कर्ज़दार राष्ट्रों को लिखा था—"हमारी तो यही इच्छा है कि हमारा जो कुछ पावना आप पर है वह हम छोड़ दें पर अमेरिका हमारे साथ छूट करने को राज़ी नहीं है। इसलिए हमें इतना ऋण आपसे लेना पड़ रहा है जितने से हम अमेरिका को अपना कर्ज़ चुका सकें।" इसे 'बालफ़ोर नोट' कहते हैं।

राष्ट्रों की कान्फ्रेंस हुई। सब राष्ट्रों ने जर्मनी की क्षतिपूर्ति की रक़म में कमी करने का निश्चय किया; केवल ब्रिटेन के अर्थ-सचिव श्री स्नोडन अड़े रहे। उनका कहना था कि 'हमने पहले ही अपने कर्ज़दार राष्ट्रों के साथ काफी उदारता दिखलाई है *। अब अपने घर से कर्ज़ देने को तैयार नहीं है।' स्पा नामक स्थान में १९२० में जो कान्फ्रेंस हुई थी उसमें बिना किसी उज्र या शर्त के जर्मनी से ब्रिटेन को ६,०००,००० पौण्ड वार्षिक मिलने का तै पाया था। 'यंग' मसविदे में यह रकम घटाकर एकदम से २,०००,००० पौण्ड कर दी गई थी।

ब्रिटेन इतने बड़े त्याग पर राज़ी नहीं हुआ। श्री स्नोडन लोगों के बार-बार समझाने पर भी, अपनी बात पर अड़े रहे। अन्त में २८ अगस्त को फ्रांस और इटली ने मजबूर होकर ब्रिटेन को क्षतिपूर्ति की रक़म में से २,८०० ००० पौण्ड वार्षिक देना मंजूर कर लिया और यहीं समस्या सुलझ गई। इस घटना से दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो यह कि मजूर दल हो या और कोई दल, अपने राष्ट्र के स्वार्थ का त्याग करके शान्ति की समस्या हल करने के लिए कोई तैयार नहीं है और दूसरी बात यह कि यूरोपीय राजनीति के क्षेत्र में ब्रिटेन की शक्ति अब भी ऐसी है कि अन्य राष्ट्रों को अनिच्छापूर्वक भी उसकी बात मानने को बाध्य होना पड़ता है। इस समझौते का एक अच्छा फल यह जरूर हुआ है कि राइन प्रदेश से इन राष्ट्रों ने अपनी-अपनी सेनायें हटा लेने की बात मान ली है और ब्रिटेन की सेनायें शीघ्र ही उसे ख़ाली कर देंगी।

फ़िलिस्तीन की समस्या

पिछले महीने के अन्त में (२५ अगस्त) फ़िलिस्तीन से अरबों और यहूदियों के दंगे के भीषण समाचार आये थे। यरूसलम (Jerusalam जो दारुस्सलम या दारुल-इस्लाम का बिगड़ा रूप मालूम पड़ता है) में 'वेलिंगवाल' नामक यहूदियों का एक उपासना-स्थल है। इससे मिली हुई मुसलमान अरबों की एक पवित्र मस्जिद भी यहाँ है। 'वेलिंगवाल' सम्पूर्ण यहूदी जाति का पवित्र तीर्थ है। यहाँ संसार के सभी देशों से यहूदी आते और अपने देवता की पूजा करते हैं। यहूदियों और मुसलमानों का धार्मिक झगड़ा बहुत पुराना है। उस दिन कुछ यहूदी वहाँ उपासना कर रहे थे कि अरबों ने उनके साथ ज़्यादती की। यही छोटा झगड़ा बढ़ते-बढ़ते भीषण दंगे के रूप में बदल गया। अरबों ने जहाँ यहूदियों को पाया, क़त्ल करना शुरू कर दिया। दोनों ओर के सैकड़ों आदमी मारे गये। माल्टा तथा मिश्र से सेनायें भेजी गईं, तब कहीं जाकर यह दंगा कुछ-कुछ शान्त हुआ है, यद्यपि शान्ति का यह परदा बहुत पतला है और भीतर दोनों जातियों के बीच वही मनमोटाव चल रहा है; वही आग जल रही है।

इस घटना की जाँच करने के लिए ब्रिटेन ने एक कमीशन बिठाया था, जिसका कार्य बहुत-कुछ ख़त्म हो चुका है।

पर यह कमीशन चाहे जो रिपोर्ट दे, इस घटना के भीतर एक गम्भीर समस्या छिपी हुई है। बात यह है कि यहूदी हजारों वर्षों से संसार में घूमते रहे हैं। वे जहाँ गये, बस गये। उस देश में उन्होंने अपने परिश्रम से धन प्राप्त कर अपना एक स्थान बना लिया किन्तु अपनी विशेषता उन्होंने कायम रक्खी। कुछ दिनों से संसार के विभिन्न भागों में बसे यहूदी यह अनुभव करने लगे हैं कि अपनी विशेषता कायम रखने के लिए हमारा एक अपना देश होना आवश्यक है। इसके लिए वे संगठित प्रयत्न करते रहे हैं जिसके फल-स्वरूप ब्रिटेन ने उन्हें फिलिस्तीन प्रदेश में राष्ट्रीय गृह (Nationl Home) बनाकर बसने की आज्ञा दे दी है। यह यहूदियों का पुराना देश है। पर अब तो सैकड़ों वर्षों से वह अरबों की जन्मभूमि होने के कारण उन्हीं का देश हो गया है। वही यहाँ के निवासी हैं, उन्हींकी संख्या अधिक है। महायुद्ध के समय ब्रिटेन से इनको स्वाधीनता का उन्हें आश्वासन मिला था पर महायुद्ध के बाद राष्ट्रसंघ के शासनादेश से फ़िलिस्तीन (पैलेस्टाइन)

---

* ब्रिटेन ने फ्रांस और इटली से अपने पावने की रकम में इस प्रकार कमी की थी —

पावने की मूल रक़म	ब्रिटेन द्वारा कम की हुई रक़म
फ्रांस—६००,०००,००० पौण्ड	३५३,०००,००० पौण्ड
इटली—५००,०००,००० पौण्ड	४२२,०००,००० पौण्ड

का शासन ब्रिटेन के सुपुर्द कर दिया गया। यहूदी लोग, कुछ तो यूरोपीय सभ्यता की ओर झुके होने के कारण और कुछ अरबों के द्वेषी एवं उनके देश पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील होने के कारण, अरबों-द्वारा किये जाने वाले स्वाधीनता के आन्दोलन के विरोधी हैं; वे अंग्रेज़ों के प्रेम-पात्र हैं अतः स्वभावतः अरब उनसे जलते हैं। इन कारणों से इनका परस्पर संघर्ष हो जाना एक मामूली बात है। इस घटना में तत्व की बातें दो है। एक तो यह कि अरब अपने देश को स्वतंत्र करने के लिए प्रयत्नशील हैं और दूसरी यह कि एशिया के मुसलमान राष्ट्रों में जागृति और स्वाधीनता की जो लहर फैली है वह विदेशियों और यूरोप-वासियों की गुलामी की बेड़ी तोड़कर फेंक देना चाहती है। यह एशिया के कलेजे में होने वाली गुलामी की पीड़ा का एक विस्फोट-मात्र है।

शान्ति-समस्या

इंग्लैण्ड के मजूर-दल की भारत-सम्बन्धी नीति के सम्बन्ध में चाहे जितनी शंका की जाय पर यह मानना पड़ेगा कि और दलों की अपेक्षा, स्वार्थ-वश ही सही, वह संसार में शान्ति बनाये रखने के लिए अधिक उत्सुक है। जबसे ब्रिटेन का शासन-दण्ड मजूर-दल के हाथ में आया है, मजूर मन्त्रि-मण्डल के विभिन्न सदस्य अपने-अपने क्षेत्र में संगठन और संस्कार कर रहे हैं। जर्मनी के राइन-प्रदेश से सेनाओं के हटा लेने का निश्चय हो चुका है। संसार की प्रधान-शक्तियों की नौ-सेनाओं के घटाने का आन्दोलन बहुत पहले से होता रहा है पर मन साफ़ न रहने के कारण इसमें वास्तविक सफलता कभी न हुई। कहते सब थे कि सेना में कमी करो; यह घटाओ, वह घटाओ पर सब इस ताक़ में रहते थे कि पहले दूसरा राष्ट्र घटाये; दूसरा सोचता कि कहीं हम घटा दें और यह हमें दबोच ले तो बस!

शान्ति की समस्या में ब्रिटेन और अमेरिका की सैनिक प्रतियोगिता एक कठिन बाधा उपस्थित कर रही थी। बढ़ते-बढ़ते इस प्रतियोगिता ने द्वेष का रूप धारण कर लिया था और कहीं-कहीं तो दोनों राष्ट्रों के भावी युद्ध की शंकायें एवं संभावनायें भी प्रकट की जाने लगी थीं। अमेरिका का संसार के बाज़ार पर जो प्रभुत्व है उसमें रुपये की कमी के कारण ब्रिटेन बहुत आगे तक नहीं जा सकता था। मजूर-मंत्रिमण्डल ने इसे समय पर अनुभव किया और उसके परराष्ट्र-विभाग ने इस सम्बन्ध में बड़ी सतर्कता से काम शुरू कर दिया। इराक को ब्रिटेन ने बहुत कुछ स्वाधीनता दे दी है; मिस्र में भी अब नई सन्धि के कारण वातावरण बदल चला है; रूस से भी सम्बन्ध जोड़ने की बातें हो रही हैं। अमेरिका से द्वेष का भाव हटाने के लिए स्वयं प्रधान मंत्री रैम्से मैकडानल्ड ने बहुत काम किया है। इसके लिए हाल में वह स्वयं अमेरिका गये थे। वहाँ उनका अच्छा स्वागत हुआ। सहयोग का एक वातावरण तैयार हो गया है। अमेरिका से आरंभिक बातें तय पा चुकी हैं। ब्रिटेन और अमेरिका दोनों ने नौ-सेना को परिमित करने का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। प्रतियोगिता के भाव में इससे अवश्य कुछ कमी हुई है। अब निश्चय हुआ है कि शीघ्र ही लन्दन में अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जापान और इटली—इन पाँचों राष्ट्रों का एक सम्मेलन हो जिसमें इस विषय पर साफ़-साफ़ बातें होने के बाद एक निश्चित बात तय हो जाय।

किन्तु विश्व का राजनैतिक क्षेत्र शतरंज के खेल की भाँति जिस प्रकार जटिल होता जा रहा है, उसे देखते हुए तथा अन्तर्राष्ट्रीय मनोविज्ञान का ध्यान रखते हुए हमें अपनी आशा, इस सम्बन्ध में, बहुत परिमित रखने को तैयार रहना चाहिए। यदि निःशस्त्रीकरण के इस आन्दोलन की सफलता का अभिप्राय यह है कि अब पनडुब्बियों और क्रूज़रों के भावी निर्माण की गति स्थिर कर देनी चाहिए और राष्ट्रों के विस्तार एवं आवश्यकता के अनुरूप प्रत्येक राष्ट्र की नौ-सेना की सीमा तै हो जानी चाहिए तो हम मानते हैं कि इसमें, एक सीमा तक, सफलता हो सकती है परन्तु इससे विश्व की शान्ति-समस्या की जटिलता में ज़रा भी कमी हो जायगी, यह कैसे कहा जा सकता है? जबतक संसार के अनेक कमज़ोर राष्ट्रों को इन बलवान राष्ट्रों ने पराधीन बना रक्खा है, तबतक संसार में शान्ति की आशा दुराशा-मात्र है। ब्रिटेन, अमेरिका इत्यादि के सेना का परिमाण निश्चित करने से क्या होगा जब दुनिया

के अन्य राष्ट्र यह देख रहे हैं कि इन्होंने अपने 'साम्राज्य' की रक्षा के लिए काफ़ी सेना रख छोड़ी है। प्रबल राष्ट्रों का इस प्रकार परस्पर शान्ति की चेष्टा करना दुर्बल राष्ट्रों के लिए, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से, घातक है। इनका एक गुट्ट बन जाने का अर्थ दुर्बल-राष्ट्र-पीड़न के अतिरिक्त और कुछ हो सकता है, यह बात तबतक नहीं मानी जा सकती जबतक इन्होंने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में करोड़ों मनुष्यों को अपने स्वार्थ के लिए गुलाम बना रक्खा है। ऐसी स्थिति में 'शान्ति'-सम्बन्धी इन चेष्टाओं का कोई सुफल, राजनैतिक दृष्टि से, निकट भविष्य में भारत को नहीं प्राप्त हो सकता; न हमें इसके लिए विदेशी क्षेत्रों से कुछ आशा रखनी चाहिए।

अफ़ग़ानिस्तान में—

आज से लगभग ६ महीने पहले अफ़ग़ानिस्तान की विद्रोहपूर्ण परिस्थिति पर टीका करते हुए हमने लिखा था—"× × केन्द्रीय सरकार की स्थापना में देर लगेगी। गृह-युद्ध की आशंका बढ़ गई है। × × अफ़ग़ानिस्तान तथा वहाँ के निवासियों की परिस्थिति और प्रकृति का ख्याल रखते हुए कहा जा सकता है कि × × अन्त में अमानुल्ला विजयी होंगे!"

हमें सन्तोष है कि इतने दिनों की उथल-पुथल के बाद, हमारी बातें घटित होने जा रही हैं। इधर अफ़ग़ानिस्तान से जो खबरें आई हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि जेनरल नादिरखाँ के भाई शाहवलीखाँ ने काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया है और हबीबुल्ला (बच्च-ए-सक़ा) के अधिकतर साथी गिरफ्तार कर लिये गये हैं। अभी तक जो समाचार आये हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि वह स्वयं भी या तो क़त्ल कर दिया गया है या किसी अज्ञात स्थान में जा छिपा है। अभी ठीक-ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि इन समाचारों में सत्य का अंश कितना है पर इतना मान लेने में कोई हर्ज नहीं मालूम पड़ता कि भिश्ती-नन्दन (बच्च-ए-सक़ा) के दिन अब पूरे हो चले हैं। राष्ट्र की शासन-समस्या की जटिलता का जो लोग कुछ भी अनुमान कर सकते हैं उनमें से किसी को भी इस प्रकार के शासन की स्थिरता में विश्वास नहीं था। परिस्थिति और जन-साधारण की तात्कालिक मनोवृत्ति से फ़ायदा उठाकर किसी देश पर अधिकार कर लेना उतना कठिन नहीं होता जितना कठिन वहाँ सुव्यवस्थित शासन स्थापित करना होता है। बच्च-ए-सक़ा साहसी था पर उसमें देश का शासन करने की योग्यता न थी फलतः शासन-सूत्र हाथ में आ जाने पर भी प्रजा-पीड़न एवं धन-लुण्ठन का उसका क्रम चलता रहा। प्रजा विकल हो गई; बाज़ारों के लगातार बन्द रहने, बाहर से माल के आने की सुविधाओं में कमी हो जाने और व्यापारियों पर कर बढ़ते जाने के कारण लोगों में हाहाकार मच गया। फलतः मुल्लाओं एवं विदेशियों-द्वारा भड़काये जाने वाले अफ़गानों की आँखें खुल गईं। ऐसे समय देश-भक्त नादिरखाँ ने सेना खड़ी की और अनेक कठिनाइयाँ सहने पर भी, ऐसा जान पड़ता है, अब उनकी विजय बहुत निकट है।

यह तो निश्चित है कि शीघ्र ही भिश्ती-नन्दन हबीबुल्ला के शासन का अन्त हो जायगा। अब यह प्रश्न रहा कि भविष्य में अफ़ग़ानिस्तान के रंगमंच पर किसका प्रवेश होगा? बहुत-से लोग अमानुल्ला के हाथ में फिर से शासन की बागडोर देना चाहते हैं पर जबतक देश में पूर्ण शान्ति नहीं हो जाती और जनता उन्हें निमन्त्रित नहीं करती वह शायद ही फिर अफ़ग़ानिस्तान आना पसन्द करेंगे। जेनरल नादिरखाँ के लिए भी शाह बनने की गुञ्जाइश है पर वह अपनी पूर्व प्रतिज्ञाओं का ध्यान रखते हुए यह स्थान ग्रहण करेंगे या नहीं, अभी नहीं कहा जा सकता। अभी तो अमानुल्ला का ही नाम इस सम्बन्ध में ज़ोरों से लिया जा रहा है। भविष्यवाणी की सार्थकता के बारे में भविष्य ही निर्णय कर सकेगा।

'सुमन'

स्व-गत

स्वाभिमान मनुष्यता का पहला लक्षण है। मान और अपमान के दायरे से ऊपर उठ जाना श्रेष्ठ मनुष्यता है।

\+ × +

जब कोई बलपूर्वक हमारे स्वाभिमान को कुचलना चाहे तो हमें प्राण-पण से उसका प्रतीकार करना चाहिए; पर हमें अपने-आप अपने स्वाभिमान को मानापमान की विस्मृति के रूप में परिणत करने का उद्योग करना चाहिए।

× × ×

अपमान का ज्ञान न होना, उसको महसूस न करना, जड़ता है, पशुता है। स्वाभिमान के भान में तेजस्विता और मनुष्यता है। मानापमान से परे हो जाना मनुष्यता को श्रेष्ठ बनाना है।

× × ×

तमोगुण के अर्थ हैं—जड़ता, प्रमाद, आलस्य, अकर्मण्यता। रजोगुण का लक्षण है क्रिया-शीलता। सतोगुण का सार है, विवेक-युक्त क्रिया, कार्याकार्य का सम्यक् ज्ञान।

× × ×

जहाँ जड़ता, प्रमाद, आलस्य और अकर्मण्यता का राज्य है वहाँ मनुष्यता नहीं। मनुष्यता का आरंभ, मेरी राय में, क्रियाशीलता से होता है। क्रियाशीलता में विवेक का योग हो जाने से मनुष्यता सार्थक और सफल होजाती है।

× × ×

जड़ता से उग्रता अच्छी, उग्रता से शान्ति और क्षमाशीलता अच्छी।

× × ×

जब हम डरकर दबते हैं तब उसे क्षमा नहीं कह सकते। जब हम दया खाकर उदार बनते हैं तब उसका नाम है क्षमा।

× × ×

दब जाने से प्रहार अच्छा; प्रहार से क्षमा अच्छी।

\+ × +

हिन्दुस्तान में तोड़ने वाले बहुत, जोड़ने वाले कम हैं।

× × ×

बाहरी शत्रु हमारे भीतरी शत्रुओं की पहुँचाई रसद पर जीते हैं। इसलिए मनुष्य, यदि तू अ-जातशत्रु होना चाहता है तो भीतरी शत्रुओं को पहले परास्त कर।

× × ×

यदि तू बाहरी शत्रुओं को तो हरा सका, पर भीतरी शत्रु घर में बने ही रहे, तो याद रख, नये-नये बाहरी शत्रुओं से तेरा पिण्ड कभी न छूट सकेगा। ये भीतरी शत्रु क़ब्र में से फिर जिन्दा करके उन्हें बुला लेंगे।

× × ×

मेरा स्वभाव खुद एक-तंत्री है, पर मैं जनतंत्र की माँग करता हूँ। क्या यहाँ जनतंत्र का अर्थ 'मेरा तंत्र' नहीं हो जाता?

× × ×

मैं चिल्लाकर कहता हूँ—रे साहित्य-सम्मेलन करो। छाती पीटकर रोता हूँ—जी कोई सभापति ही नहीं मिलता।—उधर से ज़ोर की चीख़ आती है—अरे किसी को मेरी बेड़ियों की भी फ़िक्र है?

× × ×

मैं देश-भक्त हूँ। अपने खर्च-वर्च के लिए देशवासियों से पैसा नहीं मांगता। लेक्चर भी ऐसे जोशीले, ज़ोरदार और उभाड़ने वाले देता हूँ कि भगतसिंह और दत्त के बम भी उसके आगे क्या चीज़ हैं? मैं युवकों को पिस्तौल चलाने, बम बनाने की विद्या भी सिखाने को तैयार रहता हूँ। पूँजीपतियों को, साम्राज्यवादियों को भर-पेट गाली देता हूँ। किसानों, मजदूरों और युवकों के आन्दोलन में अग्रसर होता हूँ। फिर भी तारीफ़ यह कि सरकार हम लोगों को छू तक नहीं सकती।

इतना होते हुए भी भाई—देखो तो,—का जुल्म! कहता है यह तो सी० आई० डी० में है!

ह० उ०

स्नेह

हृदय का देवता, अपनी उपासना के आँगन में, समस्त जगत् को अपनाता है। वह पत्तियों में खेलता है; चिड़ियों में चहचहाता है; फूलों में हँसता है; पशुओं में बोलता है और मनुष्यों में काम करता है। वह आनन्द-मय है; वह सर्वमय है।

मनुष्य और देवता का अन्तर थोड़ा है; बहुत भी है। प्रेम के अमृत को अपनाकर जिसने अपने अन्तर का विष दूर कर लिया है वह देवता के बहुत निकट है; उसी में रमता है। अन्तर इतना ही है कि जो कुछ देवता के लिए सहज, उसका ही अंग है उसे मनुष्य चेष्टा करके पाता है।

परन्तु बालक को देवता मानकर पूजने की बात हमारे यहाँ कई जगह मिलती है। मनुष्य का बच्चा मनुष्य होकर भी मनुष्य से भिन्न कैसे हो गया, इसे अनुभव करना कठिन होने पर भी असम्भव नहीं है। जबतक मनुष्य में तर्क का बीज उत्पन्न नहीं होता, उसका संसार बहुत बड़ा रहता है—उसमें बहुत समा सकता है। जब वह निजत्व और परत्व की जंजीरों में अपने को तर्कों एवं अहम्भावनाओं के सहारे बाँध लेता है, बहुत छोटा हो जाता है; उसकी आत्मा झुलसी जाती है; जो कुछ बाह्य और अस्थायी है, उसपर फैलता जाता है। इसे मनुष्य व्यावहारिक ज्ञान कहकर खुश होता है और मानव-मानव के बीच, प्राणी-प्राणी के बीच दीवार बनाता जाता है।

परन्तु मनुष्य का बच्चा इस कार्य-विधि से अपरिचित है; उसके संसार में उसका 'टीपू' कुत्ता या 'मिनी' बिल्ली या प्यारी भेड़ उसकी अपनी परिधि से अलग नहीं हैं। वह इन्हें आलिंगन करता है। जहाँ महात्मागण पशु से अपनी एकमयता, ज्ञान और तर्क के सहारे अनुभव करने की चेष्टा करते हैं वहाँ वह सहज ही उन्हें अपना बन्धु समझता है; वहाँ प्रेम के बीच दीवार नहीं है; स्नेह का आकाश अनन्त है; हृदय का अमृत अगाध है। वह यह नहीं जानता कि यह पशु है, मैं मनुष्य हूँ, मुझे इसपर दया करनी चाहिए। उसका स्नेह तो सहज ही सब में नाचता फिरता है। उसके लिए भेड़ की जाति मनुष्य से भिन्न नहीं है।

विश्व में अविच्छिन्न जीवन का जो स्रोत प्रवाहित है, उसका यही विज्ञान, यही रहस्य है। यूरोप के प्रसिद्ध मध्यकालिक चित्रकार बार्तेलमो इस्तेबाँ मुरीलो (Bartolome Esteban Murillo) ने—जिसका समय १६१७ से १६८२ तक बताया जाता है—अपनी कूँची से देवत्व का यही चिर-रहस्य इस चित्र में भरकर जगत् की मानव-कला को अमर कर दिया है। लण्डन की राष्ट्रीय चित्रशाला (National Gallery) का यह एक अमूल्य रत्न है। यह चित्र एपोस्टिल जॉन द्वारा उद्धृत बैपटिस्ट के इन शब्दों से अनुप्रमाणित होकर बनाया गया था—"Behold the Lamb of God, which taketh away the sin of the world".

'सुमन'

Regd. No. N 351.

अगले अंक में—

पं० जवाहरलाल नेहरू

श्री राजगोपालाचार्य

श्री रिचर्ड बी० ग्रेग (अमेरिका)

श्री रँगीलदास कापड़िया

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

श्री रामनरेश त्रिपाठी

इत्यादि की महत्वपूर्ण रचनायें

गंभीर लेख,
प्रहसन,
कहानियाँ,
कवितायें,
कार्टून

और कुछ बिलकुल नये स्तम्भ!

इस अंक की

प्रतीक्षा कीजिए

वार्षिक मूल्य ४)
छः महीने का २॥)
एक प्रति का ।=)

सस्ता-मण्डल
अजमेर

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।

वर्ष ३, अंक ४ | पौष १९८६

इस अंक में पढ़िए—

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का ।=)

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता-मण्डल
अजमेर

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

 ३

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर
पौष सवत १९८६

अंश ४
पूर्ण अंश २८

हे नूतन वर्ष-विहान जाग !

(श्री 'निर्गुण')

हे यौवन के अभिमान, जाग !
हे मर मिटने की शान, जाग !
हे साहस के अभिधान जाग !
हे बल—पौरुष—विज्ञान, जाग !

भारत-माता के नौनिहाल !
आशामय प्राणद उषः काल
है काट रहा तममय विशाल—
अँगड़ाई का आलस्य-जाल ।

हे जीवन के अपमान, जाग !
अपमानित के अरमान, जाग !
हे भारत के अभिमान, जाग !
हे युवक देश की शान, जाग !

हे सद्ब्राह्मण के ज्ञान, जाग !
हे क्षत्रिय के बलिदान, जाग !
हे वैश्य-अर्थ-विज्ञान जाग !
हे शूद्र-हृदय के ध्यान जाग !

जीवन की यह ममता निकाल,
आँखें होने दो लाल-लाल ।
होता है देखो शंखनाद,
रँगने दो अब तो अरुण भाल ।

वेदी जलती जिह्वा निकाल,
नभ में ये अक्षर लाल-लाल—
'लखती है आओ इन्हें पढ़ें,
'बलि का भूखा है अरे! काल।"

हे विश्व-वंद्य पंचाल जाग!
हे स्वर्ण भूमि बंगाल जाग!
हे युक्तप्रान्त सुविशाल जाग!
हे हिम-नग भारत-ढाल जाग!

गुजरात, लाज अपनी सँभाल,
हे गौरव-भूमि बिहार जाग!
महराष्ट्र जाग, मद्रास जाग!
हे जीवन के उल्लास जाग!

ये बालू के कण आज जलें,
रजपूती राजस्थान जाग!
स्वागत हैं करते हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

हिन्दू! तू तप की विमल वास,
ईसाई ईसा का प्रकास,
पैग़म्बर के भ्रातृत्व-बीज—
का मुस्लिम में जो है विकास,

सिक्खो! उन त्यागभरी स्मृतियों-
का तुम में जो है अट्टहास
आओ सब लेकर चलें, करें
उस राष्ट्र-यज्ञ का सुप्रकाश,

जिसमें जीवन का अन्धकार,
मिट जावे यह दासत्व भार।
स्वागत करते हैं हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

❀ ❀ ❀

हे युवक! यही तो है निदान,
जगने दो अब ज्वाला महान!
जलने दो ये जर्जर कड़ियाँ,
होने दो अब तो शंखनाद।

मुर्दों को जीने दो, भागे—
पापी प्राणों का स्वार्थवाद!
हे ब्रह्मचर्य की, आँख जाग!
सच्चे गृहस्थ की राख, जाग!

हे वानप्रस्थ ममता निकाल,
हे संन्यासी की साख जाग!
स्वागत करते हैं हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

जौहर की ज्योति भरी माँओ!
कंगाल राष्ट्र को आज भीख—
दो अपने बच्चों की; तुमको
देना है कुछ भी व्यर्थ सीख।

बहनो! राखी के धागे में,
बाँधो टूटे मन का प्रमाद।
शृंगारमयी स्मृतियाँ छोड़ो,
दो जीवन का सच्चा प्रसाद।

पत्नियाँ आज पति को भूलें,
वह ज्योति जगा दें एक आज।
जिसमें विलास का अन्धकार,
जल जावे लेकर सूद-ब्याज।

यह जीने-मरने का सवाल,
बलि का भूखा है आज काल।
हम अमरात्मा के अमर जीव,
रख दें अपना सब कुछ निकाल।

ओ माता के बच्चो! जागो!
हे प्राणों के अभिमान, जाग!
स्वागत करते हैं हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

भाइयो और बहनो जागो!
छिड़ने दो अब तो एक राग।
स्वागत करते हैं हे आगत!
तू नूतन वर्ष-विहान जाग!

नोट—यह कविता पहली जनवरी के स्वागत में लिखी गई थी।

दरिद्रों की सेवा

[श्री जवाहरलाल नेहरू]
('त्यागभूमि' के लिए)

ग़रीबों की सेवा के बारे में हिन्दुस्थान में बातें बहुत की जाती हैं। हमारे धर्म हमें उदार बनने का आदेश करते हैं और यह आज्ञा देते हैं कि हम लोग अपनी प्रचुर सामग्री का कुछ भाग उन लोगों को भी दें जिनके पास जीवन-निर्वाह के लिए अनिवार्य साधारण सामग्री का भी अभाव है। आत्म-गर्वित धनी-समुदाय कभी-कभी अपने हृदय-में पीड़ा अनुभव करके अपने चांदी और तांबे के टुकड़ों को ग़रीबों और दुखियों की ओर फेंक देता है और एक प्रकार के धार्मिक संतोष के साथ अपने कर्त्तव्य की समाप्ति समझ लेता है। बहुत से तो पर-लोक में पहले से ही सुविधा और सम्मानपूर्ण स्थानों को अपने लिए सुरक्षित कर लेने की दृष्टि से धर्म-शालाओं और मन्दिरों के रूप में नियमित रूप से कुछ न कुछ देते रहते हैं या हमारे तीर्थों को सुशोभित करने वाले मुस्टंडे पंडों का पेट भरते रहते हैं।

यह स्पष्ट है कि केवल दान-पुण्य से दरिद्रता की समस्या हल नहीं हो सकती। यह भी सत्य है कि जो लोग दान-पुण्य करते हैं उनमें इस समस्या को सुलझाने की उत्कण्ठा भी नहीं है। उनके विचार से दरिद्रों का होना स्वाभाविक और अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है। यदि ग़रीब ही नहीं रहेंगे तो फिर धनवानों की क्या गति होगी? और यदि हमारे दान का ग्रहण करने वाला ही न रहेगा तो ईश्वर और मनुष्य की दृष्टि में हम पुण्यात्मा कैसे बन सकेंगे?

यह संतोष की बात है कि समाज में आज ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनका दृष्टिकोण दूसरा ही है और जो दरिद्रता को न तो अनिवार्य मानते हैं और न आवश्यक ही। वर्तमान समाज-व्यवस्था के अन्दर लोगों को ग़रीबी अनिवार्य और आवश्यक रूप में दिखाई पड़ सकती है किन्तु अन्य कारणों को छोड़ भी दें तो केवल इसी दोष के कारण वर्तमान समाज-व्यवस्था स्वतः निन्दनीय सिद्ध होती है। वर्तमान व्यवस्था ने थोड़े से श्रीमानों को दरिद्रों और दुखियों का मालिक बना दिया है और जबतक यह व्यवस्था बनी रहेगी तबतक दरिद्रता अपनी सन्तति—पाप और रोग—सहित फूलती-फलती रहेगी। इन श्रीमानों को इन अभागों की पीठ से अपना बोझ हटा लेना चाहिए, किन्तु जैसा कि टाल्सटाय ने कहा है—ये लोग और सब कुछ कर सकते हैं परन्तु इनसे यह आशा नहीं की जा सकती।

समाज की व्यवस्था में समष्टिगत परिवर्तन तो शासन-सत्ता के द्वारा ही किया जा सकता है, व्यक्ति इस दिशा में बहुत-थोड़ी सफलता प्राप्त कर सकता है उसके प्रयत्न विधवा-आश्रम और अनाथालय का रूप ले सकते हैं, जो वैसे तो अच्छे हैं परन्तु मूल समस्या पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। शासन-सत्ता और व्यक्ति इन दोनों के मध्य का स्थान किसी नगर की म्युनिसिपलिटी को है जो, सरसरी तौर पर देखा जाय तो, शासन-व्यवस्था का ही छोटा रूप है। इस प्रकार की म्युनिसिपलिटी निश्चय ही इस समस्या को हाथ में ले सकती है और इस दिशा में बहुत-कुछ कर सकती है।

यह बात तो अब सर्वमान्य ही है कि म्युनिसि-पलिटी को बिना किसी आर्थिक लाभ की आशा के

स्कूलों, अस्पतालों, अच्छी सड़कों और पानी का प्रबन्ध करना चाहिए। सरकार अपने महकमों, न्यायालयों और कौन्सिलों के लिए सुन्दर भवनों, और अपने उच्च पदाधिकारियों के लिए भव्य प्रासादों का निर्माण कर देती है। इन सबसे कोई आमदनी नहीं होती। तो फिर सरकार या म्युनिसिपलिटी गरीबों के लिए स्वच्छ मकानों, भोजन और दूध के लिए भी अपनी जिम्मेदारी क्यों नहीं अनुभव करती? यह पूछा जायगा कि इन कामों के लिए रुपया कहाँ से आवे? इसका उत्तर यह है कि वर्तमान आय-व्यय के अच्छे प्रबन्ध से इन योजनाओं के लिए भी बहुत-कुछ बच सकता है। थोड़े से व्यक्तियों को विलासमय जीवन व्यतीत करने दिया जाय, इससे यह कहीं अच्छा है कि समाज के साधारण आदमियों को जीवन की आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो। बड़े-बड़े अफसर भव्य प्रासादों में रहें और सरकारी अट्टालिकायें अपनी चमक-दमक से गरीबों और श्रमिकों के मिट्टी के झोंपड़ों की हँसी उड़ावें इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि सर्वसाधारण साफ-सुथरे मकानों में रहें।

वियना * नगर ने यह बतला दिया है कि ऐसे कामों के लिए रुपया कहाँ से आ सकता है। नागरिकों की आर्थिक मर्यादा के अनुसार टैक्स लगाने की उचित प्रणाली द्वारा वहाँ काफी रुपया एकत्र कर लिया जाता है और इस द्रव्य का उपयोग साधारण श्रमिकों के लिए स्वच्छ और सुन्दर मकानों का प्रबन्ध करने तथा अन्य अनेक प्रकार से जीवन-मर्यादा को उत्कृष्ट बनाने के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाने से मजदूरों की कार्य करने की शक्ति में वृद्धि हो गई है और वे पहले से अच्छे नागरिक बन गये हैं। अब उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छी तरह हो सकती है; व्यापार उन्नत हो रहा है और वियना नगर युद्ध के भीषण विनाश के पश्चात सुन्दर और समृद्ध हो गया है।

म्युनिसिपलिटी का उद्देश्य क्या हो सकता है? भव्य भवनों का निर्माण नहीं, बल्कि अच्छे पुरुषों और स्त्रियों का निर्माण। ऐसे स्वस्थ और प्रगतिशील समाज का निर्माण करना ही उसका उद्देश्य है जिसका आदर्श सहयोग और समाज-सेवा हो। जबतक दरिद्रता का वास है तबतक समाज स्वस्थ नहीं हो सकता। ऐसी दशा में महामारी, पाप और सामाजिक उथलपुथल का अधिकार बना रहेगा। इसलिए म्युनिसिपलिटी का सर्व प्रथम कर्तव्य दरिद्रता को दूर करना है। उसे इसके दोषों में कमी करने का प्रयत्न करके ही सन्तोष न मान लेना चाहिए बल्कि उसे ही समूल उखाड़ फेंकना चाहिए। दरिद्रता को नष्ट कर डालना ही उनकी सर्वश्रेष्ठ सेवा है।

* आस्ट्रिया का एक प्रधान नगर।
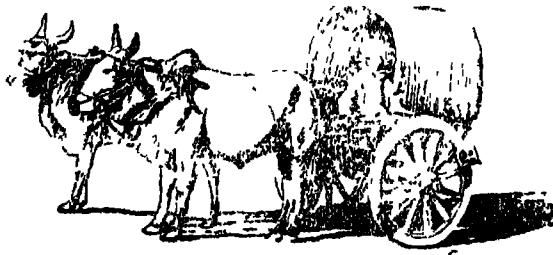
फ़ारस का अभ्युत्थान

[श्री जयमंगलसिंह]

शेषांश

रिज़ाखां का अभ्युदय

रिज़ाखां तथा उनके सहकारी कर्मचारियों ने, जो कज़ाक सेना में सुधार कर रहे थे, देश की सरकार को कमज़ोर एवं अप्रयत्नशील देखकर 'राद' (Raad) पत्र के संपादक सय्यद ज़ियाउद्दीन की प्रधानता में राष्ट्रवादियों का एक दल तैयार किया। १९२१ की २१ फ़रवरी को रिज़ाखां ने अपनी कज़ाक सेना के बल पर अविरोध राजधानी तेहरान पर अधिकार कर लिया और उस समय जो सरकार कायम थी उसे हटाकर नये मंत्रि-मण्डल का निर्माण किया। इस मंत्रि मण्डल के प्रधान ज़ियाउद्दीन बनाये गये और स्वयं रिज़ाखां प्रधान सेना-नायक के पद पर आसीन हुए।

रिज़ाखाँ के इस कार्य से सारे फारस पर उनका प्रभाव छा गया और वही वहाँ के असली शासक समझे जाने लगे। करीब दो वर्ष तक तो ऐसा रहा कि वह जिसको चाहते प्रधान मंत्री बनाते तथा जिसको चाहते उस पद से हटा देते थे। उनके हाथ में देश की सारी शक्ति,सेना के बल पर, आ गई थी। अतः उनके लिए ऐसा करना कोई कठिन काम नहीं था। रिज़ाखां ने १९२३ तक तो स्वयं प्रधान सेनानायक तथा युद्ध-सचिव के पद पर रहकर अपनी सारी शक्ति, सेना को सुसंगठित तथा सुदृढ़ करने में लगाई। इसके साथ ही उन्होंने उन शक्तिशाली सरदारों को भी दबाया जो राज्य-प्रबंध की गड़बड़ी से लाभ उठाकर केन्द्रीय शक्ति के विरुद्ध बगावत का झण्डा ऊँचा किया करते थे। इस तरह सबसे प्रथम उन्होंने केन्द्रीय सत्ता को देश में कायम किया और देश की स्थिति को ठीक करने में उन्होंने अपना कई वर्ष का समय लगाया। इसके साथ ही वह स्वयं प्रधान मंत्री होने के लिए अपनी शक्ति भी बढ़ाते रहे। रिज़ाखाँ की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर अपना प्राण बचाने के लिए अहमदशाह १९२३ के अंत में यूरोप जाने के बहाने फारस से भाग खड़े हुए।

शाह के फारस छोडने तथा रिज़ाखां के प्रधान मंत्री होने तक देश में अगणित घटनायें घटीं। ज़ियाउद्दीन की सरकार अधिक दिन तक नहीं टिक सकी। उसने अमीर-उमरावों पर नया कर लगाया जिससे वे उसके विरुद्ध हो गये। राजकीय मामलों में सेना की आवाज़ के अधिक प्रभावशाली होने के कारण उसका सैनिक दल से झगड़ा हो गया, इसलिए रिज़ाखां की सहायता उसे नहीं प्राप्त हो सकी।

इस मंत्रि-मण्डल के पतन के बाद, १९२३ तक फारस में गड़बड़ी रही। रिज़ाखाँ के अनवरत परिश्रम से इस बीच कई मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण हुआ, पर कोई अधिक दिनों तक नहीं ठहर सका। इस समय फारस में एक ऐसे वीर तथा प्रभावशाली आदमी की ज़रूरत थी जो स्वयं राज्य-भार अपने हाथ में लेकर राष्ट्र-निर्माण के कार्य को सफल कर सके। रिज़ाखां को छोड़ कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति नहीं था। बस, उपयुक्त मौका देखकर वह स्वयं प्रधान मंत्री बन गये और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

आर्थिक सुधार

पर रिज़ाखां का पथ भी कण्टकाकीर्ण था। उन्हें विद्रोही जातियों को दबाने के अतिरिक्त बहुत से जटिल अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को हल करना था। उस समय फारस को सबसे अधिक आवश्यकता अर्थ-सम्बन्धी सुधार की थी। वहाँ का ख़ज़ाना खाली था तथा कर-प्रणाली भी अच्छी नहीं थी। राज्य के आय-व्यय का अच्छा प्रबन्ध नहीं था, इस कारण देश की आर्थिक अवस्था दिन दिन खराब होती जा रही थी।

इस समय एक ओर देश की ऐसी अवस्था थी और दूसरी ओर रिज़ाखां को अपनी सेना तथा पुलिस के संगठन के लिए धन की बड़ी आवश्यकता थी; क्योंकि इसी के द्वारा देश में शान्ति कायम की जा सकती थी। उस समय फ़ारस के हित के लिए देश में आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था की जरूरत थी। इस कारण उन्होंने नया कानून बनाकर लोगों से कर वसूल किया और उसे अपने आवश्यक कार्यों में खर्च किया। इसके बाद उन्होंने अपने देश के अर्थ-सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान दिया और इसके लिए विदेश से अर्थ-विशेषज्ञ बुलाने का निश्चय किया। वह किसी तटस्थ राष्ट्र से अपने देश का आर्थिक सुधार करने में सहायता लेना चाहते थे, क्योंकि वह समझते थे कि जिन राष्ट्रों का हित फ़ारस में सम्बद्ध है वे अपने लिए सहूलियतें मांगेंगे। अतः १९११ में फारस के आर्थिक प्रबन्ध के लिए जिस तरह अमेरिका से श्री शुस्टर की अधीनता में कुछ व्यक्ति आये थे, उसी तरह वहाँ से इस बार भी अर्थ-विशेषज्ञ डा० ए० सी० मिल्स पौ (Dr. A. C. Mills Paugh) अपने सहकारियों के साथ फ़ारस आये। फारस की भयंकर आर्थिक अवस्था सुधारने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, पर उन्हें अपने प्रयत्न में काफी सफलता मिली। १९२३ में जो बजट बना उसमें ५ प्रतिशत का टोटा था, पर १९२५-२६ के बजट में बचत हुई। वास्तव में देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए डा० मिल्स पौ का प्रयत्न प्रशंसनीय है जिन्होंने आय-व्यय पर नियंत्रण करके तथा अर्थ सम्बन्धी सुधार करके देश की एक दम काया पलट दी है।

केन्द्रीय सरकार का संगठन

इसके बाद रिज़ाखां ने उन अमीर-उमरावों तथा सरदारों को कर देने के लिए मजबूर किया जो केन्द्रीय सरकार को कर देना अस्वीकार कर चुके थे तथा जो अपने राज्य में सरकार को कर वसूल नहीं करने देते थे। ऐसा करने में उन्हें उनकी सुसंघटित सेना ने बड़ी सहायता की। फारस का सबसे शक्तिशाली सरदार महम्मरा का शेख था जो अंग्रेजों के हाथ का खिलौना था। ऐंग्लो पर्शियन आयल कम्पनी का प्रधान कार्यालय उसी के राज्य में था। उसने अंग्रेजों से आर्थिक सहायता लेकर बहुत-सा धन इकट्ठा कर लिया था। अंग्रेज बराबर उसे सरकार के खिलाफ़ काम करने में मदद करते थे। इस तरह वह बड़ा शक्तिशाली तथा उद्दण्ड हो गया था।

१९२४ के प्रारम्भ में शेख तथा केन्द्रीय सरकार में बेतरह नोक-झोंक हो रही थी, क्योंकि वह कर का बकाया तथा कर देना अस्वीकार कर रहा था। उसने अपने पड़ोसी बख्तियारी तथा काशगाई जातियों को भी अपनी ओर मिलाकर केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध बगावत करने के लिए तैयार कर लिया था।

रिज़ाखाँ से शेख की यह उद्दंडता नहीं देखी गई और उन्होंने इसके प्रतीकार का निश्चय कर लिया। बस, फिर क्या था, उन्होंने अपनी सुशिक्षित ४०,००० सेना में से २०,००० सिपाहियों को लेकर बख्तियारी राज्य पर धावा बोल दिया। इनकी सेना के सामने विरोधी नहीं ठहर सके और अपना हथियार रख दिया। इसे देखकर शेख महम्मरा बहुत घबराया और उसने रिज़ाखाँ को शीराज़ में आत्म-समर्पण करने की सूचना दी, पर उनके लिए इस प्रकार की सूचना काफी नहीं थी। वह एक शस्त्र-सज्जित जहाज़ पर सवार होकर फ़ारस की खाड़ी के रास्ते शेख की राजधानी में पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचते ही शेख ने आत्म-समर्पण कर दिया। और केन्द्रीय सरकार की सत्ता को मानने तथा कर देने की प्रतिज्ञा की। जमानत के रूप में उन्होंने शेख के एक लड़के को तेहरान भेज दिया। इस तरह केन्द्रीय सरकार की सत्ता कायम करने के लिए उन्होंने ऐसे अनेक प्रयत्न किये जिसमें उन्हें बहुत-कुछ सफलता हुई।

१९२४ तथा १९२५ में रिज़ाखाँ ने अपनी सारी शक्ति देश की अवस्था सुधारने तथा देश में शान्ति स्थापित करने में लगाई। विद्रोहियों को दबाने के साथ साथ सड़कों पर पहरे बैठा दिये। जिससे चोर-डाकू का भय जाता रहा और देश में बहुत-कुछ शान्ति स्थापित हो गई। इन सफलताओं के कारण रिज़ाखाँ की सत्ता देश में जम गई और वह बहुत लोक-प्रिय हो गये। अबतक उन्होंने अर्थ-सम्बन्धी सुधार स्थायी कर लिया था तथा एक सुसंघटित सेना तैयार कर

की थी जिससे राजकीय तथा आर्थिक अवस्था बहुत-कुछ सुधर गई थी। अतः अब उन्होंने अपनी शक्ति वैध आधारों पर स्थापित करने की चेष्टा की। इसके लिए १९२१ तथा १९२४ में राष्ट्रीय-शासन-सभा ('मजलिस') में वह अपने अनुयायियों द्वारा राजतन्त्र-प्रणाली को नष्ट कर देश में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए आन्दोलन कराते रहे, पर इसमें उन्हें काफ़ी सफलता नहीं मिली।

इसी समय रिज़ाख़ाँ ने सारे देश में दौरा किया। सब जगह उनका शानदार स्वागत हुआ। जहाँ जाते वहाँ धूम मच जाती। इससे उन्हे विश्वास हो गया कि हमारी सत्ता देश में है तथा अब हम मजे में बादशाह बन सकते हैं; पर उन्होंने अपना यह विचार गुप्त रक्खा। इसका कारण यह था कि फारस में लोग राजा को ईश्वर का अंश समझते हैं। इसके साथ ही वे राजतन्त्र को अपने देश से नष्ट करना नहीं चाहते थे। मुल्लों तथा सरदारों का वहाँ प्राबल्य था और वे लोग शाही ख़ान्दान के ही किसी व्यक्ति को राजा के पद पर आसीन देखना चाहते थे। इससे रिज़ाख़ाँ की कठिनाई और भी बढ़ गई थी। पर वह साहसी और धीर थे, अतः बादशाह बनकर देश की बागडोर हाथ में लेने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे।

जब यह देखा गया कि एकाएक शाह को गद्दी से उतार कर राजा बनना जरा टेढ़ी खीर है, तब रिज़ाख़ाँ ने देश में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया। क्योंकि प्रजातन्त्र राज्य स्थापित होने पर ही वे उसका राष्ट्रपति होकर देश का शासन-सूत्र अपने हाथ में ले सकते थे। शाही ख़ान्दान का ही कोई व्यक्ति बादशाह बन सकता था, अतः रिज़ाख़ाँ के लिए बादशाह बनना सरल नहीं था। अहमदशाह अपनी प्राण-रक्षा के लिए १९२३ में भागकर फ्रान्स चले गये थे और उनके आने की कोई आशा नहीं थी। इस कारण उन्होंने सर्वप्रथम * अहमदशाह को गद्दी से उतारने का निश्चय किया। इस समय रिज़ाख़ाँ की धाक देश में काफी जम चुकी थी और वह जो-कुछ करते थे उसका विरोध करनेवाला कोई नहीं था। फिर क्या था? रिज़ाख़ाँ का सहारा पाकर सैनिकदल मजलिस द्वारा अहमदशाह को पदच्युत करने में समर्थ हुआ। अस्थायी सरकार की स्थापना हुई और रिज़ाख़ाँ उसके अस्थायी शासक नियुक्त हुए। इस तरह वह फ़ारस के सर्वेसर्वा हो गये।

रिज़ाख़ां से रिज़ाशाह

इसके बाद मजलिस के द्वारा वे फारस के शाह बनाये गये और पुराने शाह तथा उसके ख़ानदान को अब से गद्दी के अधिकारी न समझे जाने का निश्चय हुआ। इस तरह उनकी चिर-संचित इच्छा पूर्ण हुई और १९२६ की २५ अप्रैल को वे रिज़ाख़ाँ की जगह रिज़ाशाह हो गये। उनका राज्याभिषेक ख़ूब धूमधाम से हुआ और उनके उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये। उन्होंने शाही ख़ान्दान का ताज नहीं पहना, वरन् पहलवी वंश का नया ताज बनाया गया और इस तरह वह इस नये पहलवी वंश के संस्थापक हुए।

आज फ़ारस के शाह रिज़ाख़ाँ पहलवी हैं। इनका जन्म मज़नदरान नामक प्रान्त में एक किसान के घर हुआ था, पर अपनी वीरता, रणचातुरी, नीति-निपुणता तथा अपनी कार्यदक्षता के कारण आजकल फारस के सर्वेसर्वा बने हुए हैं। ये प्रारम्भ में फारस की शाही सेना में घुड़सवार सैनिक के रूप में सम्मिलित हुए थे, पर अपनी बहादुरी के कारण सैनिक अफसर बन गये। इसी पद पर रहकर अपनी योग्यता के सहारे शाही सेना में इतने लोक-प्रिय हो गये कि सब सैनिक इनके इशारे पर चलने लगे। महायुद्ध के समय ये सेनानायक बना दिये गये। १९२०-२१ में रूस के विरुद्ध जो लड़ाई हुई थी उसमें इन्होंने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया था। इस तरह इन्होंने अपनी वीरता प्रदर्शित कर फारस के बादशाह का स्थान प्राप्त कर लिया है।

रिज़ाख़ां महत्वाकांक्षी तथा दृढ़निश्चयी पुरुष हैं। ये समय की गति देखकर ही किसी काम में हाथ लगाते हैं और यही इनके कार्य में सफलता प्राप्त करने का कारण कहा जा सकता है। ये व्यवहार-कुशल तथा दूरदर्शी हैं। इनमें देश भक्ति कूट-कूटकर भरी है। इन्हीं के प्रशंसनीय प्रयत्न से आज फ़ारस में विदेशियों का प्रभाव बहुत कम हो गया है तथा इन्हीं ने देश को पाश्चात्य साम्राज्यवादी राष्ट्रों के

* आजकल अहमदशाह फ्रान्स में हैं। और किसी फर्म में काम करके पेट पालते हैं। —संपा०।

फौलादी पंजों से मुक्त किया है। यही कारण है कि सारे फ़ारस में रिज़ाखां की तूती बोलती है।

देश के सम्बन्ध में

फ़ारस की आबादी लगभग डेढ़ करोड़ है। अधिकांश निवासी अशिक्षित हैं। यहाँ के दो तिहाई लोग सरदारों (Feudal chiefs) के अधीन हैं। प्रायः सभी नगर देश के मध्य भाग में बने हुए हैं। बड़े-बड़े शहरों का इस देश में अभाव-सा है। बहुत से शहरों में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है, पर तेहरान को छोड़कर कहीं ट्राम नहीं चलती। रेलों की भी कमी है पर अब इसके लिए प्रयत्न हो रहा है। यहाँ लोग घोड़ागाड़ी तथा घोड़े पर सवारी करते हैं।

फ़ारस की प्रकृति—प्रदत्त वस्तुओं (Natural resources) का अभी तक पूरा उपयोग नहीं हुआ है। मिट्टी के तेल को छोड़कर यहाँ के खनिज पदार्थों की अभी खुदाई नहीं हुई है। तांबा, लोहा, शीशा, मैगनीशिया तथा निकेल की खानें इस देश में बहुत हैं। पर जबतक वहाँ रेल का प्रबन्ध नहीं होता, तबतक उन्हें अधिक परिमाण में ये वस्तुयें निकालने में सहूलियत नहीं हो सकती। पुराने तरीकों से निकालने में बड़ी कठिनाई होगी, अतः उनको निकालने में नये वैज्ञानिक उपायों का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर होगा।

मशीन की चीज़ों का प्रचार होने के पहले फारस के हस्त-कौशल की बड़ी ख्याति थी। लेकिन इधर दस-बीस वर्षों में यूरोप की बनी चीजों के प्रचार से वहाँ के कला-कौशल को बड़ा धक्का पहुँचा और महायुद्ध ने तो वहाँ के रेशमी कपड़े के व्यवसाय को एकदम नष्ट कर दिया। यहाँ आबपाशी के प्रबन्ध की कमी के कारण कम खेती होती है, पर यदि इसका प्रबन्ध किया जाय तो बहुत-सी परती ज़मीन उपजाऊ बनाई जा सकती है। अब जमीन्दारों ने आधुनिक मशीनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है। पर अधिकांश खेती पुराने तरीकों पर ही की जा रही है। यहाँ भेड़ की ऊन तथा दरी के व्यवसाय में उन्नति करने से सरकार को काफी आमदनी हो सकती है। भूमिज तथा खनिज दोनों प्रकार के पदार्थों की कमी नहीं है। यह देश स्वावलम्बी है और अगर आमदरफ्त के साधन बढ़ जायँ तो इस देश की सम्पत्ति बढ़ सकती है और जो निर्यात इस समय होता है उससे कहीं अधिक बढ़ाया जा सकता है।

फारस शास्य-श्यामल देश है। यहाँ धन की उतनी कमी नहीं है, किन्तु उसका उपयोग करने में काफ़ी सुधार करने की आवश्यकता है। सभ्यता तथा संस्कृति पुरानी है। यहाँ के लोगों में विचार-स्वातंत्र्य का भाव सदा से रहता आया है और आज भी सूफियों में यह गुण पाया जाता है।

फारस का साहित्य अरब तथा तुर्की के लेखकों का आदर्श एवं पथ-प्रदर्शक रहा है। ईरानी कला की पहले बड़ी ख्याति थी। इतना ही नहीं यह मध्य-पूर्व मे सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। फारस की संस्कृति में इतनी आकर्षण-शक्ति थी कि जो इसके संसर्ग में आता था वह इससे बड़ा प्रभावित होता था। फारस वाले सदा से बुद्धि तथा विवेक में स्वतंत्र रहे हैं।

यहाँ के लोगों की कुछ ऐसी मनोवृत्ति रही है कि वे विदेशियों के नियंत्रण तथा उनके प्रभाव को अपने देश में बढ़ने देने को महत्व नहीं देते थे। उनकी बुद्धि का इतना विकास हुआ था कि वे सांसारिक महत्ता को अपने हृदय में स्थान ही नहीं देते थे। वे दूसरों के द्वारा विजित होते थे, पर विजेताओं को अपने में मिला लेते थे। जैसा कि भारत सदैव से ही करता रहा है।

फारसवालों की मनोवृत्ति में भी अब प्रबल परिवर्तन हो गये हैं तथा हो रहे हैं। वे भी अब राष्ट्रीयता के रंग में खूब रँग गये हैं। वहाँ भी तुर्की की तरह कट्टरता एवं धर्मान्धता का जोर कम होता जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण महायुद्ध के बाद मे फारस में राजनैतिक तथा सामाजिक जागृति का होना है। वहाँ भी तुर्की की तरह हैट-कोट तथा पतलून पहनने की सरकारी आज्ञा हो गई है तथा लोग अब इन्हें पहनने भी लगे हैं। यहाँ भी स्त्रियों के बुर्का (परदा) न पहनने पर जोर दिया जा रहा है। इस आशय का कानून बनाने का भी उद्योग हो रहा है, कि जो पुरुष अपनी स्त्री को बुरका पहनने के लिए मजबूर करेगा उसे सज़ा दी जायगी। स्त्रियों में जागृति प्रारम्भ हो गई है। स्त्रियों के सुधार के लिए वहाँ की शिक्षित स्त्रियाँ उनकी ओर से वर्षोंसे लगातार कोशिश

करती रही हैं। इस सम्बन्ध में बहुत-सी पत्रिकायें भी प्रकाशित होती हैं।

शिक्षा-प्रसार

महासमर के बाद से फ़ारस में शिक्षा-प्रसार पर बड़ा ज़ोर दिया जा रहा है। फ़ारस में शिक्षा-प्रसार का उद्देश्य लोगों में राष्ट्रीयता का भाव भरना है। शिक्षा का प्रबन्ध प्रधानतः सरकार के हाथ में है। ईरानी ढंग पर शिक्षा दी जाती है। ग़ैरसरकारी स्कूलों को प्रोत्साहन दिया जाता है और उन्हें आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

फ़ारस की प्रारम्भिक शिक्षा का ढंग जर्मनी के ढंग से बहुत मिलता-जुलता है। प्रारम्भिक स्कूलों में ईरान का इतिहास, भूगोल, गणित, साधारण इतिहास, विज्ञान आदि पढ़ाये जाते हैं। उच्च शिक्षा में दो विदेशी भाषायें भी पढ़ाई जाती हैं जो साधारणतः फरासीसी और अंग्रेज़ी होती हैं। यह शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद विद्यार्थियों को कला-कौशल तथा कृषि-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिलता है।

शिक्षा-प्रसार के लिए काफ़ी उद्योग हो रहा है। इसमें लोग बड़ी दिल-चस्पी से भाग ले रहे हैं। यहाँतक कि जंगली जातियों ने भी लिखना-पढ़ना प्रारम्भ कर दिया है। रिज़ाख़ाँ शिक्षा-प्रसार के बहुत पक्षपाती हैं और यही कारण है कि नये नये स्कूल भी खोले जा रहे हैं। यहाँ विदेशियों के ८० स्कूल हैं। इनमें ३० अमेरिकन पादरियों द्वारा संचालित होते हैं और शेष अंग्रेज तथा फरासीसी एवं अन्यान्य देशों के पादरियों द्वारा। पहले इन स्कूलों का निरीक्षण फ़ारस की सरकार की ओर से नहीं होता था, पर अब होने लगा है। फ़ारस के शिक्षा-विभाग ने अब यह नियम जारी कर दिया है कि इन स्कूलों में फ़ारसी भाषा की भी शिक्षा दी जाय और साम्प्रदायिकता का प्रचार इनमें न किया जाय। इन स्कूलों में प्रारम्भ के ६ वर्गों में सभी विषयों की शिक्षा फ़ारसी द्वारा देने की व्यवस्था कर दी गई है। फ़ारसी भाषा में शिक्षा देने वाले शिक्षकों का वेतन सरकार देती है।

यहाँ औरतों को भी शिक्षित बनाने का काफ़ी उद्योग हो रहा है। लड़कियों के लिए विद्यालय तो बहुत हैं, पर अबतक केवल २० प्रतिशत इन विद्यालयों में जाती हैं। हर साल कम से कम ५० लड़कियों को विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए यूरोप भेजने के सम्बन्ध में विचार हो रहा है। सरकार की ओर से सैकड़ों योग्य विद्यार्थी प्रतिवर्ष यूरोपीय देशों में विज्ञान, व्यवसाय, नौ-सेना तथा युद्ध-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे जाते हैं। तेहरान में एक विश्व-विद्यालय है जिसमें विद्यार्थियों की काफ़ी संख्या है।

फ़ारस में शिक्षा-प्रसार में दो बहुत बड़ी बाधायें हैं। एक रुपये की कमी; दूसरी योग्य शिक्षकों का अभाव। शिक्षकों के अभाव की पूर्ति करने के लिए सरकार ने अध्यापन कला की शिक्षा का प्रबन्ध किया है। तेहरान तथा अन्य बड़े नगरों में अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की शिक्षा के लिए बहुतेरे नार्मल ट्रेनिंग स्कूल खोले गये हैं। इन स्कूलों में तथा कला-विद्यालयों में फ्रान्स तथा जर्मनी से बुलाकर बहुतेरे शिक्षा-विशेषज्ञ नियुक्त किये गये हैं। इसके साथ ही जो लोग विदेशों से प्रति वर्ष शिक्षित होकर आया करेंगे वे अध्यापक का काम कर सकेंगे।

अभी फ़ारस में राष्ट्रीय आय का केवल एक प्रतिशत अंश शिक्षा पर खर्च होता है। दस वर्ष पूर्व शिक्षा पर जितनी रकम खर्च की जाती थी उससे यह रकम ७० प्रतिशत अधिक है। धर्मोत्तर सम्पत्ति की आय का कुछ भाग शिक्षा में लगाने पर विचार हो रहा है। अगर मजलिस में इसके सम्बन्ध में क़ानून पास हुआ तो शिक्षा-सम्बन्धी समस्या हल होने में बड़ी सहायता मिलेगी। फ़ारस की सरकार का शिक्षा-सम्बन्धी प्रयत्न वास्तव में प्रशंसनीय है। यही कारण है कि फ़ारस में शिक्षा के सम्बन्ध में बड़ी शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे हैं।

तुर्की के उदाहरण ने फ़ारस में एक नई जान फूँक दी है। उसीका अनुकरण कर रिज़ाख़ाँ भी अपने देश का पश्चिमी ढंग पर निर्माण कर रहे हैं। पर ईरान ने सुधार की जिस नीति का अवलम्बन किया है वह तुर्की, अफ़ग़ानिस्तान और यूरोपीय देशों की नीति से भिन्न है। फ़ारस भी पाश्चात्य देशों की नकल करता है, पर अपने ढंग पर। लोगों पर सुधार का बोझ नहीं लादा जाता। लोगों में सुधार का भाव जाग्रत करने का प्रयत्न किया जाता है पर उच्छृंखलता बढ़ने नहीं दी जाती।

इस समय रिज़ाखां फारस में स्थायी आन्तरिक शान्ति स्थापन करने की चेष्टा कर रहे है। अब भी कभी-कभी विद्रोह हो जाता है पर वह उसे दबा देते हैं। अतः देश की उन्नति के लिए आन्तरिक शान्ति की बड़ी आवश्यकता है। विदेशी राष्ट्रों से भी फारस का अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। १९२१ में सोवियट रूस के साथ जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार फारस को यह वचन दिया गया था कि साम्राज्य विस्तार की इच्छा से भविष्य में रूस एक इंच भी उत्तरी फारस की ओर नहीं बढ़ेगा और यदि कोई राष्ट्र फारस पर आक्रमण करेगा तो रूस उस (फारस) का साथ देगा। इसके साथ ही रूस ने उत्तरी फारस में अपनी पुरानी रियायत का दावा छोड़ दिया और उल्टे फारस पर चढ़ाई करने से फारस की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति कर दी। इस के बाद भी रूस के साथ एक व्यापारिक सन्धि हुई है। इस तरह फ़ारस का रूस, तुर्की, अफगानिस्तान तथा ग्रेट-ब्रिटेन से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इधर इटली से भी मित्रता की सन्धि हो गई है तथा बेलजियम से भी इसके लिए बातचीत चल रही है।

इस तरह फारस में नई जागृति होने तथा रिज़ाखां के सर्वेसर्वा हो जाने से अंग्रेज़ों के हित को बड़ा धक्का पहुँचा। इसके साथ ही इस बात की आशंका होने लगी थी कि वे फ़ारस के तैल-कूपों को छोड़ देंगे। पर अंग्रेज़ों की कूटनीति तो सदा शतरंज की चाल की तरह बदलती रहती है। अंग्रेज़ों ने अपनी नीति में परिवर्तन करके तथा वहाँ की वर्तमान सरकार के अनुकूल बनकर अपने घटते हुए प्रभाव को बहुत दूर तक बचा लिया।

जब 'अंग्रेज़ी-फारसी समझौता' के लिए राष्ट्रवादियों के विरोध करने पर मजलिस ने स्वीकृति नहीं दी तो इंग्लैंड के तात्कालिक वैदेशिक सचिव लायड जार्ज को बड़ी निराशा हुई और उन्हें फ़ारस के आन्तरिक मामलों से अपना बहुत-कुछ नियंत्रण हटा लेना पड़ा। इस तरह फारस में अंग्रेज़ों की नीति रूस की 'नवीन, एशियाई नीति' के कारण सफल नहीं हो सकी।

अंग्रेज़ों की सदा से एशिया में यह नीति रही है कि पहले तो किसी राष्ट्र के शासक के विरुद्ध उसके सरदारों को भड़काकर तथा उनको सहायता देकर उनसे अनुचित फायदा उठाना तथा अपना प्रभाव उस देश में कायम करना, पर किसी शासक की सत्ता देश में काफी मज़बूत हो जाने पर उसे अपनी ओर मिला लेना जिससे वह उनके शत्रुओं के साथ न मिल जाय। रूस से अंग्रेज़ बराबर डरते आये हैं। जब रूस साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था तब भी अंग्रेज़ उससे डरते थे और आज जब वह साम्यवादी नीति का समर्थक है तब भी वे उससे डरते हैं। आज साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद में ज़ोरों का संघर्ष हो रहा है। सोवियट रूस अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीति का आज कट्टर शत्रु है। पहले जो अंग्रेज शेख़ महम्मरा को फ़ारस की केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध बग़ावत करने में सहायता देते थे वही आज वहाँ की सरकार के अनुकूल बन गये हैं। इसका कारण यह है कि जब अंग्रेज़ों ने देखा कि फ़ारस में रिज़ाखां की शक्ति काफी मज़बूत हो गई है तब वे अपनी पुरानी नीति के अनुसार उनकी ओर झुके और उनके मुआफ़िक़ बन गये। अंग्रेज़ों को डर था और है कि कहीं फारस की सरकार एकदम उनके शत्रु रूस के बोलशेविकों की ओर न मिल जाय, अतः वे वहाँ की सरकार पर प्रभाव डालकर ही बोलशेविकों के ख़तरे से बचना चाहते हैं।

इंग्लैण्ड तथा रूस में पारस्परिक शत्रुता बढ़ने के कारण दोनों देशों की नज़र फारस पर रहती है कि कहीं वह शत्रु की ओर न मिल जाय। जिस दिन यहाँ दोनों राष्ट्रों—इंग्लैण्ड तथा रूस में से किसी एक का प्रभुत्व अधिक होगा उस दिन दोनों में संघर्ष हुए बिना न रहेगा।

फ़ारस के लोगों पर साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद के सिद्धान्तों का बहुत कम असर पड़ा है। निकट भविष्य में इस बात की संभावना भी नहीं है कि वहाँ इन सिद्धान्तों का दौरदौरा हो।

संसार में कभी-कभी ऐसी घटनायें घट जाती हैं जो जन-साधारण की मनोवृत्ति का एकदम बदल देती हैं। एशिया में रूस-जापान युद्ध (१९०५) इसी तरह की एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसने एशिया की मनोवृत्ति को एकदम बदल दिया था। एशिया वालों के हृदय में उस समय जो इस प्रकार का अन्ध-विश्वास था कि

गोरी जाति के लोग रंगीन जातियों से विद्या, बुद्धि तथा बल में श्रेष्ठ हैं तथा सफेद लोगों का संसार में रंगीन जातियों पर अधिकार होना स्वाभाविक है—दूर हो गया। उसके पूर्व प्रायः एशिया के सभी राष्ट्र यूरोपीय देशों से दबे जा रहे थे। एशिया के लोगों का यह ख्याल था कि हम लोग यूरोप के मुकाबले में नहीं ठहर सकते। किन्तु १९०५ में एशिया के एक छोटे से देश जापान ने यूरोप के एक विशाल देश रूस पर विजय प्राप्त की। इससे लोगों का पहले का विश्वास जाता रहा तथा उनमें यह भाव आया कि प्रयत्न करने से हम यूरोप की अधीनता से मुक्त हो सकते हैं, और इसके फल-स्वरूप एक राष्ट्रीय आन्दोलन समूचे महा-देश में फैल गया। इसी के फल-स्वरूप तुर्की में तरुण तुर्क, चीन में तरुण चीन तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव विदेशी सत्ता को नष्ट करने के लिए हुआ। फारस में भी तरुण-फारस-दल का इसी समय जन्म हुआ था। एशिया की जागृति के इतिहास में १९०६ का समय बहुत महत्व-पूर्ण है। इसी समय फारस में भी राष्ट्रीयता की लहर फैली जिससे प्रभावित होकर उस समय के शाह ने एक शासन-विधान द्वारा कुछ शासनाधिकार वहाँ के लोगों को दिये थे। इसी समय से यहाँ राजनैतिक दल का भी श्रीगणेश हुआ।

वहाँ प्रधानतः तीन राजनैतिक दल 'अनुदार', 'उदार' तथा प्रजातंत्रवादी हैं। समाजवादी दल भी है जिसमें विद्यार्थियों की प्रधानता है। ये सब दल भी अन्य देशों के राजनैतिक दलों की नाईं काम करते हैं तथा इनमें भी वही मनोवृत्ति तथा विचार-धारा काम कर रही है जो अन्य देशों की दलबन्दियों में काम करती है। इसके साथ यहाँ बहुत से उग्र विचार के लोग भी हैं जो गुप्त-समितियों द्वारा काम करते हैं।

शासन सभा (मजलिस) में दो प्रकार के लोग हैं। एक जिनका बहुमत है तथा दूसरे जो उनका विरोध करते हैं। जब कोई मंत्रि-मण्डल टूट जाता है तो उसकी जगह संयुक्त मंत्रि-मण्डल की सृष्टि होती है। कोई भी मंत्री, जिसे पदत्याग करने के लिए मजबूर किया जाता है, पद से अलग होने के साथ ही मजलिस की सदस्यता से भी अलग समझ लिया जाता है।

फ़ारस में अभी राजनैतिक शिक्षा की बड़ी जरूरत है। आज फारस, तुर्की तथा अफ़गानिस्तान एक संधि-सूत्र में बँधे हुए हैं; इस कारण इन तीनों राष्ट्रों का महत्व एशिया में बढ़ गया है। इन मुसलमान राष्ट्रों में, अफगानिस्तान को छोड़कर, अन्ध-विश्वास, धर्मान्धता तथा मुल्लापन का जोर कम हो गया है और नवीनता का प्रचार ज़ोरों से हो रहा है।

फ़ारस के रिज़ाख़ां, अफगानिस्तान के भूतपूर्व अमीर अमानुल्लाखां की तरह 'एशियाई संघ' के प्रबल समर्थक नहीं हैं। वह चाहते हैं कि हमारा देश स्वतंत्र रहे और इसके लिए अंग्रेजों से व्यर्थ का वैर मोल लेना नहीं चाहते, पर फारस में अंग्रेजों की कार्रवाई पर खूब ध्यान रखते हैं। फारस के अन्दर जागृति हो गई है और अब इस बात की आवश्यकता है कि वह इतना बलशाली होजाय कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों से अपने अधिकारों के लिए सिर ऊँचा करके लड़ सके और संसार के राष्ट्रों में वही स्थान प्राप्त कर ले जो दूसरों को प्राप्त है।

एशिया के कई मुसलमान राष्ट्र—तुर्की, फ़ारस आदि-स्वतंत्र हैं। क्या हम आशा करें कि ये राष्ट्र जापान की नाईं अपनी शक्ति का दुरुपयोग एशिया के राष्ट्रों को दबाये रखने में न कर उनके अधिकारों की रक्षा में करेंगे? पूर्वीय देश आज उत्सुक दृष्टि से इन स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्रों की ओर देख रहे हैं। देखें एशिया से साम्राज्यवादी राष्ट्रों का प्रभाव कब नष्ट होता है।

भारतीय ग्राम-संगठन

(२)

ग्राम्य पद्धति का ह्रास

[श्री रामेश्वरप्रसाद सिंह बी० ए०, बी० एल०]

अब यह सभी को प्रत्यक्ष देख पड़ता है कि आजकल हमारे ग्रामों से लोग हटते जा रहे हैं; अपने ग्रामीण घरों को छोड़-छोड़कर शहरों में बसते जा जा रहे हैं। जो अपने ग्रामों को छोड़ने में असमर्थ हैं उनका जीवन ग्रामों में पहले की तरह सुखमय नहीं है। अवस्था दिन-दिन बिगड़ती जा रही है, और यहां तक बिगड़ गई है कि अब देहात के रहनेवाले भी विदेशी बनी हुई चीज़ें ही नहीं बल्कि तेल-आटा तरकारी शहरों से ले जाकर देहातों में खाते हैं। किसी नगर की समीपवर्त्ती सारी देहाती जनता प्रायः सभी बातों के लिए शहर पर ही निर्भर करती है। ग्राम का सारा उद्यम, व्यवसाय और कारीगरी लुप्त-सी हो गई है और दिनों-दिन बड़े वेग से होती जा रही है। गृहस्थ अब गेहूँ अपने घरों में न पीसकर शहरों की कल की चक्कियों में पीसने के लिए भेजते हैं। कड़ाही, कुदाल अब हमारे गांव के लोहार नहीं बनाते, और अब वे भी बाहर से ही आते हैं। प्रत्येक ग्रामीण शिल्पी की कारीगरी जाती रही। जो पहले सभी वस्तुओं का स्वयं निर्माण करते थे, यदि वे अब ज़्यादा से ज़्यादा मरम्मत भी कर लें तो पर्याप्त समझा जाता है, और शायद इतनी ही योग्यता इनमें अब बच गई है। इससे दोहरा नुक़सान होता है—एक कला का ह्रास और दूसरे, आर्थिक क्षति। विदेश से जो ये सामान्य आवश्यकता की चीज़ें तैयार होकर आती हैं वे इसी नीति के अनुसार तैयार होती हैं कि तुरत ख़राब हो जायँ और स्वदेशी प्रस्तुत माल से कुछ सस्ती बिकें। कुछ सस्ती होने के कारण ये स्वदेशी व्यवसाय को उखाड़कर अपनी जगह बना लेती हैं। इसी ग़रज़ से देखने में थोड़ा दर्शनीय एवं लुभानेवाली भी बनाई जाती हैं। फिर क्या है—भारतीय जनता, जो पशुवत् विमूढ़ है, आगा-पीछा छोड़कर आँख मूँद सीधे रसातल की राह पकड़ती है। इस विदेशी चढ़ा-ऊपरी के पीछे हमारे विरुद्ध कितना बड़ा बल स्थिर किया हुआ है यह हमारे बेचारे अबोध देशवासियों को क्या मालूम? कितनी बड़ी आर्थिक तथा राजनैतिक समस्या इस सीधे-साधे गोरख-धंधे के भीतर उत्पन्न हो गई है, यह गंभीर जांच से ही मालूम होती है।

भारतवर्ष का सारा बल, व्यवसाय और सुख हमारे ग्राम-जीवन तथा ग्राम-पद्धति पर ही अवलम्बित था। उसके नष्ट होते ही देश का सत्यानाश हो गया, यह किसी भी विचार शील भारतवासी से छिपा नहीं है। इस समय हमारे ग्रामवासी किसी ग्रामीण संस्था को अपने मध्य सबल और जीवित नहीं पाते। अधिकांश नवयुवकों को तो इतना भी नहीं मालूम है कि हमारी ग्राम पद्धति क्या थी, हमारा ग्राम-जीवन कैसा था, और हमारे पूर्वज कैसे अपने दिन और जीवन बिताते थे? वह सुखमय स्वास्थ्य और सभी आवश्यक वस्तुओं की देख-रेख, वह आपस का सहयोग-सहानुभूति तथा सहृदयता, वह आनन्द और संगीतमय जीवन, जो कुछ ही काल पहले हमारे ग्रामीण जीवन की साधारण बात थी, आज सपना हो गई है। अब हमारा ग्राम-जीवन रोगग्रस्त, दुःखप्रद, निस्सहाय, अरक्षित और कंटकाकीर्ण हो गया है। पारस्परिक वैमनस्य, चोरी तथा डंडेबाज़ी के रोग हमारे ग्राम-जीवन को नष्ट कर रहे हैं। कलह और मुक़दमेबाज़ी घर बनाकर हमारे ग्रामों में आ बैठी है। पसीने की कमाई के रुपये आँख-मूँदकर फेंके जा रहे हैं, और लोग दाने-दाने के मुँहताज हो रहे हैं। नौबत यहां तक आगई है कि ग्रामवासी अपने घरों को छोड़कर केवल पेट पालने के लिए ही देश-विदेश मारे-मारे फिरते हैं। यद्यपि कितने अपनी स्थिति बनाने के सुख-स्वप्न देखते, धन की वृद्धि के मन्सूबे से, घर-द्वार त्यागकर, परदेश में जा टिकते हैं किन्तु, इस ग्राम-परित्याग से बहुत ही कम व्यक्तियों को

कोई लाभ होता है। अधिकांश मनुष्यों का जीवन उनके गाँव के जीवन से भी अधिकतर गर्हित हो जाता है, और इससे ग्राम-पद्धति में परिवर्तन होने के सिवा अन्य कोई फल नहीं होता। अब हमारे गाँवों में कोई ऐसा अधिकारी नहीं है जो यह समझे कि गाँव की रक्षा या मर्यादा या पवित्रता का पालन करना हमारा धर्म है। गाँव के ज़मींदार के बदले स्थान-विशेष के थानेदार मालिक बन गये हैं। इन थानेदारों में अधिकांश का पहला उद्देश्य अधिक से अधिक धन कमाना है, न कि लोक-रक्षा करना, दुष्टों का निवारण करना, अथवा समाज में शान्ति बनाये रखना। गांव का ज़मींदार या मालिक, जो पहले इन कर्त्तव्यों का सम्पादन करते थे, अब अधिकार-रहित हो गये हैं। अब 'सब बराबर हैं' यह बात फैलती जाती है, यद्यपि इस कथन का अर्थ ठीक-ठीक बिरले ही समझते हैं। पहले जहां पञ्चायत न्याय-निर्णय की संस्था थी वहां अब कुछ भी नहीं है। किसी अवसर-विशेष पर कौन मुखिया बनेगा, कौन सारे गाँव की जनता की ओर से प्रतिनिधि बनेगा इसमें झगड़ा होने लगता है, क्योंकि अब वह युग इस देश में उपस्थित हो गया है, जिसमें मौज मारना सभी चाहते हैं लेकिन कष्ट झेलना या उत्तरदायित्व का बोझ उठाना कोई पसन्द नहीं करता। नतीजा यह हुआ है कि ग्राम-जीवन के समस्त नियम और बन्धन ढीले पड़ गये हैं; पारस्परिक सौहार्द्र और सहानुभूति जाती रही है। सबकी मनमानी चाल हो गई है; हमारे सारे आदर्श भ्रष्ट ही नहीं बल्कि लुप्त हो गये हैं। एक दूसरे की बात नहीं सुनता। एक ही घर में कई तरह के मत फैले हुए हैं। एक ही परिवार में कोई किसी की बात नहीं सुनता। इसको नई रोशनी वाले व्यक्तित्व या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कहेंगे, और इसे सभ्यता तथा स्वाधीनता का उच्च शिखर बतायेंगे, परन्तु जहाँ विचारों का ही अभाव हो वहाँ विचार-स्वातन्त्र्य की बात चलाना व्यर्थ है। इसीसे हमारी सभ्यता और विदेशी आधुनिक सभ्यता के बीच संघर्ष हो रहा है। हमारे पूर्वजों ने इस व्यक्तित्व की धारणा को सारे समाज के कल्याण के ख़याल से समुचित तथा वाञ्छनीय नहीं समझा था। हमारे यहां का आदर्श सदा रहा है, व्यक्तित्व को सबके लिए विसार देना—अपने को दूसरे के लिए समर्पण करना—दूसरे की भलाई के लिए अपनी थोड़ी-सी हानि सह लेना। यह हमारे समाज का वह मसाला था जिसने हमारी ग्राम-संस्था को, हमारे संगठन को, हमारी सभ्यता को प्राचीन काल से पिछले काल तक स्वस्थ, सुखी और शान्तिमय बना रक्खा था। विदेशी सभ्यता स्वार्थ-परता को व्यक्तित्व बतलाकर स्वार्थ-साधन सिखलाती है। चूंकि इस समय पश्चिमी संसार उन्नत अवस्था में है; वहाँ के निवासियों का स्वदेश-प्रेम और स्वदेशाभिमान विलक्षण है, और उनका चरित्र-गठन स्तुत्य है, इसलिए हमारे यहां के अनुकरण-प्रिय लोग व्यक्तित्व को भी स्वतंत्रता की अवस्था या साधन समझते हैं। किन्तु हमें यथोचित विचार-विश्लेषण करना चाहिए और देखना चाहिए कि किस चीज़ में क्या दोष-गुण है? यही व्यक्तित्व का आदर्श बिगड़कर विचार-मूढ़ ग्रामीणों में घुस गया है और इनकी मूर्खता और आर्थिक दुर्दशा के कारण इनकी अवस्था सर्वथा शोचनीय हो रही है। इसी तरह एक प्रकार के अस्पष्ट धुँधले विचार ने हमारी अपढ़ ग्रामीण जनता के मस्तिष्क को हिला दिया है, जिसकी बदौलत सबकी क्रिया-विधि मनमानी और पृथक्-पृथक् हो गई है, और जीवन-साधन की संयत मर्यादा नष्ट हो गई है।

दूसरी बात है धन-लिप्सा। बहुत-से लोग इसे आर्थिक उन्नति कहकर इसका समर्थन करते हैं, किन्तु असली बात यह नहीं है। यह विचारने की बात है कि इस हद तक यह आकांक्षा किसी को किसी प्रकार की हानि पहुँचाती है या नहीं। विचार करने पर मालूम होगा कि इसने अब एक ऐसे दुर्व्यसन का रूप धारण कर लिया है जिसमें मनुष्य सिवाय पैसे के और कुछ नहीं पहचानता। अवस्था भली या उन्नत बनाना दूसरी बात है और सब-कुछ त्यागकर एक मात्र धन के लिए मरते रहना दूसरी बात है। कर्त्तव्य, मान-मर्यादा, धर्म, लोकमत, शील और शिष्टता की परवा न करके केवल धन को ही सब कुछ मान लेना विलक्षण ही एक आधुनिक और बिलकुल नया आदर्श है जो हमारे देश के अन्दर प्रवेश कर रहा है। अब हम जब किसी काम को करते हैं तब सबसे पहले यही सोचते हैं कि इससे मेरा क्या लाभ होगा और लाभ से मतलब है आर्थिक लाभ!

जब हम दूसरे का कोई काम करते हैं तब भी यही सोचते हैं कि उस मनुष्य से हमारा क्या काम होगा या हो सकता है ? अर्थात् कोई भी काम हो, बिना उसमें कोई काम की मात्रा रहे हम उसकी तरफ झुकते ही नहीं !

तीसरी बात है सभी विषयों में हमारी बढ़ती हुई स्वार्थपरता। कुछ ही समय पहले यदि कोई मनुष्य या पशु तक कुएँ में गिर पड़ता था तो उसे बचाने के लिए मनुष्य अपनी जान दे देना कोई बड़ी बात नहीं समझते थे, बल्कि अपना धर्म समझते थे। किन्तु, अब हालत यहाँ तक गिर गई है कि जल्दी कोई कुएँ में उतरने को तैयार नहीं होता और आधुनिक विचारों और सभ्यता का साम्राज्य बढ़ता गया तो कुछ ही दिनों में शायद ऐसी घटनाओं की तरफ, कोई नज़र तक नहीं उठायेगा। इस प्रकार की घोर स्वार्थान्धता हमारे जीवन का खास अंग बन गई है; परन्तु सच पूछिए तो वास्तव में ये ऊपर कहे हुए तीनों विषय एक ही अन्तःस्थित भाव के रूपान्तर मात्र हैं। इसका सुदृढ़ आन्तरिक प्रभाव हमारे समस्त देश पर पड़ा है और इसने हमारे ग्रामवासियों को घर की ममता तथा स्वग्राम के प्रेम से उदासीन कर दिया है और धीरे-धीरे 'जहाँ रहे वहीं घर है,' वाला विधान चरितार्थ हो रहा है। अतएव, क्रमशः लोगों की लगन अपने ग्रामों से हटती जाती है और ग्रामों में रहने का स्वाद फीका पड़ता जा रहा है।

इसके अतिरिक्त सबसे कठिन समस्या हमारे ग्राम्य जीवन की वर्तमान आर्थिक दुर्दशा के विषय में उपस्थित हो रही है। ग्राम्य पद्धति के ह्रास के साथ ही साथ, जीवन-निर्वाह का जो आर्थिक सिलसिला पहले से चला आता था छिन्न-भिन्न हो गया। अपना-अपना नियमित कार्य करने की विधि जाती रही, अतएव सारे गांव की जनता के जीवन-निर्वाह का जो सुप्रबन्ध था वह लुप्तप्राय हो गया। स्वार्थ, आवश्यकता या लोलुपता के कारण, गांव की शासन पद्धति के टूट जाने से ग्राम के कारीगर, बढ़ई, लोहार तथा अन्य काम करने वाले श्रमजीवी, हज्जाम, धोबी परम्परा की नियमित मज़दूरी से ज़्यादा वसूल करने का यत्न करने लगे। इसकी प्रतिक्रिया काम कराने वाले ग्रामवासियों पर हुई। उन्होंने इनके नियमित सामयिक अन्न-वस्त्र या पैसे, जो निश्चित रूप से दिये जाते थे, कमकर दिये या एकदम बन्द कर दिये। जिससे उनकी आमदनी घट गई। अतएव, फिर इन्हें अपनी मज़दूरी और अधिक बढ़ानी पड़ी। तब लोग उनको छोड़कर सस्ते कारीगरों को ढूँढ़ने लगे और जहाँ दो पैसे बचे वहीं काम कराने लगे। अब देहात के शिल्पियों का पेट घर बैठे काम करने से नहीं चला, तब अधिक पैसा कमाने के लिए वे शहरों में आ गये, या अपना व्यवसाय छोड़कर दूसरा काम करने लगे। इस चढ़ा-ऊपरी के झगड़े में यदि कोई अधिक धनवान हो गया तो उसी की देखा-देखी और लोग उसके कार्यक्रम का अनुसरण करने लगे। कितने बने, कितने बिगड़े; और इसी गोरखधन्धे के फेर में देश भर में गड़बड़ी फैल गई। ग्राम्य पद्धति की इसी दुरावस्था में विदेशी चढ़ा-ऊपरी ने देहातियों का गला धर दबाया। अब नौबत यह आई कि तेली घर में तेल न पेलकर तेल के कारखाने में नौकरी करने लगा; जूता बनानेवाला जूते की कम्पनियों में चला गया और भेड़-बकरी पोसने वाला देहातों से भेड़-बकरे इकट्ठे करके पल्टन की छावनियों में भेजने लगा। यह स्वाभाविक है कि विदेशी सरकार, जिसका एक मात्र अवलम्ब उसकी पल्टन ही है, अपने ठेकेदारों और सहायकों की हर तरह मदद करे और उन्हें अपने काम-धाम में उत्तेजित करे। हमारे देहातों में अब वह सुख-चैन नहीं है जो पहले था। यद्यपि खेती के लिए बगीचे काट लिये जाते हैं, जंगल साफ किये जाते हैं, ज़रा-ज़रा परतियां जोत ली जाती हैं, तरह-तरह के देशी-विदेशी खाद दिये जाते हैं, तब भी न पहले-सी पैदावार होती है, न पहले-सी सस्ती। ग्रामीण न पहले-की तरह सबल हैं, न स्वस्थ। गृहस्थ प्रजा और रैयत के लिए कितने कानून बनाये गये, लेकिन इनके चलते रैयत की शक्ति सदा के लिए उठ गई। बिना अपनी काश्त रेहन रक्खे अब उन्हें पांच रुपये भी कर्ज़ नहीं मिलते। यद्यपि दस-बीस गृहस्थ अवश्य अब हज़ारों मन अन्न पैदा करके विदेशी व्यवसायियों के एजन्टों के हाथ बेचते हैं, या कलकत्ता, बम्बई, कानपुर इत्यादि बड़े-बड़े व्यापारी शहरों में चालान करते हैं तथा जैसे-तैसे धन कमाकर धनी बन जाते हैं, फिर भी अपने

धनका दुरुपयोग दूसरों को सताने में या स्वाभिमान या स्वार्थ के कारण मुक़दमेबाजी में ख़र्च करते हैं, तथा इसके पीछे स्वयं उजड़ जाते हैं। यही हमारे ग्रामों का आज क्रियाचक्र या कार्यक्रम हो रहा है। फिर इन थोड़े-से ऐसे मनुष्यों को छोड़कर हमारे ग्रामों की सारी जन-संख्या दुःखों में पड़ी रहती है; नाना प्रकार के कष्ट सहती है; पुलिस, टैक्स वसूल करने वाले, या नहर के कर्मचारियों के कारण परेशान रहती है, या इनसे मिलकर दूसरे ग्रामीणों को दुःख देने में सहायता करती है। कुछ धन होते ही आजकल के ग्रामीण दूसरों को परवा नहीं करते, न गाँव के ज़मींदार की, न गांव के बड़े-बूढ़ों की। ये कमज़ोरियाँ गांवों में अब मामूली चीज़ हो गई हैं। किन्तु, सम्पन्न किसान भी मुक़दमे के कारण या फसल बिगड़ने के बाद निर्धन हो जाते हैं। तब सब के समतल में चले आते हैं और सार्वजनिक दीनता को पहुँच जाते हैं। गावों में आज चाहे जिस हैसियत के मनुष्य हों, उन्हें कुछ दिन तक धनके संभालने की सामर्थ्य नहीं है। राजनैतिक या आर्थिक विधानों के कारण समस्त देश इतना दरिद्र हो गया है कि प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य को एक प्रकार का आर्थिक कष्ट उठाना पड़ता है। लोगों का दृष्टिकोण, बुद्धि और साहस इतना गिर गया है कि किसी व्यवसाय में एक बार असफल हो जाने पर कोई दूसरा उपाय ही नहीं सूझ पड़ता।

जीविका का प्रश्न दिन-दिन हमारे ग्रामों में महा कठिन और कष्ट-साध्य होता जा रहा है। पुराने व्यवसाय सब चले गये, या उनके व्यवहार के लिए अब कहीं जगह न रही। विचार-मूढ़ता हमारी परवशता में बड़े वेग से बढ़ती जा रही है। विदेशी वस्तुओं से क्या नुक़सान है और स्वदेशी से लाभ, यह प्रायः साधारण ग्रामवासी की समझ में नहीं आता। इन्हें अब सब कष्टों का एक ही निवारण रह गया है, और वह है गाँव छोड़कर बाहर किसी बड़े शहर या विदेश में चला जाना। किन्तु इससे भी ग्रामीणों की आर्थिक समस्या हल नहीं होती। क्षण-भर के लिए लाभ की आशा मृग-तृष्णा की भाँति दृष्टिगोचर होती है; फिर अनन्त नैराश्य की मरुभूमि में विलीन हो जाती है। बाहर जाने पर अवस्था ही बदल जाती है; परदेश में यदि रोगी हो गये तो न घर के रहे न बाहर के। बड़े-बड़े शहरों में एकाएक आने वाले ग्रामीणों को जो कष्ट होता है और रोगग्रस्त या निरुद्यम हो जाने पर इनकी जो दुर्दशा होती है वह अकथनीय है। हमारे ग्रामों के कितने बसे-बसाये घर इसी भाँति उजड़ गये। ग्रामों में इस ग्राम-परित्याग ने श्रम का प्रश्न कठिन और कष्टप्रद कर दिया है। कितने घर खंडहर हो गये और कितने खेत कुछ काल तक परती रह जाते हैं। ग्रामों का संगठन और रमणीयता इन्हीं बाहर जाने वालों की मिट्टी में मिलती जाती है। इनके आवागमन से गावों के अन्दर नये नये बुरे भाव उत्पन्न होते जाते हैं क्योंकि परदेश में इन्हे कुछ भली बात सीखने का अवसर तो कम ही मिलता है। ग्रामवासियों को अब साधारण श्रम के प्राप्त करने में भी अनेक कठिनाइयां होती हैं। पैसे देने पर भी यथेष्ट काम नहीं चलता।

लोगों का ख़याल है कि सरकारी प्रबन्ध के अन्दर शिक्षा की वृद्धि हो रही है; पर यह बात ग्रामों के सम्बन्ध में कदापि ठीक नहीं। आज कल की शिक्षा-प्रणाली में केवल ढकोसला भरा हुआ है। व्यय और वितण्डा अत्यधिक हैं। आज के अधिकांश शिक्षक ऐसे होते हैं जो बच्चों को शिक्षा देने के कार्य में सर्वथा अयोग्य रहते हैं। दूसरों की बतलाई हुई इनकी शिक्षा-विधि दुर्बल और बनावटी होती है। बहुत-से नियम-बन्धन शिक्षा-विभाग द्वारा इनके माथे मढ़े रहते हैं। इनकी भी चिन्ता अधिकतर केवल पैसे कमाने और देह चुराने की ओर रहती है, जैसा कि इस देश में आज कल सभी के साथ स्वाभाविक-सा होता जा रहा है। अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान बहुत कम का है। नीची से नीची कक्षाओं में कुछ न कुछ फीस अवश्य देनी पड़ती है; इसके अतिरिक्त बहुत ही सामान्य प्रकार की शिक्षा गांवों में मिलती है। साधारण ग्रामीणों को इस विषय में कुछ भी खर्च करना बोझ-सा जान पड़ता है। शिक्षा देने के बदले वे अपने बालकों से घर पर कुछ काम लेना ही अच्छा समझते हैं। जिन्हें अपने बालकों को कुछ भी ऊँची शिक्षा देने की इच्छा होती है उन्हें लाचार होकर अपने बालकों को अन्यत्र किसी शहर में भेजना पड़ता है, जिससे

इन्हें पारिवारिक जीवन तथा ग्राम्य जीवन दोनों ही से एक साथ वञ्चित हो जाना पड़ता है।

ग्रामों के अन्दर ग्रामवासियों के मध्य होने वाला व्यापार बहुत घट गया है। अब व्यापार का सिलसिला एकदम यकतरफ़ा हो गया है, याने ग्रामवासी केवल खरीदते हैं। बेचने के लिए उनके पास है केवल अपना खाद्य-द्रव्य जिसे वे कर्ज़ अदा करने या कपड़े या अपने अन्य अत्यावश्यक कार्यों के लिए लाचार होकर बेचते हैं। अब अन्तर्ग्रामीण लेन-देन के रुक जाने से ग्रामों का धन आपस ही में न रह-कर सीधे विदेश चला जाता है और सो भी निकम्मी विदेशी हानिकारक वस्तुओं के दाम चुकाने के लिए। बाहर से आती हैं लुभानेवाली और सस्ते या तुच्छ मसाले की बनी हुई चीज़ें और उनके बदले हमारे ग्रामों को दे देना पड़ता है अपना एकमात्र धन, अपनी रोटी का सामान, अपने खाने का अन्न। सबसे बड़ी रकम है कपड़े की और यह अधिकांश विदेश से आता है। विदेशी वस्त्र हमारे घर के बुने कपड़ों से कम टिकाऊ होते हैं। और सिर्फ बनाने की मेहनत में ही विदेशी व्यवसायी चौगुना नफ़ा इनसे करते हैं। नहीं तो कपास, ऊन, रेशम अपने ही यहाँ से जाते हैं और इनसे तैयार की गई पक्की माल की खपत फिर हमारे यहाँ ही अधिकतर होती है, किन्तु आने जाने और तैयारी के खर्च देने में ही हमारा सारा धन चला जाता है, अतएव हम देनदार ही बने रहते हैं। देहातों की कारीगरी इस क़दर लुप्त हो गई कि गृहस्थी के साधा-रण से साधारण औज़ार और बरतन अब गांव के अन्दर तैयार नहीं होते, और अब ये भी बाहर से ही बनकर आते हैं। ग्रामीणों को इन्हें भी पैसे देकर खरीदना पड़ता है, जिससे गांवों में पैसे की मांग बढ़ती जा रही है और हाथ में पैसा नहीं रहने पर कर्ज़ लेना पड़ता है।

आर्थिक जीवन में हमारे ग्रामीण इतने पिछड़ गये हैं कि भविष्य में होनेवाली फसल की आशा पर वे आज अपने पेट भरते हैं। इस निमित्त इन्हें सूद भी चुकाना पड़ता है। सरकारी कर अथवा ज़मीन का लगान तथा अन्य प्रकार की चौकीदारी इत्यादि का टैक्स भी देना पड़ता है। बड़े बड़े अपनी मर्यादा रखने, शादी-ब्याह, जीने मरने का खर्च लगा ही रहता है। किसी कारण हो, देहाती व्यवसाय की आमदनी घट गई है। कुछ ग्रामीण तो सीधे नक़द कर्ज़ काढ़ते हैं, कितने सवाई-ड्योढ़े पर अन्न उधार लेते हैं। कितने अग्रिम रुपये लेकर विशेष भाव से अपने अन्न, घी-दूध बेचते हैं। किसी रूप में हो, ये सब ग्रामीणों के ऋण हैं, जिनके दबाव से पिसते-पिसते ग्रामवासी निरावलम्ब हो गये हैं। कहा जाता है कि देहातियों को ऋण से मुक्त करने के लिए कोआपरेटिव विभाग सरकार ने खोला है और ग्रामों में इनके द्वारा छोटी-छोटी कर्ज़ देने वाली संस्थायें इसी अभि-प्राय से स्थापित की जाती हैं कि ग्रामीणों को सस्ते सूद पर ऋण मिले। किन्तु इन सहकारी समितियों की व्यावहा-रिक कार्रवाई से ज्ञात होता है कि इनसे ग्रामीणों को सिवा क्षति के कोई लाभ नहीं। एक तो यह सहयोग के नाम पर केवल कर्ज़ देता है और कर्ज़ वसूल करने में देहाती महा-जनों की कड़ाई की अपेक्षा इनकी कड़ाई कहीं भयंकर होती है। भोले-भाले ग्रामीण इनके द्वारा चालाक व्यक्तियों के शिकार बन जाते हैं, और सहयोग-विभाग पहले से ही इनके घर के कौड़ी-कौड़ी का हिसाब अपने पास रख लेता है। किसी का भी देना हुआ, जबर्दस्ती वसूल कर लिया जाता है। चोरी की किसी ने और पिटा कोई दूसरा। अनपढ़ भोले और निस्सहाय ग्रामीणों के मध्य ये सहयोग-समितियाँ दुखदाई हो रही हैं। ग्राम के बनियों या महाजनों में, जो परम्परा से ग्रामीणों की सहायता करते आते हैं, कितने ही अच्छे हैं और कभी कभी अपने ऋणियों के सुख-दुःख की कथा भी सुन लेते हैं और कुछ काल के लिए मान जाते हैं क्योंकि वे दोनों ही ग्रामीण हैं और उनके बीच वंश-परंपरा के सम्बन्ध हैं। ऋणियों से भी महाजनों के बहुत से काम चलते हैं। वह नाता ग्रामीणों और सहयोग-समितियों के बीच नहीं है। एक ओर असहाय ग्रामीण है और दूसरी ओर अपने हाथों में कानूनी हथकण्डे लिये हुए हृदयहीन सरकारी शासन-विभाग है। ऐसी अवस्था में ग्रामीणों को लाभ क्या हो सकता है? सच्चा सहयोग का मार्ग वह है जिसमें गिरते हुए को उठाकर कलेजे से लगावे, और बड़े हुए को झुकाकर समतल में ले आवे। इन्द्रजाल फैलाना शासन नहीं है। बहेलिए की तरह जाल फैलाकर पक्षियों को

फँसा लेना और कमजोर बनाकर इच्छानुकूल पिंजड़े में पालना कोई सहायता या काम नहीं है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजकल के हमारे गाँव दोषों के भाण्डार हो रहे हैं। ऊपर बताई हुई दुरावस्थाओं के कारण गांवों की जीवन-चर्या कष्टसाध्य, भ्रष्ट एवं विचलित हो गई है। ग्रामीण सामाजिक परिपाटी में बड़ा हेर-फेर हो गया है। आपस के भाईचारा में अन्तर पड़ गया है। असह्य दरिद्रता, पारस्परिक वैमनस्य, द्वेष, तथा झगड़े के कारण ग्राम्य जीवन नीरस और अन्धकारमय हो रहा है। जब सुख-चैन था तब आपस में खूब मेल-जोल था। आना-जाना, खाना-पिलाना अब एकदम घट गया है। लोग ऐसे चिन्ताग्रस्त बने रहते हैं कि उनकी मूर्ति प्रतिभा-हीन दिखाई पड़ती है। बच्चे तथा नवयुवक सभी पेट पालने के प्रयत्न में लगे रहते हैं फिर भी भली-भाँति पेट नहीं भरता। पर्व-त्योहार नाम मात्र के मन ये जाते हैं। इनके सम्पादन के लिए न धन है, न उत्साह। खेल-कूद, कुश्ती-व्यायाम नितान्त घट गये। इनमें लगे रहना समय नष्ट करने के बराबर हो गया है। जब खाने को भरपेट अन्न नहीं मिलता तब भला इनमें किसका मन लगेगा? साधारण आमोद-प्रमोद, सामयिक गान-वाद्य तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोरंजन सब के सब पेट की फिक्र में लुप्त हो गये। सारी प्रजा आर्थिक बोझ से दबी जाती है, और आह भरने को भी छुट्टी नहीं है! कठिन आर्थिक कष्ट ने सब मन्सूबे हिला दिये हैं। ग्रामीणों में न अब कोई सामर्थ्य है, न अभिलाषा। ये यहाँ तक गिर गये हैं कि अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध तक नहीं कर सकते। साथ-साथ पतितों का सबसे प्रधान जो लक्षण है सो इनमें आ गया है अर्थात् अपने से दुर्बलों को सताना, अथवा उनसे अनुचित व्यवहार करके, अन्याय करके लाभ उठाना। दूसरों को बताने; सिखलाने या उनकी आलोचना करने में सभी तेज हो गये हैं, किन्तु अपने उपदेश के अनुकूल स्वयं एक पग भी नहीं चलते। इस प्रकार के जीवन में परवशता, परतन्त्रता और पाप यदि हमारे घरों को घेरे बैठे हैं तो आश्चर्य ही क्या है?

प्रभात-कुसुम से—

[कुमारी लीलावती 'सत्य' बी०, ए०]

तुम्हारे अन्तस्तल में तात!
छिपा है किसका विषम वियोग?
बहाते हो आँसू चुप-चाप,
अरे, यह कैसा भीषण रोग॥

सुकोमल उर के बन्धन तोड़,
चीरकर वक्षस्थल को आज।
मनोहर वेला में सुकुमार!
किया है धारण कैसा साज॥

न कर इस जग में सुख की आश,
बड़ा मायावी है संसार।
यहाँ अभिलाषाओं का स्वप्न—
बुलाता है नैराश्य अपार॥

सरलता से कर केवल प्यार—
भुलाकर अपना सब चातुर्य्य—
'निछावर कर दो उन पर प्राण'
यही है जीवन का माधुर्य्य॥

---

(१)
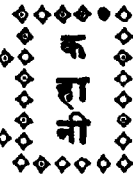
वेंज़िलो के जी में एक बात उठी है। शायद बहुत दिनों से वह उठ रही है। इस वक़्त मित्र से वह बात कहे बग़ैर उससे रहा नहीं जा रहा है। इसीसे उसने पूछा—

'तुम क्या बनना चाहते हो, गिडिटो ?'

'और तुम ?' प्रत्युत्तर में गिडिटो ने पूछा।

'मैं ?—मैं नेपोलियन बनना चाहता हूँ।' उसने अपने मन की संचित चाह कह डाली।

"नेपोलियन ! एकदम ?"

"हां"

"क्यों ?"

"नेपोलियन का जीवन मुझे प्यारा लगता है। कहां वह ख़ाक में से उठा, कहां आसमान के सिर पर चढ़ गया और कैसी सेण्ट हेलेना की सूनी-सी जगह मर गया ! वह एक शख़्स था जो अरमान लेकर नहीं मरा ; जी की सारी हवस उसने निकाल ली। राजमुकुटों को लात से उछालने के बाद, चौथाई सदी तक दुनिया को थर्रा रखने के बाद, क्या चिन्ता थी, वह कहां मरता है ?—जेल में मरता है या अकेला मरता है। मनुष्यों में वह सम्राट् था। छोटा-सा आदमी था, पर कितना विराट् था !"

"ठीक ! तो तुम नेपोलियन बनोगे ? क्या और कोई नहीं है, जो बिना अरमान के मरा हो ?"

"क्या तुम्हारा मतलब बुद्ध और ईसा से है ? मैं मानता हूँ, वे अरमानों को साथ लेकर नहीं मरे। पर वे अरमान लेकर पैदा भी कहां हुए थे ?"

"तो क्या यह कुछ श्रेय की बात नहीं है ? आरंभ से ही अपनी हविस को नष्ट कर रखना क्या हर एक का काम है ?"

"मुझे तो इसमें कुछ भी बहादुरी नहीं दीखती। क्या थोड़ी-बहुत हम सबको ही अपनी आकांक्षाओं पर मिट्टी नहीं डालनी पड़ती ?"

"तो तुम्हें निश्चय है, इसमें तारीफ़ की बात नहीं है ?"

"तारीफ़ की बात क्या है,—मुझे तो नहीं दीखती। तारीफ़ की बात तो इसमें है कि अपनी आकांक्षाओं को उन्मुक्त कर दिया जाय। उन्हें असंभव तक पहुँचने दिया जाय। और फिर उसी असंभव को संभव कर दिखाया जाय। अपने सब अरमानों को भाग्य के मुँह पर पूरा कर दिखाकर, एक विराट् शक्ति के रूप को दुनिया की चकाचौंध के सामने स्तूपाकार—पर्वताकार—खड़ा करके, फिर उसे ठोकर मारकर, व्यक्ति एक विजन कोठरी में जीवन की शेष घड़ियां निरपेक्ष, नि:कांक्षी, कृतकृत्य होकर चुपचाप बिता दे और फिर मिट जाय,—मेरे निकट यह तारीफ़ की और यह आदर्श की बात है।"

"लेकिन फिर भी दुनिया बुद्ध की और ईसा की ज़्यादा ऋणी है। नेपोलियन तो बीती वस्तु बन गया। वह आज हमारे लिए पढ़-पढ़कर स्तंभित होने भर के लिए है। लेकिन इन महापुरुषों के नाम तो दुनिया में जीवित और अमर शक्तियाँ हैं.. ...।"

"जीवित और अमर शक्तियाँ नहीं हैं,—जीवित और अमर अशक्तियां हैं। व्यक्ति के जीवन में क्या तुम रोज़ नहीं देखते कि ये नाम उसे सशक्त तो क्या बनाते, उल्टे अशक्त कर देते हैं। जब ये नाम शक्ति बनते हैं तो, इतिहास इस बात का साक्षी है, इससे घातक, विध्वंसिनी और आत्म-संहारक शक्ति कोई नहीं होती।...लेकिन तुम

कहते क्या हो ? नेपोलियन पर जितना साहित्य निकला है, उतना और किसी एक व्यक्ति पर न निकला है,—न निकलेगा। न तुम्हारे बुद्ध पर, न ईसा पर।"

"मानता हूँ। और शायद तुम्हें मना नहीं सकता। तो तुम नेपोलियन बनोगे ?"

"जी मैं तो हैं। प्रार्थना भी है। लेकिन बनने का मार्ग अभी नहीं दीखता। फ्रांस में जैसी क्रांति मची, वैसी जब यहाँ भी मचे; वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हों; मुझे भी वैसे ही पक्के और साहसी आदमी मिलें;—तब तो ? पर क्या यह सब कुछ मिलेगा ? मिले तो मैं दिखा दूँ, कैसे नेपोलियन बना जाता है ?"

"मुझे इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा। पर यार एकदम सम्राट बन गये तो, देखो, हमारी भी याद रखना। हमें भी कुछ बना-बना लेना।"—हँसकर गिडिटो ने कहा।

हँसकर ही बेंज़िलो ने जवाब दिया—"हाँ-हाँ, ज़रूर।"

गिडिटो ने फिर जैसे पक्का वादा लेकर ही छोड़ा। मानों कल ही उसे नेपोलियन के बेंज़िलो-एडीशन से अपना प्रार्थना-पत्र स्वीकार कराना होगा।

इसपर बेंज़िलो ने सोचा—"कैसा बेचारा, गौ आदमी है। सदा चुप-चुप अच्छा-अच्छा रहता है। और चाहता है इस चुप्पी और इस छोटी गठरी-सी भलमनसाहत के ही इनाम में जब सम्राट बनूँ तो इसे भी कुछ बना लूँ। बेचारा है। जानता है, भलाई भी कुछ चीज़ है; जब कि यह जानता ही नहीं कि शक्ति ही सब कुछ है।"

इधर गिडिटो ने सोचा—"दुर्भाग्य है कि परिस्थितियाँ, आदमी, क्रांति, मार्ग, अवसर और कुछ भी इस दुनिया में बना-बनाया नहीं मिलता। सभी-कुछ बनाना होता है। कैसा दुर्भाग्य है जगत् का कि केवल प्रकृति-नियम में ज़रा-सी भूल के कारण दुनिया को बेंज़ी नेपोलियन बनकर न दिखा सकेगा ! मैं सचमुच विश्वास करता हूँ—अगर सब कुछ तैयार करा-कराया मिलता तो बेंज़ी अवश्य सम्राट बन सकता था। इतनी क्षमता उसमें है,—पर अब...?"

(२)

गिडिटो और बेंज़िलो दोनों कालेज में पढ़ते हैं। दोनों *कार्बोनारी के सदस्य हैं। समिति में दोनों का क्या-क्या स्थान है,—एक-दूसरा इसे नहीं जानता। गिडिटो समिति की सबसे ऊँची तीन आदमियों की नायक-गोष्ठी का भी सदस्य है। समिति के और सदस्य इस गोष्ठी को नहीं जानते। उसके बस हुक्मनामों से उन्हें काम पड़ता है, व्यक्तियों से नहीं। इधर बेंज़िलो समिति के भीतर ही अपने लोगों का गुपचुप एक अलग गुट्ट बना बैठा है। अधिकारियों को,—नायक-गोष्ठी को—उसका पता नहीं है, पर यह गुट्ट भीतर ही भीतर प्रबल होता जा रहा है।

दोनों गहरे मित्र हैं। पर गहराई में बहुत नीचे उतरकर जैसे उन दोनों में विच्छेद हो गया है। वे अपने को एक-दूसरे में खो नहीं सके हैं,—और दोनों यह बात जानते हैं। दोनों ही के व्यक्तित्व में, हृदय में, और मस्तिष्क में एक-एक कोना है जो दूसरे के लिए अगम्य है। दोनों ही उस कोने के द्वार पर टक्करें मारते हैं, पर जैसे प्रवेश नहीं कर पाते।

इन दोनों मित्रों में एक और सम्बन्ध है। उम्र में दोनों लगभग बराबर हैं, पर गिडिटो जैसे बेंज़िलो के लिए अपने को ज़िम्मेदार समझता है। बेंज़िलो समिति का आगभरा सदस्य है। गिडिटो, जिसमें आग-वाग कुछ नहीं दीखती, इसका ध्यान रखता है कि कहीं उसका मित्र ख़ुद ही अपनी आग में न पड़ जाय ! वह मानों मित्र का अभिभावक बन गया है। उसके खाने-पीने, पहिनने-ओढ़ने की आवश्यकताओं को देखते और पूरी करते रहना उसने अपना दायित्व बना लिया है। बेंज़िलो को ख़ुद जैसे अपनी ख़बर रखनी ही नहीं चाहिए। बेंज़िलो मित्र की इन सेवाओं को सहज स्वीकार कर लेता है। उसे मानो अपने मित्र के अहसानों का पता भी नहीं लगने पाता। पर मित्र के भोलेपन पर थोड़ी दया करता है। इधर गिडिटो अपने वयस्क मित्र की लापरवाहियों को देखकर ख़ुश होता और थोड़ा चिंतित भी होता है।

* 'कार्बोनारी' इटैलियन शब्द है जिसका अर्थ 'पत्थर का कोयला जलाने वाला' होता है। उन्नीसवींशताब्दी के प्रारम्भिक भाग में इस नाम से इटली और फ्रांस में अनेक राजनैतिक गुप्त समितियाँ बनी थीं, जिनका प्रभाव उस समय बहुत बढ़ गया था। —सम्पादक।

दोनों क्रांतिवादी हैं, पर बेंज़िलो जैसे क्रांति का तर्क है। तर्क की ही तरह वह सीधा जाता है, और तर्क के समान टक्कर लेना और तोड़-फोड़ करना ही उसका काम है। और जैसे तर्क परिणाम के भले-बुरे की चिंता नहीं करता, जैसे तर्क केवल अपनी गति और दिशा से ताल्लुक़ रखता है, वैसे ही बेंज़िलो है।

लेकिन जैसे गिडिटो क्रांति की फ़िलासफ़ी है। फ़िलासफ़ी की तरह वह सोच-विचारकर चारों तरफ़ देख-देखकर चलता है। फ़िलासफ़ी की तरह वह पूर्ण है, उसी की तरह गंभीर है। क्रांति में अशांति रह सकती है, उसके परिणाम में भी हिंसा रह सकती है,—पर उसकी फ़िलासफ़ी में शांति ही शांति है। हिंसा से फ़िलासफ़ी डरती नहीं है, उसके नज़दीक वह खुद शांति का साधन बन जाती है। वैसे ही गिडिटो खून से भय नहीं खाता, पर लहू की नदियाँ देखकर भी उसकी शांति के स्वप्न भंग नहीं होते।

लेकिन फ़िलासफ़ी तर्क का पोषण करती है। तर्क जैसे उसका उच्छृंखल हठी बालक है।

बेंज़िलो नेपोलियन बनना चाहता है। गिडिटो, गिडिटो ही बना रहना चाहता है। उसने अपना आदर्श किसी ऐतिहासिक पुरुष में बंद नहीं किया। वह अपना आदर्श अपने ही भीतर गढ़ता रहता है, और अपने को उसके अनुरूप गढ़ता रहता है। वह गिडिटो ही बन दिखाकर अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ेगा। नेपोलियन के नाम की प्रभा उधार लेकर वह अपने व्यक्तित्व को सबल, सार्थक और सम्पूर्ण बना सकेगा, ऐसा उसका विश्वास नहीं है।

(३)

नायक गोष्ठी की बैठक।

छोटा-सा कमरा है। बीचों-बीच गोल मेज़ है। दर्वाज़े की ओर मुंह किये हुए मेज़ के किनारे एक ऊँची कुर्सी है। तीन तरफ़ तीन और साधारण कुर्सियाँ हैं।

एक तरफ़ इटली का बड़ा नक़शा टँगा है। आले में कुछ बोतलें और गिलास रक्खे हैं। एक कोने में एक ख़ाली सन्दूक है। और कुछ नहीं है। कमरा तीसरी मंज़िल पर है।

केवल तीन व्यक्ति बैठे हैं।—गिडिटो, एंटिनो, कार्लो।

का०—गिडिटो, अपना आसन स्वीकार करें।

एंटिनो चुप रहा। गिडिटो चुपचाप उस ऊँची कुर्सी पर जा बैठा।

सब ने जेबों से अपनी-अपनी नोटबुकें निकालीं।

गि०—एलबर्ट ५ दिन पहले हममें था, आज वह पीडमोंट की गद्दी पर है। उसके सिर पर ताज रखते ही हमारे दो ख़ास आदमी गिरफ़्तार किये गये हैं। सोचना होगा कि हमें अब अपनी प्रगति क्या रखनी है।

एं०—वह भगोड़ा (Deserter) है। उसकी यही सज़ा होनी चाहिए।

का०—सज़ा बोलने से कुछ नहीं होता। सज़ा पूरी नहीं की जा सकती।

एं०— क्यों?

का०—वह उससे आगाह है। फिर सारी फ़ौज और पुलिस उसकी पुश्त पर है।

एं०—फ़ौज और पुलिस हमारे मार्ग से हमें हटा सकती है तो हमें मर जाना चाहिए।

का०—मसलहत एक चीज़ होती है।

एं०—कमज़ोरी होती है।

गिडिटो ने तब कहा—संभव है किसी की समझ में अपने इटेलियन भाई को मारना ठीक हो पर इस बारे में जल्दी नहीं करनी होगी। हम पीडमोंट के संरक्षण में इटली का ऐक्य सम्पन्न करना चाहते थे। आज हम टुकड़ों-टुकड़ों में बँटे हुए हैं। उन टुकड़ों की शक्ति आपस में ही क्षीण हो जाती है, इसीलिए आस्ट्रियन के लिए हमारी देशभूमि रौंदना संभव है। हमारी लड़ाई आस्ट्रियन के ख़िलाफ़ है। और इसलिए पहला काम हमारा इटली को एक राष्ट्र, एक आवाज़ और एक शक्ति बना देना है। यह काम पीडमोंट की गद्दी को तहस-नहस कर डालने से नहीं होगा। उसको ज़्यादा-से-ज़्यादा मज़बूत,—हां, उदार,—बनाने से होगा। एलबर्ट, हो सकता है, हमारा शत्रु हो, पर उस जितना भी उदार राजा मिलना असंभव है। हम उसे मार नहीं सकते। उसकी सहायता हमें करनी होगी,—और अपने लिए भी प्राप्त करनी होगी। क्योंकि हमें अपनी शत्रुता-मित्रता नहीं देखनी,—देश का हित देखना है।

एं०—किसी राजा के नीचे इटली का ऐक्य सम्प

करने की इच्छा दुःस्वप्न-मात्र है। हम राज-सत्ता नहीं चाहते। हम उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते। हम प्रजा-सत्ता चाहते हैं। राजाओं के इतने कड़ुवे अनुभवों के बाद हम कभी यह संभव नहीं समझ सकते कि उनसे प्रजा-सत्ता कायम करने में मदद मिलेगी,—वैसे ही जैसे आग से सर्दी पाने की उम्मीद नहीं कर सकते। हमारा कोड हमें एक और स्पष्ट आज्ञा देता है, वही आज्ञा पुरुषत्व की, और मैं समझता हूँ—बुद्धिमत्ता की भी है।

गि०—मैं बहस नहीं करता। लारेंज़ो भाई की राय मैं जानना चाहता हूँ।

ला०—मुझे डर है कि हत्या हितकारी नहीं होगी। इससे मेरी राय नहीं है।

गि०—भाई एंटिनो, अब मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि समिति हत्या के पक्ष में नहीं रहेगी। बहुमत यही है।

एं०—बहुमत को सर झुकाता हूँ। पर एक सूचना अध्यक्ष को देना चाहता हूँ।

एक पन्ना उलटकर एंटिनो पढ़ना शुरू करता है।

"सोमवार ता० १९ मार्च को सभा हुई। उपस्थिति १०; बेंज़िलो सभापति।

"भाषणों के बाद, सर्वसम्मति से, तै पाया कि अलबर्ट को अपना सदस्य स्वीकार करना घोर अपराध था। अब वह पीडमोंट का राजा बन गया है। राजा ख़ासकर वह जो आस्ट्रियन की अधीनता स्वीकार करता है, प्रजासत्ता का दुश्मन है। इसलिए वह हमारा भी दुश्मन है। हमारी अक्षम्य ग़लती के प्रतिशोध और प्रजासत्ता एवं क्रांति की हित-रक्षा का एक उपाय है। वह है अलबर्ट को नष्ट करना।

"सम्मति जब ली गई तो बस से०—विरोध में था।

"उसके लिए कई कोनों से दबी हुई 'ट्रेटर'(विश्वास-घातक) की आवाज़ आई।

"सब को शांत करके बेंज़िलो ने घोषणा की कि एलबर्ट की हत्या सभा द्वारा निर्णीत और उचित ठहराई गई है।"

एं०—इस सूचना के साथ मैं अध्यक्ष को अपने निर्णय को फिर से सोचने का निवेदन करता हूँ।

गि०—मेरा वही मत है जो मैं दे चुका। और समिति का भी वही मत है। बेंज़िलो ने अधिकार से बाहर की बात की है। किसी के दुराग्रह को बढ़ने देना ठीक नहीं है। एंटिनो भाई से मैं यह आशा करता हूँ कि वह बेंज़िलो को नायक का मत,—और निर्णय,—स्पष्ट शब्दों में सुना देंगे।

× × ×

एंटिनो और लारेंज़ो शराब पीते हैं। गिब्टिो नक़शे के सामने खड़ा होकर आँखें गाड़कर उसमें देखने लगता है। जैसे बेंज़िलो के भाग्य को उस नक़शे में से पढ़ लेना चाहता है।

(४)

शाम हो गई है। कमरे में गिब्टिो अकेला है। वह प्रतीक्षा में है। कालेज ४ घंटों का ख़त्म हो चुका; बेंज़िलो अब तक कहाँ रहा? लौटा नहीं! खाना ठंडा हो रहा है। कमरे के छज्जे पर आकर उसने सड़क के दोनों तरफ़ आँखें फैलाकर देखा। बेंज़िलो का कहीं पता नहीं!

वह आकर पलंग पर बैठ गया। किताब खोल ली। लेकिन ५ ही मिनिट में किताब बन्द कर देनी पड़ी। किताब के अक्षर जैसे तैरने लगते थे, और उसका मन जैसे भागा-भागा फिरता था।

लैण्डलेडी को बुलाया; कहा—खाना परोसने की अभी ज़रूरत नहीं, लेकिन तैयार रहना चाहिए। इतना कहकर जो हाथ पड़ा—वही, हैट लेकर, पिस्तौल जेब में डालकर बाहर आ गया।

गि०—मैरिथ, बेंजी अभी घर नहीं पहुँचा! क्या यहाँ भी नहीं आया?

मैरिथ वह लड़की है जो, यदि गिब्टिो न होता तो, बेंज़िलो की विवाहिता होती। बेंज़िलो रोज़ इसके पास आता है और चला आता है। मैरिथ अपने धनी माँ-बापों को छोड़कर यहां अपने बल और अपने काम पर अकेली रहती है,—और अपने दिन की राह देखती रहती है।

मैरिथ—नहीं, यहाँ तो बेंज़िलो नहीं आया। पर तुम आओ, बैठो। शायद आता हो।

"बैठने की फ़ुर्सत तो मुझे नहीं है।"

"क्यों जी, बेंज़िलो को अपने हाथ में रखने से क्या

तुम्हारी मुट्ठी पूरी भर जाती है ? क्या उसमें और किसी के लिए समाई नहीं है ?"

"मैरिथ, बेंजी ने अपना सारा प्यार तुम पर वार दिया है। इटली को स्वतंत्र होने दो; देखो मैं खुद अपने हाथों से तुम्हारा ब्याह करूँगा। उससे पहिले ब्याह करके बेंजी अपना नाश कर लेगा। मैरिथ, वह नेपोलियन बनना चाहता है—नेपोलियन !"

"और, क्यों जी, तुम क्या बनोगे ? तुमने अपना प्यार किस पर वार रक्खा है ?"

"सो तुम नहीं जानतीं ?—नेपोलियन पर !"

"तुम भी आदमी हो !"

"कौन कहता है ? मैं भी होता तो ज़्यादा ठीक रहता। ...अच्छा अब मैं चला।"

"ज़रा ठहरो तो। बेंजी आना ही चाहता होगा। इतने, मैं थोड़ा आतिथ्य ही स्वीकार कर लो।"

"अच्छा लाओ, ५ मिनट बैठता हूँ। लाओ क्या देती हो ?"

"उतावले मत बनो। लेकिन हाँ, तुम शराब तो पीते ही नहीं।"

मैरिथ ने कुछ रूखे बिस्कुट ला रक्खे। बिस्कुटों की जल्दी-जल्दी में नक़्क़ाशदार चीनी की एक बढ़िया तश्तरी गिरकर फूट गई। दो-तीन बिस्कुट भी गिरकर चूर हो गये। बिस्कुट रखकर मिनट भर में पड़ोसी से टोस्ट और चाय ले आई।

सब कुछ चखकर गिडिटो ने घड़ी की तरफ देखकर कहा—"वक़्त हो गया, जाता हूँ।" कहकर प्रतीक्षा नहीं की ;उठकर सीधा चल दिया।

"ठहरो तो,...अरे, ठहरो ......अच्छा बस, ५ मिनट !"

"अब नहीं मैरिथ, देखो बना तो फिर आऊँगा।"

गिडिटो नहीं ठहरा। ज़ीने पर उतरते-उतरते उसने मन में कहा—"मुग्धा मैरिथ !"

× × ×

गिडिटो फिर सड़क और गली, गली और सड़क लाँघता हुआ एक अँधेरी गली में आ पहुँचा। और वहां से फिर उस कमरे में जहां सभा जुड़ी हुई थी। बेंजिलो अध्यक्षासन पर तमतमा रहा था।

गिडिटो जब वहाँ दाखिल हुआ तो सभा एक दम रुक गई। अयाचित उसका पहुँचना शायद वांछनीय न था।

अध्यक्षासन पर से बेंजिलो ने कहा—"गिडिटो, किस की इजाज़त से तुम अन्दर आये ?"

"बेंजी, चलो खाना ठंडा हो रहा है। पहले खाओ, तब और कुछ करना।"

"गिडिटो, बेवकूफ मत बनो। कैसे तुम यहाँ घुस आये ?"

"इन्तजार करते-करते नहीं तो रात-भर बैठा रहता क्या ? भूख लगी, तुम्हें ढूंढता-ढूंढता चला आया।"

"तुम्हारी भूख जाय भाड़ में। मैं ज़रूरी काम कर रहा हूँ।"

"कोई जरूरी काम नहीं है। अभी तो तुम्हारा खाना सबसे जरूरी है।"

"गिडिटो, मैं प्रेसीडेण्ट हूँ। कहता हूँ तुम अभी चले जाओ।"

"तुम्हें कुछ ख़याल भी है ? कालेज खत्म हुए ५ घंटे हो गये ! तबसे भूखे हो, कुछ नहीं खाया। तुम्हें भूखे छोड़कर मैं कैसे चला जाऊँ ?"

"गिडिटो, बेवकूफी करोगे तो मुझे सख़्ती करनी पड़ेगी।"

"करो सख्ती, कौन मना करता है। पर परमात्मा के लिए भूखे मत रहो।"

बेंजिलो ने झल्लाकर कहा—"बेंजमिन, गिडिटो को हम यहाँ नहीं चाहते। तुम उसे बाहर निकाल सकते हो ?"

बेंजमिन नाम का व्यक्ति उठा। उठकर देखा और फिर बैठ गया—"जी नहीं।"

—"नहीं !" अध्यक्ष ने कहा, "कोई है जो इसे बाहर कर दे ?"

दो व्यक्ति आगे बढ़े। वह काफ़ी पास आ गये कि गिडिटो ने रिवाल्वर उनकी तरफ तानकर कहा—"चलो, लौट जाओ अपनी जगह पर ! खबरदार, जो एक क़दम भी आगे रक्खा।"

फिर बेंजिलो के पास पहुँचकर और उसकी बाँह पकड़कर कहा—"चलो बेंजी तमाशा न करो। घर चलो।"

बेंज़िलो ने उसे ज़ोर से धक्का दे दिया। गिडिटो गिरते-गिरते बचा। इतने में ही सभा के दो-तीन सदस्य उसकी तरफ़ झपटे। उसने भीतर की जेब से तिरंगा कपड़े का टुकड़ा निकाला और दोनों हाथों से ऊपर उठाकर चिल्लाया—"सभ्यो, यह देखो। देखकर चाहो तो गोली मार दो,—मेरे दोनों हाथ ऊपर हैं। नहीं तो उसका सम्मान रक्खो और इस सभा को बरख़ास्त कर दो।"

सभ्य, जो बड़े असभ्य हो रहे थे, अब सबके सब चुप बैठ गये।

"सुनो! नायक की आज्ञा है, यह सभा यहीं बर्खास्त होती है। मेरे तीन कहने-कहने तक सब यहाँ से चले जायँ। ए......क। दो......। ....."

कमरा बिलकुल ख़ाली था।

गिडिटो ने अब बेंज़िलो से कहा—"चलो बेंजी, खाना खाने चलें।"

बेंज़िलो भौचक था। पूछा—"तो नायक तुम हो?"

"हूं, तो हूं,—पर चलो, भूख लग रही है।"

"कहाँ चलूँ?"

"घर।"

"मैरिथ के यहां नहीं?"

"क्यों नहीं? वहां चाहो, वहां जाओ।"

"तुम नहीं चलोगे?"

"मैं अभी वहीं से आया था।"

"मैरिथ के यहां से आये थे?"

"हां।"

"अब नहीं जाओगे?"

"नहीं।"

"घर पर मिलोगे?"

"ज़रूर।"

"मैं घर पर न आया तो?"

"तो बुरा होगा।"

"क्या होगा?"

"बहुत बुरा होगा।"

"तो मैं घर पर न आ सकूँगा।"

"न आ सकोगे?—कहां रहोगे?"

"सो बतलाने की ज़रूरत नहीं।"

"तो मैं भी साथ चलता हूँ।"

दोनों, साथ, मेरिथ के स्थान की ओर चले।

मैरिथ के घर पर—

बें०—मैरिथ, तुम्हें पता है हमारे नायक गिडिटो महाशय हैं?

मैरिथ को यह पता नहीं था। पर यह पता था कि बेंज़िलो नायक के प्रति बहुत सद्भावना नहीं रखता। नायक के नरमपन, ढीलेपन और सुस्ती पर बेंज़ी अपने तीक्ष्ण-कटु विचार मैरिथ के सामने कई बार बरोजमा के साथ ज़ाहिर कर चुका था। इसलिए जब गिडिटो के नायक होने की सूचना उसे मिली तो वह प्रसन्न न हो सकी। न जाने क्यों, उल्टी पीली पड़ गई। उसने आतंक से गिडिटो की ओर देखा। इस दृष्टि में भरे प्रश्न को अच्छी तरह न समझकर उसने कहा—"नायक कितना भोला भलामानस है, यह तुम शायद जानती ही नहीं?"

बेंज़िलो ने कहा—"मैं खूब जानता हूँ। उसके भोलेपन पर मैरिथ के सामने कई बार तरस खा चुका हूँ।"

इस पर मैरिथ फिर दहल-सी उठी। कुछ लेने गई तो गिडिटो के कान में कह गई—"ख़बरदार रहना।" लौटकर आई तो गिडिटो ने कहा—"बेंज़ी, क्या नेपोलियन से ख़बरदार रहना होगा?"

बेंज़िलो ने उत्तर दिया—"नेपोलियन खुद अपने को नहीं जानता। लेकिन ख़बरदार रहना अच्छा ही है।"

काफ़ी रात बीते वे अपने डेरे को चले। पर रास्ते में ही न जाने कब, बेंज़िलो बे-पता हो गया।

(५)

रात अंधेरी है, सुनसान है। पतलून की दोनों जेबों में पिस्तौल है। बेंज़िलो महल के दरवाज़े तक आ गया है। दरवाज़े पर संतरी टहल-टहलकर पहरा दे रहा है।

बेंज़िलो के आने पर संतरी ने सलाम किया।

"सब ठीक है?"

"बिलकुल।"

"इसी कमरे में?"

"हां।"

रास्ते में जितने मिले उनमें से किसी का अभिवादन लेकर, किसी को फुसलाकर, कुछ को डरा-धमकाकर और बाक़ी बचे २-१ का ठंडा करके बेंज़िलो, उस कमरे के दरवाज़े पर आ गया। कमरा रोशन था। एलबर्ट अकेला रहता था, अभी तक उसने ब्याह नहीं किया था।

बेंज़िलो ने केवल झँपे हुए दर्वाज़े को खोलकर कहा—"आ सकता हूँ?"

उत्तर मिला—"आइए।"

उत्तर सुनने-न-सुनने की पर्वाह किये बिना वह अंदर दाख़िल हो गया।

एलबर्ट इतनी रात गये भी एक कुर्सी पर बैठा था। सामने छोटी-सी मेज़ थी। उसपर कुछ काग़ज़ एक रंग-बिरंगे बहुत बड़े शंख से दबे हुए थे। पास ही एक ऊँचे स्टूल पर शेडदार लैम्प था, जो अच्छा ख़ुशनुमा था, पर राजाओं के लायक़ बिलकुल न था। एलबर्ट का सिर अपने दोनों हाथों में थमा हुआ था। एक कोहनी मेज़ पर रक्खी थी, दूसरी कुर्सी की बाँह पर। उसके माथे पर बल थे। ऐसे बैठे-ही-बैठे अनायास ही उसने 'आइए' कहा था।

आगत व्यक्ति को जब उसने देखा तो वह बिलकुल बदल गया। हाथ दोनों कुर्सी की बाहों पर आराम करने लगे। सिर सीधा हो गया, और वह थोड़ा हँसा।

—"ओहो, बेंज़िलो हैं!—मैं तो तुम्हें भूला जा रहा था।"

"मैं भूलने दूं, तब न!"

"यह भी ठीक है। आज शाम को मुझे ख़बर मिली थी कि आप रात को दर्शन देंगे। पर अभी-अभी तो मुझे इसका ध्यान उतर ही गया था।"

"आपकी ख़बर ठीक थी। क्या इसके आगे और कुछ ख़बर भी थी?"

"उसे मैं आप से जानने की आशा रखता हूँ।"

"आशा तो आप ग़लत नहीं रखते।"

"तो आज्ञा हो मेरे लिए—"

"एलबर्ट, अभी जल्दी काहे की है? तुम्हें जल्दी हो तो बात दूसरी।"

"बड़ा सन्तोष है कि आपको जल्दी नहीं। नहीं तो जल्दी आपके मिज़ाज में एक ख़ास चीज़ है। फिर निश्चय के बाद देरी का कारण भी क्या?"

"एलबर्ट, मालूम होता है, तुम अपने भाग्य से परिचित हो। शायद समझते हो, प्रयत्न करने से भाग्य तो टलेगा नहीं, इसीलिए इस तरह यहां निश्चिन्त बैठे हो। पर भाग्य को तुम्हारे प्रयत्नों की या निश्चिन्तता की कुछ भी पर्वाह नहीं।"

"बेंज़िलो, तुम जानते हो, मैं भाग्य में यक़ीन करता नहीं। पर अब मालूम होता है, जैसे यक़ीन करना अच्छा है! मुझे भी विश्वास होता जा रहा है,—होनहार टलती नहीं।"

"जाने दो, इन बातों को। तुम राजा हो, कल हमारे साथ मिलकर राजा की दुश्मन... दम भरते थे! यह क्या धोका नहीं है,—और तुम इस पर अफ़सोस नहीं करते?"

"यही तो मुश्किल है कि अफ़सोस मैं नहीं कर पाता। धोका-वोका मैं जानता नहीं। लेकिन मालूम होता है, इस तरह इटली के लिए मैं शायद कुछ कर सकूँ।"

"एलबर्ट तुम्हें शरम नहीं आती? राजा बने बैठे हो, जब कि सैकड़ों-हज़ारों तुम्हारे साथी तुम्हारी ही जेलों में सड़-गल रहे हैं। तुम्हारे देशवासी गुलामी और दरिद्रता के नीचे कुचले जा रहे हैं तब तुम ऐशो-इशरत में पड़े हो, और आस्ट्रियन के जूते के नीचे अपने उन भाइयों पर हुकूमत चलाते हो?"

"भाई, शर्म आती ही नहीं तो क्या करूँ? मैं उसे ज़बर्दस्ती बुलाने की आवश्यकता नहीं समझता। आज इस कुर्सी पर से सब देशसेवकों को नहीं तो कुछको तो मैं जेल से छुड़ा ही सकता हूँ। पर तुम क्या कर सके हो, क्या कर सकते हो? ...और यह कुर्सी महल में तो रक्खी है, पर ख़ूब देख लो, बिलकुल मामूली है। क्या आधी रात तक ऐसी कुर्सी पर जागते बैठना तुम्हारी निगाह में पाप है? और तुम यह नहीं जानते कि हुकूमत करनेवालों को अपने सिर पर का जूता ज़्यादा खलता है। क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि आस्ट्रियन मुझसे जितना डरते हैं,—तुम से उतना नहीं।"

"तुम आज गद्दी के मोह में पड़कर इटली को बेच रहे हो।"

"शायद।"

"तुम यह नहीं समझते ?"

"अभी तक नहीं।"

"लेकिन तुमको समझने के लिए ज़्यादा वक्त नहीं दिया जा सकता।"

"ठीक है, मैं पहले ही काफ़ी ले चुका हूँ।"

"लेकिन तुम्हें अपना अधिकार है, राष्ट्र को खो देने का नहीं।"

"राष्ट्र को न समझने का जैसा तुम्हें अधिकार है, वैसा मुझे भी तो उसे समझने का अधिकार है।"

"हम इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

"बर्दाश्त की आदत पैदा करनी चाहिए।"

"वह आदत अभी पैदा करने का वक्त नहीं है। अभी वक्त है कि अपने रवैये पर पछताओ, शर्म खाओ, और वापिस मुड़ो।"

"नहीं तो ?"

"...नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। हम अपने देश का नाश नहीं देख सकते।"

"बेशक, तुम अपने देश का नाश या लाभ नहीं देख सकते।"

"जो हो, अब वक्त कम है। बोलो क्षमा,—या दंड।"

"तुम्हें ऐसा अधिकार किसने दिया ?"

"समझो कि पहली घड़ी से जीवन की अंतिम घड़ी तक एक—बस एक—राष्ट्र की चिंता रखने वाले तरुणों ने।"

"तो उनसे कहो, उन्होंने भूल की। ऐसा अधिकार परमात्मा के हाथ से छीनने की आवश्यकता नहीं।"

"बोलो,—क्षमा या दंड ?"

"दंड या पुरस्कार, जो भी होगा ज़रूर मिलेगा। पर क्षमा!...क्षमा नहीं।"

"क्षमा नहीं ?......"

यह कहकर उसने जेब में हाथ डाल दिया। एल्बर्ट ने सब कुछ देखा। वह भी देखा, जो बैंज़िलो नहीं देख पा रहा था। बोला—"बैंज़िलो, एल्बर्ट में सीज़र का खून है, और इटली का देश-प्रेम है। क्षमा नहीं।"

"नहीं ?—तो लो।"

यह कहा और पिस्तौल खींच ली। इतने में ही किसी ने कसकर बांह को पकड़ लिया। घोड़ा दबा। गोली शेड और लैम्प को चूर-चूर करती हुई निकल गई। रोशनी बुझ गई। घुप्प-अंधेरा हो गया।

गिडिटो ने पिस्तौल बैंज़िलो के हाथ से छीनकर फेंक दी वह झनझनाकर फ़र्श पर पड़ी।

कुछ भी न दीख पड़ रहा था। बैंजिलो ने कहा—"कौन है ? अलग हट जाओ, नहीं तो सिर फोड़ दूँगा।" इतना कहकर दूसरी जेब में उसने हाथ डाल लिया।

गिडिटो ने एक ज़ोर की चपत उसकी कनपटी पर जड़ दी।

"कम्बख़्त!—यहाँ आया है मरने। चल घर, चल! चल भाग।"

जब चलने और भागने में देर लगी तो कान पकड़कर उसे धकेलते हुए कहा—

"अरे, भागता है कि नहीं ? भाग जा, झटपट। नहीं तो मर जायगा।"

इतने में ही एक गोली सनसनाती हुई गिडिटो की बाँह को आर-पार कर गई और बैंज़िलो भाग गया।

× × ×

शोर मचाकर जब नौकर-चाकर सिपाही-प्यादे इकट्ठे-के-इकट्ठे वहाँ हाजिर हुए और रोशनी की तो गिडिटो बाँह पकड़े जहाँ का तहाँ खड़ा था, और एल्बर्ट कुरसी पर वहीं का वहीं पिस्तौल ताने बैठा था।

गिडिटो पकड़ लिया गया।

बैंज़िलो बेतहाशा घबराया-सा दौड़कर जब सदर दर्वाजे के बाहर आया तो किसी ने पुकारा—

"बैंज़ी !"

देखा कि सामने मैरिथ चिन्ता-व्यग्र खड़ी है। मैरिथ ने पूछा—"बैंज़ी, गिडिटो कहाँ है ?"

"गिडिटो ?"

बैंज़िलो की घबराहट मैरिथ से छिपी न रह सकी। उसने ज़ोर देकर कहा—"हाँ, गिडिटो।"

"वह तो मुझे अन्दर नहीं मिला।"

"अन्दर नहीं मिला !—मेरे देखते देखते वह अंदर गया है; मैं नहीं जा सकी।"

"गया होगा, पर मुझे नहीं मालूम।"

उसने चिल्लाकर पूछा—'नहीं मालूम ?"

"नहीं !... . लेकिन तुम इस वक्त यहाँ कहाँ घूम रही हो। चलो घर चलें।"

"गिडिटो रात-रात भर तुम्हारी तलाश में घूमे,—और तुम्हें अब चैन की सूझे। ऐसे ही हो तुम ?...सच बताओ गिडिटो कहाँ है ?

'यहीं ख़त्म हो जाओगे।—बोलो, नहीं मालूम ?'

बेंज़िलो ने देखा, पिस्तौल सीधी उसके मुँह की तरफ़ तनी है, मैरिथ की आँखों में जैसे वज्र-काठिन्य जल रहा है। वह खुद निहत्था था, दूसरा पिस्तौल भी वहीं छूट गया था। उसने कहा—"मालूम होता है, मैंने उसे गोली मार दी है।"

मैरिथ इसपर एक चीख़ छोड़कर और रिवाल्वर बेंज़िलो के ऊपर फेंककर अन्दर भाग गई। वह भरी पिस्तौल छूटी नहीं, उसके बदन से लगकर धरती पर गिर पड़ी।

बेंज़िलो ने उसे उठा लिया।

× × ×

अन्दर आकर मैरिथ ने देखा, गिडिटो को कई रक्षक हथ-कड़ी डाले लिये जा रहे हैं। वह बाँह को कसकर पकड़े है। उसने अब मैरिथ को देखा तो कहा—

"मैरिथ ! तुम यहाँ कहाँ ? बेंजी तो तुम्हें याद कर रहा था। जाओ, उसकी देख-भाल करना। कहीं वह रो-रोकर मर न जाय।"

मैरिथ गई नहीं,—वह वहीं खड़ी देखती रही।

"छिः, यह क्या आँखें फाड़ रही हो !...जैसे बेंजी मैं ही हूँ। चलो, जाओ, बेंजी को ढूँढकर उसे सांत्वना दो।"

वह फिर भी नहीं गई।

"मैरिथ, देखो नहीं जाओगी तुम ?"

मैरिथ चुपचाप चली गई।

(६)

गिडिटो के ख़िलाफ़ प्रमाण संगीन थे। वह रात को महाराज के कमरे में पाया गया है। बाँह में गोली का घाव है। जेब में एक पिस्तौल मिली है। इतना होने पर भी वह छूट गया। एम्पर्ट का इस सम्बन्ध में ख़ास आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ था।

घर पर आकर उसने देखा, बेंज़िलो का सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। उसके दिल में एक अज्ञात आशंका घर कर बैठी। वह मैरिथ के पास गया। बेंजी वहाँ न था। गिडिटो ने डाटा; मैरिथ ने अपनी कर्तव्यपूर्णता जतलाते हुए, क्षमा माँगकर कह दिया—"मैंने बहुतेरा ढूँढा, मुझे वह नहीं मिला।"

गिडिटो ने कहा—'और ढूँढो मैरिथ ! जबतक न मिले, तबतक ढूँढो।"

"ढूँढूँगी तो, पर तुम भी कहीं खो न जाना।"

'मैं नहीं खोऊँगा,—पर उसे तो पाना ही होगा।"

"जो कहोगे, सो करूँगी। लेकिन कहे देती हूँ, वह बहुत जीता न रहेगा।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ। लेकिन ऐसे रूठकर तो वह न जाने पायगा।"

'गिडिटो, तुम ऐसे-ऐसे क्यों हो रहे हो ?"

"मैं कुछ भी नहीं हो रहा। मैं यह सोच रहा हूँ कि बेंजी के अब नेपोलियन बनने का अन्त आ गया है। मेरे पास बहुत सुख था; अब मेरा सुख का आधार छिन जायगा। और, मैरिथ, तुम्हारा सोहाग . ..."

"ठहरो गिडिटो। मेरे सुहाग की तुम चिन्ता करते होते तो क्या बात थी ? मैं जानती हूँ, मुझे अपने सोहाग का अर्घ्य किसकी वेदी पर चढ़ाना होगा। वह देवता स्वीकार करें या तिरस्कार कर दे, अर्घ्य तो समर्पण के ही लिए होता है।"

"तो मैं तुम्हारे बेंजी को ढूँढने जाता हूँ।"

कहकर वह चल दिया। मैरिथ ने सुना-सुनाकर कहा—"जाओगे तो हो ही। मेरे कहने से रुकनेवाले तुम थोड़े ही हो।"

× × ×

गिडिटो के कमरे में—

गि०—छिः, बेंजी, इस तरह भागा करते हैं ?

बे०—तुम बार-बार इतने बड़े क्यों बनते हो ? मुझे इसपर बहुत खीझ उठती है।

गि०—मैं बड़ा बनता हूँ ! बोलो, कहो तो तुम्हारे जूते साफ़ कर दूँ।

बे०—तुमने मुझे थप्पड़ क्यों मारा था ?

गिडिटो ने यह नहीं कहा कि थप्पड़ गोली से बहुत छोटा है। उसने कहा—"बस यही बात है ? तो यह लो, जितने चाहो मेरी पीठ पर जमाओ। यह कहकर बेंजी के पास एक बेंत रख दी।"

"गिडिटो तुम बड़े होशियार हो। लेकिन मैं तुम्हें बड़ा मानूँगा ही नहीं।"

'तुम तो हो पागल। मुझे बड़ा मानो या छोटा मानो। बला से, कुछ भी मानो। पर अपना मानो।"

"जितनी ऐसी बात कहोगे, उतना ही मैं तुम्हें दुश्मन समझूँगा।"

'अच्छा, दुश्मन ही समझो। लेकिन अब मैरिथ के पास जाओ। वह याद कर रही थी। नहा-धो लो और कपड़े बदल लो। कैसे मैले हो रहे हो !"

बेंज़िलो मन से चाहे कुछ भी कहे, पर ऐसी बातों में उसका गुज़ारा होता है गिडिटो की आज्ञाओं पर ही। वह स्नान के लिए चला गया।

गिडिटो ने इतने में एक नया-साफ़ सूट निकाल रक्खा। लौटने पर ठीक-ठीक करके उसे मैरिथ के पास रवाना कर दिया।

मैरिथ के घर का दर्वाज़ा बंद था। उसने नौकरनी को आज्ञा दी थी कि जो आये, पहले उसे सूचना दी जाय। बेंज़िलो ने दर्वाज़ा खटखटाया, नौकरनी मैरिथ के पास पहुँची। पूछा गया—"कौन है ?"

"बेंज़िलो।"

"उनसे क्षमा माँगकर कहना, मेरे मस्तक में बड़ी पीड़ा है। अभी न मिल सकूँगी। फिर पधारें।"

नौकरनी के मुँह से जब उसने यह सुना, घड़ों पानी उसपर गिर गया। उसने सोचा—'गिडिटो ने मुझे यहाँ तक बेवकूफ़ बनाया ! उसकी यह हिम्मत !' घर आकर सीधा पलंग पर पड़ गया। गिडिटो अनुपस्थित था।

(७)

इधर गिडिटो नायक-गोष्ठी में आया है। वही कमरा, वे ही लोग।

लारेंज़ो—बेंज़िलो का अपराध अक्षम्य है।

एंटिनो—मैं मानता हूँ, समिति के नियमों के अनुसार उसने बहुत बड़ा अपराध किया है। किन्तु नियमों में संशोधन की बहुत आवश्यकता है, उनमें अकड़े रहने की इतनी आवश्यकता नहीं है।

ला०—नियम नियम हैं। और जबतक वे बदल नहीं जाते तबतक उनका उल्लंघन सर्वथा दण्डनीय है।

गिडिटो—अपराध गुरुतम हो, वह हमेशा विचारणीय है। इसके विचार और फ़ैसले के लिए एक की बुद्धि पर निर्भर रहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। मैं तीन आदमियों की दण्ड समिति को इसका भार सौंप देना चाहता हूँ।... भाई एंटिनो की क्या राय है ?

ए०—अपराधी के हित की रक्षा में यह सबसे उत्तम उपाय है।

गि०—भाई लारेंज़ो ?

ला०—न्याय-बुद्धि को इसमें पूर्ण आशा है।

गि०—मैरिथ, सिपियो, गैरिबाल्डी,—इन तीनों की दंड समिति होगी। भाई एंटिनो अभियुक्त के पक्ष की ओर से वकील होंगे; भाई लारेंज़ो अभियोग की ओर से। मैं इससे संबन्ध नहीं रखना चाहता।

एं०—नायक को अपनी ज़िम्मेदारी से बचने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

ला०—दण्ड-समिति का फ़ैसला नायक के हस्ताक्षर के बाद प्रामाणिक होगा।

गि०—आप लोग छोड़ेंगे नहीं। बड़ी अनिच्छा से यह भार भी मुझे अपने सिर लेना होता है। भाई एंटिनो इसका ध्यान रक्खें कि अभियुक्त को सूचना न हो। सबसे इस संबन्ध में समानता, बन्धुता और प्रजातंत्र के नाम पर, इटली के मान-चित्र की छत्र-छाया में शपथ ले ली जाय।......सबको ध्यान रहे, परमात्मा की एक विभूति को, एक परमात्म-खंड को, मारने या जीवित रहने देने का भार उनपर है।

× × ×

घर पर गिडिटो आया तो बेंज़िलो आँखें मूँदे सो रहा था। इस समय इस चेहरे में, जिसके झरोखे झंप रहे थे, कैसा मनोमुग्धकारी भाव था ! न गुस्सा था, न स्नेह था, न

हास्य था, न कुछ था। बस, एक अमूल्य बालपन था, एक भोली स्वाभाविकता थी। उसे मालूम पड़ा, जैसे इस सौन्दर्य का यह अंतिम क्षण है।

वह सामने कुर्सी लाकर बैठ गया। बेंज़िलो के बाल उसके माथे पर आ रहे थे। उसने उन्हें पीछे को सरका दिया। वह फिर वहीं आ गिरे। उसने फिर सरका दिया। अबकी तीसरी बार उसने नहीं सरकाये। तीन-चार हिले-मिले बालों की इस उद्दण्ड लट को वह देखता रह गया। कैसे सुनहरे-सुनहरे बाल थे। और सबके सब तो सिर पर अच्छी तरह छंटे थे, यही लट कैसी हठ करके उसके माथे के आगे आ-आ पड़ती थी।

गिडिटो ने उस लट के अगले सिरे को कैंची से काट लिया। फिर बाल के वे नन्हें-से टुकड़े उसने दराज़ से एक लाकेट निकालकर उसमें बन्द कर दिये।

फिर अलग जाकर वह अपनी किताब पढ़ने लगा। लेकिन कौन जानता है, वह बेचारी किताब कैसी क्या पढ़ी गई!

(८)

गिडिटो और बेंज़िलो शतरंज खेल रहे हैं। गिडिटो हार पर हार रहा है। फिर भी जैसे हारना चाहता है। आज वह जैसे दिन भर हरएक से हारता रहना चाहता है।

बेंज़िलो, बेचारा बालक, झल्ला रहा है। इस शतरज के वक्त वह सब कुछ भूल जाता है। मात ज़रा-ज़रासी देर में हो रही है—इसपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है।

"गिडिटो, क्या हो रहा है? यहाँ चलोगे तो बड़ी शह लगेगी।"

"अरे, हाँ!"

....

"अच्छा, यह लो, मात हो गई!"

"अच्छा, बेंज़ी, अबके लो, मिनटों में मैं तुम्हें मात कर देता हूँ।"

"मात क्या ख़ाक दोगे?"

"ख़ाक वाक मत चाहो जी, मात दूँगा—मात! चारों खाने मात!"

"अच्छा।"

खेलना शुरू हुआ ही था कि सिपियो कमरे में दाखिल हुआ। गिडिटो पीला पड़ गया। बेंज़ी आगे की चाल सोच रहा था। गिडिटो ने कहा—

"बेंज़ी तुम नहाये नहीं! घंटों से शतरंज ही होती रही। इसे यों ही बिछी रहने दो। आओ नहा आओ।"

"मैं कहता हूँ, तुमसे क़यामत तक मात न हो।" बेंज़ी ने कहा।

"अच्छा नहा के आओ, फिर देखना।"

उसके चले जाने पर सिपियो ने फ़ौजी सलाम करके एक लिफ़ाफ़ा निकालकर पेश किया। गिडिटो ने फ़ौरन उसे खोल लिया। लिखा था—

बेंज़िलो ने—

अ. नियम-विरुद्ध, नायक-गोष्ठी की बिना सूचना और आज्ञा के, अलग दल बनाना प्रारम्भ किया।

आ. समिति की नीति के ख़िलाफ़, नायक की स्पष्ट आज्ञा को तोड़कर, एल्बर्ट की हत्या का प्रयत्न किया।

इ. इस प्रकार निरंकुशता और आज्ञोल्लंघन की प्रवृत्ति बढ़ाई।

ई. नायक को ख़तरे में डाला।

इसलिए—

प्राणदण्ड।

इसके नीचे तीनों अर्जों के हस्ताक्षर थे। नीचे एक और नोट था—

"मैरिय दण्ड की पूर्ति का भार खुद उठाना चाहती है। इसके स्वीकार करने में हम कोई आपत्ति नहीं देखते।"

इसके नीचे सिपियो और गैरीबाल्डी के हस्ताक्षर थे।

गिडिटो ने अभियोगों में (ई) का वाक्य काट दिया और अपने हस्ताक्षर कर दिये। सिपियो चला गया।

... ...

बेंज़िलो लौटा तो गिडिटो ने कहा—"शतरंज को बंद करो। आओ कुछ खायें-पियें।"

'लैम्बलेंडी' को बहुत ज़बर्दस्त आर्डर दे दिया गया। कई तरह की शराबें और सब-कुछ प्रस्तुत हो गया।

"गिडिटो, तुम शराब पीओगे?" बेंज़िलो ने पूछा।

"हाँ-हाँ, सुनते हैं, इसमें बड़े गुण हैं।" गिडिटो ने जवाब दिया।

दोनों ने जितना हो सका खाया और जितनी समा सकी शराब पी। फिर दोनों बदहोश सो गये।

(९)

मैरिथ की आयोजना से इस शनिवार के रोज़ झील की सैर के लिए जाने का निश्चय हुआ है।

खाने का सब सामान साथ है। आज गिडिटो बिलकुल पीला पड़ा हुआ है, लेकिन हद से ज्यादा प्रसन्न मालूम होता है। दो-तीन घण्टे झील में किश्तियों से सैर हुई। इस सारे काल में एक मिनट भी तो वह शायद ही चुप रहा है। दुनिया-भर के क़िस्से-कहानियाँ, चुहलबाज़ियाँ उसे सूझ रही हैं। घड़ी-घड़ी पर उसे शराब की आवश्यकता पड़ती है।

बेंज़िलो इन बातों से झल्ला रहा है। बड़ी पैनी दृष्टि से वह इन सब बातों को देख रहा है, और फिर-फिर कर [illegible] की ओर देख लेता है।

मैरिथ चित्र-सरीखा अपना एक जैसा चेहरा लेकर सब हँसी-खुशी में भाग ले रही है। क्या प्रलय उसके भीतर मच रही है,—कौन है, जो उसे जान सकता है? न मालूम वह आज अपनी क़ब्र खोदने जा रही है या मुक्ति पाने जा रही है!

झील के उस पार जंगल में अब आ गये हैं। गिडिटो ने कहा—"बेंज़ी, देखो, हँसोगे नहीं तो मैं गुदगुदी मचा दूँगा।"

"क्या आज ही हँस लोगे?"

"और नहीं तो क्या रोज़-रोज़ हँसना मिलेगा?"

"ठीक है, शायद रोज़-रोज़ नहीं मिलेगा।"

"बेंज़ी, इस जंगल में कोई हमारी आवाज़ नहीं सुनेगा। आओ, खूब हँस लें, फिर इकट्ठे रो लेंगे।"

"गिडिटो, तुम आज बिलकुल जानवर जान पड़ते हो।"

"जान पड़ता हूँ। बस! अरे, तुम्हें मालूम नहीं, मैं हूँ ही जानवर! लेकिन, कहता हूँ, रोज़-रोज़ नहीं रहूँगा।"

गिडिटो ने बहुत शराब पी ली थी। वह अब ऊटपटाँग बक रहा था। मैरिथ ने कहा—'बेंज़ी इधर आओ। उन्हें अब आराम करने दो।"

बेंज़िलो ने यह सुना, गिडिटो के आराम के प्रति मैरिथ की व्यग्र चिन्ता और उत्कण्ठा देखी, गिडिटो को देखा और फिरकर अपनी ओर देखती हुई मैरिथ को देखा, और 'आता हूँ' कहकर गिडिटो पर पिस्तौल तान दी। पर छोड़े ही छोड़े कि एक गोली उसकी छाती में लगी। वह ढह पड़ा। उसकी गोली हवा में सन्-सन् करती हुई निकल गई।

बेंज़िलो कुछ भी बोल न सका। बात की बात में निष्प्राण हो गया। गिडिटो ने आगे बढ़कर, उसी ज़िद्दी बालों की लट को हटाकर, बेंज़ी के माथे पर एक चुम्बन ले लिया। कहा—"मैरिथ, अब इसे उठाओगी नहीं?"

मैरिथ डर रही थी, गिडिटो न जाने क्या हो रहा था!

(१०)

चर्च के घेरे की ज़मीन में एक बहुत गहरा गढ़ा खोद-कर बेंज़ी की लाश उसमें रक्खी गई। फावड़े से गीली-गीली मिट्टी उसपर डाली गई। ८ फीट ऊँची, ४ फीट चौड़ी और ८ फीट लम्बी वह जगह मिट्टी से ऊपर तक भर दी गई।

समिति के सब सदस्य आये थे, और अब चले गये। किसीने उसपर एक आँसू नहीं बहाया।

गिडिटो मुंह लटकाये खड़ा था—जैसे उसकी आँखों में का पानी और बदन में का ख़ून सब सूख गया है।

बस, मैरिथ रो रही थी। बेचारे मृत बेंज़ी के लिए नहीं किन्तु बेचारे जीवित गिडिटो के लिए।

सबके चले जाने पर गिडिटो ने आगे बढ़कर उस क़ब्र पर ताज़ी-ताज़ी पड़ी हुई मिट्टी का एक चुंबन ले लिया। पास से एक फूल को तोड़कर उसके सिरहाने रख दिया। और गर्दन लटकाये हुए एक तरफ़ को बढ़ चला।

मैरिथ पीछे लपकी—चिल्लाई—

'गिडिटो!'

'हाँ'—यह हाँ जैसे उसी क़ब्र में से निकल रही थी।

'कहाँ जाते हो?'

'घर'

'मेरे यहाँ नहीं?'

'नहीं।'

मैरिथ भी इसपर वैसा ही मुँह लटकाये दूसरी तरफ़ चल दी।

'क्लाइव का गधा' और उसके बाद—*

[श्री रामनाथलाल 'सुमन']

भारत में अंग्रेजी राज्य के आरम्भ का इतिहास ऐसी धोकेबाजियों, षड्यंत्रों, जुल्मों और चरित्रहीनताओं से भरा हुआ है कि अन्य देशों के इतिहासों के पन्नों में उनकी मिसाल नहीं मिल सकती। आज शक्ति हाथ में आ जाने के कारण जो अंग्रेज अधिकारी और भारतीय सभ्यता की हँसी उड़ाने वाले विदेशी प्रचारक गण भारतीयों की चारित्रिक दुर्बलता के सच्चे-झूठे क़िस्से गढ़कर और बड़े गर्व से कहने का अधिकार लेकर दुनिया के सामने रखने को उत्सुक हैं; जो न केवल शारीरिक वरन् चारित्रिक दृष्टि से भी भारतीयों को अपने से अधम समझते हैं, मुझे विश्वास नहीं है कि वे भारतीय साम्राज्य के आरम्भ की कहानी पढ़कर देर तक सर ऊँचा किये रह सकते हैं। अंग्रेजों के विश्वासघात और जालसाजी के नमूनों से विगत तीन सौ वर्षों और विशेषतः ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के शासन-काल का इतिहास भरा पड़ा है।

हम आज गुलाम हैं; हमसे कहा जाता है कि यदि तुम्हारा चरित्र दुर्बल न होता और हम तुमसे श्रेष्ठ न होते तो तुम पराजित और पराधीन ही क्यों होते? बात चुभनेवाली है और सत्य से खाली भी नहीं। हम मानते हैं कि हमारे यहाँ अमीचन्द जैसे भी कितने ही थे पर हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि अमीचन्द के विश्वासघात की तुलना क्लाइव के विश्वासघात से नहीं की जा सकती। अमीचन्द ने जब अपने भारतीय शासक के प्रति विश्वासघात करके अंग्रेजों की सहायता की तब उन्हें अंग्रेजी चरित्र में विश्वास था; तब वह समझते थे कि अंग्रेज बात के सच्चे निकलेंगे। वह क्या जानते थे कि अंग्रेजी साम्राज्य-विस्तार के इतिहास के पन्ने धोखेबाजों की स्याही से ही काले किये जाने वाले हैं। चोरों और डाकुओं में भी जबान एक चीज समझी जाती है पर चाहे मीरजाफर के साथ हो या मीरकासिम के, हैदरअली के साथ हो या मराठों के, अंग्रेज अपनी बात के पक्के कभी साबित न हुए। इसीलिए भारत में अंग्रेजी शासन का इतिहास जिन्होंने अच्छी तरह पढ़ा और समझा है, वे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारा राज्य चले जाने का एक बहुत बड़ा कारण हमारा भोलापन और सादगी थी जो बहुत जल्द दूसरों की बात पर विश्वास कर लेती थी। पर जहाँ धोका देकर काम बना लेना राजनीति का चरम विकास समझा जाता हो, वहाँ के अधिवासियों से चारित्रिक आदर्श के सम्बन्ध में बहस करना महज़ फ़िजूल है।

इंग्लैण्ड के इतिहास में क्लाइव का नाम बड़े आदर के साथ आता है। वह ब्रिटिश साम्राज्य का जन्मदाता और राष्ट्र का आदर्श वीर कहा जाता है। हम मानते हैं कि क्लाइव अंग्रेजी राष्ट्र का वह प्रतीक (Symbol) था जिसके रूप में पहली बार हमने इंग्लिस्तान को देखा। यह क्लाइव वही था जिसके सम्बन्ध में अंग्रेज इतिहासलेखकों तक को लिखना पड़ा है कि धोकेबाजी उसकी आदत में दाखिल थी

* शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली हमारी नई पुस्तक 'जब अंग्रेज़ आये—' की भूमिका।

और धोका देने में उसे कभी पश्चात्ताप या दुःख न होता था। यह वह क्लाइव था जिसने यह जानते हुए भी कि इंग्लैण्ड में जालसाजी की सजा प्राणदण्ड है, पार्लमेण्ट की जाँच-समिति के सामने बड़े अभिमान के साथ अपनी धोकेबाजियों और षड़यन्त्रों का ज़िक्र किया था और यह इंग्लैण्ड का ही चारित्रिक आदर्श था कि दण्ड देने के बजाय, एक-दूसरे देश में, एक दूसरे राजा के राज्य में (जिसने अंग्रेजों को अतिथि के योग्य आदर के साथ शरण दी) जालसाज़ी करने के पुरस्कार-स्वरूप उसे 'लार्ड' की उपाधि दी गई, उसकी मूर्ति खड़ी की गई और उसके सम्मान में तमगे ढाले गये।

❀ ❀ ❀

अंग्रेज भारत में या तो बाइबिल लेकर आये या व्यापार की गठरी लादे हुए। पहले वर्ग ने महात्मा ईसा के पवित्र नाम पर और दूसरे ने व्यापार-विस्तार के नाम पर भारतीय जनता के साथ क्या क्या नहीं किया? पादरियों के लम्बे चोगों के भीतर भी वही कवच था जिसे व्यापार की आड़ में व्यापारी अंग्रेजों ने उस समय तक छिपा रक्खा था जबतक उनके हाथों में उसे प्रकट करने की ताक़त नहीं आगई। इतिहास के साधारण विद्यार्थी धर्म-प्रचारकों और व्यापारियों के इस गूढ़ सम्बन्ध को शायद न समझें पर अंग्रेज भारतीय साम्राज्य का उद्भव इन दोनों को ही लेकर हुआ है। पहले वर्ग का रूप धार्मिक एवं सांस्कृतिक आवरणों से ढका था इसलिए उसे पहचानना सरल काम न था और दूसरे वर्ग का सम्बन्ध सीधे देश के राजा या शासक से होने के कारण वह सहज ही आँखों में चढ़ गया।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि भारत में अंग्रेजों का प्रवेश सबसे पहले हुआ तो भारत के पश्चिमी तट पर किन्तु उनके साम्राज्य की नींव बंगाल में पड़ी। इसका कारण यह है कि एक तो बंगाल, विद्रोह की अवस्था में और बहुत अरक्षित-सा था और दूसरे उसमें उपज की बहुत अधिकता होने के कारण व्यापार के लिए अधिक सुविधायें थीं; धनका अधिक आकर्षण था। इसके अतिरिक्त एक बड़ा कारण यह भी है कि मुग़ल-साम्राज्य के ह्रास के साथ-साथ पश्चिमी तट पर मराठों की शक्ति बढ़ती गई; उनकी जल-सेना से मुठभेड़ करना अंग्रेजों के लिए उतना आसान नहीं था जितना दुर्बलकाय बंगालियों को धोखा देकर या उनमें फूट डालकर उन्हें पराजित कर लेना। इसलिए अंग्रेजों की दृष्टि बंगाल की ओर शुरू से ही लग गई।

❀ ❀ ❀

बंगाल में अंग्रेजों के श्रीचरण औरंगजेब के काल में पड़ने शुरू हुए। इसके पहले बम्बई में भी वहां की प्रजा पर इनके अत्याचार इतने बढ़ गये थे कि औरंगजेब ने इनकी कोठियां जब्त कर लेने और इन्हें इस देश से मारकर निकाल बाहर करने की आज्ञा दे दी थी। सूरत इत्यादि की कोठियाँ जब्त करके इन्हें निकाल बाहर भी किया गया पर ये इतने चपट थे कि बम्बई की कोठियों के घिरने पर झट औरंगजेब के चरणों पर गिर पड़े; माफ़ी माँगी और नेकचलनी का वादा किया। औरंगजेब बेचारा, जो एक ज़बर्दस्त और कठोर शासक होने पर भी, आखिर हिन्दुस्तानी ही था, इनके चकमे में आ गया और उसने न केवल इनकी कोठियों वापिस कर दीं वरन् १६९९ में अपनी कोठियों की रक्षा के लिए साधारण क़िलेबंदी करने की भी आज्ञा दे दी। पीछे उसके पौत्र आजमशाह ने (जो बंगाल का सूबेदार था) हुगली नदी के तट के तीन गाँवों (कलकत्ता, गोविन्दपुर और छूतानटी) की जागीर कम्पनी को दे दी।

यह जागीर ही हमारे लिए काल बन गई। यहीं से अंग्रेजी राज्य की नींव का पड़ना आरम्भ होता है। पीछे कलकत्ता में, इसी जागीर के अन्दर, क़िला (फ़ोर्ट विलियम) बन गया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य अपने आन्तरिक विद्रोह के कारण छिन्न-भिन्न होने लगा और १७६१ की पानीपत की लड़ाई में भारतीय शासन का साफ़-साफ़ अन्त हो गया। इस अशान्त अवस्था के अन्दर अंग्रेजों की महत्वाकांक्षा बराबर बढ़ती ही गई। क़िलेबंदियाँ हुईं; फिर सेना रक्खी जाने लगी; धीरे-धीरे उस सेना के द्वारा देशी कारीगरों और किसानों को अपने स्वार्थ के लिए तंग किया जाने लगा। किसी को पकड़वाकर पिटवा देना एक मामूली बात हो गई! किसान अत्याचारों से त्राहि-त्राहि करने लगे; देशी कारीगर इनके जुल्मों से ऊब-कर भाग खड़े हुए। देश का उद्योग-व्यापार नष्ट हो चला। यह इन विदेशी बनियों को शरण और सहायता देने का पुरस्कार था!

बातें बढ़ती गईं, फल-स्वरूप १७५७ में पलासी का वह विख्यात युद्ध बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच हुआ जिससे अंग्रेजी सल्तनत का पाया इस देश में पहली बार मज़बूती के साथ बैठ गया। कुछ देशद्रोही भारतीयों के विश्वासघात ❋ और अपनी चालबाजी के कारण इस युद्ध में अंग्रेज़ विजयी हुए; सिराजुद्दौला की जगह मीरजाफ़र गद्दी पर बिठाया गया।

मीरजाफ़र एक स्वार्थी और बुड्ढा आदमी था, जैसा कि विश्वासघाती और देशद्रोही प्रायः हुआ करते हैं। उसमें वह नैतिक साहस कहाँ से आ सकता था जो सिद्धान्तों के ऊपर मर मिटने वालों में हुआ करता है। एक बूढ़ा आरामतलब, स्वार्थी आदमी था, जो स्वतंत्र राजा होने की महत्वाकांक्षा रखते हुए भी, ख़तरों से दूर रहकर ऐशो-इशरत की ज़िन्दगी बिताना चाहता था। इसलिए गद्दी पर बैठने के बाद भी वह आजकल की उन मूर्तियों के समान हो गया जिन्हें पुजारी तथा पंडे टके वसूल करने के लिए अपनी इच्छानुकूल स्थापित करते और बदलते रहते हैं। बङ्गालरूपी मन्दिर के जड़-वत् अधिपति मीरजाफ़र का क्लाइव प्रधान पंडा था। मीरजाफ़र का काम इतना ही रह गया कि वह चुपचाप महल में पड़ा रहे और अपने पण्डे अंग्रेज़ अधिकारियों की जेबें भरता रहे। उसके गद्दी पर बैठते ही, लगभग ७३ लाख रुपये तो कलकत्ता की अंग्रेज़ कमेटी के पास पहुँच गये। यह धन ७०० सन्दूकों में भरकर १०० नावों के सहारे कलकत्ता पहुँचा। मतलब यह कि मुर्शिदाबाद का ख़ज़ाना कलकत्ता की अँग्रेज कोठी में, बिना किसी झगड़े-झंझट के पहुँच गया। क्लाइव के मित्र इतिहासकार ओर्मी ने ठीक ही लिखा है कि 'पहले कभी अँग्रेज-जाति को एक साथ इतना अधिक नक़द धन नहीं मिला था।' ❋ सचमुच अँग्रजों की चाँदी थी। मीरजाफ़र-जैसे निकम्मे और दुर्बल शासक भारत के इतिहास में बहुत थोड़े हुए होंगे। न तो उसमें दबंगपन था, न राजकीय तेजस्विता ही और न दूर-दर्शिता। इसी से चिढ़कर एक दिन व्यंग में उसके *परिहास प्रिय मुसाहब मिर्ज़ा शमशेरुद्दीन ने उसे*

❋ इस युद्ध में सिराजुद्दौला की विजय निश्चित-सी थी *पर उसके प्रधान सेनापति मीरजाफ़र तथा सहायक सेनापति दुर्लभराम तथा यारलुत्फ़ख़ाँ ४५००० सेना लेकर युद्ध के बीच, ऐन वक्त पर, अंग्रेज़ों की ओर मिल गये। इनमें पहले ही समझौता हो चुका था।*

* Orme's History of Indostan, Vol II. pp. 187—88.

'क्लाइव का गधा' की उपाधि दी थी। इसमें सन्देह नहीं कि मीरजाफ़र की सम्पूर्ण जीवन-विधि इस उपाधि के सर्वथा योग्य थी। इन दो शब्दों में उसके जीवन का जो विश्लेषण हुआ है; उसका प्रायः सभी कुशल इतिहास लेखकों ने समर्थन किया है। धोबियों के गधे जिस प्रकार सुबह से शाम तक बोझ ढोकर संध्या समय रूखी-सूखी घास छोड़ और कुछ खाने को नहीं पाते, अंग्रेजों का बोझा ढोने जाकर, बंगाल बिहार-उड़ीसा के सिंहासन पर पदार्पण करके भी, मीरजाफ़र को वही विडम्बना भोगनी पड़ी। गद्दी पर बैठने के पूर्व जिस सुख की कल्पना उसने की थी वह भी पूरी न हुई। राज्याधिकारी तक उसकी ओर न देखकर क्लाइव और अंग्रेज अफसरों के इशारों पर नाचने लगे। मानो सब कुछ होकर भी उसका कुछ नहीं था। जो अंग्रेज अभी चन्द साल पहले मुर्शिदाबाद की सड़कों पर चलते समय डर से काँपते रहते थे, वे आज दुर्बल 'क्लाइव का गधा' को गद्दी पर बिठाकर उसकी आड़ में उच्छृङ्खलता का ताण्डव-नृत्य करने लगे। व्यापार का नाश होने लगा; खजाने में रुपया नहीं रह गया। उधर अंग्रेजों की धन की प्यास दिन-दिन बढ़ती गई; 'लाओ, लाओ' का स्वर तीव्रतर हो गया। मीरजाफ़र घबड़ा गया। खजाने में रुपया नहीं; देश का व्यापार नष्ट हो जाने से राज्य की आय का स्रोत भी बन्द हो चला। इसलिए शासन-कार्य चलाना ही असंभव होने लगा। तब मीरजाफ़र अपने पापों का स्मरण करके कांप उठा। उसे भी समझते देर न लगी कि इतनी कठिनाइयों के बाद जो राज-सिंहासन मिला; जिसके लिए दया-धर्म, कर्त्तव्य-बुद्धि, स्नेह-ममता सबको पैरों तले कुचलकर, कुरान को स्पर्श करके झूठी क़सम खाने में भी लज्जा न की वही पैरों के नीचे है किन्तु कोई स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला शासक उसका स्वामी नहीं वरन् क्लाइव ही उसका वास्तविक मालिक है और मैं उसका बोझ ढोकर पाप की कमाई करनेवाला गुलाम-मात्र हूँ।

ऐसा जान पड़ता है कि नशा उतर जाने पर मीरजाफ़र को अपने इन कृत्यों पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ था और उसके मन में एक बार अपनी स्थिति मजबूत करने की भावना भी उठी थी पर अनुसन्धान से यह जानने में उसे देर न लगी कि मेरी मूर्खता से यह रास्ता पहले ही बन्द हो गया है।

बात यह थी कि अलीवर्दीखाँ और सिराजुद्दौला दोनों ने राज्य-कार्य में हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को कभी स्थान नहीं दिया था। वे राजा का कर्त्तव्य समझकर धार्मिक झगड़ों को कभी इन दोनों जातियों के बीच खड़ा न होने देते थे। यह आश्चर्य की बात है कि कर्नल क्लाइव के संरक्षण में मीरजाफ़र के गद्दी पर बैठते ही इस धार्मिक भेद-नीति ने शासन पर जोरों से हमला शुरू किया। अभी कुछ दिन पहले तक, जब मीरजाफ़र सिराज का प्रधान सेनाध्यक्ष था, उसमें ये भेद-भाव के दृष्टान्त नहीं पाये जाते थे पर गद्दी पर बैठते ही न जाने किसने उसपर ऐसी जादू की लकड़ी फेर दी कि उसने चुन-चुनकर हिन्दुओं को तमाम ऊँचे पदों से हटाना और उनपर मुसलमानों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। इसका फल यह हुआ कि सम्पूर्ण शक्तिमान हिन्दू सरदार उसके विरोधी हो गये। इस प्रकार अंग्रेजों से मित्रता करने जाकर जहाँ उसने अपनी राजशक्ति को खेलवाड़-सा कर दिया वहाँ उनके कुचक्र में पड़कर उसने अपने को सरदारों और हितैषियों के सहयोग से वंचित करके अपने पुनरुत्थान का मार्ग भी सदा के लिए बन्द कर दिया।

इस प्रकार बंगाल-बिहार और उड़ीसा में आन्त-

रिक कलह को जगाकर और धोका-धड़ी तथा मुठमर्दी से देशी व्यापार का सत्यानाश करके क्लाइव भारत से विदा हुआ। यही नहीं उसने अपनी जेब भी खूब भर ली। जो क्लाइव कुछ ही दिनों पहले एक दीन-हीन क्लर्क बनकर भारत आया था, अपने विश्वासघात-कला के पाण्डित्य तथा कतिपय भारतीय देशद्रोहियों की अदूरदर्शितापूर्ण स्वार्थपरता के कारण संसार का एक बड़ा धनिक बनकर तथा इतिहास को अपनी करतूतों से कलंकित कर समकालिक अंग्रेजों के बच्चों के लिए एक बहुत बड़ी जायदाद पुश्त-दर-पुश्त भोगने का इन्तज़ाम करके स्वदेश लौटा। उसके बाद 'काल कोठरी' के कल्पित हत्याकांड का गप्पी रचयिता हालवेल गवर्नर बनाया गया। पर वह अधिक दिन तक इस देश में टिक न सका। और उसके बाद वांसिटर्ट नामक एक बुद्धू और कमजोर स्वभाव का आदमी इस पद पर नियुक्त हुआ।

पर क्लाइव हो या हालवेल, वांसिटर्ट हो या हेस्टिंग्स, आदम हो या कैलो सब एक ही जाति या देश के आदमी थे, एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे। स्वार्थपरता इनमें भरी थी और नैतिक आदर्शों को ये दिल्लगी की चीज समझते थे। हालवेल ने आते ही मीरजाफ़र में झूठे-सच्चे दोषों का आविष्कार आरंभ किया। जो मीरजाफ़र कल तक अच्छा था; जिसके समर्थन में बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी उठ खड़े हुए थे, आज 'दुष्ट, नालायक़ और फाँसी पाने के योग्य' क़रार दिया जाने लगा। पीछे, काम निकल जाने पर सभी ने स्वीकार किया कि मीरजाफ़र ने सन्धि के नियमों और शर्तों का पालन करने का सदैव प्रयत्न किया पर मतलब के समय, उसे गद्दी से उतारने के लिए, सभी उसके विरुद्ध हो गये। बात असल यह थी कि गाय का सारा दूध दुह लिया गया था और अब, जब उससे आगे दूध निकलने की कोई उम्मीद न थी, उसे घर से निकाल बाहर करना स्वार्थपरता की गोद में पले हुए लोगों के लिए बिलकुल स्वाभाविक था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुछ रह नहीं गया था; अब मीरजाफ़र से कुछ आमदनी की आशा नहीं की जा सकती थी। इसलिए उसके विरुद्ध अनेक प्रकार की बातें उड़ाई जाने लगीं। और कलकत्ता की अंग्रेज-कमेटी में बहुत जल्द उसके विरोधियों का प्राधान्य हो गया। गप्पी और मक्कार हालवेल ने उस पर तरह-तरह के इल्ज़ाम लगाने शुरू कर दिये। उसे ज़ालिम, लालची और सुस्त बनाता गया।* उसपर निर्दोष आदमियों की हत्या करने का इल्ज़ाम लगाया गया और षड्यन्त्र करके उसके पुत्र मीरन को (जो अंग्रेजों की चालबाज़ियों को खूब समझता था) दुनिया से सदा के लिए उठा दिया गया।†

---

* "The Nawab Jaffir Ali Khan, was of a temper extremely tyrannical and avaricious, at the same time very indolent, and people about him being either abject slaves and flatterers or else the base instruments of his vices; ....numberless are the instances of men, of all degrees, whose blood he has spilt without the least assigned reason."—Holwells' Address to the proprietors of the East India Stock, p. 46.

† एक दिन आधी रात को ख़ीमे के अन्दर चारपाई पर मीरन मरा हुआ पाया गया। मशहूर यह किया गया कि बिजली गिरने से उसकी मौत हुई, पर जैसा कि बर्क ने व्यंगपूर्ण भाषा में पार्लमेंट के सामने कहा था—"वह कैसी विचित्र बिजली रही होगी कि ऊपर का ख़ीमा ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा; बिजली के गिरने की आवाज़,पास सोये हज़ारों सैनिकों में से किसी को सुनाई न पड़ी और मीरन उसके प्रहार से मर गया!"

धीरे-धीरे अंग्रेजों ने प्रान्त के कई शक्तिमान सरदारों एवं नवाब-सरकार के अधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया। अंग्रेजों का मतलब तो रुपया चूसना और अपनी जमींदारी या राज्य बढ़ाना था; उन्हें न्याय-अन्याय नहीं देखना था; न उन्हें मीरजाफ़र या मीरकासिम में से किसी के प्रति सहानुभूति थी। जब मीरजाफ़र से रुपया मिलने की उम्मीद न रही तो उसके दामाद मीरक़ासिम के साथ साजिश करके उसे गद्दी से उतारने का षड्यन्त्र किया गया और षड्यन्त्र सफल होने पर अनेक व्यापारिक एवं व्यावहारिक सुविधाओं के साथ पच्चीस लाख रुपये पाने की शर्त भी अंग्रेज अधिकारियों ने मीर-क़ासिम से करा ली।

सभी इतिहासकारों ने मीरक़ासिम की दृढ़ता, स्वदेश-प्रेम, साहस और लगन की प्रशंसा दिल खोल-कर की है। ऐसा आदमी इस नीच षड्यन्त्र में क्यों शामिल हुआ? क्या स्वार्थ-सिद्धि के लिए? नहीं; क्योंकि उसका सारा जीवन-क्रम हमारे मन में ऐसा कोई भाव ठहरने नहीं देता। असल में तो मीर-क़ासिम का दिल, मीरजाफ़र की कायरता और दब्बूपन पर जल रहा था। थोड़े से विदेशी बनियों के हाथ स्वदेश की ऐसी दुर्दशा देखकर वह अपने को शान्त न रख सकता था। धीरे-धीरे उसके मन में यह धारणा बढ़ती गई कि मीरजाफर जैसे निकम्मे और पस्त-हिम्मत आदमी के गद्दी पर होते हुए कुछ नहीं हो सकता। इसलिए उसने सबसे पहले, जिस प्रकार हो, उसे गद्दी से हटाने का निश्चय किया। सब बात-चीत पक्की हो जाने पर अंग्रेजों ने मीरजाफ़र के सामने असम्भव शर्तें पेश करनी शुरू कीं। अब बातें इतनी खुली-खुली हो रही थीं कि मीर जाफ़र-जैसे कमअक़्ल आदमी को भी अपनी परिस्थिति समझने और अपने भविष्य का अनुमान करने में देर न लगी। पर अब क्या हो सकता था? जो मूर्खता की जा चुकी थी, उसके प्रतीकार का कोई उपाय न था। हालवेल ने अपनी कल्पना के बल पर 'ढाका की हत्या-कहानी' की सृष्टि कर और उसका प्रचार करके तथा, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मीरजाफ़र के ऊपर अनेक झूठे * दोष लगाकर उसे सर्वत्र बदनाम कर दिया था। मीरजाफ़र की अदूरदर्शिता ने परिस्थिति और भी खराब कर दी थी, इसलिए जब सेनापति कैलो ने उसके सम्मुख मीरक़ासिम को शासन-भार सौंप देने का प्रस्ताव उपस्थित किया तो वह दुःखी और निराश होकर, निरुपाय व्यक्ति की नाईं, सिर्फ़ इतना ही कह सका "× × × आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा। मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में इस तरह की कपटपूर्ण चाल चलने की होती तो मैं चाहते ही बीस हज़ार फ़ौज जमा करके आप लोगों से लड़ सकता था। मेरे पुत्र मीरन ने मुझे इन बातों के सम्बन्ध में पहले ही आगाह किया था!"†

* क्लाइव ने स्वयं ही इंग्लैण्ड के संचालक मण्डल को पत्र लिखकर इस कल्पित कहानी का खण्डन किया है। वह लिखता है—" × × × In justice to the memory of the late Nabab Meer Jaffier, we think it incumbent on us to acquaint you, that the horrible massacres with which he is charged by M. Holwell............are cruel aspersions on the character of that Prince, *which have not the least foundation in truth.* —Letter addressed to the Hon'ble Court of Directors by Clive and others, 30th September 1766 Supplement.

† Malcolm's Life of Clive, Vol II, p. 268.

२० अक्तूबर १७६० का दिन था। अन्धकार दूर हो चला था पर सूर्य उगने में अभी दो-एक घण्टे की देर थी। अफ़ीमची और बूढ़ा मीरजाफ़र महल में आराम से सोया हुआ था। और लोग भी मीठी नींद ले रहे थे कि कम्पनी की सेना ने महल घेर लिया। शोर-गुल से जागकर जब मीरजाफ़र ने खिड़की से देखा तो चारो ओर सेना ही सेना! सिंह-द्वार पर गवर्नर का पत्र हाथ में लिये हुए स्वयं सेनापति कैलो सशस्त्र उपस्थित हैं। मीरजाफ़र को समझते देर न लगी कि अब समय पूरा हो गया है। वही अंग्रेज़! वही कुटिल कौशल! वही राजप्रासाद! मीरजाफ़र सोचकर कांप उठा; जीवन की ममता जग गई। सिराजुद्दौला की दुर्दशा और उसके साथ किये हुए विश्वासघात का स्मरण हो आया। तीन वर्ष पूर्व पलासी--मराभिनय के आरंभ में अपने जीवन के पहले अंक में नवयुवक सिराज के सिंहासन की रक्षा के लिए मीरजाफ़र को हम कुरान हाथ में लिये देखते हैं किन्तु पीछे दूसरे अंक में वही मीरजाफ़र अंग्रेज़ों की सहायता से सिराज का नाश करने का षड्यन्त्र रचता दिखाई देता है। आज ठीक उसी प्रकार, उससे भी अधिक लाचारी की अवस्था में अपने को बिकते देखकर मीरजाफ़र की मानसिक अवस्था क्या हुई होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है पर उस समय भाग्य के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर मीरजाफ़र के मुँह से कोई बात न निकल सकी। वह मुकट उतारकर धीरे-धीरे सिंह-द्वार पर विनीत भाव से आ खड़ा हुआ। इतिहासकार मैलीसन उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए बहुत ठीक लिखता है—

"निस्सन्देह उस महत्वपूर्ण प्रभात में बूढ़े मीरजाफ़र को तीन वर्ष से कुछ अधिक पहले के उस दिन की याद आई होगी, जब कि पलासी के रणक्षेत्र में, इन्हीं अंग्रेज़ों से गुप्त समझौता करके, उस मसनद के लिए, जिसे अब उसका एक सम्बन्धी उसी प्रकार के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, उसने अपने स्वामी और आत्मीय सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया था। उसके मन मे अवश्य यह बात आई होगी कि इतने नीच और कलङ्कपूर्ण ढंग से प्राप्त किया हुआ सिंहासन मेरे किस काम आया? सिराजुद्दौला से छीने हुए महल में बीतने वाले तीन वर्ष के समय में जो कष्ट और अपमान भोगने पड़े उसके सामने हमारे पिछले ५८ वर्षों के समस्त दुःख नगण्य हैं। यदि मैंने अपने बालक सम्बन्धी और मालिक सिराज की प्रार्थना मानकर उसकी पगड़ी की लाज बचाने के लिए प्रयत्न किया होता तो आज मेरी कितनी इज्ज़त होती? आज जो विदेशी मुझपर हुकूमत चला रहे हैं, उनके हाथ में यदि मैंने अपने देश को बेच न दिया होता और उनके विनाश में अपनी शक्ति लगाता तो मेरा देश बच गया होता, मेरे हाथ में असली ताक़त होती और मेरा नाम इज़्ज़त के साथ लिया जाता। किन्तु मेरी भूल के कारण आज लाल वर्दी वाले अंग्रेज़ सिपाही मेरे ही एक सम्बन्धी के झण्डे के नीचे, मुझे गद्दी से उतारने के लिए मेरा महल घेरे खड़े हैं! मैंने सिराज के साथ जो व्यवहार किया था उसे देखते हुए क्या मीरक़ासिम मेरे साथ अधिक दयापूर्ण व्यवहार करेगा? × × ×।"*

इस प्रकार छल-कपट और विश्वासघात की मूर्ति मीरजाफ़र का अन्त उसी के दिखलाये हुए उपायों से हुआ।

यह मानना पड़ेगा कि मीरजाफर ने कभी अंग्रेज़ों का धोखा नहीं दिया। उसने स्वयं कष्ट और

* Malleson's Decisive Battles of India pp. 131—32.

अपमान सहकर भी सन्धि की सब शर्तें पालन कीं। फिर भी मित्रता और हितैषिता की बातें करनेवाले अंग्रेजों ने उसे बिना किसी अपराध के, बिना सफाई का मौका दिये धोखा दिया और उसके साथ अत्यन्त नीचतापूर्ण व्यवहार किया। ऐसी आचार-हीनता और जुल्म की मिसाल इतिहास में मिलना कठिन है। * स्वयं अंग्रेज इतिहासकारों ने इसकी निन्दा करते हुए लिखा है—"अंग्रेज लोग बाइबिल चूमकर ईश्वर और ईसामसीह के पवित्र नाम पर मीरजाफर के साथ जिस धर्म-प्रतिज्ञा में आबद्ध हुए थे उसकी पूर्ति के लिए मीरजाफर के सिंहासन की रक्षा करने को बाध्य होते हुए भी अर्थ-लोभ से दूसरे के हाथ बेचकर गवर्नर एवं कौंसिल ने अंग्रेज-जाति को कलंकित किया।" † खुद कौंसिल के चन्द सदस्यों ने विलायत लिख भेजा था—"अंग्रेजों की धर्म-प्रतिज्ञा और उनका जातीय सम्मान चूर्ण कर मीरजाफर को सिंहासनच्युत किया गया है।"‡ पर जो कुछ किया गया और जो-कुछ आगे होने वाला था वह तो होकर ही रहा। अंग्रेज अधिकारियों की धोखा-धड़ी और चालबाजियों के कारण बंगाल से भारतीय राज्य उठ-सा गया। लार्ड क्लाइव ने पार्लमेंट के सामने बड़े गर्व से कहा था कि "मैं ऐसी स्थिति में जालसाजी करना आवश्यक समझता हूँ और काम पड़ने पर सौ बार इसे फिर करूँगा।"

× × ×

'क्लाइव का गधा' वज्रमूर्ख मीरजाफर के बाद साहसी दृढ़निश्चयी, देशभक्त एवं गम्भीर मीरक़ासिम का बंगाल के रंगमंच पर प्रवेश हुआ। गद्दी पर बैठते ही मीरक़ासिम ने जहाँ एक ओर सन्धि के नियमों का पालन करना शुरू किया, वहीं चुपके-चुपके वह अपनी स्थिति सुधारने और शक्ति बढ़ाने के काम में भी लगा। महलों में राग-रंग एकदम बन्द हो गया। मानों किसी ने एकाएक सजीव विलास का गला घोट दिया हो। शान-शौकत को फाँसी दे दी गई; हास्य-कौतुक निकाल बाहर किया गया। सादा जीवन बिताने के लिए जो जरूरी चीजें थीं, वही रक्खी गईं; राज्य के सब विभागों में भी खर्च घटा दिया गया।

अपने उद्देश्य की सफलता के लिए अंग्रेजों के महत्व को शासन से निकाल बाहर करना मीरक़ासिम को पहला कर्तव्य समझ पड़ा। उसने सोचा कि पहले ये बनिये मुगल-सिंहासन के आश्रय में पेट भरने की कोशिश करते थे। देश के शासन या देशवासियों के सुख-दुःख से इन्हें कोई मतलब न था। यह बात बहुत दिनों की नहीं केवल ३—४ वर्ष पूर्व की है जब सिराजुद्दौला के अमलों तक के राजपथ पर चलते समय अंग्रेजों की अन्तरात्मा कांप उठती थी; बात बात में अंग्रेज गुमाश्तों को हाथ जोड़े राजमहल तथा दरबार में खड़ा रहकर दीनता

---

* Surely, Cortez and Pizarro were not guilty of so base a treachery when they arrested Montezuma and the Inca Athahualpa, for they offered the Inca an opportunity of answering the charges preffered against him before a tribunal.

—*The rise of Christian Power in India by B. Basu.*

† "Thus was Jaffier Ally Khan deposed in breach of treaty founded on the most solemn oaths and in violation of the national faith."

—*Letter from some gentlemen of the Calcutta Council.*

‡ Ternen's Empire in Asia.

दिखानी और क्षमा माँगनी पड़ती थी। ज़रा भी असभ्य और उच्छृंखल व्यवहार करते ही हथकड़ी-बेड़ी से बँधकर नवाब की घुड़साल के अन्दर कारागृह का कष्ट भोगना पड़ता था। पर तीन ही वर्षों में क्या से क्या हो गया? मीरकासिम ने विचारकर देखा—, केवल दो ग़लतियों के सहारे अंग्रेज़ हमारे कन्धों को दबाये हुए हैं। एक तो मीरजाफ़र ने अंग्रेज़ी सेना की सहायता लेने तथा उसके लिए मासिक वेतन देने का वादा किया था और दूसरे राज-कोष की शक्ति से बहुत अधिक मूल्य देकर सिंहासन खरीदने को तैयार हो गया था। इसके परिणाम-स्वरूप अंग्रेज़ कम्पनी का ऋण नवाब पर बढ़ता ही जा रहा था। इसलिए ऋण के बदले मीरक़ासिम ने बंगाल के तीन ज़िले अंग्रेज़ों को सौंप दिये और दूसरी ओर अपनी देशी सेना को सुसंघटित करना आरंभ किया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने यूरोपीय समर-प्रणाली से सेना को शिक्षित करने का प्रबन्ध कर लिया। साथ ही शासन की सुव्यवस्था करके आमदनी बढ़ा ली।

किन्तु अंग्रेज़ कर्मचारियों की उच्छृंखलता बराबर जारी थी। सम्राट् ने कम्पनी को आयात-निर्यात सम्बन्धी महसूल को माफ़ी कर दी थी किन्तु धीरे-धीरे सभी अंग्रेज़ व्यापारी इस माफ़ी के नाम पर कम्पनी के 'दस्तकों' (छूट-सम्बन्धी आज्ञापत्रों) का उपयोग करने लगे और इस प्रकार देशी व्यापारियों की अपेक्षा सस्ती चीज़ें बेचने में सफल हुए। भारतीय व्यापार का नाश होने लगा। बहुत जगह लोगों को अपनी चीज़ें बेचने के लिए मजबूर किया जाता और इन्कार करने पर कोड़े लगाये जाते। दुनिया का क़ायदा है कि वह फायदे के लोभ से सहज ही अन्धी हो जाती है। उस समय के अंग्रेज़ सौदागर भी अपने स्वार्थ के लिए अन्धे हो गये थे। यह देश उनका नहीं है, अथवा इसपर उनका अधिकार नहीं है, इसे शक्ति और स्वार्थ के नशे में वे जान-बूझकर भूल गये थे। वे इस देश में असहाय विदेशी बनियों की तरह आये थे पर इस देश की असीम धन-राशि देखकर उनकी तृष्णा बढ़ती जाती थी और वे मत-वाले हो उठे थे। उनके अत्याचारों से प्रजा पीड़ित होकर त्राहि-त्राहि कर रही थी।

मीरक़ासिम का जीवन स्वराज्य की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील एक भारतीय शासक का जीवन था। प्रजा के दुःख उससे देखे न गये। उसने अंग्रेज़ों से बार-बार शिकायतें कीं पर कौन सुनता था? अन्त में निरुपाय होकर उसे अंग्रेज़ों को दबाने का उपाय करना पड़ा। अंग्रेज़ों को भी इन बातों का पता चल गया अतः वे भी मीरक़ासिम से सजग हो गये।

इस संघर्ष का इतिहास बड़ा लम्बा-चौड़ा है और उसे यहाँ दोहराने से किसी विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती। मीरकासिम ने अन्त में तंग आकर सारे व्यापार को कर-मुक्त कर दिया। इसके सिवा उसके पास दूसरा उपाय न था, पर इसे भी अंग्रेज़ न सहन न कर सके। वे चाहते थे कि हम तो महसूल न दें पर दूसरों से ज़रूर लिया जाय। प्रजाहितैषी मीरकासिम इसके लिए तैयार न हो सका। तब अंग्रेज़ों ने अपने पुराने अस्त्र का प्रयोग फिर शुरू किया। दरबारियों को फोड़ने और सरदारों को मिलाने लगे और अन्त में आन्तरिक कलह का आश्रय ले अपनी धोखेबाज़ी-कला के पाण्डित्य के बल पर उन्होंने विद्रोह की तैयारी कर ली। देश की बदकिस्मती और अंग्रेज़ों के सौभाग्य से 'क्लाइव का गधा' अभागा मीरजाफ़र अभी तक जीवित था। उसे ही पगड़ों ने खड़ा किया और जिसे वे एक बार ज़ालिम नालायक और काहिल कह चुके थे, उसे ही स्वार्थ-साधन के लिए फिर खड़ा किया गया।

अंग्रेजों की इस धोखेबाजी से क्षुब्ध होकर मीर कासिम ने जो व्यंगपूर्ण पत्र उन्हें लिखा था उसमें उनके चरित्र का बड़ा अच्छा खाका है। उन्हों ने लिखा था—"आप सज्जन-गण अजीब मित्र निकले। महात्मा ईसा की शपथ लेकर आप लोगोंने हमसे सन्धि की और हमसे इसलिए एक प्रदेश लिया कि उससे हमारी मदद के लिए सदैव प्रस्तुत रहने वाली सेना रक्खी जायगी पर वस्तुतः आप लोगोंने हमारे विनाश-साधन के लिए ही सेना रक्खी थी।"

इसके बाद का इतिहास मीर कासिम की दृढ़ता, लगन, वीरता एवं देश-हितैषिता का इतिहास है। और अंग्रेजों का इतिहास छलप्रपंच, कूटनीति, जालसाजी और शर्मनाक करतूतों का एक जखीरा है। जो लड़ाइयाँ दोनों पक्षों में हुईं उनमें, कतिपय देशद्रोही भारतीयो के विश्वासघात के कारण मीर कासिम असफल हुआ और बार-बार के तूफानी संघर्षों के बाद, अन्त में फ़क़ीर हो गया। अंग्रेजी शासन की नीति और 'स्पिरिट' जानने-समझने के लिए इस समयका इतिहास हमारे लिए बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि 'क्लाइव का गधा' के गद्दीसे उतारकर कलकत्ता पहुँचने के बादके तीन-वर्षों का इतिहास अंग्रेजों की जैसी काली करतूतों से भरा है उसकी तुलना नहीं की जा सकती। दुनिया की किसी क़ौम का इतिहास इससे अधिक नीच, कलुषित और शर्मनाक कार्रवाइयों से भरा हुआ नहीं है। ❋

"१७७७ ई० को छठी जून को दिल्ली की सीमा पर एक टूटी कुटी के आँगन में एक अज्ञात पुरुष की मृत देह धूल में लोट रही थी। उसे दफ़नाने की भी सामग्री न थी। कुटीमें एक जीर्णशाल पाकर नागरिकों ने उसे ही बेच दफनाने की व्यवस्था की। जिस समय वह मृत शरीर क़ब्र में रक्खा जाने लगा, उसी समय न जाने किसने अकस्मात् चीखकर बता-दिया कि यही बंगाल के अन्तिम स्वाधीन नरपति मीरकासिम हैं। वह आर्तनाद भी तुरन्त आकाश में विलीन हो गया।" ❋

'क्लाइव के गधा' दुर्बल और अफीमची मीर-जाफर ने विश्वासघात की जो नीति इख्तियार की थी वह बराबर फूलती-फलती गई या यों कहिए कि विदेशियों द्वारा बराबर सींची जाती रही। मीरजाफ़र उसी नीति से पराजित हुआ और आगे चलकर डलहौजी ने भारतीय राजाओं की कमर इसी नीति की सहायता से तोड़ दी। आश्चर्य और दुःख इतना ही है कि सिराज का, अपना, तथा मीरकासिम का इसी नीति से नाश होता हुआ देखकर भी बुड्ढ मीरजाफ़र उर्फ़ 'क्लाइव का गधा' मीरक़ासिम के बाद फिर 'अंग्रेजों का गधा' बनने के लिए तैयार हो गया!

❋ "× × The annals of no nation records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful than that which characterised the English Government of Calcutta, during the three years which followed the removal of Mir Jafar."

—Col. Malleson.

❋ श्री अक्षयकुमार मैत्रेय।

हमारी कैलास-यात्रा

[श्री दीनदयालु शास्त्री]

(१)

यात्रा की तैयारी

हिन्दू ईश्वर के तीन रूप मानते हैं। वह सृष्टि का कर्ता होने से ब्रह्मा, पालक होने से विष्णु और संहर्ता होने से रुद्र कहलाता है। ब्रह्मा की पूजा पुष्कर में होती है, विष्णु और शिव की पूजा के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में सैकड़ों मन्दिर हैं। तीनों देवों में शिव तपस्या की प्रतिमूर्ति है। शिव का वास पहाड़ों, जंगलों और दुर्गम स्थानों में समझा जाता है। ये स्थान ही तो तप के लिए उपयुक्त हैं। हिमालय के कठिन शिखर महादेव की तपस्या के लिए प्रसिद्ध हैं। काश्मीर में अमरनाथ, गढ़वाल में बदरी-केदार, नेपाल में पशुपति और सुदूर तिब्बत में कैलास आदि स्थान शिव के भक्तों के लिए तीर्थ-स्थान हैं। इन स्थानों में जाने से प्रकृति के सौन्दर्य और उसके कर्ता की विचित्र कृति का साक्षात् होता है।

मुझे पहाड़ों की यात्रा में बड़ा आनन्द मिलता है। प्रतिवर्ष जेठ लगते ही पहाड़ों की सैर की मुझे सूझने लगती है। इस सैर में जो आनन्द पैदल चलने में है वह दूसरी तरह नहीं मिलता। फिर पैदल सैर के लिए दो-एक साथी भी तो चाहिए। जंगल में, तलहटी में, सुरम्य नदी-तट पर अकेला आदमी कब तक दिल बहला सकता है? संयोग से मुझे एक मित्र भी ऐसे ही मिले हैं। आपका नाम है श्री यज्ञदत्त विद्यालंकार। यज्ञदत्तजी मुलतान में अध्यापक हैं। आपको पैदल घूमने का खूब शौक है। हम दोनों ने मिलकर पिछले कई वर्षों में काश्मीर से लेकर नैनीताल तक सभी पहाड़ देख डाले हैं।

इस बार मेरा विचार किसी पहाड़ पर जाने का न था पर इधर जेठ शुरू हुआ नहीं कि यज्ञदत्तजी का पत्र यात्रा के लिए मिला। गत वर्ष हम दोनों अमरनाथ गये थे, इस बार कैलास जाने की ठानी। कैलास हिमालय के उस पार तिब्बत में है। मार्ग भयानक है तो क्या? शिव के दर्शन होंगे; मानसरोवर में स्नान कर पुण्य लाभ होगा, हंस मिलेंगे; तिब्बत जैसा देश देखने का न जाने फिर कब अवसर प्राप्त होगा? इन विचारों ने थोड़ी-बहुत जो घबराहट थी, दूर कर दी। कैलास की भयंकर यात्रा के लिए हम दोनों ने लाहौर से २१ जून को प्रस्थान कर दिया। साथ में यात्रा के लिए गरम कपड़े, दो-दो लोइयाँ, कुछ बरतन और एक तम्बू रख लिया। तिब्बत में मकान नहीं होते, न कहीं आबादी ही है। लोग तम्बुओं में ही रहते हैं। इस यात्रा में हमें तम्बू ने बड़ा काम दिया।

मार्ग

कैलास का मुख्य मार्ग अलमोड़ा से है। बरेली से काठगोदाम तक रेल जाती है। काठगोदाम से अलमोड़ा तक मोटर का रास्ता है। रास्ते में नैनीताल और रामगढ़ होकर ३० जून को हम अलमोड़ा पहुँचे। हिमालय के इस भाग को कूर्माञ्चल कहते हैं। दो नदियों के बीच की एक ऊँची टेकरी पर देवदारु और चीड़ के पेड़ों के मध्य अलमोड़ा बसा हुआ है। समुद्र तल से यह स्थान ५४५० फुट ऊँचा है। जलवायु अच्छा है। आसपास चीड़ की प्रधानता है। पहाड़ की चोटी पर होने से वर्षा का पानी झट बह जाता है। क्षय के रोगी वायु-परिवर्तन के लिए यहाँ बहुधा आया करते हैं। हम लोग अलमोड़ा में श्री डाक्टर केदारनाथजी के यहाँ तीन दिन अतिथि रहे। डाक्टर साहब शान्त-स्वभाव और मिलनसार हैं। यहाँ के सार्वजनिक जीवन में सदा भाग लेते रहते हैं। आप स्थानीय आर्यसमाज के प्राण और कुमाऊं अनाथालय के सर्वस्व हैं।

अलमोड़ा से कैलास को दो मार्ग जाते हैं। एक बागेश्वर के रास्ते जोहार होकर तिब्बत में ग्यानिमा मण्डी पहुंचता है। यह रास्ता बड़ा विकट है। हिमालय के तीन उत्तुंग शिखरों को लाँघकर जाना होता है। तीर्थ की दृष्टि से यात्रा इसी मार्ग से करनी होती है। स्वामी सत्यदेव इसी राह कैलास गये थे। दूसरा मार्ग असकोट के रास्ते गर्ब्यांग होकर तकलाकोट को जाता है। यह रास्ता पहले रास्ते की अपेक्षा सुगम है। कैलास की परिक्रमा करने के बाद यात्री प्रायः इसी मार्ग से लौटते हैं। अलमोड़ा के लोगों ने हमें पहले मार्ग से जाने के लिए कहा था। किन्तु हमलोग तो केवल यात्रा के उद्देश्य से ही चले थे। तीर्थ-वाली मनोभावना हममें न थी। अतः सुविधा के ख्याल से हमलोगों ने असकोट होकर ही कैलास जाने का निश्चय किया। आगे जाकर हमें इसका बड़ा लाभ मिला।

यात्रा का प्रारम्भ

अलमोड़ा से तीन जुलाई बुधवार के दिन हम दोनों ने आवश्यक सामान लेकर कैलास के लिए प्रस्थान कर दिया। कुमाऊँ के कुली २० सेर बोझ मुश्किल से उठा पाते हैं और दाम भी अधिक मांगते हैं। अलमोड़ा और नेपाल के बीच काली नदी बहती है। काली पार डोटी और बजंग के लोग एक मन से अधिक सामान भी सुभीते से उठा लेते हैं। हमने एक बजंगी को सवा रुपये रोज़ पर ले लिया। यह आदमी बड़ा ईमानदार था। सवा मन बोझ उठाकर चलना और फिर पड़ाव पर पहुँचकर हमारे भोजन का प्रबन्ध कर सकना इसी का साहस था। हम तो मंजिल पर थके-मांदे पहुँचा करते थे। आन्सिंह को हम तिब्बत तक साथ ले गये थे। जितने दिन वह हमारे साथ रहा, हमें बड़ा सुख मिला।

सरयू नदी का पुल

भारत की सीमा तक यत्र-तत्र पड़ाव बने हैं। दूकानों पर या ज़मीन्दारों के यहां आवश्यक सामग्री मिल जाती है। इसलिए मामूली रसद साथ ले जाने की ज़रूरत नहीं रहती। तिब्बत में भारत का सिक्का तो चलता है लेकिन नोट नहीं। अलमोड़ा से नोटों का भुगतान करके काफ़ी नक़दी साथ ले लेनी चाहिए। तिब्बती लोग अपने टंके की अपेक्षा भारतीय सिक्का लेना अधिक पसन्द करते हैं।

प्रातः उठते ही हम अलमोड़ा से चल दिये। रास्ता पूर्व की ओर जाता है। अलमोड़ा से कुछ दूर तक चीड़ के कुंज में से जाना होता है। यहां सैनिटोरियम बना है जहां तपेदिक के मरीज़ रहते हैं। आगे बाड़ेछिना तक न उतार न चढ़ाई, रास्ता सम है। बाड़ेछिना से धौलेछिना तक चढ़ाई है। मार्ग खूब हरा-भरा है। कहीं-कहीं तो देवदार, बांझ और बांस के पेड़ इतने घने हैं कि बिना बादलों के भी सूर्य देवता के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। इनकी शीतल सुरभित समीर का आनन्द अद्भुत ही होता है। अलमोड़ा से धौलेछिना १३ मील है। यह स्थान पहाड़ की चोटी पर है। अलमोड़ा से अधिक ऊँचा है अतः ठण्डक भी काफ़ी पड़ती है। हम तीन तारीख़ को वहाँ ही रहे।

४ जुलाई के दिन हमने गणाई पहुँचने का निश्चय किया। यह स्थान धौलेछिना से १७ मील है। कनारेछिना से शेराघाट तक सरयू की सहायक धारा के साथ जाना होता है। शेराघाट में सरयू नदी पर झूले का पुल है। अयोध्या की विशाल सरयू यहाँ छोटे से पाट में बह रही है। पानी गरम और गदला है। शेराघाट तक उतार ही उतार है। शेराघाट बड़ा गरम स्थान है। आस-पास आम के पेड़ बहुतायत से लगे हैं। शेराघाट में दो पहर आराम किया। लोग हमारे पास आते और यह जानकर कि हम कैलास जा रहे हैं आश्चर्य प्रकट करते।

जून के अन्तिम सप्ताह में महात्मा गाँधी अल्मोड़ा में थे। वह बागेश्वर भी गये थे। शेराघाट से बागेश्वर १२ ही मील है। इधर के सब लोग महात्माजी के दर्शनों को गये थे। पहाड़ के लोग स्वभावतः भक्त होते हैं। एक आदमी हमारे पास आया। हमें खादी पहने देखकर पूछने लगा—'क्यों जी! क्या आप बता सकते हैं, गान्धीजी इतना पैसा किसलिए जमा करते हैं?' मैंने कहा—"दरिद्रनारायण के लिए। सब रुपया खादी के प्रचार में खर्च होता है। चरखे गाँवों में बाँटे जाते हैं। सूत कातने के लिए रुई या ऊन दिया जाता है। सूत से कपड़ा बनता है। इस प्रकार वह रुपया जो विलायत चला जाता है, चरखे के होने से देश में ही रह जाता है।" उस ग्रामीण के मुख पर हर्ष की झलक दिखाई दी। वह ग़रीब था, किन्तु उसने भी महात्माजी की झोली में दो आने डाले थे। आज उस दान के महत्व को जानकर गद्गद् हो गया। बोला—"हमारा जिला-बोर्ड भी ऊन कातने के लिए चरखे व तकली बाँटता है। जिला-बोर्ड के स्कूलों में तकली चलाना सिखाया जाता है। अब हम ऊन स्वयं कातते हैं। तकली का अल्मोड़ा में अच्छा प्रचार है।" यह सब बोर्ड के प्रधान श्री हरगोविन्द पन्त के श्रम का फल है।

शेराघाट से गणाई ९ मील है। कुछ दूर रास्ता सरयू के किनारे-किनारे जाता है। थोड़ा चढ़कर उतार है, फिर मैदान है। इधर जहाँ चढ़ाई न हो उसे मैदान कह देते हैं। हम देशवालों के लिए यह मैदान भी पहाड़ ही हैं। कई दफ़ा हमें खासी चढ़ाई पर चढ़ना पड़ता था और हम पसीने से भीग जाते थे, किन्तु यहाँ वालों के लिए वह मैदान की तरह आनन्द का स्थान होता था। सारा इलाका गरम है। केला बहुत होता है। अंधेरा होते-होते गणाई पहुँच सके। आज की मंजिल अधिक लम्बी रही।

बेनीनाग

हम ५ जुलाई को बेनीनाग पहुँचे। गणाई से बेनीनाग १० मील है। रास्ता छोटी-छोटी पहाड़ियों में बहती हुई जल धारा के साथ-साथ जाता है। दो मील इधर से कठिन चढ़ाई आ जाती है। पसीने से सराबोर हो गये। ऊपर पहुँचे। चीड़ का सघन जंगल मिला। चीड़ के पेड़ सचमुच निराली छटा रखते हैं। छितरी पत्तियों से छाते के समान मालूम पड़ते हैं। पवन ऐसा शीतल और सुन्दर होता है कि बटोही श्रम को एकदम भूल जाता है।

बेनीनाग के निकट चीड़ का जंगल

बेनीनाग का बाज़ार

सौभाग्य से यदि वहाँ कोई निर्झर हुआ तो फिर क्या कहना है ? शैक का सब सौन्दर्य एकत्र हो जाता है । हिमालय के ऐसे स्थान बड़े मनोहारी होते हैं । यहाँ प्रकृति के पर्यवेक्षण का अवसर प्राप्त होता है । स्वास्थ्य-लाभ होता है । पार्थिव दृष्टि से मनुष्य को अधिक क्या चाहिए ? भगवद्-भजन के लिए भी इससे बढ़िया और स्थान कहाँ मिल सकता है ? पर्वत की उस चोटी पर बेनीनाग सचमुच ऐसा ही स्थान था । चारों ओर जंगल है । बीच में बस्ती है, दो-तीन दूकानें हैं, इलाक़े का मिडल स्कूल है, डाकख़ाना भी है, आसपास के वन को साफ़ करके चाय के बग़ीचे लगाये गये हैं । यहाँ की चाय बहुत अच्छी समझी जाती है । हम सवेरे नौ बजे ही बेनीनाग पहुँच गये थे । यहाँ ख़ूब दिल लगा । सब ओर आनन्द बरस रहा था । अलमोड़ा के बाद यहाँ आकर ही कूर्माञ्चल की शोभा का ज्ञान हुआ ।

थल

बेनीनाग से थल तक रास्ता इसी तरह हराभरा चला गया है । जगह-जगह मक्का के खेत हैं । बेनीनाग ऊँचे पर है; थल गढ़े में है । पानी कम होने से मक्का ही बोई जाती है । रामगंगा नदी के किनारे थल छोटा-सा गाँव है । यह स्थान बेनीनाग से १० मील है । रामगंगा बड़ी नदी है और सरयू की सहायकों में से है । यहाँ इसपर झूले का पुल है । सरदी के दिनों में भोटिये लोग यहाँ बहुत रहते हैं । अलमोड़ा ज़िले का उत्तरी भाग भोट कहलाता है । भोट के लोग मेहनती होते हैं । तिब्बत के साथ भारत का जो व्यापार होता है वह सब भोटियों द्वारा ही होता है । थल में भोटियों की दो-तीन दूकानें हैं । हमने श्री हरिमल भोटिया के यहां आश्रय लिया । हरिमल बड़े सज्जन हैं । कई बार कैलास हो आये हैं । प्रति वर्ष व्यापार के लिए तिब्बत जाते हैं । इस बार भाई के मर जाने से न जा सके । तिब्बत में ग्यानिमा मशहूर मंडी है । वहाँ आपके भाई रहते हैं । हरिमल जी ने हमें एक चिट्ठी लिख दी थी । इस चिट्ठी से हमें बड़ा सुभीता रहा ।

थल से अलमोड़ा, जोहार, सौर और नैपाल चारों ओर मार्ग जाता है । रामगंगा नदी के किनारे बैशाख मास में बड़ा भारी मेला लगता है । दूर-दूर से व्यापारी अपना माल यहाँ लाते हैं । बड़ी चहल-पहल रहती है, हज़ारों का माल बिकता है । रामगंगा के शीतल जल में स्नान कर आनन्द-लाभ किया । एक ब्राह्मण देवता से भेंट हुई । वे यहाँ के शिवमन्दिर के पुजारी थे । बोले—"दान-दक्षिणा दीजिए । आप कैलास जाते हैं; पहले मार्ग में पुण्य-लाभ कर लीजिए । कैलास के पंडे हम ही हैं ।" मैंने कहा—"यदि ऐसा है तो जान जोखिम में डालकर मेरे साथ कैलास चलिए; फिर दान-दक्षिणा के आप अधिकारी होंगे ।" ब्राह्मण देवता तो चले गये परन्तु एक सोनार से बुरा पाला पड़ा । "इस छोटी उम्र में आप कैलास जाते हैं, इससे क्या लाभ है ? अब आप अधिक पाप कर लें, बुढ़ापे में तीर्थ चले जाना, सब पापों से छुटकारा हो जायगा ।" मैंने कहा—"सो कैसे ?" बोले—"मैंने ऐसा ही किया था । अब मैं बड़ी शान्ति से अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ ।" थोड़ी देर बाद इन सुवर्णकार ने एक ज़मींदार को जिस ढंग से अपने चंगुल में फँसाया उससे आपकी सब क़लई खुल गई ।

असकोट की ओर

थल से असकोट १७ मील है । पहले दो मील कठिन चढ़ाई है । रास्ता ख़ूब घूमकर ऊपर जाता है । थोड़ी दूर तक खेत हैं फिर जंगल आ जाता है । जंगल में देवदार या चीड़ नहीं है, बाँस की अधिकता है । पाँच मील चलने के बाद गिरिशिखर पर पहुँचे । यहाँ पहाड़ झुककर एक प्याला-सा बन गया है । चारों ओर कानन है; बीच में साता नाम का गाँव है । साता से डिण्डीहाट पाँच मील है । यह मार्ग अनुपम है । हरियाली से पहाड़ घिरा है । थोड़े-थोड़े अन्तर पर शीतल सुमधुर जल की धारायें बह रही हैं । आज चलने में आनन्द आया । प्रकृति में मस्त, मैं अकेला आगे बढ़ गया । जिधर देखता उधर कलकल करती नदियों और झूमते वृक्षों के दर्शन करता । शोभा इतनी आकर्षक कि हर समय देखने को जी बना रहता है; कभी तृप्ति नहीं होती । बीच बीच में निर्झरों से झरता हुआ जल दृश्य को दिव्य बना देता था । एक जगह पहाड़ी में मोड़ था । मोड़ पार करते

ही जो देखा वह आज भी हृत्पट पर वैसा ही बना है। शिखर से कई सौ गज की ऊँचाई से सफेद मोतियों की लड़ी-सी गिर रही है। वह तरल मणिमाला अक्षुण्ण है, उस पर पड़ती हुई नव-सूर्य की किरणें उसके सौंदर्य को द्विगुण-कर देती है। कुछ देर पहले वह शुभ्रवर्ण थी। अब उसमें मरीचिमाली प्रतिबिम्बित होकर उसे नाना वर्ण करने लगा। लोग आईने में अपनी प्रतिमूर्ति देखते हैं। वह दर्पण अद्वितीय था, जिसमें सूर्य भगवान दर्शन देने आये थे। मैं इस दृश्य को टकटकी लगाये बड़ी देर तक देखता रहा। १० बजे चलकर डिण्डिहाट पहुँचे।

डिण्डिहाट छोटा-सा गांव है। पास ही घास का मैदान है। हम वहाँ थोड़ा ही ठहरे। हिन्दू समाज अन्दर ही अन्दर कितना जर्जर हो गया है, इसका यहाँ अनुभव हुआ। एक मुसलमान ठठेरे की यहाँ दुकान है। दो वर्ष पूर्व वह अकेला यहाँ आया था। जब उसे रहते दो बरस बीत गये, तो एक विधवा ब्राह्मणी उसके यहाँ आकर रहने लगी ठठेरे ने उसे आराम से रक्खा। यह देखकर उसकी दूसरी बहन भी वहाँ चली आई। दोनों बहनें आज भी ठठेरे के यहाँ बड़े आनन्द से रहती हैं और अपने घर-वालों या हिन्दूधर्म को भरसक बुरे शब्दों से स्मरण करती हैं। पहाड़ में ऐसे किस्से कई जगह सुने गये। धीरे-धीरे मुसलमान बढ़ रहे हैं। रोज़गार की तलाश में वे देश से अकेले ही इधर चले आते हैं। और दो-एक वर्ष में घर बसा लेते हैं। इस्लाम में जीवन है; हिन्दूधर्म सिसक-सिसककर जी रहा है। इसके लिए इतना ही उदाहरण पर्याप्त है। समाज-सुधारकों के लिए कार्य करने का यहाँ अच्छा क्षेत्र है।
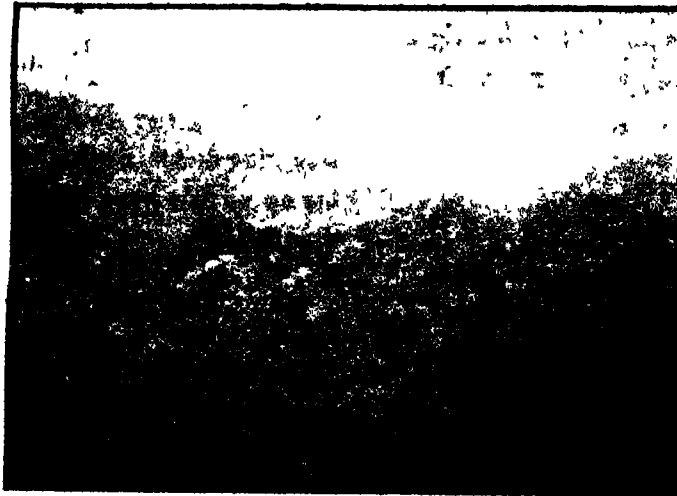
असकोट का दृश्य

डिण्डिहाट से असकोट सात मील है। सारे मार्ग में उतार है। आज दोपहर की धूप में चलकर बड़े परेशान हुए। तिसपर जल के अभाव ने हैरान कर दिया। दो मील पहले से एक ऊँची टेकड़ी पर बसा हुआ असकोट बड़ा सुन्दर मालूम देता है। ७ जुलाई की संध्या को हम असकोट पहुँचे। अलमोड़े से असकोट ९९ मील है। असकोट में राजा का महल अच्छा बना हुआ है। किसी समय इनके पुरखा सारे कुमाऊँ में राज करते थे, अब तो केवल ज़मीदारी ही रह गई है। असकोट में ही कुँवर खड्गसिंहपाल रहते हैं। भारतीय सरकार के राजनैतिक विभाग में आप डिप्टी कलक्टर रह चुके हैं। सरकारी मिशनों में कईबार गरतोक (पश्चिमी तिब्बत की राजधानी) हो आये हैं। आजकल आप सरकार से पेन्शन पाते हैं। कैलास या इस प्रान्त के विषय में हर तरह की ज्ञातव्य बातों का आपसे पता लग सकता है। यात्रा के विषय में हमें आपने कई निर्देश किये जिनसे हमें आगे जाकर बड़ा लाभ हुआ।

इस ओर असकोट बड़ी जगह है। यहाँ बड़ा डाकघर है, छोटा-सा बाज़ार भी है। नीचा होने से गरमी खूब पड़ती है। हम यहाँ एक धर्मशाला में ठहरे। असकोट में हमारी यात्रा की पहली मंज़िल पूरी हुई। यहाँतक हम कुमाऊँ में थे। आगे भोट का इलाक़ा शुरू हो जाता है, जहाँ के रहन-सहन में यहाँ से बड़ी भिन्नता है।

मेवाड़ के उद्योग-धन्धे

[अध्यापक श्री शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम, 'विशारद']

मेवाड़, राजपूताना के दक्षिण-पश्चिम में गुजरात तथा मध्यभारत से मिला हुआ एक बड़ा राज्य है। जनसंख्या लगभग १४ लाख तथा क्षेत्रफल लगभग १३ सहस्र वर्गमील है किन्तु उत्तरीय भाग को छोड़कर समस्त दक्षिणी प्रान्त पर्वत-मालाओं से घिरा होने के कारण न तो घना बसा हुआ है और न इतना अधिक उपजाऊ ही है। भूमि यहाँ की उर्वरा है; वर्षा साधारणतया अच्छी हो जाती है। यहाँ के महाराणाओं ने सिंचाई के लिए बड़े-बड़े तालाब तथा झीलें बनवा दी हैं, जिनसे मेवाड़ में जल की कमी नहीं है।

मेवाड़ राज्य मुग़ल-सम्राटों के समय में लगातार अपनी स्वतंत्रता के लिए युद्ध करता रहा है। शताब्दियों तक जिस राज्य को युद्ध करने से ही अवकाश न मिला हो, वहाँ की कारीगरी तथा उद्योग-धन्धे यदि बहुत उन्नति न कर सके हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। औद्योगिक उन्नति तो उसी समय हो सकती है जब राज्य में शान्ति हो, प्रजा समृद्धिशाली तथा धनवान हो, राज्य कारीगरों को सहायता देकर उत्साहित करता रहे तथा व्यापार की उन्नति करने के साधन उपस्थित हों; परन्तु मेवाड़ के राणाओं को कभी इस ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला। स्वदेशाभिमान के भावों को पोषित करने वाला यह राज्य मुग़ल-साम्राज्य के विरुद्ध रणभूमि में अटल रहकर अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रहा। फल-स्वरूप मेवाड़ विशेष औद्योगिक उन्नति न कर सका, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि न समझना चाहिए कि इस देश में उद्योग-धन्धों का सर्वथा अभाव रहा। यदि हम राजनैतिक परिस्थिति को ध्यान में रक्खें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि जो कुछ भी उद्योग-धन्धे मेवाड़ में चलते रहे उनमें संतोषजनक उन्नति हुई थी और राज्य ने भी इधर यथाशक्ति ध्यान दिया था। किन्तु आधुनिक काल में, जब कि मेवाड़ को अपनी शक्तियाँ रणभूमि में व्यय करने का अवसर ही नहीं मिलता और जब कि राज्य में व्यापारिक उन्नति तथा उसके साधन उपलब्ध हो सकते हैं, मेवाड़ की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। आर्थिक दीनता का समाज पर कितना भयंकर प्रभाव पड़ता है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। आज राजपूताना के अन्दर जो बहुत-सी बुराइयाँ हमें दिखाई पड़ती हैं उनके मूल में दरिद्रता का मुख्य स्थान है। मेवाड़ भी उन सब बुराइयों का घर बन रहा है। राज्य आर्थिक उन्नति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं समझता। वह तो मदिरा पिला-पिलाकर दरिद्र जनता को और भी अकर्मण्य बनाने में व्यस्त है। यह कहा जा सकता है कि यदि राज्य शराब का व्यापार बन्द कर दे तो आय भी तो कम हो जायगी। प्रथम तो यह प्रश्न ही बहुत महत्व नहीं रखता क्योंकि राज्य का कल्याण प्रजा को निकम्मा बनाने में नहीं है फिर वैसा करने से चाहे कितनी ही आय क्यों न होती हो। यदि राज्य में उद्योग-धन्धों की उन्नति होगी तो आय की भी वृद्धि ही होगी। मैंने तो मेवाड़ में रहकर अनुभव किया है कि यह प्रांत प्राकृतिक वैभव से पूर्ण है, परन्तु अभी उस देन का

उपयोग मेवाड़ की प्रजा ने नहीं किया। भूगर्भ तत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि मेवाड़ में खनिज पदार्थ बहुतायत से हैं। अभ्रक, खड़िया, सीमेण्ट की खानें तो हैं ही, चांदी, लोहा और तांबे का भी पता लगता है। क्या ही अच्छा हो कि मेवाड़ राज्य इस ओर ध्यान दे। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि जब तक स्वयं राज्य अथवा मेवाड़ी पूंजीपति ही यह कार्य हाथ में लेने को तत्पर न हों तब तक खानों को यों ही पड़ा रहने देना ही अच्छा है। खानों के अतिरिक्त कच्चे माल की उपज भी काफ़ी होती है। अनाज को यदि छोड़ भी दें (क्योंकि अनाज अधिकतर राज्य बाहर नहीं जाने देता *) तो कपास को मेवाड़ का मुख्य कच्चा माल कहा जा सकता है। मेवाड़ तो कपास का घर है। यहाँ की पृथ्वी और जलवायु अनुकूल होने से कपास यहाँ खूब उत्पन्न होती है परन्तु यह बहुत मामूली दर्जे की होती है। श्री ट्रेंच ने अमरीकन कपास तथा कम्बोडिया की कपास को उदयपुर के समीप ही बुवाया था और फसल उत्तम हुई थी। यदि कम्बोडिया की कपास अथवा और किसी जाति की कपास के बीज का प्रयोग किया जाय तो उत्तम कपास भी उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु मेवाड़ के अन्दर कपड़ा बुनने का धन्धा लगभग नष्ट हो चुका है; मिलों की प्रतिद्वन्द्विता तथा विदेशी माल की खपत के कारण अब यहाँ विदेशी वस्त्र का साम्राज्य है। मेवाड़ में कपड़ा बनाने की कला विद्यमान थी इसके तो चिन्ह बहुत मिलते हैं। ग्रामीण जनता के शरीर पर अब भी मेवाड़ का बना हुआ रेजा दिखाई देता है, परन्तु अब लोग मिलों के कपड़ों का उपयोग करने लग गये हैं। राजनगर, भीलवाड़ा इत्यादि ज़िलों में अब भी कपड़ा बुनने का काम होता है परन्तु सूत मिलों का ही लगाया जाता है। हाँ, बिजोलिया के अन्दर भाई जेठालालजी ने निर्धन किसानों को कातना और बुनना सिखाकर उनको एक उत्तम धन्धा दिया है और आर्थिक मुक्ति प्रदान कर दी है। ७६०० कृषक अपने वर्ष भर के लिए कपड़ा स्वयं बना लेते हैं। जिससे लगभग एक लाख रुपये का वार्षिक कपड़ा, जो बाहर से आता था, अब वहीं बनने लगा है। क्या राज्य इस ओर ध्यान देगा? मेवाड़ में यदि सूती कपड़ा बनाने का प्रयत्न किया जाय तो यह प्रान्त अन्य प्रान्तों को कपड़ा भेज सकता है। राज्य की ओर से कुछ जिनिंग फैक्टरियाँ खुली हुई हैं और १० इस वर्ष खोली जायँगी। अधिकतर लोढ़ी हुई रुई ब्यावर तथा बम्बई भेजी जाती है। यदि राज्य कच्ची रुई को पक्के माल में परिणत करने का प्रयत्न करे तो अवश्य ही सफलता प्राप्त हो सकती है।

यहाँ का दूसरा धन्धा रंगसाजी है। चित्तौड़ और उदयपुर इसके केन्द्र हैं। जब कि विदेशी रंगों ने भारत में अपना अधिकार नहीं जमाया था, उस समय मेवाड़ में नील तथा कुसुम्बी की पैदावार होती थी और उसका उपयोग रँगाई के कामों में होता था। किन्तु अब तो विदेशी रंगों के बिना काम ही नहीं चलता। यहाँ रँगाई का काम प्रसिद्ध है। पगड़ी, साफे, साड़ियाँ बड़ी सुन्दर बनती हैं। यहाँ की कपड़े की सुनहली-रुपहली छपाई का धन्धा तो अब भी अच्छी दशा में चल रहा है। जिन्होंने मेवाड़ की साड़ियाँ तथा स्त्रियों के अन्य वस्त्रों पर यह काम देखा है वे उसकी सुन्दरता समझते हैं। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में भी इसकी खपत है।

---

*मेवाड़ जैसे कृषक तथा निर्धन देश के लिए यह आवश्यक है कि अनाज बाहर न जाने दिया जाय। यदि किसी वर्ष पैदावार बहुत अच्छी हो और भाव बहुत सस्ता हो गया हो तो राज्य स्वयं निश्चित राशि में बाहर भेजे किन्तु राज्य की आवश्यकताओं का ध्यान रक्खा जाय।

लकड़ी के खिलौने

उदयपुर में लकड़ी के खिलौने बहुत अच्छे और सस्ते बनते हैं किन्तु खरादी लोग स्वतन्त्र कारीगर नहीं हैं। बोहरों के चंगुल में वे बहुत दिनों से फँसे हुए हैं। सौदागर उनको पेशगी रुपया देकर अपने लिए माल बनवाते हैं और कारीगरों को थोड़ा मूल्य देकर स्वयं लाभ उठाते हैं। इस धन्धे के मन्द होने का दूसरा कारण है विदेशी खिलौनों की प्रतिद्वन्द्विता। यदि राज्य यहाँ के खिलौनों को बाहरी प्रदर्शनियों में भेजता रहे तथा मेवाड़ में प्रदर्शनी का आयोजन किया जाय तो लाखों रुपयों का व्यापार हो सकता है। लकड़ी की लौंग, इलायची, बादाम, दाख तो इतने सुन्दर बनते हैं कि मनुष्य को धोका हो सकता है, परन्तु उदयपुर के बाहर इस कारीगरी को कोई नहीं जानता।

चित्रकला तथा मीनाकारी के बटन

मेवाड़ में नाथद्वारा, चित्रकला तथा मीनाकारी लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के चित्र अत्यन्त सुन्दर होते हैं परन्तु यदि प्रयत्न किया जाय तो मीनाकारी के बटन का धन्धा तो समस्त भारतवर्ष में फैल सकता है। इतने सुन्दर बटन बाजारों में दिखाई ही नहीं देते परन्तु न तो इनके विषय में कोई जानता है और न अधिक यह बनते ही हैं। केवल तीर्थ-यात्रियों की माँग इस धन्धे को जीवित रक्खे हुए है।

कुछ और बातें

मेवाड़ के अन्तर्गत भीलवाड़ा में क़लई के बर्तनों का काम, चित्तौड़ और घोसुंडा में कागज़ तथा समस्त मेवाड़ प्रान्त में कपड़ा धोने का साबुन बनाया जाता है। इनमें यदि प्रयत्न किया जाय तो क़लई के बर्तनों तथा साबुन की खपत बाहर भी हो सकती है।

मेवाड़ में गन्ना बहुत अच्छा पैदा होता है और ४० वर्ष पूर्व तो यहाँ गन्ना बहुतायत से पैदा किया जाता था, किन्तु एक प्रकार का घुन लग जाने से गन्ने की पैदावार कम हो गई और अब मेवाड़ गुड़ तथा शक्कर बाहर से मंगाता है। राज्य थोड़ा ध्यान दे तो मेवाड़ में गन्ने की पैदावार फिर से बढ़ाई जा सकती है।

मेवाड़ का जलवायु तथा प्रदेश भेड़ों के लिए स्वास्थ्यकर है और यहाँ भेड़ें पाई भी जाती हैं परन्तु अच्छी जाति की भेड़ें बहुत-कम हैं। यदि मेरिनो अथवा और किसी उत्तम देशी जाति के संसर्ग से अच्छी भेड़ें पैदा की जायँ तो ऊन बहुतायत से पैदा किया जा सकता है। वर्तमान स्थिति में भी मेवाड़ कुछ-न-कुछ ऊन बाहर भेजता है।

इस संक्षिप्त विवरण से यह तो ज्ञात हो गया होगा कि यह देश प्राकृतिक देन से परिपूर्ण है परन्तु अकर्मण्यता ने इन सारी सुविधाओं को व्यर्थ बना दिया है। यदि राज्य इस प्रान्त की औद्योगिक उन्नति करने का प्रयत्न करे तो २५ वर्ष के अन्दर यह देश भारत का एक मुख्य औद्योगिक प्रदेश हो सकता है। सब से बड़ी आवश्यकता तो मेवाड़ में एक औद्योगिक स्कूल की है। परन्तु ध्यान रहे कि स्कूल में वही उद्योग-धन्धे सिखाये जाने चाहिएँ जो देश में प्रचलित हैं अथवा जिनके लिए राज्य में पर्याप्त सामग्री सुलभ है। अधिकतर उन्हीं जाति के बालकों को ये धन्धे सिखाये जायँ जिनमें उनका परम्परागत प्रचार है। इसकी जरूरत नहीं है कि उस धन्धे के विषय में उन्हें बहुत अधिक अध्ययन कराया जाय; आवश्यकता तो इस बात की है कि उनको हाथ से काम करना सिखाया जाय। उनसे ऐसे यन्त्रों का उपयोग भी न कराया जाय जिनका उपयोग करना स्वतन्त्र कारीगर के लिए असम्भव हो। इस बात का ध्यान न रखने से अनेक औद्योगिक संस्थायें अनुपयोगी सिद्ध हुई हैं।

मेवाड़ राज्य में अभी तक कोई औद्योगिक विभाग भी नहीं है जो प्रत्येक प्रगतिशील राज्य का एक आवश्यक अंग होता है। इस विभाग का कर्तव्य होना चाहिए कि वह देशी घरेलू उद्योग-धन्धों को उन्नत करने का प्रयत्न करे तथा विदेशों और भारत के अन्य प्रान्तों में मेवाड़ के माल की माँग बढ़ावे। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए औद्योगिक विभाग को यहाँ के बने हुए माल को भारतीय तथा विदेशों की प्रदर्शनियों में भिजवाने का प्रबन्ध भी करना होगा तथा मेवाड़ में औद्योगिक प्रदर्शनियों का आयोजन करना होगा जिससे यहाँ के कारीगर लाभ उठा सकें तथा मेवाड़ की जनता अपने राज्य के उद्योग-धन्धों की जानकारी प्राप्त करे। मेवाड़ के अन्तर्गत चित्तौड़ नाथद्वारा, ऋषभदेव, उदयपुर में राज्य की ओर से भाण्डार खोले जायँ, जहाँ मेवाड़ की बनी वस्तुयें रक्खी जायँ। जब मेवाड़ में उद्योग-धन्धों की उन्नति होने लगे और बाहर भी यहाँ के बने हुए माल की खपत हो तो राज्य भारतीय व्यापारिक केन्द्रों में भी ऐसे ही भाण्डार खोल सकता है।

अन्त में मैं मेवाड़ राज्य के अधिकारियों का ध्यान दो बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। एक तो यह कि व्यापार के लिए मार्गों की सुविधा बढ़ाने की अत्यन्त आवश्यकता है। दूसरे यहाँ की झीलों तथा नदियों के जल का उपयोग होना चाहिए। यह तो सर्वमान्य बात है कि जबतक देश में यातायात की सुविधा न होगी तबतक व्यापार की वृद्धि नहीं हो सकती। अभीतक मेवाड़ राज्य ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। हर्ष का विषय है कि वर्तमान महाराणा साहब ने रेलवे-लाईन का राज्य में विस्तार करना आरम्भ किया है। नाथद्वारा-रोड से काकरौली तक, जो नई रेलवे-लाइन बन रही है, उससे काकरौली के व्यापार की उन्नति होगी। परन्तु केवल रेलों से काम नहीं चल सकता। मेवाड़ में सड़कों का विस्तार करना आवश्यक है। जो स्थान रेल-पथ पर नहीं हैं उनको रेलों के केन्द्रों से मिलाना होगा। दूसरी बात की ओर भी, जो मेवाड़ के लिए अत्यन्त महत्व-पूर्ण हो सकती है, अभी तक राज्य का ध्यान नहीं गया है। मेवाड़ में भैंसरोड़गढ़ के समीप चंबल का बड़ा जल-प्रपात है। यदि उसके द्वारा तथा जयसमुद्र और राजसमुद्र के जल को प्रपात रूप में गिराकर बिजली उत्पन्न की जा सके तो कपड़े के पुतलीघर मेवाड़ में सरलता से चलाये जा सकते हैं तथा अन्य उपयोगी कार्य भी हो सकते हैं। इस विषय में किसी कुशल इंजीनियर को बुलाकर राज्य को इस विषय की जाँच करानी चाहिए। यदि राज्य की शक्तियाँ इस ओर लगाई जायँ तो आश्चर्य नहीं कि यह प्रदेश, जो इस समय निर्धनता के जाल में फँसा हुआ है, बहुत शीघ्र समृद्धिशाली तथा उन्नत दृष्टिगोचर होने लगे। प्रकृति ने आवश्यक वस्तुयें दे दी हैं। मेवाड़ की जनता स्वस्थ, परिश्रमी तथा साहसी है। फिर क्यों न देश औद्योगिक उन्नति करे? अभी तक हम लोग उदासीन रहे हैं। यही कारण है कि मेवाड़ की आर्थिक दशा इतनी अच्छी नहीं रही, परन्तु अब भी यदि प्रयत्न किया जाय तो देश धनवान हो सकता है। राज्य को पहले कुछ व्यय करना पड़ेगा। परन्तु भविष्य में, जब जनता समृद्धिशालिनी होगी, तो राज्य की आय भी अनायास ही बढ़ जायगी। क्या राज्य के कर्मचारीगण तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने का कष्ट उठावेंगे?

इंग्लैण्ड का मज़दूर-दल

[श्री दुर्गादत्तराय बी० ए०]

किसी भी देश के राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में, किसी एक समय, केवल एक ही विचार का प्राधान्य नहीं होता। यह सही है कि कोई एक विचार-धारा औरों की अपेक्षा अधिक प्रभावशालिनी होती है। अनेक धारायें दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु ऐसा हो सकता है कि बहुत-सी और विचार-धारायें भीतर ही भीतर, गुप्त चश्मे की तरह छिपी हों। समय पाकर वे बाहर फूट उठेंगी। गंगा-यमुना हमारी दृष्टि के सम्मुख बहती हैं तो सरस्वती भी अदृष्ट रूप से उन्हीं की संगिनी है। इसीलिए ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि किसी संस्था का जन्म कब हुआ। विचार परिपक्व होकर—ज़ोर पकड़ने पर—वह संस्था का रूप धारण करता है।

यों तो इंग्लैंड के मज़दूर-दल का जन्म-काल सन् १९०० ई० कहा जाता है, तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके पहले पार्लमेंट में मज़दूर सदस्य थे ही नहीं। वास्तव में इस दल का जन्म १८८४ ई० में ही हुआ समझना चाहिए जब पार्लमेंट के तीसरे सुधार के समय मज़दूरों को मताधिकार प्राप्त हुआ था। किन्तु १९०० ई० के पूर्व मज़दूर सदस्य असंगठित तथा संख्या में नगण्य थे। इंग्लैंड के विभिन्न स्थानीय मज़दूरों वा मज़दूर-संघों में, इस विषय में, मतैक्य न था। सन् १८६८ से जब कि मज़दूर-संघों (Trade-Unions) का जन्म हुआ था सन् १९०० ई० तक वे अपनी-अपनी डफली अलग बजाते रहे। कालान्तर में कुछ जाग्रति हुई और उसके फल-स्वरूप सन् १९०० में इन मज़दूर-संघों का 'फेडरेशन' क़ायम हुआ जिसको आज हम मज़दूर-दल के रूप में देखते हैं। इसका नाम पहले 'मज़दूर-प्रतिनिधि-सभा' रक्खा गया था, किन्तु बाद में बदलकर मज़दूर-दल कर दिया गया।

सन् १९०० से १९१८ तक इस दल ने विशेष उन्नति नहीं की। उस समय पार्लमेण्ट में इसका सुसंगठित रूप नहीं था। इसके सदस्यों में न पटने के कारण तो इसका आन्तरिक संगठन दुर्बल था और स्थानीय मज़दूर-संघ केन्द्रीय सभा के सम्बन्ध में अधिक स्वतंत्रता दिखलाते थे इसलिए जनता में भी इसका प्रभाव नहीं था। किन्तु फिर भी वे नगण्य नहीं कहे जा सकते थे। उस समय की राजनीति पर मज़दूर सदस्यों का प्रभाव उनकी संख्या के अनुपात में बहुत अधिक पड़ा था। सन् १९१० ई० के पश्चात् उदारदल (Liberal Party) को मज़दूर सदस्यों तथा नेशनलिस्टों की सहायता की आवश्यकता बनी रही। इस कारण उदारदल तथा मज़दूर-दल का सम्बन्ध बढ़ता गया। मज़दूर सदस्यों ने उदार-दल की नीति पर पर्याप्त प्रभाव डाला। मज़दूर-दल का प्रभाव 'वृद्धावस्था की पेन्शन-योजना' (१९११) तथा 'न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून' (१९१२) में, जो उदार दल के शासन-काल में पास हुए, स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। उस समय उदारचित्त उदार-दल के सदस्यों तथा मज़दूर सदस्यों में मतैक्य-सा स्थापित हो गया था।

गत योरोपीय युद्ध के प्रारम्भ के साथ ही इंग्लैंड के राजनैतिक दलों के भाग्य में परिवर्तन हुआ दलबन्दी का भाव बन्द कर दिया गया। सर्वदल-मंत्रिमण्डल शासन-पोत का मांझी बना। उसमें एक कर्णधार मज़दूर-दल को भी मिला। किन्तु युद्ध-सागर के किनारे आते-आते महामंत्री लायड जार्ज ने अन्य दल के मंत्रियों को बदलकर अपने आदमियों को भर्ती कर लिया। युद्धकाल में इंग्लैंड में कोई चुनाव नहीं हुआ। मज़दूर-दल तथा उदार-दल में संतोष का अभाव था। अनुदार-दल ने बड़ा परिश्रम किया किन्तु फिर भी १९१८ के चुनाव में लायड जार्ज की ही विजय रही।

१९१८ में मज़दूर-दल में एक बात उल्लेखनीय हुई। इसका विधान विस्तृत किया गया ताकि इसमें वे व्यक्ति

भी सम्मिलित हो सकें।जो किसी मजदूर संघ या समाजवादी संस्था के सदस्य नहीं हैं। इसका फल बहुत अच्छा हुआ। इस दल के सदस्यों की वृद्धि के साथ-साथ इसके प्रति लोगों में सहानुभूति बढ़ी तथा इसके सिद्धान्त और तरीक़े अधिक उदार हो सके। यह व्यवसायियों, शिक्षकों और यहाँ तक कि लार्डों तक का स्वागत कर सका। आज इसके सिद्धान्तों को मानने वाले कितने ही व्यक्ति 'सर' तथा 'लार्ड' हैं।

युद्ध के पश्चात् मजदूर-दल ने चुनाव में विशेष तत्परता दिखलाई, अपने संगठन को सुदृढ़ किया, तथापि इसको पार्लमेंट के सदस्यों की संख्या बढ़ाने में विशेष सफलता नहीं मिली। १९२२ ई० में जब अनुदारदल बोनरला की अधीनता में शासन कर रहा था तब मजदूर-दल ही उसका विरोध ज़ोर-शोर से कर रहा था। उस समय उदार-दल बहुत पीछे पड़ गया था।

सन १९२३ में बाल्डविन के मंत्रि मण्डल को 'स्वतंत्र-व्यापार' की नीति का विरोध करने पर पद-त्याग करना पड़ा था, यद्यपि उस समय भी बहुमत अनुदार-दल का ही था। इनके पद-त्याग में रैम्सेमैकडानल्ड का विशेष हाथ था। उनके दल के ही विरोध का यह फल था इसलिए उन्हें ही मंत्रिमण्डल कायम करना पड़ा। शासन की बाग-डोर उन्हें संभालनी पड़ी और उन्होंने उदारदल के सहयोग से मंत्रि-मण्डल कायम किया।

उस समय मजदूर-सरकार कठिनाइयों से घिरी थी। उस समय इसके अपने सदस्य अनुदार दल से बहुत कम थे। इसके अतिरिक्त इसके सदस्यों में मनमुटाव का अभाव न था। पद तो मजदूर-दल को मिल गया किन्तु उसके अधिकार न मिले। शासनसूत्र का संचालन अभी उदार-दल के ही हाथ में था। अनुदार दल ने मजदूरदल के प्रति अपनी असहानुभूति तथा प्रतिस्पर्धा को प्रकट करने में तनिक भी संकोच न किया। मजदूर दल के प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध अनुदारदल के द्वारा ज़ोरों से होता रहा। मज़दूर-दल, अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करना तो दूर, अपनी प्रतिज्ञाओं को भी पूर्ण न कर सका। मंत्रियों के निर्वाचन में भी मैकडानल्ड ने साहस की अपेक्षा राजनैतिक चालों को ही उच्च स्थान देना उचित समझा। इसलिए उनके मन्त्रि-मण्डल में भी किसी प्रकार का सामञ्जस्य न था। इसी समय मज़दूर सरकार ने रूस के साथ व्यापारिक संधि करने की ठानी। मजदूर-दल इंग्लैंड के खोये हुए बाज़ार को फिर से प्राप्त करना चाहता था। उस संधि के अनुसार रूस इंग्लैंड के बाजार में क़र्ज़ ले सकता था। मगर इंग्लैंड के पूँजीपति ज़ार के समय के कर्जे के धक्के को भूल नहीं सके थे, क्योंकि उसको अभी बहुत समय नहीं बीता था। मजदूरदल सफल नहीं हो सका और उसे शासन से अलग होना पड़ा। १९२४ के चुनाव में इसके सदस्यों की संख्या १५१ रह गई जो १९२३ में १९१ थी। यहाँ पर इतना लिख देना उचित जान पड़ता है कि इंग्लैंड के शासन-पद पर समाजवादियों का अधिकार होने पर भी इसकी नीति में कुछ हेर-फेर न हो सका।

इस हार के बाद मजदूर दल के सदस्यों में एकता पहले से अधिक हो गई। इस बार १९२९ के चुनाव में मज़दूर दल पार्लमेण्ट का सर्व प्रथम दल है। आज मज़दूर-दल के सदस्य २८९, अनुदार दल के २६० तथा उदारदल के ५९ हैं। आजकल मजदूर दल का ही मंत्रि-मण्डल है। तथापि उपर्युक्त संख्यायें बतलाती हैं कि कोई एक दल स्पष्टतया बहुमत का अधिकारी नहीं है। आज भी मजदूर दल को उदारदल की सहायता की आवश्यकता है। उदार-दल के नेता लायडजार्ज ने कहा था कि चुनाव में विजयी कोई दल हो, शासन-पोत का पतवार हमारे ही दल के अधिकार में होगा।

मजदूर-दल के इस संक्षिप्त इतिहास में उसके सदस्यों के चरित्र को स्थान नहीं मिल सकता, तथापि एक-दो का नाम लेना आवश्यक जान पड़ता है। इस समय रैम्से मैकडानल्ड का नाम संसार के समाचार-पत्रों पर मोटे-मोटे अक्षरों में अंकित रहता है। मैकडानल्ड का जन्म एक साधारण स्काच-कुल में हुआ था। अपने परिश्रम से वह मज़दूर-सरकार के दो बार प्रधान मंत्री बने। वह १९२२ में पार्लमेंट के सदस्य चुने गये थे और १९२४ के चुनाव में फिर सफल रहे। मैकडानल्ड बड़े उदारहृदय व्यक्ति हैं। इस दल के लेखक सिडनी वेब तथा उनकी पत्नी बीट्रिस वेब भी काफ़ी

प्रसिद्ध हैं। इस दल में बहुत-से भारत के शुभचिन्तक हैं जैसे कर्नल वेजउड, वेकाक आदि।

भारत में बहुत-से लोग यह कहते सुने जाते हैं कि 'मजदूर दल और दलों से भिन्न नहीं है'। परन्तु इस कथन में विशेष तथ्य नहीं है। पदारूढ़ होकर दूसरे दलों की अपेक्षा भारत के लिए वह अधिक कार्य करने में समर्थ न हो सके तो इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि दूसरे दलों से इसमें कोई विशेषता नहीं है। अपनी मनोवृत्ति, कार्य-प्रणाली तथा अपने आधार-भूत सिद्धान्तों में भी यह और दोनों से बहुत भिन्न है। मजदूरदल समाजवादी है। इसकी नीति यह है कि उद्योग-धन्धों में परिवर्तन किया जाय। यह समाजवाद के अन्तर्गत समष्टिवाद स्कूल का अनुयायी है। इसका लक्ष्य है पैदावार के ज़रिये बढ़ाना तथा उद्योग-धन्धों पर समाज का नियंत्रण स्थापित करना। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर यह और दलों से आगे है। इंग्लैंड द्वारा शासित जातियों को स्वशासन देने का यह पक्षपाती है। मज़दूरों की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाने का समर्थक है।

यहां पर इन उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार किया जायगा। यह दल और दलों की तरह पूंजीवाद में केवल सुधार ही नहीं चाहता बल्कि उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है। राष्ट्रीय सम्पत्ति के उचित वितरण के विषय में इसका विचार ही नहीं बल्कि प्रयत्न भी है कि भूमि, रेलवे, खानों तथा कल-कारखानों पर राष्ट्र का अधिकार हो। नगरों में सार्वजनिक लाभ की चीज़ें, जैसे बिजली, ट्रामगाड़ी आदि पर स्थानीय म्युनिसिपैलिटी का अधिकार हो। हां, समय के विषय में यह शीघ्रता नहीं करना चाहता। इस दल का कथन है कि ये सब काम एक दम नहीं हो सकते, धीरे-धीरे होंगे। इसके लिए क्रान्ति की आवश्यकता नहीं है। जिन पूंजीपतियों से उनके कल-कारखाने ले लिये जाँयगे, उन्हें सरकार उचित दाम देगी।

सार्वजनिक आर्थिक नीति में भी मजदूर दल और दलों से विभिन्नता रखता है। इसकी नीति है 'पूंजी-कर' लगाने की, अर्थात् व्यक्तियों की आय पर न लगा-कर उनके संचित धन पर भी कर लगाया जाना चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति की मर्यादा और शक्ति के अनुसार हो। इस उपाय से इंग्लैंड अपने युद्ध-ऋण से शीघ्र ही मुक्त हो जायगा और उसकी उत्पादन-शक्ति भी बढ़ जायगी। इस विचार का प्रभाव फ्रांस पर पहले ही पड़ चुका है। किन्तु मजदूर दल, विरोधों की गुरुता के कारण, निर्वाचन के अवसर पर इस विचार को स्पष्ट न कर सका था।

विदेशी नीति में मज़दूर दल रूस के साथ व्यापारिक संधि कर चुका है, यद्यपि इसी प्रश्न पर १९२४ में इसकी हार हुई थी। मजदूर सरकार ने मिश्र और ईराक के साथ सद्व्यवहारपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके जो बुद्धिमानी दिखलाई है उसके लिए वह बधाई का पात्र है। इंग्लैंड और अमेरिका के पारस्परिक विरोध का प्रवाह भी इसकी बुद्धिमत्ता-पूर्ण नीति के कारण कुछ समय के लिए रुक गया है। मजदूर दल बनिस्बत और दलों के राष्ट्र-संघ का अधिक समर्थक है।

इस दल का राजनैतिक कार्य-क्रम, युद्ध के पूर्व प्रकाशित श्री रैम्से मैकडानल्ड की 'समाजवाद और सरकार' नामक पुस्तक द्वारा जाना जा सकता है। इसमें उन्होंने इंग्लैंड के शासन-क्रम में सुधार लाने के प्रश्न पर विचार किया है। सरदार-सभा का अन्त तथा साधारण-सभा की वर्तमान संख्या को आधा करने का प्रस्ताव भी उसमें था। मगर पीछे श्री मैकडानल्ड ने इन विचारों को बदल दिया, जैसा कि उनकी 'मजूर दल के लिए नीति', (१९२०) (A policy for the Labour Party) नामक पुस्तिका से पता चलता है। थोड़े दिन पहले पार्लमेण्ट की साधारण सभा में मंत्रि-मण्डल के सुधार के विषय में उन्होंने कहा था कि यह प्रश्न बड़ा ही नाजुक है और इस समय इस पर विचार नहीं किया जा सकता।

युद्ध के बाद सिडनी तथा बीट्रिस वेब की पुस्तक 'इंग्लैंड की सामाजिक सरकार का विधान' प्रकाशित हुई। इसके प्रस्ताव अत्यन्त परिवर्तनवादी हैं। ये बादशाही संस्था को रखना, लार्डसभा का अन्त तथा एक सामाजिक पार्लमेंट का प्रादुर्भाव चाहते हैं। मंत्रि-मण्डल के सदस्यों की संख्या इसमें ५, ६ बताई गई है। मजदूर-दल ने वेब के प्रस्तावों

पर ध्यान नहीं दिया है न उनके स्वीकृत होने की आशा है।

उपर्युक्त बातों से यह नहीं समझना चाहिए कि मजदूर दल में सर्वथा मतैक्य है। इसमें विभिन्न मतों के सदस्य हैं। इसमें एक 'स्वतंत्र मजदूर दल' भी है जिसे मजदूर दल का उग्र भाग कह सकते हैं और जो अपने आदर्शों में अधिक सच्चा है और भारतवर्ष आदि गुलाम देशों के साथ अधिक सहानुभूति रखता है।

थोड़े ही समय में मजदूरदल ने इंग्लैंड की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। यह उन्नति अवश्य ही आश्चर्यजनक है। यहाँ पर इस उन्नति के कारणों पर विचार करना अनुचित न होगा।

पहली बात तो यह है कि बीसवीं शताब्दी समाजवाद की सदी है जब कि अठारहवीं शताब्दी उदार बादशाहों की थी तथा उन्नीसवीं सदी सार्वतांत्रिक शासन की। समय ही समाजवाद का सहायक हो रहा है।

दूसरी बात है मजदूर दल की लोकप्रियता। यह समाज के सभी अंगों का प्रिय पात्र बनने का प्रयत्न करता है। इसने श्वेतांग जातियों के महत्व को कम करने का प्रयत्न नहीं किया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इसने मस्तिष्क से काम लेने वालों को अलग नहीं किया है और न करना चाहता है। इसके रजिस्टरों पर बड़े-बड़े लेखकों, कवियों तथा विद्यार्थियों का नाम है और उन्हें नेतृत्व भी प्रदान किया जाता है। जब पहली बार मजदूर-सरकार कायम हुई थी तब इसने कितने ही सदस्यों को लार्ड बनाया था। इस विषय में मजदूर-दल बहुत ही व्यावहारिक रहता है।

तीसरी बात है भविष्य में परिवर्तन और निर्माणयुक्त इसका कार्यक्रम। इसने पूँजीवाद को कोसने में ही अपनी शक्ति को नष्ट नहीं किया, न व्यापारियों को व्यर्थ गाली देने में ही समय नष्ट किया। इसका कार्य-क्रम है भी व्यावहारिक, जिसका उद्देश्य न केवल श्रमजीवियों का ही हित-साधन है बल्कि सारे समाज का भी। इसका विश्वास है कि मजदूरी तथा अन्य प्रकार से रोटी कमाने वालों के स्वार्थ में विरोध नहीं है। यदि विचार किया जाय तो उसमें सामञ्जस्य दीख पड़ेगा। इस विवरण से भारत के मजदूर-संघ लाभ उठा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त इंग्लैंड के मजदूर नेताओं ने छोटी-छोटी बातों पर न झगड़कर जनता के सम्मुख एक आदर्श रक्खा है। उनका आदर्श समाज के प्रत्येक अंग को और विशेषतः उस अंग को पुष्ट बनाना है जिसके साथ अभी तक लापरवाही का व्यवहार होता आया है। इसका ध्येय अच्छे कारीगर पैदा करना है। ऐसी अवस्था में मज़दूर-दल के साथ सब की सहानुभूति हुए बिना नहीं रह सकती, और उसकी उन्नति पर आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं रह जाता।
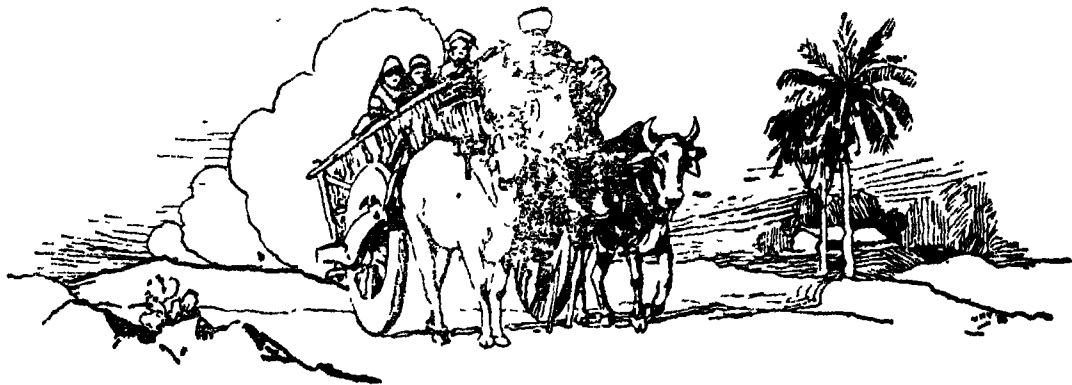
[गतांक से आगे]

(१२)

मैं काँसियारी-जेल में आ गया! अपनी इच्छा से नहीं, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की कड़ी निगरानी में! पथ की बात भी सुन लो!

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन करते हुए कहा—"मेरे साथ आइए महाशय!"

अदब और कायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी! मैं उठकर उसके पीछे हो लिया! सिर भारी हो रहा था—पैर ऐसे दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था, फिर भी चला! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर देखा! इतने दिनों का आश्रय! कुछ ममता हो रही थी! आज इस कमरे को मैं सूना कर चला! परंतु अधिक देर के लिए नहीं—संध्या तक जरूर कोई नया मेहमान इस कमरे में आ जायगा! वाहरे विधाता का विधान!

आंगन के सामने आचार्य बैठे थे। वह अपना भोजन शेष करने की फिक्र में थे। जेल के अध्यक्ष ने आकर मेरे साथ हाथ मिलाया। चार पहरेदारों की देख-भाल में मैं चला।

अस्पताल में एक आदमी ने सलाम किया। उस समय मैं खुले हुए आंगन के बीचोंबीच खड़ा था। साँस लेने में कुछ आराम मिल रहा था। परंतु कबतक?

बाहर गाड़ी खड़ी थी—वही गाड़ी जिसमें बैठकर मैं यहाँ आया था। लम्बी गाड़ी—भीतर लोहे की रेलिंग से उसके दो हिस्से बना दिये गये थे, मालूम हो रहा था कि किसीने लोहे से मकड़ी का जाला बुना हो! दो अलग-अलग दरवाज़े भी थे—एक पीछे की ओर दूसरा सामने की ओर गाड़ी के भीतर अंधेरा तो था ही, साथ ही धूल और कूड़ा भी भरा हुआ था। इससे तो मेरा वह जेलखाने का कमरा लाख दर्जे अच्छा था! इस कब्र में जीते-जी घुसने के पहले एक बार अच्छी तरह चारों ओर देख लिया। इस मुक्त आकाश की स्मृति को लेकर अंधेरे सागर में कूद पड़ूँगा! दरवाजे के सामने कतार बाँधकर दर्शक लोग खड़े थे। टपाटप पानी पड़ रहा था। मालूम हो रहा था कि यह पानी दिनभर बन्द न होगा। रास्ता और आंगन कीचड़ से लथपथ हो रहा था!—चारों ओर कुछ उदासीनता नज़र आती थी।

गाड़ी पर चढ़ा। सामने के कमरे में हथियारबन्द पहरे वालों का दल और आचार्य—पीछे के कमरे में अकेला मैं।

गाड़ी के साथ ही चार हथियारबन्द घुड़सवार! चारों ओर इस प्रकार हथियारबन्द सिपाही—मानों मैं कोई बादशाह था!

गाड़ी चली। पानी से सड़क के पत्थर निकल आये थे। घोड़े की नाल से खटाखट शब्द हो रहा था।

पीछे एक आवाज़ के साथ जेल का फ़ाटक बन्द हो गया—वह शब्द भी मैंने सुना। मैं मानो कुछ तन्द्रा से आच्छन्न था। कोई डर अथवा चिंता मुझे स्पर्श न करती थी। मानों मुझे जीतेजी कब्र में गाड़ दिया हो—कुछ ऐसा ही भाव था। घोड़े के गले में घण्टा बँधा हुआ था—पहिये और घोड़े की नाल से मिलकर गाड़ी का एक विचित्र ही शब्द कान में आ रहा था। मानों आँधी की पीठ पर सवार होकर मैं कहीं जा रहा होऊँ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्नलोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में!

गाड़ी के भीतर दरवाजे में जो छेद था, उसीमें से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढ़े आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था, खैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुंबज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा,—"वाह ऊपर से चारों ओर एक बार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते आ रहे थे। रोकने वाला तो कोई था ही नहीं। आचार्य की आवाज़ से घोड़ों की नालों की आवाज में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतंत्र भाव से नहीं—एक अजीब मिश्र रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो!

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती।"

उनका कहना सच था—बिलकुल ठीक था।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी।—हाँ, क्या कह रहा था? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया संवाद भी है? शायद मेरी फाँसी का हुक्म सुनकर ही यहाँ हल्ला मचा होगा।

आचार्य कहने लगे—"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फुर्सत भी नहीं मिलेगी। संध्या के समय मैं रोज़ अखबार पढ़ा करता हूँ, उससे दिन के ढलने तक का सब समाचार मिल जाता है, एक भी बाकी नहीं छूटता।"

अब तक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मजेदार ख़बर, और आपको अभी तक मालूम ही नहीं है?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है।"

उसने कहा—"आपको मालूम है? ताज्जुब की बात है। कहिए तो सही?"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो?"

उसने कहा—"हाँ अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप कैदी हैं तो क्या हुआ? मैं राष्ट्रीय सेना में था; बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोककर कहा,—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा.—"और ही बात? क्या कहते हैं आप? आपको कैसे मालूम हुआ? किसने कहा आपको? कहिए तो सही क्या खबर है, सुनूँ ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच् चच्! बड़े दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परंतु जी को ढाढ़स दो। मन को मज़बूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रंजीदा मालूम होते हैं? कास्लेगाँ को जब हम यहाँ लाये थे तो वह सारे रास्ते हँसाता-हँसाता आया था।"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, पापामा को भी यहीं लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और रुवले के वे विद्रोही लड़के ऐसे चिल्लाते-हँसते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख पाना तो पागलपन है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही विमर्ष मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र!"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम उम्र! क्या कहते हैं आप? आपसे मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा १० वर्ष बढ़ रही है।"

आचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों मज़ाक करते हो, मेरी उम्र तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गंभीर भाव से कहा—"नहीं मजाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हूँ।"

आचार्य ने हुलास की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज न होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज होने की कौन सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी हुलास की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सब हुलास गिर गया। घबड़ाकर खाली डिबिया को उठाते हुए आचार्यजी बोले—"राम राम! सब हुलास गिर, गया अब क्या करूँ?"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दुःख भी क्या है? आराम-सुख सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने में आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मजाक़ को, बड़े तुच्छ करने वाले आये!—तुमें दुःख भी क्या है? मैं ठहरा बूढ़ा एक आदमी—बिना हुलास के इतना रस्ता कटना—हाय हाय!"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनका हुलास गिर पड़ा है। कैसे स्वार्थान्ध हैं ये पुरोहितगण।

हुलास के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम होकर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर फिर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी उसी गति से चलती रही।

आख़िर गाड़ी शहर के भीतर, चुंगीघर के सामने, आकर ठहर गई। वहाँ से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम भेड़ या बकरे होते तो वहाँ कुछ दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु अफ़सोस कि हम मनुष्य थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर से घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुँची, जो सीधी फाँसियारजारी को ले जाती थी। सड़कों पर लोग अवाक् होकर गाड़ी की ओर देख रहे थे। अख़बार बेचनेवाले इधर-उधर दौड़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम फाँसियारजारी आ पहुँचे। सामने ही विराट् जेलखाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक। देखकर मेरा खून ठंडा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी ठहर गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठा कर मैं उतरने को तैयार हुआ। दरवाज़ा भी उसी समय खुल गया। गाड़ी के अंधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरेदारों ने आकर दोनों तरफ़ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनों ओर क़तार बाँधकर सेना खड़ी थी। बीच में मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक ख़ासी भीड़ जमा थी।

(१३)

उसी सेना की श्रेणी के बीच चलते हुए मुझे कुछ आराम का अनुभव होने लगा मानों मैं स्वाधीन हूँ, क़ैदी नहीं हूँ। परन्तु जब सीढ़ियों को पार करता हुआ उन अँधेरे कमरों की ओर जा पहुँचा, उस समय फिर विरक्ति और अवसाद ने आकर मुझे आच्छन्न कर लिया।

पहरेदार बराबर साथ आ रहे थे। आचार्य दो घण्टे बाद फिर मिलने की प्रतिज्ञा कर कहीं चले गये। उनको और भी न जाने क्या-क्या काम था।

हम अध्यक्ष के कमरे में आये। उनके हाथ में पहरेदार ने मुझे सौंप दिया। मुझे कुछ हँसी आई—मेरे कैसे प्रियजन को इसने मुझे सौंप दिया है।

अध्यक्ष महाशय उस समय कुछ व्यस्त थे। पहरेदार से उन्होंने कहा—"ज़रा सब्र करो, मैं अभी समझ लेता हूँ।"

ठीक ही तो है,—जमा-ख़र्च के खाते का हिसाब न मिलाकर वह एक मनुष्य को खाते में कैसे जमा कर सकते हैं? उस समय वह किसी और अभागे क़ैदी की भाग्यलिपि की ओर झुके हुए थे। पहरेदार ने कहा—"अच्छा तब तक मैं भी अपने काग़ज़ों को सम्हाल लूँ।"

काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकालकर पहरेदार उसी में तन्मय हो गया। मैं एक कोने में खड़ा रहा। लोहे की मोटी छड़ों के भीतर से आसमान नज़र आ रहा था—धूप देखकर मालूम हो रहा था मानों आकाश के शरीर को किसी ने रंग दिया हो! उज्ज्वल नीला आकाश—अहा!

ऊपर की ओर मैं एक दृष्टि से देख रहा था। मैं सोच रहा था, यहाँ मैं खड़ा हूँ, और मेरी स्त्री-कन्या! वे भी इसी आकाश के नीचे हैं। न मालूम इस जीवन में उनके साथ कभी साक्षात् होगा या नहीं।

पहरेदार मुझे पास की एक छोटी-सी कोठरी में ले

आया—उसमें बिलकुल अन्धकार छा रहा था। उसमें दो खिड़कियाँ थीं, जो लोहे की जाली से घिरी हुई थीं। खिड़की के पास आकर मैं बैठ गया।

कब तक बैठ रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात् अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या एक और आदमी! उम्र उसकी कोई पचास से ज्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मज़बूत मालूम हो रहा था; आँख और मुख पर एक विकट भाव था; उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था, परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है?

उसने कहा, "अजी किस चिंता में निमग्न हो? मैं कब से बैठा हूँ और मेरी ओर देखा तक नहीं! क्या नाम है तुम्हारा?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगा।

उसने कहा—"मेरी ओर क्या देख रहे हो? मैं एक क़ोम्‌ हूँ—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने तक की देर है।"

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ?"

बड़ी ज़ोर से कहकहा मारकर वह हँस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे? मामूली बात है! छः हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर श्मशान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छः घंटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छः हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैं तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हूँ।"

मेरी नसें सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा मित्र! इससे सुनो, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँ? वक़्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मज़ेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दरपीढ़ी से पेशा हो रहा है। परन्तु फाँसी केवल मैं ही चढ़ाया जा रहा हूँ, तक़दीर की बात है!"

"छः वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब माँ-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी तक किसी को नहीं मालूम। जेब काटकर और बेवकूफों को और भी बेवकूफ बनाकर मैं मज़े से अपना पेट भरने लगा। आख़िर मेरा पुश्तैनी पेशा जो ठहरा।

"जाड़े के मौसिम में जब चारों ओर बरफ़ से रास्ते और गलियाँ भर जाती हैं, उस बरफ़ पर से भी मैं नंगे पैर चला करता था। स्टेशन, होटल, ट्रेन हर जगह मैं जेब काटता फिरता था।

"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मैं पहले-पहल पकड़ा गया। पीठ पर कई कोड़े पड़े और दो चार दिन की सज़ा हो गई। जब मैं जेल से लौटा तो मेरी क़द्र बढ़ गई और मैं दल का मुखिया बन गया।

"उसके बाद बड़े-बड़े कामों में हाथ डालने लगा। शहर के मशहूर जौहरी की दूकान पर मय अपने दल के उपस्थित हुआ सारी दूकान लूट ली, दो दरबानों को जान से मार डाला। हिम्मत भी बढ़ने लगी। लेकिन, विभीषणों का अभाव कहीं नहीं है। दल के एक विश्वासघाती ने हम लोगों को पकड़वा दिया। सात वर्ष तक जेलख़ाने की हवा खानी पड़ी। फिर बाहर निकला। कुछ विशेष प्रमाण नहीं था, नहीं तो कभी जेल के बाहर पैर रखने की नौबत ही नहीं आती। उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुक़दमा ख़त्म हुआ, उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुँह सूख गया। ख़ैर, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल में घुसा। वहाँ खूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसी को कुछ मालूम तक न हुआ!

"सात-आठ दिन बाद दल के दो-चार लोगों से मुलाक़ात हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने लगा था, और कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और हठीले आदमी भर्ती किये।

"इसके बाद ख़ूब समारोह से काम चलने लगा। रोज़ लूट, रोज़ जीत, रोज़ नये-नये मज़े। आनन्द का फव्वारा छूटने लगा!—किंतु, फिर भाग्य पलटा। दल के लोग पकड़े जाने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। क्रोध से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क पर मिल गया। मुझे देखकर वह काँपने लगा। मैंने उसके बालों को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। कहा—'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ़ करो सरदार।'

"मैंने कहा, 'विश्वासघाती को मैं माफ़ नहीं कर सकता।'

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा ग़ुलाम हूँ।'

'विश्वासघाती ग़ुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हूँ।' कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक ज़ोर की लात मारी। वह पाँच हाथ दूर जा गिरा। मुँह से ख़ून उगलने लगा। मैंने कहा—'उठ चल।'

उसे मैं ले चला। मैं तब—ओह, एक राक्षस की तरह हो गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गिरोह, पुराने साथियों का दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! शैतान!

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट दिये। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर में आग-सी जल रही थी। मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"उसके बाद पुलिस में आकर उसने इज़हार दिया। एक दिन अस्पताल में वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। मेरी फाँसी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या कहते हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। ख़ैर, फाँसी के लिए मुझे चिन्ता नहीं है। चोरी करते-करते जी भी कुछ ऊब गया था। मामूली चोरी में मुझे कभी आनन्द नहीं मिलता। अक्ल ख़र्च करता था। वैसे अक्लमंद और हिम्मतवाले साथी भी अब कहाँ मिलते हैं? इसीलिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। और भी दो-एक चोरी के क़िस्से सुनाता हूँ। समझ जाओगे कि मैं कितना अक्लमंद था। मेरी ऐसी अक्ल को फाँसी की रस्सी में झूलना पड़ेगा, यह एक अफ़सोस की बात ज़रूर है। पर ख़ैर, देश का दुर्भाग्य।"

उसकी बातें सुनकर मुझे रोमांच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बड़े सीधे आदमी मालूम होते हो। राम-राम, फाँसी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हें अफ़सोस हो रहा है। इसी में तो मज़ा है, यह नहीं मालूम। मौज करो, आनंद करो, लोग जानेंगे कि हाँ, फाँसी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देखकर सब अवाक् और स्तंभित हो जायँगे। बहादुर कहेंगे। मुझे देखो न? कैसे मज़े में हूँ! आख़िर अफ़सोस करने से कुछ नतीजा तो हासिल होगा ही नहीं!"

मैंने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं!"

क़हक़हा मारकर वह फिर हँस उठा। उस हँसी के विकट शब्द से सारा कमरा गूँज उठा। उसने कहा—'ओहो 'महाशय'—आप लोग सफ़ेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद ही नहीं था! लेकिन महाशयों को फाँसी दी जाती है—यह बड़े अचम्भे की बात है!"

उसकी बातों में काफ़ी व्यंग था। मैं चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक का विलम्ब है! अच्छा, आप तो ज़मींदार हैं। फाँसी पर चढ़ने जा रहे हैं। अपना यह सुंदर कोट क्यों व्यर्थ ही ख़राब करेंगे? मुझे दे दीजिए! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच-बाचकर चुरुट मँगाने की तदबीर करूँगा।

मैंने कोट खोल दिया! ठंड से शरीर काँपने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा आप बरदाश्त नहीं कर सकेंगे। रहने दीजिए, आप पहन लीजिए अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कहा—"नहीं मैं बरदाश्त कर लूँगा, कोट आप ले लीजिए।"

खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलटकर उसे देखता रहा, फिर बोला, "यह तो बिलकुल नया मालूम होता है। ख़ैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय! कुछ बुरा न मानना, हम ग़रीब ठहरे। बातें करना तो आता ही नहीं।"

इसी समय अध्यक्ष भीतर आये! मुझको एक पहरेदार के ज़िम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—"भूलना नहीं महाशय, वहाँ यही आख़री मुलाक़ात है। फिर छः हफ्ते बाद मिलेंगे! वहाँ आप मेरा इंतज़ार करना।"

उसकी बातों को सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। क्या कहता है यह? पागल है या बेवकूफ़? कौन है यह?

(१४)

वह था बड़ा मज़े का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ़ चलता बना।

क्या मैंने दान कर दिया?—नहीं, ठीक दान तो नहीं किया। मैंने सोचा, वह मज़ाक़ कर रहा होगा, फिर मुरव्वत के ख़याल से वापस न ले सका।

पक्का और पुराना चोर है! पैरों से जिसको दल सकता हूँ, वह मुझे मित्र के नाम से संबोधन कर गया।

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया। मृत्यु मेरे सिरहाने खड़ी है। अभी निर्दयी की भाँति वह मुझे पीस डालेगी। अभी तक धनी सम्प्रदाय का अहंकार मेरी हड्डियों में भरा है! मूर्ख हूँ मैं! बेवकूफ़ हूँ!

फाँसी की डोर धनी और निर्धन का विचार न करेगी। जिस राज्य में जा रहा हूँ, वहाँ धनी और निर्धन का विचार न होगा।

जो डोर उसके गले में पड़ेगी, वही डोर मुझे भी पहुँचायगी! मुक्ति देगी! हाँ, वह मेरा मित्र ही परम मित्र है!
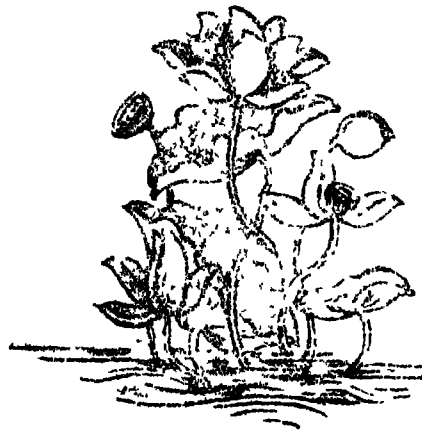
भारत और द्वैध शासन

[श्री प्रकाशचन्द्र]

इसे भारत का अभाग्य ही कहना चाहिए कि इस सदी में इसे न केवल विदेशी सरकार का ही सामना करना पड़ रहा है बल्कि द्वैध शासन-प्रणाली का भी। एक तो गिलोय स्वयं ही कड़वी होती है तिस पर नीम का सहयोग मिल जाने पर तो उसे और भी अधिक विकास करने का अवसर मिल जाता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी ...य किसी दूसरे मनुष्य को परतंत्र रखने का ...कारी नहीं है और न किसी राष्ट्र को ही यह ...धिकार है कि किसी देश को उसकी दुर्बलता से ...भ उठाकर गुलाम बनाये रक्खे। संसार में आत्म-सम्मान खोकर दासता स्वीकार करने से बड़ा कोई पाप नहीं है। क्योंकि इससे व्यक्ति न केवल अपनी मनुष्यता खो देता है बल्कि विजेता के भी मानसिक विकास में बाधा पहुँचाता है। गुलाम देश अपनी कला, सभ्यता, विकास और उन्नति सब को नष्ट कर लेता है, उसके जीवन में न तो कोई आदर्श रह जाता है और न उत्साह; उसकी शक्तियों का जो आत्म-विकास में लगती, व्यर्थ अपव्यय होता है और धीरे-धीरे बल और पौरुष विलीन हो जाते हैं, दरिद्रता आ घेरती है, यहांतक कि जीवन भी दूभर हो जाता है।

परन्तु किसी भी देश को अधीन करने के पश्चात् वहाँ की जनता के विरोध को कुचलने के लिए शायद द्वैध शासन-प्रणाली को सर्वोत्तम उपाय माना जा सकता है। निरंकुश शासन में जनता की स्वतंत्रता की आकांक्षा शान्त नहीं हो सकती; बढ़ती जाती है। परन्तु द्वैध शासन से धीरे-धीरे लोगों का विद्रोह करने का सारा उत्साह नष्ट हो जाता है और वे विषहीन सर्प की तरह हो जाते हैं। जनता इसकी आदी होने लगती है और परिणाम यह होता है कि फिर उसे सिर उठाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

शासन की वह प्रणाली, जिसमें सारी व्यवस्था के संविभाग कर लिये जाते हैं और प्रत्येक एक-एक पदाधिकारी के अधीन कर दिया जाता है और पदाधिकारी जनता के चुनाव पर निर्भर नहीं करते—द्वैध शासन कहलाता है। सारे देश में कारिंदों और अफ़सरों का ऐसा जाल फैला दिया जाता है कि एक के अधीन दूसरा रहे और सारी शक्ति प्रान्तीय संविभागों में केन्द्रित रहे और प्रान्तीय संविभागों की नीति केन्द्रीय (Central) सरकार के हाथ में रहे। निरंकुश शासन-प्रणाली में सारी शक्ति एक आदमी के हाथ में रहती है और इसमें कई के हाथ में। दोनों में जनता के [illegible]नाव पर निर्भर न होने से बहुत कुछ समानता है और एक प्रकार से दोनों अनियंत्रित हैं।

मुग़ल-सम्राटों की शासन-प्रणाली निरंकुश थी। अंग्रेजों ने भी प्रारम्भ में उन्हीं का अनुकरण किया था। आमदरफ्त की सहूलियत में कमी होने से और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में सड़कों और

सवारी की कठिनाई के कारण स्वभावत: निरंकुश शासन सुविधाजनक था। परन्तु जैसे-जैसे रेल, तार, सड़कों आदि की वृद्धि हुई जनता को पदाधिकारियों से शिकायत करने तथा प्रान्तीय सरकारों के नजदीक आने का मौका मिलता गया। प्रान्तीय सरकारों को भी अपने पदाधिकारियों के निरीक्षण में सुविधा हो गई। नित्य नई कठिनाइयों के सामने आने से नियमो और कायदा-कानूनों का भी कलेवर बढ़ने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि सारी शक्ति प्रान्तीय सरकारों में केन्द्रित होने लगी और शासन-कार्य में सादृश्य आने लगा। शासन के व्यवस्था-विभाग का कलेवर भी बढ़ने लगा। धीरे-धीरे जो शासन-प्रणाली पहले निरंकुश थी वही अब द्वैध हो गई।

इसमें संदेह नहीं कि शासन-कार्य में पहले की अपेक्षा अधिक नियमितता, व्यवस्था और फुरती आ गई, जनता को अपनी रक्षा करने का अधिक अवसर मिलने लगा; सरकार की सहायता प्राप्त करना, यों देखने में, पहले से सरल हो गया और जिसे हम बोलचाल की भाषा में शान्ति और सुख कहते हैं वह भी किसी अंश तक उपलब्ध हो गया— परन्तु शासकों में जनता के लाभ की जो सतत सदिच्छा की आवश्यकता अनिवार्य हुआ करती है वह नष्ट हो गई।

जनता के जीवन का दु:ख-सुख क़ायदों और कानूनों में बंध गया। सरकार ऐसे व्यक्तियों का समूह रह गई जो उन बने हुए नियमों और कानूनों का पालन करने के लिए बाध्य हैं, न पीछे हट सकते हैं और न आगे बढ़ना चाहते हैं। जिनका कर्तव्य उन कायदों के अक्षरश: पालन करने के पश्चात् समाप्त हो जाता है, चाहे उसका परिणाम हानिकारक हो या लाभदायक; जो सोचने का कष्ट उठाना न तो स्वयं आवश्यक समझते हैं और न सरकार ही उनको इस विषय में प्रोत्साहन देने को तैयार है। परिणाम यह होता है कि जनता और शासन में प्रेम और सद्भावना की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। शासनकर्ता यंत्र और मशीन मात्र रह जाते हैं, जिनका कार्य शासन करना है और जनता उनके हाथकी खिलौना रह जाती है जिसका कार्य आज्ञा मानना है। शासन-विभाग के पदाधिकारी धीरे-धीरे अपने को उच्च कोटि के व्यक्ति मानने लगते हैं, जो जनता से आदर और श्रद्धा की आशा करते हैं और चूँकि उनका उत्तरदायित्व जनता के प्रति कुछ भी नहीं है, यद्यपि उनका कार्य जनता पर शासन करना है, वे जनता को तुच्छ दृष्टि से देखने लगते हैं और भूल जाते हैं कि उनके कार्य की सफलता सुव्यवस्था करने में है। इस प्रकार एक ओर जहां ये जनता के प्रति निरंकुश बनते जाते हैं, अपने ऊपर के पदाधिकारियों की आज्ञायें उन्हें अक्षरश: पालन करनी पड़ती हैं,— वे इसके लिये बाध्य हैं। जनता उनसे प्रसन्न होकर उनका कोई लाभ नहीं कर सकती और न क्रुद्ध होकर कुछ बिगाड़ ही कर सकती है जब कि ऊपर के पदाधिकारियो की कृपा-अकृपा पर न केवल उनका भविष्य ही निर्भर है बल्कि उनके अप्रसन्न होने की दशा मे चाहे उनका जीवन संकट में न पड़े पर कम से कम उनकी उन्नति तो बहुत-कुछ रुक सकती है। इसलिए उनके कर्तव्य की समाप्ति निश्चित और नियत नियमों के अनुसार कार्य करने और अफसरों को प्रसन्न रखने में ही हो जाती है। वे निश्चित विचारों के व्यक्ति हुए और निश्चित कायदे कानूनों में से किसी से उनका मतभेद भी हुआ तो वे उनको प्रकट करने का न तो साहस ही करते हैं और न आवश्यकता ही समझते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऊपर के पदाधिकारी उनकी गवेषणाओं को पसन्द नहीं करेंगे।

जनता से उनका स्वामी-सेवक का संबन्ध होने से सरकार को यह भी वांछनीय नहीं कि जनता के बतलाये हुए सुधारों से सहानुभूति प्रकट की जाय। उनका मत है कि सरकारी कायदे-कानून विस्तृत अनुभव के बाद बने हैं और जब वे जनता के ही हित के लिए बने हैं और वे लोग भी उसी के लिए कष्ट उठाते हैं तो जनता की यह मूर्खता है जो उनके उच्च कार्यों में दस्तन्दाजी करे। द्वैध सरकार जनता को गुलामों के रूप में नहीं तो आज्ञा-तत्पर सेवकों के रूप अवश्य देखना चाहती है। उसको अपनी शान (Prestige) का खयाल जनता के हित से अधिक रहना स्वाभाविक है। जनता का विरोध उसको अपनी सत्ता के विरुद्ध कुठाराघात मालूम होता है इसलिए वह इसे अपना कर्तव्य समझती है कि जनता के उत्साह को उसकी भलाई के नाम पर दमन द्वारा उखाड़ फेंका जाय। इस प्रकार के अवसरों पर निरंकुश शासन और द्वैध शासन दोनों की नीति एक हो जाती है और वह है 'दमन करना'। इसलिए सरकार जनता को उसी सीमा तक शिक्षा, सदाचार और अधिकार से लाभ उठाने देती है जहां तक जनता सरकार के किसी कायदे-कानून के विरुद्ध आवाज नहीं उठाती। उन्हीं संस्थाओं को सरकार सहानुभूति-पूर्वक देखती है जो उसकी आज्ञाओं को नतमस्तक होकर शिरोधार्य करती हैं। सारांश यह कि द्वैध सरकार के अधीन रहकर जनता के लिए स्वच्छन्दतापूर्वक न सही स्वतंत्रता-पूर्वक भी विकास करना कठिन है।

यह तो हुए मामूली द्वैध-शासन प्रणाली के दोष। हमारी सरकार यदि हमारी निज की होती और द्वैध होती तो भी उपर्युक्त दोष न्यूनाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होते। फिर यह तो विदेशी है। अंग्रेज-सरकार के अपने ही स्वार्थ इतने अधिक हैं और अपने ही देश और साम्राज्य की रक्षा की उसे इतनी अधिक चिन्ता है कि हमारे लाभों के दृष्टिकोण से यदि वह अपनी नीति निर्धारित करे तो यह बहुत विस्मय जनक घटना होगी। हमारे व्यापार को नष्ट करने के लिए, हमारी वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक बहुत-सी परिस्थितियों और समस्याओं के लिए, और हमारे आत्मिक विकास को रोकने के लिए वर्तमान सरकार का कहां तक उत्तरदायित्व है यह इतिहास और राजनीति के विद्यार्थियों को भली-भांति ज्ञात है। हम अपनी अकथनीय हानि तो इसीसे देख सकते हैं कि भारत-जैसा देश जो धन और समृद्धि के लिए २०० वर्ष पहले प्रसिद्ध था आज संसार में सबसे अधिक अवनत है। देश का आर्थिक ह्रास हो गया है और भारतीय जीवन की सुख और शान्ति नष्ट हो गई है। यह कहा जा सकता है कि मुगलों का शासन वर्तमान समय से अधिक निरंकुश था, फिर उस समय असन्तोष क्यों न फैला। वैसे देखा जाय तो प्रत्येक मुसलमान बादशाह का जीवन बलवों को दमन करते बीता है पर मुसलमानों के अत्याचार का भारत के ग्रामीण जीवन पर कोई असर नहीं पड़ा था केवल कुछ शहरों तक ही वह सीमित था। महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समय 'रोटी' की समस्या सरल थी और जनता को क्रोध तभी आता है जब इस प्रश्न पर आघात पहुँचता है। यह कहना बहुत अधिक नहीं होगा कि आर्थिक परिस्थिति पहले की अपेक्षा अधिक विकट और उलझी हुई है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे शास्त्रों ने, शासक की, * फिर वह अत्याचारी ही क्यों न हो, आज्ञा

* यह लेखक की भूल है। अत्याचारी राजा को, सपरिवार तक, नष्ट कर डालने का स्पष्ट आदेश मनुस्मृति आदि में है।—संपा०।

का पालन नागरिक का कर्तव्य बतलाया है; हमारी स्त्रियों को पराधीन और दासता में रखने की प्रवृत्ति ने, जिसने भावी सन्तान के मस्तिष्क पर भी दासता का ही प्रभाव डाला है; हमारे वर्णाभिमान ने, जिसके कारण हम मनुष्यता के एक भाग को अस्पृश्य मान रहे हैं और हमारे कौटुम्बिक वातावरण ने, जहां वृद्धजनों की अंध-भक्ति पर ही अधिक जोर दिया जाता है—हमको गुलामी के बंधन में बहुत दिन तक पड़े रहने पर भी बाहर निकलने से भरसक रोका है, परन्तु अब जनता में पर्याप्त जाग्रति फैल चुकी है और कल के निद्रालु और अशक्तजन आज स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बांसों उछल रहे हैं। द्वेष और विदेशी शासन के दोषों की यह चरम सीमा समझनी चाहिए जिनके फल-स्वरूप आज हम नये युग का स्वप्न देख रहे हैं।

उल्लास

(श्री सच्चिदानन्द बी० एस-सी०)

हृदय, कैसा है यह उल्लास ?

तेरी वीणा-ध्वनि का करता सारा जग है हास,
तार सभी ये टूट गये हैं रहा न कुछ भी पास।

हृदय कैसा है यह उल्लास ?

तेरी सारी महिमा का हो गया निमिष में नास—
राजा होकर फिर अब तू है दासों का भी दास।

हृदय कैसा है यह उल्लास ?

तिमिराछन्न गगन है तेरा बीहड़ तेरा वास—
सारी संपति खोकर भी हा ! गई न तेरी आस !

हृदय कैसा है यह उल्लास ?

किस ओर ?

[श्री रणधीरलाल बी० ए०]

यह सभ्यता हमें किस ओर ले जा रही है ? हमें उन्नति तथा शान्ति के उच्च शिखर पर ले जाकर इस युग को और युगों में सर्वोच्च बनाने जा रही है अथवा अवनति एवं अविरल अशान्ति के गह्वर में ढकेलकर इस जड़वाद अथवा भौतिक सभ्यता के युग को मनुष्य जाति पर अमिट कलङ्क का टीका बनायेगी ? इसे लोग कई दृष्टियों से देखते हैं इसीलिए एक पंथवालों के लिए यह युग मनुष्य की उन्नति तथा उसकी शक्ति वृद्धि के इतिहास की चरम सीमा है। यह जड़वादियों का दृष्टि-कोण है। इनके लेखे यह युग और युगों से सर्वथा भिन्न है। यह वह युग है जिसमें मनुष्य ने प्रकृति पर पूर्णतः अधिकार कर लिया है; मनुष्यजाति अपने इस विशाल एवं दीर्घ जीवन में जो कार्य सम्पन्न न कर सकी थी, जो शक्ति सर्वदा इसके हाथ से बाहर रही वह शक्ति इस युग में मनुष्य के अधीन हो गई; वह कार्य सम्पन्न करने में मनुष्य-जाति समर्थ हुई। इस यांत्रिक युग के गर्व करने के योग्य आविष्कार रेल, तार वायुयान, रेडियो आदि हैं।

हाँ, इन आविष्कारों पर यह युग गर्व कर सकता है। ये सारे सभ्य संसार को एक सूत्र में बाँध लेने में समर्थ हो सकते हैं। अगर इनका सदुपयोग किया जाय तो इनसे सारे संसार की सम्पत्ति तथा सभ्यता की एक सीमा तक उन्नति भी हो सकती है। रेल और जहाजों द्वारा उद्योग-धन्धों के दैशिक विभाग (Territorial Division of Labour) का विस्तार हो सकता है। जब वे स्थान, जो किसी वस्तु-विशेष की उत्पत्ति में साधारण स्थानों की अपेक्षा विशेष सुविधाजनक हैं, केवल उन विशिष्ट वस्तुओं की उत्पत्ति में अपनी सारी शक्ति व्यय करते हैं तो संसार की उत्पादक शक्ति बहुत बढ़ जाती है, यह तभी सम्भव है जब रेल-जहाज़ तार-डाक आदि का पूर्ण विकास हुआ हो। पर क्या रेल जहाज़-तार आदि के विकास से संसार के धन-समृद्धि की वृद्धि, परस्पर सम्बन्ध की घनिष्टता, तथा सभ्यता की उन्नति हुई है ? कोई भी विचारशील मनुष्य, जो इस भौतिक सभ्यता अथवा जड़वाद का अन्धभक्त नहीं है, यह नहीं कह सकता कि इन साधनों के आविष्कार इन उच्च आदर्शों के प्रतिपादन में समर्थ हुए हैं।

इसके विपरीत संसार के विचारशील मनुष्य टालस्टाय, रस्किन, कार्पेण्टर, गांधी आदि ने स्पष्ट शब्दों में इस सभ्यता की घोर निन्दा की है। वही पश्चिम, जो इस यान्त्रिक युग का फल चख चुका है; वही पश्चिम जो कल तक यन्त्रों अथवा जड़ पदार्थों में अपनी मुक्ति देखता था, अब दूसरी ओर मुड़ रहा है। एक अलस चेतना जाग रही है, नव-प्रभात होने वाला है। जिस तरह प्रभात के आगमन का अग्रदूत पक्षी करने लगते हैं उसी तरह पश्चिम के गंभीर विचारक रस्किन और टालस्टाय को इस प्रभात का पूर्वाभास मिला और इसका पूर्वानुभव हुआ। उन्होंने स्पष्ट तथा कठोर शब्दों में कहा कि यह सभ्यता राक्षसी सभ्यता है; ये काली मशीनें काली का रूप ग्रहण कर मनुष्य जाति का संहार करेंगी। इन महज्जनों की आँखों की प्रकाश-रेखा दूर तक पहुँचती थी। उन्होंने देखा कि इस सभ्यता का अन्तिम चरण तथा अन्तिम परिणाम क्या होगा ? इन प्रज्ञा-चक्षुओं की दृष्टि इन भौतिक आविष्कारों और आधुनिक सभ्यता की चटकीली वस्तुओं से चकित नहीं हुई। ये दृढ़-प्रतिज्ञ तथा मनस्वी थे। टालस्टाय अच्छे-बड़े ज़मीन्दार होते हुए भी अतीव कोमलहृदय थे। उन्होंने मज़दूरों और किसानों की उन्नति में अपना सर्वस्व स्वाहा किया; अपनी लेखनी की सारी शक्ति इस सभ्यता की दोषपूर्णता तथा इसके परिणाम-स्वरूप फैलनेवाले सामाजिक विभेद (एक ओर लक्षाधिपति विलासिता में लिप्त रहनेवाले धनियों

और दूसरी ओर काली कोठरियों में रहने वाले, अपनी स्वल्प कमाई से अपने परिवार का पोषण करने में असमर्थ, दिन-दिन दरिद्रता के पंजे में और बुरी तरह जकड़े जानेवाले मज़दूरों तथा सरकार एवं जमीन्दारों के अन्याय के कारण दरिद्र तथा भिखमंगे बनाये जाने वाले किसानों के पारस्परिक द्वेष) के चित्रण में लगाया। रेलों को मनुष्य के उच्च भावों का नाश करने वाली समझकर रस्किन ने १९ वीं शताब्दी में विलायत में रहकर भी अपने को उनसे अछूता रक्खा। सारे यूरोप का भ्रमण उसने पैदल तथा घोड़ा-गाड़ियों पर किया।

रेल, जहाज, तार आदि से संसार को क्या लाभ हुए और क्या हानियां हुईं इसका विचार करना आवश्यक है। लाभ तो थोड़े ही हुए जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर इससे हानियाँ बहुत अधिक हुईं। इन्हीं के कारण साम्राज्यवाद का प्रसार हुआ। इन साधनों के विकास के साथ ही साम्राज्यवाद अथवा सारी पृथ्वी को कुछ विजयी देशों में विभाजित करने की नीति का उद्भव तथा प्रचार हुआ। साम्राज्यवाद के प्रसार के परिणाम-स्वरूप मनुष्य-जाति को न जाने कितनी और कैसी-कैसी लड़ाइयों में प्रवृत्त होकर धन-जन का नाश देखना पड़ा है! इस युग के सभी युद्ध इस भौतिक उन्नति और साम्राज्यवाद के परिणाम हैं। इस भौतिक उन्नति के पूर्व के युगों में प्रत्येक देश आर्थिक दृष्टि से, बहुत-कुछ, स्वाधीन था। पर ये यन्त्र तथा वाष्प के आविष्कार, जिनका प्रयोग उद्योग-धन्धों तथा माल और सवारी ले जाने के साधनों में किया गया, संसार के देशों को आर्थिक परतन्त्रता में जकड़ने वाले सिद्ध हुए। अब एक देश दूसरे देश को कच्चे माल के लिए गिद्ध या बगुले की भाँति देख रहा है तो दूसरा पक्के माल के लिए पहले का मुहताज है। ऐसी दशा में अधिक परिमाण में वस्तुओं का निर्माण करना (Large-scale Production) आवश्यक है और उद्योग-धन्धों की यह सीमा संसार की शान्ति में बाधक है। रूसी तथा जर्मन समष्टिवादियों का कहना है कि जब किसी चीज़ की उत्पत्ति समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के विचार से नहीं वरन् पूँजीपति के वैयक्तिक लाभ के विचार से की जाती है तब संसार के देशों में पारस्परिक कलह एवं युद्ध की सामग्री अपने आप ही जुट जाती है। यह आर्थिक परतन्त्रता (ज़रूरी वस्तुओं के लिए दूसरे देशों का मोहताज रहना) देश के अस्तित्व के लिए भयानक है। युद्ध के समय जब विभिन्न देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध कुछ काल के लिए एकदम बन्द हो जाता है (जैसा विगत जर्मन महायुद्ध के समय हुआ था) तब इस भयानकता का पता चलता है। इसीलिए इंग्लैण्ड-जैसे औद्योगिक देश को कृषि की उन्नति करने के लिए आर्थिक पर्याप्तता (Economic Suffici[illegible] प्राप्त करने को प्रयत्नशील होना पड़ा है, जि[illegible] ऐसे अवसरों पर सुवर्ण-राशि के होते हुए भी रोटियों के लिए तरसना न पड़े।

इस भौतिक उन्नति के दो अनायास परिणाम हैं। पहला साम्राज्यवाद; दूसरा पूँजीवाद। साम्राज्यवाद में समृद्धिशाली देश अशक्त तथा अशिक्षित देशों में व्यापार के बहाने घुसते हैं और धीरे-धीरे आर्थिक सत्ता के साथ-साथ राजनैतिक सत्ता भी स्थापित कर लेते हैं। व्यापार का ही आश्रय लेकर अंग्रेज़-फरासीसी आदि भारत, मिश्र, चीन तथा ऐसे अन्य देशों में घुसे और इन देशों के स्वामी बन गये। साम्राज्यवाद तभी सम्भव है जब एक देश वस्तुओं का निर्माण बहुत बड़े परिमाण में कर सके। और माल पहुँचाने के साधनों (रेल, जहाज़ आदि) की इतनी उन्नति हो गई हो कि उत्पादक देश नई मंडी में भाड़ा दे चुकने पर भी रियायती दर में बेच सके। यह दशा इस भौतिक उन्नति तथा सभ्यता का परिणाम है। इसी भौतिक उन्नति के फल-स्वरूप संसार के शक्तिशाली देश, यथा इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि, संसार को अपने में बाँटकर अशक्त राष्ट्रों की हस्ती मिटा देना चाहते हैं। ऐसी स्थिति चाहे डारविन तथा उसके विचार के अनुयायियों के लिए, जो 'शक्तिशालियों के जीवन और अशक्तों के नाश' (Survival of the fittest) के सिद्धान्त के समर्थक हैं, स्वाभाविक तथा लाभदायक हो पर हम लोगों के लिए, जो अधिक से अधिक आदमियों (Welfare of the greatest number) की समृद्धि चाहते हैं, यह दशा अत्यन्त भयावह तथा दोषपूर्ण है। यह आधुनिक सभ्यता हमारे भीतर

से सब उच्च गुण निकाल फेंकती है एवं बाह्य तथा प्रलोभनकारी वस्तुओं के आकर्षण में फँसाती है। निर्बल राष्ट्रों की रक्षा करना नहीं सिखाती, वरन् इसके विपरीत उनको हड़पने के उद्योग और यत्न में अग्रसर करती है।

अब पूँजीवाद पर विचार करना चाहिए। पूँजी है क्या चीज़? समष्टिवादियों—जिनके गुरु कार्ल मार्क्स (Karl Mark) हैं—की दृष्टि में वह पूँजी डाकेज़नी का परिणाम है। मालिक (Industrialist) मज़दूरों को मज़दूरी में उसकी उत्पादक शक्ति का पूरा मूल्य नहीं देता। इसी प्रकार पूँजी का उद्भव होता है। इस प्रकार मज़दूरों की मज़दूरी का जबरन छीना हुआ अंश मिलकर पूँजी बन जाता है।

जब इस पूँजी का उद्भव ही इस प्रकार अन्याय द्वारा हुआ है तो पूँजीवादी-समाज में तो इस अन्याय और पाशविकता का बोलबाला होना स्वाभाविक है। इस भौतिक उन्नति तथा यान्त्रिक विकास के कारण अब उद्योग-धन्धों में बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है। पिछले समय का कारीगर पूँजी के अभाव से यह काम अपने हाथों में नहीं ले सकता। छोटी पूँजी रखने वाला या स्वतंत्र काम करने की इच्छा रखने वाला कारीगर विवश हो गया है; उसकी स्थिति ग़ुलाम से भी गिरी हो गई है। वह फैक्टरी में आने-न आने में नाम मात्र के लिए स्वाधीन है। परिस्थिति ने उसकी स्वाधीनता छीन ली है। वह बेचारा उस ग़ुलामी में जकड़ लिया गया है जिसका बन्धन उसकी सन्तान को भी नहीं छोड़ेगा। कारख़ानों का अधिक परिश्रम उसके शरीर को शक्तिहीन, कारख़ानों की गन्दी परिस्थिति उसके शरीर के रस का नाश कर देती है। तिसपर मज़दूरों के भाग्य में लिखी हुईं काली कोठरियाँ अथवा शहर की वे गन्दी गुफायें, जिनमें सूर्य भगवान् की संजीवनी रश्मियों का कभी प्रवेश नहीं होता, उसके इस सांसारिक जीवन को नारकीय जीवन के रूप में बदल देती हैं। मज़दूर ख़ुशी के साथ नरक में रहने को प्रस्तुत हो जायगा, यदि उसके गले पड़ी यह दशा उससे छुड़ाई जा सके।

यह सभ्यता जहाँ एक ओर देश की अधिकांश जनसंख्या को नारकीय जीवन व्यतीत करने को बाध्य करती है वहाँ दूसरी ओर अशान्ति के बीज बोती है। अन्याय के प्रतीकार में अशान्ति को प्रश्रय मिलता है। इसीलिए मज़दूरों का असन्तोष जगह-जगह हड़ताल और पारस्परिक कलह पैदा कर देश की उत्पादक शक्ति तथा शान्ति और समृद्धि का नाश करता है। इस सभ्यता ने नौकरों में से स्वामिभक्ति का वह उच्च भाव निकाल दिया जो पूर्वकाल में भारत तथा अन्य देशों के लिए गर्व की बात थी। इस युग में क्या हम चामुण्डराय-जैसे स्वामिभक्त सेवक पाने की आशा करें जो रणस्थल में मूर्छित स्वामी पृथ्वीराज चौहान को गिद्धों का शिकार होने से बचाने के लिए अपने अंगों को काटकर गिद्धों को तृप्त करने में अपने जीवन की सार्थकता समझता था। ऐसे सेवक इस सभ्यता में, ऐसी स्थिति में स्वप्न हैं। हाँ, इस स्वार्थी युग की शिक्षा पाये हुए सेवक गण और मजदूर मालिकों और मिल-मालिकों के अन्याय से इतने विक्षिप्त रहते हैं कि वे अन्यायी पूँजीपति तथा मिल-मैनेजर का सिर तोड़ देने तक को उद्यत हो जाते हैं। क्या ऐसी सभ्यता हमें उन्नति की ओर ले जायगी ? विश्वास नहीं होता।

यन्त्रों की उन्नति ने कृषकों का गृह-उद्योग छीनकर उनकी दशा दयनीय बना दी है। भारतीय कृषकों की स्थिति बहुत ख़राब है। कारीगरों की दशा तो और भी बिगड़ गई है। वे कारीगर न रहकर हमारे ज़माने के ग़ुलाम बन गये।

इन सब से मोक्ष का उपाय है बस उसी पुरानी राह पर चलना। ये मशीनें पश्चिम वालों के लिए तो विनाश का साधन हो रही हैं; वे उसे छोड़ना चाहते हैं पर ये मशीनें उन्हें नहीं छोड़तीं। पूर्व वाले इन्हें अपनाने चले हैं। पूर्व की भिन्न सामाजिक अवस्था में ये अवश्य हमें ले डूबेंगी।

इसलिए यदि इन कुपरिणामों से बचना है तो जीवन को सरल बनाना ज़रूरी है। आध्यात्मिक उन्नति पर भौतिक उन्नति से अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है। मशीन-पुर्जों को छोड़ स्वदेशी और चर्खे के अमोघ अस्त्रों से स्वराज्य और इसके बाद के लिए अनन्त शान्ति के युग की प्राप्ति करें, तो अच्छा होगा। यह सभ्यता बन्धन की ओर ले जाती है। और मुक्ति इसके विपरीत दूसरी ओर है। हमारा कर्तव्य है कि हम संसार को समझा दें कि बन्धन किस ओर है और मुक्ति किस ओर। सब से हमारा यही प्रश्न हो—'किस ओर ?'

राष्ट्रपति जवाहर

श्री सोहनलाल द्विवेदी

ऐ वैभव की मृदुल-गोद में पाले हुए भिखारी !
बलिहारी ! चरणों में सौ सौ राजमुकुट बलिहारी !!
शहंशाह के शहज़ादों मे गिनती रही तुम्हारी,
राजकुँवर के साथ-साथ बढ़ती थी सुभग सवारी।
पेरिस मे पोशाक धुलाई जाती थी मनवाले !
तुम दुनिया के लाल-लाड़िलो में थे एक निराले।
त्रिंश कोटि रणवीरो के हुलसित-हिय का वरदान !
आज तुम्हारे 'स्वर्ण-ताज' की किरणों में द्युतिमान !!

× × ×

मधुर लवेण्डर चन्दन छोड़ा, सुरपुर लन्दन छोड़ा;
शहंशाह की भेंट राजद्वारो के अभिनन्दन छोड़ा।
लगी धधकने मातृभूमि के दुख की उर मे आगी।
सिंहासन पर लात मार बन गये वीर वैरागी !

× × ×

कभी न मृदु-पग चले कठिन-मग, तुम मेरे सुकुमार !
वही नग्न-पद कँकरीले-पथ में कर रहे विहार।
मुरछल डुलती थी न बैठ सकती थीं मुख पर मखियाँ !
सही वही तुमने उर में कर में लोहे की लठियाँ !!

× × ×

विश्व जानता पिता पुत्र में होती कितनी ममता ?
पर, ममता से कहीं मधुर तुम में थी अपनी समता !
मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता पर, चढ़ा पिता का प्यार !
बोल उठा—'विद्रोह' तुम्हारा, 'लो पूरे अधिकार' !

× × ×

देश कह रहा—उड़े 'तिरंगा', बाजें समर-नगारे !
तुम सेनापति बनो और हम सैनिक बनें तुम्हारे !
आग लगे 'नौकरशाही' में, भस्मसात् हों कड़ियाँ !
अरे वीर ! अपनी छाया में, ला दो ऐसी घड़ियाँ !!

द्रष्टा ('बिजमरी')

जवाहरलाल

जवाहरलाल

(व्यक्तिगत अध्ययन और निवेदन)

[श्री 'निर्गुण']

(१)

वह ज़माना

कितनी जल्द दिन आते और चले जाते हैं ! दस वर्ष बीत गये ! असहयोग के तूफानी दिन थे; राष्ट्र के हृदय ने पहली बार व्यापक उद्वेलन का अनुभव किया था। गाँव और शहर एक हो रहे थे। बूढ़े और जवान, पिता और पुत्र, मायें और बेटियाँ, बहनें और पत्नियाँ एक साथ उठ खड़ी हुई थीं। प्राणों में पीड़ा, जीवन में उन्माद, हृदय में विश्वास, आँखों में आत्मोत्सर्ग का तेज तथा गालों पर आशा-निराशा की धूप-छाँह लिये राष्ट्र का शरीर आनन्द से काँप रहा था। बच्चे, जिनके दूध के दाँत भी न टूटे थे, भरी हुई 'प्रिज़न-वानों' (जेल की मोटरों) को देखकर उछलते और जय के नारे लगाते थे। भीतर बैठे हुए कैदियों के दिल बाँसों उछलते थे। स्नेह और कर्तव्य के सतत-संघर्ष से आकुल बहनें रोती आँखों, और उससे भी बढ़कर रुँधे हृदय, पर गर्व से फूलती हुई छाती से, बिना एक शब्द बोले उस त्याग को नीरव अर्घ्य देती थीं। मित्र जेल को रवाना होते समय ऐसे चिपट जाते थे मानो शरीर की भिन्नता स्नेह की धारा में विलीन करके छोड़ेंगे। गँवार, गांधी टोपी पहनकर किसी को आते हुए देखते तो समझते कि हमारा भाई आ गया। चोर और गिरहकट, गुण्डे और बदमाश भी, जेल में या जेल के बाहर, राजनैतिक कैदियों से मिलते समय अपने सारे संस्कार भूल जाते थे। सी०आई०डी० और सेना के आदमी इस अहिंसात्मक त्याग, परवाने की भांति लगन की लौ में जल मरने की आकांक्षा लिये आठों पहर चलनेवाले दीवानों का पागलपन देखकर विचकित हो रहे थे। आह ! क्या दिन थे ! क्या समय था ? जागरण के पूर्व, प्रभात के सुखद एवं मधुर स्वप्न की भांति दिल में एक सिहर पैदा कर चला गया। जानता हूँ आज स्वप्न टूट गया है और उसके साथ, जैसा स्वाभाविक है, दिन के जागरण की किरणें फैल गई हैं पर वह बात कुछ और थी ! स्वप्न सदा जागरण से अधिक गतिमान और अधिक आकर्षणशील होता है ! वह स्वप्न था, चला गया; यह जागरण है, आया है।

× × ×

उन्हीं आशाओं और निराशाओं, उछलते हृदयों और उछालनेवाली कल्पनाओं के स्वप्न-युग में, राष्ट्र की पुकार पर, मैं अपने, आज जेलों में सड़ने अथवा घर-गृहस्थी में फँसकर गहरे जल में डूबते जरा तैरना जाननेवालों के समान डम-डुभ करते हुए साथियों के साथ, अवध के किसानों की झोंपड़ियों के बीच घूमता-फिरता था। पंचायतें पुनर्जीवित की जा रही थीं; ग़रीबी से झुलसी हुई हड्डियों को, जिनका रक्त विदेशी शासन की व्यापारी जिह्वा ने चूस लिया था, मिला-मिलाकर खड़ा किया जा रहा था। पुलिस वाले यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ भागते फिरते थे। सड़क पर, स्टेशनों पर, गाड़ियों में, 'अनारकिस्टों' के ये अवैतनिक रक्षक सर्वव्यापक-से हो रहे थे। रात को डेरे के चारों ओर चारपाइयाँ डालकर ये पहरा देते। तब भी कुछ न हुआ; काम चलता रहा। अवध के दुर्बल किसान एक शक्ति बनकर उठ खड़े हुए। सरकार घबरा गई; १४४ दफ़ा लगाकर ५ आदमियों से अधिक का एकत्र होना जुर्म करार दे दिया। जटिल परिस्थिति थी। सुनते ही जवाहरलाल प्रयाग से मोटर पर दौड़े आये। तब पहली बार, दोपहर के समय, कड़ी तपन में, सुल्तानपुर की एक धूलभरी सड़क पर खड़े-खड़े पर बहुत नज़दीक से जवाहरलाल को देखा। लोग घेरकर उनसे बातें कर रहे थे और मैं, राष्ट्रीय-संग्राम के इस सदेह काव्य को, आँखों से, घोलकर पीने में तल्लीन था। उनकी दृढ़ता और नरमी, उनका जोश और संयम, उनकी अमीरी और ग़रीबी, उनका त्याग और आत्माभिमान सब एक साथ ही उनके चेहरे पर छाया-चित्र की भांति नाच रहे थे !

पीछे मुझे मालूम हुआ कि अवध का वह सारा किसान-आन्दोलन इसी चमक-दमक एवं कोमल पर कर्तव्य-कठोर युवक द्वारा संचालित हो रहा है!

(२)

कुछ स्फुट चित्र

एक लम्बा, छरहरे बदन का गोरा नौजवान; ऊपर से नीचे तक निर्मल स्वच्छ स्वेत खादी से लिपटा हुआ। चौड़ा ललाट, ममता उत्पन्न करने वाली सतेज आँखें; पतले और अभिव्यक्तिशील (expressive) ओठ एवं मुँह—यह जवाहरलाल हैं! यह प्रौढ़ युवक, जिसका सौन्दर्य और जिसकी परिस्थिति एक राजकुमार की थी, आज स्वाधीनता का अलख जगाता हुआ, काँटों का ताज पहनकर कुछ अजीब दीवानेपन के साथ देश में घूमता फिरता है!

जवाहरलाल का भाषण पढ़ने और फिर उनसे मिलने के बाद कितना अन्तर नज़र आता है! कहाँ एक आमूल क्रान्तिकारी और कहाँ एक मिलनसार, हँसमुख, बेतकल्लुफ़ तथा सहृदय युवक! छात्रों में, युवकों में, सिपाहियों में, राजनीतिज्ञों में, वह जहाँ रहते हैं वहीं लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इसका कारण यह है कि उनका 'अहम्' उनके ग़रीब से ग़रीब के साथ मिलने में भी बाधक नहीं होता। अभी चन्द महीनों की बात है; उनकी प्यारी पत्नी, भारतीय गौरव की परछाईं, बहन कमला बीमार थीं। एक दिन तबीयत एकाएक बड़ी ख़राब हो गई। दूसरे दिन अपने छोटे-से दुर्बल अस्तित्व को संकोच से और भी संकुचित करता, तर्क-वितर्क में डूबा हुआ मैं उनसे कुछ ज़रूरी बातें करने उनके 'आनन्द-भवन' गया। दरवाजे पर ही नौकर से मुझे मालूम हुआ कि इस समय अपनी पत्नी की बीमारी के झंझट और सेवा-शुश्रूषा में लगे हुए हैं। पं० मोतीलालजी बैठे, आये हुए महत्त्वपूर्ण पत्रों को पढ़कर एक तरफ़ रखते जा रहे थे। मैं लौट चला। नौकर ने न जाने क्या सोचकर ऊपर जाकर जवाहरलालजी से कहा। वह दवा-दारू का काम छोड़ चट नीचे दौड़ आये और बड़े प्रेम से मिले। मुझे ज़बरदस्ती अपनी कोच पर बिठाया और देर तक साहित्य एवं समाज की बातें करते रहे। मैंने फिर देखा, कैसी बेतकल्लुफ़ी है इस आदमी में! जवाहरलाल इस बात को कभी नहीं भूलते कि पहले वह मनुष्य हैं, फिर देश के एक सेवक हैं। और किसी नेता से, दिल खोलकर, इस तरह बैठकर बातें करना कभी संभव नहीं। मैंने उन्हें कालेज के लड़कों में मिलकर, उन्हींका अंग बनकर, घुल-घुलकर बातें करते देखा है। यह हृदय के यौवन का लचीलापन है जो प्रेम के आगे, भाव के सम्मुख अपनी मर्यादा और अपने महत्व को भूल जाता है। जवाहरलाल को इस रूप में देखकर अंग्रेज़ी कवि की ये लाइनें बार-बार याद आती हैं—

> Glorious it was to have been alive
> But to be young was very Heaven.

× × ×

जवाहरलाल का गार्हस्थ्य जीवन भी बहुत मधुर है। मैंने छोटे-बड़े अनेक नेताओं को देखा है जो अपने सामाजिक या सार्वजनिक जीवन से घरेलू जीवन का सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाते। उनके घर में वह प्रेम की धारा दिखाई नहीं देती जिसे दूसरों में भी बहाने के लिए उनके सारे उपदेश और सारी क्रियात्मक शक्तियाँ लग रही हैं; पति-पत्नी का, भाई-बहन का, पिता-पुत्र का सम्बन्ध निरानन्द हो रहा है पर जवाहरलाल के यहाँ यह बात नहीं। साध्वी कमला का समय जवाहरलाल की चिन्ता में जाता है और जवाहरलाल, ख़तरों के बीच निर्द्वन्द्व प्रवेश करते हुए भी, अपनी जीवन-संगिनी को नहीं भूलते। एक बार बहन कमला को, जब मैं जेल में था, वहीं देखा। हम लोगों से मिलने आई थीं। मैं देखकर चौंक पड़ा। नेहरू-परिवार की यह देवी कैसी सूनी, कैसी गंभीर और भोलेपन की दुनिया में विचरती मालूम पड़ती थी! कठोर कर्तव्य से उत्पन्न वेदना एक ओर, और पति की शुभाकांक्षा से उत्पन्न प्रेम की गरिमा दूसरी ओर। वह जवाहरलाल पर गर्व करती है पर सदैव उसे उनकी चिन्ता लगी रहती है। अच्छी तरह जानती है कि जिस रास्ते में पैर डाला है उसमें कठिनाइयाँ पग-पग पर हैं, गिरफ्तारी और जेल की कठोरता की पूरी संभावना है पर दिल नहीं मानता, ममता मानने नहीं देती गो उस गौरव की ऊँचाई पर उठते देखकर हृदय फूला भी नहीं समाता। यह प्रेम का तकाज़ा है, जिस पर कर्तव्य ने भारी टैक्स लगा दिया है। उस टैक्स

के भार से प्रेम में कमी नहीं आती क्योंकि वह दिल का सौदा है; इसे दोनों जानते हैं। फिर भी कमला इन संघर्षों की खींचातानी में क्षीण होती जाती है। पिछले साल तो उसे राज्ययक्ष्मा के भी चिन्ह प्रकट होने लगे थे जिससे जवाहरलाल को स्वीज़रलैण्ड जाना पड़ा, जिसका फल यह हुआ कि बहुतों की नज़रों में जवाहरलाल और 'भयंकर' बनकर स्वदेश लौटे।

पिता-पुत्र का स्नेह तो बहुतों को मालूम है। महाराज महमूदाबाद-जैसे ताल्लुकेदारों का वनिष्ठता में आराम और आसाइश की ज़िन्दगी बसर करने वाले मोतीलालजी, केवल अपने एकलौते पुत्र जवाहर के स्नेह से खिंचकर ही असहयोग आन्दोलन की आँधी में आ पड़े और तब से, स्वभाव एवं प्रकृति भिन्न होते हुए भी, आज़ादी की लड़ाई में उन्हें बढ़ना ही पड़ा है। जवाहरलाल के कष्टों पर कितनी ही बार उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। जवाहर के रूप में मोतीलालजी ने अपना कलेजा देश की वेदी पर निकाल कर चढ़ा दिया है और सब कुछ होने पर भी कभी-कभी जवाहरलाल को ख़तरों के बीच निःशंक घुसते देख या अपने शरीर की परवा न करते देख मोतीलालजी झुंझला पड़ते हैं और कभी स्वयं लड़कर एवं कभी महात्माजी को पंच बनाकर अपने प्रेम की भूख मिटा लेते हैं।

(३)

जीवन-कथा

बीच में जवाहरलाल की जीवन-कथा की कुछ साधारण बातें भी कर लें।

जवाहरलाल उच्च काश्मीरी ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए हैं। इनके पितामह प० गंगाधर नेहरू दिल्ली में कोतवाल थे। १८६१ में गंगाधरजी की मृत्यु हो गई। उस समय उन्हें वंशीधर एवं नन्दलाल नामक दो पुत्र थे। मृत्यु के ३-४ महीने बाद पं० मोतीलालजी नेहरू का जन्म हुआ।

पं० मोतीलाल की बुद्धि तीव्र थी। प्रयाग आकर पढ़ने लगे। वहाँ से इण्ट्रेंस और फिर आगरा-कालेज से उच्च श्रेणी में एफ०ए० की परीक्षायें पास कीं। फिर वकालत की परीक्षा देकर २१ वर्ष की अवस्था में कानपुर में वकालत शुरू की। ३ वर्ष तक कानपुर में सफलतापूर्वक वकालत करने के बाद १८८६ में वह हाईकोर्ट में वकालत करने के विचार से प्रयाग आये। अपने सूक्ष्म विवेचन और तर्क-शक्ति से बहुत जल्द वहाँ के नामी वकीलों में हो गये। बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों और राजा-महाराजों के मुक़द्दमे उनके पास आने लगे। शीघ्र ही उनकी गिनती भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के वकीलों में हो गई।

उस समय मोतीलालजी प्रयाग के मीरगंज महल्ले में रहते थे। वहीं १४ नवम्बर १८८९ ई० को श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू की गोद से हमारे वर्तमान राष्ट्रपति जवाहरलाल का जन्म हुआ।

सन् १९०० ई० में मोतीलालजी ने मुरादाबाद के जज कुँअर परमानन्द जी का बँगला ख़रीदा और उसे भोग-विलास की सामग्री से सुसज्जित कर 'आनन्द-भवन' बना दिया। आज तो यह पुराना आनन्द-भवन, मिटते हुए वैभव की परछाँई मात्र रह गया है।

जवाहर का बचपन इन्हीं आराम-आसाइश की परिस्थितियों में बीता। दाइयाँ और अंग्रेज नर्सें सदा ख़िदमत में हाज़िर रहती थीं। पिता-पुत्र के कपड़े पेरिस में धुलकर आते थे। ६ वर्ष से १२ वर्षतक घरपर योग्य अध्यापकों द्वारा साधारण शिक्षा पाने के बाद प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री एफ० टी० ब्रुक्स तथा गवर्नमेण्ट हाई स्कूल प्रयाग के तात्कालिक हेडमास्टर श्री गार्डन इनके शिक्षक नियत हुए। श्री ब्रुक्स एक स्वाधीन एवं विद्वान् विचारक तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। उनके व्यक्तित्व का बालक जवाहरलाल पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

१९०४ ई० में पं० मोतीलाल जी ने पुत्र को विलायत भेजकर उच्च शिक्षा दिलाने का निश्चय किया पर उससे विशेष स्नेह होने के कारण अकेले भेज न सके और सपरिवार इंग्लैण्ड गये। वहाँ के प्रसिद्ध प्राचीन स्कूल हैरो (हैरो ऑन् दि हिल *) में इनका नाम लिखा गया। इंग्लैण्ड के अनेक राजनीति-विशारदों, एवं विचारकों ने यहाँ शिक्षा पाई है और इस स्कूल का अध्ययन व्यय-साध्य है पर पंडित जी ने रुपये को पानी की भाँति ख़र्च करके

* यह स्कूल लन्दन से दस मील दूर, 'मिडिल सेक्स' ग्राम की सुरम्य पहाड़ी पर स्थित है।

पुत्र को पढ़ाया। इस स्कूल से इन्ट्रेंस की परीक्षा पासकर जवाहरलाल, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध 'ट्रिनिटी कालेज' में भरती हुए और जूलोजी (जन्तु-विज्ञान), बाटनी (वनस्पति-विज्ञान) एवं केमिस्ट्री (रसायन) में सम्मान सहित बी० ए० की परीक्षा पास की। जवाहरलाल की असाधारण योग्यता पर कालेज के अध्यापक एवं संचालक-गण ऐसे मुग्ध हुए कि बी० ए० की परीक्षा पास करते ही, इन्हें बिना परीक्षा लिये एम० ए० आनर्स का सर्टिफिकेट दे दिया। ट्रिनिटी कालेज की शिक्षा समाप्त कर, बैरिस्टरी की शिक्षा ग्रहण करने के लिए यह लन्दन के 'इनर टेम्पुल' में प्रविष्ट हुए और १९१२ ई० में 'बार-एट ला' की डिग्री प्राप्त कर ली।

इसके बाद १९१२ से १९२० तक प्रयाग हाईकोर्ट में जवाहरलाल सफलतापूर्वक बैरिस्टरी करते रहे। फरवरी १९१६ ई० में पं० जवाहरलाल कौल की पुत्री कुमारी कमला से इनका विवाह हुआ। १९१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १९२४ में आपको एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था पर जन्म के तीसरे ही दिन जाता रहा।

(४)

सार्वजनिक जीवन

जवाहरलाल शुरू से ही बड़े कोमल हृदय के रहे हैं। कालेज की पढ़ाई के समय से ही भारत में होने वाले अत्याचारों की ओर इनकी दृष्टि थी। लन्दन में भी विद्यार्थियों में इसकी चर्चा किया करते थे। स्वदेश लौटने (१९१२) के बाद से तो प्रायः प्रत्येक कांग्रेस में यह भाग लेते रहे हैं। १९१४ में प्रवासी भारतीयों को सहायता के लिए श्री गोखले के अपील करने पर उन्होंने पचास हज़ार रुपये संग्रह कर अफ्रीका भेजे थे। यूरोपीय महायुद्ध के बाद डा० एनीबेसेण्ट के 'होमरूल' आन्दोलन में इन्होंने ज़ोरों से भाग लिया। यदि मेरी स्मरण-शक्ति मुझे धोका नहीं देती तो प्रयाग की होमरूल लीग के जवाहरलाल सभापति भी थे और श्री सुन्दरलाल के साथ मिलकर काम करते थे। फिर यह १९१९—२० में अवध में किसानों का संघटन करने लगे। इनकी दृढ़ता के कारण यह आन्दोलन सफल हुआ और सरकार को 'अवध टिनेंसी' कानून बनाकर किसानों की स्थिति में सुधार करने को बाध्य होना पड़ा।

× × ×

इसी वर्ष, महायुद्ध में अपनी अनुपम सेवाओं के पुरस्कार में, भारत को जलियाँवाला हत्याकाण्ड के अपमानों का अनुभव करना पड़ा। कितने ही निहत्थे भारतीय जेनरल डायर की गोलियों द्वारा भून दिये गये; प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ पशुओं-सा व्यवहार किया गया और बच्चे भी राजद्रोह के अभियोग में फाँसे गये। इस हत्याकाण्ड की जांच करने के लिए जवाहरलाल भी पिता के साथ पंजाब गये और वहाँ की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त कर विदेशी शासन की क्रूरताओं और बर्बरताओं के कारण, इन्हें भारा-मतलबी के नेतापन से घृणा हो गई। और कुछ ही दिनों बाद असहयोग-आन्दोलन आरंभ होने पर, बैरिस्टरी छोड़ यह उसमें कूद पड़े और महात्मा गाँधी के ख़ास सहायक बन गये। स्थान-स्थान पर घूम-घूमकर असहयोग के मंत्र से लोगों को दीक्षित करने लगे। फल-स्वरूप १९२१ में ६ महीने के लिए जेल की सज़ा हुई। जनता समाचार पाकर क्षुब्ध हो गई। लोगों ने जगह-जगह सभायें करके इसका विरोध किया। सैकड़ों आदमी जेल जाने को तैयार हो गये। मजबूर होकर सरकार ने कुछ ही सप्ताह बाद इन्हें छोड़ दिया।

जेल से छूटकर जवाहरलाल दूने उत्साह से काम में लग गये। मई १९२२ में प्रयाग कांग्रेस कमेटी के आदेशानुसार, विदेशी कपड़ा बेचने वाले बजाजों की दुकानों पर धरना देने के कारण कुछ साथियों के साथ फिर गिरफ्तार हुए और १८ मास की कड़ी कैद तथा १००) जुर्माने की सज़ा मिली।

इसके बाद देश के हृदय में उफान आ गया। हजारों युवक धरना देकर तथा अन्य कानूनों को तोड़कर जेल जाने लगे। जेलों में जगह न रही। सरकार सर पर यह मुसीबत मोल लेकर पछताने लगी और पं० जवाहरलाल को, अन्य अनेक क़ैदियों के साथ, प्रान्तीय सरकार ने छोड़ दिया। इस प्रकार ९ महीने जेल में बिताकर १९२३ के आरम्भ में जवाहरलाल फिर स्वतन्त्र हो गये और देश के काम में लग गये।

इन्हीं दिनों भारत-सरकार ने नाभा रियासत के महाराज

रिपुदमनसिंह को गद्दी से उतारकर राज्य का शासन एक कमेटी के हाथ में दिया। इससे असन्तुष्ट हो अकालियों ने सत्याग्रह आरम्भ किया और उनपर भयंकर अत्याचार होने लगे।

दिल्ली-कांग्रेस के समाप्त होने पर पण्डित जवाहरलाल नाभा के प्रश्न को समझने के विचार से उस राज्य में गये और कुछ अकाली जत्थों से भेंट की। इसी समय १४४ धारा के अनुसार आज्ञापत्र निकालकर उन्हें राज्य में घूमने की मनाही की गई और इसकी अवहेलना करने पर वह गिरफ्तार कर लिये गये तथा १४३ और १८८ के अनुसार मुकदमा चलाया गया।

मुकदमे में पण्डित जवाहरलाल अपराधी ठहराये गये और एक अभियोग में दो वर्ष तथा दूसरे में ६ मास कैद की सजा दी गई। पीछे दोनों सज़ायें मुल्तवी की गईं और अब तक मुल्तवी ही पड़ी हैं।

१९२२ में पण्डित जवाहरलाल नेहरू सर्वसम्मति से प्रयाग म्युनिसिपल्टिी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९२५ तक बड़ी योग्यता और निर्भीकता से यह काम किया। इनके प्रबन्धकाल में प्रयाग म्युनिसिपल्टिी ने बड़ी उन्नति की। इस बात को तात्कालिक कमिश्नरों ने भी, वार्षिक रिपोर्टों की आलोचना करते हुए, स्वीकार किया है।

१९२६ के आरम्भ में, पत्नी कमला के बीमार पड़ने और क्षय रोग के चिन्ह प्रकट होने पर जवाहरलाल उसे लेकर स्वीज़रलैंड गये और वहाँ सैनिटोरियम में रहने के बाद पत्नी के कुछ स्वस्थ होने पर, फरवरी १९२७ में भारतीय राष्ट्र-सभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य-विरोधी संघ के जेनेवा-अधिवेशन में सम्मिलित हुए और अभी तक संघ की कार्यसमिति के सदस्य हैं। सोवियट सरकार के निमन्त्रण पर नवम्बर १९२७ में रूस गये और वहाँ रूसी प्रजातन्त्र के दशम वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँ इन्होंने साम्यवाद का व्यावहारिक रूप देखा तथा यूरोपीय साम्राज्यवादी राष्ट्रों की कुटिल नीति का अध्ययन करके स्वदेश लौटे।

स्वदेश लौटने पर झाँसी के युक्तप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन, पंजाबप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन तथा अन्य सभा-सम्मेलनों के सभापति की हैसियत से जवाहरलाल ने जो भाषण किये हैं, उनमें उनकी यूरोप-यात्रा के अनुभवों एवं विचारों का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। जवाहरलाल जब यूरोप से लौटे, एक बिलकुल नई विचार-धारा लेकर भारतीय राजनीति में प्रविष्ट हुए। अभी तक किसी नेता ने समाज-व्यवस्था के नूतन-निर्माण की राजनैतिक उपयोगिता लोगों के सामने न रक्खी थी। इसलिए इस बार वह न केवल एक सिपाही और नेता वरन् विचारक एवं समाज-विधायक के रूप में भी हमारे सामने आये। उनके आगमन से देश के युवक-आन्दोलन को बड़ी स्फूर्ति मिली और बंगाल-प्रान्तीय छात्र-सम्मेलन एवं बम्बई प्रान्तीय युवक-सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से जो भाषण इन्होंने दिये, उनमें इनके क्रान्तिकारी विचार बड़े व्यापक रूप में प्रकट हुए हैं। १९२७ में हिन्दुस्तानी सेवा-दल तथा मद्रास की प्रथम प्रजातन्त्र परिषद् के सभापति हुए। इसके साथ ही मजूर-समस्या का अध्ययन करके इन्होंने मजूर-आन्दोलन में भी विशेष भाग लेना शुरू किया और १९२९ में सर्वभारतीय मजूर-कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के सभापति की हैसियत से इन्होंने वर्तमान समाज-गठन की मूलभूत कमज़ोरियों का खाका बड़ी कुशलता के साथ खींचा। १९२७की मद्रास कांग्रेस में इन्होंने स्वतन्त्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया और पुराने विचार के नेताओं के आनाकानी करने पर भी कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य घोषित करा लिया। सितम्बर १९२८ में इन्होंने 'भारतीय स्वाधीनता-संघ' कायम किया।

इस प्रकार १९२३ से १९२९ तक (बीच के यूरोपीय प्रवास-काल को छोड़कर) ये बराबर कांग्रेस के प्रधान मन्त्री रहे हैं और इस समय, भारत के राष्ट्रपति होने के साथ ही मजूर-आन्दोलन, युवक-आन्दोलन तथा स्वाधीनता-आन्दोलन के खास नेताओं में हैं।

(५)

विश्लेषण

जवाहरलाल का सबसे बड़ा गुण यह है कि ख़तरों (Adventure) के लिए उनके अन्दर बड़ा गहरा आकर्षण है। वह उनका यौवन-धर्म है। जिधर कठिनाइयाँ ज्यादा होंगी, रास्ता कँटीला होगा, बलिदान और उत्सर्ग का तक़ाजा

होगा, उधर खिंचने के लिए वह अपनी प्रकृति से मजबूर हैं। उनकी गिनती उन 'स्थितप्रज्ञों' में नहीं की जा सकती जो भूख से व्याकुल जनता को देखकर उनके बीच कूद पड़ने के लिए केवल इसलिए तैयार नहीं होते कि परिस्थिति कठिनाइयों से पूर्ण है और 'लाभ' कुछ न होगा। उनका जीवन बलिदान के लिए है।

किन्तु इस मूल्यवान भावमयता को उन्होंने आंच में तपा-तपाकर बहुत ऊँचा उठा दिया है। वह उनमें ही जलकर समाप्त होने की चीज नहीं, दूसरों में भी छूत से ही, आग जला देने वाली चीज़ बन गई है। जो समझते हैं कि जवाहरलाल एक भावुक युवक मात्र हैं, वे भूलते हैं—यद्यपि अपने लिए तो मैं यह कह सकता हूँ कि यदि वह इतना होते तो भी बहुत क़ीमती चीज़ होते। पर जवाहरलाल का संयम, उनकी गंभीरता अपूर्व है। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने ठीक ही लिखा था कि 'जवान कन्धों पर बूढ़ा सिर' कहावत जवाहरलाल के सम्बन्ध में पूर्णतः चरितार्थ होती है। उनमें ब्राह्मणत्व का त्याग है और यह स्वाभाविक त्याग ही उनका ओज है। पिता, मोतीलालजी में, त्याग के साथ क्षत्रियत्व का अभिमान और क्रोध भी है। जवाहरलाल के लिए त्याग करना इनके स्वभाव में दाख़िल हो गया है। जिन लोगों ने इन पिता-पुत्र को नज़दीक से देखा है, वे उन लोगों पर ज़रूर झुंझलाये होंगे जो जवाहरलाल के राष्ट्रपति-पद पर चुने जाने पर यह कहकर नाक-भौं सिकोड़ते थे कि वह बड़े भावुक और युवक हैं। यद्यपि भावुक और युवक होना कोई पाप नहीं,गुण ही है पर जो ऐसा कहते और समझते हैं वे जवाहरलाल को जानने का दावा नहीं कर सकते और अपनी बुद्धि का छिछलापन ही प्रकट करते हैं। "बड़े नेहरू (मोतीलालजी) की बूढ़ी छाती में आज भी जवान दिल खेल रहा है। बोलते हैं तो बच्चों की तरह हँसते हैं। जब हँसते हैं तो हँसी को दबाते नहीं, खुलकर हँसते हैं—हँसने को हँसी समझकर हँसते हैं परन्तु छोटे नेहरू (श्री जवाहरलालजी) बोलते हैं तो हँसने का नाम नहीं। चेहरा देखकर प्रतीत होता है मानों सारे संसार की ज़िम्मेदारी के बोझ से दब गया है; अगर मुस्कराये भी तो मानो पाप कर दिया। हँसी आ गई तो उसे पाप समझकर दबा दिया। यह बात सर्वसाधारण के सामने की है। × × × सभा में गंभीर से गंभीरतम बन जाते हैं। छोटे नेहरूजी की चंचल सुकुमार पुत्री कांग्रेस के पण्डाल में अपने दादा की टोपी को ही उतारने का साहस करती है, अपने पिता की टोपी को नहीं। मानो छोटे नेहरूजी हिंसा, हास्य और हुल्लड़ को महापाप समझते हैं। × × × इन विशेषताओं के कारण ही मौलाना मुहम्मदअली ने बड़े नेहरू को 'जवान बूढ़ा' और छोटे नेहरू को 'बूढ़ा जवान' कहा था।"*

जवाहरलाल की दूसरी विशेषता उनकी *निर्भीक* सिद्धान्तप्रियता है। १९२० से आज तक उन्होंने जो समझा उसी पर चलते रहे। कभी उन्होंने कौंसिलों का समर्थन नहीं किया; कभी विधायक कार्यक्रम के महत्व को कम नहीं होने दिया। जब बड़े-बड़े नेता प्रवाह में बह गये, वह अपने सिद्धान्त पर अटल रहे। भारतीय राजनीति के उतार-चढ़ाव में एक शिला की भांति वह अटल रहे हैं। उनके इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में न झुकने वाले स्वभाव ने,साधारण प्रेक्षकों में, ग़लतफ़हमी भी पैदा की है। मेरे एक आदरणीय मित्र ने, २-३ महीने पहले, बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा कि जवाहरलाल का कोई ख़ास सिद्धांत नहीं मालूम पड़ता। मुझे हँसी आ गई। वही मित्र जब लाहौर-कांग्रेस से लौटे तो उनके मुँह से प्रशंसा के फूल ही झड़ते थे। पारसाल कलकत्ता-कांग्रेस में महात्माजी के दबाने पर भी,वह समझौता के लिए राज़ी न हो सके। दिल की वेदना के कारण पण्डाल तक में न गये। यह सब बातें उनकी सिद्धान्तप्रियता की द्योतक हैं।

जवाहरलाल का अनुशासन (Descipline) बड़ा ज़बर्दस्त है। इस मामले में वह बड़ा-छोटा, अपना-पराया किसी का विचार नहीं करते और उसे बड़ी बेरहमी से इस्तेमाल करते हैं। इस विषय में उनके सामने और कोई नेता खड़ा नहीं किया जा सकता। नियम-पालन करने और कराने में कभी मैंने उन्हें झुकते नहीं देखा। जेल में और बाहर दोनों जगह जिन्होंने उन्हें देखा है, वही उनके नियम-

---

* 'अर्जुन' (श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति), २९दिसम्बर १९२९ ई०

पालन की कठोरता का ठीक-ठीक अन्दाज़ लगा सकते हैं। स्नान, भोजन, चर्खा कातना, खेलना, पढ़ना सब नियमित! जेल में वह अपने हाथ से स्थान की सफ़ाई करते, साबुन से कपड़े साफ़ करते, पुस्तकें संभालकर रखते, बर्तन मलते तथा बिस्तर धूप में डालते थे और इन कामों में अपने प्रिय से प्रिय साथी की सहायता अस्वीकार कर देते थे। अब भी वह बड़े सवेरे उठकर पहले अपना कार्यक्रम बनाते हैं और फिर साधारण दैनिक आवश्यकताओं से निबटकर काम में लग जाते हैं। आज का काम कल पर नहीं छोड़ते और इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी के कार्यालय में या अन्यत्र इनके साथ या इनके नीचे काम करनेवाले कार्यकर्ता या कर्मचारी उनसे परीशान रहते हैं। वह एक कठोर काम लेने वाले साथी (Hard Task-Master) हैं। भारतीय कांग्रेस-कमेटी के कार्यालय को अपनी सुव्यवस्था से उन्होंने सरकारी शासन-विभाग के दफ्तर से भी अधिक सुव्यवस्थित कर दिया है। असहयोग के ज़माने में जब गिरफ्तारी का वारण्ट लेकर पुलिस-अफ़सर उनके पास पहुँचा और उसने १०-१५ मिनट का समय घरवालों से मिलने और तैयार होने के लिए दिया तो जवाहरलाल ने तुरन्त सहायक से कहा—"लाओ; ज़रूरी पत्रों के उत्तर लिखा दूं।" जब लोग ऐसे समय स्नेह-विभोर होकर स्वभावतः घर वालों से मिलना चाहेंगे, जवाहरलाल ने वह थोड़ा समय कार्यालय की व्यवस्था करने और पत्रों का उत्तर लिखने में व्यय किया। यह उनकी कड़ाई है; यह उनकी लगन है!

निर्दय नियम-पालन, तपस्या और गंभीर मुद्रा के कारण इन ५-७ वर्षों के अन्दर ही जवाहरलाल शरीर की दृष्टि से बहुत दुर्बल हो गये हैं। उन्होंने अपनी देह की कभी परवा न की और इसीलिए उनका सौन्दर्य एक सुन्दर विधवा के करुण एवं गंभीर मुख की याद दिलाता है। उन्होंने अपनी सारी कामनाओं को संयम की आग में एक सच्चे साधक की भांति तिल-तिल करके जलाया है। यद्यपि वह दूसरों की भांति ऊंचे नैतिक उपदेश नहीं देते, और दूसरों को इस सम्बन्ध में छूट भी बहुत देते हैं, अपने लिए उनकी कसौटी बड़ी कठोर रही है। विगत ६-७ वर्षों से वह नियमपूर्वक इन्द्रिय-संयम कर रहे हैं; यद्यपि उनके इस मूक व्रत का विज्ञापन नहीं हुआ और न होना ही चाहिए था।

यद्यपि उनका दिल अमीर है, गरीबी को उन्होंने फ़कीर की भांति अपना लिया है। मैंने उन्हें बिना बिस्तर के योंही सब के साथ सोते देखा है; मैंने उनके शरीर पर फटे (पर साफ़) कपड़े देखे हैं; मैंने उन्हें सब के साथ प्रेम-पूर्वक चने चबाते देखा है। अभी लाहौर-कांग्रेस के समय जब काम में व्यस्त होने के कारण उन्होंने जलपान, तैयार होने पर भी, लौटा दिया स्वयं-सेवकों द्वारा दिये गये चने वह अस्वीकार न कर सके। उनकी तपस्या और उनका त्याग विज्ञापन का भूखा नहीं। गाँवों में पैदल २०-२० मील उन्हें चलना पड़ा है और मैं दूसरे किसी ऐसे नेता को नहीं जानता जिसने इस प्रकार २०-२० मील भूखा-प्यासा पैदल चलकर किसानों के बीच साधारण सिपाही की तरह, उन्हींका बनकर काम किया हो। इसी निर्भीक और बेलौस त्याग के कारण वह डंडों की मार में भी शांति के साथ मुसकराते हुए देखे गये हैं; मानो शुद्ध अहिंसा, हिंसा को चैलेञ्ज करके हंस रही हो। कष्ट, दुःख और ख़तरे के प्रति उनमें बड़ा झुकाव है। अपने मुकदमे में, कचहरी में ही उन्होंने कहा था—"*यहाँ बाहर! यहाँ तो अजब सुनसान है। सब साथी जेल में हैं, मैं भी वहीं जाना चाहता हूँ।*"

शीघ्र निर्णय की शक्ति जवाहरलाल में अद्भुत है। वह दीर्घसूत्री नहीं। बहुत जल्द निर्णय करते और तदनुकूल काम में लग जाते हैं। ज्यादा तर्क-वितर्क और विवाद करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। लम्बी-चौड़ी बहसें उनके नज़दीक हेच हैं। स्वराज्यदल के जन्म के समय एक बार बूढ़े नेताओं के सैद्धान्तिक विवादों से ऊबकर वह दूर बैठ गये और उनकी आँखें भर-सी आईं, मानों वे यह कह रही थीं कि 'जब माँ गुलामी की पीड़ा से चीख रही है, तुम लोग व्यक्तिगत महत्ता एवं सिद्धान्तों के विवाद में पड़े हो!'

× × ×

शैली, कीट्स और बायरन के वह बड़े प्रेमी हैं। फारसी कवि उमर ख़ैयाम की रुबाइयों के अंग्रेज़ी अनुवाद उनको

कण्ठस्थ हैं। गेटे के 'फाउस्ट' के बड़े प्रशंसक हैं। टाल्सटाय की अपेक्षा * तुर्गनीव की वह अधिक प्रशंसा करते हैं। वह एक अच्छे पाठक हैं और उनका अध्ययन कठिन परिस्थितियों में भी जारी रहता है। हिन्दी साहित्य का भी अध्ययन चलता रहता है। समाज-शास्त्र की गम्भीर समस्याओं पर आजकल वह एक दार्शनिक की भांति विचार करते रहते हैं और अंग्रेजी लेखकों में बर्ट्रेण्ड रसेल का अध्ययन करने के लिए लोगों को आम तौर पर कहा करते हैं। महात्मा गांधी ने एक बार उनके लिए 'व्यावहारिक आदर्शवादी' शब्द का प्रयोग किया था। यदि इस शब्द को उलटकर हम इसे 'आदर्शवादी व्यावहारिक' कर दें तो जवाहरलाल की भावमयता, आदर्श प्रेम और कर्तव्य-बुद्धि का सन्तुलन अधिक अच्छी तरह हो सकता है।

इसमें कोई शक नहीं कि 'प्रताप' के लेखक के शब्दों में "उसका व्यक्तित्व उत्साह, कर्मण्यता और अनुशासन का प्रतिरूप है। × × उसकी दृष्टि में निर्मल आदर्श की ज्योति है; उसके चरण-निक्षेप में सुसंस्कृति और आत्म-गौरव की लोच है। उसके हृदय में घोर असन्तोष है हमारी वर्तमान सामाजिक विशृंखलता के प्रति; उसके दिल में दर्द है, नंगों और भूखों के लिए; उसके मन-मन्दिर में एक देवता आसीन है, समानता और लोक-कल्याण का। *सात्विक क्रोध, निष्ठुर कार्यशीलता, शुद्ध आदर्शवाद, शीघ्र निर्णय-शक्ति और बड़ी प्यारी झुंझलाहट × × जवाहरलाल की विशेषतायें हैं।"*

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जवाहरलाल, यदि ऐसे ही रहे तो, निकट भविष्य में अधिकाधिक आदृत और अनुकरणीय समझे जायँगे। इसका कारण यह है कि एक तो उनमें गांधीवाद और लेनिनवाद का समन्वय है और दूसरे वह पारस्परिक दुर्बलताओं, परिपाटियों, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासपूर्ण असमानता की भावनाओं के सर्वथा परे हैं। उनमें धार्मिक पक्षपात नहीं; उनमें जातिगत भेदभाव नहीं, उनमें प्राचीन बातों के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति नहीं। यह ठीक है कि ये विशेषण कुछ और नेताओं के नामों के साथ भी लगाये जा सकते हैं पर उन नेताओं को इन बुराइयों से दूर होने के लिए संयम और संघर्ष करना पड़ता है पर जवाहरलाल स्वभावतः उनसे निर्लिप्त हैं। उनकी रूढ़िहीनता समझदार और उपयोगितावाद के अनुसार सोच-विचार कर निष्कर्ष पर पहुँचे हुए सुधारकों का रूढ़ियों का विरोध नहीं है; उच्चकुल के बच्चे जैसे अपने माता-पिता के जात-पाँत, छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदकारी विचारों से स्वभावतः रहित होते हैं, वैसे ही वह भी रूढ़ियों से रहित हैं। इसलिए भविष्य में, आज़ादी की लड़ाई में भी और उसके बाद भी, ज्यों-ज्यों युवकों और विप्लववादियों का ज़ोर बढ़ता जायगा, वह दिन-दिन क़ीमती साबित होते जायँगे।

* प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार।
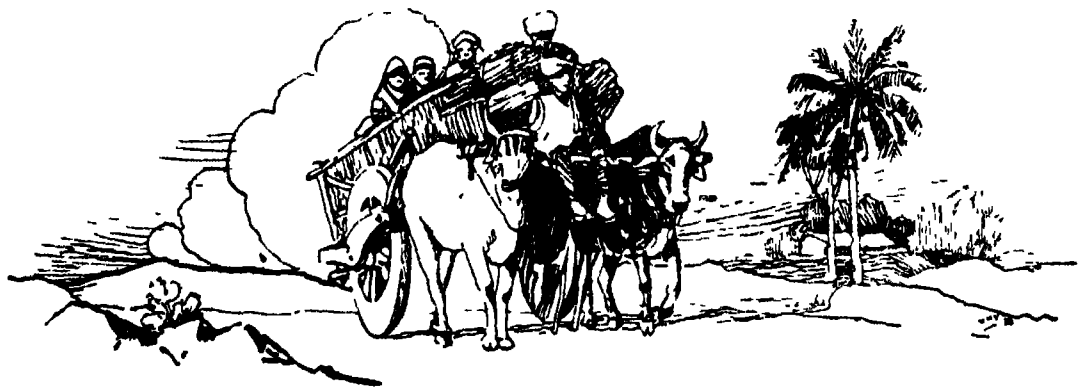
विविध

राजपूताना का इतिहास तृतीय खंड*

(समालोचना)

[श्री 'हंस']

भारतवर्ष के ऐतिहासिकों में ओझाजी एक सम्माननीय स्थान रखते हैं। भारत के प्राचीन इतिहास और राजपूत इतिहास के तो आप विशेषज्ञ हैं। 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' आदि अनेक अमूल्य ग्रंथ लिखने के कारण आपकी ख्याति केवल भारतवर्ष ही तक नहीं, इंग्लैण्ड, जर्मनी, आस्ट्रिया और हालैण्ड आदि देशों में भी है। भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी के सौभाग्य से आप-जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और मौलिक लेखक हिन्दी के परम भक्त हैं। आपका एक-एक ग्रन्थ तथा एक-एक लेख हिन्दी में उत्कृष्ट और आदरणीय साहित्य उत्पन्न करता है। कुछ वर्षों से आप 'राजपूताना का इतिहास' लिख रहे हैं। राजपूत इतिहास के सम्बन्ध में आप संसार भर में अद्वितीय और प्रामाणिक विद्वान् हैं। क़रीब ४० वर्ष तक राजपूताना में रहकर उसके इतिहास के अध्ययन में निरन्तर अध्यवसाय और लगन के बाद आपने यह अमूल्य बृहद् ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया है। इस ग्रन्थ के अभी तक तीन खण्ड निकल चुके हैं और सम्भवतः ५—६ और निकलेंगे। प्रत्येक खण्ड में ४०० पृष्ठ रहते हैं। प्रथम खण्ड में राजपूत, राजपूताना का बहुत प्राचीन समय का संक्षिप्त इतिहास, भूगोल तथा अन्य आवश्यक बातों के बाद उदयपुर का प्राचीन इतिहास प्रारम्भ किया गया है। दूसरे खण्ड में महाराणा उदयसिंह तक उदयपुर का इतिहास समाप्त हुआ है। तीसरे खंड में महाराणा प्रताप से महाराणा सज्जनसिंह तक का इतिहास लिखा गया है। यही तीसरा खंड इस समय हमारे सामने है।

उदयपुर के इतिहास को क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक विधि से लिखने का प्रथम प्रयत्न कर्नल टाड ने किया था। उसके बहुत वर्षों बाद महाराणा सज्जनसिंह ने अपने यहाँ इतिहास-कार्यालय की स्थापना कर 'वीर विनोद' नाम से उदयपुर का बृहद् इतिहास लिखाया। यह ग्रन्थ ७—८ जिल्दों में समाप्त हुआ है। इसमें सैकड़ों शिलालेखों आदि की भी सहायता ली गई है। वस्तुतः यह दूसरा प्रयत्न था। अब तीसरा प्रयत्न श्री ओझाजी कर रहे हैं। जो पाठक ओझाजी की लेखन-शैली से परिचित हैं, उन्हें यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इस खंड में भी आपकी गवेषणा और तर्क-शक्ति का प्रमाण हमें स्थल-स्थल पर मिलता है। आपने प्राचीन लेखकों की बातों को 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' न मानकर प्रत्येक बात को युक्ति, प्राचीन शिलालेख और ग्रन्थ आदि के आधार की कसौटी पर परखा है और जहाँ कोई बात आपको अयुक्ति-संगत, दृढ़ाधार-रहित मालूम हुई, वहाँ अपनी अकाट्य युक्तियों से उसका तीव्र खंडन किया है। इस तरह उदयपुर के प्राचीन इतिहास के तो अनेक भारी भ्रमों का निराकरण किया ही है, मुगलकालिक इतिहास की त्रुटियों को भी दूर करने की चेष्टा इस ग्रन्थ में की है। इस तृतीय खंड में भी हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह एक प्रसिद्ध-सी बात है कि हल्दीघाटी की लड़ाई में अकबर की सेना की विजय हुई थी; परन्तु आपने मुसलमान ऐतिहासिकों (मुख्यतः अलबदायूनी) के आधार पर ही यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि इस युद्ध में महाराणा प्रताप की पराजय नहीं हुई प्रत्युत अकबर की ही अधिक हानि हुई (पृष्ठ ७४५—५५)। हल्दीघाटी के युद्ध के प्रसंग

---

* लेखक—रायबहादुर महामहोपाध्याय पं॰ गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर।

में ही आपने प्रताप का पीछा करते हुए दो मुसलमानों को मारकर शक्तसिंह के अपने भाई की सहायता करने की घटना को भी निर्मूल बताया है (पृष्ठ ७५२)। आपका कहना है कि उस समय शक्तसिंह मुसलमानों के पक्ष में था ही नहीं, इसलिए उक्त घटना कपोल-कल्पित है। परन्तु हमारी नम्र सम्मति में 'राजप्रशस्ति' का वर्णन इस घटना को सत्य सिद्ध करता है। यह हो सकता है कि शक्ता (शक्तसिंह) उस समय प्रताप की ही सेना में हो न कि टाड के लिखने के अनुसार बादशाह की सेना में, और किन्हीं दो मुगल सवारों को पीछा करते देख वह अपने सेनापति तथा भाई प्रताप की रक्षा के लिए गया हो। 'राजप्रशस्ति' और टाड की घटना एक नहीं है। यह ठीक है कि अलबदायूनी के कथनानुसार उस समय शाही सेना थकी-माँदी और डरी हुई थी; परन्तु ऐसी अवस्था में भी कोई दो भी साहसी सवार न हों, यह हमारी समझ में नहीं आता। इसके बाद ही आपने 'महाराणा की पहाड़ों में स्थिति' शीर्षक देते हुए कर्नल टाड के इस लेख का अकाट्य युक्तियों द्वारा खंडन किया है कि प्रताप पहाड़ों में भटकता रहा, उसे भोजन भी नहीं मिलता था तथा एक दफ़ा बिल्ली उसकी लड़की के लिए रक्खी रोटी उठा ले गई, जिससे विचलित होकर प्रताप ने सन्धि के लिए अकबर को पत्र लिखा आदि (पृष्ठ ७६८-६९)। वस्तुतः यह नई गवेषणा करके ओझाजी ने महाराणा प्रताप के चरित्र को और भी उज्वल रूप में रक्खा है।*

परन्तु इसके कुछ पृष्ठों के बाद 'महाराणा प्रताप की सम्पत्ति' शीर्षक से आपने महाराणा के निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाह के रुपये दे देने पर फिर लड़ाई के लिए तैयारी करने की प्रसिद्ध घटना का भी खण्डन किया है (पृ० ७७५-७८)। आपकी मुख्य दलील यह है कि महाराणा कुम्भा और सांगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभी तक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभी तक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहांगीर से संधि होने के बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता, आगे आने वाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह अनेक महादान किस तरह देते और राजसमुद्रादि अनेक बृहत् व्यय-साध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते? इसलिए उस समय भामाशाह ने अपनी तरफ़ से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राजकोषों से रुपया लाकर दिया। ओझाजी की युक्ति का सार यही है। निस्सन्देह इस युक्ति का उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़ के राजा महाराणा प्रताप को भी अपने ख़ज़ानों का ज्ञान न हो, यह मानने को स्वभावतः किसी का दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रताप की शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्ता से इन्कार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाह ने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषों की ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंश का इतना सम्मान, जिसका उल्लेख भी ओझाजी ने पृष्ठ ७८८ पर किया है, हमें बहुत सम्भव नहीं दीखता। एक ख़ज़ाञ्ची का यह तो साधारण सा कर्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़ने पर कोष से रुपया लाकर दे। केवल इतने मात्र से उसके वंशधरों को यह प्रतिष्ठा (महाजनों के जाति-भोज के अवसर पर पहले उसको तिलक किया जाय) प्रारंभ हो जाय, यह कुछ बहुत अधिक युक्ति-संगत मालूम नहीं होता।

पृष्ठ ७६९ में ओझाजी ने कर्नल टॉड के इस कथन का बड़ी योग्यतापूर्वक खण्डन किया है कि प्रताप ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड़ हस्तगत न होगा, तब तक मैं और मेरे वंशज पत्तलों पर भोजन करेंगे, दाढ़ी रखायेंगे, घास पर सोयेंगे आदि। इसी प्रसंग में लेखक ने टिप्पणी में भिन्न-भिन्न राजवंशों की दाढ़ी के विविध रूपों का मनोरंजक विवेचन किया है, जो पढ़ने योग्य है। महाराणा प्रताप के जीवन की अनेक निराधार कल्पनाओं का निराकरण हो जाने से वह और भी अधिक उज्वल रूप में उपस्थित हो गया है। अस्तु।

प्रत्येक महाराणा की चरित्र के सबंधमें जो कुछ उपलब्ध हो सका, सब की पूरी छानबीन कर पण्डितजी ने इतिहास लिखा है। प्रत्येक घटना की पुष्टि के लिए उचित प्रमाण स्थल-स्थल पर देते गये हैं। जहाँ कहीं किसी बात के स्पष्टी-

* इसी सम्बन्ध में ओझाजी 'त्यागभूमि' के प्रतापांक में एक लेख भी लिख चुके हैं।—संपादक।

करण की कुछ भी आवश्यकता ज्ञात पड़ी, उन्होंने दे दिया है। भिन्न-भिन्न सरदारों के नाम आने पर टिप्पणी में उसका पर्याप्त परिचय दे देने से पाठकों को बहुत काम होगा। ओझाजी के लेखों या ग्रंथों में दी गई टिप्पणियाँ मूल पुस्तक से कम महत्वपूर्ण नहीं होतीं। उपर्युक्त क्रम इतिहास के प्रथम पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक रहा है। इसके कारण पाठकों को स्वतन्त्र स्वाध्याय का भी बहुत अवकाश मिल जाता है। कर्नल टॉड के 'राजस्थान' और 'वीरविनोद' की अपेक्षा बहुत अधिक घटनाओं का ठीक ज्ञान इस ग्रन्थ से होता है। ओझाजी की लेखन-शैली की यह एक मुख्य विशेषता है कि वह अन्य अनेक ऐतिहासिकों की भाँति कल्पनाशक्ति से काम नहीं लेते, परन्तु प्रत्येक घटना का जितना वर्णन प्राचीन आधारों से उपलब्ध होता है, नपा-तुला वही देने का प्रयत्न करते हैं। इससे हम सम्पूर्ण पुस्तक में घटनाओं का जैसा-का-तैसा और प्रामाणिक वर्णन पाते हैं। तारीखों और स्थानों के बिलकुल ठीक लिखने की तरफ़ विशेष ध्यान दिया गया है। औरंगजेब के जज़िया-कर लगाने के विरोध में जो प्रसिद्ध ऐतिहासिक पत्र मिलता है, उसके सम्बन्ध में विभिन्न ऐतिहासिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। ओर्मी (Orme) उसे महाराजा जसवन्तसिंह का और यदुनाथ सरकार उसे शिवाजी का लिखा मानते हैं, परन्तु ओझाजी ने अनेक युक्तियों द्वारा यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि यह पत्र महाराणा राजसिंह का ही लिखा हुआ है (पृ० ८६१–६४)।

महाराणा अमरसिंह द्वितीय का वृत्तान्त लिखते हुए एक मनोरंजक कथा लिखी गई है कि महाराणा ने ब्राह्मणों, चारणों और भाटों से रुपये माँगे। ब्राह्मणों और चारणों ने तो किसी तरह दे दिये, पर भाटों ने देने से इन्कार किया और हज़ारों भाटों ने आकर राजमहल के आगे धरना दे दिया। अमरसिंह ने इसकी कुछ भी परवाह न कर उनपर हाथी छुड़वा दिया; वे सब भाग गये और उनके बिस्तरों में रोटियाँ तथा मिठाइयाँ मिलीं। महाराणा ने उन्हें शहर से निकाल दिया। उदयपुर से ५ मील दूर जाकर १००० भाटों ने आत्म-हत्या कर ली। इस कथा में हमारी नम्र-सम्मति में २००० की संख्या बिलकुल मान्य नहीं हो सकती। न जाने, ओझाजी इसे बिना टीका-टिप्पणी किये कैसे लिख गये। २००० भाटों का आत्मघात कोई ऐसी साधारण घटना नहीं है, जिस पर कोई उपद्रव न हो जाय।

इन पंक्तियों के लिखने से कुछ समय पूर्व ही मेजर बी० डी० बसु की प्रसिद्ध पुस्तक 'राइज़ आफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया' हमारी आँखों से गुज़री। वह पुस्तक पढ़ते-पढ़ते हमारा यह विश्वास हो जाना स्वाभाविक था कि अंग्रेज़ इतिहासकार भी कूटनीतिज्ञ तथा झूठ लिखने में संकोच न करने वाले होते हैं। राजपूताना का इतिहास के द्वितीय खण्ड तथा तृतीय खण्ड के पूर्वार्द्ध में मुसलमान ऐतिहासिकों के वर्णनों का जिस अकाट्य युक्ति-क्रम द्वारा श्री ओझाजी ने खण्डन किया है, उसे देखकर हमारी यह उत्सुकता बहुत बढ़ गई कि देखें अंग्रेज़कालिक इतिहास के सम्बन्ध में लिखे गये अंग्रेज़ विद्वानों के अतिरंजित अथवा असत्य इतिहास का ओझा जी ने किस उत्तम रीति से खण्डन किया है। परन्तु महाराणा भीमसिंह से अन्त तक (९८१-११३६) केवल एक स्थान के (१०९२-९४ टिप्पण) सिवा, जो बहुत ही साधारण-सी बात है, कहीं भी किसी भी अंग्रेज़ ऐतिहासिक के किसी कथन का निराकरण नहीं किया। अपितु, इसके विपरीत, उन्हीं लेखकों के आधार पर ही मुख्यतः यह इतिहास लिखा गया है। केवल यही नहीं, वरन् अंग्रेज़कालिक इतिहास के पढ़ते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि लेखक ने राजपूतों और मुसलमानों के वृत्तान्त लिखते समय जिस तरह राजपूतों का पक्ष रक्खा है, उस तरह अंग्रेज-राजपूत संघर्ष में राजपूतों का विशेष पक्ष ग्रहण नहीं किया। वह इस समय के हालात को ऐसे लिख गये हैं जैसे अंग्रेज भी भारतवर्ष के अथवा उदयपुर के अपने ही लोग हों, ठीक उसी तरह जैसे चूंडावत और शक्तावत आदि राज्य के भिन्न-भिन्न विरोधी पक्ष थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि लेखक के विचार में अंग्रेज़ों का आना ठीक उसी तरह साधारण घटना थी, जिस तरह राजपूताना में मराठों का आना। विदेशी-प्रवेश अथवा उदयपुर राज्य की पराधीनता का वृत्तान्त लिखते समय लेखक के हृदय पर शायद कोई चोट ही नहीं पहुँची। इस काल के इतिहास

की वर्णन-शैली की ध्वनि स्पष्ट वर्तमान अंग्रेज शासकों के पक्ष में निकलती दिखाई देती है।

मराठों और राजपूतों के संघर्ष का वृत्तान्त लिखते समय यदि वह मराठे इतिहासज्ञों के विचारों का संक्षिप्त सार यहाँ देने की कृपा करते तो शायद मराठों के प्रति कुछ अधिक न्याय होता। कर्नल टॉड महाराणा भीमसिंह के समय विद्यमान था, इसलिए उसके कथन अधिक प्रामाणिक होंगे, यदि यह युक्ति ठीक मानी जाय, तो फ़रिश्ता और अब्बुलफ़ज़ल के इतिहास भी सत्य मानने होंगे, जिसे मानने के लिए ओझाजी बहुत कम तैयार हैं। कर्नल टॉड कूटनीतिज्ञ अंग्रेजी सरकार का एजेंट था। जहाँ उसे राजपूतों से प्रेम था, वहाँ वह अंग्रेजी सरकार के दुश्मन मराठों से जलता भी बहुत था। मराठों और राजपूतों को अलग-अलग रखना उस समय कम्पनी की नीति थी। इसलिए बहुत संभवतः कर्नल टॉड ने इसी कूट उद्देश्य की पूर्ति के लिए मराठों के अत्याचारों को अतिरंजित कर दिखाया हो। 'भीमविलास' से, जो उसी समय का बना काव्य है, ओझाजी ने मराठों के अत्याचारों के सम्बन्ध में कोई उद्धरण नहीं दिये। इस सम्बन्ध में ओझा जी जहाँ महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कुशल राजनीतिज्ञ महादाजी सिंधिया को स्वार्थी, कह गये हैं, (पृ० ९७९), वहाँ अंग्रेजों के ज़बरदस्ती मेरवाड़ा-प्रदेश पर अधिकार करने पर स्वयं कोई आलोचना नहीं करते। उदयपुर के साथ जो अंग्रेजों की संधि हुई है, अथवा उसके बाद समय-समय पर जो क़ौलनामे तैयार हुए या स्वीकृत हुए, उनके सम्बन्ध में भी ओझाजी बिलकुल चुप हैं। उनका उद्देश्य क्या था, उदयपुर को उससे कितनी हानि हुई, उनकी स्वाधीनता में कितनी कमी हुई, इत्यादि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर कुछ भी न लिखा देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है। जब मेरवाड़ा लेने के लिए महाराणा इतना प्रयत्न कर रहे थे, तो १८३३ में मीयाद ख़तम होने पर भी फिर आठ सालों के लिए पट्टा कैसे लिखा गया (पृ० १०२२-२३) और अन्त में अब तक क्यों नहीं मिला; महाराणा भीमसिंह को अयोग्य कहकर टॉड का स्वयं अपने हाथों में शासन-प्रबन्ध लेना कहाँ तक उचित और अधिकारपूर्ण था, महाराणा जवानसिंह के अजमेर जाने में क्या अंग्रेजी सरकार का अनुचित दबाव प्रधान कारण नहीं था? १८५७ के विप्लव में महाराणा ने नीमच की रक्षा करना क्या बिना किसी दबाव के वस्तुतः अपना कर्तव्य समझा था (पृ० १०७८) और सहूलियत (?) के साथ अमल में लाये जाने की संभावना न देखकर ही (पृ० ११३६) अथवा किसी अन्य कारण से सरकार ने मेरवाड़ा का प्रदेश मेवाड़ को वापस नहीं दिया? आदि अनेक बातों पर ओझाजी चुप ही रहे हैं। यदि श्री ओझाजी बी० डी० वसु की उक्त पुस्तक पढ़ते, तो शायद उन्हें मालूम हो जाता कि जो अंग्रेजी सरकार अफ़गानिस्तान के शान्त राज्य को नष्ट करने के लिए ईरान में उसके ख़िलाफ़ षड्यन्त्र द्वारा उसे कमजोर कर तथा दूसरी तरफ़ से अफ़गानिस्तान में ही गृहयुद्ध कराकर ऊपर से अफ़गान सरकार को सहायता का आश्वासन देकर अपने कब्ज़े में कर सकती थी, बहुत संभवतः उसी का उदयपुर के भिन्न-दलों में परस्पर झगड़ा कराने में भी हाथ हो। इसी तरह जो सरकार महाराष्ट्र की शक्तियों को कमजोर करने के लिए शान्त और वीर पिण्डारियों को प्रलोभन दे-देकर शहरों में लूट-मार करने के लिए उकसा सकती थी, क्या मालूम कि अमीरख़ाँ के उदयपुर को लूटने में भी उसी का हाथ हो? इन सब बातों की गंभीर विवेचना तथा गवेषणा आज करने की आवश्यकता है।

आज ऐसे ऐतिहासिकों का भी एक दल होगया है, जो १८५७ के विप्लव को बग़ावत या विद्रोह न कहकर स्वातंत्र्य-संग्राम कहते हैं। परन्तु ओझाजी उसे विद्रोह ही कहते हैं। वीरवर तांतिया टोपी के सम्बन्ध में आपने जो संक्षिप्त परिचय दिया है, उसकी ध्वनि भी उसकी वीरता, धीरता, रण-कुशलता और देश-प्रेम को देखते हुए कुछ ठीक नहीं जँचती। १८५७ के इस विप्लव में 'महाराणा ने अंग्रेज़ी सरकार की बहुत अच्छी सेवा बजाई' या देश के प्रति विद्रोह किया, यह अभी विवादास्पद प्रश्न ही है।

आज भारतवर्ष स्वराज्य की लड़ाई लड़ रहा है। राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से वह स्वतंत्र विचार करने लगा है। इसलिए आवश्यक है कि हमारा प्रत्येक विषय और कार्य राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हो,

हमारा साहित्य भी राष्ट्रीयता का पूर्ण लक्ष्य रखते हुए हमें उत्साहित करे। श्री ओझाजी के उपर्युक्त इतिहास में यह बड़ी भारी कमी है, इसलिए हम कुछ विस्तार से लिख भी गये हैं।

इसके अतिरिक्त हम दो-एक नम्र-निवेदन श्री ओझाजी से और भी कर देना चाहते हैं। आपने इस इतिहास में उदयपुर की सामाजिक और धार्मिक प्रगतियों का वर्णन नहीं किया। हिन्दी में अब तक बहुत कम इतिहास ऐसे लिखे गये हैं—एक तो गुरुकुल के आचार्य रामदेवजी का लिखा 'भारतवर्ष का इतिहास' सभ्यता का इतिहास है, दूसरे ज्ञानमण्डल से प्रकाशित 'भारतवर्ष के इतिहास' में भाई परमानन्दजी ने स्थल-स्थल पर राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं पर संक्षेप से विचार किया है। हमारी दूसरी प्रार्थना यह है कि ऐतिहासिक जगत् आपकी नवीन युक्तिपूर्ण प्राचीन इतिहास-सम्बन्धी गवेषणाओं को जानने को अत्यन्त उत्सुक है, इसलिए यदि आप प्राचीन इतिहास पर अधिक प्रकाश डालते हुए वर्तमान-कालिक इतिहास को संक्षेप से लिख दें तो लोग थोड़े समय में ही आपकी महत्वपूर्ण गवेषणाओं से अधिक लाभ उठा सकेंगे।

राजपूताना का इतिहास उपर्युक्त एक दो कमियों को छोड़कर सर्वांश में पूर्ण है। ओझाजी शोध के बड़े भारी विद्वान् हैं। उन्हें सोलंकियों के प्राचीन इतिहास लिखने पर ग्रियर्सन ने लिखा था—"भारत का प्राचीन इतिहास कैसे लिखा जाना चाहिए...इसका रास्ता बताने के लिए और मेरा विश्वास है, सफल मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।"* इन शब्दों में बिलकुल अत्युक्ति नहीं है। राजपूताना का इतिहास में भी ठीक वही शैली है। इतिहास के लेखकों को उनकी शैली का अनुकरण करना चाहिए।

उक्त तृतीय खंड में १० चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। अन्त में हम प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी और इतिहास से रुचि रखने वाले व्यक्ति से अनुरोध करते हैं कि वह 'राजपूताना का इतिहास' अवश्य पढ़े।

* May I congratulate you on being, I believe a pioneer, and a most successful pioneer, in showing how early Indian history should be written.

विश्व-भारती में ग्राम-सुधार के कार्य

(श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह)

कवि रवीन्द्रकी विश्व-भारती संस्था की केवल ख्याति ही नहीं है, वरन् वह कार्य भी कर रही है। उनके ग्राम-सुधार-विभाग के कार्य का परिचय यहाँ दिया जाता है, जिससे इसका कुछ अन्दाज पाठकों को होगा। सन् १९२२ में ग्रामवासियों की सहायता करने के लिए यह स्थापित हुआ था। ऐसे निःस्वार्थ और प्रेमी कार्यकर्ता इसमें हैं, जिन्हें ग्राम-निवासियों से सच्चा प्रेम है और सेवा करना ही जिनका धर्म है। इन्हीं लोगों की निःस्वार्थ सेवा से आज यह विभाग सफलता पा रहा है। श्री कालीमोहन घोष इस विभाग के संरक्षक हैं। आस-पास के गाँवों से मलेरिया दूर करने के लिए इस विभाग ने जो प्रयत्न किये वे प्रशंसनीय हैं। इस विभाग की ओर से कलकत्ता से अच्छे-अच्छे अनुभवी डाक्टर और विशेषज्ञ बुलाये गये और उसके कारणों की जाँच करवाई गई। ग्राम-सेवक (स्काउट) दल ग्राम-सेवा का प्रधान साधन रहा। ग्रामों में रात्रिशालायें खोली गईं। आग बुझाने के लिए फ़ायर ब्रिगेड बनाया गया। आपस के झगड़े निबटाने के लिए पंचायतें बनाई गईं। ग्रामीणों को अपने-अपने घरों में तरकारियाँ लगाना सिखाकर उनकी आमदनी बढ़ा दी गई तथा बीमारी के समय उनकी दवा करके उन्हें जीवन दान दिया गया। इन सब कामों से ग्रामीणों की सहानुभूति प्राप्त हुई तथा वे स्वावलंबी बने।

यहाँ जो स्काउट दल है, वह 'ग्राम-सहायक-दल' के नाम से पुकारा जाता है। यह अन्य स्काउटों की तरह केवल ऊपरी टीमटाम या नियम-कायदों में अटका न रहकर ग्रामों की सच्ची सहायता और सेवा करता है। इन्हीं स्वार्थ-त्यागी नवयुवकों की सहायता से दो गाँव जलने से बचा लिये गये। अगर इनकी सामयिक सहायता न मिलती तो

अवश्य ही वे जलकर खाक हो गये होते। मेलों के समय इन सहायक-दल के सदस्यों ने जनता की जो सेवा की वह भी प्रशंसनीय है। श्री धीरेन्द्रनाथराय सरीखे नेता को पाकर यह विभाग उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है।

आस-पास के गाँवों को मलेरिया से बचाने के लिए संगठित उद्योग शुरू कर दिया गया है, जिसका नाम मलेरिया-विरोधी आंदोलन (Anti-malaria campaign) है। इसने गाँवों के तालाबों की सफाई कर पीड़ितों की सेवा की और दवा बाँटना आरम्भ किया। उस समय १० फ़ी सदी लोग फ़सली बुखार से पीड़ित थे, किन्तु इस उद्योग के बल से उनकी संख्या में ७० फी सदी की कमी हो गई।

इस भयंकर रोग के निवारणार्थ कलकत्ता से कुछ विशेषज्ञ डाक्टर बुलाये गये, जिन्होंने गाँव-गाँव घूमकर लोगों को सहायता देना और मैजिक लालटेन के द्वारा सफ़ाई वगैरह की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया।

ग्राम-सहायक-दल ने कुछ ग्रामों में जो काम किया उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

भुवनगा—यहाँ पर यहीं के स्काउटों ने शांति-निकेतन के कुछ सहायकों की सहायता से १४ गड्ढे पूरे तथा मच्छरों के रहने की सब जगहों को नष्ट किया। गाँववालों के पास जमा हुए कूड़ा-करकट साफ किया, जिससे मच्छरों की बढ़ती होती थी। बरसात के आरम्भ में गाँव-भर की अच्छी सफ़ाई की, तथा मिट्टी का तेल छिड़का। इसका फल यह हुआ कि इस साल यह गाँव मलेरिया से बिलकुल मुक्त रहा।

मोदपुर—यहाँ श्री-निकेतन के शिक्षकों और विद्यार्थियों ने मिलकर गाँव के स्काउटों की सहायता से एक १०० गज़ लम्बी नाली काटकर गंदा पानी निकाला तथा उस नाली पर तीन पुल बनाये। इस गाँव के ८०० निवासियों में से ११० को मलेरिया था, उनकी चिकित्सा की गई, जिनमें से १०० बिलकुल चंगे हो गये।

बिनोरी—यहाँ ४० फी सदी आदमी पीड़ित थे। उन्हें बराबर कुनैन दी गई और उनकी संख्या केवल १५ रह गई।

लुहारगढ़—यहाँ का काम कुछ असफल रहा, क्योंकि यहाँ जिस नाली से बरसाती पानी निकलता है उसी को वे सिंचाई के काम में भी लाते हैं। वही यहाँ की गन्दगी का कारण है। सिंचाई करने तथा बरसाती पानी निकालने के लिए अलग-अलग नालियों का प्रबन्ध किया गया।

अस्पताल—गोलपारा और काशीपुर में भी मलेरिया की जड़ हिलाई गई। गुरुल में एक अस्पताल है जहाँ आस-पास के गाँवों से लोग दवा लेने आते हैं। यहीं उनकी चिकित्सा की जाती है। गत वर्ष यहाँ से दस हज़ार से अधिक लोगों को दवा बाँटी गई। यहाँ कुछ दाइयाँ भी रक्खी जाती हैं, जो कि गांवों में आ-जाकर स्त्रियों की चिकित्सा और दवा करती हैं।

इसी अस्पताल से लगा हुआ एक छोटा-सा लड़कियों का स्कूल भी है, जहां उन्हें सीना-पिरोना तथा गृह-कार्यों की शिक्षा दी जाती है।

शिशुओं के लालन-पालन की क्रियात्मक रूप में शिक्षा देने के लिए शिशु-प्रदर्शिनी की जाती है, जिससे करीब दस हज़ार ग्रामवासियों ने लाभ उठाया।

ग्राम कार्य—आस-पास के कुछ गाँवों के नक्शे बनाये गये हैं। जिनमें गाँवों की सफ़ाई वगैरः की स्थिति, तालाबों आदि सबके स्थान निर्दिष्ट हैं। इन नक्शों से ग्राम-कार्य में बहुत सहायता मिलती है।

सहायक दल या स्काउट—सात गाँवों में स्काउट दल आरम्भ किये गये हैं। स्काउटों को बगीचे लगाने की शिक्षा भी दी जाती है तथा हर एक के लिए छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े देकर उसमें साग-भाजी उत्पन्न करना सिखाया जाता है।

शिक्षा-प्रचारिणी रात्रि-पाठशालायें—तीन गाँवों में रात्रिशालायें भी खोली गई हैं। इसके अतिरिक्त कृषि-शिक्षा पाने के लिए गाँवों के लड़के कुछ सप्ताहों के लिए श्री निकेतन में आकर रहते हैं और कृषि की शिक्षा पाकर चले जाते हैं। इस अल्पकाल की शिक्षा से उन्हें बहुत लाभ होता है। प्रति वर्ष एक मेला होता है जिसमें ग्रामवासी बुलाये जाते हैं। उसमें उनसे हेल-मेल तथा उनका मनोरंजन किया जाता है। इन मेलों से ग्राम और नगर में मृदु-संबन्ध स्थापित होता तथा एक-दूसरे को लोग बहु-

जानते हैं। इनमें भी स्काउटों ने लोगों की बहुत सेवा की।

एक और मेला इस ज़िले में भरता है जिसे लोग 'मल्लिक' मेला कहते हैं। इसमें भी सहायक दल ने स्त्रियों की बहुत सेवा और सहायता की तथा उन्हें गुण्डों से बचाया।

मैजिक लालटेन—कुछ गाँवों में मैजिक लालटेन के द्वारा तस्वीरें दिखलाकर लोगों को मनोरंजन के साथ-साथ अमूल्य शिक्षा भी दी गई।

चमड़े का कारख़ाना—सूरत के आस-पास चमड़े का काम करने वाले मोचियों की संख्या अधिक है अतः उनकी उन्नति के उपाय खोजना इस विभाग ने निश्चय किया। एक क्रोम-लेदर फैक्ट्री शुरू की गई, किन्तु सफल नहीं हुई अतः कुछ विद्यार्थी इस काम को सीखने के लिए कलकत्ता भेजे गये।

गोशाला—आश्रम-निवासियों को शुद्ध दूध देने के विचार से गोशाला आरंभ की गई। खेती के लिए अच्छे साँडों का तैयार करना तथा गौओं का दूध बढ़ाना भी इसका उद्देश्य है। इनके लिए चरोखर तथा अच्छा भोजन तैयार करने का प्रश्न भी यहाँ हल किया जा रहा है। ऐसी-ऐसी फसलें खोजी जा रही हैं, जिन्हें उपजाकर गाय-बैल पुष्ट बनाये जा सकें तथा चरोखर की ज़रूरत न रह जाय।

अच्छी नस्ल उत्पन्न करने लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से अच्छा साँड उधार लिया गया था। जिससे गोशाला तथा ग्रामवासियों की गायें अच्छी नस्ल की बनाई जाने लगीं।

अभी इस जगह चारा, दाना, उत्तम पानी या शिक्षित ग्वालों का अभाव है। इसी कारण जितनी चाहिए उतनी उन्नति नहीं हो सकी है। थोड़े जानवर रखने के कारण अभी ख़र्चा भी अधिक पड़ रहा है। ज्यों-ज्यों ये कठिनाइयाँ दूर होंगी गोशाला उ ति करती जायगी। चरोखर की यहाँ भी कमी है अतः पशुओं के भोजन के लिए चारा उत्पन्न करनेकी ज़रूरत पड़ रही है। इसके लिए अलग ज़मीन की ज़रूरत है। किन्तु इतनी फ़ालतू ज़मीन नहीं है जिसमें मनुष्य अपने भोजन का अन्न छोड़कर पशुओं के लिए भोजन उत्पन्न करें अतः इस कार्य के लिये पड़ती पड़ी हुई ज़मीनों का उपयोग किया जा रहा है। अभी तक जो ज़मीन बेकाम पड़ी थी, वह फिर से उपजाऊ बनाकर उसमें चारा तथा अन्य पशु-भोजन उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है।

चारे का प्रश्न हल करने के लिए कुछ नये प्रकार की घास बोकर उनकी परीक्षा की जा रही है। अमेरिका से एक प्रकार की बिना काँटे की नागफनी भी मँगाई गई है जिसे ढोर बड़े आनन्द से खाते हैं। इसे अधिक विस्तार से उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है। अगर यह प्रयत्न सफल हो गया तो पशुओं के भोजन का प्रश्न सहज ही हल हो जायगा।

अभी सूखी ऋतुओं के लिए पक्के गड्ढों में हरा चारा काट-काटकर जमा करके रक्खा जाता है। यह साइलेज भोजन के काम आता है।

यहाँ गो-मूत्र और गोबर को व्यर्थ नष्ट नहीं होने दिया जाता बल्कि उसे छायादार गड्ढों में जमाकर उसकी खाद बनाई जाती है और तैयार हो जाने पर खेतों में डाली जाती है।

मुर्ग़ीख़ाना—श्री-निकेतन के आस-पास ऐसे लोग रहते हैं, जो मुर्गियाँ वग़ैरः पर अपनी गुज़र करते हैं। वे इतने ग़रीब हैं कि इस कार्य को कदापि नहीं छोड़ सकते। अतः अंडों की संख्या में वृद्धि करना ही अपनी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय सोचा गया। विलायती लेगहार्न तथा देशी मुर्ग़ी के संयोग से अंडों की संख्या बढ़ाई गई। इसी की परीक्षा के लिए एक मुर्ग़ीख़ाना स्थापित है। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की मुर्गियाँ रखकर उनसे नई और उत्तम नसल उत्पन्न करने का प्रयत्न हो रहा है, जिसमें अंडों की संख्या बढ़े। अंडों से बच्चे निकालने के लिए मुर्गियों को अंडे सेने की ज़रूरत पड़ती है; उनको इस अड़चन से बचाने के लिए एक मशीन है, जिसमें एक साथ ही सैकड़ों अंडे रख दिये जाते हैं। इससे गर्मी पहुँचाई जाती है, जिससे २१ दिन में अंडे छोड़कर बच्चे निकल पड़ते हैं। इस मशीन से गाँव वाले भी लाभ उठाते हैं। अपने अंडे सेने के लिए वे यहीं ले आते हैं।

बुनाई का काम—गाँव के लड़कों को कपड़ा-दरी वग़ैरः बुनने का काम सिखाने के लिए एक बुनाई का विभाग भी खुला हुआ है जिसमें पुराने और नये तरीके के

करघों पर बुनना सिखाया जाता है। सूत-रेशम सभी के कपड़े बुने जाते हैं। पक्के रंग तैयार कर उनसे छपाई का काम भी सिखाया जाता है।

पाठकों को उक्त वर्णन से ज्ञात हो गया होगा कि यह विभाग कितना उपयोगी कार्य कर रहा है। भारतवर्ष में यह अपने ढंग की एक ही संस्था है। हम आशा करते हैं कि देश के धनी और ग्राम-हितैषी लोग इसी प्रकार की सैकड़ों संस्थायें खोलकर देश की सच्ची आवश्यकता की पूर्ति करेंगे।

फ्रान्स का वृद्ध सिंह: क्लेमेंशो

(श्री शंकरदेव विद्यालंकार)

गत यूरोपीय महासंग्राम के विजेता मोशिये क्लेमेन्शो ने ८८ वर्ष के सतत परिश्रममय जीवन के पश्चात् चिर-निद्रा का पंथ स्वीकार किया है। इस पुरुष-सिंह के जीवन में अन्त तक इतनी कार्य-दक्षता, और तेजस्विता विद्यमान थी कि बहुधा लोग इसे 'अमर' कहा करते थे। अपने जीवन के वाञ्छनीय स्वप्न को सिद्ध हुआ देखकर यह नर-शार्दूल आज संसार से शान्ति, संन्तोष और कृतकृत्यता के आनन्द के साथ परलोक सिधारा है।

अपने जीवन में मो० क्लेमेन्शो ने तीन युग देखे। सन १८४८ का यूरोपीय विप्लव इसने सबसे पहले देखा। लोकतंत्रवाद की दिग्विजयिनी गाथा समस्त यूरोप में फैलते हुए इसने निहारी। अपने जीवन में एक और महत्वपूर्ण घटना इसने देखी, वह है १८७० का फ्रान्स-प्रशा युद्ध। फ्रान्स पर बिस्मार्क की कूटनीति का दिग्विजय इसने देखा। इस युद्ध के परिणाम-स्वरूप फ्रांस की दीन-हीन दशा को इसने अपनी मृत्यु से बढ़कर दुखदायी समझा। आल्सेस और लोरेन के प्रदेश को जर्मनी के अंकुश में जाता देखकर इसका हृदय जलने लगा। १८७० के इस कलंक को धो डालने का मो० क्लेमेन्शो ने दृढ़ संकल्प किया। इसका मन सदैव ही जर्मनी के विरुद्ध क्रोध से जलता रहता था।

❀ ❀ ❀ ❀

मोशिये क्लेमेन्शो ने डाक्टर बनने की शिक्षा प्राप्त की थी और एम० डी० की उच्च पदवी भी प्राप्त की थी, लेकिन जीवन-कार्य के रूप में इसने राजनीति को ही स्वीकार किया। अपने रोगियों के जख्मों पर जिस कुशलता से इसकी छुरी फिरा करती थी, ठीक वैसे ही अपने विरोधियों के लिए इसकी कलम फिरने लगी। इसका उत्साह अदम्य था। इसका वाक्‌प्रहार असह्य और संकल्प पर्वत जैसा निश्चल था।

अपने सर्वजनिक जीवन का प्रारंभ क्लेमेन्शो ने मोमार्त नामक परगने के मेयर के रूप में किया। यह परगना बहुत भयंकर और विप्लवकारी था। परन्तु यहाँ १८७० के विप्लव के समय मो० क्लेमेन्शो ने असाधारण शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। इस व्यवस्था-शक्ति से प्रसन्न होकर मेयर बनने के छः महीने बाद ही ९६००० मतदाताओं ने क्लेमेन्शो को अपना प्रतिनिधि बनाकर फ्रान्स की नेशनल एसेम्बली (पार्लमेण्ट) में भेजा। वहाँ जाकर यह रेडिकल पार्टी में शामिल हुआ, यह पार्टी छोटी-सी ही थी। थोड़े ही समय के अन्दर अपनी योग्यता के द्वारा क्लेमेन्शो चमक उठा। यह अपनी शक्ति का उपयोग प्रधान-मण्डल के च्युत करने में ही करता था। अतः बहुत से लोग इसके विरुद्ध हो गये और इसपर आरोप करने लगे। एक आक्षेप यह भी लगाया गया कि यह इंग्लैण्ड से घूस लेता है। इसीके हस्ताक्षर वाले कागज इसके विरुद्ध प्रकट किये गये। अपना विरोध करने वाली इस हलचल के समय इसने असामान्य आत्मसंयम, नैतिक साहस और

समय-सूचकता दिखलाई। किये गये आक्षेपों का उत्तर देने के लिए फ्रान्स के बड़े-बड़े न्यायाधीशों के सामने इसको खड़ा किया गया। न्यायालय फ्रांस के बड़े-बड़े कार्यकर्ताओं तथा साधारण जनता से पूर्णतया भर गया था। इसके विरोधियों के मुख पर विजय का घमण्ड विद्यमान था। सब लोग बहुत शांतिपूर्वक बैठे हुए थे—न्यायालय सुनसान-सा प्रतीत होता था। क्लेमेन्शो ने धीर और गंभीर वाणी में अपना वक्तव्य प्रारंभ किया, दुश्मनों के हृदयों को वेध डालनेवाले विद्युत के समान कटाक्ष इसके मुख से निकलने लगे। विरोधियों के आक्षेपों का इसने सफलतापूर्वक प्रतीकार कर दिया, अपने हस्ताक्षर वाले पत्रों को इसने बनावटी सिद्ध कर दिखाया और इसीकी विजय रही।

इस बार के नेशनल एसेम्बली के लिए यह निर्वाचित न हो सका, अतः इसने अखबारनवीसी का काम हाथ में लिया। एक के बाद एक इस प्रकार कई पत्रों का इसने सम्पादन किया। इसकी लिखी हुई टीकायें और आलोचनायें मन्त्रि-मण्डल को हैरान करने लगीं। इसके लेख फ्रान्स की जनता को मथाने लगे।

❀　❀　❀

'ड्रेयफस् खटला' नाम की एक विख्यात घटना मो० क्लेमेन्शो को पुनः राजनीति के मैदान में ले आई। थोड़े ही समय के पश्चात् यह फ्रान्स का प्रधान-मन्त्री बन गया। जर्मन क़ैसर को भी एक अवसर पर इसने अपने तेज और अभिमान का परिचय दिया। सन् १९०९ में इसके मंत्रि-मंडल का पतन हुआ और पुनः इसने पत्र-संपादन का काम हाथ में लिया। इस समय पुनः इसकी कलम से निकलते हुए लेखों ने फ्रान्स की राजनीति को कम्पित कर दिया। इस समय इसकी उमर ७०वर्ष की थी तथापि इसकी कार्यक्षमता कमाल की थी। रात्रि के एक बजे के बाद ही यह जागकर खड़ा हो जाता था और इस पिछली रात के प्रशान्त एवं नीरव समय में अपने अखबार के लिए अग्रलेख लिखा करता था। लेख लिखने में ३–४ घण्टे समाप्त होते थे। इसके बाद यह व्यायाम करता, फिर कुछ जलपान करता और मुलाकात के लिए आये हुए पुरुषों से वार्तालाप करता था। इसके बाद अपनी डाक देखता था। डाक में २००-३०० चिट्ठी-पत्रियाँ आया करती थीं। ये पत्र समस्त फ्रान्स से आते थे और इनमें राजनीति-विषयक अनेक प्रकार की समस्याओं का उल्लेख होता था। इसी समय पत्रों का जवाब भी लिख देता और फिर भोजन करके सीनेट में जाता था। वहाँ से अपने अखबार के कार्यालय में जाकर अन्य विभाग के सम्पादकों से आवश्यक बातचीत करता था। साँझ को ही अखबार पढ़ने का समय रक्खा था। रात्रि को आठ बजे घर आकर और भोजन करके शयन करता था। क्लेमेन्शो की दिनचर्या इस प्रकार की थी। ७० वर्ष की अवस्था में भी यह वृद्ध सिंह युवकों को भी लज्जित करने वाले कार्य असाधारण उत्साह से किया करता था।

❀　❀　❀

महायुद्ध के समय इसकी यह कार्यशक्ति और भी अधिक तीव्र हो गई। एक ओर तो फ्रान्स की सरकार ने लड़ाई के समाचारों पर सेन्सर का अंकुश लगाकर सच्ची खबरों का मार्ग रोक दिया और दूसरी ओर एक पक्ष ऐसा था जो जिस किसी प्रकार से भी सुलह करके युद्ध को बन्द करना चाहता था। परन्तु क्लेमेन्शो तो सन् १८७० के कलंक को धोने के स्वप्न देखा करता था। इसने युद्ध की सच्ची खबरें प्राप्त करने का प्रबन्ध किया और समस्त जनता में सच्ची खबरें फैलाने का काम प्रारंभ किया। युद्ध

को शान्त करनेवाले दल के विरुद्ध प्रचण्ड लेख-माला प्रारंभ करके उनका प्रभाव कम कर दिया और जर्मनी के वैर का बदला लेकर विजय प्राप्त करने की घोषणा कर दी। सन् १९१७ के नवम्बर महीने में ७५ वर्ष के इस पुरुष-सिंह को पुनः प्रधान मंत्री के पद पर बैठाया गया। युद्ध-विभाग के प्रधान कार्य-कर्ता का कार्य क्लेमेन्शो ने स्वयं अपने ऊपर लिया। सन् १९१७ के नवम्बर मास में यह प्रधान मंत्री बना था और सन् १९१८ के नवम्बर महीने में इसने जर्मनी का गर्व खण्डित कर दिया और सन् १८७० का फ्रान्स का कलङ्क धो डाला। वार्साई की जग-विख्यात सुलह के अन्दर प्रेसिडेण्ट विल्सन और श्री लॉयड जार्ज के साथ मिलकर फ्रान्स का हित-साधन करने के लिए इसने भगीरथ-प्रयत्न किया। फ्रान्स को प्रजा इस भयंकर पुरुष का भार सहन करने लायक न थी अतः पुनः इसने राजनीति से निवृत्ति ले ली। राजनैतिक झगड़ों से निवृत्त होकर इसने एकान्त में पुस्तकें लिखने का कार्य प्रारंभ किया। इसने भारतवर्ष की एक यात्रा की। गंगा के इसके संस्मरण भी अपूर्व हैं। काशी नगरी के मंदिरों की कारीगरी पर यह मुग्ध हो गया था। इसने अपनी आत्म-कहानी भी लिखी है और उसको अपनी मृत्यु के ५० वर्ष पश्चात् प्रकाशित करने का आदेश दे गया है। मोशिये क्लेमेन्शो क्षमता की मूर्ति था। फ्रान्स की प्रजा अपने इस पुरुष-सिंह के लिए सदा गर्वित रहेगी।*

---

* नूतन गुजरात के लेख का रूपान्तर।

अंक दो

[श्री रामचन्द्र गौड़]

सच देखा जाय तो दो से ही संसार है। हमारी पृथ्वी के दो ही ध्रुव हैं, उत्तरी और दक्षिणी। यह भी हमें ज्ञात है कि दो के मिलने से ही सारी सृष्टि की वृद्धि होती है और सांसारिक कर्तव्य-रूपी गाड़ी में स्त्री और पुरुष रूपी दो पहिये हैं। यदि एक भी पहिया खराब हो जाय तो गाड़ी नहीं चल सकती। इसलिए पुरुष और स्त्री में इस प्रकार का सम्बन्ध आवश्यक है जिससे दोनों का जीवन आनन्द-पूर्वक बीत सके।

सृष्टि भी दो प्रकार की है,—एक जड़ और दूसरी चेतन। जड़ उस सृष्टि का नाम है कि जो सदैव स्थावर रहे अर्थात् एक ही जगह रहे। दूसरी चेतन जिसमें ईश्वर ने चेतना प्रदान की है। यह चलती-फिरती है और इसमें अनुभव करने की शक्ति भी होती है।

संसार के मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं—एक सज्जन, दूसरे दुर्जन। सज्जन सदैव आत्म-विकास और परमार्थ में लगे रहते हैं। इसके विपरीत दुर्जन सदैव अपना ही स्वार्थ-सिद्धि मे रत रहते हैं। संसार मिट्टी में ही क्यों न मिल जाय पर उनका मतलब तो सिद्ध होना ही चाहिए। इसलिए हमें अपने साथी चुनते समय सज्जन और दुर्जन की परख कर लेनी चाहिए।

आप लोगों के मन में यह प्रश्न अवश्य ही उठ रहा होगा कि आजकल तो सज्जन और दुर्जन दोनों एक ही भेष में रहते है फिर उनकी परख किस प्रकार की जाय। इसकी भी दो मुख्य रीतियाँ हैं। अंग्रेजी भाषा के किसी कवि ने कहा है—

"A man is known by his photographs and the company he comes."

अर्थात् साधारण मनुष्यों को परखने की दो रीतियाँ हैं। वह किस प्रकार के चित्र पसंद किया करता है अथवा उसकी बैठक में किस प्रकार के चित्र लगे हैं और दूसरे उसकी संगत कैसी है अर्थात् उसके मित्रों के आचरण किस प्रकार के हैं। अब हमें यह देखना चाहिए कि उपर्युक्त बातें किस प्रकार ठीक हैं। यदि किसी मनुष्य के यहाँ चित्र बेडौल और विलासितापूर्ण हों तो उस मनुष्य का विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसे आदमी के विचार होंगे वैसे ही उसके चित्र होंगे। जिसका झुकाव देशभक्ति की ओर होगा उसके यहाँ देशभक्तों के ही चित्र होंगे। जो शृंगारिक मनोवृत्ति के हैं उनको स्त्री-सौन्दर्य के चित्र ही रुचिकर होंगे। साथ-संगत के बारे में तो सब लोग जानते हैं कि जैसे मित्र होते हैं वैसा ही आदमी स्वयं भी बन जाता है अर्थात् चोरों के साथी चोर ही होंगे।

संसार में दो वस्तुयें बड़ी विलक्षण हैं। उनके कारण सारी सृष्टि चल रही है। वे हैं ब्रह्म और माया। बहुतेरे मनुष्य तो इस माया-जाल में पड़कर दुःख भोग रहे हैं, बहुत-से भोग चुके हैं और बहुतों को भोगना बाकी है। इसी माया के कारण निस्सार संसार में उन्हें सार दिखता है; इसी माया के फेर में पड़कर अविकारी, अविनाशी आत्मा भी इस शरीररूपी पिंजड़े में बन्द होकर नाना प्रकार के कष्ट भोगता है। योग के द्वारा ही मुनियों ने इस माया-जाल को हटाकर उस परम ब्रह्म को पहिचाना है और मुक्ति प्राप्त की है।

ऐसे ही महत्व का सम्बन्ध गुरु और शिष्य का है। जिसके द्वारा संसार में ज्ञान के संग्रह की शिक्षा दी जाती है। इसीलिए गुरु को बालक का दूसरा पिता ही माना गया है।

यदि देखा जाय तो हमारे जीवन को आनन्द-मय बनाने वाले तथा संसार के अन्य उत्पातों से बचाने वाले दो ही नियम हैं। वे हैं उच्च विचार और सादी रहन-सहन। जिसके उच्च विचार होंगे उसका आचरण भी अवश्य उच्च कोटि का होगा। क्योंकि आचरण ही शरीर की प्रथमावस्था है। सादी और संयमपूर्ण जीवनचर्या से बहुत-सी अनावश्यक इच्छायें दूर हो जाती हैं और उसी के कारण हमारे बहुत-से कष्ट मिट जाते हैं क्योंकि इच्छा ही दुःख का कारण है और आवश्यकताओं को कम करने में ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।

प्रत्येक कार्य का कारण अवश्य ही रहता है। कार्य के कारण और उसके फल में घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि कारण या उत्पत्ति ही बुरी भावनाओं से है तो उसका फल भी अवश्य बुरा होगा। यदि कारण ठीक है तो फल भी ठीक होगा अर्थात् जैसा कारण वैसा फल। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—

Take care of the cause and effect will take care of itself.

अर्थात् कारण पर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए फल स्वयं ही ठीक हो जायगा। 'जैसे विचार वैसा आचार—' कहा भी है।

'दो' का अर्थ है देना। इसलिए दो का अंक मानो संसार को पुकार-पुकारकर कह रहा है कि दो, दो अर्थात् लोगों को सहायता देकर उन्हें उनकी दीन-हीन दशा तथा विपत्ति से मुक्त करो। हमारे जीवन का ध्येय ही परोपकार या दूसरों की सहायता करना है। और यह अंक हमारा ध्यान इसी की ओर आकर्षित कर रहा है।

हमारे प्राचीन समाज-व्यवस्थापक बड़े ही विचार-वान थे। उन्होंने प्रत्येक त्यौहार के साथ कुछ-न-कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्त अवश्य रक्खे हैं। भादों में 'शीतला

सप्तमी' नामक एक त्योहार जन्माष्टमी के एक दिन पहले मनाया जाता है। इस रोज़ बासी भोजन करने की प्रथा है। फाल्गुन में फिर यही त्योहार आता है और उस रोज भी बासी भोजन की ही प्रथा है। बहुत-से विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि इन दोनों त्योहारों की बीच की अवधि में हम बासी भोजन कर सकते हैं; उससे हमें विशेष हानि नहीं होगी।

किसी प्राचीन वैद्य का कथन है कि यदि हमें अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना है, यदि हम चाहते हैं कि हमारे घर पर वैद्य अथवा डाक्टरों का आवागमन न हो, तो हमें दो बातें अवश्य ही पालन करनी पड़ेंगी। एक भोजन के पश्चात् लघुशंका (पेशाब) करना और दूसरी बांई करवट सोना। ये दोनों बातें स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं।

यह भी एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'लड़ाई का घर हाँसी और रोग का घर खाँसी।' अर्थात् हँसी करते-करते लड़ाई हो जाती है। यदि किसी मनुष्य को खाँसी हो जाय तो उसे अनेक रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। इससे हँसी और खाँसी से सदैव बचे रहना चाहिए।

ताली दो ही हाथों से बजती है, एक से नहीं। यदि कोई लड़ाई-झगड़ा हो गया तो समझना चाहिए कि दोनों ओर के व्यक्ति ऐसा करने पर तुले हुए थे। यदि उनमें से एक भी शान्ति का आधार लेता तो ऐसा होता ही नहीं। जब कभी सड़कों पर गाड़ियाँ लड़ जाती हैं तो उस समय भी भूल दोनों ओर की होती है; यदि एक की भूल दूसरा सम्हाल ले तो कभी ऐसा न हो।

जब कभी मन में दो नियम एक साथ ही लागू हों, और उस समय हमारे हृदय की दो शक्तियाँ—मन और बुद्धि—विभिन्न नियमों का समर्थन करें तो उस समय हमें अपने अन्तःकरण की बात माननी चाहिए। यह अंक दो की विशेषता है। आशा है कि इसकी शिक्षाओं से लोग अवश्य लाभ उठायेंगे।
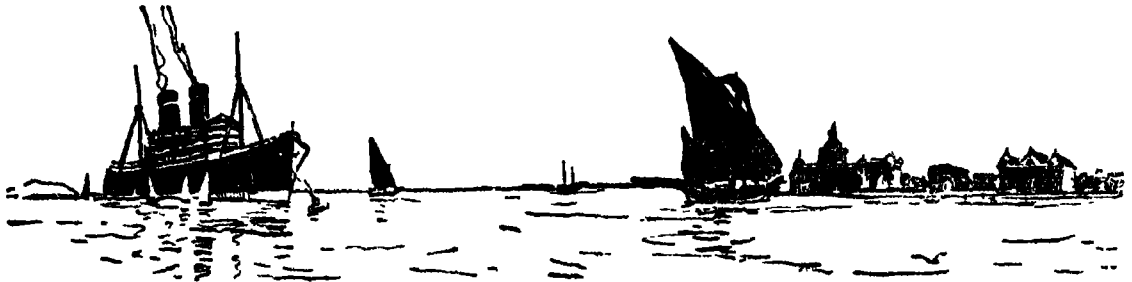
पाँच जीवन-सूत्र

बम्बई के हे युवक बन्धुओ, मुझे जो संदेश देना है वह पाँच छोटे-छोटे सूत्रों में समाया हुआ है—

(१)

अजेय निश्चय-बल प्राप्त करो । इस जगतीतल पर ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे तुम अपनी संपूर्ण शक्तियों द्वारा न प्राप्त कर सको ? दृढ़ निश्चय करो जिससे अशक्य शक्य में परिवर्तित हो जाय !

(२)

जीवन की पवित्रता को न भूलो । सत्य और ईमानदारी की राह पसन्द करो और विघ्नों के सामने लड़ते हुए आगे बढ़ते जाओ !

(३)

मातृ-प्रेम का धर्म स्वीकार करो । "हम सब भारतवासी हैं और भारतवर्ष हमारा है" इस मंत्र को अपने जीवन में मिला दो ! प्रान्तीय भेद भूलकर मातृभूमि की सेवा करो !

(४)

सहिष्णुता को अपने जीवन की संगिनी बनाओ ! सहिष्णुता सब धर्मों का, भारतीय संस्कृति का प्राण है ।

(५)

शौर्य के पुजारी बनो, दीन जनों के कष्टों का बोझ अपने ऊपर लेकर उनके कष्टों को कम करो और श्रेष्ठ मानवता से अपने-अपने जीवन को अलंकृत करने की प्रतिज्ञा करो । भावी के भारत को भव्य बनाने के लिए शौर्य, युद्ध और मर्दानगी का मार्ग पसंद करो ।*

जगदीशचन्द्र वसु

---

* बम्बई के युवक-संघ में युवकों के प्रति ।

प्रेमी की घोषणा

मेरी आत्मा के सुन्दर प्रतिबिम्ब ! तेरे निस्तब्ध अन्तःकरण में व्याकुलता की यह आग कैसी, अधीरता की ज्वाला कैसी, विरह की यह पीड़ा कैसी ?

मैंने अपने सारे बल को, सारे जोश को और सारे पौरुष को तेरे सुकुमार स्वरूप की रक्षा के लिए केन्द्रीभूत कर दिया है । तब तेरा यह मनोविलाप क्यों ?

मैंने अपनी सारी शुभ कामना, सारी प्रार्थना और सारी मनोभावना तेरे प्रस्फुटन और सुविकास के लिए अज्ञात देवता के चरणों पर निछावर कर दी है । तब तेरी यह निराशा क्यों ?

मैं—ईश्वर का अमृत पुत्र, संसार में संगीत, सौरभ और आनन्द का प्रसार करने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ । तब तेरी यह विरसता क्यों ?

हे मेरी कल्पना के केन्द्रबिन्दु ! मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक तरंग और प्रत्येक शक्ति तेरे मधुर मुस्कान के लिए है, तेरे आनन्द के लिए है ।

हे मेरे हृदय की प्रतिध्वनि ! तू मुझसे अभिन्न है, तू मेरे प्राणों का प्राण है, आत्मा की आत्मा है ।

देवदत्त विद्यार्थी "शिशु-हृदय"

नीर-क्षीर-विवेक

हिन्दी में विशेषांक

१. हिन्दूपंच (बलिदान-अंक), पृष्ठ ३६४ । मूल्य २॥) सम्पादक और प्रकाशक—श्री कमलादत्त पाण्डेय, ८४ अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता ।

२. सरस्वती (स्वराज्य-अंक) पृष्ठ २०६ । सम्पा० श्री-देवीदत्त शुक्ल । प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग ।

३. 'राजस्थान-सदेश' (युवकाङ्क)-सम्पादक—श्री विजयसिंह पथिक । प्रकाशक-राजस्थान संदेश कार्यालय अजमेर पृष्ठ ६८ । मूल्य १) *

यदि मैं भूलता नहीं तो हिन्दी में विशेषांक निकालने की प्रथा सबसे पहले 'प्रताप' या 'स्वदेश' में से किसी एक ने चलाई थी। उन दिनों इन दोनों पत्रों के क्रमशः विजयांक (विजयादशमी के अवसर पर) और कृष्णांक (कृष्णाष्टमी के समय) निकला करते थे और इनमें सुन्दर रचनाओं का अच्छा संकलन रहता था। अब तो कई साल से 'प्रताप' ने यह परिपाटी तोड़ दी है। 'स्वदेश' कभी-कभी होलिकांक निकाल देता है पर वह बात अब नहीं रही।

इन दोनों पत्रों के बाद पीछे चलकर वर्तमान, मतवाला, हिन्दू-पंच, चाँद, सुधा, माधुरी सभी ने विशेषांक निकालने शुरू कर दिये। मासिक-पत्रों में 'चाँद' ने तथा साप्ताहिक पत्रों में 'हिन्दू-पंच' ने तो विशेषांकों का ताँता बाँध दिया।

इन विशेषांकों से, सम्भव है, ग्राहकों को साधारण अंकों की अपेक्षा अधिक सामग्री और चित्र मिल जाते हों पर इनके प्रकाशन के पीछे जो मनोवृत्ति काम कर रही है, वह काम की अपेक्षा नाम, सेवा की अपेक्षा विज्ञापन की ही अधिक भूखी है। साधारण पाठक, जो भाव और सामग्री की श्रेष्ठता की अपेक्षा रूप और ढंग के आकर्षण को स्वभावतः पसन्द करते हैं, निस्सार और तड़क-भड़क की चीजों के लोभी हो रहे हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है। हिन्दी के लेखकों और कवियों की संख्या परिमित है और उसकी प्रगति प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की वृद्धि से अनुपात में बहुत हलकी है। इस अभाव-दोष से प्रत्येक पत्रिका के सम्पादक प्रसिद्ध लेखकों के लेख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और अपने नये लेखक नहीं तैयार करते। फल यह होता है कि प्रसिद्ध कवियों और लेखकों को एक ही साथ कई पत्रिकाओं में लिखना पड़ता है और अधिक लिखने का बोझ आ जाने के कारण उन्हें संसार के सामने उच्च कोटि की रचनायें रखने की अपेक्षा माँग की पूर्ति का ध्यान ही अधिक रह जाता है। इसका फल यह होता है कि ३००-४०० पेज के पोथों के भीतर वही साधारण बातें और साधारण चीजें रह जाती हैं; हाँ दो-एक अच्छी रचनायें जरूर आ जाती हैं। इससे सामग्री की दृष्टि से पाठक का लाभ तो क्या होता है हाँ प्रकाशक का विज्ञापन अच्छा हो जाता है और लोगों में ठोस सामग्री के प्रति प्रेम उत्पन्न होने के बदले बाह्य और साधारण के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है। इसलिए साहित्य के विकास की दृष्टि से तो इस प्रथा की कोई बहुत बड़ी उपयोगिता नहीं है; हाँ प्रचार और विज्ञापन की दृष्टि से इसका थोड़ा-बहुत महत्व हो सकता है।

किन्तु गुण-दोष सर्वत्र सभी चीजों में होते हैं और इन विशेषांकों के रेल-पेल में कभी-कभी एकाध अच्छी और काम की चीजें भी निकल जाती हैं। 'चाँद' के 'फाँसी अंक' और 'सुधा' के 'साहित्य अंक' की गणना अच्छे विशेषांकों में की जा सकती है। हर्ष की बात है कि 'हिन्दू पंच' ने, जो सामग्री की श्रेष्ठता की अपेक्षा अपनी कलेवर-वृद्धि पर ही सदैव विशेष ध्यान देता रहा है, भी 'चाँद' के 'फाँसी-अंक' का अनुकरण कर 'बलिदान-अंक' प्रकाशित किया है। यह अंक 'त्यागभूमि' साइज़ के ३६४ पृष्ठों का निकला है। इसके

---

* त्यागभूमि के ग्राहकों को यह विशेषाङ्क तीन चौथाई मूल्य में दिया जायगा—संपादक।

पाँच खण्ड हैं । पहले में प्राचीन भारत के बलिदानों की गाथा है । दूसरे में मध्यकाल के भारतीय बलिदानों का विवरण है। तीसरे में वर्तमान भारत के बलिदानों का ज़िक्र है। चौथे में कवितायें हैं और पाँचवे में विदेशी बलिदानों के विवरण संग्रह किये गये हैं। इसके साथ ही कल्पित और असली १३० चित्र भी इसमें स्थान-स्थान पर दिये गये हैं। इसमें शक नहीं कि इस समय, जब राष्ट्र में एक भयंकर पर परिणाम-मधुर बलिदान-यज्ञ की तैयारी हो रही है, इस विशेषांक से युवकों को देश की वेदी पर अपना क्षुद्र अस्तित्व समर्पित करने के निश्चय को उत्साह प्राप्त होगा । कविताओं का चुनाव बहुत अच्छा नहीं है और प्रथम दो खण्डों की भाषा शिथिल है।

इसमें सन्देह नहीं कि बलिदान की भावना पर शहीद हुए स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध में इस अंक से अच्छी जानकारी हो सकती है और इससे 'चाँद' के फाँसी-अंक के अभाव की अच्छी तरह पूर्ति हुई है । पर कामोद्दीपक दवाइयों के विज्ञापन इसमें कलंक मालूम पड़ते हैं ।

जनवरी १९३० का 'सरस्वती' का अंक स्वराज्यांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इसमें भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का इतिहास, असहयोग-आन्दोलन, दो-एक राष्ट्रीय संस्थाओं तथा स्वराज्य-आन्दोलन-सम्बन्धी विभिन्न विचार-प्रणालियों पर छोटे-छोटे लेखों का चयन किया गया है। कांग्रेस के अवसर पर यह अंक निकालकर इसके सम्पादक और संचालक ने सुरुचि और अपने देश-प्रेम का परिचय दिया है । इस अङ्क में चित्र भी काफ़ी दिये गये हैं। 'प्राचीन भारत में स्वराज्य', स्वराज्य-संग्राम में असहयोग आन्दोलन का स्थान, 'सर्वेण्ट ऑव इण्डिया सोसाइटी', लिबरल पार्टी तथा लोक-सेवक-मण्डल लेख ज्ञातव्य सूचनाओं से परिपूर्ण हैं । कुछ कार्टून भी हैं ।

साप्ताहिक 'राजस्थान-सन्देश' (अजमेर) का युवकांक सामयिक उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । आज का युवक वर्तमान परिस्थिति से असन्तुष्ट है; उसका झगड़ा केवल देश या जाति की बातों को लेकर ही नहीं है । युवक-आन्दोलन समाज-व्यवस्था के मूल दोषों के कारण उत्पन्न हुआ है । भारत में भी उसकी गति दिन-दिन तेज़ होती जा रही है । ऐसे अवसर पर राजपूताना के पुराने पर चिर-उत्साही कार्यकर्ता श्री विजयसिंहजी 'पथिक' ने अपने संपादकत्व में प्रकाशित होनेवाले इस साधन-हीन पर युवकोचित उत्साहपूर्ण पत्र का युवकाङ्क प्रकाशित कर हिन्दी-पाठकों को पढ़ने की 'चीज़' दी है । इसमें देश-विदेश के अनेक लेखकों के लेखों का अच्छा संग्रह है और सब लेख प्रवाहपूर्ण और उत्साहजनक शैली के नमूने हैं। यदि इस विशेषांक में विभिन्न देशों के युवक-आन्दोलनों का इतिहास भी दिया गया होता और उन कारणों एवं सामाजिक अपूर्णताओं का गंभीर और मार्मिक विवेचन भी होता जिनके कारण धीरे-धीरे दुनिया में एक बिलकुल ही नये आधार को लेकर खड़े होने वाले लोग उत्पन्न हो गये हैं, तो यह अंक सर्वांग-सुन्दर हो जाता । 'हमारी अर्थ-व्यवस्था के दोष' तथा 'नई सामाजिक व्यवस्था का पथ' लेख इस दिशा की ओर पाठक को कुछ दूर तक ले जाते हैं और इस दृष्टि से अच्छे हैं। पं० जवाहरलाल की जीवनी में लिखी यह बात ग़लत है कि उनका जन्म इंग्लैण्ड में हुआ था । 'धार्मिक क्रान्ति की आवश्यकता', 'युवकों का कर्तव्य', 'क़ानून और सत्ता' इत्यादि लेख बहुत अच्छे हैं । विशेषांक संग्रहणीय है ।

'सुमन'

बाल-साहित्य

अंग्रेज़ी

Letters from a Father to his Daughter.

(एक पिता के पत्र अपनी पुत्री को)

वे बालक ही हैं, जो आगे चलकर राष्ट्र के निर्माता का स्वरूप ग्रहण करते हैं । और यह एक खुला रहस्य है, जैसी कि बाल-पन में उनकी तैयारी होती है, उसीके अनुसार समाज में वे अपना स्थान ग्रहण करते और राष्ट्रहित के कामों में योग-दान करते हैं । जड़ के अच्छी तरह सींचे जाने पर ही तो वृक्ष का सुविकास होता है ? अतएव आज बाल-साहित्य की अभिवृद्धि की ओर जो ध्यान दिया जा रहा है, वह सुन्दर भविष्य का सूचक और हर्ष का कारण है । प्रस्तुत पुस्तक भी इसी दिशा का एक प्रयत्न है—और, आश्चर्य नहीं कि कइयों को यह जानकर कुछ विस्मय भी हो कि, इसके लेखक हैं हमारे इस वर्ष के राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू !

पं० जवाहरलाल न केवल नौजवानों के बेताज के बादशाह हैं, बल्कि भारत के वर्तमान अग्रणी राजनैतिक नेताओं में आपका प्रमुख स्थान है। राजनैतिक व्यक्तियों के बारे में आम तौर पर यह कहा जाता है, और यह एक परम्परा ही बन गई है, कि वे सिवा राजनीति के उथले-अस्थायी वातावरण के और किसी दिशा में न कुछ करते हैं, न करने की उनकी मनःस्थिति ही रहती है। पं० जवाहरलाल ने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर इस परम्परा को तोड़ दिया है, अथवा कहिए कि इसे मिथ्या सिद्ध कर दिया है, क्योंकि आपकी यह पुस्तक बाल-साहित्य की एक सुन्दर और स्थायी चीज़ है।

पुस्तक उन पत्रों का संकलन है, जो पण्डितजी ने अपनी १०वर्षीय पुत्री कुमारी इन्दिरा को उस समय लिखे थे, जब वह मसूरी थी और पण्डितजी प्रयाग थे। कुल ३१ पत्रों में प्रकृति-पुस्तक से लेकर ज़मीन की कहानी—आरम्भ में क्या था, उसपर पहले शंखोत्पादक, फिर सरीसृप और फिर सस्तन प्राणियों का कैसे विकास हुआ, मनुष्य का निर्माण कैसे होता गया, वनस्पतियों का क्रम-विकास कैसे हुआ, प्राचीन चट्टानों और अवशेषों (ठठरियों) से उस-उस समय की स्थिति का कैसे पता चलता है, लेखन-कला का आरम्भ और विकास सभ्यता व शहरों की वृद्धि आदि के साथ कैसे हुआ, ईश्वर और देवताओं की कल्पनायें कैसे बद्धमूल हुईं, इत्यादि सृष्टि-विकास-विषयक बातों का बड़ी सरलता, स्पष्टता और सुलझेपन के साथ ही रोचकता के साथ वर्णन है। मिश्र के 'रिंफक्स' और 'मर्मी' रंगीन तथा पुरानी वनस्पति और मछलियों के अवशेषों, सरीसृप जाति के अद्भुत जन्तुओं, हाथी इत्यादि के सादे चित्र भी हैं, जिससे वर्णित विषय को समझने में मदद मिलती है।

इसमें सन्देह नहीं कि यह विषय बड़ा पेचीदा है, पर पण्डितजी ने संक्षेप में इसे बड़ा ही रोचक और सरल किया है, जो उनके इस विषयक ज्ञान गाम्भीर्य और लेखन-कौशल का द्योतक है। यह हो सकता है कि उनके कुछ तथ्य दूसरे कई लोगों की दृष्टि में मिथ्या भी जँचें—मसलन, ईश्वर और देवताओं की कल्पना के मूल का उन्होंने कई बार जो ज़िक्र किया है, कि उस समय के लोगों के अज्ञान और तज्जनित भय से इनकी कल्पना और पूजा का उद्भव हुआ है, उससे धर्मभीरु लोगों का मतभेद हो सकता है; पर वर्णन तो उनका स्वाभाविक ही जँचता है। एक बात और। अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे की भावना विशेष रूप से यत्र-तत्र मिलती है, राष्ट्र या देश या जाति के पृथकत्व के विरुद्ध विचार उत्पन्न किये गये हैं, और आपस की मारकाट, लड़ाई-झगड़े, जय-विजय को भ्रमात्मक और अज्ञानपूर्ण दरसाया गया है। निस्सन्देह ये भाव सुन्दर, वास्तविक और उत्कर्षकारक हैं—यदि बालकों में इनका बीज वपन हो जाय।

अंग्रेज़ी के साहित्यिकपन की तो हम कह नहीं सकते, पर सरल वह काफ़ी है। पत्र छोटे छोटे और विषयानुकूल होने के सबब अरोचक बिलकुल नहीं। अंग्रेज़ी जानने वाले बालक निस्सन्देह इससे बड़ा लाभ उठायेंगे। सुना है, इसका हिन्दी-अनुवाद भी हो रहा है। हमें आशा है, हिन्दी-संसार उत्सुकता से उसकी बाट जोहेगा।

काग़ज़, छपाई बढ़िया और आकर्षक है। जिल्द भी पक्की, मज़बूत और सुन्दर है। साइज़ क्राउन फुल्सकैप, पृष्ठ-संख्या १२१। प्रकाशक—लाजर्नल प्रेस, इलाहाबाद।

हिन्दी

१ हीरामन तोता—सम्पादक—श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी; मू० ॥)

२ बिलाई मौसी—लेखक—वही; मू० ॥)

३ आविष्कार और आविष्कारक—लेखक—वही; मू० ॥)

४ बाल-कथा कहानी (४ भाग)—लेखक—पं० रामनरेश त्रिपाठी; मू० प्रत्येक भाग का ।≥)

५ बाल-कविता-माला—लेखक—पं० देवीदत्त शुक्ल; मू० ≥)

६ घरौंदा—लेखक-श्री जगन्नाथप्रसाद सिंह; मू०।-)

७ पत्र—(१) बालक—हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय; (२) खिलौना—हिन्दी-प्रेस, प्रयाग; (३) विद्यार्थी—हिन्दी-प्रेस, प्रयाग; (४) बाल-सखा—इण्डियन-प्रेस, प्रयाग; (५) शिशु,-सुदर्शन-प्रेस, प्रयाग; (६) कन्या-सर्वस्व, नं० ४ कर्नलगंज, प्रयाग।

हिन्दी में भी इन दिनों बाल-साहित्य की ओर विशेष

ध्यान दिया जा रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। इण्डियन-प्रेस (प्रयाग) से तो इस विषयक कुछ साहित्य पहले भी निकला था, पर इधर कुछ विशेष प्रगति हुई है। लहेरिया-सराय (बिहार) के हिन्दी-पुस्तक-भण्डार की प्रथम तीन पुस्तकें बालकों के लिए उपयोगी ही नहीं, रोचक भी हैं। उपयोग की दृष्टि से इनमें 'आविष्कार और आविष्कारक' का सबसे अधिक महत्व है, क्योंकि इसमें रेल, जहाज़, तार, बेतार का तार, टेलीफ़ोन, प्रेस, ग्रामोफोन आदि आधुनिक १० अजीबात का सरल-सुबोध वर्णन है। 'हीरामन तोता' में विविध लेखकों की नव मनोरंजक कहानियों का संग्रह है। पर रोचकता में 'बिलाई-मौसी' कमाल करती है। शायद ही कोई बालक ऐसा हो, जो एक बार इन 'मौसीजी' की कहानी को पढ़ना शुरू करके ख़त्म किये बग़ैर चैन ले सके। 'मौसीजी' की कहानी के अलावा इसमें तीन अन्य कहानियाँ भी हैं, वे भी सब रोचक हैं, पर 'चोर राजकुमार' की कहानी उनमें विशेष दिलचस्प है। तीनों पुस्तकों में, कहानियों के साथ, चित्रों का सम्मिश्रण होने से बालकों के लिए वे और भी मनोरंजक हो गई हैं। निस्सन्देह ऐसी पुस्तकें उनके लिए उपयोगी भी बहुत हैं। परन्तु बालकों की पुस्तकों का मूल्य ॥) ज़रा ठीक नहीं जँचता, कुछ कम होता तो अच्छा था। आशा है, प्रकाशक महाशय भविष्य में इसपर विचार करेंगे। बालकों, उनके अभिभावकों को भी इन पुस्तकों का स्वागत कर उनका उत्साह बढ़ाना चाहिए।

× × ×

'बाल-कथा-कहानी' हिन्दी-मन्दिर (प्रयाग) की सौग़ात है। अभी तक इसके चार भाग निकल चुके हैं—और, वे चारों ही बढ़िया हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने शुद्ध-सरल मुहावरेदार भाषा में बड़े अच्छे ढंग से इन्हें लिखा है। चित्रों-द्वारा कहानियों को सजाया गया है। पुस्तक का टाइप-काग़ज़ मोटा और छपाई रंग-बिरंगी व साफ़-सुन्दर कराकर उसे आकर्षक भी ख़ूब बनाया गया है। और तारीफ़ यह कि इतने पर भी मूल्य प्रत्येक भाग का ।=) ही रक्खा है। इस सफलता के लिए त्रिपाठीजी को बधाई! बालक-बन्धु इस कथा-माला को देख-पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे।

× × ×

'बाल-कविता-माला' इण्डियन—प्रेस (प्रयाग) ने प्रकाशित की है। 'बाल-सखा' में निकली बालोपयोगी कुछ कविताओं का चयन है। पुस्तक छोटी पर आकर्षक और रोचक है। मूल्य भी कम ही है।

× × ×

'घरौंदा' बिहार के शीतलपुर (पो० एकमा, जि० सारन) के हिन्दी-मन्दिर से निकली है। सचमुच घरौंदा है। बाह्य रूप इतना दरिद्र और आकर्षण-हीन है कि अन्दर से पढ़ने को शायद ही किसी बालक का जी चाहे, यद्यपि चीज़ बुरी नहीं है। ऐसे प्रकाशकों से हमारा निवेदन है कि बालकों के लिए पुस्तकें निकालने से पहले उनकी रुचि को समझने की कोशिश करें तो अच्छा हो। पहले बाह्य रूप जब उन्हें आकर्षित करेगा तभी तो वे उसे पढ़ने को लालायित होंगे?

❀ ❀ ❀

बालोपयोगी पत्रों में लहेरियासराय का 'बालक' अपना विशेष स्थान रखता है। श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी अब 'बालक' से 'युवक' बन गये हैं ('बालक' छोड़कर उन्होंने पटना से 'युवक' निकाला है), पर नये सम्पादक श्री रामलोचनशरण भी कुशल मालूम पड़ते हैं और पत्र बदस्तूर चल रहा है। वार्षिक मूल्य ३) रु० है।

'खिलौना' छोटे बच्चों के लिए प्रयाग के हिन्दी-प्रेस से निकला है। इसने बहुत थोड़े समय में बालकों में अपनी बड़ी पैठ कर ली है। निकलता भी उनके उपयुक्त ही है। वार्षिक मूल्य भी २) ठीक ही है। इसके लिए इसके सम्पादक और स्वामी पं० रामजीलाल शर्मा को बधाई!

'विद्यार्थी' १५ साल पहले जैसा था, वैसा अब नहीं रहा। मगर पिछले कुछ महीनों से श्री सुरेन्द्र शर्मा के सम्मिश्रण से इसका स्टैण्डर्ड फिर ऊँचा उठने लगा है, साथ ही कुछ ज़िन्दा-दिली की झलक भी आई है। यह और तरक्की करे और विद्यार्थी-भाइयों को जीवन-संग्राम में विजय-प्राप्ति के उपयुक्त बनावे, यही कामना है। इसके सम्पादक हैं पं० रामजीलाल शर्मा और ३॥) वार्षिक मूल्य है।

इण्डियन-प्रेस (प्रयाग) का 'बालसखा' श्री श्रीनाथसिंह के सम्पादकत्व में और सुदर्शन प्रेस (प्रयाग)

का 'शिशु' पं० सुदर्शनाचार्य के सम्पादकत्व में बदस्तूर चल रहे हैं। प्रयाग के 'कन्या-सर्वस्व' का विशेषांक भी हाल में निकला है और अच्छा है। पर बीच-बीच में दवाओं के विज्ञापन कुछ खटकते हैं। सम्पादिका और सञ्चालिका श्रीमती यशोदादेवी इस तरफ़ ध्यान दें तो अच्छा होगा।

* * *

संक्षेप में कहें तो, हिन्दी में बाल साहित्य का प्रकाशन इस समय तेजी पर है—और, हर्ष की बात है, वह निकल भी बुरा नहीं रहा है। आशा है, हिन्दी-भाषी बालक उसका समुचित उपयोग करेंगे और उसके प्रकाशकों को और भी सुन्दर-सस्ता ऐसा साहित्य निकालने के लिए प्रोत्साहन देंगे।

मुकुन्द

साहित्य-सत्कार

(१) स्वदेशी धर्म—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा। (मूल लेखक—श्रीयुत कालेलकर महाशय)। प्रकाशक—मैनेजर, ग्रन्थ—भांडार, लेडी हार्डिंज रोड, बम्बई। पृष्ठ-संख्या ३२, मू० ।)

(२) पंचरत्न—लेखक—महात्मा गाँधी; प्रकाशक वही, पृष्ठ सं० १९९, मू० १)

(३) सर्वोदय—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; मूललेखक वही; प्रकाशक वही; पृ० सं० ३०, मू० ।)

(४) गांधीजी का बयान—अनुवादक और प्रकाशक वही। पृ० सं० ८०, मू० ॥)

(५) दरिद्रता से बचने के उपाय—अनुवादक वही। (श्रीयुत ओरिसन स्वेट मार्डन साहब की Peace, Power and Plenty नामक पुस्तक के एक निबन्ध का अनुवाद)। प्रकाशक वही। पृ० सं० १७, मू० =)

(६) स्त्री-रत्न—लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; प्रकाशक वही; पृ० सं० ५६, मू० ।-)

(७) अनन्तवती—लेखक—और प्रकाशक वही; पृ० सं० ९६, मू० ॥=)

(८) संवाद-संग्रह—लेखक—वही; प्रकाशक—वही, पृ० सं० १६०, मू० १)

(९) गृहिणी-गौरव—अनुवादक वही; प्रकाशक वही; पृ० सं० २०८, मू० सादा १॥) और सजिल्द २)

(१०) पुनरुत्थान—लेखक—वही; प्रकाशक—वही; पृ० सं० १०४, मू० ॥।=)

(११) विश्वधर्म-शास्त्र—लेखक—श्रीयुत आनन्द स्वामी भारतीय; प्रकाशक—श्री यशपाल बी० ए० राष्ट्रीय विशारद, लायलपुर; पृ० सं० १७०; मिलने का पता—सस्ता-साहित्य-मंडल अजमेर; मू० १=)

(१२) ज्ञानसूर्योदय—लेखक—श्रीयुत सूरजभान वकील, प्रकाशक—श्री सन्मति-पुस्तकालय, जयपुर; पृ० सं० ८०, मू० ।)

(१३) विधवा-कर्तव्य—लेखक—वही; प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग बम्बई; पृ० सं० १३७, मू० ॥) मिलने का पता-साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

(१४) वरदान—लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्द, प्रकाशक मैनेजर ग्रन्थ भंडार, लेडी हार्डिंज रोड, माटूंगा, बम्बई पृ० सं० २३९, मू० १)

(१५) अरुणोदय—लेखक—श्रीयुत गिरीश; सम्पादक—जगद्गुरु श्रीमान सच्चिदानन्द शर्मा; पृष्ठ-संख्या २८२; मूल्य २)

(१६) अमर शहीद यतीन्द्रनाथदास—लेखक—श्रीयुत रमेश वर्मा, प्रकाशक—साहित्य रत्न भण्डार, कसेरट बाजार आगरा; पृष्ठ संख्या ४८; मूल्य ।)

(१७) प्राच्य और पाश्चात्य—अनुवादक—श्रीयुत नरोत्तम व्यास; (मूल लेखक—स्वामी विवेकानन्द); प्रकाशक—साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा; पृष्ठ-संख्या ९०; मूल्य ।≈)

(१८) विधवा-प्रार्थना (कविता) लेखक-जनाब अब्दुल फहुसेन साहब 'हॉकी'; प्रकाशक-कृष्णलाल वर्मा, ग्रंथ भण्डार, लेडी हार्डिंज रोड, माटूंगा, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ५४; मू० ।-)

(१९) आज़ादी के दीवाने—लेखक—श्रीयुत विद्याभास्कर शुक्ल, 'साहित्यालंकार'। प्रकाशक—युगान्तर पुस्तक-भण्डार, दारागंज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २२७; मूल्य १।)

(२०) साहित्य-मीमांसा—लेखक—श्रीयुत किशोरीदास वाजपेयी; प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा; पृष्ठ-संख्या ५०; मूल्य ।)

(२१) एक घूंट—लेखक—श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'; प्रकाशक—पुस्तक-मन्दिर, काशी; पृष्ठ-संख्या ५९, मूल्य ॥)

(२२) यौवन, सौंदर्य और प्रेम—लेखक—ठाकुर श्रीनाथसिंह; प्रकाशक—साहित्य मंदिर, दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २४८, मूल्य १॥)

(२३) राष्ट्रीय शिक्षा का इतिहास और उसकी वर्तमान अवस्था—लेखक—श्रीयुत कन्हैयालाल; प्रकाशक—श्रीयुत बीरबलसिंह पीठस्थविर, काशी—विद्यापीठ, काशी; पृष्ठ संख्या २९१; मूल्य २)

(२४) खेलो भैया (कविता)—लेखक—श्रीयुत विद्याभूषण 'विभु'; प्रकाशक—रायसाहब रामदयाल अगरवाला, इलाहाबाद; पृष्ठ-संख्या ५८; मूल्य ॥)

(२५) पद्य-प्रवेशिका—लेखक—श्रीयुत सुवर्णसिंह वर्मा 'आनन्द'; प्रकाशक—मुकुन्द-मन्दिर, बेलनगञ्ज, आगरा; पृष्ठ-संख्या ११७; मूल्य ॥)

(२६) आनन्द-सरोज (कविता)—रचयिता—वही; प्रकाशक—वही; पृष्ठ-संख्या ६६; मूल्य ।)

(२७) अपूर्व आत्म-त्याग—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; मूल लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य; प्रकाशक—ग्रन्थ भण्डार, लेडी हार्डिंज रोड, माटुंगा, बम्बई; पृष्ठ संख्या २७१; मूल्य १)

(२८) सुर-सुन्दरी—लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा; प्रकाशक—वही; पृष्ठ-संख्या ४८; मूल्य ।-)

(२९) राजपथ का पथिक—अनुवादक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा (राल्फवाल्डो ट्राइन की 'Way fairer on the Open Road' नामक पुस्तक का भावानुवाद); पृष्ठ-संख्या ५६, मूल्य ।-)

(३०) तीन रत्न—महात्मा गांधी की तीन कथाओं का अनुवाद; प्रकाशक—मैनेजर, ग्रन्थ भण्डार, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ८७; मूल्य ॥=)

(३१) स्वास्थ्य-विज्ञान—लेखक—श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर; प्रकाशक—वही, हिंदू युनिवर्सिटी, बनारस; पृष्ठ-संख्या ३३२, मूल्य २॥)

गुजराती

(३२) बुद्ध अने महावीर—लेखक—श्रीयुत किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला; प्रकाशक—प्रस्थान कार्यालय, अहमदाबाद; पृष्ठ-संख्या ११०; मूल्य ॥)

(३३) राम अने कृष्ण—लेखक—वही; प्रकाशक—वही; पृष्ठ संख्या १४८; मूल्य ॥=)

(३४) इटाली नो मुक्तियज्ञ—लेखक—श्रीयुत नरसिंह भाई ईश्वरलाल पटेल; प्रकाशक—वही; पृष्ठ-संख्या ११६; मूल्य ।=)

मराठी

(३५) मिरज संस्थान सारावाढ आणि रयतांचा सत्याग्रह—लेखक—श्रीयुत 'स्पष्टवक्ता'; प्रकाशक—अनंत विनायक पटवर्धन, आर्यभूषण प्रेस, बुधवार पेठ, पुणें; पृष्ठ-संख्या २३८; मूल्य १)

पत्र-पत्रिकायें

१. वैनगार्ड (अंग्रेज़ी साप्ताहिक)—सम्पादक—श्री यूसुफ़ मेहरअली और उपेन्द्र देसाई। प्रकाशक—वैनगार्ड पब्लिशिंग कम्पनी, १२ अपोलो स्ट्रीट, फ़ोर्ट, बम्बई। डिमाई चार पेजी के १६ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ४)

२. मनसुखा (सचित्र हिन्दी साप्ताहिक)—सम्पादक—पं० रमाशंकर अवस्थी, प्रकाशक—वर्तमान-प्रेस, कानपुर। रायल चार पेजी साइज़ के आर्ट पेपर सहित २४ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ६॥) रु०

३. चाँद (उर्दू-संस्करण)—सम्पादक—मुंशी कन्हैयालाल एडवोकेट। प्रकाशक—चन्द्रलोक, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या १२३ कई रंगीन व सादे चित्र। 'त्यागभूमि'-साइज़। वार्षिक मूल्य ८) रु०

४. माया (कहानियों की हिन्दी मासिक पत्रिका)—सम्पादक—श्री क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफ़ी और श्री विजय वर्मा। प्रकाशन-स्थान—१७ जार्ज टाउन, प्रयाग। रायल अठपेजी साइज के ८९ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ५) रु०

लाहौर-कांग्रेस

कुछ दृश्य
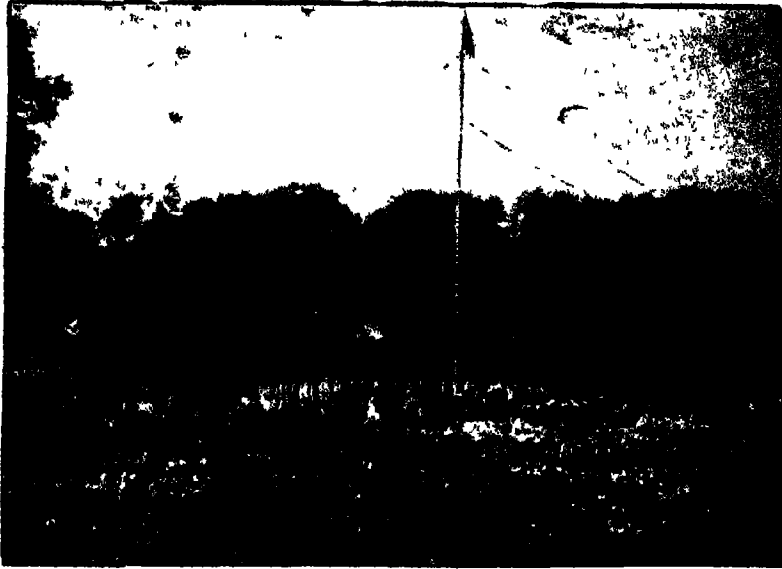
राष्ट्रीय ध्वजारोपण

राष्ट्रपति का जुलूस
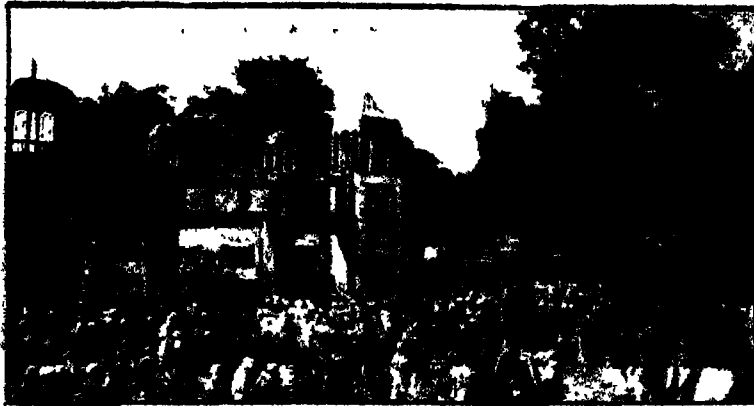
प्रेसीडेण्ट पटेल—स्व० लालाजी की मूर्ति का उद्घाटन कर रहे हैं
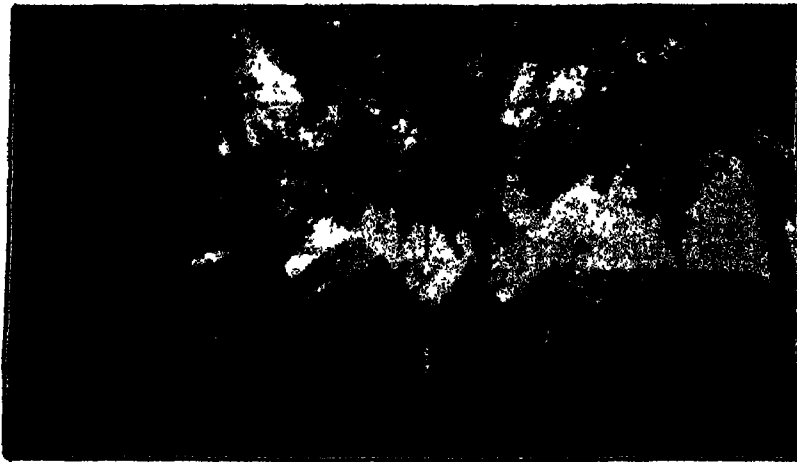
कांग्रेस—प्रतिनिधि—कैम्प

पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता

स्वागत-समिति के प्रधान मंत्री

डा० गोपीचन्द

स्वास्थ्य-विभाग के अध्यक्ष

डा० धर्मवीर

स्वागताध्यक्ष

डा० किचलू

अर्थ-मन्त्री

श्री सन्तानम्

स्वयंसेविका-दल की प्रधान

कुमारी लज्जावती

पिछले वर्ष के राष्ट्रपति

पं० मोतीलाल नेहरु

बिहार के प्रसिद्ध नेता

मौ० मज़हरुलहक़, जिनकी मृत्यु अभी हाल में हुई है।

स्वतंत्रता-यज्ञ की प्रथम आहुति

श्री सुभाषचन्द्र बसु जिन्हें राजद्रोह के अपराध में एक वर्ष सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला है।

चंक्रम

वातावरण

लाहौर में महासभा के वातावरण में जहाँ जोश और बलिदान के ऊँचे भाव थे तहाँ उच्छृंखलता भी अपना असर बता रही थी। यह स्वाभाविक था। एक तो सदियों की गुलामी के बन्धन, फिर युवकों की मस्ती—इससे स्वतन्त्रता के मस्त भाव उच्छृंखलता का रूप सहज ही धारण कर लेते थे। स्वयंसेवकों का प्रबंध बहुत अच्छा था और स्वयं-सेविकाओं की सेना कुमारी लज्जावती जी के नेतृत्व में अपनी प्रबंध-पटुता का परिचय दे रही थी। राष्ट्रपति का जलूस घोड़े पर निकाला गया था, जो उनकी और देश की सैनिक मनोवस्था का परिचायक था। विषय-समिति में यद्यपि 'स्वतंत्रता-प्रस्ताव' पर हुई बहस में तथा दूसरी बातों से यह ज़ाहिर होता था कि देश के सब भाग अभी इसके लिए तैयार नहीं हैं; किन्तु महासभा के प्रतिनिधि किसी तरह स्वतंत्रता के ध्येय की घोषणा को आगे पर टालने के लिए तैयार न थे। पंजाब में, ऐसा प्रतीत हुआ कि, विद्यार्थियों और युवकों में साम्यवाद के भाव खूब फैल रहे हैं और वाइसराय पर बम फेंके जाने वाले प्रस्ताव के उपस्थित होते समय उन्होंने लाल झण्डियाँ दिखलाकर अपने अस्तित्व का परिचय भी महासभा में दिया था। 'नौजवान भारत सभा' के अधिवेशन से अ-संयम और मर्यादा-हीनता का अधिक परिचय मिलता था। लाहौर में एक बढ़ता और उमड़ती हुई नदी का प्रवाह था—अब यह देश के एंजिनियरों का काम है कि इस शक्ति-प्रवाह से उपयोगी और वाञ्छनीय काम ले लें।

सर्दी खूब थी और इसलिए बीमारों की संख्या भी काफी हो गई थी। यदि अंगीठियों का प्रबंध न हुआ होता तो कितने ही लोगों का सदा के लिए वहीं बसेरा हो जाता। यह अच्छा ही हुआ कि आगे से महासभा का अधिवेशन फरवरी-मार्च में होने लगेगा। इससे स्वागत-संबंधी बहुतेरा धन-जन अधिक उपयोगी और ज़रूरी राष्ट्रीय कामों के लिए बच रहेगा और महासभा 'बड़े दिन की छुट्टियाँ मनाने वाले शौकीनों की' न रहकर स्वतंत्रता की सिद्धि में तल्लीन सिपाहियों की हो जायगी।

प्रजातंत्र-दल

किन्तु एक बात देख कर मेरे दिल को बड़ी चोट पहुँची। विषय-समिति में मुझे ऐसा भास हुआ कि कुछ लोग सैनिकता के, और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आवश्यक गंभीरता के भावों से काम नहीं कर रहे थे; बल्कि अड़ंगेबाज़ी, टालमटोल और वक्त खराब करने की ओर उनकी प्रवृत्ति थी। छोटी-छोटी बातों पर एतराज़ करना, कानूनी और शाब्दिक बाल की खाल खींचना, नगण्य बातों के लिए पोल माँगने की ज़िद करना—इस दृश्य ने मेरे दिल पर अच्छा असर नहीं डाला। कुछ प्रस्तावों का विरोध तो विषय-समिति में उनके महत्व को बिना समझे ही इसलिए किया गया कि कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं से विरोधक नाराज़ थे। अन्त को यह दूषित मनोवृत्ति अन्तिम दिन 'वाक आउट' के दृश्य और प्रजातंत्र-दल की स्थापना के रूप में प्रकट हुई। प्रजातंत्र-दल किसी सैद्धान्तिक मत-भेद के कारण नहीं उत्पन्न हुआ है। उसमें श्री सुभाष बाबू महासभा से हर बात में आगे जाना चाहते हैं, अभी नई सरकार बनाना और प्रायः सब सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार चाहते हैं। तो श्री सत्यमूर्ति धारासभाओं के बहिष्कार को नापसंद करते हैं और महासभा की बहिष्कार-आज्ञा के खिलाफ़ आवाज़ उठा रहे हैं। इससे सिद्ध है कि इस गंगाजमनी दल की नींव सिद्धान्तों पर नहीं है और हमें आशा करनी चाहिए कि ज्यों ज्यों स्वतंत्रता का आन्दोलन ज़ोर पकड़ेगा त्यों-त्यों यह अलग खिचड़ी पकाने का भाव दबता जायगा और सम्मिलित रूप से सामना करने का भाव प्रबल होता जायगा। यदि प्रजातन्त्र के मानी यही हैं कि हम छोटी-छोटी सी बातों से बिगड़कर राष्ट्रीय कामों में विशृंखलता उत्पन्न करें या होने दें तो यह प्रजातंत्र संसार में कै दिन रह सकेगा, और कितनों को लाभ पहुँचावेगा? पण्डित मोतीलालजी ने ठीक ही कहा है कि यह वाद-

विवाद टीका-टिप्पणी और हुज्जत का समय नहीं है—कंधे से कंधा भिड़ाकर, एक सेनापति के हुक्म के अनुसार, जूझ मरने का समय है। क्या हमारे स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के पुजारी वे भाई, जो अपनी स्वच्छंद प्रकृति के कारण स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के पवित्र और उच्च भावों को आघात पहुँचाते हैं, पण्डितजी की इस हार्दिक और गंभीर अपील पर ग़ौर करेंगे ?

एक ज़बरदस्त क़दम

लाहौर महा-सभा ने देश में युगान्तर कर दिया है। सदियों से जकड़ी भारत माता की गुलामी की जंजीरों को तोड़ डाला है। अबतक भारत दुविधा में था। वह कहता था—अँग्रेज़ी साम्राज्य के अंदर रहें तो अच्छा; बदर्जे मजबूरी भले ही उसके बाहर जाना पड़े। पर अब उसने लाहौर में डंके की चोट से एलान कर दिया है कि अब मैं एक क्षण किसी बड़े से बड़े और बलाढ्य से बलाढ्य साम्राज्य की भी गुलामी में नहीं रह सकता। मैं जानता हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्य के पास विध्वंसक शक्तियाँ और शस्त्रास्त्रों की कमी नहीं है—पर इनका डर भी अब मुझे पूरी आज़ादी के ध्येय की घोषणा करने से नहीं रोक सकता।

किन्तु स्वतंत्रता का यह प्रस्ताव महासभा ने, उसके बूढ़े नेताओं और युवक सैनिकों ने, जल्दी में, जोश में, नादानी से और गैरजिम्मेदारी से नहीं किया है। जब वाइसराय कोई निश्चित अभिवचन इस बात का नहीं दे सके कि सर्वपक्षीय सम्मेलन में औपनिवेशिक स्वराज्य का योजना तय की जायगी तब कलकत्ता महासभा के निर्णय को दृष्टि में रखकर लाहौर महासभा दूसरा प्रस्ताव कर ही नहीं सकती थी। पूज्य मालवीय जी का दो-तीन महीने इस निर्णय को और आगे बढ़ा देने का प्रस्ताव लुभावना तो था, उसमें समझदारी भी ज्यादह मालूम होती थी, किन्तु इन इन्तज़ारियों की भी तो कोई हद होनी चाहिए न ? और बाद को अर्ल रसल के भाषण ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया कि महासभा ने पूरी आज़ादी के ध्येय की घोषणा करके बड़ी बुद्धिमानी, दूरंदेशी, ईमानदारी और समुचित साहस का काम किया है। मेरा यह निश्चित मत है कि यह निर्णय आज चाहे कितने ही धीमे लोगों को चौंकानेवाला हो; किन्तु समय दिखा देगा कि इससे औपनिवेशिक स्वराज्य के समर्थकों के हाथ मज़बूत ही हुए हैं, मजूर-सरकार की स्थिति को बल ही मिला है और वाइसराय का भी पथ सुगम ही हुआ है।

इस प्रस्ताव के अनुसार अब महासभा का औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना के लिए सर्वपक्षीय परिषद् से कोई वास्ता नहीं रहा। पर इसका यह मतलब नहीं कि परिषद् से उसने अपना नाता तोड़ लिया है। लड़ाई के अन्त में परिषदों ही के द्वारा तो सुलह होती है। पर अब महासभा के प्रतिनिधि केवल पूर्ण स्वराज्य के विधान पर बहस करने के लिए ही परिषद् में जा सकते हैं। दूसरे लोग औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना के लिए भी परिषद् में योग देने के लिए स्वतंत्र हैं और देश का नरम दल इस विचार से अपनी ओर से भरसक उद्योग भी कर रहा है।

पूर्ण स्वतन्त्रता-प्रस्ताव के मुख्य दो भाग हैं—एक ध्येय-परिवर्तन सम्बन्धी और दूसरा कार्यक्रम-सम्बन्धी। कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि फ़िलहाल रचनात्मक और संगठनात्मक काम जैसे महासभा के सदस्य बढ़ाना, स्वयंसेवक-दल बनाना, खादी-प्रचार करना, शराबखोरी मिटाना, अछूतपन दूर करना, आदि में ही अपनी सारी शक्ति हमें लगा देना चाहिए। इनसे देश को स्वतन्त्रता-संग्राम की तालीम मिलेगी, सैनिकता और संगठन के गुण बढ़ेंगे और हम विजय के अधिक योग्य बनेंगे। पर हमारा आख़िरी निर्णायक और अमोघ अस्त्र है सत्याग्रह, सविनय कानून-भंग या कर न देने का आन्दोलन। इसके एकमात्र आचार्य देश में महात्मा गाँधी हैं। अतएव इस आख़िरी और महत्वपूर्ण मोर्चेबन्दी का काम महासभा ने महात्माजी के जिम्मे किया है और उनकी सलाह से महा-समिति इसका कार्यक्रम, समय देखकर, देश के सामने रक्खेगी। लाहौर से लौटते ही महात्माजी अपना सारा बुद्धि-बल इसी व्यूह की रचना में लगा रहे हैं। वे इस पर बड़ी चिन्ता के साथ विचार कर रहे हैं कि किस तरह अब की चौरी-चौरा काण्ड न होने पावे और यदि दुर्भाग्य से हो भी जाय तो आख़िरी लड़ाई के लिए आगे बढ़ाया कदम अब फिर न रोक रखना

पड़े। इसके लिए सबसे बड़ी शर्त और आवश्यकता है वायुमण्डल को शान्तिमय बनाने की। हमें याद रखना चाहिए कि मारना नहीं पर मरना ऐसे सामूहिक और निःशस्त्र प्रजा के उठाये युद्ध का प्रथम सूत्र है। सरकार के एजेण्टों के द्वारा अथवा हमारे ही भूले भाइयों द्वारा उत्पन्न किये गहरी उत्तेजना, जोश, रोष और अपमान के अवसरों पर भी हम ज़ब्त करके यदि अपनी सच्ची सैनिकता का आश्वासन महात्माजी को दिलायेंगे और सच्चाई और मजबूती के साथ उसपर कायम रहेंगे तो महात्माजी की शक्ति अनन्त हो जायगी और बरसों का काम दिनों में हो जायगा।

फिर भी स्वतन्त्रता-संग्राम की शुरुआत के रूप में महासभा ने धारासभाओं के बहिष्कार की घोषणा कर दी है। और धारासभाओं के सदस्य धड़ाधड़ इस्तीफे दे रहे हैं। स्वतन्त्रता के भावों के सम्बन्ध में लोकमत जानने और शिक्षित करने के लिए कार्य-समिति ने यह भी आदेश किया था कि २६ जनवरी रविवार को स्वतन्त्रता दिन देश भर में मनाया जाय। जिससे हमारी भावी सरकार और वर्तमान सरकार दोनों अपने-अपने भविष्य का और भावी कार्यक्रम का अन्दाज़ा लगा सकें।

भारत की इस स्वतन्त्रता के निश्चय से ब्रिटिश साम्राज्यवादी बिलबिला उठे हैं। महात्माजी तथा दूसरे महासभा के नेताओं को गिरफ्तार करने, महासभा को ग़ैरक़ानूनी करार देने, फ़ौजी क़ानून जारी करने, आदि की धमकियाँ दी जाने लगी हैं; पर यदि देश ने एक ओर साहस,उत्साह, निडरता और जोश का तथा दूसरी ओर पूर्ण शान्ति-पालन का परिचय दिया तो ये तमाम धमकियाँ और उनके पीछे रहने वाला संहारक अस्त्र बल, एक चमत्कार की तरह, भोंटा साबित होगा, इसमें मुझे तिल-मात्र सन्देह नहीं है।

अन्य प्रस्ताव

स्वतंत्रता-प्रस्ताव के अलावा तीन और महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। १९२२ में गया में इस आशय का प्रस्ताव महासभा ने स्वीकार किया था कि आगे से सरकार जो रुपया बिना राष्ट्र की सम्मति के कर्ज लेगी उसकी जिम्मेदारी राष्ट्र पर नहीं है। इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए लाहौर में यह प्रस्ताव हुआ कि विदेशी सरकार ने भारत पर जो कुछ भी आर्थिक बोझ बढ़ा रक्खा है, आज़ाद हिन्दुस्तान उसकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता। वह एक निष्पक्ष कमिटी बैठा देगा और वह जिन-जिन खर्चों या कर्जों को ग़ैरवाज़िब क़रार देगी वह मंजूर नहीं किया जायगा। यह प्रस्ताव बहुत ही आवश्यक था। मौजूदा सरकार ने देश की आवश्यकताओं और सुविधाओं का ख़याल न करके अपने देशवासियों को करोड़ों रुपयों का फ़ायदा जुदे-जुदे रूप में पहुँचाया है और भारत को कंगाल कर दिया है। ऐसी दशा में समय पर ही यह प्रस्ताव कर देना सर्वथा उचित था। यदि महासभा की वाणी में बल है तो सरकार को अब इसमें सावधान हो जाना पड़ेगा।

एक प्रस्ताव में देशी राज्यों के नरेशों से कहा गया कि वे अपने यहाँ उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रणाली जारी करें और प्रजा को लिखने, बोलने और आन्दोलन करने की आज़ादी दें। देशी-राज्यों की अंधा-धुंधी किसी से छिपी नहीं है। संसार में बड़े-बड़े जन-तंत्र और प्रजातंत्र बन गये हैं, बन रहे हैं और भारत में भी पूर्ण स्वतंत्रता की हवा चल पड़ी है; परन्तु हमारे देशी-नरेश अभी न जाने किस अंधेरी दुनिया में चक्कर लगा रहे हैं। उन्हें अपनी प्रजा के सुख-दुःख से अधिक चिन्ता है अपने मान-गौरव की और अपने महाराजापन को सुरक्षित रखने की। ऐसी दशा में उन्हें कम से कम इस बात की याद दिलाते रहना ज़रूरी है कि महासभा उनसे क्या चाहती है। आज महासभा उनसे सीधी लड़ाई नहीं लड़ना चाहती—पर वह ख़ामोश भी नहीं बैठ जाना चाहती। यदि देशी-नरेश यह देख रहे हों कि महासभा की आवाज़ दिन-दिन बलवती होती जा रही है, उसका संगठन और बल दिन-दिन बढ़ता आ रहा है तो उन्हें उचित है, उनकी बुद्धिमानी की इसमें परीक्षा है कि वे चुनौती देने के पहले ही महासभा की माँग को पूरा करने की चेष्टा करें।

अब चूँकि महासभा ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास कर दिया है इसलिए नेहरू-रिपोर्ट अपने आप गिर जाती है और उसके गिरते ही, उसकी बुनियाद पर पैदा हुए मुसलमानों और सिक्खों के ऐतराज खुद-ब-खुद मिट जाते हैं।

इसलिए महासभा ने कह दिया कि आज़ाद भारत को जात-पाँत के लिहाज से कोई मतलब नहीं, उसमें हर काम राष्ट्रीय दृष्टि से होगा। वह हिन्दुस्तानी मात्र को सम-दृष्टि से देखेगी। यह बहुत ठीक हुआ, इससे सिक्ख सन्तुष्ट हो गये और मुसलमानों के उजरात कमज़ोर पड़ गये। इधर धारा-सभा का बहिष्कार करके महासभा ने अपने को हिन्दू-मुसलमान प्रश्न से साफ़ बचा लिया। अब जिनको धारा-सभाओं में जगहों के लिए लड़ना हो वे सरकार से लड़ें, महासभा से कोई वास्ता नहीं। इसी तरह आजादी का प्रस्ताव पास कर देने से देशी-राज्यों का भी मसला, जहाँ तक महासभा से ताल्लुक है हल हो जाता है। देशी-नरेशों को अपनी मानप्रतिष्ठा के लिए लड़ना झगड़ना हो तो मौजूदा सरकार से लड़े —महासभा तो स्वतंत्र हो गई है और स्वतंत्र भारत में सब स्वतंत्र और बराबर हैं। राजा-रंक धनी-ग़रीब, मालिक-नौकर सब के जीवन का मूल्य स्वतंत्र भारत की दृष्टि में समान होगा

इस प्रकार अन्य प्रस्तावों के द्वारा भी महासभा ने अपने बदले हुए दृष्टि-कोण का परिचय दिया है और अपने को युगान्तरकारी सिद्ध किया है।

हमारे युवक राष्ट्रपति

पं० जवाहरलालजी नेहरू अपनी अन्तिम यूरोप-यात्रा से, एक चमत्कार की तरह, देश में आये और आते ही युवकों के दिलों पर कब्जा कर लिया। उनकी तेज़ी, खरेपन, जोश और उछाल ने बूढ़ों के, आराम से नेतागिरी करनेवालों के, होश उड़ा दिये। उनका आसन डिगने लगा। वे कहने लगे यह तो अविचारी है, तेजमिज़ाज है, देश को न जाने किस गड्ढे में गिरा देगा। पर लाहौर-कांग्रेस में पढ़े गये उनके भाषण ने और राष्ट्रपति के रूप में उनके व्यवहार ने, इन सब विचारों को बदल दिया और कम से-कम मेरे दिल पर यह छाप पड़ी कि जवाहरलालजी कोरे सैनिक नहीं। उनमें जहाँ सैनिक का जोश, फुरती, दिलेरी और दिल है वहाँ सेनानायक की नियंत्रण-क्षमता, साबितकदमी और राजकाजियों की समझ और सूझ भी है। एक क्षण में गरमी और दूसरे ही क्षण में नरमी और हँस पड़ना—यह अद्भुत गुण किसको मुग्ध न कर लेगा? जवाहरलालजी दिल के आदमी मालूम पड़ते हैं; पर उनके भाषण में दिमाग का पूरा-पूरा दर्शन होता है। एक शब्द ऐसा नहीं है जिसे फ़ज़ूल कह सकें। एक बात ऐसी नहीं है जो महत्व न रखती हो। फिर अपने साम्यवादी विचार किस खूबी से झिलके-झिलके उसमें डाल दिये हैं। भावुकता और जोश का यों उभाड़ कहीं देख नहीं पड़ता; पर सारा भाषण सुनने के बाद दिल में एक हलचल मच जाती है—दिल ताज्जुब करने लगता है, अरे हमने कहाँ लाकर छोड़ दिया है। उसमें महासभा का संक्षिप्त इतिहास है, स्वतन्त्रता के भावों और कार्यों का विकास है, उसके लिए बलिवेदी पर आहुति देने वाले भारत के वीर-पुत्रों का पुण्य स्मरण है, ब्रिटिश-सरकार और उसके अधिकारियों से सीधी बातें हैं, संग्राम के बाजे और कार्यक्रम की सूचनायें तथा तैयारी की ललकार है। गागर में सागर है। युवक का दिल और बूढ़े का दिमाग है; युवक की छटपटाहट और बूढ़े का संयम है। जवाहर और गाँधी का संगम है। गाँधी के बूढ़े शरीर को जवाहर ने जवान बना दिया है। यह सब देखकर अन्दर से कोई धीमे-धीमे पर सुरीले स्वर में कह रहा है—जवाहर आने वाला पुरुष है—इतिहास पर अपनी छाप छोड़ जाने वाला पुरुष है। उनकी अंग्रेजी पुस्तक Letters From a Father to His Daughter को पढ़कर तो मेरे दिल ने यह भी कहा कि 'ब्रिटिश सरकार चाहे आजादी के प्यासे जवाहर को फाँसी पर लटका दे; पर अंग्रेज़-जाति तो जवाहर को प्रेम की निगाह से देखे बिना न रहेगी। वह कहेगी—जवाहर एक मनुष्य है—सीधा, साफ और ऊँचा मनुष्य।

हमारी कमियाँ

मगर महज़ स्वतंत्रता के लिए हाथ ऊँचा उठा देने से, या उसकी घोषणा कर देने से हम स्वतंत्र नहीं हो जाते, न होगये हैं। अभी तो हमने अपने ध्येय को स्पष्ट कर दिया है और उसे अपना निकट प्राप्य लक्ष्य बनाया है। अभी तो स्वतंत्रता का अनुभव करने के लिए मौजूदा सरकार से गहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी; जेलों की यन्त्रणायें और दूसरे अत्याचार सहने होंगे; गोलियों के सामने खुशी खुशी से छाती

त्याग देना होगी; अपने सेनापति के हुक्म के साथ ही आगे बढ़ना, पीछे हटना, बैठ जाना या दौड़ पड़ना होगा। आपस के झगड़ों से अपने को बचाना होगा; दलील और हुज्जत की जगह आज्ञा-पालन और नियम-बद्धता को देनी होगी। ज़रा मतभेद होते ही रूठ जाने की, या अपनी खिचड़ी अलहदा पकाने की प्रवृत्ति छोड़नी होगी, कोई आकर खुशामद करे, नाक रगड़े तभी हम काम करेंगे, यह आदत भुलानी होगी। भूख, प्यास, बीमारी, बच्चों की दुर्गत,कुटुम्बियों की मुसीबत, सबको प्रसन्न मुख होकर सहना होगा और फिर भी नियमित और निश्चिन्त राष्ट्रकार्य से विमुख न होगा—पीछे न हटना होगा। गहरी से गहरी उत्तेजना के अवसर पर अपने हाथ रोक रखना होंगे; कहीं दंगा-फसाद, मार काट होते ही उसे शान्त करने के लिए नंगे पैर दौड़ पड़ना होगा। इतनी तैयारी के बाद ही हम आजादी का मीठा फल चख सकते हैं—आज केवल प्रस्ताव पास करके मियां-मिट्ठू बनने से सिवा हँसी होने के और मुसीबतों का पहाड़ अपने सिर पर उठा लेने के कुछ न होगा। संक्षेप में जबतक महासभा का संगठन मजबूत न होगा, हम रचनात्मक कामों को पूरा करने की तालीम न लेंगे, सच्ची सैनिकता का व्रत न लेंगे और पूर्ण शान्ति का पालन न करेंगे तबतक स्वतंत्रता के दर्शन दुर्लभ हैं। इसलिए, आओ, स्वतन्त्रता के मतवाले युवक वीरो आज से, अपनी और अपने राष्ट्र की इन कमियों को दूर करने में जुट पड़ो और अपने युवक सरदार और बूढ़े सेनापति की आज्ञाओं की राह देखो।

मेवाड़ में गांधी-कन्या

पिछले दिनों सत्याग्रहाश्रम (साबरमती) में महात्माजी के भतीजे श्री जयसुखलाल गाँधी की कन्या श्रीमती उमिया बहन का विवाह उदयपुर के स्काउट-मास्टर श्री शंकरलाल अग्रवाल के साथ देखने का सुअवसर मिला। जिन्हें यह पता है कि महात्माजी का जन्म मोढ नामक वैश्य-जाति में हुआ है, वे तुरन्त जान लेंगे कि यह विवाह केवल अन्तः प्रान्तीय ही नहीं बल्कि उपजातीय भी है। अग्रवालों और मोढों में विवाह-सम्बन्ध नहीं होता है। किन्तु यही दो-विशेषतायें इस विवाह में नहीं थीं। श्री शंकरलाल की अवस्था २५ के आस-पास और उमिया बहन की १८ से ऊपर है। दोनों की परस्पर सम्मति से विवाह-सम्बन्ध हुआ है। सिर्फ ४५ मिनट में सारी विवाह-विधि सम्पन्न हुई। वर-वधू तो खादी पहने थे ही; उदयपुर-मेवाड़ के बराती भी खादी पहनकर आये थे। बरातियों को भोजन वही खिलाया गया जो आश्रम में नित्य आश्रमवासी करते हैं। विवाह-विधि के समय के अलावा कहीं किसी तरह यह नहीं मालूम होता था कि कोई उत्सव हो रहा है। महात्माजी चाहते हैं कि आश्रमवासी ऐसे आदर्श को पहुँच जायँ कि एक ओर विवाह हो रहा हो और दूसरी ओर किसी की शव-यात्रा होती हो; तो दोनों हम शान्ति और स्थिरता के साथ, अपने मन को डाँवा-डोल न होने देते हुए, कर सकें। जनन, मरण और परण (विवाह) ये तीनों समाज-जीवन में ऐसा स्वाभाविक स्थान ले लें कि हमें इनमें कोई अ-साधारणता न मालूम हो। इसलिए तमाम विवाह-व्यवस्था में कहीं भी असाधारणता या दैनिक जीवन से भिन्नता न दिखाई देती थी। विवाह के दिन वर-कन्या ने उपवास किया और गो-पूजा, सामाजिक सफाई जैसे कुवों के आसपास और गोशाला में सफाई करना, तुलसीपूजा, कताई-यज्ञ और गीताध्ययन इतने सामाजिक और धार्मिक काम किये। फिर शाम को मधुपर्क, कन्यादान और सप्तपद की विधियों के बाद विवाह-कार्य समाप्त हुआ। उस दिन सुबह-शाम को प्रार्थना में महात्माजी ने वर-वधू को आशीर्वाद करते हुए जो पवित्र शब्द सुनाये उनका सारांश यहाँ दिया जाता है—

"किसी के मन में यह प्रश्न उठेगा कि आश्रम और विवाह इन दो बातों का मेल कैसे बैठ सकता है? इसका उत्तर यह है कि इसमें परस्पर कुछ भी विरोध नहीं है। जो ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें व ब्रह्मचारी रहें और जो न कर सकें वे विवाह कर लें, यह उचित है। कोई यह न समझे कि ब्रह्मचारी सभी अच्छे होते हैं और विवाहित सभी घटिया होते हैं। हो सकता है कि गृहस्थ गुणवान हो और ब्रह्मचारी दम्भी। यही कारण है जो विवाह को उपाधि समझते हुए भी हम इष्ट मानते हैं।

इस विवाह में हम एक क़दम और आगे बढ़े हैं।

मणिलाल (महात्माजी के द्वितीय पुत्र) के विवाह में हमने जाति की बाड़ को तोड़ा, इस विवाह में प्रान्त की सीमा को लाँघा। गुजरात से मेवाड़ में गये। यह शुभ चिन्ह है। परन्तु इससे हमारी जिम्मेदारी भी बढ़ गई है। हम जो विवाह यहाँ करते हैं वे धार्मिक विधि और धार्मिक दृष्टि से करते हैं। उनमें मर्यादा-पालन की चेष्टा रहती है। आज के इस आपत्काल में, देश की स्थिति को देखकर, यदि इन्द्रिय-निग्रह कर सकें तो बहुत अच्छी बात है; किन्तु यह बात ज़ोर-जब्र से नहीं हो सकती। इसलिए यदि लड़का-लड़की चाहें तो उनका विवाह कर देना चाहिए और उनके लिए जोड़ी ढूँढकर अपने आशीर्वाद के साथ उनका विवाह कर देना आश्रम का कर्तव्य है। अब तक इसीके अनुसार यहाँ व्यवहार होता रहा है और उसका फल बुरा नहीं हुआ। हम बिना किसी आडम्बर के, थोड़े समय में, पवित्र हृदय के द्वारा विवाह-विधि सम्पन्न करते हैं, यह हर्ष की बात है।

इस विवाह के आरम्भ में क्षोभ और व्यग्रता उत्पन्न हुई थी; पर धीरे-धीरे वह शान्त हो गई। इस सम्बन्ध में जितनी सावधानी रक्खी जा सकती थी उतनी रक्खी गई है। वर-वधू की सम्मति लेकर ही यह विवाह किया गया है। इसमें मैंने व्यक्तिगत सुख का विचार नहीं किया है। इसी बात को अपनी दृष्टि के सामने रक्खा है कि देश का हित किस बात में है। इस विवाह के द्वारा एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के निकट आता है। यह पहला प्रयोग है।"

श्री शंकरलाल को सम्बोधन करके कहा—"इसमें जितनी जिम्मेदारी उमिया पर है उससे सौगुनी ज़्यादा आप पर है। उमिया की हिम्मत को देखकर मुझे खुशी हुई है। उसकी इच्छाओं को जानते रहिएगा। हिन्दू-समाज में स्त्री का स्त्रीत्व कम हो गया है। वह अबला हो गई है। इसलिए आप उसे स्वतन्त्रता दीजिएगा। आप तो स्काउट हैं। स्काउट का धर्म है सबकी रक्षा करना। उमिया यह न अनुभव करे कि मुझे दुःख है। वह यही समझती रहे कि यहाँ तो सब मुझपर प्रेमामृत बरसाते हैं। मैं उसे हिन्दी अधिक न पढ़ा सका—सो उसे सिखा दीजिएगा। यदि सब अपनी-अपनी जिम्मेदारी को समझकर काम करें तो मारवाड़ी और गुजराती में भेद नहीं रह सकता। धर्म और मर्यादा को कभी न भूलिएगा। दोनों से कहता हूँ कि मर्यादित रहकर भोगों को भोगना और अपने देश को कभी न भूलना।"

"उमिया, तुम्हें क्या कहूँ? इतना समय नहीं कि तुमसे अकेले में बातचीत करूँ। तुमने बहादुरी दिखाई है। तुम अपने कुल, प्रान्त और आश्रम की कीर्ति बढ़ाना। तुम्हारे हाथ से कोई बुरा काम न हो। मैंने तुम दोनों को छोटा-सा हार पहनाया है। पर मेरी दृष्टि में यह बड़ा है। गीताजी का रोज़ पाठ करना। जब-जब मन में निराशा आने लगे तब-तब भजनावली में से भजन गाना। फ़ुरसत के समय तकली कातना और आनन्द से रहना। ईश्वर तुम दोनों को सच्चे सेवक-सेविका बनावें, दीर्घायु करें। तुम दोनों इस तरह जीवन बिताना कि मुझे पश्चात्ताप न हो।"

इस विवाह-सम्बन्ध में वर की बूढ़ी माता ने जिस साहस और निश्चय का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। बिरादरीवालों ने उन्हें जाति-बहिष्कार की धमकियाँ दीं और जाति से अलग भी कर दिया, फिर भी वह अडग रहीं। उदयपुर के वे समाज-संशोधक भी धन्यवाद के पात्र हैं जो इस समय शंकरलालजी का साथ दे रहे हैं। इस तरह वे उदयपुर के जीवन को ऊँचा उठा देंगे। हम ज़ालिम सरकार के राज्य में भी अपराध करने के पहले किसी को सज़ा नहीं सुनाई जाती; पर उदयपुर के अग्रवालों की पंचायत की न्याय-प्रियता और धार्मिकता इतनी बढ़ गई कि उसने विवाह होने के पहले ही शंकरलालजी को बिरादरी से ख़ारिज कर दिया!! सारा उदयपुर इस बात पर खुशी मना सकता था कि उसमें गाँधी-कुटुम्ब की एक कन्या महात्माजी-जैसों का आशीष लेकर आई है और उसके एक युवक ने ऐसा साहस दिखाया है, पर इस अभागे हिन्दू-समाज में अभी तो सच्चे और साहसी लोगों के नसीब में अच्छे काम के लिए समाज का दण्ड ही बदा हुआ है! परमात्मा इस की आँखें कब खोलेगा?

श्री शंकरलाल के लिए यह दूनी कसौटी का अवसर है। एक ओर उन्हें अपने को सब तरह गाँधी-कन्या के योग्य साबित करना है और दूसरी ओर समाज के सारे रोष और दण्ड का मुकाबला करना है। परमात्मा उन्हें आवश्यक धैर्य, बल और योग्यता दें।

मृत्यु—अवभृथ-स्नान !

सत्याग्रहाश्रम के काका साहब कालेलकर का नाम त्या०भू० के पाठकों के लिए नया नहीं है। अपने जीवन में मैंने पहली बार आश्रम में यह अलौकिक दृश्य देखा कि काका अपनी धर्मपत्नी को 'काकी' कहते हैं और काकी उन्हें 'काका'। तभी से दोनों के पवित्र और उज्ज्वल जीवन की छाप मेरे दिल पर पड़ी है। कुछ समय पहले तेजस्विनी काकी के स्वर्गवास पर मैंने काका साहब को लिखा कि देश के राष्ट्रीय जीवन के ऐसे समय में जब कि आप विद्यापीठ में छात्रों को मृत्यु का पाठ पढ़ा रहे होंगे, मैं काकी की मृत्यु पर किस तरह आपके सामने समवेदना प्रकाशित करूँ? इस पर काका साहब ने जो सुन्दर उत्तर मुझे भेजा है उसमें उन्होंने अपने हृदय के बल और मस्तिष्क के ज्ञान का नवनीत भर दिया है। पाठकों को उसकी जीवित प्रेरणा से लाभ पहुँचाने के लोभ को रोकना मेरे लिए कठिन हो रहा है—

"प्रिय हरिभाऊ जी,

काकी के स्वधाम-गमन के निमित्त बहुत से खत आये। लेकिन उनमें से आज के राष्ट्रीय वातावरण का उल्लेख तो आपके ही खत में पाया। आश्रमवासियों को मृत्यु की ओर मित्र की दृष्टि से ही देखना चाहिए। हिन्दी में 'मीच' और 'मीत' कितने नज़दीक हैं? मृत्यु तो जीवन-यज्ञ का अवभृथ-स्नान है। काकी की स्वतंत्र वृत्ति मेरे जीवन की असाधारण समृद्धि थी।

काका का सप्रेम वन्देमातरम्।"

मृत्यु से न डरना मनुष्यता का पहला लक्षण है; पर मृत्यु को मित्र समझना सचमुच मनुष्यता की सार्थकता है

प्रान्तीय राजनैतिक संगठन

अजमेर-प्रान्त की नई प्रान्तिक कांग्रेस कमिटी बनते ही उसने ज़ोरशोर के साथ अपना काम शुरू कर दिया है। ज़िलों के संगठन, रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति, आगामी मई मास में प्रान्तिक राजनैतिक परिषद् का आयोजन तथा महासमिति की आज्ञा होते ही सविनय-भंग या सत्याग्रह की तैयारी के लिए संगठन के काम में वह जुट पड़ी है। २६ जनवरी को अजमेर में पूर्ण स्वराज्य दिन बड़ी धूम-धाम, उत्साह, नियम-बद्धता और शान्ति के साथ मनाया गया। अजमेर निवासियों का कहना है कि अजमेर में ऐसा राजनैतिक जुलूस १९२०–२१ के असहयोग के दिनों के बाद नहीं निकला। अजमेर के हाणी राष्ट्रीय विद्यालय, आर्यसमाज, चरखासंघ, सस्ता-साहित्य-मण्डल, राजस्थान संदेश, युवक-संघ, गाँधी-आश्रम इन संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं ने इसमें पूरा सहयोग दिया। इससे अजमेर में जो राजनैतिक जीवन पिछले साल से आरंभ हुआ है उसको ख़ासा वेग मिला है और आशा होती है कि वह स्थिर होकर बल पकड़ेगा। परन्तु राजस्थानी भाइयों से यह बात छिपी नहीं है कि किस विषमय और विपरीत परिस्थिति में यहाँ नई कांग्रेस कमिटी बनी है और उसके बनते ही इस वर्ष कितना भारी महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और ज़िम्मेदारी का काम उसपर आ पड़ा है। कार्यकर्त्ता थोड़े हैं और उनपर पहले से काफ़ी काम का बोझ लदा हुआ है। अपने-अपने कामों का आर्थिक भार भी पहले ही से उनपर है। ऐसी दशा में उनकी काफ़ी सहायता और सहयोग के बिना प्रान्त के संगठन और प्रान्त की सेवा में इस कमिटी को काफ़ी सफलता नहीं मिल सकती। आशा है, वे अपने कर्त्तव्य पर विचार कर ही रहे होंगे।

जोधपुर में दमन

जोधपुर-राज्य की अदालत से 'तरुण राजस्थान' के सम्पादक श्री जयनारायणजी व्यास, तथा उनके साथी श्री आनंदराजजी सुराणा और भँवरलालजी सराफ को क्रमशः पाँच और चार-चार वर्ष कैद की और एक-एक हज़ार रुपया जुरमाने की सजा राज-द्रोह के अपराध में दी गई है। इन दिनों देशी राज्यों में होनेवाले राजनैतिक आन्दोलन को दबाने की काफ़ी चेष्टा राज्यों की ओर से हो रही है और इसमें भारत-सरकार उनकी सहायक नज़र आती है। एक तो देशी-राज्यों की प्रजा यों ही निर्बल और असंगठित है फिर उसकी सुनवाई न तो भारत-सरकार करती है और न राष्ट्रीय महासभा के नेता ही उसका पक्ष लेकर देशी नरेशों से लड़ने को तैयार हैं। ऐसी दशा में यदि छोटे बड़े कार्यकर्त्ताओं को देशीराज्य कुचल दें तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी

बात है ? पर इसमें देशी-राज्यों के अधिकारियों या नरेशों की कोई बहादुरी नहीं है। एक ओर से ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित और दूसरी ओर से महासभा द्वारा आश्वासित रहने पैर—इतनी किलाबंदी के बाद, यदि वह अपनी प्रजा के निःशस्त्र सेवकों को इतनी कड़ी सजायें ठोंक दें तो यह कोई पुरुषार्थ की बात नहीं है। पर प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में देशी-राज्यों के राजनैतिक कार्यकर्ता करें क्या ? इसका सरल उत्तर यही है कि यदि हम सुसंगठित नहीं हैं और राष्ट्रीय महासभा हमारे साथ अपनी पूरी शक्ति लगाना अभी पसंद नहीं करती है तो बुद्धिमत्ता का तक़ाज़ा है कि हम रचनात्मक कामों में अपनी शक्ति लगाकर लोगों में जीवन और संगठन पैदा कर, उनकी सेवा करके अपने प्रति प्रेम और विश्वास उत्पन्न करें और उनका सामूहिक बल बढ़ावें। क्षेत्र से भाग जाना, शिथिल हो बैठ जाना कायरता है, अपनी शक्तियों को उचित दिशाओं और संभवनीय कार्यों में लगा देना बुद्धिमत्ता और उपयोगिता है।

परन्तु इस मौके पर मैं देशी राज्यों के नरेशों और अधिकारियों से एक बात पूछूं ?—

एक प्रजा-सेवक यदि कर्तव्य की प्रेरणा से, भूल से, अज्ञान से, मोह से या यहाँ तक कह दीजिए कि लोभ से कोई काम राज्याधिकारियों के हित के खिलाफ कर डालता है तो अधिकारी लोग उसे दबाने के लिए किसी साधन को नहीं छोड़ते। अदालतें उनकी, हुकूमत उनकी और पैसे की भी क्या कमी ? पर क्या कोई अधिकारी छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि अधिकारी लोग प्रजा के ही हित में दिन-रात लगे रहते हैं ? उनका मान और ज्ञान बढ़ाने में ही, उनकी उन्नति में ही, अपनी सारी शक्ति लगाते हैं ? क्या वे प्रजा-जन को रिश्वत लेकर नहीं चूसते ? क्या वे उन्हें ज़लील नहीं करते ? क्या वे अपने सत्ताधीशों के भयंकर और बुरे कामों में साथी नहीं होते ? किसी देश-सेवक की छोटी भी बुराई का मैं समर्थन नहीं करना चाहता—अपने साथियों के रोष का पात्र होकर भी मैं उनकी बुराई पर टीका करने से नहीं हिचकता; पर इसके यह मानी नहीं है कि अधिकारी तो देवदूत हैं, या उनकी बुराइयों को देखने की आँखें और समझने की बुद्धि किसी को नहीं है। उनकी मनमानी बुराइयों के खिलाफ बग़ावत करने पर यदि महासभा के नेता लोग तुल नहीं पड़े हैं तो इसका कारण उनका अज्ञान या नरमी नहीं, बल्कि दूरदर्शिता, और व्यवहार-कुशलता है। अधिकारी या हमारे कुछ मित्र चाहें तो इसे उनकी कमज़ोरी, नरमी, जो जी चाहे कह लें; पर मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि यदि अधिकारी और सत्ताधारी अपने मद में प्रजा-हित को कुछ न समझेंगे, प्रजा-सेवकों का तिरस्कार और उपहास करते रहेंगे, उन्हें दबाने की नीयत रक्खेंगे तो निकट भविष्य में उनकी सत्ता के बड़े-बड़े क़िले और महल ढहते हुए नजर आवेंगे।

इस सजा पर इन तीनों मारवाड़-सेवकों को बधाई। उनके कुटुम्बियों को बधाई। जेल देश-सेवक का महल है। देश-सेवक जितना ही अधिक निर्दोष और निर्मल होता है उतना ही अधिक भव्य यह महल उसके लिए हो जाता है। जयनारायणजी के एकाध व्याख्यान से, प्रजा-परिषद् के एकाध अधिवेशन से मारवाड़-राज की जड़ नहीं हिल जाती; परन्तु इन तीनों को जेल भेजकर मारवाड़ के उस न्यायाधीश ने उस राज्य की नींव के पत्थर हिलाने का काम किया है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है।

'घासलेटी साहित्य'

पौष के 'विशाल-भारत' में 'घासलेट विरोधी-आन्दोलन का उपसंहार' नामक संपादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। इससे मालूम होता है कि भाई बनारसीदासजी अब इस आन्दोलन को अपनी तरफ से बंद कर रहे हैं। यद्यपि घासलेटी साहित्य के विषय में पिछले दिनों पत्रों में दोनों पक्षों की ओर से जो-कुछ लिखा गया उस सब को मैं नहीं पढ़ सका हूँ तथापि मैं इतना अवश्य मानता हूँ कि इस आन्दोलन को उठाकर भाई बनारसीदासजी ने हिन्दी-साहित्य और समाज पर उपकार ही किया है, और उन्हें उन तमाम सज्जनों की ओर से धन्यवाद मिलना चाहिए जिन्हें साहित्य में सुरुचि से कुछ रुचि है, और जिन्हें समाज में फैलाई जाने वाली इस गन्दगी से घृणा है, फिर चाहे वह कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न फैलाई जाती हो। एक तरह से तो भाई चतुर्वेदीजी ने इस आन्दो-

लन के द्वारा 'त्यागभूमि' के एक उद्देश्य की पूर्ति की है और उसका बोझ हलका किया है। मुझे यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि त्या०भू० ने इस आन्दोलन को अनुराग की दृष्टि से देखा है, और यदि मैं अपने अन्य कामों से त्या०भू० के लिए अधिक समय निकाल सकता तो इस विषय में लिखता भी जरूर रहता। इस ख़याल से कि जब एक भाई एक काम कर ही रहे हैं, और त्या०भू० का मत इस सम्बन्ध में छिपा नहीं हैं, त्या०भू० इस तरफ अधिक ध्यान न दे सकी।

जब 'घासलेटी' शब्द मैंने पहली बार पढ़ा तभी मेरे मन में यह ख़याल पैदा हुआ था कि यह शब्द उस साहित्य के साथ पूरा न्याय नहीं करता। उसमें केवल बदबू ही नहीं है और भक से जल उठने और फैल जाने का सामर्थ्य ही नहीं है बल्कि इससे भी बढ़कर और हानिकर दोष हैं। इसलिए मैं इसे ज़हरीला साहित्य कहता। मैं जानता हूँ कि ये शब्द बहुत कठोर हैं, परन्तु इनका प्रयोग उस साहित्य के लिए किया गया है, न कि उसके प्रचारकों के लिए। प्रचारकों में से कइयों की लेखनी में ग़ज़ब की ताक़त है, प्रतिभा का चमत्कार है, काव्य के गुण हैं, और कुछ तो सचमुच साहित्य और समाज की सेवा के सद्भाव से ही इस साहित्य का सृजन कर रहे हैं। परन्तु मैं अपने और अपने मित्रों के और दूसरे युवकों के अनुभव से आँखें नहीं मूँदना चाहता। हो सकता है कि जिनको ऐसे साहित्य के बुरे अनुभव हुए हैं उनका मन उन भाइयों से ज्यादा कमज़ोर हो, जो ऐसे साहित्य को आवश्यक और शायद स्वास्थ्यप्रद भी समझते हों और जो कहते हों कि हमारे मन पर तो इसका कुछ असर नहीं होता। जब महात्मा गाँधी-जैसे जितेन्द्रिय को भी हम ऐसे साहित्य की निन्दा करते हुए देखते हैं, सूर और तुलसी-जैसे उच्च और बलिष्ठ आत्माओं को अपनी कमज़ोरियों से भयभीत देखते हैं तब मेरी दृष्टि में इस साहित्य की और ऐसी प्रवृत्तियों की भीषणता और बढ़ जाती है। सयाने तो वही समझे जाते हैं जो 'काजल की कोठरी' में पैर ही नहीं रखते हैं। बुराइयों के मध्य में रहते हुए अथवा निमन्त्रण देकर उनको अपने आस-पास जुटाकर, उनसे मुक्त रहने उनका असर अपने पर न होने देने का प्रयत्न साहस कहा जा सकता है, समझदारी नहीं। जब कि हमारा समाज यों ही अनेक कमज़ोरियों का घर बना हुआ है, पुरुषार्थ के बजाय विलासिता, इन्द्रिय-लोलुपता और उससे उत्पन्न कायरता के कीटाणुओं से व्याप्त हो रहा है तब तो उसके सामने इस मधुमुख विकारमय साहित्य को रखना मेरी समझ में उसकी सेवा नहीं उपेक्षा करना है। वैज्ञानिक ढंग से शरीरशास्त्र या मानसशास्त्र या कामशास्त्र के विद्यार्थियों के सम्मुख इन विषयों की चर्चा करना एक बात है, और लुभावने, मोहक और फुसलाने वाले ढंग से उन विकारों का रमणीय चित्र खींचना दूसरी बात है। उनकी ओर से पाठकों के मन में ग्लानि उत्पन्न करने वाला साहित्य एक प्रकार का होता है, और उसका चस्का लगाने वाला दूसरी प्रकार का। मैंने स्वयं इस प्रकार की कुछ पुस्तकें पढ़ी हैं। मैंने देखा है कि ग्लानि उत्पन्न करने के बजाय ऐसा साहित्य मन को विकारों की तरफ ले जाता है। सम्भव है जो भाई अज्ञान से, भ्रम से, सेवा या स्वार्थ भाव से इस साहित्य को बढ़ाना पसन्द करते हैं उनको उनकी बुराइयों का यथेष्ट अनुभव न हो। इसलिए मेरी प्रार्थना उनसे है कि वे मनुष्यों के अब तक के अनुभवों को अपने जोश से ठुकरावें नहीं। अपनी कलम की करामात, अपनी कल्पना का कौशल, अपनी प्रतिभा का प्रकाश वे ऐसे साहित्य की सृष्टि में दिखावें जिससे समाज की कमज़ोरियाँ हटें, और जीवन, बल और पुरुषार्थ के भाव जागृत हों। वे उन्नत और पुष्ट, परिश्रमी और उद्योगी, तेजस्वी और उत्साही समाज के रचयिता बनें न कि आरामतलब एवं आमोद-प्रमोद प्रिय, तेल-फुलैल, घुँघराले बाल, चिपके गाल, और पतली कमर के जीवों का निर्माण करें। वे कृपाकर स्मरण रखें कि भारत का भावी पुरुष, नगर निवासी, इन्द्रिय-लोलुप, परोपजीवी और ऐश्वर्यभोगी नहीं; बल्कि ग्रामवासी, परिश्रम और पुरुषार्थ का पालक, स्वावलम्बी और सदाचारी होगा। उसके हाथ में वीणा नहीं हँसुवा होगा। सिर पर कोमल कुंतल नहीं बल्कि बोझ का गट्ठा होगा। मुख में चाय, पान और सिगरेट नहीं, मोटे आटे का मोटा रोट और साग-पात होगा। वह प्रकृति का पुजारी होगा; सभ्यता के नाम से पुकारी जाने

वाली विकृति का शिकार नहीं। क्या अच्छा हो, यदि ये हमारे प्रतिभा-सम्पन्न लेखक रमणीयता के अलंकार छोड़कर सैनिकता का बाना पहनें। कवि और कलाकार बनने के बजाय सैनिक और साधु बनने की महत्वाकांक्षा रक्खें।

आन्दोलन, संक्षोभ और प्रचार ये विचार-प्रवाह को बदलने के जबरदस्त साधन हैं। इनसे जो शक्ति निर्माण होती है और वातावरण बनता है उसका सु-व्यवस्थित उपयोग यदि ठोस और स्थायी कामों में न कर लिया जाय तो वह परिश्रम सार्थक नहीं माना जा सकता। मेरी राय में भाई बनारसीदासजी का कार्य अब ऐसी अवस्था में पहुँच गया है कि अब उसका रचनात्मक रूप लोगों के सामने आवे अर्थात् हम अब केवल अच्छे और उपयोगी साहित्य का ही नमूना लोगों के सामने पेश करें। आशा है, हिन्दी के लेखक और प्रकाशक-बन्धु ऐसे ही साहित्य के निर्माण और प्रचार में अपना बल लगायँगे जो समाज को दीन और क्षीण नहीं बल्कि पराक्रमी और दुर्दमनीय बनावे।

ह० उ०

स्त्रियों का प्रश्न

"× × सबसे ज़रूरी प्रश्न स्त्रियों की अवस्था और अधिकार का है, जिससे देश के प्रत्येक स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है और जिसका समाज पर गहरा असर पड़ता है।" यह कहते हुए भारतीय समाज-सुधार-सम्मेलन (लाहौर) के सभापति पद से रायसाहब हरविलास सारदा ने भारतीय स्त्रियों के प्रश्न पर काफ़ी प्रकाश डाला है। उनका कहना है—

"स्त्री-सम्बन्धी प्रश्न किसी-न-किसी रूप में संसार-भर का प्रश्न है। हिन्दुस्तान में इस समय यह तो ख़ास तौर पर ज़रूरी है, क्योंकि इसके उचित रूप से और शीघ्र हल होने पर देश की भावी भलाई निर्भर है। जीवन की जड़ घर है और घर स्त्री का क़िला है। घर-गृहस्थी की असली मालकिन स्त्री है। लोग किसी राष्ट्र की सभ्यता की परीक्षा उसकी स्त्रियों की अवस्था देखकर करते हैं। इसलाम में सिद्धान्त के रूप में स्त्री का दर्जा ऊँचा है और उसके अधिकार उसके क़ानून से बहुत हद तक सुरक्षित हैं। पुराने ज़माने के हिन्दुओं में स्त्री का दर्जा बड़े सम्मान और लिहाज़ का था; उसके बड़े अधिकार थे और परिवार में उसी की प्रधानता थी।"

इसके बाद प्राचीन कालकी स्त्रियों के उत्थान के प्रमाण देते हुए उन्होंने कहा—

"हिन्दुओं के राजनैतिक पतन के साथ उनकी सामाजिक अवनति हुई और स्त्रियों के वैध अधिकार रौंदे गये। ब्याह के विषय में, उत्तराधिकार के विषय में, परिवार के दर्जे के विषय में स्त्रियों के बहुत से अधिकार उनसे छीन लिये गये हैं और उनकी स्वतंत्रता में रुकावट डाल दी गई है। परन्तु यद्यपि स्त्री की स्वतंत्रता में रुकावट डाल दी गई है और संयुक्त परिवार-प्रथा को क़ायम रखने की इच्छा से स्त्री के बहुत से क़ानूनी अधिकार उससे ले लिये गये हैं, फिर भी यह बात आम तौर पर सच है कि परिवार में स्त्री बड़ा अधिकार रखती है और घर गृहस्थी के कामों में उसी का प्रभाव सबसे अधिक है। हिंदुस्तानियों का छिद्रान्वेषण करने वाले, दुर्बल राष्ट्रों को बदनाम करने की रोटी खानेवाले—जिन्होंने मिस कैथरिन मेयो की तरह पराधीन लोगों को बदनाम करने का रोजगार उठा रक्खा है—कल्पित चित्रों के सहारे परिवार में हिन्दुस्तानी स्त्रियों की दशा

शोचनीय बता सकते हैं परन्तु जो लोग असली अवस्था से परिचित हैं और जिनको इस देश के पारिवारिक जीवन की जानकारी है वे अच्छी तरह जानते हैं कि स्त्रियां आज दिन भी हिन्दुस्तानी घरों में बहुत ही सम्मानित दर्जा रखती हैं और उनका प्रभाव अखंड बना हुआ है। इंग्लैण्ड के वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री रैमसे मेकडानल्ड की स्वर्गीय पत्नी जब अपने पति के साथ हिन्दुस्तान की यात्रा करके स्वदेश लौटीं, तब उन्होंने कहा था कि घरेलू और सामाजिक विषयों में हिन्दू स्त्रियों का प्रभाव सबसे ऊपर है और उनमें पुरुषों से सम्मान का ज्ञान अधिक है।"

इसके बाद उन्होंने निम्न सुधार सुझाये—

(१) एक ही विवाह करने का कड़ा नियम बना देना चाहिए। (२) विवाह-विच्छेद का दावा पुरुष कर सकता है तो स्त्री को वैसा करने का उतना ही हक़ है। (३) विधवा-विवाह उसी प्रकार मामूली हो जाना चाहिए, जिस प्रकार विधुर दूसरा विवाह कर लेता है। (४) लड़कों के सम न लड़कियों को भी विरासत का अधिकार दिया जाय।

वर्तमान न्याय-प्रणाली की टीका करने के बाद स्त्रियों से उन्होंने अपील की कि "वे अपने को भारत की उन वीर स्त्रियों की बेटी साबित करें, जिन्होंने पुराने ज़माने में इस देश के इतिहास में गौरवजनक स्थान पाया है।" और यह कहते हुए कि "हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ ही थीं, जिन्होंने पुरुषों को बहादुर बनाया और उनको ऐसे-ऐसे वीरता के काम करने को उत्साहित किया, जिनकी कथा आज तक इस देश में गाई जाती, हर जगह याद की जाती और बखानी जाती है," राजपूत वीरांगनाओं की वीरता का उत्साहपूर्ण वर्णन किया। अन्त में कहा—आपकी माताएँ वीरता की जो महान् परम्परा बाँध गई हैं उनको आप लोग मलिन न होने दें। आप लोग उनके पुत्र-पुत्रियाँ ऐसा करें कि जिससे स्वदेश का सम्मान बढ़े और हमारी मातृभूमि अपने पुराने यश और गौरव को फिर प्राप्त हो। एक समय ऐसा था जब हमारे देश में माता का आदर्श यह माना जाता था—

जननी जने तो ऐसो जन कै दाता कै सूर।"

आशा है; स्त्रियाँ आपकी अपील पर ध्यान देंगी।

गहने की वेदी पर—

घटना युक्तप्रान्त के ललितपुर स्थान की है, और हाल ही की है। एक पाँच बरस की बालिका थी। उसके कानों में सोने के ईयररिंग थे, उन्होंने उस बेचारी के प्राण ले लिये। १९ वर्षीय एक पठान की नज़र उस पर पड़ी। बस, वह उसे बहका ले गया और गला दबाकर मार डाला। ईयररिंग की तो उसी समय गलवाकर अंगूठी बनवा ली गई और लड़की को मारकर एक नाली में डाल दिया गया। निस्सन्देह पठान को फाँसी की सज़ा हुई है, पर वह लड़की तो बेचारी गई ही न? ओह, गहनों का मोह हमारे देश में ऐसी न जाने कितनी बेचारियों के प्राणों का ग्राहक हो रहा है—मगर, फिर भी, हमारा यह मोह जाता नहीं!

गहनों का मूल

यह सोचने की बात है कि 'यह शौक कहाँ से और क्यों पैदा हुआ?' 'संयुक्तप्रान्त के सफ़र में ग़रीब और अमीर बहनों के गहने देख-देखकर मैं घबरा उठता था।'—यह लिखते हुए 'नवजीवन' में इसके मूल पर गाँधीजी इस प्रकार विचार करते हैं—

"यह शौक कहाँ से और कैसे पैदा हुआ होगा? मैं इसके 'इतिहास को नहीं जानता। इस कारण मैंने थोड़ी अटकल से' कुछ अनुमान से काम लिया है। स्त्रियाँ हाथों और पैरों में जो गहने पहनती हैं, वे उनके क़ैदीपन की निशानी हैं। पैर के गहने तो इतने वज़नदार होते हैं कि स्त्री उन्हें पहनकर दौड़ना तो दूर, तेज़ी से चल भी नहीं सकती। कई स्त्रियाँ हाथ में इतने सारे गहने पहनती हैं कि उन्हें पहनने पर हाथ से ठीक तरह काम भी नहीं लिया जा सकता। इसलिए ऐसे गहनों को मैं हाथ-पैर की बेड़ी ही समझता हूँ। कान-नाक छिदाकर जो गहने पहने जाते हैं, मेरी नज़र में तो, उनकी उपयोगिता यही साबित हुई है कि उनके ज़रिये आदमी औरतों को जैसा नाच नचावे उसे वैसा नाचना पड़ता है। एक छोटा-सा बच्चा भी अगर किसी मजबूत स्त्री की नाक या कान का गहना पकड़ ले तो उसे बेबस हो जाना पड़ता है। इसलिए मेरी राय में तो ख़ास-ख़ास गहने सिर्फ़ गुलामी की ही निशानी है।"

यदि यह कल्पना सत्य हो तो, विचार उठता है, फिर समझदार और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी गहनों का शौक़ क्यों करती हैं? गाँधीजी के विचारानुसार "और-और बातों की तरह इस बारे में भी रूढ़ि बलीयसी है।" हम अपने हरएक काम के लिए कारण की तलाश नहीं करते। एक बार रूढ़ि की नक़ल की कि बाद में वही बात हमें स्वतंत्र रूपसे रुचने लगती है। और यही विचार-शून्य जीवन है।

क्या करें?

गाँधीजी लिखते हैं—"गहनों की उत्पत्ति की जो कल्पना मैंने की है, अगर वह ठीक हो तो चाहे जैसे हलके और ख़ूबसूरत क्यों न हों, हर हालत में गहने त्याज्य हैं।" उनके मतानुसार स्त्री की शोभा उसके गहनों में, हाव-भाव में, या नित नई पोशाक में नहीं बल्कि उसके हृदय में और उसके आचार-विचारमें है। वह तो बड़े ज़ोरों के साथ लिखते हैं—

"× × यह व्यक्ति-स्वतंत्र्य नहीं है, व्यक्तिगत अधिकार की बात भी इसमें नहीं है; यह तो निरी स्वच्छन्दता है और त्याज्य है। क्योंकि इसमें निर्दयता और बेरहमी है।

"अन्त में मैं यह पूछूँगा कि इस कंगाल देश में; जहाँ प्रति व्यक्ति की औसत प्रायः सात या बहुत तो आठ पैसे से ज़्यादा नहीं हैं, किसे अधिकार है कि वह एक रत्ती वज़न की भी अँगूठी पहने? विचारवती स्त्री, जो देश की सेवा करना चाहती है, गहनों को कभी छू भी नहीं सकती।"

अर्थशास्त्र की दृष्टि से भी वह गहनों का बनाया जाना हानिकर बताते हैं। उनकी राय में गहनों के बजाय बचत के रुपये को बैंकों में जमा करना चाहिए।

हम नहीं कह सकते, हम लोग गाँधी जी के इन विचारों का कहाँ तक पालन कर सकते हैं; लेकिन यह तो सभी जानते हैं कि आज यह बात हमारे यहाँ अति की सीमा पर पहुँच गई है, साथही हमारी कंगाली ने इसे हास्यास्पद भी ख़ूब बना दिया है, और यह ख़तरनाक तो है ही। यदि हम एकदम दूर न कर सकें तो भी इसे किसी हद तक तुरन्त सीमित कर देना चाहिए और अपनी बहन-बच्चियों की जानें तो इसके कारण खोने से बचानी ही चाहिएँ।

प्रगति की दिशा में

यह प्रगति का समय है। स्त्रियाँ भी इस समय प्रगति के पथ पर हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से उनके स्थानीय, ज़िला या प्रान्तीय सम्मेलनों अथवा संगठनों के समाचार आने लगे हैं। यह भी बात नहीं कि यह सब बाह्याडम्बर ही हों, दिन-पर-दिन वे अपने को अधिकाधिक कर्मशील बनाने का प्रयत्न कर रही हैं। अ० भा० स्त्री-शिक्षा-सम्मेलन की संगठन मंत्रिणी श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय हाल ही में अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-सम्मेलन से लौटी हैं। वह बड़े उत्साह से हिन्दुस्तानी सेवा-दल में संयोग दे रही हैं। कुछ दिनों पहले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में उनका एक लेख निकला था, उसमें स्त्रियों के भी पुरुषों के साथ-साथ स्वयं-सेवक बनने और काम अंजाम देने का ज़ोरों से प्रतिपादन किया गया था। पिछले दिनों अहमदाबाद के युवक-सम्मेलन की अध्यक्षा भी आप ही थीं। लाहौर-कांग्रेस के समय कुमारी लज्जावती जी के नेतृत्व में संगठित स्वयंसेविकाओं ने सच-मुच अपने को इस काम के पूर्ण उपयुक्त साबित भी कर दिया है। प्रायः सभी ने उनके कार्य की प्रशंसा की है और उन्हें सराहा है। लाहौर-कांग्रेस की तैयारियों में भी कुमारी लज्जावती तथा तपस्विनी पार्वतीदेवी का काफ़ी हाथ रहा है। इधर गुजरात में श्रीमती इन्दुमतीबाई दीवान के सभापतित्व में प्रान्तिक महिला-परिषद् बड़ी सफलता के साथ हुई है। विश्व-विद्यालयों की पढ़ाई में कई बहनों ने जो नामवरी हासिल की है वह तो प्रशंसनीय है ही।

परदे के विरुद्ध

नवजीवन-मण्डल का जब से संगठन हुआ है, वह ज़ोरों के साथ कार्य क्षेत्र में कूद पड़ा है। पिछले दिनों परदे के विरुद्ध इसने अपना आन्दोलन उठाया। उसका प्रतिनिधि-मण्डल स्थान-स्थान पर गया और परदे के विरुद्ध अच्छा प्रचार-कार्य किया। उधर कम्मलपुर (पंजाब) की स्त्रियों ने स्वयं ही अपनी सभा करके परदा परित्याग करने का निश्चय किया है।

भारतीय महिला-परिषद्

सर्वभारतीय-महिला-परिषद् का अधिवेशन इस बार बम्बई में श्रीमती सरोजिनी नायडू के सभापतित्व में हुआ। लेडी साइक्स (गवर्नर-पत्नी) ने उसका उद्घाटन किया; स्वागताध्यक्षा लेडी ताता ने स्त्रियों की आवश्यकताओं का

अपने स्वागत-भाषण में अच्छा सिंहावलोकन किया, और श्रीमती नायडू ने कहा —मैं 'फ़ेमिनिस्ट' नहीं हूँ, स्त्रियों के लिए विशेष रिआयतें मैं नहीं चाहती, क्योंकि इसका मतलब तो यह हुआ कि हम अपने को पुरुषों से तुच्छ समझती हैं। सभा में सब कार्रवाई अंग्रेज़ी में हुई, जिसकी 'लीडर' के संवाददाता तक ने टीका की है। बाल-विवाह-निषेधक-बिल की ख़ूब तारीफ़ हुई और अन्य कई सुधार भी क़ानूनों द्वारा ही करने पर ज़ोर दिया गया। परिषद् सफल हुई, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु हमें मजबूरन यही निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि वह आम स्त्रियों के बजाय ऊंचे वर्ग की स्त्रियों तक अपनी सीमा निर्धारित कर रही है और वातावरण में अंग्रेज़ीपन तथा सरकारी अफ़सरों के प्रभाव का बढ़ता जाना तो हमारी दृष्टि में बहुत अवाञ्छनीय है। परिषद् की संचालिकायें इस ओर ध्यान दें तो अच्छा होगा।

गुलाबदेवी कन्या-पाठशाला अजमेर

राजपूताना स्त्री-शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है। ऐसी दशा में जब कोई व्यक्तिगत प्रयत्न इस दिशा में नज़र आता, स्वभावतः हर्ष होता है। फिर यदि वह प्रयत्न सुचारु-रूपेण हो, तब तो और भी ख़ुशी होती है। हमें हर्ष है कि अजमेर की उक्त पाठशाला ऐसा ही एक प्रयत्न है।

११ वर्ष पहले, सम्वत् १९५५ में, यह क़ायम हुई थी। श्री मथुराप्रसादजी माहेश्वरी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गुलाबदेवीजी इसके संस्थापक हैं, जिसमें से मथुराप्रसादजी तो ११ वर्ष बाद स्वर्गवासी हो गये और गुलाबदेवीजी 'चाचीजी' के नाम से प्रसिद्ध होकर आज भी इसकी सार-सम्हाल और उन्नति कर रही हैं। सन् १९०९ में मथुराप्रसादजी का स्वर्गवास हुआ था, तब से सन् '११ तक तो चाचीजी ने ही इसे पूरी तरह सम्हाला। इसके बाद इसे चिरस्थायी और समुन्नत बनाने के उद्देश से राजस्थान व मालवा की आर्य-प्रतिनिधि-सभा के अधीन कर दिया। १९२१ तक उसने इसका संचालन किया; फिर सुविधा की दृष्टि से अजमेर आर्य-समाज के अधीन कर दिया। तब से वह उसीके अन्तर्गत, एक प्रबन्धकर्तृ सभा के द्वारा लगातार उन्नति करती आ रही है—यद्यपि चाचीजी की तो पूरी देखरेख और सार-सम्हाल है ही।

श्रीमती इन्दुमती बाई [गुजराती 'गुण-सुन्दरी' के सौजन्य से]

कई बातों में यह पाठशाला अपनी विशेषता रखती है। सबसे बड़ी विशेषता स्वावलम्बन है। यह पाठशाला गवर्नमेंट या म्युनिसिपैलिटी किसी से कुछ सहायता नहीं लेती। आरम्भ से अब तक श्रीमती गुलाबदेवीजी का ही लगन के साथ मुख्याचार्या के रूप में इसकी सेवा और सम्हाल करते रहना भी इसका सौभाग्य है। फिर शिक्षा निःशुल्क दी जाती है और साथ ही साधनहीन कन्याओं को पुस्तक आदि आवश्यक वस्तुओं की सहायता भी दी जाती है। और सबसे बढ़कर यह कि 'पाठशाला का केवल पुस्तक-पाठ व परीक्षा पास कराना ही ध्येय नहीं रहा है वरन् इस पाठशाला में . . . कन्याओं का जीवन आर्य-जीवन बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाता है।'

शिक्षा में स्कूली तथा घर-गृहस्थी के लिए आवश्यक शिक्षा का मिश्रण है और सादगी आदि गुणों पर ज़ोर दिया जाता है। चाचीजी का चरित्र और स्वभाव इतना शुद्ध, सरल और मिलनसार है कि सब भले आदमियों का प्रेम वह सम्पादन कर लेती हैं। इसीलिए कई स्थानीय महिलाओं से भी समय-समय उन्हें अपनी पाठशाला के कामकाज में मदद मिल जाती है। और यही कारण है कि छात्राओं की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। मई १९२६ से मई १९२९ तक के वर्षों का विवरण हमारे सामने है। १९२६ में छात्राओं का योग १ ३ व हाज़िरी का औसत ९५ था, १९२७ में वह १२९ व १०० रहा, १९२८ में १४२ व ११४ और १९२९ में वह १६८ व १२५ हो गया है। परीक्षा-फल भी प्रगति का सूचक है। १९२७–२८ में तो इस पाठशाला की एक छात्रा लोअर मिडिल की परीक्षा में राजपूताना भर में सर्वप्रथम रही थी।

अध्यापिकायें पाँच हैं। परीक्षायें साल में दो बार होती हैं। प्रतिवर्ष छात्राओं के उत्साह-वर्धन के लिए पुरस्कारों की भी व्यवस्था की जाती है। आगे से प्रतिवर्ष एक पदक उस छात्रा को देने का निश्चय हुआ है, जिसका स्वास्थ्य सर्वोत्तम रहा करेगा।

पर इसकी आर्थिक स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। इस पाठशाला की आय 'इस समय ४२॥) मासिक मकान-किराये से, लगभग १४) मासिक ब्याज से और १६॥) मासिक सहायकों से है। शेष व्यय दान से चलता है। व्यय लगभग १००) मासिक है, जबकि बहुत ही किफ़ायत से काम किया जाता है।'

श्रीमती गुलाबदेवी

कोई चार वर्ष पूर्व मुझे भी इस पाठशाला को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। श्रीमती चाची जी ने बड़े प्रेम और सद्भाव से इमारत तथा क्लासें दिखाई थीं। स्थिति का भी बहुत-कुछ वर्णन किया था। उस समय छात्राओं के प्रति चाचीजी का जो मातृ-सम स्नेह-भाव मैंने देखा, मैं उससे बड़ा प्रभावित हुआ था। एक छात्रा बहन, मुझे याद पड़ता है, ऐसी थीं, जो इस पाठशाला की पढ़ाई समाप्त कर चुकी थीं। वह आगे नार्मल करना चाहती थीं, पर ग़रीब और शायद मुझे ठीक याद नहीं—असहाय थीं। चाचीजी ने उन्हें अपने ही पास रख रक्खा था और कहीं न-कहीं से थोड़ी-बहुत

सहायता प्राप्त करवाकर उसे नार्मल पढ़ाने के लिए वह कितनी उद्विग्न थीं, यह मुझे याद आ रहा है। शिक्षा-सम्बन्धी बहुत ऊँचे दर्जे की योग्यता चाहे चाचीजी में न हो पर उनका ऐसा स्नेह और ऐसी लगन प्रशंसनीय है। यही उनकी पाठशाला की प्रगति का मुख्य कारण है। अपने उदार पतिदेव के स्वर्गवास से वह यद्यपि अकेली पड़ गई हैं, पर मुझे विश्वास है उनकी यह लगन और सरलता-मृदुता व्यर्थ न जायगी। पाठशाला बढ़ रही है, और आगे और भी बढ़ेगी—ऐसा हमारा विश्वास है। विवरण में कहा गया है कि 'यदि यथेष्ट रूप से कार्य चलाया जाय तो २००) मासिक से कम व्यय नहीं हो सकता।' १००) मासिक तो किसी तरह आज भी हो ही रहा है, सवाल १००) मासिक का ही तो रहा—और उस राजस्थान के केन्द्र अजमेर में, जिसके अनेक सुपुत्र धन-धान्य से परिपूर्ण दूर-दूर तक अपनी दान-शीलता की यश-सुरभि फैला रहे हैं! हमारी आग्रहपूर्ण आशा है कि राजस्थानी भाई-बहन इस सुन्दर पाठशाला की उन्नति में भाग लें—न केवल भावना में बल्कि धन की क्रियात्मक सहानुभूति के द्वारा भी। विवाह, औसर-मौसर आदि में जहाँ हज़ारों तक पर पानी फेरा जाता है, तहाँ यदि कुछ रक़म इसे भी दी जाय तो यह सहज ही हो सकता है।

मुकुट

राष्ट्रीय शिक्षा

आधुनिक रूप

राष्ट्रीय शिक्षा, कम या अधिक परिमाण में और भिन्न-भिन्न स्वरूपों में, पिछले अनेक वर्षों से हमारे देश में प्रचलित थी। गुरुकुलों की स्थापना और कलकत्ता, काशी, पूना, आदि के कालेज इस बात के प्रमाण हैं। परन्तु असहयोग-आन्दोलन में राष्ट्रीय शिक्षा का नवीन संस्करण हुआ और उसे नवीन रूप प्राप्त हुआ। असहयोग-आन्दोलन में कहा गया था कि सरकारी शिक्षा-संस्थायें हानिकारक हैं और गुलामी के अड्डे हैं। अतः हम लोगों को उनका बहिष्कार करना चाहिए। फल यह हुआ कि हज़ारों की संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों और कालेजों का त्याग करना प्रारम्भ कर दिया। अब देश-हितैषियों को उनकी शिक्षा-दीक्षा के प्रबन्ध की चिन्ता हुई। इसके अलावा असहयोग आन्दोलन ने इस बात को भी स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य स्वराज्य संग्राम के लिए सैनिक तैयार करना है। परिणाम यह हुआ कि देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई। जिन विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षा-संस्थाओं का बहिष्कार किया था उन्होंने इन विद्यापीठों में आश्रय प्राप्त किया। हजारों की संख्या में विद्यार्थी इनमें भर्ती हो गये। ज्यों-ज्यों असहयोग आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया त्यों-त्यों हमारे विद्यापीठों की नींव मज़बूत होती गई और विद्यार्थियों की संख्या अधिकाधिक बढ़ती गई।

संगठन

परन्तु ज्योंही असहयोग-आन्दोलन का प्रवाह मन्द पड़ा और देश में प्रतिक्रिया की लहर बहने लगी त्योंही राष्ट्रीय विद्यापीठों के कार्य में भी शिथिलता आने लगी। असहयोग-आन्दोलन एक प्रकार का तूफान था। उसके कारण जो विद्यार्थी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में आये वे केवल उस बवण्डर के परिणाम थे। ज्योंही वह आँधी मन्द पड़ी, उनका उत्साह भी ठण्डा पड़ने लगा। वह तो एक भीड़ थी, जो असहयोग-आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् तुरन्त तितर-बितर हो गई, फल यह हुआ कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थायें विद्यार्थियों के अभाव में भूखी रहने

लगीं। पिछले ४–५ वर्षों में बार-बार इनके संचालकों और प्रेमियों को यह भी अनुभव हुआ कि सम्भव है इन्हें शीघ्र ही काल-कवलित हो जाना पड़े। इसके अतिरिक्त असहयोग-आन्दोलन में समयाभाव के कारण राष्ट्रीय शिक्षा का कोई ध्येय स्पष्ट रूप से निश्चित भी नहीं हो पाया था। एक ओर विद्यार्थियों की कमी और दूसरी ओर निश्चित ध्येय के अभाव ने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रेमियों को इस बात के लिए विवश किया कि वे किसी एक स्थान पर एकत्र होकर राष्ट्रीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति समझ लें और उसके ध्येय का निश्चय कर लें। इन्हीं सब बातों का परिणाम गत १४, १५, १६ जनवरी को गुजरात-विद्यापीठ में होने वाली राष्ट्रीय भारतीय शिक्षा-परिषद् है।

इस परिषद् का आयोजन गुजरात विद्यापीठ के आचार्य काका कालेलकर ने किया था। पिछले कुछ अर्से से काशी विद्यापीठ की ओर से ऐसी एक परिषद् बुलाने की तैयारी की जा रही थी। परन्तु काशी में परिषद् होने से पूर्व यह उचित समझा गया कि इस सम्बन्ध में एक प्रारम्भिक सम्मेलन कर लिया जाय ताकि उसमें विचार-विनिमय होकर राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों पर वाद-विवाद हो जाय। काशी विद्यापीठ की ओर से काशी में राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के जिस बृहत् सम्मेलन का आयोजन हो रहा है, उसका अधिवेशन लगभग आगामी सितम्बर मास में होगा। अहमदाबाद की इस परिषद् ने काशी के सम्मेलन का मार्ग बहुत कुछ साफ़ कर दिया है।

अ० भा० राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् का अधिवेशन गुजरात-विद्यापीठ (अहमदाबाद) में तीन दिन तक होता रहा। पहले दिन परिषद् का सभापति-पद काशी विद्यापीठ के आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने सुशोभित किया; दूसरे दिन के सभापति प्रेम महाविद्यालय के आचार्य जुगलकिशोर जी थे और तीसरे दिन गुरुकुल कांगड़ी के श्री० देवशर्माजी। महात्मा गांधी ने भी दो दिन तक परिषद् में उपस्थित होकर अपनी बहुमूल्य सम्मतियों से परिषद् को सहायता दी और राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य और कार्यक्रम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। चर्चा के मुख्य विषय थे—राष्ट्रीय शिक्षा का ध्येय निश्चित करना, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान प्रदान करना, विद्यार्थियों के शारीरिक विकास और शिक्षा की व्यवस्था करना और गाँवों के उत्थान-कार्य में हमारे स्नातक किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, इसकी योजना बनाना।

पहले दिन आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने सभापति के पद से अपना प्रारम्भिक भाषण किया। उन्होंने हमारे देश की राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास का अवलोकन करते हुए उसकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा में जो खामियाँ हैं, उनकी ओर प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित किया और साथ ही इस बात पर ज़ोर दिया कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस बात की भी आवश्यकता बतलाई कि हमारे यहाँ एक ऐसे विभाग की स्थापना भी होनी चाहिए जो अनुसंधान का कार्य करे। इस विभाग का उद्देश्य होगा भारत की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में खोज करना। यह विभाग किसानों की वर्तमान स्थिति की जाँच करे, उनके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण और अंक प्राप्त करे और मजदूरों की सच्ची स्थिति की सामग्री एकत्र करे। यह सब करने के पश्चात् यह विभाग अपनी खोजों के परिणामों को समय-समय पर प्रकाशित किया करे, ताकि भारतीय नेताओं, पत्रकारों और इस विषय के जिज्ञासुओं को भारत की सच्ची स्थिति का पता लगता रहे।

यह परिषद् इस सम्बन्ध में अंतिम परिषद् नहीं थी अतः इस परिषद् में जो विषय विवादग्रस्त थे अथवा जिनपर एक से अधिक मत थे, उन विषयों पर कोई प्रस्ताव पास नहीं किया गया। ऐसे विषयों पर भिन्न भिन्न प्रतिनिधियों के जो जो मत थे, जान लिये गये और तत्सम्बन्धी उनकी मनोवृत्ति से परिचय प्राप्त कर लिया गया। जिन बातों के सम्बन्ध में सभी प्रतिनिधि एक मत थे उन्हीं पर परिषद् में प्रस्ताव पेश और पास हुए। फिर, ये प्रस्ताव किसी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था पर बन्धनस्वरूप भी नहीं थे; ये केवल सिफ़ारिश के रूप में थे। इस सम्बन्ध में समस्त बातों का अन्तिम निर्णय काशी में होने वाले आगामी सम्मेलन में होगा। अनेक प्रस्ताव पास हुए, जिनमें से

मुख्य-मुख्य निम्न प्रकार हैं। पहला प्रस्ताव राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य के बारे में था। इसके अनुसार निश्चय हुआ कि राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य स्वराज्य-परायण सैनिक तैयार करना है। एक प्रस्ताव में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान देने की सिफारिश की गई थी। एक प्रस्ताव प्रत्येक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने के सम्बन्ध में था। एक अन्य प्रस्ताव में स्त्रियों की शिक्षा पर जोर दिया गया और उसके प्रचार के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया।

महात्मा गाँधी मुख्यतः तीन विषयों पर बोले—(१) राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य, (२) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में औद्योगिक शिक्षा को उचित स्थान देना और (३) परिषद् के राष्ट्रीय झण्डा फहराने-सम्बन्धी प्रस्ताव। राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य एक ही हो सकता है और वह है स्वराज्य की शिक्षा। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने भाषण में विद्यार्थियों और अध्यापकों को सच्चरित्र, सत्यनिष्ठ, और अहिंसक रहने का भी उपदेश किया। औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में वर्तमान समय में एक ही औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए और वह है चर्खा। चर्खे की तुलना उन्होंने सूर्य-मण्डल से करते हुए कहा कि इसके द्वारा हम अन्य दूसरे कार्यों को अपने आप पूर्ण कर लेंगे। चर्खा सूर्य है और दूसरे समस्त कार्य नक्षत्र हैं! यदि हम सूर्य को पकड़े रहेंगे तो अन्य नक्षत्र यथा-नियम अपना कार्य करते रहेंगे। परन्तु यदि हम सूर्य को ही खो देंगे तो फिर सभी वस्तुयें हमारे हाथ से निकल जायँगी। महात्माजी ने कहा कि कोई भी उद्योग हम मुख्यतः निम्नलिखित तीन बातों को लक्ष्य रखकर सीखते हैं—(१) उसे सीखकर हम या तो स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बनें, (२) या दूसरों के सामने दृष्टांत पैदा करें अथवा (३) दूसरों को उस उद्योग की शिक्षा दें लेकिन चर्खा एक ऐसी वस्तु है जिससे हमारे तीनों उद्देश्यों की पूर्ति होती है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के लिए चर्खे की औद्योगिक शिक्षा देने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। राष्ट्रीय झण्डा-सम्बन्धी प्रस्ताव पर बोलते हुए महात्माजी ने कहा कि राष्ट्रीय झण्डा फहराना अच्छा है। मैंने भी लखनऊ, प्रयाग आदि में झण्डा फहराया है। झण्डा फहराने से हृदय में एक जोश और स्फूर्ति पैदा होती है। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं को इस सम्बन्ध में सावधानी और विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए। हम लोगों की यह कमी है कि हम अनेक बातों को उनके बाह्य आवरण पर आकर्षित होकर, तुरन्त करने लग जाते हैं; परन्तु उनके भीतरी रहस्य और मर्म का उतना विचार नहीं करते। आप लोगों को भी राष्ट्रीय झण्डे के भीतरी मर्म को समझ लेना चाहिए। इस झण्डे के भीतर गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है कि चाहे प्राण चले जायं, परन्तु झण्डा नीचे न झुकने पाये—उसका अपमान न हो सके। यदि आप और आपके विद्यापीठों के विद्यार्थियों ने झण्डा फहराने के इस रहस्य को समझ लिया है, तो आप अवश्य झण्डा फहरावें। ऐसी हालत में जहाँ-जहाँ झण्डा फहराया जाय वहां-वहां प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में प्राण रहते झण्डे का अपमान होना हमारे लिए कलंक की बात होगी। वास्तव में हम कोई भी प्रस्ताव पास क्यों न करें, उस प्रस्ताव के पीछे हमारे दृढ़ निश्चय का संकल्प होना चाहिए।"

इस प्रकार इस परिषद् ने राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में हमारे लिए सीधे और सच्चे मार्ग का निर्देश कर दिया है। इस परिषद् में भिन्न-भिन्न प्रान्तों के राष्ट्रीय शिक्षा-प्रेमियों के विचारों और मनोवृत्तियों का भी परिचय प्राप्त हो गया है। इस परिषद् ने काशी में होने वाली शिक्षा-परिषद् की नींव को भी काफ़ी मजबूत कर दिया है। परिणाम स्वरूप काशी वाली परिषद् में हमको इस परिषद् के निश्चयों और मन्तव्यों से अमूल्य सहायता मिलने की आशा है।

—'राम'

संघर्ष

गत मास भारतीय इतिहास में सदा महत्त्वपूर्ण समझा जायगा। इसमें हमें सरकार की नीति समझने का अच्छा अवसर मिला है। एक ओर जहाँ श्री फेनर ब्राकवे के प्रस्ताव पार्लमेंट में सर्वसम्मति से स्वीकार किये जाते हैं और बड़ी अच्छी आशा दिलाते हैं तहाँ भारत में सरकार की नीति इसके बिलकुल विपरीत ही प्रतीत होती है। पंजाब-सरकार के स्वर्गीय श्री लालाजी-जैसे नेता की पुण्यस्मृति के लिए उपयुक्त स्थान देने में आनाकानी करने से, लाहौर-कांग्रेस के लिए विशेष रूप से १ लाख रुपयों की पुलिस की व्यवस्था के लिए स्वीकृति देने से और इस आशय का सरक्युलर प्रान्तीय सरकारों के पास भेजने से कि प्रदर्शनी के विषय में कांग्रेस की सहायता न की जानी चाहिए— सरकार की नीति की दिशा स्पष्ट मालूम हो जाती है। यद्यपि श्री० बेन बड़े माधुर्य से कहते हैं कि भारत तो गत १० वर्षों से औपनिवेशिक स्वराज्य का उपभोग कर रहा है परन्तु जनता तो सरकार की नीति को उसके सामने रक्खे गये रूप में ही देख सकती है। भारत भी स्वराज्य के लिए व्याकुल हो रहा है, परन्तु उसके नेताओं ने सदा सरकार का सहयोग प्राप्त करने का ही प्रयत्न किया है। और गत मास लार्ड इरविन के साथ इस सम्बन्ध में पाँच बड़े नेताओं का जो परामर्श हुआ था वह एक प्रकार से अन्तिम ही समझना चाहिए। पदाधिकारी की हैसियत से वाइसराय महोदय इससे अधिक कुछ भी आश्वासन न दे सके कि सर्वदल-सम्मेलन में उस समय जो निश्चय होगा उसके अनुसार पार्लमेंट में बिल पेश कर दिया जायगा। इसलिए भारतीय नेताओं का निराश होना स्वाभाविक ही था। इसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यही हुआ कि कांग्रेस की नीति में परिवर्तन हो गया। और गत कांग्रेस का महत्त्व है भी इसी में कि अब स्वराज्य सरकार के साथ सहयोग द्वारा न लिया जायगा। इतना होने पर भी कांग्रेस के लिए यह बड़प्पन का सूचक है कि वाइसराय की ट्रेन पर बम चलाने वालों की निन्दा का प्रस्ताव पास किया गया है। यह भी शुभ लक्षण है कि युवक-दल कांग्रेस की नीति को नरम मानते हुए भी उसके कार्यक्रम से पूर्णतया सहमत है। कौंसिलों के बहिष्कार के सम्बन्ध में जोरशोर से कार्य हो रहा है। वाइसराय महोदय ने २५ जनवरी की स्पीच में सरकार की स्थिति स्पष्ट कर दी है कि औपनिवेशिक स्वराज्य लक्ष्य है और उसका यह मतलब नहीं कि अभी मिल जाय। एक ओर इस पर और दूसरी ओर २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस को भारतीय जनता के सरकार के साथ सहयोग करना पाप है और हमारा लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता है, इस घोषणा पर विचार करने से घटनाओं के रुख का पता चल सकता है। यह देखते हुए कि स्वतन्त्रता-दिवस भारत के सब बड़े-बड़े नगरों में और भारत के बाहर भी उत्साह से मनाया गया जनता की जागृति का अच्छा परिचय मिलता है।

जनता ने अपने कर्त्तव्य को कहाँ तक समझा है यह तो स्थान-स्थान पर होने वाले

सत्याग्रह और आन्दोलन

की संख्या से जाना जा सकता है। रिफ्यूजर्स स्टेट के अधिकारियों ने कृषकों की कर न बढ़ाने की शर्तें मान ली हैं। मुलतान में म्युनिसिपल्टिी के वाटर-टैक्स बढ़ा देने पर जनता ने सत्याग्रह की तैयारियाँ की ही थीं कि उसकी विजय मान

की गई। बंगाल में यूनियन बोर्ड के टैक्स के विरोध में बन्दाबिला का सत्याग्रह जैसोर जिले में जारी है। सरकार उसे दबाने की जी-जान से कोशिश कर रही है। गिरफ्तारियां भी हुई हैं। परन्तु कैदियों ने अच्छा भोजन न मिलने के कारण खाना-पीना छोड़ दिया है। इधर काठियावाड़ की बलिया रियासत ('लाखरेचा') में भी किसानों का सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ था। श्री मणिलालजी कोठारी के प्रयत्न से वह भी सफल होगया। संयुक्तप्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने सत्याग्रह-संग्राम के लिए स्थानों के चुनाव के संबंध में एक कमेटी नियुक्त की है। अमृतसर में भी जनता सरकार के नये बन्दोबस्त के विरोध में सत्याग्रह करने की तैयारी में है। देश में सर्वत्र एक नई लहर व्याप्त हो रही है।

देशी रियासतें

भी इससे नहीं बच सकी हैं। वाइसराय की इस घोषणा ने कि सर्वदल-सम्मेलन में शासकगण ही देशी प्रजा के प्रतिनिधि रहेंगे उनको इसमें संदेह नहीं, निश्चिन्त हो जाने का बहुत अधिक अधिकार दे दिया है। हैदराबाद के निज़ाम ने तो अपने राज्य में सभायें—और विशेषतः राजनैतिक सभायें—करने के लिए अनुमति लेने की आज्ञा जारी कर दी है। सुना है कि पटियाला में स्वतंत्रता-दिवस के संबंध में कई गिरफ्तारियां भी हुई हैं।

मजूरों के संबंध में कानपुर और पटना की मजूर कमीशन के सामने दी हुई गवाहियों से उनके भोजन आदि के बारे में गिरी हुई दशा का अनुमान हो सकता है। आसाम के चाय बागान की हीन अवस्था की भी बहुत-सी बातों का पता चला है। जी. आई. पी. रेलवे के मजदूर-संघ के निश्चय से मजूरों ने अफसरों की शिकायतों की सुनवाई न होने से हड़ताल कर दी। जो सफल हुई है।

शारदा-बिल

का विरोध इस मास मुसलमानों की तरफ से अधिक रहा। परन्तु कई मुसलमानी महिलाओं ने इसका समर्थन भी किया है। स्त्रियों का आन्दोलन दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

राजनैतिक संघर्ष ओर पकड़ता आ रहा है और उसकी भूमिका सुभाष बाबू की सजा से प्रारम्भ भी हो गई है। स्वाधीनता दिवस को आज्ञायें तोड़कर सभा करने के कारण अनेक स्थानों पर गिरफ्तारियां भी हुई हैं। भविष्य में दमन की संभावना बढ़ती जा रही है।

'प्रकाश'

देश की बात

लाहौर-कांग्रेस

राष्ट्रीय महासभा का लाहौर-अधिवेशन धूमधाम से समाप्त हो गया। ३१ दिसम्बर की रात को १२ बजे, उत्साह और हर्ष के उमड़ते हुए भावों के साथ 'पूर्ण स्वतंत्रता ही भारत का ध्येय है', इसका निश्चय हुआ। उस समय के दृश्यों का वर्णन करना बड़ा कठिन है। युवक लोग तो प्रसन्नता से पागल हो रहे थे, उन्होंने राष्ट्रपति को ही कन्धों पर उठा लिया और सुबह चार बजे तक उन्हें नाच नचाते रहे। स्वयंसेविका बहनें जहाँ तहाँ, प्रत्येक कैम्प में, स्वाधीनता के गाने गाती फिरती थी। ऐसा मालूम होता था मानो माँ की इतने दिनों की सुप्त वाणी बहनों की इन सैकड़ों जिह्वाओं द्वारा आज उल्लासपूर्वक बलिदान के लिए बच्चों का आह्वान कर रही है। यह हर्ष स्वाभाविक था। क्योंकि भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में वृद्ध-मनोवृत्ति पर युवक-मनोवृत्ति की यह एक भारी विजय है।

अब उन सब विवादों, संशोधनों और समर्थक-विरोधक भाषणों का ज़िक्र करना फिजूल-सा है, जो कांग्रेस के अधिवेशन के समय श्रोताओं को सुनने पड़े। जैसा कि प्रत्येक क्रान्तिकारी निश्चय या व्यवस्था के समय होता है, पूर्ण स्वतंत्रता के इस गम्भीर और कठोर निश्चय का विरोध भी हुआ। एक ओर मालवीयजी तथा अन्य अनेक नरम नेता कांग्रेस को पीछे खींच रहे थे तो दूसरी ओर श्री सुभाषबोस, श्री ऐयंगर इत्यादि स्वतंत्रता-प्राप्ति के

कार्य-क्रम को बहुत कड़ा बनाना चाहते थे और कौंसिलों के बहिष्कार के साथ नगर और ज़िला-बोर्डों, अदालतों तथा स्कूलों के बहिष्कार पर भी ज़ोर दे रहे थे। इन दोनों दलों के तर्क भी वही थे जो नरम और उग्र दल के हुआ करते हैं। नरम दल का सदा की ही भांति कहना था 'भई, ज़रा ठहर जाओ। वाइसराय बेचारा बड़ा अच्छा है और भारत-सचिव वेज बेन तथा मजूर-सरकार भारत की समस्या को हल करने के लिए बहुत उत्सुक है। हम यह नहीं कहते कि पूर्ण स्वतंत्रता का ध्येय न घोषित करो पर सत्याग्रह की तैयारी तब तक के लिए स्थगित कर दो, जब तक भारतीय और अंग्रेज़ प्रतिनिधियों का गोल मेज-सम्मेलन इग्लैण्ड में न हो जाय! यदि वहां भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न मिला तो फिर मज़े में स्वतंत्रता की घोषणा करना और सत्याग्रह एवं बहिष्कार से भी काम लेना; हमसे बनेगा तो हम भी तुम्हारा साथ देंगे। अभी तो सहानुभूति और सहयोग के वातावरण को न बिगाड़ो; मजूर-सरकार को नाराज़ कर देने से हमारे हाथ से बड़ा मौक़ा चला जायगा।'

युवक-दल कहता था,—"भाई! तुम्हारी बातें तो कोई नई नहीं हैं। बीसों वर्ष से प्लेटफार्मों से उन्हें हम सुनते रहे हैं। बार-बार विनती, प्रार्थना, अनुरोध और प्रतीक्षा करके देख लिया है। इनसे कुछ नहीं हुआ। तुम्हारे कहने से सरकार के साथ सहयोग किया; कौंसिलों में गये; प्रस्ताव पास किये पर किसी ने न सुना। देश का खून दिन पर दिन चूसा जा रहा है; ग़रीबी बढ़ रही है। करोड़ों पेटों में चारा नहीं पड़ता और तुम, आराम और आसाइश की ज़िन्दगी में पड़े हुए, सन्तोष और सहिष्णुता का उपदेश करते हो। देश के दिली दर्द का फोड़ा पक गया है; अब आघात नहीं सह सकता। दवा की आशा पर इतने दिनों तक तुम इसकी उपेक्षा करते रहे पर 'दर्द बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।' अब ज़बानी जमाख़र्च का दबाव हम पर नहीं पड़ सकता। दुनिया में स्वाधीनता कभी भीख मांगने से न मिली है; न मिलेगी। ताक़त पैदा करो; बलिदान करो, तैयार हो जाओ; तब कुछ मिलेगा। मजूर-सरकार की भौंहों के बल देखकर तुम कुछ न कर सकोगे। बिना मरे स्वर्ग न दीखेगा। इस लिए अब इसे कल पर छोड़ा नहीं जा सकता। हम तो आज ही इन परावलम्बी भावों और विधियों को छोड़कर अपने पैरों खड़ा होना चाहते हैं। तुम लोगों को इतने दिन देखा; अब अपने भी कर देखें।"

लाहौर की रंग-स्थली में इन दोनों मनोवृत्तियों का संघर्ष हुआ और पिछली—युवक-मनोवृत्ति—की विजय हुई। यह युवक भारत की विजय है; यह देश की बढ़ती हुई पीड़ा की उपेक्षा के सन्तोष पर विजय है; यह समय का विजय है।

× × ×

गहरी ज़िम्मेदारी

ख़ैर—जो होना था हो गया। अच्छा हुआ या बुरा इस बहस से फ़ायदा क्या है? हम तो जो हुआ उसे अच्छा समझते हैं, क्योंकि हमें भगवान् में और अपने भविष्य में विश्वास है। दमन की अंधाधुन्धी मचेगी, इसे लाहौर-कांग्रेस के पण्डाल में बैठा हुआ कौन प्रतिनिधि नहीं जानता था? पर तिल-तिल करके गलाये जाने से गौरव-पूर्व, शान्ति के साथ, अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए मर मिटना अच्छा है। युवक-दल के लिए आज बलिदान और त्याग का बहुत अच्छा अवसर उपस्थित हुआ है। निर्णयों और प्रस्तावों तक हां उनकी विजय हो गई तो क्या हुआ? पूर्ण स्वतंत्रता का निश्चय कर लेना तो कठिन नहीं है पर निरन्तर त्याग, लगन और संगठन से पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना या उसके प्राप्त करने के लिए देश का पूर्णतः तैयार हो जाना बड़ा कठिन काम है पर इससे उनकी ज़िम्मेदारी भी बहुत ज़्यादा बढ़ गई है। इस विजय की बहुत ज़्यादा क़ीमत उन्हें चुकानी पड़ेगी और इसके लिए हम जितना जल्दी तैयार हो जाँय, देश का भला होगा।

पूर्णस्वतंत्रता दिवस

लाहौर-कांग्रेस के बाद, कार्य-समिति के आदेश से पूर्ण-स्वतंत्रता के निश्चय के सम्बन्ध में देश की तैयारी का पता लगाने के लिए, विगत २६ जनवरी का दिन इस बात के लिए नियत किया था कि उस दिन प्रत्येक नगर और

विषय-सूची

विषय-सूची

चित्र-सूची

कृतज्ञता-ज्ञापन

उपर्युक्त चित्रों में से नं० ७, ८, ९, १० के ब्लाक हमें रियासत (दिल्ली), ११, १२, १३, १४, १५ के सैनिक' (आगरा), नं० १७ का 'देश' (पटना), नं० ६ का 'राजस्थान-संदेश' और नं० १९ का 'गुण-सुन्दरी' के सौजन्य से मिला है, अतः 'त्यागभूमि' इनकी सहायता एवं सहानुभूति के लिए कृतज्ञ है।

प्रकाशक—सम्पादक

आत्म-कथा
आत्म-कथा

आत्म-कथा
आत्म-कथा

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

वर्ष ३, अंक ५

माघ १९८६

इस अंक में पढ़िए—

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का ।=)

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर

१
महाकाल का भैरव नृत्य
नरमेध !
अथवा
हालैण्ड की महान् क्रान्ति की महाभयंकर कहानी
पृष्ठ-संख्या ५०० मू० १॥)
मण्डल के स्थाई ग्राहकों को
क्रान्तिकारी
पौने मूल्य में
२
भारत की करोड़ों आत्माओं की करुण आह
दुखी दुनिया
अथवा
प्रलय-प्रतीक्षा
पृष्ठ-संख्या ११२ मूल्य ॥)
मण्डल के स्थाई ग्राहकों को

विषय-सूची

देवी जोन

SASTA-SAHITYA PRESS, AJMER

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष ३	सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर	अंश ५
खण्ड १	माघ संवत् १९८६	पूर्ण अंश २९

उद्बोधन

[श्री बृहस्पति मिश्र]

तू जाग आज मेरे स्वदेश !
साहस, गौरव, संयम समेत; इतिहास पुरातन के प्रमाण !
भारत-विभूति ! निर्मल विवेक ! निर्वाण-ज्ञान, गीता-विधान !
कर्त्तव्य-बोध से ओत-प्रोत, हे पाञ्चजन्य के आदि स्रोत !
तू जाग आज मेरे स्वदेश !
दासत्व-शृंखला-हीन भीम ले यौवन में पौरुष अथाह ।
जीवनमय, जागृतिमय प्रबुद्ध, उठ सागर सम वलयित प्रवाह ।
दुर्जय, अमोघ, नव वीर्यश्लोक ! हे मेरे जीवनधन अशोक !
यह दृढ़ निश्चय प्रियतम स्वदेश !
मत भूले यति हो वीतराग, है अवगत तुमको ज्ञान-मूल,
तुम में विलीन संस्कृति अतीत, हे वसुधा के कल्याण-कूल !
हे अमित तपोधन प्रलय-क्रोध ! हे 'ईशावास्यमिदं' प्रबोध !

वेदी का फूल !

[श्री 'निर्गुण']

उस दिन देखा, सारी वाटिका में वह एक ही फूल था। एक कोने में, पत्तियों के बीच छिपा हुआ, चुपचाप बिना किसी आशा के अपना काम कर रहा था। भौंरे आते, शहद की मक्खियाँ आतीं, नन्हे-नन्हे कीड़े आते, सब के लिए वह अपना भाण्डार खोल देता। उसके दिल का दरवाजा सब के लिए खुला था—उसमें एक नहीं समा सकता था क्योंकि उसमें सबके समाने की जगह थी। वह अपना सौरभ लुटा रहा था। उसने अपना वह छोटा-सा जीवन सब के हित के लिए निछावर कर दिया था !

मुझे बड़ी जल्दी थी ! गाड़ी की सीटी सुनाई पड़ रही थी—आँख उठाकर देखा, साथी स्टेशन की ओर दौड़े जा रहे हैं। मुझे भी जाना था पर आंखें उस फूल पर लगी थीं—दिल मानता न था, पैर उठते नहीं थे। उसी को देखता रह गया !

× + ×

थोड़ी देर बाद, चक्कर काटकर, जब मैं लौटा तो देखा कि वह फूल तोड़कर देव के चरणों में समर्पित कर दिया गया है। उसकी दो-चार पंखुरियाँ इधर-उधर टूटी पड़ी हैं फिर भी उपासना की वेदी पर छिन्न-भिन्न पड़ा हुआ वह कितना सुन्दर और कितना पूर्ण लगता था ! उसके जीवन में जो कुछ था, देवता का, पृथ्वी-माता का, था ! उसने उसका मोह नहीं किया; उसे हँसते-हँसते, खिल-खिलकर देवता के ही चरणों पर चढ़ा दिया !

वह लाल-लाल बलिदान का फूल कैसा भोला था ! उसने जीवन के उत्सर्ग में जीवन का स्वाद पा लिया ! अपनी उन टूटी पंखुरियों के बीच भी, सिमटा हुआ वह कैसा हँस रहा था ! इस हँसी में अभिमान न था, उपेक्षा न थी, मृत्यु का आभास न था—यह वह हँसी थी जो सहज त्यागी के ही ओठों पर खिलती है !

× × ×

पर यदि हम देखने की चेष्टा करें तो देख सकते हैं कि इस विश्व-उपवन में मनुष्य भी फूल बनकर खिल सकता है ! विश्व कलह से, गरीबी से, दुःख-दैन्य से छटपटा रहा है फिर भी आत्म-वंचना के विष को हम पीने के लिए दौड़े पड़ते हैं। पास ही अमृत का प्याला पड़ा है; पर जीवन का मोह उसे पीने नहीं देता। शरीर-सुख का भाव ऐसा बढ़ गया है कि उसमें हम अपने जीवन का सत्त्व ही नष्ट कर देते हैं और यों न अपनी रक्षा कर पाते हैं, न अपना विकास ! हम रोते पैदा होते हैं और रोते ही रोते, अपने को, अपनी किस्मत को और दुनिया को गालियाँ देते-देते एक दिन आंखें मूँद लेते हैं। ऐसी दुनिया में, मृत्यु के भय से पीड़ित ऐसे जगत् में, मेरी आँखों के सामने, चिनगारी की भाँति आज वह वेदी का फूल चमक रहा है ! देश की तड़पती हुई आत्मा आह्वान कर रही है और भारत के पश्चिमी कोने पर धीरे-धीरे, लजाई हुई वधू के समान, आत्मोत्सर्ग के प्रवाह में कल कल करके बहने वाली साबरमती नदी के किनारे बादल का एक तूफ़ानी टुकड़ा जमा हो रहा है ! बिजली चमक रही है। इस अँधेरी रात में, पूजा की थाली लिये एक बूढ़ा तपस्वी देव-मन्दिर की ओर चला जा रहा है ! थाली में फूल बहुत थोड़े

हैं। वह सामने मन्दिर है—देवता के चरणों में पूजा की प्यासी वेदी दूर तक फैली हुई है! सोचता हूँ इस वेदी पर उस दिन का वह फूल कितना अच्छा लगता पर उसके-जैसा हृदय कितने शहीदों में मौजूद है! पूजा की घण्टी बज चुकी है;—तपस्वी शीघ्र ही देवता के चरणों में अर्घ्य देगा। आज वह फूल याद आ रहा है! माँ की लाज कौन बचावेगा? क्या पूजा सूनी रहेगी; क्या मन्दिर खाली रहेगा? वेदी पुकार रही है—तपस्वी उत्सुक आँखों से देख रहा है! आज मन कैसा हो रहा है,—कैसी हलचल मची हुई है—कैसा तूफ़ान आ रहा है! ऐसे समय, हे देश की, हे मनुष्यता की आशा भाई-बहनो, तुममें कौन और कितने हँसते-हँसते 'वेदी का वह फूल' बनने को तैयार हैं! मेरा तो मन करता है कि आज थाली की इस पहली भेंट में ही मिलकर उस फूल की तरह देवता के चरणों में चू पड़ूँ!

हम बलि-वेदी पर जायेंगे

[श्री सोहनलाल द्विवेदी]

खादी का बाना पहन लिया,
आजादी ध्येय हमारा है।
आजादी पर मर मिटना है,
हमने अब यही विचारा है।
प्राणों की भेंट चढ़ायेंगे।
हम बलिवेदी पर जायेंगे॥

हम अमर, नहीं मरने का डर,
यह तो जीने की राह भली।
है 'शिवा' 'प्रताप' गये जिससे,
है वीरों की यह वही गली।
जननी की जय-जय गायेंगे।
हम बलिवेदी पर जायेंगे॥

हम बड़े शौक से पहनेंगे,
पहनायेंगे जो हथकड़ियां।
जेलों में अलख जगा करके,
तोड़ेंगे माता की कड़ियाँ।
अन्याय अनीति मिटायेंगे।
हम बलिवेदी पर जायेंगे॥

भालों, तलवारों, तोपों से,
हम कभी नहीं घबड़ायेंगे।
वह देश-प्रेम-मतवाले हैं,
जो शूली पर चढ़ जायेंगे।
निज देश स्वतंत्र बनायेंगे।
हम बलिवेदी पर जायेंगे॥

बृहत्तर भारत

चम्पा राज्य का ह्रास

[अध्यापक विजनराज चटर्जी एम० ए०, पी० एच-डी०, डी० लिट्]

त्यागभूमि के पिछले अंकों में प्रकाशित अपनी 'बृहत्तर भारत' शीर्षक लेख-माला में अभी तक मैंने विशेषतः कम्बुज (या कम्बोडिया) पर ही प्रकाश डाला है। इस बीच में भारतीय-चीन (इण्डो-चायना) के दूसरे भागों में बहुत से शक्तिमान हिन्दू-राज्यों का जन्म हो गया था। अब मैं संक्षेप में ईसा की नवीं सदी तक इनका वर्णन करूँगा। संस्कृत के एक शिला-लेख में, जो कि चम्पा (वर्त्तमान दक्षिणी अनाम) में पाया गया है और जिसको इतिहासकार ईसा की दूसरी सदी का बतलाते हैं, श्री मार नाम से एक राजा का उल्लेख मिलता है। भारतीय चीन (इण्डो-चायना) में पाये गये शिला-लेखों में यह सब से पुराना है और यह इतना बिगड़ गया है कि इतना भी सन्देहास्पद है कि इसका सम्बन्ध बौद्ध या ब्राह्मण-काल में से किसके साथ है। ईसा की चौथी सदी में एक साहसी चीनी ने चम्पा के सिंहासन पर जबर्दस्ती अधिकार कर लिया और बहुत समय तक चीन-सरकार का सफलता से सामना करता रहा। बाद में वह व्यक्ति मार डाला गया और हिन्दू वंश पुनः शासन करने लगा। इसके पश्चात् भद्रवर्मन प्रथम ने भद्रेश्वर बनवाया जो शीघ्र ही चम्पा का राष्ट्रीय मन्दिर हो गया। उसके उत्तराधिकारी गंगा-राज ने भारत में गंगा नदी की तीर्थ-यात्रा करने के लिए सिंहासन का त्याग कर दिया। यह ईसवी सन् पाँचवीं सदी के आरम्भ की बात है। कुछ समय तक इस राज्य को अपने शक्तिशाली पश्चिमी पड़ोसी कम्बुज के अधीन रहना पड़ा। परन्तु इसने किसी प्रकार अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। ईसा की छठी सदी के मध्य के करीब रुद्रवर्मन प्रथम ने, जो किसी प्रसिद्ध ब्राह्मण का पुत्र कहा जाता है, चीन-साम्राज्य पर आक्रमण किया परन्तु उसे भीषण क्षति के साथ लौटना पड़ा। इसके पश्चात् ही एक राजदूत चम्पा से सुदूर कम्बुज (कम्बोडिया) में दोनों विशाल हिन्दू राज्यों में मित्रता का सम्बन्ध बढ़ाने के लिए भेजा गया। छठी सदी के अन्त में चीन ने चम्पा पर आक्रमण किया और पराजित देश में से बहुत से बुद्ध-मत के ग्रन्थ उठा ले गया। कन्दर्प शर्मा, जो इसके बाद चम्पा का राजा हुआ, और चीन-सम्राट में तो इतनी मित्रता थी कि उसकी मूर्ति चीन की राजधानी में स्थापित की गई। इसके बाद सातवीं सदी में पूर्वीय हिन्दू राज्य (चम्पा) और कम्बुज (कम्बोडिया) में एक विवाह-द्वारा मित्रता और भी दृढ़ हो गई। आठवीं सदी में कुछ समुद्री डाकुओं ने जो जावा से जहाजों में आये थे, चम्पा के किनारे को लूट लिया और कौथार की देवी के मन्दिर को नष्ट कर दिया, जो उसी प्रकार दक्षिणी भाग की अधि-ष्ठात्री देवी मानी जाती थी, जिस प्रकार भद्रेश्वर का मन्दिर उत्तरी भाग में मान्य था। एक शिला-लेख से मालूम होता है कि हरिवर्मन प्रथम ने (जिसने ८०३ ई० सन् से ८१७ ई० सन् तक राज्य किया) "सूर्य के समान, रात्रि के अन्धकार—के सदृश चीनियों को भस्म किया।" नवीं सदी के अन्त में इन्द्रवर्मन द्वितीय राज्य के प्रमुख नागरिकों-द्वारा

शासनकर्त्ता निर्वाचित किया गया। वह एक उत्साही बौद्धधर्मावलम्बी था। उसके समय में प्रसिद्ध अवलोकितेश्वर के मन्दिर का निर्माण हुआ। इन्द्रवर्मन तृतीय ने, जिसने दसवीं सदी के प्रारंभ में शासन किया था, एक राजकीय शिला-लेख में अपने पिता को "षड्दर्शन और पाणिनीय व्याकरण इत्यादि का पूर्ण पण्डित" बतलाया है।

लगभग इसी समय अनामियों ने, जो एक अर्द्ध जंगली जाति के और चम्पा के लोगों से बिलकुल भिन्न थे, उत्तरी अनाम में एक स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित किया। ये भविष्य में चीन की अपेक्षा चम्पा के कहीं अधिक खतरनाक पड़ोसी साबित हुए। प्रशान्त महासागर के किनारे पर स्थित यह छोटा-सा हिंदू साम्राज्य, जिसने चीन के विशाल साम्राज्य का इतनी सदियों तक सामना किया था, अब अनामियों की जंगली जाति द्वारा धीरे-धीरे नष्ट किया जाने लगा। अब से चम्पा का इतिहास, क्या राजनैतिक शक्ति और क्या संस्कृति दोनों के, पतन का ही वृत्तान्त है।

आकुल संसार

[श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी']

कोई तरणी खोल रहा है पाने को सागर का पार !
किसी-किसी की अभिलाषायें उड़तीं ऊपर पंख पसार !!
कोई नीचे अतल जलधि में डुबा रहा जीवन सुकुमार !
अपना ही अस्तित्व जगत को दिखता अपना कारागार !!

ऐ रहस्य, ऐ परदेवाले,
ऐ सब के मानस के प्यार !
बिछा रखा है बिरह-तरस का
क्यों तूने आकुल संसार ?

इंग्लैण्ड और रूस का सम्बन्ध

[श्री नागेश्वर मिश्र]

इंग्लैण्ड और रूस का दुर्भाव कुछ आज का नहीं, बहुत पुराना है, परन्तु आजकल के दुर्भाव और यूरोपीय महासमर के पूर्व के दुर्भाव में बहुत भारी अन्तर है। पहले ज़ार के समय इङ्गलैण्ड की ही तरह रूस भी साम्राज्यवादी देश था; दोनों ही अपने-अपने साम्राज्य का विस्तार करने में यत्नशील थे, इसलिए दोनों में परस्पर हित-विरोध था। एशिया में दोनों के हित टकराते थे। एशिया में इंग्लैण्ड का रूस ही एक प्रतिद्वन्द्वी था और प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था। सामूहिक शक्ति मे इंग्लैण्ड अपना सानी नहीं रखता था। जल-मार्ग से कोई देश इंग्लैण्ड को नुक़सान नहीं पहुँचा सकता था और एशिया में जल-मार्ग के सिवाय स्थल-मार्ग से और कोई यूरोपीय साम्राज्यवादी देश आ भी नहीं सकता था। रूस ही एक ऐसा देश था जो एशिया में इंग्लैंड को धक्का पहुँचा सकता था और पहुँचा सकता है। दो बातों से रूस एशिया में बहुत प्रबल था। एक तो वह एशिया से मिला हुआ है; दूसरे उसने साम्राज्य-विस्तार करने में अपनी पूरी ताकत एशिया में ही लगाई थी जिससे उसकी पूरी शक्ति एक केन्द्र में संगठित थी। दूसरी ओर इसके बिलकुल विपरीत इंग्लैण्ड की शक्ति सारे भूमण्डल में बिखरी हुई थी। रूस तुर्की, फ़ारस और अफ़गानिस्तान की ओर बराबर बढ़ रहा था। अफ़गानिस्तान के पश्चिमोत्तर कोने पर रूसी साम्राज्य की सीमा पामीर के पास हिन्दुस्तान की सीमा से मिलती थी। इंग्लैण्ड को सदा इस बात का भय बना रहता था कि 'सोने की चिड़िया' हिन्दुस्तान को कहीं रूसी बाज़ दबोच न ले। इंग्लैण्ड को सदा 'रूसी हौआ' बेचैन किये रहता था। बहुत यत्न से इंग्लैण्ड ने अफ़गानिस्तान को अपने अधीन रूस और हिन्दुस्तान के बीच 'बफ़रस्टेट' बना रखा था। 'बफ़रस्टेट' का अर्थ और कुछ नहीं है, बस वह दो लड़ाकू राष्ट्रों के बीच दोनों के लिए ढाल का काम करता है, स्वयं अपने ऊपर चोट खाकर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों को चोट खाने से बचाता है। इसी प्रकार दो स्वार्थ-लोलुप साम्राज्यवादी राष्ट्रों के बीच बेचारा अफ़गानिस्तान नाहक चोट खाता था। इंग्लैण्ड और रूस का परस्पर अविश्वास दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया। जब तक जर्मनों की प्रबल प्रतिद्वन्द्विता का पूर्ण आभास इंग्लैण्ड को नहीं मिल गया, तब तक वह रूस से दुश्मनी करता रहा; परन्तु जर्मन प्रतिद्वन्द्विता का भय ज्यों-ज्यों बढ़ता गया जर्मनी के बर्लिन-बसरा-बग़दाद रेलवे बनाने की योजना से इंग्लैण्ड को रूस से भी अधिक भय जर्मनी का होने लगा। जर्मनी के बर्लिन-बसरा बग़दाद रेलवे बनाने के विचार और यूरोप में जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और इटली के त्रिगुट्ट (Triple Alliance) ने इंग्लैण्ड को रूस से अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने को मजबूर किया, और फ्रान्स के बीच में पड़ने से इंग्लैण्ड, फ्रान्स और रूस का एक गुट्ट ('आतौंत') सन् १९०५ ई० में हो गया। 'आतौंत' 'ट्रिपुल एलायन्स' का जवाब था।

जब से 'आतौंत' हुआ तब से दोनों का सम्बन्ध कुछ अच्छा रहा। महासमर में रूस ने मित्र-राष्ट्रों का पूरा पूरा साथ दिया। रूस की प्रजा की आर्थिक स्थिति बहुत ख़राब थी, रूस के लिए यह समस्या वर्षों से चली आ रही थी जिसका हल होना बहुत ज़रूरी था, परन्तु युद्ध में फँस जाने से उसका हल होना तो दूर रहा, हालत बदतर होती गई। जनता युद्ध जारी रखने के खिलाफ़ थी, परन्तु उसकी इच्छा की ज़ारशाही ने कुछ भी परवाह नहीं की। फल-स्वरूप जनता में असन्तोष बढ़ता गया और उस ने सन् १९१७ ई० में क्रान्ति का रूप धारण कर लिया। सन् १९०५ ई० के रूस-जापान युद्ध के कारण जिस प्रकार रूस में क्रान्ति हो गई थी, उसी प्रकार इस महासमर के कारण भी रूस में पुनः सन् १९१७ ई० में क्रान्ति हुई; परन्तु पहली क्रान्ति से यह क्रान्ति बहुत भयंकर थी। इस क्रान्ति में न सिर्फ़ ज़ारशाही का ही अन्त हुआ बल्कि रूस के समाज और सरकार का नये प्रकार से संगठन हुआ। रूस

में किसानों और मज़दूरों का सोवियट शासन (पंचायती राज्य) कायम हुआ और 'साम्यवाद' सिद्धान्त के आधार पर समाज का आर्थिक संगठन किया गया। मानव-समाज के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना हुई। कार्ल-मार्क्स के आदर्श मनुष्य-समाज और सरकार के संगठन की कल्पना को सोवियट रूस में व्यावहारिक रूप मिला। मानव-समाज के इतिहास में सचमुच यह पहला ही नवीन परिवर्तन था। वहाँ पर मनुष्य-समाज के दो 'अति' मिले। इतिहास के आदि आदर्श प्रजातंत्र, ग्रीक प्रजातंत्र-शासन में 'नागरिक' के अधिकार सिर्फ़ उनको प्राप्त थे जो 'स्वयं अपने हाथ से कोई कार्य नहीं करते हों, जिनको सदा फ़ुर्सत रहती हो, अर्थात् जो सब काम-काज गुलामों से करवाते हों। इसके बिलकुल विपरीत सोवियट रूस ने नागरिक का अधिकार सिर्फ़ उसको दिया है जो 'अपना सब काम स्वयं करते हैं, नौकरों से * अपना कोई कार्य नहीं कराते हैं।' जो लोग नौकरों से कार्य कराते हैं उनको नागरिक का सामान्य अधिकार भी सोवियट शासन में नहीं प्राप्त है। इन दोनों में सच्चा आदर्श कौन है, इस सवाल से हमको यहाँ कोई मतलब नहीं है। इतना भी लिखने की यहाँ पर इसलिए ज़रूरत पड़ी कि साम्राज्यवादी इंग्लैंड और सोवियट रूस के आज-कल के द्वेष की आत्मा कहाँ है यह ठीक-ठीक मालूम हो सके।

रूस की क्रांति का एक तात्कालिक कारण यह भी था कि रूस की जनता लड़ाई नहीं चाहती थी और ज़ार की सरकार लड़ाई बन्द करना नहीं चाहती थी, इसलिए जब सोवियट-शासन कायम हो गया तब सब से पहले उसने लड़ाई बन्द करने की बात-चीत जारी की। उसने विपक्षी और मित्र-राष्ट्रों से अलग-अलग सन्धि करने की लिखा-पढ़ी शुरू की। मित्र-राष्ट्र इस पर राज़ी नहीं हुए। ट्रोज़की ने ६ दिसम्बर सन् १९१७ ई० को नोट में यह बात साफ़ लिख दी थी कि यदि मित्र-राष्ट्र युद्धावसान (Armistice) करने के लिए तैयार नहीं होंगे तो रूस आगे युद्ध जारी रखने के लिए बाध्य नहीं होगा और वह अकेला ही विपक्षी राष्ट्रों से सन्धि की बात-चीत करेगा। ऐसा ही हुआ भी, मित्र-राष्ट्रों ने रूस की सलाह नहीं मानी और रूस को अकेले ही संधि करनी पड़ी। जिससे उसे बहुत अनुचित और अपमानजनक शर्तों को भी मानना पड़ा। ब्रेस्ट लिटोवस्क में आखिर ३ मार्च सन् १९१८ ई० को संधि-पत्र पर दोनों पक्ष के हस्ताक्षर हो गये, परन्तु इस सन्धि से रूस सन्तुष्ट नहीं था। उसने मजबूरन उस सन्धि को मान लिया था क्योंकि रूस की जनता लड़ाई चाहती नहीं थी और देश के अन्दर ज़ारशाही के पक्षपाती देशद्रोहियों-द्वारा बलवा हो रहा था इसलिए उसने सोचा कि जर्मनी आस्ट्रिया आदि देशों से सन्धि हो जाने पर हमको देश की आन्तरिक अवस्था को सुधारने का मौका मिलेगा। परन्तु इसके बाद उसकी कठिनाई और भी बढ़ गई। रूस के इस कार्य को मित्र-राष्ट्रों ने विश्वासघात समझा। यूरोप के किसी राष्ट्र ने सोवियट रूस से राजनैतिक तो क्या व्यापारिक सम्बन्ध भी रखना अच्छा नहीं समझा और उसके लिए शत्रु-मित्र सब एक-से हो गये। दुनिया के राष्ट्रों में सोवियट रूस 'अछूत' समझा जाने लगा। यह इसलिए नहीं कि उसने महासमर से मुँह मोड़ लिया, यदि ऐसा होता तो मित्र राष्ट्र ही इसके लिए नाराज़ होते, जर्मनी तो न होता परन्तु हुआ तो यह कि चारों ओर से रूस पर हमले हुए और जर्मनी ने भी हमला किया। इसका कारण है सोवियट रूस का 'साम्यवादी' सिद्धान्त। क्रांति के बाद वह 'आर्थिक साम्राज्यवाद' का विरोधी और 'साम्यवाद' का पृष्ठपोषक हो गया। वह चाहता था कि दुनिया-भर में ऊँच-नीच का भेद मिट जाय और 'साम्यवाद' सिद्धान्त के आधार पर शासन-व्यवस्था कायम हो। इसको 'साम्राज्यवादी' राष्ट्र किस प्रकार देख सकते थे? सन्धि के कुछ सप्ताह बाद ही चारों ओर से रूस पर हमले शुरू हो गये। उत्तर में इङ्गलैण्ड ने हमला कर मारकमन्स्क और आर्चेंजल पर दखल कर लिया। साइबेरिया की ओर जापान और अमेरिका बढ़ रहा था; यूक्रेन पर दखल कर जर्मनी काकेशिया की ओर बढ़ रहा था और मित्र-राष्ट्रों

* बीच में ट्रोज़की इत्यादि ने विशेष अवस्था में नौकर रखकर काम कराने ('हायर्ड लेबर') की भी छूट कर दी थी पर स्टालिन ने शुद्ध साम्यवाद के आदर्श की दृष्टि से इसे हटा दिया है।   —संपा०

की सहायता से जल-सेनापति (एडमिरल) कोलचक यूराल की ओर से हमला कर रहा था। इस प्रकार भूखे भेड़िये की तरह एक साथ ही चारों ओर से साम्राज्यवादी राष्ट्र सोवियट रूस पर टूट पड़े। देश में वर्षों के युद्ध के कारण भारी आर्थिक कठिनाइयाँ उपस्थित थीं; फिर भी विरोधी एवं शत्रु-राष्ट्रों द्वारा उसका आर्थिक अवरोध (Blockade) किया गया, यहाँ तक कि दवा और बच्चों के लिए दूध तक आना बन्द कर दिया। सोवियट रूस की शासन-प्रणाली के सम्बन्ध में तरह-तरह के मिथ्या और कपोल-कल्पित बातों को फैलाने का निन्द्य प्रयत्न किया गया। ११ नवम्बर सन् १९१८ ई० को मित्र-राष्ट्र और जर्मनी में युद्धावसान (Armistice) हो गया। युद्धावसान की शर्तों में मित्र-राष्ट्रों ने एक यह शर्त भी रक्खी थी कि रूस के जिन प्रान्तों पर जर्मनी की फौज़ अधिकार किये हुए है उन प्रान्तों से जर्मनी अपनी फौज़ तब तक नहीं हटायेगा जब तक कि उन पर मित्र-राष्ट्रों की फ़ौज न आ जाय। जब वार्साई की सन्धि का प्रारम्भिक आयोजन होने लगा तब यह सवाल उठा कि रूस को इस सन्धि-सम्मेलन में बुलाया जाय या नहीं। राष्ट्रपति विल्सन के सिवा सब मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने रूस को शामिल करने का विरोध किया। यद्यपि राष्ट्रपति विल्सन के प्रसिद्ध 'चतुर्दश नुसख़ों' (Fourteen points) की, जिनको आधार मानकर युद्धावसान किया गया था—छठी धारा में यह भी कहा गया था कि *"रूस के सब अधिकृत स्थान ख़ाली कर दिये जायँगे,* उसको भी आत्म-निर्णय का अधिकार होगा, स्वतन्त्र राष्ट्रों में उसका भी स्वागत किया जायगा और अपनी राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने की पूरी आज़ादी होगी", किन्तु जब सन्धि का समय आया तब मित्र-राष्ट्रों ने रूस को बुलाया तक नहीं, उलटे उसके विरुद्ध अपनी फौज़ें आगे बढ़ानी शुरू कर दीं, सोवियट रूस के विरोधियों को हर प्रकार से मदद की गई। इन सब में इङ्गलैण्ड प्रधान था।

साल भर तक इंग्लैंड ने रूस के विरुद्ध अपनी पूर्ण ताक़त आज़माई। वह समझता था कि रूसी प्रान्तों में परस्पर फूट है, इसलिए उसे दबाना आसान है, परन्तु, उसका अन्दाज़ ग़लत साबित हुआ। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी सोवियट सरकार ने बड़ी तत्परता के साथ इन सब शक्तियों का सामना किया और रूस की जनता ने आदि से अन्त तक बड़ी लगन के साथ सोवियट-सरकार का साथ दिया। जब इंग्लैंड ने देख लिया कि रूस को ऐसा दबा देना कि फिर वह कभी अपना सिर ऊँचा न कर सके, आसान नहीं है तब लायड जार्ज की सरकार को रूस से किसी प्रकार समझौता कर लेने की ज़रूरत महसूस हुई और सन् १९२० ई० के आरम्भ से ही समझौते की बातचीत शुरू कर दी गई। परन्तु लायड जार्ज की रूस-संबंधी नीति रूस में होनेवाली लड़ाई के रुख के मुताबिक बदलती रहती थी। जब रूस में 'लालपल्टन' की विजय होने की ख़बर आई थी तब लायड जार्ज समझौते के लिए लिखा-पढ़ी का ताँता बाँध देता था और ज्योंही सोवियट-सरकार के हारने की ख़बर आती थी त्योंही लायड जार्ज के समझौते का जोश ठंडा पड़ जाता था और लिखा-पढ़ी बन्द कर दी जाती थी। समझौते की बातचीत भी चलती रहती थी और सोवियट शासन के विरोधी कोलचक, डेनकिन, रैंगल और पोलैण्ड के नेता पिलादुस्की को सोवियट-सरकार के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए धन-जन से सहायता भी दी जाती थी। जब सोवियट-सरकार की ओर से इंग्लैंड की इस दोरंगी नीति का विरोध किया जाता था तब इंग्लैंड इस बात को अस्वीकार कर देता था कि वह रूस के विपक्षियों की मदद करता है। परन्तु जब सोवियट-*सरकार इस बात को साबित कर दिखाती थी कि* इंग्लैण्ड ने डेनकिन, रैंगल, कोलचक, पिलादुस्की आदि सोवियट शासन के विरोधियों को सहायता दी तो इंग्लैण्ड स्वीकार कर लेता और कहता कि अच्छा अब आगे से ऐसा नहीं होगा!

इतने दिनों की लिखा-पढ़ी के बाद मई के अन्त में सोवियट सरकार ने क्रासिन की अध्यक्षता में एक व्यापारिक प्रतिनिधि-मण्डल (Trade Delegation) इंग्लैंड भेजा। क्रासिन दो महीने इंग्लैंड में रहा; इस बीच लायड जार्ज और क्रासिन में बातचीत होती रही। दोनों व्यापारिक समझौता करने के लिए राज़ी हो गये। क्रासिन सोवियट-सरकार की ओर से लायड जार्ज को शर्तें देकर लायड जार्ज

की दी हुई शर्तों के सम्बन्ध में अपनी सरकार की राय जानने के लिए लौट आया। लायड जार्ज ने समझौते की जो शर्तें रक्खी थीं उनमें एक शर्त यह भी थी कि सोवियट सरकार एशिया में—ख़ास कर भारत और अफ़ग़ानिस्तान में—ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आन्दोलन नहीं करेगी। सोवियट-सरकार ने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया। परन्तु इस बीच जून और जुलाई में पोलैण्ड की हार हो गई। सोवियट रूस की 'लाल पल्टन' पोलैण्ड की ओर बढ़ने लगी। अंग्रेज सरकार पोलैण्ड को कभी खुले तौर पर और कभी छुपे-छुपे मदद करती थी। समझौते के ऐन मौके पर लार्ड कर्ज़न ने इंग्लैंड की सरकार की ओर से सोवियट-सरकार के पास एक नोट भेजा जिसमें उसने लिखा कि सोवियट सरकार कुछ दिनों के लिए प्रतिनिधि न भेजे; पोलैण्ड की ओर जो रूसी सेना बढ़ रही है उसे रोक दिया जाय, पोलैण्ड से युद्धावसान हो जाय, रैंगल को क्रीमिया सौंप दिया जाय और इंग्लैण्ड में रूस, पोलैण्ड एवं सीमान्त प्रदेशों की एक कान्फ्रेन्स बुलाई जाय और यदि सोवियट-सरकार ने यह नहीं माना और रूसी फ़ौज पोलैंड की ओर बढ़ने से रोकी नहीं गई तो मित्र-राष्ट्र राष्ट्र-संघ के शर्तनामे के अनुसार पोलैंड को सब प्रकार की सहायता देंगे। ये कैसी अनुचित शर्तें थीं? जब सब साम्राज्यवादी देश मिलकर एक साथ सोवियट रूस पर अकारण आक्रमण (Aggressive attack) कर रहे थे तब राष्ट्र-संघ और अन्तर्राष्ट्रीय नियम को ताक पर रख दिया गया था और जब सोवियट रूस अपने ऊपर हमला करने वाले को हराकर उस पर हमला करने लगा तो उन्हें राष्ट्र-संघ के नियमों का ख़्याल आ गया। इस नोट के जवाब में सोवियट सरकार की ओर से उसके परराष्ट्र-सचिव चिचेरिन ने एक नोट भेजा जिसमें सब से पहले तो उसने इस बात पर क्रोध प्रकट किया कि इंग्लैण्ड तय हुई शर्तों को तोड़ता है। उसने लिखा कि रूस और पोलैण्ड के मामले में हस्तक्षेप करने का इंग्लैंड को कोई अधिकार नहीं है। यदि पोलैंड सीधे रूस से सन्धि करना चाहेगा तो सोवियट सरकार हर वक्त इसके लिए तैयार है और पोलैंड की सीमा के सम्बन्ध में जो शर्तें इंग्लैंड ने रक्खी हैं उससे भी अच्छी और पोलैंड के अनुकूल शर्तें मानने को भी तैयार है, परन्तु इंग्लैंड को जिसने खुद पोलैंड की मदद की है, पंच मानने को सोवियट-सरकार तैयार नहीं है। राष्ट्र-संघ के, जिसमें सोवियट रूस के प्रतिनिधि नहीं हैं, नियम मानने के लिए सोवियट-सरकार बाध्य नहीं है।

आख़िर पोलैण्ड ने सीधे रूस से युद्धावसान के लिए लिखा-पढ़ी शुरू की। युद्धावसान की तैयारी भी हो गई, परन्तु कई कारणों से युद्धावसान हो नहीं सका; युद्धाग्नि और भी प्रज्वलित हो उठी। इंग्लैंड और फ्रांस की सहायता से पोलैंड एक बार फिर मैदान में आया। परन्तु इंग्लैंड को कई कारणों से युद्ध ख़त्म करना पड़ा। देश का व्यापार दिन-दिन गिर रहा था। युद्ध से तंग आकर श्रमजीवी लोग युद्ध के ख़िलाफ़ हो गये थे। युद्ध के ख़िलाफ़ इंग्लैंड के श्रमजीवियों ने आन्दोलन किया, जगह-जगह हड़तालें हुईं। इससे इंग्लैंड को संधि के लिए मजबूर होना पड़ा। १२ अक्तूबर को युद्धावसान हो गया और पोलैंड तथा यूक्रेन के साथ सोवियट रूस की सन्धि हो गई। इस लड़ाई के कारण इंग्लैंड और सोवियट रूस के व्यापारिक समझौते की बातचीत रुक गई थी, अब वह फिर शुरू हुई और मार्च सन १९२१ ई० में वह समझौता भी हो गया। इस समझौते के 'प्रिएम्बुल' में यह कहा गया था कि इंग्लैंड और रूस दोनों के लिए यह वाञ्छनीय है कि अपनी व्यापारिक, व्यवसायिक, राजनैतिक आदि सब प्रकार के उन्नति-क्रम को शान्तिपूर्वक जारी रखने के लिए दोनों देशों की सरकार के साथ एक सामान्य संधि हो परन्तु जब तक सन्धि नहीं होती तब तक यह व्यापारिक समझौता किया जाता है। इस समझौते के बाद दोनों देशों में परस्पर व्यापार सम्बन्ध स्थापित हो गया और जो कुछ रुकावटें अबतक व्यापार के रास्ते में थीं, दूर कर दी गईं। यह भी तय हुआ कि किसी देश की सरकार दूसरे देश की सरकार के ख़िलाफ़ किसी प्रकार का प्रचार न स्वयं करेगी, न करनेवालों को सहायता देगी। सोवियट-सरकार एशिया में विशेषतः भारत और स्वतंत्र अफ़ग़ानिस्तान में—ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध किसी प्रकार का प्रचार नहीं करेगी। इस अन्तिम शर्त पर ही समझौता कायम रहने या टूटने का पूरा दारो-

मदार था, परन्तु इसकी कोई गारण्टी नहीं थी। दूसरी बात यह थी कि सोवियट रूस का कोई व्यक्ति या संस्था यदि प्रचार करे तो इसके लिए सोवियट-सरकार ज़िम्मेदार नहीं होगी। इस प्रकार इस समझौते के होने पर भी इंग्लैण्ड की असल मनशा पूरी नहीं होती थी। 'कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल' (जिसके साम्राज्यवाद-विरोधी प्रचार से इंग्लैंड बचना चाहता था) को इस समझौते के बाद भी प्रचार की उतनी ही और वैसी ही सुविधायें रहीं।

बहुत प्रयत्न के बाद मार्च सन् १९२१ई० में इंग्लैंड और सोवियट रूस में एक व्यापारिक समझौता हो गया। इस समझौता के 'प्रिएम्बुल' में जिस सामान्य (जेनरल) सन्धि की बात कही गई थी वह पूरे साल भर तक कागज़ों में ही पड़ी रही। इस समझौते के बाद ही सोवियट रूस पर एक भारी आर्थिक संकट आया—वोल्गा प्रान्त में बड़ा भारी अकाल पड़ा। रूस इस समय आर्थिक संकट में पड़ा था इसलिए जो देश उसकी मदद करता स्वभावतः ही उसके प्रति वह बहुत कृतज्ञ होता। इंग्लैंड के लिए यह एक उपयुक्त मौक़ा था और वह चाहता तो रूस को आर्थिक सहायता देकर उसके साथ व्यापारिक सम्बन्ध सुदृढ़ कर लेता और उसकी नैतिक सहानुभूति प्राप्त कर अपने व्यापार की भी वृद्धि करता। परन्तु इंग्लैंड ने अपनी स्वार्थान्धता के कारण इस मौके से कुछ लाभ नहीं उठाया। यूरोपीय आर्थिक साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने इसको अपने स्वार्थ-साधन का एक अच्छा मौका समझा, सोचा कि रूस से अब सस्ता सौदा पटेगा सोवियट रूस को आर्थिक सहायता देने के प्रश्न पर विचार करने के लिए चटपट 'राष्ट्र-संघ' की कौंसिल बैठी, मित्र-राष्ट्रों ने आर्थिक सहायता देना मंजूर किया परन्तु कुछ शर्तों के साथ। शर्त यह थी कि सोवियट-सरकार उनको कुछ व्यापारिक और राजनैतिक रियायतें और सुविधायें दे और वे उसको आर्थिक सहायता देंगे। परन्तु रूस तो खुद ही काइँयाँ ठहरा, वह भला इन साम्राज्यवादी बगुलों के चंगुल में क्यों फँसने लगा? उसने साफ़ जवाब दिया, भाई, यह सब कुछ नहीं होगा, तुम अपनी मदद अपने घर रक्खो; हमको तुम्हारी मदद की ज़रूरत नहीं है। हाँ, इस मौके पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने प्रशंसनीय व्यवहार किया। उसने सोवियट सरकार से किसी प्रकार की रियायत की माँग न करके यों ही वोल्गा के अकाल-पीड़ितों की ख़ूब मदद की जिससे रूस की जनता के दिल में उसके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इंग्लैंड का, जिसके साथ सोवियट रूस का अस्थायी समझौता हो गया था, ऐसा निकृष्ट व्यवहार उसके काले हृदय को प्रकट करता है। इस प्रकार जबतक 'मुख में राम बग़ल में छुरी' की हालत थी, तब तक उस समझौते का महत्व एक काग़ज़ के टुकड़े से ज़्यादा और हो ही क्या सकता था? वह अस्थायी समझौता भी कई बार टूटते-टूटते बचा। समझौता होने के कुछ ही महीने बाद वे एक-दूसरे की शिकायतें करने लगे कि सन्धि की शर्तें पूरी नहीं की जा रही हैं। सितम्बर में इंग्लैंड की सरकार की ओर से परराष्ट्र-मंत्री लार्ड कर्जन ने सोवियट सरकार के वैदेशिक सचिव शिशेरिन के पास एक कड़ा नोट भेजा जिसमें शिकायत की गई थी कि सन्धि की शर्तों के ख़िलाफ़ सोवियट रूस की ओर से भारत और अफ़ग़ानिस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध प्रचार किया जाता है। प्रमाण के लिए कुछ पत्रों को पेश किया जिसे बर्लिन से कुछ साम्राज्यवादी पिट्ठुओं ने सोवियट-सरकार को बदनाम करने के लिए जालसाज़ी करके प्रकाशित कराया था। सोवियट-सरकार की ओर से शिशेरिन ने जवाब में लिखा कि यह सरासर झूठ है और हमारी सरकार को बदनाम करने के लिए जालसाज़ी की गई है। इस प्रकार की जालसाज़ी आये दिन होती ही रहती है। इस प्रकार एक-दूसरे की शिकायत बार-बार करते रहते थे। इंग्लैण्ड कहता था कि सोवियट-सरकार ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध प्रचार करती है; रूस की शिकायत रहती थी कि इंग्लैण्ड सोवियट-सरकार के ख़िलाफ़ मिथ्या और अनर्गल बातें फैलाने का प्रयत्न करता है। अस्थायी समझौता में जिस सामान्य ('जेनरल') सन्धि की बात कही गई थी, उसकी लिखा-पढ़ी महीनों तक होती रही, परन्तु उस सन्धि के होने न होने का पूरा दारोमदार था ज़ार के समय के पुराने ऋण और युद्ध-ऋण का फ़ैसला हो जाने पर, जिसको सोवियट-सरकार ने देने से इन्कार कर दिया था। व्यर्थ की लिखा-पढ़ी से उलटा विद्वेष बढ़ता था और कभी तो बातें इतनी बढ़ जाती थीं कि

युद्ध की आशंका भी होने लगती थी। परन्तु इसी समय कुछ ऐसी घटनायें हो गईं जिससे थोड़े समय के लिए व्यवहारकटुता में कुछ कमी होने लगी और सन्धि की आशा बढ़ गई। आयर्लैण्ड में स्वतंत्रता का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। पहले तो अंग्रेज़ी सरकार ने उस आन्दोलन को दबाने में अपनी पूरी शक्ति लगाकर देख लिया था कि दबाने से तो वह दबता नहीं तब वह मजबूर होकर आन्दोलन के नेता डि वेलेरा आदि से लिखा-पढ़ी द्वारा मामले को सुलझाने की ओर झुकी। हिन्दुस्तान में भी महात्मा गान्धी के नेतृत्व में स्वराज्य-आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। सविनय अवज्ञा की तैयारी हो रही थी। 'प्रिन्स आफ़ वेल्स' के भारत-भ्रमण में उनका बहिष्कार किया जा रहा था। ऐसे नाज़ुक समय में इंग्लैण्ड के लिए सोवियट रूस से झगड़ा मोल लेना अच्छा न होता। इस प्रकार एक ओर जहाँ इंग्लैंड सोवियट-सरकार से अच्छा सलूक करने के लिए मजबूर हो रहा था तहाँ दूसरी ओर सोवियट रूस की 'नवीन आर्थिक नीति' से यह आशा भी होने लगी थी कि उसके साथ यदि पूंजीवादी देशों की सरकारें अच्छा बर्ताव करने लगेंगी तो कुछ दिनों में वह भी पूंजीवादी हो जायगा। सोवियट-सरकार ने देश के सम्पूर्ण व्यवसाय को अपने हाथ में ले लिया था; ज़मीन किसानों में बांट दी थी और पूंजीवाद को बिल्कुल ही उखाड़ फेंकने का आयोजन किया था। इस प्रकार एक नवीन प्रकार का आर्थिक संगठन करने का यत्न किया था। किन्तु घरेलू युद्ध के कारण पूर्णतः सफल होने के पहले ही उसे अपनी नीति कुछ ढीली करनी पड़ी। घरेलू युद्ध के कारण फैक्टरियाँ अस्त्र-शस्त्र बनाने में लगी हुई थीं इसलिए उनसे कुछ लाभ नहीं हो रहा था। किसान लोग जो अनाज पैदा करते थे उसमें से खाने-पीने के बाद जो कुछ बचता था वह सरकार ले लेती थी और उससे फैक्टरियों के मज़दूरों का पालन-पोषण किया जाता था। इससे किसानों में असन्तोष बढ़ा। वे व्यावसायिक श्रमिकों को अपने ऊपर बोझ समझने लगे। उन्हें यह बहुत अखरने लगा कि उपजावें हम और खावें शहरों के मज़दूर। उन्होंने जगह-जगह बलवा किया। इस संकट से बचने के लिए सोवियट सरकार को अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करना पड़ा और एक सीमा तक सोवियट-सरकार ने लोगों को कुछ व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने और ख़ानगी रोज़गार करने की इजाज़त दे दी, परन्तु सभी मुख्य और बड़ी मात्रा पर चलनेवाले व्यवसायों को अपने हाथ में ही रक्खा। इसी को सोवियट-सरकार की 'नवीन आर्थिक नीति' कहते हैं। इसी नीति के कारण पूंजीवादी राष्ट्रों को यह आशा हुई थी कि भविष्य में सोवियट रूस भी पूंजीवादी हो जायगा। फिर क्या? साम्यवाद का भूत उतर जायगा। इसलिए जनवरी १९२२ में केन्स में मित्र राष्ट्रों की सुप्रीम कौंसिल की एक बैठक हुई। इसमें ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने एक प्रस्ताव पेश किया जिसका मतलब यह था कि दो महीने के अन्दर एक कान्फ्रेंस बुलाई जाय, जिसमें यूरोप के सभी राष्ट्रों, और शेष दुनिया के प्रधान राष्ट्रों, के प्रतिनिधि बुलाये जायँ। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियट रूस को ख़ास तौर पर बुलाने का विचार हुआ। इस कान्फ्रेंस में क्या-क्या होगा और किन सिद्धान्तों के आधार पर होगा यह भी संक्षेप में कह दिया गया। तदनुसार सब को निमन्त्रण भेजा गया। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ने यूरोपीय मामलों में पड़ने से साफ़ इन्कार कर दिया। सोवियट रूस ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मार्च सन् १९२२ में जेनेवा में कान्फ्रेन्स बैठी। सबसे पहले मित्र-राष्ट्रों ने पुराने ऋण की, जिसे सोवियट-सरकार ने देने से इन्कार कर दिया था, मांग पेश की। सोवियट-सरकार के प्रतिनिधि ने कहा—भाई, महासमर में हमारी सरकार तुम्हारे साथ थी। जैसे तुम लोगों ने युद्ध में अपना धन जन लगाया वैसे ही रूस की सरकार ने भी अपना धन-जन लगाया। तुम लोगों ने तो बदले में दुनिया भर के उपनिवेशों को बाँट लिया, कितने ही मेण्डेटरी राज्य क़ायम कर लिये; जर्मनी से हरजाना वसूल किया पर मुझे तुम लोगों ने क्या दिया? इसलिए युद्ध-ऋण का तो सवाल ही नहीं उठता। रह गई दूसरे प्रकार के ऋण की बात सो यदि तुम लोग हमारी पांच अरब पौण्ड की हानि भर दो, जो तुम्हारे हमारे घरेलू मामलों में अनुचित हस्तक्षेप करने के कारण हुई है तो हमारी सरकार भी तुम्हारे ऋण अदा कर देगी। सोवियट सरकार के प्रतिनिधि ने उस ५ अरब पौण्ड के नुकसान का ब्यौरेवार हिसाब-किताब लगाकर दिखा दिया और कहा कि

यद्यपि हमारा ही पावना ज़्यादा होता है फिर भी हम कहते हैं; जाने दो लेना-देना सब रफ़ा-दफ़ा। मित्र राष्ट्रों को इसका कोई जवाब नहीं सूझा; बेचारे छक गये। आख़िर कुछ भी तय नहीं हो सका। कान्फ्रेन्स बच्चों का खिलवाड़ हो गई। सिर्फ़ शर्म छिपाने के लिए और क़ायदे के साथ कान्फ्रेन्स समाप्त करने के ख्याल से विशेषज्ञों की एक कमेटी इस प्रश्न पर तफ़सील के साथ विचार करने के लिए कायम कर कान्फ्रेन्स समाप्त कर दी गई। जून मास में फिर हेग में उक्त कमिटी की बैठक हुई, परन्तु वहाँ भी कुछ तय नहीं हो पाया और उसका भी उसी प्रकार अन्त हो गया। इस प्रकार जेनेवा और हेग की कान्फ्रेन्सों का अन्त हुआ।

जेनेवा और हेग-कान्फ्रेन्स की असफलता से आपस का व्यवहार और भी ख़राब हो गया। इंग्लैंड सोवियट रूस को नीचा दिखाने के घात में था। वह मौका लुसान कान्फ्रेंस में मिला। यह कान्फ्रेंस टर्की और मित्रराष्ट्रों के युद्ध की समाप्ति पर हुई थी। सोवियट रूस का काला सागर में बहुत अधिक हिताहित था। इसलिए रूस का स्वार्थ इस कान्फ्रेंस में किसी से भी कम नहीं था; पर मित्र-राष्ट्रों ने सोवियट रूस के प्रतिनिधि को इस कान्फ्रेंस में हिस्सा नहीं लेने दिया। सोवियट रूस का प्रतिनिधि वोरोवस्की इस कान्फ्रेंस में दर्शक की तौर पर उपस्थित था। उसकी वहीं हत्या हो गई। सोवियट-सरकार ने इस कार्य को मित्र राष्ट्रों का षड्यंत्र समझा। इस प्रकार इस कान्फ्रेंस में सोवियट रूस बुरी तरह अपमानित हुआ। पर बेचारा लाचार था; जी-मसोसकर रह गया। इसी समय १९२२ ई० के आख़ीर में, लायड जार्ज की सरकार का अन्त हो गया और श्री बोनरला की अनुदार सरकार के हाथ में इंग्लैण्ड के शासन की बागडोर आ गई। बोनरला की अनुदार सरकार के स्थापित होते ही सोवियट रूस के प्रति इंग्लैण्ड का व्यवहार और भी कटु हो गया। इंग्लैण्ड की ओर से बार बार कठोर भाषा में स्मरण-पत्र भेजे जाने लगे। बोनरला की सरकार ने कई नवीन माँगें पेश कीं जिनमें से एक यह भी थी कि काबुल और तेहरान से सोवियट रूस के प्रतिनिधि वापिस बुला लिये जाँय। ये माँगें लड़ाई की धमकी के साथ भेजी गई थीं। नोट की भाषा भी बहुत कटु थी। किसी भी स्वाभिमानी देश के लिए इन अपमानजनक माँगों का मंजूर करना संभव न था। पर सोवियट रूस लड़ाई के लिए तैयार न था, इसलिए उसने प्रतिनिधियों के वापिस बुलाने की शर्त को छोड़कर प्रायः सभी मुख्य-मुख्य शर्तों को स्वीकार कर लिया। इस तरह लड़ाई तो टल गई, पर कोई बात निश्चित रूप से तय न हो सकी और आपस के व्यवहार में रूखापन ज्यों का त्यों बना रहा। उधर फ्रान्स के रूस पर आक्रमण करने के कारण यूरोप के राष्ट्रों का सम्बन्ध डाँवाडोल हो रहा था इसलिए इस समय सोवियट रूस से लड़ना इंगलैंड के हक में अच्छा न होता। इतने ही में सन् १९२३ ई० में इंगलैंड में मज़दूर-सरकार की स्थापना हो गई। इंगलैंड की मज़दूर-सरकार ने आते ही पहली फ़रवरी को एक नोट भेजकर सोवियट-सरकार को स्वीकार कर लिया और अगले एप्रिल में सन् १९२१ ई० के अस्थायी समझौता के विधान के अनुसार एक सामान्य (जनरल) सन्धि के लिए दोनों देशों की एक कान्फ्रेंस इंगलैंड में करने की स्वीकृति का प्रस्ताव भी किया। इंग्लैंड के बाद कुछ ही महीनों के भीतर इटली, नार्वे, आस्ट्रिया, ग्रीस, बैंजिग, स्वीडन, डेनमार्क, मेक्सिको, हंगरी, फ्रान्स आदि लगभग एक दर्जन देशों की सरकारों ने सोवियट-सरकार को स्वीकार कर लिया। इससे पता चलता है कि सोवियट सरकार को 'अछूत' बनाये रखने में इंग्लैण्ड का कितना हाथ था और अब भी है। प्रधान मन्त्री श्री रैमसे मैकडानल्ड की प्रस्तावित कान्फ्रेन्स एप्रिल सन् १९२४ से शुरू हुई और ४ महीने तक चलती रही। इसमें भी वही 'ऋण' वाला पुराना प्रश्न था जो हल नहीं हो रहा था। बहुत वाद-विवाद के बाद आपस का झगड़ा बहुत-कुछ तय हो गया। अगस्त सन् १९२४ ई० के आरम्भ में दो सन्धि-पत्रों पर हस्ताक्षर होगये; एक सामान्य सन्धि और दूसरी व्यापारिक। 'ऋण' वाले मामले के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि इसके लिए अलग एक तीसरी सन्धि पीछे कभी होगी। श्रीरैमसे मैकडानल्ड इस सन्धि पर पार्लमेण्ट की स्वीकृति चाहते थे। अनुदार और उदार दलवाले इस सन्धि के विरुद्ध थे और दोनों दल की सम्मिलित शक्ति मज़दूर दल से ज़्यादा थी। परन्तु इसके पेश होने की नौबत ही

नहीं आई कि एक घरेलू प्रश्न पर मज़दूर-सरकार की हार हो गई। नियमानुसार फिर से चुनाव हुआ। इस चुनाव के ठीक दो दिन पहले 'थर्ड इण्टरनेशनल' के अध्यक्ष जिनोव्हिफ़ के हस्ताक्षर का मज़दूर-दल के नाम से एक पत्र जालसाज़ी करके प्रकाशित किया गया। इसका उद्देश्य यह था कि इंगलैण्ड के मज़दूर-दल का सम्बन्ध 'कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल' से सिद्ध करके उसे बदनाम कर दिया जाय। वही हुआ भी। चुनाव में मज़दूर-दल हार गया और फिर से अनुदार दल का अधिकार हुआ। यह दल सोवियट रूस के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के पक्ष में न था। ब्रिटेन के परराष्ट्र-सचिव श्री आस्टेन चेम्बरलेन ने यह बात स्पष्ट कर दी कि सोवियट रूस के साथ सन्धि की बातचीत नहीं होगी।

इधर सोवियट रूस की एशिया-सम्बन्धी नीति में आशातीत सफलता हो रही थी। यूरोप के राष्ट्रों ने जब सोवियट रूस के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रक्खा तब उसने एशिया की ओर अपनी दृष्टि डाली। सन् १९२१ ई० में उसने फ़ारस, तुर्की, अफ़गानिस्तान, और बुखारा से सन्धियाँ कीं जिनके अनुसार सोवियट रूस ने ज़ार के समय के वे सब सुलहनामे, जिनके द्वारा रूस ने इन देशों में तरह-तरह के अधिकार प्राप्त किये थे, रद्द कर दिये गये। सन् १९२० ई० में ही सोवियट-सरकार ने चीन में ज़ार की सरकार-द्वारा प्राप्त किये हुए सब अधिकारों को बिना किसी प्रकार का मुआवज़ा लिये ही छोड़ देने की घोषणा की थी। उस प्रतिज्ञा को सोवियट-सरकार ने सन् १९२४ ई० की सन्धि-द्वारा पूरा कर दिया और उन सब अधिकारों को त्याग दिया जो उसे चीन में प्राप्त थे। चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि इसका प्रबंध दोनों के हाथ में रहेगा। सोवियट रूस ने चीन के साथ समानता का बर्ताव किया और सब से पहले उसने चीन में अपना राजदूत नियत किया। चीन की राष्ट्रीय सरकार को विदेशियों के विरुद्ध हर तरह सहायता पहुँचाई। इन सब बातों से चीन में सोवियट रूस का खूब प्रभाव जम गया। चीन की सन्धि के छः महीने बाद ही सन् १९२५ ई० में सोवियट रूस ने साम्राज्यवादी जापान के साथ सन्धि कर ली। जापान के साथ मित्रता को मज़बूत बनाने के लिए उसने अपने देश में उसे कई व्यापारिक रियायतें भी दीं। इस प्रकार एशिया में इस समय तक सोवियट रूस का प्रभाव खूब बढ़ चुका था और दिन-दिन नई-नई सन्धियों-द्वारा बढ़ता ही जाता था। सोवियट रूस ने अपने सद्व्यवहार से एशिया के प्रत्येक देश की नैतिक सहानुभूति प्राप्त कर ली। दूसरी ओर इङ्गलैण्ड का प्रभाव एशिया के देशों में बिलकुल कम हो गया और किसी भी देश की नैतिक सहानुभूति उसके साथ नहीं रही।

चीन और भारतवर्ष में ब्रिटेन के खिलाफ़ आन्दोलन हो रहा था। उधर यूरोपीय राष्ट्रों ने जर्मनी को इस प्रकार दबा दिया था कि उसका ध्यान सोवियट रूस की ओर होना स्वाभाविक ही था। जेनेवा कान्फ्रेंस में सोवियट रूस और मित्र-राष्ट्रों की सन्धि नहीं हो सकी, परन्तु जर्मनी ने इस मौक़े से लाभ उठाया और सोवियट रूस से 'रैपेलो' में सन्धि कर ली। इस सन्धि से दोनों का राजनैतिक और व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था; दोनों के राजदूत एक-दूसरे के देश में रहने लगे थे, दोनों में परस्पर व्यापार होता था और जो कुछ पुराना लेन-देन बाकी था सब ख़ारिज कर दिया गया था। बीच में किसी विशेष घटना के कारण एक बार कुछ दिनों के लिए परस्पर का व्यापार रुक गया। परन्तु शीघ्र ही एक व्यापारिक समझौता-द्वारा फिर से व्यापार-सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार सोवियट रूस, जर्मनी, चीन और जापान के एक गुट बनने की सम्भावना से इंग्लैण्ड बहुत घबरा गया था और वह सदा इस बात की कोशिश करता था कि जर्मनी सोवियट रूस का साथ किसी प्रकार छोड़ दे। लोकार्नो की कान्फ्रेंस का भी यह एक प्रधान उद्देश्य था। लोकार्नो की कान्फ्रेंस से ऐसा समझा जाने लगा था कि राष्ट्र-संघ की अगली बैठक में जर्मनी को राष्ट्र-संघ में प्रवेश की आज्ञा मिल जायगी तथा राष्ट्र-संघ की कौंसिल में भी उसको एक स्थान दिया जायगा, तब जर्मनी सोवियट रूस का साथ छोड़ देगा। परन्तु मार्च सन १९२६ ई० में जब जेनेवा में राष्ट्र-संघ की बैठक हुई तो जर्मनी को राष्ट्र-संघ में लिया जाय या नहीं यह सवाल पेश हुआ। सब देश के प्रतिनिधियों ने जर्मनी

को राष्ट्र-संघ में लेने का समर्थन किया, सिर्फ़ एक ब्रेज़ील के प्रतिनिधि ने विरोध किया। अनेक प्रकार के दबाव डाले जाने पर भी ब्रेज़ील का प्रतिनिधि अपनी बात पर क़ायम रहा और अन्त में राष्ट्र-संघ के नियमानुसार सबकी इच्छा के विरुद्ध ब्रेज़ील का विरोध सफल हुआ और जर्मनी राष्ट्र-संघ में नहीं लिया गया। लोकार्नो कान्फ्रेंस के रुख से सोवियट रूस समझ गया कि मित्र-राष्ट्र उसको पूर्ण रूप से दबाना चाहते हैं; इसलिए उसने अपनी रक्षा के लिए दिसम्बर सन् १९२५ ई० में टर्की के साथ और सन् १९२६ ई० में जर्मनी और अफ़ग़ानिस्तान के साथ सन्धियाँ कीं जिसके द्वारा उन्होंने आपस में यह निश्चय किया कि वे एक-दूसरे के ख़िलाफ़ हथियार नहीं उठावेंगे और यदि कोई तीसरी शक्ति उनमें से किसी पर आक्रमण करेगी तो वे उदासीन रहेंगे और उनमें से कोई किसी ऐसे संघ में शामिल न होगा जिसका उद्देश्य उनमें से किसी के विरुद्ध आर्थिक अवरोध करना हो।

सन् १९२६ ई० में इंग्लैंड में कोयले की खानों के मज़दूरों ने एक बहुत भारी हड़ताल की। इनके साथ सहानुभूति दिखाने के लिए अन्य श्रमजीवियों ने भी हड़ताल कर दी। इससे बड़ी हड़ताल इंगलैंड में कभी नहीं हुई थी। यह हड़ताल सात महीने तक जारी रही। सोवियट रूस के ट्रेड-यूनियन ने धन की सहायता भेजी, परन्तु ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने उसकी सहायता लेना अस्वीकार कर दिया। इंगलैंड की ओर से एक नोट द्वारा सोवियट-सरकार को इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया। सोवियट रूस ने जवाब दिया कि यह सहायता हमारी सरकार की ओर से नहीं दी गई है, ट्रेड यूनियन ने यह सहायता दी है और हमारी सरकार इसको उचित नहीं समझती कि वह किसी व्यक्ति या संस्था को उसके इस साधारण नागरिक अधिकार से (कि वह अपने वर्ग के लोगों की आर्थिक आपत्तिकाल में अर्थ से कुछ मदद कर सकता है) वंचित रक्खे। यह हड़ताल तो पीछे समाप्त हो गई किन्तु खानों के मज़दूरों की हड़ताल बहुत दिनों तक चलती रही। जब मज़दूरों की हालत बहुत ख़राब हो गई तब उन्होंने सहायता के लिए अपील की और सोवियट रूस की ट्रेड यूनियन ने दस लाख पौंड की सहायता दी। उधर चीन में राष्ट्रीय सरकार को सफलता हो रही थी। ब्रिटिश मंत्रि-मंडल का ख़्याल था कि इसके लिए भी सोवियट रूस ही ज़िम्मेदार है। फ़रवरी सन् १९२७ में इंगलैंड ने सोवियट-सरकार के पास एक नोट भेजा जिसमें लिखा कि सोवियट-सरकार समझौता के विरुद्ध प्रचार करती है और यह भी शिकायत की कि सोवियट रूस के समाचार-पत्र इंगलैंड सरकार के ख़िलाफ़ लेख छापते और कार्टून निकालते हैं। इसके जवाब में सोवियट-सरकार ने लार्ड बर्केनहेड और श्री आस्टेन चेम्बरलेन के व्याख्यान में आये हुए सोवियट सरकार के विरुद्ध अनुचित और कठोर वाक्यों का हवाला देकर एक लंबा विवरण भेजा। इस प्रकार के सवाल जवाब से दोनों का सम्बन्ध अच्छा होने के बजाय दिन-दिन ख़राब ही होता जा रहा था। दोनों का यह पारस्परिक विद्वेष 'आर्कस हाउस' के हमले से चरम सीमा पर पहुँच गया। इंग्लैंड में सोवियट रूस के व्यापारिक प्रतिनिधि के मकान पर पुलिस के एक दल ने हमला कर दिया। यह सन् १९२१ ई० के व्यापारिक समझौता के ख़िलाफ़ था और यों भी अन्तर्राष्ट्रीय नीति की दृष्टि से एक बड़ा अपराध था। इसके दो ही जवाब हो भी सकते थे, या तो इंग्लैंड पुलिस के इस कार्य का प्रतीकार करता और पुलिस अफ़सर को दण्ड देता या व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद कर लेता। इंग्लैंड ने मई सन् १९२७ ई० में एक नोट द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध के विच्छेद की घोषणा कर दी। जब अगले जून मास में राष्ट्र-संघ की बैठक हुई तब उसमें इंग्लैंड ने इस बात की कोशिश की कि फ्रान्स और जर्मनी भी इस विषय में उसका साथ दें किन्तु इन देशों के मंत्रियों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया, इसलिए इंग्लैण्ड को विवश होकर यह सूचित करना पड़ा कि उसकी मंशा सोवियट रूस से लड़ने की नहीं है। परन्तु यूरोप के राष्ट्र यह समझते थे कि दोनों में शीघ्र ही लड़ाई होगी। लड़ाई के काले बादल का चिन्ह इस समय दिखाई पड़ने लगा था, किन्तु इंग्लैंड अकेला ही इस ख़तरे में पड़ने को तैयार नहीं था।

इस प्रकार मई सन् १९२७ ई० से इंग्लैंड और सोवियट रूस का व्यापारिक सम्बन्ध भी टूट गया। इस बार जब से इंग्लैंड में श्री रैमसे मेकडानाल्ड की मज़दूर-सरकार

की स्थापना हुई तभी से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने की बातचीत चल रही थी। एक बार सितम्बर के शुरू में बातचीत बन्द भी हो गई क्योंकि ब्रिटेन के वैदेशिक सचिव श्री हेंडर्सन का कहना था कि पहले ऋण वाला मामला तय हो जाय तब अन्य बातों पर विचार होगा और सोवियट रूस का प्रतिनिधि डोगेलवस्की कहता था कि पहले दोनों देशों के राजदूत रखे जायँ फिर पीछे यह सब बातें तय होती रहेंगी। फिर अक्तूबर में बातचीत शुरू हुई और एक प्रारम्भिक समझौते की शर्तें बहुत वाद-विवाद के बाद तय हो गईं। इसके अनुसार यह तय हुआ कि सोवियट रूस के राजदूत इंग्लैण्ड में और इंग्लैण्ड के राजदूत रूस में जब नियत हो जायंगे तब 'ऋण' के सम्बन्ध में बातचीत होगी और कोई देश दूसरे के विरुद्ध प्रचार नहीं करेगा। प्रारम्भिक समझौते को ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने भी कुछ वाद-विवाद के बाद स्वीकार कर लिया है। राजदूतों की नियुक्ति भी हो गई है। इस प्रकार अब परिस्थिति कुछ सुधर चली है परन्तु इसमें कहाँ तक सफलता होगी यह इंग्लैंड और सोवियट रूस के सम्बन्ध का पिछला दस वर्ष का इतिहास देखते हुए अभी कहा नहीं जा सकता। इन दोनों देशों के सम्बन्ध का इतिहास बार-बार समझौता करने और तोड़ने की घटनाओं से भरा हुआ है। क्योंकि दो बातें ऐसी हैं जिनका फ़ैसला तब तक नहीं हो सकता जब तक कि दोनों देशों के लिए समझौता कर लेना नितान्त आवश्यक न हो जाय। ब्रिटेन चाहता है कि सोवियट रूस ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ प्रचार न करे और सोवियट-सरकार इस बात को मान भी लेती है परन्तु तब भी इंग्लैंड की मंशा पूरी नहीं होती क्योंकि 'साम्यवाद' की एक विचार-धारा, जो प्रवाहित हो गई है, का प्रचार तो होगा ही। सोवियट सरकार प्रचार नहीं करेगी किन्तु अन्य व्यक्ति या संस्थायें भी प्रचार नहीं करेंगी, इसे निश्चयपूर्वक कैसे कहा जा सकता है? और जब ऐसा प्रचार होता है तो इंग्लैण्ड यह समझता है कि इसके पीछे अवश्य सोवियट-सरकार का कुछ हाथ है। क्योंकि सोवियट-सरकार 'साम्यवादी' है। इस प्रकार इंग्लैंड की यह शिकायत तब तक दूर नहीं हो सकती जबतक इंग्लैंड साम्यवादी न हो जाय या सोवियट रूस ही पूँजीवादी न हो जाय। रह गई पुराने 'ऋण' की बात, सो जब तक सोवियट रूस उसे चुका देने का वादा नहीं करेगा तब तक स्थायी समझौता हो नहीं सकेगा और यदि हो भी जाय तो इतना ऋण सोवियट रूस इस हालत में, जिसमें वह अभी है, चुका नहीं सकेगा। और जब तक ऋण चुकाने का वादा सोवियट रूस नहीं करेगा तब तक उसको इंग्लैंड से और ऋण नहीं मिलेगा जो सोवियट रूस का इंग्लैंड के साथ सन्धि करने का एकमात्र प्रधान उद्देश्य है। सोवियट रूस को अपने व्यवसाय को उन्नत करने के लिए पूँजी की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जिसके लिए वह संधि करना चाहता है। सोवियट रूस की ओर यही एक बात है जिससे आशा हो सकती है कि सन्धि की शर्तें तय हो सकेंगी। दूसरी ओर इंग्लैंड के उन्नत व्यवसाय से सोवियट रूस में लाभ उठाने का एक बड़ा भारी क्षेत्र है। सोवियट रूस कृषि-प्रधान देश है। वहां इंग्लैंड के तैयार माल की खपत का बड़ा भारी क्षेत्र है और वहाँ से कच्चा माल भी मिल सकता है। इस व्यापारिक लाभ की आशा से इंग्लैंड भी यह महसूस करने लगा है कि सोवियट रूस के साथ कोई समझौता होना चाहिए। जब सोवियट रूस के साथ व्यापारिक समझौते के अनुसार व्यापार होता था तो सन् १९२५ ई० में सोवियट रूस के साथ १९००००० पौंड का वार्षिक व्यापार हुआ था। वही सन् १९२८ ई० में घटकर ८०००० पौंड हो गया। इसके विपरीत जर्मनी का सोवियट रूस के साथ सन् १९२५ ई० का १२५००००० पौंड का व्यापार बढ़कर सन् १९२८ ई० में २०००००००० पौंड हो गया। इंग्लैंड का व्यापार घटकर एक चौथाई से भी कम रह गया और जर्मनी का ७५ लाख पौण्ड का व्यापार बढ़ गया। इस प्रकार इंग्लैंड और सोवियट रूस की संधि दोनों ही के लिए वांछनीय है। अस्थायी समझौता तो हो गया है, परन्तु इसमें सफलता कहां तक होगी यह अभी भविष्य की गोद में है।

'तस्मात् मह्यं मे नमः'

[श्री 'वनवासी']

मैं—गुरुदेव, मेरा पहला चित्र बिगड़ गया है। कितना विकृत है ?

वे—फिर !

मैं—तोड़ डालता हूँ, दूसरा बनाता हूँ।

वे—अरे, पहली आशायें कभी भी संभावनाओं पर बैठकर नहीं आईं।

मैं—परन्तु तस्वीर में जो मेरी आत्मीयता है ?

वे—क्या तेरी आत्मीयता की दुनिया में उषः काल आया ही नहीं ? केवल प्रभात ही आया यह लिख देना है ?

मैं—मेरे लिए दूसरा चारा क्या है ? कौन-सी सेहत है ?

वे—चारा है कि रंग अभी सूखे नहीं हैं और कलम हाथ में है। सेहत है कि कागज अभी शेष है। लोग एक अन्तिम तस्वीर बनाकर भी अमर हो लेते हैं। तेरी तो अभी पुस्तिका खाली पड़ी है।

मैं—लोग जो हँसेंगे ?

वे—वे पहले चित्र को देखकर तुझ पर हँसेंगे। दूसरे चित्रों को देखकर अपने आप पर ! उस समय भूल का मूल्य चुकाकर भी बलि के स्वाद की अनन्त राशि तेरे पल्ले पड़ी रह जायगी।

मैं—मेरे मास्टर ! मेरी मूर्खता के प्रदर्शन में तुम किस सुख का अनुभव करते हो ?

वे—मेरे जीवन के श्राप ! तुम्हें वरदान बनाकर रखना चाहता हूँ।

मैं—यह क्या गंदा चित्र जिन्दा रखकर होगा ?

वे—हां, दूसरा चित्र जीवन की कला का मन्दिर होगा तो इस पहले चित्र को उसकी सीढ़ी कहलाने का गौरव प्राप्त होगा। लोगों को मस्तक रखने के लिए मन्दिर प्रदान करोगे; परन्तु चरण रखकर वहाँ तक आने के लिए ?

मैं—इस चित्र को नष्ट कर दूं तो ?

वे—तो तुम कला के हत्यारे के नाम से नेकनाम होगे। और यह तुम में निवास करने वाले चित्रकार की बाल-हत्या होगी।

मैं—तब क्या यह मेरा चित्र कहा जायगा ? हाय !

× × ×

अब मैं चित्र वाले कपड़े पहनता हूँ। व्याघ्राम्बर बिछाता हूँ। पीताम्बर ओढ़ता हूँ। चहकती हुई चिड़ियों, फूले हुए वृक्षों, बोलते हुए झरनों की आराधना करता हूँ। खाने के पकवानों पर, बजाने के मृदंग पर और कान उमेठने की वीणा पर मुझे मेरे मास्टर की तस्वीर लिखी दीखती है। दौड़ने, खेलने, रोने, गाने, मरने, मारने और मिटने, मिटाने के समस्त क्षेत्रों में मेरे मास्टर ! एक नया चित्र बनकर मेरी कलम के घाट उतरते हुए तुम्हीं दीख पड़ते हो। आह ! जब नीले रंग में चित्रित हरे घास पर बैठी हुई मुक्त हास्यमयी स्वकृत तस्वीर को मैं मस्तक झुकाता हूँ, तब मेरा यत्न होता है कि मेरे मुँह से, 'तुभ्यमेव समर्पितम्' निकले। किन्तु ज्योंही मैं इस बात की परवा करने में उलझता हूँ कि कहीं मेरे आँसू टपककर तुम्हारे चित्रित नाखून की लालिमा न धो डालें त्योंही मेरी जबान से बेइख्तियार निकल पड़ता है:—

"तस्मात् मह्यं मे नमः"।

किन्तु देव, यह ध्वनि तुम्हारी होती है, मेरी नहीं। मेरा कण्ठ तो केवल तुम्हारी ध्वनि को ध्वनित करने के काम पर आता है।

अनयना

कहानी

श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' बी० ए०

पहले चाहे वह जो कुछ भी रही हो, आज राह की भिखारिन थी। विवाह के कुछ ही दिनों बाद उसके जीवन-देवता चल बसे और उन्हीं के साथ उसके नेत्रों की ज्योति भी भाग गई। उसके लिए अब अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं गया; नैहर-ससुराल दोनों उजड़ गये। ब्राह्मण-बालिका ने हाथ में एक लकड़ी थामी और भिक्षा-वृत्ति का आश्रय लिया।

माघी पूर्णिमा का दिन, प्रातःकाल का समय, कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था और वह 'अनयना', सड़क की बाईं पटरी पर बैठी हुई अपने करुण स्वर में 'कबीर' का एक पद गा रही थी। उसके कपोल आँसुओं से भीग रहे थे, वह तन्मय होकर अपनी स्वर-लहरी के साथ बही जा रही थी। गंगा-स्नान करने वाले कितने ही यात्री, स्त्री-पुरुष और बच्चे, उसका संगीत सुनकर रो पड़े; उन पुण्य बटोरने वाले पथिकों के हृदय में करुणा की गंगा उमड़ आई। लोग थोड़ी देर तक रुककर गाना सुन लेते, बहुत होता तो एकाध लम्बी उसास खींच कर आँसुओं की दो-चार बूँदें बरसा देते और फिर अपनी राह लेते। ऐसे बहुत ही कम थे जिन्होंने उस अन्धी बालिका के आगे एकाध धेला-पैसा भी फेंका हो। फिर भी उसके आगे फैले हुए एक फटे-पुराने वस्त्र पर थोड़े-से अन्न और ताँबे के टुकड़े पड़े हुए थे।

भीड़ में काम करनेवाले स्वयंसेवकों का मुखिया दीनबन्धु बड़ी तेज़ी के साथ उसी सड़क पर से जा रहा था। करुणा की वह कूक उसके कानों में पड़ी और वह उसी जगह रुक गया। मुग्ध भाव से वह बहुत देर तक वहीं खड़ा-खड़ा आँसू बरसाता रहा और अन्त में अपने ओढ़ने का वस्त्र उतारकर उसके ऊपर डाल दिया। भिखारिन की संगीत-धारा एकाएक रुक गई। उसने उस वस्त्र को टटोलते हुए कहा—

"भगवान् आपका भला करें बाबू! पर आप मुझे यह क्यों दे रहे हैं?"

"और क्या दूँ बहन?" उस युवक ने रुँधे हुए स्वर में पूछा—"इससे तुम्हारा जाड़ा नहीं जायगा?"

"जाड़ा?" उस अन्धी बालिका ने उत्तर दिया—"जिसके पेट में भूख की आग जलती रहती हो उसे जाड़े की क्या परवा बाबूजी? मुझे तो कुछ खाने को मिल जाता तो अच्छा था।"

दीनबन्धु ने जेब से कुछ पैसे निकालकर उसके हाथों पर रख दिये। आँसू पोंछता हुआ वह वहाँ से चला गया। 'अनयना' ने भी अब गाना बन्द कर दिया। अपनी लकड़ी सम्हालकर वह उठ खड़ी हुई और उसी समय उस जगह से चली गई।

[२]

उसी दिन, रात के आठ बजे, दीनबन्धु मेले का काम समाप्त कर लौट रहा था। सहसा उसके कानों में प्रातःकाल वाली संगीत-ध्वनि पड़ी। वह उसी ओर मुड़ गया जहाँ दिन भर भीख माँगने वाले प्राणी रात को विश्राम किया करते हैं। भिखारियों और भिखारिनियों के उस समुदाय के पास पहुँचकर उसने देखा, वह अन्धी बालिका खिचड़ी पका रही है; स्वस्थ भाव से उसी छोटे से चूल्हे के पास बैठी-बैठी गा रही है। उसी भाग्य में हिस्सा बटानेवाली दो-तीन और स्त्रियाँ भी उसके पास ही खा-पीकर पड़ी थीं, और आपस में इधर-उधर की बातें कर रही थीं।

दीनबन्धु चुपचाप उस चूल्हे के पास जा खड़ा हुआ और मुग्ध भाव से उसकी स्वर-सुधा का पान करने लगा। बालिका ने खिचड़ी उतारकर पत्तल पर पसार दी। उसका गाना बन्द हो गया; अब वह ब्यालू की तैयारी में लग गई।

सामने पत्तल रखकर उसने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और आकाश की ओर अपना मुँह करके भक्ति-विगलित स्वर में कहा—"पिता, तू बहुत दयालु है।" इतना कहते-कहते उसकी वाणी आर्द्र हो गई; उन ज्योतिर्हीन आँखों की राह से उसके अन्तर की अमृत-धारा फूट पड़ी। फिर अपने 'अन्न-देव' को प्रणाम करके वह चुपचाप भोजन करने लगी। दीनबन्धु का हृदय करुणा से भर आया था, वह चुपचाप वहाँ से दूर हट गया और बड़ी बेचैनी के साथ सड़क पर टहलने लगा।

भोजन के बाद एक भजन गाकर वह उसी जगह लेट रही।

दीनबन्धु ने पास पहुँचकर देखा, उसके ऊपर उसका दिया हुआ ओढ़ने का वस्त्र नहीं था। उसने विस्मय-विभोर होकर पूछा—"वह वस्त्र क्या तुम सचमुच नहीं ओढ़ सकोगी, बहन?"

भिखारिन चौंककर उठ बैठी और घबराये हुए स्वर में बोली—"कौन? आप? सबेरेवाले बाबूजी?"

"हाँ," दीनबन्धु ने उत्तर दिया—"तुम्हारा वह वस्त्र कहाँ गया, बहन?"

"एक दूसरी भिखारिन को दे दिया भैया! उसे एक ओढ़नेवाले कपड़े की बड़ी ज़रूरत थी. अभागिनी के एक बच्चा हो गया है, उसी को ढकने के लिए" उसने कहा।

"और तुम?"......दीनबन्धु ने आश्चर्य से पूछा।

"मैं?" उसने उत्तर दिया—"मैं इस समय अपनी उस बहिन की थोड़ी सेवा करके बहुत अधिक सुख पा रही हूँ, भैयाजी! इस सुख के दाता आप ही हैं। मैं आपको कभी न भूलूँगी।"

दीनबन्धु विह्वल होकर बोला—"बहन! चलो, तुम मेरी माँ के पास चलो, घर में चलकर रहो। यहाँ अब तुम्हें न रहने दूँगा।"

"भैया!" उसने गद्गद स्वर में जवाब दिया—"मैं अकेली ही नहीं हूँ, मेरी-जैसी आपकी और भी लाखों बहनें हैं। जो सुख आप मुझे दे रहे हैं, इसी में से थोड़ा-थोड़ा सब को बाँट दीजिए। मैं भगवान के घर से जो ले आई हूँ मेरे पास वही रहने दीजिए।"

दीनबन्धु की वाणी मूक हो गई। वह बच्चों की तरह सिसक-सिसककर रोने लगा।

(३)

'अनयना' सड़क की एक पटरी पर तड़प रही थी; उसे हैज़े की बीमारी ने घर दबाया था। जिसका संगीत-स्वर सुनते ही लोग उसके पास स्वयं खिंच आते थे, आज उसीके कराहने की आवाज़ सुनकर लोग उस जगह से दूर भागते हुए नजर आ रहे हैं। संगीत से हमारे एक स्वार्थ की भूख मिटती है इसीलिए उसमें आकर्षण है; 'हाहाकार' हमारे स्वार्थ का बलिदान चाहता है इसीलिए हम उससे दूर भागने की चेष्टा करते हैं। आज उस बालिका के पास न कोई खड़ा था, न कोई रो रहा था।

दीनबन्धु नगर में घूम घूमकर रोगियों की सेवा कर रहा था। संयोगवश वह उसी रास्ते पर आ पहुँचा। उसने भिखारिन को पहचान लिया। पल भर की भी देर न की। उसको अपने कन्धे पर उठाया और घर पहुँचा।

दीनबन्धु के चचा डिप्टी कलक्टर थे। बचपन में ही वह पितृ-विहीन हो गया था। इसलिए चचा की कृपा से ही उसका और उसकी माँ का भरण पोषण हो रहा था, किन्तु इस काम के लिए उसके चचा की कृपा उतनी नहीं खर्च होती थी जितनी उसके पिता की अर्जित सम्पत्ति, जिसके वे स्वामी बन बैठे थे। उसकी चाची का स्वभाव अच्छा नहीं था और उसकी माँ पृथ्वी पर की देवी थी।

दीनबन्धु से वे दोनों प्राणी सदैव असन्तुष्ट रहा करते थे। उसके स्वतंत्र विचारों और लोकोपकारी कार्यों को वे स्वभाव से ही नापसन्द करते, चाहते थे कि वे जैसे चलावें उसी तरह वह चले।

भिखारिन को देखते ही दीनबन्धु की चाची अपने पति प० ज्वालादत्त के पास जाकर क्रोध-कम्पित स्वर में बोली—"देखती हूँ इस छोकरे के कारण तुम कहीं के न रहने पाओगे!"

"क्या हुआ?" डिप्टी कलेक्टर साहब चौंककर बोले।

"और क्या होगा?" उनकी पत्नी ने उत्तर दिया। 'दीनू, न जानें किस मरीज़ औरत को उठा लाया है; माँ बेटा, दोनों उसी की सेवा में लगे हुए हैं। अगर यही सब कर-

वाना हो तो, अलग एक अस्पताल खोल दो। घर में यह सब मुझसे नहीं देखा जायगा।"

ज्वालादत्त जी क्रोध के मारे काँपते हुए बोले—"दोनों को अभी यहाँ से निकाल बाहर करता हूँ, अब इनकी हरकतें नहीं सही जातीं।"

पास पहुँचकर उन्होंने दीनबन्धु से कहा—"तुम्हारे कारण सरकार की तो मुझ पर कड़ी नज़र है ही, अब तुम मुझे समाज और जात-बिरादरी से भी अलग करवाना चाहते हो। समझाते-समझाते मैं हार गया। अब अगर तुम्हें देश-भक्ति और समाज सेवा करने की इच्छा हो तो किसी दूसरी जगह जाकर रहो। अपने घर में मैं यह सब नहीं होने दूँगा।"

दीनबन्धु कुछ कहने ही जा रहा था कि उसकी माँ ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया और अपने देवर से पूछा—"इस घर में रहने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, ज्वाला बाबू?"

"नहीं" ज्वाला बाबू ने उत्तर दिया—"आप अपने देशभक्त बेटे को लेकर जहाँ चाहिए जाकर रहिए। यहाँ अब मैं न रहने दूँगा।"

इसी समय उनकी सहधर्मिणी भी बोल उठी "रहने न दोगे तो बिरादरी से बाहर कैसे किये जाओगे, हाथों में हथकड़ियाँ कैसे पहनोगे?"

दीनबन्धु ने आँखों में क्रोध और अपमान का आँसू भरकर कहा—"माँ! इन्हें अपनी सरकार और अपने समाज के साथ रहने दो। चलो, हम लोग वृक्षों की छाया में रहेंगे, भीख माँगकर खायेंगे पर वहाँ न रहेंगे जहाँ मनुष्यता का अपमान होता हो।"

'अनयना' को सम्हाले दोनों (माँ और बेटा) उस घर से बाहर निकल रहे थे और डिप्टी कलक्टर साहब क्रोध की बेचैनी में न जाने क्या बड़बड़ा रहे थे।

(४)

उष:काल था। दीनबन्धु अपनी माँ सरला, और उस 'अनयना' के साथ मिलकर ईश्वर-भजन में लीन था। तीनों मस्त होकर गा रहे थे। इसी समय वह छोटा-सा 'सेवाश्रम' अनेक सशस्त्र सिपाहियों से घेर लिया गया। शांति और तन्मयता का वह पवित्र वातावरण अशान्त और उन्मत्त हो उठा। उस अन्धी बालिका ने चकपकाकर पूछा—"यह क्या भैया? ईश्वर-भजन में यह विघ्न कैसा?"

इसी समय दीनबन्धु के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गईं और उससे कहा गया—"तुम राज-विद्रोही हो, षड्यन्त्रकारी हो।"

"मैं मनुष्यमात्र का सेवक हूँ" दीनबन्धु ने निर्भयता से कहा। "अपराध और हत्या नहीं करता। चलो, मुझे ले चलो, मैं निर्दोष हूँ।"

अनयना ने घबड़ाकर पूछा "भैया, तुम्हें ये लोग कहाँ ले जा रहे हैं? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"जाना बेटी," सरला ने उसे गले लगाकर कहा "भगवान तुम्हारे भैया की परीक्षा ले रहे हैं। उसे जाने दो, तुम मेरे साथ चलना।"

दीनबन्धु का हृदय उमड़ आया। उसने अधीर होकर कहा—"माँ!"

"छि बेटा!" कहकर सरला ने अपने बेटे को छाती से लगा लिया और बड़े अभिमान के साथ कहा—"तुम्हारे-जैसे युवकों को भी क्या अपने कर्तव्य-पथ पर चलते हुए रोना चाहिए? कठिनाइयों से डरना क्या? जाओ, मेरे दूध की लाज रखना। मर जाना, कर्त्तव्य-पथ से डिगना मत।"

'अनयना' ने अश्रु-गद्गद स्वर में भीख माँगी,—"भैया, मुझे अपने पैरों की धूल देते जाओ।"

पर भैया को देर हो रही थी। बहन को भीख न मिल सकी।

(५)

दीनबन्धु एक राजनैतिक डकैती के अभियोग में फाँसा गया था। न्यायपति के सामने उसके चचा ने उसके चरित्र के सम्बन्ध में अपनी राय प्रकट करते हुए कहा—'यह बहुत ही खतरनाक आदमी है। इस अभियोग के साथ इसका सम्बन्ध हो चाहे न हो, पर इतना मैं अवश्य स्वीकार करूँगा कि वर्तमान शासन-प्रणाली और समाज-व्यवस्था पर इसकी आस्था नहीं है। इन दोनों ही से यह चिढ़ा-सा रहता है, इसीलिए मैंने इससे अपना सारा सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।"

न्यायपति ने उससे पूछा—'इनकी बातें ठीक हैं ?"

"बिल्कुल ठीक !" उसने जवाब दिया।

"तुम इस शासन और समाज से असन्तुष्ट हो ?"

"जिसके पास मनुष्यता है वह इनसे सन्तुष्ट नहीं रह सकता।"

"तुम इन्हें उलटना चाहते हो ?"

"हाँ।"

"हत्या और डकैती करके ? "

"नहीं; सेवा और स्वार्थ त्याग करके।"

'हिंसा में तुम्हारा विश्वास नहीं है ?"

"है, पर मनुष्यता की हिंसा में नहीं; पशु की हिंसा में भी नहीं, पशुता की हिंसा में।"

"तुम्हारा पथ कौन-सा है ?"

"वही जिस पर चलकर लोग भगवान के पास पहुँचते हैं।"

"अपना यह अभियोग तुम अस्वीकार करते हो ?"

"हाँ; यह सरासर झूठा अभियोग है।"

"पर तुम्हारे विरुद्ध अनेक पुष्ट प्रमाण हैं।"

"वे प्रमाण सत्य की हत्या करनेवाले हैं।"

"तुम्हारे चचा भी तुम्हें खतरनाक कहते हैं।"

"यह मेरा दुर्भाग्य है और इस देश का भी जिसने उन्हें उत्पन्न किया।"

"तुम अभियोग को जटिल बनाये जा रहे हो, सीधे-से अपना अपराध मान लो।"

"मान लेता हूँ कि मैं दीन-दुखियों का एक तुच्छ सेवक हूँ; देश के शान्तिमय अहिंसात्मक आन्दोलन में भाग लेता हूँ; और आधुनिक शासन-प्रणाली में यह भारी अपराध है जिसके लिए मुझे प्राण-दण्ड मिलना चाहिए।"

इसके आगे न्यायपति कुछ न बोले। कचहरी उठ गई।

(६)

तीन महीने से अधिक हो गये पर अभियोग का निर्णय नहीं हो सका। दीनबन्धु जेल में अपनी तपस्या के दिन काट रहा था। जेल के कर्मचारी मन ही मन उसका बहुत आदर करते थे। उसकी शांति और गम्भीरता ने उसके हृदय में भी घर कर लिया था। यही कारण था कि वे लोग उससे अनयना को बराबर मिलने दिया करते थे। वह बेचारी अपने साथ सदैव एक फूल लाया करती थी और बड़ी श्रद्धा के साथ उसे भैया के चरणों पर चढ़ा दिया करती थी। यह दृश्य इतना करुणाजनक होता था कि स्वयं जेल के कर्मचारी भी कभी-कभी रूमाल से अपनी आँखें पोछने को विवश हो जाते थे। उनके हृदय में उस अन्धी बालिका ने एक जगह कर ली, एक अध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि कर दी, और वे लोग उसे मन ही मन बहुत ऊँची दृष्टि से देखने लगे।

इसी समय एक गड़बड़ी उठ खड़ी हुई। एक राजनैतिक कैदी के साथ बहुत ही अमानुषिक अत्याचार किये गये, उसे कोड़े लगाये गये। दीनबन्धु ने इस अत्याचार का तीव्र विरोध किया और प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक इसका प्रतीकार नहीं किया जाता वह अन्न-जल ग्रहण नहीं करेगा। अपने स्वभाव और चरित्र के द्वारा वह कैदियों का उपास्य हो गया था, लोग उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। देखते-ही-देखते जेल में 'अनशन-व्रत' प्रारंभ होगया। जेल के कर्मचारी हल-चल में पड़ गये।

उस दिन जब 'अनयना' मिलने आई तो जेलर ने उससे कहा—"आज तुम एक काम करो तो अन्दर पैर रखने दूँ, नहीं तो न मिलने दूँगा।"

"कौनसा काम ?" उसने डर कर पूछा।

"तुम्हारे भैया, आज पांच-छः दिनों से अन्न-जल छोड़े बैठे हैं। उन्हें खाने के लिए राज़ी करो।"

"माँ, बता रही थीं"—उसने जेलर को जवाब दिया "कि क्यों उन्होंने ऐसा किया है। तुम लोग बड़े निर्दय हो, जो दीन-दुखियों के लिए जान देते हैं, उन्हींकी जान तुम लेते हो।"

जेलर आश्चर्य से दंग रह गया। उसने उसे बहकाते हुए कहा—"अखबारों में जो कुछ छपा है, सब झूठ है। तुम उन्हें चलकर मना दो तो रोज़ आने दूँगा।"

"नहीं," उस अन्धी भिखारिन ने दृढ़ता से कहा"—मैं जानती हूँ वह सत्य और धर्म के लिए जान देनेवालों में से हैं। उनके इस उपवास का कोई कारण अवश्य है। मैं उन्हें मन से डिगा नहीं सकती। चाहे मुझे उनसे रोज़

मिलने की आज्ञा भले चाहे कभी न मिलने की। मैं ऐसा कर नहीं सकती।"

"तो मेरी बात नहीं मानेगी तू ?" जेलर ने कड़क कर पूछा।

"नहीं" उसने दृढ़ता से जवाब दिया।

"तो वह भूखे मर जाँयगे, यह भी समझ रखना।"

"मरेंगे नहीं, अमर हो जायँगे।"

'बात न मानेगी तो तुझे भी यहीं बन्द कर दूँगा।" जेलर ने धमकाकर कहा।

"इससे मैं नहीं डरती" कहकर उस अन्धी बालिका ने उसके आगे अपने दोनों हाथ बढ़ा दिये। लज्जा के मारे जेलर का सिर झुक गया।

(७)

इस घटना के महीने भर बाद की बात है। वही प्रातःकाल का समय था। सरला और 'अनयना' अपने 'सेवाश्रम' में बैठी हुई थीं। इसी समय दीनबन्धु को लेकर कुछ लोग आ पहुँचे। वह खाट पर उठा कर लाया गया था और उसकी अन्तिम घड़ी बीत रही थी। जेल से वह मुक्त इसलिए कर दिया गया था कि उस राजनैतिक डकैती के साथ उसका कोई सम्बन्ध सिद्ध न हो सका, वे 'पुष्ट प्रमाण' जो उसके विरुद्ध उपस्थित किये गये थे न जाने क्यों इतने दुर्बल हो गये कि जब वह उपवास करते-करते मृत्यु के पास पहुँच गया तब उसे मुक्त कर देने के अतिरिक्त सरकार और कुछ न कर सकी।

दीनबन्धु ने बड़े कष्ट से हाथ जोड़ कर माँ को प्रणाम किया। माँ रो पड़ी।

अनयना ने पूछा-"भैया लौट आये, इस पर तुम रो क्यों रही हो माँ ?"

"लौट नहीं आये बेटी !" सरला ने कहा" "अब वह सदा के लिए जा रहे हैं।"

दीनबन्धु कुछ बोल तो सकता नहीं था, उसकी आँखों से अश्रु-धारा बह चली।

अनयना ने व्याकुल होकर कहा। 'माँ ! मैं एक बार भैया की छवि देखना चाहती हूँ, मुझे आँखें दो।"

"हाय ! बेटी," कहकर सरला ने उस बालिका को छाती से लगा लिया और रोकर कहा "अगर मैं इस समय तुम्हें आँखें दे सकती और तुम्हारे भैया को वाणी, तो रोती ही क्यों ?"

अनयना मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।
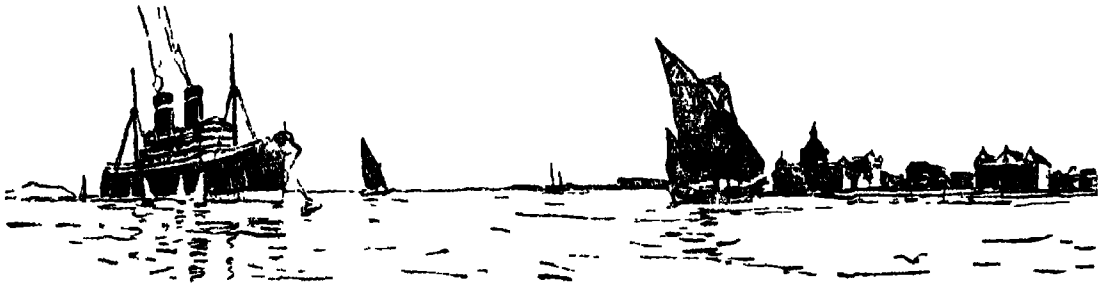
श्री गोपाल कृष्ण गोखले

[जीवन स्मृतियाँ]

(श्री शंकरदेव विद्यालंकार)

रत्नागिरि ज़िले के एक गाँव में, साँझ के समय, 'हु-तू-तू' (बड़ी कबड्डी) खेल खेला जा रहा था। सामने के दल का खिलाड़ी नायक, दूसरे दल के कई खिलाड़ियों को हाथ लगाकर, बिना क़ैद हुए, अपने दल में भाग जाने का प्रयत्न कर रहा था, कि इधर के दल के एक छोटे से खिलाड़ी ने उसको ज़ोर से पकड़ लिया। नायक की हिम्मत नहीं कि छुड़ाकर भाग निकले!

नायक खिलाड़ी बोला-"छोड़, मेरी इज़्ज़त जाती है।"

छोटा खिलाड़ी गोपाल छोड़नेवाला थोड़े ही था, वह आवेशपूर्वक बोला—"छोड़ नहीं सकता।"

नायक खिलाड़ी ज़रा क्रुद्ध होकर बोला—"छोड़ भाई, छोड़; मैं तेरा बड़ा भाई होता हूँ! छोड़ दे!!

बाल गोपाल कहता है-"बड़ा भाई हो तो इससे क्या हुआ; मैं अपने दल को हारने थोड़े ही दूँगा!'

बड़े भाई का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। दोनों दलों के खिलाड़ी खड़े होकर इस मनोरंजक धर पकड़ और गुत्थम-गुत्थी को देखकर हँसने लगे। बड़े भाई की हँसी और छोटे की प्रशंसा से दोनों मण्डलियों में उल्लास छा गया।

ये दोनों सगे भाई थे। और, यह गोपाल कौन? यह थे दीन-हीन और फटे-फटाये कपड़े पहने हुए आत्म-गौरव और *अविचल शांति से छलकती हुई महत्ता* के अंकुर रूप भारत-माता के हीरे! महामति गोपाल कृष्ण गोखले!!

× × ×

श्री गोपाल कृष्ण गोखले

गोपाल की ग़रीबी की अवस्था का इतिहास जिस दिन लिखा जायगा, उस दिन लोग आश्चर्य करेंगे। आज लोग उस ग़रीबी की कल्पना भी नहीं कर सकते! एक समय था, जब नमक के टुकड़ों तक के लिए गोपाल को लाले पड़े हुए थे। किशोर अवस्था की बात है कि गोपाल के सहपाठी मित्रों ने आइसक्रीम बनाया। मित्रों ने हँसी के लिए आइसक्रीम के बदले आइसक्रीम की मशीन के अन्दर का बर्फ़ का पानी ही गोपाल को पिला दिया और कहा, यही आइसक्रीम है। भोला गोपाल इसी को आइसक्रीम मान बैठा। फिर वास्तविक आइसक्रीम खिलाई और मित्रों ने समझाया कि यह आइसक्रीम उसी पानी-द्वारा तैयार की गई है—गोपाल ने यह बात भी सच्ची मान ली! ऐसी भोली ग़रीबी के अन्दर गोपाल ने अपना लड़कपन बिताया!

एक बार की बात है कि गोपाल के साथ पढ़ने वाले एक धनी विद्यार्थी ने उसे नाटक देखने को ले जाने का बहुत आग्रह किया। गोपाल ने स्वीकार न किया, परन्तु उसका हठ न रुकता हुआ जानकर आख़िर किसी तरह गोपाल नाटक में जाने को राज़ी हो गया। दोनों के टिकट उस धनी विद्यार्थी ने ही ले लिये और वे नाटक देख आये। अगले दिन वह धनी छात्र गोपाल से टिकट के पैसे माँगने लगा। पैसे भी थे केवल दो आने के। गोपाल को यह देख विस्मय हुआ। गोपाल यही समझकर नाटक देखने गया था कि पैसे तो धनी छात्र दे ही देगा। ख़ैर। गोपाल ने तत्काल दो आने

उसे बुझा दिये। पर अब चिन्ता हुई कि सारे महीने-भर का खर्च कैसे ठीक बैठाऊँ? अन्त मे दिये के तेल के पैसे बचाये। उतने दिनों तक गोपाल सड़कों के लेम्पों के प्रकाश में अपना पाठ पढ़ता रहता!

गोपाल की इस ग़रीबी को कम करनेवाली थी उसकी प्यारी माँ! पिताजी तो गोपाल को १३ वर्ष का छोड़कर ही स्वर्ग सिधारे थे। बड़ा भाई गोविन्द अपना पेट काट कर गोपाल की फ़ीस देता और माँ पैसा-पैसा जमा कर के उसका पालन करती। आख़िर दुनिया में जननी की भावना और प्रेम का पान किये बिना बड़ा होता भी कौन है? शिवाजी से लेकर अमर शहीद श्रद्धानन्द तक स्वदेश के वीरों को लीजिए, माँ की गोद, जननी की प्रेरणा और जन्म दात्री के स्तन-पान के बिना कौन शूर और तेजस्वी बन सका है? गोपाल भी अपनी माँ की गोद में ही श्रद्धा, भक्ति, सौम्यता और स्वदेश-भक्ति की धारायें पिया करता था। स्वर्ग से भी सुन्दर और महान् उस जननी के प्रति किया हुआ प्रेम ही तो आख़िर जन्मभूमि की ओर बह निकला!

× × ×

पाठशाला की परीक्षायें हो रही है। परीक्षक-द्वारा पूछे हुए प्रश्न उस कक्षा के लिए कुछ कठिन पड़ते हैं। कोमल प्रकृतिवाला गोपाल शर्माकर रोने लगा। मास्टर साहब ने पासवाले छात्र के ठीक प्रकार हल किये प्रश्नों के ठीक उत्तरों को देखने की सलाह दी। शान्त गोपाल ने मास्टर की आज्ञा का पालन किया।

अगले दिन मास्टर दर्जे में आये और बोले —"गोपाल, तेरे मार्क (नम्बर) सब से अधिक आये हैं। जा, पहले नम्बर पर बैठ!" गोपाल तो खिसियाना-सा होकर स्तंभित रह गया। धीमी आवाज़ में उसने कहा-"यह कैसे हो सकता है? मुझे तो दूसरे ने जैसा सिखाया वैसा ही मैंने किया। इसमें मेरा गौरव कैसा, मैं पहले पर नहीं बैठना चाहता!" छात्र और मास्टर हँसने लगे। कैसा सौम्य स्वभाव!

× × ×

गोपाल का विद्यार्थी-जीवन अत्यन्त सादा था। लज्जा की तो हद ही नहीं! परन्तु स्मरण शक्ति कमाल की! कोई बात एक बार कान में पड़ी, मानों वज्र-लेप हो गई। कालेज में गोपाल को स्कॉट, शेक्सपियर और मिल्टन की कविताओं की हज़ारों पंक्तियाँ कंठाग्र रहतीं! मित्र पूछा करते—"अमुक कविता तो ज़रा सुना दो।" उत्तर में वाणी का अखण्ड प्रवाह फूट पड़ता था। एक स्थान पर भी रुके बिना सारी कविता सुना जाना तो उसके लिए सामान्य-सी बात थी। गोपाल के भोलेपन का विद्यार्थी खूब दुरुपयोग करते। कहते —"गोपाल And शब्द से प्रारम्भ होनेवाली पंक्ति बोल, But से प्रारम्भ होने वाली सुना जा!" गोपाल झट सुनाने लगता। मानों काव्य का प्रवाह फूट पड़ा हो।

पूना की बात है, गोपाल का एक पड़ोसी मित्र उसके साथ प्रतिस्पर्धा में उतरा। शर्त यह ठहरी कि पड़ोसी जिस पुस्तक को निश्चित करे उसका एक पृष्ठ गोपाल को प्रतिदिन कंठाग्र कर लाना होगा। शब्द भूल जाय तो प्रत्येक भूल पर एक आना गोपाल चुकावे। पर पड़ोसी को किसी दिन भी कोई आना हाथ नहीं लगा!

× × ×

१८ वर्ष का स्नातक अर्थात् दुनिया की महत्त्वाकांक्षाओं की साक्षात् मूर्ति! गोपालकृष्ण अपने भावी जीवन के लक्ष्य-पथ का विचार कर रहा था। उन दिनों ग्रेजुएटों के सामने तो अनेक समृद्ध कार्यों के लिए हज़ारों द्वार खुले रहा करते थे। यूनिवर्सिटियों से दीमकों की भाँति ग्रेजुएटों की संख्या अभी निकलनी प्रारम्भ नहीं हुई थी। मित्रों ने गोपाल को आइ० सी० एस० और एंजीनियर बनने के प्रलोभन दिये! गोपाल यदि एल० एल० बी० बनने जाता तो उसके सामने सब जज का सिंहासन चमक रहा था। परन्तु गोपाल को इन छोटी-छोटी वस्तुओं की अभिलाषा न थी। वह तो एक महान् राष्ट्र की वकालत करना चाहता था, एक राष्ट्र-मन्दिर की आधार भित्तियों को खड़ा करना चाहता था। गोपाल के हृदय में (सरकारी अफ़सर Indian Civil Servant) के बदले भारत-सेवक बनने की उच्च भावनायें लहरें मार रही थीं! गोपालकृष्ण ने प्रथम 'डेकन एजुकेशन सोसायटी' में काम किया और फिर स्कूल के मुख्याध्यापक (Head master) के पद पर रहकर आख़िर फ़र्ग्युसन कॉलेज के प्रोफ़ेसर [अध्यापक] का सम्मान्य पद प्राप्त किया।

× × ×

गोपालकृष्ण का अपना विषय था गणित, परन्तु कालेज में किसी भी अध्यापक की कुर्सी ख़ाली होती तो उसके स्थान पर गोपालकृष्ण को भेजा जाता। जो भी विषय हाथ में आया उसकी महान् तैयारी हो जाती। श्रेणी में आकर बर्क पढ़ावें, या मिल्टन अथवा शेक्सपियर पर व्याख्यान दें, अथवा वर्ड्स्वर्थ पर; परन्तु पुस्तक खोलने का काम नहीं! किताबें तो उनकी स्मरण-शक्तिरूपी विराट् पुस्तक में अंकित हो चुकी थीं।

आज भी गोपालकृष्ण के व्याख्यानों को सुननेवाले उनके विद्यार्थी याद करते हैं और कहते हैं—'वाणी का क्या ही मधुर और मनोहारी अखण्ड प्रवाह निकला करता था! घटनायें और संख्यायें किस कदर उनके मस्तिष्क में भरी पड़ी थीं! और उनकी अंग्रेज़ी भाषा की योग्यता?—अहा, आँग्ल-भाषा की सर्वोत्कृष्ट शैली की एक महान् धारा उनके मुख से निकली पड़ती थी!'

और अध्यापक की इतनी महान् तैयारी अपने किसी भविष्य के विशेष लाभ के लिए न थी, वह तो थी केवल अपने अध्यापक के कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए! कितनी सर्वदेशीय शक्ति; कितनी योग्यता!

❀ ❀ ❀

सोसायटी (डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी) के उत्सव का दिवस है! मंडप के प्रवेश द्वार के स्वयंसेवक का स्थान गोपालकृष्ण को सौंपा गया। सरदार की आज्ञा है,—"पास के बिना कोई अन्दर न आने पावे!" इतने में विशाल मस्तकवाली, चन्द्रमा के समान शीतल किरणें छोड़ने वाले ललाट की एक आकृति अन्दर जाना चाहती है। विनयी गोपालकृष्ण इस अपरिचित व्यक्ति को देखकर पूछता है— "आपका पास कहाँ है?" उत्तर मिलता है,—"पास तो नहीं है।"

गोपालकृष्ण कहता है—"पास बिना आप अन्दर नहीं जा सकते।"

पितामह के समान वृद्ध पुरुष ठहर जाते हैं। इतने में "जस्टिस रानाडे पधारे, रानाडे पधारे!" का जय घोष करते हुए कार्यकर्ता लोग द्वार पर आ पहुँचते हैं और न्यायमूर्ति को सभा-मञ्च पर ले जाते हैं। बम्बई और महाराष्ट्र के इस पुनीत नाम 'रानाडे' को सुनकर गोपालकृष्ण शर्माकर स्तम्भित हो जाता है, आज पहली बार ही गोपाल ने इस वृद्ध ऋषिवर के दर्शन किये।

न्यायमूर्ति रानाडे ने एक दूसरे व्यक्ति से पूछा—"यह युवक कौन है?" उत्तर मिला—"एक युवक अध्यापक है।" सभा की समाप्ति पर न्यायमूर्ति ने द्वार से निकलते हुए गोपालकृष्ण से पूछा—"मेरे पास काम करोगे?" गोपालकृष्ण ने विनय-भरे शब्दों में स्वीकारात्मक वाक्य कहे और आज से वह न्यायमूर्ति रानाडे के गुरु-चरणों में बैठा।

❀ ❀ ❀

रानाडे का शिष्यत्व अर्थात् खाँडे की धार; गोपालकृष्ण अविश्राम उद्यम की चक्की में पिसने लगा, राजनीति के गूढ़ विषयों को समझाने के लिए गुरुदेव 'ब्ल्यू बुक' के ढेरों से तथा अन्य राजनीति की पुस्तकों से अपने चेले गोपालकृष्ण को दबाने लगे। दिन और रात एक हो गये।

ग़रीबी का व्रत धारण करनेवाले गोपालकृष्ण के घर उसकी धर्मपत्नी दुर्बल चिन्ताग्रस्त पड़ी हुई है, परन्तु गोपाल को उसके पास जाने तक की फ़ुर्सत नहीं है। एक दिन एक काम अधूरा रह गया। गुरुदेव ने आकर पूछा—"यह क्यों?" गोपाल ने कहा—"बुखार आ गया था।" गुरुदेव बोले—"भाई, ज्वर आया था तो दवाई लेनी चाहिए थी। एक दिन गँवा दिया है, यह पीछे लौटनेवाला थोड़े ही है।" इस प्रकार गुरुदेव के मुख से सान्त्वना का कोई भी शब्द गोपाल के प्रति न निकलता था। परन्तु शिष्य के मन में कोई मन-मुटाव नहीं; बस, काम और काम ही काम—'There's but to do and die!! इस प्रकार अंकों (Statistics) और तथ्यों (Facts) में गोपाल ने कुछ प्रवीणता प्राप्त की।

एक समय किसी राजनैतिक विषय पर गुरुदेव ने गोपाल को 'मेमोरेण्डम' तैयार करने को कहा। काँपते हुए पैरों से आगे बढ़कर गोपाल ने तैयार हुआ लेख गुरुदेव के हाथों में दिया। गुरुदेव क्या कहेंगे, इस डर से गोपाल

का हृदय धड़क रहा था। लेख पढ़कर गुरुदेव ने बस इतना ही कहा—"It will do" (काम चल जायगा)। बस, गोपाल का हृदय कृतार्थ होकर नाच उठा !

❀ ❀ ❀

साँझ का समय है। गुरु और शिष्य दोनों टहल रहे हैं। गोपालकृष्ण के मुख पर संक्षोभ की छाया है और न्याय-मूर्ति की मुख-मुद्रा पर तो आकाश की शान्ति छा रही है !

एकाएक गोपाल ने पूछा—"आपने वह सरकारी जवाब पढ़ा ?"

"कौन-सा ?"

"गोपाल ने मन्द स्वर से कहा—'हमने बड़े परिश्रम से तैयार करके अहमदनगर के अकाल का जो वृत्तान्त हज़ारों हस्ताक्षरों सहित सरकार को भेजा था, उसका जवाब !"

गुरुदेव—"क्या लिखा है ?"

गोपाल—"केवल इतना ही, 'The Contents of your representation have been noted—(तुम्हारी प्रार्थना को हमने देख लिया है।') आख़िर हमारे भगीरथ-प्रयत्न का यही फल ?"

न्याय मूर्ति ने समझाकर कहा—"भाई, हमारी मेहनत सरकारी जवाब पाने के लिए नहीं थी, अपितु इस छिन्न-भिन्न, अव्यवस्थित और भीरु प्रजा को मिलकर आंदोलन करना सिखाने के लिए थी। हम जैसे सहस्रों जब संयुक्त प्रवृत्ति (Combined Action) की शिक्षा देकर मर-मिटेंगे, तब कहीं सरकारी जवाब माँगनेवाले वीर पैदा होंगे।"

❀ ❀ ❀

ख़र्च की जो बड़ी रकम विलायती सरकार के ख़ज़ाने से लेनी चाहिए, वह भारतीय प्रजा के माथे क्यों मढ़ी जाती है ? इसका एक आन्दोलन खड़ा हुआ। इस विषय का अनुसंधान करने के लिए विलायत में वेल्बी कमीशन बैठाया गया। न्याय-मूर्ति रानाडे ने आज्ञा की—"गोखले, तैयार हो जा, तुझे साक्षी देने को जाना है।" कितनी ज़िम्मेदारी का काम था तीस बरस का जवान विलायत जाकर शाही कमीशन के आगे इतनी कठिन समस्या पर साक्षी देने को तैयार हो गया। न्याय-मूर्ति रानाडे ने सब बातें अच्छी तरह समझा-बुझाकर तैयार किया। भारत-प्रेमी अंग्रेज़ श्री वेडरवर्न और न्याय-मूर्ति ने आवागमन का ख़र्च अपने सिर लिया और तरुण गोखले को इंग्लैण्ड रवाना किया। इसी यात्रा में रास्ते में गोखले की छाती में केबिन के दर्वाज़े की चोट लगी (उसी दिन से उनका हृदय कमज़ोर पड़ गया था और वही कमज़ोरी अन्त में इनकी जीवन-लीला समाप्त करने में बहुत-कुछ कारणभूत हुई थी। परंतु अपने काम और अध्यवसाय की धुन में इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। लन्दन जाकर गोखले श्री दादाभाई नवरोजी के घर उतरे। वहाँ गोखले ने जिस योग्यता से साक्षी दी उसे सुनकर इंग्लैंड की प्रजा चकित हो गई।

❀ ❀ ❀

एक बार गुरुदेव के पास जाकर भग्न-हृदय होकर गोखले ने कहा—'यहाँ स्वदेश में मेरी सेवा को कोई स्वीकार नहीं करता, मुझे विलायत जाकर अपने देश के लिए लड़ने दो, वहाँ की जनता मेरी नीति को समझ सकेगी।"

गुरुदेव ने कहा—"भाई, बड़ी सेवा करने की बात छोड़ दो, मुझे और तुम्हे तो अभी राष्ट्र-मंदिर की नींव खोदने का काम (Spade work) करना है ! और इसके लिए हमारा कार्य यही देश है। भगवान तुम्हें अवसर देंगे, अधीर मत हो।"

❀ ❀ ❀

सर फ़ीरोज़शाह मेहता जैसे नर-शार्दूल भी तरुण गोपाल की बुद्धि के प्रभाव में आ जाते थे, दूसरों की तो बात ही कहाँ ? सर फ़ीरोज़शाह बड़ी व्यवस्थापिका सभा में अपना स्थान ख़ाली करके गोखले को बैठाते थे ! लार्ड कर्ज़न के एकचक्री अभिमान और दृढ़ सामर्थ्य के आगे जहाँ दाढ़ी-मूछोंवाले अवाक् रह जाते वहाँ युवक गोखले गर्जनापूर्वक बोलते—"My Lord, I con not join the Chorus of applause showerd in this house on the Finance Member for his so-called Surplus Budget" (कहे जानेवाले बचत के बजट के लिए यहाँ अर्थ-सदस्य की जो प्रशंसा की जा रही है, मैं

उसमें शामिल नहीं हो सकता)। अपने भाषण में अंकों और तथ्यों की वह ऐसी झड़ी लगाते कि सदस्य लोग अवाक् रह जाते! वाणी में वह प्रभाव था कि घंटों तक सभा-गृह को स्तंभित कर देते। केवल घर से तैयार किये हुए भाषण में ही चातुर्य्य नहीं, परन्तु प्रत्युत्तर देने में भी नौकरशाही की अभेद्य दीवारों को हिला देना उनका सामान्य काम था। यह अद्भुत सामर्थ्य, यह प्रचंड और अखंड वाक्-प्रवाह देखकर सदस्य मन ही मन कह उठते—'यही प्रतिपक्ष का नायक (Leader of Opposition) है!' आख़िर लार्ड कर्ज़न को भी स्वीकार करना पड़ता कि यह मुझसे लोहा लेने वाला योग्य शत्रु है!

इस प्रकार विरोधियों तक को गोखले की महत्ता और योग्यता स्वीकार करनी पड़ी। सच्चा वीर तो वही है, जिसका शत्रु लोहा माने। आख़िर तो वह सौ-सौ रणक्षेत्रों का वीर। लार्ड कर्ज़न ने गोखले को के० सी० एस० आई० की उपाधि देने की सम्राट से सिफ़ारिश की और कहा—"तुमने अपने देश-बन्धुओं की जो महान् सेवायें की हैं उसके लिए तुम्हें यह मान दिया जाता है। मेरी प्रार्थना है, भारत-भूमि तुम्हारे सरीखे लोक-नेताओं को जन्म देती रहे।"

गोखले ने प्रथम नम्र भाव से साम्राज्य के आगे सिर झुकाया और फिर गौरवभरी छाती आगे निकाल कर उत्तर दिया—'मैं आभारी हूँ आपका, परन्तु यह पद स्वीकार नहीं कर सकता, बुरा न मानियेगा।" उन दिनों उपाधियों का त्याग क्या मामूली बात थी?

* * *

अपनी काया को छलनी बनाकर इसने अपनी मृत्यु को आमंत्रित किया था। कमिटियों और कमीशनों में जाना, अकाल पीड़ितों की रक्षा का प्रबन्ध करना और सुदूर दक्षिण आफ्रिका के महात्मा गाँधीजी के सत्याग्रह संग्राम के लिए दौड़कर पहुँचना, इन सब कार्यों ने गोखले की जीवन-शक्ति को कम कर दिया। गाँधीजी इनको रातों भाषण तैयार करता हुआ देख कर कहते थे—'गोखलेजी, मर जाओगे, अब तो सो जाओ।' परंतु वह महान् पुरुष सोने को नहीं आया था, वह तो आया था देश के लिए हमेशा जागते रहने के लिए!

* * *

प्रकृति इस महान् पुरुष के जागरण को न सह सकी। आख़िर जगन्माता ने अपने वीर पुत्र को गोद में लिया। सन् '९१४ की १९ फ़रवरी के प्रभात में मृत्यु-देव ने इस पर अपनी काली छाया डाल दी। अन्तिम समय में अपना सब काम चुकाया, दो पुत्रियों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा—"आज तक तो इस ओर का तमाशा देखा है अब दूसरे पार जाकर देखता हूँ वहाँ क्या लीला चल रही है।"

अपनी भारत-सेवक-समिति के विषय में अन्तिम विचार करते हुए साढ़े दस बजे शान्तिपूर्वक शाश्वत निद्रा में शयन किया। सेवा-धर्म के इस वीर राही की अमर आत्मा को शतशः वन्दन!
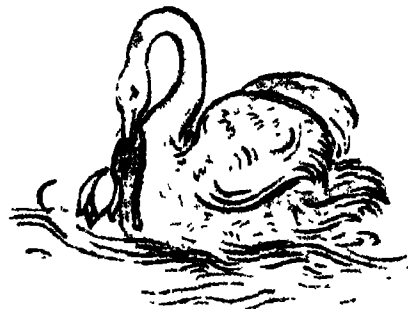
मेरे अमेरिका के अनुभव

[श्री महादेवलाल सराफ़, एम० एस-सी०]

प्रगति के वर्तमान जगत् में अमेरिका का अपना विशेष स्थान है। न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि बलशाली राष्ट्रों में भी अमेरिका एक विशाल शक्ति समझा जाता है जिसका प्रभाव भविष्य में भी संसार पर पड़ेगा। इसलिए वहाँ की समाज व्यवस्था और जनता की दशा पर अपने अनुभव एक यात्री की दृष्टि से पाठकों के सामने रखना न केवल मनोरंजक ही होगा बल्कि उपयोगी भी सिद्ध होगा।

उच्च कुल और पेशा

अमेरिका एक प्रजा-तंत्र देश है। हमारे देश की तरह यहाँ जाति-भेद नहीं माना जाता। क्या लक्षाधीश और क्या भंगी सब एक मेज़ पर भोजन के लिए साथ बैठ सकते हैं। भारत की तरह पेशे पर से समाज में किसी का पद वहाँ निश्चित नहीं किया जाता। अब जैसे मुझे धन की आवश्यकता है और मैंने सड़क साफ़ करनेवाले भंगी का कार्य स्वीकार कर लिया तो इससे मेरी प्रतिष्ठा में किसी प्रकार की कमी नहीं आवेगी। और न कोई मुझे चर्च या होटल में जाने से ही रोक सकेगा। बिल चुकाने के लिए दाम होना चाहिए फिर मैं चाहे जहाँ जा सकता हूँ। उससे कोई अच्छी जगह मिलते ही मैं भंगी का काम छोड़ दूंगा और उसे ग्रहण कर लूँगा। मैंने बड़े-बड़े लक्षाधीशों और पी० एच-डी० उपाधिधारियों को भी नीचा से नीचा पेशा करते देखा है। हमारे यहाँ उच्च कुल का व्यक्ति चरित्रहीन होते हुए भी प्रतिष्ठित समझा जाता है परन्तु अमेरिका में बदमाशों को उनके कुल के कारण आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। अमेरिका हमारे सामने समाज-संगठन का ऐसा आदर्श उपस्थित करता है जहाँ पेशे के कारण किसी व्यक्ति को ऊँच या नीच नहीं समझा जाता, बशर्ते कि कार्य ईमानदारी का हो।

रेल के यात्रियों की सुविधा का वहाँ काफ़ी ध्यान रक्खा जाता है—चाहे वे धनी हों या ग़रीब। दरजा भी वहाँ गाड़ी में एक ही होता है और छोटे-बड़े सब को वहीं बैठना पड़ता है। बहुत-से सिनेमा-घरों में भी एक ही दरजा होता है। इस प्रकार वहाँ दरिद्र और धनी होने के कारण भेद-भाव को स्थान नहीं दिया जाता। इतना अवश्य है कि विशाल नगरों, जैसे न्यूयार्क, शिकागो इत्यादि, के बड़े-बड़े नाटक घरों में स्थान कम या अधिक विलासितापूर्ण होने के कारण, उसी के अनुसार मूल्य पर दिये जाते हैं।

धूम्र-पान

भारत में छोटे-छोटे बच्चे भी बीड़ी पीते हुए प्राय: सड़क पर देखे जाते हैं। परन्तु अमेरिका में १५ वर्ष से कम अवस्था के बालक को तम्बाकू बेचना जुर्म है और इस कानून का उल्लंघन करनेवाले दूकानदार लगभग ३०) तक जुर्माने के पात्र हैं। वैसे देखा जाय तो अमेरिका में इसका प्रचार हमारे यहाँ की अपेक्षा कहीं अधिक है और लड़कियों को केवल इसलिए धूम्र-पान सीखना पड़ता है कि वे पूर्ण सभ्य मालूम हों—फिर भी वहाँ तम्बाकू न सेवन करने वालों की सुविधा का बहुत ध्यान रक्खा जाता है। रेलों में धूम्र-पान के ही लिए एक कमरा अलग होता है और वहीं यात्रीगण सिगरेट इत्यादि पी सकते हैं। सार्वजनिक संस्थाओं और कालेजों में भी नियत

स्थान के सिवा अन्यत्र धूम्र-पान करना मना है। जनता इस व्यसन को बहुत अच्छा नहीं समझती।

स्वच्छता

संसार में शायद भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ स्वच्छता को धर्म में शामिल कर लिया गया है; परन्तु इसे हमारा दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इस प्रकार के नियम केवल रूढ़ियों के रूप में ही हमारे यहाँ रह गये हैं जब कि उनका तत्व हम भूल गये हैं। शास्त्र-सम्मत होने के कारण ही हमें प्रचलित रूढ़िवाद मान्य है, अन्यथा विज्ञान के आधार पर किसी वस्तु के हानि-लाभ को समझ कर उन्हें ग्रहण करना हम नहीं जानते। उदाहरण के लिए, हमारे शास्त्रों में लघुशंका के पश्चात् हाथ धोने की आज्ञा दी गई है। परन्तु हमारे यहाँ ६० प्रति शत या तो ऐसा करने का कष्ट ही नहीं उठाते और जो सज्जन धर्म के बहुत पक्षपाती हैं वे या तो गंदी मिट्टी से हाथों को मलकर उन्हें पवित्र समझ लेते हैं या पानी से अंगुलियों के नाखूनों को गीला करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। परन्तु अमेरिका में प्रत्येक शिक्षित पुरुष लघुशंका के बाद साबुन से हाथ साफ़ करना आवश्यक समझता है क्योंकि वह स्वास्थ्य की दृष्टि से इसके लाभ जानता है। यद्यपि अमेरिका में लोग काँटे-छुरी का उपयोग करते हैं फिर भी भोजन के पहले वहाँ साबुन से हाथ साफ़ करने का रिवाज है।

भारत में ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत असंख्य कीटाणुओं का उत्पत्ति-स्थान होता है। उनके कपड़े गंदे रहते हैं, हाथों की अंगुलियाँ नाक साफ़ करने के उपयोग के लिए सर्वोत्तम साधन समझी जाती हैं और दांतों की सुन्दरता की रक्षा पान और तम्बाकू के सेवन से करने का प्रयत्न किया जाता है! अमेरिका में लोग बिलकुल साफ़ वस्त्र पहनना ही अधिक पसंद करते हैं। जो लोग धोबी से कपड़े नहीं धुला सकते वे स्वयं धोते हैं और वस्त्रों की स्वच्छता को भोजन से अधिक महत्व देते हैं।

सड़क पर भी वहाँ फलों के छिलके या काग़ज़ के टुकड़े नहीं देखे जाते। एक बार मैं अपने एक कनाडा-वासी मित्र के साथ जा रहा था। उन्होंने एक नया अख़बार सड़क पर फेंक दिया। दो-चार क़दम ही हम चले होंगे कि हमको आवाज़ देकर लौटाया गया और उस अख़बार को नियत पीपे में ही डालने को कहा गया।

हमारे भारत में—ख़ास तौर से मुसलमानों में एक ही पात्र से कई व्यक्तियों का पानी पीना बुरा नहीं समझा जाता। परन्तु अमेरिका में यह अच्छा नहीं माना जाता। दूसरा उदाहरण दांत साफ़ करने के ब्रश का लीजिए। हमारे कतिपय शिक्षित सज्जनों ने पश्चिम के इस रिवाज को अपना तो लिया है परन्तु इसका भली-भाँति उपयोग करना नहीं जानते। एक व्यक्ति को दूसरे के कामों में लिया हुआ ब्रश उपयोग में नहीं लाना चाहिए। अमेरिका में तो इसे दांतुन के बाद गरम पानी से खूब धोया जाता है और ३ महीने के बाद उसे भी अनुपयुक्त समझा जाता है।

संयम और चरित्र

यह मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि किसी भी राष्ट्र का चरित्र सारे व्यक्तियों को देखते हुए एक समान होता है। प्रत्येक देश में कुछ व्यक्ति तो बहुत उच्च श्रेणी के मिलेंगे और कुछ बहुत नीची श्रेणी के। चरित्र की दृष्टि से उच्च कोटि के व्यक्ति भारत में अधिक मिलेंगे परन्तु नीची श्रेणी के व्यक्ति भी पर्याप्त संख्या में यहाँ मिलेंगे। इन दोनों वर्गों के बीच में मध्यम श्रेणी के ही व्यक्तियों की संख्या अधिक मिलेगी, जिनका चरित्र अमेरिकावालों से

ऊंचा नहीं होगा। अमेरिका की जनता असंयम को अच्छा नहीं मानती और व्यभिचार को रोकने के लिए कानून भी बने हैं। वैसे देखा जाय तो कम या अधिक मात्रा में सभी जगह वेश्यायें मिलेंगी। इससे मेरा तात्पर्य अमेरिका का पक्षपात करना नहीं है, बल्कि बात वास्तव में यह है कि हम समाज और धर्म की आड़ में छिपे-छिपे बुराई करते हैं जब कि अमेरिका में जो कुछ होता है वह सब देख सकते हैं। हम आत्म वंचना करके अपने को उत्तम श्रेणी के व्यक्ति मान लेते हैं परन्तु अमेरिका मे ऐसा नही होता। उन लोगों की समाज-व्यवस्था ही ऐसी है कि हमारे-जैसे सकुचित हृदय के व्यक्ति उनके विषय में उदारता और विशालतापूर्वक निर्णय कर ही नहीं सकते। उन लोगो के समाज और धर्म के आदर्श ही ऐसे हैं कि उनको न तो कुछ छिपे-छिपे ही करने की आवश्यकता है और न उनके कार्य उनके आदर्शों को देखते हुए बुरे ही ठहरते हैं। इससे मेरा अर्थ यह नही है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था अच्छी नहीं है या इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

विद्यार्थी-जीवन

अमेरिका का विद्यार्थी-जीवन भारत की अपेक्षा बिलकुल ही भिन्न है। यहाँ और वहाँ के आदर्शों में भी असमानता है। भारत का विद्यार्थी परावलम्बी होता है और यदि वह दरिद्र हुआ तो भिक्षा-वृत्ति को ही अपने निर्वाह का सर्वोत्तम उपाय मानता है; जब कि अमेरिका में लड़के स्वावलम्बी बनना और अपने माता-पिता का भी खर्च वापिस करना अपना कर्तव्य मानते हैं। इसके तीन कारण हैं। (१) वहाँ की शिक्षण-संस्थायें उत्साही नागरिकों का निर्माण चाहती हैं, इसलिए आरम्भ से ही स्वावलम्बन का पाठ विद्यार्थियो को पढ़ाया जाता है। (२) हाथ से काम करने की प्रवृत्ति को वहाँ सदा उत्साह दिया जाता है। हमारे उच्च कुल के अमीर और शौकीन विद्यार्थियों की तरह वहाँ मेहनत-मजदूरी से घृणा नहीं की जाती। जीवन-निर्वाह के लिए मामूली से मामूली काम करने को नहीं बल्कि भिक्षा-वृत्ति पर निर्वाह करने को ही वहाँ अधिक गर्हित समझा जाता है। (३) अमेरिका में रहन-सहन का दर्जा बहुत ऊंचा होने के कारण कार्य करने पर विद्यार्थियों को पर्याप्त वेतन मिल जाता है, जब कि भारत में ऐसी कोई सुविधा नहीं है।

कालेज में अध्ययन का समय तो अमेरिका और भारत में एक-सा ही है, बल्कि भारतीय विद्यार्थी चाहें तो जीविका-निर्वाह के लिए वहाँ की अपेक्षा अधिक समय निकाल सकते हैं, परन्तु हमारे यहाँ तो इस प्रकार के भाव ही नहीं पाये जाते।

वहाँ के विद्यार्थी समय निकालकर क्या-क्या काम किया करते हैं इनका भी थोड़ा-सा हाल लिखना उपयुक्त होगा। बहुत-से छात्रावासो, क्लबों और होटलों में भोजन का समय प्रातः ७ से ९ बजे तक, दोपहर में १२ से २ तक और शाम को ६-३० से ८ तक होता है। इस समय कालेज में तो पढ़ने जाना नहीं पड़ता इसलिए पहले से बात-चीत करके विद्यार्थी इस समय अपने-अपने काम पर जा सकते हैं। विद्यार्थी को एक घंटा तो प्रातःकाल काम करना पड़ेगा, एक घंटा सांयकाल और एक घंटा दोपहर को। इसमें उसका तीनों समय का भोजन व्यय तो निकल ही जायगा परन्तु उसके अध्ययन में कोई हर्ज नहीं पड़ेगा। उसका काम होगा होटल में भोजन के जूठे बरतन साफ़ करना और अतिथियों का आदर-सत्कार करना तथा भोजन परोसना। पिछला काम बहुत कठिन नहीं है और थोड़े निरीक्षण से निपुणता प्राप्त की जा सकती है और बहुत-से

विद्यार्थी बरतन धोने की अपेक्षा इसे ही अधिक पसन्द करते हैं। सर्द मुल्क होने के कारण अमेरिका में वर्ष में सात महीने सिगड़ियों की आवश्यकता होती है। बहुत-से घरों में विद्यार्थियों की मांग इन सिगड़ियों की सम्हाल के लिए होती है। यह कोई एक घंटे का काम होता है। ४५ मिनिट प्रातःकाल और १५ मिनिट सायंकाल। काम इतना-सा है कि उन सिगड़ियों में से राख इत्यादि निकाल देना और अच्छे कोयले भर देना। इस कार्य के लिए विद्यार्थी को या तो रहने के लिए मुफ्त कमरा मिल जाता है या किराये लायक दाम मिल जाते हैं। उपर्युक्त कार्यों को यदि कोई सन्तोषजनक करे तो वे स्थायी ही हैं। और भी बहुत से काम हैं जो कार्य खोजनेवाली संस्थाओं की सहायता से प्राप्त किये जा सकते हैं। ये काम अस्थायी होते हैं और विद्यार्थी इनको शनिवार की दोपहर के बाद, रविवार के दिन और किसी समय कालेज में पढ़ने के घंटों के सिवाय कर सकता है। ये कार्य खिड़कियों का धोना, घरों का साफ करना, घास काटना, दूब को साफ करना, कपड़े धोने में सहायता पहुँचाना, खाई खोदना, बिसाती की चीजें बेचना, क्लर्क का काम करना, कहीं अखबार में काम करना इत्यादि होते हैं। इस प्रकार के कार्यों में एक रुपये से लगाकर डेढ़ रुपये तक प्रति घंटा मिल जाता है और विद्यार्थी का जेब-खर्च निकल जाता है। फिर गरमी की छुट्टियों में भी कहीं काम खोजा जा सकता है और बड़े दिन की छुट्टियों में भी डाकखाने का काम करने का प्रबन्ध किया जा सकता है।

विद्यार्थियों के विषय में कुछ और

शिक्षकों और विद्यार्थियों का सम्बन्ध भी वहाँ बड़ा मधुर होता है। जब तक कालेज में रहते हैं तब तक तो विद्यार्थी और शिक्षक एक-दूसरे का उपयुक्त सम्मान करते हैं परन्तु बाद में वे मित्र हैं।

परीक्षाओं में वहाँ निरीक्षण के लिए विद्यार्थियों ही की एक कमेटी रहती है—शिक्षक नहीं। उन्हीं के विश्वास पर सारी देख-भाल छोड़ दी जाती है। इससे विद्यार्थियों में आत्म-सम्मान की भावना पैदा होती है। फिर वहाँ विद्यार्थियों की ही अपनी कपड़े धोने की फैक्टरी होती है जिससे बहुतों का खर्च निकल जाता है। इसके सिवाय कपड़े सिलवाना तथा स्टेशनरी के सामान इत्यादि के लिए भी उनके ही सहयोग-संघ होते हैं। नाटक खेलना, अखबार निकालना तथा और कार्यों के लिए भी प्रबन्ध-समितियाँ होती हैं। जिनसे भी बहुत से विद्यार्थी अपना खर्च निकाल लेते हैं।

फ़ैक्टरियाँ

यदि हम अमेरिका की किसी प्रसिद्ध फैक्टरी या कम्पनी को देखने जायँ तो हमें मालूम होगा कि मजदूरों के लिए वहाँ अस्पताल, खेल-कूद के क्लब, पुस्तकालय, पठनालय इत्यादि बहुत-सी सुविधायें कर दी जाती हैं। वहाँ के कई पूंजीपतियों का विश्वास है कि मजदूरों के पूर्ण सहयोग से ही हम अधिक लाभ उठा सकते हैं।

वैसे यदि हम मजदूरों की दशा का अवलोकन करें तो मालूम होगा कि वहाँ भी उनकी उम्र कम हो रही है। बारूद इत्यादि की फैक्टरियों में दांत-दर्द, रक्त-विकार, हृद्-रोग, कब्ज इत्यादि बहुतायत से पाया जाता है। चरित्र की दृष्टि से भी उनका जीवन बड़ा खराब होता है। दिन भर अस्वास्थ्य कर कार्य के बाद उन बेचारों को एक ही आराम बाकी रह जाता है और वह है शराब पीना। दिनभर लगातार काम करने के लिए भी उन्हें शराब का सेवन करना

पड़ता है और वही केवल उन्हें शान्ति प्रदान करता है। जहाँ मज़दूरों का इतना ध्यान रक्खा जाता है वहीं जब ऐसा हाल है तो इससे हमारे यहाँ की दशा की कल्पना करना तो बड़ा भयंकर मालूम होता है।

पूंजीपतियों का सरकार की नीति पर भी बड़ा असर पड़ता है। एक तरह से उन्हीं की सरकार है, इसलिए जब-कभी मज़दूरों से संघर्ष होता है तो सरकार पूंजीपतियों की ही सहायता करती है।

किसी भी कम्पनी में वहाँ पदाधिकारों पर उसी कार्य से सम्बन्ध रखनेवाले विशेषज्ञ और विज्ञान वेत्ता रक्खे जाते हैं जो न केवल कार्य-भार को ही बड़ी योग्यता से सम्हाल सकते हैं बल्कि चुने हुए कार्यकर्त्ता और मज़दूर भी ले सकते हैं। फिर वे लोग अपने लिए कार्यकर्त्ता तैयार भी करते हैं जिनको योग्य हो जाने पर उचित पद दिया जाता है। वहाँ के पूंजीपति बड़े ही व्यवहार-चतुर और योग्य व्यक्ति होते हैं जो अपने अनुभव से विशाल क्षेत्रों का संचालन कर सकते हैं। योग्यता की कीमत वहीं आंकी जा सकती है जहाँ के पदाधिकारी स्वयं योग्य हों। अमेरिका में आप कहीं काम करने जायँ तो यह पूछने की आवश्यकता नहीं है कि आपको कितना वेतन दिया जायगा और न आप से कोई यह पूछेगा कि आप कितना लेंगे। यह बात भी गुप्त रक्खी जाती है कि आप को कितना वेतन मिलेगा। ज्यों-ज्यों आपकी योग्यता बढ़ती जायगी आपको पद-वृद्धि भी होती जायगी।

अमेरिका जैसे स्वाधीन देश में हमारे यहाँ की अपेक्षा बहुत-सी विशेषतायें हैं और हम उनसे वर्तमान परिस्थिति में पर्याप्त रूप से लाभ उठा सकते हैं।

हमारी कैलास-यात्रा

(२)

तपोवन के आस-पास

(श्री दीनदयालु शर्मा)

काली-गौरी का सङ्गम

असकोट से हम २८ जुलाई की सुबह चले। तीन मील तक सीधा उतार है। मार्ग छायावाला है, किन्तु कुछ फिसलने का डर बना रहता है। नीचे तलहटी में गौरी गंगा का विशाल प्रवाह है। गौरी हिमालय के ऊँचे शिखरों से जल लाती है। इन शिखरों पर स्थायी हिम जमा है। नदी का जल अत्यन्त शुद्ध तथा शीतल है। शिलाओं से टकराकर इसकी उत्तुंग तरंगें बड़ा निनाद करती हैं। दो मील नीचे दूधी नाम का गाँव है। यहाँ काली और गौरी का संगम है। काली बाईं ओर से आती है और गौरी दाईं ओर से। दूधी में दोनों का प्रेम-सम्मिलन होता है। जिस प्रेम-भाव से ये दोनों सखियाँ मीलों की यात्रा के बाद परस्पर आलिंगन करती हैं, अपूर्व है। संगम का दृश्य बड़ा सुहावना है। छोटे से मैदान में दो-चार झोंपड़े पड़े हैं। मार्गशीर्ष मास में इस स्थान पर बड़ा भारी मेला लगता है। संगम के बाद नदी का नाम काली ही बना रहता है। नीचे पिथौरागढ़ के पास वह सरयू में आ मिलती है।

दूधी के बाद हमारा रास्ता काली नदी के दाहिने किनारे के साथ-साथ जाता था। काली बड़ी भयंकर नदी है। हिमावृत चोटियों में इसका निकास है। जब वह अपने मद में होती है तो पत्थरों को तोड़ती-दहाड़ती चली आती है। तभी तो इसका नाम काली है। निकास से लेकर टनकपुर तक यह अंग्रेज़ी राज और नैपाल में सीमा का काम करती है। दायें किनारे अंग्रेज़ी सल्तनत है तो बायें तट पर एक मात्र हिन्दू राष्ट्र नैपाल का झंडा फहरा रहा है। हमारा रास्ता अंग्रेज़ी राज में से ही जाना था। सात-आठ दिन तक नदी पार स्वतंत्र नैपाल की भूमि के दर्शनों से हमें जो प्रसन्नता मिलती थी वह अवर्णनीय है। दिल में बार-बार स्वतंत्र भारत का कल्पना हिलोर लेने लगती थी। आज भारत स्वतंत्र नहीं है। न केवल आज उसके गले में गुलामी का पट्टा पड़ा है किन्तु वह दूसरों की पराधीनता कायम रखने में भी सहायक हो रहा है। जब भारतीय हृदय स्वतंत्रता की पीड़ा और लगन से भरने लगेंगे उसी दिन भारतीय स्वतंत्रता की आधार-शिला रक्खी जायगी।

गौरी गंगा पर झूले का पुल

बलवाकोट और धारचूला

दूधी से बलवाकोट पाँच मील है। काली नदी के किनारे छोटा-सा गाँव है। माघ महीने में भोट में जाड़ा

अधिक हो जाने से भोटिये इधर आ जाते हैं। इन लोगों के बढ़िया मकान स्थान-स्थान पर बने हैं। आख़िर ये लोग इस देश के मारवाड़ी ही तो हैं। बलुआकोट बहुत गरम जगह है। आज दिन भर पसीने ने हैरान किया। गरमी ने चैन न लेने दी। यहाँ आकर सुस्ताने के लिए काली के शीतल कूल का आश्रय लिया। ठंडी बयार ने मन को बड़ी शान्ति दी। काली भयंकर गर्जना से बह रही थी। उसकी यह गर्जना न जाने कितनी पुरानी है। यहाँ मुसलमान बनिये की दुकान पर आश्रय मिला। अलमोड़ा ज़िले के बहुत-से गाँवों में मुसलमानों ने छोटी छोटी दूकानें खोल रक्खी हैं। ये खेती, लेन-देन और व्यापार का काम करते हैं और यहाँ की दृष्टि से समृद्ध समझे जाते हैं।

बलुआकोट से धारचूला दस मील है। रास्ता नदी के साथ साथ जाता है। कभी थोड़ा ऊँचा चढ़ गये, फिर थोड़ी देर में धारा के साथ आ गये, ज़रा देर में फिर दूर हो गये यही क्रम बना रहता है। ६ मील पर सरिता के किनारे कालिका का मंदिर है। यहाँ पूजा के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं। मन्दिर छोटा किन्तु अच्छा बना हुआ है। आज भी गरमी अधिक थी। यह स्थान समुद्र-तल से तीन हज़ार फुट ऊँचा होगा। आबोहवा का पता तो इसी से लग सकता है कि सब जगह आम और केला की अधिकता है। धार-चूला के पास तो हमने गन्ना भी देखा था। सवेरे नौ बजे ही धारचूला पहुँच गये। धारचूला एक बड़े भारी मैदान में है। मैदान के चारों ओर उन्नत गिरि-शिखर हैं। काली नदी मैदान के बीच होकर बहती है। मैदान चार मील लम्बा और एक मील चौड़ा है। खेत लहलहा रहे हैं। धान के हरे खेतों ने शोभा बहुत बढ़ा दी है। सरदी बढ़ जाने पर यहाँ भोटिये हज़ारों की संख्या में आ बसते हैं। नेपाल जाने के लिए नदी पर रस्से का पुल बना है। नदी के आर-पार दो भारी रस्से पड़े रहते हैं। रस्सों पर लकड़ी का एक खटोला टँगा हुआ है। पार जानेवाला व्यक्ति खटोले में बैठ जाता है, पार खड़ा हुआ व्यक्ति रस्से से खटोले को खींच लेता है। पहाड़ के रहनेवाले लोग बहुत बार बिना खटोले के भी पार चले जाते हैं। रस्से से हाथ छूट जाने के कारण कई मौतें भी होती देखी गई हैं।

दूधी में काली-गौरी का संगम

ईसाई-धर्म का प्रचार

धारचूला के ऊपर एक छोटे-से गाँव में ईसाई मिशन है। गरमियों में पादरी भोट के इलाके में चला जाता है और जाड़ों में धारचूला में ही रहता है। दोनों स्थानों में रहने के लिए सुन्दर बंगले बने हुए हैं। धर्म-भावना इन्हें सुदूर अमेरिका से यहाँ खींच लाई है। आस-पास कुछ लोग ईसाई हो गये हैं। देशी ईसाई भी लगन से प्रचार कर रहे हैं। एक ईसाई हमारे पास लाया गया। उसने तबला गले में डाल रक्खा था जहाँ जाता, तबला बजा-कर लोगों को एकत्र करता और प्रभु ईसा के गुण गाता। हमें भी उसने प्रभु-भक्ति के कुछ भजन सुनाये। भजन शुद्ध हिंदी में हैं और श्रोता के मन पर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। क्राइस्ट को प्रभु ईसा कहते हैं और ज़ोरों से उसकी जय बोलते हैं। एक बात अच्छी है, ईसाई होकर भी इन लोगों ने भारतीयता को तिलाञ्जलि नहीं दी है।

तपोवन

धारचूला में दोपहर बिताकर हम आगे बढ़े। यहाँ से दो मील पर एक सुन्दर मैदान है। इस मैदान में दीन जनता की सहायता के लिए रामकृष्ण-मिशन की शाखा खोली गई है। स्वामी विवेकानन्द का स्थापित किया हुआ यह मिशन भारत के भिन्न-भिन्न भागों में हिन्दू-जाति के लिए बड़ा उपकारी सिद्ध हुआ है। स्वामी विवेकानन्द को

काली नदी बलवा कोट से धारचूला के बीच

रामकृष्ण तपोवन का एक दृश्य

अलमोड़ा से अधिक प्रेम था। वे गरमियों का समय इधर बिताया करते थे। आज इस ज़िले में मिशन की तीन शाखायें हैं—एक ख़ास अलमोड़ा में है। दूसरी टनकपुर मण्डी से थोड़ा ऊपर मायापुरी में है। रामकृष्ण मिशन का वहाँ मुख्य केन्द्र है। प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक 'प्रबुद्ध-भारत' वहाँ से ही प्रकाशित होता है। मिशन के साहित्य का भी वहाँ अच्छा संग्रह है। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के सिद्धान्तों की पुस्तकें वहाँ तैयार होती है। मायापुरी में ही सम्भवतः इनका अपना प्रेस भी है। तीसरी शाखा धारचूला के पास तपोवन में है जिसके हमने आज दर्शन किये।

मकान का स्थान अद्वितीय है। सब ओर से पहाड़ घिरे हैं। नीचे काली नदी चरणों को धो रही है। सड़क के दोनों ओर खुले मैदान में आश्रम स्थापित है। आश्रम में पहुँचकर शान्ति प्राप्त होती है इसलिए इस स्थान का नाम तपोवन पड़ गया है। कैलास के यात्रियों तथा इस प्रान्त के अधिवासियों के कष्टों को दूर करने के लिए तपोवन की स्थापना हुई है गरब्यांग भोट की श्री सथादेवी मिशन की अनन्य भक्त हैं। आपके सतत प्रयत्नों से अस्कोट के स्वर्गगत राजा ने यह स्थान मिशन को दान कर दिया था। सन् १९२१ में मिशन की ओर से यहाँ आश्रम की स्थापना हुई। आश्रम के मंत्री स्वामी अनुभवानन्दजी नियत हुए। स्वामीजी बंगाली हैं; स्वभाव के मिलनसार, हँसमुख व शान्ति प्रिय हैं। धर्म के प्रति उनका प्रेम और लगन अनुकरणीय है। स्वामीजी हमारे साथ कैलास गये थे। उनके साथ थोड़े दिन का भी सत्संग भक्त को नई भावना में बदल देता है। आश्रम के आप अनथक कार्यकर्ता हैं। आस-पास की जनता आपको सम्मान की दृष्टि से देखती है।

यह आश्रम अलमोड़ा ज़िले की पिथौरागढ़ तहसील में है। विस्तार की दृष्टि से यह सबसे बड़ी तहसील है। हिमालय के कठिन मार्गों में होने के कारण यहाँ आना-जाना कठिन है। सारी तहसील में सिवा पिथौरागढ़ ख़ास के अन्य कहीं अस्पताल न था। मीलम व गरब्यांग आदि स्थानों के लोगों को इलाज के लिए सौ मील से अधिक

यात्रा करनी पड़ती थी। सन् १९२४ से आश्रम में एक धर्मार्थ औषधालय खोल दिया गया है। आजकल इसके अध्यक्ष हुगली ज़िले के डाक्टर मनमथ पालधि हैं। आप यहाँ स्वास्थ्य-सुधार के लिए आये थे। मिशनवालों के कहने से यहीं ही रह गये। आप बड़े प्रेम से रोगियों की चिकित्सा करते हैं। रोगियों के रहने और भोजन का भी आश्रम की ओर से प्रबन्ध है। अस्पताल का सब खर्च चंदे और दान से चलता है।

अस्पताल अभी तक छोटी-सी इमारत में है। दिन-दिन कार्य बढ़ रहा है। मरीज़ों के लिए अलग स्थान की आवश्यकता अनुभव हो रही है। नई इमारत के लिए प्रबन्ध हो रहा है। युक्तप्रान्त की सरकार ने इमारत के लिए ६ हज़ार रुपया देना स्वीकार कर लिया है। कुछ दान का रुपया मिलाकर नई इमारत शीघ्र तैयार हो सकेगी। युक्तप्रान्त के मेडिकल बोर्ड से डाक्टर की वृत्ति के लिए वार्षिक चार सौ रुपये की सहायता मिलती है। अलमोड़ा का ज़िला बोर्ड दवाइयों के लिए ३६० रुपये वार्षिक देता है। यदि अन्य सज्जन भी इस विषय में आश्रम की सहायता करें तो यह अस्पताल अधिक उपकार कर सकेगा। इसके अतिरिक्त आश्रम की ओर से एक पाठशाला धारचूला में खोली गई थी किन्तु प्रोत्साहन न मिलने के कारण उसे बन्द करना पड़ा। धन की कमी के कारण कई कार्य रुके पड़े हैं। अभी तो अस्पताल ही ऐसा है जो हज़ारों दीनों की सेवा कर रहा है। आश्रम के सुप्रबन्ध के लिए श्री स्वामी अनुभवानन्दजी सतत लगे रहते हैं। यह उन्नति श्री स्वामीजी के परिश्रम का फल है।

हम लोग शाम को पाँच बजे तपोवन पहुँचे। सड़क के किनारे ही एक हरा मकान है। इसमें औषधालय, रोगी-गृह और अतिथिशाला है। चारों ओर विविध पुष्पों से वाटिका सजी है। थोड़ा नीचे उतरने पर कुछ कुटियाँ मिलती हैं। सब से नीचे एक ओर देवियों के ठहरने का स्थान है। दूसरी ओर मन्दिर है जिसमें शिवलिंग प्रतिष्ठित है। मंदिर के शिखर पर भगवाँ झण्डा लहरा रहा है। विशाल मैदान के साथ ही अर्धचन्द्राकार रूप काली नदी का प्रवाह है। नदी के किनारे गन्धक जल के दो तीन स्रोत हैं जिनका जल चर्म-रोग के लिए लाभदायक है।

हम ७ जुलाई को आश्रम में ही रहे। यहाँ हम से पहले अन्य कई अतिथि ठहरे हुए थे। हमारे अल्मोड़ा से प्रस्थान करने से सात दिन पूर्व स्वामी सियारामजी अपनी शिष्य-मण्डली सहित कैलास के लिए चल चुके थे। मण्डली में बीस सदस्य थे। मार्ग में भोजन का प्रबन्ध ठीक न रहने से सारी मण्डली बलवाकोट में बीमार हो गई। तपोवन में आकर स्वामी सियारामजी ने शरीर छोड़ दिया। गुरु के अभाव में बहुत से यात्री वापिस चले गये। बाकी चार-पाँच अभी तपोवन में ही थे। हम लोगों को कैलास जाते देखकर इनमें से दो ने आगे यात्रा का निश्चय कर लिया। एक बरेली के ब्रह्मचारी जगन्नाथ थे, दूसरे सज्जन पंजाब में ज़िला झेलम के रहनेवाले थे। आपका शुभ नाम मास्टर कल्याणदेव था। हम दोनों अधिक साथियों की खोज में थे ही। अब हमारी मण्डली में चार सदस्य हो गये। यद्यपि स्वभाव में भिन्नता होने से आगे हम में थोड़ी-बहुत अन-बन अवश्य रही किन्तु चार साथियों के कारण यात्रा अधिक सफल हो सकी।

तपोवन से खेला ९ मील है। १० जुलाई की दोपहर को हमने तपोवन से विदा ली। अब तक रास्ते के दोनों ओर खेत थे, आबादी थी। अब वह सब लुप्त हो गया। नदी के किनारे काली के निकास की ओर हमने पग बढ़ाया। धूप में चलकर कूलागाड़ पहुँचे। यहाँ नदी को गाड़ कहते हैं। ऊँचे गिरि से नील जल विशाल शिलाओं को भेदता हुआ आ रहा था। इसी का नाम कूलागाड़ है। जल अति शीतल और शुद्ध है। इसके सुन्दर प्रवाह को देखकर मुरझाया दिल भी खिल उठा। वास्तव में इसे आनन्द का स्रोत कहना चाहिए। प्रसन्नता के मारे हम नाचने लगे। यहाँ बसेरा किया; घंटों बैठे-बैठे जल का नाच देखा किये। वह अपने नये से नये किलोलों में मस्त था। इस सूखी दुपहरी में इस प्रवाह ने बड़ी शान्ति दी। आज सारे मार्ग में और कोई दृश्य न मिला।

दो मील इधर काली नदी का साथ छूट जाता है। दो मील तक कड़ी चढ़ाई है। सारे राह में पेड़-पत्ते का नाम

नहीं, प्यास बुझाने को पानी नहीं मिलता, सूर्य भगवान् अपना अनन्त ताप बरसाते हैं। गरमी में झुलसते हुए कई सौ सीढ़ियाँ पार करके खेला गाँव पहुँचे। रुण्ड-मुण्ड पहाड़ पर छोटा-सा गाँव है। घी यहाँ सस्ता है, रुपये का सेर भर मिल जाता है। लोग ग़रीब हैं। आस-पास कहीं आबादी नहीं है। हमारे नये साथियों के बोझे के लिए कुलियों की ज़रूरत थी।। यहाँ वाले अधिक असबाब कैसे उठा पाते। लोग आते, असबाब देखकर घबरा जाते। अन्त में दो मज़दूर प्रति पड़ाव एक रुपया के हिसाब से कर लिये।

खेला में पोस्ट-मास्टर के यहाँ डेरा किया। कल से भोट शुरू होगा। कई जगह रसद नहीं मिलती, यहाँ तक कि लकड़ी भी अप्राप्य हो जाती है। खेला से हमने तिब्बत के बीस दिन के लिए घी भर लिया। गुड़ भी लिया। भोट के कठिन स्थानों के लिए सत्तू रख लिया। जहाँ आटा-दाल न मिले, लकड़ी भी नसीब न हो वहाँ सत्तू ही जीवनाधार है। इस सत्तू ने ही हमें कैलास में जीवन दिया था। अब तक हम मध्य हिमालय में हैं। भोट हिमालय में है, उसकी यात्रा का हाल आगे आयगा।

संगठित हिंसा

[महात्मा गांधी]

यह तो जाहिर है कि किसानों से जो धन लिया जाता है वह न तो वे राज़ी-खुशी देते हैं और न उनके फ़ायदे के लिए उन्हें विवश करके लिया जाता है। अंग्रेज़ों ने शान्ति नाम की जो चीज़ स्थापित की है उसका गाँवों पर कोई असर नहीं पड़ता, क्योंकि वे तो तैमूर और नादिरशाह के आक्रमणों से भी अछूते ही बने रहे थे। अब भी यदि अराजकता फैल जाय तो उससे गांवों का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं दीखता। परन्तु सिर्फ़ इसीलिए कि यह भारी बोझ लोगों पर लादा भी जा सके और वे कोई प्रतिकार भी न कर सकें, पशुबल (सेना आदि) इतने अधिक प्रमाण में संगठित किया गया है कि जितना पहले कभी नहीं हुआ था; और उसकी ऐसी धूर्तता-पूर्ण व्यवस्था की गई है कि आम लोग न तो उसे आसानी से देख सकते हैं, और न अनुभव कर सकते हैं मुझे तो अंग्रेजों का शासन हमेशा से हिंसा का सम्पूर्ण अवतार दिखाई दिया है। कुछ ज़हरीले सांप ऐसे भी होते हैं कि उन्हें देखते ही आदमी के हाथ-पैर ठण्डे हो जाते हैं। फिर किसी को डँसने की उन्हें आवश्यकता ही नहीं रहती। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ब्रिटिश सत्ता का भी हम भारतवासियों पर ठीक ऐसा ही असर हुआ है। (फ्राइटफुलनेस) शब्द हिन्दुस्तानियों का गढ़ा हुआ नहीं है। जलियाँवाला हत्या-काण्ड का तादृश चित्र खींचने के लिए एक अंग्रेज न्यायाधीश ने इस शब्द का प्रयोग किया था। और अगर हम अपना सर ऊँचा करके यह कहने का साहस करें कि 'भारत को चूसकर निःसत्व बना देनेवाली इस लूट को हम अब अधिक काल तक सहन नहीं कर सकते,' तो हमारे लिए और भी अनेक हत्या-काण्ड तैयार हैं।

हम यह भी समझ लें कि संगठित पशु-बल किस प्रकार काम करता है और इसलिए एकाएक भड़की हुई अविचार-पूर्ण और यत्र-तत्र फैली हुई हिंसा के मुकाबले वह कितना ज्यादा घातक होता है। संगठित पशु-बल अपना काम अक्सर धूर्तता और छल की आड़ में छिप कर करता है देखते हैं। कि सदिच्छा की घोषणाओं, कमीशनों, परिषदों और इसी तरह की दूसरी बातों के कपट-जाल-द्वारा उसका काम बनता है। यही नहीं, बल्कि लोक-हित के कामों का रूप देकर अन्यायी उनके द्वारा स्वयं लाभ उठाता है। लालच और कपट हिंसा की सन्तान भी हैं और उसके जनक भी। हिंसा अपने नग्न रूप में लोगों को उसी तरह बुरी लगती है; जिस तरह मांस, रक्त और कोमल त्वचा से शून्य एक नर-कंकाल बुरा लगता। ऐसी हिंसा बहुत समय तक नहीं टिक सकती। लेकिन जब वह शान्ति और प्रगति का भेष धारण कर लेती है, तो काफ़ी लम्बे समय तक बनी रहती है।

परिव्राजक के अनुभव

(स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, जर्मनी)

कुछ दिन पहले की बात है। कोलोन के इङ्गलिश क्लब के सभापति ने पत्र भेजकर मुझे अपने यहाँ व्याख्यान के लिए बुलाया। उत्तर में मैंने लिख भेजा कि यदि आप महात्मा गान्धी के विषय में मेरा व्याख्यान करावें और उसकी विज्ञप्ति नगर के समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दें तो मैं सेवा के लिए तैयार हूँ।

मेरी बात क्लबवालों ने स्वीकार कर ली। छपे हुए निमंत्रण-पत्र प्रतिष्ठित नागरिकों के पास भेजे गये और साधारण जनता की जानकारी के लिए समाचार-पत्रों में सूचना निकाल दी गई। जो आवश्यक कर्तव्य क्लबवालों का था वह उन्होंने भली प्रकार पूरा कर दिया। अब मेरा काम बाकी रह गया।

मेरा व्याख्यान अंग्रेजी भाषा में होने के कारण मैं समझता था कि मुश्किल से सौ-दो सौ श्रोता आयेंगे और इसीलिए ढाई सौ कुर्सियों का प्रबन्ध किया गया था। लेकिन निश्चित तिथि—१२ दिसम्बर—को रात के साढ़े आठ बजे जब मैं व्याख्यान-हाल में पहुँचा तो हाल ठसाठस भर गया था। लोग आ रहे थे। जिन्हें स्थान नहीं मिला वे सीढ़ियों पर खड़े थे, जो अन्दर नहीं जा सकते थे वे निराश हो लौट गये। समाचार-पत्रों के रिपोर्टर और रायटर का प्रतिनिधि भी मौजूद था।

ठीक समय पर सभापति महोदय ने मेरा परिचय जनता से करा दिया। तत्पश्चात् मैंने व्याख्यान आरम्भ किया। मैंने कहा—

"मैं जर्मनी में आँखों के इलाज के लिए आया हुआ हूँ। राजनैतिक प्रचार-कार्य करना मेरा उद्देश्य नहीं है। यह व्याख्यान केवल महात्मा गान्धी के विषय में लोगों की वाक़फ़ियत बढ़ाने और भारतीय संस्कृति का स्वरूप दिखलाने के लिए है। यदि मैं प्रचार करने का इरादा भी रखता तो भी भला मैं किस मुँह से बहादुर जर्मन-जाति से यह कहकर सहायता चाहता कि हम तीस करोड़ लोगों पर सत्तर हज़ार अंग्रेज़, सात हज़ार मील दूर अपने घर से बैठे हुए, राज्य कर रहे हैं। जिन सात करोड़ जर्मनों ने सारे संसार के दाँत खट्टे कर दिये और केवल भूख के कारण पराजय पाई, उस जर्मन-राष्ट्र के सामने क्या मेरा कुछ कहने का मुँह है? हमीं मूर्ख अपनी नादानी से अपने देश को गुलाम बनाये हुए हैं, हमीं ने उसे जंजीरों से जकड़ रक्खा है। मैं तो आपको पहले यह बताना चाहता हूँ कि हम तीस करोड़ लोगों में क्या त्रुटि है जिसके कारण अंग्रेज़ों ने यह मोजज़ा (Miracle) कर रक्खा है। और उस मोजज़े के जादू को तोड़नेवाला महारथी महात्मा गाँधी, जो पहिले ब्रिटिश भक्त था, किस दिव्य नैतिक बल से नव भारत को जन्म दे रहा है। भारत के उस जार्ज वाशिंगटन की कुछ बातें—अपने निज के अनुभव की—आपको सुनाता हूँ।"

इतनी भूमिका कहकर मैंने १९१७ से लेकर १९२१ तक की घटनाओं का वर्णन किया। गान्धीजी के आश्रम की बातें सुनाईं और भक्त-शिरोमणि नरसी मेहता का प्रेम से सना हुआ प्यारा गीत सुनाया। व्याख्यान के बाद लोगों ने आग्रह किया कि महात्माजी के सम्बन्ध में एक व्याख्यान-माला जारी की जाय।

* * *

मैं अपने कमरे में बैठा था। रात के ग्यारह बज गये थे। कमरा खूब गरम था। कुर्सी पर बैठा हुआ मैं विचार-निमग्न था। कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने नोबेल-पुरस्कार पाया। अंग्रेजी-पुस्तक-विक्रेताओं ने उनकी पुस्तकों का प्रकाशनाधिकार लेकर उनके नाम का विज्ञापन संसार में फैलाया। यह व्यवसाय की बात थी। उस प्रसिद्धि के कारणों को मैं साफ देख सकता हूँ। और यह मेरा बापू, जिसने कभी ख्याति की इच्छा नहीं की, जो बड़ी-बड़ी भूलें करके साफ कह देता है कि मेरी भूल है; जो अपने शक्तिशाली दल को छिन्न-भिन्न कर अपना सब कुछ स्वराजियों को सौंप देता है, यह मेरा हँस-मुख बापू जिसके साथ मैं घण्टों वाद विवाद किया करता था और हमेशा उसे नाराज ही कर देता था, लेकिन कभी उसने मुझे कटु शब्द नहीं कहा, वह सरल-चित्त महापुरुष, आज करोड़ों आत्माओं के हृदय में बस गया है—अपने ही देश में नहीं विदेश में—यह कैसा जादू है यह कैसा प्रेम-साम्राज्य है !

पांच वर्ष तक मेरा महात्मा गांधीजी के साथ सम्बन्ध रहा। मैंने कभी इस गंभीरता से बैठकर उनके गुणों पर विचार नहीं किया था। मैंने सदा उन्हें भारत की स्वतंत्रता निकट लानेवाला साधन समझकर उनके द्वारा क्रान्ति करवाने की इच्छा ही रक्खी थी। बस, मैंने इससे आगे कभी उनके चरित्र पर दृष्टि नहीं डाली, लेकिन यहाँ कोलोन में, इन गरीब-अमीर जर्मन स्त्री-पुरुषों के अनन्य गान्धी-प्रेम को देखकर मैं चकित हो गया। मुझे भगवान् बुद्ध का उपदेश याद आया—

जितने जीव जगत के वासी।
सब ही हैं सुख के अभिलाषी॥
परहित-साधन हाथ बढ़ाओ।
सब जीवों को सुखी बनाओ॥

यह जो परोपकार, अहिंसा, प्रेम और दया की भावना है इस में जादू है। यही गान्धीजी के जीवन का रहस्य है।

मैंने कहा—

जो दीन-हीन के दुःखों पर,
निज करुणा-स्रोत बहाता है।
इस विश्व-चराचर-रचना में,
वह मनुज पुनीत कहाता है॥

× × ×

उसके यश का वाहन बनकर,
ईश्वर निज भक्ति दिखाता है।
त्रय-ताप-तपे जग-जीवों को,
करुणा-सन्देश सुनाता है॥

× × ×

बरसाकर सुधा अहिंसा की,
मजहब का जहर मिटाता है।
सम-भाव सिखा सब भूतों को,
देशों के भेद भगाता है॥

❋ ❋ ❋

व्याख्यान के कुछ दिन बाद एक संध्या को अंग्रेजी क्लब के एक सदस्य की एक अंग्रेज मेजर से भेंट हो गई। मेजर महाशय कोलोन में रहते हैं। वह भी व्याख्यान में आये थे। उन दोनों में इस प्रकार बातचीत होने लगी। मेजर बोला—

"कहिए, अंग्रेजी क्लबवालों को यह व्याख्यान करवाने की क्या सूझी ?"

"क्यों ?"

"वे इस आदमी को कहाँ से जानते हैं ?"

"आप अपना मतलब कहिए।"

"यह मिस्टर देवा तो बड़ा खराब कम्यूनिस्ट है।"

सदस्य ने आश्चर्य से पूछा—

"आपको कैसे मालूम है ?"

"हां, हां मैं जानता हूँ।"

"कैसे जानते हैं? वह व्याख्यान तो खाली महात्मा गांधी पर था।"

"यह सब कम्यूनिस्ट हैं। यह आदमी तो मशहूर कम्यूनिस्ट है।"

इस पर सदस्य महाशय हँस पड़े और बोले—

"अंग्रेज कभी अपने राजनैतिक विरोधी के साथ ईमानदारी का बर्ताव नहीं करता। वह उसके बखिलाफ़ ग़लत इलज़ाम लगाने में कभी हिचकिचाता नहीं। पिछले महायुद्ध के समय आप लोग जर्मनों को क्या-क्या कहते थे—जंगली, मूर्ख! वह सब हम भूल नहीं गये।"

मेजर बेचारा कट गया और खफा होकर चल दिया।

जब मुझे यह बात मालूम हुई तो मैं खूब हँसा। अंग्रेज को अब दुनिया पहचान गई है। अब उसकी राजनैतिक धूर्त्तता का भण्डाफोड़ हो गया है। अंग्रेजों की ऐसी धोखा-धड़ी की राजनीति को हम केवल सत्य के बल पर ही जीत सकते हैं क्योंकि झूठ में हम उसे नहीं पा सकते। राजनैतिक झूठ की परिभाषा अंग्रेजों ने गढ़ ली है। ऐसे शब्द, मुहावरे, वाक्य इन्होंने बना लिये हैं जिनके अर्थ कुछ के कुछ हो सकते हैं। इसीलिए इनका बनाया हुआ क़ानून इतना धोखे से भरा हुआ है कि उसका अर्थ कुशाग्र बुद्धिवाले वकील, बैरिस्टर कुछ का कुछ कर देते हैं और निरपराध लोग फांसी पर लटक जाते हैं।

आइए अंग्रेजी राजनीति के इस भीमकाय असत्य-वाद का हम अपने सत्य-बल से वध करें। महात्मा गान्धी का सत्य ही उन्हें परेशान कर रहा है। सच कहा है—

चलाया झूठ का सौदा,
बहुत दिन राज अंग्रेजी।
उसे गाँधी हटावेंगे,
दिखा निज सत्य की तेजी।

❀ ❀ ❀

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर-कांग्रेस में अपना भाषण देकर भारतीय नवयुवकों की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिये हैं। धोखेबाज़ी का पुराना युग हटाकर नये युग की खरी-खरी बातें सुना दी हैं। कुशल अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने जो भयंकर भूल पार्लमेंट की साधारण-सभा में वायसराय की घोषणा पर बहस करते समय कर दी है, उसका पूरा लाभ पंडित जवाहरलाल ने उठा लिया है। जनता को देश का राजनैतिक ध्येय मिल गया है। वह स्पष्ट हो गया है। अब भीतरी सब झगड़े स्वतः मिट सकेंगे। जब तक ध्येय पार्लमेंट के हाथ में रहेगा, वह हमें लड़वाकर अपना मतलब सिद्ध करती रहेगी। फिर पार्लमेंट का क्या ठिकाना है, जहाँ विरोधी दल सरकारी दल की अच्छी बात को भी शक्ति हथियाने के लिए विकृत कर उसे बदनाम कर सकता है। अंग्रेजी पार्लमेंट की इस पार्टीबन्दी के दलदल में हम अपने देश का भाग्य-निर्णय क्यों रहने दें। हमें अपनी समस्यायें आप ही हल करनी पड़ेंगी। अब भगवान् हमारे अनुकूल हैं। ज्यों-ज्यों दिन, सप्ताह, और महीने बीतते जायेंगे, भारतीय प्रजा शक्ति-शाली और भारतीय नौकरशाही कमज़ोर होती जायगी। पूर्ण-स्वतंत्रता का स्पष्ट ध्येय ही हमारी सब शक्तियों को संगठित करेगा। यही प्रजा में स्फूर्ति लायगा और उसमें कठिनाइयों को जीतने की शक्ति की वृद्धि करेगा।

पूर्ण-स्वाधीनता! हां, बस पूर्ण-स्वाधीनता, यही ध्वनि देश के कोने-कोने से उठनी चाहिए। वे जो हमें निर्बल तथा शस्त्र और साधनहीन कहकर डराते हैं, पंगु हैं। वे बिना लाठी के सहारे चल नहीं सकते। पूर्ण-स्वाधीनता का विचार ही स्वावलम्बन और साहस

का द्वार खोलता है। जिस छिपी हुई अपनी शक्ति को हम देख नहीं रहे हैं, पूर्ण-स्वाधीनता की भावना उसे हमारे सामने खड़ा कर देगी। यही नहीं बल्कि वह हमारे विरोधियों की कमजोरियो को भी स्पष्ट करेगी। वह पूर्ण-स्वाधीनता का आदर्श, सोई हुई भारतीय आत्मा को चैतन्य करेगा।

औपनिवेशिक मर्यादा (डोमिनियन स्टेटस) केवल एक जाल है। हमारा व्यक्तित्व भिन्न, हमारी संस्कृति जुदा, हमारी सभ्यता अलग, हम भारतीय हैं। हजारों वर्षों से हमारा स्वतंत्र विकास हुआ है। वह विकास क्या औपनिवेशिक शासन-मर्यादा से प्राप्त होगा? भोले लोग अपने भय, अपने स्वार्थ, अपनी निर्बलताओं को छिपाने के लिए मर्यादा (स्टेटस) ऊंचा करने की फिक्र में हैं जैसे अछूत अपनी मर्यादा ऊंची-बराबर-करना चाहते हैं। वे अपना व्यक्तित्व नहीं समझते। पूर्ण-स्वाधीनता, भारतीय-व्यक्तित्व, उस की संस्कृति और उसके पूर्ण विकास का मार्ग है। यही मार्ग हमारी भावी सन्तान के लिए सुखप्रद है। यही संसार के लिए कल्याणकर है।

मेरा एकतारा

(श्री शान्तिप्रसाद वर्मा)

शैशव के इन सुनहले दिनों में अपने झोले में बहुत-सी वस्तुओं को भरकर भिक्षा माँगने मैं निकल पड़ा, परन्तु तेरी उस विशाल राजधानी में मैंने सबको याचना करते ही पाया और आज मैं अपनी खाली झोली लेकर तेरे ऊँचे प्रासाद के नीचे आ बैठा हूँ।

दोपहर के प्रचण्ड सूर्य के आघात से मेरे नेत्रों की निद्रा जाग उठी है, और मैं इस प्रासाद की छाया में सूर्यास्त के समय तक सोता रहूँगा।

जिस समय तेरे विशाल सभा-भवन में आनन्द की लहर नाच रही होगी, और धन-वैभव इठलाता फिरेगा, मैं एक भिक्षुक प्रजा के शासक से कुछ माँगकर अपना अपमान नहीं करूँगा परन्तु अपना एकतारा उठाकर उसमें वेदना का एक करुण अलाप लूँगा जिससे तेरे राजमहल की दीवारें हिल उठेंगी, और निर्दय विलास का ताण्डव बिखर कर नष्ट हो जायगा।

सौन्दर्य की कामना

[श्री मुकुटबिहारी वर्मा]

(१)

सौन्दर्य का आकर्षण स्वाभाविक है। किसी भी सुन्दर चीज़ को देखते ही मन, न-जाने क्यों, उसकी ओर झुकने लगता है। चाहे उपवन की सुन्दरता हो, चाहे एकान्त जंगल में प्रकृति की क्रीड़ा, भयावह संयोगों के बीच जल का मधुर कल-कल शब्द हो या भयंकर जल-प्रपात का सुहावना दृश्य, चिड़िया की मधुर चहचहाहट हो या बाल-सुलभ कण्ठ का मीठा स्वर, श्रीमान् का ठाट-बाट हो या ग़रीब की सफ़ाई कैसी भी सुन्दरता हो, उसे देखते ही हमारा मन उस तरफ़ आकर्षित हो उठता है; उसका साथ करने, उसे पाने, अथवा उसका उपभोग करने की तीव्र लालसा हमारे मन में उठती है।

अपने आस-पास के वातावरण के लिए जब यह बात है, तब स्वयं अपने लिए तो सौन्दर्य की अभिलाषा और भी स्वाभाविक है। कोई भी मनुष्य अ-सुन्दर नहीं होना चाहता। अपने हाथ की बात हो तो कोई कुरूप रहे भी नहीं।

यही कारण है, संसार में सौन्दर्य की बड़ी चाह है। यह बात दूसरी है कि वह कहाँ तक ठीक है और कहाँ तक नहीं। परन्तु इसमें शक नहीं कि संसार सदा से सौन्दर्य की कामना करता आया है, कर रहा है, और करता रहेगा।

पहले, सुनते हैं, स्वाभाविक रहन-सहन और तैल-उबटने का ज़ोर था। आज साबुन, पौमेड, लवेण्डर और कृत्रिम उपायों का बोल-बाला है। प्राकृतिक जीवन की उपयोगिता का भी शास्त्रीय प्रतिपादन अब फिर होने लगा है सही, पर उसपर अमल कृत्रिम उपायों से ही करने का प्रयत्न हो रहा है। हाँ, यूरोप के कुछ देशों में ऐसे प्रकृतिवादियों का उदय ज़रूर हुआ है, जिन्होंने पहले के स्वाभाविक जीवन को भी मात कर दिया है। वे नंग-धड़ंग रहते हैं, घूमते-फिरते और हिलते-मिलते हैं।

(२)

सौन्दर्य के लिए हम क्या नहीं करते? नित-नये फ़ैशन निकलते हैं—कपड़ों के नये-नये कट, बालों की तरह-तरह की काट-छाँट, चश्मों का रंग-बिरंगापन, घड़ी और छड़ी के नये-नये नमूने, जूते की चर्र-मर्र, दाँतों का स्वर्णावरण, टाई-कालर का बाँकापन, मूछों का आड़ा-तिरछापन, इत्यादि-इत्यादि क्या-क्या हम नहीं करते?

और स्त्रियाँ? उनका तो शृंगार मानों जन्मसिद्ध स्वत्व है। पुरुष तो उनकी नक़ल करते हैं, वास्तव में तो यह उन्हींका काम बताया जाता है। पुरुष को जब स्वामी माना गया है तो स्त्री को उसे प्रसन्न रखने, उसे रिझाने, उसे अपने पर आसक्त बनाये रखने के लिए अपने में आकर्षण बनाये रखना निहायत ज़रूरी है। यह कल्पना चाहे अशुद्ध हो, अवाञ्छनीय हो, परन्तु स्त्रियों की शृंगार-प्रियता का मूल इसीमें है। इसीलिए उनमें शृंगार का बाहुल्य नज़र आता है। यूरोप में और उसकी देखा-देखी एकाध एशियाई देशों में भी जो सौन्दर्य प्रतिद्वन्द्विताएँ होती हैं, वे स्त्रियों ही की होती हैं—पुरुषों की नहीं। टाँग, नाक, ठोढ़ी आदि के बीमे भी स्त्रियों ही के सुने जाते हैं।

आज के भौतिकवाद के युग में शृंगार ने अपना अड्डा और भी जमा या है। जैसा कि डा० कुलीकसन ने लिखा है, यह विज्ञापन का युग है। पश्चिम में हर बात का विज्ञापन करना होता है, नहीं तो अच्छी होने पर भी कोई नहीं पूछता। स्त्रियाँ वहाँ अपने जीवन-साथी का चुनाव स्वयं करती हैं और उसे राज़ी करने का भार भी उन्हींपर होता है; इस-लिए यह बिलकुल स्वाभाविक ही है कि वे अपने रंग-रूप, हाव-भाव को ज़्यादा-से-ज़्यादा आकर्षक और भड़कीला दरसाने का प्रयत्न करती हैं। इसीलिए बजाय सांस्कृतिक सुधार के, हम देखते हैं, नित्य नये-नये सौन्दर्य-पदार्थों

(Toilets) का आविष्कार हो रहा है। स्त्रियाँ उनमें डूबती चली जा रही हैं।

मगर नतीजा ?

(३)

ओह, सौन्दर्य की यह चाह हमारा कितना नुक़सान नहीं कर रही है ? हम नर-नारी सौन्दर्य-प्रदर्शन के लिए, अपने हाव-भाव सुन्दर दरसाने के लिए, अपना कितना समय बर्बाद करते हैं, कितना धन नष्ट करते हैं, और कितनी खटपट मोल लेते हैं, मगर फिर भी, कह नहीं सकते, हमारा उद्देश कहाँ तक सिद्ध होता है !

वे अमीरज़ादे और अमीरज़ादियाँ, जो आलस्य के मारे पलंग-कुर्सी पर बैठे हुए दर्वाज़े-खिड़की के किवाड़ भेड़ने, दीये की बत्ती उकसाने, फ़र्श पर से पीक थूकने के लिए पीकदान उठाने, पानी पीने के लिए गिलास उठाने, दरवाज़े के बाहर खड़े आदमी को जवाब देने, ग़र्ज़ें कि बड़े-से-बड़े से लेकर छोटे-से-छोटे और न-कुछ कामों के लिए भी नौकर-नौकरनियों पर तान तोड़ते हैं, सौन्दर्य-वृद्धि के लिए ठण्ड से गोले क्रीम-लोशन-साबुन लगाने, और घोर ग्रीष्म में बदन को कसने की तकलीफ़ गवारा करने का साहस करते हैं; वायु-सेवन के लिए मील-मील भर के चक्कर लगाने का दुःसाहस करते हैं; और कोई-कोई वर्ज़िश जैसे कष्टों का भी आवाहन करते हैं !! कड़वी-कसैली दवा-दारू को नाना प्रकार के मुँह बना कर ढकोसने की हिम्मत करते हैं, ज़ेवरों का पचसेरियों बोझ लादते हैं, और बदन गुदवाने को भी तैयार हो जाते हैं। ऐसा है सौन्दर्य का मोह !

इन सब बातों का नतीजा यह होता है कि एक ओर तो सौन्दर्य-प्रेम के इस प्रकार में ख़र्च ख़ूब होकर तंगी आती है, दूसरी ओर शरीर की स्वाभाविकता के बजाय अस्वाभाविकता बढ़ती है, और ऐसी कृत्रिम परिस्थिति का परिणाम यदि उलटा—वासना की ओर—हो तो उसमें आश्चर्य नहीं ! आज-कल एक ज़बर्दस्त विचार ऐसा जो हो गया है, जो सौन्दर्य को मानों वैषयिकता का ही बदला हुआ रूप मानता है, वह इसी परिस्थिति का फल-स्वरूप है। वैसे सौन्दर्य स्वयं कोई बुराई नहीं है; यदि बुराई कहीं है तो वह उसके अवलोकन की दृष्टि में है। सच तो यह है कि एक वेश्या में भी, जिसका कि काम ही विषय-भोग है, हम निर्दोष-भाव से सौन्दर्य-दर्शन कर सकते हैं—शर्त यही है कि उसमें हमारी दृष्टि कामुक न हो, हम माँ-बहन के रूप में उसके सौन्दर्य को निरखें, वैषयिक दृष्टि रख कर नहीं। कामुक दृष्टि से तो यदि हम अपनी माँ-बहन को देखें तो वह भी दोष ही है, यह दूसरी बात है कि हम उसपर ध्यान नहीं दे रहे हैं और ऐसा होता भी कम ही है। यह बात असम्भव नहीं है, हाँ, व्यवहार में ज़रा कठिन अवश्य है; और, यही कारण है जिससे, सर्व-सामान्य व्यवहार में इसका प्रचलन कम ही है। अस्तु।

(४)

सौन्दर्य स्वतः बुरी चीज़ नहीं है, यह हम जान चुके। और जब यह बुरी चीज़ नहीं है, तब इसकी अभिलाषा और उसके लिए प्रयत्न तो बुरे होही कैसे सकते हैं ? अतः, सवाल रह जाता है यही कि, आजकल हम जो प्रयत्न कर रहे हैं वे कहाँ तक ठीक हैं ?

हमारी नम्र-सम्मति में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, आजकल वे प्रयत्न स्वाभाविक कम हैं, अतएव वे श्रेयस्कर नहीं। 'सत्यं शिवं सुन्दरं' एक प्रसिद्ध वाक्य है। मतलब यह कि जो सत्य है, वही शिव (कल्याणप्रद) है, और वही सुन्दर है। अतः हमें यदि सुन्दर बनना है तो हम शौक़ से बनें और ज़रूर बनें, पर वह बनें शिव और सत्य हो कर ही।

'प्रकृति की ओर लौटो !'—वह प्रकार है, जो इस दशा में बड़ी कारगर हो सकती है। मानसिक सौन्दर्य के लिए हमारे मन का शुद्ध होना आवश्यक है, और शारीरिक सौन्दर्य के लिए शरीर का। शिव (कल्याणप्रद) बनने के लिए इन दोनों ही सौन्दर्यों की आवश्यकता है। और वे प्राप्त हो सकते हैं सत्य, वास्तविकता, कुदरत, प्रकृति पर अग्रसर होने में। हमारा रहन-सहन प्राकृतिक हो, तो क्या ज़रूरत है कि सुन्दर बनने के लिए हम कृत्रिम उपायों की खोज करते फिरें !

आजकल आम तौर पर देखा जाता है, हमारी माँ-बहनों का स्वास्थ्य गिरा होता है; एक दो बच्चे होने पर तो वे मानों बूढ़ी हो जाती हैं और दुनिया से नजात पाने को तरसा करती हैं। उनका सौन्दर्य सौन्दर्य-पदार्थों, माँग-चोटी,

स्नो-क्रीम पाउडर आदि से थोड़ा-बहुत चाहे दीखा करे; पर वास्तव में उनके चेहरे पर आभा नहीं रहती, आलस्य, निराशा छाई-सी रहती है; उत्साह-आनन्द कोसों भागते-से नज़र आते हैं; फुर्ती-तेज़ी की तो बात ही कहाँ, आराम और बस आराम, नौकर-चाकरों की निर्भरता ही हमें नज़र आती है। बड़े घरों और बहुत-कुछ मध्यम-वर्ग का तो पूरा पर-मुखापेक्षी-सा हिसाब है, निम्न श्रेणी में चाहे इतना परा-वलम्बन न हो। नये युग की स्वाधीनता और उत्तराधिकारों की पुकार में परदा छोड़ कर वे हवा खाने का प्रयत्न कर रही हैं, बाग़ की सैर या समुद्री भ्रमण को भी निकलने लगी हैं, मगर कहाँ है फिर भी उनका वह सुन्दर शरीर? क्योंकि, हम देखते हैं, डाक्टर द्वारा शरीर को श्रम की आवश्यकता बताये जाने पर वह बाग़ में घूमने चली जायँगी, किसी मीटिंग को 'अटेण्ड' कर लेंगी, मगर घर पर ही जो श्रम के काम होते हैं—दाल-मसाला पीसना, छोटी-मोटी चीज़ कूटना-छानना, आटा मलना गूँधना और रोटी पकाना इत्यादि, उनके लिए ज़रा भी औकाफ़ होने पर नौकर ही का आसरा रहना है! घर पर रोटी बनाने से किवाड़ भेड़ने और घर का ताला-कुंजी लगाने-रखने तक प्रायः सब काम नौकर-चाकरों पर ही रहेगा। क्या यह स्वाभाविक है? व्यायाम और वायु-सेवन का बड़ा महत्त्व और उपयोग है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं; परंतु जो व्यक्ति घर का काम करते कत-राता है, उसे कसरत करने का क्या अधिकार? अर्थशास्त्र की दृष्टि से भी यह उलटा हिसाब है कि अपना श्रम तो कसरत, घूमना आदि मुद्रा के रूप में अनुत्पादक कामों में व्यय किया जाय और घर-धन्धे के उत्पादक कामों को व्यय खर्च कर दूसरों से कराया जाय। क्या यह उचित है? जो स्त्री या पुरुष घूमने तो एक मील चले जायँ, शरीर को श्रम देने के लिए डम्बल उठाने आदि की वर्ज़िश भी करें, ऊपरी शोभा के लिए ज़ेवर भी अपने नाज़ुक शरीर पर पंसेरियों लाद लें, पर घर के काम करने से कतरायें, वे श्रम के सच्चे महत्त्व की उपेक्षा करते हैं। चक्की, चरखा, मसाला पीसना-कूटना, रोटी बनाना, झाड़ू-बुहारू आदि घर में ही श्रम के इतने काम हैं कि गृहिणियाँ इन्हें ही पूरा-पूरा करें तो आज जो प्रसव-रोगों तथा अन्य स्त्री-रोगों की शिका-यतों का ताँता लग रहा है वे शायद आधी भी न रहें। यह भी याद रखना चाहिए कि श्रम करने से गौरव नष्ट नहीं होता, नष्ट होता है शेख़ी से, और कृत्रिम उपायों से तो स्वास्थ्य और धन दोनों का नाश होता है।

हम यह नहीं कहते कि बाहरी जीवन से दूर रहा जाय, पर घरेलू जीवन की भी उपेक्षा न होनी चाहिए। अपना बच्चा रो रहा हो, उसे छोड़ कर दूसरे के बच्चे को दूध पिला कर चुप करने कोई स्त्री न जायगी। जो स्त्री अपने बच्चे से घृणा करती है, वह यदि दूसरे के बच्चे से प्रेम दर-साये, तो वह केवल दिखावा होगा। इसी प्रकार घर के काम-धन्धे की उपेक्षा करके जो स्त्री पुरुष बाहर के अनुत्पादक श्रमों का उपयोग करना चाहते हैं, वे आदर्श नहीं। यदि श्रम दरकार है तो पहले अपने क्षेत्र के आवश्यक कामों में उसे किया जाय, उनसे बचे तब अन्य काम किये जायँ, और फिर अनुत्पादक कामों में समय व्यय किया जाय—यही श्रम-व्यय का उचित ढंग है।

एक बात का ख़याल रखना ज़रूरी है। श्रम एक ही दिशा में न हो - जैसे केवल शारीरिक, या केवल मानसिक। जिन्हें शारीरिक श्रम ज़्यादा करना पड़ता हो, उन्हें उसके परिमाण में मानसिक श्रम की व्यवस्था करनी चाहिए; और जिन्हें मानसिक ज़्यादा करना पड़ता है, उन्हें शारीरिक की।

मनोविनोद का कोई साधन भी अत्यावश्यक है। जिसका मन हर्ष से पूर्ण न हो, वह उत्फुल्ल न होगा; और उत्फुल्लता के बिना वह हास्य कहाँ जो सौन्दर्य का प्राण है?

शरीर की सफ़ाई, रहन-सहन का साफ़-सुथरापन, कपड़े-लत्तों का सलीका, दाँत, कान, नाक, आँख की सफ़ाई, बालों का सुथरा-निखरापन, चमड़ी की स्वच्छता इत्यादि बातें भी स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए आवश्यक हैं; दूसरों के सम्पर्क में आने पर ये बड़ी काम आती हैं। क्योंकि, अगर हम गन्दे रहें तो हमसे सब परहेज़ करेंगे; और साफ़-सुथरे सलीकेदार आदमी से हर कोई मेल-जोल और व्यव-हार करना पसन्द करेगा। स्वभाव की शुद्धता और बोली की मधुरता तो आवश्यक है ही।

इस प्रकार, संक्षेप में कहें तो, सौन्दर्य के लिए हमें

जिस बात की सबसे पहले ज़रूरत है, वह है हृदय की शुद्धता-सरसता। जिसका हृदय शुद्ध-तरल होगा, उसके विचार और बाहरी आचरण भी वैसे ही निर्मल होंगे; और आस-पास के लोगों पर स्वभावतः उनका असर अच्छा ही पड़ेगा। इसके बाद शरीर की शुद्धता वाञ्छनीय है। यह ज़रूरी नहीं कि नित्य ही विविध सौन्दर्य-पदार्थों से शरीर की सेवा की जाय—साबन, तैल, उबटने का इस्तैमाल बुरा नहीं, इससे सफ़ाई ही होती है, पर एकदम इनमें न रम जाना चाहिए। प्राकृतिक जीवन—सरल-सादा रहन-सहन इस दिशा में बड़ी उपयोगी है। इससे शरीर शुद्ध रहता है और स्वस्थ भी—और, सुस्वास्थ्य सौन्दर्य की जान है ही। कपड़े-लत्तों का सलीका, बोल-चाल की मधुरता, व्यवहार में शिष्टता-विनय, समाज के नियमों का परिपालन आदि बातें बाह्य है, पर हैं उपयोगी। इनसे मनुष्य किसी भी समुदाय में अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण कर सकता है; अपनी ओर लोगों को आकर्षित कर सकता है। सच तो यह है कि चमड़ी का अमुक रंग होना या बालों का अमुक प्रकार सौन्दर्य का चिह्न नहीं, मनुष्य के गुणों का सुप्रदर्शन ही उसका वास्तविक सौन्दर्य है। यही सत्य है, यही शिव है, और इस लिए यही सुन्दर है। कृत्रिम उपायों का अवलम्बन तो नक़लीपन है, गुणों के अभाव को उसी तरह छिपाने का प्रयत्न है, जैसे कि हंस के पर लगा कर कव्वा हंस बनने चला था।

इस तथ्य को हमें समझ लेना चाहिए। इसीमें हमारा कल्याण है। अगर हमारी माँ-बहनें इस सीधे-सादे तथ्य को समझ लें, तो उनका इससे कल्याण ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। आज के ग़रीब भारत की माँ-बहनों को तो इसे समझने की और भी आवश्यकता है।

फांसी

अनुवादक—श्रीकृष्णकुमार मुखोपाध्याय | ले०—विक्तर यूगो
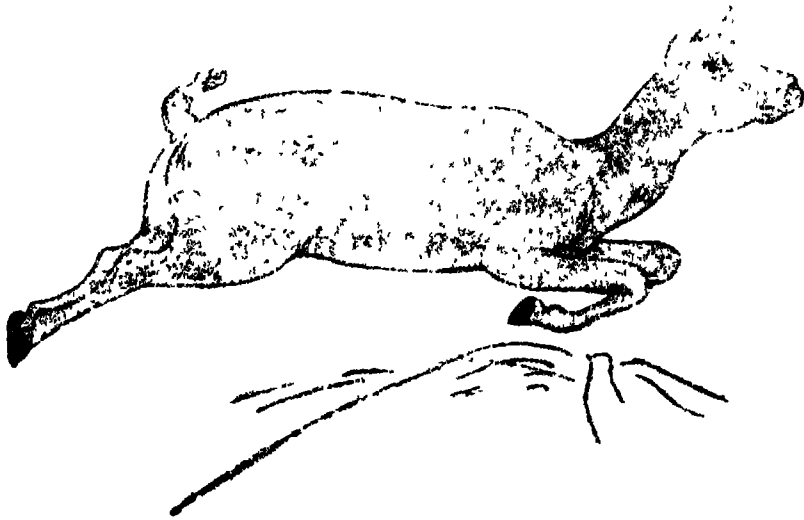
(१५)

वायुहीन रुद्ध एक छोटे-से कमरे में, फिर मैं बन्दी हूँ। बन्दी हो गया हूँ, इसलिए क्या प्रकाश और हवा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है? विचार के नाम पर मनुष्य, मनुष्य के प्रति यह अन्याय क्यों करता है? यदि सजा देना ही उनका उद्देश्य हो, तो इससे भी कम खर्च में और भी सरल उपाय का तो अभाव नहीं था। वही पुराने युग में जो होता था—एक थैली के भीतर बन्द कर नदी में डुबा देने से ही तो बहुत शीघ्र काम तमाम हो जाता। इतनी ज़बर्दस्त तैयारी और कड़े पहरे की बहुत-सी मिहनत बच जाती।

कमरे में बिस्तर नहीं था। मैंने चौकीदार को बुलाकर बिस्तर लाने के लिए कहा। वह अवाक् होकर मेरी ओर देखता रहा—मानों आसमान से गिरा है। शायद उसे आश्चर्य हो रहा था कि जो कल्ह छः घण्टे बाद फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा, उसे बिस्तर की क्या ज़रूरत?

जो हो, उसी समय कमरे में जेल के अध्यक्ष ने बिस्तर लगवा दिया। वह बड़े दयालु हैं। मरते समय कम से कम उनकी दया की बात तो सोचता हुआ मरूँगा। कमरे के दरवाज़े पर एक पहरेदार खड़ा रहा, जिससे बिस्तर की चादर से मैं अपनी फाँसी अपने आप न लगा लूँ—सरकार के जल्लाद को कहीं धोखा न दे बैठूँ।

(१६)

ठीक दस बजे हैं।

मुझे मेरी की याद आ रही है। अभागिनी कन्या मेरी! छः घण्टे बाद मैं कहाँ रहूँगा और यह पृथ्वी कहाँ रहेगी? अस्पताल की मेज़ पर मेरा प्राणहीन शरीर पड़ा रहेगा। देह की चीरा-फाड़ी कर फिर वे साँस लेंगे। मेरी बोटी-बोटी काटी जायगी। हाय, मेरी, तुम्हारे पिता के जीवन का यह परिणाम है!

फिर भी आज इनके व्यवहार से यह नहीं कहा जा सकता कि ये मुझसे घृणा करते हैं। करुणा से सबका मन भरा हुआ है। मेरी सेवा में कुछ भी त्रुटि नहीं हो रही है। फिर भी ये मुझे जीने नहीं देंगे! करुणा—परन्तु कैसी निर्मम करुणा है यह! मेरी हत्या ये अवश्य करेंगे। किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते।

बेचारी मेरी! अभागिनी बेटी! पिता के आदर से तुम घिरी हुई थीं। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थीं। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होठों के भीतर से हँसी का फ़ौव्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हँसी सारे गृह में एक संगीत की मूर्च्छना भर देती थी। उसके बाद रात को सोने के पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थीं। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्रांति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेगपूर्ण थी! ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा! हाय! आज वह सब स्वप्न में परिणत हो गया। हाय, प्यारी बेटी! उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असंख्य चुम्बनों से भर देगा?—उस तरह कौन तुम्हारा आदर करेगा? सबके छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद में बैठकर किसी मेले और तमाशे में हँसते हुए जायँगे, उस समय तुम्हारी आँखों में वेदना के आँसू डबडबायँगे—एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख को म्लान कर देगी। व्यथित आँखें इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायँगी। नव वर्षारंभ और अपने जन्म-दिन तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय को स्पर्श न करेगा। हाय री मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन अभागिनी मेरी!

यदि वे जूरी एक बार मेरी को देख लेते, तो शायद यह मृत्युदण्ड देने के पहले उन्हें उसका भी ख़याल होता।

उसके म्लान नेत्रों की ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चंचल हो जाता, इसमें कोई संदेह नहीं है—नहीं, कोई संदेह नहीं है ! मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी ! जब वह बड़ी होगी, जब होश सम्हालेगी, सब बातें समझने लगेगी, तब मैं कहाँ रहूँगा ? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलंक-स्मृति में लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण काँप न उठेगा ? मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा। लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी ! मेरी प्यारी कन्या मेरी ! पिता के नाम पर सहानुभूति के दो बूँद आँसू क्या तुम न डालोगी—अथवा घृणा की आग तुम मेरे नाम पर बरसाओगी ? नहीं, नहीं, मेरी ! तुम दो बूँद आँसू से मेरा तर्पण करना, मैं तृप्त हो जाऊँगा—केवल दो बूँद आँसू ! हाय भगवान्, ऐसा कौन-सा अपराध मैंने किया है, ऐसा कौन-सा महापाप मैंने किया है कि समाज इस प्रकार निर्मम और निष्ठुर भाव से मुझे पीस डालना चाहता है ?

आज का सूर्य जब अस्त हो जायगा, तब मैं कहाँ रहूँगा ! इस पृथ्वी का सारा अस्तित्व मेरे लिए उस समय लोप हो जायगा। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। क्या यह सच है—अथवा यह स्वप्न है ?

बाहर वह काहेका कोलाहल हो रहा है ? शायद मेरी मृत्यु देखने के लिए लोग दौड़े आ रहे हैं। कुतूहली दर्शक, सशस्त्र प्रहरी, सज्जित आचार्य—मुझे देखने के लिए सब का आग्रह एक साथ जग उठा है। मृत्यु ! तुम सचमुच आज मुझे ग्रहण करोगी ? मुझको ?—जो मैं इस समय बैठा हुआ हूँ, साँस ले रहा हूँ, बातें सुन रहा हूँ, वायु का स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ, वही मैं ! मर जाऊँगा ?

(१७)

वे बातें क्या मैं नहीं जानता ? हाँ, जानता हूँ ! प्लेस-ग्रीव के पास से आ रहा था—वह बहुत दिनों की बात है। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। अचानक मेरी गाड़ी रुक गई !

रास्ते पर हज़ारों की भीड़ इकट्ठी थी ! गाड़ी में से मैंने सिर निकालकर देखा, जवान-बूढ़ों से सारा रास्ता खचाखच भरा है ! चारों ओर अनगिनती खोपड़ियाँ नज़र आती थीं। दीवारों पर, छत पर, पेड़ों की डालियों पर—कोई भी जगह खाली न थी। दूर पर फाँसी का तख्ता भी नज़र आता था। फाँसी का सब सामान तैयार था।

आज भी वही दिन है ! परन्तु आज मैं दर्शक नहीं हूँ। आज लोगों की भीड़ मुझे देखने को इकट्ठी हुई है ! वैसी ही भीड़ जमेगी।

केवल एक डोरी को अवलंबन बनाऊंगा—साथ ही पलक मारते-न मारते एक अतल-स्पर्श अंधकार के भीतर घुस जाऊँगा—विराट अंधकार; उसके बाद ?—

एक पत्थर भी यदि मिल जाता तो अपने सिर को यहीं फोड़ लेता !

माफी ! अरे मुझे माफ़ी दे दो, मुझे क्षमा करो !—शायद माफ़ी मिल भी जाय ! राजा को दया आ जाय तो—शायद माफ़ी की ख़बर लेकर दूत आना होगा ! आओ दूत ! जल्दी आओ ! यह सारा अंधकार अचानक ग़ायब हो जायगा—

एक तीव्र दीप्त मुक्त-प्रकाश के राज्य में मैं प्रवेश करूंगा ! जय के उल्लास से मेरा सारा मन प्रफुल्ल हो जायगा।

मुझे प्राणों की भिक्षा दे दो ! स्नेह और ममता से भरी हुई यह सुन्दर पृथ्वी, मेरा प्राण इसे छोड़ना नहीं चाहता ! मेरी रक्षा करो। गर्म लोहे से मेरे शरीर पर छाप लगा दो, मुझे कहीं जाने मत दो—बीस वर्ष, पचीस वर्ष तक मुझे जेल में बन्द कर रखो। केवल इस आसमान, हवा और सूर्य के प्रकाश से मुझे वंचित मत करो। क़ैदी—वह भी चलता है, सोचता है, बातें करता है; वह भी सुखी है। केवल इस प्राण को न लो, भीख दे दो। बस और कुछ नहीं चाहता।

(१८)

आचार्य लौट आये। सफ़ेद बाल, नम्र प्रकृति और मीठी-मीठी बातें ! देखने से श्रद्धा होती है।

आज सबेरे भी मैंने उन्हें क़ैदियों में ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ ? उनकी बातों में मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे काँच पर से फिसल जाता है, उनकी बातें भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उनको देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर

के इस बीभत्स दृश्य के भीतर उनमें कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनों बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शैय्या पर।

उन्होंने कहा,—"भाई!"

उनके संबोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया।

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथलिक धर्म—क्या इस पर तुम्हारी श्रद्धा है?"

मैंने उत्तर दिया,—"अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं, कब तक कहते रहे यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खड़ा हुआ, और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिए। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं कब आऊँ कहो?"

"मैं कहला भेजूँगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदु कण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया "नास्तिक!"

नास्तिक!—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊँ परन्तु नास्तिक नहीं हूँ। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात क्या सुनायगा! मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहाँ है? इसकी सामर्थ्य ही कितनी है? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शान्ति मिल सकती है?

खूनी और डाकुओं के सामने रटे हुए वाक्यों को बक जाना जिसका पेशा है, क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए पहता नहीं तो क्या है! भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाजी है? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है? फिर भी राजधर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है? अफसोस!!

परन्तु यह बूढ़ा आचार्य! इसका भी दोष क्या है? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है? तुच्छ गिने-गिने रुपयों के लोभ में वह यह काम कर रहा है! यही इसकी जीविका का अवलंबन है। नहीं तो यह पेट कैसे भरेगा? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए! परन्तु उपाय भी क्या है? मेरी साँस के स्पर्श से चारों दिशायें जली जा रही हैं। मुख से विष निकल रहा है। मैं क्या करूँ भवितव्य कठिन है।

पहरेदार मेरे लिए नाना प्रकार के भोजन ले आया। यही मेरे इस जीवन में आखरी खाना होगा।

खूब तो खा चुका। ऐसी तुच्छ घृणा, ऐसी हीनता! नहीं, यह मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा।

(१६)

सिर पर टोपी ओढ़े एक आदमी अकस्मात् आकर खड़ा हो गया। कुछ व्यस्त भाव, किसी ओर भी लक्ष्य नहीं है! हाथ में गज़ का फीता और बग़ल में कागज़ों का बंडल! आते ही वह दीवार नापने लगा 'अच्छा पाँच फुट। यहाँ बदलना पड़ेगा' इत्यादि बातें वह एक पहरेदार से करने लगा। और भी न जाने क्या-क्या बकने लगा!

पहरेवाले के मुँह से सुना, वह एक ठेकेदार है! जेल-खाने का नया संस्कार होगा, वह इसी का नाप ले रहा है!

काम ख़तम करके उसने मुझसे कहा,—"आपको क्या आज फाँसी होगी?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया! वह एकटक मेरी ओर देखता रहा!

उसने कहा—"छः महीने के बाद इस जेल को पहचानना मुश्किल हो जायगा! सब रद्दोबदल हो जायगा, तब देखने में भी बहुत सुन्दर हो जायगा।"

अर्थात् उसके कहने का सारांश यह था—"मैं बड़ा ही अभागा हूँ कि नई जेल देखना मेरे भाग्य में लिखा नहीं नहीं है—!"

उसके मुख पर एक सूखी हँसी भी दिखाई दी। पहरेवाले ने उससे कहा,—"यहाँ खड़े होने का हुक्म नहीं है! आपका काम हो गया हो तो बाहर चलिए!"

वह चला गया और मैं—जिस पत्थर की दीवार को

वह कीले से नाप रहा था, उसी पत्थर की दीवार की भांति निःशब्द बैठा रहा।

इस समय एक और मज़ेदार बात हुई।

पहरा बदला। नया पहरेवाला आया। उसका चेहरा भयानक, स्वर तीव्र, मानों यमदूत ही हो।

पहरेवाले ने कहा, 'क्योंजी तुम्हारे मन में कुछ दया-माया भी है या नहीं?"

मैंने कहा "नहीं।"

मेरे स्वर में एक तीक्ष्णता थी!—फिर भी वह हटने वाला थोड़े ही था! उसने कहा, "एक बात कहता हूँ, सुनो!"

मैंने कहा, "मैं अधिक रसिकता सह नहीं सकता!"

उसने कहा, "मैं अत्यंत दुःखी आदमी हूँ भाई, बड़ा ही अभागा हूँ। यदि तुम मुझ पर कुछ कृपा करो तो सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।"

सदा के लिए! 'सदा' तो मेरा सूर्यास्त के पहले ही ख़तम हो जायगा। मैंने कहा, "क्या तुम पागल हो? देखते नहीं, मैं मरने जा रहा हूँ। इस समय मैं किसी का क्या कर सकता हूँ!"

फिर भी वह छोड़नेवाला कब था—बोला, "अजी सुनो भी तो!" उसके बाद चारों ओर देखकर धीरे-धीरे उसने कहा, "देखो भय्या, मेरा सारा सुख तुम्हारे ही हाथों में समझ लो। बड़ा ही ग़रीब हूँ मैं—यह काम बड़ी मिहनत का है—और तनख्वाह भी कम है,—उस पर अपने पास एक घोड़ा भी रखना पड़ता है! नौकरी में सुख तो ऐसा ही है। इसीलिए भाई साहब, कभी-कभी मैं लाटरी का टिकट ख़रीद लेता हूँ! आख़िर जीवन में कुछ करना तो चाहिए न! परन्तु देखो न, सात-आठ वर्ष में लाटरी के टिकटों में इतना रुपया ख़र्च कर डाला, परंतु एक पैसा भी लाभ न हुआ! अगर ७६ नंबर का टिकट ख़रीदता हूँ, तो ७७ नंबर वाला बाज़ी मार लेता है! और ७७ नंबर ख़रीदा तो ७६ या ७८ नंबर वाले की तक़दीर खुल जाती है! ख़ैर, तो अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "क्या सोचा है?"

उसने कहा, "शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय!"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा,—"मेरे द्वारा सुविधा?"

उसने कहा, "हाँ, सब तुम्हारे ही हाथ में है! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख-पाता है! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही, इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नंबर बतला दो तो उसी नंबर का टिकट ख़रीदूँ! बस, रातोंरात बड़ा आदमी बन जाऊँ। इस नौकरी को छोड़ दूँ और खूब गुलछर्रे उड़ाऊँ!—देखो भूल से मैं डरता नहीं हूँ। समझे न? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम कार्लेपायिकुर है। बी नंबर बारक, २६ नंबर का पलंग—याद रहेगा न? तो आजही रात को आकर बतला जाना। हाँ भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा!"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एक बार आख़री कोशिश! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो?"

"हाँ-हाँ, और कह क्या रहा हूँ?"

मैंने कहा—'अच्छी बात है, मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आँखें लोभ से चमक उठीं। उसने कहा "कहो अभी करूँगा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटूँगा।"

मैंने कहा, "केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी।—बस, और कुछ नहीं।"

"बस यही काम! ओह; अभी करता हूँ।" यह कह-कर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मैं उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनिट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। आह भगवान—धन्य हो तुम। पल भर के अन्दर कल्पना-नेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाजे खुले हुए हैं—कहीं भी बाधा नहीं है—मुक्त आकाश के नीचे मैं खड़ा हूँ—सिर के ऊपर से पक्षियों का एक गीत गाते हुए उड़ रहा है। स्निग्ध शीतल वायु का स्पर्श भी मानों मैंने अनुभव किया। वह—एक जीवन ही नया था!

अकस्मात् पहरेवाला रुक गया कहा,—"ओह, समझ गया तुम्हारा मतलब, भागना चाहते हो ?"

गले को साफकर मैंने कहा, "और तुम्हें रुपया काहे का दूँगा ?"

वह फिर अपने कोट के बटन लगाने लगा। मेरे हृदय के भीतर एक बिजली दौड़ गई—सिर का खून गर्म हो गया।

उसने कहा, "नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह काम मैं नहीं कर सकता। यह झंझट है—मर कर ही तुम नम्बर बतला देना, इस प्रकार से भाग कर अरे राम राम !"

मैं बैठ गया। पैर काँप रहे थे। आशा नहीं है, कोई आशा नहीं है ! निराशा की गम्भीर वेदना में साँस तक रुकने लगी।

(२०)

दोनों हाथों से मुँह ढककर मैं बैठा था—अतीत की सारी बातें याद आ रही थीं। स्वप्न की भाँति विचित्र और मधुर किशोरावस्था की बातें ! दुर्भावनायें और दुश्चिन्ताओं का भारी काँटा, साथ ही वे बातें—मानों शुभ्र-सुन्दर फूलों का एक ढेर !

प्रफुल्ल मुख, निश्चिन्त हृदय, उत्साह से भरा हुआ जीवन—वे कैसे मधुर दिन थे ! बगीचे में दौड़-धूप, साथियों का निर्मल प्रेम, वह एक सुख का साम्राज्य ! उसके बाद किशोरावस्था के स्वप्न-राज्य में नवीन प्रकाश का उन्मेष ! निराले कानन में वह मेरी तरुणी बाला !

बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे केश, गौर वर्ण, गुलाबी अधर—अपूर्व रूपवती पेया ! बगीचे में हम दोनों खेलते थे—हँसी, गीत, गपशप !

कलह का भी अन्त न था। उसका स्वभाव था शान्त और मधुर ! घोंसले से पक्षी चुराकर जब मैं धीरे-धीरे पेड़ पर से उतरता था, तब उसकी म्लान आँखें मेरी ओर देखती रहती थीं। उस दिन उसने कातर भाव से कहा, "क्यों तुम घोंसलों से छोटे-छोटे बच्चे चुराते हो ? अहा ! तुम बड़े निर्दय हो !"

मैंने ऐसे वीरत्व का कार्य किया ! कहाँ तो मेरी प्रशंसा करनी चाहिए और यह कर रही है मेरा तिरस्कार ! क्रोध से इस पक्षी को उसी के मुँह पर दे मारा। घर लौटकर जब उसकी माँ ने पूछा, "तेरे मुँह पर यह काहे का दाग़ है ?" झट से उसने उत्तर दे दिया, "गिर पड़ी थी।"

उसके बाद कितने ही दिन वह मेरे साथ-साथ नदी किनारे घूमती रही है। गति कभी तो धीरे और कभी द्रुत ! तीर पर से नदी की तरंगों को देखते थे—संध्या उतर आती थी, चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार से अस्पष्ट होने लगता था। मृदु संगीत की भाँति नदी का जल पछाड़ खाकर किनारे पर आ गिरता था। हमारे कण्ठ का स्वर भी मृदु हो जाता था। कितनी ही बातें थीं—देश की, विदेश की, प्रेम की, प्रणय की। कभी कभी लज्जा से उसका मुख लाल हो उठता था—नहीं, लाल नहीं, शायद गुलाबी !

वह गरमी के दिनों की बात है। शाम के वक्त बगीचे में बादाम के पेड़ के नीचे हम बैठे थे।

अचानक पेया के हाथ से रूमाल गिर पड़ा। मैंने उसे उठाकर उसके हाथ में दिया—स्पर्श से हाथ काँप उठा !

पेया कह उठी, "आओ ज़रा दौड़ें।" वह दौड़ी—केश के गुच्छे झालरों की भाँति झूल रहे थे, नाच रहे थे—गर्दन पर रंग कुछ अजब लाल था ! लाल बादलों पर मानों बिजली की एक रेखा थी !

एक कुँए के पास बैठ गई। ललाट पर मोती की भाँति पसीने की बूँदें ! मैं उसकी बगल में आकर बैठा। वह हाँफ रही थी। साँस कुछ रुक रहा था। मैंने उसकी ओर देखा।

पेया ने कहा, "कुछ पढ़ो ! अभी उजेला है।—तुम्हारे पास किताब हो तो निकालो, जेब में होगी ?"

मेरी जेब में एक उपन्यास था। मैंने उसे निकाला। मेरे कंधे पर सिर रखकर वह उसे पढ़ने लगी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत तेज़ थी; उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र थी।

कुछ देर पढ़ने के बाद उसने मेरी ओर देखकर पूछा, "तुम सुन भी रहे हो या नहीं ?" सचमुच मैं केवल उसकी ओर देख रहा था—सुनने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी !

उसके सिर उठाते ही हम दोनों का केशाग्र मिल गया !

उसकी साँस का स्पर्श मैंने अपने गालों पर किया। साथ ही हम दोनों के ओठ भी मिल गये।

उसके बाद फिर जब पुस्तक को खोला, उस समय आसमान पर तारिकाओं का दल हम दोनों को देखकर हँस रहा था।

घर लौटकर वह अपनी माँ से बोली, "माँ, आज हम दोनों बहुत थके हैं।" मुझ से कुछ कहा न गया। उन्होंने पूछा, "तुम चुप क्यों हो?"

चुप क्यों हूँ? आनन्द और हर्ष की धारा मेरे हृदय में बह रही थी। उस स्निग्ध-सुन्दर संध्या की बात इस जीवन में कभी भूल नहीं सकता।

यह जीवन—? हाय अब कितनी देर को है?

ग्राम-सुधार की योजनायें

[श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह]

सभी ओर से आवाज़ आ रही है—ग्रामों की ओर चलिए! सभी तरफ़ से पुकार हो रही है—ग्रामों का उद्धार! ग्रामों का संगठन! ग्रामों का सुधार! लम्बे-लम्बे कार्य-क्रम देश के सामने रक्खे जा रहे हैं। ग्रामों में शिक्षा फैलाना है, कृषि की दशा सुधारनी है, कुटीर-शिल्पों का प्रचार करना है, गाँवों की सफ़ाई और स्वास्थ्य में उन्नति करनी है; उनकी सामाजिक दशा को उन्नत बनाना है; आपत्तियों के समय ग्रामीणों की सहायता करनी है—आदि अनेक कार्य-क्रम हैं। किंतु ये सब करे कौन? केवल पुस्तकों, लेखों, भाषणों या कागजी योजनाओं से तो यह हो न जायगा—किसी न किसी को इसे करना ही पड़ेगा।

यह काम ऐसा नहीं कि जिसे दो-चार-दस आदमी कर सकें। ग्रामों की संख्या, उनका विस्तार तथा उनकी समस्या इतनी जटिल है कि जबतक एक संगठित दल के द्वारा संगठित और नियमित रूप से यह कार्य हाथ में न लिया जायगा तब तक सफलता न होगी। देशके नेताओं तथा सोचनेवाले लोगों ने इसकी आवश्यकता अनुभव कर कार्य तो आरम्भ कर दिया है। ग्रामीण कार्यकर्ता तैयार करने का काम भिन्न-भिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों की ओर से आरम्भ हो चुका है, उसका कुछ वर्णन हम यहाँ करना चाहते हैं।

जहाँ तक हमें ज्ञात है, अभी चार संस्थायें ख़ास तौर से इस ओर अग्रसर हुई हैं—

१. सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती
२. विश्व-भारती, शान्ति-निकेतन
३. प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन
४. गुड़गाँव ग्रामीण अर्थशास्त्र विद्यालय

इस लेख में हम संक्षेप से इसका वर्णन कर अन्य लेखों में इन योजनाओं पर अलग-अलग कुछ विस्तार के साथ लिखेंगे।

उद्योग-मन्दिर

देश की आत्मा, महात्मा गांधीजी-द्वारा संचालित सत्याग्रह-आश्रम या उद्योग मंदिर में मुख्यतः खादी की सांगोपांग शिक्षा देने का प्रबन्ध है। महात्माजी तथा उनके समान विचारवालों की यह दृढ़ धारणा है कि खादी को ही केन्द्र बनाकर ग्रामों के सुधार का कार्य सफलतापूर्वक किया जा सकता है। खादी तैयार करने की आरम्भ से लेकर अन्त तक

संपूर्ण क्रियाओं की शिक्षा के लिए यहाँ पर विद्यार्थी शिक्षित किये जाते हैं। शिक्षित होने के बाद ग्राम ही उनके कार्य-क्षेत्र होंगे इसलिए अन्य ग्रामीण समस्याओं और उनके सुधार के उपाय भी इन विद्यार्थियों को बताये जाते हैं। इनमें मुख्य ये हैं—

१. शिक्षा का प्रसार करना।

२. कृषि के साधारण सुधारों का प्रचार, जिनमें खादी की उपयोगिता मुख्य है।

३. गो-पालन और गो-रक्षा के उचित उपायों का प्रचार।

४. ग्रामों की सफ़ाई।

५. साधारण व संक्रामक रोगों का औषधि-उपचार।

६. अस्पृश्यता, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों का निवारण।

७. मादक-द्रव्यों का निषेध।

ये कार्य-कर्ता दो-तीन वर्षों में पूरा शिक्षण-क्रम या ६ मास में साधारण शिक्षण-क्रम समाप्त कर खादी के ग्रामीण केन्द्रों में रक्खे जाते हैं तथा फिर अन्य ग्राम-सुधार की बातों का प्रचार करते हैं। जहाँ खादी-केन्द्र आरम्भ हुआ वहाँ अन्य बातें भी धीरे-धीरे आरम्भ हो जाती हैं। शिक्षा-प्रसार के लिए रात्रि-पाठशालायें खोली जाती हैं, कृषि और गो-पालन के ठीक तरीकों का प्रचार भी आरंभ हो जाता है। ग्रामों की सफ़ाई तो ये कार्य-कर्ता ग्रामीणों की सहायता से या स्वयं ही करने लग जाते हैं। सेवा-भाव इनमें इतना भर दिया जाता है कि साधारण सफ़ाई से लगाकर मैला उठाना तक भी ये लोग नीच काम नहीं समझते। साधारण रोगों की औषधियाँ आदि भी ये अपने साथ रखते हैं। सामाजिक कुप्रथायें दूर करने का तथा मद्य-निषेध आदि का प्रचार भी साथ ही साथ चलता रहता है। इस प्रकार खादी-केन्द्र के आस-पास पवित्रता, सुधार और सफ़ाई का वातावरण आरम्भ हो जाता है।—

श्री-निकेतन

विश्व-विख्यात महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बोलपुर-स्थित शान्ति-निकेतन में ग्रामोन्नति के लिए एक अलग विभाग ही स्थापित है, जिसको श्री-निकेतन कहते हैं। शान्ति-निकेतन में शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों में ग्राम-सेवा का कार्य करने के लिए विशेष रुचि उत्पन्न की जाती है। वे लोग स्वयं आस-पास के गाँवों में जाकर लोगों को शिक्षा देते, गाँवों की सफ़ाई करते, लोगों को औषधि आदि देते तथा सब प्रकार की सेवा करते हैं।

ग्राम-सेवा के कार्य के लिए विशेष कार्य-कर्त्ता तैयार करने के लिए ही यह श्री-निकेतन खुला हुआ है। इसमें ग्राम-समस्याओं का अध्ययन तथा उन्हें हल करने के उपाय सिखाये जाते हैं। इसका विशेष लक्ष्य बंगाल के गाँवों की समस्यायें हल करना है, और उसी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। गाँवों में शिक्षा-प्रसार (मैजिक लालटेन तथा रात्रि शालाओं के द्वारा) खेती तथा अन्य ग्रामीण रोजगारों के उत्तम तरीकों का प्रचार, मलेरिया आदि प्रचलित रोगों के निवारण के लिए औषधि तथा सफ़ाई का प्रबन्ध आदि बातें यहाँ के कार्य-क्रम में मुख्य हैं।

प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन

इसी प्रकार देश-भक्त राजा महेन्द्रप्रताप-द्वारा स्थापित प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन में भी अभी गत वर्ष से ग्राम-कार्यकर्ता-शिक्षण-विभाग नामक एक अलग विभाग खोल दिया गया है। यहाँ का पाठ्य-क्रम छात्रों के लिए विशेष उपयोगी तथा सुविधाजनक है। विद्यार्थियों को १५) से २०) मासिक

छात्रवृत्ति दी जाती है, बशर्ते कि वे १० वर्ष तक विद्यालय के अधीन रहकर ग्राम-संगठन का कार्य करने की प्रतिज्ञा करें। इस अवधि में भी उन्हें ३०) से ५५) तक मासिक वृत्ति मिलने का प्रबन्ध है। साधारणतः पाठ्य-क्रम की अवधि २ वर्ष की है किन्तु खास विषयों में विशेष योग्यता पाने के लिए ६ मास और लगते हैं।

यहाँ सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की शिक्षायें दी जाती हैं। साधारण पढ़ाई के साथ छात्रों को ग्रामों में जाकर ग्राम-सुधार-कार्य का संचालन भी करना पड़ता है। पाठ्य-विषयों में अर्थ-शास्त्र, कृषि, गो-पालन, कताई-बुनाई, प्रारम्भिक चिकित्सा, शारीरिक व्यायाम आदि आवश्यक बातों का समावेश किया गया है।

प्रेम-महाविद्यालय का यह पाठ्य-क्रम बहुत ही उपयोगी तथा व्यावहारिक दृष्टि से ग्रामों के लिए लाभदायक है।

ग्रामीण अर्थशास्त्र विद्यालय

हाल ही में पंजाब प्रान्त के गुरुगाँव जिले में वहाँ के डिप्टी कमिश्नर श्री ब्राइन ने भी ग्राम सुधार का कार्य जोरों से आरम्भ किया है। उन्होंने 'भारत में ग्रामोन्नति' नामक एक पुस्तक भी अंग्रेजी में लिखी है। उन्होंने भी ग्रामों में कार्य करने के लिए कार्य-कर्ताओं को तैयार करने के उद्देश्य से 'ग्रामीण अर्थ-शास्त्र-विद्यालय' नामक एक शिक्षा-क्रम चला रक्खा है।

श्री ब्राइन ने बाल-चर्य्य और सहकारिता को इस शिक्षा का केन्द्र माना है तथा नीचे लिखे विषयों को पाठ्य-क्रम में रक्खा है—

१. व्यवहारिक कृषि-ज्ञान

२. प्रारम्भिक चिकित्सा

३. शिशु-मंगल

४. तन्दुरुस्ती और घरेलू चिकित्सा, सफाई तथा ग्रामीण स्वास्थ्य

५. पशु पालन तथा पशु-रोग-चिकित्सा

६. ग्रामीण खेल-कूद

७. संगीत

८. भाषण देना तथा मैजिक लालटेन के प्रयोग-द्वारा प्रचार-कार्य

आपकी योजना है कि इस प्रकार शिक्षित करके प्रत्येक गाँव में एक ग्राम-सेवक नियुक्त किया जाय जो वहाँ रहकर ग्रामों में सुधार-कार्य करे। गाँव के मुखिया की सहायता से ये लोग शिक्षा-प्रचार, कृषि-सुधार, स्वास्थ्य-सुधार आदि ग्रामोपयोगी बातों का प्रचार करेंगे।

इस प्रकार देश में साधारणतः ग्राम-संगठन का कार्य तो चल रहा है पर एक केन्द्रीय संस्था इसी काम के लिए होनी चाहिए। जिसकी देख-रेख में विभिन्न प्रान्तों में कार्य किया जा सके।

नमक-कर

[श्री रामनाथलाल 'सुमन']

नमक एक ऐसी चीज़ है जिसकी ज़रूरत आधे पेट खाकर दिन बितानेवाले दरिद्रों की झोपड़ियों में भी पड़ती है। हज़ारों वर्ष के अभ्यास ने उसे भोजन की एक आवश्यक सामग्री बना दिया है। और अब तो वह हमारे स्वास्थ्य के लिए भी एक सीमा तक अनिवार्य्य हो गया है। ऐसी सामान्य और ज़रूरी चीज़ भी भारत-सरकार की शासन-व्यवस्था की धाँधली तथा स्वार्थ के कारण करोड़ों गरीब भारतीयों के लिए बहुत क़ीमती बना दी गई है और वह बहुत थोड़ी मात्रा में ही उसका उपयोग कर पाते हैं।

इस विषय में कई बार भारतीय जन-सेवकों द्वारा आन्दोलन किया जा चुका है और जब से नमक-कर के सम्बन्ध में सत्याग्रह करने के समाचार साबरमती-आश्रम से आये हैं, तब से इस विषय की ओर ख़ास तौर से लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। ऐसी परिस्थिति में, इस आवश्यक विषय पर जिसके विषय में ठीक-ठीक ज्ञान का देश में बहुत अभाव है, कुछ प्रकाश डालना अच्छा होगा!

नमक-कर का इतिहास सैकड़ों वर्ष पहले से आरम्भ होता है। और यद्यपि मुगलों के समय में भी इस पर कर लगता था किन्तु वह कर सिर्फ़ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में जो खर्च लगता था उसे निकालने के लिए ही लगाया गया था और अकबर ने तो नमक का यह थोड़ा सा कर भी एकदम उठा दिया था।

जब से अंग्रेज़ों के चरण भारतवर्ष में पड़े तभी से सब प्रकार के भारतीय उद्योग-धन्धों का दिन-दिन नाश होने लगा। दिल्ली के बादशाह की शक्ति कमज़ोर हो जाने और बंगाल में फूट के कारण विद्रोह की अवस्था उत्पन्न हो जाने से अंग्रेज़ों का साहस दिन-दिन बढ़ता गया और कभी इन्हें लड़ाकर, कभी उन्हें लड़ाकर वे अपनी शक्ति तथा व्यापार बढ़ाते गये। उस समय शोरे, नमक इत्यादि का जो व्यापार था, वह अन्य व्यापारों की भाँति ही धीरे-धीरे अंग्रेज़ व्यापारियों के हाथ में आ गया। क्लाइव के समय में ही अंग्रेज़ों की व्यापार-सभा ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के नौकर नमक तथा अन्य चीज़ों का निजी व्यापार करने लगे थे। क्लाइव ने इसे रोकने की कोशिश की पर शुरू में सफल नहीं हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक-मण्डल ने व्यापारियों का ही पक्ष लिया पर पीछे क्लाइव से देशी व्यापार को सुव्यवस्थित करने को कहा गया। चालाक क्लाइव ने तुरन्त एक 'व्यापार-समिति' (Society of Trade) खोल ली। इस समिति को तम्बाकू और सुपारी के साथ नमक तैयार करने का सर्वाधिकार भी एक वर्ष के लिए मिल गया। आगे चलकर जब क्लाइव ने देखा कि कम्पनी के संचालक इस कार्य से कुछ अप्रसन्न-से हैं तो उसने यह व्यापार-समिति तोड़ दी। पीछे सन् १७६८ ई० में इस पर भी कर लगाया गया और यह नियम बना दिया गया कि ५०००० मन से अधिक नमक तैयार करने का किसी को अधिकार नहीं है। इसके साथ ही १०० मन नमक पर ३०) 'सिक्का' के हिसाब से कर भी लगाया गया।

पर इस व्यवस्था से जब कोई ख़ास आमदनी न हुई तो लार्ड क्लाइव के बाद आनेवाले अंग्रेज गवर्नर हेस्टिंग्स ने यह अधिकार प्राप्त किया कि जो कुछ भी नमक बने वह सिर्फ़ कम्पनी के लिए बनाया

जाय। और सरकार देशवासियों के हाथ कुछ नफे पर उसे बेच दिया करे। इस व्यवस्था से भी आमदनी में कोई विशेष वृद्धि न हुई। फिर कम्पनी की ओर से इसकी एजेंसी ले ली गई जिसके अनुसार सारे नमक के बनाने का अधिकार केवल मोलंगी लोगों को दिया गया। ये मोलंगी जो कुछ भी नमक बनाते सब अंग्रेज एजेएट को एक निश्चित भाव पर बेच देते थे। और फिर वह एजेएट फायदा उठाकर सारा नमक थोक भाव से दूसरों को बेचता था। जब इस तरकीब से भी कोई खास आमदनी न हुई तो कार्नवालिस ने निश्चित दर पर सारा नमक एक साथ बेच देने के बदले हर तीन महीनों के बाद परिमित परिमाण में नमक नीलाम करने की प्रथा चलाई। थोड़-थोड़ा नमक बाजार में पहुँचने के कारण भाव बढ़ जाने से आमदनी बढ़ती गई। पर नमक बनाने का धन्धा करनेवाले मोलंगी लोग दिन पर दिन ग़रीब होते गये। इसका फल यह हुआ कि चोरी-चोरी, नाजायज तरीके से भी नमक बिकने लगा। तब नमक बनानेवाले मोलंगियों से कहा गया कि जितना नमक तैयार करने का तुम्हारा ठेका है, उससे अधिक तैयार करने पर तुम्हें इनाम दिया जायगा और नमक के दाम भी ज्यादा मिलेंगे। इस तरीक़े पर कुछ दिनों तक काम चलता रहा किन्तु पीछे वह तोड़ दिया गया।

इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आरम्भ से ही नमक के व्यवसाय को धीरे-धीरे अपने हाथ में करना शुरू किया था। बक्सर-युद्ध के बाद उसने नमक पर कर लगाया और वारेन हेस्टिंग्स के समय में इससे ६०—६५ लाख की आमदनी बढ़ी। उस समय यद्यपि नमक की तैयारी में ८ आने से १४ आने मन तक ही लागत पड़ती थी पर नमक की बिक्री का भाव २) मन था। १७८४ ई० में इस नमक-कर से कम्पनी को ९३९०००० रुपये अर्थात् एक करोड़ से कुछ ही कम की आय हुई। जब बोली या नीलाम की व्यवस्था की गई—जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है—तो १८१२ ई० तक नमक की आमदनी एक करोड़ सत्रह लाख तक हो गई। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, कर बढ़ता गया; १८२२ ई० में बढ़ते बढ़ते नमक का भाव ५) मन हो गया। कम्पनी-सरकार के बेहद लोभ के कारण १८१७ ई० में उड़ीसा में नमक के दुष्काल से झगड़ा भी होगया। १८३२ में नमक का मूल्य उसकी तैयारी के खर्च से २८८ प्रतिशत बढ़ गया। उस वर्ष कम्पनी को इससे लगभग ढाई करोड़ रुपयों की आमदनी हुई।

कर बढ़ने तथा भाव ऊँचा हो जाने के कारण नमक की खपत में बड़ी कमी पड़ गई। श्री क्रेनफर्ड नाम के एक लेखक ने इसका हिसाब लगाया था, जिसका ब्यौरा प्रति व्यक्ति औसत इस प्रकार है—

१७९३ ई०	११.९ पौण्ड
१८०३ ,,	११.२७ ,,
१८१३ ,,	११.६७ ,,
१८२३ ,,	११.४४ ,,
१८३३ ,,	८.७४ ,,
१८४३ ,,	९ ,,

इस प्रकार जहाँ १७९३ ई० में प्रति आदमी पर नमक की खपत का औसत लगभग १२ पौण्ड या ६ सेर पड़ता था वहाँ ५० वर्ष के अन्दर कम्पनी की धाँधली के कारण घटकर केवल ४॥ सेर रह गया! नमक इतना मँहगा था कि उस समय ग़रीब किसानों की दो महीने की कमाई उनके कुटुम्ब में खर्च होने वाले नमक को खरीदने में ही चली जाती थी। जहाँ किसानों की यह हालत थी वहाँ सेना के सिपाहियों को बंगाल और मद्रास मे ८॥ सेर और बम्बई में २२॥ सेर नमक मिलता था। फिर इस साधारण

नमक में आधा हिस्सा तो मिट्टी का ही होता था। बंगाल में मद्रास या लंका से सस्ता नमक न आ सके इसलिए कलकत्ता में आनेवाले बाहरी नमक पर ३) मन कर लगाया गया। *

जब अधिक कर बढ़ जाने और मँहगा पड़ने से नमक की खपत घट गई तो उसकी बिक्री बढ़ाने की कोशिशें की जाने लगीं। इसलिए १८३६ ई० में जहाँ ३।) मन कर था वहाँ १८४७ में वह २।।) और दो वर्ष बाद १८४९ में २) मन कर दिया गया।

१८३२—३३ में पार्लमेंट की कमेटी ने जाँच के बाद यह राय प्रकट की थी कि चूंकि दूसरे व्यक्तियों-द्वारा नमक तैयार कराये जाने से आमदनी खतरे में पड़ सकती है इसलिए बाहर से सस्ता नमक मँगाकर बेचने का प्रबन्ध होना चाहिए। ऐसा होने से आशा है कि भारत में बननेवाले नमक के परिमाण में कमी हो जायगी।" इस प्रकार इन लोगों की इच्छा शुरू से यह रही कि पहले तो इस व्यवसाय को अपने कब्जे में कर लिया जाय और बाद में यहाँ का यह धन्धा नष्ट करके अपने देश के माल की खपत बढ़ाई जाय। इसलिए एक ओर तो कड़े से कड़े कानून बना कर बिना आज्ञा लिए नमक बनाने का धन्धा एकदम बन्ध कर दिया गया और दूसरी ओर विदेशी नमक—जो देशी से अधिक साफ और चमकदार होने के कारण पसन्द किया जाता था—की खपत बंगाल तथा बरमा में धीरे-धीरे बढ़ने लगी। १८०१ के कानून की छठी धारा के अनुसार बिना आज्ञा लिए नमक बनाने का प्रबन्ध करने पर पांच हजार रुपये जुर्माने की सजा उस समय हो सकती थी। पात्र में नमकीन पानी उबालकर नमक निकालने की कोशिश करने पर ५००) तक जुर्माना होता था। तिनकों को नमकीन पानी में डुबाकर जलाना तथा उसकी राख का उपयोग करना भी जुर्म था। इन कड़ाइयों से प्रजा त्रस्त हो गई और कम्पनी के संचालक-मण्डल ने भी इस लोभपूर्ण नीति का विरोध किया। इसलिए शीघ्र ही भारतीयों को लूटने की एक दूसरी तरकीब निकाली गई। जैसा कि लिखा जा चुका है इंग्लैण्ड में नमक सस्ता था। १५) में प्रायः २८ मन नमक मिलता था। १५) वहाँ से यहाँ लाने का खर्च पड़ता था और ३) के लगभग अन्य खर्च पड़ जाते थे। इस प्रकार इंग्लैंड का बना-बनाया नमक भारत में ३३) में २८ मन अर्थात् १।) मन से भी कम में पड़ता था। जब कि बंगाल के नमक पर लगभग ४१) टन अर्थात् लगभग १।।) मन लागत पड़ती थी। धीरे-धीरे यह नीति काम में लाई जाने लगी, इससे सरकार को इंग्लैण्ड से आनेवाले नमक पर कर भी काफी मिल जाता और नमक भी सस्ता पड़ता। धीरे-धीरे बंगाल के कारखाने बन्द होने लगे। कटक (बंगाल) में तो देशी नमक का भाव इतना बढ़ गया कि अधिक नमक की बिक्री के स्थानों पर पुलिस तैनात की गई जिससे चोरी-चोरी या नाजायज तरीके पर नमक न लाया जा सके। बहुत थोड़े दिनों में इंग्लैण्ड के विदेशी नमक की खपत इस देश में बहुत बढ़ गई। जहाँ १८४५ ई० में ५,६२,६१६ मन अंग्रेजी नमक यहाँ आया था तहाँ सिर्फ ६ वर्ष बाद १८५१ ई० में १८,५०,७६२ मन नमक आया!

१८५३ ई० में पार्लमेंट में यह कोशिश की गई कि बंगाल में कम्पनी के नमक बनाने के एकाधिकार को गैर-कानूनी ठहराया जाय। पर उसमें सफलता

* श्री केनफर्ड ने व्यंग करते हुए कहा था—"बंगाल वालों के पास मद्रासियों को देने के लिए अन्न है और मद्रासियों के पास बंगालियों को देने के लिए नमक है। एक को नमक की और दूसरे को अन्न की ज़रूरत है पर सरकार इनके एक-दूसरे की सहायता करने में बाधक हो रही है।"

नहीं हुई। १८६३ ई० तक विदेशी नमक का प्रचार इस देश में इतना बढ़ गया कि बंगाल इत्यादि के नमक के सरकारी कारखाने एक दम बन्द कर देने पड़े, इससे बंगाल का स्वदेशी नमक का कारबार ही नष्ट हो गया।

यह तो बंगाल की बात हुई। बंगाल की भाँति ही मद्रास और बम्बई में भी कम्पनी को नमक तैयार करने का एकाधिकार प्राप्त था किन्तु मद्रास में नमक-कर सदैव कम ही रक्खा गया। १८५५ ई० में १२० मन नमक तैयार करने में सिर्फ़ १२) लगते थे अर्थात् १) में १० मन नमक तैयार होता था पर १८४४ में ही १।।) मन नमक बिकता था। बम्बई और पंजाब में तो कर सदैव कम रक्खा गया।

१८५७ ई० के गदर के बाद जब हिन्दुस्तान का राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकलकर इंग्लैण्ड की पार्लमेंट के हाथ आया तो उसकी बुराइयाँ भी साथ ही साथ यहाँ आईं। नमक-कर की बुराइयाँ भी, कम होने की जगह उलटे बढ़ गईं। अन्तर यह हुआ कि अब सब प्रान्तों में एक ही कर लगाया गया। एक और अन्याय यह हुआ कि कम्पनी के शासन में देशी राज्य नमक के विषय में स्वतन्त्र थे पर ब्रिटिश शासन के आरम्भ होते ही देशी राज्यों की नमक की खानों पर भी सरकार ने अधिकार कर लिया। इसी के अनुसार १८८२ ई० में जयपुर-जोधपुर राज्यों से साँभर, पचभद्रा और डीडवाना के नमक-क्षेत्रों को सरकार ने ले लिया। यही नहीं मिट्टी से क्षार निकालनेवालों को भी कानून बनाकर यह काम करने से रोक दिया गया। इस प्रकार नमक के व्यवसाय को अपने हाथ में कर लेने के बाद में नमक पर ज़ोरों से कर बढ़ाया जाने लगा। १८८८ ई० में २।।) मन कर लगाया गया और १९०३ तक इसी हिसाब से रहा। इसके बाद लार्ड कर्ज़न के समय में घटते-घटते १) मन हो गया और १९१५ ई० तक यही कर रहा। १९१६ ई० में फिर बढ़ कर १।) और १९२३ के मार्च में उस समय के वायसराय लार्ड रीडिंग की कृपा से २।।) मन हो गया। पर पीछे स्वराजियों के बड़ी व्यवस्थापक-सभा में विरोध की आवाज़ उठाने पर १।) मन तक कर दिया गया और अभी तक यही है। अब भी बजट में कमी पड़ने पर अर्थ-सदस्य की दृष्टि इसी मद की ओर जाती है।

नमक-कर का भारत और इंगलैण्ड दोनों ही देशों में सदा विरोध किया जाता रहा है। १८५२-५३ की पार्लमेन्ट की विशेष-समितियों के सामने पेश की हुई कुछ अर्जियों में कहा गया था नमक-कर का बोझ गरीबों पर बहुत पड़ता है। कमेटी के सामने दी हुई गवाहियों में भी इस कर की निन्दा की गई है। श्रीकीन नाम के एक गवाह ने उसे अत्याचार-पूर्ण बताया था और १८३२ ई० में राजा राममोहन राय ने कहा था—"थोड़ा-सा नमक पाने के लिए गरीब किसान अन्य वस्तुयें छोड़ने को तैयार हैं।" १८५३ में पार्लमेन्ट में प्रस्ताव हुआ कि नमक पर से कर उठा देना चाहिए। किन्तु भारत सरकार ने १८५९ में ।।।) मन से लेकर २।।) मन तक का कर विभिन्न प्रान्तों में लगाया। पीछे जैसा कहा जा चुका है—१८६३ में सब प्रान्तों का कर एक ही कर दिया गया।

स्व० गोखले तथा दादा भाई नौरोजी दोनों ने इस कर का तीव्र विरोध किया था। गोखले ने कहा था—"कर में कमी करने पर भी जितना वसूल किया जाता है वह नमक की तैयारी के ख़र्च का १६ गुना है! क्योंकि नमक की तैयारी में तो सिर्फ़ डेढ़ आना मन ही ख़र्च पड़ता है। जीवन की ऐसी आवश्यक

वस्तु पर यह बड़ा भारपूर्ण कर है।" सरकार की ओर से कहा जाता रहा है कि गरीबों पर सिर्फ़ यही एक टैक्स है। स्व० दादाभाई नौरोजी ने इसका उत्तर देते हुए कहा था-"यह एक कैसी अपमानपूर्ण स्वीकृति है कि इतने दिनों के ब्रिटिश शासन के बाद ग़रीबी इतनी बढ़ गई है कि ग़रीबों के पास कोई ऐसी चीज़ नहीं रह गई जिसपर सरकार कर लगावे!"

❀ ❀ ❀

इस समय इस देश में नमक तैयार करने के चार क्षेत्र हैं—

१. पंजाब में कोहाट, कालाबाग, वार्चा, मेयो और मण्डी की नमक की खानें।

२. राजपूताना में साँभर झील, तथा पचभद्रा और डीडवाना के खारे सोते।

३. कच्छ राज्य में।

४. बम्बई, मद्रास और सिंध नदी के मुहाने के किनारे की समुद्री नमक की फैक्टरियाँ।

कोहाट में नमक बहुत निकलता है। उसमें नमक की चट्टानों को ही काट-काटकर बड़े-बड़े कमरे बनाये गये हैं जिनमें बाज़-बाज़ तो २५० फुट लम्बे, ४५ फुट चौड़े और २०० फुट ऊंचे हैं। साँभर में क्यारियाँ काटकर झील का पानी लाया जाता है और धूप में पानी के उड़ जाने पर नमक रह जाता है जो पीछे इकट्ठा कर लिया जाता है। इस झील में क्षार इतना अधिक है कि जो जानवर, पक्षी इसमें गिरते हैं, नमक बन जाते हैं। कच्छ के रान में भी लगभग इसी प्रकार नमक तैयार किया जाता है तथा बम्बई और मद्रास में भी इसी तरह समुद्र के पानी को क्यारियों में सुखाकर नमक निकालते हैं। बर्मा और बंगाल में नमक बनाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है इसलिए इन प्रान्तों की आवश्यकता की पूर्ति लिवरपूल, जर्मनी, अदन, बम्बई और मद्रास के नमक से होती है। पर सरकार की कुटिल नीति का ही यह परिणाम है कि पंजाब का नमक तो बंगाल में महँगा पड़ता है पर इंग्लैण्ड का नमक सस्ता!

× × ×

अब यह देख लेना चाहिए कि भारत में प्रत्येक आदमी पर नमक का औसत खर्च क्या है और स्वास्थ्य के लिए कितने नमक की आवश्यकता है। नीचे के नक़्शे से विभिन्न देशों में प्रति मनुष्य का औसत नमक-खर्च मालूम हो जायगा—

भारतवर्ष	५-६	सेर
इंग्लैण्ड	२०	"
इटली	१०	"
रूस	९	"
जेल में (भारत)	७-७॥	"

साधारणतः सर्द मुल्कों में १२॥ सेर वार्षिक नमक प्रति व्यक्ति के लिए आवश्यक है। गर्म मुल्कों में इसका दूना अर्थात् २५ सेर नमक आवश्यक है। पर भारत में हमारी ग़रीबी और नमक की मँहगाई के कारण सिर्फ़ ५-६ सेर नमक मिलता है। और इस ज़रूरी चीज़ पर भी प्रत्येक भारतीय को सवा तीन आने वार्षिक कर देना पड़ता है। भारत में जितने नमक की खपत होती है उसका एक तिहाई हिस्सा विदेशों से आता है जिसका अधिकांश—प्रायः ९० प्रतिशत—बंगाल में खपता है। इस विदेशी नमक के लिए हमारा लगभग एक करोड़ रुपया विदेश चला जाता है।

नमक एक ऐसा पदार्थ है जिसकी आवश्यकता ग़रीब-अमीर सबको है। हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उसकी बड़ी आवश्यकता है और किसी जानकार का तो यह भी कहना है कि जिन्हें आवश्यक

नमक ठीक मात्रा में नहीं मिलता उन्हें एक प्रकार का कोढ़ फूट निकलता है। चूँकि मांस इत्यादि में भी नमक का अंश पाया जाता है और यह अंश जौ, गेहूँ, तथा चावल में क्रमशः कम होता जाता है इसलिए मांसाहारी लोगों की अपेक्षा, जिनमे धनी तथा सम्पन्न अधिक हैं, ग़रीबों को नमक की अधिक आवश्यकता है। फिर भी इस आवश्यक सामग्री पर इतना कर लगा दिया गया है कि जितने नमक की हमारे शरीर को आवश्यकता है उतना खरीदने में हम असमर्थ हैं। श्री मैकडानल्ड ने इसे एक जबर्दस्त अत्याचार बताते हुए ठीक ही लिखा था—"नमक पर इतना कर लगाने का अर्थ धन की लूट के सिवा और क्या हो सकता है? अगर भारतवासी इस बात को समझ लें तो देश में असंतोष की आग जल उठे। × × ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत के ग़रीबों को लूटती थी; नमक की यह लूट उस पुरानी लूट का ध्वंसावशेष है" मज़ा तो यह है कि देश की रोटी के लिए ज़रूरी यह नमक हमें आवश्यक मात्रा में भी खाने को नहीं मिलता तब सरकार की आमदनी का वह एक ख़ास ज़रिया बना हुआ है। नीचे की तालिका से नमक द्वारा होनेवाली सरकार की आमदनी का पता लगेगा।

वर्ष	आय
१९२१—२२ ई०	६,४४,१९,८००
१९२२—२३ ई०	७,३१,४६,५९२
१९२३—२४ ई०	१०,१२,३८,००५
१९२४—२५ ई०	७,८५,७७,५७३
१९२५—२६ ई०	६,३७,०३,५६०
१९२६—२७ ई०	६,९०,००,०००

नमक के सम्बन्ध में पाँच-छः वर्ष पहले भी कुछ लोगों ने सत्याग्रह करने की बात सोची थी पर आगे कुछ निश्चय न किया जा सका। ऐसी हालत में भारत की ग़रीबी और पेट को रोटी पर लगनेवाले इस नमक-कर के विरोध में सत्याग्रह करने की जो बातचीत चल रही है, यदि उसे ठीक रूप दिया जा सका और उसमें सफलता हुई तो भारत के ग़रीब भाइयों का बड़ा भला होगा। आशा है कि देश के नेता-गण नमक की इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे।

भारत में अंग्रेजों का प्रवेश

[श्री शिवचरणलाल शर्मा]

२४ अक्टूबर सन् १५७९ का वह काला और नाशकारी दिन था जिसे याद कर हमारे हृदय में वेदना और रोष की एक ऐसी मिश्रित भावना पैदा हो जाती है जिससे हृदय व्यथित हो आता है और हाथ मलकर रह जाने के अलावा और कोई चारा नज़र नहीं आता। यह वही दिन है जिस दिन पहली बार एक अंग्रेज़ के चरण भारत की इस पवित्र भूमि पर पड़े थे। उस दिन किसी को क्या पता था कि आज का दिन भारत को दासता पाश में जकड़नेवाली जंज़ीर को गढ़ने का प्रथम दिन है? उस दिन कोई क्या जानता था कि आज ही से भारत के दासत्व की नींव पड़ रही है। उस समय किसी को क्या संदेह था कि व्यापार के लिए आये हुए ये विदेशी आगे चलकर इस देश के लिए अभिशाप सिद्ध होंगे; यहाँ की धन-सम्पत्ति का अपहरण करेंगे, ऐश्वर्य और वैभव का नाश करेंगे, मान-मर्य्यादा को मिटावेंगे, यहाँ की प्राचीन संस्कृति को समूल नष्ट करेंगे, व्यापार और उद्योग-धन्धे को मिटावेंगे और धोखाधड़ी से अंगुली के बाद पहुँचा पकड़कर इस देश को ही हड़प जायेंगे?

अंग्रेज़ व्यापारियों से भी पूर्व यहाँ पर पोर्चुगीज़ आ गये थे। इन के बाद डच और डचों के बाद फ्रांसीसियों ने यहाँ पदार्पण किया था। जब अंग्रेज़ यहाँ आये थे उस समय यहाँ पर इन से पूर्व के आये हुए पोर्चुगीज़ और डच व्यापारियों का व्यापार धड़ाके से चल रहा था। इन लोगों की इस समय तक समुद्र के किनारे कितनी ही फैक्टरियाँ बन गई थीं जो भली प्रकार अपना काम कर रही थीं। अंग्रेज़ व्यापारी इन लोगों के दिन-प्रति-दिन बढ़नेवाले व्यापार तथा फैक्टरियों को देखकर जलने लगे। इसी ईर्षा और डाह से प्रोत्साहित तथा प्रभावित होकर इन्होंने अपना काम शुरू किया। सब से पहले तो इन्होंने अपना माल रखने को गोदाम बनाने के लिए ज़मीन प्राप्त करने का यत्न किया। लेकिन जब डच व्यापारियों से इनकी प्रतिस्पर्धा ज़्यादा बढ़ गई तब तो इन्हें शीघ्र ही कोई सुरक्षित स्थान प्राप्त कर लेने की चिन्ता और भी बढ़ी। परन्तु कर क्या सकते थे? अपने घर को लिखा और इंग्लैण्ड के तात्कालिक राजा जेम्स पंचम ने अपने 'तेजस्वी भाई' मुग़ल बादशाह को पत्र लिखा और प्रार्थना की कि अंग्रेज़ व्यापारियों की हिन्दुस्तान में रक्षा की जाय बेचारे मुग़ल बादशाह को उस समय क्या पता था कि वह इनकी रक्षा करके उस साँप की रक्षा कर रहा है जो आगे चलकर अपने रक्षक की संतति को ही डस जायगा। मनुष्य भविष्य का ज्ञाता नहीं होता। उसकी दृष्टि भविष्य के अन्धकार को पार करके नहीं देख सकती। वह सोचता कुछ है और हो जाता है कुछ और ही। यही बात यहाँ पर भी हुई। मुग़ल बादशाह ने जिन्हें आश्रित समझा था वे आस्तीन के सांप निकले। उसने इन लोगों को सूरत, खंभात और अहमदाबाद में रहने की आज्ञा दे दी। इतना ही नहीं सन् १६१३ में एक फ़रमान के द्वारा उनको इन स्थानों में अधिकार भी दे दिये। बस फिर क्या था? अंग्रेज़ व्यापारियों के भी पैर यहाँ पर जम गये।

पहला काम

जब तक मनुष्य की स्थिति डांवाडोल रहती है तब तक उसका हौसला, साहस और पौरुष आधा भी नहीं रहता। लेकिन पैर जमाते ही उसके अन्दर नवीन शक्ति और नई आशाओं का संचार होने लगता है। उसका हौसला बढ़ जाता है, साहस खुल जाता है और उसमें दृढ़ता आ जाती है। उसके दिल में उमंगें उठती हैं और महत्वाकांक्षा बढ़ती है। महत्वाकांक्षा वैसे कोई बुरी चीज़ नहीं है, यदि महत्वाकांक्षी उसे पूरी करने के लिए उचित-अनुचित सभी उपायों को काम में नहीं लाता। यदि ऐसा नहीं है तो फिर उसका हृदय ईर्षा-द्वेष की भट्टी बन जाता है और उससे प्रेरित होकर वह धर्म-अधर्म और उचित-अनुचित किसी बात की भी परवाह नहीं करता। अंग्रेज़ों के साथ

भी ऐसा ही हुआ। उन्हें पोर्चुगीज़ और डच व्यापारियों से ईर्षा हुई। अब वे इन लोगों को यहाँ से बाहर निकाल फेंकने का स्वप्न देखने लगे। लेकिन चूंकि पोर्चुगीज़ अंग्रेज़ों से पहले आये थे इसलिए इनकी ताक़त उनसे बढ़ी-चढ़ी थी। लेकिन इससे क्या था ? ईर्षा तो आदमी को अंधा बना देती है। इसलिए ईर्षाग्नि से जले हुए अंग्रेज़ व्यापारियों ने पोर्चुगीज़ तथा डचों से अनेक बहाने बनाकर घमासान युद्ध किये। इन युद्धों का फल यह हुआ कि बेचारे डच तो यहाँ से सर्वदा के लिए चले गये परन्तु पोर्चुगीज़ अब भी यहीं हैं। यह इसलिए नहीं कि वे यहाँ अब तक रहने में समर्थ हो सके बल्कि यह कि उनके साथ, उन्हें यहाँ बने रहने की, मेहरबानी की गई और पोर्चुगीज़ पर अंग्रेज़ों की इस विजय का एक कारण यह भी था कि उस ज़माने में पोर्च्युगाल को स्पेन ने अपने में मिला लिया था और उन दिनों स्पेन यूरोपीय महायुद्धों में व्यस्त था। इसी कारण पोर्चगीज़ व्यापारियों के साथ इस युद्ध में स्पेन से कोई सहायता नहीं मिली।

फ्रांस की महत्वाकांक्षा और पराजय

जिस समय स्पेन वाले पश्चिम में फंसे हुए थे, ठीक उसी समय फ्रांसीसियों को पूर्वी समुद्र में धन, यश और एशियाई साम्राज्य प्राप्त करने का स्वप्न दिखाई देने लगा। अंग्रेज़ लोग पहले तो कुछ समय तक इन सबके मुक़ाबिले में लाभ और यश की दौड़ में कुछ फिसड्डी से दिखाई देते रहे। क्योंकि एक तो इनको औरों से पीछे आने के कारण कुछ असुविधा रही और दूसरे उस समय इंग्लैण्ड की सरकार घरेलू और आंतरिक झगड़ों के कारण निर्बल तथा डावाँडोल थी। इसलिए वह इन अंग्रेज़ व्यापारियों को कोई सहायता न दे सकी। अतः इंग्लैण्ड में स्टुआर्ट वंश के गद्दी पर बैठने के समय से लेकर उसके हटाये जाने के समय तक अंग्रेज़ों को यहाँ पर हिन्दुस्तान के राजा और प्रजा दोनों की कृपा पर कुछ लाभप्रद सौदा करके ही सन्तुष्ट रहना पड़ा; उनकी महत्वाकांक्षा मजबूरन दबी पड़ी रही। उसे खुल खेलने का अवसर न मिला।

उपर्युक्त विकट परिस्थितियों और असुविधाओं के कारण हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ व्यापारियों को धन, यश प्राप्त करने तथा अपनी सत्ता जमाने में भलमानसाहत, सच्चाई और वीरता की अपेक्षा मक्कारी, चालबाज़ी और फ़रेब से ही अधिक काम लेना पड़ा।

मनुष्य-स्वभाव बड़ा विचित्र है। एक बार यदि अपने क्षणिक लाभ के लिए अनीति से काम ले ले तो उसे फिर चसका लग जाता है। और यदि वह एक बार की गई अनीति की पुनरावृत्ति कर डाले तब तो समझिए कि वह गया! इस प्रकार धीरे-धीरे अनीति पर आचरण करने का मनुष्य आदी बन जाता है। फिर उसे अनीतिपूर्ण आचरण करने में पहले-जैसा संकोच और झिझक नहीं रहती। उसका यह स्वभाव, यदि छोड़ न दिया जाय तो, वंशपरम्परागत बन जाता है। उसकी झलक आप आगे आनेवाली संतान में भी देखेंगे। यही कारण है कि प्रथम आये हुए अंग्रेज़ व्यापारियों ने जो अन्याय किये वे उनके उत्तराधिकारियों में भी बने ही रहे। उनकी बुराइयाँ वंशानुगत हो गईं।

× × ×

फ्रान्स तो अंग्रेज़ों का बहुत पुराना शत्रु है। आज परिस्थितिवश यदि अंग्रेज़ों से उसकी मैत्री है तो इसके मानी यह नहीं कि फ्रान्सीसी अंग्रेज़ों की पिछली बातों को भूल गये। फ्रान्स के स्वातंत्र्य-युद्ध में, अंग्रेज़ों ने फ्रान्स की प्रजा-पीड़क निरंकुश सत्ता का साथ दिया था और इसके बाद इस घृणित कृत्य का बदला लेने की नेपोलियन ने भरसक कोशिश की। सम्भवतः इसीलिए भारतवर्ष में अपने प्रतिद्वन्द्वी इंग्लैण्ड को धन, सत्ता और यश प्राप्त करता देख फ्रांस भी यहाँ पर आ धमका। ये दोनों लड़े और खूब लड़े। सन् १७४४ से १७६३ तक इन दोनों में बराबर युद्ध ही होते रहे। इन युद्धों में इंग्लैण्ड से फ्रान्स प्रायः तगड़ा ही पड़ता रहा। मद्रास का फ्रान्सीसी गवर्नर अंग्रेज़ों के लिए अविजेय हो गया था। अतएव उसे विजय करने के लिए अंग्रेज़ों ने अपने अचूक शस्त्र अर्थात् धोखे से काम लिया। जब ये उस वीर को लोहे की तलवार से काबू में न कर सके तो इन्होंने उस पर चाँदी के जूतों का वार किया। रुपया दुनिया में बुरी चीज़ है। इसका वार मुश्किल से ही खाली जाता है।

गवर्नर डूप्ले इससे मिल गया * और अपने हथियार डाल दिये। यह समाचार जब फ्रान्स पहुंचा तो फ्रांसीसी सरकार ने अपने देश और जाति के साथ विश्वासघात करनेवाले को फ्रान्स वापिस बुला लिया। और जिस चांदी के लिए उसने अपने देश और जाति के साथ विश्वासघात किया था उसे उसी को पिघलाकर पिला दिया! पांडुचेरी में आज भी इसकी एक विशालकाय मूर्ति बनी हुई है। मूर्ति के एक हाथ में म्यान है और दूसरे में नंगी तलवार।

यह नंगी तलवार उसने कोट के नीचे छिपा रक्खी है। मूर्ति के पीछे रुपये के भरे तीन थैले रक्खे हैं जो इस बात के सूचक हैं कि रुपया खाकर इसने तलवार को कोट के नीचे छिपा लिया।

× × ×

सन् १६२५ ई० में सर टामस रो राजदूत की हैसियत से दिल्ली के बादशाह के दरबार में गया। वहाँ उसका खूब स्वागत हुआ। इसके बाद कम्पनी ने कालीकट और मछलीपट्टम में भी अपना अड्डा जमा लिया और फिर मुग़ल-सम्राट से प्रार्थना की कि सम्राट महोदय कृपापूर्वक कम्पनी को अपने नौकरों को सज़ा देने के अधिकार भी दे दें। क्योंकि विदेशियों के बीच तथा सुदूरवर्ती स्थानों में फैक्टरियों के प्रबन्ध में बड़ी असुविधा रहती है। मुग़ल-सम्राट न्याय-प्रिय और भला आदमी था। अतः इसने कम्पनी को तुरन्त यह अधिकार दे दिया कि वह अपने नौकरों को सज़ा भी दे दिया करे। उसे भला इस बात का क्या पता था कि इसी अधिकार के बल पर कुछ दिन बाद यही कम्पनी उसी की प्रजा और उसी के उत्तराधिकारियों पर हुकूमत करने का दावा करेगी, और जहाँ कहीं इसका विरोध किया जायगा वही पर वह प्रजा पर बलवे का अपराध लगायेगी; यहाँ तक कि मुग़ल-सम्राट के उत्तराधिकारियों को क़ैदख़ाने में भी बन्द कर देगी और उन्हें हाथियों की नंगी पीठ पर बैठाकर निकालेगी!

* लेखक ने इस सम्बन्ध में कोई विश्वासप्रद प्रमाण नहीं दिया अतः कुछ ठीक कहना कठिन है। हमारा इससे, एक प्रकार से, मत-भेद ही है।　　—संपा०

सन् १६३९ ई० में मद्रास में सेण्ट जार्ज क़िले की नींव डाली गई। इसे प्रेसीडेंसी के नाम से मशहूर किया। कुछ दिनों में कम्पनी का यहाँ पर पूरा आधिपत्य जम गया और धीरे-धीरे उसने यहाँ का सारा व्यापार अपने हाथ में ले लिया। फिर यदि कभी कोई अन्य व्यापारी-बेड़ा उधर आ जाता तो कम्पनी उसे लुटेरा कहकर उसका सारा माल-असबाब ज़ब्त कर लेती! इस प्रथा के सबसे अधिक शिकार बेचारे डच हुए। उन्हें इतना तंग होना पड़ा, इतना लड़ाई झगड़ा मचा, उनका इतना माल-असबाब लुटा और इतनी हानि हुई कि वर्णन करना कठिन है। इस प्रकार की लूट-खसोट और लड़ाई-झगड़े करते एक मुद्दत व्यतीत हो गई।

इधर अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही औरंगज़ेब के शासन की शृंखला ढीली पड़ चली थी। इसका कारण था औरंगजेब दृढ़निश्चयी, असहिष्णु, लड़ाका और धर्मान्ध मुसलमान था। इसके शासनकाल में इसकी हिन्दू प्रजा में गुलझम, मिथ्या-विश्वास और अन्ध परम्परा का घोर साम्राज्य था। दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो शक्ति और सत्ता के पास होते हुए लोगों को समझाने या सुधारने में उसका उपयोग न करें। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दि में हिन्दुस्तान ही में क्या संसार में कहीं भी उदारता से उतना काम न लिया जाता था जितना कि आज-कल लिया जाता है। उस युग के शक्तिशाली और धर्मान्ध राजाओं का तो कहना ही क्या? स्पेन के बादशाह फिलिप दूसरे ने भी धार्मिक मदान्धता के जोश में लोगों का ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन कराया था। इसी के कारण उसके साम्राज्य का नाश तक हो गया था। मदान्ध शासक भला कब किसी से सबक़ लिया करते हैं? औरंगज़ेब सत्ता के मद में चूर था। उसने हिन्दुओं के आडम्बर और मिथ्या-विश्वासों पर तलवार से वार किया। हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने का काम सर्वत्र जारी था। दक्षिण में भी यह काम चल रहा था। परन्तु जहाँ-जहाँ मराठे पहुँचते जाते वहाँ-वहाँ हिन्दू-धर्म की पताका फहराते जाते। कुछ ही काल में मराठों की शक्ति इतनी बढ़ गई कि मुग़ल-साम्राज्य के अनेक सूबेदारों को धर्म के सम्बन्ध में सहनशीलतावाली अपनी पुरानी नीति ही अधिक हितकर जँचने लगी। परन्तु इससे औरंग-

ज़ेब की नीति की कटुता बढ़ती ही जाती थी। मराठे भी पूर्ण रूपेण उग्र रूप धारण कर चुके थे। सन् १६६४ ई० में शिवाजी ने जब बम्बई पर आक्रमण किया तो सूरत-स्थित अंग्रेज़ी गवर्नर ने अपने नगर की शिवाजी के मुकाबिले में जमकर रक्षा की। औरंगज़ेब अंग्रेज़ों के इस कार्य से बहुत प्रसन्न हुआ और पुरस्कार-स्वरूप उसने कम्पनी को बिना माँगे कितने ही अधिकार दे दिये। उस समय बम्बई पोर्चु-गाल वालों के अधिकार में था। लेकिन पोर्चुगाल की राज-कुमारी का विवाह इंग्लैण्ड के राजा चार्ल्स से हो जाने पर दहेज में बम्बई अंग्रेज़ों को मिल गया था।

इस प्रकार ८० वर्ष की लूट-खसोट और धोखा-धड़ी के बाद कम्पनी यहाँ पर कितने ही स्थानों में उपनिवेश स्थापित कर सकने में समर्थ हुई और उसने इस बीच में एक विपुल सम्पत्ति भी इकट्ठी कर ली। बाद में तो बम्बई में इनकी बेजा हरकतें इतनी बढ़ गई थीं कि मुग़ल बादशाह को यह फ़रमान निकालना पड़ा था कि अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्तान की ज़मीन पर अपना कब्ज़ा करते चले आ रहे हैं इसलिए इनको यहाँ से निकाल दिया जाय। इसी आज्ञा के अनुसार इन्हें सूरत से निकाल भी दिया गया था; बम्बई पर घेरा डाल दिया गया था तथा अन्य स्थानों की फैक्टरियों पर भी बादशाह की सेना ने कब्ज़ा कर लिया था। परन्तु अंग्रेज़ लोग स्वभावतः बड़े ही चालाक हैं। वे मुग़ल-सम्राट के पैरों पर पड़ गये और क्षमा माँग ली। परन्तु मुग़ल-सम्राट की अपेक्षा बंगाल के शासक अधिक सावधान थे। अंग्रेज़ों को समुद्र के किनारे नये नये स्थानों पर क़िलेबन्दी करते देख उन्हें ख़तरे की शंका होने लगी थी; थोड़े ही दिनों में यह शंका सत्य साबित होगई। अब तो अंग्रेज़ों की बेजा हरकतों से खुल्लम-खुल्ला झगड़े की नौबतें भी आने लगीं। अब तक तो ये लोग अपने को हिन्दुस्तान के सम्राट का नम्र और दीन सेवक प्रकट करते आये थे परन्तु बंगाल के नवाब से झगड़े होने के पश्चात् तो उनका स्वरूप ही बदल गया। अब वे सोचने लगे यह चोले का बाना क्यों न उतार फेंका जाय? यही बात सोचते-सोचते उन्होंने चटगाँव पर धावा बोल दिया। और इसी प्रकार अब तक वे जिनके साथ शान्तिपूर्वक रहते आये थे उनके ऊपर यथाशक्ति अत्याचार करने को तुल गये। परन्तु इस आक्रमण में अंग्रेज़ों को सफलता नहीं मिली। इस अकारण आक्रमण से भी यदि हिन्दुस्तान के शासकों की आँखें कहीं खुल गई होतीं तो आज भारत को यह दुर्दिन क्यों नसीब होता? इस युद्ध में अंग्रेज़ों ने काफ़ी लूट-मार की थी। बालसोर नगर को तो जला तक दिया था! परन्तु अन्त में बुरी तरह हारे और अपनी कासिम बाज़ार तथा पटना की फैक्टरियां भी छिनवा बैठे। जब कोई चारा नज़र न आया तो झट शरण की याचना कर ली।

इस युद्ध के बाद कम्पनी ने व्यापार की अपेक्षा ज़मीन पर क़ब्ज़ा जमाने की ओर अधिक ध्यान दिया। सन् १६९९ में उसने अनेक नई फैक्टरियाँ बनाईं और उनकी रक्षा के लिए मुग़ल-सम्राट से क़िले बनाने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। परन्तु वास्तव में रक्षा के लिए नहीं बल्कि भावी युद्ध की तैयारी के लिए यह क़िलेबन्दी की गई थी। क़िलेबन्दी के इस काम को उन्होंने इतनी सावधानी से किया कि किसी भी देशी नरेश को तनिक भी सन्देह न हो जाय।* और हुआ वैसा ही, इनकी तैयारी हो गई और किसी को पता भी न चला। इसी तैयारी के बल पर आगे चलकर इन्होंने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं।

---

* मिल की पहली पुस्तक, अध्याय पाँच।

हृदय की आवाज़

[श्री कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी]

आज से कई हज़ार वर्ष पहले की बात है। इसी भारत-माता की गोद में एक उच्चवंशीय राजघराने के धन और ऐश्वर्य के बीच में एक राजकुमार पला था। उसका विशाल राज्य था, बहुत शक्तिशाली उसका परवार था, आज्ञा के नीचे शीश झुकाने वाली उसकी बड़ी सेना थी, धन-सम्पत्ति से भरा उसका भण्डार था, चतुर और सुन्दरी पत्नी उसे प्राप्त थी, सांसारिक यातनाओं को अपने सिर पर उठानेवाले उसके पिता जीवित थे। आनन्द और विहार में अपना जीवन बिताने के उस राजकुमार को सब साधन प्राप्त थे।

लेकिन एक दिन जब चारों ओर अन्धकार था। समस्त संसार निद्रा के वशीभूत हो रहा था, तब उस राजकुमार के हृदय में एक दिव्य ज्योति जलने लगी। उस ईश्वरीय प्रकाश में मस्त होकर उसको सारी सुधि जाती रही। इसी समय उसके हृदय में आवाज़ उठी, "चल छोड़ दे इस माया-जाल को, और खोज कर उसकी जो यथार्थ हो।"

वंशी-ध्वनि में जिस प्रकार भयंकर विषधर मस्त हो जाता है उसी प्रकार वह राजकुमार भी अपनी इस हृत्तन्त्री में लीन हो गया। उसने तुरन्त ही अपना कहलाया जानेवाला सर्वस्व छोड़कर, मगध के जंगलों में दाने-दाने को भटकने और कंटकाकीर्ण मार्गों में नंगे पाँवों घूमने को, अपने विशाल राज्य और अतुलित सम्पति को ठोकर मार दी। वासनाओं ने उसे अपना शिकार बनाना चाहा, तृष्णा ने उस पर तीर छोड़े, मोह ने उसे मोहने का यत्न किया, इन्द्रियों ने उसे अपने वशीभूत करना चाहा, किन्तु उस वीर ने अपने हृदय की आवाज़ के सामने सबको विमुख कर दिया।

कपिलवस्तु में हाहाकार मच गया। महाराज शुद्धोदन का एकमात्र पुत्र बनवासी बन गया, शाक्य-वंशी युवराज तपस्वी हो गया। सब घबड़ा गये, सब उसके विरुद्ध हो गये। उसे डिगाने के तरह-तरह से यत्न किये जाने लगे, देवराज स्वयं उसे कसौटी पर कसने को पृथ्वी पर उतर पड़े किन्तु सब व्यर्थ हुआ। राजकुमार ने अपने हृदय की आवाज़ के सामने किसी की आवाज़ नहीं सुनी, किसी ओर दृष्टिपात नहीं किया।

ज्वार निकल जाने के समान समुद्र का वह कोलाहल भी शान्त होगया. शाक्यवंश का वही राजकुमार शाक्य मुनि और बुद्ध भगवान के रूप में घर-घर पूजा जाने लगा। तब से शताब्दियाँ बीत गई हैं, कितने राज-वंश और राज-परिवारों के आज नामोनिशान भी मिट चुके हैं, किन्तु अपने हृदय की आवाज़ पर अपना राज-पाट निछावर करनेवाला वह राजकुमार आज भी चालीस करोड़ हृदयों पर राज्य कर रहा है। शाक्य-वंश का वह दैदीप्यमान दीपक हिमालय शिखर पर जलता हुआ आज भी संसार के अँधेरे में भटके लाखों मनुष्यों को मार्ग प्रदर्शित कर रहा है।

संसार-स्वर और हृदय की वाणी भिन्न-भिन्न है। संसार जिसे सुख कहता है हृदय उससे दूर भागता है। और हृदय जिस ओर को बढ़ता है. संसार अपनी समग्र शक्ति लेकर उस मार्ग में आड़े आ जाता है। जो शक्ति-हीन हैं वह वहीं पर रुक जाते हैं, किन्तु जो बलवान हैं वे हृदय की आवाज़ के आगे किसी के विरोध की परवाह नहीं करते। अनेक कष्ट और यातनायें सहकर भी वे अपने हृदय के सम्मुख

सच्चे ही बने रहने का यत्न करते हैं। प्रभु ईसा मसीह को फाँसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया, हम आज भी उस दृश्य की केवल कल्पना करके काँप जाते हैं। किन्तु ईसा ने उसी फाँसी के फन्दे में अपने पिता के दर्शन किये थे। सुकरात ने घोर हलाहल से भरा प्याला हँसते-हँसते किसी सुन्दरी के अधर-पल्लवों के समान अपने मुख से लगा लिया था। वीर लोगों ने सब-कुछ सह लिया किन्तु अपने हृदय की आवाज को नहीं भुलाया। संसार का विरोध स्वीकार कर यह जीवन विसर्जन करने को वे तैयार हो गये। किन्तु स्वयं अपने हृदय का विरोध कर जीवन धारण करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अन्त में जीत उन्हींकी हुई, संसार को भी थोड़े दिन बाद उनकी आवाज के नीचे अपनी गरदन झुकानी पड़ी।

आरम्भ से लेकर आज तक सब जगत के कर्तव्या-कर्तव्य का निश्चय कर डालने के लिए परेशान हो रहे हैं। पोथा के पोथा इस विषय पर रँगे जा चुके हैं, कितने ही जीवन इसी धुन में बलिदान हो चुके हैं, किन्तु जिसने हमें यह जीवन-दान दिया है उसने हमें एक ऐसी भी वस्तु प्रदान कर रक्खी है, जो क्षण मात्र में हमारी यह परेशानी दूर कर देती है। अपनी उस हृदय की आवाज की ओर हमारा ध्यान कभी आकर्षित नहीं होता।
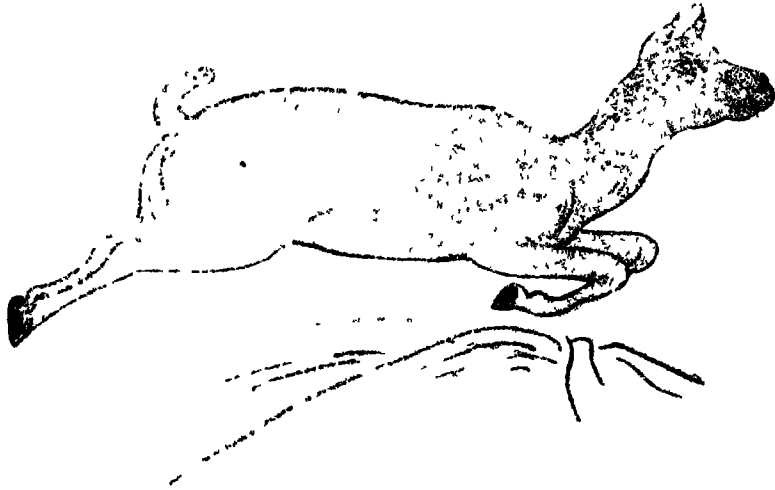
गुरुकुल-वृन्दावन

[श्री विश्वेश्वर]

यदि मानव-जीवन का विश्लेषण किया जाय, तो मोटे तौर से हम उसे तीन भागों में विभक्त पायेंगे। एक वह जिसका मुख्य सम्बन्ध निजी या व्यक्तिगत जीवन से है, दूसरा वह जो समाज, देश या राष्ट्र से सम्बद्ध है, और तीसरा वह जो इस विश्व के विधाता परमात्मा से सम्बन्ध रखता है। इन्हींको दूसरे शब्दों में वैयक्तिक, सामाजिक या राष्ट्रीय और धार्मिक कर्त्तव्य कहा जा सकता है। एक आदर्श जीवन के लिए—एक पूर्ण जीवन के लिए—इन तीनों प्रकार के कर्त्तव्यों का सम्मिश्रण आवश्यक और अनिवार्य है। वैयक्तिक सच्चरित्रता से शून्य जीवन केवल सामाजिक और धार्मिक कृत्यों के सहारे ही आदर्श तक नहीं पहुँच सकता। जितनी शक्ति उसके धार्मिक और सामाजिक कर्त्तव्य के ऊपर उठाने में लगायँगे, उससे भी अधिक—कहीं अधिक आकर्षण उसकी वैयक्तिक चरित्र-हीनता में है, जो हठात् खींचकर उसे भूमि पर ला पटकेगा। सामाजिक कर्त्तव्य-पालन से उदासीन हो केवल वैयक्तिक चरित्र-निर्माण और ईश्वराराधना में संलग्न व्यक्ति वस्तुतः मानव-संसार से—संसार के प्रकृत क्षेत्र से बाहर की वस्तु है। उसकी गणना वर्तमान योगियों में की जानी चाहिए, केवल वैयक्तिक सच्चरित्रता और सामाजिक सेवा का आश्रय लेनेवाला जीवन यान्त्रिक जीवन है। उसमें प्राण-प्रतिष्ठा भी की गई है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। धर्म प्राण है, धर्म शान्ति है; उसके बिना जीवन की वास्तविक स्थिति ही नहीं, और न उसके बिना शान्ति ही उपलब्ध हो सकती है। फलतः वैयक्तिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन के सम्मिश्रण में ही मानव-जीवन की पूर्णता है। आजतक संसार के जितने महापुरुष हुए हैं, उनमें से किसी का जीवन ऐसा नहीं, जिसमें इन तीनों कर्त्तव्यों ने मिलकर एक अपूर्व इन्द्र-धनुष की रचना न की हो। भगवान् मनु ने इसी सिद्धान्त के समर्थन में लिखा है—

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्य कुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥

इसलिए जो शिक्षा-प्रणाली मनुष्य के भीतर की समस्त शक्तियों को विकसित करते समय उसे इन तीनों प्रकार के कर्त्तव्यों के पालन में समर्थ बना सके, वही सच्ची शिक्षा-प्रणाली कही जा सकती है, वही समाज और राष्ट्र की पोषक हो सकती है, और वही मानव-जीवन को पूर्णता तक—आदर्श तक पहुँचा सकती है। परन्तु दुर्भाग्य से जो शिक्षा-प्रणाली आज हमारे देश में प्रचलित है, वह इन भावनाओं को न पूर्ण करती है और न पूर्ण कर ही सकती है; क्योंकि उसके सूत्रधारों की यही अभिलाषा है—इसीमें उनका हित है।

भारत के प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा के वास्तविक रहस्य को समझ कर अपने देश या राष्ट्र की हित-कामना से भारतीय संस्कृति और भारतीय भावनाओं का ध्यान रखते हुए गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की योजना निर्धारित की थी। हमारी दृष्टि में यह योजना भारतीय मस्तिष्क की सुन्दरतम उपज है। इस शिक्षा-प्रणाली का मुख्य ध्येय चरित्र-निर्माण है। ब्रह्मचर्य उसका जीवन है; राष्ट्रीयता उसकी देह है; और आस्तिकता उसका सौन्दर्य है। उन दिनों के शिक्षा-शास्त्रियों की व्यवस्था थी और उसके अनुसार आठ-आठ वर्ष के नन्हे-नन्हे बालक पिता-माता की ममतामय गोद को त्यागकर शहरों से दूर एकान्त निर्जन स्थान पर खुले हुए गुरुकुलों में भेज दिये जाते थे। तबसे लेकर २५ वर्ष की अवस्था तक, अर्थात् ब्रह्मचर्य-अवधि की समाप्ति तक, कुलपति (प्रधान आचार्य) ही उनका माता-पिता और आचार्य था। इस आचार्य का मुख्य ध्येय था—

'मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु।'

अर्थात् तेरा हृदय मेरे हृदय के अनुकूल बने। अपने इसी ध्येय की पूर्ति के लिए वह बालक के तपोवन-प्रवेश के

बाद से उसकी २५ वर्ष की अवस्था तक निरन्तर अथक रूप से अपनी सारी शक्ति उसके विकास में लगाना था और अपने इस १६-१७ वर्ष के परिश्रम के परिणाम-स्वरूप देश, जाति या राष्ट्र को परिशोधित एवं विशुद्ध रूप में युवक भेंट करता था। कुल से निकले स्नातक के रूप में बूढ़ा आचार्य अपना काया-कल्प कर मानों एक बार फिर समाज-सेवा के प्रकृत-क्षेत्र में अवतीर्ण होता था।

वह युग, जिसका कि हम उल्लेख कर रहे हैं, भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग था। हमारी आज की और तब की अवस्था में आकाश-पाताल का अन्तर है; परन्तु चारित्रिक दृष्टि से उस आदर्श को, राष्ट्रीय दृष्टि से उस महत्व को, और सामाजिक दृष्टि से उस व्यवस्था को पुनः प्राप्त कर सकने का एक उपाय बालकों की शिक्षा को नियन्त्रित करना है। जितना ही शीघ्र हम बालकों के हृदय में अपने भारतीय आदर्शों के प्रति श्रद्धा और प्रेम के भाव उत्पन्न कर सकेंगे, जितनी ही जल्दी उनके चरित्र को ब्रह्मचर्य के साँचे में ढाल सकेंगे और उसपर राष्ट्रीयता की मुहर लगा सकेंगे, उतने ही शीघ्र हमारी परतन्त्रता की अवधि समाप्त हो जायगी। हमारी राष्ट्रीय एवं सामाजिक सभ्यता का विकास प्रारम्भ हो जायगा। यही सब बातें अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर स्वामी दयानन्द ने आधुनिक युग में गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के पुनरुद्धार के लिए बल दिया, और ऋषि के अकिंचन भक्त आर्यसमाज ने आज से लगभग २५ वर्ष पहले उसके इस आदेश को क्रियात्मक रूप देने का साहस करके भारतीय शिक्षा के जगत् में एक क्रान्तिकारी आदर्श उपस्थित कर दिया। वृन्दावन-गु उसी शिक्षा-प्रणाली का एक नमूना है, जिसके सम्बन्ध में इङ्गलैण्ड के वर्तमान प्रधान मंत्री रैम्से मैकडानल्ड ने सन् १९१४ में लिखा था—

The Gurukul is the most momentous thing in Indian Education that has been done since Macaulay sat down to put his opinions into minute but no one so for as I have yet seen, save the founders of the Gurukul, has translated his unhappiness into a new experiment.

वृन्दावन-गुरुकुल को स्थापित हुए इस वर्ष पूरे २५ साल हो रहे हैं। अपने प्रारम्भिक रूप में इसकी स्थापना सिकन्दराबाद में हुई थी। सिकन्दराबाद का गुरुकुल भी स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज ने खोला था। उस समय किसी नियमित संस्था से उसका सम्बन्ध न था। हाँ, प्रबन्ध की दृष्टि से एक स्थानीय समिति बनी हुई थी। परन्तु उन दिनों गुरुकुल की अवस्था सन्तोषजनक न थी। उसका कोष बिलकुल ख़ाली था, इसके साथ ही दूकानदारों का कुछ ऋण भी था। उस समय विद्यार्थियों की संख्या ५७ थी। इन्हीं दिनों युक्तप्रान्त की आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने अपनी संरक्षकता में एक गुरुकुल खोलने का निश्चय किया और उसके लिए २० हज़ार को गुरुकुल-निधि एकत्र भी हो गई। सिकन्दराबाद गुरुकुल की प्रबन्ध-समिति ने इस अवसर से लाभ उठाया और अपना गुरुकुल बिना किसी शर्त के सभा की भेंट करने का विचार प्रकट किया। सभा को इसमें कोई आपत्ति न हुई और १ दिसम्बर १९०५ को सिकन्दराबाद गुरुकुल का भार नियमित रूप से सभा ने ले लिया। यही वृन्दावन-गुरुकुल का प्रारम्भिक रूप था।

लेने को गुरुकुल का प्रबन्ध तो सभा ने अपने हाथ में ले लिया; परन्तु अबतक गुरुकुल जिस स्थान पर स्थापित था, वह सभा की दृष्टि में जँचा न था। इसके अनेक कारण थे, जिनमें मुख्य कारण जल-वायु की प्रतिकूलता थी। इसलिए गुरुकुल के प्रबन्ध को अपने हाथ में लेने के साथ ही सभा के अधिकारियों को स्थान सम्बन्धी चिन्ता ने सताना शुरू किया। अन्त में जब गुरुकुल वृन्दावन में आकर स्थायी रूप से स्थापित हो गया, तब चिन्ता का अन्त हुआ।

वृन्दावन में आज जिस स्थान पर गुरुकुल स्थापित है वहाँ प्रारम्भिक रूप में विश्व-प्रेमी देशभक्त राजा महेन्द्र-प्रताप का बाग़ था। शहर से दूर रेलवे-स्टेशन से आध मील की दूरी पर यमुना के किनारे एकान्त स्थान पर बना हुआ यह सुन्दर बाग़ सचमुच एक तपोवन के योग्य स्थान था। गुरुकुल के सौभाग्य से, 'स्थान-निर्धारिणी समिति' के प्रबल प्रयत्न से, और राजा साहब की असीम उदारता से, यह बाग़ गुरुकुल स्थापित करने के लिए बिना किसी शर्त के प्राप्त कर सकने में सफलता मिली और १६ दिसम्बर

सन् १९११ ई० को गुरुकुल स्थायी रूप से इस स्थान में आ गया। गुरुकुल के इतिहास में श्रद्धेय राजा महेन्द्रप्रताप का नाम अमर रहेगा। संसार में लक्ष्मी के कृपा-पात्र सैकड़ों और सहस्त्रों पड़े हैं, परन्तु अपनी इस धन-सम्पत्ति का, अपने उस वैभव का उपयोग कैसे किया जाय, यह किसी को सीखना हो तो राजा महेन्द्रप्रताप से सीखे। वृन्दावन के एक सिरे पर प्रसिद्ध प्रेम-महाविद्यालय और दूसरे कोने पर गुरुकुल, दोनों राजा महेन्द्रप्रताप की यादगार हैं।

अपने इस छोटे से जीवन में गुरुकुल को अनेक बार प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा है, अनेक बार भयानक तूफ़ानों से टक्कर लेनी पड़ी है और अनेक घोर परीक्षाओं में पड़ना पड़ा है। उस विरोध, उन तूफ़ानी टक्करों और उन घोर परीक्षाओं के अवसर पर गुरुकुल ने जिस दृढ़ता से काम लिया वह श्लाघ्य है, इसमें सन्देह नहीं। अब समय बहुत बदल गया है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि गुरुकुल के संकटों की समाप्ति हो गई है। गुरुकुल अपने स्नातकों को बड़े-बड़े वेतन के सरकारी पद पाने के लिए तैयार नहीं करता, इसलिए वह जन-साधारण से उपेक्षित है; वह भारतीयता और प्राचीनता का पुजारी है, इसलिए आधुनिक शिक्षित जगत् से निर्वासित है; और वह वैदिक शिक्षा एवं वैदिक सभ्यता का उपासक है, इसलिए विभिन्न मतानुयायियों से परित्यक्त है। यह उपेक्षा, यह निर्वास, और यह परित्याग उसकी आपत्तियों के प्रधान कारण हैं। देखें, उनका अन्त कब होता है, और कब वह समय आता है, जब सारा देश एक स्वर से उसका समर्थन करेगा।

अबतक गुरुकुल से निकले हुए स्नातकों की संख्या अधिक नहीं है; फिर भी जो कुछ है, वह सन्तोषजनक है, ऐसा कहा जा सकता है। संसार के कार्य-क्षेत्र में उतरकर उन्होंने जिस पथ का अवलम्बन किया है, वह राष्ट्रीयता और सामाजिकता की दृष्टि से आशाजनक है। अब तक के निकले स्नातकों में अधिकांश का कार्यक्षेत्र देश-सेवा, समाज-सेवा और साहित्य सेवा तक सीमित है। हमने उन सब स्नातकों के कार्यक्षेत्रों का प्रतिशत जो वर्गीकरण किया है, हमारे लिए आशाप्रद है। गुरुकुल के अबतक के स्नातकों में ३० प्रतिशत ऐसे हैं, जिनका कार्यक्षेत्र विशुद्ध सामाजिक ढंग का है; २५ प्रतिशत स्नातकों ने अपना जीवन राष्ट्रीय संस्थाओं की सेवा में अर्पण कर रक्खा है; २० प्रतिशत स्नातक ऐसे हैं, जिन्होंने गुरुकुल के महाविद्यालय-विभाग में आयुर्वेद की विशेष शिक्षा प्राप्त की थी और आज भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के कट्टर समर्थक एवं सफल वैद्यों के रूप में समाज की सेवा कर रहे हैं। २० प्रतिशत स्नातकों के जीवन में साहित्यिक भावना की प्रधानता है, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कार्यक्षेत्र साहित्यिक सेवा तक ही सीमित है। शेष ५ प्रतिशत ऐसे स्नातक हैं, जिन्होंने सरकारी विश्व-विद्यालय की प्रबन्ध-कारिणी समितियों में घुस कर आज की प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में आवश्यक क्रान्ति पैदा करने की महत्त्वाकांक्षा से सरकारी परीक्षायें दीं और उनमें से कुछ ऐसे भी हैं, जो इस थोड़े से ही समय में अपने उद्देश में कुछ सफल हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि कम-से-कम उनका प्रवेश तो सरकारी यूनीवर्सिटियों की सिनेटों में हो ही गया है। आगे वे अपने उद्देश की पूर्ति में कहाँ तक सफल हो सकेंगे, यह अभी भविष्य के गर्भ में छिपा है।

इस समय गुरुकुल का वार्षिक व्यय लगभग ७० हज़ार रुपया है, जिसमें भोजन-छाजन, रहन-सहन और पठन-पाठन सब-कुछ सम्मिलित है। इस वार्षिक व्यय में से लगभग ३० हज़ार रुपया वार्षिक भोजन, वस्त्र-सम्बन्धी शुल्क में प्राप्त होता है; शेष ४० हज़ार वार्षिक की पूर्ति जनता की उदार सहायता पर निर्भर है। गुरुकुल के शिक्षा-विभाग में किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है।

राष्ट्र के इस अकिंचन सेवक गुरुकुल ने अपने पिछले जीवन में राष्ट्र-संस्कृति, राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-भूमि की रक्षा में कितना प्रयास किया है, कितना भाग लिया है, यह उन लोगों से छिपा नहीं है, जिन्हें कभी स्वल्प समय के लिए गुरुकुल के सम्पर्क में आने का मौका मिला है। गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली से राष्ट्र के शरीर को बल, संकल्प को प्रोत्साहन, और चरित्र को उद्बोधन मिलता है। यह शिक्षा भारतवर्ष के लिए अमृत-तुल्य है, हमें हृदय से उसका सेवन और जन-जन से उसका सम्बर्द्धन करना चाहिए।

आगामी अप्रैल में ईस्टर के अवसर पर १६ से २१ तारीख तक गुरुकुल का २५ वाँ महोत्सव 'रजतजयन्ती' के रूप में बड़े समारोह के साथ मनाया जायगा। ऐसे अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि इसकी सहायता करे।

काव्य का उपयोग *

(श्री पं० शिवशेखर द्विवेदी)

जिस तरह भारत ने समाज-संघ में हाथ-पैर और मुँह-पेट के रूपक से बहुत पहले ब्रह्म-साक्षात् किया था और जिसका आभास अकर्मण्य हिन्दू जाति में अब भी पाया जाता है, जान पड़ता है, अब फिर वही दीर्घकाल-व्यापी प्रणम्य रूप समाज को न प्राप्त होगा। युग-विशेष के अधिकार में आकर यूरोप की राजनीति ने जिस तरह विशुद्ध आर्य-सन्तानों की धमनियों में प्रवाह प्राप्त कर लिया है, अब उसका अवरोध मर्त्य को स्वर्ग बना कर श्रद्धा-भक्ति और कल्पना के बल पर नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि कविता का स्थान नीरस और कर्मी मनुष्यों के दल के दल लेते जा रहे हैं। वे काव्य के भीतर से दर्द और दुःख का रूप व्यक्त करने की अपेक्षा, चिल्लाने, लड़ने, झगड़ने या सुधार के नाम पर नये-नये प्रस्ताव पास करने को श्रेयस्कर समझते हैं। कथा-कहानी और निबन्धों में आजकल प्रधान विषय जीवन की आलोचना ही है। सुख का उल्लेख वहाँ बहुत होता है। रस-सिक्त करने की सामग्री अब नहीं दी जाती।

साहित्य की विशेषता समाज की तात्कालीन स्थिति को मनोहर और स्थायी बनाने में है। कल्पना का द्वार उन्मुक्त है। वह मानव-जाति के उन हार्दिक भावों को रूप देती है, जो हमेशा ही उनके भीतर द्वन्द्व मचाया करते हैं—जिनका जीवन में पूर्ण सामंजस्य है। वेश्या के पाप-पंकिल जीवन से लेकर सती के उज्ज्वल प्रभा-मंडित चरित्र तक एक विशुद्ध मानसिक उच्छ्वास का अविच्छिन्न प्रवाह है। मुक्त-हृदय की मुक्त-कल्पना उसी उच्छ्वासमय प्रवाह में मज्जन करती है और तरह-तरह की सृष्टि से संसार के मूक जन-समाज को उसीके हृदय का परिचय देती है। एक ही उपन्यास में अनेक पात्रों के अनेक चरित्र विकसित होते हैं। वे सब मानव जाति के व्यापार हैं, उन काल्पनिक चरित्रों का सम्बन्ध वास्तविक जन-समुदाय के चरित्रों से पूर्णतः है। इसीलिए वे चरित्र लोक-प्रिय होते हैं। परन्तु क्या वे सब चरित्र एक ही हृदय की अनुभूति नहीं हैं? ये सब उसी उच्छ्वासमय प्रवाह के निमज्जन के फल नहीं हैं?

युग-विशेष में धारा का प्रवाह होता है। काव्य और संगीत का उच्छेद संसार से कर देने की बर्बरता का आरोप जिन व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों और राजा-महाराजाओं पर किया जा सकता है, उनकी सार्थकता में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वे संगीत और काव्य के विरोध से देश या

* 'महाकवि देव' पुस्तक की भूमिका का अंश।

समाज को उन्नत नहीं बना सके। भारत में मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब का आधुनिक चरित्र इसी प्रकार है। उसके राज-ध्वंस के समस्त उपकरण मद्-निषेध और संगीत-बहिष्कार की विरोधिनी-भावनाओं की प्रबलता में ही एकत्र हो गये थे। उसे काव्य और संगीत से तथा उसके साधनों से बड़ी घृणा थी।

काव्य और संगीत से समाज का अनिष्ट भी हुआ है। कारण जो वस्तु जितनी ही उपयोगिनी होती है, यदि व्यवहार में ज़रा त्रुटि हुई तो वह उतनी ही हानिकर भी सिद्ध होती है। काव्य और संगीत बहुत ही पवित्र चीज़ें हैं। यदि उनकी पूजा श्रद्धा-भक्ति से न होगी तो उपासक को अवश्य ही कुपरिणाम भोगना पड़ेगा। देश के प्रमुख नेता लाला लाजपतराय के सम्बन्ध में इसी तरह की एक बात सुनी जाती है। वह काव्य और संगीत के प्रेमी थे। खुद काव्य पर उन्होंने कभी अपने विचार प्रकट किये हैं या नहीं, मैं नहीं जानता। संगीत की आलोचना में भी शायद ही लिखा हो। परन्तु उनका हृदय इस ओर संस्पर्शित अवश्य था। उनके चरित्र में संगीत और काव्य से कभी दुर्नीति भी नहीं लक्षित हुई। उनके काव्य-प्रेमी हृदय का परिचय एक बार कलकत्ता में मिला था। देशभक्त बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन साथ में निरालाजी को लेकर उनसे मिलने गये थे। निरालाजी का परिचय देते हुए उन्होंने वर्तमान काव्य के युग-परिवर्तन की बात कही थी। भाषा-भाव के नये विप्लव से उन्हें विशेष संतोष हुआ था। उनके प्रश्नोत्तरों से उनकी काव्य-मर्मज्ञता और रसिकता का परिचय इस प्रकार मिला था।

बंगाल के हार देशबंधु चितरंजन दास अपनी साहित्य-रुचि के कारण श्री रवीन्द्रनाथ के सफल प्रतिद्वन्द्वी माने जाते हैं। उनकी कविताओं में मौलिकवाद दर्शनीय है।*

यदि काव्य का सदुपयोग न होता तो क्या देशबन्धु-जैसे सुरसिक राजनीति के महा नीरस और कठोर कर्म में प्रवृत्त होने का साहस करते? जीवन का तार कहाँ पर टूट कर वीणा के स्वर को बिगाड़ रहा है, यह कविता के भीतर से ही पहचाना जा सकता है। राजनीति के साथ सरस साहित्य के सामंजस्य का एक बहुत बड़ा इतिहास है। उसकी आलोचना यदि अप्रासंगिक न होती तो अवश्य यहाँ पर करता और इतिहास-प्रेमियों की तरह समय का दुरुपयोग करके दरजनों राजनीति के प्रधान नायकों के जीवन की घटनावलियों का उल्लेख करता।

प्रेम की निर्मल मूर्त्ति की उपासना से ब्रह्म का साक्षात् करने की प्रणाली ही काव्य में गृहीत है। वासना को अतिक्रमण करके प्रेम चाहे जिस स्थान पर विश्राम ले, वह आधार-भूत ब्रह्म में ही अभेद होगा। कृष्ण के वियोग में उद्धव-गोपी संवाद के बहाने महाकवि सूर ने प्रेम और योग की आलोचना की है और वहाँ प्रेम को महत्व दिया है। योग और प्रेम में बहुत निकट का संबंध है। यही क्यों, विशेष व्याख्याओं में तो प्रेम और योग अभिन्न सिद्ध हैं। संसार के अन्य दो-चार चरित्रों में भी प्रेमादर्श और सिद्धि-प्राप्ति की लीला वासना के ज़हरीले क्षेत्र से बाहर ही कराई गई है। गृहिणी के साथ सच्चे प्रणय-कलह और

---

* "महाशून्य।"

जीवन, जीवन को था?—येन निरवधि,
मरण-निश्वास बहे अनृप्ति लइया,
येन चुपि-चुपि आइ—कोदाइ ले हृदि,
अतीत से जीवनेर प्रतिध्वनि दिया।
जीवन, जीवन को था?—मुक्ति-स्वप्नेर
इस सुरा पान करे शुधू भूले थाका।
एकि हासि एकि कान्ना! शुधू बसे बसे
भविष्येर चित्रपटे अतीतेर आँका!
महान मुहुर्त एक जीवने पशिया
आसाइया लय गेछे—प्रासिछे सकल!
कोथा तुमि कोथा आमि,—गेछे हराइया
रयेछे अनन्त व्यथा हृदय-संबल!
से व्यथा बाजिछे आजो, आमार जीवन
तारि जेन प्रतिध्वनि, आर किछू नय!
शुधू हासि यत अश्रु—यातना स्वपन,
करेछे जीवन येन महाशून्य मय।

—सी॰ आर॰ दास।

गृह-कलह में बड़ा अन्तर है। प्रेम का सच्चा इतिहास ऐसी दशाओं में ही प्रकट होता है। समाज के अत्याचार से लैला-मजनू को चाहे जितने कष्ट झेलने पड़े हों, परन्तु उनके सच्चे स्नेह ने समाज के कृत्रिम दुर्ग को भेद कर छिन्न-भिन्न कर दिया था। परन्तु उनका प्रेम यदि वासना-शान्ति के लिए होता तो वे इतनी बड़ी चोट सहने को तैयार न होते। दीर्घ काल के वियोग के बाद जो महानंद मिला, उसके लिए लालायित न होते। स्त्री-सौन्दर्य को लेकर जब काव्य में दुर्नीति की उद्भावना होती है, तब वह आदर्श से गिर जाता है। राक्षसी भावों के प्रवाह में बहकर लिखे गये काव्य से न तो समाज के उत्थान की संभावना होती है और न वैयक्तिक सुधार की। इसीलिए सौन्दर्य का आदर्श बहुत ऊँचा रक्खा गया है। घृणित से घृणित पदार्थ में भी सौन्दर्य है। उसे वर्णों के चित्रों में रूप देकर चिरस्थायी बनाना पड़ता है। रूपजन्य-मोह को सौन्दर्य समझना तो वासना की प्रतारणा में आत्म-विस्मृत होना है। ऐसी अवस्था में घोर अधःपतन होता है।

आकांक्षा

(श्री 'अपरिचित-हृदय')

अहह !! इस विचित्र संसार में हर एक के पास स्वयं को प्रसन्न करने के लिए कोई न कोई वस्तु है और सब अपना-अपना हृदय उससे आल्हादित करते हैं।

काश ! मेरे पास भी एक खिलौना होता और उसके साथ खेलने के लिए एक छोटा-सा उत्कंठित हृदय होता। मैं उस खिलौने के साथ खेलता; जी भर कर खेलता। हृदय से लगाता, चूमता और फिर एकदम उसकी ममता को भूल कर, कुण्ठित-हृदय से पटक कर तोड़ डालता; और उसके टूटने पर दुःखी होकर रोता। उस पीड़ा को भूलने की जीभर चेष्टा करके भी न भूल सकता। इसी हृदय-विप्लव से प्रगटित हुई अग्नि में पतङ्ग की तरह जलकर राख हो जाता।

मेरे इस अन्त पर प्रकृति भी स्तब्ध हो जाती। बादल रोते; वायु भी उस मुट्ठी-भर राख को हृदय से लगा-कर संसार में घूमता; अथाह सागर भी तूफ़ान-द्वारा दुःख प्रगट करता; अनन्त आकाश भी गम्भीर होकर स्व-व्यथा को बतलाता। और यह हृदय-हीन संसार भी अपने स्वभाव-प्रिय उपहास को भूल कर आँसू बहाता।

हिन्दी-साहित्य के विकास की सामग्री

[श्री ललिताप्रसाद, विद्याभूषण]

साहित्य का यौगिक अर्थ "सहित रहना" है (सहितस्य भावः साहित्यम्)। तदनुसार साहित्य का रंग प्रकृति के प्रत्येक चित्र में है। मानवीय जीवन की नस-नस में इसका रस प्रवाहित है। यह कमनीयता का मूल है; सत्ता की जड़ है; भिन्न-भिन्न भावों का उत्पत्ति-स्थान है; जीवन का सार है तथा चपल अवस्थाओं का प्रधान कारण है।

प्रकृति से लेकर क्षुद्र चेतन जन्तुओं तक प्रत्येक दिशा में इसीके मधुर संगीत की ध्वनि गूँजती है। मनुष्य का जीवन भी इस साहित्य के प्रभाव से रहित नहीं है, क्योंकि सुख तथा दुःख के सम्मिश्रण या साहित्य के अतिरिक्त जीवन और हो ही क्या सकता है? सुख में दुःख की काली रेखा तथा दुःख में सुख की कान्तिमय झलक दिखाई पड़ती है। बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली भी, जो सुख तथा शान्ति की ही गोद में पलते हैं, किसी न किसी अपूर्णता के द्वारा उत्पन्न दुःख से छूट नहीं पाते। कोई ललित ललना के कटाक्षों की लहर में पड़कर दुःख का पहाड़ काटा करता है, तो किसी के हृदय-स्थल पर अपनी सन्तान का मुख न देखने के कारण चिन्ता का सागर उमड़ा करता है। इसी प्रकार यह भी देखा गया है कि निर्धन भी सर्वदा सुख से वंचित नहीं रहते।

यदि जड़ पदार्थों पर भी विचार किया जाय, तो इसकी असत्यता अणुमात्र भी प्रकट नहीं होगी। सुन्दर तथा सुगन्धमय गुलाब में काँटे क्यों हैं? सुगन्धयुक्त चन्दन के वृक्ष में भयानक विषधर सर्पों की भरमार क्या है? सभीके उत्तर में यही कहा जा सकता है—विपरीत वस्तुओं का मनोहर साहित्य।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार साहित्य की विश्वव्यापकता सिद्ध हो जाने पर भी इसको केवल गद्यमय तथा पद्यमय काव्य की टोकरी में बन्द कर इसकी विशाल सार्थकता का गला क्यों घोटा जाता है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि शब्द और अर्थ में जैसा अविच्छिन्न साहित्य है, वैसा अन्यत्र नहीं। इसीलिए विद्वज्जन 'शब्दमयं ब्रह्म' इत्यादि वाक्यों से इसकी सार्थकता प्रकट करते हैं। सचमुच शब्द के बिना अर्थ की अभिव्यक्ति अन्य किसी प्रकार से सुगमता के साथ नहीं हो सकती।

आज-कल 'साहित्य' शब्द तो और भी अधिक व्यापक हो गया है। इस समय इसके अन्तर्गत प्रत्येक विषय की रचनायें आ जाती हैं, फिर चाहे वह काव्य हो या उपन्यास, गणित हो या ज्योतिष, इतिहास हो या दर्शन। यह होने पर भी शब्द और अर्थ का वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा प्रकाश का सूर्य से, अन्धकार का अमावस्या की रजनी से, वसन्त का कोकिल की काकली से तथा पुष्पों का पराग से।

शब्द ही एक ऐसा अस्त्र है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने मनोगत भावों को दूरस्थ प्राणियों पर प्रकट कर सकता है। उन्हीं शब्दों को ऋषियों तथा विद्वानों ने लेख-बद्ध कर गद्यमय या पद्यमय काव्य के रूप में संसार के सम्मुख रख दिया है, जिससे मनुष्य उनके मनोगत भावों को उनकी अनुपस्थिति में भी पढ़े, समझे और अपना आचरण शुद्ध करे। आज भी विद्वान् अपने भावों को लिखकर ही संसार के सम्मुख उपस्थित करते हैं, क्योंकि ऐसा न करने से यह असम्भव है कि देश के एक कोने का आदमी दूसरे कोने के मनुष्यों को अपना भाव समझा सके। इन्हीं सब लेखों को मैं आज साहित्य के रूप में देख रहा हूँ। अतः साहित्य को सुरक्षित रखना तथा उसकी श्री-वृद्धि करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में जो सबसे अधिक आवश्यक बात होती है, वह है उनके निर्माण का उपर्युक्त समय। साहित्य-रचना के लिए कौन-सा समय अधिक उपयुक्त है? किसी वस्तु को देखकर हमारे हृदय में कुछ भाव उत्पन्न होते हैं। जब वे भाव हमें बहुत ही मुग्ध कर लेते हैं, तब वे हमारे मुँह से अनायास ही निकलने लगते हैं। ठीक ऐसी ही दशा साहित्यिक रचना में भी होती

है। साहित्य की दृष्टि से वही रचना उत्तम होती है, जो लेखक के अदम्य भावों से सराबोर हो। उन रचनाओं में जो लेखक के अदम्य भावों से परिपूर्ण होती हैं, एक विशेष प्रकार का आकर्षण पाया जाता है। अतएव जिस समय भाव उठ-उठ कर हमें अपने को लिपिबद्ध करने के लिए बाध्य कर रहे हों, उसी समय हम ऐसी रचना कर सकने योग्य रहते हैं, जो साहित्य-कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा श्रेष्ठ हो।

इसके पश्चात् प्रश्न आता है, उद्देश्य का। जब भावों की तरंगे हिलोरें मार रही हों और लेखनी लेखक के ही अधीन होकर चल रही हो, उस समय सिवा मानसिक आनन्द के यदि लेखक अन्य किसी उद्देश्य को लेकर लिखने बैठता है, तो वह कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। किसी चित्रकार का चित्र तभी सुन्दर होता है, जब वह दत्त-चित्त होकर और मानसिक आनन्द का उद्देश्य सम्मुख रख कर उसे बनाता है। कोई गायक तभी सफलतापूर्वक गा सकता है, जब वह दत्त-चित्त होकर गाता है और यह भूल जाता है कि उसके गाने का उद्देश्य मानसिक आनन्द के अतिरिक्त कुछ और भी है।

अब हिन्दी-साहित्य की वर्तमान परिस्थिति पर दृष्टि-पात कर उसके विकास के लिए किस-किस सामग्री की आवश्यकता है, इसपर विचार करना उचित जान पड़ता है।

एक समय था, जब हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं का बड़ा अभाव था, पर आज ईश्वर की कृपा से अनेकानेक दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र निकल रहे हैं। इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य का अच्छा उपकार हो रहा है। आशा है, दिन-दिन इनमें उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी।

हिन्दी का प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य भी ऐसा-वैसा नहीं है। सूरदास की कविता और भक्ति से पाठक गद्गद् हो जाते हैं। तुलसीदासजी की रामायण का तो घर-घर प्रचार है और उसने सोई हुई हिन्दू जाति की धार्मिक-निष्ठा को जगा दिया है। एक वह युग था, जब आगरे के राज-प्रासाद से अकबर फ़ारसी अक्षरों में फ़र्मान जारी कर हिन्द की जनता का शासन करता था। पर क्या कारण था कि ऐसे नीतिज्ञ, चतुर और प्रतापी अकबर के शासन-काल में भी ब्रजभाषा और सुन्दर नागरी के अक्षर अपना मधुर अस्तित्व क़ायम रख सके? क्या उसके लिए ब्रज को फ़ारसी के अङ्क में ज़बरदस्ती धकेल कर नागरी की महिमा उड़ा देना कठिन कार्य था? पर तुलसीदास, सूरदास आदि सन्तों के वचन और हृदय-हारिणी रचनाओं ने उस समय अपना प्रभाव ऐसा डाला कि नागरी को हानि पहुँचाना तो दूर, उसका विचित्र ही परिणाम हुआ। खानख़ाना रहीम हिन्दी के कवि हो गये। अकबर का समस्त मन्त्रि-मण्डल इस ब्रजभाषा की मिठास से पोर पोर भींज उठा, बीरबल 'ब्रह्म' कवि हुए, स्वयं अकबर भी कविता करने लगा। इसके राज-चक्र में नागरी का लोप होना तो दूर, लोग इसकी ओर झुके—इसकी महिमा बढ़ी। बिहारी की 'सतसई' काव्य-ग्रन्थों में शृङ्गार-रस की एक अपूर्व पुस्तक है। 'देव' का वैराग्यशतक मनुष्य के हृदय में ज्ञान का समुद्र भर देता है। केशवदासजी के सवैयों की छटा ही निराली है। रसखान की रचनायें और कबीर के दोहे शिक्षा से भरपूर हैं। भूषण की वीररसमयी कविता पढ़कर किस का रक्त नहीं खौल जाता? इतना होने पर भी उल्लेख-योग्य महाकाव्यों तथा खंड-काव्यों की संख्या कम ही है। इस दिशा में हमारे वर्तमान शक्तिशाली कवियों को अधिक ध्यान देना चाहिए, तभी हिन्दी-साहित्य अन्य साहित्यों की प्रतियोगिता में ठहर सकेगा।

हिन्दी में उपन्यासों का चलन भी अच्छा होता आ रहा है। एक समय जनता को तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास बहुत रुचते थे। धीरे-धीरे 'सेवा-सदन' और 'रंग-भूमि' जैसे उपन्यासों ने दर्शन दिये। परन्तु अभी उपन्यास लिखने की कला में यथेष्ट उन्नति होना बाक़ी है। अभी रवीन्द्र बाबू के 'गोरा' तथा 'चोखेर बाली' के समान घात-प्रतिघात दिखानेवाले उच्चकोटि के उपन्यास हिन्दी में नहीं के बराबर हैं।

धीरे-धीरे हिन्दी का कथा-साहित्य भी उन्नति करता आ रहा है। छोटी कहानी लिखना सहज नहीं है। उत्कृष्ट चित्रकार और छोटी कहानी लिखनेवाला, दोनों एक ही श्रेणी के भावुक हैं। छोटी कहानी लिखना क्या है, मानों

सुकवि बिहारीलाल के से दोहे लिखना है। भारतीय कथा-लेखकों के लिए ध्यान देने की बात यह है कि यदि उन्होंने अपनी जाति की विशेषताओं को तथा अपनी स्वतंत्र भाव-धाराओं को छोड़ कर कला के नाम पर फरांसीसी कथा-साहित्य के से नग्न सामाजिक चित्रों की नकल की तो वह इस देश की प्रकृति तथा भाव-धारा के अनुकूल न होगा।

हिन्दी में नाटकों का बड़ा अभाव है। नाटक लिखने का प्रयत्न करते तो बहुत लोग दिखाई पड़ते हैं, पर सफल नाटककार बहुत कम देख पड़ते हैं। किसी भाषा के साहित्य की सम्पन्नता का अनुमान उसके अच्छे नाटकों की अधिकता से ही किया जाता है।

हिन्दी में इतिहास ग्रन्थ नहीं के बराबर हैं। जब तक देश का एक सुरचित, इतिहास प्रस्तुत न होगा तब तक हिन्दी-साहित्य का भण्डार रिक्त ही रहेगा।

हिन्दी में अच्छी जीवनियाँ, कृषि, शिल्प-कला, राजनीति, दर्शन, विज्ञान, भूगोल, रसायन आदि अन्यान्य अनेक विषयों पर अभी यथेष्ट संख्या में ग्रन्थ नहीं लिखे गये हैं। यदि साहित्य सेवी सज्जन इन विषयों पर उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखने की कृपा करें, तो हिन्दी-साहित्य की यह अल्प अपूर्णता थोड़े ही समय में दूर हो सकती है।

हिन्दी साहित्य के विकास के लिए एक अत्यन्त आवश्यक उपाय है—नारी-शिक्षा। यदि हम चाहते हैं कि भारत की भावी सन्तान हिन्दी भाषा-भाषी हो और हिन्दी साहित्य का प्रचार बढ़े, तो यह आवश्यक है कि महिलाओं में हिन्दी का प्रचार किया जाय। समस्त भारत की नारी-जाति में इसका प्रचार हो जाने से बड़ा काम होगा।

विशाल आकाश में उज्वल नक्षत्रावली का जो स्थान है, प्रकृति के सुन्दर निकुञ्ज में कुसुम-सम्भार का जो स्थान है, चेतन विश्व में शिशु का भी वही स्थान है। शिशु हमारे समाज के भूषण हैं; वे भविष्य में हमारे देश के आधार तथा बनाने-बिगाड़नेवाले होंगे। उन्हीं के सुधार के लिए हमारी मातृ-भाषा हिन्दी में बाल-साहित्य के लाले पड़े हैं। यह हमारे देश के लिए, हिन्दी साहित्य के लिए और हमारे लिए कितने बड़े कलङ्क की बात है। बाल-साहित्य पर कुछ पुस्तकें हैं भी पर वे या तो उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं या सदोष हैं। उनके लेखकों ने बाल-स्वभाव का अवलोकनकर पुस्तकें लिखने का कष्ट नहीं उठाया। हां, इस विषय पर आज-कल इण्डियन प्रेस प्रयाग, पुस्तक-भण्डार (लहेरिया सराय), हिन्दी-मन्दिर (प्रयाग) तथा नेशनल प्रेस (प्रयाग) से कुछ पुस्तकें निकली हैं और वे उपयोगी भी हैं। आशा है इनमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायगी।

हिन्दी साहित्य में एक बात की और भी कमी है। हिन्दी में मौलिक और विचार-पूर्ण पुस्तकें अब भी इनी-गिनी ही हैं। हम अनुवाद के विरोधी नहीं। परन्तु यदि किसी भाषा के लेखक निन्नानवे प्रतिशत पुस्तकें अनुवाद करके ही छपाने लगें, सौ में एक पुस्तक भी लेखककी मौलिक प्रतिभा का परिचय करानेवाली न निकले, तो वास्तव में यह परिस्थिति उस भाषा और उसके लेखकों के लिए घोर लज्जा की है।

हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि के लिए लेखकों की संख्या और भी अधिक होने की बड़ी आवश्यकता है। जब तक प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी एम० ए०, बी० ए०, वकील, बैरिस्टर, जज, व्यापारी आदि हिन्दी में लेख और पुस्तक लिखना अपना कर्तव्य न समझेगा, तब तक हिन्दी का रिक्त भंडार पूरा न हो सकेगा।

आज-कल बहुत से समालोचक भी हिन्दी के मार्ग में रोड़ा अटकाया करते हैं। मौलाना हाली ने अपनी फुटकर कविताओं में लिखा है—

बाप ने बेटे को समझाया कि इल्मो-फ़ज़ल में।
जिस तरह बन आये बेटा नाम पैदा कीजिए ॥ १ ॥

कीजिए तसनीफ़ और तालीफ़ में सइये बलीग़।
इसमें एक अपना पसीना और लहू कर दीजिए ॥ २ ॥

दीजिए मानी के नज़्मो-नस्र में दरया बहा।
औ सख़ुन की दाद फिर पीरो जवां से लीजिए ॥ ३ ॥

जो न हो गर शेरो-इंशा की लियाक़त आप में।
शायरों और मुंशियों पर नुक्ताचीनी कीजिए ॥ ४ ॥

वास्तव में मौलाना साहब की यह व्यंगोक्ति हिन्दी संसार में आज-कल खूब चरितार्थ हो रही है। हिन्दी-लेखकों

को चाहिए कि ऐसे समालोचकों की परवाह न कर अपने कार्य में अग्रसर होते जायँ।

हिन्दी-साहित्य के विकास के लिए एक बात की और भी बड़ी आवश्यकता है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी की समृद्धि-वृद्धि के लिए, उसके उच्चाधिकार-गौरव को स्थिर रखने के लिए, उसकी समस्त विभूति और शोभा-सामग्री सुरक्षित रखने के लिए, इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हिन्दी-साहित्य का एक विराट संग्रहालय स्थापित किया जाय, जिस में हिन्दी की सारी सम्पत्ति सुरक्षित हो। यदि कोई विद्वान् कोई ऐसा ग्रंथ लिखना चाहे जिस के लिए राशि-राशि पुस्तकों का देखना अनिवार्य्यरूप से आवश्यक हो, तो अनेक स्थानों पर भटकने पर भी उसे संतोष-जनक सामग्री नहीं मिल सकती; उसका मन बैठ जाता है। यदि एक ही स्थान पर सब तरह की उपयोगी सामग्री सुलभ हो जाय तो हिन्दी में अनेक महत्व-पूर्ण ग्रन्थ बन सकते हैं।

यों तो हिन्दी भाषा के अनेक छोटे-बड़े पुस्तकालय भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में वर्तमान हैं। उन से जन-साधारण का बहुत-कुछ लाभ भी हो रहा है। तथापि एक विराट् संग्रहालय के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य का मुख उज्ज्वल रखने के लिए ग्राम-ग्राम में पुस्तकालय स्थापित करने की भी आवश्यकता है। यदि ईश्वर की कृपा से ऐसा हुआ तो बृहत् आकाश में एक चन्द्रमा के समान विशाल संसार में एक हिन्दी-साहित्य जगमगा उठेगा।

बदला ?

रूस के महान तत्ववेत्ता काउण्ट टॉल्सटाय के एक लड़की थी। उसकी उमर बहुत छोटी थी।

एक रोज़ वह आंगन में किसान के लड़कों के साथ खेल रही थी। खेल खेल में आपस में लड़ाई हो गई। लड़ाई में लड़कों में से एक ने लड़की को पीट दिया।

लड़की रोती-रोती घर में गई और कहने लगी कि मैं मारनेवाले को एक चाबुक से खूब पीटूंगी।

टॉल्सटाय ने उसे अपने पास बुलाया और प्रेम से पुचकारते हुए कहा—

"बच्ची उस लड़के को मारने से तुम्हारा क्या होगा? ऐसा करने से तो उलटे तुझे ही तकलीफ़ होगी। वह क्रोध में आगया था इससे उसने तुझे मारा—थोड़ी देर के लिए भला-बुरा कहा। और यदि मैं भी जाकर उसे दण्ड दूंगा तो वह मुझसे भी नाराज़ होजायगा और भला-बुरा कहेगा। इसकी अपेक्षा हम उसके लिए कोई ऐसा काम क्यों न न करें जिससे वह हमसे गुस्सा होने के बदले प्रेम करने लगे। जा बच्ची, उस शरबत की बोतल में से एक गिलास शरबत उसे देआ।"

क्या तुम यह समझ सकते हो कि उस लड़की ने अमृत के समान शरबत का गिलास उस क्रोधित लड़के को दिया होगा तब उन दोनों के हृदय में कैसे भाव पैदा हुए होंगे।

(गुण-सुन्दरी से)

कैलेण्डर का इतिहास

(श्री रामचन्द्र गौड़, विशारद)

सब से पहला कैलेण्डर रोमन लोगों के समय में बना था। इसीलिए वह रोमन कैलेण्डर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार मार्च महीना वर्ष का पहला महीना था और उसमें विशेषता यह थी कि पाँचवें तथा छठे माह के नाम क्रमानुसार क्विनटिलिस (Quintelis) और सिक्सटिलिस (Sixtelis) थे और अन्तिम महीना फरवरी था। केवल फरवरी में २९ दिन थे और अन्य विषम-सम महीनों में क्रमशः ३१ तथा ३० दिन होते थे, जैसा कि नीचे की तालिका से प्रकट है—

क्रम-संख्या	मास	दिन
१	मार्च	३१
२	एप्रिल	३०
३	मई	३१
४	जून	३०
५	क्विनटिलिस (जुलाई)	३१
६	सिक्सटिलिस (अगस्त)	३०
७	सितम्बर	३१
८	अक्तूबर	३०
९	नवम्बर	३१
१०	दिसम्बर	३०
११	जनवरी	३१
१२	फरवरी	२९
		३६५

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर घूमने में ३६५·२४२२१८ दिन, अर्थात् ३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनिट ४८ सेकेण्ड लगते हैं। इससे हमें यह ज्ञात हुआ कि प्राचीन काल में गणना में ५ घण्टे ४८ मिनिट ४८ सेकेण्ड की भूल रह जाती थी।

इसके कुछ समय बाद मास-क्रम बदला और जनवरी पहला महीना माना गया। उसके बाद फरवरी महीना रक्खा गया और उसमें पहले की भाँति २९ दिन ही रक्खे गये। फरवरी के बाद मार्च का महीना था और उसके बाद मास-क्रम दिसम्बर तक वैसा का वैसा ही रहा।

ऊपर हम कह आये हैं कि वर्ष में ५ घण्टे ४८ मिनिट ४८ सेकेण्ड की भूल रहती थी। ईसा के जन्म के ४४ वर्ष पूर्व जूलियस सीजर के राज्य-काल में सोसिजिनिस (Sosigenes) नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिषी था। उसने ५ घण्टे ४८ मिनिट ४८ सेकेण्ड के स्थान पर ६ घण्टे की भूल मान कर यह सिद्ध किया कि प्रत्येक चौथे वर्ष गणना में एक दिन की कमी रहती है। उनका यह सुधार मान लिया गया और प्रत्येक चौथे वर्ष ३६५ के स्थान पर ३६६ दिन माने जाने लगे। जूलियस सीजर ने पाँचवें महीने का क्विनटिलिस नाम बदल कर अपने नाम के आधार पर जुलाई रक्खा इसीलिए यह सुधार जूलियन सुधार के नाम से प्रसिद्ध है।

जूलियस सीजर के बाद अगस्टस सीजर गद्दी पर बैठा और उसने छठे महीने का सिक्सटिलिस नाम बदल कर उसे अगस्त कर दिया। जूलियस सीजर तथा अगस्टस सीजर दोनों एक ही राज्य के शासक थे। और दोनों के नाम पर जुलाई और अगस्त के महीने रखे गये। लेकिन उनमें क्रमशः ३१ और ३० दिन थे। यह अगस्टस सीजर से न देखा गया और

उसने अगस्त के महीने में भी ३१ दिन कर दिये और उधर फ़रवरी में से एक दिन घटा लिया, उसी समय से फ़रवरी में २८ दिन होने लगे। साथ ही सितम्बर और नवम्बर में से एक-एक दिन घटा लिया गया और इस प्रकार अक्तूबर तथा दिसम्बर मे ३१ दिन हो गये। इस समय का कैलेण्डर आज-कल के कैलेण्डर से मिलता-जुलता है।

हर चौथे वर्ष एक दिन बढ़ा देने से वर्ष ३६५.२५ दिन का होता है। परन्तु वर्ष का यथार्थ समय केवल ३६५.२४२२१८ दिन है। इसीलिए एक वर्ष में ३६५.२५—३६५.२४२२१८=.००७७८२ दिन की भूल रहती थी। ४०० वर्षों में इस हिसाब से ३ दिन की भूल रहती है।

इस भूल का सुधार १५८२ ई० में पोप ग्रेगरी तृतीय ने किया था। चौथे वर्ष में एक दिन बढ़ाने का सुधार सन् ४४ ई० पू० में और यह सुधार १५८२ ई० में हुआ। इस बीच मे लग-भग १० दिन की भूल होती है। इसलिए पोप ग्रेगरी तेरहवें ने उस वर्ष में से १० दिन घटा दिये। और आगे के लिए यह नियम बना दिया कि प्रत्येक १०० वें वर्ष में यह (चौथे साल एक दिन बढ़ाने का) नियम न माना जाय और प्रत्येक वर्ष जो ४०० से कटता हो 'लीप' का वर्ष हो जाय। इस सुधार का प्रचार इंग्लैंड में ईसवी १७५२ में हुआ और उसी समय से यह सुधार ग्रेगोरियन सुधार के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उपर्युक्त समय के बने हुए कैलेंडर इस समय भी चल रहे हैं।
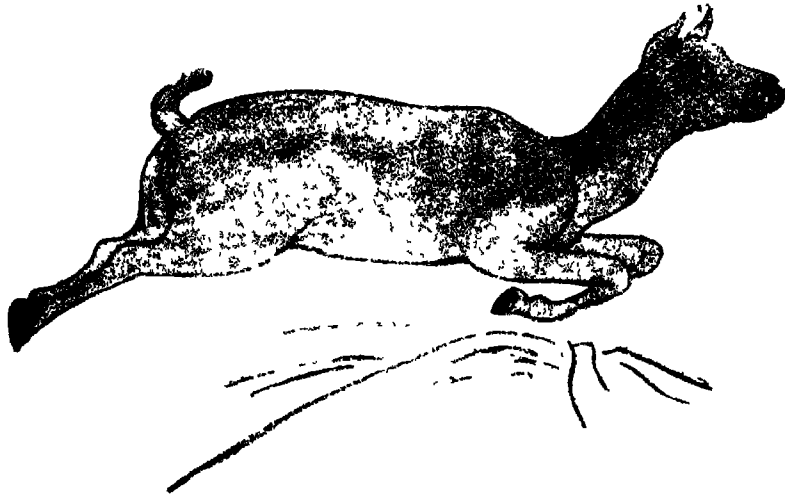
[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा— आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

वरदान

लेखक—श्री प्रेमचन्द। प्रकाशक-मैनेजर, ग्रंथ-भण्डार, लेडी हार्डिंज रोड, माटूंगा, बम्बई। डिमाई १६ पेजी साइज़, पृष्ठ २३६। मूल्य १) रु०।

हिन्दी-संसार में प्रेमचन्दजी का नाम जम चुका है। उनके उपन्यास सचमुच उत्कृष्ट होते हैं। भाव ही नहीं, भाषा भी उनकी ग़ज़ब की होती है। वरदान उनकी ताज़ा कृति नहीं; अब इस दिशा में वे जितने आगे बढ़ गये हैं, लगभग १० वर्ष पूर्व लिखे हुए वरदान में वह बात उतने परिमाण में नहीं मिलती; मगर फिर भी इसकी अपनी ख़ूबी है। देवी के वरदान की बात ज़रा कम स्वाभाविक प्रतीत होती है, और भी कई बातों से ज़रा पुरानेपन का भास होता है; पर पुस्तक अरोचक नहीं। पारिवारिक जीवन के उतार-चढ़ाव का, ग़लतफ़हमियाँ किस प्रकार उठतीं और उनसे दो प्रेमी हृदयों में इच्छा न होते हुए भी कैसे खाई पड़ने लगती है, इसका तो सुन्दर वर्णन है ही, देश-भक्ति और जन-सेवा की भावनायें भी ख़ूब जागृत की गई हैं। सर्व साधारण के काम की चीज़ है। सरल-सुबोध होने से महिलायें भी इससे लाभ उठा सकती हैं।

वृक्ष-विज्ञान

लेखक—श्री प्रवासीलाल वर्मा और बहन शान्तिकुमारी वर्मा मालवीय। प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी। २०×३० सोलह पेजी साइज़, पृष्ठ २८८+३२=३२०। मूल्य १॥) रु०

प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेद के एक भाग—निघण्टु से सम्बन्ध रखती है। स्व० शंकरदासजी शास्त्री पदे ने विविध वस्तुओं के गुण-दोष-वर्णन का अच्छा प्रयत्न किया था। उनके उन लेखों के गुजराती अनुवाद के आधार पर वृक्षों का निघण्टु-मात्र इसमें संग्रह किया गया है। कोई १०० से कुछ ऊपर वृक्षों का ऐसा वर्णन है। भाषा अच्छी है, छपाई-सफ़ाई भी साधारणतः अच्छी है, परन्तु विषय और उसके विवेचन को देखते हुए सर्व-साधारण की अपेक्षा पुस्तक वैद्यों के काम की ज़्यादा है। 'उपयोग' शीर्षक से विविध रोगों पर होनेवाले विविध-वृक्षों के लाभ की जो अनुक्रमणिका दी गई है, वह इसके उपयोग को सरल बना देने का अच्छा साधन है। आशा है, वैद्य-समुदाय इसे अपने लिए उपयोगी पायगा।

मुकुट

भूली बात

लेखक श्री विनोदशंकर व्यास। प्रकाशक—पुस्तक-मंदिर काशी। पृष्ठ १२०; मूल्य १)

हिन्दी में छोटी मौलिक कहानियाँ लिखने का आरम्भ यदि मैं भूलता नहीं तो, वर्षों पूर्व 'प्रसाद'जी के द्वारा हुआ था। तब से आज तक इस विषय में भी हिन्दी ने काफ़ी उन्नति की है और अब तो धीरे-धीरे अन्य उन्नत भाषाओं की भाँति, हिन्दी में भी कहानियों के विभिन्न 'स्कूलों' की रूप-रेखा बनती आ रही है। थोड़े दिनों से 'प्रसाद' जी के

गद्य-काव्य और कहानी के बीच एक नई शैली की सृष्टि आरंभ की है। इसे हम भावनात्मक कहानी कह सकते हैं। इस प्रकार की कहानियों में कथा-वस्तु की अपेक्षा भाव-चित्रण और मनोवैज्ञानिक निर्देश की अधिकता होती है। इन्हें हम एक प्रकार के कथा चित्र भी कह सकते हैं। एक परिस्थिति का हलका-सा छाया-चित्र हमारी आँखों के सामने झिलमिल करता छोड़ ये चली जाती हैं।

व्यासजी की अधिकांश कहानियाँ इसी स्कूल की हैं और जब हम गंभीरतापूर्वक उनका विश्लेषण करते हैं तो यह कहने में हमें संकोच नहीं होता कि 'प्रसाद'जी ने जिस आशा और उद्देश्य से इस स्कूल की नींव डाली थी उसमें व्यासजी ने अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। इसके पहले भी व्यासजी की कहानियों के कई सुन्दर संग्रह निकल चुके हैं। 'भूली बात' में भी उनकी नौ कहानियाँ हैं जिनमें अधिकांश मासिक पत्र-पत्रिकाओं में निकल चुकी हैं। इनमें कल्पना की उड़ान, शैली का सौष्ठव और लेखक के हृदय की विदग्धता का सुन्दर सामञ्जस्य हुआ है। इन कहानियों के लेखक में प्रतिभा है; अच्छी तबीयत पाई है! क्या अच्छा हो यदि व्यासजी अपने कल्पना-प्रासाद से भूली बातों की याद करते-करते कभी-कभी देश की उन विकट समस्याओं की ओर भी भूल पड़ा करें जो आज हमारे लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन रही हैं! उनसे इस क्षेत्र में भी हमें आशा है। पुस्तक का दाम कुछ अधिक जान पड़ता है।

चाँद

(उर्दू—संस्करण)—सम्पादक मुंशी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल० एल० बी०, एडवोकेट। प्रकाशक—'चाँद'-कार्यालय, प्रयाग। पृष्ठ १२४। वार्षिक मूल्य ८)।

समाज के क्षुब्ध हृदय की पीड़ा का भी यह एक नतीजा है कि अनेक विचारकों के 'चाँद' की नीति से मतभेद होने तथा समय-समय पर कितने ही प्रतिष्ठित लेखकों एवं सम्पादकों-द्वारा उसका विरोध होने पर भी साधारण पाठकों में उसका प्रचार बढ़ता जाता है। 'चाँद' ने समाज में विद्रोह की एक ज्वाला प्रकट करने में परिस्थितियों का उपयोग किया है और जैसा कि ऐसे प्रयत्नों में प्रायः होता है, उसके ढंग में, उसके निर्माण में और उसके रंग-रूप एवं आकार-प्रकार में संयम, विचार और सादगी की अपेक्षा शान-शौकत, उत्तेजना, जोश और प्रतिक्रियापूर्ण विद्रोह की मात्रा ही अधिक दीख पड़ती है। जिस समय कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के निरन्तर रक्त-शोषण से समाज का शरीर विकल हो रहा हो, उससे विचारशीलता की बहुत अधिक आशा भी नहीं की जा सकती। ऐसे समय तो बहुत थोड़े दृढ़ प्राणी अपने को स्थिर रख पाते हैं अन्यथा अधिकांश आवेश की धारा में बह जाते हैं। समाज इस समय, सुधारों के नाम पर, बिना विचार और विश्लेषण किये भी केवल प्रतिक्रिया के वश होकर अनेक काम कर रहा है। और इस विद्रोह के मूल में संयमपूर्ण दृढ़ता की अपेक्षा वासनापूर्ण स्खलन की ओर ही जन-समूह की प्रवृत्ति अधिक है। ऐसे समय 'चाँद' ने जनता में खलबली मचाकर अपने रंग-ढंग से अपना काफ़ी प्रचार कर लिया है।

महीनों पहले इसके प्रकाशक ने, हिन्दी 'चाँद' की 'सफलता' से उत्साहित होकर अंग्रेज़ी और उर्दू में भी सामाजिक मासिक-पत्रों के निकालने की सूचना की थी। अंग्रेज़ी पत्र तो निकला नहीं पर विगत जनवरी महीने से 'चाँद' का उर्दू-संस्करण निकलने लगा है। इसका रंग-ढंग और इसकी रीति-नीति हिन्दी 'चाँद' जैसी ही है। इस समय जनवरी का अंक हमारे सामने है। शुरू में बड़े-बड़े नरम-गरम नेताओं और सुधारकों की बधाइयाँ हैं। इस अंक के अनेक लेख और चित्र हिन्दी 'चाँद' में निकल चुके हैं इसलिए इसमें मौलिक और महत्वपूर्ण रचनाओं की बड़ी कमी दीख पड़ती है।

उर्दू में साहित्यिक मासिक तो अनेक हैं पर समाज-सुधार के अग्रगामी दल के विचारों को लेकर आन्दोलन करनेवाला कोई मासिक नहीं है। ऐसे समय उर्दू 'चाँद' के जन्म से उर्दू-भाषी जनता को, अपने बीच, आन्दोलन करने का एक साधन प्राप्त हो गया है और यदि 'चाँद' के उत्साही सम्पादक एवं प्रकाशक ने संयम पर दृढ़ता के साथ इसका उपयोग किया और वे केवल समाज-सेवा के भाव को लेकर चलते रहे तो उससे उर्दू-भाषी जनता का पर्याप्त उपकार-साधन होगा।

अभी पत्र में उन्नति की काफ़ी गुंजाइश है। छपाई में भी सुधार किया जा सकता है और मूल्य ८) वार्षिक ज़्यादा मालूम होता है।

'सुमन'

भारतेन्दु (सचित्र मासिक-पत्रिका)

अंक ६

सम्पादक श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', मिलने का पता मैनेजर—'भारतेन्दु', कटरा, इलाहाबाद। 'त्यागभूमि' साईज़। पृष्ठ ९१। वार्षिक मूल्य ५)।

हमें भारतेन्दु का जनवरी का अंक समालोचनार्थ प्राप्त हुआ है। यह अंक कई मास से बड़ी कठिनाइयों के बीच में प्रकाशित हो रहा है। 'निर्मल'जी बिना साहित्य-सेवा के जी नहीं सकते यही कारण है कि इतनी मासिक पत्रिकाओं की भरकम होने पर भी और लगभग सभी को रोते देखकर भी 'भारतेन्दु' निकाल रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि, अभी तक जितने अंक इस पत्रिका के प्रकाशित हुए हैं, वह सम्पादक की लगन-परिश्रम के द्योतक, सुरुचिपूर्ण, और विद्यार्थियों के विशेष काम के हुए हैं। प्रायः लेख गंभीर, कवितायें ऊँची ही रही हैं। हिन्दी की उच्च कोटि की पत्रिकाओं में भारतेन्दु की गिनती करना अनुचित नहीं है।

भारतेन्दु का जनवरी का अंक भी पिछले अंकों की भाँति ही सुन्दर, सुरुचिपूर्ण है। सारे लेख प्रशंसनीय हैं। कविताओं में श्रीमती महादेवी वर्मा की 'देव' और श्री भगवतीचरण वर्मा की 'आशा-पिपासा' ही सुन्दर हैं।

भारतेन्दु ने अपना क्षेत्र विशेषतः विद्यार्थियों में रखा है। इस दृष्टि से देखते हुए कभी कोई चित्र हृदय को खटकने लगता है। सम्पादकीय टिप्पणियों में गंभीरता और सौम्यता की किसी-किसी वक्त कमी हो जाती है।

पत्र के साथ हमारी पूरी सहानुभूति है। हम उसकी उन्नति देखना चाहते हैं। हिन्दी-पाठकों को इसे अपनाना चाहिए।

'प्रेमी'

वानगार्ड

'त्यागभूमि' के पिछले किसी अंक में, 'युवक-भारत' स्तंभ में, इस पत्र की चर्चा की जा चुकी है। हमें जैसी आशा थी, यह पत्र उसी के अनुरूप प्रकाशित हो रहा है। इसे हम युवक-भारत का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक मात्र पत्र कहें तो भी अनुचित न होगा और यह बिलकुल स्वाभाविक है। इसके संपादक भारतीय युवक-संघ के प्रधान मंत्री श्री मेहर अली और श्री उपेन्द्र देसाई हैं। समाज और राजनीति के क्षेत्रों में यह क्रांति चाहता है, जैसा कि इसके नाम से ही प्रगट है। देश के प्रतिष्ठित पुरुषों के अलावा इसमें उन विदेशी लेखकों एवं विचारकों के भी लेख आते रहते हैं जिनकी भारत के साथ सहानुभूति है और जिन्होंने अपने विचारों को दृढ़ता के साथ प्रकट करने के कारण अनेक कष्ट सहे हैं और बहुत बलिदान किया है।

हमारे सामने इसके आरम्भ से लेकर २३ अङ्क तक हैं और इन सब में युवकोचित उत्साह, त्याग और निर्भीकता से भरे विचारों का सङ्कलन है। इसके साथ ही अनेक लेख ऐसे भी हैं जिनमें समाज की गंभीर समस्याओं का विचार-पूर्ण विश्लेषण पाया जाता है। क्या अच्छा हो कि इस अंग्रेजी पत्र का एक हिन्दी-संस्करण निकालने की ओर भी इसके प्रकाशकगण ध्यान दें।

वार्षिक मूल्य चार रुपये हैं और पता है—१२, अपोलो स्ट्रीट (फोर्ट) बम्बई।

'सुमन'

साहित्य-सत्कार

(१) कवि-रहस्य:—व्याख्यानदाता महामहोपाध्याय गंगानाथ झा, एम० ए०, डि० लिट्। प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रान्त, प्रयाग। सजिल्द। पृष्ठ संख्या १०७। मू० १।)

(२) पद्य-शब्द-कोशः—लेखक श्री सत्यनारायण सिंह वर्मा, हिन्दी-भूषण। प्रकाशक विजयप्रतापसिंह वर्मा, साहित्य-सदन मधुबनी, दरभंगा। पृष्ठ संख्या १९८। मूल्य ॥।≈)

(३) झंकार (कविता-संग्रह):—रचयिता—श्री मैथलीशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)। पृष्ठ-संख्या १७३। सजिल्द। मू० ॥≈)

(४) अंकुर (गल्प-संग्रह):—लेखक श्री कृष्णानन्द गुप्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ संख्या १५०। सजिल्द। मूल्य ॥≈)

(५) स्वप्न वासव दत्ता (नाटक)—मूल-लेखक भाष। अनुवादक—श्री मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या १२४। सजिल्द मू० ॥≈)

(६) स्वास्थ्य-संलाप—लेखक श्री कृष्णानन्द गुप्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या १६४। सजिल्द। मू० ॥≈)

(७) दूर्वा दल (कविता-संग्रह):—रचयिता श्री सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या १११। सजिल्द। मू० ।॥≈)

(८) शेलकशः—मूल-लेखक गोर्की। अनुवादक श्रीयुत श्रीकान्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ संख्या ११२। सजिल्द। मू० ॥≈)

(९) गुरु तेग बहादुर (खंड-काव्य).—रचयिता श्री मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या ३३। मूल्य ।)

(१०) विषाद (कविता संग्रह):—रचयिता श्री-सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या ४५। मूल्य ।-)

(११) रेणुः—लेखक श्री रामचन्द्र टण्डन। प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या ४२। मूल्य ।-)

(१२) संगम (उपन्यास):—लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा एडवोकेट; प्रकाशक अयोप्रसाद शर्मा स्वाधीन प्रेस झाँसी। पृष्ठ संख्या २२६। मू० १॥)

(१३) साहित्यः—मूल-लेखक—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर अनुवादक—श्री वंशीधर विद्यालंकार, प्रोफेसर उस्मानिया कालेज औरंगाबाद। प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। पृष्ठ-संख्या १११। मू० ।॥) सजिल्द १।)।

(१४) गल्पगुच्छ पहला भाग(गल्प-संग्रह): —मूल-लेख श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक श्री धन्य कुमारसिंह जैन। प्रकाशकः—विशाल भारत' कार्यालय कलकत्ता। पृष्ठ २२२। मूल्य १।), सजिल्द १॥)

(१५) प्रत्यागत (उपन्यास) श्री वृन्दावनलाल वर्मा एडवोकेट। प्रकाशकः—स्वाधीन प्रेस झाँसी। पृष्ठ २३५। मू० १।)
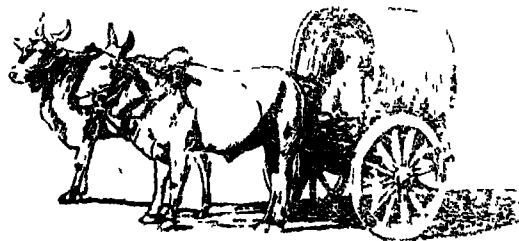
पत्र-साहित्य

[साहित्य के निर्माण में पत्रों का स्थान बहुत महत्व-पूर्ण है। लेखों एवं प्रकाशनार्थ लिखी जानेवाली रचनाओं में लेखक का हृदय उतनी अच्छी तरह व्यक्त नहीं होता, जितनी अच्छी तरह पत्रों में प्रकट होता है। व्यक्तिगत पत्रों में पत्र-लेखक जहाँ अपने को ठीक-ठीक प्रकाशित करता है वहाँ उनमें विभिन्न समस्याओं पर उसके सच्चे विचार भी व्यक्त होते हैं। इस दृष्टि से 'त्यागभूमि' हिन्दी में यह नई चीज़ उपस्थित करती है और यदि मित्रों एवं स्नेहियों की पर्याप्त सहायता, इस सम्बन्ध में, मिलती रही तो यह स्तंभ हम समय-समय पर देते रहेंगे। —संपादक]

हमारी व्यापारिक समस्यायें

[निम्नलिखित पत्र हमें आर्य-भवन, लन्दन के सुयोग्य मन्त्री श्री कस्तूरमल बाँठिया ने लिखा था; उपयोगी समझकर प्रकाशित किया जाता है। —संपा०]

लन्दन

ता० ९।१।३०

वायसराय की विज्ञप्ति

आपको पहला पत्र लिखा था उसके बाद यहाँ कई मार्के की घटनायें घट चुकी हैं। इनमें सबसे पहली घटना है वायसराय लार्ड इरविन की ता० १-११-२९ की विज्ञप्ति। इस विज्ञप्ति ने भारत और इस देश में एक विचित्र हलचल-सी पैदा कर दी थी। यहाँवाले यह मान बैठे कि वायसराय ने औपनिवेशिक स्वराज्य का नाम क्या उच्चारण किया वरन् दे ही डाला है। अस्तु यह एक ऐसा अनर्थ हुआ है जिसका संशोधन तुरन्त होना चाहिए। यही नहीं वरन् अंग्रेज़-जनता को सरकार की ओर से यह स्पष्ट शब्दों में विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि भारतवर्ष के प्रति अंग्रेज़-नीति में निकट भविष्य में ऐसा कोई परिवर्तन या संशोधन नहीं किया जायगा। इस विज्ञप्ति ने सबसे अधिक अशांति एक ओर तो भारत के भाग्य-विधाता, इंग्लैंड के भूतपूर्व चीफ़ जस्टिस लार्ड रीडिंग को, और दूसरी ओर लार्ड रादरमियर को उपस्थित की। लार्ड रीडिंग ने लार्ड इर्विन और श्री बेन को हाउस ऑव लार्डस में खूब ही आड़े हाथों लिया तो दूसरी ओर लार्ड रॉदरमियर ने अपने दैनिक 'डेलीमेल' में भूतपूर्व गवर्नरों, सिविलियनों एवं व्यापारियों-द्वारा 'भारत में खतरा' (Peril in India) शीर्षक लेखमाला लिखाकर विष उगलना शुरू किया। इस हलचल का विवरण भारतीय पत्रों-द्वारा आपके पाठकों को मिला ही होगा। अस्तु यहाँ पर पुनः दोहराकर समय और स्थान नष्ट करना नहीं चाहता। परन्तु एक बात की ओर मैं आपके विचारशील पाठकों का ध्यान ख़ास तौर से आकर्षित करना चाहता हूँ। और वह यह कि मौजूदा समय में राजनैतिक या आर्थिक समस्याओं का पृथक करना असम्भव है। हरएक हलचल को राजनैतिक मानकर उपेक्षा की दृष्टि से देखना हमारे लिए बड़ा ही हानिकर है। हम लोगों की और ख़ासकर व्यापारियों की मानसिक वृत्ति इस प्रकार कलुषित हो गई है कि प्रत्येक

आन्दोलन को जिसका परोक्ष अर्थ, चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो, विदेशियों के आधिपत्य को कम करना हो तो हम राजनैतिक मानकर उससे अलग रहना ही अपने लिए अच्छा मानते हैं। वहाँ की जनता और ख़ासकर वहाँ के व्यापारियों की वृत्ति इसके बिलकुल विपरीत है। वे प्रत्येक सुधार को व्यापारिक कसौटी पर कसते हैं और उसका अंग्रेज़ी व्यापार पर क्या असर पड़ेगा यह सब पर बिना संकोच प्रकाशित करते हैं। ठीक यही हाल इस समय भावी भारतीय राजनैतिक सुधारों का है। आपको याद ही होगा कि एसोसिएशन ऑव् ब्रिटिश चेम्बर्स ऑव् कामर्स ने साइमन-सप्तक की भारतीय समस्या पर अपना मेमोरेण्डम पेश कर दिया था परन्तु ज्योंही भारतीय व्यवस्थापिका सभा के सामने श्रीयुत हाजी का भारतीय समुद्र-तटीय व्यापार-संरक्षण बिल पास होने का समय आया त्योंही संशोधित मेमोरेण्डम पेशकर अपने पहले मेमोरेण्डम पर हरताल फेर दी और इस बात की ख़ास सूचना की कि भावी सुधारों में इसका ध्यान रखा जाय कि अंग्रेज़ी व्यापार की उससे किसी प्रकार हानि न हो। यही नहीं इस बिल के न पास होने देने के लिए छिपे पत्रों-द्वारा पार्लमेंट के प्रत्येक सदस्य का ध्यान खींचा जा रहा है और पत्रों-द्वारा बड़ा आन्दोलन चल रहा है। इधर तो यह बात है और उधर हमारे भारतीय व्यापारी अधिकांश में यह ख्याल किये बैठे हैं कि यह बिल केवल सिंधिया स्टीमशिप कम्पनीवालों ने अपने बचाव के लिए पेश कराया है; भारतीय व्यापार के भविष्य से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। हम लोगों की यह मनोवृत्ति ही हमारी इस पराधीनता को हम पर हावी किये है। पक्षान्तर में वहाँ के व्यापारी स्पष्ट शब्दों में यह कह रहे हैं कि भारतवर्ष को यदि स्वराज्य या औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायगा तो हमारा व्यापार नष्ट हो जायगा। भारतीय लोग मनमाने कानून बनाकर हम लोगों की व्यापार-वृद्धि में भविष्य के लिए रुकावट ही नहीं डाल देंगे वरन् जो कुछ अबतक हमने किया है उसके भी लाभ से वञ्चित कर देंगे। इतने स्पष्ट शब्दों में बातें सुनकर भी हमारे व्यापारियों के कान नहीं खुलते यही दुःख और आश्चर्य की बात है। देश ग़ारत हो गया; रोज़ी भर-पेट नहीं मिलती। फिर भी अपने निजी स्वार्थ के लिए देश को बेच रहे हैं।

राजनैतिक सुधार-समस्या में कांग्रेस का स्वतंत्रता का प्रस्ताव एक शांत एवं मीठा परिवर्तन इस देश में उपस्थित कर देगा यह प्रतीत होता है। प्रकट में अब भी 'डेलीमेल'-जैसे कट्टर विदेशी पत्र यह कह रहे हैं कि कांग्रेस सिवा नेताओं के और किसी की प्रतिनिधि नहीं है एवं उसके प्रस्तावों से डरने और शासन को ढीला करने की ज़रूरत नहीं है यही नहीं परन्तु इन विद्रोहियों को वही सज़ा तुरंत देना चाहिए जो इनके लिए दी जाती है। परन्तु जो दूरदर्शी और विचारशील हैं वे दबी ज़बान से समझौते पर आ जाने की ब्रिटिश जनता को सिफ़ारिश कर रहे हैं। ता० ४ जनवरी के मैनचेस्टर गार्डियन ने 'भारत-नया रूप' (India the New Phase) शीर्षक अग्रलेख में स्पष्ट लिखा है कि-

But though Congress tactics do not appear to be well considered even from the Congress point of view, none the less it is impossible to ignore the improtance of the fact that the most experienced Indian Leaders have found themselves compelled to allow the Youth of India to commit itself to the Independence ideal. In the past we have often been tempted to treat Indian politicians as children and there has in consequence been much sentimentality and insincerity in our relations with India" × × × × If any Indian politicians wish to negotiate with us, the question we should ask them is not "Are you Dominion Status men or Independencewallahs ?" or "Are you capitalist or Bolshevist ?" But can you show us a workable plan for building up a stable system of Self-Government in India."

अर्थात्—"कांग्रेस की कार्रवाई कांग्रेस की दृष्टि से भी उचित नहीं समझी जा सकती, फिर भी इस ध्रुव सत्य के महत्व को नहीं भुलाया जा सकता कि भारत के अनुभवी नेताओं

को, युवक-भारत को स्वाधीनता के आदर्श पर दृढ़ रहने की आज्ञा देने को बाध्य होना पड़ा। भारत के राजनीतिज्ञों को मूर्ख समझने का लोभ हमें पहले अकसर होता रहा है और हमारे भारत के प्रति व्यवहार में बहुत जोश और झुठाई रही है। × × × × × अगर कोई भारतीय राजनीतिज्ञ मुझसे बात-चीत करे तो मैं उससे यह प्रश्न नहीं करूँगा कि तुम डोमिनियन स्टेटस या पूर्ण स्वतंत्रतावादी हो, अथवा पूँजीवादी या बोलशेविक हो? वरन् मैं उससे यह पूछूँगा कि क्या तुम्हारे पास कोई व्यावहारिक योजना भारत में एक दृढ़ स्वराज्य-सरकार बनाने की है?

इससे यह समझना भूल होगा कि दरहकीकत इन लोगों का दिल साफ़ है। इस समय अनुदार दल, चूंकि वायसराय इनके दल का है, तटस्थ-सा हो रहा है। मज़दूर-दल कई बार भारतवर्ष को स्वराज्य की घोषणा कर अपना हाथ कटा चुका है। अब रहा उदार दल, सो इस के प्रायः सारे ही नेता इसका घोर विरोध कर रहे हैं। स्वयं लायडजार्ज, जिसके 'प्रधान मंत्रित्व' में स्वर्गीय मॉंटेग्यू की सुप्रसिद्ध घोषणा की गई थी, सरकार को इस समय दृढ़ता के साथ शासन करने की चेतावनी दे रहे हैं। इधर यह दशा है। अब देखें भारतवर्ष केवल प्रस्ताव पास करके ही संतुष्ट रहता है या कुछ कर दिखाने की भी चेष्टा करता है। देश की लगन की परीक्षा का यही समय है।

एक्सचेञ्ज में भारतीयों का प्रवेश

दूसरी घटना जो मार्के की हुई है, यहाँ के दो प्रधान भारतीय आफ़िसों के भारतीय प्रतिनिधियों का दो प्रसिद्ध व्यापारी एक्सचेंजों का सदस्य चुना जाना है। मैं पहले पत्र में इस विषय की कठिनाइयाँ आपको लिख ही चुका हूँ। सुना जाता है कि इस विषय में वायसराय ने बड़ी चेष्टा की और यह खुशी की बात है कि उनकी चेष्टा इतनी शीघ्र सफल हो गई। इससे भविष्य में कितने भारतीय लाभ उठा सकेंगे यह अभी नहीं कहा जा सकता। परन्तु एक बात ध्यान में रखने की है और वह यह कि जबतक भारतीयों के मार्ग में यह रुकावट रही यहाँ के किसी भी पत्र ने सहानुभूति दिखाना तो दूर रहा एक शब्द भी लिखने की ज़रूरत न समझी। परन्तु ज्योंही यह दूर की गई इसकी खबर सब तरफ हवा की तरह उड़ गई और सबने इस आशय की घोषणा की कि भारतवासियों के मार्ग में से एक भारी रुकावट दूर हो गई है और अब वे ऐसी चेष्टा न करें कि जिससे भारतवर्ष में अंग्रेज़ व्यापारियों के व्यापार में कोई रुकावट पैदा हो। क्या ही अच्छा प्रलोभन है? ऐसे ही प्रलोभन में आकर देश बिक गया; और फिर भी वही प्रलोभन दिखाया जा रहा है। मैं विश्वास करता हूं कि हमारे व्यापारी इस प्रलोभन में अब नहीं आवेंगे। पहले तो यह कोई रियायत हमारे साथ की ही नहीं गई। यह तो हमारे प्रति अन्याय था जो अब तक प्रकट में इसीलिए नहीं आया कि हमारे व्यापारियों ने इस देश को अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि अंग्रेज उपनिवेशों की भाँति अपने व्यापार का क्षेत्र नहीं बनाया। इने-गिने व्यापारी आये; वे किसी तरह अपना पेट भरते रहे अथवा स्वार्थ सधते देखकर इस विषय में चुप रहे। ज्योंही व्यापारियों का रुख इस ओर फिरा कि अंग्रेज़-हृदय का नग्न चित्र साफ़ प्रकट हो गया। इस समय यह अनीति नाम के लिए दूर हुई इसका भी कारण गूढ़ ही है। इस समय इस देश में जितनी भारतीय पेढ़ियाँ हैं उनमें से केवल दो ही को यह सौभाग्य दिया गया और अन्य को क्यों नहीं यह विचारने की बात है। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि एक और आफ़िस ने इसके लिए उन अधिकारियों के द्वार खटखटाये थे जिसका व्यापार इससे सम्बन्ध रखता है। परन्तु वह इसीलिए चुप कर दिया गया कि अभी यह रियायत बड़ी कोशिश के साथ केवल उन्हीं दो व्यक्तियों के लिए की गई है कि जो चुने जा चुके हैं। इस हालत में यह मान लेना कि यह हमारी विजय है, सरासर भूल है। और इसकी सच्ची परीक्षा उस समय हो सकती है कि जब हमारे भारतीय व्यापारी जो अबतक अपना व्यापार अंग्रेज़ आढ़तियों-द्वारा कर रहे हैं, यहाँ आफ़िस खोलकर स्वयं करना शुरू करदें और उसके अध्यक्ष भी भारतीय ही नियत करें। मैं अपने पहले के पत्र में इसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता के विषय में काफ़ी लिख चुका हूं।

देशी व्यापारियों का कमीशन का लाखों रुपया हर साल इस देश को मिलता है यदि उसमें से हम थोड़ी भी न्यूनता कर सकें तो हमारे लिए अच्छा ही है।

इण्डियन चेम्बर

तीसरी मार्के की बात हुई इंडियन चेम्बर का वार्षिक भोज। विगत ३० दिसम्बर को इण्डियन चेम्बर ने होटल सेसील (Hotel Cecil) में अपना वार्षिक भोज किया जिसमें अन्य मेहमानों के साथ भारत-मंत्री श्रीयुत वेजवुड बेन भी उपस्थित थे। आपके पाठकों को ज्ञात ही होगा कि यह चेम्बर अभी पूरी दो वर्ष की भी नहीं है। परन्तु इतने थोड़े अर्से में इसने भारतीयों के व्यापार को काफ़ी मदद पहुँचाई है। भारतीय व्यापारियों की और उसमें भी राष्ट्रीय विचारवाले व्यापारियों की संख्या यहाँ इनी-गिनी है। भारतवर्ष का इस देश से इतना व्यापार सम्बन्ध होते हुए भी भारतीय व्यापारियों का यहाँ कोई संगठन नहीं था। हाँ, उन अंग्रेज़ व्यापारियों ने जिनके हाथ में भारतवर्ष का आयात-निर्यात का व्यापार है यहाँ पर ईस्ट इण्डियन सेक्शन (East Indian Section) नाम से लन्दन चेम्बर आव् कामर्स के अन्तर्गत एक संगठन बना रक्खा है और वही भारतीय व्यापार-विषयक मामलों में अबतक प्रामाणिक माना जाता है। हालांकि उसकी कार्यकर्तृ-समिति में एक भी भारतीय सदस्य नहीं है। अन्य भी भारतीय व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी तीन-चार संस्थायें हैं जिनमें भारतवासियों के रक्षक बनकर अंग्रेज़ व्यापारी अपना मनचाहा करते हैं। भारतीय हितों की बराबर रक्षा होते न देखकर ही यहाँ के कतिपय व्यापारियों ने मिलकर कोई दो वर्ष पहले एक संस्था स्थापित की थी। भारतवासी व्यापारियों के साहाय्य से यह संस्था धीरे-धीरे अपने पैर जमा रही है। आज इसके देश और विदेश में सब मिलाकर लगभग ३०० सदस्य हैं। भारतीय किसी भी ख़ानगी संगठन को इतना शीघ्र सरकार की ओर से सहयोग तो दूर रहा वरन् मामूली मान भी मिला हो यह बहुत कम देखने में आता है। सरकार का देशी संगठनों से यह बेरुखापन मौजूदा अविश्वास के कई कारणों में से एक कारण है। भारतवर्ष में भी देशी व्यापारी चेम्बरों में सरकार के प्रतिनिधि अभी पिछले ५।७ वर्षों ही से जाकर देश के व्यापार आदि विषयों पर विचार-विनिमय करने लगे हैं। ऐसी दशा में इस नव-स्थापित चेम्बर को यह मान मिलना इसके कार्यकर्ताओं की सफलता का द्योतक है। देश के मौजूदा राजनैतिक वातावरण में, संभव है, चेम्बर का सरकार से यह सम्बन्ध संदेहास्पद दृष्टि से देखा जाय। यही नहीं परन्तु इसे भी सरकार का खड़ा किया हुआ एक हथियार समझ लिया जाय, इसलिए मैं आपके पाठकों को यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि वे ऐसा समझने की भूल न करें। चेम्बर का एक ही हेतु है और वह है राष्ट्रीय दृष्टि से भारतीय व्यापार की वृद्धि करना और इस काम में सरकार से जितनी सहयोगिता मिल सके वह लेने की चेष्टा करती है। परन्तु इस सहयोग के लिए राष्ट्रीयता को ज़रा भी आँच लगे यह नहीं सह सकती।

इस चेम्बर को अपने दो वर्ष के जीवन में भारतीय और अंग्रेज़ व्यापारियों को एक प्लेटफ़ार्म पर मिलाने में बड़ी सफलता मिली है। इस भोज में भारतीय आर्थिक भविष्य के सम्बन्ध में चेम्बर के सभापति एवं श्री बेन के जो भाषण हुए उनका हाल सामयिक पत्रों से आपके पाठकों को मालूम हुआ ही होगा। परन्तु उनमें कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी ओर मैं आपके का ख़ास ध्यान खींचना चाहता था परन्तु आज का मेरा यह पत्र आशा से अधिक लम्बा हो गया है इसलिए अब क्षमा चाहता हूँ। आशा है इस विषय में अपने आगामी पत्र में कुछ लिख सकूंगा।

आपका

कस्तूरमल बाँठिया

सम्पादकीय

चंक्रम

रण-निमन्त्रण

साबरमती में कार्य-समिति ने महात्माजी पर सविनय भंग के संग्राम का भार छोड़कर उन्हें अपना सर्वाधिकारी बना कर सारे देश को पूर्ण स्वतंत्रता के दारुण रण का निमन्त्रण दिया है। बहुत सम्भव है कि यह अंक पाठकों के हाथ में पहुँचने के पहले ही महात्माजी का रणाह्वान वाइसराय के पास पहुँच जाय और दोनों ओर के शस्त्रास्त्रों की करामात रणांगण में दिखाई देने लगे। निश्चय ही भारत का, या यों कहें कि राष्ट्रीय महासभा का, अमोघ अस्त्र है अहिंसा, कष्ट-सहन और पशु-बल की प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार के शस्त्रास्त्र हैं जेल के कष्ट, मशीनगन, हवाई जहाज़ों से बरसने वाले बम-गोले इत्यादि। स्वराज्य के सैनिकों ने अपने और अपने प्रतिपक्षी के बलाबल को तौलकर ही इस बार दृढ़ता से क़दम आगे बढ़ाया है और उनके विश्व-वंद्य तपस्वी सेनापति का आदेश है कि जबतक स्वतंत्रता और अहिंसा का एक भी प्रतिनिधि भारत में बाक़ी है तब तक यह युद्ध स्थगित न हो। इस बार हमारे संग्राम की व्यूह-रचना इस प्रकार की गई है कि बहुत संभव है सबसे पहले हमारे सेनापति ही कृष्ण-मन्दिर की यात्रा करें। उस समय उनका आदेश है कि सारे देश में अहिंसात्मक नियम-बद्ध सत्याग्रह छिड़ जाय। १९२१ में वह अपने बाद जेल में आने से हमको मना कर गये थे, अब की हमको रण-निमंत्रण देकर जा रहे हैं।

इस अंक के प्रकाशित होने तक बहुत संभव है कि सत्याग्रह की सारी योजना पाठकों तक पहुँच जाय; परन्तु जबतक हमारे सेनापति ने बाज़ाब्ता उसे प्रकाशित नहीं किया है तबतक, जैसा कि पं० मोतीलालजी नेहरू ने कहा है—हम सैनिकों को उसके जानने की इच्छा न रखनी चाहिए। हमारा तो काम है सेनापति के आदेशों की राह देखना और उनपर चलना।

आशा है हमारा राजस्थान, प्रताप और दुर्गादास का समराङ्गण, विक्रम और भोज की पराक्रम-भूमि, आल्हा और ऊदल की त्यागभूमि, इस स्वतंत्रता-यज्ञ की बलिवेदी पर अपनी आहुति देने में किसी से पीछे न रहेगी। समय आ गया है कि हम तौलकर नहीं, फूँक-फूँककर नहीं बल्कि जी-खोलकर, आगे बढ़-बढ़ कर अपनी आहुति चढ़ावें। हम विश्वास रक्खें कि हमारी ये अहिंसात्मक आहुतियाँ भारत के ही नहीं सारे संसार के कल्याण का साधन बनेंगी। यदि अँग्रेज़ों को दूर देखने की आँखें हो, अपना स्थायी हित समझने की बुद्धि हो तो वे यज्ञ से घबरायेंगे नहीं, इसका विरोध नहीं करेंगे, बल्कि इसे अपनी आत्म-शुद्धि का अनोखा और ईश्वर-दत्त अवसर समझेंगे। परमात्मा उन्हें सन्मार्ग दिखावें और हमें दे अपने निश्चित पथ पर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते जाने का बल और साहस।

जो भाई हिंसात्मक क्रान्ति में विश्वास रखते हैं उनके लिए भी अपने बलिदान का यह ऐसा अवसर है जो शायद फिर न आ सके। सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखते हुए भी वे अच्छी तरह जानते हैं कि उसे सफल बनाने के साधन आज सुलभ नहीं हैं। परन्तु निःशस्त्र प्रतीकार या क्रान्ति का प्रशस्त मार्ग उनके लिए खुला हुआ है। उसके आचार्य या सेनापति भी देश में हैं और उन्हें हमारी महासभा ने संग्राम-सञ्चालन की सारी ज़िम्मेदारी सौंप दी है। ऐसी दशा में उनका भी कर्तव्य है कि वे थोड़ी देर के लिए अपने विश्वास को काम में लाना रोक दें और अपने पूरे दल बल के साथ इस समर-क्षेत्र में कूद पड़ें। क्या हिंसावादी और क्या अहिंसावादी दोनों के देश-प्रेम और स्वतंत्रता की लगन की परीक्षा का यह अवसर है देखें कौन आगे बढ़ता है और सबसे पहले किसके चिता-स्थल पर भावी इतिहासकार को शिला-लेख मिलता है—

'भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रथम बलिदान।'

जैनियों के लिए दुर्लभ अवसर

संसार 'अहिंसा-धर्म' के प्रचार के लिए सबसे अधिक ऋणी जैनियों का है। जैन-ग्रन्थों में अहिंसा की जैसी सर्व-

संगत विवेचना मिलती है वैसी शायद ही किसी सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रन्थों में मिलती हो। पर आज का जैन-जीवन प्रायः अहिंसा के बाह्याचार से ही ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है। ऐसे समय में महात्मा गान्धीजी का अहिंसात्मक रण-निमंत्रण जैनियों की अहिंसा-भक्ति को कसौटी पर चढ़ा देता है। यहाँ मैं अपने एक जैन मित्र का पत्र प्रकाशित करता हूँ जिससे मालूम हो जायगा कि जैन-धर्म के सच्चे प्रतिनिधियों का कर्तव्य इस समय क्या है। पत्र महात्माजी के नाम लिखा गया है—

पूज्यवर महात्माजी!

सादर वन्दे। कृपया मेरा नाम भी सत्याग्रहियों की सूची में लिख लें। मैं एक जैनी की हैसियत से ऐसे अहिंसात्मक आन्दोलन में, जिसके सफल हो जाने पर करोड़ों मनुष्यों के दुःख दूर हो सकते हैं, भाग लेना अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। मुझे दुःख तो केवल इतना ही है कि आज जैन-समाज इस पवित्र मोक्षदायी आन्दोलन में, जिसमें उसे सबसे आगे बढ़कर भाग लेना चाहिए था, सबसे पीछे है। पशु-पक्षी और वनस्पतिकाय जीवों की रक्षा के लिए भी बलिदान होने की जो धर्म प्रेरणा करता है, उसके अनुयायियों को पंचेंद्रिय मनुष्य-प्राणियों की रक्षा के लिए बलिदान होने को कितना उत्सुक होना चाहिए, यह सरल सत्य भी आज जैन-जाति की समझ में नहीं आ रहा है।

इस आन्दोलन के सफल होजाने से न केवल भारतवर्ष का ही उद्धार होगा बल्कि संसार के सामने ऐसा उदाहरण पेश होगा जिससे अन्य पराधीन हिंसात्मक जातियाँ भी हिंसावृत्ति को छोड़कर अहिंसा के पथ पर चलेंगी और अपना उद्धार कर सकेंगी। भला, इससे अधिक सौभाग्य की बात जैन-समाज के लिए क्या हो सकती है?

× × ×

मेरी पत्नी ने जो कुछ वर्षों पहले गहनों और विलायती कपड़ों से लदी हुई थी, अब सब-कुछ छोड़ दिया है, और जहाँ हमारे यहाँ ओसवाल मारवाड़ी जैन-समाज में परदे का घोर साम्राज्य है, ता० २६ के स्वाधीनता के जुलूस में उसने परदा-प्रथा को तोड़कर स्वयं-सेविका की हैसियत से भाग लिया। अब मैंने सत्याग्रहियों में नाम लिखाने के संबंध में अपना निश्चय प्रकट किया तो उसने सहर्ष इस विचार का स्वागत किया और अब वह स्वयं भी ऐसा करने के लिए उत्सुकता प्रकट कर रही है। आशा है आपके आशीर्वाद से और जैन-धर्म के पवित्र उपदेशों से उसके हृदय में दिन-प्रति दिन शरीर का मोह छोड़ने का बल बढ़ता जायगा।

मैं आपको यह भी विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस आन्दोलन में जब कभी अंग्रेज़ भाइयों की गोली का शिकार होने का सुअवसर प्राप्त होगा तो आप मुझे पीछा हटते न पायेंगे।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि मेरे आत्म-बलिदान से अन्य जैन भाइयों को भी उत्साह मिलेगा।"

क्या इस पत्र की सजीव प्रेरणा अन्य जैन भाई-बहनों को भी अहिंसा की ऐसी आदर्श-सेवा के लिए अनुप्राणित करेगी? इस अहिंसात्मक संग्राम में भाग लेकर वे न केवल अपने धर्म की सेवा करेंगे बल्कि ३० करोड़ भारतवासियों को गुलामी की बेड़ियों से छुटकारा दिलाने के भी यश-भागी बनेंगे।

हमारे व्यभिचारी नरेश!

मध्य भारत के एक सज्जन ने कई व्यभिचारी राजाओं का उल्लेख करके महात्मा गांधीजी से पूछा था कि इन बातों को जानते हुए भी आप चुप क्यों हैं? कई राजा बूढ़े हैं; कइयों के अनेक रानियाँ हैं, लेकिन उनसे सन्तुष्ट न होकर वे कई औरतों को उपरानियाँ (पासवान या रखेल) बनाये रखते हैं। क्या आप ऐसे राजाओं से भी कुछ आशा रखते हैं?

इसका उत्तर देते हुए महात्माजी 'हिन्दी नवजीवन' में लिखते हैं—"मैं तो मनुष्य-मात्र से पवित्र बनने की आशा रखता हूँ; क्योंकि अपने से भी मैं यही आशा रखता हूँ। इस जगत् में कोई भी पूर्णतया शुद्ध नहीं है। प्रयत्न से सब शुद्ध बन सकते हैं। कोई-कोई राजा व्यभिचारी हैं, क्योंकि प्रजा-जन भी व्यभिचार से मुक्त नहीं है। इसलिए हम राजाओं पर क्रोध न करें। अथवा राज्य-संस्थाओं का विचार

करते समय, राजाओं के व्यक्तिगत दोषों को उसके साथ मिला न दें। यह तो इस बात का तात्विक निर्णय हुआ। परन्तु इससे कोई यह न समझ बैठे कि मेरे मतानुसार, हमारी राज-संस्थाओं के दोषों को या राजाओं के व्यभिचार आदि को मिटाने के लिए किसी भी तरह का कोई प्रयत्न ही न किया जाय। सामाजिक दोषों को मिटाने का जो भी प्रयत्न भारतवर्ष में होता है, उसका प्रभाव राजा लोगों पर भी कुछ-न-कुछ तो अवश्य ही पड़ता है। इस प्रभाव का परिमाण निकालने का हमारे पास कोई यंत्र नहीं है। सच बात तो यह है कि सामाजिक शुद्धि के हमारे प्रयत्न बहुत शिथिल हैं। इसलिए सामाजिक शुद्धि की गति भी यत्किंचित् है। व्यभिचारी राजा के लिए विशेष प्रयत्न हो सकता है और वह है, ऐसे राज्य से उस राज्य की प्रजा का असहयोग। दुःख है कि रिआया में इस प्रकार की जागृति और शक्ति का प्रायः अभाव है। यही नहीं बल्कि राजाओं के अधिकारीगण स्वार्थ के वश होकर राजाओं की उनके कुकर्मों में पूरी-पूरी सहायता करते हैं।

अब रही देशी-राज्य-संस्थाओं की बात। सो जैसे चक्रवर्ती, वैसे उनके माण्डलिक। हमारे देश की चक्रवर्ती संस्था आसुरी है। इसीलिए १९२० से असहयोग के प्रचण्ड शस्त्र का उपयोग किया जा रहा है। चक्रवर्ती संस्था जब दैवी बनेगी तब राजा भी अपने आप शुद्ध हो जायँगे। यह सनातन नियम है। आज देशी राज्यों के विरोध में जितना आन्दोलन हो रहा है उससे चक्रवर्ती शासन दृढ़ बनता जाता है। क्योंकि आन्दोलन का एक अर्थ यह भी है कि देशी राज्यों को दबाने में चक्रवर्ती संस्था की सहायता मिले। आशा है, इस खुलासे को पढ़कर देशी राज्यों के बारे में मेरी चुप्पी को समझना मुश्किल नहीं रह जायगा। मेरा यह मौन असहयोग का उपांग है।"

मरुस्थल का आशाजनक शिक्षा-केन्द्र

पिलाणी (शेखावाटी) में बिड़ला-बन्धुओं-द्वारा स्थापित और उन्हीं के दान से सञ्चालित बिड़ला-कालेज है, जिसे दो-तीन बार देखने का मुझे सुअवसर मिल चुका है। यद्यपि यह एक सरकारी विद्यापीठ से संलग्न कालेज है तथापि इसके संस्थापकों और संचालकों को मैंने इस बात के लिए चिन्ताशील और भरसक प्रयत्नशील देखा है कि यह शिक्षालय राष्ट्रीय भावों से, राष्ट्रीय जीवन से, परिपूर्ण हो। मेरा खयाल है कि जबतक यह शिक्षालय अपने इस ध्येय के निकट न पहुँच जायगा तबतक बिड़ला-बन्धुओं को इसकी प्रगति से सन्तोष नहीं हो सकता। पिछले दिनों इस शिक्षालय का पारितोषक-वितरणोत्सव हुआ था जिसके कार्य-विवरण से मालूम होता है कि बिड़ला-बन्धुओं ने अपने दान से ७ लाख का ट्रस्ट रजिस्ट्री करवा दिया है। दो छात्रालय २०० विद्यार्थियों के निवास के निमित्त बन रहे हैं। कालेज में व्यायाम और खेल-कूद की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। नित्य सुबह सब विद्यार्थियों के लिए आध घंटे का शारीरिक पंक्ति-बद्ध व्यायाम अनिवार्य है। कालेज के अन्तर्गत वाद-विवाद सभा, साहित्य-सभा, सहयोग-समिति और नाटक-मंडली भी है। उत्सव के समय सभापतिजी ने विद्यार्थियों को आपस में संगठन, देश-प्रेम और भ्रातृ-स्नेह का भाव उत्पन्न करते हुए शिक्षा का सदुपयोग करने की सलाह दी। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने अपने व्याख्यान में कहा कि हम लोगों को कालेज की वर्तमान प्रगति से सन्तोष न मान लेना चाहिए। हमारी तो यह आशा और चेष्टा है कि शीघ्र ही यह शिक्षालय विज्ञान एवं विविध उपयोगी उद्योग और कलाओं की शिक्षा देता हुआ राजस्थान में ज्ञान और विद्या का अखण्ड दीपक प्रदीप्त कर दे। हमारा आदर्श यह है कि यह संस्था विद्यार्थियों के जीवन में सादगी के साथ उच्च देश-प्रेम तथा सेवा का भाव भर दे। हमें इस संस्था में विद्यार्थियों की अधिक संख्या से उतना प्रयोजन नहीं है जितना कि थोड़े परन्तु गुण-सम्पन्न विद्यार्थियों से, जो कि जीवन में किसी ज्वलन्त उद्देश्य को सामने रखकर विद्योपार्जन करते हों।

इस वर्ष से कालेज के जीवन में कुछ आशाजनक सुधार हुए हैं। एक अनुभवी और उत्साही प्रिन्सिपल हिन्दू-विश्वविद्यालय से बुलाये गये हैं, राष्ट्रीय शिक्षा के अनुभवी व्यक्ति संचालक-समिति में लिये गये हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि खुद घनश्यामदासजी भी इसे आदर्श-रूप देने में बहुत दिलचस्पी ले रहे हैं। मैंने उन्हें बड़ी चिन्ता के

साथ अध्यापकों से विद्यालय में खादी, सादगी और सेवा-भाव के प्रवेश के विषय में बात-चीत करते हुए और उन्हें उत्साहित करते हुए देखा है। जिस संस्था में संचालकों के ऐसे उच्च भाव हों, धन की कमी न हो, वहाँ विद्वानों का और शिक्षा-शास्त्रियों का अभाव कैसे रह सकता है। और जहाँ इन सब का संगम हो वहाँ संस्था के शुभ भविष्य की आशा क्यों न रक्खी जाय ? संस्थाओं के बनाव-बिगाड़ का आधार हैं वे लोग जिन पर उसके काम की सीधी ज़िम्मेदारी होती है। वे जितना ही अपने को संस्था के आदर्श के योग्य साबित करेंगे उतना ही संस्था का जीवन सफल होगा। जो शिक्षालय यह चाहता है कि मेरे विद्यार्थी त्यागी, देश-भक्त, कष्ट-सहिष्णु और सेवा-भाव वाले हों तो उनके सामने अध्यापकों-आचार्यों और गुरु-जनों का ऐसा ही आदर्श होना चाहिए। आशा है, पिलाणी कालेज के शिक्षक और अध्यापक इस सूत्र को अपने सामने से न हटने देंगे। धन की विपुलता संस्थाओं की उन्नति में सहायक भी होती है और कई बार बाधक भी हो जाती है। शिथिल संचालकों में वह लापरवाही और अकर्मण्यता उत्पन्न कर देती है; कर्तव्य-परायण और जागरूक संचालकों की शक्ति वह कई गुना बढ़ा देती है।

त्या० भू० और राजस्थान

त्या० भू० राजस्थान की पत्रिका है। राजस्थान उसकी मातृभूमि, राजस्थानी उसके कार्यकर्ता और राजस्थानी ही उसके प्रधान सहायक और पृष्ठ-पोषक हैं। फिर भी मुझे यह लिखते हुए दुःख होता है कि राजस्थान के जीवन में वह अभी ओत-प्रोत नहीं हो पाई है, हालांकि उसके कार्यकर्ता अवश्य ही राजस्थानी जीवन की भरसक सेवा कर रहे हैं। लेकिन त्या० भू० की इस कमी की ज़िम्मेदारी से उसके राजस्थानी पाठक, प्रेमी, विद्वान् और लेखक भी नहीं बच सकते। वे यदि मन पर धार लें तो राजस्थानी साहित्य और जीवन से त्या० भू० का एक-एक पृष्ठ भर दें। त्या० भू० के आरंभ के समय मैंने राजस्थानी विषयों की एक सूची तैयार की थी उसे यहाँ प्रकाशित कर देता हूँ और आशा रखता हूँ कि राजस्थानी भाई इन विषयों पर सदा-सर्वदा कुछ न कुछ सामग्री त्या० भू० के लिए भेजते रहेंगे, जिससे त्या० भू० में राजस्थान के लिए एक स्तम्भ निश्चित किया जा सके।

लेख—सूची

१ राजस्थान कैसे जगे ?
२ राजपूत-संस्कृति
३ राजपूत-जीवन की विशेषतायें
४ प्रताप का जीवन-कार्य
५ तपस्वी प्रताप
६ चित्तौड़ की पुकार
७ चित्तौड़ की आह
८ मेवाड़ कब उठेगा ?
९ मेवाड़ का गौरव
१० मेवाड़ की वीराङ्गनायें
११ हल्दीघाटी
१२ चेटक की स्वामि-भक्ति
१३ मीरा का सन्देश
१४ मीरा की स्फूर्ति
१५ मेवाड़ के लोक-गीत
१६ मेवाड़ का वैभव
१७ भामाशाह का त्याग
१८ भामाशाह की मेवाड़-सेवा
१९ पद्मिनी
२० मेवाड़ की सतियाँ
२१ चित्तौड़ का किला
२२ अशर्फ़ी पहाड़ी
२३ मेवाड़ के किसान
२४ मेवाड़ में बेगार-प्रथा
२५ मेवाड़ का व्यापार
२६ मेवाड़ के उद्योग-धन्धे
२७ मेवाड़ में खादी-कार्य के लिए क्षेत्र
२८ ऊपर माल में वस्त्र-स्वावलम्बन
२९ बिजोलिया में पञ्चायत-संगठन
३० बेगूं में किसानों का आन्दोलन
३१ जागीरदारों की मनोवृत्ति
३२ जागीरों से हानि-लाभ
३३ छोटे ठिकाने रहें या मिटें ?
३४ राजस्थान के देशी-राज्य
३५ स्वराज्य और देशी-राज्य
३६ नरेन्द्र-मंडल में देशी नरेशों की स्थिति
३७ देशी-राज्य और ब्रिटिश राज्य का सम्बन्ध
३८ सन्धियों का मूल्य
३९ देशी नरेश और उनकी प्रजा का सम्बन्ध
४० देशी राज्यों में प्रजा की उपेक्षा
४१ राजस्थानी युवकों को चेतावनी

४२ राजस्थानी युवकों के सामने कार्य
४३ राजस्थानी युवकों की स्वाभाविक शक्तियाँ
४४ राजस्थानी युवकों की कमज़ोरी
४५ आरोग्य की दृष्टि से राजपूताना
४६ वीर जयमल और फत्ता
४७ राजपूत कौन थे ?
४८ राजपूताने के आदिम निवासी
४९ राजपूताने में अछूतों का प्रश्न
५० विधवा विवाह और राजपूताना
५१ मारवाड़ियों की सामाजिक कमज़ोरियाँ
५२ मारवाड़ियों में गुप्त रोगों का प्रभाव
५३ मारवाड़ियों में स्त्री-जीवन की अशिक्षता
५४ राजपूतों की मरदानगी कहाँ गई ?
५५ राजपूताना में गुलामी प्रथा
५६ राजस्थान का सार्वजनिक जीवन
५७ राजस्थान का भौगोलिक महत्व
५८ राजस्थान के इतिहास का कलंकित भाग
५९ राजपूतों की कमज़ोरियाँ
६० राजस्थान में स्त्रियों की पराधीनता
६१ राजस्थान की दलित प्रजा
६२ राजस्थान में पर्दे की पराकाष्ठा
६३ राजस्थान के जरायम पेशा लोग
६४ राजस्थान के खानाबदोश लोग
६५ राजस्थान का सन्देश
६६ भारत के इतिहास पर राजस्थान का प्रभाव
६७ रेगिस्तान का राजस्थानी जीवन पर प्रभाव
६८ राजस्थानी युवक
६९ मुसलिमकालीन और आधुनिक राजस्थान
७० राजपूताने पर मरहठों के आक्रमण
७१ राजस्थान का भविष्य
७२ राजस्थान ने भारत को क्या दिया ?
७३ राजस्थान का ज्ञान
७४ राजस्थान का काव्य
७५ राजस्थान का सौन्दर्य
७६ राजस्थान की कला
७७ राजस्थान के साधु-सन्त
७८ राजस्थानी भाषा मे ओज
७९ राजस्थान की जीवनमयी कहावतें
८० राजस्थान की दन्त-कथायें
८१ राजस्थान के चारण
८२ राजस्थान में वीर-रस की कविता
८३ राजस्थान के राजनीतिज्ञ
८४ राजपूताना के भील
८५ प्रताप के साथी भील
८६ सिरोही का भील-आन्दोलन
८७ बिजोलिया के वीर
८८ भीलों के आदर्श पुरुष
८९ भील-जीवन की सरलता
९० भीलों के उच्च गुण
९१ भीलों की बुराइयाँ
९२ भीलों में शिक्षा-प्रचार कैसे हो ?
९३ अमृतलाल ठक्कर की भील-सेवा
९४ भीलों के देवी-देवता
९५ भीलों की युद्ध-कला
९६ भीलों के शस्त्रास्त्र
९७ ताँतिया भील
९८ राजस्थान भाग
९९ सूरजमल जाट
१०० भरतपुर का घेरा
१०१ जाटों की वीरता
१०२ राठौड़-इतिहास से सबक
१०३ दुर्गादास की संगठन-शक्ति
१०४ अमरसिंह राठौर
१०५ राजपूतों की विषय-लोलुपता
१०६ राजपूतों के दुर्व्यसन
१०७ राजपूतों की बहु-विवाह की बुराई
१०८ अजमेर और पृथ्वीराज
१०९ तारागढ़ की प्रेरणा
११० राजपूताना में मुसलमानों का प्रभाव कैसे जमा ?
१११ ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती
११२ राजपूताने के मुसलमान
११३ राजपूत और अंग्रेज़
११४ राजपूताने पर अंग्रेज़ी शासन का प्रभाव
११५ राजस्थानी नरेशों की साहित्य-सेवा
११६ राजस्थान की युद्ध-नीति
११७ राजस्थान का रनवास
११८ महाराष्ट्रियों की दृष्टि में राजस्थान
११९ राजपूत और महाराष्ट्र
१२० राजपूताना और गुजरात का सम्बन्ध
१२१ देलवाड़े की कला
१२२ आबू का आ[illegible]न
१२३ नक्की तालाब का सौन्दर्य
१२४ परमारों की वीरता
१२५ राजस्थान की गर्जना
१२६ मुसलिम संस्कृति का राजपूताने पर प्रभाव
१२७ राजपूतों का युद्ध-आदर्श
१२८ राजपूतों का प्रतिज्ञा-पालन
१२९ राजपूतों का शौर्य
१३० राजपूतों के शौर्य का सदोष भाग
१३१ नर्मदा का संगीत
१३२ विन्ध्याचल का वैभव
१३३ महेश्वर की 'सरस्वती'
१३४ मण्डन मिश्र और शङ्कराचार्य
१३५ विक्रम का पराक्रम
१३६ भोज की साहित्य-आराधना

हिन्दुओं की वर्तमान अहिंसा

महात्माजी ने जब रोग-व्याकुल बछड़े का ज़हर की पिचकारी से प्राणान्त कराया था तब अहिंसावादी हिन्दुओं में बड़ा कोलाहल मचा था। उन्हीं दिनों एक सज्जन ने एक पत्र त्याग-भूमि में प्रकाशित कराने के लिए भेजा था। देरी हो जाने पर भी उसकी उपयोगिता कम नहीं हुई है, इसलिए उसका सार यहाँ देता हूँ—

'हमारे सनातनी और जैन भाइयों ने सत्याग्रह-आश्रम के बछड़ा-प्रकरण को लेकर बूढ़े बाबा गांधीजी को कोसने में ज़रा भी कसर नहीं रक्खी थी, परन्तु अपने पैर तले और सर पर जो आग धधक रही है, उसका कुछ भी ध्यान इन्होंने नहीं किया। हमें याद रखना चाहिए कि यदि हम न सम्हले तो यही आग एक दिन हमारे सत्यानाश का कारण होगी।

मैं निम्नलिखित प्रश्न अपने सनातनी और अहिंसावादी जैन भाइयों की सेवा में पेश करके आशा करता हूँ कि वे इस पर विचार करेंगे—

(१) सनातन-धर्म का झण्डा उड़ाने का दम भरते हुए भोली-भाली विधवाओं और सधवा बहिनों के सतीत्व को नष्ट करना क्या हत्या नहीं है ?

(२) सनातन-धर्म के नाम पर लम्बे-लम्बे तिलक-धारी और छद्मवेशी लोग हमारी बहू-बेटियों की इज़्ज़त और कठिन परिश्रम से कमाई हुई दौलत बिगाड़ रहे हैं। क्या यह हिंसा नहीं है ?

(३) बड़े-बड़े तीर्थों और नगरों में तुरन्त के या महीने-दो महीने के जन्मे हुए बालक गली-कूचे में कचरे की तौर पर पेटियों में फेंके जा रहे हैं क्या यह महान् हिंसा नहीं है ?

(४) नीति-भ्रष्ट पुरुषवर्ग के अत्याचारों-द्वारा हमारी भोली-भाली बहिनें अपनी रक्षार्थ प्रायः भ्रूण-हत्यायें करती हैं। क्या यह बड़ी से बड़ी हिंसा नहीं है ?

(५) भूल एक साधारण बात है जो कि बुद्धिमान और धर्मज्ञ व्यक्तियों से भी हो जाया करती है, इस भूल के कारण हमारी पंचायतें अबलाओं को उदारतापूर्वक न्याय न देकर प्रायः जाति-च्युत कर देती हैं। इस प्रकार के अत्या-चारों से सताई जाकर कई बहनें तो आत्म-हत्या कर लेती हैं। कई दुष्टों के पल्ले पड़कर अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर देती हैं और कई असहाय बहनें विधर्मियों के पल्ले पड़कर गो-रक्षकों के बजाय गौ-भक्षक सन्तान उत्पन्न करती हैं। क्या यह महान हिंसा नहीं है ?

(६) अपने को बड़े आदमी और अमीर माननेवाले अहिंसको ! आपके यहाँ कड़ी मजूरी और योग्य सेवा करने वाले नौकर, गुमास्ते और कर्ज़ लेनेवालों पर अत्याचार किया जाता है और जिस समय वे अपनी पसीने से पैदा की हुई रोज़ी मांगते हैं तो इनको डाट-डपट बताई जाती है और बड़ा-

कलों तक में घसीटा जाता है। क्या इसको आप हिंसा नहीं कहेंगे ?

(७) हमारे अन्न-दाता किसान जो सरदी-गरमी और बरसात की परवाह नहीं करके रात-दिन परिश्रम करते हैं जो सांप-बिच्छू और हिंसक प्राणियों की परवाह नहीं करके हमारे जीवन के लिए अन्न और शरीर-रक्षार्थ कपास पैदा करते हैं, इनके साथ अनर्थकारी व्यवहार करना क्या हिंसा नहीं है ?"

हु० उ०

ग़ुलाम मनोवृत्ति

मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है। जैसे ख़रबूज़े को देख कर ख़रबूज़ा रंग पकड़ता है, वैसे ही मनुष्य भी एक-दूसरे के गुणों से प्रभावित होते रहते हैं। ख़ास कर जब कोई प्रबल हो तब तो दूसरे पर उसका बहुत असर पड़ता है—वह सोच कर कि जैसा यह करता है वैसा ही हम भी करें तो शायद हम भी ऐसे ज़ोरदार बन जायें, दूसरे लोग अपने आप ही उसका अनुकरण शुरू कर देते हैं। यही बात जब जातियों या समूहों में शुरू होती है, तब तो अनुकरण का प्रवाह और भी बढ़ जाता है—और, आश्चर्य नहीं कि, ज़रा-सा भी अनुकूल अवसर पाते ही यह अन्धेपन की सीमा में पहुँच जाता है।

अनुकरण अच्छा हो सकता है, बशर्ते कि वह उत्कर्ष-कारक हो—सोच-समझ कर, ऊँच-नीच विचार के यदि वह किया जाय। इसके विपरीत जो अनुकरण हो, जो इस ख़याल से हो कि ज़ोरदार या अधिक लोग ऐसा करते हैं इसलिए हम भी ऐसा ही करें, बिना इस बात का विचार किये कि उसका अन्त क्या होगा और वह हमारे लिए कैसा होगा, वह अवश्य ही उचित नहीं कहा जा सकता। निस्सन्देह वह उस व्यक्ति या जाति की कमज़ोरी ही का द्योतक समझा जायगा, जो कि अपने से प्रबल किसी व्यक्ति या जाति को देखते ही उनके बाह्य लक्षणों को अपनाकर वैसा करने का प्रयत्न करें। क्योंकि, हंस के पर लगा लेने से कव्वा हंस नहीं बन सकता, यह हम सब जानते हैं।

'परन्तु, ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर'। हमारी मनोवृत्ति में ग़ुलामी का जो अंश है, मानों शैतान की तरह वह अपने अनुकूल अवसर की खोज में ताक लगाये बैठा ही रहता है; और, जहाँ कहीं उसे मौक़ा मिला नहीं कि चट वह हमें इस ओर प्रवृत्त करता है।

आज भी क्या हम इस ओर नहीं बढ़ रहे हैं ?

पश्चिम का अनुकरण

दुनिया में इस समय स्वतंत्रता और स्वाधीनता की लहर आ रही है। नये रूप में चूँकि वह पश्चिम से उठी है, और चूँकि आज पश्चिम ही संसार में सबसे प्रबल और समृद्ध भी है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि दुनिया का प्रत्येक दलित-पीड़ित राष्ट्र और प्रत्येक गिरा या दबा हुआ वर्ग अपने उत्थान के लिए उसीके उपायों, रंग-ढंग, नीति-रीति तौर-तरीक़ों को अपनाने का इच्छुक हो रहा है। यूरोप और अमेरिका तो भाई-बन्धु ही ठहरे, पर अन्य भूभागों में भी, एक सिरे से दूसरे सिरे तक उसके अनुकरण की लहर फैल गई है। "पूर्वी नारियों में भी," श्रीमती मार्गरेट ई. कज़िंस लिखती हैं, "चारों तरफ़ से पश्चिमी प्रभाव की लहरें आ रही हैं। जापान को तो वे आधुनिक बना ही रही हैं। तुर्किस्थान की स्त्रियों के सांस्कृतिक चिह्नों को उन्होंने बहा दिया है। और अब हिन्दुस्थान पर भी वे अपना क़ब्ज़ा करना चाहती हैं।" चीन का हाल शंघाई के 'चाइना वीकली रिव्यू' में निकला है। वहाँ की स्त्रियाँ तो इतनी आगे बढ़ गई हैं कि यूरोप और अमेरिका की बनी प्रत्येक चीज़ की 'अन्ध पूजा' करती हैं! चीनी लेखक पाक के० ह्वंग के अनुसार, 'वे अपने बाल काटती हैं, विदेशी ढंग की पोशाकें और जूतियाँ पहनती हैं, और विदेशी हाथ के बटुए लटकाती हैं। सिर से पैर तक जो भी चीज़ उनके शरीर पर होती है, या वे अपने साथ रखती हैं, वह या तो विदेशी होती है अथवा विदेशी माल की बर पर बनाई हुई

होती है। इस बात के विश्वास के लिए कि वे पुरुषों से बिलकुल नहीं डरतीं, वे सिनेमा तथा नाच में उनके साथ काफ़ी समय ख़र्च करती हैं। बड़ी रात तक वे घर से बाहर रहती हैं और पुरुषों की तरह ही स्वच्छन्दता का उपभोग करती हैं। × × अपने बड़े-बूढ़ों की वे अवज्ञा करती हैं और स्त्रियों के सदाचार की पुरानी शिक्षाओं का मज़ाक़ उड़ाती हैं। स्कूल चाहे वे जायँ, पर शिक्षा-प्राप्ति के लिए नहीं किन्तु पति-निर्वाचन का अच्छा मौक़ा पाने के उद्देश से वे वहाँ जाती हैं। स्कूल में उनका पाठ्यक्रम नये-नये नाच और विदेशी प्रेम-गीत सीखना ही होता है।"

इस प्रकार, हम देखते हैं, हमारे एशिया में भी पश्चिम के अनुकरण की लहर ज़ोरों से बढ़ रही है। और लुत्फ़ यह है कि उसकी बुराइयों का ही अधिकतर अनुकरण होता है, अच्छाइयों का कम। जैसा कि उक्त लेखक ने चीन के लिए लिखा है, "वे वहीं तक आधुनिक हुई हैं, जहाँ तक कि उनके वैयक्तिक प्रदर्शन से सम्बन्ध है; इसके अलावा उनमें और कोई ऐसी बात नहीं है कि जिसके प्रति हमें आदर का भाव हो।" चीन में तो बहुत ही बुरा परिणाम हुआ दीखता है। क्योंकि, उनके कथनानुसार, ऐसी स्त्रियाँ जहाँ ऊपरी टीम-टाम के इतने प्रयत्न करती हैं वहाँ अपने रोज़मर्रा के आनन्द-उपभोग के बीच अपने गृह-जीवन को भयावह एवं थकावट-पूर्ण और घरेलू मामलों को तुच्छ एवं अकरणीय समझती हैं। इस प्रकार न तो वे भोजन बनाती हैं और न अपने कपड़े ही बनाती हैं, जैसा कि प्राचीन स्त्रियाँ किया करती थीं।" इसीलिए अन्त में झुँझलाकर उसने लिखा है, "कौमार्यावस्था में तो वे अपने अभिभावकों के लिए अभिशाप-स्वरूप हैं और विवाहित अवस्था में अपने पतियों का भार हैं।"

बचने का उपाय

"दुनिया का प्रत्येक महाद्वीप अपने विशेष गुण रखता है। यूरोप, एशिया, अमेरिका—इन नामों के साथ हमारे मस्तिष्क में क्या भिन्न-भिन्न भावनायें उठती हैं! दुनिया की आधी से ज़्यादा आबादी वाला एशिया लेटिन और ट्यूटॉनिक यूरोप अथवा भविष्यवादी तरुण अमेरिका से बिलकुल भिन्न है। हरेक दुनिया के लिए अपनी देन रखता है। और मानव-ऐक्य की संवृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक अपने व्यक्तित्व अथवा अपनी विशेषताओं को क़ायम रक्खे।" यह लिखते हुए श्रीमती मार्गरेट ई. कज़िंस लिखती हैं कि एशिया के लिए जो आवश्यक एवं उपयुक्त हैं उसे पश्चिम के नाशक प्रवाह से बचाने का उत्तम उपाय यही है कि एशियावासी एशिया के रूप में उसका विचार करें। एशिया की विशेषताओं का वर्णन करते हुए वह लिखती हैं—

"एशिया की सौग़ातें कैसे सुरक्षित रक्खी जा सकती हैं? उसके आन्तरिक (Inherent) जीवन की निकटतम रक्षक एशिया की स्त्रियों का सम्मिलन करके, जिससे कि वे आपस में अपनी सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करें और अन्य देशों की स्त्रियों से अपनी मूल विभिन्नताओं का हाल मालूम करके अपनी कठिनाइयों को हल करने के अधिक उपयुक्त हों, एवं अन्य देशों के हेल-मेल से होने वाले लाभ तथा मानव-सम्बन्धों के निकट सम्बन्धों से उत्पन्न ज्ञान से विश्व-शान्ति की रक्षा के अधिक उपयुक्त बनें अपनी सम्मिलित विरासत को जानने के लिए उनका आमने-सामने मिलना आवश्यक है कि जिससे वे उन आध्यात्मिक देनों से परिचित हो जायँ कि जिनसे वे संसार की सेवा कर सकती हैं।"

भारतीय महिलाओं ने अपने विविध सम्मेलनों से जो लाभ उठाया है, उसका वर्णन करते हुए श्रीमती कज़िंस ने ज़ोरों से इस बात की अपील की है कि एशियान्तर्गत देशों की स्त्रियों का एक सम्मेलन भारतवर्ष में हो। १९३० में तो होनोलुलू में द्वितीय पेनपैसिफ़िक स्त्री-सम्मेलन होने वाला है, और १९३२ में चीन में सर्व-एशिया स्त्री-सम्मेलन होगा, इसलिए १९३१ में भारत में सर्व-एशिया-स्त्री-सम्मेलन करने की बात उन्होंने सुझाई है।

निस्सन्देह यह एक उपयोगी सूझ है। 'एशिया एशिया-वासियों के लिए' की पुकार को इससे बड़ा बल मिलेगा, और स्त्रियों की दशा पर भी इसका अच्छा असर पड़ने की सम्भावना है, इसमें सन्देह नहीं। आशा है, जो बहनें इससे सहमत हों और इस दिशा

में कुछ काम करना चाहें, वे भारतीय स्त्री संघ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि श्रीमती कज़िंस से पैनथीन गार्डेन्स, एगमोर (Pantheon Gardens, Egmore), मद्रास के पते पर पत्र-व्यवहार करेंगी।

हमारा लक्ष्य—मातृ-पूजा

"मैं हृदय से प्रार्थना किया करता हूँ कि और चाहे जिन बातों में हम लोगों को पश्चिम का अनुकरण करना पड़े, 'मैन वर्सस वूमन', स्त्री और पुरुष के परस्पर प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वन्द्विता, विरोध, कलह की दुर्दशा भारतवर्ष को न भोगना पड़े। घर-घर में गौरी और शंकर और गणेश विराजें। रुद्र, काली, भूत-प्रेत प्रमथगण का देवासुर-संग्राम न मचे।"—यह वह सामयिक पुकार है, जो पण्डित-प्रवर बा० भगवानदास ने प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के समावर्त्तन-भाषण में उठाई है। क्योंकि, उन्हींके शब्दों में, "दैव की गति से, अपने पापों के उदय से, भारतवर्ष कुछ काल से पश्चिम के पीछे बँध गया है, और जातीय जीवन के प्रत्येक अंग में यहाँ के नव-शिक्षित सज्जन इसीका अनुकरण करने में देश का भी, अपना भी, कल्याण मानते हैं।"

बा० भगवानदास का भाषण लम्बा और पाण्डित्यपूर्ण है। उन जैसे विद्वान् भी पश्चिम के अनुकरण की बुराई को अनुभव करने लगे हैं, यही नहीं बल्कि उन्होंने उसके ख़िलाफ़ आवाज़ भी उठाई है, यह हर्ष की बात है। यह बात नहीं कि वह स्त्रियों के अनादर के पक्षपाती हों। उनके मतानुसार, "अवश्य भारत के पतन में स्त्रियों का अनादर हेतु हुआ। × × किन्तु पश्चिम की अन्ध-श्रद्धा और अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। यही शर्त है।"

प्राचीन भारत में स्त्रियों का आदर होता था—ऐसा आदर कि दुनिया में कहीं उसकी समता मिलना मुश्किल है, यह उनके दिये हुए उदाहरणों से झलकता है। पुरुष के नाम के पहले स्त्री का नाम होना—जैसे लक्ष्मीनारायण, सीताराम, पार्वतीशंकर आदि—इसी बात का तो प्रमाण है कि पुरुष से स्त्री को महत्ता दी गई है। लक्ष्मी, सरस्वती, अन्नपूर्णा में सब दुनियावी आकांक्षाओं का समावेश हो जाता है। यही सब बातें बताते हुए उन्होंने कहा है—

"यदि पूछा जाय कि एक शब्द में वह लक्ष्य बताओ, जिसके ध्यान में रखने से विद्यापीठों में, क्या पुरुषों के और क्या महिलाओं के, भूल न होगी, तो वह शब्द 'मातृ-पूजा' है।"

उनका कहना है, "माता शब्द के पूरे अर्थ को मन में बैठाना चाहिए। कितना स्वार्थत्याग, कितना विनयन, कितनी तपस्या सन्तान के हित के लिए इस एक शब्द में भरी है! मातृत्व के आदर से देश में ये सब भाव फैलेंगे। और इनके फैलने से सब पुण्य का और कल्याण का उदय होगा।"

सचमुच यही बात है, जिसको स्त्री-स्वातंत्र्य के मार्ग पर बढ़ते समय ध्यान में रखने की ज़रूरत है। मातृ-पूजा के भावों को हृदय में धारण कर हम इस दिशा में कितने ही आगे बढ़ें, हम सुरक्षित रहेंगे; और, यदि हमने इसकी अवहेलना की, तो ख़तरा सामने है। उस हालत में विकार के शैतानी भावों को अवसर मिलेगा, और आश्चर्य नहीं कि वे हम पर क़ाबिज़ होकर हमें कहीं से कहीं बहका ले जायँ। अतः मातृ-पूजा, आदर-पूर्ण मातृ-भाव के लक्ष्य का हममें उदय हो, यही हमारी कामना होनी चाहिए।

भीषण बाल-ह्रास

"बालक मनुष्य का पिता है (Child is the father of man)—यह संसार का एक माना हुआ सिद्धान्त है। परन्तु भारतीयों को इसकी कोई कल्पना है, इसमें सन्देह है—अनुभव के आधार पर हम यह कहते हैं।" यह लिखते हुए श्री आर. एन. बी. ने 'लीडर' में लिखा है कि हम और हमारी सरकार हमारे बालकों की कोई पर्वाह नहीं करते, जैसा कि संसार के विभिन्न मुख्य-मुख्य नगरों में प्रति सहस्र होने वाली निम्न बाल-मृत्युओं से प्रकट है—

बम्बई	४५०	बर्लिन	९२
कलकत्ता	३१७	पेरिस	८९
इलाहाबाद	२६५	बोस्टन	८१
काहिरा	२५७	शिकागो	७७
मास्को	१७७	बर्मिंघम	७५
डबलिन	११२	लन्दन	६६

ग्लासगो १०१ न्यूयार्क ६४
विएना ९८

निस्सन्देह यह स्थिति भीषण है।

"मैं बच्चा हूँ—पृथ्वी को जैसा मैंने पाया है उससे अच्छा छोड़ना मेरा उद्देश्य है। मैं जीवन, हास्य, प्रेम, काम और खेल चाहता हूँ। शुद्ध दूध और ताज़ी हवा मुझे चाहिए। अगर इस समय तुम मेरा मार्ग सरल कर दोगे, तो बड़ा होने पर मैं तुम्हारा मददगार होऊँगा। मैं तुम्हारी आशा हूँ, मैं बालक हूँ।"

यह है बालक का आग्रह, जिसे एक पोस्टर से उक्त लेखक ने उद्धृत किया है। कितना करुण, पर कितना सत्य! तब, हमारा कर्त्तव्य? लेखक ही के शब्दों में कहें तो वह है—'शिक्षण, सहयोग, आन्दोलन।'

शिक्षा से बाल-मृत्युओं की भीषण संख्या पर अवश्य ही असर पड़ेगा, क्योंकि इसका मुख्य कारण अज्ञान—शिशु-संवर्धन के ज्ञान का प्रचार न होना ही तो है! शिक्षितों में यह मृत्यु-संख्या है भी कम, जैसा कि निम्न अङ्कों से स्पष्ट है—

प्रतिशत शिक्षित

मुसलमान	२३
हिन्दू	३१
एंग्लो-इण्डियन और ग़ैर एशियाई	८०

प्रतिशत मृत्यु-संख्या

	१९११ में	१९२५ में
मुसलमान	३०.५	४२.९
हिन्दू	२८	३०.६
एंग्लो-इण्डियन और ग़ैर-एशियाई	१७	१४.८

स्वास्थ्य के लिए ज़्यादा धन की आवश्यकता है, यह धारणा ग़लत है। धन से सहूलियत ज़रूर होती है, परन्तु असली ज़रूरत तो है शिशु-संवर्धन के ज्ञान और उसके अनुसार काम करने की। बच्चों के लिए लेखक के दिये हुए निम्न १२ नियम विचारणीय हैं—

(१) रोज़ नियम से खिलाया जाय। (२) निश्चित समय पर खिलाया जाय। (३) सफ़ाई से खिलाया जाय। (४) भूख लगने पर खिलाया जाय। (५) बच्चे चबा-चबा कर खायँ। (६) रोज़ कुछ ताज़ा फल खिलाये जायँ। (७) ज़बर्दस्ती न खिलाया जाय। (८) जल्दी-जल्दी न खिलाया जाय। (९) ज़्यादा न खिलाया जाय। (१०) बार-बार, बीच-बीच में, न खिलाया जाय। (११) कढ़ी और मसाले न दिये जायँ। (१२) पानी को कभी इन्कार न किया जाय।

इनपर अमल किया जाय तो, इसमें सन्देह नहीं, ये अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे। लेखक ने इन्हें 'स्वर्ण-नियम' नाम दिया है, जो ठीक ही है। अलबत्ता, इसके साथ, बालक की जननी माताओं के स्वास्थ्य का ध्यान रखना भी उतना ही आवश्यक है।

माताओं की सम्हाल

बालकों का सुन्दर भविष्य उनकी माताओं के सुन्दर वर्तमान पर निर्भर है, यह स्पष्ट है। क्योंकि, जैसी मातायें होंगी, वैसे ही तो उनके बालक भी होंगे? अस्वस्थ-कमज़ोर माताओं से स्वस्थ-बलवान सन्तति भला कैसे संभव है? परन्तु कहाँ हैं हमारी मातायें ऐसी स्वस्थ-बलवान? यहाँ तो "बाल-विवाह, शीघ्र मातृत्व (अल्पायु में सन्तानोत्पत्ति) और जल्दी-जल्दी बच्चों का होना उनकी सारी शक्ति को चूँसे डाल रहा है।" फिर हमारी माताओं का इस सम्बन्धी अज्ञान भी तो बड़ा दुःखदायी है। यही कारण है कि "अमेरिका में हर साल प्रसव-रोगों से जहाँ २०,००० स्त्रियाँ मरती हैं, वहाँ हमारे यहाँ हर साल ६०,००० से भी ज़्यादा स्त्रियाँ मर जाती हैं।" और जनन-योग्य स्त्रियों की मृत्यु उस राष्ट्र, जाति, या कुटुम्ब का कितना बड़ा नुक़सान है, यह ऐसी बात है कि सहज ही समझी जा सकती है। क्योंकि वे ज़िन्दा रहतीं तो कौन कह सकता है कि उनसे सन्तानोत्पत्ति होकर उनकी कितनी अभिवृद्धि न होती? अतः उनके स्वास्थ्य पर ध्यान देना आवश्यक ही नहीं, हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य है।

इसके लिए प्रसव-सम्बन्धी जानकारी स्त्रियों को अवश्य होनी चाहिए। श्री आर. एन. श्री. इसके लिए उपाय सुझाते हैं—

"गर्भावस्था और सन्तानोत्पत्ति के समय सावधानी रख कर अपनी स्त्री को बचाओ। इससे ६०००० में से कम से कम ३०००० स्त्रियाँ तो मरने से बचाई ही जा सकती हैं। ज़्यादातर दौरों (हिस्टीरिया) और प्रसूति-ज्वर से गर्भिणी स्त्रियाँ मरती हैं और ये बीमारियाँ असाध्य नहीं बल्कि रोकी जा सकती हैं।"

उनकी राय में गर्भिणी स्त्रियों के लिए ये बातें आवश्यक हैं—

(१) शुद्ध वायु और सूर्य का प्रकाश।

(२) काफ़ी ताज़े फल और तरकारियाँ।

(३) ख़ूब पानी पीना।

(४) पेशाब की समय-समय परीक्षा कराते रहना।

(५) आठ मास का गर्भ हो जाने पर डाक्टरी जाँच कराना।

निम्न लक्षण ऐसे हैं कि उनके दृष्टि गोचर होते ही डाक्टर की सलाह लेना ज़रूरी है—

(१) पीलापन, (२) हाँफना, (३) पैरों का सूजना, (४) चेहरे की सूजन, (५) सिर-दर्द, (६) कब्ज़ और (७) पेशाब में कमी।

गर्भिणी स्त्री के भोजन पर काफ़ी ध्यान दिया जाना चाहिए, उचित परिश्रम और पर्याप्त विश्राम की भी ज़रूरत है। मन की प्रफुल्लता और निर्मलता—शुद्ध और पवित्र विचारों का वातावरण तो आवश्यक है ही।

अरे, ओ.... !

इन दिनों कुछ विचित्र ख़बरें आ रही हैं। सारदा ऐक्ट अप्रैल से अमल में आने वाला है, इसलिए इन दिनों बाल-विवाहों की मानों बाढ़ आ रही है! उसके बाद तो बाल-विवाह जुर्म हो जायगा, इसलिए आजकल ज़रा-ज़रा-से बच्चे-बच्चियों का विवाह हो रहा है। पहले ख़बर आई, हमें विश्वास न हुआ; फिर भी हमने उपेक्षा की; लेकिन, बात बढ़ती ही आ रही है। बाहर से ही ख़बरें नहीं आ रही हैं, स्वयं सारडाजी के निवास-स्थान अजमेर में इन दिनों कई बालक दूल्हे-दुल्हिन देखे गये हैं—एक तो बिलकुल गोद की दूध-पीती बच्ची का विवाह हुआ है, कोई तीनवर्षीय बालक के साथ !! समझ में नहीं आता, यह कौनसी 'सुबुद्धि' का परिणाम है! बालकों का हित या स्नेह ऐसा करा रहा हो, यह विश्वास नहीं होता; मालूम होता है, रूढ़ि के झूठे भय ने उनकी बुद्धि को बिलकुल कुण्ठित कर दिया है। लेकिन *माता-पिताओं की* कुण्ठित बुद्धि का परिणाम तो बेचारे उन बाल पति-पत्नियों को ही भोगना पड़ेगा, प्रश्न होता है, उन बेचारों पर यह ज़ुल्म क्यों? बालकों को तो अभी समझ ही कहाँ, और उन्हें मानों हृदय नहीं है! कितना करुण दृश्य है! बालक कुछ नहीं समझते—बेचारे ठहरे भोले-भाले; पर क्या उनकी आत्मा भी न महसूस करती होगी? अवश्य वह कराहती होगी, और अपनी दुधमुँही बोली में ऐसे माँ-बापों को कोसती होगी। क्या समझोगे इसे, अरे, ओ निर्दय मा-बापो!

बाल-रक्षा की दिशा में

धन्यवाद है वाइसराय-पत्नियों को, कि जिनकी प्रेरणा से बाल-रक्षा की दिशा में कुछ कार्य का श्रीगणेश हुआ है। जगह-जगह होनेवाले वार्षिक शिशु-सप्ताह और बाल-प्रदर्शन वह कार्य है, जो इस दिशा में शुरू हुआ है। इनमें बाल-पालन पर व्याख्यान होते हैं मैजिक लैण्टर्न से उन्हें समझाया जाता है, *बालकों की जाँच करके अच्छे और हृष्ट-पुष्ट* बालकों के लिए इनाम भी दिये जाते हैं, बालकों की दौड़ व सिलाई की प्रतिद्वन्द्विता आदि भी होती हैं। इस बार दिल्ली में नवाब साहब भोपाल ने एक सुन्दर भाषण से शिशु-सप्ताह का आरम्भ किया; डा० अंसारी का भाषण भी अच्छा रहा। अजमेर में भी, कहते हैं, अन्य वर्षों से इस बार ज़्यादा सफलता रही। स्त्रियाँ ज़्यादा आईं, कार्यक्रम ज़्यादा और मनोरंजक रहा, बालक भी ज़्यादा अच्छे रहे। एक मनोरंजक बात भी हुई; वह, एक स्थानीय पत्र के अनुसार, *यह कि* जो स्त्रियाँ अपने ओढ़ने की चद्दरें रख-रख कर उसमें शामिल हुईं उनमें से कइयों को उनसे हाथ ही धोना पड़ा! यह शायद प्रबन्ध-कर्ताओं के सुप्रबन्ध का नमूना था। जो भी

हो, सब मिलाकर पूर्वापेक्षा सफलता ही रही। पर एक बात अभी भी खटकती है। वह है इस काम में सरकारी हाथ का आधिक्य, एक प्रकार से यह सरकारी-सा ही काम हो गया है। इसका बुरा असर यह होता है कि सर्व-साधारण न तो खूब खुलकर इसमें भाग ले पाते हैं, न उनकी आवश्यकता-अनावश्यकताओं का उतना ख़याल ही रह पाता है, जितना कि सरकारी अफ़सरों की मेमसाहिबाओं के प्रदर्शन और उनकी नाज़-बरदारियों का ध्यान रहता है। इस वातावरण से मुक्ति पाकर राष्ट्रीय रूप धारण कर ले तो यह सप्ताह बाल-रक्षा की दिशा में कहीं ज़्यादा उपयोगी हो जायगा, यह निश्चित है।

ठीक रास्ते की ओर

अभी कुछ ही दिन हुए, महात्माजी का हवाला देते हुए, हमने अपनी बहनों से देश के लिए खादी को अपनाने की अपील की थी। हर्ष की बात है, हमारी वह अपील व्यर्थ न गई। देश अपनी मुक्ति के मार्ग पर बढ़ रहा है। महात्मा गाँधी लड़ाई का बिगुल बजा चुके हैं। सत्याग्रह की आवाज़ उठ चुकी है। ऐसे समय भारत की राजधानी, भारत का प्राचीन और अर्वाचीन केन्द्र, दिल्ली की महिलाओं ने स्वदेशी-व्रत की ओर जो क़दम बढ़ाया है, वह सचमुच ठीक रास्ते की ओर है। स्त्रियों ने अपनी सभायें कर-करके स्वदेशी वस्त्र पहनने का आपस में निश्चय किया है; इसके लिए प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया है और प्रत्येक सभा में कुछ-न-कुछ स्त्रियाँ ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों पर रज़ामन्दी से दस्तख़त करती हैं। कई ऐसी सभाओं की ख़बरें आ चुकी हैं, और दस्तख़त करनेवाली स्त्रियों की संख्या सौ से तो ज़रूर ऊपर पहुँच चुकी होगी। जहाँ साबरमती (सत्याग्रह-आश्रम) की स्त्रियाँ सत्याग्रह में भाग लेने को उतावली हो रही हैं, वहाँ दिल्ली की स्त्रियाँ इतना भी न करतीं तो अवश्य शर्म की बात थी। हर्ष है कि उन्होंने मौक़े को पहचान लिया।

दिल्ली की स्त्रियों का यह काम बड़ा महत्वपूर्ण है। दिल्ली सब प्रान्तों का प्रदर्शन है। सब जगह के लोग वहाँ बसे हैं और विलास और शौक़ीनी का भी वह केन्द्र है। यह भी एक खुला रहस्य है कि विदेशी वस्त्र की चमक-दमक में स्त्रियाँ ही बहुत फँसती हैं। अतः वहाँ की स्त्रियों का यह कार्य दिल्ली से तो विदेशी वस्त्र के कलंक को मिटाने में कारगर होगा ही, पर भारत-भर में उसका असर पड़ेगा और भारत-भर की स्त्रियाँ उससे अपना रास्ता पावेंगी, ऐसी आशा है। भगवान् उन्हें सफलता दें, और अन्य स्थानों की स्त्रियों को दें ऐसी क्षमता कि वे भी अपने अपने यहाँ ऐसा कार्यारम्भ कर दें!

× × ×

स्त्रियाँ और कौंसिल

माण्ट-फोर्ड सुधारों में स्त्रियों के कौंसिलों की सदस्या होने का विरोध तो नहीं है, पर विभिन्न कौंसिलों पर ही यह भार डाल दिया गया है कि वे चाहें तो स्त्रियों को सदस्य बनाने का निश्चय कर लें और न चाहें तो न करें। हर्ष की बात है कि बिहार, युक्तप्रांत, मध्यप्रांत, मद्रास आदि कुछ प्रान्तिक कौंसिलों ने स्त्रियों के सदस्य बनने के प्रस्ताव पास करके इस असमानता को दूर कर दिया है। वहाँ वे मेम्बर ही नहीं, ज़िम्मेदार पदों पर भी पहुँची हैं। पर अभी कुछ प्रान्त बाक़ी रह गये हैं। इन्हीं में बंगाल भी है। हाल में श्री पी० एन० गुप्त ने बंगाल के इस कलंक को मिटाना चाहा था, पर उन्हें सफलता न मिली। स्वर्गीय राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की सुधार-भूमि बंगाल में बंगाली मेम्बरों के विरोध से इस प्रस्ताव का पास न हो पाना कम आश्चर्य की बात नहीं। यह ठीक है कि कौंसिलें ही सब कुछ नहीं हैं, परन्तु स्त्रियों को अयोग्यता का परवाना तो नहीं मिलना चाहिए न! आशा है, अगले अधिवेशन में, बंग-नारियों के प्रयत्न से, इस दिशा में कुछ होकर रहेगा।

मुकुट

वातावरण

पिछले अंक के प्रकाशित होने के बाद, इस एक महीने के अन्दर, देश की परिस्थिति और देश का वातावरण बहुत बदल गया है। सारा भारतवर्ष सत्याग्रह-युद्ध के प्रारम्भ-सूचक शंख-नाद से गूँज उठा है। लगभग सभी प्रान्त सत्याग्रह की तैयारी में जी-जान से जुट गये हैं। प्रत्येक देश-प्रेमी बहन-भाई के अन्दर एक सनसनी, एक कम्पन, एक आशा-निराशा-मिश्रित उल्लास फैल रहा है। सबकी ज़बान पर 'क्या होगा ?' बस यही सुनाई पड़ता है। एक रहस्य-मय भविष्य, जिसके भीतर से क्या आनेवाला है, इसका पता नहीं, हमारे सामने दूरतक फैला हुआ है, फिर भी राष्ट्र का शरीर गुलामी की वेदना से तड़प रहा है और अन्तःकरण स्वतंत्रता की दीप्त किरणों को देखने और उनके प्रकाश में अपने जीवन का, समाज का, पुनर्निर्माण करने के लिए विकल है।

सत्याग्रह का शंख-नाद

महासभा के लाहौर-अधिवेशन ने ज़रूरत पड़ने पर, देश की अवस्था के अनुकूल, सत्याग्रह की योजना करने का भार भारतीय कांग्रेस-समिति पर छोड़ दिया था। कांग्रेस-कार्य-समिति ने सर्व-सम्मति से महात्मा गांधी को, गिरफ्तार होने तक, सत्याग्रह-युद्ध के संचालन के सम्पूर्ण अधिकार दे दिये हैं। यह कहना बाहुल्य-मात्र है कि महात्माजी भारतीय-राजनीति के क्षेत्र में सत्याग्रह के आचार्य हैं और इसके पूर्व कई बार सफलता-पूर्वक उसका संचालन भी कर चुके हैं। अतः उन्हें अपना सेनापति चुनकर कांग्रेस-कार्य-समिति और उसके द्वारा देश ने एक प्रशंसनीय और सचमुच कुछ काम करने की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। महात्मा

खाखरेची-सत्याग्रह के नेता

श्री मणिलाल कोठारी

जी ने यह भार स्वीकार कर लिया है और सबसे पूर्व अहिंसा को धर्म माननेवाले चुने हुए ८० आश्रम-वासियों का एक दल साथ लेकर उन्होंने स्वयं नमक-सम्बन्धी कानूनों को तोड़ने के लिए युद्ध-यात्रा कर दी है, और संभवतः १ अप्रेल तक वह गन्तव्य स्थल पर पहुँचकर नमक बनाने का कार्य आरम्भ भी कर देंगे। युद्ध-यात्रा आरम्भ करने के एक सप्ताह पूर्व उन्होंने, सत्याग्रही की हैसियत से, अपनी योजना वाय-

सावेरचाँ के कुछ सत्याग्रही
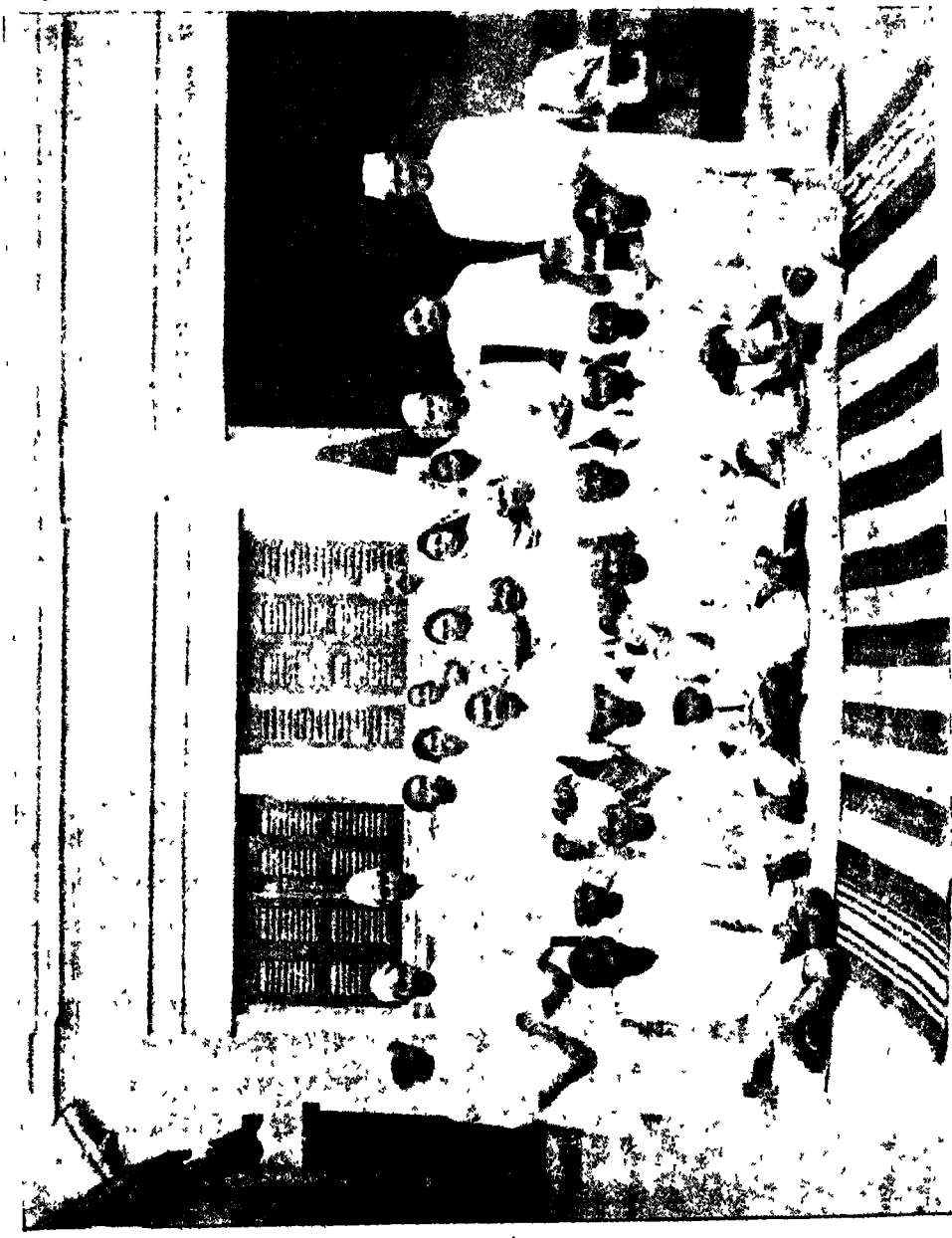
सराय के पास लिख भेजी थी और एक मित्रता-पूर्ण पत्र लिखकर (जिसमें भारत की बढ़ती हुई ग़रीबी और सरकार की अनीति का खाका खींचते हुए उसे रोकने का अनुरोध भी था जो अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है) यह विश्वास दिलाया था कि अब भी सरकार की नीति में परिवर्तन हो जाय, सेना का खर्च आधा कर दिया जाय, नमक-कर उठा दिया जाय तथा विनिमय-दर पहिले की भांति कर दी जाय तो सत्याग्रह स्थगित करके समझौते की बात-चीत चलाई जा सकती है। इस पत्र में ११ तारीख तक उत्तर देने की अवधि दी गई थी पर वायसराय ने महात्माजी के इस मित्रता-पूर्ण पत्र को भी ठुकरा दिया और प्राप्ति-स्वीकार के साधारण शिष्टाचार का पालन करने के सिवा और कुछ नहीं किया। महात्माजी ने स्वयं ही कहा है-"मैंने घुटने टेककर रोटी की प्रार्थना की थी किन्तु मुझे जवाब में पत्थर मिला है।"

दमन और सरकार की नीति

इसलिए वर्तमान अवस्था में, जबतक कोई आकस्मिक आमूल परिवर्तनकारी घटना न घट जाय तबतक, आगामी महीने एक विकट उथल-पुथलकारी अहिंसात्मक सत्याग्रह-संग्राम के महीने होंगे। इन पंक्तियों के लिखे जाने के बाद ही सूचना मिली है कि बारडोली के विजयी सेनापति तथा गुजरात के सर्व-स्वीकृत नेता श्री वल्लभ भाई बम्बई-जिला-पुलिस-कानून की ५४ धारा के अनुसार भाषण न देने की आज्ञा तोड़ने के अपराध में गिरफ्तार कर लिये गये और इसी कानून की धारा ७१ के अनुसार तीन महीने की सादी क़ैद एवं ५००) जुर्माना या उसके बदले तीन सप्ताह की अतिरिक्त क़ैद यानी कुल पौने चार महीने की सजा उन्हें होगई है। पौने चार महीने इसलिए कि वल्लभ भाई के सम्बन्ध में जुर्माना अदा करने की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। सत्याग्रह-युद्ध के इस प्रथम बलिदान का देश ने, गुजरात ने ख़ास तौर से, स्वागत किया है और राष्ट्रपति की आज्ञा के अनुसार समस्त भारत में १२ मार्च को सत्याग्रह-दिवस मनाया गया। सरकार की इस ग़लती और दमन-नीति का परिणाम, जैसा प्रत्येक देश में हुआ है, अच्छा ही होगा।

भारत के राष्ट्रीय इतिहास में बंगाल ने सदैव सबसे अधिक बलिदान की गाथा लिखने का प्रयत्न किया है। इस बार भी बंगाल क्षुब्ध हो रहा था। इसलिए सरकार ने उसके दोनों मुख्य नेताओं—श्री सुभाष बसु और श्री जे० एम० सेन गुप्त को—गिरफ्तार कर लिया है। अभी समाचार मिला है, कि, श्री० जे० एम० एस सेन गुप्त को १० दिन की सज़ा दी गई है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि अभीतक आगामी सत्याग्रह संग्राम के सम्बन्ध में सरकार की नीति निश्चित नहीं हुई है। वह घबड़ा-सी गई है और क्षण-क्षण उसके निश्चय बदलते प्रतीत होते हैं। संभावना तो यही है कि अभी एकाध महीने सरकार उग्र दमन-नीति का अवलम्बन नहीं करेगी। और बहुत होगा तो विशेष कानूनों को तोड़ने पर उन्हीं से सम्बन्ध रखनेवाली सज़ाओं का प्रयोग करेगी। यह तो निश्चित है कि आगे चलकर या तो सरकार, साइमन-कमीशन की रिपोर्ट के अनुकूल, समय और परिस्थिति की माँग के अनुसार, अपनी नीति में परिवर्तन करेगी या कठोर दमन-नीति का आश्रय लेगी।

विस्फ़ोट की भूमिका

इस बीच विभिन्न प्रान्तों में संगठन का काम जारी है। बाँदा जिला (जैसोर; बंगाल) में यूनियन बोर्ड की कर-बन्दी का आन्दोलन अब भी जारी है; इसके सम्बन्ध में ज़ब्तियाँ हुई हैं और ज़मीन तथा और चीज़ें नीलाम भी की गई हैं। फिर भी लोग दृढ़ हैं। खासरेची के सत्याग्रह के सफल होने की सूचना पिछले अंक में ही दी जा चुकी है। श्री मणिलाल कोठारी के सुचारु संगठन और उत्साह तथा उनके वीर साथियों के कारण यह आन्दोलन बहुत जल्द सफल हो हो गया। पवायाँ (शाहजहाँपुर; युक्त-प्रान्त) के किसानों ने भी कर-बन्दी का आन्दोलन चला रक्खा है। आगरा, दिल्ली, और प्रयाग में सत्याग्रह आरम्भ होने के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। बंगाल में तो सब प्रान्तों से पहले ही नमक बनाकर नमक के कानूनों को तोड़ने का आन्दोलन आरम्भ हो गया है। इस सम्बन्ध में गिरफ्तारियाँ और सज़ायें भी हुई हैं। जिस ज्वालामुखी का विस्फोट निकट भविष्य में होनेवाला है, ये सब चिनगारियाँ उसकी भूमिका है।

अहिंसा का वातावरण

सत्याग्रह-युद्ध के लिए देश में शान्ति और अहिंसा का वातावरण होना ज़रूरी है। हमारे प्रधान सेनापति महात्मा गाँधी की देश से यही एक माँग है। यों तो देश में दो-एक स्थानों से ऐसी हत्याओं या हत्या की चेष्टा करने के समाचार आये हैं, जिन्हें पुलिस ने राजनैतिक हत्या-कांड कहा है, पर साधारणतः देश ने महात्माजी के अनुरोध को स्वीकार कर लिया है, ऐसा मालूम होता है। जिन लोगों का अहिंसा की तात्विकता में विश्वास नहीं है या जिन्होंने उसे मानव-धर्म के रूप में अंगीकार नहीं किया है वे भी यदि विचार कर देखेंगे तो उन्हें नीति की दृष्टि से अहिंसा की उपयोगिता स्वीकार करनी पड़ेगी।

क़ैदियों के साथ व्यवहार

राजनैतिक क़ैदियों के निरन्तर उपवास और श्री यतीन्द्रनाथ के बलिदान के फल-स्वरूप जेल के नियमों में आवश्यक सुधार करने के लिए भारत-सरकार ने जो कमेटी बनाई थी, उसने अपनी रिपोर्ट दे दी और भारत-सरकार ने प्रान्तीय सरकार से इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को व्यावहारिक रूप देने का अनुरोध किया है - क्योंकि जेलों का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों के अधीन है। इन सिफ़ारिशों को हम सन्तोषजनक तो नहीं मान सकते पर ध्यान से देखने पर यह मालूम पड़ता है कि सरकार अब परिस्थिति के गुरुत्व को अनुभव करने लगी है। अभी तक व्यवहार में यूरोपीय एवं भारतीय क़ैदियों में जो भेद-भाव चला आता है, उसे एकदम से दूर कर देने का विश्वास दिलाया गया है और शिक्षा, रहन-सहन विचार एवं जीवन-मर्यादा के ख़्याल से क़ैदियों को सुविधायें देने की व्यवस्था की गई है। इससे क़ैदियों की चंद शिकायतें दूर हो जाने की आशा की जाती है पर मूल प्रश्न ज्यों का त्यों है और भारतीय जेल-जीवन की तुलना जब हम अन्य देशों की जेलों की अवस्था से करते हैं तो हमें अपनी असहाय अवस्था पर तरस आता है। ये सिफ़ारिशें व्यावहारिक जेल-जीवन में कहाँ तक कार्यान्वित हो सकेंगी, इसका पता नहीं। अभी तो काकोरी के कितने ही क़ैदी दुर्व्यवहार के कारण अनशन कर रहे हैं।

पूर्ण स्वतंत्रता के निश्चय का प्रभाव

जब से लाहौर-कांग्रेस ने ब्रिटिश-साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़कर पूर्ण स्वतंत्रता-प्राप्ति को राष्ट्र का ध्येय बनाया है तब से देश की परिस्थिति बहुत बदल गई है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस निश्चय ने कई स्वतंत्र देशों का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया है। अमेरिका के कितने ही स्वतंत्र विचारकों ने इस पर हर्ष प्रकट किया है तथा वहाँ की राष्ट्र-सभा में एक सदस्य ने तो भारतीय स्वतंत्रता के निश्चय का समर्थन करने और शीघ्र से शीघ्र उसे स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव भी पेश कर दिया।

जहाँ विदेशों में इसका प्रभाव पड़ा वहाँ भारतीय राजनैतिक परिस्थिति में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये हैं। अब हम उसी जगह पहुँच गये हैं जहाँ सब लोग, सब नीतियों को माननेवालों को गले में बाँध कर चलना असंभव हो गया है। पिछले तीन-चार वर्षों के अन्दर सब दलों को एकत्र करके साथ-साथ आगे बढ़ने का जो आन्दोलन चलता रहा है, उसका अब अन्त हो गया है और एक प्रकार से इस समय देश में दो ही प्रधान दल रह गये हैं। एक वह जो देश की स्वतंत्रता के लिए अवैध उपायों का भी उपयोग करने का हामी है और दूसरा वह जो केवल वैध उपायों से, क़ानूनी दाव-पेच के अन्दर, कौंसिलों में विचार करके या देश में ज़बानी विरोध की लहर दौड़ाकर ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहता है। इन दोनों दलों में भी कई उपविभाग हैं पर उनमें अन्तर नीति का है, उद्देश्य का नहीं।

कांग्रेस के निश्चय के बाद से जहाँ पहला दल देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने में जुट पड़ा है और अपने त्याग एवं बलिदान-द्वारा देश की खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त करने में सचेष्ट है वहाँ दूसरा वैधदल अख़बारों और सभाओं-द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तर्क-वितर्क और दलीलों का एक माया-जाल खड़ाकर रहा है। इस दल के प्रमुख नेता सर तेज बहादुर सप्रू की चेष्टा से शांति-

गत समस्याओं का समुचित निबटारा करने के लिए दिल्ली में सब जातियों के नेताओं की एक कान्फ्रेन्स बुलाई थी। इसे उनके दल के कई समाचार-पत्रों ने 'सर्व-दल-सम्मेलन' कह कर पुकारा है यद्यपि देश के सब से बड़े और शक्तिशाली कांग्रेस दल का इसमें ज़रा भी सहयोग नहीं है। अन्त में जो होना था, वही हुआ। किसी ख़ास और निश्चित निर्णय पर पहुँचने के पहले ही यह सम्मेलन स्थगित कर देना पड़ा।

श्री पटेल-क़ेरार का झगड़ा

पिछले महीने बड़ी व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष श्री पटेल और स्वराष्ट्र-सदस्य श्री क़ेरार में तनातनी हो जाने के कारण एक विकट स्थिति उत्पन्न हो गई थी। पाठकों को मालूम है कि जब से बड़ी व्यवस्थापिका सभा में बम फेंके गये तभी से पुलिस का वहाँ ख़ास तौर से इन्तज़ाम रहा है। इसके सम्बन्ध में उचित व्यवस्था करने के लिए अध्यक्ष पटेल ने स्वराष्ट्र-सदस्य की अध्यक्षता में एक जाँच-कमेटी बनाई थी। उसने रिपोर्ट की कि पार्लमेंट की तरह यहाँ भी व्यवस्थापक सभा के अन्दर पुलिस को नहीं आना चाहिए और रक्षा के लिए अध्यक्ष की सम्मति से ही कुछ दूसरा प्रबन्ध किया जाना चाहिए। पर सरकार की हठधर्मी के कारण पुलिस बराबर वहाँ अड़ी रही जिससे मजबूर होकर अध्यक्ष ने दर्शकों की गैलरी ही बन्द करा दी। बातें बढ़ती गईं पर अन्त में वायसराय और असेम्बली के विभिन्न दलों के कई नेताओं के प्रयत्न से आपस में एक प्रकार का समझौता हो गया है। इसमें ऊपर से देखने में तो अध्यक्ष को ही बड़ी व्यवस्थापिका सभा के भवन के अन्दर सर्वोच्च अधिकारी मान लिया गया है पर सरकार ने कुछ ऐसी बातें रक्खी हैं जिनकी ओट में पुलिस और सरकार जब चाहे इन मामलों में दस्तंदाज़ी कर सकती है। असल बात यह है कि कांग्रेस के सदस्यों के असेम्बली से अलग हो जाने के कारण अध्यक्ष के विरोधियों की संख्या ज़्यादा हो गई है, और उनका ज़ोर कम हो गया है।

मज़दूरों की हालत

केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही देश में संघर्ष और उथल-पुथल के दृश्य दिखाई पड़ते हों, सो बात नहीं है। औद्योगिक, व्यापारिक और सामाजिक क्षेत्रों का भी वही हाल है। विगत १५ वर्षों के अन्दर भारत में मज़दूरों की समस्या बड़ी विकट हो गई है और दिन-दिन उसकी जटिलता बढ़ती जाती है। इसका मुख्य कारण तो विदेशी सरकार और उसके इशारे पर विदेशी एवं मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारियों-द्वारा चलाई जानेवाली लूट है जिसने अपनी बड़ी पूंजी और सुविधा-जन्य होड़ के कारण भारतीय व्यवसाय और उद्योग-धन्धों की रीढ़ ही तोड़ दी है पर इसके अतिरिक्त मालिकों की ओर से भी मज़दूरों के प्रश्नों के सम्बन्ध में उदासीनता और उपेक्षा का व्यवहार अधिक होता है। जिसका परिणाम दोनों के लिए अच्छा नहीं हो रहा है। कलकत्ता की जूट-मिलों और अहमदाबाद की मिलों की हालत कुछ अच्छी है पर बम्बई में मज़दूरों का समस्या दिन-दिन जटिल होती जाती है।

जी० आई० पी० रेलवे के मज़दूरों की अनेक शिकायतें बहुत दिनों से चली आती थीं। जब कुछ न हुआ तो मज़बूर होकर उन्होंने हड़ताल कर दी। हफ्तों तक जारी रहने के बाद अब यह हड़ताल ख़त्म होने आई थी, परन्तु रेलवे ने हड़तालियों को काम पर लेने से इनकार कर दिया, इसलिए वह अभी जारी है।

बजट

इस साल का भारत-सरकार का बजट दिवालिया-सा दीख पड़ता है। लगभग ५ करोड़ ५४ लाख का घाटा होने की सम्भावना है जिसके लिए कई नये कर लगाये गये हैं या पुराने करों में वृद्धि की गई है। दिखाने के लिए विदेशी वस्त्रों पर आयात-कर बढ़ा दिया गया है पर इसमें भी इंग्लैण्ड के माल की अपेक्षा अन्य देशों के माल पर अतिरिक्त कर लगाने की सिफ़ारिश बड़ी व्यवस्थापिका सभा से की गई है। यह एक माया-जाल-सा है।

भारतीय व्यापारोद्योग-संघ के सभापति की हैसियत से श्री घनश्यामदास जी बिड़ला ने विगत १४ फ़रवरी को दिल्ली में जो भाषण किया उससे देश की दिन-दिन गिरती हुई आर्थिक-अवस्था का अच्छा ज्ञान होता है।

इससे मालूम होता है कि औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में भी एक विचित्र लूट विदेशों-द्वारा जारी है और भारतीय व्यापार नष्ट होता जा रहा है।

सामाजिक क्षेत्र

सामाजिक क्षेत्र में भी हलचल जारी है। अखिल एशिया-महिला-सम्मेलन की तैयारियाँ जारी हैं। राष्ट्रीय भावनाओं का तूफ़ान ज्यों-ज्यों बढ़ रहा है, अछूतों का प्रश्न भी सुलझता जाता है। बाल विवाह-निषेधक कानून के विरोधियों की आवाज़ पहले से मन्द पड़ गई है।

मतलब यह कि सारे देश में एक हलचल, संघर्ष और अशान्ति मची हुई है और सारा देश सत्याग्रह-संग्राम के बढ़ते हुए प्रवाह की ओर एकटक देख रहा है।

'सुमन'

वाइसराय के नाम गांधीजी का पत्र

यह राज्य एक बला है

सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती
२ मार्च १९३०

प्रिय मित्र,

निवेदन है कि इसके पहले कि मैं सविनय कानून-भंग शुरू करूँ, और शुरू करने पर जिस जोखम को उठाने के लिए मैं इतने सालों से हिचकिचाता रहा हूँ उसे उठाऊँ, इस उम्मीद से मैं आपको यह पत्र लिखने जा रहा हूँ कि अगर समझौते का कोई रास्ता निकल सके तो उसे कर देखूँ।

अहिंसा में मेरा विश्वास तो ज़ाहिर ही है। जान-बूझ कर मैं किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं कर सकता, तो फिर मनुष्य-हिंसा की तो बात ही क्या है? फिर भले ही उन मनुष्यों ने मेरा या जिन्हें मैं अपना समझता हूँ, उनका बड़े से बड़ा अहित ही क्यों न किया हो। इसलिए यद्यपि अंग्रेज़ी सल्तनत को मैं एक बला मानता हूँ तो भी मैं यह कभी नहीं चाहता कि एक भी अंग्रेज़ को या भारत में उपार्जित उसके एक भी उचित हित को किसी तरह का नुक़सान पहुँचे।

गलतफ़हमी से बचने के लिए मैं अपनी बात को ज़रा और साफ़ किये देता हूँ। यह सच है कि मैं भारत में अंग्रेज़ी राज्य को एक बला मानता हूँ। लेकिन इसके कारण मैंने यह तो कभी सोचा ही नहीं कि सबके सब अंग्रेज़ दुनिया के दूसरे लोगों के मुक़ाबले ज़्यादा दुष्ट हैं। बहुतेरे अंग्रेज़ों के साथ गहरी दोस्ती रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है; यही नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी राज्य ने हिन्दुस्थान को जो नुक़सान पहुँचाया है उसके बारे में बहुतेरी हक़ीक़तें तो मुझे उन अनेक अंग्रेज़ों की लिखी हुई किताबों से ही मालूम हुई हैं, जिन्होंने सत्य को उसके सच्चे रूप में निडरता-पूर्वक प्रकट किया है। और उसके लिए मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ।

तो फिर मैं किस कारण अंग्रेज़ी राज्य को शाप रूप मानता हूँ?

कारण ये हैं: इस राज्य ने एक ऐसा तंत्र खड़ा कर लिया है कि जिसकी वजह से मुल्क हमेशा के लिए बढ़ते हुए परिमाण में बराबर चूसा जाता रहे; अलावा इसके, इस तंत्र का फ़ौजी और दीवानी ख़र्च इतनी ज़्यादा तबाही करनेवाला है कि मुल्क उसे कभी बरदाश्त नहीं कर सकता। नतीजा इसका यह हुआ है कि हिन्दुस्थान के करोड़ों बेज़बान लोग आज कंगाल बन गये हैं।

राजनैतिक दृष्टि से इस राज्य ने हमें लगभग गुलाम बना छोड़ा है। इसने हमारी संस्कृति और सभ्यता की बुनियाद को ही उखेड़ना शुरू कर दिया है। और, लोगों से हथियार छीन लेने की सरकारी नीति ने तो हमारी मनुष्यता को ही कुचल डाला है। संस्कृति के नाश से हमारी जो आध्यात्मिक हानि हुई, उसमें हथियार न रखने के क़ानून के और बढ़ जाने से देश के लोगों की मनोदशा डरपोक और बेबस गुलामों की-सी हो गई है।

'नीयत ही न थी'

अपने दूसरे कई भाइयों के साथ-साथ मैं भी यह आशा लगाये बैठा था कि आपके द्वारा प्रस्तावित गोल मेज़-परिषद् से ये सब शिकायतें रफ़ा हो सकेंगी। लेकिन अब आपने मुझे साफ़-साफ़ कह दिया कि औपनिवेशिक स्वराज्य—डोमीनियन स्टेटस—की किसी भी योजना का समर्थन करने का आश्वासन देने के लिए आप या ब्रिटिश मंत्रि-मंडल तैयार नहीं हैं, तब मैंने महसूस किया कि हिन्दुस्थान के समझदार लोग स्पष्ट ज्ञानपूर्वक और अज्ञान के कारण चुप रहनेवाले करोड़ों देशवासी धुंधली-सी समझ के साथ जिन दुःखों को मिटाने के लिए तरस रहे हैं, इस गोल-मेज़-परिषद् में उसका कोई इलाज नहीं हो सकता। यहाँ यह कहने की तो शायद ही ज़रूरत हो कि इस मामले में पार्लमेंट को आख़िरी फ़ैसला करने का जो हक़ है, उसे छीन लेने का तो कोई सवाल ही नहीं था। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें मन्त्रि-मण्डल ने इस आशा से कि पार्लमेण्ट की अनुमति या इजाज़त मिलेगी ही, पहले ही से अपनी नीति ठहरा ली थी।

इस तरह दिल्ली की मुलाक़ात का कोई नतीजा न निकलने से सन् १९२८ में कलकत्ते की महासभा ने जो गंभीर प्रस्ताव किया था उसका अमल कराने की पैरवी करने के सिवा पंडित मोतीलालजी के और मेरे सामने दूसरा कोई रास्ता ही नहीं रह गया था।

पर आपकी घोषणा में जिस 'डोमिनियन स्टेटस' शब्द का ज़िक्र है, *अगर वह शब्द उसके सच्चे अर्थ में* प्रयुक्त किया गया होता तो आज 'पूर्ण स्वराज्य' के प्रस्ताव से भड़कने का कोई कारण ही न था। क्योंकि 'डोमीनियन स्टेटस' का अर्थ लगभग पूर्ण स्वाधीनता ही है। इस बात को प्रतिष्ठित ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने ख़ुद ही कबूल किया है, और इससे कौन इनकार कर सकता है? लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की यह नीयत ही कभी नहीं थी कि भारतवर्ष को शीघ्र ही 'डोमीनियन स्टेटस' दे दिया जाय।

लेकिन ये तो सब गई-गुज़री बातें हैं। आपकी घोषणा के बाद तो ऐसी अनेक घटनायें घट चुकी हैं, जिनसे ब्रिटिश राजनीति का रुख़ साफ़ ही ज़ाहिर हो जाता है।

हिंदुस्थान को पीस डालनेवाला तंत्र

यह बात रोज़-रोशन की तरह साफ़ ज़ाहिर है कि जिन राजनैतिक परिवर्तनों से भारत के साथ इंग्लैण्ड के व्यापार को ज़रा भी नुक़सान पहुँचने की संभावना हो, और भारत के साथ इंग्लैण्ड के आर्थिक लेन-देन के औचित्य-अनौचित्य की गहरी छान-बीन के लिए एक निष्पक्ष पंचायत मुक़र्रर करनी पड़े, वैसे राजनैतिक हेर-फेर होने देने की नीति अख़्तियार करने की ओर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का ज़रा भी रुख़ नहीं पाया जाता है। पर अगर हिंद को चूसते रहनेवाले इस तर्ज़ेअमल का ख़ात्मा करने का कोई इलाज न किया गया तो हिंद की बर्बादी की चाल रोज़-बरोज़ तेज़ ही होनेवाली है। आपके अर्थ-सचिव या ख़ज़ांची कहते हैं कि १८ पेन्स की विनिमय की दर तो विधि की लकीर की तरह अमिट है। इस तरह क़लम के एक इशारे से भारतवर्ष के करोड़ों रुपये बाहर खिंचे चले जाते हैं। और जब इस, और ऐसी दूसरी बहुतेरी विधि की लकीरों को मेटने के लिए सत्याग्रह या सविनय क़ानून-भंग की आज़माइश करने का गंभीर प्रयत्न शुरू किया जाता है, तो आप भी धनवानों और ज़मींदारों वग़ैरा से यह अनुरोध किये बिना नहीं रहते कि वे देश में अमन-क़ानून की रक्षा के लिए ऐसे आन्दोलनों को कुचलने में आपकी मदद करें। लेकिन आपके इस अमन क़ानून के भार से दबकर भारत का सत्यानाश हो रहा है।

जो लोग जनता के नाम से काम कर रहे हैं, वे अगर आज़ादी की लगन के वजूहात को—स्वाधीनता की रट के उद्देश्य को, साफ़ तौर से न समझें और अपनी बात को आप लोगों के सामने न रखते रहें तो अन्देशा यह है कि जिनके लिए आज़ादी चाही जाती है, और हासिल करने के लायक़ है, उन रात-दिन एड़ी-चोटी का पसीना एक करनेवाले करोड़ों बेज़बानों के लिए यह आज़ादी इतने बोझ से लदी हुई—दबी हुई मिलेगी कि उनके लिए उसका कोई मूल्य ही न रहेगा। इसीलिए इधर कुछ दिनों से मैं लोगों को

आज़ादी का—स्वतंत्रता का सच्चा मतलब समझा रहा हूँ।

अब इस सम्बन्ध की कुछ खास बातें आपके सामने पेश करने का साहस करता हूँ।

सच्ची आज़ादी किसमें है ?

जिस मालगुज़ारी से सरकार को इतनी अधिक आमदनी होती है, उसीके भार से रिआया का दम निकला जा रहा है। स्वतंत्र भारत को इस नीति में बहुत कुछ हेरफेर करना होगा। जिस स्थायी बन्दोबस्त की तारीफ़ के पुल बाँधे जाते हैं, उससे सिर्फ़ मुट्ठी-भर धनवान ज़मींदारों को ही फ़ायदा पहुँचता है; आम रिआया को नहीं। इसीलिए मालगुज़ारी को बहुत-कुछ घटाने की ज़रूरत है। यही नहीं बल्कि रैयत के भले को ही ख़ास ध्येय बनाकर लगान की सारी नीति को ही बदल डालने और नई नीति क़ायम करने की बड़ी भारी आवश्यकता है। लेकिन सरकार की नीति से तो यह मालूम होता है कि वह जनता के प्राणों को भी चूस लेने के इरादे से ठहराई गई है। नमक-जैसी रात-दिन की जरूरी चीज पर भी, जिसके बिना करोड़ों का काम चल ही नहीं सकता, महसूल का बोझ इस तरह लाद दिया गया है कि उसका भार ख़ास कर गरीबों पर ही ज़्यादा पड़ता है। कहा जाता है कि यह कर निष्पक्ष हो कर वसूल किया जाता है, पर इसकी निष्पक्षता ही तो निर्दयता है। नमक ही एक ऐसी चीज़ है, जिसे धनवान या अमीर व्यक्तियों अथवा समुदायों के मुक़ाबले में गरीब लोग अधिक खाते हैं। इस बात का विचार करने से हमें पता चलता है कि गरीबों के लिए यह कर कितना भार-रूप है। शराब और दूसरी नशीली चीज़ों से होनेवाली आमदनी का जरिया भी ये गरीब ही हैं। ये चीज़ें लोगों की तन्दुरुस्ती और नीति को जड़मूल से मिटानेवाली हैं। पर व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के बहाने, जो कि झूठा बहाना है, इसका बचाव किया जाता है; सच तो यह है कि इनसे जो आमदनी होती है उस आमदनी के लिए ही ये विभाग क़ायम हैं। सन् १९१९ में जो सुधार जारी किये गये, उनके अनुसार इन मदों की आमदनी चतुराई के साथ नामधारी निर्वाचित मन्त्रियों के ज़िम्मे कर दी गई, जिससे सब तरह की नशीली चीज़ों का व्यवहार बन्द करने से होनेवाला अधिक नुकसान उन्हें ही सहना पड़े, और इस तरह शुरुआत ही से देश-हित के काम करना उनके लिए नामुमकिन हो जाय। अगर कोई अभागा मंत्री इस आमदनी से हाथ धोना चाहे भी तो वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि उस हालत में उसे शिक्षा-विभाग बन्द कर देना पड़ता है, और मौजूदा हालत में शराब के बजाय आमदनी का कोई दूसरा जरिया पैदा करना उनके लिए मुमकिन नहीं है। इस तरह गरीबों को इन करों के बोझ तले पिसने का ही दुःख नहीं है, वे इसलिए भी दुखी हैं कि उनकी आमदनी को बढ़ानेवाला चर्खे-जैसा गृह-उद्योग नष्ट कर दिया गया है और इस तरह उन्हें आमदनी के इस जरिये से जबर्दस्ती महरूम रक्खा गया है—वंचित किया गया है।

हिन्दुस्थान की तबाही का यह दर्द-भरा किस्सा अधूरा ही कहा जायगा, जबतक हिन्द के नाम जो कर्ज़ा लिया गया है, उसका ज़िक्र इस सिलसिले में न किया जाय। लेकिन इस बारे में इन दिनों अखबारों में काफी चर्चा हो चुकी है, अतः विस्तार के साथ इसका ज़िक्र करना अनावश्यक है। यह कहना ही काफी होगा कि इस तरह के तमाम कर्ज़ों की पूरी-पूरी जाँच एक निष्पक्ष पंचायत द्वारा कराई जानी चाहिए। इस जाँच के फलस्वरूप जो कर्ज़ अन्यायपूर्ण और अनुचित ठहराया जायगा उसे देने से इन्कार करना ही आज़ाद हिन्दुस्थान का सच्चा फर्ज़ होगा।

इस तंत्र को तिलाञ्जलि दो

यह जाहिर है कि मौजूदा विदेशी सरकार दुनिया-भर में ज्यादा से ज्यादा खर्चीली है और इसे बनाये रखने की गरज से ही ये सारे पाप किये जा रहे हैं। आप अपने वेतन को ही लीजिए। वह माहवार २१,०००) रु० से भी ज्यादा है। सिवा इसके, उसमें भत्ता और दूसरे सीधे-टेढ़े आमदनी के जरिये हैं ही। इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री की तनख्वाह से इसका मुक़ाबिला कीजिए। उन्हें सालाना ५००० पौंड, याने मौजूदा दर के हिसाब से माहवार ५४००) रु० से कुछ अधिक मिलता है। जिस देश में हर एक आदमी की औसत रोजाना आमदनी दो आने से भी कम है उस देश में आपको रोजाना ७००) से भी अधिक मिलते हैं; उधर इंग्लैण्ड के बाशिन्दे की औसत दैनिक आय लगभग २) मानी जाती है और

प्रधान मंत्री को रोज़ाना सिर्फ़ १८०) ही मिलते हैं। इस तरह आप अपनी तनख्वाह के रूप में ५००० से भी अधिक भारतीयों की औसत कमाई का हिस्सा ले लेते हैं; उधर इंग्लैंड के प्रधान मंत्री सिर्फ़ ९० अंग्रेज़ों की कमाई ही लेते हैं। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप इस आश्चर्यजनक विषमता पर ध्यानपूर्वक थोड़ा विचार कर देखें। एक कठोर पर सच्ची हक़ीक़त को ठीक से समझाने के लिए मुझे आपका व्यक्तिगत उदाहरण पेश करना पड़ता है, नहीं तो ज़ाती तौर पर मेरे दिल में आपके लिए इतनी इज़्ज़त है कि मैं ऐसी कोई बात आपके बारे में नहीं कहना चाहूँगा, जिससे आपके दिल को ठेस पहुँचे। मैं जानता हूँ कि आप नहीं चाहते कि आपको इतनी ज्यादा तनख्वाह मिले। मुमकिन है कि आप अपनी सारी की सारी तनख्वाह दान में दे डालते हों। पर जिस राज्य-प्रणाली ने ऐसी खर्चीली व्यवस्था बना रक्खी है, उसे तुरन्त तिलांजलि देना ही उचित है। जो दलील आपकी तनख्वाह के लिए ठीक है, वही सारे राज्य-तंत्र पर लागू होती है।

थोड़े में बात यह है कि जब राज्य-प्रबन्ध के खर्च में बहुत ज्यादा कमी कर दी जायगी, तभी राज्य की आमदनी में भी बहुत-कुछ कमी की जा सकेगी। और यह तभी हो सकता है, जब कि राज-काज की सारी नीति ही बदल दी जाय। इस तरह का परिवर्त्तन बिना स्वतंत्रता के हो नहीं सकता। मेरी राय में इन्हीं भावों से प्रेरित होकर २६ जनवरी के दिन लाखों ग्रामवासी स्वतंत्रता-दिवस मनाने के लिए की गई सभाओं में अपने आप सहज ही शामिल हुए थे। उनके मन में तो स्वाधीनता का मतलब उक्त कुचल डालनेवाले बोझों से छुटकारा पाना है।

इंग्लैंड जिस तरह इस देश को लूट रहा है, सारा हिन्दुस्थान उसका एक स्वर से विरोध कर रहा है, तो भी मैं देखता हूँ कि इंग्लैंड का कोई भी बड़ा राजनैतिक दल इस लूट को बन्द करने के लिए तैयार नहीं है।

अहिंसा ही यम-पाश से छुड़ा सकती है

पर भारतीय जनता को ज़िन्दा रखने और अन्न की कमी के कारण धीरे-धीरे होनेवाले उसके विनाश को अटकाने के लिए शीघ्र ही कोई न कोई इलाज तो ढूँढ ही निकालना होगा—सिवा इसके और कोई चारा ही नहीं है। आपके द्वारा प्रस्तावित परिषद् वह इलाज नहीं है। दलीलों से बुद्धि को विश्वास कराने का अब कोई सवाल ही नहीं रहा है; अब तो सिर्फ़ दो परस्पर-विरोधी ताक़तों की मुठभेड़ का सवाल ही बाक़ी रहता है। उचित हो या अनुचित, इंग्लैण्ड तो अपनी पाशवी ताक़त के बल पर ही भारत के साथ के व्यापार को और भारत में रहे हुए अपने स्वार्थों को बनाये रखना चाहता है। इस यम-पाश से छुटकारा पाने के लिए जितनी ताक़त ज़रूरी है, वह ताक़त इकट्ठा करना अब भारत के लिए लाज़िमी हो गया है।

इसमें तो किसी भी पक्ष को शक नहीं है कि हिन्दुस्थान में जो हिंसक दल है, भले आज वह असंगठित और उपेक्षणीय हो, फिर भी, दिनोंदिन उसका बल बढ़ता जा रहा है और वह प्रभावशाली बन रहा है। उस दल का और मेरा ध्येय तो एक ही है; पर मुझे यक़ीन है कि हिन्दुस्थान के करोड़ों लोगों को जिस आज़ादी की ज़रूरत है, वह इनके दिलाये नहीं मिल सकती। अलावा इसके मेरा यह विश्वास दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है कि शुद्ध अहिंसा के सिवा और किसी भी तरीक़े से ब्रिटिश सरकार की यह संगठित हिंसा रोकी नहीं जा सकेगी। बहुतेरे लोगों का यह ख़याल है कि अहिंसा में कार्य-साधक शक्ति नहीं होती। यद्यपि मेरा अनुभव एक ख़ास हद तक ही सीमित रहा है, तो भी मैं यह जानता हूँ कि अहिंसा में ज़बर्दस्त कार्य-साधक शक्ति है। ब्रिटिश सल्तनत की संगठित हिंसा-शक्ति और देश के हिंसक दल की असंगठित हिंसा-शक्ति के मुक़ाबिले में इस ज़बर्दस्त अहिंसक शक्ति को खड़ी करने का मेरा इरादा है। मगर मैं हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा तो इन दोनों हिंसक शक्तियों को निरंकुश होकर खुल खेलने का मौक़ा मिल जायगा। अपनी बुद्धि के अनुसार मुझे अहिंसा की अमोघ शक्ति में निःशंक और अविचल श्रद्धा है। इतना होते हुए भी अगर मैं इस शक्ति का प्रयोग करने के बजाय चुपचाप बैठा रहूँ तो मैं समझता हूँ कि मुझे पाप लगेगा।

यह अहिंसा-शक्ति सविनय भंग द्वारा व्यक्त होगी। फ़िलहाल तो सिर्फ़ सत्याग्रह-आश्रम के लोगों द्वारा ही इस-

की शुरुआत होगी, लेकिन बाद में तो जो इस नीति की स्पष्ट मर्यादाओं को क़ायम रक्खेंगे, वे सब इसमें शामिल हो सकेंगे। यही सोचा गया है।

बग़ैर जोखम के जीत कहाँ?

मैं जानता हूँ कि अहिंसात्मक संग्राम शुरू करके मैं पागलों का-सा साहस कर रहा हूँ, वैसा जोखम उठा रहा हूँ। लेकिन भारी से भारी जोखम उठाये बिना सत्य की कभी जीत नहीं हुई है। जो लोग अपने से ज्यादा बहु-संख्यक पुराने और अपने समान ही सभ्य-संस्कृत लोगों का जाने-अजाने नाश कर रहे हैं, उन लोगों के हृदय को बदल देने के लिए जितना जोखम उठाना पड़े, कम ही है।

अंग्रेज़ों की सेवा ही मेरा उद्देश है

'हृदय को बदल देने' की बात मैं जान-बूझकर कह रहा हूँ। क्योंकि मैं अहिंसा-द्वारा अंग्रेज़ लोगों के हृदय को इस तरह बदला चाहता हूँ कि जिससे वे यह साफ़-साफ़ देख सकें कि उन्होंने हिन्दुस्थान को कितना नुकसान पहुँचाया है। मैं आपके देशभाइयों का बुरा नहीं चाहता। अपने देशभाइयों की तरह ही मैं उनकी भी सेवा किया चाहता हूँ। मैं मानता हूँ कि मैंने हमेशा उनकी सेवा ही की है। सन् १९१९ तक मैंने आँखें बंद करके उनकी सेवा की। लेकिन जब मेरी आँखें खुलीं और मैंने असहयोग की आवाज़ बुलन्द की तब भी मेरा मक़सद उनकी सेवा करना ही था। जिस हथियार का मैंने अपने प्रिय से प्रिय संबंधी के ख़िलाफ़ नम्रता से पर कामयाबी के साथ इस्तेमाल किया है, वही हथियार मैंने सरकार के खिलाफ भी उठाया है। अगर यह बात सच है कि मैं भारतीयों के समान ही अंग्रेज़ों को भी चाहता हूँ, तो यह ज्यादा देर तक छिपी नहीं रहेगी। बरसों तक मेरी परीक्षा लेने के बाद जैसे मेरे कुनबेवालों ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है, वैसे ही अंग्रेज़ भी किसी दिन कबूल करेंगे। मुझे उम्मीद है कि इस लड़ाई में आम रिआया मेरा साथ देगी, और अगर उसने साथ दिया तो—सिवा उस हालत के कि अंग्रेज़ लोग समय रहते ही समझ जायँ— देश पर आफत और दुःख के जो पहाड़ टूट पड़ेंगे, उनके कारण वज्र से भी कठोर दिलवालों के दिल पसीज जायँगे।

सविनय भंग-द्वारा सत्याग्रह करने की योजना में उक्त अन्यायों का विरोध करना ख़ास बात होगी। ब्रिटिश या अंग्रेज़ जनता के साथ का सम्बन्ध तोड़ डालने की हमारी इस इच्छा का कारण ऊपर गिनाये गये ये अन्याय ही हैं। इनके मिटने ही से रास्ता साफ़ होगा। और फिर सुलह के लिए दर्वाज़े खुल जायँगे। भारत के साथ अंग्रेज़ों के व्यापार में से लोभ का पाप धुल जाय तो हमारी आज़ादी को कबूल करने में अंग्रेज़ों को कोई कठिनाई न हो। मैं आपसे सादर प्रार्थना करता हूँ कि आप इन अन्यायों को स्वीकार करें, इन्हें तत्काल दूर करने का कोई रास्ता निकालें, और इस तरह सारी मानव-जाति के कल्याण के उपायों को ढूँढ निकालने की इच्छा से कोई ऐसा तरीक़ा इख्तियार करें कि जिससे दोनों पक्ष बराबरी के नाते सलाह करने को इकट्ठा हों। ऐसा करने से अपने आप ही दोस्ती बँधेगी। और दोनों देश एक दूसरे की मदद के लिए तैयार रहने तथा दोनों को अनुकूल हो पड़े इस तरह व्यापार करने की नीति ठहरा सकेंगे। दुर्भाग्य से देश में आज जो जातिगत झगड़े फैले हुए हैं उन्हें आपने बिला वजह ज़रूरत से ज्यादा महत्व दिया है। राजनैतिक विधान की किसी भी योजना के बनाने में इन बातों का महत्व अवश्य है, लेकिन जो सवाल जातिगत झगड़ों से परे हैं और जिनके कारण सब जातियों को समान रूप से हानि उठानी पड़ती है, उन सवालों का इन झगड़ों से कोई सरोकार ही नहीं है।

अगर आप न सुनेंगे तो—

लेकिन अगर ऊपर लिखी बुराइयों को दूर करने का कोई इलाज आप नहीं ढूँढ निकालेंगे और मेरे इस पत्र का आप पर कोई असर न होगा, तो इस महीने की ग्यारहवीं तारीख को मैं अपने आश्रम के जितने साथियों को ले जा सकूँगा उतने साथियों के साथ नमक-सम्बन्धी क़ानून को तोड़ने के लिए क़दम बढ़ाऊँगा। गरीबों के दृष्टि-बिन्दु से यह क़ानून मुझे सबसे ज्यादा अन्यायपूर्ण मालूम हुआ है। आज़ादी की यह लड़ाई ख़ासकर देश के गरीब से गरीब लोगों के लिए है। अतः यह लड़ाई इस अन्याय के विरोध से ही शुरू की जायगी। आश्चर्य तो यह है कि हम इतने सालों तक इस क्रूर एकाधिकार को मानते रहे। मैं जानता हूँ

कि मुझे गिरफ्तार करके मेरी योजना को निष्फल बना देना आपके हाथ में है। परन्तु मुझे उम्मीद है कि मेरे बाद लाखों आदमी संगठित होकर इस काम को उठा लेंगे, और नमक-कर का जो कानून कभी बनना ही न चाहिए था उसे तोड़-कर कानून की रू से होने वाली सजा को भोगने के लिए तैयार रहेंगे।

अगर सम्भव होता तो मैं आपको फिजूल ही—या ज़रा भी—धर्म-संकट में डालना नहीं चाहता। यदि आपको मेरे पत्र में कोई तत्व की बात मालूम हो और मुझसे वार्तालाप करने जितना महत्व आप उसे देना चाहें और इसलिए इस पत्र को छापने से रोकना पसन्द करें, तो इस पत्र के मिलते ही बज़रिये तार मुझे इत्तला दीजिएगा। मैं खुशी से इसे छापना मुल्तवी कर दूंगा। किन्तु अगर मेरे पत्र की ख़ास-ख़ास बातों को मंजूर करना आपको नामुमकिन मालूम होता हो तो मुझे पथ से लौटाने का प्रयत्न न कीजिएगा, यही प्रार्थना है।

यह पत्र धमकी के लिए नहीं लिखा है, बल्कि सत्याग्रही के सरल और पवित्र धर्म का पालन करने के लिए लिखा है। इसलिए मैं यह पत्र एक अंग्रेज नौजवान के हाथों आप तक पहुँचाने का खास तरीक़ा अख्तियार कर रहा हूँ। यह नौजवान भारत की लड़ाई को इन्साफ़ की लड़ाई मानते हैं। अहिंसा में इन्हें पूरी श्रद्धा है और मानों ईश्वर ने इस पत्र के लिए ही इन्हें मेरे पास भेज दिया हो, इस तरह ये मेरे पास आ पहुँचे हैं। इति।

आपका सच्चा मित्र,
मोहनदास करमचंद गांधी

ऋद्धि-सिद्धि

देश की बढ़ती हुई ग़रीबी

जो देश एक समय संसार के सम्पन्नतम और परम-समृद्ध देशों में अग्रगण्य था, वह आज संसार का सबसे पीड़ित, उपेक्षित और ग़रीब अंग हो जाने के कारण विश्व-समस्या में एक विकट पहेली बन गया है। अभी दो-ढाई सौ वर्ष पहले भी जहाँ के अनेक नगर लन्दन से भी अधिक वैभवपूर्ण समझे जाते थे, वहाँ आज असंतोष, अशांति, भूख और ग़रीबी का राज है। विदेशी पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों—दोनों के शिकंजों में दबकर यहाँ के मज़-दूर और किसान तो दिन-दिन ग़रीब होते ही जाते हैं पर बड़े-बड़े स्वदेशी व्यापारी और पूँजीपति भी इनके धक्के से अस्थिर हो रहे हैं और उनका व्यापार नष्ट होता जा रहा है।

सच बात तो यह है कि गुलामी एक ऐसा विष है जिसके कारण समाज और देश का सम्पूर्ण वातावरण ही घातक हो उठा है। हमारा आध्यात्मिक ध्येय नष्ट हो गया है; नैतिक पतन की परछाईं हमारे मुँह पर स्याही पोत रही है; आर्थिक अधोगति ने हमें तबाह कर दिया है। जीवन भार-सा हो गया है। कोई आशाप्रद पौधा इस वातावरण में, गुलामी की इस मिट्टी में, पनप नहीं सकता।

पर बात इतनी ही नहीं है। आज हमारे राष्ट्र पर एक विदेशी सरकार-द्वारा, हमारी इच्छा के विरुद्ध शासन को सचालित रखने के लिए करोड़ों-अरबों रुपये का ऋण लाद दिया गया है। स्वदेशी व्यापार और उद्योग-धंधों की ओर से, जिनकी उन्नति करना भारत-सरकार का मुख्य ध्येय होना चाहिए था, सरकार बिलकुल उदासीन है और कभी-कभी तो बाधक भी बन जाती है। विगत १४ फरवरी को 'भार

तीय उद्योग-व्यवसाय-संघ' (फेडरेशन ऑव् इण्डियन चेम्बर्स ऑव् कमर्स ऐण्ड इण्डस्ट्री) के अध्यक्ष की हैसियत से उसके तृतीय वार्षिक अधिवेशन में श्री घनश्यामदास बिड़ला ने जो भाषण किया उसमें देशी व्यापार की इस तबाही और दिन-दिन बढ़ती हुई ग़रीबी का बड़ा अच्छा ख़ाका खींचा है। अपने भाषण में उन्होंने विगत वर्ष के भारतीय व्यापार और उद्योग-धंधों तथा उससे उत्पन्न होनेवाली विविध अवस्थाओं की मार्मिक आलोचना की है। उनका कहना है कि "इस एक सालके अन्दर देश की कोई आर्थिक, व्यापारिक या राजकीय उन्नति तो हुई ही नहीं वरन् देश के उद्योग-धंधों को उलटा धक्का लगा है। इस क्षेत्र में दिन-दिन असन्तोष और अशान्ति बढ़ती जा रही है। बम्बई के वस्त्र-व्यवसाय और बंगाल के जूट-व्यवसाय को हड़ताल के कारण बड़ी क्षति उठानी पड़ी है। और स्थानों पर भी यही स्थिति है। कलकत्ता में तो मजूरों और मालिकों में समझौता हो जाने से जूट-व्यवसाय की उतनी हानि नहीं हुई पर बम्बई का तो व्यवसाय ही चौपट हो गया है। यद्यपि वहाँ की मिलों में इस समय कोई हड़ताल नहीं है किन्तु इसका कारण मज़दूरों की विवशता है और इससे यह नहीं समझा जा सकता कि वहाँ असन्तोष नहीं है। इसका मतलब तो यही है कि आग बुझी नहीं है, सिर्फ़ दबी हुई है और न जाने कब भड़क उठे।

मज़दूरों और मिल मालिकों के बीच के इस असन्तोष के बढ़ते जाने के कई कारण हैं। दोनों को एक-सी शिकायतें

भारतीय उद्योग व्यवसाय-संघ के सभापति श्रीघनश्यामदास बिड़ला

हैं। इसका असल कारण यह है कि देश की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गई है। मज़दूरों में जीवन-मर्यादा को उन्नत करने का भाव दिन-दिन फैल रहा है, यह भी औद्योगिक मज़दूरों की अशान्ति का एक कारण है। यह एक आशामय चिन्ह है; पर कठिनाई यह है कि प्रत्येक राष्ट्रीय उद्योग को घाटे का सामना करना पड़ रहा है, जिससे सारी बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। मज़दूरों की ज़्यादा वेतन पाने और अधिक आराम के साथ जीवन-यापन करने की इच्छा उचित और प्रशंसनीय है पर उनकी माँग की पूर्ति कहाँ से और किस प्रकार की जाय, यह एक कठिन समस्या है। × ×

जो उद्योग-धंधे देश में होनेवाली खपत और माँग पर निर्भर करते हैं, उन सब की हालत ख़राब है। इसलिए जब-तक देश की आर्थिक अवस्था नहीं सुधरती तबतक सफलतापूर्वक सन्तोषजनक रीति से इन प्रश्नों का निबटारा कर लेना कठिन काम है। जबतक जनता की क्रय-शक्ति

नहीं बढ़ेगी तबतक उद्योग-धंधों की उन्नति ठीक तरह से नहीं हो सकती और क्रय-शक्ति तभी बढ़ेगी जब उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी होगी।

औद्योगिक समृद्धि का कोई चिन्ह क्षितिज पर दिखाई नहीं दे रहा है। उल्टे ऐसा मालूम होता है कि जिन व्यापारों को हम अपने लिए सुरक्षित समझते थे, वे भी हाथ से निकलते जा रहे हैं। कृषि-सम्बन्धी उद्योग-व्यवसाय (जो हमारी जनता का प्रधान अवलम्ब है) पर भी विदेशी हथकण्डे काम करने लगे हैं। विगत चार वर्षों से भारत में विदेशों से गेहूँ और चावल बहुत अधिक मात्रा में आने लगा है। यह भारत के आर्थिक इतिहास में एक नई और सनसनी उत्पन्न करनेवाली बात है। लोग आश्चर्य के साथ मन में प्रश्न करते हैं कि आस्ट्रेलिया का किसान भारत में पंजाब के गेहूँ की अपेक्षा सस्ता अन्न बेचने में कैसे समर्थ होता है? यदि कहें कि विदेशों से इतना अन्न आने का कारण खपत में वृद्धि होने का सबूत है तो भारतीय किसान इस माँग की पूर्ति के लिए पर्याप्त अन्न उत्पन्न करने में समर्थ क्यों नहीं होता? × × × इसके लिए हमारी सरकार की आर्थिक नीति ही ज़िम्मेदार है।"

बिड़लाजी ने भारत के ऋण भार का उल्लेख करते हुए कहा कि इस देश में ब्रिटेन का लगभग १०००,०००००० पौंड लगा हुआ है। इस का सूद ही ८० करोड़ रुपये वार्षिक होता है। इसके अतिरिक्त हमें हर साल २३ करोड़ रुपये 'होम चार्जेज़' के लिए भारत-सचिव को भेजना पड़ता है। फिर दिन-दिन सरकारी ऋण बढ़ता जाता है। १९००-०१ में सरकार पर—देश पर-२०० करोड़ ऋण था। पर विगत २८ वर्षों में बढ़कर वह ४७० करोड़ हो गया। १९०० में 'होम चार्ज' में जहाँ १० करोड़ देने पड़ते थे वहाँ आज १९ करोड़ देने पड़ते हैं। १९१० में भारत में इंग्लैण्ड का कुल ३६५०००००० पौंड लगा था पर अब वहाँ १०००००००० पौंड है! × × और मज़ा तो यह है कि जब हम पिछले वर्षों के विवरणों पर ध्यान देते हैं तो मालूम पड़ता है कि भारत में विदेशों से धन नहीं आया वरन् भारत से बाहर जानेवाले माल का परिमाण सदैव यहाँ आनेवाले माल के परिमाण से अधिक रहा है! अन्धेर तो यह है कि सारा रुपया बाहर से नहीं आया है वरन् यहीं कमाकर फिर इसी देश में लगा दिया गया है।

यह ऋण दिन-दिन बढ़ रहा है। और वर्तमान स्थिति में जब हम इस कर्ज़ का सूद चुकाने में भी कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं, इतने बड़े भार से मुक्त हो जाना निकट भविष्य में असंभव-सा जान पड़ता है।

असल बात यह है कि भारत की जनता दिन-दिन ग़रीब होती जा रही है। विनिमय-दर के १ शि० ६ पे० हो जाने के कारण जहाँ स्वदेशी व्यापार को उत्तेजन मिला है, वहाँ देशी व्यापार और उद्योग-धंधों को ज़बर्दस्त धक्का पहुँचा है। भारत के ग़रीब किसान और ग़रीब होते जा रहे हैं। किन्तु जब सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया जाता है तो जवाब मिलता है कि भारत का वैभव दिन-दिन बढ़ रहा है।

असल बात तो यह है कि जबतक भारत गुलाम है तबतक ग़रीबी की इस समस्या का अन्तिम निर्णय हो ही नहीं सकता; न हम अपनी योजनाओं को कार्यान्वित ही कर सकते हैं। इसलिए इस समय इस बढ़ती हुई ग़रीबी को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि हम अपनी सारी शक्ति देश की स्वतंत्रता के इस संग्राम में लगा दें।

इस साल का भारतीय बजट

"देश में जितनी पैदावार होती है, यदि उसे दृष्टि में रखकर विचार करें तो पता लगता है कि संसार के अन्य किसी भी देश की तुलना में भारतीय प्रजा से सरकार दुगना टैक्स वसूल करती है।'

—कैथकार्ट वाटसन

साधारण

जब तक भारत गुलाम है, सरकारी बजट में आय-व्यय का संग्रथन किस प्रकार होता है इस पर लोगों का ध्यान बहुत कम जाता है। इसका एक कारण यह भी है कि देश की आर्थिक समस्यायें इतनी उलझी हुई हैं और सरकार की आर्थिक नीति इतनी जटिल है कि साधारण आदमियों की समझ की सीमा के तो वह बाहर है ही, अर्थ-शास्त्रियों में ही उसे लेकर बड़ा मतभेद है, किन्तु पूँजीवाद और साम्राज्य-वाद का सम्बन्ध इतना गहरा हो गया है कि हमारी इच्छा के विरुद्ध खर्च होनेवाले धन के सम्बन्ध में भी, यथासंभव, हमें सतर्क रहना चाहिए।

बड़ी कौंसिल में भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर जार्ज शुस्टर ने जो बजट पेश किया है वह भलाई-बुराई की एक अजीब खिचड़ी है। उसमें भारतीय जनता की ग़रीबी का ख्याल रखते हुए देश की आर्थिक अवस्था सुधारने की सच्ची चेष्टा और हार्दिक सहानुभूति की जगह चालाकी और भुलाकर काम निकाल लेने की प्रवृत्ति का ही अधिक परिचय मिलता है। वर्षों से देश की यह माँग रही है कि शासन का व्यय-भार जनता पर बढ़ता जा रहा है; उसे कम करने की ज़रूरत है; महात्माजी ने वायसराय के पास जो पत्र हाल में भेजा था, उसमें भी इस ओर उनका ध्यान दिलाया था। पर भारत-सरकार की आर्थिक नीति तो सदा से इसके विरुद्ध रही है और फल-स्वरूप जब एक ओर देश की ग़रीबी बढ़ती जा रही है; दूसरी ओर शासन का आर्थिक बोझ भी दिन-दिन भारी होता जाता है।

शासन का बढ़ा हुआ व्यय-भार

एक ज़िम्मेदार अर्थ-सदस्य की नीति फ़िज़ूलख़र्ची नहीं वरन् मित-व्यय होना चाहिए। पर ख़र्च घटाकर जनता के बोझ को दूर करने की बात तो दूर रही, सर जार्ज शुस्टर ने इसके लिए गंभीरतापूर्वक प्रयत्न भी नहीं किया। ऐसा कोई साल नहीं जाता कि ज़रूरत से बहुत ज़्यादा बढ़े हुए सैनिक ख़र्च का विरोध जनता या उसके प्रतिनिधियों-द्वारा न किया जाता हो फिर भी इस साल ५४ करोड़ २० लाख रुपये इस मद के लिए रक्खे गये हैं। अभी १९३३ अर्थात् आगामी दो वर्षों तक सरकार ने सेना के लिए ५५ करोड़ वार्षिक व्यय का हिसाब लगाया था और वचन दिया था कि उसके बाद यह ख़र्च घटाकर ५३ करोड़ या इससे भी कम कर दिया जायगा। पर इस बार अर्थ-सदस्य ने प्रस्ताव किया कि हम इसी साल से ५५ करोड़ की जगह ५४ करोड़ २० लाख लेते हैं और यही रकम आगामी वर्षों में सेना-विभाग को मिलती रहेगी। इससे ८० लाख रुपये की कमी दिखाकर उन्होंने जनता को भुलावे में डालने का प्रयत्न किया है। पर ज़रा गंभीर विश्लेषण से ही यह मालूम हो जाता है कि ख़र्च में कमी नहीं हुई है। बाज़ार में चीज़ों का भाव घट जाने और रुपये के मूल्य का महत्व अधिक हो जाने के कारण विगत वर्ष जो ख़र्च पड़ा था, उतनी ही सामग्री और आवश्यकता के लिए इस वर्ष उससे २-३ करोड़ कम ख़र्च पड़ेगा। इस हिसाब से तो सरकार ने कोई त्याग नहीं किया है बल्कि दो वर्ष बाद ज़्यादा ख़र्च घटाने का जो वादा उसने किया था, वह नाम-मात्र की कमी करके उससे भी वह मुक्त हो गई है। भारतीय जनता तो सेना घटा देने के लिए ही आन्दोलन कर रही है क्योंकि जब निकट भविष्य में युद्ध की कोई संभावना नहीं है तो केवल भारत की रक्षा के लिए इतनी अधिक सेना रखने और लगातार देश पर उसका भारी आर्थिक बोझ डालने की कोई ज़रूरत नहीं है। पर यदि सेना की शक्ति न घटाई जाय तो भी अधिक उन्नत उपायों और 'मिकैनिज़ेशन' की योजनाओं-द्वारा ६-७ करोड़ की बचत की जा सकती है। अपनी नियुक्ति के बाद सर जार्ज शुस्टर ने विश्वास दिलाया था कि 'न तो मैं रोगी को

(आत्म-विस्मृति-द्वारा पीड़ा से बचाने के लिए) * कोई सांघातिक मादक द्रव्य दूँगा, न देने का समर्थन करूँगा', पर सेना-विभाग के इतने अधिक बढ़े हुए खर्च को जारी रखकर उन्होंने अपना वह वचन तोड़ दिया और देश को एक प्रकार से धोका दिया है।

फ़जूलखर्ची

जब बाज़ार में चीज़ों का दाम चढ़ गया था और मज़दूरी मँहगी पड़ती थी तब यूरोपीय कर्मचारियों को अवाञ्छनीय सुविधायें देने के पक्ष में सरकार के पास कुछ बहाना भी था पर अब जब बाज़ार-भाव बहुत मन्दा है, *यूरोप और भारत के बीच आने-जाने* का किराया घट गया है और विनिमय-दर यूरोपीय कर्मचारियों के लिए बहुत लाभदायक है तब भी उन्हीं सुविधाओं पर अड़े रहना और जनता पर उतने ही खर्च का बोझ लादना सुशासन के लिए कुछ भी ज़िम्मेदारी अनुभव करनेवाली सरकार का लक्षण नहीं हो सकता।

> "भारत में टैक्स का तरीका इतना निर्दयतापूर्ण है कि गरीब प्रजा से उसकी आमदनी का आधा हिस्सा छीन लिया जाता है।"
>
> हर्बर्ट स्पेन्सर

नये कर

जब खर्च इतना बढ़ा दिया गया है और आय के साधन परिमित हैं, तो घाटा पड़ना स्वाभाविक है। इस साल के बजट में भी आय से खर्च ५ करोड़ ५४ लाख अधिक है। चाहिए तो यह था कि खर्च में इतनी कमी करके आय-व्यय बराबर कर लिया जाता पर ऐसा नहीं किया गया और फल-स्वरूप कर भार से लदी हुई ग़रीब जनता पर नये कर बैठाकर ये रुपये एकत्र करने की व्यवस्था की गई है। इसके लिए निम्न-लिखित कर लगाकर सरकार ने घटी की पूर्ति की व्यवस्था की है —

तैल-कर—

केरासिन तेल पर जो इस देश से बाहर जायगा फ़ी गैलन १ आना की जगह १॥ आना लिया जायगा। *विदेशों* से आनेवाले तेल पर फ़ी गैलन २॥ आना लिया जाता है इसका सिर्फ़ २। आना लिया जायगा। इस परिवर्तन से १५ लाख रुपया आय होगी।

चीनी कर —

विदेशी चीनी पर फ़ी हण्ड्रेडवेट (५६ सेर) १॥) रुपया कर बढ़ा दिया गया इससे ८० लाख रुपया आमदनी होगी।

आय-कर—

१५ हज़ार रुपये से अधिक वार्षिक आय पर फी रुपया १ पाई कर बढ़ा दिया गया। बहुत अधिक आय पर का अतिरिक्त कर भी इस अनुपात में बढ़ा। इससे ७० लाख रुपया आय होगी।

चाँदी-कर

चांदी पर, महासमर की तरह, फिर से फ़ी औन्स ४ पेनी (करीब साढ़े तीन पैसा) कर बैठाया गया। इससे १ करोड़ आय होगी।

वस्त्र-कर —

विदेशी कपड़े पर का कर प्रतिशत ११ से बढ़ा कर १५ कर दिया गया। इससे एक करोड़ १५ लाख रुपया आय होगी।

इसके सिवा यदि बड़ी व्यवस्थापक सभा मंजूर करे तो ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य देशों से आनेवाले कपड़े पर प्रतिशत ५ रुपया कर और लगा दिया जायगा। इसके लिए पंछेसे अलग बिल पेश किया जायगा।

ऊपर कहे हुए सब करों से जो आय होगी उससे इधर की कमी पूरी होकर वर्ष के अन्त में ७० लाख रुपया बच जायगा।

जनता की हानि

जहाँ तक चाँदी पर कर लगाने का सम्बन्ध है, हम स्पष्टतः इसका विरोध करना चाहते हैं। ऊपर से देखने पर इस प्रस्तावित कर में कोई ज़्यादा बुराई नहीं मालूम होती, *पर जब हम सरकार की करेंसी और आर्थिक नीति का* विश्लेषण करते हैं तो इसमें बड़ी पोल मालूम *पड़ती है।*

* इटैलिक में शब्द लेखक के हैं।

इस कर के मुख्यतः दो उद्देश्य मालूम होते हैं; एक तो सरकार की आय बढ़ाना और दूसरा सरकार के पास जो फ़ालतू चाँदी है उसकी खपत और बिक्री के लिए एक सुरक्षित बाज़ार ढूँढ निकालना। इन दोनों उद्देश्यों में सिद्धि प्राप्त होने का मतलब दूसरे शब्दों में भारतीय खरीदारों से उनका रुपया ऐंठना ही कहा जा सकता है। भारत-सरकार चाँदी की ख़रीदार नहीं है, इसलिए विदेशों से आई हुई जिस चाँदी पर कर बढ़ाकर अर्थ-सदस्य इस वर्ष ४ करोड़ से अधिक की आमदनी बढ़ाना चाहते हैं उसकी खपत तो साधारण जनता में ही होगी; इसलिए यद्यपि देखने में तो यह कर विदेशी चाँदी और उसके भेजनेवाले विदेशी व्यापारियों पर मालूम पड़ता है, परन्तु असल में, अप्रत्यक्ष रूप से उसका सारा बोझ भारतीय ख़रीदारों पर पड़ता है। क्योंकि चाँदी के हिन्दुस्तानी ख़रीददार को दुनिया के बाज़ार-भाव चाँदी नहीं मिलेगी वरन् उससे कहीं अधिक कीमत पर चाँदी ख़रीदनी पड़ेगी। सरकार अपने पास एकत्र फ़ालतू चाँदी भी इस भाव से बेचना चाहती है; उसका बोझ भी जनता पर ही पड़ेगा। इतना ही नहीं, आगे जब कभी यह कर उठा दिया जायगा तो जनता के पास आभूषणों या अन्य रूप में जो चाँदी रहेगी उसका भी दाम बहुत ज़्यादा घट जायगा। इस तरह उसपर दोहरी मार पड़ेगी। इसलिए जहाँ तक भारतीय किसानों और ग़रीब आदमियों का सम्बन्ध है वहाँ तक यह एक प्रकार की लूट ही है।

विदेशी वस्त्र-कर-वृद्धि का रहस्य

विदेशी कपड़े पर ११ प्रतिशत से १५ प्रतिशत कर बढ़ा दिया गया है। इससे भी साधारणतः भारतीय मिलों का लाभ दिखाई देता है, पर जाँच करने से मालूम होगा कि इसमें भी भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की अपेक्षा लंकाशायर की मिलों की सहायता करने का ही भाव अधिक है। क्योंकि अर्थ-सदस्य का यह भी प्रस्ताव है कि बड़ी व्यवस्थापक सभा की सलाह से ब्रिटेन के माल को छोड़ कर और सब देशों से आनेवाले कपड़े पर ५ प्रतिशत कर और लगाया जाय, अर्थात् ब्रिटेन के माल पर १५ और विदेशों के माल पर २० प्रतिशत कर लगाया जाय। इसका मतलब यह है कि विदेशी माल ख़रीदनेवालों को या तो मजबूर होकर सस्तेपन के कारण इंग्लैण्ड का ही कपड़ा ख़रीदना पड़ेगा या अधिक खर्च करके दूसरे देशों का कपड़ा ख़रीदना होगा। इससे स्पष्ट ही भारत में ब्रिटेन का वस्त्र-व्यवसाय बढ़ेगा। ४ प्रतिशत की कर सब विदेशी वस्त्रों पर बढ़ा देने से भी बम्बई की मिलों को नाम-मात्र का सहारा मिलने की ही आशा की जाती है। बात यह है कि जापान और इटली के बाद अन्य नगरों की भारतीय मिलें, बम्बई की मिलों की बड़ी भारी प्रतिद्वन्द्वी हैं। इसलिए अ-ब्रिटिश वस्त्र पर ९ प्रतिशत कर बढ़ जाने पर भी बम्बई की मिलों की हालत अहमदाबाद तथा उत्तर भारत की मिलों की प्रतिद्वन्द्विता के कारण अच्छी न हो सकेगी। हां, जापान के माल के सस्ते होने के कारण ब्रिटेन के व्यापारियों को जो घाटा उठाना पड़ता है वह ज़रूर बंद हो जायगा। यदि अर्थ-सदस्य बम्बई के भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की सहायता करने के इच्छुक थे तो उन्हें केवल अ-ब्रिटिश ही नहीं वरन् समस्त विदेशी वस्त्र पर यह कर ९ प्रतिशत बढ़ाना चाहिए था। इससे अच्छा और महीन कपड़ा बनाने के भारतीय व्यवसाय को भी बड़ी सहायता मिलती।

जो लोग भारत-सम्बन्धी प्रत्येक समस्या पर राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करते हैं, उनके लिए तो ब्रिटेन को विशेष सुविधा देने की इस नीति का विरोध करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। क्योंकि हमारे लिए तो चाहे जापान का वस्त्र हो या इंग्लैण्ड का, विदेशी होने के कारण, नैतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से एकसमान हानिकर है।

मतलब यह है कि बजट के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारा देश गुलाम है और उसका शासन करनेवाली विदेशी सरकार को हमारे हितों की अपेक्षा ब्रिटेन के हित का ख़याल ही अधिक है।

'सुमन'

विविध

गुजरात का प्रथम बलिदान

गुजरात को सरदार वल्लभभाई की गिरफ्तारी और सज़ा पर बधाई ! यहाँ महात्माजी की व्यूह-रचना के अनुसार सरदार का नम्बर बाद को आनेवाला था; परन्तु सरकार ने उन्हें सबसे पहले ही यह सम्मान प्रदान किया। यह भी अच्छा ही हुआ कि इस नवीन और शायद स्वतंत्रता के अन्तिम घोर संग्राम का इस तरह सूत्र-पात स्वयं सरकार की ही ओर से हुआ है और सो भी महात्माजी की आखिरी चेतावनी की मीयाद खतम होने के पहले ही। बुरा अपनी बुराइयों और गलतियों की बदौलत जितना अपना नुकसान करता है उतना उसके सुधारने वाले या उससे लड़नेवालों की तदबीरों से नहीं। मान्यवर सेठ जमनालालजी बार-बार कहा करते हैं कि यह सरकार अपनी गलतियों की बदौलत हमारे संग्राम में जितनी मदद देती है उतनी हमारी अपनी तैयारी नहीं। इसकी सचाई का प्रमाण इस समय सरदार की गिरफ्तारी से बढ़कर और क्या हो सकता है ! एक ओर विलायत के जिम्मेदार लोग और दूसरी ओर भारत के औपनिवेशिक स्वराज्यवादी जहाँ सर्वपक्षीय परिषद् के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने की चिंता में हैं, जहाँ भीतर ही भीतर ऐसी कोशिशें हो रही हैं कि महात्माजी किसी तरह सत्याग्रह-संग्राम को न छेड़ें, तहाँ बम्बई-सरकार का उनके दाहने हाथ पर इस तरह अचानक छापा मारना एक नंबर की अदूरदर्शिता नहीं तो और क्या है ? खैर—देश को तो, स्वतंत्रता-संग्राम को तो सरदार साहब के इस बलिदान से हर तरह बल ही मिलेगा। सरदार बाहर रहकर जो काम महात्माजी के बाद करनेवाले थे वही अब उनके बलिदान की स्फूर्ति उनके बीसों साथियों और

सरदार वल्लभभाई पटेल

हज़ारों अनुयायियों से करा देगी। यही नहीं बल्कि सरदार के बन्दी शरीर के रोम-रोम से फूट पड़नेवाली स्वतंत्र आत्मा सारे देश में वह आग लगा देगी, जिससे देश के मुर्दे भी एक बार जग उठेंगे और अपने को स्वाहा करने के लिए तैयार हो जायँगे। राजस्थान, तू क्या सोच रहा है? तेरी ऐतिहासिक वीरता, तेरा प्राचीन पुण्य आत्मोत्सर्ग तुझसे क्या चाहता है? तेरी गुलामी के कड़े बन्धन तुझसे इस आन-बान के अवसर पर क्या आशा रखते हैं? क्या तुझे अपने कर्त्तव्य और ज़िम्मेवारी का ज्ञान और स्मरण है? यदि हाँ, तो सम्हल, तेरी परीक्षा के दिन नज़दीक आ रहे हैं। वे आत्मायें विकल हो रही हैं, जिन्हें तेरी वर्तमान दीन हीनता काँटे की तरह चुभ रही है और उसे मिटाने के लिए जो अपने-आपको बरबाद कर देने के लिए उत्सुक हैं। क्या उनकी पुकार पर तू इस स्वतंत्रता-यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिए अपने को तैयार कर रहा है?

ह० उ०

१९ वाँ हिन्दी-साहित्य सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का १९ वाँ अधिवेशन गोरखपुर में बिना कटुता के समाप्त हो गया और बहुत अंशों तक सफलता के साथ ही समाप्त हुआ भी। परन्तु हम तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब सफलता, आनन्द, उत्साह और प्रेम सबको एकत्र पा जावें। इस बार की सफलता का बहुत कुछ श्रेय सभापति श्री गणेशशंकर विद्यार्थी को है उनके व्यक्तित्व का प्रभाव था कि सम्मेलन में अधिक विघ्न-बाधा, विवाद, कटुता और हुल्लड़ न हो सका। हम तो साहित्य-सेवियों और साहित्य-प्रेमियों को इतना गंभीर और उदार देखना चाहते हैं कि हमारे मन में किसी अप्रिय घटना की आशंका ही न उठे। स्वागत-कार्य में श्री पड़रौना-नरेश को ही अधिक श्रेय था। उनका हिन्दी-प्रेम और उत्साह अवश्य सराहनीय है।

इस सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता सभापति महोदय का भाषण है। दूसरे सभापतियों की भाँति हिन्दी-साहित्य की लम्बी-चौड़ी आलोचना इसमें नहीं, साहित्य का क्रम-बद्ध इतिहास उसमें नहीं, देव-बिहारी, ब्रजभाषा-खड़ी बोली, प्राचीन कवि और नवीन कवि का झगड़ा भी उसमें नहीं है। वह इन सारे विवादों से ऊपर है। साहित्य-सम्मेलन के सामने भविष्य के लिए क्या-क्या रचनात्मक कार्य पड़े हैं, इसपर बहुत-काफ़ी प्रकाश डाला गया है, जो सम्मेलन के कर्ता-धर्ताओं के काम की चीज़ है। हमारे हृदय के सबसे अधिक अनुकूल तो भाषण का वह अंश है, जहाँ सभापति महोदय ने मातृभाषा का महत्व तथा उससे राजनीति का सम्बन्ध बतलाया है। वह कहते हैं:—

१९ वें हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

"मैं जो-कुछ कहनेवाला हूँ, वह केवल इतना ही है कि राजनैतिक पराधीनता देश की भाषा पर अत्यन्त विषम प्रहार करती है। विजेता लोगों की विजय-गति विजितों के जीवन के प्रत्येक विभाग पर अपनी श्रेष्ठता की छाप लगाने का सतत प्रयत्न करती है। स्वाभाविक ढङ्ग से विजितों की भाषा पर उनका सबसे पहला वार होता है।

भाषा जातीय-जीवन और उसकी संस्कृति की सर्व-प्रधान रक्षिका है, वह उसके शील का दर्पण है, वह उसके विकास का वैभव है। भाषा जीती, और सब जीत लिया। विजितों का अस्तित्व मिट चलता है। विजितों के मुँह से निकली हुई विजयी-जनों की भाषा उनकी दासता का सबसे बड़ा चिन्ह है। पराई भाषा चरित्र की दृढ़ता का अपहरण कर लेती है, मौलिकता का विनाश कर देती है, और नक़ल करने

१९ वें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष

श्री पड़रौना नरेश

का स्वभाव बनाकर उत्कृष्ट गुणों और प्रतिभा से नमस्कार करा देती है। इसीलिए जो देश दुर्भाग्य से पराधीन हो जाते हैं वे उस समय तक, जबतक वे अपना सब कुछ नहीं खो देते, अपनी भाषा की रक्षा के लिए सदा लोहा लेते रहना अपना कर्तव्य समझते हैं। अनेक यूरोपीय देशों के इतिहास भाषा-संग्राम की घटनाओं से भरे पड़े हैं। प्राचीन रोम-साम्राज्य से लेकर अबतक के रूस, जर्मन, इटैलियन, आस्ट्रि-यन, फ्रेन्च, और ब्रिटिश सभी साम्राज्यों ने अपने अधीन देशों की भाषा पर अपनी विजय-वैजयन्ती फहराई। भाषा-विजय का यह काम सहज में नहीं हो गया। भाषा-समर-स्थली के एक-एक इञ्च स्थान के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुई। देश की स्वाधीनता के लिए मर-मिटनेवाले अनेक वीर-पुंगवों के समयों में इस विचार का स्थान सदा ऊँचा रहा है कि देश की भौगोलिक सीमा की अपेक्षा मातृ-भाषा की सीमा की रक्षा की अधिक आवश्यकता है। वे अनुभव करते थे कि भाषा बची रहेगी तो देश का अस्तित्व और उसकी आत्मा बची रहेगी, अन्यथा फिर कहीं उसका कुछ भी पता न लगेगा।"

आगे आप बतलाते हैं, विदेशी शासन से किस प्रकार हिन्दी को हानि पहुँचाई गई—

"अभी तक इस देश के करोड़ों बालक जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी थी, कच्ची उम्र ही में साधारण से साधारण विषयों तक की ज्ञान-प्राप्ति के लिए विदेशी भाषा के भार से दाब दिये जाते थे। अब भी उच्च शिक्षा के लिए बालक ही क्या बालिकायें तक उसी भार के नीचे दबती हैं। उनकी मौलिक बुद्धि व्यर्थ के भार के नीचे दबकर हत-प्रभ हो जाती है और देश एवं जाति को उसके लाभ से सदा के लिए वंचित हो जाना पड़ता है। शिक्षित जन अपनी संस्कृति, अपनी भूतकालिक महत्ता, अपने पूर्वजों की कृतियों से दूर तो पड़ ही जाते हैं, वे अपने और अपनों के भी पराये हो जाते हैं। बाल्यकाल से अंग्रेज़ी की छाया में पढ़ने के लिए विवश होने के कारण हमारे अधिकांश सुशिक्षित जनों के चित्त पर अंग्रेज़ी इतनी छा जाती है कि वे बहुधा मन में जो कुछ विचार करते हैं, उसे भी अंग्रेज़ी में ही करते हैं और अपने निकटस्थ जनों से भी अपनी बात कहते या लिखते हैं तो अंग्रेज़ी ही में! हिन्दी में लिखे हुए अनेक सुशिक्षित सज्जनों की भाषा-शैली से इस बात का पता चल सकता है।"

इस बार दो ही प्रस्ताव महत्व के पास हुए, सबसे अधिक महत्व का था प्रयाग-विद्यापीठ का सञ्चालन स्वतंत्र करने के विषय में। विद्यापीठ को साहित्य-सम्मेलन से प्रथक करके एक ट्रस्ट के हवाले कर देने का प्रस्ताव पास हो

गया। सम्मेलन दलबन्दी के दलदल में फँस गया था, ऐसी अवस्था में विद्यापीठ का अलग हो जाना श्रेयस्कर ही है, परन्तु सम्मेलन की शान में इससे कुछ हलकापन अवश्य आता है। इससे प्रतीत होता है कि सम्मेलन उसे ठीक तरह चला न सका। सम्मेलन के पास अभी बहुत से कार्य पड़े हैं। उसे उनकी ओर अभी अधिक संगठित रूप से लगना चाहिए। घासलेटी साहित्य के रोक का प्रस्ताव भी समय की माँग के अनुकूल था।

हम सम्मेलन से अधिक आशा रखते हैं। इस बार के चुनाव में भी कूट चालों से काम लिया गया है। लोगों ने आशा की है कि इससे दलबन्दी और वैमनस्य का अन्त हो जायगा। परन्तु हम तो हृदय-परिवर्तन और परस्पर प्रेम चाहते हैं। फिर भी इस बार का सम्मेलन सफल ही कहा जा सकता है।

'प्रेमी'

अजमेर की क्षति

श्री सूरजकरण शारदा अजमेर के एक प्रमुख नागरिक थे। वकालत तो उनकी बढ़ी हुई थी ही, सार्वजनिक जीवन खासकर आर्यसमाज और हिन्दू-सभा में भी उनका प्रमुख भाग था। स्वभाव के मिलनसार, दान के मामलों में उदार और लगन के पक्के आदमी थे। उनकी उम्र ज्यादा न थी, जवानी का शरीर था, तन्दुरुस्ती भी अच्छी मालूम पड़ती थी। एकाएक निमोनिया हुआ और चार दिन में ही उन्हें ले बैठा। इस असामयिक मृत्यु से उनके वृद्ध पिता, तरुण पत्नी और भाई श्री चांदकरण शारदा को जो आघात पहुँचा वह असह्य है शहर के सार्वजनिक जीवन पर भी काफ़ी धक्का लगा है। इस सकट-काल में हम उनके कुटुम्बियों के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करते और भगवान से मृतात्मा की शान्ति की कामना करते हैं।

मुकुन्द

भूल-सुधार

गतमास की 'राष्ट्रीय शिक्षा' शीर्षक टिप्पणी में एक भूल रह गई है। पाठक कृपाकर उसे नीचे लिखे अनुसार सुधार लें। उपर्युक्त टिप्पणी में लिखा गया था कि अ०भा० रा० शिक्षा-परिषद् में औद्योगिक शिक्षा, स्त्री-शिक्षा और राष्ट्रीय झण्डे पर प्रस्ताव पास हुए। वास्तव में इन विषयों पर केवल वाद-विवाद हुआ था, कोई प्रस्ताव पास नहीं हुआ; क्योंकि इनपर सदस्यों में मतैक्य नहीं था।

—सम्पादक

विवाह-विज्ञापन

देवी जोन

शौर्य और तेजस्विता शरीर का गुण नहीं। वह आत्मा का धर्म है। उसके लिए स्त्री या पुरुष की क़ैद नहीं, बालक बूढ़े या जवान का विचार नहीं, वह एक ऐसी चीज़ है जो सबमें एक-सी पाई जाती है। मनुष्य और पशुओं की आत्मा भी थोड़े समय के लिए भले ही दबाई जा सकती हो, पर उसके बाद तो वह और भी ज़ोर से उठती है—और भी प्रखरतापूर्वक चमकती है।

इस चमत्कार के कितने ही उदाहरण हरएक देश में मिल सकते हैं। क्रान्ति इस ज्योति की भभकती हुई ज्वाला है फ्रान्स की महान क्रान्ति इस सनातन सत्य का प्रमाण है रूस की आधुनिक क्रान्ति भी उसी कल्याणकर सत्य को और भी स्पष्ट रूप में हमारे सामने रखती है। पर स्वदेशी शासन की बुराई की सीमा होती है। किन्तु जब एक समस्त जाति को दूसरी जाति जीतकर अपने स्वार्थों के लिए लूटना शुरू करती है, तब वहाँ दया का नाम भी नहीं रह जाता; जीवन असह्य हो जाता है। देश से आत्म-विश्वास उठ जाता है और मनुष्य पशु बनकर कुत्ते की तरह पेट का गुलाम बन जाता है। तब मनुष्य अपने उद्धार की सारी आशायें छोड़कर भाग्य को कोसता हुआ अपनी कष्टमय जीवन-यात्रा तय करता है। घोर अन्धकार उसकी आँखों के सामने छा जाता है। ऐसे समय यदि कहीं से प्रकाश की उज्ज्वल रेखायें दिखाई दें, तो निराश हृदय उसे दिव्य गुणों से विभूषित करता है। देवी जोन ऐसी ही धन्य आत्माओं में से थी, जिसने फ्रान्स का एक महा संकट से उद्धार किया।

बाला जोन की कहानी बड़ी अद्भुत है। वह एक किसान बालिका थी। शहरों और राजनैतिक उथल-पुथल से दूर अपने गाँव में वह रहती थी। पर वहाँ भी देश की विपन्नावस्था के समाचार उसके कानों पर पहुँचे बिना न रहे। उस समय (पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ में) फ्रान्स गृह-युद्ध में छिन्न-भिन्न हो रहा था और विजेता अंग्रेज़ों का घोर आतंक छाया हुआ था। अंग्रेज़ी सेना के आक्रमण का नाम सुनते ही फ्रान्स की सेनायें भाग खड़ी होती थीं। सरदार और साहूकार लोग विदेशियों की घृणित गुलामी में फँसे हुए थे और ये सब मिलकर ग़रीब शान्तिशील जनता की जान के ग्राहक हो रहे थे आश्चर्य नहीं, यदि ऐसे समय मनुष्य अपनी मानवता को खो बैठे। फ्रान्स का निर्वीर्य राजा अँग्रेज़ों के हाथ की कठपुतली बन रहा था समाज अत्याचार का आदी बन गया था। लोग यह कह कर सब कुछ सहते जाते थे कि "क्या करें, बड़ा बुरा ज़माना आया है।"

पर देवी जोन की आत्मा पर ज़माना कोई असर न डाल सका। यह पतन—यह अपमान—उसके लिए असह्य हो उठा सत्रह वर्ष की उस कोमल बालिका का चेहरा तेज से दमक उठा। ऊँचे पूरे-जवान जवानों को जब उसने अंग्रेज़ों का नाम सुन कर भेड़-बकरियों की तरह भागते देखा तो उसकी आँखों से मानों आग बरसने लगी। उसकी व्याकुल आत्मा गरज उठी, "इन लोगों को पुरुष कहलाने में लाज नहीं आती! भागकर क्या अमर हो जावेंगे? मालूम होता है अब फ्रान्स की लाज बचाने के लिए हम स्त्रियों को अंतःपुर छोड़कर दौड़ पड़ना होगा। ऐ फ्रान्स के निवासियो, आओ, यह मैं खड़ी हूँ! अगर तुम्हें कोई पुरुष अगुआ नहीं मिलता तो चले आओ मेरे पीछे पीछे! फ्रान्स की रक्षा मैं करूंगी और मैं ही अंग्रेज़ों को फ्रान्स से

मार भगाऊँगी। अगर फ्रान्स के पुरुषों ने अपना पौरुष खो दिया है तो वे शान्ति से देखते रहें! फ्रान्स की स्त्रियाँ अपनी मातृभूमि के लिए मरना जानती हैं।" मानों उसके शरीर से दिव्य तेज फूट-फूट कर चारों तरफ फैल रहा था।

ये बातें सुनकर जोन का पिता समझा, लड़की बावली हो गई है। पर वह तो सीधी राजा चार्ल्स और उसके सरदारों के पास पहुँची। स्वभावतः सरदार-सिपाही उसकी हँसी उड़ाने लगे। जहाँ बड़े-बड़े मँजे-मँजाये खिलाड़ी हार गये तहाँ यह पागल लड़की फ्रान्स का उद्धार करने चली! जोन बाहरी बातों से या प्रतिकार से पीछे हटना नहीं जानती थी। वह अपने अंतरनाद पर विश्वास करती थी और उसीपर चलना जानती थी! उसकी आँखों में विलक्षण तेज था और हृदय में निश्चय की दृढ़ता। युवकों और किसानों ने अपनी नायिका को पहचाना और सिर झुकाकर उसके झंडे के नीचे एकत्र हो गये। हँसने वाले हँसते रह गये और कुमारी जोन अपनी नई सेना को लेकर काले घोड़े पर सवार हो, फ्रान्स का शुभ्र झण्डा उठा, ऑर्लियन नगर की ओर बढ़ चली, जहाँ अंग्रेजों ने घेरा डाल रक्खा था।

सोलह-सत्रह वर्ष की एक लड़की को सेना का संचालन करते देख उस गुलाम राष्ट्र के पुराने सेनानायकों के दिल में ईर्ष्या की आग भभक उठी। पर इस घटना ने जनसाधारण में तो नवीन प्राण फूँक दिये। लोगों का आत्मविश्वास जागा और जो अब तक मिट्टी के बन-बन कर ठोकरें खा रहे थे वे उठ कर सीधे खड़े हो गये और अपने देश के लिए मर-मिटने को तैयार हो गये। अंग्रेज़ों पर दोनों तरफ से धावा बोल दिया गया, घिरे हुए ऑर्लियन के निराश नागरिकों के प्राण पुनः लौट आये। उन्होंने नगर की दीवारों पर चढ़ कर घेरा डालने वालों पर आग बरसाना शुरू किया और जोन की सेना ने बाहर से उनपर आक्रमण किया। अँग्रेज़ों के छक्के छूट गये। उन्होंने देखा, अब फ्रान्स में गुजर न चलेगी। वह जाग उठा है। बुरी तरह मरते-पिटते उन्हें ऑर्लियन का घेरा उठा कर भागना पड़ा। इस विजय ने फ्रान्स की सारी शक्ति को जगा दिया।

अब तो वह किले के बाद किले सर करने लगी। इतिहास-प्रवाह पलट गया। राजा सातवाँ चार्ल्स का अभी तक साहस न हुआ था पर अब उसे एकान्तवास छोड़ कर बरबस सामने आना पड़ा। अँग्रेज़ों के अधीनस्थ लोग उसका स्वागत करने के लिए आगे बढ़े। प्रत्येक नगर अपने-अपने द्वार खोल-खोल कर उसका स्वागत करने के लिए दौड़ने लगा। जोन ने उसका अभिषेक कराया और प्रजाजन की हैसियत से उसको मुजरा किया। अब तो चार्ल्स की सहायता के लिए चारों तरफ से लोग आने लगे। चार्ल्स ने अपना उद्धार करने वाली जोन को भी साथ में लिया और वह रहे-सहे प्रदेश को अपने अधिकार में करने के लिए बढ़ा। दस सप्ताह के अन्दर देवी जोन ने फ्रान्स को कहाँ से कहाँ लाकर छोड़ दिया!

ऑर्लियन के बाद जोन ने और भी कितने ही शहर और किले जीत कर चार्ल्स को दे दिये। जोन का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ने लगा। उसकी ईर्ष्या की आग में जलने वालों तथा अंग्रेज़ों द्वारा उसे किसी जाल में फाँसने के लिए अनेक षड्यन्त्र रचे गये। फलतः फ़ौज का अनुशासन ढीला हो गया। और कांपेन के युद्ध में वह शत्रु के हाथों क़ैद कर ली गई। कैसा दुर्भाग्य कि जोन को क़ैद कर के शत्रु के हाथों में सौंपने वाला उसीका एक अधम देशभाई था। (२३ मई १४३०)

× × ×

एक वर्ष बीत गया। जोन ने इस बीच न जाने कितने किलों की सैर की। अंग्रेज़ अधम से अधम कुकृत्य भी विधिपूर्वक करते हैं। जोन उनके मार्ग में एक महान् बाधा थी। अंग्रेज़ों का पवित्र देश-प्रेम चाहता था कि जोन को किसी तरह मार डाला जाय। कुछ लोग चाहते थे कि उसे समुद्र में डुबो दिया जाय, पर अधिक दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने सोचा कि इंग्लैंड के इस महान शत्रु को इस खूबी से मारा जाय कि उसके देश-भाई उसको याद करना भी पाप समझें। न्याय के नाटक रचे गये। पर खुली अदालत में मामला चलाने की हिम्मत किसे थी? बीसों वकील, पादरी,

न्यायाधीश एक बालिका को विधिपूर्वक मृत्यु के हाथों में सौंपने के लिए नियुक्त किये गये। जोन का वही एक-मात्र उत्तर था—"मैंने सुना कि परमात्मा मुझे बुला रहे हैं। वह फ्रान्स की रक्षा के लिए दौड़ पड़ने को मुझे प्रेरित कर रहे हैं। और मैंने अपना कर्तव्य किया।" जोन को अनेक प्रकार से डराया-धमकाया गया। पर वह बराबर यही कहती रही, "आप मुझे भले ही जला दीजिए। मेरे पास और कुछ कहने को है ही नहीं।"

महीनों मामला चला हज़ार कोशिश करने पर भी न्यायाधीशों को कोई बात ऐसी नहीं मिली, जिसपर वे जोन को सज़ा देते। पर अंग्रेज़ तो उसकी जान लेने के लिए अधीर हो रहे थे, अन्त में अदालत तो जोन को अंग्रेजों के सुपुर्द कर अलग हो गई।

❀ ❀ ❀

आज नगर में बड़ा समारोह किया गया है। ईश्वरी प्रेरणा की बातें बना कर लोगों को धोखा देने वाली डाइन जोन के लिए एक महान् चिता बनाई गई है। चिता के बीच वध-स्तम्भ था। दस हजार स्त्री-पुरुष कलेजे पर हाथ रक्खे इस रोमाञ्चकारी घटना को देखने के लिए एकत्र हुए हैं। एकाएक उस महान् जन-समूह में शान्त खलबली मच गई। दूर से सिपाहियों से घिरी १८–१९ वर्ष की एक बालिका आ रही थी। उसके चेहरे पर दिव्य तेज था। नजर नीचे थी और चाल एकपी। संकेत पाते ही वह सीधी चिता पर चढ़ गई। सिपाही चिता को घेर कर खड़े हो गये। हत्यारा बढ़ा और उसे उस वध स्तम्भ पर जकड़ कर आप नीचे उतर आया। एक आवाज आई, "कोई मेरी एक अन्तिम अभिलाषा पूरी कर सकता है? मुझे एक पवित्र क्रूस मिल सकता है?" कुछ सिपाही दौड़ कर पास के गिरजे से एक क्रूस ले आये और वह जोन को दे दिया गया। जोन ने इसे पाते ही जोर से अपने हृदय से लगा लिया और आँखें मूंद कर प्रार्थना करने लगी, "प्रभु ईसा! ईसा!!" एकाएक चिता प्रज्वलित हुई और उमड़ती हुई ज्वालाओं के बीच वह पवित्र मूर्ति विलीन हो गई। हजारों आँखों से आंसू बह चले। लोगों ने देखा कि चिता से एक दिव्य तेज निकल कर आकाश की ओर जा रहा है। अंग्रेज़ों की सेना के बीच से आवाज आई—"हमारा सर्वनाश हो गया! हमने एक पवित्र आत्मा को त्याग दिया!"

❀ ❀ ❀

जोन के बाद एक ही पुश्त में फ्रान्स से अंग्रेजों का राज्य उठ गया!

वै० म०
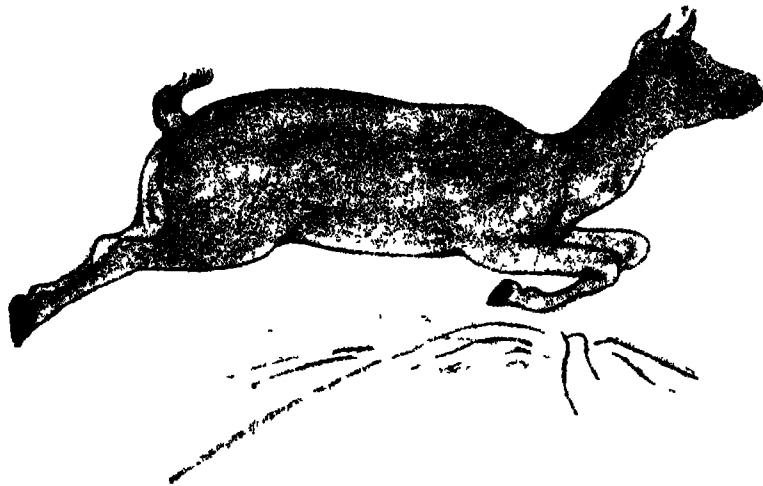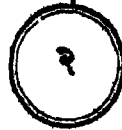
REGISTERED No N, 351.

नये ग्रन्थ तैयार हो रहे हैं—

शीघ्र ही छपेंगे

१—मराठा साम्राज्य का इतिहास—

श्री गोपालदामोदर तामस्कर

२—ग्राम संगठन—

श्री रामदास गौड़ एम० ए०

३—लोकनायक श्रीकृष्ण—

श्री चिंतामण वि० वैद्य

४—शिक्षा के आधार—

श्री किशोरीलाल घ० मशरूवाला

५—गीता भाष्य—

मोहनदास करमचंद गाँधी

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता साहित्य प्रेस अजमेर।

विषय-सूची

पृष्ठ

त्यागभूमि

विषपान

[चित्रकार-श्री रामप्रसाद]

[श्री रामकृष्ण के सौजन्य से]

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तह है श्रीभगवान ॥

वर्ष ३	सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर	अंश ६
खण्ड १	फाल्गुन संवत् १९८६	पूर्ण अंश ३०

आह्वान

[श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी']

लड़ेगा तोपों से बलिदान !

वहाँ तोप-तलवारें होंगी और यहाँ पर प्राण !
लाल-लाल आकाश सिखाता आज शहीदी शान !
पशु-बल, अत्याचार, कपट ने ताने तीर-कमान !
बढ़ो-बढ़ो आगे सीना कर सिंहों की सन्तान !
सर्वनाश गाता है, तो गाने दो पागल तान !
मर-मिटने में ही मिलता है मृदु अमरत्व महान !
युग-युग का अन्याय हृदय में उठा रहा तूफ़ान !
रंगभूमि सौ-सौ तानों से करती है आह्वान !!

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः!

(श्री 'निर्गुण')

गुलामी और हिंसा के अन्धकार में, अविश्वास और हिचकिचाहट के घिरते हुए बादलों के बीच, गांधी की वाणी बिजली की भाँति पुकार रही है। साबरमती का छोटा-सा आश्रम अगणित आशाओं और उत्सर्ग तथा बलि के लिए उत्सुक अनेक ज्वलनशील प्राणों की भेंट लिए यज्ञ-कुण्ड की ओर देख रहा है! एक तपस्वी है; लम्बी-लम्बी टाँगें, जीर्ण मुख, सूखा शरीर और उसके साथ उँगलियों पर गिन लिये जानेवाले चन्द भाई-बहन खड़े हैं। यही आशा की, तपस्या की, सत्य की छोटी सेना है! संसार के सबसे विस्तृत और विस्तृत से भी अधिक संगठित तथा करोड़ों प्राणों से खेलनेवाली हिंसा पर प्रतिष्ठित एक साम्राज्य से यह डेढ़ हड्डियों की मूर्ति और उसके ये अध-भूखे अशक्त-शरीर चन्द साथी निरस्त्र युद्ध करने को खड़े हैं!! दुनिया के लिए यह एक बिलकुल नया आश्चर्य है।

× × ×

पर—

दुनिया जब पशुता के पेट की ज्वाला बुझाने से खाली न हुई थी; तब हिमाद्रि के जङ्गलों में जिन मेखलाधारी ऋषियों ने मानवता का सृजन किया था, वे भी कुछ ऐसे ही थे; उनकी भी हड्डियाँ गिन ली जा सकतीं थीं। पर उन्होंने उन्हीं पतली हड्डियों को तपस्या की आग में होम करके विषमय संसार को अमृत पिलाया था! तब से आज-तक हमने बार-बार अपनी अमरता की बात सुनी है। आत्मा अमर है—हम अमर हैं! शरीर मांस का एक वस्त्र है, जिसका बदलना उतनी ही खुशी की बात है जितनी अच्छे-नये कपड़ों का पहनना! हम भारतीयों ने हजारों वर्षों से इसे सुना है और हममें से हजारों ने अपने जीवन में दूसरे हजारों को न जाने कितनी बार यह कहा भी होगा! आज भगवान की वाणी हमारे कहने-सुनने के आवरण से हमें अलग हटाकर हमारी अनुभूति को, हमारे निश्छल आत्म-भाव को परीक्षा की चुनौती दे रही है! आज हमें सब कहना-सुनना, सब तर्क-वितर्क, सारा मोह और भ्रम पोटली में बाँध कर उत्सर्ग की गंगा में बहा देना पड़ेगा। हम शास्त्रार्थ में आत्मा की अमरता, शरीर की नश्वरता बार-बार सिद्ध कर चुके हैं। अब हमें सर्वस्व चढ़ाकर, हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग की ज्वालामयी वर्णावलियों में आत्मा की अमरता का इतिहास लिखना है! आज कौन पीछे होगा और किसके स्मृति-स्तम्भ पर मानवता के नूतन संस्करण की भूमिका लिखी जायगी।

आज १२ मार्च! हम प्रकाश की एक नई दुनिया में पाँव रख रहे हैं! कितने उस दुनिया की ओर चल रहे हैं? आज कौन इस गुलामी के अन्धकार में चमकेगा? हमे वहाँ से यह जीर्ण शरीर-यह गुलामी की काया लेकर लौटना नहीं है। हम अमरता का रहस्य भूल गये हैं! पतन का आकर्षण विष बनकर हम में घुस गया है। आज उस भूले हुए जीवन के सरोवर को फिर खोज निकालना है, जहाँ विगत सैकड़ों वर्षों से हम जा नहीं सके और जहाँ तक पहुँचने के लिए यह शरीर छोड़ कर पवित्र संकल्प की नई काया धारण करनी पड़ेगी।

× × ×

डा० बर्नोफ भारत की सैर कर रहे हैं। बड़े-बड़े लोग हजारों-लाखों खर्च करके उनके सामने जवानी की भिक्षा देने का आवेदन-पत्र लेकर उपस्थित हो रहे हैं। पर यह जवानी जिसमें मोह और शारीरिकता का घुन लग चुका है, कितने दिन चलेगी? यह दीवार आज नहीं कल ढह जाती है। फिर भी उसके लिए इतनी व्याकुलता है। और देश के सत्य-संग्राम में इस शरीर को छोड़ कर हँसते-हँसते अमर हो जाने, असली जवानी और असली जीवन प्राप्त करने का जो मार्ग है, उसके लिए क्यों इतनी उत्सुकता नहीं?

गाँधी के मानव-मुख से आज भगवान की यह वाणी आह्वान कर रही है। हे दुनिया में सब से पहले अमरता की खोज करनेवाले ऋषियों की संतान! तुम क्या उस वाणी का अपमान होने दोगे? आज विश्व-शरीर के एक अंग में गुलामी की जो दारुण पीड़ा उठ रही है, उसे हे अमरता के संसार में पले हुए! क्या आज भूल जाओगे? दो ही मार्ग हैं; या मरो या जिओ। आज तुम्हें अपने उदाहरण से यह दिखाना है कि तुम क्या पसन्द कर सकते हो? और तुमने भगवान् की वाणी सुनी या नहीं?

क्रान्ति-मीमांसा

[श्री नरदेव शास्त्री, वेद-तीर्थ]

(१)

क्रान्ति जब आती है, तब दोहरी मार करती है। वह घर में, भीतर भी, खलबली मचा देती है, और बाहर भी। जो लोग यह चाहते रहते हैं कि ऐसी क्रान्ति मचे, 'जो हम पर तो असर न करे; पर हम जैसा चाहते हैं, जिस रूप में चाहते हैं, जितनी भी चाहते हैं, दूसरों पर ही प्रभाव करे,' वे भूल करते हैं। संसार के इतिहासों का मनन करनेवालों को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि (१) मनुष्य या समुदाय जब क्रान्ति चाहते हैं तब वह नहीं आती, (२) वे जिस रूप में चाहते हैं उस रूप में भी नहीं आती, (३) ऐसी क्रान्ति भी नहीं आती जैसी कि वे चाहते हैं। बड़ी-से-बड़ी क्रान्ति किसी साधारण घटना से प्रारम्भ होती है; और वह आ पहुँचती है बहुत दूर तक—इतनी दूर तक कि जिसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता।

(२)

अफगानिस्थान की क्रान्ति धार्मिक रूप में प्रारम्भ हुई, और उसका अन्त हुआ जाकर राजनैतिक रूप में। लोग शारदा-धारा की क्रान्ति को धार्मिक क्रान्ति समझ बैठे हैं; पर मैं यह कह सकता हूँ—यद्यपि मैं भविष्यवादी पारङ्गत ज्योतिषी नहीं हूँ—कि इस क्रान्ति का अन्त भी राजनैतिक रूप में ही होगा। असहयोग स्थगित होने के पश्चात् हिन्दू-मुसलमान युद्ध के रूप में जो क्रान्ति प्रारम्भ हुई यद्यपि उसको धार्मिक रूप दिया गया तथापि वह थी राजनैतिक क्रान्ति। संसार के इतिहास से पता चलता है कि जब विभिन्न जाति और संस्कृतिवाले किसी साधारण अथवा सामान्य प्रबल शत्रु के प्रतिरोध के लिए मिलकर काम करते हैं अथवा युद्ध ठान देते हैं, तब यदि वे हार जाते हैं तो आपस में लड़ने लगते हैं। एक जाति अथवा एक ही प्रकार की संस्कृतिवालों

की भी यही दशा होती है। जब जर्मनी हारा तब भीतर जर्मनी में भी गृह-कलह हुआ और क़ैसर को निकलना पड़ा। जब टर्की हारा, तब वहाँ भी दो-दल हुए और ज़ोरों का गृह-कलह था; फल-स्वरूप ख़लीफ़ा वहाँ से निकाले गये। ग्रीस जब टर्की से हारा, वहाँ भी ग्रह-कलह हुए; और परिणाम-स्वरूप वहाँ के राजा को भाग जाना पड़ा। मेक्सिको में धार्मिक रूप में बराबर क्रान्तियाँ और प्रतिक्रान्तियाँ होती रहती हैं, पर उनका परिणाम राजनैतिक रूप में ही निकलता है।

(३)

यह भी देखा गया है कि राजनैतिक रूप में ही प्रारम्भ हुई क्रान्तियों का पर्यवसान धार्मिक रूप में और धार्मिक रूप में प्रारम्भ की गई क्रान्तियों के फल राजनैतिक रूप में प्रकट होते हैं। जिनकी राजनीति धर्म से प्रथक् नहीं है, वहाँ तो और बात है; किन्तु जो धर्म को राजनीति से पृथक मानते हैं, उनकी बात मैं लिख रहा हूँ। हिन्दुओं का धर्म सार्वभौम धर्म था, वह हिन्दू-साम्राज्य के अभाव में संकुचित होकर राजनैतिक प्रश्न से पृथक् एक साधारण रूढ़ि-रूप में प्रचलित है। यदि वही सार्वभौम रूप रहता तो आज शारदा-कानून के विरोधी कांग्रेस से यह कभी न कहते कि धर्म के विषय में हस्तक्षेप न करे—वस्तुतः जब से धर्म और राजनीति को पृथक माननेवाले धर्म प्रचलित हो गये, अथवा अज्ञान से धर्म राज-नीति शून्य माना जाने लगा, तभी से भारतवर्ष में विचित्र स्थिति उत्पन्न हुई।

(४)

क्रान्ति स्वयं आती है या लाई जाती है? यह प्रश्न बहुधा किया जाता है। लोग भले ही समझें कि वे अपने यत्नों से क्रान्ति ला सकते हैं, पर मैं मानता हूँ कि क्रान्ति स्वयं आती है—हां, क्रान्ति के आने पर उसका मुख अपेक्षित दिशा में फेर कर लाभ उठाना मनुष्य-समुदाय का कार्य है; और मनुष्य समुदाय ऐसा करता भी है। जो समुदाय क्रान्ति का स्वागत करने के लिए स्वयम् तैयार रहते हैं, वे लाभ उठाते हैं; जो स्वागत के लिए तैयार नहीं रहते, क्रान्ति उनके लिए ठहर नहीं जाती। वह तो कहीं से उठती है; किधर से हो निकल जाती है। जो रक्षा करने योग्य हों उनकी रक्षा करती है; नष्ट होने योग्यों को नष्ट कर डालती है। नया युग लाती है। नया संदेश सुनाती है। यदि क्रान्ति-चक्र न चले, तो भ्रान्ति-चक्र मिट नहीं सकता।

(५)

कभी-कभी न जाने क्यों ऐसा भी होता है कि ऐसे ही महान व्यक्ति उत्पन्न होते हैं, जैसी कि क्रान्ति आनेवाली होती है। उन्हीं व्यक्तियों को यश मिलता है, और वे ही उस क्रान्ति के जनक कहलाये जाते हैं। उनके नाम इन क्रान्तियों के साथ अमर हो जाते हैं। महात्मा गांधी और लेनिन इसी प्रकार के क्रान्तिकारियों में हैं। कमालपाशा इसी प्रकार के लोगों में आते हैं। रूस में क्रान्ति आरम्भ हुई, टाल्स्टाय की विचार-धारा से, और उस क्रान्ति को कार्य रूप में परिणत करने का यश मिला लेनिन को। भारत में धार्मिक विचार-क्रान्ति प्रारम्भ हुई दयानन्द से।*

किन्तु उसे परिणत करने का यश मिल रहा है महात्मा गान्धी को। यह है अपने-अपने भाग्य की बात।

(६)

लोग पूछ सकते हैं, कि क्रान्ति किस बला का नाम है—? मैं कहता हूँ कि क्रान्ति उस तीव्र विचार-

* स्वामी दयानन्द के साथ स्वामी विवेकानन्द, राजा-राममोहनराय आदि और भी कई महापुरुषों के नामों का इस दृष्टि से उल्लेख होना चाहिए। सम्पादक।

धारा के प्रवाह का नाम है, जो संसार में प्रचलित होकर संसार के मस्तिष्क, हृदय, रहन-सहन, सभ्यता, सामयिक धर्म राज्य-प्रणाली आदि में परिवर्तन करने में सफल हो। कभी यह क्रान्ति रक्त-प्रवाह दिखाकर होती है, कभी समाज-संशोधकों-द्वारा नीरक्त हो जाती है। नीरक्त क्रान्ति का पर्यवसान रक्त-प्रवाह में और सरक्त क्रान्ति के विचार से प्रारम्भ किया हुआ काम नीरक्त रूप में परिणत हो सकता है। लेनिन सरक्त-नीरक्त का विचार नहीं रखता था, किन्तु पर्यवसान नीरक्त क्रान्ति में ही हुआ। महात्मा गांधी रक्त-शून्य क्रान्ति चाहते हैं और वैसी क्रान्ति हो भी रही है; परन्तु उसका पर्यवसान किस रूप में होगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। मतलब यह है कि क्रान्ति का उत्पादक क्रान्ति को जिस रूप में चाहता है, वह उसी रूप में आये, यह आवश्यक नहीं है।

(७)

संसार इस समय क्रान्ति-स्थल हो रहा है। सब राष्ट्रों का, चाहे वे प्रजा-तन्त्रीय स्वतन्त्र हों, चाहे राजतन्त्रीय हों, या किसी रूप में परतन्त्र हों, उद्देश्य स्वशान्ति और पर-शान्ति है, दूसरे शब्दों में, संसार को शान्तिमय धाम बनाने का है। जिनका स्वराज्य है, वे भी सुखी नहीं हैं; पराधीन राष्ट्र तो किस प्रकार सुखी रह सकते हैं? सर्वत्र राष्ट्रों में मात्स्य न्याय प्रवर्तित हो रहा है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला चल रहा है। बड़ा छोटे को निकाल डालने की चिन्ता में, छोटे की सत्ता और अस्तित्व मिटाने में, लग रहा है। अमेरिका में रेड इण्डियनों की खैर नहीं है, एशिया में आफ्रिका के नीग्रों की खैर नहीं है, रूस में अमीर और पूँजीपतियों की खैर नहीं है, समस्त पाश्चात्य देशों में धर्म के नाम पर जीते रहनेवालों की खैर नहीं है। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को हड़प करने की चिन्ता में हैं, छोटे राष्ट्र अपनी सत्ता के लिए सचेत हैं। 'लीग आव नेशन्स' बन्दर-बाँट का ढोंग बन रहा है। प्रबल-राष्ट्र स्वार्थ-वश परस्पर मेल रखकर संसार के समस्त छोटे-छोटे राष्ट्रों को सदैव के लिए अधीन कर रहे हैं, इस अर्थ में कि अपनी संकुचित सीमा में भले ही स्वतन्त्र रहें पर उसके बाहर जरा भी हाथ-पैर नहीं फैला सकते, किसी से स्वतन्त्र-सन्धि नहीं कर सकते। ऐसी दशा में भी वहाँ क्रान्ति हो रही है और यह दशा बहुत वर्षों तक नहीं रह सकती। मात्स्य न्याय में यह होता है कि बड़ी मछली छोटी-छोटी मछलियों को निगलती रहती है—जहाँ बसूला फिरा कि रन्धा आ धमका, जहाँ तोपों का काम हुआ कि नवीन शिक्षा-दीक्षा देनेवाले अध्यापक आ धमके।

(८)

जहाँ शस्त्रास्त्रों-द्वारा किसी जाति को पद-दलित किया कि मस्तिष्क में क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए उस राष्ट्र के अध्यापक पहुँच जाते हैं। शान्ति के उपासक मिश्नरी पहुँच जाते हैं—देने लगते हैं विश्व-बन्धुत्व के उपदेश; समझाने लगते हैं कि यह ईश्वरीय संकेत है, हम तुम्हारे ही हित के लिए कष्ट उठा रहे हैं। पाश्चात्य विज्ञान इस कार्य में इन प्रबल मक्कार राष्ट्रों का सहायक हो रहा है। पाश्चात्य देशों में यदि धर्म-शून्य विज्ञान क्रान्ति मचा रहा है, तो हमारे देश में विज्ञान-शून्य धर्म लम्बे-लम्बे साँस ले रहा है। वहाँ का विज्ञान संहारक शक्ति का पोषक और यहाँ का धर्म—धर्माभास धर्म—समस्त राष्ट्र को निस्तेज बना रहा है। समय आयेगा जब कि न तो विज्ञान-शून्य धर्म और न ही धर्म-शून्य विज्ञान जीवित रह सकेंगे। दोनों मिलकर रहेंगे, तब तो संसार शान्तिमय धाम बन सकेगा; नहीं तो संसार की क्रान्तियाँ तथा प्रतिक्रान्तियाँ बलवान राष्ट्रों में यादवी मचाकर वहाँ मौसलपर्व उत्पन्न करेंगी। और फिर

एक ऐसी महती क्रान्ति आवेगी कि जिससे मानव सच्चे विश्व बन्धुत्व को समझ सकेगा।

(९)

अब तो संसार की यह दशा है कि मानों प्रबल डाकू लोगों को अस्तेय का उपदेश दे रहे हैं—पक्के व्यभिचारी जनता को ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा लेने को कह रहे हैं—लोगों का सर्वस्व अपहरण करने में संलग्न लोग 'परस्वापहरण' के धर्मोपदेश दे रहे हैं। 'राष्ट्र,' 'साम्राज्य', 'राष्ट्र-संघ', 'शान्ति सभा' 'स्वराज्य,' 'विश्व-बन्धुत्व' आदि शब्द अपने सच्चे अर्थों को छोड़ कर नवीन अर्थों को धारण कर रहे हैं। इसलिए एक बड़ी क्रान्ति अपना विकराल मुँह फाड़े आ रही है। क्रान्ति-दर्शी लोग उसको स्पष्ट रूप से देख रहे हैं। स्वार्थान्ध पुरुष स्वार्थी जन-समुदाय, स्वार्थी राष्ट्र, स्वार्थी साम्राज्य उसको देख नहीं रहे हैं; पर अनुभव कर रहे हैं—जितने भी शान्ति के उपाय ढूँढते जाते हैं, उसमें स्वार्थ भरा रहता है, इसलिए उन्हीं में से क्रान्तियाँ बढ़ रही हैं।

(१०)

भारतवर्ष में दो रूपों में क्रान्ति हो रही है। एक दल अंग्रेजों की राज्य-प्रणाली से घृणा करता जाता है, किन्तु उनकी सभ्यता को अपनाता जाता है। दूसरा दल अंग्रेजों से प्रेम करता है, किन्तु उनकी शिक्षा-दीक्षा-सभ्यता से सदैव के लिए बचने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार दोनों दलों में बड़ा भारी युद्ध हो रहा है। यदि मुझसे कोई पूछे कि कौनसी क्रान्ति भारत के लिए हितकर सिद्ध होगी, तो मैं यही कहूँगा कि जो दल अंग्रेजों से प्रेम करता है, पर उनकी शिक्षा-दीक्षा-सभ्यता से बचना चाहता है उस दल की क्रान्ति भारत के लिए हितकर होगी। इस दृष्टि से लोकमान्य तिलक प्रवर्तित तथा महात्मा गांधी-द्वारा पोषित क्रान्ति-धारा भारत के लिए हित-कर सिद्ध होगी इसमें सन्देह नहीं।

(११)

महात्मा गान्धीजी की प्रत्येक विचार-धारा से सहमत होना कठिन बात है, तथापि उनकी विचार-क्रान्ति प्राचीन भारतीय सभ्यता की ओर—बहुत समीप—ले जानेवाली है। इसीलिए हम उसका स्वागत करते हैं—और प्रत्येक प्राचीन सभ्यता का उपासक स्वागत करेगा। इस युग में स्वामी दयानन्द आदि ने झाड़-झंखड़ साफ़ किये, राष्ट्र-सूत्रधार लोक-मान्य तिलक ने क्षेत्रों को साफ़ किया, और महात्मा गांधी ने बीजारोपण किया। अब अंकुर फूट रहे हैं, उनकी रक्षा करना प्रत्येक भारतवासी का काम है—केवल भारतीय सभ्यता की रक्षा की दृष्टि से नहीं, अपितु संसार भर को शान्तिमय धाम बनाने की व्यापक दृष्टि से।
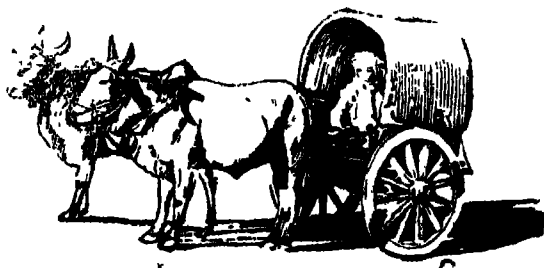
पैलेस्टाइन की समस्या

[श्री जयमङ्गलसिंह]

विलाप-प्राचीर (Wailing wall) के सम्बन्ध में पिछले दिनों जेरूसलम में जो दंगा हुआ था, उसकी खबर आने पर इस सम्बन्धी हालात जानने की उत्सुकता उठना स्वाभाविक था। सचमुच यह विषय भी बड़ा रहस्यमय और मनोरञ्जक है।

इसका रहस्य जानने के लिए हमें पैलेस्टाइन की सारी परिस्थिति को समझना होगा। वह कहाँ है, यूरोपीय महासमर से उसका क्या ग्स्थाति होगई है, और विभिन्न जातियों के उसमें परस्पर क्या सहयोग-सम्बन्ध है, ये सब बातें जाननी चाहिएँ।

प्रस्तुत लेख में रोचकता के साथ क्रमपूर्वक इन सब बातों का वर्णन है। इससे पाठकों को अरब और यहूदी जातियों के परस्पर मन-मुटाव का पता चलेगा। ब्रिटिश कूटनीति ने उसे कैसे पैदा करके लहलहाया है, यह सब इससे जाना जा सकता है।

लेखक का कहना है—

"इस तरह के दंगों का वास्तविक कारण ब्रिटिश सरकार की 'ज़ियोनिस्ट-नीति' है, जिसका उद्देश्य पैलेस्टाइन में यहूदियों का राष्ट्रीय गृह स्थापित करने में सहायता देना है। × × अरबों की संख्या यहूदियों की संख्या से छःगुना अधिक है, इस कारण वे अल्प संख्यक यहूदियों का प्रभुत्व नहीं स्वीकार कर सकते। वे यहूदियों के साथ मिलकर रहना चाहते हैं, पर इसके लिए वे न तो अपने अधिकार छोड़ना चाहते हैं, और न वहाँ दबकर ही रहना चाहते हैं। × × वे न्याय चाहते हैं और इसलिए अपने को मिटा देने को तैयार हैं।"

लेखक की राय में, "जबतक ग्रेट-ब्रिटेन प्रवासी यहूदियों के वहां आकर बसने पर नियंत्रण नहीं करेगी, जबतक वह अपनी ज़ियोनिस्ट नीति में परिवर्तन नहीं करेगी, तबतक इन दो जातियों का ऐसा सम्बन्ध बना ही रहेगा; और वे वहाँ सद्भाव से न रह सकेंगी।"

महासमर के बाद प्रायः सारे संसार—यूरोप, आफ्रिका और एशिया—के नक्शे में काफ़ी परिवर्तन होगया है। महायुद्ध के पूर्व पश्चिमी यूरोप में राइन एवं रूर (Ruhr) का वैभवशाली प्रान्त जो जर्मनी के अधिकार में था, अब वह उसके अधिकार में नहीं है। फ्रान्स उसपर बेतरह दाँत गड़ाये हुए है। अलसेस और लोरेन (Alsace and Lorraine) तो फ्रान्स के अधिकार में आ ही गया है। पूर्वी यूरोप में आस्ट्रिया-हंगरी का विशाल साम्राज्य था, अब वहाँ इन दो स्वतंत्र राष्ट्रों के अतिरिक्त ज़ेकोस्लाविका, पोलैण्ड और जुगोस्लाविया नाम के नये राष्ट्रों की सृष्टि हो गई है। बालकन प्रायद्वीप तथा आफ्रिका में भी काफ़ी उलट-फेर हुए हैं। पोलैण्ड के उत्तर में रूस के अधीनस्थ प्रान्तों से लटाविया, इस्थोनिया तथा लिथुआनिया नामक स्वतंत्र राष्ट्रों की उत्पत्ति हुई है। पश्चिमी एशिया में जहाँ तुर्की का विस्तृत साम्राज्य था, अब वहाँ तुर्की को छोड़ कर पैलेस्टाइन, ईराक तथा सीरिया के शासनादेशों (Mandated Territories) के अतिरिक्त ट्रान्सजारडेनिया, नज्द, यमन और अरब प्रायद्वीप में वहाबी राज्य स्थापित होगया है।

पश्चिमी एशिया के नक्शे में जो परिवर्तन हुए हैं, वे अंग्रेज़ों के अनुकूल ही हुए हैं। क्योंकि यहाँ अंग्रेज़ों का अधिकार रहना भारत को ब्रिटिश साम्राज्य की शृंखला में बाँधे रहने के लिए सैनिक उपयोग की दृष्टि से आवश्यक है। यही कारण था कि १८७८ की बर्लिन-कांग्रेस के बाद से ही अंग्रेज़ों ने निश्चित रूप से तुर्की का अन्त कर वहाँ अपना प्रभुत्व जमाने का निश्चय कर लिया था, फिर भी वे समय-समय पर रूस के विरुद्ध उसकी मदद करते रहे। महासमर

के पूर्व अरब भी तुर्की के अधीन था, पर वह तुर्की से स्वतंत्र होना चाहता था। इस कारण अरबों में स्वतंत्रता प्राप्त करने का आन्दोलन पहले से ही जारी था। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ पहले से यह अच्छी तरह जानते थे कि अगर कभी तुर्की के विरुद्ध युद्ध छिड़ेगा तो उस समय उसका नाश कर देने के लिए अरबों की सहायता बड़ी कारगर होगी। यही समझ कर जब गत महायुद्ध में तुर्की जर्मनी की ओर मिल गया तो उस समय अंग्रेज़ों ने मक्का के शरीफ़ तथा अरबों के अन्य सरदारों को अपनी ओर मिलाकर उन्हें तुर्की के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा करने को उभाड़ा। इसके लिए उन्हें सब्ज़ बाग़ दिखाये गये; स्वतंत्रता दिलाने की प्रतिज्ञा की गई तथा सारे अरब को एक 'संघ' (Federation) के रूप में परिवर्तित कर देने को कहा गया। इतना ही नहीं, स्वतंत्रता दिलाने के प्रलोभन के साथ, अरबों को तुर्की के विरुद्ध अंग्रेज़ों को सहायता देने के लिए लाखों रुपये भी दिये गये। अरबों ने देखा, हमारे दोनों हाथ लड्डू हैं और अंग्रेज़ों की सहायता करने से हमें अभी आर्थिक लाभ हो रहा है और बाद में स्वतंत्रता भी मिलेगी। बस, फिर क्या था, उन लोगों ने तुर्की के विरुद्ध क्रान्ति कर महासमर में अंग्रेज़ों को भरपूर सहायता दी। फल-स्वरूप तुर्की का सत्यानाश होने में देर नहीं लगी।

एक तरफ़ तो महायुद्ध के समय अंग्रेज़ों ने फ्रांस के साथ यह गुप्त समझौता किया कि अगर युद्ध में विजय होगी तो सीरिया फ्रान्स के तथा ईराक (मेसोपोटामिया) और पैलेस्टाइन अंग्रेज़ो के अधिकार में रहेंगे। उसी समय अरबों से भी अंग्रेज़ों ने यह गुप्त सन्धि की कि सीरिया तथा पैलेस्टाइन अरब-साम्राज्य के अन्तर्गत रहेंगे। अरबों को न अंग्रेज़ों की कूटनीति का पता था, और न उन्हें यह ज्ञान था कि अंग्रेज़ों के खाने और दिखाने के दाँत अलग-अलग होते हैं। वे तो समझते थे कि अंग्रेज़ हमारे साथ अपने वचन का पालन करेंगे और हमें भी अब स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार मिलेगा। इस तरह एक ओर तो अरबों को स्वतंत्र करने का वचन अंग्रेज़ों से मिल चुका था, दूसरी ओर महासमर के समय मित्र-राष्ट्रों के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ बराबर यह कहते आ रहे थे कि इस युद्ध का एक यह भी उद्देश्य है कि तुर्क-साम्राज्य में बसनेवाली जातियाँ स्वतंत्र हो जायँ। वे सदा इसी बात की घोषणा करते आ रहे थे कि हम लोग छोटे-छोटे राष्ट्रों की रक्षा करने, उन्हें स्वतंत्र बनाने और संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिए युद्ध कर रहे हैं। अपने-अपने स्वार्थ-साधन की पूर्ति करने के लिए यह युद्ध नहीं हो रहा है। इसके बाद राष्ट्रपति विलसन की युद्ध बन्द करने की चौदह शर्तों की घोषणा हुई। उनमें एक शर्त यह भी थी कि सब छोटे और बड़े राष्ट्रों को अपने-अपने आत्म-निर्णय (Self-ditermination)का अधिकार दिया जायगा। इस घोषणा से कमज़ोर एवं पराधीन राष्ट्रों के साथ अरबों के हृदय में भी नवीन आशा का संचार हुआ और वे समझने लगे कि अब सारी पुरानी बातें बदल जायँगी और पश्चिमी एशिया में भी एक नये युग का प्रादुर्भाव होगा।

अरबों को अंग्रेज़ों की ओर से स्वतंत्रता दिलाने का वचन मिल ही चुका था। राष्ट्रपति विलसन की घोषणा से उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। पर महासमर के बाद वर्सेल्स का जो सन्धि-सम्मेलन हुआ, उससे युद्धान्त के पहले अरबों को जो आशा हुई थी वह निराशा में परिणत हो गई। महायुद्ध के समय कहाँ तो यह कहा जा रहा था कि यह युद्ध भावी युद्धों का अन्त करने के लिए हो रहा है, पर वर्सेल्स की संधि ने तो संसार में सुख तथा शान्ति प्रस्थापित करने की अपेक्षा भविष्य में अशान्ति एवं असंतोष का ही बीज बो दिया। वर्सेल्स के सन्धि-सम्मेलन में बहुत से महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों की उपेक्षा की गई और बहुत-से प्रश्नों को और भी विकट बना दिया गया। सब काम अपने-अपने स्वार्थ को सामने रख कर किया गया। पश्चिमी एशिया में 'मैण्डेट (Mandate) की सृष्टि इसी कारण से की गई। इंग्लैण्ड और फ्रान्स में पश्चिमी एशिया के लिए पहले जैसा गुप्त समझौता हो गया था, उसके अनुसार सीरिया का मैण्डेट फ्रान्स के तथा ईराक़ और पैलेस्टाइन का मैण्डेट अंग्रेज़ों के हाथ में आया। मैण्डेट की सृष्टि करते समय इसका उद्देश्य तो यह बतलाया गया कि जो राष्ट्र अपने पैरों पर अभी आप खड़े नहीं हो सकते हैं, उनकी रक्षा और सहायता करना उन्नत और सभ्य राष्ट्रों का कर्त्तव्य है। अतः उन्हें उन्नत और स्वराज्य उपभोग करने योग्य बनाने के लिए

कुछ समय तक उन्नत एवं सभ्य राष्ट्रों के संरक्षण में रखना आवश्यक है। ऊपर से देखने से तो इसका उद्देश्य बड़ा ही महत्वपूर्ण जान पड़ता है, पर इसके भीतर कुछ और ही बात थी। इंग्लैण्ड के लिए सैनिक उपयोग की दृष्टि से मैसोपोटामिया (ईराक़) और पैलेस्टाइन पर अधिकार रखना आवश्यक था और है। इसके साथ ही ईराक़ में मोसल के तैल-कूप होने के कारण अंग्रेज़ उस-पर अपना अधिकार रखना चाहते थे। क्योंकि वर्तमान वैज्ञानिक युग में इसका बड़ा ही महत्व हो गया है। स्वेज नहर की रक्षा के लिए भी अंग्रेज़ों का पैलेस्टाइन पर अधिकार रहना ज़रूरी है। आज-कल मिश्र पर अंग्रेज़ों का संरक्षण होने के कारण वे स्वेज नहर की रक्षा वहाँ पर सेना रखकर करते हैं, और अगर वहाँ से उनका शासन उठ भी जाय तो वे पैलेस्टाइन को 'आधार' (Base) बनाकर स्वेज नहर की रक्षा कर सकते हैं। फ्रान्स सीरिया पर भी अधिकार रख कर पश्चिमी एशिया में अपना व्यापार चमकता हुआ देखना चाहता था। इन्हीं कारणों से मैण्डेट की ओट में आज-कल इन प्रदेशों पर अंग्रेज़ों और फ्रान्स का आधिपत्य है। यूरोप के कूटनीतिज्ञ अपनी साम्राज्य-पिपासा को शान्त करने के लिए कैसे-कैसे जाल रचते हैं, इसका 'मैण्डेट' प्रत्यक्ष प्रदर्शन है और उन्हींके मस्तिष्क की यह नई उपज है।

इस लेख का सम्बन्ध पैलेस्टाइन से है, अतः हम उसी-के सम्बन्ध में अब विचार करेंगे। महायुद्ध के पूर्व पैलेस्टा-इन तुर्क-साम्राज्य के अधीन शाम-प्रान्त (विलायत) का एक भाग था। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, आज-कल यह ग्रेट ब्रिटेन के शासनादेश(Mandate) में है। इसके सम्बन्ध में कुछ लिखने के पहले इसके पूर्वेतिहास पर एक सरसरी दृष्टि डाल लेना आवश्यक होगा। इससे पाठकों को वहाँ की राजनीति समझने में सहायता मिलेगी।

पैलेस्टाइन भूमध्यसागर के उत्तरी किनारे पर स्थित अरब महादेश का उत्तर-पश्चिमी भाग है। यह भूमध्यसागर के तट पर उत्तर-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर फैला हुआ लम्बा भू-भाग है। इस देश का इतिहास बहुत पुराना है। इस छोटे से देश ने संसार के बहुत-से उलट-फेर देखे हैं। इस देश पर मिश्र, रोम, यूनान तथा मुसलमानों ने किया है। आज-कल यह ग्रेट-ब्रिटेन के मैण्डेट में है।

पैलेस्टाइन यहूदी, ईसाई तथा मुसलमानों का धर्म-क्षेत्र है। यहीं की 'पवित्र शिला' पर पैग़म्बर इब्राहीम ने अपने लड़के की बलि दी थी। इसी के स्मृति-स्वरूप 'बकरीद' की सृष्टि हुई है। हज़रत मूसा ने भी यहीं जन्म ग्रहण कर इस देश को पवित्र किया था। इन पैग़म्बरों को तीनों धर्मावलम्बी—ईसाई, मुसलमान तथा यहूदी—मानते हैं। ईसाइयों के प्रभु ईसा-मसीह ने भी यहीं अवतार ग्रहण किया था। मुसलमानों के चार परम-पवित्र तीर्थों में दो क्षेत्र केवल पैलेस्टाइन में ही हैं। उनके लिए मक्का के बाद जेरुसलम का ही नम्बर है।

जब पैलेस्टाइन पर ईसाइयों का अधिकार रहा तो मुसलमानों ने उसे काफ़िरों के हाथ से छुड़ाने के लिए ख़ून बहाया। इसके बाद जब उस प्रदेश पर मुसलमानों ने क़ब्ज़ा किया, तो ईसाइयों ने पैलेस्टाइन को उनके हाथ से छुड़ाने के लिए रक्त-पात किया। इसके लिए ईसाइयों का धार्मिक युद्ध (Crusade) इतिहास में विद्यार्थियों के लिए मनोरंजन की घटना है। इसके लिए ईसाई और मुसलमानों के ख़ून के साथ यहूदियों का भी ख़ून बहाया गया है। यह देश तीनों धर्मों के लोगों के रक्त से अनेक बार सींचा गया है। संसार के इतिहास में शायद ही कोई ऐसी जगह मिलेगी, जहाँ यहाँ जैसी ख़ून-ख़राबी हुई हो। आजकल भी यहाँ ख़ून-ख़राबी बन्द नहीं हुई है। यही इस स्थान की महत्ता का प्रदर्शक है और यही इसकी विशेषता कही जा सकती है।

यह यहूदियों का पुराना देश है। प्राचीन काल में उन-का यहाँ राज्य था। उन्हें रोमन सम्राट् हड्रियन (Hadri-an) ने यहाँ से मार भगाया था। अपने देश से भगाये जाने पर वे सारे संसार में फैल गये और जहाँ जिस देश में गये वहीं बस गये। उनका अपना कोई देश नहीं रह गया। यद्यपि वे भाग्य के उलट-फेर से संसार में भटकते रहे, पर अपने देश की स्मृति को अपने मस्तिष्क में सदा ताज़ा बनाये रहे। इसके साथ ही पैलेस्टाइन को अपना 'राष्ट्रीय गृह' बनाने की आकांक्षा उनमें बराबर बनी रही। कोई यहूदी जहाँ जिस दशा में रहे, उसकी अन्तरात्मा से यही

आवाज़ निकलती थी "If I forget thee o, Jeruselem let my right hand forget her cunning." इन्हें सारे संसार में भटकना पड़ा, धक्के खाने पड़े तथा ये ईसाइयों द्वारा पददलित किये गये; पर इन लोगों ने अपने धर्म को नहीं छोड़ा और अपनी विषशेता क़ायम रक्खी। जहाँ जिस देश में गये, अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय से धनी बने और वहाँ अपना एक स्थान बनाकर रहने लगे। यह सब कुछ हुआ; पर वे पैलेस्टाइन में अपना राष्ट्रीय गृह बनाने का बराबर सुख-स्वप्न देखते रहे।

यही बात सदा एक-सी नहीं रही। समय ने पलटा खाया और संसार में फैले हुए यहूदी अपने सुख-स्वप्न को वास्तविक स्वरूप देने का विचार करने लगे। वे अनुभव करने लगे कि अपनी जाति-गत विशेषता को क़ायम रखने के लिए हमारा अपना एक देश होना चाहिए। बहुत-से यहूदी इसी भावना को हृदय में रखकर अनेक विघ्न-बाधाओं की कोई पर्वा न करते हुए पैलेस्टाइन में आते रहे और वहाँ राष्ट्रीय गृह बनाने का कार्य किसी-न-किसी रूप में बराबर जारी रहा। पर संगठित रूप से इसके लिए आन्दोलन वहाँ १८८० ईस्वी से ही प्रारम्भ हुआ।

रूस तथा मध्य-यूरोप में यहूदियों पर होनेवाले अत्याचारों को देखकर बैरन एडमण्ड डी रोथ सिल्ड (Baron Edmond de roth schild) नामक एक उदार सज्जन का हृदय द्रवीभूत हो गया। उन्होंने पैलेस्टाइन में यहूदियों का उपनिवेश बसाने का आन्दोलन किया, पर उसका उद्देश्य वहाँ पर शान्ति से यहूदियों के निवास करने एवं उपासना के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इसके १७ वर्ष बाद 'ज़ियोनिज़्म (Zionism) का जो आन्दोलन आरम्भ हुआ, उसके तथा रोथसिल्ड के सिद्धान्तों में बड़ा भेद है।

सन् १८९७ में अर्थात् रोथसिल्ड के उपनिवेश बसाने के आन्दोलन के १७ वर्ष बाद डा० थियोडोर हर्ज़ल नामक आस्ट्रिया के एक यहूदी नेता को पैलेस्टाइन में यहूदियों के 'राष्ट्रीय गृह' बनाने के छिन्न-भिन्न प्रयत्न को केन्द्रीभूत कर एक सुसंगठित आन्दोलन कर उसे राजनैतिक रूप देने की बात सूझी। वह पत्रकार एवं नाटककार थे और उनमें नेतृत्व की अनुपम शक्ति थी। यही कारण था कि उनके आन्दोलन को अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में बहुत-कुछ सफलता मिली। उनका यह विचार था कि यहूदी यूरोपियन राष्ट्रों में नहीं मिल सकते और जबतक उनका अपना एक अलग देश नहीं होगा तबतक वे फल-फूल नहीं सकते और न अपनी रक्षा ही कर सकते हैं। अतः यहूदी जाति की उन्नति एवं रक्षा के लिए वह चाहते थे कि यहूदी पहले कहीं अन्यत्र बस कर अपना स्वतंत्र राष्ट्र क़ायम करें और जब उनकी शक्ति सुसंगठित हो जाय तब वे अपने तीर्थ-स्थान-पैलेस्टाइन—के उद्धार का प्रयत्न करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जो संगठन किया, उसका नाम 'ज़ियोनिज़्म' पड़ा और उसके मानने वाले 'ज़ियोनिस्ट' कहलाये। 'ज़ियोनिज़्म' आन्दोलन का उद्देश्य यहूदियों को पैलेस्टाइन में बसाना, वहाँ उनके तीर्थ-स्थान का उद्धार करना तथा उनकी राष्ट्रीय भाषा हिब्रू द्वारा उनकी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति को फिर से जीवन प्रदान करना है। उसी वर्ष, अर्थात् १८९७ में ही, ज़ियोनिस्ट लोगों की पहली कांग्रेस हुई। उसमें हर्ज़ल साहब ने अपनी योजना पेश की। सब लोगों की राय से इस कांग्रेस का उद्देश्य वही निश्चित हुआ, जो ऊपर कहा जा चुका है। बस, फिर क्या था, इसके अनुसार काम होने लगा और ज़ोरों से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आन्दोलन आरम्भ हुआ। ज़ियोनिस्ट-कांग्रेस हर दो वर्ष में एक बार होने लगी और होती रहती है। कांग्रेस ने सारे संसार के राष्ट्रों से अपने उद्देश्य की स्वीकृति एवं सहायता चाही। दस वर्ष के अन्दर ही इस आन्दोलन की जड़ काफ़ी मजबूत हो गई और इसके परिणाम-स्वरूप १९०३ में ब्रिटिश सरकार पूर्वी आफ्रिका में यहूदियों को उनके उपनिवेश बसाकर यहूदी राष्ट्र बनाने के लिए काफ़ी ज़मीन देने को तैयार हो गई। पर १९०४ में ज़ियोनिस्ट-कांग्रेस ने इसे लेने से इन्कार कर दिया। इसके विरोध में यह कहा गया कि पैलेस्टाइन ही यहूदियों की सभ्यता, संस्कृति और उनकी राष्ट्रीय आकांक्षा का गृह है। अतः वे उस जगह को छोड़ अन्यत्र अपना राष्ट्रीय गृह नहीं बना सकते। इसी वर्ष हर्ज़ल साहब का भी देहान्त हो गया और उनके मरने से इस आन्दोलन को बड़ा धक्का पहुँचा। इसके साथ ही इसी समय कांग्रेस में फूट हो गई और एक

दल ने उससे अलग होकर अपना अलग संगठन किया। यह दल आफ्रिकावाली ज़मीन लेने को तैयार हो गया। पर वहाँ के थोड़े से अंग्रेज़ों ने यहूदियों को वहाँ जाकर बसाने का इतना विरोध किया कि ब्रिटिश सरकार को मजबूर होकर अपना मत बदलना पड़ा। वह उस स्थान के बदले उगण्डा प्रदेश देने को राज़ी हुई, पर वहाँ जाकर बसने के लिए वे यहूदी राज़ी नहीं हुए और अन्यत्र जा बसने का मामला वहीं ख़त्म हो गया।

डाक्टर हर्जेल की मृत्यु तथा ज़ियोनिस्ट कांग्रेस में फूट हो जाने से पैलेस्टाइन में यहूदियों के राष्ट्रीय गृह बनाने के आन्दोलन को धक्का पहुँचा, पर इस आन्दोलन की प्रगति बन्द नहीं हुई और यह बराबर जारी ही रहा। अंग्रेज़ पैलेस्टाइन को अपने संरक्षण में रखना और इस काम में यहूदियों की सहायता लेना चाहते थे। ऐसा करके वे पैलेस्टाइन के द्वारा मिश्र तथा स्वेज़ नहर की रक्षा करना चाहते थे। १९१४ में संसार-व्यापी महासमर छिड़ने पर जब तुर्की जर्मनी की ओर मिल गया, तो अंग्रेज़ों को इस बात की फ़िक्र पड़ी कि वे तुर्की तथा उसके अन्य पड़ोसी मुसलमान देशों के बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर दें, जिससे भविष्य में ये राष्ट्र सरलता से आपस में न मिल सकें। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर अंग्रेज़ अरब-साम्राज्य कायम करना चाहते थे। इसके साथ ही पैलेस्टाइन भी उनके संरक्षण में रहना आवश्यक था। बस इसी बहाने संसार भर के यहूदियों की सनातन भूमि लौटाने की ओट में संसार की नैतिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड के तत्कालीन वैदेशिक मंत्री लार्ड बालफ़ोर ने एक घोषणा प्रकाशित की। यह घोषणा २ नवम्बर १९१७ को अर्थात् पहली ज़ियोनिस्ट कांग्रेस (१८९७) के बीस वर्ष बाद की गई जिसमें ब्रिटिश सरकार ने पैलेस्टाइन में यहूदी राष्ट्रीय गृह की स्थापना के कार्य से सहानुभूति दिखाई और उसमें यह कहा गया—'यहूदी लोग पैलेस्टाइन में अपना जो राज्य स्थापित करना चाहते हैं, उसे ब्रिटिश सरकार अच्छा समझती है और वह उनके इस उद्देश्य की सिद्धि में यथा-साध्य सुभीते उत्पन्न करने का प्रयत्न करेगी। पर साथ ही लोगों को यह भी विश्वास होना चाहिए कि इस सम्बंध में यहूदियों की सहायता करते समय ब्रिटिश सरकार कोई ऐसा कार्य नहीं करेगी जिससे पैलेस्टाइन में बसनेवाली दूसरी जातियों के धार्मिक अथवा नागरिक अधिकारों में किसी प्रकार की बाधा पहुँचे; इस समय दूसरे देशों में जा बसनेवाले यहूदियों को जो राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं, उन अधिकारों पर भी इस बात का कोई प्रभाव न पड़ेगा।" इस घोषणा के एक महीने बाद ब्रिटिश सेनापति लार्ड एलनबी की सेना ने जेरूसलम पर अधिकार कर लिया। इस पर पैलेस्टाइन में ब्रिटिश एवं ज़ियोनिस्ट हितों के बीच कार्य करने के लिए एक ज़ियोनिस्ट-कार्यकारी मण्डल (Zionist Executive) की स्थापना हुई। ग्रेट-ब्रिटेन की सहानुभूति पैलेस्टाइन में यहूदी राष्ट्र-स्थापना के साथ पहले से ही थी; पर अब उसका वहाँ अधिकार हो जाने से ज़ियोनिस्ट लोगों का जो कार्य-क्रम अभी सिद्धान्त-रूप में था, उसको कार्यान्वित करने का समय आ गया।

महासमर के बाद डाक्टर चेम वेज़मन (जो आज-कल विश्व-व्यापी ज़ियोनिस्ट संगठन के सभापति हैं) तथा यहूदी राष्ट्र-स्थापन के अन्य प्रमुख नेताओं ने मिलकर ग्रेट-ब्रिटेन के संरक्षण में ही रहने का आन्दोलन किया तथा इसी सम्बंध में 'राष्ट्र-संघ' को कई प्रार्थना पत्र भी दिये गये। ग्रेट-ब्रिटेन ने पैलेस्टाइन को अपने संरक्षण में रखने के लिए अपने गुप्त समझौते के अनुसार १९२० में सेनरीमो की कान्फ्रेन्स में ही निर्णय कर लिया था। यहूदियों ने भी इसके लिए आन्दोलन किया। बस, बाद में 'राष्ट्र-संघ' की ओर से भी इसकी स्वीकृति दे दी गई। इस तरह अंग्रेज़ों की जो चिर-संचित इच्छा थी, उसकी पूर्ति हुई।

इस तरह जो पैलेस्टाइन महायुद्ध के पूर्व तुर्की के अधीन था, अब वह इंग्लैण्ड के मैन्डेट (हुकूमत) में आ गया। आज-कल वहाँ ग्रेट-ब्रिटेन की ओर से एक हाइ-कमिश्नर रहता है, जो वहाँ का शासन एक कौन्सिल-द्वारा करता है। कौंसिल में २० सदस्य होते हैं, जो वहाँ के निवासी अरब, यहूदी तथा ईसाइयों के प्रतिनिधि होते हैं। इस कौंसिल के आधे सदस्य तो शासन-समिति (Administration) के पदाधिकारियों में से रहते हैं और आधे सदस्यों में चार मुसलमान, तीन यहूदी तथा तीन

ईसाइयों के प्रतिनिधि होते हैं, जिन्हें हाइ-कमिश्नर नामज़द करते हैं। १९२० के जुलाई में ग्रेट-ब्रिटेन की ओर से सर हरबर्ट सैम्युअल नामक यहूदी यहाँ के हाइ-कमिश्नर नियुक्त किये गये। हाइ-कमिश्नर ही यहाँ के उच्चाधिकारी होते हैं। १९२२ में पैलेस्टाइन की ब्रिटिश पार्लमेण्ट से विधान का एक मसौदा पास हुआ था। इसके अनुसार हाइ-कमिश्नर को शासन में सहायता पहुँचाने के लिए एक कार्यकारिणी समिति है। इसके साथ ही २२ सदस्यों की एक व्यवस्थापिका सभा है। इसके १२ सदस्य पैलेस्टाइन की जनता-द्वारा चुने जाते हैं तथा १० सदस्यों को हाइ-कमिश्नर स्वयं नामज़द करते हैं। इस विधान में न्याय-विभाग को खोलने का भी उल्लेख है। आज-कल अंग्रेज़ी, हिब्रू तथा अरबी यहाँ की सरकारी भाषा समझी जाती है।

अभी तक यह 'विधान' पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं हो सका है। मुसलमान तथा ईसाई इसको क्रियात्मक रूप देने में सहयोग नहीं देते हैं। १९२२ में इस विधान के अनुसार हाइ-कमिश्नर ने व्यवस्थापिका सभा का चुनाव करने का प्रयत्न किया था, पर मुसलमानों ने उसमें भाग लेने से साफ़ इन्कार कर दिया; इस कारण जो चुनाव का कार्य हुआ था वह रद्द समझा गया। अंग्रेज़ों की ओर से मुसलमानों को तरह-तरह के प्रलोभन भी दिये गये, पर वे लोग इसके फेर में न पड़े। वहाँ के मुसलमान—अरब तथा ईसाई अंग्रेज़ों की नीति के समर्थक नहीं हैं। वे लोग समझते हैं कि अंग्रेज़ यहूदियों के साथ पक्षपात कर उनका शासन हमारे ऊपर लादना चाहते हैं। यही कारण है कि यहाँ अभी तक कोई व्यवस्थित शासन कायम नहीं हो सका है।

जब से बालफ़ोर साहब की यहूदियों के सम्बन्ध में घोषणा प्रकाशित हुई है। तब से बाहर से यहूदी पैलेस्टाइन में आकर बस गये हैं तथा बस रहे हैं। वे समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने अपनी घोषणा-द्वारा संसार भर के यहूदियों को वहाँ बसने, ज़मीन ख़रीदने तथा एक स्वतंत्र यहूदी राज्य स्थापित करने की स्वीकृति दे दी है। इस कारण वहाँ धीरे-धीरे यहूदियों के उपनिवेश बस रहे हैं। वे, इस तरह, कुछ दिनों के बाद, पैलेस्टाइन में एकदम यहूदी-शासन हो जाने का एक सुख-स्वप्न देख रहे हैं। ब्रिटिश सरकार ने भी यहूदियों को यहाँ आकर बसने का प्रोत्साहन दिया है तथा वह उन्हें हर तरह की सहूलियतें देती है। १९१८ में पैलेस्टाइन की जन-संख्या ७५६००० थी, जिसमें ६००,००० अरब, ७३००० ईसाई तथा ८३००० यहूदी थे। १९१८ के नवम्बर से जून १९२६ तक सिर्फ़ यहूदियों की संख्या में ७२००० की वृद्धि हुई है। यहूदियों की जन-संख्या में इतनी वृद्धि होने का कारण बाहर से यहूदियों (Immigrants) का वहाँ आना है। यह देखकर ग़ैर-यहूदी और भी चिन्तित हो गये हैं और उनका यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि अंग्रेज़ यहूदियों के साथ पक्षपात कर हमें कुचल डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

यहूदियों के लिए ग्रेट-ब्रिटेन ने पैलेस्टाइन में राष्ट्रीय गृह बनाने का वचन देकर तथा वहाँ प्रवासी यहूदियों को बसने की सहूलियतें देकर अपने राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति करने में बहुत दूर तक सफलता प्राप्त की है। यहूदी यह कहकर वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर रहे हैं कि वहाँ हमारे बसने के लिए यथेष्ट स्थान है। अंग्रेज़ भी अपनी घोषणा के कारण इसमें बाधा नहीं देते। वे बाधा भी दें तो कैसे? प्रथम तो अंग्रेज़ों के लिए पैलेस्टाइन पर अधिकार रहना ब्रिटिश साम्राज्य के लिए सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दूसरी बात यह है कि वे बालफ़ोर-घोषणा से बँधे हुए हैं। इसके साथ ही उनके पास उस समय ब्रिटिश कोष में इतना धन नहीं था, जिससे कि वे वहाँ का शासन का ख़र्च वहन कर सकते और वहाँ की उन्नति कर सकते। पैलेस्टाइन पर अधिकार जमाये रखने के लिए तथा वहाँ का शासन अच्छी तरह करने के लिए रेल, तार तथा सड़कों की बड़ी आवश्यकता थी। इसके बिना साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने फ़ौलादी पंजे में किसी देश को अधिक दिन तक जकड़े नहीं रह सकते। इसके अतिरिक्त महायुद्ध में पैलेस्टाइन एकदम उजाड़ हो गया था। हज़ारों बीघा ज़मीन एकदम पड़त पड़ गई थी। अतः उसको बसाने तथा वहाँ हर तरह की उन्नति करने की आवश्यकता थी। इसमें लाखों रुपये ख़र्च करने पड़ते। बस, अंग्रेज़ों ने यहूदियों का उपनिवेश वहाँ स्थापित किया और उनको वहाँ बसने में हर तरह की सहूलियतें

दीं। बाद में उन्हीं से रुपये लेकर रेल, तार तथा सड़कें बनवाई गई और पैलेस्टाईन की उन्नति भी की गई। अगर अंग्रेज़ राजनीति-विशारद ऐसा न करते तो उन्हें अपनी जेब से इसके लिए ख़र्च करना पड़ता। पर उन्होंने अपनी कूट नीति के सहारे यहूदियों से अपनी आवश्यक चीज़ें—रेल, तार तथा सड़क—भी बनवा लीं और उनको वहाँ बसाने का काम कर संसार की नैतिक सहानुभूति भी प्राप्त कर ली।

जब यहूदियों ने देखा कि अंग्रेज़ पैलेस्टाइन में यहूदी-उपनिवेश स्थापित करने में सहयोग दे रहे हैं, तो उन लोगों की ओर से उस देश को समुन्नत बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया। संसार-भर के यहूदियों ने यहूदी उपनिवेश बसाने और वहाँ की औद्योगिक तथा कृषि-सम्बंधी उन्नति करने के लिए धन भेजना शुरू किया। ज़ियोनिस्ट-संगठन (Zionist organisation) ने जेरूसलम को उन्नत बनाने का कार्य-भार अपने ऊपर लिया। इस तरह जहाँ उस देश में अच्छी सड़कें, रेल तथा तार न होने से आवागमन में बड़ी कठिनाई होती थी, अब वह बहुत हद तक दूर हो गई है। ज़ियोनिस्ट-संगठन के प्रशंसनीय प्रयत्न ने देश को समृद्धिशाली बनाने तथा उसकी आर्थिक अवस्था सुधारने में बड़ी सहायता की है। यहूदियों की ओर से अनाथालय तथा स्कूल खोले गये हैं। सफ़ाई का पूर्ण प्रबन्ध किया गया है। दल-दल ज़मीन के कारण जहाँ मलेरिया की बीमारी होती थी, उसको उपजाऊ बनाकर मलेरिया को भी मार भगाया है।

इस वर्ष के अन्दर पैलेस्टाइन में यहूदियों ने शिक्षा तथा स्वास्थ्य में बड़ी उन्नति की है। प्रारम्भिक स्कूलों के साथ व्यापारिक एवं कला-विद्यालय भी खोले गये हैं। जेरूसलम में १ अप्रैल १९२५ को लार्ड बालफ़ोर के हाथों एक हिब्रू-विश्वविद्यालय भी खोला गया है। लोगों का स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए सफ़ाई रखने तथा डाक्टरी आयोजन (Medical organisation) के द्वारा सहायता पहुँचाने की व्यवस्था की गई है।

यहूदियों ने अरबों से बहुत-सी ज़मीन ख़रीद की है। जो ज़मीन सैकड़ों वर्षों से जोती-बोई नहीं जाती थी, वह उपजाऊ बनाकर जोती-बोई जा रही है। सारे देश में बिजली की रोशनी के लिए जोरडन (Jordon) नदी से प्रबन्ध किया जाता है। इस के साथ सहयोग-समिति तथा वाटर-वर्क्स भी खोले गये हैं, यहूदियों की ओर से कई पत्र-पत्रिकायें भी प्रकाशित होती हैं।

१९२५ में जब प्रथम हाइ कमिश्नर सर हरबर्ट हटे, तो उस समय पैलेस्टाइन का बजट ख़र्च से १०,००,००० डालर अधिक था और रिज़र्व फ़ण्ड में २५,००,००० डालर से अधिक था। इस बचत का उपयोग किसानों पर से टैक्स कम करने में किया गया है। जब से वहाँ यहूदी उपनिवेश बसाने का कार्य प्रारम्भ हुआ है, तबसे संसार के यहूदियों ने ३,५०,००,००० डालर अपने देश में रचनात्मक कार्य के लिए भेजा है। सुख-शान्ति रखने के लिए स्थानीय पुलिस है। इसके अतिरिक्त कुछ ब्रिटिश सेना हाइ कमिश्नर की रक्षा के लिए भी रहती है। ज़ियोनिस्ट संगठन ने देश की आर्थिक उन्नति करने में वास्तव में सराहनीय कार्य किया है।

जबसे यहाँ अंग्रेज़ों की सहायता से यहूदियों ने अपने राष्ट्रीय गृह स्थापन का कार्य प्रारम्भ किया है, तबसे अरबों एवं यहूदियों में बड़ा मनोमालिन्य पैदा हो गया है। बालफ़ोर घोषणा के पहले दोनों जातियाँ बड़े सद्भाव से रहा करती थीं, पर इस घोषणा के बाद से ग़ैर-यहूदियों का दृष्टिकोण अंग्रेज़ों एवं यहूदियों के प्रति बदल गया है। पहले अरबों-द्वारा यहूदी यद्यपि हेय समझे जाते थे, तो भी वे बड़े मज़े में एक साथ रहते थे। सचमुच बालफ़ोर की घोषणा तथा उसके अनुसार पैलेस्टाइन को यहूदियों का राष्ट्रीय गृह बनाने के कार्यों से ही अरबों में असंतोष फैल गया है। वे समझते हैं कि यहूदियों को शासन में अधिक भाग देकर अंग्रेज़ उनसे हम पर शासन कराना चाहते हैं और पैलेस्टाइन में यहूदी अपना राज्य क़ायम कर हमें कुचल देना चाहते हैं। यही कारण है कि वे न तो अंग्रेज़ों के बनाये 'विधान' के अनुसार चुनाव में भाग लेते और न यहूदियों के साथ ही सहयोग करने को तैयार हैं।

पैलेस्टाइन में यहूदी राष्ट्रीय गृह बनाने के कार्य का ईसाई तथा मुसलमान दोनों ने विरोध किया है। उसके परिणाम-स्वरूप १९२० के आरम्भ में जेरूसलम में बलवा हो गया था, जिसमें यहूदियों की दूकानें लूटने के साथ-साथ

बहुत-से यहूदियों की जानें भी गई थीं। इसके बाद फ़रवरी १९२१ में हैफ़ा में पैलेस्टाइन निवासी अरबों की एक कांग्रेस हुई थी, जिसमें अरबों की जन-संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व माँगा गया था। इसके कुछ सप्ताह बाद ही मई १९२१ में अरबों ने यहूदियों के विरुद्ध बलवा कर दिया। जाफ़ा में इस बलवे ने विकराल रूप धारण कर लिया था, जहाँ तीन सौ लोगों की मृत्यु हुई थी।

इन विद्रोह तथा खून-खराबियों को देखकर इनके कारणों की जाँच-पड़ताल करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया था। इस कमीशन की रिपोर्ट से यह पता चला कि पैलेस्टाइन में यहूदी राष्ट्र-गृह-स्थापन-कार्य के कारण ही इस तरह विद्रोह होते हैं।

अरबों का यह कहना है कि यहाँ की सरकार यहूदियों के साथ रियायत करती है तथा उनके ज़ियोनिस्ट-संगठन को सरकार हर काम में सहूलियत देती है। इस कारण दोनों जातियों में ईर्ष्या-द्वेष बढ़ता है और वह कभी-कभी विकराल रूप धारण कर लेता है, जिससे बलवा और दंगा हो जाता है।

१९२५ में जब बालफ़ोर महाशय जेरुसलम में यहूदियों की हिब्रू-यूनिवर्सिटी खोलने के लिए आये थे, तो उन्होंने कहा था कि यह देश बिना 'ज़ियोनिज़्म' के न फल-फूल सकता है और न यहाँ की कृषि एवं उद्योग-धन्धे में ही उन्नति हो सकती है। अरबों ने लार्ड महाशय के इस कथन का ज़ोरों से विरोध किया था। इस तरह यहाँ बराबर किसी न किसी बात को लेकर यहूदियों और अरबों में भिड़न्त हो जाती है, पर उसकी तह में राजनैतिक बात छिपी रहती है। पैलेस्टाइन में प्रवासी यहूदियों के आने के कारण अरब लोग डरते हैं कि वे अपना प्रभुत्व यहाँ क़ायम करना चाहते हैं।

हरबर्ट सैम्युअल के बाद पैलेस्टाइन के हाइ-कमिश्नर १९२५ में एच० एस० प्लूमर हुए, पर उन्होंने अपने शासन में किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया है। इस देश की आर्थिक अवस्था कुछ सुधर रही है, पर आठ वर्षों के मैण्डेट-शासन को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि यह देश स्वायत्त शासन की ओर अग्रसर हो रहा है। जहाँ देश में अमन-चैन होता, वहाँ राजनैतिक ईर्ष्या-द्वेष की आग जल रही है; और, इसके फलस्वरूप, बराबर यहूदी तथा अरबों में दंगा हो जाता है।

अभी-अभी अगस्त मास (१९२९) में पैलेस्टाइन में जो मार-काट और रक्त-पात हुआ है, उसके विस्फोट का ऊपरी कारण तो धार्मिक जान पड़ता है, पर उसके भीतर राजनैतिक कारण छिपा हुआ है। यह तो हम ऊपर कह चुके हैं कि अरब लोग यहूदी राष्ट्र-गृह-स्थापन को बड़ी शंका की दृष्टि से देखते हैं और समझते हैं कि यहूदी लोग इस देश में अपना प्रभुत्व जमाकर इस देश में अपना राज्य स्थापित करना चाहते हैं। इस कारण अरबों एवं यहूदियों के हृदय में जाति विषयक विद्रोह की चिनगारी जलती रहती है, जो कभी-कभी प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है। हाल की घटना भी उसी का विस्फोट-मात्र है। वह इस प्रकार है:—

जेरुसलम में यहूदियों का एक पुराना मन्दिर है, पर झगड़ा उसके एक भाग के सम्बन्ध में ही उठा है। मंदिर के इस भाग को 'विलाप-प्राचार' (Wailing Wall) कहते हैं। इस 'प्राचीर' पर यहूदियों का हक़ नहीं है। पर यह उनके प्राचीन मन्दिर का एक भाग है। बहुत दिनों से यहूदी यहाँ उपासना करते आ रहे हैं। यहूदियों की यह शोकमयी दीवार मुसलमानों की प्रसिद्ध मस्जिद हरमशरीफ़ (हज़रत उमर की मस्जिद) का भी एक भाग है। यह मस्जिद मुसलमानों के लिए संसार में सबसे पवित्र उपासना-स्थलों में से एक है। हर वर्ष हज़ारों मुसलमान तीर्थ-यात्री मक्का होकर यहाँ प्रार्थना-पूजा करने के लिए आते हैं।

जिस दीवार को लेकर अभी झगड़ा उठा था, उस पर मुसलमानों का अधिकार है। पर उसका एक भाग मुसलमानों के लिए परम-पवित्र है, तो उसका दूसरा भाग यहूदियों के लिए भी उससे कम पवित्र नहीं है। तुर्की के सुलतान के शासन-काल में भी यहूदी बिना रोक-टोक के यहाँ उपासना करते थे और इसमें उन्हें किसी तरह की रुकावट नहीं थी; पर उन्हें यहाँ कोई ऐसा काम करने का अधिकार नहीं था, जिससे कि वे यहाँ किसी तरह का अपना दावा कर सकें। इस मस्जिद के किसी हिस्से पर दूसरे

धर्मवालों का किसी तरह का अधिकार संसार-भर के मुसलमान—चाहे वे किसी मत के मानने वाले हों—बर्दाश्त नहीं कर सकते। तुर्की के शासन-काल में बूढ़े तथा कमज़ोर यहूदी अपनी असमर्थता के कारण वहाँ स्टूल या दरी लाकर उस पर बैठते थे। इधर जबसे वहाँ ग्रेट-ब्रिटेन का मैण्डेट स्थापित हुआ है, तब से बराबर उसके लिए यहूदियों तथा अरबों में संघर्ष होता रहा है। इधर यहूदी वहाँ की सरकार को अपने अनुकूल समझकर एक-न-एक नई बात कर वितण्डावाद खड़ा करते थे। इससे मुसलमानों का जी जल रहा था और वे लहू का घूँट पीकर रह जाते थे।

गत १५ अगस्त को यहूदियों का एक जलूस 'विलाप-प्राचीर' (Wailing Wall) के पास गया और वहाँ वे सब प्रस्ताव दुहराये गये, जो कि कुछ दिन पूर्व 'तेल अवीव' (Tel-Aviv) नामक यहूदी उपनिवेश में स्वीकृत हुए थे। इस प्रस्ताव में यहूदियों के शोकमयी दीवार के पास शान्तिमय उपासना करने के अधिकार की रक्षा करने में असफल होने के लिए पैलेस्टाइन की सरकार की निन्दा की गई। यह जलूस शान्ति-पूर्वक पुलिस की संरक्षकता में गुज़रा। १६ ता० को मुसलमानों का जुम्मा का दिन होने के कारण हरम शरीफ़ (हज़रत उमर की मस्जिद) में बहुत से उपासक जेरुसलम तथा उसके आस-पास के गाँवों से उपासना करने को आये थे। अतः मस्जिद में बड़ी भीड़ थी। उसी दिन सरकार की आज्ञा लेकर मुसलमानों ने भी एक जलूस निकाला और वह शोकमयी दीवार होकर अपने रास्ते से यहूदियों को तितर-बितर करते हुए गुज़रा। यह जलूस भी पुलिस की संरक्षकता में था। यहूदियों को मुसलमानों के संघर्ष से बचाने के लिए पुलिस ने इस जलूस को दीवार से अलग रखने की बड़ी कोशिश की, पर उनकी संख्या इस परिस्थिति को सम्हालने के लिए काफ़ी नहीं थी। उसके बाद इसी बात ने बढ़ते-बढ़ते विकराल रूप धारण कर लिया और मामला बेहद बढ़ गया।

बस मुसलमानों ने अपने धर्म-स्थान पर आघात समझा और जहाँ यहूदियों को पाया, क़त्लेआम करना आरम्भ कर दिया। यहूदियों के घर लूटे गये तथा उनकी स्त्री और बच्चों की जानें ली गईं। इस तरह सारे पैलेस्टाइन में हलचल मच गई और दोनों ओर के सैकड़ों आदमी मारे गये तथा ज़ख़्मी हुए। इस सम्बन्ध में अख़बारों में समाचार निकले हैं उनसे पता चलता है कि इस दंगे में ११९ यहूदी, ८७ मुसलमान तथा ४ ईसाइयों की जानें गईं और ३३४ यहूदी, २०८ मुसलमान तथा २३ ईसाई घायल हुए। इस दंगे के कारण सारे देश का आमोमान ख़तरे में पड़ गया। पैलेस्टाइन की पुलिस जब सुख-शान्ति स्थापित करने में असमर्थ हो गई, तो माल्टा एवं मिश्र से सेना मँगाकर शान्ति प्रस्थापित की गई। यद्यपि अभी सेना के बल पर वहाँ शान्ति हो गई है; पर हम इसे स्थायी शान्ति नहीं कह सकते। अरबों के हृदयों में अभी चिनगारी जल रही है, और जब तक इन दंगों के मूल कारणों को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया जायगा तब तक वहाँ इस प्रकार की अशान्ति मचती ही रहेगी।

इस तरह के दंगों का वास्तविक कारण ब्रिटिश सरकार की 'ज़िओनिस्ट-नीति' है, जिसका उद्देश्य पैलेस्टाइन में यहूदियों का राष्ट्रीय गृह स्थापित करने में सहायता देना है। अरब तथा ईसाई इस नीति के घोर विरोधी हैं। अरबों की संख्या यहूदियों की संख्या से छः गुनी अधिक है, इस कारण वे अल्प-संख्यक यहूदियों का प्रभुत्व नहीं स्वीकार कर सकते। वे यहूदियों के साथ मिल कर रहना चाहते हैं; इसके लिए वे न तो अपने अधिकार को छोड़ना चाहते हैं, और न वहाँ दबकर ही रहना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि अल्प-संख्यक यहूदियों का वहाँ के शासन में बहु-संख्यक अरबों से अधिक प्रतिनिधित्व हो। वे न्याय चाहते हैं और इसके लिए वे अपने को मिटा देने को तैयार हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि बालफ़ोर की घोषणा के कारण वहाँ की सरकार यहूदियों को सहूलियतें देती है और अरब तथा ईसाई इसका तीव्र विरोध करते हैं। पर उनका विरोध कुछ काम नहीं करता। वहाँ की कौंसिल-जिसके द्वारा वहाँ का शासन होता है—की सृष्टि इस प्रकार से की गई है कि सरकारी सदस्य यहूदियों से मिलकर अरबों और ईसाइयों के प्रतिनिधियों से अधिक तादाद में हो जाते हैं और मनमानी बात करते जाते हैं। इस तरह अन्य दो समाजों का विरोध कोई काम नहीं करता। इस कारण

इनका सम्बन्ध इतना विरोधी हो गया है कि अरब जहाँ पाते हैं यहूदियों का खात्मा कर देने पर उतारू हो जाते हैं। जब ग्रेट-ब्रिटेन प्रवासी यहूदियों के वहाँ आकर बसने पर नियंत्रण नहीं करेगी, जब तक वह अपनी ज़ियोनिस्ट-नीति में परिवर्तन नहीं करेगी, तब तक इन दो जातियों का ऐसा सम्बन्ध बना ही रहेगा और वे वहाँ सद्भाव से न रह सकेंगी।

ग्रेट-ब्रिटेन का यह कहना भी अनुचित है कि यहूदी पैलेस्टाइन के प्राचीन निवासी हैं, अतः सारे संसार के यहूदियों को वहाँ बसाकर वहाँ उनका राष्ट्रीय गृह स्थापित करना चाहिए। जब से यहूदी वहाँ से भगाये गये हैं, तब से पैलेस्टाइन उनके लिए धार्मिक एवं ऐतिहासिक रूप में ही उनका देश रह गया है और इसी को दृष्टि में रखकर ही वे उसे अपना राष्ट्रीय-गृह बनाना चाहते हैं। उसके बाद से अर्थात् करीब एक हज़ार से अधिक वर्ष से, यह अरबों का देश हो गया है। यहूदियों का दावा पैलेस्टाइन के लिए उसी प्रकार का है, जिस तरह का सैक्सन जाति का दावा इंग्लैंड के लिए हो सकता है, जो वहाँ के प्राचीन निवासी थे और बाद में वहाँ से भगाये गये थे। अतः यहूदियों को वहाँ बुलाकर राष्ट्रीय गृह स्थापित करके अरबों और उस देश पर प्रभुत्व स्थापित कराना कहाँ का न्याय है?

पैलेस्टाइन में यहूदियों का राष्ट्रीय-गृह स्थापित करने के विरुद्ध बहुत से यहूदी भी हैं। वे नहीं चाहते कि वहाँ यह प्रश्न उठाकर एक नया बखेड़ा किया जाय। वे चाहते हैं कि वहाँ बसनेवाले सब धर्म के लोग सुख-पूर्वक रहें। किसी एक जाति का वहाँ प्रभुत्व कायम करके वे दूसरी जाति के अधिकार पर कुठाराघात करना नहीं चाहते, और वहाँ की यहूदी जाति के लिए इस आन्दोलन को घातक एवं हानिकारक समझते हैं। वे समझते हैं कि अगर यहूदियों का राष्ट्रीय गृह वहाँ स्थापित होगा तो इससे समस्त मुसलमानों में भारी असन्तोष फैल जायगा और इसके फल-स्वरूप वहाँ बारम्बार उपद्रव मचता रहेगा। आज-कल वहाँ इसके लिए जो प्रयत्न हो रहे हैं, उसके कारण बराबर किसी न किसी तरह का बखेड़ा उठ ही खड़ा होता है और वही कभी-कभी बलवे तथा दंगे का रूप धारण कर लेता है। बहुत से यहूदी राष्ट्रीय गृह-स्थापन से होनेवाले अनिष्ट को जानते हैं, अतः वे इसका विरोध करते हैं। अंग्रेज़ तो उनकी पीठ अपने स्वार्थ के कारण ठोंका करते हैं, पर इससे यहूदियों को भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए, सोच-समझ कर काम करना चाहिए।

यहूदी जाति धनी है। इस कारण उनके द्वारा पैलेस्टाइन की आर्थिक दशा कुछ सुधर गई है। बहुत से लोग इसी बात को लेकर भ्रम में पड़ जाते हैं और वे यहूदियों के राष्ट्र-गृह-स्थापन के कार्य का समर्थन करते हैं। पर वे इस बात को सोचने का ज़रा भी कष्ट नहीं करते कि प्रवासी यहूदियों को वहाँ बसा कर जिनका हित ग़ैर-यहूदियों के बिलकुल विपरीत है, उनसे उस देश का शासन कराना कहाँ का न्याय है? उनका शासन में अधिक भाग होना ग़ैर-यहूदियों के भय का कारण है। जब तक ग्रेट-ब्रिटेन की नीति में परिवर्तन न होगा, जब तक यहूदियों के हित को सामने रखते हुए वहाँ शासन होगा, तब तक लोग वहाँ इस तरह के उपद्रव करते ही रहेंगे और बराबर ब्रिटिश सेना तथा मशीनगनों के बल पर ही शान्ति रखी जा सकेगी। ऐसी दशा में स्थायी शान्ति का स्वप्न ज़रा मुश्किल हो जायगा। डरा-धमका कर तथा बहुत-सी सैना रखकर वहाँ शान्ति रक्खी जा सकेगी; पर यह जितना आसान है, उतना ही कठिन है। अगर निकट भविष्य में वहाँ की सरकार की 'ज़ियोनिस्ट नीति' में परिवर्तन नहीं होगा और इसके साथ ही अगर यहूदी पैलेस्टाइन में अपने राज्य स्थापित करने का सुख-स्वप्न देखना नहीं छोड़ेंगे तो न ग्रेट-ब्रिटेन वहाँ शान्ति स्थापित कर सकता है, और न यहूदी ही वहाँ सुख से रह सकते हैं। क्योंकि, ये दोनों स्थितियाँ ख़तरनाक हैं। ❀

❀ इस लेख को लिखने में Encyclopaedia Britania, Asia Reborn (by Margmerite Harrison) A Short History of the world 1918—1928 (by C. Delisle Burns), Current History (January and May 1928) तथा सामयिक पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गई है।—लेखक

संशय

(श्री वागीश्वरी सिंह बी० ए०, 'श्याम')

दिन कहता है चलो समर, संध्या कहती है सुन लो ।
रजनी कहती ठहर, उषा कहती है मोती चुन लो ॥

ओस-मोतियों की लड़ियाँ,
स्वर्ण-सुमन-दल आभूषण,
पहन वसन मैं ले लाई हूँ,
हरी-हरी मृदु बल्लरियाँ ।

मैं कहती हूँ 'नहीं,' नेह-निधि, वह इतने में आया ।
तिमिर-जाल में उसे चूमने सघन गगन झुक आया ।

मुझे खींच वह चला
चकित मैं आँखें मींच चली ।
अंधकार से दीप जला,
विहँसा वह करुण छली ॥

ज्योंही आँखें खुलीं लिपट वह मुझ में समा गया ।
'सपना था या छली गई' यह संशय जमा गया ॥
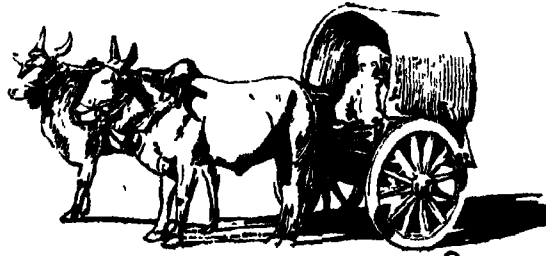
भारतीय मज़दूर-आन्दोलन : उसकी दिशा

[श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]

भारतीय श्रम-समस्या के प्रसिद्ध विशेषज्ञ डाक्टर रजनीकान्त दास एम. ए. के अनुसार हम भारतीय श्रम-आन्दोलन को मुख्यतः तीन भागों में बाँट सकते हैं।

१. १८७५ ई० से १८९१ ई०तक, जिस में बालक और स्त्री-मज़दूरों के सम्बन्ध में नियम बनाये गये।

२. १८९१ ई० से १९१७ ई० तक, जिसमें कुली-प्रथा का अन्त किया गया।

३. १९१८ ई० से आज तक, जिसमें मज़दूर-संगठन की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

वर्तमान व्यवसाय-वाद यूरोप की उपज है। इसलिए वे सभी बुराइयाँ यहाँ भी उसी वेग से फैलने लगीं जो इस के कारण यूरोप में उत्पन्न हुईं। इंग्लैण्ड की प्रतिस्पर्धा करना भारतीय मिल-मालिकों के लिए आसान न था, क्योंकि भारत की अंग्रेजी सरकार, अंग्रेज़ी व्यापारियों को प्रोत्साहन एवं अनेक सुविधायें देती तथा भारतीय मिलों को निरुत्साहित करती रही। वर्तमान व्यवसाय और व्यापार में प्रतिस्पर्धा (Compitetion) एक मुख्य अंग है, इसलिए भारतीय व्यवसायियों के सामने केवल दो ही रास्ते थे या तो वे अपनी मिलों पर ताला लगा दें, अथवा मज़दूरों से अधिकाधिक काम कराकर इंग्लैण्ड का मुक़ाबला करें। इसमें स्वभावतः उन्होंने दूसरे मार्ग का अवलम्बन किया, और उसमें उन्हें कुछ सफलता भी हुई। मज़दूर मिलों में १३–१४ घण्टे काम करते थे, छोटे बालक और स्त्री-मज़दूरों के लिए भी कोई समय नियत नहीं था। स्त्रियाँ रात को भी काम करती थीं।

इधर तो इन कारणों से भारतीय मज़दूरों के स्वास्थ्य आदि को बड़ी हानि पहुँची। छोटे-छोटे बच्चे १०-११ घण्टे काम करने से कमज़ोर होने लगे, स्त्रियाँ भी अपने स्वास्थ्य को खो बैठीं, और उधर मैन्चेस्टर तथा लंकाशायर के व्यापारियों में यहाँ सस्ता माल तैयार होता देखकर खलबली मची और उन्होंने भारतीय सरकार पर कारखानों का नियंत्रक क़ानून (Factory act) बनाने के लिए दबाव डाला। १८७४ ई० में मैंचेस्टर के व्यापारियों का एक प्रतिनिधि-मण्डल भारत-मंत्री के पास गया और भारत में ऐसा क़ानून बनाने की प्रार्थना की। १८७५ में बम्बई-सरकार ने कारखानों की हालत की जाँच करने के लिए एक कमीशन बैठाया, परन्तु उसने किसी नियम के बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। यह देखकर इंग्लैण्ड के व्यापारियों ने इसके विरोध में बड़ा भारी आन्दोलन किया और १८७९ ई० में पार्लमेंट में एक प्रस्ताव-द्वारा भारत में कारखानों का क़ानून शीघ्र बनाने की महारानी विक्टोरिया से प्रार्थना की। तदनुसार भारत-सरकार ने उसी वर्ष एक बिल पेश किया, जो १८८१ में पास हुआ। इसके अनुसार बालक मज़दूरों की प्रारम्भिक और अन्तिम आयु क्रमशः ७ और १२ साल नियत कर दी गई। तथा प्रति दिन बालकों के लिए एक घण्टा छुट्टी लेकर ९ घण्टे समय नियत किया गया। इस क़ानून में स्त्री-मज़दूरों के लिए कोई नियम नहीं रक्खा गया था। इसलिए इंग्लैण्ड के व्यापारियों ने फिर प्रबल आन्दोलन किया। १८८२ में मैञ्चेस्टर का एक निरीक्षक भी बम्बई आया और कुछ सुधारों की सलाह दी। अन्त में अंग्रेज़ व्यापारि के कई सालों के सतत परिश्रम के बाद भारतीय सरकार ने उनके दबाव में आकर १८९० ई० में एक और बिल पेश किया, जिसकी कुछ धारायें भारत-मंत्री ने निर्दिष्ट की थीं। यह बिल १८९१ में पास हुआ। इसके अनुसार बच्चों की उम्र क्रमशः ९ और १४ तक बढ़ा दी गई, कार्य का समय सात घण्टे कर दिया गया और स्त्रियों के काम करने का समय दिन में ११ घण्टे नियत कर दिया गया। कई छोटे-मोटे नियम और भी बनाये गये। इसके बाद समय-समय पर और संशोधन होते गये।

भारतवर्ष में मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति की उक्त विस्तृत तथा अरोचक कथा देने का मतलब केवल यह है

कि पाठक इस आन्दोलन का मूल समझ जायँ। यह ठीक है कि उस समय बम्बई के श्री नारायण मेघजी लोखण्डे मज़दूरों में जागृति उत्पन्न कर रहे थे और उनको संगठित कर उक्त क़ानून शीघ्र बनवाने के लिए भारतीय मज़दूरों की तरफ़ से आन्दोलन कर रहे थे, तथापि यह मानने में किसी को इन्कार नहीं होगा कि मैंचेस्टर और लंकाशायर के व्यापारी यदि इतना प्रबल अन्दोलन न करते, तो उक्त क़ानून कभी पास न होता।

मज़दूर-आन्दोलन के दूसरे समय (१८९१-१९१७) के सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यता नहीं। जब यूरोप और अमेरिका आदि में दास-प्रथा क़ानूनन बन्द कर दी गई, तब गोरे व्यापारियों की दृष्टि पर-तन्त्र भारत के निरीह, दीन भारतीयों पर गई और यहाँ से शर्तबन्दी कुली हज़ारों की तादाद में अंग्रेज़ी साम्राज्य के उपनिवेशों—मॉरीशस, ट्रिनिडाड नेटाल और फ़िजी आदि—में जाने लगे। इन लोगों के साथ वहाँ की सरकारों ने जो अमानुषिक अत्याचार किये, उनके लिखने की ज़रूरत नहीं। भारतीयों के सौभाग्य से दक्षिण आफ्रिका में महात्मा गाँधी पहुँचे हुए थे। उन्होंने सत्याग्रह की लम्बी लड़ाई लड़कर जो विजय-लाभ की, वह सभी जानते हैं। इस घृणित कुली-प्रथा के विरुद्ध स्वर्गीय गोखले प्रभृति नेताओं ने प्रबल आन्दोलन किया अन्त में सरकार को बाधित होकर इस प्रथा को बन्द कर देना पड़ा। यदि पहले काल में मज़दूरों के हित-सम्बन्धी क़ानून अंग्रेज़ व्यापारियों की स्वार्थ-लिप्सा के कारण बने थे, तो दूसरे काल में भारतीयों ने अपने आत्म-बल तथा आन्दोलन से दक्षिण आफ्रिका तथा भारत की सरकारों को परास्त किया।

मज़दूर-आन्दोलन का तीसरा अर्थात् वर्तमान समय सब से अधिक महत्त्व का है। यों तो श्री नारायण मेघजी लोखण्डे ने १८८४ से ही मज़दूरों की सभायें करना प्रारम्भ कर दिया था और १८९० में बम्बई-मज़दूर-संघ (Bombay Millhands' association) भी स्थापित कर दिया था, परन्तु मज़दूर-संगठन का काम वस्तुतः इस तीसरे समय में ही प्रारम्भ हुआ। यूरोपीय महायुद्ध के समय भारत में भिन्न-भिन्न व्यवसायों में पर्याप्त उन्नति हुई। बहुत से नये कारखाने खुले। सब चीज़ों के दाम बढ़ जाने से ग़रीब किसान भी गाँव छोड़-छोड़ कर पैसा पैदा करने के लिए शहरों में आने लगे। स्वभावतः मज़दूरों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। जब तक कुछ थोड़े-से आदमियों को तकलीफ़ें रहती हैं, तब तक न तो वे ही अपनी तकलीफ़ों को दूर करने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं और न जनता का ही उधर ध्यान खिंचता है। युद्ध के दिनों में मज़दूरों की संख्या तेज़ी से बढ़ने के कारण उनमें भी अपने कष्टों को दूर करने के लिए संगठन का भाव उत्पन्न हुआ, जनता ने भी इस तरफ़ ध्यान दिया, तथा कुछ नेताओं ने मज़दूर-प्रथा को अपने हाथ में लेकर आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसलिए यह तीसरा काल बहुत अधिक महत्त्व का है।

इस समय मज़दूर-आन्दोलन के तेज़ी से बढ़ने का एक और भी प्रधान कारण है, जिस पर संक्षेप में विचार किये बिना हम मज़दूर-आन्दोलन की वर्तमान दशा और प्रगति को सरलता से अच्छी तरह नहीं समझ सकेंगे। वह प्रधान कारण है रूस में ज़ारशाही के पतन तथा साम्य-वादी राज्य की स्थापना का प्रभाव। पर सोवियट-सरकार का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा, इस पर विचार करने से पहले बहुत संक्षेप में, यूरोप में साम्यवाद की प्रगति पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

ज़मींदारी-प्रथा और पूँजी-वाद के कारण समाज में जो विषमता दीनता फैली, थोड़े से धनियों के सुख के लिए हज़ारों प्राणियों को जो-जो कष्ट उठाने पड़ते थे उन्हीं को दूर करने के लिए ही साम्यवाद का आरम्भ हुआ। साम्य-वाद के भिन्न-भिन्न आचार्यों ने इस विषमता को दूर करने के लिए विविध प्रयत्न किये। किसी ने सौ दो सौ घरों को लेकर अलग बस्तियाँ बनानी शुरू कीं, तो किसी ने मज़दूरों और किसानों के संघ स्थापित करने प्रारम्भ किये। किसी ने उन ग़रीबों को सहयोग-समितियों के सिद्धान्त पर संगठित करना चाहा। मतलब यह कि साम्यवाद के छोटे-बड़े सभी आचार्य सिद्धान्त तथा कार्य-नीति में मत भेद रखते हुए भी इस बात में सहमत थे कि धनियों और ग़रीबों की विषमता दूर हो जाय। एक बात और। साम्यवाद का यह आन्दोलन तभी

शुरू हो गया था, जब कि लोहमय दानवों के वर्तमान व्यवसाय का प्रारम्भ नहीं हुआ था। उस समय का आन्दोलन किसानों पर होनेवाले अत्याचारों के विरोध में था। दर-असल इस आन्दोलन को हम किसानों और ज़मींदारों का युद्ध कह सकते हैं। उस समय नये पूँजी-पतियों की श्रेणी तैयार तो ज़रूर हो रही थी, परन्तु उसका बल अभी बहुत कम था। इसलिए तत्कालीन साम्यवाद को हम कारखानेवाले पूँजी-पतियों और मज़दूरों का युद्ध नहीं कह सकते। यह ठीक है कि इंग्लैंड में १८वीं सदी के पिछले भाग में कल-कारखाने अच्छी तादाद में बनने लगे थे, और वहाँ पूँजी-पति तथा मज़दूर ये दो श्रेणियाँ बन गई थीं, और साम्यवाद के कुछ नेताओं ने इधर प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिया था, फिर भी साम्यवाद की अधिक प्रगति फ्रांस और जर्मनी में थी। इन दोनों देशों में उस समय पूँजीपति-मज़दूर-समस्या की अपेक्षा ज़मींदार-किसान-समस्या बहुत अधिक विकट रूप में उपस्थित थी और उसी का परिणाम ही उक्त साम्यवाद का आन्दोलन था। यहाँ तक कि यही समस्या फ्रांस की क्रान्ति का प्रधान कारण भी थी। १९ वीं सदी में यूरोप में व्यवसायवाद बहुत तेज़ी से बढ़ने लगा और मज़दूरों की श्रेणी भी बड़े पैमाने पर बनने लगी। इसके साथ-साथ स्वभावतः वहाँ की ज़मींदार-किसान-समस्या भी शनैः-शनैः पूँजीपति-मज़दूर-समस्या में परिणत होती गई।

परन्तु रूस में इस आन्दोलन ने केवल यही रूप धारण नहीं किया। वहाँ की अवस्थायें भी इसके अनुकूल न थीं। वह कृषि-प्रधान देश है, व्यवसाय-प्रधान नहीं। यूरोप के अन्य देशों में पूंजी-पतियों ने शक्ति पाकर राज्य का सूत्र अपने हाथ में ले लिया सही, परन्तु रूस में बीसवीं सदी के पहले भाग तक ज़मींदारों की ही तूती बोलती थी, राज्य की ओर से किसानों पर अमानुषिक अत्याचार होते रहे। इसका परिणाम वही हुआ जो होना था। नवीन युग के आचार्य, विश्व की एक विभूति, लेनिन ने ज़ारशाही का तख्त पलट कर वहाँ जनता का राज्य स्थापित कर दिया। यही सोवियट-सरकार किसानों और मज़दूरों का राज्य है, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण संसार पर पड़ा है। अंग्रेज़ी सरकार के हज़ारों प्रयत्न करते हुए भी भारतवर्ष बीसवीं सदी की इस महती क्रान्ति के प्रभाव से बचा नहीं रहा। आज यहाँ भी रूस के नवीन इतिहास तथा साम्यवाद के सम्बन्ध में पर्याप्त साहित्य उत्पन्न हो गया है, प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में इन विषयों पर लेख छपते रहते हैं। इसके अतिरिक्त साम्यवाद पर विश्वास करनेवाले कुछ लोगों ने आगे बढ़कर मज़दूरों को रूस की क्रान्ति का सन्देश सुना-सुनाकर सगठित करना प्रारम्भ किया है। कम्यूनिस्ट पार्टी तथा नौजवान-भारत-सभा ने तो अपना उद्देश्य भी वही रक्खा है, जो आचार्य लेनिन ने रूस में कर दिखाया है—अर्थात् किसानों और मज़दूरों की सरकार स्थापित करना। बम्बई आदि के मज़दूर अब आशाभरी दृष्टि से भविष्य की ओर देख रहे हैं, जब कि भारत से पूंजी-वाद बिलकुल उठ जायगा।

परन्तु इस आन्दोलन की वर्तमान प्रगति पर थोड़ा-सा विचार करने से एक बात नज़र आ जायगी, कि रूस और भारत दोनों के एक समान कृषि-प्रधान देश होते हुए भी दोनों के आन्दोलन की दिशाओं में अन्तर है। वह यह कि वहाँ मज़दूरों से अधिक ज़ोर किसानों की आवश्यकताओं पर था, और यहाँ ज़ोर है तीन-चार लाख मजदूरों पर। हमारे मज़दूर-नेता जब मज़दूरों की सभाओं में भाषण करते हुए रूस की सोवियट शासन-प्रणाली का गुण-गान करते हैं, तब यह भूल जाते हैं कि वहाँ की इकाई (Unit) बम्बई, अहमदाबाद, मद्रास और कलकत्ता-जैसे शहर नहीं, परन्तु छोटे-छोटे गाँव है। वे जब मज़दूरों को उत्साहित करते हुए किसान और मज़दूरों के राज्य के सुन्दर दृश्य दिखाने लगते हैं तब यह नहीं ख़याल करते कि ऐसा राज्य स्थापित करने के लिए तीन-चार लाख मज़दूरों की अपेक्षा २५ करोड़ किसानों में जागृति उत्पन्न करने की अधिक आवश्यकता है जो गाँवों में रहते हुए वर्तमान राजनैतिक वातावरण से बिलकुल दूर से हैं। कृषि-प्रधान रूस में, जिसे वे आदर्श राज्य समझते हैं, यदि गाँव को शासन की इकाई माना जाता है; तो भारत-जैसे कृषि प्रधान देश में भी ग्राम-संगठन की ओर अधिक ध्यान क्यों न दिया जाय?

भारतवर्ष के वर्तमान आन्दोलनों की प्रगति देखते हुए

स्वभावतः यह प्रश्न मन में उठता है कि क्यों हमारे नेता भारत के वास्तविक अन्न-दाता किसानों को छोड़कर मिलों के मज़दूरों को ही उठाने में लगे हैं ? यह आन्दोलन तो रूस का प्रभाव लिए हुए नहीं दीखता। यदि रूस का सीधा प्रभाव पड़ा होता, तो वे गाँवों की ओर ही अधिक दौड़ते। यह ठीक है कि वे अपने भाषणों और लेखों में मज़दूरों को रूसी राज्य का उदाहरण देते हैं, परन्तु सच्चा रूस तो गाँवों में निवास करता है, मास्को और लेनिनग्राड में नहीं। हम अपने नेताओं की गंभीरता, ईमान्दारी और संजीदगी में विश्वास करते हैं, परन्तु यह प्रश्न फिर भी बना रहता है कि क्यों वे शहरों को अधिक महत्त्व देते हैं ?

इस लेख में हम इसी प्रश्न पर कुछ विचार करना चाहते हैं। इसका कारण थोड़ा सा सोचने पर ही समझ में आ जायगा। भारतवर्ष इंग्लैंड के आधीन है, केवल राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं वरन् मानसिक दृष्टि से भी। आज भारतवर्ष के राष्ट्रीय स्वराज्य-आन्दोलन तक में अपनापन, जिसे हम भारतीय संस्कृति का भाव कह सकते हैं, नहीं है। फिर अन्य आन्दोलनों का तो कहना ही क्या। मज़दूर-आन्दोलन तो फिर भारत की चीज़ है भी नहीं और न पहले कभी थी। वर्तमान व्यवसाय-वाद ही जब यूरोप की उपज है, तो उसके पीछे-पीछे होनेवाले सभी परिणाम और आन्दोलन भी यूरोपियन शैली के होंगे, यह स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारतवर्ष के मज़दूर-आन्दोलन में भारतीयता या मौलिकता न होकर इंग्लैण्ड की ही भयंकर छाप दीखती है। हमारी पराधीनता का यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। हम इंग्लैण्ड के अधीन हैं, वहाँ से हमारा अभीष्ट या अनभीष्ट गहरा सम्बंध है। इसलिए वहाँ के प्रत्येक आन्दोलन या प्रगति का अनिवार्यतः हमारे ऊपर प्रभाव पड़ना है। हज़ारों की तादाद में भारतीय वहाँ शिक्षा के लिए हैं और वहाँ की संस्कृति, वहाँ की सभ्यता, वहाँ का साहित्य, वहाँ की आन्दोलन-पद्धति तथा अन्य अनेक अंग्रेज़ी गुणों (English charateristics) को सीख आते हैं और उनका यहाँ प्रयोग करते हैं। यूरोप के अन्य देशों से हमारा सम्बन्ध नहीं है और अगर है भी तो बहुत थोड़ा। इसलिए उन देशों के आन्दोलनों का जो प्रभाव इंग्लैण्ड में पड़ता है, और उनका जो रूप वहाँ बन जाता है, उसी को हम भारतवासी भी सीख लेते हैं। यह ठीक उसी तरह होता है, जैसे उल्लू सूर्य का प्रकाश दिन में न लेकर रात को चन्द्र से लेने का प्रयत्न करता है। यह उपमा हीन अवश्य है, परन्तु वास्तविक स्थिति की द्योतक है। मज़दूर-आन्दोलन में यह बिलकुल सिद्ध होती है। रूस कृषि-प्रधान देश है; परन्तु इंग्लैण्ड व्यवसाय-प्रधान है। इसलिए रूस के साम्यवाद का प्रभाव इंग्लैण्ड में केवल मज़दूरों को उत्तेजित और संगठित करने के रूप में पड़ा। वहाँ किसान हैं ही नहीं, जो रूस की क्रान्ति से प्रभावित होकर अपना आन्दोलन करते। वहाँ हैं मैंचेस्टर तथा लंकाशायर के मज़दूर। वे कुछ तो पहले संगठित थे और रूस की क्रान्ति से तो उनमें भी ग़रीबों का राज्य (और इंग्लैण्ड में किसान न होने से मज़दूर ही ग़रीब समझे जाते हैं, इसलिए मज़दूर-राज्य) स्थापित करने का विचार उत्पन्न हो गया। अंग्रेज़ी जनता पर रूस का प्रभाव पड़ा और खूब पड़ा। उसी प्रभाव का परिणाम १९२६ की व्यापक हड़ताल तथा १९२४ और १९२९ में मज़दूर-सरकार का स्थापित होना है। वहाँ के नेताओं ने मज़दूरों में जागृति उत्पन्न करने के लिए साम्यवाद तथा रूसी क्रान्ति के साहित्य की बहुत अधिक सृष्टि की। हमारे इंग्लैण्ड-प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों में भी मज़दूर-आन्दोलन का भाव स्वभावतः उत्पन्न हो गया। इस सम्बन्ध के अंग्रेज़ी साहित्य ने भारतीय विचारकों और कार्यकर्ताओं को रूस का नाम लेकर मज़दूरों के संगठन की ओर प्रवृत्त किया। वे यह भूल गये कि रूस का आन्दोलन मज़दूरों तक परिमित नहीं था। मज़दूर-आन्दोलन तो रूस की क्रान्ति का एक छोटा सा भाग था। वस्तुतः क्रान्ति को तो किसानों ने की। वही आन्दोलन जब इंग्लैण्ड की चलनी से छना तो केवल मज़दूरों तक परिमित रह गया, क्योंकि वहाँ किसानों की महत्वपूर्ण श्रेणी है ही नहीं। यही मुख्य कारण है कि आज किसान-संगठन के सहस्र गुणा अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी हमारे कार्य-कर्ता केवल मज़दूर-संगठन की ओर लगे हैं। वे भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न परिस्थितियों का यदि अनुशीलन करें, तो आज आधे से अधिक कार्य-कर्ता केवल किसान-आन्दोलन की ओर लग जावें। हम

ऊपर बता चुके हैं कि फ्रान्स और जर्मनी में जब वर्तमान व्यवसाय-वाद बहुत प्रारम्भिक अवस्था में था, तब वहाँ मज़दूर-पूँजीपति-समस्या की अपेक्षा किसान-ज़मींदार-समस्या ही अधिक विकट थी और साम्यवाद के आन्दोलक भी इसी समस्या पर विचार करते थे।

किसान-आन्दोलन की अपेक्षा मज़दूर-आन्दोलन के बढ़ने का एक और भी कारण है, जिसने इस पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। हम लेख के प्रारम्भ में बता चुके हैं कि यहाँ के मज़दूर-आन्दोलन के श्री-गणेश का श्रेय मैंचेस्टर के अंग्रेज़ व्यापारियों को है। अंग्रेज़ व्यवसायियों के हित के लिए यहाँ जितना मज़दूर-संगठन हो, ज़बर्दस्त हड़तालें हों, मज़दूरों पर जितना व्यय हो, उतना अच्छा है। परन्तु भारतीय किसानों का संगठन उनके लिए उतना ही बुरा है, जितना कि भारतीय मिलों की हड़तालें उनके लिए लाभ-जनक। अंग्रेज़ भारत के अनाज-कपास आदि पर जीते हैं। यदि किसान संगठित हो जावें, अपने अधिकारों को माँगें, अपने-आप भर-पेट खावें तो अनाज महँगा हो जाय। अंग्रेज़ इसे सह नहीं सकते। इसलिए अंग्रेज़ी साहित्य मज़दूर-आन्दोलन का ही प्रचार करता है। अंग्रेज़ों ने ही मज़दूर-आन्दोलन आरम्भ किया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि भारतीयों का ध्यान भी किसानों की तरफ़ नहीं जाता है।

इन दो कारणों के सिवा और भी ऐसे छोटे-छोटे कारण हैं, जिनके कारण किसान-आन्दोलन की अपेक्षा मज़दूर-आन्दोलन ही अधिक चल रहा है। गाँवों में निस्वार्थ-भाव से ग़रीबी में रहते हुए ग्रामीण जनता में हिलमिलकर ठोस काम करनेवाले कार्यकर्ता हमारे दुर्भाग्य से थोड़े हैं। उन्हें संगठित करना है भी बहुत कठिन। वे बिखरे हुए होते हैं। उन पर नम्बरदारों, ग़ल्लदारों और ज़मींदारों का जो प्रभाव पड़ा हुआ है, उसे दूर करना आसान नहीं है। बड़े धैर्य, लगन और कठोर तपस्या का काम है। और उधर शहरों के वातावरण में रहनेवाले मज़दूरों में कुछ-न-कुछ जागृति तो होती ही है। वे सब इकट्ठे मिले रहते हैं। अपने निजी काम करते हुए भी कार्य-कर्ता एक-दो घण्टे भी मज़दूरों में लगाकर उन्हें संगठित कर सकते हैं।

ये कुछ कारण हैं, जिनसे हमें मालूम हो जायगा कि भारतीय मज़दूर-आन्दोलन का केवल मिलों की तरफ़ क्यों झुकाव है। मैं तो 'मज़दूर-आन्दोलन' को एक व्यापक रूढ़ि शब्द मानता हूँ। मज़दूर-आन्दोलन वस्तुतः केवल कारख़ानों के मज़दूरों तक परिमित नहीं है। देश के करोड़ों अन्न-दाता परन्तु उपवास करनेवाले मज़दूरों से भी अधिक ग़रीब और दुर्दशा-ग्रस्त किसानों को ज़मींदारों, महाजनों और सरकार के अत्याचारों से बचाना इस आन्दोलन का मुख्य कर्तव्य है। मज़दूर-आन्दोलन या किसान-आन्दोलन, कोई शब्द कहें, बात एक है—ग़रीबों की रक्षा और उनका संगठन। रूस के साम्यवाद का नाम आज-कल मज़दूर-आन्दोलन के साथ इतना सम्बद्ध हो गया है कि हम इन दोनों को अलग कर नहीं सकते। परन्तु रूसी साम्यवाद मुख्यतः किसानों का आन्दोलन था। इसलिए मैं 'भारतीय मज़दूर-आन्दोलन' को कारख़ानों तक ही परिमित नहीं समझता। यही कारण है कि किसान-समस्या पर उक्त शीर्षक के नीचे ही विचार किया गया है।

इस लेख में हमने बताया कि भारतीय मज़दूर-आन्दोलन के नेता रूस के साम्यवाद का नाम तो बहुत लेते हैं, परन्तु वस्तुतः वे अनेक कारणों से उनका यथार्थ अभिप्राय न समझ कर साम्यवाद के केवल एक छोटे से अंग (कारख़ानों के मज़दूर) पर ध्यान दे रहे हैं तथा इसके मुख्य अंग (किसान-संगठन) पर ध्यान नहीं देते। उन्हें जिस दिशा में अधिक ध्यान देना चाहिए था, उधर ध्यान न देकर एक दिशा में ही सारा ज़ोर लगा दिया है।

भारत के मज़दूर-आन्दोलन की और भी कुछ विशेषतायें हैं, उन पर अगले लेख में विचार किया जायगा। परन्तु इस मुख्य विशेषता को तो हमें अच्छी तरह समझ ही लेना चाहिए।

भारतीय ग्राम-संगठन

(१)

हमारा प्राचीन ग्राम-संगठन

(श्री रत्नेश्वरप्रसादसिंह, बी० ए०, बी० एल०, एडवोकेट)

यद्यपि विदेशी लेखक हमारे प्राचीन ग्राम्य जीवन एवं ग्राम पद्धति का प्रायः उपहास किया करते हैं, और बहुधा हमारे कतिपय नव-शिक्षित भाई भी उन्हीं की ध्वनि अलापते देखे जाते हैं, किन्तु इसके कारण अपने प्राचीन ग्राम-संगठन को दूषित बतलाना या समझ लेना नितान्त भूल है। इस दोषारोपण के अलावा यहाँ पर प्राचीन ग्राम-पद्धति और संगठन के विषय में विचार करना इसलिए अत्यावश्यक है, क्योंकि हमारा भावी ग्राम-समाज और संगठन देश-काल के अनुकूल हमारी प्राचीन पद्धति ही पर बहुत कुछ अवलम्बित होगा। यह सिद्ध है और इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि चाहे कहीं भी हो; किसी देश या समाज का भूत-काल किसी तरह किसी अवस्था में उसके भविष्य से जुदा नहीं कर दिया जा सकता, न भुलाया जा जा सकता है। इसके अतिरिक्त सब से बड़ी बात तो यह है कि *हमारी प्राचीन ग्राम-पद्धति प्रायः वैज्ञानिक रूप से* क्रमशः बहुत समझ-बूझकर स्थापित हुई थी और उसके अनुकरण से मानव-जीवन भली-भाँति सुख के साथ सार्थक बनाया जा सकता था, तथा इसके अन्तर्गत लोगों को अवसर मिलता था कि अपने जीवन के सभी अंशों को अच्छी तरह निबाहें और सफल कर सकें। यद्यपि आज-कल यूरोपीय ढंग की स्वार्थी सभ्यता ही को लोग 'सभ्यता' कहने लगे हैं, और उसी के लिए तरसते हैं, किन्तु इस प्रकार की सभ्यता से समस्त मानव-समाज में अन्धेर फैल गया है और नित्य फैलता जाता है। इसके अनुकरण और अनुशीलन से मानव-समाज का असली लाभ नहीं होता और मनुष्य-मात्र का जीवन कठिन एवं कष्ट-साध्य होता जा रहा है और इसके अन्तिम परिणाम दुःख, मरण, शोक, सन्ताप को छोड़कर और कुछ नहीं हैं। सच्ची सभ्यता वह है जिसका फल अमृत—आनन्द हो— सच्चा सुख हो, संघर्ष, क्षुधा, पीड़ा और अन्याय से निवृत्ति हो।

हमारा प्राचीन ग्राम-संगठन सच्चे सहयोग तथा परस्पर के साहाय्य और स्नेह पर स्थिर था। इसके अभ्यन्तर बलिदान की मात्रा अत्यधिक थी। स्वार्थ का त्याग और आत्म-सम्मान की मर्यादा पूरी तरह भरी हुई थी। लोक-मत इतना प्रबल और सुदृढ़ था कि उसके सामने चक्रवर्ती राजा भी सिर झुकाता था। सभी छोटे-बड़ों में एकता और आत्मीयता का भाव वर्त्तमान रहता था। कृषक, कारीगर व्यवसायी सभी अपने कार्य में सचाई से लगे रहते थे। सत्यासत्य, कर्तव्याकर्तव्य का विचार सभी छोटे-बड़ों में प्रबल रूप धारण किये था। समाज-संगठन ऐसा था, जिसमें दुर्बल से दुर्बल को भी अपने अनुकूल सुख, स्वातंत्र्य और साहाय्य प्राप्त होता था। सभी को सब के लिए सोचना *पड़ता था। प्रजा निस्सहाय और पर-तंत्र न थी, न आप* अपने ही लिए मनुष्य परेशान रहते थे। दरिद्रता और नीचता भी न थी। प्रत्येक ग्राम अधिकतर अपने में स्वतंत्र था। ग्राम-भर का जातीय और अन्तर्जातीय जीवन सौहार्द्र और सहयोग से भरा था। धर्म और मर्यादा का विचार सब को एकत्र किये था। छोटे-बड़े का विचार, सब की ग्राम-रूढ़ियों के प्रति श्रद्धा, पिता का परिवार भर के लिए उत्तर-दायित्व, परिवार भर का पिता के लिए सम्मान, ग्राम के ज़मींदार या ग्राम-नायक का ग्राम-भर के लिए न्याय-साधन, और सभी ग्राम-वासियों का ज़मींदार या ग्राम-नायक के प्रति आज्ञा-पालन इत्यादि उसी ग्राम-पद्धति के साधारण नियम थे। एक जाति यदि एक विहित कार्य्य करके ग्राम-समाज की सेवा करती थी, तो सारी अन्य जातियों के प्रति उस सेवक जाति के अटल अधिकार थे, जिसकी बदौलत

उसकी पूरी मान-रक्षा और आर्थिक सहायता होती थी। तांती, जुलाहे, बढ़ई, लुहार, सुनार, कुम्हार, नाई, धोबी, मेहतर, मोची, डौम ग्राम के प्रधान व्यवसायी और कार्य-कर्त्ता थे। इन के अतिरिक्त ग्राम के अनिवार्य अधिकारियों या कर्म-चारियों में थे ज़मीदार या मुखिया, पटवारी, पुरोहित, पण्डित या शिक्षक या निर्णयकार, चौकीदार और बनिया। ये सब अपना अपना काम समुचित रूप से सम्पादन करते थे; और सबको की हुई समाज-सेवा के लिए यथोचित प्रति कार मिलता था; सब के कार्य्यों के लिए नियत, किन्तु उचित रस्म, वेतन या दक्षिणा चाहे जिस नाम से हो, यथेष्ट प्रतिमूल्य या धन-प्रदान स्थिर था। ग्राम का प्रधान कर्म-चारी ज़मीदार या मुखिया का सबसे बड़ा अधिकार था। वह कर या मालगुज़ारी वसूल करता था। उसके साथ उसकी सहायता के लिए उसके दीवान और पटवारी होते थे। सिक्के, रुपये या सोना-चाँदी की परीक्षा करना सुनार का काम था, क्योंकि उस समय में कई प्रकार के सोने-चाँदी के सिक्के चलते थे। हिसाब किताब का काम पूर्णतः पटवारी के हाथ में था। पंडित बालकों के शिक्षा का भार उठाते थे और उनकी शिक्षा निश्शुल्क होती थी। इन शिक्षकों के लिए केवल समयानुकूल दक्षिणा होती थी। जब कभी किसी न्याय-संपादन के कार्य में विशेष शास्त्र-सम्मति की आवश्यकता हुई, तो प्रतिष्ठित पंडितों से अनुमति ली जाती थी। पुरोहित का काम देवाराधना, मांगलिक वंदना आदि करना-कराना था। ग्राम का समस्त पुलिस-कार्य चौकीदार या गोराइत के हाथ में था। सारी चौकीदारी और निरीक्षण, अपराधियों को पकड़लाना, किसी कार्य विशेष की सूचना देना, सभी चोकीदारों के काम थे। इन्हें भी नाई, पुरोहित, पुजारी की तरह मौरूसी जागीर—'गोराइती' —मिलती थी।

इन्हीं कर्म-चारियों-द्वारा ग्राम-शासन होता था। मुखिया के ऊपर सारे ग्राम का भार था। सम्राट या देशाधिपति के यहाँ और उस की ओर से सारे ग्राम के लिए वही उत्तरदायी था। राज-कर उसी के द्वारा वसूल होता था। वह ग्राम-नायक ग्राम-वासियों को घर-बैठे न्याय-दान देता था और उसे ग्राम के लोक-मत के अनुकूल चलना पड़ता था। झगड़े का कारण उसे मालूम रहता था और असली बात का पता लगाते उसे देर नहीं लगती थी। साक्षियों के चाल-चलन का ज्ञान उसे स्वयं रहता था। अतएव, यथार्थ न्याय करने में उसे कोई अड़चन नहीं पड़ती थी, न किसी को अधिक वाद-विवाद करने का ही अवसर मिलता था। ठीक-ठीक न्याय सहज में हो जाता था। जब ऐसा ही कोई महापराध करता था, तब उसे विशेष दण्ड के लिए स्वयं राजा या राज-न्यायाधीश की शरण में उपस्थित होना पड़ता था। न्याय-कर्ता कभी-कभी मुखिया या पण्डितों की राय विषयानुकूल लेता और तब अपनी आज्ञा प्रदान करता था। बस्ती भर के सब काग़ज़-पत्र पटवारी के हाथ में रहते थे तथा सारे ग्राम-निवासियों की जगह-ज़मीन-सम्बन्धी लिखने-पढ़ने का काम पटवारी ही को करना पड़ता था और उसे ग्राम-नायक के आज्ञानुसार कार्य्य करना पड़ता था। ग्राम-नायक पटवारी के ही द्वारा पत्र-व्यवहार करता था। ग्राम का गोराइत हरकारे का काम करता था। सभी ग्राम-वासी सिपाही या सैनिक थे, क्योंकि जब किसी उपद्रव का सामना करना पड़ता था तब सभी सुस्वस्थ ग्राम-वासी शस्त्र धारण करते थे; और चाहे शत्रु दूसरे ग्राम के निवासी हों, या दूर से आये हुए लुटेरे या अन्यायी हों, अवसर आने पर ग्राम-वासी अपना धर्म समझ कर बड़े साहस और त्याग के साथ लड़ते-भिड़ते थे। अतएव स्वावलम्ब की पूरी मात्रा सभी ग्राम-वासियों में समाविष्ट थी। ग्राम की मान-रक्षा और भलाई सभी की आँखों पर नाचती रहती थी। द्वेष या कलह की मात्रा बहुत कम थी, भाई-चारा अधिक था। ग्राम-कार्य कर्ताओं का शासन लोक-प्रिय तथा लोक-हितकर था। सभी अपने-अपने स्थान पर सुखी रहते थे। ग्राम-घर छोड़ कर बाहर जानेवाले दो ही थे। एक तो राज-कर्मचारी तथा पदाधिकारी, दूसरे विशेष प्रतिभाशाली शिल्पी या कला-विद्। इन दोनों का क्षेत्र ग्राम-संगठन से बाहर था। इन्हें अपने गुणों की ग्राहकता को ढूँढने बाहर निकलना ही पड़ता था; और ये विशेष प्रतिष्ठा और यश के भागी होते थे। अन्यथा सारी ग्राम-प्रजा अपने ग्रामों में ही रहकर अपने जीवन का पूरा उपयोग करती थी।

सब से बड़ी बात प्राचीन ग्राम-पद्धति के अन्दर यह

थी कि ग्राम प्रायः स्वावलम्बी था। ग्रामीणों की साधारण आवश्यकताओं की सभी चीज़ें ग्राम-शिल्पियों-द्वारा प्रस्तुत होती थीं। बढ़ई, लुहार कृषि के सारे यन्त्र तैयार करते थे। ग्रामों के अन्दर बहुत-सा कपड़ा तैयार होता था, जो गाँव भर के साधारण परिधान के लिए यथेष्ट था। विशेष सौन्दर्य या कला-कौशल से बनी हुई बहुमूल्य वस्तुयें बड़े-बड़े मेले-ठेले या नगरों से समय-समय पर ग्रामीण लोग ख़रीद लेते थे। तेली, कुम्हार इत्यादि के लिए यथेष्ट कार्य्य ग्राम के अन्दर बराबर बना रहता था, जिनके द्वारा ग्रामीणों का धन गाँव के भीतर ही रह जाता था। नीची से नीची जाति के हाथ में कोई न कोई ऐसा आवश्यक उद्योग-धन्धा सौंपा रहता था, जिससे वह ग्राम शृंखला की एक मज़बूत कड़ी बनी रहती थी। सभी ग्राम-वासियों को अपने ही ग्राम के कारीगरों की बनाई हुई वस्तुयें लेनी पड़ती थीं, उन्हें न लेना या त्याग देना ग्रामीणों के अधिकार के बाहर था। श्रमजीवी को भी बिना कारण ग्राम को छोड़ देने का अधिकार नहीं था। इन कारीगरों और श्रम-जीवियों को नियमित उपहार व दान देना पड़ता था। इन आर्थिक सहायताओं के अलावा प्रत्येक ग्राम श्रम-जीवी को वंश-परंपरागत जागीर तथा प्रत्येक फ़सल के उपरान्त सामयिक अन्नोपहार उपलब्ध था। इनके भरण-पोषण का भार ग्राम के ऊपर पक्के तौर से स्थिर था। ग्राम-पद्धति के नियम इतने प्रबल एवं दृढ़ थे कि किसी भी ग्रामीण व्यक्ति को जीवन-निर्वाह में कठिनाई नहीं होती थी। सब का सरल-स्वाभाविक जीवन था। छोटे-से-छोटे और बड़े से-बड़े पारस्परिक जीवन-सूत्र में बँधे थे। पारस्परिक सहयोग और साहाय्य, तथा विनिमय कृषक एवं शिल्पी दोनों ही के जीवन के मूल-मंत्र थे। दुर्बल, दरिद्र और निरीह यहाँ तक कि रोग-ग्रस्त का भी कृषि-कार्य्य या व्यवसाय सहयोगियों, बदला चुकानेवालों और बन्धुवर्ग द्वारा सम्पादित हो जाता था। सभी लोग ग्राम-परिपाटी की मर्यादा के वशीभूत थे, किसी का साहस नहीं जो पद्धति भंग कर दे। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सार्वजनिक स्वतंत्रता में विलीन रहती थी। शिल्पी अपने कुटुम्बियों तथा सजातियों के बालकों को अपने साथ शिल्प सिखलाने के लिए रखते थे। उन्हें न कोई वेतन देना पड़ता था, न द्रव्य व्यय करना पड़ता था। घर के बनकर काम सीखते थे, और बड़े हो जाने पर अपना स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ कर देते थे। सीखने-सिखाने-वाले दोनों ही सहृदय और ममतापूर्ण होते थे। हृदय-शून्य उदासीनता या असावधानता नहीं रहती थी। अपनी-अपनी स्वाभाविक योग्यता के अनुकूल हुनर-व्यवसाय सभी सीख लेते थे। इन्हीं में कभी-कभी असाधारण प्रतिभाशाली कारीगर निकल पड़ते थे, जिनकी शिल्प-निपुणता तथा कला-कौशल्य देखकर आस-पास के व्यवसायी और जन-साधारण चकित एवं प्रसन्न होते थे।

उद्योग-धन्धे से परिपूर्ण होने के कारण प्राचीन ग्राम्य जीवन आर्थिक कष्टों और उपद्रवों से रहित था। विलासिता बहुत कम फैली थी। खाद्य-सामग्री यथेष्ट मिलती थी। अतएव लोगों के स्वास्थ्य सुन्दर और विचार उन्नत होते थे। विलासिता की जो सामग्रियाँ थीं वे सब स्वदेश ही की थीं, और पवित्र थीं, साथ ही उनसे अधिक आर्थिक हानि नहीं होती थी। ग्रामों में सम्पत्ति, दल और संगठन अच्छी तरह वर्तमान थे। अतएव, प्राचीन ग्राम-वासी निस्सहाय न थे, अन्न का कष्ट उन्हें न था, क्षुधा की यातनाओं से वे पीड़ित नहीं रहते थे। वस्तुयें टिकाऊ और सस्ती होती थीं, एवं सहज में मरम्मत होनेवाली थीं। साधारण प्रकार के उद्योग, धन्धे हर जगह वर्तमान थे इनके द्वारा सारी गृहस्थी सुख-चैन से निभ जाती थी। ऊन, रेशम और सूत के कपड़े ऐसे तैयार होते थे जिनकी बराबरी सारे संसार में न हो पाती थी। लोहे, फ़ौलाद, ताँबे, चाँदी, सोने की सामग्रियाँ अनूठी, अनुपम, अनमोल तैयार होती थीं। शिला-शिल्प तथा भवन-निर्माण-कला को उच्चतम उन्नति पर पहुँचाने-वाले हमारे ग्राम ही के बालक थे, न कि किसी देशी या विदेशी विद्यालय से निकले हुए इञ्जीनियर! उनकी कार्य-दक्षता तथा कला-कौशल किस उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई थी, वह यहाँ के बड़े-बड़े राज प्रासादों, मन्दिरों और गुफ़ा-मन्दिरों के देखने से पता चलता है। हमारे द्वेषी, निन्दक और उपहास करनेवाले देशी-विदेशी सज्जनों का कहना चाहे जो हो, किन्तु सत्य की खोज करनेवालों से कदापि छिपा नहीं है कि प्राचीन भारत में उद्योग-धन्धों का वह सिलसिला था और वे इतनी उन्नति कर गये थे कि

आज के विज्ञानोज्वल और विद्युच्चमत्कृत संसार में भी कहीं पर किसी भी देश में इतनी आर्थिक और औद्योगिक शान्ति नहीं पाई जाती, जितनी हमारी प्राचीन ग्राम-पद्धति में थी। हमारी कारीगरी सर्वथा स्वच्छ, सुन्दर और सुरुचिपूर्ण थी। सोने के नाम पर सोना दिया जाता था और काँच के नाम से काँच बिकता था। शोर-गुल के बगैर हमारी कारीगरी बड़ी उन्नत अवस्था पर थी और बिना बड़े-बड़े कारखानों के स्थापित हुए ही सब तरह की कलायें सुसम्पन्न थीं। अतएव, देश का धन निरन्तर बढ़ता जाता था और उद्योग, कला और कारीगरी, सब में अनोखी वृद्धि हो गई थी। साहित्य, गणित, आयुर्वेद, विज्ञान, दर्शन और अध्यात्म में जो उन्नत हुई थी वह सब इस देश के ग्रामों ही के प्रताप से।

इस शिल्प और उद्योग-धन्धे की सार्थकता का प्रत्यक्ष फल यह था कि हमारे प्राचीन ग्रामों की आर्थिक या व्यावसायिक स्थिति सहज और शान्त थी। पारस्परिक लेन-देन तथा विनिमय बड़ी ही आसानी और सफलता से हुआ करता था। सबल आर्थिक जीवन के प्रभाव से क्षोभ, क्षुधा और क्षुद्र-बुद्धिता हमारे ग्रामों के भीतर उत्पन्न न हो पाते थे। अतएव, कलह, क्लेश और कठोरता का लवलेश भी अत्यन्त कम था। सभी अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने स्वकर्म में लगे रहते थे और बिना वृथा राग-द्वेष, कपट, क्रूरता या कुटिलता के सादगी, सुप्रसन्नता, परस्पर के हेल-मेल, सहयोग तथा सहानुभूति के साथ ग्राम-वासी अपना सहज एवं सरल ग्रामीण-जीवन निर्वाह करते थे। पुत्र की पितृ-भक्ति, पिता का स्नेह, गुरु-जनों का वात्सल्य, भाई-भाई का भ्रातृत्व, तथा दाम्पत्य जीवन की मधुरता, विशुद्ध प्राचीन भारत के ग्राम-समाज में इस प्रकार सुसम्पन्न और पूर्णतः व्याप्त थे कि मानव-जीवन की विघ्न-बाधाओं या व्याधि का प्रकोप न्यूनतम हो गया था। जाति-जाति का झगड़ा, हृदय-हीन प्रतियोगिता, लोलुपता, स्वार्थ और विषय-वासना प्राचीन भारतीय ग्राम-पद्धति तथा समाज-संगठन के संयत विधान के अन्दर प्रायः निर्मूल हो गये थे। मानव-हृदय के अनेकानेक दूषण और मनोमालिन्य जन-समुदाय में लुप्त-प्राय थे। पड़ोसियों तथा निकट परिवार के व्यक्तियों में एक प्रकार का अपनापन तथा पारस्परिक सौहार्द बना रहता था। खाना-खिलाना, आमोद-प्रमोद नित्य-कर्म-सा हो गया था। अपने-पराये का ख़याल ग्रामीणों के हृदय को क्षुद्र तथा संकीर्ण नहीं बना देता था। यद्यपि प्राचीन काल में कभी-कभी अन्तर-ग्रामीण युद्ध हुआ करता था और किसी विशेष कारण से दो निकट-वर्ती ग्रामों में कुछ काल तक वैमनस्य तक हो जाता था; किन्तु इसके कारण ग्रामों में परस्पर कोई अनुचित व्यवहार न हो पाता था, और मान मर्यादा-रक्षा की आकांक्षा तथा विचार सभी श्रेणी के मनुष्यों में प्रबल रहता था तथा व्यक्तिगत ग्रामों में आन्तरिक सुख-शान्ति बनी रहती थी।

लोक-मत जो निस्सन्देह जन-समूह का अन्तिम सच्चा बल है, इतना अटल और विस्तीर्ण था कि उसके सामने सब का बल तुच्छ दीख पड़ता था। "जनता की पुकार ईश्वर के शब्द है" वाली कहावत यहाँ पूर्णतः चरितार्थ थी। जो किसी बात से नहीं दबता था उसे लोक-मत के सामने सिर झुकाना पड़ता था। राजा रंक, यति गृहस्थ सभी को उसके नीचे रहना पड़ता था, उसे कोई सह नहीं सकता था। क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति को भी अपनी राय प्रकट करने का अधिकार प्राप्त था, चाहे वह राजा या शासक ही के प्रतिकूल क्यों न हो। इन मत-प्रकाश के लिए कभी किसी को सज़ा नहीं दी जाती थी, यानी मत प्रकट करना सब का अधिकार था, कर्तव्य था, और इसी से सब को सामर्थ्य थी कि सच्ची सम्मति स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रकाशित करें। सच्चे एवं शुद्ध मन से मत-प्रदान के कारण ही हमारी प्राचीन-पद्धति में लोक-मत एक अद्भुत बल था, एक बहुमूल्य शस्त्र था, जिसके प्रयोग से सभी पराजित हो जाते थे।

हमारे प्राचीन ग्राम-संगठन के बीच शायद दोष थे केवल दो ही। एक तो यह कि कई कारणों से ग्रामीण-लोगों का दृष्टि-कोण कुछ हद तक संकीर्ण रहता था। कारण यह था कि ग्राम का बहिर्जगत से समागम एकदम कम रहता था, जिससे आस-पास के ग्रामों के बीच, या ग्रामों और निकट-वर्ती नगरों के बीच अपनापन अथवा ऐक्य का भाव कम था। दूसरा यह कि कभी कभी अत्यन्त साधारण बातों के कारण पड़ोस के दो ग्रामों में झगड़ा-वैमनस्य या मनोमा-

लिप्त हो जाता था, जिसके कारण कभी-कभी स्थानीय अशान्ति भी फैल जाती थी, और यह द्वेष-भाव कुछ काल तक ठहर जाता था। अन्यथा प्राचीन काल में हमारे यहाँ का ग्राम्य-जीवन सभी तरह से परिपूर्ण था। आवश्यकतायें कम थीं, और आवश्यकताओं का बढ़ाना ही उस समय सभ्यता का चिन्ह नहीं था। उन दिनों सभ्यता के द्योतक वे गुण थे, जो उन्नत विचार, सदाचार, न्याय और धर्म पर अवलम्बित थे। और, उपर्युक्त दोष-परिमित दृष्टि-कोण तथा पारस्परिक समागम और समावेश के अभाव के कारण ही उदित होते थे; किन्तु, तिस पर भी उस समय भारतभूमि और स्वधर्म की एकता सर्वत्र विद्यमान थी। चारों धाम और अनेकानेक तीर्थ-स्थान अद्यावधि यही बतलाते हैं कि पहले से—बहुत प्राचीन काल से, भारतवर्ष में यथेष्ट अन्तर-प्रान्तीय परिचय तथा सम्पर्क था। दूर देश से बहुत-से मनुष्य राज-दरबार में राज-सेवा या अपने कार्य-साधन के लिए बराबर आया-जाया करते थे। अतएव एकदेशीयता का भाव यद्यपि कुछ दुर्बल और परिमित था, किन्तु जितना भर था उतना विशुद्ध और सच्चा था। मिथ्याचार की मात्रा न थी। मित्र को मित्र और शत्रु को शत्रु समझते थे। और यदि अज्ञान की मात्रा भले ही कुछ रही हो, किन्तु साथ ही साथ आत्मीयता एवं समवेदना सौम्य रूप धारण किये हुई थीं। संकीर्ण-हृदयता, छल, और कठोरता का समावेश एकदम कम था। इसमें संदेह नहीं कि उन दिनों हमारा चरित्र उन्नत, धन यथेष्ट, जीवन सुख-पूर्ण और समाज-संगठन सुदृढ़-सबल एवं प्रभावशाली था।

बलि की बेला

[श्री चन्द्रभानुसिंह]

बलि की बेला अब आई,
स्वर्गीय ज्योति दिखलाई।
जिससे विश्राम मिलेगा,
जीवन-उद्यान खिलेगा॥

सारे निज कृत कर्मों का,
उपहार दया-धर्मों का।
लेने में क्या दुविधा है?
जब यहाँ यही सुविधा है॥

आओ सहर्ष वेदी पर,
दो चढ़ा प्रसून-कलेवर।
सौरभित विश्व हो जावे,
भक्तो के मन बहलावे॥

सेवा में संकट आता,
जग का विचित्र है नाता!
पूजा का थाल सजाओ,
हर्षित मन्दिर में जाओ॥

माँ का मुख उज्ज्वल होवे,
टीका कलंक का धोवे।
गायन स्वातन्त्र्य सुनावे,
अन्याय-तंत्र मिट जावे॥

हमारी कैलाश यात्रा

(३)

भोट में

[श्री दीनदयालु शास्त्री]

अलमोड़े जिले के उत्तरीय भाग को, जो तिब्बत व नैपाल को छूता है, भोट कहते हैं। वहाँ के निवासी भोटिये कहलाते हैं। सीमा-प्रान्त में रहने के कारण तिब्बत व भारत का अधिकांश व्यापार उन्हीं लोगों के हाथ में है। उच्च हिमालय में होने के कारण भोट मे ठंड अधिक होती है। ग्रीष्म में कहीं खेती होती है, अन्यथा वर्ष भर हिम पड़ा करता है। भोटिये साल भर रहने का स्थान बदलते रहते हैं। सावन से कार्तिक तक इनका समय तिब्बत के व्यापार में कट जाता है अधिक जाड़ा होने की हालत में धारचूला या तल्ला जोहार में चले जाते हैं। जाड़ों के अन्त में देश का माल लेकर भोटिये भोट में आ जाते हैं और खेती-बाड़ी करके व्यापार के लिए तिब्बत में पहुँच जाते हैं। साल भर यही क्रम जारी रहता है। व्यापारी होने के कारण इस इलाके में ये धनी समझे जाते हैं।

भोट के चार भाग हैं—चौन्दास, व्यास, दारमा और जोहार। चारों भागों के भोटिये व्यापारी हैं, किन्तु जोहार के भोटिये अधिक कुशल हैं। रीति-रिवाज़ अन्य पहाड़ियों-जैसे हैं। भोटिये हिन्दू धर्म को माननेवाले हैं। व्यास व चौन्दास में विवाह का ढंग हिन्दुओं से थोड़ा भिन्न है। लड़की जिसे पति बनाना चाहती है, मां-बाप को बिना सूचना दिये उसके घर में चली जाती है। पति के घरवाले कन्या के माता पिता को इसकी ख़बर कर देते हैं। इसके बाद कन्या अपने घर में आ जाती है और उसके माता-पिता विवाह के लिए बरात मँगा लेते हैं। भोटियों में मार्गती, जोंगपानी, धमसक्त आदि कई उपजातियाँ पाई जाती हैं। जोहार में कथा करने के लिए पंडित आते हैं, दूसरे धर्म-कार्य भी इनके यहाँ होते हैं। भोट के दूसरे भागों में धर्म के प्रति उदासीनता है। भोटिये नीची जाति के समझे जाते हैं और अलमोड़े के द्विजाति इनके साथ खान-पान का व्यवहार नहीं रखते। भोट में शिक्षा का प्रचार बहुत थोड़ा है। पढ़े-लिखे लोग अपना सारा कारोबार हिन्दी में करते हैं। शिक्षित भोटिये प्रायः आर्य-समाज से प्रेम करते हैं। भोट में आर्य-समाज के लिए कार्य करने का विस्तृत क्षेत्र है। ईसाइयों का भी प्रचार-कार्य जारी है। कई स्थानों पर मिशन की ओर से स्कूल खुले हुए हैं। परिणाम यह है कि कुछ भोटिये ईसाई भी हो गये हैं।

कुलागाड़

चौन्दास

खेला से चौन्दास और व्यास होकर तिब्बत को मार्ग जाता है। ११ जुलाई को हमने खेला से प्रस्थान किया। आध मील नीचे धौली गंगा के दर्शन होते हैं। इसका रूप

शंखोला के जंगल में

बड़ा विकराल है। जल साँप की तरह फुंफकार मारता हुआ चलता है। गंगा की झपेटों में आकर पुल के पास की शिलाओं में सात-आठ फ़ीट गहरे गढ़े हो गये हैं। आगे ढाई मील की कठिन चढ़ाई है। कुछ भोटियों के साथ गप्प-शप्प में चढ़ाई से अधिक कष्ट न हुआ। भोटियों के के लिए यह मैदान ही था चढ़ाई के अन्त में चौन्दास का सुन्दर प्रान्त शुरू होता है। ऊँचे पहाड़ पर होने से बन-स्पत्ति की अधिकता है। जगह-जगह हरे-भरे खेत लहरा रहे हैं। तिब्बत के मार्ग में चौन्दास से अधिक हरा-भरा प्रान्त हमने नहीं देखा। प्रकृति का आनन्द लेते हुए मज़े में पांगू आ पहुँचे। पांगू बड़ा गाँव है; छोटा-सा स्कूल भी यहाँ है। कुछ लोगों ने मिलकर वैदिक पुस्तकालय भी जारी कर रखा है। यहाँ के मोतीसिंहजी कांग्रेस और आर्य-समाज के भक्त हैं और बड़े लगन के आदमी हैं। दो पहर पांगू में ही विश्राम किया।

पांगू से सोसा तक दो मील की हलकी चढ़ाई मिलती है। चढ़ते समय बादल घिर आये और धीरे-धीरे मेह बरसने लगा। इस धीमी फुहार में सामने का दृश्य देख-कर मन प्रसन्न हो गया। क्या ही सुन्दर दृश्य था! दो उज्ज्वल गिरि-शिखर थे। सब ओर से हरी-हरी दूर्वा से आच्छादित। मध्य के मार्ग से मैं जा रहा था। शिखर पर जो पहुँचा तो आनन्दोल्लास से नाच उठा। सामने शिखर से एक छोटी-सी नदी बह कर जा रही थी। उस के प्रांगण में देवदार का झुरमुट मुक्ता-कण बरसा रहा था। उस छम-छम में शस्य-श्यामला भूमि मख़मल का बिछौना बन रही थी। लाल, नीले, पीले, फूल हर दिशा में खिल रहे थे। अलमोड़े से चले दस दिन बीत गये थे। आज जाकर प्रकृति नटी ने वह दृश्य दिखाया जो भूतल के स्वर्ग काश्मीर में भी मिलना कठिन था। साथी पीछे थे, दृश्य भी अनुपम था। एक शिला पर मैंने आसन जमाया और पल-पल में परिवर्तित प्रकृति-वेश को देखने में मस्त हो गया। साथी आये और आगे बढ़ गये परन्तु मुझे सुध न थी। सांझ हो चली, दिनकर दुनिया को छोड़ चले, वह दृश्य गाढ़-अन्धकार में विलीन होने लगा, मैंने भी अपना रास्ता पकड़ा। शार-दांग के स्कूल में जाकर आश्रय लिया। खेला से शारदांग दस ही मील है लेकिन सारे राह में चढ़ाई है। शारदांग बड़ी ठंडी जगह है। गाँव के प्रधान की कृपा से ख़ूब आग तापी और सो रहे।

१२ जुलाई को हमने शारदांग से गला के लिए कूच किया। यहाँ से गला दस मील है। शुरू में ही ईसाई मिशन का बँगला मिलता है। भोट के ईसाई मिशन का केन्द्र धारचूला में है। गर्मियों में वहाँ का पादरी चौन्दास में आ जाता है। पादरी बड़े सज्जन और मिलनसार हैं। आगे दो मील तक आबादी है फिर जंगल शुरू हो जाता है। पहाड़ की सारी चोटी बांझ के पेड़ों से आच्छादित है। पेड़ों की छाया अति शीतल है। इसी घने कुञ्ज में से हो कर ही रास्ता जाता है। रास्ते में जोंकें बहुत हैं, वे राह जाते के पैर में चिपट जाती हैं और भर-पेट रक्त पीकर रफ़ूचक्कर हो जाती हैं। बहते रुधिर को देखकर यात्री हैरान हो जाता है। दो मील पहाड़ पर चढ़े तो चार मील उतरना पड़ा। यह उतार बड़ा बेढब है; चलने में घुटने दुखने लगते हैं। जंगल के साथ दो-चार खेतों में शनखोला का छोटा-सा गांव है। शनखोले से गला दो मील है। गले में केवल एक घर

है। साथ ही डाक के हरकारे का झोंपड़ा है। हमने आज इसी झोंपड़े में डेरा डाला।

अलमोड़े से खेला तक प्रायः हरएक पड़ाव में डाकखाना है। खेला के आगे डाकखाना भारत की सीमा पर गरब्यॉंग में है। खेला से गरब्यॉंग ३६ मील है। रास्ता विकट है और उसमें कठिन चढ़ाव-उतार हैं। डाक दो दिन में पहुचती है। डाक के हलकारे नौ-नौ मील पर बदलते हैं। गल्ला में भी हरकारे बदलते हैं। हरकारे की टूटी-फूटी झोंपड़ी में हमें स्थान मिला था। ज़मीदार की कृपा से आटा व आलू मिल गये। खा-पीकर कच्चे फर्श पर ही बिस्तर डालकर पड़ रहे। बारह बजे से ही इन्द्र देवता ने बरसना शुरू कर दिया। मेघ तो बरसता ही था वह अधकच्चा, फूस का झोंपड़ा दुगने वेग से बरसने लगा। नींद हराम हो गई। बिछौना लपेटकर बैठे बैठे ही रात काट दी। वर्षा थमी; देखा तो सवेरा हो गया था। उठे और आगे के लिए रवाना हो गये।

जलप्रपात और चट्टान

मालपा

गल्ला चौन्दास का अन्तिम गाँव है। आगे आठ मील तक आबादी नहीं है। दो फुट का रास्ता है। नदी के किनारे सीधा पहाड़ खड़ा है। थोड़ा असावधान हुए और काली की शरण ली। बड़ा सम्हल-सम्हल कर चलना होता है। दो मील तक मार्ग सीधा है, आगे निरपनियां तक उतार है। पहाड़ में पत्थर गाड़ कर मार्ग बनाया गया है। सीढ़ियाँ इतनी छोटी हैं कि उन पर पैर रखने में भी कठिनता होती है, चलना तो अलग रहा। इन्हीं सीढ़ियों पर भोटिये चौपले चले जाते हैं, उन्हें भय नहीं होता। रोज का आना-जाना तो ठहरा। किसी तरह यह दो मील भी पार किये। काली नदी के किनारे एक छोटी-सी गुफा है जिसमें भूला-भटका यात्री पनाह ले सकता है। इसी का नाम निरपनिया है। यहाँ काली नदी पर तख्तों का पुल है। पुल पार करके हम नैपाल में आ गये।

अस्कोट के बाद से हम नित्य नैपाल की भूमि के दर्शन किया करते थे। काली नदी पार की वह स्वतंत्र भूमि मन को मोह लेती थी। आज उसी पवित्र भूमि में चलकर हम निहाल हो गये। भारत के अन्य देशी राज्य एक-एक करके अंग्रेज़ों के चगुल में चले गये। लेकिन वीर गोरखों ने दासता को आलिंगन करने से सर्वदा इन्कार किया। लार्ड हेस्टिंग्ज़ के समय में अंग्रेज़ों ने नैपाल को जीतने की, अपने साम्राज्य में मिलाने की अनेक कोशिशें कीं, किन्तु उनके सब कौशल व्यर्थ हो गये। स्वतंत्र नैपाल का सिर आज भी गर्व से ऊँचा है। काली नदी में विलुप्त हो जानेवाली जल की वह विक्षुब्ध धारा, नैपाल के उन्नत गिरि से गिर कर दास भारत को आज भी स्वतंत्रता का संदेश सुना रही है।

एक मील के बाद पुनः ब्रिटिश राज्य में दाखिल हुए। निकट ही एक मोड़ था, वहाँ जल की धारा पर जो पुल था वह बह गया था केवल एक तख्ते का अवशेष था। किसी तरह इसे पार किया। चारों ओर रुण्ड-मुण्ड पहाड़ थे। उनमें से एक शुभ्र धारा बही चली आ रही थी। वह एकान्त प्रदेश था। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी ने इस विजन प्रदेश में स्वच्छ मोतियों की माला लाकर बिखेर दी

है। इस सुन्दर धारा का नाम नजुनगाड़ था। एक ऊँचे स्थान से नजुनगाड़ की धारा सरकती हुई-सी गिरती है। इसका रंग-ढंग कितना शुभ्र है? कितना निर्दोष है? वाह! क्या चमक-दमक है? सचमुच हिमालय से दूध की धारा उँडेल दी गई है। शुभ्र-वसना तपस्विनी इस निर्जन में अभ्यागत के स्वागत के लिए प्रतीक्षा कर रही है। हमने तपस्विनी की भेंट को स्वीकार किया। शीतल जल से तृषा को शान्त किया और पहाड़ पर चढ़ने लगे। एक मील चढ़कर पुनः उतार है और यात्री मालपा पहुँच जाता है। मालपा काली नदी के किनारे पर है।

मालपा में आबादी नहीं है। एक छोटे से टीले पर डाक के हरकारे की झोंपड़ी है। रात्रि में अकेला वह इस स्थान का स्वामी होता है। मालपा में लकड़ी न मिल सकी। सत्तू साथ बँधा था, आज उसी से सन्तोष करना पड़ा मालपा से बुधि छै मील है। मार्ग काली नदी के साथ-साथ जाता है। इस-जैसे भयानक मार्ग कम ही होते हैं। किनारे का पहाड़ कच्चा है। बजरी और पत्थर पड़े है, वर्षा हुई और लुढ़ककर नीचे आने लगे। नीचे काली विकराल मुख खोले बह रही है। रास्ता ख़राब होते हुए भी जल का बड़ा आनन्द है। स्थान-स्थान पर झरने झर रहे हैं, सुन्दरता में हर एक दूसरे को मात कर रहा है। उच्च हिमालय का यह प्रदेश है, यह उसी की महिमा है। शुभ्र नील जल अमृत से अधिक मधुर, हिमालय के अंग-अंग से फूटकर बह रहा है। एक स्थान पर ऊँचे से जल गिरता है। नीचे पहाड़ गोल होकर भीतर की ओर मुड़ गया है। पानी आकाश में फुआरे मारता है, धुँआ के समान उड़ता है। दृश्य देखने के लिए यात्री सिर ऊपर उठावे तो पैर फिसलने का डर रहता है। हमारे मास्टर कल्याणदेवजी तो फुआरों के आनन्द में फिसल ही गये थे, लेकिन सम्हल गये।

बुधि से दो मील इधर फिर चढ़ना शुरू हुआ। धीरे-धीरे हिम्मत करके बढ़ चले। ऊपर जाकर सुन्दर जल-धारा मिली। इसे पार करते ही खेत आ जाते हैं। आज का मार्ग कठिन, भयावह तथा थकानेवाला था। खेतों में पहुँचे। हमारे सामने तीन ओर हिमालय गरदन निकाले खड़ा था इधर-उधर के दो शिखर आकाश से बातें कर रहे थे। उनके ऊपर श्वेत हिम चमक रहा था। मध्य के शिखर में सुन्दर वनस्पति आच्छादित थी। इसी कुञ्ज के खेतों में बुधि का गाँव बसा था। हिम, वनस्पति तथा नदी के नज़ारे अस्ताचल में जाते हुए रवि की रश्मियों में नवीन आभा को जन्म दे रहे थे। ऊपर बादलों में की लाली सोने में सुहागे का काम कर रही थी। इस मनोहारी दर्शन से हमारी थकान सहसा उतर गयी। बुधि में पहुँचकर हमने स्कूल का आश्रय लिया। गाँव से अन्न लेकर खाना खाया और थकान के मारे मधुर निद्रा की गोद में आनन्द लेने लगे।

नजुनगाह का जल-प्रपात

गरब्याँग

बुधि से गरब्याँग केवल चार मील है। बुधि से सवेरे उठकर चले। पहले डेढ़ मील की चढ़ाई है, ठंडे-ठंडे समय में पार करके ऊपर पहुँचे। चारों ओर से गिरि से घिरा एक वर्तुल मैदान है। बढ़िया दूर्वा बिछी है, स्थान-स्थान पर विविध वर्ण के पुष्प खिल रहे हैं। गिरि-राज के मध्य भाग

में भोज-पत्र के पेड़ विराज रहे हैं। मन्द समीर बह रही है। उसकी सुरभि इस स्थान की पवित्रता को प्रकट कर रही है। कैसा सुन्दर स्थान है? हम-जैसे यात्री चले आये देख कर, वाह-वाह कर दी। इस सुषमा का अनुभव तो कालिदास से कवि ही कर सकते हैं। यहाँ के भोज-पत्र, पुष्प, मन्द समीर और मेघ का मँडलाना सब ऐसा है कि सहसा कालिदास के कुमार-सम्भव का स्मरण हो आता है। महाकवि का वह वर्णन चमत्कारी है—दिव्य है। उसको पढ़-कर व्यक्ति कह उठता है कवि लोग सचमुच क्रान्ति-दर्शी होते हैं। वास्तव में यह स्थान ऐसा ही है। मैदान में राह के साथ तिब्बतियों का एक छोटा-सा मन्दिर है।

सूर्य की रश्मियों में हम इस स्थान की शोभा को निहार ही रहे थे कि मेघ-मण्डल ने आकाश को घेर लिया। एक नये वेश में प्रकृति हमारे सामने आ उपस्थित हुई। हमने इस विश्व-मञ्च के निपुण नट को नमस्कार किया और आगे बढ़े। ढाई मील तक मामूली उतार है। छोटे मैदान के एक कोने में गरब्याँग का बड़ा गाँव स्थित है। आज १४ जुलाई शनिवार का दिन था। हमने तीन जुलाई बुधवार के दिन अलमोड़ा से प्रस्थान किया था। अलमोड़े से गरब्याँग १३७ मील है। हमने यह मार्ग बारह दिन में पार किया।

गरब्याँग समुद्र-तल से १०३०० फीट ऊँचा है। शीत की अधिकता के कारण पहाड़ों में वनस्पति कम है कहीं कहीं घास अवश्य है। ऊँची चोटियाँ सतत हिम से आच्छादित रहती हैं। काली नदी के किनारे खेत हैं। गाँव पहाड़ की ओट में एक ऊँची टेकरी पर बसा है। बस्ती में दो सौ घर हैं। इस ओर भारत की सीमा पर अन्तिम पड़ाव यही है। सीमा पर होने के कारण तिब्बत, नैपाल और भोटिये तीनों की बस्ती है। मकान गन्दे हैं और पत्थर के बने हैं। कहीं लकड़ी का भी उपयोग किया गया है। यहाँ डाकखाना है। भारत में डाक यहाँ तक ही आती है। गाँव के बाहर एक स्कूल है। बाज़ार कोई नहीं है। दो-चार व्यापारी हैं, वे अपने घर में ही सब सामान रखते हैं। ग्राहक घर में जाकर ख़रीद सकते हैं। ऊन का काम अधिक है। तिब्बत जानेवाले व्यापारी अपना माल यहाँ इकट्ठा करते हैं।

हम सवेरे आठ बजे ही गरब्याँग पहुँच गये थे। यहाँ भी स्कूल में जाकर डेरा किया। इसके आगे तिब्बत जाने के लिए सब प्रबन्ध यहाँ ही करना होता है। खेलावाले कुली थक गये थे, उनको बिदा कर दिया गया। श्री नन्दराम-जी गरबियाल गरब्याँग में बड़े व्यापारी हैं। उनकी कृपा से तीन नये मज़दूर कर लिये। आश्विनसिंह हमारे साथ अल्मोड़े से आ रहा था; निरन्तर बोझ उठाने से वह थक गया था। रसोई के काम के लिए उसे रख कर असबाब तीन नये मज़दूरों को दे दिया। ये मज़दूर हुणिये थे। भोटिये लोग तिब्बतवालों को हुणिया कहकर बुलाते हैं। हुणिया हमारी बोली न जानते थे; उन्होंने केवल दो-चार शब्द याद कर रक्खे थे। इधर काम करवाने से पहले ही मज़दूरी देने का रिवाज है। हमें इसका पता न था। मज़दूरी पहले न देने पर हमारे साथ इनकी तकरार हो गई। न हम उनकी समझें, न वे हमारी। अन्त में एक दुभाषिये द्वारा मज़दूरी देकर यह तूफ़ान मिट सका।

कैलास के यात्रियों को आटा, दाल, गुड़, तेल आदि सब सामान गरब्याँग से ही ले लेना चाहिए। मण्डी तकलाकोट में भी यह सब सामान मिल तो जाता है किन्तु कुछ महँगा। श्री नन्दरामजी की एक दूकान मंडी तकला-कोट में है। हमें उन्होंने गरब्याँग के भाव का माल देने के लिए दूकान के नाम पत्र लिख दिया। हमने केवल दो-दिन की रसद अपने साथ रख ली। तिब्बत एक अज्ञात देश है। वहाँ डाक के आने-जाने का कोई प्रबन्ध न था। अतः अपने कुशल-समाचार की सूचना अपने-अपने घरों को भेज दी। १४ जुलाई के दिन हम गरब्याँग में रहे। १५ जुलाई की दोपहर को हमने तिब्बत के लिए प्रस्थान किया।

एक अग्रगण्य भारतीय वैज्ञानिक

[श्री रामलाल वाजपेयी, अमेरिका]

एक समय था, जब भारत सभ्यता के शिखर पर था और वेदान्त, साहित्य, विज्ञान तथा कला का क्षेत्र था। उस समय भारत स्वर्ग-भूमि कहलाता था। और कई राष्ट्रों का व्यापारिक केन्द्र था। विज्ञान और कला में भारत ने खूब उन्नति की थी और नक्षत्र-विद्या, ज्योतिष, बीज-गणित, अंक-गणित, दशमलव प्रक्रिया, धातु-विद्या, संगीत, वैद्यक, वानस्पतिक रंग, बुनाई, मीनाकारी तथा बीसियों दूसरे छोटे-बड़े उद्योगों-द्वारा उसने संसार के विज्ञान और कला के क्षेत्रों को व्यापक बनाया था। आकाश-मार्ग-द्वारा यात्रा करने की विद्या और विज्ञान भी पहले-पहल भारतीयों ने ही प्राप्त किये थे। लेकिन संसार तो सदा से परिवर्तनशील है, उसकी कोई चीज़ चिरस्थायी नहीं होती। भारत के भी दिन बिगड़े, विदेशियों के अनेकानेक आक्रमणों और गृह-कलह के कारण धीरे-धीरे भारत का पूर्व गौरव लुप्त होने लगा। ख़ास कर पिछली शताब्दियों में, जब कि यूरोपीय राष्ट्रों ने विज्ञान, कला और आविष्कारों में महान् प्रगति की, भारत एकदम सोता रहा। फिर पिछले ५० वर्षों से भारत पुनः धीरे-धीरे जाग रहा है और अपने प्राचीन गौरव को फिर से पाने की कोशिश में है।

वर्तमान युग वैज्ञानिक शोधों और यांत्रिक आविष्कारों का युग है। ये दोनों बातें उद्योग और व्यापार की दो आँखें हैं। इन्हीं पर किसी भी राष्ट्र की समृद्धि निर्भर करती है। अभी इन थोड़े वर्षों में जहाँ सर जगदीशचन्द्र बोस ने वनस्पति-जीव-क्षेत्र में अपनी मौलिक शोधों के कारण सारे संसार में हलचल-सी मचा दी है, वहाँ यांत्रिक आविष्कारों की दृष्टि से भारत ने संसार को कोई ख़ास चीज़ नहीं दी है। वैसे तो अब तक पश्चिमी संसार में भारत के सम्बन्ध में बड़े विचित्र ख़यालात फैले हुए थे। लोग समझते थे कि भारतीय किसी यंत्र को चला सकते हैं, उसी नमूने का दूसरा बना भी सकते हैं, लेकिन स्वतंत्र-रूप से किसी महत्वपूर्ण यंत्र का आविष्कार नहीं कर सकते, क्योंकि प्रकृति से उन्हें आविष्कार की शक्ति की विरासत ही नहीं मिली है।

इस तरह के विचारों को मिथ्या साबित करने की ग़रज़ से श्री शंकर ए० बिसे ने पाश्चात्य आविष्कारकों से सफलतापूर्वक-स्पर्धा करने का काम सबसे पहले अपने हाथ में लिया और पिछले २० वर्षों में वह इस तरह का काम इंग्लैंड और अमेरिका में बराबर करते रहे हैं। टाइप (छापे के अक्षर) ढालने और कम्पोज़िंग मशीन सम्बन्धी उनके कुछ आविष्कार तो युग-परिवर्तनकारी हुए हैं और आज संसार में उनकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा है। जिन सूक्ष्म और उलझन-भरी यांत्रिक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करके भी पाश्चात्य आविष्कारक सफल नहीं हुए थे, उन समस्याओं को हल कर देने का श्रेय श्री बिसे को है, और जानकारों ने इस बात को स्वीकार भी किया है।

शंकर ए० बिसे का जन्म २९ अप्रैल सन् १८६७ में बम्बई शहर में हुआ था। माता-पिता जाति के उच्च और सुशिक्षित थे। श्री बिसे के पिता और उनके तीन चाचा सरकारी न्यायालयों के उच्च अधिकारी रह चुके हैं।

शंकर जन्म से ही आविष्कारक हैं। जब वह बालक थे, तभी उनमें वैज्ञानिक शोध का प्रेम पाया जाता था। जिस समय वह धूलिया हाईस्कूल में पढ़ते थे, कोल्हापुर-राज्य के भूतपूर्व दीवानबहादुर श्री आर० पी० सबनिस उस समय उस स्कूल के प्रधान अध्यापक थे। पहले-पहल श्री सबनिस ने ही बालक बिसे के जन्म-जात गुणों को परखा और उन्हें प्रोत्साहन दिया था। उन्होंने ही यह भी कहा था कि बालक बिसे किसी दिन एक अच्छा आविष्कारक और वैज्ञानिक

बनेगा। उन दिनों एक न्यायाधीश के पुत्र के लिए यंत्र-सम्बन्धी —मिस्त्री का—काम करना बुरा समझा जाता था; लेकिन बिसे इससे हारनेवाले नहीं थे। वह अडग विश्वास के साथ सारी कठिनाइयों को ठेलते हुए आगे बढ़ते गये। इस बीच उन्होंने अपने माता-पिता की सहायता की भी पर्वाह न की।

जब बिसे स्कूल में पढ़ते थे, 'साइंटिफ़िक अमेरिकन' नामक मासिक पत्र को वह बड़े चाव से पढ़ा करते थे। इसी पत्र ने उन्हें अमेरिका जाने की प्रेरणा की। यही नहीं बल्कि वह तो उन दिनों ही अपने अमेरिका-निवास के स्वप्न देखा करते थे और सोचते थे कि वहीं जाकर वह अपना वैज्ञानिक-कार्य अच्छी तरह कर सकेंगे। लेकिन इस के बाद तो उन्हें अपने स्वप्न को सच्चा बनाने में तीस वर्षों का समय लग गया। इसका कारण था। श्री बिसे अपना सारा काम स्वावलम्बन-पद्धति पर करना चाहते थे। जो कुछ खुद कमा पाते थे, उसी में अपना निर्वाह कर लेते थे। श्री बिसे के माता-पिता धनवान थे, और वह उनकी सहायता भी करना चाहते थे, लेकिन उन्हें वह मंजूर न थी। आरम्भ से ही वह स्वावलम्बी बनने की महत्वाकांक्षा रखते थे। इसी कारण अपने पुरुषार्थ के बल पर ही आख़िर सन् १९१६ में वह अमेरिका पहुँचने में सफल हुए और तब से वहीं स्थायी रूप से रहने लगे हैं।

भारत में प्रारम्भिक जीवन

श्री बिसे ने सन् १८८७ में अपनी पढ़ाई समाप्त की और माता-पिता को प्रसन्न करने की गरज़ से तथा अपने वैज्ञानिक काम के लिए स्वतंत्र रूप से धन संग्रह करने की दृष्टि से उन्होंने 'अकाउण्ट'-विभाग में सरकारी नौकरी स्वीकार की। सन् १८९० से लेकर १८९५ तक के समय में उन्होंने अपने फ़ुर्सत के वक्त में कई चमत्कारपूर्ण आविष्कार किये। इन आविष्कारों के द्वारा वह एक ठोस पदार्थ का दूसरे ठोस पदार्थ में परिवर्तन करने के चमत्कार बतला सकते थे। अपने इन चमत्कारों का प्रदर्शन उन्होंने भारत के कई वैज्ञानिकों और राजाओं के सामने किया और बाद में *मैञ्चेस्टर (इंगलैंड) के 'फ्री ट्रेड हाल' में भी उन्होंने* चमत्कार बतलाये। इन चमत्कारों की विद्वानों ने खूब प्रशंसा की और उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस बारे में यूरोपियन आविष्कारकों ने उस समय तक जितने आविष्कार किये थे उनसे श्री बिसे का आविष्कार बहुत बढ़-चढ़कर था। सन् १८९५ में बंबई के सुप्रसिद्ध नागरिकों ने श्री बिसे के गुणों और उनके कार्य की उत्तमता से प्रसन्न हो एक सार्वजनिक सभा में मान-पत्र देकर उन्हें सम्मानित किया और एक सुवर्ण-पदक प्रदान किया।

योगाभ्यास

सन् १८९६ से ९८ तक उन्होंने अपना फ़ुर्सत का समय योग-शास्त्र के अभ्यास में बिताया और इस बीच मन की एकाग्र-शक्ति इतनी बढ़ा ली कि लोगों के सम्पर्क-मात्र में आते ही उनके हृद्गत विचारों को वह ठीक-ठीक जानने लगे थे। उनकी इस शक्ति का कई डाक्टरों और वैज्ञानिकों को भी विश्वास हो गया था। बड़ौदा के महाराजा श्रीमान् सयाजी राव गायकवाड़ ने सन् १८९७ में अपने राज-महल में श्रीयुत बिसे की आश्चर्य-कारक शक्ति का अनुभव करने और उन्हें एक हीरे की अंगूठी भेंट करने की इच्छा से विशेष दरबार किया था। बिसे ने देखा कि सरकारी नौकरी करते हुए इस तरह योग-क्रियाओं में अधिक सफलता पाना अव्यवहार्य है इसलिए उन्होंने अपनी शक्ति का विनियोग वैज्ञानिक शोधों और आविष्कारों में ही करने का निश्चय किया। उनका विश्वास है कि योग की इन जागृत शक्तियों ने उन्हें उनकी आविष्कार-सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में बड़ी सहायता की है।

सन् १८९८ में लन्दन के 'इन्वेन्टर्स रिव्यू' और 'साइण्टिफ़िक रेकार्ड' पत्र के प्रकाशकों ने एक ऐसे आविष्कार के के लिए जिससे पिसी हुई काफ़ी, शक्कर, आटा वग़ैरा चीज़ों की राशि में से थोड़े थोड़े प्रमाण की चीज़ें तौलने और देने का काम लिया जा सके, एक स्पर्धात्मक इनाम की घोषणा *की थी। सौभाग्य से बिसे इस स्पर्धा में विजयी हुए।* उनके प्रतिस्पर्धियों में अठारह लब्ध प्रतिष्ठित यूरोपियन *आविष्कारक थे, मगर फिर भी उन्हें न केवल पुरस्कार ही* मिला, बल्कि साथ ही कुछ नई ख़ूबियों के आविष्कार के

कारण उन्हें बोनस आदि विशेष पुरस्कार भी दिया गया था। ऐसे यंत्र के आविष्कार के लिए मुश्किल से उनके पास एक दिन का समय था, लेकिन फिर भी उन्होंने उसके सम्बन्ध की बातें तफ़सील में लन्दन भेज दीं, जिससे वे ठीक समय पर वहाँ पहुँच सकें। लन्दन में इस बात को लेकर खूब सनसनी-सी फैल गई कि यूरोपियन आविष्कारकों के मुकाबिले एक भारतीय आविष्कारक को ऐसा पुरस्कार मिला। नतीजा यह हुआ कि एक प्रतिभाशाली आविष्कारक के नाते भारत में बिसे की खूब ख्याति फैली और भारतीय समाचार-पत्रों एवं 'साइण्टिफ़िक अमेरिकन' ने भी अपने स्तम्भों में इसकी प्रशंसात्मक चर्चा की।

सर्व-प्रथम नेतृत्व

उक्त पुरस्कार पाने पर, कतिपय भारतीय देश-भक्तों और नेताओं ने, जो पहले से ही बिसे के पूर्व वैज्ञानिक कार्यों से परिचित थे, शीघ्र ही बिसे को एक सर्व-प्रथम भारतीय आविष्कारक और वैज्ञानिक के नाते विलायत और अमेरिका भेजने के महत्त्व को महसूस किया, जिससे पाश्चात्यों को यह पता चले कि आविष्कार के गुणों में भारतीय किसी से कम नहीं हैं। अगर उनकी बराबर और योग्य सहायता की जाय तो वे न केवल सफलता-पूर्वक पाश्चात्य आविष्कारकों का यान्त्रिक आविष्कारों के क्षेत्र में मौलिक मुकाबला ही कर सकते हैं, बल्कि उनसे आगे भी बढ़ सकते हैं। बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ़ सेठ गोकुलदास, सरदिनशा एदलजी वाचा, माननीय श्री गोपालकृष्ण गोखले, न्याय-मूर्ति रानाडे, श्री पी० एल० नागपुरकर और अन्य कई प्रतिष्ठित सज्जनों ने बिसे को सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा देने को बाध्य किया और अनुरोध किया कि वह भारत के हित की दृष्टि से इस तरह का सर्व-प्रथम नेतृत्व ग्रहण करें। नौ वर्षों की सरकारी नौकरी के बाद देश-माता की इस पुकार पर बिसे ने खुशी-खुशी अपना त्याग-पत्र दे दिया। मई १८९९ में वह भारत से इंग्लैंड के लिए चल पड़े और तब से अबतक बराबर वह अपना आविष्कार-कार्य कर रहे हैं, यद्यपि इस काम में उन्हें बड़ा-से-बड़ा आत्म-त्याग और कठोरतम परिश्रम करना पड़ा है।

इंग्लैंड में

बहुत थोड़ा रुपया साथ लेकर बिसे इंगलैण्ड आये थे, इतना थोड़ा कि जिससे वह अपना काम शायद ही सफलतापूर्वक कर सकते। यह देख कर भारत के 'भीष्मपिता' स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ने बिसे के कार्य के साथ विशेष दिलचस्पी जाहिर की और १९०८ तक राष्ट्रीय कोष से उनकी आर्थिक सहायता करते रहे।

बिसे के मुख्य-मुख्य आविष्कार

आम तौर पर टाइप-फ़ाउण्ड्रीवाले जिस टाइप ढालनेवाली मशीन का इस्तैमाल करते हैं, वह फ़ी मिनट १५० सिंगल टाइप ढालती है। उत्पत्ति को बढ़ाने की ग़रज़ से कई पूर्व आविष्कारकों ने एक साथ कई टाइप ढालने की कोशिशें की थीं मगर कामयाब न हो सके। फलतः इस तरह का आविष्कार असम्भव समझा जाने लगा था। बिसे ने एक साथ कई टाइप ढालनेवाली मशीन के सवाल को हाथ में लिया और आख़िर सन् १९०५ में उन्होंने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया, जो एक ही समय में बत्तीस सिंगल टाईप ढाल सकती थी। उनकी कार्य-पद्धति इतनी आश्चर्य-कारक और नवीन थी कि 'कासलन टाइप फाउण्ड्री' के इञ्जीनियरों ने उन्हें यह कहते हुए खुली चुनौती दी कि वह एक ऐसी चालू मशीन बना कर दें। उन्होंने चुनौती मंजूर की, अंग्रेज़ी पूँजी की सहायता से 'बिसे टाइप लिमिटेड' नाम से एक कम्पनी स्थापित की, और १९०८ में पहली बार वैसी मशीन तैयार करके विजयी हुए। उस मशीन की खूबी यह है कि उसके द्वारा एक मिनिट में अपने-आप १२०० सिंगल टाइप ढाले और इकट्ठे किये जा सकते हैं। मशीन को देखकर कई मुद्रण-कला-विशारदों, यंत्र-शास्त्रियों और छापे के पत्रों के प्रतिनिधियों ने पूर्ण सन्तोष प्रकट किया था। लन्दन के छापे के पत्रों के अग्रणी 'कैक्स्टन मैगज़ीन' ने अपने इस फ़न के उस्ताद विशारदों-द्वारा मशीन की पूरी तरह और कई बार जाँच कर लेने के बाद जो सचित्र लेख अपने पत्र में छापा था उसका कुछ अंश यों है—"इस मशीन के

आविष्कर्त्ता बम्बई के रहनेवाले हैं और भारत के सर्व-प्रथम आविष्कारक के नाम से विख्यात हैं। हमारे साम्राज्य की *भारतीय प्रजा में आविष्कार करने की शक्ति कोई पारम्परिक और प्रकृति-दत्त देन नहीं है।* अतएव निस्सन्देह यह एक अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि एक भारतीय ने वह काम कर दिखाया, जिसके करने में संसार के योग्यतम शिल्पी और आविष्कारक अबतक विफल-मनोरथ होते रहे हैं।"

भारत में स्वागत

दिसम्बर १९०८ में बिसे थोड़े समय के लिए भारत आये। इस बार वह मद्रास में होनेवाली भारतीय राष्ट्रीय औद्योगिक महासभा के माननीय मेहमान होकर आये थे। इस मौक़े पर उनके सम्मान में देश के अनेक बड़े-बड़े शहरों में सार्वजनिक सभायें की गई थीं। इन्हीं दिनों जब वह भारत में ही थे, उन्हें स्वर्गीय सर रतन ताता की ओर से आर्थिक सहायता मिली थी। १९१० के मार्च में वह इस पूँजी के साथ इंग्लैंड लौटे और 'ताता-बिसे सिण्डिकेट' की स्थापना की। अपने काम में तरक़्क़ी करने और उसे चलाने की गरज़ से उन्होंने मशीन का एक कारख़ाना खोला, जिसमें काम करके बिसे ने अपनी मूल मशीन को 'रॉटरी' तत्व के आधार पर इस योग्य बना लिया कि उसके द्वारा एक ही मिनट में १,००० टाइप ढाले और इकट्ठे किये जाने लगे। उन्होंने अपना यह नमूना पहली बार १९१३ में तैयार किया था।

लन्दन में नये आविष्कार

लेकिन एक बात थी। अनेक टाइप ढालने की यह मशीन अपनी विशाल उत्पत्ति के कारण सिर्फ़ टाइप-फ़ाउण्ड्री-वालों के ही उपयोग की थी, मुद्रक इससे लाभ न उठा सकते थे। लन्दन की टाइप ढालनेवाली मशीनों के बनाने वाले श्री० आर० पी० बैनरमैन को जब विश्वास हो गया कि बिसे उलझन-भरी यान्त्रिक समस्याओं के सुलझाने में अपने ढंग के एक ही हैं, तब उन्होंने बिसे से अनुरोध किया कि वह एक ऐसी सिंगल टाइप ढालनेवाली मशीन का आविष्कार करें जिस का ढाँचा सर्वोपयोगी ढंग का हो और जिससे मुद्रक लोग अपना टाइप आप ढाल सकें। वर्षों से लोग एक ऐसी मशीन की ज़रूरत को महसूस कर रहे थे जिसका ढाँचा सब प्रकार के और हर आकार के टाइपों के लिए सर्वोपयोगी हो। किसी ऐसे ढाँचे का आविष्कार करना पिछले ६० वर्षों से विज्ञान और आविष्कार की दुनिया में एक स्वप्न की बात समझी जाती थी, और यद्यपि लोगों ने सैकड़ों 'पेटेण्टों' की आज़माइश की थी, मगर किसी को व्यवहार्य ढाँचा बनाने में सफलता नहीं मिली थी।

अतएव बिसे ने इस कठिन समस्या को सुलझाने का भार ख़ुद उठाया और १९१४ में ही वह एक ऐसे ढाँचे के आविष्कार में सफल भी हुए। १९१५ में उन्होंने नमूने की पहली मशीन बनाकर तैयार की, जिसके कारण श्री० बैनर-मैन और दूसरे टाइप-विशारदों ने उनकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की।

अमेरिका में

इन्हीं दिनों इंग्लैंड में महायुद्ध शुरू हो गया था। विलायतवालों का ध्यान उधर बँटा देख, बिसे को अपने काम के लिए अमेरिका जाना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसी बीच एक दूसरी आकस्मिक आपत्ति ने उनके मार्ग को कंटकाकीर्ण बना दिया। उन के सहायक सर रतन ताता बीमार पड़ गये और बाद में उनका शीघ्र ही देहान्त भी हो गया। उनकी इस आकस्मिक मृत्यु से बिसे उनके द्वारा मिलनेवाली आर्थिक सहायता से वंचित हो गये। यह देखकर बिसे ने एक अमेरिकन फ़र्म से सम्बन्ध पैदा करना शुरू किया। वह अपने प्रतिस्पर्धी '*दि यूनिवर्सल टाइप कॉस्टर कारपॉरेशन*' के उच्चाधिकारी से मिले। इस संस्था के अधिकारी बिसे से प्रत्यक्ष मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने ढाँचेवाली समस्या को पहली बार हल कर देने के लिए मुक्त-कंठ से उनकी प्रशंसा की। उन्होंने बिसे से अनुरोध किया कि वह अमेरिकन बाज़ार के लिए एक ऐसा नया ढाँचा (Model) तैयार करें, जिसके द्वारा टाइप के साथ-साथ लेड और रूल की पत्तियाँ भी ढलती जायँ। तदनुसार बिसे ने एक ऐसी नई मशीन का आविष्कार किया, मगर इस मशीन का ढाँचा और इसके तत्व पूर्व-आविष्कृत मशीनों से बिलकुल जुदे थे।

दूसरे, उन्होंने इस मशीन के बनाने और आविष्कार करने का काम सिर्फ़ तीन दिन के थोड़े-से समय में कर दिखाया, जिसे देखकर उक्त कम्पनी के इंजीनियरों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, उन्होंने दाँतों-तले अँगुली दबाई और कहा कि अवश्य ही बिसे के कार्य में बुद्ध या उसके-जैसी रहस्यमयी शक्तियाँ सहयोग प्रदान करती हैं, अन्यथा बात-की-बात में बड़े-बड़े यंत्रों का आविष्कार गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं है। बिसे ने अकेले लेड और रूल ढालने के लिए भी एक नई सुदी और मौलिक मशीन का आविष्कार किया। जहाँ सिंगल टाइप ढालनेवाली मशीन के कोई १,५०० से ज़्यादा कल-पुर्जे हैं, 'युनिवर्सल कास्टर', के क़रीब १००० और थामसन-कास्टर के ६०० तहाँ बिसे की नई टाइप ढालनेवाली मशीन के सिर्फ़ २५० कल-पुर्जे हैं। इस कारण यह मशीन न केवल ज्यादा-से-ज़्यादा सादी, छोटी-से-छोटी और सस्ती-से-सस्ती ही है बल्कि साथ ही और-और मशीनों के मुक़ाबले काम भी ज़्यादा करती है। यही वजह है कि विशेषज्ञों ने इसका नाम 'आदर्श टाइप ढालनेवाली' (Ideal type Caster) रक्खा है। 'साइंटिफ़िक अमेरिकन' पत्र ने बिसे की मशीन के सम्बन्ध में एक सचित्र लेख प्रकाशित किया था, नीचे उसका उद्धरण दिया जाता है—

"हिन्दू जाति ने विज्ञान, साहित्य और कला में जहाँ अत्यन्त उज्ज्वल सफलता पाई है, तहाँ उसने आविष्कार के रूप में दुनिया को बहुत कम अलंकृत किया है। बात तो यह है कि पाश्चात्य लोगों में अब तक यही भाव बने रहे हैं कि भारत के लोग किसी बात का अनुकरण कर सकते हैं, उसमें अनुप्राणित हो सकते हैं, मगर दुःख है कि उनमें स्वतन्त्र आविष्कार करने की शक्ति नहीं है। यों दुनिया का अबतक का अभिप्राय चाहे जो रहा हो, श्री बिसे ने जो कार्य कर दिखाया है, उसके कारण दुनिया का यह भ्रम एक बड़ी हद तक मिट जायगा—मिट ही जाना चाहिए।"

आदर्श टाइप कास्टिंग कारपोरेशन

सन् १९२० में न्यूयार्क शहर में इस कारपोरेशन की स्थापना की गई थी। इसके द्वारा टाइप ढालनेवाली और लेड तथा रूल ढालनेवाली मशीनें तैयार करने और उन्हें बाज़ार के योग्य बनाने का काम किया जाता है। कुछ समय पहले इस संस्था में टाइप ढालने की मशीन बनाई गई थी और उससे काम भी लिया गया था, जिसे देखकर विशेषज्ञों को पूरा-पूरा सन्तोष हुआ था। पिछले छः वर्षों में ऐसे काम के लिए ८०,००० स्टर्लिंग से भी ज़्यादा की रक़म ख़र्च की जा चुकी है। इस टाइप ढालनेवाली मशीन की कई जानकारों ने परीक्षा की थी। इस सम्बन्ध में अमेरिका की लीनो-टाइप-कम्पनी के सहायक इंजीनियर और टाइप ढालनेवाली मशीनों के आविष्कारक श्री डब्ल्यू० एकरमैन के अभिप्राय का उद्धरण नीचे दिया जाता है—

'उन्होंने (बिसे ने) अब एक ऐसी समस्या हल कर दी है, जिसका टाइप-यन्त्रों के आविष्कर्ता वर्षों से स्वप्न-मात्र देख रहे थे। सिंगल टाइप ढालने के लिए उन्होंने एक ऐसे विश्वव्यापी ढाँचे का आविष्कार करने में सफलता पाई है, जो टिकाऊ है और हर तरह उपयोगी है। इस ढाँचे के मुताबिक बनी हुई मशीन टाइप ढालनेवाली मशीनों के क्षेत्र में एक नई और सुधरी हुई चीज़ होगी और कामयाबी के साथ बाज़ार के दूसरे टाइप-कास्टरों का मुक़ाबला कर सकेगी। वह उस आदर्श का प्रतीक बनकर रहेगी, जिसे पाने के लिए सब कोई कोशिश करते रहे हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि व्यापारी दुनिया में उसका ख़ूब स्वागत होगा, क्योंकि उसके द्वारा टाइप-कास्टरों के व्यापार-सम्बन्धी कई आधुनिक समस्यायें भी हल हो जायँगी।"

रासायनिक आविष्कार

बिसे की बहुमुखी आविष्कारिणी प्रतिभा केवल टाइप ढालने की मशीनों का आविष्कार करके ही नहीं रह गई, बल्कि उसके द्वारा उन्होंने रासायनिक और विद्युत-सम्बन्धी समस्याओं को भी उतनी ही सफलता के साथ हल किया, जितनी कि यांत्रिक समस्याओं को। इस नये क्षेत्र में इन्होंने सर्व-प्रथम 'रोला' नामक एक 'वाशिंग कम्पाउण्ड' तैयार करने का साहस किया, जिसे आख़िर १९१७ में वह सिद्ध कर सके। बिसे ने इस 'कम्पाउण्ड' के बनाने की विधि और इसके 'फ़ार्मूला' का विश्व-व्यापी सर्वाधिकार एक अंग्रेज़-कम्पनी को दे दिया, जिससे उन्हें अच्छी आय हुई।

उनका प्रधान रासायनिक आविष्कार 'बेसलिन' नामक एक अद्वितीय 'कम्पाउण्ड' के नाम से प्रसिद्ध है। यह चीज़ कुछ यन्त्र और कुछ रासायन की सहायता से सामुद्रिक घास (Sea-weed) में से बनाई जाती है, मगर इसके बनाने की क्रिया गुप्त रक्खी गई है। 'बेसलिन' के अत्यन्त शक्तिशाली कृमिनाशक होते हुए भी (फेनल को-इफ़िशण्ट १६०५) यह सम्पूर्ण तथा निरुपद्रवी, खुजली से रहित और विष-शून्य है। भीतरी और बाहरी दोनों तरह के रोगों के लिए उपयोगी है। इसके मुक़ाबले दूसरा कोई ऐसा कृमि-नाशक 'कम्पाउण्ड' नहीं हैं जिसमें स्नायुओं को पुष्ट करने का इसके जैसा अद्वितीय गुण हो। कई वर्षों की गम्भीर खोज के बाद बिसे इसे तैयार कर पाये थे, आज 'अमेरिकन बेसलिन-कारपोरेशन' नामक संस्था उसका व्यापार करती है।

बिसे के बिजली-सम्बन्धी आविष्कारों में एक ऐसा यंत्र (एपरेटस) भी है, जिसके द्वारा वैद्युतिक तरीक़ों से वायु-मण्डल में से जुदी-जुदी गैसों का विश्लेषण किया जाता है। एक दूसरा आविष्कार ऐसा है, जिसके द्वारा सीधे सूर्य-प्रकाश से वैद्युतिक शक्ति प्राप्त कर ली जाती है। कल्पना और विधि के लिहाज़ से ये दोनों आविष्कार एकदम मौलिक हैं। १९०६ में उन्होंने तार-द्वारा फ़ोटो भेजने की एक आसान क्रिया का आविष्कार किया था, मगर उस समय इंग्लैंड में आर्थिक सहायता न मिल सकने के कारण वे उसे बाज़ार तक नहीं पहुँचा सके।

शान्ति का हिमायती

जब बिसे इंग्लैंड में थे, कुछ गोला-बारूद के प्रेमी लोगों ने उनसे अनुरोध किया था कि वह अपने-आप काम करनेवाली बन्दूकों—(ऑटो मैटिक गन्स) सम्बन्धी कुछ समस्याओं को हल करने का काम हाथ में लें। लोग उन्हें इस काम के लिए बड़ी-बड़ी ललचानेवाली रकमें देने को तैयार थे। मगर उन्होंने इस विचार से उनके इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया कि आविष्कारिणी प्रतिभा एक दैवी सम्पत्ति है, जिसका सदुपयोग रचनात्मक वस्तुओं के निर्माण में ही होना चाहिए, मानव-प्राणियों के सर्व-संहार-जैसे घातक काम में नहीं।

भावी कार्य-क्रम

१९०४ में बिसे अपनी धर्म-पत्नी को इंग्लैंड ले गये थे। इस समय न्यूयार्क में उनके साथ उनके दो वयःप्राप्त लड़के और एक किशोरी कन्या है।

इतनी अधिक उम्र होते हुए भी बिसे में आज वही चपलता, उत्साह, आकांक्षा और सुदृढ़ स्वास्थ्य पाया जाता है जो किसी ४० वर्ष के प्रौढ़ पुरुष में हो। इस समय बिसे अपनी उम्र के ६० से ज़्यादा वर्ष पूरे कर चुके हैं, चार-पाँच साल और व्यापारी दुनिया में काम करने के बाद वह इस धन्धे से अपना नाता तोड़ लेने का विचार कर रहे हैं और इस तरह जीवन के शेष दिन योग-शास्त्र एवं अन्य रहस्यपूर्ण शास्त्रों के अभ्यास में बिता देना चाहते हैं। वर्षों के लगातार कठोर परिश्रम के सुमधुर फल उन्हें अभी-अभी मिलने लगे हैं। उक्त आविष्कारों के समान ही महत्वपूर्ण कोई आधे दर्जन आविष्कार भी बिसे ने और भी कर रक्खे हैं, मगर पूँजी के अभाव में वे अधूरे ही पड़े हैं। बिसे के देश-बन्धुओं, मित्रों और प्रशंसकों ने इस कठिनाई को महसूस करके 'पेटेण्ट्स कम्पनी' नामक एक संस्था संगठित की है और उसके द्वारा वे पूँजी एकत्र करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे उनके चालू काम को आर्थिक मदद मिलती रहे तथा उनके दूसरे आविष्कार पूर्ण और बाज़ार में रखने योग्य हो सकें, और अगर मुमकिन हो तो दूसरे भारतीय आविष्कारकों की सहायता की जा सके।

बिसे न्यूयार्क की 'नैशनल इंस्टिट्यूट आफ़ इन्वेण्टर्स' (आविष्कारकों की राष्ट्रीय संस्था) के माननीय 'फेलो' चुने गये हैं और कम्पोज़ करने की मशीन बनाने के क्षेत्र के वह विशेषज्ञ माने जाते हैं। उनकी बात प्रामाणिक समझी और ऐसे मामलों में अक्सर उनकी सलाह भी ली जाती है। बिसे ने अकेले मौलिक यंत्रों और क्रियाओं के आविष्कार में ही सफलता नहीं पाई है बल्कि एक क़दम आगे बढ़ कर उन्होंने उन समस्याओं को भी सफलतापूर्वक हल किया है, जिन्हें पाश्चात्य आविष्कारक असम्भव मानकर छोड़ चुके थे। उनकी सफलता का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि वह विदेशों में आकर प्राप्त की गई है।

विसे का सर्व-प्रथम और सर्व-प्रधान कार्य तो पाश्चात्यों के सामने इस बात को सिद्ध कर देना था कि भारतीय भी आविष्कार-शक्ति के वारिस हैं और भारत में भी ऐसे प्रतिभाशाली आविष्कारक पैदा हो सकते हैं, जो पाश्चात्य आविष्कारों का सफलता-पूर्वक मुक़ाबला कर सकें। विसे के कारण देश की यह आकांक्षा भली भाँति सफल हुई है।*

मेरी राम-कहानी

(देवीप्रसाद 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल० एल० बी०)

क्यों हठ करते हो कह डालूँ अपनी राम कहानी ।
आँखों से क्यों बनकर बहता हृदय-पिण्ड है पानी ॥

क्यों अब मैं गंभीर बना हूँ मन-मारे रहता हूँ ।
विषम-वेदना से कातर हो मौन-व्यथा सहता हूँ ॥

मिट जाने का स्वप्न नित्य-प्रति क्यों देखा करता हूँ ।
मर जाने की घड़ियाँ गिनकर क्यों लेखा करता हूँ ॥

विश्व-कुसुम दिखता है मुझको क्यों अब मुरझाया-सा ।
माया और ममत्व सभी का अटल अन्त आया-सा ॥

आशा का सुख-स्वर्ग आँख से ओझल होता है क्यों ।
होकर प्राण अशान्त विकल अति दुख से रोता है क्यों ॥

अतुल दुखद परिताप हृदय को गति क्यों रोक रहा है ।
मुझ को निशि-वासर पागल-सा कर क्यों शोक रहा है ॥

रहने ही दो मौन, अन्यथा फिर उन्माद बढ़ेगा ।
यदि कहने बैठूँगा यह सब और विषाद बढ़ेगा ॥

---

* जो पाठक श्री० विसे के कामों और विसे-पेटेण्ट्स कम्पनी के विषय में अधिक जानना चाहें, उन्हें इस पते पर पत्र व्यवहार करना चाहिए—विसे-पेटेण्ट्स कम्पनी, पी० ओ० बाक्स २८८, ग्राण्ड सेन्ट्रल स्टेशन, न्यूयार्क सिटी।

स्त्रियों की शिक्षा

[श्री इक़बाल वर्मा 'सेहर']

प्राचीन काल की बात तो जाने दीजिए। गार्गी, मैत्रेयी, मंदालसा, भारती, विद्योत्तमा, इत्यादि की असाधारण विद्वत्ता का हाल तो अब स्मरण-मात्र के लिए शेष है। उस सिद्धान्त का लोप कब और कैसे हुआ, इसका तो हमें पता नहीं; पर इसमें सन्देह नहीं कि इधर शताब्दियों से भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा में प्राय: ऐसा ह्रास दीखने लगा था कि लोग इसको अनीति-मूलक तक ख़याल करते थे—स्त्री एवं पुरुष दोनों। अलबत्ता इधर कई वर्षों से अपनी पराधीनताजन्य परिस्थितियों के कारण भारतीय राष्ट्र ने उस त्रुटि का अनुभव किया है जो स्त्रियों को अशिक्षित रखकर उसने समस्त राष्ट्र में उत्पन्न कर रक्खा है। अब तो स्त्री-शिक्षा की चर्चा ज़ोरों में चल पड़ी है। बहुत-कुछ काम हो भी रहा है। वस्तुत: यह प्रश्न "आधी दुनिया" क्या बल्कि "पूरी दुनिया" के बनाव-बिगाड़ का अंश है। अत: इस विषय में कुछ आवश्यक बातों का ज़िक्र करना बहुत ज़रूरी मालूम होता है—

स्त्री-शिक्षा का यह प्रयोग सदुद्योग ही है। भला इसमें संदेह किसे हो सकता है? मनुष्य मननशील प्राणी है। प्रकृति की ओर से प्राणि-मात्र में केवल मनुष्यों को ही यह क्षमता प्रदान की गई है कि वे उत्तरोत्तर उन्नति-द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त कर सकें, जो वस्तुत: अलौकिक है और जिसकी प्राप्ति पर उनका "देव-संज्ञा" में परिगणित किया जाना निश्चय है। उसी उन्नति का एकमात्र साधन है ज्ञान-वृद्धि, और, ज्ञान-वृद्धि के लिए शिक्षा का होना अनिवार्य है। अन्य जातियों की भाँति मनुष्य-जाति का निर्माण भी स्त्री-पुरुष दोनों से मिल कर होता है। अत: यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त लक्ष्य की दृष्टि से दोनों का शिक्षित होना आवश्यक और विधि-विधान के अनुकूल ही है। हम तो शिशुओं पर माता के प्रारम्भिक प्रभाव को देखते हुए यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की अपेक्षा अधिकतर आवश्यक है। कारण कि यदि शिक्षित माता की संतति को आगे चलकर विद्योपार्जन की सुविधा न प्राप्त हुई तब भी शायद वह अशिक्षित वा ज्ञान शून्य न रह सकेगी; और उपर्युक्त सुविधा प्राप्त होने पर तो उसे अधिक आसानी ही रहेगी। इस प्रकार मानवी जीवन की गुत्थियाँ कुछ-न-कुछ सुलझ ही जायँगी और देश विशेष की भावी संतति को मानवी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का अवकाश प्रत्येक दशा में थोड़ा-बहुत अवश्य ही मिल जायगा। जार्ज हर्बर्ट (George Herbert) महोदय कहते हैं—Our good mother is worth a hundred School Master अर्थात् "हमारी अच्छी माता सैकड़ों आचार्यों की समकक्ष हैं"। इस वाक्य से उस महान् प्रभाव का ही पता चलता है, जिससे मातायें अपनी संतति को प्रभावित कर उसे सदैव के लिए बना या बिगाड़ सकती हैं।

आह, कितना महान् है उत्तरदायित्व स्त्रियों का! उत्तरदायित्व की विस्तीर्णता को दृष्टि में रखते हुए यह कहना असंगत न होगा कि एक प्रकार समस्त सांसारिक कार्यों का संचालन-सूत्र ही स्त्रियों के कोमल करों में है। फिर बात यह है कि कोरी ज्ञान-वृद्धि से तो काम चल नहीं सकता। मानवी

जीवन समुच्चय है कतिपय कर्त्तव्य-कर्मों का, जिनकी पूर्ति पर ही जीवनोद्देश्य की पूर्ति की आशा हो सकती है। उनकी पूर्त्ति के निमित्त ही ज्ञान अथवा विद्या की आवश्यकता है। वह विद्या कैसी होनी चाहिए? इस का उत्तर हमारा "वैशेषिक-दर्शन" देता है कि "अदुष्टंविद्या" अर्थात् "सार्थक ज्ञान ही विद्या है"। परिभाषा कितनी संक्षिप्त है, पर कितनी दीर्घाशय! मानों जीवन-मरण; लोक-परलोक की समस्त समस्यायें समेटकर समाविष्ट कर दी गई हैं। हमारे समय का प्रसिद्ध आँग्ल विद्वान स्माइल्स (Smiles) भी कहता है। The discipline of education ought to be in every sense a preparation for the duties of life—अर्थात् "शिक्षा का नियम प्रत्येक दृष्टि से ऐसा होना चाहिए जो जीवन संबन्धी कर्त्तव्य-पालन के लिए तैयारी का काम दे" यह व्याख्या साधारण ही है पर हमें तो कवि-रवीन्द्र की व्याख्या सम्पूर्णता से अधिक लगन रखती हुई जान पड़ती है। वह (अपनी Personality नामक पुस्तक में) लिखते हैं कि The highest education is that which does not merely give us the information but makes our life in harmony with all existence अर्थात् "सर्वोच्च शिक्षा वह है; जो हमें न केवल सुविज्ञ बनाती है, प्रत्युत हमारे जीवन का समस्त विश्व से एकीकरण कर देती है"। सुविज्ञता-द्वारा जीवन का विश्व से एकीकरण का परिणाम ही जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। चाहे पूर्वी विचारकों को लीजिए चाहे पश्चिमी को, पर इस बात में तो दो मत कभी नहीं हो सकते कि कर्त्तव्य-कर्मों में निरत कर देनेवाले ज्ञान का नाम "विद्या" और उससे विरत कर देनेवाले का नाम "अविद्या" है। परिस्थितियों के प्रभाव से कर्त्तव्य-कर्मों के समझने में भूल हो सकती है, फिर भी विचारकगण तो उसे अविद्या ही कहेंगे। विद्या से बिगड़ने की अपेक्षा तो विद्या-हीन ही रहना भला। कारण कि चातुर्य्य आ जाने पर "ऐब करने के लिए भी हुनर चाहिए" वाली बात पैदा हो सकती है। फिर जहाँ स्त्रियों के विद्वान बनाये जाने का मामला हो वहाँ तो बहुत सावधानी रखने की जरूरत है। यह सच है कि अविद्या पुरुषों को भी बुरा बनाती है, पर उससे जो बुराई स्त्रियों में उत्पन्न होंगी उसका प्रभाव निस्सन्देह अधिक व्यापक होगा। वृक्ष के शाखा-हीन कर देने पर वह फिर हरा-भरा हो सकता है, पर यदि उसकी जड़ ही काट दी जाय तो सारा मामला ही खतम हो जाता है।

अब तनिक चलिए उस दुनिया की ओर, जिसका आज प्रायः समस्त संसार में बोल-बाला है और जिसे अपनी जनता को शत-प्रतिशत विद्वान बना देने का दावा है। हमारा अभिप्राय यूरोप और अमेरिका से है। जब हम वहाँ के प्रक्षुब्ध वायु-मण्डल में लोगों को दिन-रात तेजी से इधर-उधर थरथराते हुए देखते हैं, तो हमें उनकी विद्या की यथार्थता पर सन्देह हुए बिना नहीं रहता। भोग-विलास का भूत सिर पर सवार है और वैसे ही साधनों के जुटाने में सभी व्यस्त हैं। परिणाम-स्वरूप स्वार्थ—घोर स्वार्थ—का साम्राज्य है। ऐसी दशा में "विश्व से एकीकरण" का तो क्या जिक्र, हाँ, मनुष्योचित कार्यों के न होते हुए विश्व से पार्थक्य अवश्य दीखता है। विशेषतः वहाँ की स्त्रियों ने तो कर्त्तव्य-कर्मों की अवहेलना में कमाल ही कर दिया है। वे अपनी प्रचण्डता-द्वारा विधि के विधान को ही बदल देना चाहती हैं। मातृत्व के महान् एवं पवित्र उत्तरदायित्व से बचकर वे आज पुरुष बनने जा रही हैं—और यह कहती हुई कि "बच्चों को पैदा करने और पालने का कष्ट भोगना हमारा ही काम नहीं है," मानों पुरुषों को स्त्रियों में

परिवर्तित कर देने के लिए वे उत्सुक हैं। पर व्यसन-पूजा का प्रबल भाव उन्हें उपर्युक्त विधान पर बुरी तरह चलने के लिए बाध्य करता है। परिधान एवं शृंगार में "फ़ैशनों" का नित नया आविष्कार होता है और पुरुषों को लुभाने के लिए भाँति-भाँति के हाव-भाव सीखने का अभ्यास किया जाता है। यह सब होता है, पर मातृत्व के आदरणीय पद से वंचित रहने के लिए अनेक यन्त्रों एवं औषधियों का सहारा लिया जाना ज़रूरी ख़याल किया जाता है। संक्षेप में, प्रकृति तो परिवर्तित होती नहीं, हाँ, इस प्रतियोगिता में स्त्रियोचित गुणों का ख़ून हो जाता है। ऐसी असामञ्जस्यपूर्ण बातों को देखते हुए हम तो उस विद्या को अविद्या ही कहेंगे, जो मनुष्यों को पशुओं से भी गया-बीता बनाकर उन्हें अपने अमूल्य मानवी लक्ष्य से निरन्तर अधिकाधिक दूर करती जा रही है।

पराधीनता बुरी चीज़ है। जीवन में अनेक दुर्गुणों को आरोपित करने के लिए अकेली पराधीनता ही काफ़ी है। फिर जब उसके साथ ही अनेक प्रकार के अन्य प्रभाव भी डाले जायँ, तो उन दुर्गुणों के आधिक्य का क्या कहना? दुर्भाग्यवश आज शताब्दियों से भारतीय जनता कुछ ऐसी ही परिस्थियों में फँसी हुई है। पहले देश पर इसलामी बादशाहों का आधिपत्य था, पर उस समय कुछ तो पराधीनता की प्रारम्भिक अवस्था के कारण और कुछ प्रचार-साधनों के परिमित होने के कारण फ़ारसी-संस्कृति का हम पर बहुत अधिक हानि-कारक प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु इधर तो जब से देश पर अंग्रेज़ी सरकार का प्रभुत्व प्रस्थापित हुआ, तब से बराबर हमारी पराधीनता को चिरस्थायी बनाने के हेतु हमारी भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट कर देने का प्रयत्न होता ही रहा। सन् १८३५ ईस्वी में आँग्ल-भाषा-प्रचार का उद्योग करते हुए स्वयं लार्ड मेकाले ने उस भाषा का प्रयोजनीय होना अपने इन शब्दों में दिखलाया था:—We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions we govern a class of persons Indian in blood and colour but English in taste in opinions, in moral and in intellect अर्थात्, "सम्प्रति हमको एक ऐसी श्रेणी बनाने का भरसक प्रयत्न करना होगा, जो हमारे और हमारे करोड़ों भारतीयों के बीच दुभाषिये का काम कर सकें—एक ऐसी श्रेणी जो रूप और रङ्ग में भारतीय हो, पर रुचि, सम्मति, आचार और विचार में अँग्रेज़।" कूटनीति से भरा हुआ कितना स्पष्ट और आँखें खोल देनेवाला कथन है; पर जिसके 'हिये की फूट गई हों', वह क्या देख या कर सकता है! अस्तु।

जब तक इस आँग्ल-विद्या नामी जादू का प्रभाव पुरुषों पर ही पड़ा रहा, तबतक स्त्रियों-द्वारा भारतीय संस्कृति के सुरक्षित रहने की कुछ-न-कुछ आशा बनी रही। पर स्त्रियाँ बची कैसे रह सकती थीं? व्यसनोपासना और शृंगार-प्रियता की हवा तो पहले ही लगी; इधर विद्योपार्जन का ख़याल हुआ तो उसमें भी प्राय: आँग्ल-भाषा का प्राधान्य है। अब आगे क्या होगा? वही नौकरी या वकालतवाला बढ़िया और बड़ी गुंजाइशवाला काम, जिसका श्रीगणेश हो भी गया है। ठीक है। जब तक स्त्री-पुरुष दोनों रङ्ग-रूप, चाल-ढाल, रहन-सहन में एक से न हो जायँ तबतक हमारी पराधीनता में पूर्णता कैसे आ सकती है!

हमें आँग्ल-भाषा या किसी अन्य भाषा और तत्सम्बन्धी साहित्य से द्वेष नहीं। साहित्य-प्रेमी कभी ऐसा नहीं कर सकता। ज़माने को देखते हुए आँग्ल-

साहित्य भी एक उन्नत साहित्य है और साहित्य-प्रेमियों के आकर्षण एवं मनन के लिए उसमें भी काफ़ी मसाला है। फिर भी यह तो निश्चय है कि वह साहित्य हमारे वेदों, उपनिषदों, दर्शनों तथा स्मृतियों का साहित्य नहीं; अतः वह हमारी जन्म-कालीन संस्कृति को सुरक्षित रखने में नितान्त असमर्थ ही है। फिर हमारे यहाँ ऐसे कितने स्त्री-पुरुष हैं, जो साहित्य-प्रेमी के नाते उसका अध्ययन करते हों? इसके अतिरिक्त हम एक सीधी-सी बात यह जानते हैं कि जब उस भाषा का प्रचार एवं प्रभाव असल भाषा-भाषियों को न सुधार सका, तो फिर हम नक़ल करनेवालों की कौन चलाये? इन्हीं कारणों से आँग्ल-भाषा को उन्नत मानते हुए भी, हमें अपनी शिक्षा में उसकी प्रमुखता मञ्जूर नहीं। हमारी शिक्षा मे तो हमारी भाषा की ही प्रमुखता होनी चाहिए—विशेषतः स्त्रियों की शिक्षा में, जिनकी संस्कृति सुरक्षित रहने से समस्त भारतीय संस्कृति के पुनरुज्जीवित हो जाने की प्रबल आशा है।

सर जान उडरफ़—(अपनी Is India civilised नामक पुस्तक में) कहते हैं कि a people who abondon or who are compelled to abondon their language lose themselves—"जो लोग अपनी भाषा को तिलाञ्जलि दे देते हैं अथवा वैसा करने पर बाध्य किये जाते हैं, वे अपने को नष्ट कर देते हैं।" आज विदेशी भाषा को अपनाने के कारण हमारी यही दशा हो रही है। सर्व-सम्मति के अनुसार हम भारतीयों की प्रमुख भाषा तो हिन्दी ही होनी चाहिए, जो हमारे धर्म-ग्रन्थों की भाषा तथा तदन्तर्गत भावों से भी अधिक मेल रखती है। फिर यह कहने की ज़रूरत नहीं कि भारतीय भाषा एवं भावों-द्वारा भारतीय संस्कृति को अपनाने में ही भारत और हम भारतीयों का कल्याण है। उडरफ़ महोदय ही अपनी उपर्युक्त पुस्तक में कहते हैं कि In any case India must in order to live be faithful to Herself as each must be faithful to himself अर्थात् "प्रत्येक दशा में भारत को अपना जीवन बनाये रखने के लिए स्त्री के प्रति उतना ही प्रेम-प्रवण होना चाहिए, जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को पुरुष के प्रति।" हम यहाँ इससे अधिक इतना और कह देना चाहते हैं कि यदि धर्म-जैसा कोई विश्व-व्यापी तत्व है, जो समूची सृष्टि को किसी निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाना चाहता है, तो भारत को केवल अपना ही नहीं प्रत्युत समस्त संसार का जीवन बनाये रखने के लिए सच्चा अनुराग रखना होगा। तभी वह मनुष्य-मात्र को मनुष्योचित कर्तव्यों को समझानेवाला संदेश दे सकेगा।

एक बात और। आधुनिक शिक्षा के साथ ही तद्विषयक शिक्षा-पद्धति पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। भारत में विद्या-प्रचार को सर्वथा हानिकारक बना देने में इस पद्धति का भी कुछ कम हाथ नहीं है। उसे न तो स्त्री-पुरुष के प्रथक्-प्रथक् भावों से मतलब है, और न मनुष्यों की स्वाभाविक विभिन्नता से; उसका काम तो सबको एक ही लाठी से हाँकना और एक ही दिशा की ओर ले जाना है—वही दिशा, जिसका उल्लेख लार्ड मैकाले के पूर्व-लिखित कथन में है। ऐसी दशा में आचार-विचार के बनने या बिगड़ने का ख़याल ही क्या हो सकता है? अतः वैसी बातों का तो उस पद्धति में नामो-निशान भी नहीं। अब रहा आर्थिक समस्याओं का हल। सो न तो वह पद्धति उसके हेतु प्रचलित की गई है, और न उससे उसके हल होने की आशा हो सकती है। उसका आविष्कार तो ठीक उलटे विचारों को ध्यान में रखकर किया गया है—अर्थात् हममें व्यसनोपासना, दासत्व और दरिद्रता लाने के लिए।

प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। हमारी वर्तमान अवस्था ही उसकी सच्ची कसौटी है। पता नहीं कि पुरुषों की भर्ती से कौनसा स्थान रिक्त रह गया है, जिसकी पूर्ति हमारी भारतीय स्त्रियाँ करने जा रही हैं। हाँ, इस शिक्षा और पद्धति को अपनाने का एक यही परिणाम होना है कि जैसे पुरुषों से पुरुषत्व विदा हो गया है वैसे ही स्त्रियाँ स्त्रीत्व से वञ्चित हो जायँगी। यदि दुर्भाग्य से ऐसा दिन आया, तो बस समझ लीजिए कि उसी दिन हमारी जाति, हमारी सभ्यता, हमारी मर्यादा, सभी का खात्मा हो जायगा।

यह प्रकट ही है कि लौकिक विचार-दृष्टि से स्त्री और पुरुष दोनों के अस्तित्व का प्रयोजन प्रथक्-प्रथक् है। दोनों का प्राकृतिक अन्तर है और दोनों के सम्मिलन से ही सम्पूर्ति का होना इस बात को पूर्णत: प्रमाणित करता है। इसी बात को लक्ष्यकर विद्वद्वर स्माइल्स (Smiles) अपनी "चरित्र" (Character) नामी पुस्तक में कहता है:—Man is the brain, but woman is the heart of humanity; he its judgment, she its feeling; he its strength and she its grace, ornament and solace. अर्थात्, "मनुष्य मानव का का मस्तिष्क है, पर स्त्री उसका हृदय; पुरुष उसका निर्णय है, स्त्री उसका भाव; पुरुष उसका बल है, स्त्री उसका सौन्दर्य, अलङ्कार और आश्वासन" यह तो हुआ दोनों की विशेष भावनाओं का विवरण, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि मनुष्य होने के नाते दोनों की भावनाओं एवं आवश्यकताओं में कुछ समानता भी अवश्य ही है। अत: हमारी शिक्षा का प्रबन्ध और हमारी शिक्षा-पद्धति का निर्माण उस रीति पर होना चाहिए, जो हमारी शारीरिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हमारी सामान्य एवं विशेष भावनाओं के विकास का अवलम्बन बन सके। फिर शिक्षा का ध्येय तो सदैव समीप ही रहे और उसी के जीवनप्रद वातावरण में पूरे कार्यक्रम की पूर्ति का प्रबन्ध हो। ध्येय की विशेषता ही तो भारतीय संस्कृति की जान है।

जहाँ तक उपर्युक्त समानता का सम्बन्ध है, वहाँ तक बालक-बालिकाओं को एक साथ पढ़ने देने में भी कोई हर्ज नहीं। सहचर्य से स्वभाव-निरीक्षण का पारस्परिक अवकाश मिलने के कारण कुछ अनुभव-वृद्धि ही होगी। परन्तु प्रत्येक दशा में दोनों की आयु का तो ध्यान होना ही चाहिए। उसी समानता और आयु के विचार से यथासमय उनका प्रथक्करण अनिवार्य है और तत्पश्चात स्त्री-पुरुष की शिक्षा की प्रगति उनकी प्रथक्-प्रथक् आवश्यकताओं की दृष्टि से ही होगी। इस प्रकार दोनों सुशिक्षा द्वारा अपने-अपने कार्यों में सुदक्ष होकर स्वाभिमानी तथा स्वावलम्बी बनेंगे और तब निश्चय ही पुरुष भी स्त्रियों के उतने ही आश्रित हो जायँगे, जितनी आज स्त्रियाँ पुरुषों के आश्रित हैं। पुरुषो में स्त्रियों पर अत्याचार करने का न तो भाव ही होगा और न साहस ही। इस प्रकार उचित शिक्षा एवं शिक्षा-पद्धति के साहाय्य से भारतीय स्त्रियो के वर्तमान दु:खों का भी अन्त हो जायगा और इसके लिए उन्हे यूरोपीय स्त्रियों की नक़्क़ाल बनकर अनावश्यक अशान्ति उत्पन्न करने और ध्येयच्युत होने की जरूरत न पड़ेगी। प्रकृति को ठगने का प्रयास दुस्साहस ही है। हाँ, स्त्री-पुरुष दोनों में अपवाद की भी सम्भावना है, पर उसे तो अपवाद ही समझ कर तदनुसार बर्तना होगा।

यह ठीक है कि इस समय भारत परतन्त्र है और हम सब समझते हुए भी मनचाही शिक्षा एवं शिक्षा-पद्धति का बड़े पैमाने पर जारी नहीं कर सकते, फिर भी कुछ तो जरूर ही हो सकता है; क्योंकि कोई प्रयत्न सर्वथा निष्फल नहीं जाता। देश के नेताओं का कर्तव्य है कि वे इस ओर समुचित ध्यान दें और

स्त्रियों को अविद्या-द्वारा बिगड़ने से बचायें। गत वर्ष कांग्रेस ने अपने कार्यों में स्त्रियों से सहयोग प्राप्त करने का प्रस्ताव पास किया है। प्रस्ताव की उपयुक्तता में सन्देह नहीं, पर वर्तमान परिस्थितियों के होते हुए हमें उसकी सफलता मे अवश्य संदेह है। पुरुषों में तो प्रचार अथवा मौखिक शिक्षा से भी कुछ जागृति फैल सकती है, पर स्त्रियों को तो प्रायः उससे भी लाभान्वित होने का अवकाश नहीं। कारण कि पहले तो स्त्रियों का पुरुषों की सभा में जाना कठिन, दूसरे स्वयं स्त्रियों में उतनी योग्यता नहीं, जो स्त्रियों में प्रचार कर सकें। फिर आज कल की 'सुशिक्षित' स्त्रियों पर तो प्रचार का भी प्रायः वही अथवा प्रभाव पड़ता है, जो प्रायः ऐसे पुरुषों पर पड़ता है। अस्तु। यह कुछ विषयान्तर-सा है। पर कहने का तात्पर्य यह कि जब लौकिक कार्यों में बिना यथार्थ शिक्षा के सफलता नहीं हो सकती, तो फिर पारलौकिक भलाई की क्या आशा? इसके लिए तो आध्यात्मिकता का होना परम-आवश्यक है, जिसका साधन सार्थक विद्या ही है। तभी मानवता के पर्याप्त विकास की आशा हो सकती है, और मानव-जीवन के उद्देश्य में सफलता की।

भारतीय स्त्रियों से भी हमारा यह निवेदन है कि वे पश्चिमी शिक्षा या प्रभाव-द्वारा अविद्या की आश्रित होकर पश्चिमी स्त्रियों की तरह भोग-विलास की अभ्यस्त न बनें। वे इस भ्रम को दिल से एकदम निकाल दें कि वे भोग-विलास की सामग्री हैं और उनका जीवन ही इसीलिए है। उन्हें जगत्-प्रसिद्ध विचारक महामना इमर्सन (Emerson) के इस कथन को स्मरण रखना चाहिए—A beautiful behaviour is better than a beautiful form; it gives a higher pleasure than statues and pictures; it is the finest of the fine arts, "सुन्दर चरित्र सुन्दर आकृति से बढ़ कर है; वह प्रतिमाओं और चित्रों से अधिक प्रसन्नताप्रद है, वह ललित कलाओं में ललिततम है"। विद्वद्वर स्माइल्स (Smeiles) भी अपनी "चरित्र" नामी पुस्तक में कहते हैं—Personal beauty soon passes but beauty of mind and charactor increases the older it grows अर्थात्, "शारीरिक सौन्दर्य शीघ्र ही अन्त हो जाता है, परन्तु मानसिक एवं चारित्रिक सौन्दर्य अधिक दिनों के साथ अधिक-अधिक आकर्षण-युक्त होता है।" अतः चरित्र-निर्माण ही भारतीय स्त्रियों का लक्ष्य होना चाहिए और जिस नामधारी विद्या से इस कार्य में अड़चन पड़ने की सम्भावना हो उसे अविद्या समझकर उसका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। इससे तो उनके अशिक्षिता रहने पर और कुछ न सही तो कम-से कम उनके स्वाभाविक सारल्य-द्वारा हमारी संस्कृति की थोड़ी-बहुत रक्षा तो होती रहेगी, और इस प्रकार हमारा भविष्य तो आशा-जनक बना रहेगा।

फांसी

अनुवादक—श्रीकृष्णकुमार मुखोपाध्याय | ले०—विक्तर यूगो

(२१)

मालूम नहीं क्या बजा है। सिर के अन्दर चिंताओं की राशि कोलाहल कर रही थी।

अपराध की बात सोचते ही काँप उठता हूँ—परन्तु, इस अनुताप से अब क्या लाभ है!

सज़ा के पहले पश्चात्ताप का जो बोझ हृदय को भारी कर रहा था, वह अब कहाँ है? मृत्यु की बात छोड़कर और सोचने का अवसर भी कहाँ है? अतीत की बात सोचने पर भी फाँसी की रस्सी आँखों के सामने नाचती है। वह सुन्दर शैशव, वह मधुर किशोरावस्था—आह, आज इस तरह फाँसी के तख्ते पर लोट पड़ेंगे? अतीत और वर्तमान के बीच एक रक्त-सागर का व्यवधान रह गया। जो मेरी जीवनी पढ़ेगा, शायद घृणा से नाक-भौं सिकोड़ेगा। परन्तु सचमुच ही क्या मैं ऐसा ही बुरा हूँ? नहीं कभी नहीं।

कुछ ही घण्टों में सारी चिंताओं और भावनाओं का अंत हो जायगा। फिर भी उन दिनों को बीते अभी बहुत समय नहीं हुआ, जब नदी के किनारे, पेड़ों की छाया में, ऊपर से झड़े हुए पत्तों को रौंदता हुआ मैं स्वच्छन्द घूमता था!

मेरे इस रुद्ध कमरे के पास ही अनेक घर अभी तरुण-तरुणियों के सुख-गुंजन और शिशुओं के उच्छ्वास से पूर्ण होंगे। आशा-निराशा और सुख दु:ख का भार लेकर अभी भी नर-नारी बाहर पथ पर चल रहे होंगे। फेरीवाला चिल्लाकर फेरी दे रहा होगा। किसी कुंज में युवक अपनी प्रियतमा को आलिंगन में आबद्धकर प्रगाढ़ प्रेम के साथ चुम्बन कर रहा होगा। जीवन का फव्वारा चारों ओर छूट रहा होगा। और मैं?—

पुरानी बातें ही याद आती है। नौटरडम में घण्टा देखने आये थे। उस समय मैं बालक था। अंधकार में टेढ़ी-मेढ़ी असंख्य सीढ़ियों को पार करते-करते मेरे सिर में चक्कर आ गया था। ऊपर चढ़कर देखा, सारे पैरिस शहर को मानों किसी ने ग़लीचा बनाकर पैरों के तले बिछा दिया है।

उसके बाद घण्टे को देखा। कितना भारी घण्टा था। मैं शहर देखने में तन्मय था। उस ऊँचे मीनार पर से नीचे सड़क पर चलनेवाले लोग बिलकुल छोटे-छोटे खिलौने मालूम होते थे। यहीं सब मैं देख रहा था कि भीषण शब्द के साथ वह घण्टा बज उठा। आवाज़ से मीनार काँप उठा—मेरे हाथ भी काँप उठे। मैं ज़मीन पर बैठ गया। घण्टे की ध्वनि बन्द होने पर भी प्रति-ध्वनि उस वक्त तक गूँज रही थी!

आज भी ठीक वैसा ही मालूम हो रहा है। घंटा-ध्वनि तो नहीं है, परन्तु चारों ओर कोलाहल मच रहा है। एक अस्पष्ट शब्द की झंकार से कान भर रहा है। ललाट की नसें धक-धक कर रही हैं। छाया की भाँति अपने चारों ओर मैं देख रहा हूँ, असंख्य नर-नारी हर्ष और कोलाहल करते हुए चल-फिर रहे हैं। यह ध्वनि उन्हीं की उल्लास-ध्वनि है न?

भिला-होटल के ऊँचे गुम्बज की घड़ी भी दिखाई पड़ रही है। ले-दी-ग्रीभ के कठोर पत्थर की दीवारों की तरफ ही वह घड़ी देख रही है। कितने दिनों की पुरानी यह दीवार—वह पुरानी घड़ी इसकी प्यारी सखी मालूम होती है।

जिस दिन किसी का जीवन फांसी की डोर पकड़कर अज्ञात लोक के विराट् अन्धकार में लटक पड़ता है, उस दिन ले-दी-ग्रीभ के सब दरवाज़ों के सामने असंख्य पहरेदारों की कुतूहल-दृष्टि जम जाती है। अभागे मृत्यु-पथ के यात्री ही उस व्यग्र-दृष्टि के लक्ष्य होते हैं। उन लुब्ध दृष्टियों की

आग में ही वह अपनी सारी कहानी ख़त्म कर देता है—और संध्या की झुरमुट में भी होटल की वह ज्वलन्त घड़ी चन्द्रमा की भाँति हँसती रहती है।

एक बजकर पन्द्रह मिनट!

मेरी इस समय की हालत! सिर में असहनीय यंत्रणा! किसी ने मानों सिर में आग लगा दी है! अब बैठता हूँ या उठ खड़ा होता हूँ तो मालूम होता है कि सिर के अन्दर एक रुद्ध नदी का सोता कल-कल करता हुआ बह रहा है। मानों सिर के बन्द को तोड़कर अभी बाहर निकल पड़ेगा।

एक आतंक से अंग में रोमांच हो रहा है। अंगुली से कलम गिरना चाहती है। हाथ में बिजली की तरंग!

आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं, मानों मैं धूमाच्छन्न कमरे में बैठा हूँ। शरीर के जोड़ों में एक दर्द! अब केवल पौने तीन घण्टे बाक़ी हैं—फिर तो बस हमेशा के लिए आराम मिल जायगा। वह एक तीव्र सुख होगा।

लोग कहते हैं—यंत्रणा! वह कुछ भी नहीं है—विज्ञान में ऐसा कौशल है कि मरते वक्त मुझे कुछ भी कष्ट न होगा! क्या सचमुच?

छः घण्टे का यह कष्ट! इससे क्या मृत्यु का कष्ट अधिक होगा? यह जो पल-पल बीत रहा है, मुझे ऐसा मालूम होता है कि वेदना की असंख्य सीढ़ियों को पार करता हुआ मैं मृत्यु की ओर दौड़ रहा हूँ। यह वेदना—यह यंत्रणा—असहनीय है।

फिर भी, यह कुछ नहीं है?

नस-नस से ख़ून मानों चू रहा है। छाती पर एक भारी पत्थर रख दिया गया है—ओह, साँस बन्द हो रहा है।

कैसी यन्त्रणा, कौन समझेगा—और, समझ पायगा भी कौन? फाँसी के बाद यदि वह धड़-हीन सिर आकर उस वेदना को समझा सकता, तो विज्ञान की सब तारीफ़ ताक पर धरी रह जाती।

आँखों को पलक मारने की भी फ़ुर्सत न होगी—सब शेष हो जायगा! एक मुहूर्त के अन्दर इतना बड़ा जीवन! ये कुतूहली दर्शक, ये अनगिनती राज-सैनिक, ये भला उस यन्त्रणा को क्या समझेंगे? वह भीषण डोर एक मिनट के अन्दर गले को दाब देगी—शरीर का सारा रक्त स्तम्भित हो कर स्तब्ध हो जायगा! समुद्र की गति रुद्ध होने पर रोष से वह जैसा फूलने लगता है, बाधा पाकर सारा अन्तर बाहर निकलने के लिए एक विराट् द्वंद्व मचायगा। हाय अभागे! उस भीषण द्वंद्व में ही सारा खेल ख़त्म हो जायगा भीतर के साथ बाहर का प्रबल संग्राम—ओह, कैसा भयंकर होगा?

राजा की बात भी बार-बार याद आ जाती है। मन से यह चिंता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती। दोनों कानों में मानों कोई कह रहा है, "राजा? इस समय इसी शहर के एक बड़े भारी महल में सजे सजाये कमरे के अन्दर वह बैठे हैं। मेरी ही भाँति असंख्य पहरेदार उनके दरवाज़े पर खड़े हुए पहरा दे रहे होंगे।" फ़र्क़ क्या है? वह प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर, और मैं बिलकुल नीचे, बस इतना ही फ़र्क़ है। उनके जीवन का प्रति मुहूर्त कैसा गरिमा-पूर्ण महिमा-मण्डित, यश और उल्लास से भरा-पूरा है। चारों ओर प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का निर्झर झर है? उनके सामने तीव्र स्वर शांत हो जाता है, दर्पित मुण्ड नीचा हो जाता है। उनकी आँखों के सामने स्वर्ण और रौप्य की सामग्री चकाचौंध लगा देती है। सभासद-वेष्टित राज-सिंहासन पर बैठकर वह आज्ञा दे रहे हैं—संभ्रम के साथ लोग उसका पालन कर रहे हैं। कभी शिकार, कभी व्यसन, कभी नृत्य और कभी गीत! केवल मुँह से बात निकालने भर की देरी है कि असंख्य लोग विलास की सामग्री एकत्र करने के लिए तन्मय हो उठेंगे!

राजा! वह भी मेरी ही भाँति ख़ून और माँस का बना हुआ जीव है—क्षुद्र मनुष्य, वह राजा! फिर भी उसकी लेखनी के एक इशारे पर मेरी फाँसी की रस्सी रुक सकती है! जीवन, स्वाधीनता, ऐश्वर्य गृह—सारे सुखों को पलभर के अन्दर प्राप्त कर सकता हूं—और यह भी सुना है कि "हमारे राजा बड़े दयालु हैं," मगर फिर भी मेरी जान को बचाना उनकी दया का दुरुपयोग होगा! हाय रे, दया की परिभाषा!!

(२२)

तब आओ साहस ! मृत्यु के डर को भगा दो ! काहे का डर ? काहे का आतंक ? आओ मृत्यु, मैं हँसते-हँसते तुम्हारा स्वागत करूँ—खुशी से तुम्हें आलिंगन करूँ। आओ तुम चाहे मित्र हो चाहे शत्रु, बस आजाओ !

आँखों को बन्द करते ही देखूँगा, उज्ज्वल प्रकाश चारों ओर खिल रहा है मेरी आत्मा उस प्रकाश के हौज़ में स्नान करने को बढ़ रही है ! सिर से ऊपर उल्लास से भरा हुआ अनन्त आकाश और तारे-मानों उस शुभ्र प्रकाश के शरीर पर काले तिल ही हों! मखमल की भाँति कोमल आकाश पर मानों हीरे के टुकड़े बिखरे हुए हैं। उस समय वे ऐसे न रहेंगे !

या शायद, अभागा मैं यह देखूँगा कि उस विराट् अन्धकार में मेरा सिर-हीन धड़ पड़ा हुआ है और क़ब्र के चारों ओर भूत-प्रेतों का उपद्रव मचा हुआ है। वह एक फाँसी की हवा से संसार के एक कोने का परदा फट गया है। दानवों का दल महा समारोह के साथ उसमें घुस रहा है। चारों ओर कंकाल का पहाड़ लगा हुआ है, नीचे खून की नदी बह रही है। सिर के ऊपर आसमान में भी अँधेरा है। तारे आग के परिंदे बनकर इधर-उधर उड़ रहे हैं।

मेरे पहले जिन्होंने फाँसी के तख्ते पर जान दी है, वे मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं; उनकी छाया मैं अभी भी देख रहा हूं। रक्त-हीन शीर्ण देह, धँसी हुई आँखें, सूखा हुआ मुँह—क्या ही भयानक है। प्रकाश और अन्धकार के बीच खड़े होकर वे धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं। उनके मुख पर हँसी का नाम तक भी नहीं है। है केवल एक आतंक—एक अधीर उद्वेग ! कहीं कुछ नज़र नहीं आता। मीन्ना-होटल की वह निर्मम घड़ी मेरी ओर देखकर अट्टहास करती हुई मुझे अन्तिम समय की याद दिला रही है। संसार में कुछ भी नहीं है—रत्ती भर करुणा तक नहीं !

इसी तरह की बातें हृदय के भीतर द्वंद्व मचा रही हैं। एक मिनट को भी नहीं छोड़तीं।

हाय, है क्या यह मृत्यु ? कौन है यह ? आत्मा के साथ इसका ऐसा विरोध क्यों है ? एक आघात से वह जब देह को धूल पर लिटा देती है—तब मन की वह चेतना, वह अनुभूति, वह प्रेम, स्नेह, दया, वह सर्वव्यापी चित्त इन सबको वह कहाँ उड़ा देती है ? पृथ्वी—कठोर पृथ्वी को क्या इतनी-सी भी ममता नहीं है ? क्या उसमें वह शक्ति नहीं है कि मृत्यु को जय कर अपने हाथ से बनाये हुए जीवों की रक्षा करे ? भगवन् तुम्हारी यह सृष्टि लीला कैसी विचित्र है ! कैसा निष्ठुर है यह रहस्य ! कैसा निर्मम खेल है यह !

(२३)

एक बार निद्रा-देवी की आराधना करने के लिए बिस्तर पर लेट गया था।

सब खून मानों सिर के ऊपर आकर जम गया। जीवन में यही मेरी अन्तिम निद्रा होगी !

स्वप्न देखा !

स्तब्ध गंभीर रात ! दो मित्रों के साथ बैठक में बैठा था। बगलवाले कमरे में स्त्री सो रही है—मेरी उसकी छाती से सटकर पड़ी हुई है !

बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था—कोई जाग न जाय, डर न जाय। अचानक एक शब्द, चौंक पड़ा ! देखने के लिए उठा। अवश्य ही चोर आये हैं !

चारों ओर ढूँढ डाला। कोई नहीं है—किसी का चिन्ह तक नहीं !

चिमनी के पीछे वह क्या है ! कौन ?

एक नारी—रूखे बाल मुँह के चारों ओर बिखरे हुए—मुख पर एक कठिन भाव ! आँखें उसकी बन्द थीं ! मैंने पूछा "तू कौन है ?"

उसने कुछ जवाब न दिया। हम लोगों ने कहा, "जल्दी बतला तू कौन है ?" फिर भी चुप ! आँखें भी वैसे ही बंद ! मित्र ने कहा, "उसके मुँह पर रोशनी डालो।" मैंने बत्ती उठाकर उसके मुँह की ओर की। फिर भी चुप ! मैंने कहा बात क्यों नहीं करती ?" फिर भी अचंचल ! हम लोग परेशान ! राम कैसी आफ़त है यह !

मित्र ने कहा, "रोशनी को और पास लाओ।" मैं बत्ती को बिलकुल आँखों के पास ले गया उसने आँखें खोल

थीं। ओह, कैसी तीव्र थी उसकी दृष्टि ! मैंने आँखें बन्द कर लीं। साथ ही हाथ में कुछ जलन हुई। आँखें खोलकर देखा तो जेलख़ाना। मेरी शय्या के सामने आचार्य खड़े हैं !

मैंने पूछा "क्या मैं बहुत देर तक सोया हूँ ?" उन्होंने कहा, " हाँ, एक घण्टा सोये हो। तुम्हारी कन्या को मैं लाया हूँ, मेरी को। देखोगे नहीं ? तुम्हारे जगाने की कोशिश उन्होंने की थी। जब तुम नहीं जगे, तब मुझे बुलाया है। तुम्हारी कन्या मेरी—"

मैं चिल्ला उठा, "मेरी ! मेरी लड़की मेरी ! कहाँ है वह ? जल्दी बतलाइए ! लाइए, उसे मेरी गोदी में दीजिए, मैं उसे ज़रा छाती से लगा लूँ।"

(२४)

मेरी ! उसका रंग गुलाब के फूल जैसा, अंगूर की तरह नरम उसके ओंठ—अहा, मेरी प्यारी मेरी !

काली पोशाक में वह कैसी सुन्दर मालूम हो रही थी। मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया, कपोलों पर हज़ारों बार चुम्बन किया।

विस्मय के साथ वह मेरी ओर देख रही थी। आँखों में वह कैसा भाव ! मानों अत्यन्त कातर है ! बीच-बीच में वह कमरे के एक कोने में खड़ी हुई आया की ओर देख रही थी। आया रो रही थी।

मेरी को पुचकारकर, मैंने उसे अपनी छाती पर दबा लिया। रुद्ध स्वर से मैंने कहा, "मेरी, मेरी प्यारी मेरी !"

अत्यन्त मृदु भाव से मुझे एक धक्का देकर उसने अपना मुँह हटा लिया, और कहा, 'आह ! आप छोड़िए मुझे !"

'आप !'

केवल एक साल बाद यह साक्षात् ! इस एक वर्ष में मेरी मुझको भूल गई। मेरी बातें, मेरा मुख, मेरा आदर-भाव सब उसके मन से कहाँ उड़ गये ! परन्तु इसमें उसका अपराध क्या ?

मेरी ये मूछें, सिर में जटा के से बाल, क्षीर्ण मुख, क़ैदी की पोशाक, रुद्ध कण्ठ-स्वर—भला, वह मुझे कैसे पहचानेगी ?

जो मुझे याद रक्खेगी, यह सोचकर मैं कुछ शान्ति पा रहा था, वह भी मुझे भूल बैठी है ! हाय, रे, मेरे भाग्य !!

आज मैं उसका 'बाबू' नहीं हूँ। अपनी बेटी के मुँह से पितृ-सम्बोधन, फूल की पँखड़ी की भाँति उसके हास्यमय मुख में वह मधुर सम्बोधन 'बाबू'—अहा, आज मैं उससे भी वंचित हूँ !

कैसा दारुण अभिशाप है !

इस समय जीवन के इस शेष-मुहूर्त्त में एक बार, केवल एक बार उस संबोधन के बदले, अपनी बेटी के मुँह से वह आह्वान यदि एक बार पल भर के लिए भी सुन लूँ, तो चालीस वर्ष का वह सुदीर्घ जीवन मैं हँसते हुए विसर्जन कर दूँ।

"मेरी!—"उसके दोनों हाथों को अपने हाथों से दबाकर मैंने कहा, "मेरी प्यारी बेटी मेरी, क्या मुझे नहीं पहचानती ?"

अपनी तेज आँखों को उठाकर कुछ गुस्से से उसने कहा, "नहीं !"

मैंने कहा, "देखो, अच्छी तरह देखो, मैं कौन हूँ !!"

उसने कहा, "कौन हैं आप, मैं क्या जानूँ। होंगे कोई भले आदमी !" कैसा अम्लान था उसका कण्ठ-स्वर।

हाय, संसार में जिसकी ज़रा-सी हँसी देखने के लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, उसी के मुँह से यह कैसी बात ! उसकी आँखों में यह कैसी दृष्टि !

मैंने पूछा, "मेरी, तुम्हारा बाप है ?"

उसने कहा, " है ! क्यों ?"

मैंने कहा, "कहाँ है वह ? "

मेरी ओर देख कर उसने कहा, "वह; कहिए !"

हाय, मेरी प्यारी बेटी ! हाय रे, दीर्ण पितृ-हृदय की व्याकुलता, मैंने फिर पूछा, "कहाँ है वह ?"

मेरी की आँखें सजल हो गईं। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा, "स्वर्ग में !"

मैंने कहा "स्वर्ग में ! जानती हो मेरी, वह स्वर्ग कहाँ है ? उस स्वर्ग का अर्थ क्या है ?"

मेरी की आँखों से आँसू टपक रहे थे, मैंने उसे पुचकारा। मैंने कहा, "मेरी, एक बार ईश्वर का स्मरण करो।"

उसने कहा, "नहीं, महाशय, दिन-दोपहर में बिना

काम उनको विरक्त नहीं करना चाहिए। ठीक सन्ध्या के समय मैं प्रार्थना करूँगी।"

मेरा सारा चित्त व्याकुल हो रहा था! यह लड़की—यह मेरी—मेरी ही कन्या है! हाय, आज यह मेरी नहीं रही—मैं आज इसके पास से बहुत दूर हट गया हूँ। नहीं-नहीं,—जैसे भी हो, इसे समझाऊँगा कि मैं ही उसका 'बाबू' हूँ। स्वर्ग में नहीं, नरक में नहीं, उसी के सामने, इसी जेल के अन्दर। यह मैं फाँसी के लिए तैयार बैठा हूँ।

मैंने कहा, "मेरी, तुम पहचानती नहीं, मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

मानों कुछ डाटकर उसने उत्तर दिया "नहीं—"

मैंने कहा "प्यारी बेटी, क्यों मुझे भूल गई! देखो, अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियों के पास बैठकर मैं तुम्हें कहानियाँ सुनाता था—परी की कहानी- सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा "आह! छोड़ दो, लगती है।"

मैंने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा, "पढ़ सकती हो?"

"हाँ!"

एक अखबार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढ़ने लगी, "प्राण दण्ड का मुल्ज़िम—"

अकस्मात् मैंने कागज़ को छीन लिया। अखबार वह अपने साथ लाई थी! अखबारवालों ने मेरी फाँसी की सूचना बड़े-बड़े अक्षरों में छापी थी, जिसमे किसी की नज़र उस पर से चूके नहीं और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मैं स्याही से लिखकर समझाने में असमर्थ हूँ। मेरी यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा कागज़ लाओ, मैं जहाज़ बनाऊँगी।"

आया के हाथ में अखबार को लौटाकर मैंने कहा, "इसको लेती जाओ, और घर पर कहना—।" इसके आगे कुछ कह न सका। क्या सन्देशा भेजूँ! खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। आँखों को अपने दोनों हाथों से ढक लिया!—सिर के भीतर रक्त का स्रोत भीषण रूप मे नाच रहा था!

कहाँ हैं वे—यमलोक के भयानक दूत? आने दो, अब क्या है! संसार में मेरा कोई नहीं है—जीवन की अब स्पृहा भी नहीं है। जिस सांकल में मैं इस संसार के साथ बँधा हुआ था,—वह सांकल टूट गई है! फिर अब यह माया-ममता क्यों?

(५)

आचार्य के हृदय में भी दया है, काराध्यक्ष भी पत्थर का आदमी नहीं है। आया जब मेरी को ले जाने लगी, तो उनकी आँखों से भी आँसू की बूँदें टपक पड़ी।

शेष—अब सब शेष! केवल साहस और बल! पथ पर वियुक्त जनता—फाँसी के तख्ते के निकट बढ़ना—उसके बाद कहाँ रहेगा संसार—और, कहाँ रहूँगा मैं?

कोई हँसेगा, कोई आनन्द से ताली बजायगा, कोई चिल्लाएगा! फिर भी कौन जानता है, इन दर्शकों में भी कितने ही आदमी एक दिन मेरे ही पथ के पथिक बन सकते हैं! आज तो ये मेरा तमाशा देखने आये हैं, एक दिन इनमें से कोई न कोई या कितने ही दूसरों को तमाशा दिखाने जायँगे—!

मेरी प्यारी मेरी!

नहीं, वह तो आया के साथ चली गई! गाड़ी की खिड़की में से वह इस दर्शकों की भारी भीड़ को ज़रूर देखेगी। समझेगी, कुछ तमाशा होगा। इस "भले, आदमी" की उसे याद भी न रहेगी। वह नहीं जानेगी कि उसके इस "भले आदमी" को देखने के लिए ही इस तमाशे का बन्दोबस्त किया गया है। और वह 'भला आदमी' दूसरा कोई नहीं है उसी का वह "स्वर्गगामी बाबू" है!

उसके लिए मैं लिख जाऊँगा। एक दिन वह पढ़कर समझेगी। पन्द्रह वर्ष बाद तब वह आज के इस मुहूर्त की बात सोचकर रोवेगी।

हाँ, अपनी सारी कहानी उसके लिए लिख जाऊँगा! सारी बातें लिख जाऊँगा—मेरा इतिहास—क्यों आज

देश की छाती पर रक्ताक्षर से मेरा नाम लिखा जा रहा है, यह सब उस कहानी में मैं लिखूँगा *

(१६)

भिला-होटल के कमरे से—

भिला-होटल !……… मैं यहाँ आ गया हूँ । वह स्थान—वह है मेरी इस खिड़की के नीचे । बहुत आदमी इकट्ठे हुए हैं । कोई चिल्ला रहा है, कोई सीटी बजा रहा है। कोई हँस रहा है।

लाल रंग के उस खम्भे को देखकर छाती काँप रही है।

वे कौन आ रहे हैं ? शायद समय हो गया। अब विलंब नहीं है, सारी देह काँप रही है। छः घण्टे से—छः महीने से जिस बात की चिंता लगातार कर रहा हूँ, वह मुहूर्त आ गया, परन्तु कितनी जल्दी !

एक छोटे कमरे में लाकर उन्होंने मुझे खड़ा कर दिया। खिड़की के अन्दर से आस्मान नज़र आ रहा था। —चारों ओर कुआँ-सा है। मैं कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में और भी तीन-चार आदमी थे। आचार्य भी थे। सहसा मेरे बालों में लोहे का ठंडा स्पर्श ! कैंची का शब्द ! बाल नीचे मेरे पैरों पर आ गिरे ! आस-पास सब की कानाफूँसी ! डाढ़ी मूँड दी गई !

आँख उठाकर देखा, क़ाग़ज़ और पेन्सिल लेकर एक आदमी प्रश्न कर रहा है। समझा, अखबारों का प्रतिनिधि है ! कल के अख़बार के लिए "मैटर" इकट्ठा कर रहा है। अखबारवालों की चाँदी है—ख़बर ज़बरदस्त है।

दो पहरेदारों ने आकर मेरा हाथ पकड़ा। मैं आचार्य के पीछे-पीछे चला।

बाहर का दरवाज़ा खुल गया।

लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। चारों ओर से आवाज़ आई वह, वह, वह है। सिपाही मेरे चारों ओर चल रहे हैं। राजा के योग्य सम्मान से मुझे ले जाया जा रहा है।—वाह-वाह, खूब !

किसी ने कहा, "नमस्कार महाशय !" किसी और ने आवाज़ कसी, "आदाब अर्ज़ है।"

एक स्त्री ने कहा, "हाय, बेचारा।"

एक आदमी ने कहा, "टोपी खोल डालो, सम्मान दिखाओ।"

मुझे हँसी आई—हाय, ये टोपी ही खोल रहे हैं, मुझे सिर खोल देना पड़ेगा।

आचार्य के हाथ से "क्रॉस"† लेकर मैंने छाती से लगाया। आग्रह के साथ भक्ति-गद्‌गद् कण्ठ से मैंने कहा—"क्षमा करो भगवान्, तुम्हीं पाप-तारण हो—आर्त्तों के मित्र हो !"

नारियों की करुण समवेदना के स्वर कान में आये। मेरी तरुण अवस्था देखकर वे मेरे लिए दुःखी थीं।

सहसा मैं काँप उठा—सामने ही वह फाँसी का तख्ता !

टनन् टनन् करके चार बज रहे हैं।

समाप्त

---

* बहुत ढूँढने पर भी यह कहानी मुझे नहीं मिली—शायद समय के अभाव से क़ैदी न लिख सका होगा।

—सम्पादक

† ईसाइयों का धर्म-चिन्ह

(१)

अरे! ओ मतवाले!
आ जा यह संयोग मिला है रण-गंगा में आज नहा ले॥

(२)

त्याग मृदुलतम छाया को,
नश्वर जग की माया को,
आ जा अब उद्घोषित कर दे—
'अरि-दल अपना होश सम्हाले'॥

(३)

तज कर सुख के अंगों को,
सजकर मृदुल उमंगों को,
आ जा, कितने बन्धु पड़े हैं
बिछुड़े, उनको फिर अपनाले॥

(४)

छोड़ कपट छल-छेदों को,
फोड़ शत्रु के भेदों को,
आ जा तन पर पूर्ण अहिंसा का यह सुन्दर कवच सजाले॥

(५)

अपने हक पर मिट जाना,
नहीं पीटना, पिट जाना,
आ जा अपनी अमर आन पर
हँसकर अपने प्राण चढ़ाले॥

(६)

प्रबल विपक्षी चढ़ आया,
तेरा नायक बढ़ आया,
आ जा, अपने सेना-पति की
पद-रज अपने शीस चढ़ा ले॥

(७)

जाने, कौन प्रहार करे,
कितने अत्याचार करें,
आ जा बढ़ने दे, जग देखे निर्दोषों के रुधिर-पनाले॥

(८)

जान जाय पर आन रहे,
मन का यह अरमान रहे।
आ जा जीवन रहते माँ की
कठिन दासता दूर भगा ले॥

(९)

काम न कहीं अधूरा हो,
जीवन का व्रत पूरा हो,
आजा सत्याग्रह में अपनी
विजय-पताका फिर फहरा ले॥

बन्दर से मनुष्य !

[श्री मुकुटबिहारी वर्मा]

बन्दर से मनुष्य का निर्माण हुआ—यह एक ऐसी बात है कि हम आश्चर्यमग्न हो जाते हैं। हम मनुष्यों के पूर्व-पुरुष बन्दर ! यह सुन कर हममें से किसे त्वेष न आयगा ? कहाँ तो हम वाणी और बुद्धि वाले सभ्यताभिमानी, और कहाँ बेचारे मूक और अशिक्षित जङ्गली पशु ! उनका और हमारा क्या सम्बन्ध ? — फिर, सम्बन्ध भी कैसा, वे

मनुष्य

हमारे पूर्व-पुरुष और हम उनकी सन्तति ! इस बात पर हममें से किसे यक़ीन आयगा ? परन्तु जिस बात पर हमें सहसा विश्वास न होता हो, सरसरी नजर से देखने में जो हमें प्रायः असम्भव लगती हो, क्या यह जरूरी है कि वह असत्य ही हो ? बहुत बार हमारी बुद्धि धोखा खाती है; और जो बात हमें निश्चित रूपेण सत्य प्रतीत होती है वह असत्य, एवं असम्भव दीखनेवाली बात सर्वथा सत्य और सम्भवनीय हो जाती है। अतः कौन आश्चर्य, यदि उपर्युक्त कल्पना भी सत्य हो ?

सृष्टि के निर्माण पर जरा विचार कीजिए। अपने आस-पास जो विविध सृष्टि हम देखते हैं—

मनुष्य के पूर्वज —

१—गिबन

तरह-तरह के प्राणी और वनस्पति जो हमें दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब कैसे अस्तित्व में आये ? यह एक मनोरंजक और आश्चर्यपूर्ण प्रश्न है साधारणतया दो मत इस सम्बन्ध मे पाये जाते हैं : एक तो यह कि

परमेश्वर ने जब सृष्टि का निर्माण किया तो उसके साथ ही यह सब विविध रचना भी की; मतलब यह कि जितने भी प्रकार के विविध प्राणी और वनस्पति आज हमें दिखाई पड़ते हैं, सृष्टि-निर्माण के समय, सृष्टि-कर्त्ता ने उन सबका पृथक्-पृथक् एकसाथ निर्माण किया। इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि आज हम जो अनेक प्रकार के विविध प्राणी और वनस्पति देखते हैं, सृष्टि के आरम्भ मे, वे ऐसे नहीं थे। आरम्भ में उत्पन्न प्राणी एवं वनस्पति तो बिलकुल सरल-सादा थे। बाद में उनमे थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन होना शुरू हुआ, जिससे कालान्तर में उनसे कुछ विभिन्न जातियाँ उत्पन्न हुई। फिर तबसे अबतक बराबर यही क्रम जारी रहने के कारण, धीरे-धीरे, आज दीखने वाले समस्त विविध प्राणियों और वनस्पतियों का विकास हुआ। मतलब यह कि वर्तमान विविध सृष्टि एकदम निर्मित न होकर शुरू के कुछ सरल-सादा प्रकारों से बढ़ते-बढ़ते ऐसी हुई है।

इनमें पहले मत को हम जल्दी ग्रहण करते हैं, क्योंकि उसमें न तो दिमाग़ लड़ाना पड़ता है, न वह अस्वाभाविक ही जँचता है। इसके विपरीत दूसरी कल्पना हमें बड़ी भोंडी, अस्वाभाविक अतएव त्याज्य प्रतीत होती है। परन्तु ज़रा गहराई से विचार करें तो हम चौंक पड़ते हैं। जितना-जितना सूक्ष्म विचार हम इसपर करें, उतनी ही पहली कल्पना की असत्यता एवं दूसरी की सचाई हमे प्रतीत होती जाती है।

भूमण्डल के अस्तित्व पर हम विचार करें तो हमें मालूम होगा, जैसा कि विज्ञानविद् लोग अपनी

२—ओरंग-उटान

३—चिम्पञ्जी

४—गुरिल्ला

खड़ होकर चलनवाला बन्दर-मनुष्य

शोधों के फल-स्वरूप बताते हैं, कि पहले तो हमारी यह पृथ्वी भी न थी, हमारा तो कहना ही क्या! पहले तो सत्व, तम और रज से युक्त कोई अव्यक्त एवं विशुद्ध मूल तत्त्व इस विश्व में प्रसृत था, जिसे हमारे यहाँ सांख्य ने 'प्रकृति' कहा है। इसके बाद उसकी गति और उष्णता में क्रम-क्रम से कमी होते हुए, बाद में, उससे सर्व ग्रहों तथा हमारी इस पृथ्वी की भी उत्पत्ति हुई। उस वक्त तो इसपर रह ही कौन सकता था? परन्तु फिर क्रमशः पृथ्वी ठण्डी होने लगी; और उसी अनुसार इसपर क्रमशः वायु, जल आदि की उत्पत्ति हुई। फिर वनस्पति और प्राणियों का भी उदय और प्रसार हुआ। यहाँ तक कि आज की स्थिति को यह पहुँच गई है।

यह शङ्का हो सकती है कि हम मनुष्यों से पहले यदि सृष्टि में स्थित्यन्तर होते रहे, जैसा कि कहा गया है, तो भला हमें उनका पता कैसे लगा? इस समय उन्हें किसने तो लिपिबद्ध किया और कैसे वह हमारे समय तक के लिए सुरक्षित रक्खा गया? यह प्रश्न सचमुच विचारणीय है और उस समय का कोई बाकायदा इतिहास या अन्य किसी प्रकार का लिखित वर्णन हमें नहीं मिलता, यह भी सत्य है। "परन्तु", बक़ौल हमारे राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू, "चाहे हमारे पास उस प्राचीनकाल में लिखी हुई किताबें न हों, फिर भी सौभाग्यवश हमारे पास कई ऐसी चीजें हैं कि जो लगभग किताब ही की तरह इस सम्बन्धी बहुत-सी बातें बताती हैं। पहाड़,

१ गिबन २ ओरंग ३ चिम्पान्ज़ी ४ गुरिल्ला ५ आफ्रिकन ६ आस्ट्रेलियन ७ मंगोलियन ८ यूरोपियन ।
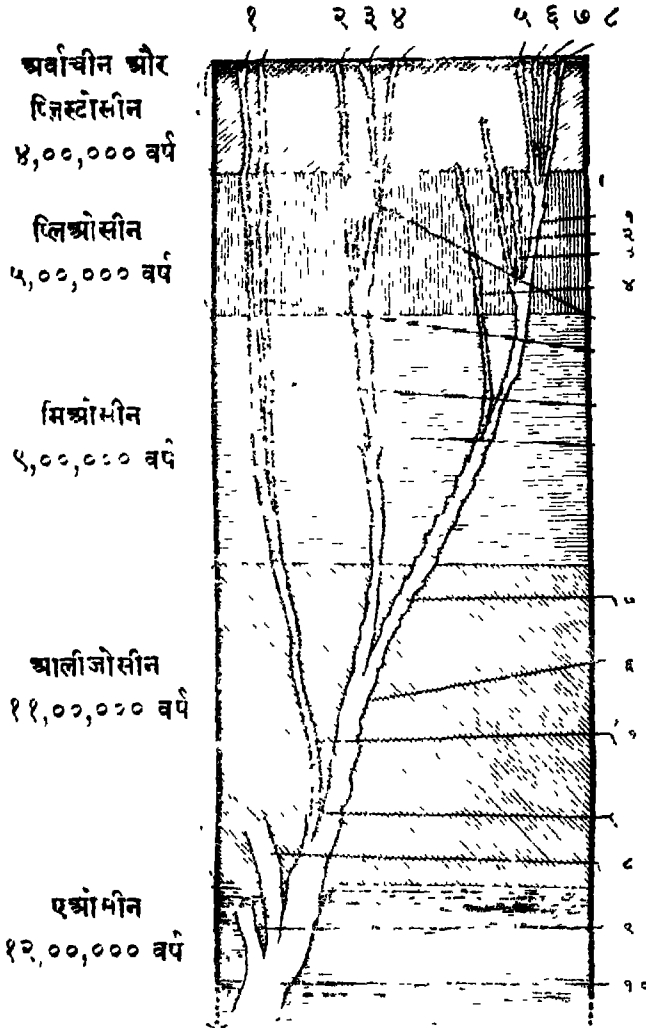
मनुष्य व बन्दरों के रिश्ते

चट्टान, समुद्र, नदियां, तारागण रेगिस्तान और प्राचीन प्राणियों के अवशेष (ठठरियाँ)—ये तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुयें पृथ्वी के आदि वर्णन की हमारी किताबें हैं । और इस (पृथ्वी की) कहानी को समझने का असली तरीका यही नहीं है कि दूसरों की किताबों में इसका वर्णन पढ़ा जाय, बल्कि स्वयं महान प्रकृति पुस्तक का ही देखना चाहिए । X X सड़क पर या पहाड़ की तरफ पड़े हुए जिन छोटे-

मोटे पत्थरों को हम देखते हैं, मानों वह प्रत्येक प्रकृति-पुस्तक का एक पन्ना है—और, अगर हम उसे पढ़ सकें तो, वह हमें थोड़ी-बहुत बातें बता सकता है। एक छोटे गोल-चमकदार पत्थर के टुकड़े को ही देखें, तो क्या वह हमें कुछ नहीं बताता? बिना नोक-कोनों या किसी प्रकार की धार के वह गोल, चिकना और चमकदार कैसे हुआ? अगर किसी चट्टान के छोटे-छोटे टुकड़े किये जायँ तो उनमें का प्रत्येक टुकड़ा खुरदरा, आड़ा-टेढ़ा और कोने-धार वाला होता है। गोल-चिकने पत्थर (Pebble) जैसा बिलकुल नहीं होता। तब वह ऐसा गोल, चिकना और चमकदार कैसे बना? अगर आँख देखने और कान सुनने की सामर्थ्य रखते हों देख-सुन सकें, तो वह हमें अपनी कहानी सुनाता है। वह कहता है कि एक समय—वह समय अत्यन्त प्राचीन क्यों न हो—वह एक चट्टान का ऐसा ही टुकड़ा था, जैसा कि बहुत-से नोक कोनों वाला टुकड़ा किसी बड़ी चट्टान या पत्थर को तोड़ने पर निकलता है। सम्भवतः वह किसी पहाड़ के किनारे पड़ा रहा। वर्षाऋतु में वर्षा का पानी उसे पहाड़ की छोटी घाटी में बहाकर पहाड़ी चश्मे तक ले गया, जहाँ से धक्का खाते-खाते वह एक छोटी नदी मे जा पहुँचा। छोटी नदी उसे बड़ी नदी में ले गई। इस तमाम समय नदी की सतह मे घिसटते-घिसटते उसके नोक-कोने घिस गये और उसका खुरदरापन मिट कर चिकना और चमकदार हो गया। इस प्रकार वह गोल-मटोल चिकना-चमकदार टुकड़ा बना, जिसे हम देखते हैं। किसी प्रकार नदी से वह अलग आ पड़ा और हमें वह मिल गया। अगर वह नदी से अलग न होता और उसके साथ साथ बहता रहता तब तो वह और भी छोटे से छोटा होता जाता, और अन्त में रेत का एक कण बन कर अपने अन्य भाइयों के साथ समुद्र-तट को सुन्दर बनाता, जहाँ छोटे बच्चे रेत के महल बना-बनाकर खेल सकते हैं।" *

पं० जवाहरलाल का कहना है—"जब कि पत्थर का एक छोटा टुकड़ा इतनी बातें बता सकता है, तब पहाड़ और चट्टानें तथा दूसरी बहुत-सी चीजें जो हम अपने आस-पास देखते हैं, उनसे हम कितना ज्यादा जान सकते हैं?" † विज्ञानवेत्ताओं ने सचमुच यह जानने की कोशिश भी की है। और आज सृष्टि की उत्पत्ति और विकास की जो बातें हमें उपलब्ध हैं, वे उन्हींके लगातार प्रयत्नों का परिणाम है। प्राच्य-प्राणि-शास्त्र और प्राच्य-वनस्पति-शास्त्र, विज्ञान के इन दो विभागों का काम ही पुराने-से-पुराने प्राणियों और वनस्पतियों के अवशेषों को

मनुष्य और मनुष्यनुमा बन्दरों की ठठरियाँ—एक तुलना

* Letters from a father to his daughter; Pp. 3-4.

[पं० जवाहरलाल नेहरू इस विषय के मर्मज्ञ हैं, यह शायद बहुतों को मालूम न होगा। कईयों को यह जानकर शायद अचरज भी हो कि वास्तव में प्रकृति-विज्ञान के विषयों में ही उन्होंने इंग्लेण्ड में एम० ए० पास किया था। उनकी हाल ही प्रकाशित हुई इस पुस्तक ने इस रहस्य का उद्घाटन कर दिया है।]

† वही; पृ० ४।

ढूँढ-ढूँढ कर उनपर से उस-उस समय की स्थिति का पता लगाना है।

इसी शोध के फल स्वरूप वैज्ञानिकों का कहना है, मनुष्य जिन्हे आज हम देखते हैं, सृष्टि के आरम्भ से ही ऐसे-के-ऐसे नहीं चले आ रहे हैं। आरम्भ में तो वातावरण ही ऐसा था कि मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु भी यहाँ न रह सकते थे। जड़ से सृष्टि का आरम्भ हुआ। फिर जैसे-जैसे वातावरण बदलता गया— अर्थात् पृथ्वी में ताप घटकर ठण्डक होती गई, उसके अनुसार जीव-सृष्टि भी निर्मित और विकसित हुई। "सबसे पहला पौधा प्रोटोकोकस माना जाता है, जिससे बाद को पुच्छ-वृक्ष, छत्र-वृक्ष, बहुपत्रक फर्न और अन्त में फल-फूलवाले पौधों का जन्म हुआ। यह तो पौधों के विकास का क्रम है। पशुओं में सबसे पहले बिना रीढ़ की हड्डी और बिना खोपड़ी वाले जलचरों में सम्भवतः बहुत छोटी आरम्भिक मछलियों का जन्म हुआ। इसके पश्चात् रीढ़ की हड्डी वाले और खोपड़ी वाले जीवों की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् जिस युग में वनस्पति-जगत् के फर्न-वृक्ष पृथ्वी के अधिकांश भाग को ढके हुए थे, उस समय मछलियों की उत्पत्ति हुई। छत्राकार वृक्षों के समय उरग या सरीसृप अर्थात् साँप के समान पेट से चलने वालों (Reptiles) का जन्म हुआ। फल-फूल वाले वृक्ष जब पैदा हुए तब दूध पिलाने वाले पशुओं का अवतार हुआ और सबसे अन्त में मनुष्य का अवतार हुआ।" × संक्षेप में कहें तो, जीव-सृष्टि का आरम्भ शंखोत्पादक प्राणियों से हुआ, फिर सरीसृप, मत्स्य, सस्तन और उन सस्तन प्राणियों के विविध प्रकारों में से मनुष्यनुमा बन्दर होकर उनसे हम मनुष्यों का अवतरण हुआ है। यही विकास-वाद है—और, इसके अनुसार, मनुष्य अबतक होने वाली सृष्टि की अन्तिम और सर्वोत्तम कृति है। प्राणी और उसके आस-पास की परिस्थिति (The organism and its environment), ये दो विकास के मुद्दे हैं। ※ जब-जब कोई परिवर्तन होता है तब-तब एक नई परिस्थिति उत्पन्न होकर उसमें टिक सकने की समस्या उत्पन्न होती है—शास्त्रीय भाषा में कहें तो, जीवन के लिए संघर्ष या कलह उत्पन्न हो
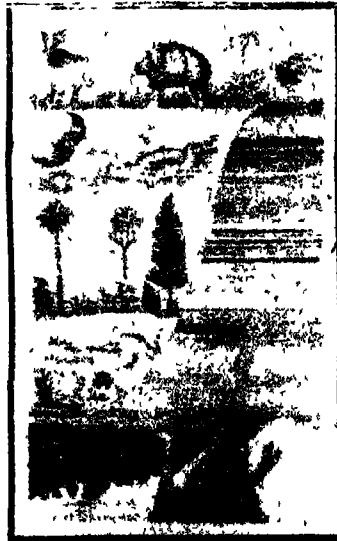
विकास का चित्रपट

× विज्ञान (दिसम्बर १९२९); पशुओं का अवतार, पृ० ११२।

※ New Age Cyclopaedia (Vol. IV). P. 299.

जाता है। ऐसी हालत में यह आवश्यक है कि उस परिवर्त्तित स्थिति के अनुसार बना जाय, नहीं तो अस्तित्व असम्भव है। यही कारण है कि परिस्थिति में जैसे-जैसे परिवर्त्तन होता जाता है, उसीके अनुसार प्राणियों की शरीर-रचना भी बदलती जाती है—और फिर, आनुवंशिक संस्कारों के अनुसार, भावी पीढ़ियों में वह फ़र्क़ लगातार बढ़ते हुए अन्त में

विकासवाद का आचार्य, डार्विन

उन प्राणियों के सारे रंग-रूप ही बदल जाते हैं। यही विकासवाद की मूल कल्पना है। इसीको प्राकृतिक और वैषयिक चुनाव मे विभक्त किया गया है, जिससे कि इस परिवर्त्तन को समझने में सहूलियत होती है।

आधुनिक रूप में इसका प्रतिपादन पश्चिम से हुआ है, और जिन्होंने इसकी शोध की. उनमें चार्ल्स डार्विन सबसे प्रमुख है। मूल कल्पना तो उससे पहले ही उठ चुकी थी, परन्तु उसे सुलझा हुआ और व्यवस्थित रूप उसीने दिया। उसने तथा अन्य विकासवादी विज्ञानवेत्ताओं ने विविध शोधों और प्रमाणों द्वारा विकास का चित्रपट तैयार करके यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य ही जीव सृष्टि की अन्तिम रचना है और उसका विकास बन्दरों से हुआ है। यहाँ पशुओं और मनुष्यों के फ़र्क़ का जो प्रश्न उठता है, शास्त्रज्ञों ने, विविध उदाहरणों द्वारा, उसका भी समाधान किया है। बुद्धिमत्ता और वाणी ये दो ऐसी चीज़ें हैं कि जिनपर हम मनुष्यों को गर्व है और हम पशुओं के वंशज होने का विरोध करते हैं; पर विज्ञानवेत्ताओं ने दोनों की इस विषयक तुलना करके हमारे इस गर्व को भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि पशुओं में भी हमारी तरह मन व बुद्धि है, उनकी अपनी वाणी भी है यह दूसरी बात है कि उनमें ये चीज़ें हमारे जितनी विकसित नहीं हैं—हमसे घट कर हैं। परंतु किसी गुण का कम-ज्यादा विकास तो हम मनुष्यों में परस्पर भी तो होता है—बालक और बड़े की वाणी-बुद्धि में, ऐसे ही जंगली और सभ्य मनुष्यों में भी इन सब विषयों में काफ़ी अन्तर रहता है।

एक बात ध्यान रखने की है। विकासवाद का जबसे उदय हुआ है, यह विवाद का प्रश्न रहा है। अपने पूर्वग्रहों के कारण मनुष्य इस बात को सुनते ही चिढ़ उठते हैं कि हम बन्दरों की औलाद हैं, इसलिए उचित-अनुचित युक्तियों से वे इसका विरोध करते ही रहते हैं। साथ ही इसके समर्थक भी अपने जोश और खिझलाहट में कभी-कभी सीमा से बढ़ कर इसका प्रतिपादन करने लगते हैं। यही कारण है कि दोनों के बीच की खाई मिट नहीं पाती। इन बातों से ऊपर उठने की आवश्यकता है। साथ ही आम तौर पर यह जो समझा जाने लगा है कि

विकासवाद का मतलब लगातार प्रगति होते रहना ही है, यह भ्रमात्मक है, यह भी हमें समझ लेना चाहिए। यह जरूर है कि सृष्टि-विकास के उदाहरण में हमें अभी तक प्रगति ही हुई दिखाई पड़ती है, पर यह जरूरी नहीं कि हमेशा प्रगति ही होती रहे। सच तो यह है कि "विकास के साथ प्रगति ही होनी चाहिए, यह कल्पना ग़लत है। विकास के साथ जैसे प्रगति होना सम्भव है, वैसे ही अवनति भी हो सकती है।" क्योंकि असल में तो यह परिस्थिति पर निर्भर है; परिस्थिति अच्छी हो तो प्रगति होगी, और अच्छी न हो तो अवनति होगी। इस स्पष्टीकरण से, आशा है, बहुतों का समाधान हो जायगा और वे इस सम्बन्धी अपनी ज़िद पर अड़ने के बजाय अपनी सारासार-बुद्धि से इसपर विचार करेंगे।*

* सस्ता-मण्डल, अजमेर, से विकासवाद पर शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'जीवन-विकास' की भूमिका।

'जीवन' या 'मृत्यु'!

(श्री 'मगन')

[१]

वह 'जीना' क्या 'जीना' है,
जिसने बस 'अपना' देखा?
'मरना' वह 'जीना' जिसने—
पर-दुख का 'सपना' देखा!!

[२]

तुम जिसको 'मरना' कहते हो,
मैं उसको 'जीना' गाता!
जिसको तुम 'जीवन' कहते,
मैं उसको 'मृत्यु' बताता!!

[३]

बस इन्हीं कारणों से मैं,
'पागल' जग में कहलाता!
कोई बतलाये यह,—मैं
'मरने' या 'जीने' जाता!!

नमक और उसके अगणित उपयोग

(श्री महादेवलाल शराफ़, एम० एस-सी०)

यह सब कोई जानते हैं कि जबसे मनुष्य-मात्र की गणना हुई है तबसे नमक का इस्तैमाल होता आ रहा है। मनुष्यों तथा पशुओं के भोजन का यह एक मुख्य भाग है। यह सारे संसार में पाया जाता है। नमक का ईसाइयों के धर्म-ग्रन्थ बाइबल में भी उल्लेख है। यहूदियों तथा अन्य जातियों के धार्मिक रीति-रिवाजों से पता चलता है कि पुरातन जातियाँ नमक को बहुत महत्व की दृष्टि से देखती थीं। आधुनिक अरब-जाति के लोग अब भी नमक का नैतिक सौदा किया करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि "नमक की भूख" से अधिक दर्दनाक शायद ही कोई चीज़ हो और चीनी लोगों के भयावने 'नमक के दुर्भिक्ष' में क़ैदी को बहुत-सा अन्न लेकिन बहुत ही कम नमक दिया जाता था। एक लेखक का कहना है कि प्रति मनुष्य नमक की वार्षिक खपत करीब २९ पाउण्ड होती है। ९० फ़ी सदी जो हाइड्रोक्लोरिक तेजाब भोजन की नली में पेट के कई तरह के तरल पदार्थों में पाई जाती है वह भोजन के साथ खाये हुए नमक से ही बनती है। पौधों को खानेवाले पशु हरे घास और पत्तियों से आवश्यक नमक लेते हैं। शाकाहारी पशु नमक के झरनों तथा खानों की खोज में सैकड़ों मील केवल नमक की भूख मिटाने के लिए ही जाते हुए देखे गये हैं। मांसाहारी पशु पशुओं के खून से अपने नमक की भूख मिटाते हैं।

मनुष्यों तथा पालतू पशुओं की नमक की आवश्यकताओं के अतिरिक्त नमक, जिसे वैज्ञानिक 'सोडियम क्लोराइड' कहते हैं, हमारे दैनिक जीवन में हज़ारों तरीक़ों से काम में आता है। हमारी माँग की पूर्ति के लिए प्रकृति ने अपनी दान-प्रियता दिखाते हुए बहुत प्रमाण में हमें नमक दिया है। ऐसा अनुमान है कि संसार की नदियाँ प्रति साल समुद्रों में २ अरब ८८ करोड़ मन नमक ले जाती हैं और समुद्रों के पानी में १४४,०००,०००,००० टन नमक मिश्रित है, जो बहुत आसानी से संसार की सारी सूखी दुनिया को ४०० फ़ीट गहराई तक भर सकता है। जब पहाड़ी और झीलों के विपुल नमक के अलावा इतना बड़ा भण्डार नमक का संसार में है तब इसके करोड़ों उपयोग भी होंगे, जिससे कि इस नमक के भण्डार की खपत होती होगी। यह काम प्रायः असम्भव-सा ही होगा कि नमक के अगणित उपयोगों को मैं यहाँ बता सकूँ। परन्तु यदि आप मुझसे यह कहें कि कोई ऐसी चीज़ बतलाओ जिसमें नमक का उपयोग किसी न किसी

रूप में न हुआ हो तो मुझे बड़ी ही आफत जान पड़ेगी। यदि नमक की सच्ची कहानी लिखी जाय तो उस कहानी में कम से कम निम्नलिखित वस्तुओं को तो स्थान देना ही पड़ेगा:—

रोटी बनाने का सोडा, सोडावाटर, बिना कीड़ों, की सिल्क, चमकदार रुई के कपड़े, तरह-तरह के साबुन, ग्लिसरीन, स्फोटक पदार्थ जैसे डायनामाइट, बिना धुएँ के उड़ने वाली बारूद, स्वच्छ तथा लाभप्रद तरह-तरह के तेल, जहरीले तथा स्वर्ण को साफ करनेवाले पदार्थ जैसे सोडियम साइनाइड, तरह-तरह के रसायनिक पदार्थ, मिलों में कपड़ा धोने के काम में आनेवाला ब्लीचिंग पाउडर, औषधियाँ, जन्तु-नाशक चीज़ें, रबर, चमड़ा, प्रायः सभी आरगनिक कम्पाउण्ड, सुन्दर चमकीले-भड़कीले और चटकीले हजारों तरह के रंग, कागज, साफ की हुई लाख जिसे शेलाक कहते हैं, मोटर-गाड़ियों के काम में लिया जानेवाला तेल, लकड़ी तथा रेलवे की पटरी का सफेद चींटियों से बचाव, खानों से कच्चे धातुओं से शुद्ध धातुओं का निकालना, लड़ाइयों मे प्राणियों की हिंसा करनेवाली जहरीली हवायें जैसे फासजीन मस्टर्ड गैस, क्लोरोपिक्रिन, पिक्रिक एसिड, रुई को नष्ट करनेवाले कीड़ों का नाश करने मे उपयोगी कैलशियम आरसीनेट, तरह-तरह के काँच, मांस तथा मछली को अधिक दिन तक रखना, चीनी मिट्टी के बर्तन, कपड़ों की छपाई इत्यादि इत्यादि।

ऊपर लिखे हुए दृष्टान्तों से यह स्पष्ट है कि सस्ता नमक केवल मनुष्यों तथा पशुओं के नियमित स्वस्थ जीवन के लिए ही नहीं, परन्तु देश की साम्पत्तिक दशा सुधारने तथा राष्ट्र की राजनैतिक रक्षा के लिए भी अत्यावश्यक है। विदेशी नौकरशाही सरकार से लगाया हुआ नमक-कर केवल भारतीयों की मूल शक्ति को ही नहीं खा रहा है परन्तु भारतीयों को उनके अधिकार-सिद्ध व्यापार को बढ़ाने से भी रोक रहा है। मैं तो यहाँ वाणिज्य के केवल दो-चार ही ऐसे दृष्टान्त दूंगा, जिनकी सफलता के लिए सस्ते नमक का होना अत्यावश्यक है।

महज मामूली चीजें जैसे साबुन बनाने में काम आनेवाला कास्टिक सोड़ा, कपड़ा धोने का सोड़ा, रोटी बनाने में काम आनेवाला सोडा, कपड़ा या कागज को खूब सफेद बनाने में काम आनेवाला ब्लीचिंग पाउडर या बहुत ही शुद्ध हाइड्रोक्लोरिक तेजाब, इत्यादि चीजें बनाने में नमक का प्रथम स्थान है। अंग्रेजी कम्पनी (इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज) ही प्रायः समूचा कास्टिक सोडा हिन्दुस्तान में लाती है। दैनिक जीवन में इसका महत्व और किसी भी चीज से कम नहीं है। अगर आप स्वच्छता से रहना चाहे और साबुन का इस्तैमाल करते हों तो आप अपनी शान मे डींग मार सकते हैं कि मै तो विशुद्ध भारतीय साबुन काम मे ला रहा हूँ, परन्तु आपको जानना चाहिए कि वास्तव में आपके साबुन में लिवरपुल या अमेरिकन नमक से इंग्लैण्ड या अमेरिका मे बनाया हुआ कास्टिक सोडा है। और यह कास्टिक सोडा आप बहुत आसानी से हिन्दुस्तानी नमक से हिन्दुस्तान मे बना सकते, यदि आप स्वतन्त्र होते, क्योंकि आपके पास इसके सभी साधन निकट में ही मौजूद हैं। अगर आप यह कास्टिक सोडा हिन्दुस्तान में बना लेते तो केवल अपना शरीर तथा कपड़े ही कम दाम मे साफ नहीं रख सकते बल्कि आप रेशम की माफिक चमक-दमक वाले तथा मजबूती मे उससे भी अधिक अच्छे कपड़े पहन सकते थे। मेरा मतलब इससे बनावटी रेशम से है, जो रुई से बिना कीड़े मारे बनता है और जिसमें कास्टिक सोडे का

उपयोग ही सब-कुछ है। अगर यह स्वार्थी ब्रिटिश सरकार न होती तो रुई के चमकोले कपड़े, जिन्हें मरमराइज्ड कॉटन कहते हैं, बहुत आसानी से बना सकते थे। मैंने आपको-सारी कथा नहीं लिखी है और न मेरी इच्छा ही है, कारण कहानी बहुत लम्बी हो जायगी; नहीं तो मैं आपको बतलाता कि किस प्रकार आप बढ़िया से बढ़िया रूप पोशाक के लिए दे सकते हैं और कैसे आप अपने शत्रुओं को चलायमान कर सकते हैं, भले वे बहुत ही सूक्ष्म रोग के जीव हों, जिन्हें बैक्टीरिया कहते हैं, अथवा एक शक्तिशाली दुश्मन की फौज ही क्यों न हो। एक बात याद रखनी चाहिए कि कास्टिक सोडा को बिजली की सहायता से बनाने में हम लोगों को दो और वस्तुयें प्राप्त होती हैं वे दो वायु हैं। एक तो हरे-पीले रंग की क्लोरिन गैस है और दूसरी पानी की अर्धांगिनी हलकी हाइड्रोजन गैस है। क्लोरिन को तो शहर के रहनेवाले सभी लोग जानते हैं। कारण शहर के पानी मे इसकी गंध अक्सर आती है। वह टाइफाइड रोग के कीड़े तथा मनुष्य के अन्य दुश्मनों का नाश करने के काम मे आती है। तरल क्लोरिन की एक बूंद पचास गैलन पानी मे रहनेवाले कीड़ों (Bactiria) को मारकर उस पानी को उनसे सुरक्षित कर सकती है। यदि हम लोग इस क्लोरिन तथा चूने का गठजोड़ा कर दें तो हमें एक ऐसी वस्तु मिलती है जिसे ब्लीचिंग पाउडर कहते हैं। यह हमारे कपड़ो को दूध के सदृश सफेद कर देने की ताक़त रखता है और कई तरह के दागों को भी मिटा देता है। अगर हम क्लोरिन और गंधक की खासी दोस्ती करा दें तो ये एक होकर सलफर मनो क्लोराइड के रूप में उपस्थित होते हैं। इसका उपयोग कच्चे रबर को तरह-तरह के गुण प्रदान करने के काम में होता है। आपके पास यदि यह क्लोरिन न होती तो न तो आप मोटर गाड़ी ही में बैठ सकते और न सैकड़ों तरह की सुन्दर रबर की चीजें मिलतीं। अगर आप अमीर नहीं हैं और राष्ट्रीय भावनायें आपके अन्दर भरी हुई हैं और आप महात्मा गांधी के नेतृत्व में होनेवाली सविनय कानून-भंग की लड़ाई में भाग लेना चाहते हैं तो आपको क्लोरिन के एक और उपयोग से जानकारी हो सकेगी। अगर एक ब्रिटिश सारजेण्ट लाठियों से या अपने त्रिशूल से आपकी ऐसी पूजा करें कि आपको आशीर्वाद-रूप एक गहरा घाव हो जाय और वह इतना निर्दयी तो न हो कि आपको अस्पताल में भी न भेजे तो आपके घाव के भरने की आशा की जा सकती है, यदि डाक्टर ऊपर कहे हुए ब्लीचिंग पाउडर के असली सत्त हाइपो क्लोरसएसिड का इस्तैमाल करें, क्योंकि गहरे घाव के लिए यह राम-बाण औषधि है। इसके इस गुण के आविष्कार के बाद घाव जो पहले भरते ही न थे अब आसानी से भर जाते हैं। फेंकने वालों को भी हमारा शान्ति के समय का मित्र क्लोरिन इस काम में बहुत सहायता कर सकता है। इसकी सहायता से आप जहरीली हवायें जैसे फासजीन, मस्टर्ड गैस, जिसकी जमीन पर पड़ी हुई एक बूंद कई दिनों तक नहीं उड़ेगी और उस जमीन पर से आने-जानेवालों को बहुत दर्दनाक तथा गंभीर जलन पैदा कर देगी—. क्लोरापिक्रिन और बारूद बनाने मे काम आनेवाले अन्य पदार्थ जैसे डाइनाइट्रोफिनोल तथा पिक्रिक एसिड इत्यादि बना सकते हैं। अगर आप किसान हैं और ऊन इत्यादि के कपड़ों तथा अन्य वस्तुओं का नाश करनेवाला कीड़ा मौथा तथा रुई की फसल को नष्ट करनेवाला कीड़ा बौलविभिल आपको सताता है तो जब आप स्वाधीन हो जायँ और आपकी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जाय तो आप अपनी सरकार से यह माँग कर सकते हैं कि

क्लोरिन की सहायता से पारा-डाइ क्लोवेनजीन जिसे व्यापारी लोग पारा माइड कहते हैं और केलशियम आरसीनेट बना दो, ताकि हम लोग अपने शत्रु वौल-विनभील पीचवोरर, मोथ इत्यादि से बच सकें।

मैं इस समय समयाभाव के कारण यह तो वर्णन नहीं कर सकता कि आप अपना तथा अपनी मातृभूमि का क्लोरिन से कैसे उपकार कर सकते हैं। परन्तु यदि आप कागज, तरह-तरह के कपड़े, चपड़ी, या किसी अन्य चीज के बनाने में लगे हों, या आप खानों, जंगलों, कपड़े धोने या तेल के कारखानो के मालिक हैं तो इतना अवश्य कहूँगा कि यदि आप को किसी भी काम मे नुकसान होता हो तो आपका सर्वोपरि कर्तव्य यह होगा कि आप स्वतंत्रता की लड़ाई में तन, मन, धन से लग जायँ और जब आपका देश स्वतंत्र हो जाय तो आप अपनी निजी राष्ट्रीय सरकार की सहायता से जो भारतीय रसायन शास्त्री तथा अन्य वैज्ञानिकों को अवश्य ही अपनायगी, आप अपने वाणिज्य तथा देश की दशा सुधार सकेंगे।

आपने यह देखा होगा कि मैंने अभीतक आपको नमक का एक ही उपयोग बताया है और वह नमक से कास्टिक सोडा बनाने का। इसके साथ-साथ आपको इस कास्टिक सोडा का तथा इसके बनाने में जो दो पदार्थ आपही आप निकलते हैं, जिसे वैज्ञानिक बाई-प्रोडक्ट कहते हैं, उनमे से एक बाई-प्रोडक्ट के भी उपयोग बता दिये हैं। अब मैं आपको दूसरे बाई-प्रोडक्ट हाइड्रोजन वायु का जो पानी से भी बिजली की मदद से निकलती है तथा अन्य उपायो से भी मिल सकती है उपयोग बताऊँगा। इससे आप वनस्पति के ठोस तेल तैयार कर सकते हैं तथा सुन्दर और चमकीले लाल तथा पन्ने (जवाहरात) इतनी कम कीमत में तैयार कर सकते हैं कि आप यदि विवाहित हों तो बिना कर्ज लिये ही अपनी स्त्री के शौक पूरे कर सकते हैं। यदि आपको आकाश में उड़ने का शौक हो तथा जीवन की बहुत परवाह न हो तो हाइड्रोजन गैस की सहायता से विमानों में पहाड़ों तथा घाटियों के ऊपर से उड़कर जीवन का आनन्द लूट सकते हैं।

अब मैं आपको हवा में उड़कर प्रकृति-सौंदर्य का सुख प्राप्त करने का लालच अधिक न देकर तथा आपको करोड़पति बनाने की आशा न देकर अपना किस्सा खतम कर देना चाहता हूँ। सिर्फ इतना ही और कहूँगा कि आप गरीब होते हुए भी किस तरह सुन्दर भवनो में रह सकते हैं या अपने मनोरंजन के यदि आप इच्छुक हों तो कैसे इस मायाशील प्रकृति के छिपे हुए गुल को देख सकते है। आप नमक में से आसानी से ही कपड़े धोने का सोडा जिसे वैज्ञानिक सोडियम कारबोनेट कहते हैं बना सकते हैं। इस सोडे से आप तरह-तरह के काँच, चाहे खिड़कियों के लगाने के लिए हों या और किसी काम के लिए, चूने के पत्थर तथा सफेद बालू की सहायता से बना सकते हैं। सस्ते सोडे से अर्थात सस्ते नमक से आप कांच की खिड़कियों से सजे-धजे काँच के मकान में रह सकते हैं और नमक से जगमग करते हुए चीनी मिट्टी के बर्तन काम में ला सकते हैं। खुर्दबीन और दूरबीन के कांचो से जिन्हें लेन्स कहते हैं आप बहुत ही सूक्ष्म जन्तुओं के संसार को तथा स्वर्ग की गूढ़ बातों को आँखों से देख सकते हैं और समझ सकते हैं।

मुझे आपको इतनी मजेदार बातें लिखनी है कि मेरी इच्छा एक-दो बात और लिखने की होती है। मान लीजिए आप चमड़ा पकानेवाले हैं और सरकार के नमक का कर न देनेवाली लड़ाई में शरीक होना चाहते हैं। अगर आपको लड़ाई कामयाब

हो गई तो आप अपने माल को किफ़ायत से बेच सकेंगे। अगर आप बैठकर हिसाब लगावें कि आप को चमड़े के साफ करने की क्रिया (Curing Process) में कितना नमक खर्च करना पड़ता है तो आपको आश्चर्य होगा कि अगर नमक-कर न देना पड़ता तो आपको सैंकड़ों रुपये की सालाना बचत होती। चमड़े के बाल हटाने में आपको 'सोडियम सल्फाइड' की सहायता लेनी पड़ती है और वह नमक से ही बनता है। इसलिए अगर नमक सस्ता होता तो सोडियम-सल्फाइड भी जरूर सस्ता होता।

आप में से जो डाक्टर रसायनिक या पशुओं के चिकित्सक हों या होने की इच्छा करते हों उन्हें मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि उनको कितना अधिक लाभ कर-रहित नमक से पहुँचेगा।

स्वर्गीय लाला सुखवीरसिंह

(श्री रूपकिशोर अग्रवाल)

मुजफ्फ़रनगर के प्रसिद्ध महापुरुष माननीय रायबहादुर ला० निहालचन्द्र बड़े प्रतिभाशाली हो गये हैं। आपही के यहाँ, ५ जनवरी सन १८६८ ई० को स्वर्गीय लाला सुखवीरसिंह का जन्म हुआ था। आपने प्रारम्भिक शिक्षा आगरा के 'सेन्ट स्टिफ़ेन्स स्कूल' में पाई थी। सन १८८६ ई० में आगरा-कालेज से आपने कलकत्ता यूनिवर्सिटी की 'मेट्रीक्यूलेशन' परीक्षा दी और उसमें आप बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। पर उन्हीं दिनों, पिता के रोग-ग्रस्त हो जाने के कारण, आपको कालेज छोड़ना पड़ा।

ला० निहालचन्दजी युक्त-प्रान्तीय-व्यवस्थापिका-सभा के परम उद्योगी और प्रतिष्ठित सदस्य थे, जिन्होंने कौंसिल में जमींदारों और कृषक-समाज के हित का विशेष रूप से ध्यान रक्खा। आगरा कृषक-बिल पर की गई उनकी वक्तृतायें बहुत प्रसिद्ध हैं। इसी उद्देश्य को लेकर सन् १८९६ ई० में उन्होंने 'मुजफ्फरनगर-जमींदार-एसोसिएशन' की स्थापना की थी। ला० सुखवीरसिंह सदैव पिता के साथ उनके प्राइवेट-सेक्रेटरी के रूप में सभा-सोसाइटियों में सम्मिलित होते रहते थे। पिताजी से ही आपको सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक शिक्षा प्राप्त हुई।

पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् दिसम्बर १९०९ में आप 'मार्लेमिन्टो' कौंसिल के सदस्य चुने गये और सन् १९१२ एवं १९१६ में भी आप का ही निर्वाचन हुआ। सन १९२० में पहली 'रिफ़ार्म-कौंसिल' के लिए जिला मुजफ्फरनगर ने आपको अपना प्रतिनिधि बनाया, परंतु आपने रिफ़ार्म-कौंसिल के सदस्य होने की अपेक्षा कौंसिल ऑव स्टेट का सदस्य होना उपयोगी समझा। अतएव इस स्थान को परित्याग कर के कौंसिल आव स्टेट के सदस्य हो गये। सन १९२५ में आवागढ़-नरेश के अनुज रावसाहब कृष्णपालसिंह कौंसिल-आफ-स्टेट के उम्मीदवार थे, परन्तु अत्याधिक बहुमत—द्वारा आप ही कौंसिल-आफ-स्टेट के सदस्य चुने गये। कौंसिलों में आपका कार्य्य अत्यंत प्रशंसनीय और सराहनीय रहा। आपने पशु-रक्षा, कृषि-सुधार, स्कूलों में धर्म-शिक्षा, तीर्थोद्धार इत्यादि

महत्वपूर्ण विषयों में अविराम उद्योग कर सफलता प्राप्त की। खेद है कि आपका 'साधु-सुधार-बिल' महा-युद्ध छिड़ जाने के कारण स्थगित हो गया था।

सन् १९१४ ई० में आपके प्रयत्न से अ० भा० हिंदू-महासभा की स्थापना हुई और सन् १९२३ ई० तक आप उसके प्रधान मंत्री रहे। १९१८ ई० में ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम (हरिद्वार) के अध्यक्ष पद पर सुशोभित हुए। आपके उद्योग और सुप्रबन्ध से आश्रम की बड़ी उन्नति हुई और १९१९ में आपके उत्साह और प्रयत्न से ऋषिकुल-विद्यापीठ में आयुर्वेदिक कालेज स्थापित हुआ। आपने कलकत्ते आदि में भ्रमणकर कालेज-भवन तथा अन्य शिक्षा-संबन्धी कार्यों के लिए बहुत-सा धन संचय किया। कलकत्ता के दान-वीर मारवाड़ी सेठ महानुभावों ने इस परमोपयोगी संस्था के निमित्त एक लाख १०००००) रुपया प्रदान कर अपनी उदारता का परिचय दिया। इसके अतिरिक्त युक्तप्रान्तीय सरकार से आयुर्वेदिक कालेज की महत्ता और उपयोगिता दिखलाकर ५००००) पचास सहस्र रुपये नक़द तथा ५०००) रु० वार्षिक सहायतार्थ नियत कराये, और साथ ही यह भी स्वीकार कराया कि यदि जनता एक लाख रुपये की धन-राशि और एकत्र कर देगी तो पुनः पचास हज़ार रुपये की सहायता और पाँच हज़ार रुपये वार्षिक और दिये जायँगे। ११०००) ग्यारह हज़ार रुपये आपने स्वयं भी दान दिये। सन् १९२७ तक आप इन संस्थाओं के सभापति रहे। आपके उद्योग से आयुर्वेदिक कालेज का सम्बन्ध हिन्दुस्तानी-डाक्टरी बोर्ड से हुआ।

आपकी आयुर्वेदिक औषधियों में बड़ी श्रद्धा थी, अतएव आपने जन-साधारण के हितार्थ इस प्रान्त में एक ऐसे 'मेडीसन-बोर्ड' की स्थापना कराई, जिसके द्वारा आयुर्वेदिक औषधियों का अधिक प्रचार हो और जो व्यक्ति आयुर्वेदिक विद्या के विशेषज्ञ हों वे वैद्यों तथा आयुर्वेदिक शिक्षा-प्रेमी छात्रों की सहायता कर सकें।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय से भी आपकी परम सहानुभूति थी। आप उसके सदस्य और परा-मर्श-दाताओं में से थे। आपने ११०००) रुपया उक्त विद्यालय की सहायतार्थ प्रदान किया। आप अपनी आय में से प्रतिवर्ष लगभग ७०००) रु० विविध सार्वजनिक कार्य्यों में दान दिया करते थे। कुरुक्षेत्र हिन्दुओं का परम पवित्र और धार्मिक तीर्थ-स्थान है। सन् १९२१ में आप कुरुक्षेत्र-दशा-सुधार-समिति के सभासद नियुक्त हुए। आपने सु-परामर्श से समिति को अत्यन्त लाभ पहुँचाया और यात्रियों के विश्राम आदि की सुविधा के लिए 'श्री गीता-भवन' में निज व्यय से एक कमरा बनवाया।

आपके उद्योग से मुजफ्फरनगर में 'एडवर्ड हाईस्कूल' की स्थापना हुई। सन् १९१० से १९२३ तक आप उसके अध्यक्ष रहे। आपने अपने स्वर्गवासी पिता की स्मृति में मुजफ्फरनगर के सरकारी अस्पताल में एक विशाल कमरा रोगियों के विश्राम के लिए निर्माण कराया। इसके अतिरिक्त स्वर्गीय पिताजी की आत्म-संतुष्टि के लिए सन १९१० में एक आयु-र्वेदिक औषधालय खोला और जिला मुजफ्फरनगर की रोग-ग्रस्त जनता को चिकित्सा-द्वारा लाभ पहुँचाया। आप २१ वर्ष पर्यन्त, सन् १८९८ से १९१९ तक मुजफ्फरनगर-म्युनिसिपल-बोर्ड के अवैतनिक मंत्री, उपाध्यक्ष और अध्यक्ष भी रहे। आपके सुप्रबंध से नगर की बड़ी उन्नति हुई।

सन् १९१२ से १९२३ तक आप मेरठ कालेज के ट्रस्टी और आनरेरी सेक्रेट्री रहे। आपके समय में कालेज की दशा और प्रबंध बहुत संतोषजनक रहा।

सन् १९२२ से १९२७ तक यू० पी 'कैटिल-

मीटिंग-कमिटी', १९०५ से १९२७ तक यू० पी० बोर्ड-आव-कल्चर, १९२१ से १९२७ तक हरिद्वार-इम्प्रूवमेंट-एण्ड-वायबरी-कमेटी तथा १९२३ से १९२६ तक सेन्ट्रेल-काटन-कमिटी (बम्बई) के सदस्य रहे।

सन् १९१० ई० में इलाहाबाद और सन् १९२० में अलवर-राज्य की वैश्य-महासभा के महाधिवेशन के अध्यक्ष-पद पर आसीन हो अपने महत्त्वपूर्ण ओजस्वी भाषण-द्वारा वैश्य-जाति का उपकार किया। वास्तव में जाति-सुधार की आप में हृदय से लगन थी। सन् १९१८ में अखिल-भारतीय गौ महासभा के द्वितीय महोत्सव (देहली) एवं १९२० में प्रान्तिक उद्योग-सम्मेलन (मुरादाबाद) का सभापतित्व ग्रहण किया। सन १९०९ से १९२७ तक जमींदार-एसोसियेशन व मुजफ्फरनगर के आप आनरेरी लाइफ-सेक्रेट्री रहकर अहर्निश इस पैतृक संस्था की उन्नति में तन, मन, धन से लीन रहे।

रसद और बेगार की प्रथा के कारण ग्रामीण जनों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था, अतएव आपने इस कुप्रथा को बन्द कराया। गो-रक्षा पशुओं की वंशोन्नति, चरागाहों की स्थापना, मेडिकिल-कालेज-लखनऊ में विद्यार्थियों को आयुर्वेदिक तथा यूनानी की सम्मिलित शिक्षा का प्रबंध, चौधरियों के द्वारा बैलगाड़ी आदि वाहनों का बेगार में न पकड़ा जाना, वृषोत्सर्ग में हिन्दुओं के छोड़े हुए सांडों का वध न होना, धार्मिक सम्पत्ति की रक्षा के लिए कमेटियों की स्थापना, महसूल आबपाशी और मालगुजारी में कमी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्यों के लिए मार्ग-व्यय का मिलना, स्कूलों में धर्म शिक्षा का प्रचार, ग्राम-पंचायतें, तीर्थोन्नति, यात्रियों की सुगमता के लिए रुड़की से हरिद्वार तक कैनाल-बंक-रोड बनने इत्यादि विषयों में आवश्यकतानुसार समय-समय पर आपने विशेष प्रयत्न किया।

आपके विद्या-प्रेम की सीमा स्कूल कालेजों की स्थापना एवं उनको सहायता देने इत्यादि पर ही निर्भर न रही, बल्कि आपने मातृ-भाषा के प्रति अपना प्रगाढ़ अनुराग दरसाने के लिए श्री मद्भगवत् गीता और पातञ्जलि योग सूत्रम् का सरल हिन्दी-अनुवाद करके प्रकाशित कराया। लेखन शक्ति के अतिरिक्त आपकी वक्तृत्व-शक्ति भी अच्छी थी।

इतने बड़े धन-वैभव-सम्पन्न होने पर भी आपको देश-हित की चिन्ता लगी रहती थी। आप बड़े सहृदय और सरल-प्रकृति थे। परमात्मा की कृपा से लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की आप पर कृपा थी।

आप वैद्यों के परामर्श से जल-वायु-परिवर्तनार्थ मुजफ्फरनगर से लाहौर गये हुए थे। वहीं चीफ़-जस्टिस सर शादीलाल की कोठी पर ता० ८ नवम्बर सन् १९२७ ई० को सहसा रोग का भयानक आक्रमण होने से आपका स्वर्गवास हो गया। परमात्मा आपकी आत्मा को सद्गति दें और आपके पुत्रों को भी ऐसे ही सेवा के मार्ग पर चलने के उपयुक्त बनावें, यही कामना है।

एक प्रवचन

[श्री 'अष्टावक्र']

आज-कल गुजरात में शीतला का बड़ा प्रकोप है। बीमारी बेतरह फैली हुई है। सैकड़ों लोग मर रहे हैं। साबरमती का सत्याग्रह-आश्रम भी इस बीमारी से अछूता नहीं रह पाया। पिछले सप्ताह इसी शीतला की बीमारी में वहाँ गीता, मेघजी, और वसन्त नाम के ३ बालक चल बसे। महात्माजी बच्चों को बहुत प्यार करते हैं। इस अवसर पर महात्माजी ने शाम की प्रार्थना में एक बड़ा ही मर्म-भेदी प्रवचन किया था, जिसका सार निम्न-प्रकार है :—

"दोपहर को मैंने कहा था कि आज-कल आश्रम की परीक्षा हो रही है। लेकिन इसकी अपेक्षा सच यह है कि ईश्वर मेरी परीक्षा कर रहा है। यदि मैं एक के बाद एक शांत हो जानेवाले गीता, मेघजी और वसंत का दुःख मनाने बैठूं, तो इतना बड़ा दुःख मेरी ज़िन्दगी में कभी आया ही नहीं। × × इस समय ऐसी परीक्षा हो रही है कि ईश्वर पर मेरी श्रद्धा न हो तो मैं पागल ही हो जाऊँ। लेकिन मेरे सामने कोई दूसरा उपाय नहीं है। मैं कोई हकीम या डाक्टर नहीं हूँ, परन्तु जीवन के खेल खेल रहा हूँ। क्योंकि, यह मेरा स्वभाव ही बन गया है और इसे मैं छोड़ नहीं सकता। इसीलिए जैसा मैं समझता हूँ उसी के अनुसार करता भी हूँ। मैं और करूँ भी क्या? अन्दर से तो आवाज़ आती कि 'तुम क्या करते हो? जैसा मैं करता हूँ वैसा ही तो कर रहे हो।" इसी प्रकार एक खूनी अथवा बीड़ी-सिगरेट पीनेवाला भी कहता है। कहना सरल है। भ्रम में भी कहा जा सकता है। लेकिन जो समझ-बूझ कर करता है वह अपना काम निकाल लेता है। यह भी विचार आता है कि इस काम में ईश्वर का हाथ है या शैतान का? ऐसी आज की मेरी मानसिक स्थिति है।"

आज किशोरलालभाई का एक पत्र आया है। वह लिखते है —

"एक ओर तो आप चेचक का टीका लगाने की इच्छा रखनेवालों को टीका लगाने की छुट्टी देते हैं, दूसरी ओर टीका न लगाने के विषय में लम्बी चौड़ी भूमिका भी बाँधते हैं। इससे कोई टीका लगवाने की इच्छा नहीं दिखाता। आपको तो लोगों को टीका लगाने की ही सलाह देनी चाहिए।

इस पत्र का मुझ पर ज़रा भी असर नहीं हुआ। फिर भी किसी भी प्रकार का मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो अपना धर्म बता रहा हूँ, और उसका पालन करता हूँ। टीका लगाने से मेरी धर्म-वृत्ति को आघात पहुँचता है। जब मैं गीताजी का पाठ करता हूँ और उसे अपने आचरण में लाने की कोशिश तथा दूसरों को भी उसी प्रकार आचरण करने की प्रेरणा करता हूँ, तब मैं और क्या कर सकता हूँ? आज जब कि मैं सारे आश्रम को धराशायी करने के लिए तैयार हुआ हूँ, तो ऐसे अवसर पर मैं इस प्रकार का धर्म-विरुद्ध प्रयत्न कैसे कर सकता हूँ? यदि मैं ऐसा करूँ, तो फिर मुझे धर्म का नाम न लेना चाहिए। आज जो "प्रभर मंथ न मरेंगे ..." का भजन गाया, वह आज के इस प्रसंग के लिए उपयुक्त ही है। उसमें एक जगह आता है—

'मर्यो अनंत बार बिन समजो'—अर्थात् यदि हम न समझें तो अनन्त बार मरते हैं भाव-मृत्यु तो प्रतिक्षण होती है। जब हम डरते हैं—पाप करते हैं, तब हम मरते हैं। मौत का डर लगा कि मरा ही समझना चाहिए। इसी भाव-मृत्यु को पुनर्जन्म कहते हैं, और मृत्यु तो संसार-चक्र में है ही। परंतु जीते-जी भी कई बार मरा जाता है। यह नामर्दी की निशानी है। जो ईश्वर को भूल गया है वह मर्द नहीं है, और जो ईश्वर का विचार ही नहीं करता है वह मनुष्य नहीं है। सुख-दुख दोनों को जब भूल जायगा तब अमर होगा, ऐसा उस भजन का अर्थ है। हम गीता का पाठ और '*विपदो नैव विपदः*' श्लोक बोलते हैं, उसका अर्थ यही है कि यदि मृत्यु को अंतिम दुख मानें तो विपत्ति विपत्ति नहीं है। नारायण की विस्मृति ही विपत्ति है और वही मृत्यु है। उसकी स्मृति ही जीवन है। मेरे लिए यह पाण्डित्य नहीं लेकिन जीवन-मरण का प्रश्न है। जब कि मैं '*अनन्याश्चिन्तयन्तोमाम्*' ......श्लोक के अनुसार आचरण करने की इच्छा रखता हूँ, तब तीन-तीन बच्चों की मृत्यु के कारण टीका लगाने की सलाह दूँ, यह कैसे हो सकता है? × × ×"

"आज तो मैं सरकार से युद्ध करने के लिए तैयार हुआ हूँ। ऐसे समय क्या मैं मौत से डरूँगा? इस युद्ध में मैं हजारों को मरते-कटते देखकर भी न डरूँ यह मेरा प्रयत्न है। मैं तो जन्म और मृत्यु को एक ही ढाल की दो बाजुयें मानता हूँ। मृत्यु से विह्वल तथा जन्म से उल्लसित होने का कोई कारण नहीं है। सच पूछो तो गीता, बसंत और मेघ जो इन में से कोई गया ही नहीं। वे सब मौजूद हैं। क्योंकि उन की वीरता आदि गुण अब थोड़े ही हो गये हैं। हम उन गुणों का संग्रह करेंगे। एक मेघजी गया, लेकिन भारतवर्ष में तो करोड़ों मेघजी हैं। क्या वे हमारे नहीं हैं? मेघजी ने तो अंत समय में राम-नाम लिया है। उसके समान मृत्यु मैं चाहता हूँ। उससे बोला नहीं गया, तो उसने चेष्टा से बताया। कहाँ तो इमली खानेवाला मेघजी और कहाँ अंत समय में राम का नाम लेनेवाला मेघजी? मेघजी तो अमर है। मालूम नहीं हम लोग कहाँ हैं।"

"हमें तो सब लोगों की जितनी हो सके सेवा करनी है। हम लोग तो गाँव के रहनेवाले हैं। उनके पास न तो कोई डाक्टर है और न दवा ही। श्री हरिभाई डाक्टर हैं तो, लेकिन उनके ऊपर ढाई लाख लोगों का जितना हक़ है उससे ज्यादा हक़ हमें क्यों कर हो सकता है? इतना होने पर भी केवल मेरी शरम के खातिर कोई कुछ भी न करे। आपको जो धर्म मालूम हो उसका पालन करो। आप यदि टीका लगाने की इच्छा बतावेंगे और डाक्टर को बुला देने के लिए कहेंगे, तो मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगा। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ। जो मनुष्य टीका लगाने के पक्ष में न हो, तो वह दूसरे प्रयत्नों से मुक्त नहीं हो जाता। दर्द को दूर करने के लिए सब धर्म-प्रयत्नों को अपनाना चाहिए। उन उपायों में से एक उपाय यह है कि शीतला के रोगी को तथा उसकी सेवा-सुश्रुषा करनेवालों को अस्पृश्य बन जाना चाहिए। शीतला का रोग वायु और स्पर्श के ज़रिये खूब फैल सकता है। इस कारण रोगी और उसकी सुश्रुषा करने वाले अलग रहें, यही इष्ट है। जब पहले-पहल यहाँ यह रोग पैदा हुआ, तब मैंने इस नियम का पालन करने का प्रयत्न किया; लेकिन वह व्यर्थ गया। आज उसका मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। उस निष्फलता के बाद मैंने और कोई दूसरा प्रयत्न नहीं किया, उसका भी मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। क्योंकि अब हमने मौत को भयंकर वस्तु मानना बंद कर दिया है, यही नहीं, बल्कि हम तो जन्म और

मृत्यु को एक ही समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस कारण रोगी को अलग रखना सहज-साध्य न था, फिर भी उसे साधने का मैंने कोई महा-प्रयत्न नहीं किया। उसका भी मुझे पश्चात्ताप नहीं है। लेकिन इसमें शंका नहीं कि इस विषय में जितनी सम्हाल हम रख सकें उतना रखना तो धर्म है। इतनी सावधानी तो हम ज़रूर रक्खें कि रोगी के पास कोई सिर्फ़ उसे देखने के लिए न जाय और बच्चों को तो बिलकुल ही नहीं जाने देना चाहिए।"

"आज हम लोगों को सत्याग्रह का पदार्थ-पाठ मिल रहा है। धर्म की मान्यता के कारण हम बलिदान कर रहे हैं। पूर्वोक्त बातें यदि आप समझ गये हैं, तो समझ लेना चाहिए कि आप यह समझ गये कि सत्याग्रह क्या है। जो मृत्यु को अपनी गोदी में ले कर फिरता रहे और सारे संसार के बालकों को अपनी गोदी में रखना चाहता है, सत्य पूछो तो वही इस युद्ध के योग्य है।"

सरदार वल्लभभाई

इतिहास ने वल्लभभाई को बनाया या वल्लभ भाई ने इतिहास को बनाया, कुछ कहते नहीं बनता—"गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" शायद दोनों ने एक दूसरे का निर्माण किया। कैसे—वल्लभ भाई के पिता जवेरभाई गुजराती किसान थे; परन्तु हरियाले वृक्षों, लहराते झरनों और चमकते आसमान से बातें करना छोड़कर वे लग गये सन १८५७ के गदर के काम में। उन दिनों तीन साल तक जवेरभाई का पता न था। वे उन दिनों झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के बुन्देलों के साथ गदर की समाराधना में लगे हुए थे क्या वे बिलकुल नगण्य थे? ना; वे उथल पुथल मचाने में इतने खटपटी थे कि इन्दौर के राजा मल्हारराव होलकर ने उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया था। क्या वे बुद्धि-हीन थे? ना; एक रोज़ क़ैदी जवेरभाई के सामने बैठे-बैठे राजा मल्हारराव शतरंज खेल रहे थे। जब मल्हारराव मुहरों की चौकड़ी चूकने लगे तब सींकचों के छेदों में से निकलकर क़ैदी जवेरभाई की आवाज़ ने अर्थ-गम्भीर वाणी में कहा:—"राजा खोटी चाल मत चल, अपने अमुक मुहरे को अमुक चाल चला।" मल्हारराव क़ैदी की सलाह से शतरंज ही नहीं जीते; उन्होंने ऐसे बुद्धिमान को जेल में रखना ठीक नहीं समझा। जवेरभाई छोड़ दिये गये। पाठक तुम्हीं बताओ, क्या जवेरभाई भारतीय इतिहास का छोटा-सा प्रतिनिधि बनकर और प्रतिनिधि भी सन १८५७ के गदर का बन कर—वल्लभ भाई को जन्म देने न आया होगा? यदि विधाता के लेख पढ़े नहीं जा सकते तो क्या इतिहास के संकेत भी नहीं पढ़े जा सकते?

जवेरभाई के यहाँ पुत्र क्या उत्पन्न हुआ, वल्लभभाई के रूप में एक आफ़त उत्पन्न हो गई। जिस-जिस से जीवन में वल्लभभाई का साबका पड़ा उसने यही बात कही—ऐसा आदमी हमने नहीं देखा! सुनिए—

(१)

आओ महापुरुष !

बचपन से ही सरदार साहसी थे। घर छोड़ने में उन्हें कभी हिचक न होती थी। बड़ोदा में जब वल्लभभाई अंग्रेज़ी पढ़ने गये तब उन्होंने क्लास में संस्कृत छोड़कर गुजराती ली। गुनाह हो गया! कोई नराधम शाला में देव-वाणी छोड़ दे? गुजराती-कक्षा के मास्टर साहब वल्लभभाई से बोले—पधारिए महापुरुष! १३। १४ वर्ष का बालक क्या जवाब देता? चर्चा इस तरह हुई—

"कहाँ से पढ़ते ?" मास्टर ने कहा।

वल्लभभाई ने धैर्य से कह दिया—

"करमसद से।"

उपदेश के अवतार मास्टर बोले—संस्कृत छोड़कर गुजराती ले रहे हो! क्या तुम्हें पता है कि संस्कृत के बिना गुजराती नहीं सोहती।

बालक वल्लभ ने कहा—पर मास्टर जी, यदि हम सब बालक संस्कृत पढ़ते तो फिर, आप किसे पढ़ाते?

उद्दण्ड! क्लास की पिछली बेंच पर दिन भर खड़े रहने की सज़ा हुई।

मास्टरजी का क्रोध यहीं नहीं ठहरा। हुक्म हुआ—वल्लभ, तुम पहाड़े लिखकर लाओ। अंग्रेज़ी की ऊँची क्लास का वल्लभ और गुजराती की पहली क्लास के पहाड़े लिखने की सज़ा!

पर जब शिष्य गुरुजी की बात मानें? तिस पर भी मास्टरजी शिष्य पर पहाड़ों का बोझ बढ़ाते जाते। गुजराती में 'पहाड़े' शब्द को 'पाड़े' कहते हैं। एक दिन गुरुजी ने पूछा—अरे तुम पाड़े करके लाये? मस्त वल्लभभाई ने भय को ज़रा न मान कर कहा—पाड़े लाया तो था; परन्तु स्कूल के दरवाज़े पर उनमें से दो भड़क पड़े, और उनके भागते ही सारे के सारे भाग गये।

मास्टरजी चौंक पड़े और वल्लभ को दण्ड के लिए हेडमास्टर के पास भेज दिया,—उनकी गुस्ताख़ी पर यह सार्टिफिकेट देकर—

मैंने ऐसा लड़का नहीं देखा!—

हेडमास्टर ने वल्लभभाई को मुक्त कर दिया और अध्यापक को बुद्धि-हीन दण्ड देने की मनाही कर दी। हेड मास्टर श्रीमरवण अभी ज़िंदा हैं। आज भी उनका यही मत है कि—

"मैंने ऐसा लड़का नहीं देखा।"

(२)

एक बार बालक वल्लभभाई को कुक्षि में फोड़ा हुआ। गाँवों के ,इलेवालों की दवा! एक ऊँट वैद्यजी ने दवा बताई—गर्म लोहा करके फोड़े में भोंक दो। बालक वल्लभ तैयार हो गया। लोहा गर्म हुआ। फोड़े में भोंकनेवाले ने हाथ में ले लिया। सुकोमल, सुकुमार, बालक के हाथ में उससे उसे भोंकते न बना। वल्लभ झुंझला उठा। बोला—क्या देख रहा है भाई, लोहा ठण्डा हो रहा है? ला, तुझसे नहीं बनता तो मैं भोंक लूँ ग्रामीण दंग हो गये। देख कर कहा—

हमने ऐसा बालक नहीं देखा।

कौन कह सकता है कि निर्भीक पिता और दृढ़-चित्त माता के द्वारा वल्लभ को आग्रह दृढ़ता, और सहन-शक्ति बपौती जागीर में प्राप्त नहीं हुए?

(३)

मैट्रिक की परीक्षा देकर वल्लभभाई विलायत के देवता बनने ललचे—बैरिस्टर बनने को। दस हज़ार रुपये कहाँ से आवें? आख़िर ज़िले की वकालत परीक्षा पास की। रुपये कमाए और विलायत जाने का पासफ़ोर्ट मँगाया। पास-पोर्ट था वी० जे० पटेल के नाम का, और वी० जे० पटेल दोनों भाई कहलाते थे—सरदार का नाम वल्लभभाई जवेरभाई पटेल और असेम्बली के आज के सभापति, सरदार के बड़े भाई का नाम है विट्ठलभाई जवेरभाई पटेल। यानी, दोनों वी० जे० पटेल। वल्लभ भाई के पासपोर्ट पर बड़े भाई ललच पड़े। वल्लभभाई ने चुप-चाप पासपोर्ट बड़े भाई के सिपुर्द कर दिया और ख़ुद तीन साल के बाद जाने और सारे घर का बोझ सँभालने के लिए राज़ी हो गये।

(४)

तीन साल पश्चात् वल्लभभाई बड़ी उम्र में विलायत गये। जहाँ वे रहते थे वहाँ से उनकी शाला 'मिडिल टेम्पल' ११ मील थी। वे रोज़ वहाँ पैदल जाते और पैदल लौटते। 'टेम्पल' के पुस्तकालय से वे उस समय उठते जब दरबान आकर उन्हें याद दिलाता कि—अब पढ़ना बन्द कीजिए; सब लोग गये; पुस्तकालय बन्द होता है। अधेड़ उम्र के वल्लभभाई का पढ़ने का क्रम १७ घन्टे रोज़ तक हो जाता था। वे कहीं भी रोटी और चाय लेकर खा लेते और दिन भर पढ़ते। आख़िरी परीक्षा का दिन आया। बैरिस्टरी में, समस्त विद्यार्थियों में उनका नम्बर पहली श्रेणी में पहला आया। इनके उत्तर-पत्रों को देखकर एक परीक्षक ने

पास बुलाकर इन्हें उस ज़माने के बम्बई-चीफ़-जस्टिस, मिस्टर स्काट के नाम पर एक पत्र लिख दिया था, जिसका आशय था—ऐसे व्यक्ति को न्याय-विभाग की ऊँची जगह दी जानी चाहिए। किन्तु क्या वल्लभ भाई न्याय-विभाग की ऊँची नौकरी करते ? फिर उनके शरीर में रहनेवाला उनके गदर में शामिल होनेवाले, किन्तु भगवद्-भक्त पिता-श्री का रक्त क्या करता ?

❀ ✻ ❀

वल्लभभाई में लोकमान्यत्व अधिक है।

कितने ही ऐसे देश-भक्त, भारत-माता का भार उतार रहे हैं जो 'मनसा-वाचा-कर्मणा' लोकमान्यत्व, की परिभाषा "गांधी-विरोध" करते नहीं हिचकते, किन्तु लोकमान्य और महात्माजी के एक आदर्श में विरोध नहीं; उनके पथ में विरोध है; और वह है, लोकमान्य के 'शठं प्रति शाठ्यं' और महात्माजी के "शठं प्रति सत्यं" में। वल्लभभाई में लोकमान्य का किन बातों का अभाव है ? वल्लभभाई के पास लोकमान्य की सी अगाध विद्वत्ता नहीं, उद्दण्ड शास्त्र-ज्ञान नहीं, किन्तु राष्ट्र के लिए परिश्रम करने और साहस को अतिरेक तक ले जाने की वल्लभभाई की तैयारी तो लोगों को लोकमान्य का ही स्मरण कराती है। लोकमान्य को अपनी महत्ता का स्मरण नहीं रहता था, वे अपने विषय में बहुत ही थोड़ा बोलते या लिखते थे—वल्लभभाई का इस विषय का मौन-व्रत भी अनोखा है। लोकमान्य जैसे ऊपर से घमण्डी, रूखे, और आकर्षण-रहित दीखते, अन्तर से अत्यन्त निरभिमान, सरल और कोमल थे—वल्लभभाई में भी यही गुण ओत-प्रोत भरे हैं। लोकमान्य जैसे ऊपर से अटपटे और अभेद्य, और हृदय में बात छुपाकर रख छोड़ने वाले दिखते, उतने ही बेसीधे, खुले, और प्रत्येक देशभाई के पहुँचने योग्य मन रखनेवाले थे। महात्माजी में विश्व-विमोहिनी सरलता निवास करती है; वल्लभ भाई में दिमाग को हिलानेवाली वीरता।

एक बार वकीलों में सत्याग्रहाश्रम की चर्चा करने महात्मा गांधी अहमदाबाद के वकीलों के गुजरात-क्लब में गये। उन दिनों वल्लभभाई क्या करते थे, कैसे रहते थे ? उन्हींके शब्दों में सुनिए;—"भाई मोतीलाल का यह कहना सत्य है कि मैं दुर्गा-पूजा के दिन सैल-सपाटों और आनन्द-विनोदों में गुज़ारता था। उन दिनों मैं यह मानता था कि इस अभागे देश के लोगों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों का अनुकरण करें। मैं जो-कुछ शालाओं में पढ़ता था उससे मेरा मन उन दिनों एक ही परिणाम निकाल सका था—हमारे देश-वासी हलके और नासमझ हैं, और हम पर राज्य करनेवाले विदेशी हमारे हित-चिंतक, और उद्धार-कर्त्ता और उच्च जीवन के लोग हैं। हमारे देश-वासी तो केवल गुलाम ही रहने योग्य हैं। इस तालीम का ज़हर आज सारे देश को पिलाया जा रहा है। मैं तो बच-पन से ही इस बात के लिए बेचैन था कि जो लोग सात हज़ार मील दूर से हमारे देश में राज्य करने आये थे, उनके देश को जाकर देखूँ।" किन्तु यह गुलामी का ज़हर तो उन्हीं विद्यार्थियों और व्यक्तियों पर टिक सकता है; जो अपने देश और पूर्व-गौरव को सर्वथा भूल गये हैं; और जिनके हाथ-पाँव, जिनका मन और जिनकी स्फूर्ति, उन्हें गुलामी के वोझीले पत्थर के नीचे से ऊपर उठाकर अपना पुरुषार्थ साबित नहीं करने देती। शाला की पुस्तकों-द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पिलाया हुआ अंग्रेज़-प्रशंसा और भारत-निन्दा के ज़हर का असर वल्लभभाई जैसी वीर आत्मा में कैसे टिकता ?

वल्लभभाई स्वराज्य से कम किसी भी सरकारी सुधार के समझने में असमर्थ रहते हैं। वे किसानों की समझ में कहते हैं—सरकार-द्वारा प्राप्त हुए अधिकार तो गमले में लगाये हुए झाड़ हैं। यदि बड़े वृक्ष लगाना हो तो वे तो बाहर की खुली ज़मीन में ही लगाने पड़ेंगे। गमलों के वृक्ष सुन्दर भले हों, परन्तु वे नाज़ुक और अधिक दिनों न टिकने वाले होते हैं। वल्लभभाई रबड़ की तरह मनमाना तननेवाला 'सरकार' शब्द का भी अर्थ नहीं समझ पाते। उनके शब्द लीजिए—सरकार याने कौन ? कलेक्टर ? तहसीलदार ? पुलिस-इन्सपेक्टर ? या गाँव का पटवारी ? इन सब से मिलकर तो सरकार बनी है; उसे ढूंढें कहाँ जाकर ? सर-कार जब किसी व्यक्ति का नाम हो ? हम सरकार मानें किसे ? हम तो अपनी ही मूर्खता से किसी एक को सरकार

मानने लगते हैं। तुमने चोरी नहीं की, डाका नहीं डाला, सिर नहीं फोड़े, फिर डरने की ज़रूरत ?

जिन दिनों वल्लभभाई बारडोली-सत्याग्रह चला रहे थे, उन दिनों अपने भाषण में वह ऐसी भाषा,ऐसी उपमाओं का प्रयोग करते थे, जो सूचित करती थीं कि वह व्यक्ति किसानों के हृदय-सिंहासन का बिना मुकुट का राजा बन चुका है। ज़रा उनकी भाषा के नमूने देखिए:—सरकार के अत्याचार पर लोगों को शान्त रखने की बात कहते हुए वह कहते—"शत्रु का लोहा गरम भले हो जाय, मगर हमारा हथौड़ा तो ठण्डा रह कर ही काम दे सकता है।" लोगों को कष्ट सहन करने के लिए तैयार करते हुए वह कहते—"किसान होकर यह बात भूल मत जाना कि वैशाख-जेठ की भयंकर गर्मी के बिना आषाढ़-श्रावण की वर्षा नहीं होने वाली है।" किसान को भारतवर्ष में वल्लभभाई क्या समझते हैं, उसका उदाहरण लीजिए—"किसी को यह मत कहने देना कि बेचारे बारडोली के किसानों का क्या होगा ? सच्चा किसान मौत से नहीं डरता; बरबादी से भी नहीं डरता। जब ऐसे किसान देश में होंगे, तभी देश का उद्धार होगा। जिन दिनों हम अपनी नज़र से देख रहे हैं कि जगत के राज-काज में किसान ख़ास हिस्सा ले रहे हैं, उन दिनों भारत के किसान को तो इन्साफ़ भी नसीब नहीं होता। यदि किसान इतना गरीब रहे तो फिर यदि वह संसार ही में न रहे तो क्या बुरा है ?"

किसान और उसका सहायक मज़दूर, ये जगत की महान् शक्तियाँ हैं। ये किसी शासन की ठोकर क्यों सहन करें ? किसानों को बलि के लिए आमंत्रित करते हुए वल्लभभाई के ये शब्द कैसे मज़े के हैं—'मरने-मारने की तालीम सिपाहियों को देने में सरकार को छै महीने लगते हैं। हमें तो सिर्फ़ मरना ही सीखना है; उसमें तीन महीने भी क्यों लगने चाहिएँ ?' सरकारी तालीम के ज़हर का ज़िक्र ऊपर हो चुका है। इसी तरह वल्लभभाई ने साहित्यिक या विद्वान की भी परिभाषा बनाई है—"विद्वान वही जो सादी भाषा को अटपटी और कुढंगी बना दे।" प्रजा के जीवन में मिलजानेवाले लोगों के लिए यह परिभाषा मूल-मन्त्र है। स्वराज्य स्थापित करने के विषय में वल्लभभाई का विश्वास उनके विद्यार्थियों को दिये गये एक भाषण के इस कथन में देखिए—"अरे, क्या साँप को अपनी काँचली उतारकर फेंकने में दुःख होता है ? या कोई मेहनत पड़ती है ? इसी तरह हम भी एक दिन पराये शासन की काँचली उतार देंगे। उसमें श्रम और कष्ट काहे का ?"

महात्माजी और वल्लभभाई

(विभिन्नतायें)

सत्य की उपासना में महात्माजी अपने जीवन की छोटी से छोटी भी बात कह डालते हैं, किन्तु वल्लभभाई अपने जीवन के प्रति मौन रहते हैं। १९२०-२१ में मौलाना शौकतअली ने एक बार कहा था—वल्लभभाई बर्फ़ से ढका हुआ ज्वालामुखी है। शत्रु और मित्र कोई भी उसके निश्चित कार्यक्रम को क्रियात्मक होने के पहले नहीं जान सकते। महात्माजी छोटे से छोटे आदमी के कुतूहलों तक का जवाब देते हैं। वल्लभभाई से सवाल पूछने का साहस ही बहुत कम को हो पाता है। उनके विषय में तो केवल यही कहा जा सकता है कि—वह जवाब सदैव अपने विरोधी को ही देते हैं। महात्माजी जीवन की आत्म-कथा लिख सकते हैं, किन्तु वल्लभभाई आत्म-चर्चा कभी करते ही नहीं। महात्माजी का संयम और उनका तप महान् प्रयत्नों की सिद्धि है। वीर वल्लभभाई का संन्यास एक दिन प्रातःकाल उठ कर किया हुआ किन्तु सदैव टिकनेवाला सिपाही का प्रण है। महात्माजी साधक, सुधारक और शिक्षक हैं। वह जगत की वृत्ति को आत्म-मय बनाने के प्रयत्नशील और निस्सीम आत्म-शुद्धि के साधक तथा सुधारों में अधीरता के पथ से बचकर रहनेवाले विश्व के विरले शिक्षक हैं। वल्लभभाई, न सुधारक हैं, न साधक हैं, न शिक्षक हैं। वह योद्धा हैं, सेनानी हैं, सिपहसालार हैं। शिक्षक के नाते महात्माजी जीवन के प्रत्येक मिनट को अपना हिसाब चुकाते हैं और समय के व्यर्थ ख़र्च को पाप मानते हैं। वल्लभभाई घण्टे के घण्टे अपने सिपाहियों से बातें करते-करते बिता देते हैं। मानों इन बातों में वल्लभभाई अपनी ख़ास वस्तु को गिरफ़्तार कर लेते हैं। जिस समय वह बातों में खिलखिलाकर हँसते हैं, उस समय उनकी आँखें किसी संग्राम के मर्म की

रचना करती हुई सी दीख पड़ती है। गांधीजी को अपने कर्तव्य पर ध्यान रखना पड़ता है कि उनका कहीं गलत अनुकरण न हो। वल्लभभाई केवल अपने झण्डे के नीचे आनेवालों की गिनती लगाया करते हैं। महात्माजी विश्वोद्धार के लिए आश्रम की स्थापना करते हैं और अपने शिष्यों के अपराधों तक के लिए स्वयं उपवास और प्रायश्चित्त तक करते हैं। वल्लभभाई अपनी सेना के किसी सिपाही के खराब निकलने पर उसे रुख़सत दे देते हैं और निश्चित भाव से दूसरा सिपाही ढूँढ लेते हैं। महात्माजी बालक, मूर्ख और शत्रु से भी गुण सीखने के लिए प्रस्तुत हैं; किन्तु वल्लभभाई उक्त तीनों का मूल्य विश्व के बाज़ार-दर से अधिक नहीं कूतते। ग़रज़ यह कि यदि वल्लभभाई सिपहसालार से कम कुछ नहीं हैं तो वह सिपहसालार से अधिक भी कुछ नहीं हैं, न वह अधिक होना ही चाहते हैं। महात्माजी की महान् क्षमा में आत्म-निरीक्षण और आत्म-चिंतन होना ही चाहिए। वल्लभभाई की क्षमा वीरोचित क्षमा है; उसमें अपने योद्धा की सौ भूलें माफ़ हैं—यदि वे बहादुरी के पथ में न की गई हों। वल्लभभाई के शब्दों ही से यदि हम वल्लभभाई को बाँधें तो इस तरह:—"मुझे लड़ना आता है। लड़ते-लड़ते जो संकट और जो उलझन पड़ जाय उसे मैं तड़ाक से सुलझा लूँगा। ऐसी उलझनें सुलझाने की सूझ मुझे कहाँ से मिलती है, मैं नहीं जानता। परन्तु, समझौते की ढीली चर्चाओं में मेरा जी नहीं लगता। ऐसी अकर्मण्य चर्चाओं में कितनी ही बार तो मैं गड़बड़ में पड़ जाता हूँ।" ग़रज़ यह कि वल्लभभाई सिपहसालार हैं। उन्होंने गांधीजी को नेता स्वीकृत कर लिया और जिन्हें महात्माजी के जेल से छूटने के बाद की आल-इण्डिया कांग्रेस-कमिटी की अहमदाबाद की बैठक का स्मरण होगा वे जानते होंगे कि वल्लभभाई बिना कोई भाषण किये महात्माजी के प्रत्येक प्रस्ताव का समर्थन करते चले गये। वल्लभभाई का मौन ग़ज़ब का है। परिषदों और कांग्रेस में नेतृत्व और भाषणों की कुश्तें चाने में लोगों को आनन्द मालूम होता है। वल्लभभाई बोलने से घबराते हैं; वह क्रिया-रहित वाणी को अपनी तौहीन समझते हैं और वाणी-रहित क्रिया को अपने अनन्त त्याग का शृंगार। बारडोली-संग्राम में सरकार ने वल्लभभाई की संगठन-शक्ति के सामने मस्तक झुकाया। बारडोली थी, या स्वतंत्र भारत था। बिना सरदार की मर्ज़ी के सवारी, रसद, और किसी भी वस्तु का सरकारी अधिकारी को मिलना असंभव था। वल्लभभाई की व्यूह-रचना को देखकर बम्बई के अंग्रेज़ सम्पादित 'टाइम्स' ने उन्हें लेनिन की—रूस में ज़ार के तख़्त को उलट कर किसान-राज्य स्थापित करने वाले लेनिन की—उपमा दी थी।

इन पंक्तियों का लेखक वल्लभभाई से नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह में परिचित हुआ। देश-भक्त जमनालाल-जी बजाज तथा उनके साथ गिरफ्तार होनेवाले २५० व्यक्तियों के बाद, जिनमें अनेक प्रान्त के नेता और स्वयं-सेवक थे, इन पंक्तियों के लेखक ने सत्याग्रह का काम अपने हाथों में लिया। उन दिनों देश के कितने ही वज़नदार मित्र आये और चले गये; किन्तु जिन दिनों वल्लभभाई उस संग्राम में आये और उन्होंने जिस ढंग से काम शुरू किया, उससे स्पष्ट मालूम होता था कि उन्हें शान्त-सत्याग्रह की व्यूह-रचना के कौशल की सिद्धि प्राप्त है। वल्लभभाई खेड़ा, नागपुर, बोरसद और बारडोली के सत्याग्रहों को सफलता पूर्वक लड़ चुके हैं। आज वह गिरफ्तार कर लिये गये हैं। इस गिरफ्तारी पर वल्लभभाई के ये शब्द याद आते हैं—(१) "सरकार यदि यह समझती हो कि मेरे पंख काट देने से मैं बिना पंखोंवाला हो जाऊँगा तो मैं यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि वे तो वर्षा की घास की तरह नित्य नये उगते आनेवाले हैं। (२) जंगल में रहने से डर क्या? जंगल में तो सिंह और बाघ रहते हैं। आसमान के साथ बातें करते हुए जीवन को जोखिम के ताड़ पर चढ़ानेवाले को सरकार का कौनसा भय है? (३) सरकार में रावण की शक्ति भले हो, किन्तु यह तो उसे नहीं भूलना चाहिए कि रावण की वही महान् सत्ता १२ बरस तक सखहीना अबला सीता तक को वश में न कर सकी। हाँ उस ज़माने में तो रावण ही ने बेमौत प्राण दिये। बारडोली में तो सीता नहीं है, वहाँ तो ८० हज़ार किसानों की प्रतिज्ञा तोड़ने का काम है।"

वल्लभभाई के जीवन में एकरस होने का जिन्हें

लालच हो उनके लिए इस लेख को बढ़ाना बेकार है। उन्हें तो महात्माजी के सन्देश-वाहक—लाहसराय के पास महात्माजी का पत्र के जाने वाले—श्री रेनाल्ड के पंडित मोतीलालजी नेहरू से कहे हुए शब्दों ही से सबक़ सीखना चाहिए। महात्माजी का पत्र देकर देहली से चलते हुए श्री रेनाल्ड ने कहा था—"पण्डितजी, मैं, आप और पं० जवाहरलालजी, अब तो वल्लभभाई के साथ किसी जेल ही में मिलेंगे'।

('कर्मवीर')

गंदा साहित्य

(महात्मा गान्धी)

कोई देश और कोई भाषा गंदे साहित्य से मुक्त नहीं है। जबतक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनिया में रहेंगे तबतक गन्दा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे। लेकिन जब ऐसे साहित्य का प्रचार प्रतिष्ठित माने जानेवाले अखबारों के द्वारा होता है, और उसका प्रचार कला के नाम से या सेवा के नाम से किया जाता है, तब वह भयंकर स्वरूप धारण करता है। इस प्रकार का गन्दा साहित्य मुझे मारवाड़ी-समाज की तरफ़ से मिला है और प्रतिष्ठित मारवाड़ी लोगों की ओर से प्रकाशित एक वक्तव्य की प्रति भी मुझे भेजी गई है। इस वक्तव्य में मारवाड़ी-समाज को जागृत किया गया है और बताया गया है कि ऐसे साहित्य का, जो कला के नाम से परन्तु केवल धन कमाने के लिए प्रकट होता है, समाज को बहिष्कार करना चाहिए। जिस पत्र को विशेषतया ध्यान में रखकर यह वक्तव्य प्रकट किया गया है वह 'चाँद' नामक मासिक का "मारवाड़ी अंक" है। मैं उसे पूरा पढ़ नहीं सकता और न पढ़ने की इच्छा ही है, लेकिन जो कुछ मैं पढ़ सका हूँ वह इतना गन्दा और बीभत्स है कि कोई भी मनुष्य, जिसके दिल में विवेक है या समाज के हित का ज़रा भी ख़याल है, कभी ऐसी बातें प्रकाशित नहीं करेगा। सुधार के नाम से ऐसी चीज़ों का प्रकट करना अनावश्यक और हानिकारक है। 'चाँद' के समान गन्दे गीत गानेवाले पत्रों को लोग नहीं पढ़ा करते। पढ़नेवाले दो प्रकार के ही हो सकते हैं। एक पढ़े-लिखे कामुक लोग, जो अपनी वासना को किसी न किसी प्रकार तृप्त करना चाहते हैं; दूसरे निर्दोष बुद्धि, जो आज तक व्यभिचार में फँसे नहीं हैं, परन्तु जिनकी बुद्धि परिपक्व भी नहीं है, जो लालच मे पड़कर विकार-वश हो सकते हैं। ऐसे लोगों के लिए गन्दा साहित्य घातक है। यही सब लोगों का अनुभव भी है। मुझे उम्मीद है कि प्रतिष्ठित मारवाड़ी सज्जनों के वक्तव्य का असर 'चाँद' के सम्पादक इत्यादि पर होगा, वे अपने इस अंक को वापस ले लेंगे और दुबारा ऐसा गन्दा साहित्य प्रकट न करने की कृपा करेंगे। इससे भी बढ़ कर कर्त्तव्य तो इस बारे में मारवाड़ी-समाज का और सर्वसाधारण-समाज का है। वह ऐसा गन्दा साहित्य न कभी ख़रीदे और न पढ़े ही। हिन्दी-पत्रों के सम्पादकों के सिर पर दोहरा बोझ है। क्योंकि हिन्दी को हम राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं और इसलिए इस भाषा की रक्षा करने का विशेष धर्म उन्हें प्राप्त होता है। मेरे जैसा राष्ट्र-भाषा का पुजारी राष्ट्र-भाषा में उत्कृष्ट विचारों को प्रकट करनेवाली पुस्तकों की ही प्रतीक्षा करेगा। इसलिए यदि सम्भव हो तो हिन्दी-साहित्य

सम्मेलन को एक भाषा-समिति नियुक्त करनी चाहिए, जिसका धर्म प्रत्येक नई पुस्तक की भाषा, विचार आदि की दृष्टि से परीक्षा करना हो। इस परीक्षा में जो पुस्तकें सर्वोत्तम मानी जायँ और जो गन्दी ठहरें, समिति उनकी एक फ़ेहरिस्त तैयार करे और अच्छी पुस्तकों का प्रचार तथा गन्दी पुस्तकों का बहिष्कार करने के लिए जनता को प्रेरित करे। ऐसी समिति तभी सफल हो सकती है, जब उसके सदस्य साहित्य-ज्ञान और साहित्य-सेवा के लिए ही अपने आपको अर्पित कर दें।

('हिन्दी नवजीवन')

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा— आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

झंकार

रचयिता—श्री मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)। सजिल्द। पृष्ठ १७४। मूल्य ॥=)।

साहित्य-सदन चिरगाँव ने साहित्य-मणि-माला नाम से एक पुस्तक-माला प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है, जिसके विषय में प्रकाशक का कहना है, 'इस माला में लब्धप्रतिष्ठ देशी तथा विदेशी लेखकों की उच्च कोटि की रचनायें तथा जीवन-चरित्र, इतिहास, विज्ञान, ललित-कला आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ गुम्फित किये जायँगे।' 'झंकार' इसी माला की प्रथम पुस्तक है। इसमें श्री मैथिलीशरण गुप्त के चौदह-पन्द्रह वर्ष पूर्व से अबतक के ६३ गीतों का संग्रह है।

कला कला के लिए, आत्म-निवेदन, आत्म-प्रकाशन के लिए वाले सिद्धांत के अनुसार गुप्तजी की यह पुस्तक उनकी सारी प्राचीन पुस्तकों से सुन्दर है। यद्यपि भारत-भारती ने उपयोगिता के कारण, गुलाम भारत को अपनी अवस्था का ज्ञान कराने के कारण, गुप्तजी को हिन्दी का सबसे अधिक लोक-प्रिय कवि बनाया है; परन्तु जो कविता मानव-हृदय का सम्बन्ध विश्व-हृदय से कराती है, वह झंकार में ही मिलती है। जिसे आजकल के लोग छायावाद कहते हैं, और जब यह नाम प्रचलित हो गया है तो उसका बहिष्कार करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, उस छायावाद के दर्शन भी इस पुस्तक में मिलते हैं। यद्यपि गुप्तजी अपने आपको छायावादी कहलाने से इन्कार करेंगे, परन्तु इस लहर से वह बच नहीं सके। जिसे हम असीम, अनन्त, और प्रियतम कहते हैं, उसे गुप्तजी ने राम, प्रभु और प्यारे कहकर अपना लिया है। मानव-हृदय के अन्दर एक ही प्यास है, एक ही अतृप्ति है, एक ही कामना है, एक ही मिलन की, लय हो जाने की अथवा मुक्ति की अभिलाषा है। जो सच्ची कवितायें होती हैं, उनमें हरएक आदमी को अपने ही हृदय की वेदना, तरंगें और भावनायें मिलती हैं। संसार के बाह्य में भेद हो सकता है, परन्तु अंतरंग तो एक ही है। इसीलिए जो कवितायें हृदय की अनुभूति का वर्णन हैं, वे

सारे संसार की सम्पत्ति हैं। 'झंकार' की कई कवितायें वास्तव में ऐसी ही हैं। कोई भी रसिक, कला-प्रेमी उनको दाद दे सकता है। भारत-भारती जैसी पुस्तक का मूल्य भारत की गुलामी के साथ समाप्त हो जायगा, परन्तु 'झंकार' स्थायी साहित्य में स्थान पावेगी।

गुप्तजी की भाषा की सरलता पर मुग्ध होना ही पड़ता है। यह भाषा कभी-कभी बहुत ही सरल हो जाती है।

"तेरे घर के द्वार बहुत हैं,
किसमें होकर आऊँ मैं ?
सब द्वारों पर भीड़ मची है,
कैसे भीतर जाऊँ मैं ?

× × ×

'प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं ?
जब इस जनाकीर्ण जगती में,
एकाकी रह जाते हैं।
जबतक स्वजन संग देते हैं,
हम अपनी नैया खेते हैं
तबतक हम-तुम उभय परस्पर
नहीं कभी सुध लेते हैं।"

इसी प्रकार सारी पुस्तक में सरलता और सरसता के जगह-जगह दर्शन होते हैं। हाँ, कहीं तुक मिलाने के लिए भूषण के जैसे कटकटाते शब्दों का प्रयोग भी किया है, जो खड़ी बोली का एक खास दोष बतलाया जाता है। सरलता के साथ मिठास का समावेश बहुत-सी जगह है भी, बहुत-सी जगह नहीं भी है। 'बिललाया, अवगाहा, हेला, टटके, हटके, पटके, हिण्डोल, अडोल' जैसे शब्द कई जगह मिलते हैं। अहा, रे रे, बस, हा हा आदि की भी फिजूलखर्ची मिलती है।

अद्वैतवाद, पुनर्जन्म, माया, ज्ञान, भक्ति, जीवन, संसार आदि पर नये ढंग से, सरसता के साथ, सारी पुस्तक में, विचार प्रदर्शित किये गये हैं हृदय की सुकुमारता के दर्शन भी कुछ कविताओं में होते हैं; परन्तु ज्ञान और अध्यात्मवाद की शुष्कता भी कहीं-कहीं आ गई है, जिसे रोकना संभव भी नहीं था। फिर भी गुप्तजी ने केवल क्लिष्ट शब्दों का माया-जाल ही रचने का प्रयत्न नहीं किया है।

कविताओं का क्रम यदि कविता लिखे जाने के काल के अनुसार रक्खा हो तब तो ठीक है, नहीं तो हमें अन्त की कविताओं का पहले रहना उचित मालूम होता। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं, भावों की प्रौढ़ता बढ़ती जाती है। प्रभु की प्राप्ति, जीवन का अस्तित्व, हाट, खेल, इन्द्रजाल, स्वागत, परिचय, आय का उपयोग, आत्म-समर्पण, क्षुद्र-भावना, खोज, आँख-मिचौनी, वञ्चिता और असावधान कवितायें हमें अधिक पसन्द आईं। शुद्ध कला का यह सुन्दर नमूना है। इस पुस्तक से गुप्तजी के प्रति हिन्दी-प्रेमियों का प्रेम अधिक बढ़ेगा। पुस्तक संग्रहणीय है।

छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। जिल्द संतोषजनक है।

अमर शहीद यतीन्द्र

लेखक—श्री मंगलदेव शर्मा, । प्रकाशक—राष्ट्र-भारती-मण्डल, प्रयाग । पृष्ठ १०८ । मूल्य ।|=) ।

'अमर शहीद यतीन्द्र' पुस्तक में अपूर्व त्यागी, वीर, साहसी और पागल देश-भक्त यतीन्द्र की सम्पूर्ण जीवनी का वर्णन है। आयर्लैंड के मेक्स्विनी की तरह भारत में यतीन्द्र का नाम अमर हो गया है। ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो ऐसे पागल युवकों का तिरस्कार करते हैं; परन्तु इस अमर बलिदान ने, इस मोमबत्ती के समान तिल-तिल जलने ने, उसके हृदय की नई ही झलक दिखाई है, जिसके आगे बरबस सिर झुक जाता है।

लेखक ने इस वीर के चरित्र का जन्म-काल से लेकर आजतक उज्ज्वल भाषा में वर्णन किया है। समाचार-पत्रों में प्रकाशित वर्णन ही यद्यपि लेखक के आधार हैं, फिर भी उसे अच्छे रूप में, क्रम-बद्ध उपस्थित किया गया है। पुस्तक युवकों के हृदय में उत्साह उत्पन्न करनेवाली है। भगतसिंह और दत्त के भी संक्षिप्त चरित्र पुस्तक में हैं। पुस्तक देश-भक्तों और युवकों के काम की है।

इस समय यतीन्द्र पर जो-कुछ लिखा जा सकता था, लेखक ने लिखा है, इसलिए वे बधाई के पात्र हैं।

माया

सम्पादक—श्री क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफी और श्री विजय वर्मा। प्रकाशक—माया-कार्यालय, ३४ ब्राजेटाउन, इलाहाबाद। वा० मू० ५) ६०

इधर दो मास से इलाहाबाद से एक नई मासिक पत्रिका 'माया' प्रकाशित होने लगी है। इसका अपना अलग क्षेत्र है। यह पाठकों का मनोरञ्जन और हृदय-सिञ्चन केवल कहानी सुनाकर करती है। वैसे तो आजकल बूढ़ी दादी 'सरस्वती' भी कहानियों से भरी रहती है और उधर प्रेमचन्द के प्रेस में 'हंस' फड़फड़ा रहा है, फिर भी हिन्दी में इस समय तो केवल कहानियाँ ही कहने वाली यह नई छोकरी अपनी माया फैलाने के लिए निर्द्वन्द्व हैं, स्वतंत्र है।

हमारे सामने 'माया' का दूसरा अंक है। इसमें मान के ठेकेदार, पगली, दिवाकर, कोलों के प्रदेश में, भूल-सुधार, हरि-इच्छा, कर्मयोगी का प्रेम, दिहाती दुआ, संघर्ष, और मंदिर की पुजारिन ये दस मौलिक, जीवन-मृत्यु और शर्त दो अनुवादित कहानियाँ हैं। अन्त में अध्या० रामकुमार वर्मा एम० ए० के कहानी-कला' लेख में गल्प-लेखकों को कहानियाँ लिखने की कला और मर्म स्पष्ट शब्दों में समझाया है।

मौलिक रचनाओं में श्री जयशंकरप्रसाद की 'पगली' सर्व-श्रेष्ठ है। कहानी और गद्य-काव्य के बीच यह एक अनोखी ही चीज़ है। हृदय को छूनेवाली, इससे बढ़कर इस अंक में कोई कहानी नहीं। कहानी पढ़कर मालूम पड़ता है, रोहणी भी हम ही हैं, जीवन भी हम ही हैं। रोहणी का पागलपन हमारे भी हृदय में भरा हुआ है और जीवन की भाँति किसी का जीवन नष्ट करने की प्रवृत्ति भी जैसे हमारे ही हृदय का अपराध है। हृदय की भावना का वर्णन बहुत ही सुन्दर और हृदय को आकुल कर देनेवाले ढंग पर हुआ है। दुनिया में ऐसे आलोचकों की कमी नहीं, जो रोहिणी की निर्लज्जता को अस्वाभाविक कह दे सकते हैं; परन्तु, हृदय तो प्रायः ऐसा ही पागल और निर्लज्ज हो जाया करता है। हृदय के ऊपर यदि पहाड़ रखकर हम उसे उड़ने से रोके रहें, तो वही अस्वाभाविक व्यापार है। संयमहीनता बुरी वस्तु है, और उसकी रोक शिष्ट समाज सदा करता है; परन्तु, 'बर जोरी बसे हो नयनवा में' यह गीत किसी के रोके कभी नहीं रुका है? जो हृदय केवल एक के चरणों से बालक की तरह, पागल की तरह लिपट जाता है, वह किस संयम से कम है? 'माया' की आलोचना करते-करते मैं अधिक बहक गया, वास्तव में यह बहका देनेवाली कहानी है। इसका मर्म तो हृदयवाले ही समझेंगे। 'डीठ बिसारे बिसरत नाहीं' वाला गीत हृदय में फिर-फिर गूंज उठता है। वास्तव में श्री जयशंकरप्रसाद की अनुभूति बहुत गहरी है।

श्री कृष्णानन्द गुप्त की कहानी 'कोलों के प्रदेश में' भी हृदय का सौन्दर्य दिखानेवाली कहानी है। प्रेम और सौन्दर्य गँवार कोलों से लेकर विद्वानों तक में एक ही समान मौजूद है। परन्तु हृदय के सौन्दर्य की हत्या करनेवाले दोनों ही समाज में हैं। ऐसी अनेक 'मूँगा' सभी जगह अतल-जल में डूबती पाई जाती हैं। हृदय को हृदय नहीं मिलता, धन ने अपनी क़ीमत बहुत बढ़ा रक्खी है। जीवन का साथी चुनने का काम भी माता-पिताओं ने ले रक्खा है, जो अपने 'बोंगा' का हृदय नहीं समझते। और 'बोंगा' भी कभी-कभी बाहरी सौन्दर्य को आन्तरिक सौन्दर्य से बढ़कर मान लेता है। कला की दृष्टि से कहानी सुन्दर है। श्री शंभुदयाल सक्सेना की 'भूल-सुधार' भी जीवन के इसी पर्दे को उठाती है। कई बार देखा है, कई घरों में 'चंचल' किसी युवक का अपनी बड़ी बहन से 'जीजाजी' कहकर परिचय देती है, और फिर बड़ी बहन को कहना पड़ता है कि "जीजा कैसे होते हैं? ख़बरदार, अब कभी इस तरह मत कहना।" कितनी जल्दी पासा बदल जाता है, यह बड़ा अन्याय है। दहेज़ की प्रथा तथा दूसरी कई ऐसी प्रथायें हैं, जो बीच में ही 'अपने' को खो देने को विवश करती हैं।

दिवाकर, कर्मयोगी का प्रेम, संघर्ष आदि कहानियाँ सामयिकता की छाप लिये हुए हैं। पहली दो कहानियों का मूल्य वर्तमान राजनीति तक ही है।

'मान के ठेकेदार' अमीरी और ग़रीबी का भेद बहुत ठीक ढंग से बताती है। 'दिहाती की दुआ' भी ग़रीबी के साथ पुलिस आदि राजकर्मचारियों का ग़रीबों के प्रति अन्याय का नग्न चित्र खींचती है।

कविताओं में कोई भी ऐसी नहीं, जिसे पढ़कर संतोष

हो। या तो कवितायें दी ही न जायें, या उत्कृष्ट कला के नमूने कुछ तो हों।

पत्रिका जितनी पढ़ी उसमें अश्लीलता नहीं पाई। संक्षेप में 'माया' संतोष-जनक है। हम उसकी उन्नति चाहते हैं।

'प्रेमी'

खादी-जीवन

यह एक छोटा-सा मासिक पत्र है, जो ग्वालियर-राज्य खादी-संघ उज्जैन से श्री शिवशंकर रावल के सम्पादकत्व में मध्यभारत में 'खादी-जीवन' लाने के लिए पिछले ५ मास से प्रकाशित होता है। मैं केवल उसी साप्ताहिक या मासिक पत्र के जीवन को आवश्यक और सार्थक मानता हूँ, जिसका एक विशेष उद्देश हो, निश्चित कार्य-क्रम हो, और जिसके संपादक और कार्यकर्ता उसकी सिद्धि के लिए काम भी करते हों, महज़ लेख लिखने में अपने कर्तव्य की इति-श्री न समझते हों। मुझे यह देख कर खुशी होती है कि 'खादी-जीवन,' उसके प्रवर्तक और संपादक इस कसौटी पर बहुत-कुछ उतर जाते हैं। 'खादी-जीवन' में स्थानिक खादी-प्रगति के अलावा खादी-संबन्धी विविध जानकारी रहती है। 'खादी-जीवन' की खादी केवल सूत का कपड़ा नहीं बल्कि वर्तमान जीवन-समस्या का एक हल है। पृष्ठ ६, वार्षिक मूल्य १) है। ५०० ग्राहक होजाने पर ८ पृष्ठ निकलने लगेंगे। राजस्थान के प्रत्येक खादी-प्रेमी इसे अपने घर में रख के लाभ उठा सकते हैं।

ह० उ०

लोकमत

राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक। रायल-साइज़ के १२ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य २०), एक प्रति का -) आ०। सम्पादक—पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र, बी० ए०, एल० एल० बी०। प्रकाशन-स्थान—जबलपुर, मध्यप्रदेश।

हिन्दी में दैनिक पत्र इने-गिने हैं—जो हैं भी, उनके संचलन-क्षेत्र प्रायः बहुत परिमित हैं। इसमें सन्देह नहीं, विचारों और नैतिकता की दृष्टि से आज भी एकाध हिन्दी-पत्र प्रायः अंग्रेज़ी अख़बारों से बढ़े हुए हैं; लेकिन अख़बार को लोकप्रिय बनाने के लिए इन बातों से भी अधिक जिन बातों की ज़रूरत है, वे हैं—उसकी विविधता, ख़बरों का बाहुल्य और ताज़ापन, देश-विदेश की नई-नई बातों की चर्चा, हर क्षेत्र के अपने विशेष समाचारादि, और साथ ही सब मैटर का यथा-स्थान और ढंगपूर्वक जमाव, तथा साफ़-सुन्दर छपाई व क़ागज़ आदि। इन बातों में हिन्दी-पत्र अंग्रेज़ी पत्रों से काफ़ी पिछड़े हुए हैं—ख़र्च इतना होता है कि हिन्दी-भाषियों की ग़रीबी को देखते हुए किसी को ऐसा साहस करके सफलता की आशा करना ज़रा मुश्किल ही है। पर 'लोकमत' ने अपना 'स्टैण्डर्ड' अंग्रेज़ी पत्रों के मुक़ाबिले रखने की घोषणा की है।

इसके सम्पादक पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र 'श्रीशारदा' के सम्पादक तथा असेम्बली के सदस्य के रूप में अपनी योग्यता का काफ़ी परिचय दे चुके हैं, संचालक बा० गोविन्ददास से भी हिन्दी-संसार भलीभाँति परिचित है। यही दो नाम पत्र की श्रेष्ठता को दरसाने के लिए पर्याप्त हैं; परन्तु अन्य व्यक्ति भी, जो सम्पादन-कार्य में लगे हैं, काफ़ी होशियार, मँजे हुए और परिश्रमी हैं। इन सब मित्रों का एकत्र जमाव देखकर हमें पहले से ही बड़ी आशायें हुई थीं और उत्सुकता के साथ हम इसकी प्रतीक्षा में थे।

आख़िर महा-शिवरात्रि के दिन इसका अवतरण हुआ। इसमें सन्देह नहीं, हिन्दी के दैनिक पत्रों में यह सबसे बड़ा है; मैटर भी विविध है। एकाध चित्र भी प्रत्येक अंक में रहता है। सम्पादन भी अच्छा है, यह कह सकते हैं। पर अभी इसमें सुधार की काफ़ी गुंजाइश है। जबलपुर से अजमेर तक आते-आते यह पुराना पड़ जाता है, बहुत संभव है कि इसी कारण हमें यह बहुत आकर्षक प्रतीत न हुआ हो। परन्तु इसका क़ागज़ और इसकी छपाई भी अवश्य इसे कम आकर्षक बनाने के लिए ज़िम्मेदार हैं। कह नहीं सकते कि टाइप पुराना और घिसा हुआ है, या मशीन का दोष है, पर छपाई तो बहुत ही मामूली है। चित्र तो कभी-कभी ऐसे छपते हैं कि उससे उनका न देना ही ठीक है। क़ागज़ देखने में ही मैला और गला हुआ-सा प्रतीत होता है। सम्पादन में विविधता है, पर सावधानी और गम्भीरता

उसकी अधिक नहीं । अग्रलेख प्रायः लम्बे होते हैं, जो कि दैनिक पत्र में प्रायः कम जँचते हैं। समाचारों का अभाव खटका और सिलसिले तथा सावधानी के साथ हो तो अच्छा। *स्थान तथा व्यक्तियों के नामों में अक्सर गड़बड़ हो जाती* है, इसका ध्यान रखने की ज़रूरत है। विशेष लेखों का क्रम अच्छा है, पर तीसरे पृष्ठ पर रहने वाले पाश्चात्य जीवन के वर्णनों को यदि इस ढंग से दिया जाया करे कि हमें उन्हें पढ़ कर वैसा ही करने की तो इच्छा ही न उठे, उलटे उनके प्रति घृणा का भाव पैदा हो, तो उपयोगी होगा—वैसे तो वह व्यर्थ हो है। दूसरा पृष्ठ बड़ा गड़बड़ है—पचमेल मैटर है, और आकर्षण तो बिलकुल नहीं। सातवें पृष्ठ को यदि उस तरह सजाया जाया करे, जैसा कि पं० माखनलालजी के सम्पादकत्व में जबलपुर से निकलते समय 'कर्मवीर' का तीसरा पृष्ठ होता था, तो प्रचार की दृष्टि से बड़ा उपयोगी होगा। इसी प्रकार और पृष्ठों में भी अभी सुधार की गुंजाइश है। अभी तो साहित्य वाला पृष्ठ ही सुव्यवस्थित दीख पड़ता है। एक बात और। व्यक्तियों पर आक्षेप में सहयोगी *'आज' का ढंग अपनाया जाय तो अच्छा होगा।* इसी प्रकार विनोद के कालम में अंग्रेज़ी पत्रों का आधार न रखकर स्वतंत्रता लानी चाहिए। व्यापार-समाचार में मिसलेनियस और कॉटन जैसे अंग्रेज़ी शब्दों के बजाय विविध और रुई जैसे हिन्दी शब्द रहें तो उससे पत्र के हिन्दी-प्रचार के उद्देश को बाधा न पहुँचेगी, ऐसा हमारा ख़याल है। आशा है, निकट-भविष्य में हम इन बातों पर ध्यान दिया हुआ पायेंगे। अस्तु।

सहयोगी उग्र राष्ट्रीय नीति का है, कांग्रेस का पूरा समर्थक, यह बड़ी खुशी की बात है। हिन्दी-प्रचार तो इसका उद्देश है ही, पश्चिम के अन्ध-अनुकरण का भी यह विरोधी है। "दो दिन से इस देश में स्थापित राज्य-सत्ता के सुधार के लिए हम जितने व्याकुल हैं", 'लोकमत' अपनी नीति घोषित करता है, "उतने ही भारतीय जीवन का उच्छेदन कर उसके स्थान पर न्यूयार्क अथवा मास्को से भेजी हुई पद्धतियों की स्थापना से सतर्क।" यह घोषणा अनिश्चयात्मक है कि, "हम न तो किसी प्रचलित समुदाय-विशेष से सहानुभूति रखते हैं और न हमारे पास सामाजिक तथा *धार्मिक क्रान्ति के लिए कोई योजना है,"* पर यह आश्वासन सुन्दर, कि "हम भारतीयता को प्यार करते हैं।" आशा है, 'लोकमत' इस पथ पर दृढ़ रहेगा। हम चाहते हैं, *भारत और राष्ट्रीयता के बौद्धिक समर्थन के साथ 'लोकमत'* में इनकी वह आग भी सुलग उठे, जोकि जीवन में कर्मण्यता और तद्जनित बेचैनी का मन्त्र फूँक देती है। 'लोकमत' मध्यप्रदेश और मध्यभारत का एकमात्र पत्र है—हिन्दी क्यों अंग्रेज़ी में भी कोई दूसरा दैनिक यहां नहीं है, यदि यह ऐसा बन जाय तो इन प्रान्तों में कितनी जागृति कर सकता है! क्या हम आशा करें कि इन भागों की जनता इसे अपना कर वैसा बनने का मौक़ा देगी?

एक हिन्दी-भाषी

साहित्य-सत्कार

(१) हिन्दी-अभिनव कोषः—संग्रहकर्ता व प्रकाशक—श्री धनूसिंह वर्मा, हरदोई, ज़िला जालौन। पृष्ठ-संख्या २३६ मूल्य २), सजिल्द २॥)। मिलने का पता—श्री धनूसिंह वर्मा, उरई (यू० पी०)।

(२) वर्तमान भारतः—मूल अंग्रेज़ी के लेखक—श्रीयुत आर० पामीदत्त, सम्पादक लेबर मन्थली। अनुवादक श्री 'यश'। प्रकाशक—नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स, लाहौरी दरवाज़ा, लाहौर। पृष्ठ २०७। मूल्य १॥) सजिल्द २)।

(३) भारत में रेल पथः—लेखक—श्री रामनिवास पोद्दार (रामगढ़—सीकर)। मिलने का पता—श्री एम० जी० पोद्दार, १९, ताराचन्ददत्त स्ट्रीट, कलकत्ता। पृष्ठ ४२८। मू० २॥)

(४) जल-चिकित्सा-विज्ञानः—लेखक व प्रकाशक—श्री देवराज विद्या-वाचस्पति, गुरुकुल काँगड़ी। पृष्ठ ५००। मू० १॥।), सजिल्द २), पोस्टेज अतिरिक्त।

(५) हृदय की हिलोरः—लेखक—श्री सोकर। प्रकाशक—श्री अयोध्या प्रसाद शर्मा, स्वाधीन प्रेस, झाँसी। पृष्ठ १४१। मूल्य ॥)।

सम्पादकीय

उज्ज्वल भविष्य

६१ वर्ष का बूढ़ा सन्यासी अपने नौजवान बहादुर सिपाहियों के साथ स्वतंत्रता-संग्राम के लिए पैदल चल पड़ा! ध्रुव जब घोर तपस्या के लिए घर से निकला था, प्रह्लाद जब तप्त लोह-स्तम्भ से चिपकने के लिए दौड़ा था, राम जब वनवास के लिए अपने महल से चले थे, बुद्ध ने जब संसार के दुखों को मिटाने के लिए महाभिनिष्क्रमण किया था, ईसा जब सूली पर चढ़ने के लिए रवाना हुआ था, उससे कहीं अधिक दृढ़ निश्चय की रेखायें गांधीजी के ललाट पर थीं, उससे कहीं अधिक आत्म-विश्वास और अटल श्रद्धा उनके हृदय में जग रही थी, उसमें कहीं अधिक पवित्र और प्राणदायिनी सरस्वती उनकी जिह्वा से बरस रही थी। जिन लोगों को महात्माजी के प्रयाण के दिनों के उद्गार सुनने का, पढ़ने का पुण्य प्राप्त हुआ है, उन्हें इस कथन में शायद ही कुछ अत्युक्ति दिखाई दे। महात्माजी के इस निश्चय, इस आत्म-विश्वास और इस श्रद्धा की जड़ है उनका यह दृढ़-विश्वास कि जहाँ सत्य है, जहाँ शुभ भावना है, जहाँ साधन की शुद्धि है—अर्थात् दूसरे को ज़रा भी कष्ट न देने का और उसके एवज़ में खुद स्वाहा हो जाने का पवित्र भाव है, वहाँ सफलता, और विजय दौड़कर आये बिना नहीं रह सकती। जहाँ यह तीन बातें निश्चित रूप से मौजूद हैं, वहाँ विजय के लिए आवश्यक धन-जन-साधन अपने-आप आये बिना नहीं रह सकते। फिर जहाँ एक निश्चित कार्य-क्रम बरसों से देश के सामने है, उसे पूरा करने के लिए हज़ारों देश-भक्तों ने अपनी मूक तपस्या लगाई है, जहाँ एक निश्चित लक्ष्य लोगों के सामने रहा है और उसे सिद्ध करने के लिए सैकड़ों युवक हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गये हैं और हज़ारों ने जेलों को अपने कष्टमय जीवन से पवित्र मंदिर बना दिया है, वहाँ सफलता और विजय में, भारत के उज्ज्वल भविष्य में, किसे सन्देह हो सकता है? और संग्राम में जूझते हुए भी जिन्हें सफलता की किरणें देख लेने की आँखें हैं वे तुरंत समझ सकते हैं कि १९२१ के खिलाफ़ आज सरकार जो फूँक-फूँककर कदम रखती हुई नज़र आती है उसका रहस्य क्या है? आज़ादी के ध्येय की घोषणा कर दी गई, स्वतंत्रता-दिवस धूमधाम से मना लिया गया, सत्याग्रह-दिवस भी निर्विघ्न पूरा हुआ, महात्माजी का मार्च भी अब तक (३० मार्च तक) तो बिला ख़लखशा जारी है। इधर यहाँ तथा विलायत में इस बात की ज़ोर-शोर से कोशिश जारी है कि गोल-मेज़-परिषद् जल्दी हो और औपनिवेशिक स्वराज्य जल्दी से जल्दी देने की कोशिश की जाय। सरकार अभीतक चक्कर और पशोपेश में है कि महात्माजी को पकड़ें या नहीं। पकड़ते हैं तो सारे देश में सत्याग्रह छिड़ जायगा और अशान्ति होने का भी डर है। न पकड़ें तो 'मार्च' के आस-पास के इलाके के ग्रामाधिकारी धड़ाधड़ इस्तीफ़े दे रहे हैं। इन सब बातों से यही अनुमान निकलता है कि सरकार पर हमारे आन्दोलन का असर हो रहा है और दिन-दिन होता जायगा, यदि हम हज़ारों की तादाद में स्वयंसेवक बनने लगें और सो भी इस निश्चय के साथ कि अबकी या तो स्वराज्य लेकर छोड़ेंगे या अपना तन, मन, धन, कुटुम्ब-कबीला सब-कुछ स्वाहा कर देंगे। हम देख रहे हैं कि देश में यह भाव बिजली की तरह फैल रहा है और इसीसे निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि देश का भविष्य निस्सन्देह उज्ज्वल है। संसार के महा-पुरुष की घोर तपस्या और हज़ारों निर्दोष तथा कोमल युवकों का मूक बलिदान उज्ज्वल भविष्य के सिवा और किस चीज़ की सूचना दे सकता है?

राजस्थान का हिस्सा

अब देखें हमारा राजस्थान, जिसका इतिहास बलिदान का ही इतिहास है, इस महान् संग्राम में अपना कितना हिस्सा देता है? राजस्थान में एक तो ब्रिटिश इलाका बहुत थोड़ा है, दूसरे अधिकांश शिक्षित, प्रभावशाली और देश-

काल के ज्ञाता राजस्थानी राजस्थान के बाहर रहते हैं। इस कारण राजस्थान को अपने यहाँ संग्राम छेड़ने की कठिनता बहुत बढ़ जाती है। देशी-राज्यों में स्वतंत्रता के लिए सत्याग्रह करने की आज्ञा कांग्रेस ने और महात्माजी ने दी नहीं है, इसलिए अजमेर-मेरवाड़ा के कुछ ज़िलों में ही नमक या दूसरे किसी प्रश्न पर सत्याग्रह किया जा सकता है। बाहर रहने वाले राजस्थानी यदि अपनी जन्मभूमि की ओर ध्यान दें और उसकी कठिनाइयों को महसूस करें तो राजस्थान भी अवश्य इस पवित्र युद्ध में अपनी अल्प-आहुति दे सकता है। कम से कम एक हज़ार सत्याग्रही भी वहाँ से तथा बाहर से मिल जायँ तो राजस्थान को अपने बलिदान पर किसी तरह सन्तोष हो सकता है। क्या राजस्थानी भाई-बहन उसकी पुकार पर ध्यान देंगे? स्वयम् सेवकों के प्रतिज्ञा-पत्र छपकर तैयार हैं, जो देश भक्त राजस्थानी चाहें वे कांग्रेस-कमिटी के दफ्तर (अजमेर) से मँगा लें। दिन थोड़े रह गये हैं। आगामी छः अप्रैल को महात्माजी नमक बनाना शुरू करेंगे और उसके बाद ही जगह-जगह सत्याग्रह छिड़ने की संभावना है। अतएव स्वयंसेवक बननेवाले भाई जितनी जल्दी कर सकें करें। मुझे आशा है कि वे अपनी गिनती पिछड़े हुओं में न करावेंगे। देश के जीवन में वह पवित्र और स्मरणीय अवसर आ गया है कि मातायें, बहनें और देवियाँ अपने दुलारे बेटों, भाइयों और प्रिय पतियों को इस शान्तिमय युद्ध-क्षेत्र में अपनी आहुति देने के लिए प्रेम और आग्रह से आह्वाहन करें और अपने आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं से उनका उत्साह बढ़ावें।

'शत्रोरपि गुणा वाच्या'

हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्य-सेवी पं० लज्जाराम जी बूँदी-निवासी के नाम से कौन हिन्दी-प्रेमी परिचित न होगा? आप वर्षों तक 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' (बंबई) के संपादक रहे हैं और कई पुस्तकों के रचयिता हैं। त्या० भू० के व्यवस्था-विभागवालों ने, प्रचार की धुन में, शर्माजी को भी अपने विज्ञापन आदि भेज दिये, जिनकी पहुँच देते हुए पंडितजी ने एक बढ़िया पत्र भेजा है। उसकी नकल नीचे देने का जी ललचा उठा है:—

"प्रणाम। अथवा कर्मणा वर्ण माननेवाले को जो लिखना चाहिए वह?

बैसाख सं० ८६ की 'त्यागभूमि' और सस्ता-साहित्य-मंडल की पुस्तकों का सूचीपत्र मिला। सूचीपत्र मैंने रख छोड़ा है; जब आवश्यकता होगी, इसमें से पोथियाँ मँगवाया करूँगा।

आप-जैसे उच्च कोटि के देश-भक्तों के सिद्धान्त और उद्देश्यों के अनुसार पत्रिका बढ़िया है। सच तो यह है कि प्रचलित मासिक साहित्य में मैं इसे सर्वोच्च स्थान देता हूँ। किन्तु आप लोग उन्नति की घुड़ दौड़ में देश की टाँग पकड़कर हाइड पार्क में घसीट ले जाना चाहते हैं। मेहतर के हाथ का मलीदा खाना जिनको ग्राह्य हो, उनके लिए शायद इससे बढ़कर कोई पेपर न होगा। मुझ-जैसा दक़ियानूसी ख़यालवाला व्यक्ति न तो आपकी 'त्यागभूमि' को ख़रीद सकता है, और न मुझे उसके लिए कुछ लिखकर पत्र मुफ्त लेने की ममता है। बस इसलिए क्षमा माँगता हूँ। आरम्भ में आपका नमूना आने पर भी मैंने कुछ ऐसा ही निवेदन किया था। इतना अवश्य कहना चाहिए कि आपके विचार चाहे जैसे हों; किन्तु 'त्यागभूमि' का कलेवर 'शत्रोरपि गुणा वाच्या' से प्रशंसनीय है। अन्त में धृष्टता के लिए क्षमा कीजिए। मैं साढ़े पाँच मास से बीमार हूँ। आयु भी मेरी ६६ वर्ष की है। थक गया हूँ, इसलिए स्व-मत प्रतिपादन करने के लिए लिखने-पढ़ने की अब शक्ति धीरे-धीरे चींटी की चाल से जा रही है। प्रसन्न रहिए।

भवदीय,

लज्जाराम मेहता

पुनश्च—इस कार्ड को यदि प्रकाशित करना अभीष्ट हो तो ज्यों-का-त्यों पूरा, अधूरा नहीं।"

पण्डितजी ने इस पत्र में जिस उदारता और विशाल-हृदयता का परिचय दिया है; यदि उसकी प्रतिध्वनि हमारे प्रत्येक सनातन-धर्मी और आर्य-समाजी कहे जाने वाले भाई के हृदय से उठने लगे, तो छोटी और थोथी बातों के लिए होनेवाले आपसी झगड़े और कटुता बहुत-कुछ बन्द हो जायँ। पण्डित लज्जारामजी अपनी वृद्धता और साहित्य-सेवा के कारण मुझ-जैसे युवकों के लिए योंही नमस्कारणीय हैं, इसलिए मत भेद के कारण उनका मीठा उलहना भी 'त्या० भू०' के लिए आशीर्वचन ही है।

पाठकों से

देश में सत्याग्रह-संग्राम की जैसी धूम मच रही है और इस प्रान्त में इस संग्राम की जैसी कुछ ज़िम्मेवारी मुझ पर है और आ रही है, उसे देखते हुए मैं नहीं कह सकता कि कब मुझे कृष्ण-मन्दिर में जाने का सौभाग्य प्राप्त हो। मैंने अपने जीवन में सत्कर्म को मुख्य माना है और भरसक कर्ममय जीवन व्यतीत करने की कोशिश की है। अपने कर्तव्य का, अंगीकृत कार्यों का पालन करते हुए यदि अभी तक मुझे जेल से बाहर रहना पड़ा है, तो इसमें भी मैंने अपने को दुखी नहीं अनुभव किया है, और अब यदि कर्तव्य-पालन के लिए जेल जाना पड़े, तो वहाँ भी मैं आशा करता हूँ कि, अपने को दुखी अनुभव नहीं करूँगा। मैंने कर्तव्य-पालन को जितनी प्रधानता दी है, उतनी परिस्थितियों को नहीं। परिस्थिति जैसी भी मिली है, मैंने उसका स्वागत किया है और उसी में भरसक अपने कर्त्तव्य को निबाहने की, अपने काम को सफल बनाने की चेष्टा की है। १९२१ में जब ज़ाब्ता फौजदारी के क़ानून को तोड़ने के लिए स्वयंसेवकों की भरती हो रही थी तब मैंने महात्माजी से उसमें अपना नाम लिखाने की इजाज़त चाही थी। एक सुयोग्य सैन्य-सञ्चालक की तरह उन्होंने छूटते ही उत्तर दिया था—'तुम तो 'हिन्दी-नवजीवन' का काम करते-करते ही जेल जा सकते हो।'' एक तरह से इसे मेरा दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि 'यंगइंडिया' और गुजराती 'नवजीवन' पर मुकदमे चले और उनके सम्पादकों को सज़ा मिली, पर उन्हीं लेखों का अनुवाद 'हिन्दी नवजीवन' में छापने पर भी मैं अछूता बचा रहा। संभव है उस समय मेरी सेवायें इसी लायक़ समझी गई हों। पर अब मुझ पर दूसरी तरह की—काँग्रेस-कार्य की सीधी ज़िम्मेवारियाँ आई हैं, और मैं तो नमक-कानून को तोड़नेवाले स्वयंसेवकों में अपना नाम भी लिखा चुका हूँ। दरअसल तो मैंने सबसे पहले आश्रम में ही महात्माजी को अपना नाम दिया था; पर राजस्थान की आवश्यकताओं ने मुझे महात्माजी की पहली टुकड़ी में आने के सद्भाग्य से वञ्चित कर दिया। मैंने एक नम्र और आज्ञाधारक सिपाही की तरह इसमें भी सन्तोष मानने की चेष्टा की है। अब मेरा ख़याल है, वह दिन दूर नहीं है, जब मैं नमक-क़ानून तोड़ने के लिए निकल पड़ूँ और सरकार की किसी जेल का मेहमान बनूं। जेल-जीवन का अनुभव जबतक नहीं हुआ है, तबतक मैं अपने को अधूरा देश-सेवक मानता रहा हूँ। अतएव इस ख़याल से कि अब मुझे जल्द ही जेल नसीब होगी, और इस महान् पवित्र संग्राम में अपनी छोटी-सी टूटी-फूटी आहुति देने का सुअवसर निकट आ रहा है, बड़ी ख़ुशी हो रही है। इस समय कौन देश-भक्त ऐसा होगा, जिसे घर काँटे की तरह न चुभता हो और जेल महल की तरह न मालूम होता हो? इस पीड़ा का अनुभव वे लोग अच्छी तरह कर रहे हैं जो समर-क्षेत्र में कूद पड़ने के लिए एक पैर पर खड़े हैं परन्तु जिन्हें कार्य-वश रोक रखना पड़ता है। जब कि राष्ट्र के जीवन में ऐसा विकट समय आ रहा है कि, या तो हम यदि जी-जान से कूद पड़े तो ५-५० बरस आगे निकल जायँगे, या हिचकिचाते रहे और सोचते रहे तो ५-५० बरस के लिए मुर्दा हो जायँगे, तो कौन ऐसा भारतवासी होगा, जो या तो जेलों को भरने के लिए या युद्ध-सामग्री एकत्र करने के लिए न दौड़ पड़े?

'त्या० भू०' के पाठकों पर भी इस समय एक ज़िम्मेवारी है। 'त्या० भू०' ने अपने एक-एक श्वास में जीवन, जागृति, बल और बलिदान की आराधना करने की चेष्टा की है। यदि उसका यह दावा सही है, तो उसका प्रत्येक पाठक इस समय स्वतंत्रता-संग्राम में किसी से पीछे न रहेगा। कम से कम राजस्थानी पाठकों को, फिर वे राजस्थान में रहते हों चाहे बाहर, मैं निमन्त्रण देता हूँ कि वे अपना क़दम ज़ोर के साथ आगे बढ़ावें। जो स्वयंसेवक बनना चाहें वे काँग्रेस-कमिटी के दफ्तर (अजमेर) से प्रतिज्ञा-पत्र मँगवालें और भरकर भेज दें तथा बुलौआ आने पर योग्य सेवा करने के लिए तैयार रहें। जो दूसरे कामों से छुट्टी न पा सकते हों वे जितनी कुछ आर्थिक सहायता कर सकें, करें। 'त्या०भू०' या कांग्रेस के दफ्तर के पते पर सहायता भेज सकते हैं। 'त्या० भू०' के दफ्तर में जो रकम पहुँचेगी उसकी पहुँच 'त्या० भू०' में छपती रहेगी।

संभव है कि अगला अंक पाठकों के हाथों में पहुँचने तक मैं जेल चला जाऊँ। अतएव अभी से मैं पाठकों से निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थिति में वे 'त्या० भू०' को और उसके तत्कालीन सेवकों को उसी प्रेम भाव से देखते और अपनाते रहें। मेरा ख़याल तो यह है कि उस अवस्था में 'त्या० भू०' का अधिक प्रचार करने और उसको अधिक सहायता करने की उनकी ज़िम्मेवारी बहुत बढ़ जाती है। और मुझे विश्वास है कि यदि 'त्या० भू०' ने अपने इस थोड़े से जीवन में अपने पाठक-परिवार की कुछ भी सेवा की है, अपने उद्देश्य को कुछ भी पूरा करने का प्रयत्न किया है, तो वह उनके स्नेह और सहायता की पात्र अवश्य बनी रहेगी। मैं तो सदा 'निष्काम कर्म' का हामी रहा हूँ। जब तक मैं आज़ाद हूँ अपने अंगीकृत कामों के प्रति अपनी ज़िम्मेवारियों को पूरा करने की भरसक कोशिश करता हूँ जिस दिन मेरी लिखने, बोलने या काम करने की आज़ादी छिन गई, उस दिन मैं दूसरे जीवन में प्रवेश करूँगा। और इस बात पर विश्वास रक्खूँगा कि बाहर रहनेवाले मित्र अपने कर्तव्य का पूरा पालन करने में कोई कसर न उठा रक्खेंगे।

ह० उ०

महिला-दिवस

जैसा कि अ० भा० महिला-परिषद् (बम्बई-अधिवेशन) में तय हुआ था, उसके अनुसार, पहली मार्च को देश-भर में स्त्रियों ने महिला-दिवस मनाया। भिन्न-भिन्न कई स्थानों में इस दिन स्त्रियों की सभायें हुईं, और स्त्रियों-सम्बन्धी चर्चा की गई। परिषद् की नेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस अवसर पर स्त्रियों को सन्देश दिया, वह इस प्रकार है: —

"मैं आशा करती हूँ कि भारतीय स्त्रियाँ इस बात को समझेंगी कि हमें अपने स्त्रीत्व का दृढ़ संगठन करने की ज़रूरत है, और उसे ही देश की राष्ट्रीय प्रगति का सच्चा आधार बनाना होगा। अब वह समय आ गया है कि जब धर्म, जाति, दर्जा और मत भेद को भुलाकर सब स्त्रियाँ अपनी बुद्धि और शक्ति को भारत-माता की सेवा के लिए जातिगत एकता की वृद्धि में लगा दें।"

सहभोज

उस दिन दिल्ली में रायसाहब हरबिलास सारदा, श्रीयुत मुकुन्दराव जयकर तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू के सम्मान में दिल्ली की स्त्रियों ने एक सहभोज की आयोजना करके अपने साहस का परिचय दिया। पुरुषों के अन्तर्जातीय सहभोज के तो कई मौक़े हो चुके हैं, पर स्त्रियों में यह शायद प्रारम्भिक बात है। विभिन्न जातियों के स्त्री-पुरुष इस सहभोज में शरीक थे। अवश्य ही ऐसे सहभोज का उद्देश्य विभिन्न जातियों के भाई-चारे को बढ़ाना होता है। यह सहभोज भी जातीय एकता की वृद्धि के ही उद्देश्य से हुआ होगा, और उसके लिए दिल्ली की स्त्रियाँ अवश्य धन्यवाद की पात्र हैं।

अनुकरणीय

दिल्ली की स्त्रियाँ कई दिशाओं में अच्छा काम कर रही हैं। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, अपने पति के तबादले के कारण, लाहौर चली गई हैं; फिर भी दिल्ली का स्त्री-आन्दोलन अच्छा फूल-फल रहा है। शिक्षा की दिशा में तो वे काम कर ही रही हैं देश के राष्ट्रीय वातावरण में भी योग देने को वे प्रयत्नशील हैं। श्रीमती सत्यवती और सरस्वती देवी को यह श्रेय है कि आज दिल्ली की स्त्रियाँ देश का साथ देने की, उसकी थोड़ी-बहुत सेवा करने की आकांक्षिणी हो रही हैं। इन विदुषियों ने स्त्रियों के तरुण भावों को उभाड़ा है, और उसी का वह परिणाम है कि जिसकी गतांक में हम तारीफ़ कर चुके हैं। विदेशी वस्त्र त्यागकर स्वदेशी इस्तैमाल करने की प्रतिज्ञायें लेने का दिल्ली की स्त्रियों के

जो सिलसिला जारी हुआ, है उसकी चर्चा पिछले अंक में की गई है। ऐसी स्त्रियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है, यह हर्ष की बात है। यही नहीं, हाल ही एक सभा में दिल्ली की स्त्रियों ने इस बात पर भी शोक प्रकट किया है कि सत्याग्रह-संग्राम में, जो कि महात्मा गाँधी ने देश की स्वाधीनता के लिए आरम्भ किया है, स्त्रियों को शामिल होने का अवसर नहीं दिया गया। उनमें से कुछ उसमें शरीक होने के लिए केवल विशेष उत्सुक ही नहीं जान पड़तीं, बल्कि उसके लिए लालायित भी हैं। यह मनोवृत्ति सुन्दर और आशाप्रद है। अन्य स्थानों की स्त्रियाँ भी यदि दिल्ली की इन बहनों का अनुकरण करें तो क्या अच्छा हो!

एशियाई स्त्री-सम्मेलन

एशियाई स्त्री-सम्मेलन की जो चर्चा गतांक में की गई थी, देश की भिन्न-भिन्न स्त्री-संस्थायें उसके अनुकूल मत दे रही हैं। कई ऐसी संस्थाओं ने उसका समर्थन किया है और लाहौर, दिल्ली व मद्रास—इन तीन जगहों की स्त्रियों ने अपने-अपने नगर का नाम उसके स्थान के लिए सूचित किया था। सोच-विचारकर लाहौर को इनमें उपयुक्त समझा गया है। स्वागत-समिति का निर्माण तो तबतक के लिए स्थगित रक्खा गया है, जबतक कि भिन्न-भिन्न देशों से इस सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी न कर ली जाय। इस बीच एक स्थायी समिति बन गई है, जिसमें श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती हामिदअली, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख महिलायें हैं। बम्बई के ताजमहल-होटल में भारत के विभिन्न प्रान्तों की चुनी हुई महिलाओं ने मिलकर इस सम्बन्ध में कुछ परामर्श किया है। इस सम्मेलन में प्रतिनिधियों का चुनाव प्रान्त वार न होकर स्त्रियों की प्रमुखता के अनुसार होगा। पूर्वी सभ्यता के गुण-दोष, मातृत्व, शिशु-विज्ञान, संयुक्त कुटुम्ब, शिक्षा, मजूरी की हालत, हुनर-उद्योग, आध्यात्मिकता आदि विषयों की इसमें चर्चा होगी। एक मुसलमान महिला अरबी-भाषी सब देशों का भ्रमण करने जा रही हैं, वह वहाँ की स्त्रियों में शरीक होने का आन्दोलन करेंगी। बम्बई के प्रसिद्ध समाज-सुधारक श्री नटराजन् भी इसमें मदद कर रहे हैं। श्रीमती कज़िन्स के प्रयत्न तो मुख्य हैं ही। महाकवि रवीन्द्र ने भी इसे अपना आशीर्वाद दिया है। आशा है, यह सम्मेलन सफलता प्राप्त करेगा। हम चाहते हैं कि यह सम्मेलन सफल हो और एशियाई स्त्रियों में से पश्चिम की नकल का भाव निकालकर एशियाई बनने का भाव भर दे। यही इसकी सफलता का चिह्न होगा, जिसकी इस समय बड़ी ज़रूरत है।

'शक्ति-वर्द्धिनी महिला-सभा'

इस सभा की स्थापना जियाजी-राव-कॉटन-मिल्स, ग्वालियर की महिलाओं ने की है। हाल में, ग्वालियर राज्य के मिलिटरी-जनरल श्री राजवाड़े की धर्म-पत्नी श्रीमती लक्ष्मीबाई राजवाड़े के सभापतित्व में इसने अपने द्वितीय वर्ष का उत्सव मनाया, जिसकी रिपोर्ट हमारे सामने है। लगभग ४०० स्त्रियाँ उसमें शरीक थीं। हर्ष और उत्साह के साथ काम हुआ, बालविवाह-निषेध, परदे की हानि और दहेज की कुप्रथा पर प्रस्ताव पास हुए।

मंत्रिणी श्रीमती कमलाबाई की रिपोर्ट से मालूम होता है कि १५ जुलाई १९२८ को इसकी स्थापना हुई थी। इस समय इसकी सदस्याओं की संख्या ६० है। प्रति रविवार को इसका साप्ताहिक अधिवेशन होता है। व्याख्यान, भजन, उपदेश के द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। परदा तोड़क-मंडल का इसने स्वागत किया था। यही नहीं; स्वदेशी की भावना भी महिलाओं में जागृत हो रही है। कुछ महिलाओं ने स्वदेशी वस्त्र खासकर खद्दर धारण करने की प्रतिज्ञा की है। सदस्याओं के लिए चर्खा चलाना अनिवार्य करने पर भी विचार हो रहा है। सभा का काम सदस्याओं के चन्दे और मिल मालिकों की बँधी हुई सहायता पर चल रहा है। आरम्भ में महिलाओं को प्रोत्साहन देने के लिए यह नियम किया गया था कि लश्कर, मुरार और ग्वालियर की जो महिलायें नियमित रूप से इसके जलसों में शरीक हों उनके आने-जाने का ताँगा-खर्च सभा से दिया जाय। अब यह बंद कर दिया गया है। यह प्रसन्नता की बात है कि इस सभा के द्वारा कोरी लेक्चरबाज़ी नहीं, बल्कि मिल-लाइन्स में रहनेवाली स्त्रियों में सफ़ाई आदि की आदतें डालने का भी प्रयत्न हो रहा है। आशा है, अपनी उन्नति और देश-सेवा के आदर्शों का क्रमि-

अत करके यह सभा स्त्रियों के सामने सुन्दर आदर्श रक्खेगी। हम इसकी सफलता चाहते हैं।

पास-पोर्ट की मनाई।

अ० भा० महिला-परिषद् की मंत्रिणी श्रीमती कमला-देवी चट्टोपाध्याय भारतीय महिला-आन्दोलन की एक स्तम्भ हैं। उनके पति श्री हीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय जो विश्व-प्रसिद्ध नाट्यकार हैं, इन दिनों अमेरिका में भ्रमण कर रहे हैं। श्रीमती चट्टोपाध्याय ने भी विदेश-यात्रा करनी चाही थी, पर मद्रास सरकार ने उनका विदेश जाना खतरनाक समझकर इनकार कर दिया है। श्रीमती सरोजिनी नायडू के अमेरिका जाने पर मिस मेयो के भारत-विरोधी प्रचार को धक्का लगा था, वही सम्भावना श्रीमती चट्टोपाध्याय से समझकर तो कहीं उन्हें विदेश जाने से नहीं रोका जा रहा है? जो भी हो, इसमें शक नहीं, यह अन्याय है; और श्रीमती चट्टोपाध्याय की देश-भक्ति का सबूत है। हम उन्हें इस श्रेय के लिए बधाई देते हैं।

मुकुट

राजपूत-विधवा-विवाह

उस दिन जयपुर में राजस्थान की एक कुलीन राजपूत विधवा बहिन के विवाह के साक्षी रहने का सु-अवसर मिला था। वर श्री गौरीशंकरसिंहजी गाँधी-आश्रम हटूँडी-द्वारा संचालित अछूत पाठशाला, अमरसर (जयपुर राज्य) के प्रधान अध्यापक और वधू श्रीमती सुशीलादेवी करौली के राज-वंश की लड़की हैं। वर की उम्र लगभग ३० वर्ष और वधू की २५ से अधिक है। इससे ऐसा मालूम होता है कि दोनों ने भरसक संयम पालन करने की चेष्टा करने के बाद विवाह किया है। दोनों शिक्षित हैं—वर शिक्षक और वधू शिक्षिका है। कुल भी दोनों का अच्छा है और वधू के भाई श्री ज्ञानसिंहजी ने विवाह-विधि में स्वयं शरीक होकर अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है। इन कारणों से मैंने इस विवाह को 'सुधार' श्रेणी में स्थान दिया है। फिर जहाँ तक मुझे पता है राजपूताने में इस तरह का यह पहला ही विवाह है। मैं इस विवाह के लिए वर-वधू और श्री ज्ञानसिंह को बधाई देता हूँ।

विवाह-विधि की सादगी के अलावा एक और विशेषता इस विवाह में यह हुई है कि वर-वधू ने अपना सारा जीवन देश-सेवा में लगाने का वचन दिया है। परमात्मा उन्हें अपने वचन पालन करने का सामर्थ्य दे।

हु० उ०

स्त्रियों का आशीर्वाद

हमारे यहाँ यह आम शिकायत है कि राष्ट्रीय कार्यों में स्त्रियों का पूरा सहयोग पुरुषों को नहीं मिलता। इसीलिए अकसर पुरुष कुछ हताश भी हो जाते हैं। पर इधर नई बात हुई है। म० गाँधीजी ने अपने सत्याग्रही दल के साथ जब आश्रम से कूच किया, तो स्त्रियों का आशीर्वाद भी उनके साथ था। प्राचीन युद्ध-यात्राओं के वर्णनों में जैसे हम माँ-बहनों को कुंकुम, अक्षत और आरती-द्वारा अपने भाई-बेटों और पति को विदाई देते देखते हैं, ठीक उसी तरह महात्मा जी सहित उनके दल के प्रत्येक व्यक्ति की भी विदाई हुई। यही नहीं, रास्ते में भी स्त्रियों का आशीर्वाद और शुभ-कामनायें मिली हैं। एक वृद्धा ने अपने जैसे-तैसे जोड़े हुए कुछ तीनों रुपये लाकर गाँधी-बाबा के चरणों पर रक्खे, और एक १०५ वर्षीय महिला ने सिन्दूर का टीका लगाकर कहा—तुम-जैसे महात्मा को आशीर्वाद देने के योग्य तो मैं नहीं हूँ, लेकिन फिर भी मेरा मन यही कहता है कि तुम स्वराज्य लेकर ही लौटोगे। यह तो कहना ही व्यर्थ है कि ये महिलायें सिर से पाँव तक शुद्ध खादी ही धारण किये हुए थीं।

अधीर बहनें

सत्याग्रह में भाग लेने के लिए पुरुष उत्सुक हो रहे हैं, ऐसी हालत में स्त्रियाँ यदि उदासीन रहतीं तो आश्चर्य की बात थी। प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने जो भाग लिया, उसे देखते हुए भारतीय स्वातंत्र्य के इस (सत्याग्रह) संग्राम में भाग लेने की उनकी अधीरता स्वाभाविक ही है। सत्याग्रह-आश्रम की स्त्रियाँ तो पहले ही संग्राम में जूझने की तैयारी प्रकट कर चुकी थीं, उसी समय से उनका दैनिक जीवन भी बहुत-कुछ सिपाहियाना ढंग पर चल रहा है। उधर रास्ते में और भी कई स्त्रियाँ महात्माजी से मिलीं और इस बात पर ज़ोर

दिया कि स्त्रियों को भी सत्याग्रह संग्राम में भागीदार बनाया जाय। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी की पोती ख़ुरशेद बहन, अहमदाबाद की मृदुला बहन तथा अ० भा० महिला-परिषद् की मंत्रिणी श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय इनमें मुख्य हैं। महात्माजी ने इन्हें आश्वासन दिया है कि "यदि भारत की अधीर बहनें थोड़ा धीरज धरें तो उन्हें राष्ट्रीय स्वातंत्र्य-संग्राम में अपने उत्सर्ग और उत्साह-प्रदर्शन के लिए काफ़ी क्षेत्र दिखाई देगा।" और वह क्षेत्र?—हमारी बहनों को याद रखना चाहिए कि रण-क्षेत्र में सैनिक होकर जाना तो एक काम होता ही है, पर साथ ही पीछे का काम सम्हालना भी बड़ा महत्वपूर्ण होता है। हमारी स्त्रियाँ यदि दृढ़ता के साथ कटि-बद्ध हो जायँ खादी प्रचार के लिए, शराबख़ोरी और विदेशी कपड़े व नमक के ख़िलाफ़ यदि वे जहाद की आवाज़ उठावें, और अपने पति-पुत्र-बन्धुओं को न केवल निरुत्साहित करें बल्कि उनके कायरपन दिखाने पर जोधपुर के महाराणा जसवन्तसिंह की रानी महामाया की तरह अपना प्रचण्ड रूप दिखावें तो यह संभव नहीं कि भारत अपने स्वराज्य पथ पर आज से कहीं आगे न बढ़ पाये। क्या वे ऐसा करेंगी?

तैयार!

"मेरी पुकार पर मैदान में आने के लिए तैयार रहो। बहुत बड़ी तादाद में मैं तुम्हारा आह्वान करूँगा, और मुझे विश्वास है कि तुम उसका स्वागत करोगी।"—इन शब्दों से महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह-संग्राम में भाग लेने के लिए अधीर बहनों को तैयार रहने की सूचना की है। उधर सत्याग्रह-आश्रम की स्त्रियों की अधीरता देखकर महात्मा जी ने स्त्रियों के एक जत्थे को सत्याग्रह करने की आज्ञा दे दी है, यह भी ख़बर है श्रीमती कस्तूर बा गांधी इस जत्थे की नेत्री होंगी और भड़ौंच तक रेल में आकर वहाँ से वह पैदल सत्याग्रह-स्थल पर जाकर सत्याग्रह करेंगी। श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय भी इन दिनों पूरे जोश के साथ सत्याग्रह में मदद कर रही हैं। महात्माजी से वह मिली थीं और इन दिनों देहात में घूम-घूमकर लोगों को सत्याग्रह संग्राम के लिए प्रेरित कर रही हैं। दिल्ली की स्त्रियाँ भी इस दिशा में प्रयत्न-शील हैं, यह पहले बताया ही जा चुका है। यदि यही क्रम रहा तो भारत के उज्ज्वल भविष्य के बारे में कौन सन्देह कर सकता है। आशा है, भारतीय स्त्रियाँ इस अवसर पर पुरुषों से किसी क़दर पीछे न रहेंगी।

मुकुट

वातावरण

शीत का पलायन और ग्रीष्म का आगमन! देखते-देखते वातावरण एकाएक कैसा बदलता चला आ रहा है? कल लोग ठण्ड से कँपकँपा रहे थे, गर्मी ने उनका लिहाफ़-गद्दों में दबे-छिपे रहना असम्भव कर दिया है—उन्हें फेंककर खुला मैदान ग्रहण करने के लिए वे बाध्य हो रहे हैं। मानव ही नहीं, मूक पशु-पक्षी और जड़ वनस्पतियों में भी प्रकृति का यह परिवर्तन क्रीड़ा कर रहा है।

देश का राष्ट्रीय वतावरण भी आकुल हो उठा है। अब तक ख़ूब दासता सही, अब गाँधीजी के नेतृत्व में वह उससे उन्मुक्त होने के लिए मानो छट पटा रहा है। १२ मार्च को गाँधीजी ने जो मार्च की, वह कितनी ज्वलन्त हुई! सारा देश झुलसा था, गाँधी की इस आँधी ने उसे

झकझोर दिया। सारे देश में जागृति की लहर फैल गई है। देहरादून से मद्रास और रंगून से करांची तक हम उसकी प्रतिध्वनि सुन रहे हैं। यहाँ तक कि राष्ट्रीय विषयों के अलावा और बातों की ओर तो अब ध्यान ही मुश्किल से आकर्षित होता है।

सत्याग्रह-यात्रा

महात्मा गाँधी ने अपने चुने हुए सैनिकों के साथ १२ मार्च को नमक-क़ानून तोड़ने के लिए अहमदाबाद से प्रस्थान किया था, उनका प्रयाण बराबर जारी है। गिरफ्तारी की अफ़वाहें तो श्रीगणेश में ही ज़ोरों से उड़ीं, रेल का ख़ास डिब्बा और सेना भी पहुँच ही गई थी, रास्ते में कई सैनिक एक-एक करके बीमार भी पड़े, स्वयं गाँधीजी के पावों में वात होने की ख़बर भी एक बार उड़ी थी, लेकिन विजय के लिए निकली हुई सेना ऐसी बातों से डरती नहीं। फलतः महात्माजी की यात्रा बराबर जारी है और वह सूरत जिले में पहुँच चुके हैं। अब जो कार्य-क्रम है, उसके अनुसार, वह ५ ता० को जलालपुर में पहुँच जाँयगे और ६ (ता० जालियाँवाला बाग के दिन) को डण्डी में उनका सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

यात्रा का परिणाम

महात्माजी की सत्याग्रह-यात्रा बड़ी शुभ हो रही है। अभीतक इसके जो फल निकले हैं, वे इस प्रकार हैं—

१—आत्म जागृति।

२—प्रतिरोध की भावना।

३—सामरिक मनोवृत्ति।

४—निश्चयात्मक कार्य।

५—मत-भेदों के बजाय एकता के भावों की वृद्धि।

जहाँ जहाँ से गाँधीजी जा रहे हैं, उन-उन स्थानों की सर्व-साधारण जनता में पूर्ण जागृति होती चली जा रही है। लोगों में प्रतिरोध की भावना घर कर रही है। ग्रामाधिकारी धड़ाधड़ इस्तीफ़े देते चले जा रहे हैं। वे यह नहीं पूछते कि हम क्यों इस्तीफ़े दें। पूछने का समय गया, अब तो समर छिड़ गया है। अपने नेताओं की पुकार पर काम करना ही इस समय का तो धर्म है, यह उन्होंने समझ लिया है। सरकार और जनता दोनों पर इसका बड़ा असर पड़ा है। सरकार परेशान है; कभी पठानों की कतारें समुद्र किनारे खड़ी की जाती हैं, कभी सेना का पड़ाव पड़ता है, कभी नमक के स्फटिक को समुद्र में डालने की बातें उठती हैं, कभी पानी के पम्पों से बने नमक को बहा देने की। अधिकारियों के दौरे तो रोज़ होते ही रहते हैं। एक ख़बर यह भी आई थी कि गाँधीजी आदि शान्त सत्याग्रही ठहरे, वे ज़ोर-जबर्दस्ती तो करेंगे नहीं, जैसे-जैसे वे नमक बनाते जायँगे, सरकार उसे छीनती चली जायगी। इस पर कुछ ने गाँधीजी के कार्य-क्रम की बड़ी हँसी उड़ाई थी। पर गाँधी जी ने हुंकार की—'मैं कमज़ोर हूँ, पर देखूं, मेरे हाथ से कोई कैसे नमक छीनता है?' तब से यह बात काफ़ूर हो गई है। सरकार बड़ी परेशान है; ऐसा मालूम होता है, उसे सूझ नहीं रहा है कि क्या करे और क्या न करे। उधर देश में भारतीय-मात्र में देश-भक्ति के सुषुप्त भावों में थरथरी आई है। ऐसे-ऐसे लोग भी हिल उठे हैं, जो बिलकुल सोये हुए थे। कोई ज़िम्मेदार भारतीय नेता चाहे उसके साथ न हो, पर विरोधी नहीं है। कुछ सम्प्रदायवादी मुसलमानों ने अली-भाइयों आदि के द्वारा इसका कुछ विरोध किया है सही, पर मुसलमानों ने सामूहिक रूप से उसका विरोध कर दिया है। उधर स्वयं शौकतअली साहब अब कहने लगे हैं कि गाँधी को गँवाकर मैं बड़ा कमज़ोर और बेचैन हूँ। उनके बिना मैं अपने को असहाय और अकेला पाता हूँ। बक़ौल 'ख़िलाफ़त', वह गाँधीजी से मिलने के लिए भी बेचैन हैं। गाँवों में मुसलमान वैसे ही गाँधीजी का स्वागत कर रहे हैं, जैसे हिन्दू। डण्डी में महात्माजी ठहरेंगे भी एक मुसलमान के ही बँगले में। माडरेट लोग भी इस वक्त विरोध नहीं कर रहे हैं। कौंसिल छोड़ने पर स्वराजी भी कुछ रुष्ट से थे पर इस समय ग़ैरस्वराजी भी उनसे ऊब रहे हैं। जेलों का भय पहले ही कम था, अब बिलकुल मिटता जा रहा है। सच तो यह है, इस समय देश भर की आँखें गाँधी-सेना की ओर लगी हैं। बूढ़े और तरुण, बालक और स्त्रियाँ—सब की आत्मायें मन-ही-मन गाँधी को आशीर्वाद दे रही हैं। १०५ वर्ष की बूढ़ी माँ तक तो

गाँधी के दर्शन करने और सिन्दूर का टीका लगाकर उनकी शुभ कामना को पहुँच रही है। और सब बातें इस समय फ़ीकी पड़ रही हैं।

पहली विजय

गांधी की सत्याग्रही सेना अभी रास्ते ही में है। नमक-कर का भंग तो अभी शुरू भी नहीं हुआ, पर सरकार का झुकना शुरू हो गया है। पहली विजय की सूचक बम्बई सरकार की दो विज्ञप्तियाँ हैं। एक विज्ञप्ति-द्वारा बारडोली-विजय के बाद नियुक्त ब्रूमफ़ील्ड कमिटी की सिफ़ारिशों पर अमल शुरू करने की घोषणा की गई है। आज छः महीने से वे सिफ़ारिशें यों ही पड़ी थीं। दूसरी घोषणा है मातर और मेमदाबाद ताल्लुके के किसानों के फ़ायदे की। वल्लभ-भाई के नेतृत्व में वहाँ के किसान आन्दोलन कर रहे थे कि उन पर जो मालगुज़ारी है वह बहुत ज़्यादा है। अभीतक उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया गया था, अब नये सिरे से ज़मीन को नापने-जोखने और जहाँ ज़्यादती हो उसकी सूचना आदि करने के लिए एक कलेक्टर श्री भट की अध्यक्षता में कमिटी मुक़र्रर की गई है।

सरकार की यह दोहरी चाल है। महात्माजी अपनी यात्रा के बीच गाँवों में ज़ोरों से प्रचार कर रहे हैं कि सरकार किसानों और ग़रीबों की भक्षक है, उनके फ़ायदे को नहीं देखती, अंग्रेज़ी राज में वे तबाह होते जा रहे हैं। सरकार ने उपर्युक्त घोषणाओं-द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है, मानों वह ऐसी नहीं है। एक चाल यह भी है कि किसानों को प्रलोभन देकर सत्याग्रह के विरुद्ध भड़काया जाय।

हम जानते हैं, हमारे किसान भाई ग़रीब के साथ अपढ़-अज्ञान भी हैं। डेढ़ सौ साल के अंग्रेज़ी राज्य ने हमारी नैतिकता पर भी आघात कर हमें ज़रा-से टुकड़ों पर टूट पड़नेवाला और पेट के लिए न जाने क्या-क्या करनेवाला भी बना दिया है। परन्तु आख़िर हम और वे हैं तो भारतीय ही न? फिर गुजरात में तो गाँधी और पटेल ने उन्हें जाग्रत भी ख़ूब किया है। हमारा ख़याल ही नहीं विश्वास है कि वे सरकार के ऐसे प्रलोभन में फँसकर स्वराज्य-संग्राम से कभी विमुख न होंगे। १४-१५ साल गाँधी के ज़ेर-साया रहकर कम-से-कम इतना तो वे जान ही गये होंगे कि विदेशी सरकार कितनी ही उदारता और रियायत का भाव दिखावे, है आख़िर वह विदेशी ही—अपने देशवालों के स्वार्थों के आगे वह अपने गुलामों के, विजित देशवालों के स्वार्थ का ध्यान कभी रख ही नहीं सकती। अपनी माँ से अधिक प्यार दरसाने वाली स्त्री डाकन होती है, यह एक आम बात है। गाँधी हमारा नेता है, हम उसके सैनिक—आशा है इसी भाव से गुजरात के किसान उस वक्त तक काम करते रहेंगे, जबतक कि विजय-श्री हमें वर नहीं लेती है।

अ० भ० कांग्रेस-समिति

२१ मार्च को साबरमती में अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमिटी की जो बैठक हुई, वह अपने ढंग की शायद पहली थी। सामयिक मनोवृत्ति की वह पूरी सूचक थी। सब सदस्य तो पहुँच ही कहाँ सकते थे? वल्लभभाई, सेन गुप्त और सुभाष आदि तो जेलों में थे, प्रान्तों के ख़ास-ख़ास व्यक्ति अपने-अपने यहाँ सत्याग्रह की तैयारी में व्यस्त थे। चुने-चुनाये लोग ही पहुँचे। महात्माजी की ही वजह से साबरमती में बैठक रक्खी गई थी, पर वह कूच कर चुके थे, उस में कैसे आ सकते थे? अतः राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल पहले उनसे जाकर मिले और सब बातों पर विचार कर लिया। बैठक सिर्फ़ एक दिन में व्यवहारू ढंग पर ख़त्म हुई। निर्णय उसके बहुत महत्वपूर्ण हैं, और हर्ष की बात है कि वे सब सर्वसम्मत हैं। यह बात हमारे सर्व-भारतीय नेताओं के लिए बड़े गौरव की है। इससे सिद्ध होता है कि संकट के समय हम कैसे मिल-जुलकर काम कर सकते हैं।

समिति के निर्णयों में सब से महत्वपूर्ण वह है, जिसमें कांग्रेस-कार्य-समिति के गाँधीजी को सत्याग्रह का सर्वेसर्वा बनाने का समर्थन किया गया है। हर्ष की बात है कि समिति ने, और उसके द्वारा देश ने, गाँधीजी को सत्याग्रह का सर्वेसर्वा ही नहीं बनाया है, बल्कि कांग्रेस ने सत्याग्रह की पूरी समर्थक होने का आश्वासन दिलाया है और देश

से उसमें पूरा भाग लेने की अपील की है। पूरा प्रस्ताव इस प्रकार है —

> अ० भा० कांग्रेस-समिति की यह बैठक कार्य-समिति के उस प्रस्ताव का समर्थन करती है, जिसमें महात्मा गाँधी को सत्याग्रह का प्रारम्भ और सँचालन करने का अधिकार दिया गया है और महात्माजी एवं उनके साथियों तथा देश को उनकी योजना के अनुसार १२ मार्च को शुरू की गई सत्याग्रह की यात्रा के लिए बधाई देती है। समिति आशा करती है कि सारा देश महात्माजी के इस प्रयत्न में साथ देगा, जिससे कि पूर्ण स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति हो सके।"

समिति के अन्य निर्णय भी महत्वपूर्ण हैं, जैसे—

> "अ० भा० कां० समिति प्रांतीय कांग्रेस कमिटियों को अधिकार देती है कि वे समय-समय पर दी गई सूचनाओं के अनुसार, अपने-अपने प्रांत में, अपनी सुविधा के अनुसार सत्याग्रह की योजना करके उसे शुरू करें।"

> "समिति यह आशा करती है कि प्रांतीय कांग्रेस कमिटियाँ, जहाँ तक सम्भव हो, नमक-क़ानून तोड़ने का ही सत्याग्रह शुरू करें। कमिटी विश्वास करती है कि सरकार की ओर से आने वाली अड़चनों की परवा न करते हुए प्रांतीय कांग्रेस कमिटियाँ सत्याग्रह की पूरी तैयारियाँ करेंगी और जबतक महात्माजी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर स्वयं क़ानून-भंग न कर देंगे, या आज्ञा न देंगे, तबतक वे सत्याग्रह प्रारम्भ न करेंगी।"

> "यदि गांधीजी इसके पूर्व ही गिरफ्तार कर लिये गये तब तो प्रांतीय कांग्रेस कमिटियों को सत्याग्रह शुरू कर देने की पूर्ण स्वाधीनता होगी।"

सरदार पटेल और श्री जतीन्द्रमोहन सेन गुप्त की गिरफ्तारियों पर बधाई दी गई है और उन ग्राम्याधिकारियों की प्रशंसा हुई, जिन्होंने राष्ट्रीय युद्ध में सहायता पहुँचाने के लिए सरकारी नौकरियों से इस्तीफ़े दिये हैं। एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस की अमेरिकन शाखा से सम्बन्ध न रखने का भी निश्चय हुआ है, क्योंकि वह कांग्रेस के सिद्धान्तों के विपरीत प्रचार करती रहती है।

इस बैठक में कुछ बातों का स्पष्टीकरण भी हुआ है। गाँधीजी के सर्वेसर्वा होने से कई लोग यह अर्थ लगाने लगे थे कि सत्याग्रह कांग्रेस की तरफ़ से जारी नहीं हुआ है। राष्ट्रपति ने इसका खण्डन करते हुए कहा कि 'यह संग्राम किसी व्यक्ति का संग्राम नहीं है। यह तो जद्दोजहद है—मुल्क का, सब का, आपका जद्दोजहद है। इस लड़ाई के विषय में कांग्रेस की ज़िम्मेवारी ज़रा भी नहीं घटती। इस लड़ाई की कामयाबी की ज़िम्मेदार कांग्रेस है।' गाँधीजी के इसे धर्म-युद्ध कहने पर भी डा० आलम सोच में पड़े हुए थे, उनका भी राष्ट्रपति ने यह कह कर समाधान किया कि जो लोग मज़हब को नहीं मानते वे भी इसमें शरीक हो सकते हैं। अहिंसा के बारे में राष्ट्रपति ने कहा कि गाँधीजी सिद्धान्त-रूप में अहिंसा को मानते हैं सही, पर कांग्रेस ने ऐसा अनिवार्य नहीं रक्खा है; हमारी दृष्टि में तो व्यवहार में अहिंसा का पालन अनिवार्य है। कइयों ने इसपर टीका की है—यह भी प्रकट किया है कि अब तो हिंसा भी हो सकती है, पर दरअसल ये शंकायें निर्मूल हैं। सच तो यह है कि इससे उन लोगों को भी संग्राम में शामिल होने का क्षेत्र खुल गया है, जो कि—किसी भी कारणवश क्यों न हो—अहिंसा का पूर्णतः पालन करते हुए भी सिद्धान्त रूप में उसे मानने में झिझकते रहे हैं। आशा है, अब उनकी शक्तियाँ भी इस ओर लगेंगी।

अटेनशन !

इस शीर्षक के नीचे सहयोगी 'प्रताप' ने युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कौंसिल की अपील प्रकाशित की है —

"× × कठिन काल उपस्थित है। दारुण यंत्रणा से व्याकुल मातृभूमि अपनी सब सन्तानों को पुकार रही है। विदेशियों के अत्याचार और लूट से उसका छुटकारा करने के लिए हमारे नेता फिर मैदान में आ डटे हैं और स्वाधीनता के सिपाही फिर भारत के झण्डे के नीचे माता की सेवा करने, उसके लिए लड़ने और उसे स्वतंत्र बनाने के

लिए जमा हो रहे हैं। स्वाधीनता के इस संग्राम का हम बड़े हर्ष से स्वागत करते हैं। परिणामों को भली-भाँति समझ कर हम भारत की सेवा का व्रत लेते और उस प्रतिज्ञा को दोहराते हैं, जो हमने शेष भारत के साथ गत २६ जनवरी को की थी। हम उस प्रतिज्ञा पर अटल रहेंगे—'होनी होय सो होय।' हम पूरे विश्वास के साथ अपने प्रान्त के स्त्री-पुरुषों से अपील करते हैं कि वे इस अवसर के महत्व को समझें और स्वाधीनता की सेना में भरती हो जायँ।"

अ० भा० कांग्रेस समिति की बैठक के समय महात्माजी से भिन्न-भिन्न प्रान्तों के नेता मिले थे, उनसे तथा वैसे भी महात्माजी ने यह प्रकट किया है कि ६ अप्रैल को या जब वह हुक्म दें अथवा गिरफ्तार हों, फ़ौरन एकसाथ, सारे देश में नमक के कर के ख़िलाफ़ सत्याग्रह शुरू हो जाय। इसके अनुसार जगह-जगह तैयारियाँ शुरू हो गई हैं। गुजरात तो बेज़ार है—गुजरात-विद्यापीठ साहित्यिक के बजाय सामरिक शिक्षण का केन्द्र बन गया है। आश्रम भी युद्ध का अड्डा हो रहा है। जगह-जगह तैयारियाँ हैं। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी अधीर हैं। महाराष्ट्र भी मतभेद भुलाकर सत्याग्रह में योग देने को उत्सुक हो रहा है—श्री खाडिलकर के नेतृत्व में पूना से पैदल एक टुकड़ी सत्याग्रह के लिए विलेपारले को रवाना भी हो गई है। बम्बई में जुहू के सुन्दर तट पर सत्याग्रह की तैयारियाँ हो रही हैं—राष्ट्रीय सेना की भरती जारी है। बंगाल में अभय-आश्रम के लोग सत्याग्रह को निकल पड़े हैं। पंजाब में तैयारियाँ हो रही हैं, बिहार शान्ति के साथ चुपचुप काम कर रहा है। आन्ध्र, तामिल नाडु और केरल में श्री साम्बमूर्त्ति, कोण्डा वेंकटप्पैया और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य मोर्चाबन्दी कर रहे हैं। युक्तप्रान्त में इण्डिया, इटावा, आगरा और रायबरेली में सत्याग्रह की तैयारियाँ हैं। राजपूताना भी कोशिश कर रहा है। ६ ता० निकट है, राष्ट्र उत्सुकता से उस दिन की बाट जोह रहा है। देखना चाहिए, वक्तपर हम कैसे तैयार मिलते हैं। बस, देर है सिर्फ़ हुक्म की।

समझौते के प्रयत्न

बीच में अफ़वाहें उड़ी थीं, मजूर-सरकार गांधीजी से समझौते की बातें कर रही है। उसका उसी समय खंडन भी हुआ था। फिर ये ख़बरें आईं कि गांधीजी आज दुनिया में इतने मशहूर हो चुके हैं कि गोल-मेज़-परिषद् में यदि वह न रहें तो दुनिया कभी उसकी दाद न देगी, इसलिए सरकार जैसे भी होगा उन्हें उसमें बुलाने का प्रयत्न करेगी। अब हाल में एक विलायती अख़बार ने यह भी छाप डाला कि पं० मोतीलाल नेहरू शीघ्र ही एक मुक़दमे के सिलसिले में विलायत जाने वाले हैं; पर सत्याग्रह के इस ज़माने में वह सिर्फ़ मुक़दमे के लिए वहाँ जाने वाले आसामी नहीं, ज़रूर किसी समझौते के सिलसिले में वह वहाँ जा रहे होंगे। पंडितजी ने इसका खंडन किया है। उनका कहना है, १९२८ का लिया हुआ एक मामला ऐसा है ज़रूर, जिसमें मुझे वहाँ जाना चाहिए; पर अभी कुछ ठीक नहीं। मैं कोशिश कर रहा हूँ कि वह मेरे बजाय किसी और को रख लें। हम नहीं कह सकते, समझौते की बात में कोई तथ्य है या नहीं। यह हम मानते हैं कि एक न एक दिन ऐसा होना ज़रूर है; पर कब होगा, यह नहीं कहा जा सकता। फिर समझौता होनेवाला हो, तो भी क्या? हमें तो अपना काम करते रहना चाहिए। हमारे काम पर ही उसका आधार भी है। हमारा काम ऐसा ही जारी रहा; जैसा कि आज-कल है, तो समझौता आज नहीं तो कल होकर रहेगा; हाँ, यदि हम समझौते की आशा में हाथ समेट कर बैठ रहेंगे, कुछ ढीले पड़ेंगे, तो वह हर्गिज़ न होगा—उलटे घोर दमन से हमें कुचल दिया जायगा। अतः समझौते की फ़िक्र अपने सेनापति अपने नेताओं के ऊपर छोड़ कर हमें तो उनके हुक्म का पालन ही करते जाना चाहिए। इसीमें राष्ट्र का कल्याण है।

दमन-दावानल

इस समय भारत-स्थित ब्रिटिश सरकार के मुखिया लार्ड इरविन हैं, और भारत मंत्री हैं श्री वेजवुड बेन। व्यक्तिगत रूप से दोनों भले आदमी हैं। पर जिस तंत्र के वे चक्र हैं, उसमें रहकर उसीके साथ उन्हें घिसटना पड़ता है। यही कारण है, इनके अच्छे होते हुए भी दमन-दावानल शुरू हो गई है। तरुण सुभाष पर वार हुआ ही था, सरदार

पटेल और मेयर सेन गुप्त भी जकड़े गये। दिल्ली के प्रसिद्ध पत्रकार श्री इन्द्र जी तथा दक्षिण आफ्रिका के पुराने वीर तथा आरा-कांग्रेस-कमिटी के प्रधान श्री भवानीदयालजी सन्यासी भी सरकारी दमन-चक्र के शिकार होगये हैं। और अब तो सभी तरफ़ दमन शुरू हो चला है। पंजाब, युक्तप्रान्त और बंगाल में इसका ज़ोर है। युक्तप्रान्त में तो सत्याग्रह के लिए भरती करने पर ही रायबरेली के ४२ लोग गिरफ्तार कर लिये गये हैं, बंगाल में नमक बनाने पर गिरफ्तारियाँ हो कर सज़ायें

श्री इन्द्र—दिल्ली की प्रथम बलि

हुई हैं, बम्बई में भी कुछ गिरफ्तारियाँ हुईं। तलाशियाँ व ज़ब्ती तो हो ही रही हैं। विस्तार से सबका वर्णन देने को जगह चाहिए। संक्षेप में यही कह सकते हैं कि सरकार दमन पर उतारू हो गई है, राष्ट्र अपनी परीक्षा में पूरा उतरे—यही कामना है।

सरकार की तैयारी

राष्ट्र नमक-कर उठाने के लिए तत्पर है, उधर सरकार उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध। दण्डी में तो मोर्चा हो ही रहा है, नये-नये अफ़सर व पुलिस, फ़ौज रक्खी जारही है। दूसरे प्रयत्न भी जारी हैं। पुलिस वालों को नमक-अफ़सरों के अधिकार दिये गये हैं, इधर युक्तप्रान्त में कलेक्टरों को इस सम्बन्धी असिस्टेण्ट-कमिश्नरों के अधिकार मिल गये हैं साथ ही पुराने-पुराने पुलिस-क़ानूनों की भी पुनरावृत्ति हो रही है। दमन तो शुरू है ही।

कौंसिलीय हलचल

स्वराजियों के चले आने से कौंसिलों की शान किरकिरी हो गई। काम होता है सही, पर उसमें जीवन नहीं। पं० मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में राष्ट्रीयदल ने स्वराज्य-दल की कुछ पूर्ति करने का प्रयत्न किया है, पर उसमें न तो वैसा संगठन है, न वैसा अनुशासन; और शायद देश-प्रेम की उतनी आग भी सामूहिक रूप से नहीं है। मुसलमान तो प्रायः सरकार का साथ दे ही रहे हैं। अस्तु।

लेजिस्लेटिव असेम्बली में इन दिनों विदेशी कपड़े पर लगनेवाली चुंगी के बारे में बड़ी हलचल है। सरकार ने नये बजट में विदेशी कपड़े पर ११ से बढ़ा कर १५ सैकड़ा चुंगी की है, पर साथ ही इङ्गलैण्ड को छोड़ कर दूसरे सब देशों से आने वाले माल पर ५ सैकड़ा चुंगी और लगाने का प्रस्ताव किया है। मतलब यह कि जब और देशों से आने वाले कपड़े पर २० सैकड़ा चुंगी लगेगी, इंगलैण्ड का कपड़ा १५ सैकड़ा चुंगी पर ही आया करेगा। इस प्रकार साम्राज्य को तरजीह देने (Imperial preference) की नीति का इसमें ग्रहण किया गया है। इसमें शक नहीं कि इससे बम्बई के गिरते हुए वस्त्र-व्यवसाय को थोड़ा सहारा मिल जाता है, परन्तु देश के राष्ट्रीय हितों के लिए यह घातक है। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के समय गोरे व्यापारियों को देशी व्यापारियों से तरजीह देकर हम गुलाम बन चुके हैं, अब फिर उन्हें तरजीह देकर क्या हम अपना और भी सर्वनाश न कर लेंगे? इस लिए पं० मालवीय ने इसका विरोध किया है। उनका कहना है कि सब देशों पर चुंगी एकसी रहनी चाहिए। इसी आशय का एक संशोधन भी उन्होंने पेश किया है। सरकार का कहना है, अगर यह संशोधन स्वीकार हो गया तो हम अपने मूल प्रस्ताव ही को वापस ले लेंगे—हाँ,

श्रीषणमुखम चेट्टी के इस संशोधन को सरकार ने मान लिया है कि मोटे कपड़े पर वह सब चुंगी एकसी कर देगी पर बारीक में इंग्लैण्ड को रियायत रहेगी। सरकार की यह धमकी बड़ी विचित्र है। सेठ घनश्यामदास बिड़ला के शब्दों में, सरकार ने धमकी दी है—तुम्हें साम्राज्य को तरजीह देना हो तो यह रियायत (चुंगी की वृद्धि) है, नहीं, जाओ जहन्नुम में! और मालवीयजी के शब्दों में उसने एक हाथ में ज़हर-मिला दूध का गिलास आगे किया है कि लो पियो इसे, और दूसरे में पिस्तौल तान रक्खी है कि अगर नहीं पीते तो मारते हैं तुम्हें गोली!! राष्ट्रीयदल इस बात पर अड़ रहा है कि मालवीयजी का संशोधन स्वीकार हो, साम्राज्य को तरजीह देने की नीति न ग्रहण की जाय। बम्बई के मिल-मालिक पशोपेश में है। अगर मंजूर करते हैं तो राष्ट्र का द्रोह है, नहीं मंजूर करते तो जो कुछ थोड़ा लाभ मिल रहा है वह भी जाता है। आखिर थोड़े से टुकड़ों पर वे पहली बात को तैयार हुए और सरकार का साथ दे रहे हैं। मालवीयजी को भी धड़ाधड़ तार आ रहे हैं कि हमने आपकी यूनिवर्सिटी के लिए इतना-इतना दान दिया, अब हमारे ज़रा-से लाभ में आड़े मत आओ। पर मालवीय जी इस वक्त बड़ा साहस दिखा रहे हैं। उन्होंने इसका ज़िक्र करते हुए कहा है—"मैं इन सज्जनों के प्रति कृतज्ञ हूँ, पर हिन्दू विश्वविद्यालय के हित से देश का हित मेरे लिए बड़ा है! देश-हित के लिए ज़रूरत पड़ने पर मैं सैकड़ों हिन्दू-विश्वविद्यालयों का बलिदान कर दूँगा।' उनका कहना है कि 'सरकारी योजना से देशी मिलों का कष्ट कुछ दिनों के लिए टल जायगा, पर लंकाशायर को सरकारी सहायता मिलने का जट्टा बम्बई की मिलों को तबाह कर देगा। मेरे बम्बई वाले मित्र समझलें कि वे अधिक दिन लंकाशायर का मुक़ाबला न कर सकेंगे।" बिड़लाजी का विरोध बड़ा प्रामाणिक और ज़ोरदार है। उन्होंने अंकों द्वारा सिद्ध किया है कि ढाई करोड़ रुपये साल की सरकारी सहायता अप्रत्यक्ष रूप से लंकाशायर को ग़रीब भारत से दी जा रही है; और देशी वस्त्र-व्यवसाय को संरक्षण की ज़रूरत जापान से ही नहीं, इंग्लैण्ड से भी है। बम्बई के वस्त्र-व्यवसाइयों को उन्होंने कहा है—सरकार ने आपसे कहा है कि या तो तुम साम्राज्य को तरजीह दो, नहीं जहन्नुम में जाओ; आप सरकार से कह दें, हम ऐसा नहीं करते, हम तुम्हें छोड़ते हैं, तुम जाओ जहन्नुम का! खबर है कि राष्ट्रीय दल इस सम्बन्ध में बड़ा दृढ़ है—यदि मालवीयजी का संशोधन स्वीकृत न हुआ तो वह इस्तीफ़ा दे देगा और देश में ज़ोरों से ब्रिटिश माल के बहिष्कार का आन्दोलन करेगा। मालवीयजी ज़ोर तो खूब मार रहे हैं, पर स्वराज्यदल-जितना ज़ोर उनका नहीं। उनकी स्थिति, उनके अपने ही शब्दों में, यह है—

"हम निराश हैं। हमारी संख्या थोड़ी है। हममें संगठन नहीं। सरकार हमसे फ़ायदा उठाकर भाग निकलना चाहती है। सरकार हमारे किसी भी मन्तव्य को मान लेगी, ऐसी आशा अब बाक़ी नहीं रही।"

हताश होकर उन्होंने एक और साधन ढूंढा है। हाल में भारत-मंत्री ने घोषणा की थी कि भारत तो औपनिवेशिक स्थिति अभी भोग रहा है, आर्थिक मामलों में उसे अभी भी स्वराज्य प्राप्त है। वाइसराय ने भी उसका समर्थन किया था। इस चर्चा के बीच यह सवाल उठा था। सरकारी पक्ष ने यह कहा कि हम मालवीयजी के संशोधन को नहीं मानेंगे, वह पास हो गया तो हम अपना मूल बिल ही वापस ले लेंगे। इसपर यह प्रश्न उठा कि फिर भारत को आर्थिक स्वराज्य कैसा? सरकारी पक्ष से सर रैनी ने कहा, भारत-सरकार और कौंसिल की सहमति होने पर भारत-मंत्री हस्तक्षेप नहीं कर सकते; लेकिन प्रथा यह है कि भारत-मंत्री की सलाह से सरकार प्रस्ताव पेश करती है। उनका कहना है कि असेम्बली के निर्णय को मानने को हम बाध्य नहीं, क्योंकि शासन चलाने की ज़िम्मेदारी उसपर नहीं, हम पर है। इसपर मालवीयजी ने अध्यक्ष से तीन प्रश्नों का निर्णय करने को कहा है—

१—क्या भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता का सर रैनी का लगाया हुआ अर्थ ठीक है?

२—किसी संशोधन के स्वीकृत होने पर सरकार का बिल को असेम्बली में न पेश करने का विचार ठीक है या नहीं?

३—सरकारी तथा मनोनीत सदस्यों को बिल पर राय देनी चाहिए या नहीं ?

इसपर नई समस्या खड़ी हो गई है। अध्यक्ष ने सोमवार (३१ मार्च) को अपना निर्णय देने को कहा है। कानून-सदस्य और श्री जिन्नाह ने कहा था कि मालवीयजी के ये प्रश्न नहीं उठ सकते और अध्यक्ष बहस को स्थगित नहीं कर सकते, पर सर हरिसिंह गौड़ ने इस कार्यवाही को बिलकुल वैध बताया और अध्यक्ष के निर्णय पर ज़ोर दिया। अध्यक्ष ने भी कहा कि जबतक इन बातों का निर्णय न हो जाय, बहस आगे नहीं चल सकती। देखना चाहिए, अध्यक्ष क्या निर्णय देते हैं।

× × ×

प्रान्तिक कौंसिलों की कार्यवाही में हलचल कम है। हाँ, मद्रास-कौंसिल ने महात्मा गांधी की सत्याग्रह-यात्रा की फिल्मों की जब्ती के खिलाफ़, विचारार्थ, बैठक स्थगित करने का प्रस्ताव सरकार के विरोध करते रहने पर भी पास कर दिया है। इंग्लैण्ड की मेडिकल-कौंसिल के निर्णय के खिलाफ़ ऐसे ही बैठक स्थगित करने का प्रस्ताव बंबई-कौंसिल में पास हुआ है, पर बंगाल में अध्यक्ष ने उसे पेश ही नहीं होने दिया। अन्य कार्यवाहियाँ भी विशेष महत्वपूर्ण नहीं।

× × ×

आख़िरी ख़बर यह है कि सोमवार को अध्यक्ष ने मालवीयजी के उठाये प्रश्नों पर अपना मत प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा कि मुझे आर्थिक स्वराज्य की व्याख्या तो नहीं करनी है, पर सरकार ने जो रुख़ अख़्त्यार किया है वह विधान के विपरीत है और अबतक की प्रथा पर प्रहार है। सरकारी वक्तव्य ने इस बहस को थोथा बना दिया है, यह कहते हुए सरकार को इसपर पुनर्विचार करने की उन्होंने सलाह दी और बिल पर बहस शुरू कर दी। मालवीयजी ने अंतिम बार विरोध करते हुए कहा—"मैं पिछले २५ सालों से बड़ी कौंसिल का सदस्य रहा हूँ। पर जैसा रुख़ सरकार ने इस समय अख़्त्यार किया है, उससे अधिक युक्तिहीन रुख़ उसने कभी अख़्त्यार नहीं किया।" और यह कहते हुए कि अगर हमने इसका विरोध न किया तो हम परमेश्वर के सामने दोषी सिद्ध होंगे राष्ट्रीय, स्वराज्य और सेण्ट्रल मुस्लिमदल के ३५ सदस्यों के साथ वह विरोध-स्वरूप उठ कर चले गये। सरकार की जीत हुई, पर अध्यक्ष ने कह दिया कि चूँकि सरकार ने अपनी धमकी वापस नहीं ली है इसलिए मैं यह दर्ज करा देना चाहता हूँ कि इस बिल पर लिये गये मत असेम्बली के स्वतंत्र मत नहीं हैं। राष्ट्रीय दल के लोग असेम्बली से इस्तीफ़े दे देने पर भी विचार कर रहे हैं। इसी बैठक में एक बार मालवीयजी ने यह भी कहा है—

"हरएक भारतीय का यह कर्तव्य है कि वह वर्तमान सरकार से घृणा करे और उसके खिलाफ़ घृणा का प्रचार करे।"

गाँधीजी तो राजद्रोह को आपका धर्म बता ही रहे हैं। क्या अब मालवीयजी भी गाँधीजी के साथ हो जायँगे ?

काकोरी के क़ैदी

काकोरी के क़ैदियों के साथ सरकारी दुर्व्यवहार की बात नई नहीं। श्री यतीन्द्र ने अपने बलिदान से जेलों के नये नियमों का जो निर्माण कराया, उनसे भी उन्हें महरूम ही रक्खा गया। आखिर अपने न्याय्य अधिकारों के लिए उन्होंने भी यतीन्द्र का रास्ता पकड़ा। अनशन शुरू हुआ। काफ़ी दिन उन्हें तपस्या करनी पड़ी। उनकी शारीरिक दशा बड़ा अब-तब हो गई, श्री राजकुमार की हालत तो अभी भी अब-तब है—एक ख़बर तो उनके मर जाने तक की उड़ चुकी है ! लेकिन तपस्या, कष्ट-सहन व्यर्थ नहीं जाता। आखिर सरकार मजबूर हुई और अब घोषणा करदी गई है कि उनके साथ 'बी' क्लास के क़ैदियों का सा बर्ताव होगा। यही काकोरी वालों की माँग भी थी। इस विजय पर उन्हें बधाई !

अहिंसा की चढ़ाई

भारत के प्राण, साहस, शक्ति और वीरता महात्माजी के हृदय में जग पड़े हैं, और महात्माजी के रूप में देश तोप, तलवार, बम, विषैली गैस, मशीनगनों और सम्पूर्ण शैतानी शक्तियों वाली अंग्रेजी सरकार से युद्ध करने चल पड़ा है। महात्माजी के साथ क्या है? केवल ८० निशस्त्र स्वयंसेवक, अपना दुबला-पतला शरीर, स्वतन्त्रता ले कर ही वापस लौटने की प्रतिज्ञा! वह कह चुके हैं, "मेरा मार्ग लम्बा है; मैं तबतक वापस न लौटूँगा, जबतक स्वतन्त्र भारत न देखूँ।" ऐसी लगन भारत के जर्जर प्राणों को महाशक्ति का दान देगी।

ग्यारह मार्च को रातभर हजारों आदमियों का आकुल, आशंकित और उत्सुक समुदाय आश्रम के बाहर धूल में लौटता रहा। चार बजे प्रार्थना में सम्मिलित हुआ। अफ़वाह थी कि महात्माजी कूच करने के पहले ही सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिये जायँगे। ग़रीब मज़दूर तथा अमीर सेठ, सभी पल-पल पर पूछते, "क्या बापूजी सकुशल हैं?" और उनका कुशल-समाचार पाकर आनन्द से नाचने लगते। सबके प्राण उस समय महात्माजी में अटक रहे थे, सबके हृदय महात्माजी की मंगल-कामना कर रहे थे।

प्रस्थान

१२ मार्च को वह पुण्य-प्रभात, वह प्रेम-प्रात, वह स्वर्ण-विहान, उदय हुआ, जब आश्रम की बहनों ने महात्माजी और अन्य सत्याग्रही वीरों को अपने आशीर्वाद-स्वरूप कुंकुम का टीका लगा कर विदा किया। धन्य था वह समय जब पत्नियों ने अपने पतियों को, बहनों ने भाइयों को, माताओं ने अपने पुत्रों को हँसते हँसते, उत्साह उल्लास के साथ प्रेमपूर्वक, माँ भारत पर बलि हो जाने के लिए विदा कर दिया।

महात्माजी के पहले दल में इस समय ७९ स्वयंसेवक थे। वन्देमातरम, महात्मा गाँधी की जय, वल्लभभाई पटेल की जय, जवाहरलाल की जय, भारतमाता की जय की गगन-भेदी ध्वनि के बीच, करीब एक लाख के विराट जन-सागर में इन थोड़े से स्वयं-सेवकों ने तैरना शुरू कर दिया। कई मील यह जन-समुद्र इस टोली के साथ गया। स्थान-स्थान पर इनपर रुपये-पैसे, नोट, फूल तथा कुंकुम की वर्षा होने लगी।

साढ़े दस बजे महात्माजी असलाली पहुँचे। असलाली गाँव को महात्माजी का स्वागत करने का यह पहला ही अवसर था। उसी दिन एक सार्वजनिक सभा की गई। स्त्रियाँ भी पर्दा छोड़ कर सम्मिलित हुई थीं। भाषण में महात्माजी ने सत्याग्रह का अर्थ और जनता का कर्तव्य समझा कर अन्त में कहा, "मैं तो जेल में रहूँगा, या मर जाऊँगा, मैं और कुछ नहीं कहना चाहता; मेरी इच्छा नहीं है कि मैं फिर आश्रम या असलाली लौट कर आऊँ; मैंने अपना निश्चयात्मक क़दम बढ़ाया है, मैं पीछे लौटना नहीं चाहता।" लोगों के ताली बजाने पर वह बोले, "आपको केवल उसी समय ताली बजाना चाहिए, जब आप सत्याग्रह के लिए तैयार हों; आप मेरे बाद मेरा काम सम्हालें। कदम उठाने के पहले आप खूब सोच-विचार करलें, पर जब आपने एक बार कदम रख दिया तब आप पीछे नहीं लौट सकते।" उनकी वाणी में कितना बल था, कैसा जादू था, कितनी प्रेरणा थी!

तेरह मार्च

दूसरे दिन सवेरे ही असलाली से अपने दूसरे पड़ाव के लिए यह सेना चल पड़ी। सात मील का सफ़र तय करके यह टोली नौ बजे बरेजा पहुँची। ग्रामीणों ने स्वागत में प्रेम और हृदय बिछा दिया। आस-पास के गाँवों के लोग दल के दल मिलने के लिए आये। स्वयं-सेवक एक विशाल भवन में ठहराये गये। यहाँ भी एक

"मेरे जीवन की यह अंतिम लड़ाई है।"

× × ×

"राजद्रोह मेरा धर्म है।"

× × ×

"जबतक यह सरकार मौजूद है मुझे ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती।"

× × ×

भारतीय स्वतंत्रता का अहिंसक सेनापति
गांधी
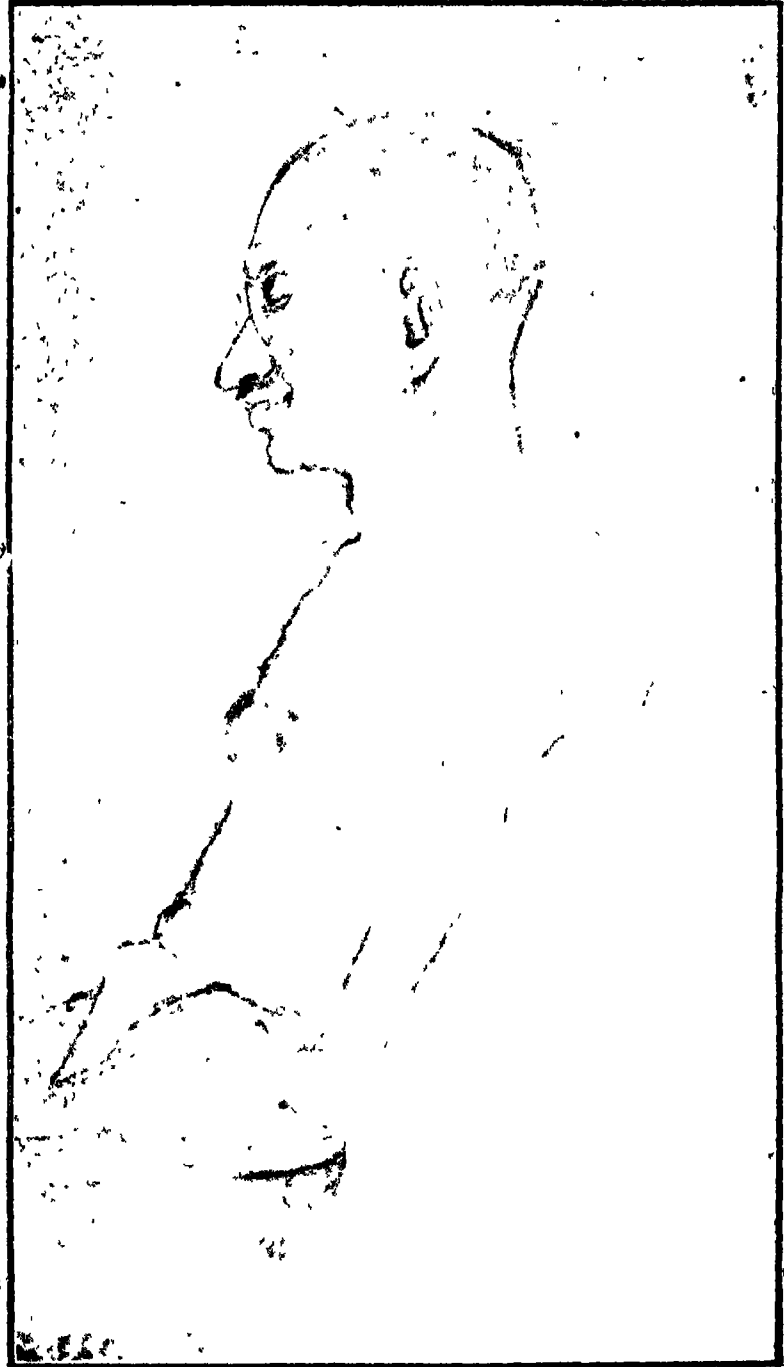
महात्मा गांधी की सत्याग्रही सेना

चलत समय—

बांई ओर महात्माजो और दाहिनी ओर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल

रास्ते में कहीं सभा

सेना का प्रथम पड़ाव
असल्लाली में सभा

पं० मदनमोहन मालवीय

लंकाशायर को रिआयत देने की सरकारी नीति के विरोध-स्वरूप आपने अपने दल के साथ असेम्बली से असहयोग कर दिया है।

"सरकार हमसे फ़ायदा उठा-कर भाग निकलना चाहती है। हमारे किसी भी मन्तव्य को सरकार मान लेगी, ऐसी आशा अब बाक़ी नहीं रही।"

"हरएक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह वर्त्तमान सरकार से घृणा करे और उसके ख़िलाफ़ घृणा का प्रचार करे।"

सार्वजनिक सभा हुई। महात्माजी ने कहा, "खद्दर मोटा हो तब भी खद्दर ही पहनें, क्योंकि कोई आदमी अपनी माता को बदसूरत और मोटी होने के कारण नहीं त्यागता। ....आप लोग एक ओर तो स्वाधीनता चाहते हैं, दूसरी ओर फ़ैशन के गुलाम बने हुए हैं।"

यहाँ महात्माजी को १०१) रु० की थैली भेंट की गई। इन दो दिनों में ही ५००) की खादी बिकी।

संध्या को नवगाँव पहुँचे। यहाँ स्वागत के लिए पहले से ही स्त्री-पुरुषों की भीड़ खड़ी हुई थी। रात को भाषण के समय एक पुलिस के पटेल सात मातादारों, तथा एक और ने अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा देने के पत्र महात्माजी को दिये। महात्माजी ने उन्हें इस्तीफ़ा देने पर बधाई दी और सदा खादी पहनने का आदेश किया। इस्तीफ़ों का क्रम आगे यात्रा में अधिकाधिक बढ़ता गया है और कांग्रेस ने भी प्रस्ताव-द्वारा उन्हें बधाई दी है।

चौदह मार्च

१४ मार्च को प्रार्थना और भाषण के बाद यह दल नौगाँव से बसना चल दिया। ९ मील चलते रहने से महात्माजी के पैर में कुछ पीड़ा का अनुभव होने लगा। परंतु ६१ वर्ष के बूढ़े की दिलेरी, साहस और हठ ने साथ के घोड़े पर न चढ़ने के लिए बाध्य किया। उस पीड़ा की अवस्था में भी दो बालकों के कंधे पर हाथ रखकर महात्माजी अविराम ९ मील तक चले। यहाँ से साथ के घोड़े को वापस कर दिया।

बसना में एक हरे-भरे आम के बाग में डेरा डाला गया। बगीचे का भी अपूर्व सौभाग्य था कि स्वतंत्रता-युद्ध-यात्री उसकी छाया में विश्राम कर अपनी थकान मिटा रहे थे! महात्माजी एक ओर बैठकर सूत कात रहे थे और गाँव के श्रद्धालु, भक्त, दर्शनेच्छु स्त्री-पुरुष आकर प्रणाम करते थे। यहाँ दोपहर की कड़ी धूप में महात्माजी ने भाषण देते हुए छुआ-छूत दूर करने का आदेश दिया और कहा कि यदि आप कष्ट सहन करने के लिए तैयार हो जावें तो आप अपना भाग्य दुरुस्त और ऊँचा कर सकते हैं। आपने कहा कि जबतक देश में जनता के प्रति उत्तरदायी सरकार कायम नहीं होती तबतक वह किसी भी अनुचित क़ानून को न मानें। यहाँ भी बसना और महीकाल के पुलिस-पटेलों ने इस्तीफ़े दे दिये और दोनों गाँवों के लोगों ने शपथ खाई कि खाली जगह पर कोई न जायगा।

६ बजे संध्या को चलकर यह दल एक घंटे में मातर पहुँचा। सैकड़ों स्त्री-पुरुष ढोल-मृदंग आदि देशी बाजे लेकर सत्याग्रहियों के स्वागत के लिए आये थे। यहाँ भाषण देते हुए महात्माजी ने कहा कि आपने मेरा और मेरे साथियों का स्वागत करके सत्याग्रह के सिद्धान्त का स्वागत किया है। आपको पूर्ण स्वाधीनता के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। बोरसद ताल्लुके के बादलपुर स्थान में बहुत नमक है, सबको वहाँ नमक बनाना चाहिए। उस दिन होली थी, इसलिए आपने कहा कि आज विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाय।

पन्द्रह मार्च

मातर से १५ मार्च के प्रातःकाल महात्माजी दामान के लिए रवाना हुए। कुछ स्वयं-सेवक बीमार हो गये थे, उन्हें मोटर पर दल के साथ चलने की अनुमति दे दी। रास्ते भर दर्शनेच्छुओं की बड़ी भारी भीड़ रही। दामान के मुखियों और मातादारों ने भी इस्तीफ़े दे दिये। दामान में ही बम्बई के सत्याग्रह के विषय में सलाह करने श्री खुरशेदजी नरीमेन ने महात्माजी से बात-चीत की।

संध्या-समय यह दल दामान से चलकर नडियाद पहुँचा। गाँव के लोगों ने बहुत आगे आकर बड़े उल्लास और प्रेम के साथ महात्माजी का स्वागत किया। नडियाद में इस समय तक जितनी सभायें हुई थीं, उनमें यह सभा सबसे बड़ी थी। महात्माजी बोले, आप लोग मुझे आशीर्वाद देने के लिए आये हैं, पर केवल आशीर्वाद से तो काम नहीं चलेगा। आप लोग कष्ट-सहन के लिए तैयार हो जावें और सत्याग्रह में भाग लें।' आगे आपने लोगों को सरकारी नौकरियों का मोह, और विद्यार्थियों को अध्ययन छोड़ कर इस स्वतंत्रता के युद्ध में सम्मिलित होने का आह्वान किया। नडियाद में रात को सन्तराम के मन्दिर में विश्राम किया, यद्यपि दल के साथ अछूत स्वयंसेवक भी हैं। इस प्रकार महात्माजी की आत्म-प्रेरणा के प्रबल प्रभाव से लोगों में अछूतों के साथ सद्भाव सहज ही फैल जाते हैं।

सोलह मार्च

सोलह मार्च को नियमानुसार प्रार्थना करने के बाद महात्माजी अपनी टोली के साथ बेरयावी पहुँचे। यहाँ ये एक धर्मशाला में ठहरे। इसके थोड़ी देर बाद ही इंसपेक्टर-पुलिस बोरगाँव में आया, परन्तु शीघ्र ही लौट गया।

तीसरे पहर एक बूढ़ी स्त्री खादी पहने महात्माजी के दर्शन करने आई। उसने कहा, 'मैं आपके दर्शन करने आई हूँ, मुझे दूर की चीज़ दिखाई नहीं पड़ती, इस कारण दूर से मैं आपका मुँह न देख सकी।' इस प्रेम और भक्ति का कौन वर्णन कर सकता है! जिस महात्मा के साथ देश का ऐसा मधुर स्नेह है उसे विजय न मिले, तो यह एक आश्चर्य की बात है। महात्माजी ने उस बुढ़िया से कहा, 'मेरे मुँह में देखने योग्य कुछ चीज़ नहीं है।' इसके बाद बूढ़ी ने तीन रुपये महात्माजी के चरणों पर रख दिये और स्वयं हाथ जोड़ कर चरणों पर गिर पड़ी। इस भेंट से बढ़कर कौनसी भेंट हो सकती है, जो हृदय का आशीर्वाद भी साथ में खींच कर लाई थी? महात्माजी बोले, 'मेरी लड़ाई न्याय के लिए है। मैं चाहता हूँ कि अगर आप इसे धार्मिक युद्ध समझती हैं तो स्वार्थ-त्याग करें, न कि रुपया दें।'

इसके बाद सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए महात्माजी ने कहा कि 'मैं आप से धन नहीं माँगता। केवल धन से स्वराज्य नहीं मिल सकता। पैसे से धन मिलता तो मैं उसे कभी का प्राप्त कर चुका होता। स्वराज्य तो आप लोगों के ख़ून से मिलेगा।' महात्माजी ने स्त्री-पुरुषों को स्वयंसेवकों में नाम लिखाने, खादी पहनने और सूत कातने की प्रार्थना की। यहाँ भी पास के गाँव व अदालत के पुलिस-पटेल और मुखियों ने, तथा दुमल के तीन मालगुज़ारों ने त्याग-पत्र दे दिये। यहाँ से महात्माजी को १०१) और कम-अरी की ओर से ७५) की थैली भेंट की गई।

संध्या-समय यह दल आनन्द पहुँचा। दूसरे दिन महात्माजी का मौन-दिवस था, इसलिए शाम को ही एक सार्वजनिक सभा की गई। यहाँ भाषण में महात्माजी ने कहा, "मैं आपसे धन नहीं चाहता।.........अगर मैं अपील करूँ तो सारे देश से इतने रुपयों की बौछार हो पड़ेगी, जिससे मैं दब जाऊँ।" आपने चरोतर शिक्षा-संघ को आदेश दिया, कि उन्हें गुजरात-विद्यापीठ के विद्यार्थियों का अनुकरण करना चाहिए, जो अपना अध्ययन छोड़कर युद्ध में शामिल हो गये हैं। मेरा विश्वास है कि विद्यापीठ पर जो रुपये ख़र्च हुए हैं उसका बदला ठीक दिया जा रहा है। १९२१ में मैं अध्ययन छोड़कर विद्यार्थियों को राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित कर पढ़ने का आदेश करता था, अब १० वर्ष बाद मैं विद्यार्थियों को कहता हूँ कि वे अध्ययन छोड़कर देश के लिए सब-कुछ त्याग करदें।.. ...व्यापारियों को अपना व्यापार छोड़ देना चाहिए। अगर देश-व्यापी सत्याग्रह शुरू हो जायगा तो सब के लिए एक ही पेशा अनुकरणीय होगा और वह पेशा सत्याग्रह होगा।"

सत्रह मार्च

सत्रह मार्च को महात्माजी का मौन-दिवस होने के कारण सब आनन्द में रहे। बीमार स्वयंसेवक अच्छे हो गये। सिर्फ़ एक को चेचक निकल आई है, वह आनन्द में ही रक्खे गये। न तो किसी को घर लौटने की आज्ञा है, न आश्रम। काका कालेलकर के पुत्र श्री शंकर कालेलकर और नैपाली वीर, हीरालाल की हत्या करनेवाले, खड्ग बहादुरसिंह भी स्वयंसेवकों में सम्मिलित कर लिये गये। वीर खड्गबहादुर ने कहा कि देहरादून के गुरखों ने जालियाँवाला बाग़ में निरपराध व्यक्तियों पर जो गोली चलाई थी उसी का प्रायश्चित्त करने मैं प्रथम दल में शामिल होना चाहता हूँ।

अठारह मार्च

अठारह मार्च को गाँधीजी नापा पहुँचे। यात्रा में महात्माजी को धूल के कारण काफ़ी कष्ट उठाना पड़ा। ऐसी धूप और धूल में चलना, और इस उम्र में, आश्चर्य की बात है। नापा में म्युनिसपैलिटी ने धूल को न उड़ने देने के लिए सड़क पर छिड़काव कर दिया। गाँव खूब सजा दिया गया था। यह मुसलमानों की बस्ती है, सैकड़ों मुसलमान स्वागत के लिए आये थे।

संध्या के समय दल बोरसद पहुँचा। यहाँ पर पुलिस पहले से तैनात थी। यहाँ बीस गाँवों के मुखियों, मालदारों आदियों ने त्याग-पत्र दे दिये। खेड़ा ज़िले में २-३ हज़ार स्वयंसेवक भरती होने को उत्सुक हैं।

उन्नीस मार्च

उन्नीस मार्च को महात्माजी रास पहुँच गये, जहाँ वल्लभभाई की गिरफ्तारी हुई थी। महात्माजी की भी गिरफ्तारी की सम्भावना थी। परन्तु ऐसी मूर्खता सरकार ने नहीं की। वहाँ गाँधीजी ने कहा कि मुझे कहा गया है कि अगर हम नमक बनावेंगे तो हमारे हाथ से नमक छीन लिया जायगा। यद्यपि मैं कमजोर हूँ लेकिन देखूँगा सरकार मेरे हाथ से नमक कैसे छीनती है।

इसके बाद महात्माजी खेड़ा ज़िले के आख़िरी गाँव कनकपुर में पहुँचे। आपने अपने जलालपुर पहुँचते ही वहाँवालों को भी नमक बनाने को कहा और कहा कि सरकारी नौकरों का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए।

इस ज़िले में महात्माजी का अभूतपूर्व-प्रभाव पड़ा। शराब बेचने वालों ने शराब न बेचने की प्रतिज्ञा की। सौ से भी अधिक सरकारी नौकरों ने नौकरी छोड़ दी। ये इस्तीफ़े अब बढ़ते ही जा रहे हैं।

बीस मार्च
(भड़ोंच जिले में)

कनकपुर से चलकर आधी रात के समय डरावनी महानदी को पार किया। सब लोग रातभर किनारे पर डेरा डाले रहे। यहाँ राष्ट्र-पति जवाहरलालजी भी महात्मा जी से मिले। इसके बाद दल करेली पहुँचा। दिन भर वहीं ठहरा गया। बम्बई से श्री साम्बमूर्ति तथा अन्य ज़िले के नेता यहीं महात्माजी से मिले। सभा में महात्माजी ने कहा, भड़ोंच ज़िले से ५००० स्वयं-सेवक मिलना कठिन नहीं। बड़ौदा राज्य के लोग भी अँग्रेज़ी इलाके में आकर नमक बना सकते हैं।

इक्कीस मार्च

करेली से दल गजेरा पहुँचा। यहाँ दस स्वयं-सेवक बीमार पड़ गये। ये लोग भड़ौंच पहुँचा दिये गये। यहाँ पर सभा में अछूतों को अलग बैठाया गया था, इस पर महात्माजी अपने दल सहित अछूतों में बैठे और कहा, "मैं भी अछूत हूँ।" इसका प्रभाव यह हुआ कि अछूत भी सभा में साथ ही बैठाये गये।

संध्या को दल आँखी पहुँचा। यहाँ पुलिसवाले रिपोर्ट लेने आये। उनका इस तरह बहिष्कार किया गया कि उन्हें फ़ाकाकशी करनी पड़ी। इस पर महात्माजी ने कहा 'सरकारी नौकरों को भूखों मारना मेरा धर्म नहीं है, मुझ पर गोली चलाने के बाद जनरल-डायर को भी अगर साँप काट ले तो मैं उसका खून चूसकर निकाल दूँगा।' कितना उदार-हृदय है यह महात्मा!

बाइस-तेईस-चौबीस मार्च

बाइस मार्च को प्रातःकाल यह दल जम्बूसर पहुँचा। यह शहर पहले ही से खूब सजाया गया था। हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर इनका हार्दिक स्वागत किया। यहाँ पर पं० मोतीलाल नेहरू, श्री जवाहरलाल नेहरू, तथा भारतीय-कांग्रेस-कमेटी के ६० सदस्य मिलने आये। आंध्र और मध्यभारत के नेताओं ने अपने-अपने प्रान्त में सत्याग्रह करने के लिए सलाह की। यहाँ महात्माजी, मोतीलालजी, जवाहरलालजी के प्रभावशाली भाषण हुए। जम्बूसर के ११ मुखियों और १७ मतादारों ने इस्तीफ़े दे दिये। इस सभा के उत्साह का कोई ठिकाना न था। एक नन्हीं-सी बच्ची ने एक काँच की चूड़ी भेंट की जो १५०) में नीलाम हुई। यहाँ ८००) की थैली भेंट की गई। राष्ट्रपति ने प्रस्थान के समय स्वयं-सेवकों को स्वतन्त्र भारत के बिल्ले दिये। साथ में सभी नेता पैदल चले।

यहाँ से दल दस बजे रात को आमोद पहुँचा। यहाँ एक जुलूस बड़े उत्साह से निकाला गया। एक देश-भक्त ने जुलूस को रोककर गुलाबजल से सब को शीतल किया, और रुपयों की थैली भेंट की। रात को सभा हुई, जिसमें महात्माजी ने उपदेश दिया। २५१) की थैली गाँववालों की ओर से भेंट की गई, और एक दर्जन मुखियों और तलाटियों ने इस्तीफ़े दिये। यहीं पर श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने स्त्री-स्वयं-सेविकाओं के सत्याग्रह में भाग लेने के विषय में बातें की।

२३ की सुबह आमोद से चलकर महात्माजी बुवा पहुँचे। यहाँ महात्माजी ने बतलाया कि सरकार इस समय १८५७, या १९१९ से अधिक दुर्बल है। आमोद से महात्माजी सामनी पहुँचे। २४ ता० को मौन-दिवस

था इसलिए सामनी में ही विश्राम किया गया। यहीं मद्रास के श्री सुन्दरम् रेड्डी ने महात्माजी को १०००) की थैली भेंट की।

पच्चीस-छब्बीस-सत्ताईस मार्च

२५ ता० को महात्माजी टालम पहुंचे। यहाँ पर मालूम हुआ कि शारदा-एक्ट की बीमारी फैली हुई है, इससे हाज़िरी कम थी। वहाँ आपने कहा कि कुछ मुसलमान मेरे पास शिकायत लाये थे कि मैं मुसलिम गाँवों में से नहीं गुज़रता। मैंने कहा कि मुझे निमन्त्रण मिलें तो मैं आने के लिए तैयार हूँ। मैं जहाँ जाता हूँ भिक्षा का खाना खाता हूँ ....। मुसलमानों की दावत पहले मंजूर करता हूँ। डण्डी में सत्याग्रह के समय मैं एक मुसलमान के घर ठहरूँगा। यहाँ से महात्माजी देवल गाँव पहुँचे। वहाँ की सभा में भी रुपयों की एक थैली भेंट की गई।

२६ ता० को दल भड़ौंच पहुँचा। यहाँ महात्माजी का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। यहाँ पर महात्माजी ने कहा कि कांग्रेस ऐसे किसी भी समझौते को मानने के लिए तैयार नहीं है जिससे किसी का दिल दुखे। कांग्रेस के लोग हिन्दुस्तानी हैं चाहे वे भले ही भिन्न-भिन्न धर्मों को मानते हैं। यह दुःख की बात है कि मुझे अपनी जेब में रखने वाले मौ० शौकतअली अब मेरे साथ नहीं हैं। मैं अभीतक उन्हें अपना भाई मानता हूँ। इसलिए मुझे आशा है कि मैं अभी अली भाइयों को अपनी जेब में रख सकूँगा।

शाम को दल ने नर्मदा पार की और सूरत जिले में पहुँच गये। सरोजनी नायडू भी साथ थीं।

महात्माजी की यात्रा निर्विघ्न जारी है। यद्यपि बीमारी के कारण कुछ गड़बड़ी अवश्य होती है, फिर भी किसी स्वयंसेवक को वापस लौट जाने की आज्ञा नहीं मिलती। अब वापस तो स्वराज्य लेकर ही लौटा जायगा। किसी स्वयंसेवक को एक पैसा भी पास रखने की इजाज़त नहीं है। जहाँ से महात्माजी गुज़र जाते हैं, छूआछूत, पर्दा, शराब, अफ़ीम और सरकार लगभग मृतक और प्रभावहीन हो जाते हैं। इस बुढ़ापे में चौदह-चौदह मील धूप में, धूल में, बिना रुके पैदल चलना कितना कष्टकर है! क्या देश इसे कर्मयोगी, त्यागी, वीरात्मा का साथ न देगा। उसे तो बहुत आशा है। देश ने भी करवट बदली है। महात्माजी का भी कहना है कि अब सत्याग्रह न किया गया तो फिर सत्याग्रह का समय कभी न आवेगा। 'समय चूकि पुनि का पछताने'। यही समय है माँ—भारत का ऋण चुकाने का। ६ अप्रैल के आस पास सारे देश में सत्याग्रह प्रारम्भ होने की आशा है, इसी तारीख को महात्माजी डंडी में नमक बनावेंगे।

'प्रेमी'

सरदार को सज़ा ग़ैरक़ानूनी

सरदार पटेल को जो सज़ा दी गई, बम्बई के कानून पेशाओं ने अपनी सभा करके फ़ैसला किया है कि वह ग़ैर-कानूनी है। असेम्बली में सरकार ने जो सफ़ाई दी, वह भी बहुत नाकाफ़ी रही। बीच में अफ़वाह उड़ी थी, शायद उन्हें छोड़ दिया जाय, पर सरकार ने इसका खण्डन कर दिया।

शानदार दान

यह ख़बर सारे देश में बड़े आनन्द के साथ सुनी जायगी कि पं० मोतीलाल नेहरू ने अपना विशाल आनन्द-भवन कांग्रेस को समर्पण कर दिया है। २२ मार्च को जम्बूसर में महात्माजी, जवाहरलालजी और मोतीलालजी में इस संबंध में बातें हुई थीं। आनन्द-भवन का राष्ट्रीय आन्दोलन से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। भारत-मन्त्री मांटेगू के समय कांग्रेस और मुस्लिम-लीग की तरफ़ से शासन-सुधारों की जो संयुक्त योजना पेश की गई थी, वह इसी भवन में तैयार हुई थी। हस्त-लिखित 'इण्डिपेण्डेण्ट' यहीं से निकलता था। अ० भा० कांग्रेस-कमिटी की अनेक बैठकें इस भवन में हुई हैं। असहयोग-आन्दोलन, सत्याग्रह-जाँच-समिति, स्वराज्य-दल और सर्वदल-सम्मेलन के कामों से भी इसका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। पं० मोतीलालजी की इच्छा है कि इस भवन को कांग्रेस का स्थायी प्रधान कार्यालय बनाया जाय और आनन्द-भवन के बजाय स्वराज्य-भवन इसका नाम रक्खा जाय। ६ अप्रैल को उन्होंने इस प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत कर देने की इच्छा प्रकट की है, क्योंकि वह जालियाँवाला बाग़ का दिन

है और इसी दिन गाँधीजी सत्याग्रह शुरू करनेवाले हैं। राष्ट्र-पति की हैसियत से पं० जवाहरलाल ने उनके इस दान को सधन्यवाद स्वीकार कर लिया है। इस सम्बन्ध में अ० भा० कांग्रेस-कमिटी के सदस्यों की राय माँगी गई है और तब तक के लिए राष्ट्र-पति ने पण्डितजी से आशा प्रकट की है—कि "पुराना आनन्द-भवन' 'स्वराज्य-भवन' का उपयुक्त नाम धारण कर स्वाधीनता आंदोलन में सर्वथा उपयोगी होगा और भारत में शीघ्र ही स्वराज्य स्थापित होगा। तथास्तु!

पीर का पोलखाता!

हम लोग पीर-पुजारियों की पूजा मानता के शिकार हैं। तरह-तरह के वहम और ग़लत फ़हमियों का हम में साम्राज्य है। बच्चा होना हो तो मानता करो, रोग अच्छा करना हो तो मानता चाहिए, कार्य-सिद्धि भी बिना मानता के नहीं—ऐसी स्थिति है हमारे अधिकांश घरों में। अच्छे कामों के लिए अन्ध-विश्वासी नर-नारी, कुछ न देंगे, पर मुस्टण्डे गुण्डे लोगों की मनमानी इच्छा-पूरी करेंगे। नतीजा धन और चरित्र-नाश के रूप में प्रकट होना ही है।

× × ×

हाल में सिन्ध में एक पीर साहब पकड़े गये हैं। बड़े मशहूर हैं। लाखों उनके अनुयायी हैं। थरपरकर ज़िले में 'पीर जो गोठ' गाँव में उनका आलीशान भवन—कोट—है। पृथ्वी पर ईश्वर की दिव्य मूर्ति के रूप में वह पुजते हैं, और उनके अनुयायी अपना धन, जन' आत्मा सब उनके समर्पण करते हैं—यहाँ तक कि उनके अलावा और किसी को वह अपने दाहिने हाथ से सलाम तक नहीं करते। उनके भाई तथा उनकी माँ और घर की दूसरी स्त्रियों की शिकायतों पर वह गिरफ़्तार हुए हैं और ग़ैरक़ानूनी मजमा, दूसरों के घरमें अनधिकार-प्रवेश में, चोरी तथा हत्या जैसे संगीन जुर्म उन पर हैं। आधी रात को बड़े भारी दल के साथ एकाएक पुलिस ने उन्हें घेरा। तलाशी में चार हज़ार कारतूस और २७ बन्दूक-पिस्तौल ही नहीं मिले बल्कि एक खोया हुआ बालक भी सन्दूक में बन्द किया हुआ मिला। इस बालक की माँ ने इसके बन्द किये जाने की ख़बर अफ़सरों को दी थी, इस पर कहते हैं उसकी हत्या करादी गई और लाश स्टेशन पर पड़ी हुई मिली। अभी तो और भी न जाने क्या-क्या रहस्य खुलेंगे। हमारा अन्ध-विश्वासी समाज ज़रा सोचे तो कि इन्हीं की न वह पूजा करता है—क्या ये पूजनीय ही हैं?

डाक्टरों में हलचल

ब्रिटिश मेडिकल-कौंसिल ने भारतीय डाक्टरों की डिग्रियें अस्वीकारर्णीय ठहराकर भारतीय डाक्टरों का जो अपमान किया है, उससे उनमें क्षोभ होना स्वाभाविक है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि सभी जगह के मशहूर-मशहूर डाक्टरों ने एक सिरे से उसका विरोध किया है। हमारी समझ में कोरा विरोध कारगर नहीं हो सकता, सच्चा उपाय वही है, जिसकी ओर मद्रास के डाक्टरों ने निर्देश किया है। हम ब्रिटिश डिग्रियों का बहिष्कार करें और ब्रिटिश दवाइयों का व्यवहार बन्द कर दें, यही इसका सर्वोत्तम और प्रभावपूर्ण उपाय है। हमारी सरकार हमारी अपनी नहीं है, इसलिए वह तो शायद ही इस काम में हमारी सहायक हो; पर ग़ैर-सरकारी लोग और सर्व-साधारण भी तो इस दिशा में कुछ कर ही सकते हैं क्या वे ऐसा करेंगे?

सत्याग्रह-यात्रा की फ़िल्में ज़ब्त

महात्माजी की रवानगी की तीन फ़िल्मों को यद्यपि बम्बई के फ़िल्म-सेंसर ने मंज़ूर कर लिया था, पर बम्बई-सरकार ने उन्हें ज़ब्त कर लिया। एक-के-बाद-एक, उसके बाद, अन्य कई प्रान्तों की सरकारों ने भी उन्हें ज़ब्त कर लिया है। आश्चर्य यही है कि उनके असली चित्र, जो अख़बारों में निकल चुके हैं, ज़ब्त क्यों नहीं किये गये?

पटियाला-काण्ड

नरेन्द्र-मंडल के चांसलर महाराजा पटियाला पर बड़े संगीन इलज़ाम लगाये गये हैं। पहले वे फुटकर रूप में आते थे, अब देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् की चुनिन्दा कमिटी की जांच के बाद व्यवस्थित रूप में सामने आये हैं। इसमें शक नहीं कि जाँच बहुत-कुछ एकपक्षीय है, पर जब महाराज

अपना पक्ष रखने को तैयार नहीं तब और हो भी क्या सकता था ? फिर भी जाँच बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ हुई है और उसके नतीजे युक्तियुक्त हैं । पं० मोतीलाल नेहरू, श्री श्रीनिवास आयंगर, सर शिवस्वामी, सेठ जमनालालजी बजाज़ आदि देश के बड़े-बड़े कानूनदाँ और ज़िम्मेदार व्यक्तियों ने उस पर अपनी रायें दी हैं । सब एकमत हैं कि महाराज अपने मामले की स्वतंत्र जाँच करावें । इसके बिना ऐसे संगीन जुर्मों के होते हुए, उनका गद्दी-नशीन बने रहना उनके अपने लिए तो उचित है ही नहीं, प्रजा और भारत-सरकार के लिए भी कलंक रूप है । रियासत के सिक्खों का एक जत्था वायसराय-भवन पर अपनी पुकार सुनाने गया था, और पोलिटीकल सेक्रेटरी के जाँच का आश्वासन देने पर लौटा है; पर अभी तक ऐसा मालूम नहीं हुआ कि सरकार ने कोई कार्यवाही इस दिशा में शुरू की हो । महाराज उसके जैसे पिट्ठू हैं, उसे देखते हुए आशा भी नहीं कि सरकार उनके ख़िलाफ़ कुछ करे । पर प्रजा क्यों इसे बर्दाश्त करे ? महात्मा गांधी का बताया सत्याग्रह का रास्ता उसके सामने है, वह चाहें तो उसका उपयोग कर सकती है ।

मुकुन्द

विष-पान

पुराणों में एक मनोहारिणी कथा है । अमृत के लिए सनातन काल से मानव-जाति में एक ज़बरदस्त आकर्षण रहा है । अमृत से अमरता मिलती है । मनुष्य निर्जर हो जाता है । जन्म और मरण की झंझट मिट जाती है । एक देश के निवासी किन्तु प्रकृति से भिन्न देवता और असुरों ने सोचा कि कोई ऐसी चीज़ मिल जाय जिससे कि एक बार इस जीवन-कलह की झंझट से मुक्त हो जावें । पर वह मिले कैसे ? सभी विचार-मग्न हो गये । भगवान नारायण ने देखा देवासुर विचार-मग्न हैं । ब्रह्मा से उन्होंने कहा, 'विरिंची, इन देवासुरों से समुद्र-मथन करने के लिए कहो ।' भगवान भूत-भावन ने कहा, 'हे देवताओ समस्त औषधियाँ और रत्नों को समुद्र में डालकर उसका मथन कीजिए । उससे आपको अमृत की प्राप्ति होगी ।'

पर समुद्र का मथन करना हँसी-खेल तो था ही नहीं । उसके लिए रवि (मन्थन-दण्ड) और रस्सियाँ भी तो ऐसी ही ज़बरदस्त और मज़बूत होनी चाहिए । एक महान् पर्वत चुना गया । गगन-चुम्बी उसके शिखर थे, लता-वृक्षों से ढका हुआ, नाना-प्रकार के पक्षियों के कल-रव से कूजित उसके निकुंज थे । उसके वन-प्रान्तों में हज़ारों वन्य और हिंसक पशु विचरते थे । यक्ष, किन्नर और देवताओं का वह अधिवास था । पर उसे कौन उठा सकता था ? आर्त भाव से देवता भगवान् महादेव के, एवं जगन्मोहन विष्णु के पास पहुँचे और प्रार्थना करने लगे "हे देवाधिदेव आप दोनों मिलकर कृपया इस पर्वत को उठाने में हमारी सहायता कीजिए जिससे हमारा कल्याण हो ।" भगवान ने अनन्त को आज्ञा दी । अमितवीर्य भगवान अनन्त ने उसे उठाया और समुद्र तट पर ले गये ।

देवताओं ने समुद्र से प्रार्थना करते हुए कहा, महाराज रत्नाकर! हम आपके जल का मन्थन करना चाहते हैं।" समुद्र ने कहा अच्छी बात है। परन्तु आपको जो लाभ हो उसमें से कुछ हिस्सा मुझे भी मिलना चाहिए क्योंकि इस महापर्वत के मंथन से मुझे महा दुख सहना पड़ेगा। पर बाईस सहस्र योजन ऊँचे पर्वत को अधर में संभालकर मंथन करने की शक्ति भी किसी में न थी। देवासुरों ने कच्छदेव से कहा भगवान इस पर्वत के भार को तो आप ही सम्हाल सकते हैं। उन्होंने स्वीकार किया और मंथन शुरू हुआ।

पता नहीं कितने सहस्र वर्ष तक मंथन हुआ। मंथन कहीं व्यर्थ होता है? देवासुरों ने कितना त्याग किया था। सब धीरे-धीरे सफल होने लगा। चन्द्र, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा शंख, ऐरावत, इत्यादि निकले, पर देवताओं को इस से संतोष कैसे होता। अन्त में दोनों देवासुर थककर बैठ गये।

भगवान प्रकट होकर बोले अरे हारने से कैसे काम चलेगा? थोड़ा और रहा है। ज़रा और ज़ोर लगाओ कि बेड़ा पार है। देवता फिर भिड़े। परन्तु इतने में समुद्र का जल अत्यंत क्षुब्ध हो उठा। सारा पानी फेन से सफ़ेद हो गया। भीतर से धुंए के बादल से उठने लगे। ताप से देवासुर दोनों तप्त होने लगे। अगाध शीतल जल से भयंकर हालाहल ऊपर आया। सारा विश्व व्याकुल हो उठा। समुद्र-मंथन छोड़कर समस्त देवासुर अलग आ खड़े हुए। किसी की समझ में नहीं आता था कि अब क्या किया जाय। इतने में भगवान शंकर दौड़े और सारा विष लेकर पी गये। उनकी तपस्या अपूर्व थी। सारे विष को हज़म कर गये। सिर्फ़ कंठ में थोड़ा-सा नीलापन रह गया। पर वह तो उनका भूषण बन गया। विष का ताप शान्त होते ही देवासुर फिर मन्थन करने लगे और अब की धन्वन्तरी अमृत का कलश लेकर समुद्र में से प्रकट हुए। देश में आज भी इसी तरह घोर समुद्र-मथन हो रहा है। अब तक जो रत्न मिले उनसे हमें तृप्ति न हुई। मंथन बराबर जारी है। यह मानव-समुद्र अब क्षुब्ध हो रहा है। हालाहल के बादल आकाश में उठने लगे हैं। घोर दमन का विष पुरस्कार में मिलेगा। शंकरी शक्तिशाली युवक इसे पान कर जायँ तो स्वराज्य-रूपी अमृत हमें मिला ही समझिए।

वै० म०
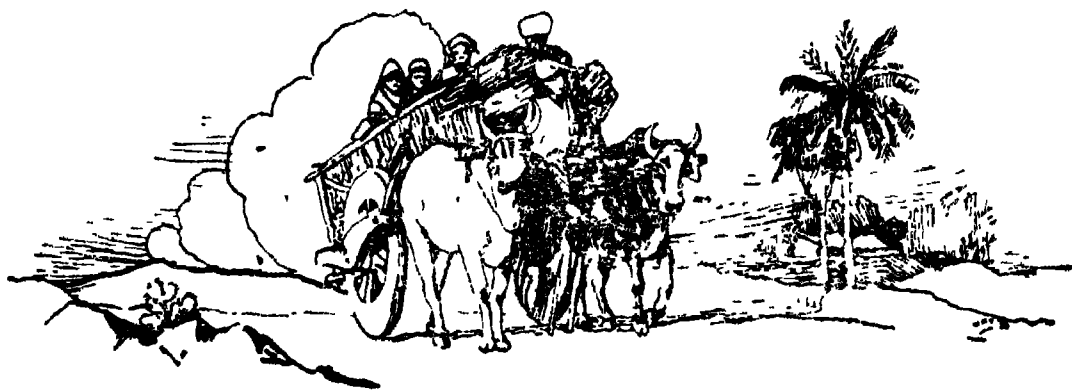
स्वतंत्रता की पुकार : राजस्थानियों की ज़िम्मेवारी

प्यारे राजस्थानी भाइयो !

सत्याग्रह-संग्राम का शंख बूढ़े तपस्वी ने फूँक दिया है और वह अपनी छोटी-सी परन्तु दृढ़-संकल्पी सेना को लेकर विजय के लिए चल पड़ा है। उसने कह दिया है कि मेरे जीवन में अब यह स्वतंत्रता का अन्तिम धर्म-युद्ध है। और इसलिए वह तथा भारत का प्रत्येक देश-भक्त इसमें अपनी अन्तिम आहुति देने के लिए तैयार हो रहा है। हमारा राजस्थान भी इसमें पीछे कैसे रह सकता था? कार्य समिति के द्वारा महात्माजी को सत्याग्रह का अधिकार मिलते ही हमारी प्रान्तिक कांग्रेस-कमिटी ने सत्याग्रह करने का प्रस्ताव पास करके उसके संचालन की सारी सत्ता प्रान्तीय कार्य-समिति को दे दी थी और अभी अहमदाबाद में महासमिति की बैठक होने के बाद हमारी कार्य-समिति ने सत्याग्रह की तैयारी आदि के और संचालन-संबन्धी सब अधिकार फ़िलहाल मुझे दे दिये हैं। यों तो प्रान्त के प्रधान मन्त्री के नाते मुझसे और मेरे उत्साही साथियों से जितना कुछ बन पड़ा है, सत्याग्रह की तैयारी के लिए उद्योग किया गया है। प्रसिद्ध साँभर झील के अलावा नमक बनाने के दूसरे स्थान देखे गये हैं, नमक बनाने के प्रयोग किये जा रहे हैं, स्वयं-सेवक बनाने का प्रयत्न और सत्याग्रह का वातावरण उत्पन्न करने का काम भी जारी है; पर अब सारी ज़िम्मेवारी आ पड़ने से मेरा बोझ बहुत ही बढ़ गया है। मैंने बहुत काँपते हुए किन्तु आशावान हृदय से अपने दुर्बल कन्धों पर बोझ लिया है। मेरी आशा का आधार है इस युद्ध की, इसके साधनों की पवित्रता, इसके आचार्य की घोर तपस्या, राजस्थान का बलिदान-पूर्ण इतिहास और अन्त में राजस्थानियों की देश-भक्ति। मुझे इस युद्ध में ईश्वर का प्रत्यक्ष हाथ दिखाई पड़ता है और इसीलिए मैंने इस भारी ज़िम्मेवारी को उत्साह और दृढ़ता के साथ अपने सिर पर ले लिया है। इस समय अस्वास्थ्य, कुटुम्ब, दूसरे अंगीकृत कार्य, अपना संकोच, विनय, अल्पता आदि किसी भी कारण से पीछे हटना या पीछे रहना मैंने एक दरजे की कायरता समझा। मानव-जीवन के इतिहास में स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए प्रारंभ किये गये ऐसे अपूर्व शान्ति-संग्राम में यदि मैं, मेरा कुटुम्ब-परिवार, मेरे और काम सब स्वाहा हो जायँ तो भी कोई बड़ी बात न होगी। यदि ये सब स्वतंत्रता के काम न आये तो फिर कब आयँगे? इन भावों से प्रेरित होकर मैंने यह साहस कर डाला है। मुझे विश्वास है कि राजस्थान का प्रत्येक देश-भक्त, स्वतंत्रता का प्रत्येक पागल, 'हिन्दी-नवजीवन', 'त्यागभूमि', 'सस्ता-मण्डल', खादी और अछूत-सेवा, आदि किसी भी कारण से मेरे प्रति स्नेह और सद्भाव रखनेवाले प्रत्येक राजस्थानी भाई-बहन फिर वे हिन्दुस्तान में कहीं भी, किसी भी कोने में हों, मेरे द्वारा उठनेवाली राजस्थान की इस पुकार पर इस संग्राम में अधिक से अधिक हिस्सा लिए बिना न रहेंगे।

मेरी मांगें सिर्फ दो हैं—

जन और धन

जिनको ईश्वर ने धन दिया है उनके सामने उसके सदुपयोग का ऐसा स्वर्ण संयोग सदियों तक फिर न आवेगा। जिनको परमात्मा ने पुत्र, भाई, पुत्री या बहनें दी हैं उन्हें उसके इस अनुग्रह को सार्थक करने का फिर कौन-सा मंगल-समय मिलेगा? महात्माजी के रूप में प्रत्यक्ष ईश्वर या स्वतंत्रता-देवी ही, हमारे घोर पापों का प्रायश्चित करने के लिए बलिदान का खप्पर अपने हाथों में लिये हमारा आवाहन कर रही है। ओ बलिदान की इस पुण्य भूमि के सुपूत राजस्थानियो, बोलो—इस स्वातन्त्र्य-यज्ञ में तुम्हारी आहुति कैसी होगी? तुम कायरों और गीदड़ों की श्रेणी में बैठना चाहते हो या वीरों और आत्म-त्यागियों की पंक्तियों में ऊँचा सिर रखना चाहते हो? तुम जीवन और आज़ादी चाहते हो, या मृत्यु और गुलामी? यदि जीवन और आज़ादी चाहते हो तो अपने

धन-जन की आहुति लेकर

समर-क्षेत्र में कूद पड़ो। सत्याग्रही स्वयंसेवक बनकर, कांग्रेस-कार्यालय के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके इस धर्म-युद्ध में अपनी दुर्लभ नर-देह सार्थक करो।

प्रान्तीय कांग्रेस-कार्यालय अजमेर २६। ३। ३०	आपका विनीत बन्धु हरिभाऊ उपाध्याय

REGISTERED No N, 351.

इसे हाथ से मत जाने दीजिए

? ? ?

१—यदि आप 'त्यागभूमि' के दो ग्राहक बनाकर भेज देंगे तो आपको नीचे लिखे पुस्तकों के गुच्छे में से कोई भी एक गुच्छ मुफ्त में मिलेगा।

२—यदि आप खुद 'त्यागभूमि' के ग्राहक बन जावेंगे तो नीचे लिखे गुच्छ में से एक गुच्छ मुफ्त मिलेगा।

३—यदि आप अपने मित्रों के ४ ऐसे नाम भेज देंगे जिनमें दो तो अवश्य ही त्यागभूमि के ग्राहक हो जावेंगे उन्हें 'त्यागभूमि' का सुन्दर और कलामय केलेण्डर मुफ्त में दिया जावेगा।

(१)		(२)		(३)	
रुई और उसका मिश्रण	१॥)	श्री कृष्ण चरित्र	=)	खादी का इतिहास	।=)
असहयोग दर्शन	१।)	डॉ सनयातसेन	।)	म० गांधी के निजी पत्र	।=
फिजी की समस्या	१)	महात्मा गाँधी	≡)	नैतिक जीवन	१)
राष्ट्रीय झण्डा	१)	सेठ जमनालाल बजाज	१)	पंजाब का नरहत्या काण्ड	॥≡)
		सी० आर० दास	॥)	अकालियों का सत्याग्रह	॥)
		भारत के हिन्दू सम्राट	१॥)		

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।

१९८७
चैत्र
वैशाख

वर्ष ३
खण्ड २
अंक १-२

इस अंक में पढ़िए—

और

भारत के वर्त्तमान आन्दोलन पर संपादकीय टिप्पणियां।

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति का ।=)

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर

विषय-सूची

— —

राष्ट्रपति और सेनापति

[पूर्ण स्वाधीनता के यज्ञ में राष्ट्र की दो पवित्र आहुतियाँ]

सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म समर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष ३ खण्ड २ | सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर चैत्र वैशाख संवत् १९८७ | अंक १-२ पूर्ण अंक ३१-३२

विजय-गीत

[श्री वाचस्पति मिश्र]

'विजय विजय' के अनन्त स्वर मे जगे जगे कण्ठ-रव हमारा ।
अखिल अपरिमित, अनिद्य गौरव, निसर्ग-सुन्दर उदय हमारा ॥विजय०॥
प्रकृति हमारी गगन सदृश है, अगाध सागर समान संयम ।
अटल हिमालय प्रतिम अनवनत अशेष पौरुष अजय हमारा ॥विजय०॥
रहस्य यम का हमें विदित है, अभी न विस्मृत विराट गीता ॥
अकाम शैशव, अपाप यौवन, अमोघ जीवन अभय हमारा ॥विजय०॥
अनन्त कर्त्तव्य है करों में, विलीन भ्रूभंग मे प्रलय है ।
अबाध गति आज है हमारी, उदय, उदय, अभ्युदय हमारा ॥विजय०॥
भरा है कण-कण में बङ्ग-गौरव, महा महिम पञ्चनद समुद्भव ।
अजेय गुर्जर, अभय मराठे, नवीन क्रम से विभव हमारा ॥विजय०॥
'विजय' 'विजय' के अनन्त स्वर मे जगे-जगे कण्ठ-रव हमारा ।

सुख-दुःख-मीमांसा

[श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ]

(१)

सुख-दुःख की मीमांसा करना कठिन है। कभी दुःख-समुदाय अथवा दुःख-परम्परा परिणाम में सुख-रूप हो जाती है, कभी सुखसमुदाय अथवा सुख-परम्परा दुःख में परिणत हो जाती है। फिर यह आवश्यक नहीं है कि जिसको हम दुःख समझें वह वस्तुतः दुःख ही हो, अथवा जिसको हम सुख समझें वह सुख ही हो—अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान से हम दुःख को सुख अथवा सुख को दुःख समझ सकते हैं। मनुष्य की अल्पज्ञता की दृष्टि से योग-दर्शन-कार ने सुख-दुःख का यह लक्षण किया है—

१—अनुकूल वेदनीयं सुखम्

२—प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्

मनुष्य अपने अनुकूल को सुख समझता है, और प्रतिकूल को दुःख साधारण मनुष्य परिणाम पर दृष्टि नहीं रखता और न रख सकता है। विवेकी पुरुष परिणाम पर दृष्टि रखता है, इसलिए उसको संसार की प्रवृत्तियाँ दुःखमय प्रतीत हों तो कौन आश्चर्य ? जहाँ दुःखों की अत्यन्त विमुक्ति होती है उस अपवर्ग—मोक्ष—की ओर टकटकी लगानेवाले को यह संसार दुःखमय प्रतीत हो तो आश्चर्य ही क्या है ? उसी उच्च ध्येय की दृष्टि से हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने संसार को दुःखमय माना तो इसमें अचरज की बात नहीं। पाश्चात्य विद्वान संसार को सुखमय मानते हैं, पर उनको अपेक्षित सुख—जिस रूप में चाहते हैं वैसा सुख—कहाँ नसीब है ? हमारे प्राचीन परिणाम-विवेक पुरुष संसार को सर्वथा दुःख-मय नहीं मानते रहे हैं, वे तो आत्मा को आनन्द-स्वरूप मानते रहे हैं—सुख-दुःख सम्बन्ध से होते हैं, ऐसा उनका विचार था। वस्तुतः है भी बात ऐसी ही। जैसे वायु अनुष्णाशीत है, अर्थात् स्वयं न वह गरम है और न शीत—जब वह उष्ण सम्पर्क पाता है तब उष्ण हो जाता है और शीत सम्पर्क से शीत बन जाता है, यही बात आत्मा की है। न्याय-दर्शन-कार संसार को सिद्धान्त-रूप में सुख-दुःख-मिश्रित मानते हैं, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यदि संसार केवल दुःखमय ही होता तो संसार-यात्रा में बीच-बीच में सुख का साक्षात्कार कभी न होता। फिर सुख और सुखों में भेद है। स्व-स्व-प्रकृति के अनुरूप मनुष्य की तीन प्रकार की श्रद्धा होती है—तामसी, राजसी, सात्त्विकी। उनके तीन ही प्रकार के आहार होते हैं, तीन ही प्रकार की बुद्धियाँ, तीन ही प्रकार की प्रवृत्तियाँ और तीन ही प्रकार के फल। किसी प्रवृत्ति का फल केवल दुःख, किसी प्रवृत्ति का फल मिश्रित सुख-दुःख, किसी प्रवृत्ति का फल केवल सुख होता है। सब प्रकार के दुःखों का समावेश तीन प्रकार के दुःखों में होता है—१ आध्यात्मिक; २ आधिदैविक; ३ आधिभौतिक। इन्हीं तीनों दुःखों को अत्यन्त निवृत्ति के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है वह परम-पुरुषार्थ है।

(२)

एक मनुष्य स्व-कुटुम्ब-निर्वाहार्थ प्रातःकाल से सायंकाल तक घोर परिश्रम करता है, कष्ट उठाता है, चार पैसे कमाता है, और परिणाम-स्वरूप सायंकल स्व कुटुम्ब में आकर दुःख को भूलकर आनन्द में लीन

होता है। यह जो सुख के पूर्व दुःख हुआ वह वस्तुतः दुःख है या नहीं ? वह दुःख-परम्परा सुख के निमित्त थी, इसलिए उसको भी सुख क्यों न माना जाय ? हम रोटी बनाने के लिए लकड़ियाँ लाते हैं, जलाते हैं, चूल्हे के सामने बैठकर धुँआँ सहते हैं, घण्टों में रसोई तैयार होती है, उसका आस्वादन करके मगन हो जाते है—जिस रसोई को पाकर हम इतने मगन हुए वह रसोई भी एक दुःख-परम्परा का परिणाम है, फिर हम पूछते हैं कि वह दुःख-परम्परा दुःख-कोटि में आती है या नहीं ? इसके विपरीत सुख-परम्परा को दुःख मे परिणत होते देखते हैं। इसमें यह निश्चय हुआ कि

१. कुछ प्रवृत्तियाँ सुख से प्रारम्भ होकर दुःख में समाप्त होती हैं।

२. कुछ प्रवृत्तियाँ दुःख से प्रारम्भ होकर सुख में समाप्त होती हैं।

३. कुछ प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ से अन्त तक दुःख-मयी रहती हैं।

४. कुछ प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ से अन्त तक सुखमयी रहती हैं।

इस प्रकार असली सुख-दुःख का विवेक उनके परिणामों से जाना जायगा।

(३)

कौटिल्य चाणक्य के शब्दों में समस्त सुखों का मूल है धर्म, धर्म का मूल है अर्थ, अर्थ का मूल है राज्य, राज्य का मूल है इन्द्रिय-जय, इन्द्रिय-जय का मूल है विनय (शिक्षा), विनय का मूल है वृद्धोप-सेवा। वृद्ध हैं चार प्रकार के—प्रज्ञावृद्ध, धर्मवृद्ध, विद्या-वृद्ध, और वयो-वृद्ध। यह हुई अर्थ-शास्त्र की बात। न्यायकार कहते हैं कि पहले मिथ्या ज्ञान अथवा अज्ञान को हटाओ। उसके हटने से दोष अर्थात् राग-द्वेष-मोह हटेंगे। इनके हट जाने से संसार की कुप्रवृत्तियों का अन्त होगा। जब कुप्रवृत्तियाँ नहीं रहेंगी तब जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा होगा। फिर दुःख कहाँ ? वैशेषिककार कहते हैं कि अभ्यु-दय सांसारिक सुख और निःश्रेयस (मोक्ष-सुख) दोनों की प्राप्ति जिससे हो वह धर्म है; उसीका सेवन करो। सांख्यकार अत्यन्त पुरुषार्थ की बात कहते हैं। योगकार चित्त-वृत्ति-निरोध-द्वारा स्व-स्वरूप में लीन होकर परमात्मा का साक्षात्कार करने को कहते हैं। ब्रह्म-सूत्रकार अक्षर-विद्या से ऊपर उठकर परा-विद्या द्वारा ब्रह्म-जिज्ञासा का उपदेश देते हैं। कर्म-मीमांसाकार सत्कर्मों पर जोर देते हैं। वेद "नान्यः पन्था."—उस परमात्मा को प्राप्त किये बिना दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता, वह अमृत नहीं हो सकता, इत्यादि बातें कहते हैं।

(४)

कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग दुःख-रूपी महान वृक्ष के सुख-रूपी फल को तो चाहते हैं, पर वृक्ष को जड़ से काटने की चिन्ता में रहते हैं ! स्थित-प्रज्ञ लोग सुख-दुःखों से अलिप्त रहने की विद्या को जानते हैं. इसलिए हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, शीत-उष्ण, मान-अपमान, इन द्वन्द्वों में मन को सम रख सकते हैं—वे पाप और पुण्य दोनों से अलिप्त रहते हैं। यह विद्या कठिन है। पाप का फल तो दुःख है ही; पर पुण्य का फल भुगत लेने के बाद फिर कुछ नहीं रहता; तब सोच होने लगता है। संसार में आश्चर्य की बात—सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि लोग पाप का फल तो नहीं चाहते, उससे घबराते रहते हैं; फिर भी पापों को छिप-छिप कर करते हैं, निर्लज्ज होकर प्रकट-रूप में करते हैं, बड़ी कोशिश से पाप करते हैं, पापों को छिपाने के लिए उपाय करते हैं। वे पुण्य का फल सदैव चाहते रहते हैं; पर फी सैकड़ा कितने आदमी हैं, जो खुशी से,

स्वयं-स्फूर्ति से पुण्य-कार्य करते हों ? कोई लालच से, कोई परलोक के भय से, कोई पाप-कर्मों के प्रायश्चित्त-रूप में पुण्य करते हैं। इस प्रकार लोगों ने धर्म पुण्य एक व्यापार की वस्तु बना रक्खा है। पर धर्म जब दिखावट के लिए किया जाता है, तब वह निष्फल हो जाता है; जब वह व्यापार-बुद्धि से या भय से किया जाता है, तब भी निष्फल-सा रहता है; क्योंकि ऐसे धर्म का फल केवल थोड़ी देर के लिए 'वाहवा' मात्र है। धर्म समझ कर, कर्त्तव्य समझ कर, फल की आकांक्षा छोड़कर जब केवल धर्म-बुद्धि से धर्म किया जाता है, तब वह यथार्थ रूप में फलता है—सच्चा सुख देता है। संसार में जब आये हैं, तब सांसारिक सुख-दुःखों से छुटकारा कहाँ ? सदैव ध्यान रखना चाहिए कि सांसारिक सुखों से बढ़कर भी आत्मिक सुखों को न भूलना चाहिए। संसार न सुखमय है, न दुःखमय—संसार छोड़कर जंगल में भागकर दुःखों से छुटकारा पा सकने की बात सर्वांश में ठीक नहीं। संसार में रहकर परलोक नहीं सधता, यह बात भी ठीक नहीं। मनुष्य चाहे तो संसार साधकर भी परलोक साध सकता है, दूसरी ओर जंगल में जाकर भी प्रसुप्त वासनाओं के उद्दीप्त होने से लम्बे-लम्बे साँस ले सकता है।

(५)

कोई पूछे, 'यह दुःख-सुख कबसे चले ?' हम कहते हैं, जब से सृष्टि चली, जबसे आत्मा चली। सुख दुःख का चक्र चाहे अनादिसान्त * हो, चाहे सादिअनन्त † हो, सुख दुःख से टक्कर देकर कर्त्तव्य-पालन करते रहने में ही वीरता है। लोग अपने सुख-दुःखों की चिन्ता करते-करते कभी-कभी उन लोगों के पीछे पड़ जाते हैं, जिनको कि वे कभी-कभी अज्ञान से अपने सुख-दुःख का कारण मान बैठते हैं। वस्तुतः अपने सुख-दुःखों के लिए हम ही उत्तरदायी हैं। किया हुआ कर्म जब निष्फल नहीं जाता, तो फिर यह बात कैसे हो सकती है कि कर्म तो हम करें और जब भुगतने की बारी आवे तब ईश्वर को, सम्बन्धियों को, मित्रों को, शत्रुओं को, परिचितों को कोसते फिरें ? कुछ पूर्व-जन्मों के कर्मों के फल, कुछ सम्बन्धों के फल कुछ संसर्गों के फल, कुछ अपने वर्त्तमान कर्मों के फल, इनसे कहाँ बचोगे ? कहाँ जाओगे ? बहुत-से सुख-दुःख हमारे भ्रमों से ही उत्पन्न होते हैं, बहुत-से यों ही हैं—वस्तुतः न वे सुख हैं न दुःख हैं। सब दुःखों का मूल अविद्या है। अविद्या के नाश से ही यथार्थ ज्ञान-द्वारा हम सुखी हो सकते हैं।

* जिसका अन्त हो।

† जिसका आदि हो।

सन्देह
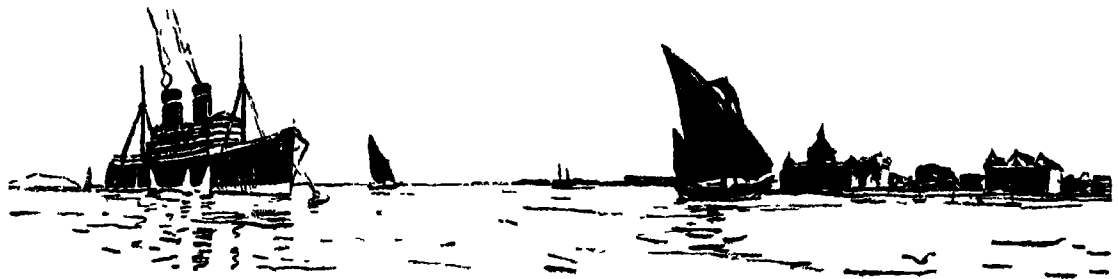
[श्री सत्यदेव परिव्राजक]

हम दोनों राइन नदी के उस पार प्रदर्शिनी की उद्यानवाली सड़क पर खड़े थे। कोलोन के जगत्प्रसिद्ध गिरजाघर डोम के उच्च शिखर हमारे सामने पिछली शताब्दियों के इतिहास की याद दिला रहे थे। सूर्य भी उधर ही चमक रहा था। नदी के चौड़े वक्षःस्थल पर एक कांप सा स्टीमर पुल के नीचे से ऊपर बढ़ रहा था। हमारी पीठ डोम की ओर थी।

वीएना का प्रसिद्ध तुर्किन्शान्सपार्क

एकाएक मैंने घूमकर पीछे की ओर नज़र दौड़ाई। मेरा साथी कुछ आश्चर्य से बोला—

"क्यों, क्या है?"

मैंने उत्तर दिया—

"कुछ नहीं।"

मेरे गले में अपनी बाँह डालकर वह प्रेम से मुझे घास के मैदान की तरफ़ ले चला और कहने लगा—

"कुछ तो है। मैं तुम्हें रास्ता चलते समय बराबर पीछे घूम-घूमकर देखते हुए पाता हूँ।"

विस्मय और संकोच की दृष्टि से मैंने अपने साथी की ओर देखा। फिर धीरे से पूछा—

"क्या तुमने भी ताड़ लिया?"

"हाँ, पिछले सप्ताह से।"

घास के मैदान के किनारे एक बेञ्च पर हम दोनों बैठ गये। मित्र ने फिर कहा—

"मैंने कई बार पूछने का इरादा किया, पर रुक गया। लेकिन आज तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा।"

मैं—"तुमने एक दिन यह भी तो पूछा था कि सारा जर्मनी छोड़कर मैं कोलोन में ही क्यों बैठ गया हूँ। यहाँ मेरा क्या दबा हुआ है?"

"हाँ, पूछा था; पर तुमने कुछ बताया नहीं, सो मैंने ज़्यादा ज़ोर देकर पूछना अनुचित समझा।"

"अच्छा तो आज दोनों प्रश्नों का उत्तर देता हूँ।"

मेरा साथी बड़ी उत्सुकता से मेरे मुँह की ओर देखने लगा। मैंने कहना आरम्भ किया—

"हिन्दुस्थान में अंग्रेज़ों का राज्य है। इन विदेशियों की संख्या बहुत कम है। वे केवल सत्तर हज़ार गोरे सिपाहियों-द्वारा तीस करोड़ की आबादी के मुल्क पर राज्य कर रहे हैं। उस देश से उन्हें अरबों रुपये साल की आमदनी है। उस स्वर्ग-भूमि को क़ाबू में रखने के लिए उन्होंने ख़ुफ़िया पुलिस का एक विभाग खोला हुआ है, जो सारे देश में जाल की तरह फैला हुआ है। जो भी कोई—स्त्री, पुरुष, नवयुवक और वृद्ध—ज़रा भी देश-प्रेम का भाव रखता है, ये गुप्तचर—टिकटिकी—फ़ौरन उसका नाम अपने रजिस्टर में दर्ज कर लेते हैं और छाया की तरह उसके

पीछे लग जाते हैं। यदि देशभक्त हिन्दू हो तो उसके पीछे मुसलमान टिकटिकी को लगा देते हैं और अगर वह मुसलमान है तो उसके पीछे हिन्दू गुप्तचर लग जाता है।"

मेरे मित्र ने हैरानी से पूछा—

"तो यह टिकटिकी हिन्दुस्थानी ही होते हैं?"

मैंने दुख से भरे लहजे में उत्तर दिया—

"यही तो दुर्भाग्य है। सैकड़ों-हज़ारों हिन्दुस्थानी टिकटिकी अपने ही भाई-बहनों को फँसाने के लिए दिन-रात घूमते फिरते हैं और अंग्रेज चैन से क्लबों में ब्रिज खेलते हैं।"

थोड़ी देर तक चुप रहकर मैंने फिर कहना आरम्भ किया—

"हज़ारों नौजवानों की ज़िन्दगियाँ झूठे शर्तों, षडयन्त्रों और पुलिस के हथकण्डों के कारण बर्बाद हो गई हैं और हो रही हैं। जिसे एक बार भी पुलिस ने फाँस लिया बस उसकी सारी आयु फिर सन्देह-संग्राम में बीतती है।"

"तो यों कहिए, हिन्दुस्थान में पुलिस-राज्य है।"

"बस ऐसा ही है। अंग्रेज़ों को खुश रखने और अपने स्वार्थ के लिए, पुलिस सदा झूठे-सच्चे राजनैतिक जाल बिछाया करती है। अंग्रेज हाकिम भी यही चाहते हैं, क्योंकि इसी पर उनका शासन चलता है।

"मैं विदेश से आया था—स्वतन्त्रता के ख़यालों से भरा हुआ और लट्ठमार। पुलिस से डरता नहीं था और सदा उसकी मरम्मत के लिए तैयार रहता था, क्योंकि मेरा सिद्धान्त है—'अन्याय और अत्याचार का विरोध करना ईश्वरीय आज्ञा का पालन करना है।' अपने पवित्र देश की भूमि पर विदेशी सिपाहियों को देखकर मेरे तन-बदन में आग लग जाती थी और जब अपने ही देशवासियों को पुलिस के रूप में विदेशी सरकार का परम सहायक पाता तो घृणा और क्रोध से अधीर हो जाता था। सन् १९११ का वह समय बड़ा विकट था। मेरी मदद करनेवाला कोई नहीं था। अपने पोलिटिकल प्रोपेगेण्डा (राजनैतिक आन्दोलन) को मज़बूत बनाने तथा जन-साधारण में शीघ्रातिशीघ्र जागृति करने के लिए मैंने स्वामी का रूप धारण किया।"

मित्र के चेहरे पर प्रश्न का भाव देखकर मैंने कहा—

"हाँ, तुम भी जानना चाहते हो कि यह 'स्वामी' क्या चीज़ है? तुमको याद है, जब एक बार तुमने पूछा था—'स्वामी का मतलब?' तो मैंने यह कहकर टाल दिया था—'यह है कि हिन्दू-संस्कृति में स्वामी एक बड़ी उच्च-आदरणीय उपाधि है, जो इन इने-गिने लोगों को दी जाती है, जो पूर्ण संयमी होकर सांसारिक कामनाओं को जीत लेते हैं और अपना सर्वस्व परोपकार में लगा देते हैं। इससे बढ़कर ऊँचा दर्जा कोई है ही नहीं। इसी कारण हिन्दू-समाज

जाड़े में बर्फ़ का नज़ारा पार्क में

में 'स्वामी' की बड़ी प्रतिष्ठा है और उसके कथन को प्रामाणिक माना जाता है। मैंने सोचा कि मैं अकेला हूँ। मुझे अपने स्वतन्त्र विचारों का प्रचार करना है और पुलिस तथा सरकार का सामना करना है। यह काम स्वामी हुए बिना नहीं हो सकेगा। अतएव मैंने स्वामी-रूप धारण कर लिया।'

मित्र कुछ आश्चर्य से पूछने लगे—

"स्वामी कहलाने ही से यह शक्ति कैसे आ गई?"

मैंने हँसकर कहा—"जब मैं स्वामी के भेष में खड़ा होकर व्याख्यान देता था तो लोग उसे बड़ी श्रद्धा से मानते थे और फैलाते थे। साथ ही पुलिस को जल्दी मुझे सताने की हिम्मत नहीं होती थी, क्योंकि लोग मेरे साथ हो जाते थे।

स्वामी का ज़बर्दस्त हथियार मैंने अपने हाथ में लेकर राजनैतिक शिक्षा का प्रचार देश में करना शुरू किया। सरकार की नज़रों में मैं बड़ा ख़ौफ़नाक क्रान्तिकारी बना दिया गया। मेरे पीछे हर समय टिकटिकी रहने लगे।

पिछले अट्ठारह वर्ष मैंने इसी प्रकार काटे हैं। मैं अकेला और सारी पुलिस, दुश्मन, सरकार अंग्रेज़ी शत्रु—पीछे घूम-घूमकर टिकटिकियों को देखने की आदत अट्ठारह वर्षों की पुरानी है। वह स्वभाव-सा हो गया है।'

मित्र—"लेकिन पुलिसवाले तो तुम्हारे साथ-साथ चल सकते हैं?"

मैं०—'मैंने तुम्हें बताया नहीं कि मैं लट्ठमार था। पुलिस को मारने दौड़ता था। भला हो महात्मा गान्धी का, जिन्होंने यह आदत दूर करवादी है।'

मित्र (हँसकर)—"हाँ, महात्मा गान्धी तो अहिंसा (Non-violence) को मानते हैं।"

मैं०—"इसीसे वह मैदान जीत भी गये हैं। अंग्रेज़ों की हिंसा और उनके झूठ को गान्धीजी ने अपनी अहिंसा और सत्य से जीता है।"

मित्र मेरा हाथ दबाकर बोले—

"अच्छा, अब मैं तुम्हारी पीछे घूम-घूम कर देखने की आदत को समझा। यह अट्ठारह वर्षों की पुरानी आदत अभी तक चली जा रही है।"

हिमाच्छादित पार्क के सर्वोच्च स्थल का दृश्य

मैंने मुस्करा कर कहा—

"हाँ, यही आदत तो मुझे यहाँ कोलोन भी ले आई।"

मित्र कहकहा मारकर बोले—"अरे, यह मैं भूल गया था। हाँ, असली कहानी तो अब चलेगी, अबतक तो सिर्फ़ भूमिका ही रही।"

मैंने फिर कहना आरम्भ किया—

"सन् १९२८ के नवम्बर महीने में मैं ज़्यूरिच से वीएना प्रोफ़ेसर साक्स को आँख दिखलाने गया था। वहाँ एक भोजनालय—होटल—में ठहरा। मेरे पास पौण्ड थे। आस्ट्रियन शिलिंग लाने बैंक जाना था। बैंक के रास्ते में

मोटर, ट्राम और साइकिलों की मारामारी थी। मेरे-जैसे ख़राब आँखवाले के लिए अकेला जाना कैसा! मैं दुविधा में पड़ा हुआ था। भोजन के बाद जिस कमरे में बैठा हुआ मैं चिन्ता-निमग्न था वहीं एक स्त्री बड़े चाव से अपनी माता के पत्र के कुछ अंश एक दूसरी वृद्धा स्त्री को सुना रही थी। उसके दयालु चेहरे को देखकर मेरे मन में यह भाव उठा और विलीन हो गया—'क्या ही अच्छा हो, यदि यह स्त्री मुझ पर दया कर मेरी सहायता करे।' मैं वहाँ से उठकर भोजनालय की सीढ़ियों के पास आकर चिन्ता-ग्रस्त खड़ा हो गया। भोजनालय की मालकिन ने मुझसे कहा—'शायद मिस सीमान्स आपके साथ बैंक तक चली जायँ। मैं पूछती हूँ।'

दो मिनट बाद वही स्त्री जो पत्र पढ़ रही थी, आई और मेरे साथ बैंक चल पड़ी। वह बहुत कम अंग्रेज़ी बोलती थी तो भी मैंने उसे धन्यवाद दिया। बैंक के पास एक नवयुवक जिसे एक थियासोफिस्ट

महिला ने मेरी सहायतार्थ भेजा था, आ गया और मैंने मिस सीमान्स को धन्यवाद देकर विदा कर दिया। मेरे हाथ में आस्ट्रियन शिलिंग आ गये। काम चलने लगा।

वह भोजनालय शहर में होने के कारण मेरे लिए अनुकूल न था। मैं पार्क के पास रहना चाहता था, जहाँ खूब सैर कर सकूँ और खुली हवा ले सकूँ। सो तीसरी रात मुश्किल से काट मैं चौथे दिन उस भोजनालय से निकल खड़ा हुआ और वीएना के मशहूर उद्यान तुर्किन्शान्स पार्क के सामने कमरा लेकर रहने लगा।

एक रोज़ मुझे अमेरिकन–एक्सप्रेस-कम्पनी के दफ्तर में डाक लेने जाना था, वहाँ भी मोटरों की भीड़ रहती है। मैंने मिस सीमान्स को टेलीफ़ोन करके कहा कि यदि आपको फ़ुर्सत हो तो मेरे साथ वहाँ तक चलिए। जब वहाँ से कुछ सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो मैं अकेला ही चल दिया। घण्टे के बाद जब मैं डाक लेकर लौटा और लपका हुआ अपने घर में घुसने लगा तो किसी ने पीछे से कहा—

राइन नदी के किनारे का दृश्य

'मिस्टर देवा!'

मैंने घूमकर देखा तो मिस सीमान्स खड़ी काँप रही थीं। मैंने पूछा—

'आप यहाँ!'

'मैं पौन घण्टे से यहीं सड़क पर सर्दी में खड़ी हूँ। मुझे डर लगा कि शायद आप मोटर के नीचे न आ गये हों।'

सहृदयता की इस मूर्ति को देखकर मैं अवाक् रह गया। मैंने उस देवी को बार-बार धन्यवाद दिया। वह मुझसे विदा माँगकर नगर की ओर रवाना हो गईं।

मैं कमरे में आया। मेरा जीवन आजतक सन्देह की दुनिया में बीता था; मैंने कभी कोई मित्र बनाया नहीं। प्रेम (Love) क्या चीज़ है, इसे मैं जानता नहीं। मैंने केवल सारी ज़िन्दगी में जो-कुछ थोड़ा प्रेम-चिन्ता लगाव लगाया है, वह केवल अपने देश की स्वाधीनता के साथ। घर का जीवन पिता के साथ विरोध में बीता। माता, दो योग्य सन्तानों की मृत्यु से जलकर, शीघ्र परलोक सिधार गईं। देश प्रेम के सिवाय दूसरी भावना को मैंने कभी अच्छी प्रकार अध्ययन नहीं किया था। ऐसे मनुष्य के लिए मिस सीमान्स की इस प्रकार की सहृदयता एकदम नई, अनोखी और अनुपम थी।

मैं सन्देह में पड़ गया।"

× × ×

हम दोनों उस बेञ्च से उठकर राइन की तरफ़ मुँह करके खड़े हो गये। मित्र ने कहा—

"तुम्हारी कहानी बड़ी दिलचस्प है। आज पूरी सुन कर ही चैन लूँगा। अच्छा फिर क्या हुआ?—"

मैं—तुर्किन्शान्स पार्क में मैं बराबर घूमने जाता था। मिस सीमान्स एक दिन मुझे वहीं मिल गईं। मैंने बातों-बातों में उससे पूछा—

'आपके पिता क्या करते हैं?'

मेरे प्रश्न के उत्तर में उसने बताया कि उसके पिता की आँखें बड़ी ख़राब हैं, इसी कारण उसे मुझपर इतनी दया आती है। वह सदा पक्षियों के लिए रोटी के टुकड़े लाया करती और चिड़ियों को खिलाती थी। रास्ते में भी ग़रीबों को पैसे देती और याचकों की सहायता करती थी।

धीरे-धीरे हमारी जान-पहचान अधिक हो गई। मिस सीमान्स मुझे प्रोफ़ेसर साम्स के पास ले गई तथा अन्य जो कुछ भी मेरा काम शहर में होता, सब कर देती थी।

पर मेरे हृदय में सन्देह का सांप मौजूद रहा। एक दिन मैंने दो तीन मित्रों को पत्र लिखे। मामूली बात थी। रास्ता चलते हुए। मिस सीमान्स ने कहा—

"दीजिए मुझे, मैं दौड़कर डाक में डाल आऊं।"

मैंने उसकी अवहेलना कर स्वयं ही उन्हें पोस्ट-बक्स में डाला। मेरा बर्ताव उस समय कुछ ऐसा हो गया कि मिस सिमान्स ने बड़े कष्ट से मुझे कहा—

"Mr. Deva, you know the art of making people angry." अर्थात्, मिस्टर देवा, तुम लोगों को नाराज़ करने की कला में निपुण हो। यह सुनकर मानों सोते से जाग उठा। मिस सीमान्स चली गई। मैं वहीं खड़ा रह गया।

मित्र, तुम सच जानना, मैं उस रात सोया नहीं। मिस सीमान्स के शब्द मुझे काँटों की तरह चुभ रहे थे, क्योंकि वे सत्य थे। मैंने हमेशा अपने मित्र-प्रेमियों को नाराज़ किया है मुझे आजतक कभी किसी ने नहीं कहा था—'तुम दूसरों को नाराज़ करने की कला में उस्ताद हो।' पहली बार एक जर्मन रमणी ने मेरी ग़लती सुझाई। तब मैंने इस सत्य को समझा—

'स्त्री देवी है। वह जंगली मनुष्य को सभ्य बनाती है। वही सदाचार और शिष्टाचार का स्रोत बहाती है। यदि समाज को संस्कृति-सम्पन्न तथा शोक-मुक्त बनाना है तो स्त्रियों का आदर, उनका प्रभाव समाज में बढ़ाओ।' मैं रात भर इन्हीं विचारों में डूबा रहा।

सवेरे मैंने मिस सीमान्स को टेलीफ़ोन किया और अपने अपराध की क्षमा चाही। क्षमा मिल गई।

क्रिसमस के दिन निकट आ गये। मिस सीमान्स का घर कोलोन में है। उसे वहाँ आना था। जब उसने मुझ से मेरा प्रोग्राम पूछा तो सोचा, चलो, मुझे हॉलैण्ड जाना ही है। रास्ते में कोलोन पड़ता है। जो कुछ मेरे दिल में सन्देह का भाव रह गया है उसे कोलोन चलकर निकालूंगा। मैं देखूँगा मिस सीमान्स का बाप सचमुच आँखों से लाचार है। यह सब विचार कर मैंने भी कोलोन जाने का निश्चय किया।
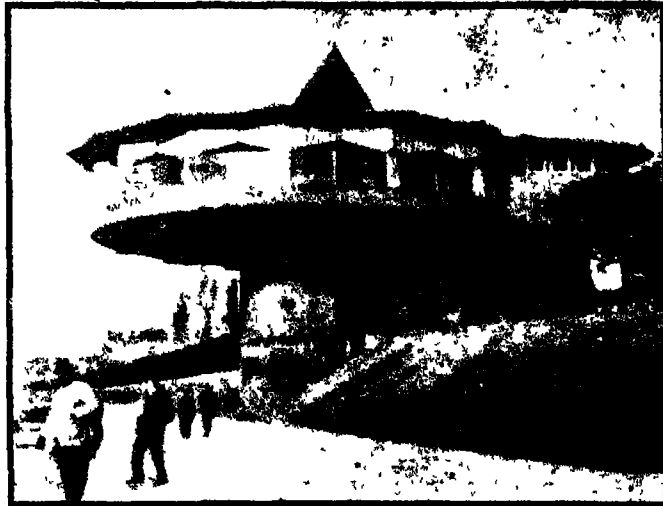
राइन नदी के तटस्थ फार्म-हाउस के पास नदी का दृश्य। यहीं नदी-किनारे 'सन्देह' की दुखद घटना घटी थी।

वीएना से कोलोन आते समय रास्ते में वीसबाडेन शहर पड़ता है। वहाँ उन दिनों अंग्रेज़ी सेना पड़ी हुई थी। ज्यों-ज्यों वीसबाडेन निकट आ रहा था मेरे मन में धुकधुकी हो रही थी। क्योंकि Occupied Territory अर्थात् सेना स्थित-प्रदेश में गुज़रने का पास-पोर्ट मेरे पास नहीं था। मैंने मन में कहा—'मिस सीमान्स ने मुझे फँसा दिया।'

मित्र बड़े आश्चर्य से बोले –

"अभी तक तुम्हें इतना सन्देह था?"

खिन्न चित्त होकर मैंने उत्तर दिया—

"गुलामी, गुलामी! तेरा सत्यानाश हो। तू देशभक्तों को घुन लगा देती है और उनका हृदय चाट जाती है। वीसबाडेन आया, गुज़र गया। कोलोन पहुँचे। सब बात मिस सीमान्स की अक्षरशः सत्य निकली। उसके पिता

आँखों से लाचार हैं। नगर के अति प्रतिष्ठित और धनी पुरुष हैं। अंग्रेज़ी अत्यन्त शुद्ध बोलते हैं। मैं उनसे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

जब मैं हॉलैण्ड से लौट आया, तो एक दिन मैं और मिस सीमान्स राइन के किनारे घूमने गये। बर्फ़ पड़ी हुई थी। बड़ा शीत था। उस दिन भारत से डाक आई थी। मिस सीमान्स ने सहज-स्वभाव ही मुझसे पूछा—

"आपके देश के क्रान्तिकारी यूरोप में कहाँ-कहाँ रहते हैं?"

मुझे मानों साँप डस गया। मैं तो बदल गया। त्योरी चढ़ाकर मैं बोला—"Do you know Miss Simons that I have never trusted you," अर्थात्, क्या मिस सीमान्स आप जानती हैं कि मैंने कभी आप पर विश्वास नहीं किया। मेरे शब्द उस देवी के सरल हृदय में बिंध गये। उसकी आँखों से आँसू छलछला आये। वह रोक न सकी। राइन नदी की तरफ़ की दीवार पर दोनों कुहनियाँ रख, रूमाल से मुँह ढाँप, वह फूट-फूट कर रोने लगीं। मैं वहाँ मुजरिम की तरह खड़ा था। लोग आ-जा रहे थे। मिस सीमान्स के साथ मैंने भारी अत्याचार कर दिया था। वह भयंकर भूल मुझसे हो गई। वह थोड़े से मिनट वर्षों की तरह बीते। घटनाओं का प्रवाह आँखों के सामने से गुज़र गया। अपनी इस आदत—से मैंने कितनों को दुखी किया है—यह सन्देह की आदत-आज उसका नंगा स्वरूप देखकर मैं काँप उठा। बड़ी कठिनाई से मैं मिस सीमान्स को चुप कराकर घर पहुँचा सका। वह दिन आख़िरी था। तबसे मैंने मिस सीमान्स पर कभी सन्देह नहीं किया। उसी दिन उस सन्देह के साँप को मारकर राइन नदी में बहा दिया।"

× × × ×

सूर्य डूबने जा रहा था। उसके अस्त होने का दृश्य राइन नदी में बहुत मनोहर होता है। उसे देखते हुए हम दोनों पुल की तरफ़ चल पड़े।

मित्र मेरा हाथ पकड़कर पूछने लगे—

"आख़िर तुम कौनसी राजनैतिक क्रान्ति करते थे जो ऐसा भड़क गये?"

ग्लानिभरे शब्दों में मैंने उत्तर दिया—

"ख़ाक करता था; राजनैतिक क्रान्ति क्या करनी थी। मेरे देश में टिकटिकी हमेशा ऐसे ही सवाल पूछा करते हैं। उनके साथ सदा लाग-डाट रहने से ऐसी बातें पूछनेवाला फ़ौरन वही पुराने भाव जागृत कर देता है। बर्लिन और लन्दन में सच्चे टिकटिकी मिले भी थे। वे अपना मतलब पूराकर चलते बने। ऐसा बराबर होता रहा है। वही सन्देह का अभ्यास अब इतना जल्दी सतर्क और सावधान कर देता है कि मित्रों पर भी सन्देह होने लगता है।"

मित्र ने पूछा—"तो मिस सीमान्स पर का सन्देह तुम्हें कोलोन खींच लाया है?"

"हाँ, अब सीमान्स घराने से अत्यन्त परिचय हो जाने से दूसरे स्थान पर जाकर नये लोगों से परिचय बढ़ाना व्यर्थ है। यदि कोई घटना मेरे साथ घट जाय तो मिस्टर सीमान्स जैसा प्रभावशाली व्यक्ति उसका कुछ उपाय कर सकता है। ऐसा सहायक दूसरी जगह जल्द मिलना कठिन है।"

मित्र ने गम्भीर होकर कहा—"तुमने बहुत अच्छा किया। मिस सीमान्स से मैं बहुत वर्षों से परिचित हूँ। वह बड़ी सरल और सहृदय है। लोग उसे Too good—बहुत अधिक भली कहते हैं। क्योंकि उसने अपना सारा जीवन अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा में अर्पण कर दिया है। उसकी चालीस वर्ष की अवस्था है। सारा जीवन परोपकार में ख़र्च करने का विचार रखती है।"

मैं०—"योरूप की आधुनिक स्त्रियों से मिस सीमान्स भिन्न है। पिता-माता के लिए वह अमूल्य रत्न है।"

\+ + + ×

न्यूमार्केट में पहुँचकर मित्र तो बारबरोसा ८३ नम्बर वाली ट्राम में बैठकर चल दिये, मैं वाइडन जानेवाली नम्बर जी के इन्तज़ार में खड़ा आज की बातों पर विचार करता रहा।

ममेदम्

[श्री इन्द्र विद्यालंकार]

संसार में बढ़ती हुई विषमता ने साम्यवाद के विचार को जन्म दिया है। यह विचार प्रायः सभी शिक्षित देशों में बड़ा प्रबल होता जाता है। रूस ने इसे क्रियात्मक रूप देकर अन्य देशों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। जब से यूरोप में व्यवसायवाद (Industrialism) का युग प्रारम्भ हुआ, तबसे श्रम-संस्था का वर्तमान जटिल स्वरूप शुरू हुआ, जो हमें इस समय दिखाई देता है। व्यवसायवाद ने ग्राम के सन्तोषमय जीवन का नाश करके नगर के विक्षोभमय जीवन को उत्साहित किया है। इससे कृषि का, गृह-व्यवसायों का तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं का एकदम विनाश हो गया है, इसमें तनिक भी संशय नहीं। स्वल्प-मात्रिक उत्पत्ति के स्थान पर बहुमात्रिक उत्पत्ति ने लाखों श्रमियों को कार्यहीन एवं बेकार कर दिया है। मशीनों के प्रयोग से जातीय स्वास्थ्य की हानि के अतिरिक्त सम्पत्ति का एकत्र संचय बढ़ता गया है और उसने जाति के एक बड़े भाग को सर्वथा निस्सहाय, निर्धन तथा निराश्रय बना दिया है। बड़े-बड़े व्यवसायपतियों के विशाल प्रासादों तथा गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं में चाहे लक्ष्मी का अविच्छिन्न शुभ्र-हास हमें दृष्टिगोचर होता हो, परन्तु इससे हम जातीय-सम्पत्ति का अनुमान कदापि नहीं कर सकते। देश की सच्ची आर्थिक स्थिति का परिचय हमें उस देश के किसानों तथा श्रमियों के वास्तविक जीवन-क्रम से मिल सकता है। आधुनिक युग की बढ़ती हुई गृह-समस्या श्रम-सम्बन्धी हड़तालें तथा कृषक-वर्ग का असन्तोष देश की सच्ची अवस्था के परिचायक हैं।

यद्यपि भारतवर्ष में विषमता ने अभी इतना भयंकर स्वरूप धारण नहीं किया है, जैसा यूरोपीय देशों में है, तथापि यहाँ साम्यवाद के विचारों का प्रचार बड़ी तीव्रता से हो रहा है। विशेषत. इस देश के नवयुवक इस बुराई को आरम्भ में ही समूल नष्ट कर देने को कटिबद्ध हुए हैं।

लेखक भी उचित समता का पक्षपाती है, परन्तु गरम दल के साम्यवादियों की श्रेणी में वह अपने आपको नहीं गिनता। संसार में बढ़ती हुई ग़रीबी, श्रमियों तथा व्यवसायपतियों में बढ़ते हुए पारस्परिक कलह एवं इनसे उत्पन्न होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति को वह भी अनुभव करता है। साम्यवादियों से उसका मतभेद उपायों के सम्बन्ध में है। गरम दल के साम्यवादी वैयक्तिक सम्पत्ति (Private property) के विस्तार को सर्वथा समाप्त कर देना चाहते हैं। वे बड़े-बड़े भूमिपतियों से भूमि लेकर राष्ट्र की तरफ़ से कृषकों में बाँट देना चाहते हैं। वे बड़े-बड़े पूँजीपतियों की उपार्जित पूँजी को लेकर राष्ट्र की तरफ़ से उसका श्रमियों के साथ सम-विभाग कर देना चाहते हैं। उन्हें सम्पत्ति का एकत्र संचय बहुत खटकता है और उसे ही वे संसार की अशान्ति का मूल कारण समझते हैं। वे इस बुराई को नाश करने का एक उपाय यही समझते हैं कि वैयक्तिक सम्पत्ति को सर्वथा समाप्त कर दिया जाय, राष्ट्र के प्रभुत्व को सर्वत्र स्थापित किया जाय. और राष्ट्र के द्वारा ही विषमता का नाश करके साम्यवाद की प्रतिष्ठा की जाय।

वैयक्तिक सम्पत्ति को सर्वथा नष्ट करने का विचार लेखक को उचित प्रतीत नहीं होता। प्रथम तो इसका नष्ट करना सर्वथा असम्भव है। फिर जब अन्य उपायों से विषमता के बढ़ते हुए दुष्परिणामों को कम किया जा सकता है तो उस असम्भव कार्य के करने की आवश्यकता ही क्या है?

वस्तुतः वैयक्तिक सम्पत्ति (Private property) का विचार ही आधुनिक समाज-रचना का मूल आधार है। यही विचार भारतवर्ष में प्राचीन समाज-रचना का मूल आधार था। यह विचार इतनी दृढ़ता से मानवीय हृदय में घर कर चुका है कि इसको निकाल देना एक नितान्त असम्भव कल्पना है। कम-से-कम लेखक किसी ऐसे आगामी समय का अनुमान नहीं कर सकता, जब कि वैयक्तिक सम्पत्ति की संस्था समूल नाश हो जाय, अथवा उसमें कोई विशेष परिवर्तन भी हो सके।

हम यह भी नहीं समझते कि अतीत काल में कोई ऐसा समय था, जब कि वैयक्तिक सम्पत्ति का सर्वथा लोप हो चुका हो। कोई ऐसा ऐतिहासिक काल दृष्टिगोचर नहीं होता, जिसमें किसी राष्ट्र में साम्यवाद के उक्त सिद्धान्त का क्रियात्मक पालन किया जाता हो।

आजकल के साम्यवादी, व्यवसायपतियों के मुनाफ़ों को ज़ब्त कर लेना चाहते हैं। वे बड़े बड़े बैंकरों की ब्याज-जन्य आमदनी को राष्ट्र-कोश में डाल देना चाहते हैं! इन्हें पैतृक सम्पत्ति को देखना भी गवारा नहीं होता और वे उसे भी राज्य के खजाने में भेज देना चाहते हैं।

हम यहाँ पर मानव-धर्म-शास्त्र की दृष्टि से कुछ विचार करना चाहते हैं। हम यह स्पष्ट करेंगे कि प्राचीन भारतीय क़ानूनों के अनुसार वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार न केवल नैसर्गिक अपितु धर्मानुमत माना जाता था।

भगवान मनु ने सात प्रकार के धनागम को धर्मानुमत माना है:—

सप्त वित्ता गमाः धर्म्या, दाय लाभो क्रयो जय।
प्रयोगः कर्मयोगश्च, सत्प्रतिग्रह एव च॥ (१०-११५)॥

इस विधान में अत्यन्त स्पष्टता से लाभ (profits), प्रयोग (Interest) तथा दाय (Inheritence) को धर्म्य (Leagal) धनागम कहा गया है। वृद्धि अथवा ब्याज (Interest) लेने के लिए एक बिलकुल स्पष्ट अन्य विधान है:—

वशिष्ठ विहितां वृद्धि, सृजेत् वित्तविवर्द्धिनीम।
अशीतिभागं गृह्णीयात्,मासाद्‌ वार्धुषिक शते॥ (८-१४०)

इसमें ८० प्रतिशतक तक वृद्धि अथवा ब्याज ले लेने के लिए अनुशासन कर दिया है।

यह विचार वैयक्तिक सम्पत्ति के अधिकार को अधिक परिपुष्ट करते है। इनके सम्मुख साम्यवाद का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल प्रतीत होता है। हम यह स्वीकार करते हैं कि हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रकारों तथा सूत्र-निर्माताओं को समाज-रचना के लिए साम्यवाद के असम्भव आधार की कल्पना तक न थी। वे निस्सन्देह वर्तमान विषमता की भी कल्पना नहीं कर सकते थे। परन्तु उन्होंने भयङ्कर विषमता को उत्पन्न न होने देने के उपाय पहले ही कर लिये थे, जैसा कि आगे चल कर बताया जायगा।

चाणक्य ने भी अपने प्रसिद्ध नीति-शास्त्र में स्वस्वामी-सम्बन्ध (Ownership) के सत्व को स्वीकार किया है। इनके मत में यदि स्वामी अपनी सम्पत्ति को छोड़कर दूसरे देश में भी चला जाय, तो भी उसका स्वत्व उस सम्पत्ति से नष्ट नहीं होता। वही उस सम्पत्ति का मालिक रहेगा, चाहे वह उसका भोग करे या न करे। राष्ट्र को किसी अवस्था में उसकी मिलकियत ज़ब्त करने का अधिकार नहीं है।

मनुस्मृति में केवल उसी अवस्था में किसी की मिलकियत ज़ब्त करने का विधान आता है, जब मालिक अधार्मिक आचरण करे। जो वैश्य धन-धान्य से परिपूर्ण होकर भी यज्ञों की मर्यादा का पालन नहीं करता, उससे केवल यज्ञ की सिद्धि के लिए धन अपहरण किया जा सकता है।

यो वैश्य स्यात् बहुपशु, हीन क्रतुर सामगः।
कुटुम्बात्तस्य तद्‌ द्रव्य, माहरेत् यज्ञ सिद्धये॥ (११-१२)
योऽसाधुभ्योऽर्थ मादाय, साधुभ्य सम्प्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मान, सतारयति ता वुभौ॥ (११-१९)

भारतवर्ष की धर्म-प्रधान राज-सत्ताओं में ऐसे निर्देश परम स्वाभाविक है। उल्लेखयोग्य यह सत्व है कि कहीं पर वर्तमान साम्यवाद के अभिप्राय में किसी की सम्पत्ति के हरण का निर्देश तक नहीं किया गया। आजकल भी सभ्य देशों में विशेष अपराधों के अपराधियों के माल-असबाब ज़ब्त किये जाते हैं, परन्तु ऐसा करना साम्यवाद की योजना का कोई भाग नहीं है। प्राचीन धर्म-शास्त्रों में इसी प्रकार कई अवस्थाओं में माल हरण करने का शासन है, परन्तु साम्यवाद-सम्मत स्व-स्वामी-सम्बन्ध के विच्छेद का कहीं पर भी वर्णन नहीं है।

हम पहले कह चुके हैं कि ऐसी समाज की कोई रचना कल्पित नहीं की जा सकती, जिसमें वैयक्तिक सम्पत्ति का विचार सर्वथा नष्ट किया जा सके। पिता-पुत्र का अविच्छिन्न सम्बन्धइसी विचार पर आश्रित है। भारतवर्ष की संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली इसी एक आधार पर अवलम्बित है। यदि ममेदम् (यह मेरा है) की बुद्धि का विलोप कर दिया जाय, तो समाज-चक्र के चलने की सम्भावना भी नहीं हो सकती। जबकि पिता सन्तान को उत्पन्न कर उसका स्वस्वामी नयं

होगा, वह उसको उत्पन्न करने की अभिलाषा ही क्यों करेगा? मालिक पसीना बहाने के बाद उत्पन्न की हुई सम्पत्ति का स्वयं भोक्ता न होगा, तो वह उस सम्पत्ति को उत्पन्न करने की चेष्टा ही क्यों करेगा? अगर एक पूंजीपति यह जान ले कि उसका कमाया हुआ सब धन राष्ट्र के कोश में चला जायगा, तो वह कदापि अपने कार्य्य को तन्मयता से न करेगा। यह एक मनोवैज्ञानिक सचाई है। साम्यवादी वैयक्तिक सम्पत्ति के विचार को सर्वथा नष्ट करके किस प्रकार उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक अवस्था का प्रतीकार कर सकते हैं?

साम्यवादी विषमता को देख कर व्याकुल हो जाते हैं और उन्हें इसके सिवाय विषमता को समाप्त करने का कोई उपाय नहीं सूझता कि वैयक्तिक सम्पत्ति को समूल नष्ट कर दिया जाय। वे क्रान्ति चाहते हैं। उन्हें समाज-शास्त्र के अन्य सब उपाय बलहीन प्रतीत होते हैं। परन्तु विषमता की अवस्था इतनी स्वाभाविक है कि हम नितान्त साम्य की कोई अवस्था कल्पित ही नहीं कर सकते। कई विद्वानों का ऐसा विचार है कि प्रागैतिहासिक काल में एक ऐसी अवस्था थी, जिसमें सब मनुष्य, स्त्री तथा बालक बराबर थे। उन्हें आहार के लिए यत्न न करना पड़ता था, क्योंकि फलों से लदे वृक्ष ही इनको आवश्यकताओं को पूर्ण कर देते थे। वे साधारण कुटियों में निवास करते थे। उन्हें सम्पत्ति, स्वत्व अथवा स्वामित्व का परिज्ञान तक न था। वे सब आनन्द तथा सन्तोष की परम सीमा पर निवास करते थे। महाभारत ने इसे धर्म-राज्य की नैसर्गिक अवस्था बतलाया है। परन्तु हम काल्पनिक अवस्थाओं के आधार पर समाज-शास्त्र के सर्व-सम्मत तत्वों को परिवर्तित करने के लिए तैयार नहीं हो सकते।

मनु ने साम्यवाद की अवस्था को सर्वथा अक्रियात्मक मानकर समाज में निम्न श्रेणी के व्यक्तियों को धन-सञ्चय करने से ही मना कर दिया है। नीचे उद्धृत श्लोक मानव-धर्म-शास्त्र के विषमता-विषयक विचारों को अत्यन्त स्पष्ट कर देगाः—

शक्तेनापि हि शूद्रेण, न कार्य्यो धन सञ्चयः।
शूद्रो हि धन मासाद्य, ब्राह्मणानेव बाधते॥ (१०-१२९)

अर्थात्, शूद्र को समर्थ होने पर भी धन-सञ्चय करने का प्रयत्न न करना चाहिए। शूद्र धन एकत्र करके उससे ब्राह्मणों को ही पीड़ित करता है।

इसके अतिरिक्त दाय-विभाग में मनु ने जान-बूझकर विषमता के बीज को बोया है। उसे सब पुत्रों को समान दाय देना अभीष्ट नहीं है। वह ज्येष्ठ पुत्र की सत्ता को उत्कृष्ट मानते हुए उसे ही पिता के सर्वस्व का अधिकारी बताता है, अन्य सब भाइयों को उसका उपजीवी कल्पित करता है। यदि उनके लिए दायभाग निश्चित करता भी है, तो बहुत थोड़ा। यथा—

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्, पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषस्तमुपजीवेयुः, यथैव पितरं तथा॥ (९-१०५)

इससे स्पष्ट है कि नीतिशास्त्र-वेत्ता मनु साम्यवाद को एक असम्भव कल्पना ही समझते थे। क्योंकि आजकल के सभ्य देशों में भी दाय-विभाग के नियम इतनी विषमता का विधान नहीं करते जितना कि उक्त नियम में विधान पाया जाता है। हमारा उपर्युक्त मनु-वाक्य के उद्धृत करने का इतना ही अभिप्राय है कि यह स्पष्ट हो जाय कि हमारे देश में साम्यवाद के सिद्धान्त को भी स्वीकृत नहीं किया गया। एक स्थान पर मनु स्वयं कहते हैं कि 'जिस खेत को जो सबसे पहले बोता है, वह उसका है।' 'जिस हिरण को जो पहले मारता है, वह उसका है' यह कथन विषय को सर्वथा स्पष्ट कर देता है कि मनु वैयक्तिक सम्पत्ति के विचार को न्याय्य तथा धर्म-सम्मत स्वीकार करते थे। वह 'ममेदम्'-बुद्धि स्वभाविक मानते थे और स्व-स्वामी-सम्बन्ध को आवश्यक समझते थे।

हम पहले कह चुके हैं कि हमारे धर्म-शास्त्र वैयक्तिक सम्पत्ति के विचार को परिपुष्ट करते हुए भी विषमता की भयंकरता के कई और प्रतीकार बतलाते हैं। सबसे प्रथम प्रतीकार वर्णाश्रम-व्यवस्था की अद्भुत संस्था है। इसके अनुसार केवल वैश्य गृहस्थी को धन कमाने का अधिकार दिया गया है। केवल एक वर्ण को यह अधिकार प्रदान करके विषमता की अवस्था को स्वाभाविक कल्पित किया गया है। परन्तु इस रचना में अन्य सब वर्णों को वैश्य पर तथा अन्य सब आश्रमों को गृहस्थ पर आश्रित

कहा गया है। अभिप्राय यह कि धनोपार्जन न करते हुए भी अन्य तीन वर्ण तथा अन्य तीन आश्रम वैश्य गृहस्थियों से ही वृत्ति का गृहण करते थे। एक और ज्ञातव्य बात इस सम्बन्ध में यह है कि वैश्य का सबसे परम धर्म त्याग अथवा दान बतलाया गया है। इसी एक तत्त्व पर सारे समाज-चक्र का सुचारु सञ्चालन होता था। किसी प्रकार के कलह अथवा अशान्ति की अवस्था ही प्राचीन युग में उत्पन्न न होती थी। कारण यही था कि इसी वर्णाश्रम-व्यवस्था से धन-विभाग को विषम होते हुए भी अविषम बनाया जाता था।

सच तो यह है कि हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति का आधार ही कुछ और था। त्याग का उदात्त तत्त्व हमारे सारे समाज-शरीर में ओतप्रोत था। अतएव विभिन्नता में भी समानता की उत्कृष्ट अवस्था का पर्याप्त स्थान होता था। न केवल नीति-शास्त्र अपितु हमारे धर्म-शास्त्र भी त्याग के महत्व पर बल देते थे।

ईशावस्य मिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ (यजु॰ ॥)
केवलाघो भवति केवलादी ॥ (ऋक् ॥)

इत्यादि संहितायें त्याग-पूर्वक जीवन व्यतीत करने का ही प्रतिपादन करती थीं। निष्काम कर्म तथा ईश्वर-प्रणिधान के उच्च तत्त्वों की भावनाओं में पिरोया हुआ भारतीय जीवन विषमता की वर्त्तमान भयङ्करता को कभी कल्पित भी न कर सकता था। यह तत्कालीन सभ्यता के सुवर्णीय युग का आवश्यक प्रभाव था।

हमने अभी वर्णाश्रम व्यवस्था का निर्देश किया है। दो-चार शब्द और भी हम इस सम्बन्ध में कह देना चाहते हैं। ब्राह्मणों को इस पद्धति के अनुसार सर्वश्रेष्ठ वर्ण माना जाता था। वे स्वयं अकिञ्चन होते थे। उनका कर्त्तव्य निष्काम सेवा, अध्ययन, अध्यापन अथवा यज्ञानुष्ठान था। राष्ट्र की ओर से इस वर्ण का अतिशय सम्मान होता था वे समाज-मूर्धन्य समझे जाते थे राष्ट्र का कर्त्तव्य था कि वह ब्राह्मणों की धन-धान्यादि से सन्तुष्टि करे:—

सर्वरत्नानि राजा तु, यथार्हं प्रतिपादयेत्।
ब्राह्मणान् वेद विदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ (११-४)
धनानि तु यथा शक्ति, विप्रेषु प्रतिपादयेत्
वेद वित्सु विविक्तेषु, प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ (११-६)

अर्थात् राजा योग्य विद्वान ब्राह्मणों को रत्नादि प्रदान करे, उन्हें यथेष्ठ धन से भरपूर करे। ऐसा करता हुआ राजा स्वर्ग को प्राप्त करता है।

राजा के अतिरिक्त अन्य तीनों वर्णों का भी यह कर्त्तव्य था कि वे ब्राह्मण की धनादि से प्रतिष्ठा करें। सचमुच यदि गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो वर्ण-व्यवस्था की समस्त मर्यादा एक पूर्ण आर्थिक संस्था (Perfec Economic Orga‍n‍za‍ion) प्रतीत होती है। इस संस्था में सब वर्ण एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक दूसरे वर्ण पर आश्रित है। अपने आपमें कोई स्वतन्त्र या स्वावलम्बी नहीं है। यदि वैश्य को धन-सञ्चय का पूरा अधिकार दिया है, तो साथ ही त्याग का भी उसे उपदेश दिया है। उसका कर्त्तव्य न केवल ब्राह्मणों का भरण-पोषण करना है, बल्कि क्षत्रिय और शूद्रों की आजीविका का भार भी उसीपर है। वही उनके उचित स्थान का निर्णय करता है। क्षत्रिय का मुख्य कार्य्य देश-रक्षा है। इस कर्त्तव्य को वह बिना वैश्य की उदार सहायता कभी समाप्त नहीं कर सकता। शूद्र—जिसे धन कमाने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया—सेवा-द्वारा अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करता है। यह सेवा वैश्यों के अर्जित धन पर आश्रित होकर की जाती है। अतएव परिणामतः अन्य सब वर्ण वैश्य से ही सहायता ग्रहण करते हैं और इस तरह अपनी-अपनी आवश्यकता को पूर्ण करते हैं।

स्मृतिकार ने संक्षिप्त में वैश्य के निम्नलिखित कर्त्तव्य बतलाये हैं:—

अलब्धं चैव लिप्सेत, लब्धं रक्षेत् प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्धयेच्चैव, वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ (७-९९)

अर्थात्, वैश्य अप्राप्त धन की प्राप्ति करे, प्राप्त धन की प्रयत्न-पूर्वक रक्षा करे, एवं रक्षित धन की वृद्धि करे और बढ़ाये हुए धन का त्याग-पूर्वक दान करे।

इससे बिलकुल स्पष्ट है कि धन-सञ्चय करना प्रत्येक का अधिकार है, परन्तु इसके साथ दान-वृत्ति का धारण करना भी प्रत्येक का परम कर्त्तव्य है। इसी वृत्ति से विषमता के विषैले प्रभाव को कम किया जा सकता है। यही

वस्तुतः हमारे शास्त्रों में विषमता के दूर करने का मुख्य उपाय वर्णित किया गया है। भारतीय सभ्यता के धर्म प्रधान होने के कारण यदि धार्मिक उपायों-द्वारा ही सामाजिक रोगों का प्रतीकार बतलाया गया हो तो हमें इसपर आश्चर्य न करना चाहिए। ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

उक्त उपाय के अतिरिक्त एक और उपाय विषमता की भयङ्करता को कम करने के लिए शास्त्रों में वर्णित किया गया है। यह उपाय आजकल के विचारशील साम्यवादी भी पसन्द करते हैं। वह उपाय है कर-ग्रहण का। जो अधिक धन सञ्चय कर लेते हैं, उनसे उसी अनुपात से अधिक कर ग्रहण कर लेना चाहिए। जिन भूमि-पतियों अथवा पूँजीपतियों ने असीम सम्पत्ति का उपार्जन किया है, उनसे राष्ट्र को उसी अनुपात में सहायता भी लेनी चाहिए। यदि साम्यवादियों के कथनानुसार पूँजीवाद के विचार को ही समूल नष्ट कर दिया जाय, तो देश में सम्पत्ति का ही लोप हो जायगा। अतः बढ़ती हुई विषमता का यही उचित उपाय है कि बढ़े हुए धन-सञ्चय पर अधिक कर लगाकर उसे राष्ट्र-सेवा के उपयोग में लाया जाय। उससे निर्धन जनता का अस्पताल, स्कूल आदि के रूप से उपकार किया जाय। एकत्र धन पर कर लगाने में राष्ट्र को तनिक भी सकोच न होना चाहिए।

मानव-धर्म-शास्त्र में राज्य-धर्म का प्रतिपादन करते हुए यह स्पष्ट विधान किया है कि राजा का कर्तव्य है कि वह अपने देश के वैश्यों (Earning Classes) की अच्छी तरह से रक्षा करे और उनसे राष्ट्र-कार्य्य के लिए कर भी ग्रहण करे।

स्वधर्मो विजयः तस्य, नाहवे स्यात् पराङ्मुखः।
शस्त्रेण वैश्यान्, रक्षित्वा धर्म्यमाहरेत् बलिम्। (१०-११९२

इस वाक्य में साफ तौर पर धर्म्य बलि (Legal-taxes) ही लेने का अनुशासन किया गया है। कहीं पर भी वैयक्तिक सम्पत्ति को ज़ब्त करने का कोई विधान नहीं किया गया।

आचार्य्य शुक्र ने भी अपने नीति-ग्रन्थ में विषमता का अन्त करने का उपाय अनुकूल कर-ग्रहण (Taxation) ही बताया है। उन्होंने भी साम्यवाद के सिद्धान्त का किसी जगह पर समर्थन नहीं किया है। यथा—

वृद्धिं कुसीदात्, द्वात्रिंशांशं हरेन्नृपः।
गृहाद्याधार भू शुल्कं, कृष्टभूमेरिवाहरेत्॥ (४-१२८)
न हानं समसूल्यात् हि, शुल्क विक्रेतृतो हरेत्।
लाभं दृष्ट्वा हरेत् शुल्कं, क्रेतृतश्च सदा नृपः॥ (४-१११)

इन वाक्यों में कौसीद (Interest) की आय पर ३२ प्रतिशतक तक कर ग्रहण करने का विधान किया गया है। इसी प्रकार लाभ (Profits) पर भी पर्याप्त टैक्स लेने का शासन किया गया है। यदि आमदनी के उन स्रोतों पर राष्ट्र की ओर से उचित कर लगा दिया जाय तो विषमता की भयङ्कर अवस्था उत्पन्न नहीं हो सकती। इस तरह सम्पत्ति की उत्पत्ति में भी बाधा नहीं पड़ती और अधिक सम्पत्ति का राष्ट्र की सेवा में प्रयोग हो सकता है।

लेख को समाप्त करने से पूर्व हम फिर धर्म-शास्त्र-सम्मत इस तथ्य पर ज़ोर देना चाहते हैं कि वैयक्तिक सम्पत्ति का विचार धर्मानुकूल तथा तर्कानुमोदित है। हम वास्तव में इस विचार को किसी समाज-रचना से पृथक् नहीं कर सकते। समाज-शरीर में क्रियाशीलता की सम्भावना भी इस विचार के बिना नहीं की जा सकती। उसकी सत्ता सर्वथा स्वाभाविक है। जो व्यक्ति धन की उत्पत्ति करता है वही उसका भोग करना चाहता है। वह अपनी सन्तान को ही अपने अर्जित धन का स्वामी बनाना स्वीकार करता है। पुत्र-विहीन होने पर भी वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा (Free Will) के अनुसार अपनी सम्पत्ति का बटवारा करना चाहता है। उसे यह सह्य नहीं होता कि कोई अन्य व्यक्ति उसके उपार्जित धन के विभाग में हस्तक्षेप करे। सन्तान के अयोग्य तथा निकम्मी होने पर भी वह इस बात को गवारा नहीं कर सकता कि उसकी संचित सम्पत्ति पर किसी अन्य संस्था का कोई अधिकार हो। यह मानवी स्वभाव है। इस स्वभाव को बदलना वैसा ही असम्भव है, जैसा कि भागीरथी के चलते प्रवाह को उलटा बहा देना। समाजशास्त्री इन्हीं स्वभावों की रेखाओं पर समाजोपयोगी नियम निर्माण करते हैं। अतएव हमारे देश के धर्मशास्त्रों में वैयक्तिक सम्पत्ति के विचार को पवित्र (Sacred) स्वीकार किया गया है। राष्ट्र को ऐसा कोई अधिकार प्रदान नहीं

किया गया, जिससे वह व्यक्ति के स्वत्व पर कोई हस्तक्षेप कर सके। स्मृतिकार मनु अक्लिष्ट शब्दों में अनुशासन करते हैं:—

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं, धन धान्य पशून् स्त्रिय ।
सर्व द्रव्याणि कुप्यच, यो यत् जयति तस्यतत् ॥ (७-९६)

अर्थात्, जो रथ, घोड़े, हाथी, धन, धान्य, पशु प्रभृति का विजय करता है, वह पदार्थ उसका अपना है। उसे ले लेने का अधिकार किसी को नहीं है।

इन शब्दों से अधिक कौन शब्द वैयक्तिक सम्पत्ति के विचार को परिपुष्ट कर सकते हैं? हमें स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में साम्यवाद के सिद्धान्तों का कोई स्थान नहीं। विशेषतः गरमदल के साम्यवादी जो वैयक्तिक सम्पत्ति की संस्था को सर्वथा नष्ट कर देना चाहते हैं, अपने पक्ष का समर्थन धर्मशास्त्रों से नही कर सकते हैं। यूरोप के आधुनिक अप्रयुक्त विचारों के सम्मुख हम अपने देश के प्रयुक्त तथा पराक्षित विचारों का परित्याग नहीं कर सकते। यूरोप में भी केवल एक देश के क्षणिक परीक्षणों के आधार पर हम अपनी सभ्यता के मौलिक तत्वों में परिवर्तन नहीं कर सकते।

हम कह चुके हैं कि वैयक्तिक सम्पत्ति का विचार हमारे देश की समाज-रचना का आधार-स्तम्भ है। वर्णाश्रम-मर्यादा की व्यवस्था भी इसी एक विचार पर आश्रित है। इस विचार के हिल जाने से सारे समाज-शरीर में हलचल पैदा हो जाती है। ममेदम्' अथवा ममत्व की बुद्धि सर्वथा स्वाभाविक है। स्वस्वामित्व-सम्बन्ध एक निसर्ग-सिद्ध सम्बन्ध है। इसको किसी प्रकार भी नष्ट नहीं किया जा सकता।
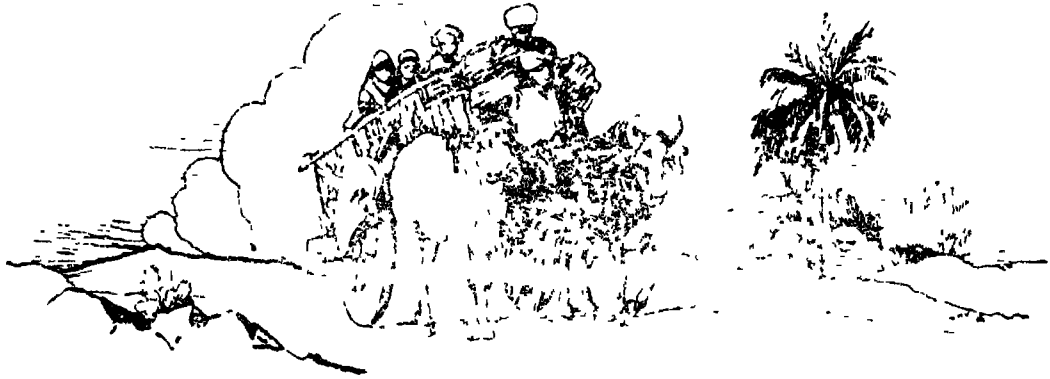
भारतीय श्रम की योग्यता

[श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]

जिन्होंने अंग्रेज़ ऐतिहासिकों के लिखे हुए इतिहास-ग्रन्थों की निष्पक्ष की आलोचना की है या पढ़ी है उनको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उन ग्रन्थों में सत्य की अपेक्षा असत्य का ही पलड़ा भारी है। इसी तरह भारतीय चरित्र के सम्बन्ध में अनेक अंग्रेज़ ऐतिहासिकों ने जो आक्षेप—कलंक आरोपित किये हैं, उनमें से भी अधिकतर निराधार और कल्पित ही हैं। किसी विजित जाति को गुलाम बनाये रखने के लिए यह ज़रूरी है कि उसे यह विश्वास दिला दिया जाय कि वह जाति कमज़ोर, दुराचारी तथा नितान्त अयोग्य है। जहाँ हमारी मानसिक दासता के लिए अंग्रेज़ हमें चरित्रहीन बता रहे हैं वहाँ हमारी व्यावसायिक उन्नति में निरुत्साहित करने के लिए वे हमारे श्रम—मज़दूरों—को भी कमज़ोर और अयोग्य करने की चेष्टा करते हैं। हम आज इसी सम्बन्ध में कुछ विचार पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न करेंगे।

व्यवसाय का सबसे मुख्य उद्देश्य है, लाभ की प्राप्ति; और लाभ उस अन्तर पर निर्भर है, जो उत्पन्न पदार्थ के मूल्य और उस पदार्थ के उत्पत्ति व्यय (Production cost)में होता है। किसी पदार्थ का मूल्य किसी एक व्यवसायी के हाथ में नहीं रहता। वह तो बाज़ार की प्रतिस्पर्धा पर अधिकतर निश्चित होता है। इसीलिए प्रत्येक व्यवसायी यह कोशिश करता है कि उसका उत्पत्ति-व्यय यथासंभव कम हो। जहाँ जितने कम खर्च में जितना अच्छा माल तैयार होगा हम यह कह सकेंगे कि वहाँ व्यावसायिक योग्यता (Industrial efficiency) उतनी ही अधिक है। अपनी योग्यता से कम खर्च में ज़्यादा माल पैदा करना ही व्यावसायिक योग्यता है। इसके भी दो मुख्य अंग हैं—प्रबन्ध-सम्बन्धी योग्यता और श्रम-सम्बन्धी योग्यता।

प्रबन्ध-सम्बन्धी योग्यता का तो मतलब यह है कि कच्चा माल अच्छा लाया जाय, मशीनरी अच्छी हो, प्रबन्ध अच्छा हो। श्रम-सम्बन्धी योग्यता से मतलब यह है कि मज़दूर अपना काम ठीक ईमानदारी से, फुर्ती के साथ करें। घण्टे भर में जितना माल मशीन तैयार कर सकती है, उतने से कम तैयार न हो, कपड़े में कोई खराबी न आने दें, पूरे समय तक एक-चित्त होकर काम करें आदि। यही श्रम संबन्धी योग्यता (Labour efficiency) ही हमारा आज का मुख्य विषय है।

अनेक अंग्रेज़ व्यावसायियों का यह विश्वास है कि भारतीय मज़दूर विदेशी मज़दूरों की अपेक्षा अदक्ष (Unskilled), अयोग्य, मूर्ख, कामचोर तथा कमज़ोर होते हैं। वे उतना काम नहीं कर सकते, जितना अंग्रेज़ या अमेरिकन मज़दूर। उनमें न तो ज़ोर है और न ईमानदारी। बम्बई की एक अंग्रेज़ी कम्पनी के मैनेजर श्रीयुत कैल्ली ने फैक्टरी लेबर कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि कसाईख़ाने में तो एक अंग्रेज़ मज़दूर दो भारतीय मज़दूरों के बराबर काम कर सकता है। श्रीयुत कूपर ने उसी कमीशन के आगे गवाही देते हुए कहा कि चार साँचों पर लगा हुआ एक अंग्रेज़ मज़दूर हरएक साँचे से जितना माल पैदा कर लेता है, दो साँचों पर लगा हुआ हिन्दुस्थानी मज़दूर उतना हरएक से नहीं कर सकता। श्री शेफर्ड और मैंडी का कहना है कि एक अंग्रेज मज़दूर तीन हिंदुस्थानियों के बराबर काम कर सकता है। श्री सिम्पसन कहते हैं कि २४० हिन्दुस्थानी मज़दूरों का काम १०० अंग्रेज़ मज़दूर कर सकते हैं। अंग्रेज़ी सरकार के सीनियर ट्रेड कमिश्नर श्री थामस एइंस्कौफ ओ० बी० ई० (Mr. Thomas Ainscough O. B. E.) कहते हैं कि लंकाशायर का एक मज़दूर चार साँचों को भली भाँति और एक बालक की सहायता से छः साँचे चला सकता है, जबकि भारत में ५० फी सदी बुनकर केवल एक साँचे को अच्छी तरह चला सकते हैं और दो साँचों से अधिक

तो कोई हिन्दुस्थानी मज़दूर चला ही नहीं सकता। इनके अलावा भी अनेक अंग्रेज़ों तथा कतिपय भारतीय व्यवसायियों ने बाक़ायदा हरएक खाते की तुलना की है, जिससे सिद्ध किया गया है कि भारतीय मज़दूर कमज़ोर हैं और अयोग्य हैं। हम पाठकों की जानकारी के लिए तुलनाओं का एक उदाहरण नीचे देते हैं।

मद्रास और लङ्काशायर की दो मिलों के प्रत्येक खाते की पृथक्-पृथक् तुलना कर एक संक्षिप्त तुलना तैयार की गई है। वही हम यहाँ देते है—

नं०	खाता	मद्रास	लंकाशायर
१	इंजिन	६४	१२
२	कार्डिंग	४१९	११३
३	कताई	६४४	१४९
४	सूत दुहरा करने का खाता	३०	९
५	वाइण्डिंग	८६	५०
६	कलर वाइण्डिंग	२१९	८८
७	कलर वर्निंग	१६०	९८
८	वार्पिंग	१९	१३
९	साइजिंग	३८	१५
१०	रीलिंग	३७१	५१
११	ट्विस्टिंग एण्ड ड्राइंग	३५	३४
१२	वीविंग	९७१	३५०
	अनुपात २. ६७:१	२६२२	९३१

इसमें यह बताया गया है कि प्रत्येक खाते में भारतीय मज़दूरों की संख्या ज़्यादा है। अर्थात् १०० अंग्रेज़ मज़दूरों का काम २६७ हिंदुस्थानी मज़दूरों को करना पड़ता है। इसी तरह और भी अनेक व्यवसायियों ने तुलना कर भारतीय मज़दूरों को अयोग्य, कमज़ोर ठहराया है। परन्तु इस निश्चय पर पहुँचने से पूर्व हमें कुछ और भी विचार कर लेने चाहिएँ। इस प्रकार की तुलनाओं में वस्तुतः अनेक दोष हैं, जिनके कारण इनकी यथार्थता अधिक मान्य नहीं हो सकती। इनमें से कुछ दोषों पर हम संक्षेप से नीचे विचार करेंगे।

भारतवर्ष और इंग्लैंड के श्रम में एक बड़ा भारी अन्तर यह है कि भारतीय श्रम इंग्लैण्ड के श्रम की अपेक्षा बहुत सस्ता है। इसलिए भारतीय मिल-मालिक मँहगी-मँहगी मशीनों को न लेकर उनके स्थान पर मज़दूरों के द्वारा वह काम चलाते हैं। परन्तु इंग्लैण्ड में श्रम के अधिक मँहगा होने के कारण मज़दूरों की अपेक्षा मशीन को ही तरजीह देनी पड़ती है। फिर इंग्लैण्ड के पूँजीपति अधिक सम्पन्न होने के कारण मशीनरी पर जितना व्यय कर सकते हैं, उतना भारतीय मिल-मालिक नहीं कर सकते। इसलिए उपर्युक्त तुलना में भारतीय मज़दूरों की संख्या को अधिक देख कर ही यह परिणाम निकाल लेना अधिक युक्ति-संगत नहीं है कि भारतीय मज़दूर इंग्लैण्ड के मज़दूरों की अपेक्षा कम काम कर सकते हैं। उक्त तुलना में ३४ भारतीय भंगियों की जगह केवल ८ अंग्रेज़ भंगी गिने गये हैं। इसका कारण यह कदापि नहीं कि अंग्रेज़ भंगी ३४ भारतीय भंगियों की जगह काम कर सकते हैं। उन अंग्रेज़ भंगियों के पास अच्छे और वैज्ञानिक उपकरणों के होने से ही वे अधिक काम कर सकते हैं। यदि वही साधन भारतीय भंगियों के पास हों तो वे भी उतना ही काम करलें। कोयला झोंकने के लिए यहाँ आदमी रक्खे जाते हैं, वहाँ यह काम मशीनरी करती है। इसी तरह बुनने के साँचों में दोनों देशों में बड़ा अन्तर है। इंग्लैंड में अब नये ढंग के साँचे प्रचलित हैं, जिनपर बुनकर को बहुत कम ध्यान देना पड़ता है। मद्रास का बकिंघम और कर्नाटक मिल्स में अब वैसे साँचे लगाये गये हैं और एक भारतीय मज़दूर छः साँचों पर काम करता है; परन्तु शेष भारत में नये साँचों का प्रचार नहीं हुआ, इसलिए स्वाभाविक है कि वहाँ अधिक साँचों पर एक आदमी काम नहीं कर सकता।

एक बात और। उपर्युक्त तुलनाओं के अंक अधिक प्रामाणिक भी नहीं कहे जा सकते। हमारे इस विचार की पुष्टि के भी कई कारण हैं। हम इस लेख के प्रारम्भ में प्रथम कारण की आलोचना कर चुके हैं कि अंग्रेज़ पूँजिपतियों या मैनेजरों ने इन अंकों का संग्रह किया है, जिनका उद्देश्य भारतीयों की हरएक बात में तुच्छता दिखाने का है। इसलिए इसपर कुछ न लिख कर हम यहाँ संक्षेप से दूसरे कारणों पर विचार करते हैं। इनमें मुख्य कारण यह है कि जिन परिस्थितियों में ये अंक संग्रहीत किये गये उनमें

यह स्वाभाविक था कि अंक संग्रह करने वालों का मुख्य उद्देश्य भारतीय मज़दूरों की अक्षमता दिखाना हो। १९०६ की टैक्सटाइल-फैक्टरी-लेबर-कमिटी और १९०७ के फ़ैक्टरी-लेबर कमीशन का प्रधान आयोजन मिल के कार्य-समय (Working hours) को घटाना था। मिल-मालिक साधारण अवस्थाओं में अधिक समय काम करने की न्यायता को सिद्ध न कर सकते थे, इसलिए अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए उन्हें यह बहाना ढूँढना पड़ा। उन्होंने संपूर्ण दोष भारतीय मज़दूरों पर डाला। उन्होंने कहा कि हमारे मज़दूर दूसरे देशों के मज़दूरों की अपेक्षा बहुत कम माल पैदा कर सकते हैं, इसलिए विदेशी व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा में हमें अधिक समय काम करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ मज़दूरों के अनुपात में भारतीय मज़दूरों के कम माल पैदा करने के दो कारण और भी हैं, जिनका निर्देश कर देना आवश्यक है। हम ऊपर कह चुके हैं कि माल के कम क़ीमत में तैयार करने में श्रम-योग्यता के साथ-साथ प्रबन्ध योग्यता (Administration efficiency) भी आवश्यक अंग है। यह निश्चित है कि इंग्लैंड की मिलों में जितनी अच्छी रुई इस्तैमाल की जाती है उससे काफ़ी कम दरजे की रुई भारत में प्रयुक्त होती है। रुई की अच्छाई का असर उसकी उत्पत्ति पर पड़ता है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि अपेक्षाकृत उस रुई पर अधिक ध्यान देना पड़े। यदि अच्छी रुई के चार साँचों पर एक कारीगर काम कर सकता है तो ख़राब रुई के चार साँचों पर वह उतनी सरलता से काम नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि भारत में साधारणतया कारीगर चार और छः साँचों पर काम नहीं कर सकते। यदि यहाँ भी अच्छी रुई तैयार की जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अधिकतर कारीगर थोड़े से अभ्यास से चार साँचों पर काम शुरू कर देंगे। दूसरी एक बात और है। भारत का जल-वायु इंग्लैंड जैसा शीत नहीं है, उसमें नमी कम है। वस्त्र-व्यवसाय के लिए यह बहुत आवश्यक है। जितना वायु शीत और नमी वाला होगा उतना ही सूत कम टूटेगा। यहाँ यह सुविधा न होने से सूत अधिक बार टूटता है और इस कारण एक कारीगर अधिक साँचों पर एकसाथ ध्यान नहीं दे सकता। जिन मिलों में कृत्रिम रूप से नमी पैदा की जाती है उनका वायु भी इतना घुटा हुआ हो जाता है कि मज़दूर लगातार ५ घण्टे अन्दर रहने से ऊब जाते हैं और पाठशाला के उन लड़कों की तरह जो पढ़ाई से पिछड़े होते हैं पेशाब, टट्टी आदि के बहाने कुछ-कुछ समय के लिए बाहर निकल आते हैं। जिन मिलों में होटल खुले होते हैं, वहाँ प्रायः बहुत से मज़दूर खाने-पीने और बीड़ी पीने के बहाने बैठे रहते हैं। जब हम शोलापुर-मिल्स में वहाँ का मज़दूर-हित-कार्य (Labour welfare work) देखने गये, तो हमें वहाँ के मज़दूर-मन्त्री ने होटल दिखाते हुए कहा कि पहले यह होटल दिन-भर खुला रहता था, परन्तु अब इसके खुलने का समय क़रीब दो घण्टे निश्चत कर दिया गया है, क्योंकि यहाँ अक्सर मज़दूर आकर बैठ जाया करते थे। यही हाल प्रायः सब मिलों का है। इस अनुपस्थिति के कारण माल कम पैदा होता है और मी कूप को यह कहने का मौक़ा मिल जाता है कि एक अंग्रेज़ चार साँचों पर काम करता हुआ प्रत्येक साँचे से जितना माल पैदा कर लेता है, भारतीय मज़दूर सिर्फ़ दो साँचों पर लगा हुआ प्रत्येक से उतना माल पैदा नहीं कर सकता। परन्तु इसका कारण भारतीय मज़दूर की कामचोरी या कमज़ोरी नहीं बल्कि मिल के अन्दर कृत्रिम वायु से उकता कर बाहर आना है, जिस (कृत्रिम नमी) की इंग्लैण्ड में ज़रूरत नहीं होती।

इस तरह हमने देखा कि अंग्रेज़ व्यवसायियों ने भारतीय श्रम की योग्यता में जितना संदेह प्रकट किया है, वह उतना यथार्थ नहीं है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों और कारणों से भारतीय श्रम की संख्या ज़रूर अधिक लगती है, परन्तु उसका कारण भारतीय श्रम की नितान्त अयोग्यता नहीं है। फिर भी यह कहने का हम साहस नहीं कर सकते कि कपड़े की मशीनों में भारतीय श्रम और अंग्रेज़ी श्रम की योग्यता बराबर ही होती है। इन दोनों में अन्तर ज़रूर है। इस लेख के अन्त में उन कारणों पर भी विचार कर लेना आवश्यक होगा, जिनसे यह अन्तर बना है।

वर्तमान यान्त्रिक व्यवसायवाद का उद्गम यूरोप में हुआ है और वहीं से यह सम्पूर्ण संसार में फैला है। इसी

तरह वस्त्र-व्यवसाय का वर्तमान रूप भी इंग्लैंड में बहुत समय से तैयार हुआ है। यद्यपि भारत में वस्त्र-व्यवसाय पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ था, तथापि बड़े-बड़े लोह-दानवों का प्रचार इंग्लैंड की देखा-देखी हुआ है। इंग्लैंड केवल व्यवसाय-प्रधान देश है, वहाँ कृषि की अवस्था अच्छी नहीं। वहाँ का श्रम बहुत पर्याप्त समय से बड़े-बड़े कारखानों में काम करने का अभ्यास हो गया है। वहाँ कई पीढ़ियों से कारखानों में काम करनेवाला एक बहुत बड़ा समुदाय बना हुआ है, जिसका मुख्य और गौण कार्य यही श्रम—कारखानों में काम करना—है। परन्तु भारत में अबतक भी ऐसा कोई पृथक् समुदाय नहीं बना। भारत में कृषक-समुदाय तो पूर्ण रूप से विद्यमान है, लेकिन इंग्लैंड आदि देशों की तरह श्रम-समुदाय (Labour Class) नहीं है। वह गाँवों और खेतों की खुली हवा में काम करने का आदी है, दूषित वायुपूर्ण शहरों और कारख़ानों में काम करने का नहीं। वर्तमान समय में जो भी मज़दूर भिन्न-भिन्न स्थानों में काम कर रहे हैं, उनमें से अधिकांश वस्तुतः किसान ही हैं। ज़्यादातर मज़दूरों के पास थोड़ी-थोड़ी ज़मीनें हैं, परन्तु ज़मीनों के बहुत थोड़ी होने, कृषि की दशा ख़राब होने से वे कुछ वर्षों के लिए कारख़ानों में काम करने आते हैं और फिर चले जाते हैं। वस्तुतः वर्तमान मज़दूरों का एक अलग समुदाय नहीं कहा जा सकता। इसलिए उत्तराधिकृत योग्यता (Inheritary quality) भी नहीं पाई जाती। भारत के किसान दूसरे देशों के किसानों से किसी तरह श्रम में कम नहीं हैं, क्योंकि कृषि का काम उनके यहाँ बहुत पीढ़ियों से चला आ रहा है; परन्तु बड़े-बड़े कारखानों में काम करना भारतीय समाज के लिए नया ही है, जिसमें अभ्यस्त तथा चतुर होने के लिए कुछ समय की ज़रूरत है। यह ठीक है कि वर्तमान समय का झुकाव एक नई श्रम-श्रेणी (Labour class) बनाने की ओर है। अब ऐसी पृथक् श्रेणी तैयार ज़रूर हो रही है, परन्तु अभी इंग्लैंड के मज़दूरों का मुक़ाबला करने के लिए कुछ अधिक समय की अपेक्षा है। अभीतक केवल किसान अवस्था ही कारखानों में आई है। भारतीय श्रमी और अंग्रेज़ श्रमी की योग्यता में कुछ अन्तर रहने का यह एक प्रधान कारण है।

इसका दूसरा कारण है भारतीय मज़दूरों में शिक्षा का अभाव। यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं कि शिक्षित कारीगर *अशिक्षित कारीगर से अधिक योग्य (efficient)* होता है और हो सकता है। व्यावसायिक शिक्षा का तो *यहाँ बिलकुल अभाव ही है।* इसी तरह कुछ और भी कारण कहे जा सकते हैं, परन्तु उनमें से मुख्य यही हैं।

जब उक्त तुलनायें की गई थीं, उस समय से आज की अवस्थाओं में बहुत अन्तर है। इन बीस वर्षों में भारतीय श्रम ने बहुत प्रगति कर ली है। अब बहुत से मज़दूर दो साँचों पर भलीभांति काम करने लगे हैं, और अनेक स्थानों पर मज़दूर एक छोटे बच्चे की सहायता से चार साँचे अच्छी तरह सम्हाल लेते हैं। दरअसल बात यह है कि अब वे कारीगर भी, जिनके यहाँ पीढ़ियों से वस्त्रादि का काम होता था (Hereditary artisanclass) दूसरा चारा न देख कर इन कारख़ानों में काफ़ी तादाद में प्रवेश करने लगे हैं। अब एक ऐसा समुदाय भी पैदा हो गया है, जिसका मुख्य पेशा यही है। अब कुछ समय से शिक्षित व्यक्ति भी आजीविका का कोई दूसरा उपाय न देख कर इस तरफ़ जा रहे हैं। इन सब बातों का परिणाम संतोषजनक हुआ है। भारतीय श्रम की योग्यता पहले से बहुत बढ़गई है और निरन्तर बढ़ती जा रही है। *

---

* Factory Labour in India के आधार पर।

पीड़ितों का पाप

[श्री सुमंगलप्रकाश

पीड़क—अत्याचारी—को सभी पापी मानते हैं; परन्तु इस लेख में वास्तविक पापी पीड़ित को ही बताया गया है। यह क्यों? क्योंकि वह कायर बनकर पीड़ा को सहता है, अत्याचारी को अपने पर अत्याचार करने का मौक़ा देता है। मतलब यह कि अपने पर किसी के भी अन्याय-अत्याचार को होने देना, उसे बर्दाश्त करना, पाप है; और जो ऐसा करता है, वह पापी है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे यदि हम समझ जायँ तो हम आज जो दासता भुगत रहे हैं उसका उन्मूलन करने के लिए प्रयत्न करते हुए मर-मिटने को हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिए। इसके लेखक श्री सुमंगल-प्रकाश काशी-विद्यापीठ के उत्साही शास्त्री हैं, और नमक-क़ानून तोड़ने के लिए म० गाँधी के नेतृत्व में जो पहला जत्था रवाना हुआ उसके एक स्वयं-सेवक हैं।

यह तो सभी सुनते आये हैं कि अत्याचारी-पीड़क—पापी होते हैं। पीड़ित तो सताये जाते हैं, वे पाप से बचे हुए हैं—ईश्वर उन्हींकी सहायता करता है। किन्तु आज यदि मैं यह कहूँ कि वास्तविक पापी पीड़ित ही हैं, तो पाठकों को आश्चर्य न करना चाहिए।

वास्तव में दुःख वे ही पाते हैं, जो वासनाओं के बोझ से निर्बल होकर कायर बन जाते हैं। जो वीर है, वह दुःख पा नहीं सकता—पीड़ित बन नहीं सकता। यदि सभी मनुष्य वीर हों, कोई कायर न हो, तो पीड़ा का जन्म ही न हो। फिर भला पीड़क ही कहाँ से आयँ! जब वासनाओं से निर्बल होकर मनुष्य कायर बन जाता है तभी वह पीड़कों को निमन्त्रण देता है और पीड़कों की सृष्टि का कारण बन जाता है।

शंका हो सकती है कि यदि सभी वीर हो जायँ तब भी मार-काट मची रह सकती है, युद्ध का बाज़ार गर्म रह सकता है—फिर पीड़ा का नाश कहाँ हुआ? पर वास्तव में देखा जाय तो दो वीरों में युद्ध होने पर पीड़ा का जन्म नहीं ही होता। यदि दोनों ही वीर हैं—दोनों ही मृत्यु के भय से रहित हैं, तो पीड़ा कोई पा नहीं सकता। एक की जीत होगी, और एक की मृत्यु। हारेगा कोई भी नहीं। जिसकी जीत हुई, उसे तो भला पीड़ा ही क्या हो सकती है; पर जिसकी मृत्यु होगी, वह भी, वीर होने के कारण, आनन्द के साथ मृत्यु का आलिंगन करेगा—यदि नहीं कर सकता तो वह वीर ही नहीं है।

युद्ध में पीड़ा का जन्म तो तब होता है, जब वहाँ कायरता भी होती है। कायरता के कारण हार होती है। एक पक्ष की जीत और एक की हार होना वास्तव में युद्ध का अवश्यम्भावी फल नहीं है। एक की जीत और एक की मृत्यु होना तो दोनों की ही वीर-गति है। इसमें हार किसी की भी नहीं। हार तो तभी होती है, जब कोई कायर होता है। कायर को प्राणों का मोह होने से वह मरने से पहले ही प्राण-भिक्षा माँग लेता है, विजेता का दया-प्रार्थी बनकर स्वयं पीड़ित बनता है और उसे पीड़क बनने का अवसर देता है। यदि वह प्राण-भिक्षा नहीं माँगता, तो या तो उसकी मृत्यु होती है, जिसमें कायर होने के कारण बड़ी पीड़ा होती है (वह मृत्यु दुःखदायी होने के कारण हार ही मानी जायगी) अथवा अपनी कायरता के कारण वह स्वयं पीड़ित का पद पाता है और विजेता को पीड़ित बनाता है। यदि वह न तो प्राण-भिक्षा ही माँगता है, और न मरता ही है, तो उसके

लिए एक ही रास्ता और है। वह है भाग जाना। पर वहाँ भी वह पीड़ा पाने से नहीं बचता। वह सदा डरता रहता है, और अपने शत्रु से बचने के लिए बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ सहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ कायरता है वहीं पीड़ा है। सिंह को देखकर हिरण यदि भयभीत न हो, प्राणों का भय छोड़कर वह वीर बना रहे, तो सिंह के द्वारा खा लिये जाने पर भी उसे कोई दुःख नहीं हो सकता। वह लड़ता-लड़ता, हँसी-खुशी, प्राण दे देगा।

यह स्पष्ट है कि जिस समाज में वासनायें अधिक बढ़ी-चढ़ी होंगी वह समाज निर्बल भी अधिक होगा, कायर भी अधिक होगा और पीड़ित भी। जीवित रहने, धन-ऐश्वर्य भोगने, स्त्री-पति-पुत्र-बन्धु आदि प्रेमी-जनों के साथ रहकर सुख भोगने इत्यादि की वासनाओं से किसी समाज के प्राणी जितने ही अधिक जकड़े हुए होंगे, वे उतने ही पीड़ित होंगे। फिर यदि उनपर अत्याचार किया जाता है, तो वह उन्हीं के आमंत्रण से होता है; वे ही इस पाप के मूलकारण हैं, वे ही पीड़कों की सृष्टि करते हैं।

जहाँ वासनायें अधिक होंगी वहाँ सत्य-प्रेम, न्याय-प्रेम नहीं टिक सकता। वहाँ स्वार्थ का बाज़ार गर्म रहता है। स्वार्थ के साथ असत्य और अन्याय का प्रवेश होता ही है। अपना काम बनाने के लिए, चाहे दूसरे का बिगड़े ही, लोग घूँस देते हैं, खुशामदें करते हैं, और ऐसे-ऐसे काम तक कर डालते हैं, जिन्हें कोई स्वाभिमानी पुरुष स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। वासना से कायरता, और कायरता से पतन! सत्य और न्याय तो दूर ही से यह दृश्य देखकर दया के आँसू बहाते हैं।

यद्यपि वासनाओं को सर्वथा नाश कर देनेवाले जीवन-मुक्त मनुष्य संसार में सर्वथा दुर्लभ नहीं हैं, तो भी उनकी बात इस समय छोड़ दीजिए। हम उन्हींकी बात कहते हैं, जिन्होंने अन्याय के आगे सिर न झुका कर, अपनी क्षुद्र वासनाओं का ग़ुलाम बने रहना स्वीकार न करके, संसार में अपना नाम अमर कर दिया है। राणा प्रताप ने पीड़क के विरुद्ध अपना सिर उठाकर न्याय, सत्य के लिए अपने सारे सुखों को तिलांजलि दी। पर क्या वास्तव में वह दुखी था? कदापि नहीं। अन्याय सहन करने की पीड़ा उसके लिए उन शारीरिक कष्टों से कहीं अधिक थी, जो उसने और उसके परिवार ने जंगल-जंगल भटकते हुए सहे थे। वह पीड़ित नहीं हो बना, और इस प्रकार सत्य की, न्याय की, रक्षा के लिए प्राण गँवा दिये। वह अपनी पीड़ा को दूर करना स्वयं जानता था। उसे यह सह्य नहीं था कि वह पीड़क के हाथों पीसा जाय और फिर उसके आर्त्तनाद को सुनकर दूसरे लोग उसके साथ सहानुभूति दिखावें, उसके दुःख में दुःखी हों, अत्याचारी को गालियाँ सुनावें, किन्तु उसकी पीड़ा कुछ भी कम न कर सकें।

याद आती है इस समय चित्तौड़ की रानी पद्मिनी! वह अपने महल की समस्त स्त्रियों के साथ आग लगाकर भस्म हो गई, उसके सिपाही केसरिया बाना पहन कर लड़ते-लड़ते मर गये, पर पीड़क की पापी प्यास को न बुझाया। अन्त को क्या हुआ? अत्याचारी नगर में मुर्दे ही मुर्दे देखकर वापस लौट गया, उसकी अन्याय-कामना पूरी न हुई। और इस प्रकार पीड़क, पीड़ा और पीड़ित—किसी की भी सृष्टि न होने पाई।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को भी कौन भूल सकता है? सत्य के सामने, न्याय की रक्षा के लिए, अपने सारे सुखों का बलिदान करनेवालों के नाम इतिहास में अमर हैं। ऐसे हो लोग पृथ्वी का भार हलका करते हैं, पीड़ा का जड़ से नाश करते हैं, स्वयं पीड़ित नहीं बनते और पीड़कों की उत्पत्ति में कारण भी नहीं बनते।

वासनाओं ने, ऐश्वर्य की प्यास ने, आज सबको कायर बना दिया है। धनी लोग मुफ्त का रुपया पाकर तरह-तरह के ऐश-आरामों की सृष्टि करते हैं। ग़रीब लोग उन्हें देखकर ललचते हैं, भले-बुरे साधनों से उन्हें पाने का अभ्यास करते हैं, न मिलने पर कुढ़ते हैं और सदा अपना जीवन दुःख में बिताते हैं। धनी की धन-पिपासा शान्त नहीं होती। वह सदा 'और-और' की पुकार करता रहता है। इसीके पीछे पागल बना रहता है। वह कभी वास्तविक सुख नहीं पाता। ग़रीब धन के बिना 'हाय-हाय' करता है। ईर्ष्या-द्वेष में जलता रहता है। जो उसके पास होता है उसे भी छोड़कर आगे बढ़ता है, और न पाकर झुंझलाते हुए अपना जीवन बिता देता है।

इस प्रकार वासना के पीछे धनी-ग़रीब सभी पीड़ित हैं। वासना ने उन्हें कायर बना दिया है। 'धन, धन, धन!' धन के पीछे ग़रीब-अमीर दोनों ही सब-कुछ करने को तैयार हैं! सत्य-न्याय का गला सबसे पहले ये ही घोटते हैं। और फिर औरों के द्वारा उनका गला घोटा जाता है। जब सभी लोग इस तृष्णा, वासना के चक्कर में पड़ जाते हैं, तो इस चक्कर में सभी एक-दूसरे के लिए पीड़क और पीड़ित बन जाते हैं। महाजन-ज़मींदार को वकील, मुख़्तार और कचहरी के नौकर लूटते हैं; किसानों को महाजन-ज़मींदार लूटते हैं; किसी को बनिया लूटता है, किसी को रेलवाले। ज़मींदार साहब अपने किसानों के कोड़े लगवाते हैं, पर जज साहब के पैर चूमते नज़र आते हैं। कोई किसी का ख़याल नहीं करता, सभी को अपनी ही अपनी फ़िक्र है। सबसे गया-बीता किसान! उसे सारे ही काम अपने हाथों करने पड़ते हैं। लोग सोचते होंगे कि वह बेचारा किसपर अत्याचार करेगा? और सब अत्याचारी हो सकते हैं, पर किसान नहीं। किन्तु इससे किसान की बड़ाई नहीं। उसकी अशक्ति ही इससे प्रकट होती है। छोटा किसान सदा बड़ा किसान बनना चाहता है, और बड़ा किसान ज़मींदार। ज़मींदार बनते ही शक्ति का वह नशा उसकी भी नस-नस में दौड़ने लगता है। अपने पुराने साथियों को, अवसर पाते ही, वह भी उसी प्रकार पीड़ित करने लगता है। पर वास्तव में एक ग़रीब से ग़रीब किसान भी जैसा भोला और सहानुभूति का पात्र दिखाई देता है, वैसा वह होता नहीं। उसका भी अधिकार कुछ लोगों पर होता है, और वहाँ वह उस अधिकार का पूरा प्रयोग करता है। वह खेत में अपने बैलों पर अपना क्रोध उतारता है। यदि ऊँची जाति का हुआ तो नीची जातिवालों पर अत्याचार करता है, उन्हें कुत्तों की तरह दुरदुराता है। घर में अपनी स्त्री को लातों और घूँसों से पूजा करता है। कम-से-कम स्त्री तो हर कोटि के मनुष्य के लिए—चाहे वह राजा हो, चाहे किसान—पीड़क और पीड़ित का सम्बन्ध पैदा कर देनेवाली चीज़ है। सभी निराशाओं, सभी नुकसानों का क्रोध उसी बेचारी पर उतारा जाता है। स्त्री अपना क्रोध कभी-कभी अपने बच्चे पर उतार लेती है, और बच्चे अपनी माँ पर! शायद, आज के भारत में वह पीड़क और पीड़ित का चक्र यहीं आकर समाप्त होता है। स्त्री और बच्चा, ये ही दोनों जीव मानव-समाज में सबसे निर्बल हैं। ये दोनों ही अपना क्रोध आपस में उतार कर फिर चिपट-चिपट कर रो लेते हैं—एक दूसरे पर दया दिखाते हैं—सहानुभूति दिखाते हैं।

इस प्रकार देखा जाय तो वास्तव में पीड़ा बुलाने से ही आती है, और पीड़ित स्वयं ही उसे दूर कर सकता है। दूसरा कोई नहीं। भिखमंगे को भीख देकर हम उसकी पीड़ा कम नहीं करते बल्कि उसकी वासनाओं को बढ़ाने में सहायक बनकर हम उसकी पीड़ा बढ़ाते ही हैं। किसानों पर तरस खाकर ज़मींदारों और पूँजीपतियों के विरुद्ध आन्दोलन करने से हम किसानों का दुःख कम नहीं कर सकते। स्त्रियों की पीड़ा से दुःखी होकर, कविता और उपन्यासों में उनका करुण चित्र खींचकर, पुरुषों को गालियाँ देकर, हम स्त्रियों की पीड़ा कम नहीं कर सकते।

इसके लिए तो हमें उन्हें ही तैयार करना होगा। किसान ज़मींदार के अत्याचारों के आगे सिर न झुकाय, स्त्रियाँ पुरुषों की मनमानी को चुपचाप न सहें। अपनी वासनायें, अपनी कामनायें, अपनी आवश्यकतायें घटाकर सत्य और न्याय के लिए, जो कि वास्तविक सुख और शक्ति के देनेवाले हैं, अपना सब-कुछ न्यौछावर कर दें।

यदि आज किसान दरिद्रता, सादगी का महत्व समझ कर चले, अमीरी मिलने पर भी उसे लात मार सके और सत्य के लिए, न्याय के लिए, सब कुछ सहने को तैयार हो जाय, तो वह पीड़ित नहीं रह सकता। कदापि नहीं! पीड़ा का कीड़ा तो हमारे ही भीतर है। उसने हमारा सारा अन्तःकरण खा डाला है, पोला कर दिया है; उस कीड़े को बाहर निकाल-फेंककर अन्तःकरण को फिर से मज़बूत बनाकर हम आगे बढ़ेंगे तो हम सच्ची शक्ति, सच्चा सुख अवश्य पायेंगे।

हम आज स्वराज्य चाहते हैं। विदेशी हमारे शासक हैं। वे हमारा लाभ न देखकर अपना लाभ देखते हैं, हमपर अत्याचार करते हैं; पर इसमें किसका दोष? यदि हम उनकी अन्याय-कामनाओं को पूरा न करते जायँ, तो क्या

वे हमपर अत्याचार कर सकते हैं ? अपनी क्षुद्र वासनाओं के कारण आपस में हम एक-दूसरे को पीड़ित करते हैं, जिसके कारण हम निर्बल बन गये हैं। विदेशी सरकार अपना मतलब सिद्ध करने के लिए हममें से कुछ को फोड़ लेती है, उनकी वासनायें पूरी करती है, और उन्हींके द्वारा हमारे दूसरे भाइयों को लुटवाती रहती है। यदि हम इस प्रकार उसके स्वार्थ-साधन की मशीन बने रहने से मुँह मोड़ लें, तो क्या वह एक क्षण भी यहाँ ठहर सकती है ? पर यह आज की दशा में सरल नहीं। हमें अपना स्वार्थ छोड़ देना होगा, क्षुद्र वासनाओं को जला देना होगा, प्राणों और प्राणाधिक प्रेमीजनों का मोह त्याग देना होगा। मतलब यह कि हमें सत्य और न्याय का क़ायल बन जाना होगा, सत्य और न्याय के पीछे पागल बन जाना होगा, सत्य और न्याय में ही परम-सुख है, इसको अच्छी तरह जान लेना होगा।

स्त्रियाँ भी इसी प्रकार पुरुषों की ग़ुलामी से छूट सकेंगी। परमात्मा ने पुरुष और स्त्री दोनों को मिलाकर मानव-सृष्टि की पूर्णता रक्खी है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। पर शारीरिक बल में पुरुष बढ़ा-चढ़ा होने से आज वह विधाता के न्याय के विरुद्ध स्त्री को दबा बैठा है, उससे अपने को पुजवाता है, अपने स्वार्थ पर उसकी बलि चढ़ाता है। पर वास्तव में जबतक दोनों को सचमुच एक सूत्र में बाँधनेवाला प्रेम-बन्धन मौजूद नहीं है, तबतक दोनों स्वतंत्र हैं, किसी का दूसरे पर अधिकार नहीं। जब प्रेम-बन्धन में बँधे हैं, तब कोई बड़ा-छोटा नहीं। किन्तु स्त्री ने कुछ तो अज्ञान के कारण पुरुष के भुलावे में आकर यह मान लिया है कि वह स्वयं बिलकुल अपदार्थ है, पुरुष के ही कल्याण में उसका कल्याण है, पुरुष की दासी बनने में उसका सम्मान है; और कुछ अपनी तुच्छ वासनाओं के कारण पीड़ित होने का भाव मन में रहने पर भी वह निर्बल-कायर हो जाती हैं, स्वयं स्वतंत्रता का बोझा उठाने से घबराती है। सास बनकर बहू पर वह अपना क्रोध उतारकर अपनी शान्ति पा लेती है।

परन्तु यदि सचमुच आज स्त्री को यह भासित होने लगा है कि उसपर पुरुषों ने अत्याचार किया है और कर रहे हैं, तो यह उसीके हाथ की बात है कि वह जब चाहे इससे बच सकती है। उसे सादगी का व्रत लेना होगा, अपना शृंगार करके अपने शरीर को मोहक बनाने का कुत्सित कार्य छोड़ना होगा, उसे अपना पेट भरने और तब उससे आगे स्वयं कमाने का ढंग निकालना पड़ेगा। इसके बिना उसकी मुक्ति नहीं। शुरू-शुरू में उसे अधिक कष्ट सहने होंगे, पर पीछे सब सरल हो जायगा। न स्त्री पुरुष बिना रह सकती है, न पुरुष स्त्री बिना। कुछ दिन इस स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए कष्ट सहने पर स्त्री को उसकी स्वतंत्रता मिल जायगी, और पुरुष-स्त्री का वही स्वाभाविक प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जायगा, जो विश्व-विधाता ने कबसे सोच रक्खा है।

आज हिन्दुस्थान में युवक-आन्दोलन की शुरुआत हुई है। जिधर देखिए उधर ही युवक-परिषदें होने लगी हैं। ये सुलक्षण हैं। युवक-युवतियाँ ही वास्तव में कोई काम कर सकते हैं। बूढ़ों का काम तो समय-समय पर सलाह देते रहना है; काम तो युवकों को ही करना होगा। आज युवकों के हृदयों में आग सुलगने लगी है। पीड़ितों का पाप उन्हें दिखाई देने लगा है। वे अब अपनी कमर कसने लगे हैं।

किन्तु अभी तो जितनी आवाज़ है, जितना शोर-गुल है, उतना काम नहीं। बल्कि आवाज़ के देखते काम 'नहीं' के बराबर है, यह कहना असंगत न होगा। युवक-परिषदों में तमाशा करने के लिए, काग़ज़ी प्रस्ताव पास करके बड़े-बूढ़ों के काम की निन्दा करने के लिए, पीढ़कों को गालियाँ सुनाने के लिए युवक काफ़ी संख्या में टूट पड़ते हैं; पर जब उनके सामने कोई काम रक्खा जाता है, तो सभी की आवाज़ निस्तेज, फीकी, दुर्बल पड़ जाती है, वे बग़लें झाँकने लगते हैं। ठीक है, कहने में कौनसी शक्ति लगती है। वाणी का जोश सभी दिखा सकते हैं। 'क्रान्ति की जय' ('Long live Revolution') सभी पुकार सकते हैं, पर क्रान्ति करने को तैयार नहीं। युवक लोग यह नहीं समझते कि राजनीति में, समाज-नीति में, क्रान्ति करने के लिए सबसे पहले हमें अपने जीवन में क्रान्ति करनी होगी। हम स्वयं कितने अन्याय-अत्याचार चुप-चाप सहते जाते हैं,

यहाँ तक कि कितने छोटे मोटे अत्याचार तो अब हमें अत्याचार के रूप में दीखते भी नहीं। हमारा जीवन कितने आडम्बरों, कितने पाखण्डों, कितने ढोंगों (hypocrisies) से भरा हुआ है! जिस क्षेत्र में देखिए, उधर ही यह 'असत्य' हमारे जीवन को सहस्रों रूप रख कर घेरे खड़ा है। किन्तु अब हम उसकी ओर ताकते ही नहीं, उसे सत्य ही समझे बैठे हैं, और उसकी चक्की में पिस रहे हैं। यदि ताकते भी हैं तो आँखें दुखने लगती हैं, हम आँखें उधर से फेर लेते हैं। यही है हमारा सत्य प्रेम? यही है 'क्रान्ति की जय'? हम नित्य देखते हैं कि हमारी राजनैतिक स्थिति दिन-पर-दिन भयावह, अत्याचार मूलक, पीड़क होती जा रही है। हम भी चुपचाप उसे सहन किये जाते हैं, उसका इस रूप साहस-पूर्वक आँखें खोलकर देखना भी नहीं चाहते कि कहीं हमारे हृदय में आग न भड़क उठे, जिससे हमें अपना जीवन संकटापन्न, कष्टमय, त्यागमय बनाने को बेवश हो जाना पड़े। हम रोज़ अपने चारों ओर भूखे किसानों की स्त्रियों और बच्चों का आर्त्तनाद सुनते हैं, उनकी सूखी हड्डियाँ देखते हैं, और देखते हैं उनकी गड्ढों में धुसीहुई आँखें और मुरझाये गाल; पर हम इस डर से अपना मुँह फेर लेते हैं कि करुणा से विवश होकर, और यदि ज्ञानी हुए तो अपने को ही इस स्थिति का कारण समझकर, हमें अपने राजसी ठाठ, राजसी भोजन, छोड़ देने पड़ेंगे, हमें भी उनके कष्ट में उनका साथ देने को निकल पड़ना होगा। हमने ज़मींदारों के दाँव-पेचों-द्वारा ग़रीब किसानों को जो अबतक लूटा है, उसका प्रायश्चित्त करने के लिए हमें भी आज कंगाली का व्रत लेना होगा। हम नित्य अपने कुओं पर, अपने मन्दिरों के आस-पास, अपने मकानों में 'अछूत' नामक अपने ही-से मनुष्यों को देखते हैं, और बात-बात पर उन्हें कुत्तों की तरह दुतकार देते हैं। हमारा पानी उनसे छू जाय तो हम पी नहीं सकते, हम उनसे छू जायँ तो स्नान करके पवित्र होना पड़े, बर्तन छू जायँ तो वे आग में तपा कर शुद्ध किये जायँ! कुत्ते और मक्खी के समान गन्दे जीवों का भी हम इतना अपमान नहीं करते, और इसे हम कहते हैं अपना सनातन धर्म!! भंगी को हम छू नहीं सकते, क्योंकि वह हमारे पेट में से निकली हुई सड़ी गन्दगी को

हमारे आराम के लिए हमारे घर से उठाकर दूर डाल आता है! हम गन्दे नहीं हुए, वे इतने गन्दे हो गये कि हम उन्हें छू नहीं सकते। चमार मरे हुए चमड़े को अपनी जीविका का आधार बनाये हुए है। उस बदबूदार चमड़े को, कितने भी कष्टों की पर्वा न करके साफ़ करता है, उसकी बदबू दूर करता है, और हमारे लिए जूते बनाकर देता है। एक दिन हम उसीसे वह ख़ूबसूरत जूता ख़रीद लाते हैं, पर जूता उसके हाथ से लेते समय यह ध्यान रखते हैं कि कहीं उसका अपवित्र हाथ हमारे हाथ से छू न जाय! हम नित्य छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं का विवाह कर देते हैं, और विधवा हो जाने पर उन्हें आजन्म विधवा रहने को विवश करते हैं, जहाँ दूसरी ओर उसी उम्र के लड़के एक पत्नी के मरने पर दूसरा और दूसरी के मरने पर तीसरा विवाह बिना किसी संकोच के कर डालते हैं। साठ-साठ बरस के बुड्ढों से बारह-बारह बरस की लड़कियों का विवाह करके उनके शरीर, उनके हृदय, उनकी आत्मा को सूली दे देते हैं। हम स्त्रियों के लिए दूसरे विधान बनाते हैं और शक्तिमान पुरुषों के लिए दूसरे। हम नित्य स्त्रियों को अपने चारों ओर दुःखी देखते हैं, रोते देखते हैं, उनके आँसू बहते देखते हैं—हम यह नहीं सोच पाते कि इसमें कुछ भी विशेषता है। ये सब दृश्य हमारे लिए उसी प्रकार स्वाभाविक हो गये हैं, जिस प्रकार किसी फूहड़, आलसी और निष्ठुर माँ का बच्चा सदा रोता रहता है, और उसकी माँ उसके दुःख जानने का कष्ट नहीं उठाती—वह नित्य बच्चे को रोते देखती है; और कुछ दिनों में उसके लिए बच्चे का रोना उसका स्वाभाविक कर्म बन जाता है, वह उधर ध्यान देती ही नहीं।

इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं, सैकड़ों असत्यों, हज़ारों पाखण्डों से आज हमारा जीवन भरा हुआ है। हम आज जो कुछ करते हैं, आँखें मूँद कर करते हैं। हमारी विवेक-शक्ति में कब का ज़ंग लग चुका है। किसी काम का औचित्य हम प्राचीनता से ठहराते हैं। जो रिवाज, जो रीत-रस्म, जो नियम पहले से चले आ रहे हैं, वे ठीक ही हैं, उनमें हमें दोष दीखने पर भी उनका विरोध करने की शक्ति नहीं। हमें अपने उत्तरदायित्व पर, अपने बल और

साहस पर, अपने विवेक के अनुसार, किसी नये काम को शुरू करने की आज हिम्मत नहीं। स्त्रियाँ दुखी हैं, पर यह तो सदा से ही होता आया है; 'अछूत' दुःख पाते हैं, यह तो सृष्टि के आदि से चला आता है; बाल-विवाह हिन्दू-धर्म का सनातन रूप है; इन सब को हम कैसे बदल सकते हैं ? इसी प्रकार जात-पाँत के दोष, विवाह के दोष, ब्राह्मणों का निरंकुश अधिकार, आदि कितने ही सामाजिक दोष हम आँख मूँद कर चुपचाप सहते जाते हैं। किसानों का कष्ट, ग़रीबों की भूख राजनैतिक असमानता से होने वाले पैशाचिक अत्याचार भी हम कायर बन कर उसी प्रकार सह लेते हैं। हममें किसी भी अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाने की शक्ति नहीं रही।

किन्तु जब कुछ इने-गिने लोग हमें हमारी दशा का परिचय कराते हैं, हमारी आँख में अंगुली डाल कर उन्हें खोल कर हमें अपने चारों ओर के भीषण दृश्य देखने को विवश करते हैं, तो अपने स्वभाव के अनुसार हमारा हृदय आग हो जाता है; हम भड़क उठते हैं और चारों ओर एक महान् क्रान्ति की महान् आवश्यकता का अनुभव करके ज़ोर से चिल्ला उठते हैं, 'क्रान्ति की जय'!

पर इस ज़ोर की चिल्लाहट में हमारा सारा आवेश काम आ जाता है हमारे हृदय की आग एक बार ज़ोर से जल कर ठण्डी पड़ जाती है, दीपक अन्तिम बार तेज़ होकर बुझ जाता है! जब हम देखते हैं कि इन अत्याचारों से बचने के लिए जो क्रांति आवश्यक है उसके लिए हमें अपने जीवन की महत्वाकांक्षाओं, अपने सुखों और अपनी प्यारी कामनाओं को बलिवेदी पर चढ़ाना होगा, तब हमारा कायर हृदय बैठ जाता है—वह इस सम्बन्ध में विचार करना भी छोड़ देता है।

पर इस प्रकार हम इन छोटे-मोटे सुखों को भले ही पालें, किन्तु वास्तविक सुख हमें कदापि नहीं मिल सकता। सुख तो वीरता से ही मिलता है, कायरता से नहीं, यह मैं पहले ही दिखा चुका हूँ। राणा प्रताप, झांसी की रानी, चित्तौड़ की रानी पद्मिनी—यही वास्तविक सुखी जीव थे। पर जिनको संसार में साधारण रूप से सुख कहा जाता है, उन्हें ही लात मार कर इन्होंने असली सुख पाया था।

युवक कोई ऐसा काम चाहते हैं, जिसमें उन्हें अधिक दिन परीक्षा में न पड़ना पड़े। वे चाहते हैं किसी सेनापति की रण-तुरही का नाद, जिसके सुनते ही जोश में मतवाले होकर वे घर छोड़ छोड़ कर निकल पड़ें और क्षण भर में रणभूमि में मार-काट मचा दें—या तो मर ही मिटें या मार कर ही आवें। वे ऐसा कोई काम नहीं चाहते कि जिसमें उन्हें प्रलोभनों में पड़ने का अवसर मिल जाय। वे अपने सामने दो प्रकार के भोजन—राजसी और ग़रीबी का, दो प्रकार के मकान—महल और झोंपड़ी, दो प्रकार के वस्त्र—रेशम या मलमल और मोटी खादी दो प्रकार के जीवन—गार्हस्थ्य और ब्रह्मचर्य नहीं रखना चाहते! उन्हें डर है कि वे इस प्रलोभन से बच नहीं सकेंगे, वे ऐश-आराम के जीवन की ओर झुक ही जायँगे। न्याय का मार्ग अपने आप पसन्द करना उनके लिए कठिन हो पड़ेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज हमारे युवक-युवतियाँ त्याग से घबराते हैं; वे ऐसा काम चाहते हैं, जो कुछ देर के लिए उनके हृदय को जोश से भर दे, और तब वे प्राण भी देने को तैयार हो जायँगे; पर सदा के लिए अपनी वासनाओं का दमन करके जीवन बिताना उन्हें पसन्द नहीं, यह उन्हें अशक्य मालूम पड़ता है।

परन्तु यह लड़ाई तो ऐसी नहीं, जो प्राण दे देने या ले लेने से जीती जा सके। हमें किसी बाहरी शत्रु को नहीं, अपने भीतरी शत्रु को जीतना है। यह बात यद्यपि कुछ बेढब-सी जान पड़ती है, पर है यही सबसे ठीक बात। इतिहास साक्षी है कि जिस तरह की लड़ाइयाँ सृष्टि के आदिकाल से हम लड़ते आये हैं, उनसे संसार में दुःख की, अन्याय की, अत्याचार की कोई कमी नहीं हुई है। अब हमें दूसरे ही प्रकार की लड़ाई लड़नी है।

स्वर्ण-विहान

(नाटिका)

रचियता—श्रीहरिकृष्ण प्रेमी

पात्र

१. रणवीर—अत्याचारी राजा
२. बलवीर—सेनापति
३ संन्यासी—देश-भक्त साधु
४. मोहन—देश-भक्त युवक
५. विजय—मोहन का मित्र
६. लालसा—राजकुमारी
७. सुवाणी—सखी

पहली झलक

[रात्रि का प्रथम पहर । कृषक-कुटी । क्षीण-दीपक । रुग्णा-कृषक-स्त्री । विधवा बाला ।

विधवा बाला— (स्वगत)

संध्या की मुरझी किरणों ने
भरा अन्धेरा घर में ।
एक भयानक काला परदा
उतरा है अन्तर में ।।
जितने चमक रहे हैं तारे
इस अनन्त अम्बर में ।
उतने ही दुख चमक रहे हैं
इस जीवन-कातर में ।।

विद्युत की जगमग होती है
तृण के स्वर्ण-महल में ।
जलती है नक्षत्र-मालिका
ऊपर गगन-विमल में ।।
स्नेह नहीं है, किन्तु कुटी के
लघु-दीपक निश्चल में ।
कौन उजाला कर सकता है
कालेकाजल-पल में ।।

रुग्णा—

स्नेह-हीन यह सूखा दीपक
कैसे करे प्रकाश !
झिल-मिल झिल-मिल दीप-शिखा पर
हँसता है आकाश !
स्नेह-हीन होकर जगती के
शुष्क हुए हैं प्राण !
टिम-टिम जग-मग से तो अच्छा
हो जाना निर्वाण !

जगत-दिवाकर इन्द्र-धनुष की
रंगों की मुसकान—
फिर अन्तर पर मार रहा है
बिजली के बहु बाण !

मधुर गान में फँसा मृगी को
ले लेता है जान ।
अमृत दिखाकर, करा रहा है
धोखे से विष-पान ।

किसी हृदय में मृदु ममता का
नहीं रहा है नाम ।
जाने क्यों निर्मोही बनकर
रूठे करुणाधाम ।
आह, आज दारुण-पीड़ा से—
तड़प रहे हैं प्राण ।
फिर भी जाने किस आशा से
अटके हैं नादान !

कभी न छेड़ी इस कुटिया में
सुख ने मादक तान ।
व्यथा, कराह, अभाग्य, दुःख के
ही उठते तूफ़ान ।
हम हैं कृषक, जगत को करते
हैं जो जीवन-दान ।
आज उन्हीं के बालक भूखे—
सोये हैं अनजान ।

अपनी रोग-ग्रस्त प्यारी को
तजकर प्राणाधार—
मज़दूरी को गये प्रात से—
रे निर्मम संसार !
इस जीवन में क्या रक्खा है,
जग को जिसकी चाह ।
क्यों प्राणों ने पाल रखी है
इतनी आह-कराह ?

(पीड़ा से कराहती है)

बाल—

किस कारण चिन्ता कर-करके
देती हो, माँ, अपने प्राण ?
इस अशान्त उत्तेजन से तो
बढ़ जावेगा रोग महान ।।
यों ही घूमेंगे जगती में
शिशिर-बसन्त, अन्त, उत्थान ।
कहीं अन्धेरा, कहीं उजेला
दुःख, सुख और अन्त-अवसान ।।
परिवर्तन की ही लहरों में
बहता है जीवन दिन-रात ।
क्यों न बदल सकते हैं, जननी,
अपने आकुल पल अज्ञात ?

रुग्णा—

अखिल जगत् की आँखें मुँदकर
हो जावे अवसान—
किसी महासागर के उर में
डूबे सकल जहान !
जहाँ करोड़ों आँखों से है
बहती आँसू-धार—
ऐसा दुखिया जगत बनाकर
क्यो भूले कर्तार ?
अगर नहीं दे सकते सबको
अन्न-वस्त्र का दान—
तो क्यों रचते हैं भारी भव
वे भोले भगवान ?

बाला—

उसने तो दे रक्खा सबको
अपना दान समान ।
ये मनुष्य ही छीना-झपटी
करते हैं नादान ।।

वसुधा अपने उर से देती
कितना अक्षय दान !
किन्तु लूट लेते हैं स्वार्थी,
पाते कष्ट किसान ।

रुग्णा—
फिर भी अबतक सुख से जीता
यह स्वार्थी समुदाय ।
इससे छुटकारा पाने हम
करते क्यों न उपाय ?
ये अति ऊँचे भवन मनोहर
यह वैभव-सामान !
क्यों न जला देते हैं इनको
सब मिल दुखी किसान ?

(फिर वेदना से कराहने लगती है)

(मोहन और विजया का प्रवेश ।

मोहन—
किस पीड़ित मानस के करुणा
छोड़ रही है आह !
किसकी सुनता हूँ, इस घर में
पीड़ा-भरी कराह ?

विजय—
क्या इस घर में पुरुष नहीं हैं,
यह कैसा सुनसान ?
कोई क्या है नहीं ग्राम में
बहना, वैद्य-सुजान ?
इस रुग्णा का नहीं हो सका
है क्या कुछ उपचार !
किस करुणा का नग्न दृश्य यह
दिखा रहे कर्तार ?

रुग्णा—
हम हैं कृषक, कष्ट ही जिनके
जीवन का शृंगार ।
मर जाना ही होता जिनके
रोगों का उपचार !
एक दिवस भी जिन्हें न मिलता
जीवन में विश्राम ।
हाँ, आराम तभी मिलता जब,
होता पूर्ण विराम ॥

बाला—
कहाँ वैद्य हम पा सकती हैं,
धन-वैभव से हीन ?
हुए भूख से तड़प-तड़प
बालक निद्रा में लीन ॥
गये पिताजी मजदूरी को
उठकर प्रातःकाल ।
इधर जननि का देख रहे हो
कैसा आकुल हाल !
हम हैं, कृषक जगतका जिनपर
रहता है आधार !
अन्धकार-सा कंगाली ने
किया यहाँ विस्तार ॥

मोहन—
दृश्य यहाँ का देख करुणतम
भूले हम अभिमान ।
जाने क्या मानस में बरबस
उठता है तूफान !
कष्ट तुम्हारे हरने को हम
अर्पण करते प्राण ।
मत चिन्तित हो, बहन, सभीके
रक्षक हैं भगवान् ॥

(किसान का प्रवेश)

कहाँ गये थे तज रुग्णा को
ऐ किसान नादान ?

क्यों रोते-से नयन तुम्हारे
दिखते विकल महान ?

किसान—

रोना ही है हम कृषकों का
एक मात्र आधार।
यह संसार हमें दिखता है,
अब तो कारागार।
रुग्णा भार्या, भूखे बच्चे,
देख निकलते प्राण।
फिर भी क्या उपचार करे अब
यह कंगाल किसान।
सदा प्रात मजदूरी करके—
करता कुछ उपचार।
पर पकड़ा नृप के सैनिक ने
लेने को बेगार !
सूने हाथ गया था घर से,
आया सूने हाथ !
क्यों न प्राण देदें दीवारों से
टकरा कर माथ !
क्यों न अन्त आता राजा का—
वह अन्याय महान ?
क्यों न किसान क्रुद्ध हो इसके
लेते पामर प्राण ?

मोहन—

वृद्ध तुम्हारी दीन दशा ने,
विकल किये हैं प्राण !
निश्चित जानो अब होवेगा
इस नृप का अवसान !
शत-शत कृषकों के अन्तर का
यह भीषण संताप।
उसके अन्यायी जीवन को
देता है अभिशाप।

होगी क्रान्ति, शीघ्र चरणों में
लोटेगा वह ताज।
हम सब मिलकर क्या न मिटा
पावेंगे पापी राज ?
अंधकार, अंधेर, व्यथा, का
होवेगा अवसान।
प्रेम, शान्ति की उषा जगत में
छिड़केगी मुसकान।

विजय—

इतना कष्ट सहन करके भी
रहते हो तुम शान्त !
जिस पीड़ा की एक झलक ने,
किया हमें उद्‌भ्रान्त !
जलती है जो आग तुम्हारे
अन्तर में दिन-रात—
वह विद्रोह-अग्नि बनकर यदि
चमक उठे अज्ञात।
सौ-सौ राज उलट सकते हैं—
होवे स्वर्ण-विहान।
यदि दो साथ हमारा तो क्या—
बचे पाप के प्राण !

बाला—

आदी हुए कष्ट के
सहते-सहते अत्याचार—
यह समाज बल भूल हृदय का—
हुआ विकल बेज़ार !
ये न अभी कुछ कर सकते हैं, .
जिन्हें प्राण से प्यार !
मैं प्रस्तुत हूँ, जग को मेरा
जीवन है बेकार !
रण-चण्डी का खेल दिखा दूँ
मैं बाला सुकुमार !

जीवन-मरण जगत-अजगत हैं
मुझको एकाकार !

मोहन—

बहन, शक्ति हो, तुम साहस हो,
हो तुम आशीर्वाद !
तुम आशा की अरुण किरण हो
हो उर की उन्माद !
तुम जगती की स्नेह-सुधा हो,
हो तुम जीवन-दान !
तुम पावनता की प्रतिमा हो,
हो तुम जय का गान !
बहन, तुम्हारे ही तो कर में—
है जग की पतवार ।
सदा तुम्हारे इंगित पर ही
चलता है संसार !
तुम अपने सुकुमार करों से
पहना रण का साज !
किसी नई लाली में रँगने
हमें विदा दो आज !

विजय—

हाँ, रण-भेरी बजने दो,
अपनी निर्बलता के नाते ।
दुखिया माता के गुण गाते,
कर में शस्त्र पकड़ने दो ॥
हाँ, रण-भेरी बजने दो !
कृषकों के जर्जर कृषतन को—
औ, मजदूरों के रोदन को,
रूप भयंकर सजने दो !
हाँ, रण-भेरी बजने दो !
आज मनुजता के ही नाते—
गत-अत्याचारों के खाते ।
एक साथ ही चुकने दो !
हाँ, रण-भेरी बजने दो !!
अपनी खूनभरी झोली से,
शुभ स्वतन्त्रता की रोली से,
तिलक जननि का करने दो !
हाँ, रण-भेरी बजने दो !!

(यवनिका)

दूसरी झलक

[वन । संन्यासी, मोहन और विजय ।]

(नेपथ्य में)

माँ, तुझपर बलि होवें प्राण !
तुझे रिझाने ही तनता है
नभ में स्वर्ण-वितान ।
तुझे सजाने ही खिलती है
कुञ्जों में मुसकान ।
नीड़ों-नीड़ों के कल-रव में
है तेरा ही गान ।
कण-कण पर बरसाती है तू
अपना स्नेह महान ।
तेरी आँचल में अंकित हैं
युग-युग के अख्यान ।
तेरे चरणों पर लाखों के
हुए शीश बलिदान ।
हिम-गिरि-सा उन्नत हो तेरा
माँ, सात्विक अभिमान ।
तेरे आँगन में मुसकावे
मादक स्वर्ण-विहान ।
माँ, तुझपर होवें बलिदान !

मोहन—

है कहाँ आज वह स्वर्ण-काल
था हिमगिरि-सा जब भव्य भाल ।

था हरा-भरा यह अवनि थाल !
जब राज्य सौख्य का था विशाल ॥

जब यहाँ न पड़ते थे अकाल—
जब ज्वालाओं की लपट लाल—
जब अन्यायों के कुटिल हाथ
थे नहीं बिछाते कपट-जाल ॥

भूखे—प्यासे—जर्जर किसान
सह धूप, शीत औ, दुख महान—
हैं पाते क्या अपमान-बाण !
हैं अटक रहे किस लिए प्राण !!

जो चूस-चूसकर प्राण-रक्त
महलों में रचते स्वर्ण-साज !
गिरती है उनपर क्यों न गाज !
छिनता न नृपति का अधम ताज !

ऐ भूखे-प्यासे देश, जाग !
ऐ वैभव के अवशेष, जाग !
ऐ जीवन के कंकाल, जाग !
अब जले आग-विकराल आग !

जीवन-आहुतियाँ डाल-डाल
करदे वसुधा का थाल लाल ।
आने दे फिर से स्वर्ण-काल ।
हों एक जननि के सभी लाल ॥

दे जुआ आज नीचे उतार ।
कर नीच गुलामी तार-तार ।
इस जीवन की ममता बिसार ।
सह तोप, तीर, तलवार, वार ॥

बढ़ आगे—बढ़—ऐ शस्त्रहीन !
मत होना मन में कुछ मलीन ।
तप, तेज, सत्य, दृढ़ता अदीन
ला देंगे तुझको विजय छीन ॥

विजय—

जलता है उर, हैं विकल प्राण !
है निकल रही अनजान जान !
निज दीन देश का देख हाल—
उस अधम नृपति का निरख जाल ।

जी चाह रहा कर चूर-चूर
दूं पटक आज सौ कोस दूर—
उसका मस्तक मैं अनायास !
है जीवित अबतक व्यर्थ क्रूर !

संन्यासी—

नहीं नहीं, ए पगले यौवन.
जीत प्रेम से पापाचार !
अरे, पाप से पाप मिटाना
महा भूल है, व्यर्थ विचार !

वहाँ कमी क्या है पशु-बल की,
तुम पर कहाँ तोप-तलवार ?
अ-सहयोग का महामन्त्र ही
अब कर सकता है उद्धार !!

सारा देश एक होकर यदि
नया बना ले राज्य उदार,
दे न एक पैसा कर नृप को—
भरता जावे कारागार !

प्राण, मान, घर-द्वार तजे, पर
करे न नृप-सत्ता स्वीकार
तो कितने दिन टिक सकता है
किसी निठुर का अत्याचार ?

विजय—

यदि ग्रहण करें चुपचाप आप—
अपमानित का संताप-शाप—
दे अन्यायी को मृत्यु-दण्ड
तो उसमें है ही कौन पाप ?

जब कुचली जाती तुच्छ धूल
होती उसको भी विकल पीर।
ये निशि-दिन के अपमान-बाण—
करते रह-रह अन्तर अधीर !

यदि दुखियों के असहाय प्राण,
इन दलित जनों के करुण गान,
जो प्रतिहिंसा दें जगा आज,
तो स्वाभाविक ही है, सुजान।

यदि जाग उठे विद्रोह-आग,
यदि गूंज उठे अब 'सर्वनाश'
तो कौन रोक सकता, महान
उत्तेजित उर का अट्टहास !!

यह प्रतिहिंसा की प्रबल प्यास—
खेलेगी निश्चय रक्त-खेल।
अब कब तक रक्खे रहे देश
पीड़ा का भारी अचल शैल !!

जो आत्म-त्याग, जो शान्त भाव
है चाह रही निःशङ्क राह—
वह देवों की है वस्तु, देव !
हम पा न सकेंगे उसे, आह !

संन्यासी—

कहीं आग से आग बुझाना
है सम्भव, ऐ युवक, विचार।
राक्षस के हित राक्षस बनना
क्या कहलाता धर्माचार ?

धर्म, सत्य जिस ओर रहेंगे,
उसी ओर होंगे कर्तार।
एक आत्म-त्यागी भी लाखों
कर देगा बेकार कटार॥

वत्स, नृपति के पशु-बल में भी
अपनों की ही है भरमार।
अपने बन्धु पेट के कारण
करते पशु होना स्वीकार।

नृप तो सुमनों की शय्या पर
करता रहता विविध विहार।
प्राण लुटाते हैं हम-तुम ही
युद्धों में जाकर लाचार।

दो टुकड़ों पर अपना जीवन,
अपनी आत्मा, सकल विचार,
नृप के चरणों पर रख देते,
बन जाते उसके हथियार।

हिंसा का आह्वान करोगे
होगी आपस में ही मार।
सेना में भी हमीं कटेंगे।
दोनों ओर हमीं पर वार॥

वत्स, प्रेम के बल से बदलो
नृप के उर के कठिन विचार !
जेलें भर डालो राजा की
करो न पशु-सत्ता स्वीकार॥

मोहन—

तुम्हारा नूतन स्वर्गिक गान
किसी नई पावन दुनिया में
ले जाता है प्राण !

किसी अमरता के मधुवन की
लाया सुरभि विहान !
हटा हृदय से काला पर्दा,
यह नव-जीवन-दान !

तोपों-तलवारों से लोहा
लेंगे केवल प्राण ।
प्रभो, हृदय में साहस भर दो,
दो इतना वरदान—

लाख-लाख दुःखों में भी मुख
पर खेले मुसकान ।
आज नये पथ पर उड़ते हैं
जीवन के अरमान ।

माँ, तेरे बन्धन काटूँगा,
साथी हैं भगवान !

संन्यासी—

प्रेम ही है भगवान उदार
प्रेम ही है अनन्त अविकार
रवि-शशि-तारों की आँखें हैं
तकती जिसका द्वार !

ढक लेती काया-छाया-
माया ही उसका प्यार ।
खोज रहा है सागरतरणी
पाने जिसका पार ।

पंख माँगतीं तरल तरंगें
करने व्योम-विहार !
हृदय को ही भूला संसार
हृदय में ही है प्राणाधार ॥

अपनी ही आँखों का तारा
हुआ आँख की ओट
एक क़दम पथ ही तो हमको
दिखता पारावार !

घर की देहली पर ही चढ़ने
खोज फिरे संसार
पल भर भी यदि आँखें मूँदो
मिलते प्राणाधार !
प्रेम ही तो है प्राणाधार !
प्रेम ही है अनन्त अविकार ॥

तीसरी झलक

[उद्यान । लालसा और सुवाणी]

लालसा—

सखि, है कितना अरुण विहान !
डालों-डालों में जागा है
सजल सुरीला स्वर अनजान !
क्या तू भी गावेगी गान ?

सुवाणी (गाती है)—

कसकता है यह कैसा तीर !
अलियों-कलियों का आलिंगन
देता अन्तर चीर ।

लहरें उठती हैं मानस में
नूतन नर्तन है नस-नस में
आज क्षितिज की ओर देखकर
उठती है क्यों पीर ?
कसकता है यह कैसा तीर ॥

अम्बर की ऊषा—लाली में—
भरा हुआ है मद प्याली में ।
आँखें झँपती हैं सपने-सी

दिखती है तसवीर !
कसकता है यह कैसा तीर ?

लालसा—

चुरा लाई, सखि, मेरा गान !
क्या सब की वीणा में बजती
है मेरी ही तान !
उपवन के मृदु फूलों में
हरियाली के झूलों में
मेरे मानस की भूलों में—
गूँज रहा मधु-गान।
चुरा लाई, सखि, मेरा गान !
मेरा मानस मतवाला
लेकर भावों की माला
जावे किसको पहनाने को
विकल हुआ अनजान।
चुरा लाई, सखि, मेरा गान !
मुझको लहरों-सा उठकर
नव उमंग का सागर भर
गलबाँही में लिपटाते हैं
आकुल किसके प्राण !
चुरा लाई, सखि, मेरा गान !
महल, बाग, गौरव, वैभव,
सूने-से लगते हैं सब
इच्छा होती है वीणा की
बन जाऊँ मैं तान।
चुरा लाई तू मेरा गान !

सुवासी—

सबके मानस में है, सजनी,
वही प्रेम की प्यास।
सबको पागल करती रहती
वही प्रेम की फाँस।

सखि, सबके उर से उड़ते हैं
वही प्रेम-उच्छ्वास !
सब कलिकायें आकुल होतीं
आता जब मधुमास !

लालसा—

सजनी क्यों, आकाश-कुसुम में
अटक रहीं आँखें अनजान !
व्यर्थ क्षितिज के पार पहुँचने
पल-पल पागल होते प्राण !

चारु चन्द्र का चुम्बन करने
चंचल है उर के अरमान !
किस बन्धन में बाँधूँ अपने
आकुल यौवन का तूफ़ान !

एक अपरिचित की वीणा का
पड़ा सुनाई मुझको गान !
तन, मन, प्राण, हृदय का सब कुछ
किया अचानक उसको दान !

क्या, सखि, मैं उसकी वीणा की
बन पाऊँगी मादक तान !
उस समीर को बाँध सकेंगे
कैसे मेरे दुर्बल प्राण !

खिलने के पहले ही झुलसा
जाता है मेरा उद्यान !
कैसे बुझे अनल अन्तर का,
कैसे शीतल होवें प्राण !

क्यों न फोड़ ली मैंने आँखें
क्यों झाँका तुमको छविमान।
व्यर्थ, सुना छिप-छिप कर मैंने
एक अपरिचित का मधु-गान !

सुवाणी—

यही प्रेम का नियम चिरंतन
यही प्रेम का खेल महान।
अनचाहे, अनजान, अपरिचित
के चरणों पर चढ़ते प्राण!
जाने कब, किस ओर बैठकर
प्रेम छोड़ता अपने बाण।
जाने कब, कैसे छिड़ जाती
किसी अपरिचित की मुसकान।
जाने कब, किस भाँति उदय हो
कोई मादक शशि छविमान।
भोले-भाले मानस में भी
हाय, उठा देता तूफ़ान।
जाने कब किसकी वीणा का
गूँज मधुरतम मादक गान—
अन्तर के पर्दे छू-छूकर
पागल कर देता है प्राण।
पर यह बाण, सजनि, लगता है
दोनों के उर-बीच समान।
समझ न सकते हैं हम भोले
अपने ही प्राणों का गान।
सखि री, एक दिवस जीवन का
निश्चय होता स्वर्ण-विहान!
उस दिन प्रियतम, प्रेम, प्रेमिका,
बनते घुल-मिल अनुपम तान!

(यवनिका)

चौथी झलक

[अकेली लालसा]

(डाल पर कोयल कूकती है)

लालसा—

कूक मत री, कोयल नादान।
मधुऋतु की मादक बेला में
तेरी पंचम तान।
मानो कोमल कुसुम-हृदय पर
तान रही है बाण।
कहती है, 'अब जाने किससे
करनी है पहचान।
अपने सोते हुए हृदय को
अरी जगा नादान।
मधुऋतु प्यारी, मधुबन प्यारा,
कितना मधुर विहान!
आज मधुरता की छाया में
मधुर बना ले प्राण'।
पर, सखि, छिपी हुई है संध्या
ताक रहा अवसान।
सींच अमरता रख न सकेगी
कलियों की मुसकान।
तू भी चल देगी, सखि, जिसदिन
उजड़ेगा उद्यान!
तो फिर टूक-टूक कर टुकड़े
करती है क्यों प्राण।

(मोहन का प्रवेश)

लालसा—(स्वगत)

अरे अपरिचित! चिर-परिचित से
पड़ते हो तुम जान!
मानों कभी तुम्हें देखा था
गाते मादक गान!

जब संध्या के शून्य गगन में
तनता स्वर्ण-वितान ।
तब मानों तुम छिपकर करते
हो सुवर्ण का दान ।
जब ऊषा की कुमकुम-लाली,
फूलों की मुसकान,
विहगों का उल्लास मनोहर
मधुपों के मधु-गान,
कहते हैं कुछ कथा कहीं की
मधुऋतु के उत्थान,
तब पड़ता है जान कहीं पर
हँसते हो छविमान ।
आज अचानक मलय पवन से
आये हो अनजान ।
तो कुछ ठहर हृदय की कलिका
पुलकित कर दो, प्राण !

मोहन—(स्वगत)

कल्पना ने ही पाये प्राण !
मृग-शावक से लोचन भोले
वाणों-सी मुसकान ।
अलियों के गुञ्जन सी अलकें
उलझाती हैं प्राण !
चारु चन्द्रिका का पावन तन,
यौवन है उत्थान !
छुई-मुई सी सरल लजीली
मादक नयन अजान !
नव-वसन्त की मृदु लतिका-सी,
कोमलता की जान !
मानो मेरा मानस गाता
था इसका ही गान ।
इस शराब-सी लाल उषा में
करके अपना दान !
देवि, तुम्हारे चरणों में क्या
पाऊँगा निर्वाण ?

लालसा—

अलियों का दल कलिकाओं को
सुना रहा मादक गुञ्जार ।
कल-कल, छल-छल, मिलन-रागिनी,
गाती है सरिता की धार !
कोयल की कल 'कुहू-कुहू' से
जाग उठे अन्तर के तार ।
नव-वसन्त की नवल उषा में
चंचल है सारा संसार ।
कहीं दूर पर मानो गाते
थे तेरी वीणा के तार !
आज पास आने पर सहसा
मूक हो गये हैं क्यों तार ?
यहाँ शिला पर बैठ घड़ी भर
गा तो दो उन्माद, उदार ।
तेरी वीणा में बन्दी है
किसकी बेहोशी का प्यार !

मोहन—

मूक हुए वीणा के तार
दीपक की लौ पर पतंग-सी
अन्तर की आकुल मनुहार
उड़ उड़कर अन्तर की ज्वाला
में जल जाती है हर बार ।
जिसे खोजते मेरी आँखें
तकती थीं आकाश अपार
उसे न लखने तक देता है
यह निष्ठुर लज्जा का भार ।
जिसकी कलित कल्पना का मैं

करता था छिप-छिप शृंगार
उससे भी यह हृदय न कहता
'करता हूँ मैं तुझको प्यार !'

लालसा—

कौतूहल, विस्मय, आशा से
आये यहां, सरल, सुकुमार ।
जिसके स्नेह-स्पर्श से सहसा
हुआ समीरण मुदित अपार ।

जिसके चरणों को छूने को
झुकती कुसुमित लता सभार ।
जो मलियानल-सा आया है
छूता हुआ हृदय का द्वार ।

खोये हुए हृदय से प्यारे
हे अम्बर से उच्च उदार ।
जिसकी एक दृष्टि ने उर पर
किया आज अपना अधिकार ।

कैसे पूछूँ नाम तुम्हारा
कहाँ वास करते सुकुमार ।
कैसे भूले-भटके तारे-से
आ चमके मेरे द्वार ?

मोहन—

मैं सरिता की धार, न जसके
जीवन में विश्राम ।
मैं मलियानिल का झोंका हूँ
कहीं न जिसका धाम ।
मैं अपने उर की पीड़ा हूँ
मैं शराब का जाम ।
चाहे जो कुछ रख ले दुनिया
इस शरीर का नाम ।
मैं अपने खोये वैभव को
खोज रहा अविराम ।
मैं अनन्त पथ का यात्री हूँ
चलना मेरा काम ।

लालसा—

यदि वसन्त की व्याकुल घड़ियाँ
यदि मधुवन का मादक हास ।
यदि इन प्राणों की अभिलाषा
यदि अधरों की आकुल प्यास ।
अगर अछूती कुसुम-मालिका,
यौवन का पागल उच्छ्वास ।
यदि आँखों की नीरव भाषा
यदि अतृप्ति का विकल विलास ।
खड़ी बनकर पथ रोकें तो
पथिक, करोगे उसे निराश ?
उनको कुचल सकोगे क्या तुम
हे मेरे मन के मधु-मास ?
उड़े-उड़े कैसे फिरते हो
है अनन्त ऊँचा आकाश ?
मेरे मृदु निकुञ्ज में, सुन्दर
क्यों न बना लो अपना वास ?

मोहन—

सुमुखि, सलोनी, आज क्षितिज-सी
मत रोके आँखों का द्वार ।
अपना यौवन मेरे उरका
बना न निर्मम कारागार ।

झांक रही है कहीं शिशिर-सी
सर्वनाश की निष्ठुर धार ।
कौन कहे अलियों-कलियों का
पागलपन है पावन प्यार ।

जिसे बयार झड़ा देती है
जिसे सुखाता एक तुषार ।

केसी कलियों को गूथूँ मैं
कैसे हाय, हृदय का हार !

समझ न सकता तेरी छवि से
तेरे मानस का शृंगार ।
कौन कहे उसमें भर रक्खा
सुन्दरि, तूने बिष का प्यार ।

मेरा प्यार बना दुखिया दिल
की पीड़ा, आँसू की धार ।
मेरा हृदय बना है, बाले
दलित हृदय की करुण पुकार ।

उसे न तू अपनी ही छवि का
बन्दी बना, सुमुखि, सुकुमारि ।
बन्धन बना न डाल हार-सा
मेरे उर मे अपना प्यार ।

(प्रस्थान)

लालसा—

अरे मेरे दुखिया अभिमान !
यह फूलों-सी गलबाँही
ठुकरा गया दीन राही
मेरी इन शराब-सी आँखों
का इतना अपमान !
अरे मेरे दुखिया अभिमान !
मेरे प्राणों की पीड़ा
अब कर केवल तू क्रीड़ा
अब न किसी के आगे गाना
अपनी छवि का गान ।
अरे मेरे दुखिया अभिमान !
अपने यौवन की डाली
अब न झुकना मतवाली
अब न किसी से कहना, पगली
'अर्पित हैं ये प्राण' ।
अरे मेरे दुखिया अभिमान !

(यवनिका)

पाँचवीं झलक

[प्रजा की सभा]

मोहन—

हमारे दलित, दुखी, बेचैन,
देश का तुम सुन लो सम्वाद !
दीन दुखिया लोगों की कथा
हृदय में जगा रही उन्माद ।

किसानो मजदूरों के अश्रु
सुनाते निशि-दिन अपनी पीर !
जिन्हें दुर्लभ भर-पेट अनाज
उन्हीं पर ताने जाते तीर !

सैन्य के लिए हमें असहाय
लूटती रहती है सरकार ।
लगाकर कर बहु भाँति अपार
नृपति करता है अत्याचार !

लाद मजदूरों पर बेगार
दिया करते हैं कष्ट हजार ।
सुखी हैं यहाँ न कोई प्राण
चतुर्दिक फैला हाहाकार ।

उमड़ उठता उर में उन्माद
देखकर देश-जाति-अपमान !
गूंजने लगता है बस यह नाद
'करो बलिदान-करो बलिदान !'

कुटिल राजा के अत्याचार
दीन, पीड़ित, प्राणों की आह
अधम अन्यायी के अविचार
दिखाते मर मिटने की राह !

दिशाओं मे होता अनजान
किसी निर्भय का भैरव-गान !
किसीका हाथ चीर आकाश–
हमारा करता है आह्वान !

उषा के पलकों पर अनजान
लिखा पाते हैं हम 'बलिदान'।
हमें दिखलाती संध्या लाल
किसी लाली का लक्ष महान !

एक नर का जीवन-बलिदान
अखिल जगती को जीवन-दान !
विश्व के हित-चिन्तन में प्राण
लुटा दो इसमें ही कल्याण !

शिशिर की सूनी-सूनि डाल
किसी सुरभित युग का सन्देश !
पल्लवित होगी फिर से लता
सजेगा फिर सुमनों में भेष !

शहीदों के मुख लख मुसकान
सिहर उठता है अत्याचार ।
मचल उठते वीरों के प्राण—
सहम जाता पशु-बल, संहार ।

भस्म होकर भी होता वीर
लाख लालों से भी अनमोल ।
पिला जाता है उसका खून
अमरता का रस अग को घोल ।

कसकती अब वीरों की याद
उमड़ती प्यास—भयानक प्यास।
शहीदों का सच्चा सम्मान
कृपण—जीवन का है उपहास ।

चढ़ा जो शीश फूल-सा आज
करेगा माँ की गोद निहाल
उसी का है बस जीवन सार्थ
वही है माँ का सच्चालाल ।

आज युग-युग का कटु अपमान
पूछता है तुम से अनजान
'भुगत सकते हो कारागार'
चढ़ा सकते हो क्या तुम प्राण ?

करो मत नृप-सत्ता स्वीकार
न दो अब पापों में सहयोग—
न दो उसको कर कौड़ीएक
सहो पशु-बल के सकल प्रयोग !

एक किसान—

नहीं रखनी जालिम सरकार
भले ही ले वह शीश उतार ।
न देंगे उसको कभी लगान
भले ही जलवा दे घर-द्वार !

कृपाण—

देखना है रे अत्याचार
तीव्र है कितनी तेरी धार

सन्यासी—

आत्म-बल के आगे असहाय—
मुलायम होवेगी तलवार !

सत्य, दृढ़ता अपनी, विश्वास,
न खोना होकर कभी निराश ।

विजय चूमेगी चरण सहास
प्रेम का होगा पुण्य प्रकाश !!

गुलामी सब पापों की खान—
उसे सिर से दो अभी उतार।
न मानो यह जालिम सरकार,
चलेगा कबतक पापाचार।

अहिंसा और प्रेम से बन्धु
मिटाना है यह अत्याचार।
कभी तलवारों की कटु धार
काटने मत लेना तलवार।

प्रेम ही है वह शक्ति अपार,
काटती जो शस्त्रों की धार।
अमर आत्मा पर किसका हाथ—
कभी कर सकता घातक वार!

सब—

अनोखा होगा, वीरो खेल!
पानी की कोमल धारा से
कठिन लड़ेगा शैल!
मुक्त पवन से युद्ध करेगी
भीषण ज्वाला फैल।
एक ओर स्वच्छन्द भावना
एक ओर है जेल।
हम स्वाधीन बनेंगे निश्चय
लाख-लाख दुख झेल!

(यवनिका)

छठी झलक

[उद्यान। लालसा-अकेली]

लालसा—

लजीली आँखों की मनुहार
हुई सूनेपन में अवसान!
वहा सूनेपन में हैं छिपे
नजाने कितने गीले गान!

हृदय की शान्ति, हृदय का मोद,
हृदय का वह आनन्दाभास
हृदय का सौख्य, हृदय का राग,
निगल क्यों गया शून्य आकाश?

खोल मानस के सारे द्वार
प्रतीक्षा की कितने दिन-रात?
सम्हाली-पाली मीठी पीर
प्रेम का यह पागल आघात!

नशीली आँखों से बहुबार
निमंत्रण भेजे कितने मौन?
निगल जाता उनको अनजान
गगन में सूनेपन के कौन?

प्रेम की पीर, प्रेम के घाव,
प्रेम के गान, प्रेम-आह्वान,
प्रेम की असफल आह, पुकार
मूक हैं—मूक प्रेम के प्राण!

बड़े कोमल करुणा के तार
बड़ी कोमल उनकी झंकार।
गूढ़तम है पर उनका अर्थ
न समझेगा भोला संसार!

तोड़ डाले करुणा के तार
बजाकर मैंने कितनी बार
हुई सूनेपन में है लीन
हृदय की तन्त्री की झंकार !

हठीली आह छोड़ घर-बार
पकड़ लेती है सूनी राह !
सुधा-सिञ्चित यह सुरभित साँस
रूठ उड़ जाती नभ में, आह !

कामना, आशा का आधार—
पकड़, उठती है कितनी बार ?
किन्तु, पकड़ा देता है कौन
उसे सूनी शैय्या हर बार !

गर्म होता है कितनी बार
बावली आशा का बाजार।
मचल पड़ता है जब उन्माद
मचाता कितना हाहाकार ?

किन्तु, सब सूनेपन में लीन
रहा अब सूनापन ही शेष !
रसीली आँखों की रस धार
सींचती सूनेपन का देश !

हृदय की मिल कर सारी शक्ति
पूजती सूनेपन का देश।
लुटाया सोने का संसार
गले मिल सूनापन अतएव !

(मोहन का प्रवेश। लालसा छिप जाती है)

मोहन—

आह, मेरे अन्तर के प्यार !
कसक उठते हो बारम्बार !
सरल सुमनों की ओर निहार
हृदय कर उठता हाहाकार।

कठिन कर्तव्यों में ये प्राण
भुला दें कैसे करुणा-गान ?
कसक ही उठता है अनजान
किसी के नयनों का छवि-बाण !

उधर कर्तव्य, इधर है प्यार,
उधर तलवार, इधर मनुहार,
देश की है उस ओर पुकार,
इधर यौवन—तूफ़ान, दुलार !

हाय, किसमें रख लूँ अनुराग ?
बुझेगी कैसे उर की आग ?
अरे जीवन का करुण-विहाग !
अरी यौवन की पहली फाग !

लालसे ! ए प्राणों की पीर !
लालसे ! ए अन्तर का तीर !
कसकती किस पहलू में, हाय,
कहाँ देखूँ अन्तस्तल चीर !

(लालसा बाहर निकलती है)

लालसा—

प्रभो, मेरे पहले उन्माद !
विकल यौवन के प्रथम विहान !
व्यथित वंशी की पहली तान !
इष्ट, हे मेरे जीवन-प्राण !

व्यथा-सी, पीड़ा-सी अनजान
साँस-सी, छाया-सी सुनसान !
तुम्हारे चरणों में दिन-रात
पड़ी रहती हूँ मैं अज्ञात !

मोहन—

विभव के उपवन की मृदु कली !
मुझे करती हो क्या तुम प्यार ?

लालसा—

तुम्हारा है यह कैसा प्रश्न !
'मुझे करती हो क्या तुम प्यार ?'
तुम्हें किस दर्पण में, सुकुमार,
दिखाऊँ अपने उर का प्यार ?

विरह में जिसके मैं दिन-रात,
बहाती हूँ आँसू अविराम।
प्रेम में हो जिसके लवलीन,
छोड़ बैठी हूँ सारे काम।

वही पूछे यदि मुझसे प्रश्न,
'मुझे करती हो क्या तुम प्यार ?'
हाय, उसकी यह मीठी बात
छुरी-सी छिदती उर के पार।

तुम्हारे सम्मुख देगा, हाय,
हृदय की आज गवाही कौन ?
देखिए, इन नयनों की ओर !
समझिए इनकी भाषा मौन।

भ्रमर कलियों से करता प्रश्न,
'मुझे करती हो क्या तुम प्यार ?'
और क्या उत्तर दे वह मूक—
लुटा देतीं सब सौरभ-सार ॥

पूछती यही मृगी से प्रश्न
मधुर वीणा की मादक तान।
भला क्या उत्तर दे वह दीन—
लुटा देती है अपने प्राण !

तुम्हारे चरणों की है भेंट
प्रेम का मेरा कोमल फूल !
बनाओ इसे हृदय का हार
या कि अपने चरणों की धूल !

मोहन—

देवि, कर्तव्य-कठिन कर्तव्य
बुलाता है मुझको उस ओर
तनी है मेरे सिर पर सदा
तुम्हारे नृप की फाँसी-डोर।

तुम्हारे अञ्चल में मैं बैठ—
सकूँ, इतना है कब अवकाश ?
बुलाते दुखियों के उच्छ्वास
बुलाता है ऊपर आकाश ॥

वेदने, ऐ प्राणों की प्यास
करूँगा तुझको आज निराश।
अरी स्मृति, यदि आवेगी पास
कुचल डालूँगा तेरा वास !

(प्रस्थान)

लालसा—

मुझे ठुकराओ ही हर बार
चाहती हूँ न तुम्हारा प्यार।
हृदय में है जो प्रेमल मूर्ति
बहुत है मुझे वही आधार।

चढ़ाती हूँ मैं जीवन-फूल
तुम्हारे चरणों पर सुकुमार !
बनाना इसे चरण की धूल
और ठुकराना बारम्बार।

प्राण, ठुकराया मेरा प्यार—
नहीं है अब इसका कुछ खेद !

शीश पर या चरणों के तले
वास करने मे है क्या भेद ?

माँग कर तुमसे करुणा-दान
सहा ही क्यों मैंने अपमान ?
हुई शीतल अब पागल चाह !
भिखारिन का यह कैसा मान ?

न कहना अपने उर की पीर।
न दिखलाना नयनों का नीर।
शून्य में ही भरना उच्छ्वास।
बढ़ो-हाँ, बढ़ो, व्यथा गंभीर !

हृदय के भीतर बारम्बार—
रहे उठता तूफ़ान अपार।
व्यथा का यह पहाड़-सा भार
उठाये रहो हृदय सुकुमार !

ठोकरें ही खाना दिन-रात
शान्ति-सुख का करना अवसान।
किसी निष्ठुर पर देना जान
यही इस जीवन का अरमान !

(यवनिका)

सातवीं झलक

[मोहन हाथ में झण्डा लिये हुए। विजय। कुछ नागरिक]

सब—

लड़ेगा तोपों से बलिदान—
वहाँ तीर-तलवारें होंगी
और यहाँ पर प्राण !
लाल-लाल आकाश सिखाता
सरल शहीदी शान।
पशुबल, अत्याचार, कपट ने
ताने तीर—कमान।
बढ़ो-बढ़ो, आगे सीना कर,
सिंहों की सन्तान !
'सर्वनाश' गाता है—गावे
अपनी पागल तान !
मर-मिटने में ही मिलता है
मृदु अमरत्व महान।
युग-युग का अन्याय हृदय में
उठा रहा तूफ़ान।
रंगभूमि सौ-सौ हाथों से
करती है आह्वान ॥

(बलवीर का सैनिकों-सहित प्रवेश)

बलवीर—

ऐ युवकों के पागल नायक,
मूर्तिमान विद्रोह !
तेरे मस्तक का महीप के
मानस को है मोह !

तुम्हें बाँधने को बन्धन मे
बाध्य हुई जंजीर
राजा की आज्ञा से तुमको
बन्दी करता वीर !

(हथकड़ी पहनाता है)

विजय—

किसका साहस है जबतक
जीवित हैं प्राण हमारे
हथकड़ी आज पहनाकर
ले जावें तुमको, प्यारे !

एक नागरिक—

सेनापति, बन्धन खोलो,
मत करो हमें हत्यारे ।
मरघट-सा देश बनेगा
क्रूर देंगे विप्लव सारे ।

मोहन—

मत भूलो अपनी आन, वीर !
मत बनो अभी से तुम अधीर ।
यह रक्त-धार, तलवार-वार
दुखियों की देंगी बढ़ा पीर ॥

शुभ सहन-शक्ति औ' आत्म-त्याग
लावेगा तुमको प्रेम-राज ।
बन्धन का निठुर कपट-जाल
काटेगा केवल प्रेम आज ॥

बनते हो क्यों शैतान, व्यर्थ
खोओ मत अपनी शक्ति, तात ।
तुम अगर करोगे रक्त-पात
तो कर लूँगा मैं आत्म-घात ॥

यह तोप, तीर, पैनी कटार,
कर सकते आत्मा पर न वार ।
मैं कहीं रहूँ, पर यह प्रवाह—
यह वेग, बहेगा अब अपार ॥

(नेपथ्य में)

प्रेम पर रखो सदा विश्वास !
मत समझो यह अपने मन में
काला है आकाश ।
अस्थिर बादल हैं, पगलो,
यह अँधियारा है हास ।
मिट जावेगा एक घड़ी में
होगा पुनः प्रकाश ।
चलने दो इस अंधकार में
तरणी को सोल्लास ।
अटल प्रेम ही पहुँचा सकता
तुमको तट के पास ।

(संन्यासी का प्रवेश)

एक नागरिक—

पूज्य, बुढ़ापे में यौवन की
भर कर उर में आग—
क्या तुम ही गाते थे छिपकर
आशा का मृदु राग ?

अरे, तपस्या की मृदु प्रतिमा,
ए साक्षात विराग !
सब के प्राण डसे लेता है
यह हिंसा का नाग ।

संन्यासी—

व्यर्थ है हिंसा का अभिमान ।
अपनी कम्पित स्वर-लहरी में
भरो प्यार का ही तूफ़ान ।
यह शैतान हृदय में विष की
प्याली भरता है अनजान ।

भूलो तलवारों की बिजली
भूलो पशुबल का अभिमान !
भरो हृदय के भीतर केवल
स्वाभिमान, जीवन-बलिदान ।

रोते हैं बन्धन में पड़कर
जननी के अपमानित प्राण ।
छोड़ो सुख-शय्या, अब भैया,
करो कण्टकों पर प्रस्थान ।

कोटि-कोटि कण्ठों में गूँजे
यही गीत, केवल यह तान—
'या स्वतन्त्र जन ही बन लेंगे
अथवा हम देवेंगे प्राण ।'

सब—

बल देवे हमको भगवान !
जिससे चढ़ा सकें हम माँ के
चरणों पर ये प्राण ।
नई मधुरिमा से भर जावे
मादक स्वर्ण-विहान ।
गूँजे अन्तर के तारों में,
अब जीवन-बलिदान ।
देखें कितने प्यासे होंगे
नृप के तीर-कमान ।

(यवनिका)

आठवीं झलक

[उद्यान । लालसा अकेली]

लालसा—

कहेंगे, समझेंगे क्या लोग—
इसी का आता पीछे ध्यान ।
सभी के ही सम्मुख 'हा नाथ!'
निकल पड़ता मुख से अनजान ।

कौन बैठे हैं मेरे पास ।
नहीं रहता है इतना ज्ञान !
न-जाने कैसे-कैसे, हाय !
प्रेम के गाने लगती गान ।

कभी बैठी भरती हूँ आह ।
हृदय को लेती कर से थाम ।
सभी के सम्मुख अपने आप
अश्रु बहने लगते अविराम ।

कभी लेती हूँ मैं कर जोड़,
बैठ जाती हूँ घुटने टेक ।
समझकर सुनते होंगे नाथ,
विनय करती हूँ भाँति अनेक ।

बैठ जाती हूँ आँखें मूँद
दीखते मेरे प्राणाधार—
सृष्टि के सकल सुखों के सार
बीतते पहरों इसी प्रकार ।

जागती हूँ, अथवा हूँ सुप्त
नहीं इतना भी मुझको ज्ञान ।
वही हूँ या मैं हूँ कुछ और
नहीं इतना तक मुझको ध्यान ।

प्रेम ने फूँका कैसा मंत्र
बदल-सा गया सकल संसार ।
किया कैसा उनने व्यवहार
शत्रुता थी या यह था प्यार ।

पवन से, पुष्पों से, बहुबार
प्रकृति से करती हूँ मैं बात ।
फूल में पाकर उनका रूप
चूम लेती हूँ कोमल गात ।

बनाती और तोड़ती नित्य
सरस सुमनों का सुन्दर हार ।
फूल-सी खिल मुरझाती, हाय,
हृदय की आशा बारम्बार ।

नहीं छोड़ेगी पीछा, हाय,
घड़ी भर को भी उनकी याद।
यही कहता होगा संसार
इसी को कहते हैं उन्माद।

(राजा और सेनापति का प्रवेश)

रणवीर—

पगली ऐसे विकल पलों में
यह स्वच्छन्द विहार।
उधर प्रजा उत्तेजित होकर
घूम रही बेज़ार।
जाओ, तुम महलों में जाओ
फिरो नहीं बेकार।
जाने क्या अनर्थ परदे में
करता है शृंगार।
गाँव जला डाले विद्रोही,
बही रक्त की धार।
पर न आज तक बस में आये
डाकू, चोर, लबार।
कितना है अन्याय बनाते
अपनी ही सरकार।
देते नहीं टैक्स, भर डाले
सारे कारागार।
मैं स्वामी हूँ, वे सेवक हैं
कहता है संसार।
शास्त्र बताते हैं राजा ही
जनता का कर्तार।

लालसा—

नहीं, पिताजी तुम्हें नहीं है
शासन का अधिकार।
चूस-चूसकर रक्त प्रजा का
भरते हो भंडार।
जनता का धन हरने वाले
डाकू, चोर, लबार।
किस मुँह से कहते अपने को
जनता का कर्तार।

रणवीर—

यह तलवार कहाँ रुकती है
'हे जग के कर्तार'!
कबतक चल सकता है देखूँ
यह विद्रोह-विकार।
पापी मोहन पड़ा जेल में
जनता का आधार।
देखें और कौन बनता है
विद्रोही-सरदार ?
अब श्मशान सब गाँव बनेंगे
बनी रहे तलवार।
'सर्वनाश,' हाँ, सर्वनाश का
अब होगा व्यापार॥

(रणवीर और बलवीर का प्रस्थान)

लालसा—

इसीका है हमको अभिमान।
ये सोने की जग-मग ईंटें
यह वैभव-सामान।
इनके नीचे दबे हुए हैं
कितने कोमल प्राण।
यह रेशम की उज्ज्वल साड़ी
यह मणि-मुक्ता-हार।
जाने कैसी करुण-रागनी
गाते हैं अनजान।
वह मेरी सुमनों की शय्या
यह मेरा उद्यान।

दीन जनों का पेट काटकर
करते हैं अभिमान।
यह मोटर, यह बग्घी, हाथी,
यह शोभा यह शान।
कितनी करुणामय आँखों का
करते हैं अपमान।

(बलवीर का पुनः प्रवेश)

बलवीर—

अरे, ओ, उर के पश्चात्ताप
दूर कर तू ही मेरा पाप।
रक्त से रँगे आज ये हाथ
मुझे ही देते हैं अभिशाप।

सैकड़ों गांवो को कर राख
हँसा है मेरा पापाचार।
छीन अबलाओं का शृंगार
किया सूना उनका संसार।

चलाता हूँ मैं जब तलवार
निकलने से लगते हैं प्राण।
लूटता माताओं के लाल
हाय, मैं पापी क्रूर महान!

नृपति तेरी जय का आधार—
हमारी ही तो है तलवार!
एक तेरा पापी संकेत
कराता है अबलों पर वार!

लालसा—

वीर धो डालो अपना पाप
न दो अन्यायी नृप का साथ!
पापियों की आज्ञा है त्याज्य
भले हों बन्धु बाल या नाथ!

आज अपने हाथों से, वीर,
खोल दो सारे कारागार!
बसा दो फिर से सूने धाम,
फेंक दो यह निष्ठुर तलवार।

बसाओ एक नया ही राज्य,
जहाँ पर भूप, प्रजा या सैन्य।
आदि का हो न दुखित अस्तित्व।
दूर हों विपदायें—दुख-दैन्य।

प्रेम ही हो अब सबका भूप
प्रेम ही हो अब सबका राज—
प्रेम ही हो सब का अधिकार,
प्रेम ही हो अब सब का ताज।

बलवीर— (तलवार फेंककर)

फेंक आज निष्ठुर तलवार
विद्रोही होंगे ये प्राण!
मेरे जीवन का अनजान
हुआ आज है स्वर्ण-विहान!

जाने किस-किस का संताप
देता है नृप तुझको श्राप!
सकल सैन्य है मेरे साथ
रुकें आज ही सारे पाप!

दूँगा खोल जेल के द्वार
विहगो से सब सहितोल्लास!
करें गगन में मुक्त विहार!
खुलकर खेलें जग में हास!

सन्यासी— (संन्यासी का प्रवेश)

जगती अपनी आँखें खोल!
घृणा, स्वार्थ, अज्ञान आदि ने

दिया हलाहल घोल—
करो प्रेम-प्रांगण में, प्यारो,
शिशुओं से किल्लोल।
प्रेम और वैभव दोनों को
देखो उर में तोल।
किसकी चमक अधिक प्यारी है,
किसका ज्यादा मोल ?
(बलवीर और सन्यासी का प्रस्थान)

लालसा—
हुआ जीवन का स्वर्ण-विहान
ऐ मेरे मानस की पीड़ा
छोड़ो अब तुम अपनी क्रीड़ा,
मैं यौवन की बेहोशी में
भूल गई थी लक्ष महान।
हुआ जीवन का स्वर्ण विहान।
ऐ प्राणों की विकल-पिपासा
यौवन की चंचल अभिलाषा—
नई मधुर मादक प्रतिमा पर
कर दूँगी तुमको बलिदान।
हुआ जीवन का स्वर्ण-विहान।
यह मादक आँखों की लाली—
यह चंचल चितवन मतवाली—
आज नई प्याली में घुलकर
होगी शीतल सुखद महान।
हुआ जीवन का स्वर्ण-विहान।
(यवनिका)

नवीं झलक

[विजय अकेला]

विजय—
एक कुञ्ज के कुसुम एक ही
साथ खिले—मुसकाये थे !
एक मालिका में ही अपने—
जीवन गूंथ मिलाये थे।
वह मेरे उर की माला—
मैं उसके उर की माला !
वह तो था मेरा मतवाला—
मैं था उसका मतवाला !
अरे देश, ऐ सेवा के व्रत,
अलग किया दोनों को, आह !
ऐ स्वतंत्रता, कितनी टेढ़ी,
और कटीली तेरी राह !
अरे देश, तेरी गोदी में—
कितने प्राणों की प्याली—
छलक-छलककर टूट-फूटकर
भरती रहती है लाली।
ऐ मोहन, जाने किस युग में—
मुझे मिलोगे, अब प्यारे !
ऐ अन्तर के प्यार, हृदय के—
सार, आँख के प्रिय तारे !
(लालसा का प्रवेश)

लालसा—
विकल विजय, किस लिए अकेले—
बैठ यहाँ सुनसान—
किसकी पीड़ा की प्याली में
घोल रहे हो प्राण ?

विजय—
जिसके लिए तुम्हारे उर की—
पीड़ा गाती गान।
जिसके लिए भिखारिन बनकर
घूम रही छविमान !
बाला, दो दिन से जो तेरे
उर का है तूफ़ान।
वह मेरी वर्षा की लहरें,

युग-युग का मृदु गान !
जो मोहन तेरी वीणा की
बना हुआ है तान ।
विजय न-जाने कबसे उस पर
चढ़ा चुका है प्राण ।

लालसा—

तो क्यों नहीं बंधु, हम-तुम दोनों मिल
उसे खोज ले आवें ?
आओ आज तोड़कर कारागृह
उसको हम गले लगावें ॥
छोड़ विभव की ममता-माया,
छोड़ पिता का प्यार ।
आई समता की सुरसरि की
विमल बहाने धार ।
आओ आज खोलकर अपने
कर से कारागार !
हार तुम्हारे उर का दूँगी
मैं तुमको उपहार ।

विजय—

बनो न तुम मदिरा की प्याली,
बनो न यदि बेहोशी ।
बनो न तुम बन्धन की कड़ियाँ,
बनो न यदि खामोशी ।
बनो न उर की हिचक, कसक, या
शंका, विस्मय, या संदेह ।
कहीं शक्ति का स्रोत बने,
हे देवि ! तुम्हारे उर का स्नेह ।
तो हम लाख-लाख विपदायें
झेलें सुख के साथ—
देते हों संकेत दूर से
ही यदि, बहन, तुम्हारे हाथ !

(यवनिका)

दसवीं झलक

[कारागार । अकेला मोहन]

मोहन—

हँसो, ऐ, काले कारागार !
हँसो, ऐ, अन्धकार-साकार !
हँसो पापी के पापाचार !
हँसो दो-दिन ए अत्याचार !

हँसो, ए सूनेपन-एकान्त !
हँसो, निष्ठुर पीड़ा उद्भ्रान्त !
हँसो, काली-काली दीवार !
हँसो, मानस की व्यथा अशान्त !

प्रेम ही खोलेगा यह द्वार !
कभी आकर किरणों का प्यार—
सुनहला रच देगा संसार !
हँसो, ऐ अंधकार दिन-चार !

हँसो, ए काले कारागार !
तुम्हीं में हुआ कृष्ण-अवतार !
हँसो, ए पापी-राजा कंस !
चला लो दो दिन को तलवार !

विकल मत होना मेरे प्राण !
विकल मत होना उर-अरमान !
विकल मत होना ऐ अभिमान !
साधना ही है विजय महान ।

मुक्त है हृदय, मुक्त हैं प्राण !
अरी ओ, भूतों-सी दीवार !
बन्द कर सकती है क्या कभी
किसी मानस के मुक्त विचार ?

(लालसा का प्रवेश)

मोहन—

कहाँ यह शशि का मादक हास
कहाँ यह काला कारागार !
तमिस्रा के उर पर तुम आज
चलाने आई हो तलवार !

मुझे, निर्मम ! तुम देख निरीह,
यहाँ करने आई उपहास !
कहो तो देवि, कहाँ का प्यार,
पिलाने आई है यह प्यास ?

लालसा—

उठो, ऐ, मूर्तिमान बलिदान !
उठो, ए, दुखियों के आधार !
खोल दूँ अपने कर से देव,
बेड़ियाँ—बन्धन—कारागार !

मोहन—

नहीं-नहीं, बाले, बन्धन का
　　कर न सकोगी तुम उपचार।
जिसने बन्दी बना रखा है
　　वही खोल सकता है द्वार !
तभी मुझे बाहर जाने का
　　हो सकता, सरले, अधिकार।
जिस दिन मिट जावेगा भू से
　　निठुर नृपति का पापाचार।

लालसा—

वही होगा, ऐ जीवन-नाथ !
झुकावेंगे नृप तुमको माथ–
तुम्हारे बन्धन की जंजीर।
खोल देंगे उनके ही हाथ !

(लालसा का प्रस्थान)

मोहन—

हृदय, वेदना में ही मूल !
　　कुचला है कठोर चरणों से
　　　　तूने कोमल फूल।
　　कसक रहा है वही हृदय में
　　　　बनकर पीड़ाशूल।
　　जाने क्या उर में चुभता ही
　　　　रहता सदा त्रिशूल।
　　बढ़ो-बढ़ो अन्तर की ज्वाला
　　　　बढ़ री व्यथा अकूल !

(सेनापति और लालसा का प्रवेश)

सेनापति—

बेड़ियाँ पहनाई थीं तुम्हें,
इन्हीं हाथों से मैंने, हाय !
खोलकर इनको आज समोद
पाप धोने का करूँ उपाय !

नृपति का छोड़ा सबने साथ
सैन्य ने भी फेंकी तलवार।
आज पशु-बल से जीता, देव,
तुम्हारा सत्य, तुम्हारा प्यार !

मोहन—

यदि बदल जायँ राजा के
　　वे पापी, क्रूर, विचार—
मैं तभी समझ सकता हूँ
　　जीता है मेरा प्यार।

यदि मुक्त करें बन्धन से
　　बढ़ कर नृप के ही हाथ।
मैं तभी छोड़ सकता हूँ
　　यह प्यारा कारागार।

(सेनापति का प्रस्थान, लालसा हार निकालकर मोहन को पहनाती है)

मोहन—

सींच-सींच नित आँखों से जल
हरा किया अन्तर का घाव ।
सब-कुछ खोकर, सब कुछ देकर,
पाया मैंने यही गुलाब ।
सौ-सौ शूलों को सह-सहकर
पाला है यह कोमल फूल ।
इसकी मादक मधुर सुरभि के
आगे सुख-वैभव है धूल ।
पीड़ा का प्याला भर-भरकर
करती जब यह मुझे प्रदान ।
एक नशा-सा दिखता है तब
यह जग, और शून्य यह प्राण ।
कठिन तपस्या से पाया है
मैंने यह पावन उपहार ।
मत तोड़ो, मत तोड़ो, इसके
बिना शून्य मेरा संसार ।

लालसा—

करो आज तो, प्रभु, स्वीकार—
मेरी चिर-संचित अभिलाषा,
ये आँसू के तार।
यह सुमनों की कोमल माला
मानस का उपहार।
स्वर्ग बना है चरणतुम्हारे
छूकर कारागार ।
अपने पावन पद छूने दो
झुकता मेरा प्यार ।

(रणधीर, संन्यासी, और विजय का प्रवेश)

रणधीर—

ऐ कोटि-कोटि मानस के
राजा—आँखों के तारे !
बन्दी रख सकते कबतक
लघु बन्धन-जाल हमारे ?
(बन्धन खोलता है)

कबतक श्मशान के ऊपर
रक्खूँ सिंहासन मेरा ?
कैसे लहरों-लपटों पर
चल सकता शासन मेरा ?

मेरे अपने स्वजनों को
भी तो है तूने छीना ।
सबको बस में कर लेती
यह मधुर प्रेम की वीणा।

पापों का मस्तक झुकता
है आज सत्य के आगे ।
तलवारों से तीखे हैं
ये प्रेम-स्नेह के धागे ।

करता हूँ तुझे समर्पित
मैं आज लालसा मेरी ।
मेरी निर्दयता छोड़े
ऐ मोहन, करुणा तेरी ।

केवल मनुष्य ही बनकर
मैं सीखूँ जग में रहना ।
यह राज-पाट-वैभव तज
हो प्रेम-धार में बहना ।

हों स्वर्ण-विहान मनोहर
ये भेद-भाव सब भागें।
अब नये प्रेम के जग में
ये अलसित पलकें जागें।

हो जहाँ हृदय ही राजा
हो जहाँ प्रेम ही शासन।
सबकी ममता में होवे
ममता का पावन आसन।

(लालसा से)

विजय—

बहन, तुम्हारा भिक्षुक भाई,
लखकर अपनी कंगाली।
लज्जित है उपहार कौन-सा दे
है उसका घर खाली।
जिसके अधरों पर बरसों से
खेली भी न कभी मुसकान।
उसका हृदय आज के सुख से
छेड़ रहा है सुख की तान।
तुम अपनी इस प्रेम-भरी मृदु
दुनियाँ में सुख से रहना।
प्रेम ओढ़ना, प्रेम बिछाना,
प्रेम-सिन्धु में ही बहना।
मेरा हृदय तुम्हारी पावन
दुनियाँ में अन्तरतम से।
देता आज बधाई, 'सुख से
गले मिलो तुम प्रियतम से।'

संन्यासी—

स्वस्ति, यह नूतन स्वर्ण-विहान !
विस्तृत अम्बर की छाया में
गावें मंगल-गान।
हरी-भरी हों ललित लतायें
मुसकावें उद्यान।
दान मधुरिमा का जग को दें
कलियों की मुसकान।
'प्रेम-प्रेम' सबकी वीणा में
गूँज उठे अनजान।
कुचले नहीं किसी का मानस
स्वार्थों का अभिमान।
सब समान हैं, सब समान हैं
राजा और किसान।
पशु-पक्षी तक स्वजन हमारे
दुखे न कोई प्राण।
सब के मानस में भगवन् हैं
सब-सब के भगवान् !*

(यवनिका)

---

* सस्ता-मंडल से शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पद्य-नाटिका।

गीता का अर्थ

[महात्मा गांधी]

सन् १८८८-८९ में जब मैंने गीता का पहली बार दर्शन किया, तभी मुझे यह प्रतीत हुआ कि यह कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, इसमें तो भौतिक युद्ध के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निरन्तर वर्त्तमान द्वन्द्व-युद्ध का ही वर्णन है, हृदयगत युद्ध को दिलचस्प बनाने के लिए मानुषी योद्धाओं की कल्पना कर ली गई है। यह प्राथमिक स्फूर्ति, धर्म और गीता का विशेष विचार करने पर और भी दृढ़ बन गई। महाभारत पढ़ चुकने पर तो इस विचार की ततोधिक पुष्टि हुई। महाभारत ग्रंथ को मैं आजकल के अर्थ में इतिहास नहीं मानता। इस बात के ज़ोरदार प्रमाण आदि-पर्व में ही हैं। पात्रों की अमानुषी और अतिमानुषी उत्पत्ति का वर्णन करके व्यास भगवान ने राजा-प्रजा के इतिहास को मिटा डाला है। महाभारत में जिन पात्रों का ज़िक्र आया है, वे मूलतः ऐतिहासिक भले हों, स्वयं महाभारत में तो व्यास भगवान् ने उनका उपयोग मात्र धर्म का दर्शन कराने के लिए ही किया है।

महाभारत के रचयिता ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता सिद्ध नहीं की है; बल्कि उसकी निरर्थकता सिद्ध की है। उन्होंने विजेता को रुलाया है, उनसे पश्चात्ताप करवाया है और उनके लिए सिवा दुःख के और कुछ भी रहने नहीं दिया है।

इस महाग्रंथ में गीता का स्थान मुकुट-मणि के समान सर्वोच्च है। गीता का दूसरा अध्याय भौतिक युद्ध के संचालन की बातें बतलाने की अपेक्षा स्थितप्रज्ञ के लक्षण सिखाता है। स्थितप्रज्ञ के लक्षणों से मुझे तो यही प्रतीत हुआ है कि ऐहिक युद्ध के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। और यह संभव नहीं कि मामूली कौटुम्बिक झगड़ों के औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करने के लिए गीता-जैसे ग्रंथ का निर्माण हुआ हो।

मूर्तिमन्त, शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान ही गीता के कृष्ण हैं, पर वह काल्पनिक हैं। मेरे इस कथन से कृष्ण नामक अवतारी पुरुष का निषेध नहीं होता। मेरे कहने का मतलब केवल यही है कि सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं, सम्पूर्णावतार का पीछे से किया गया आरोपण है।

अवतार का अर्थ है, शरीरधारी पुरुष-विशेष। जीव-मात्र ईश्वर का अवतार है, लेकिन सबको हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धार्मिक है, उसे आनेवाली सन्तान अवतार मान कर पूजती है। इसमें मैं कोई दोष नहीं पाता; इसके कारण न ईश्वर की महत्ता को हानि पहुँचती है, न सत्य को आघात। 'आदम खुदा नहीं, लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।' जिसमें अपने युग की अपेक्षा सर्वाधिक धर्म-जागृति है वह विशेषावतार है। इसी विचार-धारा के कारण कृष्ण-रूपी सम्पूर्णावतार आज हिंदू-धर्म का सम्राट्—सर्वश्रेष्ठ अवतार बना हुआ है।

यह दृश्य मनुष्य की अन्तिम सुन्दर अभिलाषा का सूचक है। मनुष्य को ईश्वर-रूप बने बिना चैन नहीं पड़ती, शांति नहीं मिलती। ईश्वर-रूप बनने का यह प्रयत्न ही सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है। यही आत्म-दर्शन भी है। इस आत्म-दर्शन का उल्लेख सब धर्म-ग्रन्थों में है, गीता में भी है। लेकिन गीता के रचयिता ने केवल इस विषय के प्रतिपादन के लिए गीता की रचना नहीं की है। गीता का आशय तो आत्मार्थी को आत्म-दर्शन का एक अद्वितीय उपाय बताना है। जो वस्तु हिन्दू-धर्म में यत्र-तत्र बिखरे हुए रूप में पाई जाती है, उसे गीता ने अनेक रूप में, अनेक शब्दों में, पुनरुक्ति दोष को स्वीकार करके भी, भली-भाँति सिद्ध की है।

कर्म-फल का त्याग ही वह अद्वितीय उपाय है।

इस मध्यबिन्दु के चारों ओर ही गीता का पुष्पहार गूँथा गया है। भक्ति, ज्ञान, वग़ैरा उसके आसपास तारा-

सम्बल के रूप में गूँथ दिये गये हैं। जहाँ देह है, वहाँ कर्म तो है ही। उससे कोई मुक्त नहीं। फिर भी सब धर्मों ने यह प्रतिपादन किया है कि देह को प्रभु का मन्दिर–निवास-स्थान मानकर बरतने से मोक्ष मिलता है। पर कर्म-मात्र में कुछ-न-कुछ दोष तो रहता ही है। और मुक्ति तो निर्दोष को ही मिल सकती है। तो फिर कर्म-बन्धन से अर्थात् दोष-स्पर्श से कैसे छूटा जाय? गीताजी ने निश्चयात्मक शब्दों में इसका जवाब यों दिया है—'निष्काम कर्म से। यज्ञार्थ कर्म करके। कर्म फल को त्यागकर। सब कर्मों को कृष्णार्पण करके; अर्थात् मन, वचन और काया को ईश्वरार्पण करके।'

पर निष्कामता, कर्म-फल-त्याग कहने मात्र से सिद्ध नहीं होते। यह निरी बुद्धि का काम नहीं है। हृदय-मंथन से ही इसकी उत्पत्ति है। इस त्याग-शक्ति को पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए। एक तरह का ज्ञान तो बहुतेरे पंडितों के पास होता है। वेदादि उन्हें कण्ठस्थ होते हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश भोगादि में लिपटे रहते हैं। इस भय से कि कहीं ज्ञान का अतिरेक शुष्क पाण्डित्य में न बदल जाय गीताकार ने ज्ञान के साथ भक्ति को जोड़ा और उसे प्रथम स्थान दिया। भक्ति-विहीन ज्ञान निष्फल होता है। इसीलिए कहा है, 'भक्ति करोगे तो ज्ञान अवश्य ही मिलेगा।' लेकिन भक्ति का सौदा 'सिर का सौदा' है। यही वजह है कि गीताकार ने भक्त के लगभग वही लक्षण बताये हैं, जो स्थितप्रज्ञ के हैं।

तात्पर्य, गीता की भक्ति कोई मिथ्या चीज़ नहीं, न अन्ध-श्रद्धा है। गीता में बताये गये उपचार का बाह्यचेष्टा या क्रिया के साथ कम से कम सम्बन्ध है। भक्तमाला, तिलक, अर्घ्य आदि साधनों का उपयोग भले करे, पर ये भक्ति के लक्षण नहीं हैं। जो किसी का द्वेष नहीं करता, करुणा का भण्डार है, ममता-रहित है, निरहंकार है, जिसे सुख-दुख सर्दी-गर्मी समान हैं, जो क्षमाशील है, सदा संतुष्ट है, जिसके निश्चय कभी नहीं बदलते, जिसने अपने मन और बुद्धि को ईश्वरार्पण कर दिया है, जिससे लोगों को त्रास नहीं पहुँचता, जो स्वयं लोगों से भय नहीं खाता, जो हर्ष, शोक, भय वग़ैरा से मुक्त है, पवित्र है, कार्य-दक्ष होते हुए भी तटस्थ है, जो शुभाशुभ का त्याग करनेवाला है, जो शत्रु-मित्र के प्रति समभाव रखता है, जिसके मन में मान-अपमान एक सरीखे हैं, जो स्तुति से फूलता नहीं, न निन्दा से दुःखी होता, जो मौनधारी है, जिसे एकान्त प्रिय है, जो स्थिर बुद्धि है, वह भक्त है। इस तरह की भक्ति आसक्त स्त्री-पुरुष में नहीं पाई जा सकती।

इससे हमें पता चलता है कि ज्ञान पाना, भक्त बनना ही आत्म-दर्शन करना है। आत्म-दर्शन इनसे भिन्न नहीं। जैसे एक रुपया देकर ज़हर भी ख़रीदा जा सकता है और अमृत भी, वैसे ही ज्ञान या भक्ति के बदले बन्धन और मोक्ष दोनों नहीं प्राप्त किये जा सकते। यहाँ तो साधन और साध्य यद्यपि बिलकुल एक नहीं है तो भी लगभग एक ही चीज़ हैं। साधन की पराकाष्ठा ही मोक्ष है। और गीता के मोक्ष का अर्थ परम-शान्ति है।

पर ऐसे ज्ञान और भक्ति को कर्मफल-त्याग की कसौटी पर चढ़ना पड़ता है। लौकिक दृष्टि से शुष्क पण्डित भी ज्ञानी कहा जा सकता है। वह किसी भी तरह का काम नहीं करता। पानी का लोटा उठाना भी उसके लिए कर्म-बन्धन हो सकता है। जहाँ यही शून्य मनुष्य ज्ञानी माना जाता है, वहाँ लोटा उठाने-जैसी तुच्छ लौकिक क्रिया को स्थान ही कैसे हो सकता है?

लौकिक दृष्टि से भक्त वह है, जो विक्षिप्त-सा रहता हो, माला लेकर जप जपता हो और सेवा-कर्म करने से जिसके जप में बाधा पड़ती हो, इस कारण ऐसा भक्त खान-पान वग़ैरा भोगों का उपभोग करते समय ही माला को हाथ से छोड़ता है – चक्की पीसने या रोगी की सुश्रूषा करने के लिए कदापि नहीं।

इन दोनों प्रकार के लोगों को गीताजी ने स्पष्ट ही कह दिया है कि "बिना कर्म के किसी को सिद्धि नहीं मिली। जनकादि भी कर्म-द्वारा ही ज्ञानी हुए हैं। यदि मैं भी आलस्य छोड़कर कर्म न करता रहूँ तो इन लोकों का नाश हो जाय।" ऐसी दशा में लोगों के बारे में तो पूछना ही क्या था?

लेकिन यह निर्विवाद है कि एक ओर से कर्म-मात्र बन्धन-रूप हैं, पर दूसरी ओर देही इच्छा-अनिच्छा से भी कर्म करता रहता है। शारीरिक या मानसिक कोई भी चेष्टा कर्म है तो फिर कर्म करते हुए भी मनुष्य बंधन-मुक्त कैसे रहे? यह पहेली गीताजी ने जिस तरह बूझी गई है, मैं नहीं

जानता कि दूसरे किसी एक भी धर्म-ग्रन्थ में यह इस तरह कही गई हो। गीता कहती है, "फलासक्ति छोड़ो और कर्म करो," "निराशी बनो और कर्म करो," "निष्काम बन-कर कर्म करो।" यह गीताजी की कभी न भूलने योग्य ध्वनि है। कर्म छोड़नेवाला गिरता है। कर्म करते हुए उसके फल को छोड़नेवाला चढ़ता है।

इसका कोई यह अर्थ न करे कि फल-त्याग करनेवाले को त्याग का फल नहीं मिलता। गीताजी में ऐसे अर्थ को कहीं भी स्थान नहीं है। फल-त्याग का अर्थ फल के बारे में आसक्ति का अभाव है। हक़ीक़त तो यह है कि फल-त्यागी को हज़ार गुना फल मिलता है। गीता का फल-त्याग तो अखण्ड श्रद्धा की कसौटी है। जो मनुष्य परिणाम की चिन्ता करता रहता है, वह बहुधा कर्म-कर्तव्य-भ्रष्ट होता है। वह अधीर बनता है, फलतः क्रोध के वश होता है और फिर अ-कार्य करने लगता है, एक कर्म से दूसरे में, और दूसरे से तीसरे में फँसता जाता है। परिणाम की चिन्ता करनेवाले की हालत विषयान्ध के समान हो जाती है और अन्त में वह विषयी के समान सारासार का नीति-अनीति का, विवेक छोड़ बैठता है, और फल-प्राप्ति के लिए चाहे जिस साधन का उपयोग करता है, और उसे धर्म मानता है।

फलासक्ति के इन कड़ुए फलों से गीता के रचयिता ने अनासक्ति, कर्म-फल-त्याग का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और संसार के सामने उसे अतिशय आकर्षक भाषा में रक्खा। साधारणतः लोग यह मानते हैं कि, "धर्म और अर्थ विरोधी वस्तु हैं; व्यापार आदि लौकिक व्यवहार में धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती, धर्म का कोई स्थान नहीं हो सकता, धर्म का उपयोग केवल मोक्ष के लिए किया जा सकता है। धर्म की जगह धर्म शोभा देता है और अर्थ की जगह अर्थ।" मेरी सम्मति में गीताकार ने इस भ्रम को दूर किया है। उसने मोक्ष और व्यवहार के बीच ऐसा कोई भेद नहीं किया बल्कि धर्म को व्यवहार में परिणत किया है। मुझे प्रतीत हुआ है कि गीता की राय में वह धर्म धर्म नहीं जो व्यवहार में काम न दे सकता हो। अतएव गीता की सम्मति के अनु-सार जो कर्म बिना आसक्ति के किये ही न जा सकें वे सब त्याज्य हैं। इस तरह का सुवर्ण-नियम मनुष्य को अनेक धर्म-संकटों में से बचाता है। इस सम्मति के अनुसार खून, असत्य, व्यभिचार वग़ैरा कर्म सहज ही त्याज्य ठहरते हैं। मनुष्य का जीवन सरल बनता है और सरलता में से शांति उत्पन्न होती है। फल-त्याग का अर्थ परिणाम की उपेक्षा भी नहीं है। परिणाम, साधन का विचार और उसका ज्ञान बहुत ही ज़रूरी है। इतना कर चुकने पर जो मनुष्य परि-णाम की इच्छा किये बिना साधन में तन्मय रहता है वह फल-त्यागी है।

इस विचार-श्रेणी का अनुसरण करते हुए मुझे यह प्रतीत हुआ कि गीताजी की शिक्षाओं को कार्य में परिणत करनेवाले को सहज ही सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है। फलासक्ति के अभाव में मनुष्य का दिल न झूठ बोलने को ललचाता है, न हिंसा की ओर रुजू होता है। चाहे जिस हिंसा या असत्यपूर्ण कार्य को लीजिए, हमें पता चलेगा कि उसके मूल में परिणाम की इच्छा ही काम कर रही है। लेकिन अहिंसा का प्रतिपादन गीता का विषय नहीं है। गीता-काल से पहले भी अहिंसा परम धर्म मानी जाती थी। गीता को अनासक्ति का सिद्धान्त साबित करना था। दूसरे अध्याय ही में यह बात साफ़ हो जाती है।

लेकिन यदि गीता को अहिंसा मान्य थी अथवा यदि अनासक्ति में अहिंसा का सहज ही समावेश हो जाता है तो गीताकार ने भौतिक युद्ध का उपयोग उदाहरण के लिए भी क्यों किया? गीता-युग में अहिंसा के धर्म माने जाते हुए भी, चूँकि भौतिक युद्ध एक सर्व-सामान्य वस्तु थी, इसलिए गीताकार को ऐसे युद्ध का उदाहरण देते हुए संकोच न हुआ, न हो सकता था।

पर फल-त्याग के महत्त्व का माप निश्चित करते समय गीताकार के मन में क्या विचार थे, उसने अहिंसा की मर्यादा किस हद तक आँकी थी, इन सबका विचार करने की हमें ज़रूरत नहीं है। कवि संसार के सामने महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त रखता है, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह हमेशा अपने-द्वारा उपस्थित सिद्धान्तों के महत्व को भली-भाँति जानता है या जान चुकने पर उन सबको भाषा-बद्ध कर सकता है। इसीमें तो काव्य की और कवि की महिमा है। कवि के अर्थ का अन्त ही नहीं है। मनुष्य की भाँति महा-

वाक्यों के अर्थ का भी विकास होता ही रहता है। भाषाओं के इतिहास की जाँच करने पर हमें पता चलता है कि बहुतेरे महान् शब्दों के अर्थ नित्य नये होते रहते हैं। यही हाल गीता के अर्थ का है। स्वयं गीताकार ने महान् रूढ़ शब्दों के अर्थ का विस्तार किया है। ऊपर-ऊपर से गीता का अवलोकन करके भी हम इसका अनुभव कर सकते हैं। गीता-युग से पहले शायद यज्ञ में पशु-हिंसा वैध मानी जाती होगी। पर गीता के यज्ञ में उसकी गंध तक नहीं है। उसमें तो जप-यज्ञ ही यज्ञों का राजा कहा गया है। तीसरे अध्याय से पता चलता है कि यज्ञ का अर्थ ख़ास कर परोपकार के लिए शरीर का उपयोग करना है। तीसरे और चौथे अध्यायों को मिलाकर दूसरी व्याख्याओं की भी ताल जमाई जा सकती है। लेकिन पशु-हिंसा की बात तो कहीं सिद्ध नहीं की जा सकती। यही दशा गीता के संन्यास के अर्थ की है। *गीता के संन्यास को कर्म-मात्र का त्याग* पसंद ही नहीं है। गीता का संन्यासी अतिकर्मी होते हुए भी अति-अकर्मी है; इस तरह गीताकार ने महान शब्दों के व्यापक अर्थ लगाकर अपनी भाषा का भी व्यापक अर्थ करना हमें सिखाया है। गीताकार की भाषा के अक्षर से भले यह व्यक्त होता हो कि सम्पूर्ण कर्म-फल-त्यागी भौतिक युद्ध लड़ सकता है, परन्तु गीता की शिक्षाओं को भलीभाँति कार्य में परिणत करने के लिए लगभग ४० वर्षों से लगातार प्रयत्न करते हुए मुझे तो यही नम्र प्रतीति हुई है कि सत्य और अहिंसा के सम्पूर्ण पालन के बिना किसी मनुष्य के लिए सम्पूर्ण का कर्म-फल का त्याग असम्भव है।

गीता सूत्र-ग्रंथ नहीं है। गीता एक महान् धर्म-काव्य है। उसमें आप जितने गहरे पैठेंगे उतने ही नये और सुन्दर अर्थ आपको मिलेंगे। गीता सर्व-साधारण की चीज़ है और इसलिए उसमें एक ही बात अनेक तरह से कही गई है। अतएव गीता में प्रयुक्त महाशब्दों के अर्थ हरएक युग में बदलेंगे और विस्तृत होते जायँगे। पर गीता का मूलमंत्र कभी नहीं बदलेगा। जिस रीति से यह मंत्र सिद्ध किया जा सकता है उस रीति से जिज्ञासु उसका जो चाहे अर्थ करे।

गीता विधि-निषेध बतानेवाली भी नहीं है। एक के लिए जो विहित हो वही दूसरे के लिए निषिद्ध हो सकता है। एक समय या एक देश में जो विहित या करने योग्य है, वह दूसरे समय, दूसरे देश में, निषिद्ध—न करने योग्य हो सकता है। निषिद्ध-मात्र फलासक्ति है, और विहित अनासक्ति।

गीता में ज्ञान की महिमा सुरक्षित है। तो भी गीता बुद्धि-गम्य नहीं, हृदय-गम्य है, और इसीलिए वह अश्रद्धालु के लिए नहीं है। गीताकार ही ने कहा है:—

"जो तपस्वी नहीं है, जो भक्त नहीं है, जिसे सुनने की इच्छा नहीं है, और जो मुझसे द्वेष करता है, उसे तू यह (ज्ञान) कभी न कहना।" (१८:६७)

"लेकिन जो यह परम गुप्त ज्ञान मेरे भक्तों को देंगे, वे मेरी परम भक्ति करने के कारण निःसन्देह मुझे प्राप्त करेंगे।" (१८:६८)

"साथ ही जो मनुष्य द्वेष-रहित होकर श्रद्धापूर्वक सिर्फ़ सुनेहीगा, वह भी मुक्त होकर पुण्यवानों के निवास-स्थान शुभ लोक को प्राप्त करेगा।" (१८:७१) ※

※ पू० महात्माजी की गुजराती गीता (टीका) की भूमिका। महात्माजी कृत गीता का हिन्दी अनुवाद सस्ता-साहित्य मण्डल से छप रहा है। —सम्पा०

मृत्यु में जीवन

[श्री कालिकादास चतुर्वेदी]

आज एक ज़माना बीत गया, पतित-पावनी गंगाजी में होकर भारत का हज़ारों मन पानी एक क्षण को गंगाजल बनकर तुरन्त ही सदा के लिए समुद्र के गर्भ में चला गया ! इतिहास के पन्नों के पन्ने रंग गये । लाखों आये, करोड़ों चले गये; कितनी ही शताब्दियाँ बीत गईं, जब कुरुक्षेत्र के मैदान में कृष्ण भगवान ने अठारह अक्षौहिणी सेना के सम्मुख खड़े होकर अर्जुन को यह उपदेश दिया था—

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः ॥"

अपने धर्म में स्थिर रहते हुए सम्मान पूर्वक जीवन बिताना अच्छा है, किन्तु अवसर आने पर कर्त्तव्य पूरा करने को मृत्यु के मुँह में कूद पड़ना भी बुरा नहीं है—यही इस उपदेश का सार था ।

किन्तु मृत्यु बुरी है और सचमुच जिन्दगी बड़ी मज़ेदार है, यह सभी कहते हैं । भले ही किसी समय निराशा, शोक, और सांसारिक झंझटों से घबराकर हम थोड़ी देर मृत्यु की कामना करने लगें, किन्तु अपने इस जीवन को किसी भी अवस्था में मृत्यु से बदलने के लिए शायद ही तैयार होंगे । हमारी दृष्टि में आज मृत्यु का वज़न जीवन के सम्मुख बहुत कम रह गया है ।

लेकिन हमारा धर्मशास्त्र बतलाता है कि अपने धर्म, देश और राष्ट्र के लिए बलिदान होजाने के बाद भी एक जीवन पुनः प्राप्त होता है । शहीद बनके मौक़े पर मौत के मुख में कूद पड़ने के बाद भी एक नई ज़िन्दगी मिलती है, और वह जिन्दगी हमारी इस ज़िन्दगी से कहीं ज्यादा अच्छी होती है । इस तरह की मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाला जीवन बड़ा ही सुखमय होता है । इसीलिए उसका नाम स्वर्ग रक्खा गया है । लोग उसको बहिश्त के नाम से पुकारते हैं ।

हम आज चाहे भूल जायें फिर भी यह बात प्रत्यक्ष है कि जीवन की नींव मृत्यु है । मृत्यु के बाद ही जीवन प्राप्त होता है । जैसी मृत्यु होती है, उसके अनुरूप ही जीवन मिलता है । जो मृत्यु को प्यार करते हैं वे जीवन में आनन्द करते हैं; जो सिर से कफ़न को बाँधे मौत की गोद में कूदने को हर वक़्त तैयार घूमते रहते हैं, उन्हें जिन्दगी के सब सुख स्वयं ही प्राप्त होते हैं और उनका जीवन इस संसार में बड़ी शान्ति से बीतता है ।

यदि उदाहरण देखना हो तो अपने इतिहास के थोड़े से पन्ने उलट जाइए : क्या कारण है कि उसी तातारी-वंश के हुमायूँ और अकबर मुग़ल-साम्राज्य को एक साधारण स्थिति से उठाकर विश्व में अपने समय का सबसे शक्तिशाली राज्य बना देते हैं और उसी बने-बनाये राज्य को उसी वंश का मुहम्मदशाह-जिसकी नसों में भी बाबर का ख़ून बह रहा था—धूल में मिला देता है और अपनी कमर की तलवार एक तुच्छ ईरानी लुटेरे को समर्पण करने को तैयार हो जाता है ? कारण प्रत्यक्ष है—पहले मुग़ल-वंश के बादशाह वीर सैनिक थे । वे मृत्यु और जीवन दोनों का ही मूल्य जानते थे, और दोनों को ही समान दृष्टि से देखते थे । अगर बेइज़्ज़ती मिलती हो तो वे इस जीवन को छोड़कर मृत्यु के मुख में जाने से ज़रा भी नहीं हिचकिचाते थे । उनका जीवन ही

अश्व और कृपाण के साथ बीतता था। लेकिन उसी वंश के अन्तिम बादशाह ऐसे सांसारिक कीड़े बन गये थे कि वह जीवन को प्यार करते थे किन्तु मृत्यु से भय खाते थे! वह अपमान-दुतकार और घृणास्पद व्यवहार सहने को तैयार थे, किन्तु इस चार दिन की ज़िन्दगी का मोह उनसे नहीं छूटता था। इसलिए अपने समय पर जीवन तो उनका फिर भी नष्ट हो ही गया, लेकिन अकबर और जहाँगीर की प्रतिष्ठा को भी वह अपने साथ ही मिट्टी में मिला गये।

इसी वर्तमान यूरोपीय महासमर को देखिए। उन देशों के कितने नवयुवकों ने अपने देश के नाम पर अपने जीवन को अर्पण कर दिया, इस विश्व-वाटिका के कितने होनहार फूल इस तरह असमय में ही मुरझा गये! संभव है, कायर लोग उनके लिए शोक मनाते हों, मूर्खजन उनकी सुन्दर ज़िन्दगी के बर्बाद होने का रंज करते हों, किन्तु उनका राष्ट्र तो आज उन्हीं की बदौलत अपना मस्तक ऊँचा उठाये हुए है। उनका देश अपने उन्हीं आत्म-त्यागी वीरों के लिए गर्व कर रहा है।

ज़रा ध्यान से देखें तो वे फूल, जिन्हें हम मुरझाया हुआ समझे बैठे हैं, यद्यपि इन आँखों के लिए नष्ट हो चुके हैं, किन्तु यथार्थ में वे भीतर ही भीतर इस मिट्टी में मिलकर वह खाद उत्पन्न कर गये हैं, जिसे प्राप्त करके उनके बाद उसी भूमि में पैदा होने वाले पौधे द्विगुण उत्साह से बढ़ते हैं। इन बढ़ने वाले वर्तमान पौधों में उन नष्ट होने वाले उनके पूर्वजों के कीटाणु विद्यमान रहते हैं, तभी तो शहीदों के बाद उनका खून पीकर किसी देश की उन्नति का चक्र एकदम शीघ्रता से घूमने लगता है।

मैंने एक बार एक अंग्रेज सज्जन से, जो महायुद्ध में काम कर चुके थे, पूछा,—"महाशयजी सच कहना, जब चारों ओर गोले बरसते थे और साथ में खड़े तुम्हारे अन्य साथी धीरे-धीरे गिरते जाते थे, क्या तब तुम्हें वह दृश्य देखकर मृत्यु का भय नहीं लगने लगता था?"

उन्होंने हँसकर उत्तर दिया,—"मृत्यु और जीवन क्या वस्तुयें हैं, इसकी चिन्ता करने का मुझे समय ही कहाँ था? मैं अपनी 'ड्यूटी' पर खड़ा था। मेरी तोप दनादन शत्रु पर गोले बरसा रही थी। जब-तक ज़िन्दा हूँ तबतक अपना काम कर रहा हूँ, अथवा नहीं, इसी ओर मेरा ध्यान था—और, बस, इससे अधिक सोच-विचार में मैं कभी पड़ता भी नहीं।"

मैंने अपने हृदय में कहा,—'तुम ठीक कहते हो, जब तुम्हारे-ऐसे ऊँचे विचार थे तभी भगवान ने तुम्हें शान्ति की शुभ घड़ी दिखलाई थी। तुम्हारे-जैसे विचार वाले सपूत ही इस समस्त भूमण्डल को कंपा रहे हैं। तुम मरना जानते हो, इसीलिए इतना ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत कर रहे हो। हम भारतवासी भी यदि इसे जान जायँ, तो हमारा देश भी ज़रूर आज़ाद हो जाय!'

ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकार इराक

[श्री जयमंगलसिंह]

आधुनिक साम्राज्यवाद आर्थिक साम्राज्यवाद है। यह वर्तमान संसार की रचना है। इसका व्यवसायवाद से घनिष्ठ संबंध है। औद्योगिक क्रांति से अथवा व्यवसाय के युग से पूँजीवाद की और पूंजीवाद से साम्राज्यवाद की सृष्टि हुई है। साम्राज्यवाद का प्रभाव बड़ा रहस्यमय है। संसार के बहुत-से देश साम्राज्यवाद के पंजे में बे तरह कराह रहे हैं। इसी कारण राष्ट्रपति जवाहरलाल जी ने कहा है कि "पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के रहते विश्व में शान्ति नहीं हो सकती। (ब्रिटिश) साम्राज्यवाद का आलिंगन बड़ा ही ख़तरनाक होता है, वह परस्पर प्रेम का प्राण-संचारक आलिंगन नहीं बल्कि प्राण-घातक और प्रेम-संहारक आलिंगन होता है।" वास्तव में हमारे राष्ट्रपति के ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं। इसका कारण यह है कि साम्राज्यवादी राष्ट्र कृषि-प्रधान देशों तथा ऐसे प्रदेशों पर अपना अधिकार जमाने की भरपूर चेष्टा करते हैं जहाँ कोयला, रबर, धातु, तेल इत्यादि की उपज हो। क्योंकि ये सब उनके व्यवसाय के साधन हैं। इनके बिना उनका काम नहीं चल सकता। इसके साथ ही वे "बड़ी मात्रा में उत्पत्ति" (Largescale production) करते हैं और अपनी आवश्यकता से अधिक माल बनाते हैं। इस कारण उन्हें अपने माल की खपत के लिए बाज़ार ढूँढना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अपनी फ़ाज़िल पूँजी जो देश में बेकार पड़ी रहती है, उसे वे विदेश में लगाने की फ़िक्र में रहते हैं। इसके लिए वे किसी प्रदेश को अपने संरक्षण में रखते हैं; किसी पर अपना अधिकार जमाते हैं; कहीं अपना प्रभाव-क्षेत्र क़ायम करते हैं, तो किसी प्रदेश के आर्थिक जीवन पर नियंत्रण रखते हैं। इन सब तरीक़ों से साम्राज्यवादी राष्ट्रों का उद्देश्य उन प्रदेशों में 'आर्थिक लूट' करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। हाँ, वे अपने उद्देश्य को छिपाने के लिए बड़ी-बड़ी बातें कहते हैं; पर बड़े-बड़े सिद्धान्तों की ओट में अपने स्वार्थ साधने तथा अपनी साम्राज्यवादी-पिपासा शान्त करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते।

पूँजीवाद से साम्राज्यवाद की सृष्टि होती है। पर साम्राज्यवादी हो जाने पर राष्ट्र को बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र तथा बड़े समुद्री एवं जंगी जहाज़ रखने की आवश्यकता होती है। ऐसा हो जाने पर जल्दी या देर में सिर्फ़ कृषि-प्रधान एवं पिछड़े हुए मुल्क को अपने क़ब्ज़े में करने के लिए ही नहीं वरन् अपने प्रतिद्वंद्वी को संसार के बाज़ार (World Market) से मार भगाने के लिए उसे लड़ाई करनी पड़ती है। ग्रेटब्रिटेन ने अपनी कूटनीति के सहारे अपने प्रतिद्वन्द्वी को संसार के बाज़ार से मार भगाने में ख़ूब सफलता प्राप्त की है। उसने स्पेन, फ्रांस, हालैण्ड तथा जर्मनी जैसी समुद्री शक्तियों को भी बुरी तरह परास्त किया है।

गत महासमर सबसे प्रथम साम्राज्यवादी महासमर था, जो कि सिर्फ़ संसार के बाज़ार पर क़ब्ज़ा करने के लिए हुआ था। महासमर के पूर्व जर्मनी बेतरह संसार के बाज़ार पर अपना अधिकार करता जा रहा था। जर्मनी की इस बढ़ती हुई शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिए ही यह महासमर हुआ—इसके तात्कालिक कारण चाहे जो कुछ भी हों। महासमर में जर्मनी बेतरह कुचल डाला गया और उसे एकदम पंगु बनाकर ही छोड़ा गया। पर जर्मनी के कुचल डालने से ही पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का कार्य बन्द नहीं हुआ। उनका कार्य तो और भी तेज़ रफ़्तार के साथ चल रहा है। हाँ, अब जर्मनी का स्थान अमेरिका लेता जा रहा है और बहुत दूर तक उसने ले भी लिया है। अतः इतिहास से, जो घटना-क्रम को दुहराता है, यह साफ़-साफ़ ज्ञात होता है कि भावी महासमर—जिसकी आशंका लोग कर रहे हैं—गत महासमर से भी भयंकर और प्राणघातक होगा। अतः जबतक संसार में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का चक्र चलता रहेगा तबतक स्थायी शान्ति आकाशकुसुमवत् ही है।

वर्तमान व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक युग में मिट्टी के तेल एवं पेट्रोल का बड़ा महत्व हो गया है। हवाई जहाज़ समुद्री जहाज़, तथा मोटर इसकी सहायता से चलते हैं। इनमें हवाई जहाज़ तथा मोटर तो पेट्रोल के बिना चल ही नहीं सकते। पेट्रोल कोयला से अधिक सुभीते का एवं उत्तम होता है। शान्ति और समर में यह समान रूप से उपयोगी है।

पेट्रोल और मिट्टी का तेल साम्राज्यवादी राष्ट्रों के लिए बड़े महत्वपूर्ण हैं। बिना इनके वे किसी देश को अपने फ़ौलादी पंजों में अधिक दिनों तक नहीं दबाये रख सकते। यही कारण है कि जहाँ-जहाँ पेट्रोल एवं तेल की खानें हैं, वहाँ-वहाँ साम्राज्यवादी राष्ट्र अपना प्रभुत्व जमा लेते हैं। इसके लिए कभी-कभी साम्राज्यवादी राष्ट्रों में भी परस्पर संघर्ष हो जाता है और मामला बेढब बढ़ जाता है। कभी-कभी तो युद्ध छिड़ने तक की नौबत आजाती है। महायुद्ध के पूर्व जर्मनी ने पश्चिम-एशिया के पेट्रोल की स्पर्धा में सम्मिलित होने का भरपूर प्रयत्न किया था। महायुद्ध के कारणों में यह भी एक प्रधान कारण था। आजकल भी इसके सामरिक महत्व को समझकर ब्रिटेन तथा अमेरिका में दो गुट बन गये हैं। इन्हीं दोनों देशों के हाथ में आज दुनिया-भर का पेट्रोल एवं मिट्टी का तेल है। दोनों इसपर अपना अधिक से अधिक प्रभुत्व जमाने की चेष्टा कर रहे हैं। इसके लिए दोनों में बड़ी प्रतियोगिता है। इन सब कारणों को देख कर कुछ लोगों का यह कहना है कि भावी महासमर में अमेरिका और ब्रिटेन एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी होंगे और विजय का भारी पलड़ा अमेरिका की ओर होगा। इसमें ब्रिटेन अमेरिका। का सामना नहीं कर सकेगा। इसका कारण यह है कि जहाँ महासमर के पूर्व तक ब्रिटेन सारे संसार का महाजन था वहाँ महासमर के बाद अमेरिका हो गया। यहाँ तक कि स्वयं ब्रिटेन भी अब अमेरिका का ऋणी है। महासमर से बाद से सम्पत्ति का केन्द्र यूरोप से उठकर अमेरिका चला गया है। इसके साथ ही महासमर से यूरोप में सम्पत्ति तथा व्यापार का नाश हुआ और अमेरिका में इनकी वृद्धि हुई। इसीसे अमेरिका आज सारे संसार की सम्पत्ति का केन्द्र बन गया है।

जहाँ-जहाँ पेट्रोल और मिट्टी का तेल मिलते हैं उनको अपने कब्ज़े में रखने के लिए साम्राज्यवादी राष्ट्र किस तरह प्रयत्न करते हैं तथा वे वहाँ किस नीति से काम लेते हैं, इसका निदर्शन इराक में घटित घटनाओं से हो जायगा।

महायुद्ध के पूर्व इराक तुर्की के अधीन एक प्रान्त था। सबसे प्रथम तुर्की के सुलतान अब्दुलहमीद को मोसल के तेल-कूप का पता चला। उसने लोगों को इसके संबन्ध में रियायतें (Concessions) देकर खूब लाभ उठाया। महायुद्ध के पूर्व तुर्की में जर्मनी का काफ़ी प्रभाव हो गया था। इससे अंग्रेज़ बेतरह जल रहे थे। वे न तो पश्चिमी एशिया में जर्मनी का किसी तरह प्रभाव जमने देना चाहते थे, और न वहाँ के पेट्रोल में उसे हिस्सेदार ही बनाना चाहते थे। इस कारण दोनों देशों—इंग्लैण्ड और जर्मनी—का विरोध बेतरह बढ़ता जा रहा था। महायुद्ध के पहले सर अरनेस्ट कैसल (Sir Ernest Cassel) नामक एक व्यक्ति की नियुक्ति जर्मनी और इंग्लैण्ड के परस्पर-विरोधी हितों (Conflicting interests) को मिटाकर समझौता कर देने के लिए हुई। वह जर्मनी तथा इंग्लैण्ड के कुछ व्यक्तियों को मिलाकर "टर्किश पेट्रोलियम कम्पनी" बनाने में समर्थ हुए। ब्रिटिश सरकार के कहने पर इस कम्पनी के आधे हिस्से 'एंग्लो पर्शियन आयल कम्पनी' ने (जिसमें ब्रिटिश सरकार का काफ़ी हाथ है) लिया। इसके बाकी हिस्से बराबर-बराबर रायल डचशेल तथा डेण्ट्शे बैंक (DutchShell and Dentsche Bank) में विभक्त कर दिये गये। १९१४ के जून मास में इस कम्पनी को तुर्की के प्रधान मंत्री से एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें इसे मोसल और मेसोपोटामिया के तेल-क्षेत्र से तेल निकालने का अधिकार देने की प्रतिज्ञा की गई थी। यहाँ यह बात याद रखने की है कि इस पत्र में सिर्फ़ प्रतिज्ञा की गई थी, पर इस सम्बन्ध में न किसी तरह की कारंवाई हुई थी और न इसका कोई अन्तिम निर्णय ही हुआ था। यह अवस्था महासमर के छिड़ने तक रही।

इसके बाद संसारव्यापी महासमर छिड़ गया। फिर १६ मई १९१६ को अंग्रेज़ों ने फ्रान्स के साथ एक गुप्त सन्धि

(The Sykes-picot Secret Treaty) की जिसके अनुसार बसरा तथा बग़दाद अंग्रेज़ों के अधीन रखने का निश्चय हुआ, पर मोसल का महत्वपूर्ण प्रान्त राजनैतिक कारण से फ्रान्स के प्रभाव-क्षेत्र में रक्खा गया था। इस गुप्त सन्धि के पूर्व एक और गुप्त सन्धि हुई थी, जिसमे आर्मीनिया पूर्वी कुर्दिस्तान, तथा तुर्की के वे प्रान्त जो मोसल की सीमापर थे, ज़ारशाही रूस के सुपुर्द किये गये थे। इसका कारण यह था कि रूस तथा ब्रिटिश सीमा के बीच मोसल को फ्रान्स के नियंत्रण में रखकर उससे माध्यम राज्य (Buffer State) काकाम लेने का निश्चय किया गया था। पर श्री लायड जार्ज मोसल के तेल-कूप को कब छोड़ने वाले थे, अन्त में उन्होंने उसपर अपना अधिकार करके ही छोड़ा!

अप्रैल १९२० में सेन रीमो की कान्फ्रेन्स हुई और उसके निर्णय के अनुसार मोसल पर अंग्रेज़ों का अधिकार माना गया। फ्रांस को सीरिया दिया गया और इसके बदले में उसने मोसल-सहित सारे मेसोपोटामिया पर ब्रिटेन का अधिकार माना। इसके साथ ही ब्रिटेन ने फ्रान्स को मेसोपोटामिया के तेल-क्षेत्र की २५ प्रतिशत सम्पत्ति देने की प्रतिज्ञा की। सेन रीमो के तेल-समझौते पर ब्रिटेन तथा फ्रान्स की ओर से हस्ताक्षर कर दिया गया। उसमें मेसोपोटामिया के सम्बन्ध में यह कहा गया—

"ब्रिटिश सरकार मेसोपोटामिया के तेल-क्षेत्र से निकलने वाले तेल का २५ प्रतिशत फ्रान्स की सरकार को देगी। अगर वहाँ से तेल निकालने के लिए कोई पेट्रोलियम-कम्पनी स्थापित होगी तो ब्रिटिश सरकार उस कम्पनी के २५ प्रतिशत हिस्से फ्रान्स की सरकार को देगी। इससे यह भी तय हुआ कि उस पेट्रोलियम-कम्पनी पर ब्रिटिश सरकार का स्थायी नियंत्रण रहेगा।"

फ्रान्स की सरकार भी इस बात पर राज़ी होगई कि वह मेसोपोटामिया तथा फ़ारस से सीरिया होकर भूमध्य-सागर के किसी बन्दरगाह तक तेल लेजाने के लिए पाइप-लाइन तथा रेल बनाने में किसी तरह की बाधा नहीं देगी। पहले जैसा कहा जा चुका है कि महासमर के छिड़ने के पहले टर्किश पेट्रोलियम कम्पनी का २५ प्रतिशत हिस्सा डेन्टशे बैंक (Dentsche Bank) के अधिकार में था। अब यह हिस्सा फ्रान्स को दे दिया गया। इस तरह फ्रान्स तथा इंग्लैण्ड में तेल-मैत्री स्थापित हो गई।

अब ज़रा हम अपनी दृष्टि महासमर की ओर डालें तो पता चलेगा कि महासमर के प्रारम्भ में एक ब्रिटिश सेना फ़ारस की खाड़ी में भेजी गई थी। वहाँ एक तेल की पाइप-लाइन थी, जिसकी रक्षा करना आवश्यक था। इसकी रक्षा कर ब्रिटिश सेना आगे बढ़ी और अन्त में ११ मार्च १९१७ को उसने बग़दाद नगर में प्रवेश किया। इस नगर में प्रवेश करते ही जनरल सर स्टैनली मौड ने एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने कहा—

"हमारी सेना इस देश पर अपनी विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए नहीं वरन् इसको स्वतंत्रता दिलाने के लिए आई है।

"बग़दाद के निवासियो! आप यह न समझें कि ब्रिटिश सरकार आपके ऊपर विदेशी संस्थाओं को लादना चाहती है। ब्रिटिश सरकार तो यह चाहती है कि यहाँ के निवासी अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करें, और करें अपने पवित्र नियमों एवं जातिगत भावना के अनुसार।"

इस प्रकार जिस गुप्त सन्धि के अनुसार पहले मेसोपोटामिया ब्रिटिशसरकार के तथा मोसल फ्रांस के प्रभावक्षेत्र में रक्खा गया था उसका बड़ी सावधानी से ख़ात्मा कर दिया गया!

३० अक्तूबर १९१८ को मुद्रोस का जो युद्धावसान तुर्की के साथ हुआ था, उसके अनुसार मित्र राष्ट्रों का अधिकार कुस्तुनतुनियाँ एवं स्ट्रेट्स पर हो गया था। इस समय तक ब्रिटिश सेना का अधिकार मोसल पर नहीं हुआ था, पर इसके १४ दिन बाद उसपर ब्रिटिश सेना का अधिकार हो गया। इसके बाद ८ नवम्बर १९१८ को ग्रेट-ब्रिटेन तथा फ्रांस ने मिलकर एक सम्मिलित घोषणा प्रकाशित की, जिसमें यह कहा गया कि हमारा उद्देश्य सीरिया तथा मेसोपोटामिया के लोगों को स्वतंत्र कर वहाँ के लोगों की इच्छानुसार वहाँ राष्ट्रीय सरकार स्थापित करना है।

इस घोषणा से वहाँ के लोगों के हृदय में एक नवीन

आशा का संचार हुआ ही था कि इसी समय राष्ट्रपति विल्सन की युद्ध बन्द करने वाली चौदह शर्तों की घोषणा हुई। इससे मेसोपोटामिया में बड़ा जोश फैला और अन्त में ब्रिटिश अधिकारियों ने निम्नांकित तीन बातों के संबंध में वहाँ के लोगों की आकांक्षा एवं भावना जानने के लिए जांच शुरू की—

१. क्या वे ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में एक 'अरब राज्य' क़ायम करने के पक्ष में हैं, जिसका विस्तार मोसल की उत्तरी सीमा से लेकर फ़ारस की खाड़ी तक होगा?

२. अगर ऐसा हो तो क्या वे इस नये राज्य को अरब के एक अमीर की अधीनता में रखना चाहते हैं?

३. ऐसी अवस्था में वे किसको अमीर बनायेंगे?

इन तीन बातों के सम्बन्ध में लोगों का भाव जानने के लिए जो जाँच शुरू हुई, वह वास्तव में एक खिलवाड़ था। 'आत्म-निर्णय' के सबंध में जो बात इंग्लैण्ड के अनुकूल थी उसकी पूर्ति लोगों को धमकाकर, हवाई जहाज़ एवं तोप-बन्दूक का भय दिखाकर की गई। पर जो बात उसके प्रतिकूल थी, वह भी भय-प्रदर्शन कर दबा दी गई। इराक (मेसोपोटामिया) को ब्रिटेन की संरक्षकता में रखने के जो सात प्रबल विरोधी थे, उन्हें देश-निकाला देकर अपना काम निकाला गया और उनके समर्थकों को भी बड़ी-बड़ी दुर्गति सहनी पड़ी।

यद्यपि इराक के अधिक लोग ब्रिटेन की संरक्षकता के विरोधी थे, पर भय प्रदर्शन कर उनके भावों को व्यक्त नहीं करने दिया गया। उनकी आकांक्षा एवं उच्चाभिलाषा को बेतरह दबा दिया गया। उसके बाद वहाँ खर्चीला शासन स्थापित किया गया। सड़कें बनवाई गईं और उसमें रुपया पानी की तरह बहाया गया। जहाँ के लोग अंग्रेज़ों को देखना नहीं चाहते थे, वहाँ के लोगों पर उनका शासन लादा गया। इसका कारण यह है कि साम्राज्यवादी राष्ट्र इतना स्वार्थान्ध हो जाता है कि उसे दूसरों के हितों का ध्यान ही नहीं रहता।

अंग्रेज़ों ने मेसोपोटामिया के लोगों से यह प्रतिज्ञा की थी कि वे उन्हें टर्की के निरंकुश शासन से मुक्त कर वहाँ उनकी इच्छानुसार राष्ट्रीय सरकार स्थापित करेंगे। पर इन्होंने अपने स्वार्थ के लिए वहाँ के लोगों के साथ की गई प्रतिज्ञाओं का भंग किया। मेसोपोटामिया तथा मोसल को अपने अधिकार में रखने के लिए सीरिया के अरबों के साथ अंग्रेज़ों ने विश्वासघात किया। अपने स्वार्थ को सामने रखकर शासनादेश (Mandate) की सृष्टि की गई। मेसोपोटामिया के पेट्रोल तथा उसकी सैनिक उपयोगिता को महत्वपूर्ण समझकर वहाँ का शासनादेश इंग्लैण्ड ने प्राप्त किया, पर वहाँ के लोगों की आकांक्षा एवं उच्चाभिलाषा का कुछ भी विचार नहीं किया गया।

जब मेसोपोटामिया के अरबों को यह बात मालूम हुई कि ब्रिटेन उनके साथ की गई प्रतिज्ञाओं का भंग कर वहाँ का शासनादेश स्वयं ले रहा है, तो उन लोगों में बड़ी उत्तेजना तथा असन्तोष फैला। इसके फलस्वरूप सारे देश में विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो उठी और १९२० के मध्य तक अवस्था बड़ी भयानक रही। पर अन्त में इस विद्रोह को दबाने के लिए वहाँ सेना बुलाई गई और हज़ारों अरबों की जान लेने के बाद कहीं शान्त हुई।

यद्यपि ब्रिटेन तथा फ्रान्स आपस में मेसोपोटामिया के तेल का बटवारा कर लेने के कारण संतुष्ट थे, पर अमेरिका इससे संतुष्ट नहीं था। सेनेरीमो के सम्मेलन से मेसोपोटामिया के तेल का तीन-चौथाई हिस्सा ब्रिटेन को तथा एक-चौथाई हिस्सा फ्रान्स को दिया गया था, पर अमेरिका—स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी—को इसका कुछ भी हिस्सा नहीं दिया गया था; इस कारण अमेरिका की सरकार ने इसका तीव्र विरोध किया। वहाँ के तेल के लिए सन् १९२० में ब्रिटिश पर-राष्ट्र-सचिव लार्ड कर्ज़न और अमेरिकन राष्ट्र-सचिव श्री कौलबी में उत्तेजनापूर्ण पत्र-व्यवहार हुआ। मामला बेतरह बढ़ा। पर परिस्थिति प्रतिकूल देखकर अंग्रेज़ों ने तेल का एक-चौथाई हिस्सा अमेरिका को देना स्वीकार किया। इस तरह टर्किश पेट्रोलियम कम्पनी जिसे—मेसोपोटामिया के तेल-कूप से तेल निकालने का अधिकार प्राप्त था—के हिस्से बराबर बराबर एंग्लो-पर्शियन कम्पनी (ब्रिटिश) रायल डचशेल (फ्रेंच) तथा स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी (अमेरिकन) में विभक्त होगये।

इसके बाद चर्चिल साहब ने १९२१ में मिश्र में जाकर

एक गुप्त मंत्रणा की। इस मंत्रणा के निर्णय के अनुसार मेसोपोटामिया का नाम बदलकर 'इराक' कर दिया गया और उसे एक राजा चुनने का अधिकार दिया गया। वहाँ का राजा होने के लिए चारों ओर दृष्टि दौड़ाई गई, पर चर्चिल साहब को कोई भी मन के लायक़ आदमी नहीं मिला। इसी समय उनकी दृष्टि अमीर फ़ैजुल पर पड़ी। इन्होंने महासमर के समय ब्रिटेन को तुर्कों के विरुद्ध बड़ी सहायता दी थी और सीरिया के राजा बनाये जाने के बाद वहाँ से भगाये जा चुके थे। यह कहीं का राजा बनने के लिए बड़े उत्सुक थे और इसके लिए इधर-उधर ठोकर खा रहे थे। इसी समय अंग्रेज़ों को इनके किये हुए उपकार का स्मरण हो आया। बस, फिर क्या था, उनके लिए अमीर फ़ैजुल से अच्छा दूसरा कौन व्यक्ति हो सकता था, जो राजा होजाने पर अंग्रेज़ों से सहायता की भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा कर चुका था?

ऐसी प्रतिज्ञा कर चुकने के बाद भी फ़ैजुल का पथ कण्टकाकीर्ण था। इराक के लोग उसे नहीं चाहते थे। फ़ैजुल मुसलमानों के सुन्नी-सम्प्रदाय का मानने वाला था, पर वहाँ शीया लोगों का बहुमत है। दूसरी ओर सैगीद पाशा नामक उसका एक प्रतिद्वन्द्वी था। इसकी वहाँ बड़ी धाक थी। इसने अरबों के विद्रोह के समय बहुत-से अंग्रेज़ों के प्राण बचाये थे। इस कारण इसे पूरी उम्मीद थी कि अंग्रेज़ मेरी सहायता करेंगे। पर साम्राज्यवादी राष्ट्रों के हृदय में उदारता कैसी? अंग्रेज किसी के कृतज्ञ नहीं होते वे तो अपना स्वार्थ देखते हैं और अपने स्वार्थ के सामने किसी बात का विचार ही नहीं करते। अगर वहाँ के लोगों के मत लिये जाते तो फैजुल की अपेक्षा सैगीद पाशा को ही अधिक मत मिलते। इस कारण वह चुपचाप वहाँ के लोगों के बीच से उठा लिये गये और लंका में निर्वासित कर दिये गये! इस तरह फैजुल के प्रतिद्वन्द्वी को हटाकर २३ अगस्त १९२१ को यह घोषित कर दिया गया कि फ़ैजुल बिना विरोध राजा चुन लिये गये।

इसके बाद इराक के सिर पर एक सन्धि लादी गई। इसके द्वारा अंग्रेज़ों के अधिकार वहाँ सुरक्षित कर दिये गये। इस सन्धि के अनुसार राजा फ़ैजुल इस बात पर राजी हुआ कि वह आर्थिक एवं तेल-सम्बन्धी रियायतों और हितों के सम्बन्ध में अंग्रेज़ों से सलाह लेकर काम करेगा। उसे राज्य के प्रधान पदों पर ब्रिटिश सलाहकारों को नियुक्त करने और उनका वेतन देने को कहा गया। इसके साथ यह भी निश्चय हुआ कि हाई-कमिश्नर तथा उसके स्टाफ़ (Staff) का आधा वेतन उसे ही देना पड़ेगा। उसे अपनी आय का २५ प्रतिशत 'देश-रक्षा' में ख़र्च करने को कहा गया। यद्यपि यह सन्धि २० वर्ष के लिए हुई थी, पर १९२३ के मई में यह समय घटाकर ४ वर्ष कर दिया गया और उस समय यह भी तय हुआ कि इराक के 'राष्ट्र-संघ' में प्रवेश करने पर इसका अंत हो जायगा।

इस सन्धि का इराक की असेम्बली से स्वीकृत होना आवश्यक था, पर यह सन्धि इतनी अलोकप्रिय थी कि बहुतसे सदस्य इसपर अपना मत देने भी नहीं आये। ब्रिटिश सरकार की ओर से इसको असेम्बली से स्वीकृत कराने के लिए बड़ी चेष्टा हुई। अर्द्धरात्रि में एक 'सभा' की गई। पुलिस-अधिकारियों ने बग़दाद में तहलका मचा दिया और असेम्बली के सदस्यों को उनके बिस्तरों पर से जबर्दस्ती उठाकर लाया गया! किसी तरह असेम्बली के ११० सदस्यों में से ६८ सदस्य उपस्थित हुए और यह सन्धि बहुमत से स्वीकृत होगई। पक्ष में ३६ तथा विपक्ष में २४ मत आये। नौ सदस्यों ने किसी ओर मत नहीं दिया। इसके बाद १९२५ में 'तेल-संघ' (Oil Trust) को इराक की सरकार की ओर से—जो कि ब्रिटेन के नियंत्रण में है—७५ वर्ष के लिए बग़दाद और मोसल के प्रान्तों में मिलने वाले तेल के लिए रियायत मिली। इस तरह इराक साम्राज्यवाद के पंजे में बेतरह फँसा दिया गया।

१९२७ के नवम्बर मास में राजा फ़ैजुल अपने प्रधान मंत्री जाफ़रपाशा के साथ लन्दन गये। वहाँ जाकर उन्होंने ब्रिटिश सरकार से इराक को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने का समर्थन करने के लिए कहा। इसके लिए उन्होंने बड़ी कोशिश की, पर इसमें वह सफल-मनोरथ नहीं हुए। जो बातें फ़ैजुल चाहते थे, उनमें से कोई पूरी नहीं हुई। पर

अन्त में १७ दिसम्बर १९२७ को इराक की ब्रिटेन के साथ मित्रता की एक नई सन्धि हुई, जिसमें यह कहा गया कि अगर इराक में उन्नति की यही रफ्तार बनी रही और सब बातें इस बीच में शान्तिपूर्वक होती रहीं तो ब्रिटिश सरकार इराक के राष्ट्रसंघ में प्रवेश करने की उम्मेदवारी का १९३२ ईस्वी में समर्थन करेगी। इस सन्धि से भी बहुत लोग असंतुष्ट हैं और अब वे ब्रिटेन के प्रभुत्व को इराक से हटाने में प्रयत्नशील हैं।

इस तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकार होकर इराक असहाय हो गया है। इससे उसकी स्वाधीनता का ही अपहरण नहीं हुआ है वरन् उसकी सम्पत्ति भी लूटी जा रही है। फ़ैज़ुल को वहाँ के लोगों की इच्छा के प्रतिकूल राजा बनाकर उनके अधिकार पर भी कुठाराघात किया गया है। इन कारणों से इराक में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध असन्तोष बढ़ता जा रहा है। गत वर्ष १३ नवम्बर को वहाँ के प्रधान मंत्री अब्दुलमोहसिन ने आत्म-हत्या कर ली है। वह आत्म-हत्या के पूर्व जो पत्र अपने पुत्र के नाम लिखकर छोड़ गये थे, उससे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि वहाँ पूर्ण स्वतंत्रता के भाव का प्राबल्य हो रहा है। इस कारण अब वहाँ के लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के फ़ौलादी पंजों से छुटकारा पाकर अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करना चाहते हैं। अब्दुल मोहसिन को विश्वास था कि इराक ब्रिटेन से सम्बन्ध रखकर ही उन्नति कर सकता है, पर इसमें वहाँ के लोगों का विश्वास नहीं था। इस कारण लोग उन्हें देशद्रोही समझते थे। इस बात का उन्हें बड़ा दुःख हुआ और इसी कारण उन्होंने आत्म-हत्या कर ली।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति दूसरों का ख़ून चूसना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अन्य देशों पर अपना प्रभुत्व क़ायम करता एवं वहाँ के लोगों की इच्छा के ख़िलाफ़ उनपर शासन करता है। यही कारण है कि साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का विरोध सिर्फ़ इराक में ही नहीं वरन् मिस्र, फ़ारस, तुर्की, अफ़गानिस्तान, भारत तथा सुदूर अरब प्रदेश में भी हो रहा है। समय आ रहा है कि साम्राज्य-वादी राष्ट्रों को भी अपनी नीति बदलकर काल-प्रवाह में योग देना होगा।
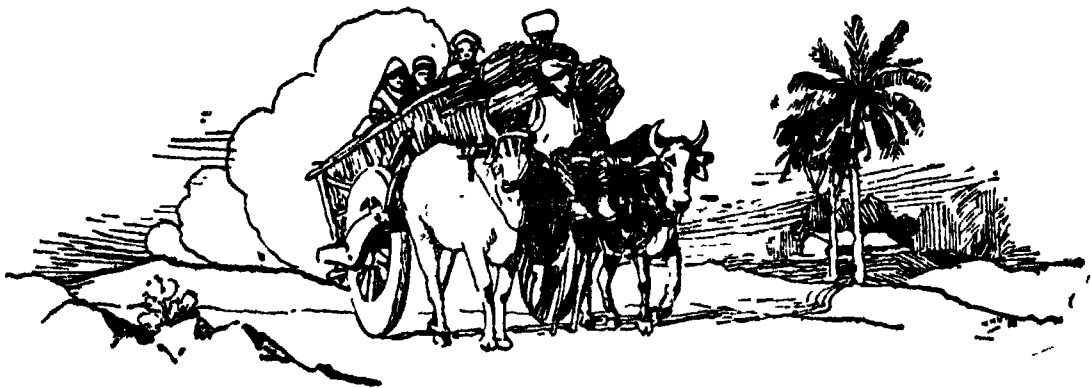
पलासी की विजय

[श्री शिवचरणलाल शर्मा]

अंग्रेज़ों के भारत में प्रवेश के सिलसिले में बटगाँव पर धावा करने तथा बालासोर नगर को जलाने का उल्लेख करते हुए हमने यह बताया था कि अपने इस प्रयास के फल-स्वरूप अंग्रेज़ कासिम बाज़ार तथा पटना की अपनी फ़ैक्टरियाँ भी छिनवा बैठे थे। प्रयास पहला था, और तमाचा भी करारा बैठा। परन्तु तमाचा जितना करारा था उतनी ही आग भी प्रबल हुई। सिर मुड़ाते ही ओले पड़ जाने से इनके हृदय पर एक गहरी चोट लगी। इस चोट का बदला लेने के लिए शक्ति की आवश्यकता थी। और मुग़लों के साम्राज्य में रहकर, उनसे ऐंठकर शक्ति संचय करना कठिन था। अतः इन्होंने झट क्षमा-याचना करके शरण माँग ली। शरणागत को शरण न देना भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है इस समय मुसलमानों को इस देशमें आये एक युग बीत गया था। अतः उन पर भी यहाँ की संस्कृति अपना प्रभाव जमा चुकी थी। इस के अतिरिक्त उन्हें यह ख़याल न था कि उनकी क्षमा उन्हीं के राज्य के और वंश के लिए विष के समान घातक सिद्ध होगी। इसी-लिए क्षमा प्रदान करने में विलम्ब न हुआ। पर क्षमा मिलते ही पिछली बातें भुला दी गईं। अंग्रेज़ सतर्क हो गये और मुग़ल उदासीन। इसी उदासीनता के वश उन्होंने १६९९ में अंग्रेज़ों को फ़ैक्टरियों के साथ-साथ क़िले बनवाने की अनुमति भी दे दी। इस अनुमति के मिलते ही अंग्रेज़ों ने चुपके-चुपके क़िलेबन्दी का काम शुरू कर दिया। यहाँ तक कि क़िलेबन्दीका काम शुरू हुआ और पूरा भी हो गया परन्तु किसी को भी सन्देह न हुआ कि यह क्या हो गया।

इस क़िलेबन्दी के हो जाने के बाद अंग्रेज़ों की त्यौरी फिर बदल गई। अब तक ये लोग देशी नरेशों की छत्र-छाया में नम्रता और अधीनता दिखाकर अपना व्यापार और उसकी रक्षा करते आये थे। किन्तु इस तैयारी के बाद अब इन्होंने भारत के युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण किया। अब इन्होंने देशी नरेशों के आपसी कलह में उत्सुकतापूर्वक भाग लिया। इधर भाग्य से औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उस के उत्तराधिकारियों के क़ाबू में दूर के और बड़े-बड़े प्रान्त न रहे थे। अब तो राज्य के प्रान्तिक शासक सूबेदार ही स्वयं मांडलिक राजा बन बैठे थे। दक्षिण के निज़ाम अवध के वज़ीर और बंगाल के नवाब अपने-अपने प्रान्तों में सूबेदारी को ख़ानदानी बनाने का प्रयत्न करने लगे। ये बादशाह को अपना राजा अवश्य मानते थे, परन्तु वास्तव में अपने-अपने सूबे के ये ही राजा थे। यह हाल देखकर चालाक अंग्रेज़ व्यापारी सोचने लगे कि दक्षिण में सुरक्षित रहने के लिए निज़ाम को खुश रखना आवश्यक है और पूर्व में पूर्ववत् व्यापार करने के लिए मुग़ल-सम्राट् की मित्रता के साथ-साथ मुर्शिदाबाद और लखनऊ के नवाबों को भी प्रसन्न रखना चाहिए।

यह उस समय की बात है, जब कि इंग्लैण्ड और फ्रान्स एक दूसरे को मिटा देने के लिए रणक्षेत्र में अपना-अपना बाहुबल दिखा रहे थे। ऐसी ही दशा में कम्पनी ने इंग्लैण्ड के राजा से सिविल-सर्वेण्ट और आवश्यकता के अनुसार सेना रखने और इंग्लैण्ड की सरकार के बिना पूछे ही देशी राजाओं से शत्रुता अथवा मित्रता करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इंग्लैण्ड और फ्रांस अपने इस युद्ध-काल में, समय-समय पर अपनी कुछ फालतू सेना हिन्दुस्थान भेज दिया करते थे। फिर क्या था; अविचारी और अनुत्तरदायी आदमियों को ताक़त मिल गई और उस का उपयोग उन्होंने अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी करने में किया। ये देशी राजाओं की घरेलू लड़ाइयों में दिल खोलकर भाग लेते। जिसके कारण जो नरेश अब तक इनके दोस्त थे, उन्हीं के विरुद्ध तनिका-सा प्रलोभन उपस्थित होने पर उनके जानी दुश्मन बनने में तनिक भी न हिचकते।

तंजोर का राजा इनका बड़ा मित्र था लेकिन १७४१ में घरेलू झगड़ों के कारण उसे गद्दी से उतार दिया

गया था। इसके स्थान पर महाराजा प्रतापसिंह गद्दी पर बैठ गये। श्री प्रतापसिंह जी ७ वर्ष तक बराबर निर्विघ्नता-पूर्वक राज करते रहे और अंग्रेज़ लोग इनके गहरे दोस्त बने रहे। परन्तु सात वर्ष के बाद पदच्युत राजा ने अपना राज वापिस लेने के लिए अंग्रेज़ों से सहायता माँगी। बदले में सफल होने पर, उसने अंग्रेज़ों की लड़ाई का सारा ख़र्च जागीर तथा देवकोट का क़िला भेंट करने का वादा किया। इस प्रलोभन के सामने आते ही सत्ता और धन के लोलुप अंग्रेज़ों ने अपने मित्र प्रतापसिंह के विरुद्ध, जिसने कुछ ही दिन पहले फ्रांसीसियों के मुक़ाबिले में अंग्रेज़ों की मदद की थी, अपनी सेना दी। उनका उद्देश्य साहू जी को गद्दी पर बैठाना नहीं था, प्रत्युत देवकोट पर कब्ज़ा करना था। अतः मौक़ा मिलते ही उन्होंने देवकोट पर घेरा डाल दिया और तुरन्त किले पर कब्ज़ा भी कर लिया। क़िले पर कब्ज़ा जमते ही इन्होंने साहूजी को तो उठाकर ताक में रख दिया और राजा प्रतापसिंह से सन्धि की बातचीत शुरू कर दी। सन्धि होने में विलम्ब किस बात का था? प्रतापसिंह ने अंग्रेज़ों को देवकोट का किला और उसके आस-पास की रियासत देदी। और सन्धि की शर्तों के अनुसार उसी साहूजी को, जिसे गद्दी दिलाने के बहाने से अंग्रेज़ प्रतापसिंह से युद्ध करने गये थे, अंग्रेज़ों ने क़ैद रखना स्वीकार कर लिया।

परन्तु उसके खाने का सारा व्यय प्रतापसिंह के ही माथे मढ़ा। इस निकृष्ट नीति, धोखेबाज़ी और विश्वासघात से हिन्दुस्थान में अंग्रेज़ों के आधिपत्य का श्रीगणेश हुआ। चालाक अंग्रेज़ यह तो पहले ही से समझे बैठे थे कि हिन्दु-स्थान को बिना हिन्दुस्थानियों की मदद के जीतना असम्भव है। अतः उन्होंने अपनी यह निश्चित नीति बना ली कि जैसे हो एक को दूसरे से भिड़ाकर और फिर बीच में पड़कर बन्दर-बाँट कर लें या फिर एक को सहायता देकर दूसरे को धर दबोचें और फिर उसे भी ले मरें। इसी नीति के अनुसार उन्होंने पहले तो निज़ाम को अर-काट के विरुद्ध लड़ाया और फिर अरकाट को निज़ाम से भिड़ा दिया। इसी तरह पहले से ही असन्तुष्ट और भड़के हुए मराठों को मुसलमानों से लड़ाया तथा बाद को चिढ़े हुए मुसलमानों से मराठों पर हमला करा दिया! यह नीति कोई एक दो-बार और एक-दो जगह नहीं प्रत्युत अनेक बार और हर जगह काम में लाई गई। भारतवर्ष को पामाल करने का यही इनके पास सबसे प्रबल हथियार रहा है। यदि यह हथियार काम में न लाया गया होता तो इन की क्या शक्ति थी कि भारतवर्ष पर अपना आधिपत्य जमा लेते। अस्तु।

समय बड़ा प्रबल होता है। अंग्रेज़ी सेना में नियंत्रण और अनुशासन काफ़ी था। इसी से इनकी सेना की धाक सर्वत्र जम गई थी। इसकी इस धाक के कारण ही तो देशी नरेश इनकी सहायता प्राप्त करने के लिए बड़े उत्सुक रहते थे। सन् १७५४ ई० में अंग्रेज़ और फ्रांसीसियों के बीच यह तय हो गया था कि वे हिन्दुस्तान के नरेशों के आपसी झगड़ों में कोई भाग न लेंगे। परन्तु इस समझौते के कुछ ही दिन बाद कम्पनी ने मुहम्मदअली से यह तय कर लिया कि कुछ मांडलिक राजाओं को काबू में लाने के लिए वह उसे सहायता देगी; और उसे लूट में जो कुछ मिलेगा, उसमें आधा हिस्सा कम्पनी का होगा। लुटेरों के लिए लूट का धन कुत्ते को सूखी हड्डी के समान प्रलोभन देने वाला होता है। अतः इन के सामने जब यह प्रलोभन उप-स्थित हुआ तो फिर वे फ्रांसीसियों के साथ किये अपने वादे को भूल गये और उसके विपरीत आचरण करने लगे।

यह उस समय की बात है, जब फ्रांसीसियों की शक्ति कुछ क्षीण-सी हो चुकी थी। और इधर बंगाल में अंग्रेज़ व्यापारियों की बेजा हरकतें दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थीं। सन् १७५९ में जहाज़ में कुछ हिन्दू तथा आर-मीनियन व्यापारियों का माल यह कहकर छीन लिया गया कि वह फ्रांसीसियों का है! इस समय बंगाल में नवाब अलीवर्दी ख़ाँ का राज्य था। उसके कानों तक जब यह बात पहुँची, तो उसने फ़ोर्ट विलियम के अंग्रेज़ों को धमकी से भरा एक पत्र लिखा और उनकी कासिमबाज़ार

उनकी कोठी ज़ब्त कर ली। जब इस प्रकार इनकी ख़बर ली गई, तब इनके होश ठिकाने आये और बड़ी झंझट के बाद अंग्रेज़ों ने उक्त व्यापारियों को बारह लाख रुपये हर्जाने के रूप में देना स्वीकार किया।

यद्यपि अलीवर्दीख़ाँ को अंग्रेज़ व्यापारियों से अनेक शिकायतें थीं, परन्तु राज्य को कुछ लाभ न होने की आशा से वह अपने क्रोध को दबाये ही रहा। लेकिन उसके बाद जब उसका धेवता नवाब सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठा तो कम्पनी में खलबली मच गई। सिराजुद्दौला में उतना धैर्य्य न था, जितना उसके पूर्वाधिकारी में था। वह इन लोगों की अनीति व लूट-खसोट को न सह सका। उसे अपने राज्य में कम्पनी के दिनों दिन बढ़ते हुए वैभव और शक्ति से ईर्षा थी। साथ ही कलकत्ते में अंग्रेज़ों को किलाबन्दी करते देखकर उसे उन पर सन्देह हो गया था। यह सन्देह इतना बढ़ा कि छिपाये न छिपा। अंग्रेज़ों ने नवाब से बहुतेरा कहा कि यह किलाबन्दी फ्रांसीसियों के लिए की जा रही है, परन्तु उसका सन्देह दूर न हुआ। इसी बीच सिराजुद्दौला का एक बड़ा कर्मचारी कुछ भीषण अपराध करके भागा और कलकत्ता आ पहुँचा। नवाब ने जब यह समाचार सुना तो उसे वहाँ से निकाल देने को कहा। परन्तु कलकत्ता के गवर्नर ने, नवाब के बहुत-कुछ कहने-सुनने पर भी, उसे निकालना तो दूर रहा उलटे उसे शरण दी। इस पर नवाब का सन्देह निश्चय में परिणत हो गया। इस प्रकार अपनी अवहेलना देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। इसी क्रोध के वशीभूत होकर उसने अंग्रेज़ों पर चढ़ाई करके उनकी कासिमबाज़ार की कोठी ज़ब्त कर ली। इसके बाद उसने कलकत्ता पर धावा बोल दिया और २० जून सन् १७५६ को फ़ोर्ट विलियम पर अपना अधिकार जमा लिया।

अंग्रेज़ों की इस पराजय का समाचार मद्रास पहुँचा, तो वहाँ कम्पनी के कर्मचारियों में बड़ी बेचैनी फैल गई और तुरन्त ही क्लाइव के नेतृत्व में कलकत्ता को फ़ौज रवाना कर दी गई।

युद्ध की तैयारियाँ बड़ी विकट थीं और वह हुआ भी घनघोर। एक की नदियाँ बहीं और दोनों ओर के बहुतेरे वीर खेत में आये। इस युद्ध में भाग्य का सितारा सिराजुद्दौला के विरुद्ध रहा। उसे हार खानी पड़ी और अंत में अंग्रेज़ों से सन्धि करके ही उसने अपना पिण्ड छुड़ाया। सन्धि की शर्तों के अनुसार उसे अंग्रेज़ों को व्यापार करने के सब अधिकार वापिस करने पड़े। साथ ही लड़ाई का सारा खर्च और हर्जाना देना भी उसने स्वीकार किया।

नवाब के साथ इस युद्ध में अंग्रेज़ों ने कुछ लोगों के साथ-साथ फ्रांसीसियों से भी सहायता की याचना की थी परन्तु इस समय फ्रांस और इंग्लैण्ड आपस में लड़ रहे थे। इधर फ्रांसीसियों की चन्द्रनगर के बदले में कलकत्ता देने की बातें को अंग्रेज़ों ने स्वीकार भी नहीं किया था। अतः फ्रांस इस युद्ध में अंग्रेज़ों का सहायक नहीं हुआ।

बंगाल के नवाब को परास्त करने के बाद कम्पनी ने अपने बंगाल के एक मात्र प्रतिस्पर्धी फ्रांस को बङ्गाल से मार भगाने की ठानी और अपने इस कार्य में नवाब की सहायता भी माँगी। इधर नवाब तो फ्रांस से उसकी रक्षा के लिए पहले ही वादा कर चुका था। अतः उसने स्वभावतः कम्पनी की बात मानने से इन्कार कर दिया। अंग्रेज़ों ने नवाब को हर प्रकार से समझाया, परन्तु वह राज़ी नहीं हुआ। जब अंग्रेज़ों ने बहुत ज़िद की तो उसने एक डाँट बता दी। जब समझाने से कुछ भी काम बनता हुआ न दीखा, तो एडमिरल ने नवाब को एक धमकी-भरा पत्र लिखा जिसमें अन्य बातों के साथ यह भी लिखा कि 'मैंने बहुत-सी फौजें मँगाई हैं। यदि तुम न मानोगे तो मैं एक ऐसी ज्वाला प्रज्वलित कर दूँगा कि जिसे गंगा का सारा जल भी न बुझा सकेगा।"

इस पत्र को पाकर बेचारा नवाब डर गया। एक नई बला को अपने सिर से टालने के लिए उसने अंग्रेज़ों को लिख भेजा कि "अंग्रेज़ों को अपनी रक्षा के लिए जो काम करने पड़ेंगे उनमें मैं हस्तक्षेप न करूँगा।" अंग्रेज़ों ने इस आश्वासन को पर्याप्त मानकर चन्द्रनगर पर अधिकार जमा लिया और नगर को बुरी तरह से लूटा। नवाब के पास जब इस बर्बरता के समाचार पहुँचे तो उसे बहुत क्रोध आया और उसने चन्द्रनगर के भागे हुए लोगों को पनाह दी। साथ ही अंग्रेज़ों को सन्धि-भंग का अपराधी ठहराया।

सिराजुद्दौला अपने पूर्वाधिकारी के समान न तो शासन की योग्यता ही रखता था, और न उसके समान दृढ़-निश्चयी ही था। उसकी अदूरदर्शिता के कारण उसकी प्रजा भी उससे संतुष्ट नहीं थी। ऐसे मौके को गनीमत समझ, बंगाल में खुले तौर पर लूट-मार करने के लिए, अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला को गद्दी से उतार देना ही आवश्यक समझा। लेकिन यह काम सरल न था, क्योंकि सिराजुद्दौला के पास काफ़ी शक्ति थी। उसकी शक्ति का सामना करना कोई हँसी-खेल न था। अतः अंग्रेजों ने उसके प्रधान सेनापति मीरजाफ़र को गद्दी पर बैठाने का लोभ देकर अपने पक्ष में मिला लिया। मीरजाफ़र विभीषण बन गया। उसने अपने राजा और देश दोनों के साथ विश्वासघात करने का निश्चय कर लिया और यह तय कर लिया कि युद्ध के समय वह फौज का अधिकांश भाग लेकर अंग्रेजों से जा मिलेगा। इसी निश्चय के अनुसार विश्वासघाती मीर जाफ़र ने अपने वादे को पूरा किया और पलासी में भीषण मारकाट के बाद सिराजुद्दौला मौत के घाट उतार दिया गया। अपने स्वामी का खून करने के बाद वह उसकी गद्दी पर बैठा। अंग्रेजों ने युद्ध के हर्जाने और इनाम-इकराम के रूप में लगभग दो करोड़ रुपया मीरजाफ़र से वसूल किया।

पलासी की विजय का समाचार जब इंग्लैंड पहुँचा तो वहाँ के लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। उनकी आँखें विजय के धन की चमक से चौंधिया गईं। इसीलिए तो उन्होंने धोखे और विश्वासघात से प्राप्त की हुई विजय को निन्दनीय न समझा। वे इस विजय के साधनों की ओर उदासीन या मौन हो गये।

फ्रांसीसियों को हराकर तथा सिराजुद्दौला का अन्त कर विजयान्ध अंग्रेज़ व्यापारियों की दयाशून्य पाशविकता ने बंगाल की प्रजा पर घोर अत्याचार किये। किसी का अंकुश न रहने से इन अविचारी एवं हिंसक विदेशी व्यापारियों की पाशविक मनोवृत्तियों की लगाम न रही और वे स्वच्छन्द होकर अपनी क्रूरताओं का नंगा प्रदर्शन करने लगे। मीरजाफ़र को तो इन्हीं ने गद्दी पर बिठाया था। अतः वह इनका मुक़ाबला कैसे करता ? इसी कारण तो इनकी स्वेच्छाचारिता पर कोई रुकावट रही नहीं। यद्यपि इतने नृशंस अत्याचारों को करते हुए स्वयं अत्याचारी को ही भय होना चाहिए था कि कहीं सहनशीलता की सीमा के पार होने के पश्चात् जनता के क्रोध का प्रचंड विस्फोट न हो पड़े परन्तु उस समय अंग्रेजों की शक्ति अदम्य थी और इधर बंगाल की प्रजा का जीवन नष्टप्राय हो गया था।

लोभ मनुष्य के चरित्र की निकृष्टतम वस्तु है। स्वार्थी और लोभी मनुष्य भला कब किसी का होता है ? अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही तो मीरजाफर से मित्रता की थी और सन्धि के समय बाइबल और खुदा की क़समें खाकर सदैव वफ़ादार बने रहने का वादा किया था। परन्तु जब मतलब निकल गया तब आँखें बदल गईं और मीरजाफर को तुरन्त ही यह पता चल गया कि दोस्त के दस्ताने के भीतर शत्रु का खूनी पंजा उसकी गरदन काटने के लिए छिपा हुआ है। परन्तु अब पछताने से क्या होता था ?

कुल-कलंक

लेखक—श्रीयुत साधुशरण

कहानी

(१)
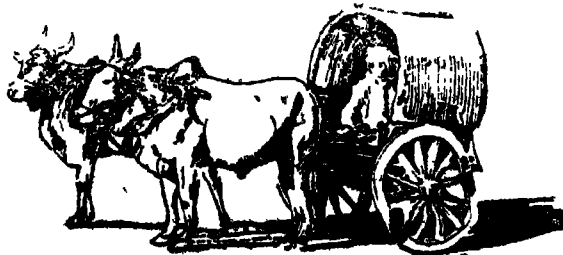
राजा साहब सरयूप्रसाद ने अब तक का अपना सारा जीवन अंग्रेज़ी सरकार की खुशामदें, मिन्नतें एवं हित-साधन करने में बिता दिया था। वह सरकार के बड़े भक्त और प्रेमी थे। बदले में सरकार ने भी 'राजा साहब' 'के० सी० आई० ई०' आदि अनेक उपाधियों से उन्हें विभूषित किया था और समय-समय पर शासन की गूढ़ समस्याओं में उनकी सम्मतियाँ लेकर उसकी बहुत प्रतिष्ठा करती थी। जब कभी देश में स्वातंत्र्य-स्थापन के लिए कोई आंदोलन उठता, कहीं क्रांति या अव्यवस्था की लहर उठती, सरकार की किसी अनीति, निर्बलता या कुप्रबंध पर सत्याग्रह होता, तब वह अपने देशवासियों के व्यवहार से जल मरते थे, और शासन को व्यवस्थित, दृढ़ एवं निश्चत करने के लिए सरकार को अपनी अमूल्य सम्मतियाँ देकर उसका बहुत हित-साधन करते थे। यदि कोई पत्रकार सरकार की कार्रवाई की कड़ी आलोचना करता, तो राजा साहब हाथ-पाँव धोकर उस पर टूट पड़ते थे और लेखों की भरमार से बेचारे उस पत्रकार की धज्जियाँ उड़ा देते थे। इसी राजभक्ति के कारण, सरकार की विशेष कृपादृष्टि रहने से, समाज में भी उन्हें पूरा मान (?) मिला था। उनके पुत्र सुरेन्द्र बाबू ने ज्यों ही अपना अध्ययन समाप्त किया, सरकार ने उन्हें मुनसिफ़ी देनी चाही थी; परन्तु राजा साहब ने विनय के साथ सरकार की इस कृपा को अस्वीकृत कर दिया, और अपने पुत्र को वकालत में ही लगाया। उसमें तो बँधी हुई तनख्वाह मिलती, इसमें तो मनमाना धन पैदा किया जा सकता है।

इधर जब से असहयोग-आन्दोलन की आँधी उठी थी, राजा साहब थककर चाक-से हुए जाते थे—न-जाने देश के ये बालक क्या करने पर तैयार हैं ? परन्तु आज महात्मा गाँधी के एक लेख को पढ़कर न जाने उनके सिर का सवार कोई भूत उतर गया या कोई सवार हो गया। उनका हृदय बिलकुल बदल गया। उन्हें अपने पूर्व के जीवन से घृणा हुई और अपने कार्यों पर पश्चात्ताप, वेदना, ग्लानि। उन्होंने एक बार इस अंग्रेज़ी सरकार के शासन और नीतियों पर विचार किया। बुराइयों की संख्या अधिक मिली। उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा—कैसे स्वराज्य प्राप्त किया जाय ? पर अब वह क्या कर सकते थे ? इतने वृद्ध कि बँगले से निकलकर मोटर पर चढ़ने में कठिनता। एक-एक कर इन्द्रियाँ जवाब देती जा रही थीं—बहुत दे चुकी थीं फिर भी उन्होंने चपरासी को बुलाया, लिखने का सामान माँगा और काँपते हुए हाथों से सरकार को एक पत्र लिखकर उसकी कुल उपाधियाँ वापस कर दीं—इन क्षुद्र उपाधियों में क्या है ? मरीचिका-से मान एवं लोभ के लिए अपने देश की बुराई करना ! फिर उन्होंने सुरेन्द्र बाबू को बुलाया और अपने पास बिठाकर कहा—"देखो, तुम मेरे पुत्र हो न ?"

"हाँ।"

'मेरी आज्ञा मानना तुम्हारा कर्तव्य है न ?"

"जी हाँ।"

"तुम युवक हो ? तुम्हारे शरीर में नया रक्त है ?"

"जी हाँ।"

"अच्छा, तब जाओ, बाजार से खद्दर ख़रीद लाओ। अपने इस साहबी लिबास को उतारो, और परिवार में जिस-जिस के शरीर पर विदेशी वस्त्र हैं अथवा जहाँ कहीं कोने-कोने में पड़ा हो, सब को उतरवा एवं ढूँढकर फुलवारी में जमा कराओ। शाम को सबकी होली जलेगी। छोटे से लेकर बड़े तक, सबको खद्दर पहना दो, चरख़े और रुई लाकर कातने के लिए सबके हाथों में दे दो और अपनी प्यारी

भारतजननी को स्वतंत्र करने के लिए अभी से आकर असहयोग-आन्दोलन में भाग लो। बस, आज से तुम को मेरी एक यही आज्ञा है, और यही अन्तिम आज्ञा है।"

"अचानक आपको यह क्या हो गया?"

"मुझे हो कुछ नहीं गया। मैं अपनी इस प्यारी मातृभूमि को स्वतंत्र देखना चाहता हूँ और जबतक इस की पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर इसे मुक्त, स्वतंत्र और सुखी नहीं बना लेता तब तक अब मैं चैन नहीं ले सकता। अब तक जो ग़लती हो गई सो होगई। यदि तुम्हें मेरी आज्ञा मानना है, तो मानो; यदि नहीं तो स्पष्ट कहो, तो मैं कोई और प्रबन्ध करूँ।"

सुरेन्द्र बाबू मौन हो गये—कदाचित् कुछ विचार करने लगे। सरयूप्रसाद ने अपने घरके छोटे-बड़े सब लोगों को एकत्र किया और कहा—"देखो, मेरी प्राणों की प्यारी जननी जन्मभूमि न जाने किस युग से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी तड़प रही है। इसे हमें स्वतंत्र और सुखी बनाना है; अँगरेज़ी सरकार से स्वराज्य प्राप्त करना है। इसलिए तुम सब लोगों से मेरी प्रार्थना है—मेरा आग्रह है कि तुम लोग मुझे भारत-माता को स्वतंत्र करने में मदद करो। पहला काम है खद्दर पहनना और चरखा चलाना। उसके बाद इस असहयोग-आन्दोलन में सहायता देना।"

सब लोग अवाक् होकर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे अचानक ऐसा परिवर्तन! सुरेन्द्र बाबू के सिवा किसी को कोई आपत्ति तो थी नहीं। सब तो शुरू ही से असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए उत्सुक थे; केवल सरयूप्रसाद के भय से वैसा कर नहीं सकते थे। उन्हें तो मुँह-माँगी मुराद मिल गई। हाँ सुरेन्द्र बाबू—! लेकिन वह भी क्या करते! यदि पिता की बात न मानते, तो खाते कहाँ से! सौ-सौ रुपये के सूट और महीने में दो-दो तीन-तीन सौ पाकेट-ख़र्च आता कहाँ से। वकालत तो अभी चलती नहीं थी। दिन-भर मुँह रिरिआकर कचहरी से लौट आते थे। उन्होंने भी पिता की आज्ञा मान ली।

शाम को सब के शरीर पर खद्दर सुशोभित था। अहाते में विदेशी वस्त्रों की एक बड़ी होली जली। सरयूप्रसाद ने अपने हाथों फूँकी और हँसते हुए सुरेन्द्र बाबू की पीठ ठोककर कहा—"जाओ बेटा! मेरी प्यारी भारत-जननी को सुखी बनाने का यत्न करो! मैं अपने सच्चे हृदय से आशीर्वाद देता हूँ, अवश्य तुम्हें सफलता मिलेगी। सब बातों में विलास बाबू से राय लेना और वह जैसा बतावें वैसा करना। तुम लोग युवक हो; तुम लोगों के शरीर में अभी नया रक्त है। यदि तुम लोग मेरी प्यारी जननी को सुखी नहीं बनाओगे, तो अब हम लोग क्या करेंगे! हम लोग तो अपनी प्यारी जननी के कुपुत्र हैं। आज तक इसे सुखी बनाने की ओर तनिक ध्यान नहीं दिया। अब तुम्हीं लोगों का भरोसा है। युवक ही प्रत्येक देश को स्वतंत्र बनाते हैं बेटा!" सुरेन्द्र बाबू का हृदय प्रेम, प्रसन्नता और आवेश से फूल उठा। उधर गरजती हुई अग्नि की लपलपाती हुई ज्वाला हू-हू करती विदेशी वस्त्रों को जलाकर भस्म करने लगी, मानो स्वार्थान्धता, पारतंत्र्य, दासत्व और रक्त-शोषण की आहुति जल रही हो। आकाश में तारे हँस-हँसकर आशीर्वाद दे रहे थे और सामने सुख की आशा से उल्लसित हमारी जननी-जन्मभूमि।

(२)

जिसे दृढ़ निश्चय नहीं, अटल आत्मविश्वास नहीं, सच्ची लगन नहीं, वह देश का उद्धार क्या, संसार में उन्नति का कौन-सा काम कर सकता है? जो क्षणिक आवेश से उत्तेजित होकर 'यह करेंगे, वह करेंगे' की आँधी उठा देता है और फिर विरोध के हलके-से झोंके से कम्पित होकर दुम दबाकर बैठ रहता है, उससे कौन-सी आशा की जा सकती है? खद्दर-धारी सुरेन्द्र बाबू कभी तो लंबी-लंबी वक्तृताएँ देते, कभी खद्दर और चरख़े का प्रचार करते फिरते और कभी दमन के बाज़ार को गर्म देखकर सिमटकर घर में बैठ जाते थे—हाँ, वृद्ध पिता के प्रोत्साहित करने पर फिर उत्तेजित होकर निकलते। उन्हें खद्दर पहनकर शहर में चलने से लज्जा मालूम होती थी। यदि रास्ते में कहीं उन्हें *कोट-पतलूनधारी उनके पहले मित्र मिल जाते*, तो उन्हें ऐसा जान पड़ता, मानो उनकी नाक कट गई हो; समाज-बहिष्कृत की भाँति कतरियाकर मित्रों के पास से निकल जाते थे।

आज तिलक-मैदान में सभा थी। विद्या, विलास और सुरेन्द्र सभा में चलने के लिए तैयार बैठे थे। सुरेन्द्र ने मुसकरा

कर कहा—"विकास ! और सब सिद्धान्तों पर नहीं, पर खद्दर और चरखे के इस सिद्धान्त पर मुझे विश्वास नहीं होता। किसी भी वेष में रहकर हमलोग अपने देश का उद्धार कर सकते हैं।"

"तुम भूल करते हो, मुख्य अस्त्र ही को छोड़कर संग्राम में विजय चाहते हो।"

"भला चरखे और खद्दर से इस अंग्रेज़ी सरकार पर क्या प्रभाव पड़ेगा?"

"यही तो कहता हूँ, भूल करते हो। शिक्षित और संसार के इतिहास से अभिज्ञ होकर तुम्हारे मुख से ऐसी बात? छिः ! धिक्कार ! सुरेन्द्र ! अब कायरता और सुस्ती छोड़ो; अपने हृदय की कमज़ोरियों को दूर करो-चलो अपनी प्यारी जननी-जन्मभूमि को सुखी बनावें। यदि हम युवक ही देश में स्वातंत्र्य-स्थापना में योग न देंगे, तो और कौन देगा जी? क्या वे वृद्ध, जिनके रक्त में शिथिलता आ गई है?"

सुरेंद्र लज्जित-से हो गये। आज सभा में उनकी बड़ी ओजस्विनी वक्तृता हुई। अंग्रेज़ी सरकार की उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की। वाह-वाह और करतल ध्वनि से सभास्थली गूँज उठी। ध्वनि के साथ गूँज-गूँजकर सन्-सन् वायु बह रही थी, मानो प्रकृति भी हमारे देश के वीर युवकों को बधाइयाँ दे रही थी।

(३)

सरयूप्रसाद के बँगले के फाटक पर दरबान संगीन खींचे पहरा दे रहा था। सड़क सूनी थी। इसी समय पुलिस के इंसपेक्टर ने आकर दरबान से कहा—"मैं राजा साहब से मिलना चाहता हूँ। अंदर जाकर उनसे कहो कि इन्स्पेक्टर सा० मिलना चाहते हैं।"

दरबान अन्दर गया। थोड़ी देर बाद दो नौकरों ने दो कुरसियाँ लाकर बाहर बरामदे में रख दीं। थोड़ी देर बाद सरयूप्रसादजी डंडा टेकते धीरे-धीरे आये। अभिवादन और दोनों के बैठने के बाद इंस्पेक्टर साहब ने कहा—"आप-जैसे प्रतिष्ठित और सरकार के हितैषी व्यक्ति का असहयोग के इस हुल्लड़ में पड़ना बहुत बुरा लगता है।"

"हुल्लड़ ! कृपया ऐसा शब्द फिर कभी मेरे सामने न कहिएगा। हुल्लड़ नहीं, पुण्य-कार्य—धर्म का युद्ध, सत्य की पुकार, प्रेम का आग्रह, विनय की मांग, उन्नति का मार्ग और अपने अधिकार की रक्षा एवं दावा।"

"देखिए, (दिखाते हुए) यह आपके पुत्र की गिरफ्तारी का परवाना है। मैं चाहता हूँ, अब से भी आप सँभल जायँ।"

"कुछ परवा नहीं, आप जाइए, उसे गिरफ्तार कर लीजिए।"

सरयूप्रसाद उठकर वहाँ से भीतर चले आये। इस समय सुरेंद्र घर पर नहीं थे—कदाचित् विकास के यहाँ थे। सरयूप्रसाद ने तुरंत चपरासी से लिखने का सामान मँगा और पुत्र के नाम एक पत्र लिखा—"प्रिय सुरेंद्र ! भगवान् तुम्हें सफलता दे। तुम्हारी गिरफ्तारी का परवाना निकल चुका है। जेल से डरना नहीं। यदि तुम मेरे पुत्र होओ, तुम में मेरा रक्त हो, तुम में यौवन की थोड़ी भी उमंग हो, तो अब मातृभूमि को सुखी बनाकर ही घर लौटना और तभी मेरे हृदय से निकले सच्चे आशीर्वाद को प्राप्त कर अपने जीवन को पवित्र एवं सुखी बनाना। बिना हमारे ध्येय पर पहुँचे मुझे अपना मुँह न दिखाना। एक ही पुत्र हो। अब मैंने तुम्हें मातृभूमि को सुखी बनाने के लिए अर्पण कर दिया। देखना बेटा ! मुँह में कालिख न लगे।" उन्होंने उस पत्र को तुरन्त चपरासी के हाथ, उसे मोटर पर सवार कराकर, सुरेंद्र के पास भेज दिया।

मोटर के लौटने के कुछ ही देर बाद पता लगा, सुरेंद्र बाबू गिरफ्तार कर लिये गये।

(४)

जिस राज्य में इतनी भी वाक्-स्वतन्त्रता नहीं कि मनुष्य अपने देश को सुखी, स्वतन्त्र, उन्नत एवं सम्पन्न बनाने के सम्बन्ध में इच्छानुसार कुछ कहे अथवा लिख सके, उस राज्य में कैसे सुखी जीवन बिताया जा सकता है? जब से सुरेंद्र गिरफ्तार हुए थे, सरयूप्रसाद के मस्तिष्क में सदा यही विचार उठा करते थे। सुरेंद्र कौन क्रांति मचाने गया था। यह तो अहिंसात्मक संग्राम है। शांति ही हम लोगों का अस्त्र-शस्त्र है। और, यदि कंस अत्याचार न करता, तो क्यों भगवान् कृष्ण को जन्म लेना होता। यदि रावण धूम नहीं मचाता, तो प्रजा क्यों राम

के आगे त्राहि-त्राहि करती ! सरयूप्रसाद सदा इन्हीं बातों को विचारा करते ।

संध्या का समय था । सरयूप्रसाद अपने बैठके में बैठे थे । दो-चार असहयोगी भी पास थे । इसी समय विलास भी आ पहुँचे । सरयूप्रसाद ने उत्सुकता से पूछा—"कहो विलास ! कोई नई बात ?"

"सुरेंद्र ने तो आज सरकार से माफ़ी माँग ली । मेरे बहुत धिक्कारने पर लज्जा से अब आपके सम्मुख नहीं आते । मेरे यहाँ बैठे हैं ।"

"क्या ? माफ़ी ! सुरेंद्र ने माफ़ी माँग ली !"

सरयूप्रसाद छाती में मुक्का मारकर धम से कुर्सी से गिर पड़े ! लोगों ने जल्दी से उठा लिया । वह अचेत होगये। विलास ने तुरंत नौकरों को पुकारा । सब उन्हें सचेत करने का यत्न करने लगे ।

सरयूप्रसाद सचेत हुए और आँखें खुलते ही फिर चिल्लाकर कहने लगे—"क्या नालायक़ सुरेंद्र ने माफ़ी माँग ली ! क्या मेरे कुल में वह ऐसा कुपुत्र निकला ? उससे कहो, अब मुझे अपना मुँह न दिखावे; कहीं चिल्लू-भर पानी में डूबकर मर जाय । बस, अब हर्गिज़ उस कुलघातक को मेरे सम्मुख न आने दो । बस, अब जिस क्षण वह मेरे सम्मुख आवेगा, उसी क्षण मैं आत्महत्या कर लूँगा । अब हर्गिज़ उस कुलघाती का मुँह नहीं देखूँगा । हाय रे ! मेरी प्यारी जननी जन्मभूमि के कुलकलंक !" वह फिर छाती पीटते-पीटते अचेत हो गये । फिर सचेत किये गये, परन्तु इस बार उन्हें वेग का ज्वर चढ़ आया था । लोगों ने उन्हें उठाकर बिछावन पर कर दिया ।

(५)

उस दिन के बाद फिर कभी सरयूप्रसाद का ज्वर नहीं उतरा । अब उनकी अवस्था बहुत शोचनीय थी । डाक्टर और वैद्यों ने जवाब दे दिया था । कई दिनों के निराहार से बिलकुल निर्बल होजाने पर भी वह कभी-कभी छाती पीटते हुए चिल्ला उठते थे; लोगों के लाख किवाड़ बन्द करते रहने पर भी कभी-कभी वह किवाड़ को तोड़कर कहीं [illegible] का यत्न करते; कभी देश को स्वतन्त्र बनाने के सम्बन्ध में न जाने क्या बकते थे । सभी हित-कुटुम्बी उनके पास हमेशा बने रहते थे । एक सुरेंद्र को उन्होंने अपने सम्मुख नहीं आने दिया था ।

आधी रात का समय था । सरयूप्रसाद की अन्तिम साँसें चल रही थीं । विलास ने आकर कहा—"सुरेन्द्र एक बार आपका दर्शन चाहते हैं । यदि आज्ञा दें, तो बुलाऊँ ।" सरयूप्रसाद ने क्षीण स्वर में कहा—"नहीं, हर्गिज़ नहीं । मैं उस कुलकलंक का मुँह नहीं देख सकता । यदि वह मेरा ही कुलकलंक होता, तो मैं क्षमा कर देता । वह मेरी जननी जन्मभूमि का भी कुलकलंक है, इससे अब मैं उसका मुँह नहीं देख सकता । मेरे मर जाने पर भी उस कुलकलंक को मेरा शव न छूने देना । मैं शाप देता हूँ कि यदि वह मेरा शव छुयेगा तो उसका सर्वनाश हो जायगा । और याद रखना, मैं अपनी जन्मभूमि को स्वतंत्र देखने के लिये तड़पता-तड़पता मर रहा हूँ । मेरी आत्मा को स्वर्ग में भी शांति नहीं मिलेगी । वहाँ भी वह अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चीत्कार करती रहेगी । तुम्हारे देश के न जाने कितने प्रेमी प्यारी मातृभूमि को स्वतंत्र देखने के लिए इसी तरह तड़पते-तड़पते मरे है । उनकी अशांत आत्मायें भारत को सुखी देखने के लिए स्वर्ग में हाहाकार मचाये हुए हैं । यदि तुम्हारे हृदय में बल हो, युवावस्था का आवेग हो, वीर आर्यसंतान होने का गौरव हो, बेड़ियों में तड़पती जन्मभूमि के लिए कुछ भी प्रेम हो, तो मेरी जननी को स्वतंत्र करना, इस लालसा में मरने वाले अपने मनीषियों की आत्माओं को स्वर्ग में...शान्ति...पहुँचाना ।...यदि...ज ..न...नी...।" विलास के नेत्रों से आँसू टपकने लगे । रोगी की आत्मा वायु में मिल चुकी थी ।

शुक्लाष्टमी के अस्त होते चन्द्र की अंतिम किरणें कमरे में खिड़की से घुसकर रो रही थीं । कहआ रो-रोकर कह रहा था, *किसी अभागी के कुल में भी भगवान् जननी जन्मभूमि के ऐसे कुलकलंक को जन्म न दें* । सनसन करती वायु भी रो-रोकर कह रही थी, इन तड़पती हुई आत्माओं का चीत्कार निष्फल नहीं जा सकता । घर भी रो रहा था और नीरव रजनी भी । घर के बाहर सुरेन्द्र भी अपने घृणित जीवन पर रो-रोकर पश्चात्ताप कर रहा था ।

सत्याग्रही बालक

[श्री छबीलदास 'मधुर']

(१)

हे भूमे! कुछ हो उदाहरण मैं देता बना हूँ, यहाँ—
जैसे वीर स्वभाव बालक हुए वैसे हुए हैं कहाँ?
आत्मा के अमरत्व और वपु के नश्वत्व को जान के।
देते थे शरीर मोह तज वे कर्तव्य को मान के॥

(२)

हे भूमे! ध्रुव बाल हो प्रथम में सत्याग्रही वीर है।
सच्चा पालक टेक का, वचन का गंभीर है, धीर है।
पाई है उसने अपूर्व पदवी कैसी निराली अहो।
होगी क्या उसके समान जग में शोभा किसीकी कहो॥

(३)

हे भूमे! लव और बाल कुश थे सत्पुत्र श्री राम के।
थे वे वीर लड़े पितृव्य वर से पूर्णज्ञ सग्राम के।
यों सत्याग्रह-युक्त युद्ध लखके संतुष्ट थे तद्पिता।
ले आये फिर राज्य में जनकजा वाल्मीकिजी आश्रिता॥

(४)

हे भूमे! फिर है हुआ जगत में प्रह्लाद सत्याग्रही।
मानो वज्र कठोर से कुसुम ने ठानी लड़ाई सही।
टूटा वज्र, न पुष्प मर्दित हुआ चाहे जलाया गया
रक्षा की हरि ने स्वय नृहरि हो आश्चर्य पाया गया॥

(५)

हे भूमे! सुख है रहा मरण में है मारने में कहाँ।
हन्ता की अपकीर्ति है निहत की सत्कीर्ति होता यहाँ।
देखो था अभिमन्यु बाल रण में मारा गया द्रोह से।
हैं अद्यापि सराहते जन उसे सद्भाव सम्मोह से॥

(६)

हे भूमे! फिर युग्म बालक यहां जो वीर नामी हुए।
थे सत्याग्रह मे स्वधर्म हित ही वे अग्रगामी हुए।
मारा था उनने न शत्रु खल को हाँ सीस था दे दिया।
भीतो में चुन वे गये उभय ही तो भी नहीं 'सी' किया॥

(७)

हे भूमे! उनकी अपार महिमा गाते सभी लोक हैं।
वैसा वीर स्वभाव दुर्लभ हुआ होता यही शोक है।
थे सिंहात्मजासिंह वे बन गये धर्मार्थ धर्मध्वज।
थे वे श्री दशमेश नानक गुरू गोविंदसिंहात्मज॥

(८)

हे भूमे! शिशु है हकीकत हुआ धर्मज्ञ सत्याग्रही।
तेजस्वी उस बाल ने यवन से प्रत्युक्ति दी थी कही।
तो भी थी उसने कुराज नय से देहान्त पीड़ा सही।
ऐसों के बलिदान से जगत में आर्यत्व क्रीड़ा रही॥

(९)

हे भूमे! ध्रुव धैर्य धारण करें प्रह्लाद-सी भक्ति भी।
श्री रामात्मज युग्म-सी, समर में कौशल्यसच्छक्ति भी।
उत्साही अभिमन्यु से बन रहें सिंहात्मजों से शिशु।
साहंकार बनें हकीकत सभी, हों पूर्वजों से शिशु॥

विनिमय और करेंसी का गोरख-धन्धा

[अध्यापक कृष्णचन्द्र, बी० एस-सी०]

विनिमय के सम्बन्ध में पिछले दिनों देश में काफ़ी हलचल रही है—अभी भी उसके अनिष्ट फल हमें चखने पड़ रहे हैं। परन्तु सचमुच यह ऐसा गोरखधन्धा है कि अच्छे-अच्छों को हैरान कर देता है। प्रस्तुत लेख में इसीको बड़ी सरलता और रोचकता के साथ समझाने का प्रयत्न किया गया है। सरकार ने विनिमय की दर बढ़ाकर इंग्लैण्ड और अंग्रेजों के हितों के लिए भारत और भारतीयों के हितों को कैसे कुचला है, हमारे देश को विनिमय की नई दर कैसे आर्थिक हानि पहुँचा रही है, यह सब इससे प्रकट है। सच तो यह है कि आज देश में विदेशी कपड़ा तथा अन्य माल जो एकदम सस्ता हो गया है, जिससे कि देशी माल की बिक्री मन्द पड़ गई, उसका भी मुख्य कारण यही है।

इसके लेखक श्री कृष्णचन्द्र गुरुकुल-वृन्दावन के अध्यवसायशील अध्यापक हैं, और देश-भक्ति के पुरस्कार-स्वरूप वर्तमान आन्दोलन के सिलसिले में इस समय कृष्ण-भवन (जेल) में निवास कर रहे हैं।

सन् १८५७ से इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट ने भारत का शासन स्वयं अपने हाथ में ले लिया है। पार्लमेण्ट की ओर से सारे ब्रिटिश साम्राज्य के शासन को चलाने के लिए जो मन्त्रि-मण्डल रहता है उसमें एक मन्त्री पर भारतवर्ष के शासन की ज़िम्मेदारी होती है, जिसे भारत-सचिव कहते हैं। भारत-सचिव के आधिपत्य में ही हमारे देश का सारा शासन-चक्र चलता है भारतवर्ष में वाइसराय और गवर्नर जनरल तो रहता है, जो भारत-सरकार का सबसे बड़ा अफ़सर होता है, परन्तु वह सर्वथा भारत-सचिव के ही नियन्त्रण में रहता है। भारत-सचिव का दफ़्तर इङ्गलैण्ड में ही है और लन्दन बैठा हुआ ही वह हमारे देश के ३२ करोड़ प्राणियों पर राज्य करता है। वहीं से वह शासन की बागडोर हिलाता रहता है।

हमारी अंग्रेज़ी सरकार के ख़ज़ाने की व्यवस्था भी बड़ी विचित्र है। उसीका संक्षेप में हम यहाँ कुछ वर्णन करेंगे। वैसे तो ख़ज़ाने के मामलों को हमारे शासकों ने आजकल इतना चक्करदार बना रक्खा है कि भारतवासी सहज ही उन दाँव-पेंचों को नहीं समझ सकते। हज़ारों-लाखों रुपयों के नोटों के क़ाग़ज़ी चक्र में हम सर्वथा जकड़े हुए पड़े हैं और वह आज ऐसा गोरख-धन्धा है कि उसके द्वारा लाखों रुपयों का फ़ायदा प्रतिवर्ष हमारी सरकार कर लेती है और इसी गोरखधन्धे की बदौलत हमारे व्यापार, उद्योग, कारीगरी आदि की नकेल सरकार ने सर्वथा अपने हाथ में पकड़ी है। बात की बात में उस नकेल को घुमाकर भावों में उलट-फेर कर देना हमारी सरकार के बायें हाथ का खेल है।

बहुत दिनों तक तो इन गोरखधन्धों को हम कुछ समझ ही न सके और हमारी सरकार ने इनकी आड़ में हमारे व्यापार और हमारी कारीगरी के गले पर खूब छुरी फेरकर इंग्लैण्ड के व्यापार को हमारे देश में फैलाया। परन्तु सौभाग्य से अब हमारे देश में भी ऐसे-ऐसे विद्वान अर्थशास्त्रज्ञ होने लगे हैं, जो इन चालों को समझ गये हैं और अब सरकार को उस प्रकार का खुला दाव खेलने का अवसर नहीं मिलता। अब चुपचाप वह हमको इस प्रकार नहीं सता सकती। हमारे अर्थशास्त्रवेत्ता व्यवस्थापक सभा में सरकार की सारी पोल खोल डालते हैं। परन्तु होता अब भी कुछ नहीं। हमारे नेता केवल पोल खोलकर ही रह जाते हैं; उन बेचारों को अपने देश में अधिकार कुछ है ही नहीं। वे चिल्लाते, प्रतिवाद करते और आन्दोलन करते ही रहते हैं; उधर सरकार वही करती है, जो उसका जी चाहता है। केवल अपनी ईमानदारी का स्वांग अब वह नहीं रच पाती; अब उसकी सब चाल खुल जाती है।

हमारे देश और इंग्लैण्ड में मुद्रा एक-सी नहीं है। हमारे यहाँ चाँदी का जो रुपया चलता है उसका इंग्लैण्ड में चलन नहीं है, वहाँ सोने की गिन्नी या पौण्ड व्यवहार में

आता है। संसार के अन्य सभ्य देशों में बहुधा सोने की ही मुद्रा चलती है, परन्तु हमारी भारतीय सरकार सोने की मुद्रा को हमारे देश में चलाने के लिए सहमत नहीं होती। अनेक बार हमारे नेता उसके लिए ज़ोर दे चुके हैं, परन्तु सरकार कोई ध्यान नहीं देती। मुद्रा की इस विभिन्नता के कारण हमें बड़ी भारी हानि उठानी पड़ रही है। चाँदी और सोने के भाव में एकसा अनुपात न रहने के कारण हमारे रुपये का इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों में मूल्य घटता-बढ़ता रहता है, और हमारी सरकार भी उसको बराबर ऐसे चक्र में ही घुमाती रहती है कि जिससे हमारे देश के व्यापार की हानि होती रहती है और इंग्लैण्ड के व्यापारियों को लाभ होता है।

हमारे देश में जो अंग्रेज़ कर्मचारी रहते हैं, वे अपनी नौकरी का समय पूरा होने पर पेन्शन लेकर वापस इंग्लैंड चले जाते हैं और वहीं रहते हैं। भारत के ख़ज़ाने से पेन्शन पाने वाले अनेक अंग्रेज़ इंग्लैण्ड में हैं; बहुत-से अंग्रेज़ कर्मचारी प्रतिवर्ष छुट्टी लेकर इंग्लैण्ड जाते रहते हैं, तथा भारत-सचिव के दफ्तर के अनेक अंग्रेज़ कर्मचारी भी इंग्लैण्ड में ही रहते हैं। इन सब कर्मचारियों को प्रतिवर्ष वेतन भारत के ख़ज़ाने से इंग्लैण्ड भेजना पड़ता है, और वहाँ उनको चाँदी के रुपयों में नहीं बल्कि सोने की गिन्नियों में तनख्वाह दी जाती है। इसके लिए भारतीय सरकार को अपने चाँदी के रुपयों को सोने के अंग्रेज़ी पौण्डों में बदलना पड़ता है—हमारी सरकार को रुपयों के बदले में पौण्ड ख़रीदने पड़ते हैं।

रेलों के बनाने में बहुत-सा क़र्ज़ा हमारी सरकार पर हो गया है; वह क़र्ज़ा अधिकांश में इंग्लैण्ड वालों ही का है। सन् १८५७ ई० में ईस्टइंडिया कम्पनी से भारत का शासन पार्लमेण्ट ने अपने ही हाथ में ले लिया है। उस वक्त का-बक़ा जो पूँजी लगी हुई थी, वह सब ब्रिटिश सरकार को अदा करनी पड़ी और सरकार ने उस सबको क़र्ज़े के रूप में अपने ऊपर रख लिया। इसके अतिरिक्त हमारी ब्रिटिश सरकार समय-समय पर बराबर ऋण लेती रहती है। हमारा यह ऋण सन् १८५७ ई० से बराबर बढ़ ही रहा है और आजकल तो वह बहुत अधिक हो गया है। यहाँ पर इतना ही लिख देना पर्य्याप्त है कि लगभग १५-१६ करोड़ रुपया तो हमारी ब्रिटिश सरकार को प्रतिवर्ष इङ्गलैण्ड वालों को अपने ऋण के सूद का ही देना पड़ता है!

हमारी सरकार को अपनी फ़ौजों, रेलों तथा अन्य विभागों के लिए तरह-तरह का बहुत-सा सामान प्रतिवर्ष इङ्गलैण्ड से ख़रीदना पड़ता है। यह सब ख़रीदारी हमारे लिए भारत-सचिव की मार्फ़त होती है। इसके लिए लगभग २ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष हमें भेजना पड़ता है। हमारे देश में गोरों की फ़ौज बराबर रहती है और यह फ़ौज प्रति ६-७ वर्ष में बदलती रहती है। इङ्गलैण्ड की सरकार अपनी गोरों की फ़ौज हमारे देश में भेजती है, वह सेना ६ वर्ष तक यहाँ काम करती है और फिर वापस इङ्गलैण्ड चली जाती है और उसके बदले पहले ही से दूसरी फ़ौज इङ्गलैण्ड से आ जाती है। यह आवाजाई प्रति छठे वर्ष बराबर होती रहती है। भारतीय सरकार को इस फ़ौज़ के आने-जाने का पूरा ख़र्चा तो देना ही पड़ता है, साथ ही इङ्गलैण्ड से चलने की तारीख़ से एक मास पहले का उनका वेतन भी हमीं को देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जल-सेना आदि के लिए भी हमारी सरकार को इङ्गलैण्ड को प्रति वर्ष ख़र्चा देना पड़ता है। इसके लिए प्रति वर्ष हमको लगभग २करोड़ रुपया इङ्गलैण्ड भेजना होता है।

भारतवर्ष के अतिरिक्त इंग्लैण्ड के साम्राज्य में आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिणी आफ्रिका आदि कुछ उपनिवेश भी हैं, जिनको स्वराज्य मिल चुका है। इन सबका निरीक्षण करने के लिए इंग्लैण्ड के मन्त्रि-मंडल में एक औपनिवेशिक मंत्री होता है, इसी प्रकार भारत के निरीक्षण के लिए भारत-मंत्री रहता है। पर औपनिवेशिक मंत्री का वेतन और उसके दफ्तर के ख़र्च का तो एक-एक पैसा इंग्लैण्ड की सरकार को ही देना पड़ता है, उपनिवेश उसमें एक पाई भी नहीं देते। पर भारत-मंत्री का वेतन और उसके दफ्तर का सारा ख़र्च १९१९-२० तक भारत के ख़ज़ाने से दिया जाता था। अब नये सुधारों के अनुसार भारत-मंत्री का वेतन तो इंग्लैण्ड के ख़ज़ाने से ही मिलने लगा है, परन्तु उसके दफ्तर आदि का ख़र्चा अब भी भारत के ही ऊपर पड़ता है। उसके लिए भी प्रति वर्ष हमको धन भेजना पड़ता है।

इन ख़र्चों के लिए हमारी सरकार को भारत के ख़ज़ाने से प्रतिवर्ष २ करोड़ पौंड विलायती स्वर्ण-मुद्रा में अदा करना पड़ता है। यह सारा ख़र्च इंग्लैंड में भारत-मंत्री द्वारा इंग्लैण्ड की सोने की गिन्नियों में होता है, अतएव भारतीय सरकार को प्रतिवर्ष अपने चाँदी के रुपयों के बदले में २ करोड़ गिन्नियाँ ख़रीदकर विलायत में भारत-मंत्री को भेजनी चाहिएँ। इस सब ख़र्च को 'होम चार्ज' कहते हैं और अपनी भाषा में हम इसको 'इंग्लैण्ड की सलामी का व्यय' भी कह सकते हैं, क्योंकि हमारे ऊपर इङ्गलैण्ड का राज्य है इसीलिए यह इतनी रक़म हमको अपने देश से प्रतिवर्ष भेजनी पड़ती है।

इन सबके अतिरिक्त प्रतिवर्ष हमारे देश में इङ्गलैण्ड तथा अन्य विदेशों से करोड़ों रुपयों का विभिन्न प्रकार का माल आता है। उसका मूल्य हमारे व्यापारियों को अधिकांश में इंग्लैण्ड की स्वर्ण-मुद्रा में अदा करना पड़ता है। उसके लिए हमारे दूकानदारों को रुपये के बदले में गिन्नियाँ भुनानी पड़ती हैं। फिर हमारे देश से करोड़ों रुपयों का माल रुई, चावल, अनाज आदि इंग्लैण्ड आदि देशों को जाता है और उसके लिए विदेशी व्यापारियों को बदले में अपनी गिन्नियों के चाँदी के रुपये भुनाकर हमको अदा करने पड़ते हैं।

इस प्रकार हमारे देश में स्वर्ण-मुद्रा न होने के कारण हमें बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़ती है। इङ्गलैण्ड तथा अन्य सब सभ्य देशों में सोने की मुद्रा का ही प्रचलन है और हमारे देश में चाँदी का रुपया चलता है। सोने तथा चाँदी के भावों का परस्पर-भेद सर्वदा एकसा नहीं रहता, वह घटता-बढ़ता रहता है। कभी सोना महँगा होजाता है और कभी चाँदी। इस कारण हमारे रुपयों का गिन्नियों में मूल्य सर्वदा एकसा नहीं रहता, चाँदी-सोने के भावों के अनुसार वह बराबर घटता-बढ़ता रहता है, और उसका हमारे विदेशी व्यापार पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

हमारे देश में भी यदि सोने की ही मुद्रा का प्रचलन हो जाता, तो यह सब दिक़्क़त हमें अपने विदेशी व्यापार में न पड़ती। परन्तु हमारे नेताओं के बार-बार आन्दोलन करने पर भी हमारी विदेशी सरकार ने ऐसा नहीं किया— और, ऐसा न करने में हमारे विदेशी प्रभुओं की गहरी चाल रही है। इसकी आड़ में हमारी विदेशी सरकार हमारे विदेशी व्यापार को अपने अधिकार में किये हुए है। इन सब बातों का रहस्य संक्षेप में हम यहाँ लिखेंगे। उसके लिए भारतीय मुद्रा और विनिमय का थोड़ा-सा इतिहास हमें पहले बताना होगा।

मुसलमानी शासन के पहले तो हमारे देश में बराबर सोने के सिक्कों का ही प्रचलन था। हमारी मुख्य मुद्रा सोने ही की थी। बड़े-बड़े सब सौदों के लिए सोने की मुहर काम में आती थी और छोटे कामों के लिए ताँबे की मुद्रा। गाँवों में बहुत छोटे लेन-देन के लिए कौड़ियों का चलन था। चाँदी की मुद्रा भी थी, परन्तु सोने की अपेक्षा उसका प्रचलन बहुत कम था।

चाँदी का टका पहले-पहल सन् १२११ ईस्वी में देहली के सुलतान अलतमश ने प्रचलित किया था और क्रमशः उसका रिवाज उत्तरीय भारत में फैल गया। सन् १५४१ में शेरशाह के शासन में चाँदी के सिक्के का नाम रुपया पड़ा। परन्तु इसपर भी मुग़ल शहंशाहों के शासन में सोने की मुहर और चाँदी के रुपये दोनों ही बराबर चलन में रहे। दक्षिणी भारत में तो, जहाँ मुसलमानों का प्रभाव अधिक नहीं पड़ सका था, सन् १८१८ ई० तक बराबर सोने की ही मुद्रा चलती रही; बाद में अंग्रेज़ी ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने वहाँ भी चाँदी का रुपया जारी किया। ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने यद्यपि चाँदी का सिक्का चलाया, परन्तु स्वर्णमुद्रा को उसने रोका नहीं, बल्कि दोनों का ही चलन जारी रक्खा। चाँदी के रुपये और सोने की मुहर दोनों ही बराबर प्रचलित रहे। कम्पनी चाँदी के रुपये और सोने की मुहर दोनों अपनी टकसालों में बराबर बनाती रही।

सन् १८३५ ई० से केवल चाँदी का रुपया ही भारत की मुद्रा क़रार दिया गया। उसके बाद यद्यपि सोने की मुहर भी बराबर टकसालों से निकलती और देश में चलती रही, परन्तु सोने की मुहर का सन् १८५३ से कोई निश्चित मूल्य नहीं रहा। लोग सोने की मुहरों को सोने के बाज़ार-भाव के अनुसार लेते थे और उसी प्रकार सरकारी ख़ज़ानों में वह स्वीकार की जाती थी। सन्

१८५२ ई० में भारत के वाइसराय लार्ड डलहौज़ी ने सोने की मुहरों का सरकारी ख़ज़ानों में लेना ही बन्द कर दिया। सन् १८७० के बाद तो ब्रिटिश सरकार ने सोने की डबल मुहर बनवाई ही नहीं और छोटी सोने की मुहर भी बनवानी सन् १८९१।९२ से बन्द कर दी।

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार की नीति बराबर स्वर्ण-मुद्रा को इस देश से दूर करने की रही, जिससे स्पष्टतया देश का अहित हुआ। मोटे तौर पर आजकल, जब कि हमारा विदेशों से व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा है और हमें बराबर विदेशों से अनेक प्रकार का लेनदेन करना पड़ता है, हमारे यहाँ सोने की मुद्रा का चलना बहुत आवश्यक था। परन्तु वास्तविक दशा बिलकुल इसके विपरीत है। पहले मुसलमानों से पूर्व तो हमारे यहाँ सोने की मुद्रा का ही प्रचलन था। मुग़लों के समय में भी सोना-चाँदी बराबर चलते रहे। ईस्ट-इंडिया कम्पनी के समय तक भी चाँदी का रुपया और सोने की मुहर बराबर जारी रहे। परन्तु आजकल, जब कि उसकी ज़्यादा आवश्यकता है, हमारे यहाँ सोने की मुद्रा एकदम सरकार द्वारा बन्द कर दी गई। भारतीय नेताओं के इस सम्बन्ध में बहुत आन्दोलन करने पर तथा सरकारी मुद्रा-कमीशनों की इसके लिए सिफ़ारिश करने पर शाही घोषणा के अनुसार बम्बई में एक टकसाल हमारी सरकार ने सन् १९१८ ई० में खोली और १३ लाख के लगभग सोने की गिन्नियाँ वहाँ तैयार भी हुईं, परन्तु फ़ौरन इसी साल यह काम बन्द हो गया और फिर उसके बाद कभी सोने की एक गिन्नी भी सरकार ने नहीं तैयार की। बल्कि उल्टे सरकार की नीति यह रही कि जो गिन्नियाँ देश में चल रही थीं, उनका भाव कम करके, उनको भी सरकार ने अपने ख़ज़ानों में वापस मँगा लिया और फिर उनको वहाँ से जारी ही नहीं किया। अब आजकल जब कि बाज़ार में सर्वत्र गिन्नी १३ रुपये के लगभग बिक रही है, सरकारी ख़ज़ाने में उसका मूल्य दस ही रुपये है।

इंग्लैण्ड में सोने का पौंड, चाँदी की शिलिंग और निकल की पेंस चलती हैं। एक पौंड में २० शिलिंग और एक शिलिंग में १२ पेंस आते हैं। परन्तु वहाँ पर असली मुद्रा पौंड अर्थात् सोने का ही सिक्का है। चाँदी की शिलिंग तो केवल २ पौंड तक ही सरकारी मुद्रा है, अर्थात् २ पौंड से अधिक की शिलिंग वहाँ पर सरकारी सिक्का नहीं है—२ पौंड तक की शिलिंग तो लेने से सरकारी क़ानून के अनुसार कोई इन्कार नहीं कर सकता, परन्तु उससे अधिक को वह अस्वीकार कर सकता है। तात्पर्य यह कि असली मुद्रा वहाँ की पौण्ड ही है, शिलिंग तो केवल छोटे छोटे सौदों के लेन-देन की सहूलियत के लिए चला दिये गये हैं। हमारे देश में भी इसी प्रकार सोने की गिन्नी और रुपये चल सकते थे। परन्तु हमारे यहाँ तो गिन्नियों के बजाय क़ाग़ज़ के नोटों का प्रचलन सरकार ने कर रक्खा है और बड़े-बड़े लेन-देन में वही व्यवहार में आते हैं। गाँव वालों को नोट बड़े ही कष्टप्रद हैं; उन बेचारों के फूस के घर हैं, जिनमें प्रायः आग लग जाती है और उसके साथ ही यदि कोई नोट उनके पास हों तो उनका भी सफ़ाया हो जाता है; बरसात में नोट पानी में गल जाता है। इन सब कारणों से गाँव वाले तो नोट से बहुत डरते हैं और कहीं-कहीं तो क़स्बों में भी १० रुपये के नोट के रुपये मिलना कठिन हो जाता है। इसके बजाय यदि सरकार १५ और ५ रुपये की छोटी सोने की गिन्नियाँ चला देती तो लोगों को कितनी सहूलियत होती।

सन् १८८७ में हमारे रुपये का इंग्लैण्ड की मुद्रा में मूल्य १ शिलिंग ५ पेंस के लगभग था। सन् १८९२ में अमेरिका में बड़ी भारी चाँदी की खानों के मिलने के कारण चाँदी का भाव एकदम गिर गया और उसके साथ ही हमारे रुपये का मूल्य भी घट गया, वह १ शिलिंग १ पेंस के लगभग ही रह गया। १८९३ में वह १ शिलिंग के क़रीब हो गया। इसपर हमारी अंग्रेज़ी सरकार और भारतीय ख़ज़ाने से मोटी-मोटी तनख़्वाहें पाने वाले अंग्रेज़ अफ़सरों में तहलका मच गया। अंग्रेज़ अफ़सरों को भारतीय ख़ज़ाने से तनख़्वाह चाँदी के रुपयों में मिलती थी और अपनी कमाई की बचत के रुपये जो वे अपने घरवालों को इंग्लैंड भेजते थे उसके लिए उनको चाँदी के रुपयों के पौंड भुनाकर इंग्लैण्ड भेजने पड़ते थे। भारत के रुपये का अंग्रेज़ी मुद्रा में मूल्य घट जाने

के कारण अंग्रेज़ों की कमाई की बचत, जो वे अपने देश को भेजते थे, एकदम कम हो गई। पहले प्रति रुपये के बदले में उनको १ शिलिंग ५ पेंस अर्थात् १८ पेंस मिल जाते थे, अब उनको १२-१३ पेंस ही मिलते; पहले १ रुपये की बचत में अंग्रेज़ अफ़सरों के घर वालों को इंग्लैंड में १७ पेंस मिलते थे, अब १२-१३ पेंस ही मिलने लगे। इस कारण सारे अंग्रेज़ अफ़सरों ने होहल्ला मचाना शुरू किया; उनको और उनके कुटुम्ब वालों को भारी नुक़सान होने लगा। यही हाल उन अंग्रेज़ व्यापारियों का हुआ, जो भारत में परदेशियों की नाईं रहकर आज भी तिजारत कर रहे हैं। अपने नफे का रुपया जो वे अपने कुटुम्ब वालों को इंग्लैंड भेजते थे उसका मूल्य अंग्रेज़ी मुद्रा में कम हो गया। एक उदाहरण देकर हम इसको और भी स्पष्ट करेंगे। मान लो किसी अंग्रेज कर्मचारी अथवा व्यापारी को वर्ष-भर में १० हज़ार रुपये की बचत या नफ़ा भारतवर्ष में हुआ, अथवा कोई अंग्रेज़ अफ़सर जो भारतवर्ष में सरकारी नौकरी कर रहा है उसने अपने वेतन में से अपना साल-भर का ख़र्च कर के १० हज़ार रुपये बचा लिये या किसी अँग्रेज़ व्यापारी ने साल-भर में १० हज़ार रुपये नफे के कमाये। यह स्वाभाविक है कि वे दोनों ही परदेशी अपने इन १० हज़ार रुपयों को अपने घरवालों को इङ्गलैण्ड भेजना चाहेंगे। सन् १८८७ से पहले एक भारतीय रुपये के बदले में इङ्गलैण्ड में १७-१८ पेंस मिलते थे, तो उस हिसाब से १० हज़ार रुपये के बदले में तब इंगलैंड में ७०५ पौण्ड या गिन्नियाँ मिलती थीं; अब सन् १८९३ में रुपये का मूल्य स्वर्ण-मुद्रा में गिर जाने के कारण १ रुपये के बदले में १२-१३ पेंस ही मिलते हैं, जिसके हिसाब से १० हज़ार रुपये के बदले में अब केवल ५०० पौंड या गिन्नियाँ ही आवेंगी। इस प्रकार पहले उस अंग्रेज़ अफ़सर या व्यापारी को अपने १० हज़ार रुपयों के बदले में इङ्गलैण्ड में अपने घर वालों को ७०५ सोने के पौंड या गिन्नियाँ मिल जाती थीं, अब केवल ५०० ही मिलने लगीं; इससे उन दोनों को एकदम २०० पौंड की कमी होने लगी।

हम पहले बता चुके हैं कि हमारी अंग्रेज़ी सरकार को प्रति वर्ष 'होम चार्ज' के लिए २ करोड़ पौण्ड के लगभग भारत-सचिव को भारत के ख़ज़ाने से इङ्गलैण्ड भेजने पड़ते हैं। सन् १८८७ में या उससे पहले जब १ रुपये का भाव १ शिलिंग ५-१ पेंस था, तब २ करोड़ पौण्ड ख़रीदने के लिए भारत की सरकार को २८ करोड़ ३७ लाख रुपये देने पड़ते थे; अब रुपये का भाव १२-१३ पेंस हो जाने के कारण उन्हीं २ करोड़ पौण्ड को ख़रीदने के लिए उसको ४० करोड़ रुपया देना हो गया। इस प्रकार रुपये के भाव के गिरने से हमारी सरकार को प्रति वर्ष १२ करोड़ रुपये की चपत लगने लगी। इङ्गलैण्ड में होमचार्ज का व्यय वास्तव में तो कुछ घटा-बढ़ा नहीं, परन्तु रुपये का मूल्य गिर जाने से उसमें एकदम १२ करोड़ की वृद्धि हो गई। इसका मतलब यह हुआ कि भारतीय सरकार को दीन हिन्दुस्थानियों पर इस ख़र्चे की वृद्धि की पूर्ति के लिए १२ करोड़ का वार्षिक टैक्स और लगाना पड़ता।

रुपये के मूल्य के विदेशी बाज़ार में घटने-बढ़ने को विदेशी विनिमय कहते हैं। विनिमय की दर के इस प्रकार घटने से जो स्थिति सरकार के सामने उपस्थित हुई उसे सुलझाने के लिए १८९३ में सरकार ने अंग्रेज विशेषज्ञों की एक कमिटी उसपर विचार करने को नियत की। लार्ड हारशेल (Herchall) उसके सभापति थे। इस कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार हमारी सरकार ने विनिमय को फिर ऊँचा चढ़ाने के लिए जो उपाय किये उनका कुछ वर्णन करना भी यहाँ पर आवश्यक है, जिससे पाठकों की समझ में आ जाय कि किस प्रकार आजकल सरकार ने विनिमय को घटाना-बढ़ाना अपने हाथ में कर लिया है।

१८९३ से पहले सरकारी टकसालें, जहाँ चाँदी से रुपये बनाये जाते थे, सर्वसाधारण के लिए खुली थीं। प्रत्येक मनुष्य टकसाल में आकर अपनी चाँदी तथा बनाई की उजरत देकर रुपया बनवा सकता था, जिससे चाँदी और रुपये के बाज़ार भाव में कुछ अन्तर न था, केवल बनाई की उजरत की ही थोड़ी-सी कमी बेशी रहती थी। लार्ड हारशेल की कमिटी की सिफ़ारिशों के अनुसार पहला काम जो भारतीय सरकार ने किया, वह यह था कि सर्वसाधारण के लिए टकसालों को बन्द कर दिया। अब आगे से कोई भी अपनी चाँदी देकर टकसालों से रुपया नहीं तैयार करा

सकता। सरकारी घोषणा हो गई कि अब जब आवश्यकता होगी तब सरकार ही अपनी तरफ़ से रुपये टकसालों में तैयार करके जारी किया करेगी। दूसरा काम सरकार ने यह किया कि सरकारी ख़ज़ानों में इङ्गलैण्ड के पौण्डों को १५ रुपये में स्वीकार करना आरम्भ कर दिया। टकसालों के बन्द होजाने के कारण और रुपये बनने बन्द हो गये, जिससे रुपयों की देश में कमी होने लगी, उनकी माँग बढ़ने लगी और उनके और चाँदी के भाव में अन्तर पड़ने लगा— अर्थात्, चाँदी के बाज़ार-भाव से रुपये का मूल्य कहीं अधिक बढ़ गया। पहले चाँदी का भाव घट जाने से रुपये के मूल्य में जो कमी हो गई थी, वह बहुत कुछ जाती रही। रुपये का भाव अब बहुत कुछ बनावटी हो गया। दूसरे सोनेके पौण्ड सरकारी ख़ज़ानों में आने लगे। इन दोनों बातों के कारण कुछ ही वर्षों में रुपये का भाव क्रमशः बढ़ते बढ़ते १८९८-९९ में १ शिलिंग ४ पेंस पर आ गया। सरकार को होम-चार्ज के लिए जो १२ करोड़ की प्रतिवर्ष हानि हो गई थी वह जाती रही, उसको ग़रीब हिन्दुस्थानियों पर और टैक्स लगाने की आवश्यकता न रही। इस प्रकार सरकार ने अपनी तदबीरों से अपने चातुर्य्य का प्रयोग कर विनिमय का भाव ज़बर्दस्ती ऊँचा करके भारतीय प्रजा को भारी टैक्स से बचा लिया। सरकार का यह कार्य्य अपनी प्रजा के हित के लिए ही था, ऐसी ही उस समय सरकार ने घोषणा की थी; और आज भी हमारी अंग्रेजी सरकार हमारे देश के हित-साधन का बराबर ढोल पीटती रहती है। अपने कथनानुसार वह सदा भारत के हित की साधना में ही लगी रहती है। हमारे अंग्रेज़ प्रभु सात समुद्र पार से भारी कष्ट उठाकर, अपना ठण्डा देश छोड़कर, हमारे इस गरम मुल्क में हमारे हित-साधन के लिए ही पड़े हुए हैं और मुसीबत उठा रहे हैं।

पर क्या वास्तव में हमारी उदार सरकार की विनिमय की दर को ज़बर्दस्ती कृत्रिम उपायों से बढ़ा देने की यह कार्रवाई हमारे हित-साधन के लिए ही की गई थी? क्या इससे हमारे भारी शुभ-चिन्तकों का यही उद्देश्य था कि किसी प्रकार ग़रीब भारतवासी और टैक्स के बोझ से बच जावें? या इस गूढ़ कार्य्य के भीतर कोई और गहरा मन्तव्य हमारी सरकार का था? ज़ाहिरा हमारे देश को भारी लाभ पहुँचाने वाली इस कार्रवाई से हमारे ग़रीब किसानों की कितनी भारी हानि हुई और उससे असली लाभ वास्तव में किन लोगों को पहुँचा, इसका अब हम कुछ वर्णन करेंगे, जिससे पाठक उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर अपने आप ही दे सकेंगे और हमें उनका जवाब देने की ज़रूरत न रहेगी।

हमारे देश में इंग्लैण्ड से जो कपड़ा तथा अन्य पक्का माल आता है, उन सबका मूल्य हमारे भारतीय व्यापारियों को अंग्रेज़ी कारखानेवालों और व्यवसायियों को अंग्रेज़ी मुद्रा अर्थात् पौण्ड, शिलिंग, पेंस में देना होता है। अंग्रेज़ी व्यापारी अपने माल का भाव हमारे दूकानदारों को पौंड-शिलिंग में ही लिखते हैं और उसी मुद्रा में अपना मूल्य चुकाते हैं, उसके लिए हमारे व्यापारियों को रुपयों के पौंड-शिलिंग-पेंस भुनाकर इङ्गलैण्ड भेजने पड़ते हैं। इस विलायती माल के भारतीय बाज़ार के भाव पर सरकार द्वारा विनिमय के ऊँचा करने से क्या प्रभाव पड़ा, यह हमको विचारना है। विनिमय की दर सन् १८९२ में गिर जाने से १ रुपये का मूल्य १२-१३ पेंस हो गया था, वह सन् १८९८ में भारतीय सरकार द्वारा १६ पेंस कर दिया गया।

उदाहरण के तौर पर किसी एक विलायती माल को अब हम लेंगे और तब उसके सम्बन्ध में विचार करेंगे कि विनिमय की इस उलट-फेर से उसके भारतीय भाव में क्या अन्तर पड़ गया। मान लो कि एक विलायती धोती जोड़े का दाम इंग्लैण्ड में ४० पेंस है और वही मूल्य सन् १८९१ से १८९९ तक बराबर क़ायम रहा, अर्थात् विलायती माल के मूल्य में कोई अन्तर नहीं पड़ा। सन् १८९२ में रुपये का मूल्य १३ पेंस था, जिसके हिसाब से उस धोती जोड़े का ४० पेंस मूल्य चुकाने के लिए भारतीय व्यापारी को ३-) देना पड़ता था; परन्तु सन् १८९९ में विनिमय बढ़ जाने के कारण रुपये का मूल्य १६ पेंस हो जाने से उसी धोती जोड़े का मूल्य चुकाने के लिए भारतीय व्यापारी को २॥) देने पड़ेंगे। इस प्रकार यद्यपि इङ्गलैण्ड में कपड़े का भाव बिलकुल ही नहीं घटा, अंग्रेज़ व्यापारी को उस

धोती जोड़े का मूल्य २० पेंस जो सन् १८९२ में मिलता था, वही अब सन् १८९९ में मिल रहा है, उसको एक कौड़ी भी कम नहीं मिलती, परन्तु विनिमय की दर ऊँची हो जाने से उस धोती-जोड़े का भारतीय मूल्य १=) से १॥) ही रह गया, हिन्दुस्थान के बाज़ार में इस प्रकार विनिमय की दर बढ़ आने से विलायती कपड़ा एकदम ≈) आना रुपया सस्ता हो गया। अंग्रेज व्यापारियों को एक भी पाई की हानि न पहुँची और हिन्दुस्थान में विनिमय के बढ़ जाने से विलायती माल सस्ता हो गया, जिससे उसकी खपत भारतवर्ष में खूब बढ़ी। उस वक्त इङ्गलैण्ड के कारख़ानेवालों को इसके लिए बेहद चिन्ता भी हो रही थी। भारतवर्ष के बम्बई आदि नगरों में कपड़े की कुछ मिलें खुल गई थीं और उनका माल विलायती कपड़े के मुकाबले हिन्दुस्थान के बाज़ारों में खपने लगा था, प्रतिस्पर्धा से क्रमशः अंग्रेज़ पूँजीपतियों को हानि हो रही थी। उन पूँजीपतियों का अब खूब काम बना। विलायती माल का भाव भारतवर्ष में एकदम सस्ता हो गया और अंग्रेज़ व्यापारियों को एक पाई की भी हानि न उठानी पड़ी। विलायती कपड़े के इस प्रकार सस्ता हो जाने से हिन्दुस्तानी मिलों को बेहद धक्का लगा।

हमारी सरकार के हाथ में विनिमय का यह और ब्रह्मास्त्र आ गया, जिसकी आड़ में वह अंग्रेज़ी कपड़े की खपत को भारतवर्ष में बढ़ाने में सफल हुई। इस ब्रह्मास्त्र के एक ही वार से विलायती माल का भाव हमारी सरकार ने ≈) आना रुपया सस्ता कर दिया। भाव में इतना चमत्कारिक पतन और किसी भी उपाय से सम्भव न था। इसीलिए हम इसको ब्रह्मास्त्र के नाम से पुकारते हैं। इसके एक ही वार से हमारी सरकार भावों में जो चाहे वह उलट-फेर करने में सफल हो सकती है। विलायती कारख़ाने वालों, अंग्रेज़ी पूँजीपतियों और व्यापारियों को विनिमय के बढ़ने से कितना गहरा लाभ पहुँचा, इसका अन्दाजा इससे किया जा सकता है। सन् १८८४ में भारत में विलायती माल का आयात ४३ करोड़ रुपयों का था। १९०४ में एकदम १०६ करोड़ के क़रीब पहुँच गया और १९१० में १२६ करोड़ हो गया!

विनिमय के बढ़ जाने का विदेशी माल के हमारे देश में आने पर जो प्रभाव पड़ा, वह हम संक्षेप में ऊपर वर्णन कर चुके। अब हम यह विचार करेंगे कि हमारे कच्चे माल के निर्यात पर उसका क्या असर हुआ। अनाज, रुई, आदि जो कच्चा माल हम अपने देश से विलायत को प्रति वर्ष भेजते हैं, उसका मूल्य अंग्रेज़ी व्यापारी हमको चाँदी के रुपयों में चुकाते हैं, उसके लिए उनको अपने पौण्डों को भुनाकर रुपये लेने पड़ते हैं। मान लो कि सन् १८९२ में भारत के गेहूँ का भाव ७ सेर प्रति १३ पेंस था, अर्थात् हमारा गेहूँ इङ्गलैण्ड में आकर १३ पेंस में ७ सेर बिकता था, और चूँकि सन् १८९२ में हमारे एक रुपये का मूल्य १३ पेंस था इसलिए तब हमको ७ सेर गेहूँ का एक रुपया मिल जाता था। इसका मतलब यह था जितना कि गेहूँ हमारे यहाँ से इङ्गलैण्ड को जाता था उसका मूल्य हमको प्रति ७ सेर के लिए एक रुपया मिल जाता था। गेहूँ का भाव तो सन् १८९९ में भी इङ्गलैण्ड में वही रहा, उसमें कोई अन्तर न पड़ा, वह तब भी १३ पेंस का ७ सेर ही बिकता रहा; परन्तु भारतीय सरकार की नीति से विनिमय की दर चढ़ा दी गई, जिसके कारण १८९९ में १३ पेंस का मूल्य एक रुपया न रहा बल्कि १६ पेंस का एक रुपया हो गया, जिससे अब हमको १३ पेंस का इङ्गलैण्ड वालों से एक रुपया नहीं मिल सकता, अब १३ पेंस के हमको १३ आने ही मिलते थे। मतलब यह हुआ कि सन् १८९२ में जो ७ सेर गेहूँ का हमको एक रुपया मिल जाता था, अब सन् १८९९ में केवल १३ आने ही मिलने लगे। एकदम एक रुपये में तीन आने घट गये। गेहूँ का भाव इङ्गलैण्ड में तो वही बना रहा, जो सन् १८९२ में था परन्तु भारत-वासियों के लिए विनिमय के चढ़ जाने से अब उसका मूल्य कम मिलने लगा। इस प्रकार प्रति एक रुपये के गेहूँ पर हमारे भारतीय दीन किसानों को तीन आने का इकट्ठा घाटा हो गया।

इङ्गलैण्ड को अनाज भेजने वाले व्यापारियों को यह घाटा सहना पड़ा हो, सो भी बात नहीं। जो व्यापारी भारत के किसानों का नाज ख़रीदकर इङ्गलैण्ड को भेजते हैं वे तब भी अधिकांश में अङ्गरेज़ ही थे और आज भी वही हैं।

वे ऐसे मूर्ख नहीं थे, जो इस घाटे को उठाते। उनको अकल ही क्या पड़ी थी? वे हिन्दुस्थान के किसानों का हित-साधन करने के लिए तो यह व्यापार करते ही न थे, जो स्वयं घाटा सहते? वे तो नफ़े के लिए ही व्यापार करते थे। अब उन्होंने देखा कि इङ्गलैण्ड में ७ सेर गेहूँ के बदले में पूरा एक रुपया नहीं मिलता है, किन्तु ९ सेर के बदले में रुपया मिलता है, तो उन्होंने भी हिन्दुस्थान में उसीके अनुसार अपना भाव गिरा दिया। उन्होंने भारत में अपनी ख़रीदारी का भाव उसी माफ़िक कम करा दिया। परिणाम यह हुआ कि देश में अनाज का भाव एकदम तीन आना रुपया गिर गया। भाव में इस भारी घटी से भारत के दीन किसानों को बड़ा गहरा धक्का लगा। ६०—७० करोड़ के अन्न में जो प्रतिवर्ष किसान अपनी गाड़ियों में लाकर मंडियों में बेचते हैं, बेचारों को १३—१४ करोड़ रुपये की प्रतिवर्ष हानि होने लगी। इस प्रकार विनिमय के चढ़ जाने से अकेले अनाज में ही किसानों को प्रतिवर्ष १३-१४ करोड़ रुपये का नुक़सान सहना पड़ा। अनाज के अतिरिक्त ८०-९० करोड़ की रुई किसान मंडियों में बेचते थे और उसका भी बहुत-सा भाग विदेशों को जाता था, इसमें भी इसी प्रकार उनको प्रति रुपया तीन आने के घाटे के हिसाब से १७-१८ करोड़ रुपये की प्रतिवर्ष हानि होने लगी। कुल मिलाकर किसानों को २९-३० करोड़ रुपये साल की चपत लगी। इसी प्रकार यदि लाख, जूट आदि और कच्चे माल का जो हमारे यहाँ से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का विलायत को जाता था और अब भी जाता है, हिसाब लगाया जाय तो हमारे देश को मोटे तौर पर कम से कम ४०-५० करोड़ रुपये वार्षिक की हानि होने लगी।

विनिमय की दर चढ़ जाने से इस प्रकार भारतवर्ष को दोहरा घाटा पहुँचा। एक ओर तो विलायती माल भारत में सस्ता बिकने लगा, जिससे उसकी इस देश में खपत बढ़ गई और उसी के मुक़ाबले के देशी माल को धक्का लगा जिससे हमारे कारीगरों और कारख़ाने वालों को चोट पहुँची। दूसरी ओर अन्न, रुई आदि जो इङ्गलैण्ड को हमारे यहाँ से जाते थे, उसमें हमको भारी घाटा हुआ। जैसा हमने ऊपर वर्णन किया है, हमारी अंग्रेज़ी सरकार ने विनिमय का भाव बढ़ाकर अपने होमचार्ज में १० करोड़ रुपये की बचत करके हमको टैक्स के भारी भार से तो बचा लिया, परन्तु दूसरी ओर हमारे कारीगरों, व्यापारियों और ग़रीब किसानों को इकट्ठी ४०-५० करोड़ की चपत लगा दी। हमारी सरकार ने इस प्रकार हमारा ख़ूब हित-साधन किया!

विनिमय का भाव चढ़ जाने का वास्तविक लाभ किन लोगों को पहुँचा, इसपर भी थोड़ा-सा विचार करना आवश्यक है। हमारी अंग्रेज़ी सरकार के सैकड़ों अंग्रेज़ अफ़सरों को, जो अपनी तनख़्वाह की कमाई का बचा हुआ धन इङ्गलैण्ड को भेजते थे, रुपयों के पौण्ड, शिलिंग, पेंस भुनाकर अपने देश भेजने पड़ते थे। सन् १८९२ में उनको एक रुपये के १३ पेंस मिलते थे, अब विनिमय का भाव चढ़ जाने से सन् १८९९ में उनको उसी रुपये में १६ पेंस मिलने लगे। पहले यदि वे अपनी बचत का पाँच हज़ार रुपया अपने घर को भेजते थे तो उनको १३ पेंस प्रति रुपये के हिसाब से २५० पौण्ड अथवा गिन्नियाँ मिलती थीं। अब १६ पेंस का रुपया हो जाने से उन्हीं पाँच हज़ार रुपयों के बदले में उनको ३३४ पौण्ड मिलने लगे। इकट्ठा एकदम ८४ पौण्ड का लाभ होगया। इसी प्रकार उन अंग्रेज़ व्यापारियों को, जो भारत में तिजारत से धन कमाते थे और अपने नफ़े का रुपया अपने घर विलायत भेजते थे, भी उसमें एकदम भारी लाभ पहुँचा। विलायती माल का भाव भारत में सस्ता हो जाने से उसकी खपत बढ़ गई, जिससे और नये-नये कारख़ाने इङ्गलैण्ड में खुलने लगे और वहाँ के अंग्रेज़ पूँजीपतियों के भाग्य खुल गये। संक्षेप में विनिमय का भाव चढ़ जाने का सारा लाभ पहुँचा अंग्रेज़ अफ़सरों, व्यापारियों, मिल-मालिकों और पूँजीपतियों को।

विलायती कपड़े को भारत में सस्ता करके उसकी खपत बढ़ाने के लिए विनिमय का भारी ब्रह्मास्त्र हमारी सरकार के हाथ में और आ गया। इस अस्त्र के वार से भी उसने हमारे देश में विलायती माल को ख़ूब खपाया। इस ब्रह्मास्त्र का वार किस-किस प्रकार समय-समय हमारी सरकार ने हमारे दीन किसान और कारीगरों पर किया, इसका भी अबतक का विवरण संक्षेप में हम यहाँ करेंगे। हम यह भी बतावेंगे कि हमारी सरकार के अधिकार में

कौन-कौन से तरीक़े हैं, जिनसे वह विनिमय का नियन्त्रण करती रहती है, विनिमय की दर का घटा देना और चढ़ा देना किस प्रकार सदा उसकी मुट्ठी में है। यह हम ऊपर दिखा ही चुके हैं कि विनिमय की दर पर ही हमारे यहाँ का सारा व्यापार निर्भर है। उसके चढ़ने-उतरने से तुरन्त ही बाज़ार के भावों में चमत्कारिक उलट-फेर हो जाता है।

इससे पहले हमारे पाठक यह अच्छी तरह समझ लें कि हमारी 'हितैषी' सरकार ने रुपये का मूल्य ज़बरदस्ती १६ पेंस से १८ पेंस पर लाकर अर्थात् केवल २ पेंस बढ़ाकर कितना भारी उलट-फेर हिन्दुस्थान के बाज़ार-भावों में एकदम कर दिया। विलायती कपड़ा तथा और माल इससे किस प्रकार एकदम हिन्दुस्थान के बाज़ार में तीन आने रुपया गिर गया। तथा साथ ही अनाज, रुई और अन्य पैदावार का भी भाव भारतीय मंडियों में ≡) आना रुपया कम हो गया। विलायती माल की बिक्री इससे बेहद बढ़ गई, जिससे अंग्रेज़ कारीगरों और व्यापारियों को भारी लाभ पहुँचा। भारतीय पैदावार का भाव गिरने से देश के असंख्य रक्त-रहित किसानों को एकदम भारी घाटा पहुँच गया। विनिमय को केवल तीन पेंस चढ़ाने से कैसा चमत्कारिक परिवर्तन भारतीय बाज़ार में सरकार कर सकी, यह पहले हम लिख चुके हैं। हमारी उदार सरकार ने विलायती कपड़े तथा अन्य माल की भारत में खपत बढ़ाने के लिए जो-जो विभिन्न उपाय किये और देश के कारीगरों को हानि पहुँचाई, उन सब उपायों में विनिमय की यह नई तदबीर सबसे बढ़-चढ़कर निकली। यह एक ऐसा शस्त्र निकला, जो सर्वथा सरकार की मुट्ठी में था और ऐसा महान था कि इसके एक ही वार से करोड़ों रुपयों का विलायती माल सरकार हिन्दुस्थान के बाज़ारों में जब चाहे तब आसानी से खपा सकती थी।

(असमाप्त)

भारत का नरक

[अध्यापक शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०, विशारद]

बम्बई ! महान् ब्रिटिश साम्राज्य का शायद तीसरा नगर बम्बई, आज अपने ऐश्वर्य पर इठला रहा है । लोग उसपर मुग्ध हैं । उसकी वह समृद्धि, वह शान-शौकत, वह तड़क-भड़क आज हमें लुभा रही है । परन्तु लुभावने आवरण के पीछे वह क्या नरक छिपा हुआ है ? भोले-भाले हड्डियों के कंकाल (मजूर भाई) उस लुभावने वातावरण के शिकार होकर कैसा शैतानी—नहीं, नारकीय जीवन बिताने पर मजबूर हो रहे हैं, इसे भी कोई देखता है ? आह, कितना दयनीय है उन बेचारों का जीवन ! !

प्रस्तुत लेख में इसी जीवन पर कुछ प्रकाश डाला गया है । मिलें हमारे श्रमी-वर्ग के जीवन को कितना हेय बनाकर चलती हैं, यह इससे स्पष्ट है । इसी कारण महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्त्र में खादी को तरजीह दी है, क्योंकि उसमें श्रमी-वर्ग का ऐसा नैतिक और शारीरिक ह्रास नहीं होता । खादी और मिल के कपड़े के इस भेद को समझने में भी, आशा है, यह लेख सहायक होगा ।

यदि कोई देखना चाहे कि उद्योग-धन्धे के इस विप्लव-कारी युग में मनुष्य-जीवन का क्या मूल्य है, तो उसको बम्बई के नारकीय जीवन का थोड़ा-सा दिग्दर्शन करना आवश्यक है ।

१९२१ की गणना के अनुसार बम्बई नगर की जन-संख्या लगभग १,१७६,००० थी । यह नगर एक टापू पर बसा हुआ है, जिसकी लम्बाई लगभग ११ मील और चौड़ाई लगभग ३ या ४ मील है । १९२१ की गणना के अनुसार एक एकड़ में औसत ७८ मनुष्यों के रहने का अनुमान किया गया है । और जिन 'वार्डों' में बस्ती और भी घनी है वहाँ एक एकड़ में निवास करने वाली जन-संख्या का औसत ७०० तक पहुँच जाता है । संसार के मुख्य औद्योगिक केन्द्र लन्दन का भी औसत इससे न्यून है । वह सिर्फ ६० प्रति एकड़ है ।

बम्बई का मुख्य धन्धा वस्त्र-व्यापार है । १९२१ में इस नगर में ८५ कपड़ा बुनने तथा सूत कातने के पुतलीघर चल रहे थे, जिसमें लगभग एक लाख छयालीस हजार कुली प्रति दिन काम करते थे । उसके उपरान्त रेलवे, वर्कशाप, डाक, यन्त्रालय तथा और भी भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों में लगभग दो लाख मजदूर कार्य कर रहे थे । गत सात वर्षों में उनकी संख्या चालीस प्रतिशत और भी बढ़ गई है ।

बम्बई नगर में मजदूर भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से पहुँचते हैं । बम्बई में जन्म लेने वालों की संख्या केवल १६ प्रतिशत है । अधिकतर मनुष्य बाहर से ही आजीविका के लिए यहाँ आते हैं, जिनमें कोंकण, गुजरात, हैदराबाद तथा संयुक्त-प्रान्त के लोग ज्यादा होते हैं । बाहर से जो मजदूर आते हैं वे ६० प्रतिशत अपनी स्त्रियों को साथ नहीं लाते और न वे इतने शिक्षित तथा सदाचारी ही होते हैं कि अपने चरित्र को ऐसे विलास-पूर्ण नगर में भ्रष्ट होने से बचाये रख सकें । तिस पर रहने का जो ढंग है, वह तो और भी लुभावना है । मनुष्य-शक्ति का तो यह कार्य नहीं है कि उनको भ्रष्ट होने से बचावे । यही नहीं बल्कि बम्बई भारत में रोगों का भी प्रवेश-द्वार है । एक अनुभवी डाक्टर का कथन है कि 'बम्बई विदेशी व्यापार के लिए ही भारत का मुख्य मार्ग नहीं, बल्कि भारत में रोगों के घुसने का भी यही मुख्य द्वार है' * फलतः बेचारा

---

* Just as Bombay is the chief way of

दीन-हीन मजदूर अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर देता है।

जरा उनके वास्तविक जीवन का दिग्दर्शन तो कीजिए।

बम्बई के मजदूर तीन प्रकार के स्थानों में रहते हैं। प्रथम चाल में, मिट्टी के तेल के पीपों की टिन तथा लोहे की चादरों से छाये हुए झोपड़ों में, और खजूर व नारियल की पत्तियों से बनाये हुए स्थानों में। अध्यापक बर्नहेट्स लिखते हैं कि जब मैं लोहे की चद्दरों से बने हुए मजदूरों के घरों को देखने गया और अन्दर घुसा तो रास्ता इतना तंग था कि उसमें से दो मनुष्य नहीं निकल सकते थे। केवल यहीं तक बात नहीं थी बल्कि ठीक दोपहर के वक्त भी वहाँ सूर्य-नारायण की कृपा-दृष्टि नहीं पड़ रही थी। उनका कथन है कि वहाँ पर इतना अँधेरा था कि हमें यह प्रतीत नहीं हुआ कि यहाँ पर कोई रहता भी है कि नहीं, जब प्रकाश किया गया तो यह अनुभव हुआ कि यह मनुष्यों का निवास-स्थान है! बम्बई की चालों की हालत अच्छी नहीं। अधिकतर मजदूर चालों में ही रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन चालों में अधिकतर एक कमरे के घर होते हैं कभी-कभी दो कमरे के भी घर बनाये जाते हैं। चालों की इमारतें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। किन्तु एक बात की समानता तो प्रत्येक स्थान पर पावेंगे, वह एक विद्वान सज्जन के शब्दों में यह कि 'Seeing these chals one is tempted to use the expression 'Warehousing" of large numbers of the labouring classes in as cheap a manner as possible. "इन चालों को देखकर यह कहने के लिए जी ललचाता है कि ये इमारतें मजदूरों को सस्ते किराये पर ठूँस-ठूँस कर भर देने के लिए गोदामों की भाँति है। अब इस पूँजीवाद के समय में मनुष्य भी यदि माल और असबाब की भाँति भर दिये जाते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि मिलों इत्यादि के लिए ही स्थान नहीं फिर इनके लिए स्थान कहाँ मिल सकता है? इसको अत्युक्ति न समझें, इसमें तो अणुमात्र भी अत्युक्ति नहीं है। बर्नस बम्बई सरकार के मेडिकल-विभाग की कर्मचारिणी हैं और बम्बई सरकार द्वारा बम्बई की मजदूर स्त्रियों की दशा की जाँच के लिए नियुक्त की गई थीं, उन्होंने जो कुछ अपनी रिपोर्ट में लिखा उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"I found a room 15 × 12 ft. in size which was the home of six families. No less than 30 persons occupied the room and the three of the women were expecting to be delivered. Delivery would take place in a small space of 3 × 4 ft screened off for the purpose. Each family had its own cooking place a small brick erection made with three bricks placed at right angles to each other without chimneys. The effect of such conditions on these expectant mothers can very easily be imagined."

अर्थात् "मैंने एक ऐसा कमरा पाया, जिसकी लम्बाई १५ फुट और चौड़ाई १२ फुट थी। यह कमरा ६ कुटुम्बियों का निवास-स्थान था और वे सब मिलाकर तीस आदमियों से कम न थे! इनमें से ३ स्त्रियाँ गर्भवती थीं, जिनका प्रसवकाल इतना निकट था कि थोड़े ही दिनों में प्रसव होने की आशा थी। प्रसव एक छोटे से स्थान में होने वाला था, जो परदा डालकर बनाया गया था और जिसकी लम्बाई ४ फुट और चौड़ाई ३ फुट थी। प्रत्येक

foreign trade of India, it is also the gate way for the introduction of diseases into the land.

कुटुम्ब का चूल्हा भी उसी कमरे में अलग-अलग था। जब कि धुआँ निकलने का रोशनदान तक उसमें न था। ऐसी परिस्थिति का उन गर्भवती माताओं के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, यह समझना कुछ कठिन नहीं है।"

चाल तीन प्रकार की होती हैं। प्रथम तो वे जो वास्तव में एक कुटुम्ब के लिए ही बनवाई गईं थीं, परन्तु जन-संख्या के अधिक बढ़ जाने तथा स्थान की अधिक माँग होने से उनके मालिकों ने उनको बढ़ा लिया! पीछे और आगे जितना स्थान उनको मिल सका उन्होंने ले लिया और जब स्थान न मिल सका तो मंजिलें बनाना प्रारम्भ किया। ४ और ५ मंजिल की चालें अधिकतर उन विभागों में हैं जहाँ की जन-संख्या बहुत घनी है। ऊँची इमारत होने के कारण बीच की और नीचे मंजिल में सूर्य नारायण बहुत कम कृपा-कटाक्ष किया करते हैं। टट्टी (पाखानों) का यह हाल है एक-दूसरे से सटी हुई चालों के बीच १ से ५ फ़ीट तक चौड़ी गली होती है वही समस्त चाल-निवासियों की टट्टी का काम देती है। इसी गली में डलियाँ लगा दी जाती हैं। वही टट्टी का काम देती हैं, और उनके नीचे गंदा नाला बहता है। अधिकतर डलियों का मल नाले में बहने लगता है, उस समय वहाँ की वायु कैसी 'सुगन्धमय' होगी, यह तो विचार करने की बात है। उसी एक फुट की गली में से भंगी मल ले जाता है। भंगी भी अपने परिश्रम को कम करने के लिए उन डलियों का मल उन्हीं नालों में जोड़ देता है। यही नहीं, चाल-निवासियों के कूड़ा-करकट फेंकने का भी यही स्थान है। यही कारण है कि बेचारा मजदूर पिछवाड़े की खिड़कियों को बन्द रखता है। इस परिस्थिति के कारण समस्त चाल में एक प्रकार की दुर्गन्धयुक्त वायु सर्वदा बनी रहती है। और नीचे की मंजिल की दुर्दशा का अनुमान तो कोई भी स्वयं कर सकता है।

अध्यापक बर्नेटहर्स्ट का कथन है कि चाहे कितना ही इस विषय में लिखा जाय किन्तु उसका वास्तविक अनुभव तभी हो सकता है, जब उन स्थानों को स्वयं जाकर देखा जाय। दूसरे प्रकार की वे चालें हैं, जो दो मंजिल की हैं। नीचे की मंजिल में दूकानदार रहते हैं और ऊपर कुली। हवा तथा सूर्य की कृपा यहाँ भी कम होती है। चाल के सामने का आँगन प्रायः कच्चा होता है और उसी में चाल-निवासी कूड़ा फेंक देते हैं। परन्तु विशेषता यहाँ पर और है—नल के समीप कोलाहल-सम्मेलन! प्रायः एक ही टोंटी एक चाल में रहती है; ऐसी हालत में जल-देवता के समीप प्रातःकाल बरतनों के खटाखट से क्या-क्या सुर निकलते होंगे, यह कोई भी अनुमान कर सकता है। टट्टी का यहाँ भी वही हाल है। तीसरे प्रकार की चालें म्युनिसपैलिटी या इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट की बनवाई हुई हैं। ये चालें इतनी बुरी नहीं होतीं और इनमें कुछ सुविधा भी होती है, परन्तु किराया अधिक होने के कारण इनका लाभ कुछ अधिक कमाने वाले क्लर्क तथा मिस्तरी ही उठा सकते हैं। बेचारा मजदूर इतने पैसे कहाँ से लावे?

अब जरा साधारण जनता की भी दशा सुनिए। डाक्टर बोले के कथनानुसार बम्बई के ९४ प्रतिशत घर आवश्यकता से अधिक मनुष्यों द्वारा भरे पड़े हैं। एक कमरे में रहने वालों का औसत बम्बई नगर में ३.५ (३½) है, कहीं कहीं तो एक कमरे में कई कुटुम्ब भी रहते हैं। १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार बम्बई में १३५ कमरे ऐसे मिले जिनमें ६ या इससे अधिक कुटुम्ब एक कमरे में ही अपना निवास करते थे। आपको आश्चर्य होगा कि यह कैसे सम्भव हो सकता है? परन्तु दर हक़ीक़त बात ऐसी ही है। कारण यह कि बम्बई की मिलें दिन-रात

काम करती रहती हैं। कुछ मजदूर तो रात के होते हैं और कुछ दिन के। इस कारण आधे स्त्री और पुरुष तो मिल में कार्य करते रहते हैं और आधे अपने कमरों में विश्राम करते हैं। कमरा अधिकतर सामान रखने और भोजन पकाने के लिए ही होता है, सोना तो सड़कों के किनारे पर ही होता है। हाँ, बरसात में तो किसी न किसी प्रकार उसी कमरे में गुजारा करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में स्त्री और पुरुष कैसे सच्चरित्र रह सकते हैं, यह विचार करने की बात है—फिर उस हालत में, जब कि स्त्रियाँ कम और पुरुष बहुत अधिक होते हैं! यही कारण है कि गाँवों में सच्चरित्र रहने वाली स्त्रियाँ बम्बई में आकर लगभग एक वेश्या-जैसा जीवन व्यतीत करने लगती हैं। साथ ही मिलों में कार्य करने वाली स्त्रियाँ अपने फ़ोरमैन, क्लर्क और मिस्तरी की प्रेयसी बनकर गुप्त व्यभिचार भी करवाती हैं। यह बात नहीं कि वे स्वभावतः व्यभिचारिणी होती हैं, किन्तु वहाँ का वायु-मण्डल ही इतना दूषित होता है कि वह चरित्र को भ्रष्ट कर देता है! यह बात है बड़ी शर्मनाक, पर यह कोई गुप्त बात नहीं है—तनिक से अन्वेषण से तुरंत ज्ञात हो सकती है।

मैंने 'लालइमली सैटिलमेण्ट कानपुर' के एक नवयुवक मजदूर से पूछा था कि तुममें जो लोग स्त्रियाँ नहीं रखते वे क्या करते हैं? उसने उत्तर दिया कि अधिकतर तो इन्हीं स्त्रियों से गुप्त व्यभिचार करते हैं, और कुछ नीच जाति की वेश्याओं के पास भी जाते हैं। यह पूँजीवाद का प्रत्यक्ष फल है! फिर भी हम लोग इसको सुधारने का प्रयत्न नहीं करते। फिर कहिए, ऐसे जीवन से मजदूरों का चरित्र कैसे ठीक रहेगा और उनकी सन्तान शारीरिक और मानसिक उन्नति किस प्रकार कर सकेगी?

इस जीवन का बम्बई की मजदूर-संख्या पर क्या प्रभाव पड़ता है, तनिक इसका भी विवेचन आवश्यकीय जान पड़ता है। पुरुष और स्त्रियों के स्वास्थ्य को छोड़ दीजिए। वे तो अपने स्वास्थ्य को क्रमशः इस नरक-कुण्ड में खो ही बैठते हैं और अपनी जीवन-शक्ति को नष्ट करके कुसमय में ही जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। बच्चों की मृत्यु-संख्या पर ही विचार करें तो हमको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि इस भयंकर परिस्थिति का उनके जीवन से क्या सम्बन्ध है। सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार १९१८ से १९२२ तक बम्बई नगर में बच्चों की औसत मृत्यु-संख्या ५७२ प्रति सहस्र थी और १९२२ में वह बढ़कर ६७७ प्रति सहस्र हो गई थी। इसका अर्थ यह हुआ कि १००० उत्पन्न हुए बालकों में से दो-तिहाई तो अपने जन्म के पहले वर्ष ही नष्ट हो जाते हैं, भावी वर्षों का भगवान ही रक्षक है! अब तनिक उस देश के भी अंक सुनिए, जो कि औद्योगिक उन्नति में संसार में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। इंग्लैण्ड के व्यापारिक केन्द्रों में बालकों की मृत्यु के सम्बन्ध में जाँच हुई थी, उससे ज्ञात होता है कि १९१४ में प्रति सहस्र उत्पन्न बालकों में ११२ बालक नष्ट हुए। ये अंक भी वहाँ पर बड़ी घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। किन्तु हतभाग्य भारत-देश में बालकों के जीवन का कोई विशेष मूल्य नहीं है। तभी तो दो-तिहाई उत्पन्न हुए बालक प्रति वर्ष मर जाते हैं, फिर भी इस भयंकर दशा को सुधारने का कोई भगीरथ-प्रयत्न नहीं किया जाता। डाक्टर सैनडिलेण्डस अपनी वार्षिक रिपोर्ट में कहते हैं—

"After every allowance made for various fallcies the infantile mortality cannot be fairly estimatid at less than 500 p. c. which means that one out of every two infants born, has to die before reaching the

age of twelve months. Accordingly Bombay must have the inglorious distinction of possessing probably the highest infant death rate in the world"

अर्थात् "मृत्यु-गणना में कतिपय भूलों का भी यदि ध्यान रक्खा जाय तब भी अंक ५०० से कम नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह होता है कि दो बालकों में से एक बारह मास की आयु प्राप्त करने से प्रथम ही नष्ट हो जाता है। इस गणनानुसार बम्बई नगर को सम्भवतः संसार-भर में बालकों की मृत्यु-संख्या में सर्वोच्च होने का अपयश प्राप्त होना चाहिए!"

मैं एक तालिका देकर यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि बम्बई नगर में रहने के स्थानों और बालकों की मृत्यु-संख्या से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है—

	मकान (कितने कमरे का)	पैदा हुए फ़ी हज़ार बालकों में मृत्यु-संख्या सन् १९१८	१९१९	१९२०	१९२१
१.	एक कमरा या इससे कम	७६७	८३१	६३१	८२८
२.	दो कमरे वाला मकान	४९९	५६५	३०४	३२२
३.	तीन कमरे वाला मकान	३७५	३५८	२९५	१९१
४.	चार या अधिक कमरे वाला मकान	२३९	१८९	१८९	१३३
५.	अस्पताल	७९	११२	३०९	१९०

इस तालिका से स्पष्ट हो गया होगा कि मृत्यु-संख्या तथा रहने के स्थान का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीसे बम्बई की भयंकरता का अनुमान किया जा सकता है। अब मैं यहाँ के मजदूरों का दैनिक जीवन बताने का प्रयत्न करूँगा। १९२२ के फ़ैक्टरी-ऐक्ट के अनुसार १५ वर्ष से ज्यादा उम्र के स्त्री-पुरुष २४ घण्टों में ११ घण्टे से अधिक काम नहीं कर सकते। १२ बजे दिन में भोजन करने के लिए एक घण्टे के लगभग छुट्टी मिलती है, परन्तु यह उन ११ घण्टों में नहीं गिनी जाती। वास्तविक बात यह है कि वे १० घण्टे से अधिक कार्य नहीं करते, क्योंकि ऐक्ट के अनुसार सप्ताह में (जिसमें रविवार छुट्टी का दिन होता है) ६० घण्टे से अधिक कार्य नहीं कर सकते। स्त्रियों को रात में काम करना मना है। बम्बई की मिलें 'शिफ्ट-सिस्टम' के अनुसार रात-दिन कार्य करती हैं। भारतीय मजदूर कुदरती तौर पर लगातार ज्यादा समय तक कार्य करने का अभ्यस्त नहीं है, और न वह भीड़ में कार्य करता है। वह तो अधिकतर गाँव से ही आता है, जहाँ पर कार्य करते समय वह स्वतन्त्र होता है और काम करते-करते थक जाने पर वह अपनी चिलम भरकर दम लगाना और एक-आध गीत गा लेना काम का विशेष अंग समझता है। ग्रीष्म के समय खुले मैदान में पत्तों के प्राकृतिक बिछौने पर पेड़ों की छाया में सो भी लेता है। उन्हीं स्वतन्त्रता-प्रिय ग्रामीण मनुष्यों को कारखाने में मशीन की भाँति कड़े निरीक्षण में १० और ११ घण्टे तक कार्य करना पड़ता है। उनका शरीर थकान से शिथिल हो जाता है। वे इतने थक जाते हैं कि सायंकाल को घर पर आकर थोड़ी-सी मदिरा पास की दूकान से लेकर पी लेते हैं, जिससे उनको नशा होजाने से थकावट प्रतीत नहीं होती। सम्भव है कुछ लोग यह कहें कि इसमें तो दोष मजदूर का ही है, पर यह बात ठीक नहीं है। लगातार श्रम से बेचारा मजदूर इतना थक

जाता है कि रात-भर की नींद उस थकावट को नहीं मिटा सकती, उसका अंग-अंग शिथिल हो जाता है और उसको उत्तेजना की आवश्यकता प्रतीत होती है, यही कारण है कि उसको मदिरा की दूकान की शरण लेनी पड़ती है। जिन्होंने शाम के वक्त सहस्रों मजदूरों को मिलों से निकलते देखा है, वे यह भली-भाँति समझ सकते हैं। कैसा मुरझाया हुआ मुख, कैसी उदासीन प्रकृति उनकी उस समय होती है, उसे देखकर किस सहृदय का हृदय दुखी नहीं होता होगा? मैं तो जब इन मजदूरों को देखता हूँ, तो विचार करने लगता हूँ कि हमारे अर्थशास्त्र के विद्वान जब यह कहते हैं कि मशीनों द्वारा बृहत् राशि में वस्तुओं को बनाने में हम चीज़ को कम दामों में तथा और अच्छी बना सकते हैं, तब क्या वे भूल जाते हैं कि उन मशीनों में काम करने वाला मजदूर क्रमशः अपने को हमारे लिए बलिदान कर रहा है?

इसी प्रश्न को लेकर संसार में श्रमजीवी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है और यूरोप तथा अमेरिका के पूँजी-पति और सरकार भी श्रमजीवी-जनता के जीवन को अधिक सुखमय बनाने की नई-नई युक्तियाँ निकाल रहे हैं। हमारे यहाँ की सरकार से तो देश-हित के कार्य की कोई आशा करना ही व्यर्थ है, पर अफ़सोस कि व्यवसायी भी इन निर्धन मजदूरों की ओर ध्यान नहीं देते! बम्बई में कितने पुतलीघर हैं, किंतु करीमभाई मिल्स और ताता मिल्स के अतिरिक्त कितने मिल-मालिकों ने अपने मजदूरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न किया है? व्यवसायियों को अब तनिक सचेत हो जाना चाहिए, क्योंकि भारतवर्ष में अब श्रमजीवी जनता अपनी हीन दशा का अनुभव करने लगी है और भविष्य में महाविकट परिस्थिति आने वाली है। एक तो लंकाशायर और मैंचेस्टर तथा जापान की प्रतिद्वन्द्विता वैसे ही विकराल रूप धारण कर रही है, दूसरे यदि यहाँ का श्रमजीवी समुदाय असन्तुष्ट हो गया तो फिर भविष्य अंधकार-मय ही है। सबसे प्रथम तो बम्बई नगर में नई मिलों का खुलना बन्द हो जाना चाहिए। औद्योगिक कमीशन ने १९१६ में यह सम्मति दी भी थी कि बिना म्युनिसिपैलिटी की राय के कोई नई मिल न खोली जाय। दूसरा सुधार जो अत्यन्त आवश्यक है, वह है रहने का स्थान। पूँजीपति और सरकार आधा-आधा व्यय करके प्रत्येक मिल के पास उसके मजदूरों के लिए स्थान बनवा दे सकते हैं। तीसरी आवश्यकता अस्पताल और स्कूल की है। औरतों के लिए लेडी डाक्टर रखना आवश्यक है। लड़कों के लिए स्कूल नितान्त आवश्यक हैं। सिनेमाघर, जिमनेशियम (व्यायामशाला) क्रिकेट, फुटबाल और हिन्दुस्थानी खेलों के समुचित प्रबन्ध की भी जरूरत है। मैंने बहुत ही संक्षेप में इनकी ओर केवल संकेत-मात्र कर दिया, इसपर यहाँ अधिक लिखने का स्थान नहीं है। यदि बहुत शीघ्र ही इस नगर में निर्धन जनता को सुखी बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया तो मजदूरों की ही दशा पर इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि मिल-मालिकों को भी इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप दण्ड भोगना पड़ेगा।

दीनबन्धु थ्योडोर पार्कर

[श्री गणेश पाण्डेय]

अमेरिका स्वाधीनता की लड़ाई में सदा अग्रसर रहा है। यहाँ के कर्तव्यनिष्ठ महात्माओं ने अपने प्रयत्नों से सभ्य संसार को यह कर दिखाया है कि एक देश को दूसरे देश पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं। स्वाधीनता का संग्राम, दासत्व-प्रथा के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन आदि कई महत्त्वपूर्ण कार्य वहाँ हुए हैं, जिनसे संसार की दलित जातियों का अनन्त उपकार हुआ है। दासत्व-प्रथा के विरुद्ध प्रबल आंदोलन करनेवाले महात्मा गैरिसन का संक्षिप्त परिचय 'त्यागभूमि' के एक अंक में पहले दिया जा चुका है। दीनबन्धु थ्योडोर पार्कर भी उन्हीं के एक सहयोगी थे, जो आजीवन दीन-दुखियों की सहायतार्थ डटे रहे, ढोंग और पाखंड के मिथ्या धर्म का भाव लोगों के चित्त से हटाते रहे तथा सत्य बात के कहने से कभी नहीं हिचके और सत्ताधारियों की तोप-तलवारों की ज़रा भी पर्वाह न की।

बोस्टन संयुक्तराज्य अमेरिका का प्रसिद्ध नगर है। इसी शहर से दस मील की दूरी पर लेक्सिंहन नाम का एक गाँव है। इसी गाँव में सन् १८१० ई० में जान पार्कर नामक एक किसान के घर थ्योडोर का जन्म हुआ। थ्योडोर अपने पिता की सबसे छोटी सन्तान थे। इनके पहले और भी कई भाई-बहन पैदा हो चुके थे। जान पार्कर यद्यपि किसान थे, किन्तु सत्यपरायणता तथा धर्मभीरुता के कारण वह गाँव वालों की विशेष प्रीति और श्रद्धा के पात्र थे। उनकी स्त्री भी बड़ी धर्मपरायण थी। वह स्वयं परिश्रम करना पसन्द करती और अपने लड़के-लड़कियों को भी मिहनत करना सिखातीं। उस घर के लड़के-लड़की ज्योंही चलने-फिरने लगते तभी से खेत में काम करना सीखने लगते। थ्योडोर जिस समय पाँच या छः वर्ष के बालक थे तभी गाय-बैल तथा घोड़े को खूँटे से बाँधा करते, उन्हें जल पिलाते, पिता के लिए भोजन लेकर बाहर जाते, घोड़े को घास और भूसी देते, इस प्रकार छोटे-छोटे काम कर लेते। इसी तरह सभी लड़के कुछ-न-कुछ करते, कोई चुपचाप बैठा न रहता।
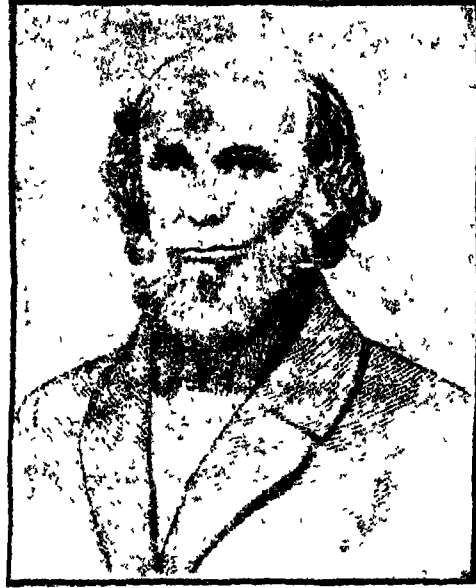
थ्योडोर पार्कर

लड़कपन से थ्योडोर को एक और बात की शिक्षा दी गई थी। वह खेत के चारों तरफ जंगल में घूमना खूब पसन्द करते। वन के फूलों को तोड़कर गुलदस्ते बनाते, पक्षियों की बोली सुनकर प्रसन्न होते, छोटे-छोटे प्राणियों के आकार-प्रकार, गति-विधि और स्वभाव तथा चरित्र को लक्ष्य करते, कभी-कभी सुगंधित घासों पर सोकर

जी भर के उनकी सुगन्ध सूँघते और सोये-सोये सायंकालिक आकाश की शोभा निहारा करते। इस प्रकार बाल्यावस्था ही से उन्होंने प्रकृति से प्रेम करना सीखा था।

यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि जिसकी बाल्यावस्था इस प्रकार बीती हो, उसके हृदय में कैसे पवित्र और परिष्कृत विचार पैदा होंगे। वास्तव में बालक थ्योडोर का मन अत्यन्त पवित्र एवं शुद्ध था। इसका एक दृष्टान्त सुनिए। एक दिन थ्योडोर अकेले खेत से घर को आ रहे थे। रास्ते में सड़क के बग़ल में तालाब के बीच एक सुन्दर फूल देखा। जब वह फूल तोड़ने के लिए जल के भीतर घुसे तो देखा कि फूल के पौधे-तले एक कछुआ बदन सिकोड़ कर सोया हुआ है। लड़के नटखट हुआ ही करते हैं। चाहा कि छड़ी उठाकर कछुए को मारें। पर मारने के लिए ज्योंही छड़ी उठाई, इतने में न-जाने कौन कहीं से बोल उठा, "अहा, क्या करते हो, निर्दोष प्राणी को क्यों मारते हो?" हठात् इस आवाज को सुनते ही उनका हाथ रुक गया। घर आते ही माँ से उन्होंने पूछा,—"माँ, मैं कछुए को मारने जा रहा था, इतने में न-जाने किसने मुझे मारने से रोका?" माता बालक को गोद में लेकर प्यार से बोली, "बेटा, लोग इसे धर्म-बुद्धि कहते हैं; मैं इसे ईश्वर की वाणी समझती हूँ।" पार्कर ने माता के इस उपदेश को जीवन भर याद रक्खा।

अब पार्कर के लिखने-पढ़ने के संबन्ध में कुछ लिखते हैं। किसानों के गाँव में किसानों के लड़कों का पढ़ना-लिखना क्या हो सकता है? वहाँ यह नियम था कि जाड़े में तीन-चार महीने तक खेती का काम-काज बिलकुल बन्द रहता था, उस समय स्कूल मास्टर आते और स्कूल खुलता। तीन मास के बाद खेती का काम शुरू होते ही स्कूल बन्द हो जाते। बालक इसी प्रकार तीन महीने तक स्कूल में पढ़ते और लड़के तो तीन महीने का पढ़ा-लिखा नौ महीने में भूल जाते, किन्तु पार्कर के हृदय में ज्ञान के प्रति ऐसा अनुराग था कि खेती का काम करके जो कुछ भी समय पाते, बन में वृक्षों के तले बैठकर जेब से पुस्तक निकालकर पढ़ने में निमग्न हो जाया करते।

पार्कर चित्त लगाकर जहाँ तक सम्भव था खूब पढ़ने लगे। किन्तु इतने से ही उन्हें तृप्ति न हुई। एक बार एक सहपाठी बालक से एक पुस्तक की प्रशंसा सुनी, उसके पढ़ने के लिए वह बहुत उत्सुक हुए। पिता की जैसी अवस्था थी, उस दशा में उनसे पैसे माँगना व्यर्थ था और उचित भी न था। अन्त में दूसरा उपाय न देख एक नई तरकीब ढूंढ निकाली। खेत के पास ही एक जंगल था, उसमें एक तरह के स्वादिष्ट फल थे। उन्हें सर्व-साधारण न खाते; हाँ, लड़के बड़े चाव से खाते थे। पार्कर ने मन में सोचा कि इन्हें तोड़कर बाजार में ले जाने पर बच्चे इन्हें खरीद सकते हैं। लेकिन उन्हें तोड़ने के लिए भला अवकाश ही कहाँ मिलता था। दिन भर तो खेत में काम करते। अन्त में घर के लोगों के उठने के पहले तड़के ही फल तोड़ना आरम्भ किया और यथा-समय खेत में जाकर काम करने लगे। तीन-चार दिन में उन्होंने एक टोकरी फल तोड़े। उन्हें सिर पर लेकर बाजार गये और बेचकर उनके पैसों से पुस्तक खरीदी। इतना कष्ट करने पर उन्हें पुस्तक पढ़ने को मिलती, पर इतने पर भी वह निरुद्यम नहीं हुए।

किन्तु घर पर अकेले अपने-आप पढ़ने से उनका मन सन्तुष्ट न होता। उन्होंने लोगों के मुँह विश्व-विद्यालय के सम्बन्ध में सुन रक्खा था। कालेज में पढ़ने के लिए उनका मन उद्विग्न हो उठा। किन्तु इसके लिए खर्च कौन दे? वह अपने पिता की अव-

रथा अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उनसे कुछ न कहा। मन ही मन उपाय सोचने लगे। मनुष्य अपनी उन्नति के लिए जब कटिबद्ध हो जाता है तो कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो उसे रोक सके। एक दिन उन्होंने पिता से खेत के काम से एक दिन का अवकाश माँगा। क्यों अवकाश माँगा, यह किसीको पता नहीं। पर प्रातःकाल होते ही वह बोस्टन शहर की ओर चले। दस मील जाने पर बोस्टन नगर के पास हावर्ड-विश्वविद्यालय की इमारत के दर्वाजे पर उपस्थित हुए। उस दिन उस विश्वविद्यालय की प्रवेशिका-परीक्षा का दिन था। वह परीक्षा देने गये। परीक्षा में उत्तीर्ण होकर संध्या-समय पैदल ही लेकसिंग्टन वापस आये। आकर पिता से बोले, "पिता, मैं हावर्ड विश्वविद्यालय को प्रवेशिका-परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ हूँ।" उनके पिता आश्चर्यचकित हो बोले,—"सो कैसे ? तुम्हारे पढ़ने के लिए खर्च कौन देगा ?" पार्कर ने उस सम्बन्ध में पहले सोच रक्खा था। उन्होंने थोड़े ही दिन में हावर्ड के निकट एक गाँव में शिक्षक का काम करना आरम्भ कर दिया। वहाँ अध्यापन-द्वारा जो कुछ वेतन पाते, उससे किसी तरह अपना निजी व्यय चलाते, उसीसे पिता के खेत पर काम करने के लिए एक बालक को वेतन देते और बाक़ी रुपये से कालेज की फ़ीस चुकाते।

इस प्रकार तीन वर्ष कठोर संग्राम में बीते। दिन को वह स्कूल में पढ़ाते, रात-भर स्वयं पढ़ते। कभी-कभी तो ऐसा होता कि वह रात-रात भर पढ़ते रह जाते और सवेरा हो जाता ! इस प्रकार लेटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेञ्च, इटालियन आदि भाषायें पढ़ीं, कई विषय पढ़े, फिर भी उनकी ज्ञान-पिपासा न बुझी। अन्त में उनकी विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त हुई। उससे निकलते समय परीक्षा में उन्हें बहुत ऊँचा स्थान मिला।

अब प्रश्न यह उठा कि वह करें क्या ? दूसरा आदमी होता तो यह सोचता कि बहुत दरिद्रता के साथ लड़कपन बिताया है, अब एक बार लक्ष्मी का मुँह देखूँ— जिससे धन कमाया जा सके, ऐसा कोई काम करूँ। और अमेरिका जैसे देश में उस समय धन कमाने के अनेक रास्ते थे। लेकिन पार्कर का ध्यान उस तरफ़ बिलकुल न गया। वह बोले,—"पृथ्वी के लोगों को जिससे सहायता पहुँच सके, ऐसा काम मुझे करना चाहिए। मैं धर्म्माचार्य बनूँगा।" अस्तु, वह धर्म्माचार्य हुए। पहले एक गाँव में जाकर साधारण लोगों में धर्म्मोपदेश करने लगे। इसके पहले ही वह लिडिया कैबट नामक एक धर्म्मपरायणा महिला से विवाह कर चुके थे। इस गाँव से वह बीच-बीच में बोस्टन नगर में आकर धर्म्मोपदेश किया करते। किन्तु इस काम को करते-करते वह एक बड़े भारी झगड़े में पड़ गये। उस समय ईसाई-धर्म के नाम पर जो बहुत से मत फैल गये थे, उनमें से कई उन्हें भ्रान्त जान पड़े। ईसाई लोग बाइबल को एकमात्र अभ्रान्त ईश्वरदत्त ग्रन्थ समझते थे। पार्कर ने कहा—"सो कैसे ? क्या ईश्वर ने सारी सचाई एक ही ग्रन्थ में भर रक्खी है ? अन्यान्य ग्रन्थों में भी ईश्वर-प्रदत्त सत्य है। और बाइबल आद्योपान्त अभ्रान्त है, इसमें भी प्रमाद है।" यह बात (युक्ति) उस देश के लिए बिलकुल नई थी। पार्कर ने सोचा, चाहे जो कुछ हो, जो सत्य है, उसका प्रचार अवश्य करूँगा। सत्य पर दृढ़ रहकर वह सत्य का प्रचार करने लगे। फिर क्या था, चारों तरफ़ आग जल उठी। लोग 'नास्तिक'-'नास्तिक' कहकर चिल्लाने लगे। बड़े-पुराने मित्रों ने भी उन्हें छोड़ दिया। रास्ते में देखने पर मुँह फिरा कर चले जाते। पार्कर का हृदय बड़ा कोमल था; इन सब बातों को देखकर उन्हें बड़ा क्लेश होता;

किन्तु कुछ कहते न थे। बच्चों से उन्हें स्नेह था। उनके निजी कोई सन्तान न थी, पास-पड़ोस के लड़के-लड़कियों को लेकर ही बड़े सुख के साथ समय बिताते। उनके साथ खेलते, बाहर रास्ते में जाते समय बच्चों को बाँटने के लिए जेब में खिलौने भर लेते। इस प्रकार बच्चों के सहवास से अपने हृदय को सरस और कोमल रखते और बाहर के उत्ताप को कुछ न समझते थे।

लोगों ने उन्हें बोस्टन नगर के सारे गिर्जाघरों से अलग कर दिया। धर्म्माचार्यों ने अपने दल से उन्हें बहिष्कृत किया। किन्तु कुछ दिन के बाद बोस्टन के कुछ युवकों ने एकत्र होकर कहा,—"थ्योडोर पार्कर बोस्टन में धर्म्मोपदेश कर सकें, इसके लिए चाहे जिस तरह हो बन्दोबस्त करना पड़ेगा।" ऐसा परामर्श कर एक बड़ा भारी 'हाल' भाड़े पर लेकर उन्हें धर्म्मोपदेश के लिए बुलाया गया। वह स्वतंत्रता-पूर्वक धर्मोपदेश करने लगे। उनकी बातें सुनने के लिए स्त्री और पुरुष हज़ारों की संख्या में आने लगे। कितने लोगों को नवजीवन प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे उनका नाम संसार में चारों तरफ़ फैलने लगा। सुदूर भारतवर्ष में भी उनका नाम फैल गया। इसके अतिरिक्त अमेरिका के स्थान-स्थान के लोग उन्हें वक्तृता देने के लिए आमंत्रित करने लगे। इसके लिए उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण किया दिन-रात में विश्राम करने को मौक़ा न मिलता था।

इसके अतिरिक्त उनके सामने एक और बड़ी भारी लड़ाई और बड़े परिश्रम का काम आ पड़ा। उस समय अमेरिका के अनेक प्रान्तों में क्रीतदासों का व्यवसाय प्रचलित था। उस समय के बड़े-बड़े विचारशील लोग भी इस व्यवसाय के कारण मनुष्य का दिन-दहाड़े खून होते देखकर भी आँख मूँदकर रह जाते थे, ज़बान न हिलाते थे। बहुत दिनों से यह नृशंस काण्ड चला आ रहा था। कहावत है कि अमुक की दुरावस्था देखकर पाषाण भी पिघल जाता है। परन्तु उस समय अमेरिका की गोरी जातियों का हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर हो गया था। ऐसी अवस्था में करुण भाव दर्शाना, दया का नाम लेना, हास्यास्पद नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? इसीसे गैरिजन और थ्योडोर पार्कर जैसे कोमल-हृदय महात्माओं को सभ्यताभिमानी अमेरिकनों से लोहा लेना पड़ा। गैरिजन ने बहुत पहले से इस अमानुषिक प्रथा के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द कर रक्खी थी। वह 'लिबरेटर' नामक एक पत्र भी निकाल रहा था, जिसका मुख्य उद्देश्य इस प्रथा का उन्मूलन ही था।

सन् १८४६ ईस्वी में एक घटना घटी, जिसने थ्योडोर पार्कर को भी दासत्व-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन में भाग लेने के लिए मजबूर किया। इस साल न्यूआर्लियन्स नगर से बोस्टन शहर का एक जहाज़ बोस्टन को वापस आया। जिस समय जहाज के सब लोग और मल्लाह जहाज से उतर रहे थे, उस समय भूख-प्यास से शीर्णकाय अभागा एक क्रीत-दास छिपने के स्थान से बहुत कष्ट से बाहर आ रहा था। अनुसन्धान करने पर पता चला कि वह अभागा अपने स्वामी के अत्याचार से भाग-कर जहाज में छिप गया था। उसने सोचा था कि बोस्टन शहर पहुँचते ही एकदम स्वाधीन हो जाऊँगा। इसीसे कई दिन तक अन्धेरी जगह में छिपा हुआ, बिना खाये-पिये, पड़ा रहा। किन्तु, हाय! बोस्टन शहर में भी उसे पनाह न मिली! जहाज के कर्मचारियों ने उसे पकड़कर फिर न्यूआर्लियन्स भेज दिया। यह खबर सुनते ही थ्योडोर पार्कर जल भुन कर खाक हो गये। उन्होंने गैरिजन के साथ मिलकर एक बड़ी भारी सभा का आयोजना की। सभा में कई लोगों की समिति बनाई, जिसका नाम 'विजिलैन्स

कमिटी' रक्खा गया इस कमिटी का काम था भागे हुए दासों को देखते ही आश्रय देना और उनकी रक्षा करना। ये लोग दासों को छिपाकर रखने लगे, रात में अन्यान्य स्थानों में उन्हें भेजने लगे, किसी-किसी को यूरोप आदि सुदूर देशों में भी भेज देते। देश में घोर आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। बोस्टन के सारे निवासियों को पार्कर की वक्तृता ने जोश में भर दिया था। अन्त में यहाँ तक हो गया कि जो भागे हुए दास-दासियों को पकड़ने के लिए आते, उन्हें बोस्टन में घुसने तक का साहस न होता। यदि पार्कर को ऐसे किसी राक्षस के आने का पता चलता तो वह बड़े बड़े अक्षरों में इश्तिहार छपवाकर जगह-जगह पर चिपकवा देता, जिसमें लिखा होता—'बोस्टन-वासियो! सावधान! सावधान! मनुष्य पकड़ने वाले बहेलिये शहर में पहुँच गये हैं।' ऐसे इश्तहार के निकलते ही शहर के लोग दल के दल आकर उन होटलों के जङ्गले और दर्वाजे तोड़ने-फोड़ने लगते थे। फलतः उन्हें बाध्य होकर भाग जाना पड़ता था। ऐसा भी दिन बीतता था कि पार्कर को किसी भागी हुई स्त्री को अपने घर में आश्रय दे भरा पिस्तौल मेज पर रखकर उस दिन का उपदेश लिखना पड़ता। दुःख की बात यह हुई कि जब आन्दोलन बड़े जोरों से चल रहा था, उस समय वहाँ की सरकार ने यह क़ानून पास किया कि भागे हुए दासों को कोई आश्रय नहीं दे सकता। इसके पास होने से पार्कर के मन को बड़ा क्लेश पहुँचा। यहाँ तक कि उनके एक घनिष्ठ मित्र ने इस क़ानून के पक्ष में मत दिया था, इसलिए उसका चित्र तक अपने घर से निकालकर उन्होंने फेंक दिया! उसके बाद रविवार को उपदेश देने के समय उपस्थित मंडली से उन्होंने कहा—"मैं इस पापी क़ानून को पैरों से कुचलता हूँ और सुविधा पाते ही मैं इसे तोड़ूंगा।"

वह यही करने भी लगे। उनके विरुद्ध एक मुक़दमा भी चला, पर विपक्षी उनका कुछ कर न सके। पहले धर्म के कट्टर अनुयायी लड़्गहस्त थे। इस समय दासों का व्यवसाय करने वाले लोग घोर शत्रु हो उठे। इतना ही नहीं, वे इनकी हत्या करने तक की तैयारी करने लगे। पर पार्कर ने इस तरफ़ जरा भी खयाल न किया। वह बोले—"जो लोग पाप को आश्रय देते हैं, वे तो कायर होते हैं; भला ऐसे लोगों से मैं क्यों डरूँ?" वह मुँह से जो कुछ कहते उसे कार्यरूप में परिणत भी करते। एक बार वह छिपकर दासत्व प्रथा के पक्षपातियों की एक महासभा में गये थे। कुछ बोलने या अपने को प्रकट करने की बिलकुल इच्छा न थी। उनका केवल यही अभिप्राय था कि वह इस जघन्य प्रथा के पक्ष में क्या कहते हैं, उसे सुनकर बाद में उसका जवाब दें। वह अभी यह नहीं जानते थे कि पार्कर सभा में उपस्थित हैं। एक वक्ता वक्तृता देते देते मन में यह समझने लगे कि मेरी युक्तियाँ इतनी अकाट्य हैं कि पार्कर-सरीखे लोग भी जवाब न दे सकेंगे। इस ज्ञान पर वह बड़े अभिमान के साथ बोले,—"मैं जानना चाहता हूँ कि थियोडोर पार्कर सरीखे इसके उत्तर में क्या कहते हैं?" ज्योंही इतनी बात कही, त्योंही गैलरी के सबसे अखीर वाली बेंच से एक स्वर उठा,—"क्या सचमुच तुम यह जानना चाहते हो कि पार्कर क्या कहता है? तो सुनो!"

एक ही क्षण में हजारों आँखें उस तरफ़ फिरीं। जो लोग पहचानते थे, उन्होंने देखा कि यह तो पार्कर ही है! क्षण भर में यह खबर सभा भर में फैल गई। इतने में हजारों कण्ठ से यह आवाज उठने लगा, 'मार डालो! मार डालो! गैलरी से नीचे गिरा दो!' पार्कर बोला "तुम लोग कायर हो, भला तुममें यह ताक़त कहाँ कि मुझे मार सको? यदि तुममें सामर्थ्य हो, तो लो मारो, मैं यह खड़ा हूँ!" यह कहकर

विशाल छाती फुलाकर वह खड़े हो गये। किसी ने चूँ तक करने का साहस न किया। इसके बाद दासत्व-प्रथा के विरुद्ध वाक्य-बाणों की झड़ी लग गई। सब लोग चित्र-लिखे-से रह गये। वह आये थे पीछे की सीढ़ी से होकर, वक्तृता के समाप्त होने पर सबके सामने होकर चले गये! उनके जाने के कई मिनट बाद तक कोई हिला-डुला नहीं, सभा में मृत्यु की तरह निस्तब्धता छाई रही!

किन्तु इस तरह अभागे दासों के लिए घोर परिश्रम करते-करते उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। मुँह से ख़ून आने लगा। काम-काज करना उनके लिए सम्भव न रहा। अन्त में १८५९ ई० में उनके मित्रों ने उन्हें सपत्नीक यूरोप-भ्रमण के लिए भेजा। फ्रांस, जर्मनी, स्विजर्लेण्ड आदि अनेक देशों में घूमते-फिरते अन्त में वह इटली पहुँचे, किन्तु किसी तरह से भी उनका भयानक रोग दूर न हुआ। वह क्रमशः कमज़ोर होते गये। मृत्यु से कई दिन पहले एक मित्र से बोले,—"ईश्वर ने मुझे जो शक्ति दी थी, उसकी आधी भी मेरे काम न आई।" मरने से कुछ ही देर पहले अपनी स्त्री से बोले,—"बेयरसि! तुम कई दिन तक सोई नहीं हो, मेरे तकिये पर सिर रखकर मेरे पास ज़रा सो रहो।" यह कहकर प्रशान्त चित्त से जिस ईश्वर का गुणगान चिर दिन किया था, उसी की दया का स्मरण करते-करते सन् १८६० ई० की १० वीं मई शुक्रवार को उन्होंने परमधाम की यात्रा की।

उन्होंने अपनी स्त्री को 'बेयरसी' कहकर सम्बोधित किया, इसके सम्बन्ध में एक कहावत है। वह पहले एक बार यूरोप-भ्रमण करने के लिए गये थे। वहाँ उन्होंने एक भालू देखा, जो उन्हें इतना अच्छा लगा कि भालू की तस्वीर देखने पर भी वह प्रसन्न हो जाते। इसीसे प्यार के मारे अपनी स्त्री का नाम बेयरसी अर्थात् भालुकी रक्खा था।

पार्कर मरने के समय अपना पुस्तकालय बोस्टन नगर के निवासियों को उपहार-स्वरूप दे गये। बाद में देखने में आया कि इस पुस्तकालय में ग्यारह भाषाओं में लिखित ७००० पुस्तकें हैं, जिनके पृष्ठ पेंसिल से लिखित टीका-टिप्पणी से भरे हैं। आश्चर्य है कि कार्यों में इतने व्यस्त रहते हुए भी उन्हें इतनी पुस्तकें पढ़ने का मौक़ा किस प्रकार मिला!
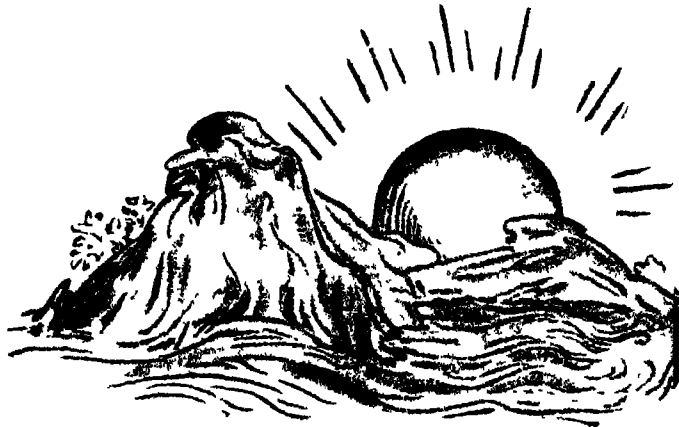
लोहा और उसपर पानी चढ़ाना

[श्री ओंकारनाथ शर्मा]

लोहा कई प्रकार का होता है, और अलग-अलग कामों में भिन्न-भिन्न प्रकार का लोहा इस्तेमाल होता है। खनिज लोहे (Iron ore) में कई प्रकार की बेमेल वस्तुयें मिली रहती हैं – जैसे मिट्टी, गंधक फासफोरस, मंगनीज़ कार्बन, सिलिकन आदि। खान में से निकालकर यह लोहा कारखानों में लाया जाता है और भट्टो में गलाकर इसकी मिट्टी आदि साफ़ की जाती है, लेकिन साफ़ करने पर भी लोहे के साथ गंधक, फासफोरस, मंगनीज़, कार्बन आदि थोड़े बहुत रह ही जाते हैं। इस लोहे को देग़सार (Cast iron) कहते हैं। साफ़ करने के बाद इसे भट्टी में दुबारा पिघलाकर साँचों की सहायता से इसकी टेढ़ी-मेढ़ी शक्ल की वस्तुयें ढाल ली जाती हैं। इस तरह का लोहा खिंचाव और झटक वग़ैरा अधिक नहीं सह सकता। गिरने से, चोट लगने से, यह पत्थर की भाँति टूट जाता है और गरम करने पर हथौड़े की सहायता से मुड़ नहीं सकता, और न फैल सकता है; लेकिन अधिक गरम करने से गलकर पानी के समान पतला हो जाता है, जो साँचों में फिर ढाला जा सकता है।

इसी लोहे को एक विशेष प्रकार की भट्टी में पिघला कर, इसकी गंधक आदि बेमेल वस्तुयें बिलकुल जला दी जाती हैं। उनके जलने पर लोहा अपनी असली हालत में आ जाता है और मोम के छत्ते की भाँति गाढ़ा गाढ़ा लचीला-सा पदार्थ बन जाता है। इस हालत में भी इसके रन्ध्रों में सिलिकन भरा रहता है, जो पीट-पीटकर और मुलायम लोहे को बेलनों से बेल कर निकाल दिया जाता है। सिलिकन निकालने के बाद इस लोहे की चद्दरें और सरिये बना लिये जाते हैं। इस प्रकार का लोहा गलाकर साँचों में नहीं ढाला जा सकता, लेकिन गरम करने पर यह बड़ा ही मुलायम और लचीला हो जाता है और इच्छानुसार पीटकर अनेक शक्लों में बनाया जा सकता है। इसकी चद्दरें, जालियाँ, तार आदि कई उपयोगी वस्तुयें बनती हैं। यह लोहा खिंचाव में बड़ा मज़बूत होता है—झटकों से टूट नहीं सकता, चोट लगने पर मुड़ जाता है। इस लोहे को कच्चा लोहा (Wrought iron) या केवल 'लोहा' कहते हैं।

इसके अलावा एक प्रकार का लोहा और होता है, जिसे स्पात (Steel) कहते हैं। इसमें उपर्युक्त देग़सार और कच्चे लोहे के गुण सम्मिलित रहते हैं। यह स्पात विशेष प्रकार की भट्टियों में विशेष क्रिया से तैयार होता है—स्पात बनाने के लिए कच्चे लोहे में ऊपर से कुछ और कारबन मिला दिया जाता है। कम और अधिक अनुपात में कारबन मिलाने से कई प्रकार का स्पात बन जाता है। स्पात को गलाकर देग़सार की भाँति साँचों में भी ढाल सकते हैं और कच्चे लोहे की भाँति ठोक-पीटकर झुका भी सकते हैं; इसकी चद्दरें और तार भी बना सकते हैं। यह कच्चे लोहे और देग़सार की बनिस्बत मज़बूत होता है। इसकी उपयोगिता के कारण कच्चे लोहे का प्रचार तो आजकल क़रीब-क़रीब उठ ही गया है। स्पात में एक विशेष गुण और है। वह यह कि स्पात की किसी वस्तु को भट्टी में लाल गरम करके यदि पानी या तेल आदि में बुझा दिया जाय तो वह बड़ी सख़्त हो जाती है। इस क्रिया को 'लोहे पर पानी चढ़ाना' या 'आबदारी लगाना' कहते हैं। इसी क्रिया द्वारा तलवार, चाकू, छुरी, कैंची आदि काटने के औज़ारों पर आबदारी लगाई जाती है, जिससे एक बेर उनपर धार लगाने के बाद बहुत समय तक उनकी धार भोंटी नहीं होती। यंत्रों के कई पुर्ज़ों पर भी आबदारी लगाई जाती है, जिससे यंत्र में चलते समय वे रगड़ खाने से घिसें नहीं।

अब हम सब प्रकार के लोहों पर आबदारी लगाने की कई क्रियायें बताते हैं, जिनको कारख़ानों में कारीगर लोग साधारणतया रोज़ काम में लाते हैं और जिनका उपयोग इस लेख के पाठक भी अपनी प्रयोगशाला में कर सकते हैं। आशा है, यह लेख वैज्ञानिक पाठकों और कारीगरों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

लोहे की आबदारी का चित्र

आबदारी के रंग

शतांश-तापक्रम	फ़ारनहीट तापक्रम	औज़ारों पर रंगों का उपयोग
३००°	५७२°	लकड़ी के आरे, कमानियाँ।
२९५°	५६३°	पंचकस, धातु काटने के गोल आरे।
२९०°	५५४°	ठंडी हालत में कच्चा लोहा काटने की छेनी।
२८५°	५४५°	ढलाई के औजार, सुइयाँ, मुलायम लकड़ी के लिए रंदे की तेग़।
२८०°	५३६°	हाथीदाँत व हड्डी चीरनेकी आरी, ठंडे टंगमार व स्पात काटने की छेनी, व स्पात पर ठंडी हालत में काम करने की चापन।
२७५°	५२७°	गरम काम करने की चापन, गिमलट बरमा, बसूला, कुल्हाड़ा।
२७०°	५१८°	डाक्टरों के औज़ार, आगर बरमे, पीतल के बरमे, दबाव से काटने के औज़ार (Pressing Cutters)।
२६५°	५०९°	मोचियों के औजार, लकड़ी में बड़ा छेद करने के औजार, गठनदार बरमे।
२६०°	५००°	लोहे के सांधे गज, पत्थर काटने के औज़ार।
२५५°	४९१°	सख्त लकड़ी के लिए रंदे की तेग, पंच, सुम्मे, ठस्से और ठप्पे।
२५०°	४८२°	कलम वग़ैरा बनाने के चाकू, चूड़ी काटने के टप, चूड़ी सुधारने के चेसर।
२४५°	४७३°	पत्थरों में छेद करने के बरमे, चमड़ा काटने के ठप्पे वग़ैरा, कैंची मशीन की धार।
२४०°	४६४°	हड्डी पर खुदाई करने के औजार, रीमर, मिलिंग मशीन के कटर।
२३५°	४५५°	लकड़ी पर खुदाई करने के औज़ार, काग़ज़ काटने के औजार, लोहे के बरमे, लोहा रंदा करने की मशीन की कलवानी।
२३०°	४४६°	हाथीदांत काटने व उसपर खुदाई करनेके औज़ार, हथौड़ोंकेसिरे, चूड़ी काटने की डाईयां, स्पात रंदा करनेकी मशीन की कलवानी।
२२५°	४३७°	स्पात पर खुदाई करने के औजार, छोटी चीज़ें खरादने के औजार।
२२०°	४२८°	लोहा और पीतल पर काम करने के खुरचने अर्थात स्क्रेपर।

चित्र नं० २

लोहों पर आबदारी लगाने की क्रियायें

लोहे और स्पात को सख्त करने की तैयारी—लोहे या स्पात के जिस पुर्ज़े या औज़ार को सख्त करना हो पहले उसकी शक्ल ठीक कर लेनी चाहिए। उसपर कुछ खुदाई करना, नम्बर लगाना आदि जो भी आवश्यक हो, पहले ही हो जाना उचित है। क्योंकि सख्त करने के बाद इस प्रकार का कोई काम नहीं हो सकता, उस समय उस पर रेती या छेनी नहीं चल सकती। लोहे या स्पात को जिस जगह से सख्त करना हो वहाँ पहले ख़ूब अच्छी पालिश करके उस जगह को चमकीला और चिकना भी कर लेना चाहिए। खुरदरी जगह पर आबदारी लगाते समय रंग वग़ैरा, जैसे आगे समझाये जावेंगे, नहीं दिखाई दे सकते।

साधारण स्पात को सख्त करना—स्पात को सख्त करने के लिए पहले उसे एक निश्चित तापक्रम (Temperature) तक गरम करते हैं, अर्थात् स्पात को तपा कर हिंगुल-जैसा लाल रंग का (Cherry red) बना लेते हैं, और फिर उसे एकदम सीधा पानी या तेल में बुझा देते हैं। बुझाने पर स्पात बहुत सख्त हो जाता है। यहाँ तक कि वह काँच को भी काट सकता है। स्पात को सख्त करने में उसके तापक्रम पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यदि स्पात का तापक्रम नियत तापक्रम से कम हुआ तो बुझाने पर जैसी चाहिए वैसी सख्ती स्पात में नहीं आवेगी, और यदि तापक्रम अधिक हो गया तो स्पात जल जायगा और फिर रद्दी हो जायगा। तापक्रम नियत मात्रा से थोड़ा भी कम या अधिक हो जाने से स्पात बेकार हो जाता है।

स्पात को गरम करते समय एक ऐसा तापक्रम आ जाता है कि उससे आगे कुछ समय तक गरम करने पर वह स्पात गरमी तो लेता रहता है लेकिन उसका तापक्रम प्रत्यक्ष बढ़ता हुआ नहीं प्रतीत होता; इस तापक्रम को निःतेजक बिन्दु (Decalescenee point) कहते हैं। इस सीमा के पार होने पर तापक्रम फिर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यदि स्पात को ख़ूब लाल गरम करके फिर ठण्डा होने दिया जाय तो ठण्डा होते समय एक तापक्रम फिर ऐसा आता है कि उस समय स्पात का तापक्रम थोड़ा-सा अपने-आप बढ़ जाता है, चाहे उसके आसपास की और वस्तुयें ठण्डी ही क्यों न हों; इस तापक्रम को उत्तेजक बिन्दु (Recalescenes point) कहते हैं। इन दोनों निपुण बिन्दुओं (Critical p›ints) के बीच के समय में स्पात की अणु सम्बन्धी बनावट (moleu-lar structure) में परिवर्तन होता है। और इन निपुण बिन्दुओं का स्पात के सख्त होने से बहुत निकट और सीधा सम्बन्ध है। इस कारण यदि गरम करते समय स्पात के तापक्रम को निःतेजक बिन्दु तक पहुँचने के पहले ही रोक कर स्पात को बुझा दिया जाय, तो वह सख्त नहीं होगा; और यदि ख़ूब गरम करके स्पात को ठंडा होने दिया जाय, यहाँ तक कि उसका तापक्रम उत्तेजक बिन्दु से भी नीचे उतर जाय, तो उस समय बुझाने पर स्पात सख्त नहीं होगा। अतएव उचित तापक्रम तक स्पात को गरम करके एकदम सीधा पानी या तेलादि में जल्दी से बुझा देना चाहिए, जिससे उसका तापक्रम उत्तेजक बिन्दु से नीचे न उतरने पाय। ऐसा करने से स्पात के भीतर का कार्बनस्थान में अणु-सम्बन्धी परिवर्तन करके उसे सख्त कर देता है।

आजकल भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पात तैयार किये जाते हैं, जिनमें लोहा और कार्बन भिन्न-भिन्न अनुपात में मिले रहते हैं, जिससे उनके उत्तेजक और निःतेजक बिन्दु भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पातों को एकसा ही सख्त करने के लिए भिन्न भिन्न तापक्रम तक गरम करके बुझाना होता है। और ये तापक्रम गरम स्पात के लाल रङ्ग को देख कर नहीं पहचाने जा सकते, इनके लिए तो एक विशेष प्रकार के तापमापकों (Pyrometers) की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन छोटे और साधारण कारख़ानों में ऐसे बढ़िया-बढ़िया तापमापक और विशेष प्रकार की भट्टियाँ काम में नहीं लाई जा सकतीं, इसलिए यहाँ हम इनका वर्णन नहीं करेंगे। बहुत ऊँचे तापक्रमों का अनुमान कई लोग गरम स्पात पर भिन्न-भिन्न धातुओं के मिश्रण रखकर कर लेते हैं। मिश्रणों के द्रवणांक (Melting point) पहले से ही निश्चित कर लिये जाते हैं, अर्थात् मिश्रण इस प्रकार से तैयार किये जाते हैं कि वे नियत
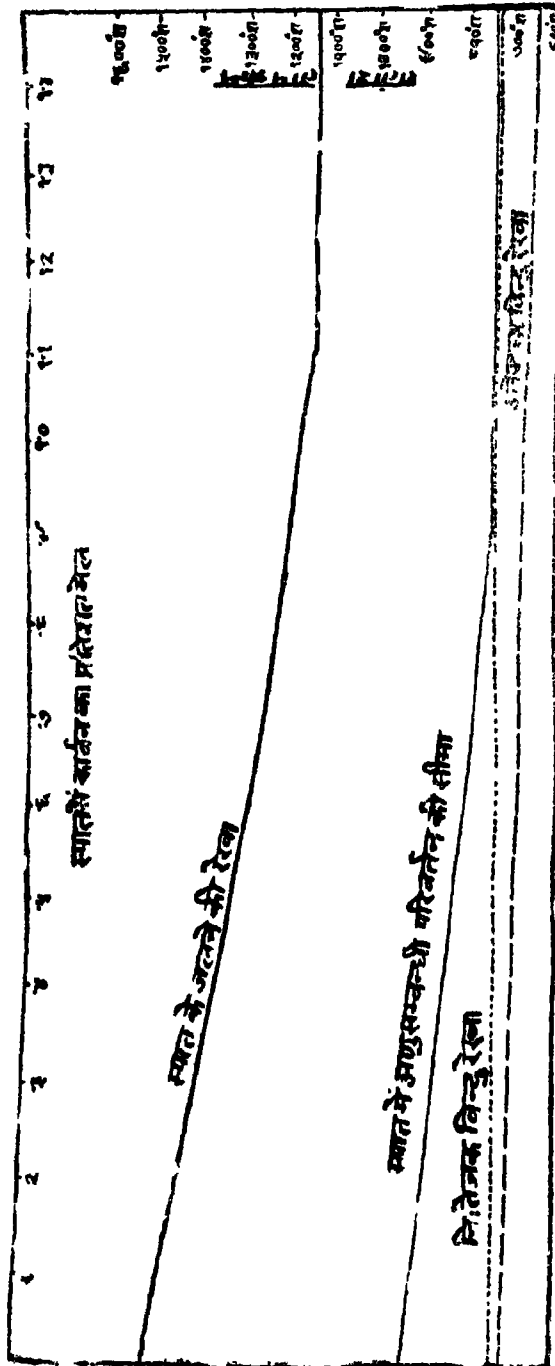
तापक्रम पर गल जायँ। मिश्रण जब गरम स्पात पर रखने से गल जाता है तब समझ लेते हैं कि स्पात नियत तापक्रम तक पहुँच गया। इस प्रकार के कुछ मिश्रणों का वर्णन आगे होगा। चित्र नं० १ से पाठकों को विदित हो जायगा कि भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पातों को कितना गरम करना चाहिए और कितना गरम करने से वह गल जायगा।

स्पात को सख्त करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सब जगह से एकसा गरम हो; नहीं तो कहीं कम और कहीं ज्यादा गरम होने से, भिन्न-भिन्न तापक्रमों के अनुसार, उसके भिन्न-भिन्न भागों में कम और ज्यादा प्रसार होगा, जिससे कि उसके अणुओं में भीतरी खिंचाव (Internal strain) पैदा हो जायगा और बुझाने पर स्पात चटख जायगा।

संक्षेप में, स्पात को सफलतापूर्वक सख्त करने की कुंजी यही है कि उसे सख्त होने वाले न्यूनतम और बढ़ते हुए तापक्रम (Rising heat) पर बुझाना चाहिए, न कि अधिक गरम करके ठंडा होते हुए पर। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि किसी स्पात का निःतेजक बिन्दु ७४०° श है, इसलिए उसे सख्त करने के लिए हमें चाहिए कि ७४०° श से आगे जब उसका तापक्रम बढ़ रहा हो उस समय बुझा दें, न कि भट्टी से निकाल कर जब उसका तापक्रम ७४०° श अथवा ७६०° श से घटकर ७००° श आदि रह गया हो। उस समय वैसे तो उसका उत्तेजक बिन्दु ६५०° श तक भी हो सकता है, और स्पात में सख्ती आ सकती है, पर इसका फल संतोषजनक नहीं होता। इस सबका सारांश यह है कि स्पात गिरती हुई गरमी पर बुझाना ठीक नहीं है।

रंग देखकर स्पात के आबदारी लगाना (पानी चढ़ाना)—पूर्व वर्णित विधि द्वारा स्पात को

चित्र नं० ८

गरम करके बुझाने से तो वह बहुत सख्त हो जाता है, लेकिन इस हालत में स्पात बड़ा कड़कीला हो जाता है और ज़रासी चोट मारने से वह काँच की भाँति टूट भी जाता है। अतएव यह विधि लोहा, पीतल, ताँबा और लकड़ी आदि काटने के तथा अन्य औज़ारों को सख्त करने के काम में नहीं लाई जा सकती। इस काम के औज़ार तो इतने सख्त होने चाहिएँ कि वे लोहे, पीतल, लकड़ी आदि को काट दें और उनकी धार भी न बिगड़े, यहाँ तक की हथौड़े आदि की चोट लगने पर टूटें भी नहीं। इसलिए इस तरह के औज़ारों के अग्र-भाग को पहले तो पूर्व-वर्णित विधि के अनुसार खूब सख्त कर लिया जाता है, फिर दुबारा उसे गरम करके और बुझा कर आवश्यकतानुसार उसकी सख्ती को कम कर लिया जाता है। एक बार सख्त किये हुए स्पात को जितना अधिक गरम करके बुझाया जाता है उतनी ही उसकी सख्ती कम हो जाती है। इस गरमी का अनुमान निम्नलिखित प्रकार से अक्सर किया जाता है। सख्त किये हुए स्पात को यदि किसी पत्थर की सिल्ली या सरेस काग़ज़ से रगड़ कर साफ़ करदें तो वह स्पात चाँदी की भाँति चमकने लग जायगा। और इस चमकते हुए स्पात को फिर यदि धीरे-धीरे गरम किया जाय तो उसकी चमकीली सतह पर हवा के कारण अम्लजिद (Oxide) जमने से ज्यों-ज्यों ताप-क्रम बढ़ता जायगा तरह-तरह के रंग बदलते जायँगे, जैसे कि चित्र नं० २ में दिखाया है। किसी नियत रंग को देखकर उसी समय उस तापक्रम पर स्पात को एकदम पानी में बुझा दिया जाय तो स्पात आवश्यकतानुसार उतना ही सख्त हो जायगा। पुराने कारीगर इन्हीं रंगों को देखकर स्पात के तापक्रम का अनुमान लगा लेते थे।

रंग देखकर आबदारी लगाने की विधि की कमज़ोरियाँ—यह विधि अब भी काम में आती है और इससे अच्छी सफलता भी मिलती है, लेकिन आजकल यंत्र-विद्या की अधिक उन्नति हो जाने के कारण इस विधि से काम चलना कठिन हो गया है। आजकल अनेक प्रकार के स्पात बनने लगे, जिनमें कार्बन आदि का भिन्न-भिन्न प्रकार और अनुपात से मिश्रण होता है; इसलिए एकही तापक्रम पर सब प्रकार के स्पातों पर एकसा रंग नहीं दिखाई दे सकता। आजकल बड़े कारख़ानों में थोड़े से समय में अधिक मात्रा में काम करने की कोशिश की जाती है, लेकिन इस विधि से काम बहुत धीरे-धीरे होता है। इस कारण बड़े-बड़े कारख़ानों में बिजली और गैस की भट्टियों द्वारा स्पात को नियत तापक्रम तक ठीक-ठीक गरम करके एकदम बुझा दिया जाता है, जिससे रंग आदि देखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। कई लोग रंगों को पहचानने में भी ग़लती कर दिया करते हैं, अतएव वे लोग इस विधि का उपयोग नहीं कर सकते; प्रकाश के कम-ज्यादा होने पर भी रंग कुछ का कुछ दिखाई देने लगता है। इन कारणों से स्पात के औज़ारों में जैसी आबदारी लगनी चाहिए उसमें इस विधि से काम करने वाले साधारण कारीगरों को सफलता नहीं मिलती। तब भी यह विधि बहुत सुगम और सस्ती है, प्रत्येक कारीगर इसका अभ्यास करके शीघ्र काम उठा सकता है। यहाँ पर एक रंगीन चित्र दिया जाता है, (देखिए चित्र नं० २), उसमें पाठकों को स्पात के भिन्न-भिन्न तापक्रम और उस समय साया में, अर्थात सूर्य की धूप से दूर, स्पात पर दिखाई देने वाले रंग मिलेंगे। इसीके साथ में यह भी बता दिया गया है कि किन-किन औज़ारों पर ये रंग दिखाई देते ही उन्हें पानी में बुझा देना चाहिए।

उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि लोहा काटने के लिए हमें चित्र नं० ३ वाली एक छेनी पर आबदारी लगानी
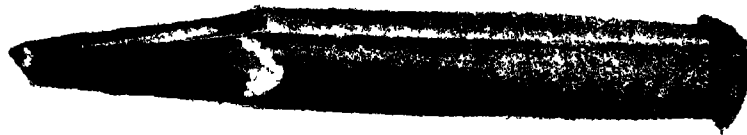
चित्र नं० ३

है। पहले तो हमें चाहिए कि हम इसे भट्टी में रखकर सबको हिंगुल-जैसी लाल तपालें, फिर ऊपर के सिरे को संसी (सण्डासी) से पकड़ कर धार के सब सलामी भाग को पानी में बुझा दें। ऐसा करने से यह भाग बहुत सख्त हो जायगा। लेकिन ऊपर के शेष भाग अब भी बहुत गरम रहेगा, इससे ऊपर के भाग का ताप परिचालन (Conductor) द्वारा धार के सलामी भाग में आवेगा। यदि इस समय इस भाग को पत्थर की सिल्ली द्वारा रगड़ कर साफ़ कर दें तो यह चाँदी-जैसा चमकने लगेगा; पर ज्यों ही इसका तापक्रम बढ़ने लगेगा, इसका रंग पीला पड़ने लगेगा और फिर बादामी रंग होता हुआ नीला हो जायगा। लेकिन हमें रंगीन चित्र देखने से पता चलता है कि ५५०° तापक्रम होने पर इसे बुझाना आवश्यक है, इसलिए गहरा बैंगनी रंग होते ही हमें इस सबको पानी में बुझा देना चाहिए। और औज़ारों के भी इसी तरह आबदारी लगाई जा सकती है।

इस तरह से आबदारी लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि गरम औज़ार के किसी विशेष भाग को बुझाते हुए एक ही जगह न रक्खा जाय बल्कि उसे सदा हिलाते रहना चाहिए, नहीं तो कहीं कम और कहीं ज़्यादा सिकुड़ने से स्पात पानी की सतह के पास से चटख़ जायगा। चटख़ने का कारण, जैसा पहले कहा गया है, स्पात को एक-सा गरम न करना भी हो सकता है।

कई प्रकार के औज़ारों और यंत्रों के पुर्ज़ों के बहुत ठीक-ठीक (सही) आबदारी लगानी पड़ती है, इसलिए उन्हें नियत तापक्रम तक सही-सही गरम करना पड़ता है। इस प्रकार के काम के लिए बिजली और गैस की भट्टियाँ चाहिएँ; लेकिन इन भट्टियों में बहुत ख़र्चा करना पड़ता है, इसलिए छोटे-छोटे कारख़ानों में मामूली लोहार की भट्टी पर ही तेल, सीसा या नमक में औज़ारों को गरम किया जाता है और फिर बुझा दिया जाता है। इस तरकीब से औज़ार एकसा गरम होता है और उसका तापक्रम भी नियत तापक्रम से बहुत अधिक नहीं घटने-बढ़ने पाता। तथा काम भी कुछ जल्दी और अच्छा होता है।

तेल में गरम करना—औज़ार को गरम करने के लिए ऐसा तेल लेना चाहिए कि जिसमें बहुत अधिक तापक्रम पर आग लगे, अर्थात् जिसका प्रज्वलन बिन्दु (Flbashpoint) बहुत अधिक हो, जिससे तेल द्वारा औज़ार गरम हो सके। कोई भी अच्छा-सा यंत्रों में लगाने का खनिज तेल (Mineral oil) काम दे सकता है। तेल ऐसा होना चाहिए कि गरम करने पर उसमें से धुआँ न निकले, नहीं तो काम करने में अधिक बाधा पड़ेगी। तेल में ख़र्चे की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, सस्ते तेल से काम बिगड़ने की भी सम्भावना रहती है। जब अधिक संख्या में छोटे-छोटे औज़ारों और पुर्ज़ों के एकसी आबदारी लगानी होती है तब उन्हें तेल में एकसाथ गरम किया जाता है। तेल को किसी लोहे के बरतन में भरकर भट्टी पर गरम होने के लिए रख दिया जाता है। औज़ारों और पुर्ज़ों को किसी जाली या तार से बाँध कर गरम तेल के बीच में इस प्रकार लटका दिया जाता है कि वे बरतन के पेंदे और दीवारों को न छूने पावें और तेल के साथ नियत तापक्रम तक गरम हो जावें। तेल का तापक्रम किसी तापमापक-द्वारा देखा जाता है। नियत तापक्रम पर पहुँचने पर सब पुर्ज़ों और औज़ारों को पानी या तेल आदि में, जैसी आवश्यकता हो, बुझा दिया जाता है।

यदि औज़ार पर आबदारी की रंगत नीली, बैंगनी, लाल, पीली आदि करनी हो तो उस औज़ार को पूर्व-वर्णित रीति से लाल तपाकर और पानी आदि में बुझाकर ख़ूब सख़्त कर लेना चाहिए। फिर उसे ख़ूब साफ़ करके, यहाँ तक कि वह ख़ूब चमकने लग जाय और उसपर ज़रासी भी तेल की चिकनाई न रहे, गरम तेल के बरतन में पहले की भाँति जाली वग़ैरा से तेल के बीच में लटका देना चाहिए। जब तेल की गरमी नियत तापक्रम से कुछ अधिक पहुँच जाय तब औज़ार को उसमें से निकाल कर और अस्बस्टोस (Asbestos) आदि से उसकी चिकनाई पोंछकर बुझा देना चाहिए। चिकनाई पोंछने पर हवा के लगने से उसपर इच्छानुसार रंगत आजायगी।

तेल में औज़ार को गरम करते समय थोड़ा-थोड़ा ताज़ा तेल भी डालते रहना चाहिए, नहीं तो अधिक गरम होने

से कुछ समय बाद तेल के जल उठने का डर रहता है।

कई नाज़ुक औज़ार जो पानी में बुझाने से चटख़ जाते हैं, तेल में बुझाये जाते हैं; तेल में बुझाने से उसमें पानी में बुझाने की बजिस्वत कम सख्ती आती है। नाज़ुक कमानियों को अकसर आग में हलका लाल गरम करके तेल में बुझा दिया जाता है और फिर किसी गरम लोहे पर रखकर उनकी सख्ती मुलायम की जाती है; नियत रंग आने पर उन्हें पानी में बुझा देते हैं।

सीसे में गरम करना—जब कि छोटे-छोटे पुर्ज़ों और औज़ारों को थोड़े समय में सख्त करना होता है, तब एक घड़िया में सीसे को गला कर उसमें औज़ारों को गरम किया जाता है। इस तरह से औज़ार और पुर्ज़े बहुत जल्दी और एकसे गरम होते हैं। अकसर बाइसिकल और कपड़ा सीने की मशीन आदि छोटे-छोटे पुर्ज़े और रेती, बरमे आदि औज़ार इसी तरह गरम करके सख्त किये जाते हैं। सीसे को गलाते समय घड़िया के नीचे और चारों तरफ़ एकसी आग रखनी चाहिए, जिससे गले हुए सीसे का तापक्रम सब जगह एकसा रहे। इसके लिए जो सीसा काम में लाया जाय उसमें गन्धक का मेल बिलकुल नहीं होना चाहिए, क्योंकि सीसे में मिली हुई गन्धक से औज़ारों का स्पात कमज़ोर हो जाता है।

घड़िया में गले हुए सीसे की सतह पर, हवा के कारण, सीसे का अम्लजिद जम जाता है, जिससे काम करने में बड़ी बाधा-सी पड़ती है; इसलिए उसपर पहले से कुछ कोयले का चूरा डाल देना अच्छा होगा। इससे सीसे का अम्लजिद सतह पर नहीं जमने पायगा।

रंगीन चित्र को देखने से पता चलता है कि हमें आबदारी लगाने के लिए ३००°श के तापक्रम से लेकर २२०°श के तापक्रम तक की गरमी की ही अकसर आवश्यकता पड़ती है और शुद्ध सीसा ३२७°श पर गलता है, अतएव अकसर इसके द्रवणांक को कम करने के लिए सीसे में टीन या ऐन्टीमनी धातुओं का मेल कर देते हैं। ऐन्टीमनी टीन से सस्ता पड़ता है। सीसे के साथ टीन पर ऐन्टीमनी के मिश्रणों के द्रवणांक नीचे तालिका में दिये जाते हैं—

सीसे में टीन का प्रतिशत मेल	१०%	२०%	३०%	४०%	५०%	६०%
मिश्रण का द्रवणांक	३००°श	२७५°श	१५५°श	२३०°श	२१०°श	१८५°श

सीसे में ऐन्टीमनी का प्रतिशत मेल	५%	१०%	१३%
मिश्रण का द्रवणांक	२९०°श	२७०°श	२५०°श

नोट—यदि सीसे का तापक्रम ३००°श है तो उसपर सागवान की लकड़ी का टुकड़ा डालने से उसका काला कोयला हो जायगा, और यदि तापक्रम ४३०°श है तो उस लकड़ी का चमकता हुआ अंगारा हो जायगा।

इस विधि से लाभ—

१—सीसे या उसके मिश्रण को द्रवणांक पर या उससे दो-चार तापांक आगे रखना बहुत सरल है।

२—इस मिश्रण-विधि से तापमापक बिना ही सीसे के तापक्रम का अच्छा ख़ासा अंदाज़ा लग सकता है और औज़ारों पर इच्छानुसार आबदारी सही और जल्दी लग सकती है।

३—एक बार काम में लाया हुआ सीसा फिर भी कई बार काम में लाया जा सकता है।

४—भिन्न-भिन्न प्रकार के औज़ारों को गरम करने के

लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का मिश्रण नियत और तैयार करके रख दिया जा सकता है, जो आवश्यकता पड़ने पर एकदम काम में लाया जा सकता है।

नमक में गरम करना—आबदारी लगाने के लिए स्पात को गले हुए नमक में भी गरम किया जाता है। नमक के द्वारा स्पात बहुत ऊँचे तापक्रम तक और एकसा गरम हो सकता है। नमक को घड़िया में डाल कर भट्टी में गरम किया जाता है। ८०१°श तापक्रम होने पर मामूली नमक गल जाता है, उसमें औज़ार बड़ी सुगमता से उपर-वर्णित सीसे की भाँति गरम किये जा सकते हैं। गले हुए नमक का १४९° श तापक्रम होने पर नमक का द्रव उबलने लग जाता है। ८०१°श का ताप बहुत अधिक होता है इसलिए रंगीन चित्र के अनुसार औज़ारों के आबदारी लगाने के काम में नहीं आ सकता; इस तापक्रम पर स्पात को गरम करके बुझाने से तो वह बहुत सख्त हो जाता है। इसलिए नमक का द्रवणांक कम करने के लिए उसमें शोरा और कास्टिक सोडा मिला दिया जाता है। शोरे का द्रवणांक ३३१°श और कास्टिक सोडे का द्रवणांक ३१८°श होता है। उचित रीति से मिश्रण तैयार करने से किसी भी आवश्यक तापक्रम पर गलने के लिए मिश्रण तैयार किया जा सकता है, लेकिन वह भी ३००°श के ऊपर ही होगा। तापक्रम के लिए नमक बड़ा अ-चालक (Non-conductor) होता है, इसलिए गले हुए नमक की सतह पर हवा के कारण पपड़ी जम जाती है। नमक में डालने के पहले स्पात का औज़ार ठंडा होता है, इसलिए गले हुए नमक में डुबोने पर उसके आसपास का नमक भी ठंडा होकर जम जाता है, और जबतक औज़ार का तापक्रम उस नमक के द्रवणांक से अधिक नहीं होता तब-तक नमक की पपड़ी उसपर जमी ही रहती है। औज़ार को बाहर निकालने पर उसके लगा हुआ नमक फिर चारों ओर जम जाता है, लेकिन उससे कोई हानि नहीं होती। नमक अचालक पदार्थ है, इसलिए वह स्पात के तापक्रम को गिरने नहीं देता; ठंडी हवा में रहने पर भी औज़ार ठंडा नहीं होने पाता। पानी में बुझाते ही नमक पानी में घुल जाता है और औज़ार बिलकुल साफ़ निकल आता है, उसपर किसी प्रकार का ज़ंग या धब्बा नहीं लगने पाता।

स्पात को नमक में गरम करने से लाभ—मान लीजिए कि हमें एक स्पात को ७५०°श पर गरम करके बुझाना है। इसके लिए हमें चाहिए कि शोरा वग़ैरा मिला कर एक ऐसा मिश्रण तैयार करलें कि वह ७६०°श पर गल जाय। इस मिश्रण को गलाने के लिए और गला हुआ रखने के लिए कम-से कम ७६०°श तक तो गरमी पहुँचानी ही पड़ेगी, इसलिए ७५०°श तक हमारा स्पात भी गरम हो ही जायगा। और यदि इस तापक्रम से १०° या २०° अधिक भी गरमी पहुँच जाय तब भी कोई हानि नहीं। स्पात को नमक में से बाहर निकालने पर ठंडी हवा लगने से उसके चारों ओर नमक जम जायगा। इससे हमें सूचना मिल जायगी कि अब स्पात का तापक्रम ठीक ७६०°श हो गया है और अब इसे पानी वग़ैरा में बुझा देना चाहिए। इस विधि से एक अनाड़ी कारीगर भी, जिसे इसका कुछ भी अनुभव नहीं, ठीक-ठीक बिना किसी तापमापक की सहायता के इच्छानुसार स्पात को सख्त कर सकता है।

खोल सख्त करना (Case hardening)—पाठकों को यह तो मालूम ही है कि लोहे में गन्धक, फासफोरस, मैंगनीज़ और कार्बन आदि वस्तुयें मिली रहती हैं। गंधक आदि वस्तुओं का भेद तो अनावश्यक और हानिकारक है, लेकिन कार्बन एक आवश्यक द्रव्य है, इसके कम-ज्यादा होने और इसकी दशा (State) में परिवर्तन होने से लोहे के गुणों में भी बहुत परिवर्तन हो जाता है।

देग़सार लोहे की खोल सख्त करना—देग़सार लोहे में कार्बन २% से ५% तक होता है सफ़ेद देग़सार में कार्बन रासायनिक रीति से मिला रहता है, इस कारण वह देग़सार लोहा बहुत सख्त होता है। काले देग़सार लोहे में कार्बन शुद्ध रूप में अर्थात् ग्रेफ़ाइट के रूप में मिश्रित (Mechanically mixed) रहता है, इस कारण वह लोहा बहुत मुलायम रहता है।

अधिकतर यंत्रों के पुर्ज़े काले देग़सार के बनाये जाते हैं; लेकिन कई दफ़ा केवल उनकी ऊपरी सतह को ही सख्त करने की आवश्यकता पड़ती है, जिससे यंत्र में काम करते

समय उनका ऊपरी भाग तो घिसे नहीं और भीतरी हिस्सा मुलायम बना रहे। इस प्रकार के पुर्ज़े एक विशेष क्रिया द्वारा ढाले जाते हैं, जिससे उनकी खोल सख्त हो जाती है। इस क्रिया को लोग ठंडी ढलाई (Chilled castin g) कहते हैं।

ठंडी ढलाई—के लिए जो साँचे (Mould) बनाये जाते हैं उनमें मिट्टी की सतह के भीतर लोहे की चद्दरें और नल लगा दिये जाते हैं, जिनमें ठंडा पानी भर दिया जाता है या बहता रहता है लेकिन सांचे की मिट्टी बिलकुल सूखी और ठंडी होनी है और गला हुआ लोहा साँचे में जल्दी-जल्दी ढाला जाता है। इस तरह से जो-जो लोहे के भाग साँचे की ठंडी दीवारों से छुवेंगे उनकी गरमी जल्दी से पानी में चली जायगी और लोहे का कार्बन रासायनिक क्रिया द्वारा लोहे में मिल जायगा। इस क्रिया से ढाले हुए पुर्ज़ों में उनकी सफ़ेद देग़सार की ऊपर की सतह तो सख्त हो जायगी और काले देग़सार का भीतरी भाग मुलायम ही रहेगा।

देग़सार को लोहे के पुर्ज़ों की ऊपरी सतह ढालने के बाद भी निम्नलिखित क्रिया द्वारा सख्त कर सकते हैं। जिन पुर्ज़ों को सख्त करना हो उन्हें भट्टी में, एक-सा लाल गरम कर लिया जाता है; फिर परसुएट आफ़ पोटास (Prussiate of potash), शोरा और नौसादर के समान भाग का चूर्ण बनाकर उसपर सब जगह खूब मल दिया जाता है और फिर उसी हालत में (जब कि वह लाल-गरम है) ठंडे पानी, परसुएट आफ़ पोटास और शोरे के घोल में बुझा दिया जाता है। यह घोल २ औंस परसुएट आफ़ पोटास, ४ औंस नौसादर और एक गैलन ठंडे पानी का तैयार किया जाता है।

कच्चे लोहे की खोल सख्त करना—कच्चे लोहे में कार्बन बिलकुल नहीं होता और यदि होता भी है तो .१५% तक। यदि इससे अधिक कार्बन हुआ तो वह स्पात की गिनती में आ जाता है। स्पात में .१५% से लेकर २.०% तक कार्बन होता है। स्पात भी कार्बन के अनुसार तीन प्रकार का होता है। यथा (१) मुलायम स्पात; इसमें .१५% से लेकर .२०% तक कार्बन होता है। इस स्पात की चद्दरें और तार वग़ैरा बनते हैं। (२) साधारण स्पात; इसमें .२% से लेकर .९% प्रतिशत तक कार्बन होता है। इस स्पात से यंत्रों के लिए अनेक प्रकार के पुर्ज़े बनाये जाते हैं। (३) कठोर अथवा औज़ारों का स्पात; इस में .९% से २.०% तक कार्बन होता है। इस स्पात के औज़ार आदि बनाये जाते हैं, और यंत्रों के कई प्रकार के पुर्ज़े भी बनते हैं। इस प्रकार के स्पात को पूर्व-वर्णित रीतियों द्वारा सख्त भी कर सकते हैं और इसके आबदारी भी लगा सकते हैं। लेकिन पहले और दूसरे प्रकार के स्पात में कार्बन थोड़ा होता है, और वह कच्चे लोहे के समान ही होता है, इसलिए वे इच्छानुसार सख्त नहीं किये जा सकते—हाँ, इस प्रकार के स्पात के पुर्ज़े के ऊपर की सतह को अर्थात् खोल को सख्त कर सकते हैं और भीतर का भाग मुलायम रह सकता है। इस काम के लिए जिन क्रियाओं का वर्णन अभी होगा उनमें किसी न किसी प्रकार से स्पात की ऊपरी सतह में से भीतर कुछ गहराई तक अधिक कार्बन पहुँचाया जाता है, जिसके कारण स्पात के पुर्ज़े का ऊपरी भाग स्पात का हो जाय और भीतरी भाग मुलायम रहे और फिर उन पुर्ज़ों को मामूली तरह गरम करके बुझाने से ऊपर का स्पात सख्त हो जाय। इस विधि को खोल सख्त करना (Case-hardening) कहते हैं।

प्रथम विधि—इस विधि द्वारा कार्बन स्पात में अधिक गहराई तक पहुँचता है। एक कच्चे लोहे के सन्दूक में पुर्ज़े बंद कर दिये जाते हैं और उनके साथ में उनके सब ओर इस प्रकार के द्रव्य भर दिये जाते हैं कि जो पुर्ज़ों को सन्दूक में गरम करने पर कारबन दे सकें—जैसे कि हड्डियों का चूरा, जला हुआ चमड़ा और कोयला आदि। पुर्ज़ों को इन द्रव्यों के साथ बड़ी सावधानी से बंद किया जाता है कि जिससे पुर्ज़े एक-दूसरे से आपस में या संदूक की दीवारों से न छूने पावें और सब ओर से वे हड्डी के चूरे आदि से घिरे रहें। संदूक को बन्द करके उसके चारों तरफ मिट्टी से पोत देते हैं और फिर सबको भट्टी में रख कर गरम करते हैं। धीरे-धीरे उसका तापक्रम चिःतेजक बिन्दु के कुछ आगे तक बढ़ाया जाता है, अर्थात् लगभग ७७५° श तक, और कुछ घंटे तक भट्टी का वही तापक्रम

रखते हैं। यदि अधिक गहराई तक कार्बन पहुँचाना है, तो सन्दूक को अधिक देर तक गरम रखते हैं; और यदि थोड़ी गहराई तक ही कारबन पहुँचाना है; तो थोड़ी देर तक। अकसर मामूली काम के लिए ३ घंटे से ६ घंटे तक गरम रक्खा जाता है। फिर बकस को वहीं भट्टी में अपने-आप धीरे-धीरे ठंडा होने दिया जाता है। ठण्डा होने पर पुर्ज़ों को निकाल कर और साफ़ करके, दुबारा लाल गरम करके,

इस काम के लिए एक अच्छी भट्टी की आवश्यकता है, जोकि संदूक़ को सब तरफ़ से एकसा गरम कर सके और बहुत समय तक एकसा तापक्रम बनाये रक्खे भट्टी जलने वाली चीज़ें संदूक के पास नहीं रहनी चाहिएँ बल्कि उनकी लौ से संदूक गरम करना चाहिए। इस प्रकार की एक भट्टी का चित्र यहाँ दिया जाता है (देखिए चित्र नं०४।

पोटेशियम साइनाइड द्वारा कच्चे लोहे की
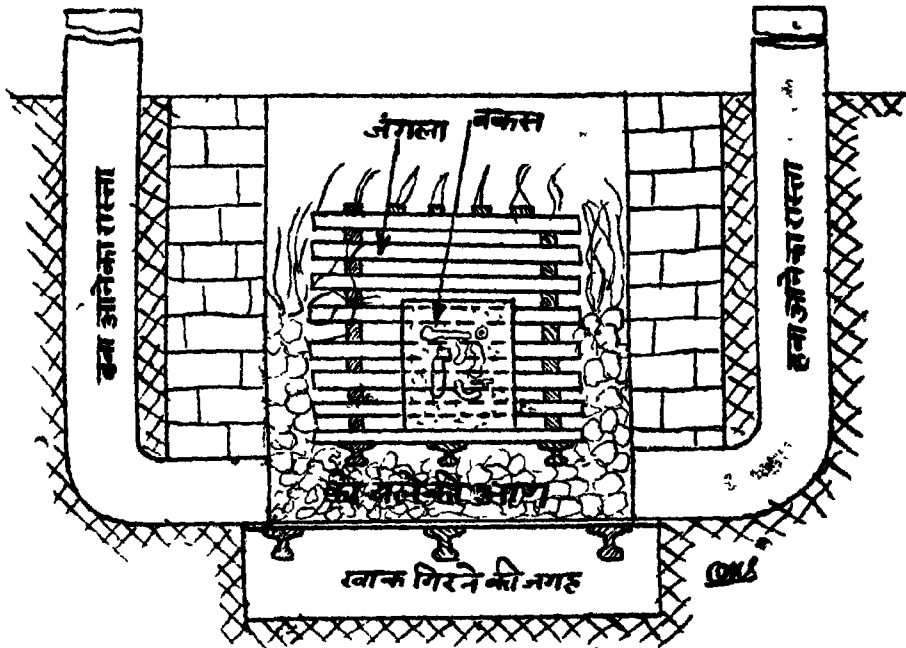
चित्र नं० ४

पानी या तेल में बुझा दिया जाता है। इस विधि से उन पुर्ज़ों की खोल सख्त हो जाती है।

कई कारख़ानों में गरम सन्दूक़ को ही खोल कर पुर्ज़ों को एकदम पानी या तेल में बुझा देते हैं। लेकिन इस तरह पुर्ज़े सब तरफ़ से एकसे सख्त नहीं होते, कहीं-कहीं मुलायम जगह रह जाती है और पुर्ज़ा बेकाम हो जाता है।

खोल सख्त करना—पूर्व-वर्णित विधि द्वारा लोहे की खोल १/८ अथवा ३/१६ इंच की गहराई तक सख्त हो सकती है, लेकिन वह कुछ समय अवश्य लेती है। अब अधिक गहराई तक खोल को सख्त करने की आवश्यकता नहीं है और काम जल्दी करना है, तब पोटेशियम साइनाइड द्वारा खोल को सख्त कर लेते हैं।

प्रथम विधि—पोटेशियम साइनाइड * को किसी बरतन में गला लिया जाता है। जब गले हुए साइनाइड का तापक्रम १८००°फ के लगभग हो जाता है तब जिन पुर्ज़ोंकी खोल गरम करनी है उन्हें किसी जाली या तार द्वारा बरतन के बीच में लटका देते हैं, जिससे कि वे बरतन के किनारों को न छूने पावें। १५ से ३० मिनट तक पुरज़ों को इस प्रकार गरम करने के पश्चात् जब कि पुर्ज़ों का और गले हुए पोटेशियम साइनाइड का एकसा तापक्रम हो जाता है, तब उन्हें उसमें से निकालकर पानी आदि में बुझा देते हैं। बुझाने के पश्चात् उनकी खोल सख्त हो जाती है।

दूसरी विधि—कई कारीगर पुरज़ों को लाल गरम करके उनकी सतह पर, अथवा जहाँ से पुर्ज़े को सख्त करना हो वहाँ, पोटेशियम साइनाइड * का चूर्ण मल देते हैं। जब चूर्ण मलते-मलते साइनाइड का धुँआँ उठना बंद हो जाता है तब उसे एकदम पानी में बुझा देते हैं। इस प्रकार से भी पुर्ज़े की खोल सख्त हो जाती है। कई लोग पोटैशियम साइनाइड के चूर्ण की जगह निम्नलिखित चूर्ण काम में लाते हैं। इसके द्वारा कुछ और भी उत्तमता से कार्य होता है—

परसुएट आफ पोटास (पीला)—७ भाग
(Yellow pruassiate of potash)
बाइक्रामेट आफ़ पोटास—१ भाग
(Bicromate of potsah)
साधारण नमक—८ भाग

आबदारी लगाने के विषय की अन्य बातें

आबदारी लगाने के लिए औज़ार को खुली भट्टी में गरम करते समय स्पात के ऊपर की सतह का कार्बन हवा के आक्सिजन (Oxygen) से मिलने लगता है, जिससे कार्बन के निकल जाने से औज़ार के ऊपर की सतह का स्पात कुछ कमज़ोर पड़ जाता है; इसलिए इससे इच्छा के विपरीत परिणाम होता है। इस कारण कई नाज़ुक और क़ीमती औज़ारों की ऊपरी सतह को बचाने के लिए गरम करने से पहले एक प्रकार की लेई से ढक देते हैं। यह लेई इस प्रकार से तैयार की जा सकती है—५ भाग आटा, ५ भाग नमक और २ [illegible]ग जला हुआ चमड़ा; इन्हें मिलाकर पानी के साथ इनकी [illegible]ई बनाकर औज़ार के ऊपर पोत देना चाहिए और फिर गरम करना चाहिए।

कई औज़ारों और पुर्ज़े के विशेष भाग को ही सख्त करने की आवश्यकता पड़ती है और बाक़ी के भाग मुलायम रहते हैं। इस तरह के औज़ारों के उन भागों को जिन्हे मुलायम रखना है किसी तापावरोधी (Fire proof) रंग से ढक देना चाहिए और बाकी के भागों को खुला रहने देना चाहिए, फिर भट्टी में इस प्रकार गरम करके बुझाने से रँगे हुए भाग मुलायम ही रह जायँगे।

कई बेर छोटे-छोटे औज़ारों के सिरों को गरम करके उन पर या तो आबदारी लगानी पड़ती है या उनकी आबदारी उतारनी पड़ती है; और जब तापावरोधी कोई रंग नहीं मिलता है तो कई कारीगर उन औज़ारों के शेष भाग को, जिन्हें गरम नहीं करना है, किसी कच्चे आलू वग़ैरा में घुसेड़ देते हैं और फिर भट्टी* में आलू समेत होशियारी से गरम करते हैं, जिससे आलू वग़ैरा को अधिक नुक़सान नहीं पहुँचने पावे और वह सिरा जिसे गरम करना है इच्छानुसार गरम भी हो जाय।

गरम किये हुए औज़ारों को बुझाना

सब प्रकार के औज़ार और पुर्ज़ों को, आबदारी लगाते समय, पहले तो साधारण भट्टी में अथवा किसी अन्य प्रकार से जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है नियत तापक्रम तक गरम करते हैं और फिर पानी या तेलादि में बुझा देते हैं। गरम करने के विषय में तो काफ़ी लिखा जा

---

* आवश्यक सूचना—पोटेशियम साइनाइड और उससे उत्पन्न धुआँ बड़ा विषैला होता है, इसका प्रयोग करते समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिए।

* मैंने भट्टी के स्थान पर एक स्पिरिट की स्टोव से काम लिया है और संतोषजनक परिणाम प्राप्त किया है। —लेखक

चुका है, लेकिन बुझाने के लिए अभी तक केवल पानी और तेलादि का ज़िक्र ही हुआ है। बुझाने के लिए निम्न-लिखित बातें जाननी आवश्यक हैं।

पानी में बुझाना—बुझाने के लिए जल स्वच्छ और ठंडा होना चाहिए। यदि जल हलका (Soft water) अथवा बरसाती हो तो और भी उत्तम है। यह नहीं समझना चाहिए कि जल जितना ठण्डा हो उतना ही अच्छा; बहुत ठंडे पानी में औज़ार को बुझाने से औज़ार बहुत ही जल्दी ठण्डा हो जाता है, जिससे उसके चटखने और टूटने का डर रहता है।

मामूली काम के लिए पानी का तापक्रम २०° श से २५° श तक रहना चाहिए। औज़ारों को बहुत सख्त करने से उनमें भीतरी खिंचाव (Internal strain) पैदा हो जाता है, जिनके कारण उसके टूटने का डर रहता है; इसलिए कई कारीगर सख्त करने के बाद उन्हें उबलते हुए पानी में छोड़ देते हैं, जिससे उनका भीतरी खिंचाव बहुत कुछ दूर तो हो जाता है लेकिन उनकी सख्ती भी कुछ कम हो जाती है। इसमें अधिक हानि नहीं, सख्ती के कारण औज़ार के बिलकुल टूटने से उसका कुछ मुलायम होना अच्छा है। यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी में किसी प्रकार के तेज़ाब का मेल न हो; इस प्रकार के जल में (जिसमें तेज़ाब का मेल है) औज़ार बुझाने से चटख जाता है। यदि जल में किसी प्रकार की चिकनाई का मेल हुआ तो बुझाने पर सख्त नहीं होगा।

खारी पानी में बुझाना—कई बेर ऐसा होता है कि पानी में औज़ार को बुझाते समय उसके चारों ओर वाष्प की एक तह आ जाती है, जिससे पानी का औज़ार पर कुछ कम असर होता है। इसलिए कई लोग पानी में कुछ क्षार मिलाकर भी उसे बुझाने के काम में लाते हैं। पानी में ३ या ४ प्रतिशत नौसादर या नमक मिलाने से कार्य उत्तमता से होता है। बरसाती पानी में नमक या नौसादर मिलाना और भी उत्तम है, रेतियों को इसीमें अक्सर बुझाया जाता है।

यदि स्पात को सब जगह से एक-समान और सही सख्त करना हो तो उसे बुझाते समय निम्नलिखित मिश्रण उपयोग में लाना चाहिए, लेकिन यह मिश्रण बड़ा ज़हरीला होता है इसलिए उपयोग करते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिए—

६४० भाग जल, ३ भाग सेंधानमक, २ भाग शोरा, २ भाग नौसादर, और २ भाग पारदिक हरिद (corrosive sublimate)। यदि स्पात को अत्यन्त कठोर करना है तो उसे २० भाग जल और १ भाग यशद हरिद (Zinc chloride) के मिश्रण में बुझा देना चाहिए।

तेल में बुझाना—तेल में बुझाने से स्पात बहुत अधिक सख्त नहीं होता, पानी के मुक़ाबले में तेल में भीतरी खिंचाव कम पैदा होता है और पुर्ज़े या औज़ार का भीतरी भाग काफ़ी मुलायम रहता है; इसलिए इसमें बुझाने से स्पात चटखता भी नहीं है। बुझाने के काम के लिए, बिनौले या अलसी का तेल काम में लाया जाता है। व्हेल मछली का तेल भी अच्छा होता है। यदि चाहें तो मिट्टी के तेल से भी काम ले सकते हैं, लेकिन उसे ठंडा रखना चाहिए और गरम स्पात को एक दम भीतर डुबो देना चाहिए। धीरे-धीरे डुबोने से उसमें आग लगने का डर रहता है।

बुझाने के विषय में अन्य बातें—यह कई बार अनुभव से जाना गया है कि बुझाते समय कोई कोई पानी औज़ार से दूर रह जाता है; जैसे कि किसी लकड़ी को कोई गाढ़ी चिकनाई लगाकर पानी में डुबा दिया जाय और उसके पानी न लगे; लेकिन औज़ार के साथ में इसका परिणाम यह होता कि औज़ार सख्त नहीं होने पाता। ऐसी हालत में यदि पानी में ¼ भाग हरोजाम्ल (Muriatic acid) मिला दिया जाय तो उत्तम हो।

जब कि कोई नाज़ुक क़ीमती और छोटे औज़ार के आबदारी लगानी होती है तब कारीगर के मन में यह विचार उठता है कि इसे पानी में बुझाना चाहिए या तेल में। यदि पानी में बुझाया जाय तो सम्भव है वह औज़ार चटख जाय, और यदि तेल में बुझाया जाय तो सम्भव है उसमें सख्ती ही न आय। मान लीजिए कि उसने औज़ार को तेल में बुझाया और बुझाने से वह सख्त नहीं हुआ, यदि वह उसे दुबारा गरम करके फिर बुझाता है तो ज़रूर ही स्पात

चटख जायगा और औज़ार बेकार हो जायगा। ऐसी हालत में यदि आधा पानी और आधा गिलीसरीन मिलाकर उसमें बुझा दिया जाय तो अवश्य ही परिणाम संतोषदायक होगा। इसका कारण यह है कि गिलीसरीन या तेल पानी में मिलते नहीं हैं और हमेशा हलके होने के कारण ऊपर ही तैरते रहते हैं। औज़ार को बुझाते समय वह पहले तेल में होकर आता है; वहाँ कुछ थोड़ा-सा बुझ जाता है, लेकिन बिलकुल सख्त नहीं होने पाता। फिर आगे जाकर पानी में पहुँचता है। वहाँ जाकर अधिक सख्त हो जाता है। यदि पानी के ऊपर गिलीसरीन की तह दो इंच गहरी हो तो भी बहुत संतोषदायक परिणाम मिलता है।

स्पात अथवा अन्य किसी प्रकार के लोहे को तपाकर ठंडा करना, मुलायम करना और आबदारी उतारना Annealing)—स्पात के किसी पुर्ज़े या औज़ार को जब गरम करके पीटते हैं, या गढ़ते हैं, उस समय उसमें भीतरी खिंचाव पैदा हो जाते हैं, और जब उसमें आबदारी लगाते हैं उस समय वे भीतरी खिंचाव और भी अधिक हो जाते हैं; इसलिए उसके टूटने की अधिक संभावना हो जाती है। आबदारी लगाने के पहले इस भीतरी खिंचाव को कम करने की आवश्यकता पड़ती है। इस भीतरी खिंचाव को कम करने की विधि को मुलायम करना अथवा आबदारी उतारना (Annealing) कहते हैं।

स्पात के पुर्ज़ों को मुलायम करने और उनकी आबदारी उतारने के लिए उन्हें पहले भट्टी में लाल गरम कर लेते हैं (हिंगुल-वर्ण) और फिर कोयले की ख़ाक या भिगो कर बुझाये हुए चूने (Slaked lime) के ढेर में दबा देते हैं; इसके बाद अपने आप ठंडा होने देते हैं। दबाने का आशय यह है कि उसके बाहर की ठंडी हवा उसे न लगने पाय और स्पात धीरे-धीरे ठंडा हो। क्योंकि जल्दी ठंडा होने से स्पात में सख्ती आ जाती है। जब बहुतसे पुर्ज़ों और औज़ारों को मुलायम करना होता है तब उन्हें एक साथ किसी लोहे के बक्स में चूने, ख़ाक और मिट्टी में दबाकर और बक्स बंद करके भट्टी में गरम करते हैं। जब बक्स का तापक्रम निःतेजक बिन्दु से कुछ ऊपर तक पहुँच जाता है, जहाँ स्पात के कार्बन की अणु-सम्बन्धी बनावट में परिवर्तन होने लगता है, तब स्पात में जो भीतरी खिंचाव पैदा हो गये हैं वे सब कम हो जाते हैं या बिलकुल ही ग़ायब हो जाते हैं। फिर भट्टी की आग बुझा दी जाती है और बक्स को अपने आप ही ठंडा होने दिया जाता है। ठंडा होने पर पुर्ज़े और औज़ार बक्स में से निकाल लिये जाते हैं।

जब स्पात के पुर्ज़ों या औज़ारों को बहुत ही जल्दी मुलायम करना होता है तब उन्हें भट्टी में लाल गरम करके हवा में धीरे-धीरे ठंडा करते हैं। अँधेरे में देखने पर जब स्पात में थोड़ी-सी लाली रह जाय और कालापन जब अधिक दिखाई देने लगे, तब उसे ६५° श के गरम पानी में बुझा देते हैं। इस विधि से स्पात काम के लायक काफ़ी मुलायम हो जाता है।

लोहाम्लजिद के साथ बक्स में बंद करके यदि ढेगदार लोहे के किसी पुर्ज़े को लाल-गरम कर लिया जाय और फिर बक्स में ही उसे धीरे धीरे ठंडा होने दिया जाय, तो वह भी बहुत ही मुलायम हो जाता है और उसके भीतरी खिंचाव भी मिट जाते हैं।

इस लेख को समाप्त करने के पहले पाठकों को यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त सब विधियाँ आजकल सब कारख़ानों में कारीगर लोग रोज़ काम में लाते हैं और कई वर्षों के अनुभव से ये सब सफलताप्रद सिद्ध हो चुकी हैं, लेकिन नये कारीगरों के लिए यह नहीं कह सकते कि वे भी एक-दो प्रयोग में ही पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेंगे। सफलता प्राप्त करने के लिए अनुभव, धैर्य और लगातार परिश्रम करने की आवश्यकता है। लेख के विस्तार-भय से बहुत सी उपयोगी बातें छोड़ दी गई हैं और कई बातें संक्षेप में बताई गई हैं। यदि यह लेख पाठकों को रुचिकर और उपयोगी सिद्ध हुआ तो इस विषय पर फिर विस्तार से प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी।

धर्म-विकास

[श्री ओ० एस० पथिक, बी० काम०]

हिन्दू-जाति में अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए। उन्होंने जीवन-पर्यन्त समाज-सेवा की और समाज के उत्कर्ष में वे अनेक प्रकार से कारणभूत हुए। उन्होंने लोगों में सद्धर्म की लगन पैदा की। अनेक सामाजिक सुधारों का नेतृत्व ग्रहण कर समाज और देश की प्रगतियों को उन्होंने प्रोत्साहन दिया। जाति-भेद, मूर्ति-पूजा, स्त्री-शिक्षा, प्रौढ़-विवाह, विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा, अस्पृश्यता-निवारण, राष्ट्रीय शिक्षा आदि के अनेक विषयों पर उन्होंने अपने लेखों और भाषणों से लोक-मत जागृत किया। लोगों में धर्म की सच्ची लगन पैदा हो, इसके लिए उन्होंने अत्यंन्त स्वार्थ-त्याग किया। आज जिन संस्थाओं-द्वारा सुधार-कार्य हो रहा है, वह उनके परिश्रम व आस्था का उत्तम द्योतक है। हम किसी भी देश का धर्मेतिहास देखें, तो अपने सुख की पर्वाह न कर अपने समाज का हित कैसे हो, इस ओर जिनकी लगन लग गई है, ऐसे बहुत ही थोड़े मनुष्य हमें दिखाई पड़ते हैं। लोग ईश्वर को पहचानें, उसका मंगल आदेश सुनें और तदनुसार अपना आचरण रक्खें, उसकी पूर्ति के लिए हिन्दू-जाति के अनेक स्त्री-पुरुषों ने पिछले कितने ही वर्षों से लगातार परिश्रम किया है। विवेकानन्द, दयानंद, राममोहनराय, रानडे, भंडारकर और महात्मा गाँधी प्रभृति महापुरुषों के चरित्र आज सर्वतोमुखी हो गये हैं। देश की सामाजिक, धार्मिक अथवा राष्ट्रीय कोई भी हलचल हो, उस चल में इन नेताओं ने भाग लिया है। आज हमें इन आन्दोलनों में जो सफलता दृष्टिगोचर होती है, उसका अधिकाँश श्रेय उन्हीं को है। आजतक इस देश में अनेक धर्म-पन्थ व सम्प्रदायों ने जन्म लिया और संस्थापकों के निधन के उपरान्त उनका नामशेष हो गया। आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज व ब्रह्मसमाज आदि का धर्म कोई नवीन धर्म नहीं, पूर्व की धार्मिक परम्परा क़ायम रखने का ही प्रयत्न है। वैदिक काल में सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, अग्नि, तेज, वायु व अन्य सृष्टि के चमत्कार देखकर उसके द्वारा ऋषि-मुनियों ने परमेश्वर का दर्शन किया। आगे उपनिषद्काल में परमेश्वर के सम्बन्ध में ऋषि-मुनियों की कल्पना अधिक विस्तृत व प्रगल्भ हो गई। चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रादि भिन्न-भिन्न शक्ति न हो एक ही महान् शक्ति का भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं, यह कल्पना प्रत्यक्ष में आई है। यथा—

> न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकम।
> नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः॥
> तमेव भांतं अनुभाति सर्वं।
> तस्य भासा सर्वमिदम् विभाति॥

अर्थात्, उसके आगे सूर्य प्रकाशवान नहीं है, चन्द्र-तारागण प्रकाशवान नहीं हैं, यह विद्युत प्रकाशवान नहीं है। यह अग्नि कहाँ से प्रकाश देगी? उसके प्रकाश के पीछे ही सब प्रकाशित होते हैं, उसके प्रकाश से ही ये सब प्रकाशवान होते हैं। अथवा—

> अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे,
> अस्मात्स्यन्दन्ते सिंधवः सर्वरूपाः।
> अतश्च सर्वा ओषधयोरसश्च,
> येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥

अर्थात् उसीसे सब समुद्र व पर्वत उत्पन्न हुए; उसीके

योग से सब नदियाँ बहती हैं, उसीसे सब वनस्पति उत्पन्न हैं, उनमें रस का आर्विभाव होता है, और उसी रस के सेवन से मनुष्यों की यह अंतरात्मा भौतिक शरीर से संबद्ध रहती है। उसीके अनुसार—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणि च।
खं वायु र्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥

अर्थात् उसी से प्राण मन, सर्वइन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल, समस्त विश्व को धारण करने वाली पृथवी भी उत्पन्न होती है। इसकी अपेक्षा उदात्त कल्पना, अर्थात्

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवास.
साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च॥

'देव एक है, वह सर्व भूतों में गूढ़ हो व्याप्त है, वह सर्वव्यापी है, वह सर्व भूतों की अंतरात्मा है। सब कर्म और सब व्यापार जो होते हैं, उसकी देख-भाल और व्यवस्था करने वाला अधिष्ठाता वही है। वह सब भूतों में वास करता है; वह सब बातो का साक्षी है; वह सबको चेताता है, उसमें देश काल व वस्तु की कोई उपाधि नहीं है। अर्थात् अमुक देश पर्यंत उसका विस्तार, अमुक काल-पर्यंत उसकी स्थिति, अथवा अमुक एक वस्तु के समान हो, ऐसा नहीं। उसके गुण असीम हैं, वे परिमित नहीं हैं।" इस प्रकार परमेश्वर के दर्शन ऋषि-मुनियों ने सृष्टि-सौन्दर्य के द्वारा किये।

इसके आगे परमेश्वर सृष्टि-सौन्दर्य के द्वारा दृष्टिगोचर होने के अलावा प्रत्येक के अंतः करण में वास कर सन्मार्ग में चलाने की प्रेरणा करता है, और असत्य मार्ग से परावृत्त करता है—यह कल्पना अस्तित्व में आ। इसके बाद पुराण काल में, ईश्वर-सम्बन्धी कल्पना बहुत ही बदल गई। पूर्व की उदात्त और पवित्र कल्पना के स्थान पर परमेश्वर के सम्बन्ध में अत्यन्त संकुचित एवं मानव-प्रगति की विरोधकारी कल्पना उत्पन्न हुई। मनुष्य-रूप में देवी-देवता अस्तित्व में आये। मनुष्यों के अनुसार देवी-देवताओं का व्यवहार होने लगा। मनुष्य के परस्पर के कलह में देवतागण भाग लेने लगे। परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के बलिदानों का रूप प्रकट हुआ। ईश्वर क्या है, उसका हमारा सम्बन्ध क्या है, उस सम्बन्ध में हमारा कर्तव्य क्या है, उसकी पूजा अर्चा किस प्रकार करना, हममें व अन्य मनुष्यो में सम्बन्ध क्या है, व इस सम्बन्ध में हमारा कर्तव्य क्या है, स्त्रियों की सच्ची योग्यता क्या है, इत्यादि ऐसी ही अनेक बातों के सम्बन्ध में सर्वत्र घोर अज्ञान फैल गया।

छोटी जातियों में ईश्वर-प्राप्ति किंबहुना अशक्य हो गई। ईसा की मध्यस्थता के बिना जिस प्रकार मनुष्यों को मुक्ति का द्वार नहीं खुला था उसी प्रकार हव्य-कव्य क्रिया व अन्य धार्मिक कृत्य-भट-भिक्षुकों की सहायता बिना करना उनके लिए दुस्तर हो गया। और यह किये बिना पुण्य-प्राप्ति नहीं और बिना पुण्य-प्राप्ति के मोक्ष-प्राप्ति नहीं, ऐसी अज्ञान लोगों की अवस्था हो गई। ऊँची जातियों से जो कुछ थोड़ा-सा ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान उन्हें प्राप्त होता, उतने से ही छोटी जातियाँ अपना सन्तोष करती थीं। छोटी जातियों के कुछ वर्णों के सम्बन्ध में, पशुओं की अपेक्षा मनुष्य का स्पर्श ऊँची जातियों के लिए असह्य हो गया। स्त्रियों के सम्बन्ध में अत्यन्त मिथ्या कल्पना क़ायम की गई। कुछेक विशेष बुद्धिमान स्त्रियों को धर्म-ज्ञान प्राप्त हुआ, यह सत्य है; किन्तु समष्टि रूप से स्त्री-जाति के अज्ञान-अन्धकार में ही रहने से देश की आधी शक्ति मृत-प्राय

हो गई। पोथी-पुराण और कीर्तन-श्रवण करने के अलावा उनकी शिक्षा की ओर कभी ध्यान नहीं गया। इसके आगे ईश्वर की कृपा से व मानव-जाति के भाग्य से बौद्ध धर्म प्रकट हुआ और फिर धर्म-सुधारणा का अवसर आया। मृत्यु-पाश से मनुष्यों का छुटकारा नहीं, यह जानकर बुद्ध को वैराग्य प्राप्त हुआ और अपने समस्त ऐश्वर्य और राज्य पर लात मारकर उसने संन्यास-वृत्ति ग्रहण की। कितने ही वर्ष तक बौद्ध धर्म भारतवर्ष में क़ायम रहा। लाखों इस धर्म के अनुयायी हो गये। परन्तु संसार से विरक्तता व कठोर तपस्या के कारण इस देश में बौद्ध धर्म अधिक समय तक नहीं टिका। बौद्ध-धर्म के नियम कितने कड़े थे और संसारी लोगों के लिए कितने अव्यवहारिक थे, वह नीचे के कुछ नियमों को पढ़कर ध्यान में आ सकता है —

१. प्रत्येक बौद्ध भिक्षुक चिन्दियों का अंगरखा पहने।
२. वह अपने हाथ का सिला हुआ तीन टुकड़ों का जुड़ा हुआ हो।
३. उस अंगरखे पर एक पीला झगा डाले।
४. वह एकभुक्त रहे।
५. दो प्रहर के उपरांत अन्न न सेवन करे।
६. भिक्षा पर ही अपना निर्वाह करे।
७. वर्ष का कुछ भाग जंगल में बितावे।
८. वृक्षों की छाया के सिवा दूसरे किसी स्थान पर विश्राम न करे।
९. चटाई के टुकड़े के सिवा दूसरी कोई वस्तु अपने पास न रक्खे।
१०. नींद ले रहा हो तो चटाई पर ले।
११. बैठना हो तो वृक्ष के नीचे बैठे।
१२. मानव-जीवन की क्षण-भंगुरता का ध्यान रखकर कुछ काल तक श्मशान-वास करे।

ये मुख्य कठोर नियम हैं। इनके अलावा जीवन-सम्बन्धी अन्य नियम बौद्ध धर्म ने भिक्षुओं के लिए बतलाये हैं। परन्तु अन्य दृष्टि से बौद्ध धर्म ने कुछ उपयुक्त धर्म-सुधारणा भी की। मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त करने के लिए स्वार्थत्याग के समान दूसरा साधन नहीं है, यह एक कल्पना बौद्ध धर्म से हिन्दू-धर्म को प्राप्त हुई। इसी प्रकार की और भी कुछ बातें बौद्ध-धर्म से प्राप्त हुईं। किसी मनुष्य ने एक बार बौद्ध धर्म स्वीकार किया कि फिर वह किसी जाति का हो, बन्धु-समान माना जाने लगा। उस स्थान पर किसीके लिए ऊँच-नीच भाव नहीं था। बुद्धं सरणं गच्छामि, धर्म्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि, यह मन्त्र एक बार बौद्ध भिक्षु ने उच्चारण किया कि बौद्ध-धर्म का वह एक घटक हो गया। विश्वबंधुत्व की एक कल्पना बौद्ध धर्म से सर्वत्र प्रचलित हुई। बुद्धदेव छोटा बड़ा, विद्वान-अविद्वान, अमीर ग़रीब, यह भेद न मानकर सबसे प्रेम से मिले, जाति भेद की कल्पना ही उनके मन में उत्पन्न नहीं हुई। मनुष्य-प्राणी एक है, फिर चाहे वह भारतवर्ष का हो या विदेश का हो। एक बार बुद्धदेव एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए बैठे थे। उस स्थान पर एक अछूत जाति का मनुष्य आया। उसके पास दूध था। भगवान् बुद्ध ने उससे दूध पीने को माँगा। वह अछूत बोला—"मैंने नीच जाति में जन्म लिया है, मैं आपको दूध किस प्रकार पीने को दूँ?" उस समय भगवान् बुद्ध ने जो उत्तर दिया, वह अत्यन्त मननीय है।*

---

*यह संवाद सर एडविन अर्नोल्ड ने अपनी Light of Asia नामक पुस्तक में कविता में वर्णन किया है, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

And the boy worshipped,
deeming him some God;
But our Lord gaining breath,
arose and asked,

आगे बहुत काल तक चारों ओर से मुसलमानों के और अन्य प्रदेशों के लोगों के इस देश पर धावे होते रहे। इन चढ़ाइयों से देश की अवस्था अनिश्चित हो गई। कब कहाँ से चढ़ाई होगी, यह भय लोगों को बना रहता था। किसी भी धार्मिक कल्पना का विकास होने के लिए जिस शांति और शांतिपूर्ण स्थिति की आवश्यकता होती है, उसका उस समय देश में पूर्ण अभाव था। साथ ही, अनेक छोटे-बड़े राज्य इस देश में क़ायम हुए और उनके परस्पर कलह से सब ओर उन्नति का मार्ग बन्द हो गया।

Milk in the shepherd's lota
"Ah my Lord,
I cannot give thee,
I am a Sudra,
and my touch defiles'
Then the World-honoured spake
'Pity and need
Make all flesh kin.
There is no caste in blood,
Which runneth of one hue,
nor caste in tears,
Which trickle salt with all,
neither comes man
To birth with tilaka-
mark stamped on the brow,
Nor sacred thread on neck.
Who doth right deeds
Is twice-born, and who doth
ill deeds vile."
"Give me to drink, my brother;
when I come
Unto my quest it shall be
good for thee".
"There at the peasant's heart
was glad and gave"
who doth right deads is twice
born and who doth ill deeds vile"

कौन प्राणी किस समय झपेट में आ जायगा, इसका ठिकाना नहीं रहा।

ऐसी स्थिति में परमेश्वर के सम्बन्ध में फिर इस देश में अज्ञान फैल गया। इसलिए भगवान ने लगातार एक के बाद एक पाँच सौ वर्ष की अवधि में एक से एक ऊँचे संतों की मंडली भारतवर्ष में भेज कर लोगों को सोते से जगाया। सारे देश को भक्ति-रस से परिपूर्ण कर दिया। एक ही संत, परन्तु उसकी सामर्थ्य देखो तो अनेक प्रकार की। वही भक्त, वही कवि, वही धर्म-शास्त्री, वही तत्ववेत्ता, वही कार्यकर्त्ता, वही राजनीति-विशारद और वही सद्धर्म-रक्षक, ऐसे अनेक गुण एक ही पुरुष में प्रकट हुए। यह भी ईश्वर की महान् कृपा समझनी चाहिए। अपने भजन, पद, बानी, अभंग और अनेक प्रकार के काव्य-प्रभुत्व से सारे देश में अकपोल-कल्पित धर्म-क्रान्ति इन महात्माओं ने की। घर-घर ब्रह्मज्ञान की चर्चा होने लगी। ईश्वर एक व सारा देश एक, इस एक ही भावना ने सारे देश को प्रेरित कर दिया। हिन्दुओं को मिलाओ और हिन्दूधर्म की विजय करो, ऐसा उपदेश दे अनेक महात्माओं ने हिन्दू-राज्य-शक्ति को जीवन दिया। इन पंक्तियों का लेखक महाराष्ट्र नहीं और न उसमें प्रान्तीयता का कोई भाव है। वह तो समस्त भारतभूमि के लक्ष्य कर लिखता है। उसका यह विचार है कि इस देश में श्रीकृष्ण के उपरांत दूसरी हिन्दू शक्ति समर्थ रामदास के रूप में प्रकट हुई। जो काम श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कराया, वही काम रामदास ने शिवाजी से कराया। रामदास ने बड़े गज़ब की स्फूर्ति उत्पन्न की। कबीर ने भी हिन्दू-धर्म में समानता का नवीन भाव पैदा किया। महाराष्ट्र के तुकाराम ने तो यहाँ तक कह डाला कि विष्णुमय जग, वैष्णवांचा धर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगल। कैसा सदुपदेश है! यह

विलक्षण धर्म-क्रान्ति हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए हुई। उस समय विचार और एकता होने का श्रेय इसी धर्म-क्रान्ति को है। इस सन्त-मण्डली में सब जातियों के लोग हुए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, कुनबी, जुलाहा, माली कुम्हार, सोनार और अस्पृश्य माने हुए वर्ग में से कुछ संत हुए। इन सबोंने अपने काव्य-माधुर्य और उत्कृष्ट भक्तिभाव से पूर्व के बड़े-बड़े संस्कृत ग्रन्थों में लिखे हुए ईश्वर-विषयक ज्ञान को सब के लिए सुलभ कर दिया।

इस संत-मंडली में मीराबाई के समान अनेक स्त्रियाँ भी हुईं। परमेश्वर की मनोभाव से पूजा करना, उससे अपने मनोगत भाव प्रकट करना, और इस संसार में उससे सहायता माँगने का अधिकार किसी एक विशेष जाति, धर्म, और देश का नहीं, प्राणीमात्र का है—इस प्रकार के उदात्त भाव इन साधु-संतों ने प्रकट किये। विश्वपति की विभूतियाँ चारों ओर से प्रकट हुईं। उन्होंने हिन्दू-धर्म में उत्क्रान्ति की और भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रौढ़ किया। शेक्सपियर और वर्डस्वर्थ जैसे कवियों के काव्य पढ़कर हम उनके कृतज्ञ होते हैं और स्कूल तथा कालेज में उनके काव्यों के अनेक पारायण करते हैं। शेक्सपियर ने मनुष्य की मनोभावना को अपने नाटकों-द्वारा चित्रित किया, किन्तु उस स्थान पर लोगों की धार्मिक अभिरुचि के लिए ज़रा भी स्थान नहीं। उसी प्रकार वर्ड्सवर्थ ने सृष्टि-सौन्दर्य को काव्य-रूप में लोक-निदर्शन के लिए बड़े ही स्वाभाविक रूप में प्रकट किया। सृष्टि की दूसरी ओर कोई अद्भुत शक्ति है, इसकी अपेक्षा उन्नतर धर्म कल्पना वह अपने काव्य में ला ही नहीं सका। पर तुलसीदास के मनुष्य की मनोभावना और सृष्टि-सौन्दर्यमय काव्यों को देखो। अनेक विद्वानों का मत है कि पंचवटी पर्वत पर का वर्णन महाकवि तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण से बिलकुल नहीं लिया। तुलसीदास का वह सृष्टि-वर्णन व्यावहारिक भक्तिरस-परिपूर्ण है। इसमें काव्य का अत्यन्त अपूर्वत्व प्रकट हुआ है। तुलसीदास की सृष्टि-सौन्दर्य की पंक्तियाँ धर्म और नीति-शिक्षण के लिए असमान्य हैं। कुछ चौपाइयाँ देखिए—

> पंक न रेणु सोह अस धरनी।
> नीति-निपुण नृप की जस करनी॥
> फूले कमल सोह सर कैसे।
> निर्गुण ब्रह्म सगुण भय जैसे॥
> शरदातप निशि शशि अपहरई।
> सन्त दरसि जिमि पातक टरई॥

वर्ड्सवर्थ की एक भी पंक्ति महामति तुलसीदास की इस कविता के सामने नहीं ठहर सकती। तुलसीदास और तुकाराम के काव्य सारे विश्व के लिए अमर काव्य हैं। यदि हम अपने सभी संतों के प्रति विचार करें तो मालूम होगा कि परमेश्वर की ओर निष्ठा करने के लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर सृष्टि-सौन्दर्य का उपयोग किया है। और यह निष्ठा एक बार दृढ़ हुई कि फिर सब भेदभाव तत्काल मिट जाते हैं, यह एक विशेष महत्व की बात इन कामों में हमें दिखलाई पड़ती है। सृष्टि-सौन्दर्य और ईश्वर-भक्ति का परस्पर संबंध किस प्रकार का है, उसका जो सुन्दर और प्रसादपूर्ण वर्णन इन संतों ने किया है, उसकी समता अँग्रेजी का कोई भी काव्य नहीं कर सकता।* इतना ही नहीं; बल्कि हमारे अन्तःकरण में भक्तिभाव उद्दीपन करने के लिए इतनी प्रौढ़ और प्रगल्भ शब्द-योजना अन्य स्थान पर कदाचित् ही दिखाई पड़े। परमेश्वर और उसके भक्त का एक बार संबंध होने पर उसके मन की क्या अवस्था

** इस सम्मति में हमें संस्कृतिगत पक्षपात की छाया दिखाई पड़ती है। —संपा०*

होती है, उसका इतना उपयुक्त और हृदयस्पर्शी वर्णन दूसरे स्थान पर मुश्किल से मिलेगा। सब संतों का परमेश्वर के सम्बन्ध में एक मत है। मूर्ति-पूजा का भाव इन साधु-संतों के काव्य से हमें प्रकट भी होता हो; किन्तु वास्तविक रूप में उनके उपदेश की धारा देखी जाय तो निष्कर्ष यही निकलता है कि सबके अन्तःकरण में वास करने वाला जो परमात्मा है, उसी की उपासना मनोभाव से प्रत्येक प्राणी करे और इहलोक एवं परलोक सार्थक करे। सभी संत कवि किसी नये धर्म का उपदेश नहीं देते हैं। वे तो वेद और उपनिषद के उदात्त तत्त्वों को प्रकट करते हैं।

जिन कबीर साहब ने अपने गुरु रामानंद से हिन्दू धर्म का ज्ञान प्राप्त किया था, उन्हें भी बीजक में यह कहना पड़ा था कि वे पूर्व-कथित बातों को ही अपने मुख से प्रकट करते हैं। स्वामी रामानन्द ने जो धार्मिक क्रान्ति की, उससे अनेक वर्षों से बिछुड़े हुए लोग उत्साहपूर्वक मिलकर उठ खड़े हुए। उन्होंने यह कहा—

> जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
> हरि को भजे सो हरि का होई॥

इस प्रकार उन्होंने उन लोगों को भक्ति-मार्ग का उपदेश दिया, जो उस समय तक ईश्वरीय ज्ञान से वंचित थे। उन्होंने ही दलितों के आगे यह भाव प्रकट किया—

> ऐसे राम, दीन-हितकारी।
> हिंसा-रत निषाद तामस वपु पसु समान बनचारी।
> भेंट्यो हृदय लगाइ, प्रेमबस, नहिं कुल-जाति बिचारी॥

इसका परिणाम यह हुआ कि जिनकी छाया पड़ने से ऊँची जाति के लोग अपवित्र हो जाते थे, वे ही संत उनके लिए परम पवित्र और पूज्य भगवद्भक्त हो गये। सदना कसाई, सेननाई, नामदेव छीपी, दादूदयाल मोची, नाभादास डोम, कृष्णदास गडरिया और खागनियां तेलिन आदि संतों ने हिन्दू-जाति का महान् उपकार किया। मीराबाई तो रैदास सन्त की चेली थी, जो जाति के चमार थे। इन सन्तों के भक्ति-प्रचार का यह प्रभाव पड़ा कि श्री वल्लभाचार्य ने अपने सम्प्रदाय में जाति-पांति का कोई भेद नहीं रक्खा। नाभादास और कृष्णदास वल्लभी कवि थे। इन संतों ने जो धर्म-क्रान्ति की है, उसका मूल उद्देश्य यही था कि जो लोग अत्यंत घृणित अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करते हैं वे उठ खड़े हों। ईश्वर नहीं चाहता कि कोई ऊँच और नीच हो। इन्होंने जाति-पांति के ढकोसले को मिटाकर ईश्वर के ज्ञान का प्रचार किया।

इसी प्रकार महाराष्ट्र में भी तुकाराम, एकनाथ और नामदेव सन्तों ने ऊँच-नीच का भाव न रखकर परस्पर प्रेम-पूर्वक रहने की शिक्षा दी। बंगाल में भी ऐसे ही संत हो गये हैं। इन सन्तों ने परमेश्वर का जो सीधा-सादा रूप प्रकट किया और लोगों को जाति-पांत का भेद हटाकर धर्म का जो तत्व बताया उससे उन्होंने धर्म की सच्ची सेवा की। उन्होंने जितना काम किया, उतना शायद ही किसी धर्माचार्य ने किया हो।

इन सन्तों ने ईश्वर के सब पुत्रों को जाति-भेद नष्ट कर प्रेम-पूर्वक रहने का महान् उपदेश दिया। हमने अपने महाराष्ट्र-भ्रमण में सूरदास और तुलसीदास के समान नामदेव और तुकाराम के पदों का प्रचार देखा। ये पद देव-मन्दिरों में गाये जाते हैं, रास्ते में भीख मांगनेवाले भिखारी गाते हैं। और प्रार्थना-समाज तक में गाते हुए हमने सुने हैं। बंबई में चौपाटी पर एक महाराष्ट्र सूरदास-नामदेव का यह पद प्रायः नित्य गाते हैं—

कुंचल भूमिवरी उगवली तुलसी।
अपवित्र तयेसीं म्हणों नये ॥
काकविष्ठे मांजीं जन्मे तो पिंपल।
तया अमंगल म्हणों नये ॥
दासीचिया पुत्रा राज्यपद आलें।
उपमा मगील देऊं नये ॥
नामा म्हणे तैसा जाती चा मी शिंपी।
उपमा जाती ची देऊं नये ॥

खराब जमीन पर उगी हुई तुलसी को अपवित्र न कहो, काक-विष्ठा में उगे हुए पीपल को बुरा मत कहो, दासीपुत्र को राजपद मिलने पर यह मत कहो कि वह पहले क्या था। नामदेव कहते हैं कि मैं जाति का शिंपी हूँ। मेरी जाति का उल्लेख मत करो। ऐसे पवित्र उपदेश देने वाले सन्त कवियों की कितनी महिमा है, उसे तुकाराम महाराज कहते हैं और उस पद का नित्य ही पारायण होता है—

पवित्र तो कूल पावन तो देश।
जेथें हरीचे दास जन्म घेती ॥
कर्म-धर्म त्यांचे झाला नारायण।
त्यांचेनि पावन तिन्ही लोक ॥
वर्ण अभिमानें कोण जाले पावन।
ऐसें या सांगन मजपाशीं ॥
अन्त्यंजादि योनि तरल्या हरिभजनें।
तयांची पुराणें भाट जालीं ॥
वैश्य तुलाधार गोरा तो कुंभार।
धागा हा चांभार रोहिदास ॥
कबीर मोमीन लतिफ मुसलमान।
सेनन्हावी जाण विष्णुदास ॥
कान्होपात्रा खोदु पिंजारी तो दादु।
भजनी अभेदु हरिचे पायीं ॥
चोखा मेला बंका जातीचा महार।
त्यासी सर्वेश्वर ऐक्य करीं।
नाम याचा जनी कोण तिचा भाव।
जेवी पंढरिराव तिये सवें ॥
मैराल जनक कोण कुल त्याचें।
महिमान तयाचे काम सांगों।
याता याती धर्म नाहीं विष्णुदासा।
निराभि हा ऐसा वेदशास्त्री ॥
तुका म्हणे तुम्हीं विचारावे ग्रन्थ।
तादिले पतित नेणों किती ॥

आगे चलकर वह संत-मंडली देश की नाजुक परिस्थिति के कारण शिथिल हो गई और कुछ काल में समाप्त ही हो गई।

पर ईश्वर को इस भारत-भूमि की एक बार फिर याद आई। इसलिए देश की अवस्था थोड़ी-बहुत सुधरने पर सद्धर्म की ओर लोगों की अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए स्वामी दयानंद, राजा राममोहनराय और विवेकानन्द-जैसे सत्पुरुषों का इस देश में जन्म हुआ। तीनों ने ही कोई नई बात नहीं कही। दयानंद ने उत्तर-भारत में और राममोहनराय ने महाराष्ट्र और बंगाल में धार्मिक क्रान्ति की। सभी रामानंदी और वैष्णवी संतों के समान इन दो महात्माओं ने भी मूर्तिपूजा और जातिभेद के स्थान पर परस्पर प्रेमपूर्वक रहने और एक परमेश्वर की उपासना की शिक्षा दी। एक ने आर्य-समाज की स्थापना की और दूसरे ने ब्रह्म-समाज की। प्रार्थना-समाज की भी उनके प्रभाव से स्थापना हुई। इन महात्माओं ने यह बतलाया कि शिक्षा के बिना देश का कल्याण होना अशक्य है, इसलिए देश में अनेक विद्यालय और कालेज स्थापन करने के लिए लोकमत जाग्रत किया। स्त्री-शिक्षा को इन्होंने पूर्ण उत्तेजन दिया। विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दे, विधवाओं के दुःख-मोचन की आवाज उठाई। दयानंद ने राज्य से अपने कार्यक्षेत्र का सम्बन्ध न रक्खा और राममोहनराय ने समाज-सुधार, मुद्रण-स्वातंत्र्य और राष्ट्रीय अधिकारों

के लिए उपयुक्त प्रयत्न किया। दयानंद ने आर्य-समाज को उत्तर भारत में हिन्दू-जाति की रक्षा की एक जबर्दस्त शक्ति दी। राममोहनराय १८३१ में सती-प्रथा बंद कराने के लिए विलायत गये और वहाँ उसी वर्ष उनका देहांत हो गया।

वेद-उपनिषद, साधु-संतों के भक्तिपूर्ण काव्य व अनेक महापुरुषों के लिखे हुए धर्म-ग्रन्थ हमारे सच्चे धर्मग्रन्थ हैं। इसीलिए बंगाल के एक दूसरे महा-पुरुष ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने शिक्षा-प्रचार के क्षेत्र में क्रान्ति करने के अलावा यह धर्म-कार्य किया कि उन्होंने धर्मशास्त्रों से विधवा-विवाह को प्रतिपादित किया और सरकार से १८५६ में विधवा-विवाह क़ानून पास करवा डाला। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने सनातन धर्मशास्त्र से विधवा-विवाह का होना कर्तव्य-कर्म बनाकर धर्म का सच्चा रूप प्रकट किया। विद्यासागर के बाद भी अनेक महापुरुषों ने सुधार-सम्बन्धी क़ानून बनवाने का उद्योग किया। श्री पटेल, गौड़ और हरविलास सारडा जैसे जाति-सेवकों को जन-समाज के संकुचित विचार और घोर अज्ञान-अंधकार में रहने के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई अथवा बहुत थोड़ी सफलता प्राप्त हुई। इधर महा-राष्ट्र में कर्वे-जैसे साधु पुरुष ने स्त्री-शिक्षा में क्रान्ति उपस्थित कर दी। भाई परमानंद ने जात-पांत का भेद मिटाकर लोगों को सच्चे धार्मिक बनाने के लिए जात-पांत-तोड़क-मण्डल की स्थापना की। सावर-कर-बंधु भी धार्मिक क्रान्ति कर रहे हैं। पूज्य मदन-मोहन मालवीय-जैसे ऊँची जाति में पैदा हुए वर्णा-भिमानी भी सच्ची धार्मिक क्रान्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वह आज पददलित अछूतों को मंत्रोपदेश देते हैं। मेहतर और चमारों को स्पर्श करते हैं। मेहतर की स्त्री की गोद मे खेलता हुआ पुत्र कृष्ण-कन्हैया मानते हैं। और भी अनेक जन धार्मिक क्रान्ति में योग दे रहे हैं। पर साधुवर्य महात्मा गांधी-जैसे तपस्वी ने भारत-भूमि में जन्म लेकर अपूर्व धार्मिक क्रान्ति की है। उनका सा सत्यवादी, अहिंसा-वादी और समाजसुधारवादी इधर अनेक शता-ब्दियों में इस देश में नहीं पैदा हुआ।

सत्याग्रह के तो वह आचार्य हैं। इसका उपयोग वह आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में करते हैं। वह अपने को सनातनी कहते हैं, और पूर्वकथित तुलसीदास, मीराबाई आदि संतों के उपासक हैं। अपनेको वैष्णव बतलाते हैं, और अपने आश्रम में सदैव यह पद गाते हैं—

वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाणे रे!

गुजराती भाषा का यह पद धर्मतत्त्व को कितनी सुन्दरता के साथ प्रकट करता है। महात्मा गांधी सनातनी होते हुए सनातनधर्म की दृष्टि में विधवा-विवाह, अछूतोद्धार और उपजातियों के भेद नहीं मानते। अछूतोद्धार द्वारा उन्होंने अपूर्व धार्मिक क्रान्ति की है। ईश्वर करे, इस धार्मिक क्रान्ति का कार्य अधिक उत्साह और अधिक प्रेम से बढ़े और हिन्दू-जाति पूर्व की भांति एक सच्ची धार्मिक और शक्तिशाली जाति बने!

प्राचीन भारत की शासन-प्रणाली

[श्री सूर्यनारायण व्यास, ज्योतिषाचार्य]

स्वतंत्र देशों की शासन-प्रणाली का अवलोकन करने से स्पष्ट प्रकट होता है कि वहाँ की समाज-रचना एवं समाज-व्यवस्था का शासन-प्रणाली महत्वपूर्ण अंग है। समाज के अस्तित्व, स्थैर्य और अभिवृद्धि के लिए व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से कई कार्य करवाने होते हैं; जैसे अपने समाज की परकीय समाज से अथवा समाज के किसी व्यक्ति या समुदाय की अन्य व्यक्ति या समुदाय से रक्षा करना यह एक आवश्यक कार्य है। यह कार्य एक संस्था के सुपुर्द है; उसी का नाम 'राज्य-संस्था' है। समाज के लोगों का जैसा आदर्श होगा, वैसा ही राज्यसंस्था का स्वरूप होगा। समाज-सुधार के महत्वपूर्ण कर्तव्य की उपेक्षा कर और-और सुधारों में राज्य-संस्था कितनी ही शक्ति क्यों न खर्च करे, चाहे शासन-पद्धति कैसी भी क्यों न हो, वहां प्रजा की स्वतंत्रता उतने-उतने अंश में कम ही पड़ती जायगी। यही नहीं किन्तु शासक संस्था भी अपना काम पूरा न कर सकेगी। राज्य-व्यवस्था समाज-व्यवस्था की एक अंगभूत संस्था है, अतएव समाज के नैतिक ध्येय और तदनुसार निर्मित समाज का जो शील और योग्यता होगी उसी योग्यता के अनुरूप वहाँ की शासन-पद्धति एवं व्यवस्था का निर्माण होगा। शासन-पद्धति किसी तंत्र की हुआ करे, जहाँ समाज के आध्यात्मिक तथा नैतिक ध्येय उच्च प्रकार के होंगे वहाँ की राज्य-पद्धति उसी ध्येय के अनुरूप प्रजा के लिए सुखकर साबित होगी। जिस समाज का ध्येय ही हीन होगा, वहाँ की शासन-पद्धति भले ही उत्तम कही जाय, वहाँ की व्यवस्था में, व्यक्ति-व्यक्ति में, पक्ष-पक्ष में, और वर्ग-वर्ग में, धन के लिए, अधिकार के लिए, नित्य कलह हुए बिना नहीं रह सकता। यूरोप और अमेरिका की शासन-प्रणाली अधिकांश में लोकसत्तात्मक है, परन्तु वहाँ भी इसी उपर्युक्त मूल कारण से आये दिन बड़े-बड़े झगड़े पैदा होते रहे हैं।

राज्य-पद्धति का वैषयिक विवेचन किया जाय तो राजसत्तात्मक, धनसत्तात्मक, प्रतिनिधि-सत्तात्मक, लोकसत्तात्मक आदि कई भेद होंगे। विषय की तात्विक चर्चा छोड़ केवल प्रजा के सुख एवं उत्कर्ष की ही दृष्टि से विचार किया जाय तो एक सामान्य-सा यही सिद्धान्त स्थिर किया जा सकेगा कि उच्चशील-सम्पन्न, उदार मन, व्यापक सहानुभूति और उच्च-सद्गुण तथा श्रेष्ठ बुद्धि वाले लोगों के द्वारा सम्पन्न होने वाली शासन-प्रणाली उत्तम हो सकेगी। शील-हानि, संकुचित मनोवृत्ति और लघुता जिनमें हो ऐसे स्वार्थी तथा निर्बुद्धि लोगों की शासन-पद्धति कभी उच्च नहीं हो सकती।

किसी देश की शासन-पद्धति भली है या बुरी, इस बात को सरलता-पूर्वक जान लेने की एक कसौटी इङ्गलैण्ड के विख्यात राजनीतिज्ञ एडमण्ड बर्क ने निश्चित कर रक्खी है। यदि किसी देश की जन-संख्या और साम्पत्तिक अवस्था लगातार बढ़ती जारही हो, तो समझ लीजिए कि वहाँ की शासन-व्यवस्था श्रेष्ठ है; इसके विरुद्ध, जहाँ लोक-संख्या और साम्पत्तिक-स्थिति, या इनमें से एक भी कम होती जा रही हो, वहाँ चाहे प्रजासत्तात्मक पद्धति क्यों न हो, वह निश्चय अधोगति पर है। प्राचीन भारत की किसी भी शासन-प्रणाली को इस कसौटी पर चढ़ा लीजिए, वह ठीक श्रेष्ठता पर ही उतरेगी। इस कसौटी पर भारत कैसा उतरता है, यह उन्हींके शब्दों में देखिए। वह लिखते हैं—

ग्रीक इतिहासकार 'स्ट्रेबो' लिखता है कि "झेलम और व्यास नदी के बीच के एक हज़ार नगरों पर 'मूक डायविन्' नामक राजा की सत्ता चलती है, और उन नगरों की जन-संख्या इतनी अधिक है कि खूब भरे हुए मालूम देते हैं।" अपोलोडोरस अपनी पुस्तक में लिखता है कि "इन दोनों (झेलम और व्यास) नदियों के बीच १५०० नगर थे, इनके विस्तार आदि को देखते हुए लोक-संख्या पर्याप्त थी।" (एल्फिंस्टन-कृत भारत का इतिहास; पृ० २०१)।

मेगास्थनीज़ का कहना है कि "भारत में कुल १२० राष्ट्र थे।" एरियन ग्रन्थकार का मत है कि "आर्यावर्त की जन-निवास-भूमि बहुत विशाल है, यहाँ के नगरों की गणना करना अशक्य है।" अध्यापक मेक्स डंकर (हिस्ट्री ऑव् एण्टीक्वीटी; जि० १, पृ० १८) कहते हैं—"संसार के सभी राष्ट्रों की अपेक्षा भारतीय राष्ट्र सभी स्थिति में श्रेष्ठ है।" टेशियस् तो इसपर भी बढ़कर कहता है—"अन्य सब राष्ट्रों की जो एकत्र जन-संख्या होगी, वह केवल हिन्दुओं की ही होगी।" स्ट्राबो लिखता है—"पाटलिपुत्र (पटना) की लम्बाई ८ मील की थी, उसके विस्तृत सीमा-भाग पर ५७० बुर्ज और ६४ प्रवेश-द्वार बने हुए थे।" इतनी दूर क्यों जायँ, अभी सोलहवीं शताब्दी में कन्नौज शहर में सिर्फ तंबोली ही ३० हज़ार थे, और बाजे वालों की संख्या ६० हज़ार थी (रिसर्चेज़; जि० २; पृ० २२०)।

उपर्युक्त उदाहरणों से भारत की पूर्वकालिक जन-संख्या की विशालता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। बर्क साहब की कसौटी पर चढ़कर भारतजन संख्या की विपुलता का प्रमाण तो उन्हींकी शब्दावली में दे चुका। अब उन्नत देश होने और उत्तम शासन-प्रणाली होने में साम्पत्तिक स्थिति की जाँच की करना ज़रूरी है। एडमंड बर्क की आँच पर तौलने के प्रथम् भारत की साम्पत्तिक स्थिति के विषय में एक शब्द में यह कहना उचित होगा कि भारत की साम्पत्तिक विपुलता के कारण ही उसका सार्थक नाम 'सुवर्ण-भूमि' पड़ गया है! उसी (पूर्वोक्त) इतिहासकार स्ट्राबो का कथन है—"भारत में कहीं चोरी होने का नाम भी सुना नहीं जाता था।" और मेगास्थनीज़ ने लिखा है—'चन्द्रगुप्त की छावनी में ४ लाख मनुष्य थे, उन्हें काफ़ी वेतन मिलता था। इसपर भी कभी किसीने चोरी की तो वह १० रु० के माल से अधिक की नहीं होती थी।" उस ज़माने की पुलिस की जिम्मेदारी और प्रबन्ध-कुशलता का यह प्रमाण है। यह स्मरण रहे कि इंग्लैण्ड में महारानी विक्टोरिया के शासन-काल तक भी पुलिस-विभाग की व्यवस्था में कोई सुधार न हुआ था!

बहुत-से पण्डितों का मत है कि भारत में प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन-प्रणाली स्वप्न में भी नहीं आई थी, और न वह भारतीयों के राजनैतिक स्वभाव के ही अनुकूल है। किन्तु यह कहना केवल भ्रमोत्पादक है। कर्नल मार्क विल्कस् (हिस्ट्री ऑव् साउथ इंडिया; जि० १, पृ. १२९) लिखता है—"प्राचीन काल से भारत का प्रत्येक ग्राम और शहर, सभी समान रूप से पूरे प्रजासत्तात्मक राज्य ही हैं और सम्पूर्ण भारत इन छोटे-छोटे स्वराज्यों का एक विशाल संघ है।" "भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है," यह वाक्य एरियन् ने इसीलिए कहा कि "भारतीय पुरातन शासन-प्रणाली और नियमों में लोकसत्तात्मक राज्य के ही बीज-से प्रकट हो रहे थे।" मिल के समान अत्यन्त दुराग्रही एवं अहम्मन्य इतिहासकार को भी यह बात स्वीकार करनी पड़ी है। सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने तो इन ग्राम संस्थाओं का ऐसा सुन्दर और सरस वर्णन किया है कि मुग्ध हो जाना पड़ता है। वह कहता है— "इन ग्रामसंस्था-रूपी छोटे-छोटे लोकसत्तात्मक राज्यों की बहुत-सी आवश्यकतायें गाँव की गाँव में ही पूर्ण कर ली जाती हैं, उन्हें परकीय सत्ता का कभी सन्देह ही नहीं होता। जहाँ इतर सर्व वस्तुयें क्षणभंगुर भासमान होती हैं, वहाँ केवल ये तमाम संस्थायें सनातन विदित होती हैं। एक के बाद एक इस प्रकार अनेक राज्य-वंश नष्ट हो गये; अनेक राज्य-क्रान्तियाँ भी हुईं; पठान, मुग़ल, मराठे, अंग्रेज़ आदि की सत्तायें भी क्रम-क्रम से स्थापित हुईं। इन उलट-फेरों के होते हुए भी ग्राम-संस्थायें पूर्ववत् ही क़ायम हैं! इस प्रकार राज्य-संस्था-रूपी एक संघ बना लेने के कारण ही हिन्दुओं को राजकीय स्वातन्त्र्य और सौख्य का लाभ हुआ है।" (रिपोर्ट ऑव् दी सिलेक्ट कमेटी, ऑव् दी हाउस ऑव् कामन्स, १८३२; जिल्द ३)

कुछ लोग यह समझ लेंगे कि ग्राम-संस्थायें भिन्न-भिन्न रही हैं, अतएव बालुका के कण जैसी बिखरी हुई रही होंगी; परन्तु यह समझ लेना भूल होगी। बालुका-कण भिन्न हो कर भी एक समूह बने रहते हैं, इसी प्रकार शास्त्रों की ओर से प्रत्येक गाँव के पीछे एक-एक, और दस-दस तथा बीस-बीस गाँव के ऊपर पुनः एक-एक, और ऐसे दस के और बीस के एक-एक समुदाय पर पुनः एक, तथा ऐसे दस समूहपर फिर एक, इस क्रम से अधिकारियों को

नियुक्ति की जाती थी, और उन्हें एक दूसरे से विशेष ज़िम्मेदारी सुपुर्द की जाती थी। इस प्रकार पृथकत्व में भी एकत्व हो जाता था। (मनुस्मृति ७, १२३, १२४) इस पद्धति के कारण यहाँ से वहाँ तक शासन की सरल शृंखला लगी रहती थी।

एडमण्ड बर्क की कसौटी पर तो भारत कसा जा चुका। अब एक कसौटी और है। वह है धर्मशासन या क़ानून-क़ायदों की व्यापकता। और उसका जैसा स्वरूप होगा; वह वैसे ही ही शासन की भलाई बुराई समझा देगा। शासन की नींव क़ानून-क़ायदों पर बनी हुई है। जिस देश का जैसा क़ायदा होगा, उस पर से सहज ही वहाँ की शासन-पद्धति का अनुमान लगाया जा सकेगा। भारत में आज अंग्रेज़ी राज्य की बुराई जानने के लिए उसके निर्माण किये हुए काले क़ानून, आर्डिनेंस आदि को जान लेना ही पर्याप्त होगा। इस से यह स्पष्ट है कि भारत की प्राचीन शासन-पद्धति में जैसे क़ायदों का उपयोग होता होगा, वे उसके आदर्श समझाने के लिए काफी होंगे। अस्तु। भारतीयों के धर्मशास्त्रों अर्थात् क़ानून-ग्रन्थों में मनुस्मृति का मुख्य स्थान है। इस ग्रन्थ की रचना बहुत सीधी और सरल है, परन्तु अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण है। इसके नियम बार-बार बदलने जैसे नहीं हैं, सुधार-सूचियाँ इसमें नहीं लगानी पड़तीं, वे सभी समाज के सम्पूर्ण व्यक्तियों के कुछ अलग-अलग सम्बन्धों को जोड़ते हुए व्यापक सिद्धान्त के रूप में हैं। इसके सम्बन्ध में सर विलियम् जोन्स लिखता है—"मनुस्मृति ग्रीक स्मृतिकार, सोलन और लायकरगस् के क़ायदों से भी प्राचीनतर होनी चाहिए। उसमें ग्रथित किये हुए धर्म-शास्त्र के नियम जिस समय समाज में प्रचलित किये गय होंगे, वह ज़माना मिश्र और भारतवर्ष में सर्वप्रथम राजसत्ता स्थापित करने के समय का होना चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन के पुराने क़ानून भी मनुस्मृति के जैसे ही दीखते हैं, सम्भवतः इन्हीं क़ायदों को लायकरगस् ने स्पार्टा में ला रक्खे होंगे?" (Houghtons' Institutes of Hindu law; प्रस्तावना में १०-१२) 'भारत में बाइबिल' का लेखक यह मन्तव्य प्रकट करता है—"मिश्र, ईरान, यूनान और रोमन देश के क़ायदों का निर्माण मनुस्मृति के आधार पर ही किया गया है, और आज भी यूरोप की अदालतों में मनुस्मृति के आधार की ही प्रबलता पाई जाती है। ग्रीकों ने भारतीयों के स्मृति-ग्रन्थों से ही अपने क़ायदे बनाये होंगे, ग्रीकों से रोमन् और रोमन से अंग्रेज़ों के क़ानून की रचना हुई।" अध्यापक विलसन् कहता है—"हिन्दुओं के स्मृति-ग्रन्थों में सभी लोगों के सम्बन्धों को स्थिर करने योग्य नियम दिये हुए हैं। जिस समाज में इन नियमों का प्रचार हो वह पूरा सुधरा हुआ होना चाहिए, बिना पूरे सुधरे हुए समाज के ऐसे नियमों का अस्तित्व में आना ही सम्भव नहीं।"

हिन्दुओं के धर्म-शास्त्र के विषय में इतिहास-लेखक मिल का अत्यन्त विरोध रहा है। वह लिखता है—'हिन्दुओं के धर्म-स्मृति-ग्रन्थों की रचना, उनका विषयानुसार वर्गीकरण बड़ा बेढब है—हिन्दुओं के जंगलीपन का द्योतक है। उनके यहाँ वस्तुओं को 'रेहन' रखकर पैसे देने की बेहूदी प्रथा है। हिन्दुओं में झूठी गवाही देना सौजन्य समझा जाता है। उनमें अनिश्चितता है, और एक श्लोक धर्मशास्त्र का लेकर जो अर्थ एक पण्डित करता है उससे विपरीत दूसरा करता है। इससे मुसलमानों के धर्मशास्त्र श्रेष्ठ हैं।" (मिल्स इण्डिया; जि० २) ऐसे अनेक आक्षेप कर उसने अपने दिल का गुबार निकाला है। परन्तु जिस अंग्रेज़ विद्वान् ने इस (मिल के) ग्रंथ का संपादन किया है, वही अध्यापक विलसन् स्पष्टता और निर्भीकता के साथ मिल के सारे आक्षेपों को साधार खण्डन कर रहा है। मिल पर दोष लगाते हुए विलसन् ने कहा है—"मिल का भारत के साथ पुराना और पूरा द्वेष था। उसने अपने गहरे अज्ञान का थोथा प्रदर्शन मात्र किया है। यदि राष्ट्र के सुधरे होने का नाप, क़ायदों की रचना ही समझा जाय तो अवश्य ही अंग्रेज़ी राष्ट्र भारत से कम दर्जे में उतरेंगे। भारतीयों का रेहन रखकर पैसा देना यदि जंगलीपन का द्योतक है, तो आज भी इङ्गलैण्ड में (ख़ास लन्दन ही में) 'रेहन' का व्यवसाय करने वाले असंख्य साहूकार (Pawn Brokers) जंगलीपन के प्रकाशक हैं। मिल का यह कथन बिलकुल निराधार है कि 'हिन्दुओं के

धर्मशास्त्रों में झूठी गवाही देना सौजन्य है।' यह कल्पना मिल के उस विकृत मस्तिष्क की है, जो भारत के विरोध में बना है। और, हिन्दू-धर्मशास्त्रों में यदि अनिश्चितता है तो अंग्रेज़ी क़ायदों से देर तक इन्साफ़ न मिलना क्या कहा जायगा? इसी विलम्ब के कारण लोगों को रिश्वत लेने का मनमाना अवसर मिलता है। माना कि शास्त्रीय वचनों के अर्थ करने में पंडितों में मतभेद बना रहता है, किन्तु अंग्रेज़ी क़ायदों का इससे भी बुरा हाल है। मद्रास के प्रधान न्यायाधीश के किसी निर्णय को, बंगाल का विचार-पति 'क़ानून से विरुद्ध, लोगों को धोखा देने वाला निर्णय' कह सकता है। मुसलमानी शास्त्र-ग्रन्थ में वैर लेने की जैसी बर्बर कल्पना है, वैसी हिन्दू धर्मग्रन्थों के अर्थ में मतभेद रखते हुए भी नहीं होगी, यहाँ उदारता के सिद्धांत भरे पड़े हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रों में संकल्प और वारिस की जैसी निश्चित पद्धति है, वह मुसलमान शास्त्रों में कहाँ है?"

विलसन ने उपर्युक्त शब्दों में मिल को पूरी फटकार दी है। अध्यापक मैक्समूलर ने भी मिल के इतिहास पर जैसा निर्भीक और दृढ़तापूर्ण उत्तर दिया है, वह महत्व की वस्तु है। वह लिखते हैं—"अंग्रेज़ी भाषा में यदि कोई ग्रन्थ अत्यन्त दुराग्रह के साथ लिखा गया है, तो वह मिल का बनाया हुआ भारत का इतिहास ही है। प्रायः भारत को अनेक संकटों का सामना इसी पुस्तक के कारण करना पड़ा है। मिल ने अपने भारत के इतिहास में इतना ज़हर उगल रक्खा है कि अध्यापक विलसन ने (फुटनोटों में) जिस विषनाशक औषधि का प्रयोग किया है वह भी पूरा ज़हर उतारने में समर्थ नहीं हो सकी है।' इस प्रकार मिल की पुस्तक पर अभिप्राय प्रकट करते हुए आगे चलकर पुनः मैक्समूलर ने लिखा है—"इतना ख़राब ग्रंथ सिविल-सर्विस के उम्मीदवारों के लिए परीक्षा में पाठ्यग्रंथ रक्खा गया है, वह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है।" (India ; What can it te.ch Us ?;6-42)

कौलमैन ने अपने (माइथालोजी ऑव् हिन्दूज़) ग्रन्थ में (पृ० ८) यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि" क़ानून के ग्रन्थ के लिए जैसी गम्भीर भाषा की आवश्यकता है, मनुस्मृति उसी गम्भीर और उदात्त भाषा में लिखी गई है; हमारा सिर उसके सामने आदर से झुक जाता है। केवल ईश्वर को छोड़ बाकी संपूर्ण विषयों के नियम निर्माण करते समय उसमें बहुत स्वतन्त्रता से काम लिया गया है। न्याय-निष्ठुर राजाओं की ऐसी ख़बर मनुस्मृति में ली गई है कि देखते ही बनता है।" इसी प्रकार डा० राबर्टसन् ने लिखा है कि "मनुस्मृति बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्न है। इसका विवेचन बहुत सूक्ष्म बुद्धि से किया गया है; इसलिए मनुस्मृति का निर्णय सर्वकाल, सारे जगत् में माने जाने योग्य है। जिस सनातन न्याय के उच्चतम तत्व पर इस धर्मशास्त्र का निर्माण किया गया है, और जो समाज इसका मानने वाला है, उसे अवश्य ही पूर्ण वैभव-सम्पन्न और सुधरा हुआ होना चाहिए। कुछ बातें तो इतने महत्व की हैं कि जिसकी कल्पना करनी भी पाश्चात्यों के लिए सम्भव नहीं। मनुस्मृति की रचना देखकर ही हिन्दू-समाज की श्रेष्ठता स्वीकार करना पड़ती है। और यह ग्रन्थ उस समाज के लिए बहुत पुराने ज़माने में रचा गया है, यह जानकर तो मैं चकित हो जाता हूँ।" (Disquisition concerning India; appe. P 217) और हिन्दू-धर्मशास्त्र के प्रमाणों के विषय में मद्रास-हाइकोर्ट के प्रधान विचार-पति सर थामस् स्ट्रेंज ने यह लिखा है —

"इस शास्त्र के अध्ययन से प्रत्येक अंग्रेज़ क़ानून-पंडित को तो लाभ अवश्य ही पहुँचेगा, किन्तु केवल देखने वालों को देखने से भी आदर और आनन्द हुए बिना न रहेगा।" (हिन्दू ला ऑव् एविडेन्स)

सारांश यही कि प्रत्येक प्रकार से भारत की पुरातन-कालिक वैभव-पूर्ण, सुशासन-सम्पन्न स्थिति को देखकर आज की राजनैतिक पतनावस्था पर विचार करने की ज़रूरत है। प्रत्येक भारत-संतान को इसका विचार करना चाहिए।

भारत-भ्रमण

(साइकिल-द्वारा)

[श्री दुर्गादास भट्टाचार्य]

(१)

विदेशी पत्र यात्रा-विवरणों से भरे पड़े रहते हैं। इससे कुतूहल और जिज्ञासा की निवृत्ति होती है। साथ ही साथ उन देशों के प्रति ज्ञानार्जन की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। मानव-जीवन तो स्फूर्तियों की अमर कहानी है प्रेरणायें आत्मा को जीवन-प्रदान करती हैं, इसीलिए उनमें गति आती है, और गति ही हमारे अस्तित्व का मूल कारण है।

सन् १९२६ के दिसम्बर में, मैं और अन्य पाँच युवकों ने साइकिल-द्वारा बनारस से इलहाबाद, फतहपुर, कानपुर, लखनऊ, रायबरेली, प्रतापगढ़ और जौनपुर की यात्रा की थी। लौटकर जब हम लोग काशी आये, तो हम लोगों ने सुना कि कलकत्ता के चार युवक साइकिल से संसार भ्रमण करने को निकले हैं और बनारस होते हुए वे इलाहाबाद गये। यह सुनकर हम लोगों के भी मन में संसार का भ्रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। परन्तु द्रव्याभाव के कारण हम लोग अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके। फिर भी हम लोग हतोत्साह न हुए और साइकिल-द्वारा संसार-भ्रमण की इच्छा मेरे हृदय में जमी रही।

३२ करोड़ जन की आबादी वाला यह विशाल देश वस्तुतः रेल से नहीं देखा जा सकता। केवल नगरों का निरीक्षण कर हम इसे पहचान नहीं सकते। इसके भीतर किसने कितना स्थान पाया है, यही जानना हमारा अभीष्ट था। नगर कृत्रिमता के आवरण में मुँदे पड़े हैं। अपने दुःख को वे धैर्य्य के कारण अथवा अपनी नश्वरता जानकर नहीं किन्तु एक झूठी लज्जा, संकोच एवं अविश्वास के कारण वहाँ के रहने वाले नागरिक एक दूसरे से उसे छिपाते हैं और अपने कृत्रिम सुखों का दूसरों को दिखलाने के लिए सृजन करते हैं। वहाँ क्या है? इसी कारण सन् १९२७ में मैंने फिर यात्रा करने का निश्चय किया। बाबू भूपेन्द्रनाथ आनरेरी मजिस्ट्रेट से अपनी साइकिल-द्वारा भारत-भ्रमण करने की इच्छा भी प्रकट की। यह सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और हम लोगों को उत्साहित किया तथा उन्हींके प्रयत्न से हम लोग इस कार्य के लिए अधिक सुविधा प्राप्त कर सके।

इस भ्रमण के लिए काशीस्थ बाबू भूपेन्द्रनाथ सान्याल आनरेरी मजिस्ट्रेट, रायबहादुर ललितबिहारी सेन प्राइवेट सेक्रेटरी महाराजा साहब बनारस, श्री राजा मोतीचन्द सी. आई. ई., श्री बाबू शिवप्रसाद गुप्त, बाबू विश्वनाथ सिंह, कैप्टन कुँवर नन्दलाल चेयरमैन ज़िला बोर्ड बनारस, अध्यापक पी० के० तैलङ्ग एवं अन्य कतिपय भद्र पुरुषों ने भी हम लोगों को उत्साहित एवं साहाय्य-प्रदान किया। ये लोग मेरे हृदय के निकट अतीव धन्यवाद के पात्र हैं।

दूसरी दिसम्बर १९२८ का प्रातःकाल यात्रा का निश्चित समय था। बाल रवि की स्वर्णोज्वल किरण हमारे पथ में बिखरी पड़ी थी। हम तीन—लेखक, श्री शिवचन्द्र भट्टाचार्य और श्रीविश्वनाथ पाण्डेय—दशाश्वमेध पर ७ बजे यात्रा को प्रस्तुत हुए। उस समय फ्री प्रेस के रिपोर्टर डा० जितेन्द्रनाथ लाहिड़ी और कतिपय अन्य सज्जनों

ने उपस्थित होकर मेरे उत्साह को प्रोत्साहन दिया एवं मित्र-भाव से मेरा अभिनन्दन करने से भी न चूके। भारत-माता का पुण्य ध्यानकर वन्देमातरम् का जयघोष करते हुए हम लोग चल पड़े। सुहृद सुधीरचन्द्र बंद्योपाध्याय अन्य मित्रगणों के साथ डफरिन ब्रिज (राजघाट का पुल) तक अपने साथ से मुझे वंचित न कर सके थे। प्रेमपूर्वक उन लोगों से गले मिलकर हम सबने उन्हें बिदाई दी। वे लोग जब लौट गये तब गङ्गा के उदार वक्षःस्थल पर लोहे के उस पुल पर से हमने आर्यों के प्राचीन विद्यापीठ काशी से आँखों में आँसू भरकर बिदाई माँगी। काशी के इस अनुपम सौंदर्य ने न मालूम कब का संचित प्रेम लेकर मेरी जन्म-जन्मान्तर की कल्पना को अपनी असह्य पुलक से भर दिया! धनुषाकार गंगा के तट पर उच्च सौध-श्रेणी, दूसरी ओर हरियाली से भरा हुआ प्रान्त, बीच में दूध से भी स्वच्छ गंगा की पावन धारा पुतलियों में मीनाकारी कर रही थी। यह दृश्य पूर्व की गाड़ियों से आने वाले यात्रियों को पहले ही आकर्षित करता है। नदी-तट पर इतना घना और दूर तक बसा हुआ नगर भारत में दूसरा नहीं। विदेशी यात्री प्रायः प्रातःकाल नाव पर बैठकर इस दृश्य को देखते हैं। हम लोगों ने पुल पर से गंगा एवं विश्वनाथ को नतमस्तक होकर नमस्कार किया और पूर्व दिशा की ओर चल पड़े।

जिस पथ से हम लोग जा रहे थे वह भारत-प्रसिद्ध "ग्राण्ड ट्रङ्क रोड" थी। इसे शेरशाह ने अपने शासनकाल में ढाका से सिन्ध नदी तक बनवाया था। उसे सड़क और सरायें निर्माण कराना रुचिकर था। अब इस सड़क ने काफी उन्नति कर ली है। ९ बजे हम लोग मोगलसराय पहुँचे। यह काशी से ६॥ मील पर है। ईस्ट इण्डियन रेलवे का यह बड़ा जंकशन है। शहर से दूर होने पर और व्यापार का कोई विशेष केन्द्र न होने पर भी यह धन-जन से पूर्ण जान पड़ता है। बड़ी चहल-पहल रहती है। यहाँ जल-पान करके हम लोग आगे बढ़े। लगभग ११ बजे हम लोग युक्तप्रान्त को पार-कर बिहार पहुँच गये। राह में पुराण-प्रसिद्ध कर्म-नाशा नदी, जिसको पौराणिक राजा त्रिशंकु की लार से निकली मानते हैं, और दुर्गावती को पारकर दुर्गावती पहुँचे। समय अधिक हो गया था, इसलिए यहाँ इन्सपेक्शन-बंगले में ठहरकर हम लोगों ने भोजन वगैरा किया और थोड़ा-बहुत इधर-उधर देखकर आगे के लिए चल पड़े। कुद्रा पहुँचकर हम लोगों को विराम की आवश्यकता प्रतीत हुई। उस दिन हम लोगों ने ५३ मील की यात्रा की थी। अतः रात्रि बिताने को हम लोग यहीं ठहर गये। कुद्रा काफी बड़ा क़सबा है। यहाँ चावल की मंडी है। इसलिए बाहरी व्यापारी भी यहाँ बसे हुए हैं और ठहरते हैं। दस-पाँच घर बंगाली भी हैं।

दूसरे दिन अर्थात् ३ दिसम्बर को हम लोगों ने कुद्रा से प्रस्थान किया। वहाँ से चलकर १० बजे हम लोग सहसराम पहुँचे। यह एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ एक तालाब के बीच में शेरशाह का बनवाया हुआ मकबरा दर्शनीय है। मुग़लकालिक स्थापत्यकला का इसमें कोई अपूर्व प्रदर्शन तो नहीं है, फिर भी इतिहास के विद्यार्थी के लिए स्पृहणीय दर्शन है। शेरशाह की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने इसे हस्तगत कर लिया था। इसे देखने प्रायः बहुत लोग यहाँ आया करते हैं। जगह भी सुन्दर है। हम लोग जब मकबरे की कारीगरी देख रहे थे, उसी समय ज्ञात हुआ कि थोड़ी देर पहले १२ साइकिल-यात्री जो कलकत्ते से लखनऊ की यात्रा को निकले हैं मकबरे को देखते हुए सहसराम बाजार की ओर गये हैं। हमें यह जानकर बड़ी प्रफुल्लता हुई। हम लोगों ने पहले ही

समाचारपत्र से उनके चलने की बात जान ली थी। पर खेद था कि उनसे भेंट न हुई। वे दूसरी ओर चल दिये थे। वहीं हमें इसका भी पता लगा कि सोन नदी के पुल पर से यात्री नहीं जाने पाते, वह केवल रेलगाड़ियों के लिए ही है। अतः हम लोग यदि शीघ्रता न करेंगे तो गाड़ी छूट जायगी; फिर तो महान् कष्ट उठाना पड़ेगा। सोन का पुल यहाँ से १८-१९ मील की दूरी पर था। हम लोगों ने अपनी रफ्तार (Speed) बढ़ाई। पर जब हम लोग स्टेशन पर पहुँचे तो हमको मालूम हुआ कि गाड़ी छूट गई। अब तो हमलोग बड़ी विकट समस्या में फँसे, यात्रियों के लिए इसपर से रास्ता नहीं है। लोग एक स्टेशन का टिकट लेकर इस संकट से मुक्त होते हैं। अतः अब कोई रास्ता न देखकर हमलोगों ने स्टेशन-मास्टर के पास जाकर परामर्श किया। उन्होंने बतलाया कि इस समय एक मालगाड़ी आने वाली है उसका गार्ड (Guard) यदि अनुमति दे दे तो आप लोग उससे जाकर पुल पार उतर सकते हैं। हम लोगों को आशा की एक क्षीण ज्योति दिखलाई पड़ी। किन्तु मालगाड़ी के आने पर जब हमलोगों ने गार्ड से इसके लिए कहा तो वह साफ़ मुकर गये। गार्डसाहब ने कहा—"यह कार्य मेरी रोजी में खलल डाल सकता है।" संभव है हमलोगों का बंगाली और असहयोगी होना भी इसका कारण हो!

सोन नदी पर दो पुल हैं—एक गाड़ी आने के लिए और दूसरा जाने के लिए। ये ३ मील लम्बे हैं। इधर कहीं भी इतना बड़ा पुल नहीं है। साहरा के रेगिस्तान की भाँति बालू से भरा यह क्षेत्र वास्तव में बड़ा रूखा दर्शन है। हाँ, बीच में सोन की एक पतली धारा मृग-मरीचिका की तरह सुन्दर स्पष्ट दूर से ही दिखाई देती है। बरसात में यही कितने प्रान्तों को उजाड़कर महाप्लावन का दृश्य उपस्थित कर देती है। यह सोन "नद" है। हाँ, उस समय पुल पर काम हो रहा था। एक पुल तैयार हो गया था, फिर भी अभी उसपर से गाड़ी नहीं जाने पाती थी। पुल के नीचे उतर कर बालू को पार करके जाना, फिर नदी में वहाँ उतरने का कोई उपाय नहीं। बहुत उद्विग्न होकर हम लोग अन्तिम चेष्टा करने के लिए सोचने लगे। दूसरी गाड़ी के लिए ठहरना अपने कार्यक्रम को एक भारी धक्का देना था। पुल-संरक्षक से जाकर हम लोगों ने पुल पर से जाने की अनुमति माँगी। वह कुछ संकोच में तो जरूर पड़ा—दबी जबान से टाल-मटोल भी की पर हम लोगों ने किसी तरह उससे आज्ञा ले ही ली। उसने कहा—'अच्छा शीघ्रता से आप लोग निकल जायँ, नहीं तो किसी के देखने पर मुझपर अनेक दोष एवं आपत्ति आ सकती है।'

हम लोग प्रसन्न होकर चल पड़े। मैं यहाँ यह भी बतला देना चाहता हूँ कि पुल-संरक्षक ने हम लोगों को अनुमति देकर उसके उसूल को नहीं तोड़ा। पुल पर रेलवे-लाइन को छोड़कर कंकड़ बिछा हुआ था। यह भी एक पूरी आपत्ति थी। हम लोग साइकिल को रेल पर से चलाते हुए चल रहे थे। कुछ ही दूर गये थे कि शिव बाबू की साइकिल का 'ट्यूब' फट गया। बात यह थी कि एक तो धूप से रेल गरम हो गई थी, दूसरे अक्सर उसके पहिये उसपर से उतर कर नीचे रोड़ों से टक्कर खाते थे। उसकी मरम्मत यहीं कर लेना जरूरी था। इसलिए ठहरकर आध घण्टे में हम लोगों ने उसे ठीक किया। धूप के मारे उस पुल पर हम लोग प्यास से व्याकुल हो रहे थे। पर करते ही क्या! नीचे स्वच्छ जल की एक अमृत-धारा देख रहे थे, किन्तु अपने लिए अलभ्य! पुल पार करने के लिए शीघ्रता से बढ़ने लगे;

पर अभाग्य से कुछ ही दूर और गये थे कि शिव बाबू के पहिये में फिर पंचर हो गया । यह मरे पर मार पड़ी—हताश और उद्विग्न होकर उसे फिर ठीक करने लगे । इतने ही में उस पुल-संरक्षक ने—जो किसी काम से इधर आ निकला था—हमें देखा । इतनी देर तक हम लोगों का पुल पर रुका रहना देख वह नाराज होने लगा । बात भी ठीक थी । १२॥ बजे पुल पर हम लोग चले थे और अब ३॥ बजे का समय था । हम लोगों ने शीघ्र चले जाने' सन दिया और ४ बजे 'सोन ईस्ट बैं... पार पहुँच गये । निराहार और आतङ्क से श्रांत होकर हम लोग बेकाम हो गये थे । अतः उस दिन हम लोग वहीं इन्सपेक्शन-बंगले में विराम करने के लिए गये । किन्तु वहाँ स्थान ही नहीं था । एक रानी-साहबा वहाँ ठहरी थीं । लाचार हमें बढ़ना पड़ा । आगे औरङ्गाबाद पहुँचकर हम लोगों ने रात बिताई ।

बूढ़ा तपस्वी

[श्री नृसिंहदास, विशारद]

विद्युत का बल भरा हुआ है, जिस बूढ़े की हाड़ों में ।
तेतिस कोटि हृदय का स्वामी, गरजा आज पहाड़ों में ॥
अनाचार का नाम मिटाने, देश स्वतंत्र बनाने को ।
शान्त महासागर उमड़ा है, भूतल-भार हटाने को ।
इस दधीचि की टेर देखना, देवों के दुख दाहेगी ।
स्वतंत्रता की सौम्य सुरसरी, भारत में बह जावेगी ॥
अमर भगीरथ हो जावेगा, सत्य-अहिंसा का गाँधी ।
विष-वैषम्य विलीन करेगी, सकल विश्व से यह आँधी ॥

त्यागी

कहानी

[श्री तेजनारायण काक 'क्रान्ति']

(१)

गगन-चुम्बी प्राचीरों से घिरा हुआ राजमहल चन्द्रमा की चाँदनी में झिलमिला रहा था। स्थान-स्थान पर सन्तरियों का कड़ा पहरा था। एक काली मूर्ति वृक्षों और लताओं की छाया में अपने हृष्ट पुष्ट शरीर को छिपाती हुई महल के मुख्य द्वार की ओर बढ़ी चली जा रही थी। आठ सशस्त्र सैनिक नंगी तलवारें लिये फाटक पर घूम-घूमकर पहरा दे रहे थे। बड़ी ही निर्भयता से काली मूर्ति सिपाहियों के ठीक बीच जा खड़ी हुई। उसे देखते ही सैनिकों ने झुक झुककर अभिवादन किया और हाथ जोड़कर एक ओर खड़े हो गये। काली मूर्ति ने बहुत धीरे-धीरे उन्हें न मालूम क्या कहा कि उसकी बात समाप्त होते ही एक सैनिक ने आगे बढ़कर मुख्य द्वार की खिड़की खोल दी। काली मूर्ति बाहर निकली और एक ओर को चल पड़ी। पीछे खट से मुख्य द्वार की खिड़की बन्द हो गई।

(२)

आज वीरपुर में कुहराम मचा हुआ है। जिसे देखो वही शोकसागर में गोते लगाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। सब महाराज वीरसिंह के एकाएक गायब हो जाने पर आठ-आठ आँसू बहा रहे हैं। दौड़धूप, खोज-ढूंढ में कोई कसर बाकी न रक्खी गई; किन्तु उनका कहीं पता न लगा। प्रतिदिन की तरह रात्रि में वह नगर में गश्त लगाने निकले थे, किन्तु वापस न लौटे।

हताश हो मन्त्री ने प्रजा की अनुमति से राज-कार्य सम्हाल लिया, क्योंकि महाराज वीरसिंह अविवाहित थे और उनका कोई वारिस नहीं था।

❀ ❀ ❀

पौ फट रही थी। वीरपुर के दाहिने ओर के बीहड़ वन में होकर जाने वाली सड़क पर एक बैलगाड़ी चड़खचूँ करती हुई चली जा रही थी। रात को मूसलाधार वर्षा होने के कारण बैलगाड़ी कच्ची सड़क की कीचड़ में लथपथ हो रही थी। चारों ओर भयानक जंगल साँय-साँय कर रहा था। वृक्ष आपस में गुंथे हुए से थे, जिन पर भाँति-भाँति की बेलें मकड़ी के जाले के सदृश फैली हुई थीं। रङ्ग-बिरङ्गी चिड़ियाँ चहकती हुई इस वृक्ष से उस वृक्ष पर और उस वृक्ष से इस वृक्ष पर फुदक रही थीं।

गाड़ीवान बैलों को पूँछ मरोड़-मरोड़कर हाँक रहा था। वह कभी-कभी तान छेड़ने लगता—
'छैल भँवर रो काँगसियो पिणिहारी लेगी रे.........
......हाँ, छैल भँवर रो काँगसियो पिणिहारी लेगी रे.........।'

गाड़ी में यात्रा करने वाले दो प्राणी थे; सेठ और सेठानी। सेठानी जी सोने-चाँदी के गहनों से लदी हुई थीं और सेठजी के गले में भी एक भारी-सा तोड़ा पड़ा हुआ था। दोनों गाड़ी पर बैठे हुए बड़े मजे से ब्यालू कर रहे थे। सामान में दो बिस्तरे और एक छोटा-सा सन्दूक था। गाड़ी पर दुहेरा छप्पर तना हुआ होने के कारण इन्हें वर्षा से अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा था।

एकाएक गाड़ी वाले ने गाना बन्द कर दिया;

उसे पास ही कुछ आदमियों की आहट सुनाई दी। सेठजी ने दो भीलों को तीर-कमान लिये अपनी ओर आते देखा तो भय के मारे चीख उठे।

भीलों के भयावने मुखों से 'न्हाक दै रे गाबलिया' निकलते ही सेठजी ने अपना सब माल-असबाब उनके पैरों में डाल दिया और लगे डाढ़ें मार-मार कर रोने। भीलों ने उनके रोने-कलपने की कुछ भी पर्वाह न कर भय से थरथराती हुई सेठानी जी के जेवर और कपड़े नोचने-खसोटने शुरू किये।

'खबरदार, पापियो!' कहता हुआ एक साधू पास ही की एक झाड़ी में से निकल पड़ा। वह सिर से पैर तक श्वेत वस्त्र धारण किये हुए था। उसके हाथ में त्रिशूल था। उसके चहरे पर का अपूर्व तेज देखकर भीलों की आँखें चौंधिया-सी गई। किन्तु जिनका पेशा ही मनुष्य-हत्या करना है, वे एक साधू से दबने वाले कहाँ थे!

दोनों भीलों ने एकसाथ ही कमानों पर तीर चढ़ा लिये और क़रीब ही था कि वे विषैले तीर साधू का प्राणान्त कर देने कि साधू ने बिजली की तरह तड़पकर दोनों भीलों से उनके अस्त्र छीन लिये और उन्हें बाँधकर वहीं छोड़ दिया। दोनों भील बेबस ज़मीन पर लोटने लगे।

गाड़ीवाला, सेठ और सेठानी हर्ष से गद्गद् हो साधू के चरणों में गिर पड़े। किन्तु आश्चर्य, वापस उठकर उन्होंने वहाँ साधू का नामो-निशान तक न पाया!

धूप चढ़ आई थी। वृक्ष के तले दोनों भील बँधे पड़े थे और निकट ही सेठ-सेठानी और गाड़ी-वाला किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से खड़े थे!

(३)

'आ!' माँ! एक बूंद पानी पिला दे!'

वीरपुर में महामारी का भयंकर प्रकोप था। प्रतिदिन साठ-सत्तर मनुष्य अकाल ही काल के गाल में चले जाते थे। नगर-भर में सिवाय रोने-पीटने और 'राम-नाम सत्य है' के कुछ भी सुनाई न पड़ता था। मन्त्री बुद्धिसेन प्रजा की चिकित्सा करवाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे—किन्तु विधाता के विधान को कौन टाल सकता है? नगर में तो ज्यों-त्यों करके दवा-दारू का प्रबन्ध हो ही जाता था, किन्तु नगर के बाहर अछूतों और भिखारियों के मुहल्ले की बड़ी दयनीय दशा थी।

एक फूस के झोंपड़े में पड़ा हुआ भिखारी बालक चीख रहा था, 'माँ! एक बूंद पानी पिला दे!' उसे मालूम ही नहीं था कि उसकी माँ पहले से ही इस असार संसार को छोड़कर चल बसी है।

कोई उत्तर न पाकर वह बिलख-बिलख कर रोने लगा। आह! उस करुण-क्रन्दन में कितनी व्यथा, कितनी वेदना झलकती थी!

एक संन्यासी दौड़ता हुआ झोपड़े में घुस आया। उसके तेजोमय मुख पर इस समय पूर्ण शान्ति विराजमान थी। उसके चेहरे पर के थका-वट के चिन्हों से भली प्रकार प्रकट हो रहा था कि वह पास ही के अनेक भिखारियों और अछूतों की दवा-दारू और सेवा-टहल करके आ रहा है।

उसने आते ही तड़पते हुए भिखारी बालक के मुख में एक बूटी का अर्क़ निचोड़ दिया। देखते ही देखते बालक कुछ स्वस्थ-सा दिखाई देने लगा। उसने करवट बदली और आँखें मूँद कर सो गया। संन्यासी ने बड़ी शीघ्रता से उसके गन्दे कपड़े को साफ़ कर दिया। और अपनी जड़ी-बूटियाँ सम्हाल कर झोंपड़े के बाहर निकल गया।

निरीह अछूतों ने जाना, भगवान् हमें स्वयं जीवन-दान देने आये हैं!

(४)

वीरपुर-निवासियों के लिए वह दिन बड़ा ही भयानक था। सारे नगर में भयंकर अग्नि लग रही थी, आज इस दुर्घटना को हुए तीन दिन हो गये थे। किन्तु अभी भी वीरपुर का एक भाग अग्नि की विकराल लपटों का शिकार बन रहा था। राज्य की ओर से अग्नि बुझाने का प्रयत्न बड़ी सरगर्मी से हो रहा था। सहस्रों राज-कर्मचारी पानी से तर कम्बल ओढ़कर अग्नि से बचे खुचे मनुष्य और सामान बाहर निकाल लाने की चेष्टा कर रहे थे, और सहस्रों अग्निमय घरों पर बाल्टियों द्वारा जल फेंक रहे थे।

सहसा धाँय-धाँय धधकती हुई लपटों से घिरी हुए एक दुमंजिली छत पर से एक बालिका का मर्म-भेदी चीत्कार सुन पड़ा। एकाएक सबके हृदय हिल-से गये। साक्षात् काल के सदृश भभकते हुए ज्वाल-जाल में से होकर उस असहाय बालिका को मृत्यु-मुख से निकाल लाने का किसी को साहस न हुआ।

सब एकाएक देखने लगे। एक श्वेतवस्त्र-धारी संन्यासी लपकता हुआ उस मकान के ज्वाला से घिरे हुए जीने पर चढ़ा चला जा रहा था।

लगभग दो मिनट में संन्यासी एक छोटी-सी भयभीत बालिका को हाथों पर उठाये अग्नि-कुण्ड के बाहर निकल आया। संन्यासी के आग से झुलसे हुए मुख-मण्डल पर एक अपूर्व ज्योति छा रही थी।

कुछ ही दूर चलकर संन्यासी गिर पड़ा और उसके प्राण-पखेरू नश्वर शरीर को त्यागकर चल बसे।

लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा, संन्यासी के श्वेत वस्त्रों में महाराज वीरसिंह की बलिष्ठ देह छिपी थी। इस समय उनके ओठों पर एक स्वर्गीय—एक अलौकिक मुसकान खेल रही थी।
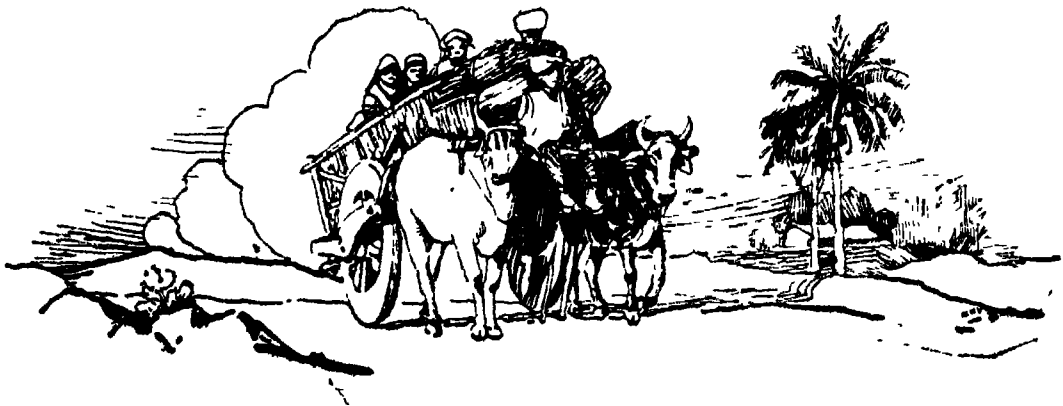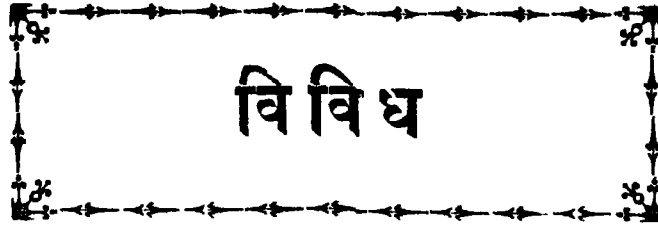
पूर्ण स्वराज्य-संग्राम में आर्य-समाजियों का कर्त्तव्य

[आचार्य रामदेव जी, गुरुकुल-काँगड़ी]

ऋषि दयानन्द को नवीन भारत का राष्ट्र-निर्माता कहना चाहिए। उनके जीवन का रहस्य स्वाधीनता है। अपने जीवन में ऋषि ने भारतवर्ष को—भारतवर्ष ही को क्या, संसार-भर को, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक शृङ्खलाओं से मुक्त करने का प्रयत्न किया। भारतवर्ष में आज जो राजनैतिक स्वाधीनता के लिए गम्भीर प्रयत्न महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हो रहा है, उसे प्रारम्भ करने का श्रेय भी ऋषि दयानन्द को ही है। सबसे पहले उन्होंने ही, सत्यार्थप्रकाश में, "स्वराज्य" शब्द का व्यवहार किया था। ऋषि दयानन्द सचमुच क्रान्ति-दर्शी थे। आज भारतवर्ष जिन बातों को बड़ी बेचैनी से महसूस कर रहा है, अब से १५-२० साल पहले उनका स्वप्न तक भी लेना कठिन था; परन्तु ऋषि ने ये बातें, बिलकुल स्पष्ट रूप से, अपने ग्रन्थों तथा भाषणों में आज से ५०-६० वर्ष पूर्व लिखी और कही थीं। जिन दिनों कांग्रेस का जन्म भी न हुआ था, उन दिनों ऋषि भारत-वासियों को 'स्वराज्य' की भावना सिखाया करते थे।

इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध विद्वान् जान स्टुअर्ट मिल और ऋषि दयानन्द दोनों समकालिक थे। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में और जान स्टुअर्ट मिल ने अपने 'प्रजातन्त्र शासन' (Representative Government) नामक ग्रन्थ में बिलकुल स्वतंत्र रूप से दो ऐसी बातें लिखी हैं, जो दोनों ग्रन्थों में बिलकुल समान हैं। ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"विदेशी राज्य चाहे माता-पिता के समान ही हितकारी क्यों न हो, परन्तु उसकी अपेक्षा रद्दी से रद्दी स्वदेश का राज्य कहीं अच्छा है।" जान स्टुअर्ट मिल ने भी बिलकुल यही बात लिखी है।। ऋषि दयानन्द के हृदय में भारत-वर्ष की स्वाधीनता के लिए जो तीव्र अभिलाषा थी, वह इस उपर्युक्त वाक्य से सूचित होती है।

वर्तमान स्वराज्य-आन्दोलन में जिन बातों को स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए आधारभूत समझा जा रहा है वे सबकी सब ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं में पहले ही से ओतप्रोत हैं। ऋषि दयानन्द स्वयं सदैव स्वदेश में बने वस्त्रों का ही व्यवहार किया करते थे। सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने यूरोपियन लोगों की वर्तमान उन्नति के कारणों को बताते हुए लिखा है—"वे सब परस्पर विचार और सभा से निश्चय करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिए तन, मन, धन से व्यय करते हैं...... ...देखो! अपने देश के बने जूते को आफ़िस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देश के जूते को नहीं।"

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि ऋषि दयानन्द ने अपने परमभक्त महाराजाधिराज़ नाहरसिंह (शाहपुरा) को जो पोशाक स्वयं बनवाकर भेट की थी, वह हाथ के कते और हाथ के बुने शुद्ध खद्दर की थी।* इसी एक घटना से उनके स्वदेशी-प्रेम का परिचय मिल सकता है। ब्राह्म-समाजियों में जो सबसे बड़ी त्रुटि उन्हें अनुभव हुई, वह यही कि "इन लोगों में स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है।"‡

*सत्यार्थप्रकाश-शताब्दि संस्करण, ११ समुल्लास, पृष्ठ ५२७
‡ " " " पृष्ठ ५२५, पंक्ति १७

वर्तमान स्वराज्य-आन्दोलन का एक आवश्यक अंग अदालतों का बहिष्कार है। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द तो इस बात को इतनी अधिक महत्ता देते थे कि अदालतों के बहिष्कार को उन्होंने आर्यसमाज के ५१ उपनियमों में स्थान दिया है। उनका कथन है कि आर्यों को अपने विवादों का स्वयं आपस में ही निर्णय कर लेना चाहिए। ऋषि दयानन्द का यह निर्देश आर्यसमाज को अपने अन्दर के झगड़े निबटाने के लिए विदेशी सरकार की अदालतों की शरण न लेने में प्रकाशस्तम्भ के समान सत्मार्ग दिखाता रहा है।

भारतवर्ष को एक राष्ट्र की भावना में गूंथने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि इस महादेश की एक सर्वमान्य भाषा बनाई जाय। ऋषि ने इस बात को अनुभव किया था। स्वयं गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपने सब ग्रंथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही लिखे और हिन्दी के प्रचार का प्रयत्न किया। जहाँ ब्राह्म समाज के नेता केशवचन्द्र सेन ने अपने ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखे, जहाँ स्वामी विवेकानन्द, ऋषि देवेन्द्रनाथ और सर सैयद अहमद—इन सभी लोगों में से किसी ने हिन्दी को अपनाने का प्रयत्न नहीं किया, वहाँ ऋषि दयानन्द की दूर तक देखने वाली अन्तर्दृष्टि ने इस बात को भली प्रकार समझ लिया था कि भारतवर्ष को एक भाषा की आवश्यकता है, और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। ऋषि दयानन्द स्वयं गुजराती थे, अतः उन्हें हिन्दी को अपनाने में परिश्रम भी बहुत काफ़ी पड़ा होगा, परन्तु उन्होंने इस बात की ज़रा भी पर्वाह नहीं की।

महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के क्रियात्मक कार्यों के दो मुख्य अंग अछूतोद्धार और शराब का निषेध हैं। ऋषि दयानन्द ने भारत की सामाजिक बुराइयों को सबसे पहले अनुभव किया था। उन्होंने केवल अछूतोद्धार ही नहीं, अपितु छुआछूत, बाल-विवाह स्त्रियों की अशिक्षा, गोवध आदि सम्पूर्ण सामाजिक बुराइयों को दूर करने का महान् क्रियात्मक अध्यवसाय अपने जीवन में किया। ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—"और जो आजकल छुआछूत और धर्म नष्ट होने की शंका है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है।...... ...जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार व राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"*

छुआछूत के सम्बन्ध में ऋषि का कथन है—"इसी छुआछूत से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते, विरोध करते-कराते सब स्वातंत्र्य आनन्द, धन राज्य विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें। परन्तु वैसा न होने से जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा करके सर्वथा नष्ट कर दिया है।"†

देश में जो सामाजिक और राजनैतिक बुराइयाँ इस समय घर कर रही हैं इन सबका मूल कारण ऋषि दयानन्द की राय में विदेशी राज्य ही है। ऋषि लिखते हैं—

"विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषण आदि कुलक्षण वेद-विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तो तीसरा विदेशी पंच बन बैठता है।.......आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का नाश हो गया सो तो हो गया; परन्तु अबतक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख-सागर में डुबाकर मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन-गोत्र हत्यारे, स्वदेश-विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अबतक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं।"‡

आर्य भाइयो! देखो, और अनुभव करो,—ऋषि के इन शब्दों में स्वदेश और स्वराज्य के लिए कितनी बड़ी तड़प है!

पूर्ण स्वराज्य का आन्दोलन आज देश में पूरे यौवन

---

* सत्यार्थप्रकाश शताब्दि संस्करण, १० म समुल्लास, पृष्ठ १८८-८९।

† सत्यार्थ प्रकाश शताब्दि; संस्करण १० म समुल्लास, पृष्ठ १८९।

‡ " " पृष्ठ १९१-९२।

पर है। महात्मा गाँधी के दिव्य नेतृत्व में विदेशी सरकार से मोर्चा लेने के लिए सत्याग्रह का धर्मयुद्ध जारी कर दिया गया है। इस समय नमक-कर के विरोध में देश की शक्ति लगा हुई है। महात्मा गाँधी का कहना है कि विदेशी सरकार ने भारत पर जो बड़े-बड़े अत्याचार किये हैं, इनमें नमक-कर सबसे बड़ा है। लोगों ने नमक-कर की बुराई और अन्याय को आज जाकर गम्भीरता से अनुभव किया है; परन्तु ऋषि दयानन्द ने उस समय, जबकि स्वनामधन्य महात्मा गाँधी का जन्म भी न हुआ था, नमक-कर के विरोध में अपनी आवाज़ उठाई थी। इसी तरह जंगलात के कर का भी उन्होंने विरोध किया था और शराब का कर अबसे चार गुना कर देने की सलाह दी थी। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में लिखा है—"परन्तु मेरी बुद्धि में गुण इन बातों में नहीं देख पड़ते हैं, इससे इन बातों को मैं लिखता हूँ। एक तो यह बात है कि नोन और पौनरोटी (जङ्गल) में जो कर लिया जाता है वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता, क्योंकि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता किन्तु नोन सबको आवश्यक होता है और जो मजूरी-मेहनत से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं इनके ऊपर भी यह नोन का दण्ड तुल्य रहता है। इससे दरिद्रों को क्लेश पहुँचता है। इससे ऐसा होय कि मद्य, अफ़ीम, गांजा, भांग इनके ऊपर चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी बात है; क्योंकि नशादिकों का छूटना ही अच्छा है और जो मद्यादिक बिलकुल छूट जाँय तो मनुष्य का बड़ा भाग्य है, क्योंकि नशा से किसी का कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु रोग-निवृत्ति के वास्ते औषधार्थ तो मद्यादिकों की प्रवृत्ति रहनी चाहिए; क्योंकि बहुत से ऐसे रोग हैं, जिन से मद्यादिक ही निवृत्तिकारक औषध हैं। सो वैद्यकशास्त्र की रीति से इन रोगों की निवृत्ति हो सकती है तो उनको ग्रहण करें, जबतक रोग न छूटे। फिर रोग के छूटने के पीछे मद्यादिकों को कभी ग्रहण न करे, क्योंकि जितने नशा करने वाले पदार्थ हैं वे सब बुद्धयादिकों के नाशक हैं। इससे इनके ऊपर ही कर लगाना चाहिए और लवणादिकों के ऊपर न चाहिए। पौनरोटी से भी ग़रीब लोगों को बहुत क्लेश होता है, क्योंकि ग़रीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आवे वा लकड़ी का भार। उनके ऊपर कौड़ियों के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा। इससे पौनरोटी का जो कर स्थापन करना, सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं।"*

इन सब बातों के लिखने से मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि ऋषि दयानन्द इस युग में स्वाधीनता का स्वप्न लेने वाले प्रथम महापुरुष थे। इसलिए ऋषि के प्रत्येक भक्त और अनुयायी का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह उनके पदचिन्हों का अनुसरण करके वर्तमान स्वराज्य-आन्दोलन में पूर्ण भाग ले। मुझे विश्वास है कि व्यक्तिगत रूप से अधिकांश आर्यसमाजी भाई इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होंगे। मेरे पास अनेक आर्यभाइयों के इस सम्बन्ध में जो पत्र आये हैं उनसे विदित होता है कि वे लोग इस युद्ध में सामूहिक रूप से सम्मिलित होने के लिए परम उत्सुक हैं। परन्तु मेरी राय में जहाँ प्रत्येक आर्यसमाजी का कर्तव्य इस धर्मयुद्ध में शामिल होना है वहाँ आर्यसमाज को सामूहिक रूप से इस राजनैतिक युद्ध में शामिल होने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानन्द का रूप केवल आर्यसमाज तक ही सीमित नहीं है। वह जहाँ एक ओर आर्यसमाज की स्थापना करने वाले थे वहाँ वह नव-भारत के निर्माता भी थे। आर्यसमाज धार्मिक संस्था है। वह अन्तर्राष्ट्रीय है, एकदेशीय नहीं। परन्तु वह आर्य-भाई बड़ा भारी पाप करेगा, वह बिलकुल गुमराह रहेगा, जो इस अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर भारत की इस स्वाधीनता की लड़ाई की उपेक्षा अवज्ञा के साथ देखेगा। भारत इस समय पराधीन है, इस देवभूमि को पराधीनता की शृङ्खलाओं से मुक्त करना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।

आर्यसमाज इस समय तक सामूहिक रूप से भी स्वराज्य-प्राप्ति के कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाता रहा है। आर्यसमाज ने सामाजिक सुधार का जो काम अबतक किया है, यदि वह न किया गया होता तो स्वराज्य की भावना भारतवर्ष में इतनी शीघ्रता से कदापि नहीं बढ़ सकती थी। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज सामूहिक रूप से अछूतोद्धार

* सत्यार्थप्रकाश, प्रथम संस्करण; समुल्लास ११, पृ० सं० ३८४-८५।

तथा राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में भी काम करता रहा है। अस्पृश्यता को दूर करने में सबसे बड़ा और सबसे प्रथम स्थान आर्यसमाज का है। ठीक इसी प्रकार गुरुकुल के आचार्य की हैसियत से मैं यह कहने का दावा कर सकता हूँ कि राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में भी सबसे पहला और सफल व्यावहारिक प्रयत्न आर्यसमाज ही ने किया है और यह प्रयत्न गुरुकुल की स्थापना के रूप में है। आर्यसमाज के इन कामों को पिछले असहयोग आन्दोलन से और भी अधिक सहायता मिली और असहयोग-आन्दोलन को आर्यसमाज के इन कार्यों से पर्याप्त उत्तेजना मिली—ये दोनों बातें तथ्य हैं।

आज इस नवीन राजनैतिक धर्मयुद्ध में आवश्यकता है कि आर्यसमाज अपने उद्देश्यों के अनुसार एक और रचनात्मक कार्य अपने हाथों में ले। यह कार्य है शराब के बहिष्कार के रूप में। आर्यसमाज शराब का सबसे बड़ा दुश्मन है। महात्मा गाँधी की तरह आर्यसमाज का भी विश्वास है कि शराब के बहिष्कार के बिना देश पवित्र नहीं बन सकता। महात्मा गाँधी ने हाल ही में गुरुकुल तथा हरिद्वार-वासियों के नाम जो सन्देश भेजा है, उसमें उन्होंने लिखा है—"जबतक भारतवर्ष में एक भी शराब की दूकान बाक़ी है, तबतक मुझे शांति नहीं मिल सकती।"

आर्य भाइयो! आपका गुरुकुल अब शीघ्र ही इस काँगड़ी की भूमि से हरिद्वार जा रहा है। वहाँ ज्वालपुर के निकट इस पवित्र कुल की इमारतें बन चुकी हैं। बड़े खेद का विषय है कि ज्वालापुर में शराब की एक दूकान है। हम गुरुकुल के वासी यह चाहते हैं कि हमारे निकट के पवित्र वातावरण को यह शराब की दूकान ख़राब न करे। हरिद्वार, ज्वालापुर तथा पञ्चपुरी के निवासियों की यह पुरानी इच्छा थी कि उनके पवित्र तीर्थ में से यह दूकान हटा दी जाय। ज्वालापुर के मुसलमानों की भी यही इच्छा थी। इसके लिए अनेक बार प्रयत्न भी किये गये, परन्तु सफलता नहीं मिली। अब गंगासभा-हरिद्वार तथा गुरुकुल के अनेक सत्याग्रही स्नातकों के प्रयत्न से यह आन्दोलन पुनः बड़े उग्र तथा प्रभावशाली रूप में उठाया गया है। जो आर्य भाई इस सत्याग्रह में सम्मिलित होना चाहें, उन्हें गुरुकुल कांगड़ी (ज़ि० सहारनपुर) के पते पर श्री पं० देवशर्मा जी से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। वह इस गुरुकुल-सत्याग्रही-दल के कप्तान नियुक्त हुए हैं।

मेरी राय में अब वह समय आगया है, जब आर्यसमाज सामूहिक रूप से इस कार्य में अपनी पूरी शक्ति लगा दे। शराब का बहिष्कार एक धार्मिक कर्तव्य है। आर्य सज्जनो, यह कार्य आप अपना धर्म समझ कर कीजिए। याद रखिए, मातृभूमि की पवित्रता क़ायम करने के लिए इससे बढ़कर पवित्र कार्य कोई और नहीं हो सकता। हमारा संपूर्ण प्राचीन साहित्य, मनुस्मृति, शतपथ ब्राह्मण—सभी शराब की घोर निन्दा करते हैं।

मेरा आपसे अनुरोध यह है कि अपने-अपने नगर में शराब के विरोध में पिकेटिंग और सत्याग्रह करने के लिए उपसमितियाँ स्थापित कीजिए, और एकसाथ इस धर्मयुद्ध में जुट जाइए। गुरुकुल-कांगड़ी का सत्याग्रही दल इस कार्य में आपका मार्ग-दर्शक बनेगा। उसका अनुसरण कीजिए। ऋषि की राजनैतिक और धार्मिक दो सेनायें हैं। उसकी राजनैतिक सेना इस समय विदेशी सरकार द्वारा अन्याय से लगाये गये नमक-कर के विरोध में सत्याग्रह कर रही है, अब उसकी धार्मिक सेना आर्यसमाज का यह कर्तव्य है कि वह शराब के विरोध में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को केन्द्रित कर दे।

यह मत सोचिए कि आर्यसमाज के इस कार्य से सरकार नाराज़ होगी, इसलिए यह काम नहीं करना चाहिए। जब हम लोग नगर-कीर्तन के अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह करने का निश्चय करते हैं, तब क्या सरकार नाराज़ नहीं होती? आवश्यकता इस बात की है कि हम सामूहिक रूप से शराब के बहिष्कार द्वारा अपना उद्देश्य देश की शुद्धि ही समझें। इस काम में मुसलमान और पौराणिक भाई भी आपका सहयोग देंगे, और इससे देश में सहिष्णुता का पवित्र वायुमण्डल तैयार होगा। यह कार्य तो आर्यसमाज के धार्मिक प्रचार का मुख्य अङ्ग है।

आर्य भाइयो! दयानन्द के वीर सैनिकों की परीक्षा का समय आ गया है। इस समय अपने को कायर सिद्ध मत कीजिए। आप इस धर्मयुद्ध में आगे बढ़िए। संसार देखे कि ऋषि दयानन्द के चेलों में कितना जीवन है!

स्त्रियाँ और खद्दर

[श्रीमती हुक्माईदेवी छात्रा, हृषिकेष]

वर्त्तमान समय में देश के अन्दर स्वतन्त्रता की जो लहर उठ रही है, उसमें स्वदेशी का प्रश्न एक आवश्यक प्रश्न है—और स्वदेशी के अन्दर भी खद्दर-धारण का प्रश्न बड़ा ही आवश्यक, महत्वपूर्ण और सर्व-साधारण के जानने योग्य है। अनेक नर-नारी अनेक बार यह प्रश्न कर बैठते हैं कि महात्मा गाँधीजी वर्त्तमान समय में खद्दर-प्रचार के लिए इतना भारी उद्योग क्यों कर रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति को यह उपदेश क्यों देते हैं कि इस समय खद्दर पहनना सब धर्मों में सबसे बड़ा धर्म है, और देश को स्वतन्त्र करने का यह अमोघ अस्त्र है, इत्यादि-इत्यादि।

जब कोई नवीन आन्दोलन किसी देश में उठता है तो वहाँ के नर-नारियों, को अनेक प्रकार की शङ्कायें होती हैं। शङ्काओं का होना शुभ चिन्ह है, क्योंकि यही ज्ञान-वृद्धि का सरल मार्ग है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ उपर्युक्त प्रश्न पर शङ्का करती अधिक देखी गई हैं। अतएव बहनों की शङ्का निवारण करने के लिए मैं इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने की इच्छा करती हूँ—

(क) विदेशी कपड़ा पहनने से हमारे देश भारतवर्ष का साठ करोड़ से अधिक रुपया विदेशों को चला जाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि यह देश महाकंगाल हो रहा है और होता जा रहा है। यहाँ के नर-नारी भूखे-नंगे होकर मर रहे हैं, और विदेशी आनन्द कर रहे हैं। खद्दर धारण करने से वह रुपया विदेश न जाकर देश में ही रहेगा, कंगाली दूर होगी, भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र प्राप्त होने से देश के लोग सुखी होंगे।

(ख) विदेशों का बना हुआ कपड़ा पहनने से हमारे देश के लोग पराधीन हो गये, यदि विदेशों से कपड़ा न आवे तो नंगे फिरते रहें और हाहाकार मच जाय। इससे यहाँ के रुई धुनने वालों (धुनियों), कातने वालों, कपड़ा बुनने वालों (जुलाहों) और कपड़ा बेचने वालों का व्यवसाय (पेशा) बिलकुल नष्ट हो गया। एक तो बेरोजगार होकर और भूख की ज्वाला से सन्तप्त होकर 'भूखा मरता क्या न करता ?' की लोकोक्ति के अनुसार वे अपने ही देश के धनिक और सम्पन्न भाइयों के घरों में लूट-मार, चोरी-डाका आदि डालकर उपद्रव मचाने लगे, जिससे उन्हें जेलखानों में सड़ना पड़ा और दूसरे लोगों को आर्थिक घाटा हुआ और व्यर्थ की तकलीफें झेलनी पड़ीं। इससे समाज में अशान्ति फैली, नैतिक पतन हुआ, और अनेक प्रकार के झगड़े-बखेड़े खड़े होगये; अपने देश-भाइयों में फूट का बीज बोया गया। चोरी करके झूठ बोलना सीखा, और अनेक पापों में फँस गये। विपरीत इसके खद्दर पहनने से स्वाधीनता रहती है। किसी देश का मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ के रुई धुनने वालों, कातने वालों, कपड़ा बुनने वालों और कपड़ा बेचने वालों को रोजगार मिलता है। एक तो सारे दिन काम में लगे रहने से उनका मन बुराई की ओर नहीं जा सकता, दूसरे सायंकाल घर में जब मजदूरी का पैसा लेकर जायँगे, और सुख से पेट भरकर भोजन करेंगे और तन ढक कर कपड़ा पहनेंगे, तो फिर उन्हें धनिक और सम्पन्न भाइयों की ईर्ष्या करने की आवश्यकता न रहेगी।

इस प्रकार जब वे सुखी और सन्तुष्ट रहेंगे, तो लूट-मार, चोरी-डाका आदि कुछ नहीं करेंगे। इससे देश में शान्ति और सुख रहेगा। समाज के लोग अनेक बुराइयों से बचकर अच्छे आचरण करेंगे, जिससे समाज का सुधार होगा।

(ग) विदेशों का बना हुआ रंग-बिरंगा अनेक प्रकार का चटकीला-भड़कीला, चमकदार, झमझमाता हुआ कपड़ा पहनने से देश के नर-नारियों में बड़ी शौक़ीनी, नज़ाकत, नखरा, शेखी और घमण्ड उत्पन्न हो गया। धनिक लोग बहुमूल्य वस्त्र धारण कर आसमान से बातें करने लगे, साधारण श्रेणी के मनुष्यों को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखने लगे, और इस प्रकार के घमण्ड में चूर होकर अत्यन्त विषयासक्त बन गये। बहुमूल्य वस्त्रों से आर्थिक हानि, अनेक प्रकार की शौक़ीनी-शेखी से मानसिक और घमण्ड से देश का सामाजिक पतन हुआ और सब प्रकार से हानि पहुँची। विपरीत इसके शुद्ध सादा और श्वेत खद्दर पहनने से मन में सादगी, शुद्धता अपने देशी भाई-बहनों के प्रति समानता का भाव उत्पन्न होता है। ऊँच-नीच की खोटी भावना एवं घमण्ड नष्ट होता है; सुशीलता, दृढ़ता, धार्मिक भाव, स्वदेशाभिमान और स्वाधीनता की पवित्र एवं उन्नत करने वाली भावनायें उत्पन्न होती हैं।

(घ) अनेक देशों का बना हुआ भिन्न-भिन्न प्रकार का कपड़ा पहनने से देश के अन्दर सम-भाव संगठन और एकदेशीयता नहीं रहती; दूसरे देशों के निवासियों की दृष्टि में भारतीयता का कोई विशेष चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होता; क्योंकि कोई मखमल, कोई नीमजरी, कोई बनात और कोई कश्मीरा पहनता हुआ दृष्टिगोचर होता है। परन्तु खद्दर धारण करने से ग़रीब-अमीर, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सब ही, समान दृष्टिगोचर होते हैं। समान-वेष से पवित्र सम-भाव उत्पन्न होता है, समाज का संगठन होता है, परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है, और विदेशियों की दृष्टि में भारतवासियों की विशेषता का चिन्ह दिखाई देता है, जिससे उनकी एकता और शक्ति का पता लगता है।

(ङ) रेशमी और ऊनी वस्त्र बहुत गरम होते हैं। अनेक प्रकार की मलमल, डोरिये जाली, तनज़ेब, नैनसुख आदि बहुत पतले और शीघ्र फटने वाले होते हैं। नीमजरी, मखमल, कमख़ाब, जरी के वस्त्र आदि बहुत ही बहुमूल्य और भारी होते हैं, ख़राब होने का भी हर समय खटका लगा रहता है। विदेशों में अनेक पशुओं के रक्त, चर्बी, अण्डे की सुफ़ेदी, बाल, खाल आदि का मिश्रण करके वस्त्रों पर माँड, रंग, फूल और रुयें लगाये जाते हैं, जिससे वे सुन्दर और मन को मुग्ध करने वाले बनते हैं; ऐसे वस्त्र हमारे देश के सात्विक प्रकृति, धार्मिक और पवित्र विचार के लोगों के लिए ग्रहण करने के सर्वथा अयोग्य और त्याज्य हैं। विपरीत इसके खद्दर न बहुत भारी, न हलका, न बहुमूल्य; सर्दी में गरम रहता है, गर्मी में पसीना आकर ठण्डा हो जाता है, ख़राब होने पर भारी नुक़सान होने का भय नहीं रहता, यदि ख़राब भी हो जाय तो धुलकर शीघ्र ही शुद्ध हो सकता है। अन्य वस्त्रों की अपेक्षा बहुत मज़बूत और टिकाऊ होता है। अकेला खद्दर का वस्त्र धारण करने से ही शरीर की रक्षा हो सकती है। हर प्रकार का परदा भी रह सकता है। उपर्युक्त विदेशी वस्त्रों की भाँति, माँस-धोवन, चर्बी, अण्डे की सफ़ेदी और रक्त आदि इसमें कुछ नहीं पड़ता। केवल शुद्ध रुई के सूत के तारों से यह बनता है और सख्त करने के लिए कभी-कभी चावलों का माँड डाल दिया जाता है। धोने पर यह साफ़ भी बहुत जल्दी निकल आता है।

(च) ऊपर जिस प्रकार के वस्त्रों का नाम

गिनाया गया है, उनमें से ऊनी और रेशमी वस्त्रों को सन्दूकों में रखने से एक ऋतु बीत जाने पर उनमें कीड़ा अवश्य लग जाता है, जिसके कारण एक तो वस्त्र दुर्बल हो जाते हैं और दूसरे आर्थिक हानि होती है। रेशमी; ऊनी जरी के और डोरिये आदि जितने भी प्रकार के विदेशी वस्त्र हैं वे सब ही पानी पड़ने या धोबी के यहाँ जाने से खराब हो जाते हैं और शाभा बिगड़ जाने से वे बहुत भद्दे लगते हैं, जिससे पहनने वाले के मन में ग्लानि-सी हुआ करती है। इसके अतिरिक्त इन सब प्रकार के वस्त्रों में यह बड़ा भारी दोष है कि किसी की सिर्फ टोपी ही बनती है. किसी का कोट ही बनता है, किसी का कुरता, किसी का जाकेट किसी का पाजामा, किसी का लहँगा, किसी का ओढ़ना, किसी की कुर्त्ती, डुपट्टा आदि बनते हैं। इनमें से यदि एक प्रकार का भी वस्त्र प्राप्त न हो सके तो लाचार उसके लिए कष्ट उठाना पड़ता है। कोई भी ऐसा कपड़ा नहीं, जिसमें पूरी पोशाक बन जाय। परन्तु विपरीत इसके खद्दर कई वर्ष तक सन्दूक में रखने पर अथवा ऋतु व्यतीत होने पर भी खराब नहीं होता, पानी पड़ने पर या धोबी के यहाँ धुलने पर वह खराब या भद्दा नहीं होता, बल्कि धुलने पर गाढ़ा चमकदार और शुद्ध एवं सुन्दर बनता जाता है, जिसको पहनकर मन प्रसन्न होता है। अकेले खद्दर से ही टोपी, कोट, कुरता, पाजामा, जाकेट, ओढ़ना, लहँगा, साड़ी, बण्डी, रूमाल आदि सब ही प्रकार की पोशाक बन सकती है और यदि किसी समय धोबी न मिले तो पहनने वाला अपने हाथों ही प्रत्येक वस्त्र धोकर शुद्ध कर सकता है। यही खद्दर की महती विशेषता है।

(छ) हमारे परम पूज्य महात्मा गान्धीजी की प्रेरणा से देश में जबसे खद्दर का प्रचार हुआ है, वहाँ पर बहुत से बेरोजगारों को रोजी मिल गई, जिसकी बदौलत वे कुछ रूखा-सूखा टुकड़ा खाने लगे, लोग स्वदेश के बने हुए कपड़े का व्यवहार कर स्वाधीन होने लगे, फ़जूलखर्ची, शौक़ीनी और घमण्ड बहुत-घट गया, देश-प्रेम और भ्रातृ-प्रेम उत्पन्न होगया। विपरीत इसके विलायत के बहुत-से कपड़े के बन्द होने से वहां के कई कारखाने बन्द होगये, क्योंकि स्वदेश के लोग विदेशी कपड़ा पहनना पाप समझने लगे। जब विदेशी कपड़े की बिक्री बहुत घट गई तो वहाँ पर (विदेशों में) हाहाकार मचने लगा। संसार में जितना भी कार्य हो रहा है वह सब धन के द्वारा चल रहा है, और धन को बढ़ाने का ज़रिया केवल व्यापार है। यदि इस देश का व्यापार नष्ट न होता तो हम इस प्रकार दाने-दाने के मोहताज न होते।

ऊपर जितने भी विदेशी वस्त्रों के दोष और खद्दर के गुणों का वर्णन किया गया है, उनमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। अतः मैं अपने देश के महिला-मण्डल का ध्यान इस ओर आकर्षित करना परमावश्यक समझती हूँ। वर्तमान स्थिति को सम्मुख रखते हुए देश-बहनों के लिए खद्दर का प्रश्न एक आवश्यक और विचारणीय प्रश्न है, क्योंकि उक्त समाज देश का अर्धाङ्ग है और अर्धांग की सहायता के बिना कोई कार्य कैसे सफल हो सकता है? परिवारों के अन्दर विवाह, पुत्र-जन्म, और अन्य अनेक प्रकार के उत्सव होते हैं, जिनमें वस्त्रों का बहुत-सी खरीद हुआ करती है। यदि पुरुषों से उस समय कहा जाय कि स्वदेशी वस्त्र अथवा खद्दर ही खरीदना, तो वे उत्तर दिया करते हैं, 'क्या करें भाई, हम तो एक इंच भी विदेशी वस्त्र न मोल लें; परन्तु घर की अमुक-अमुक देवियाँ विवश करती हैं।' इत्यादि। इसीलिए हम अपनी बहनों से साग्रह-सादर-सप्रेम निवेदन करती हैं कि वे अपने देश की दशा का ध्यान रखती हुई अपने

हृदय से यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लें कि चाहे हमें कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, परन्तु हम कोई भी विदेशी वस्त्र व्यवहार नहीं करेंगी। शौक़ीनी, टीप-टाप, बनाव-शृंगार और फ़जूलख़र्ची एवं अधिक धन व्यय करने के लिए जो महिला-मण्डल के मस्तक पर कलंक का टीका लगा हुआ है, उसे मिटाने का यह अवसर है कि महात्मा गान्धी के बताये हुए अमोघ मन्त्र का पालन करते हुए एकमात्र खद्दर का व्यवहार किया जाय। बहनो ! यह समय राग-रंग, उत्सव और आनन्दोल्लास कर धन बर्बाद करने और चैन की वंशी बजाने का नहीं है। इस समय देश पर महान् विपत्ति है। हमारे पूज्य नेताओं और पुरुषवर्ग ने जो स्वतन्त्रता का आन्दोलन उठाया है, और प्राण दे-देकर भी उसकी सफलता की चेष्टा कर रहे हैं, वह आपके सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकता।

स्त्री-समाज खद्दर का व्यवहार शुरू करके पुरुष-समाज की बड़ी भारी सहायता कर सकता है। घर-घर में चर्खा चले, कपड़ा बुना जाय और उसी का व्यवहार हो। स्वराज्य कोई गूढ़ अर्थ का शब्द नहीं है, उसके अर्थ तो स्वतन्त्रता के ही हैं। यदि स्त्री-समाज इस कठिन अवसर पर पुरुष-समाज की सहायता करके देश-भक्ति का परिचय देना चाहे, तो उसे खद्दर का व्यवहार अवश्य करना चाहिए। यही हमारा बार-बार निवेदन है, क्योंकि इसीके द्वारा देश, समाज और भारत सन्तान का कल्याण हो सकता है।

सच्ची सभ्यता

[बाबा राघवदासजी]

इस समय अधिकांश लोगों की यह धारणा हो रही है, कि पाश्चात्य देशों के ढंगपर हमारे कार्य न होंगे तो हमारा उद्धार नहीं हो सकता। पाश्चात्य व्यापार का ढंग, कृषि-कार्य, रण-सामग्री, उनका बनाव-चुनाव, सामाजिक बन्धनों में ढिलाई, पोशाक तथा अन्य भोग्य सामग्री—इनको देखकर बहुतों की आँखें चौंधिया रही हैं। पर इनमें सत्यता कितनी है, इसका अनुभव हो जाने के यह पटल स्वयं ही दूर हो जायगा।

कपड़ों के मिल और कृषि-यंत्रों को ही लीजिए। महात्माजी का चर्खा जब आरम्भ हुआ, तब लोगों ने उसकी बड़ी खिल्लियाँ उड़ाईं, उनका परिहास किया, और यह साबित करने की कोशिश की, कि यंत्र-सामग्री से सफलता ही नहीं प्राप्त हो सकती। पर छः-सात वर्षों से अविरत परिश्रम से भारतीय चर्खा-संघ ने यह बता दिया कि यह कार्य असम्भव नहीं है। इतना ही नहीं, पर देहात के बेकारी के सवाल को हल करने के लिए इससे बढ़कर कोई और उपाय नहीं है। और तो और, मानव-समाज के हितचिंतक कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसकी सत्यता की स्वीकृति दी है।

रही कृषि। सो शाही कृषि कमीशन और आज भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों पर कृषि-प्रदर्शिनियों का जो आयोजन हो रहा है, उनमें यह बात बड़े ज़ोरों से प्रमाणित करने की कोशिश की जा रही है कि कृषि में यन्त्र-सामग्री को काम में लाये बिना अच्छी पैदावार नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, पर संयुक्त-प्रान्त में आगरा अवध-ज़मींदार-समाज में ज़मीनों को आर्थिक

बनाने के लिए मौरूसी काश्तकारों को मुआवजा देकर जमीन निकाल लेने का जो एक खास नियम बनाया गया है वह इसीलिए कि फ़ार्म बड़े-बड़े चक बनाये जायँ। ऐसे चक बनने पर साधारण हलों से या बैलों से तो काम चलेगा नहीं खामख्वाह यन्त्र मँगाने की आवश्यकता पड़ेगी और उनके हिसाब से, सरकार के हिसाब से—कृषि-विशेषज्ञ बड़े लाट लार्ड इरविन साहब के प्राचीन अनुभव से—पैदावार अच्छी होगी, कम खर्चा लगेगा और भला होगा। न बैलों को खिलाने-पिलाने सम्हालने की आवश्यकता न उनके नस्ल की चिन्ता। पर इस कार्य में वास्तविक कितना लाभ है, इसका परिणाम जब लार्ड इरविन साहब के ही भाई-बन्ध अपना अनुभव बतायेंगे तो जरा अधिक माननीय होगा।

अभी हमारे देश में इस तरह का प्रारम्भ हुआ है, अतएव यह अनुभव भी विशेष ध्यान देकर देखने की चीज है। अन्यथा विशेष जहर फैल जाने पर उसके परिणाम से समाज को बचाना जरा कठिन होगा। अस्तु। इरविन साहब के ये भाई-बन्ध हैं अमेरिका-निवासी। अमेरिकन सरकार के कृषि-विभाग ने (कुछ दिन हुए) यंत्र और घोड़े की तुलनात्मक उपयुक्तता निश्चित करने के लिए एक कमिटी बनाई थी। उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो जाने पर उसपर अपनी सम्मति देते समय सरकार के 'लाइव स्टॉक एक्सपर्ट' ने यह लिखा कि यंत्र की अपेक्षा घोड़ा ही अधिक उपयुक्त है। थोड़ीसी पूंजी, थोड़े खर्चे में प्राप्त होने वाली कार्य-शक्ति, घर में ही चारा पैदा करने की सरलता, प्रजोत्पादन, समय पड़ जाने पर अधिक कार्य करने की क्षमता, चाहे जिस स्थान पर चाहे जिस परिस्थिति में काम में लगाने की सुलभता आदि बातों में यन्त्रों की अपेक्षा पशु-साधन अधिक उपयुक्त है। अतएव कृषि-कार्य में यन्त्र से घोड़े का महत्व कभी भी बना ही रहेगा।

यह सम्मति है उस अमेरिका-निवासी विशेषज्ञों की, जो यन्त्र-सामग्री के पूर्ण भोक्ता हैं! हमारे देश के विद्वान और खासकर वे लोग जो ब्रिटिश साम्राज्य के पृष्ठपोषकों की हाँ में हाँ मिलाने वाले हैं, इस सम्मति को ध्यान से पढ़ें, जिससे संयुक्तप्रान्त आदि में 'आगरा-क़ानून-लगान' आदि बनाकर जमींदार और काश्तकारों में परस्पर वैमनस्य बढ़ रहा है, उसे शान्त करने में सहायक हों। इस अनुभव से हमको यह भी ज्ञात होगा कि हमारे भारत में गौ का जो इतना महत्व था, या है, उसका कारण क्या है? कहीं यहाँ भी प्राचीन समय में ऐसी ही कोई कमिटी बैठी होगी, जिसके निर्णय के अनुसार गौ केवल पशु न रहकर 'माता' बन गई हो!

जिस देश में कम आबादी और अधिक जमीन हो, वहाँ यन्त्र-सामग्री कुछ दिन के लिए भले ही लाभदायक मालूम पड़े; पर जहां आबादी घनी हो और उस हिसाब से ज़मीन कम, वहाँ यन्त्र-सामग्री का थोथापन थोड़े ही दिनों में प्रकट हुए बिना न रहेगा।

भारत के हल, भारत के बैल, और भारत का चर्खा-चक्की—ये इसीके द्योतक हैं।

———

गाँधीजी की महानता

[श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, बी० एस-सी, बी० टी०]

गत १ मार्च को बोस्टन नगर में अमेरिका के एक प्रसिद्ध पादरी श्री जे० एच० होम्स ने जो भाषण दिया था, उसका सारांश यह है —

अंग्रेज इतिहासकार ग्रीन ने अमेरिका की स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले जनरल आर्ज वाशिंगटन को एक महान् वीर स्वीकार किया है। संसार की विभूतियों में उनको एक ऊँचा स्थान मिला हुआ है। परन्तु भारतवर्ष की स्वतन्त्रता की लड़ाई के राष्ट्रीय सेनापति महात्मा गाँधी उनसे भी महान् हैं। आज भारतवर्ष की वही स्थिति है, जो ११७६ में अमेरिका की थी; और यहाँ वैसी ही घटनायें हो रही हैं, जैसी कि अमेरिका में हुई थीं और जिनका परिणाम यह हुआ था कि अमेरिका इंग्लैण्ड से सदा के लिए अलग हो गया।

सन् १९२० में महात्माजी ने अपना अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन शुरू किया था। उनको जेल में भेजनेवाले अंग्रेज अफसर इस बात के गवाह हैं कि उस समय उनकी सफलता में कोई सन्देह न रह गया था। परन्तु खून-खराबी हो जाने से महात्माजी ने उसी समय आन्दोलन को रोककर शिथिल कर दिया। क्योंकि वह अपने अनुयायियों में हिंसा का भाव तक नहीं आने देना चाहते थे। अंग्रेजी सरकार ने उनको ६ साल के लिए जेल भेज दिया। परन्तु दो साल बाद मजदूर-सरकार ने उनको छोड़ दिया। इसी समय उन्होंने जेल में दो वर्ष तक सोचकर जो परिणाम निकाला था, वह सबको बतलाया। अर्थात् जबतक भारतवासी अपने दिमाग को काबू में नहीं रख सकते तबतक वे पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए तैयार नहीं हो सकते। इसके पश्चात् वह राजनैतिक क्षेत्र से अलग हो गये,और १९२३ में उन्होंने देश के सामने ५ कार्यों का एक-एक कार्यक्रम रक्खा —

(१) विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, (२) हिन्दू-मुस्लिम-एकता, (३) अछूतोद्धार, (४) शराबखोरी दूर करना (५) स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार। ये बातें एक मजबूती से बन्द मुट्ठी की पाँच अंगुलियों के समान थीं। अंग्रेजों ने अपनी मूर्खता से यह विश्वास कर लिया की महात्माजी का प्रभाव भारतीय जनता में कम हो गया है और अब वह एक फटे हुए बम की तरह हैं। इसलिए बजाय इसके कि वे इस दैवी अवसर से लाभ उठाकर भारतवर्ष की उन्नति में महात्माजी का साथ देते, वे यह भ्रम फैलाने लगे कि महात्मा गाँधी जब निकलते हैं तो उनकी तरफ़ कोई कुत्ता तक नहीं भौंकता! उनको पता नहीं था कि महात्माजी ने बुद्ध, कन्फ्यूशियस, ईसा इत्यादि के जैसा उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

इसके पश्चात् साइमन-कमीशन के रूप में एक बड़ी भारी राजनैतिक ग़लती सामने आई। क्या इस बात पर विश्वास किया जा सकता है कि गाँधीजी इत्यादि ३२ करोड़ भारतवासियों में से एक भी इस योग्य नहीं समझा गया, जो इस कमीशन में स्थान पाता? मजदूर-दल भी अनुदार-दल के इस षड्यन्त्र में शामिल हो गया और इस समय से गाँधीजी का अंग्रेजों में जो कुछ थोड़ा-बहुत विश्वास था, वह भी जाता रहा। आज गाँधीजी और उनके अनुयायियों का विश्वास है कि भारतवर्ष के लिए तो जैसा अनु-

दार दल वैसा ही मजदूर-दल। (जैसे नागराज वैसे साँपराज ।)

छः मास क्या बल्कि तीन मास पहले गाँधीजी ने औपनिवेशिक स्वराज्य को अपना ध्येय मान रक्खा था, परन्तु लाहौर-कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन से बिलकुल ताल्लुक़ हटाकर पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने का निश्चय कर लिया। यही बात अमेरिका में भी हुई थी।

सरकार की ओर से जो प्रस्ताव १९२१ में मंजूर कर लिया जाता वह अब भारतवासियों को स्वीकार नहीं है। 'बहुत देर करते हैं' 'बहुत देर करते हैं'—यह शब्द अंग्रेज-जाति की बेहद मूर्खता के इतिहास में लिखे हुए हैं।

सारे ब्रिटिश साम्राज्य में केवल रैम्जे मैकडानल्ड एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो भारत के साथ न्याय कर सकते हैं; परन्तु वह भी अभीतक हिन्दुस्थान-सम्बन्धी अनुदार दल की नीति से बाल भर भी इधर-उधर नहीं हुए हैं। हमारे देश में एक कहावत है कि जब युद्ध होता है तो हम सब अपने-अपने दलों का विचार छोड़कर अमेरिकन बन जाते हैं। इसी प्रकार जब इंग्लैण्ड मे भारतवर्ष का प्रश्न उठता है तो सारे अंग्रेज साम्राज्यवादी बन जाते हैं। (खेद है कि भारतवर्ष में इस स्वतन्त्रता के युद्ध में भी कुछ लोग हिन्दू मुस्लिम-समस्या के पचड़े में ही अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं, उनको इस कथन से सबक़ लेना चाहिए) भारत के साथ न्याय करने वाला कोई दल इग्लैण्ड का शासन नहीं कर सकता, और रैम्जे मैकडानल्ड की यह इच्छा है कि मजदूर-दल के हाथ में ही इंग्लैण्ड के शासन की बागडोर रहे। ब्रिटिश मजदूर-दल की यह असफलता संसार की सबसे अधिक निराशाजनक दुर्घटना है।

अब वे लोग साइमन-कमीशन की रिपोर्ट का इन्तजार कर रहे हैं। मानों साइमन-कमीशन कीरिपोर्ट हिन्दमहासागर में एक बूँद अधिक भारतवर्ष को दे देगी। भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य से दूर बहता चला जा रहा है और अब गोलमेज-कान्फ्रेंस की बात भी असामयिक हो गई है। जो शर्तें गांधीजी ने रक्खी हैं, उनको स्वीकार करके कोई ब्रिटिश सरकार भारत में नहीं रह सकती। इस कारण अब गोलमेज-कान्फ्रेंस एक असम्भव चीज़ है।

कुछ थोड़ेसे दक़ियानूसी खयाल वाले डरपोक भारतवासी भले ही उस कान्फ्रेंस में शरीक हो जायें, लेकिन भारतवर्ष के लगभग सम्पूर्ण निवासी गाँधीजी की आज्ञानुसार उससे तबतक अलग रहेंगे, जबतक उनकी शर्तें स्वीकार न कर ली जायँ। उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना उद्देश्य मान लिया है, और यह बात मुझे उस समय की याद दिलाती है, जब हमारे किसानों ने बोस्टन के निकट लेक्सिंग्टन ग्रीन में ब्रिटिश फ़ौजों पर पहली गोली चलाई थी। इसके पाँच वर्ष बाद ही अमेरिका स्वतन्त्र हो गया, और आठ वर्ष बाद अंग्रेजी फ़ौजों का अन्तिम जत्था अमेरिका से हमेशा के लिए बिदा हो गया। सम्भव है कि जिस दिन आखरी ब्रिटिश सिपाही भारतवर्ष को छोड़ दे वह दिन अभी पाँच वर्ष या आठ वर्ष के दुगुने या तिगुने वर्षों में आवे। भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है, इसलिए उसकी चाल जरा धीमी होगी परन्तु जब एक बार वह स्वतन्त्रता के मार्ग पर चल पड़ा, तो फिर कोई शक्ति उसको नहीं रोक सकती।

बहुत मुमकिन है कि गाँधीजी गिरफ़्तार हो जायँ और ब्रिटिश जेल के कटघरे में अपने प्राण त्याग कर शहीद हो जायँ; परन्तु उनका ख़ून सारे अंग्रेजों डुबाने के लिए काफ़ी होगा, पेश्तर इससे कि वे भारतवर्ष के ३३ करोड़ मनुष्यों को डुबा सकें!

एमिल सेनां

[श्री कृष्णदेव उपाध्याय]

पाश्चात्य लोगों ने संस्कृत-विद्या की वृद्धि के लिए जो कार्य किया है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। इन लोगों ने संस्कृत-विद्या सीखने में जो अटूट परिश्रम तथा इसके प्रचार के लिए जो भगीरथ प्रयत्न किया है, उसके लिए संस्कृत साहित्य पाश्चात्यों का आजन्म ऋणी रहेगा। एक विदेशी भाषा को सीखकर तथा उसमें व्युत्पन्न होकर अनेकानेक पुस्तक-रत्नों का पैदा करना उनकी असीम विद्यानुरागिता का ज्वलन्त प्रमाण है। उनकी संस्कृत विद्या के अध्ययन में सतत लगन और अटूट अध्यवसाय को देखकर कोई भी सरस-हृदय उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। वास्तव में उनका अध्यवसाय प्रशंसनीय है, उदाहरणीय है, और अकथनीय है।

भूमिका

यों तो पाश्चात्य देशों में संस्कृतज्ञों में जर्मन लोगों का नाम सर्वप्रथम है, परन्तु उनसे कुछ ही कम प्रसिद्ध फ्रेन्च लोगों का भी नाम है। जर्मन लोगों में बुरनाफ, ओल्डेनबर्ग, बोप (Bopp) तथा मैक्समूलर आदि बड़े-बड़े अगाध विद्वान् हो गये हैं, जिनकी कीर्ति सदा अक्षय रहेगी। परन्तु फ्रेन्च लोगों में भी प्रतिभाशाली विद्वानों की कुछ कमी नहीं है। इन लोगों में भी ऐसे-ऐसे अद्वितीय विद्वान थे और अभी हैं, जिनका नाम कभी भुलाया नहीं जा सकता। आज एक ऐसे ही अगाध विद्वान का जीवन-चरित्र पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है जिसने इह-लीला समाप्त करदी है। इस विद्वान की कीर्ति-लता कभी म्लान नहीं हो सकती। यह संस्कृत-विद्या का अनन्य उपासक माना जाता है।

हमारे चरित-नायक का नाम एमिल सेनां (Fmile Senart) था। आपका जन्म फ्रांस की पवित्र भूमि में प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर रीम्स (Rheims) में मार्च की २६ वीं तारीख सन् १८४७ ई० को हुआ था। हमारे चरित नायक ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपनी मातृभूमि रीम्स नगर में ही प्राप्त की। १७ वर्ष की अवस्था में आप उच्च शिक्षा का अध्ययन करने के लिए जर्मनी गये। यहाँ आपने अच्छी तरह से परिश्रम के साथ विद्याध्ययन किया तथा सन् १८६७ ई० में अध्ययन करने के बाद अपने देश को लौट आये। आप कुछ दिनों तक म्यूनिच तथा गार्टिंटन-विश्वविद्यालयों में विद्याध्ययन करते रहे। म्यूनिच-विश्वविद्यालय में आपने भाषा-विज्ञान का अच्छा अध्ययन किया। कुछ दिनों के बाद सेना ने म्यूनिच विश्वविद्यालय को छोड़कर गार्टिंटन में प्रवेश किया। यहाँ पर हमारे चरितनायक की ओल्डेनबर्ग आदि अनेक विद्वानों से भेंट हुई। इस समय गार्टिंटन-विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्रधानाध्यापक प्रसिद्ध विद्वान् थियोडार बेनेफी थे। आपने सेनां को एक होनहार नवयुवक समझा और उनकी प्रवृत्ति ग्रीक और लैटिन के भाषा-विज्ञान से हटाकर भारतीय पुरातत्व और भाषा-विज्ञान की ओर लगा दी।

जन्म तथा अध्ययन

अब सेनां तन-मन से संस्कृत विद्या का अध्ययन करने लगे। परन्तु इनका यह अध्ययन क्रम अधिक दिनों तक लगातार न चल सका। आस्ट्रो-प्रशियन तथा फ्रैंको-प्रशिन लोगों में युद्ध छिड़ जाने के कारण से आपको अपने देश आना पड़ा और अन्य सिपाहियों

की भाँति अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं का सामना करना पड़ा। इस विघ्न-बाधा के सामने आने पर भी आपने अपना अध्ययन बिलकुल छोड़ नहीं दिया था। युद्ध समाप्त होने के बाद पुनः आप सन् १८७२ ई० जर्मनी गये। इस बार आपको अध्ययन करने का अच्छा सुअवसर प्राप्त हुआ तथा आपने पिशल आदि अनेक विद्वानों के साथ मिलकर खूब अध्ययन किया।

ग्रन्थ-प्रकाशन

सर्वप्रथम सेनां ने 'कच्चायन' नामक ग्रन्थ का सन् १८७३ ई० में सम्पादन किया और उस ग्रन्थ का अनुवाद भी उसके साथ ही प्रकाशित किया। उसी समय में आपकी बुद्ध-सम्बन्धी किस्से (Legend du Buddha) नामक पुस्तक भी प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के पढ़ने से सेनां के बुद्ध-धर्म सम्बन्धी ज्ञान का पूर्ण परिचय मिलता है। कुछ ही दिनों के बाद इनकी प्रियदर्शी के शिलालेख (Inscriptions du Piyadasi) नामक पुस्तक भी प्रकाशित हुई। यह पुस्तक बड़ी पण्डित्यपूर्ण थी। सेनां ने कठिन परिश्रम से अध्ययन करके इस पुस्तक को सम्पादित किया था। प्राचीन शिलालेखों के पढ़ने मे बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हुईं, परन्तु सेनां ने उनको अति श्रम से पढ़कर सब विघ्नों को दूर कर दिया। इस पुस्तक के प्रकाशन से सेना का बड़ा नाम हुआ और इनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी। फ्रांस के विद्वानों ने आपकी विद्वत्ता से मुग्ध होकर आपको साहित्यिक संस्था का सदस्य (Member de l' Institute) केवल ३५ वर्ष की ही अवस्था में चुन लिया। सेनां की इस पुस्तक के प्रकाशित होने के बाद बुलर आदि अनेक शिलालेख—विशेषज्ञों ने भी अशोक के शिलालेखों के अनेक संग्रह प्रकाशित किये, परन्तु सेनां के समान उनकी पुस्तकों का प्रचार नहीं हुआ। आज भी सेनां-द्वारा संकलित 'अशोक के शिलालेख' पुस्तक बड़े चाव से पढ़ी जाती है। सेनां के इस ग्रंथ का अनुवाद सर जार्ज ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने और भी अनेक भाषाओं में किया।

सेनां अब सर्वदा अशोक के ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपि में लिखे गये शिलालेखों का अध्ययन करने लगे और इसी अध्ययन में इन्होंने अपनी शेष आयु बिता दी। आप प्राकृत में सन् १८६७ ई. से काम कर रहे थे और अब आपने इसमें विशेष विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। आप हमेशा 'एपिग्रेफिया इण्डिका' (Epigraphia Indica) नामक पत्रिका में लेख लिखा करते थे। फ्रांस के दूसरे पत्रों (Revue due Deuse Mondes और Journal Asiatique आदि) में भी प्रायः आप लिखा करते थे। आपके लेख बहुमूल्य समझे जाते थे। आपने अनेक शिक्षा-संस्थाओं में योग-दर्शन के ऊपर व्याख्यान दिया, इससे भारतीय विचारों का फ्रांस में बड़ा प्रचार हुआ। आप बहुत दिनों तक साहित्यिक संस्था (Academ c det inscriptions eut belles Lettres के सदस्य रहे और आपने इस समय संस्कृत शिलालेखों के बारे में बड़ी खोज की।

संस्थाओं के सदस्य

कुछ दिनों के बाद आपने एक और संस्था भी (Ecole Flranecede esctreme Orient) नामक खोली, जिसके आपही संस्थापक थे। सन् १९०२ ई० में सेनां एक और (Societe Asiatique) of Paris नामक) संस्था के सभापति चुने गये। सेनां स्वयं तो प्राचीन पुरातत्व के प्रगाढ़ पण्डित थे ही, परन्तु आपने कई और भी नवयुवकों को इस क्षेत्र में काम करने की शिक्षा दी। संस्कृत की 'धर्मपद' नामक खरोष्ठी भाषा में लिखी

गई हस्तलिखित प्रतिको आपने बड़े प्रेम तथा परिश्रम के साथ प्रकाशित किया। जब एम. पी. पिलाट ने सेण्ट्रल एशिया तथा चीन में पुरातत्त्व-अन्वेषण के लिए अपनी इच्छा प्रकट की तब सेनां ने उन्हें और भी उत्साहित किया। इस कार्य के करने के लिए सेनां की अध्यक्षता में Comitel' Asie Hvanchis नामक संस्था स्थापित की गई और इसने पिलाट को उनके कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई।

पिलाट-मिशन पुरातत्त्व-अन्वेषण में सन् १९०५ से लेकर १९०९ तक काम करता रहा। कुछ दिनों के बाद सेनां Amis de Orient नामक संस्था के सभापति चुने गये।

सेनां अध्यापक रेजडेविड द्वारा संस्थापित पाली-सोसाइटी के प्रधान सदस्यों में से थे। आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय के आनरेरी डाक्टर, एडिनबरा-विश्वविद्यालय के डाक्टर ऑव् ला (Doctor of Law) और लेपजिग तथा क्रिस्टिनिया विश्व-विद्यालय के दर्शनशास्त्र के डाक्टर (Doctor of Philasophy) थे। आप रायल एशियाटिक सोसाइटी के ब्रिटिश एसोसियेशन के आनरेरी कॉरसपाण्डिंग सदस्य भी रहे। म्यूनिच, गार्टिंगटन, बर्लिन, ब्रुसेल्स तथा एमस्टर्डम आदि अनेक नगरों की प्रसिद्ध संस्थाओं के सदस्य-पद को आपने चिरकाल तक सुशोभित किया।

आपकी मृत्यु सन् १९२८ ई० में ८१ वर्ष की परिपक्व अवस्था में हुई है। आपकी मृत्यु से पुरातत्त्व-विभाग की जो क्षति हुई है, उसकी शीघ्र पूर्ति नहीं हो सकती।

निधन

आपकी मृत्यु से भारतीय विचारों का पाश्चात्य देशों में प्रचार करनेवाला अब कोई न रहा। आप भारतवर्ष के सच्चे मित्र थे।

सासवने-आश्रम के संस्मरण

[श्री शोभालाल गुप्त]

जिस आश्रम का परिचय मैं पाठकों को देना चाहता हूँ, वह अरब महासागर के तीर पर बसा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों प्रकृतिदेवी ने यहाँ खुले-हाथों अपना सौन्दर्य्य बिखेरा है। संसार में शायद ही कोई ऐसा अभागा होगा, जो प्रकृति के इस प्रकार के क्रीड़ा-स्थलों में आकर भी अपनी चिन्ताओं से मुक्ति न पाता हो। जहाँ-तहाँ दृष्टि दौड़ाइए, आपको जल ही जल दृष्टि-गोचर होगा। जल-तरंगों का नृत्य दिन भर देखते रहिए, किन्तु ज़रा भी आप थकान अनुभव न करेंगे। जल की सतह पर सफेद पाल वाली छोटी-छोटी डोंगियाँ धीमे प्रवाह से प्रवाहित होती हुई बड़ी सुन्दर मालूम देती हैं। किनारे पर नारियल के लम्बे-लम्बे वृक्ष शान्त भाव से खड़े हैं। अरुणोदय और सूर्यास्त के समय का यहाँ का दृश्य तो वास्तव में देव-दुर्लभ होता है। चारों ओर निपट शान्ति छाई होती है। पीतवर्ण आकाश-तले मन्द समीरण में मनुष्य अपने आप को भूल कर विचार-सागर में बहने लगता है, जी में कल्पना उठती है—'यदि किसी ऐसे ही स्थान में, जहाँ प्रकृति इतनी उदार हो, रहने का अवसर मिले तो कितना अच्छा हो!'

आश्रम का नाम है वैश्य-विद्याश्रम। यह कुलाबा (बम्बई) जिले के ताल्लुके अलीबाग के एक छोटे-से ग्राम सासवने में स्थित है। आश्रम के पास निज की २-२॥ एकड़ ज़मीन है, जिसमें छात्रालय, भोज-नालय, पाठशाला, व्यायाम-मन्दिर, गोशाला आदि इमारतें बनी हुई हैं। यहाँ का जल-वायु सम-शीतोष्ण है।

एक दिन इस आश्रम के आचार्य आये और श्री जमनालालजी को निमन्त्रित कर गये। जमना-लालजी ने सहर्ष निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। किन्तु इस बीच में ही एक दुर्घटना हो गई। उनके मित्र की एक युवा कन्या प्राइमस स्टोव्ह से जलकर मर गई। फिर भी चूँकि वह एक बात निश्चय कर चुके थे, अतः निश्चित समय पर आश्रम के लिए रवाना हो दौड़-धूप करके पहुँच ही गये। उनके प्रसंग से मुझे भी यह देव-दुर्लभ स्थान देखने का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

हम लोग बम्बई के शोर-गुल को पीछे छोड़ते हुए २७ मार्च को प्रातःकाल ७॥ बजे स्टीमर में आ बैठे। उसने क़रीब १॥ घण्टे में हमें रेवास बन्दर पहुँचा दिया। बन्दर पर आश्रम के आचार्य श्री जगन्नाथ गणपत ढवण हमें लिवा ले जाने को पहले से ही उपस्थित थे। रेवास बन्दर से आश्रम ८ मील की दूरी पर है, अतः हम लोगों को मोटर-लारी की शरण लेनी पड़ी। १० बजे हम आश्रम में प्रविष्ट हुए।

बम्बई से यहाँ का वायु मण्डल सर्वथा दूसरे ही प्रकार का था। ग्राम्य-जीवन की पूरी छाप दिखाई देती थी। सादगी, निष्कपटता, विनम्रता आदि गुण मनुष्यों के चेहरों पर स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो रहे थे। आश्रम के मकानों में भी वही सादगी थी। न कोई सजावट थी, न तड़क-भड़क। स्वच्छता का चारों ओर बोलबाला था। प्रत्येक वस्तु यथास्थान रक्खी हुई थी। कूड़े-कचरे का कहीं नाम न था। थोड़ी देर बाद भोजन के लिए हम भोजनालय में

गये । सभी आश्रमवासी वहाँ उपस्थित थे । भोजन के समय हमने बीच-बीच में संस्कृत और मराठी पद्यों के सुललित गायन का खूब आनन्द उठाया । भोजन सादा था, किन्तु शाक-पात में मिर्चों का बाहुल्य था ।

आश्रम में इस समय ६२ विद्यार्थी हैं । मैंने आश्रम के आचार्य से, जो एक विनम्र, योग्य और स्वार्थत्यागी सज्जन हैं, पूछा कि आप अपने विद्यार्थियों को किस प्रकार की शिक्षा देते हैं ? उन्होंने मुझे बताया कि हमारा उद्देश्य राष्ट्र-सेवक 'वैश्य-नागरिक' तैयार करना है । कोंकणस्थ वैश्य-समाज में यह संस्था वास्तव में स्तुत्य काम कर रही है । इसको स्थापित हुए ९ वर्ष हो चुके हैं । अधिकांश अध्यापक त्यागवृत्ति वाले हैं ।

आश्रम अपने उद्देश्य का कहाँ तक पालन कर रहा है, इसका प्रमाण मुझे शीघ्र ही मिल गया । महात्माजी ने इस समय देश में एक नई रूह फूँक दी है । उस हवा से भला यह आश्रम भी कैसे अछूता रह सकता था ? विशेषकर उस अवस्था में जबकि उसे उनके घनिष्ट सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है ! दो आश्रमवासी तो स्वराज्य-सेना की पहली टुकड़ी में जा चुके हैं । तीसरे पहर छात्र और अध्यापकगण सभी श्री जमनालालजी से बातचीत, शंका समाधान आदि के लिए आश्रम के मुख्य कमरे में एकत्र हुए । कमरे में भांति-भांति के आदर्श-वाक्य और देश-नेताओं के चित्र टंगे हुए थे । बातचीत सुनने से पता चला कि छोटे-छोटे विद्यार्थियों को भी राष्ट्रीय समस्याओं का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य है । आश्रम के आचार्य ने बातचीत की समाप्ति पर जमनालालजी का आभार मानते हुए उपस्थित छात्रों और अध्यापकों को बताया कि देश के सामने महात्माजी की कृपा से पराधीनता-पाश से मुक्त होने का जो सुवर्ण सुयोग आ गया है, उसको दृष्टि में रखते हुए उनका क्या कर्तव्य है । अध्यापक तो पहले से ही आग में कूद पड़ने को तत्पर थे, १६ वर्ष से ऊपर की अवस्थावाले अन्य १० विद्यार्थियों ने भी अपने आपको राष्ट्र-वेदी पर बलिदान कर देने के लिए पेश कर दिया । आश्रम की दो बहनों ने भी इस सम्मान में भाग लेने की इच्छा प्रदर्शित की है । यद्यपि आश्रम एक जातीय संस्था है, फिर भी उसमें राष्ट्रवाद का इतना प्राधान्य होना संचालकों के लिए प्रशंसा का विषय है । यह सब सिद्ध करता है कि आश्रम के पीछे जो शक्ति व्यय की जा रही है, वह निरर्थक नहीं जा रही है, प्रत्युत् उसका वांछनीय सुपरिणाम निकल रहा है ।

आश्रम पर लगभग १२००) रुपया मासिक खर्च होता है । कातना, बुनना, पींजना आदि वस्त्र-स्वावलम्बन की सभी क्रियायें प्रत्येक आश्रमवासी छात्र को अनिवार्य रूप से सीखनी पड़ती हैं । आचार्यजी तथा अन्य एक-दो विद्यार्थियों का प्रण है कि वे अपने हाथ से बुने कपड़े के अतिरिक्त अन्य वस्त्र नहीं पहनेंगे । वे काफी अच्छे कपड़े बुन लेते हैं । इसके अतिरिक्त व्यायाम, गायन और धार्मिक शिक्षण यहाँ की शिक्षा के मुख्य अंग हैं । विद्या-विनीत अर्थात् Matriculate तक का अभ्यास क्रम है । शिक्षा का माध्यम मराठी भाषा है । राष्ट्रभाषा हिंदी सिखाने का भी प्रयास किया जाता है । भारतवर्ष का प्राचीन-अर्वाचीन इतिहास राष्ट्रीय विन्दु से पढ़ाया जाता है । संक्षेप में, विद्यार्थी के बौद्धिक विकास के लिए आश्रम के पाठ्य-क्रम में पर्याप्त सामग्री का समावेश किया गया है । व्यापार-विषयक शिक्षा विशेष रूप से दी जाती है । वर्ष में १५ दिन छात्र व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से देशाटनार्थ जाते हैं । आश्रम की व्यवस्था का भार स्वयं विद्यार्थी ही उठाते हैं । उनकी एक समिति बनी हुई है । अध्या-

पकगण तो उन्हें केवल सहाय्यमात्र देते हैं। सप्ताह में एक बार वक्तृत्वोत्तेजक सभा का अधिवेशन होता है, जिसमें विद्यार्थी सामयिक प्रश्नों पर विवेचन करते हैं। यद्यपि आश्रम की शिक्षणशाला का किसी अन्य शिक्षण-संस्था से सम्बन्ध नहीं है, तथापि परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को अन्य राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं में प्रवेश होने में कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती और वे आसानी से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। प्रातः-सायं सब आश्रमवासी एक स्थान पर एकत्र होकर ईश-प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना-भूमि सुन्दर बनी हुई है। प्राकृतिक स्वच्छता में मन स्वतः एकाग्र होने लगता है। हम लोग पूरे एक दिन आश्रम में रहे और जो कुछ देखा उसका हमपर अच्छा असर पड़ा है। देश के कई गण्यमान्य नेता इस संस्था को अपना आशीर्वाद दे चुके हैं। महात्मा गाँधी के शब्दों में मेरी भी यह हार्दिक कामना है कि यह आश्रम चिरायु हो और सतत उन्नति करता हुआ देश और समाज की सेवा में अपना योग देता रहे!

महात्माजी की अपील

[राष्ट्र-यज्ञ आरम्भ हो गया है। देश में, महात्मा गाँधी के नायकत्व में, विदेशी सरकार और भारतीय प्रजा की लड़ाई छिड़ चुकी है। दोनों की शक्तियों का परीक्षण हो रहा है। ऐसे समय सेनापति महात्मा गाँधी ने अपने लेखों या भाषणों में भारतीय बहनों, पुरुषों तथा मिल-मालिकों से जो मर्मस्पर्शी अपीलें की हैं, 'हिन्दी नवजीवन' के अनुसार उनमें से कुछ निम्नप्रकार हैं। —सम्पादक त्या० भू०;]

बहनों से—

अनेक बहनें सविनय भंग की इस लड़ाई में शामिल होने के लिए अत्यन्त अधीर हो रही हैं। उनकी यह अधीरता मुझे पसन्द है। जबसे मैं विचार करने लगा हूँ तभी से मैंने यह समझा है कि स्त्रियों की उन्नति के बिना हिन्दुस्थान कभी शुद्ध स्वराज्य का मज़ा नहीं लूट सकेगा। इसलिए मेरे हरएक काम में यह योजना निश्चय ही रही है कि स्त्रियाँ चाहें तो वे भी पुरुषों के समान ही उसमें भाग ले सकें।

इस शान्तिमय युद्ध में उनका हिस्सा पुरुषों से कहीं ज़्यादा होना चाहिए। स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। उसे अबला कह कर पुरुष उसके साथ अन्याय करता है। अगर ताक़त से मतलब पाशवी ताक़त का है, तो निस्सन्देह पुरुष का अपेक्षा स्त्री में कम पशुता है। पर अगर उससे मतलब नैतिक शक्ति का है, तो अवश्य ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री कहीं अधिक शक्तिशालिनी है। क्या स्त्री में पुरुष से अपेक्षाकृत अधिक प्रतिभा नहीं है? क्या उसका आत्मत्याग पुरुष से बढ़ कर नहीं है? उसमें सहन-शक्ति की कमी है? साहस का अभाव है? बिना स्त्री के पुरुष हो नहीं सकता। अगर अहिंसा हमारे जीवन का ध्यान-मंत्र है, तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।

मैं वर्षों से इस विचार का पोषण करता आया हूँ। जब आश्रम की बहनों ने पुरुषों के साथ चलने का आग्रह किया था, उस समय मेरे अन्तर्नाद ने मुझे कहा था कि बहनों का काम सिर्फ नमक-कानून को तोड़ने का नहीं है। ईश्वर ने उन्हें इससे भी महान् कार्य के लिए सिरजा है।

मैं भली भाँति जानता हूँ कि हिन्दुस्थान की बेशुमार औरतें अनपढ़ हैं, पर अनपढ़ होते हुए भी वे अपना स्थान किस तरह प्राप्त कर सकें, इस विचार में से ही शिक्षा-सम्बन्धी मेरे सिद्धान्तों का जन्म हुआ है। और उसीसे स्वराज्य-प्राप्ति के साधनों का निर्माण हुआ है। अब तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस लड़ाई की रचना ही इस तरह की गई है कि बहनें चाहें तो पुरुषों से भी अधिक

हिस्सा इस लड़ाई में ले सकती हैं। खादी का सारा काम बहनों के अधीन है। अगर वे सहयोग न करें तो खादी का काम आज ही बैठ जाय। खादी-काम को बनाये रखने में जितने पुरुष मददगार हैं, बहनों की संख्या कम-से-कम उससे पाँचगुनी है। दरअसल तो दसगुनी मानी जानी चाहिए क्योंकि आठ घण्टों तक चलने वाले एक करघे के लिए दस बहनें अवश्य काम करती होंगी। सब कोई जानते हैं कि करघों को पूरा-पूरा सूत पहुँचाने में पुरुषों का हाथ बहुत ही कम है, तथापि खादी-काम के और अंगों में भी स्त्रियाँ ठीक-ठीक तादाद में हाथ बँटा रही हैं। करघे पर तो बहुतेरी स्त्रियाँ काम करती ही हैं। अतएव खादी के बारे में तो यह साबित हो चुका है कि यह काम केवल बहनों के ही अधीन है और इस काम के कारण ही आज बहनों ने वह तरक्की है, जो हिन्दुस्थान के इतिहास में कभी नहीं हुई थी और न किसी ने जिसकी कभी कल्पना ही की थी। तीन बार सारे हिन्दुस्तान की प्रदक्षिणा करके मैंने यही देखा है, और आज गुजरात की इस कूच के दरम्यान भी मैं इसी के दर्शन कर रहा हूँ, सो भी यहाँ तक कि हम ग्रैराफिक से इसका हिसाब निकाल सकते हैं। अर्थात् जहाँ जिस हद तक चर्खा चला है, वहाँ उस हद तक स्त्रियों में जागृति फैली है।

यों सोचते हुए और सविनय भंग में हाथ बँटाने की बहनों की अधीरता का ख्याल करते हुए मुझे तो यह प्रतीत हुआ है कि अगर सचमुच ही बहनें जोखम उठाना चाहती हों, भारत के ही नहीं बल्कि सारे संसार के इतिहास पर अपनी छाप डालना चाहती हों, और हिन्दुस्थान की सभ्यता के पुनरुद्धार की इच्छा रखती हों, तो उन्हें अपने लिए कोई खास क्षेत्र ढूँढ लेना चाहिए। आइए, इस पर हम थोड़ा विचार करें। सविनय भंग में शामिल होने की इच्छा रखने वाली बहनें कुछ ही समय में उसमें शामिल हो सकेंगी। लेकिन नया क्षेत्र ढूँढ चुकने पर अब बहनों को नमक-कानून का सविनय भंग करने के लिए बुलाने में मुझे ज़रा भी मज़ा नहीं आता। जो बहनें इसमें शामिल होंगी वे पुरुषों में खो जायँगी। क्योंकि मुझे आशा है कि जगह-जगह से पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड निकल पड़ेंगे। मैं नहीं मानता कि इतनी ही तादाद में बहनें भी मैदान में आयेंगी। पर अगर इतनी बहनें मैदान में आ जायँ तो बहनों और भाइयों को कुछ करना न पड़े, और नमक कर नाबूद हो जाय। मैं जैसे-जैसे विचार करता जाता हूँ, मुझे मालूम होता है कि नमक-कर को रद कराने में हमें बहुत तकलीफ न पड़नी चाहिए। लेकिन नमक से भी बहुत ज्यादा कठिन काम तो मद्यपान-निषेध का है। इस काम के लिए मैं पुरुषों की हार कबूल कर लेना चाहता हूँ। १९२१ में पुरुष शराब की दूकानों पर धरना देते थे, लेकिन मुझे उन्हें रोकना पड़ा। क्योंकि पुरुषों ने जगह-जगह गलतियाँ की थीं। हम बलात्कार से या ज़बर्दस्ती करके शराब की दूकानें बन्द कराना नहीं चाहते ऐसे कार्यों से लोगों की ताकत नहीं बढ़ती। हमारी सच्ची जीत तो इस बात में है कि हम पत्थर-सी छाती वाले कलवारों या शराब की दूकान के मालिकों के दिल पिघलावें और शराब पीने वाले अपने पागल भाई-बहनों के हृदयों को प्रभावित करें। मेरे मत इन लोगों के हृदय-परिवर्तन का काम स्त्रियों का खास क्षेत्र है, या वे इसे अपना खास क्षेत्र बना सकती हैं। इतिहास से साबित होता है कि स्त्री जितनी तेजी के साथ मानव-हृदय पर साम्राज्य जमा सकती है, पुरुष उतनी तेजी के साथ नहीं जमा सकता। स्त्रियाँ अगर चाहें तो मद्यपान-निषेध के इस काम को आज ही शुरू कर सकती हैं। इस काम की कल्पना इस प्रकार है—

१. भली अर्थात् सुशिक्षित और सुचरित्र स्त्रियाँ जगह-जगह सत्याग्रही दल कायम करें और वे अकेली ही शराब के ठेकेदारों के पास डेपूटेशन ले जायँ और उन्हें इस धन्धे को छोड़ देने की प्रार्थना करें।

२. शराबियों के घर जायँ, शराब की दूकानों के आस-पास खड़ी रहें, भजन-कीर्तन करें और शराब की दूकान पर जानेवालों को उस जाल में फँसने से रोकें।

मादक द्रव्यों का निषेध और विदेशी वस्त्र का बहिष्कार आखिरकार तो कानून के जरिये ही स्थायी होंगे। लेकिन यह कानून तबतक नहीं बनेगा, जबतक कि जनता की ओर से पूरा-पूरा दबाव नहीं डाला जायगा।

इसमें तो किसी को शक ही न होना चाहिए कि ये

दोनों देश के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। शराब और अफीम वगैरा के कारण इनके सेवन करनेवालों का नैतिक पतन होता है। विदेशी वस्त्र के कारण देश की आर्थिक नींव ढीली पड़ती है और करोड़ों लोग बेकार हो जाते हैं। हर हालत में आफत घरवालों के सिर आती है, अर्थात् औरतों पर पड़ती है। यह तो वही स्त्रियाँ बता सकती हैं, जिनके पति शराबखोर हैं कि जो कुटुम्ब एक समय शान्तिपूर्ण और सुव्यवस्थित थे, इस शराबखोरी के कारण आज उनकी कैसी दुर्दशा हो गई है। हमारे झोंपड़ों में रहनेवाली लाखों-करोड़ों बहनें बेकारी के मसले को बखूबी जानती हैं। आज चर्खा-संघ में दस हजार आदमियों के मुकाबिले एक लाख औरतें काम कर रही हैं।

हिन्दुस्थानी बहनों से मैं कहता हूँ कि वे इन कामों को उठालें, इनकी अच्छी जानकारी हासिल करें। और तब निश्चय ही देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में उनका हिस्सा पुरुषों से भी ज्यादा होगा। उनमें फिर से काफी शक्ति और आत्मविश्वास पैदा हो जायगा।

मेरी इस अपील से उच्च शिक्षा-प्राप्त बहनों को मैदान में आने, जन-साधाराण के साथ मिलकर उनमें ओत-प्रोत होने और नैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से उनकी सहायता करने का अच्छा मौका मिलता है।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का अभ्यास करने पर इन बहनों को मालूम होगा कि बगैर खादी के इसका सफल होना असंभव है। × × × खादी-उत्पत्ति का सवाल सूत की उत्पत्ति का सवाल है। अपनी इस कूच के पिछले दस दिनों में परिस्थिति के दबाव के कारण मुझे तकली की महान् शक्ति का जो अनुभव हुआ, वैसा, पहले कभी नहीं हुआ था। सचमुच तकली एक गजब ढानेवाली चीज है। मेरे साथियों ने बड़ी आसानी के साथ, हँसते-खेलते, और नियत कार्य करते हुए भी एक दिन में १२ अंक की चार बर्गगज खादी के योग्य सूत कात बताया है। युद्ध के साधन रूप में तो खादी ही रामबाण है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और मद्यपान-निषेध इन दो सुधारों के नैतिक परिणाम स्पष्ट ही महत्वपूर्ण होंगे। राजनैतिक परिणाम भी साधारण न होगा। मादक द्रव्यों के निषेध का मतलब सरकारी खजाने में २५ करोड़ की आमदनी का घटना है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की सफलता से भारत के करोड़ों लोगों के कम से कम ६० करोड़ रुपये बचते हैं। आर्थिक दृष्टि से, नमक-कानून को रद्द कराने की अपेक्षा इन दो सुधारों में सफलता प्राप्त करना कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण होगा। तथापि इन दोनों सुधारों के नैतिक परिणाम की कीमत आँकना असंभव है।

अगर बहुतेरी स्त्रियाँ इन कामों को उमंग के साथ उठा लें तो बहुत ही थोड़े समय में सफलता मिल सकती है, और इसके एकबार शुरू होने पर तो कानूनन् शराब की दूकानों आदि के बन्द होने में जरा भी देर न लगे। शराब की दूकानें बन्द हो जायँ, अफीम का बिकना नामुमकिन हो जाय, तो लोगों के २५ करोड़ रुपये बच जायँ। २५ करोड़ का कर भारतवर्ष में दूसरे जरियों से वसूल किया जा सकता है। और उसका एक ही परिणाम हो सकता है। वह यह कि फौजी और दीवानी खर्च में बहुत कमी होगी। यह कमी इतनी होनी चाहिए कि इसके कारण इस राजनीति का रूप ही बदल जाय। मौजूदा नीति का आधार लोगों का अविश्वास है। कल जो नई नीति बनेगी, उसका आधार जनता का विश्वास होगा। जनता के विश्वास पर रची गई नीति में न तो खुफिया पुलिस के विभाग को स्थान हो सकता है, न बड़े भारी फौजी विभाग को।

लेकिन इस झगड़े में मैं बहनों को क्यों डालूँ? आज तो किसी दूसरे क्षेत्र की बात न करते हुए मैं बहनों के सामने मद्यपान-निषेध का ही क्षेत्र उपस्थित करता हूँ। मैं मानता हूँ कि इस काम के लिए गुजरात सबसे अच्छा क्षेत्र है। इस क्षेत्र को तैयार करनेवाली एक दुबली-पतली पारसिन है। और वह हैं श्रीमती मीठूबहन पेटिट। उनके अलौकिक काम को देखकर ही मुझे इस क्षेत्र की खोज करने की सूझी है। अतएव फिलहाल तो मीठूबहन की प्रवृत्ति को सौगुनी करना ही खास काम है। इसका मतलब यह नहीं है कि इस काम के लिए सिर्फ सौ बहनें ही तैयार हों। नहीं, असंख्य बहनों को तैयार रहना चाहिए और यह काम सौ गुना अर्थात् असंख्य गुना जोश के साथ बढ़ाना चाहिए। जिस ढंग से आज काम हो रहा है, उसमें जोश

हेरफेर कर दिया जाय। एक भी पुरुष इस आन्दोलन में न रहे। पुरुष बहनों का बताया हुआ काम ही करें। धरना देने, लोगों से प्रार्थना करने, आरज़ू-मिन्नत करने, ठेकेदारों तथा कलवारों के पास डेपूटेशन ले जाने वगैरा के ख़ास काम को तो बहनें ही करें।

मैंने इस कल्पना की केवल रूप-रेखा ही यहाँ दी है। इसमें तफसील की बातें जोड़ी जा सकती हैं। मैं चाहता हूँ कि इस सम्बन्ध में बहनें पहला कदम बढ़ायें, जिससे मौजूदा आन्दोलन की धारा में इसकी धारा भी इतने वेग से बह चले कि लोगों के दिल काँप उठें और सरकार की जड़ें हिल जायँ।

लेकिन कुछ बहनें कह सकती हैं कि 'शराब और विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरना देना न कोई ख़तरा है, न जोश है।' पर मैं उन्हें कहा चाहता हूँ कि अगर वे इस आन्दोलन में दिलोजान से जुट पड़ेंगी तो उन्हें ख़तरे और जोश की कमी से निरुत्साह न होना पड़ेगा। आन्दोलन के सफल होने से पहले मुमकिन है कि वे अपने को जेल में पायें। और बहुत मुमकिन है कि उन्हें अपमानित होना पड़े, चोटें सहनी पड़ें। इस तरह का अपमान और कष्ट-सहन उनके लिए गौरव की बात होगी। इस तरह के कष्टों से—यदि उन्हें इनका सामना करना पड़ा—इस लड़ाई का फैसला जल्दी ही हो जायगा।

अगर भारतवर्ष की स्त्रियाँ मेरी इस अपील पर ध्यान देना और कार्य करना चाहें, तो उन्हें फुर्ती से काम लेना चाहिए। अगर सारे भारत में एकसाथ आन्दोलन शुरू न किया जा सके तो जिन प्रान्तों में संभव हो, उनमें शुरू कर दिया जाय। उन्हें देखकर दूसरे प्रान्त भी शीघ्र ही मैदान में उतर आयँगे।

पुरुषों से—

आप लोग जानना चाहेंगे कि हम पुरुष स्त्रियों के आन्दोलन में किस तरह हाथ बँटा सकते हैं। सबसे पहले मैं यह कहा चाहता हूँ कि हमलोग शराब और विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर धरना देने के बहनों के काम में हस्तक्षेप न करें। अगर हमने ऐसा किया तो बहुत संभव है कि इस बार भी १९२१ की तरह सारा किया कराया व्यर्थ हो जाय। हाँ, हम कई तरह से उन्हें सहायता पहुँचा सकते हैं। बहनों के लिए एक विशेष और पृथक् कार्यक्षेत्र तैयार कर देने की ग़रज से ही धरना देने के ये दो प्रकार निश्चित किये गये हैं। शराब और ताड़ी के व्यापारियों से जान-पहचान बढ़ाकर, बार-बार उनसे मिल कर तथा यह प्रार्थना करके कि अब जब कि देश का नया जन्म होने जा रहा है, आप इस गन्दे व्यापार को क्यों नहीं छोड़ते, हम उनकी मदद कर सकते हैं। बहनों के साथ अत्यन्त नम्रता और आदर का व्यवहार करके भी उनकी मदद की जा सकती है। इस तरह के सर्वथा सुव्यवस्थित वातावरण का शराब और विदेशी कपड़ों के व्यापारियों तथा ख़रीदारों पर इतना असर पड़ेगा कि उनमें से कोई भी बहनों की हृदयस्पर्शी प्रार्थना को ठुकरा न सकेगा। मेरी राय में इन गुणों में स्त्रियाँ पुरुषों से बढ़कर हैं। और अहिंसा विशेष करके एक ऐसा ही सद्‌गुण है। स्त्रियाँ इस गुण का उपयोग स्वभावतः और अन्तःस्फूर्ति के साथ किया करती हैं। परन्तु पुरुषों को इसी काम के लिए विश्लेषणात्मक परिश्रम करना पड़ता है। अगर अकेली बहनों ने ही इस काम को किया तो संभवतः सफलता बहुत शीघ्र मिलेगी, बशर्ते कि पुरुष उनके धरना देने के काम में दस्तन्दाज़ी न करें। हाँ, हम सलाह देकर और जब ज़रूरत हो उन्हें रास्ता बताकर उनकी मदद ज़रूर कर सकते हैं। डॉ० सुमन्त मेहता और श्री. कानजीभाई ने तो इस तरह की सहायता का काम शुरू भी कर दिया है।

साथ ही बहनों का रचनात्मक कार्य-क्षेत्र तो है ही। और वह है खादी बनाने का काम। इस काम में तो हरएक स्त्री, पुरुष और बालक की मदद की ज़रूरत है। हममें से हरएक को कपास चुनने, ओटने, रुई धुनकने और सूत कातने की क्रियायें सीख लेनी चाहिएँ। ये सब क्रियायें बिलकुल आसान हैं, जल्दी ही सीखी जा सकती हैं, बशर्ते कि हम इन्हें सीखना चाहें। खाना पकाना या तैरना सीखना जितना आसान है, ये क्रियायें भी उतनी ही आसान हैं। आप लोग विश्वास रखिए कि यदि हमने अपने घरों में खादी बनाना नहीं सीखा तो विदेशी वस्त्र का बहि-

प्रकार कभी हो नहीं सकेगा। खादी की उत्पत्ति का सवाल तभी हल हो सकता है, जब कि हरएक स्त्री या पुरुष सूत कातने लगेगा और अपने लिए आवश्यक वस्त्र खुद ही बनवा लेगा। अगर कताई की इस सीधी-सादी और स्वाभाविक क्रिया का सारे देश में विस्तार हो जाय तो खादी की माँग को पूरी करने की समस्या भी अच्छीभाँति हल हो जाय। देश में जुलाहों की कमी नहीं है, कमी कातनेवालों की है। पर जब लाखों आदमी रोज ब रोज सूत कातने लगेंगे तब हमारा कर्त्तव्य होगा कि हम जुलाहों के पास जाकर उसका कपड़ा बुनवा लें। इसके लिए आरंभ में थोड़े संगठन की आवश्यकता होगी। लेकिन यह सब तो उसी समय हो जायगा, जब हम निश्चय करके बैठ जायँगे, जैसा कि आज नमक-कानून के बारे में किये हुए हैं।

जबर्दस्ती मत करो

अबतक मैंने यह बताया कि हम क्या कर सकते हैं और हमें क्या करना चाहिए। अब यह सुनिए कि हमें कौन काम किसी भी हालत में न करने चाहिएँ। बम्बई के संवाददाताओं को शिकायतें मेरे पास आई हैं कि १९२१ की तरह अबकी भी लोगों के सिर पर से विदेशी टोपियाँ जबर्दस्ती छीनी जाने लगी हैं। मैं नहीं जानता कि यह बात कहाँ तक सच है। लेकिन कुछ ही क्यों न हो यह काम दुबारा न होना चाहिए। अच्छा करने या कराने के लिए भी हम किसी के साथ जबर्दस्ती न करें। थोड़ी भी जबर्दस्ती हमारे कार्य के लिए घातक होगी। मैं महसूस करता हूँ कि अब हम अपने ध्येय के निकट आ पहुँचे हैं। लेकिन आत्मशुद्धि के इस सप्ताह में हमने जो भी अद्भुत काम किया है वह सब मटियामेट हो जायगा, यदि हमने जबर्दस्ती शुरू करके आन्दोलन के रूप को बिगाड़ा। हमारा यह आन्दोलन हृदय-परिवर्तन का—अत्याचारी के भी हृदय को पिघला डालने का आन्दोलन है। इसमें जोरो-जुल्म को स्थान नहीं। हम अपने परिचित साथियों या मित्रों के ख़िलाफ भी सत्याग्रह कर सकते हैं, यदि वे कोई अच्छा काम करने से आनाकानी करें या दिये हुए वचन तोड़ें। अगर आपमें इतनी शक्ति और पवित्रता है तो आप अपने उन साथियों के ख़िलाफ उपवास-द्वारा सत्याग्रह कर सकते हैं, जो आपकी अच्छी बात पर ध्यान नहीं देते। अगर मुझमें इतनी शक्ति और पवित्रता होती तो मैं आज ही सारे देश के ख़िलाफ इस तरह का सत्याग्रह करता। लेकिन मैं कबूल करता हूँ कि अभी मुझमें यह आवश्यक शक्ति और पवित्रता नहीं है। यह कोई यांत्रिक कला नहीं। दिल के अन्दर से जब कोई अज्ञात-शक्ति ऐसे काम के लिए आप को प्रेरणा करती है तब दुनिया में कोई उससे आपको रोक नहीं सकता। आज इस तरह की कोई शक्ति मुझे प्रेरित नहीं कर रही है। लेकिन अगर आपमें यह बात है तो आप इसे कर सकते हैं। १६२१ में जब बम्बई का दिमाग फिर गया था, मैंने इसका सहारा लिया था। १९१७ में भी मैंने यह किया था, जब कि अहमदाबाद के मिल-मजदूर ईश्वर के नाम पर प्रतिज्ञा कर चुकने पर भी क्षणिक कमजोरी की अवस्था में उसे तोड़ने को आमादा हो गये थे। ये दोनों काम स्वयंस्फूर्ति के परिणाम थे और असर भी इनका बिजली का-सा हुआ था।

जबर्दस्ती का नतीजा

यह दिल को पलट देने की एक क्रिया थी। परन्तु जब मैं अपने देश-भाइयों को जबर्दस्ती करते देखता हूँ, घबरा जाता हूँ, सेवा के अयोग्य बन जाता हूँ। इस बार तो कुछ भी हो, लड़ाई चालू रहेगी। पीछे कदम हटाने ही नहीं हैं। लेकिन यह एक बात है और सेवा करने की मेरी योग्यता दूसरी। मैं इस आन्दोलन को स्थगित न करने का वचन तो दे सकता हूँ, लेकिन मुझमें यह वचन देने की ताकत नहीं है कि मैं इस लड़ाई के दरम्यान नहीं मरूँगा अथवा बीमारी या कमजोरी के कारण नहीं लड़खड़ाऊँगा। मैं कबूल करता हूँ कि अपने लोगों को हिंसा करते हुए देखकर मैं बिलकुल कमजोर हो जाता हूँ और जब मैं इस तरह की कोई बात सुनता हूँ तो मेरा हृदय जोरों से धड़कने लगता है। उस समय कोई भी डाक्टर मेरी नाड़ी की परीक्षा करके मेरे हृदय की अनियन्त्रित गति का पता लगा सकता है। हृदय की इस बढ़ी हुई धड़कन को कम करने के लिए मुझे कुछ मिनट उस प्रभु की प्रार्थना करनी पड़ती

है, उसकी सहायता माँगनी पड़ती है। अपनी इस कमजोरी के लिए मैं निरुपाय हूँ। यही नहीं, मैं इसका पोषण भी करता हूँ। यह उत्तेजनापूर्ण स्वभाव मुझे सेवा और सच्ची रहनुमाई के योग्य बनाये रहता है। यह मुझे नम्र बनाता और हमेशा ईश्वर पर आधार रखना सिखाता है। एक उसे ही पता है कि मैं कब अपने लोगों के किस हिंसापूर्ण कार्यों के कारण इतना उत्तेजित और निराश हो जाऊँ कि कुछ समय या हमेशा के लिए उपवास करना शुरू कर दूँ। सत्याग्रही के पास अपने प्रियजनों के विरोध का यही एक अन्तिम अस्त्र है। अगर हिन्दुस्थान अहिंसा, खादी, अस्पृश्योद्धार, जातीय एकता वगैरा अनेक बातों की ईश्वर के सामने बार-बार प्रतिज्ञा करता है और फिर अकसर उस प्रतिज्ञा को तोड़कर ईश्वर का अपमान करता है—वह हिन्दुस्थान जिसने मेरे प्रति के अपने अत्यन्त प्रेम के कारण मुझे महात्मा बनाकर बैठा दिया है—तो मैं नहीं जानता कि कब अन्तर्यामी ईश्वर मुझे उसके खिलाफ आखिरी सत्याग्रह करने को उकसायेगा। और तब मुझे उस हिन्दुस्थान के खिलाफ सत्याग्रह करना पड़ेगा, जिसने मुझपर हर तरह प्रेम ही प्रेम बरसाया है। ईश्वर करे कि ऐसा मौका कभी न आवे; पर अगर आवे ही तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि इस अन्तिम बलिदान के लिए वह मुझे शक्ति और पवित्रता दे।

मिल-मालिकों से

अहमदाबाद के मिल मालिकों की प्रेमामृत-भरी दृष्टि से मुझे बहुत आनन्द हुआ है। यह केवल विनय की भाषा नहीं, बल्कि मेरे हृदय के सच्चे उद्गार हैं। साबरमती से विदा होते समय उनका हाज़िर रहना, बाद में भी समय-समय पर मिलते रहना और आखिर बड़े प्रेम के साथ उन सबका सूरत आना, इस बात का शुभ चिन्ह है कि यह लड़ाई मालिकों या पूँजीपतियों के विरुद्ध नहीं है।

लेकिन उनकी उपस्थिति और उनके आशीर्वाद का मैं स्वयं तो विशेष अर्थ भी करता हूँ। उनके साथ का मेरा सम्बन्ध लगभग पन्द्रह वर्ष पुराना हो चुका है। इस बीच संभव है कि किसी ने मेरे व्यवहार को उनकी दृष्टि से विरोधी पाया हो, तो भी उन्होंने मेरी मित्रता को स्वीकार किया है, लड़ते समय भी उनके तथा मेरे बीच का संबंध सदा मधुर ही रहा है। इस समय वे जो साथ दे रहे हैं, मैं मानता हूँ कि एक हद तक वह उस सम्बन्ध का ही परिणाम है। यदि मेरा विश्वास सच हो तो उनकी उपस्थिति और आशीर्वाद के सिवा और भी अधिकार है कि मैं उनसे कुछ व्यावहारिक कार्य की आशा रक्खूँ।

उन्होंने एक कदम बढ़ाया है और वह यह है कि अब से आगे वे विदेशी कपड़े का बहिष्कार करेंगे और स्वदेशी कपड़े का ही उपयोग करेंगे। यह निश्चय वैसे तो बड़ा अच्छा है, लेकिन इसमें गली-कूचों का अभाव नहीं है। स्वदेशी का अर्थ कोई खादी करेगा और कोई विलायती सूत के किनारवाले मिल के कपड़े को स्वदेशी कहेगा। इस तरह स्वदेशी-धर्म का पालन नहीं किया जा सकता। मेरी राय में जहाँ तक हो सके, खादी पहनना हलके में हलका स्वदेशी-धर्म है। इसके असंभव होने पर हिन्दुस्थान की 'देशी' मिलों में कते हुए सूत का ऐसी ही मिलों में बना हुआ कपड़ा स्वदेशी हो सकता है। इतना भी न हो तो स्वदेशी का कोई अर्थ रह जाता ही नहीं; बल्कि उस हालत में बहिष्कार की दृष्टि से यह हानिकारक भी है।

यदि मिल-मालिक खादी को उत्तेजन दें और स्वदेशी की दृष्टि से मिलें चलायें तो मेरी राय में विदेशी वस्त्र का बहिष्कार बहुत आसान काम है। इस बारे में, समय मिला तो, अधिक विचार किसी दूसरे लेख में करने की आशा रखता हूँ। यहाँ तो सिर्फ यही बताना चाहता हूँ कि खास कर मिल-मालिक इस आन्दोलन को कैसे और कितने प्रकारों से सहायता कर सकते हैं। इतनी बात तो साफ होनी चाहिए कि अगर मिल-मालिकों और मज़दूरों के बीच का सम्बन्ध अच्छा या परस्पर-विरोधी होने के बदले परस्पर-सहायक रहा तो वह स्वराज्य के लिए अधिक लाभकारी हो पड़ेगा। इस दृष्टि से नीचे लिखी बातें विचार करने योग्य हैं—

१. छोटी-मोटी बातों में भी मज़दूरों के सामने अड़चनें खड़ी होती ही रहती हैं, मिल-मालिक ध्यान-पूर्वक इन्हें दूर करें।

२. अब मैं तो गैरहाजिर रहूँगा। सेठ मंगलदास मुझसे भी ज्यादा वृद्ध हो चुके। इसलिए छोटी-मोटी शिकायतों का तुरंत ही निर्णय करने के लिए वे स्थायी पंच की नियुक्ति करें।

३. मज़दूर-संघ को अपना सहायक समझकर उस पर विश्वास रक्खें, उससे पूरी मदद लें और उसकी पूरी मदद करें।

४. नैतिक और सामाजिक स्थिति सुधारने की दृष्टि से जहाँ-जहाँ ज़रूरत हो, धन से तथा और तरीकों से मज़दूरों की मदद करें। अर्थात् व्यापारी वृत्ति को भुलाकर उनकी स्वतंत्र शालाओं, स्वतंत्र अस्पतालों और स्वतंत्र वाचनालयों तथा इसी तरह की दूसरी प्रवृत्तियों का पोषण करें।

५. जो मज़दूर, मुकादम, शिक्षक वगैरा सविनय भंग या ऐसे ही किसी दूसरे राष्ट्रीय काम में शामिल होना चाहें उनकी मदद करें, और काम छोड़ने की ज़रूरत पड़े तो वापस काम पर आने के उनके अधिकार को सुरक्षित रख कर उन्हें जाने दें, और जाने वालों के कुटुम्ब की व्यवस्था करना यदि आवश्यक हो तो उस व्यवस्था के भार को उठा लें।

६. शराबखोरी की लत छुड़ाने के लिए मज़दूरों के मनोरञ्जनार्थ खेल-कूद तथा आहार-विहार के साधन जुटा दें। शराब छुड़ाने के लिए उन्हें इनाम वगैरा दें और ऐसे ही दूसरे तरीक़ों से उनकी मदद करें।

७, मिलें धन कमाने की दृष्टि से कपड़ा न बनावें, सिर्फ विदेशी कपड़े के बहिष्कार की दृष्टि से ही कपड़ा पैदा करें।

८. मिलें खादी के नाम पर मिल का कपड़ा कभी न बनावें। खादी-छाप का उपयोग न करें, चर्खे की तसवीर न चिपकावें; इसके विपरीत आज जिन-जिन किस्मों की खादी तैयार नहीं हो सकती, उन्हीं किस्मों का कपड़ा वे बनावें, अर्थात् चर्खा-संघ के साथ मिलकर कपड़े की किस्म मुकर्रर कर लें।

९. मिलें खादी का संग्रह करें, प्रचार करें, और उसकी उत्पत्ति में अपनी बुद्धि और अपने अनुभव का उपयोग करें।

त्याग के बाद स्वामी रामकृष्ण

(रामकृष्ण की डायरी से)

१७ सितम्बर सन् १८८४ को शाम का समय था, दक्षिणेश्वर के मंदिर में राम के कमरे में प्रकाश जल रहा था और धीमी-धीमी धूप की सुगन्ध फैल रही थी। स्वामी रामकृष्ण अपने आसन पर बैठे हुए जगदम्बा का स्मरण कर रहे थे। निरंजन और अधार छत पर बैठे थे।

उजेली रात थी। चन्द्रमा की शुभ्र किरणें प्रकृति को अमृत से सींच रही थीं और वह मौन हो शान्ति-पूर्वक आनन्द ले रहे थे।

अधारचन्द्र सेन डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उनकी तीन सौ रुपये मासिक आमदनी थी। उन्होंने कलकत्ता म्युनिसिपैलिटी की अध्यक्षता के लिए प्रार्थना-पत्र दिया था, जिसकी तनख्वाह एक हजार रुपये प्रति मास थी। और इसके लिए वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से बातचीत भी कर ली थी।

स्वामी रामकृष्ण ने कहा—हाजरा ने मुझसे अधीर की सफलता के लिए 'माँ' से प्रार्थना करने को कहा है। अधार ने भी मुझसे प्रार्थना की है। मैंने माता की प्रार्थना की और कहा, यदि तेरी कृपा होगी तो अधार को कार्य में सफलता मिल जायगी; किन्तु पीछे यह भी कहा कि वह तुमसे ऐसे काम के लिए प्रार्थना करता है, ज्ञान तथा प्रेम के

लिए नहीं। (अधार से) क्यों तुम ऐसे तुच्छ विचारों पर ध्यान देते हो? यह तो उसी तरह है कि मनुष्य सारी रामायण पढ़ जाने के उपरान्त पूछे कि सीता किसकी स्त्री थी? मल्लिक नीच बुद्धि-वाला है—

अधार—गृहस्थी चलाने के लिए ऐसे कार्य करने पड़ते हैं। आपने भी तो मुझे नहीं रोका?

रामकृष्ण—सांसारिक कुवासनाओं तथा झंझटों से अलग रहने में ही भलाई है, न कि उनमें लीन रहने में। मेरे इस आध्यात्मिक अवस्था को पहुँचने के बाद भी मन्दिर के मैनेजर ने सदा की तरह वेतन पाने के लिए हस्ताक्षर करने को काग़ज भेजा। मैंने इन्कार कर दिया और कहा कि मुझे तनख्वाह नहीं चाहिए; आपकी जिसको देने की इच्छा हो दे सकते हैं। मैं परमात्मा का हूँ, फिर सिवा उसके और किसी की सेवा करूँगा? यह देखकर कि मेरा भोजन दो सेर आटा है, मल्लिक ने मेरे लिए एक रसोइया नियत कर दिया। उसके लिए एक रुपया प्रति मास देना पड़ता था। मुझे लज्जा मालूम पड़ती थी। जब कभी वह मुझे बुलाता मैं जाता था, किन्तु यह मेरी इच्छा के विरुद्ध था।

अनेक वस्तुओं के सिवा गलत बुद्धिवालों का आदर करना ही गृहस्थ-जीवन का मतलब हो गया है।

वर्तमान नौकरी से ही संतुष्ट रहो। मनुष्य पचास या साठ रुपयों के लिए लालायित रहते हैं; किन्तु तुम तो तीन सौ रुपये मासिक पा रहे हो। मैंने अपने प्रान्त में एक डिप्टी मजिस्ट्रेट को देखा, जिसका नाम ईश्वरघोष था। लोग उसके सामने डर के मारे थरथर काँपते थे। डिप्टी मजिस्ट्रेट कोई मामूली आदमी नहीं है। जिस स्थिति में हो उसीमें रहो।

अधार—क्या नरेन्द्र को नौकरी करनी चाहिए?

नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) उस समय बड़ी दुःखद अवस्था में थे। उनके पिता मर चुके थे। उन्हें अपनी माता तथा भाइयों का पालन-पोषण करना था। अतः वह किसी काम की खोज में थे। वस्तुतः कुछ दिनों के लिए कलकत्ता के विद्यासागर-स्कूल के प्रधानाध्यापक नियत किये गये।

स्वामी—जी हाँ, उसे करनी चाहिए। उसे अपनी माता तथा छोटे भाइयों का पालन-पोषण करना है।

अधार—मान लीजिए कि नरेन्द्र को पचास रुपये मासिक मिलते हैं, तो क्या उन्हें सौ के लिए प्रयास करना चाहिए?

स्वामी—मनुष्य रुपये को बड़ी भारी वस्तु समझते हैं, उनकी दृष्टि से संसार में इसके सदृश कोई भला पदार्थ है ही नहीं। शंभुदास ने मुझसे कहा—"मेरी इच्छा है कि मरने से पहले मैं अपनी सारी संपत्ति 'परमात्मा' के चरणों में अर्पित कर दूँ।" क्या वह हम लोगों का धन चाहता है? वह तो ज्ञान, प्रेम, शान्ति और विवेक चाहता है।

माथुर बाबू की इच्छा मुझे कुछ जमीन उपहार-स्वरूप देने की थी। वह और हरिदास इस विषय में बातचीत कर रहे थे। मैं उनकी बात श्री कालीजी के मंदिर से सुन रहा था। मैं बाहर आया और माथुर बाबू से कहा—'देखिए, ऐसी बात मत सोचिए, इससे मुझे हानि होगी'।

अधार—संसार में छः-ही सात ऐसे महा-पुरुष हुए हैं, जिन्होंने आपके सदृश त्याग दिखलाया है।

स्वामी—क्यों? त्यागी पुरुष बहुत हैं। साधारण मनुष्य लोगों के त्याग की बात तभी जानता है, जब कोई बड़ी भारी संपत्ति का त्याग करता है; किन्तु ऐसे भी त्यागी हैं, जिनके विषय में दुनिया कुछ भी नहीं जानती।

अधार—हाँ; मैं कलकत्ता के देवेन्द्रनाथ टैगोर को जानता हूँ।

स्वामी—क्या कहते हो ? किसने उसके बराबर दुनिया का सुखभोग किया है। जब मैं माथुर बाबू के साथ उसके घर गया, मैंने देखा डाक्टर उसके लड़कों को दवा बतला रहा है। जिसके इतने लड़के-बाले हैं, यदि वह भी बुढ़ापे में ईश्वर का नाम न याद करेगा तो दूसरा कौन करेगा ? यदि दुनिया का इतना सुख भोग कर भी वह ईश्वर का स्मरण न करेगा तो लोग क्या कहेंगे ?

निरंजन—उसने द्वारकानाथ ठाकुर का सब ऋण चुका दिया।

स्वामी—व्यर्थ की बातें जाने दो। मुझे तंग मत करो। क्या वह भी मनुष्य है, जो शक्ति होते हुए भी अपने पिता का ऋण न चुकाये? किन्तु यह सत्य है कि वह साधारण गृहस्थों से—जो संसार में एक-दम लीन हैं—अच्छा है। उनके लिए वह उदाहरण-स्वरूप होगा।

एक सच्चे त्यागी और शुद्ध गृहस्थ में बड़ा अंतर है। एक सच्चा संन्यासी, जिसने सब कुछ त्याग दिया है, मधु-मक्षिका के सदृश है; एक मधु-मक्खी फूल को छोड़ किसी अन्य वस्तु पर नहीं बैठेगी और न मधु के सिवाय किसी दूसरे पदार्थ का रस पान करेगी। एक गृहस्थ मक्खी के सदृश है, जो कभी तो मिठाई पर बैठती है और कभी सड़े फोड़े पर। वह थोड़े समय तक दैवी अवस्था में रह सकता है, किन्तु वह अपने को कामिनी और कंचन (स्त्री तथा धन) में भुला देगा। सच्चा त्यागी चातक पक्षी के समान है, जो मरते दम तक भी स्वाति नक्षत्र के जल को छोड़ दूसरा जल नहीं ग्रहण कर सकता।

(२)

अधार—चैतन्य ने भी भोग किया।

स्वामी—(आश्चर्य से) उसने किस चीज का भोग किया ?

अधार—वह इतना बड़ा विद्वान् था, और उसका इतना मान था।

स्वामी—दूसरों की दृष्टि से वह आदर था, किंतु उनकी दृष्टि से नहीं। चाहे तुम निरंजन मेरा आदर करो या नहीं, मेरे लिए दोनों बराबर है। मैं किसी धनी को अपने बस में नहीं रखना चाहता। मैंने मनमोहनदास से सुना है कि सुरेन्द्र राखाल को यहाँ रखने के कारण मुझे दोषी बताता है। सुरेन्द्र कौन होता है ? उसने एक चटाई और तकिया यहाँ रक्खा है और रुपया खर्च के लिए देता है।

अधार—शायद वह दस रुपया प्रति मास देता है।

स्वामी—नहीं, दस रुपये दो मास के लिए। वह भक्तों के लिए देता है, जो यहाँ ठहरते हैं। वह धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर रहा है। मुझे इससे क्या मतलब ? क्या मैं राखाल और नरेन्द्र को किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए प्यार करता हूँ ?

अधार—नहीं, आपका मातृवत् प्रेम है।

स्वामी—कभी-कभी माँ इस खयाल से भी पुत्र को मानती है कि वह एक दिन कृपा कर खिलावेगा। किन्तु मैं उनको 'नारायण-स्वरूप' समझकर प्यार करता हूँ। सुनो, यदि तुम आग जलाना चाहते हो तो तुम्हें लकड़ी की कमी न होगी। यदि एक बार परमपिता परमात्मा का रूप तुम्हारे हृदय में बैठ गया, यदि तुमने एक बार उसे प्राप्त कर लिया, तो तुम्हें किसी चीज की इच्छा न रह जायगी। वह स्वयं ही तुम्हारी इच्छा-पूर्ति करेगा। यदि तुम्हारे हृदय में उसका दिव्य प्रकाश हो जायगा, तो सैकड़ों तुम्हारी सेवा करेंगे।

एक युवा संन्यासी एक बार किसी के दरवाजे पर भीख मांगने गया। वह बालपन से ही साधु हो गया था, अतः दुनिया से बिलकुल अनभिज्ञ था। कुल की एक युवती लड़की बाहर आई और भीख उसने दी। उसने लड़की को सम्बोधन करके कहा—"माँ क्या तुम्हारे वक्षःस्थल पर फोड़े निकल आये हैं?" लड़की ने उत्तर दिया—"नहीं, ईश्वर ने यह स्तन दिया है कि मेरा जो बच्चा पैदा हो वह दूध पी सके।" इसपर साधु ने कहा—"फिर मैं क्यों भीख माँगूँ और व्यर्थ का कष्ट सहूँ! जिस परमात्मा ने मुझे जन्म दिया है, वही मुझे भोजन देगा।"

टोटापुरी ने एक ऐसे राजकुमार के विषय में मुझसे कहा, जो साधुओं को सोने की थाली में खिलाया करता था। मैंने बाजार में एक संन्यासी को देखा, जिसका लोग बड़ा आदर करते थे। उसकी आज्ञा के लिए धनी मारवाड़ी हाथ जोड़े घण्टों खड़े रहा करते थे।

एक सच्चा त्यागी तथा संन्यासी सोने का थाल तथा लोगों से आदर नहीं चाहता। ईश्वर ही उसे किसी चीज की कमी नहीं रहने देता। वह उसे सब आवश्यक चीजें देता है।

तुम मजिस्ट्रेट हो। मैं क्या कहूँ, मैं तो बिलकुल अनजान हूँ।

अधार (हँसते हुए भक्तों से)—वह मेरी परीक्षा ले रहा है।

स्वामी (हँसते हुए)—सांसारिक वासनाओं तथा कार्यों से अलग रहने ही में भलाई है। तुमने नहीं देखा—मैंने कागज पर हस्ताक्षर नहीं किया। केवल ईश्वर ही सत्य है और समस्त वस्तुयें असत्य हैं।

[इस वार्तालाप के एक महीने के भीतर ही अधार चला गया। यह समाचार सुनकर आचार्य ने बड़ा विलाप किया। जब आचार्य और अधार सन् १८८३ के अप्रैल महीने में प्रथम बार मिले थे उस समय आचार्य ने अधार से कहा था, कि जीवन क्षण-भंगुर है, तुम्हें एकाग्र चित्त हो ईश्वर की भक्ति करना चाहिए।] ❀

❀ 'प्रबुद्ध भारत' से

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक मे हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

दर्शन और अनेकान्तवाद

लेखक—श्री हंसराज शर्मा। प्रकाशक—श्री आत्मानन्द, जैन-पुस्तक प्रचारक-मण्डल, रोशनमुहल्ला, आगरा। पृष्ठ-संख्या १७६+४०। मूल्य केवल आठ आने।

'अनेकान्तवाद'—जिसे बहुत-से लोग अपेक्षावाद या स्याद्वाद के नाम से भी पुकारते हैं—जैन-दर्शन का एक मुख्य सिद्धान्त है। जैन-तत्वज्ञान में इस सिद्धान्त का महत्व इतना अधिक है कि यदि कहें कि इसी सिद्धान्त की नींव पर उसका विशाल भवन उठाया गया है तो भी अत्युक्ति न होगी। पदार्थों के सम्बन्ध में, उनके स्वरूप के तात्विक भेदाभेदों की व्यवस्था करने में, इस सिद्धान्त से बड़ी मदद मिलती है। इस विषय पर इसके पहले भी कई विद्वानों ने विवेचनात्मक लेख लिखे हैं, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता इस बात में है कि उसमें विद्वान् लेखक ने जैनेतर दर्शनों से भी अनेक उदाहरण, उद्धरण और प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अनेकान्तवाद का प्रभाव और महत्व केवल जैनधर्म में ही नहीं अन्य धर्मों में भी रहा है।

स्याद्वाद के सम्बन्ध में जैनेतर विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। वे इसे शुद्ध संदेह और अनिश्चयवाद के रूप में ही ग्रहण करते हैं। पर अनेकान्तवाद या स्याद्वाद का तात्पर्य तो इतना ही है कि एक पदार्थ की भिन्न-भिन्न अनेक दृष्टियों से विवेचना करना। यह जैन-सिद्धान्त किसी पदार्थ को एक ही दृष्टि से देखकर उसके सम्बन्ध में निश्चित निर्णय कर लेने की पद्धति का विरोध करता है। इस प्रकार अनेकान्तवादी, एकान्त निश्चय के विरोधी और पदार्थों की विविधता या अनेकरूपता का समर्थक है। जैन-दर्शन किसी पदार्थ को एकान्त—एक ही निश्चित रूप में—नहीं मानता, उसके मत से पदार्थ-मात्र अनेकान्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक में तत्वज्ञान में इसी सिद्धांत की महत्ता प्रदर्शित की गई है और सिद्ध किया गया है कि इस सिद्धान्त को कितने ही जैनेतर आचार्यों ने भी स्वीकार किया है।

हम दुनिया में जितनी वस्तुयें देखते हैं, सभी में हमें द्वन्द्वाभास होता है। बाहर कुछ, भीतर कुछ। फिर एक ही चीज़ का सम्बन्ध दूसरी चीज़ों से भिन्न-भिन्न प्रकार का होता रहता है। इतना ही नहीं, इन विभिन्न सम्बन्धों में भी स्थिरता नहीं है। उनके रूप भी बदलते रहते हैं। जैसे रामदास नामक एक आदमी को लीजिए। सुशीला उसकी पत्नी है; कृष्णदास उसका पिता है; केशवदास उसका पुत्र है, और सीता उसकी बहन है। अब रामदास तो एक ही है किन्तु सीता उसे 'भाई' कहती और अनुभव करती है; सुशीला उसे 'पति' समझती है; कृष्णदास उसे 'पुत्र' कहता और समझता है; केशवदास उसे 'पिताजी' कहकर पुकारता और वैसा ही अनुभव करता है। इसलिए एक ही व्यक्ति रामदास भिन्न-भिन्न लोगों के लिए एक ही समय में भाई, पति, पुत्र और पिता के रूप में दीख पड़ता है। सिर्फ़ दीख ही नहीं पड़ता, इन लोगों के लिए अलग-अलग उसकी सत्ता इन्हीं में से किसी एक विशेष रूप में है। यह एक

प्रकट हुआ। अब इसके साथ ही लड़कपन में रामदास दूसरे प्रकार के हृदय, स्वभाव और रंग-रूप का था; जवानी में पहले की बात न रही और बुढ़ापे में जवानी की बातें बिल्कुल स्वप्न हो गईं। इस तरह से भिन्न-भिन्न लोगों के साथ न केवल उसका सम्बन्ध और रूप भिन्न-भिन्न हुआ वरन् उसका अपना एक निश्चित भौतिक रूप भी कभी न रहा। यह एक ही मनुष्य के अनेक रूप हुए। अनेकान्त-वाद इसी बात को लेकर कहता है कि रामदास को केवल पिता या भाई या पति या पुत्र नहीं कहा जा सकता। पिता उसे पुत्र कहेगा तो ठीक, पर वह दुनिया में केवल पुत्र ही नहीं है—वह भाई भी है, वह पति भी है, वह पिता भी है। इस तरह एक ही चीज़ में अनेकता का आभास हुआ। अनेकान्तवाद यही कहता है।

हमारे यहाँ वेदान्त-दर्शन में तथा उपनिषद् में भी ये समस्यायें अनेक जटिल रूपों में सामने आती हैं। सृष्टि की परिवर्तनशीलता के कारण अनेकता का आभास तो मनुष्य को सहज ही होता है; उसे सिद्ध करने या समझने के लिए किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं है। इसी-लिए ईश्वर के अनेक रूपों की कल्पना विभिन्न धर्मों में मिलती है। पर ज्यों-ज्यों मानव-मस्तिष्क का विकास हुआ उसने सम्यक् विवेचना के बाद यह तत्व निकाला कि यह अनेकता बाह्य है और हमारी अपनी सीमाबद्धता के कारण प्रकट होती है। चीज़ एक ही होती है पर हमारी भौतिक दृष्टि की परिमितता उसे अनेक रूपों में हमारे सामने प्रकट करती है इसलिए जबतक इस अनेकरूपता के बन्धन को तोड़कर हम उसके अन्दर छिपी एकरूपता का अनुभव न करेंगे, हम ज्ञान की चरमावस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। रामदास को कोई पिता, कोई पुत्र के रूप में देखता है, इसलिए कि उसके साथ उनका सांसारिक स्वार्थ या परस्पर आदान-प्रदान के सम्बन्ध इन रूपों में सुनते-सुनते स्थापित-से हो गये हैं। यदि व्यक्तिगत स्वार्थ की संकीर्णताओं से मुक्त होने पर देखें तो न पिता, न पुत्र, वह एक आदमी है। यह साम्बन्धिक अनेकता संस्कार और परिस्थिति-जन्य है; तात्विक नहीं। इसीलिए उपनिषद् ने या ज्ञान की चरमसीमा में प्रत्येक धर्म ने अनेकता में एकता की प्राप्ति की है और इसीलिए जहाँ वेद 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'* कह कर उस सर्वोच्च शक्ति की अनेकरूपता बताते हैं; जहाँ वह '× × × एकं रूपं बहुधा यः करोति' तथा '× × एको बहूनां यो विदधाति कामान्' के रूप में उप-निषद् में व्यक्त हो रहा है वहाँ '× × तमात्मस्थं येऽनु-पश्यन्ति धीरा—। स्तेषाम् सुखमें शाश्वतं नेतरेषाम्' कह कर तथा—

> 'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
> ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय
> तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
> परात्परं पुरुष मुपैति दिव्यम्,

के रूप में उस अनेकता को भूल कर और उसके भीतर बैठ कर सर्व भूतों की तात्विक एकता का अनुभव करने का भी आदेश है। मुसलमानों के 'तसव्वुफ़' में भी यह अभेदत्व बार-बार व्यक्त किया गया है।

इसलिए जहाँ 'नाम-रूप' में (जो परिस्थिति के बाह्य संयोगों से बनते बिगड़ते हैं) अनेकता का भान होता है वहाँ तत्व (या जैन-दर्शन के अनुसार 'द्रव्य') में एकता और एकरूपता ही है। इसलिए अन्तिम तत्वज्ञान की प्राप्ति के समय तो, मेरी समझ से, अनेकान्तवाद और एकान्तवाद का कोई झगड़ा ही नहीं रह जाता। फिर यदि हम साधारण दृष्टि से भी देखें तो रामदास की पत्नी के लिए तो रामदास पति के रूप में अनुभव में आता है। उसके लिए वह पति और भाई दोनों नहीं हैं। जो इन सब से भिन्न होकर सोचता है और सब के सम्बन्धों का आरोप एकही साथ एकही व्यक्ति की दृष्टि से करना चाहता है उसी-के लिए यह अनेकात्मक भेद शेष रह जाता है। जैन-दर्शन भी अनेकरूपता या भेद केवल 'पर्याय' में मानता है, 'द्रव्य' में नहीं, और 'पर्याय' को न तो एक मानता है, न बिल्कुल अलग, इसलिए वह प्रत्येक पदार्थ में भेदाभेद या अनेकान्त बुद्धि का आरोप करता है। हिन्दू-धर्म में द्वैताद्वैतवाद के मूल में भी यही प्रवृत्ति और प्रेरणा काम करती है।

जो हो—ये दार्शनिक विषय बड़े जटिल हैं और हज़ारों

---

*ऋग्वेद, मं० १ सू० १६४ मंत्र ४६

वर्षों के बाद भी अभी मनुष्य इनके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचा है। क्योंकि मनुष्य जिस बुद्धि से विचार करता है वह बिल्कुल निरपेक्ष और निर्लिप्त नहीं होती, उसपर संस्कारों और परिस्थितियों का रंग चढ़ता रहता है।

किन्तु इतने पर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है, कि साधारण पाठक नहीं, वरन् तत्त्वज्ञान से प्रेम रखनेवाले इन विषयों के अभ्यासी पाठकों के लिए पण्डित हँसराज जी ने अनेकावाद जैसे महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त को बहुत ही क्रमबद्ध रूप में रक्खा है और उसे केवल जैनधर्म का सिद्धान्त न मानकर सभी धर्मों में उसके महत्व को प्रतिपादित किया है और इसमें सफलता प्राप्त की है। आशा है इस विषय के विद्वान् इससे लाभ उठावेंगे और पण्डितजी के परिश्रम का आदर करेंगे। पुस्तक का मूल्य प्रचारार्थ लागत का सिर्फ़ चौथाई रक्खा गया है, जो जिल्द की लागत-मात्र है।

महाकवि अकबर

लेखक—श्री उमरावसिंह कारुणिक, बी० ए०। प्रकाशक—चौधरी शिवनाथसिंह शाण्डिल्य, ज्ञान-प्रकाश-मन्दिर, पोस्ट माछरा जिला मेरठ। पृ० स० २४३। मू० १।=)

आधुनिक उर्दू-साहित्य में स्वर्गीय 'अकबर' इलाहाबादी का एक खास स्थान है। उनकी मज़ाक़-पसन्द तबीयत की छाप उनकी प्रत्येक रचना पर दिखाई पड़ती है। उन्होंने व्यंग और हास्य के सहारे अनेक दुःखद राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं का ख़ाका खींचा है। उनके व्यंग हमारी पराधीनता पर चोट करते हैं और दिल की गहराई में पहुँचते हैं। 'विट और ह्यूमर' के तो वह आधुनिक उर्दू-साहित्य में एकमात्र उस्ताद थे और उनके समय में भी तथा उनके बाद भी बहुतेरे उर्दू कवियों ने अर्द्ध सफलता-पूर्वक उनकी नक़ल की। उन्होंने एक नया 'स्कूल' उत्पन्न कर दिया एवं अपनी तबीयत की रवानगी, लापर्वाही और निर्भीकता से उर्दू-काव्य में एक जिद्दत पैदा करदी। न्याय-विभाग में एक अच्छे अधिकारी होकर भी सरकार की खरी आलोचना करने में वह कभी न चूके। इस मामले में वह बिलकुल बे-लौस थे और इसीलिए सरकारी अधिकार-क्षेत्र में वह ऊँचा न उठ सके। पर सरकार की निगाहों से गिर कर अपने देश के हजारों भाइयों की निगाह में वह चढ़ गये। इस पुस्तक के रूप में उनकी जीवनी तथा उनकी उत्कृष्ट कविताओं का संग्रह करके लेखक महोदय ने हिन्दी को एक अच्छी चीज़ भेंट की है। शुरू में उर्दू कविता की जानने वाली ख़ास-ख़ास बातें भी बतला दी गई हैं तथा कठिन शब्दों के अर्थ भी शेरों के नीचे दे दिये गये हैं।

यह इस पुस्तक का तीसरा संस्करण है और यह भी इसकी लोक-प्रियता का एक प्रमाण है।

दूर्वादल

लेखक—श्री सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगांव (झांसी)। पृष्ठ-संख्या—११२, सजिल्द। मूल्य दस आने।

श्री सियारामशरणजी को एक सुकवि के रूप में, हिंदी-संसार अच्छी तरह जानता है। उनकी कवितायें भाव और भाषा की सादगी की दृष्टि से उच्च कोटि की होती हैं। इस छोटी पुस्तिका में भी उनकी छोटी-छोटी कविताओं का संग्रह किया गया है। इनमें कई कवितायें बड़ी सुन्दर हैं। 'अनुरोध' की इन पंक्तियों में कवि-हृदय की सात्विक अनुभूति की कैसी ज्वाला है—

> जब इस तिमिरावृत मन्दिर में
>   उषा-लोक कर उठे प्रवेश,
>   तब तुम हे मेरे हृदयेश,
> इस दीपक की जीवन-ज्वाला
>   कर देना तुरन्त निःशेष,

× × ×

गृहत्याग, समीर के प्रति (अन्तिम पंक्तियाँ), मूर्ति, घट और वर्ष—प्रयाण कविता में मुझे ख़ास तौर से पसन्द आईं। आशा है हिन्दी-कविता-प्रेमी पाठक इस पुस्तक का आदर करेंगे। 'सुमन'

समुद्र पर विजय

लेखक—श्री जगपति चतुर्वेदी। प्रकाशक—रा० सा० रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग। पृ० सं० १५२, मू० १) सचित्र और सजिल्द।

आजकल हिन्दी में बाल-साहित्य का अभाव जिस तेज़ी के साथ दूर होता जा रहा है उसे देख कर प्रसन्नता होती है।

मनुष्य ने किस तरह इस अथाह और अजेय समुद्र पर विजय प्राप्त की, इसीका इसमें बच्चों की भाषा में वर्णन है। समुद्र का रहस्य बताकर लेखक ने जलयानों की जन्मकथा से पुस्तक की शुरुआत की है। उसके बाद भारत की प्राचीन नाविक विद्या, पाश्चात्य देश में नाविक विद्या आदि का दर्शन कराकर बाद में होने वाली प्रगतियों का विवरण दिया है। जहाज़ के चलाने में किस प्रकार के नवीन साधनों का आविष्कार हुआ, यह सब दिखा कर अन्त में वर्तमान पोत-विद्या पर लेखक ने अच्छा प्रकाश डाला है। इसके साथ-साथ समुद्रीयकार तथा ज्योतिगृह—लाइट हाउस-की बातें भी इसमें रोचक ढंग से बता दी गई हैं। यह सब तो था समुद्र की छाती पर लेकिन समुद्र के गर्भ में मनुष्य किस प्रकार प्रविष्ट हुआ इसका भी इसमें वर्णन है। कहने का मतलब यह कि यह पुस्तक मनुष्य की समुद्र पर विजय का उत्तम और रोचक इतिहास है। लेकिन सारी पुस्तक पढ़ जाने पर हमें इसमें एक बात खटकी। और वह भाषा की कुछ क्लिष्टता। कहीं-कहीं पारिभाषिक शब्द बहुत ही क्लिष्ट हो गये हैं—जैसे लौह पोत; वाष्प पोत, पोत-संचालन, जलयान, काष्ठ-निर्मित, ज्योतिगृह आदि बहुत से शब्द हमें ऐसे मिले जो बच्चों के लिए बड़े कठिन हैं। मैंने गुजराती के बाल साहित्य का कुछ अध्ययन किया है, उसके देखने से मालूम होता है कि जहाँ गुजराती में बाल-साहित्य बच्चों की छोटे-छोटे शब्दों वाली छोटे-छोटे वाक्यों वाली सरल भाषा में होता है वहाँ हिन्दी में उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता शायद नहीं समझी जाती है। यों यह पुस्तक सामग्री की दृष्टि से बहुत अच्छी है, लेकिन भाषा की दृष्टि से तो यह बड़ों के ही लायक है। आशा है लेखक मेरी इस आलोचना से बुरा न मानेंगे और यदि हो सके तो पुस्तक के दूसरे संस्करण में इस त्रुटि को दूर करने की कृपा करेंगे।

पुस्तक में चित्र बहुत हैं और उपयोगी हैं। इससे पुस्तक की उपयोगिता और महत्ता बढ़ गई है। छपाई-सफाई सुन्दर है।

मा० उ०

रेलवे-समाचार

हिन्दी मासिक

सम्पादक—श्री भँवरलाल बाकलीवाल व कँवरलाल बाकलीवाल। पृ० सं० ४८। वार्षिक मू० ४) रु०। पता—२२८ हरीसन रोड, कलकत्ता।

हमारे खयाल में हिन्दी भाषा में अपने विषय का यह पहला ही पत्र है। जब कि चारों ओर रेलवे का जाल बिछा हुआ है और अधिकांश भारतवासी भ्रमण के रूप में और अथवा माल इधर से उधर भेजने के रूप में इसके सम्पर्क में आते ही रहते हैं, तो उनके लिए रेलवे के कानून-कायदों का जानना बड़ा ही आवश्यक है। इस पत्र में इन्हीं सब बातों का वर्णन रहता है। व्यापारियों के लिए यह पत्र बड़ा उपयोगी है। रेलवे-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य मामलों के फैसले तथा उस सम्बन्ध आवश्यक सूचनायें भी इसमें रहती हैं। रेलवे कर्मचारियों की तकलीफें, उनका संगठन, भारत सरकार की रेलवे नीति आदि राजनैतिक विषयों पर भी इसमें लेख रहें तो यह पत्र बड़ा उपयोगी हो सकता है। हम अपने सहयोगी का स्वागत करते हुए जनता से इसे अपनाने का अनुरोध करते हैं।

जीतमल लूणिया

सम्पादकीय

मुक्ति-संग्राम

संसार का प्रत्येक वर्ग या व्यक्ति, किसी न किसी रूप में, अपनी मुक्ति के संग्राम में प्रवृत्त है। प्रत्येक पराधीन देश स्वाधीन होने का प्रयत्न कर रहा है। हमारा भारतवर्ष भी आज स्वराज्य के मार्ग पर अग्रसर है। विश्ववंद्य महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हमारा मुक्ति-संग्राम न केवल आरम्भ ही हुआ है, बल्कि अबतक तो वह अपने प्रथम रूप को लाँघ कर दूसरे रूप में आ पहुँचा है। देश जूझ रहा है, अपने को बन्धनग्रस्त बना रखने वाली महाशक्तिशाली विदेशी नौकरशाही से बन्धन-मुक्त हो जाने के लिए। देश के प्रत्येक वर्ग की कसौटी का समय है। क्या पुरुष और क्या स्त्री, राष्ट्र तो इस समय अपने प्रत्येक वर्ग से क्रियात्मक सहयोग की अपेक्षा करता है। स्त्रियों का अपना आन्दोलन भी है सही, परन्तु वर्तमान समय में तो वाञ्छनीय यह है कि और सब बातों को ढील देकर स्वदेश—स्त्री-पुरुष दोनों का जिसमें समान-हित है उस भारत के मुक्ति-संग्राम को हर तरह की और पूरी-पूरी मदद देकर कामयाब बनाने की कोशिश की जाय। यही आज का परम-धर्म है।

स्त्रियाँ क्या करें ?

स्त्रियाँ शक्ति हैं, स्त्रियाँ लक्ष्मी हैं, और स्त्रियाँ ही सरस्वती हैं। स्त्रियों की शक्ति का क्या कहना! बक़ौल सुप्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट "स्त्रियों में स्नेह-शक्ति बड़ी ज़बर्दस्त होती है। बुद्धि एवं कार्य की शक्ति को स्नेह-शक्ति के सतत अंकुश में रखने की उनमें विशेष शक्ति विद्यमान है। फलतः मानव-जाति और पुरुष-वर्ग के उत्थान स्वभावतः स्त्रियाँ मध्यस्थ का काम करती हैं। नैतिकता की रक्षा (नीति-नियमन) का काम संसार में ख़ास तौर पर भगवान ने स्त्रियों कोही सौंपा है। विचार एवं व्यवहार से पैदा होने वाली अनेक व्यथायें पुरुष को सर्वतोमुखी प्रेम के प्रभाव-क्षेत्र से परास्त कर देती हैं। परमात्मा स्त्रियों के द्वारा उनमें हमेशा इस प्रेम का अपरोक्ष एवं अखण्ड विकास करता रहता है। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री की एकरूपी सत्ता प्रत्येक पुरुष में मानव-जाति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने में प्रवृत्त होती।"

काण्ट का कहना है—(Rurun "संसार की सेवा इतनी आवश्यक और कठिन है कि मानों हमारी तरफ़ से परमात्मा को जवाब देना हो इस प्रकार हममें से हरएक को इन देवियों में से चाहे जिस एक की सत्ता के नीचे रहना पड़ता है। वह नैतिक सत्ता तीन रूप ग्रहण करती है—माता, पत्नी, और पुत्री। समाज-संगठन अर्थात् समकालीनों के प्रति समभाव प्रवर्तित करने की तीन रीतियाँ हैं—संज्ञा-पालन (Obedience) संयोजन Union) और संरक्षण (Protection)। ये तीन स्वरूप इन तीन रीतियों का निर्देश करते हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में हमें लाकर प्रेमयुग का प्रवाह साधने वाले कोटिस्वरूप भी यहाँ तीन हैं। हमारी पारमार्थिक वृत्तियाँ भी तीन हैं—पूज्य-भाव (Veneration), स्नेह-भाव (Attachment), और सद्भाव (Benevolence)। इन वृत्तियों में भी क्रमशः इन तीन में से ही प्रत्येक प्रोत्साहन देती है।"

सचमुच स्त्रियों में वह शक्ति है, जो यदि काम में लग जाय तो उद्देश्य-प्राप्ति को बहुत ही निकटतर और सरलतर बना सकती है। उनके सहयोग से हमारा लाभ है, और सहयोग-हीनता में हानि। देश-पूज्य महात्मा गाँधी ने इस बात को पूरी तरह समझ लिया है। इधर भारतीय स्त्रियाँ भी अपनी परम्परा रखती हैं—उन आर्य महिलाओं की परम्परा कि जिन्होंने स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए अपने और अपने पुरुषों के मर-मिटने को ही अपना सौभाग्य माना है। अतएव इस बार स्त्रियों ने भी मुक्ति-संग्राम में अपना उपयुक्त भाग लेने का इरादा ज़ाहिर किया—नहीं, इसके लिए बहुत आग्रह किया। महात्माजी के पहले जत्थे में जाने को ही कई स्त्रियाँ उत्सुक थीं। पर महात्माजी ने उन्हें प्रतीक्षा

करने की कहा। स्त्रियाँ उत्सुक थीं। आखिर बम्बई में तो श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय और अवन्तिका बाई गोखले ने ७ अप्रैल को नमक-क़ानून तोड़ ही दिया। और जगह भी थोड़ा-बहुत ऐसा हुआ। परन्तु अब महात्माजी ने उनके सामने ख़ास तौर पर यह काम रक्खा है कि वे विदेशी कपड़े और शराब की दूकानों पर धरना दें, क्योंकि वे पुरुषों की बनिस्बत शान्त और अहिंसक रहने की ज़्यादा आदी हैं। खादी की उत्पत्ति में सहायक होना और उसका व्यवहार तो काम है ही। एक काम, हमारी समझ में, यह भी है कि वे अपने बाप, बेटे, भाई और पतियों को मुक्ति-संग्राम में सम्मिलित होने से निरुत्साहित न कर उन्हें उत्साह प्रदान करें, अपनी फ़िक्र न करने का आश्वासन दें और हँसते चेहरे तथा हर्षोन्मत्त आँखों से खुशी-खुशी उन्हें इसके लिए विदा दें। यदि पुरुष कायर हों, संग्राम से जी चुराते हों, या विदेशी कपड़े अथवा शराब के बुरे शौक़ के शिकार हों, तो स्त्रियों का परम-पवित्र और आवश्यक कर्तव्य है कि अपने घरों से शुरुआत करके ज़्यादा से ज़्यादा पुरुषों को इन बुराइयों से बचाने का वे अपने भरसक उपाय करें।

स्त्रियों का भाग

हमें हर्ष है, स्त्रियाँ अपना काम ज़ोरों से कर रही हैं। बम्बई में नमक-क़ानून तोड़ने में उनका प्रमुख हाथ है। श्रीमती कमलादेवी ने इस काम में प्रमुख भाग लिया है, श्रीमती सरोजिनी नायडू, अवन्तिकाबाई गोखले आदि भी खूब सहायक हो रही हैं। बम्बई में दो लाख के क़रीब स्त्रियाँ नमक-क़ानून तोड़ चुकी हैं और आज घर-घर नमक बन रहा है। पुलिस के कोप का भाजन भी वे बन चुकी हैं—कमलादेवी चट्टोपाध्याय तथा अन्य महिलाओं को हलकी-हलकी चोटें भी पुलिस की लगी हैं, फिर भी वे ज़ोरों से कार्य में लगी हैं। कोई पौन लाख का ग़ैरक़ानूनी नमक तो कमलादेवी ही बम्बई में बेच चुकी हैं। शराब की दूकानों पर धरना देने का काम कुमारी मीठूबहन, मणिबहन, श्रीमती गाँधी आदि ने गुजरात में आरम्भ किया है। बम्बई में श्रीमती हंसा मेहता और लीलावती मुंशी ज़ोरों से प्रयत्न कर रही हैं। दिल्ली में श्रीमती सत्यवती तथा अन्य बहनों ने जिस सफलता से विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना दिया, वह स्तुत्य है। उनके चूड़ी-संघ ने भी खूब काम किया है। कलकत्ता में श्रीमती हेमप्रभा और ज्योतिर्मयी तथा लाहौर में कुमारी लज्जावती व सुश्री और इलाहाबाद में नेहरू-परिवार की स्त्रियाँ व आगरे में तपस्विनी पार्वतीदेवी, इसी प्रकार कानपुर, मद्रास आदि में भी भिन्न-भिन्न स्त्रियाँ ज़ोरों से कार्य कर रही हैं। श्रीमती चट्टोपाध्याय ने इसीके लिए अ० भा० महिला-परिषद् के संगठन-मंत्री के पद से भी इस्तीफ़ा दे दिया है। आशा है, बहनों का यह काम ठोस सिद्ध होगा और हमें आगे बढ़ावेगा।

गुजराती बहनों का संकल्प

गुजरात अभी कुछ दिन पहले तक भोला-भाला और डरपोक प्रान्त माना जाता था, परन्तु गाँधी की आँधी ने आज उसे क्या से क्या कर दिया है! देश में घोर हलचल मच रही है, और उसका मुख्य क्षेत्र है आज गाँधी का पुण्य निवास गुजरात। पुरुषों ने ही नहीं, स्त्रियों ने भी वहाँ खूब उत्साह बतलाया है। महात्माजी के आदेश के अनुसार गुजरात की वीर नारियाँ शराबख़ोरी और विदेशी कपड़े के बहिष्कार के कार्य में संगठित रूप से लग रही हैं।

१३ अप्रैल को दण्डी में और फिर १६ अप्रैल को वेजलपुर में गुजराती स्त्रियों की सभायें हुई थीं। नवसारी से वहाँ तक सवारी की व्यवस्था बड़ी गड़बड़ थी, ज़्यादातर स्त्रियों को पैदल ही वहाँ जाना पड़ा था, फिर भी स्त्रियों की उपस्थिति चार संख्याओं पर गिनी जाने वाली थी। दण्डी में प्रस्ताव पास हुआ कि—

'उपस्थित स्त्रियाँ और शराब ताड़ी की दूकानों पर धरना देंगी, अर्थात् उन दूकानों के मालिकों से अपना यह धन्धा बन्द कर देने की प्रार्थना करेंगी और शराब व ताड़ी पीने वालों से इस राक्षसी व्यसन को छोड़ने की भी प्रार्थना करेंगी। और इसी प्रकार विदेशी कपड़े के दूकानदारों से विदेशी कपड़ों का व्यापार बन्द करने और विदेशी वस्त्र ख़रीदने वालों से उन्हें छोड़ने की प्रार्थना के रूप में उन दूकानों पर धरना देंगी।

'विदेशी वस्त्र का बहिष्कार खद्दर के द्वारा ही हो सकता है, अतएव उपस्थित स्त्रियाँ आगे से खादी का ही उपयोग करेंगी और जहाँ तक हो सकेगा रोज़ चर्खा चलावेंगी, रुई पीजेंगी और कातने तक की सब क्रियायें सीखेंगी। और अपने अड़ौस-पड़ौस में रहने वाले बहन-भाइयों में सूत कातने आदि की सारी क्रियायें सीखने और करने का प्रचार करेंगी।'

बेजलपुर की सभा में इस प्रस्ताव के दो भाग करके मद्यपान-निषेध और खद्दर-द्वारा विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के दो अलग-अलग कार्यक्रम कर दिये गये और उनके लिए एक कार्यवाहक समिति चुन दी गई।

हर्ष है कि श्रीमती मीठूबहन पेटिट तथा श्रीमती कस्तूरबाई गाँधी के सुयोग्य और कर्मण्य नेतृत्व में उन्होंने यह कार्य आरम्भ भी कर दिया है। श्रीमती मणिबहन पटेल और सेठ जमनालाल बजाज की धर्मपत्नी आदि भी पूरे बल के साथ इसमें सहयोग कर रही हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रीमती शारदाबहन, इन्दुमति दीवान, अमीना कुरेशी, मीठूबहन पेटिट, अमीना तैयबजी, रिहाना तैयबजी, सरलादेवी अम्बालाल साराभाई अनुसूया साराभाई, लीलावती हरिलाल देसाई, सन्तोक एम. गाँधी, दुर्गा महादेव देसाई आदि गुजरात की २८ प्रमुख महिलाओं ने, गुजराती स्त्रियों की ओर से, निम्न पत्र वाइसराय को भेजा है—

"हम इस निर्णय पर पहुँची हैं कि जो महान् राष्ट्रीय उत्थान इस समय (भारत में) हो रहा है, हम उससे अलग नहीं रह सकतीं। नमक-कर के बारे में सविनय कानून-भंग का जो आन्दोलन चल रहा है उसके प्रति हमारी सम्पूर्ण सहानुभूति है। गाँवों की हमारी बहनें तो कभी से बिना महसूल का नमक तैयार करने भी लगी हैं।

परन्तु हम सोचती हैं कि हम स्त्रियों को अपनी प्रवृत्ति के लिए कुछ और विशेष क्षेत्र खोज निकालना चाहिए। गाँधीजी की यह सूचना हमें बहुत ठीक मालूम हुई है कि हम स्त्रियाँ शराब-बन्दी तथा विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का काम उठा लेने की विशेष योग्यता रखती हैं, शराब ने कितने ही कुटुम्बों को बर्बाद कर दिया है और विदेशी वस्त्र ने करोड़ों भारतीय स्त्रियों के फ़ुर्सत के समय—जो साल में चार महीने से कम नहीं होता—कर सकने योग्य धन्धे को उठा दिया है।

अतएव ये दो काम पुरुषों की बनिस्बत खास कर स्त्रियों के हैं। और इन प्रश्नों का फैसला करने (पिकेटिंग) से अर्थात् जो लोग इनका व्यापार करते हों तथा जो शराब या विदेशी कपड़े की दूकान की तरफ़ जाकर जाते हों उनके हृदय को अपील करके जितना भी किया जा सके उतना करने में पुरुषों की अपेक्षा हम स्त्रियाँ अधिक सफल होंगी, ऐसा हमें प्रतीत होता है। फिर जब ये काम स्त्रियों द्वारा होंगे तो इनमें शान्ति तो अपने-आप क़ायम रहेगी ही।

चूँकि हम यह आन्दोलन शुरू करना चाहती हैं, इसलिए इतनी बात आपकी निगाह में लाने की इजाज़त चाहती हैं कि शराब एवं अन्य मादक पदार्थों का व्यापार और इसी तरह विदेशी कपड़े की आयात कम करना, यह राज्य का ही ख़ास फ़र्ज़ है। शराब पीने वाले का मानसिक और शारीरिक नाश होता है, और विदेशी कपड़े ने इस दुःखी देश के ग्रामों का आर्थिक विनाश किया है। विदेशी कपड़े की आयात के सिलसिले में यह भी कहना चाहिए कि जो दलील विदेशी कपड़े पर लागू होती है वह दलील भारतीय मिलों में बनने वाले कपड़े पर भी कई अंशों में लागू पड़ती है। कपड़े की जितनी माँग है उसके मुक़ाबले में अकेली भारतीय मिलों का बना हुआ कपड़ा इतना थोड़ा है कि खादी को उससे डरने जैसी कोई बात ही नहीं है।

अन्य प्रान्त की अपनी बहनों का अभिप्राय प्राप्त करने का यदि हमें समय मिलता तो अच्छा होता; परन्तु उनका अभिप्राय क्या हो सकता है, यह हम जानती ही हैं। यह तो बात ही नहीं कि आज यह कोई नया ही प्रश्न उठा है। राष्ट्र के सामने तो यह अपनी राष्ट्रीय-संस्था कांग्रेस की मार्फ़त कई वर्षों से प्रस्तुत ही है। हम तो यही करना चाहती हैं कि पूर्ण स्वराज्य की दिशा में जो हलचलें चल रही हैं उनमें से खासकर इन दो हलचलों को अपने हाथ में लेकर हम अपने को उनके समर्पण कर दें।"

यही वह अल्टीमेटम है, जिसके द्वारा गुजरात की बहनों

ने अपने विदेशी वस्त्र बहिष्कार तथा शराब व ताड़ी के विरोधी आन्दोलन का संगठित रूप से भी गणेश किया है। यह बात नहीं कि इसमें खतरा न हो। एक महिला के पूछने पर गाँधी जी ने कहा है—

"आप लोगों को अपने कार्य की पवित्रता पर पूरा विश्वास होना चाहिए। आपको इसका इतमीनान रखना चाहिए कि शराबियों को भी आप लोगों पर हाथ उठाने का साहस न होगा, उलटा आपके ऊँचे अनुरोध का उनपर असर पड़ेगा। पर, यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि ऐसे आक्रमण पहले हो चुके हैं और हमारे इस आन्दोलन के बीच भी जहाँ-तहाँ यदि ऐसी हरकतें हो जायें तो आश्चर्य की बात न होगी। मुझे आशा है कि सरकार आप लोगों की पिकेटिंग में हस्तक्षेप करने का विचार कदापि न करेगी, पर इसका कुछ ठीक नहीं कि कब वह पागल बन जाय और इस प्रेममय प्रयत्न में भी हस्तक्षेप करने लगे। अतः जो स्त्रियाँ इस काम के लिए अपना नाम दें वे सोच-समझ कर ऐसा करें।"

इतने पर भी बहनें साहस कर रही हैं, यह खुशी की ही बात नहीं है बल्कि उस सुभविष्य की सूचक भी जान पड़ती है कि जो विजय के सुन्दर आवरण में छिपा हुआ है। भगवान् हमारी बहनों को बल दे, कि वे सफलता प्राप्त कर अपना और भारत का नाम रौशन करें!

वह राजपूती भाव!

लड़ाई के समय राजपूती वीरांगनायें अपने पुरुषों को जिस जोश-ख़रोश के साथ विदा करती थीं, वैसा ही कुछ दृश्य इस समय दृष्टिगोचर हो रहा है। महात्माजी के प्रस्थान के समय स्त्रियों ने तिलक-आर्त्ती द्वारा उनका सम्मान किया था, वही क्रम प्रायः सर्वत्र शुरू हो गया है। यही नहीं बल्कि अपने सम्बन्धियों की गिरफ्तारी पर स्त्रियाँ वीरोद्गार भी प्रकट कर रही हैं। राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू की गिरफ्तारी पर उनकी माता श्रीमती स्वरूपरानी ने जो वक्तव्य निकाला वह उन्हींके योग्य है। उनका कहना है, अगर तुम जवाहर को सचमुच प्यार करते हो तो उसका अनुकरण करो—उसके उठाये काम में लगो। बहनों से उन्होंने खादी को अपनाने की ज़ोरदार अपील की है। उनका कहना है—मैं भी औरत हूँ। खादी मेरे बदन में नहीं चुभती, तुम्हारे बदनों में ही वह कैसे चुभेगी? वह अपने परिवार की प्रायः सभी स्त्रियों के साथ जिस उत्साह से विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना दे रही हैं, वह सचमुच स्तुत्य है। पं० जवाहरलाल की स्त्री कमला नेहरू और बहन कृष्णा नेहरू उस जत्थे में शरीक थीं, जिसने प्रयाग में पहले-पहल नमक-क़ानून तोड़ा; और श्रीमती उमा नेहरू आदि के साथ अब ज़ोरों से विदेशी कपड़े की दूकानों पर पिकेटिंग कर रही हैं।

गुजराती स्त्रियाँ तो कमाल ही कर रही हैं। सुप्रसिद्ध गुजराती उपन्यासकार और मशहूर वकील श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की उनकी वृद्ध माता श्रीमती तारीबहन ने जिस प्रसन्न मुख से देश को सौंपा, वह अन्य माताओं के लिए ईर्षा की चीज़ है। और उनकी पत्नी श्रीमती लीलावती मुंशी तो स्वयं भी मद्य-निषेध के काम में ज़ोरों से पड़ गई हैं। उधर बम्बई में कांग्रेस-मंत्री श्री आबिदअली की गिरफ्तारी पर उनकी धर्मपत्नी रिक्त स्थान की पूर्ति को आगे बढ़ीं और श्रीयुत सिद्दीक़ की गिरफ्तारी पर उनकी माता ने कहा—"मेरे सौ पुत्र हों तो उन्हें भी मैं देश की सेवा के लिए क़ुर्बान कर दूँगी।" और श्रीमती कस्तूरबा गाँधी की तो बात ही क्या! गिरफ्तार होते हुए महात्माजी से किसी ने उनके लिए सन्देश माँगा, महात्माजी ने चट जवाब दिया—'सन्देश कैसा? कस्तूरबा वीर नारी है, वह अपना कर्त्तव्य आपने आप सोच लेगी।' महात्माजी की गिरफ्तारी पर श्रीमती गाँधी ने असोसियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि से जो कुछ कहा, वह इसका प्रमाण है। उनका कहना है—

"बापू गिरफ्तार कर लिये गये। पर भारत को स्वतन्त्र करने का जो बड़ा काम बापू ने हाथ में लिया था, उसमें इस गिरफ्तारी से कोई बाधा न पड़ेगी। यदि राष्ट्र बापू का सच्चा अनुयायी हो, तो उसे वह काम दूने उत्साह से करना चाहिए। अब वकील अदालतें छोड़ दें। बापू ने स्त्रियों पर जो विश्वास प्रकट किया था, उसे सत्य प्रमाणित करते हुए स्त्रियां विदेशी वस्त्र-बहिष्कार को

पूर्ण सफल बनाने और शराबखोरी को बन्द कराने में कोई बात उठा न रक्खें। मुझे पूरी आशा है कि भारत अपना जौहर दिखावेगा और सरकार के इस निष्प्रयोजन कार्य का समुचित उत्तर देगा।"

आशा है, भारतीय बहनें अपने हृदय-सम्राट् गाँधी के विश्वास को सत्य प्रमाणित करके रहेंगी।

आगरा की चिट्ठी

आगरा से अपनी एक बहन की चिट्ठी हमें मिली है। उससे मालूम पड़ता है कि 'जबसे तपस्विनी पार्वतीदेवीजी ने वहाँ काम शुरू किया है, वहाँ की स्त्रियों में मानों जान आ गई है। ५०-६० के लगभग स्वयंसेविकायें बन चुकी हैं, जो कि जेल जाने और मरने के लिए हर समय तैयार हैं। प्रतिदिन इन स्वयंसेविकाओं की संख्या बढ़ रही है। १६ अप्रैल की सार्वजनिक सभा में पार्वतीदेवीजी ने आगरे के बजाजों को चुनौती दी थी कि या तो वे विदेशी कपड़ा मँगाना बन्द कर दें और सभा करके कुछ फैसला करलें, नहीं तो १७ ता० को एक बजे से स्त्रियाँ धरना देना शुरू कर देंगी। दूसरे दिन पिकेटिंग करके उन्होंने १४८ बजाज़ों के हस्ताक्षर करवाये कि वे लोग ६ मास तक विदेशी कपड़ा नहीं मँगावेंगे। स्त्रियों में बहुत जोश है।' आशा है, आगरा की बहनें इसी उत्साह से अपना काम जारी रक्खेंगी और स्वयंसेवकों के पिटने जैसे भड़कीले अवसरों पर भी—जैसा कि वहाँ हो रहा है—वे अपनी अगाध शान्ति को क़ायम रक्खेंगी।

राजस्थान की स्त्रियाँ

वीरता का घर राजस्थान भी अब चेत रहा है। राजस्थान की स्त्रियाँ सामूहिक रूप से तो अभी सामने नहीं आई, फिर भी कुछ प्रगति दृष्टिगोचर हुई है। अजमेर में पहले नमक-सत्याग्रही जत्थे को बहनों ने सुन्दर ढंग से विदा दी थी। श्रीमती कृष्णादेवीजी, भागीरथीबहन (हरिभाऊजी की धर्मपत्नी), जानकीदेवी (पथिकजी की पत्नी), मनोरमाबाई आदि ने ही नहीं बल्कि हरिभाऊजी की ५-६ वर्षीय कन्या कुमारी शकुन्तला ने भी बड़े उत्साह, श्रद्धा और प्रेम के साथ आर्त्ती-पूजा के द्वारा उन्हें विदा दी और उनके साथ रामगंज तक गईं। रास्ते में श्रीमती जानकीदेवी और भागीरथीबहन ने अपने पतियों के राष्ट्र-संग्राम में पड़ने का ज़िक्र कर खुद भी उसमें पड़ने की बात कही और इसमें स्थानीय बहनों का सहयोग माँगा। खद्दर अपनाने की अपील श्रीमती मनोरमाबाई और कृष्णादेवी ने भी की। इस दिन विदेशी कपड़े की होली भी जली—और उसका प्रज्वलन हुआ, कुमारी शकुन्तला के हाथों। ठा० मोतीसिंहजी कोठारी की धर्मपत्नी का उत्साह भी प्रशंसनीय था। बिना आगे आये, चुपचाप, वह अपने समाज की स्त्रियों में खद्दर का प्रचार भी कर रही हैं। इधर बीच में यहाँ और भी कुछ काम हुआ है। ८ मई से स्त्रियों के द्वारा विदेशी कपड़े की पिकेटिंग भी शुरू हुई और पहले ही दिन स्थानीय नयाबाजार, पुरानी मण्डी व धसीटी के व्यापारियों ने तथा दूसरे दिन कैसरगंज के व्यापारियों ने इसके सामने सिर झुका दिया। उन्होंने कांग्रेस से यह समझौता कर लिया है कि अगले चार महीनों के लिए हम विदेशी कपड़े मँगाना बन्द करते हैं—आर्डर दिये हुए माल में से भी जो रवाना न हुआ होगा उसे न भेजने की सूचना दे दी जायगी। कांग्रेस धरना बन्द कर देगी, पर ११ मई को होने वाली अ० भा० कांग्रेस-कार्य-समिति ने यदि ऐसी हालत में भी धरना देने का निश्चय किया तो वह फिर पिकेटिंग शुरू कर देगा। ब्यावर में श्री जमालुद्दीन मखमूर की गिरफ्तारी के बाद कांग्रेस-मन्त्री का काम 'तरुण राजस्थान' के उत्साही सम्पादक श्री ऋषिदत्त मेहता की धर्मपत्नी बहन सत्यभामा सम्हाले हुए हैं। आशा है, राजस्थानी बहनों की यह जागृति भावी बृहत् जागृति की सूचक होगी।

विविध

स्त्रियों की विविध हलचलें भी चल ही रही हैं। सर्वएशिया महिला-परिषद् की तैयारियाँ हो रही हैं। नासिक के अछूत-सत्याग्रह में महार स्त्रियों ने अपने पर पड़ने वाली मार को भी सहर्ष सहा है। शारदा क़ानून अमल में आ गया है, पर सख्ती से उसका पालन नहीं हो रहा।

खबरें ही नहीं आ रहीं, कई कम-उम्र लड़के-लड़कियों को इन दिनों भी दूल्हे दुल्हन के रूप में स्वयं अपनी आँखों से भी हमने देखा है। कई स्त्रियों ने पर्दों की सफलतायें प्राप्त की हैं। ऐसे ही और भी कई बातें हैं। परन्तु सबसे मुख्य बात इस समय की वर्तमान स्वराज्य-युद्ध और उसमें स्त्रियों का भाग ही है। हमें हर्ष है कि स्त्रियाँ इसमें दिनोंदिन आगे आ रही हैं।

मुकुट

सिंहावलोकन

ज़माना बड़ी तेज़ी के साथ बदल रहा है। कल क्या था, आज कुछ और नज़र आता है। दरख़्त जो हरे-भरे थे, ग्रीष्म की गर्मी और लू से उनके लहलहाते हुए फूल-पत्ते खिर गये हैं और सूनापन-सा प्रतीत होता है। साँय साँय लू चल रही है।

यह तो हुआ प्राकृतिक जीवन का हाल। पर भारत का सार्वजनिक जीवन भी कुछ ऐसा ही हो रहा है। सरकारी दमन-दावानल ख़ूब ज़ोरों से शुरू हो गई है और उसके आतप में हमारे कितने ही चमकते हुए और परिचित चेहरे, हमारे मार्गदर्शक नेता, कर्मण्य साथी और देश-सेवा के उत्सुक भाई हमारे बीच से उठाकर सरकारी जेलों में मूँद दिये गये हैं। यहाँ तक कि हमारा प्यारा राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू और हमारे विश्ववंद्य सेनापति महात्मा गाँधी भी आज हमारे बीच से उठा लिये गये हैं। मगर फिर भी दमन-चक्र बन्द नहीं हुआ!

मामूली समय की व्यवस्था अब नहीं रही। मामूली क़ानून बेकार साबित हुए हों, इस प्रकार अब विशेष क़ानूनों के द्वारा हमपर शासन हो रहा है। हमारी हर तरह की आज़ादी को कुचल डालने की तैयारी है। बंगाल-आर्डिनेंस जारी हुआ, प्रेस-आर्डिनेंस हुआ, और फिर तुरंत ही लाहौर-षड्यंत्र के मामले को अपने ढंग पर चलाने के लिए आर्डिनेंस जारी हुआ। इस प्रकार आर्डिनेंसों का शासन तो आम बात हो गई है। गोलियाँ भी चलनी शुरू होगईं। कराची में श्रीयुत जयरामदास दौलतराम जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी गोली से घायल हुए — और वह उस हालत में, जब कि शान्ति-स्थापन का प्रयत्न कर रहे थे! मद्रास में एक एडवोकेट इसी प्रकार अपनी जान खो बैठे। और भी कई जगह गोलियाँ चली हैं। पेशावर में तो मार्शललॉ ही जारी हो गया और दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, देहरादून, आदि कई जगह १४४ दफ़ा जारी हुई हैं। नमक-सत्याग्रहियों तथा एकत्र शान्त भीड़ के साथ जैसा व्यवहार हो रहा है, वह भी प्रशंसनीय नहीं। फिर भी सत्याग्रह पूरे वेग से बढ़ रहा है!

नमक क़ानून का तो ख़ूब भंग हुआ, अब वह एक मामूली बात हो गई है। अब विदेशी वस्त्र व शराब ताड़ी की पिकेटिंग पर ख़ूब ज़ोर दिया जा रहा है। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, अमृतसर, कानपुर, प्रयाग, इत्यादि अनेक स्थानों के व्यापारी भविष्य में विदेशी कपड़ा न मँगाने को कह रहे हैं। वकील लोग स्वदेशी, ख़ास तौर पर खद्दर, अपना रहे हैं। अन्य लोग भी ऐसा ही कर रहे हैं।

शराब व ताड़ी के विरुद्ध गुजरात में ख़ूब काम हो रहा है। महात्माजी की आज्ञा और सलाह से कुमारी मीठूबहन पेटिट, श्रीमती कस्तूरबा गाँधी और गुजरात की कुछ अन्य कर्मण्य बहनों की देख भाल में यह आन्दोलन बड़े संगठित रूप में ख़ूब बढ़ा है और सफलता के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

गिरफ्तारियों में भेदभाव खूब रक्खा जा रहा है। सब स्वयं-सेवक गिरफ्तार नहीं किये जाते, खास खास कार्यकर्त्ता चुन लिये जाते हैं। यही कारण है कि आज देश के अनेक चमकते हुए रत्न सरकारी मेहमान हो गये हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य कुछ ये हैं—म० गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, सेठ जमनालाल बजाज, श्री राजगोपालाचार्य, गंगाधरराव देशपाण्डे, कोण्डावेंकटप्पैया, नागेश्वरराव पन्तुलू, टी० प्रकाशम, सत्यमूर्त्ति, श्रीप्रकाश, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, रामनारायणसिंह, नरीमेन, यूसुफ़ मेहरअली, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, डा० सत्यपाल, डा० आलम, डा० किचलू, विजयसिंह 'पथिक', नरसिंहदासजी, घीसूलाल जाजोदिया, इत्यादि-इत्यादि। सभी प्रान्तों में ज़ोरों से दमन शुरू हुआ है और अपना रंग ला रहा है।

अजमेर में भी अब काम ज़ोरों से शुरू हुआ है। नमक-क़ानून तोड़ने को श्री नित्यानन्दजी नागर (बूँदी के भूतपूर्व कमान्डर-इन-चीफ़) के नेतत्व में एक जत्था ब्यावर गया था, श्री हरिभाऊजी के नेतृत्व में एक जत्थे ने अजमेर में उसकी शुरुआत की। नित्यानन्दजी गिरफ्तार हो चुके, पर हरिभाऊजी अभी बचे हुए हैं—वैसे नमक-क़ानून तोड़ने का क्रम यहाँ कई दिन तक बराबर मुहल्ले-मुहल्ले में रहा और हाल में रामसर नामक गाँव में जाकर भी उन्होंने उसे तोड़ा है। हाँ, प्रान्तिक समिति के सभापति श्री विजयसिंह पथिक तथा जिला-काँग्रेस के मंत्री श्री नरसिंहदासजी पहले ही गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये हैं। ब्यावर में वहाँ के कांग्रेस-सभापति घीसूलालजी जाजोदिया और मंत्री श्री जलालुद्दीन मख़मूर गिरफ्तार करके जेल भेजे गये हैं और दो अन्य सत्याग्रही भी जेल गये हैं।

यही हाल सब देश में है। गिरफ्तारियों पर हड़ताल, प्रदर्शन वगैरा भी होते हैं। पेशावर, कराची आदि में दंगे भी हुए हैं। पेशावर में दंगा बहुत बढ़ा। सुनते हैं कि वहाँ आस-पास के कुछ फ़िर्के भी चढ़ाई को आ रहे थे। वहाँ कांग्रेस व यूथलीग को ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दिया गया है, मार्शलला जारी है, और वहाँ का आना-जाना भी बन्द रुका हुआ है। मरने वालों व घायलों की संख्या का अभी कुछ पता नहीं लग पाया है। कांग्रेस ने जाँच के लिए कुछ लोगों को भेजा था, पर वहाँ न जाने दिया गया। अब श्री विट्ठलभाई पटेल को उसकी जाँच का काम सौंपा गया है।

विरगाँव में सशस्त्र विद्रोह इस मास की ख़ास घटना है। फ़ौज का दौर-दौरा है, कलकत्ता आदि में इकट्ठी गिरफ्तारियाँ हुई हैं, पर अभी भी यह नहीं कह सकते कि पता लगाने और उसके वास्तविक कर्त्ताओं को पकड़ने में कोई कामयाबी हुई है।

कौंसिलों का मोह कम हो रहा है। पं० मदनमोहन मालवीय और उनके दल के पदत्याग के बाद वे और भी कुछ न रहीं। राष्ट्रीय दल के श्री केलकर आदि कुछ सदस्यों ने पदत्याग कर दिया। और अब तो असेम्बली के अध्यक्ष पटेल ने भी इस्तीफा दे दिया है। उन्होंने जो लम्बे पत्र वाइसराय को लिखे उनसे ज्ञात होता है कि वाइसराय को वह शुरू से समझाते रहे कि देश में सबसे बड़ी शक्ति गाँधी और कांग्रेस की है, उनसे समझौता करो, पर उन्होंने ध्यान न दिया। पिछले तीन साल से नौकरशाही उन्हें जो तंग कर रही थी, उसका भी भण्डाफोड है। अन्त में आपने कहा है, देश की मौजूदा हालत में—जब कि प्राणों की लड़ाई हो रही है—मेरा अध्यक्ष पद पर रहने के बजाय अपने देशभाइयों के कन्धे से कन्धा मिलाना ही शोभा देता है। युक्तप्रान्त की कौंसिल से लिबरल दल के पं० वेंकटेशनारायण तिवारी तथा अन्य कुछ सदस्यों ने इस्तीफा दिया है। इसी प्रकार बम्बई आदि प्रान्तों में भी हुआ है।

कुछ राजभक्त सरकार को मदद को भी बढ़े हैं, पर उनका कोई ख़ास मूल्य नहीं।

इस प्रकार देश में इस समय घमासान मच रहा है। सच्ची ख़बरों के साधन समाचारपत्र प्रेस-आर्डिनेंस के शिकार होकर बन्द हो रहे हैं। दिल्ली, कलकत्ता, बिहार आदि के अनेक पत्र बन्द हो चुके, और हो रहे हैं। इस तरह सब तरफ़ आन्दोलन, उद्वेग, सनसनी और जोश है। देखना चाहिए, आख़िर ऊँट किस करवट बैठता है।

मुकुट

स्थानापन्न राष्ट्रपति

'स्वराज्य-भवन'

महामना मालवीय जी
के साथ
(श्री घनश्यामदास बिड़ला)

आपने जिस जोर शोर के साथ विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का कार्य शुरू किया है उससे देश को बड़ी आशा है।

प्रेसिडेण्ट पटेल

"मेरे देशवासी स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर लड़ रहे हैं। वर्त्तमान समय के महत्तम पुरुष महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा का जो आन्दोलन संगठित किया है, वह अपने पूरे जोर में है। मेरे हजारों प्रमुख देशवासी शाही जेलों में पहुंच चुके हैं, और हजारों ज़रूरत पड़ने पर अपने प्राणों की बाज़ी लगाने को तैयार हैं। देश की ऐसी विकट परिस्थिति में असेम्बली का अध्यक्ष बने रहने के बजाय मेरा उपयुक्त स्थान अपने देशवासियों के बीच है, जिनके साथ कन्धे से कन्धा मिला-कर खड़े रहने का मैंने निश्चय किया है।"

श्री मणिलाल कोठारी
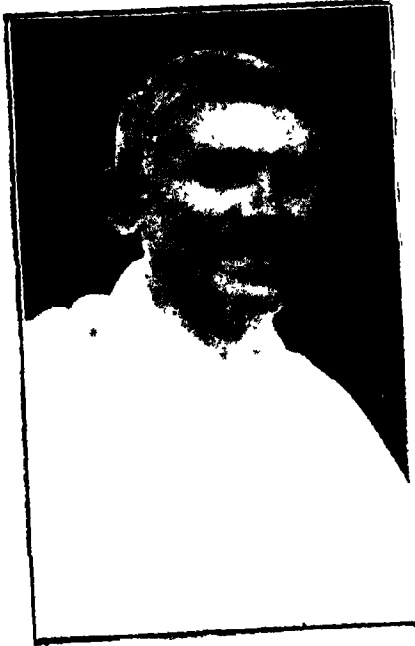
गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य
काका कालेलकर

ढसा के दरबार

संयुक्त प्रांत से

बनारस जिला के प्रथम सेवक
श्री संपूर्णानंदजी
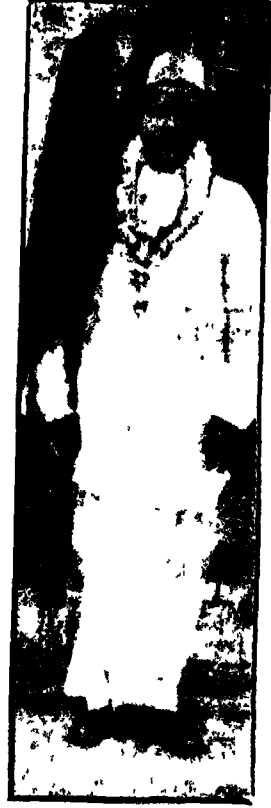
आगरा का प्रथम बलिदान
श्री कृष्णदत्त पालीवाल

रायबरेली के सत्याग्रही स्वयंसेवक
श्री रामसिंहजी

कानपुर के युवक-संघ के सभापति
श्री बालकृष्ण शर्मा

चारों ओर से

कारागार प्रवासी

श्री जमनालाल बजाज (बम्बई)

सेठ गोविन्ददासजी (मध्यप्रान्त)

श्री पथिकजी (राजस्थान)

जे० एम० सेन गुप्त (बंगाल)

कर्नाटक के वृद्ध नेता
श्रीगंगाधरराव देशपाण्डे
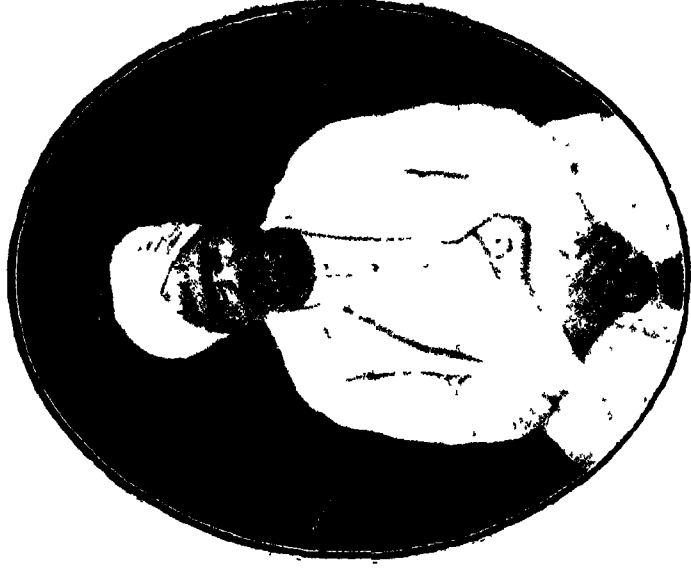
पंजाब के नेता डा० सत्यपाल
राजद्रोह के अभियोग में गिरफ्तार हो गये हैं।
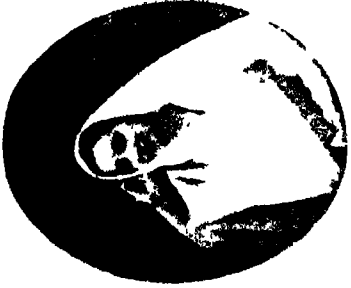
कस्तूर बा गांधी

गुजरात की श्री मीठू बहिन पेटिट

श्री सरोजिनी देवी

श्री हंसा मेहता

श्री कमलादेवी चट्टोपाध्याय
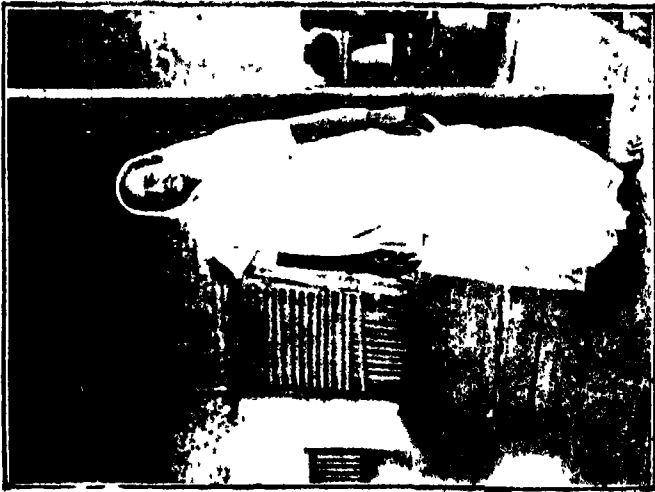
प्रयाग के प्रथम सत्याग्रही

राष्ट्रपति श्री जवाहरलाल नेहरू की पत्नी श्री कमला नेहरू
तथा बहिन श्री कृष्णाकुमारी नेहरू स्वयंसेवकों के वेश में

देश की बात

आशातीत !

देश ने जिस तत्परता से कांग्रेस और महात्माजी के आह्वान का अनुसरण किया है, वह भारत के इतिहास की एक विलक्षण घटना समझी जायगी। इस एक महीने के अन्दर, नमक-कानून तोड़ने की छोटी-सी बात ने, महात्माजी की सूझ के कारण, हमें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है! इस एक महीने के अन्दर देश की परिस्थिति में जो परिवर्तन हुआ है वह आशातीत है—स्वयं महात्माजी को भी इतनी सफलता की आशा नहीं थी। आज छोटे-छोटे बच्चे, जिनके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, 'इनक़लाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते गलियों में चक्कर काटते फिरते हैं। किसी गुलाम देश की मनोवृत्ति का बदल जाना मानव-समाज के इतिहास की एक अत्यन्त कठिन बात समझी जाती है, क्योंकि मनोवृत्ति की गुलामी से ही संसार की सम्पूर्ण पतनकारी जटिलताओं का जन्म होता है। सत्याग्रह-आन्दोलन ने एक मास के अन्दर ही लोगों के मन से सरकार के अस्तित्व को नष्ट कर दिया है और चाहे अभीतक हमें स्वतन्त्र न कर दिया हो पर हमारे मन की राजनैतिक गुलामी दूर हो गई है। देखते-देखते गुजरात के एक अदृष्ट धूमिल कोने से छोटा सा बादल उठा और सारे देश पर फैल गया! आज हज़ारों-लाखों घरों में नमक बन रहा है और सरकार लोगों को इस 'गैरकानूनी' काम से रोकने में असमर्थ है!

सफलता के चिह्न

प्रत्येक सार्वजनिक आन्दोलन का जीवन तीन भागों में बँटा हुआ देखा जाता है। आरंभ में उसके विरोधी उसकी उपेक्षा करते हैं और यह दिखाने की कोशिश करते हैं जैसे इसमें कुछ तत्त्व नहीं, कुछ दम नहीं है, और इसके अनुयायी बहुत थोड़े हैं। इसके बाद जब आन्दोलन बढ़ता जाता है तब विरोधियों का क्रोध भी बढ़ने लगता है। वे उसके विरुद्ध प्रचार करते, उसे बलपूर्वक अन्यायपूर्ण विधियों से दबाने का प्रयत्न करते हैं। धीरे-धीरे आन्दोलन की जड़ मज़बूत होते देख उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती जाती है, विवेक नष्ट हो जाता है और विरोध के जोश में वे न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का विचार छोड़ देते हैं। यहीं से विरोधी दल की हार और आन्दोलन की सफलता का एकमात्र हा जन्म होता है और दिन-दिन उनकी गति बढ़ती जाती है। इसके बाद यदि दृढ़तापूर्वक चलता गया, तो आन्दोलन की सफलता और विरोधियों द्वारा उसकी सफलता के स्वीकार कर लिये जाने का समय आता है।

हमारा यह राष्ट्रीय आन्दोलन ६ अप्रैल को शुरू हुआ था और १५ दिन के अन्दर ही वह पहली श्रेणी को पार कर गया। शुरू में सरकार ने उपेक्षा की। सरकारी अधिकारियों और इंग्लैण्ड तथा भारत के गोरे पत्रों ने यह दिखाना चाहा कि इस दल में बहुत थोड़े आदमी हैं और इसकी संख्या परिमित है। किन्तु बातों से अवश्यम्भावी घटनायें नहीं रुका करतीं और न असत्य के अन्धकार से सत्य का सूर्य छिपाया जा सकता है। आन्दोलनकारियों ने सरकारी एवं अर्द्धसरकारी इन झूठी-सच्ची बातों पर ध्यान न देकर अपना काम जारी रक्खा। सरकार घबरा गई। वल्लभभाई, सत्यमूर्ति, जे० एम० सेन गुप्त, राष्ट्रपति (जवाहरलाल), कोंडा वेंकटप्पैया, पट्टाभिसीतारामैया, राजगोपालाचार्य, प्रकाशम, जमनालाल बजाज, नरीमन, सत्यपाल, आलम, किचलू, श्रीप्रकाश, गोविन्ददास, काका कालेलकर, महादेवभाई, देवदास गाँधी तथा देश एवं विभिन्न प्रान्तों के अनेक छोटे-बड़े नेता एक के बाद एक जेल में पहुँचा दिये गये। पर इससे भी आन्दोलन की गति न रुकी बल्कि बढ़ती गई। गुजरात में वल्लभभाई के वर्षों के ठोस काम तथा महात्माजी के प्रभाव से सरकार के लिए शासन-कार्य चलाना ही असंभव हो गया। हजारों पटेलों के इस्तीफ़ों के कारण सरकार घबरा गई। बम्बई-सरकार की ओर से कहा गया कि थोड़े ही पटेलों ने इस्तीफा दिया है पर महात्माजी को १८२७ के बम्बई रेगुलेशन के अनुसार गिरफ्तार करके उसने जो विज्ञप्ति निकाली है उसमें साफ़ शब्दों में स्वीकार किया है कि

गुजरात में गान्धीजी के प्रभाव से दिन-दिन शासन-कार्य चलाना कठिन होता जा रहा है। यह हमारी सफलता और विजय के शुभ चिन्ह हैं।

क़ानून बनाम मानवता

सरकार कानून की आड़ लेकर देश के सतत सभ्य और प्रतिष्ठित नागरिकों पर जो ज़ुल्म ढा रही है उसका वर्णन करना कठिन है। सीधे-सादे और शान्त सत्याग्रहियों को—और उनके साथ ही दर्शनोत्सुक निरीह जनता को इतने ही थोड़े समय में बीसों स्थानों पर पुलिस की लाठियाँ खानी पड़ी है और गोलियों तक का भी शिकार होना पड़ा है। सत्याग्रहियों की जननेन्द्रियों को दबाने के अमानुषिक और बर्बरतापूर्ण कारनामे भी अख़बारों में छपे हैं। इन आन्दोलनकारियों और पुलीस के कर्मचारियों की स्थिति की तुलना करने से और भी आश्चर्य होता है। सत्याग्रहियों का अपराध केवल यह है कि वे अपने देश को स्वतन्त्र और अपने पैरों पर खड़ा देखना चाहते हैं। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं, उनको वेतन नहीं मिलता, उलटे जेल जाना पड़ता और गोलियाँ खानी पड़ती हैं। इसके विरुद्ध पुलिस के आदमी अपने पेट के गुलाम हैं; उन्हें इनाम मिलता है, वे दूकानदारों, तांगे-इक्के वालों एवं जनता से टके वसूल करते आते हैं। ऐसी हालत में उनकी अपेक्षा नैतिक दृष्टि से कहीं अधिक मर्यादा रखने वाले सत्याग्रहियों पर, क़ानून की ओर से, ऐसे अमानुषिक अत्याचार करने वाली शासन-प्रणाली कबतक चल सकती है, यह समझने के लिए बहुत बड़े दिमाग़ की ज़रूरत नहीं है। यह दुष्ट बुद्धि द्वारा कलुषित कानून और अपने पवित्र रक्त से पृथ्वी को सींचकर उर्वर करने के लिए उत्सुक मानवता का युद्ध है। मानवता विजयी होगी, क्योंकि वह सदा विजयी होती है। कानून नष्ट हो जायँगे, क्योंकि कानून आदमी के बनाये हैं और आदमी के लिये बनाये गये हैं। 'सुमन'

पत्रों पर प्रहार!

भारतीय जनता ने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अपना जो जागृत रूप प्रकट किया है, मालूम होता है, सरकार उसे देखकर भकचका गई है। हिन्दुस्थानी भी अपने देश के लिए इस तरह बलिदान करने को तैयार हो सकते हैं, इस बात ने उसे आश्चर्य के साथ खिझा दिया है। यही कारण है कि पहले तो उसने उपेक्षा करनी चाही, फिर धीरे-धीरे पैर फैलाये, और अब आँख मीचकर दमन पर उतारू हो गई है।

अख़बारों के द्वारा एक स्थान की ख़बर शीघ्र और पक्के रूप में अन्य स्थानों पर पहुँच जाती थी। एक स्थान के अपने भाइयों के उत्साह का हाल पढ़कर दूसरे स्थानवालों को भी उत्साह होता था। लोगों के उत्साह को तो सरकार न रोक सकी, आख़िर उसके इस साधन—पत्रों पर प्रहार करने की उसने सोची। फलतः वही १९१० का बदनाम प्रेस ऐक्ट अपने और भी काले रूप में सामने आया है।

उदार वाइसराय लार्ड इरविन ने अपने वक्तव्य के साथ आर्डिनेंस के रूप में २७ अप्रैल से इसे हमपर आयद किया है। उनका कहना है कि इसका उद्देश्य पत्रों का सुनियंत्रण है और इसके अनुसार ऐसे प्रेसों से ज़मानतें माँगी जा सकेंगी, जिनमें सरकार के प्रति विद्रोह के भाव फैलानेवाले अख़बार प्रकाशित होते हों। इसकी मुख्य धारायें प्रायः वही हैं जो १९१० के क़ानून की थीं, पर वर्त्तमान परिस्थिति की आवश्यकताओं के विचार से कुछ महत्त्वपूर्ण धारायें बढ़ाई गई हैं।

इस क़ानून के अनुसार अख़बारों के हाथ बँध गये हैं। अख़बार न तो क़ानून-भंग के आन्दोलन का समर्थन कर सकते हैं, न सरकारी नौकरों से इस्तीफ़ा देने को कह सकते हैं, न उनके सामाजिक बहिष्कार का प्रतिपादन कर सकते हैं, न फ़ौजी रंगरूटों की भर्ती की आलोचना कर सकते हैं, न कर-बन्दी के आन्दोलन का समर्थन कर सकते हैं, न देशी नरेशों अथवा सरकार की निन्दा कर सकते हैं, न सरकारी आदमियों से देश-सेवा की अपील कर सकते हैं, न और ही कोई ऐसा काम कर सकते कि जो सरकारी शासकों को नापसन्द हो; ख़ून-ख़राबी के समर्थन का तो प्रश्न ही नहीं है। मतलब यह कि खुले-आम जिस बात को कहने का प्रत्येक प्रजाजन को अधिकार है, उसका भी अख़बारों में प्रतिपादन नहीं हो सकता! अगर अख़बार

ऐसा करें तो प्रांतिक सरकार को आज़ादी है कि वह किसी भी प्रेस व पत्र से भविष्य में ऐसा न करने की ज़मानत तलब कर सकती है। जबतक ज़मानत जमा न हो जाय, वह पत्र व प्रेस कोई काम नहीं कर सकते। और ज़मानत जमा हो जाने के बाद फिर यदि कोई ऐसी ही ग़लती उनसे हो जाय तो पहली ज़मानत ज़ब्त करके दूसरी तलब की जा सकती है। इसके बाद ज़मानत ही नहीं बल्कि प्रेस भी ज़ब्त कर लिया जावेगा। ज़मानत पहली बार ५००) से ५०००) रु० तक की माँगी जायगी और दुबारा १०००) से १००००) रु० तक की माँगी जावेगी।

कहना न होगा कि वर्त्तमान समय स्वतंत्रता का समय है। मुद्रण-स्वातंत्र्य वर्तमान विश्व की एक ख़ास विशेषता है। किसी भी सभ्य देश में प्रेस पर ऐसी बन्दिशें नहीं लग सकतीं, स्वयं हिन्दुस्थान में ही अभी तक ऐसा नहीं हुआ। १९१० का प्रेस-ऐक्ट जारी हुआ था सही, पर उसपर जो जाँच-कमिटी बैठी थी स्वयं उसने ही उसे अत्यन्त बेहूदा बताया था। इसीलिए असहयोग के गहरे जोश के होते हुए भी १९२२ में उसे उठा भी लिया गया था। अब एकदम ऐसी क्या ज़रूरत आ उपस्थित हुई कि और भी काले रूप में इसे जारी किया गया है? क़ानून भंग, माल-गुज़ारी-बन्दी आदि की जो विशेष धारायें इसमें जोड़ी गई हैं, उनसे मालूम होता है कि वर्तमान आन्दोलन को कुचलने के लिए ही इसे जारी किया गया है। यदि ऐसा ही हो तो इसमें शक नहीं कि यह एक भ्रमात्मक क़दम है, इस दिशा में यह हर्गिज़ कारगर न होगा। पत्र तो इसी ज़माने की उपज हैं, पर आज़ादी की लड़ाइयाँ तो इससे पहले भी होती रही हैं। वे बिना पत्रों के सफल हुई तो कोई कारण नहीं कि वर्तमान संग्राम ही उनके अभाव में कैसे रुक सकेगा?

× × ×

यह और भी मज़े की बात है कि आर्डिनेंस शुरू होते ही पत्रों पर प्रहार भी शुरू हो गया! सबसे पहले दिल्ली के पत्रों को कुचला गया। आज वहाँ एक भी अख़बार नहीं निकल रहा है। कलकत्ता में भी सब राष्ट्रीय पत्र—एक 'बंगाली' को छोड़ सभी हिन्दुस्थानी अख़बार बन्द हैं। बिहार एक प्रकार से पत्र-शून्य हो गया। पंजाब, युक्तप्रान्त आदि में भी इसकी शुरुआत हो रही है। राजपूताना में स्थानीय 'राजस्थान-सन्देश' और 'प्रकाश' ने विरोध-स्वरूप अपना प्रकाशन स्थगित कर दिया है—और पत्रों का भी कौन ठिकाना कि कब बन्द हो जायँ? यह निश्चित है कि ज़मानत देकर कोई न निकलेगा। १० मई को प्रयाग में सर्व-भारतीय सम्पादकों का सम्मेलन होने वाला है, वह निश्चित रूप से इस सम्बन्धी नीति निर्धारित करेगा। वैसे महात्माजी कह ही चुके हैं कि मेरे 'नवजीवन' प्रेस से ज़मानत माँगी जाय तो प्रेस चाहे ज़ब्त हो जाय पर ज़मानत देकर पत्र हर्गिज़ न निकाला जाय। पत्रकारों की कठोर परीक्षा का समय है। आशा है, हम लोग इसमें कच्चे साबित न होंगे।

मुकुट

अजमेर-प्रान्त में सत्याग्रह-आन्दोलन

यह आधुनिक समाज की विश्रृंखलता और अव्यवस्था का परिणाम है कि आज दुनिया में ईमानदार और दूसरों की भलाई चाहने वाले आदमियों की ज़िन्दगी शान्ति के साथ बीतनी कठिन हो गई है। संसार में विभिन्न देशों की सरकारों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म और सच्चाई को धो बहाया है, भारतीय सरकार इस विषय में सबसे बाज़ी मार ले गई है। सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू होने के बाद से देश में सरकारी दमन का जो विकराल पंजा यत्र-तत्र-सर्वत्र दिखाई पड़ने लगा है उसने अपने अत्यन्त अमानुषिक कृत्यों के उदाहरण उपस्थित किये हैं। पर जैसा कि गान्धीजी कहते हैं, जितना गहरा अत्याचार होता है सत्याग्रही को आदर्श उपस्थित करने का उतना ही मौक़ा मिलता है।

इस दृष्टि से भारत में सर्वत्र जनता ने अपने अपूर्व उत्साह और सत्याग्रहियों ने अपूर्व सहिष्णुता, शान्ति और त्याग का परिचय दिया है। अनेक असुविधाओं के होते हुए अजमेर-प्रान्त ने भी इस क्षेत्र में बड़ी प्रगति की है। पाठकों को याद होगा कि राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी चंद महीनों से ही ठोस काम में विश्वास रखने वाले कांग्रेस-वादियों के हाथ में आई है। इसके पहले वर्षों से वहाँ का

राजनैतिक जीवन मर चुका था। बाबाजी (नृसिंहदासजी) के अनथक उद्योग एवं हरिभाऊजी, पथिकजी तथा अन्य नेताओं और कार्यकर्ताओं के उद्योग से अजमेर में फिर नवीन जीवन फैलने लगा और देश में सत्याग्रह-आन्दोलन आरंभ होने पर यहाँ भी काम आरंभ हुआ। हरिभाऊजी सर्व-सम्मति से सत्याग्रह-आन्दोलन के सर्वे-सर्वा और पथ-प्रदर्शक नियुक्त हुए। पथिकजी प्रान्तिक समिति के सभापति थे, उन्होंने भी ज़ोरों से कार्यारम्भ किया। बाबाजी तो लगातार ठोस काम कर ही रहे थे। और भी कई शक्तियाँ व्यस्त थीं। २६ जनवरी का स्वाधीनता-दिवस वह दिन था, जब पहले-पहल यहाँ की राष्ट्रीय शक्ति का प्रदर्शन हुआ। कितना सुव्यवस्थित और उत्साहपूर्ण था वह जलूस और सारा कार्यक्रम! इसके बाद तो एक के बाद एक काम आगे आते ही रहे। महात्माजी नमक-कानून तोड़ने के लिए चले, देश-भर में हलचल मच गई। राजस्थान भला चुप रह सकता था? अजमेर, ब्यावर आदि में तैयारियाँ शुरू हो गई। राष्ट्रीय सप्ताह में श्री वैजनाथ महोदय के नेतृत्व में पहला जत्था गाँवों में प्रचार के लिए गया, जिसने आख़िर नसीराबाद के पास रामसर में अपना क्षेत्र बनाया। बून्दी के भूतपूर्व कमाण्डर-इन-चीफ़ श्री नित्यानन्द नागर के नेतृत्व में एक जत्था नमक-क़ानून तोड़ने के लिए ब्यावर को पैदल रवाना हुआ। यह जत्था १६ अप्रैल को पहुँचकर २० को वहाँ नमक-क़ानून तोड़ने वाला था, पर ब्यावर वालों ने उत्साहाधिक्य से इसके पहले ही श्री रामदीनसिंह के नेतृत्व में नमक-क़ानून तोड़ दिया। २० ता० को इस जत्थे ने भी सार्वजनिक रूप से नमक बनाया और बेचा। इधर अजमेर में बाबाजी और पथिकजी को तो उस दिन एकाएक पुलिस गिरफ्तार कर ही ले गई थी, दूसरे दिन सुबह उन्हें दो-दो वर्ष के लिए जेल भी भेज दिया गया! बीच में जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट को सलाम करने से इनकार करने पर बाबाजी को कालकोठरी की सज़ा देकर बेतें मारने की धमकी भी दी गई थी, पर फिर उनके साथ साधारणतः अच्छा व्यवहार होने लगा। अस्तु। २० ता० को ही अजमेर में भी श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में एक जत्था नमक-क़ानून तोड़ने को रवाना हुआ। कैसा उत्साहपूर्ण था वह दृश्य! काफ़ी जन-समुदाय के साथ रास्ते में जगह-जगह स्वागत-सत्कार ग्रहण करता एवं नमक-क़ानून तोड़ने की घोषणा करता हुआ यह जत्था सारे शहर के मुख्य-मुख्य भागों का चक्कर लगाते हुए रामगंज के मैदान में गया और वहीं कोई ५-६ हज़ार की शान्त उपस्थिति में नमक बनाकर क़ानून का भंग किया। पुलिस ने आकर बर्तन ले लिये, नमक पर हमला न किया। इसके बाद जय-घोष करता हुआ जन-समुदाय वापस आया। देश-प्रेम का भाव इतना बढ़ रहा था कि बिना माँगे ही विदेशी वस्त्र भी फिंकने शुरू हुए और एक छोटी-सी होली भी उनकी जल गई। इसके बाद यह क्रम कई दिन तक जारी रहा। श्रीयुत लक्ष्मण महाजन ने दूसरे दिन बड़ी वीरता बताई, गरम तसले को भी पुलिस को छीनने न दिया। अब तो मामूली बात हो जाने से यह क्रम छोड़ दिया गया है। हाँ, रामसर में उस दिन बड़े उत्साह के साथ हरिभाऊजी ने जाकर नमक बनाया था। ब्यावर में इस बीच श्री नित्यानन्दजी तथा वहाँ के काँग्रेस-सभापति श्रीयुत सेठ घीसूलालजी तथा मन्त्री श्री जमालुद्दीन मखमूर और श्री रामदीनसिंह को भी पकड़ लिया गया। नित्यानन्दजी को १ साल, घीसूलालजी को छः मास, मखमूर सा० को १४ मास, रामदीनसिंह जी को १॥ वर्ष तथा श्री भीकमसिंह को १८ महीने की सजा हुई है। घीसूलालजी वहाँ के मान्य नेता हैं, उनकी गिरफ्तारी पर जनता उमड़ उठी थी, पर विशेष गड़बड़ न हुई। अब वहाँ शराब की दूकानों पर पिकेटिंग हो रही है। इधर अजमेर में ८ ता० को विदेशी कपड़े की पिकेटिंग श्रीयुत बालकृष्ण कौल के संरक्षण में स्त्रियों द्वारा शुरू हुई थी और ९ ता० को ही सफलता के साथ समाप्त हो गई। विदेशी कपड़े के व्यापारियों ने यह समझौता कर लिया है कि चार महीने तक वे कोई नया आर्डर न देंगे, पुराने को भी रद्द कर देंगे—कांग्रेस की शर्त यह है कि १२ मई की अ० भा० कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक में यदि यह तय हुआ कि विदेशी कपड़ा किसी भी शर्त पर न बेचने दिया जाय तो हम फिर से पिकेटिंग करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे। इधर ९ ता० को बड़े सवेरे श्री हरिभाऊजी तथा क्षेमानन्दजी 'राहत' भी गिरफ्तार करके नसीराबाद ले जाये गये हैं और उन्हें २-२

अजमेर का प्रथम जत्था

अजमेर के पास रामगंज नामक स्थान पर अजमेर मे पहली बार नमक बनाया गया। जत्थे के नेता श्री हरिभाऊजी उपाध्याय हाथ में झण्डा लिये हुए हैं।

आज ही ता० ९-५-३० को श्री हरिभाऊ जी ११० दफा मे गिरफ्तार कर लिये गये। आपको २ साल की कड़ी कैद की सज़ा हुई है।

अजमेर के निकट रामगंज नामक स्थान में सत्याग्रही लोग नमक बना रहे हैं।

अजमेर से ब्यावर मे नमक बनाने के लिए जो जत्था पैदल रवाना हुआ था उसके नेता श्री नित्यानन्दजी नागर। आप किसी ज़माने में बूंदी के कमाण्डर-इन-चीफ़ थे। आप गिरफ्तार हो गये हैं और १ साल की कड़ी कैद की सज़ा हुई है।

साल की सज़ा दे दी गई है। पथिकजी और बाबाजी के जाने से जो काम न रुका, आशा है कि हरिभाऊजी और राहुलजी के जाने से भी वह रुक नहीं सकेगा। राजस्थान अब जाग पड़ा है और वह अपने बलिदान में हताश न होगा।

'सुमन
मुकुट'

पवित्र बलिदान

'त्यागभूमि' में जो भी त्रुटियाँ रही हों, उसने सदा अपनी प्रत्येक श्वास में देश के लिए उत्सर्ग होजाने के भाव को ही ग्रहण किया है। इस दृष्टि से उसके लिए, उसके सम्पादक और प्रवर्तक के लिए, देश की आज़ादी की लड़ाई में पीछे रह जाना कभी सम्भव न था। राजस्थान में सत्याग्रह-संग्राम छिड़ने पर उसने हरिभाऊजी के रूप में अपनी सर्वोत्तम भेंट इस प्रांत को दे दी थी। उसके अन्य कई कार्यकर्ता भी इस संग्राम में शामिल हैं और काम कर रहे हैं। इसलिए आज (९ मई) अन्तिम फार्म छपते समय जब हमें यह मालूम हुआ कि राजस्थान में सत्याग्रह के सर्वे-सर्वा और 'त्यागभूमि' के प्राण हरिभाऊजी तथा प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष एवं त्या० भू० के भू० पू० तथा हरिभाऊजी के साथ आदि सम्पादक श्री क्षेमानन्दजी 'राहत' ताजीरात हिन्द की ११७ व नमक-कानून की नवीं धारा के अनुसार (लोगों को नमक-क़ानून तोड़ने को उत्साहित करने के 'जुर्म' में) गिरफ्तार कर लिये गये, तो स्नेह, हर्ष और करुणा से भरे हुए हृदय और गौरव से फूलती हुई छाती से हमने अपने इस पवित्र बलिदान के स्वीकार कर लिये जाने पर नत-मस्तक हो भगवान् को प्रणाम किया और हमें हर्ष है कि अजमेर के अन्य वीर नेताओं (बाबाजी, पथिकजी इत्यादि) की भाँति प्रांत की इन दोनों पवित्र विभूतियों को दो-दो वर्ष के सपरिश्रम कारावास के योग्य समझा गया। इस बलिदान का राजस्थान को, 'त्यागभूमि' को और इन नेताओं के कुटुम्बियों को गर्व होना चाहिए।

इन दोनों नेताओं के नाम नसीराबाद छावनी के मजिस्ट्रेट द्वारा निकाला हुआ ११७ धारा का वारण्ट था। गिरफ्तारी होने के तीन-चार घण्टे के अन्दर ही सारी अदालती कार्रवाई समाप्त होगई। दोनों नेताओं ने कोई सफाई नहीं दी—और वह उनके लिए असंभव और अचिन्तनीय था। पुलिस का व्यवहार शुरू से अन्त तक सज्जनतापूर्ण रहा, जिससे सच्चे सत्याग्रही के सदाचरण के प्रभाव का पता चलता है।

यह तो हुआ पर शब्दों से इन वीर भाइयों के हृदय की प्यास नहीं बुझ सकती। अन्यत्र हम इनका संदेश छाप रहे हैं। यदि हमारी उनके काम में आस्था हो, यदि हमारे हृदय में उनके प्रति आदर हो, यदि हम उनको जेल में निश्चिन्त देखना चाहते हों, तो हमारा कर्तव्य है कि उनके संदेशों पर ध्यान दें और वे राजस्थान के उज्ज्वल अतीत की वीर गाथा की याद करके हम से जो आशा कर गये हैं उसे लगन और उत्साह के साथ पूरा कर दिखावें।

'सुमन'

भूल-सुधार

पिछले फाल्गुन के अंक में 'विषपान' नामक जो तिरंगा चित्र छपा था उसमें 'श्री रामकृष्ण के सौजन्य से' के स्थान पर 'रायकृष्णदास जी × × ×' समझना चाहिए।

राजस्थान के नाम—

(१)

श्री हरिभाऊजी का सन्देश

महात्माजी के जेल जाने के बाद किसी हिन्दुस्थानी का यह हक़ नहीं रह जाता कि वह घर में खामोश बैठा रहे। या तो वह इस समरांगण में जूझे, या स्वतंत्रता के अपूर्व शांतिमय युद्ध में अपनी जगह पर रहते हुए भी अधिक से अधिक जितनी सहायता कर सके करे।

वीरभूमि एवं त्यागभूमि के राजस्थान-निवासियों का तो इसी समय विशेष कर्त्तव्य है।

इस समय इस संग्राम में विक्रम और प्रताप, मीरा और पद्मिनी की भूमि पिछड़ी हुई है। इस दुःख को लेकर मैं जेल जा रहा हूँ। मुझे आशा है कि हमारे पीछे रहने वाला राजस्थान का प्रत्येक बच्चा इसको अनुभव करेगा और बलिदान के लिए आये हुए इस अपूर्व अवसर में किसी से पीछे न रहेगा।

महात्माजी के जैसा बलिदान हजारों वर्षों में होता है। यदि हजारों वर्षों तक इस गुलामी में सड़ना मंजूर न हो तो इस समय राजस्थान के युवक उठ खड़े होंगे, और अपनी आहुतियाँ चढ़ा कर पीड़ित माता की लाज रक्खेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

(२)

श्री राहतजी का सन्देश

भाइयो! बहादुरों की भाँति अन्त तक जूझना। मुझे अफ़सोस है कि गोलियाँ खाने के लिए बाहर नहीं रहूँगा। यह सौभाग्य तो आपको ही मिलने वाला है।

क्षेमानन्द 'राहत'

REGISTERED No N. 351.

इसे हाथ से मत जाने दीजिए

नोट—इससे पहले की जो रिआयतें हैं वे मई के दूसरे सप्ताह के बाद से रद्द समझी जावेंगी।—व्यवस्थापक

१—यदि आप सस्ता-साहित्य-मण्डल के एक ग्राहक ५) रुपये के पेशगी आर्डर सहित भेज देंगे तो नीचे लिखे गुच्छों में से कोई भी एक गुच्छ मुफ्त में दिया जायगा।

२—यदि आप १) भेजकर मण्डल के स्थायी ग्राहक बन जावेंगे और ४) की मण्डल की पुस्तकें पहले पहल मंगावेंगे तो नीचे लिखे गुच्छों में से कोई भी गुच्छ १) में मिल जायगा और मण्डल की पुस्तकें भी पौने मूल्य में मिलेंगी।

३—यदि आप ४) भेजकर 'त्यागभूमि' के ग्राहक बन जावेंगे तो नीचे लिखे गुच्छे में से एक आपको मुफ्त में दिया जावेगा।

(१)		(२)		(३)	
रुई और उसका मिश्रण	।॥)	श्री कृष्ण चरित्र	=)	खादी का इतिहास	।=)
असहयोग दर्शन	।)	डॉ सनयातसेन	।)	म० गांधी के निजी पत्र	।=
फिजी की समस्या	।)	महात्मा गाँधी	≡)	नैतिक जीवन	।)
राष्ट्रीय झण्डा	।)	सेठ जमनालाल बजाज	।)	पंजाब का नरहत्या काण्ड	।≡)
		सी० आर० दास	।।)	अकालियों का सत्याग्रह	।।)
		भारत के हिन्दू सम्राट	।॥)		

व्यवस्थापक—सस्ता-साहित्य मण्डल अजमेर

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।

इस अंक में ये पढ़ें—

[illegible] १५८७

वर्ष ३, अङ्क ७

पूर्ण संख्या ४३

वार्षिक मूल्य ४)

एक प्रति का ।=)

प्रधान संपादक

हरिभाऊ उपाध्याय ([illegible])

संपादक

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

विषय-सूची

'त्यागभूमि'

श्रीमती सरोजिनी नायडू

श्री अब्बास तैयबजी

[पूर्ण स्वाधीनता यज्ञ की तीन और पवित्र आहुतियां]

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष १	सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर	अंश ३
खण्ड २	ज्येष्ठ संवत् १९८७	पूर्ण अंश ३१

माँ से—

[श्री सोहनलाल द्विवेदी]

मेरे जीते, मैं देखूँ, तेरे पैरों में कड़ियाँ ?
क्यों न टूट पड़ती है मुझपर, नभ की ये फुलझड़ियाँ ?

यह असह्य अपमान जगाता है अन्तर में ज्वाला,
माँ, कैसे मैं ही पी लूँ, प्रतिशोध-गरल का प्याला ?

प्राण और प्रण की बाज़ी का लगा हुआ है फेरा,
उतरेंगी तेरी कड़ियाँ, या, उतरेगा सिर मेरा ।

———

आत्म-निवेदन

आज 'त्यागभूमि' के सम्पादन का गुरु-भार स्वीकार करते समय मेरा हृदय आँधी में पड़ी हुई दीप-शिखा की भाँति काँप रहा है। इसे वही समझ सकता है जिसने स्नेह और कर्तव्य के संघर्ष में दुर्बल हृदय की अवस्था कभी देखी है। जिसकी यह चीज़ थी—और मेरी समझ से अब भी है—, जिसने इसे जन्म दिया; जो एक साथ ही इसका माता पिता-धात्री सब कुछ था उसे देश के कर्कश आह्वान ने हमसे दूर खींच लिया है। जिसे साधन बनाकर उसने हिन्दी-जगत् और राजस्थान में त्याग का दीपक जलाया, कर्तव्य की आँच में उसी के मोह को आज दूर कर दिया और अपनी उस चीज़ की रक्षा का भार इन दुर्बल कन्धों पर डालकर दूर हो जाते भी उसे कुछ देर न लगी।

× × ×

'त्यागभूमि' चाहे जैसी हो उसके पन्नों में लोग पवित्रता की सात्विक ज्योति देखने के आदी हो गये हैं;—इस संन्यासिनी की विभूति में उन्हें मानवता का एक दिव्य भाव प्राप्त होता रहा है। हरिभाऊ जी उस दिव्य भाव के केन्द्र रहे हैं। उनके हृदय में जलनेवाली चिनगारियों ने कितने ही लोगों में अपने स्पर्श से सात्विकता की छूत फैलाई है। वह 'त्यागभूमि'-जैसी पत्रिका का सम्पादन करने के अधिकारी थे। मुझसे यह आशा नहीं की जा सकती - न मैं स्वयं अपने से यह आशा रखता हूँ। अभी तक उनका सहायक होकर चुपचाप काम करने और उनकी सहायता करने का जो सुख प्राप्त था, मुझे प्रकट होने को बाध्य करके उन्होंने उसे भी मुझसे छीन लिया है। उनकी अनुपस्थिति में, उनके प्रेम और अधिकार के उलाहनों से मिलने वाली स्फूर्ति भी आज प्राप्त नहीं है! इस दुःसह अधीरता और निराशा के समय में ली हुई उनकी इस धरोहर की रक्षा भगवान के हाथ है!

※ ※ ※

हरिभाऊजी से यदि मेरा सम्बन्ध सिर्फ एक सहायक का रहा होता तो मैं इस गुरु-भार को पटककर, अपनी अयोग्यता की बात कहकर, अलग हो जाता और आज मेरे दिल में स्नेह की जो आग जल उठी है वह दिमाग़ की महत्वाकांक्षा और राष्ट्र के युद्ध में कूदकर (समुद्र में एक बार उठकर सदा के लिए नष्ट हो जाने वाली बूँद के समान) अपने को मिटा देने की लालसा में न जाने कहाँ बिखर गई होती पर 'त्यागभूमि' से भिन्न हमारा उनका जो सम्बन्ध रहा है और है वह मूर्तिमान होकर आज सामने आ खड़ा हुआ है! उन्होंने मुझे 'छोटा भाई' बनाकर इस अवसर पर मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है। इस प्रकार के अन्याय की आँच में पककर स्नेह की शक्ति बढ़ गई है और उसका बंधन अधिक मजबूत हो गया है!

एक ओर मेरी अयोग्यता, मेरा दुःख, मेरी निराशा और मेरा अकेलापन है और दूसरी ओर उनका आदेश। रामायण के पन्ने आज बार-बार मेरी अन्धकारपूर्ण आंखों के सामने चमक उठते हैं। भरत ने राम का राज्य चलाने की योग्यता कभी अपने अन्दर नहीं पाई थी। वह अपने को उस महान् पद के सर्वथा अनुपयुक्त और अयोग्य समझते थे पर राम का आदेश टाला नहीं जा सकता था। इसके लिए वह उससे भी ज्यादा असमर्थ थे। आज इस अन्धकार में उस उदाहरण ने मुझे अनुप्राणित और उत्साहित किया है और मुझे बड़ी सान्त्वना दी है। वह सदा मेरे सामने रहेगा और हरिभाऊजी के जेल में रहने या उनका दूसरा आदेश प्राप्त होने तक मैं इसे उनकी धरोहर की भाँति अपने समस्त दुर्बल साधनों को एकत्र कर जुगाता रहूँगा और भरत के उदाहरण का स्मरण कर, उनके बाहर लौटते ही उनकी चीज़ उनके चरणों में रखकर अलग हो जाऊँगा। यह मेरा आँधी के बीच किया हुआ छोटा-सा, पर मेरे लिए बहुत बड़ा, निश्चय है!

× × ×

मेरी आन्तरिक इच्छा थी और मुझसे अधिक प्रसन्न कोई न होता यदि भाई हरिभाऊजी का यह काम लोक-यश से दूर रहकर चुपचाप त्याग करने एवं कष्ट-सहन का आदर्श उपस्थित करने वाली उनकी तपस्विनी पत्नी श्रीमती भागीरथी

कर सकती। जब-जब समय मिला है सदा मैंने उन्हें इसके लिए तैयार करने का प्रयत्न किया है पर अध्ययन की कमी, अनुभव का अभाव, लिखने का अनभ्यास, बढ़ी हुई घरेलू ज़िम्मेदारियाँ तथा समय मिलने पर देश के लिए, दरिद्र-नारायण के लिए गांवों में या अन्यत्र अपने को छिपाकर चुपचाप काम करने की धुन यहाँ भी मेरी आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक हुई। जैसे हरिभाऊजी ने 'प्रिय भाई' बनाकर इस मौके पर मेरे साथ अन्याय किया वैसे ही भागीरथी बहन ने मुझे 'पूज्य भाई' बनाकर मेरे हाथ-पांव कस दिये। इस 'प्रिय' और 'पूज्य'—इस छोटे-बड़े की ममता और कर्तव्य के बंधन के बीच मेरा मौन हृदय झुक गया है और अब उसके लिए कहने-सुनने या तर्क करने को कुछ बाकी नहीं रह गया है!

इसलिए यदि हरिभाऊ जी, अगले चन्द महीने—जेल में रहने तक—'त्यागभूमि' में कुछ न लिख सकें तो ग्राहक एवं पाठक मेरी अयोग्यता के उदाहरणों से असन्तुष्ट होकर त्या॰भू॰ से अपना प्रेम का सम्बन्ध न तोड़ दें बल्कि इसे मेरी नहीं, उन्हीं की चीज़ समझकर अपने स्नेह से सींचते और मुझे भी उत्साहित करते रहें। इसमें जो अच्छाई दीख पड़ेगी वह हरिभाऊ जी की साधना की छाप होगी और जो बुराई दीख पड़ेगी वह मेरी अपनी संचित चीज़ होगी। पाठक हरिभाऊ जी की अच्छाई ले लें और मेरी बुराइयों को भुला दें।

आशा है कि मुझे अपने इस परीक्षा-काल में लेखक एवं कवि-मित्रों की कृपा, पाठकों एवं ग्राहकों के अनुग्रह, कार्यालय के साथियों और सम्पादन-कार्य में मेरे एक मात्र साथी मुकुटजी के सहयोग एवं हरिभाऊजी की भाँति ही अपनी प्यारी बहन भागीरथी से मुझे सदैव उत्साह मिलता रहेगा। पति का काम पत्नी का काम है और बहन का काम भाई का काम है!

भगवान्, हमें प्रकाश दें!

—श्री रामनाथलाल 'सुमन'
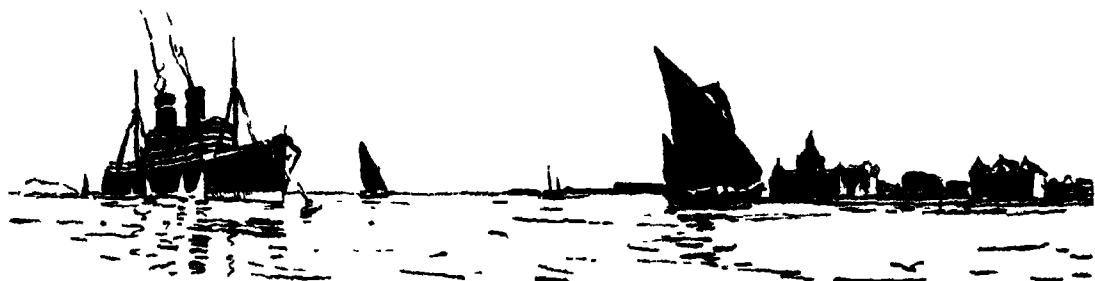
'बापू' की विदाई

[श्री परशुराम मेहरोत्रा एम० ए०, कराड़ी सत्याग्रह-छावनी]

चौथी मई, रविवार का दिन ! अर्धरात्रि का समय था। नवसारी ताल्लुके के अंतर्गत डाँडी नामक ऐतिहासिक महत्व के स्थान से ४ मील की दूरी पर, सामाजिक एवं व्यक्तिगत कुरीतियों को सदा के लिए तिलाञ्जलि दे देने के पथ पर आरूढ़, राष्ट्रीय पाठशाला से विभूषित, एक सुसंगठित ग्राम (कराड़ी) है वहाँ आज दिन भर की चहल-पहल के पश्चात् 'छावनी' में, महात्माजी के ७९ वीर सैनिकों में से बचे हुए सैनिक स्तब्ध निशा में—उस राष्ट्रीयशाला के स्वच्छ और साफ़ आँगन में पड़े सो रहे हैं उन्हें रोज की भाँति ९ बजे ही नींद का आवाहन करना पड़ा था क्योंकि ९ बजे सोने तथा ४ बजे उठने की आदत पर सेनापति बहुत जोर दे चुके थे और उस दिन के प्रातःकाल भी इस आत्म-नियंत्रण पर कुछ कह चुके थे।

सारा गांव पड़ा खुर्राटे ले रहा था कि ठीक पौन बजे दो मोटरलारियाँ शाला के फाटक पर जाकर खड़ी हो गईं और उसमें से उतरकर चार या पाँच शख्स आँगन में घुस आये। लोग जग पड़े; इसके १५ मिनट पूर्व कुत्तों के आपस में झगड़ने और आँगन के ही अन्दर भूँकने के कारण कुछ सैनिकों की नींद उचट चुकी थी; जो इस कोलाहल से भी न जगे, वे आये हुए अफ़सरों की 'फ्लैश लाइट' (बिजली के लेम्प) की चकाचौंध से जग पड़े। अपनी-अपनी दरी या चटाई—जो जिसपर सोया था—छोड़कर उठ खड़े हुए और बाकी को जगाने लगे। कुछ कारण न बताया गया था इसलिए सैनिक उठते समय अपना-अपना अनुमान स्वतंत्र रूप से करने लगे। किसी ने समझा चोर आये हैं; किसी ने समझा धरसना कूच करने का बिगुल बजा है। किसी ने समझा हमारे हरकारे का घोड़ा खुल गया है जिससे टापों की आवाज हो रही है और कोई सोचने लगा कि प्रार्थना का समय हो गया है—रात्रि को नींद ठीक न पड़ने के कारण आंखों में कड़वाहट है—और कुछ ने यह समझा कि महात्माजी का अनुमान मूर्तिमान हो रहा है क्योंकि ठीक एक दिन पूर्व सेनापति अपने निर्मल हृदय से निकली हुई यह बात भाई जुगतराम से कह चुका था कि मैं बारडोली जाकर तथा वहां सभा में बोलकर क्या करूँगा; एक ही दो दिन का मेहमान हूँ, ऐसी मेरी धारणा है। कुछ लोग आंखें मल रहे थे और कुछ चटाई लपेट रहे थे तथा कुछ फाटक की ओर मोटरों से कौन उतर रहा है, देखने जा रहे थे। एकाध सैनिक उन घुसे हुए अफ़सरों से पूछ रहे थे कि आप कौन हैं और क्यों आये हैं ? एक (भाई राघवन) ने दूसरे प्रवेश-द्वार पर सबसे बड़े अफ़सर से पूछा कि आप कहां जा रहे हैं ? परन्तु वह अफ़सर अपने मद में चूर था। उसके चारों साथी भी ऐंठ और त्वरा में थे; वे प्रश्नकर्ता राघवन जी से 'शट अप' (चुप रह) कहकर अन्य सोते हुओं को तिरस्कार-पूर्वक 'गेट अप' (उठ जाओ) कहते हुए इस आंगन को छोड़ दूसरे आंगन में पहुँच गये। पहले और दूसरे आंगन के बीच कोई दरवाजा न होने के कारण, सब पुलिस के लोग उस केन्द्रीय स्थान पर पहुँच गये जहां आम के पेड़ों से आच्छादित पर्ण-कुटी से १२ गज की दूरी पर खुले मैदान में एक सादी चारपाई पड़ी थी तथा जिसके पास ही एक कुरसी रक्खी हुई थी और कुरसी पर दातौन, मंजन और

थूकदान रक्खा हुआ था, तथा चारपाई के पास दस गज की दूरी पर दो बहनें रास्ते में चटाई बिछाये सो रही थीं। आंगन के एक कोने में बेंच पर एक सिंधी सैनिक सो रहे थे और ६—७ अन्य सैनिक दूसरे आम के पेड़ के नीचे पड़े हुए थे। कोलाहल होते ही एक बहन उठ बैठी और 'बापूजी' के पास दौड़ गई। उसने उन्हें आकुल होकर सूचित किया कि पुलिस आ गई है—शायद पकड़ने आई है। चारपाई पर लेटे हुए सेनापति को अभी दो घण्टे भी न हो पाये थे, (क्योंकि सूरत में सभा करके नौ बजे रात को लौटने पर दिन भर की थकावट को अपने अपूर्व मनोबल से दबाकर 'यंग-इंडिया' का मैटर पूरा करने लगे तथा आये हुए आवश्यक पत्रों का उत्तर देते-देते ग्यारह बज गये थे।) कि उनकी नींद उचट गई और अपने स्वाभाविक गांभीर्य के साथ वह कमला बहन से बोले—'आ रहो है तो आने दो। तू भी चलेगी?'—बस इतना कहकर चुप रहे और विश्राम लेने लगे। देखते ही देखते दौड़ आ गई और चारपाई के आस पर शृंखला बनाकर खड़ी हो गई। स्वराज्य-सैनिक भी क्रमशः पहुँच गये। ज़िला मैजिस्ट्रेट ने बिजली के हाथ-लैम्प (टार्च) को रोशनी को सेनापति की ओर खोलकर उन्हे पहचाना और पूछा कि क्या आप मोहनदास करमचन्द गांधी हैं? वह गम्भीरतापूर्वक बोले—'हाँ'। प्रश्नकर्ता ने कहा—मैं सूरत ज़िले का ज़िला मैजिस्ट्रेट हूँ और बहुक्म बम्बई-सरकार के आपको गिरफ्तार करने आया हूँ। सेनापति के मुख से निकला—'क्या मुझे चाहते हो?' उत्तर मिला—'हाँ'। शिष्टता की मर्यादा रखने वाले महात्मा गांधी ने अपने निर्मल प्रेम का परिचय देते हुए बड़े ही सरस और शांत शब्दों में कुल्ला-दातौन करने की 'इजाज़त' मांगी, क्योंकि उन्होंने तो पौने एक बजे ही से अपने को पुलिस के कब्जे में समझ रक्खा था;—चेहरे पर न झल्लाहट के भाव थे, न घृणा थी, और न शान का मिथ्याभिमान था। एक ही भाव प्रधान था। और वह यह कि मैं तैयार हूँ—लो तैयार हूँ।

> "खादी काम के लिए हजारों स्वयंसेवक मिल रहे हैं और मिल सकते हैं परन्तु खादी-उत्पत्ति के लिए आदमियों की कमी है। रचनात्मक काम तोप के सामने जाकर खड़ा हो जाने से कम प्रशंसनीय नहीं है।" —गांधी

निहायत शान्त भाव से उन्होंने दांत स्वच्छ किये और तौलिया से हाथ पोंछे। ऐसा करते समय वारंट में लिखित आरोप को जानने की इच्छा प्रकट की। तदन्तर अपना बिस्तर अपने पौत्र चि० कांति से मँगवाया और दो छोटे-छोटे झोलों में चश्मा, पोस्टकार्ड, काग़ज़, पेंसिल, पूनी इत्यादि चीज़ें भर लीं। सब से आवश्यक वस्तु तकली को बड़ी सावधानी से रक्खा और उसे दो बार अनुकूल लम्बाई की न होने के कारण बदला;—जब बांस व ठीकरे से बनी तकली—जो मूल्य मे १ पैसे से अधिक की न होगी—उनको टीन की डिबिया में समा गई तब वह ऐसे प्रसन्न हुए मानो पैर में गड़ा हुआ कांटा निकल गया हो। सैनिकों को कुछ कौतूहल, कुछ उलझन, कुछ चिन्ता और कुछ 'अब क्या होगा' वाली निराशा आने लगी, परन्तु सेनापति तो डांडी में ही एक दिन इस गिरफ्तारी की तैयारी किये बैठा था। डांडी ही क्यों, साबरमती में १२ मार्च को ही समझ लिया था कि आश्रम से १ मील आगे न बढ़ने दिया जायगा—उनको जेल-यात्रा का यह पाँचवा अवसर था—वह तो वर्षसवर्ष के

'हैपी वारियर' (प्रसन्न योद्धा) की तरह जेलयात्रा का आवाहन ही कर रहे थे; वह शांत भाव से अपनी पत्रों की फ़ाइल मंगवाकर 'यंग इण्डिया' तथा 'नवजीवन' के काग़ज-पत्र भाई बालजी देसाई के हवाले कर तथा वायसराय के नाम दूसरे पत्र का मसविदा भी उन्हीं को सुपुर्द कर चलने को तैयार हो गये। १२ बजकर ५७ मिट हुए थे। मजिस्ट्रेट सोच रहा था कि दौड़कर आने तथा तेज रफ़्तार से मोटर लाने का सारा प्रयत्न निष्फल जाने वाला है। अपने इस भय के वशीभूत होकर वह चहलक़दमी करने तथा कलाई को घड़ी को बार-बार देखने लगा उसे एक-एक मिनट देना कठिन प्रतीत हो रहा था, क्योंकि उसे गुजरात मेल के समय पर पहुँचना था, परन्तु भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई के निमित्त कारगार जाने वाला वर्तमान जगत् का सर्वश्रेष्ठ वैष्णव पुरुष, जिसको अपने दायित्व का पूर्ण मान था, भला बिना वैष्णव जन की व्याख्या वाला मधुर गायन गाये तथा ईश्वर-प्रार्थना किये कैसे क़दम उठा सकता था? अतएव महात्मा जी ने निर्भीकता के साथ गायनाचार्य खरेजी से कहा—"पंडितजी, प्रार्थना बोलिए।" पंडित जी अपना एकतारा लिये हुए पहले ही से तत्पर थे। आज्ञा पाते ही उन्होंने वही गायन, जो सन् १९२२ की १२ मार्च को जेल जाते समय साबरमती में गाया था—गाना प्रारम्भ कर दिया। सब सैनिक तथा सेनापति खड़े होकर एक स्वर से प्रार्थना करने लगे।

मजिस्ट्रेट को उतावली थी। वह दो-तीन बार 'जल्दी कीजिए', 'जल्दी कीजिए' कहकर अपने उद्देश्य की पूर्ति चाहता था। 'वैष्णव जन' के पश्चात 'राम धुन लागी' का कीर्तन हुआ और तत्पश्चात सेनापति ने चप्पल पहने और चलने को तैयार हो गये; न किसी से कुछ कह पाये न कोई संदेशा दे पाये। सब ने क्रमशः उनके चरण स्पर्श किये और वह हँसते-हँसते आगे बढ़े। मुझ से न रहा गया; मैं सुन चुका था कि १८२७ के बम्बई विशेष कानून की २५ वीं धारा के अनुसार गवर्नर की इच्छा जब तक हो तब तक के लिए वह नजरबंद किये जाने वाले हैं। 'बा' यहां नहीं हैं, वह जलालपुर में कार्य कर रही हैं। मैंने पूछा—"बापू जी, 'बा' के लिए कुछ कहना है?" वह उच्च स्वर में बोले—"बा को क्या कहना है? वह बड़ी बहादुर औरत है।" ऐसा कहकर जल्दी-जल्दी लपकते हुए चलकर बापूजी लॉरी के एक कोने में जा बैठे और देखते ही देखते आँखों से ओझल हो गये।

सन १९२२ में जबकि महात्माजी हम लोगों (भाई रामदास गाँधी, मैं तथा श्री मणिलाल कोठारी) के साथ अजमेर से लौटे तब रात्रि को गिरफ्तारी के समय वही पुलीस अफसर श्री डायल आये थे जो कि इस समय सूरत से पूना तक सरकार की ओर से तैनात होकर महात्माजी के साथ गये थे। उन्होंने उस समय दो घण्टे का समय दिया था और खुद बढ़िया मोटरगाड़ी लिये ५० गज के फासले पर खड़े रहकर कहला भेजा कि मि० गांधी अपने को क़ैद हुआ समझें। इन मैजिस्ट्रेट साहब के उतावलेपन तथा श्री डायल की सन् १९२२ की शिष्टता में जमीन-आसमान का अन्तर था; शेष स्थिति लगभग वैसी ही थी—याने तार-टेलीफोन का कुछ घण्टों के लिए बन्द हो जाना, नाके-नाके पर घुड़सवार पुलिस का तैनात रहना, हमारे हरकारों का रास्ते में रोका जाना और रात के समय पकड़ने आना जब कि लोग बेसुध हों और उत्तेजना के वशीभूत न हो सकें। परन्तु बम्बई-सरकार को यह पता न था कि गांधी जी की शान्ति का पाठ पढ़े हुए बारडोली के पड़ोसी कराड़ी-निवासी दिन में

भी अपने हृदय-सम्राट को अपने से विदा होते देख सकते थे और तीन अफ़सरों तथा २० हथियारबंद पुलिस सिपाहियों को लाने तथा ज़मीन पर सोते स्वयंसेवकों को लांघते हुए दौड़कर ठीक सेनापति के पलंग के पास उतावली से पहुँचने की ज़रूरत न थी और न एक-एक मिनट गिनने की ही ज़रूरत थी। चार बजे तक हरकारे को नाकों पर तैनात पुलिस ने रोक रक्खा। सवा बजे से ४ बजे तक लोग बातचीत ही करते रहे, नींद किसी को न आई। ६ बजे 'बा' आ पहुँची और तब बापूजी के उत्तराधिकारी टोली-नायक बड़ोदा हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज श्री० अब्बास तैयब जी को सूचना दी गई। वह ता० ६ को सुबह आ पहुँचे और धरासना जाने के प्रस्ताव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे। वायसराय के नाम लिखित पत्र का पारायण किया गया।

इसके पहले ३ ता० शनिवार को धरासना-यात्रा की बात चलने पर बापूजी ने मुझसे कहा—"मैं आशा करता हूँ कि यह आन्दोलन चंद महीनों में ही अपना फल दिखा देगा। यह लड़ाई बरसों चलने वाली नहीं है।" जब मैंने चरखे की बात छेड़ी तब वह तकली को तरजीह देते हुए कहने लगे फिलहाल तो तकली का ही प्रचार किया जाय; विलायती वस्त्र-बहिष्कार बिना अधिक खादी-उत्पत्ति के होना सम्भव नहीं है। टोली के लगभग २० सदस्य भिन्न भिन्न स्थानों में खद्दर प्रचारार्थ भेज दिये गये हैं; कुछ वीरमगांव, कुछ नवसारी के आस पास, कुछ धरासना के समीपवर्ती गांवों में और कुछ मालाबार।

आखरी दिन (शनिवार) की सुबह की प्रार्थना में यह कहा था कि सादे काम के लिए हज़ारों स्वयं-सेवक मिल रहे हैं और मिल सकते हैं, परन्तु खादी-उत्पत्ति के लिए आदमियों की कमी है। 'रचनात्मक कार्य तोप के सामने जाकर खड़े हो जाने से कम प्रशंसनीय नहीं है' इस आशय के वाक्य प्रार्थना के पश्चात् उनके श्रीमुख से निकले।

यद्यपि रविवार की शाम से ही मौन धारण कर लिया था, तथापि गिरफ्तारी के समय अपनी तकली मांगने, ईश्वर-प्रार्थना करने और शिष्टता की मर्यादा रखने के लिए व्रत तोड़ दिया। ऐसा ही मौक़ा परलोक-वासी भाई मगनलाल गांधी की मृत्यु का समाचार पाने पर आया था। तीसरा प्रसंग सन १९२१ में एक बार हैदराबाद (सिंध) में उपस्थित हुआ था। इन दस वर्षों में तीन या चार बार सोमवार का मौन भंग करके उन्होंने विवेक का स्थान ऊँचा कर दिया।

आजकल महात्माजी खड़ाऊँ नहीं पहनते; कोई टाइपिस्ट भी साथ नहीं रखते; चलने की रफ्तार तेज़, बदन में स्फूर्ति और इतना कठिन परिश्रम करते रहने पर भी चेहरे पर वही स्वाभाविक मुस्क्यान बनी रहती थी।

विदा होते समय सब सैनिक उनके पैर छूने लगे। वह कुछ ठहरकर चरणस्पर्श करने वालों की पीठ पर हाथ रखते हुए समयाभाव के कारण गंभीर शब्दों में बोले—

"अच्छा अब चलने दो।" इतना कहकर वह लॉरी की ओर बढ़े और मोटरें जो पहले से ही घुमा ली गई थीं, उनके तथा पुलिसवालों के बैठ जाने पर शीघ्रता से आगे बढ़ गईं।

और देशों से भारत की खेती की तुलना

[अध्यापक श्री रामदास गौड़ एम० ए०]

(१) सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है, इस बात से तो किसी को इनकार नहीं है परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते हैं, वे अकसर जापान, अमेरिका और यूरोप का नमूना पेश करके चाहते हैं कि हमारा देश भी इन्हीं देशों की तरह उन्नति के उपाय करके कम से कम समय में सुखी और समृद्ध हो जाय। वे देखते हैं कि हमारे संयुक्त प्रान्त में गेहूँ सींचे हुए खेत में १२ मन प्रति एकड़ और बिना सींचे हुए में ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वही कनाडा में १३ मन और जर्मनी में १७ मन होता है। इँगलिस्तान में जौ एकड़ पीछे भारत का दूना होता है। परन्तु वे इस मुख्य बात को बिलकुल भूल जाते हैं कि इनमें से किसी देश में विदेशी राज नहीं है। किसी देश का धन चुसकर पराये देश में नहीं चला जाता। अपने देश की सरकार तन-मन-धन से अपने देश के ही हित में लगी रहती है। जिस दिन सरकार और प्रजा में हित का विरोध होता है प्रजा तुरन्त सरकार को बदल देती है, फिर इन देशों में सुधार के होने में देर क्यों लगे? इसमें सन्देह नहीं कि खेती की कला में संसार में किसी समय भारत सब से आगे था, परन्तु आज विदेशी शासन की बदौलत सबसे पिछड़ गया है। जो मूल कारण उसके पिछड़ जाने का है उसके होते हुए अपनी कोई दशा को पा जाना कैसे सम्भव है? फिर भी इस प्रकरण में सुधारकों की शंकाओं के समाधान के लिए हम कुछ देशों से मुकाबला करेंगे। खेती के सम्बन्ध में अमेरिका संसार में सब से बड़ा समझा जाता है, इसलिए पहले हम अमेरिका पर ही विचार करेंगे।

(२) अमेरिका की खेती

साधारण बोलचाल में अमेरिका के संयुक्त राज्यों को 'अमेरिका' कहा जाता है। किसी ज़माने में, जिसको आज तीन सौ वर्ष के लगभग हुए, इँगलिस्तान में किसानों पर अत्याचार होने लगे थे और ईसाइयों के 'भाई'-सम्प्रदाय पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय भाई-सम्प्रदाय वाले हज़ारों परिवार, पहले-पहल हाल के मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिका में चले गये और बस गये। जिस प्रदेश में बसे उसका नाम 'नया इँगलिस्तान' रक्खा। उसके बाद अपना देश छोड़-छोड़ अनेक सताये हुए कुटुम्ब अमेरिका में जाकर बसने लगे। धीरे-धीरे 'नया इँगलिस्तान' की तरह अनेक नये उपनिवेश बन गये जिनमें अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या अधिक थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अंग्रेज़ों की जायदाद बन गये और ब्रिटेन उनसे लाभ उठाने लगा। जब धन चूसने की क्रिया अपनी हद को पहुँच गई, तब वहाँ स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन चला। अन्त में स्वतंत्रता का युद्ध हुआ जिसमें इँगलिस्तान एक ओर था, और बहुत से संयुक्त प्रदेश वाशिंगटन के नेतृत्व में दूसरी ओर थे। अन्त में वाशिङ्गटन विजयी हुआ, और संवत् १८३३ में ये संयुक्त राज्य स्वतंत्र हो गये। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ़ सौ वर्ष हो गये। मोटी तौर से यों समझना चाहिए कि उनके स्वतंत्र हुए जितना समय बीता, हमारे परतंत्र हुए भी उतना ही समय बीता है। साथ ही मशीनों की उन्नति का आरम्भ हुए भी लगभग ७५ वर्ष बीते हैं, और लगभग ६० वर्ष पहले अमेरिका की खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्ष की है। इस तरह स्वतंत्र अमेरिका को अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचने में ६० वर्ष लगे हैं। भारतवर्ष की बात जाने दीजिए क्योंकि वह पराधीन है परन्तु इँगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस तो अमेरिका से पहले के स्वतंत्र देश हैं, परन्तु उन्होंने भी उतनी उन्नति नहीं की है, जितनी अमेरिका ने की है। इसका कारण क्या है? अमेरिका की परिस्थिति पर विचार करने से इस सवाल का जवाब मिल जायगा।

अमेरिका की आबादी प्रायः गोरों की है। वह जहाँ

वाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०११००० वर्ग मील है और आबादी साढ़े ग्यारह करोड़ के लगभग है। इस तरह वहाँ मील पीछे आज लगभग ३८ आदमी बसते हैं। भारत वर्ष का क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमील के लगभग और आबादी साढ़े ३१ करोड़ के लगभग है। इस तरह यहाँ वर्गमील पीछे २४२ आदमी बसते हैं। इस तरह भारतवर्ष की बस्ती अमेरिका से लगभग साढ़े छः गुना ज्यादा घनी है। किसानों की आबादी भारतवर्ष में तीन चौथाई है और जितने लोग खेती के सहारे गुज़र करते हैं सैकड़' पीछे ९० के लगभग हैं। इस तरह अकेले किसानों की आबादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देश में २१८ किसान बसते हैं। यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ अमेरिका के मुक़ाबिले खेती के लिए धरती कम है, और खेती के सहारे जीने वाले अत्यधिक हैं। संवत् १९७८ की मर्दुम-शुमारी में खेती करने वालों की गिनती २२ करोड़ साढ़े ९० लाख के लगभग थी। कुल ज़मीन जिसमें खेती होती है, लगभग साढ़े २२ करोड़ एकड़ के है। इस तरह भारत में किसानों के सिर पीछे मुश्किल से १ एकड़ की खेती पड़ती है। संवत् १९६९ में अमेरिका में किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़ खेत थे, और सिर पीछे २० एकड़ परती। वहाँ किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। संवत् १९०७ में कुल आबादी के ६३ प्रति सैकड़ा किसान थे, संवत् १९७७ में आबादी २९ प्रति सैकड़ा हो गई। इतनी उन्नति होते हुए भी वहाँ किसानों की संख्या क्यों घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग-व्यवसाय के मुक़ाबले खेती की आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। इसका अर्थ यह है कि इस संसार की बड़ी-बड़ी मंडियों में अमेरिका के व्यवसाय को बढ़ा-चढ़ा रखने के लिए वहाँ की खेती का बलिदान करना पड़ेगा।*

भारत में सिर पीछे जो १ एकड़ की खेती का औसत बैठता है, उसमें भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं, और वे टुकड़े दूर दूर हैं। अमेरिका में सैकड़ों एकड़ की इकट्ठी खेती एक साथ है। जिसकी जोताई-बोवाई के लिए इकट्ठी मशीनों से काम लेने में किफ़ायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोज़-गार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी, और उसी हिसाब से मुनाफ़ा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतंत्र देशों में भी जिन देशों की आबादी घनी है और किसानों को सिर पीछे खेती करने को कम ज़मीन मिलती है वहाँ के किसानों ने भी अमेरिका के किसानों के मुकाबिले कम उन्नति की है। यद्यपि न तो उनके यहाँ भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है, और न पराधीनता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों के किसानों को लगान के बढ़ने या खेत से बेद-खल होने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह कि भारत में है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुक़ाबिले उन उपनिवेशों में अच्छी है जहाँ गिरमिटवाकी गुलामी करने बहुत से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशों की सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो अवश्य ही पैदावार बढ़ सकती है।

अमेरिका में पहले आबादी भी थोड़ी थी और मशीनों की चाल भी नहीं चली थी तब वे लोग अफ्रिका के हब-शियों को गुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे। विस्तार से खेती का काम बिना कल के सहारे करने के लिए बहुत ज्यादा आदमियों की ज़रूरत होती है, इसलिए वहाँ मशीनों की चाल चल जाने से आदमियों की ज़रूरत घटती गई। पिछले ६० वर्षों में से पहले ३० वर्षों में अधिक काम मशीनों के प्रचार ने किया। यह प्रचार और शिक्षा का काम कृषि-विभाग करता रहा। विक्रम की बीसवीं अर्ध-शताब्दी के बीतते-बीतते अमेरिका वालों का जो जोश ठंढा पड़ गया था वह धीरे-धीरे जागने लगा। पिछले ३० वर्षों में यह आग ज़ोरों से इसलिए हो गई कि कच्चे माल की दर बहुत ज़ोरों से चढ़ने लगी, और लोग खेती की ओर झुकने लगे। भय हुआ कि अन्न घट जायगा। फिर से कृषि महाविद्यालय और कृषि-विभाग की जाँच वाले दफ्तर खुल गये। आवाज़ उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक ज़बर्दस्ती पहुँचाये जाने चाहिए। खेती के विशेषज्ञ, ज़िले के एजेण्ट और खेती

* Farm Income & Farm Life: The University of Chicago Press 1927, P. 106

के सम्वादपत्रों ने इस काम को उठा लिया; रेल की गाड़ियों में और मोटरों में सिखाने वाले और कर दिखाने वाले बैठ-कर गाँव-गाँव का दौरा करने लगे। हर तरह की सरकारी सहायता बड़ी उदारता से मिलने लगी। क्यों न हो, अपने देश की खेती के बढ़ाने की बात जो थी। खेती की योग्यता के बढ़ाने के प्रश्न पर अमेरिका में मनुष्य का जितना दिमाग और जितनी ताकत पिछले १५ वर्षों में लगाई गई है इतिहास में कहीं कभी नहीं लगाई गई थी।* पंजाब के गुड़गाँव के डिपुटी कमिश्नर मिस्टर ब्रेनने थोड़ी-बहुत उसी ढंग पर कोशिश की थी परन्तु उन्हें सफलता न हो पाई। कौवा चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। अमेरिका में जो काम होता है उस पर किसानों का पूरा विश्वास है। वहाँ सरकार और किसानों में भेड़िया और भेड़ का सम्बन्ध है। किसानों को सरकारी अफ़सरोंका विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये वह अफ़सरी के ज़ोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी, परन्तु वह सरकारपने का कलंक अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया, और सुधार की दशा फिर ज्यों की त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार में मालगुज़ारी का बोझा घटाना नहीं था। वे बहुतेरा शोरगुल करके रह गये, इसी-लिए अधिक से अधिक वह भी पैबन्द लगाने का काम कर सके। हम दिखा आये हैं कि जहां जड़ ही खराब है पत्ते पत्ते काम नहीं दे सकते। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुज़ारी कम की जाय, जंगल बढ़ाये जायँ और किसानों का उनपर अधिकार रहे।† लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी, परन्तु व्यवहार में ब्रेन के दिमाग़ की अवहेलना की।

अमेरिकामें जितने सुभीते हैं उतने सुभीते जिस देश में ही हो जायँ, उसी देश की खेती दिन पर दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते संक्षेप से ये हैं—

(१) वह स्वाधीन राज्य है, और वहाँ खेती से मिला हुआ कर देश के भीतर ही खर्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे बेदखली या इज़ाफ़ा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) खेतिहर को वहाँ थोड़े से थोड़े कर में ज्यादा से ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवन की जितनी ज़रूरी चीज़ें हैं, वहाँ के किसान के पास काफ़ी से ज्यादा मौजूद रहती हैं।

(५) वहाँ के किसान के पास रोज़गार का काम लगातार साल भर के लिए होता है। और वह अपने लिए काफ़ी कमाई करके फ़ुरसत की घड़ियों का सुख भी लेता है।

(६) वहाँ सारे परिवार के लिए मन-बहलाव का उपाय है और मेहनत करने के बाद नित्य उसे मन-बहलाव का सुभीता मिलता है।

(७) खेती के सम्बन्ध की शिक्षा के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(८) सफ़ाई, मकान और तन्दुरुस्ती के सारे उत्तम उपाय उसे प्राप्त हैं।

(९) बाहर की आवाजायी पत्र-व्योहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है, उसी तरह उसका गाँव या बस्ती उस महा स्वराज्य का एक स्वाधीन टुकड़ा है।

(११) केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का सम्बन्ध उसकी बस्ती के लिए सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझकर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रक़बे की खेती ये दोनों बातें शामिल नहीं कीं। हमारे देश में बड़े रक़बे मिल नहीं सकते और जो लोग आजकल मशीनों के चमत्कार को देखकर उन पर हज़ार जान से फ़िदा हो रहे हैं हम उन्हें यह याद दिलाना चाहते हैं कि जो मशीन २०० आदमियों की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह १९९ आदमियों को

---

*Farm Income & Farm Life. The University of Chicogo Press 1927, P. 115

† F. L. Brayne *Village Uplift in India*, Pioneer press Allahabad 1927. pp. 64,66, & 71.

बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनों की ज़रूरत वहाँ पड़ सकती है जहाँ आदमी कम हों, काम ज्यादा हो। हमारे देश में इसका बिलकुल उलटा है। आज तो हमारे यहाँ आदमी ज्यादा हैं और उनके लिए काफ़ी मज़ूरी नहीं है। इसके सिवा मशीनों का काम बड़े पैमानों पर होता है। हमारा देश ऐसी परिस्थिति में है कि खेती का काम बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता। इस रोज़गार को बड़े पैमाने पर करने में भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपड़े का कारोबार बड़े पैमाने पर होने से भारत में बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी बड़े पैमाने पर होने से बेकारी बढ़ती ही जायगी। यदि सम्पत्ति-शास्त्र को संसार के कल्याण की दृष्टि से देखें और परस्पर लूटने वाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटा दें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कलों का प्रयोग वहीं तक कल्याणकारी है जहाँ तक वह अधिक से अधिक मनुष्यों को काम और दाम देकर अधिक से अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सके। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये हैं कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानों की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग संसार को लूटने वाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे हैं। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना में उलझे हुए हैं कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लूटने वाले संसारी जीव जगकर उसका द्वार कभी बन्द न कर सकेंगे, परन्तु यह भारी भ्रम बहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमेरिका से हमको जो बातें सीखने लायक हैं हम ज़रूर सीख लेंगे। हम जितने सुभीते गिना आये हैं भारत के लिए हम उतने सभी चाहते हैं।

वर्तमान समय में हम मोटरों पर चलने वाले किसान और मजूरों की तरह अपने यहाँ के किसानों और मजूरों को विमानों का भोग-विलास करते देखने की स्पर्धा नहीं रखते हैं। "भोजन सादा हो, परन्तु भरपेट मिले, और पशुओं और अतिथियों तक के खिलाने के लिए बच जाय। भरसक खेतों की ही उपज हो, मोटा चाहे कितना ही हो और भाँति-भाँति का चाहे न भी मिल सके। खद्दर सस्ता हो जिससे शरीर की रक्षा हो सके और सरदी से बचाव हो, चाहे महीन मुलायम और सुन्दर न हो, परन्तु ज़रूरत से किसी तरह कम न हो। छाया के लिए मकान काफ़ी हों, चाहे उसमें सजावट और सुघराई न हो, तो भी सफ़ाई पूरी रह सके। बहुत थोड़े खर्च में शिक्षा मिले; पुस्तकें मिलें और सब तरह के मन बहलाव का सामान हो जाय। सामाजिक काम भी बिना बाधा के हो सकें। जोखिमों का बीमा भी होता रहे, और धरती पर के जीव के लिए और कुछ थोड़ी बहुत बेज़रूरी बातें भी सुलभ हों। संसार के अधिकांश किसानों को इससे ज्यादा सुभीते नहीं है। अधिक लोगों को तो असल में इनसे बहुत कम हैं। यह एक बहुत दिनों से पक्की बात है कि पीढ़ियों पर पीढ़ियाँ गुज़रती गई हैं, और जीवन के इन परिमाणों से सन्तुष्ट रह-कर, वे केवल किसान ही नहीं बने रहे बल्कि जितना हमें चाहिए था उतने से अधिक उपजाते भी रहे। इससे बढ़-कर इस बात की कोई गवाही नहीं हो सकती कि जीवन के इससे अधिक ऊँचे परिमाणों की असल में ज़रूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेती की परिस्थिति में इससे ऊँचे परिमाण की रक्षा नहीं की जा सकती थी।" * हम उस सादगी को ज्यादा पसन्द करते हैं जिसमें ईमानदारी से रह-कर किसान अपने आत्मिक जीवन की पूरी ऊँचाई तक उभर सके। वह विज्ञापनबाज़ी के फन्दे में न फँसे, सूची-पत्रों से अपने को न ठगावे, ठगों की तस्वीरों और मोहनी बातों पर भुला न जाय। दुर्व्यसनकारी रोज़गारों का शिकार न बने और विलासिता में न फँसे। अमेरिका के किसानों के थोड़े से दोष हैं जिनसे बचना होगा। दलाली, मुकदमे-बाज़ी, जुआ-चोरी, नशाखोरी, गुण्डई, व्यभिचार आदि से, जो हमारे किसानों में दिन पर दिन बढ़ते चले जा रहे हैं, बचना होगा।

(३) डेन्मार्क की खेती

संसार में अमेरिका की खेती सबसे बढ़ी-चढ़ी है, परन्तु

* Alexander E. Cance, Professor of Agricultural Economics Massachusetts Agricultural College, in "Farm Income and Farm Life", The University of Chigego Press New York 1927 p. 78

जैसा हम देख आये हैं यह उन्नति हाल की ही है। अमेरिका ने अपने कृषि-विभाग की जानकारी बढ़ाने के लिए कृषि-विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वानों को यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पर्यटन कराया। यूरोप में खेती के व्यवसाय में अमेरिका वालों ने डेन्मार्क को सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा पाया, और अनेक बातें इस छोटे से देश से सीखीं। यों कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेन्मार्क की चरचा करते हैं तो असल में उस देश की चरचा करते हैं जो अमेरिका के लिए भी आदर्श है। इस तरह समझना चाहिए कि संसार में खेती की उन्नति के लिए डेन्मार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है। यूरोप की 'लीग ऑव् नेशंस' (राष्ट्रसंघ) की ओर से 'कृषि स्वास्थ्य परस्परविनिमय' (दी रूरल हाइजिन इण्टरचेंज) विभाग ने स्वास्थ्य-संगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकायें निकलवाई हैं। डेनो सरकार के खेती के विभाग के मंत्री श्री एस. सोरन्सेन ने डेनी खेती पर एक बड़ी अच्छी पुस्तिका लिखी है। इसकी भूमिका में डाक्टर बूड्रोने लिखा है, कि जहाँ की आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की-पोढ़ी नींव पर जमी हुई नहीं है, वहाँ स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उपाय नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रों को स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मंजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारें। और डेन्मार्क की तरह खेती और किसानों की उन्नति करें। स्वास्थ्य-विभाग ने इसीलिए कृषि-विभाग सम्बन्धी पुस्तिका छपवाई है। इस प्रसंग में हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि दरिद्रता का सम्बन्ध रोगों और मौतों की बढ़ी हुई संख्या से होना संसार में निर्विवाद बात मानी जाती है।

परन्तु डेन्मार्क खेती में जितना ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है उतना ही विस्तार में छोटा है। यह समुद्रतट पर बसा हुआ केवल १६५३६ वर्गमील का क्षेत्रफल रखता है, इसकी आबादी ३४९७००० मनुष्यों की है। इस देश से, क्षेत्रफल के हिसाब से, भारतका अवध प्रान्त ज्योढ़ा बड़ा है। और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त इसके बराबर है। भारत में इससे छोटा प्रान्त केवल दिल्ली या अजमेर का है। आबादी में सीमा-प्रान्त का ड्योढ़ा और सिंध से कुछ कम है। अमेरिका से यहाँ की आबादी ज्यादा घनी है। ये अंक हमने संवत् १९८५ के दिये हैं। डेन्मार्क में देहातों की आबादी सैकड़ा पीछे ५७ है। इनमें से सभी खेती नहीं करते। खेती के सम्बन्ध के सारे काम करने वालों को गिनें तो किसानों की आबादी सैकड़ा पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमें से खेत के मालिकों के कब्जे में १७७००० खेत हैं। पट्टे पर २२०७ हैं। लगान पर ८५५१ हैं। इस तरह कुल खेती में ९४ प्रति सैकड़ा लोगों की अपनी मिल्कियत है। बाकी ६ प्रति सैकड़ा पट्टे या लगान पर हैं। छोटे से छोटे खेत ८ एकड़ तक के हैं, परन्तु सबसे बड़ी संख्या २५ एकड़ वाले खेतों की है, उनके बाद ७५ एकड़ वालों की संख्या लगभग उतनी ही है जितनी ८ एकड़ वालों की। इस तरह असल में वहाँ थोक खेती ज़्यादा है। किसानों की आबादी के हिसाब से जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहाँ से कहीं ज़्यादा है। १७-१७ एकड़ की जोतें छोटी जोतों का औसत क्षेत्रफल समझी जाती हैं। ❀ हमारे यहाँ जिनके पास १७ एकड़ खेत हैं वह १७ भिन्न-भिन्न जगहों में बँटे हुए भी हैं। थोक के थोक इकट्ठे नहीं हैं। संवत १९७७-७८ और ७९ में वहाँ एकड़ पीछे लगभग १२०३) रुपए दाम देने पड़ते थे। जिन लोगों के पास छोटी-छोटी जोत थी उन्हें बढ़ाने के लिए, और जिनके पास पट्टे थे, या जो रैयत की तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते थे, उन्हें खेतों को ख़रीद लेने में वहाँ की सरकार ने बहुत कम ब्याज पर, और उन खेतों की ही ज़मानत पर रुपये उधार दिये, और किसानों को खेतों का मालिक बनाया। उधार के रुपये वसूल करने का भी ढंग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किश्तों में साल-साल पर किसान लोग अदा करें, जिसमें कई वर्षों में वह सरकारी उधार भी चुकता हो जाय और किसानों की मिल्कियत भी पक्की-पोढ़ी हो जाय। डेनी सरकार ने किसानों के साथ केवल इतनी रियायत ही नहीं की, बल्कि उनका संगठन

❀ Small Holdings in Denmark by L. Arnskov, Danish Foreign office Journal, 1927 Dyva and Jeppesen Danish Agriculture (Statistics) The Agricultural Council of Denmark. Vestre Boulevard 4 Copenhagen V.

कराने में, सहयोग-समितियों के बनाने में, उनकी उपज को चोखा बनाने में, और संसार की मंडियों में उनके माल के अच्छे से अच्छे दाम खड़े कराने में, उनकी पूरी मदद की और कोई बात उठा न रक्खी।

बाहर के लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि डेनों के देश की समाई इतनी कम होने पर भी, संसार की मंडियों में एक तिहाई मक्खन, एक चौथाई सुअर का मांस, और दसवां भाग अंडे वह कहाँ से लाकर बेचता है। ओ सारन्सेन इस रहस्य को थोड़े में ही खोल देते हैं। डेढ़ सौ वर्ष के सगठन और घनी खेती का यह फल है। और इतना कह देने में ज़रा भी डर नहीं है कि डेनी किसान अपने काम में बड़े कुशल और शिक्षित हैं, और उनका सामाजिक और मानसिक परिमाण बहुत ऊँचा है।

हमारा भी तो इन्हीं डेढ़ सौ वर्षों का रोना है। जो देश स्वाधीन थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेन्मार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना संगठन और उत्थान आरम्भ किया। उसी समय भारत के पावों में बेड़ियाँ पड़ गईं। उसके शरीर में, खून चूसकर बाहर ले जाने वाली जोंकें लग गईं। डेन्मार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क में उस समय उसी प्रकार का ग्राम-संगठन था जैसा कि भारत में। हर गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी, जिसमें गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना क़ानून खुद बनाते थे। उनकी क़ानून की किताब में खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले १ साल या साल भर के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव में हरी घास पर वही मुखिया सभा किया करता था। हर सदस्य के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मंच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तै कर ली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब कटेगी, कौन-कौन से दरख्त कब कटेंगे, ढोरों का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा आदि। इस तरह के छोटे-छोटे प्रश्नों से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पंचायत से होते थे। दीवानी और फ़ौजदारी दोनों तरह के मुक़दमों का फ़ैसला होता था जुर्माने होते थे, और लिये जाते थे। पंचायतें बड़े अदब-क़ायदे से होती थीं। कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पंचायती जायदाद, पंचायती पाठशाला, पंचायती पशु आदि पंचायत की चीज़ें थीं। किसी के लड़का हो या न हो, पर हरएक गाँववाला पढ़ाने वाले के भोजन में हिस्सा देता था। इसके सिवा प्रत्येक पढ़नेवाला लड़का फ़ीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख़्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना व्यर्थ है इतना कह देना काफ़ी होगा कि प्रत्येक गाँव स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था परन्तु साथ ही साथ एक दोष यह भी था कि ज़मींदारी और काश्तकारी का भी सम्बन्ध था, और मजूरों और किसानों के साथ गुलामों का सा बर्ताव किया जाता था। परन्तु इस प्रथा में धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले ५० वर्षों में सुधारों का वेग बहुत बढ़ गया। जहाँ-जहाँ ज़मीन रेतीली थी और खेती नहीं हो सकती थी, वहाँ की ज़मीनों पर जंगल लगा दिये गये। जहाँ-जहाँ हो सका पशुओं का चारा उपजाया जाने लगा। घासों के उगने की जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कन्दमूल उपजाये जाने लगे। बाज़ बाज़ फ़सलें पाँचवें, बाज़ छठे और बाज़ सातवें साल अच्छी होती थीं। अदला-बदली करके इस तरह पर वहाँ खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज़ की उपज सबसे ज़्यादा होने वाली थी, उस साल वही चीज़ बोई जाती थी। यह तो खेतों की बात हुई, जिसमें उन्होंने इतनी उन्नति की कि बढ़ते-बढ़ते एकड़ पीछे १६ मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनों का गाहक पहले इंगलिस्तान था, परन्तु मंडी में और देशों की चढ़ा-ऊपरी से डेनों की अनाज की खपत कम हो गई। उस समय डेन हताश नहीं हुए; वे गोवंश को पहले से ही सुधार रहे थे। जब अनाज की बिक्री कम हुई, तो उन्होंने मक्खन का व्यवसाय करना शुरू किया; गायें पालीं और बछड़े भी पालने लगे। भारत में बैल बड़े काम के जानवर हैं, खेती उन्हीं के बल पर होती है। परन्तु डेन्मार्क में लदाई और जोताई का काम घोड़ों से लेते हैं। इसीलिए गोमांस-भक्षी अंग्रेज़ ग्राहकों को वह बैलों का मांस देने लगे। मांस चरबी आदि के

लिए वे पहले से सुअर पालते थे, और अंडों के लिए मुर्गे बत्तख आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होंने अनाज की बिक्री घटने पर गोमांस, शूकरमांस, चरबी चमड़ा, मक्खन अंडे आदि की बिक्री बढ़ाई। इस बात में डेनी सरकार से उन्हें बड़ी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सब चीज़ों की बिक्री डेनमार्क की बहुत ज्यादा है। और ये सब चीज़ें खेती की उपज समझी जाती हैं। भारतवर्ष शायद ऐसी खूँख़्वार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहाँ की सबसे बड़ी चीज़ें दो हैं, एक तो सहयोग-समितियाँ; दूसरे खेती की शिक्षा देने वाले मदरसे।

सहयोग-समितियों की चर्चा भारतवर्ष में बहुत चल रही है। उसके क़ानून भी बने हैं; देश में सरकार की ओर से उसका आन्दोलन चल रहा है, परन्तु हमारे देश और डेन्मार्क में यह भारी अन्तर है कि डेनों की सहयोग-समितियाँ गाँव की पंचायतों से पैदा हुई हैं, और वहाँ की सरकार ने उन्हें अपना लिया है। यहाँ की सरकार ने पहले गाँव की पंचायतों को नष्ट कर डाला, जिसको बहुत जल्दी १०० वर्ष के लगभग हो जाँयगे। और कोई २६ वर्ष हुए जब विदेशी सरकार ने सहयोग-समितियों की बुनियाद डाली। उन्हें अपने ज़ोर से फैलाया, परन्तु उनमें इतने बंधेज रक्खे कि हमारे गरीब किसान उनको अपना न सके। वहाँ सहयोग-समितियों की बुनियाद नीचे से पड़ी थी, यहाँ शिमले की ऊँचाई से। यह स्पष्ट है कि कौनसी बुनियाद मज़बूत हो सकती है। वहाँ के किसानों ने सब तरह की समितियाँ बनाई हैं; इनका आरम्भ पहले-पहल 'मक्खन निकालने वाली समिति' से हुआ। संवत् १९३९ में कुछ दरिद्र किसानों ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले-पहल समिति बनाई। वहाँ आजकल ऐसी १४०० समितियाँ हैं। इनके सिवा ख़रीदने-बेचने, लेन-देन की सब तरह की सहयोग-समितियाँ बन गई हैं। इन पर सरकारी नियंत्रण नहीं है, परन्तु सरकार में इनकी साख मानी जाती है, और इनको रुपये उधार दिये जाते हैं। इनके विरुद्ध सरकारी अदालतों में मुकदमे नहीं चलाये जा सकते।

डेन्मार्क की सारी उन्नति की पूँजी वहाँ की 'लोक-पाठशालाओं' में है। पादरी ग्रुंट फ़िग ने, ६० वर्ष से ऊपर हुए, इन पाठशालाओं का आरम्भ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की—"यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनों के लिए ऐसी पाठशालायें खोल दी जायँ जिनमें देश के युवक और युवतियाँ पढ़ सकें। वहाँ वे मानव स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सकें, और विशेषकर अपने को अच्छी तरह समझ सकें। वहाँ वे गावों में रहने वालों के कर्तव्य और सम्बन्ध अच्छी तरह समझ सकें और देश की ज़रूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृभाषा की गोद में उनकी देश-भक्ति पलेगी, और डेनी गीतों में उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा। हम लोगों को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुण्ड होंगे।"*

सचमुच इसी अमृत के कुण्ड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला; वहाँ ऐसे ६० मदरसे हैं, जिनमें लगभग ७००० शिक्षार्थी हैं। ये १८ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक के युवक और युवतियाँ हैं; पाँच महीने में युवकों की पढ़ाई समाप्त होती है, और खेती की ऊँची से ऊँची विद्या इस थोड़े काल में पढ़कर पण्डित हो जाते हैं।

संक्षेप से डेन्मार्क में भी हम वही सब सुभीते पाते हैं, जिन ११ सुभीतों की चरचा हम अमेरिका के सम्बन्ध में कर आये हैं। यहाँ दोहराने की ज़रूरत नहीं है। अमेरिका से अंतर इतना ही है कि अमेरिका के अनाज और फल की खेती बढ़ी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती में बढ़े-चढ़े हैं। फिर अमेरिका में खेतों का विस्तार फ़ि पीछे डेन्मार्क की अपेक्षा बहुत ज़्यादा है। इन दोनों देशों में बैलों से काम नहीं लिया जाता, बल्कि लोग उन्हें खा जाते हैं। हाँ वे गो-पालन में बड़े होशियार हैं और दूध-मक्खन की भारी तिजारत करते हैं।

संसार के सबसे बड़े खेती करने वाले देशों में जो बातें हम देखते हैं उनमें सीखने की बातें लोहे की मशीनें नहीं हैं, बल्कि मनुष्य के संगठन और सम्बन्ध हैं, जो हम भी कर सकते हैं, अगर हमारे हाथ-पाँव खुले हों।

* Quoted from S. Sorensen Danish Agriculture. League of Nations, 1927, p. 26-27

भारत की निर्धनता

[अध्यापक श्री शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम, विशारद]

भारतवर्ष समृद्धिशाली तथा ऐश्वर्यवान था, इसके बहुत से प्रमाण हमारे पास हैं और वे प्रमाण हमारे यहां के विद्वानों द्वारा लिखे ग्रन्थों में ही नहीं वरन विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरणों में भी भरे हुए हैं। जिस प्रकार आज सयुंक्तराज्य अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन संसार के व्यापार में अग्रणी हैं उसी प्रकार भारतवर्ष प्राचीन काल में संसार के व्यापार का केन्द्र बना हुआ था। बहुत-से विद्वानों का मत है कि यह अवस्था हिन्दू-काल मे चाहे रही हो परन्तु मुसलमान शासन के अन्तिम वर्षों में तो भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति अत्यन्त भयंकर थी। यह विचार हमारे मस्तिष्क मे विजातीय लोगों ने बैठा दिया है क्योंकि बिना ऐसा किये वे सभ्य संसार में अपने शासन की कार्य-कुशलता किस प्रकार प्रमाणित करते? परन्तु इधर जो बातें मालूम हुई है उनसे अब यह प्रमाणित करना कठिन नहीं है कि भारत की आर्थिक अवस्था वर्तमान समय में मुगल शासन से भी खराब हो गई है। मुझे यहां यह अभीष्ट नहीं है कि मैं भारतवर्ष के प्राचीन ऐश्वर्य का चित्र खींचूं परन्तु पश्चिमीय विद्वानों के ही वाक्यों से यह बतलाने का प्रयत्न करूंगा कि भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था कैसी थी। भारत-सरकार द्वारा नियुक्त औद्योगिक कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के प्रारम्भ में जो कुछ लिखा है वह ध्यान देने योग्य है—

"जब कि वर्तमान औद्योगिक प्रणाली को उत्पन्न करने वाला पश्चिमी यूरोप असभ्य जातियों का निवासस्थान था उस समय भारतवर्ष अपने शासकों की अतुल सम्पत्ति तथा कारीगरों की कुशलता के लिए संसार में प्रसिद्ध था और उससे बहुत समय के पश्चात् जब योरोपीय व्यापारी भारतवर्ष में आने लगे तब भी भारतवर्ष औद्योगिक उन्नति में यूरोप के किसी भी उन्नत राष्ट्र से कम नहीं था।*" ऐसे असंख्य प्रमाण देकर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि भारतवर्ष आज के समान कंगालों का देश नहीं था; आज की तरह पहले अकाल प्रतिवर्ष किसी न किसी भाग में मुँह बाये खड़ा नहीं रहता था। आज वर्तमान विदेशी शासन में इस विशाल देश की, जो सब प्रकार की प्राकृतिक सुविधाओं से परिपूर्ण है, क्या दशा है? संसार में ऐसे भी देश हैं जिनसे प्रकृति ही नाराज है। उनके विषय में तो कुछ भी कहना व्यर्थ है। यदि ब्रिटिश जैसी सभ्य कहलाने वाली जाति के शासन में सहारा ऐसा देश निर्धन रहता तो कोई भी विद्वान् उसे दोषी नहीं बता सकता। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस देश की भूमि अत्यन्त उपजाऊ हो; जहाँ खनिज पदार्थ बहुतायत से मिलते हों; बनों में अतुल सम्पत्ति भरी पड़ी हो और जहां का जलवायु

* At a time when the west of Europe, the birthplace of the modern industrial system was inhabited by civilised tribes, India was famous for the wealth of her rulers and for the high artistic skill of her craftsmen. And even at a much later period, when merchant adventurers from the west made their first appearance in India, the industrial development of this country was not inferior to that of the more advanced European Nations".

आर्थिक उन्नति के अनुकूल हो वही प्रकृति की देन से परिपूर्ण भारत देश संसार के सब देशों में निर्धन हो।

भारतवर्ष में प्रति मनुष्य की वार्षिक आय क्या है, इसका हिसाब निकाला गया है और बहुत-से विद्वानों ने प्रति मनुष्य की वार्षिक आय का अनुमान लगाया भी है परन्तु कोई भी अंक बिल्कुल ठीक नहीं कहा जा सकता। और स्पष्ट बात तो यह है कि जिन विद्वानों ने ये अंक निकाले हैं वे अधिकतर सरकारी कर्मचारी हैं और उनका तो यह धर्म हो जाता है कि वे आय को अधिक दिखावें। जो-कुछ थोड़े मे ग़ैर-सरकारी विद्वानों के अंक हमारे पास हैं उनमें और सरकारी अंकों मे आकाश पाताल का अंतर है। नीचे कुछ अंक देकर मैं यहां पर भारतवर्ष की निर्धनता का अनुभव पाठकों को कराने का प्रयत्न करूँगा।

दादाभाई नौरोजी के हिसाब से प्रति मनुष्य की वार्षिक आय सन् १८६८ में २० रुपये थी। सरकारी हिसाब से १८८२ में १७ रुपये; कर्नल डिगबी के अनुसार १८९९ में १७ रुपये ८ आने; १९०१ में लार्ड कर्जन के अनुसार ३० रुपये; प्रोफेसर जोशी वाडिया के अनुसार १९१४ में ४४ रुपये थी। प्रोफेसर शाह और खम्बाता ने १९२२ में ७४रु० आय कूती; १९१२ में सर विश्वेश्वरय्या ने प्रति मनुष्य ३६ रुपये अनुमान लगाया; डाक्टर बालकृष्ण ने १९१२ में प्रति मनुष्य पीछे २१ रुपया अनुमान किया है। ऊपर लिखे हुए अंकों से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इस विषय में बहुत मतभेद है। अभी हाल में ही मद्रास तथा बम्बई सरकार ने अपने प्रान्तों के विषय में जांच की थी और उसका फल यह निकला कि गांवों में प्रति मनुष्य पीछे ७५ रु० की आय है। परन्तु इस अंक को अर्थशास्त्र का कोई भी विद्वान मानने को तैयार नहीं है। मेरे अनुमान से तो प्रति भारतीय की आय ४५ से ५०) के अन्तर्गत है। इस महँगी के समय में, जब कि आवश्यक वस्तुओं का मूल्य पहले से बहुत बढ़ गया है, ४ रु० प्रति मास एक मनुष्य के निर्वाह के लिए कहां तक यथेष्ट है यह समझने में अधिक कठिनाई नहीं हो सकती। फिर इसका भी ध्यान रखना होगा कि बड़े-बड़े सेठ, उच्च पदाधिकारी तथा अच्छा वेतन पाने वाले भी, जो संख्या में तो कम हैं परन्तु बहुत व्यय करते हैं, इसी ४ रुपये के औसत में आ जाते हैं। वस्तुत: निर्धन ग्रामीण जनता को इससे भी कम मिलता है। आइए देखें कि इस २ आने प्रति दिन की आय में बेचारा भारतीय क्या खाकर निर्वाह करता है। यदि मोटा अनाज भी मोल लिया जाय तो ६ पैसे तो केवल अनाज जुटाने में व्यय हो जायगे और दो पैसे तेल, नमक, दाल, ईंधन के लिए यथेष्ट होंगे परन्तु इस आय पर निर्भर रहकर वह मकान, कपड़े धार्मिक कृत्य, आतिथ्य तथा और बातों का विचार भी नहीं कर सकता। सम्भव है कि आप लोग चौंकें और प्रश्न करें कि फिर भारतीय जीवित क्योंकर रहता है? इसका उत्तर तो भारतीयों की निर्धनता बड़े करुण शब्दों में देती है परन्तु हम लोगों के पास सुनने-समझने के लिए हृदय कहां है? हम शिक्षित-वर्ग जब आनन्द से भोजन करते हैं और फैशनेबिल विदेशी वस्तुओं का व्यवहार करते हैं उस समय हमें यह ध्यान कहां रहता है कि हमारे जघन्य पाप का प्रायश्चित्त असंख्य भाई अपने जीवन को क्षीण करके कर रहे हैं। जबकि निर्धन भारतीय की आय इतनी कम है तो वह भर पेट भोजन, स्वास्थ्यप्रद मकान, स्वच्छ वस्त्र तथा रोग में औषधि की आवश्यकताओं को क्योंकर पूरा कर सकता है? इसका फल यह होता

है कि वह निर्बल होकर शीघ्र ही मृत्यु की गोद में चला जाता है, भारतवर्ष में मृत्यु-संख्या इंग्लैंड, जर्मनी तथा अन्य उन्नत राष्ट्रों से दूनी क्यों है तथा यहाँ के मनुष्यों की औसत आयु केवल २३ वर्ष की ही क्यों, जब कि और देशों की औसत आयु ५० वर्ष तक पहुँचती है। इसका केवल एक ही कारण है— भूख की पीड़ा, भूखे पेट रहकर हम अपने स्वास्थ्य को क्षीण करते रहते हैं और आधी आयु में ही इस संसार को छोड़ देते हैं। अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् श्री डारलिंग महोदय * ने अनुमान किया है कि ब्रिटिश भारत में किसानों पर लगभग ६०० करोड़ रुपया ऋण है, यदि इसमें देशी राज्यों के अंक भी मिला दिये जायँ तो किसानों का कर्ज कुल भारत में ९०० करोड़ के लगभग होगा। इस अंक से ही ठीक परिस्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता। प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी ने † अनुमान किया है कि ७५ प्रतिशत ग्रामीण जनता कर्जदार है। अब तो ज्ञात हो गया होगा कि अधिकतर भारतीय भूखे रहकर कर्ज करके किसी प्रकार इस अभागे देश में उत्पन्न होने का फल भोगते हैं। सर विलियम हंटर ने लिखा है कि भारतवर्ष में ४ करोड़ मनुष्य ऐसे हैं जिनको भरपेट भोजन नहीं मिलता, परन्तु सर चार्ल्स इलियट का अनुमान तो इससे कहीं भयंकर है, उनका तो कहना है कि भारतवर्ष में तो आधे किसान सालभर भर-पेट अन्न नहीं पाते। ब्रिटेन के वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री. मैकडॉनल्ड महोदय अपनी पुस्तक 'भारत में जागृति" ‡ में लिखते हैं—"भारतवर्ष में १५ करोड़ से लेकर २५ करोड़ तक ऐसे मनुष्य हैं जो ३॥ आना प्रति कुटुम्ब (जिसमें ४ जीव हों) पर निर्वाह करते हैं। १९०० के जुलाई मास के 'इम्पीरियल गजेटियर' के अनुसार दुर्भिक्ष में ६५ लाख मनुष्यों को प्रति दिन सहायता दी गई। भारतवर्ष की निर्धनता केवल विद्वानों की राय ही नहीं है, यह तो एक कड़वा सत्य है और अच्छे दिनों में भी किसान के सर पर कर्ज का भारी बोझा रक्खा रहता है।" क्या इन शब्दों से भारतवर्ष की निर्धनता के प्रमाण नहीं मिलते? अपनी पुस्तक 'समृद्धिशाली ब्रिटिश भारत' ('प्रासपरस ब्रिटिश इण्डिया') में श्री डिगबी ने भी यही लिखा है कि भारत में ५ करोड़ से १० करोड़ के बीच ऐसे मनुष्य निवास करते हैं जिनको दिन में एक बार भी पेट-भर भोजन नहीं मिलता। स्वयं भारतीय सरकार ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में, जो पार्लमेण्ट को भेजी जाती है, स्वीकार किया है—

"भारतीय जन-संख्या का बहुत बड़ा भाग को जो गांवों में रहता है अथवा शहरों में, आर्थिक अवस्था इतनी बुरी है, जितनी हो सकती है।" * उससे यह तो स्पष्ट हो गया कि भारतीय जनता की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है परन्तु अब देखना यह है कि इतनी पतित दशा हमारे देश की क्योंकर हो गई। जिस समय ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति का युग प्रारम्भ हो चुका था तथा इंग्लैण्ड में मशीनों के आविष्कार हो रहे थे उसी समय क्रमशः अंग्रेज व्यापारी भारतवर्ष में राजनैतिक प्रभुत्व प्राप्त कर रहे थे। इंग्लैण्ड की उत्पादकशक्ति बहुत बढ़ गई

* पंजाब पीजेण्ट्री इन प्रासपैरिटी ऐण्ड डेट पृष्ठ २०

† Foundations of Indian Economics by Radhakamal Mukerji P. 265

‡ Awakening in India by Macdonald. P. 120.

* The Economic Conditions under which large sections of the population, rural and urban, of this country have to live are bad, as often as bad as they can be—India in 1927-28 p. 88.

फिर भी भारतीय कारीगरों के हाथों की बनी हुई वस्तु वहां पर बिकती थी। ढाका, मुर्शिदाबाद तथा बनारस के कपड़े इंग्लैण्ड के बाजारों में अच्छे दामों पर बिकते थे। भारतवर्ष में आज-कल की भांति ७३.९ प्रतिशत मनुष्य केवल किसान बनकर भूमि से ही सम्पत्ति उत्पन्न करने में नहीं लगे रहते थे। घरेलू उद्योग-धंधों में लगे हुए मनुष्यों की संख्या बहुत थी। क्रमशः ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यह प्रयत्न किया कि भारतवर्ष इंग्लैण्ड के बने हुए माल का क्षेत्र बन जाय और इंग्लैण्ड के लिए कच्चा माल उत्पन्न करने लगे। इंग्लैण्ड की सरकार ने यहां के कपड़ों पर ८४ प्रतिशत से भी अधिक कर लगाया जिसके कारण यहां बने हुए माल का मूल्य वहां बहुत पड़ता था तथा भारतवर्ष में इंग्लैण्ड का माल किसी भी रोक-टोक के बिना आने लगा। भारतवर्ष में जो अभी तक स्वतन्त्र व्यापार-नीति का अवलम्बन किया गया है उसके मूल में यही रहस्य है। यदि संरक्षण-नीति का अवलम्बन किया जाता तो भारत के उद्योग-धंधे विदेशी माल की प्रतिद्वन्द्विता में ठहर सकते तथा समय पाकर यहाँ के उद्योग-धंधे संगठित हो जाते तो विदेशी प्रतिद्वन्द्विता का कोई भय ही नहीं रहता परन्तु स्वतन्त्र व्यापार-नीति ने इतना अवकाश नहीं दिया और भारतीय उद्योग-धंधे एक-एक करके नष्ट होने लगे। बहुतेरे आदमी जो पहले कारीगरी की वस्तुयें उत्पन्न करते थे, अब केवल खेती से अपना निर्वाह करने लगे परन्तु भूमि को बढ़ाना मनुष्य के हाथ में नहीं है और उतनी ही भूमि बहुत-से मनुष्यों में बँट गई। यही कारण है कि आज प्रति किसान के पास औसत से २;५ एकड़ भूमि है और यह भी बहुत से टुकड़ों में बटी हुई रहती है। यदि भारतवर्ष की मनुष्य-गणना की रिपोर्टों को देखा जाय तो ज्ञात होगा कि जहाँ उद्योग-धंधों, व्यापार तथा अन्य पेशों में लगी हुई जनसंख्या कम होती जा रही है वहाँ खेती-बारी में लगे हुए मनुष्यों की संख्या बढ़ रही है। १८९१ में सरकारी रिपोर्ट के अनुसार खेती-बारी में लगे हुए मनुष्यों की संख्या १०० में ५९·७९ थी परन्तु १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार १०० मनुष्यों में ७३·९ मनुष्य खेती-बारी में लगे हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि ३० वर्ष में १४·१ प्रति सैकड़े जन-संख्या उद्योग-धंधों को छोड़कर खेती के काम में लग गई। भूमि कम होने के कारण इस बढ़ती हुई संख्या को मजदूरी करके निर्वाह करना पड़ रहा है। यदि समस्त जोती हुई भूमि का देश की समस्त जन-संख्या से मिलान करें तो भारतवर्ष में केवल दो तिहाई एकड़ जमीन प्रति मनुष्य पीछे पड़ती है। निर्वाह के लिए विद्वानों की राय में प्रत्येक मनुष्य पीछे दो एकड़ भूमि ज़रूरी है। परन्तु भारतवर्ष में केवल दो-तिहाई एकड़ से ही एक मनुष्य का पालन हो रहा है, इसी बात से हमारी भयंकर निर्धनता जानी जा सकती है। जहां जर्मनी २५० मनुष्य प्रति वर्गमील की जनसंख्या को केवल खेती से नहीं पाल सकता और उद्योग-धंधों को उन्नत करना आवश्यक समझता है वहां संयुक्तप्रान्त तथा बंगाल में ६०० मनुष्य प्रति वर्गमील की जनसंख्या केवल खेती पर निर्वाह करती है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम लोग भूखे रह-कर निर्वाह करें। इस भयंकर दरिद्रता का मूल कारण तो अब स्पष्ट हो गया और वह है उद्योग धंधों की अवनति। लोग बम्बई के रुई के धंधे, कलकत्ता की जूट-मिलों, आसाम के चाय के बागों तथा रानीगंज, झरिया और गिरीडीह की कोयले की खानों की ओर संकेत करके कहते हैं कि ये औद्योगिक उन्नति के भावी चिन्ह हैं परन्तु उनमें से

कितने यह जानते हैं कि इनमें से बम्बई की मिलों के अतिरिक्त और सब स्थानों पर मालिक विदेशी पूंजीपति हैं और हम लोग कुली की मजदूरी ही पाते हैं। प्रश्न हो सकता है कि फिर इसका उपाय क्या है? उपाय वही है जो अपनी तपस्या के पुरस्कार में जेल पाने वाला भारत का लगोटीधारी नेता चरखा चलाते-चलाते अनेक बार कह चुका है। यदि हमारी सरकार संरक्षण-नीति स्वीकार करके उद्योग-धन्धों की उन्नति करने का प्रयत्न करती तब तो कोई बात ही नहीं थी परन्तु विजातीय शासक ऐसा क्यों करने लगे। ऐसी स्थिति में तो स्वदेशी आन्दोलन तथा विदेशी वस्तु-बहिष्कार इसी नींव पर खड़ा किया गया है। लोग महात्मा गाँधी को चर्खे के लिए पागल कहते हैं और अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से उन्हे उसमें कोई सार नहीं दिखता परन्तु मेरा तो यह विश्वास है कि खद्दर का आर्थिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है। महात्माजी चर्खे के लिए पागल नहीं हैं, भारत की निर्धनता के लिए पागल हैं और यदि किसी ने भारत की आर्थिक अवस्था को समझ पाया है तो महात्माजी ने। फिर क्या प्रत्येक देशवासी का यह कर्तव्य नहीं है कि वह देशी वस्तु का उपयोग करें और भारतवर्ष को इस निर्धनता से छुड़ाने का प्रयत्न करे? यदि हमारी सरकार जर्मनी, जापान तथा संयुक्तराज्य अमरीका की भाँति बाहर के माल पर कर लगाकर देश के धंधों को उत्तेजन नहीं देती तो हम लोग ही विदेशी वस्तुओं का परित्याग करके देश के घरेलू उद्योग-धंधों को उत्तेजन क्यों न दें, जिससे देश में सम्पत्ति की अधिक उत्पत्ति हो और हम निर्धनता के पाश से छूट सकें। अन्त में मैं सर रावर्ट गिफ़न-जैसे अर्थशास्त्र के पंडित के शब्दों को यहाँ पर लिखकर अपना लेख समाप्त करूँगा। ब्रिटिश असोसियेशन में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा था—

"भारतवर्ष के निवासियों तथा ग्रेट ब्रिटेन के निवासियों की आर्थिक स्थिति में कितना अंतर है इसका अनुमान इसी से हो सकता है कि जितनी आय भारतवर्ष के ३२ करोड़ मनुष्यों की वर्ष भर में होती है उतना व्यय ग्रेट ब्रिटेन के सवा चार करोड़ मनुष्य केवल भोजन और शराब पर ही व्यय कर देते हैं।" *

क्या इन वाक्यों से हम लोग अपनी निर्धनता का अनुमान करने का प्रयत्न करेंगे? †

* "How vast must be the economic gulf separating the people of the United Kingdom from Indians when we find that 42 millions of people in the United Kindom consume in food and drink alone an amount most equal to the whole income of three hundred millions of people in India."

† भारत की निर्धनता तो भारतीयों को बतलाने की चीज़ नहीं है; न उसके लिए किसी तर्क या बाहरी प्रमाण की आवश्यकता है; महात्माजी के शब्दों में वह स्वयं-सिद्ध है और प्रत्येक क्षण में हमें उसका अनुभव करना पड़ता है।
—संपा०

उत्सर्ग के पथ पर—

[श्री 'प्रियहंस']

१

गा लेने दे प्रलय-काल के गायन की दो कड़ियाँ
क्या जाने कब मिल पायेंगी ये मस्ती की घड़ियाँ !!
जीवन और मृत्यु के पथ की सँकरी बहुत गली है
कहीं न जा भटकूँ—चलने दे, यौवन-धूप ढली है।

२

बड़ी साधना से 'ममता की मदिरा' है ढरकाई—
और ललककर आती माँ की भूला हूँ परछाईं।
आज कठिनता से 'प्राणों की डोर' काटकर आया
उधर 'प्रेम के गागर' को विस्मृति में हाय ! डुबाया,—

३

ना, रहने दो अन्धकार को उस माया के अन्दर
कहीं न जा उलझूँ रेशम की उस जाली के भीतर।
हो आवें फिर सबल प्राण 'चैतन्य' आज फिर गरजे
करे नृत्य प्रलयंकर हर सब काट-छाँटकर धर दे।

४

किधर बढ़ रहे ? कुछ न पूछना मैं आपे से बाहर
मैं व्याकुल बन्दी हूँ दुखिया, मैं कपूत, मैं कायर।
आज विवशता-पराधीनता की पीड़ा से कातर
क्रान्ति-गीत गाने निकला हूँ—मैं भटकूँगा दर-दर।

५

आज बरस जाने अम्बर से तीक्ष्ण गरल की धारा
फिर न नज़र आ पावे उसमें भू का कहीं किनारा।
उस अन्धड़ में, अन्धकार में लघु तरणी पर चढ़कर
क्या न कभी मैं तिर पाऊँगा उन मैया के घर पर !!

६

हे वरदायिनि ! हे स्वतन्त्रते ! मूरत निर्भयता की
हे निर्मुक्त चराचरवासिनि ! दे दो अपनी झाँकी।
हे वन्दिनी ! कहाँ हो बैठी, कैसी हो क्या जानूँ
तुम्हें ढूँढने रौरव तक की धूल आज मैं छानूँ।

७

बिजली में, बादल में, जल में, अन्तरिक्ष के उर में,
मैं पाताल चीर पहुँचूँगा शेष नाग के घर में।
झिझक नहीं कुछ आज मुझे स्वीकार शूल पर चलना
ज्वालाओं में थिरक-थिरक शोलों पर खूब मचलना।

८

मेरे इस जीवन-बुद्बुद को चाह नहीं कुछ बाकी
मर-मिटने की मदिरा मुझको आज पिला दे साकी !
लो सुनते हो 'कृष्णार्पण' की घंटी तो वह बज ली
टुक ठहरो मैं भी भर लाया 'जीवन-जल' की अँजली।

९

अपनी सुख, सौहार्द्र, स्नेह की स्मृतियों से मिल छाती
यह 'वर्षा की बूँद' सिन्धु में आज बरसने जाती।
महाक्रान्ति की अग्नि-शिखा पर जलता यह वैरागी
पर बतला दो मुझे तनिक हे जीवन के अनुरागी !

१०

क्या मेरी कंकाल-भस्म को कभी चुटकियाँ भरकर
टीका दे उतरेगा कोई इस स्वतन्त्रता-पथ पर ??
तब जानूँगा छींट खून की मेरी है कुछ भारी,
किसी हृदय में जो उलझी बन बिजली की चिनगारी।

विनिमय और करेंसी का गोरख धन्धा

(पिछले अंक के आगे)

[अध्यापक कृष्णचन्द्र, बी० एस० सी०, कारागार-प्रवासी]

ऊपर हम लिख चुके हैं कि हमारी सरकार को होम-चार्ज के लिए प्रति वर्ष कई करोड़ रुपये के पौंड भुनाकर विलायत भेजने पड़ते हैं। हमारे अंग्रेज़ अफ़सर भी अपनी बचत का धन, रुपयों से पौंड भुनाकर हरसाल विलायत भेजते हैं। तीसरे हमारे व्यापारियों को जो विलायत से करोड़ों रुपयों का माल मँगाते हैं बहुत-सा रुपया पौंड भुनाकर विलायत भेजना पड़ता है। दूसरी ओर विलायत के व्यापारी, जो हमारा अन्न, रुई तथा अन्य कच्चा माल प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का हमारे देश से लेते हैं उनको उसका मूल्य हमको अपने पौंडों के रुपये भुनाकर भेजना पड़ता है। इस प्रकार हमारे देश और इंग्लैंड के बीच बहुत भारी लेन-देन प्रतिवर्ष होता है और उसके लिए मुद्रा परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। यह सब लेन-देन और मुद्रा-परिवर्त्तन किस प्रकार होता है ?

यह नहीं होता कि हमारी सरकार, हमारे अंग्रेज अफ़सर और हमारे व्यापारी रुपयों के पौंड भुनाकर और उनको पार्सल करके इंग्लैंड को भेजते हों और दूसरी ओर इंग्लैंड के व्यापारी अपने पौंडों के रुपये भुनाकर हमारे यहाँ पार्सल करके भेजते हों। यह तो बड़ी झंझट का काम होता और दूसरे इसके लिए प्रतिवर्ष बहुत से रुपयों और पौंडों की आवश्यकता पड़ती। वास्तव में होता है यह कि हमारे देश का इंग्लैंड का साल भर में जो सब देना होता है और इंग्लैंड से जो हमें लेना होता है, उस सब का हिसाब लगा लिया जाता है और उस हिसाब से जिस देश का अधिक पावना होता है अन्त में वह उसे मिल जाता है। उदाहरण से हम इसे और स्पष्ट करेंगे। मान लो हमारे अंग्रेज़ अफ़सरों और व्यापारियों को अपनी बचत और नफ़ का, हमारी सरकार को होम-चार्ज का और हमारे व्यापारियों को विलायती माल के मूल्य का सब मिलाकर हमारे देश को एक वर्ष में इंग्लैंड को ८० करोड़ का देना हो और बदले में इंग्लैंड के व्यापारियों से कच्चे माल का ९० करोड़ लेना हो तो दोनों का हिसाब लगाकर अन्त में १० करोड़ रुपया अधिक हमारे देश का इंग्लैंड से पावना रहता है। वर्ष के अन्त में केवल १० करोड़ रुपया इंग्लैंड से हमारे यहाँ आ जाता है और इस प्रकार सालभर के दोनों देशों के लेन-देन का हिसाब चुकता हो जाता है। यह हिसाब लगाने का काम अधिकांश में भारत-सचिव और भारत के गवर्नर-जेनरल के द्वारा होता है। ये दोनों मिलकर एक भारी विनिमय बैंक का काम करते रहते हैं और इनमें भी भारत-सचिव प्रमुख रहता है। डोरी का अन्तिम सिरा उसी के हाथ में होता है। उसके अधिकार भी इस सम्बन्ध में असीम हैं।

भारत सचिव इंग्लैंड में बैठा हुआ भारत की सरकार पर रुपयों की हुंडियाँ निकालता रहता है। जिस इंग्लैंड के व्यापारी को भारत के अन्न आदि कच्चे माल के लिए कुछ रुपया हिन्दुस्थान भेजना होता है वह सीधा भारत-मंत्री के दफ्तर में चला जाता है और उतने की ही हुंडियाँ पौंड, शिलिंग, पेंस देकर उससे ख़रीद लेता है और उस हुंडी के काग़ज को फिर वह हिन्दुस्तान के व्यापारी के पास भेज देता है। हिन्दुस्तानी व्यापारी उस हुंडी को भारतीय सरकार के खज़ाने में देकर रुपया वसूल कर लेता है। भारतमंत्री को अपने खर्चे के लिए होम चार्ज के जो १७०-१८० लाख पौंड भारत के खज़ाने से प्रतिवर्ष लेने होते हैं उसको वह इस प्रकार वहीं बैठा-बैठा मज़े में आसानी से वसूल कर लेता है। विनिमय के किस भाव से हुंडियाँ बेची जायँ इसको भारत-मंत्री स्वयं ही तय करता है अर्थात् १३ पेंस के बदले एक रुपये की हुंडी दे, या १८ पेंस के बदले में, इसको वह पहले से विचारकर तय कर लेता है। इस भाव को वह समय-समय पर बदलता-बदलता भी रहता है। इन हुंडियों को कौंसिल-बिल (Council Bills) कहते हैं।

ये सब हुंडियाँ भारत-सरकार के खज़ाने में सकारी जाती हैं। मान लो २५ करोड़ रुपयों के कौंसिल बिल भारत-सचिव ने बेचे जिनका भुगतान भारत के खज़ाने से हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि २५ करोड़ रुपये भारतीय सरकार के खज़ाने से निकल गये और उसके मूल्य के उतने ही पौंड, शिलिंग, पेंस भारत-मंत्री के पास जमा हो गये। इस प्रकार भारत-मंत्री को २५ करोड़ रुपये के पौंड भारत के खज़ाने से पहुँच जाते हैं। और भी एक काम इस से हुआ। अंग्रेज़ व्यापारियों ने जो २५ करोड़ रुपये का अन्न आदि भारतीय व्यापारियों से खरीदा था उसका भी मूल्य साथ ही साथ चुकता हो गया। इस प्रकार इन 'कौंसिल-बिलों' के द्वारा भारत-सचिव के पास एक ओर तो होम-चार्ज के लिए २५ करोड़ रुपये हिन्दुस्तान के खज़ाने से पहुँच गये; दूसरी ओर भारतीय व्यापारियों ने अपना जो अन्न अंग्रेज सौदागरों के हाथ इंग्लैंड में बेचा था उसका मूल्य उन को मिल गया। नतीज़ा यह निकला कि भारतवासियों ने अपना अन्न इंग्लैंड भेजकर होम-चार्ज का मूल्य चुकाया। इस भाँति इंग्लैंड की परतन्त्रता की सलामी हमको अपने देशवासियों का पेट काटकर, उनको भूखा रखकर अपने अन्न से प्रतिवर्ष चुकानी पड़ती है। यदि हम परतन्त्र न होते तो क्यों हमको प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये होम-चार्ज चुकाने के लिए अपना अन्न विदेशों को भेजने की आवश्यकता होती।

होम-चार्ज के २५ करोड़ रुपयों (अथवा १७० लाख के लगभग पौंड, की अदायगी प्रतिवर्ष हमारा देश उतने दाम का अपना अन्न तथा अन्य कच्चा माल इंग्लैंड के हाथ बेचकर करता है। सन् १८९२ में विनिमय की दर गिरकर १३ पेंस होने से जो हम को होम-चार्ज के कारण प्रतिवर्ष १२ करोड़ रुपये का घाटा हमारी सरकार ने बताया था और उसके बहाने से ज़बर्दस्ती और धींगा-मुश्ती से विनिमय की दर हमारी सरकार ने ऊँची कर दी थी, उसपर विचार कर देखें तो सब बात बेबुनियाद हो जाती है। उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए ५ करोड़ मन गेहूं इंग्लैंड के हाथ बेचकर हमको वहाँ से सन् १८८८ में १७० लाख पौंड उसके दाम मिलते थे और चूंकि गेहूं का भाव इङ्गलैंड में सन् १८९३ में भी वही रहा तो अब भी ५ करोड़ मन गेहूं के हमको वही १७० लाख पौंड मिले। पर अब भारतवर्ष में विनिमय की दर गिर जाने से उन १७० लाख पौंडों का रुपया हम को अवश्य अधिक मिलेगा। परन्तु यदि रुपयों के मिलने का विचार न किया जाय और होम-चार्ज के अदा करने की ही बात का ध्यान रखा जाय तो जैसे सन् १८८८ में ५ करोड़ मन गेहूं से हमारा १७० लाख पौंड का होम-चार्ज चुकता होता था, वैसे ही अब सन् १८९२ में भी ठीक उतने ही गेहूं की बिक्री से १७० लाख पौंड का होम-चार्ज चुकता हुआ। इस दृष्टि से हम को विनिमय की दर गिरने से होम-चार्ज के कारण कोई भी हानि सन् १८९३ में नहीं हुई थी, वैसे ही इसका ढकोसला हमारे सामने सरकार ने खड़ा कर दिया था; हमारे देश को उलटे इससे लाभ था क्योंकि ५ करोड़ मन गेहूं के ऊपर जो और अनाज तथा अन्य कच्चा माल हम इङ्गलैंड को सन् १८९२ में भेजते थे उसका यद्यपि इङ्गलैंड में वही भाव था जो सन् १८८८ में था और हम को उसकी बिक्री के ठीक उतने ही पौंड मिलते थे परन्तु विनिमय का भाव गिर जाने से हमको उतने ही पौंड के रुपये अधिक मिलते थे। पहले सन १८९८ में हमको एक रुपये के १६ पेंस की दर से एक पौंड के जहाँ १९ रुपये मिलते थे वहाँ अब सन् १८९२ में भाव १३ पेंस हो जाने से उसी एक पौंड के हम को साढ़े १८ रुपये मिले। इस प्रकार विनिमय की दर ३ पेंस गिर जाने से प्रति पौंड हमको साढ़े तीन रुपये का लाभ हुआ। अब यदि होम-चार्ज चुकाने के अलावा कम से कम चार करोड़ पौंड का भी ज्यादा कच्चा माल हमारे यहाँ से विदेशों को जाता था तो उस पर इस हिसाब से हमको विनिमय ३ पेंस गिर जाने से कम से कम १४ करोड़ रुपये सालाना का लाभ था। हाँ, इङ्गलैंड के कारखानेवालों को विनिमय की दर गिर जाने से अवश्य बड़ी भारी हानि पहुँची थी। पहले सन् १८८८ में १६ पेंस प्रति गज वाला विलायती कपड़ा या कोई और चीज़ भारतवर्ष में एक रुपये को बिक जाती थी। सन् १८९२ में १६ पेंस वाली वह चीज़ एक रुपया तीन आने को बिकने

लगी। क्योंकि अब १३ पेंस प्रति रुपया का भाव हो जाने से उसी १६ पेंस के एक रुपया तीन आने हो गये। इस प्रकार विनिमय के गिरने से सारे विलायती माल का भाव भारत के बाज़ारों में एकदम सन् १८९३ में तीन आना रुपया बढ़ गया जिससे उसके मुकाबले देशी मिलों का कपड़ा सस्ता पड़ने लगा और उसकी खपत अधिक होने लगी। दूसरे भारतवर्ष के अंग्रेज़ अफ़सरों और व्यापारियों को अपनी बचत तथा लाभ का धन अपने घर इङ्गलैंड भेजने में प्रति रुपया तीन आने का घाटा होने लगा। पहले एक रुपये के बदले उनके घरवालों को १६ पेंस मिल जाते थे अब १३ पेंस ही मिलने लगे। इन बातों से स्पष्ट है कि सरकार ने जो यह कहा था कि विनिमय के गिर जाने से होम-चार्ज के लिए ११ करोड़ की वार्षिक घटी हो जाने से उसको उतना कर भारतवासियों पर और लगाना पड़ता यह सब निरा ढकोसला और धोखेबाज़ी थी। भारत के किसी भी हित के विचार से सरकार ने विनिमय को नहीं बढ़ाया। बल्कि अंग्रेज अफ़सरों तथा व्यापारियों के हित के विचार से तथा भारतवर्ष में विलायती माल को सस्ता करके उसकी खपत बढ़ाने एवं हिन्दुस्तानी ग़रीब किसानों का अनाज सस्ता करके उनका खून चूसने के लिए सरकार ने विनिमय की दर ज़बर्दस्ती, अन्याय और अधिकार के बल पर बढ़ा दी।

अब फिर हम 'कौंसिल-बिलों' के सम्बन्ध में कुछ और लिखेंगे। हमने ऊपर बताया है कि भारत-सचिव इङ्गलैंड के व्यापारियों को अपने होम-चार्ज का धन वसूल करने के लिए कौंसिल-बिल बेचा करता है। यदि वह उतने ही के कौंसिल बिल बेचे जितने की उसे अपने खर्च के लिए आवश्यकता हो तब तो कुछ ठीक भी है। परन्तु उसको तो अथाह अधिकार हैं, उसकी शक्ति की कोई हद ही नहीं जितने के चाहे वह कौंसिल-बिल बेच सकता है। इन कौंसिल-बिलों की बिक्री को घटा-बढ़ाकर वह विनिमय के भाव में सहज ही उलट-फेर कर सकता है। यदि आवश्यकता से अधिक हुंडियाँ वह बेचता चला जाय तो उनका भाव गिरने लगता है, अर्थात् १६ पेंस की हुंडी का जहाँ पहले एक रुपया मिलता था वहाँ अब १५ ही आने रह जाते हैं, जिससे एक रुपया का मूल्य १६ पेंस से १७ पेंस हो जाता है। इस प्रकार भारत-सचिव भारत और इङ्गलैंड के बीच सब से बड़ा विनिमय बैंक है। विनिमय घटाना-बढ़ाना सर्वथा उसकी मुट्ठी में है। सन् १९०५ में भारत-सचिव को अपने खर्चे के लिए भारत के खज़ाने से केवल ३० लाख पौंड मँगाने की ही आवश्यकता थी परन्तु उसने कौंसिल-बिल एकदम ३ करोड़ पौंड के भारतवर्ष पर बेच डाले।

पाठक शायद विचार करते होंगे कि जब भारतवर्ष का सारा खज़ाना भारत में रहता है तो भारत-सचिव की साख इङ्गलैंड के व्यापारी—बाज़ार में किस प्रकार रहती होगी। किस साख पर इङ्गलैंड के व्यापारी भारत-सचिव के पास अपने सोने के पौंड जमा करके काग़ज़ की हुंडियाँ लेते होंगे। हम अपने पाठकों को यहाँ बता देना चाहते हैं कि इसी बहाने से अब भारत का अधिकांश रक्षित स्वर्ण कोष इङ्गलैंड में ही रहता है सन् १९०५ या १९०७ में भारत का स्वर्ण-कोष एकदम इङ्गलैंड में लेजाकर रख दिया गया है। भारत-सचिव के ही पास यह स्वर्ण-कोष आजकल सन्दूकों में रहता है। यह स्वर्ण-कोष करोड़ों रुपयों का है। इसमें से भारत-सचिव बहुत हलके सूद पर करोड़ों रुपया इंग्लैंड के व्यापारियों को उधार दे देता है। इसप्रकार भारत के स्वर्ण कोष की बदौलत इंग्लैंड के व्यापारियों को सस्ते सूद पर रुपया उधार मिलने का भारी लाभ पहुँच रहा है। भारतवर्ष के व्यापारी उस लाभ से भी वंचित हो गये। जिनका ख़ज़ाना है उन भारतवासियों को उससे कोई लाभ नहीं पहुँचता, किन्तु इंग्लैंड के व्यापारी उससे मज़ा उड़ाते हैं।

एक ओर जिस प्रकार भारत-मन्त्री एक बड़े विनिमय-बैंक का काम करता है, उसी प्रकार दूसरी ओर भारत में गवर्नर-जेनरल वही काम करता है। हिन्दुस्तान के व्यापारियों को जिन्हें अपने विलायती माल के दाम हिन्दुस्तान के रुपये भुनाकर पौंडों में इङ्गलैण्ड भेजने होते हैं, गवर्नर जेनरल रुपयों के बदले पौंड-शिलिंग पेंस की हुंडियाँ बेचता है। इन हुंडियों को 'रिवर्स बिल' कहते हैं। इस प्रकार 'कौंसिल बिल' और 'रिवर्स बिल' के गोरखधन्धे में जकड़ा

हुआ भारतवर्ष सर्वथा विदेशी आर्थिक परतंत्रता में बँधा हुआ है। हमारी सरकार ने इन दोनों बिलों का ऐसा जाल बिछा रखा है कि बात की बात में विनिमय का भाव उलट-पुलटकर देना और उसके द्वारा हमारे देश को करोड़ों रुपयों की हानि पहुँचा देना सर्वथा हमारे प्रभुओं की मुट्ठी में है। सरकार की इन्हीं बुराइयों को लार्ड सैलिसबरी ने अपनी भाषा में 'राजनैतिक मक्कारी' और लार्ड लिटन ने अपने शब्दों में 'जान-बूझकर की गई धोखेबाज़ी' के नाम से सम्बोधित किया है। श्री दादा भाई नौरोजी ने लिखा है—"यदि भारत के 'गैर अंग्रेज़ी' शासन की वास्तविक खूबियों से कोई परिचित हो जाय तो वह अवश्य ही इस नतीजे पर पहुँचेगा कि अंग्रेज़ों के मौजूदा शासन में हिन्दुस्तान की भौतिक और आर्थिक दशा इतनी गिर गई है कि इस देश पर यह अंग्रेज़ी शासन एक अभूतपूर्व अभिशाप कहा जा सकता है।"

अब हम फिर विनिमय के इतिहास को लेते हैं कि किस प्रकार समय-समय पर हमारी सरकार ने इस खूँटी को मरोड़ा है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सन् १८९३ में चाँदी का भाव गिर जाने से जब विनिमय की दर घट गई और रुपये का मूल्य एकदम १२ पेंस हो गया तो अंग्रेज़ व्यापारियों, पूँजीपतियों, मिल-मालिकों तथा कर्मचारियों को भारी घाटा होने लगा। उन्होंने एकदम हो-हल्ला मचाया और तुरन्त ही हमारी सरकार ने लार्ड हारशेल की अध्यक्षता में सब के सब अंग्रेज़ विशेषज्ञों की एक कमेटी उस पर विचार करने के लिए बैठा दी। उसकी रिपोर्ट पर सरकार ने टकसालों को भारतवर्ष में सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दिया जिससे बाज़ारों में रुपयों की एकदम कमी हो गई तथा व्यापार में उनकी माँग बढ़ने से उनका मूल्य बढ़ने लगा और बढ़ते-बढ़ते सन् १८९८ में फिर १६ पेंस पर पहुँच गया! इस प्रकार हमारी सरकार ने रुपये का झूठा और बनावटी मूल्य कर दिया। पहले रुपये में उतने ही मूल्य की चाँदी रहती थी, केवल बनाई की मज़दूरी का अन्तर रहता था। हर कोई अपनी चाँदी टकसाल में देकर तथा उसकी बनाई की मज़दूरी एक आना या डेढ़ आना देकर अपना रुपया बनवा सकता था परन्तु अब सरकार ने ऐसा करना बन्द कर दिया। इससे रुपये का मूल्य बनावटी हो गया, उसकी कीमत चाँदी के मूल्य से बढ़ गई।

रुपये में १० रत्ती चाँदी रहती है, जिसका मूल्य पहले बाज़ार में १५ आने के लगभग था, केवल रुपये से एक आना ही कम था जो उसके बनाने की मज़दूरी थी। और यही अभिप्राय वास्तव में प्रत्येक सभ्य देश में सिक्कों का होता है। प्रत्येक सभ्य देश में सिक्का कोई बनावटी सरकारी विनिमय का बाट नहीं होता है। पहले कभी भारतवर्ष में किसी मुसलमान बादशाह ने चमड़े का सिक्का चला दिया था और लोगों को मजबूर होकर उसे लेना पड़ता था। पर आजकल सभ्य संसार में यह बात नहीं रही। आजकल किसी भी सभ्य देश में ऐसा नहीं होता कि सरकार किसी भी रद्दी-सी वस्तु को सिक्का बनावे और लोगों को मजबूर करे कि वे उसे उसके वास्तविक मूल्य से अधिक में स्वीकार करें। यदि ऐसा हो जाय तो सरकार किसी भी पत्थर की बट्टी को रुपये या शिलिंग आदि का सिक्का बनाकर और लोगों को उसे स्वीकार करने के लिए मजबूर करके लाखों-करोड़ों रुपया बात की बात में कमा सकती है पर किसी भी सभ्य देश की सरकार आजकल ऐसा नहीं करती। परन्तु सन् १८९३ में हमारी भारतीय सरकार ने ऐसा ही किया। उस चाँदी के रुपये को जिसमें केवल ९-१० आने का वास्तविक माल था लोगों को १६ आने में लेने के लिए मजबूर किया।

सिक्के पर जो सरकारी ठप्पा रहता है और जिसको कोई दूसरा लगा नहीं सकता, उसका केवल यही अभिप्राय है कि उसमें एक निश्चित तोल का असली माल मौजूद है। उसका यह मतलब हर्गिज़ नहीं कि सरकारी ठप्पे से उसका वास्तविक मूल्य बढ़ा दिया जाय। इङ्गलैण्ड में सोने के पौंड के सिक्के पर जो ठप्पा होता है उसका इसके अनुसार केवल यही मतलब है कि उसमें असली सोना ६१.६५ रत्ती मौजूद है जिसका बाज़ार में मूल्य उसकी सरकारी कीमत से केवल डेढ़ आना ही कम है जो कि उसकी बनाई की मज़दूरी है। और इसलिए इंगलैण्ड में प्रत्येक मनुष्य को आज भी आज़ादी है कि वह टकसाल में जाकर ६१.६५ रत्ती असली सोना और डेढ़ पेनी बनाई की मज़दूरी देकर

अथवा पौण्ड बनवाले। वर्षों से ऐसा ही चला आता है और आज भी यही रिवाज है। अन्य सभी सभ्य देशों में यही रिवाज बराबर कायम है। पहले भारतवर्ष में भी यही था। यहाँ भी रुपये में १५ आने की असली चाँदी ९० रत्ती मौजूद थी। परन्तु अब भारतवर्ष में सिक्के का वह मतलब नहीं है; अब हमारा सिक्का एक बनावटी चीज़ हो गया है, जिसका झूठा मूल्य सरकार ने उसकी वास्तविक क़ीमत से कहीं अधिक नियत कर दिया है और प्रत्येक मनुष्य को उसे मजबूरी के साथ स्वीकार करना पड़ता है। इसी धींगा-मुश्ती और जबर्दस्ती के क़ानून से आजकल हमारी सरकार गिलट की चवन्नी, दुअन्नी, इकन्नी चला रही है जिनका वास्तविक मूल्य उनकी सरकारी क़ीमत से बहुत कम है और इस अनीति के द्वारा हमारी सरकार हज़ारों-लाखों रुपये का लाभ कर रही है। इसकी एक भारी बुराई यह भी हो रही है कि लोग जाली रुपया चवन्नी आदि बहुत बनाने लगे हैं, क्योंकि ऐसा करने में उनको भारी लाभ है। इसके कारण आजकल लोगों को असली रुपया, चवन्नी, दुअन्नी परखने में बड़ी अड़चनें पड़ रही हैं।

यद्यपि सन् १८९३ में अमेरिका में चाँदी की बहुत बड़ी खान मिलने से चाँदी का बाज़ार-भाव बहुत गिर गया था परन्तु हमारी सरकार ने अनीति के बल पर अपने रुपये की चाँदी का वही १६ आने मूल्य कायम रक्खा। इस अन्याय से ग़रीब भारतवासियों को कितना भारी घाटा पहुँचा, इसका विचार करना यहाँ आवश्यक है।

सन् १८९३ ई० में चाँदी का भाव गिर जाने से ९० रत्ती चाँदी का मूल्य बाज़ार में ९ आने के क़रीब रह गया था परन्तु उतनी ही चाँदी का दाम रुपये के सरकारी सिक्के में हिन्दुस्तानियों को जबरन् क़ानून के बल पर पूरा १६ आना देना पड़ता था। पहले ९० रत्ती चाँदी टकसाल में देकर तथा उसकी उजरत एक आने के लगभग देकर लोग अपना रुपया बनवा सकते थे, परन्तु अब वे ऐसा नहीं कर सकते थे; अब ९० रत्ती चाँदी तथा एक आना उजरत के बदले उनको रुपया नहीं मिलता; बाज़ार में १३५ रत्ती चाँदी का जो मूल्य था वही मूल्य सरकार के ९० रत्ती चाँदीवाले एक रुपये का हो गया था; इस-लिए जितने चाँदी के गहने आदि लोगों के पास थे उन सब का मूल्य एकदम घटकर १६ आने में ८-९ आना रह गया जिससे ग़रीब भारतवासियों को भारी हानि पहुँची।

हम ऊपर दिखा चुके हैं कि विनिमय की दर बढ़ जाने से हमारे अनाज का भाव बहुत सस्ता हो गया; उसका भाव इंग्लैण्ड में पौंड, शिलिंग, पेंस में तो वही रहा परंतु रुपये का मूल्य बढ़ जाने से रुपयों में वह भाव गिर गया, उसके साथ ही भारत में भी वह उतना ही कम हो गया। उदाहरण के तौर पर मान लो, सन् १८९३ ई० से पहले किसी व्यक्ति को १० सेर गेहूँ के बदले में ९५ रत्ती चाँदी बाज़ार में मिल जाती थी, जिस चाँदी को लेकर वह टक-साल में जाकर ९० रत्ती चाँदी और ५ रत्ती चाँदी उसकी उजरत में देकर रुपया बनवा लेता था। अब टकसाल उसके लिए बन्द हो गई। अब जिसके पास रुपया है वह ९५ रत्ती चाँदी के बदले में नहीं देता। अब वह रुपये के बदले १३५ रत्ती चाँदी माँगता है। उस व्यक्ति को अब रुपया लेने के लिए १३५ रत्ती चाँदी लानी होगी। १३५ रत्ती चाँदी के लिए उसे १० सेर की बजाय १५ सेर गेहूँ बेचने पड़ेंगे, तब जाकर कहीं उसको रुपया मिलेगा। इस प्रकार प्रत्येक किसान को एक रुपया लगान अथवा मालगुज़ारी अदा करने के लिए पहले १० सेर गेहूँ बेचने पड़ते थे, अब उसी एक रुपये की अदायगी के लिए १५ सेर गेहूँ बेचने पड़ेंगे। पहले से ही किसानों का खून चूस लिया गया था, अब उन पर एक दम भारी विपत्ति आ गई।

लार्ड सैलिसबरी ने भी, जो भारत-सचिव के पद पर रह चुके हैं और जिनको इसलिए भारतीय अंग्रेज़ी शासन का पूरा अनुभव था, इसके सम्बन्ध में यहाँ लिखा है—"राजनैतिक मक्कारी के द्वारा भारतवर्ष का रक्त अवश्य चूसना होगा। जबतक भारतवर्ष की ग़ैर-अंग्रेज़ी शासन में ऐसी दशा है, तब तक न कोई पाखण्ड काम दे सकता है, न ज़बानी उदारता की शेखी से भारत का दुर्भाग्य सुधर सकता है, और न रुपये का बनावटी मूल्य बढ़ा देने से हिन्दुस्तान की दयनीय अवस्था दुरुस्त हो सकती है। *"

* दादाभाई नौरोजी-लिखित अंग्रेज़ी की 'ग़रीबी और भारत में ग़ैर-अंग्रेज़ी शासन' पुस्तक, पृष्ठ ५४३।

लार्ड हारशेल की सन् १८९३ ई० की कमेटी की सिफ़ारिश पर जब इस प्रकार भारतवर्ष का खून चूसा गया तब हमारे भारतीय नेता श्री दादाभाई नौरोजी ने सरकारी अधिकारियों से बहुत-कुछ लिखा पढ़ी की, अनेक प्रकार से प्रार्थनायें कीं और भारत का कष्ट उनके सामने रक्खा परन्तु हमारे उदार प्रभुओं को तो वास्तव में हमारा हित-साधन करना था नहीं; उनको तो अपने देश-वासियों की भलाई मंजूर थी; इसलिए भारत के ग़रीब-भूखे किसानों की उन्होंने कोई परवाह नहीं की।

सन् १८९८ ई० में फिर दूसरी कमेटी विनिमय और सिक्कों के प्रश्न पर विचार करने के लिए हमारी हितचिन्तक सरकार ने नियत की। उसके सभापति सर हेनरी फ़ाउलर साहब बनाये गये और उसमें भी सबके सब गोरे ही सदस्य रक्खे गये। इस कमेटी ने १८९३ की हारशेल कमेटी की सिफ़ारिश को और भी पक्का कर दिया। इसने रिपोर्ट में ज़ोरों के साथ सिफ़ारिश की कि (१) हिन्दुस्तान के रुपये का मूल्य एक शिलिंग ४ पेंस क़ानूनी तौर पर नियत कर दिया जाय, इससे एक पाई भी नीचे न गिराया जाय (२) भारतवर्ष में इंगलेण्ड का पौंड (सोने की गिन्नी) १५ रुपये के मूल्य का क़ानूनी सिक्का बना दिया जाय। (३) हिन्दुस्तान की टकसालों में सोने के सिक्के भी बनाये जायँ।

इस कमेटी की सिफ़ारिश से रुपये का १६ पेंस मूल्य और भी पक्का हो गया और फिर बराबर १९-२० वर्ष तक यही मूल्य बना रहा। भारतीय सरकार ने उसमें एक कौड़ी की भी कमी नहीं पड़ने दी। इस प्रकार विनिमय के मारक-धन्धे और 'राजनैतिक मक्कारी' की आड़ में अंग्रेज़ी कारखानों का माल भारत में खूब खपाया गया और यह सब शासन के बल पर किया गया। इसी धूर्तता के द्वारा भारतवर्ष का अनाज अंग्रेज़ों के हित के लिए खूब सस्ता किया गया और बेचारे ग़रीब किसानों का गला घोंटा गया। गिनी को क़ानूनी सिक्का बनाकर लोगों के पास जो सोने की अशर्फ़ियाँ थीं, सरकारी ख़ज़ानों में खींच ली गईं। कमेटी की इन दोनों सिफ़ारिशों पर तो हमारी उदार सरकार ने तत्काल खूब अमल किया परन्तु तीसरी सिफ़ारिश जो कमेटी ने यह की थी कि हिन्दुस्थानी टकसालों में भी सोने का सिक्का तैयार किया जाय उसको काग़ज़ के अन्दर ही लिखा रहने दिया। इससे जो थोड़ा-बहुत लाभ भारतवर्ष का होता था उस पर भी सरकार ने कोई कान ही नहीं दिया, उसके अनुसार कार्य करना हो हमारी हितचिन्तक सरकार ने उचित नहीं समझा। अपने देशवासियों के मतलब की जो सिफ़ारिशें थीं उनका तो पूरे तौर से पालन किया गया परन्तु जिससे हिन्दुस्तान का कुछ थोड़ा भी हित था उस पर ध्यान नहीं दिया गया।

हम ऊपर यह बताना भूल गये थे कि सन् १८९३ की कमेटी की सिफ़ारिश पर सरकार ने भारतीय टकसालों को सर्वसाधारण के लिए बन्द करके ही रुपये बनाना आरम्भ कर दिया था उसमें और भी कितना भारी लाभ सरकार को पहुँचने लगा था। सरकारी टकसाल में बनने वाले प्रत्येक रुपये में केवल ८ आने की चाँदी रहती थी और ७ आने की बचत होती थी। इस प्रकार कम से कम १००) रुपये पीछे ४२ रुपये सरकार को अवश्य मिलते थे जिसके हिसाब से एक लाख रुपये बनाने में पूरे ४२०००) रुपये सरकार को नफ़े के मिलते थे।

इस प्रकार रुपया ढालने में सरकार को जो बचत होती थी वह सन् १८९८ ई० से पहले सरकार के साधारण कोष की आय में गिन ली जाती थी। सन् १८९८ ई० में हारशेल कमेटी ने यह भी सिफ़ारिश की कि वह आमदनी साधारण कोष में न जाया करे बल्कि इसका अलग कोष रहे और उसको साधारण सरकारी ख़र्च के लिए काम में न लाया जाय। इसके अनुसार इस बचत का रुपया आगे से अलग कोष में जमा होने लगा और उसका नाम 'रक्षित स्वर्ण-कोष' रक्खा गया।

हारशेल कमेटी की रिपोर्ट के विरोध में फिर हमारे श्रद्धेय नेता स्व० श्री दादाभाई नौरोजी ने खूब लिखा-पढ़ी की, विलायत के समाचार पत्रों में अनेक लेख प्रकाशित कराये और भारत-सचिव को भी एक लम्बी-चौड़ी चिट्ठी लिखकर बहुत सी दलीलें इस बात के पक्ष में दीं कि इन सफ़ारिशों के अनुसार काम करने में भारतवासियों की भारी हानि होगी; उनका रक्त काफ़ी चूसा जा चुका है;

अब इनमें रक्त नहीं रहा है, अब उनपर नश्तर न चलाया जाय। उन्होंने लिखा—

"होम-चार्ज के कारण भारतवर्ष को प्रति वर्ष इंगलैंड को करोड़ों रुपये देने पड़ते हैं, यह हमारे देश के विदेशी शासन के अधीन होने की सलामी है; और विदेशी शासन की इस बुराई का हमारे ब्रिटिश प्रभुओं को शीघ्र ही निबटारा करना चाहिए। सिक्के और विनिमय के गोरखधन्धे से इसका निबटारा नहीं होगा; न दिखावट की उदारता से कोई काम चलेगा और न उन अनेक चालबाज़ियों से काम चलेगा, जिनको हमारी सरकार आये दिन काम में लाती रहती है। इसका असली निबटारा तो तभी हो सकेगा जब भारतवर्ष में वर्तमान 'ग़ैर-अंग्रेज़ी' शासन को हटाकर उसकी जगह असली उदार अंग्रेज़ी शासन क़ायम कर दिया जाय।"

"सन् १८९३ ई० में जो कुछ किया गया है उसे हटा दिया जाय। टकसालों को फिर सर्वसाधारण के लिए खोल दिया जाय। रुपये का बनावटी मूल्य दूर कर दिया जाय। और उससे जो विनिमय की दर घटने में सरकार को होम-चार्ज के कारण घाटा पड़ता है उससे भी कोई नया कर ग़रीब हिन्दुस्थानी प्रजा पर न लगाया जाय। बल्कि सरकार अपने ख़र्च को कुछ कम करके उसका घाटा पूरा करे। विनिमय के घटने से १०-१२ करोड़ रुपये का घाटा प्रति-वर्ष सरकार को होता है; उसकी पूर्ति अपने बढ़े हुए ख़र्च को घटाकर सरकार आसानी से कर सकती है। ख़र्च को कम करना सर्वथा सरकार के हाथ है। सरकार ने जो सारे महकमों में बहुत-से अंग्रेज़ अफ़सर भारी-भारी वेतनों पर रख छोड़े हैं उनको हटाकर उनके स्थान में कम वेतन वाले हिन्दुस्तानी अफ़सरों को नियत किया जाय। अंग्रेज़ी शासन को क़ायम रखने के लिए यही सब से सरल और सीधा उपाय है और इसी में भारत और इंग्लैंड दोनों का कल्याण है।"

लार्ड मेयो ने सच ही कहा है—"मेरा विश्वास है कि हमने भारत के लोगों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया है। विजेताओं के स्वार्थ के लिए जो हमने करोड़ों रुपये ख़र्च किये हैं, वे हम को देश के बच्चों के हित-साधन के निमित्त लगाने चाहिए थे। यदि हम भारतवर्ष में भारतीयों के हित के लिए नहीं है तो हमारा कोई अधिकार उस देश में रहने का नहीं है।"

"केवल अंग्रेज़ों और अन्य विदेशियों के लिए, हिन्दुस्तान धनी देश है, क्योंकि वे यहाँ से अफ़सर बनकर तथा यहाँ व्यापार करके बहुत सा धन ले जाते रहते हैं। उनके लिए अवश्य भारतवर्ष धनी और समृद्धिशाली है। वे लोग यह समझ और अनुभव ही नहीं कर सकते कि भारत को क्यों 'अत्यन्त ग़रीब देश' कहते हैं। वे तो इससे अथाह धन लेजाकर मालामाल बन रहे हैं। उनको कभी यह सूझता नहीं कि ग़रीब भारतवासियों पर इससे क्या बीत रही है।"

"कमेटी के सामने अंग्रेज़ों की जो गवाहियाँ हुई हैं उन सब से यही सार निकलता है कि भारतवर्ष अंग्रेज़ अफ़सरों, बृटिश व्यापारियों तथा पूँजीपतियों की जायदाद है और उनका केवल मतलब यही है कि किसी न किसी प्रकार इस देश से जितना भी धन मिल सके ढोकर ले जायँ और हिन्दुस्तान की ज़मीन तथा उसकी प्रजा केवल उपर्युक्त मतलब के लिए उनका औज़ारमात्र है।"

"४० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष हमारे देश से बाहर जा रहा है। इसके अलावा सारा भारतीय साम्राज्य भारतीयों के ही धन से और मुख्यतया उन्हीं के रक्त से खड़ा किया गया है। अब भी भारतीय फ़ौजें संसार के अन्य देशों में बृटिश साम्राज्य को बढ़ाने में सहायक हो रही हैं। और इन सब कामों का क्या बदला भारत को मिल रहा है? केवल गुलामी। केवल यही बात नहीं, भारत में अंग्रेज़ों का साम्राज्य क़ायम करने में पाई-पाई जो ख़र्च हुआ वह सब तो हमने दिया ही उस के अलावा हिन्दुस्तान से अंग्रेज़ इतना अथाह धन ले जा चुके हैं जो अब तक का सूद लगाकर अरबों पर पहुँचता है।"

"हमको तो भारत-सचिव लार्ड सैलिसबरी के ही ये शब्द हमेशा याद आते हैं कि अन्याय के भार से भारी से भारी शक्ति भी नष्ट हो जायगी।" *

* दादाभाई नौरोजी—लिखित अंग्रेज़ी पुस्तक 'ग़रीबी और भारत में ग़ैर-अंग्रेज़ी शासन' पृष्ठ ५१४-५१७।

पर भारतीय नेता दादाभाई नौरोजी की अंग्रेज़ों की विनिमय-कमेटी की सिफ़ारिशों के सामने कुछ भी न चली। सरकार ने कमेटी की सब सिफ़ारिशों को मानकर उनके अनुसार काम करना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार बचा-खुचा हिन्दुस्तानियों का खून बराबर चूसा ही जाता रहा। [असमाप्त]

वह पथ !

श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव'

(१)

कांटों के उस पथ में कैसा है आलोक निराला।
जिससे क्लेश न पाता है वह दौड़ लगानेवाला ॥
है कोई जो ज़रा दयाकर मुझ को यह बतलावे।
कैसे अमर बनाता उसको विष का तीता प्याला ?

(२)

क्या देखा उसने जो जग की ममता को बिसराया।
निकल पड़ा लू की लपटों में तजकर शीतल छाया ?
जग की मोहकता ने उसको चाहा खूब रिझाना।
रोक न सके मिले सब जाकर अपना और पराया ॥

(३)

विपुल वेदना सम्मुख आई पथ से उसे हटाने।
अनल-दाह में जलने का भय उसको लगा डराने ॥
पर उस पर तो अधिकाधिक वह अमल आप चढ़ आया।
निठुर परीक्षक जितना हो वह उसको चला तपाने ॥

(४)

कैसे उसने जाना उस पर निर्भय होकर चलना ?
फांसी की टिकटी पर बच्चों के अनुरूप उछलना ॥
उधर बधिक तैयार खड़ा है जिस पर ले चलने को।
उसको तो वह समझ रहा है बालकपन का पलना ॥

(५)

टूट गई कैसे उस पथ पर ममता की सब कड़ियाँ।
क्यों न विकल करतीं उसको जीवन की आतुर घड़ियां ॥
अंगारे बरसाते क्या तुम वह तो समझ न पाता।
चिनगारी गिरती है अथवा गिरती हैं फुलझड़ियाँ ॥

(६)

कहाँ जवानी की चोटी पर वह स्वच्छन्द विचरना।
दुर्बलता के घाटों में यह नीचे कहाँ उतरना ॥
पूछा मैंने कारण जिस पर उसने यह बतलाया।
'यौवन की मादकता में मीठा लगता है मरना' ॥

(७)

कैसा है आकर्षण उसपर खींच तुरत जो लेता।
चिर सुख की कीमत में केवल प्याला भर दे देता ॥
बलिहारी है उस खुमार की तुरत चेतना जागी।
जीवन हार चुका वह फिर भी घोषित हुआ विजेता ॥

(८)

इतना तो जाना मैंने भी है वह राह अनूठी।
जिस पर से यह मेरी दुनियाँ उसको लगती झूठी ॥
वह पथ औ उस पथ का है वह आकर्षण भी न्यारा।
जिसके सम्मुख भाग्य भोग की बातें हैं सब झूठी ॥

(९)

निशि की शीतल छाया में ही प्रमुदित होकर खिलना।
शशि का सुधा-पानकर उसकी विमल ज्योति से मिलना ॥
इन्हें छोड़ उस पथ पर चलना मुझ को भी सिखलादे।
सम्भव हो जिसमें रवि के सम्मुख 'कैरव' का खिलना ॥

उस पार

श्री तेजनारायण काक 'क्रान्ति'

क

घास-फूस का एक छोटा-सा झोपड़ा था। वर्षा ने बड़ी असहृदयता से उसके फ़र्श में गहरे-गहरे गड्ढे बना दिये थे। दीवारों में स्थान-स्थान पर छिद्र हो गये थे, जिनमें गुदड़े-चिथड़े ठुंसे हुए थे। वर्षा के दिनों में छत में से पानी की धारायें गिरा करतीं, और फ़र्श पर नदी-सी बहने लगती।

इस झोपड़े में रहा करती थी एक चिर-दुखिया बुढ़िया। उसके व्यथित-हृदय की मरुस्थली में कभी सुख की वृष्टि नहीं हुई। सर्वदा दुख के भीषण बवण्डर उठते रहते, व्यथा की प्रलयंकारी आंधियाँ चलती रहतीं। पर बुढ़िया का इस दुःख में भी, दूर—आनन्द की एक क्षीण रेखा दिखाई देती। वही, सच्चे सुख की धुंधली रेखा, उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब थी।

निशीथ की चाँदनी निस्तब्धता का घूंघट खोलकर खिलखिला रही थी। बुढ़िया अपनी कुटिया के एक कोने में बैठी हुई थी, बिलकुल निश्चल, निष्पंद। सामने ताक में रक्खा हुआ एक भद्दा दीपक टिमटिमा रहा था।

बुढ़िया ने देखा, चांदनी इठला-इठलाकर वृक्षों, लताओं और झरनों से अलंकृत पहाड़ियों पर चढ़ रही है इतने में झोपड़े के बाहर से किसीने पुकारा 'मां!' बुढ़िया के कानों में मानों अमृत की बूंदें टपक पड़ीं। यह एक शब्द समीर की सनसनाहट में आया और फैला, गिरि-निर्झरों की अजस्र झर-झर में धंसा और निकला, कमनीय-कुसमों के सुकोमल वक्षस्थलों पर नाचा और ठुमका।

फटे-चिथड़े लपेटे एक सुन्दर युवक ने झोपड़े में प्रवेश किया। बुढ़िया ने अपने हृदय के टुकड़े को छाती से लगा लिया।

"कब जायगा, बेटा?" बुढ़िया ने डबडबाई हुई आँखों से कहा।

"अभी," युवक ने उत्तर दिया।

बुढ़िया ने गहरी सांस छोड़कर एक छोटी-सी पोटली युवक के सामने रख दी और बोली,—"मेरे लाल, अपनी इस असहाया मैया को भुला न देना; दुष्टों की कुसंगति से सर्वदा बचे रहकर अपनी मातृभूमि की सेवा में लगे रहना। काम पड़ने पर, भय के मारे, अपने पथ से विचलित होकर मेरा दूध न लजाना, वरन् हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करना... ....।"

बुढ़िया का गला भर आया। युवक ने अपनी मां के चरण छूकर विदा मांगी

ख

लगभग एक मील लंबा जुलूस था। 'सुरेशचन्द्र बनर्जी की जय,' 'साम्राज्यवाद का नाश हो,' 'क्रांति चिरजीवी हो,' आदि के गगनभेदी नारे लगाये जा रहे थे। सब स्वयंसेवक सिर से पैर तक खद्दर पहने हुए थे। जलूस के सबसे अग्र भाग में श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी राष्ट्रीय झण्डा लिये हुए चल रहे थे। मध्य

में खद्दरधारी बालक-बालिकाओं का एक छोटा-सा दल गाता हुआ आगे बढ़ रहा था—

"गाँधी बाबा के आश्रम में जायेंगे हम।
अपने हाथों से नमक बनायेंगे हम॥
....॥"

अपने ठहरने के स्थान से सबेरे के पाँच बजे का चला हुआ जुलूस घूमता-घामता लगभग बारह बजे रावी के किनारे जा पहुँचा। एक ऊँचे से स्थान पर श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी ने राष्ट्रीय झण्डा लगा दिया; स्थान-स्थान पर कढ़ाइयों में नमक तैयार होने लगा, छोटे-छोटे बच्चे भी लुटियाओं में पानी भर-भरकर लाने लगे।

कैसा सुन्दर और कितना प्रभावोत्पादक दृश्य था! प्रत्येक मनुष्य के हृदय में, इस दृश्य को देखकर जोश उबल पड़ता।

दूर पर खड़ी हुई पुलीस अपनी क्रूर दृष्टि इन सत्याग्रही वीरों पर डाल रही थी। एक अंग्रेज अफसर नाक-भौं चढ़ा-चढ़ाकर गालियों की बौछार कर रहा था।

बनर्जी महोदय ने अपने हाथ से बनाया हुआ एक तोला नमक हथेली पर ले लिया। उस चुटकीभर पवित्र नमक पर बोली लगने लगी। हजारों आदमी घेरे खड़े थे। 'पचास रुपये,' किसी ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा। दूसरी ओर से आवाज़ आई, 'ढाई सौ'। भीड़ की दृष्टि बोलनेवाले की ओर फिरी। लोगों ने देखा एक बूढ़ा अंग्रेज बोली लगा रहा है। कोई तीसरा ही मनुष्य बोल उठा,—'तीन सौ रुपये'। बूढ़े ने शान्त भाव से कहा 'एक हजार'। लोग आश्चर्य के मारे दाँतों तले उंगली दबाने लगे। एक हजार से आगे बढ़ने की हिम्मत किसी की न हुई। बूढ़ा अँग्रेज आगे बढ़ा। उसने नमक की पुड़िया लेकर सिर व आँखों से लगाकर जेब में डाल ली। जनता ने करतलध्वनि से हर्ष प्रकट किया। सब वाह-वाह कर रहे थे; यह मनुष्य नहीं, देवता है। धन्य है इसे!

सब स्वयंसेवकों ने मिलकर लगभग चौदह मन नमक तैयार किया। रावी के किनारे स्वच्छ नमक का एक छोटा-सा टीला बन गया।

यह नमक निर्धन कृषकों को बिना मूल्य वितरण किया जाने लगा। अपने अफसर का इशारा पाकर पुलीस सत्याग्रहियों से नमक छीनने के लिए आगे बढ़ी। नमक की ढेरी पर सत्याग्रही लेट गये। पुलीस ने उन्हें ठोकरें मार-मारकर अलग हटा दिया और नमक बटोरकर चंपत बनी, किंतु क्या मजाल कि किसी भी सत्याग्रही के चहरे पर ज़रा भी शिकन पड़ी हो।

श्री सुरेचन्द्र बनर्जी के जय-घोष के साथ जुलूस वापस लौट चला। सबमें वही जोश, वही उमंग भरी हुई थी।

लगभग दो मील चलने के बाद पुलीस के लाल साफे दिखाई दिये। पुलीस ने बनर्जी महोदय को पकड़ने की इच्छा प्रकट की। बड़ी प्रसन्नता से हँसते-हँसते उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया। जुलूस उसी प्रकार शान्त भाव से आगे बढ़ता गया, मानों कुछ हुआ ही नहीं। हाँ, बनर्जी के स्थान पर अब एक दूसरा मनुष्य राष्ट्रीय 'झण्डा' फहराता हुआ आगे-आगे चल रहा था।

ग

ब्रिटिश-सरकार कूट-नीति में बड़ी सिद्धहस्त है। जनता को दिखाने के लिए श्री बनर्जी के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता, किन्तु भीतर ही भीतर उन्हें अनेक कष्ट दिये जाते। कहने को तो उनके लिए एक सुन्दर बंगला किराये पर लिया गया

था, किन्तु उन्हें रक्खा जाता था उस बँगले की एक गन्दी कोठरी में। खाना-पानी कभी मिलता, कभी नहीं। उनसे मिलने की किसी को इजाजत नहीं मिलती। हाँ, कमिश्नर रोज बातें कर जाता। वह घंटों समझाता रहता, 'माफ़ी मांग लो, तुमको फौरन छोड़ दिया जायगा।'

बनर्जी का युवक-हृदय बहुत दिनों तक वो असह्य यातनायें धैर्यपूर्वक सहता रहा, किन्तु फिर दारुण यन्त्रणा से छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगा।

उन्होंने अपनी आन्तरिक इच्छाओं पर पत्थर रखकर कमिश्नर को कहलवा दिया कि मैं कल माफ़ी मांगने के लिए तैयार हूँ।

❋ ❋ ❋ ❋

आज बनर्जी को लॉन में बैठने की अनुमति मिल गई थी। कमिश्नर आने ही वाला था। वह एक कुर्सी पर बैठे हुए बहुत देर से आकाश की ओर देख रहे थे। उन्होंने देखा, बादलों के 'उस पार' उनकी बुढ़िया मां, अपनी कुटिया के द्वार पर खड़ी, उनकी ओर जलती हुई आँखों से देख रही है। उसका सारा वात्सल्य, समस्त स्नेह, भयंकर क्रोध में बदल गया है।

बनर्जी की आँखें एक दम नीची हो गईं। क्षोभ और ग्लानि के मारे उनका शरीर पसीने-पसीने हो गया। उन्होंने अपने पथ से विचलित न होने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

बंगले के खुले हुए फाटक में से भर-भर करती हुई एक मोटर भीतर घुस आई। मोटर का दरवाज़ा खोलकर कमिश्नर साहब नीचे उतर पड़े। वह बनर्जी से हाथ मिलाते हुए बोले—'हलो, मि० बनर्जी टुमने बहुत अच्छा किया। हम टुमको बरा ओहडा डिलवायगा।"

बनर्जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"क्षमा कीजिए, मुझे किसी भी ओहदे की आवश्यकता नहीं है; मैं माफ़ी नहीं मांग सकता।"

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार

[श्री 'नूतन']

बसन विदेशी का विकट बायकाट कर,
फोड़ते न हिन्द के फफोले जले दिल के।
मुग्ध मलमल पै पसन्द नहीं खद्दर है,
तब की न याद जब धारते थे झिल के।
कोष में विदेशियोंके जाते हैं करोड़ों हाय,
दीन देश-भाइयों के हाथ से निकल के।
ऋषियों के बेटे करते हैं कैसे हेठे कर्म,
पहनते हैं चरबी-लपेटे वस्त्र मिल के॥

हमारी कैलास-यात्रा

[श्री दीनदयालु शास्त्री]

(४)

हिमालय के पार

१५ जुलाई सोमवार का दिन था। गरब्यांग के स्कूल में बैठे हुए हम तिब्बत जाने की तैयारी कर रहे थे। तिब्बत देखने की उत्कण्ठा हमें उस अज्ञात देश में जाने के लिए प्रेरित कर रही थी। हम तो तिब्बत के विषय में यही जानते थे कि वह लामा लोगों का देश है। वहाँ क्या है, कौन जाति रहती है, उसकी क्या रीति-नीति है यह पता लगाने का बहुत दिनों से कौतूहल था। आज जाकर मन की वह मुराद भी पूरी कर ली।

दोपहर बारह बजे हमने गरब्यांग से प्रस्थान किया। यहाँ काली नदी की दो धारायें हैं। दाहिनी धारा के बायें तट पर हमारा मार्ग था। दो-चार मिनट में गरब्यांग ओझल हो गया। उनके साथ ही हिमालय की रही-सही हरियाली ने भी हमारा साथ छोड़ दिया। पहाड़ों पर वनस्पति का नाम न रहा; घास तक अदृश्य हो गई। अब तो हिमालय का विराट् स्वरूप प्रकट हुआ। ऊँचे-ऊंचे शिखर हैं, न उन पर पेड़ है न पत्ता; केवल शुभ्र हिम मस्त होकर लोट रहा है। यह हिम ही तो हिमालय की विभूति है। वृद्ध भारत का यह हिम ही तो प्राण है। सिन्धु, सतलज, चन्द्रभागा, गंगा आदि सभी नदियाँ, जिनसे भारत की समृद्धि है, इस हिम से जीवन-शक्ति ग्रहण करती हैं। यह हिमालय भारत का सर्वस्व है।

हमने काली नदी के किनारे-किनारे जाना शुरू किया। नदी-किनारे थोड़े से पेड़ अब भी पथिक के आश्वासन के लिए खड़े थे। इनकी शीतल छाया बड़ी प्यारी लगती थी। बारह हज़ार फुट की ऊँचाई पर भी भगवान् भास्कर आग बरसाते थे। रास्ते में तिब्बत से आने-जानेवाले भोटियों की टोलियाँ मिलती थीं। इनमें कोई घोड़ों पर था, कोई पैदल और कोई माल से लदी भेड़ों के झुंड को हांक रहा था। सभी प्रसन्न थे, हाथ में तकली लिये ऊन कातते आ रहे थे। भोट के लोग हाथ का कता हाथ का बुना कपड़ा पहनते हैं। अभी तक उनके यहाँ शुद्ध स्वदेशी ऊन का प्रचार है। लेकिन इस सर्व-संहारी मशीन का वे कब-तक मुकाबला करेंगे। उस निविड़ भूमि में भी इस मशीन का माल प्रवेश पाने लगा है। निकट भविष्य में वहाँ भी वही हाल होने को है जो अन्य प्रान्तों का है।

तीन मील जाने के बाद काली की घाटी विस्तृत हो गई। इस विस्तृत घाटी की बालुकामयी भूमि में पुनः खेतों के दर्शन हुए। कुछ में दो-चार झोंपड़े भी देखने को मिले। थोड़ी-थोड़ी दूर पर इस तरह के खेत ठेठ काला पानी तक चले गये हैं। इस गाँव के आगे घाटी एकदम संकुचित हो गई है। यहाँ थोड़ी-बहुत हरियाली देखने को मिलती है। रास्ता नदी के आर-पार कभी अंग्रेजी इलाके में और कभी नैपाल में होकर जाता है। नदी का पानी अधिकाधिक शुद्ध होता जाता है। यात्री शीतल जल के कलरव में मस्त आगे बढ़ जाता है।

गरब्यांग से तकलाकोट मण्डी तक तीन दिन का रास्ता है। हम लोग दो ही दिन में गये थे। भेड़ों पर माल ले जानेवाले भोटिये इसे पाँच दिन में पार करते हैं। यहाँ की भेड़ बड़ी और मज़बूत होती हैं। एक भेड़ पर चमड़े की थैली में दस-बारह सेर अनाज लाद दिया जाता है। भेड़ें खूब मस्त होकर धीरे-धीरे चला करती हैं। उन के लिए भेड़ों को तिब्बत में ले जाना ही होता है, इतना बोझ मुफ्त में पहुँच जाता है। खाने के लिए मार्ग में जहाँ घास मिला उन्हें छोड़कर पड़ाव डाल देते हैं। एक-एक रेवड़ में सैकड़ों भेड़ें होती हैं। गरब्यांग से परे या तिब्बत में स्थान-स्थान पर इन भेड़वालों के डेरे पड़े रहते हैं। अपनी मर्ज़ी के मालिक ही तो ठहरे, जब दिल किया माल लादकर चल दिये। क्या स्वतन्त्रता है! क्या आनन्द का जीवन है! कहते हैं,

सृष्टि के आदि में ऐसा ही जीवन था। सचमुच उन दिनों मनुष्य जाति अधिक सुखी थी!

काला पानी

नदी के किनारे तंग रास्ते से चलकर हम शाम के समय कालापानी पहुँचे। गरब्यांग से कालापानी दस मील है। यह स्थान तेरह हज़ार फुट ऊँचा है। इस स्थान पर विशाल मैदान है, जिसमें भारत की खेती के अन्तिम दर्शन होते हैं। कालापानी में रात पड़ाव करना होता है। सवेरे सूर्योदय के पूर्व ही यात्री लीपूलेख के धुरे (pass) से हिमालय को पार करते हैं। कालापानी में पत्थर की धर्मशालायें बनी हुई हैं। कुछ लोग इनमें ठहर जाते हैं, कुछ अपने तम्बू गाड़ लेते हैं। नदी के किनारे पर ऐसी ही दो धर्मशालायें थीं उनमें हमने अपना आसन जमाया।

तिब्बत और भारत पड़ोसी देश हैं। दोनों की सीमा मिली है लेकिन दोनों एक दूसरे को नहीं पहचानते। तिब्बत और भारत के मध्य पन्द्रह सौ मील लम्बी हिमालय की ऊँची दीवार खड़ी है। हिमालय की इस उत्तर दीवार के उत्तर तिब्बत का विशाल देश है। इस दीवार को पार करके वहाँ जाना बड़ा कठिन है। इस विज्ञानमय युग में भी अहमदाबाद से तिब्बत पहुँचने में पन्द्रह दिन लग जाते हैं, जबकि इतने दिन में रेल-जहाज़ का यात्री बम्बई से लन्दन जा पहुँचता है। हिमालय की ऊँची दीवार में कुछ ऐसे ढाल हैं, जिन्हें फाँदकर यात्री हिमालय पार कर सकता है। इन्हें धुरा कहा जाता है। भारत से तिब्बत जाने के लिए स्थान-स्थान पर धुरे हैं। हमें जिस धुरे से हिमालय को पार करना था उसका नाम लीपूलेख का धुरा है। यह धुरा समुद्र तल से १७५०० फुट ऊँचा है।

कालापानी के धुरे का शिखर ६ मील है। दो पहर को शिखर पर ठण्डी हवा का तूफ़ान चला करता है अतः यात्री सवेरे दस बजे तक ही उसे पार कर लेते हैं। हमने भी १६ जुलाई को प्रातः पाँच बजे प्रस्थान किया। कालापानी से ही चढ़ाई शुरू हो जाती है। हवा पतली है, शिखर पर चढ़ने में थकान के कारण साँस अधिक वेग से चलने लगता है। इतनी हवा यहाँ मिलती नहीं, दम फूलने लगता है। आदमी घबराकर पाँच-पाँच मिनट के बाद आराम लेने लगता है। पग-पग पर होश गायब होने की नौबत आती है। यात्री की व्यथा बढ़ जाती है। भाटिये लोग इसे ही ज़हर चढ़ना कहते हैं।

हम लोग इस हवा के आदी न थे। हमारे लिए ये ६ मील आफ़त के थे। रास्ते में न पेड़ था, न पत्ता; केवल बजरी का ढेर था; कहीं-कहीं पत्थर भी पड़े थे। चारों ओर गिरि-शिखर पर अनंत हिम चमक रहा था। हवा पतली तिस पर सामने का दृश्य भयंकर था। हम हिम्मत बाँधकर हिमालय पार करने में लगे थे। वहाँ हमारी दयनीय दशा की साक्षी केवल एक काली नदी थी। हम चारों साथी अलग-अलग हो गये, कुली पीछे रह गये। जिसमें जितना अधिक दम था वह उतना अधिक आगे था। इस दिन के लिए खटाई मेवा, बादाम साथ रख लेना चाहिए। जब जी मिचलावे खा लेवें। मैं खाली हाथ चला था। औरों का क्या पता, मुझे बड़ी घबराहट हुई। यद्यपि चढ़ाई बिलकुल मामूली थी, लेकिन चढ़ने में दम फूलता था। जगह-जगह बैठना था। मेरे साथी मुझसे भी अधिक बैठ रहे थे। लेकिन उनके पास खाने को तो था। मैं था मुक्त-हस्त। एक जगह इतनी घबराहट हुई कि मैं लड़खड़ा गया और एक शिला की ओट में घण्टा भर पड़ा रहा। एक हुणिया तिब्बत से आ रहा था। उससे लेकर खटाई खाई। खटाई से कुछ शान्ति मिली घण्टा भर बैठने से दम में दम आया; फिर मैं आगे बढ़ा। शिखर के पास बर्फ़ से पहाड़ ढका है। इन बरफ़ के मैदानों को डंडे के सहारे लाँघकर मैं—

लीपूलेख के धुरे पर

११ बजे जा पहुँचा। दम में दम आया। चारों ओर निगाह दौड़ाई। मैं विशाल हिमालय की गोद में खड़ा था। सर्वत्र हिम था, रवि रश्मियों से चमककर वह आँखों को चौंधया देता था। पश्चिम में काली नदी आ रही थी और पूर्व में करनाली गंगा। दोनों नदियों का निकास लीपूलेख शिखर में है। शिखर पर तेज़ हवा चल रही थी। मैं शिखर की शीतल वायु में दो मिनट बैठ गया। अब भारत

की ओर श्रद्धा एवं प्रेम-पूर्ण नज़रों से देखने लगा। यही मेरी मातृभूमि है। मैंने यह जीवन इसीसे पाया है। मेरे भारत के पास क्या नहीं? प्रकृति ने इसे सब-कुछ दिया है, किन्तु दुर्भाग्य! आज भारत गुलाम है। इसी दासता ने भारत को दीन और जर्जर कर दिया है। इसके गोरे मालिक लूटकर आज इसे तबाह किये देते हैं। भगवन्, भारत की लाज तुम्हारे हाथ है। इसे स्वतंत्र करो। स्वतंत्रता का अमृत पानकर इसकी शक्तियों में वह विकास होगा, जिसके आगे सारे संसार के राष्ट्र शीश झुकायेंगे।

मैंने भारत-भूमि को नमस्कार किया और शिखर से उतरने लगा। पूर्व में छोटी-सी झील है। वहाँ हम चारों मिले, थोड़ा सुस्ताकर और आगे बढ़े। अब हम तिब्बत में थे। भारत की हरी-भरी मनोहर प्रकृति अदृश्य हो चुकी थी। वहाँ क्या था? सूखे-गंजे पहाड़ थे। बीच में करनाली गंगा का प्रवाह था। यह नदी तिब्बत से निकलकर नैपाल में होती हुई गोंडा ज़िले के पास, सरयू में जा मिलती है। हमें इसी नदी के किनारे-किनारे जाना था। धूप-निट्टी बढ़ने लगी। ठंडी हवा में कपड़ा लपेटकर हम चलने लगे। तिब्बत में वायु सूक्ष्म होने से दूर की वस्तु निकट दिखाई देती है, लेकिन वहाँ तक पहुँचने में कई घण्टे लग जाते हैं। यही हाल हमारा हुआ। सूखे धूलि-धूसरित मार्ग में चलते चलते हम हैरान हो गये। लीपूलेख से पाला छः मील है। यहाँ भेड़वाले पड़ाव डालते हैं। हमें सीधे तकलाकोट जाना था। दो मील पर करनाली से नहर निकाली गई है। इस नहर से ही तकलाकोट के आस-पास के खेतों में सिंचाई होती है।

हिमावृत लीपूलेख

करनाली गंगा खूब चौड़ी है। पास के खेतों में गेहूँ मटर और सरसों बोया जाता है। इनके अलावा और कहीं हमने खेत नहीं देखे। तिब्बत बियाबान देश है। पाला से तकलाकोट ६ मील और गरब्यांग से २८ मील है। तकलाकोट का गांव नदी के दायें किनारे पर है और मण्डी बायें किनारे पर; गाँव में मकान पत्थर के हैं, इनमें लकड़ी का काम कहीं नहीं किया गया। नदी पार कर शाम को ६ बजे मण्डी पहुँचे। एक

लीपूलेख के नीचे तिब्बती कुली चाय गर्म कर रहे हैं

जगह पत्थरों की ओट में तम्बू खड़ा किया गया। आज की मंज़िल १८ मील की थी, चढ़ाई के कारण थकान भी थी; जल्दी ही नींद आगई। तिब्बत में यह हमारी पहली रात थी।

---

(५)

तिब्बत में

तिब्बत संसार में सबसे ऊँचा देश है। चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से घिरा रहने के कारण दूसरे लोगों का यहाँ आना-जाना कम होता है। कठिन परिस्थिति के कारण बाहर के शत्रुओं से यह देश सुरक्षित-सा है। उत्तर-पूर्व में क्यूनलुन, पश्चिम में काराकोरम और दक्षिण में हिमालय-से गिरिराज इस किले की मज़बूत दीवारें हैं। इन पहाड़ों के बीच विस्तृत मैदान हैं, घाटियाँ हैं, और सरोवर हैं। सारा देश एक बड़े पठार (Plato) के समान है। इसका कोई भी स्थान समुद्र-तल से बारह हज़ार फुट से नीचा नहीं है। पहाड़ों की चोटियों पर बरस-भर हिम जमा रहता है। जल-वायु शीतल होने से खेती के लिए अनुपयुक्त है। कहीं किसी घाटी में पहाड़ की ओट में खेती हो सकती है, अन्यथा सारा देश सर्वथा उजाड़ है। पहाड़ों की घाटियों तथा नदियों के किनारे घास बहुत होती है। लोग भेड़ पालते हैं। याक नाम का बैल बोझा ढोने के काम में आता है। टट्टू भी इस काम में व सवारी में प्रयुक्त होते हैं। ऊन, सोहागा, नमक व सोना तिब्बत की सम्पत्ति है।

देश में शीत के अधिक होने के कारण लोग बहुत आलसी हैं। वे मैला-कुचला रहना अधिक पसन्द करते हैं। लामा लोगों में जिसके शरीर पर जितना अधिक मैल रहे उतना ही वह अधिक पवित्र और ऊँचा गिना जाता है। पुरुष-स्त्री दोनों लम्बी-लम्बी लटें रखते हैं। क़ीमती कपड़े पहनने का लोगों को बहुत शौक़ है। आसाम की अण्डी व दूसरे रेशमी कपड़े पहने हुए लोग प्राय: देखे जाते हैं। अंग्रेज़ी ढंग के टोप का प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। ढीले पाजामे व लम्बे कोट पर सोला हैट खूब ही सजती है। तिब्बतवालों के भोजन में सत्तू और मांस मुख्य वस्तु हैं। मांस अधिकतर भेड़-बकरी का होता है। गाय का मांस खाना पाप समझा जाता है। चाय का प्रयोग पानी की जगह होता है। चाय में मीठे की जगह नमक डालते हैं। वह खुश्की न कर दे, इसलिए घी भी डाल देते हैं। चाय का प्याला हर समय तिब्बतियों के मुँह के पास देखा जाता है।

तिब्बत में बौद्ध-धर्म का प्रचार है। भारत के साधु-सन्तों की तरह तिब्बत में लामा लोगों का बड़ा प्रभाव है। जिस प्रकार हम गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं, तिब्बती लोग "ओम् मनि पद्मे हुं ओम्" का हर समय जाप किया करते हैं। 'ओम् नाम की मणि हृदय-पद्म में सदा विराजती है,' उनकी गायत्री का यही अभिप्राय है। लोग समझते हैं कि बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते। यह गायत्री इस समझ का निराकरण कर देती है। मन्दिर में कहीं-कहीं बुद्ध भगवान की मूर्ति भी है। प्राय: सब मन्दिर ठोस होते हैं और उनपर तिब्बती गायत्री लिखी रहती है। लामा लोगों को बड़े आदर से देखा जाता है।

तिब्बत की भाषा चीन की भाषा से अधिक मिलती-सी है। अक्षर नागरी के होते हैं। आजकल तिब्बत की पुस्तकें कलकत्ते में छपती हैं। आजकल की लिपि थोड़ी विचित्र है, परन्तु हमने जो अक्षर भिन्न-भिन्न मन्दिरों, दीवारों व पत्थरों पर खुदे हुए देखे थे, वे बनावट में बंगला अक्षरों से अधिक साम्य रखते थे। सारे भारत, लंका, ब्रह्मा व तिब्बत में देवनागरी वर्ण-माला का ही प्रचलन है। यदि अच्छे ढंग से आन्दोलन किया जाय तो इन सब देशों में एक ही लिपि प्रचलित हो सकती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इस कार्य को न कर सकेगा। एक लिपि-विस्तार-परिषद् ने कुछ वर्ष अच्छा कार्य किया था। यदि इस परिषद् को पुनरुज्जीवित करके एक लिपि का प्रचार किया जाय तो भारत की एक लिपि-समस्या शीघ्र हल हो सकती है।

भोटियों के सम्पर्क में रहने से थोड़े-बहुत तिब्बती हिन्दी भी जानते हैं, बिना दुभाषिये के यात्रा करना कठिन है। हमने भी एक दुभाषिये को संग ले लिया था। हिन्दी में ल का प्रयोग नहीं होता। तिब्बती भाषा में इस का बहुत प्रयोग किया जाता है। दूध-थाक्, हम=ङाक्, स्थान=लुकश, कितना=किको आदि शब्दों में ल का खूब प्रयोग हुआ है। हमने भी सुविधा के लिए तिब्बती भाषा के कुछ ज़रूरी शब्द व वाक्य याद कर लिये थे। अलमोड़े के मीलम तथा दार्जिलिंग के कई स्कूलों में तिब्बती भाषा पढ़ाई जाती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन में तो तिब्बती साहित्य का उच्च ज्ञान कराया जाता है।

तिब्बत चीन को थोड़ा कर देता है, पर आन्तरिक मामलों में वह प्रायः स्वतन्त्र है। यहाँ का सब से बड़ा शासक दलाई लामा है। वह राजधानी लासा में रहता है। दार्जिलिंग से लासा तक डाक व तार का सम्बन्ध है। शासन की दृष्टि से तिब्बत के दो भाग हैं—बोन=पूर्वी तिब्बत, ङार = पश्चिमी तिब्बत। कैलाश = ङरिया नारी प्रान्त में है, इसकी राजधानी गरतोक सिन्ध के किनारे छोटा-सा गाँव है। प्रान्तीय शासक को गरबम कहते हैं। गर्मियों में अंग्रेज़ों का व्यापारी राजदूत भी गरतोक में रहता है और भिन्न-भिन्न मण्डियों में दौरा किया करता है। ज़िले के शासक जोंगपन कहलाते हैं। नारी प्रान्त में दावा और तकलाकोट दो ज़िले हैं। पटवारी को खरपन और पुलिस के अफ़सर को तरजम कहते हैं। अफ़सरों को वेतन नहीं मिलता। इनकी कमाई प्रजा को तंग करने से होती है। ये सब पद नीलाम किये जाते हैं। जो जितनी अधिक बोली बोलता है, वही अफ़सर हो जाता है। अफ़सर प्रजा को बहुत सताते हैं, अतः रिआया दुखी है।

भारत तिब्बत के पश्चिम-दक्षिण में है। काश्मीर, कुल्लु, बुशायर, गढ़वाल, अलमोड़ा, नैपाल व भूटान के इलाक़े तिब्बत को छूते हैं। भारत की मुख्य-मुख्य नदियाँ तिब्बत से ही निकलती हैं। सिन्ध, सतलज, काली, ब्रह्मपुत्र तिब्बत में ही जन्म लेती हैं। तिब्बत के सब व्यापारी-मार्ग इन्हीं नदियों के किनारे-किनारे जाते हैं। सिन्ध का मार्ग लद्दाख होकर जाता है, सतलज का शिमले निकलता है। ब्रह्मपुत्र का मार्ग विकट व दुर्गम है। दार्जिलिंग का मार्ग राजधानी लासा को जाता है। वह मार्ग किसी नदी के साथ-साथ नहीं जाता, अपितु गिरि-शिखरों को लाँघकर जाता है।

श्रावण से कार्तिक मास तक तिब्बत में मौसम अच्छा रहता है। भिन्न-भिन्न धुरों की बर्फ़ पिघल जाती है। रास्ते चलने लायक़ हो जाते हैं। इन्हीं दिनों भारत व तिब्बत की सीमा पर मण्डियाँ लगती हैं, जिनमें सब तरह के माल का लेन-देन होता है। लद्दाख के व्यापारियों की मण्डी रुदोक में है; शिमला, बुशायरवालों की गरतोक में, और गढ़वाल की दावा में है। भोटिये व्यापारियों की दो मण्डियाँ हैं; जोहारवालों की ग्यानमा में, और व्यांस चौन्दासवालों की तकलाकोट में। इन सब स्थानों में साल भर कोई आबादी नहीं रहती। श्रावण आया और व्यापारी अपना-अपना माल लेकर आ पहुँचे। मकान नहीं होते, सफ़ेद तम्बुओं में ही सब कार-बार होता है। दो-तीन महीने तक इन मण्डियों में खूब रौनक रहती है। भारतीय व्यापारी सूती कपड़ा धातु का सामान, तेल व अनाज बेचते हैं और ऊन, नमक व सुहागा ख़रीदते हैं।

मण्डी तकलाकोट

हमने काली नदी के रास्ते तिब्बत में प्रवेश किया था, इस रास्ते की मण्डी तकलाकोट में है। तकलाकोट ज़िले का स्थान है। इसकी परिस्थिति बड़ी सुन्दर है। छोटी पहाड़ियों में करनाली गंगा की तीन धारायें बह रही हैं। दक्षिणी मैदान में हरे-हरे खेत लहलहा रहे हैं; बड़ी धारा और छोटी धारा के बीच भिन्न-भिन्न स्थानों पर तम्बू गड़े हैं। कई मकान पहाड़ खोदकर बनाये गये हैं। इन तम्बुओं में हज़ारों रुपये का माल बिक्री के लिए मौजूद रहता है। छोटे पिन से लेकर बढ़िया रेशमी कपड़े तक आप यहाँ ले सकते हैं। हाँ, सब माल थोड़ा महँगा ज़रूर मिलेगा। मण्डी के ऊपर पहाड़ी के शिखर पर जोंगपन (ज़िले का शासक) का महल और लामा लोगों के मठ हैं। पश्चिम में थोड़ी दूर पर हिमालय की हिमजटित शृंखला चली

गई है। इसीको पार करके हम तिब्बत पहुँचे हैं। इसी हिमालय के दूसरी ओर मेरा प्यारा भारत है। पूर्व में गगनभेदी गुर्ले मान्धाता सिर उठाये खड़ा है। इस परिस्थिति में ही तकलाकोट बसा है।

हम तकलाकोट में दो रात रहे। मण्डी से बाहर पाँच-सात तम्बू थे। इन में बीस-बाईस बंगाली साधु व गृहस्थ ठहरे थे। ये लोग भी कैलास जा रहे थे। श्रीरामकृष्ण मिशन के मंत्री स्वामी अनुभवानन्दजी इस दल के मुखिया थे। इस मण्डली में पाँच साधु, तीन डाक्टर, दो काशीवासी पण्डित व कुछ अन्य महानुभाव थे। इस मण्डली का साथ हमारे लिए बहुत लाभदायक हुआ। इन के साथ तीन बन्दूकें भी थीं। मानसरोवर से कैलास जाने में डाकुओं का डर बना रहता है, अतः बन्दूक का साथ होना आवश्यक है। इस मंडली के साथ दुभाषिया भी था। इस मण्डली के साथ यात्रा करने से हमें इन प्रबन्धों की चिन्ता न रही।

तकलाकोट मंडी

तकलाकोट से कैलास होकर ग्यानिमा पहुँचने में दस दिन लगते हैं। ग्यानिमा जोहारवालों की मण्डी है। इन दस-बारह दिनों के लिए हम रसद साथ लेनी पड़ी। तिब्बत में वायु हलकी होने से खाना पकाने में बड़ी दिक्कत होती है। वहाँ दाल या चावल नहीं गलते लकड़ी न होने से स्टोव साथ ले जाना पड़ता है। तकलाकोट में आटा रुपये का तीन सेर, सत्तू तीन सेर व गुड़ ढाई सेर है। हम चारों ने पन्द्रह सेर आटा व पन्द्रह सेर सत्तू भर लिया। गुड़ पाँच सेर ले लिया। नमक सस्ता है, डेढ़ रुपये मन मिल जाता है, परन्तु ठग भोटियों ने हमें चार आने का आध सेर देकर जेब गरम की। कुछ मेवा भी लिया और हम कैलास की भावी यात्रा के लिए सन्नद्ध हो गये।

बौद्ध मठ

१७ जुलाई की शाम को हमने पहाड़ी पर जाकर बौद्ध मठ के दर्शन किये। रास्ता घूमकर ऊपर पहुँचता है। मठ बहुत बड़ा है। फाटक पर पहुँचते ही एक लामा ने 'खमजम भो खमजम' (स्वागत भाई स्वागत) कहकर स्वागत किया। तिब्बती मिलते समय इन शब्दों का उच्चारण करते हैं। सब से पहले वाम पार्श्व में मठ का भोजनालय है। एक अन्धेरे कमरे में बड़ा भारी चूल्हा बना है। चूल्हा दस फुट ऊँचा है, लम्बाई-चौड़ाई में पन्द्रह फुट से कम न होगा, पूरा एक कमरा समझिए। एक ही चूल्हे पर चार तरह के भोजन एक साथ बन सकते हैं। हमारे सामने उस पर एक ओर चाय का बड़ा बर्तन चढ़ा हुआ था। इस बर्तन में ढाई तीन मन से कम पानी न आता होगा। दूसरी तरफ अन्य प्रकार के खाद्य तैयार हो रहे थे। तिब्बत में लकड़ी का अत्यन्त अभाव है। डावा नाम की एक बूटी सर्वत्र पाई जाती है जो हरी ही जल जाती है। भेड़ या बकरी की मेंगनी या गोबर भी जलाने के काम में आता है। किन्तु इन सर्वत्यागी लामा लोगों के भण्डार में मनों लकड़ी पड़ी थी और भक्त-जन लगातार ला रहे थे। दिन-भर भोजनालय में कुछ न-कुछ पका करता है। भण्डारी महोदय की देह भी पौष्टिक भोजनों से खूब विशाल हो गई है।

भोजनालय के बाद लामा लोगों के रहने के आश्रम हैं।

बौद्ध लोग धर्म के अधिक प्रेमी होते हैं। सभी बौद्ध देशों में प्राचीन गुरुकुलों के ढंग पर शिक्षा देने का प्रबन्ध है। तिब्बत में भी यही रिवाज है। जो अपने बच्चे को धर्मगुरु बनाना चाहे वह उसे मठ में भेज देता है। बचपन से विद्यार्थी को वहाँ ठहरना होता है। मठ में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध है। यदि किसी की इच्छा गृहस्थ रहने की हो तो वह मठ छोड़कर अपने घर चला जाता है, अन्यथा मठ में ही रहता है। मठ में पाँच वर्ष के बच्चे भी हैं और साठ वर्ष के बूढ़े भी। तिब्बती गृहस्थ लम्बे केश रखते हैं। लामा या ब्रह्मचारी केश कटवाते हैं और लाल रंग का लम्बा अँगरखा पहनते हैं। धर्म-ग्रन्थों का पाठ प्रातः-सायं होता है। लामा कुछ न कुछ जप हर समय किया करते हैं। इस मठ में ८० के लगभग लामा रहते हैं। इनके खान पान व भरण-पोषण का सब प्रबन्ध भक्त लोग करते हैं। हिन्दुस्थान के साधुओं की रीति ये लामा लोग भी तिब्बतियों के लिए भार हो रहे हैं। भूखे नंगे तिब्बती अपने-आप अनशन करके इन लामा लोगों की भेंट-पूजा करते हैं। उधर इन लामा लोगों को कोई चिन्ता नहीं, खाया-पिया और सैर सपाटा किया। देश व धर्म के प्रति इनके क्या कर्तव्य हैं, साधु का चोला उन्हें क्यों मिला है, इसको उन्हें कोई खबर नहीं। यही कारण है कि तिब्बत इस प्रकाश के युग में भी अज्ञान की नींद सो रहा है। इस मद से छूटने में उसे अभी बहुत दिन लगेंगे।

मठ में विचित्र ढंग के कई देवी-देवता हैं। लकड़ी का एक बड़ा चक्र है। इसका नाम मनि देवता है। पूजा के समय यह गोल घुमाया जाता है। पूछने पर साथ के लामा ने कहा, यह राम राम कर रहा है। इस चक्र को जो जितना अधिक घुमावे वह उतना अधिक धर्माधिकारी माना जाता है। स्थान-स्थान पर सुन्दर अक्षरों में 'ॐ मनि पद्मे हुँॐ' मन्त्र लिखा है। दो-एक कमरों की दीवारों पर चित्रों में भगवान् बुद्ध की जीवनी अंकित है। इनको देखकर भक्त की भावना में नवजीवन का उदय होता है। मठ में सिंगी, चोरदंग, अईब नाम के कई अन्य देवता भी हैं। हमारे लामा को हिन्दी का ज्ञान थोड़ा ही था, अतः इन देवताओं का परिचय भली प्रकार न मिल सका।

मठ के आचार्य यथार्थ में शान्ति की प्रतिमा हैं। एक अन्धेरी गुफ़ा में से होकर हम चौथी मंज़िल में दाखिल हुए। एक छोटे से कमरे में मठ के आचार्य खड़े थे। ये सब लामाओं के गुरु थे। लामा-गुरु को अपने भवन से बाहर जाने का निषेध-सा है, भक्तों को वह अपनी गद्दी पर ही दर्शन देते हैं। हमें आते देखकर आचार्य एक अन्धेरे स्थान में जा पहुँचे। हम भी पीछे-पीछे गये। हमारे सामने ऊँची वेदी पर आचार्य बैठे थे। आचार्य का चेहरा शान्त एवं गम्भीर था। आयु ६० वर्ष से अधिक था, किन्तु मुख-मण्डल पर तेज चमक रहा था। इस तेजोमूर्ति के दर्शन से हमें भगवान् बुद्ध की विशालता का स्मरण हो आया। आख़िर लामा भी तो भगवान् के स्वरूप ही समझे जाते हैं। गुरु की गद्दी के दक्षिण हाथ में भगवान् की दो सम्मिलित मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। हमने श्रद्धा-भक्ति के साथ आचार्य के चरणों में प्रणाम किया। लामा ने हमें बैठने का संकेत किया। हम भारत से आये हैं, यह जानकर आचार्य को बड़ी प्रसन्नता हुई। भारत ने ही भगवान् बुद्ध को जन्म दिया है। बौद्ध लोग भारत-भूमि को आदर दृष्टि से देखते हैं। हम भारतवासी थे। आचार्य ने हमें आशीर्वाद दिया और सुनहरी डिबिया में से निकालकर तीन-तीन गोलियाँ खाने को दीं। गुरु का भक्तों के लिए यही प्रसाद था। साथ के लामा ने बताया कि इन गोलियों को खाने से मनुष्य मृत्यु के बाद निर्वाण को प्राप्त होता है। जिनके आदि गुरु सत्कर्मों को निर्वाण का साधन समझते थे; उन्हीं के शिष्य आज निर्वाण को दुनिया का सौदा समझते हैं,—यह जानकर दुःख हुआ। आचार्य के निकट शुद्ध वातावरण में हम आध घण्टा बैठे रहे। सारे मठ को देखकर ग्लानि हुई थी, आचार्य के दर्शन से श्रद्धा का संचार हुआ। पुनः तीन बार प्रणाम करके हमने आचार्य से विदा ली। ओंगरन के महलों में देखने लायक कुछ नहीं है। थोड़ी रात गये हम अपने डेरों पर वापस आ गये।

१८ जुलाई के प्रातःकाल हमें तकलाकोट से मानसरोवर के लिए प्रस्थान करना था। रसद का प्रबन्ध हमने भोटिये की दूकान से कर ही लिया था। तिब्बत में बोझा ढोने के लिए कुली नहीं मिलते। वहाँ के लोग चँवरगाय

से वह काम लेते हैं। चँवरगाय बड़ी सुन्दर होती है। परमात्मा ने शीत-निवारण के लिए इसके शरीर पर बड़े-बड़े बाल दिये हैं। डील-डौल बहुत बड़ा होता है। रंग काला, सफ़ेद, नीला व भूरा होता है। इसकी पूँछ से चँवर बनाये जाते हैं। तिब्बती लोग इसे याक कहते हैं। याक दूध भी देता है। और दो मन बोझा भी ढोता है। याक तिब्बत या उच्च हिमालय के इधर नहीं आ सकता। देशी गाय और याक के मेल से जो जाति बनती है, उसे झब्बू कहते हैं। यह गर्मी अधिक सहता है और चलता भी अधिक है। हमने अपनी मण्डली के लिए दो झब्बू दो रुपये रोज़ पर कर लिये। यात्रा हमने पैदल ही की थी, किन्तु कई बंगालियों ने तो सवारी के लिए भी झब्बू व घोड़े का प्रबन्ध किया था।

तकलाकोट तिब्बत का पहला पड़ाव है। अब हमें भीतर के प्रदेश में जाना था। तकलाकोट से ग्यानिमा तक हम दस दिन में गये थे। तिब्बत की यात्रा के असली दिन यही थे। तकलाकोट से हम मानसरोवर गये, वहाँ से कैलास, और फिर ग्यानिमा। सारे मार्ग में आबादी का नाम न था। हमारे ये दिन कैसे बीते, हम कहाँ रहे, हमने क्या देखा, इसका वर्णन आगे किया जायगा।

भारतीय

[श्री कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी]

हमारी माता का गौरव-सूर्य क्षितिज से नीचे उतर चुका था। हम राम-राज्य का सपना भूल चुके थे। कृष्णार्जुन का बीज देश में नहीं बचा था। अकबर के दुर्दण्ड प्रताप के आगे देश की समस्त ज्योतियाँ मन्द पड़ चुकी थीं। पर हमारे ऐसे गये-गुज़रे ज़माने में भी अरावली पर्वत के शिखर पर भारतीयता की एक जीवित ज्योति थोड़ी देर को जगमगाने लगी थी।

चित्तौड़ पर शत्रु-दल घेरा डाले पड़ा था। बाहर-भीतर का आना-जाना बन्द था। इसी तरह महीनों गुज़र गये थे, अन्न-जल का भी कष्ट होने लगा था। चित्तौड़ का राजा स्वयं अपने प्राण बचाने को कायरता की कालिमा अपने मुख पर पोत जंगल को निकल भागा था। तिस पर भी वीरगण जीवन रहते अपना झण्डा उठाये रखने को तैयार थे। सेनापति जयमल रात-दिन घोर परिश्रम करके देश-रक्षा का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु दैववश वह एक रात को क़िले की मरम्मत कराते समय स्वयं भी सम्राट् की गोली का निशाना बनकर वीरगति को प्राप्त हो गये। राजा भाग चुका था, सेनापति मारा गया, अब चित्तौड़वासी क्या करेंगे? क्या अब भी वे सम्राट को शीश नवाने को बाध्य न होंगे?

दूसरे ही दिन क़िले के एक कोने से आग की ज्वाला भभकी। अकबर ने चौंककर देखा। समझा, मेरी तोपों ने क़िले का कोई भाग नष्ट कर दिया है। किन्तु राजा मानसिंह यह दृश्य देखकर काँप गये। उन्होंने तुरन्त ही सम्राट् को समझा दिया कि अब राजपूतों ने जौहर कर डाला है, जाति की आशा को उन्होंने इस आग में जला डाला है, और साथ ही अपने स्त्री-कुल के मोह को छोड़कर उन्हें भी इस अग्नि के समर्पण कर दिया है, अब तो वे केवल आपको पुराना जौहर दिखलाने को रण में उतरेंगे। ऐ तुरका-कुल भूषण सावधान! भारत में आ कर यह भारतीय वस्तु राजपूतों का जौहर देखने को सावधान हो जा।

बस, राजपूत मुग़ल-सेना पर टूट पड़े। भूखे

बाघ भेड़िया-दल में धँस गये। एक-एक राजपूत दो-दो तलवारें लेकर रण में उतरा और उसकी एक-एक तलवार अपने एक-एक वार में चार-चार शत्रुओं का सफाया करने लगी। अकबर चिन्तित था कि उसके सामने मनुष्य हैं अथवा देव और दानव युद्ध कर रहे हैं! वीर बालक फत्ता इस केशरिया बाना धारी सेना का सञ्चालन कर रहा था, उसकी वीर माता और वीर पत्नी भी हाथ में कृपाण लिये हुए शत्रु-दल को काट रही थीं। ये सभी योद्धा अन्त में बड़ी वीरता-पूर्वक लड़कर मारे गये। फत्ता संग्राम में जूझ गया—किन्तु उसकी लड़ाई आदमियों से नहीं हुई थी। सम्राट् ने उसके ऊपर अपने खूनी हाथियों का झुण्ड संग्राम करने को भेजा था।

विजयी अकबर ने चित्तौड़ में प्रवेश किया—किन्तु वह जन-शून्य श्मशान-वत् था। उसकी विजय हुई, किन्तु मुर्दों के ढेर मनुष्यहीन मकानों पर, मुग़ल-सम्राट् का झण्डा उड़ा, उस समय, जब उसको सिर झुकाने के लिए कोई चित्तौड़-वासी नहीं आ सकता था।

उन्हीं दिनों हमारा गौरव था, तभी हमारी माता का अद्भुत प्रताप था। जब हम अपनी भारतीयता की रक्षा करने को अपनी गरदन कटाने को तैयार रहते थे, तभी सब लोग हमारी इज्ज़त करते थे। जब हम अपने मान को बनाये रखने के लिए हर घड़ी अपनी छाती में घड़ों लोहू भरे रहते थे, तभी सब लोग हमें अपने सिर-आँखों पर बिठलाते थे। किन्तु अब तो हममें भारतीयता की वह साध शेष नहीं रही, फिर भारत का वह गौरव कैसे रहता? हम एक टुकड़ा खाकर लाखों ठोकरों और घोर अपमान के समक्ष भी यह चार दिन की जिन्दगी बनाये रखने के लिए दाँत दिखलाते हैं, फिर हमारी इज्ज़त कौन करे?

भारतीयता की अग्नि आज भी जल रही है, किन्तु अब उसमें वह गर्मी और शक्ति नहीं है। भारतीय कैसे हैं, इसका पता यदि आज लगाना है, तो रामायण और महाभारत पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, अशोक और बुद्ध पर दृष्टि डालने की ज़रूरत नहीं है, प्रताप और शिवाजी का रूप देखना व्यर्थ है, आप सीधे जर्मनी के शौकीनों के अजायबघरों में चले जाइए। वहाँ आपको जंगली सुअरों और अफ्रीका के वन-मानुषों की बगल में चिथड़े लपेटे मिट्टी के हाँडियों में पानी पीते एक-एक नाड़ी के लिए सिर-फुटौवल करते मालिक की जूठन को अपने सिर माथे रखने वाले मनुष्य जैसे प्राणियों की एक जाति नज़र आवेगी और वहाँ का कोई भी आदमी आपको झट बतला देगा कि यही भारतीय है।

अपनी खुशी से थोड़े-से आराम के लिए अपनी आज़ादी बेचने वाले भारतीयो! अपना यह सच्चा स्वरूप देखकर मन चौंका। इस सत्य को सुनकर तुम्हें क्रोध हो आता है, तो उस क्रोध को अपनी कुरीतियों के ऊपर उतारो। यदि इस तरह कोंचे जाने पर तुम्हारे हृदय में आग जलने लगती है, तो उस आग में अपने दासता के स्वभाव को भस्म कर डालो। यदि तुम मुर्दा न होकर अपने भीतर जीवित जोश रखते हो तो सच्चे भारतीय बनने का यत्न करो। तभी तुम्हारा खोया गौरव तुमको पुनः प्राप्त होगा।

परमहंस स्वामी रामतीर्थ

[श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार]

जन्म और बाल्यावस्था

स्वामी रामतीर्थ का जन्म पंजाब-प्रान्त के गुजरानवाला जिला में मराली नामक गाँव में ८ अक्तूबर सन् १८७३ ई० को हुआ था। आपके पिता का नाम गोस्वामी हीरानन्द था। आपका बाल्यावस्था का नाम तीर्थराम था, जिसे आपने संन्यास लेने के बाद रामतीर्थ बदल दिया। आप अभी बालक ही थे कि माता का देहान्त हो गया। उस समय आपका लालन-पालन आपके बड़े भाई गोसाईं गुरुदास और उनकी फूफी ने किया था। मातृ-स्नेह एवं मातृ-दुग्ध से वंचित रहने के कारण तीर्थराम बालपन में बड़े दुर्बल रहते थे।

शिक्षा

बालक तीर्थराम अपनी शारीरिक दशा ठीक न होने पर भी पढ़ने-लिखने में खूब मन लगाते थे। अपने गाँव मरालीवाला में ही उन्होंने प्रारम्भिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की थी। पीछे वह गुजरानवाला नगर में विद्याभ्यास करने लगे। अपने विशेष परिश्रम और विलक्षण प्रतिभा से आप अध्यापकों को सदा प्रसन्न रखते थे। आपकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र थी। प्रत्येक बात का बहुत सोच-समझकर उत्तर देते थे। लगभग १५ वर्ष की अवस्था में आपने पंजाब-विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की जिसमें आप सबसे प्रथम रहे थे।

भगतजी का सत्संग

जिस समय तीर्थराम अपने गाँव मरालीवाला से गुजरानवाला में आकर पढ़ने लगे थे, उस समय वहाँ पर धन्ना भगत नाम के एक सज्जन रहते थे। भगतजी किसी आधुनिक विश्वविद्यालय के पुछल्लों से भूषित नहीं थे, पर उनका हृदय उच्च और विचार पवित्र थे। अखबारी दुनिया में उनके नाम का विज्ञापन नहीं था, परन्तु गुजरानवाला और आस-पास के गाँवों से लोग बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उनके उपदेशों को सुनने आते थे। दैवयोग से बालक तीर्थराम की भी भगतजी से भेंट हुई और वह उनके पास ही गुजरानवाला में रहने लगे। पढ़ने से जो समय मिलता, तीर्थराम उसे भगतजी के सत्संग में ही व्यतीत करते। इस सत्संग ने उनके हृदय पर गहरी छाप डाल दी। भगतजी वेदान्ती थे। उन्होंने विद्यार्थी तीर्थराम को भी वेदान्त की ही शिक्षा दी थी। यह धन्ना भगतजी की शिक्षा का ही प्रभाव था कि तीर्थराम आगे चलकर जापान और अमेरिका में वेदान्त की गूढ़ शिक्षाओं को समझाने योग्य हो सके। एण्ट्रेन्स पास कर लेने के बाद तीर्थराम के पिता की इच्छा हुई थी कि इन्हें उच्च शिक्षा न दिलाकर किसी रोजगार में लगा दिया जाय, पर धन्ना भगतजी ने ही अंग्रेजी की उच्च शिक्षा दिलाने का अनुरोध गोसाईं हीरानन्द जी से किया। फलतः उन्होंने अपने सुपुत्र तीर्थराम को गुजरानवाला से लाहौर पढ़ने को भेज दिया।

लाहौर में अध्ययन

तीर्थराम लाहौर में मिशन कालेज में भर्ती हुए। यहीं से आपने बी० ए० पास किया। इस परीक्षा में वह पंजाब भर में प्रथम रहे, जिससे उन्हें ६०) रु०

मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। तीर्थराम कालेज में पढ़ते हुए बहुत सादगी से रहते थे। फ़ैशन की ओर आपका तनिक भी ध्यान नहीं था। आप प्रायः चुप रहते थे और आध्यात्मिक चिन्तन में लगे रहते थे। छात्रवृत्ति के ६०) में से आप बहुत कम खर्च करते थे, शेष रुपया घर भेज देते थे। अथवा अपने गुरु (धन्ना भगत जी) की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगा देते थे। तीर्थराम जी का गणित में विशेष अनुराग था। बी० ए० पास करने के बाद आपने सरकारी कालिज में एम० ए० पास किया। उस समय आपकी आयु २१ वर्ष की थी।

कालेज में अध्यापक

गणित में विशेष अनुराग होने से तीर्थराम जी ने छात्रावस्था में ही गणित का अध्यापक होने की ठान ली थी। कहते हैं लाहौर गवर्नमेण्ट कालेज के तात्कालिक प्रिन्सिपल श्री डब्ल्यू बेल ने तीर्थराम जी की प्रतिभा और असाधारण योग्यता देख उनसे 'प्रांतीय सिविल सर्विस' में भर्ती होने को कहा था, परन्तु गणित की ओर विशेष झुकाव होने के कारण आपने यह स्वीकार नहीं किया। एम० ए० पास करने के बाद आप लाहौर गवर्नमेण्ट कॉलेज में कुछ दिन 'रीडर' रहे, फिर स्यालकोट के मिशन कॉलेज में गणित के अध्यापक हो गये। इसके बाद लाहौर के मिशन कॉलेज में दो वर्ष तक गणित के अध्यापक रहे। उन दिनों गणित की उच्चतम परीक्षा 'सीनियर रेंगलर' पास करने के लिए लन्दन के कैम्ब्रिज कालेज में जाना होता था, जिस के लिए सरकारी छात्रवृत्ति मिलती थी। तीर्थरामजी को गणित में स्वाभाविक अनुराग था। आप भी इस छात्रवृत्ति के लिए उम्मीदवार हुए, पर साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण यह वृत्ति आप से कहीं कम योग्यता वाले एक मुसलमान छात्र को दी गई। यद्यपि इससे आप को कुछ निराशा और दुःख तो अवश्य हुआ, पर कभी-कभी बुराई से भी भलाई हो जाती है। यदि तीर्थराम 'सीनियर रेंगलर' हो जाते तो देश को स्वामी रामतीर्थ के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त न होता!

संन्यास-आश्रम में

तीर्थराम बचपन से ही एकान्तसेवी और विरक्त स्वभाव के थे। गृहस्थ-आश्रम में रहते हुए, कालेज में अध्यापकी करते हुए, और सांसारिक धन्धों को करते हुए भी आपका मन विरक्त रहता था। आपकी आत्मा इन बन्धनों से मुक्त होने और प्रभु के साक्षात्कार के लिए सदा व्याकुल रहती थी। सन् १८९७ की दिवाली के दिन आपने पत्र द्वारा अपने पिता को इस आन्तरिक परिवर्तन की सूचना दी, जिसमें आपने लिखा था— 'आपके लड़के तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया, बिक गया राम के आगे! उसका अपना नहीं रहा। आज दीवाली को अपना शरीर हार दिया और महाराज (परमेश्वर) को जीत लिया। आपको बधाई है!" दो वर्ष बाद सन् १८९९ में अध्यापक तीर्थराम एम० ए० ने सांसारिक बन्धनों को तोड़ संन्यास ग्रहण कर लिया और अपना नवीन नाम रामतीर्थ रक्खा। जिस समय आपने संन्यास-आश्रम ग्रहण किया, उस समय आपकी आयु २६-२७ वर्ष की थी। सन्तान दो पुत्र और एक कन्या थी। अपनी प्राण-प्यारी स्त्री का प्रणय, नन्हें-नन्हें लड़के-लड़कियों का स्नेह और पिता, भ्राता, सम्बन्धी, मित्र इत्यादि का प्रेम आपके मार्ग में कोई बाधा उपस्थित न कर सके। वह महात्मा अपने महाव्रत में अटल रहा।

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् स्वामी रामतीर्थ

हिमालय पर्वत पर एकान्त-सेवन के लिए चले गये। वहाँ से आपने 'अलिफ़' नामक उर्दू मासिकपत्र निकाला जो लाहौर से प्रकाशित होता था। यह पत्र स्वामी जी के भक्ति और वेदान्त-तत्त्व के रहस्यों पर भावपूर्ण लेखों से भरपूर होता था। वहीं से आपने अंग्रेजी की एक छोटी-सी पुस्तिका 'हिमालय के दृश्य' (Himalyan Scenes) प्रकाशित की थी, जिसमें बड़े मनोहर और गम्भीर आध्यात्मिक अनुभवों का प्रकाश किया है।

धर्म-महोत्सव

एक वर्ष तक तपस्या और चिन्तन करने के पश्चात् श्री स्वामीजी ने देश में प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया। आपके व्याख्यान बड़े ही भक्तिपूर्ण, सरस और प्रभावोत्पादक होते थे। भक्ति के उद्रेक में आप बहुधा अश्रु-विमोचन कर बैठते थे और श्रोताओं के नेत्रों में भी आँसू छलकने लगते थे। सन् १९०१ में स्वामी जी के उद्योग से इसी प्रकार का एक 'अखिल भारतीय धर्म-महोत्सव' मथुरा में हुआ था, जिसमें ईसाई, मुसलमान तथा हिन्दुओं के भिन्न-भिन्न समुदायों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। इस प्रकार के महोत्सव आपके उद्योग से उत्तरभारत के कई स्थानों पर हुआ करते थे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतों और समुदायों को एक रंग में लाकर इकट्ठा करना और उनमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम, सहानुभूति और सहिष्णुता उत्पन्न करना उन दिनों एक नवीन और प्रथम ही प्रयास था, जिसका श्रेय स्वामी रामतीर्थ जी को ही है। प्रायः अपने व्याख्यानों में किसी धर्म व समुदाय पर आक्षेप नहीं करते थे और यदि कभी किसी सिद्धान्त का खण्डन करना आवश्यक होता था तो बड़े मधुर और कोमल शब्दों में करते थे। आप अपने निजी वार्त्तालाप में भी किसी के चित्त को दुखाने वाली बात नहीं कहते थे। आप अपने को सदा रामबादशाह कहा करते थे। और सदा प्रसन्नमुख रहते थे। आपके पास कुछ क्षण बैठने से ही ऐसा अनुभव होता था कि पाप और शोक दूर भाग रहे हैं और आत्मा पुण्य, प्रसन्नता और उच्चता की ओर बढ़ रही है। जिसके निकट बैठने से ही ऐसा अनुभव होता था, उस व्यक्ति की अन्तरात्मा कैसी उच्च, दिव्य, पवित्र और तेजस्विनी होगी ! उन दिनों उत्तर भारत में आपके व्याख्यानों की धूम मची हुई थी।

विदेश-यात्रा

सन् १९०२ में स्वामी रामतीर्थ ने मिश्र, जापान अमेरिका इत्यादि देशों की यात्रा की। इसमें आपको लगभग ३ वर्ष लगे। आप जिस देश में भी गये, वहाँ आप के व्याख्यानों की धूम मच गई। मिश्र के मुसलमानों ने आप को वहाँ की सब से बड़ी मस्जिद में निमंत्रित कर व्याख्यान कराया। इस व्याख्यान से वहाँ के मुसलमान बहुत प्रभावित हुए। जापान में आपके व्याख्यानों को सुनकर टोकियो-यूनिवर्सिटी के संस्कृत अध्यापक श्री 'टाकूकुन्सू' ने कहा था—"अभी तक केवल यही एक सच्चे दार्शनिक विद्वान् देखे गये हैं।" अमेरिका की जनता तो आपके व्याख्यानों पर लट्टू हो गई थी। अमेरिका-निवासियों की दृष्टि में भारतीयों को सम्मान और गौरव प्राप्त कराने का श्रेय स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द को ही है। अमेरिका में श्री स्वामी जी के व्याख्यानों का जो प्रभाव हुआ था, उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वहाँ पर आपको अमेरिकनों के अनुरोध और आग्रह से कई बार दिन में छः-छः व्याख्यान देने पड़ते थे, तिस पर भी उन लोगों की आध्यात्मिक तृप्ति नहीं होती थी।

स्वामी राम ने आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय देने के साथ-साथ अपने शारीरिक बल से भी वहाँ के निवासियों को चकित कर दिया था। एकबार सिपाहियों के साथ तीन मील की दौड़ में आप सब से आगे निकले थे। नदी में २० मील तक लम्बा तैरते रहे थे। पोर्टलैण्ड की 'राम-सोसायटी' के सभापति और वहाँ के जज श्री बेन्सटर ने एक बार कहा था—"प्रथम बार ही राम से मेरी भेंट हुई और बात-चीत तक भी नहीं की थी, लेकिन उनके दर्शन करते ही एक प्रकार का प्रेम हो गया, जैसा किसी और के देखने से आज तक नहीं हुआ। इस प्रेम अर्थात् राम के दर्शन करने से जो प्रेम उत्पन्न हुआ है, उसका प्रभाव सदैव रहेगा।"

अमेरिका-निवासी स्वामी राम पर किस प्रकार गूढ़ भक्ति और श्रद्धा रखते थे, इसका उदाहरण वहाँ की एक भद्र महिला श्रीमती वेलसेन के जीवन से स्पष्ट हो सकता है। यह महिला वृद्धा और इस देश की भाषा से अनभिज्ञ होने पर भी भारत में स्वामी रामतीर्थ के दर्शनों के लिए आई और बहुत दिनों तक यहीं रही। राम के पीछे-पीछे जंगलों और पहाड़ों में फिरती रही और राम के प्रेमियों से मिली, अमेरिका लौटने से पूर्व वह लाहौर, अमृतसर और राम की जन्मभूमि मराली' ग्राम जिला गुजरानवाला भी गई थी। एमनाबाद और मरालीवाला रेलवे स्टेशन से स्वामीजी की जन्मभूमि तक वह जंगलों और खेतों को बड़े प्रेम और चाव से देखती जाती थी और बार-बार कहती थी कि "राम इस जंगल-खेत में से हो कर कितनी बार निकले होंगे।" जिस घर में राम का जन्म हुआ था; जिस पाठशाला में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई थी, तथा आपके खेलने-कूदने, उठने-बैठने के स्थानों को बड़ी श्रद्धा और कौतूहल से देखती रही। राम के बच्चों, राम की धर्मपत्नी तथा अन्य घर वालों से वह बड़े आदर और प्रेम से मिलती रहती थीं। यह अमेरिकन महिला न केवल आप ही स्वामी रामतीर्थ के प्यारे शब्द 'ओ३म्' का निरन्तर जप करती थी, किन्तु उसके पास जो आता था, उससे भी "ओ३म्" शब्द का जाप कराती थी।

अमेरिका की 'सेन्ट लुई प्रदर्शिनी' के अन्तर्गत धार्मिक सभा (Religious League) में स्वामी रामतीर्थ का इतना प्रभाव पड़ा था कि वहाँ के समाचारपत्रों ने लिखा—"सारी सभा में वह स्थान बड़ा सुन्दर था जहाँ स्वामी रामतीर्थ उपस्थित थे।" अमेरिका की 'ग्रेट पैसिफिक रेलवे रोड कम्पनी' के मैनेजर स्वामी राम की मुसकराहट पर मोहित थे। अमेरिका के कई गिरजाघरों में भी आप के व्याख्यान हुए थे।

प्रश्न हो सकता है कि स्वामी रामतीर्थ की इस यात्रा से भारत को क्या लाभ पहुँचा? स्वामीजी की इस यात्रा से विदेशियों पर भारतवर्ष की सभ्यता और ज्ञान का सिक्का बैठ गया, जिससे उनकी दृष्टि में इस देश का सम्मान बढ़ गया। पादरी लोग विदेश में जाकर भारत के और विशेषतः हिन्दुओं के सम्बन्ध में जो अनर्गल अपवाद रुपया इकट्ठा करने के लिए फैलाते रहते हैं, स्वामीजी की इस यात्रा से वह बहुत अंश तक दूर हो गये। फिर आपके प्रयत्न और प्रभाव से जापान और अमेरिका में भारतीय छात्रों के लिए कई सुविधायें प्राप्त होगई। स्वामीजी के व्याख्यानों में केवल आध्यात्मिक तत्त्व ही नहीं रहता था, अपितु उसके साथ-साथ देश और मातृभूमि के प्रति श्रद्धा के भाव कूट-कूटकर भरे होते थे। इससे अमेरिका-निवासियों की सहानुभूति विशेषतः भारत की ओर खिंच गई। सच तो यह है, इस बीसवीं सदी में स्वामी रामतीर्थ और स्वामी

विवेकानन्द के व्याख्यानों से विदेशविशेषतः अमेरिका में भारतीय सभ्यता की जो छाप बैठ गई वह कई सौ पुस्तकों से भी नहीं बैठ सकती थी।

भारत-प्रत्यागमन

इस प्रकार तीन वर्ष तक विदेश में विजय पताका फहरा कर सन् १९०५ में स्वामी रामतीर्थ स्वदेश को लौटे। यहाँ पर फिर आपके व्याख्यानों की धूम मच गई। लगभग १ वर्ष तक आप इसी प्रकार देश के कोने-कोने में आध्यात्मिक उन्नति और विकास का सन्देश पहुँचाते रहे। इसके बाद आप फिर हिमालय पर्वत पर एकान्त-सेवन के लिए चले गये।

जल-समाधि

दिवाली की रात थी। सारे देश में मिट्टी के दीपकों से प्रकाश हो रहा था। परन्तु, उसी रात ज्ञान का सच्चा दीपक निमग्न हुआ। सन् १९०६ की दीवाली ने ज्ञान का दीवाला निकाला। स्वामी रामतीर्थ का जन्म दीवाली के दिन हुआ, उन्होंने संन्यास दीवाली पर लिया और उनका प्रयाण भी दीवाली पर हुआ। आपकी आयु उस समय केवल ३५ वर्ष की थी। स्वामीजी की मृत्यु का वृत्तान्त भी बड़ा विचित्र है। आप उन दिनों ऋषिकेश में थे। कहते हैं, पहले आपने अपने अधूरे लेखों को पूरा किया। मृत्यु से कुछ ही पूर्व उन्होंने एक लेख लिखा, जिसका आशय यह था—"ऐ मौत! बेशक ले ले तू मेरे इस शरीर को, मुझे इसकी पर्वाह नहीं है। मेरे पास व्यवहार करने के लिए कुछ कम शरीर नहीं हैं। केवल चन्द्रमा की किरणों के चाँदी के पवित्र तार पहन कर जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। यहाँ ही नहीं; नाले के वेष में गीत गाता फिरूँगा। समुद्र की लहरों में नाचता रहूँगा।·········इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़, यह आया, वह गया, न कुछ रक्खा, न किसी के हाथ लगाया।"

यह लेख लिखकर क़रीब दोपहर को स्वामीजी गंगा गये, और वहीं जल-समाधि ले ली! किसी-किसी का कहना है—यह सम्भव भी प्रतीत होता है—कि आप तैराक तो थे ही। तैरते-तैरते भागीरथी की धार में पड़ गये और निकल न सके, इसलिए आपने वहीं समाधि लगा ली। सुनते हैं, ७ दिन तक लगातार खोज करने पर भी स्वामीजी की देह नहीं मिल सकी। परन्तु ८ वें दिन एक गुफा में आपका शरीर पद्मासन लगाये खुले मुँह ठीक वैसा जैसा कि आप व्याख्यान देते समय 'ओ३म' शब्द उच्चारण करते थे—मिला था। स्वामीजी के शिष्यों ने उस शरीर को एक सन्दूक में बन्द कर गंगा के अर्पण कर दिया। यद्यपि परमहंस स्वामी रामतीर्थजी का पञ्चभौतिक शरीर गंगा के गर्भस्थ हो गया, पर आपकी पवित्र और सौम्यमूर्ति तथा धवल यश सदा अमिट रहेंगे।

देशव्यापी शोक

स्वामीजी की मृत्यु से देश भर में शोक छा गया। टिहरी महाराज ने यह दुखद-समाचार सुनते ही सब राज-दरबार बन्द कर दिया। लाहौर में यह समाचार १९ अक्तूबर को पहुँचा। उसी समय मिशन कॉलेज में शोक-सभा हुई, जिसमें हजारों नर-नारी उपस्थित थे। सरकारी, ग़ैर-सरकारी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी ने एकस्वर से इस महात्मा के वियोग पर हार्दिक दुःख प्रकट किया।

स्मारक की आवश्यकता

स्वामी रामतीर्थ को स्वर्गधाम सिधारे आज २४ वर्ष हो गये, पर यह कितने खेद की बात है कि ऐसे महात्मा और योगी का आज तक एक भी योग्य

स्मारक देश में नहीं है। स्मारक बनाने से हम उस महापुरुष पर कोई उपकार नहीं करते, अस्तु कुछ अंशों में अपनी कृतज्ञता ही प्रकट करते हैं। वीरों और महात्माओं के स्मारक यह सिद्ध करते हैं कि उस जाति में वीर-पूजा के भाव हैं। ये स्मारक आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए सदा उत्साह और स्फूर्ति का स्रोत होते हैं। इस चौथाई सदी के बीत जाने पर भी आज हमारे सामने श्री स्वामीजी का कौनसा स्मारक है ? चूँकि स्वामीजी की जन्मभूमि पंजाब-प्रान्त थी, इसलिए पंजाब-निवासियों को इस त्रुटि पूर्ति के लिए विशेष यत्नवान होना चाहिए। स्वामी राम के भक्तों को भी इसके लिए आन्दोलन करना चाहिए। और क्या हम आशा करें कि नई सन्तति भी इस महापुरुष की पवित्र-स्मृति-रक्षा के लिए कुछ श्रद्धाञ्जलि चढ़ायेगी ?

पतिया

[श्री कृष्णानंद बी० ए०]

नाथ ! न जाने किन अंकों में अंकित मेरा अन्त।
अन्त ! अन्त !! जिसकी सीमा में आया अमित अनन्त !
शून्य अतल अन्तर में जागे उलझे राग-विराग।
आहें आह ! अथाह अरे ! ये जलते दिल के दाग।

❀ ❀ ❀

जीवनधन में जीवन हो, जीवनधन जीवन-साथ।
मूक हिया की बतिया से पतिया लिख जाये नाथ !

भारतीय ग्राम्य-संगठन

(४)

पहले और आज के ग्राम में अन्तर

[श्री रत्नेश्वरप्रसादसिंह, बी० ए०, बी० एल, एडवोकेट]

जिस समय आज हमारे पच्चीस-तीस वर्ष के नवयुवक ग्रामीण कृषक खेतों से बोझा उठाते हुए बोझ से दब जाते हैं, तब उन्हें सुधि आती है कि कुछ ही समय पहले उनके पितामह सत्तर वर्ष की अवस्था में उन्हीं बोझों को आसानी से उठाकर स्वयं *अपने माथे पर रख लेते थे और अपनी गर्दन ऊँची किये* उन्हें खेतों से ढोकर खलिहान में रख छोड़ते थे; उस समय उन नवयुवक गृहस्थों को प्रत्यक्ष ज्ञात हो जाता है कि पहले और आज के ग्राम और ग्रामीणों में क्या अन्तर हो गया है। यद्यपि वे इसके कारणों को किसी तरह नहीं समझते, किन्तु उन्हें इस प्रत्यक्ष परिवर्तन का व्यावहारिक और बाह्य ज्ञान हमेशा खटकता रहता है। वर्तमान और प्राचीन पद्धतियों के विषय में संक्षिप्त विवरण किये जा चुके हैं, अतएव इनके बीच के वास्तविक भेद को समझ लेना हमारे लिए केवल आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य्य है। क्यों-कि, बिना इसे विचारे हम आज की अपनी पतितावस्था को अच्छी-भाँति समझ नहीं सकेंगे, और न बिना इसे समझे हम अपने को किसी तरह सम्हाल ही सकते हैं।

इस तुलनात्मक समीक्षा में कम-से-कम तीन बातों पर विशेष ध्यान देना परमावश्यक और लाभदायक है। एक, ग्रामों के अन्दर शिक्षा, ज्ञान और व्यावहारिक रीति के विषय; दूसरा, ग्रामों के बीच न्याय-शासन के विषय; और तीसरा, ग्रामों के साम्पत्तिक यानी आर्थिक जीवन के विषय में। अर्थात् इन विषयों में पहले क्या हालत थी और अब कैसी हालत है, और तदनुकूल हमारे समाज-संगठन में क्या परिवर्तन होगया है, और इस महान् परि-वर्तन का प्रभाव हमारे सारे देश, समाज-बल और जीवन पर कैसा पड़ा है, यही देखना अभिमत है। साथ ही हमें यह भी देखना है कि पूर्वोक्त तीनों बातों का हमारे स्वभाव और आदर्श से अब क्या सम्बन्ध है ?

पहले के गाँव के सम्बन्ध में यह शिकायत पेश की जाती है कि तात्कालिक ग्रामीण भोले और निरुत्साह होते थे, वे घर छोड़कर बाहर जाना नहीं चाहते थे, उन्हें *महत्त्वकांक्षायें न थीं, यानी वे सर्वथा कूप-मण्डूक* बने रहते थे, अतएव उन्हें उन्नति करना नहीं आता था और न उन्हें इसकी चाह ही थी, आज कल रेल, डाक और तार द्वारा ग्रामों में चेतना फैल गई है; ग्रामीणों में उत्साह बल का संचार होगया है; एवं ग्रामीणों में प्रतियोगिता यानी चढ़ा-ऊपरी और उन्नति-लालसा आ गई है और पहले से कहीं बढ़-चढ़ कर चैतन्य और बुद्धिमान होगये हैं। किन्तु, सच तो यह है कि ये धारणायें अधिकतर भ्रमात्मक, अज्ञान-मूलक और बहुत अंशों तक निर्मूल हैं।

वस्तुतः आज की शिक्षा-प्रणाली, न्यायपद्धति और आर्थिक जीवन यद्यपि बहुप्रशंसित और विज्ञापित है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ये तीनों के तीनों निकृष्ट और अधोगामी हैं। इनका नाम तो बहुत है, किन्तु सच्चा काम इनसे कुछ नहीं बन पड़ता !

शिक्षा के प्रचार और प्रसार के संबन्ध में नित्य हल-चल मचती है। लड़के और लड़कियाँ, दोनों के लिए प्रबन्ध किये जा रहे हैं। किन्तु इसका फल क्या है ? केवल कठिनाइयाँ और बढ़ता हुआ अन्धकार ! इस शिक्षा से हम आप अपने को भूले जा रहे हैं। जिस विद्या के सेवन से देश का हुनर, कारीगरी, धन्धा, उद्यम सब नष्ट हो जाय, उस विद्याध्ययन के कारण शिक्षा के बदले अशिक्षा फैलती है। यद्यपि पहले के लोग भोले थे और उनकी शिक्षा बड़े-बड़े राजप्रसाद सरीखे विद्याभवनों और छात्रालयों में नहीं

होती थी; किन्तु उस समय की शिक्षा से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का परिच्छेद होता था, सदाचार का बल उत्पन्न होता था, अपनी जीविका, व्यवसाय, हुनर, धन्धे में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी। शिल्प और उद्योग यथेष्ट जीवित-रूप में वर्तमान रहते थे, कला-कौशल ऊँचे स्थान को पहुँच गये थे, लोग अपने को सभ्य और निश्चिंत समझते थे। लाभ-हानि की स्थिति ठीक-ठीक दिखाई पड़ती थी। आज की तरह लक्ष्यहीन जीवन और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता जनता की स्वाभाविक अवस्था न हो गई थी। उस समय न शिक्षा में उतना ख़र्च था, न आज की तरह समय का अपव्यय। बच्चों और विद्यार्थियों के पाठ्य-क्रम और विषय न इतने विस्तृत थे, न इतने मिश्रित। तब परीक्षायें अब की नाईं छात्रों के कलेजे नहीं खा डालती थीं। आज की शिक्षा मनुष्यों को नित्य परावलम्बी बनाये जा रही है, और उनमें मिथ्याभिमान उत्पन्न कराती है। आज हमारा दृष्टि-कोण इस दूषित शिक्षा ही के कारण नित्य बदलता जाता है, हमारी मानसिक दुर्बलतायें बढ़ती जा रही हैं, और सब से बड़ा अहित तो यह है कि हमारी दूरदर्शिता नष्ट हो गई और हम नितान्त कोल्हू के बैल बनते जा रहे हैं। पहले की शिक्षा हमें, चाहे वह स्वल्प ही क्यों न हो, हमें सचेत बनाती थी; सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक ज्ञान प्रदान करती थी, और जितना भर हम शिक्षित हो जाते थे उतना भर हमारा काम खूब चलता था।

इनके अतिरिक्त आधुनिक और प्राचीन शिक्षा-पद्धतियों के बीच दो महान् अन्तर हैं। सबसे पहले हमारी प्राचीन शिक्षा निःशुल्क होती थी, बाद को धीरे-धीरे कुछ नाम मात्र का धन शिक्षा के लिए व्यय होने लगा था। आधुनिक शिक्षा एक प्रकार ख़रीदी जाती है। फ़ीस पर फ़ीस लगी हुई है। यदि पाठ्यक्रम से एक और अधिक विषय ले लिया तो उसके लिए जुदा फ़ीस दीजिए। खेलने के लिए अलग फ़ीस अख़बार पढ़ने के लिए अलग फ़ीस, जाँच के लिए अलग फ़ीस, और इम्तिहान के लिए अलग फ़ीस! बग़ैर फ़ीस और पैसे के कोई बात ही नहीं पूछता! प्राचीन शिक्षा में व्यय की मात्रा नाम मात्र की थी। शिक्षक संतोषी, धार्मिक और कर्त्तव्यनिष्ठ होते थे। धन के बदले सेवा और अपने छात्रों की बुद्धि को वे नित्य की गुरु दक्षिणा और यथेष्ट उपहार समझते थे। गुरु में वात्सल्य और शिष्य में गुरु-भक्ति दृढ़भाव से विराजमान रहती थी। अब वे ग्रीष्म ऋतु में हिम-सदृश लोप हो गये हैं। दूसरा बड़ा अन्तर यह है कि पहले समय में शिष्य अपनी इच्छानुकूल गुरु या शिक्षक चुन लेता था, और उससे यथाभिरुचि विद्यापाठ तथा ज्ञानोपार्जन करता था। आज की तरह छात्रगण श्रेणीबद्ध होकर किसी भी शिक्षक से—चाहे वह योग्य या अयोग्य, सुपात्र या कुपात्र हो—विवश होकर शिक्षा ग्रहण नहीं करते थे। आजकल शिक्षक अयोग्य से अयोग्य और महा-मूर्ख क्यों न हो, परन्तु यदि वह स्कूल या कॉलेज में एक बार नियुक्त हो गया तो विद्यार्थी अभाग्यवश न उसे छोड़ सकते हैं, न कुछ बोल ही सकते हैं। उस समय छात्रों के गले जंज़ीर नहीं मढ़ी रहती थी उन्हें अधिकार था कि अयोग्य गुरु का परित्याग करके दूसरे गुरु की शरण लें। विद्यार्थियों के ऊपर कोई दबाव या परवशता नहीं थी, झंझट कुछ भी न था। मार्ग सुगम था, आप अपना रास्ता स्वयं ढूँढ निकालते थे। अतएव, पहले की प्रणाली के अनुकूल हमारे बालक स्वावलम्बी, कार्य्य-कुशल और बली बनते थे। अब की पद्धति के प्रभाव के कारण उनके भीरु, स्वार्थी, असावधान और विलासप्रिय बन जाने की अधिकतर सम्भावना रहती है। आज की शिक्षा की बदौलत हमारा समाज और स्वास्थ्य दोनों ही दुर्बल होते जाते हैं। यह शिक्षा न अर्थकरी है, न सुख-करी, न सार्वजनिक ही; यह है केवल बहुमूल्य और कष्ट साध्य! इसमें विशेषतः महत्त्व है ईंट-चूने का, और आलीशान बिल्डिंग है जाँच-पड़ताल का! जितनी पढ़ाई नहीं उतनी कढ़ाई है, और उससे चौगुना स्थान दिया जाता है मिथ्या-चार मिथ्याभिमान और मिथ्या निरीक्षण को! ग्रामीणों के बालक आज छात्रावास के नाम से पुकारी जाने वाली अट्टालिकाओं में रक्खे जाते हैं, और अपना अध्ययन समाप्त कर अपनी कायापलट करके जब वे अपने बाप-दादा के ग्रामीण घरों में पुनः पदार्पण करते है तब वे अपने मौरूसी मकान से नितान्त असन्तुष्ट हो जाते हैं; तब उनके नवोपार्जित 'नागरिकता' पर एकाएक धब्बा पड़ जाता है, और

धक्का पहुँचने लगता है। उनको अपना ही घर रहने के लिए अयोग्य ही नहीं असंभव प्रतीत होने लगता है। तब उन्हें धुन सवार हो जाती है घर छोड़ भागने की! ग्राम-निवासी की अभाग्यता और नगरवास की सुचारुता निश्चित रूप से दिखाई पड़ने लगती है। फिर क्या है, हमारे ग्राम अब क्यों न उजड़ने लगें?

ग्रामों के अन्दर बसे घरों के उजड़ने का सब से प्रचण्ड कारण है हमारी आधुनिक न्याय-पद्धति। न्यायालय नगरों में ही स्थित हैं। ये यद्यपि अधिकतर ग्रामीणों ही के लिए स्थापित किये गये हैं और उन्हीं का विचार करते हैं, परन्तु उनका विधान ग्रामों में नहीं है। ये न्यायालय भी 'नागरिक' हो गये हैं! जितना बड़ा शहर उतना ही बड़ा वहाँ न्यायालय। इनका संसर्ग और संघर्ष हमारे ग्रामों के बीच इतना बढ़ गया है कि बिना इनकी सहायता के अब कोई काम होता ही नहीं। बात की बात में मुकद्दमा। हम लोग सभी बातों के लिए अदालत के ऊपर निर्भर होते जाते हैं। स्त्री-पुरुष के सम्मिलन के लिए, भाई-भाई के समझौते के लिए, बिके हुए माल की क़ीमत के लिए, समय पर दिये हुए ऋण को चुकाने के लिए, विपद्ग्रस्त निर्धन मनुष्यों के धड़ से लोहू निचोड़ने के लिए, दूसरों का दमन करने के लिए, दुष्टों से त्राण पाने के लिए, यानी सभी भले-बुरे कार्यों की सिद्धि के लिए हमें अदालत की शरण लेनी पड़ती है—न्याय के नाम पर फिर अन्याय भले ही होता हो! यह मिथ्याडम्बर हमारी परतन्त्रता, स्वावलम्बन-हीनता, लोलुपता, असात्विकता, असत्य और अज्ञान का जीता-जागता चिन्ह है। आधुनिक नियम और न्याय विधान निविड़ जंगल से भी अधिक अगम्य हो फैले पड़े हैं! न्याय के कठपुतले अपने-अपने नामाकूल स्थान-स्थान पर श्रेणीबद्ध होकर न्याय-पालन के नाम पर अपना समय करते जाते हैं, और साथ-साथ अनेक का सिर स्वतः कटता जाता है। मुलम्मेदार गुलामी की जंजीर में बँधे इन हाकिमों में कितने निकम्मे, खब्ती, बद-दिमाग़, बेईमान और रिश्वती हैं। इनसे देश का जितना अनिष्ट होता है उतना वकीलों और विदेशी कम्पनियों तथा व्यवसायियों के दलालों और एजेन्टों को छोड़कर किसी भी दूसरे पेशेदार से नहीं होता! आज हमारे यहाँ का यही विख्यात न्यायाचरण है, यही बहुमूल्य न्याय-विधान है, जिसके आश्रय के लिए हमें पग-पग पर प्रति क्षण कोर्टफ़ीस अदा करनी पड़ती है। ईमान और धर्म तो अलग रहा, आज के न्याय-शासन में साधारण सौजन्य और शिष्टता भी नहीं है। केवल बकवाद, मिथ्या संघर्ष और ढकोसला है। यह देश के सत्यानाश का एक मात्र कारण बना हुआ है! पहले का हमारा न्याय-प्रदान सरल और सुगम था। सच्चे हृदय से न्याय और धर्म की मर्यादा की रक्षा करते हुए लोक-हित के लिए ही न्यायाधीश न्याय-वितरण करते थे। बिना अधिक प्रयत्न और प्रभाव के ही सब प्रकार के विचार और निर्णय बात की बात में संपादित हो जाते थे। न्याय घर बैठे ही हमें प्राप्त हो जाता था। न परदेश में टिकना पड़ता था, न वकील-मुख़्तार—बैरिस्टर को ही रखना पड़ता था; न कोर्ट—फ़ीस। राजा अपना राज्य-धर्म्म या कर्तव्य समझकर ही न्याय करता या कराता था। न्याय-शासन में लोभ के विचार का लवलेश नहीं था। सर्व-साधारण आज की तरह बेईमान और पतित न थे। झूठा मुकद्दमा करने की चाल न थी। द्रोह, वैमनस्य, दूसरे को कष्ट देने या जान बूझकर पर धन अपहरण के लिए पहले कभी मुकद्दमे बाज़ी नहीं की जाती थी। किसी वकील या कोसों-स्थित ईंट-पत्थर की बनी हुई बड़ी-बड़ी इमारतोंवाली अदालतों की शरण नहीं लेनी पड़ती थी, न आजन्म किसी को मुक़द्दमेबाज़ी का मज़ा ही चखना पड़ता था। इन भोले भारतवासियों को मिथ्या वाग्जाल में फँसाकर निरन्तर भुलावे में न रक्खे रहने के लिए ही कदाचित् इस आधुनिक न्याय-पद्धति का निर्माण और इन न्यायालयों का संस्थापन इस देश में किया गया है। यह सिलसिला हमारे वास्तविक बुद्धि-विकास तथा सद्विवेक जीवन का व्यावहारिक रूप में 'क्लोरोफ़ॉर्म' है; इसके वशीभूत होने से हम जीवन रहते मृतप्राय हो गये हैं, और चेतनाहीन, बेसुध होकर कायर बन बैठे हैं। इस अनन्त जाल में फँसकर हमारी समस्त जनता, दीन ग्रामीण कृषक से लेकर बड़े-बड़े धन-मानाभिमानी भी, एक रूप से, एक सूत्र में ग्रथित होकर निस्सहाय बन गये हैं। जहाँ प्राचीन काल में मुक़द्दमेबाज़ी, अपवाद-

सी था, वहाँ अब नित्यक्रिया-सी हो गई है। आज का सामाजिक आडम्बर और सारी व्यावहारिक क्रिया-विधि इसी मुक़दमेबाज़ी पर निर्भर है। लड़के इसीलिए पढ़ाये जाते हैं और पढ़ते हैं कि पढ़कर या तो हाकिम, या वकील या अमले, कर्मचारी बनेंगे। अदालत की छुट्टियों के दिनों में रेलगाड़ियाँ खाली जाती है, भीड़ एकदम घट जाती है, सवारियों के किराये घट जाते हैं, हलवाइयों की बिक्री मन्दी पड़ जाती है; और फिर कचहरियों के खुलते ही सब के सब पूर्ववत् हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ कचहरियाँ बनाई जाती हैं वहाँ-वहाँ आप से आप बाज़ार बस जाते हैं। प्राचीन काल में ये आधुनिक कालकूट अनुपस्थित थे। एक तो लोगों को लड़ने-झगड़ने का अवसर ही कम मिलता था, अलावा इस के न्याय-शासन इतना सच्चा और उपयुक्त था कि उसमें तोड़-मरोड़ की संभावना एकदम न थी। न्याय-का सरल सम्पादन स्थान-स्थान पर हो जाता था; न झूठी गवाही थी, न वकीलों की झूठ-सच, न काग़ज़ों में जालसाज़ी। आपस के लेन-देन और ठेके-मोआहदा ज़्यादातर ज़बानी होते थे, मगर लोग अपने वचन पर दृढ़ रहते थे। बेईमानी न थी, लोगों को धर्म और कर्त्तव्य का गम्भीर विचार सत्य-पथ पर आरूढ़ रखता था। आजकल यहाँ की अदालतों में झूठ बोलना और ग़लत बयान करना तो नित्य प्रति का मखौल हो गया है; और इतना होने पर भी वर्तमान शासन और विदेशी सभ्यता के रंगीन आलोक से चका चौंध बहुतेरे भारतवासी सज्जन तथा विद्वान इन न्यायालयों और अनेकानेक विदेशी संस्थाओं और आदर्शों को धन्य-धन्य बखानते हैं !

हमारे समाज में प्रलोभनों और चरित्र-दौर्बल्य के विस्तार के विशेष किन्तु स्पष्ट कारण हैं, और इन में से सबसे बड़ा है, हमारी नित्य बढ़ती हुई दरिद्रता और निस्सहायता। हमारे साम्पत्तिक बल के नाश हो जाने से हम कौड़ी के तीन हो गये हैं। अतएव, जहाँ पहले बल और सौजन्य था वहाँ है अब विरोध और कायरता। इस हमारे आर्थिक जीवन के कायापलट के कारण जो हमारे ग्रामों के अन्दर अन्तर पड़ गया है वह सबसे बढ़कर प्रभावशाली है; और यही एकमात्र कारण है, जिसने हमारी ग्राम-पद्धति को नष्ट-भ्रष्ट करके हमारे ग्राम-संगठन को विध्वंस कर डाला है। कहा जाता है कि हमारे ग्रामों में भी पहले की अपेक्षा अब अधिक स्वतंत्रता है, और पहले से अब के कृषकों के अधिकार और स्वत्व बढ़ गये हैं। किन्तु, वास्तव में हमारे ग्रामीणों और कृषकों के मध्य अब बढ़ गये हैं केवल छल-प्रपञ्च, हृदय-हीनता; मिथ्या-भिमान, विरोध, अहंकार और वैमनस्य ! और इनका एक मात्र कारण है, इस देश के धन अपहरण करने के निमित्त फैला हुआ नहीं बल्कि नित्य बढ़ता हुआ क़ानूनी महाजाल ! महाजाल में सबके सब बड़े वेग से फँसते जा रहे हैं। चाहे देख पड़े या नहीं यह महाजाल हम सभी के चारों ओर हर वक्त मौजूद है।

इतना ही नहीं आजकल और भी बातें हमारे जीवन से अभिन्न हो गई हैं, कर के ऊपर कर, फ़ीस के ऊपर फ़ीस, और टैक्स के ऊपर टैक्स इनका अन्त और ठिकाना ही नहीं मिलता, और फिर भी किसी को कुछ पता नहीं चलता। ज़मीन के ऊपर कर, रोटी के ऊपर कर, नमक के ऊपर कर, यहाँ तक कि पानी के ऊपर भी कर ! कपड़े के ऊपर कर, जूते के ऊपर कर, छाते के ऊपर कर, मिर्च के ऊपर कर, मसाले के ऊपर कर और चीनी के ऊपर कर ! स्याही के ऊपर कर, क़लम के ऊपर कर, क़ाग़ज़ के ऊपर कर। वकील को फ़ीस, मुख़्तार को फ़ीस, बैरिस्टर को फ़ीस वैद्य को फ़ीस; डाक्टर को फ़ीस, यहाँ तक कि ज्योतिषी को भी फ़ीस ! बाजा बजाओ तो लाइसेन्स, खेल खेलो तो फ़ीस और तमाशा देखो तो टिकट। मोटर के लिए टिकट, रेल के लिए टिकट, और पैदल सड़क के लिए टिकस। जीते रहिए तो टैक्समयी ज़िन्दगी काटिए और मरिए तो टैक्स लगी मुर्दघट्टी में फूँके जाइए। इस टैक्समय संसार की अपने पुरातन संसार से तुलना करना वृथा है। पहले के धार्मिक, सौम्य और सम्पन्न जीवन के सामने आज का गर्हित, हीन और दुखी जीवन हमारे सामाजिक और साम्पत्तिक जीवन की अधोगति एवं दुरावस्था बतलाना है। पाशविक स्वार्थ और राक्षसी लोलुपता ने हमारी स्वाभाविक मर्यादा को छिन्न-भिन्न करके विनष्ट कर दिया है। जहाँ सब के बीच सौहार्द्र था, वहाँ अब अपने-पराये का

ख़याल जाता रहा। जहाँ पहले साम्राज्य था, वहाँ अब है पर-पीड़ा और दूसरों के प्रति उदासीनता। जहाँ ग्रामों में पहले सुख-समृद्धि थी, वहाँ आज सभी को भूख सताये हुए है। आधुनिक शासन और समय का यही प्रभाव जान पड़ता है कि किसी-किसी के हाथ में अमोघ धन एकत्र हो जाय, और इधर सारी प्रजा नग्न, व्यथित एवं क्षुधा-पीड़ित बनी रहे, और फिर ये धनी-मानी शासकों के सहयोग से ग़रीबों को सतायें तथा जनता को कष्ट पहुँचावें। अतएव, पहले जहाँ जनता तृप्त रहती थी, वहाँ आज नितान्त असंतुष्ट है। जिनके बीच स्वाभाविक बान्धव-भाव रहना चाहिए था, वहाँ आज सहानुभूति की जगह अकारण विरोध फैला रहता है। धनाभाव और आर्थिक कष्ट केवल नीची श्रृङ्खला के ग्रामीणों में ही नहीं फैला हुआ है बल्कि बड़े-बड़े सम्मानित परिवारों के अन्दर भी सुविस्तृत रूप से स्थित है। आधुनिक काल में जिन ग्रामीणों के हाथों में धन इकट्ठा हो गया है, वे फ़रेबी, हृदयहीन एवं मर्यादा-शून्य हो गये हैं। उन्हें और अधिक धनी होने के लिए दूसरों को जाल में फँसाकर, बेईमानी और मुक़द्दमेबाज़ी के बल से पर-धन अपहरण करना ही एक मात्र कर्तव्य हो गया है। इनके रहते हमारे ग्रामों के पहले का शान्त और मृदुल जीवन अब केवल कहानी-सा जान पड़ता है और उनके पूर्वकालिक अस्तित्व में अविश्वास-सा होने लगता है।

यहीं तक नहीं! पहले और आज के ग्रामों के बीच के अन्तर का कुछ ठिकाना नहीं है। अन्तर और परिवर्तन प्रत्यक स्थान में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पहले के लगाये हुए बाग़-बग़ीचे कटते जा रहे हैं। मवेशियों के चरागाह, गड्ढे और टीले, सभी कृषि-क्षेत्र सम्मिलित किये जा रहे हैं; तिस पर भी धनाभाव और अनाहार ग्रामीणों को नित्य नियमित रूप से सताते आते हैं, दीन-दुखियारे ग्राम-वासी दिनोंदिन निस्सहाय और निरुत्साह होते जा रहे हैं। जहाँ पहले अन्न का रेल-पेल था वहाँ अकाल-दुर्भिक्ष के रूप में महँगी नित्य घेरे रहती है। इस अन्न की महँगी की बदौलत जो थोड़े-से मनुष्य मालामाल हो गये हैं, उन्हें तनिक भी अन्न के भाव का गिर जाना खटकने लगता है। चाहे देश उजड़ जाय, किन्तु इनके धन को नित्य बढ़ते ही जाना चाहिए! आजकल अधिक पैदावार होते हुए भी वह कदापि अपने काम नहीं आता। अभाव और क्लेश बना ही रहता है। पहले जहाँ हमारी ही हुनर-कारीगरी हमारे लिए पर्याप्त थी, वहाँ आज साधारण से साधारण वस्तुओं के लिए दूसरों, विदेशियों की ओर नीची नज़रों से देखना पड़ता है। पहले देहातों में सस्ताई थी, क्योंकि चीज़ें वहीं प्रस्तुत होती थीं; आज जितना ही बड़ा शहर, उतना ही वहाँ सस्ती चीज़ें मिलती हैं, क्योंकि विदेश से बनकर ये थोक के थोक पहले बड़े-बड़े शहरों में ही आती हैं, और फिर यथाक्रम धीरे-धीरे देश भर में वितरण की जाती हैं। पहले सारा गाँव एक-साथ सम्बद्ध और संगठित रहता था। ग्राम-वासियों के लिए घर ही पर यथेष्ट जीविका, व्यवसाय और विविध कार्य थे। आज बड़े से बड़े ग्राम खंडहर होते जाते हैं—न घर पर पेट भरता है, न बाहर ही। ग्रामीण जनता बुरी आदतें सीखती जाती है। बहिर्गत ग्रामीणों में आज विलासिता, मिथ्याभिमान और दूसरों के प्रति अवज्ञा के भाव दिखाई पड़ते हैं; इनके संसर्ग से घर पर रहनेवाले ग्रामीण भी वैसा ही अनुकरण करते जा रहे हैं। पहले के ग्रामीण सदाचार, मर्यादा तथा योग्यायोग्य के विचार से सुव्यवस्थित थे। तदनुकूल आज और पहले के स्वभाव के आदर्श में घोर परिवर्तन हो गया है।

पहले के गोड़ैत-चौकीदार ग्राम के सेवक और रक्षक थे। सारे ग्राम के सुख-दुःख से वे अलग नहीं थे। आज के चौकीदार ग्रामीणों के भेद बतानेवाले, आज के प्रचण्ड शासन-यन्त्र या चक्र की एक कील हैं। यद्यपि, इनके वेतन के छदाम-छदाम ग्रामीण ही चुकाते हैं, किन्तु इन वेतनों को गर्व से बाँटनेवाले होते हैं वर्तमान शासन-सूत्र के मुख्य अवलम्ब पुलिस-कर्मचारी। अतएव, चौकीदार भी पुलिस-कर्मचारियों को अपना मालिक या हाकिम समझते हैं, और अपने को इनके ताबेदार मानते हैं। 'धन किसी का और भोगे कोई दूसरा' वाली कहावत आज हमारे यहाँ जितनी चरितार्थ है, शायद संसार भर में और कहीं भी नहीं है। इसी प्रकार अपने ही धन को पर-धन बनाकर अपने घरों में ही भारत-वासी दासत्व को प्राप्त हो गये हैं! किन्तु, इन्हें इसका ज्ञान कुछ भी नहीं है, तथा इनकी ज्ञान-शून्यता,

विचारमूढ़ता, जड़ता, घमण्ड, और शेखी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। पहले जहाँ हित-कामना, परोपकार और सेवा-धर्म्म में सब का उत्साह था, वहाँ आज सब के सब अपने ही पीछे व्यग्र हो रहे हैं, और तब भी अन्न-वस्त्र के अभाव के कारण दुखी और चिन्ता-ग्रस्त बने रहते हैं। आज हमारे ग्रामों के परम्परागत कितने व्यवसाय देखते-देखते अर्थाभाव से विनष्ट हो गये हैं; पथिकों, अतिथियों, सामयिक देवाचार और पूजन के लिए जितने प्रबन्ध थे, वे सब अब नहीं रहे। धर्म्म, कुल और कर्त्तव्य-मर्यादा को अब हमारे ग्रामीण भी मूर्खता समझते हैं; अदालतों के ज़रिये झूठे मुक़द्दमों को चलाकर पर-धन अपहरण करना चालाकी और बुद्धिमानी समझते हैं। वास्तविक लाभ-हानि और सब के हित-साधन की ओर अब ध्यान नहीं दिया जाता, न इनके समझने भर विवेक एवं बुद्धि ही ग्रामवासियों में रह गई है। पशुवत् आचार-विहार और व्यभिचार इत्यादि ने बढ़कर जब हमारे पुराने आदर्शों और विचारों को मिट्टी में मिला दिया, तब भला आज के विदेशी संसर्ग से उत्पन्न विष-वृक्ष की नव-विकसित पुष्पावली-जैसी आधुनिक बनावटी और निष्फल सभ्यता हमारी पुरानी ग्राम-पद्धति को जराजीर्ण, अनुचित हानिकारक एवं क्षुद्र बतलाकर निरादर करते-करते सर्वथा तिरस्कृत और बलहीन क्यों न कर दे ?

सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण अन्तर तो यह है कि प्राचीन ग्राम राजनैतिक विप्लवों और संघर्षों के आघातों से मुक्त थे। यदि किसी शासक या राजा के शत्रु आकर उसे परास्त कर देते थे, तो उसके चलते जो राज-विप्लव या रक्त-पात होता था उससे देश भर के ग्रामों पर कुछ असर नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि राज-वंश के राज वंश मूलोच्छेद हो जाते थे, राज्य-परिवर्त्तन हो जाता था, किन्तु इससे ग्रामीणों का हानि-लाभ कुछ नहीं होता था। क्योंकि राज्याधिकारियों का ग्रामों से नित्य संसर्ग नहीं था। साम्राज्य से ग्रामों का केवल यही सम्बन्ध था कि मुखियों द्वारा राज-कर वसूल कर लिया जाता था, अन्यथा ग्रामीणों को केवल अपने और आस-पास के ग्रामों से सरोकार रहता था, उन्हीं के सुख-दुःख पर ग्रामीणों का सुख-दुख निर्भर था। अतएव, राज्य-वंश बदल जाते थे, राजधानियाँ बदल जाती थीं, किन्तु हमारे ग्राम नहीं बदलते थे। इनकी अवस्था ज्यों की त्यों बनी रहती थी। आज यह बात नहीं है। छोटे से छोटे ग्राम शासन-सूत्र में बँधे हुए हैं। ग्रामीणों का राज्याधिकारियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध है, इस नाते को ग्रामीणगण किसी प्रकार तोड़ नहीं सकते। आघात होता है लन्दन में और उसका धक्का पहुँचता है यहाँ के जंगली मुण्डे, सन्थाल, और भीलों की टोलियों में। लड़ाई छिड़ती है यूरोप में और उसका भार वहन करना पड़ता है अबोध से अबोध और दरिद्र से दरिद्र भारतवासियों को! आजकल कितने लोग उत्साह से कहते हैं कि अब भारतवर्ष को अकेले राम की कहानी नहीं कहनी है, बल्कि आज भारत के आर्थिक और राजनैतिक नाते हो गये हैं अन्तर्राष्ट्रीय! और यह किस लिए? जिसमें कि इसके बालक अपने ग्रामीण झोपड़ों को उजाड़कर विदेश में कुली-मजदूर बनकर लात खाते फिरें, और जब अपने पसीने बहाकर मरु-भूमि को उर्वरा बना दें तब भाग्यशाली देश की सन्तानों-द्वारा गालियाँ सुनें, जूते खायें, देश-निकाला सहन करें, और मारे-मारे फिरें; और तब इनकी बात न इनके घरवाले पूछें, न बाहर वाले! यह कोई छिपी बात नहीं है कि भोले-भाले, मूर्ख और निस्सहाय ग्रामीणों को मेले ठेले में, रेल्वे-स्टेशनों पर, तीर्थ-स्थानों में 'डिपो' के दलाल प्रलोभनों-द्वारा अपने चंगुल में फँसाकर शिकार बनाते हैं और फिर इन्हें स्वग्रामों से हमेशा के लिए विराना बना देते हैं। और फिर जब ये विदेशी टापुओं और उपनिवेशों में अपने कठिन परिश्रम से कुछ कर दिखाते हैं, तब इन्हें फिर वहाँ से भी विराना बनना पड़ता है। यही भारतवर्ष के अब के ग्रामों के अन्तर्राष्ट्रीय संगम का एकमात्र नतीजा है। पहले के कुल-ग्राम-धर्म्म पर जो आघात करते थे वे दुबारा उन ग्रामों से बच के नहीं जाते थे, तथा अपने ग्राम की मर्यादा और सुव्यवस्था के संरक्षण में समस्त ग्राम एक होकर ही रहता था।

भूख

श्री साधुशरण

कहानी

(१)

किसानों के खेत की मजदूरी ही पलटू के लिए धन-सम्पत्ति, खेती-गृहस्थी वा जो कहें, जीविका का साधन थी। परिवार में एक बूढ़ी मा थी, पत्नी थी और चार लड़के-लड़कियाँ;---सभी खाने वाले। देहात की मजदूरी ही क्या। दिन-भर किसानों के खेत में अपना खून सुखाता तो शाम को तीन सेर बनीहारी लाता था। इसी में खाना-पीना, कपड़ा लत्ता तथा अन्य फुटकर खर्च ! खर्च अधिक और वैसी ही मँहगी ! नमक है तो तेल नहीं; भात है तो दाल-तरकारी नहीं; रोटी है तो नोन-तेल नहीं; कमर में लंगोटा है तो शरीर पर एक कुरता नहीं। मजदूरी भी तीसो दिन की नहीं। बड़े तो किसी प्रकार आधा पेट खाकर निर्वाह कर लेते थे, बच्चों के अधीर पेट को कौन समझावे ? पलटू से बच्चों को भूख की ज्वाला में तड़पते देखा नहीं जाता, फिर भी क्या करता? वह अभी जवान था, पर दरिद्रता के कारण वृद्धावस्था के अनेक लक्षण उस पर आ गये थे----गाल पिचके हुए; आँखें धँसी हुई; चमड़ा ढीला-सा ! पेट-भर अन्न पाने वाली युवतियों के मुख पर यौवन की जो कान्ति और सरसता टपकती रहती है, वह पलटू की पत्नी—सुकिया---के मुख पर न थी। बच्चों की छाती की निकली हड्डियों और सूखे-रूखे चमड़े को देखकर, भिखारी को भी तरस आ जाती और वह इस दरवाजे पर भीख के लिए न ठहरकर आगे बढ़ जाता था।

आज पलटू को कहीं मजदूरी न लगी थी और घर में खाने को एक दाना अन्न भी न था। सवेरे से सभी भूखे थे और संध्या का भी कोई ठिकाना न था----हाँ, सुकिया एक घर से एक पसेरी (पांच सेर) चना पीसने के लिए लाई थी और उसी की पीसवनी की आशा थी। चक्की पर बैठी सुकिया वही चना पीस रही थी। भूखे बच्चे वहीं थोड़ी दूर पर बैठे थे। एक बार चक्की से छिटककर एक चना अलग जा गिरा। एक बच्चा उसपर टूट पड़ा, और उसे उठाकर उसने चट मुँह में डाल लिया। सुकिया को बहुत बुरा लगा। उसने तुरंत सब बच्चों को डांटकर वहाँ से अलग कर दिया।

पलटू चिन्तामग्न बाहर बैठा था। अचानक उसे अपनी एक लड़की की चीख सुनाई पड़ी। वह उठकर भीतर आया। पूछने पर पता चला कि चना का दाना आंगन में गिरा था उसे उठाकर उसकी भोली लड़की खाना ही चाह रही थी कि उसके भाई ने उसे दो चपत लगाकर उसका दाना छीन लिया और चट खा गया। पलटू का कलेजा फट-सा गया। बच्चों को आश्वासन देकर वह फिर बाहर चला गया।

सुकिया को एक सेर पीसवनी मिली। उसने उसे भून-पीसकर तुरंत सत्तू तैयार किया और हिस्सा लगाकर मुट्ठी-मुट्ठी सबको बांट दिया। बच्चे तो पाते ही अपना हिस्सा चटकर गये और जब पलटू खाने बैठा, तो उसके आगे खड़े होकर कातर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। पलटू से न खाया गया। उसने थोड़ा-थोड़ा करके आगे का अन्न बच्चों को बांट दिया।

प्रातःकाल पलटू को ईंट ढोने की मजदूरी लगी; गया। पर दो-तीन खेप ही ईंट ढोया होगा कि उसके नेत्रों के सम्मुख अँधेरा छा गया और वह उच्छिन्न वृक्ष की नाईं धम से चित गिर पड़ा। मालिक दौड़े आये। पूछने पर कारण मालूम हुआ। मालिक ने छाती पीटकर कहा—"अरे पलटू! तुम ने कहा क्यों नहीं; मैं तुझे खिलाकर तब काम पर लगाता!" वह पलटू का हाथ पकड़कर अपने घर ले गये और उसे पेट-भर भोजन कराया। बच्चों की भूख की स्मृति बनी होने पर भी पलटू ने उनके परोक्ष में भोजन कर लिया। पर कैसे? उसका हृदय क्या कह रहा था? क्या धन के मद में चूर पूँजी-पति इसका अनुभव कर सकते हैं? पलटू तथा उसके जैसे अन्य करोड़ों भूखे प्राणियों का चीत्कार इस अनन्त की गोद में कबतक निष्फल जायगा? पलटू ने भोजन कर लिया। उसने अपने भूखे परि-वार की स्मृति भुला दी। परन्तु वहीं पर कोई था, जिसे पलटू के परिवार तथा उसके-जैसे दूसरों के हृदय के हाहाकार की स्मृति थी और वहीं पर कोई अपनी लाल-लाल आंखें काढ़कर संसार के पूँजीवाद को भस्म कर देने के लिए भयंकर गर्जना भी कर रहा था।

सन्ध्या को पलटू ने पत्नी को बनिहारी देकर कहा—"लो, जबतक कुछ तैयार करो और बच्चों खिलाओ। मैं तनिक बाजार जा रहा हूँ। वहाँ आज सभा है। गान्धी बाबा के बहुत चेला आये हैं। सुनें, क्या कहते हैं।"

पत्नी ने स्वीकृति दे दी।

सभा से लौटने पर पलटू को विलास बाबू की बातें नहीं भूली। अंग्रेजी सरकार के द्वारा भारत की ऐसी आर्थिक दुर्दशा किस तरह हुई है और दिन-प्रति दिन हो रही है, उन्होंने आज इसी विषय को पूर्ण रूप से समझाया था। दूसरों का व्याख्यान तो ठीक-ठीक पलटू की समझ में न आया था, पर उनकी एक-एक बात उसके हृदय में तूफान-सी उठाये हुए थी। उसका हृदय बार-बार गरज कर कह रहा था—"क्या इस अंग्रेजी सरकार के कारण ही हमारे बच्चे इस तरह भूखों मर रहे हैं? क्या इस सरकार के कारण ही हमारा देश दिन-दिन दरिद्र होता जा रहा है? विलास बाबू कह रहे थे, यदि आज भी हम न संभलेंगे, तो देश में जो भी धनी बचे हैं, किसी दिन उनके भी बच्चे इसी तरह भूखों मरने लगेंगे। ओफ़! तब मुझे मजदूरी भी कहाँ मिलेगी? और, उन्होंने ठीक ही तो कहा है। पहले इसी देश में एक रुपये का डेढ़-डेढ़ मन गेहूँ मिलता था, अब क्या हो गया। देश वही है, काम करने वाले आदमी वही हैं, पैदा भी वैसी ही है, फिर क्या हो गया? क्या यह अंग्रेजी सरकार ऐसी कठोर है?" ओह! पलटू के हृदय में हाहाकार मचा हुआ था और उसके भीतर कोई बार-बार उछलकर गरज रहा था कि संसार के छलियों को कच्चा चबा जाय। एक ओर पूँजीवाद उसके क्रोध को देखकर व्यंग्य की हँसी हँस रहा था; एक ओर साम्यवाद दांत पीस-पीस हाथ मल रहा था और सामने प्रकृति तरस खा रही थी।

(२)

असहयोग-आन्दोलन की बड़ी धूम थी। पलटू ने जी-जान से आन्दोलन में भाग लिया था। उसने अब मजदूरी करना छोड़ दिया था; विलास बाबू के यहां से तीन चरखे माँग लाया था। एक पर उसकी बूढ़ी मां सूत कातती, एक पर पत्नी, एक पर वह स्वयं। रात को चार-पांच घंटे सोने के सिवा दिन रात तीनों चरखे पर भिड़े रहते और इस प्रकार सुख से अपना खाना-पीना चला लेते थे। पलटू तो आन्दोलन के अन्य

कामों में भी भाग लेता था; पर उसकी मां और पत्नी को तो चरखे का चस्का लग गया था।

पलटू अब पहला पलटू न था। उसने देश-विदेश की बहुत-सी जानकारी हासिल कर ली थी। वह प्रतिदिन एक बार कांग्रेस-कमेटी में जरूर जाता। विलास से आन्दोलन की प्रगति तथा देश-विदेश का हाल-चाल पूछता; उनकी सहकारिणी विद्या देवी से अखबार पढ़वाकर सुनता। जहाँ कहीं सभा होने की सूचना मिलती, पलटू वहाँ सब से पहले पहुँचता था। वह अपने हाथों सभास्थली को झाड़-बुहारकर साफ करता, फूलपत्तियों से सजाता; तम्बू-क़नात आदि खड़ा कराता; रोशनी आदि का प्रबंध करता। यदि उसे पता लगता कि अमुक व्यक्ति अमुक तरह का मुक़द्दमा दायर करने के लिए अदालत-फौजदारी में जा रहा है, तो वह तुरंत दौड़कर उस व्यक्ति के पास पहुँचता और पाँव पड़कर, हाथ जोड़कर जैसे होता उसे मुक़द्दमा न दायर करने के लिए वाधित करता था। गाँजा, भाँग, शराब आदि मादक द्रव्यों की दूकानों पर जाकर अपने भाइयों को मादक वस्तुओं के ग्रहण करने से रोकता था। जहाँ कहीं किसी के हाथ में अखबार देखता था, उसके लट्टू पीछे हो जाता था और जबतक उससे अखबार का सब समाचार न पूछ लेता, तबतक उसका पीछा न छोड़ता था। गाँव में उसके अब कई साथी भी मिल गये थे। अपने साथियों के साथ दूर-दूर के गाँवों में घूमकर भी वह असहयोग में योग देता था। पलटू को अपने देश को स्वतंत्र करने की लगन लग गई थी।

आज पलटू के गाँव का बाजार लगा था। खचाखच लोग भरे थे। पलटू भी अपने साथियों के साथ बाजार में अपने देशवासियों का कुछ हित करने के लिए आ पहुँचा था। उसने अपने साथियों को दूसरी-दूसरी दूकानों पर भेज दिया था, और आप एक ताड़ी की दूकान पर अपने भाइयों को ताड़ी पीने से रोक रहा था। अचानक उसे एक कपड़े की दूकान पर बहुत शोर और बड़ी भीड़ दिखाई पड़ी। वह तुरंत दौड़कर वहाँ गया। उसके कई साथी भी पहुँच गये। पलटू ने देखा, वहाँ पुलिस के दो सिपाही कपड़े के एक थान के साथ एक आदमी को पकड़े खड़े थे। वह आगे बढ़ा; पूछा, क्या माजरा है। पता लगा पुलिस के हाथ का मनुष्य चोर है। उसने कपड़े का थान चुराया है और पुलिस उसे थान के साथ थाने पर लिये जा रही है। पलटू का मुँह उत्साह से चमक उठा। वह आगे बढ़ा और पुलिस के हाथ से चोर और कपड़े की थान को छुड़ाते हुए बोला—"चलो जाओ; अपने इस भाई चोर और इस थान को हम कांग्रेस-कमेटी में ले जायँगे, और वहीं यह मुक़द्दमा तय करेंगे। अब यह या कोई भी मुकद्दमा थाना या अदालत में नहीं जा सकता।" पुलिस अवाक् हो पलटू का मुँह देखने लगी। पलटू के कई साथी भी आ गये और पुलिस के जोर लगाते रहने पर भी चोर और थान को लेकर कांग्रेस-कमेटी की तरफ़ चल दिये। पुलिस भी पलटू और उसके साथियों का पता लिखकर तथा अपनी अन्य कार्रवाइयाँ करके थाने पर चली गई।

पलटू को क्या मालूम था कि कुछ ऐसे भी मुक़द्दमे हैं, जिन्हें वह चाहकर भी अपने यहाँ नहीं तय कर सकता; फिर भी उसके आवेश से बाजार में सनसनी फैल गई।

इधर बाजार भी धीरे-धीरे उठने लगा और कोलाहल पर विजय करने के लिए शान्ति अपनी ध्वजा फहराने लगी, मानो संसार को दिखलाने लगी थी कि किसी दिन साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और अन्याय-

अत्याचार का बाज़ार भी इसी तरह उठ जायगा और दुनिया में समता, स्वतंत्रता, और न्याय को विजयध्वजा फहराने लगेगी।

(३)

पलटू जेल चला गया था; पर सुकिया को इसकी चिन्ता न थी। उनके कुछ दिन जेल की यंत्रणा भोग लेने से यदि देश स्वतंत्र और सुखी हो जाय तो इससे बढ़कर और कौन खुशी की बात हो सकती है? यदि कुछ दिन दुःख भोग लेने से सारे जीवन का दुःख दूर हो जाय, तो इससे बढ़कर क्या। यदि एक ग़रीब परिवार के मर मिटने से देश के अन्य ग़रीबों की ग़रीबी मिट जाय, उन्हें पेट भर अन्न और पहनने भर को कपड़ा मिले, उनका जीवन सुख और स्वतन्त्रता से हँसते-हँसते बीते, तो इससे बढ़कर और कौन सफल मृत्यु हो सकती है? इसी तरह के विचार सुकिया के मन में बराबर उठा करते थे। उसने अपने पति को भुला दिया था और बड़े यत्न से अपने परिवार का पालन कर रही थी। पहले वह कुछ अधिक भी सोती थी, तो अब तीन-चार घण्टे से किसी दिन भी अधिक नहीं सोती; शेष समय काम करने और चरखा कातने में बिताती थी। वह जेल की यंत्रणाओं का वर्णन सुन चुकी थी। अतः अपना पेट काटकर कुछ-कुछ बचाती भी जाती थी। जब वह जेल की विपत्तियाँ भोग कर आवेंगे, तो उनके शरीर के संयम के लिए भी तो कुछ चाहिए! कितनी भी ग़रीब हूँ, तो क्या? जिस दिन मिलता उन्हें बनाकर पाव भर अन्न तो खिलाती थी। लोहे की कड़ाई में कभी कच्ची खिचड़ी तो न खिलाती थी। आने पर कुछ दिन भी अगर उन्हें पेट-भर अन्न न मिलेगा, तो उनकी देह कैसे भरेगी? सुकिया भूखी रह जाती, पर पति के निमित्त प्रत्येक दिन कुछ न-कुछ अवश्य बचाकर रख छोड़ती थी।

(४)

सुकिया को क्या मालूम था कि अंग्रेज़ी सरकार की जेल अपराधी से उसके अपराध का प्रायश्चित्त कराने के लिए नहीं होती, वरन् निर्दयता के साथ उससे उसके अपराध का सैकड़ों गुना बदला लेने तथा उसका खून चूसकर उससे पैसा पैदा करने के लिए होती है; पवित्र प्रेमव्यवहार एवं सुन्दर शिक्षाओं से उसे सुधारकर उसके जीवन को पवित्र निर्दोष सुखी एवं कार्यकुशल बनाने के लिए नहीं, वरन् उससे नरक की भीषण यंत्रणा भोगाकर उस पर अपना वह आतंक बैठा देने तथा उसके जीवन को इस तरह कार्याक्षम, नीरस और निर्बल बना देने के लिए होती है, जिसमें वह फिर कभी सिर न उठा सके, उसके हृदय की कुल आशायें, एवं उमङ्गें कुचल जाँय और वह जीवन-भर उस सरकार के दण्ड के भय से काँपता रहकर उसका भक्त बना रहे; नहीं तो वह अब तक पति के लौटने की आशा में घड़ियाँ क्यों गिनती रहती? वह समझती थी, थोड़ी-बहुत तकलीफ़ होती होगी। पर जब से उसके पति जेल से लौटकर आये थे, किसी क्षण उसके नेत्रों का आँसू न सूखता था। न जाने वह कब से जेल में बीमार थे; हाथ-पाँव लकड़ी-से सूखे हुए, सिर बड़ा-सा निकला हुआ, गरदन मुट्ठी में आजाने भर, आँखें धसी हुई, छाती की बरियाँ उधार, पेट निकला हुआ, कंधे और हाथों में ठेला! ओह! सुकिया ने पति के संयम के लिए जो कुछ संचित कर रक्खा था, उसे उसने उसके दवा-पानी में लगा दिया; फिर भी उनके नीरोग होने का कोई लक्षण न दिखाई पड़ता। कोई-कोई पलटू से कहता, वह अस्पताल चला जाय; पर उसके मुख से स्पष्ट निक-

लता, जिस सरकार ने उसकी ऐसी दशा बनाई है, उसके अस्पताल में वह नहीं जा सकता; यदि किसी और कारण से बीमार होता, तो जाता। पति की सेवा में बैठा बैठी सुकिया सोचती, यदि यह भी नहीं रहेंगे, तो अब इस परिवार का कौन आधार होगा ? बस, और कुछ नहीं।

पलटू की अवस्था दिन-प्रतिदिन बुरी होती गई।

× × ×

आज सुबह से पलटू की अवस्था बहुत शोचनीय थी। वह अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था। सुकिया एक पल के लिए भी पति के पास से कहीं अलग न टली। माँ पुत्र की रुग्ण-शय्या पर बैठी निरन्तर आँसू बहा रही थी। घर में खाने को एक दाना भी नहीं था। कई दिनों से चरखा भी न काता गया था, न सुकिया कहीं मजदूरी करने गई थी। सुकिया और उसकी सास का खाने-पीने की चिन्ता ही कहाँ थी; पर बच्चों के मुख में एक दाना भी न गया था। जाड़े की रात थी। रोगी के शरीर पर यथेष्ट कपड़ा भी नहीं। बर्फ-सा पाला पड़ रहा था। भूख और जाड़ा से तड़पते हुए बच्चों को रात में एक पल के लिए भी नींद न लगी थी। वे रात-भर सुकिया के शरीर से चिमट-चिमटकर भूख, भूख और ठण्ड, ठण्ड चिल्लाते रहे थे।

रात के पिछले पहर का समय था। रोगी का सारा शरीर बर्फ-सा। पलटू ने एक बार अपनी आँखें खोलीं; सब पर नजर दौड़ाई। क्षीण आवाज निकली—"माँ !...सुकिया !...देश... स्वतंत्र...न ...हीं ..।" दूसरे क्षण माँ के मुख से जोरों की चीख निकली और खड़ी हुई सुकिया के नेत्रों से आँसुओं की प्रबल धारा ! आगे पति का शव पड़ा था, और उसके बच्चे अब भी कपड़े नोच-नोचकर चिल्ला रहे थे—"माँ ! भूख ! माँ भूख !" झोंपड़ी में छिद्रों से उषा का आलोक प्रवेश कर रहा था; वायु में पलटू का अन्तिम क्षीण स्वर गूँज रहा था; वृद्धा माँ के सम्मुख थीं अतीत की स्मृतियाँ; सुकिया के सम्मुख घोर अन्धकार और बच्चों के सम्मुख वही पिशाचिनी भूख !
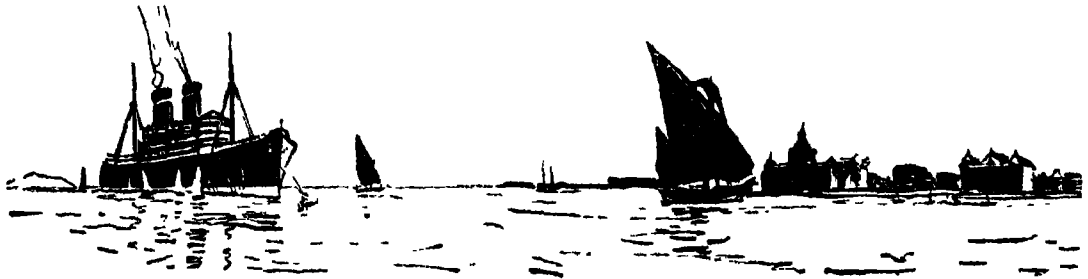
स्वाराज्य का तात्पर्य

[आचार्य श्री विश्वबन्धु शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०]

सूर्य भगवान् सौर जगत् का राजा है। पृथिवी, मंगल आदि ग्रह और इनके उपग्रह नित्य नियम से उसकी परिक्रमा करते हैं। उनमें उसके प्रति अगाध भक्ति का भाव पाया जाता है। उसने भी अपने प्रबल प्रेम से पूर्ण आकर्षण द्वारा उनके अन्दर पैदा हो सकने वाली विद्रोह-बुद्धि को कभी क्षण भर भी सिर उठाने का अवसर नहीं दिया। वह उन्हें न केवल अपने साथ जोड़े ही रखता है; वरन प्रेम बढ़ाने और अपनाने के लिए उन्हें अपने जीवन से जीवन और अपने प्रकाश से प्रकाश देता रहता है। इस कार्य्य-भार को सदा प्रसन्नतापूर्वक उठाये रखना ही उसके राज्य के संगठन का मूल कारण है।

सूर्य अपने प्रकाश के लिए किसी दूसरे भौतिक पदार्थ के अधीन नहीं है। वह प्रकाशवान् होने से राजा और अपने अन्दर स्वतन्त्र प्रकाश का बल और बीज धारण करने से स्व-राज भी कहलाता है। वह वहाँ अपने आप प्रकाशित रहता है, वह अपने अधीन रहने वाले सब लोक, लोकान्तरों को सदा प्रकाश देता रहता है। यह उसका स्वराज्य है। चन्द्र भी हमें प्रकाश देता है। पर यह प्रकाश उसका अपना नहीं होता। यह ठीक है, उसकी चांदनी शीतल, मधुर और मनोहर होती है। पर यह सम्पत्ति उसकी निज की नहीं। सूर्य भगवान का ही यह प्रसाद है। शायद यही कारण है कि उसमें सूर्य की धूप में पाई जाने वाली ओजस्विता और प्रचण्डता नहीं मिलती। उसकी मधुरता कदाचित् दीनता की सूचना देने वाली है। सच है, पराधीन लोगों के गुण भी उनकी निन्दा के कारण हो जाया करते हैं।

स्वराज्य और स्वाराज्य में परस्पर अर्थ की समानता है। एक ही शब्द के दो रूप हैं। 'राज्य' का भाव क्या है? वह स्थिति और क्षेत्र जिसमें किसी राजा का अधिकार पाया जाय। 'राजा' का भावार्थ सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी, बलशाली, प्रकाशक सत्ता का ही समझना चाहिए। इस व्याख्यान से उत्तम राजा का जीवन-स्वरूप भी भलीभाँति समझ में आ जाता है। सूर्य्य अपनी प्रजा के साथ क्या सुन्दर व्यवहार का आदर्श पेश करता है! राज्य एक व्यक्ति के हाथ में हो, अथवा प्रजातन्त्र प्रतिनिधियों के हाथ में हो, वह 'राज्य' तभी समझा जायगा जब उसमें प्रजा पीड़ित न रहती हो, सताई न जाती हो, निचोड़-निचोड़कर समाप्त न की जाती हो और अपने प्रतापी तेज की आग में भस्म न की जाती हो, बल्कि अपनी विद्या के प्रकाश से उज्वल बन ई जाती हो और अपने बल के प्रभाव से सदा सुखी और निश्चिन्त रखी जाती हो। अज्ञान के अन्धेरे में, चुप-चाप दब रहने वाले लोगों के जीवन को सुख और शान्ति का नाम देना इन उत्तम शब्दों का बुरा प्रयोग करना है। यदि ऐसी जनता सुखी है, तो श्मशान और क़ब्रिस्तान के निवासी भी सुखी समझने चाहिए। जीवित लोगों का गरमी और गति से मिलकर रहने वाला सुख और है, मुर्दों की ठण्डक में पाई जाने वाली शान्ति बिल्कुल और है। जिस व्यक्ति को या समुदाय को ऐसा पवित्र राज्य प्राप्त हो और उसमें उसे पूरा अधिकार अपने

आप मिल रहा हो, तो यह उसका 'स्वराज्य' होगा। जिस प्रजा को ऐसे राज्य में स्वतन्त्रता के साथ निवास करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, उसका भी स्वराज्य समझना चाहिए।

स्वराज्य और उच्छृंखलता में, स्वतन्त्रता और अमर्यादा में, स्वाधीनता और निरंकुशता में तथा स्वाधिकार और बिल्कुल बेलगाम होने में आकाश-पाताल का अन्तर है। यदि यह बात न हो, तो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा ही खा जाय। सन्तान माता-पिता की आज्ञा से बाहर हो जाय और विद्यार्थी अध्यापकों के सिर पर चढ़ जायँ। न धन की वृद्धि और रक्षा हो सके, और न जीवन-ज्योति के बुझने में पल भर भी देर लगे। समाज के पाँव के नीचे से धरती निकल जाय और सारी सभ्यता-संस्कृति और नागरिकता का तिरोहित हो जाय। यही कडुवे परिणाम हैं, जिन्हें रोकने के लिए आर्य शास्त्रकारों ने अराजकता का पाप के रूप में वर्णन किया है। जिस देश में ऐसी भयङ्कर दशा पाई जाती हो, वहाँ मनुष्य नहीं बसते, मनुष्यों के रूप में चीते और बाघ रहते हैं।

यही कारण है कि लाखों वर्षों से मनुष्य ने संगठित समाज में रहने का अभ्यास किया है। जैसे सूर्य अपनी प्रजा का प्रकाशक, जीवन-दाता और मार्ग-प्रेरक है, उसी प्रकार समाज के केन्द्र में शासक के रूप में प्रतिष्ठित व्यक्ति या समुदाय को भी होना चाहिए। शासन-केन्द्र का अधिष्ठाता एक हो, या अनेक हों, इस पर विचार नहीं किया जा रहा है। अभी तो यही दिखाने का यत्न किया जा रहा है कि सामाजिक जीवन के विकास के लिए किसी न किसी प्रकार के सुप्रतिष्ठित शासन-केन्द्र का होना जरूरी है।

उस केन्द्र का कर्त्तव्य है कि अपनी प्रजा के साथ वैसा ही बर्ताव करे जैसा सूर्य ग्रहों और उपग्रहों के प्रति करता है। अधिकार की प्राप्ति कर्त्तव्यों के पालन के द्वारा ही स्थिर रह सकती है। जो शासन-केन्द्र अपनी प्रजा को विद्या का प्रकाश नहीं देते, सुरक्षा और कला-कौशल की उन्नति के द्वारा सुखी और सम्पत्ति-शाली नहीं बनाते, सुख और दुःख में अपना बनाने का मार्ग नहीं जानते और अपनी शक्ति के नशे में उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें अपनी मूर्खता का कड़आ फल बहुत शीघ्र ही मिल जाता है। शासन-केन्द्र को एक ओर तो किसी और के प्रति दीन न होना पड़ता हो और दूसरी ओर उसका अपनी प्रजा पर और प्रजा का उस पर पूरा विश्वास हो। यही उसका स्वराज्य है।

पर यह विश्वास का भाव आपस में अभेद भाव के बिना पैदा नहीं हो सकता। जब तक कोई प्रजा शासन-केन्द्र को अपने जीवन का हृदय-स्थान न समझ ले, तब तक उसे बालू के ढेर पर ही खड़ा समझना चाहिए। यह असंभव है कि किसी देश की प्रजा पर कोई विदेशी शासन-केन्द्र चिरकाल तक अधिकार स्थिर रख सके। या तो उसे उस देश को अपना देश बनाकर उसकी प्रजा के साथ एक हो जाना चाहिए, अथवा आसन छोड़ने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यह हो सकता है कि कोई प्रजा किसी संकट और घर की फूट के काले काल में किसी विजातीय शासन के अधीन हो गई हो। पर मन में अपनी अवस्था के ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होते ही, उसे अपनी अधोगति रोम-रोम में काँटों और संकचों से कहीं अधिक चुभेगी, और उसके अन्दर प्राण-पण से लड़ने वाले, अपने देश के मान की रक्षार्थ मर मिटने वाले वीर और धीर, गम्भीर, मतिमान् नेता पैदा होकर, शीघ्र ही अपने पाँव पर खड़े होने की योग्यता पैदा कर लेंगे। देश-

देश की अवस्थायें भिन्न-भिन्न होती हैं। यह संभव है कि एक देश को स्वतन्त्र होने में दूसरों की अपेक्षा अधिक समय लग जाय। पर इतिहास का राजमार्ग जाता उधर को ही है। इसमें किसी को रत्ती-भर सन्देह न होना चाहिए।

जहाँ इतिहास शासक-मण्डल को यह चेतावनी देता है कि अपनी प्रतिष्ठा के लिए अपनी प्रजा के साथ बिलकुल एक जान बनकर रहे, वहाँ प्रजा को भी यह शिक्षा देता है कि उत्तम राजनीति का सदा आदर करे। अराजकता डाकुओं और घातकों को ही प्यारी होती है। भद्र पुरुष सभ्यता के क्षेत्र में प्रतिदिन उत्तम बीज का बोना और सुन्दर फलों का भोग करना ही दिल से चाहते हैं। किसी देश की प्रजा का यह स्वराज्य नहीं होगा कि उसको न कर देना पड़े और न किसी क़ानून की मर्यादा का पालन करना पड़े। उसका असली स्वराज्य तब होगा जब उसके शासन-केन्द्र का अधिष्ठाता वह हो या वे हों, जिसे या जिनको वह अपना समझती हो, आदर और पूजा की दृष्टि से देखती और प्रत्येक विपत्ति के समय पूरी सहायता करने को तैयार हो। जिस देश में ऐसा शासन-केन्द्र और ऐसी प्रजा का योग है, वहाँ सच्चा स्वराज्य है और यदि अधूरा भी है, तो शीघ्र ही पूरा हो जायगा। इसी प्रकार जहाँ शासन-केन्द्र अन्दर से प्रजा का घातक है और उसे दबाकर ही अपने आप को पक्का करना चाहता है, और जहाँ प्रजा में यह भाव पाया जाता है कि हमें पीसा जा रहा है, नोचा जा रहा है, अपमानित किया जा रहा है और हमारा इस शासन-केन्द्र से किसी प्रकार का सम्बन्ध और मेल-जोल नहीं हो सकता, उस देश में प्रजा तो परतन्त्र है ही, शासन-केन्द्र भी दिव्य स्वराज्य के पुण्य-प्रभाव से कोसों दूर है। दासता राक्षसी सृष्टि है; स्वावलम्ब और स्वाधीनता देवताओं की प्यारी सम्पत्ति है। आसुरी दासता के काले बादल बहुत देर तक स्वराज्य-जागृति के दिव्य सूर्य की प्रचण्ड किरणों का सामना नहीं कर सकते।

सार यह है कि स्वराज्य या स्वाराज्य वहीं विद्यमान है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति शासन-केन्द्र को अपना प्रतिनिधि जानकर उसके बाँधे हुए नियमों का पालन करता है उनसे भयभीत नहीं रहता, बल्कि उसके प्रेम से बाधित होकर उसके लिए और उसकी प्रतिष्ठा के लिए जान तक देने को तैयार रहता है और जब-जब शासन-केन्द्र के संचालन में कोई दोष पैदा हो, तो उसे बदलने में और उसके नये स्वरूप के निर्धारण करने में शेष प्रजामण्डल के साथ पूर्ण और समान अधिकार रखता है। ऐसा न होने पर, अच्छा से अच्छा प्रबन्ध, वैभव-विकास, सुख और शान्ति का जीवन कभी सदा के लिए प्रजा को सन्तुष्ट नहीं रख सकता। जहाँ राजा अपने से भिन्न जँचता है, वहाँ दासता और दीनता है। जहाँ वह अपना स्वरूप, अपना प्रतिनिधि और अपना आप भासता है वहाँ उसके लिए, प्रजा के एक-एक व्यक्ति के लिए और सारे देश के लिए सच्चा स्वराज्य अर्थात् 'अपना राज्य' है।

मेरे मुकुल !

[कुमारी दीनू चोरड्या]

हे मेरे लगाये हुए पौधे !

तुम सूख गये ! हाय ! इतनी जल्दी ही तुम मुरझा गये ! ऐ अंकुर ! तुम्हें मालूम नहीं अब मेरा क्या हाल हो रहा है। अभी तक मैं तुम्हारे फूलों की आशा करते हुए दिन बिता रही थी। किन्तु तुमने तो अपना सौन्दर्य दिखाने के पूर्व ही विदा ले ली ! निष्ठुर ! इस निर्दयता का भी कोई अन्त है ? मेरी आशा के सुनहले स्वप्न टूट गये ! तुमने तो मेरे संसार को मिट्टी में ही मिला दिया !

तुम्हें पता नहीं, मैं तुमको कितना प्यार करती हूं !

यदि मुझे यह प्रतीत होता कि तुम्हारी यही इच्छा थी, यदि मुझे यह विदित होता कि मुझे तुमको कुम्हलाते और मेरे भाग्य में तुमको मुरझाते ही देखना बदा था, तो भला, इतना परिश्रम करके तुम्हें इतना क्या सींचती ? और जब सींचा, तो अच्छी तरह देखती तो सही, किन्तु, यही सोचकर कि 'हमारा ही तो है: कभी-न-कभी तो फूल लगेंगे ही', निश्चिन्त थी ! सुमन का यह सौन्दर्य मेरा ही होगा, उसकी स्वर्गीय माधुरी मेरी ही होगी, यह सोचकर मैं अपनी ललित वेदना को दबाये हुए थी !

किन्तु अब तुम तो मुरझा गये ! क्यों ! सींचा तो बराबर था। खाद भी सुन्दर थी। परन्तु हाय ! पवित्र जल और खाद के संमिश्रण ने भी मुझे अपना सुमन देखने न दिया ! उस कल्पित सुमन को, ऐ मुरझाये पौधे, अब कौन देखने देगा ?

हा, यह वियोग अनन्त है, असह्य है !

तुम सूख गये, फिर मैं भी क्यों न सूख जाऊं ? जब तुम्हे हरा न कर सकी तो फिर मैं हरी क्यों कर रहूं ?

मेरे नयनों के आनंद ! अब मेरे लिए यह वाटिका सूनी है—उजाड़ है ! जब प्रेमपूर्वक लगाया पौधा इसमें नहीं, तो फिर मुझे इस उद्यान से क्या लेना-देना ! मैं भी इसे क्यों न ठुकरा दूं ? अब निश्चय है, तुम्हारे साथ ही सूखने में आनंद है ! जब तुम्हे ही न देख पाया, तो फिर ये नयन किस काम के ? तुम्हारे साथ ही धूलि में, मिट्टी में मिल जाऊंगी। जिससे मालिन न बन सुमन ही बनूं !!

यही इच्छा है, समवेदना है कि एक ही शाखा पर दोनों फूलें, हँसें और संसार को सुगन्ध से मोहित करें !

वह मुकुल !

हां, निष्ठुर पौधे ! वह मेरा मुकुल !! फिर कोई दूसरा हमें चुनकर माता के चरणों में अर्पित करे ! केवल मिट्टी में मिलने और मुकुल बनने की लगन आवश्यक है !!

निर्मोही न बनो, पौधे !; मेरे मुकुल के जन्मदाता ! अब भी समय है प्रेम के आंसुओं से पुनः उसी प्रकार उसी आशा से तुम्हारा सिंचन करूं और तुम्हारे सुमन को--मेरे मुकुल को---कुंकुम-अक्षत के साथ थाल में सजाकर मातृ-पूजा के लिए दौड़ी जाऊं !

फिर ?

फिर अपनी अकर्मण्यता के द्वारा मातृ-मन्दिर के द्वार पर जो कीट चढ़ाया, उसे माता के चरणों में शीश टेक, क्षमा मॉगकर, अपने हृदय रक्त में धोकर उसी मुकुल को श्रद्धेय जगदम्बा के चरणारविन्दों में अर्पित करूं, यही इच्छा है, यही लगन है !

पौधे ! तेरा वह सुमन कितना गौरवमय होगा ? यह न समझो पौधे ! इसमें मेरा स्वार्थ है, नहीं, कदापि नहीं ! तेरे सुमन की, मेरे मनोरम मुकुल की अमरता है और साथ ही, मेरे हृदय की शान्ति है !

वह

[श्री 'निर्गुण']

(१)

प्रथम दर्शन

१९२० की बात है। उन दिनों मैं भारत के प्रवेश-द्वार बम्बई में था। शहर से ७ मील दूर माण्टुंगा उप-नगर में अपने एक हिन्दी-प्रेमी धनी मित्र के यहाँ ठहरा हुआ था। उस दिन की बात मुझे अबतक याद है। मैं कार्य की अधिकता से थक गया था; कई मील चलने और पहाड़ों पर घूमने से शिथिलता आ रही थी। लगभग ८ बजे रात का समय था। मैं कमरे में पहुँचते ही गद्दी पर पड़ गया। बिजली के पंखे ने आधी गरम, आधी ठण्डी हवा के झोंके दे देकर मुझे सुला दिया; पर वह नींद थकावट की नींद थी।

टन न . ट...न ! एकाएक टेलीफोन की घण्टी बज उठी। मेरे मित्र उसी कमरे में टेलीफोन से बातें करने आ गये। घण्टी के शब्द और बिजली के प्रकाश से मेरी नींद टूट गई। उन्होंने कहा—'अरे ! आप जग गये; उठिए... ...आये हैं; चलिए भेंट कर लीजिए।"

मुझे थकावट की उस सुख-दुखमयी नींद में यह दस्तंदाज़ी बड़ी बुरी लगी। पर सभ्यता का तकाज़ा था। वह भी क्या समझेंगे ? किसी तरह अर्द्ध-जाग्रत, अर्द्ध सुषुप्त अवस्था में मैं अपनी छोटी-सी काया और उसके हिसाब से बहुत बड़े और चारों ओर फैले सर के लम्बे बालों को सँभालता हुआ मिलने के बड़े कमरे में जाकर धम से एक कुर्सी पर बैठ गया। मेरे सामने एक दुबले-पतले, इकहरे बदन के लम्बे सज्जन बैठे हुए थे। पहली ही दृष्टि में धवल खादी के कुर्ते के नीचे छिपी अपनी ही जैसी देह दुर्बल शरीर की ओर देखकर मैं सहम गया ! मैंने समझा, हो न हो यह व्यक्ति पक्का और कट्टर गाँधीवादी है। मैं और गम्भीर होने के लिए मुँह पर थोड़ी कृत्रिम गम्भीरता उत्पन्न करने की चेष्टा करते हुए सँभलकर बैठ गया और उसकी ओर देखने लगा !

यह हरिभाऊजी थे और यह मेरा उनका प्रथम दर्शन था !

× × ×

पर मैंने जो-कुछ सोचकर 'भीरता की तौल बढ़ाने के लिए कृत्रिम मौन का सहारा लिया था वह ग़लत निकला। मेरे चुप रहने पर भी उनके विनोद में मेरी गंभीरता बह गई और मैंने पाँच मिनट के बाद ही यह समझ लिया कि जहाँ खादी, शरीर की कृशता और शालीनता के अन्दर इस व्यक्ति का गाँधीवाद छिपा है वहाँ उस गाँधीवाद की तह में, इसके शरीर के अन्दर कवि का हृदय और स्नेही की सरलता भी छिपी है। मुझे समझते देर न लगी कि गाँधीवाद का यह पौधा संयम और त्याग के ऊँचे और शुष्क सिद्धान्तों पर ही नहीं उगा है वरन् उसका बीज सहृदयता और मृदुलता की मिट्टी एवं खाद में फूटकर इस रूप में उठ खड़ा हुआ है !

मैं लोगों से ज़्यादा मिलने-जुलने में बहुत डरता हूँ और इस विषय में उदासीन ही रहता हूँ। उन दिनों तो मेरी विरक्ति और बढ़ी हुई थी। मैं अपने हृदय को, उसमें छिपी ममता और कवि की मृदुलता को सदा छिपाकर ही रखता था इसलिए यद्यपि इस दुबले-पतले व्यक्ति के उज्ज्वल हास्य में मेरी गंभीरता दूर हो गई फिर भी एक घण्टे के अन्दर मैंने उनसे मुश्किल से दो-चार वाक्य कहे होंगे ! मेरी उदासीनता से उनपर क्या छाप पड़ी सो तो मालूम नहीं पर चुप रहकर भी मैंने उन्हें उसी दिन बहुत कुछ समझ लिया।

यह साहित्य की मिट्टी पर उगता हुआ राजनीति का पौधा था जिस पर दुनिया की व्यावहारिकता ने असर डालना शुरू कर दिया था।

(२)

पहला पत्र !

'त्यागभूमि' के जन्म की कथायें सुनता रहता था। मैं डर रहा था कि राजस्थान की शुष्क और बलुई ज़मीन में यह पत्रिका पनप न सकेगी। पहले अङ्क की इसकी टिप्पणियाँ पढ़कर, इसकी सात्विकता देखकर अपनेपन की हलकी पर अस्पष्ट छाया मन पर फैलती जा रही थी इसलिए बड़ी-बड़ी मोटकी और शौक़ीन-तबियत पत्रिकाओं के बाह्य आकर्षण और जनता की मनोवृत्ति का ध्यान कर मन ही मन कभी-कभी डर लगता था। ह० उ० की टिप्पणियाँ सब मेरे मन के अनुकूल हुईं या उनमें प्रकट किये विचारों को मैंने सदा समाज एवं व्यक्ति के विकास के लिए लाभदायक ही समझा, ऐसी बात न थी पर उनमें एक प्रकार की सरलता और सचाई थी—यद्यपि कट्टरता भी कम न थी। ख़ैर—ये टिप्पणियाँ और लेख बार-बार पहुँचकर माटुंगा के मकान के कमरे में एक दिन बैठकर बात करने वाले दुबले-पतले व्यक्ति की याद को ताज़ा कर दिया करती थीं। १९२७ अक्टूबर का महीना था। शायद २२ तारीख थी, हरिभाऊ जी का माँ के देहान्त का समाचार मुझे मिला। मुझे अच्छी तरह याद है उस दिन एक मित्र के यहाँ मेरा निमन्त्रण था पर अकारण ही मैंने उन्हें असमर्थता-सूचक धन्यवाद लिख भेजा और हरिभाऊ जी को एक छोटा-सा बन्द लाइनों का कार्ड डालकर चुपचाप पड़ रहा। मैंने कभी इस छोटी-सी घटना की चर्चा किसी से न की क्योंकि आज तक स्वयं ही मुझे समझ में न आया कि क्यों उस दिन मुझे भोजन करना अच्छा न लगा। मेरा स्पष्टीकरण इतना ही है कि बिना किसी परिचय के किसी अज्ञात छाया-वश भी कभी-कभी व्यक्तियों के जीवन में ऐसी घटनायें हो जाती हैं।

जो हो;—मेरा वह हरिभाऊ जी को प्रथम पत्र था। और उसका छोटा-सा जो उत्तर आया वह मुझे अभी तक शब्द-शब्द याद है। उन शब्दों के आक में खिंचकर मैं और नज़दीक आ गया। जहाँ उस पत्र से हृदय का दुःख टपकता था वहाँ संयम की असफल पर सच्ची चेष्टा भी शब्द-शब्द में फैल रही थी।

(३)

विवेचन

पीछे ऐसे मौक़े बढ़ते गये और उसके साथ साथ हरिभाऊ जी से मेरा सम्पर्क भी बढ़ता गया इस बीच में मैंने उन्हें सूखे और कठोर विरागी के रूप में देखा है; जीवन की स्नेहमयी व्यक्तिगत उलझनों में उलझे हुए एक अर्द्ध गृहस्थ के रूप में देखा है; हृदय के कितने ही मधुर अनुभवों का वर्णन सुनाने वाले ऐसे कवि के रूप में भी देखा है जिनकी कविता दुनिया और व्यवहार-जगत् की लाचारी तथा बढ़ती हुई उम्र छीनकर उससे दूर करती जा रही है। उन्हें सम्पादक, उपदेशक, दुर्बल साधारण प्राणी, सहायक, कार्यकर्त्ता और नेता सभी रूपों में देखा है। मेरा अनुभव है कि वह एक पूर्ण गृहस्थ—एक पूरे पिता या भाई या पति—नहीं हो सके पर वह जीवन में सर्वत्र एक सच्चे और वफ़ादार मित्र हैं और सबसे अपना सम्बन्ध बनाये रखने और उसे निबाहते जाने में पटु हैं।

यदि मनुष्य के हृदय की परीक्षा करने के लिए कोई मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला बनाई जा सकती तो उसमें हरिभाऊजी की परीक्षा करने पर, मुझे विश्वास है, यह मालूम पड़ता कि चाहे वह इसे कितना ही अस्वीकार करें उनमें भावुकता की मात्रा बुद्धि से कहीं अधिक है। उनके सर्वोत्तम लेखों में से यदि भावुकता निकाल दें तो उनका प्राण निकल जायगा! भिन्न-भिन्न बहन-भाइयों से उनका जो सम्बन्ध है उसमें भी भावुकता ने बुद्धि से अधिक महत्वपूर्ण अभिनय किया है! मैं उनके कई ऐसे मित्रों को जानता हूँ जो उनके साथी और सहायक समझे जाते हैं पर जिनके सम्बन्ध में उनका निर्णय बहुत अधिक भावुकतामय और अपूर्ण है। इसका कारण यही है कि हरिभाऊ जी की भावुकता का कोई भी व्यवहार-पटु आदमी सहज ही दुरुपयोग कर लेता है! मतलब यह कि उनको उत्पन्न करने वाली शक्तियों में हृदय का स्थान बुद्धि से अधिक है यद्यपि उनका हृदय दिन पर दिन बुद्धि की बढ़ती हुई प्रेरणाओं से दबता आता है और जिसे वह संयम कहते हैं उसके सतत अभ्यास से उनकी शुष्कता बढ़ती जा रही है। अभी तक तो भीतर से इसमें वह बहुत ज़्यादा सफल नहीं हुए

हैं और ईश्वर न करे कि उनकी 'बुद्धि' फैलकर 'हृदय' को एकदम दबा ले क्योंकि उस दिन, हरिभाऊ जी हरिभाऊ न रह जायँगे। वह इस व्यक्ति का शायद अन्तिम दिन होगा !

(४)

'बद्रयाबंड से उपाध्यायजी'

आज से लगभग ५ वर्ष पूर्व उज्जैन के एक छोटे से गाँव भौंरासा) में एक बालक का जन्म हुआ था जो कुछ अवस्था पाने पर बड़ा शरारती और चंचल निकला किसी साथी लड़के ने कुछ छेड़छाड़ या बदमाशी की नहीं कि तुरन्त उसका हाथ चल जाता था वह अपने गाँव और आसपासके गांवों में 'बद्रयाबंड' के नाम से मशहूर था। आज 'बद्रयबंड' नहीं है,—वह 'उपाध्यायजी' के रूप में बदल गया है। 'बद्रयाबंड' को उपाध्यायजी बनने में लगातार अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और बहुत समय तक बड़ा परिश्रमपूर्ण जीवन बिताना पड़ा है। लड़कपन में, छात्रावस्था में उसे इसके लिए बड़ी तैयारी करनी पड़ी थी और इसी समय से उसमें धुन के पक्के होने की दृढ़ता दिन पर दिन आती गई। आज हरिभाऊजी के प्रारंभिक चरित्र का निर्माण करनेवाली अधिकांश शक्तियाँ दुनिया में नहीं हैं। उनके स्व० चाचा वैजनाथ जी का प्रभाव उनके इस निर्माण में बहुत अधिक है। स्व० माताजी से उनको सहृदयता, मृदुलता इत्यादि कोमल गुण प्राप्त हुए और अपने पू० पिता जी से उन्होंने दृढ़ता और कट्टरता की भावना ग्रहण की है। उनकी पत्नियों ने उनके जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण अभिनय किया है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इधर के वर्षों में उनका जीवन महात्मा गाँधी के प्रभाव से ओत-प्रोत रहा है। इस तरह आज, इतने दिनों बाद वह शरारती और अक्खड़ बाज़ 'बद्रयाबंड' से अनेक मार्गों में गुज़रने और अनेक व्यक्तियों से प्रभावित होने के बाद, मधुरभाषी और शांत उपाध्यायजी बन सके हैं !

'त्यागभूमि' की प्रथम बलि—श्री हरिभाऊ उपाध्याय

(५)

सबसे बड़ा गुण और सबसे बड़ा दोष

हरिभाऊजी में सब से बड़ा गुण यह है कि वह कम से कम विरोध उत्पन्न करके काम निकाल लेना जानते हैं; वह अपनी मधुर भाषा और शैली से सभी को अपना साथी और मित्र बना लेने का प्रयत्न सदा करते रहते हैं। यह उनका सबसे बड़ा गुण है पर यही उनका सबसे बड़ा दोष भी है क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में उनकी स्थापित या उनके द्वारा विकसित संस्थाओं में उनकी इस मुलायमियत का सहज ही दुरुपयोग होने लगता है।

हरिभाऊ जी का यदि हम विश्लेषण करें तो उनमें तीन मुख्य धारायें दीख पड़ेंगी (१) महात्माजी का प्रभाव और अनुसरण की चेष्टा (२ ब्राह्मणत्व के संस्कारों के कारण भीतर ही भीतर चलनेवाला पुरातन और नूतन संस्कार और सत्य का संघर्ष (३) साहित्यिक और कोमल प्रवृत्तियाँ जो विश्व-प्रेम और मानवोचित प्रेरणाओं को बार-बार उनके सामने उपस्थित किया करती हैं। वर्तमान समय में इनमें पहली धारा प्रबल है जो युग-धर्म का प्रभाव है। पहले इनके जीवन की गति तीसरी धारा की ओर थी और भविष्य में भी शायद एक समय उसी की प्रबलता हो! दूसरी धारा त्रिवेणी-संगम की गुप्त सरस्वती की तरह अदृश्य है पर उसके चिन्ह समय-समय पर प्रकट होते रहते हैं। इस तरह एक बात में कहना चाहें तो कहेंगे कि *वह एक 'भावुक ब्राह्मण गांधीवादी सज्जन' हैं !*

हरिभाऊ जी में दो गुण सदा से रहे हैं—(१) अपने से अधिक योग्यतावाले आदमियों से सीखने के लिए तैयार रहना और (२) यथासंभव सबसे मित्रता और सौहार्द्र बनाये रखना। इसके साथ ही इतने दिनों के अनुभव ने अब उनमें अपनी ज़िम्मेदारी का भी एक प्रबल भाव उत्पन्न कर दिया है। अब वह किसी से कोई बात कहते समय यथासंभव इसका भी ध्यान रखते हैं कि उस-पर उस बात का क्या प्रभाव पड़ेगा?

(६)

कुछ साधारण बातें

अपने चचा के पास काशी में रहने के समय बहुत दिनों तक हरिभाऊजी को जातीय पत्र 'औदुम्बर' का सम्पादन और प्रबन्ध करना पड़ा था। यह अनुभव आगे चलकर उनके लिए बहुत उपयोगी हुआ और १९१५ में जब वह पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी के साथ कानपुर रहकर 'सरस्वती' के सम्पादन-कार्य में उनकी सहायता करने लगे तो उनको यह अनुभव उनके बड़ा काम आया। द्विवेदीजी पहले आदमियों को खूब कसते हैं और जब वह उनकी कसौटी पर उत्तीर्ण हो जाता है तो उसके प्रति उनकी ममता बढ़ जाती है। हरिभाऊजी को शुरू-शुरू में कठिनाई तो पड़ी पर वह अन्त तक द्विवेदीजी की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और 'औदुम्बर' का अनुभव 'सरस्वती' की कठिन सम्पादकीय काट छाँट में आकर अधिक सुरुचिपूर्ण और संस्कृत हो गया। पीछे 'प्रभा', 'हि० नवजीवन', 'मालव-मयूर' और 'त्यागभूमि' में क्रमशः इनकी शैली और विचार-प्रणाली का विकास स्पष्ट दिखाई पड़ता है। औदुम्बर से इन्होंने 'जाति-प्रेम'; 'सरस्वती' से साहित्यिक सुरुचि, 'प्रभा' से राजनैतिक प्रवृत्ति, 'हिन्दी नवजीवन' से संयमपूर्ण विचार-प्रकाशन 'मालव-मयूर' से प्रान्तीय सेवा का निश्चय के भाव लिये और इन सब का संयोग (मिक्सचर) आकर 'त्यागभूमि' के रूप में प्रकट हुआ।

जब यह 'सरस्वती' के काम से कानपुर में रहते थे तो वहीं गणेशशंकरजी इत्यादि से इनका परिचय हुआ। गणेशजी की लगन को देखकर यह उनपर मुग्ध थे और उन्हें बड़े भाई के समान आदर करते थे! एक दिन जब मेरा चित्त बहुत अशान्त था तब हरिभाऊजी आधी रात तक बैठे हुए मुझे अपने जीवन की अनेक घटनायें सुना-सुनाकर सान्त्वना देते रहे। उस सिलसिले में उन्होंने एक ऐसी छोटी घटना सुनाई जिसका प्रभाव, उनके कथनानुसार उनके जीवन पर बहुत पड़ा; वह तो कहते थे कि 'उस छोटी घटना ने मेरी विचार-धारा ही बदल दी और तब से मैं बहुत गंभीर हो गया हूँ तथा अनासक्ति बढ़ाने की चेष्टा

करता रहता हूँ।' बात ज़रा सी है। कानपुर में वह अपने छोटे भाई मार्तण्ड को, अन्य लोगों के साथ, पिता की मरज़ी के खिलाफ़, अपने साथ रहने के लिए ले गये थे। हरिभाऊजी मार्तण्ड को बहुत स्नेह करते थे और उन दिनों तो वह बहुत छोटा ८-९ वर्ष का था। एक दिन वह बीमार पड़ा; उसकी अवस्था ख़राब होती गई—यहाँ तक कि बचने की कोई उम्मीद न रही। अब एक ओर उसके स्नेह के कारण इनका युवक-हृदय कातर हो रहा था और दूसरी ओर पिता का भय लगा था कि मैं उनके मना करने पर भी उनको नाराज़ करके यहाँ लाया। यदि कुछ हो गया तो बड़ी मुश्किल होगी। यह गणेशजी के पास पहुँचे और रोने लगे। गणेशजी ने कहा—"भई! तुम्हारा यह रोना तो ठीक नहीं मालूम पड़ता।" यह चकराये; उन्होंने फिर कहा—'यह सब तुम्हारा स्नेह-मात्र नहीं है वरन् तुमने स्वार्थ-वश इससे जीवन में जो बड़ी-बड़ी आशायें बाँध रखी थीं उन्हें टूटते देखकर आज तुम्हें इतना दुःख हो रहा है। तुम्हें किसी से इतनी ज़्यादा आशा क्यों रखनी चाहिए?" इन छोटे-छोटे दो तीन वाक्यों ने हरिभाऊजी की विचार-धारा बदल दी और वह कहा करते हैं कि अब मैं यथासंभव अपनी आशाओं को बहुत परिमित ही रखकर चलने की कोशिश करता हूँ। इससे आशा से ज़्यादा मिल जाने पर मेरा सुख स्वभावतः बढ़ जाता है और कम सफलता मिलने पर दुःख भी कम होता है।

'सरस्वती' में तीन साल रहकर १९ ८ में मालवा में काम करने की इच्छा से वह इन्दौर आये। वहाँ श्री जीतमलजी लूणिया के साथ मध्यभारत हिन्दी-पुस्तक एजेंसी की स्थापना की, जो आगे काशी के हिन्दी-मंदिर के रूप में प्रकट हुई।

इन्दौर में आने पर इनपर कई विपत्तियाँ साथ ही आईं। यहाँ इनकी पहली पत्नी की मृत्यु हुई; माताजी बहुत बीमार पड़ गईं।

× × ×

सूरदास ने सैकड़ों वर्ष पूर्व गाया था—"अविगत गति कछु लखि न परै।" प्रकृति और ईश्वरीय शक्ति प्रायः साधारण नियमों के विपरीत भी दृश्य उपस्थित किया करती है। किसी को अच्छे काम का फल बुरा मिल जाता है; किसी को अनुचित का फल अच्छा मिल जाता है। हरिभाऊजी के प्रथम विवाह को—जो १६ वर्ष की अवस्था में हुआ था—बाल-विवाह ही कहना पड़ेगा। इसलिए सामाजिक आदर्श की दृष्टि से वह अच्छी बात न थी, किन्तु उनकी पत्नी द्रौपदी बहुत ही सरल स्वभाव की थीं। हरिभाऊजी उनको बहुत चाहते थे और उनके दिल पर उसकी बड़ी अच्छी छाप पड़ी थी। उनकी मृत्यु के बाद, हरिभाऊ जी की कविता में सचमुच सच्चे कवि के प्राण आ गये थे, जो जीवन में कोई गहरा अभाव हो जाने या दिल पर चोट लगने से ही संभव है।

पहली पत्नी की मृत्यु के कुछ दिनों बाद माता-पिता और चचा के आग्रह से हरिभाऊजी ने दूसरा विवाह किया। मेरी सम्मति में यह घटना इनके जीवन-पृष्ठ पर एक काले धब्बे के समान लगती है। इनके जैसे नैतिक विचार के आदमी के लिए यह बात कभी अच्छी नहीं कही जा सकती थी। और अब भी एकपत्नीव्रत की बात करते समय, उन्हें, इस घटना के कारण एक प्रकार के संकोच का अनुभव होता है पर, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, ईश्वर अनेक रूपों में अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है। इस ग़लती में ही, दूसरी पत्नी भागीरथी के रूप में, उन्हें एक रत्न मिल गया। वह स्वयं कहा करते हैं कि मैं जो कुछ कर सका हूँ अपनी पत्नी के पुण्य और सहयोग का उसमें बड़ा हाथ है। हम जब भी हरिभाऊजी के जीवन के अबतक के पृष्ठों को उलटकर देखते हैं तो हमें जहाँ यह मालूम पड़ता है कि इनका जीवन अनेक आर्थिक एवं अन्य असुविधाओं से पूर्ण रहा है वहाँ उन्हें जीवन में मानसिक स्फूर्ति के साधन भी प्राप्त होते रहे हैं और घरेलू जीवन में, अपनी पत्नी, अपनी माता, अपने भाइयों, अपने चचा—प्रायः सभी से इनको बहुत अधिक प्रेरणा प्राप्त होती रही है। यह हरिभाऊजी का सौभाग्य है कि जहाँ उनका बाहरी सामाजिक जीवन मधुरतापूर्ण है वहाँ उनका घरेलू एवं व्यक्तिगत जीवन उससे भी अधिक मधुर और सामंजस्यपूर्ण है। इन सुविधाओं ने इनके मार्ग की बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर कर दी हैं।

'हिंदी-नवजीवन' में कई वर्षों तक काम करने के बाद स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण १९२५ में वह इन्दौर लौटे और पीछे शीघ्र ही राजपूताना में काम करने के विचार से वहाँ से छुट्टी ले ली। राजपूताना में चरखा-संघ की शाखा खुलने पर उसका काम देशपाण्डेयजी के साथ उन्होंने अपने हाथ में लिया। आरम्भ में उन्हें बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। पहले के कार्यकर्ताओं ने वातावरण खराब कर रखा था किन्तु हरिभाऊजी की मधुर शैली से शीघ्र ही स्थिति बदल गई और जो लोग अपने गाँव में खादीवालों को टिकने न देते थे वे अपने बच्चों को अछूतों के साथ पढ़ाने तक को तैयार हो गये।

चरखा-संघ की प्रांतीय शाखा के खुलने के पहले ही श्री जमनालालजी के उद्योग से अजमेर में सस्ता-साहित्य-मण्डल की स्थापना हरिभाऊजी की देख-रेख में हुई। लूणियाजी इसके मंत्री बनाये गये। आज तो सस्ता-मण्डल छोटे पौधे से एक बड़ा वृक्ष बन गया है। उसने और त्या० भू० ने सात्विक साहित्य का हिन्दी-जगत् में एक आदर्श उपस्थित किया है जिसका प्रभाव पाठकों एवं प्रकाशकों पर बहुत पड़ा है।

हरिभाऊजी के कार्यमय जीवन का निर्देश इस विवरण से होता है—

(१) १९१५ से १८ तक 'सरस्वती'

(२) १९१८ से १९२१ 'मालवा मार्तण्ड' तथा 'प्रभा'

(३) २१-२५—हि० नवजीवन

(४) २६-२७—राजपूताना चरखा-संघ; मंडल

(५) २७-३० 'त्यागभूमि', बिजोलिया और कांग्रेस

मतलब यह कि हरिभाऊजी का जीवन एक विकास का जीवन है और दिन-दिन वह अपने पथ पर, भले ही गति धीमी हो, आगे बढ़ते जा रहे हैं। १९२९ के अन्तिमांश में उन्होंने अजमेर प्रांत में कांग्रेस का कार्य भी उठा लिया और अपने कौशल तथा अपने वीर साथियों के उत्साह से इस ऊसर प्रांत में भी जागृति उत्पन्न कर दी। आज तो वह सरकारी जेल में बंद हैं पर मुझे आशा है कि जेल से वह अधिक नियमित, पवित्र, संयमी और गंभीर बनकर निकलेंगे। भगवान उन्हें अपने चरणों में स्थान दें।

और ये—

पथिक जी

[श्री 'मृत्युंजय']

आज ज़माना बहुत आगे बढ़ गया है। गाँधी-वाद ने सुषुप्त देश को न केवल जगा ही दिया, हमारे अन्दर प्रतिरोध की भावना भी पैदा कर दी है। आज जेलों का कष्ट तो हमारे लिए मामूली बात हो गई है, हाल की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया है कि हम शान्ति के साथ पर दृढ़ बने रहकर गोलियों का स्वागत करने को भी कटिबद्ध हो गये हैं। आज देश में जीवन है, जागृति है, बल और बलिदान की भी भावना है। परन्तु अभी कुछ वर्ष पूर्व ही, कोई १०-१५ वर्ष पहले, यह बात कहाँ थी।

उस समय की कठिनाइयाँ आज से कहीं ज़्यादा थीं। सरकार का आतङ्क ज़बरदस्त था, गाँधी-जैसा कोई पथ-प्रदर्शक भी न था। सामूहिक जागृति तो कहाँ, उसकी भावना भी उठी ही उठी थी।

परन्तु उस समय भी कोई वीर राजपूतों के भूखण्ड को जगाने के लिए अलख जगा रहा था। बड़े लोग उसे न जानते

थे, सर्व-साधारण भी उससे परिचित न थे। मगर वह तो चुपचाप अपने काम में लगा हुआ था; और जब वह सामने आया तो एक बड़े और महत्वपूर्ण कार्य के कर्त्ता के रूप में लोगों ने उसे जाना। वह गुप्त-सा था, अपरिचित था, बड़ा आदमी न था मगर उसने इस बीच जो काम किया उसने बड़े-बड़ों की नज़रों में उसे चढ़ा दिया।

यमुना से सिञ्चित युक्तप्रान्त की भूमि में पैदा हुआ यह वीर प्रताप की वीर-भूमि का पथिक बना, 'पथिक'
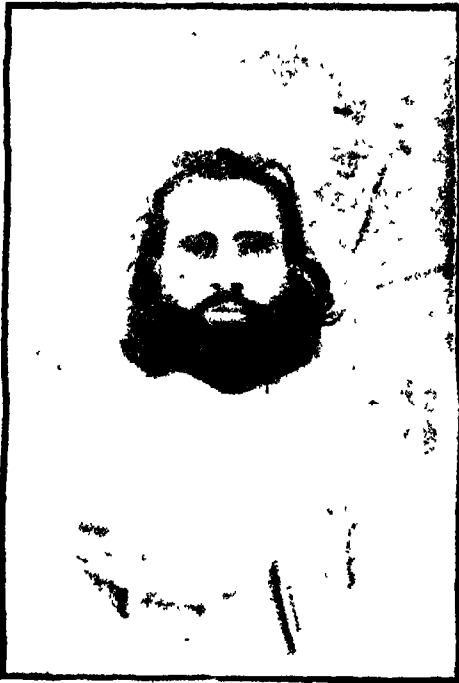
पथिक जी

उपनाम रखकर ही उसने राजस्थान की सेवा का बीड़ा उठाया, और आज भी वह उसी में लगा हुआ है।

× × ×

विजयसिंह 'पथिक'! आज हमारे लिए यह नाम बिलकुल परिचित है—राजस्थान के सार्वजनिक जीवन से जिसे ज़रा भी परिचय है, वह दाढ़ी वाले 'पथिक' की डरा देनेवाली रोबदार सूरत से नहीं तो उनके नाम से ज़रूर वाक़िफ़ होगा। अपने बहनोई के साथ राजस्थान में आकर वह राजस्थानी ही बन गये। शुरू-शुरू में जब राजस्थान की सेवा की उन्होंने शुरूआत की, हिन्दी-संसार एक श्रेष्ठ कवि के रूप में ही उनके नाम को जानता था—नाम भी सिर्फ़ 'राष्ट्रीय पथिक'! 'राष्ट्रीय पथिक' की कविताओं पर लोग मुग्ध थे पर उन्हें यह पता न था कि वही पथिक राजपूताना के एक भाग में ऐसे संग्राम का रचनात्मक संगठन भी कर रहा था, जो बाद में सामूहिक रूप में भारत-भर का अङ्ग बनने वाला था। मेवाड़ान्तर्गत बिजोलिया के ही किसान हैं, जिन्होंने हिन्दुस्तान में पहले पहल करबन्दी का आन्दोलन शुरू किया और उनका मार्ग-दर्शक था वही 'राष्ट्रीय पथिक'। बिजोलिया का संग्राम छिड़ा और उसमें कामयाबी भी हुई। महात्माजी और एण्डरूज़ साहब तक का ध्यान उस पर आकर्षित हुआ और इसके लिए उन्होंने पथिक जी की प्रशंसा भी की। बस, तभी से पथिक जी पर्दे से बाहर आये और सार्वजनिक क्षेत्र में परिचित गये।

बिजोलिया का काम करते हुए पथिक जी ने जो-जो कठिनाइयाँ उठाईं, जैसी-जैसी बहादुरी और हिम्मत उन्होंने दिखलाई, वह उनके लिए गौरव की चीज़ है। पहाड़ों की गुफाओं में, दरख़्तों के तले, खुले मैदान में या खेत के अन्दर उन्होंने न-जाने कितनी रातें बिताई हैं! रूखा-सूखा खाना भी कहाँ, कई-कई दिन के फ़ाक़े तक उन्हें करने पड़े हैं। ऐसे भी मौके हुए कि दौड़ते-भागते कहीं रूखी रोटी या चने खाने बैठे कि पीछा करने वाले सरकारी आदमियों का हुजूम आ पहुँचा और उस 'नियामती भोजन' को भी वहीं छोड़कर उन्हें भागना पड़ा। पुलिस की गिरफ्त में आकर काठ में दिये गये, और वहाँ से पुलिस को चकमा देकर मूछों पर ताव देते हुए नौ-दो-ग्यारह हुए, ऐसे भी क़िस्से सुने जाते हैं। और एकाध मौक़े तो जंगल या गुफा में सोते वक्त बाघ आदि जङ्गली जानवरों से मुठभेड़ के भी हो गये हैं। एक बार तो एक बाघ उनकी टाँग पकड़कर घसीट ही ले गया था, पर इस बीच में ही आँख खुल गई और कमर से दुनाली बन्दूक निकालकर उन्होंने वहीं बाघ का ढेर करके अपना पीछा छुड़ाया। ऐसे ही कई साहसपूर्ण क़िस्से इस समय के और भी सुने जाते हैं और इन सब

के बाद ही पथिक जी अपने कार्य में विजयी हुए हैं।

इसके बाद का पथिकजी का जीवन प्रकाश्य जीवन है और वह मुख्यतः अखबारी और प्रचार-कार्य का है; मानो वह उस कठोर जीवन की खुमारी हो। वह वर्धा गये। वहाँ सेठ जमनालाल बजाज की सहायता और कुछ सम्मान्य राजस्थानी सेवकों के सहयोग से 'राजस्थान सेवा-संघ की स्थापना की तथा 'राजस्थान-केसरी' पत्र निकाला। फिर अजमेर आ गये, संघ को व्यवस्थित रूप दिया, 'नवीन राजस्थान' पत्र निकाला, जो फिर 'तरुण राजस्थान' हो गया। संघ ने बीजकपुर-सिरी संग्राम, सिरोही-हत्याकाण्ड, बिजोलिया, बेगूँ, बूँदी, अलवर आदि के मामलों में जैसा कुछ काम किया वह सब इस जमाने की बातें हैं। संघ की स्थापना के कुछ ही समय बाद उदयपुर राज्य का वार हुआ। बीमारी की हालत में छापा मारकर एक गाँव से उन्हें गिरफ्तार किया गया और लम्बे मुकदमे के बाद लम्बी सज़ा दे दी गई। वहाँ से छूटकर आने के बाद कुछ समय तक संघ को सम्हालने की कोशिश की। बाद में स्वतंत्र रूप से 'राजस्थान-संदेश' पत्र निकाला तथा कांग्रेस के द्वारा काम करने लगे। और कांग्रेस के सिलसिले में ही इस समय २ साल के लिए सरकारी महमान बने हुए हैं।

\+ + +

पथिक जी की नीति राजनैतिक कूटनीति की नीति है। अब वह गांधी जी की नीति से प्रभावित हुए हैं। पर उनकी मनःस्थिति उन्हें कहाँ तक उसपर चलने देगी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें शक नहीं कि जिस काम में भी वह पड़े, उनके कारण उसे बल मिलता है। आशा है, राजस्थान अपने ऐसे बल का उपयोग करता रहेगा।

राहतजी

[श्री 'निर्गुण']

एक लम्बा नौजवान; सफ़ाई की आदर्श सीमा तक पहुँची हुई धवल खादी से ढका हुआ; पैरों में चप्पल, गले से नीचे पाँव के घुटनों तक लटकता हुआ दुपट्टा, सिर पर गांधी टोपी और 'मेडिटेटिव' (चिन्ताशील) प्रवृत्ति के प्रमाण-स्वरूप फहराती हुई दाढ़ी! 'राहत' जी का नाम लेते ही इतनी बातें तुरंत आँखों के सामने आ जाती हैं।

राहतजी एक अत्यन्त भावुक कवि हैं, जिनके अन्दर सदा एक युद्ध चला करता है और जो उस युद्ध में, भगवान् के भरोसे, धीरे-धीरे सब कुछ, बुरा-भला चढ़ा देने को तैयार रहते हैं। राजपूत जाति की वीर गाथाओं ने उनके ऊपर बड़ा प्रभाव डाला है और यह कोमलता भर मिटने के लिए उत्सुक उनके हृदय से निकलकर उनके जीवन के चित्र को रंग-बिरंगा कर देती है।

वह विचार की लहरियों में सचमुच बहुत दूर तक पैठते हैं। इसीलिए कभी-कभी वह काम करते-करते घण्टों सूनी आँखों से न जाने क्या सोचने लगते हैं। कभी अत्यन्त गम्भीर और उदासीन बन जाते हैं, कभी कुत्तों, जानवरों और बच्चों के प्रेम में विभोर उन्हींके हो जाते हैं। कपड़े में साबुन लगाते-लगाते कुछ सोचने लगे तो हाथ में साबुन की बट्टी लिये घण्टों बैठे हैं। तारों को देखने लगे तो न जाने किस दुनिया में चले गये। उनकी इन बातों से यह मालूम होता है कि उन्हें अपने जीवन में कभी बहुत गहरी चोट खानी पड़ी है। उन्होंने तड़पता हुआ दिल पाया है जो समय-समय पर 'फुलझड़ियों' के रूप में जलता रहा है और बिजली की तरह एक बार चमककर बुझ जाने एवं 'दिल के टुकड़े' कर डालने को सदा तैयार रहा है। उनकी अव्यवस्थित-चित्तता का, मुझे तो, यही कारण मालूम पड़ता है।

पर इस चिन्ताशीलता और वेदना ने उनके शरीर को बहुत कमज़ोर कर दिया है और वह खुद ही कहते हैं कि मुझे इस शरीर से ज्यादा दिन जीवित रहने की

आशा नहीं है। इसे भगवान् बचा रहे हैं, शायद इसलिए कि, जैसा मुझे आभास मिलता है, किसी दिन उन्हें एकाएक इसका उपयोग कर लेना है।

राहतजी के इस वाक्य में मुझे सच्चाई की झलक मिलती है क्योंकि जहाँ उनमें कवि का हृदय है, वहाँ राजपूत की आन भी है। फिर भी हम उनका विश्लेषण कर इस नतीजे पर निकलते हैं कि वह ज्ञान की अपेक्षा श्रद्धा से ही अधिक भरे हुए हैं—उन्हें मीराबाई, कबीर से अधिक प्रिय होंगी, इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं है।

× × ×

मद्रास में हिन्दी-प्रचार के लिए गये थे, और 'भारत-तिलक' तथा पढ़ाई आदि के द्वारा बड़े अच्छे ढंग से उन्होंने वहाँ यह काम किया भी; पर इसी बीच असहयोगान्दोलन शुरू हो गया। राहतजी का राजपूत हृदय उद्वेलित हो उठा और वह उसमें पड़ गये; यहाँ तक कि जेल भी पहुँच गये। जेल से वह और उत्कृष्ट होकर निकले। 'तामिल वेद' के अध्ययन ने उन्हें बहुत ऊँचा उठाया। बाद में अपने परम मित्र श्री नृसिंहदासजी के साथ राजपूताना आये, और शुरू में खादी का और फिर हिन्दी-प्रचार का काम उन्होंने किया। हिन्दी-प्रचार के काम में आज राजस्थान में उनका अस्तित्व जम चुका है और प्रताप जयन्ती को सजीव रूप भी उन्होंने ही दिया है। 'त्यागभूमि' के सम्पादक के रूप में हिन्दी-संसार उनसे परिचित हो चुका है और अब प्रान्तिक कांग्रेस के सूत्र-धार के रूप में वह जेल में मौजूद ही हैं।

श्री क्षेमानन्द 'राहत'

ऐसा नहीं कि उनमें दोष नहीं; बहुत करके उनके गुण-दोष एक ही हैं; पर राहतजी ऐसे आदमी हैं, जिनको ठीक रूप में दुनिया कभी जान न सकेगी!

'बाबाजी'

[श्री 'सुमन']

बाबाजी—जिनका असली नाम नृसिंहदासजी उनके इस उपनाम की धारा में बह गया है—आग के जलते हुए और कभी न बुझने वाले एक अंगार हैं। अजमेर में उनके सिवा मैंने और दूसरे किसी आदमी को ऐसा नहीं देखा जिसे सोते-उठते, खाते-पीते, चलते-फिरते सिर्फ़ देश की चिन्ता हो। भोजन करते समय, रेल में यात्रा करते समय, टहलने जाते समय और मित्रों से भेंट-मुलाकात के समय देश को छोड़ दूसरी बात उनके मुँह से निकलती नहीं।

पाँच हजार वर्ष पहले की बात है। अर्जुन अपने सब भाइयों के साथ द्रोणाचार्य से बाण विद्या प्राप्त कर रहे थे। एक दिन आचार्य ने सबकी परीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। पेड़ पर एक चिड़िया बैठी थी; यह निश्चय हुआ कि उसकी आँख में निशाना लगाया जाय। सबने धनुष चढ़ाये। आचार्य ने एक-एक से पूछा, तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है। किसी ने कहा कि पेड़ की पतली डाल है; बस डाल पर पत्तों के पास चिड़िया है; उसका यह रंग है; पूंछ ऐसी है। किसी ने कहा कि मुझे सिर्फ चिड़िया दिखाई देती है; पेड़ नहीं। आचार्य इन उत्तरों से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा कि तुम लोग कच्चे रह गये। फिर अर्जुन से जो निशाना लगाये खड़ा था पूछा कि तुम क्या देख रहे हो? अर्जुन ने उत्तर दिया:—'गुरुदेव मुझे तो चिड़िया की आँख के सिवा कुछ दिखाई ही नहीं देता है।" आचार्य ने अर्जुन को हृदय से लगा लिया और कहा कि हाँ, तूने हमारी विद्या का सच्चा अर्थ समझा है। बाबाजी की तुलना बाण चढ़ाये हुए उस समय के अर्जुन की जा सकती है, जिसे देश की स्वतंत्रता के अपने लक्ष्य के सिवा दूसरा अच्छा-बुरा कुछ सूझता ही नहीं। क्या सत्य है, क्या असत्य है; क्या व्यावहारिक है और क्या अव्यावहारिक; कौन किस सिद्धान्त को मानता है, यह सब बाबाजी कुछ नहीं देखते; उनके लिए सबसे प्रिय और ऊँचा व्यक्ति वह है जिसके दिल में देश की गुलामी के कारण वेदना की, दुःख की चिनगारी जल रही हो और जैसे फोड़ा हो जाने से आदमी बेचैन रहता है वैसे ही उस आज़ादी के लिए तड़पता रहे, बेचैन रहे—फिर चाहे किसी धर्म या सिद्धान्त को मानने वाला हो।

बाबाजी सच्चे अर्थ में एक सैनिक हैं और मध्ययुग के उस वीर राजपूत सिपाही के समान हैं, जो युद्ध और बलिदान करने में ही जीवन का स्वाद अनुभव करना चाहता था। इसीलिए वह साफ़ और खरी बातें कहते हैं और चूँकि दुनिया में हम बनावटी मधुरता के चंगुल में इतने ज्यादा फँस गये हैं कि हमें अच्छी पर कड़वी बात, बुरी पर मीठी बात की अपेक्षा खराब मालूम पड़ती है इसलिए उनकी सीधी, खरी और साफ़ बातें प्रायः हमारे दिल में चुभ जाती और चोट पहुँचाती हैं। यह ठीक है कि बाबाजी के मुँह से कभी-कभी अत्यंत असंयत बातें निकल पड़ती हैं जिसका परिणाम अच्छा नहीं होता पर इसका कारण उनके दिल की वह आग है जो सदा उनके दिमाग़ को अस्थिर किये रहती है। नहीं तो जहाँ वह क्रोधी हैं तहाँ उनके दिल में उमड़ते हुए सेवामय प्रेम का सोता भी चुपचाप सदा बहा करता है।

बाबाजी ने देश के लिए सब कुछ छोड़ दिया। पहले वह मद्रास में अंग्रेज़ी दवाइयों के एक बड़े व्यापारी थे और असहयोग में देश की आवाज़ सुनकर अपनी दुकान उठा दी और राहतजी के सहयोग से एक राष्ट्रीय पत्र 'भारत-तिलक' निकाला। तब से आज तक उन्होंने सिवाय देश की चिन्ता के और कुछ जाना ही नहीं। इसी धुन और उपेक्षा में इनकी भोली पत्नी स्वर्ग सिधार गई। नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह में भी इन्होंने भाग लिया और शायद दो महीने के लिए जेल भी हो आये। पीछे राजस्थान चरखा संघ का काम करने लगे। प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के एक सदस्य भी थे, पर श्री अर्जुनलाल सेठीजी से मतभेद हो जाने के कारण अलग हो गये। पीछे सस्ता-मण्डल के व्यवस्थापक और श्री गांधी-आश्रम हटुण्डी के मंत्री नियुक्त हुए।

पीछे गतवर्ष देश में पुनः आन्दोलन की गति बढ़ती देखकर उनसे शांत नहीं रहा गया। मित्रों ने बहुत समझाया कि यहाँ की परिस्थिति ठीक नहीं है; यहाँ दंगे हो जायँगे; कुछ काम न होगा; पर बाबाजी उन आदमियों में नहीं हैं, जो अनुकूल परिस्थिति की प्रतीक्षा करते रहते हैं। वह उनमें हैं, जो अपनी धुन और लगन से प्रतिकूल परिस्थिति को ही खींचकर अनुकूल बना लेते हैं। लोगों ने हतोत्साह किया; कठिनाइयाँ बताईं; उनके काम करने के ढंग, उनकी जल्दबाज़ी की निंदा भी की, पर इससे वह विचलित नहीं हुए। मुझे उनका यह उदाहरण देखकर महाकवि रवीन्द्रनाथ की वह टेक याद आती है—

"जदि तोमार डाक शुनि कोई न आसे,
तबे तुमि एकला चालो रे!"

अर्थात्, यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई न आये तो तुम अकेले ही अपने रास्ते पर चल दो। आरम्भ में बाबाजी ने अजमेर में अपनी शक्ति के बल पर अकेले ही काम शुरू किया। न खाने की फ़िक्र है, न सोने की चिन्ता है। दिन की कड़ी धूप में, रात की कड़ाके की सर्दी में, चारों ओर दौड़ते ही नज़र आते थे। उनकी इस लगन और इस आत्म-विश्वास ने बहुत शीघ्र अन्य मित्रों को भी उनका साथ देने को विवश कर दिया। इस प्रकार अजमेर में जो जीवन उत्पन्न हुआ, उसका श्रेय उनको है, और वह इस प्रान्त में वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन के पिता कहे जा सकते हैं।

बाबाजी जात-पांत तथा सामाजिक कुरीतियों से बहुत दूर हैं और यद्यपि उनकी शिक्षा बहुत थोड़ी और नाम मात्र को हुई है किन्तु वह एक कट्टर बुद्धिवादी हैं और किसी ऐसी बात को अंध विश्वास के कारण नहीं मान लेते जिसपर उनका विश्वास न हो। उनमें दिन-दिन अनीश्वरवाद और उसके साथ कर्ममय जीवन का भाव बढ़ता जाता है। अछूतों के लिए, स्त्रियों के लिए, युवकों के लिए उनका हृदय खुला है। मेहतरों का दुःख दूर करने के लिए उन्होंने उनका संगठन किया; युवक-आन्दोलन की जड़ यहाँ उन्होंने जमाई। डी० ए० वी० स्कूल की पिकेटिंग उन्हींके प्रयत्न का फल थी। रात दिन कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी किसी अच्छे काम का ज़िक्र आते ही वह तुरन्त उसमें सहायता करने को तैयार हो जाते थे। न वह अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करते थे; और न दूसरा कोई उनके स्वास्थ्य की चिन्ता करने वाला था। उनके भाई नहीं, पत्नी नहीं, माँ नहीं। इसलिए उनको इतने निरीह भाव से काम करते देख, मुझे कभी-कभी बड़ी वेदना होती रही है।

पर उनके मन में कभी अपने कष्टों का ध्यान एक मिनट के लिए नहीं आया। चढ़े बुख़ार में वह यहाँ—वहाँ मारे-मारे फिरते थे। फिर सफलता मिलने पर कांग्रेस के उच्च पदों के सारे अधिकार उन्होंने सच्चे 'बाबाजी' की तरह दूसरे योग्य मित्रों को सौंप दिये।

इसीलिए बाबाजी का मूल्य अधिकारियों ने भी समझा और उन्हें, पथिकजी के साथ, सबसे पहले गिरफ्तार करके दो वर्ष के लिए जेल में बन्द कर दिया। अदालत में उन्होंने गर्जकर कहा था—'मेरा पेशा इस विदेशी सरकार को नष्ट करना है। इसलिए मुझे दो वर्ष की जगह सरकार को फाँसी की सज़ा देनी चाहिए। अन्यथा छूटकर आते ही फिर मैं वही काम करने लगूँगा।" जेल में भी बाबाजी की दृढ़ता ने बड़ा काम किया और आज राजनैतिक क़ैदियों के साथ अजमेर में जो अच्छा व्यवहार किया जाता है वह अनेकांश में इन्हींकी दृढ़ता और कष्ट-सहिष्णुता का परिणाम है।

बाबाजी में विचार शक्ति की कमी और लगन तथा उत्साह की अधिकता है। चुप रहकर बैठे रहने की जगह जो कुछ समझ में आते उसे कर डालना उन्हें प्रिय है। यदि इनमें थोड़ा संयम और उचित मधुरता होती और शासन-सम्बन्धी सैद्धांतिक बातों का थोड़ा और ज्ञान होता तो इस प्रान्त में वह एक बेजोड़ आदमी होते!

विविध

प्रतापी प्रताप

[श्री जगदीश झा 'विमल']

ओफ ! बड़ी भयावनी मूर्ति हो रही थी। भुजायें फड़क रही थीं; खून खौल रहा था, आँखें अंगार बरसाने लगी थीं। म्यान की तलवार खनखना उठी थी। फिर न मालूम क्या विचार कर, शान्त हो गम्भीर वचनों में वह बोला— "सावधान ! सम्हल कर बातें करो। दूत हो इसलिए प्राण भिक्षा पा सके। याद रक्खो—यह शरीर जिस की गोद में पला है, आँखें उसका अपमान नहीं देख सकतीं। क्षण भंगुर काया की माया में पड़कर कर्त्तव्य-पथ से पाँव पीछे हटानेवाला ही कुल-कलंकी, कायर और कपूत कहाता है। वह अभागा माता की पवित्र गोद को कलुषित करता है। विश्वास रक्खो, मर मिटूंगा पर जननी-जन्मभूमि की ओर अँगुलियाँ उठानेवालों को चैन न लेने दूंगा। शरीर के खून को पानी की तरह बहाकर, शत्रुओं पर आफत की बिजली बरसाकर मातृभूमि की रक्षा करूँगा। सम्मुख समर में जूझ जाऊँगा,–किन्तु स्वप्न में भी गुलामी का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करूँगा।

कैसे पवित्र विचार थे। कैसी आदरणीय नीति थी ? कैसी पावन प्रतिज्ञा थी ? कैसा अनुकरणीय आदर्श था।

आखिर हुआ भी वही, जैसा वह कहता था लुट गया सही, किन्तु प्रतिज्ञा-पथ से तिलभर भी विचलित नहीं हुआ। राज-प्रासाद को त्यागकर वन का तपस्वी हुआ किन्तु अपने निर्मल-यश में कलंक-कालिमा नहीं लगने दी। वन की पत्तियों से पेट की जलती ज्वाला शान्त की, किन्तु कदमों पर सिर झुकाकर उच्छिष्ट प्रसाद नहीं प्राप्त किया। जननी जन्मभूमि की लाज बचाई और अनाथ आश्रितों की धर्म-रक्षा की। इसी को कहते हैं सच्चा शूर। यद्यपि आज उसका वह भौतिक शरीर सामने नहीं है किन्तु उसकी पावन यश-गाथा उसको अमर कर रही है। आज भी उसका वह ओजपूर्ण दिव्य मुख-मण्डल दिवाकर-सा दीप्तमान हो आँखों के आगे थिरक उठता है।

अहा ! कैसी भव्य भावनाओं से भरी मनोहर मूर्ति थी, जब वह दोहरा गठीला वदन, लम्बी-लम्बी भुजायें, उन्नत ललाट, चौड़ी छाती और बड़ी-बड़ी आँखवाला नर-केसरी चेटक पर सवार होकर दुधारी से शत्रु-सैन्य संहार करने आफत की तरह उसपर टूटता था उस समय किसी की शक्ति सामना करने का साहस नहीं करती। एक नहीं अनेक बार उसको खून की नदियाँ बहाना पड़ीं, हजारों की बलि भेंट करनी पड़ी, भाई से भिड़ना पड़ा; अविराम विपत्तियों की तूफ़ानी बाढ़ में बहना पड़ा। किंतु स्वप्न में भी प्रण-पथ से पाँव पीछे नहीं हटाया। उसके ये कार्य स्वार्थ-साधना की सिद्धि के

लिए नहीं थे। वह निरीह प्रजाओं के खून की नदियाँ बहाकर विलास-वासना का विशाल भवन बनाने नहीं गया था। भाई से विरोधकर अपने आमोद-मन्दिर की नींव डालने की चेष्टा में नहीं लगा था।

ये सब कार्य हुए थे मातृभूमि की रक्षा के लिए, धर्म-प्राण सतियों का सतीत्व बचाने के लिए और गो ब्राह्मणों की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिए।

उस कर्मवीर नर-सिंह ने अपने शरीर को घोर विपत्तियों का निशाना बनाया किन्तु अपनी आन को शान से सम्हाला। उस नर-शार्दूल के हृदय में सच्ची शूरता थी। आज भी उस महापुरुष का नाम स्मरण होते ही स्वतंत्रता की पवित्र प्रतिमा आँखों के आगे खड़ी हो जाती है। उसके सजीव साहस में वह जीवट था जो और किसी में नहीं पाया जाता है; उस मुट्ठीभर हाड़-मांस वाले नर-अगस्त ने अकोर उदधि-सी उमड़ती हुई मुगल-सैन्य-शक्ति को अंजलि में उठाकर आचमन कर लिया था। उसने अपने सुखों की आहुति देकर देश-धर्म की रक्षा की थी।

जिसने धर्म की रक्षा में जीवन-दान किया यथार्थ में वही जीवित है। जिसने प्राण खोकर अमर कीर्ति अर्जन की, वही अमर है।
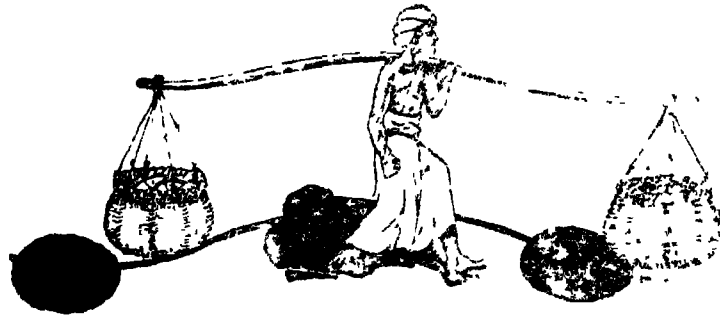
श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर

[अधिष्ठाता]

राजपूताना भारत की वीरभूमि है। वर्तमान प्रचलित पश्चिमी शिक्षा का थोथापन और केवल गुलाम-मनोवृत्ति की विदेशी सभ्यता से सजे हुए अंग्रेज़ी राज्य के भक्त नौकर पैदा करनेवाली मशीन बताकर जब उसकी पोल भारतीय राष्ट्र-वीरों ने प्रकट की तब से भारत ने इस क्षेत्र में भी होश सम्हाला। बच्चे का मन कमज़ोर और गुलाम बने, शरीर शुष्क हो जाय धन के प्रचण्ड व्यय के बाद देश-शोषण में सहायक बनने की नौकरी करने की योग्यता प्राप्त हो, धर्म प्रधान देश की धार्मिकता, अध्यात्म प्रियता एवं आर्य संस्कृति ही हँसी एवं घृणा का विषय बन जाय; ऐसी शिक्षा कौन भारतीय अपने बच्चे को तन, मन, धन नष्ट करके देना चाहेगा? कोई नहीं।

लोगों ने पाश्चात्य शिक्षा-संस्कृति-सभ्यता का जब ऐसा नग्न रूप देखा तब भारतीयों ने चौंककर पुनः प्राचीन बल-बुद्धि-वर्धक शिक्षा एवं आर्य-संस्कृति का उद्धार करने का विचार किया। पूर्व के वानप्रस्थ ऋषि-मुनियों का अरण्य-निवास और उनके पास ब्रह्मचारियों का विद्याध्ययन के निमित्त २५-१५ वर्ष की उम्र तक रहना यह सब तो लुप्त हो ही गया था। जंगल काटकर उन्हें आमदनी का साधन बना लिया गया था। प्रकृति ने जो-जो चीज़ें आम तौर पर प्राणिमात्र के उपयोग के वास्ते पैदा की थी, उन पर भी लालची राज्य ने अपना अधिकार जमा लिया। इसलिए अब तो संयोगों को अनुकूल बनानेवाला कोई अन्य मार्ग ढूंढना आवश्यक हो गया।

इसी विचार से 'गुरुकुल'-प्रथा शुरु की गई। बच्चों का निवास, ज़िम्मेदारी उठाने-योग्य होने तक सच्चरित्र गुरुओं के साथ रहे ताकि ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, सादगी, सेवा-भाव, स्वाश्रय, शारीरिक बल-वृद्धि, व्यवहार-कौशल सत्यान्वेषण, धर्मभावना, राष्ट्र एवं धर्म-जागृति आदि सद्गुणों से युक्त शिक्षार्थी तैयार हो सकें। इस प्रथा की सफलता देखकर पंजाब, गुजरात, मध्यप्रान्त, युक्तप्रान्त, आदि प्रान्तों में गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, विद्यालय आश्रम, आदि नामों से संस्थायें खुलने लगीं। इनको सफलता और शुभ परिणाम भी मिलते रहे और मिल रहे हैं।

राजपूताना मानो बहुत संग्रामों की थकावट का आराम ले रहा हो, इस भाँति शिक्षा, सुधार एवं राष्ट्र-भक्ति में पीछे पड़ा हुआ है। इसका कारण भी तो हमारे राजा महाराजाओं का पश्चिमी संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा इत्यादि में रंग जाना है—वही हालत है। 'यथा राजा तथा प्रजा'। तो भी सार्वदेशीय वायुमंडल से राजपूताना-जैसी वीरभूमि कहीं बची रह सकती है?

राजपूताना में जैन-जनता बहुसंख्यक एवं समृद्ध है। पुरातन के समय में जैन जनता हथियार लिए हुए राजा-महाराजाओं की दाहिनी भुजा थी, प्रायः बड़े-बड़े पद एवं अधिकार सम्हाले हुए थी। आज वैश्य युग में सब से अधिक व्यापार एवं धन-सम्पत्ति को हस्तगत किये हुए है।

उसी जैन जनता ने गुरुकुलीय शिक्षण की शुरुआत भी कर दी। जिसकी बदौलत ब्यावर (राजपूताना) में यह जैनगुरुकुल सं० १९८५ की ज्ञान-पंचमी (का० शु० ५) को लाया गया। इसकी उद्घाटन-क्रिया सं० १९८५ की विजयादशमी (आ० शु० १०) को बगड़ी सज्जनपुर (मारवाड़) में की गई थी।

युग (समय) की भावना को समझनेवाले युवक मुनियों के उपदेश समझकर कुछ श्रीमन्तों एवं सेवा-भावियों ने गुरुकुल का कार्य शीघ्र ही लम्बे समय की तैयारियाँ एवं प्रभूत धन-कोष एकत्र किये बिना शुरु कर दिया।

युवक-हृदय सज्जनों ने बड़े उत्साह से कार्य किया। गौरवीर के दृष्टान्त रूप वार्षिक सहायता के रूप में श्रीमान् सूरजमलजी मिश्रीलालजी (फलोदी) ने प्रतिवर्ष रु० २०००) श्री० सोभागमलजी अमोलकचन्दजी लोढा (बगड़ी) ने रु० १०००), श्री० रतनलालजी शंकरलालजी

श्री जैनगुरुकुल ब्यावर के छात्र
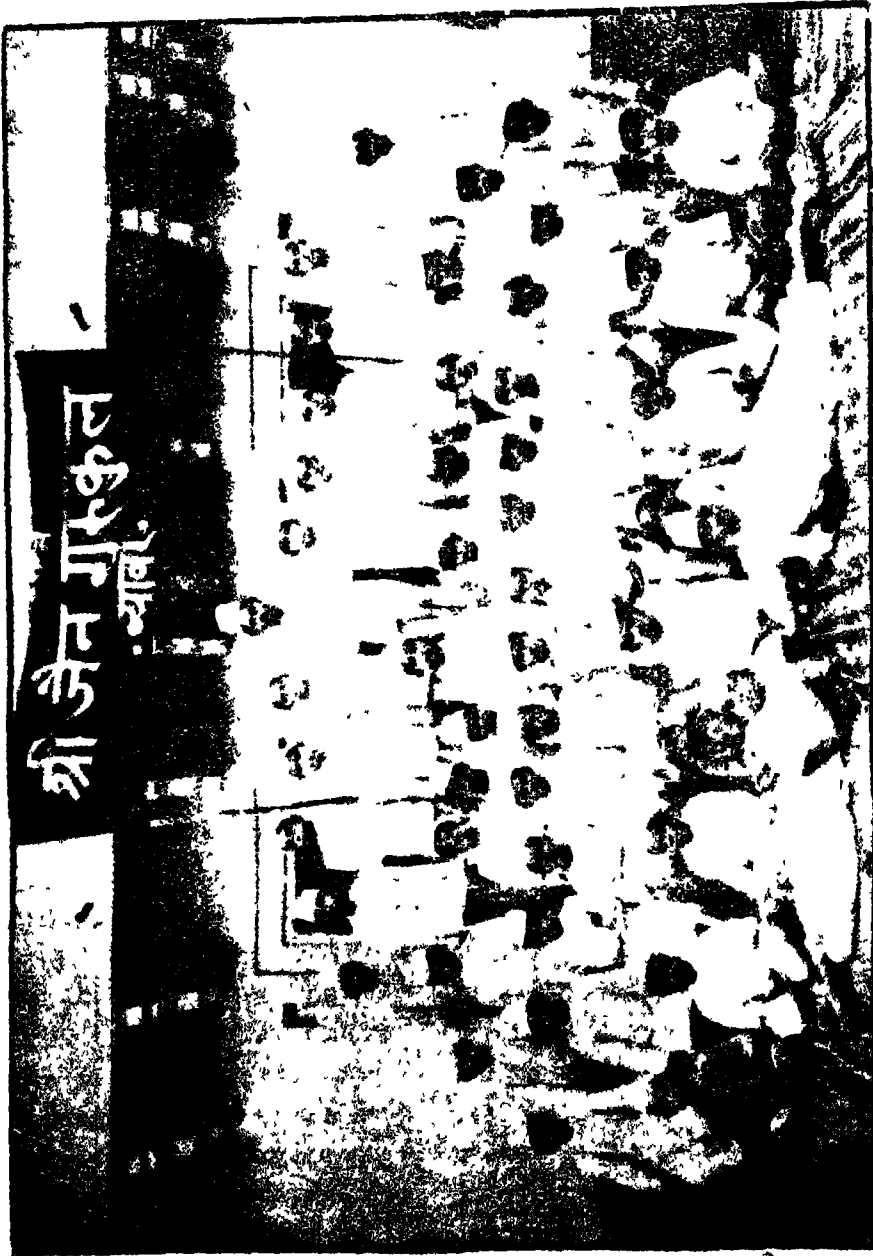
(सीचन) ने रु० १०००), श्री० आसकरणजी चोपड़ा (लोहावट) ने रु० १०००), श्री० बोरीदासजी छगनलजी रांका (बगड़ी) ने रु० १०००), श्री० पूनमचन्दजी ताराचन्दजी गेलड़ा (सैयदापेठ) ने रु० १००), श्री० मिश्रीलालजी चान्दमलजी (भंवाल) ने रु० १०००), श्री० गुलाबचन्दजी पन्नालालजी गादिया (बगड़ी) ने

रु० ५००), श्री० किरतीचन्दजी मरलेचा रायपुरम (मद्रास) ने रु० ५००), श्री० फूलचन्दजी सुजानमलजी (बरेली) ने रु० ७५०), अपनी आय में से हिस्सा निकालकर देने का वचन दिया। श्री० आणंदराजजी सुराणा (जोधपुर) ने तथा समाज-सुधारक श्री० मगनलालजी कोचेटा (भैंवाल) ने इसका मन्त्रि-पद स्वीकार किया।

इस प्रकार तुरंत ही गुरुकुल का कार्य शुरू किया गया। कार्य जितनी जल्दी हुआ उतना ही व्यवस्थित और पक्का भी हुआ। सहायक सज्जन सभी जैन हैं, इससे नाम जैन-गुरुकुल रक्खा गया और धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण जैन-संस्कृति के आधार पर दिया जाने का विचार किया। जाति-पाँतियों की संकुचितता, अनादि रूढ़िवाद, एकान्तवाद आदि नहीं हैं। स्याद्वाद, अनेकान्तवाद और समयानुसार ऐसे यम-नियम हैं, जो व्यक्ति, समष्टि, राष्ट्र, एवं अध्यात्म को उपकारक है। यद्यपि धार्मिकों के अज्ञान से बहुत सी बातें बिगड़ गई हैं किन्तु विशाल जैनत्व का बोध कराना ही गुरुकुल की शिक्षा का ध्येय है।

उक्त दो बातों में जैन शब्द लगाने के अतिरिक्त और सब प्रकार से गुरुकुल में उदारता—विशालता है अर्थात गुरुकुल में जाति पाँति का कोई भेद नहीं है। प्रत्येक प्रान्त के किसी भारतीय जाति के बालक इस गुरुकुल में शिक्षा पा सकते हैं। सरकारी विश्वविद्यालयों के साथ कोई संबध नहीं है, न कोई डिग्री पाने का प्रयत्न है। हाँ, यदि ब्रह्मचारी चाहे तो अंग्रेज़ी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि की कोई भी परीक्षा में उत्तीर्ण होने की योग्यता क्रमशः उपार्जित कर सकते हैं और चाहे तो डिग्री प्राप्त कर सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षण, राष्ट्र एवं समाज की हालत, ज्ञान-प्रचार, सेवा-वृत्ति, प्रचार-कार्य आदि की तालीम भी दी जाती है। व्यायाम-मन्दिर, औषधालय, काश्तकारी, गौशाला आदि साधनों के द्वारा ब्रह्मचारी को हर प्रकार के व्यवहार-कौशल की तालीम भी मिल रही है।

इतने ही थोड़े समय में ५१ ब्रह्मचारी तालीम ले रहे हैं। धर्म एवं ऐक्य पर उन्हें इतना प्रेम है कि सब सम्प्रदायों से प्रेम रखकर हरएक की सेवा, भक्ति वा सत्कार्य में वे शामिल होते हैं। राष्ट्र-प्रेम इतना है कि प्रत्येक जुलूस, राष्ट्र-सभा, संगीतमय प्रचार आदि के समय इनका प्रथम दरजा रहता है। अनीति के ऊपर इतनी घृणा है कि, अभी ही पचासों नटनी वेश्याओं का डेरा गुरुकुल के नज़दीक पड़ा था। उनको २-३ दिन तक रातभर पिकेटिंग के द्वारा उठवा दिया। निर्भीक ऐसे हैं कि जंगल में रहने पर अकेले भेजकर परीक्षा करने पर डरते नहीं। कोई शिकारी या दुष्टजन को देखते घेरा लगाकर उसकी अच्छे चालचलन का वचन लिए बिना छोड़ते नहीं। साँप व बिच्छू तो मानों मित्र ही हो गये हैं। उनको मकान में निकलते देख ब्रह्मचारी उन्हें प्रेम पूर्वक पकड़कर दूर छोड़ आते हैं।

अभी तो गुरुकुल का बाल्यकाल ही है। आगे परमात्मा की कृपा-दृष्टि और हमारा सद्भाग्य होगा तो यह बाल्यावस्था का वृक्ष फूलेगा, फलेगा, विश्राम देगा, शान्ति देगा और मीठे फलों से समाज व देश को तृप्त करने में अपनी शक्ति लगायेगा।

इस गुरुकुल में ८ से ११ वर्ष तक की उम्र के ब्रह्मचारी जो हिन्दी या गुजराती दो कक्षा (प्राथमिक) की योग्यता रखता हो, तथा नीरोग एवं बुद्धिशाली हो, कम से कम ७ वर्ष रहकर या विशेष जहाँ तक गुरुकुल में अभ्यास करे वहाँ तक, अभ्यास करे, ब्रह्मचारी रहना मंजूर करे वह भर्ती हो सकता है। गुरुकुल के सभी नियमों का पालन इन्हें करना होता है।

ब्रह्मचारी से भोजन खर्च के मासिक रु० १०, ७, ५ लिए जाते हैं। निःशुल्क रखने का भी सुभीता है। पुस्तक व कपड़े का खर्च लिया जाता है। बाकी शिक्षण, व्यवस्था, खेल, औषधालय आदि का प्रबन्ध मुफ्त है।

खद्दर पहनना अनिवार्य है। बाकी उपयोगी चीज़ें भी हो सके तो स्वदेशी ही ली जायँ। भोजन व रहन-सहन में ब्रह्मचर्याश्रम की सादगी व प्रतिबंध होता ही है। गुरु-शिष्यों में पिता-पुत्र का और परस्पर ब्रह्मचारियों में भ्रातृ-भाव सदा जागृत रहता है।

शिक्षण हिन्दी, संस्कृत, मागधी, इङ्गलिश, गुजराती आदि भाषा ज्ञान, गणित, महाजनी, धार्मिक, हुनर कला, व्यायाम, संगीत, वाद्य, वक्तृत्व, लेखन आदि की श्रेणी वार

योग्यतानुसार शिक्षण दिया जायगा। इसके विभाग इस तरह किये हैं।

शुरू के तीन वर्ष प्राथमिक श्रेणी में भाषा-ज्ञान अंग्रेज़ी-हिन्दी मिडिल तक, संस्कृत की शुरूआत आदि। बाद के चार वर्ष विशारद श्रेणी के गिने जायँगे। उसमें भाषा-विशारद (कोई भी दो भाषा में सुयोग्य), शास्त्र-विशारद (जैन व तुलनात्मक ज्ञान में सुयोग्य) कला-विशारद (कोई भी हुनर-कला में सुयोग्य), वाणिज्य-विशारद (हिसाब देशी-अंग्रेज़ी क्रय-विक्रय नीति तथा वस्तु परीक्षा में योग्य) का शिक्षण मिलेगा। भाषा-विशारदवाले हिन्दी मैट्रिक, अंग्रेज़ी विनीत, संस्कृत तीर्थ तक की योग्यता हासिल करेंगे। व्यायाम, वक्तृत्व, लेखन, संगीत आदि का ज्ञान तो रहेगा ही।

अधिक ३ वर्ष अर्थात् १० वर्ष रहनेवाले स्नातक (ग्रेजुएट) और तत्पश्चात् २ वर्ष अधिक रहनेवाले लिये हुए विषय में विद्या-वाचस्पति हो सकेंगे।

इस गुरुकुल से अधिक से अधिक लाभ उठाने की हम भारतीय जनता से और खास करके राजपूताना-मारवाड़ से आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते हैं। ऐसी सर्वदेशीय उदार संस्थाओं को बढ़ाना और हो सके तो तन, मन, धन की सहायता से उन्नति में योग देना प्रत्येक भारतवासी का पवित्र कर्तव्य है। जैन-जनता का कर्तव्य है कि इस गुरुकुल को अपना गौरवरूप समझकर अपनी बहुमूल्य सेवायें अर्पण करें; अपनी संतान को गुरुकुल के द्वारा शिक्षित बनावे और इस गुरुकुल की उन्नति करने की प्रार्थना शासन-देव से करती रहे।

इस गुरुकुल को देखकर बहुत राष्ट्र-वीरों, विद्वानों, श्रीमन्तों एवं निरीक्षकों ने पूर्ण संतोष व सहानुभूति प्रकट किया है, यही संस्था की उपयोगिता का प्रमाण है।

सत्याग्रहाश्रम तथा राष्ट्रीय विद्या-मंदिर, वर्धा

[श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह]

वर्धा का यह आश्रम श्री जमनालाल बजाज की कृति है। इसकी स्थापना असहयोग के समय साबरमती-आश्रम के आदर्श पर की गई थी, और इसे चलते हुए आज लगभग ८ वर्ष हो गये हैं। गत दो-तीन वर्षों से यहीं पर महात्मा गाँधी प्रतिवर्ष, दिसम्बर मास में, विश्राम लेते हैं। उन्हींके दर्शनों के जाने के कारण कई बार यह आश्रम देखा। वहाँ का शिक्षाक्रम अध्ययन करने तथा यहाँ के सुयोग्य अध्यापकों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

आश्रम

आश्रम वर्धा से लगभग २ मील की दूरी पर एक बड़े चौरस मैदान में बसाया गया है। आसपास कपास आदि के खेत हैं और बीच में शिक्षकों के निवासस्थान, विद्यालय, कार्यालय, भोजनालय तथा पुस्तकालय भवन हैं। यह संस्था दो विभागों में बटी हुई है एक तो आश्रम, जिसके अध्यक्ष आचार्य विनोबाजी हैं, और दूसरा राष्ट्रीय विद्या-मंदिर, जिसके प्रधानाध्यापक श्री कुलकर्णी हैं।

आश्रम में प्रधानतः खादी का कार्य होता है और खादी-केन्द्रों के लिए सेवक तैयार किये जाते हैं। इसका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं है। भर्ती करने के भी कोई कड़े नियम नहीं हैं—सेवा की इच्छा रखने वाला कोई भी बिना जाति-पाँति या शिक्षा-दीक्षा का विचार किये भर्ती किया जा सकता है। हाँ, उसमें सेवा की इच्छा और आश्रम के नियमों का पालन करने की दृढ़ता होनी आवश्यक

है। अधिकांश नियम और उद्देश्य साबरमती-आश्रम के ही समान हैं। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि के व्रत यहाँ भी उसी प्रकार पालने पड़ते हैं। सब काम अपने हाथ से करना तथा स्वावलम्बी बनना यहाँ की मुख्य बात मानी जाती है। आश्रम-वासियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता, केवल नियमित समय पर खादी आदि का काम करना पड़ता है। सबको रसोई एक साथ होती है, जिसमें सभी को भाग लेना पड़ता है। भोजन बहुत ही सादा और स्वास्थ्यकर होता है। किसी भी काम को नीच नहीं समझा जाता। बर्तन मलने से लेकर पाखाना साफ करने तक का सब काम लोग प्रसन्नता से करते हैं। यद्यपि कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है, किन्तु गीता, संस्कृत, गणित आदि का साधारण ज्ञान कराया जाता है।

अभी तक अनेक खादी-सेवक खादी-कार्य के लिए तैयार होकर निकल चुके हैं, जो खादी के केन्द्रों में कार्य कर रहे हैं। आजकल २३ आश्रम-वासी हैं।

आश्रम का कार्यक्रम इस प्रकार रहता है—४ बजे प्रातःकाल उठना और शौचादि। ४½ बजे से ५ बजे तक प्रार्थना और संगीत। ५½ बजे से ६ बजे तक गीता-क्लास। ६ बजे जल-पान। ७ से १० तक आश्रम का काम। पीसना, धुनना, सफाई, बर्तन मलना, अनाज बीनना, तथा रसोई आदि। १०½ बजे से १२ बजे तक भोजन और विश्राम। १२ बजे से ३½ बजे तक कताई, बुनाई आदि खादी का कार्य। ३½ बजे से ४½ तक अध्ययन। ५ बजे भोजन। ५½ बजे से ७½ तक खेल-कूद आदि। ७½ बजे से ८ बजे तक संध्या-प्रार्थना।

खादी-कार्य में दक्षता प्राप्त करने के लिए कई वर्षों का समय लगता है, किन्तु एक वर्ष में साधारण ज्ञान दिया जा सकता है, जिससे काम चल सके।

आश्रम के पास कपास के खेत भी लगे हुए हैं, किन्तु कार्याधिक्य के कारण अभी खेती का काम हाथ में नहीं लिया गया। नौकरों के द्वारा वह कराया जाता है। ओटने से लेकर कपड़ा बुनने तक का सारा कार्य यहीं किया जाता है। लगभग ३० नम्बर तक का सूत काता जाता है और बुनाई में भी काफी उन्नति की गई है। खादी बिक्री की दृष्टि से नहीं किन्तु केवल शिक्षा की दृष्टि से तैयार की जाती है।

राष्ट्रीय विद्या-मंदिर

आश्रम के पास ही राष्ट्रीय विद्या-मंदिर है। यहां तीन-चार भवनों में से एक में छात्रालय तथा भोजनालय है और बाकी में शिक्षक रहते तथा उन्हीं-में कक्षाओं की पढ़ाई होती है। कुछ विद्यार्थी रहते हैं। उन्हें अपना मासिक खर्च १६) देना पड़ता है। कुछ बालक इसके अपवाद-स्वरूप भी हैं। प्रायमरी पास करने के बाद विद्यार्थी भर्ती किये जाते हैं। शिक्षण-क्रम ६ वर्ष का है। ४ वर्षों में साधारणतया मैट्रिक तक का ज्ञान तथा उसके बाद दो वर्ष तक विशेष पढ़ाई होती है। इसके उद्देश्य इस प्रकार हैं—

१. सत्याग्रह-आश्रम से यह संस्था सम्बद्ध है। असहयोग के सिद्धान्त पर इसकी रचना हुई है।

२. पुस्तकी शिक्षा की अपेक्षा संस्कृति की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसका बाह्य स्वरूप चर्खा है और यही शाला का केन्द्र है।

३. पूर्णतया स्वावलम्बन, स्वयंपाक, स्वयं पाखाना साफ करना आदि काम करना।

४. माध्यम मराठी भाषा है।

५. जो स्थान अंग्रेजी स्कूलों में अंग्रेजी को प्राप्त है। वही स्थान हिन्दी को इस शाला में है।

६. भारत में ग्राम अधिक होने के कारण ग्राम-

सेवक तैयार करना इस शाला का मुख्य लक्ष्य है।

बाहर से आये हुए विद्यार्थियों को योग्यतानुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में भर्ती किया जाता है। सब विषय हरेक के लिए अनिवार्य नहीं हैं।

शाला में चौथी हिन्दी या मराठी पास विद्यार्थी लिया जायगा किन्तु विद्यार्थी की शिक्षा की अपेक्षा उसके स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान दिया जायगा। इसके माध्मिक, माध्यमिक और उच्च ये तीन विभाग हैं। प्राथमिक में चौथी हिन्दी या मराठी का ज्ञान दिया जाता है। और उच्च विभाग में ग्राम-सेवकों को योग्य बनाने का शिक्षण मिलता है। प्राथमिक में बाहर के विद्यार्थी न लेने से (केवल शिक्षकों के लड़के पढ़ाये जाने के कारण) इसमें माध्यमिक और उच्च केवल दो ही विभाग रह जाते हैं। माध्यमिक में इतिहास, भूगोल, गणित, मराठी, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी का सामान्य शिक्षण दिया जाता है। उच्च शिक्षण के दो भाग किये गये हैं। पहला भाग दो वर्षों का है; जिसमें विद्यार्थी स्वयं ही अभ्यास करते हैं और शिक्षकों की मदद लेते हैं। दूसरे भाग में विद्यार्थी पूर्ण स्वावलम्बी बन जाता है। वह स्वयं शिक्षक और विद्यार्थी दोनों होता है।

पहला वर्ग

१. संस्कृत (गीता)
२. मराठी
३. संगीत या चित्रकला

दूसरा वर्ग

१. संस्कृत
२. मराठी
३. गणित (व्यावहारिक)
४. संगीत, चित्रकला

तीसरा वर्ग

१. संस्कृत आदि के अलावा अंग्रेजी, बुनने का काम, हिन्दी या राजनीतिशास्त्र में से कोई विषय।

२. मराठी।

३. गणित।

४. चित्रकला, संगीत।

चौथा वर्ग

१. अंग्रेजी, गणित, संस्कृत में एक विषय ऐच्छिक।
२. इतिहास, भूगोल।
३. मराठी,
४. हिन्दी।

वर्ग पाचवां, छठवां

१. अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, गणित, संगीत, हिन्दी, बुनने का काम—इनमें से कोई एक विषय।

२. संगीत।

३. गणित।

सारी शिक्षा राष्ट्रीय दृष्टि से होती है। पाठ्य पुस्तकें भी कोई खास नहीं हैं। चर्खे और करघे का काम भी विद्यार्थियों को करना होता है। यहाँ पुरुषों के जीवन चरित्र तथा खादी, कृषि, गोरक्षा, अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से पढ़ाये जाते हैं।

हिन्दी की पढ़ाई तीसरे वर्ग से होती है। तीसरे वर्ग में हिन्दी का साधारण ज्ञान तथा चौथे से प्रथमा परीक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। संस्कृत तथा मराठी का पाठ्यक्रम काफ़ी अच्छा है। पहले वर्ग ही से दोनों भाषाओं का ज्ञान कराया जाता है, जिससे अपने देश की संस्कृति का प्रभाव बालकों पर पड़ने लगता है तथा अपने धर्मग्रन्थों तथा साहित्य का काफ़ी ज्ञान हो जाता है। अंग्रेजी में टालस्टाय, रस्किन आदि लेखकों के ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं। इतिहास भी राष्ट्रीय दृष्टि से पढ़ाया जाता है तथा भूगोल में कांग्रेस की दृष्टि से प्रान्त-विभाग, खादी की दृष्टि से भूगोल तथा महाराष्ट्र के भूगोल पर विशेष लक्ष्य

रहता है। उच्च वर्गों में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजशास्त्र का शिक्षण राष्ट्रीय दृष्टि से विशेष उपयोगी है। संगीत में देशी कवियों के भजनों को महत्व दिया जाता है, जिसमें हिन्दी, मराठी, गुजराती सभी भाषाओं के कवियों के भजनों का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त व्यायाम आदि का विशेष शिक्षण है। खादी का कार्य भी नियमित रूप से क्रमशः सिखाया जाता है।

पुरातन अवन्तिका के सिक्के

[श्री सूर्यनारायण व्यास, ज्योतिषाचार्य,]

उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के विषय में आज इतिहासज्ञों में बड़ा मतभेद है। कोई 'विक्रमादित्य' उपाधि बतलाते हैं, तो कोई यह कहते हैं कि 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त' आदि राजाओं का नाम 'विक्रमादित्य' था। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य महाशय आज भी इस बात पर तुले हुए हैं कि 'विक्रमादित्य' किसी की उपाधि हो या न हो, पर उज्जैन के शासक स्थान पर विराजमान होनेवाला व्यक्ति एक स्वतन्त्र था, और उसका खुद का नाम ही 'विक्रमादित्य' था। इसी प्रकार 'भर्तृहरि,' और 'गंधर्वसेन' इन दो महा पुरुषों के लिए भी इतिहास मौन है! भर्तृहरि की महत्ता को कौन नहीं जानता? परन्तु यह कौन जानता है कि भर्तृहरी कब हुए? और विक्रमादित्य से उनका क्या सम्बन्ध था? उज्जैन में एक दंतकथा कही जाती है कि भर्तृहरि महाराज विक्रमादित्य के छोटे भाई थे, और गंधर्वसेन उनसे छोटे थे। इतिहास में इनके लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं हैं।

उज्जैन की पुरातनता को देखते हुए विश्वास होता है कि ग्वालियर राज्य इसकी खुदाई की ओर ध्यान दे तो अवश्य ही इसके भूगर्भ से २००० वर्ष पुराना साहित्य मिल जाय, और इतिहास का एक नया पृष्ठ खुल जाय। पर इस नाबालग़ी के ज़माने में क्या कोई इतिहास की महत्ता पर ध्यान देगा? अस्तु।

उज्जयिनी का एक प्रसिद्ध सिक्का है, उसपर गधे के जैसा आकार दिखाई देता है। यहाँ इस सिक्के को लोग 'गधिया' पैसा कहते हैं इसीपर से एक कथा भी जोड़ दी गई मालूम होती है। कहते हैं कि विक्रमादित्य का छोटा भाई 'गंधर्वसेन' किसी शाप से दिन में गधे के स्वरूप में रहता था, और रात को अपनी गधे की खोली निकालकर एक ओर रख देता था। उस समय वह बहुत सुन्दर स्वरूप का एक राजकुमार बन जाता था। इसका एक सुन्दरी से प्रेम हो गया था। उस सुन्दरी को इसने चेतावनी दे रक्खी थी कि यह रहस्य और किसी को न मालूम हो कि मैं मानवतनुधारी हो सकता हूँ; यदि किसी ने देख लिया तो मेरी मृत्यु हो जायगी, और शाप-मुक्त होने के पूर्व मृत्यु होने से शहर उलट जायगा। परन्तु एक दिन सुन्दरी की माता ने दुराग्रह किया तो विवश होकर एक छिद्र द्वारा इ ने अपनी माता को उस मदन-रूप सुकुमार राजकुमार का दर्शन करवा दिया। इसके दर्शन करवाने भर की देर थी कि राजकुमार 'गंधर्वसेन' का शरीर जलने और नगर उलटने लगा। इस प्रकार पुरातनकाल की वैभवशालिनी उज्जयिनी का सर्वस्व उलट गया। इसके पश्चात् ही गंधर्वसेन की स्मृति में 'गधिया' सिक्का चलाया गया। यह केवल दंत-कथा है, इसका कोई आधार नहीं। इन बातों से स्पष्ट है कि 'गधिया' सिक्के का चलन कब था, किस ने किया, यह अज्ञात है! अब यह निश्चित किया जा रहा है कि यह सिक्का शक राजाओं का है। श्री ओझाजी अपनी 'प्राचीन मुद्रा' में इस सिक्के के विषय में कहते हैं कि—"जब हूण तोरमाण ईरान का ख़ज़ाना लूटकर वहाँ के सिक्के हिन्दुस्थान में लाया तो उसके पीछे कई शताब्दियों तक राजपूताना 'गुजरात'

काठियावाड़, मालवा आदि देशों में उन्हीं की भद्दी नक़लें बनती रहीं। उनकी कारीगरी में यहाँ तक भद्दापन आगया कि बिगड़ते-बिगड़ते लोगों ने राजा के चेहरे को गधे का खुर मान लिया, और इसी आधार पर उस सिक्के को गधिया या गधैया सिक्का कहने लगे।"

मोहंजोदारो और हरप्पा की खुदाई में भारत की जिस संस्कृति का अवशेष उपलब्ध हुआ है, उसमें भी कुछ सिक्के गधे की आकृति के प्राप्त हुए हैं।

रत्नागिरी ज़िले के सोमेश्वर गाँव में एक कर्णेश्वर महादेव का मन्दिर है। इस मन्दिर के सभा मण्डप में एक तिकौना शिलालेख मिला है। जनवरी के (१९२८) 'विविध ज्ञान विस्तार' (मराठी) मासिक में "गद्याण, द्राम और कर्णेश्वर का शिलालेख" शीर्षक लेख में लेखक महाशय ने बतलाया है कि इस शिलालेख में 'गद्याण' और 'द्राम' ये दो नाम सिक्के के लिए आये हैं। 'गद्याण' या 'गद्यन' यह संज्ञा एक रुपये की होनी चाहिए, अब इस नाम का कोई सिक्का प्रचलित नहीं है, सिर्फ़ गुजरात में तौलने के एक वज़न को 'गदियानो' कहते हैं। इस गदियानो का वज़न आधा तोला है, इससे मालूम होता है कि पहले 'गद्याण' नाम का सिक्का एक रुपये—एक तोले—वज़न का रहा होगा। गद्याण रुपया के समान तांबे का भी रहा है, क्योंकि जो सिक्के 'गधिया' प्राप्त होते हैं वे तांबे के पैसे की शकल के भी हैं, और चाँदी के भी।

महाराष्ट्र संत ज्ञानेश्वर के समकालिक निर्मित वैद्यक ग्रन्थों में सिक्के का नाम 'गद्याण' और 'गदियान' आया है, संभव है कि गदियान—गद्याण—का अपभ्रंश रूप ही 'गधिया' हो गया हो। उपर्युक्त वैद्यक ग्रंथ में जहाँ गद्याण शब्द का उल्लेख आया है, वह ताँबे के पैसे के लिए है। आगे चलकर इसी पुस्तक में संख्या बतलाकर स्पष्ट कर दिया है कि ६४ 'गद्याण' ताँबे में एक चाँदी का 'गद्याण' मिलता है। इस बात से चाँदी और ताँबे के दो प्रकार के सिक्कों का होना पाया जाता है। भास्कराचार्य ने हिसाब (परिमाण) बतलाते हुए अपने लीलावती ग्रंथ में भी लिखा है:—'गद्याणकस्तद्द्वयमिन्द्रतुल्यैः'। यह परिमाण चलता था, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु यह गधे की शकल क्या है? किसने इस सिक्के का प्रचार किया, इसका पता नहीं चलता।

उज्जैन के बाज़ार में एक और भी सिक्का प्राप्त होता है, यह भी उज्जैन में प्रचलित था। यह आकार में गोल है, सामने की तरफ़ मनुष्य के हाथ की आकृति है, बाईं ओर 'बुद्धचक्र' बना हुआ है। इसके नीचे अशोक 'लिपि' में 'ऊज्जनेय' लिखा हुआ है। दूसरी ओर एक नंदी की मूर्ति है। बिन्दुओं के वर्तुल से नंदी का आकार है। यह बिन्दु-चिन्ह उज्जैन का प्रसिद्ध चिन्ह है। इस चिन्ह का आशय क्या है, यह पता नहीं! प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री वैद्य का तर्क है कि यह नंदी का आकार महाकालेश्वर के वाहन का द्योतक है। और अशोक लिपि होने के कारण अशोक-कालिक सिक्का होगा, इतनी पुरातनता अवश्य है।

पुरातत्वज्ञ श्री कनिंघम अपनी 'प्राचीन भारत की मुद्रायें' नामक पुस्तक में लिखते हैं—'एरन' * में जैसी मुद्रायें प्राप्त हुई हैं वैसी मुद्रायें मध्यभारत के बेसनगर (भेलसा) में भी प्राप्त हुई हैं। जैसे पश्चिम मालव की राजधानी उज्जैन थी, उसी प्रकार पूर्व-मालवे की राजधानी बेसनगर (भेलसा) थी। उज्जैन की मुद्राओं पर एक ओर एक विशेष चिन्ह होता है। वह चिन्ह यों है:— ❀+❀ (चारों ओर ❀)। इस चिन्ह का नाम उज्जैन-चिन्ह है। ऐसे चिन्ह 'एरन' और आंध्रदेश की मुद्राओं पर पाये गये हैं।

एक चिन्ह मेंढक जैसा भी बना हुआ मिलता है, वह भी उज्जैन की मुद्रा पर है।

क्रास (+) और चाक अर्थात् सचक्र चतुष्पाद चिन्ह मालवे की समस्त प्राचीन मुद्राओं पर अंकित किया हुआ मिलता है। किसी पर ये चिन्ह छोटे हैं, किसी पर बड़े हैं। बड़े चिन्हों के भीतर स्वस्तिक चिन्ह भी देखे जाते हैं। और छोटी मुद्रा पर चक्र चिन्ह हैं।

श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय ने कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह के अपने लेख में एक स्थान पर लिखा है कि मालवा प्रान्त

---

* 'एरन' सागर जिले का ग्राम है। यह इसका पुराण प्रसिद्ध यह नाम है।

उज्जैन और 'सूरत' की प्राप्त मुद्राओं में कई एक इतनी छोटी हैं कि वे वज़न में ४ ग्रेन से अधिक नहीं हैं, ऐसी मुद्राओं का मोल प्रायः दो कौड़ी से ज़्यादा न था।

उज्जैन के द्वितीय विक्रमादित्य (स्कंदगुप्त, ई० ४५५-४६७) का चाँदी का सिक्का था, उसपर यह अंकित था:—"परमभागवत श्री विक्रमादित्य स्कंदगुप्त"। इसी प्रकार "परगुप्त प्रकाशादित्य (ई० ४६७-४६६)" के सुवर्ण के सिक्के पर श्री विक्रम' लिखा मिलता है, परन्तु प्रकाशादित्य नाम वाले सिक्के भी इसी के हैं, जिन्हें उज्जयिनी में स्कंदगुप्त के शासन कार्य में बनवाये थे, और स्कंदगुप्त के मरणान्तर संभवतः उसकी उपाधि भी ग्रहण कर ली हो।

"मालव देश की वेत्रवती अथवा बेतवा नदी के पास विदिशानगर से कुछ दूरी पर अहिच्छत्र के खँडहरों में अग्नि-मित्र के नाम से सबसे अधिक सिक्के प्राप्त हुए हैं।"

"उज्जयिनी के सिक्कों पर साधारणतः एक चिन्ह मिलता है, परन्तु कुछ दुष्प्राप्य सिक्कों पर ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी के अक्षरों में 'उजेनिय' लिखा है।"✽

"साधारणतः उज्जयिनी के सिक्कों पर एक ओर हाथ में सूर्यध्वज लिये हुए मनुष्य की मूर्ति और दूसरी ओर उज्जयिनी का चिन्ह रहता है।" + "किसी-किसी सिक्के पर एक ओर घेरे में साँड़, बोधिवृक्ष, अथवा सुमेरुपर्वत चिन्ह, या लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है, उज्जयिनी के सिक्के कुछ गोलाकार और कुछ चौकोर भी हैं।"

मालवा में हूण राजा तोरमण के बहुत से चाँदी के सिक्के मिले हैं, ये मालवा के राजा बुधगुप्त के चाँदी के सिक्कों के ढंग पर बने हैं। इनपर सं० ५२ लिखा है।

सन् १९१५ में मालवे में मिले हुए ताँबे के ७२४ सिक्के मिले थे, इनमें से चाहड़ देव के भी हैं, इनमें विक्रामसवत् लिखा था।

✽ Coins of Ancient India, p-98.
+ I. M. C.; Vol I., p. 152-5; Nos. 1-36
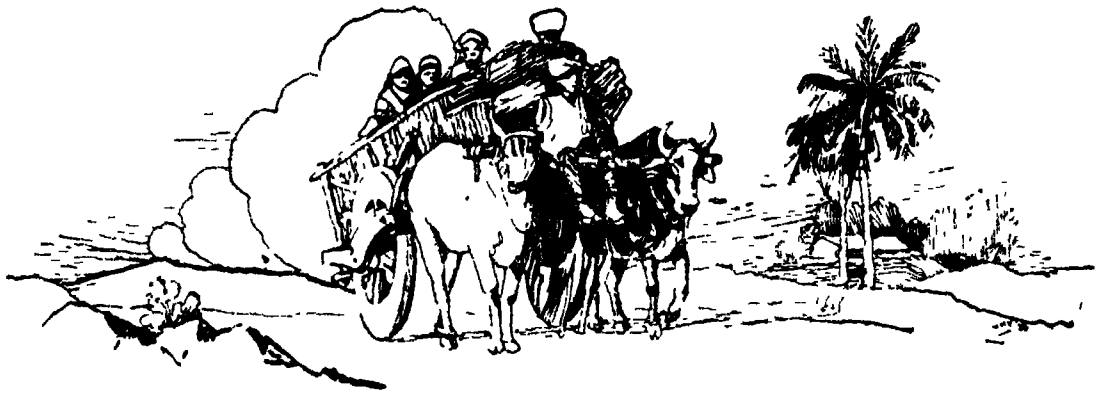
[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

नारी-जीवन

लेखक—श्री सुरेन्द्र शर्मा। प्रकाशक—शारदा-सदन, कटरा, प्रयाग। २०×३० सोलहपेजी-साइज़। सवा दो सौ पृष्ठ। मूल्य १) रु०।

नारी-जीवन की समस्या सारे जगत् की समस्या है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक ख़ास कर भारतीय नारियों के ही सम्बन्ध में लिखी गई है। पुस्तक के लेखक श्री सुरेन्द्रजी हिन्दी-संसार के परिचित हैं—यह ज़रूर है कि हिन्दी-संसार उन्हें राजनैतिक लेखकों के लेखक के रूप में ही जानता रहा है, नारी-जीवन की समस्या पर उनकी क़लम चलने का शायद यह प्रथम ही अवसर है। वह लिखना जानते हैं, इसमें तो शक नहीं; परन्तु 'इस पुस्तक के विचार एकाङ्गी कहे जा सकते हैं.' जैसा कि स्वयं उन्होंने ही लिख दिया है। उनका यह लिखना ठीक है कि "अपढ़-कुपढ़ हिन्दू नारियाँ पुरानी सामाजिक रूढ़ियों की गुलाम हैं और पढ़ी-लिखी देवियाँ अंग्रेज़ी फ़ैशन की।" यह भी ठीक है कि "अंग्रेज़ी फ़ैशन बनाने में बहुत ख़र्च होता है। इसीके कारण विलायती कपड़े तथा और चीज़ों के लिए करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष देश के बाहर चला जाता है।" परन्तु हमारी नम्र सम्मति में किसी भी बात की एकदम बुराई या भलाई तभी शोभा दे सकती है, जबकि विवेचना और तर्क के द्वारा उसका अच्छा-बुरापन सिद्ध किया जाय। पश्चिमी सभ्यता आदि के हम भी सुरेन्द्रजी से कम विरोधी नहीं, पश्चिम की नक़ल के हम सख़्त विरोधी हैं; परन्तु हमारे विरोध का आधार विवेचनायुक्त तर्क होना चाहिए, न कि सिर्फ़ अपनी सम्मति। हमें खेद है, इस पुस्तक में दूसरी बात की ही अधिकता पाई जाती है। वैसे पुस्तक की भाषा अच्छी है—हाँ, विवेचनात्मक के बजाय 'अपीलिंग' वह अधिक है, जो कि पुस्तक के बजाय साप्ताहिक पत्र के अधिक उपयुक्त होती। विचारों में कहीं-कहीं मौलिकता और उत्कृष्टता है, पर बहुत बातें सर्व-सामान्य भी हैं। कुछ आवश्यक बातों में स्त्रियों के व्यायाम को भी स्थान दिया गया है, यह अच्छी बात है। स्त्रियों सम्बन्धी साहित्य के पुरुष लेखकों में जो एक आम दोष होता है, उससे सुरेन्द्रजी भी नहीं बचे हैं। वह है उनकी उपदेशात्मक शैली। चूंकि यह 'नारी-धर्म-शिक्षावली' की प्रथम पुस्तक है और आगे की ७ पुस्तकों का विज्ञापन भी इसी में है, इसलिए हम चाहेंगे कि आगे से वह ऐसे ढंग को बचावें तो अच्छा है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अच्छी है, मूल्य भी उचित ही है।

पंचरत्न

(१) पूर्व और पश्चिम, (२) मुस्तफ़ा कमालपाशा का जीवन और भाषण, (३) क़ानून तोड़ना धर्म है, (४) नीति-धर्म अथवा धर्म नीति, और (५) सॉक्रेटीज़ की सफ़ाई—महात्माजी द्वारा गुजराती में लिखे अथवा अंग्रेज़ी से अनुवाद किये हुए इन पाँच लेखों का हिन्दी-संकलन ही यह पंचरत्न है। अन्त में महात्माजी के कुछ महत्वपूर्ण निबन्ध और असहयोग के समय की गिरफ्तारी पर अदालत में दिया गया उनका महत्वपूर्ण वक्तव्य भी जोड़ दिये गये हैं। पुस्तक संवत् १९७९ में प्रकाशित हुई थी, परन्तु इसमें के लेख आज भी उपयोगी हैं। 'क़ानून तोड़ना धर्म है'—थोरो

का मशहूर निबन्ध है, और उसकी ताज़गी आज भी वैसी ही बनी हुई है। सविनय अवज्ञा के इस ज़माने में तो यह बड़ा उपयोगी है। और लेख भी काम के हैं। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई तो अच्छी है ही। पृष्ठ दो सौ और मूल्य १) रु० है।

क्रान्ति

अनुवादक—श्री शंकरदत्त पार्वतीशंकर शास्त्री। प्रकाशक—प्रस्थान-कार्यालय, अहमदाबाद। पृष्ठ १०२ और मूल्य ।=)।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पीटर क्रोपाटकिन के तीन लेखों का यह गुजराती अनुवाद है। इसमें का 'नौजवानों को' लेख तो बहुत मशहूर है। बग़ावत का जोश और क्रान्तिकारी सरकार भी बड़े जोशीले और तथ्यपूर्ण निबन्ध हैं। अन्त में क्रोपाटकिन की जीवन-रेखा भी दी गई है, और वह भी बड़े जोशीले ढंग से। पुस्तक संकलन है, पर है सचमुच सुन्दर। क्रान्ति के पुजारियों के बड़े काम की चीज़ है। क्रान्ति का सिद्धान्त इसमें आ जाता है।

क्रान्तिकारी लग्न

अनुवादक—श्री रणछोड़जी केसुरभाई मिस्त्री प्रकाशक—प्रस्थान-कार्यालय, अहमदाबाद। पृष्ठ ६८ और मूल्य ≋)।

रूसी राजक्रान्ति दुनिया की बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण घटना है। रूस के युवक-युवतियों ने अपने देश की ख़ातिर, ज़ार के अत्याचारी पंजे से अपने मुल्क को छुड़ाने के लिए, क्या-क्या नहीं किया? और तो और, अपनी नैतिकता तक को उन्होंने देश की ख़ातिर ताक पर रख दिया! विवाह का पवित्र सम्बन्ध भी उस समय देश-सेवा का ही साधन बनाया गया। उपयुक्त वर-वधू का उस समय विचार न था, देश के लिए जिस युवक या युवती को अपने विपरीत वर्ग (Sect) के जिस किसी भी व्यक्ति का साथी बनने की आज्ञा मिलती वही वैसा बन जाता था। यही रूस के क्रान्तिकारी विवाह थे। ऐसे ही एक रोमांचकारी साहसपूर्ण विवाह की कहानी इस पुस्तक में है। हम नहीं कह सकते कि भारतवासी विवाह के मामले में ऐसी बातें स्वीकार कर सकेंगे; पर इसमें शक नहीं कि रूसी विवाह की इस कहानी से देश-भक्ति की भावना तो अधिक प्रज्वलित होगी ही।

एक घूंट

लेखक—श्री जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक—पुस्तक-मन्दिर, काशी। पृष्ठ ५९। मूल्य ॥)

हिन्दी-संसार में रवि बाबू की भाँति कविता, उपन्यास, कहानी और नाटक आदि विविध रूप में अपनी प्रतिभा का प्रसाद देने में कोई अभी तक आगे बढ़े हैं तो वह हैं श्री जयशंकर 'प्रसाद'। मैं उनकी तुलना रवि बाबू से तो नहीं करना चाहता, फिर भी आज तक उन्होंने जितना लिखा है—वह 'सुन्दर' है, मधुर है, आदरणीय है। हिन्दी में कविता के क्षेत्र में सर्व-श्रेष्ठ कौन है, इस बात पर मतभेद हो सकता है; परन्तु हिन्दी के नवीन युग के नाटककारों का परिचय देते समय सबसे पहले प्रसादजी का नाम लिया जायगा। 'एक घूंट' भी उनकी एक एकांकी नाटिका ही है। हाँ, पात्रों का परिचय, और बीच-बीच में दृश्यों के वर्णन दे देने से नाटिका में एक विशेषता आ गई है। वह एक नई चीज़ बन गई है, जैसे रवि बाबू की चिरकुमार सभा।

प्रसादजी के गद्य-लेखन की अपनी एक अलग मादक प्रणाली है, जैसे पद-पद पर शराब की प्याली भर-भर कर पिलाते जा रहे हों। कभी-कभी जब यह शराब 'मस्तिष्क का निचोड़' होती है तो पाठक का हृदय विशेष तृप्त नहीं होता, फिर भी हमें प्रसादजी की रचनाओं में 'हृदय की वेदना' पर्याप्त रूप में मिलती है, जिसे पढ़कर हृदय बेचैन हो जाया करता है। उनकी 'अपनी' शैली प्यार और सत्कार दोनों के ही योग्य है।

'एक घूंट' में मानव-हृदय की प्यास—प्रेम के एक घूंट की प्यास की विवेचना की है। अरुणाचल-आश्रम का आदर्श था सरलता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य्य। 'आनन्द' नाम के अतिथि ने आकर उसमें 'प्रेम' का भी समावेश करने की आवश्यकता दिखाई। इसी प्रकार मानव-जीवन, प्रत्येक कुटुम्ब, प्रत्येक समुदाय—सारे संसार में इन्हीं चारों वस्तुओं की आवश्यकता का अनुभव हम करते हैं। मानव-जीवन की सफलता इन्हीं चारों वस्तुओं से हो सकती है।

'एक घूंट' के प्रारम्भ से अन्त तक 'स्वच्छन्द प्रेम' और 'किसी एक के साथ विशेष प्रेम' के साथ द्वन्द्व चलता रहा है। आनन्द अपने मस्तिष्क की सहायता से स्वच्छन्द प्रेम—'मैं तो एक पथिक हूँ और संसार ही पथिक है। सब अपने पथ पर घर्राटे जा रहे हैं, मैं अपने को ही क्यों कहूँ। एकक्षण, एक युग कहिए या एक जीवन कहिए, है वह एक ही क्षण, कहीं विश्राम किया और फिर चले। वैसा ही निर्मोह प्रेम सम्भव है। सबसे एक-एक घूंट पीते-पिलाते नूतन जीवन का संचार करते चल देना। यही तो मेरा सन्देश है।—अपने इन उच्छृंखल विचारों को सबके हृदय में न उतार सके। अन्त में दुःखवाद के विरोधी होते हुए भी दुःख के अस्तित्व को स्वीकार किया और वनलता के इन वचनों के आगे हार मानी—'असंख्य जीवनों की भूलभुलैयों में अपने चिरपरिचित को खोज निकालना और किसी शीतल छाया में बैठकर एक घूंट पीना और पिलाना—प्रेम का एक घूंट ही।' अन्त में आश्रम की एकमात्र कुमारी प्रेमलता के हाथ से 'एक घूंट' पीकर कुमार 'आनन्द' ने अपने उच्छृंखल प्रेम को एक के चरणों पर समर्पित कर दिया। मस्तिष्क के मायाजाल ने हृदय की सरलता सौन्दर्य, और आकर्षण के आगे हार मानी।

अधिक क्या लिखा जाय, पुस्तक बहुत सुन्दर है। छपाई-सफ़ाई भी बढ़िया है।

'प्रेमी'

गृहिणी-गौरव

अनुवादक—श्री कृष्णलाल वर्मा। प्रकाशक ग्रन्थ-भंडार लेडी हार्डिंज रोड, माटूँगा, बम्बई। पृष्ठ-संख्या १०८। मूल्य १॥)

इस पुस्तक में दूसरी भाषाओं से अनुवादित सात गल्पों का संग्रह किया गया है। गल्पें साधारणतः अच्छी हैं और उनके चुनाव में स्त्रियों के लाभ का ध्यान रक्खा गया है। वर्तमान समय में दुनिया में अनेक राजनैतिक और सामाजिक अधिक समस्यायें उत्पन्न होती जा रही हैं। ऐसे समय स्त्रियों में (जिनपर समाज की रचना का मुख्य भार है) साहस, धीरता और वीरता की बड़ी ज़रूरत मालूम पड़ती है।

इन कहानियों से स्त्रियों के हृदय पर अच्छा असर पड़ सकता है, क्योंकि इनमें पातिव्रत के साथ वीरता और साहस इत्यादि पर भी ज़ोर दिया गया है। पर स्त्रियों की समस्या केवल पातिव्रत पर ज़ोर देने से ही नहीं सुलझ सकती। लेखक और अन्य सज्जन यह भूल जाते हैं कि पुरुष कहाँ तक पत्नीव्रत का पालन करते हैं। स्त्रियों में तो बहुत अधिक ऐसी मिलेंगी, जो पतिव्रत-सम्बन्धी अपने कर्तव्य का पालन कर रही हैं, पर पुरुषों को भी चाहिए कि पत्नीव्रत का पालन करें और जहाँ स्त्रियों ने इसको इतना बड़ा रूप दे दिया है वहाँ पुरुषों को भी सदा सोचते रहना चाहिए कि वे स्त्रियों पर कितना ध्यान देते हैं और उनके लिए क्या कर रहे हैं।

इस समय माता-पिता का कर्तव्य है कि पुत्र या पुत्री के विवाह के पहले उनकी इच्छा ज़रूर देख लें। अभी हिन्दुस्थान में स्त्रियों में इतना साहस नहीं है कि पति-पत्नी में प्रेम न होने की हालत में अलग होकर अपना भार उठा सकें, इसलिए बहुत-सी बहनों को जीवन-भर दुःखी रहना पड़ता है।

अन्ध-विश्वास या सन्देह के कारण पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर बहुत से अत्याचार हो जाते हैं और ठीक हालत का पता न तो स्त्री को लगता है, न पुरुष को। इसलिए विवाहित स्त्री-पुरुष का पहला काम यह है कि वे एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लें—एक-दूसरे के विचारों को पूर्ण रूप से जानें और एक-दूसरे की सुविधा का ख़याल रखते हुए उन-पर अमल करें। मैं समझती हूँ कि ऐसा करने से बहुतसी बहनों का जो ख़ास दुःख है वह दूर होगा। और अन्त में जाकर पुरुषों को भी शान्ति मिलेगी।

पुस्तक साधारणतः अच्छी और लाभदायक है। गल्पें मनोरंजक हैं, पर छपाई उतनी अच्छी नहीं है और अनुवाद की भाषा भी अच्छी नहीं है। ये गल्पें कहाँ से ली गई हैं और इनका असली लेखक कौन है, यह भी अनुवादक को लिखना चाहिए था।

पुस्तक में बीच-बीच में चित्र भी दिये गये हैं।

भागीरथी

सम्पादकीय

आधी दुनिया

चतुर्मुखी ज्वाला

हमारा देश इस समय जोरों से अपने मुक्ति-संग्राम में प्रवृत्त है। चारों ओर ज्वाला सुलग रही है। पेशावर से रंगून तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक भारतीय जनता एवं विदेशी नौकरशाही में लोहा मच रहा है। दोनों की शक्तियों का मुक़ाबला है। एक का आधार संगठित पशुबल है, तो दूसरा सत्य और अहिंसा के आत्मबल का सहारा लिये हुए है। हिंसा और अहिंसा का द्वन्द्व मच रहा है। हम—भारत के नर-नारी, युवक-युवती चूँकि भारतीय राष्ट्र के ही अंश-रूप हैं, उसीके उत्थान-पतन में हमारा भी उत्थान-पतन है, इसलिए कर्तव्य तक़ाज़ा करता है कि इस मुक़ाबले में, इस जद्दोजहद में, हम प्राण पण से अपने राष्ट्र की गौरव-रक्षा करें। हर्ष है, पुरुष ही नहीं, हमारी माँ-बहनें भी इस बात को महसूस कर रही हैं। यही वजह है कि, हम देखते हैं, पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी हमारे इस मुक्ति-संग्राम में साझीदार दिखाई पड़ रही हैं।

स्त्रियों की बलि

कौन कहता है कि स्त्रियों में देश-प्रेम नहीं, देश के लिए बलिदान की—दुःख उठाने की भावना नहीं? वर्त्तमान आन्दोलन में स्त्रियाँ जिस प्रकार पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम ही नहीं कर रहीं बल्कि जेल और मार-पीट आदि के कष्ट भी सहर्ष बर्दाश्त कर रही हैं, वह तो उनके उत्कट देशानुराग का ही उज्ज्वल प्रमाण है। वृद्ध अब्बास तैयबजी के बाद सत्याग्रह-संचालन के महात्माजी के रिक्तस्थान को श्रीमती सरोजिनी नायडू ने जिस ख़ूबी के साथ सम्हाला, वह मर्दों के लिए भी ईर्षा की बात है। धावे के वक्त जब पुलिस ने उन्हें घेरे में ले लिया तो १८ घण्टे तक खाना-पीना तक उन्हें न मिला, लेकिन उन्होंने इसकी कोई पर्वाह न की और बराबर वहीं जमी रहीं। आख़िर पुलिस को उन्हें गिरफ्तार करना पड़ा और अब वह जेल में मौजूद हैं। श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने नमक-क़ानून तोड़ने में जो जौहर बताया, उसके पुरस्कार-स्वरूप वह श्रीमती नायडू से पहले ही जेल जा पहुँचीं। श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मी अम्मल वेदारण्यम में सबसे पहले एक साल के लिए जेल जा चुकी हैं। अरकाट में श्रीमती दुर्गाबाई गिरफ्तार हुई हैं, दिल्ली में श्रीमती सत्यवती जेल गईं, और लखनऊ में श्रीमती मिश्रा। बम्बई में उस दिन श्रीमती लीलावती मुँशी के साथ कई भद्र महिलायें और गिरफ्तार हुई थीं, पर उन्हें बाद में छोड़ दिया गया। ऐसे ही एकाध जगह एक-दो स्त्रियाँ और भी गिरफ्तार करके छोड़ी गई हैं। यही नहीं, मार-पीट आदि की ज़्यादती की ख़बरें भी बराबर आ रही हैं। लखनऊ से एक बहन लिखती हैं—"२५ ता० (मई) को जैसा कुछ पुलिस का भयानक अत्याचार लखनऊ में सत्याग्रहियों और जनता तथा स्त्रियों पर हो गया, क्या लिखा जा सकता है! केवल लाठियों से कितने मरे, कितने घायल हुए, अबतक ठीक खबर नहीं मिली। दूसरे दिन शाम को गोली चली, दूकानें लूटी गईं, आग लगाई गई। इन सब बातों का आभास आप पा ही चुके होंगे। अब १४४ दफ़ा लगाई गई है। कितने निरपराध जेलखानों में पड़े हैं, कितनों का पता नहीं है! भगवान रक्षा करे!" आगरा की चिट्ठी गताङ्क में दी ही जा चुकी है। सिन्ध का हाल 'हिन्दी-नवजीवन' में है—

"८ वीं तारीख़ को नमक-सत्याग्रह वाली सभा को

तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने हमला किया था; उस वक्त वे बग़ैर किसी तरह का आगा-पीछा सोचे लोगों पर टूट पड़े थे। लाठियों के प्रहार से रोशनी बुझा दी गई थी। बूढ़ी स्त्रियाँ तथा सुकुमार बालक भी मार से न बच सके। जिन बहनों पर लाठी की मार पड़ी है, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

जीवतबाई (६०), डॉ० आलिमचन्द की माता; हीरलबाई (६५), सेठ हसूमल ज़मींदार और म्युनिसिपैलिटी के सदस्य की पत्नी; राधाबाई (४५), लरखाना म्युनिसिपैलिटी के सभापति दीवान प्रभुदास की माता; नवनिधिबाई (५०), नैयब के ज़मींदार दीवान रतनसिंह की पत्नी।

इसी सभा में जिन बालकों पर मार पड़ी थी, इनके नाम निम्नलिखित हैं—

पुतली (५), डॉ० आलिमचन्द की सुकुमार बालिका; गंगा (१२), असिस्टेण्ट इंजीनियर दीवान खुसालदास की लड़की; सरस्वती (१३), दीवान शेरसिंह वकील की पौत्री, किशो (१२), डॉ० चण्डीराम का पुत्र।"

बंगाल का हाल वहाँ की ज़िला-कांग्रेस-कमिटी के मंत्री श्री गांगुली की ज़बानी सुनिए—

"१० मई के दिन मैं डाक्टर कुमारी बोस के साथ कोन्ताई के खोलाखली नामक गाँव को गया था। समाचार मिले थे कि वहाँ पुलिस ने बहनों पर घातक और लज्जाजनक आक्रमण किया है। पाँच घायल बहनें बीमार होने के कारण राष्ट्रीय स्कूल में रहती थीं, लेकिन जब पुलिस ने स्कूल पर कब्ज़ा कर लिया तो अपने-अपने घर चली गईं। उन्हें और अधिक मार-पीट की धमकी दी गई। रास्ते में हम सुगन्धी स्थान पर उतर पड़े। वहाँ श्रीमती पद्मावती रहती हैं। यह बहन ग्वालिन हैं। इन्हींके नेतृत्व में ६ ठी मई के दिन बहनों के एक दस्ते ने राष्ट्रीय झण्डे की रक्षा करते हुए पुलिस के हाथ मार खाई थी और अपमान भी सहा था। इन्हें मारने और अपमानित करनेवाले सिपाहियों के साथ एस. डी. ओ. भी मौजूद थे। पद्मावती की दाहिनी छाती के बाजू में हमने एक बड़ा-सा नीला निशान देखा। वह कहती थीं कि जब वह गिर पड़ीं तब एक साहब ने बूट-सहित उनकी छाती पर पैर रक्खा था। वह निशान उसीका था। उनकी पीठ पर चोट के दो छोटे-छोटे निशान और थे। वह कहती थीं कि उनकी छाती और पीठ में दर्द होता है। उनके सिर में ठोकर मारी गई थी और उनके साथ असभ्य बर्ताव भी किया गया। इतना होते हुए भी वह देश की सेवा के लिए तत्पर हैं। वह कहती थीं कि उनका दूसरा दस्ता तैयार हो रहा है।

जब हम खोलाखली पहुँचे तो वहाँ पहले ही से बहुतेरे स्त्री-पुरुष जमा थे। एक पद्मावती को छोड़कर उस दिन इन बहनों में से जिन्हें सख्त चोटें पहुँची मालूम होती थीं, वे ये हैं—

१. दुर्गादासी—इनके दाहिने गले की हड्डी के ठीक नीचे चोट का निशान है और कलाई अबतक बहुत दुखता है।

२. कुरानीदासी—इनके शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर पुलिस की ठोकरों और लाठी की चोटों के अनेक चिन्ह हैं। इन्हें जबर्दस्ती घसीटा गया था, इससे भी शरीर कई जगहों से छिल गया है। इनके नितम्ब पर कोड़े की पुरज़ोर मार का चिन्ह अबतक स्पष्ट दिखाई पड़ता है, बायें अँगूठे में बहुत पीड़ा है और पैर का बायाँ अँगूठा पुलिस के बूट से कुचले जाने के कारण ज़ख्मी हो गया है। पुलिस ने कुरानीदासी का बुरी तरह अपमान भी किया था।

३. बिरजदासी—इनकी दोनों जाँघों पर कोड़े की सख्त मार के निशान अबतक मौजूद हैं।

४. राजेश्वरी—इनके कपाल के कुछ ऊपर 'दव' के जैसे नुकीले हथियार से किया गया घाव मौजूद था; नितम्ब पर लाठी की मार पड़ने से दर्द हो रहा था।

५. पद्मावतीदासी—६० वर्ष की बुढ़िया हैं। इन्हें ठोकरें मारी गई थीं। मुश्कें बाँधी गई थीं। इनकी बाँहों, नितम्ब और पीठ पर हाथ लगाने से दर्द होता था। इनके बाल पकड़कर खींचे गये थे और जब यह बेहोश हो गईं तो इनका मुँह जबरन खोला गया और एक मुसलमान के बूट में पानी भर कर इनके मुँह तथा आँख में डाला गया! ओठ पर चोट के निशान अबतक मौजूद हैं।

६. कञ्चनीदासी—लगभग ८० वर्ष की बुढ़िया हैं।

दाहिने हाथ के अँगूठे पर लाठी पड़ने से दर्द हो रहा था।

७. स मदासी—कोड़े की मार के कारण इनके घुटने में दर्द हो रहा था। सिपाहियों ने इन्हें इधर-उधर घसीटा था, जिससे कहीं कहीं बदन छिल गया है।

शेष तीन बहनें आ नहीं सकीं। दो तो अपने-अपने गाँवों को चली गई थीं और तीसरी बहुत बूढ़ी हैं, पगली-सी हैं, ठोकर खाने पर भी उनकी हालत वैसी ही बनी हुई है, बिछौने में मुँह छिपाकर पड़ी हैं, कोई इन्हें तबसे देख नहीं सका है।"

इस तरह सभ्यता और स्त्री-सम्मान का दावा करने वाली सरकार ने अब स्त्रियों पर भी खुला हाथ छोड़ दिया है। मगर फिर भी स्त्रियाँ मैदान में मौजूद हैं, बल्कि बढ़ रही हैं, यह कितने हर्ष की बात है!

स्त्रियों का भाग

भारतीय स्त्रियाँ कुरीतियों में जकड़ी हुई हैं, अपढ़-अज्ञान हैं, 'घर-धन्धे वाली' मात्र हैं, फिर भी वर्तमान मुक्ति-संग्राम में वह अपना हिस्सा बटा रही हैं। महात्माजी ने शराब व कपड़े की पिकेटिंग की अपील की थी, आज गुजरात में वे उसे अमली रूप दे रही हैं। श्रीमती गाँधी और कुमारी मीठूबहन पेटिट के नेतृत्व में सूरत ज़िले में शराब-ताड़ी की ज़ोरदार पिकेटिंग जारी है। अहमदाबाद में खुरशेदबहन आदि खूब काम कर रही हैं। बम्बई में हंसा मेहता, अवन्तिकाबाई गोखले, लीलावती मुन्शी आदि। इधर आगरा में तपस्विनी पार्वतीदेवी हैं। और दिल्ली में श्रीमती सत्यवती तो जेल गईं, अब जवाहरलालजी की सास, श्रीमती साहनी आदि काम कर रही हैं। कलकत्ता में १४४ दफ़ा स्त्रियों ने तोड़ी है। और स्थानों पर भी यही क्रम रहा तो आशा की बहुत अधिक गुंजायश है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय स्त्रियाँ, हमारी माँ-बहनें, इतना काम कर रही हैं, जिसकी हममें से बहुतों को आशा नहीं थी—और, सच तो यह है, वास्तव में बहुत-से तो हम पुरुष भी ऐसा नहीं कर रहे हैं! भगवान हमें सफलता दें, यही कामना है।

स्त्रियाँ और खादी

एक बात की ओर हमारा ध्यान जाना अत्यन्त आवश्यक है। आन्दोलन की वृद्धि के साथ खादी की माँग बहुत बढ़ गई है—उत्पत्ति से कहीं अधिक! इसलिए खादी का अभाव होने लगा है। इसकी पूर्ति बहुत कुछ स्त्रियों पर निर्भर है। अहमदाबाद-बम्बई में इस दिशा में काम भी हो रहा है। वहाँ कुछ बहनें इस काम में पड़ी हैं और उत्पत्ति बढ़ाने का प्रयत्न कर रही हैं। और जगह की स्त्रियाँ भी ऐसा शुरू कर दें तो वे देश का बड़ा हित करेंगी, इसमें सन्देह नहीं। क्या वे इस ओर ध्यान देंगी?

स्त्रियों के उद्गार

वर्तमान मुक्ति-संग्राम के सिलसिले में भारतीय स्त्रियों ने जो उद्गार प्रकट किये, उनसे उनकी महत्ता सिद्ध होती है। यह कहते हुए कि "केवल देश के इतिहास की भयावनी घड़ियों में ही स्त्रियाँ युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण होती आई हैं—और वह उन समयों में, जब कि विदेशी शासन अथवा अत्याचार का बोझ असह्य होता रहा है, और जब कि भारत के एकान्त चूल्हों में केवल अन्याय और राष्ट्र की विपत्तियों की कहानियों की ही चर्चा होने लगी है," दिल्ली की वीर और कर्मण्य बहन सत्यवती ने अपने बयान में कहा—

"साधारणतः मेरा उचित स्थान अपने घर में था; परंतु उस समय, जब कि मेरी मातृभूमि जीवन और मृत्यु के संग्राम में व्यस्त है, मैं देश की उन लाखों और दिल्ली की उन हज़ारों स्त्रियों में केवल एक हूँ, जिन्होंने अपनी घर-गृहस्थी और अपने ऐतिहासिक एकान्त को महात्मा गाँधी के झण्डे के नीचे अहिंसात्मक युद्ध के मूल्य पर मातृभूमि की स्वतन्त्रता ख़रीदने के लिए छोड़ा है।"

बहन सत्यवती का यह कहना निस्सन्देह ठीक है कि "हमारी महान् महिला-योद्धा रानी लक्ष्मीबाई के युग के बाद यह प्रथम अवसर है, जब कि हम महिलाओं ने मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त करने के लिए अपने घरों और बच्चों को छोड़ा है। जेल, गोलियाँ तथा निर्दय मार की धमकियाँ हमें अपने इस उत्तरदायित्व से अब विमुख नहीं कर सकतीं,

जो कि हम लोग अपने देश और आने वाली सन्ततियों के प्रति रखती हैं। मैं और मेरी हज़ारों बहनें बलिदान होने के लिए तैयार हैं, हम भारत की स्वतंत्रता प्राप्त किये बिना पीछे हटने वाली नहीं हैं।"

× × ×

गंजाम ज़िले की श्रीमती सरलादेवी ने ६ महीने के लिए जेल जाते समय, 'राष्ट्रीय सेविका' के रूप में अपना परिचय देकर, अपने बयान में कहा है—"जनता के हित के लिए मेरी आत्मा ने जो कहा, वही मैंने किया है। अतः मैं निरपराध हूँ। इस पर भी यदि सरकार मुझे अपराधी समझती है, तो मुझे अपना दोष स्वीकार है।"

× × ×

इसी तरह एक वर्ष की सज़ा के लिए वेदारण्यम में गिरफ्तार होते समय श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति ने मुस्कराकर सत्याग्रहियों से कहा—"क्या तुम्हें मेरे भाग्य पर ईर्ष्या नहीं होती? सत्याग्रही की यह कैसी सुन्दर विजय है! बस, वीर बनो और युद्ध बराबर जारी रक्खो!"

और भी कई बहनों ने ऐसे ही सुन्दर-सुन्दर उद्गार प्रकट किये हैं। इनसे प्रकट होता है कि हमारी माँ-बहनें भी अब किस प्रकार जागृत हो रही हैं।

स्त्रियों की बलि

(कारावास)

श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति अम्मल	१ वर्ष
श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय	९ मास
श्रीमती सरोजिनी नायडू	९ मास
श्रीमती सरलादेवी	६ मास
कुमारी मिश्रा	६ मास
श्रीमती दुर्गादेवी	६ मास

श्रीमती कमलादेवी का संदेश

"जबतक ब्रिटिश साम्राज्य भूत की एक छायामात्र न बन जाय, लड़ाई जारी रक्खो। भारत की आज़ादी से ही दुनिया की आज़ादी के द्वार खुलेंगे।"

१६ मई, बम्बई।

जागृत स्त्रियाँ

जागृत होकर स्त्रियाँ शान्त बैठी हों, सो बात नहीं। बम्बई में देशसेविका-संघ के रूप में संगठित होकर वे सुन्दर और ठोस काम कर रही हैं। विलों की पिकेटिंग तो ग़ज़ब की थी। इधर नागपुर में भी श्रीमती चतुराबाई की अध्यक्षता में एक युवती-युद्ध मण्डल स्थापित हुआ है और उसने पिकेटिंग शुरू कर दी है। और जगहों पर भी स्त्रियाँ अच्छा काम कर रही हैं। यदि यही क्रम जारी रहा तो एक न एक दिन सफलता निश्चित है।

शाबाश!

भारतीय स्त्रियाँ यदि सरकारी पद-उपाधियाँ छोड़ें तो उसका उतना महत्व नहीं, यह तो उनका कर्तव्य ही है। परन्तु ताज़ा ख़बर है कि बम्बई की विजिलेंस कमिटी की ओर से बम्बई-कौंसिल की सदस्या कुमारी ईदा डिकिंसन ने भी इस्तीफ़ा दे दिया है और क़ैसर-ए-हिन्द की उपाधि भी लौटा दी है। यह ध्यान रखने की बात है कि कुमारी डिकिंसन अंग्रेज़ औरत हैं, और बम्बई-कौंसिल में नामज़द की जाने वाली सर्व-प्रथम महिला हैं। आशा है, इन उदाहरणों से हमारी अन्य बहनों को भी सबक मिलेगा।

मुकुट

साधारण

विगत १२ मार्च को महात्मा गाँधी जब अपने थोड़े-से चुने हुए सत्याग्रहियों की टुकड़ी लेकर दुनिया के शायद सबसे शक्तिमान साम्राज्य को चुनौती देते हुए डांडी के समुद्र-तट की ओर नमक-सत्याग्रह के लिए बढ़े तो दुनिया ने इस विश्व के इतिहास में बिलकुल ही नये प्रकार के युद्ध की ओर बड़े कुतूहल से देखा! यह ६१ वर्ष का बुड्ढा—जो बकरी का दूध पी-पीकर अपनी ज़िन्दगी कायम रक्खे हुए है और जिसमें एक मोटी रोटी भी भलाभाँति हज़म करने की ताक़त नहीं है, इस 'सैनिक' टुकड़ी का सेनापति बना है! और इसके ये सैनिक जिनके हाथों में न बन्दूक़ें हैं, न रिवाल्वरें हैं, न गोले हैं, न साथ में तोपें या हवाई जहाज़ हैं! बहुतों के शरीर से हड्डियाँ बाहर झाँक रही हैं। यह सेना है! इसी सेना से विजय होगी?

हिचकिचाहट के ये भाव सिर्फ़ उन्हींमें नहीं थे जो इस आन्दोलन के सैद्धान्तिक विरोधी हैं वरन् जिनकी सहानुभूति थी, जो इसके समर्थक थे, और जो खुद इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए नाम दे चुके थे उनमें भी इस तरह की आशंका और हिचकिचाहट मौजूद थी। उनकी समझ में न आता था कि यह छोटी-सी टुकड़ी के द्वारा आरम्भ किया जानेवाला आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास का निर्माण कैसे करेगा?

विकास

पर इन तीन महीनों के अन्दर क्या से क्या हो गया है? जैसा कि हमने कई महीनों पहले त्या० भू० में लिखा था कि साबरमती के किनारे तूफ़ानी बादल का जो एक हलका टुकड़ा जमा हो रहा है वह शीघ्र ही सम्पूर्ण राष्ट्रीय आकाश में फैल जायगा। आज वह सब लोग साफ़-साफ़ अपनी आँखों से देख रहे हैं। नमक-जैसी एक अत्यन्त साधारण चीज़ को लेकर भारतवर्ष-जैसे महादेश की अशिक्षित जनता को संसार के एक अत्यन्त शक्तिमान साम्राज्य के विरुद्ध खड़ा कर देना और शक्तिशाली एवं व्यवस्थित ब्रिटिश सरकार को घबराकर पागल कर देना दुनिया की सैन्य-संचालन-नीति के विकास के इतिहास का एक आश्चर्यजनक पृष्ठ है।

इस आन्दोलन में स्वभावतः गुजरात एवं बम्बई सबसे आगे रहे हैं। स्वयं महात्माजी को भी इतनी सफलता की आशा न थी। पर उनकी यात्रा आरम्भ होते ही हज़ारों पटेलों के इस्तीफ़े आने लगे, ग्रामीण जनता ने अभूतपूर्व उत्साह के साथ सत्याग्रहियों का स्वागत किया। पहले सरकार ने उपेक्षा से काम लिया और इस बात की आशा करती रही कि यह जोश अपने आप ठण्डा पड़ जायगा। पर उसे यह पता नहीं था कि गुलामी की वेदना लोगों के कलेजे में घुस गई है और अब वह उन्हें चैन से बैठने न देगी।

सरकार की खीझ

पहले पुलिसवालों ने सत्याग्रहियों के मार्ग में रुकावटें डालकर, उनके आगे घेरा डालकर, उनसे नमक छीन कर, उन्हें तंग करके स्वतंत्रता की उमड़ती हुई गंगा को रोकना चाहा, पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व और स्वतंत्रता की इच्छा ने इन बाधाओं को अपनी बलिदान की नीति और मर-मिटने के अपूर्व उत्साह से दूर कर दिया। इस बीच में भारत के अनेक प्रांतों में—पूना में, कलकत्ता में

और पेशावर में निर्दोष जनता को पशु-बल के अनेक उदाहरणों द्वारा उत्तेजित करने का प्रयत्न किया गया। पेशावर में जनता की शांत भीड़ पर पुलिस की मोटरें चला दी गईं जिससे अनेक व्यक्ति घायल हुए और तीन उसी समय मारे गये। इस पर भी जनता शांत रही; आगे के आदमी जब गोलियाँ खाकर गिर पड़े तो पिछले सीना ऊँचा करके आगे बढ़ आये। एक सिक्ख बच्चे को तथा एक बूढ़ी स्त्री को गोली मारी गई। इस प्रकार के अत्याचारों के उदाहरण एक दो नहीं अनेक हैं। दो-एक जगह इन अमानुषिक अत्याचारों के कारण जनता भी उत्तेजित हो गई। फलस्वरूप मामूली दंगे हुए पर देश ने सब मिलाकर, अपूर्व शांति का परिचय दिया। किन्तु अहिंसा के उस अवतार बूढ़े गाँधी को इतनी उत्तेजना भी सह्य न थी और न वह इतने बलिदान से सन्तुष्ट हो सकता था इसलिए उसने निश्चय किया कि एक स्थान पर सरकार के इस अमानुषिक दमन को केन्द्रित किया जाय ताकि उसका नंगा रूप जनता के सामने आ जाय। इसीलिए उन्होंने धरासणा की नमक-फैक्टरी पर धावा बोलने का निश्चय किया। और इस सम्बन्ध में वायसराय को जो पत्र लिखा—जिसे उनके एकाएक गिरफ्तार हो जाने के बाद उनके उत्तराधिकारी श्री अब्बास तैयब जी ने वायसराय को भेजा—उसमें साफ़-साफ़ कह दिया कि आप सिर्फ़ तीन तरह से इस धावे को रोक सकते हैं। (१) नमक-क़ानून रद करके; (२) मुझे और मेरे दल को पकड़कर, पर मुझे विश्वास है कि देश के लाखों व्यक्ति हमारी खाली जगह पूरी करने के लिए आते जायँगे। (३) गुण्डाशाही इख्तियार करके पर इसमें भी मुझे विश्वास है कि जितने सिर फूटेंगे, उतने नये आकर वहाँ खड़े हो जायँगे। सरकार ने पहली बात नहीं मानी और दूसरी एवं तीसरी शर्तों का आज सारे देश में पालन हो रहा है। लाठियाँ चलाना तो पुलिस के लिए मामूली बात है। पर हर्ष की बात यही है कि जैसा महात्माजी ने कहा था वैसा ही हो रहा है। एक की जगह ख़ाली होते ही अनेक नये सत्याग्रही उसकी जगह लेने को आ जाते है। सर टूट रहे हैं पर लोगों का उत्साह बढ़ता ही जाता है।

धरासणा में गाँधीजी की ५ मई की गिरफ्तारी के बाद श्री अब्बास तैयबजी के नेतृत्व में सत्याग्रहियों की एक टुकड़ी धरासणा के नमक के कारखाने पर धावा बोलने के लिए भेजी गई। उसे गिरफ्तार कर लिया गया। तबसे सत्याग्रहियों की सामूहिक गिरफ्तारी की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और सैकड़ों सत्याग्रही रोज़ गिरफ्तार होने लगे।

अत्याचार

पीछे उब और घबरा जाने पर पुलिस ने सत्याग्रहियों पर जो अत्याचार किये उनकी कहानी बड़ी करुण है। दिन दिन भर कड़ी धूप में उन्हें बिठाया गया और पानी तक नहीं दिया गया। श्रीमती सरोजिनी नायडू इस प्रकार धूप में रहीं और अन्त में सत्रह घण्टे बाद उन्हें तथा उनके सत्याग्रही स्वयंसेवकों को पानी दिया गया। लाठियों की चोटों की तो गिनती करना व्यर्थ है। अबतक हज़ारों आदमी इससे घायल हुए हैं। बंगाल, आगरा, दिल्ली, वीरमगाँव इत्यादि में तो स्त्रियों पर भी पुलिस ने भयंकर अत्याचार किये हैं। पर इन अत्याचारों का फल सब तरह से देश के लिए अच्छा ही हुआ है। एक ओर तो सत्याग्रहियों को इससे अधिक बलिदान करने का उत्साह प्राप्त हुआ। और धरासणा के साथ ही वडाला (बम्बई) तथा अन्य दो-एक नमक की फैक्टरियों पर भी उन्होंने लगातार धावा बोलने की व्यवस्था की और दूसरी ओर इन अत्याचारों एवं दमन के अमानुषिक तरीकों के कारण उन लोगों की सहानुभूति भी सत्याग्रही दल के साथ बढ़ती गई जो देश की स्वतन्त्रता के समर्थक होते हुए भी सत्याग्रह में विश्वास नहीं रखते थे। सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास-जैसे व्यापारी (जिन्होंने मालवीयजी के ख़िलाफ़ ब्रिटिश कपड़े को सुविधा देने का समर्थन किया था, सर चिमनलाल सेतलवाड़-जैसे कट्टर साम्राज्यवादी देश-प्रेमी, श्री हृदयनाथ कुँजरू और श्री ईश्वरशरण जैसे कट्टर लिबरल (जिन्होंने इंग्लैण्ड में रहकर गोलमेज-समझौता-कान्फ़्रेंस की सफलता के लिए बहुत अधिक परिश्रम किया था) भी आज सरकार से असन्तुष्ट हो गये हैं और अपनी

अन्धाधुंध दमन नीति के कारण सरकार से लिबरलों की सहानुभूति भी नष्ट हो गई है। इसलिए जबतक वातावरण में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं होता, जबतक निरीह जनता पर लाठियाँ और गोलियाँ चल रही हैं, तबतक समझौता-कान्फ्रेंस में कोई उच्च विचारों का लिबरल भी शामिल होगा, ऐसी आशा नहीं है।

धरासणा और वाडला

इस पिछले महीने में धारासणा और वाडला (बम्बई) की नमक की फैक्टरियों पर बार बार धावा बोला गया। इसमें हज़ारों सत्याग्रही गिरफ़्तार हुए हैं। धरासणा में तो नमक लाने में सत्याग्रहियों को सफलता नहीं मिली, किन्तु वाडला में सत्याग्रही और अन्य लोग पुलिस और घुड़सवार सेना की मारपीट एवं लाठी-वर्षा के होते हुए भी हज़ारों मन नमक उठा ले गये। अब तो बरसात के कारण धरासणा का मोरचा उठा लिया गया है, क्योंकि इन दिनों धूप न होने के कारण नमक बनता भी नहीं और कभी थोड़ा-बहुत बन भी गया तो वर्षा के दिनों में सत्याग्रहियों के लिए छावनी बनाकर हज़ारों की संख्या में वहाँ रहना बड़ा कठिन है। इसलिए संभवतः आगे विदेशी कपड़ों एवं मादक द्रव्य के बहिष्कार पर ज्यादा ध्यान दिया जायगा।

इस महीने सत्याग्रह-युद्ध में बम्बई और गुजरात का स्थान बहुत ऊँचा है। गुजरात में तो वल्लभभाई इत्यादि ने लगातार ६-७ वर्ष तक ठोस काम किया है इसलिए उससे तो यह आशा थी ही किन्तु बम्बई—जैसे फ़ैशन, तड़क-भड़क और शान के गुलाम, विदेशी वस्तुओं के प्रवेश-द्वार ने अपना जो उदाहरण देश के सामने रक्खा है वह अनुकरणीय है। वहाँ भलीभाँति अनुशासन की शिक्षा पाये हुए सत्याग्रहियों की संख्या पाँच हज़ार तक पहुँच चुकी है। इन लोगों ने बम्बई नगर तथा वाडला में तो महत्वपूर्ण कार्य किया ही है पर इसके साथ ही धरासणा, शोलापुर तथा अन्य स्थानों में सत्याग्रह के लिए अपने सैनिक भेजे हैं जिन्होंने अत्यधिक कष्ट-सहिष्णुता और त्याग का परिचय दिया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनको सैनिक-ढंग की शिक्षा दी गई है इसलिए कई बार तो फैक्टरियों के चारों ओर पुलिस का पहरा रहने पर भी किसी प्रकार वे पुलिस को इधर-उधर दौड़ाकर तथा तंग करके भीतर घुस जाते हैं और काम निकाल लेते हैं। इसके साथ ही उन्हें घायलों की सेवा-शुश्रूषा इत्यादि की भी शिक्षा दी गई है और उनका अपना 'अम्बुलेंस कोर' (घायल-सहायक दल) भी है।

धरना

नमक-सत्याग्रह और धावे के साथ सैकड़ों की संख्या में वहाँ बहनें विदेशी कपड़े एवं शराब की दुकानों पर सफलतापूर्वक धरना दे रही हैं। गुजरात में ताड़ी और शराब की बन्दी और धरनों एवं तत्सम्बन्धी प्रचार का काम ज़ोरों से चल रहा है। पञ्जाब और संयुक्तप्रान्त में विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का काम ज़ोरों से चल रहा है; वहाँ विदेशी कपड़े की कितनी ही दूकानों पर काँग्रेस का ताला बन्द है। पहले कहीं-कहीं इन व्यापारियों से यह समझौता हो गया था कि पहले का जो कपड़ा है उसे वे बेच सकते हैं पर नये आर्डर न दें। अब 'राष्ट्रपति' पं० मोतीलालजी ने इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता न करके धरना देने का आदेश निकाला है।

सरकारी घबराहट

इस प्रकार घोर दमन और सरकारी अत्याचारों के बीच भी आन्दोलन की गति बढ़ती ही जाती है, जिससे सरकार घबरा उठी है। इन डेढ़-दो महीनों के अन्दर छः-छः विशेष कानूनों को जारी करके सरकार ने प्रकट कर दिया कि अब उसकी बुद्धि एवं व्यवस्था का दिवाला निकल रहा है। बंगाल आर्डिनेंस, लाहौर षड्यन्त्र—सम्बन्धी विशेष-कानून, छापेखाने का विशेष कानून और शोलापुर का सैनिक-कानून तो पहले से ही प्रचलित हो चुके थे अब बहिष्कार की सफलता से घबरा कर तथा मैनचेस्टर एवं लंकाशायर के व्यापार को कड़ा धक्का पहुँचते देखकर भारत-सरकार ने दो नये आर्डिनेंस (विशेष कानून) जारी किये हैं जिनके अनुसार शराब या विदेशी कपड़े की दूकानों पर पिकेटिंग करना तथा सरकारी कर्मचा-

रियों को नौकरी छोड़ने को कहना या उनका सामाजिक बहिष्कार करना या कृषकों में लगानबंदी का आंदोलन करना भी जुर्म क़रार दे दिया गया है। सरकार ने ये कानून तो जनता की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के नाम पर बनाये हैं पर इसे प्रत्येक भारतवासी जानता है कि सरकार को हमारे अधिकारों की रक्षा की कितनी चिन्ता है।

मुसलमानों की सहानुभूति

इस तरह देश भर में सफलतापूर्वक राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा है। यह एक प्रसन्नता की बात है कि अब धीरे-धीरे मुसलमान भाई भी सत्याग्रह-आंदोलन में सम्मिलित होने और उसके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करने लगे हैं। बम्बई के भिण्डी बाज़ार मुहल्ले में और पेशावर में मुसलमानों पर गोलियाँ चलने से वे बहुत उद्विग्न एवं अशांत हो गये हैं, एवं कांग्रेस के स्वयंसेवकों ने ऐसे समय घायलों की जो सेवा-शुश्रूषा की उससे भी वे प्रभावित हुए हैं। जमैयत-उलमाय-हिन्द (मुसल्मान पण्डितों की भारतीय महासभा) के अध्यक्ष और प्रसिद्ध विद्वान् मौलाना किफ़ायतुल्लाह ने तो सरोजनी नायडू के बाद स्वयं धरासणा-सत्याग्रह-दल का नेतृत्व करने को अपनी सेवायें समर्पित कर दी थीं पर वैसा मौक़ा आने के पहले ही, वर्षा के कारण धरासणा का सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

इस तरह सम्पूर्ण देश दमन के घोर दावानल के बीच भी तेज़ी से अपने पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है और सरकार के अमानुषिक अत्याचार उसकी गति बढ़ाने में सहायता कर रहे हैं।

देशी राज्य

यह एक आश्चर्य की बात है कि भारत-सम्राट् के भक्त देशी नरेश भी इस आंदोलन की उग्रता देख चुप-से हैं—ऐसा जान पड़ता है मानों वे बड़ी उत्सुकता पर विस्मय और आधे हर्ष एवं आधे भय के साथ भारतीय भाग्य-निर्माण के इस प्रयत्न की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। ज्यों-ज्यों गोल मेज़-परिषद् का दिन (२० अक्टूबर) नज़दीक आता जाता है इनकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। इस बीच इन्दौर के महाराज बालिग़ हो जाने से बाक़ायदा गद्दी पर बिठाये गये हैं। इन्होंने राज्य के युवकों की सभा की थी और उसमें जो विचार प्रकट किये उनसे मालूम होता है कि यदि वह विलासिता और झूठे मित्रों की चालबाज़ियों में न फँस गये तो आगे चलकर अपने को एक योग्य नरेश साबित करेंगे। भूपाल की राजमाता का हाल में देहान्त हो गया है। ग्वालियर में बाल-विवाह-निषेधक कानून बनने जा रहा है। पटियाला-नरेश पर लगाये जाने वाले इल्ज़ामों की जाँच के लिए सरकार ने अपने वहाँ के एजेण्ट को नियुक्त किया है। मज़ा यह कि महाराज ने ख़ुद जाँच के लिए इन्हीं के नाम की तजवीज़ की थी। इसलिए इस एकांगी जाँच का देशी राज्य-प्रजा-परिषद् ने विरोध एवं बहिष्कार किया है। उधर गोलमेज़-कान्फ्रेंस के लिए राजाओं ने बिहार-उड़ीसा के भूतपूर्व अर्थ-सदस्य सर सच्चिदानन्दसिंह को अपना सलाहकार चुना है।

सामाजिक क्षेत्र में—

सामाजिक क्षेत्र में अछूतोद्धार का काम चल रहा है। पूना, मुंशीगंज इत्यादि में मंदिर-प्रवेश-सम्बन्धी जो आंदोलन चल रहे थे उसमें बहुत-कुछ सफलता हुई है। वर्तमान राजनैतिक आंदोलन ने स्त्रियों को अपने पैरों पर खड़ा होने, उनमें साहस एवं कष्ट सहिष्णुता के भाव भरने तथा उनको परदे से बाहर आकर स्वतंत्रता के इस यज्ञ में भाग लेने को विवश किया है। आज हज़ारों बहनें और मातायें अपने भाइयों एवं बच्चों के बलिदान से देश-सेवा के मार्ग पर अग्रसर हुई हैं।

व्यापार-क्षेत्र

इस महीने भारत का आयात—निर्यात दोनों प्रकार का व्यापार मंदा रहा। पिछले वर्ष के अप्रैल—मई के व्यापार की अपेक्षा इस वर्ष के दोनों महीनों में व्यापार में कम से कम दस करोड़ रुपयों की कमी हुई।

अशांत वातावरण, हड़तालों, गिरफ्तारियों एवं पिकेटिंग इत्यादि के कारण देश के भीतरी व्यापार को भी बड़ा धक्का लगा है। हाँ विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के आंदोलन ने देशी कपड़े की मांग बाज़ार में बढ़ा दी है और खादी की

अत्यधिक कमी के कारण देशी मिल के कपड़े का बाज़ार ऊँचा होता जाता है। ताता के लोहे के कारखाने में फौलाद की उत्पत्ति बढ़ गई है। सब मिलाकर देश के आन्तरिक व्यापार की अवस्था में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

'सुमन'

बहिष्कार-आन्दोलन

भारतीय व्यवसाय की अवस्था

भारतीय व्यवसाय की अवस्था इस बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से दिन पर दिन बराबर ख़राब होती जा रही है। विदेशी सरकार की धाँधलेबाज़ी ने भारतीय व्यापार की बड़ी बुरी दशा कर रक्खी है। सरकारी आय का बहुत थोड़ा—नाम मात्र भाग इस देश में देशी उद्योग-व्यवसाय की उन्नति में खर्च किया जाता है। १९०१ से १९२१ तक के व्यापार और कृषि के आँकड़ों की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो यह जानने में देर नहीं लगती कि लोग व्यवसायों की बुरी अवस्था से ऊबकर उन्हें छोड़ते जाते और कृषि की ओर लगते जाते हैं पर लगान-क़ानून तथा भूमि-सम्बन्धी अनेक असुविधाओं के कारण दिन पर दिन वह मार्ग भी बंद होता जा रहा है। नीचे के आँकड़ों से व्यवसाय की बुरी अवस्था का अनुमान किया जा सकता है—

कुल जन-संख्या में कितने फी सदी किस पर निर्वाह करते हैं

प्रान्त	कृषि पर निर्वाह करनेवाले			व्यवसायों पर निर्वाह करनेवाले		
	१९०१	१९११	१९२१	१९०१	१९११	१९२१
	%	%	%	%	%	%
आसाम	८४.२	८५.४	८८.०	७.८	३.२	२.६
बंगाल	७१.५	७५.४	७७.३	१२.३	७.७	७.८
बिहार-उड़ीसा	——	७८.३	७९.७	——	७.७	६.९
बम्बई	५८.६	६४.३	६१.६	१८.२	१२.७	१२.२
ब्रह्मा	६६.१	६९.१	७०.७	१८.६	६.८	६.९
मध्यप्रदेश	७०.०	७५.५	७४.२	१६.२	१०.२	९.३
बरार	७३.२	——	——	१२.९	——	——
मद्रास	६९.०	६८.७	७०.८	१७.५	१३.४	११.३
दिल्ली	——	——	२८.४	——	——	३१.०
सीमा प्रान्त	५६.९	६६.७	६५.०	१९.४	११.५	१२६
पंजाब	——	५८.०	५९.०	——	२०.५	१९.३
युक्तप्रान्त	६५.५	७१.६	७५.०	१४.९	१२.९	११.०
कुल भारत	६५.२	६०.८	७०.९	१५.५	११.४	१०.७

यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि इस दुरवस्था को दूर करने का सबसे सरल उपाय स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग और विदेशी चीज़ों का बहिष्कार है। आशा है, हमारे देशभाई इन अंकों पर ध्यान देंगे।

*

विदेशी वस्त्र व्यापार का ह्रास

१९२१ ई० से, जब महात्मा गाँधी ने देश में पहली बार असहयोग के रूप में वास्तविक सामूहिक एवं सार्वजनिक राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव डाली, देश की जनता की दिलचस्पी राजनैतिक मामलों में बहुत बढ़ गई है। असहयोग-आन्दोलन चाहे सफल हुआ हो या असफल, इस विवाद में पड़ने की हमें कोई आवश्यकता नहीं है, पर उसने देश में—सर्व-साधारण में एक गम्भीर राष्ट्रीय चेतना—अपनी हालत पर दर्द और असन्तोष—अवश्य उत्पन्न कर दी। तबसे दिन-दिन स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की ओर लोगों की अभिरुचि बढ़ती जाती है। १९२६-२७ के बाद से तो इस ओर लोगों का ध्यान बहुत ज़्यादा जाने लगा है। देश में खादी पहननेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है और विगत दो तीन वर्षों के विदेशी आयात के अंकों को देखने पर मालूम होता है कि भारत में विदेश से आने वाले कपड़े के परिमाण में दिन-दिन कमी होती जाती है। नीचे अंक देखिए—

वर्ष	रुपया
१९२७-२८	७१ करोड़ ९० लाख
१९२८-२९	६७ करोड़ १५ लाख
१९२९-३०	६२ करोड़ ९१ लाख

इस तरह विगत ढाई वर्षों के अन्दर विदेशी कपड़ों के आयात में लगभग ९ करोड़ रुपयों की कमी हुई है। महीन कपड़ा बुनने के लिए भारत को कई मिलें विदेश से जो सूत मँगवाती हैं उसमें भी कमी हुई है। देखिए—

साल	रुपया
१९२७-२८	९ करोड़ ७९ लाख
१९२८-२९	६ करोड़ २९ लाख
१९२९-३०	६ करोड़

इसमें आधा सूत ब्रिटेन से तथा शेष अन्य देशों से आता है।

परिमाण की दृष्टि से देखें तो भी कपड़े के आयात में कमी हुई है—

१९२७-२८	१९७ करोड़ गज़
१९२८-२९	१९४ करोड़ गज़
१९२९-३०	१९२ करोड़ गज़

पिछले साल इङ्गलैण्ड से ३३ करोड़ २८ लाख रुपये का कपड़ा भारतवर्ष में आया, जब कि पहले चालीस या कभी-कभी उससे भी अधिक का प्रति वर्ष आता था। इस प्रकार जहाँ विदेशी कपड़े की आमदनी दिन पर दिन कम होती जा रही है वहाँ देशी मिलों के कपड़ों की माँग और खपत बढ़ती जाती है। जहाँ १९२९-३० में विदेशों से १९२ करोड़ गज़ कपड़ा भारत में आया, वहाँ पिछले वर्ष सिर्फ़ दस महीनों (मार्च १९२९ से जनवरी १९३० तक) में देशी मिलों में २०० करोड़ गज़ कपड़ा तैयार हुआ। इस प्रकार देशी मिलें साल भर में लगभग २५० करोड़ गज़ कपड़ा तैयार करती हैं। इस परिमाण में हाथ या मिल के सूत से करघों पर बुने जानेवाले कपड़े की गिनती नहीं की गई है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सम्पूर्ण देश में जुलाहों-द्वारा हाथ से बुने जाने वाले कपड़े का परिमाण लगभग १५० करोड़ गज़ वार्षिक होता है। इस प्रकार भारत में लगभग ४०० करोड़ गज़ कपड़ा हर साल तैयार होता है, जो विदेशों से आनेवाले कपड़े से परिमाण में दूना है। सिर्फ़ एक-तिहाई कपड़ों के लिए हमें विदेशों का मुँह ताकना पड़ता है। इस विदेशी कपड़े में भी महीन सूत के या रंगीन शौकीनी के कपड़ों का परिमाण अधिक होता है इसलिए यदि हम थोड़ी सादगी इख़्तियार करें और विदेशी कपड़े की जगह खादी या देशी कपड़ा इस्तेमाल करने लगें तो जहाँ हमारे देश के करोड़ों रुपये देश में ही रह जायँगे वहाँ हम स्वतंत्रता के भी दिन-दिन निकट पहुँचते जायँगे।

स्वदेशी एवं विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलन अपना फल दिखाने लगे हैं। १९२९ में लंकाशायर से बाहर जाने वाले सब प्रकार के कपड़ों में १९२८ की अपेक्षा

१६५००००००० गज़ और १९२७ की अपेक्षा ४४५०००-००० कपड़ा कम गया। १९२९ के अप्रैल में भारत में जितना आयात हुआ था उसकी अपेक्षा १९३० के अप्रैल में लगभग ७ करोड़ रुपयों का कम आयात हुआ है। लंकाशायर और मैनचेस्टर के व्यापारियों में अभी से तहलका मचने लगा है। वहाँ की पिछले सप्ताह की व्यापारिक रिपोर्ट से मालूम होता है कि भारत से ब्रिटेन का कपड़े का व्यापार पिछले सप्ताह तो इतना कम हुआ कि इसे नहीं-सा कहना अच्छा होगा। भारत में सबसे ज़्यादा (लगभग आधा) विदेशी कपड़ा कलकत्ता के द्वारा आता है। इसी प्रकार कानपुर, अमृतसर इत्यादि भी विदेशी वस्त्रों की बड़ी मण्डियाँ हैं। अमृतसर में बड़ी सफलता के साथ विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना दिया गया है; कानपुर में तो सिर्फ़ चार दूकानें और रह गई हैं, जिन पर काँग्रेस का ताला नहीं बंद है—चंद दिनों में वे भी बन्द हो जायँगी। बनारस में भी तीन-चौथाई से अधिक दूकानों को बंद कर देने में काँग्रेस को सफलता मिली है। इससे मालूम किया जा सकता है कि मई एवं जून महीने में अप्रैल की अपेक्षा भी ज़्यादा कड़ा धक्का विदेशी एवं विशेषतः ब्रिटेन के वस्त्र व्यापार को लगेगा। इसीलिए वाइसराय ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की दुहाई देकर पिकेटिंग को जुर्म क़रार दिया है। इसका असली रहस्य तो यही है, पर शासन-शक्ति से अन्धी सरकारें सदा अपनी भूलों से ही नष्ट होती हैं। भारत-सरकार को यह नहीं मालूम कि इसके अन्याय-अत्याचार से राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति और बढ़ेगी और जिन लोगों की समझ में ये बातें अभी नहीं आती हैं वे भी यह समझ जायँगे कि इसमें ज़रूर सरकार देश का फ़ायदा और अपना विनाश देखती है। इसीलिए यह आन्दोलन विशेष कानून बनाकर रोकना चाहती है।

जो हो, इन लक्षणों से स्पष्ट है कि यदि हम विदेशी वस्तुओं एवं विशेषतः विदेशी कपड़े के बहिष्कार का दृढ़ निश्चय कर लें तो ब्रिटेन पर दबाव डालकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए इससे सरल और सुविधाजनक दूसरा मार्ग नहीं है।

बहिष्कार-समाचार

पंजाब-दिल्ली

(१) लाहौर, अमृतसर तथा दिल्ली के व्यापारियों ने विदेशी फ़र्मों (आढ़तों) को तार दिये हैं कि बाज़ार में विदेशी माल की खपत बहुत घट गई है, इसलिए वे माल न भेजें और पहले के आर्डर रद्द समझें।

(२) १६ मई को लाहौर में पंजाब के अंग्रेज़ी दवाफ़रोशों की एक सभा हुई, जिसमें उन्होंने निश्चय किया है कि वे विलायती दवाइयों का सर्वथा बहिष्कार करेंगे। यह भी तय पाया कि ब्रिटिश फ़र्मों को दिये हुए आर्डर रद्द कर दिये जायँ।

(३) १२ मई को लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के अध्यापकों ने निश्चय किया कि वे अब शुद्ध खादी का ही व्यवहार करेंगे।

(४) अमृतसर में विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का काम ख़ूब ज़ोरों से चल रहा है और उसमें सफलता भी ख़ूब हुई है। सब व्यापारियों ने स्वदेशी माल बेचने की प्रतिज्ञा ले ली है। १२ मई को अमृतसर-सत्याग्रह-कमिटी ने दो फ़र्मों को स्वदेशी की यह प्रतिज्ञा तोड़ने पर १०१) जुर्माना किया। एक व्यापारी बम्बई से नई गाँठें मोल लाया था, उसका सामान बन्द करा दिया गया।

(५) १२ मई को लाहौर के बच्छोवाली मोहल्ले के आर्य-समाज ने निश्चय किया कि समाज-मन्दिर में विदेशी वस्त्र-धारियों को प्रवेश न करने दिया जाय।

(६) लालामूसा में विदेशी वस्त्र बहिष्कार का काम ज़ोरों पर है। स्त्रियाँ घर-घर जाकर विदेशी वस्त्र छोड़ने को कह रही हैं।

(७) अम्बाला शहर तथा छावनी के दूकानदारों ने एक साल तक विदेशी माल न बेचने का निश्चय किया है।

(८) अमृतसर में शीतला, हनुमान और लक्ष्मीनारायण के मन्दिरों पर धरना दिया जा रहा है और विलायती वस्त्र-धारियों को अन्दर नहीं जाने दिया जाता।

(९) ९ मई को लायलपुर के व्यापारियों ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने का निश्चय किया। इस निश्चय को तोड़नेवालों के लिए १००) जुर्माने की सज़ा निश्चित की गई है। गोजरा और टोबा-टेकसिंह के व्यापारियों ने भी ऐसा ही निश्चय किया है।

(१०) नानकाना साहब तथा माण्टगोमरी के बज़ाज़ों ने विदेशी वस्त्र न खरीदने का फ़ैसला किया है। सियालकोट, अम्बाला, फ़ीरोज़पुर, माण्टगोमरी, हाफ़िज़ाबाद के वकीलों ने स्वदेशी का व्रत लिया है। रोहतक, जालंधर और बटाला में भी धरना जारी है।

(११) दिल्ली के कपड़े के अधिकांश व्यापारियों ने विदेशी फर्मों को आर्डर रद्द करते हुए माल न भेजने के लिए तार दिया है।

(१२) दिल्ली के कई कालेजों के अध्यापकों एवं अधिकांश वकीलों ने आगे से स्वदेशी—विशेषतः खादी—के उपयोग का निश्चय किया है।

(१३) दिल्ली की मोटर-कम्पनियों ने अंग्रेजी कल-पुर्ज़ों का बहिष्कार किया है। अनेक दर्ज़ियों ने विदेशी कपड़े न सीने, कहारों ने विदेशी वस्त्र का बोझ न उठाने और धोबियों ने विदेशी कपड़े न धोने का निश्चय किया है।

संयुक्तप्रान्त

(१) कानपुर के अधिकांश व्यापारियों ने विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का निश्चय कर लिया है और कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं।

(२) प्रयाग में विदेशी कपड़े की दूकानों की पिकेटिंग बहुत सफल हुई। अधिकांश दूकानें बन्द हो गई हैं और बहुतों पर कांग्रेस का ताला लग रहा है। सिर्फ़ ४ दूकानें रह गई हैं।

(३) काशी में तीन-चौथाई से अधिक विदेशी वस्त्र बेचने वालों ने कांग्रेस की आज्ञा मानकर स्वदेशी ही वस्त्र बेचने का निश्चय किया है। और लगभग १०० दूकानों के विदेशी वस्त्र के गट्ठरों पर कांग्रेस की मुहर लग रही है।

(४) काशी, प्रयाग, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मेरठ, गोंडा तथा सहारनपुर के वकीलों ने स्वदेशी वस्त्र का उपयोग करने का निश्चय किया है।

बिहार

(१) मुँगेर, पण्डार्क, भदौर, मोतीहारी, पटना, मुरादपुर, खगोल, मुज़फ्फ़रपुर इत्यादि के अधिकांश व्यापारियों ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया है।

(२) पटना तथा अन्य अनेक प्रसिद्ध नगरों के वकीलों ने स्वदेशी का व्रत लिया है।

बंगाल

(१) कलकत्ता के अधिकांश विदेशी वस्त्र-व्यापारियों ने एक वर्ष तक विदेशी माल न मँगाने का निश्चय किया है।

(२) डाक्टरों की सभा ने अंग्रेज़ी दवाइयों का बहिष्कार किया है।

(३) कॉलेजों के छात्रों की सभा ने स्वदेशी वस्त्रों के उपयोग का निश्चय किया है।

(४) अनेक वकीलों ने स्वदेशी का व्रत लिया है।

बम्बई—मद्रास

(१) बम्बई नगर तथा प्रान्त के अनेक स्थानों में स्त्रियाँ सफलतापूर्वक विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर पिकेटिंग कर रही हैं। विगत ६ जून से बम्बई नगर में यह काम और ज़ोरों से चलाया जा रहा है।

(२) मद्रास में ५०० व्यापारियों ने स्वदेशी के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं।

इन समाचारों से मालूम होता है कि देश में बहिष्कार-आन्दोलन ज़ोरों से चल रहा है। गुजरात, मद्रास, बम्बई तथा संयुक्तप्रान्त के अनेक नगरों में शराब-बन्दी के लिए गहरी पिकेटिंग की जा रही है। यदि आन्दोलन की गति इसी तरह बढ़ती गई, जिसकी आशा है, तो बहुत शीघ्र सरकार को हार माननी पड़ेगी।

'सुमन'
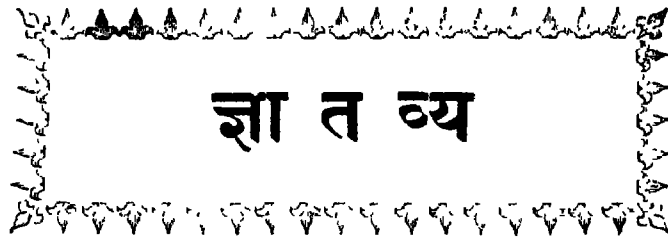
(१)

आज़ादी का मूल्य

स्वतन्त्रता का पौधा उसकी बलि वेदी पर चढ़नेवाले वीरों के रक्त से पनपता है।

—लाजपतराय

स्वतन्त्रता एक ऐसी देवी है, जो तबतक प्रसन्न नहीं होती जबतक उसके भक्तगण अपने हृदय और जीवन तक को उसके चरणों में समर्पित नहीं कर देते।

—सरोजिनी नायडू

बढ़िया रेशमी वस्त्र पहनकर गुलामी में जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा चिथड़े पहनकर आज़ादी के स्वर्गीय वायुमण्डल में रहना कहीं श्रेयस्कर है।

—मोतीलाल नेहरू

स्वतन्त्रता मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है। जबतक मेरे अन्दर यह भावना जागृत है तबतक मैं कभी बूढ़ा नहीं हो सकता। इस भावना को कोई हथियार काट नहीं सकता, आग इसे जला नहीं सकती, पानी इसे भिगो नहीं सकता, और न हवा ही इसे सुखा सकती है।

—लोकमान्य तिलक

कोई भी जीवित राष्ट्र, जिस पर विदेशी लोग शासन कर रहे हों, अपने विजेताओं के साथ शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता, क्योंकि उस अवस्था में शान्ति का अर्थ है आत्म-समर्पण, और आत्म-समर्पण का अर्थ राष्ट्र की जीवन-शक्ति की मौत है। जबतक भारत आज़ाद नहीं हो जाता तबतक हिन्दुस्थान और इंग्लिस्तान में किसी प्रकार से शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

—जवाहरलाल नेहरू

वर्तमान अंग्रेजी शासन में राज-द्रोह धर्म है और राज-भक्ति पाप है।

—महात्मा गांधी

वर्तमान अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध घृणा फैलाना प्रत्येक भारतीय का धर्म है।

—मदनमोहन मालवीय

जंजीरें फिर भी जंजीरें ही हैं, चाहे वे सोने की ही क्यों न हों। क्या स्वतन्त्रता और सम्मान की तुलना में संसार की सारी सम्पदा का भी कुछ महत्व है? ऐसी सम्पदा से लाभ ही क्या, यदि कोई अपनी आत्मा के एवज में संसार का राज्य पा जाय?

—लाजपतराय

(२)

अंग्रेजी शासन का कुटिल उद्देश्य

[अंग्रेजों की ज़बानी]

हमने भारतवर्ष को भारतीयों के लाभ के लिए विजय नहीं किया है बल्कि इंग्लिस्तान के माल की खपत के लिए विजय किया है। मै इतना मक्कार नहीं हूं कि कहता फिरूं कि हमने भारत को भारतीयों के लाभ के लिए जीता है।

—सर जान्स हिक्स

हम भारत में उसकी सम्पत्ति लूटने के खातिर ही गये थे। हमने उसे निर्जीव बनाने में यहां तक सफलता प्राप्त की है कि उसे बिलकुल भूखा, दुखी और अशिक्षित बना दिया है। हमने उसकी नसों में से खून पी लिया है और उसकी हड्डियों में से मांस अलग कर दिया है।

—न्यू स्टेट्समेन

हमारे पूर्वजों ने भारतवर्ष को उसकी धन-दौलत लूटने की खातिर ही विजय किया था और आज हम भारत को उसी अनैतिक उद्देश्य के हेतु गुलाम बनाये हुए हैं।

—डा० रुदरफर्ड

विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की हस्ती कायम रखने के लिए ही आज अकाल-पीड़ित भारत का खून चूसा जा रहा है।

—हेनरी केम्पबेल बनरमन

सन १७५७ से १८१५ तक लगभग १५ अरब रुपया शुद्ध लूट का भारत से इंग्लिस्तान पहुंचा।

विलियम डिगवी

न तो अपने जीवन काल में, न अपनी भावी पीढ़ियों के जीवन काल में, न भविष्य में भारत कभी औपनिवेशिक पद प्राप्त कर सकेगा।

—गिल्बर्ट फ्रैंकमेन

आज भारत के लोग कीड़े-मकोड़ों की मौत मर रहे हैं।

—श्री पर्सल

आज भारत के आधे किसान यह नहीं जानते कि भर-पेट खाना किसे कहते हैं।

—सर चार्ल्स इलियट

अंग्रेज़ी शासन के जंगली और अमानुषिक अत्याचारों के नमूने

पेशावर

विगत २३ अप्रैल को पेशावर में शांत जुलूस पर गोलियाँ चलाकर सेना के सिपाहियों ने जो अत्याचार किये थे, उसके सम्बन्ध में पंजाब कांग्रेस-कमिटी के अध्यक्ष मौलाना अब्दुलक़ादिर क़सूरी ने (जो उसके बाद ही गिरफ्तार कर लिये गये) निम्नलिखित बयान निकाला है—

खुली छाती पर गोलियाँ—

"× × × लेकिन इतने में तो गोरे सिपाहियों का दस्ता वहाँ आ पहुँचा और बग़ैर किसी सूचना के उसने लोगों को गोलियों से भूनना शुरू कर दिया। भीड़ में स्त्रियाँ और बच्चे भी थे। इस समय लोगों ने अहिंसा का सुन्दर परिचय दिया। भीड़ के अगले हिस्से के लोग जब घायल हो-होकर गिरने लगे तो पीछे वाले लोग आगे आने और गोलियाँ खाने लगे। लोग खुली छाती करके गोलियों की वर्षा के सामने इतनी दृढ़ता के साथ खड़े रहे कि कुछ को तो २१-२१ गोलियाँ लगीं! तिसपर भी डरकर भागने की अपेक्षा लोग अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहे। एक छोटा सिख बालक आगे आकर सिपाही के सामने खड़ा हो गया और सिपाही से बोला—"मुझपर भी गोली दागो।" सिपाही ने बिना झिझक के उसपर गोली चला दी और उस बालक के प्राण ले लिये। इसी तरह एक बूढ़ी औरत अपने रिश्तेदारों और जान पहचान वालों को घायल होते देख आगे बढ़ी! उसपर गोली चली; वह घायल हुई और गिर पड़ी। कन्धे पर चार बरस के बच्चे को उठाये हुए एक बूढ़ा भी आगे बढ़ा; वह इस क्रूर हत्याकाण्ड को सह नहीं सका था; उसने पुलिस से अपने पर गोली चलाने को कहा। सिपाही ने उसकी चुनौती मान ली; फल-स्वरूप वह घायल होकर गिर पड़ा। अधिक जाँच-पड़ताल से ऐसी बीसों मिसालें मिलेंगी। भीड़ उसी जगह सिपाहियों के सामने सीना तान कर खड़ी रही और उसपर बार-बार गोलियों की वर्षा होती रही। आख़िर आस-पास, चारों ओर, घायल और मृत स्त्री-पुरुषों का ढेर लग गया। लाहौर के एंग्लो-इण्डियन अख़बार 'सिविल-मिलिटरी गज़ट' ने भी, जो सरकारी दल का प्रतिनिधि है, यही लिखा है कि लोग एक के बाद एक गोली खाने के लिए आगे आते गये। × × × मुर्दों की संख्या का पार न रहा। तब सरकारी अम्बुलेंस मोटरें उन्हें उठा ले गईं और + + + बहुतों के मुसलमान होते हुए भी, सब मुरदे जला दिये गये। इसके बाद भी जनता के नेताओं और स्वयंसेवकों ने जो मुरदे इकट्ठा किये, उनकी संख्या ६५ थी। इनकी सूची मौजूद है।"

महात्माजी के 'नवजीवन' में किसी सज्जन ने पेशावर इत्यादि में स्वयं घूमकर एक चिट्ठी प्रकाशित कराई है। इसमें कहा गया है कि सीमाप्रान्त में (१) करीब पांच सौ आदमी मारे गये हैं। (२) सबने अहिंसक रहकर छाती पर गोलियां झेलीं और मौत को गले लगाया है।

वीरमगाम

(१)

राक्षसी

"आज शाम को साढे चार बजे मैं खाराघोड़ा के एक रोगी का इलाज करके वहाँ लौटते हुए पाटड़ी स्टेशन पर उतरा। × × × × जेठालाल मगनलाल नामक एक भाई नीचे प्लेटफ़ार्म पर खड़े थे। इनके हाथ में लगभग दस तोला नमक की थैली थी। इन्हें अकेला पाकर चुंगी-विभाग का एक सिपाही नमक की थैली छीन लेने के लिए उन पर लपका, इस पर दूसरे सिपाही भी दौड़कर साथ हो लिये। × × × × वे सब भाई जेठालाल को मारते-पीटते हुए पाखाने तक ले गये। वहाँ उन्हें सिपाहियों ने खूब मारा। वह बेहोश होकर गिर पड़े। × × जब मैंने इन्हें देखा वह बेहोशी की हालत में थे, और इसी हालत में बार-बार बुरी तरह काँप उठते थे; नसें तन जाती थीं; जिन्दगी के लिए यह हालत बहुत ही खतरनाक मानी जाती है। × × × होश आने पर इनसे पूछा कि इन्हें कहाँ-कहाँ चोटें आई हैं।

मालूम हुआ कि भाई जेठालाल का गला तथा अण्डकोष दबाये गये थे, और फिर धक्का देकर उन्हें नीचे गिराया गया था। गले पर तीन-चार अँगुलियों से दबाने की निशानी मिलती थी। नाड़ी धीमी और शरीर का ताप-मान ९९ डिग्री था। दवा से कँप कँपी धीरे-धीरे कम पड़ रही थी, परन्तु घरबराहट जारी थी। लगभग एक घण्टे तक नसें ज़ोरों से तनती और बदन काँपता रहा। दूसरे दो घण्टों तक पाँच-दस मिनट के अन्तर से यही क्रिया धीरे-धीरे जारी रही। कुल चार घण्टों तक घरबराहट बनी रही। घबराहट कम होने पर जब अण्डकोष की प्रत्यक्ष जाँच की तो ये बातें मालूम हुई।

१. दाहिने अण्डकोष पर सूजन दीख नहीं पड़ती लेकिन छूने से बहुत तकलीफ़ होती है।
२. बायाँ अण्डकोष कुछ सूजा हुआ है और छूने या दबाने से बुरी तरह दुखता है।

× × × ×

ये बातें मैंने अपनी आँखों देखीं तथा स्वयं इनका अनुभव किया है। इनमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं।"

पाटडी　　　　डा० मगनलाल मोतीलाल चौहान
　　　　एल० सी० पी० एस०
ता: २१-४-३०　　　　रजिस्टर्ड मेडिकल-प्रैक्टिशनर

इसी सम्बन्ध में श्री अजरामर सांकलचन्द दोशी पाटडी से लिखते हैं—

'सिपाहियों में से एक पास आया और चिल्लाकर बोला 'नमक दे दो'। सैनिक ने कोई जवाब नहीं दिया इस पर सिपाही गुस्सा होकर नमक-वाले हाथ को ज़ोर से खींचने लगा। पाखाने के पास पहुँचते-पहुँचते सिपाही ने सैनिक के गले में हाथ डाला और दूसरे सिपाहियों में से एक ने पीछे से हाथ डालकर उनका अण्डकोष पकड़ा और ज़ोर से खींचा। सैनिक बेहोश हो गये और ज़मीन पर गिर पड़े। इनके मुँह में फेन आ गया, वह तड़पने लगे। सौभाग्य से स्टेशन पर वहाँ के डाक्टर चौहान हाज़िर थे।"

(२)

पाशविक

श्री छगनलाल जोशी ९-५-३० को लिखते हैं—

" × × + × कल से सारा वीरमगाम शहर घुड़सवारों और पलटनों-द्वारा घेर लिया गया है। वीरमगाम का ऐसा एक भी दर्वाजा नहीं रहा, जहाँ ८-१० पुलिसवाले बन्दूकें लेकर न खड़े हों; ऐसा एक भी बाहर को जानेवाला रास्ता न रहा जहाँ १०-१५ घुड़सवार बन्दूकें और लाठियाँ लेकर घूम न रहे हों।

वीरमगाम के व्यापारियों और वकीलों पर यहाँ के फौज़दार बिलावजह डंडे और हण्टर बरसाने लगे हैं।

वीरमगाम में और तालुके के गाँवों में रात को डाके पड़ते हैं, चोरियाँ होतीं हैं। लोग मानते हैं कि पुलिसवालों का इन चोरियों में हाथ है। यह सच हो या नहीं, पर इतना तो अवश्य ही सच है कि इस शहर में रोज़-रोज़ बीसियों पुलिसवाले बढ़ते जाते हैं तो भी चोरों और डाकुओं के त्रास से यह बचा नहीं है, उलटे त्रास बेहद बढ़ा है। इस कारण अब नगर-निवासी ही रात को गश्त लगाने लगे हैं। माण्डल के नज़दीक सेक नामक गाँव उजाड़ दिया गया है।

× + ×

"काठियावाड़ की ११६ डिग्रीवाली गर्मी में दो पहर को तीन बजे काठियावाड़ की गाड़ी में बैठनेवाले सैनिक रात के ९॥ बजे तक पीड़ा पाते रहे, मारे प्यास के एक भाई की जान निकलने लगी, एक सैनिक बेहोश हो गये, दूसरों की भी जल्दी ही यही गत होगी, इस बात की कल्पना से वीरमगाम के नागरिक काँप उठे, वे इस रोमांचकारी दृश्य को देख न सके। × × × × × × × पाँच सौ-सात सौ बहनें पानी के मटके और घड़े भरकर स्टेशन पर पहुँच गईं। सारा गाँव स्टेशन की ओर चल पड़ा। × × × जब बहनें स्टेशन के बाहर मुसाफ़िरखाने के नीचे और टिकिट-घर के सामने जाकर खड़ी हुईं तो उन्हें तितर-बितर करने के लिए उनपर घोड़े दौड़ाये गये। बहनें भागीं। उनके घड़े फूटे। एक बहन का बच्चा उनकी गोद से छूटकर नीचे गिर पड़ा। कुछ बहनें गटर में जा पड़ीं।"

(३)

रोमांचकारी

(बाई मणि, सुतार नथु विक्रम की विधवा उम्र २५ साल, के बयान से)

" + + + सवार मुझ पर घोड़ा दौड़ाता हुआ आया। घोड़े के दो पैर मेरी साड़ी के किनारे पर पड़े, उस जगह घोड़े की टाप के आकार के छेद पड़ गये हैं।

मैं चित्त गिर पड़ी। गिरने से बहनों का साथ छूट गया।

गाँव में घुसने के दरवाजे के पास तीन पुलिस के जवान खड़े थे। पीछे की ओर घुड़सवार घूम रहे थे, इसलिए मैं खड़े हुए सिपाहियों के बीच से होकर निकली। इसी समय उन तीन में से एक ने मेरी पीठ पर लाठी का प्रहार किया। मैं भागी। आगे को जा रही थी कि इतने में चुंगीघर के सामने से एक सिपाही दौड़ता हुआ आया। उसने ...... मुझे एक बाजू से बांह में भरकर नीचे पटक दिया। मैं औंधी गिर पड़ी। वह मेरी पीठ पर चढ़ बैठा और मुझे खूब झक-झोरने लगा। पीठ की ओर से मेरी चोली फाड़ डाली। उसके नाखून के घाव बायें हाथ पर अब भी मौजूद हैं। दाहिना हाथ उसने इतनी ज़ोर से दबा रक्खा था कि उस पर खून जम गया है।

(धनलक्ष्मी, धीरजलाल माणिक के बयान से)

"× × × ×मेरे बायें पैर के घुटने से ऊपर के हिस्से में लाठी का प्रहार किया। × × × × एक बहन मेरे साथ अपने बच्चे को बुलाकर लौट रही थी, उस पर एक पुलिसवाले ने हमला किया और उसके साल के बच्चे को छीनकर निर्दयतापूर्वक राक्षस की तरह फेंक दिया।"

(श्री पुरुषोत्तमदास रणछोड़दास के बयान से)

"× × × लगभग पन्द्रह घुड़सवार लाठियाँ घुमाते और घोड़े दौड़ाते हुए वहाँ आ पहुँचे, जहाँ स्त्रियों का समुदाय खड़ा था। स्टेशन के मुसाफ़िरखाने में भी घोड़े दौड़ाये गये। इस पर स्त्रियाँ घबड़ाईं और भय से चिल्लाती हुई भागने लगीं। कई गिर पड़ीं। कइयों के बरतन गिर पड़े, फूट गये और दौड़-धूप करते समय कइयों पर लाठियाँ भी बरस गईं। उस समय घुड़सवार बुरी गालियां देते थे और 'मारो, मारो' की आवाज़ें लगाते थे। ...... मैंने मि० गोलम से कहा कि यों एकाएक स्त्रियों पर आक्रमण किया जाता है ? इस पर वह गुस्सा हुए और गरजकर बोले 'अभी क्या हुआ है, मैं सारे गाँव को उड़ा देनेवाला हूँ।"

(दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन के विद्यार्थी श्री अनिरुद्ध व्यास का वक्तव्य)

"मैं शाम को ६॥ की डाकगाड़ी से अपने कुछ साथियों के साथ वीरमगाम के रेलवे स्टेशन पर उतरा। × × × हर तरह मुझे उठाने की कोशिश करके भी जब पुलिस के सिपाही उठा न सके तो उनमें से एक नेमेरी टाँगों को फैला-कर इतनी ज़ोर से मेरा गुह्यांग दबाया कि मुझे विवश होकर खड़ा होना पड़ा। लेकिन मेरे शरीर के बोझ और पास ही खड़े हुए सिपाहियों की खींचातानी से अंग शिथिल हो गये और मैं गिर पड़ा। मुझे फिर उठाया गया। लेकिन मैं दोहरा झुक गया और नमक की थैली को अपनी बाहों से मज़बूती के साथ पकड़े रहा। इसपर एक पुलिस वाले ने मेरी पीठ पर ज़ोर की लात मारकर मेरी कमर सीधी की, जिससे मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ। इसके बाद दो पुलिस वालों ने मुझे बुरी तरह झकझोरा, मेरी उँगलियाँ मरोड़ीं, और फिर बाँह खुल जाने पर थैला छीन लिया। इसके बाद मैं छोड़ दिया गया। एक अफ़सर ने मेरा नाम और नम्बर भी लिख लिया।

इस समय जब कि मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ दो स्वयंसेवक मेरे पास थोड़ा नमक लेकर पहुँचे हैं। कहा जाता है कि इस नमक में ज़हर मिलाया गया है। सरकारी कर्मचारी अबतक तो निरंकुशता-पूर्वक नमक और नमक की क्यारियाँ वग़ैरा को ही नष्ट करते थे; अब पता चलता है कि वे नमक बनाने के साधनों में भी ज़हर मिलाने लगे हैं। अगर यह ख़बर सच है तो अवश्य ही इन काली करतूतों की कलंक-कालिमा और भी गहरी हो जाती है। और यह सब उन लोगों के साथ किया जाता है जो बग़ैर किसी को सताये स्वयं कष्ट सहकर स्वतंत्रता प्राप्त किया चाहते हैं।

काठियावाड़

विगत २९ वी मई को राणपुर स्टेशन पर सत्याग्रहियों से नमक छीनने के लिए पुलिस ने जो अत्याचार किया उसका वर्णन कलम और वाणी से नहीं हो सकता है। सौराष्ट्र के सम्पादक के शब्दों में "गाड़ी आई और उसके बाद के दस मिनट के अन्दर स्टेशन के यार्ड के अन्दर जो कुछ हुआ वह जलियानवाला बाग़, नीमूचणा, पेशावर, शोलापुर, धरासणा के अत्याचारों का दृश्य उपस्थित करता था।" पुलिस ने लाठी, बन्दूक के कुंदों का खूब उपयोग किया। इस अत्याचार में वहाँ के नमक के अफसर मि० फ्लेचर तथा पुलिस अफ़सर शेख़ आदि भी शामिल थे। इस अत्याचार के शिकार केवल सत्याग्रही लोग ही नहीं हुए, बल्कि सैकड़ों निर्दोष दर्शक, यात्री—जिनमें बच्चे और स्त्रियाँ भी थीं—हो गये। मतलब यह गाड़ी आने के बाद दस मिनट तक तो पुलिस का जो ताण्डवनृत्य वहाँ हुआ वह भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास के एक पन्ने में स्थान पाने योग्य था।

वहाँ की युद्ध-समिति के प्रमुख तथा धोलेरा-सत्याग्रह के सरदार श्री भीमजी भाई के मुँह से इसका वर्णन सुनिए—

ता० २९ वीं जून को फास्ट पैसेंजर के समय मैं राणपुर स्टेशन पर गया था। मुझे सत्याग्रह के लिए कुछ व्यवस्था आदि करनी थी। उसी समय साल्ट अफसर श्री बंग, श्री फ्लेचर, श्री नील आदि तथा पुलिस अफ़सर श्री शेख़, श्री पठान आदि आ पहुँचे थे। उनके साथ ३०-४० सिपाही भी थे। × + × गाड़ी आकर स्टेशन पर खड़ी हुई और दरवाजा खोलकर धोलेरा से स्वयंसेवक जो नमक की थैलियाँ लाये थे उसे झटपट इधर-उधर ले-दे रहे थे कि एकाएक पुलिस के आदमी सत्याग्रहियों के ऊपर टूट पड़े। फिर न उन्होंने देखा सत्याग्रहियों को और न देखा मुसाफरों को। बस लाठी बरसाने के सिवा और कोई काम नहीं था। मैंने समझा शायद पुलिस के लोग अपना कर्तव्य भूले हुए हैं। मैं उन्हें समझाने के लिए आगे बढ़ा ही था कि एक लाठी आकर मेरे हाथ पर पड़ी। मैंने उसकी परवाह नहीं की। मेरे सामने तीन सत्याग्रही नमक की थैलियों को छाती से लगाये हुए औंधे पड़े थे और पुलिस उन पर निर्दय होकर डण्डे बरसा रही थी। मुझे उस समय ऐसा मालूम हुआ कि शायद आज ये सत्याग्रही जिन्दा न रहेंगे। मेरा हृदय बिलबिला उठा; मैं किसी तरह पुलिस के पास पहुँचा ही था कि मेरे सिर पर एक जबरदस्त वार हुआ। मेरी आँखों में अँधेरा छा गया। वहीं बैठ जाने का मन हुआ लेकिन चारों ओर लाठियाँ इतनी जोरों से चलती थीं कि कहाँ जाना और कहाँ बैठना इसका निर्णय मैं न कर सका। मैं गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर उसमें बैठ गया। एक दो क्षण के बाद ही मैंने अपना कुरता-खून से गीला होते हुए देखा। मैं जहाँ बैठा था वहाँ से कुछ दूर पर पुलिस उन तीन सत्याग्रहियों के ऊपर लाठी और बन्दूकों के कुंदों की वर्षा कर रही थी। इस प्रकार १५ मिनट के बाद यह ताण्डवनृत्य कुछ कम हुआ। मैं डब्बे में से उतरा और देखा कि मेरे ही जैसे ८-१० सैनिक घायल पड़े थे। उनके शरीर के विभिन्न भागों से खून बह रहा था; कुछ बेहोश थे।

(१)

"मेरे पास नमक न होते हुए भी और किसी प्रकार की बिना बातचीत किये ही एक सिपाही ने मुझे एक लाठी कस-कर मारी और मुझे ज़ोर से धक्का दिया। मैं एक खंभे से टकराकर नीचे गिर गया। इतने में एक सिपाही ने बन्दूक का कुंदा पूरे ज़ोर से छाती में मारा। श्री फ्लेचर यह देख रहे थे। मैं खड़ा हुआ; इतने में पीछे से एक डंडा और लगा। उसके बाद मुझे धक्का देकर बाहर निकाल दिया। मैं बेहोश हो गया। होश में आने के बाद क़ै हुई एक खून की और ७ सादी। सांस नहीं लिया जाता। साथी कहते हैं मेरी स्थिति गम्भीर है।"

—सैनिक जमाल नूरमहम्मद

(२)

"मैं नमक की थैली लेकर बैठ गया। पुलिस बन्दूक के कुन्दे मारने लगी। एक सत्याग्रही के ऊपर मैं गिर पड़ा। तो पुलिस फिर मुझे बन्दूक के कुन्दों से मारने लगी। उसके बाद मेरी गर्दन मरोड़ी गई। मैं बेहोश होगया। मुझे पीठ पर ६ घाव हुए हैं।"

—चंदूलाल साकरचंद वैद्य

(३)

"मैं नमक की थैली लेकर उसके ऊपर सो गया। मेरे ऊपर एक और सत्याग्रही सो गया। पुलिस ने मेरे पैर के अँगूठे को जो बाहर रह गया था बन्दूक के कुन्दे से कुचल डाला। कुन्दा मेरी बगल में भी मारा। पुलिस अफसर मारने का हुक्म दे रहे थे। पेडू में बन्दूक के कुन्दे लगने के कारण दर्द बहुत है।

—सैनिक डेविड सेम्यु अल हीगन्स

(४)

"× × × एक लाठी दाहिने हाथ की कोहनी पर मारी। तुरन्त ही पीछे से एक पुलिसवाले ने नोकदार हथियार पीठ में भोंक दिया। मुझे वह लगा। एक प्रेक्षक भाई ने मुझे कहा कि मुझे संगीन से मारा गया है, सिर पर हाथ फेरा तो हाथ सारा खून से भर गया। डाक्टर कहते हैं कि १॥-१॥ इञ्च गहरा घाव है।"

—सैनिक शांतिलाल दुर्लभजी

(५)

"पैर की पिंडली में ज़ोर से लाठी मारी। बन्दूक के कुन्दे और पैर के जूतों से मुझे पीटा गया। मैं बेहोश हो गया। मेरे गुह्य भाग पर भी खूब मार पड़ी थी। रात को पेशाब नहीं उतरा।"

—सैनिक वल्ली नत्थु सिपाही

(६)

"एक पुलिस-सिपाही मेरा गुह्य भाग पकड़कर खींचने लगा। एक दूसरे भाई ने उसे समझाया, नहीं तो मुझे बहुत बुरा धक्का लगता। इस समय दूसरी ओर से तो मार पड़ ही रही थी। बोला नहीं जाता पानी भी नहीं पिया जाता। सारी रात मुझे पेशाब नहीं उतरा। अभी भी गुह्य भाग में दर्द है।

—सैनिक जगजीवन केशवलाल

(७)

'मुझे बन्दूक के दो कुन्दे मारे। एक पुलिस ने पेड़ू में ज़ोर से लात मारी। मैं बेहोश हो गया। थोड़ी देर में मुझे होश हुआ, तब एक उल्टी हुई और फिर बेहोश हो गया। सारी रात सांस न ले सका। पेशाब बन्द हो जाने से नली से कराया गया है। डाक्टरों का कहना है कि मेरी स्थिति गम्भीर है।

—सैनिक काकुभाई वल्लभदास

(८)

"बुद्धवार के बाद से पुलिस का अत्याचार बहुत बढ़ गया है। सुनते हैं कि आजकल राणपुर डाक-बँगले में पुलिस पड़ी हुई है जो नदी के दूसरे किनारे है। दिन को नदी पर गांव की स्त्रियाँ नहाने, पानी भरने तथा कपड़े धोने के लिए आती हैं। आज तक तो उनके पास आ-आकर पुलिस के लोग केवल घूरते, कुछ छेड़-छाड़ किया करते थे या धमकियां दिया करते थे। बुद्धवार के बाद तो कहते हैं, पुलिस के कुछ आदमियों ने हद कर दी है। नदी के दूसरे किनारे वे लोग नंगे हो-होकर कुचेष्टायें करते हैं। स्त्रियों पर पत्थर भी फेंकते हैं।"

दिल्ली

('हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री साहनी और कांग्रेस-समिति के विवरण से)

"कचहरी के सारे अहाते में ५० के करीब मर्द १००० के करीब स्त्रियाँ थीं। स्त्रियाँ लौट आतीं पर मि० पूल ने यह वादा किया था कि स्त्रियों का डेपुटेशन आधे घण्टे तक ठहरे, जिससे कि वह इतनी देर में डिप्टी कमिश्नर से कचहरियाँ बन्द करने के सम्बन्ध में हुक्म मँगा सके। जब स्त्रियाँ धैर्य के साथ मि० पूल का इन्तज़ार कर रही थीं तो बजाय अतिरिक्त ज़िला मजिस्ट्रेट के एक यूरोपियन पुलिस अफ़सर की अध्यक्षता में पुलिसवालों से भरी हुई तीन मोटर लारियाँ कचहरी के अहाते में घुस आईं। पुलिस ने सब लोगों पर लाठियाँ चलानी शुरू कीं। स्त्रियां तक, जो कचहरी को जानेवाली सड़क पर भीड़ को कचहरी की ओर न जाने से रोक रही थीं, नहीं बचीं। लाठियों के प्रहार उन पर पड़े और उन में से १० से ज़्यादा को चोटें आईं, जिनमें श्री० साहनी की धर्मपत्नी और पं० जवाहरलाल

नेहरू की सास को भी चोट लगी। १० साल की एक लड़की सती बहुत बुरी तरह पीटी गई थी और मुझे मालूम हुआ है कि उसकी बाहें टूट गई हैं और सीने तथा पीठ में बुरी चोट लगी है। प्रहार होते समय स्त्रियाँ खड़ी रहीं, और पुलिस वालों से कहती रहीं कि प्रहार करो और हमें मार डालो। × × × एक घण्टे बाद जब जुलूसवाले चले गये तो, शान्त भीड़ पर, जो चाँदनी चौक की बन्द दुकानों पर बैठी थी, पुलिसवालों ने फिर लाठियाँ बरसानी शुरू कीं। इसमें कितने घायल हुए, यह मालूम नहीं हो सका है। सब मिलाकर ३०० से ज़्यादा आदमी ज़ख्मी हुए हैं। ××× चाँदनी चौक, हौजकाज़ी, फतेहपुरी आदि मुहल्लों में बेगुनाह लोगों पर हमले किये गये। हौजकाज़ी मुहल्ले में ज़्यादातर मुसलमान रहते हैं और उन पर हमले किये। कोतवाली के पास भी एकाएक गोलियाँ चलाई गई। वहाँ गोलियें क्यों चलीं इसका असली कारण मालूम नहीं हुआ है।

××× गोली कितनी देर तक चली इस सम्बन्ध जो में बहुत से अन्दाज़ लगाये गये हैं, उनसे मालूम होता है कि १५ से ४० मिनट तक गोलियाँ चलीं। शीशगञ्ज का गुरुद्वारा कोतवाली के बगल में ही है और उसके तथा कोतवाली के बीच में उसकी खिड़कियाँ हैं। इसके बाद कोतवाली की छत और अहाते में से गुरुद्वारा पर खिड़कियों में से गोलियाँ चलाई गई। गुरुद्वारा में जगह जगह १५०-२०० तक गोलियों के निशान हैं। बहुत-सी खाली गोलियाँ गुरुद्वारावालों ने इकट्ठी की हैं। *गुरुद्वारा में १० से ज़्यादा आदमी बुरी तरह घायल हुए हैं। भण्डार के रसोइये को गोली लगी है।* कोतवाली से एक फर्लाङ्ग दूर पर छोटे दरीबा में जाकर पुलिस ने मकानों के ऊपरी हिस्सों पर जो गोलियाँ चलाई थीं उसके कारण १३ आदमी घायल हुए। सब मिलाकर प्रायः १५० आदमी गोलियों से घायल हुए हैं हालांकि पूरे वाक्यात इकट्ठे नहीं हो पाये है। इन में कुछ ऐसे घायल हैं कि किसी भी वक्त मर सकते हैं। एक मुसलमान का लड़का और दो हिन्दू पहले ही मर चुके हैं। ५० आदमियों से ज़्यादा का पता नहीं लग रहा है। जिनकी पूछताछ कांग्रेस दफ्तर में की गई है। दो लावारिस लाशें किले के पास की खन्दक में पड़ी हुई मिली हैं—उनकी मृत्यु गोली से हुई मालूम पड़ती है, अधिकारियों के कथनानुसार ८ पुलिसवाले ज़ख्मी हुए हैं।

धाराघोड़ा

२३ मई को सबेरे ४॥ बजे श्रीयुत कुलकर्णी के नेतृत्व में ७५ सत्याग्रहियों का एक जत्था जुना धाराघोड़ा की ओर नमक लाने को रवाना हुआ। वे नमक लेकर लौटने की तैयारी में थे कि इतने में मि० पियर्सन ६ घुड़सवारों और १० कान्सटेबिलों के साथ वहाँ आ धमके। कुछ लाठियाँ लिए थे; कुछ बन्दूकें। मि० पियर्सन ने सत्याग्रहियों का अनमोल नमक दे देने को कहा। उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया। मि० पियर्सन ने नमक छीनने की आज्ञा दी। सत्याग्रहियों पर लाठियाँ बरसने लगीं, पर उन्होंने नमक नहीं छोड़ा। कोई २५ स्वयंसेवकों को मूर्च्छा आ गई। ५ बेहोश हो गये; ४ के सिरमें चोटें आईं।

—श्री इलाभाई दत्त

राम—"मुझे पेट; पीठ और बाँह पर मार पड़ी है एक घुड़सवार ने मेरे सिर पर ३ हण्टर जमाये। १७ वर्ष का एक छोकरा लाठी चलाने में खूब उत्साह दिखा रहा था।"

श्री मानशंकर नारायणजी—"मेरे घुटने पर, हथेली पर और टखने पर कई लाठियाँ पड़ीं एक कान्सटेबिल ने अपनी बन्दूक के कुन्दे से मेरे अण्डकोष पर चोट की। वे सूज गये हैं, सारा बदन दुखता है।"

मौलवी बागी—"मुझे जान बूझकर खूब मारा गया था। पुलिस वाले बेर के पेड़ की तरह मुझे झाड़ने लगे थे। एक पुलिस के जवान ने कहा—यह वही मौलवी है जो हिन्दू-मुस्लिम एकता की बातें किया करता है, और मुसलमानों को भड़काता है। इसकी खूब मरम्मत करो। लाठी, हण्टर, बन्दूक के कुन्दे. मुझ पर बरसाये गये। मेरे गुप्त भाग में

किसी ने ठोकर मारी। मैं हर एक चोट के साथ अल्ला, अल्ला, चिल्लाता था। आखिर बेहोश होकर गिर पड़ा। मैं अपने हाथ या पैर हिला नहीं सकता। मैं सब मुसलमान भाइयों से अर्ज करता हूँ कि वे कांग्रेस में शामिल हों। हमारे मज़हब के मुताबिक आज़ादी के इस जंग में हाथ बटाना हमारा पाक फ़र्ज़ है।"

हरएक रोमांचकारी वक्तव्य का यहाँ उल्लेख करना असंभव है परन्तु डाक्टर चौहान की बात ज़रूर सुनने योग्य है— "मैंने ७५ स्वयंसेवकों को कहते कराहते देखा। × × × × × × ×

जाँच करने पर मालूम हुआ कि ऐसी चोटें बोथे परन्तु कड़े हथियारों से ही की जा सकती है। जैसे कि लाठी बन्दूक के कुन्दे, लोहे के सिरे वाली लकड़ियाँ, डांगे वगैरा। स्वयंसेवकों के सिर, गर्दन, बाँह-कन्धे, छाती, पीठ-पेट, जांघ, घुटने वगैरा पर चोट के निशान थे। ४ सैनिकों को कोई १५-१५ चोट लगी थी। बागी नामक एक मुसलमान स्वयं-सेवक को ३० चोटें आई है। पाटडी के श्री गांडालाल ने खून की कै की।"

धरासणा

(१)

प्यासे मारना

१५ मई को श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में सत्याग्रही सैनिकों का दल धरासणा की नमक फैक्टरी पर धावा बोलने के लिए ६॥ बजे सुबह रवाना हुआ। धरासणा की सीमा के अन्दर प्रवेश करते ही [७ बज के १० मिनट पर] पुलीस की कतार द्वारा वह रोक लिया गया। इसपर सब सत्याग्रही वहीं बैठ गये। पुलीस घेरा डाले रही। सरोजनी देवी को तथा अन्य सैनिकों को पानी माँगने पर भी पानी पीने को नहीं दिया गया। देहातों से सैकड़ों बहनें पानी भर-भर कर लाईं किन्तु उन्हें पानी पिलाने की इज़ाजत नहीं मिली। कुछ बहनें पुलीस की बाढ़ तोड़कर भीतर जाने को तैयार हुईं परन्तु सत्याग्रहियों ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया। एक बहन को जब पानी देने से रोका गया तो वह बोली—"मैं जो पानी लाई हूं उसे आप ही पी लें। आपको भी प्यास लगी होगी। आप भी हमारे भाई ही हैं। भीतर बैठे हमारे भाइयों को न पीने दें न सही, आप तो पियें।" यह सच्चे सत्याग्रह की भावना थी। एक दूसरी बहन ने पुलिस अफसर से कहा—"ऐसी पापपूर्ण नौकरी छोड़ो; यह पोशाक उतार फेंको। हम आपको खादी देंगी और आपका गुजारा दूसरी तरह से न होता हो तो हम आपका और आपके स्त्री-बच्चों का पालन-पोषण करने को तैयार हैं। लेकिन आपके तो स्त्री-बच्चे ही नहीं मालूम पड़ते; नहीं आप इतने जुल्म कैसे करते?" यह उदारता और विनोद चल रहा था पर पुलिस का हृदय न पसीजा। सरोजनी देवी जैसी बहुत ऊँचे दर्जे की आराम-आसाइश और विलसिता के वातावरण में पली स्त्री को अपने सैनिकों के साथ वैशाख-जेठ की कड़ी धूप में बैठना पड़ा। मज़ा यह कि उन्हें १७ घण्टे तक पानी तक नहीं दिया गया, जब पुलिस वाले इतनी देर में खूब खा-पी चुके थे। रात को १ बजे के लगभग पुलिस ने इन्हें खाने-पीने को दिया।

१७, १८, १९, २० को बारी बारी से सत्याग्रही सैनिकों के अनेक जत्थे गोदाम पर धावा करने को जाते रहे। २४० स्वयंसेवक पकड़कर एक बंगले के खुले अहाते में बन्द कर दिये गये। स्वयंसेवकों पर लाठियों की अंधाधुंध वर्षा हुई। २० तारीख तक ७०० से अधिक सत्याग्रही घायल हुए। २१ को २००० स्वयंसेवकों ने एक साथ ही धावा किया।

(२)

लाठियों का ताण्डव

२१ तारीख से युद्ध का रंग गम्भीर हो गया। × ×'सैनिकों के बाढ़ के नज़दीक पहुँचते ही सिपाहियों की लाठियाँ घूमने लगीं। दूर पर खड़े हुए प्रेक्षक सैनिकों पर पड़ने वाले प्रहारों को सुनकर सिहर उठते थे। पैर पर, पीठ पर, छाती पर, सिर पर अर्थात् शरीर के सब भागों पर तड़ाक-तड़ाक लाठियां पड़ती थीं। कुछ ही मिनटों में अनेक सैनिक ज़ख्मी होकर मैदान में लोटने लगे। बाढ़ के भीतर खड़े हुए सिपाहियों ने सैनिकों पर ढेले फेंकना शुरू कर दिये। देखते ही देखते २०० से ज्यादा सैनिक घायल होकर ज़मीन पर लुढ़क पड़े। × × सैनिक पशु की भाँति पीटे जाते थे। × × ऐसे पशुतापूर्ण आक्रमण के विरोध में निहत्थे अहिंसक सैनिक अँगुली तक न उठाते थे। × × वे तो नारियल की तरह तड़ातड़ अपने सिर फोड़ने और हड्डियाँ टूटने देते थे। × × मैदान में गाँव की और बाहर की बहुतेरी बहनें रोती जाती थीं और घायलों की सेवा करती जाती थीं। × × (२२ तारीख को स्वयंसेवकों की छावनी ग़ैरकानूनी कहकर तोड़ दी गई और सैनिकों के वहाँ से न हटने पर) उन पर लाठियाँ चलाई गईं। एक (भाई लालभाई दाजी भाई पटेल, गाँव पालज, बोरसद तालुका—निवासी) तो अस्पताल पहुंचने के आध घण्टे के अन्दर ही मर गया।'

(३)

कल्पना के बाहर !

पहली जून को × × जैसे ही वे गोदाम के नज़दीक पहुँचे, पुलिस ने पीटना और सवारों ने घोड़े दौड़ाना शुरू कर दिया। × × पुलिस ने हरएक को घसीट-घसीटकर कांटेदार बागड़ में फेंकना शुरू कर दिया।

लाठी की मार के बाद उन्हें हाथ या पैर पकड़कर घसीटने की मामूली क्रिया की गई। × × × कुल ११५ घायल हुए हैं—जिनमें २५ की हालत बहुत खराब है; १५ बेहोश थे; एक सैनिक को खून की कै हो रही थी और दो के हाथ-पैर की नसें खिंचती थीं।'

जंगलीपन

(श्री मुकादम, जो पंचमहाल के नेता और धारासभा के सदस्य थे, के बयान से)

" + + + फिर से उस गोरे ने कहा; कि मुकादम यहां आइए मुझे आपसे काम है। + + + उसने मुझे झपटकर पकड़ा और धक्का मारा। + + + कुछ दूर चलने के बाद उसने मुझे ज़ोर से धक्का मारा फिर कहा कि 'आपको गिरफ्तार किया गया है।' स्वयं-सेवकों को दूर खदेड़कर उस गोरे ने मुझे फिर पकड़ा और घूंसे लगाता तथा धकेलता हुआ मुझे सन्तरी के केबिन की तरफ़ ले गया। × × × × चलते-चलते वह मुझे धक्के मारता था, झकझोरता था, गालियाँ देता था, अपमान करता था, सारांश हर तरह का अपमानजनक बर्ताव करता था। बाद में एक पुलिस से उसने कहा :—'यह देखो, तुम्हारे दोस्त, इनका बन्दोबस्त करो।' × × × बाद में श्री आँतिया और दूसरे पुलिस अधिकारियों के साथ वह गोरा आया। मुझे याद पड़ता है कि उस वक्त मजिस्ट्रेट भी वहाँ थे। इस बार उस गोरे ने मुझे और गालियाँ दीं। आँतियाने मेरा बिल्ला निकाल लिया और उस गोरे ने दूसरी सब चीजें निकालीं। × × × × आँतिया ने मेरा बिल्ला लिया, और गोरे ने चाकू। × × × फिर उसने कहा 'तू चलाजा, हमें तेरी जरूरत नहीं है।' पुनः वह बोला '—मेरी बेंत को ज़रा छू तो देख।' मैंने वैसा करने से साफ़

इनकार किया। 'तू छूता नहीं? ठीक; तो देख, बेंत का स्वाद ऐसा होता है!' यह कहकर उसने मेरे चूतड़ पर बेंत जमाई। 'तुम लोग चोर हो, लुच्चे हो, हमने तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करने का निश्चय किया है।' इतना कहते-कहते और एक बेंत जमादी। इसके बाद उसने मुझे धक्का मारकर सीधा चले जाने को कहा। इस घूंसे से और धक्केबाज़ी के कारण मेरी छाती में दर्द हो रहा है।"

एक गोरे सार्जण्ट ने एक सैनिक को नंगा करके उसकी गुदा में लाठी घुसेड़ दी! सैनिक ने उसे निकालने की कोशिश की, परन्तु उस ने पुनः वैसा ही किया। कई सैनिकों के साथ इसी तरह का दुर्व्यवहार किया गया और वे सब गुह्य एवं कोमल अंगों की वेदना से पीड़ा पा रहे हैं। एक सैनिक के फोतों की थैली सूज गई है। वह कुछ घण्टों तक बेहोश रहा था। गोरे अफ़सरों का यह वहशियाना जुल्म यहीं खत्म न हुआ, इन्होंने भावनगर के एक सुकुमार नौजवान भाई अनिरुद्ध के शरीर में बबूल के कांटे चुभाने की क्रूर युक्ति से काम लिया। छावनी के अस्पताल में पहुँचने पर डाक्टरों ने ये काँटे इनके शरीर से निकाले। काँटों को निकालते समय उनकी देह से बहुतेरा खून बहा और वह बराबर बेहोश बने रहे।

दो घायल सैनिकों को सरकार ने अपने कब्ज़े में कर लिया था। इनकी हालत बड़ी नाजुक थी। पर शाम के वक्त ये काँटों की बागड़ के नज़दीक पड़े हुए पाये गये। इनमें से एक सैनिक पर कम से कम चालीस चोटें पड़ी थीं। इतना मार चुकने पर भी वह बुरी तरह घसीटे गये थे, पर तो भी उस वीर ने पीछे पैर न हटाये। उनकी इस जिद से सार्जण्टों का गुस्सा और भी भड़क उठा। उसने नमक की खाड़ी से नमकीन कीचड़ मंगवाई और सैनिकों के मुँह में ठूंसा और फिर खाड़ी के पानी में उनके मुण्ड डुबाये गये। यह क्रिया कई बार की गई होगी। इसके बाद अधिकारियों ने बेहोश दशा में उन्हे सरकारी अस्पताल में पहुँचाया, जहाँ वे तीन से भी अधिक घण्टों तक बेहोश रहे। होश आने पर उनसे घर जाने को कहा गया, घर जाने से इनकार करने पर उन्हें १०-१५ घूँसे मारे गये, वे घसीटे गये और कुछ दूर पर उठाकर फेंक दिये गये।

आलमशाह और कुछ दूसरे गोरे अफ़सर भारी भरकम बूट पहनकर एक सैनिक की छाती पर चढ़ गये और उसे खूब कुचला। इस मृत्यु-तांडव के कारण सैनिक बड़ी कठिनाई के साथ साँस लेता और छोड़ सकता था।

एक दूसरे सैनिक को नंगा करके आलमशाह ने इसके फोतों पर तीन बार पुरजोश ठोकरें मारीं। उसकी छाती पर लाठी की चोटें की गईं और कमर तथा पीठ की भी खूब मरम्मत हुई।

एक सैनिक जो २१ मई के हमले में घायल हुए थे, तन्दुरुस्त होने के बाद फिर से मैदान में उतर पड़े थे। एक गोरे अफ़सर के लिए इनकी यह टेक असह्य हो उठी। उसने कहा—"इस बार मैं तुम्हारी नाक का कचूमर निकाल डालूँगा।" इतना कहने के साथ उसने स्वयंसेवक की नाक पर घूँसा जमाया। तुरंत ही खून बहने लगा। फिर एक घूँसा गर्दन पर पड़ा, जिससे सैनिक ज़मीन पर कुलाटें खाकर गिर पड़े। गोरे ने अपनी लाठी उनकी गुदा में घुसेड़ी। बाद में वह सैनिक दो घण्टों तक बेहोश रहे थे।

छाती पर लाठी के प्रहार से एक और सत्याग्रही की हालत चिन्ताजनक थी। साँस लेने में उन्हें बड़ा कष्ट होता था। उनकी छाती में असह्य पीड़ा हो रही थी। सिर पर ज़ोरों की चोट पड़ी थी। इसके सिवा शरीर के और हिस्सों में भी सब ओर चोट के निशान पाये जाते थे। यह भाई भी दो घण्टों तक बेहोश रहे। एक गोरे अफ़सर ने इनकी दो टाँगों के बीच एक लकड़ी रखने की आज्ञा की। इसके बाद एक दूसरी लकड़ी से इनकी लँगोटी ढीली की गई। परन्तु थोड़ी होशियारी के कारण किसी तरह इन्होंने अपने गुह्यांगों को मार से बचाया। इनका जाँघिया फट गया था और इनकी पीठ तथा पेट पर लाठी की चोटें पड़ी थीं।

अहमदाबाद के जत्थे के कप्तान श्री सोमनाथ मंगलदास अबतक बेहोश हैं और सन्निपात की हालत में "आँतिया, आँतिया" चिल्ला उठते हैं। अहमदाबाद के एक सैनिक का रूमाल तथा कुछ पैसे भी पुलिस ने चुरा लिये हैं।

शोलापुर

मोटरलारियों में ड्राइवर के दोनों बाजू पर दो-दो सार्जेण्ट हाथ में तमंचे लेकर बैठे थे। एक मोटर में पुलीस वाले बन्दूकों की नालियाँ बाहर रखकर खिड़कियों में से चारों ओर ताकते रहते थे, और दो पुलिस के सिपाही मोटर के पिछले हिस्से में पीछे की ओर बन्दूकें तानकर बैठे थे। एक मोटरलारी में मशीनगन थी। ऐसी दो मोटरें बग़ैर भोंपू बजाये घूमती थीं और बारबर गोलियाँ बरसाती थीं। गलियों में किसी भी जगह, खिड़कियों पर, दरवाज़ों पर, झरोखों पर, जीनों पर, हर जगह उनकी गोलियाँ दगती थीं, और जहाँ मनुष्य (पुरुष, स्त्री या बालक, दिखाई पड़ते थे वहाँ तो वे अचूक गोली बरसाते थे। इन लारियों ने सारे शहर में दो पहर से लेकर शाम तक चक्कर लगाये और छः घण्टों की दौड़ में उन्होंने लगभग २५ के प्राण लिये और ९० को घायल किया।

—'कर्मयोगी'

फौजी शासन में दस्तंदाजी करने के लिए सजायें

१ सायबा हनुमन्त	१ वर्ष सख्त
२ मलका अर्जुन चोवप्पा	"
३ शंकर किशनदास	१ वर्ष ५००)
४ गणपत रामचन्द्र	"
५ विश्वनाथ पिरपाद	२ वर्ष १०००)
६ मलका आर्य सावजी	"
७ बन्धु कृष्णा (१५ वर्ष)	१० कोड़े

गैरकानूनी मजमा

१ मारुति विठोबा	५०)
२ विश्वनाथ मलकार्जुन	५५)
३ लिंगाप्पा सितारामप्पा	१००)

राष्ट्रीय झण्डा फहराने के लिए

१ माणिकचन्द शाह (म्यु० के सभापति)	६ महीना १००००)
२ रामकृष्ण जाजू (महासभा-समिति के सभापति)	५ वर्ष २०००)
३ तुलसीदास माधव (महासभा-समिति के मन्त्री)	७ वर्ष ३०००)
४ व्यंकटेश गणेश	५ वर्ष २०००)
५ लिंगयार मकय	२ वर्ष १०००)
६ बालचन्द मोतीचन्द्र	२०००)
७ विश्वनाथ बालकृष्ण (१५ वर्ष)	१५ कोड़े
८ रामचनप्पा (१५ वर्ष)	१५ कोड़े

रात को बाहर घूमने के लिए

१ कोंडुदादाजी	२ वर्ष १०००)
२ मारुति प्रभु आप्पा	"
३ शिवदास बाबूराव	"
४ शिवाप्पा कृष्णाप्पा	१५ कोड़े

पीड़ितों के बयान

श्री काशीनाथ विश्वनाथ देसाई

'शुक्रवार ता० ३० मई के सवेरे में राष्ट्रीय झण्डा लेकर पूना से चला और शाम के ५ बजे शोलापुर पहुँचा। वहाँ जैसे ही मै राष्ट्रीय झण्डे की जय बोलता हुआ डिब्बे से बाहर निकला कि फौजी आदमियों ने मुझे घेर लिया। टिकट देकर बाहर निकलते ही वे मारते-पीटते हुए मुझे फ़ौजी थाने पर ले गये। वहाँ मेरा बयान लिया गया। जाति पूछी जाने पर जब मैंने अपने को ब्राह्मण बताया तो एक तश्तरी में गोश्त लाकर मेरे सामने रक्खा गया और मुझसे कहा गया कि इसे खा! मैंने कहा कि मैं तो ब्राह्मण हूँ, यह नहीं खा सकता। मेरा यह कहना था कि मुझपर मार पड़ने लगी। मार खाते-खाते जब मैं बेहोश होकर गिर गया, तब उस बेहोशी की हालत में उन्होंने मेरे हाथों से राष्ट्रीय झण्डा छीन लिया। बेहोश हो जाने पर मुझे लेमन पिलाया गया। और होश आने पर एक सार्जेण्ट ने नारियल का टुकड़ा खाकर मेरे मुँह पर थूक दिया। महात्मा गाँधी को गालियाँ देने लगे तो मैंने मना किया, इसपर मुझे फिर मारा गया। इस तरह दुर्दशा करने के बाद अन्त में मुझे स्टेशन ले जाया गया और वहाँ बग़ैर टिकट के जबर्दस्ती मद्रास-मेल में बैठा दिया गया।"

श्री काशीनाथ एलण्णा

"शुक्रवार ता० ३० मई को पूना से चलकर शाम के वक्त राष्ट्रीय झण्डे सहित मैं शोलापुर पहुँचा। वहाँ, गाड़ी से उतरते ही, फौजी आदमियों ने मुझे घेर लिया। टिकट देकर बाहर निकलते ही ३.३९ नम्बर के सार्जेण्ट ने मुझे पकड़ लिया। मेरे यह कहने पर कि मैं तो राष्ट्रीय झण्डा लेकर शहर में घूमूँगा, २-३ सार्जेण्टों ने मुझे मारा। १०-१२ सिपाहियों ने झण्डे पर धावा बोलकर उसे छीनने की कोशिश की। झण्डे के साथ-साथ मैं भी १-२ फुट ऊँचा उठ गया, पर मैंने झण्डा नहीं छोड़ा। जब मोटी लकड़ी की ज़ोर की मार पेट पर पड़ी तब झण्डे पर से एक हाथ छूट गया और उन्होंने मुझसे झण्डा छुड़ा लिया। बाद में मार-पीट करते हुए मुझे फौजी थाने पर ले गये। वहाँ पर दो सार्जेण्टों ने मेरी धोती खोलकर मुझे नंगा किया और मुझे झुकाकर मेरे चूतड़ों पर कम-से-कम ४० बेंत लगाये। उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हें किराये के दाम देते हैं, तुम अपने घर जाओ।' पर मैंने कहा, 'मैं घर नहीं जाऊँगा, सत्याग्रह-मण्डल में ही रहूँगा, सत्याग्रह-मण्डल में ही वापस जाऊँगा।' जब मैंने कहा कि झण्डा लेकर मैं शहर में घूमूँगा, तो मुझे फिर से मारा गया। फिर मुझसे पूछा गया कि क्या पहले भी कभी जेल गये थे? मैंने जवाब दिया कि हम चोरी वग़ैरा नहीं करते, मिहनत करके खाते हैं, अतः पहले बिला ज़रूरत हम क्यों जेल जाते? इसके अलावा मैंने यह भी कहा कि हम किसीके सिखाने-पढ़ाने से नहीं बल्कि अपनी राज़ी खुशी से यहाँ आये हैं। इसपर मुझे फिर मारा गया। इसके बाद ज़बर्दस्ती मद्रास-मेल में बैठाकर मुझे वापस लौटा दिया गया।"

'मराठा 'केसरी' से'

[नोट—ये थोड़े से नमूने हैं। इनके अतिरिक्त युक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल एवं मद्रास में अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये हैं, पर स्थानाभाव-वश उनको हम यहाँ देने में असमर्थ हैं।—संपादक]

चंक्रम

कम्पनशील वातावरण

इन तीन महीनों में देश का वातावरण बिलकुल बदल गया है। देश के मानसिक क्षितिज पर सुदूर चढ़ते हुए स्वतंत्रता के सूर्य की किरणों की आभा फैलने लगी है। यूरोप के एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ ने एक बार कहा था कि 'जब जनता के मन पर से राजा का शासन उठ जाय तो उस राज के दूर होने में इतनी ही देर समझनी चाहिए जितनी देर में जनता निर्भीक होकर अपने मनोभाव प्रकट करने योग्य बन जाय।' यह कहने में सत्य के साथ कोई अन्याय न होगा कि भारतीय जनता के मन से अंग्रेज़ी शासन का अस्तित्व मिट चुका है। असहयोग-आंदोलन ने यही सब से बड़ा काम किया। वर्तमान सत्याग्रह-आंदोलन ने जनता का भय एक दम दूर कर दिया है। सरकार जितने ही कड़े कानून-कायदे जनता की स्वतंत्रता की भावना को कुचलने के लिए बनाती है, उतनी ही निर्भीकता और उत्साह से जनता, उन्हें तोड़कर, उनकी उपेक्षा करके, स्वतंत्रता प्राप्त करने की दृढ़ भावना और निश्चय का उदाहरण उपस्थित करती जा रही है। पेशावर और शोलापुर के सैनिक शासन; तोप बन्दूक और हवाई जहाज़ों की करामात से जनता का उत्साह मन्द नहीं हुआ; वीरमगाम और धरासणा की लाठियों की धुँआधार वर्षा सत्याग्रहियों के बलिदान के भावों को शिथिल न कर सकी; दिल्ली, बंगाल और आगरा में बहनों पर होने वाले क्रूर और पाशविक आक्रमण हमारे दृढ़ निश्चय को हिला न सके,—निर्भय एवं दृढ़ मनोवृत्ति का इससे ज्यादा प्रमाण और क्या होगा? मुझे अपने लड़कपन की बातें याद आती हैं। यूरोपीय महायुद्ध के आरम्भ होने के पहले और उसके बाद भी, बन्द कमरों के अन्दर लोग सरकारी अफ़सरों के बारे में मामूली टीका-टिप्पणी करते डरते थे और इधर-उधर देखते जाते थे। मुझे याद है कि दस वर्ष की अवस्था में इतिहास की प्रचलित स्कूली पोथी के विरुद्ध परीक्षा में प्रामाणिक ऐतिहासिक बातें लिखने के कारण मेरी 'राज-द्रोह' की भावनाओं से स्कूलों के इन्स्पेक्टर और अध्यापक बेतरह डर गये थे और मुझे खतरनाक समझने लगे थे। सेना में लोगों को ज़बर्दस्ती भरती करने के अन्यायपूर्ण उपायों का दो-एक बार विरोध करने पर भय के कारण गाँववालों ने मुझे 'जर्मनी' कहकर लोगों को मुझसे डराना शुरू कर दिया। उस ज़माने में भी लोग सरकार को चाहते न थे; गाँव के साधारण आदमी भी जर्मनी से मन ही मन एक प्रकार की सहानुभूति अनुभव करते थे पर सरकार के बल-विक्रम, फौज और तोप, पुलिस और जेल की दहशत लोगों के दिलों को कँपाती रहती थी। आज पुलिसवाले तलाशी करने आते हैं तो कोमल हृदय की बहनें भी उनसे विनोद करती जाती हैं। जहाँ बच्चों को पुलिस से पकड़वा देने की बात कहकर अनेक अदूरदर्शी मातायें पहले उन्हें डराया करती थीं वहाँ आज बच्चे गिरफ्तारियों के बीच, पुलिस के आदमियों को देख-देखकर, किलकारियाँ मारते, उछलते और कूदते हैं। यह इस बात का सबूत है कि इस प्राचीन तथा रूढ़िवाद से जकड़ी हुई गुलाम राष्ट्र-देवी के गर्भ से एक नये राष्ट्र का जन्म हो रहा है। भारत की स्वाधीनता के दिन चाहे अभी दूर हों पर आज के बच्चे एवं भविष्य के नागरिक तो स्वतंत्र हो गये हैं और उनकी मनोवृत्ति एक स्वतंत्र राष्ट्र के बच्चों के समान ही हो चली है। आज के कम्पनशील वातावरण में घर के लोगों को जेल जाते देख इन भावी राष्ट्र-निर्माताओं के मुँह से जो तोतली बोली, 'इनकलाब ज़िंदाबाद' के रहस्यमय शब्दों के साथ, निकलती है, स्वतंत्रता के आगम की शुभ सूचना है।

अभूतपूर्व परिवर्तन

स्थिति कितनी बदल गई है, इसका ठीक अनुमान करना हमारे शासकों के लिए तो असम्भव है ही, हमारे लिए भी, अभूतपूर्व और कुतूहलोत्पादक होने के कारण कठिन है। भिन्न-भिन्न स्थानों से जो पत्र आते रहते हैं, उनमें इसका थोड़ा-बहुत आभास मिल सकता है। जबलपुर

की परिस्थिति का ज़िक्र करते हुए पिछले महीने एक सम्मानित मित्र ने लिखा था—

"यहाँ की क्या बात लिखूँ? यहाँ के बच्चे-बच्चे में वह उत्साह और स्फूर्ति है जो अन्य स्थानों के बड़ों-बड़ों के अन्दर मैंने नहीं पाई। घर में खेलते हुए नन्हें-नन्हें बालकों तक को मैंने स्वयं 'रण-भेरी बज चुकी वीरवर पहनो केशरिया बाना' की कड़ियाँ गाते सुना है। हाट-बाट, और गली-कूँचे में, जहाँ देखिए, राष्ट्रीय झण्डे लिये हुए बालकों की टुकड़ियाँ फिर रही हैं। यहाँ के बालकों का खेल और मनोरञ्जन ही यह होगया है कि छोटी-छोटी पलटनें बना-बनाकर विदेशी वस्त्र इकट्ठे करते फिरना—राष्ट्रीय झण्डा फहराते चलना और 'साम्राज्यवाद का क्षय हो' के नारे बुलन्द करना। राह चलती देवियों को विदेशी कपड़े के बहिष्कार के सम्बन्ध में बातचीत करते मैंने सुना है। ज़ब्त साहित्य का बिकना तो मामूली बात हो गई है। मैं कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि यह स्फूर्ति, देश-भावना की अग्नि एक-एक हृदय में किसने उत्पन्न कर दी! मैं तो यही समझ पाया हूँ कि यह उत्सर्ग की विभूति है। पवित्रात्माओं ने आज जो उत्पीड़न सहर्ष स्वीकार किया है उसी का यह दैवी प्रसाद है! जो रक्त परार्थ में साग्रह और साभिलाष विसर्जित किया गया है उसका सिंचन पाकर क्या पराधीन देश की विराट आत्मा हहरा नहीं उठेगी? अवश्य ऐसा ही है!"

यह तो एक निरपेक्ष दर्शक का विवरण है किन्तु नीचे एक १० वर्ष के बालक के दो पत्र देते हैं जो उसने अपने बड़े भाई को पिछले महीने लिखे थे।

"इस पत्र के इतना जल्दी लिखने का अभिप्राय यह है कि आप मुझे सत्याग्रह में जाने के लिए आज्ञा दीजिए। मेरा मन सत्याग्रह में जाने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। मैंने इसके बारे में भली प्रकार से विचार कर लिया है। *मैं किसी भी प्रकार की मुसीबत क्यों न हो, देश के लिए,* उठाने को तैयार हूँ। मैं मेवाड़ का एक बालक हूँ; मुझे अब इस युद्ध में कूद पड़ना चाहिए और देश की सेवा के लिए अपने जीवन को अर्पण कर देना चाहिए। × × केवल आपकी आज्ञा की जरूरत है। मुझे आप छोटा न समझें; मेरा देश-सेवा में हाथ बटाने का यही समय है; यह मैं अपनी साफ़ आत्मा से साक्षी लेकर लिख रहा हूँ। × × *मेरी यह प्रबल धारा अब नहीं रुक सकती* क्योंकि यह विचार दो-चार दिन का नहीं है। *आप भाई के प्रेम में न पड़ें क्योंकि यह समय ही दूसरा है। इस समय तो देश के प्रेम में पड़ना चाहिए।*"

यह इस बालक का पहला पत्र है। इससे देश के प्रति उसकी वेदना और अधीरता का परिचय मिलता है। यह पत्र ७ मई को लिखा गया था। १२ मई को, उत्तर न पहुँचने पर, अधीर होकर वह दूसरे पत्र में लिखता है—

'मैं आपके पत्र का परसों से इन्तज़ार कर रहा था। डाक आने का समय होता है और लेटरबाक्स के पास पागल की तरह मैं दौड़ता हुआ जाता हूँ और उसको खोलता हूँ। पर पत्र नहीं मिलता है। × × अब आपको यह सूचित कर देना चाहता हूँ कि या तो आप आज्ञा पत्र भेजें नहीं तो मैं तारीख को आ रहा हूँ। शोक है कि आपके-जैसे ऊँचे (?) और देश-भक्त भाई के होते हुए भी मैं प्रसन्नतापूर्वक सत्याग्रह में जाने के लिए इजाज़त नहीं पाता हूँ। अगर आप जैसे मुझे प्रसन्नता से आज्ञा नहीं देंगे तो बेचारे पुराने ख्याल के माता-पिता तो अपने पुत्र को सत्याग्रह में जाने के लिए कैसे आज्ञा देंगे। अब तो × × पूर्ण रूप से मैं सत्याग्रह में जाने के लिए निश्चय कर चुका हूँ। इसलिए चाहे आप आज्ञा दें या न दें, मैं तो आ रहा हूँ। अब निद्रादेवी की गोद में सोते रहने का समय नहीं है। × × × × मैं फिर लिखता हूँ कि अगर आप मुझे प्रसन्नता से जाने के लिए आज्ञा दें तो बहुत अच्छा हो, नहीं तो आज्ञा भंग करनी पड़ेगी।"

इन पत्रों से आज बच्चों के हृदय में भी उथल-पुथल करनेवाली देश की गुलामी की वेदना का पता चल सकता है। असहयोग-आंदोलन ने यदि एक वर्ष में स्वराज्य नहीं

प्राप्त किया तो न सही; वर्तमान सत्याग्रह-आंदोलन भी चाहे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के पहले ही समाप्त हो जाय पर इन दोनों आंदोलनों ने हज़ारों वर्षों की गुलाम मनोवृत्ति को दूर कर नई आशा और नये विचार भरकर, कंकाल-रूप इस विशाल राष्ट्र को विश्व के एक अप्रतिम शक्तिशाली राष्ट्र से लोहा लेने को खड़ा करने में जो सफलता प्राप्त की है वह अभूतपूर्व है। किसी देश की स्वतंत्रता प्राप्त कर लेना इतना कठिन काम नहीं जितना कठिन उस देश के लोगों के विचारों में आमूल क्रान्ति कर देना है। आज वह काम, बहुत अधिक मात्रा में, सफल हो चुका है। इसलिए मैं मार्ग की पहाड़-सी बाधाओं और कठिनाइयों को देखते हुए भी, यह कहना चाहता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है जब ब्रिटेन को भारत के आगे शान्ति और समझौते का सन्देश भेजकर झुकना पड़ेगा।

तलवार से या क़लम से !

लाहौर में लारेन्स की जो मूर्ति है उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे में क़लम है और नीचे लिखा है—'तुम तलवार से शासित होना चाहते हो या क़लम से।" इस मूर्ति को लेकर एक बार असन्तोष उठ चुका और आंदोलन भी हो चुका है। अंग्रेज़ों-द्वारा, उनके शासन काल के पुरस्कार एवं स्मृति के रूप में भारत को जो उपहार मिला है उनमें इस मूर्ति का स्थान बड़ा ऊँचा है। इसमें न तो कला का सौष्ठव है; न बनावट की कोई ख़ास ख़ूबी है फिर भी जब मैं कहता हूँ कि यह एक अत्यन्त महत्व की वस्तु है तो अत्युक्ति नहीं करता। इसका महत्व यह है कि यह मूर्ति अंग्रेज़ी नीति और चरित्र की सच्ची प्रतिनिधि एवं प्रतीक है। दुनिया की कोई दूसरी मूर्ति शासक ब्रिटेन को इतने सच्चे और नंगे रूप में हमारे सामने उपस्थित नहीं कर सकी है। जिन्होंने विगत तीन सौ वर्षों का अंग्रेज़-जाति का इतिहास मनन किया है; उसकी राजनैतिक कूट प्रवृत्तियों को समझने की कोशिश की है, उसकी मनोवैज्ञानिक अवस्था को ठीक-ठीक देखा है उन्हें यह बताने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि दुनिया में उनके विकास—उनके साम्राज्य-विस्तार की भूमिका ही इन दो शब्दों 'तलवार या क़लम' में आ गई है। अंग्रेज़ों ने प्रत्येक देश में यही किया है। खुले हृदय से उन्होंने कभी किसी को क़लम नहीं दी। क़लम देते समय, ज़रूरत पड़ते ही उसे काटकर फेंक देने वाली तलवार हमेशा उसकी कमर में लटकती रही है। मतलब यह कि 'तुम सीधे-सीधे मान जाओ तो ठीक नहीं तो तुम्हारा गला दबाकर तुम से मनवायेंगे।' एक ओर मीठी बात, मित्रता का आश्वासन, व्यवस्थापूर्ण शासन की सुविधायें और दूसरी ओर तोप-तलवार, सेना और पुलिस तथा अपने मन से गढ़े हुए क़ानून लेकर तब वह किसी देश में पैर रखते हैं। एशिया के प्रत्येक देश में अंग्रेज़ों का प्रवेश इसी रूप में हुआ है। वह पादरी के वेश में आता है पर उसके पीछे धर्म की झोली के अन्दर—क़मज़ोरियों से लाभ उठाकर मौक़ा देखते ही चढ़ दौड़नेवाले सैनिकों का समूह रहता है। इस तरह उनकी तलवार हमेशा उनकी क़लम की पूरक बनकर अपना काम निकालती रहती है।

× × ×

आज इस देश में जो कुछ हो रहा है वह भी कुछ ऐसा ही है। एक ओर मित्रता की, सहानुभूति की घोषणायें की जाती हैं—हमारे समाज एवं देश की व्यवस्था एवं शांति की गंभीर चिन्तायें प्रकट की जाती हैं और दूसरी ओर लाठियाँ बरसाई जाती हैं; अंधाधुन्ध फौज़ी क़ानून जारी किये जाते हैं; गोलियाँ चलाई जाती और बम्ब बरसाये जाते हैं। इस तरह इस देश में आज सरकार क़लम और तलवार का शासन एक साथ ही चलाने की कोशिश कर रही है। यही नहीं क़लम, भूल, से तलवार के पीछे पड़ती जा रही है।

वाइसराय लार्ड इर्विन भारत में 'इंग्लैंड के महान कृषक' के रूप में आये थे। तब से गांधीजी से लेकर मामूली राजभक्तों तक सब यही कहते रहे हैं कि वह अत्यन्त सुजन और सीधे हैं, पर विगत डेढ़-दो महीनों के अन्दर उनकी सिधाई के परदे के अन्दर से उनकी असली मूर्ति दिखाई देने लगी है। ६ सप्ताह के अन्दर छः—छः आर्डिनेंसों (विशेष कानूनों) को जारी करना निस्सन्देह एक ख़ास ढंग की और विचित्र सज्जनता का नमूना है; —अपनी कूट नीति के लिए प्रसिद्ध लार्ड रीडिंग को भी

इसकी बातें नहीं सूझी थीं। अखबार बन्द कर दिये गये ताकि राष्ट्रीय भावनायें लिखी न जा सकें; १४४ धारा का सब प्रयोग हुआ कि लोग जनता के सामने बोलकर अपने विचार न रख सकें। लोग प्यासे मारे गये; लाठियाँ चलीं कि जनता घबड़ा जाय। पर उसकी अपूर्व अहिंसा-भक्ति और धैर्य के सम्मुख सरकार स्वयं अधीर हो गई। अब पिकेटिंग और सरकारी अफ़सरों का सामाजिक बहिष्कार भी जुर्म क़रार दिया गया है यद्यपि स्वयं कुछ व्यापारियों की सभाओं ने सरकार के इस अनुचित हस्तक्षेप का विरोध किया है।

उधर २० अक्तूबर को लण्डन में होनेवाली गोलमेज-कान्फ्रेंस में भारतीयों को भाग लेने को कहा जा रहा है और दूसरी ओर पुलिस की लाठियों और उनको पकड़ने वाली मुट्ठियों में वही ओछा और हृदय में वही दुर्भावना है। आज भी लारेंस की मूर्ति के द्वारा मानो ब्रिटेन भारत को पग-पग पर चुनौती दे रहा है—'तुम तलवार से मानोगे या कलम से या दोनों से।' जनता को शांति और अहिंसा के साथ इस चुनौती का उत्तर देना है।

एक और राजस्थानी बलिदान

भाई रामनारायणजी चौधरी का नाम राजस्थानियों के लिए कोई नया नाम नहीं है। राजस्थान-सेवा-संघ के कर्मण्य मन्त्री और 'तरुण राजस्थान' तथा 'यंग राजस्थान' पत्रों के सुयोग्य सम्पादक के नाते उनकी सेवा से वे भली भाँति परिचित हैं। महात्मा गाँधी के पुनीत सम्पर्क ने पिछले दिनों से उनके जीवन-प्रवाह में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन पैदा कर दिया है। साहस और निर्भीकता, कुशलता और मृदुता तथा जन-सेवा की उत्कट भावना उनकी रग-रग में समा गई है। भला ऐसा व्यक्ति नौकरशाही की आँखों में शूल बनकर न चुभे तो क्या हो? श्री चौधरीजी को स्थानीय कांग्रेस के प्रधान मन्त्रीत्व की बागडोर सम्हाले कोई अधिक समय नहीं हुआ था। किन्तु सरकार उनके तेज को न सह सकी। ११ जून को बड़े तड़के पुलिस के आदमी उनकी तलाश में इधर-उधर दौड़-धूप करते देखे गये। जब चौधरीजी को यह मालूम हुआ तो वह स्वयं हँसी-खुशी, एक दूल्हे की भाँति, जुलूस बनाकर पुलिस कोतवाली में पहुँच गये। न्याय का नाटक नसीराबाद में खेला गया। पुलिस गवाही पेश कर रही थी और चौधरीजी नींद ले रहे थे; उनपर यह आरोप लगाया गया कि वह जान बूझकर राजद्रोह का प्रचार करते हैं। उनसे कहा गया कि आगामी १२ महीने के लिए ५००) रुपये के 'नेकचलनी' के जमानत-मुचलके दे दें। वह शासन-संस्था भी कैसी विचित्र खोपड़ियों की उपज होगी जिसके अनुसार देश की स्वाधीनता के लिए प्राणों पर खेलनेवाले देशभक्त 'बदचलन' शब्द से पुकारे जा सकते हैं।

चौधरीजी ने सारे तमाशे में कोई भाग नहीं लिया। हाँ, उन्होंने एक बयान अवश्य दिया जिसके एक-एक शब्द में सरकार के दुष्कृत्यों का नग्न प्रदर्शन था और था सत्य का पुनीत किन्तु सुदृढ़ आग्रह। थोड़े में उसका आशय यों है :—

'मैं पहले अंग्रेजों की नीति का क़ायल था और समझता था कि अपने देश के शत्रुओं के मुकाबले में पशु-बल और कूट नीति बर्तना कोई पाप नहीं है। किन्तु अब मेरी आत्मा एक नये विश्वास से प्रकाशमान हो रही है। मैं मानता हूँ कि सत्य, अहिंसा और कष्ट-सहन से ही भारत स्वतंत्र हो सकेगा और इसलिए मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं है कि मैंने जान बूझकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राजद्रोह फैलाया है। कोई भी मनुष्य जो इस पापी पेट का गुलाम नहीं है इस विदेशी शासन के विरुद्ध अवश्य उठ खड़ा होगा चाहे वह शासन कितना ही कृपाशील क्यों न हो। सरकार की कृपाशीलता का पर्दा फ़ाश तो देश में स्थान-स्थान पर होनेवाले पैशाचिक अत्याचारों से ही खूब हो चुका है।"

"मेरे इस स्वाधीनता की लड़ाई में शामिल होने का एक प्रबल कारण और भी है। मेरे ही समान जिन लोगों ने देशी राज्यों की प्रजा की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है उनके लिए वर्तमान सविनय-भंग का आन्दोलन सेवा और शिक्षण का अपूर्व अवसर प्रस्तुत करता है। देशी नरेश करीब-करीब ब्रिटिश सरकार के कल-पुर्ज़े हैं। देशी राज्यों में आज जो भीषण बुराइयाँ मौजूद हैं

इनके लिए भी अंग्रेज़-सत्ता ही ज़िम्मेदार है। इसलिए यदि हमने इस ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेंका तो फिर वहाँ अधिक आसानी से सुधार किये जा सकेंगे। मैं अपने साथी राजस्थानी कार्यकर्त्ताओं से अपील करता हूँ कि वे इस स्वतंत्रता-संग्राम में अवश्य शामिल हों।"

अन्त में चौधरीजी ने कहा कि मौजूदा सरकार जल्दी से जल्दी उखाड़कर फेंक दी जानी चाहिए। "यदि आप (मजिस्ट्रेटसाहब) इससे सहमत हों तो अपनी नौकरी को धता बताइए और महात्माजी की शान्त सेना में भर्ती हो जाइए अन्यथा अपने विदेशी मालिकों की इच्छानुसार मुझे कड़ी से कड़ी सज़ा दीजिए। मैं अपनी ओर से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं जब-कभी आज़ाद होऊँगा ज़रूर राजद्रोह का प्रचार करूँगा।"

बयान समाप्त होने पर मजिस्ट्रेट महाशय ने आज्ञा दी कि अभियुक्त को एक वर्ष के लिए जेल में रोक रखा जाय। श्री चौधरीजी के लिए यह कोई नई बात नहीं है। वह अनेक बार अपनी सेवाओं का पुरस्कार पा चुके हैं। हमारा विश्वास है कि उन्होंने अपने इस पवित्र एवं विशुद्ध बलिदान से राजस्थान का सिर ऊँचा ही उठाया है। हम उनको इस सौभाग्य पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि राजस्थानी बन्धु आगे आकर उनके अधूरे काम को पूरा करेंगे और शीघ्र ही स्वतंत्र भारत में उनका स्वागत करेंगे। उन-जैसे मनस्वी व्यक्ति की शुभ भावनायें जेल की चहारदीवारी लांघकर भी हमें अपने उच्चतम आदर्श पूर्ण स्वाधीनता तक पहुँचने को प्रेरित करें, यही परमात्मा से प्रार्थना है।

राजपूताना मध्यभारत की नींद

राष्ट्रीय आंदोलन में आरम्भ से यह प्रान्त बहुत पीछे रहा है। सच्चे एवं निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं की कमी, देशी राज्यों में हस्तक्षेप न करने की कांग्रेस की नीति, राज्यों का एकछत्र शासन का वातावरण यहाँ प्रजातंत्र एवं राष्ट्र सेवा के भावों का विकास करने में सदा बाधक रहे हैं। किन्तु कठिनाइयाँ किस प्रान्त में नहीं हैं? देश-सेवकों का मार्ग फूलों की पंखुड़ियों से नहीं, कांटों से ही पूर्ण रहता है जो साहसी और दृढ़निश्चयी होते हैं, जिनमें साहस और लगन, उत्साह एवं संयम होता है वे ज़माने को अपनी टेक से बदल डालते हैं, अनुकूल परिस्थिति बना लेते हैं। दुनिया में सब कुछ बना-बनाया ही नहीं मिलता। सच्चे साहसी का उत्साह कठिनाइयों और बाधाओं को देखकर नीचे नहीं बैठ जाता, ऊपर उछलता है। इस दृष्टि से जब हम स्थानीय कठिनाइयों और समय के तकाज़े की लेन-देन का हिसाब लगाकर दूसरे पिछड़े प्रान्तों की ओर नज़र दौड़ाते हैं तो हमारे हृदय में अत्यन्त वेदना और लज्जा का अनुभव होता है। सीमाप्रान्त-जैसे पग-पग पर अंग्रेज़ी सेना से दलित और हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के भावों से जर्जर प्रान्त से यहाँ की कठिनाइयाँ ज़्यादा हैं, यह मानने को हम तैयार नहीं हैं। इस विशाल प्रान्त में यहाँ की प्रांतीय कांग्रेस-समिति ने केवल अजमेर को ही अपना केन्द्र बनाया था, पीछे ब्यावर को भी शामिल कर लिया गया। इन दो स्थानों पर भी जैसा काम होना चाहिए नहीं हो रहा है, यह इस नगर और प्रांत का दुर्भाग्य ही है। शुरू-शुरू में जब यहाँ सत्याग्रह-आंदोलन चला तो जनता में उत्साह था। किन्तु पीछे वह कम होता गया। हम यह मानते हैं कि यहाँ की जनता में सच्ची लगन नहीं है; हम यह भी मानते हैं कि यहाँ के कार्यकर्ताओं में अनेक त्यागशील, निःस्वार्थ एवं उत्साही हैं पर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि युद्ध-नीति का ज्ञान यहाँ के कार्याधिकारियों में प्रायः नहीं-सा है। किस तरह जनता के सामने सदा नये-नये कार्यक्रम रखकर उसकी दिलचस्पी बढ़ाते रहना चाहिए इसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। फलतः जो उत्साह पैदा हुआ था वह भी मर गया।

इसके अतिरिक्त यहाँ की जनता में भी त्याग और तपस्या के भावों की बड़ी कमी है। यहाँ कांग्रेस के जितने कार्यकर्ता और स्वयंसेवक हैं उनमें प्रायः सभी बाहर के हैं। यहाँ के लोगों में दो-एक ने ही साथ दिया। बाहर के लोग कब तक उनका काम करते रह सकते हैं?

पर हमें दुःख तो इस बात का है कि लगभग २० चुने हुए कार्यकर्ताओं का बलिदान करके, सरकार-द्वारा पिकेटिंग-सम्बन्धी आर्डिनेंस जारी कर दिये जाने पर भी, हम उन भाइयों को निराश कर रहे हैं जो हम पर विश्वास कर आज जेलों में सड़ रहे हैं? 'सुमन'

REGISTERED No N. 351.

त्यागभूमि के ग्राहकों के लिए

एक ही अवसर

राष्ट्र के स्वाधीनता संग्राम के इस अवसर पर सस्ता-साहित्य मण्डल ने अब से 'सस्ता साहित्य-मण्डल' की समस्त पुस्तकें 'त्यागभूमि' के ग्राहकों को पौने मूल्य में देने का निश्चय किया है। अतः जो भाई आजकल 'त्यागभूमि' के ग्राहक हैं तथा जो भविष्य में त्यागभूमि के ग्राहक बनेंगे वे मण्डल की सब पुस्तकें पौने मूल्य में पाने के हकदार होंगे।

पुस्तकों का आर्डर देते समय ग्राहक अपना 'त्यागभूमि का' ग्राहक नम्बर अवश्य लिख दिया करें।

व्यवस्थापक—

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।

इस अंक में पढ़िए—

आषाढ़ १९८७

वर्ष ३, खण्ड २

पूर्ण संख्या ३४

वार्षिक मूल्य ४)

एक प्रति का ।=)

आदि संपादक

श्री हरिभाऊ उपाध्याय (जेल में)

संपादक

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

विषय-सूची

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष ३ खण्ड २ | सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर आषाढ संवत् १९८७ | अंश ४ पूर्ण अंश ३४

बलि-वेदी पर—

[श्री रामधारीसिंह 'दिनकर']

पराधीन की आकुलता की है यह कैसी पीड़ा ?
जरा बता दो कैसी है यह आत्म-प्रलय की क्रीड़ा ?
अनाचार पर न्याय-नीति का यह कैसा बलिदान ?
कैसी यह धीरता धरा की ! नभ का मौन महान !
बेदरदी से गरदन पर छुरियों का आना-जाना,
कैसा यह खिलने से पहले कलियों का मुरझाना ?
मा के मधुर अंक मे ओढ़े अंचल नील-असीम—
कैसे है सो रहे आज ये लाखों 'राम-रहीम' ।

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष ३ | सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर | अंश ४
खण्ड २ | आषाढ संवत् १९८७ | पूर्ण अंश ३४

बलि-वेदी पर—

[श्री रामधारीसिंह 'दिनकर']

पराधीन की आकुलता की है यह कैसी पीड़ा ?
ज़रा बता दो कैसी है यह आत्म-प्रलय की क्रीड़ा ?
अनाचार पर न्याय-नीति का यह कैसा बलिदान ?
कैसी यह धीरता धरा की ! नभ का मौन महान !
बेदरदी से गरदन पर छुरियों का आना-जाना,
कैसा यह खिलने से पहले कलियों का मुरझाना ?
मा के मधुर अंक में ओढ़ अंचल नील-असीम—
कैसे हैं सो रहे आज ये लाखों 'राम-रहीम' ।

———

भविष्य के गर्भ में—

[श्री 'निर्गुण']

दूध-सी चाँदनी में गंगा के किनारे पत्थर के एक टीले पर बैठा हूँ। दूर तक पहाड़ों की श्रेणियाँ चली गई हैं। तेज हवा चल रही है। लहरें सीमा के बन्धन तोड़ने के लिए ऊपर उछलती हैं पर बड़ी विवशता के साथ टीले से टकराकर रह जाती हैं किन्तु इससे वे निराश नहीं। अगणित दिनों से यह संघर्ष स्वतंत्रता और अपने अस्तित्व के विस्तार के लिए चल रहा है। जन्म से ही अपनी शक्ति के गर्व में भूले हुए पहाड़ों ने इसका रास्ता रोकने का काम शुरू किया किन्तु अपनी मंजिल तक पहुँचने की प्रबल कामना और लगन से उन्हें तोड़ती-फोड़ती भागीरथी आज मैदान में पहुँच गई है और अपनी धुन में तटों को हरा-भरा करती, कठिनाइयों के टीलों को कँपाती आदर्श (समुद्र) की ओर बढ़ती चली जा रही है। यह स्वतंत्रता की अविरल साधना की लगन है!

मैं बड़ी देर से लहरों का यह उछलना, उनका बार-बार टकराना, फिर पीछे हटना किन्तु दूने वेग से फिर आगे बढ़कर टीले पर आक्रमण करना देख रहा हूँ। इस रगड़ ने टीलों के कलेजे छेद दिये हैं और लहरें दूर तक उनमें चली जाती हैं। ऊपर से टीले का साम्राज्य सर ऊँचा किये, शक्ति के गर्व में भूला, खड़ा है पर उसकी नींव कटती जाती है— ऊपर से ज्यों का त्यों है पर नीचे कटना और कटकर लहरों के प्रवाह में टुकड़े-टुकड़े होता जाता है। यह लगन और शक्ति के उन्माद का कैसा विकट संघर्ष है!

× × ×

यह एक साधारण दृश्य है—बहुत साधारण जिसे हजारों मनुष्य रोज देखते हैं पर मैं घण्टों से देख रहा हूँ—मन नहीं भरता। स्वतंत्रता के भावों को जगानेवाली दुनिया की किस पुस्तक ने स्वतंत्रता के महत्व एवं उसे प्राप्त करने के लिए आवश्यक दृढ़ता, लगन एवं टेक को इतने स्पष्ट एवं सरल रूप में हमारे सामने रक्खा है? यह रगड़, ऊपर से सर उठाये खड़ा टीला और नीचे कोमल लहरों का सत्याग्रह, देखकर आज छिन्न-भिन्न होते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की याद आ रही है। दुनिया के पाँचवें हिस्से एवं तिहाई आबादी के रक्तहीन नरमुण्डों पर जिस विशाल साम्राज्य का सिंहासन रक्खा हुआ है, उसके गर्व का अनुमान कौन कर सकता है पर जहाँ पहाड़ सी निर्जीव कड़ी वस्तु को लहरों की कोमलता सत्याग्रह के शस्त्र से काटती जा रही है वहाँ यह करोड़ों गरीबों के समाधिस्थल पर खड़ा किया गया ब्रिटिश साम्राज्य का महत्व कब तक ठहरेगा? सोचने लगा, यह कैसा शिक्षाप्रद दृश्य है और भविष्य के गर्भ में क्या बन रहा है, इसे सहज ही स्पष्ट कर देता है। गुलामी की वेदना एवं अमानुषिक अन्यायों से उत्पन्न क्षोभ से इस ब्रिटिश साम्राज्य की नींव भीतर ही भीतर खोखली होती जा रही है। साम्राज्य-भवन के कँगूरे खड़े हैं पर भीतर ही भीतर राष्ट्रीय ज्वाला की लहरें उसे भस्म कर रही हैं। इसके परदे में—भविष्य के गर्भ में नवीन भारतीय राष्ट्र का जन्म हो रहा है। इस प्रसव-पीड़ा से साम्राज्य की आधार-शिला विकल है। आज सेना-पुलिस, तोप-तलवार, रेल-तार और अनेक प्रकार की भय-प्रद सैनिक सामग्रियों के बोझ से चूर साम्राज्य की कड़ियाँ इस नवीन राष्ट्र के शुभागम में एक एक करके टूट रही हैं। जिस दिन वह एक सजीव एवं

नवीन स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में खड़ा होगा, साम्राज्य ढह जायगा !

इस तरह भारत के भविष्य के साथ ब्रिटिश साम्राज्य की किस्मत बँधी है और ब्रिटिश साम्राज्य के साथ संसार की शान्ति की समस्या उलझी हुई है। भारत की स्वतंत्रता, जो भविष्य के गर्भ में जन्म ले रही है, ब्रिटिश साम्राज्य की मृत्यु का कारण और संसार में शान्ति की एक नूतन युग का प्रवर्तन करने के लिए जिम्मेदार होगी !

'मैं फिर आऊँगा'

[श्री शान्तिप्रसाद वर्मा]

संध्या की उतरती हुई किरणों में रक्त की वे बूँदें चमक उठीं, जो क्रूस पर चढ़े हुए ईसा के दोनों हाथों से बह रही थीं।

गहरी व्यथा और हलकी मुस्कराहट के एक अद्भुत सम्मिश्रण में उसका तेजोमय वदन अस्त होते हुए सूर्य से भी अधिक सुन्दर दिखाई दे रहा था।

उसके अनुयायियों के हृदय में वेदना थी, और आँखों में आँसू।

माता मरियम ने दौड़कर क्रूस को चूम लिया, और एक कष्टभरी दृष्टि से अपने पुत्र की ओर देखा। ईसा मुस्कराया—"माँ, अपने इन अमूल्य मोतियों को मत बहने दो। मैं फिर आऊँगा।"

सूर्य की किरणें हलकी पड़ रही थीं, परन्तु आशा की किरणें चमक उठीं। विरोधियों ने उपेक्षा की—"बकता है!"

जोसेफ ने आगे बढ़कर अपने प्याले में रक्त की अन्तिम बूँदें एकत्र कीं—आज भी उस प्याले की खोज में संसार इतस्ततः भटक रहा है।

सूर्य के अस्त होते ही जनता लौट चली। कुमारी मरियम के थके हुए पैरों को केवल ये शब्द आगे खदेड़ते रहे—"मैं फिर आऊँगा।"

जल्लाद भी अपना सामान लेकर चल पड़ा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। और मुँह से धीमे स्वर में ये शब्द—"मैं फिर आऊँगा।"

परन्तु, ओ बावली दुनिया, क्या तूने यह नहीं समझा कि सूर्य के अस्त होते ही उसके प्राण लौट आये थे? पहले वह एक शरीर की सीमा में बँधा हुआ था; बाद में उस छोटे-से झुण्ड की मुस्कराहट और उन निर्जन आँसुओं में।

त्रिसत्ता-विवेचन

[श्री जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ]

संसार से 'ममत्व' नहीं उठ सकता, यह निस्सन्देह है। मैं और 'मेरा' ये दोनों भाव ही जीव की सत्ता को बना रहे हैं; फिर यह मनुष्य-जीव, जो समस्त जीव-संसार में सबसे अधिक अहङ्कार वाला है, जो सर्वोपरि है, जो विश्व के समस्त जीवों और प्रकृति की समस्त शक्तियों का स्वामी होने का दावा करता है, उसमें से 'मैं' और 'मेरा' के भाव उठ जायें, यह कैसे सम्भव हो सकता है? न्याय सूत्रों के कर्त्ता ऋषि गोतम ने तो स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि 'वीतरागजन्मादर्शनात।'—राग-रहित जीव का तो जन्म ही नहीं होता। ठीक भी है, जो जीव अपना ममत्व त्याग देता है, वह निःसत्व हो जाता है। जो जीव अपने शरीर तक की ममता को शिथिल कर देता है, उसके शरीर को पशु-पक्षी नोच खाते हैं। अधमरे जीवों को गिद्ध नहीं छोड़ते। साथ ही जो जीव अपनी 'अहम्' और 'मम' अर्थात् अपनी सत्ता को रखते हैं परन्तु उसकी रक्षा नहीं कर सकते, बलवान् जीव उनकी सत्ता पर धावा बोल देते हैं। वे उनको मार कर खाजाते हैं। बाज़ निर्बल पक्षियों को झपट लेता है। सिंह हरिणों और गौओं को मार खाता है। शिकारी वन्य पशुओं को मार लाता है। फलतः, समस्त जीव-संसार में 'प्रबल सत्ता-वाद' या 'लाठी-राज्य' का दौर-दौरा है। परन्तु यदि इतने पर ही बस होता तो भी सन्तोष की बात थी। क्योंकि पक्षी,संसार में बाज़ निस्संदेह निर्बल पक्षियों को खा जाता है तिसपर भी बाज़ से निर्बल पक्षी पर्याप्त मात्रा में जी रहे हैं और वे सुखी हैं, वे स्वतन्त्र हैं, वे अपने जीवन के लिए बाज़ के ऊपर निर्भर नहीं हैं, प्रत्युत् बाज़ ही उनपर निर्भर करता है। निर्बल होजाने पर वह भूखों मर जाता है।

जिस जंगल में शेर का आवास है उस जंगल के भी सहस्रों वनचर जन्तु निर्भय जी रहे हैं, और उसके मांसाहारी सहचर भी जीते हैं, परन्तु मृग भी अपना पेट भर खाते हैं। वे अपने जीवन को सिंह के जीवन पर नहीं बिता रहे हैं प्रत्युत् वे अपने जीवनों के लिए स्वतन्त्र हैं। विजातियों में आपस में छीना-झपटी है; प्रबल निर्बल पर पेट के लिए अत्याचार कर लेता है सही, परन्तु वह भी बहुत सीमित है—इतना सीमित है कि एक दूसरे की जीवन-स्वतन्त्रता का नाश नहीं हो पाता। सभी बराबर फलते-फूलते हैं, और सभी आनन्द-विहार करते हैं। पशु-पक्षियों के पारस्परिक राज्यों में प्रबल सत्ताओं के रहते हुए भी निर्बलों के जीवन-निर्वाह अधिकांश में पराधीन नहीं हैं।

प्रबल सत्ता का पशुओं से अधिक संहारकारी उपयोग मानव-समाज ने किया है। इसका ममत्व सर्वत्र है। शरीर-सत्ता के अतिरिक्त इसने अपनी एक ऐसी सत्ता का आविष्कार कर लिया है, जो कृत्रिम है परन्तु तो भी वह अब बलवती हो उठी है—जो मानव-संसार के अतिरिक्त अन्य किसी भी जीव-संसार में नहीं पाई जाती। वह है 'धन-सत्ता।' धन-सत्ता से वह अन्य सब सत्ताओं को खरीद सकता है। धन के द्वारा विनिमय से अन्न, भृत्य, वस्त्र, मकान, स्त्री आदि सभी लौकिक पदार्थों को प्राप्त कर सकता है। अब मानव-संसार में इस धन-सत्ता का राज्य है। इस प्रसंग में मानव-क्षेत्र में जितनी भी सत्तायें हैं, वे सब भी 'बल' ही हैं। वे एक दूसरे से न्यून-अधिक हो सकती हैं। एक दूसरे की विरोधी और सहायक भी हो सकती हैं। सभी सत्ताओं को बढ़ा कर मनुष्यों में विजय की इच्छा या ममत्व की वृद्धि होती है, जिसे हम महत्वाकांक्षा कहते हैं। प्राचीन शास्त्रकारों ने इन सब प्रकार की सत्ताओं के बलाबल का विचार किया है।

प्राचीन अर्थशास्त्री विद्वानों में सत्ता के स्थान पर 'बल', 'शक्ति' शब्द का प्रयोग किया है। शारीरिक बल और धन-बल के समान अर्थशास्त्री लोग केवल तीन शक्तियों को ही स्वीकार करते हैं। उत्साह, प्रभाव और मन्त्र। वे इनको विजय करने में बड़ा कारण स्वीकार करते थे। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री कौटिल्य ने इनका 'अभियास्यत्-कर्म'

नाम अधिकरण में विचार किया है । जैसे—

(१) दो पक्षों में एक राजा उत्साही है; दूसरा प्रभाववान या प्रभूत धनवान् है । अर्थात् एक राजा स्वयं शूरवीर, बलवान्, रोग-रहित, अस्त्र शस्त्र-सम्पन्न, सेना-बल से युक्त शक्तिमान् है, परन्तु उसके पास अधिक धन नहीं है; दूसरा प्रभाववान् है, उसके पास धन बहुत अधिक है । यदि इन दोनों की आपस में खटक जाय तो कौन विजयी होगा ? यह एक बड़ा विकट प्रश्न है । अधिक आचार्यों का यही मत है कि शूर, बलवान् रोग-रहित, शास्त्र में कुशल राजा सेना-बल से युक्त होकर धनवान् राजा को जीत सकता है । उसकी थोड़ी-सी सेना भी उत्साह या तेज से धनियों के मद को चूर कर सकती है । और निरुत्साही राजा आलसी रह कर अपना सब कुछ खो बैठ सकता है ।

इसके विरुद्ध कौटिल्य का मत है कि अधिक धनाढ्य राजा उत्साही राजा को धन का लालच देकर अपने से मिला सकता है, बड़े बड़े वीर पुरुषों को खरीद कर उनको लड़ा सकता है । उसके पास धन के द्वारा घोड़े, हाथी, तोपखाना सभी रह सकता है । इतिहास में धन-सम्पन्न स्त्रियों ने और लङ्गड़े-लूले तथा अन्धे लोगों ने भी पृथ्वी का विजय धन के बल पर कर लिया है ।

इस युक्ति से अवश्य धन की सत्ता बड़ी बलवती दीखती है । परन्तु 'मन्त्र-शक्ति' एक और बल है । वह भी धन-सत्ता से टक्कर ले सकती है ।

एक पुरुष धन-सम्पन्न है, दूसरे के पास मन्त्र-बल अर्थात् बुद्धि बहुत अधिक है; उन दोनों की ठन जाने पर कौन विजयी होगा, यह नहीं कहा जा सकता । इसपर भी बहुत-से आचार्यों का यही मन्तव्य है कि मन्त्र-शक्ति से अधिक बलवान् धन-सत्ता ही है । जिस प्रकार खेत में बोया हुआ बीज बिना वृष्टि के अंकुरित नहीं होता, वह वहाँ का वहीं नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार निर्धन की सब बुद्धि बिना धन के वन्ध्या रहती है । वह कुछ कर नहीं सकती है । जैसे कहा है—'उत्पद्यैव विनश्यन्ति दरिद्राणां मनोरथाः' —दरिद्रों के मनोरथ उठ-उठ कर नष्ट हुआ करते हैं ।

इसके विपरीत कौटिल्य कहते हैं कि नहीं, मन्त्र-शक्ति धनसत्ता से अधिक बलवान् है । बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ राजा थोड़े ही प्रयत्न से मन्त्र का प्रयोग कर सकता है । वह अपनी अनुपम बुद्धि से उत्साह और धन से युक्त पुरुषों को साम आदि उपायों से वश कर सकता है । अद्भुत चमत्कारी प्रयोगों से शत्रु के बल को नष्ट कर सकता है । फलतः उत्साह, धन, और मन्त्र तीनों उत्तरोत्तर शक्तिशाली हैं ।

इसी प्रकार इन मुख्य शक्तियों के साथ देश, काल, शरीर-बल—ये तीन भी बल ही हैं । इनमें भी तुलना होसकती है ।

(१) शरीर-बल । जैसे शक्तिमान् पुरुष ऊपर-नीचे और गरमी-सरदी-वर्षा सभी में बलवान होकर निर्बल को दबा सकता है । (२) इसके विपरीत देश-बल । जैसे स्थल मे कुत्ता भी नाके को खेंच लेता है । और जलमें नाका हाथी को भी खींच लेता है । (३) काल-बल । जैसे दिन में कौवा उल्लू को मार लेता है और रात को उल्लू कौवों को मार लेता है । परन्तु इन सब बलों में कोई एक भी एकान्त रूप से सबसे प्रबल नहीं कहा जा सकता । इनमें से प्रत्येक बल अपने-अपने समय पर अधिक सफल होजाते हैं । एक दूसरे के अनुकूल बन कर तो बड़ा भारी कार्य साधते हैं । इनमें सब बलों को अपने अनुकूल बना कर प्रयोग करना बुद्धिबल या मन्त्रबल पर ही आश्रित है, इसलिए 'मन्त्र-बल' ही सर्वोच्च बल है ।

अर्थशास्त्री या राजनैतिक लोग चाहे किसी प्रकार के भी छल-बल कपट-चिन्तना को मन्त्रबल कहते हों, तो भी धर्म-नीति और अधर्म नीति के भेद से राजनीति का मार्ग भी दो प्रकार का होना सम्भव है । इतिहास के तख्ते पर धार्मिक और अधार्मिक राजाओं और दलों के परस्पर युद्धों और संघर्षों के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं । उन सबमें ही यह एक आम बात है कि दोनों अपने अन्तिम यत्न तक अपनी नीति को नहीं बदल सके और अपनी-अपनी नीति से क्षय और उदय को प्राप्त हो गये । यह भी प्रायः देखा गया है कि धर्म का पक्ष अन्त में विजयी और यशस्वी हुआ और अधर्म का पक्ष अन्त में पराजित और बदनाम रहा । इसकी स्पष्ट व्याख्या यह है कि अधार्मिक दल की कोश-सत्ता और

नाना प्रलोभन जन-समुदाय को अधिक देर तक नहीं खींच सके और वे अन्त में पापी के पापों से उद्विग्न होकर उससे पृथक् होगये। इधर धार्मिकदल के उत्तम विचार, धार्मिक कृत्य और त्याग-भाव जन समुदाय को अधिक प्रिय लगे और सबने उसको अपना मूर्धन्य स्वीकार किया। फलतः हम इस सत्य को इन शब्दों में रख सकते हैं कि जनता में समष्टि रूप से धर्म का प्रेम अधिक है, अधर्म का प्रेम कम है। यदि कोई भी धार्मिक दल विजय पाना चाहता है, तो वह मन्त्र-बल से अधार्मिक दल के समवाय या संघ में धार्मिक भावों की जागृति के उपायों की योजना करे अर्थात् अधार्मिक दल के सब पाप-कर्म जनता के सामने नंगे रूप में रखदे। इस कार्य के लिए मन्त्रबल की आवश्यकता है।

'मन्त्र' का तात्पर्य मनन, विचार, विवेक, बुद्धि, प्रज्ञा ही है। इसमें जितना ही सूक्ष्म विवेक होगा उतनी ही सफलता अधिक होगी। फलतः 'धनसत्ता' अर्थात् उपभोगवाद को विजय करने के लिए मन्त्रबल या विवेक-पूर्वक त्याग की आवश्यकता है।

आर्य सभ्यता ने इस धनसत्ता को तीसरी श्रेणी में रक्खा था। और जो केवल पैर के बल पर दूसरों के हाथ बिक सकते थे उन पुरुषों को दास या शूद्र श्रेणी में रक्खा था। सबसे ऊपर मन्त्र-शक्ति या ब्रह्मबल को ही स्थापित किया था। उससे उतर कर क्षात्रबल था; अर्थात् बाहु-बल या शस्त्रास्त्रबल की प्रधानता थी।

तिर्यग् योनियों में दो ही बल प्रधान हैं; एक बाहुबल और दूसरा सेवा बल या भोजनबल। कुत्ते, सियार और तृणचारी पशु गाय, बैल आदि पेट के अधीन जीते हैं और टुकड़े देने वाले की नौकरी बजाते हैं; और सिंह-समान जन्तु शरीरबल से जीते हैं। उनका शास्त्रबल भी मुख में स्थित है। शक्तिमान् बैल, सुअर आदि का क्षात्रबल सींग और लम्बे दाँतों के रूप में मुख पर ही है। फलतः केवल बल पर शासन करने वाले लोग पशु शासकों के समान हैं। क्योंकि पशुओं के पास धन या सम्पत्ति के प्रति कोई स्वामी-भाव नहीं है, इसलिए उनमें धन सत्ता के दृष्टान्त नहीं हैं। हाँ, जनसत्ता अवश्य कई स्थानों पर है। जैसे अधिक गायें मिलकर सिंह से अपने बच्चों को बचा लेती हैं, बहुत-से भेड़िये मिलकर ग्रामवासियों को त्रास देते हैं, बहुत-सी चीटियाँ एक महानाग को खाजाती हैं। परन्तु एक विशाल शक्ति को दबाने के लिए सामवायिक बल भी अन्ततः बहुतों का शरीरबल ही समझना चाहिए। और मन्त्रबल का अंश इसमें इतना ही अधिक है कि हम सब स्वल्पबल मिलकर एक काल और एक देश में एक बलवान से अवश्य अधिक हैं। यह बुद्धि या विचार ही निर्बलों में उत्साह उत्पन्न करता है और उनको शरीरबल पर विजय प्राप्त कराता है।

समवाय या संघ के प्रत्येक अंश निर्बल हैं, परन्तु मिलकर बलवान हैं। यदि उनमें से प्रत्येक मूर्ख हो, स्वार्थ हो, मोह हो, स्नेह-रहित हो, तो वह समवाय या संघ कुछ नहीं कर सकता है। फलतः विवेक, परार्थ त्याग, उत्साह और स्नेह—ये उत्तम गुण ही संघ या समवाय के मुख्य घटक हैं; ये सब निर्बल अंगों को मिलाकर उनका एक 'समष्टि शरीर' बना देते हैं। उनकी रचना भी 'नर-शरीर' और 'पशु-शरीर' के समान दो प्रकार की हो सकती है। यदि वह केवल 'क्षात्र-संघ' है, तो उसका स्वभाव उग्रस्वभाव के सिंह, शूकर और महावृषभ के समान होगा। यदि उसका स्वभाव तृणचारी मृग या मांसलोलुप कुत्ते के समान होगा, तो वह धन-सत्ता के प्रलोभन में अवश्य फँस जायगा, और सब का संघ बलवान, कोशवान पुरुष के हाथ का गुलाम हो जायगा। और वही प्रलोभन उनके भीतर के संघ-बल के घटक, त्याग और स्नेह, परार्थता आदि का कालान्तर में नाशक होगा। इसलिए ऐसे दोनों समवाय अर्थात् क्षात्र-समवाय और उदरवृत्ति समवाय दोनों ही मन्त्र शक्ति से उसी प्रकार पराजित हो जायेंगे, जिस प्रकार मनुष्य से पशु।

इस सत्य को ध्यान में रखकर आर्यसंस्कृति ने मन्त्र बल को ही अपने संघ में प्रबल और उच्चतम स्थान दिया है यही चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है। अर्थात् ब्रह्मबल सर्वोच्च, उसके अधीन क्षात्रबल, क्षात्रबल के अधीन वैश्य अर्थात् धनसत्ता, और उसके अधीन शूद्र अर्थात् पेट-दास या भोगसत्ता। इन सबको अपने-अपने कर्त्तव्यों में बाँध दिया है। जैसे ब्राह्मण को ज्ञान, ध्यान, तप के साथ त्याग का उपदेश है। वह

धन संग्रह नहीं कर सकता तो भी सबका स्वामी है। आज्ञा उसकी उसी प्रकार सर्वोपरि होगी, जैसे मुख की वाणी और मानस या इच्छानुकूल प्रेरणा जो मस्तक में रहकर सब शरीर की स्वामिनी है। मुख सब शरीर को 'ममेदम्' कहता है, पर संग्रह नहीं करता। इसी प्रकार 'क्षत्रिय' बाहु के समान है; शरीर की रक्षा करने में सब प्रकार से तैयार, पर संग्रह करने में सर्वथा शिथिल है। वह पेट के भुक्त अन्न से रस को उसी प्रकार लेता है, जैसे क्षत्रिय वैश्यों के विनिमय से प्राप्त द्रव्य से कर या टैक्स लेता है, इससे अधिक नहीं। परन्तु समस्त रस को भी रुधिर-रूप में समस्त शरीर में ठीक प्रकार से पहुँचाना यह भी छाती का ही कार्य है। फलतः क्षात्र राजा को ही यह भी व्यवस्था करनी चाहिए कि कोई अंग निर्बल न रहे सब भरे-पूरे रहें। अब रहे वैश्य। यह सब पदार्थों को संग्रह करता है, उसीको नाना शिल्पों में नाना रूप के बनाता और सब अंगो को पालता है। इस वर्ग में शिल्पी वर्ग, महाजन, कृषक और याचक आदि सब आ गये। और इन तीनों के अधीन शूद्रवर्ग अर्थात श्रमीजन शारीरिक श्रम और सेवा करते हैं।

यह तो हुई व्यवस्था। परन्तु इस व्यवस्था में अव्यवस्था कब फैलती है? अव्यवस्था तभी फैलती है, जब चारों अंगों में कोई एक भी अपने मुख्य ध्येय को भूल कर दूसरे पर प्रभुता कर ले और दूसरा उसके अधीन होकर अपना कर्त्तव्य न निभाये। जैसे ब्राह्मण वृत्तिदाता, यजमान या राजा के लिए असत्य बोलता है, उलटी व्यवस्था देता है, न्याय नहीं देता। क्षत्रिय धनाभिमानी वैश्य के अधीन हो श्रमी और विद्वान् पुरुषों को सताता है, उनको खाने को पूरा नहीं देता, विद्वानों को ज्ञान प्राप्त करने और सत्य प्रकट करने एवं अधर्म के विपरीत आवाज़ आने नहीं देता। या वैश्य वर्ग ही क्षत्रिय के बल से पीड़ित होकर क्षत्रिय को अपना सर्वस्व देता है और अन्यों को कुछ नहीं देता। इसी प्रकार शूद्र वर्ग धनसत्ता वालों का कार्य करे या बलवान् का कार्य करे या अपना सामवायिक बल बढ़ाकर धनसत्ता को ठुकरा दे, क्षात्रबल को भी हीन बल करदे और ब्राह्मणों की अवज्ञा करे।

अब प्रश्न यह है कि यह उच्छृंखलता समाज में आवे ही क्यों? इसका उत्तर सहज है। उच्छृंखलता का कारण वह 'भोग' है, जिसके लिए जीव-सामान्य की एकसमान प्रवृत्ति है। अन्न उन सब भोगों में मुख्य है। इसके आधार पर अन्य भोगों का सामर्थ्य उत्पन्न होता है। अन्न को उत्पन्न करना या प्राप्त करना, यह समस्त प्राणियों में समान है; परन्तु अपने से निर्बल को बाँध कर उसका अन्न खा जाना, यह भी एक दूसरी प्रवृत्ति जीव-संसार में स्वाभाविक है। यह मात्स्य न्याय है। यह न्याय निर्बल प्राणियों को जीवित नहीं रहने दे सकता। इसलिए विचारशील प्राणी को मन या विचार के आधार पर सामवायिक बल बनाने की आवश्यकता रही। संघशक्ति के लिए बुद्धि को प्रधानता प्राप्त हुई। उसने सब व्यक्तियों को समाज में नियम, धर्म या व्यवस्था में बाँधा और श्रम-विभाग एवं त्याग की स्थापना की।

'त्याग' का तात्पर्य है भोग की मर्यादा। अर्थात हरेक व्यक्ति शक्ति-भर प्राप्त करके भी उसको पूरा भोग लेने का अधिकारी नहीं। दूसरे शब्दों में वह उसका कुछ अंश भोगे, शेष अन्यों को दे। अर्थात् उसकी कमाई में सबका हिस्सा है। दूसरे शब्दों में उसकी कमाई पर सब अपना 'टैक्स' लेने के अधिकारी हैं। शास्त्रीय परिभाषा में हम इसको बलि वैश्वदेव कहें तो अनुचित नहीं है। सबको दे चुकने पर शेष अंश को खाना ही धर्म व्यवस्थित किया गया है। इसके विपरीत अधर्म कहा गया है। दूसरे का हिस्सा मार खाना ही भोग-मर्यादा का उल्लंघन करना है। इस मर्यादा को तोड़ने से एक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न होती है। इससे जिस अंग को उचित भाग न मिलेगा वह निर्बल हो जायगा, और जो औरों का भाग खा लेगा वह पापी होने के साथ शक्तिशाली हो जायगा।

दूसरी अव्यवस्था अपने कर्त्तव्य को न करने से होती है। किसी प्रमादवश अपने कर्त्तव्य में ढील कर दी, या स्वयं कोई अंग निर्बल होजाय, तो यह प्रमादवश ही दूसरे के अधीन होकर अपनी सत्ता खो देगा। कर्त्तव्य से गिराने वाले कारण 'व्यसन' कहाते हैं, क्योंकि वे उसको विपरीत मार्ग में फेंक देते हैं। कौटिल्य ने ठीक कहा है—व्यस्यति एनं हि श्रेयसः इति व्यसनम्। (अर्थ १२७ प्र०) श्रेय

अर्थात् धर्म-मार्ग से गिरानेवाले कारण ही व्यसन कहाते हैं। वे दैव और मानुष्य भेद से दो प्रकार के होते हैं। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र—इन भेदों से पुनः सात प्रकार के हो सकते हैं। राजा और राज्य दोनों मिलकर 'प्रकृति' कहाती है; उनके अन्तःकोप और बाह्य-कोप से दो प्रकार के व्यसन हैं। परन्तु ये समवाय या संघ में उत्पन्न व्यसन हैं। इनके साथ व्यक्तिगत पुरुष में रहने वाले व्यसन भी दो प्रकार के हैं—कोपज और कामज। कोपज तीन प्रकार का- कठोर वाणी, अर्थ-दण्ड, और शरीर दण्ड। इसी प्रकार कामज व्यसन चार प्रकार के—मृगया, द्यूत, स्त्री-भोग और मद्यपान।

इनपर दृष्टिपात करने से भी सहज ही पता लग जाता है कि ये व्यसन भी भोग-मर्यादा के विघातक हैं और कर्तव्य की उपेक्षा के कारण होते हैं। इसीसे समाज में अव्यवस्था फैलती है। अस्तु।

अब उस अव्यवस्था के परिणामों पर विचार करते हैं। ये तीनों शक्तियाँ स्वयं पंगु हैं। सब अन्योन्याश्रय हैं—जैसे तिपाई की तीन टाँगें। इसको संस्कृत में 'त्रिविष्टब्धक न्याय' कहते हैं। किसी एक टाँग के भी छोटी हो जाने पर दूसरी दो ऊँची हो जाती हैं। दो के छोटी हो जाने पर एक ही सबसे अधिक ऊँची रहती है। कोई दो मिलकर तीसरी को नीचा कर सकती हैं। यही दशा इन तीन सत्ताओं की है। इन तीनों में भी 'मन्त्रसत्ता' जिसके साथ रहेगी वह प्रबल होगी। जब मन्त्रसत्ता उक्त दोनों के अधीन रहेगी, तो समाज में सदा अव्यवस्था और असन्तोष बना रहेगा; परन्तु यदि मन्त्रसत्ता दोनों को अपने अधीन रक्खेगी, तो सदा सन्तोष बना रहेगा। क्योंकि असन्तोष का कारण अन्याय और दुर्न्याय है; और न्याय का स्थापन मन्त्रशक्ति है। मन्त्रशक्ति का शरीर-बल के अधीन हो जाना सिर का छाती में घुस जाने के समान है। और वह सिंह-राज्य है। वहाँ पंजे और दाँतों की प्रधानता है। पेट और सिर पतले और क्रोध और गर्जना, दुर्वाक्य, दण्डपारुष्य अधिक होता। ये कोपज व्यसन क्षात्रबल की प्रधानता में अधिक होंगे। यदि धनसत्ता प्रबल हो जाय और मन्त्रशक्ति व शारीरिक बल दोनों उसके अधीन रहें तो तब यह स्वरूप वृषभ का है। पेट बड़ा होगा। पैर पतले, सींग ऊँचे। अर्थात बल सचिव और धन स्वामी है। मन्त्रशक्ति के न्यून होने से उसमें साहस कम, दूसरे के दण्ड-प्रहार से भीरु स्वभाव, और पेट फटने पर प्राणान्त। यूरोप के देशों की अब यही दशा है। उनमें धन-सत्ता का प्रभुत्व है; उसके अधीन मन्त्रशक्ति और शरीर-शक्ति है। अर्थात् दिमाग़ और हाथ दोनों धन-क्रीत हैं, वे कर्तव्य-क्रीत नहीं हैं। परन्तु मन्त्र-शक्ति और शरीर-बल ये दोनों भी बहुत निर्बल होने से वे धनसत्ता को काफ़ी ज़्यादा चूसते हैं। फलतः वहाँ वेतन बहुत ऊँचे हैं। धनसत्ता का व्यसन कामजवर्ग है। अर्थात् शिकार, मद्य जुआ, और स्त्री-भोग। फलतः यूरोपीय सभ्यता में माँस-भोजन, मद्यपान गैम्बलिंग (द्यूत) और सरकस, घुड़दौड़, फाटका आदि तथा चकलेघर बहुत अधिक हैं। ये व्यसन समस्त समाज-शरीर में व्यापक हैं। इससे वहाँ मन्त्र शक्ति का प्रबल होकर शरीर-सत्ता को अपने वश कर लेना और धनसत्ता को जीत लेना बड़ा कठिन कार्य है। इसके विपरीत भारतवर्ष में उक्त चारों व्यसन बहुत कम हैं। यहाँ धार्मिक सत्ता या मन्त्र-शक्ति अथवा विचार या विवेक का अधिक प्रभाव है। अर्थात् जन-शक्ति या शरीर-शक्ति में मन्त्रसत्ता अधिक कार्य कर सकती है। इस देश को वश में करने लिए विदेशी राज्य या कुराज्य को सदा धर्म पर आघात करना चाहिए। फलतः यहाँ के शासकों की सदा यही शैली रही है। उन्होंने यहाँ के धर्मों को विकृत करने का यत्न किया है। शुद्ध वैदिक धर्म को भी हिंसायुक्त और अश्लीलतापूर्ण यज्ञों का रूप दिया गया। इससे जनता में मांस और मद्य एवं स्त्री-व्यसन अधिक फैलने से धर्मबल या मन्त्र सदा दबाया गया। बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-दाह आदि कुरीतियों को फैलाकर मूर्तिपूजा, जातिबन्धन और उसकी आड़ में गुण्डादल को रखकर यहाँ धर्म-बल या मन्त्र-बल को बहुत न्यून कर दिया गया है। इसके विपरीत विदेशियों ने ईसाईयत और मुसलमानीयत फैलाकर भी उसी प्रकार यहाँ के मन्त्रबल को बहुत कम किया। तिसपर भी पूर्व के राजाओं ने क्योंकि धर्म को विकृतमात्र किया था इसलिए जब-जब भी सत्यबुद्धि-बल ने सुधारक का रूप धार कर धर्म-बल को चेताया तब-तब वह प्रबल रहा। परन्तु विदेशी

सरकार का दूसरा आघात यहाँ की आर्थिक सत्ता पर भी हुआ। व्यवसाय और आर्थिक विनिमय की कूट चालों ने यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को दरिद्र करके जीव की स्वभाव-सिद्ध इच्छा अर्थात् 'अन्न' को वश करने का यत्न किया है। और हरएक वस्तु सिक्के में करके द्रव्य-लोभ को जागृत किया है। इसके अतिरिक्त वही धनसत्तावाद और भोगवाद यहाँ के राजा और प्रजा को भी सिखाया। नशीले पदार्थों और मद्य के व्यवसाय को बढ़ाया, कसाईखानों से यहाँ मांस-लोलुपता और चकलाघरों ने व्यभिचार की वृद्धि की। महानगरों में फाटका, घुड़दौड़ और प्रदर्शिनी, कार्निवल्स आदि जुए को बढ़ाते हैं। इस प्रकार इन सब व्यसनों से यहाँ के धर्म-बल या मन्त्र-बल का नाश किया जा रहा है। विद्वान् पढ़े-लिखों को अधिक वेतनों पर नियुक्त करके इनको धन-सत्ता की सांकल में जकड़ा जा रहा है।

क्योंकि हमारी सरकार मांस प्रिय और धन-लोभी अधिक है, इसलिए भारतवर्ष की त्याग और न्याय, धर्म एवं समानाधिकार की सब लहरों को शीघ्र ही प्रबल दमन-शक्ति से ही दबाने का यत्न किया जाता है। उसके पास धर्म या स्थिर मन्त्र-शक्ति का दीवाला है। जो मन्त्रशक्ति है भी, वह भी धन से ख़रीदी गई है। इसलिए उसका स्वभाव भी घर पर बँधे कुत्ते के समान देखते ही भौंकने और काटने का ही अधिक है। इसलिए लार्ड इरविन-जैसा ठंडा दिमाग़ भी बहुत जल्दी गरम हो सकता है। पार्लमेण्ट के विचारक सदस्य भी दमन के पक्षपाती हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि यदि कोई दो सत्तायें—धन या मन्त्र, शक्ति या मन्त्र, अथवा शक्ति या धन दोनों—समान रूप से बढ़ जायँ, तो परिणाम क्या होगा? इसका परिणाम स्पष्ट है। किन्हीं दो का समान रूप से बढ़े रहना चिर काल तक नहीं हो सकता। शक्ति और मन्त्र का बढ़ना मोटे रूप में राजा और अमात्य के बढ़ने के समान है। एक कवि ने कितना अच्छा कहा है—

> अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च
> विष्टभ्य पादा वुपतिष्ठते श्रीः।
> सा स्त्रीस्वभावाद् सहाभरस्य
> तयोर्द्वयोरेकतरंजहाति ॥

मन्त्री और राजा जब दोनों बहुत ऊँचे चढ़ जाते हैं तब राज-सम्पदा दोनों के पैरों में चिपटी रहती है, पर राज-लक्ष्मी स्त्री स्वभाव होने से दोनों का भार चिरकाल तक नहीं सहती। वह दोनों में से एक को छोड़ देती है। फलत. वैश्य-वर्ग और विद्वान् ब्राह्मण दोनों यदि बहुत अधिक बढ़ जायँ तो परिणाम यह होगा कि सर्व-साधारण जन-बल रुपये का साथ देगा और ब्राह्मण-बल नीचे गिर जायगा। यदि जन बल और ब्राह्मण बहुत बढ़ जायँ तो धनिक वर्ग अवश्य ब्राह्मण-वर्ग का साथ देगा और क्षात्र-बल आप से आप कमज़ोर होकर धन के वश हो जायगा। फलतः, उक्त तीनों सत्ताओं में विषमता रहने से कभी शान्ति और न्याय नहीं हो सकता। इसके लिए आर्य-सभ्यता ने इसको व्यवस्थित करने के लिए वर्णाश्रम-व्यवस्था का उपाय ढूँढ निकाला था। वर्ण-व्यवस्था से समाज में रहने के लिए पेशे या आजीविका की मर्यादा होती थी और आश्रम-व्यवस्था से वैयक्तिक गृहस्थ-जीवन की व्यवस्था होती थी। उन दोनों मर्यादाओं को तोड़नेवाला राज्य में नहीं रह सकता था। जैसे—

(१) यदि कोई ब्रह्मचर्य-आश्रम में रहकर अपने व्रत को खण्डित करता था तो उसको गधे की खाल ओढ़कर गधे का सिर दिखा-दिखा भीख माँगकर रहने का दण्ड था।

(२) यदि गृहस्थ में रहकर वह व्यभिचार करे तो उसको कुत्तों से फड़वा दिया जाता था।

(३) यदि वानप्रस्थ या संन्यासी होकर दुराचार करे तो चटाई लपेटकर जला दिया जाता था।

इस कठोर व्यवस्था से प्रत्येक व्यक्ति आश्रम-व्यवस्था में अपने जीवन को धर्मात्मा बनकर बिताता था। इस व्यवस्था में सब कोई धर्मात्मा बनने के लिए बाधित होता था। अन्यथा पतित, अन्ते-अवसायी समझा जाता था। इसी प्रकार वर्णों में प्रत्येक वर्ण के लिए कर्म निर्धारित हैं, उनसे अतिरिक्त कर्म करने के लिए राज-दण्ड और समाज-दण्ड हो सकता था।

अब प्रश्न यह है कि भोग की प्रबल वासना से प्रेरित होकर यदि कोई अपने धन का दुरुपयोग करे तो उसके लिए क्या उपाय है? सीधी बात है, राज-दण्ड और ब्राह्मण-

वहाँ उसका नियमन करे यदि एक धनाभिमानी अपने धन का दुरुपयोग करे तो उसका धन हर लिया जा सकता था। उसके धन को उसकी इच्छा के प्रतिकूल भले काम में लगाया जा सकता था। जैसे मनु (अ० ११; श्लो० ११-१२) कहते हैं—

यज्ञश्चेत् प्रतिरुद्धःस्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः।
ब्राह्मणस्य विशेषण धार्मिके सति राजनि ॥
यो वैश्यः स्याद् बहुपशुः हीनक्रतुरसोमपः।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद् यज्ञसिद्धये ॥

यदि यज्ञ रुका पड़ा है, यदि धार्मिक राजा के राज्य में ब्राह्मण का यज्ञ रुका है, तो वह उस वैश्य के घर से उसका द्रव्य हर लावे कि जिसके पास बहुत-से पशु होने पर भी वह यज्ञ और होम-यागादि नहीं करता। 'आहरेत्' का अर्थ टीकाकार कुल्लूक भट्टने 'द्रव्यं चौर्येण बलेन वा आहरेत्' किया है अर्थात्, 'यज्ञ' या किसी श्रेष्ठ कर्म को करने के लिए अधार्मिक धनवान् का धन उससे बल-पूर्वक लिया जा सकता है।

इसी प्रकार वह धनाढ्य जो लेना जानता है पर देता कभी नहीं है, उसका भी धन बलात् हरा जा सकता है और इससे आहरण करनेवाले का यश और धर्म बढ़ता है।

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः।
तथा यशोस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥

फलत द्रव्य या धन-सत्ता की विषमता को दूर करने का उपाय आर्य-सभ्यता में यज्ञ, दान, तप और धर्माचरण ही था। धार्मिक लोकेषणा से उनका धन सदा परोपकार में लगता था। अधिक धन को पापपूर्ण भोगों में व्यय करने का किसी को अधिकार ही न था। मनु महाराज ने जुआ और शराब बनानेवालों को राष्ट्र से बाहर कर देने की आज्ञा की है। जैसे—

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाखण्डस्थांश्च मानवान्
विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात् ॥
(मनु ९। २२५)

कितव, कुशीलव, क्रूर, पाखण्डस्थ, विकर्मस्थ और शौण्डिक—इन सबको नगर से निकाल बाहर करें। 'कितव' शब्द से सब प्रकार के जुए, सट्टे और फाटके, कार्निवल्स आदि ले लिये जा सकते हैं; इसीके साथ द्यूत और समाह्वय ये दोनों भी आ जाते हैं। 'कुशीलव' शब्द में नाच-रंग, बाल और जितने विलासी सभ्यता के निछावरी कार्य हैं वे सब आ जाते हैं। 'क्रूर' शब्द में सब गुण्डे और कसाई पेशा आ जाते हैं। पाखण्ड में धर्म-पूजा का ढोंग करनेवाले सब आ जाते हैं। विकर्मस्थ में निषिद्ध पेशा करनेवाले चकले-खाने आदि आ जाते हैं। 'शौण्डिक' शब्द में सब शराबखाने, ताड़ीखाने आ जाते हैं। इनको देश से क्यों निकाल देना चाहिए, इसपर मनु स्पष्ट कहते हैं कि—

एते राष्ट्रे वर्तमाना: राज्ञ:प्रच्छन्नतस्करा:।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिका: प्रजा: ॥

क्योंकि ये लोग राजा के राष्ट्र में छिपे चोर होकर रहते हैं। ये निषिद्ध कर्मों की प्रवृत्ति को बढ़ाते हैं और सदा भली-मानुस प्रजा को पीड़ा पहुँचाते हैं।

जुए के विषय में मनु लिखते हैं—

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥
द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रा न्निवारयेत।
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम ॥
प्रकाश मेतत्तास्कर्यं इदेवनसमाह्वयौ।
तयोर्नित्यंप्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान भवेत ॥
द्यूतंसमाह्वं चव यः कुर्यात कारयेत।
तान सर्वान घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिंगिनः ॥

जो बेजानदार पदार्थों से खेला जाता है वह 'जुआ' कहाता है। जो जानदारों से बाज़ी लगाकर किया जाता है वह 'समाह्वय' है। राजा दोनों को राष्ट्र से दूर करे। क्योंकि राजाओं के ये दोनों दोष राज्य को नष्ट कर डालते हैं। ये दोनों खुली चोरी हैं। जो इनको करते हैं, राजा उनको घात कर डाले। ऐसे शूद्र जो ब्राह्मण होने का ढोंग करें, उनका भी वध किया जाय।

इन आज्ञाओं का पालन करने पर नाच-रंग के मज़े लूटनेवाले धनाढ्यों की सत्ता राज्य से शीघ्र ही उठाई जा सकती है। इन नाच-रंगों में धन बहाने के लिए भी बहुत चाहिए और वह ईमानदारी से नहीं मिल सकता, इसलिए धनाढ्यों के व्यसन ही अन्याय से लोगों का धन अपहरण कराते हैं और

श्रमी दल को धनके बल पर दबाने का प्रयत्न करते हैं। ये व्यसनों के दास होकर मज़दूर के ईमानदारी से किये परिश्रम के एवज़ में उसको पेटभर अनाज भी नहीं देते और रण्डी तथा मदिरा के सामने थैलियाँ लुटाते हैं। वह लुटाने के लिए पैसा कहाँ से आता है? यह स्पष्ट है कि ग़रीब ईमानदारों का पेट और गला काटकर ही आता है। यह विषमता सदा भोग-वृत्ति में फलकर अन्याय के अवलम्बन से उत्पन्न होती है। अन्याय या दुर्न्याय में सदा अन्धप्रवृत्ति ही कारण है। फलतः ब्राह्म-बल या मन्त्र-शक्ति जब धन-सत्ता के अधीन हो जाती है तब ये दोष उत्पन्न होते हैं। ठीक व्यवस्था के लिए तो सर्वोपरि मन्त्र-शक्ति, उससे उतर कर क्षात्र-बल और उसके अधीन धन-सत्ता होनी चाहिए। और इन तीनों में ही राष्ट्र का जन-समुदाय बँट जाना चाहिए। वैयक्तिक और सामाजिक आचार क़ानून या धर्म-शास्त्र-द्वारा व्यवस्थित होना चाहिए। तभी संसार में शान्ति स्थायी हो सकती है।

एकान्त-रुदन

[श्री श्याम बी० ए०]

न बरसाये जो कोमल गीत
उसासों का अंजलि-भर दान
बिगड़ जायेगा, सारा खेल
अरे! मेरे जीवन के प्राण ॥ १ ॥

बाँध दी कर न सके थे मुक्त
हृदय के कितने पतले तार!
न छू, इन पर मत उँगली फेर,
टूट जायेंगे, ये सुकुमार! ॥ २ ॥

श्रान्त, अलसायी, तेरी याद,
आह! वह बेदर्दी का प्यार!
आज होकर कोने की आड़,
प्राण को ही कर देता भार ॥ ३ ॥

विश्व के धन्धों का व्यापार,
चलेगा (ज्यों चलता है आज)।
किन्तु हम रह न सकेंगे, और
देखने को सपनों का राज ॥ ४ ॥

मौन हो इस निशीथ में आज
साधता हूं, अपना मैं राग
वेदना की जलती सी श्वास
प्राण का हो जाये अनुराग ॥ ५ ॥

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

[अध्यापक श्री गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०, एल० टी०]

१. शिवाजी की शासन-व्यवस्था के आधार—शिवाजी न केवल अच्छा योद्धा और कुशल सेनापति था, बल्कि अच्छा व्यवस्थापक भी। मृत्यु के समय उसके राज्य की सीमा उत्तर में रामनगर से दक्षिण में गंगावती नदी तक और पूर्व में बागलान से नाशिक, पूना, सातारा आदि लेते हुए कोल्हापुर तक थी। यही उसका स्वराज्य था। इसमें उसने बहुत अच्छी शासन-व्यवस्था की थी। शिवाजी को शासन-व्यवस्था की कई बातें दादोजी कोण्डदेव की देख-रेख में मालूम हो गई थीं। फिर उसने अपनी बुद्धि से मुसलमानों के शासन-प्रबन्ध की कई अच्छी बातें ग्रहण कीं। महाभारत, रामायण आदि प्राचीन ग्रंथों से उसने जो-कुछ पढ़ा-सुना था, उसका भी उसने अपनी कल्पना के बल पर शासन-व्यवस्था के लिए उपयोग किया और ऐसी उत्तम शासन-व्यवस्था प्रचलित की कि जिसने अनेक आपत्तियों के आने पर भी स्वराज्य को नष्ट न होने दिया।

२. अष्ट-प्रधान-मण्डल—शिवाजी की शासन-व्यवस्था की आधार-शिला उसका अष्ट-प्रधान मण्डल था। उसमें मुख्यतया आठ मन्त्री थे—(१) पेशवा या पंत-प्रधान, (२) मुजुमदार या अमात्य, (३) वाकनीस या मन्त्री, (४) दबीर या सुमन्त, (५) सुरनीस या सचिव, (६) पण्डितराव, (७) सरनौबत या सेनापति, और (८) न्यायाधीश। राज्याभिषेक के समय शिवाजी ने अपने अष्ट-प्रधान-मण्डल की सु-व्यवस्था की। उनके पहले के फ़ारसी नाम बदलकर संस्कृत नाम रक्खे और उनके कार्यों का आज्ञा-पत्र प्रचलित किया। वह यह है—(१) मुख्य प्रधान सब राज-काज करे, राज-पत्रों पर सिक्का (मुहर) लगावे, सेना लेकर युद्ध तथा चढ़ाई करे, जो-कुछ मुल्क जीता जाय उसका उचित बन्दोबस्त करके आज्ञा के अनुसार चले। सब सरदार और सेना उसके साथ जावें; और वह सबके साथ चले। (२) सेनापति सब सेना की रक्षा और युद्ध तथा चढ़ाई करे। जो कुछ मुल्क जीता जाय उसकी आवश्यक रक्षा कर हुक्म के मुताबिक़ कार्रवाई करे। फ़ौज के लोगों का कहना सुने। फ़ौज के सब सरदार उसके साथ चलें। (३) अमात्य राज्य के सब जमा-ख़र्च की देख-रेख कर दफ़्तरदार और फड़नीस को अपने अधीन रक्खे। लिखने का काम सावधानी से करे। फड़नीस और चिटनीस के पत्रों पर अपना सिक्का लगावे। युद्ध करे। और जीते हुए भाग का उचित प्रबन्धकर आज्ञा के अनुसार चले। (४) पण्डित राव—सब धर्माधिकार, धर्म-अधर्म देखकर दण्ड करे। शिष्टों का सत्कार करे। आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त-पत्र आदि जो हों उनपर अपनी सम्मति-सूचक चिन्ह करे। दान-कार्य, शान्ति, अनुष्ठान तत्काल करे। (५) सचिव राज-पत्रों को ठीक तौर से देखकर कम-अधिक मज़मून को ठीक करे। युद्ध करके जो मुल्क जीते उनकी रक्षा कर आज्ञा के अनुसार चले। राज-पत्रों पर सम्मति-सूचक चिन्ह करे। (६) न्यायाधीश सब राज्य के न्याय-अन्याय का विचार कर धर्म के अनुसार फ़ैसला करे न्याय-पत्रों पर सम्मति-सूचक चिन्ह करे। (७) मन्त्री सब मन्त्र-विचार और राज्य-कार्य सावधानी से करे। नियन्त्रण और वाकनीसी उसके अधिकार में हैं। मुल्क की रक्षा कर युद्ध आदि करे। राजपत्रों पर समय-सूचक चिन्ह करे। (८) सुमन्त पर-राज्य से पत्र-व्यवहार करे, उनके जो दूत आवें उनका सत्कार करे, युद्ध आदि करे। राजपत्रों पर समय-सूचक चिन्ह करे।

शिवाजी के इस आज्ञा-पत्र से प्रकट होता है कि उनके सब मन्त्रियों में पेशवा मुख्य था और इसीलिए उसका यह नाम रक्खा गया था। राज-काज का सारा उत्तरदायित्व पद के अनुसार उसपर रक्खा गया था। ऐसी अवस्था में यह कहना कि अन्य मन्त्री किसी प्रकार उसके मातहत न थे, अनुचित है। * यह सत्य है कि शिवाजी के ये प्रधान बहुत-कुछ उसके नौकर ही थे और प्रधानतः उसे सलाह-मशवरा देने का ही काम किया करते थे। परन्तु इतिहास

---

*अध्यापक यदुनाथ सरकार; Shivaji and His Times, पृष्ठ ४११।

से यह भी सिद्ध है कि कई चढ़ाइयाँ उन्होंने अपने मन से भी की हैं और शिवाजी ने बहुधा उनका कहना माना है। पण्डितराव और न्यायाधीश को छोड़कर शेष प्रधानों को युद्ध आदि भी करने पड़ते थे और यह भी इनके कार्य का एक भाग था। उनमें से कुछ सूबेदारी का भी काम करते थे, जब कभी वे राजधानी में न रहते तब उनके मुतालिक्क यानी प्रतिनिध्यात्मक अधिकारी उनका काम किया करते थे। इन आठ प्रधानों के सिवा चिटनीस और फड़नीस नाम के दो महत्वपूर्ण अधिकारी और थे। चिटनीस के हाथ में राजकीय पत्र-व्यवहार का काम था। फड़नीस राज के दान-पत्र लिखा करता था। क़िलों के हवलदारों से पत्र-व्यवहार करने के लिए गड़नीस नाम का अधिकारी था। मुसलमान राजाओं से पत्र-व्यवहार करने के लिए पारसनीस नाम का एक अधिकारी था। इनके सिवाय इसी प्रकार के कुछ और भी अधिकारी थे, जो प्रधान-मण्डल के मातहत थे और जिनके हाथ में शिवाजी के राज्य के "कारख़ाने" यानी भिन्न-भिन्न वस्तुओं की कोठियाँ थीं। जबतक शिवाजी का यह प्रधान मण्डल अपने मूल रूप में चलता रहा तबतक सब काम ठीक-ठीक होते रहे और औरंगज़ेब के भयंकर आक्रमण की आपत्ति का सामना भी सफलता-पूर्वक हो सका।

३. मुल्की व्यवस्था—शिवाजी ने अपने राज्य की मुल्की व्यवस्था भी बहुत उत्तम की थी। पहले ज़मीन का लगान अनाज के रूप में वसूल किया जाता था और ज़मींदार या ठेकेदार उसे सरकार में जमा किया करता था। शिवाजी ने ये दोनों प्रथायें उठा दीं। उसने ज़मीन की पैमाइश करके उसका लगान ज़मीन की क़िस्म के अनुसार क़ायम कर दिया और उसे वसूल करने के लिए उसने अपने निजी सरकारी कर्मचारी नियत किये। पहले जब ज़मींदार या ठेकेदार लगान वसूल किया करते थे तब लोगों को बहुत कष्ट होता था। क्योंकि वाजिब से ज़्यादा वसूल करना और सरकार में कम दाख़िल करना उनका नियम ही था। इस दोष को दूर करने के लिए शिवाजी ने अपने राज्य को प्रान्तों में, प्रान्तों को तर्फ़ों में और तर्फ़ों को मौज़ों में बाँट डाला। प्रान्त का अधिकारी सूबेदार अथवा मुख्य देशाधिकारी होता था, जिसकी तुलना आजकल के ज़िलाधीश से की जा सकती है। इनके नीचे तर्फ़ के अधिकारी हवलदार होते थे, जिन्हें कहीं-कहीं परिपत्यागार भी कहते थे। इनकी तुलना आजकल के तहसीलदारों से की जा सकती है। गाँवों में लगान वसूली के लिए पटेल होते थे और हिसाब रखने के लिए कुलकर्णी नियत किये जाते थे। ज़मीन की पैमाइश करके उसका रक़बा काश्तकार के नाम पर चढ़ाया जाता और सरकारी लगान के लिए उससे इक़रारनामा लिखवाया जाता था।

४ न्याय-व्यवस्था—शिवाजी के समय में न्याय-व्यवस्था बहुत-कुछ पहले-जैसी ही प्रचलित थी। गाँवों में न्याय का काम बहुधा पंचायतों-द्वारा पटेल करता था। यदि पक्षकार उसके न्याय से संतुष्ट न होते तो वे अपने मामले न्यायाधीश के सामने ले जा सकते थे। कुछ मामले हाज़िर-मजलिस के सामने यानी सब मन्त्रियों की सभा में पेश होते थे। इस अवसर पर कदाचित् सभानायक और महाप्रश्निक नाम के दो पुरुष पक्षकारों से बहस करने के लिए नियत किये जाते थे।

५. सैनिक व्यवस्था—शिवाजी की सैनिक व्यवस्था भी बहुत अच्छी थी। दो तरह की सेना थी—घुड़सवार और पैदल। नौ पैदल सिपाहियों पर एक नायक, पाँच नायकों पर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों पर एक जुमलेदार, दस जुमलेदारों पर एक हज़ारी और सात हज़ारियों पर एक सरनौबत होता था। पचीस सवारों पर एक हवलदार, पाँच हवलदारों पर एक जुमलेदार, दस जुमलेदारों पर एक हज़ारी और पाँच हज़ारियों पर एक पंचहज़ारी होता था। इन फ़ौजी अधिकारियों के हिसाब-किताब में सहायता देने के लिए उनके मातहत कर्मचारी अलग होते थे। घुड़सवारों के दो भेद थे—एक बारगीर और दूसरा शिलेदार। बारगीर प्रत्यक्ष सरकारी नौकर होता था। उसे घोड़ा और अन्य सामान खुद सरकार से मिलता था। इसलिए ये सरकारी पागा के लोग कहलाते थे। शिलेदार ऊँचे दर्जे का आदमी होता था और वह अपना निजी घोड़ा तथा अन्य सामान रखता था। फ़ौज को वेतन नियत समय पर दिया जाता था। शिलेदारों को नियत

रक़म मिलती थी। लोगों की तरफ़ बाक़ी रहा हुआ लगान वसूल कर अपना वेतन पूरा कर लें, ऐसा कभी न होने पाता था। शिलेदार सिरज़ोर न होने पावें, इसके लिए उन्होंने पागा की मातहती में रक्खा जाता था, अथवा कुछ बारगीर उनके साथ शामिल कर दिये जाते थे। नये सिपाही तभी रक्खे जाते थे, जब उनके चाल-चलन की ज़मानत पुराने सिपाही देते थे। तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि शिवाजी को सिपाहियों की कमी कभी न पड़ी। जो सिपाही लड़ाई में ज़ख्मी होते, उन्हें अपने पोषण के लिए उचित रक़म मिला करती थी। मरे हुए सिपाहियों के आश्रित-सम्बन्धियों के पालन-पोषण के लिए भी उचित प्रबन्ध कर दिया जाता था और उनमें से जो कोई फ़ौजी काम करने के लायक़ होते वे नौकर रख लिये जाते थे।

शिवाजी का सैनिक-शासन बहुत कड़ा था। कोई भी सैनिक अपने साथ स्त्री आदि किसी को नहीं रखता था। किसी भी ब्राह्मण, स्त्री, गाय, बालक और दुर्बल को किसी भी प्रकार का कष्ट देने की सख्त मनाई थी। सब लूट सरकार में जमा होती थी, तथापि लूट लानेवाले को उचित पुरस्कार दिया जाता था। लूट का सामान छिपाने से बड़ी कड़ी सज़ा मिलती थी। युद्धों में जो पराक्रम दिखलाते उनका भिन्न-भिन्न प्रकार से सम्मान किया जाता था।

६. किलों की व्यवस्था—शिवाजी के क़िलों की व्यवस्था उसके सैनिक शासन का ही भाग था। मृत्यु के समय उसके पास १४० क़िले थे। प्रत्येक क़िले पर एक मराठा हवलदार और उसके हाथ के नीचे उसीकी जाति के सहायक क़िले के भिन्न-भिन्न भागों की रक्षा के लिए रहते थे। बहुधा उनकी संख्या ५०० रहती थी, परन्तु समयानुसार बढ़ाई जाती थी। हवलदार के दो सहायक अधिकारी होते थे—एक सबनीस और दूसरा कारखाननीस। वास्तव में इन तीनों के ज़िम्मे ही क़िले की व्यवस्था का काम था। जमाखर्चो का काम सबनीस के अधिकार में था और क़िले के आस-पास के प्रदेश की देख-भाल भी वही करता था। दाना, घास, बारूद, गोला, मरम्मत आदि का काम कारखाननीस करता था। महाराष्ट्र भर में आज जो सैकड़ों क़िले दिखाई पड़ते हैं उनमें से बहुतसे शिवाजी के समय के हैं और वे इस पुरुष की दूर-दृष्टि और राज-कर्म-चातुरी के साक्षी हैं। उसके क़िलों के तीन भेद थे। पानी में अथवा अंतरीप पर बनवाये हुए क़िले को जंज़ीरा या दुर्ग कहते थे; पहाड़ी क़िले को गढ़ और मैदानी क़िले को भूमिकोट या कोट कहते थे। पहले दो प्रकार के क़िलों को ही शिवाजी महत्वपूर्ण समझता था। वे ऐसे स्थानों पर बनाये जाते जहाँ शत्रु की जल्दी पहुँच न हो। क़िले में सब प्रकार का बन्दोबस्त रहता था, ताकि घेरा पड़ने पर किसी चीज़ की कमी न मालूम पड़े। इन्हीं क़िलों के कारण शिवाजी का कार्य सरल और सफल हुआ। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी ने बहुत-सा द्रव्य क़िले बनवाने और उन्हें सुरक्षित रखने में ख़र्च किया। वास्तविक बात तो यह है कि शिवाजी के क़िले उसके राज्य के आधार-स्तम्भ थे। उनका इतिहास बहुत ही मनोरंजक तथा वीर-श्री-परिप्लुत है।

७. शिवाजी के राज्य के विभाग और "कर"—शिवाजी के प्रदेश के दो विभाग थे—एक स्वराज्य और दूसरा मुग़लाई। ऊपर जिस शासन-व्यवस्था का वर्णन किया है, वह स्वराज्य की है। मुग़लाई में शिवाजी सरदेशमुखी और चौथ* वसूल किया करता था। परन्तु बहुत काल तक उसका यह अधिकार आदिलशाह, कुतुबशाह और

---

* जिस प्रकार आजकल कर वसूल करने के लिए कुछ पुरुष नियत होते हैं, उसी प्रकार आदिलशाही और निजामशाही की स्थापना होने पर "देशमुख" नियत किये जाते थे। उनका पहला काम लगान की वसूली था, परन्तु दूसरा काम यह भी था कि जो कुछ भाग उनके हाथ में हो उसके लिए वे ज़िम्मेदार हों; इस भाग से जो कुछ वसूली होती थी, उसका दसवाँ हिस्सा उन्हें मिलता था। इससे पाँच सैकड़ा नक़द या अनाज के रूप में दिया जाता था और शेष पाँच सैकड़े के लिए खेती के लायक़ ज़मीन उन्हें दी जाती थी। इसी का 'वतन' कहने की प्रथा वहाँ प्रचलित हुई। ये वतनदार देशमुख अपने को बहुत ऊँचे दर्जे के समझते थे। मुख्य अथवा ऊँचे दर्जे के देशमुख सरदेशमुख कहलाते थे। शिवाजी का पिता जागीरदार तो था, पर देशमुख, न था। इस कारण

दिल्ली के बादशाह ने नहीं माना। इसलिए बहुधा वह इन-के राज्यों में लूट किया करता था और इसी कारण शिवा-जी के शत्रुओं ने सदैव उसे लुटेरा कहा है। परन्तु वास्तव में यह उसके साथ बड़ा भारी अन्याय है। यदि किसी पुरुष को दूसरे देश पर चढ़ाई करने का कुछ भी अधिकार हो सकता है, तो किसी भी पुरुष को अपने देश में स्वतंत्रता स्थापित करने का पूर्ण अधिकार है। स्वयं शिवाजी ने सूरत के मुग़ल सूबेदार को जो उत्तर दिया, वह इस आक्षेप का ख़ासा जवाब है। उसने कहा था कि "तुम्हारे बादशाह ने ही मुझे अपने देश और लोगों की रक्षा करने के लिए सेना रखने को बाध्य किया है, और इस सेना का ख़र्च उसीकी प्रजा को देना होगा।" यदि औरंगज़ेब को हिन्दु-स्थान में राज्य करने का अधिकार था, तो शिवाजी को अपने देश में स्वतंत्रता स्थापित करने का उससे सौ गुना अधिक अधिकार था। और यह कार्य युद्ध के सिवाय उस समय न हो सकता था। युद्ध के लिए द्रव्य की आवश्यकता थी और मुसलमान राजाओं की तथा उनकी सहायक प्रजा की अथवा अन्य विरोधियों की लूटों के सिवाय उसके पास कोई अन्य उपाय न था। जो लोग राज़ी ख़ुशी से स्वतंत्रता के कार्य में योग न देते थे, उनसे सख़्ती से द्रव्य लेना शिवाजी अपना कर्तव्य समझता था। जिन लोगों की नस-नस में ग़ुलामी भर गई थी, उनको वह इसी प्रकार ज़बरदस्ती स्वतन्त्रता के पाठ पढ़ाना चाहता था। इसमें उसने किसीकी भी मुरव्वत न की। शिवाजी ने अपने भाई व्यकोंजी से पुश्तैनी जाय-दाद का आधा हिस्सा माँगा, उसका मूल कारण यही था

महाराष्ट्र के अन्य देशमुख अपने को शिवाजी से ऊँचे दर्जे का समझते थे, क्योंकि यह देशमुखी वंश-परम्परा से चली आती थी। अतएव शिवाजी ने भी चाहा कि मुझे भी देश-मुखी का अधिकार मिले। इसी हेतु से उसने जुन्नर और अहमदनगर के प्रान्त में सन् १६५० के लगभग इस अधिकार की माँग की। परन्तु शाहजहाँ ने उसे किसी प्रकार टाल दिया। सन् १६५७ में उसने फिर से औरंगज़ेब से यह अधिकार माँगा। उसने इस समय इस बात का भी प्रस्ताव किया कि औरंगज़ेब शाहजहाँ से मुझे इस बात की इजाज़त लादे कि मैं फ़ौज खड़ी कर दाभोल और उसके आस पास के भाग ले लूं और औरंगज़ेब के भाई-भाई के युद्ध के समय दक्षिण की रक्षा करूँ। औरंगज़ेब ने कोकण-विजय की अनुमति तो देदी, पर सरदेशमुखी के विषय में आबाजी सोनदेव के दिल्ली आने पर उससे विचार करने का वचन दिया। सन् १६६६ में जयसिंह और शिवाजी के बीच पुरन्दर की जो संधि हुई, उस अवसर पर भी उसने फिर सरदेशमुखी के अधिकार का प्रश्न छोड़ा। इसी अवसर पर पहले-पहल उसने चौथ की भी माँग की। यह लगान-वसूली का चौथाई हिस्सा था। इस बात का भी उसने शिवाजी के दिल्ली आने पर विचार करने का वचन दिया, परन्तु उनकी इस भेंट का कोई नतीजा न निकला। अन्त में सन् १६६७ में औरंगज़ेब ने शिवाजी को राजा का ख़िताब देकर बरार में जागीर दी और उसके लड़के सम्भाजी को मन्सब दी। सम्भवतः यह उसने शिवाजी की चौथ और सरदेशमुखी की पुरानी माँगों को पूर्ण करने के लिए किया। परन्तु शिवाजी इतने से सन्तुष्ट होनेवाला न था। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा से चौथ और सर-देशमुखी वसूल की। सन् १६६८ में बीजापुर ने चौथ और सरदेशमुखी के बदले तीन लाख रुपये वार्षिक देने का वादा किया और गोलकुण्डा उसी समय पाँच लाख रुपये देने को राज़ी होगया। इसके बदले में शिवाजी ने मुग़लों से उसकी रक्षा करने का भार अपने सिर पर लिया। सरदेशमुखी का मतलब हम ऊपर बतला ही चुके हैं। पर चौथ का मतलब यह था कि जो यह ले वह चौथ देने वाले भाग की रक्षा करे। शिवाजी ने और उसके उत्तराधि-कारियों ने चौथ के इस मतलब को कभी-कभी निबाहा, परन्तु बहुधा सरदेशमुखी और चौथ दोनों लूट के समान वसूल की जाती थीं। इस अधिकार का एक मतलब आगे चलकर यह भी निकला कि जो जिस भाग से चौथ या सरदेशमुखी ले उसीको समय पड़ने पर उस हिस्से को अपने राज्य में शामिल करने का अधिकार है। मराठों ने इस मतलब का अमल कई बार किया। इस दृष्टि से चौथ और सर देशमुखी की तुलना लार्ड वेलज़ली की सहायक प्रथा से की जा सकती है।

कि वह अपनेको आदिलशाह का नौकर तथा उसकी कृपा से पलनेवाला समझता था। फिर यह स्मरण रखना चाहिए कि लूट करते समय शिवाजी किसीको अनावश्यक कष्ट नहीं देता था। ग़रीब, बालक, स्त्री, वृद्ध और किसानों को उसने कभी तकलीफ़ नहीं होने दी। जब किसी स्थान में वह लूट के लिए पहुँचता, तो वहाँ के मुख्य-मुख्य लोगों को बुलाकर उस गाँव की हैसियत के अनुसार द्रव्य माँगता था। यदि इस सीधी रीति से वे लोग द्रव्य दे देते, तो वह वहाँ से चुपचाप चला जाता; परन्तु यदि माँगा हुआ द्रव्य देने से इन्कार करते, तो उसके सिपाही बस्ती में घुस जाते और ज़बरदस्ती द्रव्य ले आते थे। यदि कहीं सशस्त्र प्रतिकार होता, तो शिवाजी के लोगों को भी उनका उसी प्रकार सामना करना पड़ता। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि शिवाजी की लूट स्वराज्य-प्राप्ति के लिए एक प्रकार के कर की वसूली ही थी; क्योंकि, यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है कि, उसके "स्वराज्य" में यह काम बिलकुल न होने पाता था। इतिहास हमें बतलाता है कि अनेक शासकों को अपने राज्य की रक्षा के लिए लोगों से ज़बरदस्ती द्रव्य लेना पड़ा है। जब उनका वह काम उचित हो सकता है, तब किस नीति के अनुसार स्वराज्य-स्थापना के लिए ज़बर्दस्ती द्रव्य लेने का शिवाजी का काम अनुचित कहा जा सकता है? जिन लोगों से शिवाजी ने अपने कार्य के लिए ज़बरदस्ती द्रव्य लिया, वे तो उसे लुटेरा कहते ही हैं; परन्तु आश्चर्य तो यह है कि उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के शास्त्रीय इतिहास-लेखक उनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं! हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि शिवाजी की लूट की आय यथेष्ट होती थी और इससे उसका बहुत-सा काम चलता था। परन्तु इससे दो बातें सिद्ध होती हैं; एक तो शत्रु की शक्ति कम होती थी, और दूसरे उसकी निजी शक्ति बढ़ती थी।

८. आय के अन्य साधन और टकसाल—भूमि-कर और लूट की आय के अलावा शिवाजी की आय के कुछ अन्य साधन भी थे। उनमें से मुख्य तो कुछ कर थे, और कुछ विशिष्ट बातों में राजकीय अधिकार का अमल था।

यह हम ऊपर बतला ही चुके हैं कि शिवाजी अपना भूमि-कर बहुधा द्रव्य के रूप में लिया करता था। इसके लिए सिक्के ढालने की आवश्यकता थी। अतः राज्याभिषेक के साथ से उसने रायगढ़ में एक टकसाल जारी की, परन्तु अन्य राज्यों के सिक्कों का चलन उसने अपने यहाँ नहीं रोका। सभी प्रकार के असली सिक्के उसके राज्य में चलते थे।

९. शिवाजी की शासन-व्यवस्था के सामान्य नियम—शिवाजी की शासन-व्यवस्था के कुछ सामान्य नियम बहुत ही अच्छे थे। वह अपने सब कर्मचारियों को समय पर और नक़द वेतन दिया करता था। केवल एक-दो अपवादों को छोड़कर, उसने किसीको सरकारी काम के बदले में जागीर नहीं दी। उसके इस नियम की उत्तमता इतिहास से सिद्ध है। जागीर-प्रथा राज्य की नींव को ढीली कर देती है और अन्त में उसे नष्ट कर डालती है। हम आगे चलकर देखेंगे कि जब महाराष्ट्र के शासकों ने शिवाजी के इस अच्छे नियम का उल्लंघन किया, तब उन्होंने महाराष्ट्र के विनाश का बीज बो दिया। अस्तु। शिवाजी का एक दूसरा अच्छा नियम यह था कि वह किसी को सरकारी नौकरी वंश-परम्परा से नहीं देता था बल्कि योग्यता देखकर देता था। वंश-परम्परा से नौकरी देना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता, इस बात का क्या निश्चय है कि पुत्र भी पिता के समान योग्य हो? यदि इतिहास के आधार पर कुछ कहा जा सकता है, तो हम यही कहेंगे कि योग्य पिता का पुत्र बहुधा अयोग्य हुआ करता है। इसलिए सरकारी नौकरी वंश-परम्परा से चलाना अयोग्य लोगों के हाथ में शासन के सूत्र देना है। इससे राज्य नष्ट हुए बिना नहीं रहता। पेशवों ने जागीर की प्रथा जारी करके सरकारी नौकरी को आनुवंशिक करने की प्रथा भी जारी करदी। इसके जो बुरे परिणाम हुए, वे आगे चलकर इतिहास में हमें दीख पड़ते हैं। शिवाजी तो अपने बड़े-बड़े कर्मचारियों का भी तबादला किया करता था और कभी-कभी अधिक योग्य पुरुष मिलने पर पहले के कम योग्य लोगों के बदले में उन्हें रख लेता था। कार्य का कौशल ही उसके पास पुरस्कार का कारण होता था। शिवाजी ने जिस तीसरे अच्छे नियम का पालन किया, वह है धार्मिक

सहिष्णुता। इस बात में उसमें और उसके प्रतिस्पर्धी औरंगज़ेब में ज़मीन-आसमान का अन्तर देख पड़ता है। कहाँ तो वह शिवाजी जो हिन्दू होने पर भी, हिन्दू-धर्म का प्रति-पालक और उद्धारक कहलाने पर भी, अपनी आँखों के सामने हिन्दुओं पर होते हुए अत्याचार देखते रहने पर भी, सब धर्म के लोगों को एकसा समझता था; और कहाँ वह औरंगज़ेब, जिसकी अधिकांश प्रजा हिन्दू होने पर भी वह उनपर अपना धर्म ज़बरदस्ती लादना चाहता था! शिवाजी ने कभी मुसलमान-धर्म की निन्दा नहीं की। कुरान हाथ में पड़ने पर सम्मान-पूर्वक वह उसे किसी मुसलमान को दे देता था। उसने कभी कोई मस्जिद नहीं ढाई, उलटे, हिन्दू मन्दिरों के समान उनके भी खर्च का बन्दोबस्त उसने कई बार कर दिया। हिन्दुओं के समान मुसलमानों को भी उसने अपनी नौकरी में रक्खा और कुछ को तो उसने काफ़ी ऊँचे पद भी दिये। अब इससे औरंगज़ेब की तुलना कीजिए। हिन्दुओं के वेदों का पठन-पाठन उसने बन्द किया, उनकी पाठशालायें बन्द कीं, उनके सैकड़ों मन्दिर ढा दिये और मूर्तियाँ नष्ट करवादीं; सम्भवतः वह हिन्दुओं को नौकरी देता ही न था, और यदि कभी देता ही तो उसके साथ अथवा उसके सिर पर एक मुसलमान अवश्य रख देता था। उसने हिन्दुओं को मुसमान-धर्म में परिवर्तित करने का प्रयत्न कई बार किया और इस हेतु से उसने उनके ऊपर जज़िया कर का भारी बोझ लाद दिया। अतएव कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी सदैव अपने कार्यों में सफल होता रहा और औरंगज़ेब के भाग्य में सदैव विफलता बनी रही। उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि शिवाजी बहुत ही उत्तम व्यवस्थापक और शासक था। उसका सारा जीवन अशान्ति में बीता, परन्तु वह सदैव अपने मन में शान्त बना रहता था। इस कारण वह बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी बात की ओर ध्यान दे सकता था। उसने अपने एक सैनिक अधिकारी को शक संवत् १५९६ की वैशाख शुद्ध पौर्णिमा (९ मई सन् १६७४) को जो पत्र लिखा, उसमें उसने इस बात की ताकीद की है कि लोगों पर ज़ोर-ज़बरदस्ती किसी प्रकार की न करनी चाहिए; परन्तु यह भी लिखा है कि घास-दाना आदि का प्रबन्ध पहले से ही कर रखना चाहिए, और रात को छावनी में किसी प्रकार की आग न रहने देनी चाहिए। इस हेतु से उसने तमाखू पीने की भी मनाई कर दी थी। इतना ही नहीं, उसने दीये भी रखने की मनाई कर दी थी, क्योंकि कभी-कभी चूहे उनकी बत्ती ले जाते हैं और उससे आग लगने का डर रहता है। इन बातों से यह स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कामों में कितनी बारीकी से ध्यान रखता था। इसी कारण उसे कभी अपने काम में विफलता न हुई। सारे अच्छे व्यवस्थापक छोटी-बड़ी सभी बातों की ओर शान्त चित्त से ध्यान दिया करते हैं, तभी वे अपने कार्य में सफल होते हैं। शिवाजी भी ऐसे ही पुरुषों में से एक था और इसी कारण वह औरंगज़ेब, कुतुबशाह और आदिलशाह जैसे बड़े-बड़े शत्रुओं के बीच रहने पर भी अपना काम अच्छी तरह से कर सका और एक छोटे से जागीरदार से स्वतंत्र राज्य का संस्थापक हो सका। *

* सस्ता मण्डल (अजमेर) से शीघ्र प्रकाशित होनेवाली 'मराठों का उत्थान और पतन' पुस्तक से गृहीत।
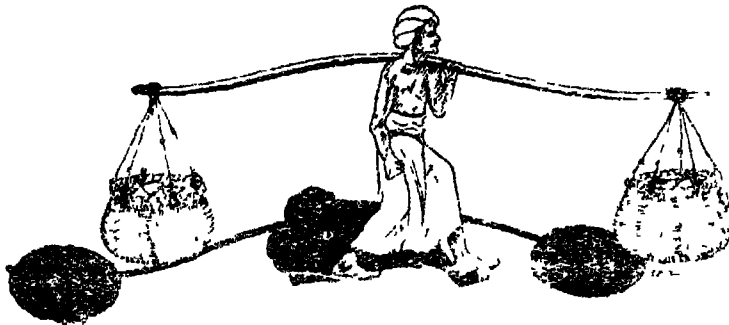
१

सूर्य-शिशु रजनी के अलौकिक आँचल में छिपा जा रहा था। नीलम-निर्मित आभामय आकाश में तारिकायें झिलमिल-झिलमिल हँस रही थीं। गगन-स्पर्शी गिरि-शृंगों के पीछे छिपा हुआ और पूर्व दिशा को कुछ-कुछ आलोकित करता हुआ हिमकर की मधुमय किरणों का झिलमिल प्रकाश अन्धकार से मिलकर कृष्ण-शिला-खण्ड से टकराकर उछलती हुई जल की सफ़ेद बूँदों के समान दिखाई पड़ रहा था। हरित-द्रुम-दल की सुन्दर शाखाओं के सुकोमल पल्लवों में से छन-छनकर चन्द्रमा की विरली किरणें मख़मली घास से लदी हुई भूमि पर पड़ रही थीं। शीतल-समीर से अठखेलियाँ करती हुई लतायें चन्द्र-ज्योत्स्ना के अविरल प्रवाह में पड़ी मानों तैर रही थीं। एक छोटी-सी तलैया के रजत-कान्ति-मय वक्षस्थल पर नन्हीं-नन्हीं-सी लहरियाँ कुमुद-समूह को छेड़कर चंचल गति से इठला-इठलाकर नृत्य कर रही थीं। कुमुद-समूह खिलती पंखुड़ियों से मुस्करा-मुस्कराकर विकसित हो रहे थे।

ज्योत्स्ना में भीगे हुए एक शिला-खण्ड पर बैठी हुई एक सुन्दर युवती अविरल अश्रु-धार से अपना आँचल भिगो रही थी। किसी अमित व्यथा ने उसके सुकुमार हृदय में आग-सी लगा दी थी। अंतर की उस धधकती हुई भीषण ज्वाला से प्राणों की असीम वेदना गरम उच्छ्वासों में परिणत हो-हो कर बाहर निकल रही थी।

लता-वितानों से ढके हुए एक नैसर्गिक-निकुञ्ज में, जिसमें शस्य-सुमनों की सरस सुगन्ध से सिक्त समीर की लहरें नृत्य कर रही थीं, कोई वेदना-मिश्रित स्वर से गा रहा था। गीत का अर्थ था, 'मेरी अतीत की सुखहीन स्मृतियो! मैं तुम्हारा सहर्ष स्वागत करता हूँ। मेरा हृदय तुम्हारे स्वप्न में डूबना चाहता है, सुख के दिन स्मरण कर रोना नहीं चाहता।'

तलैया की लहरें तट से टकरा-टकराकर विलीन हो रही थीं, मानों वे किसी व्यथित-हृदय को तटस्थ बालू में छिपाकर रख रही हों। लहरों की कल-कल ध्वनि में असीम वेदना भरी थी। पागल समीर दुख-पीड़ित स्वर से सन्-सन् कर रहा था।

२

"बन्दी!"

"क्या है?"

"मुक्त होना चाहते हो?"

"चाहता हूँ, किन्तु अपनी इज़्ज़त तुम्हारे हाथों बेचकर नहीं।"

लोहे की मज़बूत छड़ों से घिरा हुआ बन्दीगृह था। दीपक के धुँधले प्रकाश में जंगले के सहारे खड़ा हुआ एक बन्दी युवक बाहर की ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। बन्दीगृह के एक कोने में टाट के चिथड़े पर दो-एक रोटी के सूखे हुए टुकड़े पड़े थे और पास ही एक टूटी हुई चारपाई रक्खी थी। बाहर घना अंधकार था। बन्दी युवक से बातें करनेवाले की शकल नहीं दिखाई देती थी।

"ख़ूब सोच लो; तुम्हें एक घण्टे का समय और देता हूँ।"—जंगले के बाहर से किसी ने कहा।

बेड़ियों की जंजीर झन-झन करके बज उठी। बन्दी चुपचाप चारपाई पर लेट गया। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें दीपक की टिमटिमाती हुई लौ पर जमी हुई थीं। हृदय धायँ-धायँ जलरहा था। हवा का एक हलका-सा झोंका आया। दीपक की लौ ज़ोर से तड़पकर बुझ गई; साथ ही साथ बन्दी के हृदय का आशा-प्रदीप भी बुझ गया।

बन्दी असह्य मानसिक वेदना से छटपटाने लगा। उसके होंठ हिलने लगे। कुछ अस्पष्ट वाक्य सुनाई देने लगे। "ऐ मेरी यन्त्रणा, सम्हल—कुछ शान्त हो। यदि तू मुझे जलाना ही चाहती है तो एकदम फूँककर राख कर दे। इस तरह धीरे-धीरे न जला। ....तू यह न समझ कि मैं तेरे कोड़े की मार से व्याकुल होकर अपना मान और अपनी आन मिट्टी में मिला दूँगा,......उसे...उस सती को एक नर-पिशाच के हाथों में सौंप दूँगा।......तुझे अधिकार है, लगा दे आग, झुलसा दे मुझे, किन्तु यह स्वप्न में भी न सोचना कि मैं तेरे चंगुल में फँस जाऊँगा।"

"क्या बक रहे हो बन्दी?" जंगले के बाहर से आवाज़ आई,—"रोज़ पागलों की तरह क्या बड़बड़ाया करते हो? अब मैं तुमसे अपने प्रश्न का अन्तिम उत्तर लेने आया हूँ। बोलो, क्या कहते हो?"

बन्दी चुप था। नीरव, निस्तब्ध अन्धकार में उसकी गर्म-गर्म उच्छ्वासों का सायँ-सायँ शब्द स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

आगन्तुक ने ज़ोर से कहा—"अभागे क़ैदी! अब भी समय है, कह दे; मैं तैयार हूँ।"

फिर वही। बन्दी ने उत्तर नहीं दिया। एक गन्दे कोने में आगन्तुक की आवाज़ की प्रतिध्वनि के स्वर में स्वर मिलाकर झींगुर झङ्कार कर उठे। झुँझलाकर आगन्तुक वापस लौट चला। दरवाज़े की साँकल झनझना उठी। ताले में चाबी घुमाने के शब्द के साथ ही पूर्ण निस्तब्धता छा गई।

२

"भूरासिंह!"

"सरकार।"

"आज रात तक वह काम पूरा होजाना चाहिए।"

विलासपुर के ठाकुरसाहब अपने ख़ास कमरे में बैठे हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। सामने उनका सबसे प्यारा नौकर भूरासिंह हाथ बाँधे खड़ा था। ठाकुरसाहब की विशेष कृपा के कारण समस्त विलासपुर में भूरासिंह की धाक जमी हुई थी। कमरे की छत और दीवारों पर सुनहले बेल-बूटे बने हुए थे, और स्थान-स्थान पर सुन्दर तैल-चित्र टँगे हुए थे। फ़र्श पर कारचोबी का एक बहुमूल्य कालीन बिछा हुआ था।

भूरासिंह को चुप देख ठाकुरसाहब उठ खड़े हुए और पास की आलमारी में से २५०) रु० के नोट निकाल उसके हाथ में रखते हुए बोले, "बस, अब तो काम बन जायगा। मुझे तेरा पूर्ण विश्वास है। देखें, आज तू किस ख़ूबसूरती से इस काम को पूरा करता है।"

भूरासिंह ने झुककर सलाम किया और दरवाज़े पर का मख़मली पर्दा हटाकर बाहर निकल गया।

❀ ❀ ❀

बन्दी जंगले की छड़ पकड़कर बाहर देख रहा था। बाहर ठाकुरसाहब एक कुर्सी पर बैठे हुए थे। एक सुन्दरी युवती खम्भे से बँधी हुई तड़प रही थी, और उसके पास भूरासिंह चाबुक लिये खड़ा था। युवती की पीठ लहू-लुहान हो रही थी।

ठाकुरसाहब का इशारा पाकर भूरासिंह ने

चाबुक उठाया। युवती काँप उठी। उसने घबराई हुई आवाज़ से कहा—"मञ्जूर है।" बन्दी के कलेजे में बरछी-सी चल गई।

भूरासिंह ने युवती के बन्धन खोल दिये। ठाकुर उसकी ओर बढ़े।

"आह! पिशाचिनी करुणा—," कहकर बन्दी ने अपना सिर जंगले पर दे मारा। उसके सिर से रक्त की धारा बहने लगी।

सहसा करुणा ने पलक झपकते ही अपनी कुर्ती में से एक कटार निकालकर हृदय में भोंक ली। बन्दी की बुझती हुई आँखें थोड़ी देर के लिए चमक उठीं। उसने दम तोड़ते हुए देखा, करुणा के हृदय से रक्त का फव्वारा छूट रहा था। यह थी करुणा के पवित्र हृदय की परख!

पोलैण्ड का मुक्ति-यज्ञ

[श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, बी० एस-सी०, सी० टी०]

यूरोप के मानचित्र में बाल्टिकसागर से कार्पेथियन-पर्वत-श्रेणी तक फैला हुआ समतल भूमि का एक विस्तृत भाग दृष्टिगोचर होता है। यही पोल जाति की प्यारी जन्मभूमि पोलैण्ड है। पोलैण्ड का क्षेत्रफल लगभग १,५०,००० वर्गमील तथा जन-संख्या २,७५,००,००० है। यह देश कृषि-प्रधान है और यहाँ गेहूँ, जई, चुकन्दर, आलू इत्यादि बहुतायत से पैदा होते हैं। इस देश में कोयला, नमक और मिट्टी के तेल की खानें भी हैं। राजधानी वारसा है। लोज़, लेम्बर्ग और क्रैको मुख्य व्यापारिक नगर हैं।

रूसी, सर्बियन, ज़ेक इत्यादि लोगों की तरह पोल लोग भी आर्य जाति की 'स्लाव' शाखा के हैं। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग कब पोलैण्ड आकर बसे, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान पोलैण्ड-निवासी कमसे कम दो सहस्र वर्ष पूर्व पोलैण्ड में बसने वाली जाति के वंशज हैं। उस समय से अबतक भाषा, रहन-सहन, इत्यादि में इतना कम परिवर्तन हुआ है कि दसवीं शताब्दी का पोल भी आजकल के पोल को भली प्रकार समझ सकता है।

रोमन इतिहासकारों ने स्लाव जाति का उल्लेख किया है, जिससे मालूम होता है कि वे लोग इस देश से परिचित अवश्य थे परन्तु इसको विजय करने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। यह जाति अत्यन्त शान्ति-प्रिय थी। भेड़ें आदि पालना और मछली मारना इत्यादि इनकी मुख्य जीविका थी। स्त्रियाँ चरखा कातकर वस्त्र बुना करती थीं और पुरुष जंगलों में शिकार खेलने के लिए जाया करते थे। कुछ लोग जंगलों को साफ़ करके खेती-बारी भी करते थे। इनका देश राइन नदी तक फैला हुआ था, परन्तु दुर्भाग्य-वश इनके पड़ोसी युद्ध-प्रिय जर्मन लोग थे, जो इनके अधिकृत उर्वरा भूमि पर दाँत लगाये हुए थे। इसके लिए उन्होंने सहज ही एक बहाना ढूँढ निकाला, अर्थात् 'काफ़िर' स्लाव लोगों के विरुद्ध धर्म युद्ध की घोषणा कर दी! जिसने ईसाई-धर्म की दीक्षा नहीं ली उसीको तलवार के घाट उतार दिया गया और उसकी भूमि ज़ब्त करली गई! इस प्रकार जर्मन लोग अपनी सीमा धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ाने लगे—परन्तु, अन्त में, पोल लोगों ने उनके मार्ग में रोड़ा अटका कर उनकी गति को रोक दिया।

जर्मनों के आक्रमण के भय ने पोलैण्ड के शान्तिप्रिय चरवाहों को हथियार चलाना और अपने को एक नेता के अधिनायकत्व में संगठित होकर रहना सिखला दिया। पोलैण्ड में एक कहानी प्रचलित है। इसके अनुसार वहाँ की एक राजकुमारी ने जर्मन राजकुमार से पाणिग्रहण करने की अपेक्षा 'विस्चुला' नदी में डूबकर प्राण-त्याग करना श्रेयस्कर समझा, क्योंकि इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करके जर्मन लोग वहाँ अपने पैर जमाना चाहते थे। इसी राज-

कुमारी वैण्डा के पिता राजकुमार क्राक ने क्रैको नगर की स्थापना की थी और नगर-निवासियों को कष्ट देनेवाले एक भयङ्कर राक्षस का वध किया था। प्रिंस क्राक और उसकी पुत्री वैण्डा के स्मारक समाधि स्तूप क्रैको के पास अबतक अवस्थित हैं।

दसवीं शताब्दी के अन्तिम काल में पोलैण्ड ईसाई-धर्म में प्रविष्ट हो गया। इस समय वहाँ पर प्रिथस्ट-वंश के मीज़कोई नामक राजा का राज्य था। इनके वंशज चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक पोलैण्ड पर शासन करते रहे। इनमें बोलेस्लास महान् नामक एक राजा हुआ, जो बड़ा बुद्धिमान था, परन्तु अभाग्यवश उस समय के लोग उसके उन्नत भावों को समझ नहीं सके। उसका विचार था कि सारी स्लाव जातियों को संगठित करके एक संयुक्त राज्य स्थापित किया जाय, जो जर्मन और ग्रीक लोगों के आक्रमणों का मुक़ाबला कर सके; परन्तु वह अपने प्रयत्नों में कृतकार्य नहीं हो सका, और पोलैण्ड बार-बार आक्रमणकारियों द्वारा सताया गया।

पोल जाति की स्वतंत्रता को अपहरण करने का इरादा रखने वाले केवल जर्मन लोग ही नहीं थे। तेरहवीं शताब्दी में दूसरी ओर से तातारों के दल के दल रूस को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए एशिया की ओर से पोलैण्ड पर चढ़ आये और पश्चिमीय यूरोप में घुसने का उपाय करने लगे। परन्तु वहाँ उनको मुँह की खानी पड़ी। पोलैण्ड ने इस समय यूरोप के प्रवेश-द्वार पर एक विश्वस्त पहरेदार की भाँति अपने कर्त्तव्य का पालन किया और यूरोपीय सभ्यता को बर्बर जातियों के चंगुल में फँसकर नष्ट होने से बचा लिया। यूरोप की शान्ति के लिए पोलैण्ड ने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं, अनेक प्रयत्न किये, और नानाप्रकार की यन्त्रणायें सहन कीं; परन्तु इन सबका बदला उसको क्या मिला?

पोलैण्ड में अबतक कई रिवाज ऐसे प्रचलित हैं, जो प्राचीनकाल के तातारी आक्रमणों की याद दिलाते हैं। क्रैको में प्रतिवर्ष कोनिक (छोटा अश्व) नाम का एक उत्सव मनाया जाता है, जो मिसिम्स्की नामक एक वीर के अद्भुत वीरत्वपूर्ण कार्य का स्मारक माना जाता है। इस बहादुर ने एक रात्रि को तातारों के आक्रमण के समय घोड़े पर चढ़कर गाँव-गाँव के लोगों को जगाकर सचेत किया था और इस प्रकार क्रैको को आक्रमणकारियों से बचाया था। आजकल जो त्योहार मनाया जाता है उसमें एक किसान प्राचीनकाल के योद्धाओं की पोशाक पहनकर तथा हाथ में एक भुस भरी हुई नक़ली गदा लेकर रात-भर क्रैको की गलियों में शोर मचाता है और उसके स्वागत के लिए बिगुल और भेरियाँ बजाई जाती हैं।

पोलैण्ड के सम्पूर्ण इतिहास में सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि वहाँ आजतक किसीको उसके धार्मिक भावों के कारण सताया नहीं गया। यहाँ तक कि पोलैण्ड के निवासियों ने पश्चिमीय यूरोप से निर्वासित यहूदी और इंग्लैण्ड से भागे हुए प्रोटेस्टेण्टों तक को अपने यहाँ आश्रय दिया। उस समय पोलिश कामनवेल्थ में लिथूनियन, थीनियन, जर्मन, प्रशियन, कोरलेण्डर, यहूदी, तातार, अर्मीनियन इत्यादि जातियों के लोग साथ-साथ बसते थे तथा कोई किसी को शुद्ध करने का इच्छुक नहीं था। जर्मन लोगों के लिए जर्मन क़ानून था, यहूदी लोगों का यहूदी क़ानून के अनुसार न्याय किया जाता था, अर्मीनियन लोगों पर अर्मीनियन क़ानून लागू होता था, इत्यादि। यदि कोई व्यक्ति राज्य के हित का कोई कार्य करता था तो वह माननीय (Noble) समझा जाता था और उसे मताधिकार के अतिरिक्त राज्यपद के लिए चुने जाने का भी अधिकार प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार मान्यवरों की संख्या बढ़ते-बढ़ते कुल जन-संख्या की दस प्रतिशत तक आ पहुँची थी। पोलैण्ड का राजा एक प्रकार से जनता द्वारा चुना हुआ आजन्म के लिए एक सभापति के समान होता था। पहले तो एक ही वंश के राजकुमार चुनाव के योग्य समझे जाते थे, परन्तु सिजिसमण्ड आगस्टस की मृत्यु के उपरान्त कोई भी 'मान्यवर' पोल अथवा विदेशी पोलैण्ड के सिंहासन के लिए उम्मीदवार हो सकता था। परिणाम यह हुआ कि अनेक ऐसे विदेशी राजकुमार पोलैण्ड के शासनाधिकारी हुए, जिनका राज्य बिलकुल असफल रहा। पोलैण्ड का अन्तिम महान् राजा जॉन सोबियस्की हुआ, जो यूरोप के इतिहास में 'ईसाई-धर्म का रक्षक' के नाम से प्रसिद्ध है। सोबियस्की की मृत्यु के पश्चात् क्रमशः दो

जर्मन राजकुमारों ने राज्य किया। इन्होंने देश में अनाचार फैला दिया, जिससे पोलैण्ड-भर में गड़बड़ मच गई। इनमें से एक ने पोलैण्ड के विरुद्ध एक षड्यन्त्र भी किया, जिसके कारण देश में गृह-युद्ध हो गया और उसकी शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि वह अपने पड़ोसियों की गृद्ध-दृष्टि का शिकार हो गया। १७७२ ई० में रूस, जर्मनी, और आस्ट्रिया की फ़ौजें पोलैण्ड में घुस आईं और उन्होंने कई प्रदेशों पर अधिकार करके उसके क्षेत्रफल को ३,०४,००० वर्गमील से घटाकर २,१६,००० वर्गमील कर दिया।

यद्यपि देश बिलकुल अरक्षित हो गया था और सेना एवं धन का अभाव था, परन्तु पोल लोगों ने अपनी उन्नति का रास्ता निकाल ही लिया। १७७३ के लगभग एक शिक्षा-समिति की स्थापना की गई, जिसने सारे देश में स्कूल खुलवाये और अच्छी-अच्छी पाठ्य-पुस्तकों की रचना कराई। यह शिक्षा-समिति यूरोप-भर में सर्व-प्रथम मानी जाती है। कुछ ही वर्षों में प्रशिया के द्वारा रुकावटें डाली जाने पर भी पोलैण्ड ने अपने व्यापार में आशातीत उन्नति करली और देश में सड़कों का जाल-सा बन गया। १७९१ में एक नई शासन-योजना पास की गई, जिसके अनुसार प्रत्येक पोल एक स्वतंत्र नागरिक समझा जाने लगा और प्रत्येक बालक के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध हो गया। परन्तु यह सब निरर्थक सिद्ध हुआ। रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया ने फिर दमन आरम्भ कर दिया। १७९३ में पोलैण्ड का दुबारा बटवारा किया गया और पोल लोगों ने जीवन-मरण का संग्राम छेड़ दिया।

थैड्यूस कोसियस्को के सेनापतित्व में पोलैण्ड अपनी आपत्तियों का मुक़ाबला करने पर उतारू हो गया। ग़रीब और अमीर, कृषक और ज़मींदार, सब लोग स्वयंसेवक-सेना में भर्ती होने लगे। इस युद्ध में किसी बाहरी शक्ति ने पोलैण्ड का साथ नहीं दिया। यद्यपि पोलैण्ड-निवासी अत्यन्त वीरता और साहस से लड़े, परन्तु उनकी पराजय हुई। कोसियस्को भी अत्यन्त घायल होकर बन्दी हो गया। रूसी फ़ौजों ने वारसा के निकट प्रागा नामक स्थान पर धावा कर दिया और सहस्रों पुरुष, स्त्री और बच्चों की निर्दयता-पूर्वक हत्या की। वारसा शत्रुओं के हाथ में चला गया। सन् १७९५ में पोलैण्ड का अन्तिम विभाजन किया गया, जिसके फल-स्वरूप यूरोप के नक़शे में उसका अस्तित्व ही न रहा। पोलैण्ड की स्वतन्त्र सत्ता पूर्णतया नष्ट कर दी गई।

परन्तु नक़शे में से पोलैण्ड का नाम निकाल दिया गया तो क्या? वह तो प्रत्येक पोल के हृदय में विराजमान था! उन लोगों के लिए तो प्रत्येक घर पोलैण्ड था, प्रत्येक बच्चा पोलैण्ड था। केवल पोल होने ही के कारण उनको अगणित असह्य यातनायें भुगतनी पड़ती थीं, परन्तु फिर भी उनके राष्ट्रीय भाव कुचले न जासके। आस्ट्रिया ने तो—जिसका कि थोड़े से भाग पर अधिकार था—उनको कुछ स्वतंत्रता भी दे रक्खी थी, परन्तु रूस और जर्मनी तो राष्ट्रीयता को किसी रूप में भी रहने देना नहीं चाहते थे। पोल लोग न तो अपनी भाषा बोल सकते थे, न अपने राष्ट्रीय गीत गा सकते थे, और न अपनी पुस्तकें ही पढ़ सकते थे। कहा जाता है कि कितने ही पोल बच्चे जिन्होंने जर्मन भाषा में प्रार्थना करना स्वीकार नहीं किया, पीट-पीट कर मार डाले गये। देश द्रोहियों को शत्रुओं की ओर से खूब प्रोत्साहन मिलता था—कोई पोल सरकारी नौकरी में तबतक भर्ती नहीं हो सकता था, जबतक कि वह अपने देश का शत्रु होने की हामी नहीं भर लेता था!

पोल लोगों का जीवन इस समय इतना कष्ट-मय था कि पश्चिमीय यूरोपवाले अपने पड़ोस में ही होनेवाली इस घोरतर यातना का स्वप्न में भी अनुभव नहीं कर सकते थे। रूस ने अपने अधिकार-क्षेत्र में एक विशेष जासूसी विभाग खोल रक्खा था और कोई पोल इन खुफ़िया-ओं की क्रूर दृष्टि से बचने नहीं पाता था। पुलिस रास्ता चलते हुए लोगों को रोक कर उनकी तलाशी लेती थी और यदि उनके पास कुछ संदेहास्पद वस्तु निकल आती तो उनको सीधा जेलख़ाने भिजवा देती थी। पुलिस के सिपाही चाहे जब घरों में घुस आते थे, यहाँ तक कि रात को भी लोग घरों में से निकाल दिये जाते थे और कुटुम्ब का एक न एक आदमी सज़ा के लिए अलग कर दिया जाता था। लोग बिना कारण ही गिरफ़्तार कर लिये जाते और महीनों जेलों में सड़ा करते थे, क्योंकि कोई सुननेवाला ही न था।

सहस्रों पोल रूसी जेलों की गीली और अन्धेरी कोठरियों में भूख और सरदी से तड़प रहे थे, तथा हज़ारों पोल साइबीरिया की खानों में कड़ी मिहनत करके अपनी ज़िन्दगी के दिन गिन रहे थे। उनका कोई अपराध था तो सिर्फ़ यही था कि वे अपने आपको 'पोल' कहते थे और पोलैण्ड के निवासी होने का दावा करते थे। वे अपनी मातृभूमि पोलैण्ड को अपने सब सुखों तथा अपने जीवन से भी अधिक प्रिय समझते थे। साइबीरिया को जानेवाली सड़क का नाम उन्होंने 'पोलिश गोलगोथा' अर्थात् 'पोलैण्ड के स्वर्ग का मार्ग' रख दिया था। इस सड़क के ऊपर होकर प्रतिवर्ष सहस्रों पोल रूसी अपराधियों के साथ-साथ जानवरों की तरह हाँक कर ले जाये जाते थे। इन क़ैदियों को रास्ते-भर पैदल चलना होता था। मार्ग के भयानक तूफ़ान, रक्त तक को जमा देनेवाली ठंडी हवायें, और अविरल हिम-वृष्टि—यह सब इन बेचारों को बिना उफ़ किये सहन करनी पड़ती थी। इसपर भी यदि कोई क़ैदी पिछड़ जाता तो घोड़ों पर सवार क़ज़्ज़ाक़ लोग सीसे की घुंडियाँ लगे हुए चमड़े के लम्बे-लम्बे कोड़ों से उसकी ख़बर लेते थे और भेड़ों के रेवड़ की तरह उन लोगों को घेर कर चलते थे। कभी-कभी कोई हतभाग्य थक कर सड़क के बीच में गिर पड़ता और सीसायुक्त कोड़े भी उसे उठाने में असमर्थ हो जाते। वह असहाय दीन वहीं ढेर हो जाता और उसका शरीर भेड़ियों के कलेवे के लिए छोड़ दिया जाता था।

साइबीरिया की खानों में ये लोग ठेलों से बाँध दिये जाते थे कि भाग न सकें और वहाँ उनको दस वर्ष से लगा कर आजन्म नारकीय यन्त्रणायें भोगनी पड़ती थीं। यदि कोई पहले छोड़ दिया जाता था तो केवल इस कारण कि पागल हो जाने से वह काम भी ठीक नहीं कर सकता था।

इस अरसे में पोल लोगों ने कई बार अपने को आततायियों के पंजे से छुड़ाने के प्रयत्न किये, परन्तु कृतकार्य न हो सके। १८३१, १८४६ और १८६३ में बड़े भारी-भारी विद्रोह हुए, परन्तु अमित हानि और अगणित मनुष्यों का बलिदान होने पर भी असफल रहे। प्रत्येक विप्लव के बाद घोरतर कष्टों की मात्रा में वृद्धि होती जाती थी। पर पोल साहित्य और कला ऐसे संकट में भी विकास को प्राप्त होती रही। जीवन के कटु अनुभवों ने वहाँ की कला में एक मर्म-स्पर्शी अभिव्यक्ति उत्पन्न करदी। १८३१ की क्रान्ति के समय में हो पोलैण्ड के सबसे बड़े कवि माने जाने वाले चॉपिन ने अपनी 'इटयूड' और 'प्रिल्यूड' नामक रचनायें लिखी थीं, जिनको सुनकर ज़ार निकोलस ने कहा था—'यह संगीत तो बड़ा भयानक है! यह तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसी ने सुन्दर गुलाब के फूलों में तोपें छिपा रक्खी हों।"

चॉपिन के अतिरिक्त और भी कई प्रसिद्ध कवि तथा चित्रकार इस समय में हुए। उन सबकी कृतियाँ देश-प्रेम की गहनतम अभिव्यक्ति हैं। कविताओं की प्रत्येक पंक्ति, चित्रों की प्रत्येक रेखा देशभक्ति के भावों से ओतप्रोत है। वह सारा साहित्य उस समय वर्जित घोषित कर दिया गया था, परन्तु फिर भी लोग उसको पढ़ते थे, क्योंकि उससे उनके हृदय में स्फूर्ति का उदय होता था। उनके लिए पोलैण्ड साक्षात् ईसा का अवतार था, जो पहले सताया जाकर तथा फाँसी पाकर फिर एक नवीन ज्योति के साथ पुनः जीवन को प्राप्त हुआ। उनके विचार से पोलैण्ड की सारी आपत्तियाँ एक अग्नि के समान थीं, जिसमें तपाया जाकर वह स्वर्ण की भाँति अधिक उज्ज्वल तथा आभायुक्त सिद्ध होने वाला था। मिकाइविक्ज़ नामक तत्कालीन कवि ने लिखा है:—"मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि तुम्हें विदेशी सभ्यता सीखने की आवश्यकता नहीं है × × × तुममें से प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में राष्ट्र के भावी नियमों और उसकी सीमाओं के नाप का बीज वर्तमान है। जितना तुम अपनी आत्मा को उन्नत और विशाल बनाओगे उतना ही तुम अपने नियमों को उन्नत और अपने राज्य की सीमाओं में वृद्धि करोगे।"

कवियों का यह सुख-स्वप्न शीघ्र ही सत्य प्रमाणित हो गया, अर्थात् पोलैंड ने अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करली। परन्तु ऐसा होने से पूर्व उसे एक और परीक्षा देनी पड़ी, जो कदाचित् पिछली सब परीक्षाओं से कठोर निकली। गत यूरोपीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर पोलैण्ड के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के अधिकारियों (जर्मनी, आस्ट्रिया

और रूस) ने पोलैण्ड को अपनी-अपनी सहायता के लिए प्रलोभन देना चाहा। प्रत्येक ने उसको स्वतंत्र कर देने का वचन दिया। परन्तु पोल लोगों ने उनका विश्वास नहीं किया। इसपर उनको विवश किया गया कि वे जर्मनी, आस्ट्रिया या रूस की ओर से युद्ध करें; और चूँकि जर्मनी और आस्ट्रिया रूस के प्रतिद्वन्द्वी थे, इस कारण पोल लोगों को अपने भाइयों के ही विरुद्ध अस्त्र उठाने पड़े। ऐसे अवसरों पर अनेक बार पोलैण्ड की फ़ौजों ने अपने भाइयों से लड़ने से इन्कार कर दिया और हथियार फेंक दिये। यद्यपि ये बाग़ी सैनिक तुरन्त ही पीछे रहनेवाली सेनाओं द्वारा भून डाले गये, परन्तु इसका असर भी उलटा ही हुआ। पोलिश सेनाओं के अधिकांश सिपाही भागकर फ्रांस, इटली आदि देशों को चले गये और वहाँ मित्र राष्ट्रों की सेनाओं में भर्ती हो गये। इधर तो पोलिश सेनायें फ्रांस के रणक्षेत्र में युद्ध कर ही रही थीं, उधर जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस ने पोलैण्ड को अपना युद्ध-क्षेत्र बना रक्खा था। इन्होंने सैकड़ों नगर और ग्राम जला कर राख कर दिये और लाखों लोगों के घर-बार नष्ट कर डाले। तात्पर्य यह है कि चार वर्ष के युद्ध ने पोलैण्ड का बिलकुल सत्यानाश कर दिया।

इन सारी विपत्तियों का फल पोलैण्ड को अच्छा मिला। १९१९ में वर्सेल्स की सन्धि के अनुसार पोलैण्ड एक स्वतंत्र और स्वाधीन राज्य बन गया। जो तीनों भाग क्रमशः जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस के क़ब्ज़ों में थे वे पुनः एक कर दिये गये। परन्तु फिर भी इस नवीन पोलैण्ड का क्षेत्रफल १७७२ के पोलैण्ड का आधा ही रहा।

स्वतंत्रता की घोषणा हुए पूरा वर्ष भी न बीतने पाया था कि १९२० की ग्रीष्म ऋतु में बोलशेविक सेनाओं ने पोलैण्ड को घेर लिया और जो कुछ पहली मारकाट से बच रहा था उसका भी विध्वंस कर दिया। एक बार फिर इस बात की आवश्यकता हुई कि पोलैण्ड पश्चिमीय यूरोप को बोलशेविकों की बाढ़ से बचाये और सौभाग्यवश वह इस काम में सफल भी होगया। इस समय पोलैण्ड की सेनायें नष्टप्राय हो चुकी थीं, सैनिकों का अभाव था; परन्तु स्त्रियों, बालकों और वृद्धों ने आगे आकर स्थिति को सम्हाल लिया। स्त्रियों की एक नियमित सेना सरहद पर युद्ध कर रही थी। सैकड़ों स्त्रियाँ और कुमारियाँ पुरुषों का वेश धारण करके युद्ध में अग्रसर हुईं। जो पोल हथियार उठाने के योग्य था वही देश की रक्षा के निमित्त दौड़ पड़ा। इस समय विशेषतया बालचर बालक-बालिकाओं (बायस्काउट और गर्ल गाइड) ने जो साहस के काम किये, वे वर्णनातीत हैं।

निदान बोलशेविकों की पराजय हुई और पोलैण्ड को देश में शांति स्थापित करने और अपनी दशा सुधारने का अवसर प्राप्त हुआ। पोलैंड की वर्तमान राज्य-प्रणाली प्रजा-सत्तात्मक है, जिसमें एक प्रधान होता है और एक पार्लमेंट। पार्लमेंट के दो चैम्बर होते हैं। एक चैम्बर का चुनाव २१ वर्ष से ऊपर के स्त्री-पुरुषों के द्वारा होता है, और दूसरे चैम्बर अर्थात् सीनेट को ३० वर्ष की अवस्था से ऊपर वाले स्त्री-पुरुष चुनते हैं। प्रारम्भ में पोलैण्ड-निवासियों को राज-कार्य चलाने में बड़ी असुविधायें हुईं; क्योंकि एक तो सारा देश उजड़ चुका था, दूसरे धन का नितान्त अभाव था, और तीसरे देश के नेताओं को राज-कार्य का कुछ भी अनुभव नहीं था। फिर भी जिस प्रगति से पोलैण्ड ने अपनी अवस्था को सुधार लिया, वह आश्चर्य में डालने वाली है। नष्टप्रायः नगरों और गाँवों का पुनरुद्धार हो गया है। स्कूल और कारखाने नित्य नये बनते चले जा रहे हैं और व्यापार भी खूब उन्नति कर रहा है। सारांश यह है कि पोलैंड अपनी स्वतंत्रता का पूर्ण उपयोग कर रहा है और जो जातियाँ स्वतंत्रता के लिए युद्ध कर रही हैं उनके सामने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर रहा है।

यह पहले कहा जा चुका है कि पोलैण्ड कृषि-प्रधान देश है। अब भी वहाँ कृषि-कार्य जीविका का सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च साधन माना जाता है, वहाँ के कृषकों के लिए पोलैण्ड की मिट्टी एक बड़ी पवित्र और आदर की वस्तु है। जो दीन पोल अमेरिका इत्यादि को जीविका के निमित्त जाते हैं, वे थोड़ी-सी मिट्टी अपने साथ ले जाते हैं और उसको एक मूल्यवान वस्तु की भाँति सुरक्षित रखते हैं; मरने पर वह मिट्टी उनके हृदय पर रखकर उनके शरीर के साथ ही दफ़न कर दी जाती है। इस बात से पता लगेगा कि पोलैण्ड-

वासियों का अपनी जननी-जन्मभूमि के प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम है कि मरते समय भी वे उससे पृथक् होना नहीं चाहते। धन्य है वह देश, जहाँ के निवासियों के हृदय में अपने देश के प्रति ऐसा अद्भुत स्नेह है!

आजकल सारा देश पूरी शक्ति से अपनी गई हुई सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने में लगा हुआ है। जहाँ १९१९ में बेकारों की संख्या २० लाख से ऊपर थी, वहाँ अब यह कुछ सहस्र से अधिक नहीं है। दफ्तरों में तख्ते लगे हुए हैं, जिनपर लिखा है—"अपना काम करो और जाओ—समय मूल्यवान है।" पोल लोग समय के मूल्य को जान गये हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि जितना समय व्यर्थ जायगा वह उनके जीवन से भी अधिक प्रिय पोलैण्ड के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। कहावत है कि जितना ही किसी वस्तु के लिए हम कष्ट उठाते हैं उतनी ही अधिक वह वस्तु हमको प्रिय होती है। पोलैण्ड वालों ने अपने देश की ख़ातिर अपार कष्टों को सहन किया है, फिर क्यों न वे उसे जी-जान से चाहें! पोलैंड का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसका जीवन लड़ाइयों में ही बीता है। प्राचीन काल में उसने तातारियों से लड़कर यूरोप को बचाया, मध्यकाल से आधुनिक काल तक वह स्वयं अपने अत्याचारी पड़ोसियों से लड़ता रहा और तबतक चैन नहीं लिया, जबतक कि उसको अपने अधिकार न मिल गये। आज भी वह युद्ध कर रहा है, परन्तु यह युद्ध पिछले सब युद्धों से भिन्न है। इस समय वह अपने क्षतिग्रस्त देश को समृद्धिपूर्ण बनाने और उसमें शान्ति स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। "परमात्मा सदा उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता अपने आप करते हैं।"

हमारा देश भी आज अपने मुक्ति-यज्ञ में प्रवृत्त है। आशा है, पोलैण्ड के मुक्ति-यज्ञ का यह संक्षिप्त इतिहास हमारे लिए उत्साह और स्फूर्ति का प्रेरक होगा और हम भी तबतक चैन न लेंगे, जबतक कि भारत अपने पूर्व-गौरव को न प्राप्त कर लेगा।

उत्सर्ग

[श्री भगवानस्वरूप 'शूल']

चढ़ा दो तन, मन, जीवन-सार।

छोड़ ध्यान अपमान-मान का, भूल सौख्य, प्यारा परिवार।
माँ के चरणों पर सुमनाञ्जलि-सा शीशों का दो उपहार॥
सूली, फाँसी, जेल, मार से कभी न मानो, [illegible], हार।
पैर न पीछे हटें युद्ध से, चाहे होवे वज्र-प्रहार॥
त्याग-तपस्या और अहिंसा के लेकर मंजुल हथियार।
उन्नत करो जननि का मस्तक, केवल प्रेम करे विस्तार॥

दो अमर बलिदान

[श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार]

सोलहवीं सदी का संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न सम्राट् अकबर अपने समस्त साम्राज्य का सैनिक बल और अनन्त धन व्यय कर प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप को अधीन करने के हज़ारों प्रयत्न करने पर भी छोटे-से मेवाड़ की स्वतंत्रता को छीनने में असमर्थ रहा। महाराणा प्रताप ने अपने अन्तिम समय में कुँवर अमरसिंह को अपने आदर्श का अनुकरण करने के लिए कटिबद्ध देखकर तथा सब सरदारों से मेवाड़ की रक्षा करने में आत्म-त्याग की प्रतिज्ञा लेकर सदा के लिए आँखें मूँद लीं। वीर महाराणा अमरसिंह भी पिता की आज्ञा का शिरोधार्य कर मेवाड़ में स्थापित शाही थानों पर आक्रमण करने लगे।

छोटा-सा मेवाड़ बरसों तक उस समय के सब से बड़े साम्राज्य का मुक़ाबला करते-करते अत्यन्त क्षीण हो चुका था। पिछली लड़ाइयों में हज़ारों राजपूत मारे जा चुके थे और अब बहुत कम सेना रह गई थी। लगातार लड़ाइयों के कारण और आराम न मिलने से भी राजपूतों में एक थकान-सी पैदा हो गई थी। यद्यपि उनकी सूखी हड्डियों में उत्साह की कोई कमी नहीं हुई थी, उनके दिल वैसे ही साहसी और निर्भीक थे तथा वे हर समय युद्ध के लिए कटिबद्ध रहते थे; परन्तु केवल साहस से क्या होता है, जबतक कि वह शक्ति न हो — अधिक सेना न हो? वस्तुतः मेवाड़ बहुत विकट परिस्थिति में से गुजर रहा था। उसके लिए अधिक वर्षों तक मुग़ल सम्राट् से युद्ध जारी रखना कठिन था।

ऐसे समय में अकबर ने युवराज सलीम (जहाँगीर) को बड़ी भारी सेना के साथ मेवाड़ भेजा। उसने बहुत से क़िलों पर अधिकार कर लिया। इन किलों में ऊएटाला नामक क़िला बहुत अधिक दृढ़ था। यहीं दो ऐसे अमर बलिदान होगये हैं, जिनकी स्मृति आज भी हमारे अन्दर उत्साह और साहस का संचार कर रही है।

(१)

मेवाड़ में चूँडावत और शक्तावत बहुत ऊँचे घराने हैं। दोनों अपने वीरतापूर्ण कामों के लिए प्रसिद्ध हैं। दोनों ने मेवाड़ के इतिहास में स्मरणीय सेवा की है। दोनो ही अपने पूर्वजों की वीरता पर गर्व करते हैं। युद्ध में आगे रहकर लड़ना राजपूतों के लिए सबसे बड़ी प्रतिष्ठा है। हरावल (सेना के अग्रभाग) में रह कर लड़ना बहुत समय से बड़ा अधिकार समझा जाता रहा है। इस अधिकार के लिए राजपूत वंशों में प्रतिस्पर्धा रहती थी। महाराणा अमरसिंह के समय यह अधिकार चूँडावतों को मिला हुआ था। समय-समय पर उन्होंने जो सेवायें की थीं, उन्हें देखते हुए उनके लिए यह मान उपयुक्त ही था। परन्तु शक्तावतों ने भी महाराणा प्रतापसिंह के समय पर्याप्त सेवा कर बहुत प्रभाव उत्पन्न कर लिया था। शक्तावत भी हरावल में रहने का अधिकार चाहने लगे। वे कहते कि हम चूँडावतों से अधिक वीर हैं, यह अधिकार हमें मिलना चाहिए। चूँडावत कई पीढ़ियों से प्राप्त इस अधिकार को छोड़ना नहीं चाहते थे। बस, दोनों वंशों में

ईर्ष्या उत्पन्न हो गई, जिसने बढ़ते-बढ़ते कलह का रूप धारण कर लिया।

उस समय की स्थिति में मेवाड़ के लिए इन दो प्रसिद्ध सरदारों का पारस्परिक कलह बहुत घातक सिद्ध होता। दोनों अपनी वंश-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए परस्पर लड़ने को तैयार थे। बहुत संभव था कि दोनों परस्पर लड़कर मेवाड़ को और भी अधिक शोचनीय स्थिति में डाल देते। परन्तु दूरदर्शी महाराणा अमरसिंह ने इस अवसर पर बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। इस कलह को ही उसने विजय का एक साधन बना लिया और दोनों सरदारों को बुला कर कहा, 'ऊण्टाला के क़िले पर शाही सेना का अधिकार है उसे जीतना है। उसमें जिस वंश का वीर पहले प्रवेश करेगा, उसी वंश को हरावल का अधिकार मिलेगा।'

शक्तावत इस निर्णय से बहुत प्रसन्न हुए, उन्हें अपनी वीरता का पूर्ण विश्वास था। चूँडावत भी इस बुद्धिमत्ता-पूर्ण निर्णय पर कुछ आपत्ति न कर सके। दोनों पक्ष युद्ध के लिए तैयारी करते हुए बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

आखिर वह दिन भी आ ही पहुँचा। चूँडावत और शक्तावत दोनों वंशों के सरदार अपने-अपने सैनिकों के साथ तैयार होने लगे। राजपूत माताओं ने बड़ी स्नेहभरी आँखों से देख अपने पुत्रों का सिर चूमा और अपने दूध की लाज रखने के लिए उत्साहित करते हुए कहा, 'वापस आना तो अपने वंश की प्रतिष्ठा को साथ लेकर; यदि वह न मिले तो वीर-गति को प्राप्त करना। पराजय या अपमान से मृत्यु सैकड़ों गुना अच्छी है।' राजपूत रमणियों ने पतियों को युद्ध के वेश से भूषित किया और उनसे कहा कि हमारे विधवा होने के भय से युद्ध मे पीठ दिखाकर हर्गिज़ न भाग आना। चारणों और भाटों ने अपने-अपने सरदारों को ओजस्विनी भाषा में उनके पूर्वजों की वीर गाथायें सुनाकर उत्साहित किया कि वे अपने पूर्वजों की आन न जाने दें। अन्त में माताओं के आशीर्वाद, पत्नियों के प्रेमपूर्ण अनुरोध और चारणों के जोशीले गीतों से अपने वंश की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए कटिबद्ध होकर, दोनों शाखाओं के राजपूतों ने ऊँटाले की ओर प्रस्थान किया।

(२)

ऊँटाले का क़िला उदयपुर से १८ मील पूर्व के मैदान में ऊँची भूमि पर स्थित है। इसकी दीवारों के नीचे एक नाला बहता है। इसमें केवल एक फाटक से ही प्रवेश हो सकता था। शक्तावत क़िले के मार्ग से परिचित थे, इसलिए वे शीघ्र ही दल-बल-सहित वहाँ पहुँच गये और लड़ाई शुरू कर दी। शत्रु-सेना भी तैयार थी। घोर युद्ध हुआ। शक्तावत सरदार बल्लू ने फाटक को तोड़ने के लिए अपने हाथी को आगे किया, परन्तु क़िले का फाटक बहुत मज़बूत था। उसके आगे लोहे की बड़ी-बड़ी नोकीली कीलें लगी हुई थीं। हाथी को बार-बार चलाने पर भी वह उस फाटक को तोड़ने का साहस नहीं करता था। शक्तावत सरदार को एक-एक क्षण युग-सा प्रतीत हो रहा था। 'जो पहले प्रवेश करेगा, उसीकी हरावल रहेगी'—महाराणा के ये शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे। हरावल का प्रश्न जीवन मरण का प्रश्न था। प्रतिष्ठा ही तो राजपूती का दूसरा नाम है। अतः प्रत्येक क्षण की देरी युग की देरी मालूम हो रही थी। इधर उसने अपने प्रतिस्पर्धी चूँडावतों की घोर लड़ाई भी देखी। उसे प्रतिक्षण यह मालूम हो रहा था कि चूँडावतों ने क़िले में पहले प्रवेश किया।

वस्तुतः स्थिति भी ऐसी ही थी। चूँडावत रास्ते से परिचित नहीं थे, इसलिए वे भटक गये; परन्तु उनके सौभाग्य से उन्हें एक गड़रिया मिल गया, जिसने

उन्हें एक छोटे मार्ग से क़िले पर पहुँचा दिया। चूँडावतों ने यह बड़ी बुद्धिमानी का कार्य किया था कि वे चलते समय सीढ़ियाँ भी साथ लाये थे। चूँडावतों ने वहाँ पहुँचते ही बहुत ही घमासान लड़ाई शुरू कर दी। उन्हें भी शक्तावतों के क़िले में प्रवेश करने का विचार भयभीत कर रहा था; क्षण-क्षण की देरी उन्हें भी बरसों की देरी मालूम हो रही थी। वे क़िले के दरवाजे पर तो जा नहीं सकते थे, क्योंकि वहाँ तो शक्तावत पहले ही लड़ रहे थे; इसलिए चूँडावत सरदार रावत जैतसिंह सीढ़ी लगाकर क़िले की दीवार पर चढ़ गया और मुग़लों से युद्ध करने लगा।

बल्लू शक्तावत के सामने इधर हाथी के फाटक को धक्का न देने की विकट समस्या थी, और उधर क़िले में चूँडावतों से पहले प्रवेश करने की बड़ी भारी चिन्ता थी। बल्लू के पास इतना अवकाश कहाँ कि वह इस समस्या पर कुछ आप विचार करता; वहाँ तो जीवन-मरण से बढ़कर आत्म-प्रतिष्ठा और कुल-प्रतिष्ठा का सवाल था। अतः वीर और मृत्युंजय बल्लू अधिक समय तक विचार न कर शीघ्र ही हाथी से कूद कर तेज कीलोंवाले फाटक के सामने आ खड़ा हुआ और अपने महावत को उसने आज्ञा दी कि हाथी को मेरे पर हूल दो। महावत अपने स्वामी पर हाथी हूलने से हिचकिचाया, परन्तु बल्लू ने उसे क्रोध के साथ फिर वही आज्ञा दी। राजपूत-स्वभाव से परिचित महावत ने वैसा करने में फिर कोताही न की। हाथी बढ़ा, बल्लू के सुदृढ़ शरीर पर हाथी का धक्का लगा, परन्तु वीर बल्लू विचलित नहीं हुआ। वह हिमाचल की तरह अटल रहा। हाथी ने ज़ोर लगाया, फाटक की बड़ी-बड़ी कीलें बल्लू के शरीर में घुस गईं, बल्लू के समस्त शरीर से रुधिर की सहस्र धारा बहने लगी और उसका शरीर छलनी-छलनी हो गया, पर क्या इससे वह विचलित हुआ? क्या उसे कोई दुःख हुआ? नहीं, वह तो आत्म-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए बड़ी प्रसन्नता से आत्मोत्सर्ग कर रहा था। उसके चेहरे पर आशा और प्रसन्नता झलक रही थी। प्रतिक्षण की क़ीमत प्राणों से बहुत अधिक थी, इसलिए वह लाभप्रद व्यापार कर रहा था। छलनी-छलनी हो गया और अन्त में वह सदा के लिए शान्त होकर अपने नाम को अमर कर गया। प्रयत्न निष्फल भी नहीं हुआ, क़िले का फाटक टूट गया।

(३)

परन्तु क्या इससे शक्तावतों को हरावल में रहने का अधिकार मिल गया? अफ़सोस कि यह बलिदान पूरा फल न ला सका! अभी तक शक्तावतों ने शायद राज्य की उतनी सेवा नहीं की थी, जितनी चूँडावत कर चुके थे। अभी शायद उस बलिदान में कुछ कमी थी। शक्तावतों के प्रवेश से कुछ ही क्षण पूर्व चूँडावत सरदार का सिर क़िले में पहुँच गया।

दूसरी तरफ़ चूँडावत सरदार रावत जैतसिंह दीवार पर चढ़ा हुआ लड़ रहा था। एक मुग़ल सिपाही के प्रहार से घायल होने के कारण वह दीवार पर न रह सका और दीवार से नीचे गिरा। उसे भी शक्तावत सरदार की तरह क़िले में पहले प्रवेश की चिन्ता थी। उसने गिरते-गिरते अपने निकटस्थ सम्बन्धी देवगढ़ के सरदार को कहा कि मेरा सिर काट कर क़िले के अन्दर फेंक दो। धन्य हो वीर जैतसिंह, बल्लू से तुम भी कम नहीं निकले! तुम्हारा भी बलिदान या आत्मोत्सर्ग अपने प्रतिस्पर्धी सरदार से किसी क़दर कम न था। देवगढ़ के सरदार ने स्वामी की आज्ञा पाते ही बिना किसी हिचकिचाहट के उसका सिर काटकर दुपट्टे में लपेटा और शीघ्र ही दीवार पर चढ़ कर उसे अन्दर फेंक दिया और ज़ोर से कहा 'हरावल चूँडावतों की है। चूँडावतों

का सिर ही पहले क़िले में पहुँचा है।' यह वाक्य उनके सभी सैनिकों ने बड़े ज़ोर से दुहराया और क़िले की दीवारों पर चढ़ गये। इसी समय—सिर के फेंके जाने के कुछ ही क्षण बाद, उधर फाटक टूटा और शक्तावतों ने बहुत-से मुग़लों को मार डाला। राजपूत क़िले में घुस गये और मुग़ल सिपाही जान लेकर भागे। क़िले पर मेवाड़ का झण्डा फहराने लगा।

+ + + +

धन्य हो बल्लू और जैतसिंह! तुम दोनों ने मृत्यु को तुच्छ समझकर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वह वीर कार्य किया, जिसकी तुलना संसार के इतिहास में बहुत कम मिलती है। क्या आज तुम्हारी आत्मायें आकर हम भारतीयों के हृदयों में वह निर्भीकता, वह वीरता और वह साहस पैदा न कर देंगी, जिनके कि तुम अवतार थे? आज भारत में तुम्हारे सदृश मृत्युञ्जय और आदर्श वीरों की आवश्यकता है, जिन्हें देख कर हमारे भी दिल बढ़ जावें और हम भी जान पर खेलना सीख लें। वीर जैतसिंह, तुमने तो अपने जीते हुए अपना सिर कटाकर वंश की लाज रखली; परन्तु वीर बल्लू, तुम्हारा भी बलिदान अनुपम हुआ है। यदि उसका तात्कालिक फल नहीं मिला तो क्या हुआ—तुम्हारी यह सेवा निष्फल गई, यह तो नहीं कहा जा सकता। तुम्हारी इस सेवा का आगे प्रभाव पड़ा, जब कि शक्तावतों का प्रभाव राज्य में बढ़ गया और उन्हें कई अधिकार मिले।

इतिहास का उद्देश्य तो लोक-शिक्षा है। क्या हम भी इस कथा को सुनने से कुछ हृदय में धारण करेंगे? क्या हम अपनेमें भी आत्मोत्सर्ग, वीरता, निर्भीकता और मृत्युञ्जयता के गुणों का प्रवेश करेंगे?

हमारी कैलास-यात्रा

[श्री दीनदयालु शास्त्री]
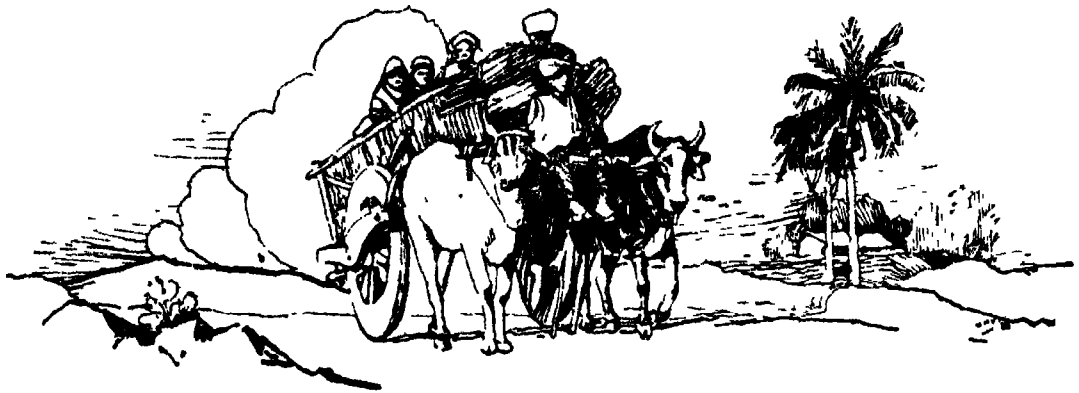
(६)

मानसरोवर के दर्शन

१८ जुलाई गुरुवार के दिन दोपहर बारह बजे हमने ताकलाकोट से प्रस्थान किया। अब हमारी टोली छोटी न रही थी। वह तो एक विशाल काफ़िले का रूप धारण कर चुकी थी। हमारी मण्डली में तीस आदमियों के साथ कई घोड़े व दो दर्जन झब्बू चलते थे। तीन बन्दूकें हर समय तैयार रहती थीं। इस सुसज्जित सेना के आगे तिब्बती डाकू न ठहर सकते थे। हमारी मण्डली के नेता स्वामी अनुभवानन्द जी थे। रञ्जन नाम का तिब्बती हमारा पथ-प्रदर्शक था। उस सुनसान बियाबान प्रदेश में वही हमारा सहारा था। रञ्जन हिन्दी व तिब्बती खूब अच्छी तरह बोल सकता था। दस दिन तक वही हमारे सुख व आराम का साधक था। हमारे ठहरने व आस-पास से रसद आदि लाने का प्रबन्ध वही किया करता था।

तिब्बती मन्दिर

करनाली गंगा की पूर्वीय धारा को पारकर हमने उत्तर की ओर पग बढ़ाया। रास्ता गुरला मान्धाता के नीचे-नीचे जाता है। मानसरोवर तक मान्धाता की आधी परिक्रमा हो जाती है। पहले तीन मील तक हरे-भरे खेत हैं। चारों ओर वनस्पति का अत्यन्ताभाव है। इस ऊसर भूमि में ये खेत अनुपम छटा दिखाते हैं। पास के गाँव में आज हमने दो पेड़ भी देखे। तिब्बत की पन्द्रह दिन की यात्रा में ये दो पेड़ देखने का हमें सौभाग्य प्राप्त हो सका था। हाँ, पहाड़ों पर डाबा नाम की बूटी अवश्य बहुत जगह पाई जाती है। गाँव के निकट ही दो-तीन मन्दिर हैं। मन्दिर ठोस स्तूप के ढंग के हैं। इनके ऊपर तिब्बती भाषा में न-जाने क्या लिखा हुआ है। तिब्बती गायत्री ओम् मनि पद्मे हुं ओम् तो सर्वत्र लिखा मिल जाता है।

तीन मील जाने पर तोयो नाम की नदी मिलती है। यहाँ तक जल-धारा को पार करने के लिए पुल बने हैं। पुलों के तख्ते जोड़ने के लिए ऊन से काम लिया गया है। सन या मूंज भारत से जाने के कारण तिब्बत में महँगा पड़ता है। यहाँ से आगे पुल नहीं है, यात्री को शीतल जल में से लाँघकर जाना पड़ता है। खेत समाप्त हो गये, सूखे मैदान आ चले। समतल होने व हवा के सूक्ष्म रहने से वस्तु दूर से दिखाई देती है, किन्तु वहाँ तक जाने में आत्मा हार जाता है। शाम तक ऐसे ही मैदान में बढ़े चले गये। गढ़े में रिंगौन नाम की नदी बह रही है। रिंगौन ताकलाकोट से आठ मील है। छोटी पहाड़ी की ओट में नदी के किनारे हम लोगों ने तम्बू तान दिये। आज यहाँ ही विश्राम किया, तिब्बत में हवा दिन-रात चला करती है। दिन में जहाँ वह शरीर को सुखा देती है वहाँ रात में वह काटने को दौड़ती है। इस ठंडी हवा से बचने के लिए ओट में डेरा डालना चाहिए।
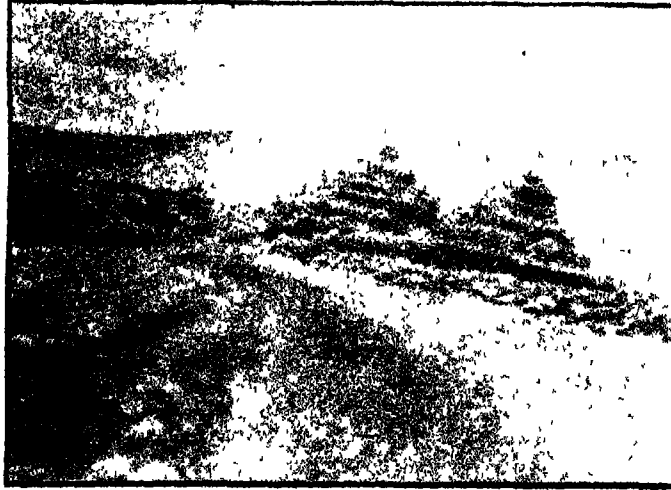
१९ जुलाई के प्रातः खा-पीकर रिंगौन से विदा हुए। रास्ता उसी सूखे मैदान में से होकर गया है। कहीं जल मिल गया तो हरी घास के दर्शन हो जाते हैं; अन्यथा सब रेगिस्तान है। पानी के निकट भेड़ों के रेवड़ मिल जाते हैं। दिन भर में भेड़वालों के सिवाय किसी दूसरे के दर्शन दुर्लभ हैं। रिंगौन से पांच मील पर वालडा नाम की बड़ी नदी है। इसका किनारा खूब हरा-भरा है। घास अधिक होने से मुख्य पड़ाव यही है। वालडा से दो मील एक बड़ा पथरीला मैदान मिलता है। यह मैदान ए६ मील लम्बा है। इस मैदान के बाद गौरीवटाक की चढ़ाई शुरू हो जाती है। इस मैदान से गौरीवटाक केवल तीन सौ फ़ीट ऊंचा है। चढ़ना भी धीरे धीरे होता है, लेकिन दम फूलने लगता है। सारा देश स्वयं ही समुद्र-तल से २॥ मील ऊँचा है; फिर यहां थोड़ा-सा भी ऊपर चढ़ने से श्रम का अनुभव होने लगता है।

गौरीवटाक

धीरे-धीरे गौरीवटाक के शिखर पर पहुँचे। सामने लम्बा-चौड़ा सागर आनन्द से सो रहा था। पहाड़ियों के मध्य में उसका नीला जल कैसा सुहावना लगता था! इसीका नाम राक्षसताल है। गौरीवटाक की चोटी से ही हमने सर्वप्रथम कैलास महादेव के दर्शन किये। यहाँ से तीस मील सुदूर उत्तर में कैलास रवि-रश्मियों में चमक रहा था। हमने उसे देखा और हर्ष से उछलने लगे। भक्त बंगाली श्रद्धा-भक्ति से शिखर पर एकत्र होने लगे। सबने हाथ जोड़कर महादेव की स्तुति की। कइयों ने तो भक्ति-भाव से साष्टांग प्रणाम भी किया। हम स्वतन्त्र विचार रखनेवालों के लिए यह विचित्र दृश्य था। इतने शिक्षितजन भी पाषाण-पूजन में मस्त थे थोड़ा सोचा, दिल ने कहा —यह सब भावना का फल है। वह प्रभु सब जगह रम रहा है। उसे पहचाननेवाला चाहिए। भावना-प्रधान आर्य जाति ने पाषाण में भी उसकी सत्ता का अनुभव किया है। इन बंगालियों का वह हर्षोन्माद भी इसी भावना का परिणाम था। हम बड़ी देर तक उस हेम-प्रभा का दर्शन करते रहे। सहसा मेघ-मण्डल ने हमसे कैलास को छिपा लिया। हमने भी अपनी राह ली।

राक्षसताल

गौरीवटाक से राक्षसताल ६ मील है; लेकिन प्रतीत ऐसा होता है, मानों पचास क़दम पर है। मार्ग कंकड़ों से भरा हुआ है। पहाड़ के साथ चलते-चलते दो घंटे हो गये। प्यास सताती थी, पर जल न मिलता था। पड़ाव अभी दूर था। व्याकुल व श्रान्त यात्रियों ने रञ्जन की एक न सुनी। जो जहाँ था वह वहाँ से ही ताल के किनारे जाने लगा। घंटे भर में थके-मांदे हम लोग राक्षसताल के रेतीले तट पर पहुँचे। खुले मैदान में खुली हवा में डेरा डाल दिया। राक्षसताल बड़ा सरोवर है। इसकी आकृति साधुओं के तूम्बे की सी है। बीच में दो-एक छोटे-छोटे टापू भी हैं। जल शुद्ध है तथा अत्यन्त शीतल है। कैलास के यात्री राक्षसताल के किनारे ठहरना अशुभ मानते हैं। हज़ारों वर्ष बीते, धनराज कुबेर वास करते थे। उनके ऐश्वर्य को देख कर राक्षसराज रावण के दिल में ईर्ष्या हुई। रावण ने कैलास पर हमला किया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। विजय का सेहरा रावण के सिर बँधा। इस युद्ध में रावण का जो पसीना बहा, वही आज-कल का राक्षसताल है। छुई-मुई के माननेवाले हिन्दू राक्षस के स्वेद का पान कैसे कर सकते हैं?

सांझ हो चली; तीक्ष्ण वायु चलने लगा मैंने गरम कपड़ा ओढ़ा और ताल के किनारे पर मटरगश्त करने निकला। भगवान् भास्कर अस्ताचल को जा रहे थे। छोटे गिरि-शिखरों पर उनकी किरणें सोना बरसा रही थीं। झंझावात से प्रताड़ित ताल का जल ज़ोरों से से लहरें मार रहा था। सामने वह द्वीप लहरों के संघर्ष में चलती नौका-सा प्रतीत हो रहा था। वह कभी अदृश्य हो जाता, कभी दीखने लगता था। श्वेत वर्ण जल-जीव डुबक-डुबक कर सुधा-पान में मस्त थे। मैं इस सब दृश्य को एकान्त में देखने का आनन्द ले रहा था। पहाड़ के पीछे सूर्य-देवता विलीन हो गये। सर्वत्र अन्ध-निशा का साम्राज्य छा गया। मैं भी ठिठुरता हुआ डेरे पर वापिस आया। देव-दुर्लभ सत्तू से तृप्ति की और बिछौने पर पड़ रहा। तिब्बत में खाने का बड़ा कष्ट है। हम एक समय रोटी खाते थे और दूसरे समय

में पूरियों का सतुआ। दाल गलती न थी, सब्ज़ियाँ अप्राप्य थीं; व्यंजन का काम नमक, मसाले व गुड़ से निकल जाता था। पूरा तपस्वियों का जीवन था। आखिर कैलास के दर्शनों के लिए निकले थे। इसके लिए तपस्या आवश्यक थी। इस तपस्वी जीवन में भी एक मिठास था, एक विशेष आनन्द का अनुभव होता था।

मानसरोवर

सवेरे चलने में देर हो गई। वैसे भी हमें कुछ अधिक दूर न जाना था। राक्षसताल के पूर्व में छोटी छोटी पहाड़ियाँ चली गई हैं। इन्हींके पार विश्व विश्रुत मानसरोवर है। राक्षसताल से मानसरोवर केवल पांच मील है। दोनों के मध्य में इन्हीं पहाड़ियों की ओट है। पहाड़ियों पर डाबा नाम की झाड़ी खूब है। तिब्बत में लकड़ी नहीं होती। यह झाड़ी हरी ही जल जाती है। राक्षसताल के किनारे हम इन पहाड़ियों पर चढ़ चले।

घंटे भर में मैं और डाक्टर नलिन सर्वोच्च शिखर पर पहुँचे। शिखर पर जाते ही जो देखा, आनन्द आ गया। सब श्रम भूल गया। हमारे पीछे राक्षसताल शान्ति से पड़ा था। हमारे सामने एक दूसरी जल-राशि नज़र आ रही थी। यह अतुल जल-राशि ही तो मानसरोवर है। बहुत दिनों से इसका नाम सुना था। संस्कृत के कवि इसी सरोवर की प्रशंसा में अपनी विद्वत्ता का परिचय देते हैं।

मानसरोवर के प्रथम दर्शन

यहाँ ही सुन्दर राजहंसों का वास है। पापीजन इस मानस में ही स्नानकर पुण्य-लाभ करते हैं। मानसरोवर के प्रथम दर्शन से अद्भुत आनन्द हुआ। विचित्र दृश्य था। काश्मीर में भी अनेक सरोवर हैं। सुन्दरता में वे दुनिया में अपना सानी नहीं रखते। वहाँ के डल, मानस या शेषनाग यात्री के दिल को लुभा लेते हैं। यह सब है, किन्तु तिब्बत का मानस सरोवर अपूर्व ही वस्तु है। वह काश्मीर के सब सरोवरों से बढ़कर है। उसका दर्शन दिव्य है, स्नान पावन है और स्मरण सब सन्तापों को शान्ति देता है। मुझे तो कैलास की अपेक्षा मानसरोवर के दर्शनों की अधिक उत्सुकता थी। संस्कृत का विद्यार्थी जो ठहरा। कालिदास ने अपने काव्यों में इसे अमर कर दिया है। सचमुच मानस ऐसा ही है। आज मानस को देखकर हम कृतार्थ हो गये।

पहाड़ी से नीचे उतरे। राक्षसताल अदृश्य हो गया। घंटे भर में सरोवर के किनारे आये। गिरि के अञ्चल में एक सुन्दर स्थान पर डेरा डाला। वह स्थान बड़ा रमणीक था। सामने विशाल मानस था। नील जल की अतुल राशि। चारों ओर गिरिमाला थी। उत्तर में कैलास की श्रेणी थी, जिसमें यत्र-तत्र हिम पड़ा था। पूर्व के छोटे पहाड़ों में बादल मँडरा रहे थे। दक्षिण में मान्धाता का सर्वोच्च शिखर, सर्वथा स्फटिक सुन्दर शुभ्रवर्ण हिम से मंडित चमक रहा था। कहते हैं, सत्ययुग के महाराजा मान्धाता ने राज-पाट को छोड़कर इसी स्थान पर उग्र तपस्या की थी। किम्वदन्ती तो यहाँ तक है कि वे अभी तक यहाँ तप कर रहे हैं। उन्हींके कारण इस शिखर का नाम मान्धाता पड़ गया है। मान्धाता समुद्रतल से पच्चीस हज़ार फ़ीट ऊँचा है और हर समय हिम से ढका रहता है। इसका दृश्य यहाँ से सर्वथा सुन्दर है। पश्चिम से हम आये ही थे। चारों ओर से ऐसी सुन्दर रचना में हमने आज विश्राम किया।

मानसरोवर बड़ी झील है। इसका घेरा पचास मील है, आकृति गोल है। सरोवर समुद्र-तल से पन्द्रह हज़ार फ़ीट से अधिक ऊँचा है। तिब्बती लोग इसे छो मावग

और राक्षसताल को छोलागंग कहते हैं। इसकी परिक्रमा में पांच मन्दिर बने हुए हैं, जिन्हें गुम्फा कहते हैं। झील में जल-जीव बहुत हैं, राजहंसों की अधिकता है। राजहंस श्वेत व श्याम वर्ण का होता है। बत्तक में बतक-जैसा काव्यों में हंसों का मोती चुगना और कमल-नाल का तोड़ना पढ़ा था। सरोवर में जल अति शुद्ध है। उसमें वनस्पति या पौधे का कहीं पता नहीं है। मोतियों के भी दर्शन नहीं हो सके। हां, राज-हंसों को देखकर अवश्य प्रसन्नता हुई।

जब हम मानसरोवर पर पहुंचे थे तब सरोवर का जल शान्त था। यात्रियों ने कई दिनों से स्नान न किया था। सरोवर में स्नान की उत्सुकता भी थी। कपड़े उतार कर आनन्द से स्नान किया। जल अधिक ठंडा नहीं है। इतनी ऊँचाई पर जल का शीतल न होना आश्चर्यजनक है। स्नान के लिए दूर तक चले गये। ख़ूब नहाये; शरीर का मल उतरा, साथ ही मानसिक पापों को भी शान्ति मिली।

मानस में स्नान

ह समय ऐसा ही था। ऐसे स्वर्गीय स्थान में पाप-चिन्तन ासम्भव ही था। बंगालियों ने तो घरों में ले जाने के लिए ोतलों में सरोवर का जल भी भरा। स्नान कर बाहर ाये और तट पर बैठकर सागर का दृश्य देखते रहे।

तीन बजे तक जल शान्त बना रहा। इसके बाद तेज़ हवा चलने लगी। जल विक्षुब्ध से चला। वह सागर जो अभी तक शान्त था बिलकुल बदल गया। उसका जल चंचल हो उठा। तूफ़ान उठकर लहरों को गति देने लगा। इन लहरों ने प्रमुख तट को हलचल में डाल दिया। मानसरोवर का शुद्ध शान्त रूप भयंकर हो गया। इसके भयंकर रूप को देखकर सहसा महासागर की स्मृति हो आती है। यह भी छोटा समुद्र ही है। दोपहर तीन बजे के बाद इसमें भी ज़ोर के तूफ़ान उठा करते हैं। उस समय इसका उग्र रूप देखते ही बनता है। समुद्र में नौका-द्वारा यात्रा की जा सकती है, किन्तु मानस में यह कठिन है। तिब्बत में लकड़ी का अत्यन्ताभाव है। नौका-निर्माण के लिए लकड़ी कहाँ से लाई जावे? आज से कुछ वर्ष पूर्व एक यूरोपियन ने इस प्रदेश की यात्रा की थी। इस साहसी यात्री का नाम स्वानहेडिन था। वह लद्दाख़ की ओर से तिब्बत में दाख़िल हुआ था। वैज्ञानिक होने के कारण वह अपने साथ नाव भी लाया था। वह रात के समय मानस के तट पर पहुँचा था। जिज्ञासा का वह प्रेमी था, उसने रात के समय ही झील में नौका-संचालन किया। उसके अनुसार मानसरोवर दो सौ चालीस फीट गहरा है। देवताओं के प्यारे मानस ने अपने जीवन में सम्भवतः इसी बार नौका के दर्शन किये थे। स्वानहेडिन ने मानस, कैलास आदि स्थानों की यात्रा बड़े मनोरञ्जक ढंग से लिखी है।

मानसरोवर के सुन्दर किनारे पर आज का दिन बड़े आनन्द से बीता। दिन भर मानस की ऊँची उठती लहरों, शुद्ध नील जल, राजहंसों की मन्द उड़ान और मान्धाता की गगन-चुम्बी चोटी के दर्शन में मस्त रहे। रात में भी देर तक संगीत, गाथा और वार्तालाप ने साथ दिया। बंगालियों को संगीत प्रिय है। उनका संगीत उच्च कोटि का होता है। आज इस अद्वितीय संगीत से कानों को पवित्र किया। प्रकृति का संगीत तो विलक्षण ही था। मानस की चपल तरंगें मानस में विचित्र संदेश सुना रही थीं।

निद्राकाल में आज विशेष अनुभव हुआ। तिब्बत में थोड़ी चढ़ाई में दम फूलने का अनुभव हमें कई दिन से हो रहा था। सरोवर पन्द्रह हज़ार फ़ीट से अधिक ऊँचा है। सोते समय करवट बदलने में विशेष श्रम प्रतीत हुआ। मैंने समझा, मुझे शायद कोई रोग हो गया है। सबेरे उठा तो सब यात्रियों को यही चर्चा करते पाया। तब जाकर सांत्वना मिली। आगे कैलास की परिक्रमा तक रात्रि में दम फूलता रहा। हम पाँच छ दिन इसी ऊँचाई पर रहे थे, इसी कारण हमें साँस लेने में कठिनता रही।

सबेरे सूर्य की सुनहली रश्मियों में पुनः मानसरोवर में स्नान किया। सागर पूर्णतया शान्त था। मण्डली का एक चित्र लिया गया। मानसरोवर की स्थिर स्मृति का एक मात्र यही उपाय था। दोपहर के समय आगे के लिए प्रस्थान किया। आज सात मील तक सरोवर के किनारे चलते रहे। प्राचीन कवियों ने तो केवल मानस का नाम ही सुना था। नाम-श्रवण के साथ ही उन्होंने उसकी प्रशंसा के पुल बाँध दिये थे। हम इन कवियों से अधिक भाग्यशाली थे। हमने तो मानस का स्वयं साक्षात् किया था। अतः हमें बहुत काव्य की ज़रूरत न थी। रसात्मक वाक्य का नाम ही तो काव्य है। हम स्वयं उस समय रसमय हो रहे थे। जिधर दृष्टि जाती थी उधर काव्य के दर्शन पाते थे। मानस की उत्ताल तरंगें सुधा बरसा रही थीं। उस सुधा के पान से हम यथार्थ में आनन्द से आन्दोलित हो जाते थे। मानस का दर्शन मानस को सन्तोष से भर देता है।

दो मील पर गुसकी गुम्फा है। मानसरोवर की परिक्रमा में जो पाँच गुम्फा या मन्दिर हैं उनमें गुसकी गुम्फा पहला है। छोटे-से रेतीले टीले पर तीन-चार कोठरियाँ हैं। कैलास जानेवाले यात्री यहाँ पड़ाव डालते हैं। हमारे पास तम्बू थे। अतः हम इधर-उधर जहाँ जी किया पड़ाव डाल दिया करते थे। तीन मील जाने पर पहाड़ मानस से थोड़ी दूर आगे चले जाते हैं। यहाँ एक खुला मैदान है, जो सरोवर से थोड़ा नीचा है। यहाँ से मानस का दृश्य बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। मीलों नीला जल चला गया है। इसका ओर-छोर नज़र नहीं आता। जल इतना निर्मल है कि तल-का तल दृष्टिगोचर होता है। स्थान-स्थान पर राजहंस जल-क्रीड़ा कर रहे थे। उनके कल-कूजन में भी संगीत की ध्वनि सुनाई देती थी। हम गंगातटवासियों को वे व्यंग से कह रहे थे—हम मानसवासी हैं। हमें सुरसरिता का मलिन तट सुन्दर नहीं लगता। मानस की शुद्धता का पता इसीसे चल जाता है। तिब्बत में वर्षा कम होती है। उस सरोवर में मलिनता कहाँ से आवे ? हमने जीभर मानस को देखा और विदा ली।

आगे तीन मील तक मार्ग एक घाटी से होकर जाता है। दोनों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं, बीच में बालुमय मार्ग। मानसरोवर के आस-पास तिब्बती डाकू रहते हैं। वे मौक़ा मिलने पर यात्रियों को लूट लेते हैं। इस घाटी में हमने चार पाँच तिब्बतियों को अपनी ओर आते देखा। वे हमसे थोड़ा हटकर चल रहे थे। जब हमारी पैदल मण्डली आगे बढ़ गई, घोड़े भी आगे चले आये, तो इन लोगों ने बोझ से लदे टट्टुओं को आ घेरा। हमारा दुभाषिया रजब दौड़ा हुआ आया। जब इन तिब्बतियों ने बन्दूक से लैस तीन आदमियों को अपनी ओर आते देखा तो टट्टुओं को छोड़कर नौ-दो ग्यारह हो गये। इस घटना से मण्डली में भय छा गया और आगे से सबको इकट्ठा चलने के लिए निर्देश कर दिया गया।

घाटी समाप्त हो गई। मानसरोवर का एक भाग पुनः दिखाई देने लगा। यहाँ पर एक ऊँचे टीले पर उग्रू गुम्फा है। सरोवर की परिक्रमा में यह दूसरी गुम्फा है। इसीके निकट ही मानसरोवर से पञ्जाब की प्रसिद्ध नदी सतलज निकलती है। सरोवर से जल धीरे-धीरे निकलता है। यहाँ धारा दस फ़ीट चौड़ी और दो फ़ीट गहरी है। मैदान होने के कारण जल मन्द गति से चलता है। भारत के स्कूलों में जो भूगोल पढ़ाया जाता है उसमें मानसरोवर से सिन्धु, सतलज और ब्रह्मपुत्र का निकास बताया है। देखने से यह बात सत्य नहीं प्रतीत होती। मानसरोवर मान्धाता और कैलास के मध्य में है। सिन्धु की नदी कैलास के उत्तर में बहती है। सरोवर और उसके बीच में कैलास की उन्नत श्रेणी है। ब्रह्म पुत्र का प्रवाह मान्धाता के पूर्व में है, इसके और मानसरोवर के मध्य में भी पहाड़ों की ओट है। सर्वे

आफ़ इण्डिया के नक्शों में भी केवल सतलज नदी का निकास मानस से दिखलाया गया है। तिब्बत में सतलज को लागहांग कहते हैं। यह मानसरोवर से राक्षसताल में आती है और वहाँ से तीर्थपुरी व तेलंगमठ होती हुई शिमला के निकट पंजाब में प्रविष्ट होती है।

आज सतलज के किनारे एक पहाड़ी पर पड़ाव डाला। थोड़ी देर में ही आकाश में काले बादल घिर आये और

शामाधुरा के पास मेघलीला

मूसलाधार वर्षा होने लगी। वर्षा के कारण आज भोजन न बन सका। नमकीन चाय पर ही सन्तोष करना पड़ा। हम जो तम्बू पंजाब से लाये थे वह सादे कपड़े का था। वर्षा को वह न सम्हाल सका, इससे मैं और यज्ञदत्त जी सुख से न सो सके। सबेरे मानसरोवर से अन्तिम विदा की और कैलास की ओर पग बढ़ाया।

ताकलाकोट से दरचन ५५ मील है। दरचन कैलास-शैल के नीचे है। कैलास की परिक्रमा दरचन से ही प्रारंभ होती है। ताकलाकोट से हम १८ जुलाई के दिन चले थे और आज २२ जुलाई के दिन दरचन के लिए जा रहे थे। ज्यू गुम्फा से दरचन १८ मील है। रास्ता छोटी-छोटी पहाड़ियों में से होकर जाता है। तूम्बे के आकार का राक्षसताल बहुत दूर तक फैला हुआ है। आज पुनः राक्षसताल के दर्शन हुए। ज्यू गुम्फा से बरखा ८ मील है। राक्षसताल से दो मील पर बरखा छोटा-सा गाँव है। यहाँ तरजम (पुलिस का अफसर) रहता है। बरखा में पहाड़ियाँ समाप्त होकर समतल मैदान आ जाता है। यह सपाट मैदान १५ मील लम्बा और दस मील चौड़ा है। सपाट इतना है कि मीलों की वस्तु दिखाई देती है। मैदान में कई छोटी नदियाँ बहती हैं। भूमि अच्छी है, जल अधिक है, किन्तु आबादी न होने से खेती नहीं हो सकती।

एक छोटी नदी पार की। मार्ग में ही वर्षा होने लगी। तिब्बत में जल की वर्षा नहीं होती। ओलों की वर्षा होती है। आधे घण्टे तक ओलों में हैरान होते रहे। सब तरफ़ ओला ही ओला हो गया। ज़मीन पर सफ़ेद रुई-सी बिछ गई। विधाता ने हमारे चलने के लिए भुरभुरी गद्दी बिछा दी। दोपहर के समय ज़ुंगदू में पहुँचे। बरखा से ज़ुंगदू पाँच मील है और दरचन ज़ुंगदू से पाँच मील। ज़ुंगदू में जोहारी भोटियों के बहुत से डेरे पड़े हुए हैं। ये लोग आस-पास से ऊन इकट्ठा करते हैं और उसे बेचने के लिए ग्यानिमा में ले जाते हैं।

ज़ुंगदू में श्री धनसिंहजी बड़े सज्जन पुरुष थे। उनके प्रेम-भाव ने हमें ज़ुंगदू ठहरने के लिए प्रेरित किया। यहाँ से कैलास का शिखर स्पष्ट नज़र आता है। हमने ज़ुंगदू में ही जल के निकट पड़ाव किया। धनसिंहजी की कृपा से आज कई दिन बाद दूध नसीब हुआ। कैलास महादेव के चरणों में सूर्य की निखरती किरणों में आज हमारी मण्डली ने दिन बिताया। दिनभर तिब्बतियों के झुण्ड हमें देखने आते रहे। हम स्टोव पर खाना पकाते थे। स्टोव को देख कर उन्हें बड़ा अचरज होता था। वे इसे देवता का प्रसाद समझते थे। कल हमें कैलास की परिक्रमा करनी है। हमारी यात्रा का लक्ष्य कैलास के दर्शन करना था। आज बीस दिन चलकर हम कैलास की अर्चना के लिए समर्थ हो सके थे। अगले तीन दिन में हमने कैलास की परिक्रमा पूर्ण की।

जावा : एक प्राचीन भारतीय उपनिवेश

[श्री निरंजनसिंह]

जिस देश या जाति को परतंत्रता की ज़ंजीरों से जकड़कर बाँधना हो, जिसे सदा गुलामी का बाना ही पहनाकर रखना हो, उसे इस बात का भान न होने देना चाहिए कि वह क्या है। उसके अतीत का इतिहास नष्ट न हो तो न सही, किन्तु उसे भ्रमात्मक तो बनाना ही होगा। रूम ने यही किया था और भारत पर भी यही बीती। सौभाग्य की बात है कि धीरे-धीरे हमारे प्राचीन इतिहास की झलक दिखलाई पड़ने लगी है। हमारी विजय-पताका कहाँ तक फहरा चुकी थी, अब इस बात का भी ज्ञान होता जा रहा है।

जावा, सुमात्रादि हिन्द और प्रशान्त महासागर के द्वीप हमारे प्राचीन उपनिवेश थे। हमारी विजय-पताका इन महासागरों के पार अमेरिका तक फहरा रही थी। हम निरे जङ्गली ही न थे; हमारा ऐश्वर्य-भास्कर उस समय उदित हो चुका था। हम सभ्यता-प्रभात का उस समय दर्शन कर रहे थे, जब कि सारा संसार—चीन, यूनान देशादि भी अन्धकार का अम्बर ओढ़े हुए करवटें बदल रहे थे।

जावा हिन्दमहासागर में एक द्वीप है, जो मलाया प्रायद्वीप के दक्षिण में स्थित है। यह वही द्वीप है, जहाँ आज भी हमारे पूर्वजों की गाथायें गाई और सुनाई जाती हैं। राम और भरत का मिलन, रावण का दलन और कौरव-पाण्डवों के घोर युद्ध का वर्णन आज भी वहाँ किया जाता है। अंग-रचना में थोड़ी-बहुत भिन्नता भले ही हो, पर आत्मा वही है। अन्तर केवल इतना ही है कि वहाँ के निवासी इस भ्रम में पड़े हुए हैं कि राम ने उसी द्वीप में जन्म लिया था, महाभारत का युद्ध वहीं हुआ था।

हमारे पूर्वजों का जावा से बहुत पहले से ही परिचय रहा है। उसके धन और वैभव का पता ईसा की सदियों पूर्व लग चुका था। रामायण में इसे 'स्वर्णाकरमण्डित' बतलाया है। इन साधारण उल्लेखों से वर्तमान तार्किक यह मानने वाले नहीं कि जावा उस समय हमारा उपनिवेश बन चुका था। पर हाँ, आजकल के विश्वसनीय अन्वेषणों से यह निश्चित होता जा रहा है कि वहाँ हमारी सभ्यता का प्रकाश ईसा की प्रथम शताब्दी या उसके कुछ पहले अवश्य पहुँचा था। १३० ई० में प्लाटमी (Plotemy) नामक एक यूनानी लेखक ने इस द्वीप का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। उसने 'जव' की पैदावार वहाँ अधिक बतलाई है। इससे यह सिद्ध होता है कि कुछ भारतवासी उस समय वहाँ पहुँच चुके थे और उनका बराबर आना-जाना लगा रहता था; अन्यथा इस यूनानी लेखक को उस द्वीप का पता ही क्या लगता—उसकी पैदावार वह जान ही कैसे पाता?

इंगलिस्तान में चेष्टर आदि नामधारी शहर जिस प्रकार इस बात के प्रमाण हैं कि वे रूम साम्राज्य के अन्तर्गत रह चुके हैं, उसी प्रकार आज जावा भी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हमारी विजय-पताका वहाँ फहरा चुकी है। हमारे पूर्वज भी वहाँ राज कर चुके हैं। शहर, नदियों और पहाड़ों के नाम आज भी वैसे ही हैं, जैसे कि भारतवर्ष के। भौगोलिक भिन्नता के कारण उच्चारण में थोड़ा-सा अन्तर अवश्य पड़ गया है; पर इससे हुआ ही क्या? ऐसा अन्तर तो एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में पड़ जाता है। यदि संयुक्त-प्रान्त का मनुष्य द्वारावति कहता है, तो बंग देश का दोरोवति। लिखने में यह भिन्नता चाहे कुछ अंश में न पाई जाय, पर बोलने में अवश्य मिलती है। फिर जावा-सरीखे इतने दूर द्वीप में ऐसी भिन्नता लिखने में भी मिले तो अधिक आश्चर्य नहीं। कुछ नामों का उदाहरण के तौर पर वहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। मदोरा (मदुरा), दोरोवति (द्वारावति), सेमेरु (सुमेरु), वेसुकी (वासुकी) इत्यादि। ऐसे अनेक नाम और हैं, किन्तु यहाँ इतने का ही उल्लेख पर्याप्त होगा।

चीन का सितारा इस समय चमक रहा था; अतः उससे मित्रता करना, उसके पास अपना दूत भेजना प्रत्येक

राजा अपना अहोभाग्य समझता था। १३२ ई० के राजकीय पत्रों से यह पता चलता है कि देव वर्मन ने भी, जो उस समय जावा में राज करता था और सम्भवतः जाति का क्षत्रिय था, अपना दूत चीन सम्राट् के पास भेजा था। नाम ही इस बात का साक्षी है कि यह राजा आर्य जाति का होगा; इसके पूर्वज अथवा वह स्वयं भी भारत-माँ की गोद में अवश्य खेले होंगे। हम इस प्रमाण से भी इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि जावा ईसा की प्रथम शताब्दी में भारत का उपनिवेश अवश्य हो गया होगा।

थोड़ा-सा भी इतिहास पढ़ने वाले चीनी यात्री फ़ाहियान के नाम से अवश्य परिचित होंगे। वह स्थल मार्ग से भारत में आया था। जब उसका निर्णीत कार्य समाप्त होगया, तब ४१४ ई० में जल-मार्ग से उसने जाना निश्चित किया। दुर्भाग्य-वश उसका जहाज़ उसे चीन तक न पहुँचा सका—बीच में ही समाप्त हो गया। पर वह किसी द्वीप—जावा या सुमात्रा—में पहुँच चुका था। इस द्वीप के वर्णन में उसने लिखा है कि वहाँ हिन्दू-धर्म अति उन्नतावस्था में था। बौद्ध-धर्म का विकास उस समय तक वहाँ नहीं हुआ था। अतएव यह प्रमाण इस बात का साक्षी है कि जावा में हिन्दू-धर्म पाँचवीं शताब्दी तक बढ़ा-चढ़ा रहा है।

यह माना जाता है कि जावा में समय-समय पर सभी प्रान्तों से कुछ-कुछ मनुष्य जा कर बसे थे, पर कलिंग के विशेष रूप से। गुजरात से भी ७८ ई० में अजि के साथ, जो शक था, बहुत-से आदमी वहाँ गये थे। जो शक भारतवर्ष में विदेशी थे, जिनको भारत में आये हुए थोड़े ही दिन हुए थे, जब वही जावा में ईसा की प्रथम शताब्दी में जाकर बसने लगे थे तो हम यदि इनके दो सौ वर्ष पहले वहाँ पहुँच गये हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि ईसा के पूर्व की तीसरी शताब्दी में जावा हमारा उपनिवेश हो चुका होगा।

उपर्युक्त प्रमाणों से हम इस निर्णय पर तो पहुँच चुके कि जावा प्राचीन भारत का उपनिवेश था। अब यह देखना होगा कि भारत की सभ्यता और मूर्ति-कला का जावा पर क्या असर पड़ा। चीन के तैङ्ग वंश के राजाओं के विवरणों द्वारा यह पता चलता है कि मध्य-जावा में कलिंग नामक राजा था। आजकल भी वहाँ कलिंग शब्द प्रचलित है। मुहावरे और बोलचाल की भाषा में वहाँ के निवासी किलिंग शब्द से मूल भारतीय ही समझते हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि ज्यादा संख्या में कलिंग से मनुष्य जाकर बसे होंगे और यह ठीक भी जँचता है। क्योंकि ईसा के पूर्व पहली शताब्दी में कलिंग देश शक्ति में मगध से कहीं बढ़ा-चढ़ा था। जावा का किलिंग शब्द, कलिंग का ही अपभ्रंश जान पड़ता है।

चौथी से बारहवीं शताब्दी तक वहाँ शैवमत की प्रबलता रही थी, जिसका श्रेय केवल दक्षिण हिन्दुस्थान को दिया जा सकता है। यद्यपि विष्णु की बहुत दिनों तक पूजा होती रही, किन्तु चौथी शताब्दी के बाद शिव को अधिक मान दिया जाने लगा था। बौद्ध-धर्म का पाया बारहवीं शताब्दी के बाद जम पाया, फिर भी वैष्णव और शैवमत बिलकुल दूर न किये जा सके।

प्राचीन भारत की सभ्यता का प्रचार ईसा की पहली शताब्दी में हुआ होगा, पर इसका अभी तक कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है। सबसे पुराना शिलालेख जो अभी तक मिला है वह पाँचवीं शताब्दी का है, जिसमें पूर्णवर्मन् का उल्लेख है, जो तारूमा का राजा था। यह शिलालेख पश्चिम जावा में बतमिया के समीप पाया गया है। भूमिचन्द्र और पुण्यराज, दो और राजाओं के नाम एक तामिल कवि की कविता में मिले हैं, वे भी पश्चिम जावा में राज करते थे। उनकी राजधानी नागपुर थी। पश्चिम जावा में इन नामों के अतिरिक्त दूसरे राजाओं के नाम अभी तक नहीं मालूम हुए हैं।

मध्य-जावा के सबसे पुराने प्राप्त शिलालेखों में राजा संजय का नाम पाया जाता है। इसकी तिथि ७३२ ई० है। इस शिलालेख के द्वारा यह भी पता चला है कि सबसे पहले इस द्वीप में शिव का मंदिर बनवाने वाले अगस्त गोत्र के ब्राह्मण हैं। इस मंदिर का आकार कुंजर के शिव मंदिर के सदृश था। दूसरे शिलालेख से यह पता लगता है कि अगस्त ने स्वयं जाकर शिव का मंदिर बनवाया

था। अगस्त का जावा में ब्रह्मा, विष्णु, महेश से ऊँचा स्थान है और उन्हें शिव-गुरु भट्टारक आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। यह प्रायः सभी जानते हैं कि अगस्त उत्तर-भारत से दक्षिण-भारत को बसाने के लिए गये थे। इसी बीच सम्भव है वह जावा भी गये हों; क्योंकि दक्षिण-भारत से भी वह कहीं दो वर्ष के लिए अवश्य गये थे, ऐसा हमारे प्राचीन ग्रन्थों और पुराणों की खोज से विदित होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत और जावा में कई सदियों तक आवागमन रहा है। चोल राज के अन्त तक नागापट्टम के बौद्ध मन्दिर के लिए जावा और सुमात्रा से भेंटें आती रही हैं। जावा ने देवपाल के राज्यकाल में नालन्द के लिए धन से सहायता की थी। यही नहीं, जावा के राजकुमार भारत में शिक्षा पाने के लिए भी आते थे।

जावा की मूर्तिकला के प्रादुर्भाव का श्रेय दक्षिण-हिन्दुस्थान को ही मिलेगा, और विशेषतः चालुक्य और पल्लव राजाओं को। वहाँ की दुर्गा की मूर्ति पल्लव राजमंदिर के समान है। इतना ही नहीं, जावा के अनेक स्थानों की चित्रकारी पल्लव राजमन्दिरों से बहुत कुछ मिलती है। प्रम्बनम् की शिव, विष्णु और ब्रह्मा की मूर्तियाँ बिलकुल दक्षिण भारत के साँचे में ढली हैं। इस विषय में श्री ओ० सी० गंगोली के निम्नलिखित शब्दों को उद्धृत कर करता हूँ—

"जावा की कला की खोज ने भारतीय कला के खोये हुए पन्नों का पुनरुद्धार किया है। इससे भारतीय कला के इतिहास के क्रम-विकास को समझने में सहायता मिलती है। जावा की कला और सभ्यता भारतीय महादेश की सभ्यता और कला का ही एक अंग थी, अपने को आन्दोलित समुद्र के उस पार फैलानेवाली वृहत्तर भारत की सभ्यता की सीमा के ये चिन्ह हैं।"

इन बातों से प्रकट होता है कि प्राचीन समय में जावा भारतीय सभ्यता का एक प्रमुख केन्द्र था।

दुस्तर मार्ग

[श्री 'प्रताप']

हृदय-मन्दिर में मृत्यु-दीप टिमटिमा रहा है।

विचार-धारा अनन्त सागर की ओर, अस्वाभाविकता की भूमि को चीरती हुई तथा कला की विकट चट्टान को फोड़ती हुई, बही जा रही है।

समस्त संसार की उस तीव्र पुकार की उस तक पहुंच ही नहीं; केवल एक ही ध्यान है--एक ही टेक है—

"मृत्यु-धारा की स्वाभाविक बाढ़ को जीवन-बाँध से बाँधना"

संभव है, संसार हँसे; यह भी संभव है कि जीवना इस कार्य के सम्पूर्ण होने के पूर्व ही अनन्त में विलीन हो जाय। परन्तु जीवनाकाश का डूबता हुआ बुद्धि सूर्य कहता है— "यह अपूर्णता सम्पूर्ण है, क्योंकि इस से ही मानव-शक्ति का उद्भव है।"

अस्ताचल के गर्भ में जाते हुए सूर्य की बिखरती हुई ज्योति के तार ग्रहण कर विश्व के रंग मंच पर अपना अभिनय प्रारम्भ करते हैं। अनित्य जीवन भी नित्य में विलीन होते हुए अपनी शक्ति बिखेरता है। मृत्यु का प्रत्येक परमाणु उसे हृदयंगम करता है।

और, मृत्यु के हृदय में इस अद्भुत जीवन-शक्ति को देख, स्तब्ध हो, विश्व अपनी ही ओर तकता है!

कहानी

शहीद का पिता

ले० श्री निर्जीव

सत्याग्रह-आन्दोलन ने दो ही महीनों में इतना ज़ोर पकड़ लिया है, जितना पिछले स्वदेशी अथवा असहयोग-आन्दोलन ने दो वर्षों में भी नहीं पकड़ा था। इसका अनुभव करना हो तो बम्बई आइए। इस महायुद्ध में कितने ही बुड्ढे चिता से उठ उठ कर आये, लड़े और अमर हो गये; कितनी ही रानियाँ महलों से निकल-निकल कर आईं, लड़ीं और नाम कर गईं; कितने ही नये खून बन्धनों को तोड़कर खुले मैदान में आये और लोक परलोक को उज्ज्वल कर गये। यह देखते हुए आशा होती है, शायद इस महायुद्ध की आहुतियों से देवता प्रसन्न हों—क्योंकि, लोग कहते हैं कि शहीदों का खून बेकार नहीं जाता, पत्थर पर पिस जाने के बाद मेंहदी रंग लाती ही है।

इन शहीदों में एक गोविन्द मार्तण्ड घाटेकर था, जिसकी मृत्यु पर पत्र-सम्पादकों ने अग्रलेख लिखे थे पर सेन्सर के कारण प्रकाशित न हो सके; नगरवासियों ने मूर्ति-स्थापना का संकल्प किया, जो अभी तक तो सरकारी रुकावटों के कारण पूरा नहीं हो सका है।

गोविन्द मार्तण्ड उस खानदान का था, जो अपनी राज-भक्ति के कारण हिन्दुस्थान भर में प्रसिद्ध रहा है। उसके पिता रावबहादुर घाटेकर को इस बात का घमण्ड था कि वह सरकार की मान-रक्षा के लिए अपने बेटे को भी कुर्बान कर सकते थे। और हुआ भी यही—बेटे ने अपनी साध पूरी की, बाप ने अपनी बात रक्खी। एक के नाम पर आज लोग जान देने को तैयार हैं; दूसरे को हत्यारा समझा जाता है, सुबह कोई उसका नाम भी नहीं लेता!

पहली जनवरी को कांग्रेस ने स्वतन्त्रता की घोषणा करदी। दो दिन बाद पत्रों में इसपर बड़ी-बड़ी आलोचना-प्रत्यालोचनायें निकलीं। घाटेकर साहब ने लड़के को पूना तार दिया—कालेज से छुट्टी लेकर फौरन चले आओ। लेकिन गोविन्द उस कालेज का विद्यार्थी था, जिसे गोखले और तिलक पवित्र कर गये थे। दूसरे, उसे दस वर्ष पुराने वे दिन भूले नहीं थे, जब उसकी आया समझाया करती कि किस प्रकार लोग अत्याचार के विरुद्ध लड़ रहे हैं। बड़ी-बड़ी होलियाँ होतीं; बड़ी-बड़ी सभायें होतीं; नेता आते और हज़ारों लोग उनकी गाड़ियाँ हाथों से खींचते। गोविन्द सोचता, कभी मेराभी ऐसा सम्मान होगा!

तार का जवाब तार से आया—'कालेज छोड़ दिया है, धृष्ठता के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।' रावसाहब सन्न रह गये—'कहीं यह लड़का कांग्रेसियों में तो नहीं जा मिला! भगवान! क्या होगा?' २० वर्ष पुराने वे दिन याद आये, जब वह नासिक में जज थे और राजविद्रोहियों को काले पानी भेजा करते थे। उस नौजवान की सूरत सामने आई, जिसे उन्होंने फाँसी का दण्ड दिया था और उसने वन्देमातरम् कहकर मुस्करा दिया था। वे भी क्या दिन थे, जब वह जनता के डर के मारे शाम को घूमने भी नहीं जा सकते थे! लेकिन वह ज़माना

भी जाता रहा और फिर लोगों के दिलों में उनके लिए इज्जत और धाक बैठ गई। उन्होंने ऐसे-ऐसे तीन आन्दोलन देखे थे और तीनों ही असफल हुए थे। वह समझते थे, इस चौथे हुल्लड़ का भी वही अंजाम होगा। पर लड़के ने तो कुल में कलंक लगा लिया!

अन्दर गये और पत्नी पर क्रोध निकाला। वह चुप रही। अगर उस दिन वह एक शब्द पुत्र को लिख देती तो वह मान जाता। माँ की बात उसने कभी नहीं टाली थी। पर वह चुप रही—कदाचित् उनके मन में ऐसी धारणा थी कि मेरा बेटा कभी बुरे काम में शामिल नहीं होगा।

एक हफ्ते बाद गोविन्द के व्याख्यान का सार अखबारों में आ गया। रावबहादुर की आँखों में खून उतर आया—बात यहाँ तक बढ़ गई है! देखूँ, अब भी कुछ हो सकता है या नहीं।

स्मिथ साहब से मिले। साहब बड़े नाराज हुए। रावसाहब बोले—'मेरे मालिक, मैं तो आपसे अर्ज कर चुका हूँ। गोविन्द की करतूतों के लिए मुझे उत्तरदायी न समझा जाय। अगर जरूरत हुई तो मैं अपने हाथों से उसका खून कर दूँगा।'

साहब ने कहा—'उसे विरासत से अलग करने के लिए तैयार हो?'

घाटेकर ने जवाब दिया—'लाइए, अभी लिख दूँ।'

गोविन्द को एक गुमनाम पत्र टाइप करके भेजा गया। उसमें उसके भविष्य का आगा-पीछा सुझाया गया—साफ लिख दिया गया कि लाखों की जायदाद अपनी मूर्खता के कारण खो रहे हो। परन्तु गोविन्द को अपनी माता का कोई पत्र नहीं मिला।

आठ दिन बाद सर्किल इन्सपेक्टर ने गुप्त डायरी में लिखा कि इस समय गोविन्द मार्तण्ड घाटेकर जिले भर में सबसे खतरनाक आदमी है। साहब ने यह बात रावबहादुर से कही और उन्होंने उसका नाम विरासत से खारिज कर दिया। एक सम्बन्धी को पत्र में लिखा—'गोविन्द ने मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया मेरा दिल टूट गया है। ओफ, उसके लिए मेरे क्या-क्या इरादे थे—पर उसके भाग्य में फाँसी पाना ही लिखा है तो वही हो! कोई राजद्रोही मेरी राजभक्ति की कमाई को भोगने का अधिकारी नहीं हो सकता।'

इस बात पर भी पत्रों में खूब टीका-टिप्पणियाँ हुईं। सरकारी पत्रों ने रावबहादुर के कर्त्तव्य-ज्ञान की सराहना की और लिखा—"ऐसे ही लोगों के भरोसे भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन चल रहा है।" देशी पत्रों ने लिखा—"यह पेन्शन का प्रेम नहीं है, क्योंकि रावबहादुर यदि चाहें तो दस सिविलियन नौकर रख सकते हैं। यह तीस वर्ष की सरकारी नौकरी का परिणाम है, जिसने उनकी भावना को गुलाम कर दिया है—उनकी आत्मा की हत्या कर डाली है।"

सर्किल इन्सपेक्टर की फिर रिपोर्ट आई कि गोविन्द सारे प्रान्त के विद्यार्थी-समुदाय का नेता बन गया है। वह नई पीढ़ी में ज़हर फूँक रहा है। उसे कोई कड़ी से कड़ी सजा शीघ्र मिलनी चाहिए।

इन्हीं दिनों शोलापुर में भयङ्कर दंगा हो गया। कहा जाता है कि उत्तेजित जनता ने कई पुलिसवालों की हत्या कर डाली। बड़े साहब ने घाटेकर साहब को गोविन्द की सर्व-प्रियता का हाल बताया। किस प्रकार भुसावल-बम-कांड के अपराधी उसके खास मित्रों में से थे, किस प्रकार उसने वर्तमान नौकरशाही के पुर्ज़ों का नाश कर देने के लिए वक्तृतायें दी थीं, और दंगे से दो दिन पहले वह शोलापुर में

था-ये सभी बातें साहब ने रावबहादुर से कहीं। अन्त में कहा -"ऐसा आदमी जिस किसी भी जेल में रक्खा जायगा, वहीं उपद्रव खड़ा कर देगा। यह छिपा रुस्तम है; सावरकर और वारीन्द्र से भी भयंकर है। यदि आप जज होते तो ऐसे व्यक्ति को क्या सजा देते ?"

घाटेकर डूबे जाते थे, रूखे स्वर से बहुत धीरे से कहा—जैसे कोई मरता हुआ व्यक्ति कराहे— "न्याय का कठोर दण्ड।"

और हुआ भी वही। जलूस निकल रहा था। पुलिस ने रास्ता रोक लिया। जलूस को भंग कर देने की आज्ञा दी गई। जनता न हटी। घोड़े दौड़ाये गये। इसी समय किसी बदमाश ने पुलिस वालों पर दो-एक पत्थर फेंके। फिर क्या था; गोली चल गई। एक गाली गोविन्द के कलेजे में लगी— आर-पार हो गई। वह धम से गिर पड़ा और 'वन्देमातरम' की क्षीण ध्वनि के साथ सदा के लिए अनन्त में मिल गया। दूसरे दिन शिमला से तार आया—"बादशाह की जन्मगांठ के उपलक्ष्य में रावबहादुर घाटेकर को दीवानबहादुर का खिताब मिला है।" पर कोई बधाई देने नहीं आया। पुराने से पुराने सरकारी अफ़सरों ने उनके कृत्य और पुरस्कार को घृणित समझा। उसी दिन सारे प्रान्त ने घाटेकर-दिवस का मातम मनाया।

दीवानबहादुर कभी-कभी सोचा करते हैं, गोविन्द को पूना न भेजता तो यह नौबत न आती।

दीवानबहादुर क्योंकर जीवित हैं, इसपर लोग आश्चर्य करते हैं। पर यह उनका जीवन नहीं है, वह दिन पूरे कर रहे हैं। जीवन के माधुर्य्य, ममता और स्वदेश-प्रेम को अर्द्ध-शताब्दी की गुलामी ने पूर्ण रूप से नाश कर दिया है। पानी सूख गया है। अब नदी के कंकरीले रास्ते को सरिता की पदवी नहीं दी जा सकती।
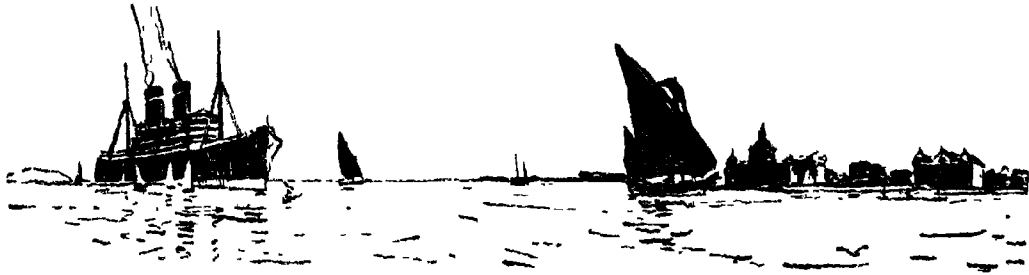
विनिमय और करेंसी का गोरख-धन्धा

(शेषांश)

[अध्यापक श्री कृष्णचन्द्र, बी० एस-सी०, कारागर-प्रवासी]

सन् १९१३ ई० तक सरकार ने कौंसिल बिल तथा 'रिवर्स' की आड़ में बराबर विनिमय का भाव १६ पेंस से नीचे नहीं आने दिया। सन् १९१३ ई० में श्री चेम्बरलेन की अध्यक्षता में एक कमिटी फिर नियत हुई। अब सरकार के सामने एक दिक्कत और आ गई थी। टकसालें सर्व-साधारण के लिए सन् १९०३ से ही बन्द हो गई थीं और सरकार अपनी तरफ़ से रुपये बनवा कर उनका प्रचलन कर रही थी। इसके लिए सरकार को रुपयों के बनवाने के लिए बहुतसी चाँदी ख़रीदनी पड़ती थी और सर्वसाधारण को भी बहुत भारी लेन-देन में रुपयों के गिनने और परखने में बड़ी अड़चन पड़ती थी। इन दिक्क़तों को दूर करने के लिए सरकार नोटों का प्रचलन दिन पर दिन अधिक कर रही थी। परन्तु प्रति १०० रुपये के नोट निकालने के लिए सरकार को ८० रुपये का सोना या चाँदी अपने रक्षित कोष में जमा करना पड़ता था, इसलिए नोटों के प्रचलन से भी बहुत सारी चाँदी ख़रीदने की सरकार की दिक्क़त कम नहीं होती थी।

परन्तु इस कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होते ही १९१४ ई० में जर्मनी का महायुद्ध आरम्भ हो गया। इससे और भारी दिक्क़त सरकार के सामने आ गई। लोगों ने सरकारी ख़ज़ानों और बैंकों से अपना रुपया निकालना आरम्भ कर दिया। पोस्टआफ़िसों के सेविंग बैंक भी खाली होने लगे। करेन्सीघरों पर भी नोटों का रुपया लेने के लिए लोगों की भीड़ लगने लगी। पोस्टआफ़िसों में से रुपया निकलने की नौबत ८ करोड़ पर पहुँच गई और नोटों के भी सरकारी ख़ज़ानों से भुगतान १० करोड़ पर पहुँच गये। उधर इङ्गलैण्ड के युद्ध में फँसे होने से, वहाँ के कारख़ानों में लड़ाई का माल तैयार होते रहने से, हिन्दुस्थान में विलायती माल का आना बहुत कम हो गया और भारतीय अनाज तथा अन्य कच्चे माल की माँग विलायत में बढ़ने लगी। इस प्रकार इङ्गलैंड को हिन्दुस्थान का देना एकदम बढ़ गया और लेना घट गया, जिससे कौंसिल बिलों की माँग धड़ाधड़ बढ़ने लगी। दूसरी ओर चाँदी का बाज़ार एकदम चढ़ गया। चाँदी की पैदावार ही संसार में गिर गई। सन् १९१५ में चाँदी का भाव जहाँ २७ था वहाँ मई सन् १९१९ में ५८ और दिसम्बर सन् १९१९ में पूरा ७८ हो गया।

इन दिक्क़तों को बचाने के लिए सरकार ने कौंसिल-*बिलों के द्वारा विनिमय का भाव और चढ़ाना शुरू किया* और चढ़ाते-चढ़ाते उसको १६ पेंस से पूरे २८ पेंस पर पहुँचा दिया। इससे दोहरा लाभ इङ्गलैंड और सरकार ने अपना साधन किया। चाँदी भी उनको इससे सस्ते भाव पर मिल सकी और उधर हिन्दुस्थानी अनाज तथा अन्य कच्चे माल का भी उनकी माँग बढ़ जाने से भाव नहीं बढ़ने दिया तथा विलायती माल का भी भाव हिन्दुस्थान में बहुत अधिक चढ़ने से रोक दिया गया।

भारतीय अनाज का भाव लड़ाई के कारण बहुत नहीं चढ़ सका। किसानों को जो लाभ भाव चढ़ने से पहुँचता वह सरकार ने बहुत-कुछ विनिमय का भाव चढ़ाकर रोक दिया। नीचे की सूची से विभिन्न समयों पर विनिमय की दर में फेरफार का पता लग जायगा—

तारीख़	एक रुपये का मूल्य
३ जनवरी सन् १९१७	१६॥ पेंस
२८ अगस्त सन् १९१७	१७ ,,
१२ अप्रैल सन् १९१८	१८ ,,
१३ मई सन् १९१९	२० ,,
१२ अगस्त सन् १९१९	२२ ,,
१५ सितम्बर सन् १९१९	२४ ,,
२२ नवम्बर सन् १९१९	२६ ,,
१२ दिसम्बर सन् १९१९	२८ ,,

युद्ध समाप्त होते ही सरकार को सन् १९१९ ई० में विनिमय और करेंसी पर विचार करने के लिए विशेषज्ञों की एक कमिटी फिर नियत करनी पड़ी। चूँकि युद्ध के समय हिन्दुस्थानियों को अनेक उदारता के वचन सरकार दे चुकी थी, इसलिए उनका मुँह पोंछने के लिए पहली बार इस कमिटी में एक हिन्दुस्थानी सदस्य को भी स्थान दिया गया। यह सदस्य सर दादिबा दलाल थे। इस कमिटी ने सर्वदा के लिए भारतीयों का रक्त चूसने के विचार से विनियम का भाव बढ़ाना चाहा। मुख्यतया उसकी सिफ़ारिशें निम्नस्थ थीं—

(१) विनिमय की दर २४ पेंस अर्थात् २ शिलिंग क़ायम कर दी जाय।

(२) सोने की गिनी का भाव १५ रुपये से गिराकर १० रुपये कर दिया जाय।

(३) सरकार को रुपये बनाने के लिए बहुत-सी चाँदी ख़रीदने की जो दिक़्क़त रहती है उसको दूर करने के लिए गिलट की अठन्नी, चवन्नी आदि चलाई जायँ।

(४) सरकार की रुपये बनाने की दिक़्क़त दूर करने के लिए नोटों का प्रचलन आसान कर दिया जाय। पहले १०० रुपये के नोट प्रचलित करने के लिए सरकार को ८० रुपये रक्षित कोष में जमा करने पड़ते थे, कमिटी ने तजवीज़ की कि आगे से १०० रुपये के नोट निकालने के लिए ४० रुपये ही जमा करने काफ़ी हैं।

कमिटी के हिन्दुस्थानी सदस्य सर दलाल ने ज़ोरों के साथ उपर्युक्त सिफ़ारिशों का विरोध किया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट अलग लिखकर नीचे लिखी बातों की ज़ोरों के साथ सिफ़ारिश की—

(१) सोने की गिनी बराबर १५ ही रुपये की रहनी चाहिए।

(२) सरकार को कौंसिल बिल बेचने का अधिकार बिना किसी बंधन के न रहने पावे। जितने के चाहे और जिस भाव चाहे भारत-मंत्री कौंसिल बिल न बेच सके। बजट में प्रति वर्ष इन बिलों का परिमाण नियत कर दिया जाया करे और उससे अधिक के बेचने का अधिकार भारत-सचिव को न रहे। भारत-मंत्री टेण्डर के द्वारा ही कौंसिल-बिल बेचा करे। और कौंसिल बिल किसी भी दशा में सरकार की आवश्यकता से अधिक न बेचे जायँ।

परन्तु सर दलाल बेचारे अकेले ही रहे। और किसी भी अंग्रेज़ सदस्य ने उनका साथ न दिया। इस प्रकार उनकी कुछ भी न चली। उन्होंने बहुतेरा ज़ोर लगाया कि सरकार कौंसिल बिलों की बेलगामी के द्वारा विनिमय का भाव ज़बरदस्ती न बढ़ा सके। उन्होंने बहुतेरा सिर पीटा कि गिनी का भाव १५ से १० रुपये पर गिरा कर सर्वदा के लिए विनिमय की दर न बढ़ाई जाय। परन्तु नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता था? अंग्रेज़ी व्यापारियों के हित के सामने ग़रीब भारतीयों की किसी को क्या पड़ी थी? सरकार ने अपने मतलब की बहुमत-रिपोर्ट को चट से स्वीकार कर लिया। सरकारी घोषणा कर दी गई कि गिनी का भाव १० रुपये कर दिया गया है और उसके साथ ही यह भी एलान कर दिया गया कि एक नियत तारीख़ तक जो चाहें अपनी गिनियाँ सरकारी ख़ज़ानों में दाख़िल कर दें, उनको १५ रुपये प्रति गिनी के हिसाब से दे दिये जायँगे, उस तारीख़ के आगे सरकारी ख़ज़ानों में गिनी १० रुपये पर ही ली जायगी। इस प्रकार इस एक ही युक्ति से लाखों रुपये की गिनी, जो लोगों के पास हिन्दुस्थान में थीं, सरकार ने अपने ख़ज़ाने में दाख़िल करा लीं। जो हिन्दुस्थानी उस नियत तारीख़ तक अपनी गिनी नहीं दाख़िल कर सके उनको भारी हानि उठानी पड़ी। आज भी बाज़ार में गिनी का मूल्य १३ रुपये से कम नहीं परन्तु सरकारी ख़ज़ानों में उसका भाव १० ही रुपये है। इससे भी अधिक और क्या हठधर्मी हो सकती थी? क्या अब भी इस बात में कोई संदेह कर सकता है कि सरकार ज़बरदस्ती ही विनिमय का भाव चढ़ाने पर उतारू है?

इस रिपोर्ट ने तो सरकार को खुली आज़ादी दे दी। धड़ल्ले से सरकार ने क़ाग़ज़ी घोड़े दौड़ाये; करोड़ों रुपयों के नोट निकाल डाले। लाखों रुपयों के गिलट के सिक्के चला दिये। सिक्के और नोटों की बदौलत ख़ूब गहरा लाभ सरकार को होने लगा। प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों की बचत होने लगी। परन्तु इस आमदनी से हिन्दुस्थानियों को कोई लाभ नहीं पहुँचा। उनके ऊपर सरकारी करों का जो भार

था वह तनिक भी कम न हुआ। क्योंकि यह तो पहले ही तय हो गया था कि सरकार को सिक्कों और नोटों के प्रचलन से जो आय होगी वह सरकारी साधारण आय में शुमार न होगी, बल्कि रक्षित कोष में जमा की जायगी। रक्षित कोष पहले ही हिन्दुस्थान से इङ्गलैण्ड चला गया था, अर्थात् इस कोष का अधिकांश धन भारत-सचिव के पास इङ्गलैंड में पहले से ही रहने लगा था और उसके द्वारा इंग्लैंड के पूंजीपति खूब मज़े में नाम-मात्र के सूद पर करोड़ों रुपया क़र्ज़ लेकर लाखों का लाभ उठाते थे। क्योंकि रक्षित कोष का रुपया सरकार यदि ख़ाली सन्दूक में बन्द करके रख छोड़ती तो उसके सूद की हानि थी और साथ ही वह उसको किसी ऐसे काम में भी नहीं लगा सकती थी, जिससे जब उसको आवश्यकता हो तब वह न मिल सके। इसलिए सरकार उससे धनी पूंजीपतियों को बहुत सूक्ष्म सूद पर इस शर्त के साथ उधार देती थी कि जब सरकार को जितने की आवश्यकता होगी तब उतना ही वह फौरन् चुका देंगे। हिन्दुस्थान में यह कोष रहता तो भारतीय कारख़ाने वालों को उससे लाभ पहुँचता, जिससे हिन्दुस्थानी कारीगरी की उन्नति होती। परन्तु भारतीयों को यह लाभ भी नहीं प्राप्त हुआ। यह कोष अधिकांश में इंग्लैंड में ही रहता है और वहाँ के पूंजीपति मज़े में इसका लाभ उठाते हैं। कैसे मज़े की बात है कि धन किसी का और लाभ उठावे कोई दूसरा!

इस प्रकार सरकार ने विनिमय के भाव को ज़बरदस्ती २४ पेंस पर क़ायम रख कर रक्तहीन हिन्दुस्थानी किसानों के गले पर छुरी चलाई और विलायती माल को अनीति के बल पर सस्ता कर दिया। यह लड़ाई की समाप्ति का समय था और युद्ध में हिन्दुस्थानी कारख़ाने विलायती माल न आने के कारण ख़ूब उन्नति कर गये थे। युद्ध के बाद विलायती कारख़ाने वालों को चिन्ता हुई कि अब उनका माल भारतीय मिल वालों के मुक़ाबले कैसे खपेगा। विलायती कारख़ाने तो युद्ध के कारण बहुत दिनों से युद्ध ही की सामग्री बना रहे थे और अब युद्ध-समाप्ति पर शुरू-शुरू में उनका माल स्वभावतः घटिया निकलता जिसके लिए आसानी से हिन्दुस्थान में बाज़ार न मिलता; क्योंकि उधर देशी मिल वाले लड़ाई में काफ़ी लाभ उठा चुके थे, वे अब विलायती माल को कब आसानी से आने देते! प्रतिस्पर्धा में वे अपने युद्ध के समय के कमाये धन से हानि भी उठा कर माल सस्ता कर सकते थे। परन्तु विनिमय के अमोघ अस्त्र के एक ही वार में सरकार ने विलायत के व्यापारियों की सब उलझन सुलझा दी। रुपये का भाव ज़बरदस्ती बढ़ा कर हमारी दयालु सरकार ने आसानी से ८ रुपये वाले माल को हिन्दुस्थान के बाज़ार में ५।) का कर दिया। विलायत के कारख़ाने वालों को इस प्रकार देशी मिलों की प्रतिस्पर्धा करने में एक पैसे का भी घाटा नहीं सहना पड़ा और उनका माल भारतीय बाज़ार में अपने आप ही सस्ता हो गया। क्या ठीक कहावत है—'हींग लगी न फिटकरी रंग चोखा हो गया।'

विनिमय के इस प्रकार बढ़ने से विलायती व्यापारियों को ख़ूब गहरा लाभ पहुँचा और भारतीय किसानों का ख़ूब रक्त चूँसा गया। साथ ही अंग्रेज़ अफ़सरों को भी भारी लाभ हुआ। युद्ध के समय अपनी कमाई का जो कुछ भी उन्होंने बचाकर रख छोड़ा था उसको अब अपने घर इंग्लैण्ड भेजने से उनको एक रुपये का सवा और डेढ़ मिल गया। १) रुपये के बदले पहले उनके घरवालों को इङ्गलैण्ड में १६ पेंस ही मिलते, अब पूरे २४ मिले। अंग्रेज़ों की जो अनेक मिलें हिन्दुस्थान में थीं और जिन्होंने युद्ध के समय ख़ूब बढ़-चढ़ के नफ़े मारे थे उनको भी अब अपने नफ़े का धन इंग्लैण्ड भेजना था। पहले उनके एक रुपये के बदले १६ पेंस ही इङ्गलैण्ड में पहुँचते, अब पूरे २४ हो गये। इस प्रकार एक करोड़ का पूरा डेढ़ करोड़ हो गया। युद्ध में जो कुछ कमाई की थी वह विनिमय के एक ही वार से पूरी ड्योढ़ी हो गई।

देशी मिल वालों ने बहुतेरा सिर पटका। बहुतेरा अपना माल सस्ता किया। परन्तु वहाँ तो माया ही और थी। विनिमय का भाव बढ़ा दिया गया और विलायती माल एकदम ही हिन्दुस्थानी बाज़ारों में सस्ता हो गया।

हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने २ शिलिंग मूल्य के लालच में करोड़ों रुपयों के आर्डर विलायत भेज दिये। उनकी तो आशा थी कि २ शिलिंग के माल का एक ही रुपया देना

पड़ेगा और यह भी उम्मीद थी कि शायद विनिमय का भाव और भी ऊँचा चढ़ जाय। इस प्रकार करोड़ों रुपये के आर्डर दनादन विलायत में पहुँच गये। परन्तु ज़बरदस्ती कहाँ तक चलती! विनिमय का भाव सरकार कब तक रोके रखती? थोड़ा-बहुत अन्तर रहता तो ख़ैर कोई बात नहीं थी। परन्तु पूरे ८ पेंस का अन्तर क़ायम रखना सरकार के लिए भी कठिन था।

इन आर्डरों का माल जबतक विलायत से भारतवर्ष में आया तबतक विनिमय का भाव गिर गया। अब आर्डर देने वालों के सामने अन्धेरा छा गया। उन्होंने तो इस आशा से आर्डर दिये थे कि २ शिलिंग के माल का एक ही रुपया देना पड़ेगा, परन्तु वहाँ विनिमय का भाव गिर जाने से अब उनको उसका सवा और डेढ़ देना हो गया। हिन्दुस्थानी व्यापारियों को एकदम चौंधा दिखाई देने लगा। दिवाले की खाई सामने आगई। उन्होंने जब किसी तरह चारा नहीं चलते देखा तो माल लेने से इन्कार कर दिया। नालिशें और कुर्कियाँ हुई। सैकड़ों और हज़ारों देशी व्यापारियों का दिवाला निकल गया।

इस प्रकार व्यापार में एकदम उथल-पुथल हो गई। सरकार ने बहुत कोशिशें कीं। बहुतेरी युक्तियाँ चलाईं, परन्तु कोई कारगर न हुई। हिन्दुस्थानी व्यापारियों में आन्दोलन बढ़ता ही गया। विनिमय का भाव कभी गिरने और कभी चढ़ने लगा। उधर रौलट क़ानून के पास होने पर महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह और असहयोग का आन्दोलन चलाया हुआ था। राजनैतिक उथल-पुथल बड़े ज़ोरों से सारे देश में चल रही थी। इन सब दिक़्क़तों के कारण विनिमय को स्थायी करने के लिए सरकार को १९२५ में एक और कमिटी करेन्सी और विनिमय पर विचार करने के लिए नियत करनी पड़ी। इस कमीशन के चेयरमैन कमाण्डर हिल्टर यंग बनाये गये और सर हेनरी स्ट्राकोच (Sir Henry Strakosch) सोने के मुख्य विशेषज्ञ नियत हुए। कमीशन में फिर एक भारतीय सदस्य भी रक्खे गये। वह सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास थे। इस कमीशन ने अनेक शहादतें लेने और बहुत-सा भारतीय रुपया कमीशन के सदस्यों के वेतन और भत्ते आदि में ख़र्च करने के बाद निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं—

(१) एक केन्द्रीय बैंक की विशेष आवश्यकता है। इसलिए एक ऐसा बैंक चलाया जाय। उसके चार्टर तथा सम्बन्ध-सम्बन्धी अनेक बातों पर सविस्तर सिफ़ारिशें की गईं।

(२) इसी केन्द्रीय बैंक को नोटों के प्रचलन का अधिकार दिया जाय।

(३) गिनी का भाव १० रुपये रहे।

(४) विनिमय की दर १८ पेंस कर दी जाय। अर्थात् रुपये का भाव आगे के लिए १८ पेंस नियत कर दिया जाय।

कमीशन के हिन्दुस्थानी सदस्य सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने इन सिफ़ारिशों का विरोध करते हुए अपनी रिपोर्ट अलग लिखी। रिपोर्ट में उन्होंने बताया कि रुपये का १८ पेंस मूल्य सरकार ने ज़बरदस्ती बना रक्खा है। सितम्बर सन् १९२४ में रुपये का मूल्य लगभग १६ पेंस पर आ गया था। उस समय सरकार से ज़ोरों से कहा भी गया कि अब इसी दर को वह क़ायम रक्खे क्योंकि यह दर पिछले २० वर्षों से चालू हो रही है और सब लोग इसके आदी हो गये हैं। परन्तु सरकार ने ऐसा नहीं किया। उधर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उलटा सरकार ने रुपये बनाना बन्द करके ज़बरदस्ती रुपये का मूल्य चढ़ा दिया। और सरकार की इस नीति के कारण ही अप्रैल सन् १९२५ में रुपये का मूल्य चढ़ कर १८ पेंस पर आ गया। इस प्रकार अनीति से ज़बरदस्ती चढ़ाये हुए प्रचलित भाव पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सकता। अन्त में अनुरोध-पूर्वक सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने सिफ़ारिश की कि रुपये का मूल्य १६ पेंस पर ही क़ायम रक्खा जाय। उन्होंने इसपर भी ज़ोर दिया कि १८ पेंस का रुपया हो जाने से भारत की आर्थिक स्थिति भयानक हो जायगी। हिन्दुस्थान के उद्योग-धन्धों को उससे गहरा धक्का पहुँचेगा और शायद बहुत-से कारख़ाने इससे नष्ट-भ्रष्ट भी हो जायँगे। किसानों के गले पर इससे एकदम छुरी चल जायगी। उन बेचारों की दशा अति भयानक हो जायगी।

परन्तु सरकार तो रुपये को १८ पेंस के मूल्य पर

जाने पर तुली हुई थी। अकेले बेचारे एक हिन्दुस्थानी सदस्य की क्या चलती। सरकार ने बहुमत-रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के अनुसार सन् १९२७ में बड़ी व्यवस्थापक सभा के सामने बिल पेश कर दिया, कि रुपये का मूल्य १८ पेंस नियत कर दिया जाय। इस क़ानून पर ख़ूब गरमागरम बहस हुई। हिन्दुस्थानी सदस्यों ने सरकार की 'राजनैतिक मक्कारी' की ख़ूब पोलें खोलीं। विनिमय के सरकारी गोरख-धन्धे की कड़ी-कड़ी अलग करके दिखा दी। परन्तु अर्थसदस्य सर बेसिल ब्लाकेट ने युक्तियाँ लगाकर सरकारी ख़ुशामदी सदस्यों के वोटों की सहायता पर क़ानून पास करा ही लिया। इस प्रकार क़ानून बनाकर सन् १९२७-२८ में सरकार ने रुपये का मूल्य १८ पेंस ज़बरदस्ती क़ायम कर दिया। देशभर में इसके विरुद्ध आन्दोलन उठा, पर सरकार ने कुछ भी पर्वाह न की।

भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर इसका कितना भयानक प्रभाव पड़ा? देशी कारीगरी का किस प्रकार गला घोटा गया? विलायती माल को हिन्दुस्थान के बाज़ार में कितनी सहायता मिली? और ग़रीब भारतीय किसानों की कितनी भारी हानि हुई?

जो विलायती माल पहले १६ पेंस की दर से विलायत से चलता था, उसका १६ पेंस विनिमय की दर होने से तब भारत में एक रुपया देना पड़ता था, अर्थात् वह माल भारत में आकर एक रुपये का पड़ता था। अब चूँकि विनिमय का भाव १८ पेंस हो गया, तो वही माल यद्यपि विलायत से उसी दाम पर अर्थात् १६ पेंस पर ही चला परन्तु अब भारत में आकर उसका दाम एक रुपया नहीं रहा। अब १६ पेंस के लिए भारत में एक रुपया नहीं देना पड़ता बल्कि १८ पेंस के लिए देना होता है, इसलिए १६ पेंस के उस माल के लिए अब १४॥ आने ही देने पड़ते हैं। इस प्रकार यद्यपि विलायती व्यापारी को उस माल के अब भी पूरे १६ पेंस ही मिलते रहे, उसको पहले से एक कौड़ी भी कम नहीं मिली; परन्तु भारतवर्ष में उसका मूल्य १६ आने से १४॥ आना हो गया। इस प्रकार ४ रुपये वाले विलायती धोती जोड़े का मूल्य भारतीय बाज़ार में एकदम ३॥ रुपये हो गया। एकदम दो आने रुपया विलायती माल का भाव भारतवर्ष में गिर गया, जिससे हिन्दुस्थानी मिलों को भारी धक्का लगा।

पहले विलायत में १६ पेंस का भारतीय गेहूँ ६ सेर बिकता था, जिसका भारतीय किसान को पूरा एक रुपया मिलता था, क्योंकि १६ पेंस में एक रुपया पूरा आता था। अब विलायत में तो उसका वही भाव रहा, वही १६ पेंस का ६ सेर अब भी बिका, परन्तु भारतीय किसान को अब उस १६ पेंस के पूरे १६ आने नहीं मिलते। इस प्रकार भारतीय किसान को प्रति एक रुपये में एकदम डेढ़ आने की हानि हो गई। १९२७-२८ में भारतवर्ष से कुल माल विदेशों को ३१९ करोड़ रुपये का गया था। उसपर इस हिसाब से एकदम ३० करोड़ रुपये की प्रतिवर्ष हानि भारतवर्ष को इस विनिमय के कारण होने लगी। यही कारण है कि आज सन् १९२९ में यद्यपि पिछले दो वर्षों से भारतवर्ष में फ़सलें नष्ट हो रही हैं—इस वर्ष १९२९ में तो अनेक ज़िलों में जो फ़सल हुई भी थी वह भी टिड्डियों ने खा ली, कहीं कहीं तो दशा ऐसी ख़राब है कि पशुओं के खाने के लिए घास-भूसा भी बिल्कुल नहीं है, परन्तु ऐसी नापैदगी में भी बाज़ार में अन्न का भाव वही बना हुआ है। बेचारे किसानों का हर प्रकार गला कट गया। उधर फसल कम हुई—कम क्या कुछ भी नहीं हुई, इधर विनिमय के कारण भाव मन्दा होने से जो कुछ पैदा हुआ भी उसका भी बाज़ार में बेचने पर कुछ नहीं मिलता। बेचारों को लगान चुकाना भी कठिन हो रहा है। न मालूम बेचारे किस प्रकार अपनी गुज़र कर रहे हैं। इसपर हमारे भोले किसान अपनी तक़दीर को ही दोष देते हैं। बेचारे समझते थे कि फ़सल नहीं हुई तो भाव चढ़ जायगा, जिससे थोड़ी ही पैदावार से उनको बहुत-सा रुपया मिल जायगा; परन्तु जब वे मण्डी में आकर मन्दा भाव देखते हैं तो आश्चर्यचकित होते हैं, और अपनी ही तक़दीर को खोटी ठहरा कर कहते हैं कि हमारा भाग्य ही निकम्मा है तभी तो दो वर्ष से फ़सलें न होने पर भी भाव मन्दा है! उन बेचारों को पता ही नहीं कि भाव में क्या माया घुसी हुई है! विनिमय के इस राक्षसी अस्त्र ने ही भाव मन्दा

कर रक्खा है, यह वे बेचारे भोले लोग क्या समझें ? तभी तो लार्ड सैलिसबरी ने इसको 'राजनैतिक मक्कारी' कहा है।

पाठकों को पता होगा कि हिन्दुस्थान की मिलों के बने माल पर हमारी दयालु सरकार ने टैक्स लगा दिया था, ताकि वह विलायती माल से होड़ में बाज़ी न ले सके। परन्तु इधर असहयोग के महात्मा गाँधी के आन्दोलन के बाद देश में इस विषय पर बहुत आन्दोलन हुआ, उधर सरकार भी युद्ध में अनेक वचन दे चुकी थी। इसलिए मजबूर होकर सरकार को देशी मिलों के बने माल पर से कर उठा लेना पड़ा। लेकिन एक हाथ देकर सवा हाथ खींच लेने में हमारे प्रभु सदा से चतुर रहे हैं! इधर तो कर मिलों के बने माल पर से उठा लिया, उधर विनिमय के अस्त्र का ऐसा वार किया कि विलायती माल एकदम वैसे ही डेढ़ आना रुपया सस्ता हो गया। हिन्दुस्तानी मिलें बेचारी दयालु सरकार की चालों को देखती ही रह गईं। इस प्रकार यहाँ का व्यापार और कारीगरी आजकल इस सफ़ाई से नष्ट की जा रही है और हमारा धन इस ख़ूबी से खींचा जा रहा है कि लोगों को पता ही नहीं लगता कि कोई हमसे धन खींच रहा है। व्यापारी लोग केवल इतना ही कहते हुए सुने जाते हैं कि पैसा नहीं रहा, व्यापार ढीला पड़ा हुआ है, परन्तु पैसा क्यों नहीं रहा और व्यापार क्यों शिथिल है, इसे समझते ही नहीं। बेचारे भोले-भाले भारतीय व्यापारी क्या समझें कि रुपये का मूल्य १६ पेंस से १८ पेंस हो जाने का अर्थ क्या है ? कैसी कैसी कुटिल और घातक चालें हम पर की जा रही हैं; इसे हम समझते ही नहीं। हम तो सरकार के नोटों के क़ाग़ज़ी जालों और विनिमय के फन्दे में जकड़े हुए पड़े हैं।

× × ख़याल कीजिए कि अंग्रेज़ों के कारनामे कितने काले रहे होंगे, जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने यह कबूल किया है कि हिन्दुस्थान की अन्दरूनी तिजारत में जो बड़ी-बड़ी रक़में गई हैं, वे इतनी ज़बरदस्त बेइन्साफ़ियों और ज़ुल्मों से हासिल की गई हैं, जिनसे बढ़कर बेइन्साफ़ी और ज़ुल्म कभी किसी मुल्क या किसी ज़माने में भी सुनने में नहीं आये। अन्दाज़ लगाइए कि वान्सिटर्ट ने समाज की जिस हालत का बयान किया है वह कितनी ख़राब रही होगी, जबकि वान्सिटर्ट हमें बतलाता है कि अंग्रेज़ हिन्दुस्थानियों को मजबूर करके जिस भाव चाहते थे उनसे माल ख़रीदते थे और जिस भाव चाहते थे उनके हाथ बेचते थे और जो कोई इन्कार करता था उसे बेंत लगाते या क़ैदख़ाने की सज़ा देते थे। ख़याल कीजिए कि उस वक्त मुल्क की क्या हालत रही होगी, जबकि अपनी किसी यात्रा का बयान करते हुए वारन हेस्टिंग्स लिखता है कि हमारे पहुँचते ही लोग ज़्यादातर छोटे-छोटे क़स्बों और सरायों को छोड़-छोड़ कर भाग जाते थे। × × × × × × आज दिन तक भी नमक का तकलीफ़देह ठेका और वह बेरहम लगान की रस्म जारी है, जो कि ग़रीब रैयत से ज़मीन की तक़रीबन आधी पैदावार चूस लेती है। आज दिन तक भी वह बदमाशी से भरी हुई मनमौजी हुकूमत जारी है, जो मुल्क को गुलाम बनाये रहने के लिए और उस ग़ुलामी को बढ़ाने के लिए देशी सिपाहियों को ही बतौर इसके तरीक़े के इस्तैमाल करती है। .. ...आज दिन तक पुलिस के कारकून अमीर लफंगों के साथ मिलकर ग़रीबों से रुपया चूसने के लिए क़ानून की तमाम मशीनरी को काम में लाते हैं।"

—हर्बर्ट स्पेन्सर

मार्क्विस डि लैम्बी की धर्मपत्नी अत्यन्त व्यस्त भाव से कमरे में टहल रही थीं, और बीच-बीच में खिड़की के पास जाकर इधर-उधर निगाह दौड़ाती थीं। उन्हें देख कर यह जान पड़ता था कि वह किसी की प्रतीक्षा में बड़ी बेचैनी से समय काट रही हैं।

उस समय फ्रान्स में विप्लव की आग धधक रही थी, प्रजातंत्र-वादियों का पूरा प्रभाव था। वे दल के दल सब जगह आ-जा रहे थे और हाथ में संगीन लेकर नगर के द्वार-द्वार पर पहरा देते हुए अमीरों के मनमाना घूमने में बाधा डालते थे। "समानता, स्वतंत्रता, मित्रता —अथवा मृत्यु" उस समय यही उनका मूल मंत्र था। वे ही उस समय फ्रान्स के कर्ता-धर्ता हो रहे थे। अमीरों के प्रति हिंसा का भाव रखने से वे बनैले पशुओं की तरह हिंस्र हो गये थे। राजतंत्र वादियों का मूलोच्छेद करना ही उनका एक-मात्र लक्ष्य था। उनका पता पाते ही उन्हें पकड़ लाकर मौत के हवाले करते। निरपराध पुरुष, असहाय अबला, छोटे-छोटे बच्चे भी उनके हाथ से न बच सकते थे, पिता के अपराध पर पुत्र की, स्वामी के अपराध पर स्त्री की, भाई के अपराध पर निर्दोषी भाई की तथा अन्य लोगों के अभाव पर छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं की हत्या कर रहे थे। बहुत समय से अत्याचार पर अत्याचार सहते वे अंकुश से मारे हुए हाथी की तरह, पैर से कुचले हुए साँप की भाँति, उन्मत्त हो उठे थे। दो सौ वर्ष से वे सम्राटों और जमींदार आदि अमीरों के ऐश-आराम की सामग्री जुटाने लिए आधे पेट अथवा बिना खाये-पिये अथक परिश्रम-द्वारा शरीर को गलाते हुए उनकी गुलामी करते आये थे, इसके बदले में उन्हें क्या मिला है? अपमान, अत्याचार, निष्ठुरता!

आज उनके दिन लौटे हैं। फ्रांस के विभिन्न प्रान्तों की तीन लाख प्रजा विद्रोही हो उठी है। आज वही फ्रान्स के राजा हैं, फिर अपनी प्रतिहिंसा-वृत्ति को चरितार्थ न करेंगे? उन्हें ऐसा करने से कौन रोक सकता है? उनका हत्या-कांड का कार्य बेरोक टोक चल रहा है। उनके भीतर दया-माया का लेश-मात्र नहीं है, और न विश्राम और शान्ति है न समय का हिसाब ही है। दिन के बाद रात्रि, रात्रि के बाद दिन आता है, इसके अतिरिक्त समय का कोई हिसाब नहीं है। सम्राट् से लेकर साधारण मार्क्विस तक किसी की रक्षा नहीं है। जहाँ कहीं भी उनका पता पाते हैं, उन्हें क़ैद करके, किसी का बिना विचार किये ही, किसी को विचार का ढोंग दिखलाकर, जेल भेजते जाते हैं, और अंत में "गिलोटिन"* के कराल कवल में भेजकर उनके सारे सुखों पर पानी फेर देते हैं। इस प्रकार प्रति दिन न जाने कितने स्त्री-पुरुष अपने पूर्वजों के अत्याचार का ऋण अपने-अपने जीवन द्वारा चुकाते हैं।

सम्राट् सत्रहवें लुई का विचार तथा प्राण-दण्ड हो गया है। सम्राज्ञी मेरी भी इस लोक में नहीं हैं। अब भी प्रति दिन चार पाँच गाड़ियों में क़ैदियों को लाकर घातकों के सुपुर्द किया जाता है। इस काम में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक उत्साह से भाग ले रही हैं। वे भी भिन्न-भिन्न दलों में बँटकर अमीरों, जमींदारों तथा राजतंत्रवादियों को ढूँढती फिरती हैं। वध्य-भूमि के भीषण दृश्य को देखने के लिए वे ही विशेष उत्सुक रहती हैं। सम्राट् के कटे हुए सिर को देखकर उन्होंने ही ताली बजाई थी, फिर बहुत काल से कारागार में बन्द विधवा सम्राज्ञी के शुभ्र मस्तक को घातक के हाथ में देखकर खुशी से नाच उठीं। इतने पर भी उनकी रक्त-पिपासा दूर न हुई। 'मार-मार' 'काट-काट' शब्द को छोड़कर उनके मुँह में और कोई शब्द नहीं हैं।

एडेल का स्वामी मार्क्विस डि लैम्बी एक कुलीन और राज्य पक्ष का था। इन लोगों ने देखा कि इस क्रोधोन्मत्त जनता के हाथ से बचना मुश्किल है, इसलिए आज रात को ही किसान के वेश में इंग्लैण्ड की यात्रा करने का

* अस्त्र विशेष, जिसके द्वारा क़ैदियों की हत्या की जाती थी।

चय किया और एडेल की धाय मैडम गेवेल के घर में एक दिन के लिए आश्रय लिया है। मैडम प्रजारक्ष की थी, किन्तु स्तन के दूध से पली कन्या के क्रन्दन की उपेक्षा न कर सकी। एडेल के स्वामी निर्विघ्न यात्रा के लिए पासपोर्ट की फ़िराक में गये हैं। एडेल उन्हींकी प्रतीक्षा में बहुत बेचैनी से समय काट रही है।

मैडम गेवेल ने इसी समय घर में प्रवेश किया। उनकी उम्र लगभग पचास वर्ष के होगी, लेकिन शारीरिक श्रम और मानसिक चिन्ताओं से वह अपनी अवस्था से अधिक की जान पड़ती हैं। वह एडेल की बेचैनी देखकर रूखे स्वर में बोली, "इतनी बेकरारी से क्या लाभ होगा? विपत्ति के समय धैर्य छोड़ना मूर्खता का लक्षण है।"

एडेल कुछ मुस्कराती हुई बोली, "माँ, मेरे स्वामी के पग-पग पर ऐसी विपत्ति है, फिर मैं किस तरह धीरज रक्खूँ?"

मैडम बोलीं, "तुम्हारे स्वामी पर कोई विपत्ति आने पर वह उपयुक्त दण्ड पायेंगे। सिर्फ़ तुम्हारी वजह से मैंने तुम लोगों को आश्रय दिया है, नहीं तो तुम्हारे स्वामी को अभी गिरफ्तार करवा देती।"

एडेल सिहर उठी और बोली, "माँ, क्यों ऐसी निष्ठुरता की बात कहती हो? तुममें दया-माया क्या नहीं रही?"

मैडम गर्जकर बोल उठीं—"दया-माया! तुम दया-माया की बात फिर चलाती हो? हम लोगों के ऊपर जब अत्याचार किये जा रहे थे, उस समय तुम लोगों की दया-माया कहाँ थी? मेरे स्वामी और लड़कों को जानवरों की तरह गाड़ी में जोत कर दिन-भर घुमाया; रात में तुम लोगों की नींद में खलल पड़ेगा, इसके लिए मेंढकों को भगाने को रात-भर उन्हें पहरे पर रक्खा; बिना वेतन दिये खरीदे हुए गुलाम की तरह काम पर लगाये रक्खा; हमारे खेत से अपने शौक़ के लिए पाले हुए पशु-पक्षियों को चारा दिया जाता था—हम अपने लिए एक दाना भी नहीं पाती थीं, यदि किसी दिन अपने लिए लुका छिपा कर थोड़ा-बहुत रख लिया तो भी इसलिए दरवाज़ा बन्द करके भोजन किया कि कहीं तुम लोग देखने पर सामने का आहार भी छीन न लो! हम लोगों की जवान लड़की को ज़बरदस्ती पकड़ ले जाकर तुम्हारे स्वामी-पुत्रों ने उसे अपने विलास की सामग्री बनाई—इस काम में यदि कोई बाधा डालने गया, तो उसकी हत्या करने से भी बाज़ नहीं आये, और आज तुम दया-माया की बात चलाती हो? एडेल—एडेल—"

एडेल भयभीत होकर कहने लगी—"क्षमा करो, क्षमा करो, हम लोगों से अपराध हुए हैं।"

मैडम कुछ शान्त हुईं। ऊन और काँटा निकाल कर मोज़ा बुनने लगीं। एडेल जंगले के पास खड़ी होकर बाहर का दृश्य देखने लगी। क्रमशः सन्ध्या का अन्धकार गाढ़ा हो आया। स्वच्छ आकाश में दो-एक तारे निकल आये। मार्किस अभी नहीं आये! एडेल वक़्त काटने के लिए मैडम के पास बैठकर बातचीत करने लगी—

"अच्छा मैडम गेवेल, क्या तुम्हारा विचार है कि हम लोग निर्विघ्न इंग्लैण्ड पहुँच पायेंगे?"

मैडम बोली, "यह बहुत कठिन समस्या है। बहुत सावधानी से काम करने की आवश्यकता है। पहरा क्रमशः बढ़ता ही जाता है।"

"अच्छा मैडम, मेरी हमजोली जो तुम्हारी लड़की थी, उसकी क्या शादी हो गई है?"

मैडम गम्भीर स्वर में बोली, "मेरी लड़की नहीं रही!"

एडेल अत्यन्त दुखित स्वर में बोली, "आह! तुम्हारी वह लड़की बड़ी सुन्दरी थी! उसकी मृत्यु कब हुई?"

मैडम पहले ही की तरह बोलीं, "उसकी मृत्यु नहीं हुई।"

एडेल ने कुछ आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "उसकी मृत्यु नहीं हुई तो वह कहाँ है?"

मैडम फिर गर्ज उठीं, "वह कहाँ है? मेरी कहाँ है? यह बात मुझसे न पूछ कर अपने-जैसे नीच अमीरों से पूछो। यदि उसकी मृत्यु हुई होती तो वह मेरे लिए दुःख की बात न होती; किन्तु यह मृत्यु से भी अधिक कष्टदायी है।"

इसके बाद एडेल की उत्सुकता-भरी दृष्टि को देखकर मैडम कहने लगीं—"वह क्या हुई, यह बात सुनना चाहती हो? जिस समय उसकी अवस्था १६ वर्ष की हुई, उस समय कोई उसकी तरफ़ से आँख नहीं फिरा सकता था।

उसका रंग गुलाब के फूल जैसा था, बड़ी-बड़ी दो आँखें मानों सदा हँसती रहती थीं। उसके घुँघराले बाल कुछ पीठ पर, कुछ ललाट पर, कुछ कंधे पर लटकते रहते थे; विचित्र ही शोभा थी। उसकी यह सुन्दरता ही उसके लिए काल सिद्ध हुई। मैं उसकी रक्षा की चिन्ता में हमेशा रहती थी। स्वयं थकी-माँदी होने पर भी उसे कहीं किसी काम से नहीं भेजती थी। किन्तु दुर्भाग्य! मेरी का पिता बीमार होकर घूमने-फिरने से लाचार हो गया। मैं हमेशा उसकी सेवा में लगी रहने से कोई काम करने का समय नहीं पाती थी। उस समय कोई ऐसा न था, जो रोगी के औषध-पथ्य तथा हम लोगों के भोजन की सामग्री जुटाता। मेरी सिलाई का काम अच्छा जानती थी। मेरे इस घर के पास ही दर्ज़ी का एक कारख़ाना था, वहीं पर मेरी काम करने लगी। हाय, उसे मैंने वहाँ क्यों भेजा? क्यों न स्वयं भूखे रह भीख माँग कर स्वामी के औषध-पथ्य का बन्दो-बस्त किया।"

मैडम चुप रही। एडेल उत्सुकता के साथ बोली—इसके बाद?"

"एक दिन एक ज़मींदार का लड़का उस दूकान पर कपड़े की फरमाइश देने आया, उसकी दृष्टि मेरी पर पड़ी। उस दिन जब छुट्टी हुई, मेरी ने बाहर आकर देखा कि वही युवक खड़ा है। उसने मेरी से दो एक बातें पूछीं—मेरी भी उत्तर देकर चली आई। इस प्रकार रोज़ छुट्टी के बाद मेरी से भेंट करके वह पापी क्रमशः मेरी पर अपना मोहजाल फैलाने लगा। मेरी भी उसका सुन्दर मुँह देख कर भूल गई। मैं अभागिनी रोगी स्वामी की सेवा-शुश्रूषा में फँस कर इस सम्बन्ध में कुछ न जानती थी। एक दिन उसने मेरी से विवाह का प्रस्ताव किया।"

मैडम चुप हो गईं। कुछ देर तक मौन रह कर फिर कहने लगीं—

'मेरी ने जिस समय हँसती-हँसती आकर मुझसे उस विवाह के प्रस्ताव की बात कही, उस समय मेरे सिर पर मानों आसमान टूट पड़ा। मैंने इस प्रस्ताव के अनौचित्य के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा-सुना—ऐसा जान पड़ा कि उसने मेरी बात को समझ लिया। उसने उस समय उस युवक से फिर बात-चीत न करने की प्रतिज्ञा भी की। इस तरह जब दो मास बीत गये तो उसकी ओर से निश्चिन्त हुई। सहसा एक दिन मुझपर वज्र टूट पड़ा—मेरी रात में घर छोड़ कर कहीं चली गई।"

मैडम फिर चुप होगईं। उनका चेहरा उदास हो गया, मानों वह वर्तमान को भूलकर उस अतीत की सारी घटना को आँखों से देख रही थीं। इस प्रकार कुछ समय तक चुपचाप निश्चेष्ट रहकर वह सहसा चौंक पड़ीं, चारों तरफ़ देख कर फिर कहने लगीं—

"एक वर्ष के बाद एक दिन सन्ध्या-समय मेरी घर को वापस आई। उस पापी ने फटे कपड़े की तरह उसे छोड़ दिया था। इस अभागिनी के सन्तान होने वाली थी। मेरे स्वामी को मरे कुछ ही दिन हुए थे। दुःख, अनुताप तथा लज्जा से अधमरी-सी होकर वह लड़की माता की गोद में शान्ति पाने के लिए आई; किन्तु दुष्टा माता ने उसकी तीव्र भर्त्सना की। अभिमान से उस दुखिया ने उसी रात को मेरा घर छोड़ दिया। उस समय से आज दस वर्ष तक बहुत तलाश करने पर भी उसका कुछ पता न चला। एडेल, एडेल, तूने क्यों मेरी उस स्मृति को जगा दिया? जिसे न-जाने कितने यत्न, कितने कष्ट से हृदय से दूर करने की चेष्टा करती हूँ, उसमें फिर क्यों आग लगा दी? एडेल तू समझ नहीं रही है कि तू अपने लिए गड्ढा खोद रही है। मेरी प्रतिहिंसा-वृत्ति के एक बार जाग उठने पर तुम लोगों की फिर रक्षा नहीं हो सकती।"

एडेल मैडम की गर्दन को दोनों हाथों से लपेट कर उसका मुँह चूमती हुई कहने लगी—"मैडम, तुमने इतना सहन करके भी हम लोगों को आश्रय दिया है, इससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, और कृतज्ञता के भार से मेरा हृदय अवनत हो गया है। मैंने अज्ञान से तुम्हें इतना कष्ट दिया, इसके लिए मुझे क्षमा करो।"

मैडम गेबेल ने पाली हुई कन्या के मुँह की ओर देखा। उसकी कठोर दृष्टि कुछ नर्म पड़ गई। स्नेह-पूर्वक एडेल का मुँह पकड़ कर उसकी ओर देखती हुई बोलीं—

"मैं इस कोमल हृदय को जानकर ही निष्ठुर नहीं हो सकती।"

(२)

इसी समय किसान-वेशधारी मार्क्विस डी लेंसी ने घर में पैर रक्खा। उसका लम्बा डील-डौल, नुकीली नाक, चौड़ा ललाट, सभी सुन्दर थे, किन्तु आँखों में गंभीर भाव का बिलकुल अभाव था। उसे देखकर मैडम ने भौंहें टेढ़ी करलीं। एडेल ने दौड़ कर पूछा—"क्या हुआ हेनरी ?"

"सब ठीक है—हम लोग एक घंटे के अन्दर ही यह घर छोड़ देंगे। तुम तैयार होकर आओ।"

मैडम गेवेल ने एडेल को किसान की स्त्री के वेश में सजा दिया। एडेल तुरन्त चलने के लिए तैयार हो गई। लेकिन कुछ खा पी लेना उचित समझ कर मैडम ने कुछ भोजन-सामग्री ला दी।

भोजन करते समय हेनरी किस तरह से पासपोर्ट पाया, कितना कष्ट, कितना अपमान सहना पड़ा, एक बार पकड़ते-पकड़ते बच गया, आदि बातें कहने लगा। इतने में रास्ते में अत्यन्त कोलाहल सुनाई पड़ा। उन सबने जंगले के पास जाकर एक भीषण दृश्य देखा। कैदियों से भरी हुई दो 'टम्ब्रिल' को घेरे हुए कईसौ आदमी बड़ा शोर-गुल करते हुए चले जा रहे हैं। उस 'टेम्ब्रिल' पर पचास क़ैदी जेलखाने लेजाये जा रहे हैं। उनमें से कोई खुले सिर बैठा है, कोई सहानुभूति के लिए कातर नेत्रों से चारों तरफ़ देख रहा है, कोई-कोई ज़रा भी इधर-उधर न देखते हुए आपस में बातचीत कर रहे हैं, और कोई-कोई हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रहे हैं। सबके आगे उस जन-समूह को उत्साहित करती हुई एक भयंकर मूर्ति वाली स्त्री हाथ में मशाल लिये हुए जारही है। उसका वस्त्र फटा हुआ है, रूखे बाल हवा में उड़ते जारहे हैं, शरीर धूल से लिपटा हुआ है, लेकिन भ्रूक्षेप नहीं करती। विकट शब्द करती हुई जनता को उत्साहित करती जाती है। उसके उत्तेजना-पूर्ण वाक्यों से सभी उन्मत्त होकर पैशाचिक नृत्य करते जा रहे हैं। इस दृश्य को देख कर एडेल सिहर उठी। मैडम बोली—

"यह जो स्त्री की मूर्ति है, इसे 'प्रतिहिंसा' कहते हैं। प्रायः दो महीने हुए, पेरिस में इसका आविर्भाव हुआ है। यह कौन है, कहाँ से आई है, कोई जानता नहीं है। शिकारी कुत्ता जिस प्रकार अपने शिकार को ढूँढ निकालता है, यह स्त्री उसी तरह अमीरों तथा राजतंत्रवादियों को खोज बाहर करती है। इसके हाथ से बच निकलना बड़ा कठिन है।"

क्रमशः लोगों की वह भीड़ आँखों से ओझल हो गई। मार्क्विस फिर भोजन करने लगा। एडेल को फिर भोजन करने की हिम्मत न हुई। किसी अमंगल की आशङ्का से उसका हृदय रह-रह कर काँप उठता था।

सहसा बाहर पैरों की आहट सुनाई पड़ी। तत्क्षण किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। मैडम गेवेल किंकर्तव्य-विमूढ़ हो खड़ी रहीं। एडेल ने दौड़ कर उन्हें बाँहों से कस कर अस्फुट भीत स्वर में कहा—"बचाओ, मैडम, मुझे बचाओ!"

बाहर से फिर आवाज़ आई—"प्रजातंत्र के नाम पर आज्ञा दी जाती है कि दरवाज़ा खोल दो।"

इस आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति मैडम में न थी। उन्होंने कठोरतापूर्वक एडेल को ढकेल कर द्वार खोल दिया, और देखा कि वही 'प्रतिहिंसा' दरवाज़े पर खड़ी है—"अमीरों का गन्ध पाकर यहाँ आई हूँ, वे कहाँ हैं?" मैडम ने कुछ उत्तर न दिया। ऐसा जान पड़ा, मानों उस बात ने उसके कान में प्रवेश ही नहीं किया। उन्होंने स्थिर दृष्टि से उस मूर्ति के मुँह की ओर देखा। कुछ देर के बाद वह 'मेरी, मेरी!' कहती हुई रो उठीं और उसे छाती से लगा लिया। मेरी भी आँसू गिराने लगी। माता-कन्या के मिलन-दृश्य को देख कर कोमल-प्राणा एडेल की आँखों से भी आँसू गिरने लगे। कुछ देर तक चुप रहने के बाद मैडम बोलीं—

"मेरी, इतने दिन तक कहाँ पर थी? तेरे लिए कितना कष्ट सहा है, इसकी तू कल्पना भी नहीं कर सकती। बेटी! तेरा यह वेश कैसा? यदि माँ अपराध करे तो क्या उसे इस तरह दण्ड दिया जाता है?"

मेरी, ने कहा—"माँ, ये सब बातें फिर कहूँगी। इस समय जिस काम के लिए दल छोड़ कर लौट आई हूँ, उसे किये बिना दूसरे किसी काम में एक मुहूर्त्त की देरी नहीं कर सकती। मुझे ख़बर मिली है कि राजपक्ष के दो

लोग इस घर में छिपे हुए हैं, उनकी तलाश में आई हूँ !" इसके बाद हेनरी और एडेल की ओर अँगुली उठा कर पूछा, 'ये कौन हैं ?"

मैडम के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही मेरी हेनरी की ओर अग्रसर हो पूछने लगी—"महाशय, वे पिशाच कहाँ हैं, क्या आप जानते हैं ? अगर आप उनका पता—"

बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि मेरी एकाएक चिल्ला उठी—'माँ, माँ, ! एडेल किसान नहीं है, इसी पापी ने विवाह का प्रलोभन देकर मेरा सर्वनाश किया था।"

मैडम साँप से डसे हुए आदमी की तरह चौंक उठीं—"क्या कहा ? यही धूर्त तेरी इस अवस्था का कारण है ?" इसके बाद अत्यंत उत्तेजित होकर कहने लगीं—"हाय हाय ! दया-माया में भूल कर इस दुरात्मा को ही बचाने जा रही थी ! लेकिन अब नहीं—दूर हटो माया, दूर हटो स्नेह, मोह—सब दूर हटो ! आज सिर्फ़ प्रतिहिंसा से ही ही मुझे काम है !"

जबसे एडेल ने मेरी को देखा था, तभी से वह डर से बेजान-सी हो रही थी। वह अब तुच्छ साहस का संचय कर कहने लगी—"रक्षा करो, मुझे बचाओ, यावत जीवन तुम्हारी गुलामी करके यह ऋण चुकाऊँगी। मुझपर दया कर मेरे स्वामी को क्षमा करो।"

एडेल के दोनों गालों से होकर आँसू बह रहे थे। मेरी इन आँसुओं को देखकर खुशी से ताली बजाने लगी—"अहा ! आँखों से आँसू गिर रहे हैं ! प्रबल प्रतापशाली महामान्य मार्क्विस डि लैन्सी की स्त्री की आँखों में आँसू ! वह एक साधारण पददलित किसान की कन्या की कृपा की भिखारिणी बन रही है ! मेरे भाग्य में इतना आनन्द बदा था ! आज मेरा सारा कष्ट सार्थक हुआ ! हाः हाः, माँ, तुम जल्द जाओ, लोगों को बुला लाओ, तबतक मैं इन लोगों पर पहरा दे रही हूँ।"

मैडम ने प्रस्थान किया। एडेल घुटने टेककर बार-बार क्षमा-प्रार्थना करने लगी। मेरी रुलाई से उसे हटाने लगी। हटात उसका हाथ एडेल की छाती पर लटकते हुए चाँदी के बने एक क्रूस पर पड़ा। उसे हाथ में लेकर देखते ही वह चौंक उठी और पूछा—"यह कहाँ से पाया ?"

एडेल ने कहा—"एक दुखिया लड़की को एकबार महा-पाप से बचाया था, उसीने इसे मुझे दिया था।"

मेरी ने पूछा "इसे पाये हुए कितने दिन हुए ?"

एडेल कहने लगी, "लगभग दस वर्ष हुए। उस समय मेरी शादी नहीं हुई थी। मैं संध्या-समय नदी-किनारे टहलना बहुत पसन्द करती थी। अपने पिता की अकेली सन्तान थी; वह प्यार के मारे मेरी किसी इच्छा में बाधा नहीं डालते थे। एक दिन सन्ध्या-समय अपनी सखियों और नौकरों के साथ नदी-किनारे टहलने गई थी। वहाँ एक ज्योतिषी से भेंट हुई। मेरे साथ के लोग उसे घेर कर खड़े हो गये और तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। मैं अकेली घूमते घूमते बहुत दूर तक चली गई। उस समय सन्ध्या गाढ़ी हो आई—मैं लौटना ही चाहती थी, इतने में देखा कि एक स्त्री धीरे-धीरे जाकर नदी में समा रही है। इस समय कौन नहाने के लिए आया ? मैं कुछ कुतूहल-वश हो उसे देखने गई। पास जाकर देखा कि वह स्नान नहीं कर रही है, किन्तु आत्म-हत्या करने की चेष्टा कर रही है। मैंने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। जब वह चौंक कर पीछे की ओर मुड़ी तो वह एक अपूर्व सुन्दर बालिका दिखाई पड़ी।—"

मेरी इस समय व्यग्र हो उठी। बोली—'हाँ, कहती जाओ; कहती जाओ।"

एडेल कहने लगी—"मैंने उससे पूछा, तू क्यों ऐसा कुकर्म कर रही है ? उसने उत्तर दिया, 'दिल की आग बुझाने के लिए।' मैं उस समय उसे समझाने की चेष्टा करने लगी कि आत्म-हत्या महापाप है, इसे करने का हम लोगों को अधिकार नहीं है। कुछ देर के बाद उसने मेरी बात मान ली। इस समय वह—"

मेरी ने बीच में बाधा देकर पूछा—"उसकी पोशाक मट-मैले रंग की थी ?"

"हाँ"

"उसकी छाती में चाँदी का बना हुआ एक क्रूस था ? उसकी गोदी में एक छोटा बच्चा था ?"

एडेल का आश्चर्य क्रमशः बढ़ता जाता था, इस बार उसने कहा—"हाँ, लेकिन तुम्हें यह बात कैसे मालूम हुई ?"

"इस बात से तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं। इसके बाद क्या हुआ, सो कहो।"

"इसके बाद उसने अपनी ज़िन्दगी का दास्तान बताया। वह सब सुनकर क्या करोगी? इतना ही कहती हूँ कि उसने एक आदमी के मोहजाल में पड़कर घर छोड़ दिया था। इसके बाद प्रतारित हो आत्म-हत्या करने पर उतारू हुई थी। उसने मुझसे और सब बातें तो बतलाईं, लेकिन अपने पिता का नाम बहुत कहने पर भी नहीं बतलाया। पूछने पर कहा—'उस पवित्र नाम पर कलंक लगाया है, उसे उच्चारण नहीं करूँगी।' मेरे पास रुपये थे, उन्हें उसके बच्चे के लिए उसके हाथ में दिया और ज़रूरत पड़ने फिर सहायता देने की बात कहकर मैं वहाँ से चल पड़ी। एक महीने के बाद उसने एक पत्र लिखकर अपने बच्चे के स्मरण-चिन्ह-स्वरूप इस क्रूस को मेरे पास भेज दिया। पत्र में बच्चे की मृत्यु की ख़बर थी। मैं उसी समय से एक क्षण के लिए भी इस क्रूस को अलग नहीं करती।"

मेरी अबतक बड़े ध्यान से एडेल की कहानी सुन रही थी। उसकी बात ख़त्म होते ही धीरे से बोली, 'ओह, मैं ही वह स्त्री हूँ!"

एडेल चौंक उठी। कहाँ वह सुन्दर बालिका और कहाँ यह भीषण मूर्ति! कैसा परिवर्तन हो गया! मेरी सिर झुकाये कुछ देर तक सोचती रही। इसके बाद फुर्ती से आकर एक स्थान पर पाँव से दबाया, एक गुप्त दरवाज़ा खुल गया। उसी तरफ़ अंगुली का इशारा करके कहा—"इस गुप्त द्वार के सम्बन्ध में मेरी माँ भी कुछ नहीं जानती। मुझे एक बार संयोग से इसका पता लग गया था। रात में सबके सो जाने पर उस पापी के आने के लिए यह दरवाज़ा खोल देती थी। जाओ अपने नीच स्वामी का हाथ पकड़ कर इस दर्वाजे से भाग जाओ। एक बार तुमने एक असहाय बालिका की महापातक से रक्षा की थी, उसके साथ स्नेह का व्यवहार किया था, आज उसने उस ऋण को चुका दिया। जाओ, मेरी प्रतिहिंसा-वृत्ति के पुनः जागृत होने के पहले ही भाग जाओ।"

एडेल ने कृतज्ञता से भरकर मेरी को आलिंगन कर उसका मुँह चूम लिया। हेनरी जंगले के पास खड़ा होकर सब देख रहा था। ज़बान हिलाने तक का उसे साहस न होता था। विदा होने के समय जब मेरी की ओर अग्रसर हो कृतज्ञता प्रकट करने लिए तैयार हुआ तो मेरी घृणा से भरकर उसका अपमान करती हुई बोली, "छिः! स्त्री के पुण्य-प्रताप से तुम्हारी जान बची है, कृतज्ञता उसके प्रति प्रकट करो।"

चलने के समय एडेल ने फिर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मेरी के मुँह की ओर देखा। मेरी नीरव निश्चल प्रतिमा की तरह खड़ी रही।

मैडम गेबल ने दल-बल-सहित वापस आकर देखा कि 'शिकार' भाग गया है और मेरी नतजानु और बद्धाञ्जलि होकर प्रार्थना कर रही है।*

* अनूदित

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का महत्व

[श्री राजाराम जौहरी]

जिस प्रकार हमारे कितने ही छोटे मोटे कपड़ों के कारखाने मैनचेस्टर और लंकाशायर के लाभार्थ नष्ट कर दिये गये, इसी तरह अमेरिका का व्यापार भी इंगलैण्ड-द्वारा बर्बाद हुआ था। जो नीति इंग्लैण्ड की भारत के साथ रही, वही उसने अपनी नई आबादियों (उपनिवेशों) के साथ रक्खी थी। इसके प्रमाणार्थ मैं श्री जे० आर० मैक्यूलरी की पुस्तक से कुछ पंक्तियाँ पाठकों के भेंट करूँगा। वह लिखते हैं कि जो कार्रवाई ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने अमेरिका की बस्तियों के व्यापार की स्वतन्त्रता हरण करने के लिए की थी वही इन झगड़ों का कारण हुई। वही सन् १६७६ ई० में बलवे के रूप में परिवर्तित हो गई।

इंग्लैण्ड अपने उपनिवेशों को बराबर इस बात के लिए मजबूर करता रहा कि देश में जो कुछ भी कच्चा माल हो उसकी बिक्री वहाँ अंग्रेज़ी मंडी ही में हो। जो कुछ खरीदना हो वह भी अंग्रेज़ सौदागरों का ही माल हो, ताकि वे अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए अंग्रेज़ों का ही मुँह ताका करें।

इंग्लैण्ड की औपनिवेशिक नीति भी यही रही कि जो चीजें इंग्लैण्ड से प्राप्य हैं वह उपनिवेशों में न बनें। यदि उपनिवेश वाले प्रयत्न भी करें तो उनका हौसला तोड़ा जाय। अंग्रेज़ी उपनिवेशों की रामकहानी ऐसी-ऐसी घटनाओं से भरी पड़ी है। उस समय यह नीति इतनी ज़रूरी समझी जाती थी कि लार्ड चैथम ने पार्लमेण्ट में कहते हुए ज़रा भी संकोच न किया कि उत्तरी अमरीका के अँग्रेज़ी उपनिवेशों में रहने वालों को घोड़े की एक नाल या खूँटी बनाने का भी अधिकार नहीं है। जब कि यह हाल पार्लमेण्ट के एक नेता और उपनिवेशों के मित्र का था तो हमें पहले लार्ड शील्ड की इस घोषणा से आश्चर्यान्वित नहीं हो जाना चाहिए, कि अमेरिका के उपनिवेशों तथा भारत का इसी में लाभ है कि इनके ही यहाँ की खपने वाली चीज़ें इस्तेमाल में लाई जायँ और इनकी पैदावार को भी हमीं खरीद सकें।

सन् १७०१ ई० में लार्ड कारनबरी ने अमरीका से एक ज़रूरी खरीता इङ्गलैण्ड को लिखा था कि "अमेरिका के लोगों ने जज़ीरा लौंग में एक ऊनी बनात के किस्म का कपड़ा तैयार किया है, जिसमें कि मैं यकीन करता हूँ कि इंग्लैंड के व्यापार को हानि पहुँचेगी। यह बनात मैंने खुद देखी है। मेरे विचार में इसे हरएक आदमी इस्तैमाल कर सकता है। जब अमेरिका वालों को यह मालूम हो जायगा कि वे बिना अंग्रेजों की मदद के ऐसा सुन्दर और अच्छा कपड़ा बना सकते हैं तो उनके हृदय में स्वतन्त्रता के विचार पैदा होंगे, जो कि बहुत दिनों से उनके हृदय में दबे पड़े हैं।"

यह बात तो लेखों से प्रमाणित हो चुकी है कि तिजारती लार्डों ने न्यूयार्क के गवर्नर हंटर को हुक्म दिया कि उपनिवेशों में इस समय जितने ऊनी और सूती कारखाने चल रहे हैं उन्हें हर तरह से न चलने देने का प्रयत्न करना चाहिए। सन् १६४१ ई० में पार्लमेंट में यह कानून पास हुआ कि कोई जहाज़ उपनिवेशों के माल का लदा हुआ वर्जिनिया के बन्दरगाहों के सिवाय इङ्गलैंड के और किसी बन्दरगाह को नहीं जा सकता। इसके बाद एक और कानून के ज़रिये यह घोषणा की गई कि दिसम्बर सन् १६९९ ई० से ऊन या ऊनी माल, जोकि अमेरिका की किसी बस्ती का तैयार किया हुआ हो, किसी जहाज़ या नाव पर न लादा जाय। अगर एक अंग्रेज़ मल्लाह के पास अमेरिकन बन्दरगाह में कपड़े खतम हो जायँ तो वह चालीस शिलिंग से अधिक मूल्य का कपड़ा नहीं खरीद सकता। जैसा विमकापट का कथना है कि विलायती माल की तरह माल बनाना उसी प्रकार दंड के योग्य था, जैसा कि अँग्रेज़ी सिक्कों की नक़ल करना। इसलिए उपनिवेशों के उद्योग-धन्धों पर बड़ी कड़ी नज़र रक्खी जाती थी।

गवर्नरों को यह भी चेतावनी दे दी गई थी कि वे उद्योग-धन्धों के हौसले तोड़ें। उपनिवेशों में यदि कहीं भी किसी प्रकार शिल्पकला-सम्बन्धी बातें व उद्योग-धन्धे जारी हों तो उन्हें बड़ा सख़्ती से दबाया जाता।

सन् १७१९ ई० में पार्लमेण्ट ने उपनिवेशों में तैयार की हुई टोपियाँ एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में ले जाना बन्द कर दिया, और फिर क़ानून बना दिया कि लोग उपनिवेशों में लोहे के बर्तन और मशीनें तैयार न करें। कहने का तात्पर्य यह है कि अमेरिका वालों को किसी किस्म की चीज़ तैयार करने का हुक्म न था। लोहे या फौलादी चीज़ों के तैयार करने की भी मुमानियत तीसरे जार्ज ने कानूनन कर दी थी।

इन चालों से तंग आकर अमेरिका वालों ने एतराज़ करना आरम्भ कर दिया और यह भी निश्चय किया कि ऐसे हुक्म न माने जायँगे। इन क़ानूनों के अलावा पार्लमेण्ट ने उपनिवेशों के उद्योग-धन्धों को रोकने के लिए चुंगी और स्टाम्प के टैक्स भी लगाये। इसपर अमेरिका वालों ने एतराज़ किया कि टैक्स सिर्फ़ वह हुकूमत करने वाली जमाअत लगा सकती है, जिसमें कि टैक्स देने वालों के प्रतिनिधि भी मौजूद हों। इसलिए अमेरिका के उपनिवेशों पर औपनिवेशिक-मंडल ही टैक्स लगा सकता है, या वह अंग्रेज़ी शाही पार्लमेण्ट, जिसमें कि उपनिवेश के प्रतिनिधि भी हों, हमारे ऊपर टैक्स लगाने का विचार कर सकती है। बिना अपना प्रतिनिधि भेजे हम किसी प्रकार का टैक्स नहीं दे सकते। यहाँ से अमेरिका की राजनैतिक लड़ाई आरम्भ होती है।

अमेरिका वालों का स्वदेशी-आन्दोलन

अब मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करूँगा कि अमेरिका ने इस युद्ध में कौनसा ढंग पकड़ा। वह तरीक़ा यही था कि अमेरिका वालों ने हर किस्म की अंग्रेजी चीज़ों को लेने से इन्कार कर दिया।

स्वीकृति-पत्र तैयार किये गये, जिसमें भिन्न भिन्न उपनिवेशों के बड़े-बड़े शहरों में प्रतिष्ठित और सर्व-साधारण लोगों से हस्ताक्षर कराये गये कि हम उत्तरी अमेरिका से बाहर का बना हुआ माल न तो मंगायेंगे और न ख़रीदेंगे और जैसे चाय, शराब, कपड़े इत्यादि तमाम विदेशी चीज़ों का इस्तैमाल न करेंगे। इसकी निगरानी के लिए प्रत्येक शहरों में कमिटियाँ तैयार की गईं। जो माल मंगाने और बेचने की हरकत व चालचलन पर ख़याल रक्खे और लोगों के हृदय में यह बात बैठा दें कि विदेशी माल मंगाने से देश की हानि है। जो लोग स्वीकृति-पत्र को तोड़ते थे उनके नाम छाप दिये जाते थे, जिससे लोग उनको घृणा की दृष्टि से देखें।

कुछ अपूर्व घटनायें

शहर नारवेच को मैं पाठकों के सामने रखता हूँ। सन् १७६७ ई० में नारवेच के बोस्टन नगर में कुछ लोगों की एक सभा इसलिए हुई कि अंग्रेज़ी तैयार माल का हम लोग बहिष्कार कर दें। अमीर-ग़रीब सभी इस सभा में सम्मिलित थे। सबने बड़ी ख़ुशी से इसका समर्थन किया। सबकी राय से यह तय पाया गया कि कोई माल बाहर भी न भेजा जाय। भेड़ों की ऊन और सन की तरक्की की जाय। ख़ानगी उद्योग-धन्धों की तरक्की की जाय। उदाहरण के लिए कागज़, पत्थर और मिट्टी के बर्तन इत्यादि। अंग्रेज़ी चाय का पीना बन्द कर दिया जाय। जंगल की जड़ी-बूटी से तैयार एक किस्म की अमरीकन चाय के ऊपर बराबर व्याख्यान होने लगे कि लोग देशी चाय पियें। चरखे का प्रचार हुआ और भोज इत्यादि में भी घर के काते सूत के कपड़ों के पहनावे में आना अच्छा समझा जाने लगा। मेज़ों पर सजाने के कपड़े भी घर के ही बने हुए होते थे। शहर की सभा में २९ जनवरी सन् १७७० ई० के प्रस्ताव में एक ख़ास बात यह थी कि हम लोग अपने व्यापारियों को अंग्रेज़ी माल न मँगाने के लिए प्रार्थना करते हैं। जो लोग नहीं मानेंगे उनसे हम लोग किसी किस्म का सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे। इस बात की निगरानी के लिए एक कमिटी भी बैठ गई थी। अपने उपदेश की पूर्ति के लिए अमेरिका वाले बड़ी ही साबितक़दमी से काम करते थे। जो उनकी बातों को नहीं मानता था उनका वे इस प्रकार बायकाट करते थे कि उनका सभा-सोसाइटी व समाज में चलना-फिरना, उठना-बैठना कठिन हो जाता था। शहर के ख़ास-ख़ास स्थानों में उनके नाम चिपका दिये जाते थे और अख़बारों

में छाप दिये जाते थे। लोगों को यही हिदायत थी कि केवल उत्तरी अमेरिका का बना हुआ माल लिया-दिया जाय और बाहरी माल इस्तैमाल न किये जायँ।

अमेरिका की भांति हिन्दुस्थान को विदेशी वस्त्र-बहिष्कार से ही स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है।

(२)

अब मैं पाठकों को यह दिखाऊँगा कि किस प्रकार इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्थानी कपड़ों का व्यापार बन्द किया। उसीके सम्बन्ध में मैं एक उदाहरण अपने पाठकों के भेंट करता हूँ, जिसमें यह स्पष्ट रूप से विदित हो जायगा कि जहाँ क़ौमों का मुकाबला व्यापार के मैदान में होता है वहाँ ज़बरदस्त क़ौमें अपने आश्रित कौमों को हानि पहुँचाने में ज़रा भी नहीं हिचकतीं। सन् १८६६ ई० में जर्मनी के एक विद्वान् ने भी यह बात देखी थी कि किस तरह से इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्थान के कपड़ों के व्यापार को बर्बाद करके अपने कारखानों के कपड़ों का हिन्दुस्थान में प्रचार किया। वह लिखता है कि इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्थानी सूत और रेशम के कपड़ों की आमद को एकदम बन्द कर दिया। यहाँ तक कि एक धागा भी हिन्दुस्थान से न आ सकता था। इंग्लैण्ड की गवर्नमेण्ट ने यह अच्छा समझा कि अंग्रेज़ लोग चाहे निहायत मामूली किस्म का कपड़ा इस्तैमाल करें, चाहे वह कितना ही महँगा क्यों न हो, लेकिन कोई आदमी हिन्दुस्थान के सस्ते और सुन्दर माल को न खरीदें। सन् १८६० ई० में जब पार्लमेन्टरी तहक़ीक़ात-कमिटी बैठी तो एक अंग्रेज़ श्री स्वेज़ ने अपनी आवाज़ इस ज़ुल्म के विरुद्ध उठाई। उसने अपने ज़ोरदार भाषण से साबित किया कि किस प्रकार इंग्लैण्ड ने अपने व्यापार को लाभ पहुँचाने के लिए हिन्दुस्थान को ग़रीब बना दिया। श्री लारेन्ट साहब ने अपनी गवाही में यह बात बतलाई कि जिस समय हिन्दुस्थान में इंगलिस्तान के बने रेशमी कपड़े जाते थे उस समय उनपर केवल ३½ फ़ी सदी चुंगी ली जाती थी, पर इसके साथ ही हिन्दुस्थान से जो रेशमी कपड़े इंगलिस्तान में जाते थे उनपर २० फ़ी सदी चुंगी ली जाती थी। इसीके सम्बन्ध में एक और अंग्रेज़ श्री मैंटगमरी मार्टन ने भी कहा था कि सन् १८१८ ई० में हिन्दुस्थानी कपड़े हिन्दुस्थान से बाहर क़रीबन एक करोड़ ३० लाख रुपये के जाते थे। १८३२ ई० में यह व्यापार गिरते-गिरते १० लाख रह गया। सन् १८१३ ई० में विलायती कपड़ा हिन्दुस्थान में केवल दो लाख ५३ हज़ार का आता था। १८३२ ई० में वह ४० लाख रुपये का आता था।

हमने २५ साल के बीच हिन्दुस्थान को इस बात के लिए मजबूर किया कि वह हमारे माल को खरीदे। हमारे ऊन के बने हुए कपड़े हिन्दुस्थान में बिना किसी रोक-टोक के दाख़िल होते हैं। सूती कपड़े पर सिर्फ २॥) चुंगी लगती है, जब कि उसी समय हमने हिन्दुस्थान के माल पर १० फ़ी सदी से लेकर बीस, तीस, पचास, सौ, पाँचसौ व हज़ार फ़ी सदी चुंगी लगाई है, जिससे मुर्शिदाबाद, हुगली और ढाका के कपड़ों का व्यापार नष्ट हो गया। मेरी राय में यह नतीजा मामूली तिजारत से हासिल नहीं हुआ है वरन् ज़ोर-ज़बर के कारण हुआ है। इस समय पार्लमेन्टरी कमिटी के मेम्बर श्री वाकज़ेस्ट और श्री मार्टन में भी बड़ी बहस हुई, जिसमें श्री मार्टन ने हिन्दुस्थानी कारखाने वालों के पक्ष में आवाज़ उठाई और श्री वाकज़ेस्ट ने अंग्रेज़ी कारखाने वालों की तरफ़दारी की। श्री मार्टन ने ज़ोरदार बहस में कहा कि मैं स्वीकार करता हूँ कि हिन्दुस्थान कृषि-प्रधान देश है, पर इसके साथ ही वह उद्योग-धन्धों में भी पीछे नहीं है। हिन्दुस्थान को केवल कृषि प्रधान देश बनाना उसको सभ्यता की श्रेणी से गिराना है। क्या हिन्दुस्थान को इंगलिस्तान का एक खेत बना देना चाहिए ? वह सदा से उद्योग-धन्धों के लिए प्रसिद्ध है और ग़ैर मुल्क वाले उससे उद्योग-धन्धे का सबक लेने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं।

सन् १९१७ ई० में जब यह बहस विलायत के अख़बारों में ज़ोरों पर थी तब कितने ही न्याय-प्रिय अंग्रेज़ों ने स्पष्ट तौर पर इस बात को स्वीकार किया कि इस सम्बन्ध में हिन्दुस्थान के साथ निहायत ज़ुल्म और अन्याय हुआ है। इनमें लार्ड कर्ज़न का नाम भी आता है। इसीके सम्बन्ध में एक बात और भी बता देनी चाहिए कि जहाँ अंग्रेज़ी हुकूमत से हिन्दुस्थानी कपड़ों की तिजारत बिलकुल बरबाद हो गई वहाँ उसी समय जापान ने इस तिजारत में इतनी उन्नति करली कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के

बाद वह करोड़ों रुपयों का माल दूसरे मुल्कों में भेजता है। यहाँ तक कि हिन्दुस्थानी मंडियाँ जापानी माल से भरी पड़ी हैं और ख़ूब तेजी से उसकी बिक्री होती है। इससे तो यही मालूम पड़ता है कि हम दुनिया भर के लिए रुई पैदा करते हैं। हम इसी रुई का बना हुआ कपड़ा करोड़ों रुपयों का मुनाफ़ा देकर दूसरों से ख़रीदते हैं।

इसमें कोई शंका नहीं कि गत ४०-५० साल से हिन्दुस्थान में भी कपड़े के कारख़ाने खुलने लग गये। पर उनके मार्ग में कई रुकावटें हैं। प्रथम तो हिन्दुस्थान में इतना धन न था कि वह बहुतसी कम्पनियाँ खड़ी कर सकता। दूसरे इन कारखानों के लिए न सिर्फ़ मशीनरी बाहर से आती है वरन् उनके बनाने और ठीक करनेवाले कारीगर भी बाहर से मँगवाने पड़ते हैं। हमारी अंग्रेज़ी गवर्नमेण्ट ने डेढ़ सौ साल की हुकूमत के बाद भी हिन्दुस्थानियों को वर्तमान समय में शिल्पकला की शिक्षा देने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया है। अगर हम मिल के कारख़ानों पर भरोसा करके अपनी तिजारत की उन्नति करने का प्रयत्न करें तो कदाचित अभी पचास साल में भी इस योग्य न होंगे कि अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए काफ़ी कपड़ा तैयार कर सकें।

सन् १९१३ व १६ ई० में भी ९९ करोड़ रुपये का कपड़ा हिन्दुस्थान में आया और इसी साल में केवल १२ करोड़ रुपये का माल बाहर गया। अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि हम लोग कौनसा रास्ता पकड़ें, जिससे शीघ्र अपनी आवश्यकता को दूर करने के लिए काफ़ी कपड़ा अपने मुल्क में तैयार कर सकें?

(३)

इस समय कपड़े के बहिष्कार पर क्यों ज़ोर दिया जाता है? इस मुल्क में विदेशी चीज़ें बहुत-सी आती हैं। उदाहरण के लिए चमड़े की चीज़ें, लोहे की चीज़ें, शीशे के सामान इत्यादि। अंग्रेज़ी अमलदारी में हिन्दुस्थान से हर किस्म की चीज़ों का व्यापार होता है। सबसे अधिक मूल्य की जो चीज़ आती है, वह कपड़ा है। यों तो अंग्रेज़ी अमलदारी से पहले इस मुल्क के लोग हर तरह से अपनी ज़रूरियात को पूरा करते थे और चमड़ा, लोहा तथा शीशे की तमाम चीज़ें देश की आवश्यकता के अनुसार यहाँ पर बनती थीं। लेकिन यह ज़ाहिर है कि अनाज के बाद जिस चीज़ की ज़रूरत हरेक छोटे व बड़े को पड़ती है वह कपड़ा है। कपड़ा इस मुल्क में इतना अधिक मिलता और बनता था कि अमीर व ग़रीब सबकी आवश्यकता को पूरा करने के बाद बहुत-सा कपड़ा मुल्क के बाहर भेजा जाता था। अब अमीर व ग़रीब सबके लिए कपड़ा बाहर से आता है। यह स्पष्ट है कि तमाम विदेशी चीज़ों का बहिष्कार करना सम्भव नहीं। कितनी ही विदेशी वस्तुओं का मंगाना हमारी उन्नति के लिए ज़रूरी है। हमारे आंदोलन का यह उद्देश्य नहीं है कि समस्त विदेशी चीज़ों का व्यापार बन्द हो जाय; बल्कि इसका उद्देश्य यह है कि आजकल जो हम लोगों की अति हीन दशा हो गई है, वह दूर की जाय। यह तो लोगों को मालूम ही है कि कोई देश किसी समय भी दूसरे देशों के साथ व्यापार बन्द नहीं कर सकता। इस किस्म के व्यापार को बन्द करना अदूरदर्शिता और मूर्खता है। इसलिए किसी तरह से इस किस्म की कोशिश करने का विचार नहीं किया गया, बल्कि ऐसी विदेशी चीज़ों के बहिष्कार का उपदेश दिया गया है, जिन्होंने हमारे घरों पर ख़ूब अधिकार कर लिया है—जिनका बहिष्कार हम बिना किसी नुकसान के कर सकते हैं। कपड़ा ऐसी चीज़ है, जो हम थोड़ी-सी कोशिश से इस देश में अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पैदा कर सकते हैं। कपड़ा ऐसी चीज़ है, जिसपर हमारा बहुत रुपया ख़र्च होता है। कपड़ा ऐसा है, जिसके बनाने में हम किसी वक्त बड़े प्रसिद्ध थे और हम बड़ी आसानी से बना सकते थे। हम इस कपड़े के काम में अपने देशवालों को लगाने के अलावा देश की दशा में भी बहुत-कुछ उन्नति कर सकते हैं। इस कारण वर्तमान समय में कपड़े का बहिष्कार करने के लिए आन्दोलन किया गया है। इसके पहले जो स्वदेशी-आन्दोलन जारी रहा उसने साधारणतः सर्वसाधारण लोगों में जागृति पैदा कर दी और इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि हरेक चीज़ का बहिष्कार किया जाय। इसमें भलाई यह होती है कि जहाँ तक हो सकेगा हम विदेशी चीज़ों की अपेक्षा अपने देश की बनी हुई चीज़ों का प्रयोग करेंगे। सब चीज़ों का

बहिष्कार करने में हम कामयाबी हासिल नहीं कर सकते, इसलिए एक समय में एक ही चीज़ पर ज़ोर दिया जाय। कामयाब हो जाने पर दूसरा काम आरम्भ किया जाय। एक ही समय तमाम विदेशी चीज़ों का बहिष्कार करना असम्भव है। इससे कोई ऐसे नतीजे नहीं पैदा हो सकते, जिनसे हमारे मुल्क या ग़ैर मुल्कों पर कुछ विशेष प्रभाव पड़े। कभी-कभी लोग हमारे विरुद्ध यह आक्षेप करते हैं कि स्वदेशी का प्रचार करनेवाले विदेशी मोटरों पर चढ़ते हैं और कितनी ही विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। जो विचार कि हमने ऊपर प्रकट किये हैं उनपर ध्यान देने से इस प्रकार का ख़्याल अपने मन में भी लाना ठीक नहीं। मेरी अपनी राय है कि जबतक हम ग़ुलाम हैं, हमको ऐसा करने का कोई हक़ नहीं और अगर हम अपने ऐश के लिए किसी अंश में भी विदेशी चीज़ें ख़रीदते हैं तो हम बड़ा पाप करते हैं। पर हमें यह भी मालूम है कि हम अपनी तरक्की के लिए तमाम विदेशी चीज़ों का त्याग नहीं कर सकते हैं और न ऐसा करना ज़रूरी है। इस किस्म का प्रयत्न करना कि विदेशी काग़ज़ और कल पुर्ज़े इत्यादि का इस देश में आना एकदम बन्द हो जाय, ठीक नहीं है। मैं चाहता हूँ कि इस देश के लोग कुछ समय के लिए केवल विदेशी कपड़ों ही का बहिष्कार करने में तत्पर हो जायँ। यह बहिष्कार ऐसा हो, जिससे कि हमारे लोगों के अन्दर राजनैतिक और आर्थिक संकटों का सामना करने की शक्ति पैदा हो जाय। अंग्रेज़ जाति पर भी यह आतंक जम जाय कि हमारे अन्दर बुद्धिमानी से भरीहुई शक्ति पैदा हो गई है। जबतक हम अपनी समस्त शक्ति को इस काम पर न लगा देंगे और कुछ समय के अन्दर ही इस कामयाबी को न दिखा देंगे तबतक किसी दूसरे काम का छेड़ना मानों अपनी ताक़त का कम करना होगा।

हमारे बहुतसे भाई यह आक्षेप करते हैं कि स्वदेशी का प्रचार तो बहुत अच्छा है; परन्तु बहिष्कार से घृणा के विचार प्रकट होते हैं, इसलिए बहिष्कार शब्द को अपने *कार्यक्रम से निकाल देना चाहते हैं। जो लोग ऐसा आक्षेप* करते हैं, मैं उनकी नेकदिली पर अविश्वास नहीं करता; परन्तु इस आक्षेप का कोई मूल्य नहीं। मेरी राय में स्वदेशी और बहिष्कार में कोई भेद नहीं है और न हो सकता है। स्वदेशी के यह मानी हैं कि अपने देश की बनी हुई चीज़ें इस्तैमाल की जायँ, यानी विदेशी चीज़ें इस्तैमाल न की जायँ, इसीका नाम बहिष्कार है। बिना बहिष्कार के स्वदेशी चल नहीं सकता, यह ख़याल ग़लत है कि हमको किसी आदमी से घृणा नहीं करनी चाहिए, इस शिक्षा का उचित अर्थ नहीं लगाया जा रहा है। संसार के महान् पुरुषों का यह कथन है कि किसीसे घृणा नहीं करनी चाहिए। हमारे देश के धार्मिक नेता गौतम बुद्ध की भी यही शिक्षा है। यदि इस शिक्षा को बिलकुल ठीक माने तो इसका उचित अर्थ यह है कि हम घृणा के विचार को अपने हृदय से बिलकुल दूर करदें। लेकिन बेइन्साफ़ी, ज़ुल्म, तथा असत् कार्यों से घृणा करना ज़रूरी है। ग़लत ख़यालातों से घृणा किये बिना हम सही ख़यालातों का प्रचार नहीं कर सकते। झूठ, धोखाबाज़ी, दग़ा और पाप से घृणा करना ज़रूरी है। महात्मा बुद्ध और मसीह ने भी इन विचारों के विरुद्ध प्रचार किया और इनके प्रति घृणा फैलाई। बहिष्कार से मानव तथा जातियों में घृणा उत्पन्न करने का उद्देश्य नहीं है। इसका मतलब यह है कि जिस चीज़ से हमारे मुल्क को नुक़सान पहुँचता है उसको बन्द कर दिया जाय। करीब एक साल का समय हुआ होगा कि महात्मा गाँधी बहिष्कार को पसन्द न करते थे और उनको बहिष्कार का शब्द प्रयोग करने पर एतराज़ था, परन्तु अब वह बहिष्कार शब्द को रोज़ इस्तैमाल करते हैं और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का ज़ोर-शोर से प्रचार करते रहे हैं। इसलिए हम अपने देशभाइयों को यह बात बतला देना चाहते हैं कि वे बहिष्कार के विचार को मज़बूती से अपने दिल में जगह दें और ख़ूब ज़ोर-शोर से इसका प्रचार करें। विदेशी कपड़ों के विरुद्ध इस प्रकार की घृणा पैदा कर देनी चाहिए कि कोई आदमी विदेशी कपड़ा इस्तैमाल न करे।

लोग पूछते हैं कि जो विदेशी कपड़े हमारे घरों में हैं या हमारी दूकानों में हैं उनका क्या किया जाय? महात्मा गाँधी यह कहते हैं कि घरों में जो विदेशी कपड़ा है वह जला दिया जाय, मुल्क से बाहर भेज दिया जाय। जबतक विदेशी कपड़ा हमारे घरों में पड़ा रहेगा, हमारे दिल में उस-

से घृणा पैदा न होगी और हम उसका प्रयोग एकदम बन्द न कर सकेंगे। कपड़े का जला देना कैसा ही बुरा मालूम होता हो, और उसमें कितना ही नुक्सान हो, पर वह बहिष्कार के आन्दोलन के लिए ज़रूरी मालूम पड़ता है। यह विचार कि हम ग़रीबों को ये कपड़े दे दें, अच्छा नहीं है। विदेशी कपड़ों को ग़रीबों को दे डालना पाप होगा। कपड़ा बाहर भेजने का जो ख़याल है, वह भी कुछ ही अंश तक सफलता प्राप्त कर सकता है। मगर हमें इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं। हमारे मुल्क में यूरोप से इस्तैमाल किये हुए कपड़े लाखों रुपये के बेचने के लिए आते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे मुसलमान भाइयों को स्मर्ना इत्यादि स्थानों में सहायता की आवश्यकता है। इसलिए अगर मुसलमान भाई मदद के ख्याल से भी विदेशी कपड़ों को अपने देश से बाहर भेज दें तो इसमें कुछ हर्ज नहीं। कहने का मतलब इतना ही है कि न हम स्वयं इसका इस्तैमाल करें और न अपने देशभाइयों को करने के लिए दें। जो कपड़ा दूकानों में पड़ा है उसका तर्क करना असम्भव है, क्योंकि लोग इस प्रकार नुक़सान उठाने के लिए तैयार नहीं। मगर मेरी राय में अगर यही कपड़े एशिया व अमेरिका के किसी हिस्से में भेज दिये जायँ तो आसानी से भेजे जा सकते हैं। इसलिए हम उनसे दरख्वास्त करते हैं कि वे कम-से-कम भविष्य में विदेशी कपड़ों का आर्डर न दें। हम अपने देश के कपड़े के व्यापारियों से प्रार्थना करते हैं कि वे इस देश-सेवा के कार्य में सहायता दें। अगर वे इस आन्दोलन में सफलता पहुँचाने के लिए शामिल न होंगे तो आन्दोलन के जड़ पकड़ने पर उन्हें विवश हो हमारा साथ देना पड़ेगा। हम ज़ोर-ज़बर के विरुद्ध हैं और हम यह नहीं चाहते कि स्वदेशी और बहिष्कार-प्रेमी किसी भी हालत में इसके प्रचार के लिए अपने देशभाइयों पर ज़ोर-ज़बर करें।

अगर हम कारख़ानों पर निर्भर रहें तो भी बहुत दिनों तक हमें इंग्लैण्ड का मोहताज रहना पड़ेगा। कारण इसका यही है कि मशीनरी सारी की सारी बाहर से आती है। पहले तो आजकल मशीनरी बड़ी कठिनता से मिलती है और दो साल तक मशीनरी के लिए इन्तज़ार करना पड़ता है। दूसरे मशीनरी के लिए काफी और अच्छे कारीगर नहीं मिलते। इसलिए अगर हम हक़ीक़त में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करना चाहते हैं तो हमें मशीनरी के अलावा कोई और तरीक़ा इख्तियार करना चाहिए, जिससे जितने कपड़ों की हमें आवश्यकता हो वह पूरी होती रहे। यह तरीक़ा वही है जो अंग्रेज़ी अमलदारी से पहले जारी था, याने कि औरतें अपने घरों में सूत कातें और इस मुल्क की खड्डियों (हैंडलूम) में कपड़े बनाये जायँ। कितने ही लोग आक्षेप करते हैं कि औरतों को काफी मज़दूरी नहीं मिल सकती, कोई औरत अपना गुज़ारा केवल सूत कातकर नहीं कर सकती। इसका जवाब यह है कि करोड़ों औरतें इस मुल्क में ऐसी हैं जो सिवाय रोटी पकाने और गृहस्थी-सम्बन्धी कामों के और कुछ नहीं करतीं, अभी तक इन औरतों के लिए कोई काम ऐसा नहीं निकाला गया है जिससे वे देश के आर्थिक संकट के दूर करने में कुछ भाग ले सकें। यही हाल असंख्य कौमों का है, जिनको कोई काम एक फसल और दूसरी फसल के दरमियान करने लिए नहीं मिलता। अंग्रेज़ी अमलदारी से पहले भी सूत कातने और कपड़ा बुनने का काम इस मुल्क में सर्वत्र था और अगर वही रिवाज फिर फैल जाय तो देश का आर्थिक संकट बहुत कुछ दूर हो सकता है। हाथ की दस्तकारी से हम हिन्दुस्थान को कितने ही झगड़ों से भी बचा सकेंगे, जो झगड़े बड़े-बड़े कारख़ानों के क़ायम करने से पूँजी वालों तथा मज़दूरों के बीच पैदा हो जाते हैं। यह सवाल ज़रा लम्बा है और यहाँ पर मैंने केवल संकेत-मात्र कर दिया है। इस बात पर ज़ोर देने से मैं ज़रा भी नहीं हिचकूँगा कि हम विदेशी कपड़ों के बहिष्कार में उसी हालत में सफलता प्राप्त कर सकते हैं, जब हम चरखों और करघों के चलाने का रिवाज घर-घर देखें।*

* उर्दू से अनूदित। अनुवादक—श्री हरिदास माणिक।

युवक-आन्दोलन और दमन-चक्र

[श्री त्रिभुवननाथ 'नाथ']

"कोई बड़ी जाति बहुत समय तक के लिए दबाई नहीं जा सकती, जब कि एक बार उसका विचार स्पष्ट और दृढ़ हो जाता है। यदि आज हम असफल होते हैं और कल भी सफलता नहीं मिलती तो परसों वह दिन उदय होगा, जब कि हम सफलीभूत होंगे।"

—जवाहरलाल नेहरू

युवक जवान हैं। इनकी उमंगें सदा पुनीत, नवीन और आशाओं से हरी-भरी रहती हैं। देश के लिए जीवन उत्सर्ग करना इनका ही धर्म है, और हँसते-हँसते सर्वस्व न्योछावर करना इनका ही कर्तव्य है—प्रधान कर्म है, यौवन का मूल महत्व है। ये मरते हैं—मुस्कराते हुए मरते हैं, हिचपिचाते हुए नहीं। चेहरे पर जरा भी उदासी का आविर्भाव नहीं होता। उत्साह से भरे रहते हैं। वीर-रस नस-नस में दौड़ता रहता है। अधरों पर वीरत्व-मिश्रित मुस्कराहट की चमकती हुई अजेय रेखा वर्तमान रहती है। भुजाओं में विश्व-विजयिनी शक्ति फड़-फड़ाती रहती है।

गुलामी में जकड़े हुए देश के नौजवानों का मुख्य कर्तव्य गुलामी की जंजीर को तोड़ देना और उसके लिए बलिदान हो जाना है। गुलाम देश के नौजवानों को दासता के बन्धन में जीवित रहने की अपेक्षा अपने खून से मातृभूमि के वक्षस्थल को सींच देना कहीं अधिक श्रेयस्कर और आदर्शपूर्ण है। वह कर्त्तव्य-परायणता है। उसमें आत्म-शुद्धि है; आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा है।

दासता की कड़ियों में आबद्ध देश की मातायें अपने दुलारे लाड़लों को देश के नाम पर सिर कटाते देख कर समझें कि आज हमें पुत्र-फल मिला—पुत्र प्रसव करना सर्वथा सार्थक हुआ। पिता अपने पुत्रों को फांसी के तख्तों पर चढ़ते देख कर अपनी आँखों को निहाल समझें—छाती को तृप्त समझें—पुत्र पैदा करने का यश लूट लें। इस दासता के युग में सन्तान वही प्रसव करें, जो सन्तान को देश के लिए, स्वाधीनता के लिए, आजादी के छोटे पौधे को रक्त से सींचने की शिक्षा दे सकें। माताओं का महत्व और पिताओं का गौरव इसीमें है।

भारत के नवयुवकों की आँखें खुल गई हैं। यौवन-ज्वाला की चिनगारियाँ उग्र रूप धारण कर गुलाम भारत के कोने-कोने में छिटक गई हैं। इस गुलामी के प्रति असंतोष और घृणा का आविर्भाव अब हो चुका है। इसलिए, इस आन्दोलन का दमन करना आसुरी और मानवी शक्ति की कौन कहे—दैवी-शक्ति के परे है। युवक-आन्दोलन अजेय होता है—अमर होता है। उसकी प्रत्येक भावनायें प्रचण्ड तथा अजर होती हैं। उत्साह अखण्ड होता है। अभीष्ट की प्राप्ति अवश्य होती है। जबतक इटली, फ्रांस, आयर्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि की कहानियाँ जीवित हैं, तबतक देश-प्रेम में मतवाले नौजवानों की विश्वव्यापी शुभ कीर्ति जीवित है—जाज्वल्यमान है। युवको! उठो। इस गुलामी से मर जाना बेहतर है—सर्वोत्तम है। जीवित हो तो स्वाधीन बन कर रहो, गुलाम बनकर नहीं।

नौजवान जबतक अचेत रहे—रहे; अब तो स्पष्ट

समझ गये कि हम गुलाम हैं और गुलामी से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त होना हमारी जवानी की इज्जत, मर्यादा और जवाँमर्दी है। नौजवान, और गुलाम रहें—यह हो नहीं सकता। कहाँ के जवान गुलाम रहे हैं, जो भारत के रहेंगे? जवानी और गुलामी? एकदम प्रतिकूल हैं—जैसे आग और पानी। जवान गुलाम नहीं रहते हैं, स्वतंत्र रहते हैं। किसी भी देश के गुलामी-बन्धन को किसीने तोड़ा है तो नौजवानों ने।

भारत में क्रान्ति की आग सुलग गई। क्रान्ति विचार में, आत्मा में। "………क्रान्ति का अर्थ है विचार में उथल-पुथल। ………सच्ची शक्ति तलवार उठाने में नहीं है, तलवार को सहन करने में है।" (म० गाँधी) भारत के नवयुवकों में इस महान् शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया है। वे अब हँसते-हँसते देश के लिए अत्याचारों का, अमानुषिक व्यवहारों का, और प्यारी मृत्यु का सहर्ष आलिङ्गन कर लेते हैं। अपने आत्म सम्मान पर मर मिटते हैं। क्यों? पहले क्यों ये भाव न थे? वे समझ गये कि हम लोग पद-दलित हैं, गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हैं, और "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" फिर मैं गुलाम क्यों रहूँ? मर जाऊँगा—पर पराधीन बन कर हिमालय और हिन्दमहासागर के बीच में न रहूँगा!

यह तो भली-भाँति विदित है कि स्वाधीनता का मूल नवयुवकों का जीवन है। स्वाधीनता तो खरीदी और बेची जा सकती है। आज ही हथेली पर सिर लेकर नौजवान समराङ्गण में उतर जायँ, स्वतंत्रता आज ही वीरों के पैरों को चूमेगी—और उसने और देशों में ऐसा किया भी है। वह वीरों के साथ रहती है, कायरों के साथ नहीं। फिर, आज ही कायर बनें, आत्म-गौरव को भूल जायँ और अपने धर्म से दूर जा गिरें, कातर बनें, देखो, पराधीनता दौड़कर आवेगी और नराधमों की छाती पर मनमाना अट्टहास करेगी—और उसने और देशों में ऐसा किया भी है; भारत पर तो आज स्वच्छन्दतापूर्वक ऐसा कर ही रही है। बस, स्वतंत्रता का मूल्य है गुलाम देश के नवयुवकों का जीवन। नौजवानो! उतरो, उतरो; कर्मक्षेत्र में उतरो; समय आ चुका है। विजय है या मृत्यु—Is it, victory or death. (Wordsworth)

नौजवानो! तुम्हे तो आरम्भ से लेकर अन्त तक अनवरत काम करना है। अभी तो तुमने आरम्भ ही कहाँ किया है? और फिर तुमपर अभी हुआ ही क्या है? तुमने झेला ही कितना है? अरे! अभी तो एक ही डायर आया है। स्मरण रहे हजारों डायर आयँगे और हजारों जालियाँवालाबाग़-जैसे बीभत्स चित्र देखने में आयँगे। नौकरशाही का दमन-चक्र तो अब विकराल रूप धारण कर रहा है। महात्माजी ने एक स्थान पर लिखा है:—"अभी तो कुछ नहीं हो रहा है। यह दमन सिर्फ लोगों की ताक़त आजमाने के लिए किया जा रहा है। यह तो केवल नाटक का रिहर्सल हो रहा है। जो कुछ भयंकरतम रूप दिखाई देने वाला है वह अभी भविष्य की ओट में है। हमें उस क्रूरता का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। शान्त-चित से आत्म-शुद्धि करने का इरादा इतना पक्का हो जाय कि दमन का कितना ही तूफ़ान क्यों न उठे, पर हम अपने इरादे पर डटे रहें।"

वीर बाँकुरे भारत के लाल! उठो। सोचते क्या हो? बक़ौल हमारे नौजवान राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल, "तुम्हारे लिए जो उपहार भण्डार में जमा हैं, वे कष्ट, जेल अथवा मृत्यु ही हैं।" बस, यही हमारा निश्चय होना चाहिए— विजय या मृत्यु!

राजस्थान !

[श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी']

१

ऐ तूफ़ान, बवंडर, अंधड़, अरे प्रलय के गान !
भारत की घाटी-घाटी में गूँज रही वह तान !
लाल दिवस, वह रक्त-पताका, वह पागल बलिदान !
वह युद्धों का खेल भयंकर, तेरी तीक्ष्ण कृपाण !

उस गौरव की क्षणिक याद भी
पुलकित करती प्राण !
राजस्थान, तुम्हारे—जैसी
किसकी होगी शान ?

२

बच्चों के उर चिनगारी थे, युवकों के तूफ़ान !
ज्वालामुखी वृद्ध सैनिक थे, बाला के अभिमान !
आफ़त थी, जाने क्या थी, तब यही अग्नि-सन्तान !
जौहर की वे लाल चितायें, विमल निराली शान !

उस गौरव की क्षणिक याद भी
पुलकित करती प्राण !
राजस्थान, तुम्हारे—जैसी
किसकी होगी शान ?

३

कैसी थी वह रक्त-निशानी, कैसा था वह काल ?
जब लोहू की लाल लहर में होते लाल निहाल !
जब तलवार तुम्हारी चलती देता था यम ताल
जब मुण्डों के ढेर जननि का भर देते थे थाल।

राजस्थान, कौन तुम—जैसा
हो सकता है लाल !
उस गौरव की क्षणिक याद से
होता हृदय निहाल !

४

हिमगिरि-सा उन्नत होकर जो कभी न झुकता भाल,
स्वाभिमान के शिखर उच्चतम, अन्यायों के काल !
प्रलयंकर के रूप भयंकर, अबल जनों की ढाल !
सदा काटते रहे साहसी तुम स्वार्थों के जाल !

राजस्थान, कौन तुम—जैसा
हो सकता है लाल !
उस गौरव की क्षणिक याद से
होता हृदय निहाल !

अब

५

लाख-लाख सुनसान टेकरी भरती हैं उच्छ्वास !
कहाँ आज वह रक्त-पताका, वह जौहर का हास !
कहाँ आज खन-खन शस्त्रों की, वह कम्पित वातास !
देख-देखकर तुम्हें आज क्यों रोता है आकाश ?

ऐ सम्राट, आज चरणों के
नीचे तेरा वास !
कहाँ गया वह स्वाभिमान,
यह कैसा सत्यानाश !

६

अरे सिंह पिंजड़े के बन्दी, ऐ बेहोश, निराश—!
कहाँ गई वह अग्नि हृदय की, जीवन के उपहास !
बलिदानों की होड़ कहाँ, वह मर-मिटने की प्यास ?
एक बार फिर से यौवन का, गूँज उठे उल्लास।

ऐ सम्राट, आज चरणों के
नीचे तेरा वास !
कहाँ गया वह स्वाभिमान
यह कैसा सत्यानाश ?

७

प्राण-हीन, मूर्छित-से, जर्जर, बुझे हुए अंगार !
सूख गई है आज तुम्हारे सबल शौर्य की धार !
आज विदेशी के चरणों से करते हो तुम प्यार !
आँखें खोल निरख दर्पण मे अपना ही शृंगार !

तेरा ताज आज तुझको ही
देता है धिक्कार !
हाय, नहीं सुन पाता अपना
ही तू हाहाकार !

८

हुई खुमारी अथवा सपना—वे पिछले दिन-रात—
अपना ही साहस, गौरव, बल है तुमको अज्ञात !
जाग उठी हैं दसों दिशायें, है सर्वत्र प्रभात—
किन्तु तुम्हारी ही निद्रा पर नहीं हुआ आघात !

एक बार फिर हो यौवन की
वह पागल झंकार—
राजस्थान, शहीदी में क्यों
मानी तूने हार ?

[श्री 'सुमन'

९

अरे, आज गाँधी के सत्याग्रह की रण-हुंकार !
भुला रही है जीवन के भोगों का सब व्यापार !
यह अपूर्व संग्राम अहिंसा का है छिड़ा महान
तुम क्या कर न सकोगे इसमें अपना कुछ बलिदान ?

१०

बन्दी राजस्थान ! अरे, विस्मृत
गौरव की धूल !
बलिदानों के व्यापारी !
तेरी वेदी का फूल !

आज खिले इस राष्ट्र-यज्ञ मे बन सुन्दर शृंगार !
जग पाये हिंसक रजपूतों का नूतन उपहार !
वीर ! मारने से बढ़कर है यह सहास्य बलिदान !
'मरने में जीवन है', नैतिक विजयपूर्ण उत्थान !

बिन मारे मरकर रखनी है हमको अपनी टेक !
अरे, मृत्यु के पागल ! उठ जाओ, छोड़ो अविवेक !

मेवाड़-यात्रा

[अध्यापक श्री शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, बी० कॉम्०, विशारद]

प्रताप-जयन्ती समीप आ रही थी। प्रताप के अनन्य भक्त श्री क्षेमानन्द राहत नौकरशाही का आतिथ्य स्वीकार कर चुके थे। अस्तु, मैं कुछ दिन पूर्व ही उदयपुर पहुँच गया। परन्तु प्रताप-जयन्ती न मनाई जा सकी, कारण कि स्वर्गीय महाराणा फतहसिंहजी उस समय रोग-ग्रस्त थे और मेवाड़ की असंख्य प्रजा के हृदय को विदीर्ण करते हुए वह बांका वीर २४ मई की रात्रि के आठ बजे के लगभग इस संसार को त्याग कर स्वर्ग सिधार गया। इस बीसवीं शताब्दी में फतहसिंहजी प्राचीन क्षत्रित्व के तो मानों सजीव प्रतिबिम्ब ही थे। इस विपरीत परिस्थिति में स्वर्गीय महाराणासाहब ने जिस आन और बाँकेपन के साथ ४७ वर्ष के लगभग मेवाड़ के सिंहासन की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रक्खा वह तो भविष्य में एक ऐतिहासिक बात ही समझी जायगी। यदि इस बात को छोड़ दें तो भी उनका व्यक्तित्व संसार में एक विचित्र चीज़ था, जिन्होंने स्वर्गीय महाराणा के दर्शन किये हैं वे उनके व्यक्तित्व को जानते हैं। २६ ता० को प्रातःकाल महाराणा के शव का जलूस निकला। मेवाड़ के महाराणाओं का शव अर्थी पर लिटा कर नहीं निकाला जाता, वरन् अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर सिंहासन में बैठा कर निकाला जाता है। महाराणा उस समय केसरिया बाना धारण किये हुए थे और जलूस बैंड व सेना के साथ निकल रहा था। उदयपुर की जनता कितनी शोकाकुल थी, यह तो देखने वाला ही अनुभव कर सकता था। महाराणा केवल मेवाड़ के अधीश्वर ही नहीं थे, वरन् अपनी प्रजा के हृदय-सम्राट भी थे। मैंने महाराणासाहब को अन्तिम अभिवादन किया और देखा कि मेवाड़ का गौरव आज चिता पर भस्म होने जा रहा है!

महाराणा के देहान्त के बाद प्रताप-सभा ने यह निश्चित कर दिया कि प्रताप-जयन्ती न मनाई जावे। अस्तु, मैंने भी विचार किया कि मैं भी यहाँ से चल दूँ। २६ मई की सायंकाल को मैं चलने का विचार कर ही रहा था कि मेरे मित्र श्री बलवन्तसिंह जी महता और कतिपय विद्यार्थियों ने कुम्भलगढ़ चलने का आग्रह किया। वैसे तो मैंने तीन वर्ष रह कर मेवाड़ के बहुतसे दर्शनीय स्थान देख डाले थे, किन्तु इस ओर नहीं गया था। मैं भी तैयार हो गया।

कुम्भलगढ़ को सीधा मार्ग है, परन्तु हम लोग तो उस ओर के बहुतसे और स्थानों को भी देखना चाहते थे, इस कारण यह निश्चित हुआ कि घूम-फिर कर चलेंगे। सायंकाल का समय आवश्यक वस्तुओं को जमा करने में लग गया और हम पाँच यात्री प्रातःकाल ४ बजे उदयपुर से निकल पड़े। उदयपुर से निकल कर हम फतहसागर के समीप पहुँचे। यह सुन्दर झील स्वर्गीय महाराणा ने बनवाई थी। प्रकृति की देन से परिपूर्ण मेवाड़ में इन झीलों को बनवा कर यहाँ महाराणाओं ने इसकी सुन्दरता को और भी बढ़ा दिया है। फतहसागर चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ कैसा रमणीक प्रतीत होता है! झील के एक किनारे पर जो सड़क बनी हुई है वह उदयपुर-निवासियों के वायु-सेवन का मुख्य स्थान है। फतहसागर के बाँध पर बैठ कर जिन्होंने उस विशाल जल-राशि की उन्मत्त तरंगों

का निरीक्षण किया है वे इसके अनुपम सौन्दर्य को समझते हैं।

इस बाँध के नीचे ही सहेलियों की बाड़ी नामक विशाल उद्यान बनाया गया है। यह उद्यान भी उदयपुर के दर्शनीय स्थानों में से एक है। यहाँ के फव्वारे भारतवर्ष में अद्वितीय हैं। यहाँ पर शौचादि से निवृत्त हो, हम लोग तेज़ी से गोगूंदा की ओर चलने लगे। अभी हम लोग साफ़ सड़क पर चल रहे थे, बोझ भी थोड़ा ही था, इस कारण चलने में कठिनता नहीं हो रही थी। साथ ही साथ वायु भी बहुत शीतल बह रही थी। लगभग दो घंटे इसी प्रकार तेज़ी से चलने के उपरान्त सड़क का अन्त हो गया। अब केवल पगडण्डी ही दृष्टिगोचर होती थी। पर्वत-श्रृंखलायें समीप आती जा रही थीं। अब हम लोगों को पर्वतीय प्रदेश में चलना था और सूर्य भी निकल चुका था। एक बावड़ी के समीप विश्राम लिया और नीबू का शरबत बना कर हम लोगों ने पिया, तदुपरान्त हम लोग फिर चल दिये।

अब रास्ता पथरीला आ रहा था और क्रमशः हम लोग ऊँचे चढ़ते जा रहे थे। पर्वतों की घाटियों में जल-द्वारा बहा कर लाई हुई मिट्टी में किसानों ने खेत कर लिये हैं। इस प्रदेश में अधिक हरियाली देखने में नहीं आई। हाँ, पर्वतों पर वृक्ष अवश्य दिखाई दे रहे थे। क्रमशः रास्ता निर्जन और बीहड़ आने लगा। सूर्य अब तेज हो गया था, हम लोग तेज़ी से पर्वत-श्रृंखलाओं को पार करने लगे। परन्तु रास्ता न जानने के कारण हम लोग एक दूसरी ही घाटी में उतर गये। उस घाटी के चारों ओर पर्वत-श्रेणियों के अतिरिक्त और कुछ भी न था। अब हम लोगों को ज्ञात हुआ कि हम ठीक रास्ते पर नहीं हैं, क्योंकि आगे कोई पगडंडी भी दृष्टि-गोचर नहीं हो रही थी। धूप की तेज़ी ने प्यास को और भी बढ़ा दिया और क्षुधा भी अपनी करामात दिखा रही थी। रास्ते का ध्यान तो हमने छोड़ दिया और जल को ढूँढने लगे। लगभग एक घंटे भटकने के पश्चात् दूर की पहाड़ी पर एक भील ने जल का रास्ता बतलाया। अब हम लोग उस घाटी की दाहिनी ओर चढ़ने लगे। वन सघन था, इससे धूप अधिक नहीं लगी, और इसी प्रकार लगभग दो मील चलने के बाद एक पर्वत के नीचे एक नाला (पर्वतीय छोटी नदी) दिखाई दिया। बस, हम लोगों ने वहीं एक पेड़ के नीचे विश्राम किया और नाले का गरम जल पीकर किसी प्रकार प्यास बुझाई। झोले में से थोड़ा-सा भोजन निकाल कर खाया और वहीं पर सो गये। थके हुए तो थे ही, लेटते ही निद्रा-देवी ने धर दबाया और जब आँख खुली तो देखा कि तीन बज चुके थे। झटपट तैयार हो गये। केटली में जल भर लिया और रास्ता पूछ-ताछ कर चल दिये। थोड़ी दूर चलने के उपरान्त रास्ता घाटियों में होकर जाता था। वह दृश्य बड़ा ही मन-मोहक और चित्ताकर्षक था। पर्वतों की ऊँची पंक्तियों के बीच में हमारा रास्ता जा रहा था, अब जल की कमी नहीं थी, फिर भी हम लोग जहाँ जल मिलता वहाँ जल पीकर भर लेते। इसी प्रकार तीन घण्टे चलने के उपरान्त हम गोगूंदा पहुँच गये।

गोगूंदा एक ऐतिहासिक स्थान है। यह वही स्थान है, जहाँ महाराणा प्रताप को राजतिलक हुआ था और अन्त में सम्राट् अकबर की सेनाओं से स्वतन्त्रता का वह पागल सैनिक कई बार जूझा। गोगूंदा एक अच्छा क़स्बा है और यहाँ के रावसाहब मेवाड़ के प्रथम श्रेणी के जागीरदारों में से हैं। सायंकाल हो चुका था; समीपवर्ती शिव-मन्दिर में अपना सामान रखकर हम लोगों ने विश्राम किया। इतने में एक परिचित सज्जन आगये और बहुत आग्रह करके सायंकाल को भोजन का निमन्त्रण दे गये। भोजन की समस्या से निश्चिन्त होकर हम लोग स्नान के लिए चले। गोगूंदा का ग्राम एक बड़े तालाब के किनारे बसा हुआ है। सायंकाल का समय था, तालाब के किनारे पथरीली चट्टानों पर बैठकर स्नान किया। क्या ही सुन्दर था वह दृश्य! ग्राम के जीवन का तालाब एक आवश्यक अंग है। कहीं कहीं कमल दूर तक फैले हुए थे। कमल के ये पौधे बड़े ही सुन्दर थे। तालाब में जी भर कर स्नान किया और संध्या करने के उपरान्त थोड़ी देर तक तालाब पर बैठकर भोजन करने के लिए गये और लौटकर शिव-मन्दिर में सो रहे।

प्रातःकाल ४ बजे उठकर सामान पीठ पर लादकर हम लोग चल दिये। पथ साफ़ था और चारों ओर हरियाली ही दृष्टिगोचर हो रही थी। सौभाग्यवश एक सज्जन इसी

ओर आते हुए मिल गये। उनके साथ हम लोग भी हो लिये। अब रास्ता पथरीला होने लगा, पर्वत-श्रेणियाँ घूम-घूम कर हमारे समीप आ रही थीं। दृश्य एक के बाद दूसरा चित्ताकर्षक आने लगा, पर्वती नाले एक के बाद दूसरे आने लगे, और उन्हें हम लोग नंगे पाँव पार करते। इस समय इन नालों में अधिक पानी नहीं होता, परन्तु वर्षा के दिनों में इनको पार करना अत्यन्त कठिन होता है। सामने ४-५ पर्वत-श्रेणियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं। इधर हरियाली खूब थी। जल की बहुतायत होने के कारण हरित रंग की वनस्पति पहाड़ियों को आच्छादित किये हुए थी। क्या ही अच्छा दृश्य था, जब हम लोग एक पर्वत-श्रेणी को चढ़कर पार करते तो दूसरी ओर घाटी के ढाल में तेज़ी से उतरते, फिर घाटी के मैदान तथा जल स्रोतों को पार करके दूसरी श्रेणी को चढ़ते। इसी प्रकार चढ़ते-उतरते, कभी दौड़ते तो कभी साधारण चाल से चलकर, इन श्रेणियों को शीघ्रता-पूर्वक पार करने लगे। यद्यपि समय काफ़ी हो गया था, फिर भी वायु ठंडी होने के कारण कष्ट नहीं हो रहा था। नंगे पैरों घाटियों के मैदानों में पहाड़ी नालों के समीप जल-मय भूमि पर चलने में जो आनन्द मिलता था वह वर्णनातीत था। इन पर्वत-श्रेणियों को पार करके हम लोग नन्देसमा ग्राम में पहुँचे।

वहाँ लगभग १ घण्टा विश्राम करने के उपरान्त हम लोग फिर चल दिये। अब १० बजे का समय हो चुका था और हम लोग लगभग ३,५०० फ़ीट की ऊँचाई पर चल रहे थे। इसी प्रकार चलते-चलते हम लोग ढोल नामक गाँव के समीप आ पहुँचे। जिस-जिस गाँव में पहुँचते, वहाँ प्रथम यह प्रश्न होता कि मेवाड़ के राज-सिंहासन पर कौन बैठा? अब हम लोग उन्हें बतलाते कि महाराजकुमार राणा हो गये, तो प्रत्येक मनुष्य उदास हो जाता। मैंने अपनी इस २०० मील की लम्बी यात्रा में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं पाया, जो इस समाचार को सुनकर दुखी न हुआ हो। वर्तमान महाराणा भूपालसिंह के प्रति जनता में इतनी अश्रद्धा देखकर मुझे और भी खेद हुआ। यह तो मैं जानता हूँ कि वर्तमान महाराणा श्री भूपालसिंहजी अपने स्वर्गीय पिताजी की तुलना में कुछ भी नहीं हैं, और इस समय वह जिन लोगों के हाथों की कठपुतली बने हुए हैं वे अधिकतर स्वार्थी ही हैं; फिर भी मैं यह नहीं समझता था कि इनके प्रति प्रजा में इतनी घृणा फैली हुई है।

ढोल ग्राम में पहुँच कर हमने वहाँ की स्त्रियों को ऊन कातते देखा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये लोग ऊन कात कर व्यापारियों को बहुत सस्ते दामों पर बेच देते हैं। यदि यहाँ पर राज्य की ओर से अथवा किसी संस्था की ओर से ऊनी कम्मल और पट्टू बनाने का धंधा आरम्भ किया जाय तो सफलतापूर्वक चल सकता है। यहाँ से आगे बढ़ने पर एक गड़रिये से हमारी बातचीत हुई। उससे हमें ज्ञात हुआ कि उसने अपने जीवन में कभी रेलगाड़ी के दर्शन नहीं किये उदयपुर किस वस्तु का नाम है, यह भी वह नहीं जानता! इनको तो छोड़ दीजिए—उसने गोगूंदा के विषय में भी कुछ नहीं सुना। मुझे उससे बात करके बड़ा कुतूहल हुआ, क्योंकि मैंने अपने जीवन में यही पहला व्यक्ति पाया, जो संसार से इतना अनभिज्ञ था। परन्तु, बाद को ज्ञात हुआ कि, मेवाड़ में ऐसे एक-दो उदाहरण ही नहीं हैं, वरन् अधिकतर मनुष्य ऐसे ही हैं। इसका मुख्य कारण है, अशिक्षा तथा अच्छे मार्गों का न होना। मेवाड़-राज्य शिक्षा और मार्गों के विस्तार को तो अपना कर्तव्य ही नहीं मानता। इस यात्रा में राज्य की भयंकर त्रुटियों का तो मुझे पद-पद पर अनुभव हुआ है। सड़कों के दर्शन यात्रा में हुए ही नहीं, साथ ही पगडंडियों तक पर भी कोई ऐसा चिह्न नहीं लगाया गया, जिससे अनजान मनुष्य अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सके। बहुत सतर्क रहने पर भी हम लोग भटक जाते थे। यदि मुख्य स्थानों की ओर जानेवाले रास्तों पर कोई चिह्न बना दिया जावे तो बड़ी सुविधा हो। इन बातों पर विचार करते हुए हमारी टोली आगे बढ़ती जा रही थी। सूर्य का प्रचंड तेज अब तीव्र प्रहार कर रहा था। मध्याह्न का समय हो चुका था, हम लोग एक घाटी चढ़ रहे थे। जब हम लोग उस घाटी के ढाल पर आये तो वहाँ की रियाऊ पर जल पीकर समीप-वर्ती वट-वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे। यह स्थान कमोल ग्राम के समीप ही है। दो घण्टे विश्राम लेकर हम लोग फिर चल पड़े।

जो सज्जन हमारे साथ चल रहे थे वे एक दूसरे ही स्थान को जाने वाले थे; वे थोड़ी दूर चलने के उपरान्त अपने रास्ते पर जाने लगे। हमने भी कुछ चरवाहों से मार्ग पूछ कर चलना प्रारम्भ कर दिया। हमारा विचार जेमली और गायफल नामक ग्रामों को पार करके जिरगा के पर्वतों में जाना था। हिमालय और दक्षिणी पर्वतों के बीच में जिरगा के पर्वत सबसे ऊँचे हैं; यहाँ के दृश्य भी बड़े सुन्दर हैं। इस कारण २९ ता० की रात्रि को जिरगा के वन-प्रदेश में ही सोना निश्चय किया। जहाँ से हमलोग चले थे वहाँ से जेमली ग्राम को लोग आध कोस ही बतलाते थे, किन्तु चलने पर हमें प्रतीत हुआ कि वह १॥ मील से कम नहीं है। इधर यात्रा करने वालों को एक बात ध्यान रखने के योग्य है। इधर के ग्रामों में कोस बहुत लम्बा होता है। अनुमानतः यहाँ का एक कोस ३ या ४ मील के लगभग होता है। हम लोगों ने कोस शब्द से बहुत बार धोखा खाया।

अब हरियाली और भी अधिक दिखाई देने लगी। वन सघन होते जाते थे, बाँस वनों में बहुत अधिक दिखाई देने लगे तथा जिरगा की पर्वतमालायें भी दीख पड़ने लगीं। इसी प्रकार पर्वतों को पार करते, पर्वतीय नालों को लाँघते, सघन वनों में तेज़ी से चलते हुए, हम लोग जेमली एक घंटे से अधिक चलकर पहुँचे। वहाँ पर ग्राम-निवासियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि उस गाँव में कोई बावड़ी नहीं है, लगभग आध मील पर जो छोटी-सी नदी है वहीं से पानी लाया जाता है। मेवाड़ में पानी की बहुतायत होते हुए भी प्रजा को जल का कष्ट हो, यह मेवाड़ राज्य में ही सम्भव हो सकता है।

जेमली में जल पीकर हम लोग गायफल पहुँचे। यात्रा लम्बी तय कर चुके थे। क्षुधा भी लगी हुई थी। यहाँ से जिरगा के पर्वतों में जाने का रास्ता बहुत ही बीहड़ और भयंकर है और वहाँ भोजन का भी कुछ प्रबन्ध नहीं हो सकता था। इस कारण आटा, दाल, घी इत्यादि हमने इसी गाँव से मोल ले लिया और एक भील को पथ-प्रदर्शक बनाया। यहाँ से बिना मार्ग-दर्शक लिये जिरगा के पर्वतों में जाना बड़े जोखम का काम है। भूख तो लगी ही थी। एक ब्राह्मण देवता ने राबड़ी (मक्का को छाछ में उबाल कर एक पतला पदार्थ बनाते हैं) पिलाई। मेवाड़-जैसे प्रकृति की देन से सम्पन्न देश की अधिकांश जनता का यही भोजन है। वैसे तो भारतवर्ष ही कंगाल देश है, परन्तु मेवाड़ के किसानों को देखकर तो मुझे युक्त-प्रान्त और पञ्जाब के किसानों को धनी कहना पड़ेगा। यहाँ की निर्धनता का मुख्य कारण है उत्पत्ति के साधनों की उन्नति न करना। राज्य इस ओर से उदासीन है और कर्मचारीगणों के अत्याचार से किसान और दूसरे कारीगर स्वप्न में भी यह विचार नहीं कर सकते कि अपनी स्थिति को किस प्रकार सुधारें।

हम लोग गायफल से भील को लेकर चल दिये। मेवाड़ में भीलों को मामा कहा जाता है। मामा के शब्द से वे बड़े प्रसन्न रहते हैं। बोझ भी हम लोगों के पास अब अधिक हो गया था। रास्ता भी बहुत भयानक माना जाता था। लेकिन मामा इसकी कुछ भी परवाह न करके आगे बढ़ता जा रहा था। वास्तविक जिरगा-पर्वतों तक पहुँचने के लिए अभी हमें एक पर्वत-श्रेणी पार करनी थी। हम लोग उस वन-आच्छादित पर्वतमाला पर काँटेदार वृक्षों से अपना शरीर बचाते हुए चढ़ने लगे। कहीं-कहीं तो शिलाओं को पकड़ कर चढ़ना पड़ता था। सूर्य अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहे थे। सूर्य के साथ हमारे पैर भी शीघ्रता से बढ़ते जा रहे थे, क्योंकि हमारा निर्दिष्ट स्थान तो अभी बहुत दूर था। अब हम उस पर्वत-श्रेणी पर चढ़ आये और थोड़ी देर समतल वन-प्रदेश में चलने के उपरान्त उतार आरम्भ हो गया। उस ढाल पर चलना ही कठिन हो रहा था, वर्षा के जल-प्रवाह से जो रास्ता बन गया था उसीपर हम लोग उतर रहे थे। कहीं तो हमें दो-दो गज़ ऊपर से कूदना पड़ता था। उसी प्रकार उतरते-उतरते हम लोग एकसाथ एक मैदान में पहुँच गये। क्या ही नैसर्गिक सौन्दर्य-मय स्थान था! उस समतल भूमि के दो ओर दो पर्वत-श्रेणियाँ थीं। एक तो वह जिसे हम पार कर आये, और दूसरी जिरगा की पर्वत-श्रेणियाँ। दोनों ही पर्वतों पर सघन वन हरे रंग का आवरण चढ़ाये हुए थे और बीच में बनास नदी मन्दगति से बह रही थी। बनास मेवाड़ की सबसे बड़ी नदी है। थोड़ी देर तक तो हम लोग प्रकृति

के उस नैहर को देखते रहे। फिर बनास नदी को पार करके उस किनारे पर विश्राम करने की इच्छा से बैठ गये। परन्तु मामा ने हमारी इच्छा पूरी न होने दी। उसने कहा कि इस निर्जन और सघन बन में जल के समीप शेर साधारणतया आ सकता है। एक बार तो हमारे कान खड़े हो गये, परन्तु फिर सावधान होकर हम लोग और तेज़ी से आगे बढ़ने लगे। सूर्य अस्ताचल में पहुँच चुका था और सघन बन होने के कारण अन्धकार भी अधिक हो गया था। लालटैन जलाकर हममें से एक आगे होगया कि जिससे जङ्गली जानवर हम लोगों पर आक्रमण न कर सकें। उस अँधेरे में जिस तेज़ी से हम लोग चल रहे थे उसपर जब कभी मेरा ध्यान जाता तो मैं भयभीत हो उठता कि यदि तनिक भी पैर फिसला तो खंदक में ही शरण मिलेगी। भाग्यवश ऐसी कोई दुर्घटना नहीं हुई।

अब हम जिरगा के पर्वत पर बहुत चढ़ आये थे। इस पहाड़ पर जंगली आम बहुत हैं। लंगूर काट-काट कर इतने कच्चे आम नीचे डालते हैं कि रात्रि में सिर बचाकर चलना असम्भव है। ९ बजे किसी प्रकार हम साधु के आश्रम पर पहुँच गये, जहाँ रात्रि को ठहरना निश्चय किया था। जंगली जानवरों का डर होने के कारण संन्यासी की धूनी बराबर प्रज्वलित रहती थी।

प्रातःकाल शीघ्र ही पर्वत को देखने चले। वास्तव में यह स्थान बहुत ही रमणीक है। जिरगा का ऊँचा शिखर मानों आकाश को छू रहा है और उसके वक्षस्थल में यह आश्रम बना हुआ है। आश्रम के समीप ही पानी का एक स्वच्छ झरना बड़ी दूर से बहता आता है। आश्रम से कुछ ऊँचे चढ़कर रामदेवजी का मन्दिर है। यहाँ पर प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है, जिसमें हज़ारों यात्री आकर मन्दिर-दर्शन करते हैं। उस साधु ने आश्रम के समीपवर्ती भूमि में एक छोटी-सी वाटिका बना रक्खी है, जिसमें केला, नीबू इत्यादि फल लगे हुए हैं। पर्वत की उस वर्णनातीत छवि को देखकर हम उतर आये। और ठंडाई पीकर बाग़ में से कुछ केले और नीबू लेकर चल दिये। अब हम दूसरी ओर से उतर रहे थे। उतरते समय कभी-कभी जब फिर कर पर्वतमाला को देखते, तो क्या ही सुन्दर दृश्य देखने को मिलता। सामने भी दृश्य बड़ा अद्भुत था। बनास नदी गोलाकार बह रही थी, और एक पर्वत-श्रेणी को काट कर दूसरी में बहती थी। इस प्रकार हम लोगों ने तीन बार बनास को पार किया। प्रातःकाल था, बनास के तट पर हम लोग नंगे पैर चल रहे थे, पवन भी जंगली पुष्पों की भीनी सुरभि को लेकर बह रहा था; हम लोग प्रकृति के उस पवित्रतम रूप-लावण्य को निरखते चले जा रहे थे। पर्वत-शृङ्खलाओं की बीच की भूमि में खेती-बारी भी होती है। इधर जल की बहुतायत होने के कारण बन ग्रीष्मकाल में भी हरा-भरा रहता है। समतल भूमि पर, पहाड़ियों पर, जहाँ देखिए, हरियाली ही दृष्टिगोचर हो रही थी। कहीं-कहीं वीर योद्धाओं की छतरियाँ भी दिखाई दे रही थीं। इस प्रकार देखते-भालते हम लोग पलासनी नामक ग्राम में पहुँच गये। यहाँ पर चारभुजा का एक ६०० वर्ष का प्राचीन मन्दिर है * हमने भील को इसी गाँव तक के लिए ठीक किया था। इस कारण वह यहाँ से लौट गया और हम लोग मन्दिर में जाकर विश्राम लेने लगे।

थोड़ी देर बाद फिर चले। इस समय हम लोग लगभग ३५०० फ़ीट की ऊँचाई पर चल रहे थे। यद्यपि रास्ता पथरीला था, परन्तु पहाड़ियाँ अधिक नहीं थीं। हम लोग बड़ी तेज़ी से अपने रास्ते पर चलने लगे। लगभग ४ घण्टे चलने के उपरान्त हम लोग भानपुरा नामक एक बड़े क़स्बे के समीप पहुँच गये। भानपुरा मेवाड़ राज्य की सीमा पर है। इसके आगे मारवाड़ राज्य आ जाता है। भानपुरा में एक घण्टा विश्राम करके हम लोग आगे चल दिये। आगे का रास्ता बहुत ही भयानक था। मारवाड़ तो नीचा मैदान है और हम लोग ३५०० फ़ीट ऊँचे पर चल रहे थे। एक मील चलने के उपरान्त मारवाड़ के मैदान दीखने लगे। प्रकृति के राज्य में कितना अन्तर है, यह वहाँ से स्पष्ट दीख रहा था। एक ओर तो मेवाड़ राज्य सघन बनों और पर्वत-श्रेणियों से भरा हुआ, दूसरी ओर मारवाड़ की

* इस मन्दिर के विषय में मेवाड़ में यह प्रसिद्ध है कि प्रत्येक जलझूलनी एकादशी को मन्दिर में से जल बहता है। मैंने देखा कि सम्भव है कोई यन्त्र लगा हो, परन्तु हमें कुछ दिखाई न दिया।

मरुभूमि। परन्तु मारवाड़ पहुँचने के लिए इस ७ मील के लगभग ढाल पर उतरना था। मेवाड़ में पर्वत-श्रेणियों को पार करनेवाले रास्ते को नाल कहते हैं। भानपुरा की नाल बड़ी भयंकर है, ७ मील तक वह सीधी चली गई है। हम लोग बड़ी सावधानी से उतर रहे थे। लाठियों के सहारे के बिना तो वहाँ उतरना ही कठिन था। बहुतसे स्थानों पर तो बैठ-बैठ कर सरकना पड़ता था। जीवन और मृत्यु को मैंने कभी इतने समीप नहीं देखा। जिस रास्ते पर हम उतर रहे थे उसके दाहिने हाथ तो ऊँचा पर्वत खड़ा था और बाईं ओर सैकड़ों फीट गहरा खन्दक। बस, वह एक फीट का पथ ही हमारे चलने का स्थान था। तनिक भी बायें ओर को मनुष्य झुका कि गया। मेवाड़ और मारवाड़ राज्य में आने-जाने का यही रास्ता है। फिर भी राज्य की ओर से इसे ठीक करने का प्रयत्न नहीं किया गया। जितना यह स्थान भयानक था, उतना ही दृश्य अधिक सुन्दर दिखाई दे रहा था। मुझे तो यह प्रतीत होने लगा कि जैसे भयंकरता और सुन्दरता का साथ हो! जब कभी हम लोग थक कर थोड़ा-सा विश्राम लेने के लिए खड़े हो जाते तो दिखाई देता कि मानों हरे आवरण से ढकी हुई अनेक श्रेणियाँ हमारी ओर दौड़ रही हैं। उनके बीच में जो पतली घाटियाँ थीं वे कितनी सुहावनी प्रतीत हो रही थीं! इसी प्रकार हम लोग उतरते जा रहे थे। इतना चल चुकने पर भी ढाल का अन्त नहीं होता था। हम लोग सावधानी से उतरते जा रहे थे। लगभग ३॥ घंटे चलने के उपरान्त ढाल का अन्त हुआ और हम लोग मेवाड़ और मारवाड़ राज्य की सीमा पर आकर खड़े हो गये।

मेवाड़ राज्य की सीमा पर एक चौकी है। वहाँ पर थोड़ी देर विश्राम करके हम लोग मारवाड़ राज्य में घुसे। पहाड़ियों का अब अन्त हो रहा था। क्रमशः पहाड़ियाँ नीची होती जा रही थीं और वृक्ष भी छोटे होते जा रहे थे। एक बात बड़ी विचित्र देखने में आई। मेवाड़ के पर्वतीय वनों में आम बहुतायत से पाया जाता है, परन्तु मारवाड़ में एक भी आम का वृक्ष दृष्टिगोचर नहीं हुआ। सायंकाल हो गया था, हम भी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये।

रणपुरजी का मन्दिर दूर से दिखाई देने लगा। हम लोगों ने भी अपनी चाल तेज़ करदी और थोड़ी ही देर में हम लोग रणपुरजी के विशाल प्रांगण में खड़े हो गये। सामान पीठ पर से उतार कर रख दिया और मन्दिर देखने चले। रणपुरजी का मन्दिर भारतवर्ष के प्रसिद्ध मन्दिरों में से है। दिलवारा के जैन मन्दिर आबू में अद्वितीय हैं, परन्तु रणपुरजी का जैन-मन्दिर भी एक अद्वितीय वस्तु है। यह विशाल मन्दिर इस निर्जन स्थान में एक करोड़ से ऊपर की लागत लगाकर बनवाया गया था। मन्दिर बहुत प्राचीन है। सैकड़ों पाषाण-स्तूप इस मन्दिर की शोभा को बढ़ाते हैं और जो खुदाई इन स्तूपों पर देखने में आई वह तो भारतीय कला का एक उच्चतम नमूना है। महावीर स्वामी की सैकड़ों प्रतिमायें इस मन्दिर में स्थापित की गई हैं। कुछ मूर्तियाँ तो बहुत ही सुन्दर बनी हैं। मन्दिर के समीप सटी हुई एक बड़ी धर्मशाला बनी हुई है। परन्तु इस विशाल मन्दिर में एक भी पुजारी अथवा नौकर न दिखाई दिया। बात यह है कि मन्दिर निर्जन स्थान में होने के कारण यात्री बहुत कम आते हैं, इस कारण पुजारी और नौकर भी मनमाना कार्य करते हैं।

जब दर्शन हो चुके तो भोजन की समस्या सामने उपस्थित हुई। वहाँ समीप कोई गाँव भी न था, जहाँ भोजन की सामग्री ले लेते। भूख भी बहुत लगी हुई थी। अब रात्रि को भोजन की आशा न होने से तो चित्त व्याकुल हो उठा। मैं तो विश्राम करने लगा, मेरे मित्र महताजी घूम फिर कर एक भीलनी से कुछ आटा लाये। बस, हम लोगों के पास घी तो था ही। पूड़ियां बनाकर, आम की चटनी तैयार की। धर्मशाला में कुँए पर स्नान करके हम लोग भोजन कर सो गये।

प्रात-काल फिर अपने रास्ते पर हो लिये। अब रास्ता ठीक था, लेकिन रेत मिलने लगी। हम लोगों के जूतों ने जवाब दे दिया। बबूलों के इस प्रदेश में चलने में कठिनता होने लगी। मारवाड़ में अधिकतर बबूल ही होता है। लगभग १० बजे हम लोग मारवाड़ राज्य के एक बड़े क़स्बे (सादड़ी) में पहुँच गये। एक मंदिर के समीप हम लोग ठहर गये। बाज़ार से सामग्री लेकर भोजन बनाया

और जाकर विश्राम करने लगे। किन्तु मारवाड़ की रेणु-मिश्रित गरम हवा भला हमें क्यों विश्राम लेने देती! हमारी यात्रा में गरमी ने हमें मारवाड़ में ही कष्ट दिया।

हम लोग ६ बजे उठ कर चल दिये। अब हम फिर मेवाड़ की ओर चलने लगे। दो घंटे तक तो रास्ता साफ़ आता रहा, परन्तु जैसे-जैसे मेवाड़ की सरहद समीप आती जा रही थी वैसे ही वैसे रास्ता पथरीला होता जा रहा था। अब हम परशुराम के प्राकृतिक शिवालय के दर्शनार्थ जा रहे थे। थोड़ी दूर चलने पर हम लोग पहाड़ियों पर चढ़ने लगे। मेवाड़ में पहुँचने के लिए हमको ४ पर्वत-श्रेणियाँ चढ़नी थीं। एक के बाद दूसरी पर्वत-श्रेणी पर हम लोग चढ़ने लगे। लगभग ४ मील की चढ़ाई समाप्त करने के बाद हम लोग परशुरामजी के कुण्ड के समीप पहुँचे। कुण्ड पक्का बना हुआ था। एक पहाड़ी झरना नाले के रूप में दो पहाड़ियों के बीच में से बह कर कुण्ड में गिरता था। पास ही एक साधु का आश्रम था। यह स्थान तो अत्यन्त निर्जन और बीहड़ प्रतीत हुआ, परन्तु दृश्य तो यहाँ का भी दर्शनीय था। सामान उतार कर रख दिया और विश्राम लेने लगे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि परशुराम का मन्दिर यहाँ से २ मील की चढ़ाई पर है और रात्रि को वहाँ पर ठहरने के योग्य कोई भी स्थान नहीं। यही निश्चय किया कि आज रात्रि को यहीं विश्राम किया जावे। जब इस पर्वतीय झरने पर स्नान के लिए गये तो मिट्टी में शेर के पंजों के चिन्ह दिखाई दिये। अब ध्यान आया कि इस जल-स्रोत में पानी पीने के लिए व्याघ्र इत्यादि जंगली पशु आया ही करते होंगे, पर रात्रि हो गई थी; स्नान करने में आनन्द तो बहुत आया, परन्तु शीघ्रता करनी पड़ी। लौट कर उन साधु महाराज से बात-चीत करने लगे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि रात्रि को शेर प्रति दिन यहाँ जल पीने आते हैं। हम लोगों के हृदय थोड़ी देर के लिए भयभीत हुए। हम लोगों ने यह निश्चय किया कि कमरे के अन्दर लेटा जावे। जो कुछ भी खाने का सामान साथ था, उसीको खाकर हम लोग अन्दर लेटे। रात्रि होते ही जंगली जंतुओं की तेज़ आवाज़ें आने लगीं। इच्छा हुई कि रात्रि में जग कर देखा जावे, किन्तु थकावट के कारण लेटते ही निद्रा आ गई। एक बात यहाँ पर उल्लेखनीय है। इस श्यामवर्ण संन्यासी की आँखों में से रात्रि के इस घोर अंधकार में बड़ी डरावनी चमक निकलती थी। उसकी चमकती हुई आँखों को देख कर रात्रि में मनुष्य का डर जाना बहुत सम्भव है। प्रातःकाल मंदिर की ओर बढ़े। परशुरामजी के शिव मंदिर की राजपूताने में बड़ी प्रतिष्ठा है। मेवाड़ और मारवाड़ में यह प्रसिद्ध है कि परशुरामजी के दर्शन कर चुकने वाले यात्री को ही सर्वप्रथम बद्रीनाथ में मन्दिर के पट खोलने का अधिकार है। परन्तु रास्ता बहुत बीहड़ है। दो मील की चढ़ाई के उपरान्त हमें मन्दिर दीखने लगा। मन्दिर क्या है, पर्वत में शंख के आकार की एक गुफा है, जो कि प्रकृति की निर्माण की हुई है। यहाँ से मन्दिर के लिए सीधी चढ़ाई है। यहाँ से २०७ सीढ़ियों को चढ़कर हम लोग मन्दिर में पहुँचे। प्रकृति भी कितनी कुशल कारीगर है, यह वहाँ जाने पर ज्ञात हुआ। वर्षा के जल ने शिलाओं को काट-काट कर कितना सुन्दर बना दिया था, वह तो देखने की ही वस्तु थी। मन्दिर में सभी वस्तुएँ थीं, शिवजी की वन्दना करके हम लोग बाहर निकल आये। तीन मील चलने के उपरान्त एक गाँव मिला, जहाँ छाछ पी और आगे बढ़े। लगभग १॥ घंटा चलने के उपरान्त दूसरा गाँव मिला, जहाँ से भोजन-सामग्री ली और चल दिये।

यहाँ पर एक बात का अनुभव हुआ। भारतीय कृषक अधिकतर ऋणी होता है, यह तो मैं भलीभाँति जानता हूँ। परन्तु यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि अजमेर और ब्यावर जैसे सुदूर प्रान्त के महाजन पहाड़ी प्रान्त के इन भोले-भाले किसानों को ड्योढ़े और दुगने पर क़र्ज़ देकर इनको अपना क्रीतदास बना लेते हैं। मज़ा तो यह है कि भिन्न-भिन्न इलाक़ों में अपने नौकर भेज कर उगाही कराते हैं। ऋण लेने वाले को उसके सिपाहियों से ही काम पड़ता है। क्या राज्य इस ओर ध्यान देगा?

समीप ही एक मठ है, हम लोग वहीं जाकर ठहरे। यह स्थान मेहड़ों का मठ कहलाता है। बनास नदी का उद्गम स्थान यही है। यहाँ एक घण्टा विश्राम करने के उपरान्त हम लोग फिर चलने लगे।

धूप तेज़ हो गई थी, फिर भी वन-प्रदेश में चलने के कारण अधिक धूप नहीं मालूम होती थी। अब हम लोग उतर कर दो पर्वत-श्रेणियों के बीच के मैदान में चल रहे थे। इस नाल की लम्बाई लगभग ६ मील थी। परन्तु हम लोगों ने तेज़ चल कर सवा घंटे में ही यह नाल पार कर दी। कभी-कभी तो हम लोग दूर तक दौड़ते जाते थे।

यहाँ पर एक बात उल्लेखनीय है। मेवाड़ के इन पर्वतीय प्रान्तों में, जहाँ कि सड़कें नहीं हैं, बेगार की प्रथा भयंकर रूप से विद्यमान है। उच्च पदाधिकारियों को तो जाने दीजिए—जब वे इन बीहड़ स्थानों में जाते हैं, तब तो बेचारे गाँव वालों की शामत ही आ जाती है! बहुतसे गाँव वालों को उनका सामान ढोने के लिए पकड़ लिया जाता है, और बेचारों को एक पैसा भी नहीं मिलता; लेकिन फ़ौज के साधारण सिपाही को भी यह अधिकार है कि वह किसानों को बेगार में पकड़ ले। कैसा भयानक अत्याचार है, राज्य इस ओर कब ध्यान देगा? राज्य को क्या अधिकार है कि निरीह किसानों के साथ पशुओं का सा अत्याचार करे?

सायंकाल होने को था। हम लोग अब एक पर्वत-श्रेणी पर चढ़ रहे थे। जब उस श्रेणी को हमने समाप्त कर लिया तो दूसरी श्रेणी पर कुम्भलगढ़ का अजेय दुर्ग दिखाई दिया। मेवाड़ का यह दुर्ग राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मुग़ल शासन-काल में जब कि चित्तौड़ तक विजय हो गया, यह दुर्ग मुसलमान न ले सके। दुर्ग का नया परकोटा स्वर्गीय महाराणा फतहसिंहजी ने बहुत ही सुन्दर और दृढ़ बनवा दिया है। इस दुर्ग को महाराणा कुम्भा ने बनवाया था। इसकी ऊँचाई अधिक होने के कारण स्वर्गीय महाराणा फतहसिंहजी ग्रीष्मकाल में अधिकतर यहीं रहते थे। दुर्ग में प्राचीन और नवीन महल भी हैं। नवीन महल तो फतहसिंहजी ने बनवाये हैं। परन्तु प्राचीन स्मारकों की मेवाड़ में जैसी दुर्दशा देखने में आई वैसी सम्भवतः कहीं भी नहीं होगी। चित्तौड़ में महाराणा कुम्भा, जयमल के महलों की जो बुरी दशा है, वैसी ही स्थिति यहाँ पर राणा सांगा, ताराबाई के स्थानों की भी हो रही है। प्राचीन इमारतें इतनी जर्जर दशा में हैं कि उनकी ओर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो थोड़े दिनों में उनके चिह्न भी शेष नहीं रहेंगे। इतिहास के विद्यार्थी के लिए क़िले पर बहुत कुछ अध्ययन करने की वस्तुयें उपलब्ध हैं। मेवाड़ के इतिहास से इस दुर्ग का बहुत सम्बन्ध है। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से न भी देखा जावे तो भी प्रकृति-निरीक्षण करने वाले के लिए भी यह स्थान बहुत अच्छा है। जब महलों पर चढ़कर हम खड़े हुए उस समय उस पर्वत के चारों ओर का दृश्य बहुत ही रमणीक ज्ञात हुआ। शीतल वायु के तेज़ झकोरों का तो कहना ही क्या, वे तो मानों हम लोगों को विश्राम लेने का निमन्त्रण दे रहे थे। दुर्ग देखकर हम लोग शिव-मन्दिर में ठहर पड़े। कुम्भलगढ़ मेवाड़ राज्य का एक ज़िला है। गाँवों का तो कहना ही क्या, ज़िले में भी अस्पताल नहीं है। क़िले पर थोड़ी-सी बस्ती है। जब हम लोग उधर जा रहे थे, तो ज्ञात हुआ कि एक स्त्री को कै हो रही है। बेचारा निर्धन पति उदास बैठा था, हम लोग कुछ दवाइयाँ भी लाये थे। हमने उसे दवा दी, जिससे उसे लाभ हुआ। क्या कोई राज्य अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने का अधिकारी कहा जा सकता है, जबकि अपनी प्रजा के सुख के लिए लेशमात्र भी प्रयत्न नहीं किया जाता? क्या मेवाड़ राज्य के अधीश्वर इस गिरी हुई दशा को सुधारने का प्रयत्न करेंगे? मेवाड़ में संस्थायें कम हैं। हाँ, स्काउट-संस्था तो अवश्य ही सुसंगठित और राज्य की विशेष कृपापात्र है। परन्तु स्काउट लोगों को, जब कि स्कूल और कालेज बन्द होते हैं, काश्मीर, नैनीताल और शिमले के सैर से ही अवकाश नहीं मिलता। यदि इस संस्था के अधिकारीवर्ग अपने बालचरों से वर्ष में तीन मास ही दवा बाँटने का कार्य करवायें तो बड़ा भारी कार्य हो। मेवाड़ की अधिकतर प्रजा रोग-ग्रसित होने पर वैद्य अथवा डाक्टर के दर्शन भी नहीं कर पाती। मेवाड़ में कार्य करने का विस्तृत क्षेत्र है। क्या इस ओर कार्यकर्तागण ध्यान देंगे?

रात्रि में मन्दिर में ही सो गये और प्रातः उठकर चल दिये। अब हम लोग ऊँची पर्वत-श्रेणी से नीचे की ओर उतर रहे थे। क्रमशः हम लोग घाटी में चलने लगे। लगभग १२ मील चलने के उपरान्त चारभुजाजी में पहुँच गये।

चारभुजा मेवाड़ राज्य का एक बड़ा भारी तीर्थ है। मन्दिर प्राचीन एवं भव्य बना हुआ है और मन्दिर के समीप ही एक गाँव है। यहाँ पर हम राजकीय स्कूल में ठहरे। एक बात देखकर मुझे दुःख हुआ। मेवाड़ में एक तो शिक्षा का वैसे ही कुछ प्रबन्ध नहीं है और जहाँ राज्य की ओर से प्राइमरी स्कूल खोले भी गये हैं वहाँ की स्थिति बहुत खराब है। अधिकतर अध्यापकों को कुछ भी नहीं आता। स्कूल के खुलने का न तो कोई समय ही है और न पढ़ाई की कोई व्यवस्था। स्कूल हो रहा है तो अध्यापकजी अपनी रसोई तैयार कर रहे हैं, अथवा किसीसे गप हाँक रहे हैं!

सायंकाल को चारभुजाजी के दर्शन किये। मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। एक बात मैंने यहाँ पर नई देखी, जो भारतवर्ष के अन्य भागों में नहीं दिखाई देती। चारभुजा-जी की मूर्ति को मैंने एक योद्धा के रूप में देखा। एक सोने की म्यान की तलवार, ढाल, छुरी, तथा भाला उनके पास था। सम्भवतः मेवाड़ की युद्ध-प्रिय प्रजा ने अपने आराध्यदेव को भी योद्धा के रूप में पूजा करने की आवश्यकता समझी होगी।

प्रातःकाल उठकर एक-एक धोती लेकर हम लोग रूपजी के दर्शनार्थ चल पड़े। रूपजी का प्राचीन मन्दिर चारभुजाजी से लगभग ६ मील है। महाराणा सांगा और पृथ्वीराज के समय में इसका निर्माण हुआ। हम लोगों ने बीच में गोमती नदी में स्नान किया तथा रूपजी के दर्शनार्थ चल पड़े। रूपजी का मन्दिर चारभुजा-जी की ही नकल समझना चाहिए। मन्दिर में शिलालेख भी लगे हुए हैं, जिनसे मन्दिर के समय की ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है। मेवाड़ राज्य में राज्य-कर्मचारी जैसा अन्धेर मचाये हुए हैं वह अकथनीय है। महाराणा-साहब की मृत्यु पर कहीं तो केवल तीन बाज़ार की हड़ताल रही तो कहीं १२ दिन। चारभुजाजी के हाकिमसाहब ने खेतों को न सींचने की आज्ञा निकाल रक्खी थी, जब कि पास के गाँवों में खेत सींचे जा रहे थे। राज्यकर्मचारियों की रिश्वत-खोरी का भी एक उदाहरण सुन लीजिए। सैटिलमैण्ट के दो अमीन जब चारभुजा में आये तो उनको रिश्वत देने के लिए इस बहाने से रुपया गाँववालों से लिया गया कि गाँव के बन्दर निकाले जायँगे। इस प्रकार लगभग ७८० रुपया बेचारे गाँववालों का दो अमीन हड़प करके चलते बने! गाँव के लोगों ने तो उनका नाम भी मुझे बतलाया था। राज्य में ऐसा डाका सभी की जानकारी में पड़ता है और राज्य उसका कोई प्रबन्ध नहीं करता! रूपजी से लौटकर हम लोग फिर चारभुजाजी लौट आये। देर अधिक हो जाने के कारण हम लोग आगे नहीं बढ़े।

प्रातःकाल शीघ्र उठकर चल दिये। रास्ता अब भी पर्वतीय था, परन्तु अब पहाड़ियाँ नीची और कम आती थीं। हम लोग पहाड़ से उतर कर मैदान में आगये थे। क्रमशः दो तीन गाँवों को पार करके हम लोग ११ बजते-बजते केलवा नामक ग्राम पहुँच गये। केलवा के ठाकुर-साहब द्वितीय श्रेणी के जागीरदार हैं। एक पहाड़ी पर केलवा का प्राचीन दुर्ग जर्जर दशा में दिखाई दे रहा था। केलवा अच्छा क़स्बा है, किन्तु यहाँ एक भी प्राइमरी स्कूल नहीं। मैदान में उतर आने से अब गर्मी अधिक प्रतीत होने लगी थी। हम लोग ५ बजे तक केलवा में ही विश्राम करते रहे। ५ बजे सायंकाल हम लोग राजनगर की ओर चल दिये।

राजनगर यहाँ से लगभग ४ मील है। टहलते-टहलते हम लोग राजनगर के समीप पहुँच गये। राजनगर को महाराणा राजसिंह ने बसाया था, और राजसमुद्र नामक प्रसिद्ध झील भी उन्होंने बनवाई थी। राजनगर पहाड़ियों के नीचे बसा हुआ है। एक पहाड़ी पर महाराणा राजसिंह ने महल भी बनवाये थे, परन्तु आज उनकी दशा ख़राब है; कोई इन महलों की देख-भाल भी नहीं करता। महलों में पच्चीकारी का काम अच्छा है। नीचे विशाल राजसमुद्र लहरें मार रहा था। कैसा सुन्दर दृश्य था वह! राजसमुद्र की सुदृढ़ पाल भारतवर्ष में एक ऐतिहासिक वस्तु है। उस झील के बनवाने में डेढ़ करोड़ रुपये से अधिक लगा था। झील की पाल पर महाराणा राजसिंह ने प्रशस्तियों पर मेवाड़ राज्य का इतिहास खुदवा दिया है। ऐतिहासिकों के तो यह बड़े काम की चीज़ है। राजसमुद्र पर नौचौकी का दृश्य भी अपूर्व है। संगमरमर की उन छतरियों पर जो

कारीगरी देखने में आई, वह भारतवर्ष में अद्वितीय है। ताजमहल में पच्चीकारी का काम उत्तम है, परन्तु राजसमुद्र की उन चौकियों में पत्थर को काट कर जो काम किया गया है वह कहीं देखने को नहीं मिलता। वहाँ स्नान करके एक परिचित सज्जन के यहाँ भोजन कर राजसमुद्र की पाल पर ही सोये।

प्रातःकाल उठकर कांकरौली में आये। कांकरौली और नाथद्वारा मेवाड़ के ही क्या भारतवर्ष के बड़े तीर्थों में से हैं। वल्लभाचार्य की ७ गद्दियों में से ये दो मुख्य गद्दियाँ हैं। जिस समय औरंगज़ेब के भय से वृन्दावन से ये दोनों गुसाईं अपनी मूर्ति को लेकर किसी आश्रय की खोज में चले और किसी राजा को उन्हें रखने का साहस न हुआ तो महाराणा राजसिंह इनको बड़ी श्रद्धा के साथ लाये और औरंगज़ेब से कहला भेजा कि जबतक मेवाड़ में एक भी मनुष्य रहेगा, तबतक इनकी रक्षा होगी। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से भक्त लोग लाखों की संख्या में दर्शनार्थ प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं। इनके गुसाइयों को छोटे राजा ही समझना चाहिए। लाखों की जागीर इन लोगों को मिली हुई है और इनको शासन-अधिकार भी प्राप्त हैं। मन्दिर राजसमुद्र के किनारे बना हुआ है। प्रातःकाल दर्शन करके हम लोग उदयपुर शीघ्र पहुँचने का विचार करने लगे। यहाँ गुसाईं महाराज के भी दर्शन हुए, परन्तु उनके उस राज्योचित वैभव को देखकर श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई। जिस मनुष्य को मानने वाले करोड़ों की संख्या में हों, उसका जीवन यदि संयमी न होकर विलासी दिखाई दे तो कैसे दुःख की बात है! नाथद्वारा में तो व्यभिचार का भी ख़ासा प्रचार है। जहाँ लाखों रुपये की आमदनी हो और विलासी जीवन बना डाला जावे, वहाँ व्यभिचार नहीं तो और क्या दृष्टिगोचर हो सकता है! भोली-भाली हिन्दू जनता कबतक इन महन्तों के जाल में फँसी रहेगी? नाथद्वारा तो इतना समृद्धशाली मठ है कि जिसकी आय से एक बड़ा भारी विश्व विद्यालय मेवाड़ में खोला जा सकता है। कांकरौली भी इन बुराइयों से बचा हुआ नहीं है।

हम लोग उदयपुर पहुँचने का विचार कर रहे थे कि ज्ञात हुआ कि महाराणासाहब की तेरहीं पर जो ब्रह्म-भोज होने वाला है उसके लिए मेवाड़ भर के ब्राह्मण निमंत्रित किये गये हैं, रेल द्वारा वहाँ पहुँचना बहुत कठिन है। फिर भी हम लोग कांकरौली से किसी प्रकार सनवाड़ के स्टेशन तक मोटर से पहुँचे। वहाँ विचित्र दृश्य देखी। सैकड़ों यात्री उस स्टेशन पर रेल की बाट निहार रहे थे। टिकट न बाँटने की आज्ञा आई थी। बेचारे निर्धन ब्राह्मण दूर-दूर से आकार स्टेशन पर पड़े थे। उनके पास न तो पैसे थे, और न खाने को। मेवाड़ के राज्य-कर्मचारियों की सूझ भी बड़ी अनोखी होती है। राज्य के निमंत्रण पर प्रत्येक ब्राह्मण को जाना ही होगा नहीं तो जुर्माना किया जायगा। ऐसी आज्ञा देकर गाँवों से बेचारे निर्धन ब्राह्मणों को खदेड़ा गया और स्टेशनों पर रेलवे उनको ले जा नहीं सकती थी। बेचारे ऐसी दुर्दशा में फँसे हुए थे कि मुझे उस जन-समूह को देख कर हार्दिक दुःख हुआ। रेल आई, हम लोग किसी प्रकार बैठ गये; पर वे सबके सब वहीं ताकते रहे! पुलिस उन्हें कोड़े मार-मार कर चढ़ने से रोकती थी। मैंने मन में सोचा—"ऐ ऐश्वर्य से मतवाले राज्यकर्मचारियो! जिस दिन यह भोली-भाली प्रजा, जो आज तुम्हारे कोड़े खा रही है, जाग्रत होकर करवट लेगी, उस दिन तुम सत्ताधारियों का अस्तित्व भी नहीं रहेगा।" सायंकाल के २ बजे गाड़ी उदयपुर पहुँच गई—और, मैं दूसरे दिन मेवाड़ से चलकर अपने घर पहुँच गया।

गाँव और सफ़ाई

[श्री शङ्करराव जोशी]

रेल और सड़क आदि से दो-चार मील इधर-उधर हट कर गाँवों का निरीक्षण करने से यह बात साबित हो सकती है कि मानो गाँवों का सफ़ाई से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। गाँवों की गन्दगी को देखने से यह विश्वास हो जाता है कि देहाती जनता को सफ़ाई की इतनी फ़िक्र ही नहीं है, और न ज़रूरत ही मालूम होती है।

किसी गाँव में जाकर गली-कूचों और रास्तों में चक्कर लगाइए। चारों ओर गंदगी का अटल साम्राज्य दिखाई देगा। आम रास्तों, टूटे फूटे मकानों और रहने के मकानों के सामने कूड़ा-करकट मैला, राख आदि के ढेर के ढेर पड़े दिखाई देंगे। जगह-जगह पेशाब, गन्दा पानी, सड़ी-गली वस्तुयें, चूहे आदि के मृत शरीर पड़े हुए मिलेंगे। देहाती लोगों की आदत-सी पड़ गई है कि वे जहाँ चाहते हैं मल-मूत्र, गंदगी आदि फेंक देते हैं।

गाँव से बाहर भी चारों ओर खाद के ढेर के ढेर पड़े सड़ा करते हैं, जिससे हवा ख़राब हो जाती है। बरसात में तो गाँव-भर में इतनी बदबू फैल जाती है कि रास्तों से निकलना मुश्किल हो जाता है। और यही कारण है कि बरसात के बाद, ख़ासकर कातिक-अगहन में, देहातों में ज्वर आदि रोग बड़े ज़ोरों से फूट पड़ते हैं। इनसे लोग मरते तो हैं ही, पर साथ ही कई लोग महीनों तक बिस्तर पर भी पड़े रहते हैं, जिससे बेचारों को भयानक आर्थिक हानि भी सहनी पड़ती है।

घरों के अन्दर भी गंदगी का अटल साम्राज्य छाया रहता है। प्रकाश, धूप और वायु को मकानों के अन्दर आने नहीं दिया जाता है; खिड़की और रौशनदानों का मकानों में एकदम अभाव-सा रहता है।

पीने के लिए स्वच्छ पानी भी नहीं मिलता। अधिकांश गाँवों में कुओं का नाम-निशान तक नहीं पाया जाता। लोग बारहों महीने नदी-नाले और पोखरों का पानी पीते हैं। कपड़े आदि भी इन्हींमें धोये जाते हैं, और मवेशी भी इन्हींमें पानी पीते हैं।

ऊपर के विवेचन से पाठकों को यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई होगी कि देहातों में स्वच्छता की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया जाता है और दवा-दारू का कोई इन्तज़ाम ही नहीं है। देहाती जनता स्वास्थ्य-विज्ञान के मोटे सिद्धान्तों से भी एकदम अपरिचित है और उनको सफ़ाई आदि की शिक्षा देने का बिलकुल ही प्रयत्न नहीं किया गया है। फिर भी, हम देखते हैं, देहाती लोग शहरवालों से कई गुना अधिक तन्दुरुस्त और ताक़तवर होते हैं। इसका एकमात्र कारण उनका दिन भर खुली हवा और धूप में रहना है। धूप, खुली हवा और छाछ में रोग-नाशक शक्ति है और इनका सेवन करते रहने से ही इतनी ज्यादा गन्दगी में रहने पर भी देहातियों का स्वास्थ्य अच्छा होता है। यदि थोड़ा-सा प्रयत्न किया जाय, तो देहातों से रोग मार भगाये जा सकते हैं। हमारी समझ में इतनी बातें ज़रूर होनी चाहिएँ—

हरएक गाँव में अग्नि-दिशा की ओर मल-मूत्र त्याग करने के लिए ख़ास जगहें मुक़र्रर करदी जायँ और गाँव के फण्ड से इन जगहों को साफ़ रखने का इन्तज़ाम करा दिया जाय।

गाँव के चारों ओर तीन-तीन फ़र्लांग की दूरी तक के सभी गड्ढे भरवा दिये जायँ। और गाँव के आस-पास जहाँ कहीं ज़्यादा कीचड़ होती हो, वहाँ पत्थर भरवा दिये जायँ। इससे गाँव के आस-पास कीचड़ न हो पायगी, जिससे बरसात के बाद मलेरिया ज्वर इतना उग्र रूप धारण करके फैलने न पावेगा। यदि काश्तकार और मालगुज़ार मिलकर काम करें तो पत्थर डालने का काम सहज ही हो सकता है। गर्मियों में अधिकांश गाँवों में काश्तकारों को विशेष काम नहीं रहता है और जिन गाँवों में रबी की फ़सलें बहुत ही कम होती हैं वहाँ तो काश्तकार लोग साल

में छः महीने बेकार ही रहते हैं। यदि हरएक काश्तकार हर साल पाँच पाँच सात-सात गाड़ी पत्थर लाकर डाल दिया करें, तो तीन-चार साल के बाद गाँव के आसपास कीचड़ का नाम तक न रहेगा। ज़्यादातर रास्तों में ही कीचड़ रहती है, अतएव पत्थर डालने से रास्ते भी हमेशा के लिए सुधर जायँगे।

हरएक गाँव में ज़रूरत के मुताबिक पीने के पानी के लिए एक या दो कुँए पुख्ता बनवा दिये जायँ और उनपर नहाने-धोने की सख्त मुमानियत कर दी जाय।

अक्सर देखा जाता है कि गांवों में आबादी के आस-पास काफ़ी स्थान नहीं छोड़ा जाता है। घरों के पास तक हँकत खेत आ लगते हैं, जिससे खाद इकट्टा करने के लिए काश्तकारों को जगह ही नहीं मिलती है। और यही कारण है कि लोगों को मजबूर होकर मकानों के सामने या आम रास्ते में या गिरे पड़े मकानों में खाद-कचरा आदि फेंकना पड़ता है, जिससे गांवों में गंदगी बहुत ज्यादा फैलती है। इसका सरल उपाय यह है कि हरएक काश्तकार को उसकी ज़रूरत के मुताबिक काफ़ी जगह दी जावे। और उसको सख्त ताकीद कर दी जावे कि अपनी खुद की ज़मीन में खाद, कचरा आदि एक गड्ढे में इकट्ठा करता रहे। गड्ढे ज़रूरत के मुताबिक पाँच-सात फुट तक गहरे बनाये जा सकते हैं। हरएक गड्ढे के चारों ओर तीन फुट ऊँची दीवार बनवादी जाय और उसपर फूस से छाया करादी जाय, तो मलेरिया के मच्छरों की वृद्धि में बहुत कुछ रुकावट पहुँच सकती है। गड्ढे के चारों ओर दीवार बनाने और ऊपर छाया कर देने से उसमें बरसात का पानी जमा नहीं हो सकेगा। ऐसा करने से खाद के उपयोगी तत्व भी नहीं नष्ट हो पावेंगे। यदि आबादी के अन्दर जगह देना मुमकिन न हो, तो गाँव से बाहर काफी जगह खाद इकट्टा करने के लिए छुड़ा दी जावे। इस जगह पर ऊपर लिखे मुताबिक गड्ढे बनवा कर खाद इकट्ठा करने का रिवाज डाला जाय, तो भी कोई हर्ज नहीं। गाँवठी पंचों को और जहाँ ग्राम-पंचायत हो वहाँ पंचायत को आम रास्तों और गलियों तथा गिरे-पड़े मकानों में कूड़ा, कचरा, मल-मूत्र आदि फेंकने वाले पर जुरमाना करने का अख्त्यार दे दिया जाय और इस जुरमाने की रकम में से महीने में एक दो-बार सारे गाँव की सफ़ाई करा दी जाया करे।

देहाती जनता को स्वास्थ्य-विज्ञान की शिक्षा देने का प्रबन्ध भी किया जाना चाहिए। मैजिकलालटेन, बायस्कोप, सिनेमोटोग्राफ आदि द्वारा शिक्षा दी जाने का प्रबन्ध हरएक प्रान्त के शिक्षा-विभाग को अवश्य ही करना चाहिए। देहाती स्कूल के पाठ्यक्रम में भी इस विषय को स्थान दिया जाना चाहिए।

हमारा निज का अनुभव है कि देहाती जनता का डाक्टरी दवाइयों पर विश्वास नहीं है और कई लोग धार्मिक कारणों से दवाखानों की दवाइयाँ इस्तैमाल नहीं करते हैं। यदि देहातों में वैद्य रख दिये जायँ, तो कम खर्च में इच्छित हेतु पूर्ण किया जा सकता है। आयुर्वेदिक दवाइयां सस्ती भी होती हैं और वे भारत की आबहवा के अनुकूल भी हैं।

वर्तमान काल में हम देखते हैं कि जितनी योजनायें बनाई जाती हैं। वे प्रायः शहरों में ही कार्यरूप में परिणत की जाती हैं; रेल और सड़कों से दूरी पर स्थित गाँवों की कोई कुछ भी फिक्र नहीं करता है। यह स्थिति वाञ्छनीय नहीं है। जबतक देहाती जनता को अनुकूल नहीं बनाया जायगा, कौंसिलों में गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने और भारत-हित के लिए ढोल पीट-पीट कर ढिंढोरा पीटने से कोई लाभ नहीं हो सकता है। इसके लिए हमें देहातों में अनुकूल वातावरण तैयार करने की कोशिश करनी चाहिए।

मध्यभारत में सम्भवतः ग्वालियर ही एक ऐसी रियासत है, जिसने सिनेमा आदि द्वारा स्वच्छता के लाभों और रोग फैलने के तरीकों और उनके निवारण के उपायों सम्बन्धी शिक्षा देहाती जनता को देने का प्रबन्ध किया है। यदि अन्य देशी रियासतें भी इसका अनुकरण करें तो क्या अच्छा हो!

जेल !

[श्री 'पुष्कर']

जेल ! प्यारी जेल ! मैं तेरा आवाहन कर रहा हूँ, और करता आया हूँ; परन्तु कोई उत्तर नहीं मिलता ! बताओ तो, कहाँ छिपी हो ? क्या मुझसे डरती हो ? या मैं तुम्हारे अयोग्य हूँ ? मुझे निराश न करो । बार बार मैं तुम्हारा स्मरण करते-करते तंग आगया, परन्तु तुम्हारा पाषाण हृदय तनिक पसीजा तक नहीं । अधिक लालायित न करो, मुझे दर्शन दे कृतार्थ करो । बहुत छिप चुकीं, अब अदृश्य रहने की मैं तो कोई आवश्यकता नहीं समझता । आओ ! आओ !! और मेरी श्रद्धाञ्जलि स्वीकृत करो । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि "इस अन्यायी सरकार का मान मर्दन कर दूंगा । इस नौकरशाही के फौलादी पंजे को, जिसने देशभर को जकड़ रक्खा है, तोड़ दूँगा ।" सरकार का तुमपर ही अधिक गर्व है, क्योंकि उसकी तोप, बन्दूक, और मशीनगन तो महात्मा गान्धी ने अपने अहिन्सा के मंत्र द्वारा भोंटी करदी; तो भी मैं तेरे अंचल में बैठ कर तुझे ही सरकार को ठेंगा दिखाने पर विवश कर दूँगा ।

प्रिय ! तुम्हीं स्वतंत्रता-देवी की लघु भगिनी हो । जिसने तुम्हारा सच्चे हृदय से आलिंगन कर लिया, उसने माँ स्वतंत्रता का भी कर्तव्य-पट की ओट से दर्शन कर अलभ्य पुण्य प्राप्त कर लिया । जिसने सच्चे हृदय से तुम्हारे द्वार पर पैर रख लिया, बस, वह स्वतंत्रतादेवी के महोच्च सिंहासन की प्रथम श्रेणी पर खड़ा हो गया ।

तुम्हीं मनुष्य-मात्र को सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराती हो । तुम्हीं अवगुण-पूर्ण कुकर्म करने वालों को शक्ति बनकर, और मार्ग से विचलित सत्पुरुषों को तेजोमय दीपक बनकर, सच्चे मार्ग का प्रदर्शन कराती हो । अहह ! धन्य हो तुम, संसार को मोहने वाली भव्य मूर्त्ति ! धन्य हो तुम, स्वभिमानिनी ! सारा राज-काज तुम्हींपर निर्भर है; तुमने सारे संसार को मोहित कर रक्खा है । क्या जालिम गवर्नमेन्ट, क्या सच्चे देशभक्त, और क्या दुष्ट मनुष्य, सभी तुम्हारे ऊपर गर्व करते हैं । गवर्नमेंट तुम्हारे ही ऊपर म्यान में से निकली पड़ती है चरित्र-हीन मनुष्य तुम्हारे ही ऊपर फूले नहीं समाते, और देशभक्त अथवा परतंत्रता के दल दल में फँसी हुई भारत-माता के उद्धार-कर्त्ता और नौकरशाही के कट्टर विरोधियों के प्रसन्नता के बाँध टूट जाते हैं, हर्ष का सागर उमड़ पड़ता है, पैरों की बेड़ियाँ वीरगति का आदेश करती हैं, हथकड़ियाँ सुवर्ण के कड़े बन जाती हैं, गले का तौक़ कंठहार की उपाधि पा लेता है । अहा ! उस वीर की प्रसन्नता की थाह उसके अतिरिक्त अन्य कोई कदापि नहीं पा सकता ! उसका हृदय आशा, उत्साह तथा वीरत्व की राशियों पर अठखेलियाँ करने लगता है । ओह ! उसके मुखारविन्द पर की अपूर्व झलक और तेज की रेखा कायरों के शरीरों में विद्युत-धारा संचालन करके उनके हृदयों में वीरत्व का समावेश करके चंचल कर देती है । यदि उस वीर का शशि वदन शान्त तथा गंभीर हुआ तो सर्व संसार को वशीभूत कर लेगा और युवक-संसार में जगत् के माया-मोह की ओर से उदासीन भाव भरकर तन-मन-धन भारतवर्ष पर न्यौछावर करा देगा ।

× × × ×

धन्य तू, मूक शिक्षिका ! यदि तेरा हृदयालिंगन करने को कोई दुष्टात्मा आता है, तो तू उसके हृदय में वह भाव भर देती कि उसके प्रभाव-रूप प्रायश्चित्त की रेखा उसके मुख पर ग्लानि का पट डाल देती है, जो दर्शकों को अयोग्य कार्य न करने को शिक्षा देता है। तू देशभक्त तथा राजद्रोही को अपने पास आते देख एक नववधू के समान उसके स्वागत के हेतु अपने किवाड़ रूपी हृदय-पट को खोलकर अति उत्सुकता के साथ उसकी बाट देखती है। जैसे ही वह मतवाला वीर तेरे हृदयालिंगन को दौड़ता है, तो तू भी अपने अन्तस्थल में उसे छिपा लेती है, और मूक भाव से अथवा लज्जाभाव से ऐसी पट्टी पढ़ाती है कि वह तेरा ही चेला हो जाता है। उस समय तू भी उस वीर आत्मा को हृदयस्थल में छिपाकर वह हाव-भाव दर्शाती है, अथवा यों समझो कि तेरे सारे शरीर में वह अपूर्व सौन्दर्य और तेज प्रकट हो जाता है, कि देखनेवाले भी तुझपर मोहित होकर तुझे अपनाने की प्रबल इच्छा धारण करते हैं।

देवी ! तू बड़ी भोली है, और निष्ठुर भी; क्योंकि माना कि स्वतंत्रता-प्रिय की तू अनेक यातनाओं द्वारा परीक्षा लेती है, परन्तु निष्कपट तू उनके साथ साथ स्वतंत्रतादेवी के दर्शन का प्रलोभन भी देती जाती है। अतएव वह उन्मत्त तेरी परीक्षाग्नि को शान्तिपूर्वक सह लेता है। परन्तु, देवी ! क्षमा करो। तुम निष्ठुर नहीं हो, वरन् स्नेह की साक्षात् मूर्ति हो। क्योंकि तुम यद्यपि दुष्टात्माओं को अपनाना नहीं चाहती हो, तथापि अन्त में स्नेहमयी माता के सदृश उन्हें अपने हृदय में छिपा लेती हो। परन्तु उसे वहीं यातनाओं द्वारा समझाती हो; यदि वह समझ जाता है तो शुभ है, और यदि उसे ज्ञान न हुआ तो अन्त में उसे नर्क यातना में पटक कर आगामी जन्म में सुधर जाने का आदेश करती हो।

बता, तेरी पूजा के निमित्त क्या क्या संग्रह करूँ ? यह तन और मन तेरी वेदी पर उपस्थित है। तू ही भारत-माता के उद्धार का अवलम्ब है। तू ही नौसिखे भारतीयों को स्वातंत्र्य-संग्राम में निपुण करने वाला सैनिक-विद्यालय है। हम वचन देते हैं कि विजयी होकर हम सबसे पहले तुझे ही पुष्पों और धन्यवादों से अलंकृत करेंगे। क्या अब भी नहीं मानेगी, बता, और क्या चाहिए ? यदि सन्तुष्ट है, तो ले ? शीघ्र मेरी श्रद्धाञ्जलि स्वीकृत कर। ग्रहण करो, मेरी प्रार्थना-रूपी थाली में, भावी कर्मों के पुष्पहार में, तन-मन-रूपी मुक्ता और भारत को स्वतंत्र करने की आशा-ज्योति का दीपक !
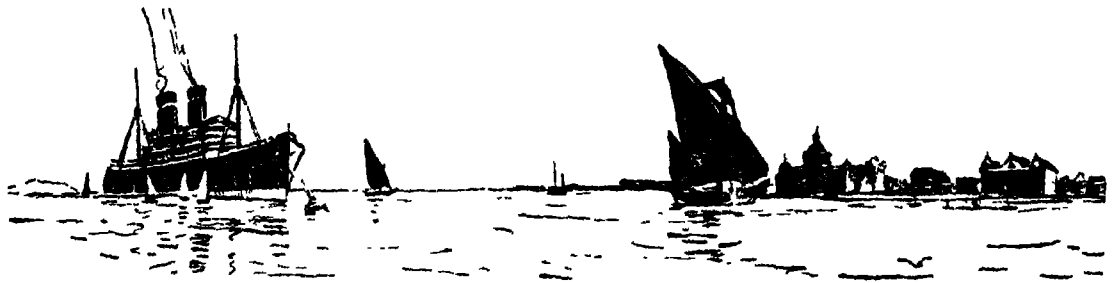
जनता के तीन सिद्धान्त

[श्री 'एक भारतीय']

"जनता के तीन सिद्धान्त क्या हैं ? राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र और समाजवाद। दूसरे शब्दों में कहें तो, यही वे सिद्धान्त हैं, जिनके द्वारा हमारे देश को मुक्ति मिल सकती है। अर्थात्, जिन साधनों को अपनाने से चीन संसार में अपना अस्तित्व चिरस्थायी करने में समर्थ हो सकता है, वे यही तीन सिद्धान्त हैं।" इन सुन्दर शब्दों से शुरू करके चीन के उद्धारक महामना सनयातसेन ने, अपनी उक्त नाम की पुस्तक में, इन सिद्धान्तों का जो सुन्दर विवेचन किया है, वह न केवल चीन बल्कि पारतंत्र्य-पाश में बद्ध प्रायः सभी देशों—खास कर हमारे भारतवर्ष के लिए उपयोगी है श्री चेस्टर एस० माओ (Mao) नामक एक सज्जन द्वारा उसके मुख्य-मुख्य अंशों का संकलन कराके चीन की ईसाई शिक्षा समिति ने सर्वसाधारण के लाभार्थ उसे प्रकाशित कराया है, जो निम्न प्रकार है।

पहला सिद्धान्त : राष्ट्रीयता

"हमारा देश इस समय बड़ी खतरनाक हालत में है। एक ओर तो वह वर्त्तमानकालीन प्रत्येक महाशक्ति का उपनिवेश-सा बन गया है, जिन्होंने कि आर्थिक और राजनैतिक दोनों दृष्टियों से हमें बहुत कुछ दबा दिया है; दूसरी ओर हमारी जन-संख्या बराबर घटती चली जा रही है, जब कि हमें कुचलने वाली महाशक्तियों की जन-संख्या में बड़ी तेज़ी से वृद्धि हो रही है। यहाँ तक कि अगर इनकी वृद्धि की यह रफ्तार इसी प्रकार सौ वर्षों तक और जारी रही, तो वे हमें न केवल जीत ही लेंगी बल्कि जाति के रूप में हमारे अस्तित्व का भी सर्वथा लोप ही हो जायगा। अतः अपने देश की रक्षा और अपनी जाति का अस्तित्व क़ायम रखने के लिए हमें अवश्य ही कुछ प्रयत्न करना चाहिए। और इसके लिए सबसे पहले हमें जो करना चाहिए, वह यह कि पिछले सैकड़ों वर्षों से जिस राष्ट्रीयता की भावना को हमने भुला रक्खा है उसे फिर से अपनाया जाय। यह ठीक है कि हम लोग शान्ति-प्रिय हैं, और इसमें भी शक नहीं कि भूतकाल में हमारे पूर्वज अन्तर्राष्ट्रीयता में दृढ़ विश्वास रखते थे; परन्तु इसके साथही हमें यह भी ज़रूर याद रखना चाहिए कि जबतक हमारी नींव दृढ़ राष्ट्रीयता पर न होगी, तबतक न तो हमें शान्ति प्राप्त हो सकती है और न हम अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री का ही उपभोग कर सकते हैं।

प्रश्न यह है कि नष्ट हुई अपनी राष्ट्रीय भावना की पुनर्स्थापना की कैसे जाय ? इसके लिए कई ऐसी महत्व की बातें हैं कि जिनका करना हमारे लिए अत्यावश्यक है। सबसे पहले तो हमें अपने देशवासियों को यह समझाने का प्रयत्न करना आवश्यक है कि हमारे देश की दशा कैसी भयावह है और हमारे हरएक के ऊपर उसका क्या तात्कालिक प्रभाव पड़ रहा है। इसके बाद, दूसरी बात यह है कि, अपने देशवासियों को हम एक दृढ़ सजीव समूह के रूप में संगठित करें, जो कि कुटुम्बों और स्थानिक संस्थाओं जैसे घटकों (Units) के द्वारा ही सम्भव है। तीसरी बात यह है कि राजभक्ति, पुत्र-भक्ति, उदारता एवं प्रेम, विश्वास सदाचार और शान्ति-प्रियता आदि इस प्रकार की हमारी जो प्राचीन विशेषतायें हैं उनका पुनरुद्धार किया जाय। चौथी बात यह है कि अपनी उस प्राचीन विद्या का पुनरुद्धार किया जाय, जो कि हमारे प्राचीन महान् ग्रन्थों में मिलती है—खास कर अपने ज्ञान और पदार्थों की खोज के उद्देश्य का क्रम, ज्ञान का विस्तार, विचारों की सचाई, हृदय का संशोधन, कुटुम्ब की मर्यादा, देश का सुशासन, तथा समस्त साम्राज्य में शान्ति एवं सुख की स्थापना। पाँचवीं बात यह है कि जिस उत्पादन-शक्ति के सहारे एक समय हम नये-नये आविष्कार करते थे उसे फिर से पैदा किया जाय। साथ ही इसके पश्चिम में जो कुछ अच्छाई मिले उसका ग्रहण करना भी आवश्यक है।

दूसरा सिद्धान्त : प्रजातंत्र

प्रजातंत्र को जो हम अपने दल के मुख्य कार्य-क्रम

के रूप में ग्रहण करते है, उसके कारण दो हैं। एक तो यह कि संसार का जो राजनैतिक प्रवाह या रुख़ है, उसका हम अनुसरण करना चाहते हैं; दूसरे हमारा विश्वास है कि हमारे यहाँ जो गृह-युद्ध जारी हैं, उनका ख़ात्मा करने का भी यह एक सर्वोत्तम साधन है। परन्तु संसार के रुख़ का अनुसरण करने के लिए अन्धे बन कर पश्चिम की नक़ल न की जाय। चाहिए सिर्फ़ यह कि पूर्व और पश्चिम में जो महान् ऐतिहासिक विभिन्नतायें हैं उनको जाना जाय। यहाँ यह भी ख़याल रखना चाहिए कि गत-शताब्दी में पश्चिम ने जो तेज़ प्रगति की है वह ज़्यादातर भौतिक बातों में ही हुई है, न कि मनुष्य और उसके हित से सम्बन्ध रखने वाली बातों में। राजनीति में तो बहुत ही कम उन्नति हुई है। अतः सिवाय ग़लती या मूर्खताओं के निश्चयात्मक शिक्षा तो इसमें (राजनीति में) हमें उनसे बहुत ही कम प्राप्त हो सकती है।

उदाहरण के लिए प्रजातंत्र के दो मूल तत्त्व स्वतंत्रता और समता को लीजिए। यदि हम इनके गत-इतिहास को भूल जायँ या उसपर ध्यान न दें, तो हमारे यहाँ इनका प्रचार निश्चय ही भयावह होगा। क्योंकि, वास्तविकता यह है कि, भूतकाल में पश्चिमी लोगों को बहुत ही कम वैयक्तिक स्वातंत्र्य प्राप्त था; इसीलिए उन्होंने जितने भी क्रान्तिकारी युद्ध किये उन सबमें इसी (वैयक्तिक स्वतंत्रता) पर उनका सारा ज़ोर रहा। परन्तु अपने देश के इतिहास पर ध्यान दें, तो मालूम होगा कि यहाँ पर ऐसी स्थिति न थी। विपरीत इसके, हमारे यहाँ लोगों को कहीं ज़्यादा वैयक्तिक स्वातंत्र्य प्राप्त था। और इसीके फलस्वरूप हम रेत की थाली के समान बन कर आज इतने असहाय हो गये हैं कि वैदेशिक साम्राज्यवाद और उसकी आर्थिक विजय के सामने नहीं टिक पाते। अतएव इस समय हमें जो ज़रूरत है, वह और अधिक वैयक्तिक स्वातंत्र्य के लिए लड़ने की नहीं बल्कि अपने वैयक्तिक स्वातंत्र्य को कुछ कम करने की, जिससे कि हम अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें।

रही समता, सो इसमें भी हमें वास्तविक और अवास्तविक ये दो भेद करने ही होंगे। क्योंकि प्राकृत रूप से जो कुछ हमें प्राप्त है, उसमें समता जैसी कोई वस्तु नहीं है। जो कुछ हम कर सकते हैं, वह यही कि जनता को राजनैतिक समता दी जाय। परन्तु इसमें बजाय फ़ायदा उठाने के हमें चाहिए यह कि सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनायें। क्योंकि जिसमें जितने गुण हों उसी परिमाण से उसे लोगों की अधिकाधिक सेवा करनी चाहिए। अर्थात् जिसे सबसे ज़्यादा गुण प्राप्त हों वह सबसे अधिक लोगों की और जिसे उससे कम गुण प्राप्त हों वह उससे कुछ कम लोगों की सेवा करे— यहाँ तक कि जिसे सबसे कम गुण प्राप्त हों उसे भी अपने तईं उपयोगी होने के लिए प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

चूँकि पश्चिम से हमें जो ज्ञान प्राप्त करना है वह बहुत ही कम है, और चूँकि शासन के प्रजातंत्रीय स्वरूप का अपना निजी अनुभव भी हमें लगभग नहीं सा है, इसलिए अपना समस्याओं का हल हमें अपने आप ही, अच्छे से अच्छे जिस ढंग से हम कर सकें, करना होगा। जिन दो समस्याओं को हल करने का अभी तक हमने प्रयत्न किया है, वे निम्नप्रकार हैं। पहली तो यह कि एक दृढ़केन्द्रीय सरकार की स्थापना करके उसके साथ ही लोगों के दिलों से उस सरकार के भय का भी निवारण किस प्रकार किया जाय? इस समस्या का निबटारा इस बात पर निर्भर है कि सरकारी अधिकारियों के प्रति हमारा जो रुख़ है उसमें परिवर्तन किया जाय। लोगों को सरकारी अधिकारियों के साथ वैसे ही व्यवहार करना चाहिए, जैसे कि किसी कारख़ाने के हिस्सेदार अथवा व्यापार से संबंधित लोग उसके प्रबन्धकों के साथ करते हैं। क्योंकि प्रजातंत्र में हम उसके भागीदार ही हैं। हमारा राष्ट्रपति, प्रधान सचिव तथा अन्य सब सरकारी अधिकारी केवल हमारे प्रबंधक (मैनेजर) ही तो हैं। अथवा जैसे हम अपने चपरासियों, रसोइयों, चिकित्सकों, बढ़इयों, दर्ज़ियों या इसी प्रकार अपने काम के विशेषज्ञ चाहे जिन लोगों को समझते हैं वैसे ही उन्हें (सरकारी अधिकारियों को) भी समझना और इसलिए उनके साथ भी हमें उन्हीं-के समान व्यवहार करना चाहिए। यदि वे योग्य और ईमानदार हों तो हमें चाहिए कि प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त अधिकार उन्हें सौंप दें और उनके कामों में कभी हस्तक्षेप न करें। किसी काम को कैसे और किस प्रकार किया जाय,

इस बात को योग्य और ईमानदार विशेषज्ञ भलीभाँति जानते हैं। इनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाय, तभी यह संभव है कि शासन जहाँ एक ओर प्रगति करता रहे वहाँ दूसरी ओर वह लोगों के लिए निरापद भी होता जाय।

हमारी दूसरी समस्या यह है कि एक ओर शासन-यंत्र को सबल बना कर दूसरी ओर साथ साथ जनता को इस शक्ति का उपयोग और यंत्र का नियंत्रण करने में समर्थ कैसे बनाया जाय? इसमें समस्या के पहले भाग का हल तो इस प्रकार हो सकता है कि निम्न पाँच सिद्धान्तों पर सरकार का संगठन किया जाय—व्यवस्था, न्याय, शासन, सरकारी पदों पर प्रतियोगिता-परीक्षा द्वारा नियुक्ति, और नियंत्रण (सेन्सरशिप)। और दूसरे भाग का हल इस प्रकार हो सकता है कि लोगों को प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने, उन्हें हटा सकने (Recall), नये क़ानून बनाने और पुराने क़ानूनों को दोहराने या रद करने के अधिकार देकर उन्हें सुरक्षित कर दिया जाय।

तीसरा सिद्धान्त : समाजवाद

पूर्व इसके कि अपनी सामाजिक समस्याओं को हल करने के साधन-रूप में समाजवाद का व्यवहार किया जाय, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हमारी सारी समस्याओं का केन्द्र क्या है। पश्चिम में तो अनेकों ने भौतिक समस्याओं को ही मानवी इतिहास का मूल आधार मान लिया है। परन्तु हमें इस ग़लत धारणा को अस्वीकार करके अपनी सब समस्याओं को लोगों की भलाई पर ही केन्द्रित करना चाहिए। यदि हम इस बात को साफ़ तौर पर समझ भर लें और तब अपने देश (चीन) की दशाओं का अध्ययन करें, तो हम देखेंगे कि पश्चिम में समाजवाद के जिन-जिन रूपों की प्रगति हुई है उनमें से कोई भी हमारे देश के उपयुक्त नहीं है। साथ ही इसके दो मूल बातों को और भी हमें मानना होगा—(१) पश्चिम की तरह बहुत मालदार आदमी हमारे देश में नहीं हैं, हमारे यहाँ तो ग़रीब से ग़रीब ही हैं; (२) हमारे वाणिज्य और उद्योग-धन्धों ने अभी तक भरपूर प्रगति नहीं कर ली है। अतएव इस समय जो कुछ हमें चाहिए वह हमारी आवश्यकता, आधुनिक उद्योग-व्यवसाय से उत्पन्न होने वाली बुराइयों का निवारण करना नहीं प्रत्युत् उन्हें पैदा न होने देना ही है।

उदाहरण के लिए भूमि-सम्बन्धी समस्याओं को ले लीजिए। आप देखेंगे कि पश्चिम में जैसा बड़े-बड़े ज़मींदारों का बाहुल्य है, वैसा हमारे यहाँ नहीं। परन्तु चूँकि भूमि से सर्व-साधारण के जीवन का सम्बन्ध है, इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि अब इसके बचाव की (प्रतिबंध की) कोई नीति अख़्त्यार की जाय। लेकिन हमारी नीति सरल और साधारण है। एक तो यह कि सरकार ज़मीन की क़ीमत के अनुसार या तो सारी ज़मीन को ख़रीद ले, अथवा उसपर कर लगा दे। दूसरी यह कि ज़मीन का मूल्य उसके मालिक द्वारा निश्चित किया जाय। तीसरी यह कि ज़मीन का मालिक भूमि का मूल्य निश्चित करके जब सरकार को सूचित कर दे, तो उसके बाद ज़मीन की भावी मूल्य-वृद्धि का सम्बन्ध सरकार से रहे। फिर पूँजी को नियंत्रित करने की समस्या को लीजिए। यहाँ भी आप देखेंगे कि इस सम्बन्ध में हमारे सामने जो तात्कालिक समस्या है वह आर्थिक असमानता की नहीं, बल्कि आर्थिक दरिद्रता की। अर्थात् हमें पूँजीपतियों के विरुद्ध लड़ाई करने की नहीं बल्कि भविष्य में पूंजीपतियों की वृद्धि न होने देने की ज़रूरत है।

रही अन्न-वस्त्र की समस्या। सो इसके बारे में हमारी योजना इस प्रकार है—हम हरएक नागरिक को न केवल भरपूर बल्कि साथ ही बहुत सस्ता अन्न देना चाहते हैं। और ऐसी आशा हम इस प्रकार करते हैं कि (१) प्रत्येक किसान अपनी ज़मीन को जोते; (२) मानवीश्रम के बजाय यंत्रों का उपयोग किया जाय, (३) रासायनिक पदार्थ बनाने के लिए जल-प्रपातों का उपयोग किया जाय; (४) देश के किसानों को फ़सलों के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रयोग की शिक्षा दी जाय; (५) कृषि-नाशक तत्त्वों को नष्ट करने के सर्वोत्तम उपायों का अध्ययन व प्रयोग किया जाय; (६) वस्तु-निर्माण के उपायों में सुधार किया जाय; (७) आवागमन के वर्त्तमान साधनों में प्रगति की जाय; और (८) दुर्भिक्षों को रोकने के लिए जो कुछ हमसे हो सके वह सब भी किया जाय।

अभाव की समस्या (Problem of Nothing) दोहरी है। इसके लिए एक ओर तो इस बात की सख़्त ज़रूरत है कि हम कच्चे माल की उत्पत्ति के अपने पुराने उपायों में सुधार करें, दूसरी ओर जितनी शीघ्रता से हो सके हमें अपने वस्त्र-व्यवसाय को बढ़ाना चाहिए। परन्तु जबतक कि हमारी व्यापारिक स्वतंत्रता को दबाने वाली संधियों की रुकावट मौजूद है, तबतक हम ऐसा कर नहीं सकते। एतदर्थ वस्त्र-समस्या को हल करने का जो उपाय है, जिससे कि हम संरक्षण की नीति को कार्यान्वित कर सकें, वह यही कि सबसे पहले असमानता के पाये पर स्थापित उन सब संधियों को नष्ट कर दिया जाय। तब, और एकमात्र तभी, हम इस समस्या से मुक्ति पा सकते हैं।"

× × ×

दक्षिणी चीन में आज राष्ट्रीय आन्दोलन की जो लहर ज़ोर पकड़ रही है, चीन अपनी पारतंत्र्य-निद्रा से जागृत होकर जो करवट बदल रहा है, 'फ़ारवर्ड' के लेखानुसार, उसका बहुत कुछ श्रेय उक्त डा० सन और उनकी उक्त पुस्तक को ही है। इसीलिए उनके परलोकगत हो जाने पर भी आज भी वह 'चीन के उद्धारक' के रूप में स्मरण किये जा रहे हैं, और उनके तत्कालीन सन्देश आज भी स्वातंत्र्य-प्रेमियों के लिए मार्गदर्शक-रूप हो रहे हैं। अतः बन्धु-देश चीन के साथ ही हमारा भारतवर्ष भी, जिसकी स्थिति यदि सर्वथा उसीकी सी नहीं तो भी बहुत कुछ उससे मिलती-जुलती ही है, क्या इससे लाभ उठायगा?

धोखा

[श्री 'अपरिचित हृदय']

उठा लो और बजाओ अपनी हृद तन्त्री,
जिससे हिल उठें मेरे हृदय के तार;
स्तब्ध और चकित होकर सारा जगत
सुनले इस भग्न हृद-तन्त्री की झंकार।

सुनकर इस वेदनामयी झंकार ही को
हिल उठे यह उपहास-प्रिय संसार।
और अपने स्वभाव को सहसा भूल कर
अकिञ्चिन ले बैठे सहानुभूति का भार।

और हिलाकर सारे विश्व के छोर को,
कर बैठे एक ऐसी व्यथा भरी पुकार—
'अरे! बड़ा धोखा इसके हृदय ने खाया
हाय! छाया ही को सहसा करके प्यार।'

हज़रत ईसा के प्रति

[श्री भगवानदास केला]

दो हज़ार वर्ष हुए, विशेषतया यहूदियों का उद्धार करने के लिए हज़रत ईसा-मसीह का जन्म हुआ था। महापुरुष का आगमन यद्यपि एक विशेष परिस्थिति को सुधारने के लिए होता है, पर आनेवाली मनुष्य-संतान भी—यदि चाहे तो—उसके जीवन तथा व्यवहार से समुचित लाभ उठा सकती है। इस प्रकार एक महापुरुष प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति और प्रत्येक समय के लिए होता है। हाँ, स्वार्थी या अज्ञानी आदमी कभी-कभी उसके द्वारा स्थापित अच्छे आदर्शों का दुरुपयोग भी करते हैं। ये बातें अन्यान्य महान् आत्माओं में हज़रत ईसा के सम्बन्ध में भी घटती हैं। इस समय संसार के भिन्न-भिन्न देशों में गोरे, पीले, काले आदि सब आदमियों में से लगभग आधे ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष या गौण रूप से अपने तई उनके अनुयायी कहने का अभिमान करते हैं। हम उन्हें एक महापुरुष मानकर अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

× × ×

हे अहिंसा और दया के अवतार! तुमने एक निर्धन परिवार में जन्म धारण करके संसार में निर्धनता को महत्ता प्रकट की; पुरातन कुरीतियों का खण्डन करके अपने असीम आत्मबल का परिचय दिया; विरोधियों के प्रति सहनशीलता दर्शा कर उन्हें भी अपना भक्त बनाया; अन्ध-विश्वास और स्वार्थवाद में निमग्न सत्ताधारियों के हाथों अपना ऐहिक शरीर बलिदान करके अपना नाम सदा के लिए अमर कर दिया; सबसे बढ़ कर अपने हत्यारों और शत्रुओं के लिए भी प्रभु से क्षमा-प्रार्थना करके अपने हृदय की दैव-दुर्लभ विशालता का परिचय दिया; तुमने धनी-निर्धन, पुरुष-स्त्री, बाल-वृद्ध, सबके साथ समान व्यवहार करके तथा अपने श्रोताओं को सदैव मित्र-भाव से सम्बोधन करके साम्यवाद का विलक्षण बीज बोया। निस्संदेह इन बातों ने मनुष्य-जाति के इतिहास में तुम्हारे लिए स्थायी प्रतिष्ठा का स्थान सुरक्षित कर दिया है। धन्य हैं वे लोग, जो इनका वास्तविक मर्म समझने की कोशिश करते हैं और अपने जीवन को कुछ अधिक उत्तम तथा उपयोगी बनाने का प्रयत्न करते हैं!

× × ×

तुम्हारे जीवन की घटनायें विचारशील पुरुषों के लिए अनुपम शिक्षा देने वाली हैं। दुखियों को अपने दुख के दिन काटने में सुविधा मिलती है; धनवान अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग करने से बच सकते हैं; विफल-मनोरथ पुनः साहस करने लगते हैं; रोगियों की सेवा करनेवाले अनेक कष्ट उठा कर भी अपने कार्य के लिए नवीन शक्ति का संचार पा सकते हैं। सचमुच यदि तुम्हारे संदेश का प्रचार न हुआ होता तो अनेक आदमी मनुष्यत्व (ईश्वरत्व) से बहुत दूर और पशुत्व (शैतान) के अधिक निकट होते।

× × ×

तुम्हारे अनेक भक्त तुम्हारे अद्भुत और अलौकिक कार्यों का भी उल्लेख करते हैं; और यह भी प्रचार करते हैं कि तुम मरने के बाद फिर ज़िंदा हुए थे। इस तर्कवाद के युग में, विशेषतया तुम्हारे समकालीन पुरुषों के प्रमाणिक पत्र-व्यवहार को

देखने, से यह बात कपोल-कल्पित प्रतीत होती है ❀ कुछ लोगों का यह भी मत है कि तुमने अपने जीवन का बहुत-सा समय भारतवर्ष में व्यतीत किया था, और तुम यहाँ के ही शिष्य थे। † तथापि इन बातों से तुम्हारे उपदेशों की महत्ता कम नहीं होती, और न तुम्हारा अनुपम बलिदान ही सत्पुरुषों के लिए कुछ ईर्षाजनक होता है।

× × ×

हम आत्मा को अमर मानते हैं। हम विश्वास करते है कि तुम्हारी आत्मा अपने इस समय के अनुयाइयों और भक्तों की गति-मति का अवलोकन करती होगी। क्या तुम इनमें से बहुतसों के कारनामो से संतुष्ट होगे? क्या इस बात से तुम्हें कुछ कष्ट न होता होगा कि जिह्वा से तुम्हे 'प्रभु' 'प्रभु' कहते हुए, सिद्धान्त से अपने आपको तुम्हारे नाम पर मर मिटने वाला समझते हुए भी, ये व्यवहार में तुम्हारे बतलाये हुए सन्मार्ग से सर्वथा विपरीत जा रहे हैं? तुमने कहा था कि अपने शत्रुओं से भी प्यार करो; आज दिन ईसाई राष्ट्र अपने मित्र-राज्यों से छल-कपट, कूटनीति या डिप्लोमेसी का बर्ताव कर रहे हैं। तुमने उपदेश दिया था कि जो तुम्हारे दायें गाल पर चपत लगाये, तुम अपना दूसरा गाल भी उसीकी तरफ़ करदो; परन्तु अब ईसाई कही जाने वाली शक्तियाँ ससार की निर्दोष भोली-भाली जातियों को अपने अधीन करने के लिए नाना प्रकार के अत्याचार कर रही हैं। तुमने बतलाया था कि विनयी (Meek) पुरुष इस दुनिया के उत्तराधिकारी होंगे; परन्तु तुम्हारे नाम की पूजा करने वाले तो इसके उत्तराधिकारी बनने के वास्ते तोप, बन्दूक़ और हवाई जहाजों तथा विषैली हवाओं का दिन-दिन अधिक व्यवहार करते जाते हैं!

× × ×

तुम्हारा पहाड़ी पर दिया हुआ उपदेश (Sermon on the Mount) कितना सुन्दर है, पर यदि तुम्हारे अनुयायी उसका ठीक अर्थ ग्रहण करने वाले हो! अफ़सोस! तुम्हारे जिन भक्तों मे संसार प्रेम-संचार की आकांक्षा करता है, अहिंसा और दया की शिक्षा ग्रहण करना चाहता है, वेही हिंसा और रक्त-पात के सबसे अधिक उत्तरदायी हैं। मध्य-कालीन शताब्दियों में तो उन्होंने लोगों को धर्म के नाम पर ही असहनीय यातनायें दी थीं। अब यह अवश्य होगया है कि युद्धों का कारण 'धर्म' नहीं बताया जाता, पर युद्ध होते अब भी हैं, और खूब होते हैं; हाँ, तुम्हारे अनुयायी अब खून बहाने के लिए 'धर्म' की जगह 'सभ्यता-प्रचार' का बहाना कर लेते हैं। ऐसे लोग तुम्हारे प्रचारित धर्म को विवेकशील सज्जनों मे अधिक आदर का पात्र न बना कर उलटे उसकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाते हैं।

× × ×

खेद है कि अनेक मिशनरी पादरी बड़ी बड़ी शक्तियों से आर्थिक तथा अन्य सहायता पाकर, येन-केन प्रकारेण, केवल तुम्हारे नाम-लेवाओं की संख्या बढ़ाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते है। जो आदमी अपना मत नहीं बदलते वे तो तुम्हारे भक्तों की दया के अधिकारी होते ही नहीं; परन्तु बहुधा रंग वाली जातियों के आदमी तुम्हारे

❀ देखो Crucification, by an Eyewitness यह पुस्तक भ॰भा॰ शुद्धि सभा कार्यालय, देहली, से मिलती है।

† देखो 'भारतीय शिष्य ईसा'। यह एक अंग्रेज़ी पुस्तक का अनुवाद है, जो स्वयं एक फ्रांसीसी पुस्तक का अनुवाद है। यह महाविद्यालय, ज्वालापुर, से प्रकाशित हुई है।

मत की दीक्षा ले लेने पर भी गौरांग लोगों के प्रेम के पात्र कम ही बनते हैं। यह विषमता या भेदभाव क्यों ?

× × ×

तुम्हारे शुभ जन्म के उपलक्ष्य में प्रति वर्ष २५ जनवरी को बड़े दिन (Christmus Day) का उत्सव मनाया जाता है। खूब खेल-तमाशा, खान-पान, भेंट-पुरस्कार और डालियों आदि का आयोजन होता है, परन्तु कितने अनुयायी महानुभाव ऐसे होते हैं, जो उस दिन तुम्हारे पवित्र उपदेशों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करके अपने आपको सुधारने की फिक्र करते हैं ? अहा ! संसार को उस धर्म की कितनी आवश्यकता है, जो मनुष्यों को औरों के सुधार की अपेक्षा स्वयं अपने चरित्र की ओर दृष्टि-पात करने की प्रेरणा करे, अपने दूषणों को दूर करने की शिक्षा दे; प्रत्येक जाति, प्रत्येक रंग, प्रत्येक देश—और हाँ, प्रत्येक धर्म के मानने वालों से तथा जीवों या पशुओं और पक्षियों से भी बन्धु-भाव रखने का उपदेश करे। निस्संदेह संसार का स्थायी धर्म विश्व-प्रेम होगा, जिसमें स्वार्थ के शासन का सर्वथा नाश होगा, अथवा परमार्थ ही स्वार्थ माना जायगा।

× × ×

परमात्मन्, तुम्हारे अन्यान्य सुपुत्रों में हज़रत ईसामसीह ने अपने जीवन में तथा अपनी मृत्यु से यह प्रयत्न किया था कि पृथ्वी पर तुम्हारा राज्य हो, वह कब होगा ? आधुनिककालीन शैतानी साम्राज्य-वाद कब नष्ट होगा ? धन के लिए या अधिकारों के लिए राष्ट्रों के, श्रेणियों के तथा व्यक्तियों के पारस्परिक संघर्षों का अन्त कब होगा ? परिवारों, नगरों, और देशों में प्रेम का व्यवहार कब होगा ? कब होगा ? कब होगा ?
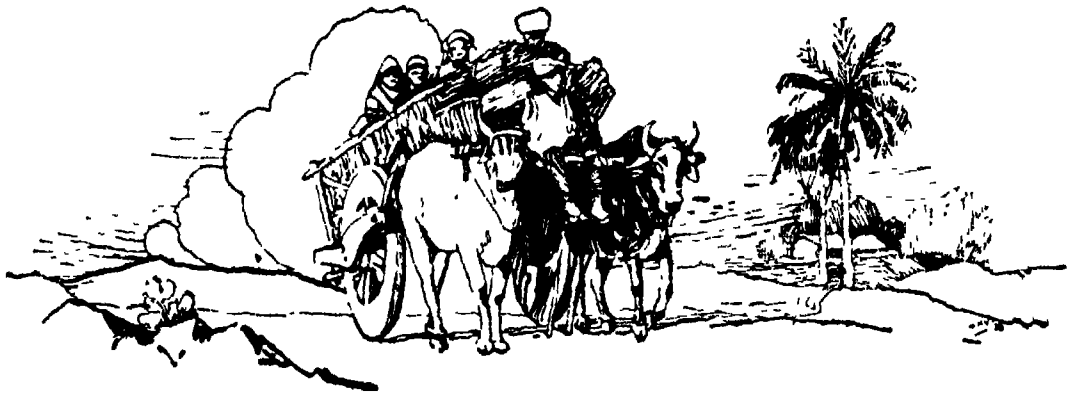
[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

आकाश-दीप

कहानी-संग्रह। लेखक—श्री जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक—भारती भण्डार, काशी। पृष्ठ २२०; मूल्य १॥) रु०।

इस संग्रह में १९ कहानियाँ हैं—आकाश-दीप, ममता, स्वर्ग के खंडहर में, सुनहला सांप, हिमालय का पथिक, भिखारिन, प्रतिध्वनि, कला, देवदासी, समुद्र-संतरण, वैरागी, बनजारा, चूड़ीवाली, अपराधी, प्रणय-चिह्न, रूप की छाया, ज्योतिष्मती, रमला, और बिसाती।

मुझे जयशंकरजी की कविता, नाटक और उपन्यासों से उनकी कहानियाँ ही अधिक पसन्द आती हैं। बाह्य घटना-चक्रों की अपेक्षा हृदय के सुकुमार, छिपे हुए रहस्यमय भावों का वर्णन ही प्रसादजी की कहानियों में अधिक होता है। कहानियों को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, मानों हमारे ही हृदय का पर्दा उठ गया है और हम अपने ही हृदय की वेदना, प्रेम, बेहोशी, मद, उच्छृंखलता, दुःख, सुख देख रहे हैं। प्रसादजी की कहानियों में कविता के समान चोट करने वाला ज़ोर रहता है। उनकी भाषा कभी कभी शराब की प्याली के समान मादक, छुरी की भाँति छिदने वाली, विकल कर देने वाली होती है। हाँ, जिन्हें प्रसादजी की भाषा समझ में नहीं आती, ऐसे लोग इन कहानियों का मज़ा नहीं ले सकते।

इस संग्रह में प्रसादजी की 'सुन्दर से सुन्दर' कहानियों का संग्रह किया गया है। स्वर्ग के खंडहर में, आकाश-दीप, ममता जैसी एक कहानी भी लेखक को यशस्वी कर देने के लिए काफ़ी है।

प्रसादजी की कला 'कला के लिए ही' कही जा सकती है। ये कहानियाँ विश्व-साहित्य की सम्पत्ति होने की पूर्णअधिकारी हैं, यद्यपि बहुत-सी कहानियों में भारतीयता की छाप आये बिना नहीं रही है।

ममता कहानी में भारत के उन स्वार्थियों के लिए, जो अपने स्वार्थ को दूरदर्शिता और चतुराई कह कर पुकारते हैं, रोहतास-दुर्ग के ब्राह्मण-मंत्री की विधवा दुहिता ममता ठीक उलहना देती है। जब मंत्री 'सोने की चमक' से अंधा होकर विश्वास-घात करता है, तब वह कहती है, 'हे भगवान्, विपद् के लिए इतना आयोजन! परम-पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस! पिताजी, क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिन्दू भूपृष्ठ पर बचा न रह जायगा, जो मुट्ठी भर अन्न ब्राह्मण को दे सके? ··· ·······इसकी चमक आँखों को अंधा बना रही है।'

बादशाह हुमायूँ ने ममता के छप्पर के नीचे एक दिन आश्रय लिया था। यद्यपि उसने ममता को पुरस्कार देना चाहा, परन्तु उसने अपने आपको छिपाकर 'उपकार का बदला लेने' से बचाया। अन्त में उसने कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शाहंशाह था, या साधारण मुग़ल; पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खोदवाने के डर से भीतर ही थी। भगवान ने सुन लिया, मैं इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल—मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में जाती हूँ।"

इस प्रकार एक कहानी में प्रसादजी ने दो प्रकार के विरोधी चरित्रों को सामने रख कर निःस्वार्थ ममता, प्रेम और सेवा के सामने स्वार्थ, लोभ और छल का हलकापन दिखलाया है।

'स्वर्ग के खंडहर में' स्वर्ग और स्वतंत्रता का अन्तर दिखलाया है। इस कहानी की मुख्य पात्री स्वर्ग की रानी स्वर्ग के बन्धन की आकुलता प्रकट करती है— नहीं गुल, मुझे पूर्व स्मृति विकल कर देती है। कई बरस बीत गये, वह माता के समान दुलार, उस उपासिका की स्नेहमयी करुणाभरी दृष्टि आँखों में कभी-कभी चुटकी मार लेती है। तुझे तो अच्छा नहीं लगता है। मुझे तो अच्छा नहीं लगता, बंदी होकर रहना तो स्वर्ग में भी············अच्छा, तुम्हें यहाँ रहना नहीं खलता।" "नहीं अतिथि ! मैं उस पृथ्वी की प्राणी हूँ—जहाँ कष्टों की पाठशाला है, जहाँ दुःख इस स्वर्ग सुख से भी मनोरम था, जिसका अब कोई समाचार नहीं मिलता।" यह स्वर्ग शेख कलमे मज़हब का एक क्रीड़ा-क्षेत्र था, जहाँ सुन्दर बालायें, सुन्दर युवक, मद, उपवन, विलास, मौज की ही लहरें उठती रहती थीं—फिर भी यह मीना के लिए बन्धन था।

इसी कहानी में धर्माध्यक्षों द्वारा धर्म के दुरुपयोग का भी चित्र खींचा है। चंगेज़खां-द्वारा प्रताड़ित राजा देवपाल जब आठ नौ बरस के बालक-बालिकाओं को लेकर, एक बौद्ध संघ में आश्रय लेने गया, और जब उपासिका ने उन्हें आश्रय दे दिया, तो संघ का अध्यक्ष उसपर आक्षेप करता है, "राज-कुटुम्ब को यहाँ रख कर क्या इस विहार और स्तूप को भी तुम ध्वंस कराना चाहती हो ! लज्जा, तुमने यह किस प्रलोभन से किया ? चंगेज़खाँ बौद्ध है, संघ उसका विरोध क्यों करे ?" मानों किसी दुखी को आश्रय देना गौतम के धर्म के विरुद्ध है ! धर्म के नाम पर लोग धर्म के ही विरुद्ध कार्य करने लगते हैं। इसी प्रकार धर्म के नाम पर शेख भी विलासिता की लहर अपने स्वर्ग में बहा रहा था। पृथ्वी को स्वर्ग की क्या आवश्यकता है ? इस पृथ्वी को स्वर्ग के ठेकेदारों से बचाना होगा। पृथ्वी का गौरव स्वर्ग बन जाने से नष्ट हो जायगा। इसकी स्वाभाविकता साधारण स्थिति में ही रह सकती है। पृथ्वी को केवल वसुंधरा होकर मानव-जाति के लिए जीने दो। अपनी आकांक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिए, क्षुद्र स्वार्थ के लिए, इस महती को, इस धरणी को, नरक न बनाओ, जिसमें देवता बनने के प्रलोभन में पड़कर मनुष्य राक्षस बन जाय !

जो स्वर्ग मीना को रुचिकर न था, बन्धन था, उसके नष्ट हो जाने पर भी मीना 'मैं एक भटकी हुई बुलबुल हूँ, मुझे किसी डाल पर अंधकार बिता लेने दो, इस रजनी-विश्राम का मूल्य अन्तिम तान सुनाकर जाऊँगी।' यही गीत गाती हुई उसी खंडहर में पड़ी रही। यह क्यों—वहीं उपासिका लज्जा का अवसान हुआ, वहीं देवपाल का अन्त। उसके लिए वह खंडहर ही स्वर्ग हो गया था।

'हिमालय का पथिक' मानों प्रेम-पथिक की यात्रा का चित्र है। यह हृदय निरुद्देश्य घूमता रहता है, कभी राजमार्ग, कभी खड्ड, कभी सिंधु-तट और कभी गिरि-पथ देखता फिरता है। आँखों की तृष्णा बुझती नहीं दीखती। यह सब क्यों देखना चाहता है, यह कहा नहीं जा सकता। परन्तु किसी अनजान आकर्षण से खिंचकर पथिक हृदय कभी किसी हिमालय की कुटी पर कठिन समय में भी पहुँच जाता है, और जिसे अपरिचित देशों में रात रमना और फिर चल देना आता है, जो मन के समान चंचल है, ऐसे उच्छृंखल और मतवाले हाथी के भी पैर में फूली हुई लता लिपट कर सांकल बनना चाहती है—उसे अपने में उलझा लेती है। दो हृदयों का मिलन-नियम कुछ ऐसा ही होता है। जाने क्यों अपने 'पुराने बाबा' को छोड़ कर अपरिचित के गले माला पहनाना ही 'किन्नरी' को अच्छा लगता है ! प्रेम के गंध जल से देवता का निर्माल्य अधिक सुरभित हो जाता है, यही प्रेमी-हृदयों का विश्वास है। अन्त में दोनों प्रेमी-हृदय ऐसी खड्ड में उतर जाते हैं, जहाँ प्राण नहीं बचते। तिरस्कार करने वाले, रोकने वाले पुकारते हैं, तो वे लौट नहीं सकते; क्योंकि जब पुकारने का समय होता है, वे चुप रहते हैं—और जब दूर पहुँच जाते हैं, तब सुन नहीं सकते। कहानी में प्रेमी-हृदय की भावना सुन्दर रूप में अंकित की है।

इस संग्रह की प्रत्येक कहानी कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर है, और मैं कह सकता हूँ कि इतनी सुन्दर कहानियों का संग्रह हिन्दी में दूसरा नहीं है। सामाजिक

जीवन के चित्रणों में प्रेमचन्द्रजी को पाने का 'प्रसाद'जी ने प्रयत्न नहीं किया, उन्होंने तो 'हृदय' का अनुभव, भाव, वेदना, प्रेम का ही वर्णन किया है। यह बात नहीं कि जिन कहानियों का अधिक विवेचन मैंने किया, वे ही अधिक सुन्दर हैं, वरन् कई अन्य कहानी इनसे भी सुन्दर हैं। उनका रूप दिखाने का लोभ अवश्य है, पर स्थल की कमी है। प्रसादजी की कहानी-कला पर तो अलग लेख-माला लिखी जा सकती है। उन्होंने हिन्दी-कहानियों को नया रूप दिया है, और इस ढंग में उनके जोड़ का अभी कोई दूसरा नहीं है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

साहित्य-सत्कार

१. हिन्दू भारत का उत्कर्ष या राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास—लेखक—श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य। प्रकाशक—श्री काशी-विद्यापीठ, काशी। पक्की जिल्द; पृष्ठ ५२९। मूल्य ३॥) रु०

२. रचना-विधि—लेखक—पं० देवकीनन्दन शर्मा। प्रकाशक—नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, चौक, बनारस सिटी। पृष्ठ १४७। मूल्य लिखा नहीं।

३. राज्यश्री—लेखक—श्री जयशंकर'प्रसाद'। प्रकाशक—भारती भण्डार, बनारस सिटी। सजिल्द; पृष्ठ ८९। मूल्य ॥=)

४. प्रेम-पथिक—लेखक व प्रकाशक वही। सजिल्द; पृष्ठ २६। मू० ।)

५. विशाख—लेखक प्रकाशक वही। सजिल्द; पृष्ठ ११८। मूल्य १) रु०

६. सुधांशु—लेखक—राय कृष्णदास। प्रकाशक—भारती-भण्डार, बनारस सिटी। पृष्ठ ९७। मूल्य ॥।)

७. श्रीपाल—लेखक—श्री कन्हैयालाल जैन। प्रकाशक—मंत्री, श्री आत्मानन्द जैन-सभा, अम्बाला शहर। सजिल्द; पृष्ठ १३८। मूल्य ।) रु०

८. ज्ञान-रत्नाकर—लेखक और प्रकाशक—श्रीसूरजमल मिमाणी, मा० जीवनराम गंगाराम, ११३, मनोहरदास का कटरा, कलकत्ता। पक्की जिल्द। पृष्ठ २८९। मूल्य लिखा नहीं।

९. ब्राह्मण की 'गौ'—लेखक—श्री देव शर्मा 'अभय' विद्यालङ्कार। प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल-विश्वविद्यालय, काँगड़ी। पृष्ठ १०८। मूल्य भेंट।

१०. सिद्ध प्रयोग पारिजात (प्रथम भाग)—लेखक—पं० मुरारीलाल शर्मा वैद्य। प्रकाशक—प्राण-संजीवन औषधालय, हवेली खड्गपुर (मुंगेर)। पृष्ठ १३८। मूल्य १।) रु०

११. अनुभूत बाल-चिकित्सा—लेखक-प्रकाशक वही। पृष्ठ सौ। मूल्य ॥=)

१२ धर्म और विवाह—लेखक—श्री बृजेशसिंह। प्रकाशक—श्री माताप्रसाद गुप्त, कालाकांकर राज, जि० प्रतापगढ़ (अवध)। पृष्ठ ३५। मूल्य -)

१३. समय का सन्देश (भाग १,२)—अनुवादक—श्री ईश्वरलाल जैन विशारद। प्रकाशक मंत्री, श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर। पृष्ठ प्रत्येक भाग में २४; मूल्य भी एक-एक आना।

१४. मातृभाषा—सङ्कलन-कर्ता—श्री लक्ष्मीसहाय माथुर। प्रकाशक—साहित्य-निकेतन, झालरापाटन सिटी। पृष्ठ ७०। मूल्य ॥)

१५. शारदा-विधान-मीमांसा—लेखक तथा प्रकाशक—पं० राजमणि मिश्र वैद्य, मु० बूढ़ेनाथ महादेव, मिरज़ापुर सिटी। पृष्ठ ८७। मूल्य =) के टिकट डाक-खर्च के लिए।

१६. पुत्र का बलिदान—लेखक—श्री बालकृष्ण लाहोटी। प्रकाशक—हिन्दी लघु-पुष्पांजलि, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, अफ़ज़लगंज, हैदराबाद दक्षिण। पृष्ठ २०। मूल्य =)

१७. योगाभ्यास (श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती कृत)—अनुवादक श्री प्रयागप्रसाद त्रिपाठी। प्रकाशक—डा० दुर्गानारायण तिवारी, सीतापुर। पृ० १५४। मूल्य १॥) रुपया।

सम्पादकीय

देश-दर्शन

साधारण

इस महीने भी न तो सरकार और न जनता के रुख में कोई ख़ास परिवर्तन दिखाई पड़ता है। सरकार अपने एकमात्र ग़लत अस्त्र अन्ध दमन का सहारा लेकर उद्बुद्ध और जाग्रत जनशक्ति को कुचलना चाहती है। किन्तु भारत की राष्ट्रीय आत्मा इतनी जग गई है, गुलामी की वेदना लोगों के दिलों में इतनी दूर तक घर कर गई है कि अब दमन और अत्याचार के भय से देश दब नहीं सकता। वर्तमान सत्याग्रह युद्ध का विवरण संसार के विभिन्न देशों की स्वतंत्रता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। यह एक स्वतंत्र और शक्तिमान शासक साम्राज्य एवं गुलाम तथा अशक्त गुलाम देश के बीच एक अभूतपूर्व युद्ध का आदर्श उपस्थित करता है। दुनिया के इतिहास में रोमांचकारी एवं प्रातःस्मरणीय बलिदानों के अनेक उदाहरण मिलते हैं, पर उनमें बदले, प्रतिक्रिया और प्रतिहिंसा के भाव एवं कर्म भी उपस्थित दिखाई देते हैं। लोगों ने हँसते-हँसते प्राण दिये हैं, पर शत्रु के प्राण ले लेने की भी भावना उनके हृदय में वर्तमान रही। वर्तमान सत्याग्रहियों का त्याग उनसे इस विषय में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उनके सिर पर तड़ातड़ लाठियाँ पड़ी हैं और नारियल के गोलों की तरह वे फूटते रहे हैं; उनके गुप्त एवं गुह्य कोमल अंगों को दबाया गया है; उन पर गोलियाँ चलाई गई हैं; घोड़ों के नीचे कुचलने के प्रयत्न किये गये हैं; बच्चों एवं बहनों पर भी नाना प्रकार के जंगली एवं उत्तेजक अत्याचार हुए हैं; पर सम्पूर्ण देश में कहीं सत्याग्रहियों की ओर से उनका जवाब हिंसा के रूप में नहीं दिया गया। ऐसी उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों में संयम रखना बहुत उच्च कोटि की संस्कृति एवं अनुशासन का द्योतक है।

सरकार की गलती

जब हम देखते हैं कि सब कुछ समझते-बूझते हुए भी मनुष्य परिस्थिति का एक खिलौना बन जाता है तो हमें ऐसा मालूम होता है कि मानव-समाज के पिछले अनुभवों के कारण उसके नैतिक विकास में कोई विशेष तरक्की नहीं हुई है। दुनिया के इतिहास को देखकर कौन मनुष्य कह सकता है कि इस प्रकार किसी देश पर उसकी इच्छा के विरुद्ध ज़बरदस्ती लादा हुआ शासन बहुत दिनों तक क़ायम रह सकता है? यह निश्चय है और इसे सब जानते हैं कि अब भारत बहुत काल तक गुलाम नहीं रक्खा जा सकता। यह कहना कि वाइसराय एवं अन्य सरकारी अधिकारी इस बात को अनुभव नहीं करते, उनकी मामूली बुद्धि पर बहुत अधिक अविश्वास करना है। सब जानते हैं कि किसी देश के इतिहास में स्वतंत्रता का आन्दोलन दमन से रुका नहीं है—वरन् सच पूछिए तो दमन और अत्याचार से स्वतंत्रता के आंदोलन का जन्म प्रत्येक गुलाम देश में हुआ है और होता है; फिर भी सरकार को और कुछ सूझता नहीं है और वह अन्धाधुन्ध दमन पर उतर आई है। इसका फल उलटा हुआ है। जनता निर्भीक होती जाती और बराबर अपने मार्ग पर बढ़ती जाती है। दमन का मार्ग असत् मार्ग है और वह मनोभावनाओं को दबाने में कभी सफल नहीं हो सकता।

प्रगति

लाठियाँ बरसाने, गोलियाँ चलाने और विशेष कानूनों द्वारा जनता की स्वतंत्रता हरण करने पर भी आंदोलन की गति बढ़ते देख सरकार खीझ गई है। और अब उसने अपने अंतिम अस्त्र (कांग्रेस को ग़ैर-क़ानूनी संस्था करार देने) से काम लेना शुरू किया है। आन्ध्र एवं पंजाब में तथा मद्रास के कुछ ज़िलों में कांग्रेस-कमिटियाँ, युवक-संघ, सत्याग्रह-समितियाँ ग़ैर-कानूनी क़रार दी गई हैं और अब ख़बर मिली है कि कांग्रेस की कार्य-समिति को ग़ैर-कानूनी क़रार दे दिया गया है। सम्पूर्ण युक्तप्रांत में 'क्रिमिनल ला

एमेण्डमेण्ट क़ानून' जारी कर दिया गया है। कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष, 'राष्ट्रपति' पं० मोतीलाल नेहरू एवं कांग्रेस-कार्य-समिति के प्रधान मंत्री डाक्टर सैयद महमूद गिरफ्तार करके ६-६ महीनों के लिए जेल में डाल दिये गये। सभी प्रांतों में तेजी से गिरफ्तारियां हो रही हैं। अकेले बिहार में एक सप्ताह में लगभग सात सौ गिरफ्तारियां हुईं। कलकत्ता से तलाशियों एवं गिरफ्तारियों की ख़बरें रोज़ आती हैं—बम्बई तो युद्ध का एक प्रधान केन्द्र है ही।

किन्तु इस दमन के बीच में आंदोलन की गति दिन-दिन बढ़ती जाती है। पता नहीं कि जब सरकारी आज्ञाओं की *अवज्ञा करने की भावना लोगों में आम तौर पर फैल गई है तो कांग्रेस को गैर क़ानूनी कह देने से क्या फायदा होगा?*

बहिष्कार-आंदोलन

सभी प्रान्तों में ज़ोरों से स्वदेशी वस्त्रों, विदेशी वस्तुओं और शराब की दूकानों पर धरने दिये जा रहे हैं। विदेशी वस्त्रों की पिकेटिंग तो अधिकांश स्थानों में सफल हो गई है। बम्बई में अंग्रेजों की दूकानों पर भी धरना जारी है। युक्तप्रांतीय सत्याग्रह समिति ने विदेशी साबुन, तेल, वनस्पति घी इत्यादि के बहिष्कार और धरने का भी निश्चय किया है। वहाँ के सर्वेसर्वा श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के एकाएक गिरफ्तार कर लिये जाने के बाद 'भारत में अँग्रेजी राज्य' के सुप्रसिद्ध लेखक श्री सुन्दरलालजी सत्याग्रह के संचालक हुए हैं। लंकाशायर व मानचेस्टर से आने वाली ख़बरों से मालूम होता है कि बहिष्कार-आंदोलन के कारण वहाँ बेकारी बढ़ रही है और हाहाकार मच रहा है। शराब की बिक्री भी दिन पर दिन कम होती जाती है। बम्बई एवं गुजरात में इस सम्बन्ध में विशेष सफलता हुई है।

साइमन-रिपोर्ट

यह भारत का सौभाग्य है कि सरकारी भूलों के कारण राष्ट्रीय आंदोलन स्वयं बढ़ रहा है। जिस साइमन-कमीशन का भारतव्यापी बहिष्कार हुआ था, उसकी रिपोर्ट अब दो भागों में प्रकाशित हो गई है। कांग्रेस वालों को तो ऐसे कमीशनों से कभी कुछ आशा ही न थी; पर जो लोग इस पर टकटकी लगाये हुए थे, वे भी बड़े निराश हुए हैं। हिंदू, मुसलमान, सिख, ज़मींदार, कांग्रेसवादी, लिबरल सभी बिगड़ खड़े हुए हैं। सर शिवस्वामी ऐयर, सर चिम्मनलाल शीतलवाद, सर फ़ीरोज़ सेठना, सर तेजबहादुर सप्रू, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, राजा नवाबअलीख़ाँ, राजा रघुनन्दनप्रसादसिंह, महाराज महमूदाबाद, सर अब्दुर्रहीम जैसे लोगों ने भी इसे 'अपमानजनक' तथा 'रद्दी में फेंकने योग्य' कहा है। सच पूछिए तो बात भी ऐसी ही है। सारी रिपोर्ट धोखे से भरी है। प्रान्तीय स्वतन्त्रता देने के बहाने पहले के अधिकारों पर भी कुठाराघात किया गया है। बड़ी व्यवस्थापक सभा की शक्ति घटादी गई और उसके सदस्य सीधे न चुने जाकर प्रान्तीय कौंसिलों द्वारा चुन जायँ, ऐसी सिफारिश की गई है। सेना को भारत-सरकार से बिलकुल अलग करके साम्राज्य-सरकार के अधीन कर दिया गया है, जिसका मतलब यह कि आने वाले वर्षों में भी भारत का सेना पर अधिकार कभी न होगा, यद्यपि उसे खर्च देना पड़ेगा। सिंध एवं उड़ीसा अलग प्रान्त बनाये गये हैं एवं ब्रह्मा को भारत से अलग कर लेने की सिफ़ारिश की गई है। जातिगत प्रतिनिधित्व भी बना रहेगा। पुलिस-विभाग प्रांतों में मंत्रियों के अधीन रहेगा। पर गवर्नर के अधिकार बढ़ा कर ऐसे कर दिये गये हैं कि ये सुविधायें बिलकुल बेकार हो जाती हैं।

इस रिपोर्ट का एक अच्छा फल यह हुआ है कि भारत के विभिन्न दलों में इसने ऐक्य उत्पन्न कर दिया है। और अब उदार दल वाले भी लंदन की समझौता कान्फ्रेंस का तबतक बहिष्कार करने की बात कह रहे हैं, जबतक सरकार अपना ढंग न बदले तथा औपनिवेशिक स्वराज्य देने की घोषणा न करे।

सरकार पर इस संघटित विरोध का बड़ा प्रभाव पड़ा है। सुनते हैं, शीघ्र ही वाइसराय एवं प्रधानमन्त्री दूसरी घोषणा करने वाले हैं। जो हो; हम तो यह जानते हैं कि यदि देश इसी प्रकार दृढ़तापूर्वक अपने पथ पर बढ़ता गया तो महीने-दो महीने के अन्दर ही सरकार को झुकना पड़ेगा।

'सुमन'

त्यागभूमि

पं० मोतीलाल नेहरू
[पूर्ण स्वाधीनता के महायज्ञ की महान् आहुति)

सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।

स्वाधीनता-यज्ञ की आहुति

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी
['प्रताप' के प्राण, युक्तप्रान्त के अभिमान]

श्री वैजनाथ महोदय
[अजमेर का मधुर बलिदान]

[अंग्रेज़ी शासन के जंगली और अमानुषिक अत्याचारों के नमूने दिन-ब-दिन अधिकाधिक सामने आते जा रहे हैं। कहीं लाठियों की मार पड़ती है, कहीं ऊपर घोड़े दौड़ाये जाते हैं, कहीं कड़ी-से-कड़ी सज़ायें दी जाती हैं, कहीं-कहीं गोलियाँ भी चलती हैं, और कहीं कहीं तो स्त्री-पुरुषों पर कायर वार करके उनके कोमल एवं गुह्यांग तक पर शर्मनाक हमले किये जाते हैं! आर्डिनेंस नये-नये जारी होते जा रहे हैं, युद्ध में प्रवृत्त सत्याग्रहियों ही पर नहीं बल्कि उनके साथ कई निरपेक्ष व्यक्तियों पर भी भीषण ज़्यादतियाँ हो रही हैं। गन्तूर में गाँधी-टोपी लगाने की मनाही का हुक्म निकला है, और कई जगह खद्दर पहननेवालों को खामख़ा छेड़ा गया है। बेजवाड़ा के एक वकील को एक पुलिसवाले ने कपड़े छीनकर नंगा ही कर दिया, क्योंकि वह खादी-धारी था! और आश्चर्य यह कि ये सब कृत्य हो रहे हैं निःशस्त्र अहिंसक सत्याग्रहियों पर! क्या यही ब्रिटिश शासन की सभ्यता है—या, सभ्यता के झूठे आवरण में छिपा हुआ उसका नग्न और बर्बर रूप? नीचे ऐसे ही अत्याचारों के कुछ प्रामाणिक नमूने विभिन्न पत्रों से संकलित किये जाते हैं, पाठक हृदय पर पत्थर रखकर उन्हें पढ़ेंगे। —सम्पादक]

(१)

निष्ठुर दमन-नीति का ताण्डव

"सत्याग्रह के आन्दोलन को कुचल देने की ग़रज़ से सरकार ने निष्ठुर दमन-नीति का ताण्डव ही शुरू कर दिया है और जिन अफ़सरों को क़ानून और व्यवस्था की रक्षा का काम सौंपा गया है उन्होंने लोगों पर होने वाले ज़ुल्मों और सरे-आम होने वाले हिंसापूर्ण कार्यों को उत्तेजन देकर अथवा उनकी उपेक्षा करके सारे देश में नादिरशाही फैला रक्खी है।

और, इस दमन-नीति के अनुसार किये गये अन्य अनेक ग़ैर-क़ानूनी कामों के साथ ही साथ नीचे लिखे काले कृत्य भी किये गये हैं—

१. देश के बहुतेरे शहरों और गाँवों में ज़िम्मेदार अंग्रेज़ और हिन्दुस्थानी अफ़सरों के हाथों, उनकी हाज़िरी में, तथा उनके हुक्म से निहत्थे और अहिंसक स्त्री-पुरुषों तथा बालकों को निर्दयतापूर्वक मन-माने ढंग से पीटा जाना।

२. पुरुषों और स्त्रियों पर बीभत्स हमले करना और उनके गुह्य भागों पर चोटें करना।

३. बिना किसी उचित कारण के गोलियाँ चलाना।

४. घायलों के साथ का अमानुषी बर्त्ताव और खानगी 'रेडक्रास' के तथा घायलों की शुश्रूषा के कामों में रुकावट डालना।

५. झूठमूठ ही अपराध लगा कर गिरफ्तार करना और सज़ायें देना।

६. फ़ौजी क़ानून का अनावश्यक प्रयोग।

७. विधिपूर्वक फ़ौजी क़ानून का ऐलान किये बिना ही फ़ौजी शासन की-सी परिस्थिति को ग़ैर क़ानूनी तरीक़े से खड़ा करना।

८. ज़ाब्ते फ़ौजदारी की १४४ वीं और क़ानून की दूसरी दफ़ाओं का दुरुपयोग किया जाना।

९. खानगी मालियत पर ग़ैरक़ानूनी क़ब्ज़ा करना और क़ानून-सम्मत मालिकों को ज़बरदस्ती निकाल बाहर करना।

१०. सच्ची ख़बरों को दबाना तथा झूठी और भ्रम पैदा करनेवाली ख़बरें या बयान छापना।

११. हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े कराना।

और गवर्नर-जनरल ने अभी-अभी ही तीन नये आर्डिनेंस-अख़बारों के सम्बन्ध में, धमकियाँ रोकने के सम्बन्ध में, और ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से लोगों को भड़काने के सम्बन्ध में ※—जारी किये हैं। इनमें से पहले आर्डिनेंस ने निडर और स्वतंत्र प्रकृति के राष्ट्रीय समाचारपत्रों पर प्रहार किया है, और दूसरे दो से शराब और विदेशी कपड़ों की दूकानों पर पिकेटिंग करना, अनेक प्रकार के अत्याचारों में शामिल होने वाले सरकारी कर्मचारियों तथा अफ़सरों का सामाजिक बहिष्कार करना, और लोगों के प्रतिनिधियों ने जिनके बारे में अपनी सम्मति न दी हो वे पेकर न देने के लिए लोगों को समझाना—ये सब दण्डनीय अपराध बन गये हैं। × × ×"

(२)

धरासणा, वडाला आदि के अत्याचार

"धरासणा के शान्त सत्याग्रहियों पर किये गये अत्याचारों के ख़ून खौलानेवाले बयानों को पढ़कर यह समिति काँप उठी है। समिति को पता चला है कि इन अत्याचारों के सिलसिले में सत्याग्रहियों को तबतक मारा गया है जबतक कि वे बेहोश हो कर जमीन पर नहीं गिर पड़े हैं; इसके बाद भी गोरे अफ़सरों ने उनके शरीर पर घोड़े दौड़ाये हैं, सत्याग्रहियों को नंगा करके उनके गुह्य भागों में लकड़ियाँ ठूँसी गई हैं, एक बालक के शरीर में बबूल के काँटे चुभाये गये हैं और गुह्येन्द्रिय पर सख्त चोटें की गई हैं।

इस समिति की राय में वडाला, कोंटाई और तामलूक के अत्याचार तफ़सील के थोड़े से हेरफेर के सिवा धरासणा के अत्याचारों का मुक़ाबला करनेवाले हैं, उतने ही अमानुषी हैं और किसी भी सभ्य सरकार को न शोभे, ऐसे हैं।"

(३)

लखनऊ के अत्याचार

"लखनऊ शहर में २५वीं मई के दिन जो घटनायें घटी थीं उनकी तहक़ीक़ात के लिए श्री हबीबुल्ला (प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य) के सभापतित्व में शहर के नेताओं की एक जाँच-समिति क़ायम हुई थी। इस समिति की रिपोर्ट से नीचे लिखी बातें ज़ाहिर होती हैं:—

१. तमाम विश्वस्त समाचारों के अनुसार जिन सत्याग्रहियों ने पुलिस का जरा भी मुक़ाबला नहीं किया था उन्हें गहरी चोटें आई थीं, उनकी हड्डियाँ तोड़ी गई थीं, और अधिकतर सैनिकों को उस समय मारा गया था, जब कि वे सोये थे या बैठे थे।

२. लोगों की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए जिस तरह का बल-प्रयोग किया गया था वैसा बल ऐसी भीड़ के लिए ज़रूरी न था; हाँ, दूसरे देश के शत्रु को मार डालने या उसके हाथ-पैर तोड़ डालने की ग़रज़ से किये गये हमले के ढंग का ज़रूर था।

※ अब एक नया आर्डिनेंस साइक्लोस्टायल से निकलने वाले अनियमित पत्रों के सम्बन्ध में और जारी हुआ है। —सं०

३. ऐसे बल का प्रयोग अकेले जलूसवालों के खिलाफ़ या उनके आसपास इकट्ठा भीड़ के लोगों पर ही नहीं किया गया था, उन बेकसूर नागरिकों पर भी किया गया था, जो संयोगवश वहाँ मौजूद थे।

४. जो लोग पास के घरों में से तमाशाई की तरह देख रहे थे उनपर भी हमले किये गये थे, जिनमें स्त्रियाँ और बालक भी थे।

महासभा के स्थानापन्न सभापति और इस समिति के एक सदस्य श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने मौके पर जाकर खुद तहकीकात की थी, फलस्वरूप उन्होंने भी ऊपर लिखी बातों को सच्चा पाया था।

इस तहकीकात में नीचे लिखी विशेष हकीकतों की सच्चाई का भी पता लगा है—

१. जिन स्त्रियों पर हमले हुए हैं उनमें श्रीमती बक्षी के समान एक मशहूर परिवार की बहुत ही इज़्ज़तदार महिला हैं और एक सुप्रसिद्ध डाक्टर मोतीराम की पत्नी भी हैं।

२. इन स्त्रियों पर पहला वार हीनिस नामक एक गोरे सार्जेण्ट ने किया, जिसके बाद देशी सिपाही मारते रहे।

३. २६ मई के दिन पुलिस ने घर की अटारियों पर या झरोखों में खड़े लोगों पर सड़क पर खड़े-खड़े गोलियाँ चलाई थीं और कइयों को घायल किया था।

४. पुलिस ने अनेक दूकानें भी लूटी थीं।

५. डिप्टी कमिश्नर, पुलिस सुपरिंटेण्ट और ज़िले के दूसरे हुक्काम उस वक्त मौके पर मौजूद थे और इन अत्याचारों को बड़े सन्तोष के साथ देखते तथा पुलिस को शाबाशी देते जाते थे।

६ इन अत्याचारों के खत्म होने पर पुलिस को उसके अमानुषी बर्त्ताव के लिए मिठाई और इनाम दिये गये थे।

इस समिति का यह दृढ़ विश्वास है कि इन हक़ीक़तों के बारे में लखनऊ के डिप्टी कमिश्नर ने जो पत्रिका प्रकाशित की है वह एकदम झूठ और भ्रम फैलानेवाली है, जब कि सच्ची हक़ीक़त ऊपर दी जा चुकी है।"

(भारतीय कांग्रेस-कार्य-समिति के प्रस्ताव)

'पुलिस का आदर्श बर्त्ताव' !

"१. सिर, छाती, पेट और जोड़ों पर लाठी की चोटें करना।

२ गुह्य अंगों, पेट के कोमल भागों और छाती वग़ैरा हिस्सों पर लाठी से ठोसे लगाना।

३. मारने से पहले सैनिकों को नंगे करना।

४. लंगोट फाड़कर गुदा में डण्डा घुसेड़ना।

५. बेहोश होने तक सैनिक के वृषण जोरों से दबाते रहना।

६. घायल सैनिकों को टांग या हाथ पकड़कर घसीटना और साथ ही अकसर उन्हें पीटते रहना,।

७. घायलों को कांटे की बागड़ में अथवा खारी पानी में फेंकना।

८. जमीन पर पड़े हुए या बैठे हुओं पर घोड़े चलाना।

९. लोगों के शरीर में आलपिन या काँटे चुभाना, कभी-कभी तो तब जबकि वे बेहोशी की हालत में होते हैं

१०. बेहोश होजाने पर भी सैनिकों को मारना।

इनके सिवाय भी अनेक अवर्णनीय दुष्ट तरीके हैं। गन्दी और बीभत्स गालियाँ भी दी जाती हैं, जिससे जहां तक हो सके सत्याग्रहियों की पवित्र भावनाओं को ज़्यादा से ज़्यादा कष्ट पहुँचे।"

इस प्रकार धरासणा के अहिंसक सत्याग्रहियों के साथ हुए पुलिस के 'आदर्श बर्ताव' का स्वयं निरीक्षण किया हुआ वर्णन करके, श्रीमती मीरा बहन 'यंगइण्डिया' में लिखती हैं कि—

"एक अहिंसक मजमे को तितर-बितर करने के इन तरीकों का कौन समर्थन करेगा ?"

मार के शिकार

वीरमगाम के निकटवर्त्ती सात गाँव वाले अपने पास की खाड़ी से नमक एकत्र करने गये, इसपर पुलिस ने लाठी, बैंत की मार और बन्दूक-तलवार के भय से उनका आतिथ्य किया। इसके जो शिकार हुए, घटना के दो दिन बाद, श्रीमती मीरा बहन ने डाक्टर के साथ वहाँ जाकर उनका हाल-चाल मालूम किया। उनमें से तीन गाँवों का हाल वह इस प्रकार लिखती हैं—

कमीजला

लगभग १५० पुरुष और ५० स्त्रियों ने इस कूच में भाग लिया था। करीब ६० आदमियों को कम या ज्यादा अंशों में मार पड़ी है। मैंने जिन घायलों को देखा उनका केस इस प्रकार है :—

१. स्त्री—सिर पर घाव, जिसमें से बहुत ज्यादा खून बहा था; पीठ और हाथ पर डण्डे की चोट। (उसके सिर पर चोट लगने से पहले ही वह नीचे गिर पड़ी थी, इसलिए उसे पता नहीं कि सिर पर घाव किस तरह हुआ।)

२ लड़की—उम्र करीब पन्द्रह वर्ष; पीठ पर बुरी तरह मार पड़ी है।

३. सत्तर वर्ष का बूढ़ा—दाहिनी दाढ़ की हड्डी पर और बायें हाथ पर हृदय को कँपाने वाले सख्त जख्म हैं। (वह बहुत ही दुबला-पतला और झुर्रियोंवाला बूढ़ा था तो भी अत्यन्त दृढ़-निश्चयी था।)

४. साठ वर्ष का बूढ़ा—अगले हिस्से में सिर की बाईं ओर खराब खुला हुआ जख्म है और सिर का बायाँ हिस्सा सूज कर गेंद जैसा हो गया है। (लम्बे जख्म पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर गहरे छोटे छोटे छेद थे। इसके सम्बन्ध में पूछने पर मुझसे कहा गया कि पुलिस वालों द्वारा खुरदरी लकड़ियों के प्रहार का फल था।)

५. पुरुष—उम्र चालीस साल; लाठी की करीब १० चोटें आई हैं, और बन्दूक के कुन्दों की मार भी पड़ी है।

६. पुरुष—लाठी की चोटों के कारण कन्धे पर खुले जख्म हैं।

७. पुरुष—संगीन की चोट के कारण दाहिने हाथ पर घाव है।

भेमरा

कोई १०८ पुरुष और ४० स्त्रियाँ हमले में शामिल हुई थीं। पाँच स्त्रियों और तीस पुरुषों पर मार पड़ी। (सात की चोटें गंभीर हैं।) मैंने नीचे लिखे घायलों को देखा है :—

१. स्त्री—बायें हाथ और बाईं जाँघ पर लाठी की मार और छाती के बायें हिस्से के नीचे जख्म है। (उस बहन और उसके साथियों ने कहा था कि घाव संगीन का था।)

२. स्त्री—पीठ और बायें हाथ पर लाठी की सख्त चोट।

३. पुरुष—उम्र पैंतीस साल, गाँव का वैद्य; दाहिने कन्धे पर लाठी की ११ चोटें, सिर पर लाठी का सख्त घाव, जिसके कारण बहुतेरा खून बहा।

४. पुरुष—पैरों पर मार, पैर सूज गये हैं; पीठ पर मार।

५. पुरुष—दाहिने पैर पर खुला जख्म और कन्धे पर तथा पीठ पर मार के चिन्ह।

६. पुरुष - बायें पैर पर सख्त मार और बायें कन्धे पर लाठी की चोटें।

७. पुरुष—दाहिने टखने पर सख्त मार, जिसके फलस्वरूप टखने में जलन और ऊपर सूजन है; दोनों हाथों और पैरों पर सख्त मार। (यह भाई बहुत ही कमज़ोर और झुके हुए हैं, तो भी आनन्दी हैं, निराशा का इनमें कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ा।)

कुमरेखाँ

कोई ४८ पुरुष और १२ स्त्रियों ने कूच में हाथ बँटाया था। मैंने नीचे लिखे घायलों को देखा है :—

१. स्त्री—घुटने के पास और पीठ पर लाठी की मार।

२. जवान स्त्री—दाहिने हाथ पर लाठी की मार, छाती के दाहिने भाग में चोट और नोचने के चिह्न (पुलिस के हाथों)।

३. स्त्री—बायें पैर और दाहिने हाथ पर लाठी की मार।

४. पुरुष—गुह्य भागों पर पुलिस ने लातें मारीं, कलाई से कुछ ऊपर दाहिने हाथ पर चोट के निशान।

५. पुरुष—पेड़ू के ऊपर और बायें हाथ पर एकाएक चोट और पीठ पर बन्दूक के कुन्दे की मार।

६. पुरुष—सिर और पीठ पर ठीक-ठीक मार, पगड़ी के कारण बच गया।

इस जागृति की मेरे मन पर गहरी छाप पड़ी है; यही वजह है कि यहाँ मैंने इसका विस्तार से उल्लेख किया है।

(नवजीवन)

धरासणा के ज़ख्म

धरासणा के नमक-गोदामों पर २० मई से ६ जून तक जो पाँच हमले हुए, उनमें घायल होनेवाले सैनिकों की उँटड़ी फ़ील्ड हास्पिटल तथा बलसाड़-सत्याग्रह-अस्पताल में हम निम्नलिखित क्वालिफ़ाइड डाक्टरों ने जाँच और सेवा-शुश्रूषा की। इन निहत्थे अहिंसक सत्याग्रहियों को जो भिन्न-भिन्न चोटें आई हैं, सर्व-साधारण की जानकारी के लिए हम उसे प्रकट करना चाहते हैं।

जो सैनिक गोदामों पर हमला करने गये थे उनके आजू बाजू घेरा डालकर पुलिस ने लाठियों से उन्हें मारा था। २० मई से लेकर ६ ठी जून तक के हमलों में पुलिस-द्वारा किये गये अत्याचारों के पुराने तरीकों के सिवा जो नये-नये तरीके खोज निकाले गये थे, वे नीचे दिये जाते हैं:—

१ - सैनिकों के जत्थों पर घोड़े दौड़ाना।

२—गुह्येन्द्रिय दबाकर खींचना।

३—छाती और पेट पर लाठी मारना।

इन दिनों हमले के लिए भेजे गये ७९७ सैनिकों में से लगभग ४५० घायल सैनिकों का इलाज बलसाड़-सत्याग्रह-अस्पताल में करना पड़ा था। जुदा जुदा प्रकार के ज़ख्मों और चोटों का विवरण नीचे दिया जाता है:—

सिर पर	२७	जाँघ और पैर पर	१९३
मुँह, आँख, कान पर	१६	गुह्य भाग पर	२७
गले पर	१२	हड्डियाँ तोड़ी	१५
कन्धों और हाथों पर	२१६	हड्डियाँ उतर गईं	१०
छाती पर	७३	घोड़ों की टाँगों के ज़ख्म	२२
पेट पर	५७	बेहोश हुए	४०
पीठ पर	२२९		

उक्त चोटों के सिवा एक सैनिक को खून की कै होती थी। लगभग चार सैनिकों के हाथ पैरों की नसें खिचती थीं, कुछ को पेट पर मार पड़ने से २४ घण्टों तक पेशाब नहीं हुआ था और अनेकों को छाती पर चोट लगने के कारण साँस लेना कठिन हो गया था।

जिन्हें सख़्त मार पड़ी थी उनमें से प्रायः सबको १०० से १०२ डिग्री तक बुखार चढ़ा था। दो सैनिक ऐसे थे जो ठीक-ठीक होश में होते हुए भी बोल नहीं सकते थे।

यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय यह है कि आख़िरी दिन के हमले में बहुतेरे सैनिक बुरी तरह जख़्मी हुए थे। मज़बूत और गठीले अहिंसक सैनिकों में से शायद ही कोई ऐसा हो जिसे शरीर के सब अंगों पर मिलकर पन्द्रह-बीस लाठी की चोटों से कम मिली हों।

सरकार दावा करती है कि उसकी तरफ़ से कम से कम बल-प्रयोग किया गया है। परन्तु उपर्युक्त तथा लाठियों की मार से शरीर के मुख्तलिफ़ हिस्सों पर लगनेवाली कई दूसरी चोटों को देखते हुए क्या यह बात ठीक हो सकती है? इसका निर्णय हम डाक्टरी दुनिया और सर्व-साधारण पर ही छोड़ते हैं।

(हस्ताक्षर)

भास्कर पटेल, एम० डी०, चीफ़ मेडिकल आफ़िसर,
बलसाड-सत्याग्रह-अस्पताल, बलसाड़।
प्रागजी डी० बलसाड़कर, एल० सी० पी० एस०,
हाउस-सर्जन, बलसाड़-सत्याग्रह अस्पताल, बलसाड़।
पी० डी० देसाई, एम० बी० बी० एस०, बलसाड़।
एन० जे० कपाड़िया, एम० बी० बी० एस०, बलसाड़।
नवनीतराय डी० देसाई, एम० बी० बी० एस०, बलसाड़।
भोगीलाल पी० शाह, एल० सी० पी० एस०, अहमदाबाद।
मणिधर शंकरदास व्यास, एल० ए० एस०, अहमदाबाद।
डाक्टर मुकुन्दराय बी० भट्ट, अहमदाबाद।
पी० सी० पटेल एम० बी० बी० एस०, बिलमोरा।
सी० वी० वैद्य, एल० एम० एण्ड एस०, सूरत।
नानूभाई सी० देसाई एल० सी० पी० एस०, सूरत।
मणिलाल रामलाल, एम० बी० बी० एस०, सूरत।
चिमनलाल एम० दलाल, एम० बी० बी० एस०, सूरत।
चम्पकलाल उर्फ़ चोकसी, एम० बी० बी० एस०, सूरत।
हैदराबादी धीरजलाल सी०, सूरत।
गुणवन्तलाल गिरधरलाल मुल्तानी, एम० बी० बी० एस०, सूरत।
नानूभाई सी० देसाई, एल० सी० पी० एस०, सूरत।
के० के० सुपरकर, एल० एम० एण्ड एस०, सूरत।

बिहपुर में गुण्डाराज

बिहार के नेता राजेन्द्रबाबू, जो स्वयं गुण्डाराज के शिकार हुए, अपने वक्तव्य में लिखते हैं:—

"× × १ जून को दोपहर के वक्त एक अंग्रेज़ अफसर कुछ कान्स्टेबिलों के साथ एक दूसरे से लगी हुई शराब और गाँजे की दूकानों के सामने आ खड़े हुए और धरना देनेवाले स्वयंसेवकों से उन्होंने वहाँ से चले जाने को कहा। स्वयंसेवकों के इन्कार करने पर उन्हें पीटा गया। राष्ट्रीय झण्डा जबरदस्ती छीना और जला दिया गया। स्वयंसेवकों ने झण्डा जलते देखा। उसे बचाने के लिए आगे बढ़ने पर वे फिर से पीटे गये। झण्डे को बचाने की उन्होंने बहुतेरी कोशिशें कीं और आख़िर वे उसकी थोड़ी-सी ख़ाक अपने कब्जे में कर सके। इसके बाद पुलिस ने महासभा-समिति के कार्यालय और खादी-भण्डार को चारों ओर से घेर लिया। भण्डार और कार्यालय एक ही मकान में थे। जो लोग भीतर मौजूद थे उन्हें मकान ख़ाली करके चले जाने का हुक्म दिया। आख़िर वे ज़बरदस्ती बाहर निकाले गये। चर्खा-संघ के कार्यकर्ताओं ने बहुतेरा कहा कि चर्खे, रुई, सूत और खादी वगैरा चीजें तत्काल ही दूसरी जगह नहीं ले जाई जा सकतीं; चर्खा-संघ का महासभा के कामों से कोई सीधा ताल्लुक नहीं, तो भी वे बाहर निकाल दिये गये। पुलिस ने ताला तोड़ा और चर्खे, सूत, रुई, अनाज, खादी के टुकड़े तथा कार्यकर्ताओं का असबाब, मतलब हर चीज को उठा-उठाकर पनाले में फेंक दिया। इन चीजों में से एक स्वयंसेवक मात्र अनाज वापस ला सका है, दूसरी चीज़ें तो अभी भी वहीं पड़ी होंगी। दोनों मकानों पर तथा सारे आँगन पर पुलिस का कब्जा है, और वहाँ जाने की हरएक को सख्त मुमानियत है। २ जून को इन मकानों पर अधिकार करने के लिए स्वयंसेवकों के जत्थे भेजने का निश्चय हुआ और तदनुसार दोपहर को एक जत्था रवाना किया गया। इस जत्थे को समझा दिया गया था कि जबतक वह गिरफ्तार न हो जाय या घायल होकर गिर न पड़े तबतक बराबर आगे बढ़ता चला जाय। ता० २, ३, ४, ५ और ६ को बराबर नियमानुसार जत्थे जाते गये, वे बुरी तरह पीटे गये, यही नहीं उनमें से कई तो बेहोश हो गये। डाक्टरों ने अपने बयान में कहा कि कुछ लोगों की चोटें तो दिलों को कँपानेवाली हैं। स्वयंसेवकों के इस तरह पीटे जाने की खबरें आस पास सब ओर फैल गईं, फलतः कोई दस-बारह हज़ार आदमी—स्त्री-पुरुष जत्थे पर पड़नेवाली मार को देखने के लिए इकट्ठा हो गये। छठी तारीख़ को महासभा-समिति के मकान से कुछ दूर पर एक अमराई में विराट सभा हुई, जिसमें १५–२० हज़ार लोग आये थे। एक अंग्रेज़ अफ़सर की मातहती में पुलिस का दल सभा स्थान पर आ पहुँचा और उसने मनमाने ढंग से लोगों को झड़ना शुरू कर दिया। करीब सौ आदमी बुरी तरह घायल हुए। महासभा की ओर से उनका डाक्टरी इलाज करवाया गया। ७ जून को स्वयंसेवकों के जो जत्थे गये उन्हें मार नहीं पड़ा, हाथ-पैर बाँधकर उन्हें जमीन पर डाल दिया गया और दूसरी तरफ़ अंग्रेज अफ़सर की आँखों के सामने पुलिसवालों ने तमाशाई लोगों को मनमाने ढंग से पीटा महासभा-समिति ने नये मकान में अपना कार्यालय खोला, पुलिस ने दोपहर से उस पर भी पहरा बैठा दिया। खादी-धारी आदमियों को न बाज़ार में, न ज़िला-बोर्ड के आम रास्तों पर आने जाने दिया जाता है। एक दिन तो पुलिस महासभा-समिति के नये मकान पर चढ़ दौड़ी; इतने ही से उसे सन्तोष न हुआ, पास ही घायलों की सेवा शुश्रूषा करनेवाले एक डाक्टर महोदय का दवाखाना था। पुलिस उस पर भी दौड़ी और दवा की अनेक शीशियाँ फोड़ डालीं। × ×

अध्यापक अब्दुलबारी, बाबू बलदेवसहाय, बाबू मुरलीमनोहरप्रसाद और मैं ता० ८ सोमवार को दोपहर भागलपुर पहुँचे। पटना से आये हुए साथियों, बाबू अनन्तप्रसाद, बाबू कमलेश्वरीसहाय श्री याकूब आरीफ़ और बाबू उपेन्द्रनाथ मुकर्जी के साथ हम सब बिहपुर गये। दोपहर को हम वहाँ पहुँचे। हमें मालूम हुआ कि स्टेशन पर पुलिस का पहरा बैठाया गया है और किसी भी खादीधारी को आम रास्ते पर या महासभा की छावनी तक नहीं जाने दिया जाता।···हमने जाकर महासभा-समिति का कार्यालय देखा। बाद में उक्त अमराई में हमने एक बड़ी सभा की। पुलिस ने

इस सभा के साथ कोई छेड़खानी नहीं की। सभा समाप्त होने पर पुलिस के कब्जे में गये हुए महासभा-समिति के कार्यालय पर फिर से कब्जा करने के लिए स्वयंसेवकों का जत्था भेजा गया…जत्थे को पकड़ चुकने के बाद एक अंग्रेज़ अफ़सर ने पुलिस को लोगों पर हमला करने का हुक्म दिया। वह सबसे आगे खड़ा-खड़ा 'मारो-मारो' चिल्लाता था, और पुलिस मदान्ध बनकर लोगों पर लाठी बरसाती जाती थी। लोग सम्पूर्णतया शान्त थे; लाठियों की बरसात के वक्त भी लोगों ने विरोध-स्वरूप अँगुली तक नहीं उठाई। यदि बात यह न होती तो कोई एक दर्जन पुलिस और पुलिस-सुपरडेण्ट का लोगों की ज़बरदस्त भीड़ को चीर सकना, उस पर मनमाने ढंग से लाठियाँ चलाना और तो भी उन सबका बाल तक बाँका न होना, एक अनहोनी बात है। आम सड़क पर इस तरह लोगों को ठोक-पीट चुकने पर वे उस बाज़ार में आये, जहाँ हम थे। युद्ध-क्षेत्र का चारों ओर से निरीक्षण कर चुकने के बाद पुलिस-सुपरडेण्ट एकदम उछला और 'मारो सालों को' चिल्लाता हुआ पुलिस के साथ हम पर चढ़ आया। पुलिस ने अध्यापक चारी पर लाठियों के कुछ प्रहार किये। दो-तीन लाठियाँ तो उन्हें उस हालत में मारी गई, जब कि वह अपने सिर के खून से तरबतर घाव को लेकर नीचे बैठ गये थे। कुछ और चोटें उनके कन्धों पर भी पड़ीं। इसके बाद सुपरडेण्ट मुझ पर झपटता हुआ आया; ऐसा मालूम होता था मानों अभी घूँसा मारकर वह मुझे कुलाँट खिलावेगा। लेकिन न जानें क्यों वह मेरे और बलदेवसहाय के बीच होकर चला गया। लेकिन कान्स्टेबिल मुझे यों ही क्यों छोड़ने लगे? उन्होंने मुझपर ठीक-ठीक लाठी चलाई मुझ पर पड़नेवाली कई चोटों को तो कान्तिलाल चौधरी और रामगति नामक बहादुर स्वयंसेवकों ने अपने पर झेल लिया। ये दोनों बुरी तरह घायल हुए। मुझ पर कम से कम तीन लाठियाँ तो पड़ीं ही। बाबू बलदेवसहाय को चार लाठियाँ पड़ीं, और बाबू मुरलीमनोहरप्रसाद, ज्ञानसखा, रामविलास शर्मा, बाबू मोतीलालजी खण्डेलवाल तथा बाबू श्यामसुन्दरलाल और दूसरों पर भी मार तो पड़ी ही थी। सुलतानगंज के डाक्टर लियाकतहुसेन के सिर, आँख और पीठ पर पुरजोश लाठी की मार पड़ी थी, जिससे उन्हें स्ट्रेचर पर सुलाकर लाया गया था। मैंने अपनी आँखों उन्हें इस हालत में देखा है। बाबू रासबिहारीलाल लियाकतहुसेन के पास ही बैठे थे, उन पर भी खूब लाठियाँ बरसीं—परन्तु चूँकि इनके सिर पर सोला हैट थी, वह कुछ कुछ बच गये। बाबू मुरलीधर पोद्दार और औरों के तो खूब खून बह रहा था। डाक्टरों ने कोई ४० घायलों की मरहमपट्टी महासभा-समिति के कार्यालय में की, इनमें कोई १२ घायलों के ज़ख्म तो बहुत ही गंभीर हैं। बाबू मेवालाल झा गिरफ्तार कर लिये गये और बाद में जहाँ हम लोगों की मरहमपट्टी हो रही थी, वह अंग्रेज़ अफ़सर पुलिस के दूसरे लोगों के साथ वहाँ आया और बाबू उपेन्द्रनाथ मुकर्जी तथा सत्यदेवराय को गिरफ्तार करके ले गया। इन्हें पकड़ते समय पुलिस के पास वारण्ट तो था नहीं। पर भागलपुर आने के बाद मुझे खबर मिली है कि उन पर गैर-कानूनी मजमे के मेम्बर होने का जुर्म लगाया गया है। × ×

(नवजीवन)

गुण्डापन

"ब्यावर में पुलिस की धाँधली बराबर जारी है। पुलिस वाले २७ ता० को शाम के ५ बजे अजमेर-कांग्रेस के स्वयंसेवक श्री शेरसिंह को, जो मेवाड़ी बाज़ार में शराब की दूकान पर धरना दे रहे थे, मारते-पीटते कोतवाली ले गये। बाद में उन्हें डरा-धमकाकर छोड़ दिया गया। × × दूसरे दिन ११ बजे श्री शेरसिंह पर फिर आक्रमण हुआ। एक गुण्डे ने उन्हें दूकान पर से घसीट लिया और घूँसों तथा डण्डों से खूब मारा। एक पुस्तक और अखबारों का बण्डल छीन लिया। पुलिस के सिपाही खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे। दो-तीन अन्य स्वयंसेवकों और कांग्रेस-कार्यकर्ताओं पर भी हमला किया गया। × ×"

(प्रकाश)

अमानुषिक !

"आगरा ज़िले का धरासणा जरार गाँव विलियमसनशाही की नादिरशाही और स्वतंत्रता के पुजारी वीर सत्याग्रहियों की वीरता का क्रीड़ा-क्षेत्र बन रहा है। सत्याग्रहियों के साथ जो अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं उनकी कहानी दर्दनाक और भयोत्पादक है, जिसको सुनकर पत्थर का दिल भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जरार में लगाई गई १४४ दफ़ा तोड़ने के लिए जो सत्याग्रही जाते हैं, उनके ऊपर पुलिस और सूरजपाली गुण्डे जिस पशु-बल का परिचय देते हैं उसका उदाहरण सभ्य संसार के इतिहास में मिलना कठिन है। अभी परसों छः आदमियों का जत्था जरार में गया था; उसके साथ इन बदमाश गुंडों ने जो अत्याचार किये, उसकी रोमांचकारी कहानी एक भुक्तभोगी की ज़बानी सुनाई गई। जिस वक्त वे जरार गाँव के पास पहुँचे पुलिस के सिपाहियों ने उन्हें रोका और उनसे लौट जाने को कहा, पर स्वयंसेवकों ने इसे अस्वीकार कर दिया। इस पर एक पुलिस के सिपाही ने एक स्वयंसेवक के थप्पड़ लगाया और फिर सब वीरों पर लात, घूँसे और लाठियों की वर्षा होने लगी। अहिंसक सत्याग्रही वीर दृढ़ता के साथ इन अत्याचारों को सहते गये पास ही कीचड़ और थोड़े पानी से भरा पोखरा था, जिसमें महतरों के शूकर लेटा करते हैं। उन बदमाश और निर्दयी गुंडों ने सत्याग्रहियों के हाथ-पैर पकड़कर एक-दो-तीन कहते हुए उस पोखरे में फेंक दिया। पानी में उनको डुबकी देते, उनकी गर्दन कीचड़ के अन्दर घुमेड़ देते, बेहोश होने पर उन्हें पानी के बाहर डाल दिया जाता, उनके बदन के तमाम कपड़े उतार-उतारकर फेंक दिये और उन्हें बिलकुल नंगा कर दिया जाता। उनसे जबरदस्ती सरकार की जय बुलाई जाती, पर इस पर भी वे वीर स्वतंत्रता की जय बोलते। उनके मुँह में कीचड़ भर दी जाती। इन तमाम दृश्यों को जनता की जान-माल के ठेकेदार बने हुए टोपधारी हाकिम और दारोगा देखते थे और निर्लज्जता की हँसी हँसते थे।"

(आगरा-सत्याग्रह-समाचार)

अत्याचार !

दस जून को आगरे की बाह तहसील के जरार गाँव में के कुछ आदमियों और गुण्डों ने पुलिसवालों की छाया में काँग्रेस के स्वयंसेवकों को बुरी तरह मारा पीटा और उनके पक्ष के गाँव-निवासियों पर अत्याचार किया। कहा जाता है कि स्त्रियों तक की बेइज़्ज़ती किया गया और उनके शरीर के ज़ेवर तक उतार लिये गये हैं। आगरे में यह समाचार आया तो काँग्रेस के डिक्टेटर श्री० रोरा, बा० श्रीचन्द दौनेरिया आदि अधिकारी ४० स्वयंसेवक लेकर वहाँ पहुँचे। इनने शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न भी बेकार हुए। लगभग ३५ स्वयंसेवक और दौनेरियाजी बहुत बुरी तरह पीटे गये। दौनेरियाजी के कम से कम १५ लाठियाँ लगी हैं उनका सिर फट गया है। कहा जाता है कि बन्दूक भी छोड़ी गई थी। इस सम्बन्ध में निष्पक्ष जाँच करने को आगरे के प्रसिद्ध वकील बा० अशरफीलाल की अध्यक्षता में एक कमिटी भेजी गई थी, पर १४४ धारा लगाकर रोक दिया गया। संध्या को १४४ तोड़ने के लिए १६ स्वयंसेवक जरार भेजे गये। पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार न करके बुरी तरह पीटा। स्वयंसेवक-दल के नेता श्री देवकीनन्दन 'विभव' के, मार-पीट में, चश्मे का काँच फूट जाने से आँख के नीचे गहरी चोट आई है।

(स्वाधीन भारत)

गाँधी-टोपी पहनना जुर्म !

गन्तूर, २३ जून।

दफ़ा १४४ लगाकर गाँधी-टोपी पहनने की मनाही करदी गई है। पुलिस ने तीन आदमियों के, जो केवल गाँधी-टोपी लगाये हैं, नाम लिख लिये हैं।

(फ्री प्रेस)

लखनऊ में स्त्रियों और बच्चों पर प्रहार !

"विगत २५ मई को लखनऊ के सत्याग्रहियों ने श्रीमती मित्र की अध्यक्षता में एक जलूस निकाला। जलूस के एबट रोड पहुँचने पर श्रीमती मित्र गिरफ्तार कर ली गईं। इसके बाद जलूस में भाग लेनेवाली अन्य महिलाओं को एक लारी में भरकर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया गया। इसके बाद सत्याग्रहियों और दर्शकों पर क्या बीती, इस सम्बन्ध में श्री० लेस्ली ह्वाइट के सामने, जिन्हें गवर्नमेण्ट ने इस घटना की जाँच के लिए नियुक्त किया है, गवाही देते हुए श्रीमती डॉ० पी० मुशरान (इलाहाबाद) ने निम्नलिखित आशय का बयान दिया है।

श्रीमती मुशरान अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए लखनऊ गई थीं। वहाँ २५ मई की शाम को वह अपनी बहन तथा कई बच्चों के साथ जलूस देखने हज़रतगञ्ज गईं। जब वह हुसेनगञ्ज के चौराहे पर पहुँचीं तो पुलिस ने उनका ताँगा रोक दिया। तब वह पीछे लौटकर एबट हाल के अहाते के सामने, जहाँ बहुत कम लोग थे, फुटपाथ पर खड़ी हो गईं। श्रीमती मुशरान ने देखा कि रायल होटल के पासवाले चौराहे पर बहुत-से पुलिस के सिपाही खड़े हैं। उनके अतिरिक्त बहुत-से लाल पगड़ीवाले रायल होटल के भीतर भी दिखाई पड़े। रायल होटल के सामने पुलिस ने जलूस को रोक दिया। फिर श्रीमती मित्र गिरफ्तार की गईं और जलूस में भाग लेनेवाली अन्य महिलाओं को भी गिरफ्तार करके वहाँ से हटा दिया गया। इसके बाद श्रीमती मुशरान ने काँग्रेसवालों को 'बैठ जाओ, बैठ जाओ" कहते सुना। एबट हाल के अहाते का दर्वाज़ा खुलने पर वह उसके अन्दर चली गईं। इतने में उन्होंने एक सीटी की आवाज़ सुनी और उसके साथ ही बहुत से पुलिस के सिपाही रायल होटल के भीतर से निकलकर सत्याग्रहियों को पीटने लगे। काँग्रेस वाले 'शान्ति, शान्ति" तथा जनता 'शेम शेम" चिल्लाने लगी। इस पर पुलिस ने जनता को भी लाठियों से पीटना शुरू कर दिया, जिससे लोग इधर-उधर भागने लगे। परन्तु पुलिस ने भागते हुए आदमियों का भी पीछा किया और उन्हें पीटा।

जब भीड़ तितर-बितर हो गई तो श्रीमती मुशरान ने देखा कि करीब पन्द्रह या बीस सत्याग्रही ज़मीन पर लेटे हुए हैं और पुलिस अभी तक उन्हें पीटती चली जा रही है। सत्याग्रही बराबर दुहरा रहे थे—"आज़ादी या मौत, आज़ादी या मौत !" उनके कपड़ों पर खून के धब्बे भी दिखाई पड़ते थे। इसके बाद पुलिस ने उनमें से बहुतों को हाथ से उठाकर और बहुतों को पैर से ठुकराकर सड़क के पासवाली कच्ची नाली में फेंक दिया।

कुछ लोग एक घायल को बाहर से उठाकर एबट हॉल के अहाते के अन्दर ले आये और उसकी सेवा करने लगे। श्रीमती मुशरान उसी को देख रही थी। इतने में उन्हें पीछे से किसी ने धक्का मारा। उन्होंने घूमकर देखा तो बीस-पचीस पुलिस के सिपाही अहाते के भीतर लोगों को पीट रहे हैं और लोग इधर-उधर भाग रहे हैं। एक पुलिस ऑफ़िसर के हाथ में छोटा-सा डण्डा था। वह श्रीमती मुशरान से बोला– 'हट जाओ'। श्रीमतीजी ने इस ऑफिसर से पूछा कि वह हटकर किधर चली जायँ। इसके उत्तर में उस ऑफ़िसर ने उनके सिर पर एक डण्डा मारा। इससे श्रीमती मुशरान को जितना ही दुःख हुआ उतना ही आश्चर्य। उन्होंने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया। इतने में उनके हाथ पर भी एक लाठी आ गिरी। फिर एक लाठी पीठ पर लगी और उन्हें पीछे से धक्का दिया गया। जब रास्ता देखने के लिए उन्होंने मुँह पर से हाथ हटाया तो देखा कि पुलिस लोगों को पीट रही है। उन्होंने देखा, एक आदमी के लाठी लगी और वह धम से गिर पड़ा। वह व्यक्ति था उनका भाई पण्डित हरिहरनाथ किचलू, एडवोकेट। श्रीमती मुशरान चिल्ला उठीं—"उन्हें क्यों मार रहे हो ?" वह भाई के पास जाना ही चाहती थीं कि एक दूसरी लाठी उन पर आ गिरी। उस समय भी ज़मीन पर गिरे हुए उनके भाई को तीन-चार पुलिस के सिपाही पीट रहे थे। श्रीमती मुशरान भागकर एक ओसारे में पहुँचीं। परन्तु वहाँ भी उनकी जान न बची। एक पुलिस के सिपाही ने वहाँ भी उन्हें पीटा और ओसारे से नीचे गिरा दिया। नीचे आने पर उन्होंने देखा कि उनका सोलह वर्ष का लड़का ज़मीन पर गिरा

हुआ है और उसके बदन से खून निकल रहा है। उन्होंने पुलिसवाले से कहा—"इसे क्यों मार रहे हो?" इसके उत्तर में फ़ौरन एक डण्डा उनके ऊपर पड़ा। वह फिर भागकर एक ओसारे में छिपीं, पर वहाँ भी एक सिपाही खड़ा था। एक दूसरा सिपाही उनके लड़के को पीट रहा था। वह फिर चिल्ला उठीं—"उसे क्यों मार रहे हो?" इस पर पुलिस वाले "छोड़ो साले को" कहकर वहाँ से चले गये। ओसारे से नीचे उतरकर श्रीमती मुशरान ने अपने भाई और बहन को देखा। भाई की हालत बहुत ही खराब थी, श्रीमती मुशरान को आठ चोट लगी थीं, उनके लड़के को सात, उनकी बहन श्रीमती बख्शी को सात और भाई को बीस से अधिक।

श्रीमती मुशरान के सोलह वर्ष के लड़के ने गवाही देते हुए कहा कि एक लाठी लगते ही वह ज़मीन पर गिर कर बेहोश हो गया; परन्तु इसके बाद भी उस पर लाठियाँ पड़ती रहीं। होश आने पर उसने देखा कि उसकी माँ दोनों हाथों से मुँह ढके हुए उसके पास खड़ी है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से बयान श्री लेस्ली हाइट के सामने गैर-सरकारी गवाहों की ओर से दिये गये हैं।

❀ ❀ ❀

महिलाओं के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार !

श्रीमती मित्र की गिरफ्तारी के बाद जलूस में से जो महिलायें जबरदस्ती लॉरी में भर कर किसी अज्ञात स्थान में भेज दी गई थीं, उनके विषय में पूछने से मालूम हुआ कि उन्हें शहर से दूर आलमबाग थाने में भेज दिया गया। वहाँ उन्हें रात के नौ बजे तक रोक रक्खा गया। इसके बाद उन्हें छोड़ा भी गया तो शहर तक पहुँचाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इन महिलाओं ने पुलिस से शिकायत की कि रात अँधेरी है और हम लोगों को शहर का रास्ता नहीं मालूम। परन्तु पुलिस ने उनकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में उन प्रतिष्ठित घरों की महिलाओं को वहाँ से पैदल ही शहर आना पड़ा।

('चाँद')

बम्बई में वीराङ्गनाओं पर मार !

बम्बई के आज़ाद मैदान में पुलिस की लाठियों के मुकाबले में देश-सेविकाओं ने और वीर भगनियों ने जिस दृढ़ता का परिचय दिया, निस्सन्देह वह वीर भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। वे लाठियों के प्रहार अपने शरीर पर ले रही थीं, मार पड़नेवालों को बचाने के लिए लाठियों के सामने ढाल बन जाती थीं, उनके सिरों पर अपने हाथ रखकर रक्षा करती थीं। षोड़शवर्षीया श्रीमती कृष्णाकुमारी सर देसाई अन्य सहयोगिनियों के सहित राष्ट्रीय झण्डा फहरा रही थीं। उनके ऊपर चार बार प्रहार हुए, किन्तु उन्होंने राष्ट्रीय झण्डा नहीं गिरने दिया। वह ज़मीन पर गिरतीं, किन्तु झंडे को न छोड़तीं। एक सार्जेण्ट आगे बढ़ा और बोला—'झण्डा दे दो और यहाँ से हट जाओ।' वीर बाला ने उसी दृढ़ता से कहा, 'मृत्यु से पूर्व यह सम्भव नहीं।' वह ज़मीन पर पटक दी गई, किन्तु फिर उठ खड़ी हुई। सार्जेण्ट झण्डे पर झपटा। वीर पुत्री को फिर ज़मीन देखनी पड़ी। उन पर दो हमले और हुए, और वह बेहोश हो गई। जब उनकी आँखें खुलीं, तब वह एम्बुलेंस में थी और राष्ट्रीय झण्डा उनके हाथों में हृदय से चिपका हुआ था। श्री नंगू बहन चोकसी पर कईबार मार पड़ी, किन्तु वह अपनी जगह से इंच भर नहीं हटीं और वह तबतक मैदान में डटी रहीं, जबतक बेहोश होकर गिर पड़ीं। एक सिख महिला को एक सार्जेण्ट ने ज़मीन पर पटक दिया और पुलिस-वालों ने उस पर बेतरह लाठियाँ बरसाईं। वह गर्भवती है। वह इतनी आहत हुई है कि मुह से बोलने तक की शक्ति नहीं। मनोरमा त्रिवेदी देशसेविका हैं। उनके सिर पर लाठी पड़ी है और कितने ही घाव आये हैं। श्रीमती गुलाब ईश्वरलाल के मस्तक पर लाठियाँ पड़ी हैं। वह कितने ही बार धराशायी हो गई हैं; किन्तु

मूर्च्छित होने से पूर्व मैदान से हटी नहीं। मिस मेहेरो आगाफ १८ वर्षीया पारसी युवती हैं। एक व्यक्ति पर, जिसे वह जानती भी थी, लाठियाँ पड़ रही थीं। सिर पर पड़ती हुई लाठी के सामने उन्होंने अपने हाथों की ढाल तान दी, उनके मुँह और हाथों में चोट आयीं, किन्तु उसका मस्तक टूटने से बच गया।

—स्वाधीन भारत

निर्दयता

श्री जे. के. भट्टचा, जिनके अधिकार में कांग्रेस की एम्बुलेंस है, लिखते हैं—

मैं प्रातः ७ बजे इस्लेनेड मैदान में अपने स्वयंसेवक और मोटर-लारी लेकर कांग्रेस के स्वयंसेवकों की परेड के समय गया था। ज्योंही मैंने पुलिस के मार से ३ स्वयंसेवकों को ज़मीन पर गिरे हुए देखा, मैं अपने स्वयंसेवकों-सहित स्ट्रेचर लेकर उन्हें लेने गया। मुझे एक पुलिस-इन्सपेक्टर ने रोक दिया। मैंने कहा कि मैं जख्मियों की सहायता करने आया हूँ। पुलिस-इन्सपेक्टर ने कहा कि हम नहीं जाने देंगे। मैंने कहा कि मैं रेड-क्रास दल का हूँ और मैंने प्रतिज्ञा की है कि जख्मियों की सहायता करूँगा। चाहे कुछ हो, मैं अवश्य जाऊँगा। मैंने उक्त पुलिस को अपना बेज भी दिखलाया। परन्तु ज्योंही मैं जख्मियों के पास पहुँचा, पुलिस-इन्सपेक्टर ने मेरे सिर पर दो लाठियाँ मारीं, जिससे मुझे बड़ी चोट आई। लाठियाँ खाकर भी मैं जख्मियों को ले आया और उनका और मेरा इलाज कांग्रेस-अस्पताल में हुआ।

(स्वाधीन भारत)

नंगा कर दिया!

खादी पहनने के कारण बेजवाड़ा के एक वकील को पुलिस के कॉन्स्टेबिल ने कपड़े खोचकर नंगा कर दिया। वकील सा० की ज़बानी उनकी रामकहानी इस प्रकार है —

'मैं त्रिचूर एक मुकदमे में पैरवी करने गया था। वहाँ खद्दर की पोशाक में एक होटल के सामने खड़ा था, ऐसे समय मेरे पास एक कानिस्टेबिल आया। उसने पूछा कि खादी क्यों पहने हो? मैंने उससे कहा, कि मैं सदैव यही पहना करता हूँ और खद्दर ही पहन के अदालत भी जाता हूँ। इसपर कानिस्टेबिल ने मेरी धोती खींच ली और मैं नंगा हो गया। इसके बाद उसने मुझे जूतों से पीटने के लिए धमकाया। मैंने भाग कर होटल में शरण ली और एक तौलिये से अपनी लाज ढाकी। मेरे पास धोती न होने के कारण मैंने मुकदमा मुलतवी करने की दरख्वास्त भेजी।"

वारण्ट के बदले मार

गत २७ वीं जून का मन्द्रास का त्रिपुली का समाचार है—"श्री अक्कर अनन्ताचार्य, श्री विट्ठल श्री निवासराव तथा श्री आदिनारायण उदयमभू से त्रिपुली गये। सन्ध्या समय एक सभा में श्रीनिवासजी भाषण करते थे कि पुलिस ने आकर उन्हें १४४ वीं धारा की एक नोटिस दी। आपने कहा—'मैं अङ्ग्रेजी नहीं समझता मुझे, तामिल में इसका अर्थ समझाओ।' यह बात चीत हो ही रही थी, कि पुलिस-सुपरडेण्ट, जो पास ही मैदान में टेनिस खेल रहा था, दौड़ आया और उन्होंने नोटिस लानेवाले पुलिस-जमादार को श्रीनिवासजी के गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। जब उन्होंने गिरफ्तारी का परवाना मांगा; तब गोरे अफसर के संकेत से जमादार ने उन पर घूंसे जमाये और उन्हें पकड़ थाने ले चला। राह में एक डिपटी मेजिस्ट्रेट ने उन्हें नोटिस का भाव बताया। श्रीनिवासजी नोटिस लेकर वापस आये और पुनः भाषण करने लगे। इसी समय पुलिस आई और उसने लठैती से सभा भंग कर दी। उपर्युक्त सज्जन रात को पुनः गिरफ्तार हुए और प्रत्येक को क़ैद की सज़ा दी गई।"

पीड़ितों के बयान

श्री मेघजी पदमजी

"शुक्रवार की सवेरे की गाड़ी से मैं राष्ट्रीय झण्डा लेकर शोलापुर के लिए रवाना हुआ। शोलापुर पहुँचते ही प्लेटफ़ार्म पर फ़ौज और पुलिस के मिलाकर कोई २००-२५० आदमी मिले। टिकट देकर बाहर निकलते ही सैनिकों ने मुझे पकड़ लिया और मारते-पीटते हुए मुझे पास के फ़ौजी थाने पर ले गये। मार पड़ते हुए भी जबतक मैं होश में रहा मैंने राष्ट्रीय झण्डे को नहीं छोड़ा। ·········मार से मैं बेहोश हो गया और उसी हालत में मेरी तलाशी ली गई। फिर मेरा बयान लिया गया। बयान लेते समय भी मुझे मारा गया। मुझसे कहा गया कि 'महात्मा गाँधी को गालियाँ दो तो तुम्हें छोड़ देंगे।' मैंने ऐसा करने से इन्कार किया, इसपर पुनः मुझे मारा गया। उलटे हाथों पर, दोनों हथेलियों पर, कमर पर, चूतड़ों पर, गले पर, लकड़ी से मुझे मारा गया। नाभि के पास जलते हुए सिगरेट लगाये। इस प्रकार करते-कराते अन्त में मुझे स्टेशन लाये और मद्रास-मेल में बैठाकर पूना रवाना कर दिया।"

श्री रामचलड वनप्पा (गुलबर्गा)

"मैं एक व्यापारी हूँ। अपने देश की सेवा के विचार से मैं शोलापुर आया। पिछले (मई) महीने की १४ तारीख को मुझे एक फ़ौजी अफ़सर-द्वारा कोड़े लगवाये गये और मुझसे मांस खाने को कहा गया। मैं आज ही बम्बई आया हूँ। जब मैं शोलापुर के रेलवे स्टेशन के नज़दीक पहुँचा तो एक फ़ौजी अफ़सर ने मुझे पकड़ लिया और पूछा कि क्या कभी तुम जेल हो आये हो? मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने मेरी गाँधी-टोपी और खादी की धोती छीन ली और इस प्रकार मुझे नंगा करके उन कपड़ों को जला दिया। मेरे साथ दो स्त्रियाँ भी थीं, जिनसे फ़ौजी सिपाहियों ने पास का सब रुपया-पैसा चुपचाप दे देने को कहा। मैं अपने दोनों हाथों से अपनी लज्जा छिपाने की चेष्टा कर रहा था कि एक सिपाही ने हाथ हटा लेने को कहा और मेरे वैसा करने पर एक बड़ा पत्थर लेकर उसने मेरी मूत्रेन्द्रिय पर फेंक मारा, जिससे फोते में चोट लगने से मैं बेहोश हो गया। होश में आने पर रेलवे स्टेशन की ओर चला। कुछ आदमियों ने अपनी पगड़ियाँ फाड़कर मुझे कपड़े दिये जिससे मैंने अपना नंगापन दूर किया। मैंने फ़ौजी सिपाहियों द्वारा, स्त्रियों को अज्ञात स्थानों की ओर ले जाते देखा है और मैं समझता हूँ कि युवती लड़कियों से बलात्कार तो मामूली बात हो गई है। इसपर भी जनता ने शान्ति के साथ ही काम लिया है।"

श्री सूर्यकान्त बनर्जी, बेलूर-सत्याग्रह-छावनी

"पुलिस कमिश्नर की आज्ञा का भंग करके बीडन स्क्वायर में सभा करने के अपराध में १० मई की शाम को अन्य ९ सत्याग्रहियों के साथ मैं गिरफ्तार कर लिया गया। वहाँ से हम जोड़ाबागान थाने पर ले जाये गये। वहाँ पहुँचने पर गोरे सार्जेण्टों ने हममें से हरएक को निर्दयतापूर्वक मारा और कोठरी में बन्द कर दिया। मुझपर लाठी की १८ चोटें पड़ीं। और एक चोट के कारण मेरे सिर में जख्म हो गया। १८ मई के दिन भर हम कोठरी में बन्द रहे। पर १९ को सवेरे हममें से पाँच को, जिनमें मैं भी था, फिर से बुरी तरह बेतों-द्वारा पीटा गया। इस मार के निशान अबतक हमारे शरीरों पर मौजूद हैं। मार चुकने पर हम छोड़ दिये गये और हमें यह हिदायत की गई कि फिर से कभी कलकत्ता न आवें। मेरे सिर का जख्म अभी तक भरा नहीं है और बेंत के निशान शरीर पर अबतक मौजूद हैं।"

बलि-वेदी से—

आचार्य कृपलानी

ज़मीनदोस्त होने की तैयारी

"× × अर्राकर ज़मीनदोस्त होनेवाले साम्राज्य की अर्राहट मैंने सुनी है। इसलिए आपके दीर्घदर्शी देशबन्धु सी. एफ. एण्डरूज़ और दूसरे जिस तरह आज काम कर रहे हैं, और जो काम बर्क तथा फॉक्स ने अपने ज़माने में किया था, उसी तरह मैंने भी उचित समझा कि मैं ख़तरे की लाल बत्ती बताऊँ। मैंने अपने देशभाइयों को लम्बे वक्त की गुलामी के घोर परिणामों से सावधान किया है; और वे जिसे सुख तथा आराम मानते हैं, उस क्षुद्र तंद्रा के ख़िलाफ़ भी मैंने उन्हें चेताया है। इन सब कार्यों में मैंने नीति का, कानून का अथवा दूसरा कोई गुनाह किया हो, इसे मैं नहीं मानता।

भारत भारतीयों का

मैं मानता हूँ कि जैसे इंग्लैण्ड अंग्रेज़ों का है, जर्मनी जर्मनों का है, वैसे ही यह देश हम हिन्दुस्थानियों का है। मैं मानता हूँ कि मनुष्य-मात्र के चेहरे पर से ही स्वभावतः उसके वतन का पता चल सकता है। अंग्रेज़ों का रूप-रंग और सूरत-शक्ल उन्हें इंग्लिस्तान का ठहराता है और मेरा मुझे हिन्दुस्थान का साबित करता है। जापानी के मुँह पर कुदरत ही ने ऐसी छाप लगा दी है कि वह साफ़ ही जापान का मालूम पड़ता है। मनुष्य की कुवत नहीं कि वह ईश्वर और कुदरत ने जो किया है उसे बिना नुकसान किये मिटा सके। इसलिए मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जैसे इंग्लैण्ड हिन्दुस्थानियों का नहीं हो सकता, जर्मनी फ्रांसीसियों का नहीं हो सकता, वैसे ही हिन्दुस्थान भी ब्रिटिशों का कदापि नहीं हो सकता। यह चीज़ ही ख़तरनाक है, और कुदरत ऐसे ख़तरों को हमेशा मिटाती रहती है।

हम क्या करना चाहते हैं ?

इस समय हम जो कर रहे हैं उसीको, ऐसी परिस्थिति में, एक क्षुद्र से क्षुद्र अंग्रेज़ भी अपना कर्त्तव्य समझेगा। अरे, हम तो वही करना चाहते हैं, जो आपके (अंग्रेज़) श्रेष्ठ वीरों ने अपने समय में किया था। हेम्पडन, मिल्टन और क्रामवेल ने अपने ज़माने में जो कुछ किया था, वही हम आज किया चाहते हैं; जार्ज वाशिंग्टन ने अमेरिका के लिए जो किया था, मैज़िनी ने इटली के लिए जो किया था, और दूसरे अनेक देशभक्तों ने अपने देश पर के विदेशी जुए के विरोध में जो किया था, वही हम किया चाहते हैं; अजी नहीं, हम तो गांधीजी के झण्डे के तले इतिहास के दृष्टान्तों को परिशुद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने अपने-अपने समूहों के ख़िलाफ़ मूसा के 'शठं प्रति शाठ्य' के नियम का पालन किया था, पर हम तो बुद्ध और ईसा के आदेशों का अनुसरण किया चाहते हैं। हम बुराई को भलाई से जीतना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि वैर से वैर कभी नहीं मिटता। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी प्रेम से वैर का नाश होता है। हमारा धर्मयुद्ध विशुद्ध है; पाक है। ऐसे ही पाक और निरपवाद हमारे सत्य और अहिंसा के साधन हैं।

हमारा बल : उनकी कमज़ोरी

यदि अंग्रेज़ों ने क्रामवेल, हेम्पडन और मिलटन के नाम इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखे हों और वे अपने क्षुद्र स्वार्थ की हानि से डर कर हमारे स्वातंत्र्य-प्राप्ति के उत्साह को कुचलना चाहते हों, तो वे भूलते हैं, निरर्थक प्रयत्न करते हैं। वे जानते नहीं हैं तो उन्हें जानना चाहिए कि लोहे की सलाखें और पत्थरों की दीवारें हमारे लक्ष्य की सिद्धि के मार्ग में इतनी ही कम रुकावट डाल सकती हैं, जितनी रुकावट कि इन जीर्ण-शीर्ण जंग खाये हुए जुल्म के पुराने हथियारों ने भूतकाल में डाली थी। पर इससे तो हमारे दिल की आग और भी भड़क उठती है। हमारे धर्म-युद्ध की न्यायता और उसकी स्वाभाविकता ही हमारी श्रद्धा का आधार है, हमारे बल का सहारा है। इसी तरह दूसरे देश को गुलाम बनाये रखने की अस्वाभाविकता में ही अंग्रेज़ों की कमज़ोरी समाई हुई है। × × ×"

सेठ नथमल चोरडिया

[स्थानापन्न सभापति राजस्थान प्रान्तिक समिति : : क़ैद १ वर्ष]

आह्वान

'मुझे यह देखकर दुःख होता है कि इस देश पर राज्य तो अंग्रेज़ों का कहलाता है, किन्तु उस राज्य को उखाड़ने का प्रयत्न करनेवालों के मुक़दमे हमारे हिन्दुस्थानी भाइयों के हाथों ही होते हैं। × × × जिस दिन हिन्दुस्थानी इस ज़ालिम सरकार की सहायता करना छोड़ देंगे, उसी दिन हिन्दुस्थान आज़ाद हो जायगा। युद्ध-काल में दुश्मनों को जो सहायता पहुँचाता है, वह देश और जाति का द्रोही और महापापी समझा जाता है। × × अगर देश की आज़ादी के लिए भूखों भी मरना पड़े तो क्या हर्ज है ? × ×"

श्री शङ्करलाल वर्मा

[पत्रकार व मन्त्री राजस्थान प्रान्तिक समिति : : क़ैद ३ वर्ष सख्त]

अंग्रेज़ों का शासन

"भारत के इतिहास के अध्ययन और वर्त्तमान शासन के अनुभव से मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अंग्रेज़ों का शासन इतना विश्वासघात, छल, कपट, धोखेबाज़ी और धूर्त्तता तथा अन्याय, अत्याचार और क्रूरतापूर्ण है, और इसने किसी समय के इस हरे-भरे देश को इतना ग़ारत और पतित बना दिया है, कि मेरा यह आन्तरिक विश्वास हो गया है कि प्रत्येक हिन्दुस्थानी का यह साधारण कर्त्तव्य ही नहीं वरन् मुख्य धर्म है कि जितनी जल्दी से जल्दी सम्भव हो सके वह इस देश से इनके शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करे।

विचित्र

वे यह शासन हमारे ही हिन्दुस्थानी भाइयों से बनी हुई पुलिस और फ़ौज के तथा अन्य कर्मचारियों के सहारे चला रहे हैं। देश को लूट-लूटकर अपना घर भरते हैं ये, और जब इनके इस अन्यायी, अत्याचारी और क्रूर शासन को

उखाड़ने का देशवासी आन्दोलन करते हैं तो उनपर अत्याचार और अन्याय करवाये जाते हैं हमारे इन्हीं हिन्दुस्थानी पुलिस और फ़ौज वाले भाइयों से !

धर्म का अंग

इसलिए अपने इन पुलिस और फ़ौज के गुमराह भाइयों को उनकी भूल बताकर उन्हें सावधान कर देना भी हमारे कर्तव्य, धर्म का अंग है। × × ×"

श्री बैजनाथ महोदय

[स्थानापन्न मंत्री
राजस्थान प्रान्तिक समिति : : क़ैद
२ वर्ष सख़्त]

जीवन-संगीत

"× × राजद्रोह तो मेरा जीवन-सङ्गीत है। जीवन के मंगलमय प्रभात में जब मैंने पहले-पहल पैर रक्खा तो राजद्रोह मेरी साँस था। राजद्रोह का मुक्त प्रचार करनेवाले महाराष्ट्र-केसरी की गर्जनायें मुझे बाल्यावस्था में सुलाने वाली लोरियाँ थीं। अपने पितृ-चरणों में लोटते हुए इस जीवन-रसायन का मैंने आकण्ठ पान किया है। × ×

हृदयाग्नि

अपने स्कूली जीवन एवं कालेज के जीवन में अंग्रेज़ों का सम्पर्क और व्यवहार भी मुझे अपनी मातृभूमि की दुःखद याद दिलाता रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, और अंग्रेज़ों के सम्पर्क में बीतनेवाले प्रत्येक क्षण में, यह दुःख मेरे हृदय को बराबर जलाता रहा है कि मैं अपने देश में स्वतंत्र नहीं, यहाँ मैं एक मनुष्य की तरह निर्भयता-पूर्वक नहीं चल सकता, एक शक्ति हमारी प्रगति को रोकती है, हमारी वृद्धि में विघ्न डालती है, और हमारे अपमानित हृदय को ठुकरा कर जले पर नमक छिड़कती है। × ×

लूट और फूट

× × यह सत्ता तो न केवल विदेशी है बल्कि इसने इस पवित्र भूमि का आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सर्वनाश करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। जो भूमि एक समय विश्व का गौरव थी, आज डेढ़ सौ वर्षों के इस राज्य के कारण वह राष्ट्र-मण्डली में असीम दरिद्र, पतित, अछूत और गुलाम बन गई है। लूट और फूट के अस्त्र चलाकर इस शासन ने सारे राष्ट्र को रङ्क बना दिया है। करोड़ों बेकार हैं, जिन्हें दिन-भर में एक बार भी भर पेट भोजन भी नहीं मिलता।

खूब !

ऐसी लोभी सरकार को उलटने के लिए अब कोई कोशिश करना है तो उसके उत्तर में मिलते हैं १८५७ के क़त्लेआम, अमृतसर, ननकाना, धरासणा, वडाला, वीरमगाम, पेशावर, शोलापुर, दिल्ली इत्यादि (के काण्ड) !

आज सारे देश में जो डाकू और गुण्डा राज चल रहा है, उसे देख कर किस अभागे भारतीय युवक का खून न खौलने लगेगा ? × × ×"

भारत : तब और अब

अतीत काल

"जब कि पिरामिड्स ने नील नदी की घाटी में झाँका भी नहीं था, और जब कि यूरोपियन सभ्यता के वे पालने यूनान और इटली जंगली दशा में ही थे, भारतवर्ष धन और वैभव का क्षेत्र था।...भारत का अतीतकाल अवश्य ही बड़ा वैभवपूर्ण रहा है।"

× × ×

"मैसीडोनियन राजा की चढ़ाई के पहले यूरोप भारतवर्ष के बारे में जो कुछ जानता था वह सिर्फ़ उसके स्वर्ण, उसके मोतियों, उसके मसालों और उसके बेशक़ीमत कपड़े के द्वारा ही जानता था।"

—जान कैपर

"यहाँ (भारत में) रक्षा की व्यवस्था थी, स्वाधीनता थी; और न तो ज़मींदार थे, न भिखमंगे—"

—रीस डेविड्स (बुधिस्ट इण्डिया)

मुसलमानों का विजय-काल

"लूट के अपने हिस्से के रूप में वह ६०० मन खरा सोना, ७ मन मोती, २ मन हीरे-जवाहरात-लाल-पन्ना, १००० मन चाँदी, ४०० थान रेशम और दूसरी अनेक बढ़िया-बढ़िया चीज़ें ले गया।"

काफ़ूर की चढ़ाई (ओरिएण्टल हेरल्ड)

× × ×

"इस चढ़ाई में सोना इतनी बहुतायत से मिला कि सिपाहियों से चाँदी को भार समझकर वहीं छोड़ देने को कहा गया।"

(ओरिएन्टल हेरल्ड)

"कन्याकुमारी से शंघाई तक प्रत्येक बन्दरगाह पर भारत में बना हुआ हर क़िस्म का कपड़ा चाहे जितने परिमाण में ख़रीदा जा सकता था।"

—मार्कोपोलो, १२ वीं सदी

अंग्रेज़ों का विजय-काल

"बंगाल का देश अटूट सम्पत्तियों का भंडार है और अपने स्वामियों का दुनियामें सबसे बड़ा संघ (कार्पोरेशन) बना सकता है।"

—क्लाइव के पत्र, १७६१

"मुर्शिदाबाद शहर लन्दन जैसा ही विस्तृत, घना और समृद्ध है; फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि वहाँ के निवासियों में से प्रत्येक के पास इतनी सम्पत्ति है, जो लन्दन के किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति से अधिक है।

—लार्ड क्लाइव

"सिराजुद्दौला की मृत्यु के बाद जो लोग बंगाल से गुज़रे उनकी बातों के आधार पर हम कहते हैं कि उस समय यह संसार की एक सबसे समृद्ध, बहुत धनी और बड़ी ज़रखेज़ सल्तनत थी। व्यापारी और बड़े आदमी धन और विलास में सराबोर थे, और छोटे मजूर-कारीगर सम्पन्न, सन्तुष्ट एवं सुखी थे।"

—डांवे, १८७१
कम्पनी के शासन में

"जिस तरीके से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्थान पर कब्ज़ा किया उससे ज़्यादा नफ़रत पैदा करनेवाला और ईसाई असूलों के खिलाफ़ किसी दूसरे तरीके का खयाल तक भी नहीं किया जा सकता। × × × अगर कोई बुरे से बुरा तरीका हो सकता था, जिसमें कमीने से कमीना बेइन्साफ़ी के तरीकों पर इंसाफ़ी का बढ़िया मुलम्मा फेरने की कोशिश की गई हो—अगर कोई तरीका ज़्यादा से ज़्यादा बेरहम, जालिम, मगरूर और निर्दय हो सकता था, तो वह वह तरीका है, जिससे हिन्दुस्थान की कई देशी रियासतों की हुकूमत देशी राजाओं के हाथों से छीन-छीन कर अंग्रेज़ी राज्य के चंगुल में इकट्ठा कर दी गई है।"

—विलियम हाविट

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी की हिन्दुस्थानी निज़ाम को शुरू से ही बड़े-बड़े पापों ने काला कर रक्खा था × × × लगातार कई पुश्तों तक आला से आला सिविल और फ़ौजी अफ़सरों से लेकर अदना से अदना मुलाज़िम तक, कम्पनी के मुलाज़िमों का सिर्फ़ एक ही ख़ास मक़सद यह रहता था कि जितनी जल्दी हो सके और जितनी बड़ी से बड़ी रक़म हो सके, इस देश से निचोड़ ली जाय और फिर अपना मतलब पूरा करते ही हमेशा के लिए इस देश को छोड़ दिया जाय।"

—डा० रसल

"ख़याल कीजिए कि उनके कर्तृत कितने काले रहे होंगे, जब कि खुद कम्पनी के डाइरेक्टर तक इस बात को मंज़ूर करते हैं कि इस देश के व्यापार में उन्होंने जो अतुल सम्पत्ति प्राप्त की है वह बड़े जुल्मी और अत्याचारी ढंग से प्राप्त की है, जैसा कि किसी भी समय और किसी भी देश में कभी नहीं सुना गया।"

—सोशल स्टेटिक्स (प्रथम संस्करण)

"इंग्लैण्ड ने जो औद्योगिक प्रभुत्व पा लिया है, उसका मूल कारण है उसके इस्तैमाल के लिए मिल जाने वाला बंगाल और कर्नाटक के ख़ज़ानों का विस्तृत भण्डार। प्लासी की लड़ाई और विजय से पहले, जबतक कि भारत से इंग्लैण्ड को धन का स्रोत बहना शुरू नहीं हुआ था, हमारे देश (इंग्लैंड) की कारीगरी बहुत गिरती पर थी।"

—डिग्बी

"मोटे तौर पर यह अच्छी तरह कहा जा सकता है कि प्लासी और वाटरलू के दर्मियान लाखों पौण्ड भारत से इंग्लैण्ड बह गये।"

—मेजर विंगेट

"इस तरह पुष्कल सम्पत्ति द्रुतगति से कलकत्ता आ पहुँची, जब कि ३ करोड़ मानव बिलकुल दरिद्रावस्था को पहुँच गये।"

—मैकाले का निबन्ध

"वे भण्डार—लाखों प्राणियों की सदियों की बचाई हुई इस सम्पत्ति को अंग्रेज़ छीन कर लन्दन ले गये, जैसे कि रोमवासी ग्रीस और पोन्टस के अवशेषों को भी इटली ले गये थे।"

—ब्रुक्स एडम्स

आज की दशा

"इंग्लैण्ड के विश्वव्यापी साम्राज्य को क़ायम रखने के लिए अकाल-पीड़ित भारत का खून चूसा जा रहा है।"

—सर हेनरी कैम्पबेल बेनरमैन

"भारत आज ग़रीब और दु:खी है। और देश से भी अधिक दु:खी (रंजीदा) उसके प्रजाजन हैं। वे पराश्रित और देखने में थके हुए से हैं, उनके पास कपड़े भी कम हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि वे सब ग़रीब हैं और किसी तरह अपनी ज़िन्दगी के दिन काट रहे हैं।"

—सर फ्रेडरिक ट्रेवेस

"यह एक अविवादनीय तथ्य है कि इस समय ब्रिटिश भारत में मुश्किल से ही कोई ऐसा गाँव होगा, जो कि ऋण के भार से अत्यधिक और आशा-हीन रूप में न दबा हो।—१८८०"

(रिपन-कालीन भारत)

"हमारे देखते-देखते ही भारत कमज़ोर से कमज़ोर होता चला जा रहा है। हमारे शासन के अन्दर शनैःशनैः पहले से अधिकाधिक तेज़ी के साथ उसका मूल रक्त ही बहा चला जा रहा है।"

—एच० एम० हिण्डमैन, १९१५

"शासन-प्रबन्ध और लूट ये दोनों ही बात उसी एक सरकार के दो फ़र्ज़ हैं।"

—लार्ड कर्ज़न, १९०२

"जिस तरह एकाएक रोम को ब्रिटेन छोड़ना पड़ा था उसी तरह यदि इंग्लैण्ड को भारतवर्ष छोड़ना पड़े, तो इंग्लैण्ड अपने पीछे क्या छोड़ जायगा? एक देश—पर शिक्षा-शून्य, सफ़ाई से रहित, और धन-हीन!"

—सर डैनियल हैमिल्टन

हमारी शिक्षा

तब

"यह स्पष्ट है कि जब अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्थान को अपने अधीन किया उस वक्त यहाँ सर्वव्यापी राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति मौजूद थी।"

—जान मैट्टाई (कमिश्नर)

"बंगालान्तर्गत अंग्रेज़ी शासन से पहले के शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी क़ाग़ज़-पत्रों के आधार पर मैक्समूलर का कहना है कि उस वक्त बंगाल में ८०००० देसी स्कूल थे, अर्थात् आबादी के प्रत्येक ४०० के पीछे एक स्कूल था।"

—केयर हार्डी

"नदिया का ज़िला तो स्कूलों से छाया हुआ है। यहाँ प्रत्येक ३१ के पीछे एक स्कूल है।"

—पादरी वार्ड, १८२१

अब

"जब कभी मुझे भारत की घोर असाक्षरता का ध्यान आता है, तो मुझे टामस कार्लाइल के ये हृदयस्पर्शी शब्द याद आ जाते हैं—'ज्ञान को ग्रहण करने के योग्य मनुष्य अज्ञान रहे, यह बात मेरे लिए बड़ी हृदयविदारक है'।"

—डा० सी० हल

साक्षरता

देश	पुरुष	स्त्री
इंग्लैण्ड	६३·४	९१·५
अमेरिका	९५·५	९३
डेनमार्क	१००	१००
जर्मनी	१००	१ ०
जापान	९८	९६
भारत	५.२	१·५
बंगाल	९.५	१.७५

स्कूल

देश	आबादी	प्राइमरी स्कूल
अमेरिका	१० करोड़	३ लाख १७ हज़ार
इंग्लैंड	४ करोड़ ४२ लाख	८६ हज़ार
जापान	६॥ करोड़	१ लाख ७६ ,,
भारत	३२ करोड़	२ ,, ६ ,,

विद्यार्थी

(जन-सख्या के प्रतिशत)

जर्मनी	३९.५
इंग्लैण्ड	२९.२
अमेरिका	३७.५
फ्रांस	२८.५
डेनमार्क	३५.४
जापान	३७.५
ब्रिटिश भारत	३.१

शिक्षा पर खर्च

(प्राइमरी शिक्षा में प्रत्येक के पीछे)

	रु०	आ०	पा०
डेनमार्क	१०	५	०
अमेरिका	१६	४	०
इंग्लैंड	९	०	०
जापान	७	०	०
फ़िलिपाईन	८	०	०
भारत	०	२	०

कारण

"जब कोई देश या प्रजा अपने से सशक्त शक्ति के अधीन हो जाय तो यह निश्चित समझना चाहिए कि सब-से पहली जो बात विजेता लोग करेंगे वह यही कि अधीन देश की शिक्षा को या तो बिलकुल नष्ट कर दें, या अनुत्साहित करें, अथवा बड़ी सख़्ती के साथ उसका नियंत्रण करें। क्योंकि, ज्ञान और पराधीनता साथ-साथ नहीं चल सकते।" — एग्नेस स्मेडली

(हाउस आफ़ कामन्स में, सन १८१३)

"आप भारतवासियों को शिक्षा की सुविधा क्यों दें?...... आपने इनके देश को नष्ट किया है, इसकी प्रजा को लूटा है, इनके नरेशों को परलोक पठाया है; और निस्सन्देह स्वयं अपने संरक्षण के लिए आपको इन्हें भ्रम, धोखे और अज्ञान में रखना ज़रूरी है।" —सर थामस टर्टन

हमारा जीवन

मृत्यु संख्या

(प्रति सहस्र)

	१९२१	१९२५
अमेरिका	१२.९	११.५
इंग्लैण्ड	१७.६	१२.५
फ्रांस	१३·७	१३.९
जर्मनी	१६·४	१३.६
भारत	३०,५६	२६.२

बाल-मृत्यु

(प्रति शत)

इंग्लैण्ड	७·५
फ्रांस	८·५
जर्मनी	१०·८
जापान	१६.६
भारत	१९.४

उम्र का औसत

इंग्लैण्ड	५२·५ वर्ष
अमेरिका	५५ ५ ,,
फ्रांस	४८·५ ,,
जर्मनी	४७.४ ,,
जापान	४४·३ ,,
भारत	२२.७ ,,

काले-गोरे का भेद-भाव

सरकारी नौकरियाँ

१०००) रु० मासिक से ज़्यादा वेतन की सरकारी नौकरियों पर, भिन्न-भिन्न विभागों में, हिन्दुस्थानियों व अंग्रेज़ों की संख्यायें और उन्हें मिलने वाली रक़में—

विभाग	अंग्रेज़		हिन्दुस्थानी		कुल	
	संख्या	वेतन रुपये	संख्या	वेतन रुपये	संख्या	वेतन रुपये
'होम'	३०	६००३५	×	×	३०	६००३५
लेजिस्लेटिव	९	२६७५०	२	८६६६	११	३५४१६
पब्लिक वर्क्स	३१	५३६१५	१	१२२५	३२	५४४८०
इण्डस्ट्रीज़	३६	७८६२०	३	६१५०	३९	८४७७०
रेवेन्यू एण्ड एग्रीकलचर	७४	१२७४९०	१	६६६६	७५	१३४१५६
रेल्वे	२१९	३३७२९५	४	६०००	२२३	३४३२९५
कामर्स	८०	१४१३७५	१४	१८५२५	९४	१५९९००
फ़ारेन पोलिटिकल	११३	३५[illegible]३९०	३	३७००	११६	३५९०९०
फ़ाइनेन्शल एडवाइज़र	५०	७६६२३	२	४०५०	५२	८०६७३
मेलिटरी फ़ाइनेंस	९०	११४९८०	३५	५३६३५	१२५	१६८६१५
मेलिटरी एजुकेशन	२३	४५७७५	४	१०९१६	२७	५६६९१
आर्मी (हैडक्वार्टर्स स्टाफ़)	१२६	२११०५०	×	×	१२६	२११०५०
कुल	९६१	१६१८९९८	६९	११९५३५	१०३०	१७३८५३३

स्टेशन-मास्टरी

नार्थ वेस्टर्न रेल्वे में स्टेशन-मास्टरी आदि की कुछ बड़ी जगहों पर हिन्दुस्थानी और एंग्लो-इण्डियन—

	वेतन	हिन्दुस्थानी	अंग्रेज़ व एंग्लोइण्डियन
स्टेशन-मास्टर (स्पेशल क्लास १)	१५०—१०—१९२	२०	×
,, (फर्स्ट क्लास १)	४२५—२५—५००	१	×
,, (,, २)	३६०—२०—४००	×	१
जूनियर, असिस्टैण्ट स्टेशन-मास्टर	२२०—१५—३५०	१८	×
	२५०—१०—३००	×	२२
कण्ट्रोलर	४००—२५—५००	×	४
असिस्टेण्ट ट्रेन-कण्ट्रोलर	२८५—१०—३२५	×	२८
डिप्टी-कण्ट्रोलर	३३५—१५—३५०	×	५

कहने की ज़रूरत नहीं कि और रेलों में भी प्रायः यही दशा है।

शिक्षा

बंगाल में प्रत्येक विद्यार्थी पीछे ख़र्च——

प्रति अंग्रेज़ विद्यार्थी १०३ रु० ४ आना

प्रति भारतीय विद्यार्थी २ रु० ११ आना।

"इसमें बिलकुल सन्देह नहीं कि जहाँ तक व्यापारी-समुदाय से सम्बन्ध है, काले लोगों के प्रति गोरों का भाव पूर्ण अपमानजनक है। एक बार कलकत्ते में एक अंग्रेज़ औरत ने एक हिन्दुस्थानी के साथ होटल के 'लिफ्ट' पर जाने से इन्कार कर दिया, हालांकि वह औरत लन्दन की मामूली मजूरनी (Charwoman) जितनी ही शिक्षित थी, और हिन्दुस्थानी रग्बी व आक्सफ़ोर्ड में शिक्षा पाया हुआ था। × × सच तो यह है कि गोरे लोग ऐसा करना अपना फ़र्ज़-सा ही नहीं बल्कि लगभग अपना पुण्य कर्म ही समझते हैं। सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए अपनी छाती आगे करके वह कहते हैं—'हमें अपनी शान रखनी ही चाहिए।' × × ×" —आर० जे० मिन्नी

अंग्रेज़ी शासन का लक्ष्य

"हमारी ठीक नीति यह होनी चाहिए कि एक क़ौम को दूसरी क़ौम से और एक जाति को दूसरी जाति से भिड़ाते रहें।" —'वेस्टमिन्स्टर रिव्यू,' १८५८

"अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना ही हिन्दुओं को मुसलमानों के ख़िलाफ़ और देशी राज्यों व सरदारों को एक-दूसरे के ख़िलाफ़ भिड़ाते रहने से हुई है।"

—इण्टर्नेशनल स्टडी क्लब बुलेटिन, नं० २, टोकियो

"भारत में अपना ज़ोर बनाये रखने के लिए हमें उस हरएक राजनैतिक रचना और सामाजिक परम्परा को बहा देना चाहिए, जो कि हमारा असर सम्पूर्ण एवं सर्वव्यापी होने में बाधा डालती हो।"

—टाइम्स, २९ जून १८५७

'हिन्दुस्थान की सरकार साफ़ स्वेच्छाचारी है, और ऐसी ही होना ज़रूरी है। हमें जो चुनाव करना है, वह सिर्फ़ दो प्रकार के स्वेच्छाचारी शासन के ही दर्मियान—एक तो पशुबल का, और दूसरा तर्क एवं न्यायपूर्ण।"

हैरियट मार्टिन्यू, मई १८५७

"मैं ऐसा मक्कार नहीं हूँ कि यह कहता फिरूँ कि हम हिन्दुस्थानियों के लाभ के लिए हिन्दुस्थान पर अधिकार किये हुए हैं। हमने तो हिन्दुस्थान को इसलिए जीता है कि वहाँ ब्रिटेन के माल की ख़ूब खपत हो। हमने इस देश को तलवार के ज़ोर से जीता है और तलवार के ज़ोर से ही हम इसपर शासन करेंगे।"

—सरजायनसन हिक्स

❀ ❀ ❀ ❀

क्या यह स्थिति हमारे लिए शोभाजनक है? क्या हम इसे हमेशा के लिए बर्दाश्त करते रह सकते हैं? कोई भी सच्चा भारतीय ऐसा न कहेगा।

इसीलिए हम स्वराज्य चाहते हैं—और, अपने उसी 'जन्मसिद्ध हक़' के लिए, भारत आज मुक्ति-संग्राम कर रहा है। सत्य और अहिंसा हमारे हथियार हैं, और परमेश्वर का आशीर्वाद हमारे ऊपर है। भारत अब जाग उठा है; दुनिया की कोई ज़बरदस्त से ज़बरदस्त शक्ति भी अब उसे चैतन्य होने से नहीं रोक सकती।❀

मुकुट

❀ उद्धरण स्वराजसाइक्लोपीडिया, इण्डिया (श्री नियोगी-संकलित) तथा विभिन्न पत्र-पुस्तकों से संकलित।

आधी दुनिया

अभूतपूर्व जागृति

स्त्रियों का अपना आन्दोलन तो इस समय लगभग बन्द-सा है—स्त्री-संस्थायें बदस्तूर क़ायम हैं, लेकिन क्रियात्मक कार्य इस समय उनका रुका हुआ है; मगर देश में आज जो आग लग रही है, हम भारतवासी अपनी मुक्ति के लिए जो संग्राम कर रहे हैं, उसके कारण हमारी माँ-बहनों में भी अभूतपूर्व जागृति के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। बक़ौल श्रीमती मीराबहन, 'उनके प्राण जागे हैं।' और, उन्हींके शब्दों में कहें तो, 'स्त्रियाँ जब एक बार जागती हैं तो फिर उन्हें किसी बात का डर रहता ही नहीं है।' सच मुच आज उनमें नई जान आ गई है। एक नूतन चैतन्य से वे चमक रही हैं—और असम्भव नहीं कि शायद निकट-भविष्य में होने वाले प्रभातोदय की, इस घनघोर निशा में, उनकी यह जागृति उषा-रूप ही न सिद्ध हो!

आधा और आधा=पूरा

पुरुष और स्त्री, मानव-समाज के ये दो अंग हैं। स्त्री अर्द्धाङ्गिनी कहलाती है, और पुरुष अर्द्धाङ्ग। दोनों का सम्मिश्रण ही पूर्णता है। दोनों अर्द्धाङ्गों के सहयोग, आदान-प्रदान और सम्मिलित कार्य-सम्पादन में ही समाज का श्रेय है; और, वस्तुतः तो, उसीके ऊपर समाज की इतनी बड़ी इमारत खड़ी हुई है। बहुत दिनों से इस सिद्धान्त को हमने भुला रक्खा है, यही कारण है कि हमारा समाज विशृङ्खल होकर दिन पर दिन अस्त-व्यस्त होता चला आ रहा है। परन्तु, वर्तमान जागृति की लहर ने हमारी उस विस्मृति को मानों झकझोर दिया है।

आज हम क्या देखते हैं? भारत के मुक्ति-यज्ञ में जहाँ पुरुष अपना बलिदान कर रहे हैं, वहाँ स्त्रियाँ भी उनके साथ हैं। अभी तक पुरुष स्त्री की रक्षा करता आया है, लेकिन वर्तमान मुक्ति-यज्ञ में हमें इससे भी बढ़कर दृश्य देखने को मिले हैं। लाठियों की मार, कोमल और गुह्याङ्गों पर बर्बर हमले इत्यादि तो आज 'सभ्य' ब्रिटिश शासन में आम बात ही हो गई है। स्त्रियों की कौन कहे, बच्चे भी अब तो इन प्रहारों से नहीं बचाये जाते। ऐसी हालत में पुरुषों ने तो साहस बताया ही, पर स्त्रियों ने तो कमाल ही किया है। मार को तो सभी जगह स्त्रियों ने वीरता-पूर्वक सहा, पर उस दिन बम्बई के आज़ाद मैदान में स्त्रियों ने पुरुषों को बचाकर उनकी मार अपने ऊपर झेली। कितना करुण पर सुन्दर और उत्साहप्रद रहा होगा वह दृश्य, जब पुरुषों को लाठियों की मार से बचाने के लिए स्त्रियों ने आ-आकर उन्हें अपने आवरण में ले लिया! पुरुष के गले में दोनों बाँहें डालकर और अपनी हथेलियों को पुरुष के सिर पर रखकर लाठियों की मार को अपने पर झेलते रहना, यह वीराङ्गनाओं का ही काम है। भारतीय स्त्रियाँ इन दिनों भी ऐसा कर सकती हैं, यह आशा किसी को भी नहीं थी। सरदार पटेल ने उस दिन स्त्रियों के इस साहस की सराहना करते हुए, बम्बई में, ठीक ही कहा है—'महात्मा गाँधी को यद्यपि स्त्रियों में बड़ा विश्वास था, पर इतनी आशा तो उन्होंने भी नहीं की थी।' निस्सन्देह यह हमारी माँ-बहनों के लिए बड़े गौरव की बात है; और इसके लिए वे जितना गर्व करें, उचित ही है। आज हमारे आन्दोलन को जो इतनी सफलता मिल रही है, सरकार आज हमारे बल से जो खिझला उठी है—यहाँ तक कि लार्ड रोदरमियर जैसे साम्राज्यवादी तो भौंचक होकर चिल्लाने लगे हैं, कोई-कोई आगामी दो-तीन महीनों के अन्दर-अन्दर सरकार के झुक जाने के अनुमान भी लगाने लगे हैं, वह सब सच पूछो तो इसीका परिणाम है कि आज भारत के दोनों आधे-आधे अंग मिलकर अपनी सम्मिलित शक्ति से सरकार के मुक़ाबले में भिड़ गये हैं।

स्त्रियों का बलिदान

प्राचीन स्त्रियों के साहस की बातें हमने सुनी हैं, राजपूत नारियों के सुनहले बलिदान की गाथायें पढ़ी हैं; पर वर्तमान स्त्रियाँ भी कुछ करेंगी, इसमें सन्देह ही था। लेकिन भारत के मुक्ति-संग्राम में तो वे वह कर रही हैं, जो हम पुरुषों के लिए भी ईर्ष्या के योग्य है। देवी सरोजिनी, कमला, रुक्मिणी ने तो रास्ता बताया ही; पर उनके बाद की स्त्रियाँ तो और भी कमाल कर रही हैं। मद्रास की तरफ़ एक वृद्धा नमक-क़ानून तोड़ कर जेल गई हैं, जरार (आगरा) में एक वृद्धा पर मार पड़ी है। विदेशी कपड़े और शराब ताड़ी की पिकेटिंग स्त्रियाँ कर रही हैं और उसमें सफलता भी मिल रही है। बम्बई में तो 'देश-सेविका-संघ' संगठित कर उन्होंने बड़े अच्छे ढंग पर काम करना शुरू कर दिया है। और भी कई जगह इनके संगठन हुए हैं। कांग्रेस के ज़िम्मेदार पदों को ग्रहण कर जेल जाने का भी सिलसिला शुरू हो गया है। श्रीमती पेरिन बहन केप्टिन और लीलावती मुंशी बम्बई प्रान्तिक समिति की अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के रूप में ही जेल गई हैं। उनकी गिरफ्तारी पर जो उत्साह नगरवासी स्त्री-पुरुषों ने प्रदर्शित किया, उससे उनकी लोकप्रियता का पता लगता है।

श्रीमती पेरिनबहन केप्टिन का सन्देश

"देखो, झण्डा फहराता रहे! अहिंसा के अपने ध्येय पर क़ायम रहो। साहस के साथ लड़ाई जारी रक्खो। अपने नेता महात्मा गाँधी के उपयुक्त अपने को साबित करो।"

विजय या मृत्यु!

[श्रीमती लीलावती मुंशी का सन्देश]

"विजय या मृत्यु! बस, लड़ाई जारी रक्खो, जबतक कि सफलता न मिल जाय।"

पेरिन बहन केप्टिन

की प्रशंसा करते हुए तो वर्तमान राष्ट्रपति सरदार पटेल ने कहा है—एक फ़ौजी जनरल जो कुछ कर सकता था, पेरिनबहन ने उससे भी अधिक किया है। स्त्रियों पर यह जो आक्षेप किया जाता है कि सामाजिक और राजनैतिक मामलों में वे कुछ भी नहीं समझतीं, इसे स्त्रियों ने ग़लत सिद्ध कर दिया है। पेरिनबाई ने जो व्यावहारिक योग्यता दिखाई है, उसपर मैं मुग्ध हूँ। अगर बम्बई में उन-जैसी और भी स्त्रियाँ हों तो शहर से कायरता का नाम ही मिट जाय।

लीलावती मुंशी

गुजराती साहित्य-मण्डल में अपनी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। श्री कन्हैयालाल मुंशी तो गुजरात के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं ही, उनकी पत्नी बहन लीलावती भी इस दिशा में प्रमुख हैं। समाज-सुधारक तो यह परिवार है ही। राजनैतिक क्षेत्र में भी इस बार इसने प्रवेश किया, और अपने को राष्ट्र की सेवा के लिए कारागृह-वासी कर लिया है। यह बात ध्यान देने की है कि अपने गोद के दोवर्षीय बालक के मोह ने भी आपको अपने इस साहस से विचलित नहीं किया। आह, कितना करुण रहा होगा वह दृश्य, जब पेरिनबहन के साथ ३ महीने के लिए जेल जाते समय अपने उस गोद के बालक को प्यार करके आपने उसे दूसरे के सुपुर्द किया!

कुमारी कृष्णा सरदेसाई

वह वीर बहन हैं, जो बम्बई में पुलिस की मार खाते-खाते

बेहोश तक हो गईं पर अपने पास का राष्ट्रीय झण्डा पुलिस को न लेने दिया ! आज़ाद मैदान की मार-पीट में सार्जेण्टों ने आपसे झण्डा माँगा था, पर आपने कहा—प्राण रहते न दूँगी। जब पिटने लगीं तो उसे दोनों हाथों में कस कर छाती से चिपका लिया। यही कारण है कि बेहोश हो जाने पर भी कोई आपसे झण्डा न ले सका। अस्पताल में जब आपको होश आया तो सबसे पहले आपने अपने झण्डे को देखा और ईश्वर को धन्यवाद दिया। अब कांग्रेस-अस्पताल में इनके ज़ख्मों का इलाज हो रहा है।

इनके अलावा और भी कई बहनों ने बम्बई की मार-पीट में बड़ी वीरता दिखाई है। और लोग तो हट भी गये, पर कुछ सिख जवान और कोई बारह स्त्रियाँ केसरिया बाने पहने अखीर तक मार खाते वहीं डटे रहे। एक स्त्री तो गर्भवती भी थी, और मार के कारण भय है कि कहीं उसके गर्भ को नुकसान न पहुँचा हो, पर फिर भी वह मार खाती हुई डटी ही रही !

उधर मद्रास की तरफ़ नीलोर में तीन स्त्रियों को ६-६ महीने की सख़्त क़ैद की सज़ायें हुई हैं। और कलकत्ते में

बहन इन्दुमति गोइनका

को, पुलिस वालों को नौकरी छोड़ने के लिए भड़काने के अपराध में, ९ महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा हुई है। यह बलिदान अनुपम है। मारवाड़ी-समाज में यह पहला और बहुमूल्य बलिदान है, क्योंकि बहन इन्दुमति एक बड़े प्रतिष्ठित परिवार की पुत्री और वधू हैं और १५—१६ वर्ष की ही आयु में उन्होंने यह साहस कर दिखाया है ! कलकत्ते के सुप्रसिद्ध बा० पद्मराज जैन की वह सुकन्या हैं, और दिल्ली के प्रसिद्ध गोयनका-वंश के बा० केशवदेव गोयनका के साथ अभी पिछले वर्ष उनका विवाह हुआ था। विवाह-संस्कार अपनी सादगी और आदर्श के लिए उल्लेखनीय था, और उसमें दम्पती ने देश-सेवा की भी प्रतिज्ञा की थी। आज वह संकल्प अपने फल ला रहा है, यह देखकर उन्हें कितना हर्ष हो रहा होगा ! फिर न केवल मारवाड़ी-

श्रीमती सत्यवती की जेल-यात्रा

[वारण्ट की ख़बर पाकर गिरफ्तारी के लिए आते समय, जलूस को भाषण देने की अवस्था में]

समाज में बल्कि अपने बलिदान के अभिमानी बंगाल में भी जेल जाने वाली सर्वप्रथम महिला बहन इन्दुमति ही हुईं, इस बात से तो उनका हृदय और भी गौरवान्वित हो रहा होगा। धन्य! बहन, तुम्हें; और तुम्हारे उन माता-पिता-पति को जिन्हें तुम्हें पाने का सौभाग्य हुआ। घर-घर तुम्हारी भावना का प्रचार हो तो भारत क्या से क्या हो जाय!

बहन इन्दुमति के बाद कलकत्ता में और भी स्त्रियाँ गिरफ्तार हुई हैं। स्वर्गीय देशबन्धु दास की बहन श्रीमती उर्मिलादेवी, नारी-सत्याग्रह-समिति की श्रीमती विमल-प्रतिभादेवी और श्रीमती प्रमिलादेवी, पार्वतीदेवी, ज्योतिर्मयी गांगुली तथा मोहिनीदेवी वे वीर महिलायें हैं, जिन्होंने अपनेको मातृ-भूमि के लिए कारागृह-वासी बना लिया है। इन्हें छः-छः महीने की सजायें हुई हैं।

हर्ष यह है कि इतने दमन के होते हुए भी स्त्रियाँ डरी नहीं हैं और सब अत्याचारों को सहते हुए भी पिकेटिंग तथा जलूस आदि के द्वारा प्रदर्शन के कार्यों में खूब भाग ले रही हैं। प्रयाग में श्रीमती उमा नेहरू सत्याग्रह की संचालिका हुई हैं और उस दिन उनके नेतृत्व में स्त्रियों का ऐसा बड़ा जलूस निकला, जो प्रयाग के इतिहास में अपना सानी नहीं रखता पर्दानशीन औरतें तक घरों से निकल-निकल कर उसमें शरीक हुई थीं, यहाँ तक कि पं० मदनमोहन मालवीय की धर्मपत्नी भी आख़िर पहली बार मैदान में निकल ही पड़ीं!

मुसलमान स्त्रियाँ भी कुछ-न-कुछ कर ही रही हैं। बम्बई में

६५ वर्ष की वृद्धा को सख्त कैद

की सज़ा हुई है, जो स्वर्गीय जस्टिस तैयबजी की लड़की और बम्बई के एक मशहूर डाक्टर अब्बास तैयबजी की आप चचेरी बहन हैं।

ईसाइयों को कांग्रेस के साथ करने का प्रयत्न मिस डिकिंसन ने शुरू किया है।

मतलब यह कि स्त्रियों ने राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को पहचाना है—और वे ऐसा करें भी क्यों नहीं, जबकि उनके मुखपत्र 'स्त्री-धर्म' का कहना है—

"सत्य, धैर्य, तपस्या और आत्म-शुद्धि ये ही अस्त्र हैं, जिनके द्वारा भारतीय स्वाधीनता की वर्तमान लड़ाई लड़ी जा रही है। यह एक ऐसी लड़ाई है जिसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों समान रूप से भाग ले सकते हैं।"

यही नहीं, उसने तो यहाँ तक लिख डाला है कि "इस नवीन युद्ध में जिन अस्त्रों से काम लिया जा रहा है, वे वास्तव में पुरुषों के नहीं बल्कि स्त्रियों के अस्त्र हैं और इसलिए भारत के इस स्वाधीनता-संग्राम को हम निस्सन्देह स्त्रियों का संग्राम कह सकते हैं।"

श्रीमती सत्यवती जेल में

दिल्ली की कर्मण्य बहन श्रीमती सत्यवती जेल में कैसे हैं, इस सम्बन्ध में उनके भाई पण्डित इन्द्र ने कहा है कि स्त्रियों की जेल बहुत छोटी, गन्दी अन्धेरे में है। उसमें आजकल पागल स्त्रियाँ रक्खी जाती हैं। सत्यवती को वहाँ कोठरी में रक्खा गया है, जहाँ पहले चक्कीखाना था। वहाँ १६ चक्कियाँ चलती हैं। चक्कियों की दो कतारें हैं, उसी कतार की छोटी-सी जगह में उन्हें सोने की जगह मिली है। उस जगह बड़ी गर्मी रहती है। वह बराण्डे में सोती हैं, और जब पानी बरसता है तो उन्हें बिलकुल नींद नहीं आती। पण्डितजी ने यह भी कहा है कि दिल्ली जेल में स्त्रियों के लिए कोई अच्छी व्यवस्था न होने के कारण ही शायद सरकार अभी स्त्रियों को नहीं पकड़ रही है। जो भी हो; पर क्या यह स्थिति सन्तोषजनक है, यह सोचने की बात है!

मुकुट

"जिन सत्याग्रही स्त्रियों को इस सत्याग्रह-युद्ध में मार, अपमान या जेल के कष्ट सहने पड़े हैं, यह समिति उनका सादर अभिनन्दन करती है, और उन्हें विश्वास दिलाती है कि उनके कष्ट-सहन तथा आत्म-त्याग से राष्ट्रीय युद्ध को बहुत ज्यादा बल मिला है।

खास कर श्रीमती सरोजिनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, रुक्मिणी लक्ष्मीपति, सत्यवतीदेवी, मैत्रीदेवी, दुर्गाबाई, कमलाबाई और अंजलि अम्मल की देश सेवा का यह समिति साभार सम्मान करती है।"

(कांग्रेस-कार्य-समिति का प्रस्ताव)

चंक्रम

मुक्ति की ओर

हमारा राष्ट्र भारत आज अपने मुक्ति-पथ पर अग्रसर है। डेढ़सौ वर्षों से जिस गुलामी की पीड़ा को, इच्छा या अनिच्छा से, वह बर्दाश्त करता आया है, अब दृढ़ता के साथ उससे मुक्त हो जाने के लिए वह कटिबद्ध हो गया है। गत मार्च में भारत के नेता महात्माजी का 'मार्च' शुरू हुआ था, और इन तीन-चार महीनों के बीच आज देश का वातावरण कुछ से कुछ हो गया है। शुरुआत में जब नमक-क़ानून का भंग करने की बात उठी, तो सरकार ने ही नहीं बल्कि 'बुद्धिवादी' लोगों ने भी उसकी हँसी उड़ाई थी; पर कुछ ही समय बाद हमने देखा, आन्दोलन वह रंग लाया कि सबको दाँतों-तले अंगुली दबानी पड़ी। विदेशी कपड़े का बहिष्कार शुरू हुआ। सन्देह था कि विदेशी वस्त्रों की चमक-दमक और सस्तेपन के साथ ही सरकार और विदेशी पूंजीपतियों की चालबाज़ियों के सामने इसमें कहाँ तक सफलता मिलेगी; परन्तु आज हम देखते हैं, देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक स्वदेशी की ऐसी लहर उठी है कि कपड़ा ही नहीं बल्कि अन्य विदेशी वस्तुओं को रखना भी अब शोभा की बात नहीं रही है। इसी तरह और भी जो-जो राष्ट्रीय कार्यक्रम सामने आता जा रहा है, वही सर्वव्यापी होता जाता है।

बलिदान की भावना

जनता में इतनी जागृति हो गई है कि किसी भी विघ्न-बाधा की हम परवाह नहीं करते। हम अपना रास्ता चुनते हैं और फिर शान्ति पर दृढ़ता के साथ उसपर अग्रसर होने लगते हैं—जेल, मार-पीट, बर्बर और क्रूर अत्याचार, संगीना और गोली, कोई भी भय हमें हमारे निर्दिष्ट पथ से विचलित करने में सफल नहीं हो रहे हैं। पुरुष ही क्यों; गर्भवती और बाल-बच्चे वाली, वृद्धा, युवा एवं बालिका—सभी तरह की स्त्रियों ने भी अनुपम बलिदान किया है। बच्चे भी अपने उत्साह में किसीसे पीछे नहीं। तरुण लोग जहाँ कालेज-स्कूलों को लात मार-मार कर काम आ रहे हैं, वहाँ छोटी उम्र के बालक मुहल्ले-मुहल्ले 'इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद !' 'नमक-क़ानून तोड़ दिया !' इत्यादि ध्वनियाँ करते हुए सर्व-साधारण में देश के प्रति कोमल भावों को जगा रहे हैं। इन्हें न जेल का डर है, न अप्रतिष्ठा का; न खाने-पीने की फ़िक्र, न कपड़े-लत्ते की; यदि कोई भय है तो अपने घर वालों का—पर देश के लिए बलि होना हो तो फिर माँ-बाप का भी क्या भय ? बलिदान की यही भावना आज हमारे अन्दर—हमारे बूढ़ों में, जवानों में, बच्चों में और हमारी माँ-बहनों में घर कर रही है। लोग अपने बलिदान के लिए उत्सुक-से हैं, यही कारण है कि आज हम इतने आगे बढ़ गये हैं।

सरकार का रुख

सरकार दिन-दिन अपने असली रूप में लोगों के सामने आती जा रही है। हिन्दुस्थानियों को सभ्य बनाने का उसका दावा आज निस्सार हो रहा है, क्योंकि उसके कृत्यों को स्वयं उसके देशवासी भी 'काले' कहने लग गये हैं। बम्बई के गोरे पत्र 'टाइम्स' ने ही बम्बई की मार-पीट के दिन को 'काला दिन' लिखा है, और 'डेली हैरल्ड' के प्रतिनिधि श्री स्लोकाम्ब ने लिखा है—'× × तब उन दुर्घटनाओं में का एक दृश्य उपस्थित हुआ, जो बहुत दिनों तक हिन्दुस्थान में हमारी नेकनामी के लिए कलंक-रूप में स्मरण की जाती रहेंगी।' सरकार काँग्रेस के रूप में भारत-राष्ट्र के मुक़ाबले अपनी पूरी शक्ति के साथ जुझ पड़ी है। काँग्रेस की कार्य-कारिणी को ग़ैर क़ानूनी घोषित करके उसने उसके प्रधान और मंत्री (पं० मोतीलाल व डा० सय्यद महमूद) को सज़ा देदी; युक्तप्रान्त, पंजाब, बम्बई, मद्रास, बिहार आदि में कहीं काँग्रेस-कमिटियों को और कहीं किसी गाँधी-आश्रम या सत्याग्रह-आश्रम को, कहीं नौजवान भारत-सभाओं को और कहीं-कहीं स्वयंसेवक-संगठनों को ग़ैरक़ानूनी क़रार देकर ज़ाब्ते फ़ौजदारी का काला क़ानून लागू कर दिया गया है। गन्तूर के ज़िलाधीश को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने वहाँ गाँधी-टोपी पहनना

REGISTERED No N, 351.

त्यागभूमि के ग्राहकों के लिए

एक ही अवसर

राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम के इस अवसर पर सस्ता-साहित्य-मण्डल ने अपने 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' की समस्त पुस्तकें 'त्यागभूमि' के ग्राहकों को पौने मूल्य में देने का निश्चय किया है। अतः जो भाई आजकल 'त्यागभूमि' के ग्राहक हैं तथा जो भविष्य में त्यागभूमि के ग्राहक बनेंगे वे अपने मण्डल की सब पुस्तकें पौने मूल्य में पाने के हक़दार होंगे।

पुस्तकों का आर्डर देते समय ग्राहक अपना—त्यागभूमि का—ग्राहक-नम्बर अवश्य लिख दिया करें।

व्यवस्थापक—

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।—१९८-३०

विषय-सूची

पृष्ठ.

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

वर्ष ३ खण्ड २	सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर श्रावण संवत् १९८७	अंश ५ पूर्ण अंश ३५

पुष्पोपहार

श्री मैथिलीशरण गुप्त

कृपा करो हे मालाकार !
चुन लो, मुझे न छोड़ो कल पर, पल में प्रलय-पसार ।

× × ×

फूल रहा हूँ फुलवाड़ी में,
मधु-संचार अभी नाड़ी में,
झड़ न पड़ूँ मैं इस झाड़ी में
सह न स्वयं निज भार ,
कृपा करो हे मालाकार !

पवन झटककर पटक पछाड़े,
कण्टक-दल उज्ज्वल पट फाड़े,
और पंक मेरा मुँह माड़े,
क्या यह उचित उदार ?
कृपा करो हे मालाकार !

उपयोगी जीवन जीवन है,
प्रस्तुत यह मेरा तन-मन है,
प्रभु-पद-रज ही सबका धन है,
मैं उसका उपहार ।
कृपा करो हे मालाकार !

विजय की ओर—

"हमारी यह मातृभूमि अपनी गहरी लम्बी नींद से जाग रही है। संसार की कोई भी शक्ति या शक्तियाँ अब इसे रोक नहीं सकतीं।"

—स्वामी विवेकानन्द

स्वाधीनता की प्रतिज्ञा

"हमारा विश्वास है कि दूसरे देशवासियों की तरह हिन्दुस्थान के लोगों का भी अटल अधिकार है कि वे स्वाधीन रहें और अपनी मिहनत का फल भोगें तथा जीवन की आवश्यक सामग्री से सम्पन्न रहें, ताकि वे उन्नति का पूरा अवसर पा सकें। साथ ही, हमारा यह भी विश्वास है कि यदि कोई सरकार लोगों को उनके अधिकार से वञ्चित करती है और उनपर जुल्म करती है, तो लोगों को यह भी अधिकार है कि वे उसमें फेर-बदल करें या उसे मिटादें।"

"भारत की अंग्रेजी सरकार ने हिन्दुस्थानियों को न केवल उनकी स्वाधीनता से वञ्चित कर दिया है, बल्कि वह जनता के शोषण के आधार पर ही बनी है और उसने हिन्दुस्थान को आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। इसलिए हम मानते हैं कि हिन्दुस्थान को अवश्य ही ब्रिटिश सम्बन्ध त्याग देना चाहिए और पूर्ण स्वराज्य या पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनी चाहिए।"

यही वह प्रतिज्ञा है, जो अपने बूढ़े और जवान नेता (गाँधी और जवाहर) के नेतृत्व में भारत ने की है। राष्ट्रीय महासभा में स्वाधीनता का प्रस्ताव तो ३१ दिसम्बर की समाप्ति और पहली जनवरी के आरम्भ की सन्धि पर ही, ठीक मध्य-निशा में, पास हो गया था; पर राष्ट्र ने, भारत के जन-साधारण ने, नगर-नगर एकत्र होकर, प्रथम स्वाधीनता-दिवस इसी प्रतिज्ञा के साथ २६ जनवरी को मनाया। सच तो यह है कि स्वाधीनता का अपना लक्ष्य निश्चित कर लेने के बाद उस ओर क्रियात्मक रूप से यही प्रथम पदार्पण हुआ। इस दिन के जलूस और राष्ट्रीय ध्वजा-स्थापन के लिए राष्ट्रपति का स्पष्ट आदेश था—सरकार से इजाजत न ली जाय। यही नहीं, उन्होंने यह भी आज्ञा दी थी कि इस प्रतिज्ञा को लेने के लिए होनेवाली सभा यदि १४४ दफा लगाकर रोकी जाय तो सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करके भी ऐसी सभा अवश्य की जाय। इस प्रकार सरकारी आतङ्क के प्रति उपेक्षा पैदा करने का, इस संग्राम में, यह प्रथम कार्यक्रम था; और यह प्रतिज्ञा स्वाधीनता की हमारी पहली प्रतिज्ञा है, जिसे या तो हमें पूर्ण करना है अथवा इसपर मर मिटना है। स्वाधीनता या मृत्यु—बस, यही इस समय भारत का ध्येय है; बीच का कोई रास्ता नहीं है।

प्रतिज्ञा का औचित्य

गुलामी एक ऐसा बड़ा पाप है, जिसकी समानता (Parrarel) मिलना असम्भवप्राय है। इसके कब्जे में पड़े नहीं कि इसने अपना मोह फैलाया। और तो और, गुलामी अपने गुलाम को मानसिक दृष्टि से भी निकम्मा कर देती है! गुलामी के मोह में पड़ा व्यक्ति कुछ दिनों में यही समझने लगता है कि ओह, हम तो बड़े आराम में हैं—जिस तरफ़ नकेल घुमाई जाती है, हम भी घूम जाते हैं; हमें किसी बात की फ़िक्र तो नहीं करनी पड़ती! उसकी मानों ऐसी स्थिति हो जाती है, जैसे कुछ

समय तक बीमारी में असहाय पड़ा व्यक्ति यह सोच-कर सन्तोष किया करने लगता है कि यदि ऐसे ही बीमार पड़ा रहूँ, अच्छा न भी होऊँ, तो क्या बुराई है; पाखाना-पेशाब, हिलने-डुलने तक के लिए तो मुझे परिश्रम करना ही नहीं पड़ता, ऐसा आराम अच्छा होकर भला मैं कहाँ पाऊँगा ? आश्चर्य यही है कि इस बात का कोई ख़याल नहीं करता कि जैसे ऐसे बीमार के पास का द्रव्य समाप्त हो जाने पर आम तौर पर कोई उसे नहीं पूछता और फिर उसे इधर-उधर पड़-गिरकर कुत्ते की मौत मरना पड़ता है, वैसे ही गुलामी के मोह में पड़े व्यक्ति का भी एक दिन बुरा हाल होता है—गुलामी से जब उसके रक्त का एक-एक बिन्दु चुस जाता है, तब गुलाम को कुत्ते की मौत ही मरना पड़ता है, आराम की उसकी ख़ामख़याली उस वक़्त न जाने कहाँ हवा हो जाती है और उसे अकेला तड़पने और मर-मिटने को छोड़ जाती है !

काफ़ी लम्बी गुलामी के कारण भारत में भी यदि बहुतों की ऐसी मनोवृत्ति हो गई, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ! यही कारण है, भारत की राष्ट्रीय आत्मा जब अपनी आज़ादी के लिए तड़पती है तो भारत के भी कुछ लाल उसका विरोध करने को तैयार हो पड़ते हैं अथवा उसका मज़ाक़ उड़ाते हैं। बहादुरी की बू भी न होते हुए विविध बहादुरी के पुछल्ले अथवा और कई थोथी उपाधियाँ धारण कर जो लोग समाज का भूषण और स्तम्भ होना अपना जन्मसिद्ध स्वत्व-सा मानने लगते हैं, हालांकि वास्तव में वे होते हैं वही दासता के मोह में फँसकर अन्ध-गुलाम बन जाने वाले क्रीत-दास, ऐसे ही लोग ख़ास कर ऐसा करने का श्रेय सम्पादन करते हैं। जब-जब आज़ादी की, अपने पैरों पर खड़े होने की ओर उसके लिए कष्ट-सहन के आह्वान की बात उठे, ऐसे लोगों का भय से काँप उठना स्वाभाविक है। वस्तुतः उनकी समझ ही में नहीं आता कि क्या करें ? वे सोचते हैं—'लड़ाई ! अरे, उसमें तो जेल, मार-पीट, यहाँ तक कि गोली भी चल सकती है। बाप रे बाप ! हम मर गये तो ?' मानों वे अमरता का पट्टा ही न लिखा लाये हों—और मानों उनकी ज़िन्दगी इतनी बढ़िया चीज़ है कि देश की आज़ादी के लिए भी वह कुर्बान नहीं हो सकती !!

परन्तु क्या इसीलिए हमें इस नरक में पड़े रहना चाहिए ?

"हमारी प्रबल इच्छा है कि हमारी आत्मा उन्नत हो," आयर्लैण्ड के उस अमर शहीद मैक्स्विनी के शब्दों में कहें तो, "इसीलिए हम स्वाधीनता का दावा करते हैं।" मैक्स्विनी का कहना है—"जीवन-संग्राम के लिए परमात्मा ने मनुष्य को कुछ आत्मिक और शारीरिक शक्तियाँ दे रक्खी हैं। यह बात मनुष्य तथा समाज के लिए बहुत आवश्यक है कि इन शक्तियों का विकास करने और योग्यतापूर्वक अपना कर्तव्य निबाहने के लिए इनसे पूरा काम लिया जाय। स्वाधीन राष्ट्र में प्रत्येक मनुष्य और समाज को पूरी उन्नति करने के लिए सन्धि मिल जाती है, जब कि पराधीन राष्ट्र में ठीक इसका उलटा होता है।" उन्हींके शब्दों में कहें तो, "दास देश में दोष फूलते और फलते हैं। जो आदमी यह बात भली-भाँति हृदयंगम कर लेता है, उसके लिए इसके विरुद्ध लड़ने के सिवा और चारा ही नहीं रहता।"

यही हमारी स्वाधीनता की प्रतिज्ञा का औचित्य है। मुसलमानों की गुलामी से ऊबकर हमने सोचा था, शायद यही ख़राब हों, और किसीकी गुलामी में शायद हमारी कुशलक्षेम होगी। इसीलिए हमने अंग्रेजों का आश्रय पकड़ा और मुसलमानी गुलामी का परित्याग कर इनकी लुभावनी गुलामी में आ

गये। मानों लोहे के पिञ्जरे से सोने के पिञ्जरे में कोई विशेष आराम मिलता-हो ! लेकिन सत्य छिपा नहीं रहता; नक़ली चीज अपनी ऊपरी तड़क-भड़क से कुछ समय के लिए दूसरी भले ही दीखने लगे, पर एक न एक दिन असली पोल खुल ही जाती है। डेढ़सौ वर्ष की अंग्रेजी गुलामी ने ऊपर से अपने मोह में डाले रखते हुए भी हमें जिस निकृष्टता को, जिस निकम्मेपन को, जिस अधमता को पहुँचा दिया, उसे अब हम महसूस करने लगे हैं। मुसलमानों की गुलामी से भी अंग्रेजों की गुलामी ने हमें ज्यादा बदतर, ज्यादा हीन, ज्यादा कंगाल, ज्यादा पंगु बना दिया है—सच तो यह है कि दीन-दुनिया के ही नाक़ाबिल हम बन गये हैं ! यही कारण है, अब हमारे ऊपर छाया हुआ मोह-पाश हट गया है; चाहे देर से ही क्यों न हो, पर अब हमने इस बात को भली-भाँति समझ लिया है कि जैसे पिंजरा चाहे लोहे का हो या सोने का, है वह पिंजरा ही, इसी प्रकार गुलामी भी चाहे किसी देश या जाति की क्यों न हो, है वह भी गुलामी ही। इसीलिए आज हमारा देश स्वाधीनता के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हुआ है, और भारतीय जनता स्वाधीन होने के लिए प्रयत्नशील है। निस्सन्देह स्वाधीनता का रास्ता खतरों से खाली नहीं, पर स्वाधीनता के योद्धाओं को खतरों की पर्वाह भी तो नहीं होती !

सरकार की हड़बड़ाहट

सरकार क्या है ? वस्तुतः सरकार या शासन वह तंत्र है, जिसे उस समूह या परिधि के निवासी अपनी सुविधा, अपनी रक्षा, अपनी सुव्यवस्था के लिए मिल-जुलकर अपनी इच्छा और अनुमति से स्थापित करते हैं। राजतंत्र हो या प्रजातंत्र अथवा कोई अन्यतंत्र, वैध शासन वही है, जो जनता की रजामन्दी से, जनता के लिए और जनता के ही द्वारा सञ्चालित हो। ऐसे ही शासन को प्रजा अपना सहयोग और अपनी वफादारी प्रदान करती है; इससे विरुद्ध शासन को बर्दाश्त करना न उचित ही है, और न प्रजा का धर्म। जो शासन अपने लक्ष्य से विचल कर कार्य करे, जन-सेवक के बजाय जन-पीड़क बनने की ओर मुखातिब हो, प्रजा का फर्ज है कि उसे रास्ते पर लाने की कोशिश करे; यदि इसपर भी वह न सम्हले, तो प्रजा को पूरा हक़ है, उसका यह धर्म हो पड़ता है, कि जिस तरह भी हो वह ऐसे शासन का जल्दी-से-जल्दी अन्त कर दे। शासन स्वयं ध्येय नहीं है, वह तो प्रजा की सुव्यवस्था का एक साधन-मात्र है; और साधन में समयानुकूल परिवर्तन करना, एक का परित्याग कर किसी नये साधन का ग्रहण करना, उस साधन का व्यवहार करने वालों का परम-पवित्र और जन्मसिद्ध स्वत्व है। राज्य प्रजा के लिए होता है, न कि प्रजा राज्य के लिए; अतएव राज्य कर्ताओं की ग़लतियों से राज्य और प्रजा के बीच जब संघर्ष उपस्थित हो, तब प्रजा के बजाय राज्य के प्रति द्रोह ही जन-साधारण का कर्तव्य होता है।

ऐसी ही कुछ स्थिति इस समय हमारे देश में हो रही है। सरकार न केवल विदेशी ही है, बल्कि वह हम भारतवासियों की इच्छाओं, सुविधाओं, हितों आदि के प्रति लापर्वाह भी है; वह तो बिना हमारी रजामन्दी के, हमारी अपेक्षा शायद अपने देश-वासियों (अंग्रेजों) के लिए, और उन्हींकी धाक से हमपर अपना शासन-चक्र चला रही है। वह जबरदस्ती हमपर शासन करना चाहती है, क्योंकि हमें गुलाम बनाये रखने से उसके देश इंग्लैण्ड का लाभ है और उसका राज्य साम्राज्य बनता है। पर भला कोई राष्ट्र सदा के लिए अपने पर ऐसा होने दे सकता है ? भारत ही भला क्यों ऐसा होने दे ?

इसीलिए भारत आज उठ खड़ा हुआ है, अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने का उसने निश्चय कर लिया है, और हमारी विदेशी सरकार हड़बड़ा गई है। पहलेपहल तो वह यही समझती रही कि ब्रिटेन के फ़ौलादी शासन का निःशस्त्र भारतीय क्या कर सकते हैं, कर लेने दो खिलवाड़ इन्हें! पर भारतीय जनता के दृढ़ निश्चय और कष्ट-सहन ने शीघ्र ही उसे चौंका दिया। उसने देखा, अरे, ये तो बढ़ रहे हैं! तब वह सख्ती पर आई, पर नतीजा कुछ न हुआ। खिझलाकर उसने असाधारण उपायों का अवलम्बन शुरू किया। कुछही दिनों में हमने देखा, साधारण क़ानून ही नहीं 'आर्डिनेंस'-रूपी विशेष क़ानूनों की एक के बाद एक झड़ी लगने लगी। अखबारों पर अंकुश लगा, भाषण, सभाओं, शान्त पिकेटिंग पर भी अंकुश लगाये गये। जेल, जुर्माना, मार पीट आदि नीच से नीच और ऐसे उपायों का अवलम्बन आम बात हो गई, जिन्हें बड़े-से-बड़े क़ानूनदाँ भी ग़ैरक़ानूनी बता रहे हैं। पर स्वाधीनता के लिए प्रतिज्ञाबद्ध भारतीय सिर्फ़ हँसे और एक के बाद एक लोहा लेते ही चले जा रहे हैं। वे यद्यपि सत्य और अहिंसा पर क़ायम हैं, फिर भी संसार को उन्होंने चौंका दिया है। हजारों अबतक जेल जा चुके हैं, क्रूर और निर्दय ग़ैरक़ानूनी मार न केवल पुरुषों ने बल्कि गर्भवती स्त्रियों तक ने बड़ी प्रसन्नता और बड़े उत्साह के साथ सही है। इन सब बातों ने हमारी सरकार को भौंचक कर दिया है। ऐसा मालूम होता है, उसकी समझ ही में नहीं आ रहा है कि वह क्या करे और क्या नहीं करे। यह भी बात सही है कि वह कुछ झुकने को भी तैयार है, और शायद झुक भी जाय। वाइसराय लार्ड इरविन की राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस की घोषणा पर लोग आशायें लगा भी रहे हैं। पर क्या यह ठीक है?

राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस

राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस एक समय भारत भी चाहता था, और उचित समझौते के लिए वह आवश्यक भी है; परन्तु ऐसी राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस नहीं, जैसी कि घोषणा की गई है। भारत ने स्वाधीनता से पहले औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग रक्खी थी, बरसों से कांग्रेस इसके लिए प्रस्ताव पास करती रही है, स्वयं असेम्बली में भी राष्ट्रवादियों के प्रयत्न से इसके लिए प्रस्ताव पास हो चुका है; परन्तु ब्रिटिश सरकार इसके लिए भी तैयार नहीं। बार-बार कहा गया कि राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस यदि हो तो उसका कार्य विधान ऐसा तैयार करना ही हो कि जिससे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य मिलता हो, यह दूसरी बात है कि शासन-परिवर्तन अच्छी तरह होने के लिए बचाव के कुछ साधन अख़्त्यार किये जायँ। लेकिन मिला वही सूखा जवाब, कि ऐसा वचन नहीं दिया जा सकता; कान्फ्रेंस होगी जरूर, पर पहले से ही यह नहीं कह सकते कि वह अमुक ही विचार करेगी! साथ ही साइमन-कमीशन की रिपोर्ट ने निकलकर नया ही गुल खिलाया, उसने औपनिवेशिक के बजाय संघात्मक शासन की सिफ़ारिश कर आशा पर और भी पानी फेर दिया। वही हिसाब हुआ, जैसे कि यूरोपीय महासमर की सेवाओं के बदले में बड़ी-बड़ी आशायें बाँधने पर पंजाब-हत्याकाण्ड उपस्थित हुआ था! वाइसराय की घोषणा के शब्दों को तोड़-मरोड़ कर कुछ लोग भले ही उससे यह अर्थ निकालने की कोशिश करें कि कान्फ्रेंस में साइमन-कमीशन की रिपोर्ट का प्राधान्य न होगा, लेकिन इंग्लैंड से आने वाली खबरों और स्वयं भारत-सरकार के जिम्मेदार सदस्यों के भाषणों से जाहिर है कि कान्फ्रेंस का मुख्य आधार वही रिपोर्ट रहेगी, जिसको भारत

एकस्वर से निन्दा कर चुका है। फिर जिस हृदय-परिवर्तन की महात्माजी ने अपील की थी, और जिस सहानुभूति वृद्धि के लिए स्वयं सम्राट् ने अपने भाषण में आवश्यकता बताई है, वह कहाँ है? सरकारी नीति दिन-पर-दिन अधिकाधिक काली होती जाती है। मोहक शब्दों का आवरण वह चाहे डाले, पर हमें तो दिन दिन उसका नग्न रूप ही सामने आता दिखाई दे रहा है। दमन और अत्याचार का जैसा दौरदौरा आज चल रहा है, क़ानून-रक्षक ही जिस धड़ल्ले से क़ानून की अवज्ञा कर रहे हैं, उसे आज कौन नहीं जानता? क़ानून तोड़ने पर गिरफ्तार किया जा सकता है, पर लाठियों की मार किस क़ानून में जायज़ है? गाँधी-टोपी पहनने पर सजायें देना और भरे इजलास में मजिस्ट्रेट के हुक्म से किसीके सिर पर से गाँधी-टोपी उतरवा कर जलवा देना कौनसे क़ानून की बात है? दिल्लगी यह कि एक तरफ़ राउण्ड टेबल कांफ्रेंस की योजना है, दूसरी ओर यह नीति बढ़ ही रही है! क्या ऐसा वातावरण शान्ति और सममौते के लिए होने वाली राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस के उपयुक्त हो सकता है?

फिर यह भी तो विचारणीय है कि कान्फ्रेंस में जायँगे कौन? दुनिया की नजर में भारत और गाँधी एक दूसरे से जुदा न होने वाली दो चीजें हैं। गाँधी के निवासन में रहते, और भारत के हजारों सम्मान्य पुत्र-पुत्रियों के जेल में बन्द रहते, बिना उनके क्या कान्फ्रेंस हो सकती है? सरकार चाहे इस बात को महसूस न करे, पर जो भारत के प्रतिनिधि होकर जाना चाहें वे तो सोचें कि वे किस मुँह से उसमें शरीक होंगे? दुनिया क्या कहेगी? और स्वयं उनकी आत्मा ही क्या कहेगी?

हमारा कर्त्तव्य

ऐसी दशा में हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। जब हम समझते हैं कि ऐसी कान्फ्रेंस उपयोगी नहीं हो सकती, तब उसमें भाग लेने ही से क्या फायदा? कष्ट जल्द समाप्त हों, यह तो सब चाहते हैं; पर, बक़ौल महात्माजी, यह भी तो हमें ध्यान रखना चाहिए कि "शहीदों के खून के बिना स्वतंत्रता का मन्दिर निर्मित नहीं होता।" और बक़ौल हमारे सरदार पटेल के अभी हमने स्वाधीनता के लिए पूरा बलिदान दिया ही कहाँ है?

"हमारी स्वाधीनता का दावा किस बुनियाद पर है?"—मैज़िनी का अनुसरण करके कहें तो, "बालकों के स्वाभाविक उत्साह और वृद्धों के अनुभव पर।" बालकों का उत्साह सदा निर्मल-विशुद्ध होता है, और वृद्धों का अनुभव स्पष्ट बताता है कि किस प्रकार भारत का सारा अंग्रेजी राज्य असत्य, छल-कपट और कूटनीति पर स्थापित है। ऐसी दशा में हमारा तो केवल यही कर्तव्य है कि मछली पकड़ने के लिए इधर-उधर डाले जानेवाले जालों में फँसकर अपनेको किसी का भक्ष्य बनाने के बजाय हम उन जालों को तोड़ने ही का प्रयत्न करें। स्वाधीनता का जो पथ हमने चुना है, बस, हमें तो उसपर बढ़ते ही चले जाना चाहिए!

सत्य और अहिंसा

भौतिक दृष्टि से चाहे हम निःशस्त्र हैं, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि सत्य और अहिंसा के जबरदस्त ईश्वरीय अस्त्र हमारे पास हैं। 'सत्यमेव जयति नानृतम्'—यह हमारे प्राचीन पूर्वजों का अनुभव है; और 'अहिंसा परमो धर्मः' हमारे शास्त्रों का निर्णय है। इन्हींका युगल संयोग महापुरुष गाँधी ने हमारे लिए किया है। यही हमारी नीति है, यही रीति है, और यही अस्त्र-शस्त्र। सशस्त्र क्रान्ति भी हमारा हक़ है, पशुबल का उपयोग सरकार की तरह चाहें तो हम भी कर सकते हैं; लेकिन दुनिया में हक़ ही

सब-कुछ नहीं हुआ करते, संसार वास्तव में कर्तव्यों पर ही स्थित है; और हमारा वर्तमान कर्तव्य सत्य और अहिंसा के युद्ध का ही आदेश करता है। बात भी ठीक है। बदमाश को बदमाशी से वही जीत सकता है, जो उससे बड़ा बदमाश हो। चालाकी और पशुबल में बढ़ी हुई सरकार को यदि इन्हीं अस्त्रों से जीतना हो, तो उससे अधिक चालाक और पशुबल-प्रधान होना आवश्यक है। पर क्या हम ऐसे हैं? यदि नहीं, तो फिर उसी उपाय से उसे क्यों न जीता जाय कि जो ईश्वरीय है और जिसमें वह हमसे कमज़ोर है? इसीलिए सत्य और अहिंसा के हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं, और भड़कीले से भड़कीले वातावरण में भी हमें इन्हींपर क़ायम रहना है। "अत्याचारी लोग," शहीद मैक्स्विनी ने बिलकुल ठीक कहा है, "सत्य के इन सैनिकों को तंग कर सकते हैं, देश-निकाला दे सकते हैं, फाँसी पर लटका सकते हैं, पर स्वतंत्रता का नाश नहीं कर सकते।" उन्हींके शब्दों में कहें तो,

"बस, इस संग्राम का परिणाम पूरी विजय है। दृढ़-प्रतिज्ञ और सच्चा आदमी अन्त में अवश्य विजयी होता है। शब्द-जाल उसे मैदान से नहीं भगा सकता, किसी प्रकार की दुर्बलता उसे पाशविक प्रतिहिंसा की ओर नहीं झुका सकती; × × प्रत्येक सङ्कट में वह अविचलित रहता है, और प्रत्येक कार्य उसकी शुद्धता का परिचय देता है।"

विजय की ओर—

नहीं कह सकते कि वह शुभ दिन कब होगा, जब हम विजय प्राप्त कर लेंगे; परन्तु हम बढ़ उसी तरफ रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं। सबसे पहले, इस राज्य में, हमने अपनी आवाज़ उठाई थी उस सन् सत्तावन में, जिसे कि आम तौर पर विद्रोह का साल कहा जाता है। दुर्भाग्यवश उसमें भारत को सफलता न मिली, लेकिन वह भाव मरा नहीं; आग जो सुलगी थी, वह अभीतक धधकती ही चली आ रही है। इसीलिए बीच-बीच में छोटे-मोटे कई प्रयत्न इस दिशा में होते रहे, और अन्त में यह बृहत् एवं संगठित प्रयत्न शुरू हुआ है। संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गाँधी इस समय हमारा मंत्र-दाता है, कर्मण्य और वीर युवक जवाहर हमारा अगुआ, और सत्य-अहिंसा के ईश्वरीय अस्त्र हमारे मददगार। ईश्वर का वरदहस्त हमारे सिर पर है, संसार की पवित्र आत्मायें हमें प्रेरणा कर रही हैं, और अपना शुभ उद्देश्य हमारे साथ है। भारत के नर-नारी, बूढ़े, जवान और बच्चे तक अपने रक्त और हड्डियों से स्वाधीनता के मन्दिर का निर्माण करने के लिए जूझ पड़े हैं। तिमिर नष्ट हो रहा है, उषा अपनी लालिमा से आकाश को अरुणिमामय बना कर शुभ्र प्रकाश की पूर्वसूचना दे रही है; वह भगवान भुवन-भास्कर चले आ रहे हैं। वह देखो, उधर एक ओर स्वाधीनता का मन्दिर निर्मित हो रहा है, जिसपर शहीदों के खून से लिखा जा रहा है — *स्वतंत्र भारत !* अब विलम्ब की जरूरत नहीं। विजय की देवी माला लिये हमारी प्रतीक्षा में खड़ी है; बस जरूरत है यही कि हम किसी माया-जाल में फँसे बिना इसी दृढ़ता और साहस के साथ आगे बढ़ते रहें, जबतक कि लक्ष्य पर न पहुँच जायँ।

वन्देमातरम् !

मुकुटबिहारी वर्मा

सत्ता, शक्ति और नीति

[श्री 'सतनामी']

(१)

तत्वतः 'सत्ता' शब्द का अर्थ है अस्तित्व। और अस्तित्व का अर्थ है केन्द्रीभूत स्थापक शक्ति (Static force)। भौतिक विज्ञान के अनुसार यह स्थापकशक्ति आदितत्व 'ईथर' (Ether) की आवर्तगति का (Vertex Motion) केन्द्र है। तथा अध्यात्मशास्त्र के अनुसार आत्मा का केन्द्रस्थ अधिकार ही सत्ता है। स्थापकशक्ति के कारण इन्धक में भिन्न-भिन्न तत्व और उनसे असंख्य पदार्थ उत्पन्न होकर यह विविध सृष्टि हुई है। और सत्ता से आत्मा में व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राज्य इत्यादि व्यष्टि-समष्टियाँ स्थापित हुई हैं। यह केन्द्रस्थ शक्ति अनेक परमाणुओं को अथवा अनेक घटकों को केवल संगठित करके किसी घटना को केवल अस्तित्व में ही नहीं लाती, अपितु उन घटकों पर अपना अधिकार भी चलाती है। यह अर्थ राजकीय घटनाओं में विशेषतः स्पष्ट होता है। राज्य में यद्यपि अधिकारीवर्ग का संगठन समष्टिरूप से उस राज्य की सरकार कहलाती है तथापि राजा, सीनेट, पार्लमेण्ट, डिक्टेटर इत्यादि राज्य के तथा सरकार के भिन्न-भिन्न केन्द्र होकर उस राज्य का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। यही राजकीयसत्ता के केन्द्र कहलाते हैं और इन्हीं केन्द्रों से राजकीय सत्ता का विकास (Radiation) होकर अधिकारीवर्ग बनता है। अर्थात् अस्तित्व और अधिकार इस रूप से सत्ता के रूप में दिखाई देते हैं।

(२)

सत्ता अथवा अस्तित्व के बिना शक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होता, तथापि यह भी नित्य देखने में आता है कि शक्ति से ही जहाँ-तहाँ सत्ता स्थापित होती है। अर्थात सत्ता और शक्ति एक ही सामर्थ्य के दो रूप हैं। सत्ता स्थापकशक्ति (static force) है तो शक्ति गतिशील सत्ता (dynamic force) है। सत्ता साधक है तो शक्ति उसका साधन है। सत्ता में जितना अधिक सामर्थ्य होगा उतनी ही उसकी शक्ति अधिक बलवान होगी। आक्रमण अथवा विरोध किंवा संरक्षण में विशेषतः सत्ता का शक्ति-रूप प्रकट होता है।

(३)

परन्तु इस सामर्थ्य का—जो सत्ता और शक्ति का माध्यम अथवा आश्रय माना गया है—क्या स्वरूप है, इसका निश्चय करना आवश्यक है। हम प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक व्यवहार में, नित्य अनुभव करते हैं कि जहाँ-जहाँ शक्ति अथवा गति का नियमबद्ध उपयोग किया जाता है वहाँ-वहाँ उस शक्ति अथवा गति की प्रेरणा और उसका संचालन ज्ञान-कला को करना पड़ता है। ज्ञान के बिना कोई भी नियम नहीं बनता। इसीपर से यह सिद्धान्त भी उपस्थित होता है कि इस नियमबद्ध प्रकृति का—जिसे 'नेचर' (Nature) अथवा निसर्ग कहते हैं—आधार किंवा उसका संचालक ज्ञानशक्ति ही होना आवश्यक है। सत्ता अथवा अस्तित्व का आविर्भाव भी ज्ञान में ही होता है। ज्ञान बिना अस्तित्व की प्रतीति ही नहीं है, और जहाँ अस्तित्व नहीं वहाँ किसी भी सत्ता का प्रभाव नहीं हो सकता; एवं सत्ता और शक्ति का आश्रय ज्ञान है। और ज्ञान ही वह सामर्थ्य है, जिसके सत्ता और शक्ति दो अंग हैं।

(४)

अध्यात्मशास्त्र के अनुसार तथा विज्ञान के अनुसार यह सृष्टि द्विविधा है—एक चेतन सृष्टि, दूसरी जड़। विज्ञान कहता है—पदार्थों का अस्तित्व केवल भार-रूप है और भार केवल आकर्षण-शक्ति (Gravity) का विलास है। अर्थात् अखिल जड़-सृष्टि मूलतः केवल शक्ति-रूप है। और जब कि शक्ति ज्ञान का ही एक अंग है तो यही मानना पड़ता है कि ज्ञान ही घन होकर शक्तिरूप बनता है। हम नित्य अनुभव करते हैं कि किसी कल्पना का जितना ही अधिक से अधिक मनन और निदिध्यास करते हैं उतनी ही वह दृढ़ होती चली जाती है। यह दृढ़ता ही उस कल्पना

को कभी-कभी स्वप्नावस्था में जड़-रूप में दिखाती है और कभी प्रत्यक्ष व्यवहार में कार्य-रूप में प्रकट होती है। जिस मनन और निदिध्यास से वह दृढ़ता उत्पन्न होती है वह केवल अभ्यास है। और अभ्यास का अर्थ है, एक ही बात को पुनः पुनः कई बार दुहराना अथवा आवर्तन। एक ही केन्द्र में परिभ्रमण करते रहने से आवर्तन होता है। आवर्तन केवल एक गति है। तथापि वह नित्य एक ही केन्द्र में होती रहने से नियमबद्ध होती है। और इस नियमबद्धता ही से गति में शक्ति उत्पन्न होती है। अर्थात् नियमबद्ध गति ही शक्ति है। ज्ञान को नियमबद्ध गति प्राप्त होने से ही उसमें शक्ति उत्पन्न होकर जड़त्व प्राप्त होता है। सारांश जड़त्व अथवा जड़सृष्टि अभ्यास का परिणाम है और अभ्यास ज्ञान की नियमबद्ध गति है। इसी कारण जड़-सृष्टि प्रकृति के नियमों से बद्ध है; किन्तु अखिल जड़-सृष्टि को प्रकृति, निसर्ग किंवा 'नेचर' (Nature) ही कहते हैं।

(५)

शक्ति अथवा प्रकृति का मूल कारण जो आवर्त-गति (Recurring force) है वह नित्य वृत्ताकार होती है। वृत्त के मुख्य दो अंग होते हैं। एक केन्द्र और दूसरा परिधि। केन्द्र यद्यपि बिन्दुमात्र है तथापि परिधि उसीका विस्तार है। केन्द्र की विकास रेखायें परिधि की त्रिज्यायें होती हैं। यद्यपि परिधि को केन्द्र से ही गति प्राप्त होती है तथापि केन्द्र स्थिर रहता है। इसी कारण केन्द्रस्थ शक्ति को सत्ता, स्थायक-शक्ति (Static force) कहते हैं। और परिधिरूप शक्ति सत्ता का विकास है। केन्द्रस्थ सत्ता गुप्त रूप से रहती है और परिधि में वह गति और शक्ति-रूप से प्रकट दिखाई देती है। केन्द्र परिधि का आश्रय और संचालक है तो शक्ति का आश्रय और संचालक ज्ञान है। और जब परिधि और शक्ति एकरूप है तो केन्द्रस्थ सत्ता का भी ज्ञानरूप होना अनिवार्य है। अध्यात्म शास्त्र कहता है कि प्रत्येक जड़ पदार्थ में केन्द्रस्थ सत्ता ज्ञान-रूप ही है, यद्यपि वह गूढ़ रहती है। गूढ़ रहने का कारण यह है कि जड़ पदार्थ में केन्द्रस्थ ज्ञान-सत्ता जड़ अज्ञा-रूप से ही रहती है। अतएव चेतनता प्रकट नहीं दीखती।

(६)

विकास-विज्ञान (Evolution theory) का यह अभिप्राय है कि विकास नित्य आवश्यकतानुसार होता है। हमारे पास नेत्र हैं, इसका कारण हमें देखने की आवश्यकता है; न कि हमारे नेत्र हैं, इस वास्ते हम देखते हैं। इसमें कौन सन्देह कर सकता है कि आवश्यकता का आविर्भाव ज्ञान में ही हो सकता है, जड़ में कोई आवश्यकता नहीं है। अर्थात् विकास-विज्ञान के अनुसार भी जड़-विकास के मूल में ज्ञान की ही प्रेरणा है। यह प्रेरणा वही है, जिसका उल्लेख ऊपर ज्ञान-सत्ता के नाम से किया है। केन्द्रस्थ सत्ता ज्ञानरूप है और शक्ति अथवा जड़सृष्टि-रूप परिधि उसीका विकास है, तो इन्हींमें से मनुष्य, कुटुम्ब, समाज, राज्य, साम्राज्य, व्यवहार, नीति, धर्म, तत्वज्ञान इत्यादि ज्ञानमय घटनाओं और सिद्धान्तों का विकास होना स्वाभाविक है। अखिल विश्व चेतन अथवा ज्ञानमय है तो भौतिक सृष्टि और भौतिक शक्ति ज्ञान का ही घनत्व है। अर्थात् सर्व जड़-सृष्टि और भौतिक शक्ति की उत्पत्ति ज्ञान से है और निर्माण-कर्म का अधिकार ज्ञान का ही है। सत्ता वही है, जिसमें निर्माण करने की शक्ति हो, जो भौतिक शक्ति को भी निर्माण करती है तथा उसका संचालन भी करती है।

(७)

सृष्टि में दो प्रकार की शक्तियाँ काम कर रही हैं। एक सत्ता और दूसरी (भौतिक) शक्ति। पहली चेतन है तो दूसरी जड़ है। पहली कर्ता और भोक्ता है तो दूसरी साधन एवं भोग्य विषय है। पहली निर्माण-कर्म और पुरस्कार करती है तो दूसरी संहार और प्रतीकार करती है। परन्तु निर्माण-कर्म और पुरस्कार तथा संहार और प्रतीकार दोनों का संचालन करने वाली ज्ञान-शक्ति तीसरी है। यह सत्ता और शक्ति में भी आरम्भ से गूढ़ रूप में रहती है। परन्तु प्रकट दोनों के पश्चात् होती है। किन्तु यह कह देना मिथ्या नहीं है कि यह तीसरी ज्ञान-शक्ति सत्ता और शक्ति को निर्माण भी करती है। इसे नीति अथवा नैतिक शक्ति कहते हैं। स्वाभिमान तथा संयम, ये दोनों प्रेरणायें नैतिक शक्ति के हाथ हैं। वह निर्माणशक्ति का उपयोग करेगी तो

शाश्वत सुख और कल्याण के वास्ते; वह संहार-शक्ति का उपयोग करेगी तो शाश्वत सुख और कल्याण के वास्ते; और वह सत्ता और शक्ति का त्याग भी करेगी तो अंतिम धार्मिक और तात्त्विक सिद्धान्त अपनाने के वास्ते। यह नैतिक शक्ति सत्ता और (भौतिक) शक्ति दोनों का संचालन करने वाली है। अर्थात् प्रत्येक अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति को शाश्वत और श्रेष्ठतम कल्याणकारी बनाने की कुशलता ही नीति का मुख्य स्वरूप है। अतएव सत्ता और शक्ति प्रस्थापित होने के पश्चात वह प्रकट होती है। तथापि गूढ़ रूप में आरम्भ से भी रहती है। यदि सत्ता के आरम्भ में ही नीति गूढ़रूप से न हो तो श्रेष्ठ और उन्नतिकारक घटनाओं का निर्माण नहीं होता।

(८)

तात्पर्य, सत्ता से शक्ति उत्पन्न होती है और शक्ति से नीति प्रस्थापित होती है। उलटी नीति से सत्ता स्थापित होती है और सत्ता में ही बल का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् सत्ता और नीति एक ही शक्ति की दो अवस्थायें हैं। सत्ता केन्द्रस्थ शक्ति है, अतएव आत्मबल का यही रूप और यही स्थान है। यह सामर्थ्य आत्मा का ही है जो अपने ही अन्दर से बल को प्रकट करे तथा बाह्य उपकरणों के बल को अपने में ही संगठित करे। इतिहासज्ञ भलीभाँति जानते हैं कि गो ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी महाराज, कर्मवीर मेज़िनी, महात्मा लेनिन इत्यादि ने अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति में ही कई गुनी अधिक बलवती शक्ति का भी संहार करके राज्य-क्रान्ति कर दिखाई। यही आत्मबल अथवा आत्मिक सत्ता का प्रभाव है। आत्मबल अथवा सत्ता ज्ञानशक्ति की अव्यक्त अवस्था है तो नीति व्यक्त अवस्था है और भौतिक शक्ति जड़ावस्था है। सत्ता में नीति जितनी अधिक हो उतना उससे आत्मबल अधिक प्रकट होता है; और आत्मबल जितना अधिक हो उतना ही उसमें भौतिक शक्ति का संगठन (Assimilation) भी अधिक होता है। भौतिक शक्ति नित्य केन्द्रस्थ सत्ता का विकास है, अतएव स्वयंसिद्ध नहीं है। स्वयंसिद्ध न होने से स्वतंत्र नहीं है। केन्द्रस्थ सत्ता के आश्रय से जहाँ तक भौतिक बल का उपयोग किया जाता है, वहां तक डोर में बँधे हुए पतंग के समान वह निरंतर उन्नतावस्था को प्राप्त होता रहता है। परन्तु जब इसके विपरीत केन्द्रस्थ सत्ता उसीके विकसित रूप की—अर्थात् भौतिक शक्ति की आश्रित हो जाती है, और भौतिक शक्ति से ही अपना अधिकार चल सकता है, अपने स्वतः में कुछ भी प्रभाव नहीं है, ऐसी श्रद्धा हो जाती है, तब कटे हुए पतंग के समान वह भौतिक बल कुछ समय तक परिस्थिति रूप हवा के ज़ोर से ऊँचे-नीचे झोंके खाता हुआ थोड़े ही अवसर में किसी भी अनपेक्षित स्थान में पतित हो जाता है। कारण निर्माण-शक्ति केवल केन्द्रस्थ आत्मीय सत्ता में ही रहती है, यह ऊपर बता चुके हैं। वह जब संहारशक्ति की आश्रित हो जाती है, तब दूसरों का संहार करते-करते स्वतः संहारशक्ति का भी संहार होना अनिवार्य है। किन्तु संहारशक्ति स्वतः पराश्रित होने से वह एक केन्द्र से निराश्रित होते ही अन्य केन्द्र का आश्रय ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार भौतिक बल के केन्द्र का परिवर्तन होना ही क्रान्ति है।

(९)

सत्ताधारी और शक्तिशाली शासकों को यह विवेचन अत्यन्त उपयोगी है। सच्चा बल नीति में ही है। इतिहास मुक्तकंठ से कह रहा है कि बड़े-बड़े भौतिक बलशालियों ने भी नैतिक सत्ता के आगे मस्तक झुकाये हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि भौतिक शक्ति निरर्थक या अनावश्यक है। भौतिक शक्ति सत्ता और नीति के आश्रय से तो उपयुक्त तथा संरक्षक होती है, किन्तु सत्ता और नीति जब भौतिक शक्ति की आश्रित होती हैं तब भौतिक शक्ति दुखदायी तथा विघातक होती है। भौतिक बल निर्माण करना तो सत्ता और नीति का स्वाभाविक धर्म है, और इसी कारण भौतिक बल को सत्ता और नीति के सम्मुख पराजित होना पड़ता है। स्वर्गीय देवी अहिल्याबाई-होलकर के राज्यकाल का इतिहास इसका उत्तम साक्ष है। उस समय भारत-भर में राजकीय सत्ता के लिए सर्वत्र प्रतिद्वंद्विता हो रही थी। देशभर में राजकीय युद्धों की भरमार हो रही थी। अधिक से अधिक भौतिकशक्ति का उपयोग करके अधिक से अधिक राजकीय सत्ता हस्त-

गत करना सद्‌गुण और सौभाग्य का लक्षण माना जाता था। इस अवस्था में देवी अहिल्या-जैसी अबला के हाथ से छत्तीस वर्ष तक राज्यसूत्र किसी का न छीनना क्या आश्चर्य नहीं है? एक समय तात्कालिक महाशक्तिशाली राघोबा पेशवा ने देवी की राजधानी पर आक्रमण भी किया था। परन्तु उस समय अबला-स्वभाव के अनुसार याचवृत्ति का आश्रय लेकर पूँछ हिलाकर देवी ने अपना रक्षण नहीं किया, किन्तु निर्भीकता से सामना करके और चातुर्य से राघोबा का बलोन्माद उतार कर ही राज्य का रक्षण किया था। क्या राजनीतिज्ञ इस बात को मान लेंगे कि राघोबा पेशवा और महादजी सेंधिया-सरीखे तात्कालिक महाबलशाली भी देवी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते थे, इसका एक-मात्र कारण देवी अहिल्या की नीतिमत्ता ही था?

(१०)

तात्पर्य यह कि जब किसी शासक की यह धारणा हो जाती है कि शासितों की कोई भी न्यायोचित माँग स्वीकृत करके कोई सरकारी आज्ञा हटाने से सरकार का प्रभाव घट जाता है, तब निश्चय करना चाहिए कि उस सरकार में भौतिक बल का प्राधान्य हो रहा है, नैतिक बल का ह्रास हो रहा है। केन्द्रस्थ सत्ता का नाश हो रहा है और राजकीय क्रांति निकट आ रही है। न्यायोचित माँग स्वीकृत करने से तथा अनुचित आज्ञा रद करने से किसी का भी प्रभाव घटता नहीं, उलटे प्रभाव की वृद्धि ही होती है।
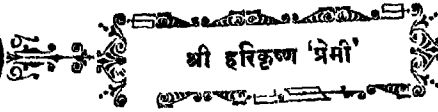
तानी नभ ने नई कमान!
अबकी सावन के मेघों ने,
गाया नूतन करुणा-गान!
चिर-दिन की चिन्ता की तान!
आज वही मेरे प्राणों से,
करती है घुल-मिल पहचान!
बरस रही है व्यथा महान!
तानी नभ ने नई कमान!

विश्व-व्यथा के बहु आख्यान—
मेघों की काली स्याही से
कवि ने अंकित किये अजान!
पढ़ कर पागल होते प्राण!
सकल जगत के अश्रु साथ उड़
नभ से बरस रहे अम्लान!
उठता मानस में तूफ़ान!
तानी नभ ने नई कमान!

गिरता है वह वज्रमहान!
चंचल चपला चमक छुरी-सी
चीर-चीर देती है प्राण!
मुँदती हैं आँखें अज्ञान!
हृदय अचानक टुकड़े टुकड़े
हो बह जावेगा अनजान!
जीवन में है कितनी जान!
तानी नभ ने नई कमान!

राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस

[श्री मुंशी ईश्वरशरण]

> भारत आज अपने मुक्ति-संग्राम में प्रवृत्त है। भारत के नर-नारी, बूढ़े और जवान, यहाँ तक कि बालक भी 'माँ' को बन्धन-मुक्त करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। ऐसे समय लार्ड इरविन ने राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स की घोषणा करके भारत को लुभाने का प्रयत्न किया है। कुछ लोग उस ओर झुक भी चले हैं। पर क्या भारतवासियों के लिए यह उचित है?
>
> मुंशी ईश्वरशरण ने, जो एक प्रसिद्ध मॉडरेट नेता हैं और पहले राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस के लिए सबसे अधिक उत्सुक थे, इसी बात का विवेचन किया है। सरकारी नीति से वह भी निराश ही हुए हैं और उनका कहना है —
>
> "एक स्वाँग और रचने से क्या लाभ? साइमन-कमीशन का स्वाँग क्या काफ़ी नहीं हुआ? इतनी जल्दी, एक के बाद दूसरा स्वाँग क्यों?"
>
> अन्त में वह कहते हैं—
>
> "× × हिन्दुस्थान सन्धि के लिए तैयार है, लेकिन उस वक्त नहीं कि जब उसका रत्न (गाँधी) निर्वासन में है और उसके पुत्र-पुत्रियाँ विभिन्न जेलों में पड़े हुए हैं।"

राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस के सम्बन्ध में जब लार्ड इरविन की प्रसिद्ध घोषणा हुई, उस समय मैं इंग्लैण्ड गया हुआ था। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के मैं निकट-सम्पर्क में था। इस घोषणा में लार्ड इरविन ने जो बड़ा भारी साहस और अनुपम राजनीतिज्ञता प्रदर्शित की, उसका मुझे कुछ पता है। साथ ही, मंत्रि-मण्डल के एक सभ्य की भाषा में कहूँ तो, भारत-मंत्री श्री वेजवुड बेन जिस बहादुरी से इसके लिए लड़े वह भी मैं जानता हूँ। इसके लिए ये दोनों ही व्यक्ति न केवल भारतवर्ष बल्कि इंग्लैण्ड के भी धन्यवाद के पात्र हैं। मैं तो मुग्ध हो गया और राउण्ड टेबल-कान्फ्रेंस का ऐसा उत्साही समर्थक बन गया कि भारतीय व्यवस्थापक सभा (असेम्बली) में मैंने लार्ड इरविन के कार्य-काल की वृद्धि का प्रस्ताव भी पेश कर डाला। दुर्भाग्य-वश इससे मुझे बड़ी ग़लतफ़हमी और भ्रम का शिकार होना पड़ा, लेकिन राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस की ख़ातिर मैंने ख़ुशी से यह सब सह लिया। जब महात्मा गाँधी ने कान्फ्रेंस में शरीक होने से इनकार किया तो मुझे उनका निर्णय अच्छा न लगा और मुझे उसपर बड़ा दुःख हुआ। सरकार ने ज़ोर-शोर के साथ दमन-नीति ग्रहण कर ली, तब भी मैं असेम्बली से अपने पद-त्याग को टालता ही रहा। क्योंकि मुझे इस बात की बड़ी फ़िक्र थी कि मेरे किसी भी काम से राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस को कोई धक्का न पहुँचे। लेकिन आख़िर मैंने असेम्बली की सदस्यता से इस्तीफ़ा दे ही दिया, क्योंकि मुझे निस्सन्दिग्ध रूप से निश्चय हो गया कि अपनी दमन नीति से सरकार ने राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस को मार डाला है।

क्या मेरा यह कहना ठीक है कि राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस मर गई? देश के अन्दर जाकर उन लोगों से बातें कीजिए कि जो राजनीति नहीं जानते। गाँव के लोगों से मिलिए। यही क्यों उन स्त्रियों के सम्पर्क में आइए कि जो अभी हाल तक राजनीति में ज़रा भी भाग नहीं लेती थीं। फिर अख़बारों को भी पढ़िए। उन शिक्षितों की भी बातें सुनिए कि जो अपनी ख़ुद की रायें भी बना सकते हैं। आप क्या

पाते हैं ? लोग या तो चिढ़े हुए और क्रोधित हैं, अथवा दुःखी और निराश। उनकी भावनाओं में जो थोड़ा-बहुत फ़र्क़ है वह उनके स्वभावों के फ़र्क़ का परिणाम है। कान्फ्रेंस का उन्हें कोई ख़याल नहीं है। लोहा उनकी आत्माओं में पैठ चुका है। परिस्थिति ने उन्हें भय और पीड़ा से परिपूर्ण कर दिया है। हर रोज़ पुलिस के हमलों, लाठी की मार इत्यादि की ऐसी ही बातें सब पढ़ते हैं। सरकार कहती है कि क़ानून और शान्ति का पालन करना ही होगा है। इस समय इसपर मुझे कुछ नहीं कहना; मेरा मतलब तो यही बताना है कि सही या ग़लत पर लोग कान्फ्रेंस में ज़रा भी दिलचस्प नहीं हैं। वे अपने भावों को छिपाते भी नहीं। उनका कहना है कि वर्तमान परिस्थितियों में राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस करना भारत के राष्ट्रीय आत्म-सम्मान का अपमान करना है।

मैं विश्वास के साथ कहता हूँ, सचमुच उनका कहना बिलकुल ठीक है। महात्मा गाँधी निर्वासित हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो, एकान्त कारावास में हैं। सैकड़ों-हज़ारों देश-सेवक जेलों में पड़े हुए हैं। उनके तर्कों पर आप सवाल उठा सकते हैं, पर देश के प्रेम और उसे स्वतंत्र करने की उनकी इच्छा में आप संदेह करने का साहस नहीं कर सकते। आपके पास मार्शल-लॉ और कई काले क़ानून (आर्डिनेंस) हैं। पुलिस के हमले और लाठियों की मार रोज़ की घटनायें हैं। हड्डियों का टूटना, सिर फटना अब आम बातें हैं। जब कि यह सब जारी है, मैं अपनी ज़िन्दगी भर यह नहीं समझ सकता कि कोई भारतीय किस हृदय के साथ स्वतंत्र भारत का विधान बनाने लन्दन जा सकता है ! भारत के हृदय से रक्त बह रहा है, अपने अपमान और दुर्दशा को वह महसूस कर रहा है। सारे देशवासियों की इच्छाओं के विरुद्ध, इस भूतल पर, कोई भारतीय राउण्ड टेबल-कान्फ्रेंस में शरीक होने कैसे जा सकता है ?

इस या उस दल का कोई सवाल नहीं है। कांग्रेस से इस सवाल का कोई मतलब नहीं। मैं अब कांग्रेस का आदमी नहीं हूँ, और सत्याग्रह-आन्दोलन के मैं ख़िलाफ़ हूँ। कांग्रेसवालों के द्वारा मुझे हानि भी उठानी पड़ी है। लेकिन यह सब होते हुए भी समस्या को अपने असली रूप में देखने में मुझे कोई बाधा नहीं होती। बिना किसी संकोच के मैं कहता हूँ, राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस के लिए भारत की इज़्ज़त का बलिदान नहीं कर देना चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता, और न होगा ही।

दुनिया का ख़याल भी हमें नहीं छोड़ देना चाहिए। महात्मा गाँधी और सैकड़ों देशभक्तों के बन्दी होते हुए यदि हम राउण्ड टेबल-कान्फ्रेंस में गये, तो दुनिया हमें क्या कहेगी ? ऐसे लोग कम नहीं हैं, जो हमें ग़ुलाम मानते हैं, और उनका यह कहना उचित ही होगा कि ग़ुलामों से इससे अधिक अच्छी बात की आशा भी न थी। हिन्दुस्थान में ऐसे प्रमुख व्यक्ति तो अनेक हैं कि जिनकी योग्यता और राजनीतिज्ञता की कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति उपेक्षा नहीं कर सकता, लेकिन गाँधी सिर्फ़ एक ही है। और संसार भारत की स्वतंत्रता की माँग के चिन्ह-स्वरूप सिर्फ़ उसी को निहारता है। सही या ग़लत, पर भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिनिधि तो दुनिया की नज़रों में वही है।

क्या मैं सरकार से बड़ी इज़्ज़त के साथ एक बात कहूँ ? राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस से उसे क्या मिलेगा ? कान्फ्रेंस यदि केवल समारोह के लिए ही होती हो तो मुझे कुछ नहीं कहना। स्वाँग ही हो तो हो और जिनका जी चाहे वे उसका मज़ा ले लें। लेकिन अगर वाक़ई उसे कुछ करना है तो उसका रास्ता साफ़ है। उसे महात्माजी से समझौते की बातें करनी

चाहिएँ, राजनैतिक क़ैदियों को छोड़ देना चाहिए, और साहस के साथ घोषणा करनी चाहिए कि कान्फ्रेंस औपनिवेशिक विधान बनाने के लिए हो रही हैं। यदि वह यह नहीं करना चाहती या नहीं कर सकती तो उसे कान्फ्रेंस करने का विचार छोड़ देना चाहिए। मैं पूरी गंभीरता के साथ पूछता हूँ, एक स्वाँग और रचने से क्या लाभ? साइमन-कमीशन का स्वाँग क्या काफ़ी नहीं हुआ? इतनी जल्दी, एक के बाद दूसरा स्वाँग क्यों?

यदि एक नया आन्दोलन और उठ खड़ा हुआ तो यह बड़ी भयावह बात होगी। लेकिन वर्तमान परिस्थिति में यदि कान्फ्रेंस के विचार पर ज़ोर दिया जाता रहा तो, मुझे भय है, उसे शुरू करना ही पड़ेगा। जैसा कि साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में हुआ था, वैसे ही प्रत्येक नगर घोषित करेगा कि राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेंस में भारत का बिलकुल विश्वास नहीं है और वह इसे नहीं चाहता। गुस्से में नहीं बल्कि बड़े रंज के साथ मैं कहता हूँ कि कोई भी आर्डिनेंस इस आन्दोलन को रोक न सकेगा। कान्फ्रेंस उपयुक्त वातावरण में हो और कोई ऐसी योजना कर सके कि जो भारत और इंग्लैण्ड दोनों के लिए सम्माननीय सिद्ध हो, यही मेरी कामना है। स्वतंत्र इंग्लैण्ड और स्वतंत्रता-प्राप्त भारतवर्ष की मैत्री में मेरा पूर्ण विश्वास है।

बिलकुल स्पष्ट कहने का समय आ पहुँचा है। इस समय चुप रहना जुर्म है। सरकार को देश का रुख और उसकी भावनायें स्पष्ट रूप से मालूम करानी चाहिएँ। कुछ प्रमुख व्यक्ति स्पष्ट रूप से अपना रुख प्रकट कर चुके हैं। अब अपने और अपने देश के प्रति उनका यह फ़र्ज़ है कि वे सरकार को कह दें कि हम इस निरर्थकता में भाग लेने को तैयार नहीं हैं।

उपयुक्त वातावरण बने और आवश्यक शर्तें पूरी हों तो हम हृदय के साथ उन्हें भेजेंगे। लेकिन यदि वे हमारी चोट खाई हुई भावनाओं और हृदय में छाये हुए ग़म पर कोई ध्यान न देंगे, तो हम निश्चय ही उनके कार्य में शरीक होने से इनकार करेंगे। अपने विरोध को हम ज़ोरदार, दृढ़ और प्रभावपूर्ण बनायेंगे। हिन्दुस्थान सन्धि के लिए तैयार है, लेकिन उस वक़्त नहीं कि जब उसका रत्न (गाँधी) निर्वासन में है और उसके पुत्र-पुत्रियाँ विभिन्न जेलों में पड़े हुए हैं।
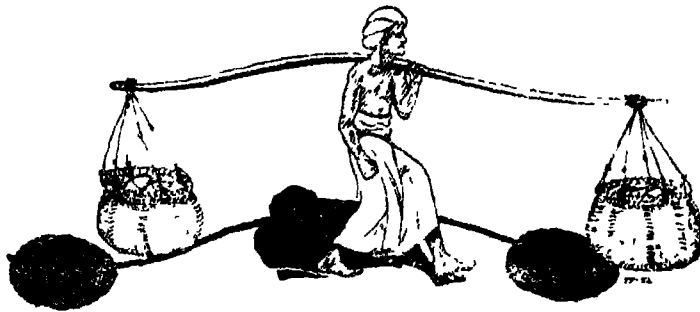
भारत की दिव्य ज्योति : : महात्मा गाँधी मे एक अमेरिकन की भेंट

[श्री धनगोपाल मुकर्जी, अमेरिका]

व्यक्तित्व

श्री ईगिल्स ने कहा—"गांधी ने मेरे सब प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर दिया। उसने कुछ नहीं छिपाया। वह मनुष्य अवर्णनीय है। मैं साधारणतः प्रत्येक आदमी से मिलते समय उसकी भाव-भंगी और आँखो के आन्दोलन तथा चेहरे को देखता रहता हूँ, किन्तु गाँधी के संबंध मे ऐसी कोई बात मुझे याद नहीं है। वह मनुष्य इतना निरीह है कि मैं उसका कोई चित्र अपनी आँखों के सामने खड़ा नहीं कर सकता। मैं इसका रहस्य नहीं समझ पाता। उसमें अपने किसी भी गुण अथवा दोष के लिए किसी प्रकार का पक्षपात अथवा अभिमान नहीं है, जिससे कि हम उसके सम्बन्ध में स्पष्टतापूर्वक कुछ कह सकें।"

मैंने पूछा—"किन्तु उसने कहा क्या, यह तो बताइए।"

"हाँ मैं उसीकी चर्चा करता हूँ। आप जानते हैं कि आप लोगों की प्रकृति में जल्दबाजी की मात्रा बहुत अधिक आ गई है। मेरा यह अनुभव है कि अमेरिका में शिक्षा पाये हुए सभी भारतीयों में यह जल्दबाजी घर कर गई है। मुझे यह अनुभव अभी थोड़े ही दिनों पहले हुआ है। आपकी तुलना में मेरी गति बहुत मंद है। हाँ गांधी, के बारे में कुछ कहना कठिन है। क्योंकि जो कुछ उसने कहा उसका उतना महत्व नहीं है, जितना उसके कहने के साधन का है।"
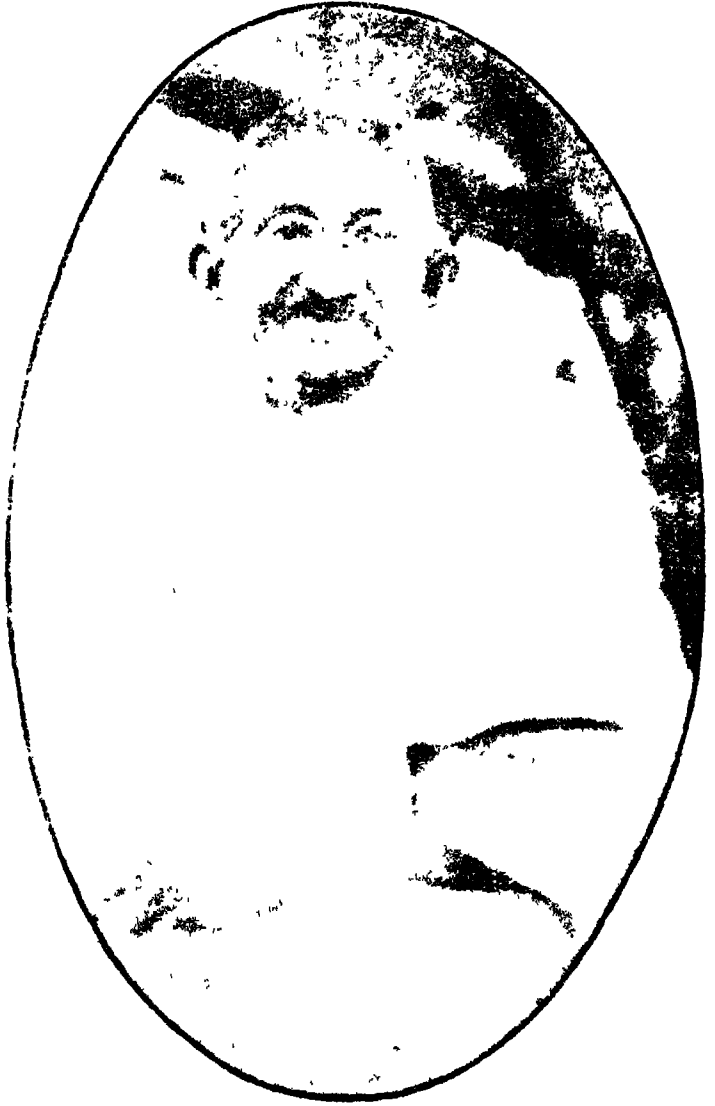
भारत की दिव्य ज्योति — गाँधी

अंग्रेजी शासन के दुष्परिणाम

"सबसे पहले उसने यह बताया कि क्यों वह अंग्रेजों को इस देश से हटाना चाहता है। भारतीय अंग्रेजों से घृणा-सी करते हैं और सारा देश भय तथा दासता के रोग से पीड़ित है। उस बूढ़े आदमी ने एक उदाहरण भी दिया। 'पंजाब प्रांत के मनुष्य जो भारत में सबसे वीर समझे जाते हैं और जिनसे भारतीय सेना में सबसे अधिक सिपाही भरती किये जाते हैं, वे भी अंग्रेजों से घृणा-सी करने लगे हैं। उन्होंने कहा कि जब मैं १९१९ में जालियाँवाला के हत्याकाण्ड के बाद पंजाब गया तो मैंने देखा कि अन्य प्रान्त के निवासियों से भी पंजाबियों में घृणा का यह भाव अधिक मजबूत हो गया है। अंग्रेजी शासन ने मनुष्य-समाज के एक बहुत बड़े अंग को भयभीत पशुओं के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इसलिए इस भय को दूर करना आवश्यक है और इसके लिए मैंने बहुत खोज के बाद एकमात्र यही उपाय निकाला है कि हमारे विचारों में साहस की वृद्धि होनी चाहिए और हमारे आन्दोलन में हमारे विरोधियों के प्रति किसी प्रकार की घृणा नहीं होनी चाहिए। यदि मेरे चर्खा-आन्दोलन ने और कुछ नहीं किया तो इतना तो जरूर किया है कि उसने भारत-वासियों में मिलकर काम करने की भावना उत्पन्न कर दी है। मैं अपने देशवासियों के मन से भय और अनैक्य को दूर कर देना चाहता हूँ। जब हम इन रोगों से मुक्त होकर अपने को पवित्र और शक्तिमान् बना लेंगे उसी रोज अंग्रेज इस देश को छोड़कर अपने आप चले जावेंगे। हमको अंग्रेजों को मित्र की भांति रखने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु हम उनको अपना स्वामी बनाकर नहीं रख सकते। गुलाम रहना नैतिक स्वास्थ्य का लक्षण नहीं है।' मुझ एक अमेरिकन को इस बात में काफी तथ्य मालूम पड़ता है।"

"लेकिन इतनी-सी बात जानने के लिए आपको गांधीजी के पास जाने की जरूरत नहीं थी।"—मैंने कहा।

श्री इंगिलस ने उत्तर दिया कि "यदि आपको हवाई जहाजों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना हो तो आपको उनके विशेषज्ञ 'राइट'-बन्धुओं के पास जाना पड़ेगा और उनकी बात सुननी पड़ेगी। मैं भी गाँधीजी के पास उनके भारतीय परिस्थिति के विशेषज्ञ होने के कारण ही गया था।"

अहिंसा

"आपने उनसे और क्या पूछा?"

मेरे मित्र ने उत्तर दिया—'गाँधीजी मेरे मनोभावों को पहले ही समझ लेते थे और कई बार मेरे प्रश्न करने के पहले ही उनका उत्तर दे देते थे। हम लोगों ने इसके बाद अहिंसात्मक प्रतिरोध की बात चलाई थी। उन्होंने कहा कि यदि आपको किसी मनुष्य द्वारा की गई हिंसा का विरोध करना हो तो वह विरोध हिंसा के द्वारा नहीं होना चाहिए। क्योंकि आपका विरोध उस मनुष्य के प्रति नहीं है बल्कि उसकी हिंसा के प्रति है। उसको मारकर आप कोई समस्या हल नहीं कर सकते, क्योंकि वह खुद कोई समस्या नहीं है; समस्या तो है उसका *हिंसात्मक कार्य*। यदि आप हिंसा के द्वारा उसके कार्य से उत्पन्न हुई समस्या को हल कर सकें तो निश्चय ही मैं उसका समर्थन करने को कह सकता हूँ।"

"क्या आप नहीं समझते हैं कि उन्होंने इस बात को अच्छे ढंग से रक्खा?" श्री इंगिलस ने मुझ से पूछा।

मैंने जवाब दिया—"बड़े रूखे ढंग से यह बात

रक्खी गई है। अन्य प्राच्य महापुरुषों ने इसकी इसकी अपेक्षा अच्छे ढंग से कहा है।" इसके बाद मैंने शास्त्रों से निम्नलिखित अंश सुनाया—

"जैसे एक माता अपने जीवन को खतरे में डाल कर भी अपने बच्चे की रक्षा करती है, उसी तरह जो तुम्हारे साथ बुराई करे उसके साथ तुमको भलाई करनी चाहिए; क्योंकि भाइयों में घृणा का बदला घृणा से नहीं दिया जाता बल्कि प्रेम से दिया जाता है। केवल प्रेम ही घृणा को विजय कर सकता है। यदि कोई दुधारी तलवार लेकर तुम्हारे पैर काट डाले, तो भी तुम्हारे दिल में उसके प्रति कोई घृणा नहीं होनी चाहिए।"

मैंने एक दूसरे महापुरुष का निम्नलिखित उपदेश भी सुनाया—

"बुराई का बदला बुराई से मत दो। बुराई का बदला भलाई से दो। एक ज्ञानी पुरुष एक ही ईश्वर को समस्त जीवों में देखता है। इसलिए दूसरों के प्रति भी उसमें उतना ही प्रेम और आदर होता है, जितना अपने हृदय के अन्दर अनुभव होनेवाले ईश्वर के प्रति होता है। वही मनुष्य सच्चा धार्मिक कहा जा सकता है। जो जानता है कि निःस्वार्थ प्रेम ही वह पदार्थ है, जो हृदय को मुक्त करता है......"

"क्या आप नहीं समझते कि ये उपदेश गाँधीजी के रूखे व्याख्यान से अच्छी तरह कहे गये हैं?"

श्री ईगिल्स रुक गये। उन्होंने मेरी ओर चोट खाये हुए मनुष्य की सूनी आँखों से देखकर उत्तर दिया—"गाँधी की यह रूखी और गद्यमय बात हमारे हृदय की तह तक पहुँचती है। मैं उनसे काव्यमय वाक्यों की आशा नहीं करता। आपको मालूम नहीं, उस नाटे आदमी ने मुझसे कहा कि मैं प्रत्येक मनुष्य के सामने स्पष्ट रहता और स्पष्टता-पूर्वक अपनी बात रखना चाहता हूँ, इसलिए सौंदर्य की ओर मेरा उतना ध्यान नहीं रहता।"

और इसके बाद उन्होंने स्वयं ही कहा—"मेरे अहिंसा के सन्देश में कोई नवीनता नहीं है। मेरे पहले के आध्यात्मिक गुरुओं ने मेरी अपेक्षा कहीं अच्छे ढंग से इसे समझाया है। इस बात को ओर मेरे ध्यान दिलाने के ढंग और मात्रा में नवीनता हो सकती है, किन्तु मेरे सन्देश में कोई नवीनता नहीं है।"

"मेरे यह पूछने पर कि क्या आप सचमुच चाहते हैं कि अंग्रेज इस देश से चले जायँ, उन्होंने उत्तर दिया कि यदि उनकी वर्त्तमान मनोवृत्ति पूरी तरह बदल जाय तो वे यहाँ रह सकते हैं।"

उद्योगवाद का राक्षस

मैंने श्री ईगिल्स से गाँधीजी के आधुनिक औद्योगिक प्रगति के विरोधी होने की चर्चा करके पूछा कि "क्या आप उनसे सहमत हैं?"

"क्यों इसमें असहमत होने की क्या बात है? कारखाने और मशीनें उत्तरी यूरोप की उपज हैं, जहाँ वर्ष में आठ महीने तक सूर्य के दर्शन नहीं होते। इस गरम देश में कारखानों की जरूरत नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता का यह मशीनरूपी राक्षस भारत जैसे देश में, जहाँ एक प्राचीन सभ्यता का निवास है, क्यों खुला छोड़ दिया जाय? गाँधी का यह कहना ठीक है कि अभी तक पाश्चात्य उद्योग-वाद को मानवीय रूप नहीं मिला है। क्या आप हिन्दुस्थान के किसी जंगल से पकड़ा हुआ कोई जंगली हाथी न्यूयार्क के किसी सभ्य मुहल्ले में खुला छोड़ सकते हैं? नहीं। इस तरह पश्चिम की भौतिक और यांत्रिक सभ्यता तथा आधुनिक औद्योगिकता अभी तक सभ्य और मानवतामय नहीं हुई हैं। इसलिए भारत में उसे यों खुला छोड़ देने से वह पागल हाथी

के समान लोगों को कुचल रही है। जो धनी हैं वे और धनी होते चले जाते हैं, और जो ग़रीब हैं वे और भी ग़रीब।" मैंने अपने मन में सोचा कि मेरे मित्र पूर्व के निवासियों से भी अधिक पूर्वीय की भाँति इन बातों को समझने लगे हैं।

निराशा

मैंने कहा—"आपने गाँधी की बातें बहुत ही ध्यान से सुनी हैं; आप उनसे अधिक गहराई के साथ सहमत होते जा रहे हैं।"

"लेकिन," श्री ईंगिल्स ने कहा,—"गाँधी से मुझे एक बड़ी निराशा हुई।"

"क्यों, आपका क्या मतलब है? आपको किस बात में निराशा मालूम हुई? क्या आपको उनके चरित्र में कोई दोष मालूम हुआ?" मैंने पूछा।

श्री ईंगिल्स ने उत्तर दिया—"पश्चिम में हम लोग यह ख़्याल करते रहे हैं कि गाँधीजी का राजनैतिक आदर्श किसी आध्यात्मिक अनुभव का परिणाम है। किन्तु उनसे बात करके मालूम हुआ कि ऐसी कोई बात नहीं है। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या आपने ईश्वर को देखा है, तो उन्होंने जवाब दिया कि 'नहीं'। इससे मुझको तो एक धक्का-सा लगा। यद्यपि उनका यह विश्वास है कि संपूर्ण जीवन का सम्बन्ध आध्यात्मिक चेतना से है और जीव का अस्तित्व ईश्वरीय है, किन्तु वह इसे अपने किसी आन्तरिक अनुभव से सिद्ध नहीं कर सके।"

"आपने उनसे और क्या पूछा?" मेरी बहन ने कहा।

मेरे मित्र ने अपनी कथा शुरू की—"आशा है *आप गाँधीजी से मामूली बातें पूछने के लिए मुझे* क्षमा करेंगे। मैंने एक प्रश्न यह किया था कि आप समाचारपत्रों में वर्णित भारतीय हिंसात्मक क्रांतिकारियों के विषय में क्या कहते हैं?"

गाँधीजी ने उत्तर दिया—"देश इस समय जिस अहिंसा-भाव का परिचय दे रहा है वह मात्रा की दृष्टि से इतिहास में अपूर्व है। यदि यह अहिंसात्मक आन्दोलन नहीं होता तो सारे देश में बदले और हिंसा की आग जल उठती। क्योंकि सरकार की ओर सब प्रकार की उत्तेजक सामग्री मौजूद थी। इसमें संदेह नहीं कि विदेश में एक ऐसा दल है जो हिंसा में विश्वास रखता है। किन्तु यह सतह पर आनेवाले फेन के समान है। और इसके आदर्श भारतवर्ष में नहीं पनप सकते। भारतीय संस्कृति को हिन्दू-धर्म ने जो कुछ दिया है उसमें अहिंसा का सिद्धान्त सबसे महान् है। उसने हमारे विगत ३००० वर्षों के इतिहास को एक ख़ास रंग से रंग दिया है और आज भी भारत के करोड़ों निवासियों के जीवन में वह एक जीती-जागती प्रेरक शक्ति के रूप में मौजूद है। आज भी इसका सन्देश लोगों में सुनाई पड़ता है। इसकी शिक्षा ने हमारे देशवासियों के हृदय में इतनी दूर तक स्थान कर लिया है कि सशस्त्र विद्रोह एक असंभव बात हो गई है। इसलिए नहीं कि हम लोग शारिरिक तथा भौतिक दृष्टि से कमज़ोर हैं—इसके लिए उतनी अधिक शारीरिक शक्ति की ज़रूरत नहीं पड़ती, जितनी दिल को पत्थर कर देनेवाली राक्षसी मनोवृत्ति की—वरन् इसलिए कि अहिंसा के संस्कार ने हममें बहुत दूर तक अपनी जड़ जमा ली है।"

अहमदाबाद का मज़दूर-आन्दोलन

या

मज़दूर-संघ

[श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार]

मज़दूर-आन्दोलन वर्तमान जगत् की ख़ास लहर है। उद्योगवाद की जैसे-जैसे वृद्धि होती जाय, मज़दूरों के हितों-स्वार्थों की रक्षा और वृद्धि के लिए वैसे ही वैसे उनका संगठित होते जाना स्वाभाविक ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है। भारत के मज़दूर भी अब संगठित होते आ रहे हैं, और संगठित होकर अपनी शक्ति को अभिव्यक्त करते हैं। चूँकि इस संगठन की लहर पश्चिम से उठी है, और बोलशेविक रूस की इसमें बू है, अतएव उस ओर इसका कुछ झुकाव होना स्वाभाविक है। पर भारत की स्थिति के यह झुकाव सर्वथा उपयुक्त ही है, ऐसा नहीं कह सकते। अहमदाबाद महात्मा गाँधी का क्षेत्र है, महात्माजी की देख-रेख में ही वहाँ के मज़दूरों का आन्दोलन बढ़ रहा है। ऐसी दशा में वहाँ के मज़दूर-आन्दोलन को अन्य स्थानों के ऐसे ही आन्दोलनों से कुछ विभिन्न होनी ही चाहिए। उसमें उनसे क्या विभिन्नता है, और वह किस प्रकार का है, वहाँ के मज़दूर-आन्दोलन के पूरे पर संक्षिप्त इतिहास के साथ यही प्रस्तुत लेख में बतलाया गया है। लेखक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार इस विषय में विशेष दिलचस्पी ही नहीं लेते वरन् हाल में ऐसे कई विभिन्न केन्द्रों के अतिरिक्त अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन का भी वहाँ जाकर स्वयं निरीक्षण कर चुके हैं; अतएव उनकी यह जानकारी कोरी काल्पनिक नहीं बल्कि प्रामाणिक है और उनके विचार तथ्य पर अवलम्बित हैं।—सम्पादक

भारतवर्ष में भी आज-कल प्रायः सभी व्यवसायों में काम करनेवाले मज़दूरों में जागृति हो रही है और वे संगठित हो रहे हैं। परन्तु रेलवे और कपड़े के कारख़ानों के मज़दूरों में जितनी जागृति, जितना संगठन और जितना साहस है, उतना अन्य किसी व्यवसाय के मज़दूरों में नहीं। वस्तुतः इन्हीं दोनों व्यवसायों के मज़दूरों की जागृति और आन्दोलन को देखकर ही हम भारतीय मज़दूर-आन्दोलन की गति और स्थिति का अनुभव करते हैं। इन्हीं दोनों की जागृति देखकर ही सरकार और भारतीय पूँजीपति इतने चिन्तित हो गये हैं।

रेलवे के मज़दूरों को सरकार से ही अधिकतर मुक़ाबला करना पड़ता है, क्योंकि रेलवे सरकार की है—और जो रेलें कम्पनियों के हाथ में हैं, उनमें भी सरकार का काफ़ी हाथ रहता है। परन्तु कपड़े के कारख़ानों में यह बात नहीं है। कपड़े के अधिकतर कारख़ाने भारतीयों के हैं, इसलिए स्वभावतः मज़दूरों का संघर्ष भी भारतीय पूँजीपतियों से रहता है।

वैसे तो सभी शहरों में, जहाँ कपड़े के कारख़ाने हैं, मज़दूरों के संघ हैं; परन्तु बम्बई और अहमदाबाद में मज़दूरों का आन्दोलन बहुत अधिक स्थिर तथा संगठित है। परन्तु इन दोनों की कार्य-प्रणाली और नीति में बहुत अधिक अंतर है। हम इस लेख में अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन पर ही कुछ प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

अहमदाबाद का महत्व

कपड़े के व्यवसाय की दृष्टि से, भारतवर्ष में, बम्बई के बाद अहमदाबाद का नम्बर है। यहाँ ७० से अधिक कारख़ाने हैं तथा अभी और कारख़ाने भी बनते जा रहे हैं। भारतवर्ष में कुल ७० करोड़ पौण्ड सूत कारख़ानों-द्वारा

काता जाता है और ५० करोड़ पौण्ड कपड़ा बुना जाता है, जिसमें से ११ करोड़ ४० लाख पौण्ड सूत और ११ करोड़ पौण्ड कपड़ा अकेले अहमदाबाद में तैयार होता है। इस शहर में क़रीब ६०,००० मज़दूर काम करते हैं।

मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति

अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन की उत्पत्ति की कथा बड़ी विचित्र है। यह आन्दोलन मिल-मालिकों के अत्याचारों से संत्रस्त मज़दूरों ने अपने बल से या किसी साम्यवादी नेता की सहायता से आरम्भ नहीं किया। न कोई पुरुष इस कार्य को बढ़ाने के लिए आगे बढ़ा। इसकी प्रारम्भिक उन्नति का श्रेय है वहीं के एक बड़े भारी पूँजीपति श्री अम्बालाल साराभाई की, जो उस समय वहाँ के मिल-मालिकों के संघ के अध्यक्ष थे, बहन श्रीमती अनसूयाबहन को।

वर्तमान मज़दूर-संघ बनने से बहुत समय पूर्व, सन् १९१७ में, श्रीमती अनसूयाबहन ने ग़रीब लड़कों के लिए एक स्कूल खोला था। इस स्कूल के कारण उनका ग़रीबों और मज़दूरों के साथ अधिक सम्बन्ध होता गया। वह बड़े प्रेम और सहानुभूति से मज़दूरों की तकलीफ़ों को सुनतीं और यथासाध्य उन्हें दूर करने का प्रयत्न करतीं।

मज़दूर अबतक निराश्रय थे, अब उन्हें एक आश्रय मिल गया। कुछ समय बाद अहमदाबाद के ताने के मज़दूरों ने अपना वेतन बढ़ाने की माँग पेश कर हड़ताल कर दी और श्रीमती अनसूयाबहन से इस सम्बन्ध में सहायता और नेतृत्व की याचना की। इस समय भी मिल-मालिक-संघ के अध्यक्ष उनके भाई ही थे। एक तरफ़ अपना सहोदर भाई था और दूसरी तरफ़ थे ग़रीब मज़दूर जिनसे उनका कोई सम्बन्ध न था। परन्तु धन्य है अनसूया बहन! उन्होंने अपने भाई का कुछ भी ख़याल न कर उनके विरुद्ध ग़रीब मज़दूरों को ही सहायता देना स्वीकार किया और वह उस हड़ताल का नेतृत्व करने लगीं। इधर श्री अम्बालाल साराभाई ने बम्बई से मज़दूरों को बुलवा लिया, जिससे मिलें बन्द न हों। परन्तु उनकी चतुर बहन ने बम्बई के मज़दूरों को अपने पास बुलाकर समझाया और अपने पास से ख़र्च देकर उनको वापस बम्बई भेज दिया। इस तरह इस हड़ताल में मज़दूरों की विजय हुई और मिल-मालिकों को लाचार होकर उनका वेतन बढ़ाना पड़ा। यहीं से वस्तुतः वर्तमान मज़दूर-आन्दोलन का प्रारंभ होता है। इस विजय से उत्साहित होकर वह मज़दूरों की तरफ़ और भी अधिक मनोयोग देने लगीं। कई नये स्कूल भी ग़रीबों के लिए खोल दिये।

महात्मा गाँधी का नेतृत्व

१९१८ का वर्ष भारतवर्ष के और विशेषतः अहमदाबाद के मज़दूर-आन्दोलन के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। इस वर्ष संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गाँधी का नेतृत्व मज़दूरों को मिला। बात यह हुई कि मिल-मालिकों ने मज़दूरों को बोनस देना बन्द कर दिया। मज़दूरों ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया और अपनी तनख्वाहों में ३५ सैकड़ा वृद्धि की भी माँग की। मिल-मालिकों ने कुछ भी ध्यान न दिया। अन्ततः महात्मा गाँधी के नेतृत्व में मज़दूरों ने व्यापक हड़ताल कर दी। इस समय मिल-मालिकों ने एक क्षुद्र उपाय का अवलम्बन किया। उन्होंने मज़दूरों को भड़काना शुरू किया कि तुम्हारा नेता गाँधी तो मोटरों पर चलता है और अच्छा-अच्छा खाना खाता है, परन्तु तुम्हें अपनी कमाई से रोकता है। मज़दूर ठहरे मूर्ख! बहुत से उनके कहने में आगये और गाँधीजी पर यह आक्षेप करने लगे। परन्तु सरल-हृदय महात्माजी के आगे मिल-मालिकों की इस कुटिल चाल का भी कोई परिणाम न निकला। महात्मा गाँधी ने स्वयं पैदल चलना और उपवास शुरू कर दिया। यह देखकर श्रीमती बेसेंट ने मिल-मालिकों से तार-द्वारा प्रार्थना की कि संसार का महान् आत्मा उपवास कर रहा है, तुम्हें मज़दूरों की माँगें स्वीकार कर लेनी चाहिएँ। परन्तु स्वार्थी मिल-मालिकों ने इस प्रार्थना पर भी कुछ ध्यान न दिया। फलतः शीघ्र ही इस मामले ने भयंकर रूप धारण कर लिया और अन्त में श्री आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव दोनों ओर से पंच ठहराये गये। उन्होंने मज़दूरों के पक्ष में ३५% वेतन बढ़ाने की सम्मति दी। इस तरह इस हड़ताल में भी मज़दूरों की विजय हुई।

इस हड़ताल के समय मज़दूरों में संगठन और जागृति के भाव खूब फैले। महात्माजी ने विज्ञप्तियों-सभाओं आदि के द्वारा मज़दूरों को शिक्षा देनी प्रारम्भ की और उन्हें बताया कि मज़दूरी भी महत्वपूर्ण और आदर का कार्य है, इससे उनके आत्म-सम्मान में वृद्धि ही होनी चाहिए।

मज़दूर-संघ की स्थापना

इस हड़ताल में श्री शंकरलाल बैंकर भी प्रमुख भाग ले रहे थे। सबसे पहले उन्हींके मन में यह विचार हुआ कि अब समय आगया है कि मज़दूरों को संगठित कर स्थिर रूप से मज़दूर-संघ की स्थापना की जाय। उन्होंने अपना विचार महात्माजी के सामने रक्खा। इसके उत्तर में महात्माजी ने बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही, और वही वस्तुतः अबतक अहमदाबाद के मजदूर-संघ की नीति और उद्देश्य रही है; और यही बात है कि जिससे अहमदाबाद का मज़दूर-संघ भारतवर्ष के शेष मज़दूर-संघों के साथ सम्बद्ध नहीं हो पाया। महात्माजी ने कहा कि मज़दूर-संघ बनाओ, परन्तु वह लुटेरों या झगड़ालुओं का समूह (Gang of robbers) न हो, वह मानव-जाति का सहायक दल (Helpers of Humanity) हो। मज़दूरों को केवल लड़ाई-झगड़ा न सिखाओ, परन्तु उनकी आन्तरिक और सामाजिक उन्नति का भी प्रयत्न करो। इसी नीति को सामने रखकर श्री शंकरलाल बैंकर ने, सन् १९१९ में, मज़दूर-संघ की स्थापना की।

इस समय भी एक विचित्र बात हुई कि साधारण नियम के प्रतिकूल वहाँ के मिलमालिक-संघ विशेषतः उसके अध्यक्ष श्रीयुत अम्बालाल साराभाई ने इस प्रयत्न को पसंद किया। उनका ख़याल था और वह ठीक था कि इस तरह एक संस्था बन जाने से उन्हें हज़ारों मज़दूरों से अलग-अलग व्यवहार रखने में जो कठिनता पड़ती है, वह अब न रहेगी। अब वे मज़दूरों के सम्बन्ध में अपनी सभी शिकायतें इसी संस्था से कर लेंगे। अस्तु।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

प्रारम्भ में मज़दूर-संघ की आर्थिक अवस्था बहुत ख़राब थी। पर श्री शंकरलाल बैंकर और श्रीमती अनसूया बहन ने इसकी कोई परवाह न की और बड़ी सावधानी, लगन और जोश से काम चलाने लगे। श्रीमती अनसूया बहन ने अपने मकान में ही संघ का दफ्तर रक्खा। वे दोनों स्वयं सब हिसाब-किताब रखते, सभी रजिस्टर स्वयं लिखते और मज़दूरों से चन्दा उगाहते।

क्रमोन्नति

शनैः शनैः मज़दूर-संघ बढ़ने लगा। दूसरे ही वर्ष, १९२० में, इसका संगठन व्यवस्थित कर दिया गया। बुनना, कातना, रंगाई, इंजीनियरिंग आदि भिन्न-भिन्न खातों के मज़दूरों के प्रतिनिधि चुने गये। संघ के सदस्यों की संख्या भी बढ़ने लगी। इस वर्ष के अन्त में श्री कालिदास झवेरी ने आकर मन्त्री का काम सम्हाला। इतने समय में मज़दूर-संघ ने विशेष प्रयत्न मज़दूरों के वेतन बढ़वाने और बोनस दिलवाने की ओर किया। कई दफ़ा हड़तालों की धमकियाँ भी दी गईं और कई छोटी-छोटी हड़तालें हो भी गईं। इस सम्पूर्ण प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि युद्ध से पहले के वेतनों से सौ प्रतिशतक की वृद्धि हो गई। बोनस के सम्बन्ध में मालवीयजी पंच ठहराये गये। उन्होंने फैसला किया कि एक मास का वेतन और १५) रु० बोनस दिया जाय।

पुनर्सङ्गठन

१९२२ के प्रारम्भ में इस मज़दूर-संघ के इतिहास में एक और महत्वपूर्ण घटना होती है, श्री गुलज़ारीलाल नन्दा इसका मंत्रित्व ग्रहण करते हैं। तबसे मज़दूर-संघ की प्रगति बहुत बढ़ जाती है। संघ के संगठन और कार्य-प्रणाली के सूत्रधार यद्यपि महात्मा गाँधी हैं, तथापि उसे कार्य में लानेवाले आप ही हैं। यदि आप इस संघ का काम न सम्हालते, तो सन्देह था कि संघ इतना उन्नत होता भी या नहीं। आपने आते ही संघ के सम्पूर्ण कारोबार को नियमित करना शुरू कर दिया। हिसाब की जाँच-पड़ताल की; रसीद बुकें छपवाकर चन्दे का उगाहना बाक़ायदा शुरू हुआ। हरएक विभाग के लिए अलग-अलग रजिस्टर बनाये

गये। कुछ ही समय में मज़दूर-संघ बाक़ायदा एक पूर्ण संगठित संस्था बन गई। कुछ मास लगातार अनथक काम करने के कारण श्री गुलज़ारीलाल नन्दा का स्वास्थ्य बहुत गिर गया, जिससे उन्हें अवकाश लेकर घर जाना पड़ा। आपके पीछे बोनस के सम्बन्ध में एक और हड़ताल हो गई, इसमें मज़दूरों-के कार्यकर्ताओं का ही दोष था। हड़ताल की सूचना पाकर श्री गुलज़ारीलाल घर से लौट आये। देखा तो अवस्था बड़ी ख़राब है। मज़दूरों में आपस का झगड़ा ज़ोर पकड़ गया है। संघ के कार्यकर्ता भूल कर चुके हैं। संघ का नियन्त्रण नहीं रहा। मज़दूर संघ की बात नहीं मानते। यह सब देखकर आपने संघ को भंग (Dissolve) कर दिया। केवल फ्रेमवर्कर्स का संघ रहा। पर शनैःशनैः फिर संगठन हुआ और पूर्वस्थिति तक पहुँच गया।

नई परिस्थिति

१९२२ के नवम्बर में एक और महत्वपूर्ण घटना हुई। मिल-मालिकों ने यह माँग पेश की कि युद्ध के समय में अधिक काम होने के कारण हमने वेतन भी बढ़ा दिये थे, परन्तु अब हमारी स्थिति वह नहीं है, इसलिए वेतन में कमी की जाय। इस माँग पर बहुत समय तक बहस चलती रही। अन्त में एक निर्णायक-समिति, बैठी। उसने मिल-मालिकों की माँग को उचित ठहराते हुए २५ फ़ी सदी कमी की सलाह दी। इधर मार्च में मज़दूर-आन्दोलन के नेता महात्मा गाँधी और श्री शंकरलाल बैंकर को सरकार ने क़ैद कर लिया। अनसूयाबहन भी बीमार थीं। पर अपने सब नेताओं की सहायता और सञ्चालन के बिना भी मज़दूरों ने १५ दिन की सूचना देकर पहली अप्रैल को व्यापक हड़ताल कर दी।

इस हड़ताल में मज़दूरों ने आदर्श संगठन और शान्ति का परिचय दिया। रोज़ मज़दूरों की सभायें होने लगीं, तरह-तरह के व्याख्यान दिये जाते। हज़ारों की संख्या में मज़दूर घर चले गये। हज़ारों मज़दूरों ने दूसरे काम शुरू कर दिये। सैकड़ों ने चरखे लिये बहुत-से म्युनिसिपैलिटी के अनेक कामों में लगे। उन दिनों विद्यापीठ भी बन रहा था, बहुत से उसमें चले गये। इधर बम्बई में गटर का काम चल रहा था, ८-१० हज़ार मज़दूरों को उधर भेज दिया गया। संघ के मन्त्री गुलज़ारीलालजी भी इन्हींके पीछे थे। मज़दूरों को एकत्र करना अत्यन्त कठिन काम था। वह उनके पीछे दौड़ते और गाड़ी पर बैठाते, तो दूसरे-तीसरे स्टेशन पर मज़दूर उतर जाते। फिर लालाजी को पीछे जाना पड़ता। जहाँ वे काम करते, वहाँ लालाजी भी धूप में जाकर तपस्या करते। १५-२० दिन तक वह मज़दूरों के पीछे ख़ूब परेशान रहे।

यह हड़ताल हो ही रही थी कि मई में श्री शंकरलाल बैंकर जेल से छूट कर आगये। उन्होंने आते ही इस भयंकर स्थिति को देखा। उन्होंने ख़याल किया कि मिल-मालिकों की माँग में कुछ न कुछ सत्य अवश्य है, इसलिए वह वेतनों में १०% कमी पर सहमत हो गये। श्री आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव मध्यस्थ नियत हुए। उन्होंने १५॥% कमी का निर्णय दिया, परन्तु मज़दूरों ने इस निर्णय को पक्षपातपूर्ण समझकर मानने से पहले इनकार कर दिया। मज़दूरों की एक बड़ी भारी सभा हुई। ऐसी सभा शायद भारतवर्ष के मज़दूर-आन्दोलन में अपनी समता नहीं रखती। अट्ठतीस हज़ार मज़दूर उपस्थित थे। मुख्य प्रश्न था कि श्री ध्रुव का निर्णय स्वीकृत किया जाय या नहीं। मज़दूरों की दृढ़ सम्मति थी कि हमारे साथ अन्याय हुआ है। उनके नेता उन्हें समझा रहे थे कि अभी निर्णय मान लेना चाहिए, परन्तु वे अपने निश्चय पर दृढ़ थे। सब नेताओं ने उन्हें यह धमकी भी दी कि तुम हमारे कहने में नहीं चलते, तो फिर हमें बाहर जाने दो; हम कोई दूसरा काम करें। यह कहकर वे सभा-स्थल से चल पड़े। कुछ काम पर चले जानेवाले मज़दूर भी उठे। उपस्थित सब मज़दूरों ने चुपचाप शान्ति से उनके जाने के लिए रास्ता कर दिया। उनके जाने के बाद भी सभा शान्तिपूर्वक होती रही और हड़ताल जारी रखने का ही निश्चय हुआ। श्री शंकरलाल बैंकर का उस समय दृढ़ विश्वास था कि मज़दूरों का यह हठ है; जब मिल-मालिकों के काम कम हो गये हैं और मध्यस्थ ने निर्णय कर दिया है, तब मज़दूरों को भी बात मान लेनी चाहिए। इसी विश्वास के अनुसार

वह और उनके सहयोगी कार्यकर्त्ता कई दिन तक लगातार परिश्रम करते रहे और मज़दूरों के मुहल्लों में जा-जाकर उन्हें समझाते रहे। इस तरह बहुत परिश्रम के बाद मज़दूर काम पर आने को राज़ी हुए और हड़ताल बन्द हुई। हड़ताल तो समाप्त होगई, परन्तु मज़दूर-संघ पर इसका बहुत बुरा असर पड़ा। मज़दूर-संघ पर उनका विश्वास न रहा। बहुत कम मज़दूर उसके सदस्य रहे; वे भी कोई सहानुभूति न रखते थे। असन्तोष और विद्वेष ने मज़दूरों में घर कर लिया और संघ का भविष्य निराशा के अंधकार में लुप्त हो गया। यही समझना चाहिए कि मज़दूर-संघ बिलकुल टूट गया।

नया रूप

परन्तु इसके उत्साही मंत्री निराश होनेवाले नहीं हैं। इसके कुछ समय बाद मज़दूर-संघ को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया गया। फिर इसके सदस्य बनाये जाने लगे। १९२१ में ६००० से अधिक सदस्य हो गये। इस बार पहले के कार्य से अनुभव लेकर यह निश्चय किया गया कि मज़दूर-संघ को मज़दूरों के हित के अनेक कार्य भी करते रहना चाहिए। नये वर्ष से अहमदाबाद के मज़दूर-संघ ने कई नये कार्यों को हाथ में लिया। तब से उसका प्रचार और विस्तार अधिकाधिक बढ़ता रहा है। उसने अपनी नीति और उद्देश्य को सफल करने की तरफ़ विशेष प्रयत्न प्रारम्भ किया। वस्तुतः इस नये वर्ष से उसका पुनर्जन्म हुआ समझना चाहिए।

सबसे पहले मज़दूरों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। मज़दूर-आन्दोलन के पहले से शिक्षा के लिए स्कूल खुल चुके थे। अबतक इस सम्बन्ध में बहुत उन्नति हो चुकी थी। शाखायें खोली गईं। दैनिक विद्यालयों में भी वृद्धि हुई। १९२८ के अन्त तक रात्रि-पाठशालाओं और दैनिक विद्यालयों की संख्या क्रमशः १२ और १० तक हो गई। मज़दूर-लड़कों और लड़कियों के दो पृथक्-पृथक् आश्रम भी खोले गये। इससे उनका संपूर्ण समय अच्छी परिस्थितियों में ही गुज़रता है और उन पर शहर के गन्दे वातावरण का असर नहीं पड़ने पाता। इस सम्बन्ध में अभीतक निरन्तर प्रगति हो रही है। १९२९ में एक बाल-मन्दिर भी स्थापित किया गया है, जिसमें इसे ३ से ६ साल तक के बच्चों को मौण्टिसरी-प्रणाली-द्वारा शिक्षा दी जाती है। सब बच्चों को दांतन, स्नान कराकर साफ़ कपड़े दिये जाते हैं और उनको खेल-कूद में व्यावहारिक इन्द्रिय-ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। बच्चों को दूध आदि उपहार भी इसी विद्यालय से दिया जाता है। साधारण विद्यालयों में कताई-शिक्षा दी जाती है

इस शिक्षा-प्रचार के सम्बन्ध में मिलों की ओर से भी संघ को थोड़ी-बहुत सहायता दी जाती रही है। यह मज़दूर-इतिहास में आश्चर्य की बात है। इतना मतभेद और विरोध होते हुए भी पारस्परिक सहयोग का ऐसा उदाहरण भारत में किसी दूसरी जगह नहीं मिलेगा। यही इस संघ की विशेषता है।

विभिन्न कार्य

मज़दूरों की साधारण शिक्षा और जागृति के लिए संघ से इस वर्ष 'मजूर-संदेश' नामक साप्ताहिक पत्र बिना मूल्य सब मिलों में मज़दूरों को वितरण किया जाता है। इस पत्र की ५००० प्रतियाँ प्रकाशित की जाती हैं। इस पत्र में चलतू बातों (Current topics) सफ़ाई स्वास्थ्य, मिल और मज़दूर-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातों का समावेश होता है। इस पत्र से मज़दूर वस्तुतः बहुत काम उठा रहे हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न मज़दूरों की बस्तियों में मुफ्त वाचनालय और पुस्तकालय भी खोलने की ओर १९२४ के प्रारम्भ में ध्यान दिया गया। अब तक इस तरफ़ निरन्तर प्रगति हो रही है। एक चलता-फिरता पुस्तकालय (Moving library) की भी स्थापना हो चुकी है।

१९२१ के अन्त में मज़दूर-संघ की ओर से एक औषधालय और चिकित्सालय खोल दिया गया था। इसमें सब मज़दूरों को मुफ्त दवा दी जाती है और संघ के सदस्यों को चिकित्सा भी मुफ्त होती है। स्त्रियों के लिए भी चिकित्सा और प्रसव का अच्छा प्रबन्ध है। १९२८ में चिकित्सा पर १०६९॥-)॥। ख़र्च हुआ था।

१९२३ से एक और कार्य का भी आरम्भ किया गया

था। मज़दूरों की आर्थिक अवस्था बहुत बुरी होती है। उस पर उनकी सामाजिक रीतियों ने उन्हें और भी तबाह कर दिया है। प्रायः सभी मज़दूर ऋण-भार से दबे हुए होते हैं और सूद का चक्र निरन्तर उसे बढ़ाता रहता है। इसलिए एक सहोद्योग बैंक खोला गया। इसमें संघ के सदस्यों को ६½ ब्याज पर रुपया दिया जाता है।

मज़दूरों पर मिल-मैनेजर, मिस्त्री आदि के भिन्न-भिन्न प्रकार के अत्याचार होते रहते हैं। कहीं वेतन नहीं मिला, कहीं मार-पीट हुई, इत्यादि घटनायें होती रहती हैं। मज़दूरों के पास यह सामर्थ्य नहीं कि वे क़ानूनी कारंवाई कर सकें। इसलिए संघ ने अपने सदस्यों को इस प्रकार की क़ानूनी सहायता देना शुरू किया। इससे मज़दूरों को बहुत लाभ लाभ पहुँचता है। जिन मज़दूरों को संघ में अधिक भाग लेने के कारण निकाल दिया जाता है, उन्हें भी संघ पर्याप्त सहायता देता है।

मिलों में दुर्घटनायें तो होती रहती हैं। कभी किसी का हाथ ख़राब हो गया, कभी किसी का पैर, कभी किसी के सिर में भारी चोट लगी; और कभी कोई मर ही गया। इन दुर्घटनाओं के मुआवज़े में मिल-मालिक को आहत मज़दूर को कुछ रुपया देना पड़ता है। १९२४ में सरकार ने इस सम्बन्ध में एक क़ानून The workmen com pensation act) बनाया था। परन्तु साधारण मज़दूर इन क़ानूनी बारीकियों से अपरिचित रहते हैं और मिल-मालिक उनके अज्ञान का दुरुपयोग करते हैं। मज़दूर संघ ने यह देखकर उक्त क़ानून का गुजराती अनुवाद कराकर मज़दूरों को यह क़ानून अच्छी तरह समझा दिया और ऐसी प्रत्येक दुर्घटना की जाँचकर मज़दूर को मुआवज़ा दिलाने का प्रबन्ध किया है। इससे मज़दूरों को बहुत अधिक लाभ होता है। इस मुआवज़े का अधिकतर भाग मज़दूरों के *नाबालिग़ बच्चों या स्त्रियों* को मिलता है। परन्तु उनके पास इतना अधिक रुपया रखना भय से ख़ाली नहीं होता। या तो कोई लूट ले जाता है। अथवा वे ही स्वयं मूर्खता से अपव्यय कर डालते हैं। इसलिए संघ उस रुपये को *धरोहर के रूप में रखता है और उस परिवार की आवश्यकताओं के अनुसार प्रतिमास कुछ रुपया दे दिया जाता है।*

इन उपर्लिखित सहायताओं के अतिरिक्त और भी अनेक सहायतायें दी जाती हैं। मज़दूरों की बस्तियों में कई सस्ती दूकानें खोल दी गई हैं। श्री गुलज़ारीलाल अहमदाबाद-म्यूनिसिपैलिटी के एक प्रभावशाली सदस्य हैं। आप मज़दूरों को म्यूनिसिपैलिटी-द्वारा भी अनेक सुविधायें दिलवाते रहते हैं। मिल-मालिकों को हितकर कार्य करने के लिए संघ प्रेरित करता रहता है। इसके अनुसार अनेक मिलों ने मज़दूरों के निवास, स्नानघर, भोजन-स्थान, चिकित्सालय, विद्यालय आदि का प्रबन्ध किया है।

कार्यक्रम

इस संघ के दैनिक कार्यक्रम का मुख्य काम प्रायः शाम को ६ बजे से ८ बजे तक होता है। मिलों में छुट्टी होने पर प्रायः मज़दूरों के प्रतिनिधि रोजमर्रा की शिकायतें लेकर आते हैं। उन्हें लिख लिया जाता है और दूसरे दिन संघ का मंत्री सवेरे मिलों में जाकर उन शिकायतों की जाँच करता है और उन्हें दूर कराने की चेष्टा करता है। यह इस संघ का बहुत महत्त्वपूर्ण काम है, इससे संघ सभी मज़दूरों में बहुत प्रिय हो गया है; क्योंकि उनकी व्यक्तिगत शिकायतें दूर हो जाती हैं। १९२८ में सब तरह की शिकायतों की संख्या ११८८ थी। ये कई प्रकार की होती हैं जैसे अनुचित दण्ड (पृथक् कर देना, जुरमाना आदि), स्वास्थ (टट्टी, पानी आदि), प्रबन्ध, (दुर्व्यवहार), काम के समय की अधिकता, छुट्टियाँ, वेतन, इनाम, और दुर्घटनायें आदि। बहुत सी शिकायतें जल्दी दूर हो जाती हैं और कई दफ़ा समझौता हो जाता है। कभी-कभी कोई शिकायत ठीक नहीं होती। कुछ शिकायतें ऐसी होती हैं, जिन पर न शीघ्र समझौता होता है, न कोई निर्णय, और उन पर साल भर तक झगड़ा चलता रहता है।

कठिनाइयों पर विजय

प्रतिवर्ष नई-नई योजनाओं के कारण संघ का व्यय बहुत बढ़ गया है। १९१८ के प्रारम्भ में इसकी आर्थिक *अवस्था बहुत ख़राब हो गई थी। मिल-मालिक-संघ की ओर से ११५०) रु० शिक्षा-प्रचार के लिए मिलता था, वह*

भी बन्द हो गया। फलतः इस वर्ष सदस्यों की संख्या-वृद्धि के लिए फिर कोशिश की गई और वर्ष के अन्त तक १००७५ सदस्य हो गये।

जिन लोगों ने मिलों में कुछ दिन तक रहकर मज़दूर-प्रगति का अध्ययन किया है, वे खूब जानते हैं कि मिल-मालिक इसमें जो अनेक बाधायें डालते हैं, उनमें से मुख्य यह है कि मिस्त्री या जॉबर लोगों को मिल-मालिक अपनी तरफ़ मिलाये रहते हैं। मिस्त्रियों का सीधा सम्बन्ध मज़दूरों के साथ होता है। ये मिस्त्री मिल-मालिक और मज़दूरों के बीच में कड़ी (Link) का काम करते हैं और उनका स्वार्थ सदा इसीमें रहता है कि हड़ताल आदि न हो। इस तरह से ये मिस्त्री मज़दूर-प्रगति में बाधक होते हैं। अहमदाबाद-मज़दूर संघ ने १९२९ में यह प्रयत्न किया कि इन मिस्त्रियों को अपनी तरफ़ मिला लिया जाय। इस प्रयत्न से वह सफल भी हुआ और इस तरह उसने अपने विरुद्ध शक्ति को मिला लिया।

अब इस मज़दूर-संघ को स्थापित हुए दस साल हो गये हैं। इन वर्षों में इसने बहुत अधिक उन्नति की है। कार्यक्षेत्र का विस्तार भी बहुत हो गया है। आजकल इसके स्टाफ़ में १५० से अधिक कर्मचारी हैं। इसकी मासिक आय चन्दों से ६०००) रु० हो जाती है। ५००) रुपया सूद से आ जाता है। १९२९ का बजट १,००,०००) रुपये का है।

भावी योजना

इसके उत्साही मन्त्री श्री गुलज़ारीलाल नन्दा अभी नवीन योजना तैयार कर रहे हैं, जिससे यह संघ भारतवर्ष की मज़दूर-प्रगति का केन्द्र हो जाय। आज भारतवर्ष में जो मज़दूर-संगठन हैं। उनमें ठोस काम बहुत कम होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि उनके कार्यकर्त्ताओं में मज़दूर-आन्दोलन-सम्बन्धी ज्ञान, अनुभव और शासन-शक्ति का अभाव होता है। इसलिए श्री नन्दा यहाँ एक शिक्षणालय खोलना चाहते हैं, जिसमें कार्यकर्त्ताओं को तैयार किया जाय। इसमें संसार की मज़दूर-समस्या और उसका विकास, मज़दूर-सम्बन्धी अर्थ शास्त्र, मज़दूरों की अवस्था, दफ्तर आदि का 'टैकनिकल' काम, स्वास्थ्य-विज्ञान (Hygine), नीति (Deplomacy) तथा शासन आदि बातें सिखाई जावेंगी। एक कार्यकर्त्ता में क्या-क्या गुण होने चाहिएँ, उनके सिखाने की ओर विशेष ध्यान रक्खा जायगा। इसका पाठ्यक्रम दो तरह का होगा; एक प्रबन्ध-कर्ता (Executive) तैयार करने के लिए, और दूसरा सहायक (Assistant) तैयार करने के लिए। इन दोनों की भी दो कक्षायें होंगी—प्रथम और द्वितीय (Junior and Senior)। दोनों कक्षायें क्रमशः १ और २ साल की होंगी। यदि यह योजना सफल हो गई, जैसा कि इसके उत्साही मन्त्री को देखते हुए मालूम होता है कि सफल होगी, तो मज़दूर-प्रगति में बड़ी भारी सहायता मिल सकेगी। अहमदाबाद में क्रियात्मक शिक्षा और अनुभव बहुत मिल सकता है।

इस योजना के साथ एक और योजना भी सोची जा रही है। मिलों में भरती के समय मज़दूरों से मिस्त्री, मास्टर या दूसरे लोग रिश्वत बहुत लेते हैं। इससे जहाँ मज़दूरों को बहुत तकलीफ़ होती है, वहाँ मिल-मालिकों को भी कम तकलीफ़ नहीं होती। अयोग्य और अदक्ष मज़दूर मिलों में घुस आते हैं। संघ की यह योजना है कि नौकरी चाहनेवाले सभी मज़दूर-संघ में अपने नाम लिखावें और मिल मैनेजर भी संघ से मज़दूर माँगें; संघ मिल की आवश्यकता को देखकर उन्हें मज़दूर दिया करे। एक तरह से हम इसे नौकरी दिलाने की एजेंसी (Employment Agency) कह सकते हैं।

फुटकर बातें

भारतवर्ष के प्रायः सभी स्थानों के मज़दूर नेता अहमदाबाद के मज़दूर संघ से असन्तुष्ट हैं और इसपर अनेक आक्षेप करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अखिल-भारतीय मज़दूर-संघ (All India Trade Union) में यह सम्मिलित नहीं होता। अन्य स्थानों के मज़दूर-कार्यकर्ता कहते हैं कि यह मज़दूरों का हितैषी संघ नहीं है, पूँजीपतियों से मिला हुआ है, तभी तो मिल-क्षेत्र में ही चन्दे उगाहते रहते हैं, और यह संघ बम्बई के मज़दूरों से सहानुभूति नहीं रखता इत्यादि।

यदि आक्षेपकर्ता कुछ समीप से इस संघ का निरीक्षण करेंगे तो हमारा विश्वास है कि वे यह आक्षेप न करेंगे। यह ठीक है कि बम्बई की पिछली व्यापक हड़ताल में इस संघ ने सामूहिक रूप से अपने कोष से कुछ सहायता नहीं दी, परन्तु मज़दूरों ने चन्दा कर आठ-दस हज़ार रुपया ज़रूर भेजा। मिल-क्षेत्र में चन्दा उगाहना कोई अपराध नहीं है। यदि अहमदाबाद के मिल मालिकों ने इस विषय पर बम्बई के मिल मालिकों का दुराग्रहपूर्ण हठ नहीं किया, तो संघ का क्या दोष? केवल एक प्रश्न शेष रह जाता है कि यह संघ अखिल भारतीय संगठन में सम्मिलित न होकर डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग क्यों पका रहा है?

पर हम ऊपर कह चुके हैं कि बम्बई और अहमदाबाद की नीति और कार्य-प्रणाली में बहुत अन्तर है। यही अन्तर दोनों को मिलने नहीं देता। श्री गुलज़ारीलाल नन्दा के शब्दों में, महात्मा गाँधी इस पृथक्करण के प्रधान हेतु हैं। जो महात्माजी के स्वभाव से परिचित हैं, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि महात्माजी आडम्बर-प्रिय नहीं हैं; वह चाहते हैं ठोस काम। यदि ठोस काम के लिए केन्द्रीय संगठन को तोड़ना पड़े तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं। महात्माजी की मज़दूर-संबंधी नीति में तथा ट्रेड-यूनियन की नीति में बड़ा भारी फ़र्क़ है। महात्माजी का विचार है कि ट्रेड-यूनियन या मज़दूर-संघ का काम केवल मज़दूरों को भड़काकर हड़ताल कराना ही नहीं है, परन्तु मज़दूरों की आत्मिक, सामाजिक उन्नति करना भी उसका मुख्य कार्य है। मज़दूरों की आर्थिक अवस्था जितनी ख़राब नहीं है, उससे अधिक उनकी सामाजिक अवस्था ख़राब है। उनमें शराब का तो बेहद रिवाज है। अनेक सामाजिक कुरीतियों ने उनके जीवन को बड़ा करुण बना रक्खा है। अतः यथाशक्ति हड़तालों का कम अवसर आये। मिल-मालिक और मज़दूर दोनों एक-दूसरे के भावों को समझें और एक-दूसरे की सहायता करें। मज़दूरों में अधिकाधिक शिक्षा का प्रचार आवश्यक है। केवल बड़ी-बड़ी सभाओं और सम्मेलनों से पारस्परिक विद्वेष का भाव बढ़ेगा, जो बिलकुल अभीष्ट नहीं है। महात्माजी की नीति ही अहमदाबाद के संघ की नीति है और यही बड़ा भारी कारण है कि अहमदाबाद का संघ दूसरे संघों से सहयोग नहीं करता। वहाँ का संघ पूँजीपतियों का शत्रु नहीं परन्तु मज़दूरों के अधिकारों के लिए लड़ने वाला है।

उपसंहार

किसी मज़दूर-संघ की सफलता इस बात में नहीं है कि उसने शहर में कितनी हड़तालें कराईं, परन्तु इस बात में है कि वहाँ के मज़दूरों में कितनी जागृति है, कितना संगठन है, कितनी शिक्षा है, कितनी सामाजिक उन्नति है। इसके साथ ही यह भी देखना चाहिए कि उस संघ ने इतना प्रभाव उत्पन्न कर लिया है कि मिल-मालिक उससे दबें और उसकी बातें मानकर हड़ताल का अवसर ही नहीं दें। इसे देखते हुए अहमदाबाद का संघ बहुत सफल है। बम्बई की इतनी व्यापक हड़तालों का वहाँ कोई प्रभाव नहीं पड़ा। व्यावसायिक शान्ति ही वस्तुतः संघ की सफलता है। फिर यह कहना कि महात्माजी या अहमदाबाद का संघ पूँजीपतियों के मित्र हैं और मज़दूरों के न्याय्य अधिकारों की पर्वाह नहीं करते, नितान्त असत्य है। १९१८ की हड़ताल महात्माजी के नेतृत्व में ही हुई थी। अब नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि १९२३ में घटाया गया वेतन फिर बढ़ाया जाय। इस प्रश्न पर महात्मा गांधी और सेठ मंगलदास कोई समझौता नहीं कर सके। अब यह प्रश्न एक पंच के सुपुर्द हुआ है। जैसा वह मज़दूरों या मिल-मालिकों के हक़ में निर्णय करे, दोनों को मानना पड़ेगा। यही बुद्धिमत्ता है। बम्बई के गिरनी-कामगार यूनियन की तरह उन्होंने यह नहीं कहा कि हमें न गाँधी चाहिए, न नेहरू। संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, भारत के महान् नेता और मज़दूर-हितैषी महात्मा गाँधी तक पर जो मज़दूर नेता विश्वास नहीं कर सकते, उनकी कार्य-प्रणाली और नीति में कोई भारी त्रुटि अवश्य है।

अबतक अहमदाबाद के मज़दूर-संघ का काम वहीं तक परिमित था। इसकी शाखा-प्रशाखायें किन्हीं दूसरे स्थानों पर न थीं। अब पिछले वर्ष से इन्दौर में एक शाखा स्थापित कर इसी नीति पर कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। मैं उन सज्जनों से, जो मज़दूर आन्दोलन में काम करना चाहते हैं, प्रार्थना करूँगा कि वे सबसे पहले कुछ मास इस संघ में रह कर अध्ययन करें और फिर काम प्रारम्भ करें।

कहानी

पृथ्वी का राज्य

ले० श्री 'निर्जीव'

(१)

भगवान का दरबार हो रहा था। सैकड़ों सूर्यों के प्रकाश, हजारों हिमांशुओं के सुधा-वर्षण और लाखों कल्पद्रुमों की सुगन्धि में देवतागण मस्त रहे थे। अप्सराओं का नृत्य अभी बन्द ही हुआ था, परन्तु उनके पाजेबों की ध्वनि और गीतों की लहरों का ध्यान लोगों को मस्त बनाये हुए था। ऐसे समय में वह श्री भगवान के सामने उपस्थित किया गया।

उसका नाम गँवई था। न तो उसका रूप ही आकर्षक था, न व्यवहार ही भद्रोचित। वह केवल 'भगवान के प्रिय पुत्र' की सिफारिश से स्वर्ग में प्रवेश पा सका था।

उसने पृथ्वी का राज्य माँगा और भगवान ने हँसकर दे दिया।

परन्तु नारद मुनि से उसकी सहायता किये बिना न रहा गया। वह उसके पीछे-पीछे बाहर आकर बोले, "वत्स, तू इतने विस्तृत राज्य का प्रबन्ध कैसे कर सकेगा? इसीकी मुझे चिन्ता है। ले, यह वंश-खण्ड ले। पृथ्वी के मनुष्य सैकड़ों भेड़ों के समान हैं। इसीसे तू उनपर शासन करना।"

उनसे लाठी लेकर गँवई कूदता-उछलता पृथ्वी पर आया।

(२)

सौभाग्यवश वह पृथ्वी के उस देश में आकर उतरा, जिसके आगे स्वर्ग भी तुच्छ था। सुजला, सुफला, [illegible] शीतला और शस्य श्यामला वसुन्धरा को पाकर वह निहाल हो गया। रत्नगर्भा पहाड़, दूध की नदियाँ और कल्पवृक्षों के वन, जिनका उसे स्वप्न में भी ध्यान न था, सब उसके आगे अपनी भेंटों-सहित उपस्थित थे। प्रजा वहाँ की भेड़ों के समान सीधी और विवेकहीन थी। उसपर भी भगवान ने उन लोगों को सुरासुर सरीखी दो विरोधी पार्टियों में विभक्त करके शासन-कार्य और सरल कर दिया था।

गँवई ने मन में कहा, "मैं भी भगवान को अपनी व्यवस्था से चकित कर दूँगा।"

वर्षों के परिश्रम के बाद उसने अपनी लाठी से सारे राज्य को नाप डाला। फिर सारी प्रजा को गिना। फिर पहाड़ों के रत्नों और वनों के फलों को कूता। और हरएक बात का ब्योरा अपनी पुस्तक में लिख लिया।

अब उसने आज्ञा निकाल दी कि कोई मेरे पर्वत का एक पत्थर भी न उठाने पाय, न मेरे वन का एक पत्ता ही तोड़ने पाय।

बड़ी सावधानी से वह प्रतिदिन अपनी सम्पत्ति की सूची देखता और हिसाब लगाता कि कहीं एक इञ्च जमीन या एक भी आदमी चोरी तो नहीं चला गया है।

(३)

एक दिन उसे समुद्र के किनारे एक सफेद पदार्थ मिला। सोचा, कदाचित् समुद्र-मंथन के समय भगवान के हाथ से अमृत की कुछ बूँदें पृथ्वी पर गिर गई होंगी वही जम गई हैं। लोगों को दिखाने

पर ज्ञात हुआ कि इस पदार्थ का नाम नमक है और इसके सेवन से मनुष्य स्वामि-भक्त हो जाता है।

गँवई को राजभक्त बनाने की अच्छी दवा हाथ लगी। उसने उसे बेचना आरम्भ किया। कुछ ही दिनों में वह मालामाल हो गया। परन्तु उसे यह मालूम न था कि मूल्य ले लेने से नमक की तासीर उलटी हो जाती है।

ख़रीदा हुआ नमक खाने के कारण लोगों के चित्त में गँवई के प्रति अश्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया। उनमे कुछ बुद्धि भी उदय हो चली। एक दिन उन्होंने वह स्थान ढूँढ निकाला, जहाँसे गँवई नमक लाकर बेचा करता था। अब क्या था असंख्य आदमी वहाँ जाकर नमक बटोरने लगे।

(४)

सुबह का सूरज अभी गुर्खे ही था कि समुद्र-तट पर खड़े लोगों ने देखा, गँवई लाल अंगार बना, लाठी ताने, मूँछें ऐंठे खड़ा है। वह गरजकर बोला—"ए मूर्ख भेड़ो, तुम्हारी यह हिम्मत कैसे पड़ी कि मेरा नमक चुराओ? हट जाओ, वरना ख़ून कर दूँगा।" पर किसीने उत्तर नहीं दिया। चुप-चाप लोग अपने थैलों में नमक भरते रहे।

ससागरा भूमि का ईश्वरकृत स्वामी गँवई, और उसकी यह अवहेलना! भला, सहन होने की बात थी? उसने लाठी चला ही तो दी। एक मरा, दो मरे, दस मरे, बीस मरे, परन्तु लोगों के कार्य में कोई अन्तर न पड़ा। न कोई 'आह' करता था, न कोई 'हूँ' करता था, किसीको सिर उठाने तक की फ़ुरसत नहीं। सभी नमक जमा करने में दत्त चित्त। आदमी मरते-मरते अपने थैलों में नमक भरते थे, एक मर जाता, दूसरा उसकी जगह ले लेता। न जाने उन्हें नमक से इतना मोह क्यों था! या तो यह केवल भेड़-चाल थी, या सचमुच ही वे उसे अमृत-खण्ड समझते थे।

गँवई की अजीब हालत थी। वह सुबह से शाम तक लाठी चलाता रहा। एक स्थान से दूसरे स्थान तक वह लाठी घुमाता हुआ दौड़ जाता। फिर उधर से इधर आता। पहली क़तार के लोगों को मार गिराता, दूसरी क़तार आगे आ जाती; उसे मारता, तीसरी आती। एक ओर से भीड़ को हटाता, वह दूसरी ओर बढ़ जाती; वहाँ दौड़ कर जाता कि फिर इधर वही जमाव हो जाता। ख़ून से ज़मीन लाल हो गई। अगणित आदमी मारे गये। एक पर एक लोथें बिछ गईं। पर लोगों का वही ढग! न कोई बचने के लिए हाथ ऊपर उठाता, न कोई भागने के लिए पीठ मोड़ता। स्वयं गँवई की लाठी रक्त से सराबोर और माँस के लोथड़ों से लथ-पथ होगई। सध्या होते-होते वह लोहू माँस से सनकर इतनी भारी हो गई कि गवई के लिए उसका चलाना नितान्त असम्भव हो गया।

निदान थका-माँदा, हारा हैरान गँवई शाम को भीड़ को वैसी ही छोड़ कर घर लौटा।

(५)

घर आकर बैठा ही था, कि सामने रक्खे हुए एक ताजा समाचार-पत्र के इन शब्दों पर उसकी दृष्टि पड़ गई—"सारी पृथ्वी के स्वामी का ईश्वर-प्रदत्त नमक के लिए इस प्रकार ख़ून-ख़राबा करना हमें बहुत विवेकपूर्ण नहीं दीखता।" फिर मन की उद्विग्नता बढ़ गई, शरीर क्रोध से जल-भुन गया—"हूँ! मैं ख़ून-ख़राबा कर रहा हूँ, मैं उत्पाती हूँ? मैं दुनिया का बादशाह हूँ, और उसको अपनी शक्ति और अधिकार दिखा दूँगा। इस टुच्चे समाचार-पत्र का यह साहस कि मेरे कार्यों की आलोचना करे! मैं इसका मुँह कुचल दूँगा।"

उसने उसी दम हुक्म निकाला, "तमाम समाचार-पत्र बन्द कर दिये जायँ और उनके छापने का सामान नष्ट कर दिया जाय।"

थोड़ी देर बाद उसे खयाल आया, "हो सकता है, लोग हाथ से लिखकर ही मेरे प्रति अभक्ति प्रकट करने लगें।" बस, एक आज्ञा और लिख मारी, "कोई व्यक्ति किसी को पत्र न लिखे। कागज़ और स्याही की दूकानों में आग लगा दी जाय।"

कुछ ही समय पश्चात् एक हुक्म और लिखा गया—"कोई दो आदमी साथ न रहें, क्योंकि हमें डर है कि वे हमारे विरुद्ध बातें करेंगे।"

सारी रात वह नहीं सोया और इसी प्रकार के हुक्मनामे लिखता रहा।

(६)

दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह फिर लाठी लेकर निकला। पर वह पहलेवाली बात जाती रही थी। कमर झुकी हुई, शरीर अकड़ा हुआ, मुँह उतरा हुआ, आँखें चढ़ी हुई। आज उतनी भीड़ नहीं थी। पर उसे तो अपनी शक्ति और अधिकार का प्रदर्शन करना था!

जनता का तो भय बिलकुल ही जाता रहा था; क्योंकि पाशविक शक्ति का आदर तभीतक रहता है, जबतक वह प्रयोग में नहीं आती। गँवई की लाठी कल का हजारवाँ हिस्सा भी आदमी आज नहीं मार सकी थी। यही नहीं, छोटे-छोटे बच्चे तक उससे न डरते थे।

एक शैतान लड़के ने उसे मुँह चिढ़ा ही तो दिया। चट उसने एक लाठी उसके सिर पर जमा दी। बेचारा लड़का मर गया। इधर दूसरे लड़के ने एक आवाज़ कर दी। उसका भी वही परिणाम हुआ। अब तो लोग उसे अकारण छेड़ते। कोई चोंच दिखाता, कोई तालियाँ बजाता। सशक्त गँवई दोपहर तक लाठी चला कर अपना रौब जमाने का प्रयत्न करता रहा। आखिर, खून में सनी हुई बेचारी हड्डी-तोड़ लाठी डेढ़ दिन की कड़ी मिहनत को न सह सकी और टूट गई।

अब गँवई ने दाँतों से काटना आरम्भ किया। कभी वह दोनों हाथ चला कर लोगों को मारता, कभी नाखूनों से नोचता, कभी लातें चलाता। लेकिन कहीं इस प्रकार असंख्य जनता का सामना हो सकता था?

शाम होते-होते वह थक कर सदा के लिए गिर पड़ा।

(७)

भगवान ने दरबार में देवताओं से कहा—"हमने गँवई को पृथ्वी का राज्य व्यवस्था स्थापित करने के लिए दिया था। शक्ति और अधिकार प्रदर्शन के लिए नहीं।"

हमारी कैलास-यात्रा

(७)

[श्री दीनदयालु शास्त्री]

महादेव के चरणों में

तिब्बत में हिमालय के समानान्तर एक शैल-श्रेणी चली गई है। इसपर वनस्पति नहीं है, केवल खोहों में जगह-जगह हिम पड़ा हुआ है। इसी शैल श्रेणी का नाम कैलास है। इस शृंखला के मध्य में एक ऊँचा शिखर है, जो सर्वदा शुभ्र हिम से लदा रहता है। यह शिखर मीलों से दिखाई देता है। इसी शिखर पर हिन्दुओं के आराध्य देव महादेव का वासस्थान है। इस शिखर का आकार लम्बा और ऊपर से गोल है। भारतीय मन्दिरों में प्रतिष्ठित शिवलिंग इसीके अनुरूप बनाये जाते हैं। भक्त लोग प्रति दिन शिव की आराधना के लिए अपने गाँव और नगर के शिवालय में जाते हैं। हम लोगों ने इस महाशिव की अर्चना के लिए २१ जुलाई मङ्गलवार के दिन प्रस्थान किया।

तुक्रू में कैम्प

तुक्रू से दरचन पाँच मील है। सारा रास्ता मैदान में से जाता है। बीच में कई छोटी छोटी नदियाँ पड़ती हैं। कई बार इनमें इतना पानी आ जाता है कि इन्हें पार करने में बड़ा खतरा रहता है। दरचन से ही कैलास की परिक्रमा शुरू होती है। स्थान-स्थान पर भेड़ें चरती हैं। इनकी ऊन दरचन में इकट्ठा होती है और बिकने के लिए ग्यानिमा मण्डी पहुँचती है। दरचन के आगे पहाड़ के नीचे-नीचे जाना होता है। पहले तीन मील मार्ग पश्चिम की ओर जाता है, फिर नदी के किनारे उत्तर की ओर मुड़ जाता है। यह नदी गौरीकुण्ड से निकलती है और कैलास के पश्चिम की परिक्रमा करती है। गौरीकुण्ड के निकट से एक अन्य नदी कैलास के पूर्वार्द्ध में बहती है। शिवालयों में शिवलिंग के चारों ओर जो जल-प्रणाली रक्खी जाती है यह उसका स्वाभाविक रूप है। मन्दिरों में जल द्वारा शिवजी को स्नान कराते हैं। प्रकृति के इस शिवालय में महादेव शुद्ध हिम से सजे रहते हैं। कैलास के चतुर्दिक बहने वाली ये सरितायें शिव-स्नान को निर्मल जल लिये सदा प्रस्तुत रहती हैं।

शुकरी गुम्फा

दरचन से पाँच मील पर पहाड़ी के नीचे एक बड़ा फाटक बना हुआ है। इस फाटक में शिव की कई मूर्तियाँ स्थापित हैं। पास ही कुछ लाल, पीले, नीले झण्डे गड़े हुए हैं। इस स्थान का नाम सरशुंग है। सरशुंग से एक मील पर शुकरी गुम्फा है। कैलास की परिक्रमा में तीन गुम्फायें हैं। इनमें शुकरी गुम्फा पहला है। शुकरी गुम्फा में नदी की चार-पाँच धारायें हैं। शुकरी गुम्फा से कैलास का शुभ्र शिखर बड़ा सुन्दर मालूम देता है। रुण्ड-मुण्ड पहाड़

के ऊपर शुभ्र हिम का वह समूह रवि-रश्मियों में चमक रहा था। विश्व का शृंगार करनेवाली प्रकृति ने उस शिखर को रत्नजटित मुकुट पहना रक्खा था। उसे देखकर हमारी मण्डली का आनन्द कई गुना हो गया था।

हमने आज ज़ुकरी गुम्फा के निकट ही डेरा डाला। आज हम महादेव के चरणों में बैठे थे। रात्रि के भोजन के अनन्तर संगत बैठी। बंगाली भक्तों ने मधुर स्वर में पिनाकपाणि की स्तुति की। बंगाली बड़े भावुक होते हैं। उपासना के मद में मस्त वे कभी सहसा नाचने लगते थे, कभी विचित्र भाव-भंगी करते थे और कभी लोट-पोट हो जाते थे। सभी अपनी ही तरंग में थे। हम लोगों ने बड़े प्रेम से मिलकर गाया—

हर को डमरू बाजे बाजे।
त्रिशूलधर अंग भस्मभूषण, व्याल माला गले विराजे।
पंचवदन पिनाकधर शिव, वृषभवाहन भूतनाथ!
रुण्ड मुण्ड गले विराजित, अजर अमर दिग मुरारे।

आज संगीत का बड़ा आनन्द रहा। जिस समय प्रेम में मण्डली गाती थी, उस विजन प्रदेश की दसों दिशायें गूँज जाती थीं। उस सुनसान घाटी में हमारा ही राज्य था। उसका सदुपयोग करना हमारे पल्ले पड़ा था। हमने वहाँ प्रेम, भक्ति और उपासना का साम्राज्य स्थापित किया। सारी रात मधुर शान्ति में व्यतीत हुई।

२४ जुलाई को सवेरे उठते ही चल पड़े। आज का सफ़र लम्बा तथा कठिन था। कल की तरह नदी के साथ-साथ जाना था। दाईं ओर कैलास का उन्नत शिखर था। बाईं ओर नदी के किनारे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े थे। वे सीधे-सपाट आकाश से बातें करते थे। कहीं बूटी का नाम-निशान नहीं। एक कठिन चट्टान के दुर्ग-से वे प्रतीत होते थे। इस गिरिदुर्ग के ऊपर में एक छोटा शिखर अकेला खड़ा था। दूर से हाथ में दण्ड लिये खड़े हुए एक मनुष्य की प्रतीति होती थी। इस शिवालय की रक्षा के लिए एक प्रहरी की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को ही प्रकृति ने इस रूप में पूर्ण किया था। चार मील जाकर मार्ग पूर्व की ओर मुड़ जाता है।

डिरफू गुम्फा

ज़ुकरी गुम्फा से डिरफू गुम्फा ६ मील है। यह बड़ा गुम्फा समझा जाता है। इन गुम्फाओं में यात्री को पर्याप्त सुख मिलता है। इक्के-दुक्के यात्री इनमें ठहर सकते हैं। लामा लोग गुम्फाओं में रहते हैं और भोले-भाले यात्रियों को ठग लेते हैं। इसमें उनका थोड़ा ही दोष है। तिब्बत भूखा नंगा देश है। हमारे साथ जो कुली चला करते थे उनके मालिक हमसे रोज़ खाने के लिए याचना किया करते थे। कुछ बंगाली इन्हें खाने को दे भी दिया करते थे। जो कुछ न देते थे उन्हें अपशब्द सुनने पड़ते थे। डिरफू गुम्फा के निकट जब हम लोगों ने कुछ खाना खाया तो तिब्बतियों ने स्वभाव के अनुसार माँगना शुरू किया। आज भोजन थोड़ा होने से उन्हें कुछ न दिया जा सका। वे चिल्लाने और हमें गालियाँ देने लगे। आध घण्टे तक बड़ा कोहराम मचा रहा। किसी तरह उन्हें शान्त कर आगे बढ़े।

डिरफू गुम्फा के सामने ही कैलास का अलौकिक दृश्य है। अबतक पीठ-पीछे से कैलास का केवल सुन्दर शिखर नज़र आया करता था; अब उसका समूचा शरीर प्रत्यक्ष हो रहा था। शुभ्र हिम का वह तेजोमय पुंज विलक्षण था। भाल पर हिम विराजता था। शिखर के नीचे तंग गले में घूम कर गोल-गोल बिछी हुई तुषार-राशि व्याल-माल की भ्रान्ति पैदा कर देती थी। उसके नीचे विशाल वक्षस्थल में भी चमत्कारी ठोस हिम पड़ा लोट रहा था। इस हिम में से वह जलधारा बह रही थी, जिसके साथ-साथ हम यहाँ तक आये थे। इस धारा में सुधाधिक मधुर नीर की सृष्टि हो रही थी। एक ऊँचे स्थल से गिरता हुआ वह फेनिल जल रवीन्द्रनाथ की मुक्तधारा का स्मरण कराता था।

पुराणों में पवित्रतोया जाह्नवी के जन्म का जो विचित्र वर्णन है, उसका यहाँ साक्षात् होता है। इस स्थिर हिम का जन्म आकाश से है। तिब्बत में जब वर्षा होती है तो वह जल के रूप में नहीं ओले या हिम के रूप में होती है। इस हिम का पतन कैलास महादेव के सिर पर होता है। इस हिम से ही इस नदी का जन्म है। प्रतीत होता है कि स्वर्ग से महादेव के शिखर पर गिरने वाली गंगा आजकल

डिरफू गुम्फा से कैलास

की हरद्वार वाली गंगा नहीं है, अपितु पंजाब में बहनेवाली शतद्रु या सतलज है। क्योंकि यह जलधारा कैलास से निकलकर सतलज में आ मिलती है।

इस स्थान से कैलास का दर्शन बड़ा आकर्षक है। रुण्ड-मुण्ड पहाड़ सब ओर से घिरे हैं। इनके मध्य के इस उन्नत शिखर पर हिम ही हिम बिछा है। और वह हिम भी कैसा शुद्ध, शुभ्र व सुन्दर है! दोपहर का समय था। नील आकाश की शोभा अद्भुत थी। इस हिम में से प्रतिक्षिप्त होकर भगवान् भास्कर की किरणें दर्शक के दिल को लुभा लेती थीं। वह दृश्य दिव्य था; अनुपम था। वह मोतियों का ताज था, रमणीक रजत की अविरल राशि था, पारद का पुंज था, या बहते दूध की धारा। इनमें से वह क्या था, यह नहीं कहा जा सकता। हममें से हर-एक उसे नये रूप में ही देखता था। वह विस्मय था और आज भी विस्मय की वस्तु बना हुआ है। उसके दर्शनों से नेत्रों की तृप्ति हुई, मन को शान्ति मिली, और आत्मा को आनन्द हुआ।

कैलास समुद्रतल से २२ हज़ार फुट ऊँचा है। सब तरफ़ से हिम से आच्छादित रहने के कारण इसके ऊपर जाना कठिन है। उपर जाने का कोई निश्चित मार्ग भी नहीं है। आम तौर पर यात्री डिरफू गुम्फा से ही उसके दर्शन कर लेते हैं। कैलास की परिक्रमा करना आवश्यक समझा जाता है। हमने भी नदी को लाँघकर आगे कदम बढ़ाया। नदी से ही चढ़ाई शुरू हो जाती है। हम लोगों ने धीरे धीरे चढ़ना शुरू किया। लीपूलेख के धुरे के समान यहाँ भी श्वास तेज़ चलने लगा। इस चढ़ाई पर जो धुरा आता है, उसीका नाम डोलमा धुरा है। यह समुद्र-तल से १८७० फुट ऊँचा है। इसमें से ही सिन्धु नदी की घाटी को मार्ग जाता है। दो मील तक ऊबड़-खाबड़ पहाड़ में से जाना होता है। धीरे-धीरे यात्री ऊपर चढ़ने लगे। घोड़े और झब्बुओं को आफ़त का सामना करना पड़ा। एक तो

तिब्बती यात्री परिक्रमा करते हुए

पहाड़ की चढ़ाई, तिसपर बोझ का दबाव; किसी तरह चढ़ चले।

दो मील पर कुछ तिब्बती यात्री मिले। हिन्दुओं की तरह बौद्ध लोग भी कैलास को मानते हैं। हम लोग दक्षिण हाथ से परिक्रमा करते हैं, किन्तु बौद्धों की परिक्रमा बायें हाथ से होती है। हमें परिक्रमा में जितने तिब्बती मिले, सब बाईं ओर से परिक्रमा कर रहे थे। दो मील बाद कुछ समतल है, फिर सीधी चढ़ाई शुरू होती है। सब साथी पीछे रह गये थे। मैं और डाक्टर नारायण ही आगे जा रहे थे। बंगाली यात्री अधिकतर सवारी पर चला करते थे। केवल तीन साधु और तीन डाक्टर ही पैदल चलते थे। ये तीनों डाक्टर चलने में खूब तेज़ थे। चलते समय वे दौड़ते से नज़र आते थे। तीनों हीं बड़े खुशमिज़ाज थे। इस सीधी चढ़ाई में मैं भी पीछे रह गया। डाक्टर नारायण आगे बढ़ गये। उस तेज़ धूप में प्यास सताती थी, पसीने से शरीर लथपथ हो रहा था, दम फूला जाता था, किन्तु महादेव की कृपा से हम सब सहे चले जा रहे थे। जबतक कोई ध्येय या लक्ष्य न हो, लम्बी मंज़िल को पार करना कठिन-सा होता है। यदि कैलास-दर्शन की तीव्र इच्छा हमारे दिल में न होती, तो डोलमाधुरे को पार करना हमारे लिए असंभव था।

गौरीकुण्ड का सुन्दर दृश्य

गौरीकुण्ड

तिब्बतियों के साथ इशारे से बात-चीत करते-करते मैं ऊपर पहुँचा। रंगीन झंडियों ने स्वागत किया। धुरे का शिखर यही है, यह जानकर धीरज बँधा। कुछ भगवान् की दो-तीन मूर्तियाँ निकट ही थीं। उनके पास बैठे हुए तिब्बती ने दान देने के लिए मुझे अपने पास बुलाया। न उसकी मैं समझूँ, न वह मेरी समझे। इशारे से मूर्तियों की ओर बार-बार हाथ करने लगा। मैं चुपचाप आगे बढ़ा। सामने का दृश्य कैसा मनोमोहक था! दो सौ क़दम पर एक छोटा-सा शान्त सरोवर था। चारों ओर से पहाड़ी से घिरा हुआ १९ हज़ार फुट की ऊँचाई पर यह मधुर जल-राशि! वाह! विधाता ने क्या काम किया है! उस सरोवर का जल सर्वथा हिम से ढका था। नील जल पर तैरती हुई वह तुषार-राशि सुधा-रस बरसा रही थी। हिम की वह सफ़ेद-सफ़ेद परत रह-रहकर नज़रों को अपनी ओर कर लेती थी। इसी छोटे किन्तु लुभावने सरोवर का नाम गौरीकुण्ड है। हमारी सारी यात्रा में गौरीकुण्ड सबसे ऊँचा स्थान था। इसके चारों ओर दृश्य महान् है। जिधर निगाह डालिए विधाता का विराट् रूप नज़र आता है। यह रूप सीमित नहीं, विशाल है; इसका पार पाना कठिन है। गौरीकुण्ड के पूर्व-दक्षिण में उन्नतकन्धर गिरि-शिखर खड़े हैं। उनपर पेड़-पत्ता कुछ नज़र नहीं आता। वहाँ है केवल कैलास का कृपापात्र, उसका सदा का साथी तुहिन। वह भी कहीं खोलों में छिपा पड़ा है। पश्चिम से हमने यहाँ पदार्पण किया है। उत्तर की ओर भी कठिन शैल-शृंग सिर उठाये खड़ा है। इसी परकोटे के बीच गौरीकुण्ड सुख से सो रहा है।
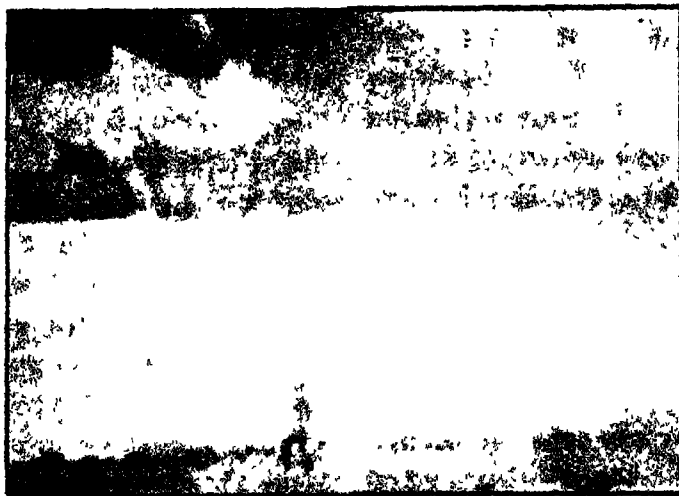
इस विराट रूप को देखकर सहसा महाभारत का

कथानक याद हो आता है। कौरवों पर विजय पाने के लिए पाण्डवों ने अर्जुन को कैलाश भेजा था। अर्जुन ने कैलास में कठिन तपस्या करके शिव को प्रसन्न किया था और शत्रुओं को जीतने का वर पाया था। कहते हैं, अर्जुन की तपस्या से देवराज इन्द्र का आसन डोल उठा था। गौरीकुण्ड का विशाल रूप उसी तपस्या की सूचना दे रहा था। शिखर से उतरते समय मेरा मन यही कल्पना कर रहा था कि शायद यहीं अर्जुन तपस्या करने आये थे। इसी जलाशय के तट पर, गिरि-दुर्ग में ही, इन्द्र और अर्जुन का वह वार्तालाप हुआ था, जिसका वर्णन कर महाकवि भारवि सदा के लिए अमर हो गया है। किरातार्जुनीय काव्य में इन्द्रार्जुन-संवाद पढ़ने की चीज़ है। मैं धीरे-धीरे गौरीकुण्ड के किनारे पहुँचा। मेरे सामने पुराना इतिहास पुतलियों की तरह नाचने लगा। मैं उस एकान्त में अर्जुन और इन्द्र की बहस में आनन्द लेने लगा। किस तरह इन्द्र भिन्न-भिन्न उपायों से अर्जुन को फुसलाते थे और किस तरह वीर अर्जुन दृढ़ता से उन्हें उत्तर देते थे। रह-रहकर मेरे कानों में अर्जुन के ये वाक्य गूँजने लगे —

विच्छिन्नाभ्रविलायं वा विलीये नगमूर्धनि ।
आराध्य वा सहस्राक्षमयशः शल्यमुद्धरे ॥

मैं इन्हीं विचारों में मस्त धीरे-धीरे चला जा रहा था। सहसा सरोवर से आती हुई आवाज़ ने मेरी योग-निद्रा भंग कर दी। मैंने आँख उठाकर देखा, कुण्ड-तट पर बैठे डाक्टर नारायण अमृत पीने में लगे थे। उन्हें अकेला अमृत का मज़ा लेते मुझसे न देखा गया। लपका हुआ उनके पास पहुँचा। सरोवर के तट पर बैठकर यथेष्ट सुधा-पान किया। कितना मधुर जल था वह! कितना शुद्ध और सुस्वादु! सुर-लोक के देव-गण भी इसके लिए लालायित रहते होंगे। दोनों ने मिलकर स्वल्प आहार किया और पीछे आनेवाले साथियों की बाट जोहने लगे।

गौरीकुण्ड के मनोरम तट पर मैं दो घण्टे तक बैठा रहा। धीरे-धीरे बंगाली यात्री शिखर पर पहुँचे। मेरे तीनों साथी भी पहुँच गये। सब आगन्तुकों के मुँह पर मुरदनी छाई हुई थी, सबपर थकान का असर था। सरोवर के शीतल सलिल ने सबकी थकान दूर कर दिया। यह पावन प्रदेश सबको सुखदायी प्रतीत हुआ। अति शीत के कारण इच्छा होते हुए भी हम यहाँ पड़ाव न कर सके। गौरीकुण्ड से विदा ली। आगे एकदम उतार है। दो मील तक भागे-भागे चले गये। कैलास अदृश्य हो गया। जिसके लिए हम स्वदेश से चले थे, हमारी वह इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। हम ने महादेव के दर्शन किये, उसके चरणों में शीश नवाया था। अब हम सफल मनोरथ हो वापस आ रहे थे। गौरी-कुण्ड तक यात्रा का पूर्वार्द्ध था, अब उत्तरार्द्ध प्रारंभ हुआ। दो मील नीचे उतरकर घाटी आ जाती है। नदी के किनारे डेरा डाल दिया। यह वही नदी है, जो कैलास के पूर्व-दक्षिण की परिक्रमा करती है।

२५ जुलाई के प्रातः आगे प्रस्थान किया। घाटी खूब हरी-भरी है। जहाँ-तहाँ हरी-हरी दूब आँखों को बड़ी प्यारी लगती है। चार मील पर दो घाटियाँ मिलती हैं। यहाँ से परिक्रमा पुनः पश्चिमाभिमुख हो जाती है और यात्री दो मील पर डिरिफू गुम्फा के दर्शन करता है। परिक्रमा में यह तीसरी गुम्फा है। धीरे-धीरे पहाड़ कम होते जाते हैं। कैलास की विशाल चोटी पीछे रह गई और हम लोग छोटी-छोटी पहाड़ियों में से निकलकर मैदान में आ गये। कैलास की परिक्रमा दरचन से प्रारंभ होती है, और कैलास के चारों ओर ३२ मील का चक्कर काटकर दरचन में ही समाप्त हो जाती है। हम लोगों के लिए लौटते समय भी जुंगदू ही सुविधाजनक था, अतः हम दरचन न देख सके। दो-तीन नदियों को पार कर २५ जुलाई के सायंकाल सकुशल जुंगदू पहुँच गये। रात जुंगदू में ही आनन्द से कट गई।

जुंगदू में हमारी टोली बिखर गई। यहाँ से भारत लौटने का एक मार्ग ग्यानिमा मण्डी होकर जाता था। हमारी टोली ने नवीनता की दृष्टि से इसी मार्ग को पकड़ा। श्री जयसिंहजी की कृपा से हमें ग्यानिमा के लिए दो चँवर-गाय मिल गईं। उनके दो आदमी ऊन लेकर ग्यानिमा मंडी जा रहे थे। हमें इनके साथ जाने से सुभीता रहा। एक ब्रह्मचारी कलकत्ते का रहनेवाला हमारे साथ हो गया। वह पाँच-छः बार कैलास की यात्रा कर चुका था और अभी कई बार यात्रा की इच्छा रखता था। एक झोले कम्बल और दो-चार कपड़ों के साथ इस ब्रह्मचारी को कैलास की यात्रा

करते देख हमें बड़ा अचरज होता था। वह स्वयं भी कष्टों के मारे परेशान था, किन्तु हिम्मत न हारता था। २६ जुलाई की सुबह हमने बंगाली भाइयों से विदा की। इनके साथ दस दिन रहने से परस्पर प्रेम-भाव हो गया था। इतनी मण्डली में खूब आनन्द से दिन कट जाते थे। इन्हीं कारणों से हमारे मास्टर कल्याणदेवजी उनका संग छोड़ना न चाहते थे। जिस रास्ते से आये थे उस रास्ते से लौटने को जी भी न चाहता था। अन्त में हमारी टोली ने ग्यानिमा से ही लौटने का निश्चय किया। बंगाली लोग ताकलाकोट के रास्ते वापस चले गये और हम पाँच आदमियों ने अपना रास्ता पकड़ा।

सतलज के तट पर

बुंगद् से आगे दस मील तक सीधा मैदान है। दिन भर में मैदान पार कर सायंकाल के समय छोटी पहाड़ियों में दाखिल हुए। यहाँ ही सतलज नदी के पुनः दर्शन हुए। मानसरोवर से निकलते समय धारा में जल अधिक था। मार्ग में कई नदियों का पानी इसमें और आ मिलता है। तिसपर भी इन पहाड़ियों में यह छोटी नाली-सी जान पड़ती है। बात यह है कि तिब्बत में स्थान-स्थान पर रेगिस्तान हैं, जिनमें इसका पानी समा जाता है। एक पहाड़ी में दो-तीन गुफायें खुदी हुई हैं, जिनमें यात्री आश्रय लेते हैं। इन्हें लजंडा की गुफा कहते हैं। यहाँ सतलज के किनारे बीसियों चँवरगायें घास चरा करती हैं। इनमें एक नील-वर्ण-गाय अति दर्शनीय थी। उसकी ग्रीवा के बाल कैसे सुन्दर लगते थे! जब वह गुच्छेदार पूँछ को उठाकर रँभा देती, तो देखनेवालों की आँखों में नशा-सा छा जाता था। हम लोगों ने सतलज नदी के किनारे डेरा डाला। हमारे पास स्टोव न रहा था। आज गोबर की आग में खाना पकाना पड़ा। बड़ी कठिनता से दो-दो नमकीन रोटियाँ उतर सकीं। इस थकान में इन अधपकी अधजली बाटियों में षड्रस का आनन्द आता था।

लजण्डा से ग्यानिमामण्डी २५ मील है। इतने लम्बे सफ़र के लिए सबेरे ही चलना पड़ा। आज बहुत से तिब्बती मार्ग में मिले। सब अपनी-अपनी भेड़ों को ग्यानिमा ले जा रहे थे। किसी-किसी के साथ हज़ार से ऊपर भेड़ें थीं। एक बुड्ढा तिब्बती चक्र को घुमा रहा था। पूछने से पता लगा, वह 'ओम् मनि पद्मे हुँ ओम्' का जाप कर रहा है। रास्ता कभी पहाड़ी में ले जाता है, कभी मैदान में आ जाता है। पानी का नाम-निशान नहीं है। सात मील पर एक छोटी-सी धारा है। यहाँ हमें बहुत-से जोहारी लोग मिले। ये लोग कैलास-दर्शन के लिए जा रहे थे। हमें कैलास से लौटा जानकर वे धन्य-धन्य कहने लगे।

रन्ताछू के आस-पास का दृश्य बड़ा सुन्दर है। खूब लम्बा-चौड़ा हरा-भरा मैदान है। सब ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। बीच में धारा बह रही है। यहाँ जोहारियों का डेरा था। उन्होंने हमें आज रात अपने यहाँ ठहरने के लिए कहा, किन्तु हम आज ही ग्यानिमा पहुँचना चाहते थे। अतः उनका निमंत्रण स्वीकार न कर सके। रन्ताछू से ग्यानिमा दस मील है। रास्ता साधारण है। सायंकाल सात बजे चले। सूर्य देवता भी अस्त हो गये। अभी ग्यानिमा दूर था। कनखलवाले ब्रह्मचारी को ज्वर आ गया, किन्तु उसने हिम्मत न हारी। अन्धेरे में ग्यानिमा पहुँचे। ग्यानिमा जोहारवालों की बड़ी मण्डी है। यहाँ हम दो रात रहे।

वह देश कौनसा है ?

[श्री मुरलीधर श्रीवास्तव, बी० ए०]

उज्ज्वल किरीट जिसका
रजताद्रि सा हिमालय,
हँसता सदा प्रफुल्लित,
वह देश कौनसा है ?

छाती पर, मालिका-सी,
बहती कलावती-सी,
गंगा कल्लोलिनी है,
वह देश कौनसा है ?

निर्झर, सरों, अनिल में
गिरि की उपत्यका में,
शुभ-कीर्ति गूंजती है,
वह देश कौनसा है ?

जिसके पुनीत पद पर
मणि, रत्न और मोती,
निशिदिन उदधि चढ़ाता,
वह देश कौनसा है ?

उपहार में मिले हैं
सौन्दर्य प्राकृतिक सब,
छविमय प्रकृति सहेली,
वह देश कौनसा है ?

ऐसी मनोज्ञ सुन्दर,
यह भूमि रत्न—गर्भा,
प्रभु ने किसे दिया है ?
वह देश कौनसा है ?

रज, रज, कणों-कणों में,
कुछ शक्ति है अनोखी !
स्वर्गीय मेदिनी है,
वह देश कौन सा है ?

उस पूर्व सभ्यता के
अवशिष्ट रूप अबतक,
करते जगत सुशोभित
वह देश कौनसा है ?

तैंतीस कोटि जन का
प्यारा, हृदय दुलारा,
सारा वसुन्धरा का
वह देश कौनसा है ?
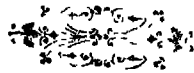
लाहौरी जूता

अर्थात

भारतीय दास-प्रकृति का एक चित्र

[आचार्य श्री विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०]

लाहौर भारतवर्ष के प्रसिद्ध तथा बड़े नगरों में से एक है। यह पञ्जाब की राजधानी होने से राजकीय शासन-प्रबन्ध तथा शिरोमणि न्यायाधिकरण-द्वारा न्याय-रश्मि विस्तार का केन्द्र-स्रोत है। पंजाब-विश्वविद्यालय तथा उससे संगठित विविध संस्थाओं का मुख्य निकेतन है। आर्य-समाज, सनातन-धर्म तथा अन्य सभी प्रमुख सम्प्रदायों की शक्तियों का गढ़ तथा उनके कार्यों का निदर्शन-स्थान है। पुराने लाहौर के बाहर, प्रायः सभी ओर पर विशेष रूप से पूर्व और दक्षिण की ओर, नई-नई बस्तियों, बाज़ारों और सड़कों का विस्तार सराहनीय है। सरकारी भवनों तथा ठण्डी सड़क की दूकानों की निराली शान है। अनारकली के बाज़ार की सज-धज में भी कोई कसर नहीं। पर असली, ऐतिहासिक लाहौर का नगर भाटी, मोरी, लोहारी आदि नामों से प्रसिद्ध, कई दरवाज़ों के अन्दर, एक विशाल, पुरानी फ़सील के घेरे में बसा हुआ है। यहीं के अपेक्षाकृत तंग बाज़ारों में मुग़लों तथा महाराज रणजीतसिंह के समय में संसार-भर का व्यापार होता था। और, विचार कर देखें तो, स्वाभाविक भेद के होते हुए भी, इन स्थानों की रौनक़ तथा उपयोगिता में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। जहाँ बाहर के नये बाज़ारों में जर्मनी और जापान के अड्डे हैं, वहाँ इन अन्दर के पुराने बाज़ारों में अपने यहाँ का माल अधिक बिकता है। कहीं अनाज की मण्डी है, कहीं घी वालों के हट्ट हैं, और कहीं कपड़े के व्यापारियों के कटड़े हैं। यहाँ साहब लोगों का आना-जाना कम होने से, सब चीज़ें अच्छी और सस्ती भी मिल जाती हैं।

शहर के बिलकुल अन्दर घुसा हुआ, एक अत्यन्त तंग और संकुचित-सा स्थान है। इस जगह को छत्ता बाज़ार कहकर पुकारा जाता है और यहाँ पर देशी जूतों की मण्डी है। यहाँ पर पेशावर और पोठोहार के, झंग और मुलतान के, कसूर, लुधियाना तथा दिल्ली तक के तरह-तरह के जूते आकर बिकते हैं। जो लोग अनारकली के विशाल बूट-हाउसों में निर्धनता अथवा अन्य किसी कारण से पदार्पण करने का साहस नहीं कर सकते, वे बड़े शौक़ से यहाँ आकर अपने अनुकूल सौदा करते हुए देख पड़ते हैं। यहाँ का सबसे प्रसिद्ध नमूना 'गामेशाही' जूता समझा जाता है।

कहा जाता है, गामा नाम का एक जूता बनाने वाला हुआ है। जिस प्रकार लिप्टन के उद्यम से उसकी चाय मशहूर हो गई, उसी तरह, गामा की कारीगरी ने उसके जूते को पंजाब-भर में प्रसिद्ध कर दिया था। वह अच्छे चमड़े पर अच्छी कमाई करता था।

देखने में यह जूता विशेष मनोहर प्रतीत नहीं होता था। पर जब ग्राहक अपने पाँव के नाप का जोड़ा चुन लेता था, तो गामा उसकी 'ठपाई' करवा

था। इस विशेष क्रिया से, जूते का भद्दापन दूर होकर, एक चमक-सी पैदा हो जाती थी। यह सब को विश्वास था कि यह जूता पूरा साल-भर चल जाता है। परन्तु साथ ही उन्हें एक और बात का भी पता था। पहले कुछ दिन, यदि असावधानी की जाती तो, यह पाँव को काट भी खाता था। शनैः-शनैः लोगों ने इसके 'रखाने' का ढंग जान लिया; और, पक्का तो यह था ही, इसका प्रचार दिनों-दिन बढ़ता गया। लाभ के कामों में कौन साझी नहीं बनना चाहता? गामा के शिष्य बढ़ने लगे और, समय पाकर, लाहौर का प्रत्येक चर्मकार यही नमूना बनाने लगा। इसलिए, अब 'गामाशाही' तथा 'लाहौरी' जूता एक ही वस्तु के वाचक हैं।

जो दूकान चल निकलती है, वहाँ मिट्टी आटे के भाव बिकती है तो आटा खाँड हो जाता है। प्रसिद्धि सब दोषों पर पर्दा डाल देती है। जिसका एक बार डंका बज गया, अब उसे कमाई करने की क्या पड़ी? उसकी तोंद फुलाने को पहली पूँजी ही क्या कम है? गामा के पीछे, उसका जूता वह पुराना 'गामाशाही' जूता नहीं रहा। अब न वह पक्कापन है, और न वह चमक ही है। वर्ष में कहाँ तो एक ही पर्याप्त होता था, और कहाँ अब तीन से भी गुजर कठिन हो रही है। पर गुण चाहे गामा साथ ही ले गया हो, दोष इसमें अब भी वैसे ही पाये जाते हैं। अब भी वैसे ही सोच-समझकर इसे धारण करना पड़ता है, नहीं तो काटने को आता है।

पहले दिन तो इसे पाँव में लगाकर पाँच मिनट तक कमरे में ही कदम रखना होगा। दूसरे दिन दस मिनट के लिए आँगन में टहल सकते हैं। शनैः-शनैः समय की मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते, दस-पन्द्रह दिन के पीछे, यह वश में हो जाता है। जल्दी करना हो, तो कडुवा तेल छका दिया जाता है। गीले पाँव से भी खुल जाता है। जौनसा उपाय चाहो, करो। एक बार इसका अकड़पन दूर होना चाहिए; फिर तो जितना चाहो काम लो। जब अँधेरे में आँखें भी इसे नहीं देख रही होतीं, पाँव अपने आप इसमें घुसता जाता है।

जब कभी इस 'विधि' के अनुष्ठान में प्रमाद हो जाता है, तो बड़ा क्लेश होता है। प्रायः पाँव की गाँठ के पीछे ऊपर की ओर ही यह काटा करता है। वहाँ कितनी ही नाड़ियों का संगम-स्थान होने से, इधर-उधर सूजन-सी हो जाती है। पानी 'चुरा' जाता है। कटि-प्रदेश के जोड़ों में गुमड़ी-सी होकर, ज्वर भी हो जाता है। इस अवस्था में पुराने लोग या तो व्रण पर बाँस रगड़ कर लगाते हैं, या पुराने चमड़े की भस्म से ही ठीक कर लेते हैं। पर जब यह पुराना हो जाता है, तब भी काटने लगता है। वर्षा-ऋतु में भीग कर ढीला हो जाए, या धूप में पड़ा-पड़ा सूख जाय, तब भी वही हाल है। इस प्रकार इसके पहनने वाले को सदा ही जागरूक रहना होता है।

गामाशाही जूते का यह वर्णन न निरर्थक ही समझिएगा और न किसी कमीशन-एजेन्ट का विज्ञापन ही जानिएगा। यह तो परतंत्र जातियों की मानसिक वृत्ति का ही एक चित्र प्रतीत होता है। दासता का पाँव किसी जाति के मन में एक दम नहीं धँस जाता। जब गेहूँ एक स्थान पर पड़ा सड़ने लगता है, तभी तो घुन महाराज का शासन आरम्भ होता है! कीट भगवान् वृक्ष को क्यों रिझाते हैं। शनैः-शनैः उसके अन्दर से आत्मत्व का 'अनिष्ट' तत्व निकल जाता है और झट वह लंबा-चौड़ा वनस्पति, जो कुछ ही समय पूर्व अभिमान के कारण पृथिवी की ओर देखता भी न था और आकाश से बातें करता था, लज्जावनत होकर भूमि-माता के चरणों से लिपट जाता है।

गुलाब का पौधा बड़ा मनोहर प्रतीत होता था। प्रातः-समय की ठण्डी-ठण्डी पवन के झोंकों से जब हरी-हरी पत्तियों और नरम-नरम अर्ध-विकसित पंखड़ियों पर शीतल रात्रि के जमे हुए जल-बिन्दु इधर-उधर हिलते हुए माला के मोतियों को मात करते थे, तो आँखें उस दृश्य से भरसक यत्न करने पर भी हटने का नाम न लेती थीं। सैकड़ों झाड़-झंकाड़ों को चीर-फाड़, नाना प्रकार के सुन्दर पुष्पों को छोड़-छाड़, मिलिन्द-वृन्द इसी के इर्द-गिर्द घेरा डाले रहते थे। सच है, वह इस समूची वाटिका के अभिमान का समय था। पर, हा! कराल काल के आगे किसी का वस नहीं चलता। आज सारा उद्यान सूना प्रतीत होता है। मूर्ख माली की अनवधानता ने सारी रौनक़ बरबाद कर दी! न-जाने उसने कौनसी ख़राब खाद डाल दी! यह आराम-नायक अन्दर ही अन्दर गलता गया पर किसी ने बीमारी को भाँपा ही नहीं। एक-एक करके पत्ते और फूल सूख चुके हैं। अब इस सूखी कण्टारी लकड़ी को देखकर रोना आता है। वही प्रातः को शुभ बेला है। सारा संसार नये जीवन की चहल-पहल में मस्त है। पर इस सूखी लकड़ी के आस-पास उगी हुई दूब ओस के आँसू बहा रही है।

एक समय था, जब सकल संसार के प्रकाश का मूल कारण भारत-प्रदीप जलता था। प्रकाश-प्रिय पतंग दूर-दूर से आकर इसकी जगज्जीवनी ज्योति पर लट्टू होते थे। सब प्रकार की रौनक़ और शान मौजूद थी। पर इसी शान की छाँह में शत्रु भी ताक में बैठे थे। दीपक के नीचे का अन्धेरा उन्हें आश्रय दे रहा था। उनके अथक परिश्रम से इसके आन्तरिक कोष की तह में छिद्र हो चुका था, किन्तु ऊपर की चमक में किसी का उधर ध्यान न जाता था। पर, अधिक क्या कहा जावे, इस दीपक की उस वृक्ष और गुलाब की सी ही गति हुई। अब वह ज्वाला कहाँ है, वह दीप्ति कहाँ है? अब वह शान कहाँ है, वह मान कहाँ है? हाँ बत्ती की नोक पर कुछ लाली शेष है। देखें, चारों ओर की ठण्डक में वह कहाँ तक ठहर सकेगी!

भारतीय जनता की यह आन्तरिक दीनता विदेशियों के आक्रमणों के लिए निमन्त्रण का काम दे रही थी। उनका ताँता लग गया। उन्होंने अपनी फूँकों से उस मन्द ज्योति को 'मिसमाना' चाहा। पर वह लाली मिटी नहीं। यत्न करते-करते शत्रुगण का दम फूलने लगा। दीपक के किनारों में कहा-कहीं स्नेह-बिन्दु मौजूद थे। वे भड़क उठे और एक टिमटिमाहट-सी पैदा हुई। अच्छे दिनों के फेर की आशा जाग पड़ी। वैरियों के विध्वंस के लिए फप-फप करती हुई लपट भी निकली। पर वह स्थिर न रह सकी। एक बार बाहर को उठती थी, तो चार बार अन्दर ही रहकर दीपक की दीवारों को ही भस्म करना चाहती थी। लपटों में सामर्थ्य तो प्रतीत होता था, पर वे आपस में ही झपट-झपटकर नष्ट हो रही थीं। नीचे के छिद्र को पूर्ण करने की ओर कोई प्रयत्न नहीं हो रहा था।

इसी अन्तर में, पश्चिम से एक विकराल झंझावात का प्रकोप उठा और उसने भी इसी दीपक का घेरा डाल लिया। अब बचने की संभावना और भी कम थी। पर अभी लाली न गई थी। कभी-कभी लपट भी उठती थी। पश्चिमी शिकारी नीति-निपुण निकला। कहीं एकदम पाँव की दाब से गामाशाही जूते के काट खाने की तरह यह सुलगती ही ज्वाला लपककर मुझे ही न लपेट ले, ऐसा विचारकर उसने धीरे-धीरे सांत्वन, स्नेहन तथा भेदन आदि की नीति का अच्छा प्रयोग किया। जैसे पानी में तेल की बूँदें डालकर दिये से लाड़-

प्यार करना होता है, वैसे ही इस वैज्ञानिक वैरी ने थोड़ी सी स्नेह की बून्दों से भारतीय प्रजा-रूपी गामाशाही जूते को पुचकारना आरंभ किया। हत-भाग्य जूता दबता गया। दीये का क्षणिक लाड़-प्यार समाप्त हुआ। पानी कहाँ तक जल सकता था? पर जूता नरम पड़ गया। पाँव खूब धँसने लगा।

अब अन्धेरा हो या चाँदना, मालिक का पाँव अपने जूते को ठीक पहचान जाता है। अब भी कभी-कभी असावधानी हो जाने से यह काट भी खाता है और अकड़ भी जाता है। पर इसका बुद्धि-मान मालिक झट सावधान होकर पूर्वोक्त उपाय का प्रयोग कर लेता है। इसी जूते के पुराने साथियों की चिताओं से राख की चुटकी ले लेता है, या उन्हींके तट पर उगे हुए लंबे बाँसों के एक टुकड़े को घिस कर लेप कर देता है। वह खूब जानता है कि इस जूते की अकड़ को इसके अपने अंगों की भस्म और हड्डियों से ही ठीक किया जा सकता है।

पर प्रभु सबका रक्षक है। जब-तक किसी सत्ता के आत्म-तत्त्व का सर्व-नाश न हो गया हो, तबतक कभी-न-कभी उसके जीवन का मोड़ मुड़ता ही है। अभी यहाँ भी वह पुरानी लाली मरी नहीं। शीघ्र ही विदेशी वीर अनुभव करनेवाला है कि यह जूता अब अति जीर्ण होकर पुनः काटने लगा है। अब सिवाय छोड़ फेंकने के और उपाय न हो सकेगा। संभव है, वह लाली बल पकड़कर लपट और लपट से ज्वाला के रूप में परिणत होकर सब-से पहले उन घरेलू शत्रुओं, बाँसों और पुराने जूतों को ही भस्म कर दे। अवश्य उस समय विचित्र प्रकाश होगा। एक ओर घर की फूट की दाह-क्रिया हो रही होगी, और दूसरी ओर सच्चो स्वतन्त्रता के भानु का उदय हो रहा होगा। रात्रि के अन्धकार-रूपी असुर के नाश हो जाने पर निशाचर-वर्ग निःस-हाय होकर न-जाने कहाँ विलीन हो जाते हैं। क्या इसी प्रकार, स्वार्थ, दम्भ और अज्ञान-रूपी महाभय-कर असुर के नष्ट हो जाने पर, सर्व प्रकार का शत्रु-दल स्वयं शान्त न हो जायगा। यही पिशाच अब तक भारतीय दीपक को मन्द करने में सहायक होता चला आया है। इसीके आधार पर भारतीय प्रजा दूसरों के पाँव का जूता बनी रही है। इसीके विद्रा-वण और विध्वंस से भारत का पुरातन प्रदीप पुनः प्रज्वलित होगा और दीन-हीन प्रजा के भीतर फिर एकबार सच्चे आत्म गौरव, आत्मावलम्ब, आत्म-संयम और आत्म विकास का गुलाब खिलेगा। पुनः भारत-वर्ष जगज्जीवन का स्रोत और जगज्ज्योति का केन्द्र बन सकेगा।

पेशवों की शासन-व्यवस्था

(१)

[अध्यापक श्री गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०, एल० टी०]

सस्ता-मण्डल (अजमेर) मराठों के उत्थान और पतन पर शीघ्र ही एक पुस्तक प्रकाशित कर रहा है, जिसके लेखक अध्यापक गोपाल दामोदर तामस्कर हिन्दी-संसार के सुपरिचित हैं। 'शिवाजी की शासन-व्यवस्था' वाला अंश हिन्दी-संसार के सामने पहुँच ही चुका है, आशा है कि राजनैतिक उथल-पुथल के इस ज़माने में पेशवों की शासन-व्यवस्था की जानकारी भी हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगी। —सम्पादक

१. नाम मात्र के राजा—पेशवों के समय शासन व्यवस्था में यह बड़ा परिवर्तन हुआ कि सातारा के राजा के स्थान पर पेशवा सर्व-सत्ताधीश बन बैठा। कारण यह कि पहले-पहल तो शाहू ने गद्दी पर अच्छी तरह बैठने तक राज्य-व्यवस्था की ओर अच्छी तरह ध्यान दिया; पर जब वह अपनी गद्दी पर पक्की तौर से बैठ चुका, तब उसने राज्य का सारा कारबार अपने पेशवा बालाजी विश्वनाथ के हाथ सौंप दिया और स्वयं विलास में समय बिताने लगा। पेशवा पर राज्य का सारा कारबार अवलम्बित होने के कारण राज्य कार्य की व्यवस्था के लिए लगान-वसूली का बन्दोबस्त करना पड़ा। इस व्यवस्था से पेशवा का अधिकार बढ़ा और राजा का अधिकार घटा शाहू की मृत्यु के बाद रामराजा ने तो स्पष्ट कह दिया कि राज्य का सारा कारबार पेशवा ही चलावे; मुझे अपने निजी खर्च के लिए कुछ प्रदेश सातारा के पास दे दिया जाय। बालाजी बाजीराव ने पहले ही से, शाहू की मृत्यु के समय, पेशवा के नाम राज्य-कार्य की सनद उससे लिखवा ली थी और फिर रामराजा ने जब अपनी उपर्युक्त इच्छा प्रकट की तब तो पेशवा मराठा राज्य के कारबार का सर्वेसर्वा हो गया और सातारा का छत्रपति केवल नामधारी राजा रह गया। सातारा के राजा के नौकरों की नियुक्ति, वेतन-वृद्धि, इत्यादि सभी बातें पेशवा के हाथ में चली गईं। अब राजा और उसके कुटुम्बीजनों को पेशवा पर प्रत्येक बात के लिए अवलम्बित रहना पड़ता था और जब कभी नौकर-चाकर, धन-भूमि आदि किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती थी तब उन्हें पेशवा से कहना पड़ता था। पर राजा की स्थिति इतनी नगण्य होने पर भी मराठा-राज्य में सातारा के राजा का मान-सम्मान आवश्यकतानुसार अवश्य होता था। राज्य के सब बड़े-बड़े सरदार अपनी सरदारी की सनद और उसकी पोशाक राजा से ही पाते थे। जब कभी नया पेशवा बनता तो वह भी अपनी पेशवाई के वस्त्र सातारा से ही मँगवाता था। हाँ, यह सत्य है कि जो कोई अधिकारारूढ़ पेशवा होता उसके नाम पेशवाई के वस्त्र भेजने में वे पूछताछ या विघ्न-बाधा न करते थे। जब कभी पेशवा या अन्य मराठे सरदार सातारा के राज्य की सीमा के भीतर पहुँचते तो अपने सब शाही चिन्ह दूर कर देते थे, पैदल चलकर राजा के पास जाते, उसके चरणों में अपना सिर नवाकर प्रणाम करते और हाथ जोड़कर खड़े रहते थे। राजा के राज्य के भीतर किसी प्रकार की लूट-मार न होने पाती थी। इसी प्रकार जब कभी राजा पेशवा की भेंट को आते तो पेशवा अपने को उसका नौकर समझकर उसका अच्छा स्वागत-सम्मान करते थे। राजा के कुटुम्बी और नौकर सब प्रकार के करों से मुक्त थे और नज़दीक के रिश्तेदारों को ज़मीन या नक़द द्रव्य पोषण के लिए मिला करता था।

२. शाहू के बाद—पेशवा के सर्वसत्ताधारी होने का कारण ऊपर बता चुके हैं। पेशवा वास्तव में अष्ट प्रधानों में से मुख्य प्रधान था। बालाजी विश्वनाथ के पहले छः पेशवा हो चुके हैं। बालाजी विश्वनाथ मराठा राज्य का सातवाँ पेशवा था और जिस समय बालाजी विश्वनाथ पेशवा हुआ उस समय उसका पद सिद्धान्त की दृष्टि से भी राजा के बाद सर्वोच्च न था, क्योंकि पंत-

प्रतिनिधि का पद इस दृष्टि से पेशवा के पद से ऊँचे दर्जे का था। पंत-प्रतिनिधि के पद की नियुक्ति राजाराम के महाराष्ट्र को छोड़ जिंजी जाने पर हुई थी। पंत-प्रतिनिधि का वेतन १५ हज़ार होण * था। परन्तु पेशवा का वेतन केवल १३ हज़ार होण था। इसी बात से दोनों के पद का मिलान हो सकता है और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। पेशवा एक प्रधान, यानी राजा का नौकर था, परन्तु पंत-प्रतिनिधि राजा का प्रतिनिधि था। सभी देशों में राजा के प्रतिनिधि यानी रीजेण्ट का पद प्रधान मंत्री के पद से भी ऊँचा ही रहता है, क्योंकि वह राजा के स्थान में ही काम करता है। परन्तु बालाजी बाजीराव ने अपनी योग्यता और कार्य के द्वारा अपना पद सर्वोच्च कर लिया और राजा के समान पंत-प्रतिनिधि का पद भी प्रतिनिधियों की अयोग्यता के कारण पीछे पड़ गया। भाग्य से बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका लड़का बाजीराव बड़ा प्रतापी निकला और उसने मराठा-राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। इसलिए इसी समय से पेशवा का पद कुछ अंश में आनुवंशिक होता जान पड़ा था। बाजीराव के बाद जब अनेक विघ्नों के होने पर भी पेशवा का पद उसके लड़के बालाजी उर्फ़ नाना साहब को मिला, तब तो उसपर आनुवंशिकता की छाप पूरी तौर से लग गई। बालाजी बाजीराव के बाद फिर इस बात का प्रश्न भी न उठा कि पेशवा का पद उसके तरुण लड़के माधवराव को क्यों मिले? बालाजी बाजीराव के शासन-काल में ही यह बातचीत हो रही थी कि दिल्ली की गद्दी पर उसका लड़का विश्वासराव बिठलाया जाय। इसी बात से स्पष्ट है कि पेशवा के पद पर बालाजी विश्वनाथ के वंशजों का आनुवंशिक अधिकार राजा के पद के समान ही माना जाने लगा था। यदि बालाजी विश्वनाथ के वंशज योग्य पुरुष न निकलते, तो सम्भव था कि पेशवा का पद आनुवंशिक न बन जाता। पर सातारा के राजा अयोग्य निकले और बालाजी विश्वनाथ के पुत्र-पौत्र बहुत योग्य निकले। इस कारण राजा के करीब-करीब समस्त अधिकार पेशवा के हाथ में चले गये, केवल नाम को छोड़कर पेशवा शाहू के बाद मराठा-राज्य का पूर्ण शासक बन गया। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी के समान पेशवा भी धार्मिक झगड़ों का निर्णय किया करते थे।

* उस समय का एक सिक्का

३. अन्य प्रधानों की स्थिति—पेशवा के हाथ में राज्य-सत्ता ज्यों-ज्यों आने लगी त्यों-त्यों दूसरे प्रधानों का महत्व कम होता गया। उनका नाम मराठा-राज्य में सुनाई न पड़ने लगा। नाममात्र के लिए तो पहले के अष्ट-प्रधान अब भी बने थे, पर पहले जैसे उनके हाथ में राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के शासन की सत्ता थी उस प्रकार अब न रह गई। अन्य जागीरदारों के समान अष्ट प्रधान भी छोटी-मोटी जागीरें पाये हुए थे, पर महत्व की दृष्टि से दूसरे सरदारों के सामने वे कुछ न थे।

४ जागीरदारी की अनिवार्य प्रथा और उसके परिणाम—शिवाजी की शासन व्यवस्था में एक और बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। जिस समय औरंगज़ेब ने मराठा-राज्य को ग्रस डाला था उस समय मराठे सेनापतियों ने मुग़ल राज्य में हमले करके अपने राज्य का बचाव किया था। उसका परिणाम हम बता चुके हैं। कई इतिहास-लेखक शाहू पर इस बात का दोष मढ़ते हैं कि उसने जागीरदारी की प्रथा जारी की और जागीरों को आनुवंशिक करके मराठा-राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस परिवर्तन का कितना दोष शाहू पर मढ़ा जा सकता है, इस बात का विचार यहाँ नहीं करेंगे। यहाँ पर इतना कह देना काफ़ी है कि कुछ अंश तक जागीरदारी की प्रथा शाहू के पहले ही अमल में आ चुकी थी और वह उस समय महाराष्ट्र की रक्षा के लिए अनिवार्य थी। परन्तु इतना भी यहाँ पर मानना होगा कि जागीरदारी की इस प्रथा से मराठा-राज्य का स्वरूप सदैव के लिए बदल गया। शिवाजी के एकतंत्री राज्य के स्थान में पेशवा और मराठे सरदारों का कुलीनतंत्री राज्य स्थापित हो गया। इसीका विकास पहले दाभाड़े, आँग्रे, भोंसले और होलकर, शिंदे, पँवार आदि ने किया। इन सरदारों में भी दो दर्जे थे। आँग्रे, भोंसले, दाभाड़े और उनके बाद गायकवाड़ अपने को पेशवा की बराबरी का समझते थे और इसी नाते वे उससे सारा व्यवहार किया करते थे; पर शिंदे, होलकर आदि अपने को पेशवा का नौकर समझते

प्रारम्भ में तो ये पूरी तौर से उसकी आज्ञा मानते थे; पर बाद में ये भी सिरज़ोर हो गये और अपनी जागीरों में स्वतन्त्रता दिखलाने लगे। लेकिन सिद्धान्तों में ये अन्त तक अपने को पेशवा का नौकर समझते थे। महादजी शिंदे जब पूना को आया तो उसने पेशवा के नौकर के नाते ही सवाई माधवराव से अपना बर्ताव किया—यहाँ तक कि पेशवा की जूतियाँ भी उसने उठाईं, क्योंकि उसका पूर्वज राणाजी शिन्दे बाजीराव के पास इसी काम के लिए नौकर था। सरदारों में दो भेद होने के कारण पुराने सरदार अपने को नये सरदारों से ऊँचे दर्जे का समझते थे और बहुधा चढ़ाइयों के समय सेनापतित्व के काम पर अपना अधिकार दिखाते थे। सरकारी बातों में नये सरदार पेशवा की आज्ञा जिस तत्परता से मानते थे, वह तत्परता पुराने सरदारों ने कभी न दिखलाई। तथापि यह कहना ही होगा कि सरकारी कामों में उन्हें भी पेशवा का हुक्म मानना पड़ता था और बहुधा सब चढ़ाइयों के समय वे अपनी फ़ौज लेकर उपस्थित रहते थे, क्योंकि पेशवा ही सारे मराठा राज्य का प्रतिनिधि-रूप शासक बन गया था।

५ मुख्य दफ्तर और उसकी व्यवस्था—पेशवा के सर्वसत्ताधारी बनने का एक परिणाम हम ऊपर बता ही चुके हैं। वह यह है कि पहले के प्रधान लोग अब नाम-मात्र के प्रधान रह गये थे और इनकी सत्ता पेशवा के हाथ में चली गई थी। इसलिए पेशवा ने राज्य-कार्य के लिए अपने निजी कारबारी नियत किये। पहले का फड़नवीस अब केवल फड़नवीस न रह गया था—वह सारे दफ्तर का अधिकारी तो था ही, पर पेशवा का प्रधान कारबारी भी हो गया था। आजकल सर्वोच्च सरकारी दफ्तर को "सेक्रेटेरियट" कहते हैं, मराठे लोग उसे हुज़ूर-दफ्तर कहते थे। आजकल का चीफ़ सेक्रेटरी उस समय हुज़ूर फड़नवीस कहलाता था। दफ्तर के कई भाग थे। यहाँ पर प्रत्येक प्रकार के काग़ज़ की नक़ल रक्खी जाती थी, इसलिए सब प्रकार की बातें दफ्तर से मालूम होती थीं। नाना फड़नवीस ने दफ्तर के कामों में बहुत-से सुधार किये। इस दफ्तर में क़रीब २०० कारकून यानी क्लर्क नौकर थे। द्वितीय बाजीराव के समय तक इस दफ्तर का काम बहुत अच्छी तरह से चला और प्रत्येक काग़ज़-पत्र बहुत अच्छी तरह से रक्खा गया था। इस बाजीराव के समय में ही इस दफ्तर के कामों में और काग़ज़-पत्रों को ठीक-ठाक रखने में गड़बड़-सड़बड़ हुई।

६. आय के मार्ग और लगान की दर—अब हम पेशवों की मुल्की व्यवस्था का वर्णन करेंगे। पेशवों की मुल्की व्यवस्था का मुख्य आधार लगान देनेवालों की बढ़ती था। मराठे शासक इस बात को कभी न भूले कि लोगों की समृद्धि से ही राज्य की समृद्धि होती है, इसके लिए वे सहसा लगान बहुत अधिक न बढ़ाते थे। जब कभी नई ज़मीन काश्त में लाई जाती तो छः-सात साल तक काश्तकार से कुछ न लिया जाता था। इसके बाद पांच-छः साल तक कुछ हलका-सा लगान वसूल किया जाता था। इसके बाद कहीं भरपूर लगान की वसूली होती थी। यही बात आमदनी के अन्य ज़रियों की थी। पेशवा के समय में राज्य की आमदनी के ये मार्ग थे—(१) लगान और राज्य की निज़ी जमीन, (२) ज़कात और एक प्रकार का आय-कर, (३) जंगल, (४) टकसाल, और (५) न्याय-विभाग। हिन्दुस्थान में सदा से खेती का लगान ही राज्य की आमदनी का मुख्य ज़रिया रहा है। जमाबन्दी का प्रबन्ध शिवाजी ने जो-कुछ कर दिया था, वही बहुत-कुछ अब भी चला आता था। पेशवा की जागीर थी। ज़मीन के शेरी यानी काश्त की ज़मीन, कुरण यानी चरोतर, बाग और अमराई ये चार भाग थे। काश्त की ज़मीन के दो भेद थे—पाटस्थल और मोटस्थल। बाग़ की ज़मीन बागायत कहलाती थी। नहरों से सींची हुई ज़मीन को पाटस्थल कहते थे। मोटों से सींची हुई ज़मीन को मोटस्थल कहते थे। सारी ज़मीन को नपाई होती थी और अमीन नामक अधिकारी लगान की दर निश्चित किया करता था। बहुधा ज़मीन की पैदावार को देखकर यह दर निश्चित की जाती थी। इस काम के लिए कई पाहणीदार यानी देख-रेख करनेवाले, अथवा आजकल की भाषा में रेवेन्यू-इन्सपेक्टर, नियत थे। उस समय के लगान की कुछ कल्पना बाजीराव के समय के एक काग़ज़ से हो सकती है। तर्फ़ हवेली पाल के लिए निम्नलिखित दर बतलाये

हैं—(१) चावल की ज़मीन के लिए बीघे पीछे बावती मिलाकर १० मन लिया जाय, परन्तु इसमें हक़दारों का अधिकार शामिल न रहेगा; (२) गन्ना पैदा करनेवाली ज़मीन पर प्रत्येक बीघे पीछे ५ रुपये लिये जायँ, (३) तरकारी-भाजी पैदा करनेवाली ज़मीन पर बीघे पीछे २) रुपये लिये जायँ; (४) गरमी के दिनों में फ़सल देनेवाली ज़मीन पर १॥) रुपया बीघा लिया जाय।

ऊपर लगान के जो दर बतलाये हैं वे सम्भवतः सबसे ऊँचे थे। अन्य दर बहुधा इससे कम देख पड़ते हैं, पेशवों की जमाबन्दी के सम्बन्ध में एक तत्व यह बताया जा सकता है कि पैदावार की घटा-बढ़ी के अनुसार जमाबन्दी में भी कमी-बेशी हुआ करती थी। इस कारण किसी को भी लगान देते समय कष्ट न होता था।

७. पड़ती ज़मीन और प्रजा को राज्य की ओर से रिआयतें—यह हम ऊपर एक स्थान पर बता ही चुके हैं कि पड़ती ज़मीन को काश्त में लाने के लिए पेशवे बहुत रिआयत दिया करते थे। बहुधा वे अपने अधिकारियों को इस बात की सूचना समय समय पर लिखा करते थे कि पड़ती ज़मीन को काश्त में लाने के लिए लोगों को रिआयतें देकर उत्तेजना दी जाय। यह भी ऊपर बता चुके हैं कि बहुधा पहले पाँच-सात साल कुछ नहीं लिया जाता था। इसके बाद पाँच-सात साल तक क्रमशः बढ़नेवाली दर से लगान वसूल किया जाता था। तब कहीं उससे भरपूर लगान लिया जाता था। पड़त ज़मीन को काश्त में लाने के लिए कभी-कभी इनाम के रूप में उत्तेजना दी जाती थी। बहुधा नियम यह था कि आधी ज़मीन इनाम में दी जाती थी और आधी ज़मीन पर उपर्युक्त नियम के अनुसार क्रमशः लगान लगता था। बहुधा यही नियम बागायत के सम्बन्ध में भी लागू किये जाते थे। नारियल के वृक्ष लगाने की ओर पेशवों की दृष्टि विशेष थी, तथापि अन्य दरख़्तों की बागायत पर भी वे ध्यान देते थे। बागायत से भी ख़ासी आमदनी होती थी। दुष्काल पड़ने पर अथवा लूट-मार के कारण फ़सल नष्ट होने पर काश्तकारों को लगान की माफ़ी मिलती थी और बोनी के समय भी तगाई अर्थात् तक़ावी पाते थे। कभी-कभी अन्य कारणों से आपत्ति आ पड़ने पर भी माफ़ी और तगाई का लाभ रैयत को मिलता था। सारांश यह है कि पेशवे रैयत की भलाई में अपनी भलाई और रैयत की बुराई में अपनी बुराई समझते थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि इन्होंने सिंचाई के लिए नदियों और नालों पर बाँध बाँधे या बँधवाये, अथवा तालाब बनाये या बनवाये। उस समय कुँओं से भी सिंचाई होती थी। बहुधा जमाबन्दी रुपयों के रूप में जमा करने की प्रथा थी, तथापि कभी-कभी वस्तु के रूप में भी वह पटाई जाती थी और कभी-कभी तो पेशवे उसे वस्तु के रूप में ही माँगते थे।

८. राज्य के कर—दूसरे प्रकार की आयों में कर मुख्य हैं। ये कर कई प्रकार के थे, इनमें से मुख्य प्रकार चौबीस-पचीस देख पड़ते हैं। इसी प्रकार कई धंधों पर भी कर होता था, जिसे मोहतर्फ़ा कहते थे। इनके नाम गिनाने की अपेक्षा हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि ज़मीन, उसपर की वस्तु अथवा सरकारी सुविधा या धन्धों के लिए कर देना होता था। इसी प्रकार ज़कात की भी रीति थी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से प्रायः सब कर कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में भी बताये हैं और इनमें से बहुतेरे आज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वसूल होते हैं। जमाबन्दी के समान ज़कात-वसूली के लिए भी कमावीसदार वगैरा अधिकारी नियत थे। जमाबन्दी के समान लोगों के आपत्काल में ज़कात भी माफ़ होती थी। बहुत आवश्यकता पड़ने पर आजकल के इनकमटैक्स के समान उस समय भी 'उपा-स्ती पट्टी' नाम का एक कर धन-सम्पन्न लोगों से लिया जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि सरकारी नौकर ज़कात वगैरा से माफ़ थे। इसी प्रकार कोंकन के परभु और ब्राह्मण घर पट्टी से माफ़ थे।

९. जंगल की आय—आजकल के समान उस समय भी जंगल-विभाग से कुछ आमदनी होती थी। बहुधा चरोतर इसी विभाग में शामिल थे। आपत्काल छोड़कर अन्य समय लोगों को लकड़ी वगैरा काटने के लिए कर देना होता था। इसी प्रकार शहद तथा वृक्षों की अन्य वस्तुओं से भी आमदनी होती थी।

१०. टकसालों की आमदनी-टकसालों से भी कुछ

आमदनी हो जाती थी। आजकल के समान टकसालें उस समय सरकारी न थीं। सिक्के बनाने का इजारा कुछ लोगों को सरकार से दिया जाता था। ये लोग उसके बदले सरकार को कुछ दिया करते थे। सिक्कों की सचाई पर पेशवों का भरपूर ख़याल रहता था, परन्तु अमुक ही प्रकार के सिक्के चलें और अमुक प्रकार के न चलें, ऐसा कोई नियम न था। सभी प्रकार के देशी और विदेशी सिक्के मराठा-राज्य में चलते थे, पर उनकी क़ीमत उनमें की धातु के अनुसार होती थी। बहुधा मराठा टकसालों में होण, मोहर और रुपये बनाये जाते थे। होण सोने के होकर बहुधा साढ़े तीन माशे वज़न के रहते थे। रुपया और मोहर अनुक्रम से अर्काट का रुपया और दिल्ली की मोहर के बराबर होते थे। इनके सिवाय ताँबे के पैसे १० माशे वज़न के और २१ माशे के टके भी होते थे।

११. ग्राम्य-व्यवस्था —

पटेल

आज के समान उस समय भी सारे शासन का लघुतम विभाग गाँव था। हम यह देख चुके हैं कि शिवाजी ने अपने पहले के गाँव के अधिकारी देशमुख और देशपाण्डे को एक ओर रखकर अपने अधिकारी पटेल और कुलकर्णी नियत किये थे। जमाबन्दी का काम पटेल का मुख्य काम था। तथापि उसे कई प्रकार के अन्य काम भी गाँव में करने पड़ते थे। बहुधा छोटे-छोटे मुकदमे उसीके सामने निपटाये जाते थे। शान्ति बनाये रखने का और चोर-लुटेरों को दण्ड देने का काम भी उसे करना पड़ता था। पेशवों के समय में पटेली आनुवंशिक हो गई थी और आजकल के मालगुज़ारी के समान बेची-ख़रीदी जा सकती थी। बहुधा एक गाँव में एक ही पटेल होता था, परन्तु कभी कभी एक ही कुटुम्ब के कई लोग भी एक गाँव में यह अधिकार चलाते थे। उस समय इनमें से जो सबसे बड़ा होता उसे कुछ विशेष अधिकार होते थे। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि पटेल कुछ अंश में आनुवंशिक राजा-जैसे हो गये थे। तथापि जमाबन्दी के लिए वह पूरी तौर से ज़िम्मेदार था और उसके न पटने पर उसे क़ैद भी हो सकती थी। लूट करनेवाले लूट के समय उसे ही माँगा हुआ धन देने के लिए ज़िम्मेदार रखते थे और पूरा धन मिलने तक उसे अपनी क़ैद में रखते थे।

कुलकर्णी

गाँव का दूसरा अधिकारी कुलकर्णी था। संक्षेप में इसे आजकल का पटवारी कह सकते हैं। आजकल के पटवारी का काम तो वह करता ही था पर वह पटेल के समान जमाबन्दी, लूट आदि के लिए भी ज़िम्मेदार समझा जाता था। परन्तु जिस प्रकार पटेल को गाँव में बड़े-बड़े लोगों के आने पर उनकी सुविधा की व्यवस्था करनी पड़ती थी, उस प्रकार की ज़िम्मेदारी कुलकर्णी पर न थी। ऐसा जान पड़ता है कि कुलकर्णीपन ही एक प्रकार का हक़ हो गया था और पटेली के समान वह भी जायदाद के समान समझा जाने लगा था। तथापि यह स्पष्ट है कि पटेल से कुलकर्णी का दर्जा काफ़ी नीचा था और उसके अधिकार पटेल से बहुत कम थे। बहुधा पटेल की आवश्यकतायें पूर्ण होने पर कुलकर्णी की आवश्यकतायें पूर्ण की जाती थीं।

महार

प्रत्येक गाँव में बहुधा एक महार होता था। उसकी जाति आज के समान उस समय भी नीच समझी जाती थी, परन्तु आजकल के गाँवों के कोतवालों के समान महार भी बड़ा उपयोगी था। बहुधा वह गाँव के लोगों को पटेल की चावड़ी में बुलाकर जमाबन्दी के काम में पटेल की सहायता करता था और गाँव की सामान्य देख भाल करता था। गाँव की सफ़ाई का काम भी बहुधा उसीके ज़िम्मे रहता था। गाँव के १२ बलूतों में महार की भी गणना थी।

बलूते

गाँव के बारह बलूते ये थे—बढ़ई, लोहार, चमार, महार, माँग, कुम्हार, नाई, धोबी, गुरव, जोशी (ज्योतिषी) भाट और मुलाना। इनके सिवाय चौगुला नाम का एक पुरुष होता था, कइयों के काम उनके नामों से ही स्पष्ट हो सकते हैं। हिन्दीभाषी भागों में माँग के

काम का ज्ञान कदाचित लोगों को न हो, इसलिए यह बतला देना आवश्यक है कि माँगों का काम महाराष्ट्र में बहुधा बाजे बजाने का है। महार के समान माँग भी नीच जाति के समझे जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि माँगों और महारों के बीच हकों के लिए बहुत काल तक झगड़े चलते रहे। गुरव का काम बहुधा गाँव के देवी-देवताओं की पूजा करना था। जोशी गाँव के ज्योतिषी का काम करता था। कहीं-कहीं 'भुभाणा' के स्थान में 'कुळकर्णी' का नाम आया है। शेष बलूतों के कार्यों का पता हमें नहीं मिल सका, इस कारण हम नहीं बता सकते कि वे कौनसा काम करते थे और उनके क्या अधिकार थे।

सुनार या पोतदार

बहुधा प्रत्येक गाँव में या दो-तीन गाँव पीछे एक पोतदार भी होता था। वह जाति से सुनार होता और सुनार का काम करता था। परन्तु इससे भी एक महत्वपूर्ण काम उसके ज़िम्मे यह था कि वह सिक्कों की सचाई की जाँच करता था। इस काम के लिए उसे सरकार की ओर से कुछ वेतन मिलता था। सब बलूतों को गाँववालों की ओर से सालभर में कुछ निश्चित आमदनी होती थी। इसके अलावा कुछ विशेष प्रसंगों पर कुछ विशेष आमदनी हो जाती थी।

इस प्रकार प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की दृष्टि से एक छोटा-सा राज्य ही था, वास्तविक बात यह है कि ग्राम-व्यवस्था की यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती थी। इस समय तक गाँव के भिन्न-भिन्न अधिकारी और बलूत अपने भिन्न-भिन्न हकों को वतन समझने लगे थे। इस कारण कभी-कभी वतन के सम्बन्ध में झगड़े उठ खड़े होते थे। यदि किसी की गैरहाज़िरी में कोई दूसरा उसका काम करता तो पहला पुरुष दूसरे को वापस आने पर बेदख़ल कर देता था।

काश्तकारों के भेद

गाँव की ज़मीन हक़ की दृष्टि से दो वर्गों में बँटी थी। जो लोग गाँव में सदा से रहते आये थे वे मिरासदार कहलाते थे। जबतक वे लगान पटाते तब तक कोई इन्हें बेदख़ल न कर सकता था। संक्षेप में कह सकते हैं कि उस समय के मिरासदार आजकल के मौरूसी काश्तकार के समान ही थे। कभी-कभी तो तीस-चालीस वर्ष के बाद भी ये मिरासदार अपनी ज़मीन वापस ले लेते थे। गाँव के दूसरे प्रकार के काश्तकार 'ऊपरी' कहलाते थे। इनको आजकल की भाषा में "मामूली" ज़मीन के काश्तकार कह सकते हैं। ये बहुधा बाहर से आये हुए लोग होते थे और इसलिए मराठी भाषा में इन्हें 'ऊपरी' कहते थे। ये चाहे जब बेदख़ल किये जा सकते थे और मिरासदारों के समान इनके हक़ न थे।

रक्षा का प्रबन्ध

प्रत्येक गाँव के चारों ओर उसकी रक्षा के लिए एक दीवाल होती थी और भील या रामोशी जैसे लुटेरे डाकुओं के सिवाय सब लोग गाँव में रहते थे। ये भील और रामोशी बहुधा बाहर रहते और गाँव की देख-भाल करते थे। गाँव में चोरी-डकैती होने पर उसे पकड़ने का काम इनके ज़िम्मे था। यदि ये उसे न पकड़ सके तो इन्हें ही उस हानि की पूर्ति करनी पड़ती थी। अतएव ये अपने ही गाँव में चोरी-डकैती न करते थे।

छोटा-सा प्रजा तंत्र

इस प्रकार पेशवों के समय में प्रत्येक गाँव एक छोटा-सा प्रजातंत्र ही था। पेशवों ने कभी इनके काम में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं किया। गाँव के अधिकारी और कर्मचारी आनुवंशिक थे। इन्हें लगान और अन्य कुछ बातों में पेशवों का हुक्म मानना पड़ता था, पर शेष बातों में वे पूर्ण स्वतंत्र थे। गाँव के भीतर वे परस्परावलम्बी होने के कारण बहुधा एक-दूसरे के दबाव में रहते थे। पेशवा के अधिकारी केवल ऊपरी देख-भाल रखते थे और उन्हें केवल ऊपरी कामों में सहायता देते थे; पर बहुतेरी बातों में उनके स्वतंत्र होने के कारण हम यह कह सकते हैं कि मराठाशाही में ग्रामीण स्वराज्य प्रचलित था।

१२. देशमुख और देशपाण्डे—अब हम यह देखेंगे कि इन गाँवों के ऊपर कौन-कौन से अधिकारी थे। ऊपर

बता चुके हैं कि शिवाजी के पहले देशमुख और देशपाण्डे नाम के अधिकारी होते थे। बहुधा ये परगनों के अधिकारी होते थे। इन्हें ज़मींदार भी कहते थे। इन्होंने गाँवों पर जो अत्याचार किये उनके कारण शिवाजी ने इनसे इनके कार्य छीन लिये परन्तु इनके हक़ बने रहने दिये, ताकि ये गड़बड़ न मचावें। इसीलिए आगे चलकर ये सामान्य प्रजा के हितैषी हो गये और कई बार इन्होंने प्रजा की भलाई के लिए पेशवों के पास लोगों के कष्ट कहे। ये कर्मचारी तो न थे तथापि ये बिलकुल ही नामधारी न थे। पेशवा के अधिकारियों पर इनकी एक प्रकार की देख-रेख हुआ करती थी। पुराने क़ाग़ज़-पत्र और सब वतन, दान, इनाम आदि का लेखा देशमुख के यहाँ रहता था और जब कभी कोई झगड़ा उपस्थित होता तो वे क़ाग़ज़-पत्र उसके यहाँ से माँगे जाते थे। ज़मीन के लेन-देन के नये क़ाग़ज़-पत्र भी उसीके यहाँ रहते थे। ऐसा जान पड़ता है कि इन क़ाग़ज़-पत्रों के पक्केपन के लिए उसकी मोहर की आवश्यकता पड़ती थी। देशमुख और देशपांडे के लिए कमाई के कई ज़रिये थे। श्री राजवाड़े ने मराठों के इतिहास के साधनों के ७० वें खंड में जो एक बख़्शीशनामा छापा है, उससे इन लोगों की आमदनी के ज़रियों का पूरा-पूरा पता चलता है। उसमें लिखा है कि (१) प्रत्येक गाँव-पीछे ३) रुपये* देने की रीति है। उसमें से देशपांडे १) रुपया और तुम (देशमुख) शेष दो रुपये लो। (२) सरकार से सिरोपाव पहले तुम लो और फिर देशपांडे ले। (३) वतन इत्यादि के क़ाग़ज़-पत्रों पर पहले तुम्हारे हस्ताक्षर रहें और फिर तुम्हारे हस्ताक्षर के पास देशपांडे हस्ताक्षर करे। (४) सरकारी अफ़सरों को पहले तुम नज़राना पेश करो और फिर देशपांडे पेश करे इसी प्रकार अन्य सोलह धाराओं में देशपांडे और देशमुख के अधिकार और कर्तव्य गिनाये है। गाँव से पटेल और कुलकर्णी को जो आमदनी होती थी वह देशमुख और देशपांडे को भी होती थी। सारांश में कह सकते हैं कि देशमुख और देशपाण्डे पहले के पटेल और कुलकर्णी थे और उनके भरण-पोषण का भार सरकार पर न होकर गाँव के लोगों पर ही होता था। इसलिए यह कहना ही पड़ता है कि इनका गाँव में बना ही रहना गाँववालों की दृष्टि से अनावश्यक था। शिवाजी के प्रारम्भ-काल में इन्हें निकाल बाहर करना कदाचित् सम्भव न था, पर बाद में इन्हें यदि निकाल बाहर किया होता तो गाँववालों के ऊपर से इनके भरण-पोषण का भार दूर हो जाता।

* यह तीन रुपया सैकड़ा है।

१३. कमावीसदार, मामलतदार, सूबेदार आदि—गाँव के ऊपर के अधिकारी कमावीसदार, मामलतदार सूबेदार अथवा सर-सूबेदार थे। शिवाजी के समय में स्वराज्य के हिस्से सूबे, सूबे के हिस्से तर्फ़, और तर्फ़ के हि स्से गाँव थे। पर पेशवों के समय में तर्फ़, परगना, सरकार और सूबा शब्दों का उपयोग मनमाने ढंग से होने लगा था। इसके सिवाय सूबा के लिए प्रान्त शब्द का और तर्फ़ या परगना के लिए महाल शब्द का भी उपयोग होता था। छोटे-छोटे हिस्सों के अधिकारी कमावीसदार कहलाते थे और बड़े-बड़े हिस्सों के अधिकारी मामलतदार होते थे। ये मामलतदार सीधे पेशवा के नीचे होते थे, पर खानदेश, गुजरात और कर्नाटक में ये सर-सूबेदार के हाथ के नीचे रहते थे और इन प्रान्तों में ये सर-सूबेदार ही जमाबन्दी के लिए ज़िम्मेदार होते थे। इन कमावीसदारों और मामलतदारों के वेतन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न थे। निश्चयपूर्वक तो नहीं कहा जा सकता, पर कुछ क़ाग़ज़-पत्रों से ऐसा जान पड़ता है कि जमाबन्दी का चार सैकड़ा इन्हें वेतन के रूप में मिलता था। जमाबन्दी के काम के सिवा इन्हें आजकल के तहसीलदार और डिप्टी कमिश्नर या कलेक्टर के समान कई प्रकार के काम करने होते थे। इन्हें दीवानी और फ़ौजदारी मुक़दमे भी निपटाने पड़ते थे और इस काम के लिए पंचायतें नियत करनी पड़ती थीं। अपने भाग के शिबन्दी अर्थात् फ़ौज और पुलिस के अधिकारी भी ये ही होते थे। धार्मिक और सामाजिक प्रश्न भी निर्णय के लिए इनके सामने आते थे। शिवाजी के समय में तो ये अधिकारी बहुत थोड़े समय के लिए नियत होते थे और एक स्थान से दूसरे स्थान को बदले जाते थे। परन्तु पेशवों के समय में वही कमावीसदार या मामलतदार उसी हिस्से में कई बार नियत होता था। इस प्रकार धीरे-धीरे उसी पद पर ये लोग आजन्म

रहने लगे और फिर अपने बाद अपने लड़कों को भी इनपर नियत करवाना शुरू किया। होते-होते अन्य नौकरियों के समान यह नौकरी भी अन्तिम पेशवों के समय आनुवंशिक हो चली थी।

१४ कारकून वग़ैरा—वेतन के सिवा इन अधिकारियों के आमदनी के कई अन्य ज़रिये भी थे। नज़राना लेना एक बहुत सामान्य बात थी। जमाबन्दी से अधिक लगान भी वे कभी-कभी वसूल किया करते थे, यदि सरकार की ओर से किसी प्रकार का मान-सम्मान उन्हें मिलता तो उसके लिए भी सरकार की ओर से इन्हें ख़र्च मिलता था। कभी-कभी भिन्न-भिन्न हिकमतों से जमाबन्दी का काम दिखलाया करते थे। परन्तु इनके कार्यों पर एक तरह का दबाव रखने के लिए दरखदार नाम के अधिकारी होते थे। इन दरखदारों की नियुक्ति वग़ैरा मुख्य सरकार से होती थी। प्रत्येक मामलतदार के हाथ के नीचे बारह कारकून यानी क्लर्क होते थे। इनके सिवाय एक दीवान, एक मुजुमदार, एक फड़नवीस, एक दफ्तरदार, एक पोतनीस, एक पोतदार, एक सभासद और एक चिटनीस होते थे। इनकी भी नियुक्ति वग़ैरा मुख्य सरकार से होती थी। अतः ये मामलतदार की मर्ज़ी पर विशेष अवलम्बित न थे। उलटे मामलतदार के कामों पर इनकी भी एक तरह की देख-रेख होती थी और इनके कारण मामलतदार विशेष ख़यानत वग़ैरा न कर सकता था। सब चिट्ठियों और हुक्मों पर मामलतदार के हस्ताक्षर के नीचे दीवान के हस्ताक्षर होते थे। फड़नवीस के पास हिसाब-किताब के काग़ज़ जाने के पहले मुजुमदार उन्हें देखता था। फड़नवीस सब प्रकार के काग़ज़-पत्रों पर मिति वग़ैरा लिखना, रोज़ के काग़ज़-पत्रों का हिसाब रखता, जमाबन्दी के काग़ज़-पत्रों को सिलसिलेवार लगाता और फिर सब काग़ज़ों को मुख्य दफ्तर में लाता था। दफ्तरदार हर महीने सब काग़ज़-पत्रों का सारांश मुख्य दफ्तर को भेजता था। पोतनीस आजकल के ख़ज़ांची का काम करता था। पोतदार सिक्कों की जाँच करता था। सभासद छोटे-छोटे झगड़ों के काग़ज़-पत्र रखता और उन्हें मामलतदारों के सामने पेश करता था। चिटनीस के ज़िम्मे चिट्ठी-पत्री लिखने का काम था। इन आठ अधिकारियों के सिवा कहीं-कहीं आयेनीस नाम का एक अधिकारी होता। इसके ज़िम्मे जमाबन्दी के हिसाब-किताब का काम होता था। इस प्रकार प्रत्येक प्रांत, सूबे या सरकार में सरकारी काम के लिए अलग-अलग अधिकारी नियत थे। इससे यह जान पड़ता है कि शासन-व्यवस्था की प्रत्येक बारीक बात पर मराठे शासक ध्यान देते थे। प्रत्येक सूबे या प्रान्त का जिस प्रकार शासक होता था क़रीब-क़रीब उसी प्रकार का शासन महाल, तर्फ़ या परगने का होता था; परन्तु इसमें सरकारी कर्मचारी प्रान्त या सूबे से कम होते थे। शिवाजी के समय में तो महाल, तर्फ़ या परगने का अधिकारी हवालदार कहलाता था। सम्भवतः इसका यह नाम पेशवों के समय में भी प्रचलित था। परन्तु बाद में इस नाम के बदले कमावीसदार नाम का उपयोग कदाचित् अधिक होने लगा। कारकून और इतर कर्मचारी मामलतदार की अपेक्षा हवालदार के पास कम थे और इनके नाम भी भिन्न थे। परन्तु काम बहुत-कुछ दोनों के दफ्तरों के कम-अधिक प्रमाण में एक-से थे।

१५. अधिकारियों का गाँवों से सम्बन्ध—यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि गाँव की भीतरी व्यवस्था में कमावीसदार, मामलतदार, या हवालदार हस्तक्षेप न करते थे। पटेल की अनुमति से वे प्रत्येक गाँव की जमाबन्दी ठहराते और पटेल के ज़रिये उसे वसूल करते थे। यदि आवश्यकता होती तो पटेल की सहायता के लिए फ़ौज भेजते थे। यदि पटेल गाँव के झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायतें नियत न करता तो वे स्वयं यह काम करते थे। गाँवों के कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतें इन्हींके पास पेश होती थीं। इस प्रकार गाँव और मुख्य सरकार के बीच की कड़ी का काम ये किया करते थे।

१६. आबकारी विभाग—पेशवाई में आबकारी-विभाग नाम-मात्र हो था। सरकार को शराब से प्रायः कुछ भी आमदनी नहीं थी। सवाई माधवराव के समय में आबकारी की प्रवृत्ति शराब न बनने देने की ओर थी। जो गोरे ईसाई सरकारी नौकरी में रक्खे गये थे इनका काम शराब के बिना न चलता था, उन्हें ही केवल शराब बनाने

की आज्ञा दी गई थी। बन्दूकों की बारूद के लिए जो कलाली शराब की आवश्यकता पड़ती थी वह सरकार अपने कारखानों में ही तैयार कराती थी। द्वितीय बाजीराव के रोज़नामचे से मालूम होता है कि इसके समय में महुए के फूल पर थोड़ा-सा कर था। पेशवाई में आबकारी का ठेका प्रायः पारसी लोग लिया करते थे।

१६. आर्थिक स्थिति—मराठों के सब प्रदेश की आमदनी क़रीब १० करोड़ रुपये कूती जाती थी, परन्तु प्रत्यक्ष में वह ७॥ करोड़ ही होती थी। खुद पेशवा के अमल में जो मुल्क था उसकी आमदनी २॥ करोड़ होती थी। पेशवे सदा चढ़ाइयाँ किया करते थे, इस कारण वे सदैव क़र्ज़दार बने रहते थे प्रथम बाजीराव तो क़र्ज़ के कारण सदैव दुःखी बना रहता था। प्रथम माधवराव की मृत्यु के समय पेशवा के नाम २० लाख क़र्ज़ था। इनके इस क़र्ज़ के कारण शासन में कई बुराइयाँ घुसीं। उनमें से एक यह है कि क़र्ज़ पटाने की ज़मानत के बतौर कई गाँवों की आमदनी साहूकार के नाम कुछ साल तक कर देते थे। इसीसे सम्भवतः आगे चलकर गाँवों की जमाबन्दी की वसूली ठेके पर देने की प्रथा जारी हुई। आगे नाना-फड़नवीस ने अपने सुप्रबन्ध से बहुत-सा क़र्ज़ पटा डाला। पर अन्तिम बाजीराव के समय में ख़ज़ाने में कुछ न रहा और लगान की वसूली आम तौर पर ठेके की रीति से होने लगी। उसके राज्य-विनाश के कारणों में यह भी एक कारण है।

दुर्भाग्य !!

[श्री शान्तिप्रसाद वर्मा]

वसन्त अपने सारे सौरभ को लेकर आज तुम्हारे द्वार पर आया और तुमने उसे दुतकार कर अपने दरवाज़े बन्द कर लिये ! अरे मूर्ख, अब तुम उस कोने में बैठे हुए किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो ?

जिस समय स्वाति-नक्षत्र था, और अमृत की बूँदें टपक-टपक कर चातकों की चोंच में पड़ रही थीं, ओ बनावटी चातक, तुम कहाँ थे ? आज तुम इस प्रकार से चोंच निकाले हुए क्या संसार को धोखा देना चाहते हो ?

पापिष्ठ ! अनायास ही तुम्हें एक रत्न प्राप्त हुआ था, तुमने ठोकरों से उसकी अवहेलना की। परन्तु, आज इस घने अंधकार में, तुम्हारे मार्ग को चमका कर वही तुम्हारी रक्षा करेगा। नीच कहीं के ! तुम्हें तो उसकी स्वर्ग के देवता के समान पूजा करनी थी। परन्तु, तुम्हारा दुर्भाग्य !!

राष्ट्रीय झण्डे के लिए

[श्री शंकरदेव विद्यालंकार]

सन् १९०४ की बात है। रूस और जापान में घोर संग्राम चल रहा था। पींगयाङ्ग की रणभूमि में एक जापानी सरदार कुरोकी अपने कुछ योद्धाओं के साथ एक साधारण तम्बू में बैठा हुआ युद्ध-सम्बन्धी विचार कर रहा था। समीप ही मेज पर भोजन की थाली पड़ी हुई थी, परन्तु वह वीर भूख को भूल गया था और भावी आक्रमण की व्यूह-रचना का नक्शा तैयार कर रहा था।

इतने में एक चोबदार अन्दर आया। सिर झुकाते हुए उसने कहा—"महाराज, वीर युत्सु बारह सिपाहियों के साथ अपने सरदार 'ओकू' के अवसान का संदेशा पहुँचाने आया है।"

कुरोकी के हाथ से क़लम गिर पड़ी, सिंह के समान पराक्रमशाली वीर 'ओकू' की मृत्यु का समाचार सुनकर उसका तेजोमय मुख फीका पड़ गया। बड़े शोकभरे शब्दों में उसने कहा—"युत्सु को जल्दी बुलाओ।"

तत्काल युत्सु अपने बारह योद्धाओं के साथ तम्बू में प्रविष्ट हुआ, और नमस्कार करके खड़ा हो गया।

कुरोकी—वीर युत्सु, कहो तुम क्या खबर लाये हो ?

युत्सु—सरदार, आज सबेरे लगभग चार बजे के समय दुश्मन ने हमारे दल पर एकाएक आक्रमण किया।

कुरोकी—परन्तु तुम तो दक्षिण की तरफ़ के मोर्चे में थे न ?

युत्सु—हाँ, सरदार साहब ! पन्तु हम केवल ५० आदमी थे और दुश्मन की संख्या २५० थी। हम ने शीघ्र ही गोलाकार व्यूह बना लिया और गोलियाँ चलानी शुरू कीं।

कुरोकी—परन्तु मैंने तो तुम्हारा खतरे का रण-सिंहा सुनकर छावनी में से २५० अश्वारोही भेज दिये थे !! खैर। हाँ, फिर क्या हुआ ?

युत्सु—फिर क्या होना था ! हमारे ५० वीरों ने शत्रुओं को गोलियों से बींध दिया—परन्तु, अफ़सोस, हमारे विजयी सरदार ओकू बन्दी कर लिये गये ! जिस समय सेना की मदद आई उस समय केवल मैं और ओकू दो ही जीवित बचे थे और मुरदों की ओट में बैठकर दुश्मनों पर गोली छोड़ रहे थे। इतने ही में दुश्मनों की एक टुकड़ी ने हमें घेर लिया और सरदार ओकू को क़ैद करके भाग गये !!

कुरोकी का मुख म्लान होगया। थोड़ी देर तक चुप रह कर उसने पूछा, "क्या ओकू को वे जीता ही पकड़ ले गये हैं ?"

युत्सु—शत्रु को जब यह मालूम हुआ कि हमारी सेना बहुत थोड़ी है, तो वे एकदम हमारे ऊपर टूट पड़े। इस गुत्थमगुत्थी में ही सरदार ओकू ने एक रूसी सरदार का झण्डा छीन लिया !

कुरोकी—शाबास, ओकू शाबास !

युत्सु—ओकू के पास अपना झंडा था, दुश्मन के सरदार ने उसे छीनने का प्रयत्न किया। परन्तु ओकू के हाथ में से झण्डा छीन लेना सिंह के दाँत गिनने के समान भयंकर था। उस सरदार को वीर ओकू ने तलवार के एक ही वार से धराशायी कर दिया। अन्त में बन्दी होते समय वह रूसी झण्डा उसने मुझे दे दिया और कहा—

"यदि मैं जीता रहा तो ठीक है, नहीं तो

सरदार कुरोकी की आज्ञा लेकर यह झण्डा मेरी पत्नी को पहुँचा देना। युद्ध के समय पत्नी से विदा होते हुए मैंने उसको वचन दिया था कि दुश्मन का झण्डा तेरे लिए अवश्य लाऊँगा।"

कुरोकी—वह झण्डा कहाँ है?

युत्सु (तम्बू में बाहर रक्खा हुआ झण्डा लाकर)—यह है वह झण्डा।

दुश्मन का झण्डा होने पर भी कुरोकी ने अपना टोप उतारकर उसको वन्दन किया और कहा, "इसको अच्छी तरह सम्हालना; तुमने इसका अपमान तो नहीं किया है न?"

युत्सु—नहीं, हर्गिज़ नहीं।

कुरोकी—राष्ट्रध्वज एक पवित्र वस्तु है। उसका अपमान करना नीचता, कायरता और जंगलीपन है। बहादुर ओकू की पत्नी को यह झण्डा सैनिक समारम्भ के साथ भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए।

युत्सु सरदार कुरोकी को नमस्कार करके चला गया। कुरोकी पुनः चिन्ता में मग्न होगया।

× × × ×

साँझ के पाँच बजे का समय है। कुरोकी की छावनी से १० मील की दूरी पर रूसी छावनी पड़ी है। रूसी सरदार अपने विशाल तम्बू के आगे ५० पहरेदारों के साथ बड़ी शान-शौक़त से आराम-कुरसी पर बैठा हुआ है। उसकी आकृति एक राक्षस-जैसी प्रतीत होती है। आँखों में लालिमा छाई हुई है। उसने पास ही पड़ी हुई चारपाई पर अपना हाथ थपकाया और बड़े आवेश के साथ बोल उठा—"उस हरामख़ोर जापानी को मेरे सामने हाज़िर करो।"

कोई दस सिपाहियों की एक टोली नंगी तलवार लेकर बेड़ियों से जकड़े हुए ओकू को पकड़ लाई। बेड़ियों से बँधे हुए ओकू के हाथ में इस समय भी सूर्य के चिन्हवाली जापान की राष्ट्रीय पताका फहरा रही थी।

सेनापति की आँखों से मानों अंगारे बरसने लगे। क्रोध के आवेश में उसने चिल्लाकर कहा—"ए बेवकूफ़! झंडा नीचे झुका तू। जानता नहीं कि तू मेरा क़ैदी है?"

ओकू—मुझे मालूम है। परन्तु मैं अपने झण्डे को नीचे क्योंकर झुकाऊँ? मेरे राष्ट्रीय सम्मान की मूर्तिमती यह प्रतिमा कैसे झुक सकती है? मातृभूमि जापान के पूर्वजों की यह कीर्ति-ध्वजा कदापि नहीं झुकेगी, हर्गिज़ नहीं झुकेगी!

सरदार—ए हैवान! मैं एक क़ैदी का भाषण सुनने नहीं आया हूँ। तुझे अपना यह क्षुद्र झंडा मेरे पैरों पर झुकाना पड़ेगा!

ओकू (आवेशपूर्वक)—हे सरदार, सम्हल कर बोल। मेरी इस कीर्ति-पताका को क्षुद्र कहता है! तुझसे जो कुछ हो सके वह करले। इस शरीर में जबतक ख़ून का एक भी क़तरा है, तेरी शक्ति नहीं—तेरी इस समस्त फ़ौज की हिम्मत नहीं, कि इस पवित्र ध्वजा को छू तक सके।

विश्व-विधाता के नाम से पुकारे जानेवाले रूस के ज़ार का यह प्रतिनिधि सरदार क़ैदी के इन शब्दों को सुनकर क्रोध से जल उठा और भूखे बाघ की तरह ओकू पर कूद पड़ा। उसने ओकू की गर्दन दबा कर कहा—"मेरे पैरों में झण्डा झुका दे, नहीं तो तोप के आगे बाँधकर उड़ा दिया जायगा।"

कुछ समय में ओकू उसके पंजे से छूटा! उसने मातृभूमि का वंदन किया और सरदार के सामने छाती निकालकर निर्भय मन से बोल उठा—"ध्वजा कभी नहीं झुकेगी, हर्गिज़ नहीं झुकेगी; चाहे सो कर लो!"

× × × ×

बिगुल बजा, सारी सेना मैदान में खड़ी होगई। केवल एक ही आत्मा ने हजारों मनुष्यों के मनों मे हलचल मचा दी। तोपखाने से एक विशाल तोप लाई गई और मैदान के बीच में खड़ी की गई। दस सिपाहियों ने ओकू को तोप के सामने बाँध दिया। उसके दाहिने हाथ में अभीतक उसका जापानी झंडा फहरा रहा था। एक चक्रवर्ती सम्राट् के समान वह अपना प्राण लेनेवाली तोप के मुख पर अपना दायाँ हाथ टिका कर खड़ा हुआ था। तोप के मुख पर आरूढ़ हुई जापान की राष्ट्रीय पताका बलिदान की सर्वोपरि विजय का संदेश दे रही है। इस अपूर्व दृश्य को देखने के लिए मानों प्रकृति स्तब्ध होगई, सारी सेना दिङ्मूढ़ होकर इस महिमामय दृश्य को देखने लगी !!

घड़ी में पाँच बजे की टकोर बजी। तोपची ने तोप को अच्छी प्रकार तैयार कर लिया। आराम-कुरसी पर से उठकर वह रूसी सरदार समीप आया। उसके मुख पर प्रचण्ड गर्व छा रहा था। वीर ओकू का कान खींचते हुए सरदार बोला—"अभी समय है; तेरा झण्डा अभी मेरे पैरों में रख, नहीं तो तोप दागी जाती है।"

ओकू (बड़े उत्साह और गर्व के साथ)—हे सरदार! यह सवाल मेरा वैयक्तिक नहीं है, यह राष्ट्र का है। राष्ट्र के लिए मर जाना मैं गौरवमय समझता हूँ। तुम क्रोध से अन्धे होगये हो, इसी लिए तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है। जो तुम अपनी ध्वजा को पवित्र मानते होते, तो ऐसे वचन मुख से कभी न निकालते। भगवान् बुद्ध और इस सूर्यदेव की शपथ खाकर मैं कहता हूँ कि इस देह में जबतक जीवन विद्यमान है तबतक यह पवित्र झण्डा आपको हाथ में नहीं दे सकता, चरण में रखने की तो बात ही कहाँ?

सेनापति क्षणभर के लिए तो विस्मय में पड़ गया। उसके हृदय में दैवी और आसुरी विचारों का संग्राम होने लगा। परन्तु आखिर राक्षसी विचारों ने ही विजय पाई। उसने आज्ञा दी, "तोप को दाग दो।"

समस्त सैन्य में मृत्यु की-सी शान्ति छा गई। तोपची तैयार हुआ। इसी समय उस महान शान्ति को भंग करता हुआ ओकू गाने लगा—

जय जय जय जननी जापान ॥
कौन अधम है ऐसा जन जो,
देखे तेरा यह अपमान।
तन-मन-धन सब तेरे अर्पण,
देता जीवन का बलिदान ॥

मानों बलिदान का जय जय कार करता हुआ एक प्रचण्ड शब्द आकाश में व्याप्त होगया! ओकू की पवित्र पताका चिथड़े-चिथड़े होकर व्योम में उड़ गई!! तोप के शब्द के साथ ही मानों दिशायें एक स्वर में कह उठीं—"ओकू की जय!"

दुर्गादास राठौड़

[विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र']

दुर्गादास का जन्म वि० सं० १६९५ की द्वितीय श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को हुआ था। इनके पिता का नाम आसकरण था। आसकरण जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के मुसाहिब थे। दुर्गादास की माता का उग्र स्वभाव होने के कारण, आसकरण ने उन्हें गाँव से दो कोस पर एक मकान बनवाकर रक्खा था। दुर्गादास वहीं पर छोटे से बड़े हुए।

जब दुर्गादास की वय लगभग '८ वर्ष की थी तब एक दिन किसी कारण वह अपने गाँव सालवे के बाहर चले गये। वहाँ देखा कि सरकारी ऊँटों के चरानेवाले रैबारी एक कृषक से मार-पीट कर रहे हैं। कृषक का अपराध इतना ही था कि उसने उन्हें खेतों से अलग ऊँट चराने के लिए कह दिया था! जब दुर्गादास को यह मालूम हुआ कि रैबारी व्यर्थ ही उस ग़रीब किसान को मार रहे हैं, तो उन्होंने आगे बढ़कर ऊँट चरानेवालों को रोका; परन्तु वे मूर्ख उससे भी उलझने लगे। यह देखकर दुर्गादास को क्रोध आया और उसने एक रैबारी को इतना मारा कि वह मर गया।

जब दुर्गादास की शिकायत महाराजा जसवन्तसिंह के पास पहुँची, तब उन्होंने दुर्गादास को बुलवाकर हाल पूछा। दुर्गादास ने निर्भयता-पूर्वक कहा—"हाँ, मैंने मारा है। ऐसे नीच लोग ही प्रजा के भावों को राजा के विरुद्ध करते हैं।" दुर्गादास के मुँह से निर्भयता के वचन सुन और यह जानकर कि यह आसकरण का पुत्र है, महाराज बड़े प्रसन्न हुए; उन्होंने उसी दिन से उसे अपने पास रख लिया। जसवन्तसिंह को निश्चय हो गया कि समय आने पर यही मारवाड़ का उद्धार करेगा।

उन दिनों शाहजहाँ दिल्ली के तख़्त पर विराजमान था। जब बादशाह के बीमार होने तथा मर जाने का समाचार सारे देश में फैल गया तब उसके सभी लड़के राज्य प्राप्त करने की आशा से आगरे की तरफ़ बढ़ने लगे। औरंगज़ेब दक्षिण से आ रहा था। शाहजहाँ ने उसे रोकने को फ़ौज भेजी। उसमें दाराशिकोह के साथ जसवन्तसिंह और दुर्गादास भी थे। वैशाख वदी ८ सं० १७१५ वि० में, जब कि दुर्गादास केवल २० वर्ष के थे, उज्जैन के निकट फतेहाबाद मुक़ाम पर बड़ी वीरतापूर्वक वह औरंगज़ेब से लड़े।

परिस्थितिवश औरंगज़ेब बादशाह हुआ। उसने अपने पिता और भाइयों को क़ैद कर लिया। औरंगज़ेब ने जसवन्तसिंह से सुलह कर ली। दुर्गादास दरबार में जसवन्तसिंह की तरफ़ से वकील बनकर काम करते रहे। यह काम उस समय बड़े ही महत्व का एवं उत्तरदायित्व-पूर्ण था।

काबुल में पठानों के उपद्रव को दबाने के लिए औरंगज़ेब ने जसवन्तसिंह को काबुल भेजा। साथ में दुर्गादास भी गये। ५-६ वर्ष तक वहाँ रहकर उन्होंने पठानों का उपद्रव शान्त कर दिया। वहीं पर जसवन्तसिंहजी की मृत्यु सं० १७३५ में हो गई। दुर्गादास स्वर्गीय महाराज की दो गर्भवती रानियों को लेकर मारवाड़ की ओर लौटे। जब अटक के पास पहुँचे तो मीर बहर ने बिना शाही हुक्म के नदी पार करने से रोका। इसपर युद्ध हुआ और उसे परास्त कर दुर्गादास नदी पार हो गये।

जब जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार औरंगज़ेब को मिला तो वह मन ही मन बड़ा खुश हुआ और उसने इन लोगों को दिल्ली पहुँचने का फ़र्मान भेजा। इधर ये लोग शाही आज्ञा पाकर दिल्ली की ओर चले, और उधर कूटनीतिज्ञ औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर अपना पंजा जमा लिया।

दुर्गादास लाहौर ठहरे। वहाँ दोनों रानियों के गर्भ से चैत्र वदी ४ सं० १७३५ को दो बालक उत्पन्न हुए। पहले का नाम अजीतसिंह और दूसरे का दलथम्भन रक्खा गया। आठ-दस दिन बाद ये लोग लाहौर से चल पड़े और छोटे-छोटे राजपुत्रों को लिये हुए आषाढ़ सुदी सं० १७३६ में

दुर्गादास राठौड़

दिल्ली पहुँचे। बादशाह ने इन लोगों को रूपसिंह की हवेली में ठहराया। कुछ दिन बाद बादशाह ने दोनों रानियों को अपने बालकों-सहित नूरगढ़ के क़िले में रहने की आज्ञा दी। बादशाह के हृदय में कपट था, यह बात दुर्गादास आदि सरदारों ने नहीं मानी।

एक दिन एकाएक शाही कोतवाल फ़ौलादखाँ आया और उसने हवेली घेर ली। फ़ौज आ गई। दुर्गादास ने मुकुन्ददास खीची से कहा—"हम लोग सङ्कट में हैं, जैसे बने तैसे अपने बालक महाराज की रक्षा करो। तुम्हें पूँगी बजाना आता है, इसलिए सपेरे का स्वाँग बनाकर पिटारों में महाराज को रखकर यहाँ से निकल जाओ।" मुकुन्ददास ने ऐसा ही किया। सपेरे का स्वाँग बनाकर महलों के नीचे आ पहुँचे। गोरां नामक धाय ने मेहतरानी का वेश बनाकर मुकुंददास को बालक अजीतसिंह ला दिया। मुकुंददास ने नीचे के पिटारे में अजीतसिंह और ऊपर के में साँप रख कर पूंगी बजाते हुए मारवाड़ का रास्ता लिया। इसी भाँति दलथम्भन को भी निकाल दिया था, परन्तु वह मार्ग में मर गया।

दुर्गादास ने अजीतसिंह को दिल्ली से निकालकर यवनों से युद्ध करने की ठानी। रानियों ने भी मरदाना वेश बनाया और सब यवन सैनिकों पर टूट पड़े। बड़ी वीरता-पूर्वक युद्ध हुआ। दोनों रानियाँ वीर गति को प्राप्त हुईं। सैकड़ों राजपूत काम आये। दुर्गादास शत्रु-दल से लड़ते-भिड़ते ४१ राजपूतों-सहित मारवाड़ की ओर निकल गये। मुग़ल सैनिकों ने यद्यपि उनका पीछा किया, मगर वह हाथ नहीं आये। बादशाह के डर से घबराकर फ़ौलादखाँ ने दो ग्वालियों के बच्चे अजीतसिंह और दलथम्भन कहकर पेश किये। शाह ने उनका मुसलमानी नाम रक्खा और बड़ी सावधानी से उनका पालन-पोषण कराया, परन्तु वे मर गये।

मारवाड़ पहुँचकर दुर्गादास ने राजपूतों को संगठित कर अपने देश के उद्धारार्थ एक सेना बनाई। वहाँ यवनों का प्राबल्य देखकर दुर्गादास ने अपने बालक महाराज अजीतसिंह को सिरोही के पहाड़ों में छिपा दिया और मुकुन्ददास खीची साधु का वेश बनाकर उनकी देख रेख करने लगा। अब दुर्गादास ने १०,००० राजपूतों की सेना लेकर बादशाही थानों और गाँवों को लूट-मार कर उनपर अपना अधिकार स्थापित करना आरम्भ कर दिया। औरंगज़ेब घबराया। उसने उदयपुर की रक्षा के लिए अपने शाहज़ादे मुअज़्ज़म और अकबर को भेजा, और स्वयं अजमेर आया।

दुर्गादास ने अब यह चाल चली कि शाहज़ादे मुअज़्ज़म को अपनी ओर फोड़ने के लिए यह कहलाया कि 'सब राजपूत आपको अपना बादशाह बनाना चाहते हैं।' जब यह हाल मुअज़्ज़म की माता को मालूम हुआ तो उसने उसे कहा—'तू भूलकर राजपूतों की बातों में मत आना।' परन्तु दुर्गादास बड़े ही उद्योगी थे, उन्होंने मुअज़्ज़म को अपने दाव में न आता देखकर अकबर को भड़का। यद्यपि अकबर को भी उसकी माता ने सावधान किया, किंतु वह दुर्गादास के कहने में आ गया। देसूरी के घाटा राणपुर के पास नाडोल में माघ वदी ९ सं० १७३७ को अकबर को बादशाह घोषित कर दिया गया। दुर्गादास ने उसके सिर पर शाही ताज रक्खा और उसके नाम का खुतबा भी पढ़वाया।

अकबर को बादशाह बनाकर दुर्गादास ने अजमेर पर चढ़ाई की। बादशाह भी कुछ कम चालाक नहीं था। जबकि दुर्गादास और अकबर की सेना के डेरे अजमेर के पास थे, उसने जाली ख़त लिखवाकर भेजे और चालाकी से वे राजपूतों के हाथों तक पहुँचा दिये। उनमें उसने अपने बेटे अकबर के नाम लिखा था—'तूने बहुत ही अच्छा किया जो चालाकी से इन हरामी राजपूतों को यहाँ ले आया।' इत्यादि। इस पत्र को पाते ही, आधी रात बीत चुकी होगी तब, दुर्गादास अकबर के डेरे पर पहुँचा और पहरेदारों को अकबर के जगाने को कहा। पहरेदारों ने इनकार कर दिया और कहा कि हमें हुक्म नहीं है। वहाँ से चलकर वह शाही सेनापति तहव्वरख़ाँ के डेरे पर पहुँचे, परन्तु वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि वह औरंगज़ेब की शरण चला गया है। इन दोनों घटनाओं से दुर्गादास का सन्देह और भी बढ़ गया और उन्हें निश्चित हो गया कि निस्सन्देह अकबर हमारे साथ छल कर रहा है। तत्काल दुर्गादास ने अकबर की सेना पर आक्रमण कर दिया, और लूट-मारकर सेना-सहित अकबर को वहीं छोड़ मारवाड़ की ओर चल दिये।

बेचारा अकबर बेख़बर था। उसे इस घटना के रहस्य

का कुछ भी हाल ज्ञात न था। प्रातःकाल जब उसे पता लगा तो वह किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह दुर्गादास के पीछे-पीछे चला। जब अकबर उनसे मिला तो उन्हें अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ। उन्होंने फिर उसे साथ ले लिया। औरंगज़ेब ने शाह आलम को इनका पीछा करने की आज्ञा दी। परन्तु जब वह जालौर के समीप डेरा किये था तो राठौड़ सरदार रात के वक्त अचानक उसपर टूट पड़े। उसकी सेना तितर-बितर हो गई। शाहआलम ने फिर से अपनी सेना को बटोरकर राठौड़ों पर आक्रमण कर दिया और फाल्गुन वदी ९ सं० १७३७ को साँचोर के निकट दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ।

यहाँ से दुर्गादास सिवाने पहुँचे और दण्ड के रुपये वसूल करते हुए गोड़वाड़ की ओर चले गये। शाहआलम ने जब दुर्गादास को वश में करना कठिन समझा तो चार हज़ार अशर्फियाँ उसने उनके पास भेजकर अपने भाई अकबर को सौंप देने का प्रस्ताव किया। दुर्गादास ने अशर्फियाँ लेलीं और अकबर को सौंपने से स्पष्ट इनकार कर दिया। यह व्यवहार देखकर शाहआलम और भी चिढ़ गया। वह दुर्गादास के पीछे पड़ गया। ऐसी दशा में दुर्गादास ने एक तदबीर सोच निकाली—वह अकबर को लेकर दक्षिण में शिवाजी के पुत्र शम्भाजी के पास जा पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर शम्भाजी पहले तो शंकित हुए, किन्तु कवि कलश के समझाने से उन्होंने दुर्गादास को अपने यहाँ रख लिया।

जब औरंगज़ेब ने सुना कि दुर्गादास अकबर-सहित दक्षिण में जा पहुँचा, तो वह घबरा गया। क्योंकि दुर्गादास के पहुँचते ही दक्षिण से बादशाह के विरुद्ध आक्रमण होने की पूर्ण आशा थी। बादशाह स्वयं दक्षिण की ओर रवाना हुआ। दुर्गादास वहाँ ५ ६ साल तक रहे, किन्तु जिस आशा और उद्देश को लेकर वह वहाँ गये थे, शम्भाजी की निर्बलता और शिथिलता के कारण उसमें सफल न हो सके। अन्त में उन्होंने मारवाड़ वापस लौटना ठीक समझा। परन्तु अकबर ने उत्तर भारत में आना स्वीकार नहीं किया और वहीं से वह सीधा ईरान चला गया और बाल-बच्चों को दुर्गादास की देख-रेख में छोड़ गया।

एक बार बादशाह ने अपने दो चित्रकारों को दुर्गादास और शम्भाजी के चित्र बनाकर लाने को कहा। चित्रकार जब तसवीरें लेकर हाज़िर हुए, तो औरंगज़ेब ने देखा कि शम्भाजी एक वृक्ष के नीचे बैठे रोटी खा रहे हैं और घोड़ा पास में खड़ा है। दूसरे चित्र में देखा कि दुर्गादास घोड़े पर सवार हैं और एक हाथ से भाले में अटका हुआ भुट्टा सेक कर खाते जा रहे हैं तथा दूसरे हाथ से लगाम पकड़े अश्व-परिचालन कर रहे हैं। औरंगज़ेब ने शम्भाजी के चित्र को देख कर कहा कि इसको वश में लाना कुछ कठिन नहीं है, परन्तु यह (दुर्गादास के चित्र को देखकर) शैतान हाथ में नहीं किया जा सकता।

दुर्गादास अपने योद्धाओं-सहित दक्षिण से चलकर सं० १७४४ के भाद्रपद मास में मारवाड़ आ पहुँचे। मारवाड़ के राजपूत सरदारों ने अपने बालक महाराज अजीतसिंह को दुर्गादास से बिना पूछे ही इसी साल चैत्र महीने में प्रकट करा लिया था। जब मारवाड़ के पास पहुँचने पर दुर्गादास को अजीतसिंह का प्रकट होना मालूम हुआ तो वह बड़े ही दुःखी एवं क्रुद्ध हुए। अजीतसिंह के दरबारी सरदार दुर्गादास के उत्कर्ष पर मन ही मन कुढ़ा करते थे और जैसे बने तैसे अजीतसिंह को उनपर नाराज़ रखते थे। दुर्गादास महाराज अजीतसिंह के पास न आकर सीधे अपने निवास-स्थान को चले गये। यह बात महाराज को भी खटक गई।

बादशाह ने जब यह सुना कि दुर्गादास फिर मारवाड़ पहुँच गया तो वह घबराया, किन्तु वहाँ वह ऐसी उलझनों में फँसा हुआ था कि दक्षिण छोड़ना असंभव था। इसलिए उसने गुजरात के सूबेदार कारतलबखाँ को मारवाड़ का प्रबन्ध सम्हालने का हुक्म दिया और यह भी आज्ञा दी कि दुर्गादास को प्रलोभन देकर शाहज़ादे अकबर के बाल-बच्चों को उससे लेलो।

दुर्गादास के पास स्वयं महाराज अजीतसिंह आये और उन्हें लिवा ले गये। दुर्गादास ने तत्काल एक बड़ी भारी सेना लेकर मारवाड़ के फैले हुए शाही थानों को उठा दिया। सं० १७४५ में सोजत के पास उन्हें यवन सेना से लड़ना पड़ा। युद्ध भयंकर हुआ। दोनों ओर के वीर काम आये।

वहाँ से दुर्गादास बाँगे के पहाड़ों की ओर चले गये और सूराचन्द के चौहानों को हराकर थरपरकरवालों का दमन किया। सं० १७४८ में उदयपुर के राणा जयसिंह और उनके पुत्र अमरसिंह में गृह-कलह उठा। दुर्गादास ने आकर पिता-पुत्र को समझाया और झगड़ा निपटा दिया। वहाँ से लौटते हुए पुर, माँडल, शाहपुरा, बदला, सरवाड़, खारीटाबा, दरीबा और टोड़ा आदि को लूटा। गोकुलचन्द से देवगाँव का अधिकार छीनकर जोधा नाहरसिंह को दे दिया। आगे बढ़कर रामसर को लूटा। फ़ौजदार काफ़ीखाँ के पुत्रों ने उनका सामना किया। घमासान युद्ध हुआ। वहाँ से दुर्गादास मारवाड़ की ओर चले।

काफ़ीखाँ ने अजीतसिंह को अपने पास सन्धि करने के लिए बुलाया। महाराज अजमेर के लिए चल दिये। दुर्गादास ने अपना भाई भेजकर वहाँ जाने से मार्ग में रोकना चाहा, परन्तु इन्होंने दुर्गादास की बात नहीं मानी और अजमेर (माघ वदी ८ सं० १७४९ को) पहुँचे। उधर पीछे से शाही सेना ने महाराज के स्थान सिवाने पर अधिकार कर लिया। महाराज की आँखें खुल गईं और दुर्गादास की उचित सलाह न मानने पर पछताते हुए सुमेल के पहाड़ों में चले गये। दुर्गादास को इतना दुःख हुआ कि वह उदास होकर चुप हो रहे। उन्हें मनाने के लिए स्वयं अजीतसिंह भीमरलाई आये और दुर्गादास से चलने का आग्रह करने लगे। दुर्गादास ने कहा—"मेरे कथनानुसार जब दो मास तक आपका राज्य-प्रबन्ध देखूँगा तब मैं खुद सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।" यह बात महाराज को बुरी लगी और वह नाराज़ होकर लौट गये।

वि० सं० १७५१ में वकील नारायणदास के हाथ एक फ़र्मान भेजकर बादशाह ने दुर्गादास को अकबर का कुटुम्ब लौटा देने के लिए लिखा। परन्तु उन्होंने मनसब वग़ैरा के लोभ में न फँसकर साफ़ इनकार कर दिया। दुर्गादास को उदास देखकर महाराज अजीतसिंह ने मुकुन्ददास चाँपावत और तेजसिंह को भेजकर दुर्गादास को भी मरलाई से बुलाया और प्रतिज्ञा की कि भविष्य में सब काम दुर्गादास की सम्मति से ही करूँगा। पौष सुदी ५ सं० १७५३ में दुर्गादास फिर महाराज की सेवा में आ गये। आते ही युद्ध की तय्यारियाँ होने लगीं।

शुजाअतखाँ ने दुर्गादास से फिर बातचीत शुरू की। शर्तें तय हो गईं। इन्होंने अकबर के पुत्रों को तो अपने पास रख लिया और उसकी लड़की को औरंगज़ेब के पास भेज दी। जब औरंगज़ेब को यह मालूम हुआ कि दुर्गादास ने अकबर के पुत्र-पुत्री को पढ़ाने-लिखाने के लिए अजमेर से मौलवी बुलाकर उन्हें मज़हबी शिक्षण दिलाया तो वह बड़ा खुश हुआ। उसने दुर्गादास को मनसब और जात देना चाहा, तब दुर्गादास ने कहा कि जबतक महाराज को आप मनसब न देंगे मैं नहीं लूँगा। तब बादशाह ने दोनों को मनसब और जात देकर उनका सम्मान किया।

बादशाह ने थोड़ा-सा मारवाड़ का इलाक़ा अजीतसिंह को दिया, जोधपुर नहीं दिया। दुर्गादास को दक्षिण का सूबेदार बनाकर अहमदाबाद में रक्खा। ऐसा करने में बादशाह को दो लाभ हुए—(१) दुर्गादास को खुश कर लिया, और (२) उन्हें इस ढंग से मारवाड़ से अलग करके राजपूतों की शक्ति को कम कर दिया। साथ ही बादशाह ने उन्हें मरवा डालने की योजना भी की। परन्तु भेद खुल जाने से वह उसके दाव में न आ सके और वहाँ से सकुशल बचकर अपने घर पहुँच गये। यद्यपि आज़म ने सफ़दरख़ाँ को दुर्गादास का पीछा करने को भेजा, मगर वह हाथ नहीं आये। मार्ग में दुर्गादास के पौत्र ने सफ़दरख़ाँ को रोककर युद्ध किया। वह युवक अभिमन्यु की भाँति लड़कर वीर-गति को प्राप्त हुआ।

गुजरात में मराठों का ज़ोर था, शाही इलाक़ों में उपद्रव मच रहा था। ऐसी दशा में दुर्गादास ने अजीतसिंह को चिराद पर चढ़ाई करने की सम्मति दी। परन्तु मौक़े पर शाही सेना आजाने से कुछ भी न हो सका। थोड़े दिन बाद दुर्गादास कोलीवाड़े में आ गये। वहाँ पर उन्होंने पाटन की तरफ़ जाते हुए शाह कुली को मारा। वहाँ से चलियार पहुँचकर मासूम कुली की सेना को बर्बाद कर दिया। यदि मासूम प्राण बचाकर न भाग निकलता, तो वह भी मारा जाता।

फाल्गुन वदी १४ सं० १७६३ को दक्षिण में औरंगज़ेब

की मृत्यु हो गई। दुर्गादास ने महाराज अजीतसिंह को जोधपुर पर चढ़ाई करने की सम्मति दी। जोधपुर पर आक्रमण किया गया और मुसलमानी झण्डे की जगह वहाँ पुनः राजपूती झण्डा फहराया गया। बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। इसने जयपुर पर कब्ज़ा कर लिया।

राजा जयसिंह, अजीतसिंह और राणा संग्रामसिंह इन तीनों राजाओं की सन्धि कराके दुर्गादास ने शाही इलाकों को हथियाना शुरू किया। पहले साँभर का इलाका फतह किया। जयपुर की सेना पुष्कर तक आई। जयपुर का बादशाही हाकिम भाग गया और राजा जयसिंह को जयपुर फिर प्राप्त हो गया। दुर्गादास ने लगभग ११,००० राठौड़ वीरों को साथ ले सारे मारवाड़ से शाही थानों का नामो-निशान उठा दिया। इनकी इच्छा थी कि उदयपुर के महाराणा को दिल्ली के तख्त पर बिठाया जाय और मुग़लशाही को मिटा दिया जाय, परन्तु आपसी मनोमालिन्य के कारण बहुत प्रयत्न करने पर भी सफलता नहीं मिल सकी।

दुर्गादास अपनी सेना का डेरा हमेशा महाराजा अजीतसिंह की फ़ौज से अलग रखते थे और अपने तम्बू के सामने महाराज की तरह हमेशा नौबत बजवाया करते थे। इस बात को उठाकर दुर्गादास से द्वेष रखनेवाले सरदारों ने महाराज को भड़काया। महाराज ने उन्हें अपने पास तम्बू लगाकर रहने की आज्ञा दी। दुर्गादास ने कहा—"मैं बूढ़ा हो गया हूँ अब मुझे आप अलग ही रहने दें; मेरे वंशज आपकी सेवा में रहेंगे, उन्हें जी-चाहे जैसे रखना।" इस बात से अजीतसिंह नाराज़ हो गये और उनके गुण, उपकार, स्वामि-भक्ति, त्याग, शौर्य, पराक्रम, और उम्र का कुछ भी ध्यान न देकर देश-निकाले का हुक्म दे दिया। वह तत्काल चल दिये और उदयपुर आ गये।

उदयपुर के राणा ने इन्हें अपने यहाँ आदर-पूर्वक रक्खा और मालवे में रामपुरा-भानपुरा का सूबेदार बनाकर ५००) रोज़ हाथ-ख़र्च का नियत कर दिया। दुर्गादास ने वहाँ रह कर इलाक़े के तमाम उपद्रवों को शान्त कर दिया और अपने जीवन के शेष दिन बड़े ही आनन्द-पूर्वक व्यतीत किये। ८० वर्ष ३ महीना २० दिन की आयु भोग कर वह राठौड़ वीर वि० सं० १७७५ में इस लोक से बिदा हो गया। आज यद्यपि वह वीर इस लोक में नहीं है तथापि उसकी अमर कीर्ति मारवाड़ में ही नहीं वरन् सारे देश में व्याप्त है। आज गर्व-पूर्वक मारवाड़ में कहा जाता है—

"माई एहड़ा पूत जण जेहड़ा दुर्गादास।
बाँध मुँडासो थामियो बिन थंबै आकास।"
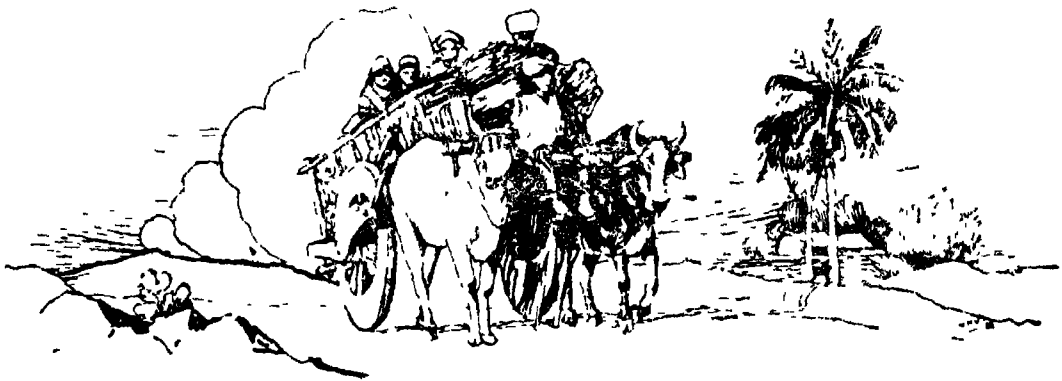
वह प्रतिदिन प्रातःकाल, दो घंटे रात रहते ही, अपने नगर से बहुत दूर बाहर टहलने निकल जाता और सूर्योदय होते-होते कोसों घूम कर घर लौट आता था। उसका नाम महेश था। वह एक बहुत शान्त प्रकृति का युवक था। उसे न तो व्यर्थ के वाद-विवाद अच्छे लगते, न विभिन्न युवकों की मंडली ही। कालेज में पहुँचते ही वह चुपचाप अपने स्थान पर बैठ जाता; बिलकुल तन्मय हो अध्यापक का भाषण सुनता और अवकाश-काल में फुलवारी के किसी पौधे के पास बैठकर कुछ सोचता। उसे न तो अपने नगर के किसी राग-रंग, सभा-समाज से कोई प्रयोजन था, न अपने किसी सगे-सम्बन्धी से। कालेज से छुट्टी पाते ही वह सीधा अपने घर पहुँचता और अपने पाठनालय में घुसकर किवाड़ बन्द कर लेता। अपने घर के लोगों से उसे बहुत कम दरश-परश होता—शायद नित्यकर्म, भोजन आदि के समय ही। पर हाँ—चूँकि विवाहित भी था—वह चौबीस घंटे में एक बार अपनी पत्नी से अवश्य मिलता था। यदि उसका कोई मित्र था, यदि वह किसी से हँस कर बोलता तथा यदि वह किसी की बातों को प्रेम से सुनता था, तो एक-मात्र अपनी पत्नी की। और किसीको न तो वह अपना मित्र समझता, न शत्रु; पर दूसरे अनेक लोग उसे अपने प्रिय मित्र-जैसा प्यार करते थे। उसके सहपाठी उसे गुरुवत मानते थे; हर मामलों में उसीको अपना मुखिया बनाते तथा कोई भी नया काम उसकी सम्मति लिये बिना नहीं करते थे। कालेज के आचार्य एवं अध्यापक भी उसका हद से ज्यादा मान करते थे। उसकी नम्र तथा मीठी-मीठी बातों को सुनने को सभी सदा लालायित रहते थे। टोले-मुहल्ले के हर घर में नित्य उसकी चर्चा होती रहती और लोग उसकी भिन्न-भिन्न प्रशंसा करके अपने पुत्र-पुत्रियों को उसके पवित्र आचरण का अनुकरण करने के लिए उपदेश देते रहते। जैसे घर के बाहर के लोगों में वह प्रतिष्ठा और प्रेम की दृष्टि से देखा जाता था, वैसे ही अपने घर में भी अपने माँ-बाप का वह सच्चा आज्ञाकारी सुपुत्र था। उसका अबतक के सारे जीवन में न तो कभी किसी से लड़ाई-झगड़ा हुआ, न किसी कारण से मनोमालिन्य ही। बस, वह सच्चा साधु था, और बहुत-से लोग उसे साधु, संन्यासी आदि पवित्र नाम से पुकारते भी थे।

परन्तु महेश की वेश-भूषा पूर्ण रूप से पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँगी थी। उसके पिता इन्सपेक्टर प्रभुदयाल जिस प्रकार खुद पाश्चात्य सभ्यता के अन्ध-अनुगामी थे, उसी प्रकार उन्होंने अपने सारे परिवार को बना डाला था। महेश को वह बालपन ही से सेमल के फूल जैसे लपझप करनेवाले विदेशी वस्त्रों के हैट, कोट, पतलून, टाई, कालर, बूट आदि पहनाते थे तथा उस सभ्यता के अन्य सिद्धान्तों को मनवाने के भी अनेक यत्न करते थे। पता नहीं, महेश ने अपने पिता के इस उपहार को अपने सच्चे हृदय से स्वीकृत किया था, या अपनी पितृ-भक्ति के भार से दबकर, अथवा उनके भय से!

इधर देश में जब से स्वतन्त्रता क संग्राम छिड़ा, वह बहुत बदल गया था।। अब कोई भी ऐसी सभा, खास कर कांग्रेस की ओर से होनेवाली नहीं बचती, जिसमें वह आरम्भ से अन्त तक उपस्थित न रहता हो। अब वह कांग्रेस के हर जलूस में दर्शक-रूप से सम्मिलित होता; लाइब्रेरियों में जाकर घण्टों पत्र-पत्रिकायें पढ़ता; अपने सहपाठियों तथा सगे-सम्बन्धियों के घर जा-जाकर आन्दोलन की गति-प्रगति का हाल जानने घंटों गप्पें लड़ाता था। उसकी एकान्तप्रियता अब उसमें बिलकुल नहीं थी। अब कभी-कभी वह कालेज भी न जाता था; अपने पाठ याद करने की सुधि भी उसे बहुत कम होती थी। अब अक्सर प्रातः का टहलना भी वह भूल जाता। हाँ, हैट, कोट आदि अपने विदेशी वस्त्रों को वह न त्यागता था। यदि कांग्रेस का कोई स्वयंसेवक जलाने के लिए उससे उसके विदेशी वस्त्र माँगता, तो उत्तर नहीं देता, और न अपना कोई वस्त्र ही जलाने देता। परन्तु उसके हृदय में कोई वेदना थी, अपने देश के प्रति अनुराग था, और थी वह कर्तव्यनिष्ठा जो किसी को दिखलाने के लिए नहीं वरन् करने के लिए कार्य में प्रवृत्त करती है। उसके हृदय में एक भयंकर आँधी उठी हुई थी और ज्यों-ज्यो आन्दोलन जोर पकड़ रहा था त्यों-त्यों उसके हृदय की आँधी भी और भीषण होती जाती थी।

(२)

अभी अध्ययनाध्यापन आरम्भ होने में कुछ मिनटों की देर थी। कालेज के आचार्य और अध्यापक दफ्तर में, कुछ बैठे और कुछ खड़े, देश के वर्तमान आन्दोलन के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। बाहर कुछ विद्यार्थी इधर-से-उधर घूम रहे थे। इसी समय महेश भी आ पहुँचा। उसके शरीर पर, सिर से पाँव तक, गेरुआ खद्दर सुशोभित था। सिर के अंग्रेजी फ़ैशन के लम्बे-लम्बे बाल अब न थे। हैट की जगह गान्धी-टोपी थी। कोट-कमीज़ की जगह कुरता और पतलून की जगह चार हाथ की मोटी धोती; पाँव नंगे थे। एक तो सभी खद्दर, दूसरे गेरुए रंग में रँगा हुआ-बिलकुल संन्यासी का वेश हो गया था। बाहर विद्यार्थियों की भीड़ लग गई।

आचार्य ने पूछा—"महेश! तुमने यह क्या स्वाँग बनाया?" महेश ने गंभीरता से उत्तर दिया—"श्रीमन्! अपने दुलारे भारत के लिए संन्यास ले लिया है।"

आचार्य—क्या इन्स्पेक्टर साहब (महेश के पिता) ने इसपर कोई अपत्ति नहीं की?

महेश—हमें अपनी प्यारी जननी-जन्मभूमि की पुकार के आगे किसी की आपत्ति की परवाह नहीं करनी होगी।

सभी मौन और चकित हो गये। आज महेश जिधर जाता, विद्यार्थियों की भीड़ लग जाती। उसके सहपाठियों में से कोई पूछता, 'तो क्या, महेश! अब तुम कालेज छोड़ दोगे?" कोई पूछता, "तो महेश! क्या अब तुम कांग्रेस के सत्याग्रहियों में नाम लिखाओगे?" कोई कुछ पूछता, कोई कुछ। उत्तर में महेश के नेत्रों से दो-चार बूँद आँसू टपक जाते। एक बार अपने आँसू पोंछते हुए उसने सबको उत्तर दिया—"भाई, अपने प्यारे भारत के लिए जो-कुछ करना पड़ेगा, करूँगा। आज तुम लोगों से एक बात कहने आ गया। एक बार अपनी जन्मभूमि की पुकार की ओर ध्यान दो—अवसर पर चूक जाने से पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता है।" सभी अवाक् थे।

आज कालेज में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसके मस्तिष्क में महेश कुछ काम न कर रहा हो। लोगों का आश्चर्य तब और बढ़ा, जब वह घण्टे-भर

बाद ही किसी से बिना कुछ कहे-सुने कालेज से ग़ायब हो गया।

× × ×

इन्स्पेक्टर प्रभुदयाल ने रूखे स्वर में कहा—"महेश! यदि अपनी भलाई चाहते हो, तो अभी यह खद्दर उतारकर फेंको और कालेज जाओ। यदि तुम्हें यह अभिमान है कि घर में सम्पत्ति है, न पढ़ोगे तो भी जीवन-भर बैठे बठे खाओगे, तो इसका ज़रा भी ख़याल न करना। यदि तुम मुझे अपना पिता नहीं समझते, मेरी आज्ञा और इच्छा के विरुद्ध चलते हो, तो मैं भी तुम्हें अपना पुत्र नहीं समझ सकता और मेरे भी जो जी में आवेगा करूँगा। मैं कह देता हूँ; अभी मैं अपनी सारी संपत्ति अपनी लड़की के नाम लिख दूँगा, और तुम दाने-दाने के लिए तरसोगे।" महेश के नेत्रों से आँसू टपक पड़े। उसने बड़े नम्र वचनों में उत्तर दिया—"आपको सब अधिकार है। आप जो चाहे कर सकते हैं। आपकी सम्पत्ति है; आप उसे जिसे चाहें ख़ुशी से दे सकते हैं। मैं कुछ कहता भी तो नहीं कि मुझे ही अपनी इस सम्पत्ति का अधिकारी बनाइए! मुझे तो उसकी स्वल्प भी कामना नहीं। मैं तो अपने प्यारे भारत के लिए हँसने की अपेक्षा रोना ही श्रेयस्कर समझता हूँ। जननी-जन्मभूमि को सुखी बनाने के लिए यदि दाने-दाने के लिए तरसकर मरना पड़े, तो इससे बढ़कर और सौभाग्य कहाँ! मुझे तो अपने किसी अतुल संपत्ति या विशाल साम्राज्य का सुखोपभोग करने की अपेक्षा पवित्र भारत के लिए गुदड़ी लपेटे एक अनाथ भिक्षुक के वेश में किसी दिन किसान की झोपड़ी के द्वार पर हाथ फैलाकर मुट्ठी-भर भिक्षा माँगने में ही अधिक आनन्द की प्राप्ति होगी। देशोद्धार के लिए दुःख ही में तो सुख का सच्चा आनन्द मिलता है।" इन्स्पेक्टर साहब दाँत पीसने लगे। महेश वहाँ से चला गया।

× × ×

महेश की माता ने उसे बुलाकर कहा—"बेटा! अपने पिता के हृदय को इतना दुःख क्यों पहुँचा रहे हो? उनकी बात क्यों नहीं मान लेते? वह कितना कलप रहे हैं! वह सरकारी नौकर हैं। तुम्हारे इस आन्दोलन में भाग लेने से उनकी नौकरी पर आपत्ति आती है। तनिक सोचो, जिस नौकरी की बदौलत यह सब कुछ है, उसीके न रहने पर हम लोग कहाँ के होकर रहेंगे?" महेश के नेत्र सजल थे। उसने दीन वचनों में उत्तर दिया—"माँ! अपने भारत की पुकार के आगे मुझे किसी की कोई बात नहीं सुनाई पड़ती। मुझे अपनी जननी-जन्मभूमि की एक मंद टेर में सारे विश्व का कोलाहल विलीन होता-सा दिखाई पड़ रहा है; और उसपर भी मेरा युवक का हृदय और रक्त है। जो अपने को युवक कहने का अभिमान करता है, देश की पुकार के समय यदि तुम उसके सम्मुख करोड़ों नक्कारे बजवाओ, तो अपने राष्ट्र की उस क्षीण आवाज़ के सिवा उसे और कुछ सुनाई ही न पड़ेगा। माँ! जिस तरह तुम मुझे समझा रही हो, उसी तरह तनिक पिताजी को क्यों नहीं समझातीं कि अपने थोड़े-से स्वार्थ के लिए हमारे सारे भारत का अमंगल न करें। यदि वह कुछ नहीं करते, तो मुझे तो अपने कर्त्तव्य-पथ पर स्थिर रहने दें!" महेश की माता मौन हो गई। उसका मन डोल गया; हृदय में हलचल मच गई और कानों में किसी की पुकार मंद-मंद गूँजने लगी।

× × ×

जो महेश अपनी पत्नी से मिलने में एक दिन का भी नागा न करता था, उसी को उसकी पत्नी कई दिनों बाद बड़ी कठिनाई से बुला सकी। महेश के कमरे में

प्रवेश करते ही उसने बड़े प्रेम से उसकी चादर पकड़ कर कहा—"बाबूजी को क्यों इतना रंज कर रहे हो? उनकी बात के आगे अपना हठ छोड़ ही दोगे, तो कौन नीच हो जाओगे। संसार में माँ-बाप से बढ़कर और कोई बड़ा नहीं। सदा उनकी आज्ञा में रहने ही से संतान का मंगल होता है। देखो, बाबूजी अपनी सारी सम्पत्ति दीदी के नाम लिख देने के लिए स्टाम्प तक मँगा चुके हैं। छोटी-सी बात के लिए अपना सर्वस्व क्यों गँवाओगे?" महेश ने प्रेम से पत्नी का हाथ पकड़कर कहा—"तुम भी मुझे पतन की ओर खींच रही हो! मैं मानता हूँ कि पिताजी ने मुझे जन्म दिया है; माँ ने मुझे पैदा किया है, दो-तीन वर्ष तक मुझे अपना दूध पिलाया है, मुझे पाला-पोसा है; परन्तु तनिक सोचो तो मैं इतना बड़ा कैसे हुआ हूँ और पिताजी में जन्म देने की शक्ति, माँ में दूध पिलाने और पालने की शक्ति कहाँ से आई? अपनी जिस जननी के वक्ष के रस को पीकर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ तथा जिस जननी के वक्ष के रस से मेरे माता-पिता में मुझे जन्म देने एवं पालने की शक्ति आई है, उस जननी के प्रति मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है? यदि मेरी जननी-जन्मभूमि न होती, तो मेरे माता-पिता का अस्तित्व ही कहाँ होता? प्रिये! मैं किसी से हठ नहीं करता। जननी-जन्मभूमि संसार में सबसे बड़ी है। उसको ठुकराकर तथा उसे दुःख से तड़पते हुए छोड़कर भला, मैं कैसे कहीं चैन से बैठ कर सुखोपभोग कर सकता हूँ? नहीं प्रिये! इस समय जन्मभूमि को मेरी आवश्यकता है; इसकी पूर्ति करने दो। माँ-बाप के साथ तो जीवन भर रहना ही है। उनकी सेवा-शुश्रूषा तथा उनकी आज्ञाओं के पालन के लिए अभी बहुत समय है।" महेश की पत्नी मौन हो गई। कुछ देर ठहरकर महेश ने फिर कहा—"तुम मेरी अर्द्धाङ्गिनी हो; तुम्हें मेरा साथ देना चाहिए, इसके विपरीत तुम नरक की ओर खींच रही हो। प्रिये! उतारो ये विदेशी वस्त्र और चलो, हमलोग प्रेम से हिल-मिल कर देशोद्धार करें।" उसने कहा—"नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकती। सोचो तुम भी उन लोगों के विरुद्ध चल रहे हो, मैं भी उनके विरुद्ध चलने लगूँ, तो उनके हृदय पर कैसा गहरा आघात पहुँचेगा!" महेश के नेत्रों में आँसू झलकने लगे। उसने मंद स्वर में कहा—"अच्छी बात है; मत मेरा साथ दो। अपने भारत के लिए जब मैंने अपना अध्ययन छोड़ दिया, अतुल संपत्ति पर का अपना अधिकार छोड़ दिया, अपने पूज्य माता-पिता को छोड़ दिया, अनेक स्वजनों का प्रेम छोड़ दिया तथा अपने प्राणों की ममता छोड़ दी, तब तुम्हें भी छोड़ दूँगा, अपना घार-बार भी छोड़ दूँगा तथा जो भी मेरे मार्ग में कंटक लगावेगा उसे भी छोड़ दूँगा—सर्वस्व छोड़ दूँगा, परन्तु अपने प्यारे भारत की पुकार को सुनना नहीं छोड़ सकता।" महेश नेत्रों से आँसू पोंछता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

(३)

जो सच्चा सूरमा है, जिसे अपने कर्तव्य-पथ में अपने कर्म के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं, जो पाँव बढ़ाकर फिर पीछे हटना जानता ही नहीं, कोई कह सकता है कि, संसार में उसके लिए असंभव क्या है? महेश वह मनुष्य था, जो एक बार अपना कोई कार्य आरम्भ कर देने के बाद उसे पूरा किये बिना व उसके करने में अपने को मिटा दिये बिना फिर दम लेना जानता ही नहीं। वह वह मनुष्य था, जो अपने कर्तव्य-पथ में आये हुए विघ्न बाधाओं के लाखों भयंकर पर्वतों की परवाह न करता हुआ आगे बढ़ता जाता है, और अंत को हँसते-हँसते विजय की ध्वजा फहराता हुआ संसार को अपना

मुख दिखलाता है। भला, उसे कोई उसके निश्चय से कैसे हटा सकता था? अपने परिवार के लाख विरोध करते रहने पर भी महेश ने कांग्रेस के सत्याग्रहियों में अपना नाम लिखा लिया और बिलकुल तन्मय होकर कांग्रेस के आदेशानुसार काम करने लगा। अब उसने अपने घर का आना ही छोड़ दिया और चौबीसों घंटे कांग्रेस में रहने तथा वहीं खाने पीने लगा। इन्स्पेक्टर प्रभुदयाल क्रोध से जलते-जलते राख से हो गये। दाँत पीसते-पीसते उन्होंने अपनी सारी संपत्ति अपनी पुत्री 'बिन्नो' के नाम लिख दी। ऐसा उन्होंने शायद इसलिए किया कि अंग्रेजी सरकार उन्हें निर्दोष समझ ले; वह जान जाय कि उनका पुत्र उनके कहने में नहीं। उनकी इच्छा के विरुद्ध कांग्रेस में कार्य कर रहा है। और इस प्रकार सरकार में उनकी प्रतिष्ठा और नमकहलाली बनी रह जाय।

परन्तु बिन्नो भी आर्यमहिला थी। वह भी किसी दूसरे का हक़ मारकर आप चैन करना नहीं जानती थी। वह पिता का दिया हुआ विल (वसीयतनामा) लिये हुए कांग्रेस में महेश के पास पहुँची और उसे अलग बुलाकर नाना प्रकार से समझाने लगी। बहुत आगा-पीछा समझाया, सरकार की दमन नीति की प्रचण्डता का भी संकेत किया, परन्तु वह वीर युवक ज़रा भी विचलित न हुआ! आखिर उसके वीर भाव, दृढ़ निश्चय, और त्याग से प्रभावित हो कर बिन्नो की भी काया-पलट हो गई। दोनों समविचार के होकर भरी आँखों से विदा हुए।

(४)

बिन्नो पवित्र खद्दर धारण किये हुए अपने पिता के पास जाकर बोली—"पिताजी, यह अपनी वसीयत लीजिए। मुझे यह सम्पत्ति नहीं चाहिए। मैं अपने प्यारे भारत बन्धुओं को स्वतन्त्रता के संग्राम में जूझते देखते हुए अपने घर में चैन से नहीं बैठ सकती। जब अन्यायपूर्ण शासन-पद्धति को जला देने के लिए हमारे देश में आग लगी है, जब हमारे विश्ववंद्य मनीषियों के हृदय में भयङ्कर तूफान उठा हुआ है, तब भारत के युवक-युवतियों को चैन कहाँ? हमारा सुख और चैन तो जननी-जन्मभूमि के सुखों में लिपटा है! जब जन्मभूमि ही सुखी और स्वतंत्र नहीं, तब हम युवक-युतियों को सुख नहीं हो सकता।" इंस्पेक्टर प्रभुदयाल अवाक् हो पुत्री का मुँह देखने लगे। वह तमकती हुई कांग्रेस की ओर चल पड़ी।

× × ×

दूसरे दिन नमक-क़ानून तोड़ने के लिए पार्क में नमक बनाया जा रहा था। स्त्रियों का एक जत्था अलग नमक बना रहा था और पुरुषों का एक जत्था अलग। स्त्रियों के जत्थे में बिन्नो, उसकी माता और भाभी भी पवित्र खद्दर धारण किये नमक बना रही थीं और पुरुषों के जत्थे में प्रभुदयाल खद्दर पहने अपने पुत्र के साथ हँसते-हुलसते नमक-क़ानून तोड़ रहे थे; बाहर हज़ारों की संख्या में जनता महेश की सच्ची कर्तव्य-निष्ठा का मुक्त कंठ से गान करती दाँतों अँगुली दबा रही थी। पुरुषों के जत्थे का महेश ही नायक था और गर्व के साथ अपना राष्ट्रीय झंडा फहराता हुआ नमक के चारों ओर घूम रहा था। सबकी दृष्टि महेश ही पर गड़ी थी। जननी-जन्मभूमि के इस सपूत तथा अपनी माँ के इस लाल के ऊपर सबका हृदय उमंग, उत्साह एवं अभिमान से फूल उठा।

पत्नी को—

[श्री गोपीकृष्ण 'विजय', कारागार-प्रवासी]

(१)

लिखूं क्या पत्र तुम्हें, हे प्रिये,
सोचता था मन में यह बात।
क्रोध करती हो या तुम प्रेम,
नहीं था कुछ भी मुझको ज्ञात।

(२)

क्रोध का कारण ही क्या, देवि,
तुम्हारा तो है प्रेम-स्वभाव !
इसीसे अंकित करता आज
पत्र पर मन के थोड़े भाव।

(३)

दशा घर की थी यद्यपि दीन,
देश की भी थी दशा मलीन।
मान लोगी तुम भी यह बात
देश भी है धन-विद्या-हीन !

(४)

हमें तन ढकने को हैं वस्त्र,
और मिल जाती रोटी चार !
करोड़ों हैं ऐसे भी लोग
भूख से मरते जो लाचार !

(५)

इसीसे सत्याग्रह का युद्ध
चलाया है गाँधी ने आज !
दिया लाखों ने उनका साथ
प्राप्त करने को पूर्ण स्वराज्य !

(६)

हमारा और तुम्हारा, देवि,
यही है इस जीवन का धर्म !
देश को हम कर सकें स्वतंत्र
यही है अपना पावन कर्म !

(७)

हमारा और तुम्हारा प्रेम
रहा बढ़ता जो नित्य नवीन !
परीक्षा उसकी होगी आज,
देखना इसमें कौन प्रवीण !

(८)

पालती है बालक को मात
खिलाकर दूध, अन्न औ' भात !
उसी विधि अन्न-वस्त्र दे हमें
पालती सबको भारत मात !

(९)

इसीकी गोदी में हम पले—
हमारे पूर्वज भी प्राचीन !
बैठ कैसे सकते चुपचाप
देखकर भारत-माता दीन !

(१०)

एक क्या लाखों पावें जन्म
और फिर-फिर होवें बलिदान !
तदपि यह ऋण न चुकेगा, देवि,
मातृ का है ऐसा सम्मान !

(११)

मुझे तो है ऐसा विश्वास—
कभी हम-तुम दोनों ही साथ—
हर्ष से भारत-माँ पर भेंट
चढ़ा देवें अपना माथ !

(१३)
रहा है अपना भारतवर्ष
सदा से ही वीरों की खान !
धर्म या देश-प्रेम का यज्ञ
पूर्ण करते थे देकर प्राण !

(१४)
खेद क्या है जो नश्वर देह
धर्म पर हो जावे बलिदान !
अमर है आत्म-तत्व, हे देवि,
कौन कर सकता इसकी हानि !

(१५)
उठाकर थोड़ा-सा भी कष्ट
देश का यदि होवे कल्याण !
क्यों न हम भी होवें तैयार
लिया इसमें मैंने सुख मान !

(१६)
चार ऊँची दीवारों बीच
बन्द है यह सीमित लघु देश !
स्वच्छ कर रक्खी हमने भूमि,
रम्य ऊपर है गगन प्रदेश !

(१७)
दिखाई देते हैं उत्तुङ्ग
गगन-चुम्बी कुछ वृक्ष विशाल !
कोकिला बैठ जहाँ पर कभी
सुनाती है मृदु मादक तान !

(१८)
गगन-स्वच्छन्द-विहारी पक्षि
चहकते आ जाते हैं पास ।
चले जाते हैं वे फिर शीघ्र
समझकर इसको कारागार !

(१९)
कभी जल में नल के लघु स्रोत
मधुर कल-कल का करते नाद ।
यही देता है कुछ आनन्द
हृदय को करता विगत-विषाद ।

(२०)
साँझ को स्वर्ण-प्रभा विस्तार,
हुआ करता है दिनकर अस्त !
गगन की प्रथम तारिका कभी
बना देती है मन को मस्त !

(२१)
हरे पर्वतमाला के शृंग,
सफल वीरों की भाँति सुदूर,
उठाये अपना मस्तक उच्च
दिखाई देते हर्ष-प्रपूर ॥

(२२)
कभी घनमाला जल के भार
मन्द-गति से आकर सब ओर —
गगन में फैलाती विस्तार
पपीहा भी करता है शोर !

(२३)
हमारी सीमाओं के पार
गगन-पथ में दिखता जो खेल—
उसीसे करते मनोविनोद
बीतता प्रातः-सायं-बेल !

(२४)
हटा करके घन-पट को कभी
दिखाती है विधु-बाला वदन
तुम्हारी छवि की ही प्रति मूर्ति
समझ स्थिर हो जाते हैं नयन

(२५)
नहीं है बन्दी को अधिकार
कहे वह निज मन के उद्गार ।
इसीसे करता यहीं समाप्त
प्रेम के भावों का विस्तार !

(सेण्ट्रल जेल, अजमेर
२० ७—३०)

बहन !

रण-भेरी बज रही, आज उज्ज्वल प्राणों की बाज़ी है ।
'मुक्ति-पर्व' आ पहुँचा, भाई मर-मिटने को राज़ी है ।
आज अमरता न्योछावर है बलिवेदी के चरणों पर ।
ये अमोल घड़ियाँ खो देगी क्या भगिनी कुण्ठित होकर !
आओ, 'शक्ति' ! 'देश की रक्षा' राखी बने ज़माने की ।
दोनों में हो होड़ देश पर बलिहारी हो जाने की !
बहन ! प्रेम का तेज मोह पर विजयी हो, देखे संसार !
कहीं 'बाँध रखने की ममता' बने न राखी अबकी बार !

अग्निकुमार
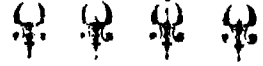
भाई !

घिर आई है घटा, आज सावन का है पावन त्योहार !
'प्रेम-पर्व' है, बहन बाँधने आई है राखी सुकुमार !
पर, भाई की आन अड़ी है बलिवेदी के ऊपर आज !
अरी, 'बाँध रखने की ममता'! तू भी बन जा रण का साज !
'मेरा 'स्नेह' बधाई' बनकर बरसेगा बलिवेदी पर ।
जिस पर तू, उस पर ही मैं क्या हो न सकूँगी न्योछावर !
मिले मनाने अब सावन तो 'मुक्ति-हिंडोले' में झूलें !
'रक्षा-बन्धन' 'मुक्ति-मंत्र' है, यह न कभी भैया भूलें !

किरणकुमारी
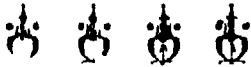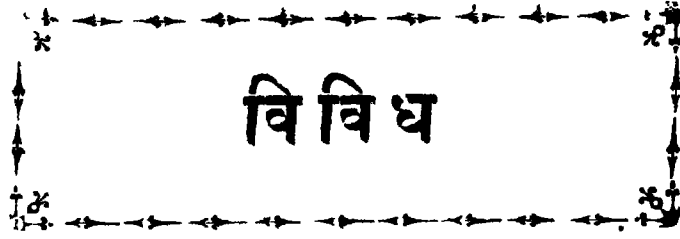
सत्य-असत्य की कसौटी

श्री कौसल्यायनिः आनंद, लंका]

एक समय भगवान् (बुद्ध) महान् भिक्षु-संघ के साथ कोशल (जनपद) में घूमते हुए कालामा (क्षत्रियों) के केसपुत्त (नामक) गाँव में पहुँचे। केसपुत्तीय (कालामा) क्षत्रियों ने सुना कि शाक्य-कुल प्रव्रजित, शाक्य-पुत्र, श्रमण गोतम केसपुत्त (ग्राम) पधारे हैं। उन्होंने भगवान् का कीर्ति-शब्द सुना कि वह पूजनीय, सम्यक् सम्बुद्ध, (आठ) विद्या और (१५) चरण-धर्मों से सम्पन्न सुन्दर स्थान (निर्वाण)-प्राप्त, लोक (धातुओं) के ज्ञाता, अतुलनीय, पुरुषों का दमन करने के लिए सार्थी के सदृश, देव-मनुष्यों के शास्ता हैं। ऐसे अर्हतों का दर्शन कल्याण-कारी है। इसलिए केसपुत्तीय कालामा (क्षत्री) वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् (विराजमान) थे। उनमें से कुछ तो भगवान् को अभिवादन करके, कुछ भगवान् का कुशल-क्षेम पूछकर, कुछ भगवान् को हाथ जोड़कर, कुछ अपना नाम और गोत्र सुनाकर, कुछ चुप-चाप यों ही एक ओर बैठ गये। एक तरफ़ बैठे हुए उन केसपुत्तीय क्षत्रियों ने कहा, "भंते! यहाँ केसपुत्त ग्राम में कुछ श्रमण-ब्राह्मण आते हैं, जो अपने ही मत का प्रचार करते हैं (और) दूसरों के मत की निन्दा करते हैं। वे लोगों से अन्य मत छोड़ देने को कहते हैं। दूसरे श्रमण ब्राह्मण आते हैं वे अपने ही मत का प्रचार करते हैं, दूसरों के मत की निन्दा करते हैं, और लोगों से अन्य मत छुड़ाते हैं। इससे भन्ते! हमें आकांक्षा होती है, सन्देह होता है, कि इन दोनों श्रमण-ब्राह्मणों में किसका कथन सत्य है और किसका असत्य?"

भगवान् बोले, "हे कालामा! आकांक्षा किस लिए? सन्देह क्यों? जहाँ आकांक्षा उत्पन्न हो, जहाँ सन्देह की जगह हो, वहाँ केवल इसलिए विश्वास मत करो कि अमुक बात सुनी गई है (वा) परम्परा से चली आई है (वा) कही गई है (वा) त्रिपिटिक से प्रमाणित हुई है (वा) तर्क से सिद्ध हुई प्रतीत हुई है, (वा) न्याय-शास्त्र से सिद्ध हुई प्रतीत हुई है (वा) आकार से स्वीकार करने-योग्य प्रतीत होती है (वा) हमारे मत के बहुत समीप है (वा) सम्भव प्रतीत होती है (वा) कहनेवाला हमारा पूजनीय है; किन्तु जब तुम्हें स्वयं ज्ञान (विश्वास) हो जाय कि यह कर्म अकुशल है, वद्य है, विज्ञ-जनों-द्वारा निन्द्य है और आचरण करने पर अहित और दुःख का कारण होता है, तो हे कालामा! उस समय तुम उस कर्म को छोड़ दो।"

"अब कहो! हे कालामा! तुम क्या मानते हो? पुरुष को जो लोभ उत्पन्न होता है, वह हित के लिए उत्पन्न होता है (वा) अहित के लिए?"

"भन्ते! अहित के लिए।"

"हे कालामा ! लोभ से अभीभूत असंयत चित्त (पुरुष) प्राण-नाश करता है, चोरी करता है, पराई स्त्री के पास जाता है, झूठ बोलता है, दूसरों को वैसा करने की प्रेरणा करता है; और इस तरह दीर्घ काल तक दुःख और पीड़ा का भोगनेवाला होता है। तब क्या मानते हो, कालामा ? पुरुष को जो क्रोध उत्पन्न होता है, वह हित के लिए उत्पन्न होता है, (वा) अहित के लिए ?"

"भन्ते ! अहित के लिए ।"

"हे कालामा ! क्रोध से अभीभूत असंयत-चित्त (पुरुष) प्राण-नाश करता है ········होता है ।"

"भन्ते ! ऐसा ही है ।"

"तब क्या मानते हो ? हे कालामा, पुरुष को जो मोह (मूढ़त्व) उत्पन्न होता है, वह हित के लिए उत्पन्न होता है (वा) अहित के लिए ?"

"भन्ते ! अहित के लिए ।"

"हे कालामा ! मूढ़त्व से अभीभूत असंयत-चित्त (पुरुष) प्राण-नाश करता है············होता है ।"

"भन्ते ! ऐसा ही है ।"

"तब क्या मानते हो कालामा ! यह (तीनों) कर्म कुशल हैं वा अकुशल ?"

"भन्ते ! अकुशल ।"

"वद्य हैं वा अवद्य ?"

"भन्ते ! वद्य ।"

"विज्ञ-जनो से निन्दित हैं वा प्रशंसित ?"

"भन्ते ! निन्दित ।"

"आचरण करने पर दुःख और अहित उत्पन्न करनेवाले हैं, (वा) सुख और हित ?"

"भन्ते ! दुःख और अहित ।"

"इसलिए, हे कालामा ! जो कुछ मैंने कहा, वह इसी हेतु से कहा कि केवल इसलिए विश्वास मत करो कि अमुक बात सुनी गई है (वा) परम्परा से चली आई है·········· छोड़ दो ।"*

* अंगुत्तर निकाय, कालामा-सूत्र से अनूदित ।
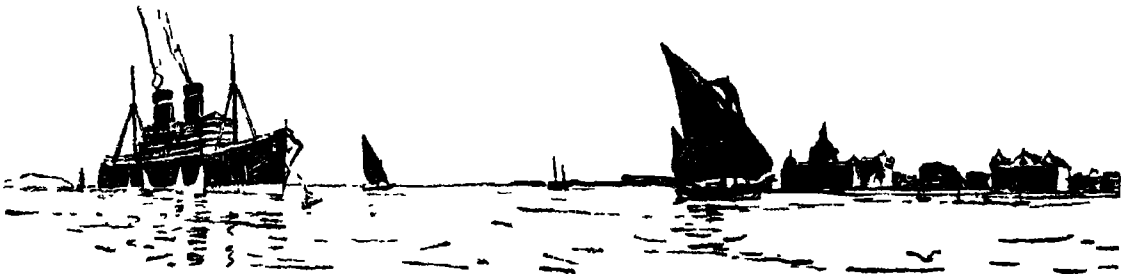
शिवाजी का और आज का काल

एक तुलना

[श्री आनन्दराव जोशी]

महाराष्ट्र में मराठों के राज्य का स्वातंत्र्य रवि सन् १८७८ ईस्वी में अस्तगत हो गया। इस घटना को आज एक शताब्दी बीत गई है। इस एक शताब्दी में महाराष्ट्र में, बल्कि हमारे भारतवर्ष में, कितना परिवर्तन हो चुका है। परतंत्रता के सैकड़ों दुष्परिणाम आज हम लोग भुगत रहे हैं। एक वह समय था कि जब कङ्गाल इङ्गलैण्ड के कंगाल लोग हमारे धन-धान्य-संपन्न भारतवर्ष के शुभ दर्शन के लिए बरसों तक तरसते थे—हमारे भारतवर्ष की बेशक़ीमती चीजों के लिए लालायित रहते थे। किन्तु अब वह सुवर्ण-युग, वह सुखी जमाना निकल गया। आज तो इस अभागे देश के करोड़ों लोगों को भरपेट अनाज भी नहीं मिल रहा है। परिस्थिति में यह कितना भयानक, कितना दर्दनाक परिवर्तन हो गया! पाठकों को इस परिवर्तन की कल्पना कराने के लिए हम 'पुरुषार्थ' नामक मराठी मासिक-पत्र से 'शिवाजी का और आज का काल' शीर्षक लेख का कुछ अंश यहाँ देते हैं। इस लेख में शिवाजी के और आज के जमाने में कितना परिवर्तन हुआ है और आज हमारी क्या दशा हुई है, इन बातों की बड़ी रोचक तुलना की गई है—

शिवाजी का काल	आज का काल
१—अनाज की समृद्धि थी, बेकारी नहीं थी।	१—लोग अनाज के लिए तरस रहे हैं। महँगाई और बेकारी बढ़ गई।
२—लोग हथियार रखते थे।	२—प्रजा निःशस्त्र हो गई है।
३—सैकड़ों साधु-सन्त अपने शिष्यों के साथ जन-हित के लिए निःस्वार्थ वृत्ति से परिश्रम करते थे।	३—लोगों की स्वार्थ की ओर ही अधिक प्रवृत्ति है। कुछ इने-गिने लोगों ने ही स्वार्थ-त्याग किया है।
४—मुसलमानी पोशाक पहनना शिष्टता का लक्षण समझा जाता था। (स्वयं शहाजी और शिवाजी की पगड़ियाँ मुसलमानी थीं)	४—अंग्रेज़ों की पोशाक धारण करने में ही शिष्टता मानी जाती है।
५—मुसलमानों के अनुसार दाढ़ियाँ रखने की और मूछें काटने की चाल हिन्दुओं में थी।	५—अंग्रेज़ों के अनुसार मूछें काटना और बाल सँवारना लोगों को पसन्द हो रहा है।
६—हिन्दू लोग पीरों और कब्रों की पूजा करने लगे थे। ताज़िये भी बनवाते थे।	६—हाँ, अबतक हिन्दू लोग हिन्दू रहकर ईसामसीह का भजन नहीं करने लगे हैं।
७—मुसलमानों की भाषा हासिल करने से प्रतिष्ठा बढ़ती थी। किन्तु आपस में पत्र-व्यवहार स्व-भाषा में ही होता था।	७—अंग्रेज़ी भाषा सफ़ाई से बोलने से मान-सम्मान बढ़ने लगा है। पिता-पुत्र और पति-पत्नी में भी अंग्रेज़ी में पत्र-व्यवहार होने लगा है।

शिवाजी का काल	आज का काल
८—मुसलमानी सन्, मास और तारीख़ों का प्रसार था।	८—अंग्रेज़ी सन, मास और तारीख़ों का प्रसार हुआ है।
९—मुसलमानी भाषा में लिखे हुए आवेदन-पत्रों की ओर शीघ्र ही ध्यान दिया जाता था।	९—अंग्रेज़ी भाषा में लिखे हुए आवेदन-पत्रों पर जल्दी ध्यान दिया जाता है।
१०—मुसलमान बादशाहों को खुश रखते हुए ऐश-आराम करने की ओर लोगों की प्रवृत्ति थी।	१०—अंग्रेज़ों को खुश रखते हुए नौकरी-द्वारा मौज करने की ओर लोगों की अधिक प्रवृत्ति है।
११—मुसलमान हिन्दुओं को ज़बरदस्ती धर्म भ्रष्ट कराते थे।	११—ईसाई लोग अपरोक्ष रूप से शिक्षण संस्थायें, अस्पताल, सेवा-संघ, आदियों की स्थापनाकर हिन्दुओं को ईसाई बना रहे हैं।
१२—मुसलमानों के अत्याचारों से स्वधर्माभिमान की मात्रा तेज़ी से बढ़ने लगी थी।	१२—मिशनरियों की कूटनीति से स्वधर्म के विषय में उदासीनता छा रही है।
१३—शिखा-सूत्रों का अभिमान बढ़ने लगा था।	१३—बहुतेरे लोग स्वयं अपने हाथों से शिखा नष्ट करते हैं। सूत्रों का अभिमान भी नष्ट हो रहा है।
१४—गोमाता और देवताओं के सम्बन्ध में श्रद्धा थी।	१४—यह श्रद्धा नष्ट हो गई है।
१५—ग्राम अच्छी तरह संगठित थे।	१५—ग्राम-संगठन टूट गया है।
१६—जातियों के संघ बलिष्ठ थे।	१६—जाति का अभिमान नष्ट हो गया है।
१७—ग्रामों में पूर्ण स्वराज्य था।	१७—आजकल तो ग्रामों में एकता भी नहीं है।
१८—लोग व्यापार और कला-संपन्न होने के कारण धनवान थे।	१८—व्यापार विदेशियों के हाथों में चला गया है और कला-कौशल नष्ट हो गया है फल-स्वरूप दरिद्रता बढ़ने लगी है।
१९—लोग मर्दाने खेलों में प्रवीण थे। फल-स्वरूप वे शरीर के हट्टे-कट्टे और दीर्घायु थे।	१९—ज़नाने अंग्रेज़ी खेलों की ओर भी लोगों की विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। दुर्व्यसनों का ज़ोर-शोर है। लोग निर्बल और अल्पायु हो गये हैं।
२०—रणभेरी की आवाज़ सुनते ही ग्रामों से हज़ारों लोग लड़ाई के लिए तैयार होते थे।	२०—आजकल तो शान्त सत्याग्रह को भी बहुत-से लोग नहीं जाते।
२१—मुसलमान लोगों का इसी मुल्क में पूर्णतया निवास हो जाने के कारण उनके और लोगों के हित-सम्बन्ध (Interests) एक ही होते थे।	२१—अंग्रेज़ लोग इस मुल्क में थोड़े दिनों के लिए आते हैं और यहाँ धन प्राप्त कर उसे इंगलैण्ड में ले जाते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि इन अंग्रेज़ों के कारण देश दिन-प्रतिदिन निर्धन हो रहा है, जिससे दोनों के हित-सम्बन्ध (Interests) भिन्न-भिन्न हो गये हैं।
२२—देश का धन बाहर नहीं जाता था।	२२—आजकल हमारा धन यूरोप, अमेरिका और जापान में जाता है।
२३—मुसलमानों ने हिन्दुओं के मन्दिर नष्ट किये और उनके पत्थरों से मसजिदें बनवाईं।	२३—अंग्रेज़ों ने ऐसा तो नहीं किया, किन्तु उन्होंने युक्ति से हमारी देवताओं की श्रद्धा ही नष्ट कर दी है।

शिवाजी का काल	आज का काल
२४—मुसलमानों ने हिन्दुओं के शास्त्र-ग्रन्थ जला डाले।	२४—अंग्रेज़ों ने हमारे शास्त्र-ग्रन्थ नहीं जलाये पर शास्त्रों पर का प्रेम नष्ट कर दिया।
२५—मुसलमानों के साथ बैठकर हिन्दू भोजन नहीं करते थे।	२५—अंग्रेज़ों के साथ मेज़ों पर सहभोज करना पसन्द होने लगा है।
२६—कत्लेआम धड़ल्ले से होते थे।	२६—जालियाँवालाबाग-जैसे हत्याकाण्ड होने सम्भव हैं।
२७—मुसलमान हाकिमों की इच्छानुसार क़ानून बनते थे।	२७—कौंसिलों का स्वाँग होता है। (लोगों की फूट के कारण सरकार चाहे सो क़ानून अभी भी बनाती है।)
२८—खेत में फ़सल होने के बाद उसके सुरक्षित घर पहुँचने की कोई गारण्टी नहीं रहती थी।	२८—खेतों की फ़सल किसानों के घर में आती है, किन्तु कर के बोझ और बेकारी के कारण वे इस हालत को आ पहुँचे हैं कि उन्हें इस समृद्धि से लाभ उठाना असम्भव है।
२९—'लकड़ी को सोना बाँधकर काशी को जाना' असम्भव था। (अर्थात् यात्रा करना ख़तरनाक था।) चोरों और लुटेरों का डर रहता था।	२९—आजकल लकड़ी को सोना बाँधकर कहीं भी जा सकते हैं। पर पास सोना भी नहीं और लकड़ी भी नहीं, ऐसी हालत हुई है।
३०—हिन्दू सरदार के लिए धर्मान्तर करने के बाद बादशाह की लड़की ब्याहना सम्भव होता था।	३०—धर्म-भ्रष्ट होने पर भी आज बादशाह की लड़की नहीं मिलती।
३१—हिन्दू बादशाह का दीवान भी बनता था।	३१—हिन्दू को बहुत ऊँचे दर्जे की नौकरी मिलना असम्भव है।
३२—बड़े-बड़े हिन्दू-सरदारों से बराबरी के नाते बर्ताव किया जाता था।	३२—आज हिन्दू को फ़ौज में कोई ऊँचा पद नहीं मिलता।
३३—संस्कृत पढ़ाने के लिए मुसलमान अध्यापक नियुक्त नहीं किये जाते थे।	३३—आज संस्कृत और वेद पढ़ाने के लिए भी अंग्रेज़ अध्यापक नियुक्त किये जाते हैं।
३४—हिन्दुओं को साहस के काम करने का अभ्यास था।	३४—हिन्दुओं का यह अभ्यास आजकल नष्ट हो गया है।
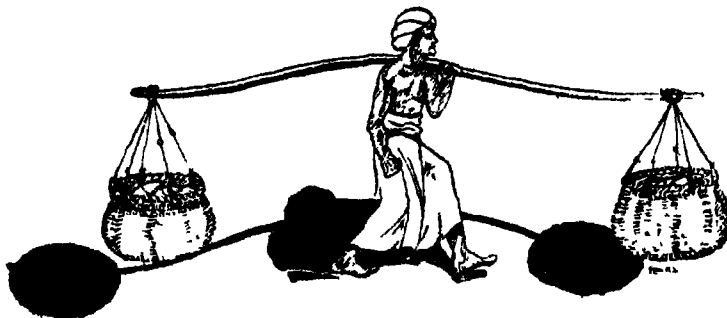
श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा.

[श्री नरेन्द्रदेव विद्यालंकार]

स्वाधीनता के अखण्ड पुजारी, वर्तमान भारतीय क्रान्तिवादी वीरों के गुरु-समान एवं विदेश में रहकर भी जन्मभूमि भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देनेवाले देशभक्त श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का गत अप्रैल माह के प्रथम सप्ताह में जेनेवा में, देहावसान होगया है।

सन् १८५७ के भारतवर्ष के सर्व-प्रथम स्वतन्त्रता-यज्ञ की शिखायें जिस समय निर्वाण प्राप्त हो रही थीं उस समय कच्छ देश के माँडवी नामक स्थान में आपका जन्म हुआ था। छुटपन से ही बहुत प्रतिभाशाली एवं चतुर मालूम पड़ते थे। संस्कृत का ज्ञान तो कमाल दर्जे का था। भारतीय राष्ट्र-जागृति के आद्यद्रष्टा महर्षि दयानन्द सरस्वती इनका गीर्वाण-भाषा नैपुण्य देखकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपना शिष्य बना लिया। विविध स्थानों पर संस्कृतज्ञ पण्डितों से वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामीजी इनको ही कहा करते थे। स्वामी जी के सहवास से इनका संस्कृत भाषा का नैपुण्य इतना बढ़ गया था कि धर्मोपदेशक का व्रत लेकर यह हिन्दुस्थान में संस्कृत-भाषा में भाषण करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। पूना, नासिक, कलकत्ता-जैसे संस्कृत विद्या के केन्द्र-स्थलों में जाकर संस्कृत भाषा में अपने अस्खलित, सुमधुर और युक्ति-युक्त भाषणों से इन्होंने उस समय के नये-पुराने विद्वानों पर अपना अच्छा प्रभाव डाल दिया था। स्वर्गीय पण्डित विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे आदि विद्वानों ने इनकी विद्वत्ता का बहुत बखान किया था। यहाँ तक कि इनके संस्कृत-भाषा ज्ञान की ख्याति विदेशों में भी फैल गई और स्वामी दयानन्द की अनुमति से यह कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक नियुक्त होकर इँग्लैण्ड गये। कैम्ब्रिज में अध्यापन करते हुए ही इन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की और साथ ही बैरिस्टरी भी पास करली और भारत में लौट आये। भारत में आकर इन्होंने रतलाम, उदयपुर आदि रियासतों में दीवान का काम किया। कुछ समय वकालत भी की। जिस समय श्यामजी काठियावाड़ में रहते थे उस समय इनकी कृपा से ही नौकरी पाये हुए लैकनकी नामक एक गोरे ने कृतघ्नतापूर्वक इन पर कई अभियोग लगाये। वहाँ की रियासत में ही नहीं अपितु सारे हिन्दुस्थान की किसी भी रियासत में दीवान बनने के लिए श्याम जी अयोग्य हैं, यह सिद्ध करने का उस फिरंगी ने प्रयत्न किया। परन्तु श्यामजी लड़े और भारतीय सरकार तक मामले को ले जाकर उस आरोप से पूर्णतया निर्दोष होकर निकल आये। इसके बाद उदयपुर के महाराणा ने इनको पुनः अपना दीवान बनाया पर वहाँ कुछ समय रहकर यह पुनः इँग्लैण्ड चले गये और वहाँ प्रसिद्ध तत्वज्ञानी हर्बर्ट स्पेन्सर के ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे।

× × ×

इसी समय इनके मन में भारत की स्वतंत्रता के लिए बलवती उत्कण्ठा उत्पन्न हुई और इन्हें अपनी राजनैतिक दासता की लज्जा का अनुभव होने लगा। दिन-रात भारत और उसकी स्वाधीनता के लिए तरसनेवाले इस वीर देशभक्त ने सन् १९०५ के जनवरी महीने से अपने राजनैतिक जीवन का प्रारंभ

किया, जिसके कारण भारत के राजनैतिक वातावरण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। 'इण्डियन सोशलिस्ट' पत्र का पहला अंक प्रकट हुआ। देशभक्त श्यामजी के प्रयत्नों की एक यह विशेषता है कि इन्होंने प्रारम्भ से ही स्वराज्य का झण्डा उठाया।

'इंग्लैण्ड की दासता के जुए को पूर्णतया फेंककर भारतवर्ष के सर्वाङ्ग स्वतन्त्र हुए बिना उसका उद्धार सम्भव नहीं'—

इस राजकीय सत्य का शुद्ध रूप में उपदेश करने का प्रथम श्रेय जिन थोड़े-से महान् पुण्यात्माओं को है, उनमें पंडित श्यामजी की गणना है। 'इण्डियन सोशलिस्ट' पत्र के साथ ही इन्होंने 'होमरूल सोसाइटी' की भी स्थापना की और यह स्वयं ही उसके प्रमुख थे।

इंग्लैण्ड में अंग्रेजों के प्रभाव में होनेवाले भारतीय आन्दोलन का स्वरूप दासता में रहकर प्राप्त किये हुए मान—शाबाशी की थपेड़ खाने—जैसा ही पौरुषहीन था। हेनरी काटन के संपादकत्व में राष्ट्रीय सभा-द्वारा प्रकाशित होनेवाले पत्र 'इण्डिया' और स्वराज्य की पताका फहराते हुए पूर्ण स्वाधीनता का दिव्य ध्येय भारतीयों के सामने रखनेवाले श्यामजी के पत्र 'इण्डियन सोशलिस्ट' के विचारों में जमीन-आस्मान का फ़र्क़ था। इसी प्रकार हिन्दुस्थान के पैसे पर जीनेवाले श्री वेडरबर्न, काटन प्रभृति की अधीनता में चलनेवाली 'ब्रिटिश कांग्रेस कमिटी' और स्वदेश के स्वातन्त्र्य को जागृत करनेवाली केवल भारतीयों-द्वारा चलाई जानेवाली 'होमरूल सोसाइटी' में दो ध्रुवों जितना अन्तर विद्यमान था। श्री श्यामजी ने इस अन्तर को सबपर प्रकट करके भारतीय राजनीति का स्वरूप किस प्रकार बदल दिया, यह सबके ध्यान में आ जायगा।

इससे भी अधिक महत्व की बात उस समय इंग्लैण्ड में जानेवाले भारतीय विद्यार्थियों के विचार-परिवर्तन की थी। पहले जो नवयुवक इंग्लैण्ड जाते थे वे ब्रिटिश न्याय-बुद्धि का भ्रम और निर्माल्यपना कमाकर आते थे और हिन्दुस्थानियों के सामने अंग्रेजों की यद्वा-तद्वा स्तुति करके उनको 'भिक्षां-देहि' की तरफ़ खींच ले जाते थे। इस स्थिति को पंडित श्यामजी के पत्र और इनकी सभा ने बिलकुल परिवर्तित कर दिया।

भारतीय युवकों को भारत के इतिहास एवं स्वाधीनता का वास्तविक ज्ञान कराने के लिए इन्होंने 'शिवाजी', 'प्रताप', 'दयानन्द' नाम वाली तीन छात्र-वृत्तियाँ स्थापित कीं। इस कार्य में इनको बैरिस्टर श्रीयुत् राणा ने बहुत सहायता दी थी। भारत के स्वाधीन हो जाने पर उसकी राज्य-व्यवस्था कैसी हो, इस विषय पर निबन्ध लिखनेवाले के लिए इन्होंने ७५०) रुपये का इनाम रक्खा था और हिन्दुस्थान में सब लोगों में स्वातन्त्र्य का उपदेश देने के लिए निकलनेवाले व्याख्याताओं तथा स्वराज्य-संन्यासियों के लिए १०,०००) दस हज़ार रुपयों की एक निधि भी क़ायम की थी। इन छात्रवृत्तियों में 'शिवाजी' छात्रवृत्ति प्राप्त करके श्री विनायकराव सावरकर सन् १९०६ में इंग्लैण्ड गये।

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा पहले इस विचार के थे कि 'निष्क्रिय प्रतिरोध' (Passive Resistance) के द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। देशभक्त विनायकराव सावरकर के 'इंडिया हाउस' मे जाने पर वह संस्था सारे भारत में फैली हुई 'अभिनव भारत-समिति' नामक क्रांतिकारी संस्था का मुख्य केन्द्र हो गई। इंग्लैण्ड में अपनी पढ़ाई पूरी करके बैरिस्टर बननेवाले श्री विनायकराव सावरकर, लाला हरदयाल, मद्रास वाले श्री वी. वी. एस. अय्यर, सेनापति बापट आदि रत्न इसी 'इण्डिया हाउस' ने

दिये। समस्त संसार में साम्राज्य-सत्ता फैलानेवाला इंग्लैण्ड इस 'इंडिया हाउस' को भयभीत होकर देखने लगा। इसीके देशभक्तों ने एक बार इंग्लिश साम्राज्य को जोर से हिला देने का यश प्राप्त किया था।

× × ×

बैरिस्टर सावरकर की मार्सेलीज के जहाज से कूदकर भाग जाने की इतिहास-प्रसिद्ध घटना के बाद अंग्रेज अधिकारियों ने किस प्रकार कपट एवं चोरी-द्वारा श्री सावरकर को पुनः हस्तगत किया, इस बात का भण्डाफोड़ करने का सारा श्रेय श्री श्यामजी एवं मैडम कामा आदि को ही है। श्यामजी ने ही इस प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय बनाकर हेग की परिषद् के सामने रखवाया था।

महायुद्ध के समय, इंग्लैण्ड को शूल की तरह चुभनेवाले श्री श्यामजी फ्रांस में रहते थे; परन्तु उस समय इंग्लैण्ड और फ्रान्स की मैत्री से श्यामजी का वहाँ रहना अशक्य हो गया और इन्हे स्विट्जर-लैण्ड में जाना पड़ा। आगे अपनी आयुष्य-पर्यन्त यह वहीं पर रहे। उसके बाद भी उनका कार्यक्रम अज्ञात है। परन्तु जो कुछ ज्ञात है, उससे ही पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा भारत के महान् देशभक्तों में से एक हो गये हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में सदा चमकता रहेगा। उनके हृदय की उत्कट आकांक्षा थी कि—

"मैं अपनी आँखों से अपनी परमप्रिय मातृभूमि को स्वाधीन और स्वराज्ययुक्त देख जाऊँ।"

परन्तु दुर्दैव ने वह सुदिन देखने से पहले ही उनको हमारे बीच से उठा लिया। कहीं भारत की स्वाधीनता के कार्य में अपने वृद्ध शरीर को असमर्थ जानकर नवदेह धारण करने के लिए वह, परदे के पीछे, अदृश्य सृष्टि में तो नहीं चले गये?

'नहीं' कौन कह सकता है!*

* मराठी 'श्रद्धानन्द' से।

बच्चों की दुर्बलता और नारी-शिक्षा का अभाव

[श्रीमती जयदेवी कोठारी]

हमारे बच्चे इतने दुर्बल और पश्चिमी बच्चे नीरोग क्यों होते हैं? इसका एकमात्र कारण माताओं की असावधानी ही है। माता का आसन अत्यन्त पवित्र और ऊँचा है। इसलिए माता बननेवाली देवियों को माताओं का नियम-पालन करना चाहिए। नहीं तो उन्हे माता बनने का अवसर ही न देना चाहिए।

प्रसूतिका-गृह

सबसे प्रथम प्रसूतिका-गृह को ही देखिए। देखा जाता है कि बच्चा पैदा होते समय प्रसूतिका-गृह इतना मैला रक्खा जाता है, जिसको देखने से ही जी मिचलाता है और जिसमें रखने से बच्चों का जीवित रहना ही मुशकिल हो जाता है। बच्चा किसी प्रकार यदि जीवित भी रहा तो हमेशा बीमारी के गले ही में बँधा रहता है।

बच्चों को नींद

मातायें अपनी सन्तान को अपने पास एक ही बिछौने पर सुलाया करती हैं। यह प्रथा बड़ी हानि-कारक है। रात में गोद में सोने के कारण न तो बच्चा स्वतंत्रता-पूर्वक हाथपैर-फैला सकता है, न

साँस ही ले सकता है; परस्पर एक-दूसरे की साँस आने से बीमारी का भय रहता है। असावधानी के कारण बालक का मुख माता ही के कपड़े से ढक जाता है और कभी-कभी तो साँस बन्द हो जाने पर बालक मृत्यु का शिकार बन जाता है। जब कभी रात में बच्चा रोता है, माँ उसे चुप करने के लिए मुख में स्तन दे दिया करती है, जिससे बच्चे की आदत बिगड़ जाती है और स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ जाता है। अतएव बच्चों को सर्वदा अलग सुलाना चाहिए।

बचपन के संस्कार

लड़कपन में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे मृत्यु-पर्यन्त रहते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। बच्चों को कायर, भयभीत बनानेवाली हमारी मातायें ही हैं। रात में जब बच्चा रोता है तो उसको यह कह कर डराती हैं कि रोओ मत, नहीं तो हाऊ आयगा और तुम्हारा कान काट लेगा इत्यादि। यह बात सत्य समझ कर बेचारा बड़ा होने पर डरने लगता है और उसका स्वभाव हर बात में डरने का हो जाता है। और भी कई झूठी-झूठी सारहीन बातें बच्चों के सामने कही जाती हैं, जिससे हमारी भावी सन्तान का जीवन नष्ट हो जाता है। अतएव माताओं को अपना विचार, चाल-चलन तथा वातावरण ठीक रखना चाहिए।

बच्चों के भूषण

अपने को धनवान साबित करने के लिए लोग अपने बच्चों को भूषणों से लाद देते हैं। कइयों का उद्देश यह रहता है कि ऐसा करने से बच्चे सुन्दर लगते हैं, और वे भूषण पहनाने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। बच्चा भी इन बातों का अनुभव लड़क-पन में ही करने लगता है, जिससे सबके आगे अकड़-अकड़ कर चलता है और अभिमानी बनकर पढ़ाई-लिखाई पर पूरा ध्यान नहीं देता। इससे भविष्य में उसे दुःख ही मिलता है। भूषणों की रगड़ से बच्चों के अंग, छाती गन्दे भी हो जाते हैं। खून वहाँ का बन्द हो जाता है। चमड़ा काला पड़ जाता है, जिससे स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। इस तरह भूषण से स्वास्थ्य की हानि तो होती ही है, साथ ही कभी-कभी दुष्टों, चोरों और डाकुओं के पंजे में पड़कर वही भूषण बच्चों की जान के ग्राहक भी बन जाते हैं। माताओं का धर्म है कि अपने बच्चों को विद्या-रूपी उज्ज्वल भूषण से विभूषित करें, जिसमें अंधकार का नाम नहीं। सर्वदा उनके सामने वीर चरित्रवान् उदार तथा परोपकारी पुरुषों के उदाहरण रखने चाहिएँ।

कहाँ तक बच्चों की निर्बलता पर विचार किया जाय! यदि मातायें सुयोग्य शिक्षिता हों तो हमारे बच्चों की इस प्रकार क्यों दुर्गति हो? परन्तु इसका भी एक कारण है। मैं अक्सर देखती हूँ कि लड़कों और लड़कियों में बहुत ही ज्यादा अन्तर रक्खा जाता है, यह न होना चाहिए। माताओं और बहनों को स्वयं समझना चाहिए कि जितने कष्ट से लड़के का जन्म होता है उससे कहीं अधिक कष्ट से कन्यायें पैदा होती हैं—फिर इतना अन्तर क्यों रक्खा जाता है? भाई तो पंडित होते हैं, और बहनें मूर्ख रह जाती हैं—यह प्रथा अन्य जगहों में उतनी नहीं है, जितनी कि हमारी जाति और देश में। इसे हटा देने में ही लाभ है। जबतक लड़कियाँ समुचित शिक्षा प्राप्त न करेंगी तबतक भारत की सन्तानोन्नति पत्थर में से तेल निकालने के समान समझनी चाहिए।

क्या देवियाँ इन बातों पर कुछ ध्यान देंगी?

त्यागमूर्ति से—

[श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०]

वैभव की शीतल छाया में
　　लहराया जीवन तेरा,
सुख की मृदुल 'थपकियों' ने
　　नित दुलराया जीवन तेरा।
लक्ष्मी के लाड़ले! सतत
　　चरणों पर लोटीं नवनिधियाँ,
कौन लिखेगा तेरे मधुमय
　　घड़ियों की अनुपम विधियाँ?

× × ×

'माता' की आँखों में लखकर,
　　रक्तमयी आँसू-लड़ियाँ,
'रत्न-मुकुट' धर पटका भू पर,
　　बिखर गईं पथ पर मणियाँ।
मातृभूमि के अरुण रंग में रंग
　　तबसे,—अंचल अपना,
बैठ 'त्याग' की वेदी पर,
　　लखना 'आज़ादी का सपना'।

× × ×

त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू

तुझको 'कड़ियाँ' दे अरि ने, सुलगादी तन में चिनगारी,
　　अभिमानी उर पी न सकेगा, यह अपमान घूंट-भारी।
लहराती है लाज आज, यदि कुछ भी,—लोहू के कण में,
　　'आज़ादी' के लिए, करोड़ों बलि चढ़ जायेंगे रण में।

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

कङ्काल

लेखक—श्री जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक—भारती-भंडार, रामघाट, बनारस सिटी। सजिल्द। पृष्ठ ३१६। छपाई-सफाई बढ़िया। मूल्य ३)।

कंकाल के लेखक हिन्दी संसार के सुपरिचित ही हैं। अभी तक कवि, नाटककार, ग्रन्थ-लेखक की हैसियत से ही हम उन्हें जानते थे। उनकी छोटी-छोटी उलझी हुई, आख्यायिकाओं, पहेली-सी कविताओं को देखकर, उपन्यास-लेखक के कष्ट-साध्य लम्बे कार्य की आशा करना, अधिक आशा करना था। परन्तु सुकुमार सूक्तियों के धनी प्रसाद जी को 'कंकाल' में अनेकों उलझी हुई, सामाजिक, धार्मिक, तथा मानव-हृदय और प्रेम-सम्बन्धी समस्याओं का चित्र स्पष्ट खींचते हुए देखकर हमें प्रसन्नता हुई। इसमें सन्देह नहीं कि अमौलिकता का रोना जो हिन्दी के समालोचक रोते थे, उन्हें कंकाल की मौलिकता से आनन्द प्राप्त होगा। उपन्यास को पूरा पढ़ जाने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि लेखक ने प्लाट में किसी दूसरी भाषा की 'महा लेखनी' से प्रेरणा प्राप्त की है। अच्छा है अथवा बुरा, सफल है अथवा असफल, उचित है या अनुचित, यह सारा का सारा उनके ही हृदय और मस्तिष्क की उपज है। कम से कम मेरा तो यही विश्वास है।

इस उपन्यास में सबसे अधिक सफलता तारा (यमुना) के चरित्र-चित्रण में मिली है। प्रारम्भ से अन्त तक पाठक की सहानुभूति तारा के साथ रहती है। उसके अपराध पर रोना नहीं होता। किशोरी तारा, वेश्या के घर में गुलेनार, मंगल की प्रेमिका तारा, अविवाहित अवस्था में गर्भवती तारा, दुख से ऊबकर डूब मरनेवाली तारा, किशोरी की दासी तारा, विजय की देख-रेख-स्नेह करने और फटकारनेवाली यमुना, गोस्वामी के आश्रम में रहनेवाली यमुना, विजय के स्थानपर स्वयं फाँसी पर चढ़ने को तैयार होजानेवाली यमुना, विजय को खिलाने के लिए नौकरी करनेवाली दासी, विजय की मृत्यु पर एकमात्र आँसू बहानेवाली बहन, दुखी और निराश तारा—सारे उपन्यास में एक साक्षात करुणा की मूर्ति है। जिसे समाज सबसे अधिक अपवित्र समझता, वही यमुना इस उपन्यास के सारे पात्रों में सबसे अधिक पवित्र है। तारा के चरित्र को अंकित करने में प्रसाद-जी ने कमाल किया है।

दूसरा चरित्र—करुण पात्र—है विजय, किशोरी का पर-पुरुष (निरञ्जन) से उत्पन्न विजय, मंगल का मित्र विजय, यमुना के प्रेम का भिखारी विजय, माता से रूठनेवाला, घण्टी के मोह में फँस जाने वाला, उसे ले भागनेवाला, उससे विवाह करने की इच्छा करनेवाला, नवाब की हत्या करनेवाला, डाकुओं के आश्रम में रहने-वाला, आला पर आकृष्ट होते हुए भी विवाह-प्रस्ताव को ठुकरानेवाला, पागल के भेष में अपने आपको फाँसी पर चढ़ने को उपस्थित करनेवाला, अछौड़ी, अन्त में 'कंकाल' (शव) इस उपन्यास का नायक है। एक धनी घर का सुकुमार पुत्र यौवन की उच्छृंखल लहरों में बहकर जीवन को करुण से करुणतर बना डालनेवाला, हिन्दू-धर्म की सामजिक व्यवस्था को बन्धन समझनेवाला, प्रेम का प्यासा

युवक ही कंकाल बनकर उपन्यास के अन्त में पड़ा मिलता है। यमुना और विजय को छोड़कर किसी अन्य के जीवन में इतना दुःख, इतनी मानसिक वेदना, इतनी निराशा नहीं थी, जितनी इनके जीवन में। यमुना साधारण युवती है और विजय साधारण युवक, न दिव्य न राक्षसी. हाँ, विजय से यमुना अधिक उज्ज्वल है। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हुआ है।

तीसरा चरित्र है मंगल का। तारा का वेश्या के यहाँ से उद्धार करनेवाला मंगल, उसका प्रेमी, उसे गर्भावस्था में छोड़कर— समाज से डरकर भाग जानेवाला मंगल, विजय का मित्र मंगल, ब्रह्मचारी-गुरु मंगल, उपदेशक मंगल, संसार की कल्याण-कामना करने की इच्छा रखनेवाला, स्त्रियों को स्वतंत्रता, सम्मान और अधिकार दिलाने का बीड़ा उठानेवाला, भारत-संघ स्थापित करनेवाला मंगल, तारा की आँखों के सामने ही आला से विवाह करलेनेवाला मंगल, ऐसा चरित्र है, जिस प्रकार का आदमी वर्तमान समाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जायगा। कम से कम यमुना से तो अधिक। आजकल समाज की व्यवस्था—पाप-पुण्य की परिभाषा ही ऐसी है। परन्तु हम तो उपन्यास के अन्तिम पृष्ठ पर भी मंगल का पाखण्ड स्पष्ट देख पाते हैं। उसका गुरुकुल के समय का कठिन परिश्रम, प्रकाण्ड ज्ञान, उसके उच्च विचारपूर्ण उपदेश आदि सब ध्यान में रखते हुए भी उससे घृणा हो जाती है। तारा से प्रेम करके उसे छोड़ देना उसका महापाप है। अमिट कलंक है। वह यमुना के साथ अन्त तक न्याय नहीं कर सका। ऐसे पाखण्डी वर्तमान समाज में बहुत मिलते हैं। प्रसादजी ने अपनी ओर से उसके लिए एक शब्द भी निन्दा में नहीं लिखा, वरन उसके बहुत से ऐसे कार्य पाठकों के सामने रक्खे हैं, जिससे वह श्रद्धा का पात्र बन जाय; परन्तु हम तो उसे पाखण्डी ही कहेंगे—उसपर श्रद्धा नहीं कर सकते।

इनके अलावा किशोरी और निरञ्जन के चरित्र भी ठीक अंकित हुए हैं। पापी-जन अपने पाप को छिपाने के लिए किस प्रकार धर्म का स्वांग रचते हैं, इसका उदाहरण किशोरी और निरञ्जन का चरित्र है। धर्म के नाम पर, तर्क के द्वारा, निरञ्जन अपना किशोरी के साथ गुप्त प्रेम उचित ठहराता है, परन्तु जीवन के अन्तिम पहर में उसका मोह दूर हो जाता है, वह अपना पाप स्वीकार करता है। किशोरी के प्रति पुत्र-वियोग के समय दया अवश्य आती है, परन्तु उसके साथ सहानुभूति पैदा नहीं होती। उसका चरित्र ऐसा नहीं है—जो किसी भी प्रकार वांछनीय समझा जा सके। निरञ्जन, जिस समय यमुना (तारा) देवगृह में आती है, उसका तिरस्कार, अछूत या अपवित्र समझकर करता है, उस समय निरंजन पर क्रोध आता है। परन्तु किशोरी के प्रति जो उसका मोह एकाएक हो गया था उसके लिए उसके प्रति अधिक घृणा नहीं होती, क्योंकि वह बालकपन से उसे प्रेम करता था, और उसपर उसका अधिकार था। वह उससे बरबस छीन ली गई थी। परन्तु महात्मापन का—महन्ती का ढोंग। पवित्रता का दिखावा, जो उसने अपने चारों तरफ़ फैला लिया था, उसके कारण हम उसका आदर नहीं कर सकते। वह महात्मा न बनकर एक साधारण मनुष्य की स्थिति से किशोरी से प्रेम करता, तो उसकी ताईद कर देना हमें अनुचित न जँचता।

उपन्यास में हिन्दू धर्म, आर्य-समाज तथा सनातन-धर्म, प्रेम की अभिलाषा, समाज के बन्धन व अन्याय, विवाह का ढोंग, प्रेम की आध्यात्मिकता, समाज का स्त्रियों के प्रति अन्याय, सुधार-सभाओं में ढोंगियों का समावेश आदि का काफ़ी दिग्दर्शन हुआ है। ईसाई धर्म की कमज़ोरी का भी वर्णन इसमें मिल जाता है।

गोस्वामी कृष्णशरण के आश्रम में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पवित्र, अपवित्र, सब जातियों का एकसाथ मिल-जाना मानव-धर्म का आदर्श सामने रखता है। क्या ही अच्छा होता, जब न कोई हिन्दू होता, न मुसलमान, न ईसाई; न अछूत होता, न ब्राह्मण! सब एक होते। जिसका जिससे प्रेम हो जाता, चाहे वह कहीं का, किसी जाति का, किसी धर्म का होता, वह निर्विघ्नता से मिल सकता। मानवता के बीच धर्म के नाम पर जो दीवारें खड़ी हो गई हैं वे प्रेम के मार्ग में, शान्ति के मार्ग में, स्वयं धर्म के मार्ग में बड़ी भारी बाधायें हैं। ईसाई, मुसलमान, आर्य (हिन्दू) का संगम कराकर प्रसादजी ने एक अच्छे आदर्श को लोगों के सामने रक्खा है।

प्रसादजी को पहले ही उपन्यास में काफ़ी सफलता मिली है। स्त्री-हृदय की सुकुमार भावनाओं का वर्णन करने में भी खूब सफलता मिली है।

इस उपन्यास में जहाँ ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश किया है, वे फालतू-सी जँचती हैं। मुग़ल-वंश से आल्हा की उत्पत्ति का लम्बा वर्णन पढ़कर कविता का मज़ा ज़रूर मिलता है—परन्तु इतना वर्णन न देकर थोड़े में काम चल सकता था। परन्तु प्रसादजी ने विषम परिस्थिति में पले, असमान कुल, विभिन्न धर्म, विभिन्न आर्थिक अवस्थावाले पात्रों को एकसाथ मिलाकर हृदय की एकता का दृश्य दिखलाया है। राजा, नवाब, निर्धन, ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, प्रेम के संसार में एकसमान हैं।

प्रसादजी की भाषा के विषय में लोगों को शिकायत रहती है कि उसमें संस्कृत की भरमार रहती है। भावनायें सुकुमार, सुन्दर, प्यारी और मादक रहने से हृदय प्रसन्न अवश्य हो जाता है, परन्तु एकाध शब्द मज़ा किरकिरा कर देता है। साहित्यिक रुचि रखनेवालों को तो कोई कठिनाई नहीं पड़ती, हाँ, सर्वसाधारण अवश्य झुँझलाते हैं।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

यौवन, सौन्दर्य और प्रेम

लेखक—श्री श्रीनाथसिंह। प्रकाशक—साहित्य-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग। आकार २० × ३० सोलहपेजी, पृष्ठ ढाई सौ। मूल्य १॥) रु०।

प्रस्तुत पुस्तक प्रधानतः स्त्रियों से सम्बन्धित प्रश्नों पर है, वैसे पुरुषों के काम की भी बातें इसमें हैं। विचार प्रधानतः विदेशी पत्रों से लेकर उन्हें भारतीय साँचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है—और, मानना होगा, इसमें लेखक को बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है।

"यौवन, सौन्दर्य और प्रेम—तीनों स्वर्गीय पदार्थ हैं।" इन शब्दों से पुस्तक की शुरुआत की गई है और फिर क्रमशः चालीस से अधिक फुटकर लेखों में इस सम्बन्धी फुटकर बातों का विवेचन है। बीच-बीच में पश्चिमी विचारों की 'बू' आ जाना तो स्वाभाविक है, मगर कहीं-कहीं भाव बड़े सुन्दर हैं।

"वह मकान, जिसमें प्रेम का अभाव है, महल या क़िला हो सकता है, पर वह गृह (घर) नहीं कहला सकता। प्रेम एक सच्चे गृह का जीवन है। स्नेह-रहित घर में और प्राण-विहीन शरीर में कोई विशेष अन्तर नहीं है।" घर का यह सुन्दर विवेचन है। और "गृह का महत्व," लेखक के शब्दों में, "प्राणियों को राजा, चोर या डाकू के भय, या इसी प्रकार की अन्य आपत्तियों से बचाने में नहीं है; मनुष्य को मानसिक वेदनाओं से रक्षित रखने में ही उसकी महत्ता है। जिसे संसार में रहना है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों में आना-जाना है, क्रोध, अपमान, चिन्ता, आशा, निराशा इत्यादि विकारों से उसका मन खिन्न हुए बिना नहीं रह सकता। यदि घर में ऐसे खिन्न हृदय को सान्त्वना न मिली, चिन्तायें ज्यों की त्यों बनी ही रहीं, उनमें कमी होने के स्थान पर कुछ वृद्धि हो गई, तो उसका होना न होना दोनों बराबर है।" 'गृह-लक्ष्मी कौन है?' इसका जवाब इस प्रकार दिया गया है—"यह जानने के पहले यह जान लेना परम-आवश्यक है कि गृह क्या है? ईंट, पत्थर या मिट्टी इत्यादि की बनी हुई वस्तु, जिसमें मनुष्य रहता है, गृह नहीं हो सकता। मनुष्य का घर वही हो सकता है, जिसकी दीवारें आशा की ईंटों से बनी हों, जिसपर निर्भयता का छप्पर पड़ा हो, जिसके चतुर्दिक आनन्द का बाग़ लहलहाता हो और उसमें मधुर भाषण के पक्के फल लगे हों, जिसके चूल्हे में कलह, द्वेष तथा फूट की लकड़ी जलती हो, जिसके आँगन में प्रेमलता लहराती हो और उसमें छिप-छिप कर उत्साह तथा उद्योग बालक के स्वरूप में आँख-मिचौनी खेलते हों तथा उनपर सत्य सूर्य की निर्भय धूप पड़ती हो, जिसमें आत्मत्याग की सनसनाती हवा समय-समय पर न्याय की प्रबल मेघ-मालायें उड़ा लाती हो और आवश्यकतानुसार स्वत्व-रक्षा की उचित वृष्टि हो जाती हो। यथार्थ में गृह की यही परिभाषा है, बस, इसी गृह की प्रबन्ध-कर्त्री को गृह-लक्ष्मी कहते हैं।"

ऐसी ही कई सुन्दर बातें इसमें हैं, और साथ ही "पति चाहे जैसा हो, वह है बड़े काम की चीज़। × × वह है सब कुछ, देवता भी और राक्षस भी।" जैसे

उद्गार तथा पुरुषों को मूछें रखनी चाहिए या नहीं, तुम बोलती हो या शर्बत घोलती हो, इत्यादि कई अध्याय थोड़ी शिक्षा के साथ मनोरंजन के सामान हैं। भाषा मँजी हुई, सरल और मनोरंजक है। छपाई साफ़ सुन्दर। उपयोगी बातों को ग्रहण करते हुए शेष बातों को मनोरञ्जन मात्र ही करके सन्तोष किया जाय तो, इसमें शक नहीं कि, पुस्तक है मज़ेदार।

मुकुट

रचना-विधि

लेखक—अध्यापक पं० देवकीनन्दन शर्मा, एम० ए०, एल-एल० बी०। प्रकाशक—नन्दकिशोर एण्ड ब्रादर्स, चौक, बनारस। पृष्ठ १४७।

यह पुस्तक विद्यार्थियों को निबन्ध-रचना सिखाने के उद्देश्य से लिखी गई है। इस विषय पर यह पहली ही पुस्तक मेरे देखने में आई, जो इतने वैज्ञानिक ढंग से लिखी गई हो। पुस्तक का ढाँचा इस प्रकार है:—निबन्ध की भूमिका, कहानी-रचना, पत्र-रचना, और निबन्ध-रचना।

लेखक का यह विचार ठीक है कि बच्चों को पहले की 'टर्न' पर निबन्ध का विषय नहीं देना चाहिए। उसी दिन उनसे प्रश्नों द्वारा निबन्ध का ढाँचा तैयार कराके अध्यापक स्वयं वर्गीकरण करदे। परन्तु चालीस मिनट के 'पीरियड' में इतना समय नहीं मिलता कि प्रश्न और वर्गीकरण कराने के बाद विद्यार्थी निबन्ध को पुस्तक में पूर्णतया लिख भी सकें। इसलिए प्रारम्भिक कक्षाओं में तो निबन्ध को अगली 'टर्न' के लिए छोड़ना ही पड़ेगा।

अधूरी कहानियों को पूरी कराने के अभ्यास भी उपयोगी हैं। पत्र-रचना वाला अध्याय आधुनिक शैली के अनुसार पूर्ण है। निबन्ध-रचना वाला अध्याय विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों ही के लिए अध्ययनीय है।

फिर भी और भी कई उपयोगी बातों का समावेश हो सकता था—जैसे वाक्य-विन्यास, अलंकार, उद्धरण, सूक्तियाँ, कहावतें इत्यादि। परन्तु इतना सब होने पर पुस्तक के मूल्य में भी वृद्धि हो जाती। आशा है, विद्वान् लेखक इस ढंग की एक अलग ही पुस्तक रचेंगे।

बाल सभ्यता

लेखक—पं० शिव शर्मा महोपदेशक। प्रकाशक—शर्मा आर्य बुकडिपो, सम्भल, मुरादाबाद। पृष्ठ ४८। मूल्य।-) आने, जो काग़ज़ व छपाई को देखते हुए बहुत अधिक है।

यह बड़ी अच्छी पुस्तक है। आठ-दस वर्ष के बच्चों की पाठ्य पुस्तक बनने के योग्य है। बच्चों को सभा, पाठशाला, रेल इत्यादि में किस प्रकार उठना-बैठना चाहिए, इन्हीं बातों पर चौदह पाठ दिये हैं। भाषा सुबोध है, पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ, और प्रत्येक पाठ के बाद प्रश्नोत्तर दे देने से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। परन्तु जबतक इसके काग़ज़ और छपाई न बदले जायँगे तबतक बालक इसे पढ़ना न चाहेगा।

एक अध्यापक
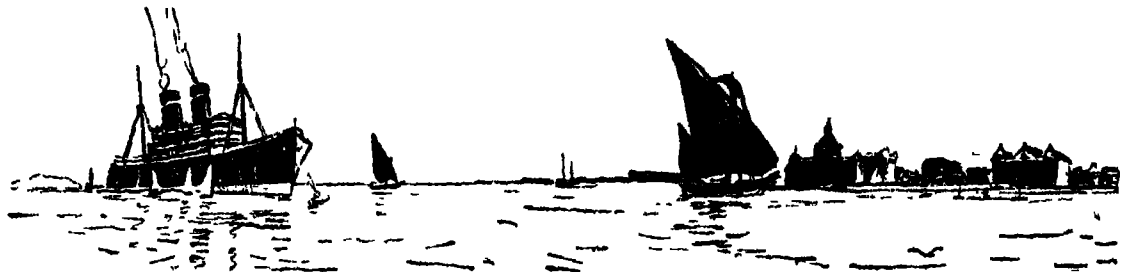
सम्पादकीय

देश की स्थिति

यह महीना भी देश के इतिहास में अपने अधिकाधिक बलिदान के भावों के लिए चिरस्मरणीय रहेगा। पण्डित मोतीलालजी की गिरफ्तारी के बाद श्री वल्लभभाई पटेल राष्ट्रपति हुए। वल्लभभाई अपनी तेजस्विता और ठोस काम की लगन के लिए देश-भर में प्रसिद्ध हैं इसलिए यह स्वाभाविक था कि उनके समय में आन्दोलन की गति बढ़ती। बम्बई, पञ्जाब, युक्तप्रांत और बिहार में विदेशी वस्त्रों की पिकेटिंग खूब ज़ोरों से हुई है। और इन स्थानों में विदेशी कपड़े की बिक्री नाम-मात्र को रह गई है; अधिकांश दुकानें बन्द हो गई हैं अथवा विदेशी कपड़े की गाठों पर कांग्रेस की मुहर लगाकर उन्हें अलग रख दिया है। पञ्जाब युक्तप्रान्त, गुजरात, बम्बई, बिहार और आन्ध्र इत्यादि में ताड़ी एवं शराब की दुकानों पर भी ज़ोरों से धरना दिया जा रहा है और उसमें सफलता मिल रही है। गुजरात में ताड़ के हज़ारों वृक्ष काटे गये; बम्बई में वहाँ के कार्पोरेशन और इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ने तो सरकार को ताड़ी निकालने के लिए अपने ताड़ के पेड़ देने से ही इन्कार कर दिया है। वहाँ कई बार ताड़ी बेचने की दुकानों पर बोली बोलने के दिन मुकर्रर किये गये; पुलिस के पहरे में सब काम हुआ पर अभी तक सरकार बराबर असफल ही होती रही और तिथियाँ बदलती रही। पिकेटिंग के साथ मिल-मज़दूरों तथा अन्य लोगों में देश-सेविका संघ की बहनें नशे की बुराइयों के सम्बन्ध में प्रचार कार्य भी कर रही हैं। बम्बई प्रान्त में बम्बई और पञ्जाब में लाहौर में पिकेटिंग का बड़ा ज़ोर है। इन दोनों स्थानों में सैकड़ों सत्याग्रही इस कार्य के लिए पकड़े जा चुके हैं। बम्बई तो, सारे देश में, सत्याग्रह-आन्दोलन का प्रधान केन्द्र बन गया है। वहाँ विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन सब तरफ से किया जा रहा है। पहले तो यह चेष्टा की जाती है कि विदेश से माल ही न आवे अर्थात् व्यापारी नये आर्डर न दें; इधर तो शायद ही दो चार आर्डर गये हों। फिर जो माल आकर बंदरों में पड़े हैं उन्हें मँगानेवाले व्यापारी ले न लें इसलिए भी पिकेटिंग की जाती है और इस प्रकार के धरने से कई बार बंदर एवं जहाज़ के अधिकारियों को लाखों का माल हज़ारों में नीलाम करना पड़ा है। जिन व्यापारियों के वहाँ माल पड़ा है उनकी दूकानों पर धरना नियमित रूप से चालू है। १०-१५ मील के घेरे में सम्पूर्ण बम्बई एवं उसके उपनगरों पर धरना देने का ज़बरदस्त कार्यक्रम बम्बई प्रांतीय कांग्रेस कमेटी सफलता-पूर्वक चला रही है। इसमें प्रायः २७५ सत्याग्रही 'देशसेविका' बहनें भी शामिल हैं। कपड़े का सबसे बड़ा बाज़ार मूलजी जेठामार्केट तो वहाँ के व्यापारियों की देश-भक्ति के कारण अनिश्चित समय के लिए बन्द हो गया है; मंगलदास और दुबैश मार्केट भी बन्द-से हैं। इसके अतिरिक्त जनता में विदेशी वस्त्रों के उपयोग के विरुद्ध खूब प्रचार किया जा रहा है और लगभग ३ लाख आदमी विदेशी वस्त्रों का व्यवहार न करने के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर चुके हैं।

उत्तर भारत में

युक्तप्रान्त में किसानों का आन्दोलन भी ज़ोर पकड़ रहा है; वहाँ गाँवों में काम हो रहा है। बिहार में भी ग्रामीण लोग जाग रहे हैं। बङ्गाल और विशेषतः कलकत्ता में विद्यार्थियों में खूब जागृति हुई है। युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बङ्गाल में कालेजों पर बड़ी सफलता के साथ धरने दिये जा रहे हैं। मध्यप्रान्त में सरकार ने सब कालेज-स्कूल बन्द कर दिये हैं।

कलकत्ता में कांग्रेस कार्यालय पर पुलिस का नियमित धावा होता रहता है। कभी-कभी दिन में दो-दो तीन-तीन बार पुलिस आ धमकती है। बिहार सारे भारत में सबसे अधिक चुपचाप काम करनेवाला प्रान्त है; वहाँ के कार्य का बाहरवालों को बहुत कम पता चलने पाता है; केवल पुलिस के दमन एवं गिरफ्तारियों की बहुत बड़ी संख्या से कुछ अनुमान किया जा सकता है। 'बिहार के गान्धी' राजेन्द्र बाबू भी जेल पहुँच गये हैं। मध्यप्रान्त में जंगल-क़ानून तोड़ने का सत्याग्रह बढ़ रहा है और दिन पर दिन सामूहिक आन्दोलन का रूप धारण करता जाता है। नासिक एवं संगमनेर इत्यादि में भी इस प्रकार के सत्याग्रह का ज़ोर है। बिहार में चौकीदारी टैक्स न देने का आन्दोलन भी चल रहा है।

व्यापक रूप

यह बड़े हर्ष की बात है कि इस आन्दोलन में सब जाति, वर्ग एवं अवस्था के लोगों ने भाग लिया है। पहले मुसलमान बिलकुल अलग थे, अब वे भी धीरे-धीरे शामिल हो रहे हैं। सिक्खों की उदासीनता दूर हो गई है और वे आगे आ रहे हैं। बम्बई के सदा के राजभक्त पारसी भी जाग उठे हैं; ईसाई भी हिस्सा बँटा रहे हैं। गृहस्थ, साधु-संन्यासी व्यापारी सभी ने भाग लिया है। बहनों ने इस आन्दोलन को बढ़ाने और नैतिक आधारों पर उसकी नींव मज़बूत करने में पुरुषों से भी ज़्यादा काम किया है। पर सबसे उल्लेखनीय बात तो बच्चों में अपने आप होनेवाली जागृति और उत्साह है। कहीं बाल-भारत सभा, कहीं वानर और माँजर (मार्जार) सेनाओं के रूप में बच्चे युद्ध क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं। इनके निर्भीक चेहरे और उसपर प्रकट होनेवाले हठीले भावों को देखने से मालूम होता है कि एक नूतन संतति का जन्म हो रहा है और हमारा भविष्य बड़ा उज्ज्वल होगा।

सरकार की खीझ

इस आन्दोलन की प्रखरता से भारत की सरकार खीझ उठी है और अब साइक्लोस्टाइल पर हाथ से लिखकर निकाले जानेवाले समाचार-पत्रकों एवं बुलेटिनों पर भी सरकार ने आर्डिनेंस (विशेष क़ानून) निकालकर उन्हें ज़ब्त करने का हुक्म दिया है। इस आर्डिनेंस की सफ़ाई देते हुए सरकार ने कहा है कि प्रेस आर्डिनेंस जारी करते समय हमारा अनुमान था कि इससे ओछोला और विद्रोह-पूर्ण प्रचार कार्य रुक जायगा पर वह उद्देश्य सफल नहीं हुआ; वरन् उलटे साइक्लोस्टाइल द्वारा निकली बुलेटिनों ने वह काम भयंकर रूप से आरम्भ कर दिया है, इसलिए यह आर्डिनेंस जारी किया जा रहा है। इसमें सरकार ने खुद अपनी दुर्बलता और प्रेस-आर्डिनेंस की असफलता को स्वीकार किया है। किन्तु उसकी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो गई है कि उसे यह समझ में नहीं आया कि जिस तरह प्रेस-आर्डिनेंस व्यर्थ हुआ उस तरह यह नया आर्डिनेंस भी व्यर्थ होगा। इस विषय में सब दलों के लोग एक मत हैं कि यदि सरकार दमन न करती और पुलिस की ओर से इतने अमानुषिक अत्याचार न होते तो आन्दोलन इतना गहरा कभी न होता। दुनिया के इतिहास में सदा अत्याचार और दमन स्वतंत्रता के भावों को बढ़ाते रहे हैं पर सत्ता का नशा ही कुछ ऐसा होता है कि शिक्षा देनेवाले सारे उदाहरण भूल जाते हैं। अभी उस दिन बम्बई में तिलक-स्मृति-दिवस के जुलूस में केवल भाग लेने के कारण मालवीयजी, वल्लभभाई तथा अन्य नेताओं को गिरफ्तार करके और शान्त स्वयंसेवकों पर बेरहमी के साथ लाठियों की वर्षा करके—तथा ३०० से ५०० तक आदमियों को घायल करके पुलिस एवं सरकार ने उस मदोन्मत्तता का परिचय दिया है जो उच्छृंखल शासकों का अन्त आने पर ही दिखाई देती है।

समझौते की मृगतृष्णा

आश्चर्य की बात तो यह है कि एक ओर देश में इस प्रकार का अन्ध दमन चल रहा है; सरकार की ज़्यादतियाँ बढ़ती जा रही हैं और दूसरी ओर श्री जयकर और सर तेजबहादुर सप्रू समझौते की बातें कर रहे हैं। सरकार के अभी तक के कामों से उसके हृदय की कुटिलता के अतिरिक्त और किसी बात का पता नहीं चलता। समझौता करना

तो सरकार के हाथ है; वह जब समझेगी कि अब समय आ गया है कि समझौता न करने से हिन्दुस्तान बिलकुल हाथ से निकल जायगा तब, श्री वल्लभभाई के शब्दों में, जयकर और सप्रू को समझौता कराने के लिए इधर-उधर नहीं दौड़ना पड़ेगा। सरकार एक घण्टे में खुद ही सब बातों की घोषणा कर देगी। अभी तो लन्दन में होनेवाली गोलमेज़-परिषद् के सम्बन्ध में ही विलायत में बड़े झगड़े चल रहे हैं। पहले वाइसराय ने अपनी घोषणा में कहा था कि 'साइमन कमीशन और भारतीय केन्द्रीय समिति की रिपोर्टों के प्रकाशित हो जाने के बाद भारत-सरकार की सलाह से साम्राज्य-सरकार ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को......निमंत्रित करेगी।' पर अब मज़दूर सरकार के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अनुदार एवं उदार दलों के प्रतिनिधि भी ब्रिटेन के प्रतिनिधि-मण्डल में रहेंगे। इस प्रकार लिबरल दलवालों की दृष्टि से भी देखें तो सफल समझौते की सम्भावना दिन-दिन कम होती जाती है। सप्रू और जयकर ने यरवडा जेल में महात्माजी तथा नैनी जेल में पं० मोतीलालजी एवं जवाहरलालजी से जो बातें कीं उसके सम्बन्ध में अभी तक निश्चय रूप से कुछ पता नहीं चला है। इन लोगों ने वाइसराय के सामने यह प्रस्ताव रक्खा है कि महात्माजी, मोतीलालजी और जवाहरलालजी तीनों को एक स्थान पर मिलकर विचार करने की सुविधा कर दी जाय। सरकार ने इसे स्वीकार कर ले लिया है पर जैसा जवाहरलालजी ने कहा है समझौते के सारे अधिकार कांग्रेस के पास हैं, इसलिए उसी से अनुरोध करना चाहिए।

भावी कार्यक्रम

२९,३०,३१ को कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक बम्बई में हुई। कार्य समाप्त होने के पहले ही राष्ट्रपति वल्लभभाई, मालवीयजी एवं डाक्टर हार्डिकर इत्यादि की गिरफ़्तारी के कारण कार्य-क्रम के सबसे ज़रूरी अंग करबन्दी की बात पर पूरी तरह विचार नहीं हो सका पर ऐसी आशा की जाती है कि यदि शीघ्र समझौता न हुआ तो २-३ महीने बाद बंगाल और गुजरात में कर न देने का आन्दोलन शुरू किया जायगा। तब तक विदेशी वस्त्रों एवं मादक द्रव्यों की पिकेटिंग को और ज़ोरों से चलाने का निश्चय हुआ है और इसके लिए अखिल भारतीय धरना-संघ की स्थापना की भी सलाह दी गई है। बरसात के बाद आन्दोलन के भयंकर और उग्रतम होने की सम्भावना है। उस दिन बम्बई में पकड़े गये नेताओं में मालवीयजी एवं बहनों को सौ-सौ रुपये जुर्माने या १५ दिन कारावास तथा अन्य नेताओं को ३-३ महीने की सज़ा हुई है। मालवीयजी, किसी के जुर्माना दे देने पर, छोड़ दिये गये हैं।

'सुमन'
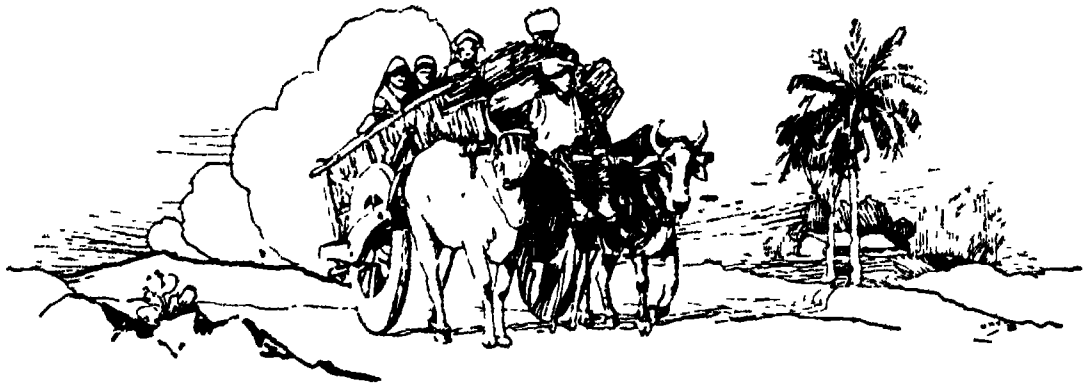
बहिष्कार-आन्दोलन

बहिष्कार की सफलता

विगत तीन-चार महीनों के अन्दर विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलन में कितनी सफलता हुई है, यह नीचे के सरकारी विवरण में दिये गये अंकों से मालूम हो सकता है। अभी पिछले महीने भारत-सरकार ने भारत-मन्त्री के पास सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट भेजी थी, उसमें लिखा था कि आन्दोलन का ज़ोर घट रहा है किन्तु नीचे के अङ्कों को देखने से पता लगेगा कि पिछले वर्ष के जून में, ब्रिटेन से जितना कपड़ा आया था, इस वर्ष के जून में उसका आधा ही कपड़ा आया।

ग्रेटब्रिटेन से आया माल

कपड़ा

१९२९ ई०			१९३० ई०		
अप्रैल	मई	जून	अप्रैल	मई	जून
१८,२४३ गाँठ	१४,१६५ गाँठ	१०,४०५ गाँठ	१२,२२० गाँठ	९,०२९ गाँठ	५,७५३ गाँठ
कुल=४२,८१३ गाँठ			कुल=२७,००२ गाँठ		

सूत

१९२९ ई०			१९३० ई०		
अप्रैल	मई	जून	अप्रैल	मई	जून
३,२४८ गाँठ	२,९३७ गाँठ	२,९४५ गाँठ	२,३२६ गाँठ	१,८२४ गाँठ	१,७९४ गाँठ
कुल = ९,१३०			कुल = ५,९४४ गाँठ		

ग्रेटब्रिटेन तथा अन्य देशों से आया विदेशी माल

कपड़ा

१९२९ ई०			१९३० ई०		
अप्रैल	मई	जून	अप्रैल	मई	जून
३८,२५६ गाँठ	३१,३६३ गाँठ	२२,१३८ गाँठ	२९,८३६ गाँठ	२७,३६७ गाँठ	१३,३५७ गाँठ
कुल = ९१,७-७ गाँठ			कुल = ६८,८४० गाँठ		

सूत

१९२९ ई०			१९३० ई०		
अप्रैल	मई	जून	अप्रैल	मई	जून
१०,२८१ गाँठ	१०,२५९ गाँठ	७,८१० गाँठ	५,१७८ गाँठ	६,१४० गाँठ	६,८७३ गाँठ
कुल = २८,४३० गाँठ			कुल = १८,१९१ गाँठ		

ऊपर के अंकों को देखने से जहाँ इस बात पर सन्तोष प्रकट किया जा सकता है कि बहिष्कार-आन्दोलन के कारण थोड़े ही दिनों में भारत में विदेशी कपड़े तथा सूत के आयात में बहुत कमी हुई है, वहाँ आँकड़ों की तुलना करने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेज़ी माल के आने में जितनी कमी हुई है, उतनी अन्य देशों के विदेशी माल के आयात में नहीं हुई। कपड़े को ही देखें तो जहाँ १९२९ के अप्रैल, मई, जून में इंग्लैण्ड से कपड़े की ४२,८१३ गाँठें आई थीं वहाँ १९३० के इन्हीं तीन महीनों में सिर्फ़ २७,००२ गाँठें आईं अर्थात् दो तिहाई से भी कम माल आया। विगत वर्ष के जून से इस वर्ष के जून में तो आधा ही माल आया। यही दशा सूत की भी है। पारसाल के इन तीन महीनों में जहाँ कपड़ा बुनने के लिए अंग्रेज़ी सूत की ९,१३० गाँठें आईं वहाँ इस साल के इन्हीं तीन महीनों में सिर्फ़ ५,९४४ गाँठें आईं। आशा की जाती है कि जुलाई (तथा समझौता न हुआ तो अगस्त) में अभी इसमें और कमी होगी पर जहाँ इस कमी से इंग्लैण्ड में व्यापार को धक्का लगा है वहाँ सारा रुपया हमारे ही देश में नहीं बच गया। इसका कारण यह है कि अन्य देशों के माल के बहिष्कार की ओर भी हमने उतना ध्यान नहीं दिया जितना अंग्रेज़ी माल की ओर दिया है। कांग्रेस और महात्माजी ने केवल अंग्रेज़ी नहीं वरन् समस्त विदेशी कपड़े के बहिष्कार पर इसीलिए ज़ोर दिया था। जहाँ पारसाल के अप्रैल, मई, जून में इंग्लैण्ड को छोड़ अन्य देशों से ४८६४२ गाँठें कपड़े की आई थीं वहाँ इस साल के इन्हीं तीन महीनों में ४५६१७ गाँठें आईं। यह कमी नाम-मात्र की है। हाँ, विदेशी सूत के आयात में ज़रूर एक तिहाई की कमी हुई है। जहाँ गत वर्ष के इन तीन महीनों में इंग्लैण्ड को छोड़ अन्य देशों से सूत की १९१०० गाँठें आई थीं वहाँ इस वर्ष इसी अवधि में १२२४७ गाँठें ही आईं। इससे मालूम होता है कि विदेशी सूत के व्यवहार में तो कमी हुई है पर विदेशी कपड़े के आयात में उतनी कमी नहीं हुई।

अब भी इंग्लैण्ड से सिर्फ़ मई महीने में ७६,६९३,००० वर्गगज़ सूती कपड़ा और १,२७३,००० पौण्ड सूत इस देश में आया। हमारे कार्यकर्ताओं और नेताओं को इधर ध्यान देना चाहिए और यह भूलना न चाहिए कि अभी बहिष्कार-आन्दोलन का आदर्श पूरा होने में कहीं अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

बम्बई की 'स्वदेशी' मिलें

श्री व्रजलाल रायचन्द भाई, मन्त्री बहिष्कार-समिति (बम्बई प्रांतीय कांग्रेस कमेटी) लिखते हैं—

"कांग्रेस के आदेशानुसार भारतीय मिलों में भारतीय-श्रम एवं प्रबन्ध से स्वदेशी सूत से बना हुआ कपड़ा ही स्वदेशी कपड़ा कहला सकता है। हमारी समिति का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है कि इस शर्त का दुरुपयोग करने की भी कोशिशें की जा रही हैं। कई मिलें अपने बनाये कपड़े पर अपनी छाप नहीं देतीं। इससे साधारण ग्राहक धोखे में आ जाते हैं। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक मिल अपने बनाये कपड़े पर अपना नाम प्रकट करे। यदि किसी कपड़े पर किसी मिल का नाम न रहेगा तो वह स्वदेशी वस्त्र न समझा जायगा। जनता को चाहिए कि ऐसा माल न खरीदे।

इसलिए कपड़े के प्रत्येक व्यापारी से अनुरोध किया जाता है कि वह जितना भी कपड़ा बेचने को ले, सब पर मिल की छाप अवश्य हो और कांग्रेस के आदेशानुसार उन्हीं मिलों का माल बेचे जो भारतीय या स्वदेशी हो। जिस कपड़े पर सिर्फ़ व्यापारी का नाम होगा, मिल का नहीं, उसे स्वदेशी न समझा जायगा।

इस देश की भी वे मिलें, जिनका प्रबन्ध विदेशियों के हाथ में है, 'स्वदेशी' नहीं कहला सकतीं। जनता को ऐसी मिलों का कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। इस परिभाषा के

अनुसार बम्बई में निम्नलिखित मिलें 'स्वदेशी' हैं।

(१) असुरवीरजी मिल्स लिमिटेड; (२) अटलस मिल्स कं० लिमि०; (३) बम्बई कॉटन मैनुफैक्चरिंग कं० लिमि०; (४) बम्बई डाइंग ऐण्ड मैनु० कं० लिमि०; (५) दि ब्राडबरी मिल्स लिमि०; (६) सेंचुरी स्पिनिंग ऐण्ड मैनुफै० कं० लिमि० (७) सेंचुरी स्पि० कं लिमि० (८) कुर्ला मिल्स लिमि० (९) क्रिसेण्ट मिल्स कं० लिमि० (१०) क्राउन स्पिनिंग ऐण्ड मैनुफै० कं लिमि० (११) करीम भाई मिल्स कं० लिमि० (१२) डॉन मिल्स कं० लिमि० (१३) इब्राहीम भाई पटेल मिल्स लिमि० (१४) फज़लभाई मिल्स लिमि० (१५) फ्राम जी पेटिट स्पिनिंग ऐण्ड मैनु० मिल्स कं० लिमि० (१६) हिन्दुस्तान स्पि० ऐण्ड मैनु० मिल्स लिमि० (१७) इण्डियन मैनुफै० कम्पनी लिमि० (१८) जाम मैनु० कं० लिमि० नं० १; (१९) जाम मैनु० कं० लिमि० नं० २; (२०) जमशेद मैनु० कं० लिमि०; (२१) जीवराज बाजू स्पि० मै० कं० लिमि० (२२) जुबली मिल्स लिमि० (२३) कस्तूरचन्द मिल्स कं० लिमि० (२४) इम्पीरियल मिल्स लिमि० (२५) खटाऊ माकनजी स्पि० मैनु० कं० लिमि० (२६) माधवदास सिंधिया मिल्स (२७) माधवजी धरमसी मैनु० कं० लिमि० (२८) मानकजी पेटिट मैनु० कं० लिमि० (२९) मानकजी पेटिट (दीनशा पेटिट) मिल्स (३०) मानकजी पेटिट (बोमनजी पेटिट) मिल्स (३१) मथुरादास मिल्स लिमि० (३२) मून मिल्स लि० (३३) मुरारजी गोकुलदास स्पि० ऐण्ड वीविंग कं० लि० (३४) मैसूर स्पि० ऐण्ड वीविंग कम्पनी लि० नं० २ (३५) दि न्यू चाइना मिल्स लिमि० (३६) न्यू इस्लाम मिल्स (३७) न्यू कैसरे हिन्द स्पि० वीविंग कं० लिमि० (३८) पर्ल मिल्स लिमि० (३९) फोनिक्स मिल्स लि० (४०) प्रभात मिल्स लिमि० (४१) प्रह्लाद मिल्स (४२) प्रीमियर मिल्स लिमि० (४३) प्रेसीडेंसी मिल्स लिमि० (४४) रघुवंशी मिल्स लिमि० (४५) राजा बहादुर मोतीलाल बम्बे मिल्स० (४६) रूबी मिल्स लि० (४७) सेवारी कॉटन मिल्स लिमि० (४८) सर शापुर जी भरूचा कनाट मिल्स लिमि० (४९) सर शापुरजी एम्प्रेस मिल्स (५०) सर शापुरजी न्यू एम्प्रेस मिल्स (५१) स्टैण्डर्ड मिल्स कम्पनी (५२) स्वदेशी मिल्स कम्पनी लिमि० (५३) विक्टोरिया मिल्स लिमि०, (५४) वेस्टर्न इण्डिया स्पि० मै० कं० लिमि०

'अ-स्वदेशी' मिलें

(१) अपोलो मिल्स लिमि० (२) कोलाबा लैण्ड-ऐण्ड मिल्स कं० लिमि० (३) डेविड मिल्स कं० लिमि० नं० १, २ (४) एडवर्ड सासून मिल्स लिमि० (५) ई० डी० सासून यूनिटेड मिल्स कं० लिमि० (६) एलेक्ज़ेण्डर मिल्स (७) ई० डी० सासून (जैकब सासून) मिल्स (८) राशेल सासून मिल (९) मैनचेस्टर मिल (१०) एलफिन्स्टन स्पि० मैनु० मिल्स कं० लिमिटेड (११) फिनले मिल्स लिमि० (१२) गोल्डमोहर मिल्स लिमि० (१३) कोहेनूर मिल्स कं० लिमि० (१४) मेयर सासून मिल्स लिमि० (१५) न्यूसिटी ऑव् बम्बे मैनु० कं० लिमि० (१६) न्यू ग्रेट ईस्टर्न स्पि० ऐण्ड वीविंग कं० लिमि० (१७) सासून स्पि० ऐण्ड वीविंग कं० लि० (१८) सत्य मिल्स लिमि० (१९) सिम्प्लेक्स मिल्स लि० (२०) स्वान मिल्स लिमि० (२१) यूनियन मिल्स लि० (२२) जहाँगीर वाडिया मिल्स (२३) बम्बे इण्डस्ट्रियल मिल्स लिमि० (२४) ट्वाय पोद्दार कोटन मिल्स लिमि०।

स्वदेशी सूत का व्यवहार करने वाली मिलें

'अहमदाबाद मिलओनर्स असोसियेशन' ने अहमदाबाद तथा समीपवर्ती ज़िलों की उन मिलों के नाम जानकारी के लिए प्रकाशित किये हैं जो देशी सूत काम में लाती हैं:—

१—अहमदाबाद अस्टोदिया मैन्युफैक्चरिंग कं० लिमिटेड
२—अहमदाबाद काटन मै० कं० लिमिटेड
३—अहमदाबाद काटन ऐण्ड वेस्ट मै० कं० लिमि०
४—अहमदाबाद जिनिंग ऐण्ड मै० कं० लिमि०
५—अहमदाबाद इण्डस्ट्रियल मिल्स कं० लिमि०
६—अहमदाबाद जुपिटर स्पिनिंग मिल्स कं० लिमि०
७—अहमदाबाद कैसरेहिंद मिल्स कं० लिमि०
८—अहमदाबाद लक्ष्मी काटन मिल्स लिमि०
९—अहमदाबाद न्यूकाटन मिल्स कं० लिमि०
१०—अहमदाबाद न्यूस्टेण्डर्ड कं० लिमि०
११—न्यूटेक्सटाइल मिल्स कं० लिमि०
१२—अहमदाबाद सारंगपुर मिल्स कं० लिमि०
१३—अहमदाबाद स्पिनिंग ऐण्ड वीविंग कं० लिमि०
१४—अरुण मिल्स कं० लिमि०
१५—आर्योदय स्पिनिंग ऐण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं० लिमि०
१६—आर्योदय स्पिनिंग ऐण्ड दि कं० लिमि०
१७—अशोक मिल्स लिमि०
१८—भरतखंड कॉटन मिल्स कं० लिमि०
१९—भरतखंड टेक्सटाइल मैन्युफै० कं० लिमि०
२०—दि सिटी ऑव् अहमदाबाद स्पिनिंग ऐण्ड मैन्यु० कं० लिमि०
२१—कमर्शल अहमदाबाद मिल्स कं० लिमि०
२२—दि फाइन निटिंग कम्पनी लिमि०
२३—गोर्धन स्पिनिंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०
२४—गुजरात कॉटन मिल्स कम्पनी लिमि०
२५—गुजरात जिनिंग ऐण्ड मै० कम्पनी लिमि०
२६—गुजरात स्पिनिंग ऐण्ड वीविंग कम्पनी लिमि०
२७—हरिवल्लभदास मूलचन्द मिल्स कम्पनी लिमि०
२८—हार्थासिंग मैन्यु० कम्पनी लिमि०
२९—जहाँगीर वकील मिल्स कम्पनी लिमि०
३०—माणिकचौक ऐण्ड अहमदाबाद मैन्यु० कम्पनी लिमि०
३१—माणिकलाल हरीलाल स्पि० ऐण्ड मैन्यु० कं० लिमि०।
३२—मोतीलाल हरीभाई स्पि० वीविंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०
३३—नागरी मिल्स कम्पनी लिमि०
३४—नेशनल मिल्स कम्पनी लिमि०
३५—न्यू कमर्शल मिल्स कम्पनी
३६—न्यू माणिकचौक स्पिनिंग ऐण्ड वीविंग मिल्स कम्पनी लिमि०
३७—न्यू स्वदेशी मिल्स अहमदाबाद लिमि०
३८—पटेल मिल्स कम्पनी लिमि०
३९—पुरुषोत्तम स्पिनिंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०
४०—रायपुर मैन्यु० कम्पनी लिमिटेड
४१—राजनगर स्पिनिंग वीविंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०
४२—रुस्तम जहाँगीर वकील मिल्स कम्पनी लिमि०।
४३—सारंगपुर काटन मैन्यु० कम्पनी लिमि०
४४—सरसपुर मैन्यु० कम्पनी लिमि०
४५—शोरॉक स्पिनिंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०
४६—श्रीनगर वीविंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०
४७—सिलवर कॉटन मिल्स कम्पनी लिमि०
४८—कड़ी लक्ष्मी कॉटन मिल्स कम्पनी लिमि०, कड़ी
४९—नवाब ऑव् कम्बे मिल्स कम्पनी लिमि०, कम्बे
५०—न्यू शोरॉक स्पिनिंग ऐण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०, नडियाद
५१—सरस्वती जिनिंग एण्ड मैन्यु० कम्पनी लिमि०, भड़ोंच
५२—सूरत कॉटन स्पिनिंग ऐण्ड वीविंग मिल्स लिमि०, सूरत
५३—भालाकिया मैन्यु० कम्पनी लिमि०
५४—विक्रम मिल्स कम्पनी लिमि०
५५—दि चन्द्रोदय मिल्स लिमि०
५६—दि जयंती मिल्स लिमि०

बहिष्कार का प्रभाव

अहमदाबाद के एक मिल एजेण्ट को लंकाशायर (इंग्लैण्ड) के एक प्रसिद्ध मिल एजेण्ट ने कुछ दिन पहले, एक पत्र में लिखा था—

"क्या आपको मालूम है कि आपके बहिष्कार-आंदोलन का मैंचेस्टर पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? उसका दिवालियापन बढ़ता जाता है। विगत ९ वर्षों से लंकाशायर बड़ी कठिनाई के साथ अपने को डूबने से बचाता रहा है पर इस बहिष्कार-आंदोलन ने उसकी थोड़ी सी बची मिलों को भी खतरे में डाल दिया है। प्रायः प्रत्येक मिल बैंकों के हाथ रेहन है और कर्ज़ से लदी हुई है और अनेक मिलें नाममात्र मूल्य में हर हफ्ते नीलाम हो रही हैं।

"ये मिलें बरती हुई पुरानी चीज़ें खरीदनेवालों के हाथ बिकती जारही हैं। पिछले हफ्ते तीस हज़ार तकुए और ११०० कर्घे (लूम) वाली एक मिल सब सामान, मकान और ज़मीन के साथ सिर्फ एकतीस लाख रुपये में बिक गई। यह बड़ी दुःखद घटना है। अभी पाँच वर्ष पहले तक इस मिल ने कभी हिस्सेदारों को दस सैकड़े से कम वार्षिक मुनाफ़ा नहीं बाँटा था। पैंतीस लाख पचपन हजार की पूँजी सब डूब गई; एक पैसा भी नहीं उगाहा जा सका। यह उन सैकड़ों उदाहरणों में से एक है जो आज लंकाशायर में घटित हो रहे हैं। जो लोग, कुछ वर्ष पहले बड़े मालदार समझे जाते थे आज दिवालिया हो गये हैं और फलस्वरूप आत्म-हत्या कर रहे हैं।"

यह जुलाई के आरंभ का पत्र है। अब तो और गहरा प्रभाव पड़ रहा है। लाखों आदमी बेकार हो रहे हैं और सरकार के प्रति असन्तोष बढ़ता जाता है।

आयात-निर्यात के आँकड़े

भारत-सरकार के व्यापार-विभाग ने जून महीने की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उससे मालूम होता है कि जितना माल जून में भारत में आया उससे छः करोड़ चौरासी लाख का अधिक माल विलायत भेजा गया जबकि पिछले साल के जून में दस करोड़ उन्नीस लाख का भेजा गया था। नीचे के आँकड़े देखिए—

भारत में आया माल

जून—१९२९ में	सोलह करोड़ बावन लाख रुपये
जून—१९३० में	तेरह करोड़ सत्तासी लाख रुपये

भारत से जाने वाला माल

जून—१९२९ में	छब्बीस करोड़ एकहत्तर लाख
जून—१९३० में	बीस करोड़ एकहत्तर लाख

कपास और तेलहन की दर गिर जाने के कारण व्यापार में जून महीने में लगभग आठ करोड़ पैंसठ लाख की कमी हुई।

अप्रैल, मई, जून के तीन महीनों में जितना माल भारत में आया उसकी अपेक्षा सत्रह करोड़ एकतीस लाख का माल यहाँ से विलायत को ज़्यादा गया जबकि पिछले वर्ष की इस अवधि में अठारह करोड़ नब्बे लाख का ज़्यादा माल गया था। पिछले साल के इन तीन महीनों में भारत में जितना माल आया था इस साल के इन तीन महीनों में उससे बीस करोड़ का माल कम आया अर्थात् बीस सैकड़ा की कमी हुई। इसी प्रकार यहाँ से जानेवाले माल में भी सत्रह सैकड़े की कमी हुई। पिछले साल के इन तीन महीनों में भारत से जानेवाले और भारत में आनेवाले माल की क़ीमत एक सौ तैंतालीस करोड़ थी अब इस साल के इन्हीं तीन महीनों में इससे छब्बीस करोड़ का कम अर्थात् सिर्फ एक सौ सत्रह करोड़ का माल आया और गया। यह कमी सिर्फ़ कपड़े में नहीं, सभी चीज़ों में हुई है। नीचे के आँकड़े देखिए और गत वर्ष के जून महीने के आँकड़ों से मिलान कीजिए—

चीज़ का नाम	जून १९२९	जून १९३०	कमी
अन्न, आटा इत्यादि	३८ लाख	२१ लाख	१७ लाख
शक्कर	५२ लाख	३८ लाख	१४ लाख
वनस्पति तेल इत्यादि	१०८ लाख	७३ लाख	३५ लाख
मशीनरी	१५७ लाख	१३१ लाख	२६ लाख
लोहा फौलाद	१३४ लाख	९० लाख	४४ लाख
पहिये (गाड़ियाँ)	७ लाख	५६ लाख	२१ लाख
सूती कपड़ा और सूत	३६३ लाख	२६९ लाख	९४ लाख
जोड़	९२९ लाख	६७८ लाख	२५१ लाख

बहिष्कार—आन्दोलन का सबसे ज्यादा प्रभाव ब्रिटेन पर पड़ रहा है। नीचे के आँकड़े देखिए—

इंग्लैंड से आने वाला माल

जून १९२९	७१६ लाख रुपये
जून १९३०	५५५ लाख रुपये
कमी	१६१ लाख रुपये

मार्च से जून तक १९२९	२७३८ लाख रुपये
मार्च से जून तक १९३०	२०७४ लाख रुपये
कमी	६६४ लाख रुपये

इस प्रकार अप्रैल, मई, जून के तीन महीनों में पिछले वर्ष के इन्हीं तीन महीनों से इंग्लैण्ड से भारत में छः करोड़ चौसठ लाख का माल कम आया। यही नहीं ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य अंगों से भी इस वर्ष कम माल आया और सारे ब्रिटिश साम्राज्य के आँकड़े देखने से पता चलता है कि इन तीन महीनों में पिछले वर्ष के इन्हीं तीन महीनों की अपेक्षा नौ करोड़ अट्ठावन लाख का माल (ब्रिटिश साम्राज्य से) भारत में कम आया। आँकड़े देखिए—

ब्रिटिश साम्राज्य से आनेवाला माल

जून १९२९	८८८ लाख रुपये
जून १९३०	६९९ लाख रुपये
कमी	१८९ लाख रुपये

मार्च से जून १९२९ तक	३४८३ लाख रुपये
मार्च से जून १९३० तक	२५२५ लाख रुपये
कुल कमी	९५८ लाख रुपये

दुःख की बात यह है कि जहाँ ब्रिटिश माल के बहिष्कार की ओर लोगों का इतना ध्यान रहा है वहाँ अन्य विदेशों से आनेवाले माल के बहिष्कार की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। आँकड़े देखिए—

अन्य विदेशों से आया माल

मार्च से जून १९२९ तक	२७४५ लाख रुपये
मार्च से जून १९३० तक	२४५७ लाख रुपये
कमी	२८८ लाख रुपये

जून में पिछले साल के जून की अपेक्षा ७६ लाख का विदेशी माल भारत में कम आया।

लंकाशायर का कपड़ा

लंकाशायर (इंग्लैण्ड) से आनेवाले कपड़े में बहुत कमी हुई है। पिछले साल के जून में जितना कपड़ा आया था इस साल जून में उससे निरासी लाख एकतालीस हज़ार रुपये कम मूल्य का कपड़ा आया। विवरण यह है—

वस्तु	जून १९२९	जून १९३०
सूत	३,२१४,७७१ रु०	१,४७९,९६० रु०
रूमाल	१,४,७१३ रु०	१४,५९६ रु०
मोज़े	१३,०५९ रु०	५,२०६ रु०
भूरा कपड़ा	३,७६८,५९३ रु०	२,३७०,१४६ रु०
सफेद कपड़ा	९,२५२,४९१ रु०	६,१०५,२२६ रु०
रंगीन कपड़ा	६,५०६,१५५ रु०	४,६९३,१४९ रु०
फेण्ट्स	२१४,४०६ रु०	६५,५३५ रु०
जोड़	[illegible],०७४,१८८ रु०	१४,७३३,८१८ रु०

सूत के आयात में भी कमी देखिए—

अप्रैल से जून १९२९ तक	१५४८ लाख रुपये
अप्रैल से जून १९३० तक	११०८ लाख रुपये
कमी	४४० लाख रुपये

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि विगत तीन महीनों में बहिष्कार-आन्दोलन से ब्रिटेन के व्यापार को कड़ा धक्का पहुँचा है। यदि हम राष्ट्रीय संग्राम के इस अंग पर ज़रा अधिक ध्यान दें तो हमारी सफलता निश्चित है।

'सुमन'

'प्रेस आर्डिनेन्स' का राक्षस

सैकड़ों पत्र बन्द

कुछ दिन पहले असेम्बली में एक सदस्य के पूछने पर भारत-सरकार के होम-मेम्बर (स्वराष्ट्र सदस्य) श्री हेग ने जो विवरण दिया उससे मालूम होता है कि अबतक सैकड़ो पत्र 'प्रेस आर्डिनेस' के शिकार हो चुके है । नीचे १५ जुलाई तक इस काले कानून के शिकार हुए पत्रो की सरकारी सूची दी जाती है । कई नाम अपनी तरफ से सम्पादक ने जोड़ दिये है । इसमें सिर्फ पत्रों के नाम हे सैकड़ो प्रेसो से जमानत मॉगी गई है । उनके नाम नहीं मिल सके और ज्यादातर मामलो में प्रेसों से ही जमानते मॉगी गई है क्योंकि इससे अखबार के साथ किसी प्रकार के भी मुद्रण और प्रकाशन के सारे साधन ही जप्त हो जाते हैं ।

मद्रास प्रान्त

पत्र का नाम और स्थान	जमानत की रकम	विशेष	परिणाम
किस्तना पत्रिका (किस्तना)	१०००)	सफाई नहीं दी	बंद
सुखोदयम् (उत्तर अकाट)	,,	,,	,,
दरबार (गंतूर)	,,	निवेदन करने एवं सफाई देने पर नोटिस वापिस ले ली	
सिंहापरि (नेलोर)	५००)	सफाई नहीं दी	बंद
देशभक्तम् (त्रिचनापल्ली)	१०००)	,,	,,
कांग्रेस (पूर्व गोदावरी)	२५००)	,,	,,
स्वदेशमित्रम (मद्रास)	,,	,,	पीछे जमानत जमा करदी
सुरान्दम सॉंगू (मद्रास)	१०००)	,,	बंद
तामिल नायडू ,,	,,	,,	पीछे जमानत जमा करदी
तम नाडू ,,	१५००)	,,	बंद
आनन्दवाहिम ,,	१०००)	,,	,,

सरस्वती	(मद्रास)	१०००)	सफाई नहीं दी	बन्द
'माई मेगजीन'	,,	,,	,,	,,
आन्ध्र पत्रिका	,,	२०००)	,,	पीछे जमानत जमा करदी
स्वराज्य	,,	२५००)	,,	बंद
सालंकव पत्रिका		१०००)	,,	ठीक पता नहीं लगा
नवशक्ति (मद्रास)		,,	,,	बंद
सत्याग्रही (प० गोदावरी)		जमानत की रकम का पता नहीं चला	,,	,,

बम्बई प्रान्त

फ्री प्रेस बुलेटिन (बम्बई)		५००)		जमा कर दी
फ्री प्रेस जर्नल	,,	,,		,,
आफताब	,,	१०००)		बंद
नवजीवन	,,	८००)		पत्रका प्रकाशन ही नहीं हुआ
श्रद्धानन्द	,,	२०००)		बंद
हिन्दू कर्तव्य	,,	८००)		पत्रका प्रकाशन ही नहीं हुआ।
दैनिक 'हिलाल'	,,	२०००)		जमानत नहीं दी। पुलिस कमिश्नर ने प्रकाशक पर आर्डिनेंस की २२ वीं धारा के अनुसार मुकदमा चलाने की आज्ञा दी।
सायंकाल	,,	८००)		पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
सिंधी	(सक्खर)	५००)		जमानत जमा कर दी
यंग लिबरेटर	(बम्बई)	१०००)		बन्द
सोंटा	,,	,,		पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
महरट्टा	(पूना)	२०००)		जमानत जमा करा दी
पारसी पत्रिका	(बम्बई)	१५००)		प्रकाशित नहीं हुई
कलियुग	,,	२०००)		बन्द
वर्कर्स वीकली	,,	,,	सफाई नहीं दी	पुलिस कमिश्नर ने बिना जमानत दिये पत्र प्रकाशित करने के कारण मुकदमा चलाने की आज्ञा दी
नौबत	(बम्बई)	२०००)	कोई सफाई नहीं	बन्द
विद्यार्थी (अमलनेर पूर्व खानदेश)		१०००)		बन्द

श्री लोकमान्य (बम्बई)	१०००)		पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
क्रान्ति ,,	२०००)	कोई सफाई नहीं	बन्द
राजस्थान हिन्द ,,	१०००)		बन्द
आफताब ,,	२०००)		पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
प्रजाबन्धु (अहमदाबाद)	१०००)	कोइ सफाई नहीं	बन्द
डंका (बम्बई)	१०००)	,,	बन्द
हिन्दुस्तान अने प्रजामित्र (बम्बई)	२०००)	,,	जमानत जमा करा दी
शक्ति (अहमदाबाद)	१०००)	,,	जमानत नहीं दी। आज्ञा भंग की
मेसेंजर ऑव् यूथ (बम्बई)	२०००)		पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
नवजीवन (अहमदाबाद)	,, ,,	कोई सफाई नहीं ,,	आज्ञा भंग। प्रेस पर ताला और पुलिस का पहरा
यंग इण्डिया ,,	,,	,,	,, ,, ,,
हिन्दू जाति (करांची)	५०००)	,,	प्रकाशक साचानन्द फेरूमल पर हैदराबाद जेल में नोटिस तामील हुई। उन्होंने करांची जेल में भेज दिये जाने की दर्खास्त की है जिससे प्रबन्ध कर सके। पत्र प्रकाशित हो रहा है।
कलियुग (बम्बई)	२०००)	कोई सफाई नहीं	बंद
प्रजामत ,,	,,	,,	बंद
नूतन गुजरात (अहमदाबाद)	१०००)	,,	बंद
बम्बे वर्तमान (बम्बई)	१५००)	,,	पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
टार्च बेयरर (बम्बई)	,,	,,	पत्र प्रकाशित नहीं हुआ
सुदर्शन (सूरत)	१०००)	,,	बंद

संयुक्तप्रान्त

सैनिक (आगरा)	२०००)		बंद
शक्ति (अलमोड़ा)	१०००)		बंद
आज (बनारस)	२०००)		बंद
प्रताप (कानपुर)	३०००)		बंद
स्वाधीन प्रजा (अलमोड़ा)	,,		बंद
दि डिस्ट्रिक्ट गजट (आजमगढ़)	५०००)		बंद

सच (लखनऊ)	१०००)		परिणाम का पता नहीं
परिवर्तन (सहारनपुर)	,,		परिणाम का पता नहीं
वर्तमान (कानपुर)	२०००)		जमानत नहीं दी। बंद होगया था, फिर निकलने लगा। विचारणीय।
चाँद (प्रयाग)	,,		बंद हो गया था। जमानत कम कर देने पर जमानत देकर निकलने जा रहा है।
देशमित्र (बलिया)	१०००)		बंद
क्षत्रिय युवक (लखनऊ)	,,		परिणाम का पता नहीं
श्वेताम्बर जैन (लखनऊ)	,,		परिणाम का पता नहीं

पञ्जाब

ज़मींदार (लाहौर)	२५००)	कोई सफाई नहीं	जमानत जमा कर दी
प्रताप ,,	,,	,,	जमानत जमा कर दी
अकाली (अमृतसर)	,,	,,	बन्द
असली कौमीदर्द ,,	,,	,,	बन्द
गुरु घण्टाल (लाहौर)	,,	,,	बन्द
हक़ीक़त (मुल्तान)	१५००)	,,	बन्द
तर्जुमाने सरहद (रावलपिण्डी)	२०००)	,,	बन्द
सहीब ,,	,,	,,	बन्द
कीरती उर्दू (अमृतसर)	५०००)	,,	बन्द
कीरती गुरुमुखी ,,	,,	,,	बन्द
देशसेवक (जालंधर)	,,	,,	बन्द
धनजीशाह	३०००)	,,	जमानत जमा करदी
बन्देमातरम् (लाहौर)	२५००)	,,	बन्द
कृपाण बहादुर (अमृतसर)	,,	,,	बन्द
झंग सियाल (गुजरानवाला)	,,	,,	बन्द
सुधारक ,,	,,	,,	बन्द
इस्लाह (लायलपुर)	१५००)	,,	बन्द
हरियाना तिलक (झझझर-रोहतक)	१०००)	,,	बन्द
नवजीवन (मुलतान)	२०००)	,,	बन्द
अकाली-ते-परदेशी (अमृतसर)	,,	,,	बन्द
नवजवाने हिन्दुस्तान ,,	१०००)	,,	बन्द

पीपुल	(लाहौर)	२०००)	,,	जमानत जमा कर दी
वीरभारत	,,	१०००)	,,	जमानत जमा कर दी
मिलाप	,,	१५००)	,,	बन्द
हमदर्द	,,			पता नहीं ।
धर्मवीर	(अमृतसर)	१०००)	,,	बन्द
		बर्मा प्रान्त		
रंगूनमेल	(रंगून)	२०००)	,,	बन्द
स्वतंत्रम्, तामिल पत्र	,,	,,	,,	बन्द
उनथानू थादिनसा बर्मीपत्र	,,	१० ०)	,,	बन्द
प्राची-प्रकाश	,,	२० ०)	,,	बन्द
देशोपकारी	,,	,,	,,	बन्द
		बिहार-उड़ीसा		
सर्चलाइट (पटना)		३०००)		बंद
देश (पटना)		×		बंद
महावीर (पटना)		×		बंद
युवक (पटना)		×		बंद
		मध्यप्रान्त		
लोकमत (जबलपुर)		१०००)	कोई सफाई नहीं	बंद
कर्मवीर (खँडवा)		५००)		बंद
		आसाम		
आसामीय (गोहाटी)		२०००)		बंद
जनशक्ति (सिलहट)		,,		बंद
दि सिलहट क्रानिकल		१०००)		बंद
पांचजन्य (करीमगंज)		५००)		पता नहीं
		सीमाप्रान्त		
सरहद (पेशावर)		२०००)		बंद
पख्तूँ (पेशावर)		,,		बंद
केसरी (पेशावर)		,,		बंद
		दिल्ली		
तेज		५०००)		बंद हो गया था; अब निकलने लगा है
हिन्दुस्तान टाइम्स		,,		बंद था । अब फिर निकला है ।
अर्जुन		,,		बंद था अब फिर निकला है ।

हिन्दूसंसार	२०००)	बंद
शुद्धि-समाचार	५००)	जमानत दे दी।
रियासत	२०००)	जमानत दे दी।
मिल्लत	२०००)	प्रार्थना करने पर जमानत वापस लेली गई
अलजमैयत	५००)	जमानत देदी
पैगामे जंग	२०००)	जमानत देकर निकलने लगा है।
क़ौमी गजट	२०००)	डिक्लेरेशन दिया गया या नहीं यह पता नहीं।
तिजारत	"	" " "
शक्ति	"	जमानत वापस लेली गई।
इण्डिया	"	"
हुकूमत	"	"
पेशवा	"	"
ख्वाजा स्कूल गजट	"	"
महावीर	"	"
न्यू कैपिटल	"	"
खबरदार	"	"
सार्वदेशिक	"	"
नशीरे सल्तनत	"	"
इण्डियन पोस्ट	"	"
हिन्दुस्तान	"	"
फौजी मेगजीन	"	"

इस सूची में केवल पत्रों के नाम हैं। पर प्रेस से जमानत माँगने की वजह से भी बहुतेरे पत्र बन्द हुए हैं। कुछ ने जमानतें दे दी है। *अभ्युदय (प्रयाग), *कांग्रेस समाचार (प्रयाग), स्काउट प्रेस (दिल्ली), नवाकाल (बम्बई), *लिबर्टी (कलकत्ता), *एडवांस (कलकत्ता), *अमृतबाजार पत्रिका (कलकत्ता), *मतवाला (मिर्जापुर), *स्वदेश (गोरखपुर), *तरुण-राजस्थान (ब्यावर), *दयानंद प्रेस (*राजस्थान-संदेश अजमेर) *सौराष्ट्र (रनपुर), '*जन्मभूमि' (मद्रास), मजूर (अहमदाबाद) *हंस (सरस्वती प्रेस) इत्यादि अनेकानेक के नाम सरकारी सूची में नहीं हैं। जिन पर 'स्टार' हैं वे बन्द हो गये हैं। दो-एक पीछे जमानत देकर निकलने लगे हैं। इस प्रकार सैकड़ों पत्र बन्द हो गये हैं।

कागज़ का आयात

पिछले साल भारत में विदेशों से ३६१२५० पौण्ड का पैकिंग का कागज़ आया जिसमें इंग्लैण्ड से आये कागज़ का दाम सिर्फ ३०००० पौण्ड था। स्वीडन और जर्मनी से क्रमशः १३८७५० और ७८७५० पौण्ड पैकिंग का कागज़ आया।

यद्यपि पहले साल की अपेक्षा भारत में छपाई के कागज़ की खपत ७८६८७६ पौण्ड से ९२४३७५ पौण्ड मूल्य की हो गई पर ब्रिटेन से आनेवाले कागज़ के परिमाण में पिछले साल से भी कमी हो गई। जहाँ विगत वर्ष १८१८७५ पौण्ड मूल्य का कागज़ आया था वहाँ इस वर्ष १५७५०० पौण्ड मूल्य का ही कागज़ आया। "सुमन"

दमन और अत्याचार

वीसापुर जेल में भीषण अत्याचार

अभी तक सरकार का दमन-चक्र बाहरवालों पर ही चलता था। लेकिन अब वह जेल के बंदियों पर भी चलने लगा है। इस बार सत्याग्रहियों को जेल में बुरी तरह सताया जाता है। अनेक प्रकार के कष्ट दिये जाते हैं। तरह-तरह से उन्हें तंग किया जाता है। अभी हाल ही बंबई के निकट ही वीसापुर जेल के अत्याचारों की एक रिपोर्ट श्री मूलराज करसनदास, वालूभाई टी० देसाई, डा० एम्० बी० वेलकर और सेठ विट्ठलदास भगवानदास ने कांग्रेस के सभापति सरदार वल्लभ भाई के सामने पेश की थी। उसको सुनकर तो एक बार दिल काँप उठता है। उसका सार नीचे दिया जाता है।

" × × × जेल में कैदियों के रहने के लिए ११ बैरकें हैं। प्रत्येक बैरेक के बीच में तारों की बाड़ लगी हुई है। मकान सब कच्चे साधारण छप्परवाले हैं। दीवार ३, ३॥ फुट ऊँची हैं। उसके ऊपर लोहे के ७ फुट ऊँचे सींखचे लगे हुए हैं। ये शायद मकान को हवादार बनाने की ग़रज़ से बनाये गये हैं लेकिन इससे कैदियों के कष्ट में और वृद्धि ही हुई है। इन सींखचों के अंदर से रात को सर्द हवा आती रहती है। कैदियों को बिछाने और ओढ़ने दोनों के लिए केवल एक ही कम्बल दिया गया है। जिसके फल-स्वरूप रात को सब कैदियों को मारे ठण्ड के ठिठुरना पड़ता है।

प्रत्येक बैरेक की लंबाई-चौड़ाई १२८" × १६" है जिनमें से १० वर्ग फुट की जगह तो टट्टियों में चली गई है। इसमें ११० कैदी शाम के ६ बजे से सुबह ५॥ बजे तक ढोरों की भांति बंद कर दिये जाते है। रविवार को तो दोपहर के २ बजे से ही बंद कर दिया जाता है। इस प्रकार कैदियों को अन्य दिन ११॥ घंटे तथा रविवार को १५॥ घंटे बंद रहना पड़ता है। कैदियों को दो क़तारों में सोना पड़ता है। इनके बीच में मुश्किल से २ फुट का अंतर रह पाता है। इससे उन लोगों को करवट बदलने में भी बड़ी तकलीफ होती है। बहुत से लोग केवल पीठ के सहारे ही पड़े रहते हैं। यदि करवट बदलनी होती है तो आपस में एक दूसरे को धक्का लगता है। जब कैदी अपने बैरेक में बंद कर दिये जाते हैं तो उसके बाद उन्हें अपने बिछौने पर से उठने या हिलने की आज्ञा नहीं है। फर्श जिस पर कैदी लोग सोते हैं, साधारण मिट्टी की है और अच्छी तरह कुटी हुई भी नहीं रहती। छोटे-छोटे कंकड़ ऊपर उठे रहते हैं जिससे चलने में भी कष्ट होता है तब फिर सोने की कौन कहे ? कैदी लोग जब अपने-अपने बैरेक में बंद कर दिये जाते हैं तब उसके बाद किसी को टट्टी या पेशाब करने के लिए नहीं जाने दिया जाता जबतक कि डाक्टर यह लिखित सर्टिफिकेट न देदे कि हाँ फलाँ कैदी अपनी शंका समाधान करने जा सकता है।

इसके अलावा जेल के अहाते में सांप, बिच्छू तथा गो (विष-खोपड़ा) का ज़ोर बहुत अधिक है। बैरेक के अन्दर बिच्छू तथा गो निकलते हैं और एक दो लोगों को काटा भी है।

५॥ बजे सुबह कैदियों को टट्टी ले जाया जाता है। प्रत्येक बैरेक में १७ टट्टियाँ है। इसलिए बहुत से लोगों को तो आध घंटे तक 'उंकड़' (टट्टी जाते समय जैसे बैठते हैं वैसे) अपने पैर पर हाथ दिये बैठना पड़ता है जो बहुत ही कष्टप्रद होता है। + + + । टट्टी के अन्दर पानी का कोई इन्तिज़ाम नहीं है। कैदियों को आधे नंगे आब-दस्त

लेने के लिए कुछ दूर दूसरी जगह चलकर जाना पड़ता है। उनको टट्टी जाने, पानी पीने के लिए एक ही बर्तन दिया जाता है। जेल में नहाने-धोने का कोई इन्तिजाम नहीं है। जेल के आहाते के बाहर के एक तालाब में इन्हें नहलाने के लिए ले जाया जाता है। वहां भी प्रत्येक मनुष्य को २ मिनिट से अधिक नहाने के लिए समय नहीं दिया जाता। नहाने की इस असुविधा के कारण कई कैदियों को चर्म-रोग हो गये हैं। पहनने के लिए कपड़ों का एक ही जोड़ा दिया गया है। वह भी सप्ताह में एक ही बार धोया जाता है। जबतक कपड़ा सूखता है तबतक कैदियों को केवल लंगोट पहन कर ही रहना पड़ता है।

भोजन भी लोगों को बड़ा खराब दिया जाता है। रोटियों में कंकड़ तथा दाल में कीड़े मकोड़े तो साधारण बात हैं। (कांग्रेस की जांच-कमेटी की रिपोर्ट से)

'मैं प्रत्येक गांधी टोपीवाले को मार डालूँगा'

नये खड़ा घोड़ा के पास जबसे श्री गोपालराव कुलकर्णी ने अपनी छावनी डाली है तबसे सरकारी आंखें सत्याग्रहियों को घूर रही हैं।........ कुछ स्वयंसेवकों तथा १५ के लगभग व्यापारियों के साथ श्री अजरामर दोशी गांव में चंदा करने गये। लेकिन पियर्सन साहब (डिप्टी कलेक्टर) ने उनको उसी समय गांव में से निकाल दिया। पुलिस उनको गांव के बाहर दूर तक छोड़ने गई। वहाँ भी पियर्सन साहब आ गये और भाई दोशीजी को एक-दो हंटर लगाते हुए कहा "मैं प्रत्येक गांधी टोपीवाले को मार डालूँगा" इसके बाद इन्होंने पुलिस को मारने का हुक्म दिया। पुलिस ने भी बन्दूक के कुन्दों से अपनी स्वाभाविक आदत के अनुसार हैवानियत की मार मारी और उन्हें वहां से निकाल दिया। श्री दोशी पेर में से खून बहने के कारण वहीं पड़े रहे। उनके साथी पास के गांव में से गाड़ी लाकर उन्हें पाटड़ी ले गये। वहां के डाक्टर की रिपोर्ट है कि—*उनका दाहिना वृषण सूजकर दूना हो गया है*। छूने से या दबाने से दर्द होता है। छाती की दाहिनी ओर भी दर्द होता है।

"*सुबह जब हम धावा बोलने गये तब फौजदार ने मुझे तीन लाठी मारी। फिर भी मैं गिर कर खड़ा हो गया।* उसके बाद मुझे धक्का देकर खाई में गिरा दिया गया। खाई में से मैं १० या १५ बार निकला, लेकिन हर बार मुझे खाई में धकेल दिया गया। लगभग ११ बजे मुझे एक अंधेरी और बग़ैर हवावाली कोठरी में ले गये। वहाँ एक अंग्रेज़ सार्जण्ट ने ४-५ कोड़े लगाये और दो घण्टे तक वहाँ रोक रक्खा। उसके बाद बाहर निकाल कर बूट की ठोकरें मेरे सिर में मारी। और चार पुलिसवालों की निगरानी में मुझे धूप में शाम तक बिठा रक्खा। इस बीच में मैं बेहोश होगया। शाम को मुझे फिर खाई में डाल दिया गया। वहाँ से रेडक्रास वाले मुझे अस्पताल ले आये।"

हनुमंतराव कोलते स्वयंसेवक नं० ६१ विलेपारले

पुलिस का पाप

२४ जुलाई को लुधियाना में बहिष्कार-सप्ताह के जुलूस को भंग करने के लिए पुलिस ने लाठियों की वर्षा की थी। उसके विषय में एक सरकारी बयान निकला था। इसके खंडन में १२ महिलाओं ने पञ्जाब गवर्नर के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी है। उसका अंश हम यहां देते हैं:—

"यदि शिमला से निकले ६ तारीख के सरकारी बयान में ये निश्चयात्मक शब्द न होते तो हम इस विषय में

बिलकुल चुप रहतीं, और पुलिस के उस समय के व्यवहार का न्याय करने का काम गवर्नमेण्ट और जनता पर ही छोड़ देतीं। वे शब्द हैं, यह सर्वथा झूठ है कि स्त्रियों को चोटें आईं। कोई भी पुलिस-द्वारा स्पर्श तक नहीं की गई।' यदि इस बयान का खण्डन न करें तो हम अपने आप को धोखा देने की अपराधिनी होंगी।

हमारी धारणा है कि सरकार की जानकारी का ज़रिया पुलिस ही है—क्योंकि जिन स्त्रियों ने चोटें खाई हैं या दूसरों को खाते देखा है—मालूम होता है, उनसे कुछ भी पूछ-ताछ नहीं की गई है × × × ×।

२४ तारीख को पुलिस की क्रूर-दृष्टि जिस जुलूस पर अड़ गई थी, उसमें हम भी शामिल थीं। ज्योंही हम गिरजाघर के पास मोड़ पर पहुँची कि पुलिस हम पर बिना किसी पूर्व-सूचना के लाठी बरसाने लगी। नीचे जिनके हस्ताक्षर हैं उनमें से एक को छोड़कर सबके चोटें आईं, जो तुरन्त ही डाक्टरों को दिखाई गईं।

पुलिस ने राष्ट्रीय झण्डे का साफ़-साफ़ अपमान किया, और उन्हें बलपूर्वक छीना। जिनके पास झण्डे थे, उन्हें, उनकी रक्षा में, चोटें भी आईं। सरकार का यह बयान झूठा है कि झण्डे उसी स्थान पर छोड़ दिये गये थे × × ।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

लुधियाने की पुलिस का आन्दोलन के प्रारम्भ से ही स्त्रियों के प्रति बुरा बर्ताव रहा है × × लुधियाना-पुलिस के कुछ सभ्यों ने गालियों, अश्लील गीतों, अश्लील इशारों, बलपूर्वक धक्कों और आक्रमणों-द्वारा स्त्रियों का अपमान किया है।

यह पत्र हमने केवल सत्य प्रकाशित करने के लिए लिखा है। हम कोई सुविधा, रक्षा या सान्त्वना की माँग नहीं करतीं ।"

आपकी

× + ×

हस्ताक्षर—१. लज्जावती
२. शकुन्तला देवी
३. शान्तिदेवी
४. इसरादेवी
५. तेज कौर
६. रामरक्खी
७. आत्मादेवी
अंगूठा—८. पार्वती
९. परमेश्वरी
१०. परभी
११. शान्ती
१२. रत्नी

डायरशाही

श्री के० सी० नियोगी ने १२ जुलाई को असेम्बली में जो भाषण दिया था, उसके कुछ अंश हम नीचे देते हैं।

"मैंने अनुभव किया है कि डायरशाही की प्रवृत्ति—जिसने जलियाँवाला बाग की घटना उपस्थित की—सारे देश में फैल रही है। सारे भारत में, जगह-जगह रोज़मर्रा जलियाँवाला बाग बन रहे हैं। × × ×

❀ ❀ ❀

"मैं आपसे कह सकता हूँ—सरकारी कर्मचारी झूठ बोल सकते हैं—लेकिन 'कैमरा' झूठ नहीं बोल सकता। यह एक दस साल के लड़के का फोटो है, जिसे इतना पीटा गया कि वह बेहोश हो गया। × ×

❀ ❀ ❀

"जब पुलिस की ज़्यादतियाँ हद से ज़्यादा बढ़ गईं तो कुछ उत्तरदायी व्यक्तियों की सभा कलकत्ते में की गई। × × × ×। सभा ने निश्चय किया कि एक जाँच-कमेटी नियुक्त की जाय जो घटना की स्वयं जाँच करे और रिपोर्ट दे। कमेटी के अध्यक्ष श्री जे० एम० बसु, एम० एल० सी०, (अध्यक्ष इण्डियन एसोसियेशन, जो लिबरल दल के एक प्रमुख व्यक्ति हैं) थे। × × × ×
दूसरे सदस्य थे—१. श्री अखिलचन्द्र दत्त सीनियर एडवोकेट, जो बंगाल-कौंसिल के बहुत दिनों तक सदस्य रहे हैं, मार्ले-मिण्टो के ज़माने में भी, २. श्री पी० एन० दत्त, बैरिस्टर, भूतपूर्व एम० एल० सी; ३. श्री पी० बेनर्जी व्यवस्थापक सभा के सदस्य, जो कांग्रेस के टिकट पर खड़े हुए सभासद को हराकर सदस्य बने हैं; ४ डा० जे० एन० मित्र, कलकत्ता के मशहूर चिकित्सक, ५ मैं, और ६ कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री पी० आर० सेन, जिन्होंने अभी तक राजनीति में कोई भाग नहीं लिया है। मैं और अध्यापक सेन सेक्रेटरी थे।

सबसे पहले हम कण्टाई गये। × × ×। और सबसे पहली घटना यह हुई कि हम सब गिरफ़्तार कर लिये गये × × × × ×

पिचबोनी कण्टाई से ६ मील है। जब हम पिचबोनी के पास पहुँचे तो कुछ गाँववाले हमारे पास इकट्ठे हो गये, ठहरने का अनुरोध किया। बहुत से आर्मीण दुःखी मालूम होते थे। उन्होंने शिकायत की कि कुछ अफ़सर और पुलिसवाले घरों पर आये और उन्होंने लाठी से मारा, उनकी सम्पत्ति का अधिकांश तोड़-फोड़ डाला, कुछ लोगों ने अपने शरीर पर ताज़ी चोट दिखलाई। शिकायतों की सत्यता की जाँच करने को कमेटी ने उनके घरों का निरीक्षण करने का निश्चय किया। × × × ×। वे सुवर्णदीघी गाँव में गये। कुछ दूर पर कुछ अफ़सर और पुलिस के लोग लाठी और बन्दूक़ों-सहित दिखाई दिये। भीमचरन सामन्त का घर देखा। वहाँ आक्रमण के चिन्ह ताज़ा ही थे। घर की अधिकांश चीज़ें बिखेर दी गई थीं और कुछ तोड़-फोड़ डाली गई थीं। चावल और धान ज़मीन पर बिखरे हुए थे। अनाज के बोरे फाड़ डाले गये थे—बहुत-सा अनाज बाड़े में बिखरा हुआ था। × × ×। जब हम जाँच कर रहे थे × × × × कि झोंपड़ी में एक अफ़सर पुलिस के सिपाहियों-सहित आया, जिसके पास बन्दूकें और कुल्हाड़ियाँ थीं। × × ×। हम गिरफ़्तार कर लिये गये।

❀ ❀ ❀

कुछ आदमी हमारी मोटर के पास आये और अपने बदन की चोटें दिखाईं। कुछ चोटें ताज़ी थीं। × × × एक आदमी जो चलने-फिरने के नाक़ाबिल था, बहुत ज़्यादा पीटा गया था—और कंधों पर ले जाया जा रहा था। एक बूढ़ा आदमी प्रायः हमारी उपस्थिति में, केवल इस अपराध में कि वह हमारे साथ चल रहा था पीटा गया।

❀ ❀ ❀

तब महेन्द्रनाथ सामन्त के घर गये। × × × बहुतेरे मिट्टी के बर्तन तोड़ डाले गये थे, किताबें फाड़ डाली गई थीं—शायद बच्चों की प्रारम्भिक पुस्तकें। कुछ पुस्तकें और कागज़ बरामदे में, आंगन में बिखरे हुए थे। घर के छप्पर का भाग खींच डाला गया था। × × ×।

तब कमेटी के कुछ सदस्यों ने पास के एक घर का निरीक्षण किया जहाँ गर्भ के पूरे दिनों की अवस्था में एक १८ साल की लड़की रहती थी। उसका नाम अम्बू था। जो अभी तक दर्द और आघात से पीड़ित बरामदे में पड़ी हुई थी। सांस भी कठिनाई से आती थी। उसकी आंसूभरी आंखे बन्द थीं। उसने कठिनाई से अपना बयान दिया। उसने कहा कि उसकी छाती मरोड़ी गई थी—स्तन की घुंडियों पर धक्के लगाये गये। यह सब सब-डिवीजनल—अफसर की उपस्थिति में हुआ था।

※ ※ ※

सात की गवाहों के बयान लिये गये, जिनमें कई के शरीर पर अभी तक चोटें थीं। × × ×। सब ने बेत और लात-घूसों के द्वारा हमले किये जाने की शिकायत की। उन्होंने यह भी कहा कि उनके बदन के कपड़े फाड़ डाले गये और कुछ ऐसे कपड़े बताये भी। एक प्रौढ़ा कुरानी दासी नामक स्त्री ने कहा कि उसके साथ इस बुरी तरह पेश आये कि वह मूर्छित हो गई।

※ ※

फतासपुर थाने की सीमा में १७ गवाहियाँ ली गईं। १ जून १९३० को यहाँ पर गोली चली थी, जिससे दो व्यक्ति मरे थे। मृतक के पिता की गवाही ली गई। बहुत से गांववालों ने अपने बदन की चोटें बतलाई—किसी-किसी ने २०-२२ बेतों की चोटें—पीठ, बाज़ू, जांघ, और यहां तक कि मुँह पर भी दिखलाईं।

घर की चीज़ों, बर्तन, और अनाज के नुकसान के अलावा, नकद रुपयों की हानि भी शिकायत की गई। एक धनी ग्रामीण ने १३०७) रु० की हानि होने की शिकायत की। लगभग दस व्यक्तियों ने सोने, चांदी के ज़ेवरों की हानि की शिकायत की। × × × ×

खरीका—पटना में एक चूड़ी का कारखाना है, जहाँ स्त्रियाँ ही चूड़ियाँ बनाती हैं, उनको बनाई हुई चीजें नष्ट की गईं।

※ ※ ※ ※ ※ ※ ※

कमेटी के कुछ सदस्यों ने ऐसे सात घरों का मुआयना किया, जहाँ की, यह शिकायत थी कि, बिला वजह, स्थानीय अफसर, जनाने मकानों में घुस गये और वहाँ की चीज़ें नष्ट-भ्रष्ट कर दीं। × × कुछ १०२ गवाहियाँ लीं, जिनमें १७ स्त्रियाँ थीं।

रोज़ के काम

अहमदाबाद

अहमदाबाद में कांग्रेस सप्ताह मनाया जा रहा है। दूसरे दिन स्वयंसेवक गैरकानूनी नमक बेचने के लिए निकले। मानिक चौक पुलिस चौकी के पास नमक की गाड़ी ज्योंही आई कि एक पुलिस के जत्थे ने आकर स्वयंसेवकों पर लाठियाँ चलानी शुरू कीं। २० स्वयंसेवक घायल हुए हैं।

१२ अगस्त

मद्रास

मद्रास के फ़ोर्ट स्क्वायर में दो सत्याग्रही एक सभा में शाम को भाषण दे रहे थे। इन दोनों को पुलिस ने

लाठियों से बुरी तरह पीटा। एक को पकड़कर हवालात में रक्खा है। दूसरा बेहोशी की हालत में अस्पताल पहुँचाया गया है। उसके हाथ, पैर, पीठ, और गर्दन में चोट आई है।

११ अगस्त

अमृतसर

ता० २३ और २४ जून को अमृतसर जिले के थारू नामक गाँव में पुलिस ने जो अत्याचार किया था उसकी जाँच के लिए अमृतसर बार असोसियेशन ने एक कमेटी नियुक्त की थी। उसने जाँच करके अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसमें वे लोग इस निश्चय पर आये हैं—

"पुलिस के लोगों ने आधी रात को गाँव घेर लिया और सोते हुए लोगों को पीटना तथा और तरह-तरह से सताना शुरू किया। उन लोगों ने वहाँ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया।

ऊँचे घराने के लोगों के मुँह में थूकना तथा खाद्य-पदार्थों को इधर-उधर मिला देना, तथा आटे और घासलेट का तेल छिड़क देना हद दर्जे का कमीनापन प्रकट करना है।"

अमृतसर ११ अगस्त

मद्रास का एक गाँव

मद्रास के पास के एक गाँव में कुछ सत्याग्रही ताड़ी की दुकानों पर धरना दे रहे थे। उनको देखने एक भीड़ जुट गई। पुलिस ने भीड़ को बिखेरना चाहा। जब भीड़ नहीं हटी तो पुलिस ने गोलियाँ चलाईं। जिससे ३ आदमी मरे और ४ घायक हुए।

६ अगस्त

बम्बई

बम्बईवालों का तो लाठियों से खूब अच्छा परिचय हो गया है। वहाँ के निवासी सरकारी शासन को 'लाठी राज' के नाम से ही पुकारते हैं। वहाँ के वीर स्वयंसेवकों ने सच्चे सत्याग्रहियों की भाँति पुलीस की अमानुषिक लाठी-वर्षा के बीच शांतिपूर्वक सर झुकाकर चुपचाप अत्याचार सहन करने का जो आदर्श उपस्थित किया है और नारियल के गोलों की तरह तड़-तड़ फूटते हुए सिरों से निकलनेवाली रक्तधारा से जिस प्रकार वे मातृभूमि की वेदी को रँगते रहे हैं वह देश की स्वाधीनता के इतिहास में अपूर्व घटना है। १२ जून की लाठी-वर्षा के सम्बन्ध में तो प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक श्री ब्रेलनफर्ड ने यहाँ तक लिख दिया था कि 'भारी गुण्डई सरकारी आदमियों की थी। सत्याग्रहियों ने तो ईसा की 'दूसरे गाल को भी आगे कर दो' की नीति का सफल उदाहरण उपस्थित किया है।' विगत १ अगस्त की शाम को तिलक-स्मृति दिवस के जुलूस को रात भर (कुकर्सांक रोड और हार्नबीरोड के चौराहे पर) बरसते पानी में रोक कर एवं सुबह, नेताओं की गिरफ्तारी के बाद, शांत सत्याग्रहियों पर अंधाधुंध लाठी चलाकर पुलीस ने अपनी राक्षसी प्रकृति का जो परिचय दिया है उसकी निंदा गोरे सम्पादकों एवं पत्रों तक ने की है। स्वयंसेवकों के बयान से मालूम होता है कि कइयों के ज़मीन पर गिरकर बेहोश हो जाने पर भी पुलिसवाले पीटते रहे। एक सत्याग्रही के बयान से मालूम होता है कि उसे सार्जेन्ट ने ऐसा घूँसा मारा कि वह गिर गया। फिर उठने पर उसे उठाकर पत्थर की पक्की पट्टी से ज़ोरों से फेंक दिया गया और पीटा गया। दर्शकों पर भी लाठियों की वर्षा हुई और कितने ही घायल हुए। कुल ४०० आदमियों के घायल होने का अनुमान है जिनमें १०० को सख़्त चोटें आई हैं। पुलीस की अमानुषिकता के फल-स्वरूप विगत सोमवार की रात को किंग एडवर्ड मेडीकल अस्पताल में हरगोविंदलालजी नामक एक स्वयंसेवक की मृत्यु हो गई। अस्पताल के एक बड़े अफ़सर के शब्दों में उसकी मृत्यु दिमाग के तन्तुओं के बिखर जाने और खोपड़ी के फट जाने से हुई है।

आधी दुनिया

वह लहर !

देश में, एक सिरे से दूसरे सिरे तक, इस समय वह लहर आई है कि हम एकदम उसको पूरी तरह महसूस भी नहीं कर पा रहे हैं। अभी कल तक जो भारतीय स्त्रियाँ बदनाम थीं—इसलिए कि वे घरों में ही बन्द रहती हैं और बाह्य जगत् में क्या कैसा हो रहा है, इसकी रत्ती-भर पर्वाह भी नहीं करतीं, वही भारतीय स्त्रियाँ आज मैदान में पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला रही हैं। सच तो यह है, इस समय एकाएक हमारी माताओं और बहनों ने जो अपना रूप प्रकट किया है, उसने हम पुरुषों के पुरुषत्व को मानों चुनौती दी है। जो पुरुष किसी कारण देश के काम में हीला-हवाला करते अपनी माँ-बहनों को आगे आते देख, उनका हृदय अपने-आप गवाही नहीं देता कि वे पीछे ही दुबके बैठे रहें। यही कारण है, सरकारी दमन, गुण्डापन, लाठी और कहीं-कहीं गोलियों की बौछार के होते हुए भी हमारा मुक्ति-संग्राम दब नहीं रहा; वह बढ़ता जा रहा है और उस वक्त तक उसके दबने की सम्भावना नहीं, जबतक कि अपने ध्येय के पास हम नहीं पहुँच जाते।

स्त्रियों का साहस

स्त्रियों का साहस अनुपम है। बम्बई में स्त्रियाँ दृढ़ता के साथ जमी हुई लाठियों की मार तक खाती रहती हैं। एक सिख महिला—उसने गर्भिणी होने पर भी डटे रहते हुए लाठियों के प्रहार सहे, और जब उसे इस उपलक्ष्य में जनता की ओर से थैली भेंट की गई तो उसने उसे अपने निजी उपयोग के लिए न रखकर सत्याग्रह देश-सेविका-संघ को प्रदान कर दिया ! और, श्रीमती इस्लाम कौर तथा अमृतकौर नाम की दो महिलायें, जो मालवीयजी आदि के साथ गिरफ्तार हुईं, जेल जाते वक्त कहती हैं—

"हमारा रंज और दुःख यही है कि हम पुलिस की लाठियों से न पिट पाईं। × × हमारा दूसरा रंज यह है कि हमें सिर्फ १५ दिन की सजा दी गई, जब कि हमारे बहादुर साथियों भारतीय नेताओं को तीन-तीन महीनों के लिए जेल भेजा गया है। हम चाहती हैं कि भारतीय स्त्रियाँ अपने साथ कोई विशेष व्यवहार नहीं चाहतीं, जो कि पुरुषों से भिन्न हो, और अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए हर तरह की तकलीफें उठाने के लिए तैयार रहें।"

यही नहीं, यह कहते हुए कि 'हमें पंजाबी स्त्रियों का गर्व है कि जिन्होंने अपने ४००० से अधिक पुत्रों को जेल भेज दिया,' उन्होंने ये भी उद्गार प्रकट किये हैं—"हमें बड़ी भारी खुशी होगी, जब कि हजारों की तादाद में पंजाबी स्त्रियाँ अपना सब-कुछ देश के अर्पण करने को आगे आ जायँ।"

वीर सहधर्मिणी

श्रीमती [illegible] जी वीर सहधर्मिणी हैं, जिन्होंने अपने पति डा० ए० पी० जैन को बम्बई में एक साल के लिए जेल जाने पर लिखा है—

"तुम्हारी गिरफ्तारी का समाचार मिला। भारत माता की सेवा करते हुए उसका सच्चा पुत्र होने का सर्वोत्तम प्रमाणपत्र यदि कोई चाहे तो वह जेल-गमन ही है। इससे बढ़िया, और इससे ऊँचा कोई दान नहीं हो सकता।

यदि हो सका तो नौजवान भारत सभा की सहायता से इसे पाने के लिए मैं पूरी तरह तैयार हूँ। तुम्हें इस बारे में ज़रा भी फ़िक्र न करनी चाहिए। मैं तुम्हारा पदानुसरण और *जो कुछ तुमने किया वही करने के लिए तैयार हूँ।* जैसे सामाजिक बुराइयों को दूर करने और अपनी जाति के सामाजिक हित के लिए तुमने लगातार काम किया, ठीक उसी प्रकार इस विपत्ति काल में भी मैं घर की कुछ व्यवस्था करके बम्बई आऊँगी और काम करूँगी।"

यही क्यों, वह लिखते हुए कि "तुम्हें हमारी फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं । हम बिलकुल अच्छी हैं ।" अन्त में वह यह भी लिखती हैं कि "आज हमारे जीवन का सर्व-श्रेष्ठ आनन्द-दिवस है, यहाँ तक कि विवाह के दिन से भी अधिक आनन्दप्रद ।"

जिस देश में, उसकी गिरी हालत में भी, ऐसी वीर सहधर्मिणियाँ मौजूद हों, क्या वह चैन ले सकता है, जब-तक कि अपने लक्ष्य को सिद्ध न कर ले ? फिर भारत ही भला क्यों अपने लक्ष्य को सिद्ध किये बग़ैर रहने लगा !

स्त्रियों का कार्य

स्त्रियाँ कार्य कितना सुन्दर कर रही हैं, यह आज हम महसूस नहीं कर रहे हैं। बम्बई में देश-सेविका-संघ संगठित-रूप से कार्य का ज़रिया है। अन्यत्र भी स्त्रियाँ संगठित काम करने को प्रयत्नशील हैं। "संतोष और संगठन से कैसी सफलता मिल सकती है", 'यंगइण्डिया' लिखता है, "यह अहमदाबाद ज़िले में शराबख़ोरी रोकने के प्रयत्नों में खुरशेद बहन को जो सफलता मिली उससे सिद्ध है। ज़िले-भर की ३३ दूकानों में से १६ तो बन्द हो गई हैं। शेष १७ को भी ऐसे ही भाग्य का मुक़ाबला करना पड़ रहा है। उनकी तीन पौत्रियाँ, जो इतनी श्रद्धा के साथ राष्ट्रीय काम में लग रही हैं, भारत को स्व० दादाभाई नौरोजी की देन हैं। एक तो जेल में है, दूसरी उसकी देहली पर, और तीसरी भी शायद उससे पहले ही वहाँ पहुँच जाय कि जितनी की हम कल्पना करते हैं।" महात्मा गाँधी की धर्म-पत्नी पू० कस्तूरबा जिस लगन से शराब-ताड़ी के विरुद्ध काम कर रही हैं, वह भी हमसे छिपा नहीं। सरदार की वीर पुत्री मणिबहन अपने पिता के साथ जेल जा ही चुकी हैं। श्रीमती हंसा मेहता युद्ध-समिति और प्रान्तिक समिति की अध्यक्षा के रूप में बम्बई में आन्दोलन का पूर्ण और सुदक्ष संचालन कर ही रही हैं—वह भी कब जेल पहुँच जायँ, यह नहीं कहा जा सकता। बंगाल में श्रीमती हेमप्रभा मजूमदार आदि कितनी महिलायें जेल जा चुकी हैं और स्व० देशबन्धु की पत्नी श्रीमती वासन्तीदेवी बड़े उत्साह से आन्दोलन को आशीर्वाद दे रही हैं। विद्यार्थियों के नाम उनकी जो अपील निकली, उसने तो ग़ज़ब का असर किया—यहाँ तक कि सरकार को उसे ज़ब्त कर लेना पड़ा। बिहार में लेडी हसन इमाम और श्रीमती दास पर दो-दो सौ रु० जुर्माने हुए। मद्रास की गिरफ्तारियाँ तो सबसे ज़्यादा हैं। पंजाब में श्रीमती ज़ुतशी, बेगम आलम आदि काम कर रही हैं। दिल्ली में श्रीमती सत्यवती तो आग लगाकर जेल पहुँच ही गई, अब श्रीमती कोहली तथा पं० जवाहरलाल नेहरू की सास आदि उसे और बढ़ा रही हैं। युक्तप्रान्त में पं० मोतीलाल नेहरु की पत्नी, जवाहरलालजी की पत्नी, बहनें, श्रीमती उमा नेहरु, श्रीमती पार्वतीदेवी आदि ने ख़ूब काम किया है। श्रीमती पार्वतीदेवी ने तो आगरे में वह काम किया कि उसके पुरस्कार-स्वरूप एक साल के लिए जेल-वासिनी भी होगई हैं। आगरा से श्री पालीवालजी, रावतजी आदि की पत्नियाँ भी जेल-वासिनी हुई हैं। उधर प्रयाग में श्रीमती उमा नेहरु इस समय प्रान्त की अध्यक्षा और सर्वेसर्वा हैं तथा श्रीमती कमला नेहरु अ० भा० कां० कार्य-समिति की सदस्या। अपने बुढ़ापे में पं० मदनमोहन मालवीय की धर्मपत्नी भी पहले-पहल अब मैदान में निकल आई हैं। मध्य-प्रान्त में श्रीमती काले आदि काम कर रही हैं। इधर हमारा राजपूताना भी जागा है। यहाँ भी कई बहनें आगे आई हैं और एक बहन—श्रीमती कृष्णादेवी तो ब्यावर में सनातन-धर्म इण्टरमीजिएट कालेज पर राष्ट्रीय झण्डा फहराकर ३ मास के लिए जेल-वासिनी भी होगई हैं। राजस्थान में ऐसा सम्मान पहले-पहल आपही को मिला है, इसके लिए बधाई। आशा है, अब राजस्थान की बहनें सजग होंगी—वे सजग हो भी रही हैं, अजमेर में ही कुछ बहनों ने मन्दिरों आदि में विदेशी कपड़े के विरुद्ध पिकेटिंग करना शुरू भी किया है। परमात्मा उन्हें ऐसी ही प्रेरणा करता रहे, यही कामना है।

मुकुट

चित्र-संग्रह

अहमदाबाद-मजदूर-संघ का पोषण-गृह

(वर्णन, पृष्ठ ४१२)

अहमदाबाद–मज़दूर-संघ का अस्पताल

(वर्णन, पृष्ठ ४४३)

सरदार वल्लभभाई पटेल

(आप फिर तीन मास के लिए सरकारी महमान बना लिये गये)

आज़ादी के दीवाने

श्री जतीन्द्रनाथ दास के बलिदान और इन दोनों के कष्ट-सहन से कैदियों के लिए श्रेणी-विभाजन (Classification) हुआ था। अब उसका उचित पालन होते न देखकर इन्होंने फिर अनशन प्रारम्भ कर दिया है। दत्त की हालत बहुत नाज़ुक है।

—

सरदार भगतसिंह

श्री बटुकेश्वर दत्त

अहिंसा का चमत्कार

वर्तमान सत्याग्रह—युद्ध संसार के विभिन्न देशों की स्वतंत्रता की रंगस्थली में एक अभूतपूर्व दृश्य है। बुद्ध और महावीर के सिद्धान्त आज कार्यरूप में आँखों के सामने हैं। दो हज़ार वर्ष पहले महात्मा क्राइस्ट ने शत्रुओं के प्रति भी जिस प्रेममय व्यवहार का उपदेश किया था, किन्तु ईसाई सभ्यता के इतिहास में जिसके व्यवहार का कभी सामूहिक उदाहरण सामने नहीं आया, आज भारत ने उसको सहज स्वाभाविक सरलता से जगत् के सामने उपस्थित किया है। महात्मा गांधी के इस अहिंसात्मक आन्दोलन का राजनैतिक मूल्य तो है ही, किन्तु नैतिक आदर्श की दृष्टि से उसका महत्व कहीं अधिक है। भारतवर्ष ने अपनी अलौकिक आध्यात्मिक प्राणशक्ति द्वारा सदा जगत् को प्रकाश दिया है। आज ईर्ष्या-द्वेष, दंभ और तामसिक शक्तियों के अभ्युदय के इस युग में अर्ध-मूर्छित, पीड़ित और व्यथित संसार की सूनी आँखें भारत की ओर लगी हुई हैं। यह सत्याग्रह-युद्ध न केवल भारतीय स्वतंत्रता के बंद द्वार की कुंजी है वरन् संसार के अन्धकारमय युग में नूतन आदर्श का अमर प्रकाश है। इस आंदोलन की सफलता पर भारत का ही भविष्य नहीं संसार का भविष्य निर्भर करता है।

अब संसार के महाराष्ट्र ग़रीब जनता की रोटी छीन कर अपने वैज्ञानिक चमत्कार से उसे हवाई जहाज़ों और क़ज़रों, बमों और गैसों के रूप में बदल रहे हैं तब सत्याग्रहियों ने एक विचित्र प्रकार के निरस्त्र युद्ध का दृश्य हमारे सामने उपस्थित किया है। गोलियों के सामने छाती तानकर हँसते हुए बच्चे एवं स्त्रियाँ, सर झुकाकर लाठी खानेवाले स्वयंसेवक, गुप्त एवं गुह्य स्थानों पर होनेवाली जंगली चोटों को भी धैर्य के साथ सहनेवाली जनता अपने उदाहरणों से सरकार एवं विश्व को चकित कर रही है। अबतक नमक-कानून के मामले में, जुलूस निकालने के मामले में तथा अन्य संघर्षों में सर्वत्र सत्याग्रही विजयी हुए हैं। सरकार खीझती है, इसलिए हारती है; सत्याग्रही मारपीट के बीच भी शांति से हँसते हैं इसलिए जीतते हैं। क्रोध एवं हिंसा पतन के कारण और शांति एवं अहिंसा विजय के संदेश होते हैं। एक जुलूस निकलता है; पुलीस कमिश्नर उसे ग़ैर-कानूनी करार देता है; सत्याग्रही शांति के साथ अनुचित आज्ञा पर ध्यान न देकर चलते जाते हैं। एक जगह पुलीस के सैकड़ों सिपाही कतार बाँधकर रास्ता रोके खड़े हैं; उनके हाथों में लाठियां हैं पर उनके चेहरे ग्लानि से मुर्झा रहे हैं। रास्ता रुकता है; सत्याग्रही बैठ जाते हैं। ऊपर से पानी बरसता है, मानो सुरगण आनन्द के आँसू बरसा रहे हों। पुलीस थक जाती है क्योंकि उसमें 'अशांति' है, 'असन्तोष' है। सत्याग्रही नहीं थकते क्योंकि उनमें 'शांति' है, 'संयम' है। अन्त में यह लाठीबंद 'अशांत' पुलीस सत्याग्रहियों पर 'अशांति' एवं अव्यवस्था फैलानेवाले जुलूस निकालने के अपराध में आँख मूँदकर लाठियाँ चलाती है—बच्चे और नवजवान हँसते-खिलखिलाते हुए सर झुकाकर लाठियाँ खाते हैं किन्तु स्थान से नहीं हटते। बेहोशी की अवस्था में अस्पताल पहुँचाये जाते हैं। दूसरी बार फिर उसी सड़क पर जुलूस निकलता है, फिर वही अमानुषिक काण्ड होते हैं। फिर जुलूस निकलता है; अन्त में पुलीस का पाशविक बल थक जाता है और सत्य की जय होती है। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' खिलखिलाकर हँस पड़ता है! यह पाशविकता पर मनुष्यता की, मृत्यु पर जीवन की, असत्य पर सत्य की और हिंसा पर अहिंसा की विजय है। यह इस आन्दोलन की अजेय सैनिकता है जिसे हज़ारों वर्ष पूर्व क्राइस्ट ने और आज के 'क्राइस्ट' महात्मा गाँधी ने बिल्कुल नये प्रायोगिक रूप में हमारे सामने रक्खा है। जिनको आँखें हैं, वे अहिंसा का यह चमत्कार देखें!

चरित्र—सार्वजनिक और व्यक्तिगत

एक बहिन अपने पत्र में लिखती हैं—

"मनुष्य के चरित्र का विकास एक गूढ़ समस्या है।